दी
इंडियन लॉ रिपोर्ट्स
इलाहाबाद संस्करण

*****

इलाहाबाद हाई कोर्ट के सभी प्रकाशन योग्य निर्णय

२०२५ – भाग ४

(अप्रैल)

पृष्ठ १ से १२७२

उत्तर प्रदेश सरकार के अधीन प्रकाशित
इंडियन लॉ रिपोर्टर अनुभाग, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित।

इंडियन लॉ रिपोर्टिंग काउंसिल

इलाहाबाद संस्करण

****

अध्यक्ष

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति श्री अरुण भंसाली

******

परिषद

माननीय न्यायमूर्ति श्री अजित कुमार

माननीय न्यायमूर्ति श्री समीर जैन

माननीय न्यायमूर्ति श्री विक्रम डी.चौहान

माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक कुमार सिंह

****

संपादक मंडल

वरिष्ठ विधि संपादक

१. श्री विनय सरन, वरिष्ठ अधिवक्ता

२. श्री समीर शर्मा, वरिष्ठ अधिवक्ता

कनिष्ठ विधि संपादक

१. श्री अनूप बरनवाल, अधिवक्ता

२ श्री आशुतोष मणि त्रिपाठी, अधिवक्ता

३. सुश्री नूर सबा बेगम, अधिवक्ता

४. श्री सरोज गिरि, अधिवक्ता

५. सुश्री मनीषा चतुर्वेदी, अधिवक्ता

६. श्री अरविन्द कुमार गोस्वामी, अधिवक्ता

७. श्री विनीत दूबे, अधिवक्ता

८. . श्री प्रशान्त मिश्रा, अधिवक्ता

९ . श्री अबू बख्त, अधिवक्ता

****

माननीय न्यायमूर्तिगण

मुख्य न्यायमूर्ति माननीय मुख्य न्यायमूर्ति श्री अरुण भंसाली	
न्यायमूर्ति	
१. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनोज कुमार गुप्ता (वरिष्ठ न्यायमूर्ति इलाहाबाद)	३५. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक वर्मा
२. माननीय न्यायमूर्ति श्री अंजनी कुमार मिश्र	३६. माननीय न्यायमूर्ति श्री संजय कुमार सिंह
३. माननीय न्यायमूर्ति श्री महेश चंद्र त्रिपाठी	३७. माननीय न्यायमूर्ति श्री पियूष अग्रवाल
४. माननीय न्यायमूर्ति श्री अरिंदम सिन्हा	३८. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौरभ श्याम शमशेरी
५. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक कुमार बिरला	३९. माननीय न्यायमूर्ति श्री जसप्रीत सिंह
६. माननीय न्यायमूर्ति श्री अताउ रहमान मसूदी (वरिष्ठ न्यायमूर्ति लखनऊ)	४०. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव सिंह
७. माननीय न्यायमूर्ति श्री अश्वनी कुमार मिश्रा	४१. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान
८. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजन राय	४२. माननीय न्यायमूर्ति श्री करूणेश सिंह पवाँर
९. माननीय न्यायमूर्ति श्री यशवनत वर्मा	४३. माननीय न्यायमूर्ति डॉ० योगेन्द्र कुमार श्रीवास्तव
१०. माननीय न्यायमूर्ति श्री सिद्धार्थ वर्मा	४४. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनीष माथुर
११. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चन्द्रा	४५. माननीय न्यायमूर्ति श्री रोहित रंजन अग्रवाल
१२. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक चौधरी	४६. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजबीर सिंह
१३. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौमित्र दयाल सिंह	४७. माननीय न्यायमूर्ति श्री विपिन चन्द्र दीक्षित
१४ माननीय न्यायमूर्ति श्री शेखर बी सराफ	४८. माननीय न्यायमूर्ति श्री शेखर कुमार यादव
१५. माननीय न्यायमूर्ति श्री सलिल कुमार राय	४९. माननीय न्यायमूर्ति श्री दीपक वर्मा
१६. माननीय न्यायमूर्ति श्री जयन्त बनर्जी	५०. माननीय न्यायमूर्ति डॉ. गौतम चौधरी
१७. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजेश सिंह चौहान	५१. माननीय न्यायमूर्ति श्री दिनेश पाठक
१८. माननीय न्यायमूर्ति श्री इरशाद अली	५२. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनीश कुमार
१९. माननीय न्यायमूर्ति श्री सरल श्रीवास्तव	५३. माननीय न्यायमूर्ति श्री समित गोपाल
२०. माननीय न्यायमूर्ति श्री जे.जे. मुनीर	५४ माननीय न्यायमूर्ति श्री दोनाडी रमेश
२१. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव गुप्ता	५५ माननीय न्यायमूर्ति श्री संजय कुमार पचौरी
२२. माननीय न्यायमूर्ति श्री सिद्धार्थ	५६ माननीय न्यायमूर्ति श्री सुभाष चन्द्र शर्मा
२३. माननीय न्यायमूर्ति श्री अजित कुमार	५७ माननीय न्यायमूर्ति श्री अजय कुमार श्रीवास्तव-प्रथम
२४. माननीय न्यायमूर्ति श्री रजनीश कुमार	५८ माननीय न्यायमूर्ति श्री चन्द्र कुमार राय
२५. माननीय न्यायमूर्ति श्री अब्दुल मुईन	५९ माननीय न्यायमूर्ति श्री कृष्ण पहल
२६. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव मिश्रा	६० माननीय न्यायमूर्ति श्री समीर जैन
२७. माननीय न्यायमूर्ति श्री चन्द्र धारी सिंह	६१ माननीय न्यायमूर्ति श्री आशुतोष श्रीवास्तव
२८. माननीय न्यायमूर्ति श्री अजय भनोट	६२ माननीय न्यायमूर्ति श्री सुभाष विद्यार्थी
२९. माननीय न्यायमूर्ति श्री नीरज तिवारी	६३ माननीय न्यायमूर्ति श्री बृज राज सिंह
३०. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनोज बजाज	६४ माननीय न्यायमूर्ति श्री श्रीप्रकाश सिंह
३१. माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश पाडिया	६५. माननीय न्यायमूर्ति श्री विकास बुधवार
३२. माननीय न्यायमूर्ति श्री आलोक माथुर	६६. माननीय न्यायमूर्ति श्री विक्रम डी चौहान
३३. माननीय न्यायमूर्ति श्री पंकज भाटिया	६७ माननीय न्यायमूर्ति श्री सौरभ श्रीवास्तव
३४. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौरभ लवानिया	६८ माननीय न्यायमूर्ति श्री ओम प्रकाश शुक्ला

६९. माननीय न्यायमूर्ति श्री मुहम्मद अजहर हुसेन इदरीसी
७० माननीय न्यायमूर्ति श्री राम मनोहर नारायण मिश्र
७१. माननीय न्यायमूर्ति श्री नलिन कुमार श्रीवास्तव
७२. माननीय न्यायमूर्ति श्री सैयद कमर हसन रिज़वी
७३. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनीश कुमार निगम
७४. माननीय न्यायमूर्ति श्री अनीश कुमार गुप्ता
७५. माननीय न्यायमूर्ति सुश्री नंद प्रभा शुक्ला
७६. माननीय न्यायमूर्ति श्री क्षितिज शैलेन्द्र
७७ माननीय न्यायमूर्ति श्री विनोद दिवाकर
७८. माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रशांत कुमार
७९. माननीय न्यायमूर्ति श्री मंजीव शुक्ल
८०. माननीय न्यायमूर्ति श्री अरूण कुमार सिंह देशवाल
८१. माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रवीण कुमार गिरि
८२. माननीय न्यायमूर्ति श्री जितेन्द्र कुमार सिन्हा
८३. माननीय न्यायमूर्ति श्री अनिल कुमार-X
८४. माननीय न्यायमूर्ति श्री संदीप जैन
८५ माननीय न्यायमूर्ति श्री अवनीश सक्सेना
८६ माननीय न्यायमूर्ति श्री मदन पाल सिंह
८७ माननीय न्यायमूर्ति श्री हरवीर सिंह

अंबरीश द्विवेदी एवं अन्य बनाम श्री अमनंद कुमार सिंह, एम.डी., प्रादेशिक कोऑपरेटिव डेयरी फेडरेशन लिमिटेड, लखनऊ एवं अन्य पृष्ठ-451

अनुज त्यागी बनाम जिला निर्वाचन अधिकारी (नगर परिषद सामान्य चुनाव-2023), कलेक्ट्रेट जिला गाजियाबाद व अन्य पृष्ठ-351

अभिमन्यु प्रसाद ओझा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-1127

अभिषेक मिश्रा उर्फ पिंटू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-882

अमरजीत पांडे बनाम राज्य उत्तर प्रदेश और अन्य पृष्ठ-979

अरुण कुमार मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-922

अशरफ बनाम राज्य पृष्ठ-1062

अशोक कुमार सेठ बनाम उत्तर प्रदेश कोऑपरेटिव संघ लिमिटेड एवं अन्य पृष्ठ-665

आर.एस. फिलिंग स्टेशन इंडियन आयल कार्पोरेशन लि. खीरी एवं अन्य बनाम इंडियन आयल कार्पोरेशन लि. एवं अन्य पृष्ठ-754

आवेश बनाम उत्तर प्रदेश आवास एवं विकास परिषद लखनऊ एवं अन्य पृष्ठ-104

इब्राहिम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-1040

ईशान चौधरी एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य पृष्ठ-360

उत्तर प्रदेश राज्य बनाम पुष्पेंद्र उर्फ गब्बर पृष्ठ-1212

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम महावीर सिंह एवं अन्य पृष्ठ-1263

उस्मान अली बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य पृष्ठ-1103

ओमनारायणश्री एग्रीफार्मर प्राइवेट लिमिटेड बनाम पी.एन.बी. एवं अन्य पृष्ठ-1254

अनुवादित

कैरियर कॉन्वेंट एजुकेशन एंड चैरिटेबल ट्रस्ट, द्वारा प्रबंधक एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-704

कैलाश बनाम उप निदेशक, चकबंदी, सीतापुर एवं अन्य पृष्ठ-517

कौशल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-1093

चंचल सोनकर बनाम अध्यक्ष, एसबीआई व अन्य पृष्ठ-112

जयंत कुमार सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-491

जयराज सिहं बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-655

जावेद अहमद @ जावेद एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-429

जोधराम बनाम डी.डी.सी., जिला हरदोई व अन्य पृष्ठ-545

डॉ. इंद्र प्रताप सिंह बनाम बी.एच.यू., वाराणसी एवं अन्य पृष्ठ-286

डॉ. गोमती द्विवेदी बनाम सी.बी.आई./ए.सी.बी. शाखा, लखनऊ पृष्ठ-1099

डॉ. ज्ञानवती दीक्षित बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-470

डॉ. योगेंद्र भदौरिया बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-161

डॉ. सबा सरीफ़ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-823

तथीर जाफरी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-907

दानिश खान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-901

देवेंद्र कुमार वर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-310

देवेंद्र पांडे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-874

असंपादित

देवेश चंद्र द्विवेदी बनाम आयुक्त फैजाबाद और अन्य पृष्ठ-390

धीर सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-1018

नागेंद्र कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-183

नावेद अख्तर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-688

निशा कुशवाहा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-986

नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, लखनऊ बनाम मनोरमा एवं अन्य पृष्ठ-1193

प्रदीप पाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-504

प्रेम एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-19

फेरासत बनाम राज्य उत्तर प्रदेश पृष्ठ-460

बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी बनाम डॉ. भक्तिपुत्र रोहतम एवं अन्य पृष्ठ-82

बाँदू राम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-999

बिनय कुमार सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-312

बेबी आलिया (नाबालिग) एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-780

मंजीत सिंह @ इंदर @ मंजीत सिंह चाना बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-29

मयूर आहू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-749

मुरादाबाद बरेली एक्सप्रेसवे लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-660

मेसर्स एरिना सुपरस्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ एवं अन्य पृष्ठ-424

अनुवादित

मेसर्स एसडीएस इंफ्राकॉन प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-621

मेसर्स कामाख्या ट्रेडर बनाम अपर आयुक्त ग्रेड 2 एवं अन्य पृष्ठ-406

मेसर्स के.सी. इंटरनेशनल सिचुएट एवं अन्य बनाम इंडियन बैंक कानपुर मुख्य शाखा पृष्ठ-344

मेसर्स क्लासिक एंटरप्राइजेज बनाम एन.एच.ए.आई. सड़क परिवहन एवं राजमार्ग मंत्रालय एवं अन्य पृष्ठ-607

मेसर्स बी एम कंप्यूटर्स बनाम आयुक्त, वाणिज्यिक कर लखनऊ और अन्य पृष्ठ-417

मेसर्स मनोज ग्लास बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-400

मेसर्स मेरिनो इंडस्ट्रीज लिमिटेड, हापुड़, यू.पी. बनाम यू.पी. राज्य एवं अन्य पृष्ठ-410

मेसर्स राजन कंस्ट्रक्शन कंपनी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-851

मोहन शर्मा बनाम अपर जिला न्यायाधीश/विशेष (एस.सी./एस.टी.) अधिनियम, बहराइच एवं अन्य पृष्ठ-496

मोहम्मद कासिम उस्मानी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-1157

मोहम्मद फहीम जमाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-265

यू.पी.एस.आर.टी.सी. फैजाबाद बनाम श्रीमती मीना श्रीवास्तव एवं अन्य पृष्ठ-1202

योगेंद्र गिरि बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-321

रमाकांत बनाम उप निदेशक, चकबंदी एवं अन्य पृष्ठ-551

रमेश कुमार यादव बनाम इलाहाबाद उच्च न्यायालय एवं अन्य पृष्ठ-166

रमेश कुमार श्रीवास्तव एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-892

रमेश कुमार सिंह बनाम आयुक्त, लखनऊ मंडल, लखनऊ एवं अन्य पृष्ठ-726

अनुवादित

राकेश सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-1078

राज कुमार एवं अन्य बनाम राजस्व परिषद् एवं अन्य पृष्ठ-590

राजकुमार दुबे बनाम राजस्व परिषद् एवं अन्य पृष्ठ-571

राजीव यादव उर्फ रिंकू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-915

राजेंद्र प्रसाद व अन्य बनाम जिला मजिस्ट्रेट, बरेली व अन्य पृष्ठ-799

राम बरन बनाम शीतला प्रसाद यादव एवं अन्य पृष्ठ-1175

राम सुंदर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-134

रामजी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-782

वसीम रियाज बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-8

विनय कुमार बनाम कलेक्टर/जिला मजिस्ट्रेट, बलरामपुर एवं अन्य पृष्ठ-868

वीर बहादुर सिंह बनाम हिंदुस्तान पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड और अन्य पृष्ठ-692

शुभम कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-328

शैलेंद्र कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-220

श्री कृष्ण एवं अन्य बनाम भारत संघ और अन्य पृष्ठ-813

श्रीमती कुसुम बनाम आनंद कुमार एवं अन्य पृष्ठ-35

श्रीमती केहकशान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-830

श्रीमती पूजा यादव उर्फ पूजा यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-507

अनुवादित

श्रीमती मिनाक्षी गुप्ता बनाम कैलाश चंद्र पृष्ठ-1171

श्रीमती रेखा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-932

श्रीमती सर्बा मौर्य एवं अन्य बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड एवं अन्य पृष्ठ-1188

श्रीमती सुशीला देवी उर्फ सुशीला बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-718

संतोष कुमार बनाम सहायक सचिव/उप सचिव/सचिव, बीमा लोकपाल, लखनऊ एवं अन्य पृष्ठ-369

संतोष जी मिश्रा बनाम यू.पी. राज्य एवं अन्य पृष्ठ-484

सचिव, उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा बोर्ड व अन्य बनाम त्रिपुरारी दुबे व अन्य पृष्ठ-73

सतीश धुरिया बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-695

सर्वेश कुमार बनाम महाप्रबंधक, पंजाब नेशनल बैंक एवं अन्य पृष्ठ-276

साईं नागेश्वर सच्चिदानंद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-1136

सिम्मी कुमारी एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य पृष्ठ-131

सी/एम राम भरोसे मैकूलाल इंटर कॉलेज, लखनऊ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-124

सीता राम शर्मा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-681

सुधीर कुमार अग्रवाल बनाम भारत संघ एवं अन्य पृष्ठ-201

सुनीता निषाद एवं अन्य बनाम ऋण वसूली अपीलीय न्यायाधिकरण एवं अन्य पृष्ठ-628

सुनील कुमार यादव एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-677

सुमेर सिंह बनाम राजस्व बोर्ड एवं अन्य पृष्ठ-561

अनुवादित

सुलेमान बनाम प्रधानाचार्य एस.टी. हाई स्कूल व अन्य पृष्ठ-334

हनुमंत लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-120

हरि शंकर कुशवाहा बनाम ए.डी.जे. ई.सी. अधिनियम, लखनऊ एवं अन्य पृष्ठ-870

(2025) 4 ILRA 5

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल वाद

दिनांक: लखनऊ 08.04.2025

माननीय न्यायमूर्ति संजय कुमार पचौरी

के समक्ष

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या - 29865/2024

वसीम रियाज़ **...आवेदक**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...प्रतिपक्षी**

आवेदक के अधिवक्ता:
अथर्व दीक्षित, प्रणव तिवारी

प्रतिपक्षी पक्ष के अधिवक्ता:
जी.ए.

आपराधिक विधि - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धाराएँ 419, 420, 406, 120-बी, 411, 467, 468 और 471 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धाराएँ 102, 451 और 457 - जब्त की गई मुद्रा की रिहाई - वैधता - सपोस सर्विसेज प्राइवेट लिमिटेड के एजेंट द्वारा चार नामित आरोपियों के खिलाफ एफआईआर दर्ज करना, पुलिस ने जांच के दौरान, भारतीय मुद्रा जब्त की -सह-आरोपी से नकदी बरामद की गई - आवेदक ने जब्त की गई भारतीय मुद्रा ₹1.87 करोड़ की इन्टरिम कस्टडी की मांग करते हुए आवेदन दायर किया, अपने पिता के अधिकार के माध्यम से स्वामित्व का दावा करते हुए, जिनका व्यवसाय वह इकलौते पुत्र के रूप में प्रबंधित करता है - आवेदन खारिज, व्यथित, दायर आपराधिक पुनरीक्षण, खारिज - सूचनादाता ने न तो जब्त नकदी का दावा किया है और न ही उसकी सौपने पर आपत्ति जताई है, और आवेदक के पक्ष में उसकी सौपने के लिए सहमति दी है - जब जब्त की गई संपत्ति को मुकदमे के लिए कस्टडी में रखने की आवश्यकता नहीं है, तो उसे संभावनाओं के प्रमाण के आधार पर, उसके वास्तविक स्वामी या उसके कब्जे के हकदार व्यक्ति को जारी किया जाना चाहिए - संपत्ति के स्वामी या उसके कब्जे के हकदार व्यक्ति को जारी करना, स्वामित्व की घोषणा नहीं माना जाएगा और मौजूदा या भविष्य के दीवानी मुकदमे के अधीन रहेगा - आलोचना आदेश रद्द कर दिया गया, जब्त की गई मुद्रा को आवेदक को कुछ शर्तों पर इन्टरिम कस्टडी में जारी करने का निर्देश दिया गया। (पैरा 2, 19, 20, 23)

आवेदन स्वीकृत। (ई-13)

अनुवादित

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:

1. सुंदरभाई अंबालाल देसाई बनाम गुजरात राज्य, 2002 (10) एससीसी 283
2. श्रीमती बसावा कोम ज्ञानमंगौड़ा पाटिल बनाम मैसूर राज्य एवं अन्य, (1977) 4 एससीसी 358, (पैरा 7 से 12)
3. जनरल इंश्योरेंस काउंसिल बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (2010) 6 एससीसी 768
4. बिस्वजीत डे बनाम असम राज्य, 2025 एससीसी ऑनलाइन एससीसी 40, (पैरा 23)

(माननीय न्यायमूर्ति संजय कुमार पचौरी द्वारा प्रदत्त)

1. दंड प्रक्रिया संहिता (जिसे आगे "दं.प्र.सं" कहा जाएगा) की धारा 482 के तहत वर्तमान आवेदन, आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 422/2022 (वसीम रियाज बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में अपर सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (पोक्सो अधिनियम), न्यायालय संख्या 2, वाराणसी द्वारा पारित दिनांक 1.7.2024 के आदेश को रद्द करने के लिए दायर किया गया है, जिसके तहत पुनरीक्षण न्यायालय ने 1,87,00,000/-,रुपये की भारतीय मुद्रा जारी करने के लिए दं.प्र.सं की धारा 451 के साथ धारा 457 के तहत एक आवेदन पर अपर सिविल न्यायाधीश (वरिष्ठ प्रभाग)/न्यायिक मजिस्ट्रेट, न्यायालय संख्या 2, वाराणसी द्वारा पारित दिनांक 13.10.2022 के आदेश की पुष्टि की थी, जो दिनांक 21.04.2022 को थाना चेतगंज, जिला वरुणा (कमिस्नरेट वाराणसी) में पंजीकृत भारतीय दंड संहिता की धारा 419, 420, 406, 120-बी, 411, 467, 468, 471 के तहत मामला अपराध संख्या 46/2022 की जांच के दौरान जब्त किया गया था, वर्तमान आवेदक द्वारा अपने पिता की ओर से प्राधिकार प्राप्त करने के बाद दायर किया गया था, जिसे खारिज कर दिया गया है।

2. अभिलेख से प्रकट संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि आवेदक ने भारतीय मुद्रा रुपये 1,87,00,000/- को जारी करने के लिए दं.प्र.सं की धारा 451 के साथ धारा 457 के तहत एक आवेदन दायर किया था, जिसे थाना चेतगंज, जिला वरुणा (कमिस्नरेट वाराणसी) में पंजीकृत मामला अपराध संख्या 46 वर्ष 2022 की जांच के दौरान सह-अभियुक्त सचिन शर्मा से बरामद और जब्त किया गया है। दिनांक 28.04.2022 के फर्द बरामदगी के अनुसार, 2000/- रुपये, 500/- रुपये, 200/- रुपये, 100/- रुपये के मूल्यवर्ग में क्रमशः 983, 33088, 600 और 700 रुपये की भारतीय मुद्रा बरामद की गई है, जिसमें कहा गया है कि आवेदक उपरोक्त मामले की संपत्ति का वास्तविक मालिक है।

2(i). दिनांक 21.04.2022 को प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के बाद, जिसे निजी प्रतिपक्षी संख्या 2 द्वारा चार नामित आरोपियों के खिलाफ प्रथम सूचनादाता द्वारा पंजीकृत किया गया है, जो कथित रूप से सपोस सर्विसेज प्राइवेट लिमिटेड (कलेक्शन कंपनी) का एक एजेंट है। जांच के दौरान पुलिस ने दिनांक 28.04.2022 के रिकवरी मेमो द्वारा 1,87,00,000/- रुपये की भारतीय मुद्रा जब्त की।

2(ii). जांच पूरी करने के बाद, चार आरोपियों के खिलाफ आईपीसी की धारा 419, 420, 406, 120-बी, 411, 467, 468, 471 के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है और उपरोक्त मामले का विचारण लंबित है।

2(iii). वर्तमान आवेदक ने अपने पिता की ओर से जब्त भारतीय मुद्रा को जारी करने के लिए दं.प्र.सं की धारा 451 के साथ धारा 457 के तहत 13.05.2022 को एक आवेदन दायर किया, जो उसके पिता द्वारा दिए गए अधिकार के आधार पर था क्योंकि आवेदक एकमात्र पुत्र है, जो अपने पिता के व्यवसाय की देखभाल करता है, आवेदक के पक्ष में अंतरिम हिरासत के लिए पारित किया गया, जिसने खुद को जब्त की गई संपत्ति का मालिक होने का दावा किया, जिसे विद्वान मजिस्ट्रेट ने 13.10.2022 को खारिज कर दिया है। विद्वान मजिस्ट्रेट के आदेश से व्यथित होकर, आवेदक ने आपराधिक पुनरीक्षण दायर किया जिसे 1 जुलाई, 2024 को भी खारिज कर दिया गया है।

2(iv). अभियुक्तगणों ने आज तक भारतीय मुद्रा जारी करने के लिए कोई आवेदन प्रस्तुत नहीं किया है।

2(v). प्रथम सूचनादाता ने आज तक अपने पक्ष में उपरोक्त नकदी जारी करने के लिए कोई आवेदन प्रस्तुत नहीं किया है और स्वीकार किया है कि उसने वर्तमान आवेदक के पक्ष में उपरोक्त भारतीय मुद्रा जारी करने के लिए सहमति दी थी।

3. विद्वान मजिस्ट्रेट ने पाया कि वर्तमान भारतीय मुद्रा उपरोक्त केस अपराध की केस संपत्ति है। तथापि, यह भी पाया कि आवेदक जब्त भारतीय मुद्रा का वास्तविक स्वामी है। उपरोक्त मुद्रा के स्वामित्व के संबंध में कोई विवाद नहीं है। समन-पूर्व साक्ष्य (प्रथम सूचनादाता का कथन) के अनुसार, प्रथम सूचनादाता ने आवेदक के पिता की ओर से उपरोक्त राशि एकत्र की थी।

4. आयकर आयुक्त ने उपरोक्त नकदी जारी करने के लिए एक आवेदन प्रस्तुत किया जिसमें कहा गया कि जब्त नकदी का स्रोत और प्रकृति स्पष्ट नहीं की जा सकी। दिनांक 07.09.2022 को, एस.एच.ओ. चेतगंज, वाराणसी को अनुरोध पत्र जारी किया गया था, जिसकी तामील कर दी गई है, लेकिन एस.एच.ओ. आयकर विभाग को नकद राशि नहीं दी है। यह भी आरोप लगाया गया है कि जब्त की गई राशि अघोषित आय है, करदाता की आपत्ति का निर्णय आयकर अधिनियम की धारा 132 के तहत ही किया जाना है और न्यायालय को दं.प्र.सं की धारा 457 के तहत समान कार्यवाही में आवेदन पर निर्णय लेने का कोई अधिकार नहीं है, जिसे दिनांक 13.10.2022 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया है, और दिनांक 13.10.2022 के आदेश के विरुद्ध आपराधिक पुनरीक्षण भी दायर किया गया है, जिसे अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश न्यायालय संख्या 2, वाराणसी द्वारा भी दिनांक 02.07.2024 को खारिज कर दिया गया है।

5. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि आक्षेपित आदेश तथ्यों, परिस्थितियों और कानून की स्थिति पर विचार किए बिना पारित किया गया है। यह भी प्रस्तुत किया गया कि उपरोक्त भारतीय मुद्रा के स्वामित्व के संबंध में कोई विवाद नहीं है, जिसे केस अपराध संख्या 46/2022 की जांच के दौरान बरामद और जब्त किया गया है। जहां तक भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अपराधों का संबंध है, कोई तर्क नहीं है। राज्य द्वारा

कोई कारण या तर्क नहीं दिया गया है कि जब अभियोजन पक्ष का तर्क है कि जांच पूरी हो चुकी है, तो धन को रोके रखने की आवश्यकता क्यों है।

6. आवेदक के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने सुंदरभाई अंबालाल देसाई बनाम गुजरात राज्य, 2002 (10) एससीसी 283 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का हवाला दिया। आवेदक ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 102(3) के अनुसार न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए एक बांड निष्पादित करने की अपनी तत्परता और इच्छा व्यक्त की।

7. आयकर विभाग के विद्वान अधिवक्ता श्री गौरव महाजन ने उपरोक्त अनुरोध के प्रत्युत्तर में और निर्देश प्राप्त करने के पश्चात्, इस मामले में न्यायालय की सहायता करने का अनुरोध किया, जिन्होंने स्वीकार किया कि दिनांक 02.07.2024 के आदेश के विरुद्ध कोई अन्य कार्यवाही दायर नहीं की गई है।

8. इसके विपरीत, विद्वान ए.जी.ए. के साथ-साथ आयकर विभाग के विद्वान अधिवक्ता श्री गौरव महाजन ने वर्तमान मामले के तथ्यात्मक सार को नकारा नहीं है और यह भी स्वीकार किया है कि उपरोक्त भारतीय मुद्रा आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 132(ए) के अंतर्गत जब्त नहीं की गई है या किसी अन्य अधिनियम के अंतर्गत कोई अन्य मामला दर्ज नहीं किया गया है।

9. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री अथर्व दीक्षित और श्री प्रणव तिवारी की सहायता से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री मनीष तिवारी, आयकर विभाग के विद्वान अधिवक्ता श्री गौरव महाजन, प्रतिपक्षी पक्षकार संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री वेदांत अग्रवाल और राज्य के विद्वान ए.जी.ए. श्री तेजभान सिंह को सुना गया और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया गया।

10. वर्तमान मामला उपर्युक्त मामले में जब्त भारतीय मुद्रा की अंतरिम हिरासत से संबंधित है। विद्वान मजिस्ट्रेट ने आवेदक की रिहाई की अर्जी खारिज कर दी और सत्र न्यायाधीश के समक्ष विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश दिनांक 13.10.2022 के खिलाफ एक आपराधिक पुनरीक्षण दायर किया गया है, जिसे अपर सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (पॉक्सो अधिनियम), न्यायालय संख्या 2, वाराणसी ने 1 जुलाई, 2024 को तय किया है और मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश की पुष्टि की है।

11. आवेदक द्वारा मांगी गई राहत पर ध्यान देने से पहले, कुछ और तथ्यों का उल्लेख करना आवश्यक होगा जो प्रासंगिक हैं। आवेदक के पिता द्वारा आवेदक के पक्ष में दिए गए प्राधिकार का संक्षिप्त संदर्भ और साथ ही विरोधी पक्ष संख्या 2/प्रथम सूचनादाता की सहमति आगे के विचार के लिए आवश्यक है, जो इस प्रकार हैं:

11(i) अमित मित्तल, सोनू लकड़ा, संदीप खत्री और अभिषेक गोयल नाम के चार लोगों के खिलाफ प्रतिपक्षी संख्या २ ने एफ.आई आर. दिनांकित 21.04.2022 को दर्ज करवाया था:

"सेवा में श्रीमान प्रभारी निरीक्षक साहब थाना चेतगंज वाराणसी महोदय निवेदन है कि मैं प्रार्थी अंकित शुक्ला पुत्र सोमेश्वर नाथ शुक्ला ग्राम ममुआ थाना राबर्टसगंज सोनभद्र का निवासी हूं हाल पता अकथा चौराहा थाना लालपुर पांडेपुर वाराणसी मै प्रार्थी सापोस सर्विसेज प्रा० लि० कंपनी में सेल्स मैनेजर के पोस्ट पर काम करता हूं मैं कंपनी के भेजे गए रेशम को बुनकरो को थोड़ा थोड़ा करके बेचता हूं और उनसे नकद कलेक्शन करता हूं दिनांक 16.04.2022 को मेरे रिश्तेदार अश्वनी कुमार पाण्डे के मोबाइल नंबर 8400412764 पर अभिषेक गोयल मोबाइल नंबर 7506721039से फोन आया और उनसे कहा कि मैं आप से कैश पैसे लेकर आपके अकाउंट में उतने ही पैसे कुछ कमीशन लेकर ट्रांसफर करा दूंगा और उसने अमित मित्तल उर्फ यश मित्तल मोबाइल नंबर 8427612327 और कहा कि यह चार्टेट अकाउंटेंट है आप इनसे बात करके मिल लीजिए आपका काम हो जाएगा दिनांक 18.04.2022 को मैं अमित मित्तल उर्फ यश मित्तल से बात करके उसके मलदहिया स्थित ऑफिस पर मिलने गये था मैं उसकी बातों से संतुष्ट हो गया आज दिनांक 20.04.2022 को समय सुबह 10.00बजे बुनकरो से इकट्ठा किए हुए कुल कैश 2 करोड़ रूपये लेकर टैक्स बचाने के नियत से अमित उर्फ यस मित्तल के मलदहिया स्थित ऑफिस पर पहुंचा वहां पर अमित उर्फ यश मित्तल व उसके 2 साथी जो क्रमशः सोनू लाकड़ा व सदीप खत्री जो बोलचाल से हरियाणा के लगते थे पहले से मौजूद थे लोगो ने कहा कि कैश गिन कर अकाउंट में ट्रान्सफर कर देते हैं और ऑफिस के अंदर ही दूसरे कमरे में पूरे कैश गिनवाने के लिए रखवा दिया और मेरे साथ धोखाधड़ी करते हुए बारी बारी से मेरा सारा कैश लेकर वहां से चले गए मेरे साथ मेरे रिश्तेदार अश्वनी कुमार पांडे भी ऑफिस में मौजूद थे उन्हें कुछ शक हुआ तो वह बगल वाले कमरे में गए तो वे चिल्लाए की ना तो कमरे में कैश है और ना ही वे लोग हैं वे सभी ऑफिस के दूसरे रास्ते से धोखाधड़ी करते हुए मेरा सारा कैश लेकर फरार हो गए उन लोगों का काफी तलाश किया लेकिन नहीं मिले। अतः महोदय से अनुरोध है कि उचित कानूनी कार्यवाही करने की कृपा करें। प्रार्थी अंकित शुक्ला मो० नं० 8299046897 दिनांक 20.04.2022 नोट मुझ का०मु०मो० सारिक द्वारा बोल बोल कर टाइप कराया गया।"

11(ii). प्रतिपक्षी नं. 2/प्रथम सूचनादाता ने आवेदक के रिहाई आवेदन के विरुद्ध कोई आपत्ति दर्ज नहीं की जो इस प्रकार है:

"2. यह कि उक्त अ0 सं0 में वसीम रियाज पुत्र मुस्तफा कमाल निवासी एन0 12/361सी-7 आजाद नगर बजरडीहा थाना भेलपुर जनपद वाराणसी धारा मु 0 1,87,00,000/- (एक करोड़ सत्तासी लाख रु0) का रिलीज़ प्रार्थनापत्र दिनांकित 13.05.2022 मा0 न्यायलय में दाखिल है उसकी पूर्ण जानकारी प्रार्थी/वादी को हैं। संपूर्ण धनराशि वसीम रियाज़ के फर्म कमल साड़ीज की थी।

3. यह कि उक्त धनराशि मा0 न्यायलय द्वारा वसीम रियाज के पक्ष में अवमुक्त की जाती है तब प्रार्थी/वादी को उक्त धनराशि वसीम रियाज के पक्ष में अवमुक्त किये जाने से कोई आपत्ति नहीं है ऐसी स्थिति में उक्त धनराशि वसीम रियाज के पक्ष में रिलीज़ किया जाना न्यायसंगत होगा।"

11(iii). आवेदक ने फर्म कमल साड़ीज़ के मालिक के बेटे के रूप में यानी अपने पिता की ओर से निम्नलिखित प्राधिकार के आधार पर रिहाई आवेदन दायर किया:

"मैं मुस्तफा कमाल पुत्र स्व० मोहम्मद रफीक निवासी - एन० 12/ 361 सी-7 आजाद नगर बजरडीहा, थाना - भेलूपुर, जनपद वाराणसी का निवासी हूॅ व कमल साडिज नामक फर्म का प्रोपराईटर हूं। फर्म का GST. IN\UIN नम्बर- 09ANPPK48371ZI है चूॅकि मेरी उम्र ज्यादा है व मुझे कई गम्भीर रोग है इसी कारण उक्त फर्म का सभी कार्य/विधिक कार्य मेरे पुत्र वसीम रियाज पुत्र मुस्तफा कमाल निवासी - एन० 12/361 सी- 7 आजाद नगर बजरडीहा, थाना - भेलूपुर, जनपद वाराणसी द्वारा किया जायेगा उक्त सम्बन्ध में मैं यह सहमति पत्र अपने पूर्ण होशो-हवाश में बिना किसी जोर जबरदस्ती के हस्ताक्षरित कर रहा हूॅ।"

12. यह स्वीकृत तथ्य है कि उपरोक्त जब्ती दं.प्र.सं की धारा 102 के अंतर्गत की गई है। दं.प्र.सं की धारा 102 के अंतर्गत जब्ती की योजना अन्य अधिनियमों से काफी भिन्न है। दं.प्र.सं की धारा 102 पुनरुत्पादित:

"102. पुलिस अधिकारी की कुछ संपत्ति जब्त करने की शक्ति:- (1) कोई भी पुलिस अधिकारी ऐसी किसी भी संपत्ति को जब्त कर सकता है जिसके चोरी होने का आरोप या संदेह हो, या जो ऐसी परिस्थितियों में पाई जा सकती है जो किसी अपराध के होने का संदेह पैदा करती हैं।
(2) ऐसा पुलिस अधिकारी, यदि किसी पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी के अधीनस्थ है, तो जब्ती की सूचना तुरंत उस अधिकारी को देगा।
(3) उप-धारा (1) के अधीन कार्य करने वाला प्रत्येक पुलिस अधिकारी जब्ती की सूचना तुरंत अधिकारिता रखने वाले मजिस्ट्रेट को देगा और जहाँ जब्त की गई संपत्ति ऐसी है कि उसे न्यायालय में आसानी से नहीं पहुँचाया जा सकता, वहाँ वह किसी भी व्यक्ति को उसकी कस्टडी दे सकता है, बशर्ते वह एक बंधपत्र निष्पादित करे जिसमें यह वचन दिया गया हो कि वह आवश्यकता पड़ने पर संपत्ति को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करेगा और उसके निपटान के संबंध में न्यायालय के आगे के आदेशों को प्रभावी करेगा।

13. धारा 102 की उप-धारा (1) को स्पष्ट रूप से पढ़ने से संकेत मिलता है कि पुलिस अधिकारी को ऐसी किसी भी संपत्ति को जब्त करने की शक्ति है जो किसी अपराध के होने का संदेह पैदा करने वाली परिस्थितियों में पाई जा सकती है। विधायिका ने 'कोई संपत्ति' और 'कोई अपराध' पदों ने इन प्रावधानों की प्रयोज्यता को इतना व्यापक बना दिया है कि वे किसी भी अधिनियम के अंतर्गत सृजित अपराधों को भी इसमें शामिल कर सकते हैं। लेकिन धारा 102(1) की प्रयोज्यता के लिए दो पूर्व-शर्तें हैं: पहला, यह 'संपत्ति' होनी चाहिए और दूसरा, उक्त संपत्ति के संबंध में किसी अपराध के घटित होने का संदेह होना चाहिए। हालाँकि, जब्ती का उक्त आदेश केवल एक अस्थायी आदेश है और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 102 की उप-धारा (3) के अनुसार, किसी अपराध के संदेह के आधार पर किसी संपत्ति को जब्त करने वाले पुलिस अधिकारी को अधिकार क्षेत्र वाले मजिस्ट्रेट को जब्ती की सूचना तुरंत देनी होती है।

14. जब्त की गई उक्त संपत्ति को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करना और/या मजिस्ट्रेट को सूचित करना आवश्यक है। ऐसे मामलों में, न्यायालय को उक्त संपत्ति के संबंध में आवश्यक आदेश पारित करने का अधिकार होगा। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 457 के अनुसार, जब भी कोई संपत्ति किसी पुलिस अधिकारी द्वारा जब्त की जाती है और मजिस्ट्रेट को सूचित की जाती है, तो मजिस्ट्रेट को उस संबंध में ऐसे आदेश देने का अधिकार है जो वह उचित समझे। संपत्ति के निस्तारण या उस संपत्ति को उस व्यक्ति को सौंपने का, जो उस पर कब्जे का हकदार है। ऐसे मामलों में, जहाँ ऐसे व्यक्ति का पता नहीं लगाया जा सकता, मजिस्ट्रेट ऐसी संपत्ति की कस्टडी और प्रस्तुतीकरण के संबंध में आदेश पारित कर सकता है।

15. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 451 और 457 के प्रावधानों का संदर्भ लेना उपयोगी होगा, जिन्हें निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"451. कुछ मामलों में विचारण लंबित रहने तक संपत्ति की कस्टडी और प्रस्तुतीकरण के लिए आदेश -जब किसी जाँच या विचारण के दौरान किसी दंड न्यायालय के समक्ष कोई संपत्ति प्रस्तुत की जाती है, तो न्यायालय जाँच या विचारण के समापन तक ऐसी संपत्ति की उचित कस्टडी के लिए ऐसा आदेश दे सकता है, जैसा वह उचित समझे, और यदि संपत्ति शीघ्र और प्राकृतिक रूप से क्षय होने वाली है, या यदि ऐसा करना अन्यथा समीचीन है, तो न्यायालय ऐसे साक्ष्य को अभिलिखित करने के बाद, जैसा वह आवश्यक समझे, उसे बेचने या अन्यथा प्रस्तुतीकरण का आदेश दे सकता है।

स्पष्टीकरण- इस धारा के प्रयोजनों के लिए, "संपत्ति" में (क) किसी भी प्रकार की संपत्ति या दस्तावेज शामिल हैं, जो न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है या जो उसकी कस्टडी में है।

(ख) कोई संपत्ति जिसके संबंध में कोई अपराध किया गया प्रतीत होता है या जिसका उपयोग अपराध के लिए किया गया प्रतीत होता है।

457. संपत्ति के अभिग्रहण पर पुलिस द्वारा प्रक्रिया.- (1) जब कभी किसी पुलिस अधिकारी द्वारा संपत्ति के अभिग्रहण की सूचना इस संहिता के उपबंधों के अधीन मजिस्ट्रेट को दी जाती है, और ऐसी संपत्ति किसी जांच या विचारण के दौरान दंड न्यायालय के समक्ष पेश नहीं की जाती है, तो मजिस्ट्रेट ऐसी संपत्ति के निपटान या उस संपत्ति को उस व्यक्ति को सौंपने के संबंध में, जो उस पर कब्जा करने का हकदार है, या यदि ऐसे व्यक्ति का पता नहीं लगाया जा सकता है, तो ऐसी संपत्ति की कस्टडी और पेशी के संबंध में ऐसा आदेश दे सकता है, जैसा वह ठीक समझे।

(2) यदि इस प्रकार हकदार व्यक्ति ज्ञात है, तो मजिस्ट्रेट संपत्ति को ऐसी शर्तों (यदि कोई हो) पर उसे सौंपने का आदेश दे सकता है, जैसा मजिस्ट्रेट ठीक समझे और यदि ऐसा व्यक्ति अज्ञात है, तो मजिस्ट्रेट उसे रोक सकता है और ऐसी स्थिति में, एक उद्घोषणा जारी करेगा जिसमें ऐसी संपत्ति में शामिल वस्तुओं को निर्दिष्ट किया जाएगा और उस पर दावा करने वाले किसी भी व्यक्ति को, ऐसी उद्घोषणा की तारीख से छह महीने के भीतर उसके समक्ष उपस्थित होने और अपना दावा स्थापित करने की आवश्यकता होगी।

16. धारा 451 स्पष्ट रूप से न्यायालय को ऐसी संपत्ति के संबंध में उचित आदेश पारित करने का अधिकार देती है, पहला; जांच या मुकदमे के समापन तक उचित कस्टडी के लिए; दूसरा; आवश्यक समझे जाने वाले साक्ष्य को रिकॉर्ड करने के बाद, इसे बेचने या अन्यथा निपटाने का आदेश देना; तीसरा; यदि संपत्ति शीघ्र और प्राकृतिक क्षय के अधीन है, तो उसका निस्तारण करना।

17. **सुंदरभाई अंबालाल देसाई बनाम गुजरात राज्य, 2002 (10) एससीसी 283** के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने देखा कि धारा 451 दं.प्र.सं के तहत आवेदन नाशवान वस्तुएं, नशीले पदार्थ, प्रतिबंधित वस्तुएं, वाहन, नकदी और आभूषण जो आपराधिक कार्यवाही का विषय हैं, उन पर शीघ्र और विवेकपूर्ण तरीके से निर्णय लिया जाना चाहिए। श्रीमती बसावा कोम ज्ञानमंगौड़ा पाटिल बनाम मैसूर राज्य एवं अन्य, (1977) 4 एससीसी 358 के निर्णय का संदर्भ देने के बाद सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जारी विभिन्न दिशानिर्देश और निर्देश पैराग्राफ 7, 8, 9, 10, 11 और 12 के रूप में पुन: प्रस्तुत करने के लिए प्रासंगिक हैं, जो इस प्रकार हैं:

"7. हमारे विचार में, धारा 451 दं.प्र.सं के तहत शक्तियों का प्रयोग शीघ्र और विवेकपूर्ण तरीके से किया जाना चाहिए। इससे विभिन्न उद्देश्य पूरे होंगे, जैसे:-

1. वस्तु के मालिक को उसके अप्रयुक्त रहने या उसके दुरुपयोग के कारण नुकसान नहीं होगा।

2. न्यायालय या पुलिस को वस्तु को सुरक्षित कस्टडी में रखने की आवश्यकता नहीं होगी;

3. यदि वस्तु का कब्ज़ा सौंपने से पहले उचित पंचनामा तैयार किया जाता है, तो उसे मुकदमे के दौरान न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने के बजाय साक्ष्य के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। यदि आवश्यक हो, तो संपत्ति की प्रकृति का विस्तार से वर्णन करते हुए साक्ष्य भी दर्ज किया जा सकता है; और

4. साक्ष्य दर्ज करने के न्यायालय के इस अधिकार क्षेत्र का प्रयोग शीघ्रता से किया जाना चाहिए ताकि वस्तुओं के साथ छेड़छाड़ की कोई और संभावना न रहे।

8. जब्त की गई वस्तु की उचित कस्टडी का प्रश्न कई मामलों में उठाया जाता है। श्रीमती बसावा कोम ज्ञानमंगौड़ा पाटिल बनाम मैसूर राज्य एवं अन्य, [1977] 4 एससीसी 358 में, इस न्यायालय ने एक ऐसे मामले पर विचार किया जहाँ जब्त की गई वस्तुएँ शिकायतकर्ता को वापस करने के लिए उपलब्ध नहीं थीं। उस मामले में, बरामद आभूषण थाना में एक ट्रंक में रखे गए थे और बाद में वे गायब पाए गए, प्रश्न उन वस्तुओं के भुगतान के संबंध में था। इस संदर्भ में, न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की-

"4. संहिता के विभिन्न प्रावधानों का उद्देश्य और योजना यह प्रतीत होती है कि जहाँ किसी अपराध की विषय-वस्तु रही संपत्ति पुलिस द्वारा जब्त कर ली जाती है, उसे न्यायालय या पुलिस की हिरासत में अत्यंत आवश्यक समय से अधिक समय तक नहीं रखा जाना चाहिए। चूँकि पुलिस द्वारा संपत्ति की जब्ती स्पष्ट रूप से सरकारी कर्मचारी को संपत्ति सौंपने के समान है, इसलिए विचार यह है कि संपत्ति को बनाए रखने की आवश्यकता समाप्त होने के बाद मूल स्वामी को वापस कर दिया जाना चाहिए। यह स्पष्ट है कि संपत्ति को स्वामी को वापस करने के दो चरण हो सकते हैं। सबसे पहले, इसे किसी भी जाँच या परीक्षण के दौरान वापस किया जा

सकता है। यह विशेष रूप से तब आवश्यक हो सकता है जब संबंधित संपत्ति शीघ्र या प्राकृतिक रूप से क्षय होने वाली हो। अन्य बाध्यकारी कारण भी हो सकते हैं जो न्याय के हित में संपत्ति को स्वामी को या अन्यथा निपटाने को उचित ठहरा सकते हैं। उच्च न्यायालय और सत्र न्यायाधीश ने इस आधार पर आगे बढ़े कि संहिता की आवश्यक आवश्यकताओं में से एक यह है कि संबंधित वस्तुओं को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए या उसकी हिरासत में होना चाहिए। संहिता का उद्देश्य यह प्रतीत होता है कि कोई भी सम्पत्ति जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से न्यायालय के नियंत्रण में है, उसका निपटान न्यायालय द्वारा किया जाना चाहिए तथा उसके निस्तारण के संबंध में न्यायालय द्वारा उचित आदेश पारित किया जाना चाहिए। किसी आपराधिक मामले में पुलिस सदैव न्यायालय के प्रत्यक्ष नियंत्रण में कार्य करती है तथा उसे जांच या सुनवाई के प्रत्येक चरण में न्यायालय से आदेश लेना पड़ता है। इस व्यापक अर्थ में, इसलिए, न्यायालय उन सभी मामलों में पुलिस अधिकारियों की कार्रवाइयों पर समग्र नियंत्रण रखता है जहाँ उसने संज्ञान लिया है।"

9. न्यायालय ने आगे कहा कि जहाँ संपत्ति चोरी हो जाती है, खो जाती है या नष्ट हो जाती है और प्रथम दृष्टया यह साबित करने का कोई बचाव नहीं है कि राज्य या उसके अधिकारियों ने संपत्ति की सुरक्षा के लिए उचित सावधानी और सतर्कता बरती थी, मजिस्ट्रेट, किसी उपयुक्त मामले में, जहाँ न्याय की आवश्यकता हो, संपत्ति के मूल्य के भुगतान का आदेश दे सकता है।

10. ऐसी स्थिति से बचने के लिए, हमारे विचार से, धारा 451 दं.प्र.सं के तहत शक्तियों का शीघ्र और जल्द से जल्द प्रयोग किया जाना चाहिए।

11. मूल्यवान वस्तुएँ और करेंसी नोट मूल्यवान वस्तुओं, जैसे सोने या चांदी के आभूषण या कीमती पत्थरों से जड़ी वस्तुओं के संबंध में, यह प्रस्तुत किया जाता है कि ऐसी वस्तुओं को मुकदमा समाप्त होने तक वर्षों तक पुलिस हिरासत में रखने का कोई फायदा नहीं है। हमारे विचार से, इस प्रस्तुतीकरण को स्वीकार किया जाना चाहिए। ऐसे मामलों में, मजिस्ट्रेट को धारा 451 दं.प्र.सं के तहत जल्द से जल्द उचित आदेश पारित करना चाहिए।

12. इस प्रयोजन के लिए, यदि रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री यह इंगित करती है कि ऐसी वस्तुएं उस शिकायतकर्ता की हैं जिसके घर पर चोरी, डकैती या लूट हुई है, तो जब्त की गई वस्तुएं शिकायतकर्ता को निम्नलिखित के बाद सौंपी जानी चाहिए:-

(1) ऐसी वस्तुओं का विस्तृत और उचित पंचनामा तैयार करना;
(2) ऐसी वस्तुओं की तस्वीरें लेना और एक बांड लेना कि यदि परीक्षण के समय आवश्यकता पड़ी तो ऐसी वस्तुएं प्रस्तुत की जाएंगी; और
(3) उचित सुरक्षा सुनियोजित करने के पश्चात।

18. **जनरल इंश्योरेंस काउंसिल बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (2010) 6 एससीसी 768** के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने सुंदरभाई अंबालाल देसाई (उपरोक्त) के मामले में दिए गए निर्देशों के अनुपालन की आवश्यकता पर जोर दिया। **बिस्वजीत डे बनाम असम राज्य, 2025 एससीसी ऑनलाइन एससी 40** के पैरा 23 के मामले में भी इसी तरह का दृष्टिकोण अपनाया गया है।

19. कानून की यह स्थापित स्थिति है कि किसी भी व्यक्ति को भारत के संविधान के अनुच्छेद 300ए द्वारा घोषित कानून के अधिकार के बिना उसकी संपत्ति से वंचित नहीं किया जाएगा। इसलिए, जब जांच एजेंसी द्वारा जब्त की गई संपत्ति को जब्त संपत्ति से संबंधित या उससे जुड़े मुकदमे को उसके तार्किक निष्कर्ष तक पहुंचाने के लिए अभियोजन पक्ष के पास भौतिक रूप से रहने की आवश्यकता नहीं है, तो जब्त संपत्ति को उसके असली मालिक या उस व्यक्ति को सौंप दिया जाएगा जो उस पर हकदार है। संपत्ति का असली मालिक या उस पर कब्जे का हकदार व्यक्ति कौन है, यह संभावनाओं की प्रबलता पर आधारित प्रमाण द्वारा निर्धारित किया जाएगा।

20. तथापि, यह स्पष्ट किया जाता है कि स्वामी या संपत्ति के कब्जे के हकदार पाए गए व्यक्ति के पक्ष में संपत्ति की रिहाई, उस व्यक्ति के संपत्ति पर स्वामित्व की घोषणा के रूप में कार्य नहीं करेगी, जो हमेशा मुकदमेबाजी के अधीन होगी, यदि कोई हो तो, जो सिविल न्यायालय के समक्ष लंबित है या संस्थित की जानी है।

21. अभिलेख पर उपलब्ध संपूर्ण सामग्री का अध्ययन करने के बाद निम्नलिखित तथ्य सामने आए:

(i) सह-अभियुक्त सचिन शर्मा से 28.04.2022 को दं.प्र.सं की धारा 102 के अंतर्गत 1,87,00,000/- रुपये की भारतीय मुद्रा जब्त की गई है और एक वसूली ज्ञापन तैयार किया गया है।

(ii) वर्तमान मामले की प्राथमिकी 21.04.2022 को प्रातः 00:32 बजे दर्ज की गई है। आवेदक ने अपने पिता की ओर से विद्वान मजिस्ट्रेट के समक्ष दिनांक 13.05.2022 को वर्तमान रिहाई आवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें कहा गया कि वर्तमान आवेदक के पिता कमल साड़ी नामक फर्म चलाते हैं। उनके पिता की बीमारी और वृद्धावस्था के कारण आवेदक उक्त फर्म की देखभाल पूरी तरह से करता है। आवेदक ने बैंगलोर स्थित सपोस सर्विसेज प्राइवेट लिमिटेड के साथ अनुबंध किया था। 2,00,00,000/- रुपये की राशि सपोस सर्विसेज प्राइवेट लिमिटेड को सौंप दी गई है, जो फर्म की रोकड़ बही और खाता बही में अंकित है। सपोस सर्विसेज प्राइवेट लिमिटेड का एजेंट अंकित शुक्ला, जिसने उक्त राशि अभियुक्तों को सौंपी थी, वर्तमान आवेदक के अलावा उक्त भारतीय मुद्रा का कोई अन्य स्वामी नहीं है।

(iii) अभियुक्तों ने उक्त भारतीय मुद्रा के स्वामी को अपने पक्ष में दावा करते हुए कोई रिहाई आवेदन प्रस्तुत नहीं किया है।

अनुवादित

(iv) प्रतिपक्षी संख्या 2/प्रथम सूचनादाता के सामूहिक एजेंटों ने उक्त राशि को छोड़ने के लिए वर्तमान आवेदक के पक्ष में सहमति प्रदान की है।

(v) आयकर विभाग ने अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 2, वाराणसी द्वारा दिनांक 02.07.2024 को आपराधिक पुनरीक्षण में पारित आदेश के विरुद्ध कोई कार्यवाही दायर नहीं की है।

(vi) विद्वान मजिस्ट्रेट ने पाया है कि आवेदक प्रथम दृष्टया उक्त भारतीय मुद्रा का स्वामी है।

23. उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों के मद्देनजर और **सुंदरभाई अंबालाल देसाई (उपरोक्त)** के फैसले में कानून की स्थिति को ध्यान में रखते हुए, संहिता की धारा 482 के तहत वर्तमान आवेदन स्वीकार किया जाता है। अपर सिविल जज (सीनियर डिवीजन)/न्यायिक मजिस्ट्रेट, न्यायालय संख्या 2, वाराणसी और अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (पॉक्सो अधिनियम), न्यायालय संख्या 2, वाराणसी द्वारा दिनांक 13.10.2022 और 01.07.2024 को पारित आक्षेपित आदेश, मामला अपराध संख्या 0046/2022 से उत्पन्न, आईपीसी की धारा 419, 406, 420, 120बी, 411, 467, 468, 471, के तहत थाना चेतगंज, जिला वाराणसी द्वारा रद्द किया जाता है और भारतीय मुद्रा, जिसे पुलिस द्वारा मामला अपराध संख्या 46/2022 की जांच के दौरान दं.प्र.सं की धारा 102 के तहत जब्त किया गया है, आईपीसी की धारा 419, 420, 406, 120-बी, 411, 467, 468, 471 के तहत आवेदक के पक्ष में मामले के फैसले के अधीन इन्टरिम कस्टडी के रूप में जारी किया जा सकता है, इस वचन के साथ क्षतिपूर्ति बांड जमा करने के बाद कि इस मामले के फैसले के बाद, यदि उपरोक्त जारी की गई राशि किसी अन्य व्यक्ति को भुगतान की जाती है, तो आवेदक निर्धारित समय के भीतर वापस कर देगा जैसा कि विचारण न्यायालय द्वारा निर्देशित है और साथ ही रुपये के मूल्य की अचल संपत्ति की जमानत प्रस्तुत करने के बाद आवेदक द्वारा निम्नलिखित शर्तों पर 2,00,00,000/- रुपये की राशि का दावा प्रस्तुत किया जाएगा:

(i) विद्वान मजिस्ट्रेट को मामले के निर्णय के अधीन आवेदक के पक्ष में उक्त भारतीय मुद्रा को इन्टरिम कस्टडी के रूप में जारी करने का निर्देश दिया जाता है;

(ii) दिनांक 28.04.2022 को पुलिस द्वारा जब्त की गई 1,87,00,000/- रुपये की जब्त भारतीय मुद्रा का एक विस्तृत पंचनामा/सूची तैयार करने के बाद, जिसमें उनके नंबर या मूल्यवर्ग शामिल होंगे और आरोपी व्यक्ति, प्रथम सूचनादाता और आवेदक भारतीय मुद्रा की रंगीन तस्वीरें लेने के बाद उक्त सूची पर हस्ताक्षर करेंगे।

(iii) ऐसे भारतीय मुद्रा नोटों की तस्वीरें संलग्न की जानी चाहिए और प्रथम सूचनादाता, आरोपी व्यक्ति और वर्तमान आवेदक द्वारा प्रतिहस्ताक्षर किए जाने चाहिए।

(iv) संबंधित न्यायालय को आदेशानुसार उपरोक्त राशि को क्षतिपूर्ति बांड और पूर्वोक्त ज़मानतपत्र जमा करने के एक सप्ताह के भीतर इन्टरिम कस्टडी का निर्देश दिया जाता है।

(2025) 4 ILRA 13

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक वाद

दिनांक: इलाहाबाद 29.04.2025

माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिरला

माननीय न्यायमूर्ति जितेंद्र कुमार सिन्हा

के समक्ष

आपराधिक अपील संख्या - 1216/1984

प्रेम एवं अन्य **...अपीलकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य **...प्रतिवादी**

अनुवादित

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:
नितांश कुमार रॉय

प्रतिवादी के अधिवक्ता:
डी.जी.ए.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 374- भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302, 328 धारा 34 के साथ भारतीय दंड संहिता की धारा 302, 328 धारा 34 के साथ दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील--- संदिग्ध विषाक्तता का मामला--- यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य का मामला है और आरोपियों के अपराध को साबित करने के लिए कोई प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। वर्तमान मामले में परिस्थितियों की श्रृंखला इतनी पूर्ण नहीं है कि अभियुक्तों का अपराध निश्चितता के साथ सिद्ध किया जा सके। अभियोजन पक्ष अभियुक्तों के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को किसी भी संदेह से परे साबित करने में विफल रहा है, विशेष रूप से बच्चों को दिए गए लड्डुओं में जहर दिए जाने और जहर मिलाने या मिलावट करने के तथ्य के संबंध में। उनके पेट की जाँच करने पर कोई जहरीला पदार्थ नहीं पाया गया। आक्षेपित निर्णय को रद्द किया जाता है और अपीलकर्ताओं को सभी आरोपों से बरी किया जाता है। अपील स्वीकार की जाती है। (पैरा 16 एवं 18) (ई-15)

<u>संदर्भित मामलों की सूची</u>-:

1. शरद बिरधीचंद सारडा बनाम महाराष्ट्र राज्य (1984) 4 एससीसी 116

2. भगवान सिंह एवं अन्य बनाम म.प्र. राज्य, ए.आई.आर 2003 एससी 1088

3. हरि प्रसाद उर्फ किशन साहू बनाम छत्तीसगढ़, राज्य (2024) 2 एससीसी 557

4. उ.प्र. राज्य बनाम ब्रिजेश एवं अन्य, 2022 (119) एसीआरसी 574.

5. हरि प्रसाद उर्फ किशन साहू बनाम छत्तीसगढ़, राज्य (2024) 2 एससीसी 557

(माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिरला)

&

माननीय न्यायमूर्ति जीतेन्द्र कुमार सिन्हा द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री नितांश कुमार रॉय और राज्य प्रतिवादियों के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री ओ.पी. द्विवेदी को सुना गया।

2. यह आपराधिक अपील, कार्यवाहक सत्र न्यायाधीश, सहारनपुर द्वारा आपराधिक सत्र परीक्षण संख्या 205/1982 में पारित दिनांक 25.4.1984 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है, जिसमें अपीलकर्ताओं को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 सहपठित धारा 34 के अंतर्गत दोषी ठहराया गया और आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई थी। अपीलकर्ताओं को भारतीय दंड संहिता की धारा 328 सहपठित धारा 34 के अंतर्गत भी दोषी ठहराया गया और पांच वर्ष के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई, दोनों सजाएँ साथ-साथ चलेंगी।

3. इस न्यायालय के दिनांक 2.2.2024 के आदेश के अनुसार, अपीलकर्ता संख्या 2-गेंदा पुत्र बारू के संबंध में अपील समाप्त हो गई। अब, अपील केवल अपीलकर्ता संख्या 1-प्रेम पुत्र गेंदा के संबंध में ही अस्तित्व में है।

4. अभियोजन पक्ष की कहानी संक्षेप में यह है कि 2 मई 1981 को सुबह लगभग 10 बजे, तीन बच्चे, राज कुमार (उम्र लगभग 2 वर्ष), चंद्र किरण (उम्र लगभग 3 वर्ष) और विश्वास (उम्र लगभग 6 वर्ष) खेलकर घर लौट रहे थे। जब वे अभियुक्त प्रेम और गेंदा के घर के पास पहुँचे, तो उन्होंने प्रत्येक बच्चे को सफेद रंग के लड्डू दिए। यह घटना नानू और ज्ञाना नामक दो व्यक्तियों ने देखी, जिनका घर अभियुक्त के घर के पास है। जब बच्चे घर पहुँचे, तो वे गिर पड़े और बेहोश हो गए। उन्हें प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, नानौता ले जाया गया, जहाँ डॉक्टर ने जाँच के बाद चंद्र किरण को मृत घोषित कर दिया और संदिग्ध विषाक्तता का मामला पाया। उन्होंने राज कुमार और विश्वास को एस.बी.डी. अस्पताल, सहारनपुर रेफर कर दिया और चंद्र किरण के शव को पोस्टमार्टम के लिए भेज दिया गया। होश में आने के बाद राज कुमार अपने पिता धर्मपाल के साथ घर लौट आया, जिनकी सूचना पर एफ.आई.आर. दर्ज की गई।

5. सूचनादाता धर्मपाल की लिखित रिपोर्ट के आधार पर, अभियुक्तगणों के विरुद्ध दिनांक 2.5.1981 को मुकदमा अपराध संख्या 7/1981, धारा 302/34 एवं 334/34 भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई तथा जांच अधिकारी द्वारा मामले की जांच प्रारंभ की गई, जिन्होंने जांच पूरी कर दिनांक 23.2.1982

को अभियुक्तगणों के विरुद्ध आरोप पत्र प्रस्तुत किया। सत्र न्यायालय में प्रस्तुत किए जाने पर, अभियुक्तगणों पर उपरोक्त आरोप लगाए गए। अभियुक्तगणों ने अपने विरुद्ध लगाए गए आरोपों से इनकार किया तथा मुकदमा चलाए जाने की मांग की।

6. अभियोजन पक्ष का मामला स्थापित करने के लिए, पीडब्लू-1 धर्मपाल, पीडब्लू-2 नानू, पीडब्लू-3 भंवर सिंह, पीडब्लू-4 हुरम सिंह, पीडब्लू-5 मुन्ना सिंह, पीडब्लू-6 राम प्रकाश, पीडब्लू-7 ज्ञाना, पीडब्लू-8 विश्वास, पीडब्लू-9 प्रीतम सिंह, पीडब्लू-10 नैपाल सिंह, पीडब्लू-11 डॉ. ए.एल. धीगरा, पीडब्लू-12 डॉ. एम.एल. अंसारी और पीडब्लू-13 डॉ. अनिल भटनागर से पूछताछ की गई और संबंधित न्यायालय के समक्ष कुछ दस्तावेज प्रदर्शित किए गए। इसके अतिरिक्त, अभियोजन पक्ष ने कुछ दस्तावेज प्रस्तुत किए, जिन्हें परीक्षण के दौरान निम्नानुसार प्रदर्शित किया गया:
(i) प्रथम सूचना रिपोर्ट प्रदर्श क-2 के रूप में, (ii) लिखित रिपोर्ट प्रदर्श क-1 के रूप में, (iii) चोट की रिपोर्ट प्रदर्श क-15 के रूप में, (iv) कोतवाल को पत्र प्रदर्श क-17 और 18 के रूप में, का-16, (vi) रासायनिक परीक्षण रिपोर्ट को प्रदर्श क-19 और 20, (vii) पंचायतनामा को प्रदर्श क-7, और (viii) आरोप पत्र को प्रदर्श क-14 के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

7. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री नितांश कुमार रॉय का तर्क है कि यह केवल परिस्थितिजन्य साक्ष्य का मामला है और जब तक परिस्थितियों की श्रृंखला इतनी पूर्ण न हो कि अभियुक्तों के अपराध के निष्कर्ष के अलावा किसी अन्य संदेह की कोई गुंजाइश न बचे, अभियुक्तों को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। उनका तर्क है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट केवल इस सूचना के आधार पर दर्ज की गई थी कि सूचनादाता को उसकी बहन ओमवती ने बताया था कि घर पर मौजूद विश्वास, चंद्र करण और राज कुमार की हालत ठीक नहीं है। यह प्रस्तुत किया गया है कि जिरह में, सूचनादाता धर्मपाल (अभियुक्त-1) ने स्वीकार किया है कि बीमारी की सूचना उसकी बहन ओमवती ने ही दी थी और गाँव के नानू पुत्र चुहाड़ा (अभियुक्त-2) और ज्ञाना पुत्र घासी (अभियुक्त-7) ने सुबह लगभग 10:00 बजे सूचना दी कि उनके घर के सामने अभियुक्तगण प्रेम पुत्र गेंदा (यहाँ जीवित अपीलकर्ता संख्या 1) और गेंदा पुत्र बारू (अब मृत) ने बच्चों को ज़हरीले लड्डू खिलाए। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि सूचनादाता को बच्चों को ज़हरीले लड्डू दिए जाने के संबंध में कोई प्रत्यक्ष जानकारी नहीं थी, जिनमें से एक बच्चे चंद्र किरण की मृत्यु हो गई। इसके बाद यह दलील दी गई कि पी.डब्लू.-1 धर्मपाल (मुखबिर) ने अपनी जिरह में कहा कि दोनों पक्षों के बीच कुछ दुश्मनी थी, जिसमें इंदर, नानू और भुल्ला शामिल थे। उन्होंने दलील दी कि ओमवती को गवाह के तौर पर पेश नहीं किया गया, जिसने धर्मपाल को सूचना दी थी। उन्होंने आगे दलील दी कि पी.डब्लू.-7 ज्ञाना, जिन व्यक्तियों ने धर्मपाल (मुखबिर) को सूचना देने की बात कही थी, अपने बयान से मुकर गया और अभियोजन पक्ष के बयान का समर्थन नहीं किया। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि उनकी उपस्थिति में आरोपियों ने बच्चों को ज़हरीले लड्डू नहीं दिए थे। जहां तक नानू (पीडब्लू-2) के बयान का सवाल है, जो प्रत्यक्षदर्शी होने का दावा करता है, उसने कहा कि उसका घर आरोपी व्यक्तियों के घर से सटा हुआ है और उसने कहा था कि उसने ज्ञाना (पीडब्लू-7) के साथ आरोपी व्यक्तियों को बच्चों को लड्डू देते हुए देखा था जबकि ज्ञाना (पीडब्लू-7) अपने बयान से मुकर गया था और अपनी उपस्थिति के बारे में उसने कहा

था कि 2.5.1981 को वह अपने घर से आत्मा राम पुत्र चिम्मन हरिजन के घर आया था और आरोपी प्रेम और गेंदा से उसकी कोई दुश्मनी नहीं थी। आगे कहा गया कि यहां तक कि नानू (पीडब्लू-2) ने भी कहा था कि उसने आरोपी व्यक्तियों को बच्चों को लड्डू देते हुए देखा था, हालांकि, उसने यह नहीं कहा था कि आरोपी व्यक्तियों ने बच्चों को लड्डू देने से पहले उनमें जहर मिला दिया था और अपनी जिरह में उसने स्वीकार किया था कि भुल्लू ने बच्चों की बीमारी के बारे में सूचना दी थी उन्होंने आगे कहा कि यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि पीडब्लू-2 नानू दो दिनों के लिए गांव में था, हालांकि, जांच अधिकारी ने 10 से 12 दिनों के बाद उसका बयान दर्ज किया है, जो अपने आप में उसके बयान की सत्यता पर संदेह पैदा करता है। उन्होंने आगे कहा कि जहां तक बाल गवाह विश्वास (पीडब्लू-8) के बयान का संबंध है, घटना के समय उसकी आयु लगभग 6 वर्ष थी और बयान दर्ज किए जाने के समय उसकी आयु लगभग 9 वर्ष थी। उन्होंने कहा कि बाल गवाह विश्वास (पीडब्लू-8) से अत्यंत सरल प्रश्न पूछे गए थे, जबकि एक प्रश्न का उत्तर देते समय उसने कहा था कि वह यह भी नहीं जानता कि एक वर्ष में कितने महीने होते हैं और उसने स्वीकार किया था कि अभियोजन पक्ष ने उसे न्यायालय के बाहर पढ़ाया था। उन्होंने आगे कहा कि रासायनिक परीक्षण रिपोर्ट में भिन्नता है क्योंकि मृतक के विसरा में ऑर्गेनो फॉस्फोरस कीटनाशक की मौजूदगी पाई गई थी इसलिए, दलील यह है कि अगर सभी बच्चों को एक जैसे लड्डू दिए गए होते, तो रासायनिक परीक्षण रिपोर्ट में कोई अंतर नहीं हो सकता था। उन्होंने दलील दी कि पी.डब्लू.-13 डॉ. अनिल भटनागर के साक्ष्य भी इस बात की पुष्टि करते हैं कि ज़हर पेट में घुल भी सकता है और नहीं भी। इसलिए, दलील यह है कि एक ही रूप में, यानी एक ही समय पर लड्डू, एक ही ज़हरीले पदार्थ का सेवन चंद्र किरण की मौत के कारण के बारे में संदेह पैदा करता है और अभियोजन पक्ष इस कहानी को संदेह से परे साबित नहीं कर सका। उन्होंने यह भी दलील दी कि इंदर (मृतक बच्चे चंद्र किरण के पिता) का बयान दर्ज नहीं किया गया था और धर्मपाल (पी.डब्लू.-1) पीड़िता का चाचा है। नेपाल सिंह (पीडब्लू-10) के बयान की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए, यह प्रस्तुत किया गया है कि उन्होंने स्वीकार किया है कि उन्हें नानू (पीडब्लू-2) जो कि धर्मपाल का चचेरा भाई है, की बीमारी के बारे में नहीं बताया गया था और उसका बयान घटना के 10 से 12 दिन बाद दर्ज किया गया था, इसलिए, बयान की सत्यता अत्यधिक संदिग्ध है और आरोपियों को लड्डू देते हुए देखने वाले नानू (पीडब्लू-2) की मौके पर मौजूदगी साबित नहीं हुई है। उन्होंने आगे कहा कि वर्तमान मामले में कोई मकसद साबित नहीं किया जा सका क्योंकि दूसरे पक्ष ने इसे स्पष्ट रूप से नकार दिया था। उन्होंने कहा कि आरोपी व्यक्तियों और नानू, इंदर और भुल्ला के बीच दुश्मनी के कारण मकसद को विचारण न्यायालय ने गलत तरीके से माना था और मौत के मामले में ऐसा कोई मकसद नहीं माना जा सकता है। इसलिए, प्रस्तुतीकरण यह है कि अभियोजन पक्ष स्पष्ट रूप से किसी भी उचित संदेह से परे आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ सभी आरोपों को साबित करने में विफल रहा है। निवेदन यह है कि जहां तक आरोपी व्यक्तियों द्वारा जहर दिए जाने के तथ्य का संबंध है, परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में, वह भी जब जहरीला पदार्थ दिया जाता है, तो मकसद साबित होना चाहिए और परिस्थितियों की श्रृंखला पूरी होनी चाहिए और किसी भी संदेह से परे साबित होनी चाहिए। अपने निवेदन के समर्थन में, उन्होंने **शरद बिरधीचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1984) 4 एससीसी 116**; **भगवान सिंगन और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य, एआईआर 2003 एससी 1088**; **हरि प्रसाद उर्फ किशन साहू बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, (2024) 2 एससीसी 557** और इस

न्यायालय की समन्वय पीठ (जिसमें हममें से एक, न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिड़ला, एक सदस्य हैं) द्वारा उत्तर प्रदेश राज्य बनाम बृजेश और अन्य, 2022 (119) एसीआरसी 574 में दिए गए फैसले पर भरोसा रखा है।

8. *इसके विपरीत*, राज्य प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान एजीए श्री ओ.पी. द्विवेदी ने तर्क दिया है कि पीडब्लू-1 धर्मपाल ने सूचना मिलने के तुरंत बाद कार्रवाई की और यह त्वरित एफआईआर का मामला है। यह प्रस्तुत किया गया है कि देरी, यदि कोई हो, को ठीक से समझाया गया है क्योंकि पीड़ित छोटे बच्चे थे और सूचना देने वाला बच्चों की देखभाल कर रहा था, जो परिस्थितियों में बिल्कुल स्वाभाविक था। यह प्रस्तुत किया गया है कि बच्चों की बीमारी की सूचना उन्हें अपनी बहन ओमवती से मिली और वह अपने घर की ओर बढ़े और उन्हें ग्रामीणों नानू और ज्ञाना ने बताया कि आरोपियों ने बच्चों को जहरीले लड्डू खिलाए थे। उन्होंने प्रस्तुत किया कि दोनों आरोपी व्यक्ति सगे भाई हैं। इसके बाद यह भी प्रस्तुत किया गया कि भले ही पीडब्लू-7 ज्ञाना मुकर गया हो, फिर भी, यह अभियोजन पक्ष के मामले को प्रभावित नहीं करेगा, क्योंकि यह सबूत की गुणवत्ता है जिसे देखा जाना है न कि मात्रा और यह कि कानून के अनुसार, अन्य तथ्यों की पुष्टि करने के लिए यदि आवश्यक हो तो मुकरने वाले गवाह के साक्ष्य पर भी गौर किया जा सकता है। यह प्रस्तुत किया गया कि पीडब्लू-2 नानू प्रत्यक्षदर्शी था जिसने अभियुक्तों को बच्चों को जहरीले लड्डू देते हुए देखा था और उसके तुरंत बाद वे उन्हें खाते हुए अपने घर की ओर आ रहे थे और लड्डू खाने के तुरंत बाद वे गंभीर रूप से बीमार पड़ गए। उन्होंने आगे कहा कि यह संदेह से परे साबित होता है कि चंद्र किरण की मृत्यु जहरीला पदार्थ दिए जाने के कारण हुई, जो कि चिकित्सा साक्ष्य से भी साबित हुआ। यह प्रस्तुत किया गया कि जहरीले पदार्थ की उपस्थिति और अनुपस्थिति के संबंध में चिकित्सा राय प्रकृति में स्पष्ट नहीं हो सकती है, हालांकि, नेत्र संबंधी साक्ष्य और तीन बच्चों में से एक बच्चे के मामले को देखते हुए, अपीलकर्ता को कोई लाभ नहीं मिलता है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि पीडब्लू-11 डॉ. एएल धीगरा, जिन्होंने उस समय लगभग 6 वर्षीय विश्वास की जांच की थी, ने स्पष्ट रूप से कहा था कि जब उन्होंने विश्वास की जांच की थी, तो उसमें जहर के लक्षण थे। यह प्रस्तुत किया गया है कि वर्तमान मामले में अभियोक्ता-2 नानू प्रत्यक्षदर्शी है और बचाव पक्ष उसकी गवाही को खारिज नहीं कर सका और इसलिए अभियोजन पक्ष ने बिना किसी संदेह के अपना मामला साबित कर दिया है।

9. हमने प्रतिद्वन्द्वी प्रस्तुतियों पर विचार किया है और कागज़ात का अवलोकन किया है।

10. आगे बढ़ने से पहले, इस तथ्य पर ध्यान देना उचित होगा कि यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य का मामला है और किसी ने भी घटना को नहीं देखा है, यद्यपि अभियोक्ता-2 नानू ने कहा है कि उसने अभियुक्तों को तीनों बच्चों को लड्डू खिलाते हुए देखा था, तथापि, बच्चों को जहरीला लड्डू खिलाते हुए किसी भी गवाह ने नहीं देखा था।

11. आगे बढ़ने से पहले, शरद बिरदीचंद सारदा (उपरोक्त) के मामले में दिए गए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अनुच्छेद 153, 154, 159, 163, 164 और 165 को उद्धृत करना उचित होगा:

"153. इस निर्णय का गहन विश्लेषण यह दर्शाएगा कि किसी अभियुक्त के विरुद्ध मामला पूरी तरह से स्थापित कहे जाने से पहले निम्नलिखित शर्तें पूरी होनी चाहिए:

(1) जिन परिस्थितियों से दोष का निष्कर्ष निकाला जाना है, वे पूरी तरह से स्थापित होनी चाहिए।

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि इस न्यायालय ने संकेत दिया कि संबंधित परिस्थितियाँ "स्थापित होनी चाहिए या होनी चाहिए" और "स्थापित हो सकती हैं" नहीं। "साबित किया जा सकता है" और "साबित किया जाना चाहिए या होना चाहिए" के बीच न केवल व्याकरणिक बल्कि कानूनी अंतर भी है जैसा कि इस न्यायालय ने शिवाजी साहबराव बोबड़े बनाम महाराष्ट्र राज्य [(1973) 2 एससीसी 793: 1973 एससीसी (क्रि) 1033: 1973 सीआरएल एलजे 1783] जहाँ ये टिप्पणियाँ की गईं: [एससीसी पैरा 19, पृष्ठ 807: एससीसी (सीआरआई) पृष्ठ 1047]

"निश्चित रूप से, यह एक प्राथमिक सिद्धांत है कि अभियुक्त को दोषी होना ही चाहिए, न कि केवल दोषी हो सकता है, इससे पहले कि अदालत उसे दोषी ठहराए और 'हो सकता है' और 'होना ही चाहिए' के बीच मानसिक दूरी बहुत लंबी है और अस्पष्ट अनुमानों को निश्चित निष्कर्षों से अलग करती है।"

(2) इस प्रकार स्थापित तथ्य केवल अभियुक्त के अपराध की परिकल्पना के अनुरूप होने चाहिए, अर्थात्, अभियुक्त के दोषी होने के अलावा किसी अन्य परिकल्पना पर उनकी व्याख्या नहीं की जा सकती,

(3) परिस्थितियाँ निर्णायक प्रकृति और प्रवृत्ति की होनी चाहिए,

(4) वे सिद्ध की जाने वाली परिकल्पना को छोड़कर हर संभावित परिकल्पना को बाहर कर दें, और

(5) साक्ष्य की एक ऐसी पूर्ण श्रृंखला होनी चाहिए जो अभियुक्त की निर्दोषता के अनुरूप निष्कर्ष के लिए कोई उचित आधार न छोड़े और यह दर्शाए कि सभी मानवीय संभावनाओं में कृत्य अभियुक्त द्वारा ही किया गया होगा।

154. ये पाँच स्वर्णिम सिद्धांत, यदि हम ऐसा कह सकते हैं, परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित किसी मामले के प्रमाण के पंचशील का गठन करते हैं।

159. यह देखा जाएगा कि इस न्यायालय ने स्पष्टीकरण के अभाव या झूठे स्पष्टीकरण को ध्यान में रखते हुए यह माना कि यह श्रृंखला को पूरा करने के लिए एक अतिरिक्त कड़ी के रूप में होगा, लेकिन इन टिप्पणियों को इस न्यायालय द्वारा पहले कही गई बातों के प्रकाश में पढ़ा जाना चाहिए, अर्थात् झूठे स्पष्टीकरण को अतिरिक्त के रूप में इस्तेमाल करने से पहले पढ़ा जाना चाहिए।

(1) अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य श्रृंखला की विभिन्न कड़ियाँ संतोषजनक रूप से सिद्ध हो चुकी हैं,

(2) उक्त परिस्थितियाँ अभियुक्त के अपराध की ओर उचित निश्चितता के साथ संकेत करती हैं, और

(3) परिस्थितियाँ समय और परिस्थिति के निकट हैं।

163. अब हम एक अन्य महत्वपूर्ण बिंदु पर आते हैं जिसे उच्च न्यायालय ने पूरी तरह से नज़रअंदाज़ कर दिया है। यह सर्वविदित है कि जहाँ साक्ष्य के आधार पर दो संभावनाएँ उपलब्ध या खुली हों, एक जो अभियोजन पक्ष के पक्ष में हो और दूसरी जो अभियुक्त को लाभ पहुँचाती हो, अभियुक्त निस्संदेह संदेह के लाभ का हकदार है। काली राम बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य [(1973) 2 एससीसी 808: 1973 एससीसी (क्रि) 1048: एआईआर 1973 एससी 2773: (1974) 1 एससीआर 722: 1974 क्रि एलजे 1] में इस न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणियाँ कीं: [एससीसी पैरा 25, पृ. 820: एससीसी (क्रि) पृष्ठ 1060]

"आपराधिक मामलों में न्याय प्रशासन के जाल में एक और सुनहरा धागा यह है कि यदि मामले में प्रस्तुत साक्ष्य पर दो दृष्टिकोण संभव हैं, एक अभियुक्त के अपराध की ओर इशारा करता है और दूसरा उसकी निर्दोषता की ओर, तो अभियुक्त के पक्ष में जो दृष्टिकोण हो, उसे अपनाया जाना चाहिए। यह सिद्धांत उन मामलों में विशेष रूप से प्रासंगिक है जहाँ परिस्थितिजन्य साक्ष्य द्वारा अभियुक्त के अपराध को स्थापित करने का प्रयास किया जाता है।"

164. अब हम ज़हर देकर हत्या के मामलों के सबूत के तरीके और विधि पर आते हैं। रामगोपाल मामले [(1972) 4 एससीसी 625: एआईआर 1972 एससी 656] में इस न्यायालय ने इस प्रकार निर्णय दिया: (एससीसी पृष्ठ 629, पैरा 15)

"ऐसे मामलों में तीन प्रश्न उठते हैं, अर्थात् (पहला), क्या मृतक की मृत्यु विचाराधीन विष से हुई? (दूसरा), क्या अभियुक्त के पास विचाराधीन विष था? और (तीसरा), क्या अभियुक्त को मृतक को विचाराधीन विष देने का अवसर मिला था? केवल तभी जब उद्देश्य मौजूद हो और ये सभी तथ्य सिद्ध हो जाएँ, न्यायालय यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि अभियुक्त द्वारा मृतक को विष दिया गया था जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हुई।"

165. जहाँ तक इस मामले का संबंध है, ऐसे मामलों में न्यायालय को साक्ष्यों का सावधानीपूर्वक परीक्षण करना चाहिए और उन चार महत्वपूर्ण परिस्थितियों का निर्धारण करना चाहिए जो अकेले दोषसिद्धि को उचित ठहरा सकती हैं:

(1) मृतक को ज़हर देने के लिए अभियुक्त का स्पष्ट उद्देश्य हो,
(2) मृतक की मृत्यु कथित तौर पर दिए गए ज़हर से हुई हो,
(3) अभियुक्त के पास ज़हर था,
(4) उसे मृतक को ज़हर देने का अवसर मिला था।

12. उपरोक्त विधि प्रस्ताव के अनुसरण में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा हरि प्रसाद उर्फ किशन साहू बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, (2024) 2 एससीसी 557, जिसके अनुच्छेद 27 को निम्नानुसार उद्धृत किया गया है, में हाल ही में दिए गए निर्णय में इसी दृष्टिकोण को दोहराया गया है:

"27. इतने कम सबूतों को देखते हुए, यह मानना मुश्किल है कि अभियोजन पक्ष ने जहर देकर हत्या के आरोप के मामले में इस अदालत द्वारा निर्धारित चार महत्वपूर्ण प्रस्तावनाओं को साबित कर दिया था, यानी, (1) अभियुक्त के पास मृतक को जहर देने का स्पष्ट मकसद था; (2) मृतक की मौत कथित तौर पर दिए गए जहर से हुई; (3) अभियुक्त के पास जहर था; और (4) अभियुक्त को मृतक को जहर देने का अवसर मिला था। यह भी ध्यान देने योग्य है कि रासायनिक परीक्षण रिपोर्ट (प्रदर्श पी-14) हालांकि एक दोषपूर्ण सबूत थी, लेकिन धारा 313 सीआरपीसी के तहत उसकी जांच के दौरान अपीलकर्ता के ध्यान में नहीं लाई गई थी। इन सभी परिस्थितियों ने अभियोजन पक्ष के मामले को बहुत कमजोर बना दिया है।"

(प्रभाव वर्धित)

13. अभिलेख के अवलोकन और साक्ष्यों के पुनर्मूल्यांकन पर, हम अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता के तर्कों में सत्य पाते हैं कि सूचनादाता को सबसे पहले उसकी बहन ओमवती ने घर पर मौजूद तीन बच्चों की बीमारी के बारे में सूचित किया था और उसने कहा है कि बाद में उसे पी.डब्लू.-2 नानू और पी.डब्लू.-7 ज्ञाना से सूचना मिली कि अभियुक्तों ने सुबह लगभग 10 बजे उनके सामने तीनों बच्चों को लड्डू दिए। अतः स्पष्ट है कि पी.डब्लू.-1 धर्मपाल को अभियुक्तों द्वारा बच्चों को लड्डू दिए जाने, या बच्चों को जहरीला पदार्थ दिए जाने की व्यक्तिगत जानकारी नहीं थी। ऊपर उद्धृत शरद बिरधीचंद सारदा (उपरोक्त) के सिद्धांतों को लागू करने पर, यह स्पष्ट है कि किसी ने भी अभियुक्तों को उनकी उपस्थिति में जहर देते या बच्चों को दिए गए लड्डू में जहर मिलाते नहीं देखा। सूचनादाता धर्मपाल द्वारा पक्षों के बीच दुश्मनी का एक हल्का संकेत भी दिया गया है कि उसकी हालांकि, गेंदा, इसे पूरी तरह से साबित नहीं किया जा सका और किसी भी मामले में दुश्मनी दोनों तरफ से होती है और प्रत्यक्ष साक्ष्य के अभाव में, मकसद महत्वपूर्ण हो जाता है और इसे ठोस सबूतों से साबित किया जाना चाहिए, जो कि, हमारी राय में, वर्तमान मामले में नहीं है। कथित चश्मदीद गवाहों में से एक पीडब्लू-7 ज्ञाना स्पष्ट रूप से मुकर गया है और अभियोजन पक्ष के पक्ष में उसकी जिरह से कुछ भी नहीं निकाला जा सका।

14. रासायनिक परीक्षक की रिपोर्ट के अवलोकन से स्पष्ट रूप से संकेत मिलता है कि जीवित बचे बच्चों के पेट की धुलाई में कोई जहरीला पदार्थ नहीं पाया गया था। इन परिस्थितियों में, जब कथित चश्मदीद गवाहों में से एक पीडब्लू-7 ज्ञाना मुकर गया है और पीडब्लू-2 नानू का बयान पुलिस ने 10 से 12 दिनों के बाद दर्ज किया है, हालांकि वह गांव में उपलब्ध था, बाल गवाह विश्वास का बयान महत्वपूर्ण हो जाता है और इसकी बारीकी से जांच की जरूरत है। हमने बाल गवाह विश्वास के बयान की बारीकी से जांच की है, जिसकी उम्र बयान दर्ज करने के समय लगभग 9 वर्ष थी और घटना के समय वह छह वर्ष का था। उसके बयान से हमें पता चलता है कि यह पता लगाने के लिए कि क्या उसने प्रश्नों को समझा है, उससे बहुत ही सरल प्रश्न पूछे गए थे। जैसा भी हो, अपने मुख्य परीक्षण में उसने कहा था कि अभियुक्त प्रेम ने उन्हें रोका और प्रसाद खाने को कहा और उन्हें सफेद लड्डू के रूप में प्रसाद दिया गया और अभियुक्त प्रेम ने उसे और चंद्र किरण को लड्डू दिए जबकि गेंदा ने राज कुमार को लड्डू दिए और लड्डू खाते हुए वे अपने घर चले गए और बेहोश हो गए। हालाँकि, अपने जिरह में उसने कहा था कि पी.डब्लू.-2 नानू और पी.डब्लू.-7 ज्ञाना ने उसे बताया है

कि वह 9 साल का है और उसे नहीं पता कि एक साल में कितने महीने होते हैं। वह धर्मपाल (पी.डब्लू.-1) के साथ आया था और उसने कहा कि इस तारीख से पहले उसने किसी को भी घटना के बारे में कुछ नहीं बताया था। जिरह के पैराग्राफ 6 में उसने कहा था कि वह सुबह से इस जगह पर आया हुआ है और एक पेड़ के नीचे बैठा था और उसे खपरैल की छत वाले बड़े कमरे (खपरैल) में ले जाया गया जहाँ उसे बताया गया कि अदालत के सामने क्या कहना है और इस प्रकार उसने उसी तरह कहा था। यह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि इस बाल गवाह को न्यायालय के समक्ष पेश करने से पहले पढ़ाया गया था। पीडब्लू-8 विश्वास (बाल गवाह) के बयान का प्रासंगिक उद्धरण इस प्रकार उद्धृत किया गया है:

"6- आज सुबह मैं फिर पेड़ के नीचे एक खपड़ैल वाले कमरे में आया और वहां मुझे बताया गया कि हमें क्या-2 बात कही है। उसी तरह से हमने ये बात यहां कह दी।"

15. भगवान सिंह (उपरोक्त) के मामले में, यह धारित किया गया है कि समझ की अपरिपक्वता के कारण छह साल का बच्चा विश्वास के लायक नहीं पाया गया। मामले का तर्क यह है कि बच्चे के साक्ष्य का सावधानीपूर्वक मूल्यांकन किया जाना आवश्यक है क्योंकि वह आसानी से बहकाये जाने का शिकार हो सकता है, उक्त निर्णय के पैराग्राफ 19 और 22 को निम्नानुसार उद्धृत किया गया है:

"19. कानून बच्चे को एक सक्षम गवाह के रूप में मान्यता देता है लेकिन एक बच्चा विशेष रूप से छह साल की इतनी कम उम्र में, जो समझ की अपरिपक्वता के कारण घटना की प्रकृति के बारे में उचित राय बनाने में असमर्थ है, अदालत द्वारा उसे ऐसा गवाह नहीं माना जाता है जिसकी एकमात्र गवाही पर अन्य पुष्टिकारी साक्ष्य के बिना भरोसा किया जा सके। बच्चे के साक्ष्य का सावधानीपूर्वक मूल्यांकन किया जाना आवश्यक है क्योंकि वह आसानी से बहकाये जाने का शिकार हो सकता है। इसलिए, अदालत हमेशा उसकी गवाही के लिए अन्य साक्ष्यों से पर्याप्त पुष्टि की उम्मीद करती है। पंछी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1998) 7 एससीसी 177 को मामला इस रूप में सन्दर्भित।

22. बाल गवाह की एकमात्र गवाही पर भरोसा करना खतरनाक है क्योंकि यह घटना के तुरंत बाद और उसे बहकाये जाने या सिखाये जाने की कोई संभावना होने से पहले उपलब्ध नहीं होती है। असम राज्य बनाम मफजुद्दीन अहमद (1983) 2 एससीसी 14 के पैरा 14-15 का मामला सन्दर्भित। इस मामले में बाल गवाह के साक्ष्य को इस प्रकार स्वीकार किया जाता है और अविश्वसनीय माना जाता है:

"14. अन्य प्रत्यक्ष साक्ष्य मृतक के पुत्र, पी.डब्लू. 7, जो 7 वर्ष का बालक है, का बयान है। उच्च न्यायालय ने अपने निर्णय में कहा है:-

.....बाल गवाह का साक्ष्य हमेशा खतरनाक होता है जब तक कि वह घटना के तुरंत बाद और प्रशिक्षण और ट्यूशन की किसी भी संभावना से पहले उपलब्ध न हो।

15. पी.डब्लू.-7 के बयान के मात्र अवलोकन से ही हमें विश्वास हो जाता है कि वह शुरू से ही ढुलमुल था और उसने वैसे ही बयान दिया है जैसा उसे उसके नाना या उसके अपने चाचा ने बयान देने के लिए कहा था। यह सच है कि हम इस गवाह, जो केवल 7 वर्ष का बालक था, के बयान में बहुत अधिक एकरूपता की उम्मीद नहीं कर सकते। लेकिन उसके बयान के लहजे से यह स्पष्ट है कि वह स्वतंत्र नहीं था और उसे हर स्तर पर किसी न किसी ने प्रशिक्षित किया है।"

(प्रभाव वर्धित)

16. अतः, हम पाते हैं कि यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य का मामला है और अभियुक्तों के अपराध को सिद्ध करने के लिए कोई प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। वर्तमान मामले में परिस्थितियों की श्रृंखला इतनी पूर्ण नहीं है कि अभियुक्तों के अपराध को ऊपर वर्णित कानून के अनुसार उचित निश्चितता के साथ सिद्ध किया जा सके। साक्ष्यों के पुनर्मूल्यांकन पर, हम पाते हैं कि अभियोजन पक्ष अभियुक्तों के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को किसी भी उचित संदेह से परे सिद्ध करने में विफल रहा है, विशेष रूप से शरद बिरधीचंद सारदा (उपरोक्त) और हरि प्रसाद (उपरोक्त) में निर्धारित कानून के अनुसार बच्चों को दिए गए लड्डुओं में ज़हर देने और यहाँ तक कि ज़हर मिलाने या मिलावट करने के तथ्य के संबंध में, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है। किसी भी मामले में, तीन बच्चों को ज़हरीला पदार्थ दिया गया, हालाँकि तीन बच्चों में से केवल एक बच्चे चंद्र किरण की मृत्यु ज़हरीले पदार्थ के कारण हुई और रासायनिक परीक्षक की रिपोर्ट इस आशय की स्पष्ट नहीं है कि अन्य दो बच्चों के पेट के वॉश में कोई ज़हरीला पदार्थ पाया गया था। इसके विपरीत, इसमें दर्ज है कि उनके पेट के वॉश में कोई ज़हरीला पदार्थ नहीं पाया गया था (पेपर बुक के पृष्ठ 9 पर)।

17. इस प्रकार, वर्तमान मामले में, जैसा कि शरद बिरधीचंद सारदा (उपरोक्त) और हरि प्रसाद (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित किया गया है, जिन परिस्थितियों से अपराध का निष्कर्ष निकाला जाना है, वे पूरी तरह से स्थापित नहीं हुई हैं। दूसरे शब्दों में, अभियोजन पक्ष मृतक को जहरीला पदार्थ दिए जाने के कृत्य को स्थापित करने में विफल रहा है, जो कि किसी भी संदेह से परे साबित होना चाहिए था, भले ही एक मजबूत संदेह हो, क्योंकि तीन बच्चों में से एक बच्चे की मृत्यु हो गई थी। हम पाते हैं कि वर्तमान मामले में साक्ष्य और परिस्थितियों की श्रृंखला पूरी नहीं है और अभियोजन पक्ष द्वारा यह अनुमोदित नहीं किया जा सका कि सभी मानवीय संभावनाओं में यह कृत्य अभियुक्तों द्वारा किया गया होगा।

18. परिणामस्वरूप, वर्तमान अपील तदनुसार स्वीकार की जाती है। अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराने और सजा सुनाने वाला 25.4.1984 का विवादित निर्णय और आदेश एतद्द्वारा रद्द किया जाता है और अपीलकर्ताओं को उनके खिलाफ लगाए गए सभी आरोपों से बरी किया जाता है। 1- गेंदा के पुत्र प्रेम को आत्मसमर्पण करने की आवश्यकता नहीं है।

19. इस निर्णय की प्रति आवश्यक अनुपालन हेतु संबंधित न्यायालय को भेजी जाए।

(2025) 4 ILRA 21

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल वाद

दिनांक: इलाहाबाद 09.04.2025

माननीय न्यायमूर्ति महेश चंद्र त्रिपाठी

माननीय न्यायमूर्ति प्रशांत कुमार,

के समक्ष

आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या - 934/2025

मंजीत सिंह @ इंदर @ मंजीत सिंह चाना **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
श्री प्रवीण श्रीवास्तव, श्री अनुपम वर्मा

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
जी.ए., श्री विनोद सिंह

गिरफ्तारी-रिमांड आदेश-एक मुद्रित प्रोफार्मा पर गिरफ्तारी ज्ञापन - जिसमें गिरफ्तारी के आधार या कारणों को निर्दिष्ट करने वाला कोई कॉलम नहीं था - गिरफ्तारी भारत के संविधान के अनुच्छेद 22 का उल्लंघन करती है- विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा आरोपी याचिकाकर्ता को पर्याप्त कानूनी सहायता सुनिश्चित करने का कोई प्रयास नहीं किया गया था और न ही उसे न्यायिक रिमांड के समय सुनवाई का कोई उचित अवसर दिया गया था - रिमांड आदेश और गिरफ्तारी रद्द।

रिट याचिका को अनुमति दी गई। (ई-9)

<u>उद्धृत मामले:</u>

1. आशीष कक्कड़ बनाम केन्द्र शासित प्रदेश चंडीगढ़ - क्रिमिनल अपील संख्या 1518/ 2025 @ एसएलपी [सीआरएल] संख्या - 1662 2025
2. प्रबीर पुरकायस्थ बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) (2024) 8 एससीसी 254
3. मोहम्मद अजमल मोहम्मद आमिर कसाब@ अबू मुजाहिद बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2012) 8 एस.सी.आर. 295

अनुवादित

4. विहान कुमार बनाम हरियाणा राज्य, कानून(एससी)- 2025-2-20 (पैरा 21)

(माननीय न्यायमूर्ति महेश चंद्र त्रिपाठी
&
माननीय न्यायमूर्ति प्रशांत कुमार द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अनुपम वर्मा, राज्य प्रतिवादियों की ओर से विद्वान एजीए-I श्री परितोष मालवीय और सूचनादाता-प्रतिवादी संख्या 4 के विद्वान अधिवक्ता श्री विनोद सिंह को सुना गया।

2. यह रिट याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत प्रस्तुत की गई है, जिसमें विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा दिनांक 15.02.2024 को दर्ज प्रथम सूचना रिपोर्ट, धारा 420, 467, 468, 469, 406, 504, 506 भा.द.सं. के तहत, थाना-मिलक, जिला रामपुर में दर्ज मामले में दिनांक 26.12.2024 को पारित आक्षेपित रिमांड आदेश को रद्द करने के लिए एक उचित रिट, आदेश या निर्देश जारी करने और याचिकाकर्ता को निजी मुचलके पर रिहा करने का निर्देश देने के लिए कहा गया है, क्योंकि जांच अभी भी जारी है।

3. **याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अनुपम वर्मा** ने प्रस्तुत किया कि याचिका में शामिल मुख्य मुद्दा एफआईआर में उल्लिखित आरोपों की योग्यता नहीं है, बल्कि रिमांड कार्यवाही के दौरान गिरफ्तारी की प्रक्रिया और प्रक्रियात्मक खामियों की अवैधता है। वह गिरफ्तारी ज्ञापन पर भरोसा करते हैं और कहते हैं कि यह एक मुद्रित प्रोफार्मा था जिसमें गिरफ्तारी के आधार या कारणों को निर्दिष्ट करने वाला कोई कॉलम नहीं था। यह तर्क दिया जाता है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 22 (1) के आदेश के साथ-साथ धारा 50 सीआरपीसी के तहत वैधानिक प्रावधानों के अनुसार, गिरफ्तारी के समय याचिकाकर्ता को न तो गिरफ्तारी के कारण और न ही आधार लिखित रूप में बताए गए थे।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि गिरफ्तारी के तुरंत बाद, याचिकाकर्ता को 26.12.2024 को विद्वान रिमांड मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया गया और एक मुद्रित रिमांड आदेश के माध्यम से न्यायिक हिरासत में भेज दिया गया उन्होंने आगे कहा कि याचिकाकर्ता ने अपनी राहत को इस सीमा तक सीमित कर दिया है कि उसे गिरफ्तारी का कोई आधार या विवरण नहीं दिया गया था, जबकि गिरफ्तारी ज्ञापन में केवल याचिकाकर्ता का नाम और गिरफ्तारी का स्थान लिखा है।

5. इस पृष्ठभूमि में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि गिरफ्तारी भारत के संविधान के अनुच्छेद 22 का उल्लंघन करती है, जो बिना आधार बताए गिरफ्तारी और हिरासत से सुरक्षा की गारंटी देता है। उन्होंने यह भी कहा कि संवैधानिक आदेश के अनुसार, अपनी पसंद के कानूनी व्यवसायी से परामर्श करने और बचाव का अधिकार सुनिश्चित किया जाना चाहिए। ये अधिकार यह सुनिश्चित करने के लिए बनाए गए हैं कि किसी भी व्यक्ति को ऐसी कार्रवाई के कारणों की जानकारी दिए बिना गिरफ्तार या हिरासत में न लिया

जाए। उन्होंने सीआरपीसी की धारा 50 (अब धारा 47 बीएनएसएस) का भी उल्लेख किया है, जो यह प्रावधान करती है कि बिना वारंट के किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने वाला प्रत्येक पुलिस अधिकारी या अन्य व्यक्ति उसे अपराध का पूरा विवरण या ऐसी गिरफ्तारी के अन्य आधार तुरंत बताएगा। उन्होंने सीआरपीसी की धारा 50ए पर भी भरोसा जताया। (अब धारा 48 बीएनएसएस), जो गिरफ्तार करने वाले अधिकारी पर नामित व्यक्ति को गिरफ्तारी के बारे में सूचित करने का दायित्व डालती है और यह अनिवार्य करती है कि ऐसी जानकारी थाना में रखे गए रजिस्टर में दर्ज की जानी चाहिए। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि मजिस्ट्रेट, जिसके समक्ष गिरफ्तार व्यक्ति को पेश किया जाता है, को उप-धारा (2) और (3) का अनुपालन सुनिश्चित करना चाहिए। यह तर्क दिया गया है कि रिमांड आदेश यांत्रिक है और न्यायिक हिरासत की आवश्यकता के संबंध में किसी भी न्यायिक संतुष्टि को प्रतिबिंबित नहीं करता है।

6. अंत में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि गिरफ्तारी के आधारों के बारे में संचार न करने के कारण याचिकाकर्ता की गिरफ्तारी और परिणामी रिमांड आदेश को रद्द किया जा सकता है।

7. इसके विपरीत, श्री परितोष मालवीय, विद्वान एजीए-I ने राहत का विरोध किया और रिकॉर्ड पर निर्देश दिए हैं। उन्होंने प्रस्तुत किया कि 15.02.2024 की एफआईआर और याचिकाकर्ता की कथित मिलीभगत को देखते हुए, वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता को कोई राहत नहीं दी जानी चाहिए।

8. **सूचनादाता के विद्वान अधिवक्ता श्री विनोद सिंह** ने भी इस राहत का विरोध किया है। उनका पुरजोर तर्क है कि कोई राहत प्रदान नहीं की जा सकती और रिट याचिका गुण-दोष के कारण खारिज किए जाने योग्य है।

9. हमने प्रतिद्वन्द्वी दलीलें सुनीं और अभिलेख का अवलोकन किया।

10. दिनांक 26.12.2024 का आक्षेपित आदेश, जांच अधिकारी के आवेदन के आधार पर, विद्वान रिमांड मजिस्ट्रेट द्वारा, दिनांक 15.02.2024 को मुकदमा अपराध संख्या 77/2024 के रूप में धारा 420, 467, 468, 469, 406, 504, 506 भा.द.सं. के अंतर्गत, थाना मिलक, जिला रामपुर में दर्ज एफआईआर में पारित किया गया था। हालांकि, वर्तमान याचिका में गिरफ्तारी और रिमांड आदेश को मुख्य रूप से तीन आधारों पर चुनौती दी गई है, अर्थात् *"(क) गिरफ्तारी का कारण और गिरफ्तारी का आधार याचिकाकर्ता को नहीं बताया गया; (ख) गिरफ्तारी ज्ञापन में गिरफ्तारी के आधार और गिरफ्तारी के कारण पर कोई कॉलम नहीं है; और (ग) सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया या याचिकाकर्ता को अपने हिरासत रिमांड का बचाव करने का कोई अवसर नहीं दिया गया।"* याचिकाकर्ता को धारा 50 सीआरपीसी (अब धारा 47 बीएनएसएस) के तहत गिरफ्तारी के आधार नहीं दिए गए थे, और केवल एक गिरफ्तारी ज्ञापन प्रदान किया गया था जिसमें ऐसे विवरण नहीं थे। रिकॉर्ड और निर्देशों की जांच करने के बाद, हमें यह मानने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि गिरफ्तारी के समय याचिकाकर्ता को न तो कारण और न ही गिरफ्तारी के आधार लिखित रूप में बताए गए थे, जिससे

अनुच्छेद 22(1) के तहत संवैधानिक सुरक्षा उपायों और धारा 50 सीआरपीसी के तहत वैधानिक अधिदेश का उल्लंघन हुआ। गिरफ्तारी ज्ञापन और रिमांड आदेश रिकॉर्ड पर (रिट याचिका के अनुलग्नक -1) दर्शाते हैं कि गिरफ्तारी के आधार का उल्लेख किए बिना केवल एक मुद्रित प्रारूप ज्ञापन प्रदान किया गया था। इसके अलावा, कानूनी सहायता प्राप्त करने का अधिकार अभियुक्त का एक मूल्यवान अधिकार है, जिसे कानूनी व्यवसायी से परामर्श करने और बचाव करने के अपने अधिकार के बारे में सूचित किया जाना चाहिए। यदि अभियुक्त अधिवक्ता नियुक्त करने में असमर्थ है, तो राज्य को कानूनी सहायता प्रदान करनी चाहिए। ये अधिकार भारत के संविधान के अनुच्छेद 21, 22 (1) और 39 ए से निकलते हैं। राज्य के खर्च पर अभियुक्त को पर्याप्त कानूनी सहायता भी धारा 304 सीआरपीसी (अब धारा 341 बीएनएसएस) में निहित है।

11. न्यायिक दिमाग का उपयोग करने और अभियुक्त को रिमांड का विरोध करने का अवसर देने के रिमांड मजिस्ट्रेट के कर्तव्य के महत्व पर सुप्रीम कोर्ट ने मोहम्मद अजमल मोहम्मद आमिर कसाब @ अबू मुजाहिद बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2012) 8 एस.सी.आर. (पैरा 484-488)के मामले में जोर दिया है, इसके अलावा, गिरफ्तार व्यक्ति को गिरफ्तारी के आधार के बारे में लिखित रूप से सूचित किए जाने और गिरफ्तार व्यक्ति को ऐसे लिखित आधार प्रस्तुत करने के अधिकार को **प्रबीर पुरकायस्थ बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली), एलएडब्ल्यूएस (एससी)-2024-5-46, और पंकज बंसल बनाम भारत संघ, एलएडब्ल्यूएस (एससी)-2023-10-3** में कानून की अनिवार्य आवश्यकता बना दिया गया था।

12. इसी प्रकार, गिरफ्तारी का सामना कर रहे व्यक्ति को संविधान के तहत प्रदान की गई विभिन्न सुरक्षाओं को **विहान कुमार बनाम हरियाणा राज्य, LAWS(SC)-2025-2-20 (पैरा 21)** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा स्पष्ट किया गया था, जिसे नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"(21.) इसलिए, हम निष्कर्ष निकालते हैं:

क) गिरफ्तार व्यक्ति को गिरफ्तारी के आधारों की जानकारी देना अनुच्छेद 22(1) की एक अनिवार्य आवश्यकता है;

ख) गिरफ्तारी के आधारों की जानकारी गिरफ्तार व्यक्ति को इस तरह से प्रदान की जानी चाहिए कि आधारों को बनाने वाले मूल तथ्यों की पर्याप्त जानकारी गिरफ्तार व्यक्ति को उसकी समझ में आने वाली भाषा में प्रभावी ढंग से प्रदान और संप्रेषित की जाए। संचार का तरीका और पद्धति ऐसी होनी चाहिए कि संवैधानिक सुरक्षा का उद्देश्य प्राप्त हो;

ग) जब गिरफ्तार अभियुक्त अनुच्छेद 22(1) की आवश्यकताओं का पालन न करने का आरोप लगाता है, तो अनुच्छेद 22(1) की आवश्यकताओं का अनुपालन साबित करने का भार हमेशा जांच अधिकारी/एजेंसी पर होगा:

घ) गैर-अनुपालन अनुच्छेद 22(1) के तहत अभियुक्त के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होगा, जो उक्त अनुच्छेद द्वारा गारंटीकृत हैं। इसके अलावा, यह संविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा गारंटीकृत व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार का उल्लंघन होगा। इसलिए, अनुच्छेद 22(1) की आवश्यकताओं का पालन न करना

अभियुक्त की गिरफ्तारी को अमान्य करता है। इसलिए, आपराधिक न्यायालय द्वारा रिमांड पर पारित आगे के आदेश भी अमान्य हैं। यह जोड़ने की आवश्यकता नहीं है कि यह जांच, आरोप पत्र और मुकदमे को अमान्य नहीं करेगा। लेकिन, साथ ही, आरोप पत्र दायर करना अनुच्छेद 22(1) के तहत संवैधानिक जनादेश के उल्लंघन को वैध नहीं करेगा;

ड.) जब किसी गिरफ्तार व्यक्ति को रिमांड के लिए न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाता है, तो मजिस्ट्रेट का यह कर्तव्य है कि वह यह पता लगाए कि अनुच्छेद 22(1) और अन्य अनिवार्य सुरक्षा उपायों का अनुपालन किया गया है या नहीं; और

च) जब अनुच्छेद 22(1) का उल्लंघन स्थापित हो जाता है, तो न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह अभियुक्त की तुरंत रिहाई का आदेश दे। यह जमानत देने का आधार होगा, भले ही जमानत देने पर वैधानिक प्रतिबंध मौजूद हों। जब संविधान के अनुच्छेद 21 और 22 का उल्लंघन सिद्ध हो जाता है, तो वैधानिक प्रतिबंध न्यायालय की जमानत देने की शक्ति को प्रभावित नहीं करते हैं।"

13. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा हाल ही में **आपराधिक अपील संख्या 1518/2025 @ एसएलपी [सीआरएल] संख्या 1662/2025 में पारित दिनांकित 25.03.2025** के निर्णय (आशीष कक्कड़ बनाम चंडीगढ़ केंद्र शासित प्रदेश) में इसी प्रकार के मुद्दे पर विचार किया गया है। दिनांक 25.03.2025 का निर्णय और आदेश नीचे पुन: प्रस्तुत है:

"अनुमति प्रदान की गई।

2. अपीलकर्ता को भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 384, 420, 468, 471, 509 और 120बी के तहत दर्ज एफआईआर संख्या 33/2022 के संबंध में 30.12.2024 को गिरफ्तार किया गया और 3 दिनों की अवधि के लिए पुलिस हिरासत में भेज दिया गया।

3. वर्तमान अपील के माध्यम से, अपीलकर्ता ने अपनी गिरफ्तारी और दिनांक 30.12.2024 के रिमांड आदेश दोनों को तीन आधारों पर चुनौती दी है, अर्थात्, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (जिसे आगे 'संहिता' कहा जाएगा) की धारा 41-ए के तहत आदेश का स्पष्ट रूप से पालन नहीं किया गया है; रिमांड के समय अपीलकर्ता को नहीं सुना गया और संहिता की धारा 50 के तहत गिरफ्तारी के आधार अपीलकर्ता द्वारा मात्र गिरफ्तारी ज्ञापन के विरुद्ध प्रस्तुत नहीं किए गए हैं।

4. हम गिरफ्तारी के आधार प्रस्तुत न करने के संबंध में अपीलकर्ता द्वारा उठाए गए केवल अंतिम मुद्दे पर विचार करने के इच्छुक हैं।

5. अनुलग्नक पी-3 का अवलोकन करने पर, हम देख सकते हैं कि अपीलकर्ता को जो प्रदान किया गया है वह केवल निर्धारित प्रारूप में एक गिरफ्तारी ज्ञापन है, जो अपीलकर्ता को सूचना के रूप में दिया जाना

है। इसमें अपीलकर्ता का नाम और गिरफ्तारी का स्थान भरा गया है। इसके अतिरिक्त, यह भी लिखा गया है कि उसे सह-अभियुक्त के बयान के आधार पर गिरफ्तार किया गया है।

6. हम अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा की गई इस दलील से सहमत हैं कि उक्त गिरफ्तारी ज्ञापन को गिरफ्तारी का आधार नहीं माना जा सकता, क्योंकि उसे कोई अन्य महत्वपूर्ण विवरण प्रस्तुत नहीं किया गया है।

7. यह संहिता की धारा 50 के तहत अधिदेश का स्पष्ट रूप से गैर-अनुपालन है, जिसे भारत के संविधान के अनुच्छेद 22(1) को प्रभावी करने के लिए पेश किया गया है। 1950 में, हम विशेष रूप से इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय, जिसे ***प्रबीर पुरकायस्थ बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) (2024) 8 एससीसी 254*** *के आलोक में, आक्षेपित निर्णय को रद्द करने के लिए इच्छुक हैं।*

8. इस मामले के इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए, आक्षेपित निर्णय को रद्द किया जाता है और अपीलकर्ता की गिरफ्तारी और उसके बाद जारी रिमांड आदेश को भी रद्द किया जाता है।

9. अपीलकर्ता को तब तक स्वतंत्र रखा जाएगा, जब तक कि किसी अन्य मामले में उसकी आवश्यकता न हो। तदनुसार, अपील स्वीकार की जाती है।

10. लंबित आवेदन, यदि कोई हो, का भी निस्तारित किया जाएगा।

14. वर्तमान मामले में, यह स्वीकार किया जाता है कि विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा आरोपी याचिकाकर्ता को न्यायिक रिमांड के समय पर्याप्त कानूनी सहायता और सुनवाई का उचित अवसर सुनिश्चित करने के लिए ऐसा कोई प्रयास नहीं किया गया था। यहाँ तक कि गिरफ्तारी ज्ञापन में भी याचिकाकर्ता की गिरफ्तारी के आधार के बारे में कोई कॉलम नहीं है। यही मुद्दा मुख्य रूप से वर्तमान मामले में पक्षों के बीच विवाद का विषय है। तदनुसार, यह संहिता की धारा 50 के तहत अधिदेश का स्पष्ट रूप से गैर-अनुपालन है, जिसे भारत के संविधान, 1950 के अनुच्छेद 22(1) को प्रभावी करने के लिए पेश किया गया है। हम **प्रबीर पुरकायस्थ** (उपरोक्त), **पंकज बंसल** (उपरोक्त) और **आशीष कक्कड़** (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के मद्देनजर आक्षेपित आदेश को रद्द करने के लिए इच्छुक हैं।

15. मामले के इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए, दिनांक 26.12.2024 का आक्षेपित आदेश एतद्द्वारा रद्द किया जाता है। याचिकाकर्ता की गिरफ्तारी भी रद्द की जाती है।

16. याचिकाकर्ता को स्वतंत्र रखा जाएगा, जब तक कि किसी अन्य मामले के संबंध में आवश्यक न हो।

अनुवादित

17. उपरोक्त के आलोक में, **रिट याचिका को अनुमति** दी जाती है।

18. इस न्यायालय के महापंजीयक के माध्यम से उत्तर प्रदेश के पुलिस महानिदेशक को आदेश प्रेषित किया जाए और तदनुसार, उपरोक्त टिप्पणियों के आलोक में धारा 50 और 50ए (अब धारा 47 और 48 बीएनएसएस) के आवश्यक अनुपालन हेतु सभी पुलिस आयुक्तों/वरिष्ठ पुलिस अधीक्षकों/पुलिस अधीक्षकों को एक परिपत्र जारी किया जाए।

(2025) 4 ILRA 26

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल वाद

दिनांक: इलाहाबाद 30.04.2025

माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया,

के समक्ष

अनुच्छेद 227 के अंतर्गत मामला संख्या - 2997/2022

श्रीमती कुसुम **...याचिकाकर्ता**

बनाम

आनंद कुमार एवं अन्य **...प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
दीपक कुमार, विंदेश्वरी पांडे

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
विवेक कुमार पांडे, महेंद्र प्रताप सिंह, विवेक शुक्ला

क. बीमा कानून - बीमा अधिनियम, 1938 - धारा 39(7) - बीमा लाभ प्राप्त करने का अधिकार - नामिती के अधिकार कानूनी उत्तराधिकारियों के संबंध में - यह धारित किया गया कि नामिती को खाते में पड़ी राशि का स्वामी नहीं माना जा सकता। धारा 39(7) की व्याख्या यह भी की जानी चाहिए कि लाभार्थी नामिती को पॉलिसी की आय में से राशि का स्वामी नहीं कहा जा सकता। नामिती संबंधित उत्तराधिकार अधिनियम के आधार पर कानूनी उत्तराधिकारियों के अधिकारों का उल्लंघन नहीं करेगा। [पैरा 4, 35(i) और 35(ii)]

ख. क़ानून की व्याख्या - बीमा अधिनियम की धारा 39(7) में निहित समतुल्य प्रावधान की व्याख्या बैंकिंग विनियमन अधिनियम की धारा 45-जेडए(2) में निहित समतुल्य प्रावधान की व्याख्या के विपरीत नहीं की जा सकती। (पैरा 13)

अनुवादित

ग. क़ानून की व्याख्या - सामंजस्यपूर्ण निर्माण - जब अलग-अलग क्षेत्रों में कार्यरत दो क़ानूनों को सुलह के लिए बुलाया जाता है, तो सामंजस्यपूर्ण निर्माण को अपनाया जाना चाहिए - दोनों प्रावधानों, अर्थात् बीमा अधिनियम और हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, की सामंजस्यपूर्ण व्याख्या पर, हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम द्वारा प्रदत्त अधिकार बीमा अधिनियम की धारा 39(7) के तहत नामिती द्वारा दावा किए गए अधिकारों पर प्रबल होंगे, उत्तराधिकार अधिनियम विशिष्ट है और बीमा अधिनियम के विपरीत उत्तराधिकार है जो सामान्य है। [पैरा 27 और 35(iii)]

घ. क़ानून की व्याख्या - सामान्य क़ानून बनाम विशिष्ट क़ानून - *जनरलिया स्पेशलिबस नॉन डेरोगेंट और जनरलिबस स्पेशलिया* - प्रयोज्यता - जब दो क़ानून, जो अलग-अलग क्षेत्रों में लागू होते हैं, व्याख्या के लिए आते हैं, तो विशेष अधिनियम, सामान्य अधिनियम पर प्रबल होगा। (पैरा 27)

याचिका खारिज। (ई-1)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:-

1. श्रीमती सरबती देवी एवं अन्य बनाम श्रीमती उषा देवी; (1984) 1 एससीसी 424
2. राम चंद्र तलवार एवं अन्य बनाम देवेंद्र कुमार तलवार एवं अन्य; (2010) 10 एससीसी 671
3. श्वेता सिंह हुरिया एवं अन्य बनाम संतोष हुरिया और अन्य; एआईआर 2021 दिल्ली 121
4. मल्लेला मणिमाला बनाम मल्लेला लक्ष्मी पद्मावती एवं अन्य; 2023 एससीसी ऑनलाइन एपी 459
5. डब्ल्यू.पी. (एम.डी.) संख्या 11044 2021; के.आर. शक्ति मुरुगेश्वरी बनाम प्रभाग प्रबंधक, जीवन भारतीय बीमा निगम एवं अन्य 16.10.2023 को निर्णीत : 2023/एमएचसी/4812
6. 2023 का आरएफए नंबर 100471; श्रीमती नीलाव्वा @ नीलम्मा बनाम श्रीमती चंद्रव्वा@चंद्रकला @हेमा एवं अन्य 20.02.2025 को निर्णीत।
7. शक्ति येज़दानी और अन्य बनाम जयानंद जयंत सालगांवकर एवं अन्य; (2024) 4 एससीसी 642
8. अरुण कुमार सिंह बनाम जया पत्नी चेतन सिंह चौहान व अन्य; 2022 एससीसी ऑनलाइन एमपी 5948
9. केएसएल एंड इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम अरिहंत थ्रेड्स लिमिटेड व अन्य; (2009) 9 एससीसी 763
10. प्रबंध निदेशक, छत्तीसगढ़ राज्य सहकारी बैंक मर्यादित बनाम जिला सहकारी केंद्रीय बैंक मर्यादित व अन्य; (2020) 6 एससीसी 411
11. मध्यस्थता समझौतों के बीच परस्पर क्रिया मध्यस्थता और सुलह अधिनियम 1996 और स्टाम्प अधिनियम, 1889 के तहत; (2024) 6 एससीसी 1
12. भारतीय जीवन बीमा निगम बनाम डी.जे. बहादुर व अन्य; (1981) 1 एससीसी 315

अनुवादित

(माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया द्वारा प्रदत्त)

1. वर्तमान याचिका सिविल पुनरीक्षण संख्या 16/2022 (श्रीमती कुसुम बनाम आनंद कुमार एवं अन्य) में जिला न्यायाधीश, उन्नाव द्वारा पारित दिनांक 12.07.2022 के आदेश को चुनौती देते हुए दायर की गई है।

2. संक्षेप में तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता का दावा है कि उसने अपनी बेटी रंजीता के नाम पर 15 जीवन बीमा लिया था जब वह अविवाहित थी और बाद में, बेटी की शादी प्रतिवादी संख्या 1 से हुई और प्रतिवादी संख्या 2 - याचिकाकर्ता की पोती - याचिकाकर्ता और प्रतिवादी संख्या 1 की बेटी के बीच विवाहेतर संबंध से पैदा हुई थी। दुर्भाग्य से, याचिकाकर्ता की बेटी की मृत्यु 01.09.2021 को हो गई जब प्रतिवादी संख्या 2 लगभग 11 महीने की थी। यह दावा किया गया है कि 15 जीवन बीमा पॉलिसियों में, याचिकाकर्ता अपनी मृत्यु से पहले अपनी बेटी द्वारा नामित व्यक्ति थी। हालांकि, उक्त दावे का विरोध करने के लिए, प्रतिवादी नंबर 1 और प्रतिवादी नंबर 2 ने सिविल जज (सीनियर डिवीजन), उन्नाव के समक्ष भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 372 के तहत सिविल प्रकीर्ण मामला संख्या 08/2022 दायर किया, जिसमें जीवन बीमा पॉलिसियों से उत्पन्न दावे सहित उत्तराधिकार का दावा किया गया। दावा किया गया है कि याचिकाकर्ता को पक्षकार भी नहीं बनाया गया था। इसके बाद, याचिकाकर्ता को सुने बिना ही उक्त मामले का निस्तारण 12.03.2022 को लोक अदालत में कर दिया गया। उक्त फैसले से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने 2022 के अनुच्छेद 227 संख्या 2114 के तहत मामलों से संबंधित एक याचिका दायर की, जिसमें 07.06.2022 को एक आदेश पारित किया गया जिसमें कहा गया कि सक्षम न्यायालय के समक्ष सिविल जज द्वारा पारित उक्त आदेश के खिलाफ एक पुनरीक्षण होगा। अंततः, पुनर्विचार याचिका पर उक्त आदेश के माध्यम से निर्णय लिया गया, जिसके तहत उत्तराधिकार प्रमाणपत्र को इस सीमा तक संशोधित किया गया कि सभी 15 जीवन बीमा पॉलिसियों की राशि को परिसंपत्तियों की सूची से बाहर करने का निर्देश दिया गया और पुनर्विचारकर्ता को निर्देश दिए गए कि वह इसे प्रतिवादी संख्या 2 के नाम पर सावधि जमा रसीदों के रूप में उसके 18 वर्ष की आयु प्राप्त करने तक जमा करे।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का स्पष्ट तर्क यह है कि बीमा अधिनियम की धारा 39(7) सहपठित धारा 39(8) के अधिदेश के अनुसार, याचिकाकर्ता, जिसे नामिती के रूप में नामित किया गया था, लाभकारी नामिती होने के नाते पॉलिसियों के तहत राशि की हकदार है। इस बात से इनकार नहीं किया जाता है कि पॉलिसियों के तहत राशि के अलावा, प्रतिवादी संख्या 2 अपनी संपत्ति के उत्तराधिकार की हकदार होगी क्योंकि यह स्वीकार किया जाता है कि याचिकाकर्ता की पुत्री की मृत्यु बिना वसीयत के हुई थी।

4. इस प्रकार, विचारणीय मुद्दा यह है कि एक ओर याचिकाकर्ता का दावा है कि वह नामिती होने के नाते बीमा अधिनियम की धारा 39(7) के आधार पर बीमा पॉलिसियों के लिए देय राशि से उत्पन्न होने वाले लाभकारी हित की हकदार है, जिसमें प्रतिवादी संख्या 2 को हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम से प्राप्त पुत्री की पॉलिसियों के तहत राशि के संबंध में उत्तराधिकार के अधिकार से वंचित किया गया है।

5. यह ध्यान रखना आवश्यक है कि बीमा अधिनियम की धारा 39(7) को विधि आयोग द्वारा की गई सिफारिशों पर 2015 के अधिनियम संख्या 5 के आधार पर वर्ष 2015 में संशोधित किया गया था। धारा 39 अपने संशोधन के बाद इस प्रकार दर्ज की गई है:

"39. पॉलिसीधारक द्वारा नामांकन– (1) अपने जीवन पर जीवन बीमा पॉलिसी का धारक, पॉलिसी लागू करते समय या भुगतान के लिए पॉलिसी की परिपक्वता से पहले किसी भी समय, उस व्यक्ति या व्यक्तियों को नामित कर सकता है जिन्हें उसकी मृत्यु की स्थिति में पॉलिसी द्वारा सुरक्षित धनराशि का भुगतान किया जाएगा:

बशर्ते कि, जहाँ कोई नामिती अवयस्क हो, वहाँ पॉलिसीधारक के लिए यह वैध होगा कि वह बीमाकर्ता द्वारा निर्धारित तरीके से किसी व्यक्ति को नामिती की अवयस्कता के दौरान उसकी मृत्यु की स्थिति में पॉलिसी द्वारा सुरक्षित धनराशि प्राप्त करने के लिए नियुक्त करे।

(2) ऐसा कोई भी नामांकन प्रभावी होने के लिए, जब तक कि वह पॉलिसी के पाठ में शामिल न हो, बीमाकर्ता को संप्रेषित पॉलिसी पर एक पृष्ठांकन द्वारा किया जाएगा और पॉलिसी से संबंधित अभिलेखों में उसके द्वारा पंजीकृत किया जाएगा और ऐसा कोई भी नामांकन भुगतान के लिए पॉलिसी की परिपक्वता से पहले किसी भी समय, जैसा भी मामला हो, एक पृष्ठांकन या एक अतिरिक्त पृष्ठांकन या एक वसीयत द्वारा रद्द या परिवर्तित किया जा सकता है, लेकिन जब तक कि ऐसे किसी रद्दीकरण या परिवर्तन बीमाकर्ता को सौंप दिया गया है, तो बीमाकर्ता पॉलिसी के अंतर्गत उसके द्वारा सद्भावपूर्वक पॉलिसी के पाठ में उल्लिखित या बीमाकर्ता के अभिलेखों में पंजीकृत किसी नामिती को किए गए किसी भी भुगतान के लिए उत्तरदायी नहीं होगा।

(3) बीमाकर्ता पॉलिसीधारक को नामांकन या उसके रद्दीकरण या परिवर्तन के पंजीकरण की लिखित पावती देगा, और ऐसे रद्दीकरण या परिवर्तन के पंजीकरण के लिए विनियमों द्वारा निर्दिष्ट शुल्क ले सकता है।

(4) धारा 38 के अनुसार किया गया पॉलिसी का हस्तांतरण या समनुदेशन नामांकन को स्वतः रद्द कर देगा:

बशर्ते कि बीमाकर्ता को पॉलिसी का समनुदेशन, जो समनुदेशन के समय पॉलिसी पर जोखिम वहन करता है, उस बीमाकर्ता द्वारा पॉलिसी की प्रतिभूति पर उसके समर्पण मूल्य के भीतर दिए गए ऋण के प्रतिफल में, या ऋण की चुकौती पर उसके पुनर्निर्धारण से नामांकन रद्द नहीं होगा, बल्कि नामिती के अधिकारों पर केवल पॉलिसी में बीमाकर्ता के हित की सीमा तक ही प्रभाव पड़ेगा:

इसके अलावा, यह भी प्रावधान है कि हस्तांतरिती या समनुदेशिती द्वारा पॉलिसीधारक को दिए गए ऋण के प्रतिफल में, पॉलिसी का पूर्णतः या आंशिक रूप से हस्तांतरण या समनुदेशन, नामांकन को रद्द नहीं

करेगा, बल्कि नामिती के अधिकारों पर केवल पॉलिसी में हस्तांतरिती या समनुदेशिती के हित की सीमा तक ही प्रभाव पड़ेगा:

इसके अलावा, यह भी प्रावधान है कि हस्तांतरण या समनुदेशन के परिणामस्वरूप स्वतः रद्द किया गया नामांकन, वही नामांकन तब स्वतः पुनर्जीवित हो जाएगा जब समनुदेशिती द्वारा पॉलिसी को पुनः समनुदेशित किया जाता है या हस्तांतरिती द्वारा बीमाकर्ता को पॉलिसी की प्रतिभूति के अलावा ऋण की चुकौती पर पॉलिसीधारक के पक्ष में पुनः हस्तांतरित किया जाता है।

(5) जहां पॉलिसी उस व्यक्ति के जीवनकाल में भुगतान के लिए परिपक्व हो जाती है जिसका जीवन बीमित है या जहां नामिती या, यदि एक से अधिक नामिती हैं, तो सभी नामिती पॉलिसी के भुगतान के लिए परिपक्व होने से पहले मर जाते हैं, पॉलिसी द्वारा सुरक्षित राशि पॉलिसीधारक या उसके उत्तराधिकारियों या कानूनी प्रतिनिधियों या उत्तराधिकार प्रमाण पत्र के धारक को, जैसा भी मामला हो, देय होगी।

(6) जहां नामिती या यदि एक से अधिक नामिती हैं, तो एक नामिती या नामिती उस व्यक्ति के बाद जीवित रहते हैं जिसका जीवन बीमित है, पॉलिसी द्वारा सुरक्षित राशि ऐसे उत्तरजीवी या उत्तरजीवियों को देय होगी।

(7) इस धारा के अन्य प्रावधानों के अधीन रहते हुए, जहां अपने जीवन पर बीमा पॉलिसी का धारक अपने माता-पिता, या अपने पति या पत्नी, या अपने बच्चों, या अपने पति या पत्नी और बच्चों, या उनमें से किसी को नामित करता है, नामिती या नामिती उप-धारा (6) के तहत बीमाकर्ता द्वारा उसे या उन्हें देय राशि के लिए लाभकारी रूप से हकदार होंगे, जब तक कि यह साबित न हो जाए कि पॉलिसी धारक, पॉलिसी के अपने शीर्षक की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, नामिती को ऐसा कोई लाभकारी शीर्षक प्रदान नहीं कर सकता था।

(8) जैसा कि पूर्वोक्त है, जहां नामिती, या यदि एक से अधिक नामिती हैं, तो नामिती या नामिती, जिन पर उप-धारा (7) लागू होती है, उस व्यक्ति के पश्चात्, जिसका जीवन बीमा किया गया है, किन्तु पॉलिसी द्वारा सुरक्षित राशि का भुगतान किए जाने से पूर्व मर जाते हैं, तो पॉलिसी द्वारा सुरक्षित राशि, या पॉलिसी द्वारा सुरक्षित राशि में से उतनी राशि जो इस प्रकार मरने वाले नामिती या नामितियों के हिस्से का प्रतिनिधित्व करती है (जैसा भी मामला हो), नामिती या नामितियों के वारिसों या कानूनी प्रतिनिधियों या उत्तराधिकार प्रमाण पत्र के धारक को, जैसा भी मामला हो, देय होगी और वे ऐसी राशि के लिए लाभकारी रूप से हकदार होंगे।

(9) उप-धारा (7) और (8) में कोई भी बात किसी भी लेनदार के जीवन बीमा की किसी भी पॉलिसी की आय से भुगतान प्राप्त करने के अधिकार को नष्ट या बाधित करने के लिए प्रवृत्त नहीं होगी।

(10) उप-धारा (7) और (8) के प्रावधान बीमा कानून (संशोधन) अधिनियम, 2015 के प्रारंभ होने के बाद भुगतान के लिए परिपक्व होने वाली सभी जीवन बीमा पॉलिसियों पर लागू होंगे।

(11) जहां पॉलिसीधारक की पॉलिसी की परिपक्वता के बाद मृत्यु हो जाती है, लेकिन उसकी मृत्यु के कारण उसकी पॉलिसी की आय और लाभ उसे नहीं दिया गया है, ऐसे मामले में, उसका नामित व्यक्ति उसकी पॉलिसी की आय और लाभ का हकदार होगा।

(12) इस धारा के प्रावधान किसी भी जीवन बीमा पॉलिसी पर लागू नहीं होंगे, जिस पर विवाहित महिला संपत्ति अधिनियम, 1874 (1874 का 3) की धारा 6 लागू होती है या कभी लागू हुई है:

बशर्ते कि जहाँ बीमा कानून (संशोधन) अधिनियम, 2015 के प्रारंभ होने से पहले या बाद में, उस व्यक्ति की पत्नी, जिसने अपना जीवन बीमा कराया है, या उसकी पत्नी और बच्चों या उनमें से किसी के पक्ष में किया गया नामांकन, चाहे पॉलिसी के मुखपृष्ठ पर हो या नहीं, इस धारा के अंतर्गत किए जाने के रूप में व्यक्त किया गया हो, तो उक्त धारा 6 पॉलिसी पर लागू नहीं मानी जाएगी या लागू नहीं हुई है।

6. संशोधन के कारण विधि आयोग की सिफारिशें थीं, जो इस प्रकार हैं:

"विधि आयोग का दृष्टिकोण

7.1.12 लाभार्थी नामिती और संग्रहकर्ता नामिती के बीच स्पष्ट अंतर करने की आवश्यकता पर एक प्रकार की आम सहमति प्रतीत होती है। कुछ बीमाकर्ताओं द्वारा दिए गए सुझाव से सहमत होना संभव नहीं है कि सभी मामलों में नामिती को भुगतान पॉलिसी के तहत बीमाकर्ता की देयता के पूर्ण निर्वहन के बराबर होगा और जब तक इसके विपरीत व्यक्त नहीं किया जाता है, नामिती लाभकारी नामिती होगा। हालांकि यह सच है कि यह संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा और दक्षिण अफ्रीका में कानून है, हमारे देश की सामाजिक वास्तविकताओं को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है जहां परिवार के एकमात्र कमाने वाले की मृत्यु तुरंत शेष परिवार को कठिनाई में डाल देती है। ऐसे उदाहरण में, नामिती एक अलग व्यक्ति होने के आधार पर पॉलिसी राशि पर कानूनी प्रतिनिधियों के अधिकार को अस्वीकार करना कठोर लगता है। दूसरी ओर, जो उचित लगता है वह पॉलिसीधारक को यह स्पष्ट रूप से व्यक्त करने का विकल्प देना है कि नामिती राशि वसूलेगा या नहीं प्रतिनिधि (दूसरे शब्दों में, ऐसा नामिती संग्रहकर्ता नामिती होगा) या नामिती धनराशि का पूर्ण स्वामी होगा, ऐसी स्थिति में ऐसा नामिती लाभकारी नामिती होगा। भारत में जनहित और विशिष्ट सामाजिक वास्तविकताएँ कनाडा, अमेरिका या दक्षिण अफ्रीका में अपनाई गई प्रक्रियाओं को अपनाने की अनुमति नहीं दे सकतीं। आयोग इस सुझाव से सहमत नहीं है कि बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 की धारा 45 ज़ेडए के समान प्रावधान अपनाया जाना चाहिए।

7.1.13 यह सुझाव कि पॉलिसी की परिपक्वता के बाद लेकिन उसे भुनाए जाने से पहले पॉलिसीधारक की मृत्यु होने की स्थिति में नामिती को पॉलिसी राशि प्राप्त करने के लिए नामांकन को प्रभावी बनाने हेतु एक परंतुक जोड़ा जाए, का भी प्रतिक्रियाओं द्वारा स्वागत किया गया है और इसकी एतद्द्वारा अनुशंसा की जाती है।

धारा 39 के संबंध में विधि आयोग की अंतिम सिफ़ारिशें

7.1.14 सभी प्रतिक्रियाओं पर विचार करने और पूरे मुद्दे की पुनः जाँच करने के बाद, धारा 39 के संबंध में विधि आयोग की अंतिम सिफ़ारिशों को संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है:

(क) प्रावधान में ही लाभार्थी नामिती और संग्रहकर्ता नामिती के बीच स्पष्ट अंतर किया जाए।

(ख) कुछ बीमाकर्ताओं द्वारा दिए गए इस सुझाव से सहमत होना संभव नहीं है कि सभी मामलों में नामिती को भुगतान पॉलिसी के तहत बीमाकर्ता के दायित्व के पूर्ण निर्वहन के समान होगा और जब तक इसके विपरीत न कहा जाए, नामिती ही लाभार्थी नामिती होगा।

(ग) पॉलिसीधारक को यह स्पष्ट रूप से व्यक्त करने का विकल्प दिया जाए कि क्या नामिती कानूनी प्रतिनिधियों की ओर से धन एकत्र करेगा (दूसरे शब्दों में, ऐसा नामिती संग्रहकर्ता नामिती होगा) या क्या नामिती धन का पूर्ण स्वामी होगा, ऐसी स्थिति में ऐसा नामिती ही लाभार्थी नामिती होगा।

(घ) यदि पॉलिसीधारक की मृत्यु पॉलिसी की परिपक्वता के बाद लेकिन उसे भुनाए जाने से पहले हो जाती है, तो नामिती को पॉलिसी राशि प्राप्त करने के लिए नामांकन को प्रभावी बनाने हेतु एक प्रावधान जोड़ा जाए।

धारा 39 में सुझाया गया संशोधन

7.1.15 उपरोक्त सिफारिशों को प्रभावी बनाने के लिए, विधि आयोग का विचार है कि धारा 39 को निम्नानुसार पुनर्गठित किया जाए:

(1) अपने जीवन पर जीवन बीमा पॉलिसी का धारक, पॉलिसी प्रभावी करते समय या भुगतान के लिए पॉलिसी परिपक्व होने से पहले किसी भी समय, उस व्यक्ति या व्यक्तियों को नामित कर सकता है जिन्हें उसकी मृत्यु की स्थिति में पॉलिसी द्वारा सुरक्षित राशि का भुगतान किया जाएगा: बशर्ते कि, जहां कोई नामिती नाबालिग है, वहां पॉलिसीधारक के लिए यह वैध होगा कि वह नामिती की नाबालिगता के दौरान उसकी मृत्यु की स्थिति में पॉलिसी द्वारा सुरक्षित राशि प्राप्त करने के लिए निर्धारित तरीके से किसी व्यक्ति को नियुक्त करे।

(2) प्रभावी होने के लिए, ऐसा कोई भी नामांकन, जब तक कि वह पॉलिसी के पाठ में सम्मिलित न हो, बीमाकर्ता को संसूचित पॉलिसी पर पृष्ठांकन द्वारा किया जाएगा और उसके द्वारा पॉलिसी से संबंधित अभिलेखों में पंजीकृत किया जाएगा और ऐसा कोई भी नामांकन, भुगतान के लिए पॉलिसी की परिपक्वता से पहले किसी भी समय, यथास्थिति, पृष्ठांकन या अतिरिक्त पृष्ठांकन या वसीयत द्वारा रद्द या परिवर्तित किया जा सकता है, किन्तु जब तक बीमाकर्ता को ऐसे किसी रद्दीकरण या परिवर्तन की लिखित सूचना नहीं दी जाती है, तब

असंवीक्षित

तक बीमाकर्ता पॉलिसी के पाठ में उल्लिखित या बीमाकर्ता के अभिलेखों में पंजीकृत किसी नामिती को उसके द्वारा सद्भावपूर्वक किए गए पॉलिसी के अंतर्गत किसी भी भुगतान के लिए उत्तरदायी नहीं होगा।

(3) बीमाकर्ता पॉलिसीधारक को नामांकन या उसके रद्दीकरण या परिवर्तन के पंजीकरण की लिखित पावती देगा और ऐसे रद्दीकरण या परिवर्तन के पंजीकरण के लिए विनियमों द्वारा निर्दिष्ट शुल्क ले सकता है।

(4) धारा 98 के अनुसार किया गया पॉलिसी का हस्तांतरण या समनुदेशन नामांकन को स्वतः रद्द कर देगा: बशर्ते कि बीमाकर्ता द्वारा पॉलिसी की सुरक्षा पर उसके समर्पण मूल्य के भीतर दिए गए ऋण के बदले में, समनुदेशन के समय पॉलिसी का जोखिम वहन करने वाले बीमाकर्ता को पॉलिसी का समनुदेशन, या ऋण की अदायगी पर उसका पुनः समनुदेशन, नामांकन को रद्द नहीं करेगा, बल्कि केवल पॉलिसी में बीमाकर्ता के हित की सीमा तक ही नामिती के अधिकारों को प्रभावित करेगा।
बशर्ते कि हस्तांतरिती या समनुदेशिती द्वारा पॉलिसीधारक को दिए गए ऋण के बदले में, पॉलिसी का हस्तांतरण या समनुदेशन, चाहे पूर्णतः या आंशिक रूप से, नामांकन को रद्द नहीं करेगा, बल्कि नामिती के अधिकारों को केवल पॉलिसी में हस्तांतरिती या समनुदेशिती के हित की सीमा तक ही प्रभावित करेगा।
बशर्ते कि नामांकन, जो हस्तांतरण या समनुदेशन के परिणामस्वरूप स्वतः रद्द हो गया है, वही नामांकन तब स्वतः पुनर्जीवित हो जाएगा जब पॉलिसी समनुदेशिती द्वारा पुनः समनुदेशित की जाती है या हस्तांतरिती द्वारा बीमाकर्ता को पॉलिसी की प्रतिभूति के अलावा ऋण के पुनर्भुगतान पर पॉलिसी धारक के पक्ष में पुनः हस्तांतरित की जाती है।

(5) जहां पॉलिसी उस व्यक्ति के जीवनकाल के दौरान भुगतान के लिए परिपक्व होती है जिसका जीवन बीमित है या जहां नामिती या, यदि एक से अधिक नामिती हैं, तो सभी नामिती पॉलिसी के भुगतान के लिए परिपक्व होने से पहले मर जाते हैं, पॉलिसी द्वारा सुरक्षित राशि, पॉलिसीधारक या उसके उत्तराधिकारियों या विधिक प्रतिनिधियों या उत्तराधिकार प्रमाणपत्र धारक को, जैसी भी स्थिति हो, देय होगी।

(6) जहाँ नामिती या यदि एक से अधिक नामिती हैं, तो नामिती या नामिती उस व्यक्ति के उत्तरजीवी हैं जिसका जीवन बीमाकृत है, वहाँ पॉलिसी द्वारा सुरक्षित राशि ऐसे उत्तरजीवी या उत्तरजीवियों को देय होगी।

(7) इस धारा के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए, जहाँ अपने जीवन पर बीमा पॉलिसी धारक अपने माता-पिता, या अपने पति/पत्नी, या अपने बच्चों, या अपने पति/पत्नी और बच्चों, या उनमें से किसी को नामित करता है, वहाँ नामिती या नामिती उप-धारा (6) के अधीन बीमाकर्ता द्वारा उसे या उन्हें देय राशि के लिए लाभकारी रूप से हकदार होंगे, जब तक कि यह साबित न हो जाए कि पॉलिसी धारक, पॉलिसी पर अपने स्वामित्व की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, नामिती को ऐसा कोई लाभकारी स्वामित्व प्रदान नहीं कर सकता था।

अनुवादित

(8) जैसा कि पूर्वोक्त है, जहां नामिती, या यदि एक से अधिक नामिती हैं, तो नामिती या नामिती, जिन पर उप-धारा (7) लागू होती है, उस व्यक्ति के पश्चात्, जिसका जीवन बीमा किया गया है, किन्तु पॉलिसी द्वारा सुरक्षित राशि का भुगतान किए जाने से पूर्व मर जाते हैं, तो पॉलिसी द्वारा सुरक्षित राशि, या पॉलिसी द्वारा सुरक्षित राशि में से उतनी राशि जो इस प्रकार मरने वाले नामिती या नामितियों के हिस्से का प्रतिनिधित्व करती है (जैसा भी मामला हो), नामिती या नामितियों के वारिसों या कानूनी प्रतिनिधियों या उत्तराधिकार प्रमाण पत्र के धारक को, जैसा भी मामला हो, देय होगी और वे ऐसी राशि के लिए हिताधिकारी होंगे।

(9) उप-धारा (7) और (8) में कोई भी बात किसी भी लेनदार के जीवन बीमा की किसी भी पॉलिसी की आय से भुगतान प्राप्त करने के अधिकार को नष्ट या बाधित करने के लिए प्रवृत्त नहीं होगी।

(10) उप-धारा (7), (8) और (9) के प्रावधान इस अधिनियम के प्रारंभ के पश्चात भुगतान के लिए परिपक्व होने वाली सभी जीवन बीमा पॉलिसियों पर लागू होंगे।

(11) प्रत्येक पॉलिसीधारक के पास स्पष्ट रूप से यह दर्शाने का विकल्प होगा कि पॉलिसीधारक द्वारा नामित व्यक्ति/व्यक्तियाँ लाभार्थी नामिती हैं या संग्राहक नामिती।
परन्तु जहाँ पॉलिसीधारक यह दर्शाने में विफल रहता है कि नामित व्यक्ति लाभार्थी नामिती है या संग्राहक नामिती, वहाँ यह माना जाएगा कि नामित व्यक्ति लाभार्थी नामिती है।
स्पष्टीकरण: इस उप-धारा के प्रयोजनों के लिए, 'लाभार्थी नामिती' का तात्पर्य ऐसे नामिती से है जो इस अधिनियम के अन्य प्रावधानों के अधीन बीमा पॉलिसी के अंतर्गत देय संपूर्ण राशि प्राप्त करने का हकदार है और 'संग्राहक नामिती' का तात्पर्य लाभार्थी नामिती के अलावा किसी अन्य नामिती से है।

(12) संग्राहक नामिती प्राधिकरण द्वारा बनाए गए विनियमों के अनुसार लाभार्थी नामिती या उसके कानूनी उत्तराधिकारियों या प्रतिनिधि को पॉलिसी से उत्पन्न लाभों का भुगतान करेगा।

(13) जहाँ पॉलिसीधारक की पॉलिसी की परिपक्वता के बाद मृत्यु हो जाती है, लेकिन उसकी मृत्यु के कारण उसकी पॉलिसी की राशि और लाभ उसे नहीं दिए गए हैं, ऐसी स्थिति में, उसका नामिती उसकी पॉलिसी की राशि और लाभ का हकदार होगा।

(14) इस धारा के प्रावधान किसी भी जीवन बीमा पॉलिसी पर लागू नहीं होंगे, जिस पर विवाहित महिला संपत्ति अधिनियम, 1874 की धारा 6 लागू होती है या कभी लागू हुई है:

बशर्ते कि जहां इस अधिनियम के प्रारंभ से पहले या बाद में, उस व्यक्ति की पत्नी के पक्ष में, जिसने अपना जीवन बीमा कराया है या उसकी पत्नी और बच्चों या उनमें से किसी के पक्ष में नामांकन किया गया

हो, चाहे पॉलिसी के मुख पृष्ठ पर हो या नहीं, इस धारा के तहत किया गया हो, तो उक्त धारा 6 पॉलिसी पर लागू नहीं हुई मानी जाएगी।

7. बार में यह स्वीकार किया जाता है कि 2015 के अधिनियम संख्या 5 के आधार पर धारा 39 में संशोधन से पहले, श्रीमती सरबती देवी एवं अन्य बनाम श्रीमती उषा देवी; (1984) 1 एससीसी 424 के मामले में कानून बहुत अच्छी तरह से स्थापित था कि पॉलिसी का नामिती उत्तराधिकारी के लाभ के लिए राशि रखने का हकदार है और नामिती को उत्तराधिकारी या वसीयतदार के समकक्ष नहीं माना जा सकता है, और उत्तराधिकार अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार उत्तराधिकारियों द्वारा राशि का दावा किया जा सकता है जो उन पर लागू होते हैं।

8. विधि आयोग द्वारा व्यक्त की गई राय, जिसके परिणामस्वरूप धारा 39 में संशोधन हुआ, को सीधे पढ़ने पर यह स्पष्ट है कि ऐसा बीमा कंपनियों के कहने पर किया गया था, जो चाहती थीं कि इसे बैंकिंग विनियमन अधिनियम की धारा 45-जेडए के समकक्ष लाया जाए ताकि बीमा कंपनियों को नामिती को राशि के भुगतान के बोझ से मुक्त किया जा सके।

9. यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि विधि आयोग की सभी सिफारिशें धारा 39 के प्रावधानों को अधिनियमित और संशोधित करते समय स्वीकार नहीं किया गया था, विशेष रूप से विधि आयोग द्वारा संशोधनों में प्रस्तावित स्पष्टीकरण को अधिनियम में संशोधन करते समय शामिल नहीं किया गया था।

10. यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि बैंकिंग विनियमन अधिनियम की धारा 45-जेडए में नामांकन के आधार पर जमाकर्ताओं के धन की राशि के भुगतान के लिए भी प्रावधान किए गए थे। धारा 45-जेडए इस प्रकार है:

"45-जेडए. जमाकर्ताओं के धन के भुगतान के लिए नामांकन।–(1)
जहाँ किसी बैंकिंग कंपनी द्वारा एक या अधिक व्यक्तियों के नाम जमा राशि रखी जाती है, वहाँ जमाकर्ता या, यथास्थिति, सभी जमाकर्ता मिलकर, विहित रीति से, चार से अनधिक एक या अधिक व्यक्तियों को, क्रमिक रूप से या एक साथ, नामांकित कर सकते हैं, जिन्हें एकमात्र जमाकर्ता की मृत्यु या सभी जमाकर्ताओं की मृत्यु की स्थिति में, बैंकिंग कंपनी द्वारा जमा राशि वापस की जा सकेगी।

(2) ऐसी जमा राशि के संबंध में, तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि या किसी विनियोग, चाहे वसीयतनामा द्वारा हो या अन्यथा, में किसी बात के होते हुए भी, जहाँ विहित रीति से किया गया नामांकन किसी व्यक्ति को बैंकिंग कंपनी से जमा राशि प्राप्त करने का अधिकार प्रदान करने का अभिप्राय रखता है, वहाँ नामिती, विक्रय जमाकर्ता की मृत्यु पर या, यथास्थिति, सभी जमाकर्ताओं की मृत्यु पर, ऐसी जमा राशि के संबंध में, अन्य सभी व्यक्तियों को छोड़कर, एकमात्र जमाकर्ता या, यथास्थिति, जमाकर्ताओं के सभी अधिकारों का हकदार हो जाएगा, जब तक कि नामांकन में विहित रीति से परिवर्तन या रद्दीकरण न कर दिया जाए। (3) जहाँ नामिती

अवयस्क है, वहाँ नामांकन करने वाले जमाकर्ता के लिए यह विधिपूर्ण होगा कि वह नामिती की अवयस्कता के दौरान उसकी मृत्यु की स्थिति में जमा राशि प्राप्त करने के लिए विहित रीति से किसी व्यक्ति को नियुक्त करे।

(4) इस धारा के उपबंधों के अनुसार किसी बैंकिंग कंपनी द्वारा किया गया भुगतान, जमा के संबंध में बैंकिंग कंपनी के दायित्व से पूर्ण उन्मुक्ति माना जाएगा:
परन्तु इस उपधारा में निहित कोई भी बात उस अधिकार या दावे को प्रभावित नहीं करेगी जो किसी व्यक्ति का उस व्यक्ति के विरुद्ध हो सकता है जिसे इस धारा के अधीन कोई भुगतान किया गया है। 11. इस प्रकार, धारा 45-जेडए(2) को सीधे पढ़ने पर यह स्पष्ट है कि यह बीमा अधिनियम की धारा 39(7) के समान है।

12. धारा 45-जेडए की व्याख्या माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष ***राम चंद्र तलवार एवं अन्य बनाम देवेंद्र कुमार तलवार एवं अन्य (2010) 10 एससीसी 671*** के मामले में की गई थी, जिसमें नामिती के अधिकारों की तुलना में उत्तराधिकारी के अधिकारों पर विचार किया गया था और सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया था:

"5. धारा 45-जेडए(2) केवल नामिती को जमाकर्ता की मृत्यु के बाद उसके स्थान पर रखती है और उसे खाते में पड़ी धनराशि प्राप्त करने का विशेष अधिकार प्रदान करती है। जहां तक जमाकर्ता के खाते का संबंध है, यह उसे जमाकर्ता के सभी अधिकार प्रदान करती है। लेकिन यह किसी भी तरह से नामिती को खाते में पड़ी धनराशि का स्वामी नहीं बनाती है। यह याद रखना ज़रूरी है कि बैंकिंग विनियमन अधिनियम बैंकिंग से संबंधित कानून को समेकित और संशोधित करने के लिए बनाया गया है। इसका उत्तराधिकार के प्रश्न से कोई लेना-देना नहीं है। इसलिए, धारा 45-ज़ेडए(2) के तहत नामित व्यक्ति द्वारा प्राप्त होने वाली सभी धनराशियाँ, मृतक जमाकर्ता की संपत्ति का हिस्सा होंगी और उत्तराधिकार के उस नियम के अनुसार हस्तांतरित होंगी जिसके अंतर्गत जमाकर्ता शासित होगा।

13. इस प्रकार, बीमा अधिनियम की धारा 39(7) में निहित समतुल्यता प्रावधान की व्याख्या बैंकिंग विनियमन अधिनियम की धारा 45-जेडए(2) में निहित समतुल्यता प्रावधान की व्याख्या के विपरीत नहीं की जा सकती है और इस प्रकार, इस आधार पर याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का प्रस्तुतीकरण अस्वीकार किए जाने योग्य है।

14. इस आधार पर याचिकाकर्ता के अधिवक्ता के तर्क को खारिज करने के अलावा कि राम चंद्र तलवार (उपरोक्त) के मामले में समतुल्यता प्रावधान की व्याख्या की गई है और यह बाध्यकारी होगा, विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा व्याख्या की गई धारा 39(7) की व्याख्या को देखना आवश्यक है।

15. संशोधित धारा 39(7) ***श्वेता सिंह हुरिया एवं अन्य बनाम संतोष हुरिया एवं अन्य; एआईआर 2021 दिल्ली 121*** के मामले में व्याख्या के लिए आई थी, जिसमें दिल्ली उच्च न्यायालय ने सरबती देवी (उपरोक्त) के मामले

में पहले के फैसले और उसके बाद के संशोधन पर विचार किया था और विधि आयोग की सिफारिशों को भी अपने में दर्ज किया था। 190वीं रिपोर्ट, जो इस प्रकार है:

"विधि आयोग के दृष्टिकोण:–

7.1.12. लाभार्थी नामिती और संग्राहक नामिती के बीच स्पष्ट अंतर करने की आवश्यकता पर एक प्रकार की सहमति प्रतीत होती है। कुछ बीमाकर्ताओं द्वारा दिए गए इस सुझाव से सहमत होना संभव नहीं है कि सभी मामलों में नामिती को भुगतान पॉलिसी के तहत बीमाकर्ता के दायित्व के पूर्ण निर्वहन के समान होगा और जब तक इसके विपरीत व्यक्त न किया जाए, नामिती ही लाभार्थी नामिती होगा। हालाँकि यह सच है कि अमेरिका, कनाडा और दक्षिण अफ्रीका में यह कानून है, लेकिन हमारे देश की सामाजिक वास्तविकताओं को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता, जहाँ परिवार के एकमात्र कमाने वाले की मृत्यु होने पर शेष परिवार तुरंत कठिनाई में पड़ जाता है। ऐसे मामले में, नामिती के एक अलग व्यक्ति होने के आधार पर कानूनी प्रतिनिधियों को पॉलिसी राशि पर अधिकार देने से इनकार करना कठोर लगता है। दूसरी ओर, जो उचित प्रतीत होता है वह पॉलिसीधारक को यह स्पष्ट रूप से व्यक्त करने का विकल्प देना है कि क्या नामिती कानूनी प्रतिनिधियों की ओर से धन एकत्र करेगा (दूसरे शब्दों में, ऐसा नामिती संग्राहक नामिती होगा)

क्या नामिती धनराशि का पूर्ण स्वामी होगा, जिस स्थिति में ऐसा नामिती लाभार्थी नामिती होगा। भारत में जनहित और विशिष्ट सामाजिक वास्तविकताएँ कनाडा, अमेरिका या दक्षिण अफ्रीका में अपनाई गई प्रक्रियाओं को अपनाने की अनुमति नहीं दे सकतीं। आयोग इस सुझाव से सहमत नहीं है कि बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 की धारा 45 ज़ेडए के समान प्रावधान अपनाया जाना चाहिए।

7.1.13. यह सुझाव कि पॉलिसी की परिपक्वता के बाद लेकिन इसे भुनाए जाने से पहले पॉलिसीधारक की मृत्यु होने की स्थिति में नामिती को पॉलिसी राशि प्राप्त करने के लिए नामांकन को प्रभावी बनाने के लिए एक परंतुक जोड़ा जाए, का भी प्रतिक्रियाओं द्वारा स्वागत किया गया है और इसके द्वारा इसकी अनुशंसा की जाती है।

धारा 39 के संबंध में विधि आयोग की अंतिम सिफारिशें:–

7.1.14. सभी प्रतिक्रियाओं पर विचार करने और पूरे मुद्दे की पुनः जाँच करने के बाद, धारा 39 के संबंध में विधि आयोग की अंतिम सिफारिशों को संक्षेप में निम्नानुसार प्रस्तुत किया जा सकता है:

(क) प्रावधान में ही लाभार्थी नामिती और संग्राहक नामिती के बीच स्पष्ट अंतर किया जाना चाहिए।

(ख) कुछ बीमाकर्ताओं द्वारा दिए गए इस सुझाव से सहमत होना संभव नहीं है कि सभी मामलों में नामिती को किया गया भुगतान पॉलिसी के अंतर्गत बीमाकर्ता के दायित्व के पूर्ण निर्वहन के समान होगा और जब तक इसके विपरीत न कहा जाए, नामिती ही लाभकारी नामिती होगा।

(ग) पॉलिसीधारक को यह स्पष्ट रूप से बताने का विकल्प दिया जाए कि क्या नामिती कानूनी प्रतिनिधियों की ओर से धन एकत्र करेगा (दूसरे शब्दों में, ऐसा नामिती संग्रहकर्ता नामिती होगा) या क्या नामिती धन का पूर्ण स्वामी होगा, ऐसी स्थिति में ऐसा नामिती ही लाभकारी नामिती होगा।

(घ) यदि पॉलिसीधारक की मृत्यु पॉलिसी की परिपक्वता के बाद लेकिन उसे भुनाए जाने से पहले हो जाती है, तो नामिती को पॉलिसी धन प्राप्त करने के लिए नामांकन को प्रभावी बनाने हेतु एक प्रावधान जोड़ा जाए।
धारा 39 में संशोधन का सुझाव:–

"7.1.15 उपरोक्त सिफारिशों को प्रभावी करने के लिए, विधि आयोग का विचार है कि धारा 39 को निम्नानुसार पुनर्निर्धारित किया जाए:

xxx xxx xxx

(7) इस धारा के अन्य प्रावधानों के अधीन रहते हुए, जहां अपने जीवन पर बीमा पॉलिसी का धारक अपने माता-पिता, या अपने पति/पत्नी, या अपने बच्चों, या अपने पति/पत्नी और बच्चों, या उनमें से किसी को नामित करता है, नामिती या नामिती उप-धारा (6) के तहत बीमाकर्ता द्वारा उसे या उन्हें देय राशि के लिए लाभकारी रूप से हकदार होंगे, जब तक कि यह साबित न हो जाए कि पॉलिसी धारक, पॉलिसी पर अपने अधिकार की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, नामिती को ऐसा कोई लाभकारी अधिकार प्रदान नहीं कर सकता था।

(8) पूर्वोक्त के अधीन रहते हुए, जहां नामिती, या यदि एक से अधिक नामिती हैं, तो एक नामिती या नामिती, जिन पर उपधारा (7) लागू होती है, उस व्यक्ति के बाद मर जाते हैं जिसका जीवन बीमित है लेकिन पॉलिसी द्वारा सुरक्षित राशि का भुगतान किए जाने से पहले, पॉलिसी द्वारा सुरक्षित राशि, या पॉलिसी द्वारा सुरक्षित राशि, जो इस प्रकार मृत्यु होने पर नामिती या नामितियों के हिस्से का प्रतिनिधित्व करती है (जैसा भी मामला हो), नामिती या नामितियों के उत्तराधिकारियों या कानूनी प्रतिनिधियों या उत्तराधिकार प्रमाणपत्र धारक को, जैसा भी मामला हो, देय होगी और वे ऐसी राशि के लिए लाभार्थी रूप से हकदार होंगे।

xxx xxx xxx

(10) उप-धारा (7), (8) और (9) के प्रावधान इस अधिनियम के प्रारंभ के बाद भुगतान के लिए परिपक्व होने वाली सभी जीवन बीमा पॉलिसियों पर लागू होंगे।

(11) प्रत्येक पॉलिसीधारक के पास स्पष्ट रूप से यह इंगित करने का विकल्प होगा कि पॉलिसीधारक द्वारा नामित व्यक्ति/व्यक्तियाँ लाभार्थी नामिती हैं या संग्राहक नामिती हैं।
<u>बशर्ते कि जहां पॉलिसीधारक यह इंगित करने में विफल रहता है कि नामित किया जा रहा व्यक्ति लाभार्थी नामिती है या संग्राहक नामिती है, तो यह माना जाएगा कि नामित व्यक्ति लाभार्थी नामिती है।</u>

<u>स्पष्टीकरण: इस उप-धारा के प्रयोजनों के लिए 'लाभार्थी नामिती' शब्द का अर्थ एक नामिती है जो अन्य शर्तों के अधीन बीमा पॉलिसी के तहत देय संपूर्ण आय प्राप्त करने का हकदार है। इस अधिनियम के प्रावधानों और 'संग्रहकर्ता नामिती' अभिव्यक्ति का अर्थ लाभार्थी नामिती के अलावा कोई अन्य नामिती है।</u>

और अंततः 'लाभार्थी नामिती' और 'संग्रहकर्ता नामिती' के बीच अंतर स्पष्ट किया गया ताकि यह माना जा सके कि बीमा अधिनियम में संशोधन से पहले, नामिती केवल एक संग्रहकर्ता नामिती था, हालाँकि, संशोधन के बाद, नामिती अन्य को छोड़कर लाभार्थी नामिती बन गया। संबंधित भाग पैरा - 31, 32 और 33 में निहित हैं, जो इस प्रकार हैं:

"31. जैसा कि विधि आयोग की सिफारिशों को पढ़ने से स्पष्ट है, 'लाभार्थी नामिती' और 'संग्रहकर्ता नामिती' के बीच अंतर स्पष्ट किया गया था और बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 39 में तदनुसार संशोधन किया गया था, जिसमें उप-धारा (7) जोड़ी गई थी। लाभार्थी नामिती का अर्थ है एक नामिती जो बीमा पॉलिसी के तहत पूरी आय प्राप्त करने का हकदार था और संग्रहकर्ता नामिती का अर्थ है लाभार्थी नामिती के अलावा कोई अन्य नामिती। इस अंतर को ध्यान में रखते हुए, धारा 39 की उप-धारा (7) को सावधानीपूर्वक और सावधानीपूर्वक तैयार किया गया है और विधायिका द्वारा प्रयुक्त शब्द 'लाभकारी हित' हैं।

*32. विचारण न्यायालय के आक्षेपित आदेश के अवलोकन से पता चलता है कि अपीलकर्ताओं ने 2015 के संशोधन को विचारण न्यायालय के संज्ञान में लाया था, जिसमें **रामगोपाल** (उपरोक्त) में राजस्थान उच्च न्यायालय का निर्णय भी शामिल है। लेकिन विचारण न्यायालय ने अपने समक्ष उठाए गए कानूनी मुद्दे पर विचार तक नहीं किया और धारा 39 के अपरिवर्तित प्रावधानों के आधार पर आदेश XII नियम 6 सीपीसी के तहत आवेदन को अनुमति दे दी। यह एक स्थापित कानून है कि किसी सूची में पक्षकारों के अधिकारों का निर्णय वैधानिक प्रावधानों और उस दिन लागू कानून के अनुसार किया जाना चाहिए जिस दिन कार्रवाई का कारण उत्पन्न होता है।*

33. वर्तमान मामले में, अपीलकर्ताओं ने विशेष रूप से धारा 39 में संशोधन की प्रयोज्यता के मुद्दे को इस आधार पर चिह्नित किया था कि स्वर्गीय श्री विनीत हुरिया की मृत्यु 11.07.2018 को हुई थी और धारा 39 में संशोधन लागू होने के बाद पॉलिसी परिपक्व हो गई थी। इस प्रकार, यह विचारण न्यायालय के लिए आवश्यक था कि वह इस मुद्दे पर विचार और जांच करता, एक बार जब इसे अपीलकर्ताओं द्वारा उठाया गया और उजागर किया गया और तदनुसार, बीमा पॉलिसियों के तहत प्राप्त लाभों के संबंध में निर्णय लिया गया।

16. इसी प्रकार, यह मामला ***मल्लेला मणिमाला बनाम मल्लेला लक्ष्मी पद्मावती और अन्य; 2023 एससीसी ऑनलाइन एपी 459*** के मामले में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के समक्ष व्याख्या के लिए आया, जिसमें संशोधित धारा 39(7) को ध्यान में रखा गया और श्वेता सिंह हुरिया (उपरोक्त) के मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले पर भी विचार किया गया और अंततः, उच्च न्यायालय ने निम्नानुसार दर्ज किया:

"17. इस प्रकार, उपरोक्त न्यायशास्त्र बताता है कि उच्च न्यायालयों का सुसंगत दृष्टिकोण यह है कि धारा 39 के संशोधन के बाद, एक लाभार्थी नामित व्यक्ति पॉलिसी धारक की मृत्यु के बाद अन्य कानूनी

उत्तराधिकारियों को छोड़कर अपने लाभकारी आनंद के लिए बीमा राशि लेता है। इस सीमा तक कानून में बदलाव लाया गया है।

18. उपरोक्त कानून होने के नाते, मामले के तथ्य यह हैं कि बीमा पॉलिसियां प्राप्त करने वाले याचिकाकर्ता के पुत्र रमेश बाबू की मृत्यु 04.06.2021 को हुई, जैसा कि ग्रेटर हैदराबाद नगर निगम द्वारा जारी मृत्यु प्रमाण पत्र की प्रति से स्पष्ट है, जो रिट याचिका में महत्वपूर्ण कागजात के साथ दायर की गई है, और इस प्रकार दोनों बीमा पॉलिसियां उनकी मृत्यु की तिथि पर परिपक्व मानी जाएंगी। बेशक, बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 39 में संशोधन लागू होने के बाद उनकी मृत्यु हो गई। उस दृष्टि से, बीमा पॉलिसियों की परिपक्वता की तिथि पर प्रचलित कानून इस मामले पर लागू होगा, जिसका अर्थ है कि प्रथम प्रतिवादी, मृतक की पत्नी, जिसे दोनों पॉलिसियों में नामिती के रूप में दिखाया गया है, अन्य उत्तराधिकारियों को छोड़कर पॉलिसी राशि प्राप्त करने की लाभार्थी हकदार होगी। इसलिए, यह रिट याचिका पोषणीय नहीं है।"

17. यह मामला **के.आर. शक्ति मुरुगेश्वरी बनाम डिवीजन मैनेजर, भारतीय जीवन बीमा निगम और अन्य**; डब्ल्यू.पी. (एम.डी.) संख्या 11044/2021 के मामले में मद्रास उच्च न्यायालय के समक्ष भी विचार के लिए आया था, जिसका निर्णय 16.10.2023 को हुआ था: 2023/एमएचसी/4812 जिसमें न्यायालय ने अंततः माना कि संशोधित धारा 39(7) के तहत लाभार्थी नामिती राशि का हकदार होगा। संबंधित पैराग्राफ इस प्रकार है:

"12. लाभार्थी नामिती का अर्थ है एक नामिती जो बीमा पॉलिसी के तहत पूरी बीमित राशि प्राप्त करने का पूर्ण रूप से हकदार है। दूसरी ओर, कलेक्टर नामिती का अर्थ है लाभार्थी नामिती के अलावा कोई अन्य नामिती। यह सच है कि अधिनियम की धारा 39(7) को सीधे पढ़ने पर यह भेद समाप्त कर दिया गया है। हालाँकि, विधायिका ने यह पहचानने में काफी सावधानी बरती कि कौन-कौन नामांकित व्यक्तियों की श्रेणी में आएंगे जिन्हें कानूनन लाभार्थी नामिती माना जाएगा। उन व्यक्तियों को वर्गीकृत करते समय, विधायिका माता-पिता, पति/पत्नी, बच्चों, पति/पत्नी और बच्चों या उनमें से किसी को भी लाने के लिए पर्याप्त सावधान थी। यदि विधायिका ने सभी को लाभार्थी नामिती के रूप में बनाना उचित समझा होता, तो विधायिका को उन व्यक्तियों को विशेष रूप से निर्धारित करने की कोई आवश्यकता नहीं थी जो बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 39(7) के दायरे में आएंगे। तथ्य यह है कि अधिनियम की धारा 39(7) के तहत आने वाले व्यक्तियों का ऐसा सचेत विवरण विधायिका द्वारा निर्धारित किया गया है, यह दर्शाता है कि विधायिका केवल उन व्यक्तियों को चाहती थी जो मृतक पॉलिसी धारक से निकटता से संबंधित हैं, उन्हें लाभार्थी नामिती के रूप में माना जाए। वर्तमान मामले में, तीसरा प्रतिवादी निस्संदेह मृतक पॉलिसी धारक का भाई है और तीसरे प्रतिवादी को अधिनियम की धारा 39(7) के दायरे में नहीं लाया जा सकता है। यदि तीसरे प्रतिवादी को अधिनियम की धारा 39(7) के दायरे में नहीं लाया जा सकता है, तो इसका मतलब केवल यह होगा कि उसे कलेक्टर नामिती के रूप में माना जाएगा। बीमा कंपनी याचिकाकर्ता और तीसरे प्रतिवादी के बीच पारस्परिक अधिकारों और दावे से संबंधित मामलों का निपटारा नहीं कर सकती और कंपनी को बीमित राशि किसी ऐसे व्यक्ति को सौंपनी होगी जिसे पॉलिसी के तहत नामित

किया गया हो। नामित व्यक्ति को बीमित राशि सौंपने से, बीमा कंपनी का कार्य समाप्त हो जाता है। इसके बाद, बीमा कंपनी को यह देखने की चिंता नहीं रहती कि बीमित राशि पर किसका वास्तविक दावा है और क्या यह वास्तव में पक्षों को नियंत्रित करने वाले व्यक्तिगत कानून के अनुसार उनके हाथों में जाता है। इसलिए, नामांकन की अवधारणा केवल यह सुनिश्चित करने के लिए है कि बीमा कंपनी विवाद के क्षेत्र में न पड़े और नामित व्यक्ति को बीमित राशि सौंपकर अपना पल्ला झाड़ ले। यदि नामित व्यक्ति अधिनियम की धारा 39(7) के दायरे में आता है, तो उसमें वर्णित व्यक्ति स्वतः ही उसे लाभार्थी नामित व्यक्ति के रूप में स्वीकार कर लेते हैं। यदि वह व्यक्ति अधिनियम की धारा 39(7) के दायरे में नहीं आता है, तो उसे केवल संग्राहक नामित व्यक्ति माना जा सकता है और उसे बीमित राशि में हिस्सेदारी के हकदार कानूनी प्रतिनिधियों द्वारा किए गए दावों के अधीन धन को ट्रस्ट में रखना होगा। वर्ष 2015 में बीमा अधिनियम में किए गए संशोधन के बाद भी यह स्थिति बनी हुई है। यदि प्रत्येक नामित व्यक्ति को अधिनियम की धारा 39(7) के दायरे में लाया जाता है, तो यह न्यायालय उक्त प्रावधान में प्रयुक्त स्पष्ट भाषा का उल्लंघन करेगा और यह निश्चित रूप से उक्त प्रावधान के दायरे से बाहर होगा।

18. हालाँकि, कर्नाटक उच्च न्यायालय ने ***श्रीमती नीलाव्वा @ नीलाम्मा बनाम श्रीमती चंद्रव्वा @ चंद्रकला @ हेमा एवं अन्य***; आरएफए संख्या 100471/2023 के मामले में 20.02.2025 को निर्णय लिया और ***शक्ति येजदानी एवं अन्य बनाम जयानंद जयंत सेलगांवकर एवं अन्य; (2024) 4 एससीसी 642*** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भी ध्यान दिया और निम्नानुसार निर्णय दिया:

"36. शक्ति येजदानी के मामले में निर्धारित अनुपात, और भारतीय विधि आयोग द्वारा की गई सिफारिशों, और संसद द्वारा सिफारिशों की आंशिक स्वीकृति और आंशिक (निहित) अस्वीकृति, और ऊपर दिए गए कारणों से हेडन के नियम के अनुप्रयोग को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय को यह निष्कर्ष निकालना है कि संशोधित धारा 39 का उद्देश्य उत्तराधिकार से संबंधित कानून के प्रावधानों को रद्द करना नहीं है।

37. हालांकि, धारा 39(7) और (8) का कुछ अर्थ होना चाहिए और इसे निरर्थक नहीं ठहराया जा सकता। विधि आयोग की सिफारिशों को ध्यान में रखते हुए, शक्ति येजदानी के मामले में अनुपात का प्रभाव, जिसने यह धारित किया है कि नामित व्यक्ति को प्राकृतिक उत्तराधिकारी से बेहतर अधिकार प्राप्त नहीं होगा, इस न्यायालय का विचार है कि धारा 39(7) में प्रकट होने वाले अभिव्यक्ति "लाभकारी हित" और धारा 39(8) में प्रकट होने वाले "लाभकारी शीर्षक" की व्याख्या यह कहने के लिए की जानी चाहिए, कि धारा 39(7) और 39(8) में मान्यता प्राप्त ऐसे नामित व्यक्ति या उनके कानूनी प्रतिनिधि बीमा पॉलिसी से मिलने वाले लाभों पर लाभकारी शीर्षक प्राप्त करेंगे, यदि वसीयतनामा और गैर-वसीयती उत्तराधिकारी बीमा पॉलिसी से मिलने वाले लाभों का दावा नहीं करते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो, असंशोधित प्रावधान के तहत, नामित व्यक्ति का दायित्व था कि वह पॉलिसी से मिलने वाले लाभों को कानूनी उत्तराधिकारियों में वितरित करे। धारा 39(7) के तहत, जब तक कानूनी उत्तराधिकारियों द्वारा कोई दावा नहीं किया जाता है, तब तक ऐसी कोई बाध्यता नहीं है। कानूनी उत्तराधिकारियों द्वारा किसी भी दावे के अभाव में, शीर्षक लाभार्थी नामिती के पास निहित होता है। हालाँकि, यदि कानूनी

उत्तराधिकारियों द्वारा कोई दावा किया जाता है, तो नामिती के दावे को उत्तराधिकार को नियंत्रित करने वाले व्यक्तिगत कानून के अधीन होना होगा।"

पैरा 39 में निम्नलिखित भी दर्ज किया गया था:

"39. दिए गए कारणों के अलावा, इस न्यायालय ने आंध्र प्रदेश और राजस्थान उच्च न्यायालयों द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण से भिन्न दृष्टिकोण पर पहुँचने के लिए निम्नलिखित बातों पर भी ध्यान दिया है:

(क) उद्देश्य और कारण इस बात पर मौन हैं कि संशोधन क्यों पेश किया गया था। पुराने प्रावधान में मौजूद खामियों पर चर्चा नहीं की गई है और इस बात पर भी कोई चर्चा नहीं की गई है कि संशोधन के माध्यम से क्या सुधार किया जाना है।

(ख) प्रावधान "लाभकारी हित" शब्द को परिभाषित नहीं करता है। इसका अर्थ "लाभकारी अधिकार" है या नहीं, यह स्पष्ट नहीं है।

(ग) यह प्रावधान धारा 39(7) में नामित नामिती को "संग्रहीत नामिती" घोषित करने का विकल्प प्रदान नहीं करता है और डिफ़ॉल्ट रूप से वह "लाभार्थी नामिती" बन जाता है, भले ही पॉलिसीधारक ऐसा इरादा न रखता हो।

(घ) यह प्रावधान यह नहीं बताता है कि क्या यह उत्तराधिकार से संबंधित व्यक्तिगत कानून को रद्द करता है। संसद द्वारा पारित व्यक्तिगत कानून, उत्तराधिकार का एक विशेष तरीका प्रदान करता है, जो कभी-कभी नामांकन के विपरीत होता है, संशोधित नहीं किया गया है और अभी भी लागू है। संविधान की योजना में दो परस्पर विरोधी विधान (उत्तराधिकार से संबंधित) की परिकल्पना नहीं की गई है।

(ङ) "लाभार्थी नामिती" के रूप में समूहीकृत नामितियों में पॉलिसीधारक का 'पिता' शामिल है जो श्रेणी II का उत्तराधिकारी है और अन्य नामिती श्रेणी-I के उत्तराधिकारी हैं, अर्थात् पति/पत्नी, माता और बच्चे। साथ ही, वर्ग-I के उत्तराधिकारी, अर्थात् पूर्व-मृत पुत्र या पुत्री के बच्चे या पूर्व-मृत पुत्र की विधवा, जो वर्ग-I के उत्तराधिकारी हैं, उन्हें "लाभार्थी नामांकित व्यक्ति" की श्रेणी से बाहर रखा गया है, जो बीमा के उद्देश्य के विपरीत है, जिसका उद्देश्य पॉलिसीधारक के परिवार के जोखिम को कवर करना है।"

न्यायालय ने पैरा 41 में निम्नलिखित सुझाव भी दिया:

"41. इस तथ्य के प्रति सचेत रहते हुए कि न्यायालयों के पास विधायी शक्ति नहीं है, नीचे कुछ बातों पर चर्चा की गई है ताकि हितधारकों का ध्यान बहस/विचार-विमर्श के लिए आकर्षित किया जा सके और कानून बनाने या संशोधित करने के मामले में बेहतर प्रथाओं के साथ सामने आया जा सके।

(i) किसी कानून को बनाने या संशोधित करने के उद्देश्यों और कारणों में स्पष्ट और स्पष्ट विवरण शामिल होने चाहिए कि कानून क्यों पेश किया जा रहा है, संशोधन के माध्यम से किस नुकसान का निवारण किया जाना है।

(ii) जब भी कानून में संशोधन किया जाता है, तो कानून में स्पष्ट और विशिष्ट शब्दों में यह बताना चाहिए कि संशोधन अपने प्रभाव में भावी है या पूर्वव्यापी। संशोधन भावी है या पूर्वव्यापी, इस बारे में अटकलों या व्याख्या के लिए "अंतर्विष्ट", "संशोधित", "प्रतिस्थापित" आदि जैसे शब्दों की व्याख्या करके व्याख्या के साधनों/नियमों का सहारा लेकर निर्णय नहीं लिया जाना चाहिए, जिनका उपयोग कानून में संशोधन करने के लिए किया जाता है। व्याख्या के नियमों का सार्वभौमिक अनुप्रयोग नहीं हो सकता है और विधायिका के इरादे का पता लगाने में इसकी अपनी सीमाएँ होंगी।

(iii) भारतीय संविदा अधिनियम, संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, भारतीय साक्ष्य अधिनियम आदि जैसे अधिनियमों में ऐसे अनेक दृष्टांत हैं जो कानून को स्पष्टता और परिशुद्धता के साथ समझाते हैं। जहाँ भी आवश्यक हो, कानून को दृष्टांतों के साथ समझाया जाना चाहिए जो कानून के प्रावधानों को स्पष्ट करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रथा को पूरी तरह से भुला दिया गया है, और अब समय आ गया है कि कानून में आवश्यक स्पष्टता लाने के लिए इस अच्छी प्रथा को पुनर्जीवित किया जाए।

(iv) जब भी विभिन्न उच्च न्यायालय कानून की व्याख्या करने में भिन्न दृष्टिकोण अपनाते हैं, तो विधि निर्माता को तुरंत कार्रवाई करनी चाहिए और संशोधन के माध्यम से स्थिति स्पष्ट करनी चाहिए, न कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इस मुद्दे के समाधान का इंतज़ार करना चाहिए क्योंकि इस प्रक्रिया में काफी लंबा समय लग सकता है। उदाहरण के लिए, 2005 में संशोधित हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 6, भावी है या पूर्वव्यापी, यह विवाद अंततः संशोधन के 14 वर्ष बाद 2019 में सुलझ गया। जैसे ही विभिन्न उच्च न्यायालयों ने भिन्न दृष्टिकोण अपनाया, स्थिति स्पष्ट करने वाला संशोधन कई मामलों का समय पर समाधान सुनिश्चित करेगा।

(v) कानून को सरलतम और आसानी से समझ में आने वाले छोटे वाक्यों में बनाने/संरचित करने का सचेत प्रयास होना चाहिए। लंबे और जटिल वाक्यों में कानून बनाने की पूरी तरह से अवांछनीय प्रथा को हर हाल में त्यागना होगा। आखिरकार, कानून आम आदमी के समझने और पालन करने के लिए होता है। कानून कभी भी एक पहेली या पहेली नहीं होना चाहिए जिसे किसी प्रशिक्षित कानूनी दिमाग से सुलझाया जा सके।"

19. ***मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के अरुण कुमार सिंह बनाम जया पत्नी चेतन सिंह चौहान एवं अन्य***, 2022 एससीसी ऑनलाइन एमपी 5948 के मामले में दिए गए निर्णय पर ध्यान देना आवश्यक है, जिसमें न्यायालय ने धारित किया था कि संशोधित धारा 39(7) के तहत नामिती पूर्ण लाभकारी नामिती नहीं होगी और उत्तराधिकारियों के अधिकारों का दावा उन्हें नियंत्रित करने वाले उत्तराधिकार कानून के अनुसार किया जा सकता है।

20. एक ओर दिल्ली उच्च न्यायालय, आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय और मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा और दूसरी ओर कर्नाटक उच्च न्यायालय और मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा ऊपर दर्ज किए गए परस्पर विरोधी निर्णय स्पष्ट रूप से स्थापित करते हैं कि बीमा अधिनियम, विशेषकर धारा 39(7) में परिवर्तन के

उत्तराधिकारियों के अधिकारों पर प्रभाव के संबंध में कोई आम राय नहीं है। वास्तव में, दिल्ली उच्च न्यायालय, आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय और मद्रास उच्च न्यायालय ने उत्तराधिकार अधिनियम के तहत उत्तराधिकारियों के पक्ष में प्रवाहित होने वाले अधिकारों के संबंध में बीमा अधिनियम की धारा 39 में संशोधन के प्रभाव पर विचार नहीं किया है।

21. *शक्ति येजदानी (उपरोक्त)* मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर ध्यान देना भी आवश्यक है, जिसमें किसी कंपनी में शेयरों के स्वामित्व में नामिती के अधिकारों पर विचार किया गया था और सर्वोच्च न्यायालय का मत था कि नामांकन प्रक्रिया उत्तराधिकार कानूनों को दरकिनार नहीं करेगी। सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियाँ इस प्रकार हैं:

59. नामांकन के प्रश्न पर न्यायालयों द्वारा सुसंगत व्याख्या दी गई है, अर्थात धारक की मृत्यु पर, नामिती को नामांकन की विषय-वस्तु पर पूर्ण अधिकार नहीं मिलेगा, और ये कंपनी अधिनियम, 1956 (कंपनी अधिनियम, 2013 में समरूप प्रावधान) और निक्षेपागार अधिनियम, 1996 पर भी लागू होंगे।

60. संपत्ति नियोजन या उत्तराधिकार कानूनों से निपटने वाला व्यक्ति नामांकन को एक विशेष तरीके से प्रभावी मानता है और अपेक्षा करता है कि प्रतिभूतियों के हस्तांतरण के लिए निहितार्थ अलग नहीं होंगे। इसलिए, अन्यथा व्याख्या अनिवार्य रूप से उत्तराधिकार प्रक्रिया में भ्रम और संभवतः जटिलताओं को जन्म देगी, जिससे बचना चाहिए।

61. इस स्तर पर, कानून के एक स्थापित सिद्धांत के महत्व पर ध्यान देना विवेकपूर्ण होगा। शंकर राजू बनाम भारत संघ [शंकर राजू बनाम भारत संघ, (2011) 2 एससीसी 132: (2011) 1 एससीसी (एल एंड एस) 161] में, न्यायालय ने कहा:

"10. यह कानून का एक स्थापित सिद्धांत है कि एक निर्णय, जो लंबे समय से प्रभाव में है, अस्थिर नहीं होना चाहिए। स्टेयर डेसिसिस का सिद्धांत इस कहावत में व्यक्त किया गया है: स्टेयर डेसिसिस एट नॉन क्विटा मूवर, जिसका अर्थ है "निर्णयों पर अडिग रहना और जो तय हो चुका है उसे न छेड़ना"। लॉर्ड कॉक ने अपने क्लासिक अंग्रेजी संस्करण में इसका सटीक वर्णन इस प्रकार किया है: "जिन बातों पर बार-बार निर्णय लिया जा चुका है, उन्हें शांति से विश्राम करना चाहिए"। इस सिद्धांत का अंतर्निहित तर्क निरंतरता बनाए रखना और अनिश्चितता से बचना है। इसका मार्गदर्शक दर्शन यह है कि जो दृष्टिकोण लंबे समय से प्रचलित है, उसे केवल इसलिए नहीं छेड़ा जाना चाहिए क्योंकि कोई दूसरा दृष्टिकोण संभव है।"

62. कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 109-ए (कंपनी अधिनियम, 2013 की धारा 72 के समतुल्य) और डिपॉजिटरी अधिनियम, 1996 के उपनियम 9.11.1 के तहत नामिती के पक्ष में प्रतिभूतियों का निहित होना एक सीमित उद्देश्य के लिए है, अर्थात यह सुनिश्चित करना कि धारक की मृत्यु पर की जाने वाली कानूनी

औपचारिकताओं से संबंधित कोई भ्रम न रहे और इसके विस्तार से, नामांकन के विषय-वस्तु को किसी भी लंबी मुकदमेबाजी से तब तक बचाना है जब तक कि मृतक धारक के कानूनी प्रतिनिधि उचित कदम उठाने में सक्षम न हो जाएं। कंपनी (संशोधन) अधिनियम, 1999 के तहत नामांकन सुविधा शुरू करने का उद्देश्य केवल निवेश के माहौल को गति प्रदान करना और शेयरधारक की मृत्यु पर विभिन्न प्राधिकरणों से उत्तराधिकार के विभिन्न पत्र प्राप्त करने की बोझिल प्रक्रिया को आसान बनाना था।

63. इसके अतिरिक्त, वाणिज्यिक विचारों की एक जटिल परत है जिसे नामांकन के मुद्दे पर विचार करने के दौरान ध्यान में रखा जाना चाहिए कि कंपनियों या जब तक कानूनी उत्तराधिकारी कंपनी के उत्तराधिकार के अपने अधिकार को पर्याप्त रूप से स्थापित करने में सक्षम नहीं हो जाते। इसलिए, एक बार नामिती के सामने आने के बाद इकाई को मुक्ति प्रदान करना कानूनी उत्तराधिकारियों के बजाय नामितियों को प्रतिभूतियों का स्वामित्व प्रदान करने से बिल्कुल अलग है। इसलिए नामांकन प्रक्रिया उत्तराधिकार कानूनों को रद्द नहीं करती है। सीधे शब्दों में कहें तो उत्तराधिकार का कोई तीसरा तरीका नहीं है जिसे कंपनी अधिनियम, 1956 (कंपनी अधिनियम, 2013 में समरूप प्रावधान) और डिपॉजिटरी अधिनियम, 1996 की योजना प्रदान करने का लक्ष्य या इरादा रखती है।

64. कंपनी अधिनियम के प्रावधानों का सावधानीपूर्वक अध्ययन करने पर, यह स्पष्ट है कि यह उत्तराधिकार के कानून से संबंधित नहीं है। इसलिए, कानून की इस स्थापित स्थिति से विचलन बिल्कुल भी उचित नहीं है। आक्षेपित निर्णय [शक्ति येजदानी बनाम जयानंद जयंत सालगांवकर, 2016 एससीसी ऑनलाइन बॉम 9834] सही दृष्टिकोण लेता है। तदनुसार अपील को लागत पर किसी भी आदेश के बिना खारिज कर दिया जाता है।

22. संशोधित बीमा अधिनियम के तहत नामिती के अधिकारों और हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम के आधार पर उत्तराधिकारियों के अधिकार (चूंकि वर्तमान मामले में पक्षकार हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम द्वारा शासित हैं) के संबंध में परस्पर विरोधी राय को देखते हुए, उठाए गए तर्कों के आलोक में इनका समाधान किया जाना है।

23. बीमा अधिनियम की योजना और वर्ष 1938 में जिस उद्देश्य के लिए इसे अधिनियमित किया गया था, उस पर ध्यान देना आवश्यक है। अधिनियमन के कारण स्पष्ट रूप से इंगित करते हैं कि यह अधिनियम बीमा व्यवसाय से संबंधित कानून को समेकित और संशोधित करने के लिए अधिनियमित किया गया था। उक्त बीमा अधिनियम में विभिन्न अवसरों पर संशोधन हुए और अंततः विधि आयोग की सिफारिश पर 2015 के अधिनियम संख्या 5 के आधार पर, अन्य धाराओं के अलावा धारा 39 को संशोधित किया गया ताकि अधिनियम की संशोधित धारा 39(7) और 39(8) को शामिल किया जा सके, जैसा कि ऊपर उद्धृत किया गया है।

24. उक्त अधिनियम के विपरीत, हिंदुओं के बीच उत्तराधिकार हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 द्वारा शासित होता है, जिसे बिना वसीयत के उत्तराधिकार से संबंधित कानून को संशोधित और संहिताबद्ध करने के लिए अधिनियमित किया गया था और इसे 17.06.1956 को राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त हुई थी। उक्त अधिनियम

हिंदुओं में बिना वसीयत के उत्तराधिकार को नियंत्रित करता है, और उक्त अधिनियम की धारा 15 महिला हिंदुओं के मामले में उत्तराधिकार के सामान्य नियम निर्धारित करती है, जो इस प्रकार है:

"धारा 15. महिला हिंदुओं के मामले में उत्तराधिकार के सामान्य नियम - (1) बिना वसीयत के मरने वाली महिला हिंदू की संपत्ति धारा 16 में निर्धारित नियमों के अनुसार हस्तांतरित होगी, -
(क) सबसे पहले, पुत्रों और पुत्रियों (किसी पूर्व-मृत पुत्र या पुत्री के बच्चों सहित) और पति को;
(ख) दूसरे, पति के उत्तराधिकारियों को;
(ग) तीसरे, माता और पिता को;
(घ) चौथे, पिता के उत्तराधिकारियों को; और
(ङ) अंत में, माता के उत्तराधिकारियों को
(2) उप-धारा (1) में निहित किसी भी बात के होते हुए भी, -

(क) किसी महिला हिंदू को उसके पिता या माता से विरासत में मिली कोई भी संपत्ति, उसके किसी पुत्र या पुत्री की अनुपस्थिति में, हस्तांतरित होगी। मृतक (किसी पूर्व-मृत पुत्र या पुत्री की संतान सहित) की संपत्ति उपधारा (1) में निर्दिष्ट क्रम में निर्दिष्ट अन्य उत्तराधिकारियों पर नहीं, बल्कि पिता के उत्तराधिकारियों पर होगी; और

(ख) किसी हिंदू महिला को अपने पति या ससुर से विरासत में मिली कोई संपत्ति, मृतक के किसी पुत्र या पुत्री (किसी पूर्व-मृत पुत्र या पुत्री की संतान सहित) की अनुपस्थिति में, उपधारा (1) में निर्दिष्ट क्रम में निर्दिष्ट अन्य उत्तराधिकारियों पर नहीं, बल्कि पति के उत्तराधिकारियों पर निहित होगी।

25. इस प्रकार, एक ओर, बीमा पॉलिसी से प्राप्त लाभ, जो मृतक की संपत्ति है, हिंदू विधि के प्रावधानों के अनुसार विभाजित और उत्तराधिकारियों को भुगतान किए जाने हैं, वहीं दूसरी ओर, लाभार्थी नामिती हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम के अनुसार उत्तराधिकारियों को छोड़कर संपत्ति के भुगतान का दावा करता है।

26. वर्तमान मामले में, दो परस्पर विरोधी प्रावधानों की व्याख्या इस प्रकार की जानी है कि दोनों कानूनों में किसी एक पर भी प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना सामंजस्य स्थापित किया जा सके, क्योंकि दोनों ही संसद द्वारा वैध रूप से अधिनियमित हैं।

27. यह सर्वविदित है कि जब विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत दो कानूनों में सामंजस्य स्थापित करने की आवश्यकता होती है, तो सामंजस्यपूर्ण व्याख्या अपनाई जानी चाहिए। यह भी सर्वविदित है कि जब विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत दो कानूनों की व्याख्या की जानी हो, तो विशेष अधिनियम सामान्य अधिनियम (जनरलिया स्पेशलिबस नॉन डेरोगेंट और जनरलिबस स्पेशलिया) पर अभिभावी होगा। दो विभिन्न कानूनों में निहित दो परस्पर विरोधी प्रावधानों की व्याख्या के मुद्दे ने विभिन्न अवसरों पर सर्वोच्च न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है।

28. **केएसएल एंड इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम अरिहंत थ्रेड्स लिमिटेड और अन्य के मामले में निर्णय; (2009) 9 एससीसी 763** के मामले में, हालांकि, मतभेद था, तथापि, माननीय न्यायमूर्ति सी.जे. ठक्कर ने अपनी राय में निम्नलिखित दर्ज किया:

"70. मैं इस प्रकार एक ऐसे बिंदु पर हूँ जहाँ दो क़ानून "अधिभावी प्रभाव" वाले गैर-बाधक खंड का प्रयोग करते हैं। इस तरह के संघर्ष को, जैसा कि कई मामलों में निर्धारित किया गया है, न्यायपालिका द्वारा विभिन्न विचारों पर हल किया जा सकता है: जैसे कि अधिनियमों के अंतर्निहित नीति, प्रयुक्त भाषा, प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य, या निवारण हेतु की गई शरारत, आदि। न्यायालयों द्वारा लागू किए जाने वाले परीक्षणों में से एक यह है कि सामान्यतः बाद के अधिनियम को पहले वाले पर प्रबल होना चाहिए। न्यायालय दोनों अधिनियमों की सामंजस्यपूर्ण व्याख्या करके और उन्हें अपने-अपने क्षेत्रों में लागू करके उनमें सामंजस्य स्थापित करने का भी प्रयास करेंगे ताकि दोनों एक-दूसरे के साथ संघर्ष में आए बिना कार्य कर सकें। संघर्ष को हल करने में, न्यायालय आगे यह जांच कर सकता है कि क्या दोनों में से एक अधिनियम "विशेष" है और दूसरा "सामान्य"। कानून में ऐसी स्थिति भी हो सकती है जहाँ एक ही क़ानून को एक कानून के संबंध में एक "विशेष" क़ानून और दूसरे कानून के संबंध में एक "सामान्य" क़ानून हो सकता है। एक या अधिक परीक्षणों के आधार पर, न्यायालय दोनों कानूनों में गैर-बाधित खंड को प्रभावी करके स्थिति को बचाने की कोशिश करेगा।

76. सांवरमल केजरीवाल बनाम विश्व को-ऑप. हाउसिंग सोसाइटी लिमिटेड [(1990) 2 एससीसी 288] में इस न्यायालय ने "सामान्य" और "विशेष" अधिनियम के संबंध में परीक्षण लागू किया और धारित किया गया कि विशेष कानून की सामान्य कानून पर प्रधानता होगी।

77. एलआईसी बनाम डी.जे. बहादुर [(1981) 1 एससीसी 315: 1981 एससीसी (एल एंड एस) 111] में इस न्यायालय के समक्ष दो अधिनियम विचार के लिए आए: (1) औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (आईडी अधिनियम), और (2) जीवन बीमा निगम अधिनियम, 1956 (एलआईसी अधिनियम)। न्यायालय के समक्ष एक प्रश्न यह था कि दोनों में से कौन सा "विशेष कानून" के रूप में माना जाना चाहिए। यह आग्रह किया गया था कि औद्योगिक विवाद अधिनियम को कामगारों से संबंधित "सामान्य कानून" माना जाना चाहिए और जीवन बीमा निगम अधिनियम को एलआईसी द्वारा नियोजित कर्मचारियों के संबंध में "विशेष कानून" धारित किया जाना चाहिए। इसलिए, यह प्रस्तुत किया गया था कि जब एलआईसी के किसी कर्मचारी द्वारा शिकायत की जाती है, तो वह आईडी अधिनियम के प्रावधानों को लागू नहीं कर सकता है और मामले का फैसला एलआईसी अधिनियम के अनुसार किया जाना चाहिए।

29. दो क़ानूनों की व्याख्या के संबंध में कानून, जो स्पष्ट रूप से संघर्ष में हैं, ***प्रबंध निदेशक, छत्तीसगढ़ राज्य सहकारी बैंक मर्यादित बनाम जिला सहकारी केंद्रीय बैंक मर्यादित और अन्य(2020) 6 एससीसी 411*** के मामले में सुप्रीम कोर्ट के समक्ष भी विचार के लिए आया था, जिसमें निम्नलिखित दर्ज किया गया था:

"33. यह विधि का एक स्थापित सिद्धांत है कि जहाँ किसी अधिनियम के दो प्रावधान परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं, वहाँ न्यायालयों को ऐसी व्याख्या अपनानी चाहिए जो यथासंभव सर्वोत्तम सीमा तक दोनों प्रावधानों में सामंजस्य स्थापित करे। न्यायमूर्ति जी.पी. सिंह ने अपनी मौलिक कृति "संविधानिक व्याख्या के सिद्धांत" में कहा है:

"सामंजस्य स्थापित करना विनाश करना नहीं है। ऐसे सभी मामलों में एक परिचित दृष्टिकोण यह पता लगाना है कि दो परस्पर विरोधी प्रावधानों में से कौन सा अधिक सामान्य है और कौन सा अधिक विशिष्ट है और अधिक सामान्य प्रावधान की व्याख्या इस प्रकार की जाए कि अधिक विशिष्ट प्रावधान बहिष्कृत हो जाएँ... यह सिद्धांत "जनरैलियस स्पेशलिबस नॉन डेरोगेंट" और "जनरैलियस स्पेशलिबस नॉन डेरोगेंट" में व्यक्त किया गया है।

इसी प्रकार, क्रेइज़ ने क़ानून में कहा है:

"नियम यह है कि जब भी एक ही क़ानून में एक विशेष अधिनियम और एक सामान्य अधिनियम होता है, और बाद वाला, अपने सबसे व्यापक अर्थ में, पहले वाले को रद्द कर देता है, तो विशेष अधिनियम को लागू होना चाहिए, और सामान्य अधिनियम को क़ानून के केवल उन अन्य भागों को प्रभावित करने के लिए लिया जाना चाहिए जिन पर वह उचित रूप से लागू हो सकता है।"

जहां दो प्रावधानों में टकराव होता है, अदालतें यह जांच कर सकती हैं कि दोनों में से कौन सा प्रावधान प्रकृति में विशिष्ट है और क्या यह इरादा था कि विशिष्ट प्रावधान को सामान्य प्रावधान के आवेदन से अलग किया जाए। सामान्य प्रावधान विशिष्ट प्रावधान द्वारा कवर की गई स्थितियों को छोड़कर, संचालित होता है। वैधानिक निर्माण के इस सिद्धांत के पीछे तर्क यह है कि जहां दो प्रावधानों के बीच टकराव दिखाई देता है, यह मान लेना चाहिए कि विधायिका का टकराव का इरादा नहीं था और एक विषय-विशिष्ट प्रावधान सामान्य प्रावधान के संचालन के बहिष्कार में उन स्थितियों को नियंत्रित करता है।

34. जे.के. कॉटन स्पॉ. एंड व्ही.जी. मिल्स कंपनी लिमिटेड बनाम यू.पी. राज्य [जे.के. कॉटन स्पॉ. एंड व्ही.जी. मिल्स कंपनी लिमिटेड बनाम यू.पी. राज्य, एआईआर 1961 एससी 1170] में इस न्यायालय के शुरुआती फैसले में, इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने इस बात पर विचार किया कि क्या सिद्धांत एक ही अधिनियम के भीतर टकरावों पर लागू होता है। शासनादेश दिनांक 10-5-1948 के खंड 5(ए) ने अन्य बातों के साथ-साथ किसी भी कर्मचारी या नियोक्ताओं के पंजीकृत ट्रेड यूनियन को औद्योगिक विवाद की जांच शुरू करने के लिए आदेश के तहत गठित बोर्ड में जाने का अधिकार दिया। खंड 23 में यह निर्धारित किया गया था कि जहां क्षेत्रीय सुलह अधिकारी के समक्ष जांच लंबित है, बोर्ड या औद्योगिक न्यायालय में मामले के लंबित होने के बावजूद, कोई भी नियोक्ता किसी भी कामगार को बर्खास्त या बर्खास्त नहीं करेगा। खंड 24 के तहत, बोर्ड का आदेश, जब तक कि अपील में संशोधित न किया जाए, अंतिम और निर्णायक था। नियोक्ता संघ का प्रतिनिधित्व करने वाले अपीलकर्ता ने तर्क दिया कि एक बार खंड 5(ए) के तहत आदेश दिए जाने के बाद, खंड 23 लागू नहीं होता है और नियोक्ता कामगारों को बर्खास्त करने के लिए आगे बढ़ सकता है। न्यायालय ने इस तर्क को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि कोई भी नियोक्ता केवल खंड 5(ए) के तहत आवेदन करके खंड 23 के प्रावधानों को निष्फल कर सकता परिणामस्वरूप, जहां धारा 23 के तहत जांच लंबित थी, वहां धारा 5(ए)

के तहत आवेदन पर रोक लगा दी गई। न्यायालय ने निम्नलिखित धारित किया: (एआईआर पृष्ठ 1174-75, अनुच्छेद 9-10)

"9. ... हम व्याख्या के एक अन्य सुप्रसिद्ध नियम को लागू करके भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सामान्य प्रावधान विशेष प्रावधानों के अधीन होते हैं। विद्वान महान्यायवादी ने यह सुझाव दिया कि यद्यपि व्याख्या का यह नियम एक अधिनियम के सामान्य प्रावधान और दूसरे अधिनियम के विशेष प्रावधान के बीच संघर्ष को हल करने के लिए लागू होता है, यह नियम एक ही विधायी दस्तावेज़ में सामान्य और विशेष प्रावधानों के बीच संघर्ष को हल करने में लागू नहीं हो सकता। इस सुझाव को न तो सिद्धांत में और न ही प्राधिकार में समर्थन मिलता है। यह नियम कि सामान्य प्रावधानों को विशिष्ट प्रावधानों के अधीन होना चाहिए, अधिवक्तागणों और न्यायाधीशों द्वारा बनाया गया कोई मनमाना सिद्धांत नहीं है, बल्कि पुरुषों और महिलाओं की इस सामान्य समझ से उपजा है कि जब एक ही व्यक्ति दो निर्देश देता है, जिनमें से एक सामान्य रूप से बहुत से मामलों को कवर करता है और दूसरा केवल उनमें से कुछ को कवर करता है, तो उसका आशय यह होता है कि इन मामलों के संबंध में ये बाद वाले निर्देश प्रबल होने चाहिए जबकि बाकी सभी मामलों के संबंध में पहले वाले निर्देश प्रभावी होने चाहिए।...

10. व्याख्या के इस नियम को लागू करते हुए कि किसी विशिष्ट प्रावधान और सामान्य प्रावधान के बीच संघर्ष की स्थिति में विशिष्ट प्रावधान सामान्य प्रावधान पर प्रबल होता है और सामान्य प्रावधान केवल ऐसे मामलों में जो विशेष प्रावधान के अंतर्गत नहीं आते, हमें यह मानना होगा कि खंड 5(क) उस मामले में लागू नहीं होता जहाँ खंड 23 के विशेष प्रावधान लागू होते हैं।

(प्रभाव वर्धित)

इस न्यायालय ने पुष्टि की कि यह सिद्धांत कि सामान्य विशिष्ट को बाहर करता है, एक ही अधिनियम के अंतर्गत विरोधाभासी मामलों में भी वैधानिक व्याख्या का एक साधन है। जहाँ विरोधाभासी प्रावधानों में से एक सामान्य प्रकृति का है और दूसरा विशिष्ट, वहाँ "सामान्य समझ" यह निर्धारित करती है कि विशिष्ट प्रावधान को प्रभावी बनाया जाए, जबकि सामान्य प्रावधान अन्य सभी स्थितियों पर लागू होता रहे।

35. सीटीओ बनाम बिनानी सीमेंट्स लिमिटेड [सीटीओ बनाम बिनानी सीमेंट्स लिमिटेड, (2014) 8 एससीसी 319] में, प्रश्न यह था कि क्या प्रतिवादी करदाता, उद्योगों के लिए बिक्री कर नई प्रोत्साहन योजना, 1989 के अनुबंध 'सी' में प्रविष्टि 4 के अंतर्गत केंद्रीय बिक्री कर और राजस्थान बिक्री कर के भुगतान से छूट के लिए पात्रता प्रमाणपत्र प्राप्त करने का हकदार था। योजना के अनुबंध 'सी' का शीर्षक "नई योजना के अंतर्गत बिक्री कर छूट की मात्रा" था। अनुबंध की प्रविष्टि 4 में यह प्रावधान था कि "प्रतिष्ठित इकाइयाँ" कर देयता से 75% छूट पाने की हकदार होंगी, जिसमें स्थायी पूंजी निवेश के संदर्भ में 100% छूट शामिल होगी। एक संशोधन द्वारा, प्रविष्टि 1-ई जोड़ी गई, जिसमें "नई सीमेंट इकाइयाँ" शामिल थीं और यह प्रावधान था कि बड़े पैमाने

की इकाइयाँ 25% कर छूट की हकदार होंगी। इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ ने कहा: (एससीसी पृष्ठ 331-32, पैरा 32 और 34)

"32. वर्तमान अपील में तथ्यात्मक स्थिति पर विचार करने से पहले, हम कानून में स्थापित कानूनी स्थिति को दोहराते हैं, अर्थात, यदि किसी वैधानिक नियम या वैधानिक अधिसूचना में दो अभिव्यक्तियों का प्रयोग किया गया है, एक सामान्य शब्दों में और दूसरी विशेष शब्दों में, तो व्याख्या के नियमों के तहत, इसे समझा जाना चाहिए। वैकल्पिक रूप से, यह कहा जा सकता है कि जहां किसी क़ानून में सामान्य प्रावधान के साथ-साथ विशिष्ट प्रावधान भी शामिल हैं, वहां विशिष्ट प्रावधान ही मान्य होगा।

* * *

34. यह सर्वविदित है कि जब सामान्य कानून और विशेष कानून, सामान्य कानून द्वारा निस्तारित किए गए किसी पहलू से संबंधित हों, तो अपनाया और लागू किया गया नियम सामंजस्यपूर्ण निर्माण का होता है, जिसके तहत सामान्य कानून, विशेष कानून द्वारा निपटाए गए सीमा तक, निहित रूप से निरस्त हो जाता है। इस सिद्धांत की उत्पत्ति लैटिन कहावत "जनरैलिएलिया स्पेशलिबस नॉन डेरोगेंट" में पाई जाती है..."

36. न्यायालय ने यह धारित किया गया कि जहाँ दो प्रावधान प्रश्नगत हों - एक सामान्य अनुप्रयोग का और दूसरा विशिष्ट प्रकृति का, एक सामंजस्यपूर्ण व्याख्या का अर्थ यह होगा कि सामान्य कानून, जहाँ तक विशेष कानून द्वारा उससे निपटा जाता है, निहित रूप से निरस्त हो जाता है। इस न्यायालय ने, "जनरैलिएलिया स्पेशलिबस नॉन डेरोगेंट" सिद्धांत पर भरोसा करते हुए, यह माना कि मद 1-ई एक "विषय-विशिष्ट प्रावधान" है। न्यायालय ने नोट किया कि संशोधन ने "नए सीमेंट उद्योगों" को अपात्र अनुलग्नक 'बी' से हटाकर अनुलग्नक 'सी' में पात्र उद्योगों के बीच रख दिया। परिणामस्वरूप, न्यायालय ने प्रतिवादी करदाता के तर्क को खारिज कर दिया और माना कि चूँकि मद 1-ई अधिक विशिष्ट इकाई से संबंधित था, इसलिए इसे अन्य सामान्य प्रविष्टियों से इसके अनुप्रयोग में बाहर रखा गया था। यह सिद्धांत कि सामान्य प्रावधान अधिक विशिष्ट को बाहर करता है, इस न्यायालय द्वारा साउथ इंडिया कॉर्पोरेशन (पी) लिमिटेड बनाम राजस्व बोर्ड [साउथ इंडिया कॉर्पोरेशन (पी) लिमिटेड बनाम बोर्ड राजस्व, एआईआर 1964 एससी 207], पारादीप पोर्ट ट्रस्ट बनाम वर्कमैन [पारादीप पोर्ट ट्रस्ट बनाम वर्कमैन, (1977) 2 एससीसी 339: 1977 एससीसी (एल एंड एस) 253: एआईआर 1977 एससी 36], महाराष्ट्र राज्य माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक शिक्षा बोर्ड बनाम परितोष भूपेशकुमार शेठ [महाराष्ट्र राज्य माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक शिक्षा बोर्ड बनाम परितोष भूपेशकुमार शेठ, (1984) 4 एससीसी 27], सीसीई बनाम जयंत ऑयल मिल्स (पी) लिमिटेड [सीसीई बनाम जयंत ऑयल मिल्स (पी) लिमिटेड, (1989) 3 एससीसी 343: 1989 एससीसी (कर) 423], पी.एस. सथप्पन बनाम आंध्र बैंक लिमिटेड [पी.एस. सथप्पन बनाम आंध्र बैंक लिमिटेड, (2004) 11 एससीसी 672], सरबजीत रिक सिंह बनाम भारत संघ [सरबजीत रिक सिंह बनाम भारत संघ, (2008) 2 एससीसी 417: (2008) 1 एससीसी (Cri) 449] और पंकजाक्षी बनाम चंद्रिका [पंकजक्षी बनाम चंद्रिका, (2016) 6 एससीसी 157: (2016) 3 एससीसी (Civ) 105]।

37. जबकि धारा 54 की उप-धारा (3) समितियों के एक वर्ग से संबंधित है, 2016 के संशोधन अधिनियम द्वारा सम्मिलित खंड (ए) और (बी), केवल सहकारी बैंकों पर लागू होते हैं। इसके अलावा, जबकि धारा 54 (3) कैडर पदों पर प्रतिनियुक्त कैडर अधिकारियों की नियुक्ति से संबंधित है, खंड (ए) और (बी) केवल सहकारी बैंकों के सीईओ की नियुक्ति से संबंधित हैं। क्लॉज़ (a) में यह बताया गया है कि आरबीआई द्वारा तय किए गए योग्यता दिशनिर्देश कोऑपरेटिव बैंक के सीईआे के पद पर काम करने वाले अधिकारियों पर लागू होंगे। खास बात यह है कि धारा 54(3) का क्लॉज़ (b) इन शब्दों से शुरू होता है "अगर संबंधित कोऑपरेटिव बैंक अपॉइंट करने में फेल रहता है" जिससे यह पता चलता है कि कोऑपरेटिव बैंकों को अपने सीईआे को अपॉइंट करने की पावर देने का इरादा है। यह प्रोविज़न यह भी कहता है कि अगर कोऑपरेटिव बैंक तय समय के अंदर सीईआे को अपॉइंट करने में फेल रहता है, तो रजिस्ट्रार बैंक के किसी एलिजिबल ऑफिसर को अपॉइंट कर सकता है। यह शर्त कि डिफ़ॉल्ट होने पर, सीईआे बैंक का ही एक ऑफिसर होगा, न कि सेक्शन 54(3) के तहत नोटिफाइड कैडर का कोई ऑफिसर, यह दिखाता है कि लेजिस्लेचर का इरादा कोऑपरेटिव बैंकों को अपने सीईआे को अपॉइंट करने की पावर देना है।

38. स्पष्टतः, 2016 के संशोधन अधिनियम के अंतर्गत, खंड (क) और (ख) को सहकारी बैंकों के मुख्य कार्यकारी अधिकारी की नियुक्ति के लिए विशिष्ट प्रावधानों के रूप में शामिल किया गया था, जिससे उन्हें नियुक्ति की शक्ति प्रदान की गई। जहाँ संभावित रूप से परस्पर विरोधी प्रावधानों की दो व्याख्याएँ संभव हों, वहाँ न्यायालयों को उस व्याख्या को अपनाना चाहिए जो विधानमंडल की मंशा को आगे बढ़ाए, जैसा कि "शब्दशः बुद्धिमता" में निहित है। लेकिन वह अपनी बात पर अड़ा रहता है। क्रेज़ ऑन लेजिस्लेशन कहते हैं:

"...यदि किसी प्रावधान की पहली नज़र में दो व्याख्याएँ संभव हैं, और एक स्पष्ट रूप से विधायी उद्देश्य को आगे बढ़ाएगी और दूसरी स्पष्ट रूप से बहुत कम या कुछ भी हासिल नहीं करेगी, तो पहले वाले को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।"

39. इस मामले के दृष्टिकोण से, 2016 के संशोधन अधिनियम की धारा 54(3) और खंड (ए) और (बी) का एक सामंजस्यपूर्ण निर्माण इस निष्कर्ष पर पहुंचाता है कि खंड (ए) और (बी) सहकारी बैंकों के सीईओ की नियुक्ति से संबंधित विशेष प्रावधान हैं जो धारा 54(3) के तहत अधिसूचना जारी करने के राज्य सरकार के अधिकार से बाहर हैं। धारा 57-बी(19) को हटाने और धारा 54(3) में खंड (ए) और (बी) को एक साथ सम्मिलित करने से हम इस दृष्टिकोण को मजबूत करते हैं।

40. वर्तमान मामलों में कठिनाई पहले प्रतिवादी के इस तर्क से उत्पन्न होती है कि धारा 54(3) के खंड (ए) और (बी) द्वारा निकाला गया अपवाद उन केंद्रीय सोसाइटियों पर भी लागू होता है जो 1960 के अधिनियम की धारा 49-ई(2) के दायरे में आती हैं। इस निवेदन में, जहां एक सहकारी बैंक ने केंद्रीय सोसायटी के रूप में राज्य सरकार से धारा 49-ई(2) में निर्धारित तरीके से धन प्राप्त किया है, ऐसे केंद्रीय बैंक स्वतंत्र रूप से एक सीईओ नियुक्त कर सकते हैं और धारा 54 के तहत गठित कैडर से अपने सीईओ को नियुक्त करने के लिए बाध्य नहीं होंगे, भले ही ऐसा कैडर गठित किया गया हो।

41. जैसा कि हमने देखा है, धारा 54 की उप-धारा (2) और उप-धारा (3) दोनों ही केवल सहकारी बैंकों तक ही सीमित प्रावधान नहीं हैं। हालाँकि, उप-धारा (3) के खंड (ए) और (बी) विशेष रूप से सहकारी बैंकों के सीईओ की नियुक्ति से संबंधित हैं। 2016 के संशोधन अधिनियम द्वारा धारा 54 की उप-धारा (3) में खंड (ए) और (बी) को शामिल करते हुए, विधायिका ने फिर भी धारा 49-ई के प्रावधानों को बरकरार रखा है। धारा 49-ई शीर्ष और केंद्रीय सोसायटियों को नियंत्रित करने वाला एक प्रावधान है, जिन्हें राज्य सरकार द्वारा निर्धारित प्रपत्रों में वित्तीय सहायता प्रदान की गई है। "केंद्रीय सोसायटी" अभिव्यक्ति को सहकारी भूमि विकास बैंक या किसी अन्य सोसायटी के रूप में परिभाषित किया गया है, जिसका संचालन राज्य के एक हिस्से तक ही सीमित है, जैसा कि पहले धारा 2 (सी-आई) में देखा गया है। धारा 49-ई में निहित प्रावधानों का उद्देश्य धारा 54 के तहत बनाए गए कैडर के अधिकारियों में से सीईओ की नियुक्ति की आवश्यकता के द्वारा राज्य सरकार के नियामक नियंत्रण को लाना है। 2016 संशोधन अधिनियम, जिसमें उप-धारा (3) के खंड (ए) और (बी) का प्रावधान लाया गया है, ने धारा 49-ई के संचालन को प्रभावित नहीं किया है। इसलिए, धारा 49-ई (2) द्वारा शासित केंद्रीय सोसायटी के सीईओ की नियुक्ति धारा 54 के तहत बनाए गए कैडर के अधिकारियों में से होनी चाहिए। परिणामस्वरूप, 2016 के संशोधन अधिनियम के बावजूद, धारा 49-ई की उप-धारा (2) के अंतर्गत आने वाली केंद्रीय सोसायटी के सीईओ को धारा 54 के तहत बनाए गए कैडर के अधिकारियों में से नियुक्त किया जाना है, यदि ऐसा कैडर गठित किया गया है।

42. यहां यह ध्यान रखना आवश्यक है कि धारा 49-ई(2) एक स्व-निहित प्रावधान नहीं है। धारा 49-ई(2)(बी)(i) केवल यह निर्धारित करती है कि इसके दायरे में आने वाली केंद्रीय सोसायटी के सीईओ को धारा 54 के तहत बनाए गए कैडर के अधिकारियों में से नियुक्त किया जाएगा। इस प्रकार, जहां धारा 54 के तहत एक कैडर गठित किया गया है, धारा 49-ई(2) के दायरे में आने वाली एक केंद्रीय सोसायटी ऐसे कैडर से अपने अधिकारी को नियुक्त करने के लिए बाध्य है। न तो धारा 49-ई और न ही धारा 54(2) यह निर्दिष्ट करती है कि नियुक्ति शीर्ष सोसायटी के कैडर से की जानी है या धारा 54(2) के तहत गठित केंद्रीय सोसायटी के कैडर से। धारा 54(3) राज्य सरकार को उन सोसाइटियों के वर्ग को निर्दिष्ट करने के लिए अधिसूचना जारी करने का अधिकार देती है जो शीर्ष या केंद्रीय सोसाइटियों द्वारा बनाए गए ऐसे संवर्गों से अधिकारियों को नियुक्त करेंगी जैसा कि उसमें निर्दिष्ट किया जा सकता है। राज्य सरकार को उन सोसाइटियों के वर्ग को अधिसूचित करने की सामान्य शक्ति प्रदान करने के अलावा, जो शीर्ष या केंद्रीय सोसाइटियों द्वारा बनाए गए संवर्गों से अधिकारियों को नियुक्त करेंगी, धारा 54(3) के तहत अधिसूचना धारा 49-ई(2) में परिकल्पित राज्य सरकार के नियामक नियंत्रण को उसमें निर्दिष्ट तरीके से कार्यान्वित करती है।

43. यह राज्य सरकार द्वारा उसे प्रदत्त शक्ति के प्रयोग में जारी दिनांक 12-1-1971 की अधिसूचना में स्पष्ट है, जिसमें यह निर्धारित किया गया था कि प्रथम प्रतिवादी (जिला केंद्रीय सहकारी बैंक के रूप में) अपीलकर्ता द्वारा (शीर्ष सोसायटी के रूप में) प्रतिनियुक्त अधिकारी को सीईओ के रूप में स्वीकार करने और नियुक्त करने के लिए बाध्य है। यदि धारा 49-ई(2) में सीईओ के रूप में नियुक्त किए जाने वाले अधिकारी के निर्धारण के लिए एक अंतर्निहित तंत्र होता, तो इसमें एक गैर-बाधित प्रावधान के उपयोग को देखते हुए कोई कठिनाई नहीं

होती। धारा 49-ई और धारा 54(3) के तहत राज्य सरकार द्वारा जारी अधिसूचना के बीच संबंध के कारण कठिनाई उत्पन्न होती है। यह मानना कि खंड (ए) और (बी) सहकारी बैंकों में निहित हैं जो केंद्रीय समितियां हैं और धारा 49-ई(2) के दायरे में आती हैं, उनके सीईओ को नियुक्त करने की अवरक्त शक्ति प्रावधान को निष्क्रिय कर देगी। यह उन समितियों पर राज्य सरकार के नियामक नियंत्रण को सुनिश्चित करने के मुख्य उद्देश्य को विफल कर देगा, जिनमें उसने वित्तीय योगदान दिया है। दूसरी ओर, यह मानना कि एक सहकारी बैंक जो धारा 49-ई(2) के दायरे में एक केंद्रीय समिति है, को शीर्ष समिति द्वारा प्रतिनियुक्त कैडर अधिकारी को स्वीकार करना और नियुक्त करना चाहिए, धारा 54(3) धारा 49-ई(2)(बी) और धारा 54(3) के खंड (ए) और (बी) दोनों सीईओ की नियुक्ति से संबंधित हैं।

44. जैसा कि हम पहले भी उल्लेख कर चुके हैं, विधि का यह स्थापित सिद्धांत है कि जहाँ किसी अधिनियम के दो प्रावधान परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं, वहाँ न्यायालयों को ऐसी व्याख्या अपनानी चाहिए जो यथासंभव दोनों प्रावधानों में सामंजस्य स्थापित करे। न्यायमूर्ति जी.पी. सिंह ने अपनी मौलिक कृति "संविधानिक व्याख्या के सिद्धांत" में कहा है:

"... न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह एक ही अधिनियम की दो धाराओं के बीच *"सीधे टकराव" से बचे और जहाँ तक संभव हो, परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाले प्रावधानों की व्याख्या इस प्रकार करे कि उनमें सामंजस्य स्थापित हो।"*
फ्रांसिस बेनियन ने अपनी कृति "वैधानिक व्याख्या" में कहा है:

"असंगत अधिनियम - इस सिद्धांत का एक सामान्य अनुप्रयोग एक ही अधिनियम के अंतर्गत परस्पर विरोधी अधिनियमों के संबंध में है। अधिनियम A अपने आप में स्पष्ट और असंदिग्ध हो सकता है। अधिनियम में कहीं और स्थित अधिनियम B भी ऐसा ही कर सकता है। लेकिन यदि वे एक-दूसरे का खंडन करते हैं, तो दोनों को शाब्दिक रूप से लागू नहीं किया जा सकता। A, B को रद्द करता है, और B, A को रद्द करता है। न्यायालय को उनमें सामंजस्य स्थापित करने का सर्वोत्तम प्रयास करना चाहिए, लेकिन यह केवल एक या दोनों को तनावपूर्ण व्याख्या देकर ही प्राप्त किया जा सकता है।"

जहाँ किसी अधिनियम के दो प्रावधान परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं, वहाँ न्यायालय आसानी से "या तो/या" स्थिति का अनुमान नहीं लगाते। न्यायालयों को प्रावधानों की सामंजस्यपूर्ण व्याख्या करनी चाहिए ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि जहाँ तक संभव हो, दोनों प्रावधानों का प्रभावी संचालन इस तरह से हो कि अधिनियम के उद्देश्य को आगे बढ़ाए। प्रत्येक प्रावधान, वाक्यांश, खंड और शब्द की व्याख्या इस प्रकार की जानी चाहिए कि अधिनियम के उद्देश्य को आगे बढ़ाया जा सके। किसी भी शब्द या क़ानून के किसी भी भाग की अलग-अलग व्याख्या नहीं की जा सकती। न्यायालयों को यह ध्यान रखना चाहिए कि किसी भी प्रावधान को निरर्थक बनाने वाली व्याख्या से बचना चाहिए जब तक कि संघर्ष से कोई संभावित सुलह न हो जाए।

45. कृष्ण कुमार बनाम राजस्थान राज्य [कृष्ण कुमार बनाम राजस्थान राज्य, (1991) 4 एससीसी 258] में, राजस्थान राज्य सड़क परिवहन निगम, जयपुर ने विवादित सड़क के अनन्य संचालन के लिए मोटर वाहन अधिनियम, 1939 (1939 अधिनियम) की धारा 68-सी के तहत 1977 में एक योजना प्रस्तावित की थी। मोटर वाहन अधिनियम, 1988 (1988 अधिनियम) के अधिनियमित होने पर, एक रिट याचिका दायर की गई थी जिसमें कहा गया था कि 1939 अधिनियम के तहत योजना को अधिसूचित करने में अनुचित देरी हुई थी, यह योजना 1988 अधिनियम द्वारा सुरक्षित नहीं थी। 1988 अधिनियम की धारा 100(4) में यह निर्धारित किया गया था कि एक मसौदा योजना को इसके प्रकाशन की तारीख से एक वर्ष के भीतर अंतिम रूप दिया जाना चाहिए धारा 217(2)(ई) में प्रावधान था कि 1939 के अधिनियम के निरस्त होने के बावजूद, धारा 68-सी के तहत प्रस्तावित कोई योजना, यदि 1988 के अधिनियम के लागू होने से ठीक पहले लंबित हो, तो उसे 1988 के अधिनियम की धारा 100 के प्रावधानों के अनुसार अंतिम रूप दिया जाएगा। न्यायालय ने कहा कि विधायी मंशा के विपरीत, 1939 के अधिनियम के तहत कोई भी योजना नहीं बचेगी यदि उस अधिनियम के तहत योजनाओं का मूल्यांकन उनके प्रकाशन की तिथि के संदर्भ में किया जाए। दोनों प्रावधानों के बीच स्पष्ट टकराव को देखते हुए, इस न्यायालय की दो-न्यायाधीशों की पीठ ने दोनों प्रावधानों की सामंजस्यपूर्ण व्याख्या की और कहा: (एससीसी पृष्ठ 266-67, पैरा 10-11)

"10. अधिनियम की धारा 100(4) और धारा 217(2)(ई) के बीच कुछ स्पष्ट टकराव प्रतीत होता है। जबकि धारा 217(2)(ई) नए अधिनियम की धारा 100 के अनुसार किसी योजना को अंतिम रूप देने की अनुमति देती है, धारा 100 की उप-धारा (4) यह निर्धारित करती है कि यदि किसी योजना को एक वर्ष की अवधि के भीतर अंतिम रूप नहीं दिया जाता है तो उसे समाप्त माना जाएगा। यदि अपीलकर्ता का तर्क स्वीकार कर लिया जाता है तो धारा 217(2)(ई) निरर्थक हो जाएगी और पुराने अधिनियम की धारा 68-सी के तहत प्रकाशित किसी भी योजना को नए अधिनियम के तहत अंतिम रूप नहीं दिया जा सकेगा। दूसरी ओर, यदि धारा 100(4) के तहत निर्धारित एक वर्ष की अवधि की गणना योजना के प्रकाशन की तिथि से नहीं की जाती है, तो पुराने अधिनियम की धारा 68-सी के स्थान पर अधिनियम के प्रारंभ की तिथि से एक वर्ष की अवधि की गणना की जाए तो दोनों प्रावधानों को पूर्ण प्रभाव दिया जा सकता है।

11. व्याख्या का यह स्थापित सिद्धांत है कि जहां एक ही अधिनियम की दो धाराओं में असंगति प्रतीत होती है, वहां सीधे टकराव से बचने के लिए सामंजस्यपूर्ण निर्माण के सिद्धांत का पालन किया जाना चाहिए। यह हल्के में नहीं मान लेना चाहिए कि संसद ने एक हाथ से जो दिया, वह दूसरे हाथ से ले लिया। कानून की एक धारा के प्रावधानों का उपयोग दूसरी धारा के प्रावधानों को विफल करने के लिए नहीं किया जा सकता, जब तक कि उनमें सामंजस्य स्थापित करना असंभव न हो।

न्यायालय ने कहा कि जहां संसद कोई लाभ प्रदान करती है, वहां यह आसानी से नहीं मान लेना चाहिए कि वह उसी समय लाभ वापस लेने का इरादा रखती है। इसके अलावा, एक धारा के प्रावधानों का उपयोग दूसरी

धारा को विफल करने के लिए नहीं किया जा सकता, जब तक कि दो परस्पर विरोधी प्रावधानों में सामंजस्य स्थापित करने की कोई संभावना न हो।

46. ब्रिटिश एयरवेज पीएलसी बनाम भारत संघ [ब्रिटिश एयरवेज पीएलसी. बनाम भारत संघ, (2002) 2 एससीसी 95] में, अपीलकर्ता एक विमानवाहक पोत था जो यात्रियों और माल के अंतर्राष्ट्रीय हवाई परिवहन के व्यवसाय में लगा हुआ था। यह तर्क दिया गया कि चूँकि वे सीमा शुल्क अधिनियम, 1962 की धारा 2(31) में परिभाषित "प्रभारी व्यक्ति" नहीं थे, इसलिए माल उतारने में कमी के लिए धारा 116 के तहत उन पर कोई जुर्माना नहीं लगाया जा सकता। अधिनियम के तहत धारा 42 के तहत सीमा शुल्क घर से माल के हस्तांतरण के लिए एक अधिकारी को लिखित आदेश जारी करना आवश्यक था। धारा 42 की उपधारा (2) के खंड (ई) में यह प्रावधान है कि ऐसा कोई आदेश तब तक नहीं दिया जाएगा जब तक कि हस्तांतरण का प्रभारी व्यक्ति सक्षम अधिकारी को यह विश्वास न दिला दे कि धारा 116 के तहत उन पर कोई जुर्माना नहीं लगाया जा सकता है या उस धारा के तहत उन पर लगाए जा सकने वाले किसी भी जुर्माने का भुगतान ऐसी गारंटी या ऐसी राशि की जमा राशि द्वारा सुरक्षित नहीं किया गया है जैसा कि सक्षम अधिकारी निर्देश दे सकता है। अपीलकर्ता ने तर्क दिया कि एक बार निकासी आदेश जारी होने के बाद, उन पर कोई देयता नहीं लगाई जा सकती है।

47. इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ ने कहा कि जहां धारा 42 माल की निकासी में तेजी लाने के लिए संचालित होती है, वहीं धारा 116 कार्गो की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए संचालित होती है। परिणामस्वरूप, दोनों प्रावधान अलग-अलग उद्देश्यों को पूरा करते हैं। इसके अलावा, धारा 148 में एक संशोधन द्वारा, जो प्रभारी व्यक्ति के एजेंट के दायित्व का प्रावधान था, उप-धारा (2) जोड़ी गई, जिसमें यह प्रावधान था कि कोई भी व्यक्ति जो किसी सीमा शुल्क अधिकारी के समक्ष स्वयं को ऐसे किसी प्रभारी व्यक्ति के एजेंट के रूप में प्रस्तुत करता है, और उस अधिकारी द्वारा उसे इस रूप में स्वीकार कर लिया जाता है, वह प्रभारी व्यक्ति के किसी भी दायित्व को पूरा करने के लिए उत्तरदायी होगा। न्यायालय ने कहा कि संशोधन को प्रभावी बनाया जाना चाहिए, जो अपीलकर्ता के तर्क को स्वीकार कर लेने पर निरर्थक हो जाएगा। सामंजस्यपूर्ण व्याख्या के सिद्धांत पर भरोसा करते हुए, न्यायालय ने कहा: (ब्रिटिश एयरवेज पीएलसी मामला [ब्रिटिश एयरवेज पीएलसी बनाम भारत संघ, (2002) 2 एससीसी 95], एससीसी पृष्ठ 100, पैरा 8)

"8. ... किसी क़ानून की व्याख्या का यह एक प्रमुख सिद्धांत है कि विभिन्न प्रावधानों की व्याख्या इस प्रकार की जानी चाहिए कि प्रत्येक प्रावधान की अपनी भूमिका हो और किसी भी संघर्ष की स्थिति में एक सामंजस्यपूर्ण व्याख्या दी जानी चाहिए। सामंजस्यपूर्ण व्याख्या का प्रसिद्ध सिद्धांत यह है कि सभी प्रावधानों को प्रभावी बनाया जाना चाहिए और इसके लिए क़ानून के किसी भी प्रावधान की व्याख्या अन्य प्रावधानों के संदर्भ में की जानी चाहिए ताकि उसे व्यावहारिक बनाया जा सके। किसी विशेष प्रावधान को उठाकर उसकी व्याख्या क़ानून के तहत उस संबंध में बनाए गए किसी अन्य प्रावधान को निष्प्रभावी करने के लिए नहीं की जा सकती। न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह क़ानून की ऐसी व्याख्या करे जिससे शरारत का दमन हो और उपचार को बढ़ावा मिले।"

इस न्यायालय ने कहा कि न्यायालयों को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि प्रत्येक प्रावधान की व्याख्या इस प्रकार की जाए कि प्रतीत होता है कि विरोधाभासी प्रावधान भी व्यावहारिक हों। किसी क़ानून के दो प्रावधानों की व्याख्या करते समय, न्यायालयों को ऐसी व्याख्या अपनानी चाहिए जो किसी भी प्रावधान को विफल न करे और उनके अधिनियमन द्वारा परिकल्पित उपचार को आगे बढ़ाए।

30. यह मामला एक बार फिर सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष ***मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 और स्टाम्प अधिनियम, 1889 (2024) 6 एससीसी 1*** के तहत मध्यस्थता समझौतों के बीच परस्पर क्रिया के मामले में विचार के लिए आया; जिसमें निम्नलिखित दर्ज किया गया था:

"178. यह सामान्य कानून है कि एक सामान्य कानून को एक विशेष कानून के लिए रास्ता देना चाहिए। निर्माण का यह नियम सिद्धांत जनरलिया स्पेशलिबस नॉन डेरोगेंट से उपजा है। एलआईसी बनाम डी.जे. बहादुर [एलआईसी बनाम डी.जे. बहादुर, (1981) 1 एससीसी 315: 1981 एससीसी (एल एंड एस) 111] में, इस न्यायालय ने यह निर्णय दिया:

"52. यह निर्धारित करते समय कि कोई क़ानून विशेष है या सामान्य, मुख्य विषय-वस्तु के साथ-साथ विशिष्ट परिप्रेक्ष्य पर भी ध्यान केंद्रित किया जाना चाहिए। कुछ उद्देश्यों के लिए, एक अधिनियम सामान्य हो सकता है और कुछ अन्य उद्देश्यों के लिए यह विशेष हो सकता है और हम क़ानून के सूक्ष्म पहलुओं पर विचार करते समय इन भेदों को धुंधला नहीं कर सकते।"

179. सुंदरम फाइनेंस लिमिटेड बनाम टी. थंकम [सुंदरम फाइनेंस लिमिटेड बनाम टी. थंकम, (2015) 14 एससीसी 444] में, इस न्यायालय ने यह निर्णय दिया:

"13. ... एक बार जब न्यायालय के ध्यान में यह लाया जाता है कि किसी विशेष क़ानून के तहत निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार उसका अधिकार क्षेत्र छीन लिया गया है, तो सिविल न्यायालय को सबसे पहले यह देखना चाहिए कि क्या विशेष क़ानून के तहत प्रक्रिया के अनुसार या उसके अनुपालन में अधिकार क्षेत्र का हनन हुआ है। सामान्य कानून को विशेष कानून–जनरलिया स्पेशलिबस नॉन डेरोगेंट के अधीन होना चाहिए। ऐसी स्थिति में, यह देखने का प्रयास नहीं किया जाना चाहिए कि सामान्य कानून के तहत सिविल न्यायालय में अभी भी अधिकार क्षेत्र है या नहीं। इस तरह के दृष्टिकोण केवल विवादों के समाधान में देरी करेंगे और शिकायत निवारण को जटिल बनाएंगे और निश्चित रूप से न्यायालय में लंबित मामलों की संख्या को अनावश्यक रूप से बढ़ाएंगे।"

31. हालाँकि, दो विरोधाभासी प्रतिमाओं की 'सामंजस्यपूर्ण व्याख्या' के शास्त्रीय पाठ पर सर्वोच्च न्यायालय ने ***भारतीय जीवन बीमा निगम बनाम डी.जे. बहादुर एवं अन्य (1981) 1 एससीसी 315*** के मामले में विस्तार से विचार किया था, जिसमें निम्नलिखित दर्ज किया गया था:

"29. यदि विधायी लक्ष्य को स्पष्ट रूप से नहीं समझा गया, तो व्याख्यात्मक अंतर्दृष्टि प्रभावित होगी, साथ ही न्यायिक फोकस भी धुंधला हो जाएगा। वास्तव में, मैं इस पहलू पर इतना ज़ोर इसलिए देता हूँ क्योंकि भाई कोशल का अन्यथा दोषरहित तर्क, अगर मैं बड़े सम्मान के साथ कह सकता हूँ, इस मूलभूत गलत फोकस के कारण मुझे आश्वस्त करने में विफल रहा है। ज़ोर देने के लिए दोहराना चाहूँगा कि क़ानून का सार औद्योगिक विवाद है, न कि रोज़गार की शर्तें या सेवा का अनुबंध। भेद करने की रेखा भले ही सूक्ष्म हो, लेकिन वास्तविक है।

30. जो भी हो, औद्योगिक विकास अधिनियम पर एक नज़र डालने से वैधानिक ढाँचे और क़ानूनी इंजीनियरिंग का पता चलता है जो क़ानून के शासन के अनुसार उद्योगों में विवाद निपटान पर केंद्रित है और मुक्कों या आर्थिक ब्लैकमेल से दूर है। एक बार प्रकाशित होने पर यह विशाल कैनवास, हमारे सामने मौजूद 1974 के समझौते के संदर्भ में पुरस्कारों और समझौतों की व्यापकता को चित्रित कर सकता है। यह बोनस से कहीं आगे जाता है और लेन-देन की भावना में विवादों और समझौतों की एक विस्तृत श्रृंखला को समाहित करता है। कोई सौदेबाजी की प्रक्रिया की कल्पना कर सकता है। बोनस पर थोड़ा समझौता करें और वेतनमान या पदोन्नति की संभावनाओं पर बेहतर सौदा पाएँ; काम के घंटों में थोड़ी नरमी बरतें लेकिन आवास सुविधाओं पर बेहतर मोलभाव करें, इत्यादि। क़ानून की आत्मा रोज़गार अनुबंध, सेवा शर्तों या भर्ती नियमों की एकरूपता नहीं है, बल्कि औद्योगिक न्याय द्वारा प्रेरित विवादों और मतभेदों पर विवेकपूर्ण बातचीत, सुलह और निर्णय हैं, ताकि किसी ऐसे टकराव से बचा जा सके जो अराजकता पैदा कर सकता है और उत्पादन की गति बढ़ाने के राष्ट्रीय प्रयास को ख़तरे में डाल सकता है।

31. यदि कोई विवाद नहीं है, तो औद्योगिक विकास अधिनियम लागू नहीं होता, जबकि औद्योगिक विकास अधिनियम सामान्यतः सभी कर्मचारियों पर लागू होता है, सबसे मोटे अधिकारी से लेकर सबसे कमज़ोर शारीरिक श्रम करने वाले तक, और इसका औद्योगिक विवादों से कोई लेना-देना नहीं है। पहला एक "युद्ध उपाय" है; दूसरा एक नियमित शक्ति है जब तलवारें नहीं खींची जातीं, अगर हम इसे लाक्षणिक रूप से कहें। जब विवाद छिड़ते हैं या पनप रहे होते हैं, तो एक विशेष, संवेदनशील स्थिति उत्पन्न होती है जो उग्र गुस्से और लड़ाई के रुख से भरी होती है, जिसके लिए विशेष नियंत्रण नियमों, सुलहकारी तंत्र, विसैन्यीकरण रणनीतियों और जाँच के तरीकों, अंतरिम व्यवस्थाओं और अंतिम समाधानों की आवश्यकता होती है, जो औद्योगिक शांति और न्याय को बढ़ावा देने के लिए विशेष मानदंडों द्वारा शासित होते हैं। एलआईसी अधिनियम रोज़गार या उससे उत्पन्न विवादों के लिए कोई क़ानून नहीं है, बल्कि एक राष्ट्रीयकरण उपाय है जो संयोगवश, किसी भी सामान्य अधिग्रहण क़ानून की तरह, भर्ती, स्थानांतरण, पदोन्नति आदि के लिए प्रावधान करता है। यह जीवन बीमा के राष्ट्रीयकरण के संदर्भ में विशेष है, लेकिन रोज़गार अनुबंधों या कार्यालय भवनों के अधिग्रहण के संबंध में सामान्य है। आपातकालीन उपाय निश्चित रूप से विशेष होते हैं। नियमित राष्ट्रीयकरण क़ानून सामान्य होते हैं, भले ही वे संयोगवश सेवा की शर्तों का उल्लेख करते हों।"

49. अगला तार्किक प्रश्न यह है कि क्या आईडी अधिनियम एक सामान्य कानून है जिसे एलआईसी अधिनियम, जो निगम कर्मचारियों के संबंध में एक विशेष कानून है, के कारण अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर कर दिया गया है। तुरंत ही, हमारे सामने यह प्रश्न उठता है कि क्या एलआईसी अधिनियम एक विशेष कानून है या एक सामान्य कानून, क्योंकि कानूनी सिद्धांत "जनरैलिए स्पेशलिबस नॉन डेरोगेंट" आमतौर पर तब लागू होता है जब किसी विशेष और सामान्य क़ानून के बीच विरोध होता है और निहित निरसन का तर्क दिया जाता है। क्रेज़ कानून को सही ढंग से बताते हैं: [क्रेज़ ऑन स्टैच्यूट लॉ, 1963 संस्करण, पृष्ठ 376-77]

"सामान्य नियम, कि पूर्ववर्ती क़ानूनों को अनुवर्ती क़ानूनों द्वारा निहितार्थ द्वारा निरस्त माना जाता है यदि दोनों प्रतिकूल हैं, तब लागू नहीं होता है जब पूर्ववर्ती अधिनियम विशेष हो और अनुवर्ती अधिनियम सामान्य हो, जैसा कि लॉर्ड सेलबोर्न ने सीवार्ड्स बनाम वेरा क्रूज़ [मैरी सीवार्ड्स बनाम ओनर ऑफ़ द "वेरा क्रूज़", (1884) 10 एसी 59, 68], 'जहां बाद के अधिनियम में सामान्य शब्द हैं, जो पहले के कानून द्वारा विशेष रूप से निपटाए गए विषयों पर उनका विस्तार किए बिना उचित और समझदारी से लागू हो सकते हैं, आपको यह नहीं मानना है कि पहले के और विशेष कानून को केवल ऐसे सामान्य शब्दों के बल पर अप्रत्यक्ष रूप से निरस्त, परिवर्तित या अपमानित किया गया है, ऐसा करने के किसी विशेष इरादे के संकेत के बिना। एक प्रसिद्ध नियम है जो इस मामले में लागू होता है, वह यह है कि बाद का सामान्य अधिनियम निहितार्थ से पहले के विशेष अधिनियम को प्रभावित नहीं करता है। यह कानून है, इसमें कोई संदेह नहीं किया जा सकता है, और इस विषय पर मामले मैक्सवेल के तीसरे संस्करण में एकत्र किए जाएंगे, सामान्यिया स्पेशलिबस नॉन डेरोगेंट है - यानी सामान्य प्रावधान विशेष प्रावधानों को निरस्त नहीं करेंगे।' प्रत्येक अधिनियम की व्याख्या उसकी अपनी विषय-वस्तु और अपनी शर्तों के अनुसार की जानी चाहिए।"

50. इस मुद्दे पर निर्णय लेने से पहले एक महत्वपूर्ण प्रश्न जिसका उत्तर आवश्यक है, वह यह है कि क्या एलआईसी अधिनियम एक विशेष क़ानून है और आईडी अधिनियम एक सामान्य क़ानून है, ताकि बाद वाला पहले वाले को निरस्त कर दे या उस पर प्रभावी हो। विशेष क़ानून से हमारा क्या तात्पर्य है और विचाराधीन दोनों अधिनियमों की योजना में, हम किसे विशेष अधिनियम और किसे सामान्य अधिनियम मान सकते हैं? निहित निरसन अंतिम न्यायिक शरणस्थली है और जब तक उस निष्कर्ष पर न पहुँचा जाए, इसका सहारा शायद ही कभी लिया जाता है। निर्णायक बिंदु यह है कि क्या आईडी अधिनियम को एक सामान्य क़ानून के रूप में विस्थापित या खारिज किया जा सकता है। यदि ऐसा हो सकता है और यदि एलआईसी अधिनियम एक विशेष क़ानून है, तो अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव कि आईडी अधिनियम पर निर्भर समझौता, एलआईसी अधिनियम की धारा 11 और धारा 49 के विरुद्ध, उसके अंतर्गत विनियम 58 के साथ पठित, मान्य नहीं हो सकता। यह अभ्यास मुझे उस विशिष्ट विवाद के संदर्भ में दोनों क़ानूनों की योजना का अध्ययन करने के लिए बाध्य करता है जिससे मैं निपट रहा हूँ।

51. इसमें कोई संदेह नहीं है कि एलआईसी अधिनियम, जैसा कि इसके लंबे शीर्षक से पता चलता है, भारत में जीवन बीमा व्यवसाय के राष्ट्रीयकरण के लिए ऐसे सभी व्यवसाय को इस उद्देश्य के लिए स्थापित एक निगम

को हस्तांतरित करके और निगम के व्यवसाय के विनियमन और नियंत्रण और उससे जुड़े या उसके आनुषंगिक मामलों के लिए प्रावधान करने हेतु एक अधिनियम है। इसका प्राथमिक उद्देश्य निजी बीमा व्यवसाय का राष्ट्रीयकरण करना और भारतीय जीवन बीमा निगम की स्थापना करना था। अनिवार्य रूप से, अधिनियम में निगम के कार्यों को स्पष्ट किया गया, विद्यमान जीवन बीमा व्यवसाय को निगम को हस्तांतरित करने का प्रावधान किया गया और निगम के प्रबंधन, वित्त, लेखा और लेखापरीक्षा के संचालन के तरीके को विस्तार से निर्धारित किया गया। संयोगवश, बीमाकर्ताओं के विद्यमान कर्मचारियों की सेवा निगम को हस्तांतरित करने का प्रावधान था और संयोगवश, उनकी सेवा शर्तों का भी प्रावधान किया जाना था। प्रबंधन के सभी मामलों को शामिल करने वाले नियम बनाने की शक्ति भी उपयुक्त प्राधिकारियों को प्रदान की गई। यह स्पष्ट और निर्विवाद है कि जहाँ तक बीमा व्यवसाय के राष्ट्रीयकरण का संबंध है, एलआईसी अधिनियम एक विशेष कानून है, लेकिन विषय, योजना और धाराओं के मात्र अवलोकन और अधिनियम की संरचना को समझने से यह निष्कर्ष भी उतना ही निर्विवाद है कि इसका नियोक्ता और कर्मचारियों के बीच विवादों की विशिष्ट समस्या, या ऐसे विवादों की जाँच और न्यायनिर्णयन से कोई लेना-देना नहीं है। यह कामगारों और कामगारों और नियोक्ताओं के बीच विवादों या औद्योगिक विवादों से संबंधित नहीं है। निगम के पास कर्मचारियों की एक ऐसी सेना है जो कामगार नहीं हैं। उदाहरण के लिए, उच्च स्तर के कर्मचारी और अन्य प्रकार के कर्मचारी औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 2(ओं) में परिभाषित कर्मकार के दायरे में नहीं आते। न ही निगम का मुख्य व्यवसाय श्रम विवादों की जाँच और निर्णय करना है, ठीक उसी तरह जैसे किसी मोटर निर्माता का मुख्य व्यवसाय पेंट छिड़कना नहीं है!

52. यह निर्धारित करते समय कि कोई क़ानून विशेष है या सामान्य, मुख्य विषय-वस्तु के साथ-साथ विशिष्ट परिप्रेक्ष्य पर भी ध्यान केंद्रित किया जाना चाहिए। कुछ उद्देश्यों के लिए, एक अधिनियम सामान्य हो सकता है और कुछ अन्य उद्देश्यों के लिए यह विशेष हो सकता है, और हम कानून के सूक्ष्म पहलुओं पर विचार करते समय इन भेदों को धुंधला नहीं कर सकते। कानून में, हमारे पास सापेक्षता का एक ब्रह्मांड है, निरपेक्ष नहीं - जीवन में भी ऐसा ही है। औद्योगिक विवाद अधिनियम एक विशेष क़ानून है जो पूरी तरह से औद्योगिक विवादों की जाँच और निस्तारण के लिए समर्पित है, जो इसके दायरे में आने वाले औद्योगिक विवादों की प्रकृति को परिभाषित करता है। यह औद्योगिक विवादों की जाँच, समाधान और उन पर न्यायनिर्णय के लिए एक बुनियादी ढाँचा तैयार करता है। यह पंचाटों और समझौतों के प्रवर्तन के लिए आवश्यक तंत्र भी प्रदान करता है। औद्योगिक विवाद निवारण अधिनियम का एक विशेष उद्देश्य है - विशिष्ट प्रक्रियाओं के अनुसार विशिष्ट एजेंसियों के माध्यम से औद्योगिक विवादों का समाधान, और विशेष रूप से श्रमिकों की परिभाषा के अंतर्गत आने वाले कमजोर श्रेणी के कर्मचारियों के संदर्भ में। इसलिए, नियोक्ताओं और श्रमिकों के बीच औद्योगिक विवादों के संदर्भ में, औद्योगिक विवाद निवारण अधिनियम एक विशेष क़ानून है, और जीवन बीमा अधिनियम श्रमिकों के विशिष्ट संदर्भ में बिल्कुल भी बात नहीं करता है। दूसरी ओर, इसकी शक्तियाँ राष्ट्रीयकरण के सामान्य पहलुओं, निजी व्यवसायों के राष्ट्रीयकरण के समय प्रबंधन और कई समस्याओं से संबंधित हैं, जिनमें संयोगवश, बीमा कंपनियों के मौजूदा कर्मचारियों का सेवा स्थानांतरण शामिल है। श्रमिक-कर्मचारी के रूप में श्रमिक और श्रमिक तथा नियोक्ता के बीच औद्योगिक विवाद, भारतीय जीवन बीमा अधिनियम की सीमा से

<u>बाहर हैं और इसमें उनका कोई विशिष्ट या विशेष स्थान नहीं है। और जब भी श्रमिकों और प्रबंधन के बीच कोई विवाद होता था, औद्योगिक विवाद निवारण अधिनियम की व्यवस्था का सहारा लिया जाता था।</u>

53. वर्तमान मामले में हमारे सामने क्या है, जिससे मैं यह निर्धारित कर सकूँ कि दोनों अधिनियमों में से कौन सा विशेष है? एकमात्र विषय जिसके कारण यह मुकदमा शुरू हुआ है और जो दोनों पक्षों के बीच विवाद का कारण है, वह निगम और उसके कर्मचारियों के बीच एक औद्योगिक विवाद है। यदि हम कानूनी पेचीदगियों में न फँसें और स्पष्ट रूप से देखें कि क्या स्पष्ट है, तो मेरे द्वारा किए गए अध्ययन के आधार पर, यह निष्कर्ष निकलता है कि समझौते की समाप्ति पर कर्मचारियों और निगम के बीच "औद्योगिक विवादों" के संदर्भ में, औद्योगिक विवाद अधिनियम एक विशेष कानून है और एलआईसी अधिनियम एक सामान्य कानून है। इसी प्रकार, जब राष्ट्रीयकरण पर मुआवज़े का प्रश्न हो, तो एलआईसी अधिनियम विशेष क़ानून है। अंग्रेजी पाठ्यपुस्तकों और निर्णयों द्वारा प्रतिपादित सामान्य सिद्धांत के अनुप्रयोग से हमें इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता कि आईडी अधिनियम, विशेष क़ानून होने के कारण, एलआईसी अधिनियम, जो कि सामान्य क़ानून है, पर प्रबल होता है।

54. मैं उद्धरणों द्वारा इस निष्कर्ष से संतुष्ट हूँ, लेकिन मैं एक हालिया मामले से संतुष्ट हूँ जहाँ इस न्यायालय ने एक निकट से संबद्ध प्रश्न पर विचार करते हुए समान निष्कर्ष निकाला था। [यू.पी. राज्य विद्युत बोर्ड बनाम एच.एस. जैन, (1978) 4 एससीसी 16 : 1978 एससीसी (एल एंड एस) 481 : (1979) 1 एससीआर 355] वहाँ जो समस्या उत्पन्न हुई वह यह थी कि क्या औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम, 1946 के तहत स्थायी आदेश, विद्युत (आपूर्ति) अधिनियम, 1948 की धारा 79(सी) द्वारा प्रदत्त विशिष्ट शक्ति के तहत विद्युत बोर्ड द्वारा बनाए गए सेवानिवृत्ति की आयु संबंधी विनियमों के विरुद्ध प्रबल होंगे, जिसके बारे में तर्क दिया गया था कि यह औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम के विरुद्ध एक विशेष कानून है। इस न्यायालय (तीन न्यायाधीशों की एक पीठ) ने न्यायमूर्ति चिन्नप्पा रेड्डी के माध्यम से निर्देशित करते हुए कहा:

"जनरलिया स्पेशलिबस नॉन डेरोगेंट" की कहावत सर्वविदित है। इस सिद्धांत से निकलने वाले नियम को मैरी सीवार्ड बनाम 'वेरा क्रूज़' की मालिक [संविधि कानून पर क्रेज़, 1963 संस्करण, पीपी 376-77] में इस प्रकार समझाया गया है:

"अब यदि कुछ निश्चित है तो वह यह है कि जहां बाद के अधिनियम में सामान्य शब्द हैं जो उन्हें पहले के कानून द्वारा विशेष रूप से निपटाए गए विषयों तक विस्तारित किए बिना उचित और समझदारी से लागू किए जा सकते हैं, आपको यह नहीं मानना है कि पहले के और विशेष कानून को केवल ऐसे सामान्य शब्दों के बल पर अप्रत्यक्ष रूप से निरस्त, परिवर्तित या अपमानित किया गया है, ऐसा करने के किसी विशेष इरादे के संकेत के बिना। किया गया है"

55. जे.के. कॉटन स्पिनिंग एंड वीविंग मिल्स कंपनी लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [एआईआर 1961 एससी 1170, 1174: (1961) 3 एससीआर 185: (1961) 1 एलएलजे 540: (1960-61) 19 एफजेआर 436], इस न्यायालय ने पृष्ठ 1174 पर अवलोकन किया।

"यह नियम कि सामान्य प्रावधानों को विशिष्ट प्रावधानों के अधीन होना चाहिए, अधिवक्तागणों और न्यायाधीशों द्वारा बनाया गया कोई मनमाना सिद्धांत नहीं है, बल्कि पुरुषों और महिलाओं की इस सामान्य समझ से उपजा है कि जब एक ही व्यक्ति दो निर्देश देता है, जिनमें से एक सामान्य रूप से बड़ी संख्या में मामलों को कवर करता है और दूसरा उनमें से केवल कुछ के लिए, तो उसका आशय यह होता है कि इन मामलों में ये बाद वाले निर्देश लागू होने चाहिए, जबकि बाकी सभी मामलों में पहले वाले निर्देश प्रभावी होने चाहिए।

हम पहले ही दर्शा चुके हैं कि औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम एक विशेष अधिनियम है जो एक विशिष्ट विषय, अर्थात् औद्योगिक प्रतिष्ठानों में कामगारों की सेवा की शर्तों, जो अनुसूची में उल्लिखित हैं, से संबंधित है। यह कल्पना करना असंभव है कि संसद ने औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम के प्रावधानों को निरस्त करने का प्रयास किया, क्योंकि वे कामगारों के कठिन परिश्रम से प्राप्त और बहुमूल्य अधिकारों को समाहित करते हैं और एक विस्तृत प्रक्रिया निर्धारित करते हैं, जिसमें अर्ध-न्यायिक निर्धारण भी शामिल है, विद्युत (आपूर्ति) अधिनियम की धारा 79(सी) जैसे सामान्य, आकस्मिक प्रावधान द्वारा। यह स्पष्ट है कि संसद के पास पहले स्थायी आदेश अधिनियम, जब उसने विद्युत (आपूर्ति) अधिनियम पारित किया था और संसद का यह मतलब कभी नहीं था कि स्थायी आदेश अधिनियम, विद्युत आपूर्ति अधिनियम की धारा 79(सी) द्वारा निरस्त माना जाए। हमारा स्पष्ट मत है कि स्थायी आदेश अधिनियम के प्रावधान, उन मामलों में, जिन पर स्थायी आदेश अधिनियम लागू होता है, विद्युत आपूर्ति अधिनियम की धारा 79(सी) पर प्रबल होने चाहिए।

मैं सम्मानपूर्वक सहमत हूँ और तर्क और निष्कर्ष को मेरे सामने मौजूद लगभग समान स्थिति पर लागू करता हूँ और मानता हूँ कि औद्योगिक विवाद अधिनियम विशेष रूप से और विशिष्ट रूप से श्रमिकों और नियोक्ताओं के बीच औद्योगिक विवादों से संबंधित है और एलआईसी अधिनियम, विद्युत (आपूर्ति) अधिनियम, 1948 की तरह, एक सामान्य क़ानून है जो श्रमिकों के विवादों पर मौन है, भले ही यह निजी बीमा व्यवसाय के अधिग्रहण को विनियमित करने वाला एक विशेष कानून हो।

56. अपीलकर्ताओं द्वारा एक विश्वसनीय दलील दी गई थी, जिसे उच्च न्यायालय ने खारिज कर दिया था, कि एलआईसी अधिनियम में कर्मचारियों की सेवा शर्तों से संबंधित प्रावधान हैं और यदि आईडी अधिनियम को लागू माना जाता है, तो वे निरर्थक हो जाएँगे। यह दोहरा रूप से भ्रामक है। एक बात तो यह है कि धारा 11 और 49 के प्रावधान सामान्य प्रावधान हैं जो किसी वैधानिक निगम (जैसे नगर पालिका या विश्वविद्यालय) को अपने कुल कर्मचारियों की भर्ती करने और उनकी सेवा शर्तें निर्धारित करने का अधिकार देते हैं - "कर्मचारियों" के संबंध में कोई विशेष प्रावधान नहीं। इस न्यायालय ने बैंगलोर जल आपूर्ति और सीवरेज मामले (7 न्यायाधीशों की पीठ) [(1978) 2 एससीसी 213, 232: 1978 एससीसी (एल एंड एस) 215, 234] और बहुत पहले डी.एन. बनर्जी बनाम पी.आर. मुखर्जी (5 न्यायाधीशों की पीठ) [(1952) 2 एससीसी 619: एआईआर 1953 एससी 58: 1953 एससीआर 302: (1953) 1 एलएलजे 195] में धारित किया है कि आईडी अधिनियम उन निकायों द्वारा

नियोजित श्रमिकों पर लागू होता है जब विवाद उत्पन्न होते हैं। यदि कोई औद्योगिक विवाद न उठाया गया हो, तो सामान्य प्रावधान अन्य स्तरों और यहाँ तक कि श्रमिकों पर भी लागू होगा। दूसरे, अनावश्यक शब्दों का कोई मामला नहीं उठा क्योंकि निगम, एक विश्वविद्यालय की तरह, न केवल श्रमिकों को बल्कि अन्य लोगों को भी रोजगार देता था और उनकी सेवा शर्तों को विनियमित करने के लिए शक्ति की आवश्यकता थी। फिर, जिन स्थितियों में कोई विवाद उत्पन्न नहीं होता, वहाँ नियोक्ता को रोजगार की शर्तें तय करने की शक्ति निहित होनी चाहिए थी। यह एक सामान्य प्रकार का सामान्य प्रावधान है, न कि किसी औद्योगिक विवाद को निस्तारित करने के लिए कोई विशिष्ट प्रावधान है

57. विशेष या सामान्य क्या है, यह पूरी तरह से विषय और संदर्भ पर निर्भर करता है और स्थिति, परिस्थितियों और दृष्टिकोण के साथ भिन्न हो सकता है। कानून कोई अमूर्तता नहीं है, बल्कि वास्तविकताओं के जीवंत परिवेश में स्वयं को साकार करता है। कौन सा विशेष प्रावधान है और कौन सा सामान्य, यह विशिष्ट समस्या, निर्णय के विषय पर निर्भर करता है, न कि व्यापक नियम या किसी सामान्य नियम पर। दोनों विधानों का शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व, यदि संभव हो, तो प्रत्येक को उसके आवंटित कार्यक्षेत्र की अनुमति देकर सर्वोत्तम रूप से प्राप्त किया जा सकता है। यांत्रिक कठोरता नहीं, बल्कि समझदारी और संवेदनशीलता ही लचीला समाधान प्रदान करती है। मेरे लिए यह सोचना मुश्किल है कि जब पूरा औद्योगिक क्षेत्र, यहाँ तक कि नगरपालिकाओं, विश्वविद्यालयों, अनुसंधान परिषदों आदि को भी, औद्योगिक विवादों के महत्वपूर्ण क्षेत्र में औद्योगिक विवाद निवारण अधिनियम द्वारा विनियमित किया जाता है, तो संसद निगम के लिए एक ऐसा नखलिस्तान प्रदान कर सकती थी जहाँ श्रमिकों की माँगों को एकतरफ़ा नज़रअंदाज़ किया जा सके। धारा 11 और 49 में सामान्य शब्दों को संदर्भ के अनुसार पढ़ा जाना चाहिए क्योंकि वे श्रमिकों और निगम के बीच औद्योगिक विवादों को कवर नहीं करते हैं। उदाहरण के लिए, लॉर्ड हाल्डेन ने 1915 एसी 885 (891) [वाटनी कॉम्बे रीड एंड कंपनी बनाम बर्नर्स, 1915 एसी 885: 84 एलजे केबी 1561: 113 एलटी 518] में कहा था कि:

"सामान्य शब्दों की व्याख्या कुछ मामलों में शाब्दिक या सामान्य अर्थ से भिन्न अर्थ या दायरे के रूप में उचित रूप से की जा सकती है। उनकी व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है जहाँ विधायिका की भाषा से प्रकट होने वाली योजना, उसकी संपूर्णता में पढ़ने पर, किसी भी संदर्भ से अलग, या सामान्य कानून से अलग अर्थ में संशोधन की आवश्यकता के रूप में संगति की ओर इशारा करती है।"

न्यायिक दासता द्वारा व्याख्यात्मक शाब्दिकता के प्रति बेतुकेपन और अन्याय से बचना न्यायालय का कार्य है और इससे मेरे पास यह मानने के अलावा कोई विकल्प नहीं बचता कि आईडी अधिनियम उन मामलों में लागू होता है जहाँ विवाद उत्पन्न होते हैं और एलआईसी अधिनियम अन्य मामलों में मार्गदर्शन करता है। वैधानिक व्याख्या के क्षेत्र में कोई भी कठोर सूत्र या अचूक तंत्र नहीं हैं। भावना और संवेदनशीलता, परिवेश और योजना, परिप्रेक्ष्य और उद्देश्य - ये सभी न्यायाधीश को सच्चे आशय और अर्थ के केंद्र तक पहुँचने में मदद करते हैं। सामाजिक न्याय की कानूनी गतिशीलता भी न्यायालय को उन क़ानूनों में मार्गदर्शन प्रदान करती है जिनकी हम व्याख्या कर रहे हैं। ये बहुविध विचार मुझे इस निष्कर्ष पर पहुँचाते हैं कि औद्योगिक विवाद, पंचाट और समझौते, जैसा कि यहाँ है, जब विवाद का विषय हों, तो औद्योगिक न्याय अधिनियम एक विशेष क़ानून है।

ऐसे अन्य मामले भी हो सकते हैं जहाँ औद्योगिक न्याय अधिनियम अन्य क़ानूनों की तुलना में एक विशेष क़ानून होगा। मैं अब ऐसी काल्पनिक स्थितियों से चिंतित नहीं हूँ।"

32. भारतीय जीवन बीमा निगम (उपरोक्त) मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के आलोक में, यह ध्यान रखना आवश्यक है कि बीमा पॉलिसी मूलतः एक अनुबंध है और उक्त अनुबंध बीमा अधिनियम द्वारा अधिरोपित सीमाओं और प्रतिबंधों के अधीन है, जिसे स्वयं भारत में बीमा व्यवसाय को विनियमित करने के लिए अधिनियमित किया गया था। उक्त अधिनियम संसद द्वारा उन व्यक्तियों के उत्तराधिकार के अधिकारों को नियंत्रित करने के लिए कभी भी अधिनियमित नहीं किया गया था जो अपने व्यक्तिगत उत्तराधिकार कानूनों द्वारा शासित होते हैं, जबकि हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम विशेष रूप से बिना वसीयत के मरने वाले हिंदुओं के संबंध में उत्तराधिकार के कानून को संहिताबद्ध करने के लिए अधिनियमित किया गया था। स्पष्ट रूप से उत्तराधिकार का मुद्दा हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम नामक एक विशिष्ट क़ानून द्वारा शासित होगा और उस सीमा तक, बीमा अधिनियम के अंतर्गत धारा 39(7) से प्राप्त सामान्य कानून को अपना स्थान लेना होगा।

33. यह भी पूरी तरह से स्थापित है कि क़ानून को अंतःक्रियात्मक माना जाता है और इस प्रकार, धारा 39(7) से प्राप्त 'लाभार्थी नामिती' वाक्यांश की व्याख्या कानून के प्रकाश में की जानी चाहिए जैसा कि धारा 39(7) के तहत संशोधन से पहले सरबती देवी (सुप्रा) के मामले में समझाया गया था।

34. उत्तराधिकारियों को छोड़कर लाभार्थी को लाभकारी नामिती मानना बेतुकापन को जन्म देगा, जिसका धारा 39(7) के प्रावधानों में संशोधन करते समय क़ानून द्वारा कभी इरादा नहीं किया गया था। कोई भी अन्य व्याख्या नामिती और कानूनी उत्तराधिकारियों, जिनके अधिकार हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम से प्राप्त होते हैं, के बीच अधिकारों के नाजुक संतुलन का उल्लंघन होगी।

35. इस प्रकार, याचिकाकर्ता का तर्क निम्नलिखित कारणों से खारिज किया जाता है:

i. बीमा अधिनियम की धारा 39(7), जो धारा 45-जेडए(2) के समरूप है और इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए *राम चंद्र तलवार (उपरोक्त)* के मामले में व्याख्या की गई थी, यह निर्णय देती है कि नामित व्यक्ति को खाते में पड़ी राशि का स्वामी नहीं माना जा सकता। धारा 39(7) की व्याख्या यह निर्णय देने के लिए भी की जानी चाहिए कि लाभार्थी नामित व्यक्ति को पॉलिसी की आय में से राशि का स्वामी नहीं कहा जा सकता।
ii. शक्ति येजदानी (उपरोक्त) के मामले में व्याख्या किए गए समान प्रावधान के मद्देनजर, यह निर्णय दिया जाना चाहिए कि नामित व्यक्ति संबंधित उत्तराधिकार अधिनियम के आधार पर कानूनी उत्तराधिकारियों के अधिकारों को अस्थिर नहीं करेगा।
iii. दोनों प्रावधानों, अर्थात् बीमा अधिनियम और हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, की सामंजस्यपूर्ण व्याख्या पर, हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम द्वारा प्रदत्त अधिकार, बीमा अधिनियम की धारा 39(7) के तहत नामित व्यक्ति

द्वारा दावा किए गए अधिकारों पर प्रबल होंगे, क्योंकि उत्तराधिकार अधिनियम, सामान्य बीमा अधिनियम के विपरीत, उत्तराधिकार के लिए विशिष्ट है।

36. उक्त के आलोक में, वर्तमान याचिका खारिज किए जाने योग्य है और पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय को बरकरार रखा जाना चाहिए।

37. तदनुसार आदेश दिया जाता है।

38. चूँकि यह मुद्दा अत्यंत महत्वपूर्ण है और व्यापक जनसाधारण को प्रभावित कर रहा है, साथ ही यह तथ्य भी है कि विभिन्न उच्च न्यायालयों ने अलग-अलग विचार व्यक्त किए हैं, इसलिए मैं भारत के संविधान की धारा 134-ए के अंतर्गत माननीय सर्वोच्च न्यायालय में अपील का प्रमाण पत्र प्रदान करना उचित समझता हूँ।

(2025) 4 ILRA 56

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल वाद

दिनांक: इलाहाबाद 30.04.2025

माननीय न्यायमूर्ति अश्विनी कुमार मिश्रा,

माननीय न्यायमूर्ति प्रवीण कुमार गिरि

के समक्ष

विशेष अपील संख्या - 652/2024

के साथ

अन्य संबंधित मामले

सचिव, उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा बोर्ड व अन्य **...अपीलकर्ता**

बनाम

त्रिपुरारी दुबे व अन्य **...प्रतिवादी**

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता:

आशीष कुमार (नागवंशी), कुशमंडेय शाही, पंकज कुमार ओझा

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

आलोक कुमार गुप्ता, सी.एस.सी., सत्येंद्र चंद्र त्रिपाठी, शिव पूजन यादव

सेवा विधि-इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियम, 1952-अध्याय VIII, नियम 5-उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा (शिक्षक) सेवा नियमाली, 1981-वेतन की पात्रता-शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009-टीईटी योग्यताएनसीटीई विनियम-प्राथमिक और जूनियर हाई स्कूलों में प्रधानाध्यापक के रूप में कार्य करने वाले सहायक शिक्षक उच्च पद के लिए वेतन पाने के हकदार हैं, बशर्ते कि उनके पास पाँच वर्ष का शिक्षण अनुभव हो, भले ही उनके पास टीईटी योग्यता न हो, बशर्ते कि उनकी नियुक्ति टीईटी आवश्यकता लागू होने से पहले हुई हो। टीईटी प्राप्त करने की सुविधा के लिए राज्य की ओर से किसी औपचारिक तंत्र का अभाव वेतन लाभों से इनकार करने के लिए इस्तेमाल नहीं किया जा सकता। शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 छात्र-शिक्षक अनुपात में बदलाव के कारण प्रधानाध्यापक के मौजूदा पदों को स्वतः समाप्त नहीं करता है; इस तरह के उन्मूलन के लिए स्पष्ट प्रशासनिक पुनर्निर्धारण की आवश्यकता होती है। हालाँकि, सुप्रीम कोर्ट के पर्व निर्णयों के अनुसार वेतन का बकाया रिट याचिका दायर करने से अधिकतम तीन वर्ष पहले तक सीमित है। (पैरा 1 से 20)

अपीलें निस्तारित की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. त्रिपुरारी दुबे एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, रिट-ए संख्या 18228/2022।
2. डॉ. जय प्रकाश नारायण सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, सीएमडब्ल्यूपी संख्या 23627/2014 (2014) 8 एडीजे 617।
4. सचिव उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा परिषद एवं अन्य बनाम त्रिपुरारी दुबे एवं अन्य 57
3. अरिंदम छोट्टोपाध्याय व अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य व अन्य (2013) 4 एससीसी 152 श्रीमती राज किशोरी कुशवाहा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, रिट-ए संख्या 3863/2018
4. मध्य प्रदेश राज्य बनाम आर.डी. शर्मा व अन्य (2022) 2 स्केल 398
5. यूओआई व अन्य बनाम तरसेम, (2008) 8 एससीसी 648
6. बिचित्रानंद बेहरा बनाम उडीसा राज्य व अन्य (2023) एससीसी ऑनलाइन एससी 1307
7. उर्मिला देवी पाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य.(2023) 6 एडीजे (डीबी) एल.डी

(माननीय न्यायमूर्ति अश्वनी कुमार मिश्रा
&
माननीय न्यायमूर्ति प्रवीण कुमार गिरि द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री कुशमंडेय शाही आैर प्रतिवादी-रिट याचिकाकर्ता के वरिष्ठ अधिवक्ता श्री वी.के. सिंह के सहायक श्री आलोक कुमार गुप्ता, श्री सुधीर राणा, श्री कमल कुमार केशरवानी, श्री मान

बहादुर सिंह, श्री अग्निहोत्री कुमार त्रिपाठी, श्री जितेंद्र कुमार यादव, श्री अनुराग शुक्ला और श्री पंकज कुमार ओझा को सुना गया।

2. यह विशेष अपील उत्तर प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा प्रस्तुत की गई है। बेसिक शिक्षा परिषद ने अपने सचिव के माध्यम से विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को चुनौती दी है जिसमें रिट याचिकाकर्ताओं को हेडमास्टर के पद का वेतन दिया गया है जो लंबे समय से इस रूप में काम कर रहे हैं। प्रमुख मामले में, रिट याचिकाकर्ता 2014 से हेडमास्टर के रूप में काम कर रहा है, फिर भी, हेडमास्टर के पद के लिए उसे वेतन का भुगतान नहीं किया गया है। विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेशों के तहत, ऐसे व्यक्ति को उच्च पद के लिए वेतन का हकदार माना गया है जिस पर उसे कार्य करने की अनुमति है। अन्य मामलों में, स्थिति कमोबेश समान है और उन याचिकाओं का निपटारा इस न्यायालय द्वारा **त्रिपुरारी दुबे और अन्य बनाम स्टेट ऑफ़ यू.पी. और अन्य के प्रमुख मामले में रिट-ए संख्या 18228 / 2022** में पारित आदेश के अनुसार किया गया है। विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह निष्कर्ष निकाला है कि रिट याचिकाकर्ता 31.05.2014 से प्रधानाध्यापक के कर्तव्यों का निर्वहन कर रहा है और प्रधानाध्यापक के पद पर नियुक्ति के लिए अन्यथा योग्य है। **डॉ. जय प्रकाश नारायण सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य , सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 23627/2014,** 26 सितंबर 2014 को निर्णीत, 2014(8) एडीजे 617 के साथ-साथ **अरिंदम चट्टोपाध्याय और अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य, (2013) 4 एससीसी 152 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले और रिट-ए संख्या 3863/2018 (श्रीमती राज किशोरी कुशवाहा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**, 07.05.2014 को तय) में इस न्यायालय द्वारा पारित फैसले पर भरोसा किया जाता है।

3. विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष याचिकाकर्ता के दावे का अपीलकर्ताओं द्वारा **मध्य प्रदेश राज्य बनाम आर.डी. शर्मा और अन्य, (2022) 2 स्केल 398** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते हुए विरोध किया गया था। पक्षों के संबंधित दावे की जांच करने के बाद, विद्वान एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका की अनुमति दी है और भुगतान करने के लिए एक परमादेश जारी किया गया है। रिट याचिकाकर्ता को 31.05.2014 से हेडमास्टर के पद के लिए वेतन और बकाया राशि का भुगतान करने का निर्देश दिया गया है।

4. विद्वान एकल न्यायाधीश के फैसले को निम्नलिखित आधारों पर चुनौती दी गई है: (i) कि संबंधित प्राथमिक विद्यालय में हेडमास्टर के पद का निर्धारण शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 (जिसे आगे 'आरटीई अधिनियम 2009' कहा जाएगा) के प्रावधानों द्वारा विनियमित है और अनुसूची के साथ धारा 25 के आधार पर, संस्थान में आवश्यक शिक्षकों की संख्या निर्धारित है। अपीलकर्ताओं का मामला यह है कि अधिकांश प्राथमिक विद्यालयों में छात्रों की संख्या 150 से कम है और जूनियर हाई स्कूलों में छात्रों की संख्या 100 से कम है और इसलिए, हेडमास्टर का कोई पद मौजूद नहीं है और इसलिए, हेडमास्टर के पद के लिए वेतन के भुगतान का सवाल ही नहीं उठता है। यह प्रस्तुत करने के लिए कि अधिकांश संस्थानों में हेडमास्टर के पद की कोई आवश्यकता नहीं है, जिला गोरखपुर के दो ब्लॉकों के संबंध में एक चार्ट रिकॉर्ड पर रखा गया है। प्रधानाध्यापक के पद के लिए वेतन में वृद्धि अस्वीकार्य है; (ii) प्राथमिक और जूनियर विद्यालयों में शिक्षकों

की योग्यता एनसीटीई द्वारा जारी अधिसूचना द्वारा निर्धारित की जाती है। 2011 में एनसीटीई अधिनियम, 1993 में धारा 12ए को शामिल करते हुए एक संशोधन पेश किया गया था, जिसके अनुसार विद्यालयों में शिक्षा के मानकों को बनाए रखने के लिए, एनसीटीई विनियमों द्वारा, किसी भी पूर्व-प्राथमिक, उच्च प्राथमिक, माध्यमिक, उच्चतर माध्यमिक या इंटरमीडिएट विद्यालय या महाविद्यालय में शिक्षक के रूप में भर्ती किए गए व्यक्तियों की योग्यता निर्धारित कर सकता है। हालाँकि, प्रावधान यह निर्धारित करता है कि इस धारा की कोई भी बात एनसीटीई (संशोधन) अधिनियम के लागू होने से ठीक पहले ऐसे संस्थान में भर्ती किए गए किसी भी व्यक्ति के पद पर बने रहने पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालेगी। 12 नवंबर 2014 की एक अधिसूचना का भी हवाला दिया गया है, जिसके अनुसार, शिक्षकों की पदोन्नति के लिए भी प्रथम और द्वितीय अनुसूची में निर्दिष्ट प्रासंगिक न्यूनतम योग्यताएँ लागू होती हैं। इसलिए, यह आग्रह किया जाता है कि प्रधानाध्यापक के पद के लिए अनिवार्य रूप से टीईटी योग्यता उत्तीर्ण करना आवश्यक है, जो रिट याचिकाकर्ताओं के पास नहीं है और इसलिए, (iii) यह भी आग्रह किया गया है कि **डॉ. जय प्रकाश नारायण सिंह (उपरोक्त)** में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा निर्धारित सिद्धांत इस मामले के तथ्यों में लागू नहीं होगा क्योंकि **डॉ. जय प्रकाश नारायण सिंह (उपरोक्त)** का निर्णय एक विश्वविद्यालय से संबंधित है, जबकि वर्तमान मामले में वैधानिक योजना अलग है।

5. दूसरी ओर, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री वी.के. सिंह ने अरिंदम चट्टोपाध्याय एवं अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य एवं अन्य, (2013) 4 एससीसी 152 में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा जताया है; इस न्यायालय द्वारा रिट-ए संख्या 3863/2018 (श्रीमती राज किशोरी कुशवाहा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 07.05.2014 को तय) में पारित निर्णय और डॉ. जय प्रकाश नारायण सिंह (उपरोक्त) का संदर्भ देते हुए कहा कि कानून में यह सिद्धांत अच्छी तरह से स्थापित है कि जहां प्रबंधन किसी व्यक्ति को उच्च पद पर पदोन्नत करता है जिससे संबंधित कर्मचारी द्वारा उच्च पद की जिम्मेदारी का निर्वहन किया जाता है, वह ऐसे पदोन्नत पद के लिए वेतन के भुगतान का हकदार होगा, जब तक कि इस तरह के प्रभाव के लिए कानून में कोई रोक न हो। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि वेतन से इनकार करने वाले ऐसे प्रावधान (यदि यह मौजूद है) का औचित्य और वैधता भी गंभीर संदेह के घेरे में होगी। श्री सिंह ने आगे कहा कि सभी रिट याचिकाकर्ताओं को बोर्ड द्वारा खुली प्रतियोगिता के आधार पर नियुक्त किया गया था और वे सहायक शिक्षक के पद के लिए निर्धारित योग्यता रखते हैं। रिट याचिकाकर्ताओं के पास प्रधानाध्यापक के पद पर नियुक्ति के लिए भी योग्यता है। कहा गया है कि रिट याचिकाकर्ता पहले से ही कार्यरत हैं और उनकी नियुक्ति की तिथि पर टीईटी योग्यता प्राप्त करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। यह प्रस्तुत किया गया है कि यदि राज्य का ऐसा इरादा होता, तो वह याचिकाकर्ताओं से टीईटी योग्यता प्राप्त करने की अपेक्षा कर सकता था, जो राज्य द्वारा नहीं किया गया है। तर्क यह है कि रिट याचिकाकर्ता स्वयं टीईटी योग्यता प्राप्त नहीं कर सकते थे और न ही नियुक्ति के समय इसकी आवश्यकता थी। इसलिए, यह आग्रह किया जाता है कि बोर्ड/राज्य रिट याचिकाकर्ताओं को टीईटी योग्यता प्रदान करने के लिए कोई कदम उठाने में विफल रहा है, इसलिए वह (बोर्ड) इसे उस उच्च पद के लिए वेतन देने से इनकार करने का आधार नहीं बना सकता, जिसकी जिम्मेदारी रिट याचिकाकर्ताओं द्वारा निभाई जा रही है। यह भी आग्रह किया गया है कि बेसिक शिक्षा बोर्ड द्वारा संचालित प्राथमिक और जूनियर हाई स्कूलों में प्रधानाध्यापक का पद लंबे समय से मौजूद है। इस पद पर भी कोई विवाद नहीं है। अपीलकर्ता-राज्य के विद्वान

अधिवक्ता द्वारा अब केवल यही तर्क दिया गया है कि शिक्षा का अधिकार अधिनियम के प्रावधानों के आधार पर, संस्थान में कम पद की आवश्यकता होगी। यह प्रस्तुत किया गया है कि अनुसूची में पद का विवरण, धारा 25 के साथ पढ़ा जाए, आरटीई अधिनियम एक शैक्षणिक संस्थान में आवश्यक न्यूनतम पदों की संख्या प्रदान करता है और यदि पहले से कोई अतिरिक्त पद मौजूद है तो उसे जारी रखने पर रोक नहीं लगाता है। यह भी तर्क दिया गया है कि शैक्षणिक अधिकारियों ने आरटीई अधिनियम के अनुसार पदों का पुनर्निर्धारण करने के लिए कोई कदम नहीं उठाया है और न ही पदों की संख्या कम करने का कोई आदेश पारित किया गया है और इसलिए, केवल आरटीई अधिनियम के तहत पदों की कम आवश्यकता के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता है कि इन संस्थानों में प्रधानाध्यापक सहित शिक्षकों के मौजूदा पद कम हो गए हैं या प्रधानाध्यापक का पद समाप्त हो गया है।

6. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना है और रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्रियों का अवलोकन किया है।

7. यह निर्विवाद है कि सभी रिट याचिकाकर्ताओं को यू.पी. बेसिक शिक्षा (शिक्षक) सेवा नियमावली, 1981 (जिसे आगे 'नियमावली 1981' कहा जाएगा) के प्रावधान के अनुसार बोर्ड द्वारा की गई खुली भर्ती के अनुसरण में सहायक अध्यापक के रूप में नियुक्त किया गया है। सेवा की अवधि नियम 4 में निर्दिष्ट की गई है। शिक्षकों की नियुक्ति के लिए योग्यता नियम8 में निर्धारित है। हालाँकि, यह तय है कि एनसीटीई अधिनियम के तहत जारी अधिसूचनाओं के आधार पर शिक्षकों की योग्यता का निर्धारण एनसीटीई द्वारा जारी अधिसूचना के अनुसार प्रतिस्थापित हो गया है। एनसीटीई के विनियम उन शिक्षकों की रक्षा करते हैं जो टीईटी योग्यता रखने की आवश्यकता वाली जारी की गई अधिसूचना से पहले ही नियुक्त हो चुके हैं।

8. बोर्ड के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि12 नवंबर 2014 की अधिसूचना के अनुसार पदोन्नति के लिए योग्यता एनसीटीई विनियम में निर्दिष्ट होनी चाहिए। प्रधानाध्यापक का पद 1981 के नियमों के तहत एक पदोन्नति वाला पद है। नियम 8(3) प्रधानाध्यापक के पद पर पदोन्नति के लिए पात्रता निर्दिष्ट करता है। नियम के तहत आवश्यकता जूनियर बेसिक स्कूल के स्थायी सहायक शिक्षक के रूप में कम से कम 5 साल पढ़ाने की है। टीईटी रखने की अतिरिक्त आवश्यकता एनसीटीई विनियम, 2010 के कारण अस्तित्व में आई है।

9. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री कुशमंडेय शाही का पहला निवेदन यह है कि इनमें से अधिकांश अध्यापक प्रधानाध्यापक के पद पर नियुक्ति के लिए अपेक्षित योग्यता नहीं रखते हैं, क्योंकि उनके पास टीईटी योग्यता नहीं है।

10. 1981 के नियमों के तहत, प्रधानाध्यापक के पद पर पदोन्नति के लिए सहायक अध्यापक के लिए आवश्यक एकमात्र योग्यता पाँच वर्ष का शिक्षण अनुभव है। यह एक आवश्यक शर्त है और जब तक शिक्षक के पास ऐसी पात्रता नहीं होगी, वह प्रधानाध्यापक के पद पर पदोन्नति के लिए पात्रता का अभाव रखेगा। ऐसा सहायक अध्यापक जिसके पास ऐसा अनुभव नहीं है, स्पष्ट रूप से प्रधानाध्यापक के पद के लिए वेतन पाने का हकदार

नहीं होगा। प्राधिकारी इस समूह में सहायक अध्यापकों के व्यक्तिगत मामलों की जाँच करने और प्रधानाध्यापक के वेतन के भुगतान के उनके दावे को खारिज करने के लिए स्वतंत्र होंगे।

11. एकमात्र अन्य आवश्यकता टीईटी योग्यता रखना है। हम पहले ही देख चुके हैं कि जिस समय रिट याचिकाकर्ताओं की नियुक्ति हुई थी, उस समय सहायक अध्यापक के पद पर नियुक्ति के लिए टीईटी रखना योग्यता नहीं थी। एनसीटीई विनियमों के तहत टीईटी योग्यता के बिना भी सहायक अध्यापकों का बने रहना स्वीकार्य है। याचिकाकर्ता, जो सहायक अध्यापक हैं, पहले से ही राज्य में कार्यरत हैं। एक बार जब 2014 के विनियमों के तहत पदोन्नति के लिए टीईटी की आवश्यकता अनिवार्य कर दी जाती है, तो राज्य को यह सुनिश्चित करना होगा कि बेसिक स्कूलों में मौजूदा शिक्षकों को टीईटी योग्यता प्राप्त करने की अनुमति दी जाए। एनसीटीई विनियमन का उद्देश्य 6 से 14 वर्ष की आयु के छात्रों के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चित करना है। इसलिए राज्य के लिए उचित योजना तैयार करना वांछनीय होगा ताकि सहायक शिक्षकों को टीईटी योग्यता प्राप्त करने की अनुमति मिल सके। चूँकि 2010 से पहले बेसिक स्कूलों में नियुक्त सभी सहायक शिक्षकों के पास टीईटी योग्यता नहीं है, इसलिए ये शिक्षक प्रधानाध्यापक के पद पर नियमित पदोन्नति के लिए भी अयोग्य हो जाएँगे। इसलिए ऐसे सहायक शिक्षकों के लिए टीईटी योग्यता प्राप्त करने की व्यवस्था करना आवश्यक होगा अन्यथा केवल टीईटी के साथ नियुक्त शिक्षक ही पदोन्नति के लिए योग्य होंगे। ऐसे सहायक शिक्षकों को, उनकी कोई गलती न होने पर, पदोन्नति से वंचित करना पूरी तरह से मनमाना होगा। इसलिए, जब तक राज्य टीईटी योग्यता प्राप्त करने के लिए तंत्र प्रदान नहीं करता है, तब तक रिट याचिकाकर्ताओं के प्रधानाध्यापक के पद के वेतन भुगतान के दावे का विरोध करना मुश्किल होगा, केवल इसलिए कि राज्य ने उन्हें टीईटी योग्यता प्राप्त करने का अवसर नहीं दिया है। यह स्वीकार किया जाता है कि मौजूदा शिक्षक अपने दम पर टीईटी योग्यता प्राप्त नहीं कर सकते। एक योग्यता जो राज्य की कार्रवाई पर निर्भर है, अगर किसी मौजूदा शिक्षक को उसे रखने की अनुमति नहीं है, तो प्रधानाध्यापक के पद के लिए वेतन के हकदार होने से इनकार करना अनुचित होगा, भले ही ऐसे सहायक शिक्षक उस क्षमता में काम कर रहे हों। मामले में, अगर हम बोर्ड के रुख को स्वीकार करते हैं तो यह केवल राज्य की चूक पर प्रीमियम लगाने के बराबर होगा। ऐसी परिस्थितियों में, हमारा विचार है कि सहायक शिक्षक जो पांच साल या उससे अधिक का अनुभव रखते हैं और प्रधानाध्यापक के रूप में काम कर रहे हैं, वे इस पद के लिए वेतन के हकदार होंगे।

12. प्रधानाध्यापक के पद के पहलू पर आते हुए, हम पाते हैं कि याचिकाकर्ताओं का यह तर्क कि सभी संस्थानों में पहले से ही प्रधानाध्यापक का पद मौजूद है, गंभीर रूप से विवादित नहीं है। जो कहा गया है वह यह है कि आरटीई अधिनियम के कारण छात्रों की कम उपलब्धता के कारण बड़ी संख्या में स्कूलों में प्रधानाध्यापक की आवश्यकता कम हो गई है धारा25 का अधिदेश और 2009 के अधिनियम की अनुसूची इस प्रकार है:

"धारा 25, समुचित सरकार और स्थानीय प्राधिकरण द्वारा छात्र-शिक्षक अनुपात बनाए रखने का प्रावधान करती है। इस प्रावधान, जिसके अनुसार छात्र-शिक्षक अनुपात छह महीने की अवधि के भीतर बनाए रखा जाना आवश्यक है, और धारा 19 के प्रावधान, जिसके अनुसार अनुसूची में निर्धारित मानदंडों और मानकों

को तीन वर्षों के भीतर पूरा किया जाना चाहिए, के बीच स्पष्ट विरोधाभास को संसद में प्रस्तुत संशोधन विधेयक के माध्यम से ठीक करने का प्रस्ताव है।

इस धारा का परन्तुक यह भी प्रदान करता है कि शिक्षकों को धारा 27 में निर्दिष्ट कार्यों को छोड़कर, गैर-शैक्षणिक कार्यों के लिए तैनात नहीं किया जाएगा, जैसे (i) दशकीय जनसंख्या जनगणना, (ii) आपदा राहत और (iii) संसद, राज्य विधानसभाओं और स्थानीय निकायों के चुनाव।"

13. अनुसूची के साथ धारा 25 का संयुक्त वाचन यह दर्शाता है कि किसी विद्यालय के लिए मानदंड और मानक इस प्रकार निर्धारित किए गए हैं कि किसी संस्थान में शिक्षकों की न्यूनतम संख्या मौजूद हो। शिक्षा का अधिकार अधिनियम लागू करने का मूल उद्देश्य और लक्ष्य यह सुनिश्चित करना है कि छात्रों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान की जाए। ऐसी गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तब तक प्रदान नहीं की जा सकती जब तक किसी संस्थान में आवश्यक न्यूनतम संख्या में शिक्षक उपलब्ध न हों। हालाँकि, अनुसूची के साथ धारा 25 का यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता कि ऐसे संस्थान में पहले से मौजूद पदों की संख्या में वृद्धि होने से स्वतः ही कमी हो जाएगी। यह न तो 2009 के अधिनियम का उद्देश्य है और न ही इसका उद्देश्य है।

14. ऐसी परिस्थितियों में नियोक्ता के लिए एकमात्र स्वीकार्य उपाय यह होगा कि वह न्यूनतम तीन वर्षों की अवधि के लिए छात्रों की उपलब्धता के आधार पर किसी संस्थान में आवश्यक शिक्षकों के पदों का पुनर्निर्धारण करने की कवायद शुरू करे। हालाँकि, अभी तक ऐसा नहीं किया गया है।

15. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री के. शाही ने प्रति-शपथपत्र के साथ संलग्न चार्ट का हवाला देते हुए दिखाया है कि किसी विशेष वर्ष में छात्र संख्या के अनुसार, किसी विशेष ब्लॉक में कुल 160 संस्थानों में से केवल 22 प्रधानाध्यापक के पद उपलब्ध होंगे। मामले के इस पहलू की थोड़ी गहन जाँच की आवश्यकता है। यह सामान्य अनुभव की बात है कि किसी संस्थान में छात्रों की संख्या वर्ष-दर-वर्ष भिन्न हो सकती है। यदि अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क स्वीकार कर लिया जाता है तो जूनियर स्कूल में यदि छात्र संख्या 97 है तो हेडमास्टर का कोई पद नहीं होगा लेकिन यदि संख्या 101 है तो ऐसा पद स्वीकार्य हो जाएगा। प्रत्येक वर्ष छात्रों की संख्या के आधार पर शिक्षकों की संख्या में बदलाव करना एक अव्यवहारिक स्थिति पैदा करेगा। केवल किसी विशेष वर्ष में छात्र संख्या लेकर यह मान लेना कि हेडमास्टर का पद उपलब्ध नहीं है, अतार्किक परिणामों को जन्म देगा। वैसे भी, हमें इस बात से अवगत नहीं कराया गया है कि हेडमास्टर की अनुपस्थिति में भी राज्य द्वारा अपने बुनियादी और प्राथमिक संस्थानों के प्रबंधन के लिए किस प्रणाली का पालन करने का प्रस्ताव है। आमतौर पर, किसी शैक्षणिक संस्थान के लिए कोई पर्यवेक्षण प्राधिकारी होता है। आमतौर पर, यह हेडमास्टर या प्रिंसिपल होता है जिसे संस्थान के मामलों के संबंध में पर्यवेक्षण और निर्णय लेने आदि के कार्य सहित विभिन्न कार्य सौंपे जाते हैं। यहां तक कि अगर किसी विशेष संस्थान में छात्रों की संख्या कम है तो भी संस्थान के स्तर पर शैक्षणिक संस्थान के मामलों की निगरानी के लिए किसी व्यक्ति को कुछ अधिकार देने होंगे। जब तक राज्य कोई विश्वसनीय वैकल्पिक तंत्र नहीं बनाता है जिसमें संस्थान प्रधानाध्यापक के बिना भी काम कर सके, हम यह मानने के लिए इच्छुक होंगे कि संस्थान में प्रधानाध्यापक का ऐसा पद जारी रहेगा।

अन्यथा यह स्वीकार किया जाता है कि सभी संस्थानों में प्रधानाध्यापक लंबे समय से कार्यरत हैं और यह केवल धारा 25 और धारा 25 की अनुसूची के कारण है कि अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क दिया है कि प्रधानाध्यापक का पद अस्तित्व में नहीं है। पूर्वोक्त चर्चा के प्रकाश में मामले की जांच करने के बाद हम श्री शाही के इस तर्क को स्वीकार करने के लिए इच्छुक नहीं हैं कि अनुसूची के साथ आरटीई अधिनियम की धारा 25 के कारण मूल संस्थानों में पहले से जारी प्रधानाध्यापक का पद अचानक समाप्त हो जाएगा। हम यह स्पष्ट करते हैं कि मामले के इस पहलू पर हम विचार नहीं कर रहे हैं और हम संबंधित शैक्षिक प्राधिकारी को इस तथ्यात्मक मुद्दे का निर्धारण करने की स्वतंत्रता प्रदान करते हैं कि याचिकाकर्ता वास्तव में संस्था के प्रधानाध्यापक के पद पर कार्यरत हैं या नहीं। प्रधानाध्यापक के पद के लिए वेतन का भुगतान संबंधित जिले के बेसिक शिक्षा अधिकारी द्वारा व्यक्तिगत दावे की जाँच पर निर्भर करेगा।

16. जिन सहायक अध्यापकों को प्रधानाध्यापक का कार्य करने की अनुमति है, वे सहायक अध्यापक के पद के अतिरिक्त विभिन्न प्रशासनिक एवं पर्यवेक्षी कार्यभार भी संभालते हैं। ऐसे अध्यापकों को जब अतिरिक्त कार्य करने की अनुमति दी जाती है, तो वे वेतन भुगतान के हकदार होंगे। यद्यपि कुछ अलग तथ्यात्मक परिदृश्य में, डॉ. जय प्रकाश नारायण सिंह (उपरोक्त) में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ ने निम्नलिखित टिप्पणी की है:

*"यदि किसी प्रबंधन में स्थानापन्न नियुक्ति करने की कोई शक्ति मौजूद नहीं मानी जाती है, जब किसी प्रिंसिपल के कार्यालय में रिक्ति उत्पन्न होती है, जब तक कि आयोग अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार नियमित नियुक्ति नहीं की जाती है, तो संबद्ध कॉलेजों सहित शैक्षणिक संस्थानों के कामकाज में गंभीर पूर्वाग्रह पैदा हो गया होगा। शैक्षणिक संस्थानों के समुचित संचालन में सार्वजनिक हित का एक महत्वपूर्ण तत्व है और यदि शिक्षा के उद्देश्य को नुकसान नहीं पहुंचना है, तो उस अवधि के दौरान कुछ व्यवस्था करनी होगी जब प्रिंसिपल के कार्यालय में कोई रिक्ति हो। स्थानापन्न नियुक्ति करने की शक्ति राज्य विश्वविद्यालयों के क़ानूनों के प्रावधानों से पता लगाने योग्य है, जो पहले क़ानूनों के क़ानून 10-बी के अनुरूप है।एक बार जब उस शक्ति की प्रकृति को नियमित रूप से चयनित उम्मीदवार उपलब्ध होने तक स्थानापन्न आधार पर नियुक्ति करने की शक्ति के रूप में समझा जाता है, तो ऐसे व्यक्ति को वेतन के भुगतान के दावे को अस्वीकार करने का कोई औचित्य नहीं होगा जिसे स्थानापन्न आधार पर नियुक्त किया गया है। दिनांक 22 नवंबर 1991 से आयोग अधिनियम से धारा 16 को हटाए जाने के बाद विश्वविद्यालय के क़ानून के तहत स्थानापन्न नियुक्ति करने की शक्ति संरक्षित है। क़ानून में ऐसा प्रावधान आयोग अधिनियम के साथ असंगत या प्रतिकूल नहीं होगा ताकि धारा 30 में निहित अधिभावी प्रावधानों को आकर्षित किया जा सके। **<u>जहां किसी व्यक्ति को नियमित रूप से चयनित उम्मीदवार के कार्यभार संभालने तक कार्यवाहक प्रिंसिपल के रूप में नियुक्त किया गया है, इसमें शिक्षक के पद से जुड़े कर्तव्यों और जिम्मेदारियों की तुलना में अधिक महत्व के कर्तव्यों और जिम्मेदारियों को ग्रहण करना शामिल है।</u>**विश्वविद्यालय अधिनियम के कई प्रावधानों में, जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है, उन कर्तव्यों और जिम्मेदारियों का उल्लेख किया गया है जिनका पालन एक प्रधानाचार्य द्वारा किया जाना अपेक्षित है।**<u>अतः, विश्वविद्यालय के नियमों के अंतर्गत कार्यवाहक प्रधानाचार्य के रूप में नियुक्त किया गया</u>***

<u>कोई व्यक्ति, नियमित रूप से चयनित अभ्यर्थी के उपलब्ध होने तक, प्रधानाचार्य के पद से जुड़े वेतन के भुगतान का हकदार होगा।</u>

17. अतः हमारा विचार है कि सहायक अध्यापकों को प्रधानाध्यापक के वेतन से वंचित नहीं किया जाना चाहिए, जबकि वे पिछले कई वर्षों से प्रधानाध्यापक के उच्च पद पर नियमित रूप से कार्य कर रहे हैं।

18. अंत में, अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि 2014 से हेडमास्टर के पद के लिए वेतन का भुगतान करने के लिए विद्वान एकल न्यायाधीश का निर्देश अन्यथा अस्वीकार्य है क्योंकि उच्च पद के लिए वेतन से इनकार करने के संबंध में रिट याचिकाकर्ताओं द्वारा पहले कोई शिकायत नहीं उठाई गई थी और रिट याचिकाएं केवल वर्ष 2022 से 2024 तक दायर की गई हैं। **भारत संघ और अन्य बनाम तरसेम सिंह, (2008) 8 एससीसी 648** में सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर भरोसा किया जाता है, यह तर्क देने के लिए कि रिट याचिकाकर्ताओं के पक्ष में तीन साल की अवधि तक के बकाया के लिए निर्देश जारी किया जा सकता था**। तरसेन सिंह (उपरोक्त)** के फैसले का बाद में **बिचित्रानंद बेहरा बनाम उड़ीसा राज्य और अन्य, 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 1307** में सुप्रीम कोर्ट के फैसले में पालन किया गया है। इस न्यायालय की लखनऊ पीठ ने **उर्मिला देवी पाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य [2023(6) एडीजे (डीबी)(एलबी)]** में भी इसी प्रकार का निर्णय दिया था।

19. हमें श्री के. शाही के इस तर्क में दम लगता है कि बकाया भुगतान का निर्देश यंत्रवत् तरीके से जारी नहीं किया जा सकता था, खासकर जब ऐसे व्यक्तियों द्वारा पहले कोई शिकायत नहीं की गई थी। हालांकि यह कहा गया है कि रिट याचिकाकर्ताओं द्वारा पहले भी अभ्यावेदन दिए गए थे, लेकिन रिट दायर करने तक ऐसी शिकायत पर जोर नहीं दिया गया था, इसलिए हमारा मानना है कि भले ही याचिकाकर्ता लंबे समय तक प्रधानाध्यापक के रूप में कार्यरत रहे हों, बकाया भुगतान का निर्देश रिट याचिका दायर करने से पहले केवल तीन साल तक ही बढ़ाया जा सकता था।

20. ऊपर की गई चर्चाओं और विचार-विमर्श के मद्देनजर विशेष अपील के इस समूह का निम्नलिखित अवलोकन के साथ **निस्तारित** किया जाता है: (i) हम संबंधित जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी को इस तथ्यात्मक मुद्दे की जांच करने और निर्धारित करने की स्वतंत्रता देते हैं कि क्या याचिकाकर्ता के पास पांच साल का अनुभव है और वह वास्तव में संस्थान के प्रधानाध्यापक के रूप में कार्यरत है; (ii) यदि याचिकाकर्ता लंबे समय से प्रधानाध्यापक के पद पर कार्यरत हैं, तो बकाया भुगतान का निर्देश रिट याचिका दायर करने से तीन वर्ष पूर्व तक ही लागू होगा; (iii) हम जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी को यह भी सुनिश्चित करने का अधिकार देते हैं कि जिला स्तर पर, जहाँ तक संभव हो, केवल वरिष्ठ सहायक अध्यापकों को ही शैक्षणिक संस्थान में कार्यभार संभालने की अनुमति दी जाए। इससे कनिष्ठ सहायक अध्यापकों द्वारा कार्यवाहक प्रधानाध्यापक के रूप में कार्य करने के कारण होने वाली परेशानी की संभावना समाप्त हो जाएगी; (iv) इस संबंध में अपेक्षित कार्यवाही दो माह की अवधि के भीतर की जाएगी और उपरोक्त निर्धारण के अनुसार राशि की गणना की जाएगी और बिना किसी और समय गँवाए उसे जारी कर दिया जाएगा।

(2025) 4 ILRA 63

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल वाद

दिनांक: इलाहाबाद, 10.04.2025

माननीय न्यायमूर्ति महेश चंद्र त्रिपाठी

माननीय न्यायमूर्ति प्रशांत कुमार,

के समक्ष

विशेष अपील संख्या - 788/2024

बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी .....अपीलकर्ता

बनाम

डॉ. भक्तिपुत्र रोहतम एवं अन्य .....प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:-
हेम प्रताप सिंह

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:-
प्रियांश

अनुवादित

सेवा विधि-इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियमावली, 1952-अध्याय VIII, नियम 5-बनारस हिंदू विश्वविद्यालय ने एकल न्यायाधीश के उस फैसले को चुनौती दी, जिसमें विश्वविद्यालय को करियर उन्नति योजना (सीएएस) के तहत काल्पनिक पदोन्नति देने और सेवानिवृत्त एसोसिएट प्रोफेसर डॉ. भक्तिपुत्र रोहतम की पुनर्नियुक्ति पर विचार करने का निर्देश दिया गया था। वे दिसंबर 2022 में सेवानिवृत्त हुए और बाद में उन्होंने काल्पनिक पदोन्नति और पुनर्नियुक्ति की मांग की। विश्वविद्यालय ने कार्यकारी परिषद की अनुपस्थिति और 2008 के यूजीसी दिशानिर्देशों पर भरोसा करते हुए उनके अनुरोधों को अस्वीकार कर दिया, जो केवल सेवानिवृत्त प्रोफेसरों के लिए पुनर्नियुक्ति की अनुमति देते हैं, एसोसिएट प्रोफेसरों के लिए नहीं। अदालत ने माना कि कार्यकारी परिषद की अनुपलब्धता या चयन समिति का गठन न होना शिक्षक के दावे पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डाल सकता। एकल न्यायाधीश के फैसले को संशोधित किया गया। डॉ. रोहतम के पदोन्नति के दावे का मूल्यांकन स्क्रीनिंग सह मूल्यांकन समिति के माध्यम से किया जाना चाहिए। चूँकि डॉ. रोहतम ने सेवानिवृत्ति से पहले आवेदन किया था और पात्रता मानदंडों को पूरा करते थे, इसलिए बीएचयू को एक समिति का गठन करना होगा। स्क्रीनिंग-सह-मूल्यांकन समिति उनके दावे की जांच करेगी-यदि पात्र पाया जाता है, तो परिणामी मौद्रिक लाभ के साथ काल्पनिक पदोन्नति- न्यायालय ने स्पष्ट किया कि यूजीसी विनियमन, 2018 का विनियमन 2.1, पुनर्नियुक्ति की अनुमति देते हुए, 2008 के यूजीसी दिशानिर्देशों के अधीन है- पीठ ने नवंबर 2020 से सीएएस

पदोन्नति आयोजित करने में विफल रहने के लिए विश्वविद्यालय की आलोचना की, इसे प्रशासन द्वारा उत्पन्न एक कृत्रिम शून्य कहा- इसने इस बात पर जोर दिया कि कुलपति के पास बीएचयू अधिनियम के तहत समितियों का गठन करने सहित तत्काल स्थितियों में कार्य करने की शक्तियां हैं। (पैरा 1 से 44)

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:

1. सिरसी नगर पालिका बनाम सेसिलिया कॉम फ्रांसिस टेलिस
2. सुखदेव सिंह एवं अन्य बनाम भगतराम सरदार सिंह रघुवंशी एवं अन्य
3. अंबिका क्वारी वर्क्स आदि बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य एवं पुलिस आयुक्त, बॉम्बे बनाम गोरधनदास भाणजी

जूलियस बनाम ऑक्सफोर्ड के लॉर्ड बिशप।

(माननीय न्यायमूर्ति महेश चंद्र त्रिपाठी।

&

माननीय न्यायमूर्ति प्रशांत कुमार,)

1. अपीलकर्ता-प्रतिवादियों के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अजीत कुमार सिंह के सहायक विद्वान अधिवक्ता श्री हेम प्रताप सिंह को और प्रतिपक्षी-याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री संजीव सिंह के सहायक विद्वान अधिवक्ता श्री प्रियांश को सुना गया।

<u>रिट न्यायालय द्वारा पारित आदेश</u>

2. उच्च न्यायालय नियमों के अध्याय VIII नियम 5 के अंतर्गत तत्काल अंतर-न्यायालय विशेष अपील, सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 18332/2023 (डॉ. भक्तिपुत्र रोहतम बनाम बनारस हिंदू विश्वविद्यालय एवं अन्य) में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 13.2.2024 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है, जिसके द्वारा रिट याचिका को स्वीकार कर लिया गया है। बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार और कुलपति द्वारा दिनांक 22.5.2023 और 09.10.2023 को पारित आदेश को रद्द कर दिया गया है और कुलपति को निर्देश दिया गया है कि वे तुरंत एक स्क्रीनिंग-सह-मूल्यांकन समिति गठित करें जो याचिकाकर्ता द्वारा 04.11.2021 को प्रस्तुत स्व-मूल्यांकन आदि के दस्तावेजों की जांच करे और उन्हें छांट ले, जो कैरियर एडवांसमेंट स्कीम प्रमोशन सेल में 05.01.2022 को प्राप्त हुए थे और यह निर्णय ले कि क्या याचिकाकर्ता सीएएस के तहत प्रोफेसर के रूप में पदोन्नत होने के लिए उसके द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों के आधार पर योग्यता के आधार पर पात्र था। आगे यह निर्देश दिया गया कि यदि वह याचिकाकर्ता के दावे के पक्ष में पाता है, तो वह याचिकाकर्ता को पेंशन और अन्य सेवानिवृत्ति देय राशि में संशोधन के लिए प्रोफेसर के ऐसे पदोन्नति पद

के लिए स्वीकार्य वेतन के परिणामी लाभों के साथ काल्पनिक पदोन्नति प्रदान करेगा, जो याचिकाकर्ता द्वारा सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने की तिथि से प्रभावी होगी और तदनुसार पेंशन और अन्य सेवानिवृत्ति देय राशि के अंतर का बकाया भुगतान किया जाएगा। विद्वान एकल न्यायाधीश ने बीएचयू को यह भी निर्देश दिया है कि यदि रिक्ति हो तो याचिकाकर्ता को धर्मागम विभाग, संस्कृत विद्या धर्म विज्ञान संकाय, बीएचयू, वाराणसी में शिक्षक के रूप में पुनः रोजगार प्रदान किया जाए और इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से तीन सप्ताह के भीतर इस संबंध में उचित आदेश पारित किया जाए। तत्काल संदर्भ के लिए, दिनांक 13.02.2024 के निर्णय और आदेश का प्रभावी भाग निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया जाता है:-

".....44. प्रत्युत्तर हलफनामे में पैराग्राफ 12 के तहत दलीलें उठाई गई हैं कि यूजीसी के दिशानिर्देश वैधानिक होने के कारण प्रबल होंगे और यह पुनर्नियुक्ति पर सेवानिवृत्त शिक्षकों को 70 वर्ष की आयु तक सेवा विस्तार प्रदान करता है और प्रत्युत्तर शपथपत्र के पैराग्राफ 13 के तहत यह भी दलील दी गई है कि विभाग में अभी भी पद मौजूद हैं। इस प्रकार, यह दलील दी गई है कि विज्ञापन के बावजूद चयन नहीं हो सका।

45. मैंने पहले ही ऊपर माना है कि यूजीसी विनियम दिशानिर्देशों पर प्रबल होंगे और जब भी दिशानिर्देश विनियमों के विपरीत होते हैं, तो इन दिशानिर्देशों को निरस्त माना जाएगा। इसलिए यदि विनियम सहायक प्रोफेसर और एसोसिएट प्रोफेसर को भी पुनर्नियुक्ति का हकदार मानते हैं, तो याचिकाकर्ता समान रूप से हकदार होगा। चूंकि यह प्रतिवादी-विश्वविद्यालय का मामला नहीं है कि याचिकाकर्ता अपनी योग्यता के आधार पर पुनर्नियुक्ति का हकदार नहीं है, इसलिए यह माना जाता है कि यदि रिक्ति विद्यमान है तो धर्मागम विभाग में शिक्षक के रूप में पुनर्नियुक्ति के लिए हकदार है।

46. इस प्रकार, उपरोक्त के मद्देनजर, रिट याचिका सफल होती है और उसे अनुमति दी जाती है। रजिस्ट्रार और कुलपति द्वारा क्रमशः दिनांक 22.05.2023 और 09.10.2023 को पारित आदेश, जिन्हें रिट याचिका में चुनौती दी गई थी और अनुलग्नक-1 और 2 के रूप में दायर किया गया था, को एतद्द्वारा रद्द किया जाता है और निम्नलिखित निर्देश जारी किए जाते हैं:-

(i) कुलपति तुरंत एक स्क्रीनिंग-सह-मूल्यांकन समिति का गठन करेंगे जो याचिकाकर्ता द्वारा 04.11.2021 को प्रस्तुत स्व-मूल्यांकन आदि के दस्तावेजों की जांच करेगी और उन्हें छांटेगी जो 05.01.2022 को सीएएस पदोन्नति प्रकोष्ठ में प्राप्त हुए थे और यह निर्णय लेंगे कि क्या याचिकाकर्ता सीएएस के तहत प्रोफेसर के रूप में पदोन्नत होने के लिए उसके द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों के आधार पर योग्यता के आधार पर पात्र था और यदि वह याचिकाकर्ता के दावे के पक्ष में पाता है, तो वह याचिकाकर्ता को वेतन के परिणामी लाभों के साथ काल्पनिक पदोन्नति प्रदान करेगा। पेंशन और अन्य सेवानिवृत्ति देय राशियों में संशोधन के लिए प्रोफेसर के ऐसे पदोन्नति पद पर केवल याचिकाकर्ता की अधिवर्षिता की आयु प्राप्त करने की तिथि से ही देय होगा और तदनुसार, पेंशन और अन्य सेवानिवृत्ति देय राशियों के अंतर की बकाया राशि का भुगतान किया जाएगा।

इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से अधिकतम तीन महीने की अवधि के भीतर उचित निर्णय लिया जाएगा।

(ii) प्रतिवादी- विश्वविद्यालय को निर्देश दिया जाता है कि यदि रिक्ति हो तो याचिकाकर्ता को धर्मागम विभाग, संस्कृत विद्या धर्म विज्ञान संकाय, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी में शिक्षक के रूप में पुनर्नियुक्ति दी जाए और इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने के तीन सप्ताह के भीतर उपरोक्त संबंध में उचित आदेश पारित किया जाएगा।

47. लागत आसान बनाई गई।

<u>तथ्यात्मक मैट्रिक्स</u>

3. इस अंतर-न्यायालय अपील को जन्म देने वाले संक्षेप में तथ्य इस प्रकार हैं:

4. अपीलकर्ता-बीएचयू 19153 के अधिनियम संख्या XVI द्वारा अधिनियमित एक केंद्रीय विश्वविद्यालय है। बीएचयू के कर्मचारियों की सेवाएं अधिनियम के साथ-साथ अधिनियम के तहत बनाए गए नियमों और विनियमों द्वारा शासित होती हैं। बीएचयू केंद्रीय विश्वविद्यालय होने के नाते केंद्र सरकार और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा समय-समय पर जारी नियमों, विनियमन, दिशानिर्देशों और कार्यालय ज्ञापन द्वारा भी शासित होता है। बीएचयू की कार्यकारी परिषद, बीएचयू के नियंत्रण के अधीन, कार्यकारी निकाय होगी और बीएचयू के सभी प्रशासनिक मामलों का संचालन करेगी। बीएचयू अधिनियम की धारा 18 (के) के अनुसार, बीएचयू के कर्मचारियों की सेवा के वेतन, नियम और शर्तें कार्यकारी परिषद द्वारा तैयार किए गए अध्यादेश द्वारा शासित होती हैं। बीएचयू अधिनियम की संविधि 14 कार्यकारी परिषद के गठन से संबंधित है। यूजीसी ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम, 1956 की धारा 14 के साथ धारा 26 की उपधारा (I) के खंड (ई) और (जी) के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए और "विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में शिक्षकों और अन्य शैक्षणिक कर्मचारियों की नियुक्ति के लिए न्यूनतम योग्यता और उच्च शिक्षा में मानकों के रखरखाव के उपायों पर यूजीसी विनियम, 2010" को समय-समय पर किए गए सभी संशोधनों के साथ अधिक्रमित करते हुए, "विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में शिक्षकों और अन्य शैक्षणिक कर्मचारियों की नियुक्ति के लिए न्यूनतम योग्यता और उच्च शिक्षा में मानकों के रखरखाव के उपायों पर यूजीसी विनियम, 2018"6 तैयार किया है।

5. विपक्षी याचिकाकर्ता को बीएचयू के आदेश दिनांक 02.11.2006 के तहत बीएचयू, वाराणसी के संस्कृत विद्या धर्म विज्ञान संकाय के धर्मागम विभाग में लेक्चरर/सहायक प्रोफेसर के पद पर नियुक्त किया गया था। बाद में उन्हें दिनांक 30/31.01.2008 के आदेश के तहत उक्त विभाग में लेक्चरर/सहायक प्रोफेसर के पद पर स्थायी कर दिया गया। इसके बाद उन्हें सीएएस के तहत दिनांक 04.11.2018 के आदेश के तहत धर्मागम विभाग में एसोसिएट प्रोफेसर (स्टेज- IV) के पद पर पदोन्नत किया गया और उन्होंने 04.11.2018 को ही कार्यभार ग्रहण कर लिया। बीएचयू शिक्षकों के सीएएस के अनुसार याचिकाकर्ता एसोसिएट प्रोफेसर ग्रेड में 3 साल की सेवा पूरी करने के बाद यानी 04.11.2021 को प्रोफेसर के पद पर पदोन्नति के लिए पात्र थे।

इस प्रकार, उन्होंने दिनांक 21.09.2022 को बीएचयू को विस्तृत अभ्यावेदन दिया। हालाँकि, इस संबंध में कुछ नहीं किया गया। अंततः याचिकाकर्ता 31.12.2022 को एसोसिएट प्रोफेसर (स्टेज-IV) के पद से सेवानिवृत्त हो गए। यह इंगित करना प्रासंगिक है कि उन्हें सत्र लाभ दिया गया और उन्होंने 30.06.2023 तक विभाग में शिक्षण कार्य जारी रखा।

6. याचिकाकर्ता ने दिनांक 14.03.2023 और 09.06.2023 को कुलपति, बीएचयू को दो अभ्यावेदन दिए, जिनमें उन्हें धर्मागम विभाग में प्रोफेसर के पद पर दिनांक 15.03.2023 से पदोन्नत करने का अनुरोध किया गया। सीएएस के तहत 04.11.2021 को नियुक्त किया और आगे उसे विनियम, 2018 के विनियम 2.1 के अनुसार, 70 वर्ष की आयु तक पाँच वर्ष की अवधि के लिए संविदा के आधार पर नियुक्त किया। याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन को प्रतिवादी ने 23.05.2023 को इस आधार पर खारिज कर दिया कि चूँकि याचिकाकर्ता प्रोफेसर के रूप में नहीं, बल्कि एसोसिएट प्रोफेसर के रूप में सेवानिवृत्त हुआ था, इसलिए वह 70 वर्ष की आयु तक संविदा के आधार पर नियुक्ति के लिए विचार किए जाने का हकदार नहीं है। उक्त आदेश को रिट-ए संख्या 11409/2023 (डॉ. भक्तिपुत्र रोहतम बनाम भारत संघ एवं अन्य) में चुनौती दी गई थी। अंततः, उक्त रिट याचिका का निस्तारण 07.08.2023 को कर दिया गया, तथा तत्काल संदर्भ हेतु उसका क्रियाशील भाग निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है:-

"6. इस न्यायालय ने रिट याचिका पर 18.07.2023 को विचार किया और निम्नलिखित आदेश पारित किए -

"वरिष्ठ अधिवक्ता श्री संजीव सिंह, जिनकी सहायता रिट याचिकाकर्ता की ओर से श्री प्रियांश ने की, ने प्रस्तुत किया है कि पांचवें प्रतिवादी, रजिस्ट्रार (प्रशासन) भर्ती एवं मूल्यांकन प्रकोष्ठ, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा पारित दिनांक 22.5.2023 का आदेश तथ्यों और कानून की गलत धारणा पर आधारित है, विशेष रूप से इस तथ्य के मद्देनजर कि यूजीसी विनियमों दिनांक 30.6.2010 के अनुसार, विशेष रूप से "विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में शिक्षकों और अन्य शैक्षणिक कर्मचारियों की नियुक्ति के लिए न्यूनतम योग्यता पर यूजीसी विनियम और उच्च शिक्षा में मानकों के रखरखाव के उपाय, 2010"। खंड 2.3.2 में रिक्त पदों और योग्यता की उपलब्धता के अधीन सहायक प्रोफेसर, एसोसिएट प्रोफेसर और प्रोफेसर जैसे शिक्षकों के लिए सेवानिवृत्ति की आयु के बाद 70 वर्ष की आयु प्राप्त करने तक अनुबंध के आधार पर पुनर्नियुक्ति का प्रावधान है।

वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सिंह के अनुसार, सेवानिवृत्ति की तिथि पर वे एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर थे और इस प्रकार वे उक्त विनियमों के अंतर्गत आते हैं। श्री सिंह के अनुसार, विनियमों के अनुसार वे कानूनी रूप से प्रोफेसर के रूप में पदोन्नति पाने के हकदार थे, लेकिन उन्हें इससे वंचित कर दिया गया, इसलिए उन्हें काल्पनिक पदोन्नति दी जा सकती है और फिर सेवा विस्तार पर विचार किया जा सकता है।

विश्वविद्यालय की ओर से उपस्थित श्री हेम प्रताप सिंह ने यू.जी.सी. के दिनांक 15.2.2008 के दिशानिर्देश का हवाला देते हुए उसके पृष्ठ 2 पर खंड 3 की ओर ध्यान आकर्षित किया है ताकि यह तर्क दिया जा सके कि पात्र श्रेणी के अंतर्गत, पुनर्नियुक्ति के लिए पात्र सेवानिवृत्त शिक्षकों की श्रेणी केवल प्रोफेसर की है,

किसी अन्य पद की नहीं। उनके अनुसार, यू.जी.सी. के दिनांक 15.2.2008 के विनियमों को यू.जी.सी. के दिनांक 30.6.2010 के विनियमों के आधार पर अधिक्रमित नहीं किया गया है।

इस मामले पर विचार की आवश्यकता है।

श्री एच.पी. सिंह ने प्रस्तुत किया है कि वे एक सप्ताह के भीतर प्रति-शपथपत्र दाखिल करेंगे।

इस मामले को 27 जुलाई, 2023 को नए सिरे से प्रस्तुत करें।"

7. इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश के अनुसरण में, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी के विधि अधिकारी द्वारा दिनांक 05.08.2023 को विश्वविद्यालय की ओर से एक प्रति-शपथपत्र दायर किया गया है।

8. श्री संजीव सिंह, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने निर्देशानुसार प्रस्तुत किया है कि वह प्रति-शपथपत्र पर कोई प्रत्युत्तर दायर नहीं करेंगे और उनके अनुसार रिट याचिका पर बिना किसी और प्रतिक्रिया की मांग किए नए चरण में ही निर्णय लिया जाना चाहिए।

9. पक्षों की सहमति और उनके द्वारा दिए गए संयुक्त बयान के साथ कि वे आगे कोई शपथपत्र दायर करने का प्रस्ताव नहीं रखते हैं, रिट याचिका पर नए चरण में निर्णय लिया जा रहा है।

10. श्री संजीव सिंह, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि मामले के दो पहलू हैं, पहला यह तथ्य कि रिट याचिकाकर्ता यूजीसी के नाम और नामकरण द्वारा क्षेत्र को नियंत्रित करने वाले यूजीसी दिशानिर्देशों के अनुसार एसोसिएट प्रोफेसर के पद से प्रोफेसर के पद पर सीएएस के तहत पदोन्नति के लिए विचार किए जाने का हकदार था। विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में शिक्षकों और अन्य शैक्षणिक कर्मचारियों की नियुक्ति के लिए न्यूनतम योग्यता पर विनियमन और उच्च शिक्षा में मानक के रखरखाव के उपाय, 2018 और उनके अनुसार पदोन्नति अभ्यास उक्त विनियमन के अनुसार विशेष रूप से खंड 6.1 के अनुसार किया जाना चाहिए था, जो मूल्यांकन खंड 6.3 से संबंधित है, जो विनियमन के तहत निर्धारित कैरियर उन्नति योजना के तहत पदोन्नति के मानदंडों से संबंधित है और उनके अनुसार खंड 6.3-I चयन समिति द्वारा नियत तारीख से तीन महीने के भीतर अभ्यास किया जाना है, जो कि सीएएस के तहत पदोन्नति दिए जाने वाले उम्मीदवारों की पूर्ति के अधीन है और प्रक्रिया आवेदन प्राप्त होने के छह महीने के भीतर पूरी हो जानी चाहिए। उन्होंने आगे कहा कि यदि उक्त प्रक्रिया को लागू किया गया होता और समयबद्ध अवधि के भीतर पूरा किया गया होता, तो रिट याचिकाकर्ता को स्पष्ट रूप से प्रोफेसर के पद पर पदोन्नति के लिए विचार किया गया होता। 65 वर्ष की आयु प्राप्त करने के बाद 70 वर्ष तक 5 वर्ष की अतिरिक्त अवधि के लिए प्रोफेसर के रूप में सेवा विस्तार पर विचार किया जा रहा है। दूसरा तर्क यह है कि 30 जून, 2010 की यूजीसी अधिसूचना के खंड 2.3.2 और 18 अगस्त, 2018 की यूजीसी अधिसूचना के खंड 2.1 में निहित प्रावधानों के मद्देनजर, जो पहले के प्रावधानों के समान ही है, उनका सेवा विस्तार दिए जाने का वैध दावा है।

11. उक्त दलील का प्रतिवाद करते हुए, दूसरी ओर, विश्वविद्यालय के विद्वान अधिवक्ता श्री हेम प्रताप सिंह ने दलील दी कि रिट याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत दावे कानून की नजर में स्वीकार्य नहीं हैं क्योंकि महज योग्यता हासिल कर लेने से ही पदोन्नति का अधिकार नहीं मिल जाता क्योंकि यह विभिन्न मानदंडों के अधीन है जो विश्वविद्यालय द्वारा अधिनियम और विधियों के अनुसार गठित चयन समिति द्वारा किए जाने वाले मूल्यांकन और रिक्तियों की उपलब्धता पर निर्भर हैं। इस प्रकार, उन्होंने दलील दी कि हालांकि रिट याचिकाकर्ता ने संबंधित योग्यताएं रखने का दावा किया है और हो सकता है कि किसी भी कारण से चयन समिति की बैठक नहीं बुलाई गई हो, लेकिन इससे उसे कोई अविभाज्य अधिकार नहीं मिलता क्योंकि रिट याचिकाकर्ता खुद इस बात से खुश था कि उसे क्या प्रदान किया गया है क्योंकि उसने दो मौकों पर प्रतिनिधित्व करने का दावा किया है लेकिन सेवानिवृत्ति के बाद उसे सत्र लाभ भी दिया गया और अब वह अपने अधिकार का दावा करते हुए रिट क्षेत्राधिकार में आ रहा है। श्री हेम प्रताप सिंह ने आगे कहा कि हालांकि रिट याचिकाकर्ता इस आधार पर विस्तार की मांग कर रहा है कि उसे प्रोफेसर के पद पर पदोन्नत होने का हकदार नहीं बनाया गया था, हालांकि, फिर से यह मुद्दा उठता है, यानी इस तथ्य के संबंध में कि कोई रिक्त स्थान नहीं है ताकि उसे समायोजित करने के लिए एक कमरा दिया जा सके। प्रतिवादी की ओर से पेश हुए श्री सिंह ने आगे तर्क दिया कि हालांकि याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा कानूनी प्रस्ताव पर तर्क दिया जा रहा है कि 2010 के विनियमों के खंड 2.3.2 और 2018 के खंड 2.1 के तहत निहित प्रावधानों के मद्देनजर सहायक प्रोफेसरों, एसोसिएट प्रोफेसरों और प्रोफेसरों को संविदा के आधार पर फिर से रोजगार के लिए विचार किया जाना है और वे क्षेत्र में रहेंगे और मॉडल दिशानिर्देश कोई भूमिका नहीं निभाएंगे क्योंकि नियम वर्ष 2008, 2010 और 2018 के मॉडल दिशानिर्देशों के जारी होने के बाद हैं लेकिन इस स्तर पर इस पर विचार करने की भी कोई बात नहीं होगी।

12. इस स्तर पर, श्री संजीव सिंह, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, जो रिट याचिकाकर्ता के निर्देशों पर उपस्थित होते हैं, प्रस्तुत करते हैं कि रिट याचिकाकर्ता तीसरे प्रतिवादी, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी के कुलपति के समक्ष अपने सभी शिकायतों को उठाते हुए अपना पक्ष प्रस्तुत करेगा, इस प्रकार, वह इस तरह से राहत को सीमित करता है।

13. रिट याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री संजीव सिंह और श्री हेम प्रताप सिंह द्वारा इस तरह की प्रस्तुति किए जाने पर, उन्होंने न्यायालय का ध्यान अनुलग्नक 7 की ओर आकर्षित किया है, जो पृष्ठ 46 से शुरू होकर पेपर बुक के पृष्ठ 51 पर समाप्त होता है, जिसका संदर्भ रिट याचिका के पैराग्राफ 7 में दिया गया है ताकि यह तर्क दिया जा सके कि रिट याचिकाकर्ता का दावा है कि उसने बीएचयू वाराणसी के विजिटर के समक्ष मामले का प्रतिनिधित्व किया है और रिट याचिकाकर्ता द्वारा दो समानांतर कार्यवाहियों की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

14. इस निवेदन पर, श्री संजीव कुमार सिंह ने दलील दी है कि उन्होंने अपनी शिकायत/अभ्यावेदन ईमेल के माध्यम से भेजे हैं और वे इस पर ज़ोर नहीं देना चाहते। उन्होंने दलील दी है कि चूँकि रिट याचिका

पर इस न्यायालय द्वारा ही निर्णय लिया जा रहा है, इसलिए इसे निरर्थक माना जाए। श्री हेम प्रताप सिंह ने दलील दी है कि यदि रिट याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री संजीव सिंह का यही रुख है, तो उन्हें कोई आपत्ति नहीं है। उन्होंने दलील दी है कि रिट याचिकाकर्ता द्वारा तीसरे प्रतिवादी के समक्ष एक नया अभ्यावेदन प्रस्तुत किया जाए, जो सभी कानूनी मुद्दों पर विचार करेगा।

15. अब चूंकि रिट याचिका में ही दिनांक 22.05.2003 के एक आदेश को चुनौती दी गई है, जो रिट याचिकाकर्ता के अनुसार, उल्लिखित कारणों से कोई आधार नहीं रखता है क्योंकि यह केवल 2008 के दिशानिर्देशों को ध्यान में रखता है, जो रिट याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार इस तथ्य के मद्देनजर कोई भूमिका नहीं निभाएगा कि विश्वविद्यालय द्वारा 2010 और 2018 के नियम बनाए गए हैं, इस प्रकार, यह न्यायालय इस राय का है कि रिट याचिका का निस्तारण रिट याचिकाकर्ता को तीसरे प्रतिवादी, कुलपति, बीएचयू, वाराणसी के समक्ष रिट याचिका की स्व-सत्यापित प्रति के साथ एक व्यापक प्रतिनिधित्व प्रस्तुत करने की स्वतंत्रता प्रदान करते हुए किया जाए, जो आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से दो महीने की अवधि के भीतर मामले के प्रत्येक पहलू पर विचार करेंगे।

16. चूंकि एक आदेश को चुनौती दी गई है और श्री हेम प्रताप सिंह सहित संबंधित पक्षों के अनुसार रिट याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन पर निर्णय करते समय चुनौती का विषय बन रहा आदेश आड़े नहीं आएगा क्योंकि तीसरे प्रतिवादी द्वारा स्वतंत्र विचार किया जाएगा, इसलिए, मामले की परिस्थितियों को देखते हुए यह न्यायालय इसे रद्द करने से इनकार कर रहा है लेकिन उक्त आदेश उसमें पारित किए जाने वाले आदेशों के अंतिम परिणाम का पालन करेगा।

17. यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि रिट याचिका पर पक्षों द्वारा दिए गए बयान के आधार पर निर्णय लिया गया है और इस प्रकार, इस आदेश को पारित करने का यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता है कि इस न्यायालय ने मामले के गुण-दोष के आधार पर निर्णय दिया है।

18. उपरोक्त टिप्पणियों के साथ, रिट याचिका का निस्तारण किया जाता है।

7. रिट कोर्ट द्वारा जारी उपरोक्त निर्देश के जवाब में, बीएचयू के कुलपति ने 09.10.2023 के आदेश के तहत याचिकाकर्ता के दावे पर विचार किया और उसे खारिज कर दिया। दिनांक 22.05.2023 और 09.10.2023 के आदेशों को फिर से संबंधित रिट याचिका, रिट-ए संख्या 18332/2023 (डॉ. भक्तिपुत्र रोहतम बनाम बनारस हिंदू विश्वविद्यालय एवं अन्य) में चुनौती दी गई। उक्त रिट याचिका विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष दो राहतों के लिए दायर की गई थी। (I) सीएएस के अंतर्गत पात्रता की तिथि से पदोन्नति और (II) विनियम, 2018 के विनियम 2.1 के अनुसार विभाग में शिक्षक के रूप में पुनर्नियुक्ति। अंततः, उक्त रिट याचिका को दिनांक 13.02.2024 के आदेश द्वारा स्वीकार कर लिया गया, जिस पर इस अंतर-न्यायालय विशेष अपील में आपत्ति की गई है। दिनांक 13.02.2024 के निर्णय के प्रासंगिक अनुच्छेद 44 से 46 इस निर्णय के अनुच्छेद 2 में पहले ही पुनः उद्धृत किए जा चुके हैं।

अनुवादित

<u>अपीलकर्ताओं की ओर से तर्क</u>

8. अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अजीत कुमार सिंह ने दृढ़तापूर्वक तर्क दिया कि विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश स्पष्ट रूप से त्रुटिपूर्ण है और इस प्रकार दिया गया निष्कर्ष विनियम, 2018 के विनियम 2.1, 5, 6, 6.1, 6.2 और 6.3 के भी विपरीत है। मनमाने ढंग से, विद्वान एकल न्यायाधीश ने खंड 5, 6 और 6.2 के अनिवार्य प्रावधानों की भी अनदेखी की है, जो चयन समिति के गठन और चयन प्रक्रिया पर दिशानिर्देशों से भी संबंधित हैं। इसके अलावा, चयन प्रक्रिया को विनियम 2018 में विस्तार से सूचीबद्ध किया गया है, जो न केवल सीधी भर्ती के लिए बल्कि सीएएस के तहत पदोन्नति के लिए भी लागू होगा। सीएएस के तहत उम्मीदवारी पर विचार करने के लिए, चयन समिति का गठन किया जाना है। (संदर्भ विनियम 6.4 सी IV (ii) विनियम, 2018)। यह तर्क दिया गया कि मामले से निपटने के दौरान, विद्वान एकल न्यायाधीश ने कानून में गलती की है और गलत निष्कर्ष लौटाया है, जो विचाराधीन योजना के विपरीत है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि किसी भी तरह से विनियम 2018 के तहत परिकल्पित वैधानिक चयन समिति को दरकिनार नहीं किया जा सकता है, इसलिए विद्वान एकल न्यायाधीश का निर्देश कुलपति को दस्तावेजों की स्क्रीनिंग के लिए स्क्रीनिंग-सह-मूल्यांकन समिति गठित करने का निर्देश देना और यदि उनका दावा अनुकूल लगता है, तो उन्हें परिणामी लाभों के साथ काल्पनिक पदोन्नति दी जाएगी, विनियम, 2018 के विपरीत है।

9. अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि आक्षेपित आदेश पारित करते समय, विद्वान एकल न्यायाधीश ने न केवल पदोन्नति पर विचार करने का निर्देश दिया है, बल्कि मनमाने तरीके से याचिकाकर्ता-विपरीत पक्ष के दावे पर भी विचार करने का निर्देश दिया है उन्होंने दलील दी कि बीएचयू ने प्रति-शपथपत्र दाखिल करते समय स्पष्ट रुख अपनाया था कि नवंबर, 2020 से अब तक विश्वविद्यालय में सीएएस के तहत शिक्षकों की पदोन्नति हेतु कोई चयन समिति गठित नहीं की गई है। जून, 2021 में कार्यकारी परिषद का कार्यकाल समाप्त होने के बाद से अब तक विश्वविद्यालय में कार्यकारी परिषद का गठन नहीं किया गया है। इसलिए, नियुक्ति प्राधिकारी अर्थात कार्यकारी परिषद की अनुपलब्धता के कारण विश्वविद्यालय द्वारा सीएएस के तहत याचिकाकर्ता की पदोन्नति पर विचार नहीं किया जा सका।

10. उन्होंने दृढ़तापूर्वक दलील दी कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने विनियम, 2018 के विनियम 6.3 (V) की व्याख्या में भी ग़लत व्याख्या की है, जिसमें कहा गया है, "सीएएस के तहत पदोन्नति के लिए, आवेदक शिक्षक को चयन समिति द्वारा विचार किए जाने की तिथि तक विश्वविद्यालय/कॉलेज में कार्यरत और सक्रिय सेवा में होना चाहिए। यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि इस मामले में, याचिकाकर्ता 31.12.2022 को ही सेवानिवृत्त हो चुका था। चूँकि वह विश्वविद्यालय के रोल पर नहीं था, इसलिए विद्वान एकल न्यायाधीश का निर्देश पूरी तरह से ग़लत और योजना के विपरीत है।"

11. उन्होंने प्रस्तुत किया कि एक केंद्रीय विश्वविद्यालय होने के नाते, बीएचयू को समय-समय पर यूजीसी अधिनियम के तहत भारत सरकार और यूजीसी द्वारा जारी निर्देशों/दिशानिर्देशों/नियमों का पालन करना होता है, जो कि बीएचयू के अध्यादेश में निहित प्रावधानों के अनुसार सीधी भर्ती या पदोन्नति द्वारा शिक्षण

और गैर-शिक्षण पदों के चयन के लिए है। उन्होंने जोरदार ढंग से तर्क दिया कि यूजीसी दिशानिर्देश, जो वर्ष 2008 में केंद्रीय विश्वविद्यालयों में सेवानिवृत्त शिक्षकों के पुनर्नियोजन के लिए जारी किए गए थे, विनियम, 2018 द्वारा अधिगृहीत नहीं किए गए हैं और अभी भी लागू हैं। सेवानिवृत्त शिक्षकों के पुनर्नियोजन के लिए यूजीसी मॉडल दिशानिर्देश, 20087 और विनियम, 2018 के बीच कोई संघर्ष नहीं है। इसके अलावा, यदि दिशानिर्देश, 2008 चले जाते हैं, तो पूरी तरह से अराजकता और शून्यता होगी। दिशानिर्देश, 2008 और विनियम, 2018 दोनों अलग-अलग क्षेत्र रखते हैं। विद्वान एकल न्यायाधीश का यह मानना उचित नहीं था कि यूजीसी विनियम दिशानिर्देशों पर प्रबल होंगे और जब भी दिशानिर्देश विनियमों के विपरीत होंगे, तो इन दिशानिर्देशों को निरस्त माना जाएगा।

12. उन्होंने आगे दलील दी कि आक्षेपित निर्णय और आदेश के पैरा 45 में दिया गया निष्कर्ष वास्तव में अनुचित था और केंद्रीय विश्वविद्यालयों में इसके बहुत गंभीर परिणाम होंगे। विद्वान एकल न्यायाधीश ने कहीं भी इस बात पर विचार नहीं किया है कि दिशानिर्देश, 2008 सेवानिवृत्त शिक्षकों की पुनर्नियुक्ति और पुनर्नियुक्ति के लिए पात्र सेवानिवृत्त शिक्षकों की पात्रता मानदंडों से संबंधित है। क्रमिक रूप से, उसी का पालन किया गया है और दावे को खारिज करते हुए उन्होंने दिशानिर्देश, 2008 पर भी भरोसा किया है। दिशानिर्देश, 2008 और विनियम, 2018 के बीच कोई संघर्ष नहीं था और दोनों अलग-अलग क्षेत्रों को रखते हैं और इस प्रकार पैरा 45 में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिया गया निष्कर्ष विकृत है।

13. उन्होंने अंत में दलील दी कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने विनियम 2.1 पर ध्यान नहीं दिया, जिसमें यह भी प्रावधान है कि ऐसी सभी पुनर्नियुक्तियाँ यूजीसी द्वारा समय-समय पर निर्धारित दिशानिर्देशों के अनुसार ही होंगी। विनियम 2.1 स्पष्ट रूप से उस स्थिति से संबंधित है, जिसमें रिक्त पदों और योग्यता की उपलब्धता के अधीन, शिक्षकों को सेवानिवृत्ति की आयु के बाद भी संविदा नियुक्ति पर पुनर्नियुक्त किया जा सकता है। इसलिए, उन्होंने प्रस्तुत किया कि ऐसा कोई निर्देश जारी नहीं किया जा सकता है, जो बीएचयू अधिनियम, विश्वविद्यालय के क़ानून और अध्यादेश के विपरीत हो और न ही विश्वविद्यालय को आदेश पारित करने का निर्देश देने वाला ऐसा कोई परमादेश जारी किया जा सकता है, जो सीधे तौर पर विनियम, 2018 के विरोध में हो।

<u>विपक्षी पक्ष की ओर से तर्क</u>

14. इसके विपरीत, याचिकाकर्ता-विपक्षी पक्ष की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री संजीव सिंह ने दृढ़ता से तर्क दिया है कि यह विवाद का विषय नहीं है कि याचिकाकर्ता के पास सभी अपेक्षित योग्यता/अनुभव थे और उन्होंने वह मानक पूरा किया था, जो सीएएस के तहत प्रोफेसर के रूप में विचार किए जाने के लिए आवश्यक है। उनकी उम्मीदवारी पर 04.11.2021 को सीएएस के तहत विचार किया जाना था। अपने दावे के संबंध में, बिना किसी देरी के, उन्होंने विनियम, 2018 के अनुसार एक प्रारूप पर पूरा विवरण प्रस्तुत किया था, जो सीएएस के तहत चयन और मूल्यांकन के लिए आवश्यक है। बेशक आवेदन बीएचयू के चयन और मूल्यांकन सेल में 05.01.2022 को प्राप्त हुआ था। उन्हें सत्र लाभ दिया गया और वे 30.06.2023 तक विभाग में बने

रहे। उन्होंने प्रस्तुत किया कि जब याचिकाकर्ता विभाग में शिक्षा प्रदान कर रहा था, तब सीएएस के तहत पदोन्नति देने के लिए उसने बार-बार अभ्यावेदन किया था लेकिन मनमाने तरीके से विश्वविद्यालय ने याचिकाकर्ता के दावे को खारिज करते हुए दिनांक 22.05.2023 और 09.10.2023 के आदेश पारित किए थे। यही रिट याचिका में चुनौती का विषय था और विद्वान एकल न्यायाधीश ने इस तथ्य पर ध्यान दिया था कि मनमाने तरीके से दावे को खारिज करते हुए बीएचयू ने जानबूझकर केवल दिशानिर्देश 2008 पर ध्यान दिया था। इस प्रकार दिनांक 22.5.2023 और 09.10.2023 के आदेशों को रद्द करते हुए, मामले को विद्वान एकल न्यायाधीश ने याचिकाकर्ता के दावे को स्वतंत्र दिमाग से तय करने के निर्देश के साथ वापस भेज दिया।

15. इस पृष्ठभूमि में, प्रतिपक्ष/याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने तथ्यों और कानून का सही रूप से परीशीलन किया है और पाया है कि याचिकाकर्ता को, उसकी ओर से किसी भी गलती के बिना, सही दावे से वंचित किया गया था, भले ही वह सीएएस के तहत पदोन्नति पाने के योग्य था। उन्होंने प्रस्तुत किया कि यूजीसी ने एक शिक्षक को वित्तीय उन्नयन प्रदान करने के उद्देश्य से योजना और विशेष रूप से विनियम, 2018 तैयार किए थे, जो विभाग में स्थिर है। सीएएस के तहत यदि कोई पदधारी न्यूनतम आवश्यक पात्रता को पूरा करता है, तो शिक्षक के सही दावे को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है।

16. उन्होंने जोरदार ढंग से तर्क दिया कि अपीलकर्ता-प्रतिवादियों द्वारा सही दावे को अस्वीकार करने के लिए केवल यह आपत्ति ली गई थी कि नवंबर, 2020 के बाद विश्वविद्यालय में सीएएस के तहत शिक्षकों की पदोन्नति के लिए कोई चयन समिति गठित नहीं की गई है। केवल कार्यकारी परिषद की अनुपलब्धता के कारण, सीएएस के तहत शिक्षकों की सीधी भर्ती के साथ-साथ पदोन्नति से संबंधित प्रक्रिया पर विचार नहीं किया जा सका। कहीं भी विश्वविद्यालय ने सीएएस के तहत याचिकाकर्ता की पात्रता पर कोई आपत्ति नहीं जताई थी। उन्होंने प्रस्तुत किया कि विश्वविद्यालय में कार्यकारी परिषद के गैर-कार्यशील होने के कारण, याचिकाकर्ता के सही दावे को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। विद्वान एकल न्यायाधीश ने विनियम, 2018 पर भी व्यापक रूप से विचार किया है और माना है कि विश्वविद्यालय द्वारा याचिकाकर्ता को इस आधार पर पदोन्नति से इनकार करना उचित नहीं था कि विश्वविद्यालय में कोई कार्यकारी परिषद कार्यात्मक नहीं थी। कहीं भी अधिनियम या अध्यादेश ऐसा कोई शून्य नहीं बनाता है और बीएचयू के कुलपति भी बीएचयू अधिनियम की धारा 7-सी (5) के तहत पर्याप्त शक्ति का प्रयोग करते हैं। यदि ऐसी कोई आकस्मिक स्थिति उत्पन्न हुई है, जिसके लिए तत्काल कार्रवाई करने की आवश्यकता है, तो कुलपति ऐसी कार्रवाई करेंगे, जैसा वे आवश्यक समझें और अगली बैठक में अनुमोदन के लिए उस प्राधिकारी को रिपोर्ट करेंगे, जो सामान्य तौर पर मामले से का निस्तारण करेगा।

17. इसलिए, उन्होंने दलील दी कि कुलपति द्वारा समय पर निर्णय न लिए जाने और विश्वविद्यालय के कुलपति की गलती के कारण, याचिकाकर्ता को उसकी गलती न होने पर भी दंडित नहीं किया जा सकता। इसके अलावा, विश्वविद्यालय ने इस बारे में कोई स्पष्ट रुख नहीं अपनाया है कि बाधा क्या थी और कुलपति, जो विश्वविद्यालय के कार्यकारी प्रमुख हैं, पर कहां प्रतिबंध लगाया गया था कि वे स्क्रीनिंग कमेटी के गठन का

निर्देश भी नहीं दे सकते थे। उन्होंने दलील दी कि विश्वविद्यालय की आपत्ति पूरी तरह से निराधार है। विनियम, 2018 के तहत उचित दावा स्थापित किया गया था और एक बार गलत अनुमान के आधार पर उचित दावे को अस्वीकार कर दिए जाने के बाद, विद्वान एकल न्यायाधीश ने सही हस्तक्षेप किया था और याचिकाकर्ता के दावे की जांच के लिए मामला विश्वविद्यालय को भेज दिया गया था। विद्वान एकल न्यायाधीश ने तत्काल मामले पर विचार करते हुए विनियम, 2018 के प्रत्येक पहलू पर विचार किया था और ठोस कारणों के साथ आदेश पारित किया है, जिसमें हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

<u>न्यायालय के समक्ष मुद्दे</u>

18. प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियाँ सुनी गईं और अभिलेख का अवलोकन किया गया। पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं के निवेदनों से, हम पाते हैं कि इस न्यायालय के समक्ष विचारार्थ निम्नलिखित मुद्दे उठते हैं:-

"(i) क्या विनियम, 2018 के अंतर्गत याचिकाकर्ता-विपक्षी, पात्र होने की तिथि से सीएएस के अंतर्गत पदोन्नति पाने का हकदार है;
(ii) क्या याचिकाकर्ता-विपक्षी, विनियम, 2018 के विनियम 2.1 के अनुसार विभाग में शिक्षक के रूप में पुनर्नियोजन पाने का हकदार है?

19. मुद्दा संख्या (i)

क्या विनियम, 2018 के अंतर्गत याचिकाकर्ता-विपक्षी, पात्र होने की तिथि से सीएएस के अंतर्गत पदोन्नति पाने का हकदार है;

उच्च शिक्षा में मानकों के रखरखाव और वेतनमानों के संशोधन हेतु विश्वविद्यालय और महाविद्यालय के शिक्षकों और पुस्तकालयाध्यक्षों, शारीरिक शिक्षा और खेल निदेशकों के संवर्गों की नियुक्ति हेतु न्यूनतम योग्यताओं और अन्य सेवा शर्तों के लिए विनियम, 2018 जारी किए गए हैं। सीएएस पदोन्नति मानदंड के अंतर्गत, विनियम, 2018 के अंतर्गत विस्तृत प्रक्रिया प्रदान की गई है। एसोसिएट प्रोफेसर (शैक्षणिक स्तर 13ए) से प्रोफेसर (शैक्षणिक स्तर 14) तक। वर्तमान और नवनियुक्त असिस्टेंट प्रोफेसरों/एसोसिएट प्रोफेसरों/प्रोफेसरों की करियर एडवांसमेंट स्कीम के तहत पदोन्नति के चरणों का विवरण विनियम, 2018 के विनियम 6.4 के अंतर्गत दिया गया है। तत्काल संदर्भ के लिए, विनियम 6.4, जो सीएएस के तहत एसोसिएशन प्रोफेसर (शैक्षणिक स्तर 13ए) से प्रोफेसर (शैक्षणिक स्तर 14) तक पदोन्नति से संबंधित है, निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया गया है:-

C. विश्वविद्यालय शिक्षकों के लिए कैरियर उन्नति योजना (सीएएस)

I. सहायक प्रोफेसर (शैक्षणिक स्तर 10) से सहायक प्रोफेसर (वरिष्ठ वेतनमान/शैक्षणिक स्तर 11)

पात्रता:

i) एक सहायक प्रोफेसर जिसने पीएचडी डिग्री के साथ चार साल की सेवा पूरी कर ली हो या एलएलएम, एम.टेक, एम.वी.एससी. और एम.डी. जैसे व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में एम.फिल./पीजी डिग्री के साथ पाँच साल

की सेवा पूरी कर ली हो, या जिनके पास व्यावसायिक पाठ्यक्रम में पीएचडी/एम.फिल./पीजी डिग्री नहीं है, उनके मामले में छह साल की सेवा पूरी कर ली हो और निम्नलिखित शर्तों को पूरा करता हो:

ii) शिक्षण पद्धति पर 21 दिनों की अवधि के एक अभिविन्यास पाठ्यक्रम में भाग लिया हो;

iii) निम्नलिखित में से कोई एक: कम से कम एक सप्ताह (5 दिन) की अवधि का पुनश्चर्या/शोध पद्धति पाठ्यक्रम/कार्यशाला/पाठ्यक्रम उन्नयन कार्यशाला/प्रशिक्षण शिक्षण-अधिगम-मूल्यांकन, प्रौद्योगिकी कार्यक्रम/संकाय विकास कार्यक्रम पूरा किया हो, या मूल्यांकन अवधि के दौरान एक एमओओसी पाठ्यक्रम (ई-प्रमाणन के साथ) या चार-चतुर्थांशों/एमओओसी पाठ्यक्रम में ई-सामग्री का विकास किया हो; और

iv) मूल्यांकन अवधि के दौरान समकक्ष-समीक्षित पत्रिकाओं या यूजीसी-सूचीबद्ध पत्रिकाओं में एक शोध प्रकाशन प्रकाशित किया हो।

सीएएस पदोन्नति मानदंड:

एक शिक्षक को पदोन्नत किया जाएगा यदि:

i) उसे मूल्यांकन अवधि के पिछले चार/पाँच/छह वर्षों में से कम से कम तीन/चार/पाँच वर्षों की वार्षिक निष्पादन मूल्यांकन रिपोर्ट में 'संतोषजनक' या 'अच्छा' ग्रेड प्राप्त हो (जैसा कि परिशिष्ट II, तालिका 1 में दिया गया है), और;

ii) पदोन्नति की सिफारिश स्क्रीनिंग-सह-मूल्यांकन समिति द्वारा की गई हो।

II. सहायक प्राध्यापक (वरिष्ठ वेतनमान/शैक्षणिक स्तर 11) से सहायक प्राध्यापक (चयन ग्रेड/शैक्षणिक स्तर 12)

पात्रता:

i) सहायक प्राध्यापक जिन्होंने शैक्षणिक स्तर 11/वरिष्ठ वेतनमान में पाँच वर्ष की सेवा पूरी कर ली हो।

ii) संबंधित/संबद्ध/प्रासंगिक विषय में पीएच.डी. की उपाधि।

iii) शैक्षणिक स्तर 11/वरिष्ठ वेतनमान के अंतिम पाँच वर्षों में निम्नलिखित में से कोई दो कार्य किए हों: पुनश्चर्या पाठ्यक्रम/शोध पद्धति/कार्यशाला/पाठ्यक्रम उन्नयन कार्यशाला/शिक्षण-अधिगम-मूल्यांकन/प्रौद्योगिकी कार्यक्रम/संकाय विकास कार्यक्रम की श्रेणियों में से कम से कम दो सप्ताह (दस दिन) अवधि का पाठ्यक्रम/कार्यक्रम पूरा किया हो (या कम से कम दो सप्ताह (दस दिन) अवधि के प्रत्येक पाठ्यक्रम/कार्यक्रम के बदले कम से कम एक सप्ताह (पाँच दिन) अवधि के दो पाठ्यक्रम पूरे किए हों), या, संबंधित विषय में एक एमओओसी पाठ्यक्रम (ई-प्रमाणन के साथ) पूरा किया हो; या 4-चतुर्थांश (कम से कम एक चतुर्थांश) में ई-सामग्री के विकास में योगदान, किसी पाठ्यक्रम के कम से कम 10 मॉड्यूल/एमओओसी पाठ्यक्रम के कम से कम 10 मॉड्यूल के विकास में योगदान/मूल्यांकन अवधि के दौरान एमओओसी पाठ्यक्रम के संचालन में योगदान।

iv) मूल्यांकन अवधि के दौरान समकक्ष-समीक्षित पत्रिकाओं या UGC-सूचीबद्ध पत्रिकाओं में तीन शोध पत्र प्रकाशित किए हों।

सीएएस पदोन्नति मानदंड:

एक शिक्षक को पदोन्नत किया जाएगा यदि:

अनुवादित

i) शिक्षक को मूल्यांकन अवधि के पिछले पाँच वर्षों में से कम से कम चार वर्षों की वार्षिक निष्पादन मूल्यांकन रिपोर्ट में 'संतोषजनक' या 'अच्छा' ग्रेड प्राप्त हो, (जैसा कि परिशिष्ट II, तालिका 1 में निर्धारित है) और;

ii) पदोन्नति की अनुशंसा स्क्रीनिंग-सह-मूल्यांकन समिति द्वारा की जाती है।

III. सहायक प्रोफेसर (चयन ग्रेड/शैक्षणिक स्तर 12) से एसोसिएट प्रोफेसर (शैक्षणिक स्तर 13A)

1) सहायक प्रोफेसर जिसने शैक्षणिक स्तर 12/चयन ग्रेड में तीन वर्ष की सेवा पूरी कर ली हो।

2) संबंधित/संबद्ध/प्रासंगिक विषय में पीएच.डी. की डिग्री।

3) पिछले तीन वर्षों के दौरान निम्नलिखित में से कोई एक: कम से कम दो सप्ताह (दस दिन) अवधि का पुनश्चर्या पाठ्यक्रम/शोध पद्धति कार्यशाला/पाठ्यक्रम उन्नयन कार्यशाला/शिक्षण-अधिगम-मूल्यांकन प्रौद्योगिकी कार्यक्रम/संकाय विकास कार्यक्रम श्रेणियों में से एक पाठ्यक्रम/कार्यक्रम पूरा किया हो (या कम से कम दो सप्ताह (दस दिन) अवधि के प्रत्येक पाठ्यक्रम/कार्यक्रम के बदले कम से कम एक सप्ताह (पाँच दिन) अवधि के दो पाठ्यक्रम पूरे किए हों); या एक एमओओसी पाठ्यक्रम (ई-प्रमाणन के साथ) पूरा किया हो; या 4-चतुर्थांश (कम से कम एक चतुर्थांश) में ई-सामग्री के विकास में योगदान, किसी पाठ्यक्रम के कम से कम 10 मॉड्यूल/एमओओसी पाठ्यक्रम के कम से कम 10 मॉड्यूल के विकास में योगदान/मूल्यांकन अवधि के दौरान किसी एमओओसी पाठ्यक्रम के संचालन में योगदान।

4) समकक्ष-समीक्षित या यूजीसी-सूचीबद्ध पत्रिकाओं में कम से कम सात प्रकाशन, जिनमें से तीन शोध पत्र मूल्यांकन अवधि के दौरान प्रकाशित हुए हों।

5) कम से कम एक पीएच.डी. उम्मीदवार का मार्गदर्शन करने का प्रमाण।

सीएएस पदोन्नति मानदंड:

एक शिक्षक को पदोन्नत किया जाएगा यदि;

i) उसे मूल्यांकन अवधि के पिछले तीन वर्षों में से कम से कम दो वर्षों की वार्षिक निष्पादन मूल्यांकन रिपोर्ट में परिशिष्ट II, तालिका 1 में निर्दिष्ट अनुसार 'संतोषजनक' या 'अच्छा' ग्रेड प्राप्त हो और परिशिष्ट II, तालिका 2 के अनुसार उसका शोध स्कोर कम से कम 70 हो।

ii) इन विनियमों के अनुसार गठित चयन समिति द्वारा पदोन्नति की अनुशंसा की जाती है।

IV. एसोसिएट प्रोफेसर (शैक्षणिक स्तर 13A) से प्रोफेसर (शैक्षणिक स्तर 14)

पात्रता:

1) एक एसोसिएट प्रोफेसर जिसने शैक्षणिक स्तर 13A में तीन वर्ष की सेवा पूरी कर ली हो।

2) संबंधित/संबद्ध/प्रासंगिक विषय में पीएच.डी. की डिग्री।

3) समकक्ष-समीक्षित या यूजीसी-सूचीबद्ध पत्रिकाओं में कम से कम दस शोध प्रकाशन, जिनमें से तीन शोध पत्र मूल्यांकन अवधि के दौरान प्रकाशित हुए हों।

4) डॉक्टरेट उम्मीदवार का सफलतापूर्वक मार्गदर्शन करने का प्रमाण।

5) पदोन्नत किया जाएगा यदि:

सीएएस पदोन्नति मानदंड:

एक शिक्षक को पदोन्नत किया जाएगा यदि;

सत्यापित

i) उसे मूल्यांकन अवधि के पिछले तीन वर्षों में से कम से कम दो वर्षों की वार्षिक निष्पादन मूल्यांकन रिपोर्ट में परिशिष्ट II, तालिका 1 के अनुसार 'संतोषजनक' या 'अच्छा' ग्रेड प्राप्त हो, और परिशिष्ट II, तालिका 2 के अनुसार कम से कम 110 शोध अंक प्राप्त हो।

ii) इन विनियमों के अनुसार गठित चयन समिति द्वारा पदोन्नति की अनुशंसा की जाती है।

V. प्रोफेसर (शैक्षणिक स्तर 14) से वरिष्ठ प्रोफेसर (शैक्षणिक स्तर 15)

सीएएस के तहत एक प्रोफेसर को वरिष्ठ प्रोफेसर के पद पर पदोन्नत किया जा सकता है। पदोन्नति शैक्षणिक उपलब्धि, तीन प्रतिष्ठित विषय-विशेषज्ञों से अनुकूल समीक्षा के आधार पर होगी, जो वरिष्ठ प्रोफेसर के पद से कम रैंक के न हों या कम से कम दस वर्षों का अनुभव रखने वाले प्रोफेसर हों। चयन पिछले 10 वर्षों के 10 सर्वश्रेष्ठ प्रकाशनों और इन विनियमों के अनुसार गठित चयन समिति के साथ बातचीत के आधार पर किया जाएगा।

20. इसमें कोई विवाद नहीं है कि याचिकाकर्ता-विपक्षी ने सीएएस के तहत पदोन्नति हेतु अपनी उम्मीदवारी पर विचार के लिए 04.11.2021 को कुलपति, बीएचयू के समक्ष आवेदन प्रस्तुत किया था, जो स्वीकार्य रूप से संबंधित विभाग अर्थात बीएचयू के चयन एवं मूल्यांकन प्रकोष्ठ में 05.01.2022 को प्राप्त हुआ था। उन्होंने बार-बार अभ्यावेदन दिया और बेदाग ट्रैक रिकॉर्ड के साथ सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त की और बाद में 30.06.2023 तक सत्र लाभ भी प्रदान किया गया। सीएएस के तहत, याचिकाकर्ता का दावा विचार के लिए निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार 04.11.2021 को ही प्रोफेसर के रूप में परिपक्व हो गया था। विनियम 6.2 में प्रावधान है कि चयन समितियों का गठन और चयन प्रक्रिया के साथ-साथ सीधी भर्ती या कैरियर उन्नति योजना के माध्यम से विभिन्न पदों के लिए मूल्यांकन मानदंड और कार्यप्रणाली विनियम, 2018 के अनुसार होगी। विनियम 6.3 में निम्नानुसार प्रावधान है:-

"6.3 इन विनियमों के तहत निर्धारित कैरियर उन्नति योजना के तहत पदोन्नति के मानदंड इन विनियमों की अधिसूचना की तारीख से प्रभावी होंगे। हालांकि, उन संकाय सदस्यों को कठिनाई से बचाने के लिए जो पहले से ही अर्हता प्राप्त कर चुके हैं या मौजूदा विनियमों के तहत जल्द ही अर्हता प्राप्त करने की संभावना रखते हैं, उन्हें मौजूदा विनियमों के तहत पदोन्नति के लिए विचार किए जाने का विकल्प दिया जा सकता है। यह विकल्प इन विनियमों की अधिसूचना की तारीख से केवल तीन वर्षों के भीतर ही इस्तेमाल किया जा सकता है।

21. विनियम 6.3 (I) में प्रावधान है कि एक शिक्षक जो सीएएस के तहत पदोन्नति के लिए विचार किया जाना चाहता है, वह नियत तारीख से तीन महीने पहले विश्वविद्यालय/कॉलेज को लिखित रूप में प्रस्तुत कर सकता है। बेशक, वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता ने विनियमन के तहत आवश्यक विवरण प्रस्तुत किया था, जिसे रिट याचिका के साथ रिकॉर्ड पर भी लाया गया है। काउंटर हलफनामे या तत्काल अपील में कहीं भी बीएचयू ने प्रासंगिक दस्तावेजों को प्रस्तुत करने से इनकार नहीं किया था, जिन पर सीएएस के तहत विचार किया जाना आवश्यक था।

22. विनियम 6.3 (II) में निम्नानुसार प्रावधान है:-

"II. खंड 5.1 से 5.4 में निहित चयन समिति के विनिर्देश संकाय पदों और समकक्ष संवर्गों की सभी सीधी भर्तियों और सहायक प्रोफेसर से एसोसिएट प्रोफेसर, एसोसिएट प्रोफेसर से प्रोफेसर, प्रोफेसर से वरिष्ठ प्रोफेसर (विश्वविद्यालय में) और समकक्ष संवर्गों के लिए कैरियर उन्नति पदोन्नति पर लागू होंगे।

23. विनियमन 6.3 (III) में प्रावधान है कि निचले स्तर से सहायक प्रोफेसर के उच्च स्तर तक सीएएस पदोन्नति विनियमन, 2018 के परिशिष्ट II की तालिका 1 में निर्धारित मानदंडों का पालन करते हुए एक "स्क्रीनिंग-सह-मूल्यांकन समिति" के माध्यम से आयोजित की जाएगी। विनियमन 6.3 (V) में प्रावधान है कि सीएएस के तहत पदोन्नति के लिए, आवेदक शिक्षक को चयन समिति द्वारा विचार की तिथि पर विश्वविद्यालय/कॉलेज की रोल और सक्रिय सेवा में होना चाहिए।

24. इस मामले में अपीलकर्ता विश्वविद्यालय द्वारा इस बात पर बहुत जोर दिया गया है कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने सीएएस के तहत याचिकाकर्ता के दावे पर विचार करने के लिए स्क्रीनिंग-सह-मूल्यांकन समिति को बुलाने का निर्देश देते समय गलती की है, क्योंकि यह स्वीकार किया जाता है कि वह पहले ही सेवानिवृत्त हो चुका था और विश्वविद्यालय की रोल और सक्रिय सेवा में नहीं था और चयन समिति भी नहीं बुलाई जा सकती थी।

25. इस मुद्दे पर निर्णय करते समय, हमने संपूर्ण विनियम, 2018 और सीएएस के उद्देश्य पर ध्यान दिया है, जो कि निचले स्तर से उच्च स्तर पर पदोन्नति प्रदान करना है। मूल्यांकन मानदंड और कार्यप्रणाली के लिए परिशिष्ट की विस्तृत तालिकाएँ भी इसमें दी गई हैं (संदर्भ विनियम, 2018 का विनियम 6.1)। यह योजना सीएएस के तहत बड़े पैमाने पर शिक्षकों को लाभ देने के लिए तैयार की गई है, यदि वे संबंधित मूल्यांकन मानदंडों और कार्यप्रणाली तालिकाओं में निर्दिष्ट बेंचमार्क और न्यूनतम ग्रेडिंग को पूरा करते हैं। इस योजना की संकल्पना बड़े पैमाने पर शिक्षकों को समयबद्ध उन्नयन देने के लिए की गई थी और विश्वविद्यालय या कॉलेजों को समयबद्ध तरीके से सीएएस के तहत आगे नहीं बढ़ने के लिए ऐसा कोई लाभ नहीं दिया गया है। तदनुसार, विनियमन 6.3 (VI) में, यह प्रावधान है कि वह नियत तारीख से तीन महीने पहले ऐसा कर सकता है। इसके बाद, विश्वविद्यालय पात्र उम्मीदवारों से सीएएस पदोन्नति के लिए आवेदन आमंत्रित करते हुए वर्ष में दो बार एक सामान्य परिपत्र भेजेगा। विनियमन 6.3 (VI) उप-खंड (i) में प्रावधान है कि यदि कोई उम्मीदवार न्यूनतम पात्रता अवधि पूरी करने पर पदोन्नति के लिए आवेदन करता है और सफल होता है, तो पदोन्नति की तिथि पात्रता की न्यूनतम अवधि से होगी। विनियमन 6.3 (VI) उप-खंड (ii) में प्रावधान है कि यदि, हालांकि, उम्मीदवार पाता है कि वह बाद की तारीख में परिशिष्ट II की तालिका 1, 2, 4 और 5 में परिभाषित सीएएस पदोन्नति मानदंडों को पूरा करेगा सीएएस के अंतर्गत कल्याणकारी योजना का भी विस्तार किया गया है, जिसका उल्लेख विनियम 6.3 (VI) (iii) में स्पष्ट रूप से किया गया है, जिसके अनुसार, जो उम्मीदवार प्रथम मूल्यांकन

में सफल नहीं होता है, उसका एक वर्ष बाद ही पुनर्मूल्यांकन किया जाएगा। जब ऐसा उम्मीदवार अंतिम मूल्यांकन में सफल हो जाता है, तो उसकी पदोन्नति अस्वीकृति की तिथि से एक वर्ष बाद मानी जाएगी।

26. वर्तमान मामले में, विनियम, 2018 के विनियम 6.3 के अंतर्गत तैयार की गई योजना के अनुसार, ऐसा कोई भी तथ्य अभिलेख में नहीं लाया गया है कि याचिकाकर्ता के पास न्यूनतम पात्रता मानदंड का अभाव था। हमें आश्चर्य है कि एक ओर अपीलकर्ता ने विनियमन 6.3 (V) पर बहुत अधिक भरोसा किया, जो उस स्थिति से निपटता है, जिसमें सीएएस के तहत पदोन्नति के लिए आवेदक शिक्षक को विश्वविद्यालय की सक्रिय सेवाओं में होना चाहिए और दूसरी ओर वे स्वयं अगले शासनादेश से भटक गए थे, जो कि पैरा 6.3 (VI) में विस्तार से दिया गया है, जैसा कि ऊपर बताया गया है, कि उक्त अभ्यास विश्वविद्यालय द्वारा वर्ष में दो बार योग्य उम्मीदवारों से सीएएस पदोन्नति के लिए आवेदन आमंत्रित करने के लिए आयोजित किया जाना है। याचिकाकर्ता 04.11.2021 से सीएएस के तहत पदोन्नति के लिए पात्र था और माना जाता है कि उक्त आवेदन 05.01.2022 को बीएचयू के चयन और मूल्यांकन प्रकोष्ठ में प्राप्त हुआ था। अंततः उन्होंने लगभग 18 महीने बाद यानी 30.06.2023 को विभाग छोड़ दिया। उक्त स्थिति की सराहना नहीं की जा सकती कि शून्य अवधि के दौरान, जब विश्वविद्यालय में कार्यकारी परिषद उपलब्ध नहीं थी, कुलपति के पास विनियम 6.3 (III) के तहत आदेशानुसार स्क्रीनिंग-सह-मूल्यांकन समिति गठित करने का भी अधिकार/शक्ति नहीं थी। इसके अलावा, यह कोई नया चयन नहीं था। सीएएस के तहत, पदोन्नति पूरी तरह से प्रासंगिक मूल्यांकन मानदंडों और कार्यप्रणाली के आधार पर दी जानी है, जैसा कि विनियम, 2018 के तहत तालिकाओं में उल्लिखित और विस्तृत है, और वह भी उम्मीदवार द्वारा स्वयं आवश्यक मूल्यांकन मानदंडों और कार्यप्रणाली के प्रारूप पर प्रस्तुत किया जाना है।

27. हम प्रति-शपथपत्र में विश्वविद्यालय की प्रस्तुति और रुख पर भी ध्यान देते हैं, जिसमें उसने स्वीकार किया है कि सीएएस के तहत पदोन्नति के लिए याचिकाकर्ता का आवेदन 05.01.2022 को प्राप्त हुआ था और नवंबर, 2020 से दिसंबर, 2023 तक विश्वविद्यालय द्वारा सीएएस के तहत पदोन्नति के लिए कोई चयन समिति गठित नहीं की गई थी। हम यह देखने के लिए विवश हैं कि उक्त स्थिति को सुधारने या सुधारने के बजाय, विश्वविद्यालय एक कमजोर बहाना लेकर आया है कि कार्यकारी परिषद की अनुपस्थिति में विश्वविद्यालय कोई स्क्रीनिंग-सह-मूल्यांकन समिति आयोजित करने में विफल रहा है और तदनुसार सीएएस के तहत नवंबर, 2020 से शिक्षकों को कोई लाभ नहीं दिया गया है। तत्काल संदर्भ के लिए, विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष रिट याचिका में बीएचयू द्वारा दायर प्रति-हलफनामे के पैराग्राफ 14, 15 और 16 को निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जाता है:-

"14. विश्वविद्यालय के रिकॉर्ड के अनुसार, एसोसिएट प्रोफेसर के रूप में 3 साल की सेवा पूरी करने के बाद यानी 04.11.2021 को, डॉ. भक्तिपुत्र रोहतम (याचिकाकर्ता) ने करियर एडवांसमेंट स्कीम (जिसे आगे CAS कहा जाएगा) के तहत प्रोफेसर के पद पर पदोन्नति के लिए आवेदन किया। डॉ. भक्तिपुत्र रोहतम (याचिकाकर्ता) का आवेदन 05/01/2022 को भर्ती और मूल्यांकन प्रकोष्ठ, BHU द्वारा प्राप्त हुआ था। CAS

के तहत प्रोफेसर के रूप में पदोन्नति के लिए याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 05/01/2022 को किए गए आवेदन की एक सत्य प्रति इसके साथ दाखिल की जा रही है और इस जवाबी हलफनामे के अनुलग्नक संख्या CA-4 के रूप में चिह्नित की गई है।

15. विश्वविद्यालय के रिकॉर्ड के अनुसार, नवंबर 2020 के बाद से आज तक विश्वविद्यालय में CAS के तहत शिक्षकों की पदोन्नति के लिए कोई चयन समिति आयोजित नहीं की गई है। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि जून 2021 में कार्यकारी परिषद का कार्यकाल समाप्त होने के बाद विश्वविद्यालय का गठन नहीं किया गया है। नियुक्ति प्राधिकारी अर्थात विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद की अनुपलब्धता के कारण सीएएस के तहत याचिकाकर्ता की पदोन्नति के मामले पर विश्वविद्यालय द्वारा विचार नहीं किया जा सका।

16. यह उल्लेख करना उचित है कि जून 2021 में कार्यकारी परिषद का कार्यकाल समाप्त होने के बाद, आज तक विश्वविद्यालय की नई कार्यकारी परिषद का गठन नहीं किया गया है, जिसके कारण सीएएस के तहत शिक्षकों की सीधी भर्ती के साथ-साथ पदोन्नति से संबंधित प्रक्रिया पर विचार नहीं किया जा सका।

28. इस पृष्ठभूमि में, हमें यह मानने में कोई संकोच नहीं है कि विनियम 6.3 (V) के आलोक में विश्वविद्यालय द्वारा उठाई गई आपत्ति विश्वविद्यालय द्वारा स्वयं की गई गलती के कारण टिक नहीं सकती है, जिसमें परिशिष्ट-II की तालिका-1 में निर्धारित मानदंडों के अनुसार निचले स्तर से उच्च स्तर पर सीएएस पदोन्नति पर विचार करने के लिए स्क्रीनिंग-सह-मूल्यांकन समिति का गठन भी नहीं किया गया है। ऐसी स्थिति में, यह सुरक्षित रूप से अनुमान लगाया जा सकता है कि बीएचयू प्रशासन और विशेष रूप से कुलपति द्वारा कृत्रिम रूप से बनाए गए शून्य के लिए, विश्वविद्यालय जिम्मेदार है।

29. विनियम, 2018 के अंतर्गत विस्तृत प्रक्रिया प्रदान की गई है। प्रत्येक विश्वविद्यालय को पात्र अभ्यर्थियों से सीएएस पदोन्नति हेतु आवेदन आमंत्रित करते हुए वर्ष में दो बार सामान्य परिपत्र भेजना सुनिश्चित करना है। किसी भी सामग्री के अभाव में, केवल विनियम 6.3 (V) के आधार पर याचिकाकर्ता के उचित दावे को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है, जबकि विनियम 6.3 (VI) के अंतर्गत दावे पर समयबद्ध विचार का भी प्रावधान किया गया है।

30. यह सर्वविदित है कि जब राज्य या उसके तंत्रों की कार्रवाई नियमों या विनियमों के अनुसार नहीं होती है और किसी क़ानून द्वारा समर्थित नहीं होती है, तो न्यायालय को ऐसे कृत्य को अवैध और अमान्य घोषित करने के लिए अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करना चाहिए। **सिरसी नगर पालिका बनाम सेसिलिया कोम फ्रांसिस टेलिस** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि "अनुपात यह है कि नियम या विनियम प्राधिकारियों पर बाध्यकारी हैं।" **सुखदेव सिंह एवं अन्य बनाम भगतराम सरदार सिंह रघुवंशी एवं अन्य** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की एक संविधान पीठ ने निम्नलिखित टिप्पणी की गई है:-

"वैधानिक प्राधिकारी सेवा की शर्तों से विचलित नहीं हो सकते। नियमों और विनियमों के उल्लंघन में की गई कार्रवाइयों को अमान्य घोषित करने के लिए न्यायालयों द्वारा कानूनी मंजूरी या घोषणा द्वारा किसी भी विचलन को लागू किया जाएगा। क़ानून के तहत नियमों और विनियमों का अस्तित्व उस आचरण के प्रति एक विशिष्ट दृष्टिकोण के साथ नियमित आचरण सुनिश्चित करने के लिए है। विचाराधीन मामलों में वैधानिक नियम कर्मचारियों को एक वैधानिक दर्जा देते हैं और नियोक्ता और कर्मचारी पर शर्तों को बदलने का कोई विकल्प न होने के कारण प्रतिबंध लगाते हैं.....वैधानिक निकायों के मामलों में, वैधानिक निकायों के अवैयक्तिक चरित्र के कारण कोई भी व्यक्तिगत तत्व नहीं होता है.....सार्वजनिक रोजगार या सेवा का तत्व और क़ानून के समर्थन के लिए नियमों और विनियमों का पालन आवश्यक है। वैधानिक निकायों द्वारा आवश्यकताओं का पालन न करने पर न्यायालयों द्वारा नियमों और विनियमों के उल्लंघन में की गई (कार्रवाई) को अमान्य घोषित करके इसे लागू किया जाता है। इस न्यायालय ने बार-बार यह टिप्पणी की है कि जब भी किसी व्यक्ति के अधिकार वैधानिक शक्तियों के तहत लिए गए निर्णय से प्रभावित होते हैं, तो न्यायालय प्राकृतिक न्याय के नियमों का पालन करने और क़ानून द्वारा लगाए गए नियमों और विनियमों के अनुपालन के कर्तव्य के अस्तित्व की कल्पना करें।"

31. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **अंबिका क्वारी वर्क्स आदि बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य10 और पुलिस आयुक्त, बॉम्बे बनाम गोरधनदास भांजी** में भी इसी प्रकार का दृष्टिकोण अपनाया है। दोनों ही मामलों में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **जूलियस बनाम लॉर्ड बिशप ऑफ ऑक्सफोर्ड** में हाउस ऑफ लॉर्ड्स के निर्णय पर भरोसा किया, जिसमें निम्नलिखित टिप्पणी की गई थी:-

"कार्य करने हेतु सशक्त की गई वस्तु की प्रकृति में कुछ हो सकता है, उस उद्देश्य में कुछ हो सकता है जिसके लिए उसे किया जाना है, उस व्यक्ति या व्यक्तियों के अधिकार में कुछ हो सकता है जिनके लाभ के लिए शक्ति का प्रयोग किया जाना है, जो शक्ति को कर्तव्य के साथ जोड़ सकता है, और जिस व्यक्ति को शक्ति सौंपी गई है, उसका यह कर्तव्य हो सकता है कि जब उसे ऐसा करने के लिए कहा जाए तो वह उस शक्ति का प्रयोग करे।"

32. इस पृष्ठभूमि में, हमने विनियम, 2018 का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है और पाया है कि एक ओर तो यह आपत्ति उठाई गई है कि पदधारी का सेवा में/पंजीकृत होना अनिवार्य है, वहीं दूसरी ओर यह सख्त प्रावधान है कि संबंधित योजना का लाभ उठाने के लिए सभी कर्मचारियों को दो बार अनुस्मारक भेजा जाना आवश्यक है। यह सच है कि आवेदन प्रस्तुत करते समय याचिकाकर्ता सेवा में था और उसके बाद 18 महीने से अधिक समय तक संकाय में शिक्षा प्रदान करता रहा। विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद की अनुपस्थिति में यह तर्क दिया गया कि स्क्रीनिंग कमेटी के गठन हेतु कोई सकारात्मक निर्देश जारी नहीं किया जा सका। पुलिस आयुक्त (सुप्रा) मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की:-

"सार्वजनिक प्राधिकारी अपने में निहित शक्तियों के साथ लापरवाही नहीं बरत सकते, और जिन व्यक्तियों के लिए आदेश जारी किए जाते हैं, वे सटीकता और परिशुद्धता के साथ यह जानने के हकदार हैं कि

उनसे क्या करने या न करने की अपेक्षा की जाती है और वास्तव में कौन सा प्राधिकारी आदेश जारी कर रहा है.....सार्वजनिक कारणों और सार्वजनिक लाभ के लिए प्रदान की गई इस प्रकार की सक्षमकारी शक्ति, हमारी राय में, परिस्थितियों की माँग के अनुसार इसका प्रयोग करने के कर्तव्य के साथ जुड़ी हुई है। यह एक ऐसा कर्तव्य है जिससे न तो बचा जा सकता है और न ही इसे टाला जा सकता है, इसके प्रदर्शन को बाध्य किया जा सकता है।"

33. विश्वविद्यालय को विनियम, 2018 के अनुसार कार्य करना होगा, और इसका भार शिक्षक पर नहीं डाला जा सकता, जो इसके योग्य था और उन्नयन के लिए सभी बुनियादी पात्रताओं को पूरा कर रहा था और वह भी केवल वित्तीय उन्नयन की सीमा तक। विनियम, 2018 में शिक्षकों, उनकी साख, उनके कार्य प्रकाशनों आदि का मूल्यांकन करने के उद्देश्य से कड़े प्रावधान शामिल किए गए हैं। ये प्रावधान कल्याणकारी प्रकृति के हैं और यदि उच्च पद पर कोई कैडर रिक्ति उपलब्ध नहीं है, तो सीएएस के तहत वित्तीय लाभ दिया जा सकता है। केवल इस आधार पर उचित दावे को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि याचिकाकर्ता रोल पर नहीं था और इसलिए उसका दावा टिक नहीं सकता।

34. विद्वान एकल न्यायाधीश ने बीएचयू अधिनियम की धारा 7-सी (5) के तहत कुलपति को प्रदत्त शक्तियों पर भी विस्तार से विचार किया है। तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, हम विश्वविद्यालय की मुख्य आपत्ति को स्वीकार करने में असमर्थ हैं कि कार्यकारी परिषद की अनुपस्थिति में, स्क्रीनिंग-सह-मूल्यांकन समिति का गठन नहीं किया जा सका और उक्त अवधि में सीएएस के तहत कोई पदोन्नति नहीं दी जा सकी, जो केवल एक वित्तीय उन्नयन है। हम विश्वविद्यालय के कुलपति को तुरंत स्क्रीनिंग-सह-मूल्यांकन समिति गठित करने का निर्देश देते हुए विद्वान एकल न्यायाधीश के साथ सम्मानपूर्वक सहमति व्यक्त करते हैं।

35. मुद्दा संख्या (ii)

क्या याचिकाकर्ता-विपक्षी विनियम, 2018 के विनियम 2.1 के अनुसार विभाग में शिक्षक के रूप में पुनर्नियुक्ति पाने का हकदार है?

दूसरा मुद्दा व्यापक प्रभाव वाला है। विनियम, 2018 यूजीसी अधिनियम के तहत जारी किया गया है जिसका उद्देश्य विश्वविद्यालय और महाविद्यालयों के शिक्षकों और अन्य शैक्षणिक कर्मचारियों की नियुक्ति के लिए न्यूनतम योग्यता प्रदान करना और उच्च शिक्षा में मानकों को बनाए रखने के उपाय करना है। बीएचयू के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने सेवानिवृत्त शिक्षकों की पुनर्नियुक्ति के लिए यूजीसी द्वारा 15.02.2008 को जारी किए गए मॉडल दिशानिर्देशों पर बहुत अधिक भरोसा किया है। सेवानिवृत्त शिक्षकों की पुनर्नियुक्ति के लिए मॉडल दिशानिर्देश यूजीसी द्वारा तैयार किए गए थे, जिसमें देश भर में लंबे समय से रिक्त पड़े स्वीकृत शिक्षण पदों की संख्या को ध्यान में रखा गया था। इसके कई कारण हो सकते हैं जैसे धन की अनुपलब्धता, भर्ती पर प्रतिबंध, उपयुक्त उम्मीदवारों की अनुपलब्धता, आरक्षित वर्ग के लिए निर्धारित पदों को भरने में कठिनाइयाँ और मुकदमेबाजी से उत्पन्न समस्याएँ। ऐसी स्थिति में, संस्थानों को आवश्यक शैक्षणिक गतिविधियों के लिए

संविदा नियुक्तियों और प्रति व्याख्यान के आधार पर नियोजित शिक्षकों के साथ-साथ शोध छात्रों की सेवाएँ भी लेनी पड़ती थीं। परिणामस्वरूप, ऐसे संस्थान अपने शैक्षणिक कार्यक्रमों की गुणवत्ता और मानकों को बनाए रखने में असमर्थ थे और अपने हितधारकों, विशेषकर छात्रों, की बढ़ती अपेक्षाओं के साथ तालमेल बिठाने में असमर्थ थे।

36. इस पृष्ठभूमि में, यूजीसी ने भी (वर्ष 1990 की शुरुआत में) वैकल्पिक रूप से इस समस्या के समाधान के लिए सेवानिवृत्त शिक्षकों को 65 वर्ष की आयु तक चयनित पुनर्नियुक्ति प्रदान करने की सिफारिश की थी। बाद में, मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने 23.03.2007 की अधिसूचना के माध्यम से, केंद्रीय वित्तपोषित संस्थानों के मामले में सेवानिवृत्ति की आयु 65 वर्ष तक बढ़ा दी है और 70 वर्ष तक पुनर्नियुक्ति का प्रावधान किया है। यूजीसी द्वारा उक्त दिशानिर्देश देश में उच्च शिक्षा प्रणाली में इस सिफारिश के कार्यान्वयन को सुगम बनाने के लिए तैयार किए गए थे। ये आदर्श दिशानिर्देश भारत के विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में सेवानिवृत्त शिक्षकों के पुनर्नियुक्ति हेतु एक रूपरेखा प्रदान करते हैं।

37. अपीलकर्ता विश्वविद्यालय ने यूजीसी के दिनांक 15.02.2008 के पत्र पर अत्यधिक भरोसा किया है, जिसके द्वारा उसने मॉडल दिशानिर्देश, 2008 को मंजूरी दी थी, जिसके तहत पुनर्नियुक्ति के लिए सेवानिवृत्त शिक्षकों की पात्रता मानदंडों पर विचार किया जाना था। यह तर्क दिया गया है कि दिशानिर्देश, 2008 को अभी तक रद्द या निरस्त नहीं किया गया है। दिशानिर्देशों में प्रावधान है कि पुनर्नियुक्ति के लिए पात्र सेवानिवृत्त शिक्षकों की श्रेणी विश्वविद्यालयों के मामले में केवल प्रोफेसर और कॉलेजों के मामले में केवल प्रोफेसर, रीडर और लेक्चरर (चयन ग्रेड) होगी। दिशानिर्देश यह भी प्रदान करते हैं कि संस्थान सेवानिवृत्त शिक्षकों के पुनर्नियोजन के मामलों पर विचार करते समय निम्नलिखित सिद्धांतों का पालन करेगा:-

"क) विश्वविद्यालय विभाग या महाविद्यालय में शिक्षकों के रिक्त पद कम से कम एक वर्ष तक भरे नहीं जाएँगे।

ख) किसी भी समय विश्वविद्यालय विभाग और/या महाविद्यालय में पुनर्नियुक्त किए जाने वाले शिक्षकों की संख्या ऊपर चिन्हित रिक्तियों के 50% तक सीमित होगी...।"

38. इस पृष्ठभूमि में, प्रारंभ में विश्वविद्यालय ने याचिकाकर्ता-विपक्षी पक्ष के दावे को खारिज करते हुए स्पष्ट रुख अपनाया था कि मॉडल उपनियम, 2008 के मद्देनजर याचिकाकर्ता, जो एसोसिएट प्रोफेसर के रूप में सेवानिवृत्त हो चुके हैं, को ऐसी कोई पुनर्नियोजन नहीं दी जा सकती। मॉडल दिशानिर्देश, 2008 विश्वविद्यालय में एसोसिएट प्रोफेसर की ऐसी किसी पुनर्नियोजन की परिकल्पना नहीं करता है, यह केवल महाविद्यालय में ही उपलब्ध है। आदर्श दिशानिर्देश, 2008 सेवानिवृत्त शिक्षकों की पुनर्नियुक्ति से संबंधित हैं और इसमें नियुक्ति की अवधि, चयन मानदंड, पुनर्नियुक्ति प्रक्रिया, पारिश्रमिक और अन्य विशेषाधिकारों के लिए विस्तृत प्रक्रिया प्रदान की गई है।

39. आक्षेपित निर्णय में, विद्वान एकल न्यायाधीश यह समझने में विफल रहे हैं कि विश्वविद्यालय और महाविद्यालयों में शिक्षकों और अन्य शैक्षणिक कर्मचारियों की नियुक्ति के लिए न्यूनतम योग्यता प्रदान करने और उच्च शिक्षा में मानक बनाए रखने के उपायों के लिए आदर्श दिशानिर्देश एक अलग परिप्रेक्ष्य में जारी किए गए थे। विनियम, 2018 के विनियम 2.1 में स्पष्ट रूप से प्रावधान है:-

*"2.1 रिक्त पदों की उपलब्धता और उपयुक्तता के अधीन, केवल सहायक प्रोफेसर, एसोसिएट प्रोफेसर, प्रोफेसर और वरिष्ठ प्रोफेसर जैसे शिक्षकों को सेवानिवृत्ति की आयु के बाद, जैसा कि संबंधित विश्वविद्यालय, महाविद्यालय और संस्थान पर लागू होता है, सत्तर वर्ष की आयु तक अनुबंध नियुक्ति पर पुनर्नियुक्त किया जा सकता है। **बशर्ते कि ऐसी सभी पुनर्नियुक्ति समय-समय पर यूजीसी द्वारा निर्धारित दिशानिर्देशों के अनुसार सख्ती से की जाएगी।**"*

(प्रभाव वर्धित)

40. उपर्युक्त प्रावधान के मात्र अवलोकन से यह स्पष्ट है कि भले ही विनियम, 2018 के तहत कोई विस्तृत प्रक्रिया नहीं दी गई है। यह प्रदान करता है कि रिक्त पदों की उपलब्धता और उपयुक्तता के अधीन, शिक्षकों को सेवानिवृत्ति की आयु के बाद अनुबंध नियुक्ति पर फिर से नियोजित किया जा सकता है, जैसा कि संबंधित विश्वविद्यालय, कॉलेज और संस्थान पर लागू है, सत्तर वर्ष की आयु तक और इस तरह की सभी पुनर्नियुक्ति समय-समय पर यूजीसी द्वारा निर्धारित दिशानिर्देशों के अनुसार सख्ती से होगी।

41. हम पाते हैं कि विद्वान एकल न्यायाधीश दिशानिर्देश, 2008 में अंतर करने में विफल रहे, जिसमें सेवानिवृत्त शिक्षकों के पुनर्नियुक्ति के लिए विस्तृत प्रक्रिया प्रदान की गई है, जबकि विनियम, 2018 को अलग संदर्भ में जारी किया गया है। कहीं भी विद्वान एकल न्यायाधीश ने इस मामले से निपटा नहीं है कि किसी भी विस्तृत दिशानिर्देशों के अभाव में, कौन सी पद्धति अपनाई जाए और किस मोड/विधि से सेवानिवृत्त शिक्षकों को फिर से नियोजित किया जा सकता है। एक बार जब बीएचयू ने स्पष्ट रुख अपना लिया है कि अभी भी मॉडल दिशानिर्देश, 2008 लागू है, तो हमें यह कहने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि विनियम, 2018 पूरी तरह से अलग स्थिति से निपटता है। याचिकाकर्ता-विपक्षी ने यूजीसी द्वारा जारी कोई दिशानिर्देश नहीं रखा था, जो सेवानिवृत्त शिक्षकों के पुनर्नियोजन से संबंधित है। ऐसी स्थिति में, इस संबंध में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा आक्षेपित निर्णय के पैरा 45 में दिए गए तर्क और टिप्पणियां टिक नहीं सकती हैं।

42. इसे दूसरे पहलू से देखा जा सकता है कि यदि यूजीसी द्वारा तैयार किए गए मॉडल दिशानिर्देश, 2008 समाप्त हो जाते हैं, तो इस संबंध में कोई अन्य विस्तृत प्रावधान नहीं रहेंगे। एक बार जब बीएचयू ने स्पष्ट रुख अपना लिया है कि पुनर्नियोजन दिशानिर्देश, 2008 के आलोक में दिया जाता है, तो हमें यह कहने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि आक्षेपित निर्णय के पैरा 45 में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए कारण कि यदि विनियमों और उसके तहत बनाए गए दिशानिर्देशों के बीच संघर्ष है, तो निश्चित रूप से विनियम

प्रबल होंगे, टिक नहीं पाएंगे। तथ्यों और परिस्थितियों के अनुसार, चूँकि दिशानिर्देश, 2008 और विनियम, 2018 अलग-अलग हैं और विभिन्न परिस्थितियों से निपटते हैं, वास्तव में दोनों के बीच कोई विरोधाभास नहीं है।

निष्कर्ष

43. ऊपर दिए गए दोनों मुद्दों पर विचार करते हुए, हम पाते हैं कि विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पैरा 46 (I) में जारी निर्देश के मद्देनजर, जिसमें उन्होंने स्क्रीनिंग-सह-मूल्यांकन समिति के गठन का निर्देश दिया था, यदि समिति याचिकाकर्ता-विपक्षी को सीएएस के तहत प्रोफेसर के रूप में लाभ प्रदान करती है, तो उसके लिए विभाग में कोई रिक्ति उपलब्ध होने पर, अनुबंध के आधार पर पुनर्नियुक्ति के लिए आवेदन करने का हमेशा विकल्प खुला है।

44. उपरोक्त के मद्देनजर, दिनांक 13.02.2024 का आक्षेपित निर्णय और आदेश संशोधित किया जाता है। विशेष अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है।

(2025) 4 ILRA 82

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल वाद

दिनांक: इलाहाबाद 29.04.2025

माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान,

के समक्ष

रिट ए संख्या - 1558/2025

आवेश... **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश आवास एवं विकास परिषद लखनऊ एवं अन्य **...प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

अपूर्व तिवारी, अजीत सिंह, गिरधारी लाल यादव, विवेक कुमार

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

रमा पति शुक्ला

क. सेवा विधि - उत्तर प्रदेश आवास एवं विकास परिषद (सेवा शर्तें) विनियम, 1996 - विनियम 27(10) - अनुशासनात्मक कार्यवाही - जाँच समाप्त हुई - जाँच रिपोर्ट के निष्कर्षों से असहमत होने पर, अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने पुनः जाँच के निर्देश दिए - अनुमति - धारित किया गया, विनियम, 1966 के विनियम 27(10)

अनुवादित

(i) (a) में स्पष्ट रूप से यह प्रावधान है कि यदि अनुशासनात्मक प्राधिकारी जाँच अधिकारी के निष्कर्षों से असहमत है, तो वह असहमति पर कारण बताओ नोटिस जारी कर सकता है और आरोपित कर्मचारी के आरोपों और उत्तर पर विचार करते हुए, जैसा वह उचित समझे, कोई भी उचित दंड आदेश पारित कर सकता है, लेकिन पुनः जाँच का प्रावधान नहीं किया गया है - उच्च न्यायालय ने प्रतिवादी को सेवा में बहाल करने और वेतन का भुगतान करने का निर्देश देने वाले दंड आदेश को रद्द कर दिया। (अनुच्छेद 15 और 18)

रिट याचिका स्वीकृत। (ई-1)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:-

1. के.आर. देब बनाम केंद्रीय उत्पाद शुल्क कलेक्टर, शिलांग; 1971 (2) एससीसी 102
2. कनाईलाल बेरा बनाम यू.ओ.आई. और अन्य; (2007) 11 एससीसी 517
3. यू.ओ.आई. और अन्य बनाम पी. त्यागराजन; 1998 एसयूपीपी 3 एससीआर 114

(माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अपूर्व तिवारी और प्रतिपक्षी के विद्वान अधिवक्ता श्री राम पति शुक्ला (आर.पी. शुक्ला) को सुना गया।

2. प्रतिपक्षी के विद्वान अधिवक्ता श्री आर.पी. शुक्ला ने प्रति-शपथपत्र दाखिल किया है, उसे अभिलेख में दर्ज कर लिया गया है और उसका प्रत्युत्तर शपथपत्र पहले ही दाखिल किया जा चुका है, जो अभिलेख में है।

3. इस रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने निम्नलिखित राहतों के लिए प्रार्थना की है:-

"*(क) रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 1 में निहित प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पारित दिनांक 21.01.2025 के आक्षेपित आदेश को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना;*
(ख) प्रतिवादियों से मूल प्रति तलब करने के बाद, प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पारित दिनांक 22.02.2024 के आक्षेपित कार्यालय आदेश को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना;
(ग) प्रतिवादी संख्या 2 को याचिकाकर्ता को सेवा में बहाल करने और याचिकाकर्ता के निलंबन की अवधि के लिए उसे पूरा वेतन देने का आदेश देने के लिए परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना।"

4. जहाँ तक रिट याचिका की प्रार्थना संख्या (ख) का संबंध है, श्री आर.पी. शुक्ला ने निर्देशों के आधार पर सूचित किया है कि दिनांक 22.02.2024 के आदेश द्वारा केवल इतना ही निर्देश दिया गया है कि वर्तमान मामले में प्रथम जाँच रिपोर्ट को अपास्त करते हुए, शिकायतकर्ता के दिनांक 09.01.2024 के अभ्यावेदन, जो

प्रति-शपथपत्र के अनुलग्नक संख्या CA-1 के रूप में प्रस्तुत किया गया है, पर विचार करते हुए याचिकाकर्ता के विरुद्ध पुनः जाँच की जाए। यद्यपि, दिनांक 22.02.2024 के आदेश की प्रति प्रति-शपथपत्र के साथ संलग्न नहीं की गई है।

5. इस न्यायालय ने प्रवेश की पहली तिथि अर्थात 06.02.2025 को निम्नलिखित आदेश पारित किया:-

"सुना गया।

चुनौती दिनांक 21.01.2025 के आदेश पर है, जिसकी एक प्रति रिट याचिका के अनुलग्नक 1 में है जिसके द्वारा याचिकाकर्ता को निलंबित कर दिया गया है। चुनौती दिनांक 22.02.2024 के कार्यालय आदेश पर भी है। अनावश्यक विवरण को छोड़कर, तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता कार्यकारी अभियंता के पद पर कार्यरत होने का दावा करता है। याचिकाकर्ता के खिलाफ एक महिला द्वारा शिकायत प्रस्तुत की गई थी। उक्त शिकायत के अनुसरण में, मामले को कार्यस्थल पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न (रोकथाम, निषेध और निवारण) अधिनियम, 2013 (जिसे आगे "अधिनियम, 2013" कहा जाएगा) के अनुसार गठित समिति को भेज दिया गया था। समिति ने दिनांक 16.05.2023 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसकी एक प्रति अनुलग्नक में है। रिट याचिका की धारा 6 के तहत याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप सिद्ध नहीं हुए।

इसके बाद, समिति में बदलाव के साथ, 30.08.2023 की एक और रिपोर्ट प्रस्तुत की गई, जिसकी एक प्रति रिट याचिका के अनुलग्नक 8 में है, जिसमें आरोप पत्र सिद्ध पाए गए हैं।

इसके बाद, याचिकाकर्ता को 12.10.2023 का आरोप पत्र जारी किया गया, जिसकी एक प्रति रिट याचिका के अनुलग्नक 9 में है। 23.01.2024 की एक जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की गई, जिसकी एक प्रति रिट याचिका के अनुलग्नक 11 में है, जिसमें याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप सिद्ध नहीं पाए गए।

इसके बाद, 30.04.2024 के आदेश के तहत, जिसकी एक प्रति रिट याचिका के अनुलग्नक 12 में है, शिकायतकर्ता/महिला द्वारा शिकायत प्रस्तुत किए जाने पर, एक नए सिरे से जांच का निर्देश दिया गया। पैराग्राफ में दिए गए कथनों के अनुसार रिट याचिका की धारा 21 के तहत, जाँच रिपोर्ट प्रस्तुत की गई जिसमें याचिकाकर्ता को पुनः दोषमुक्त कर दिया गया है। यह भी तर्क दिया गया है कि 22.02.2024 के आदेश द्वारा, पहली जाँच रिपोर्ट को रद्द कर दिया गया था और एक नई जाँच का निर्देश दिया गया था।

अब, 21.01.2025 के आक्षेपित आदेश द्वारा, शिकायतकर्ता द्वारा पूर्व में प्रस्तुत की गई शिकायत के अनुसरण में याचिकाकर्ता के विरुद्ध विभिन्न आरोप लगाते हुए शिकायत प्रस्तुत किए जाने पर, याचिकाकर्ता को निलंबित कर दिया गया है और जाँच अधिकारी को आरोपों की जाँच के बाद एक नई जाँच रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए कहा गया है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि सेवा नियम, जिनके अंतर्गत याचिकाकर्ता शासित है, अर्थात् उत्तर प्रदेश आवास एवं विकास परिषद (सेवा शर्तें) विनियम, 1966 (जिसे आगे "विनियम, 1966" कहा जाएगा) में विनियम, 1966 के नियम 27 के अंतर्गत निर्धारित पूरी प्रक्रिया निहित है, जो अनुशासनात्मक प्राधिकारी को नए सिरे से जांच के लिए निर्देश के तहत है।

के.आर. देब बनाम आबकारी कलेक्टर- (1971) 2 एससीसी 102 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ के फैसले पर भी भरोसा किया गया है, जिसमें कहा गया है कि सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि

अनुशासनात्मक प्राधिकारी को तब तक एक के बाद एक जांच करने की अनुमति नहीं दी जा सकती जब तक कि किसी दोषी कर्मचारी के खिलाफ आरोप साबित न हो जाएं।
प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता श्री सम्पूर्णा नन्द शुक्ला ने प्रार्थना की है कि उन्हें इस मामले में निर्देश प्राप्त करने तथा यह बताने के लिए एक सप्ताह का समय दिया जाए कि कानून के किन प्रावधानों के तहत, विशेष रूप से विनियम, 1966 को ध्यान में रखते हुए, अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोपों की नए सिरे से जांच करने का निर्देश दिया है।
इसके बाद नए सिरे से सूचीबद्ध करें।"

6. उपरोक्त आदेश में, न्यायालय का विशिष्ट कानूनी प्रश्न यह था कि क्या अनुशासनात्मक प्राधिकारी को उन आरोपों की नए सिरे से डेनोवो जांच करने का निर्देश देने के लिए अधिकृत करने वाला कोई कानूनी प्रावधान है, जिनमें जांच पहले ही समाप्त हो चुकी है।

7. प्रति-शपथपत्र में, ऐसा कोई प्रावधान उद्धृत या दिखाया नहीं गया है क्योंकि न तो कोई सामग्री और न ही उस आशय का कोई कानूनी प्रावधान दिखाया या संलग्न किया गया है।

8. श्री अपूर्व तिवारी ने इस न्यायालय का ध्यान रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 2 की ओर आकर्षित किया है, जो कि यू.पी. आवास एवं विकास परिषद (सेवा की शर्तें) विनियम, 1996 (जिसे आगे "विनियम, 1966" कहा जाएगा) है। विनियम, 1966 के नियम 27 में प्रमुख दंड लगाने की प्रक्रिया प्रदान की गई है। इसके अवलोकन से पता चलता है कि नियम 27 प्रमुख दंड लगाने की प्रक्रिया के संबंध में एक पूर्ण संहिता है। वर्तमान विवाद के लिए प्रासंगिक विनियमन नियमन 27 (10) होगा, जो इस प्रकार है:-

"27 (10) (i) यदि अनुशासनात्मक प्राधिकारी, आरोपों पर अपने निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए, इस राय का है कि विनियमन 25 के खंड (ई) से (जी) में निर्दिष्ट कोई भी दंड लगाया जाना चाहिए, तो वह-

(ए) अधिकारी या कर्मचारी को जांच प्राधिकारी की रिपोर्ट की एक प्रति प्रदान करेगा और जहां अनुशासनात्मक प्राधिकारी जांच प्राधिकारी नहीं है, जांच प्राधिकारी के निष्कर्षों से असहमति के संक्षिप्त कारणों, यदि कोई हो, के साथ निष्कर्षों का विवरण; और
(बी) उसे एक नोटिस देगा जिसमें उसके संबंध में की जाने वाली प्रस्तावित कार्रवाई का उल्लेख होगा और उसे एक निर्दिष्ट समय के भीतर प्रस्तावित कार्रवाई के खिलाफ ऐसा प्रतिनिधित्व प्रस्तुत करने के लिए कहा जाएगा जैसा वह करना चाहता हो।
(ii) अनुशासनात्मक प्राधिकारी, खंड (i) के तहत नोटिस के जवाब में अधिकारी या कर्मचारी द्वारा किए गए अभ्यावेदन पर विचार करेगा, यदि कोई हो और यह निर्धारित करेगा कि अधिकारी या कर्मचारी पर क्या दंड, यदि कोई हो, लगाया जाना चाहिए और मामले में उचित आदेश पारित करेगा।

9. विनियम, 1996 के विनियम 27 (10) (i) (a) में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि जांच रिपोर्ट के निष्कर्षों पर असहमति के मामले में, अनुशासनात्मक प्राधिकारी प्रभारी कर्मचारी से स्पष्टीकरण मांगते हुए ऐसी असहमति पर कारण बताओ नोटिस जारी कर सकता है, लेकिन यह प्रावधान अनुशासनात्मक प्राधिकारी को डेनोवो जांच के लिए निर्देश देने की अनुमति नहीं देता है।

10. वर्तमान मामले में, भले ही शिकायतकर्ता के दिनांक 09.01.2024 के अभ्यावेदन को डेनोवो जांच के लिए निर्देश देने का एक कारण माना जाता है, जिसे जांच पूरी होने के बाद निर्देशित नहीं किया जाना चाहिए था क्योंकि जांच 23.01.2024 को समाप्त हो गई थी। अनुशासनात्मक प्राधिकारी जांच अधिकारी से ऐसे अभ्यावेदन पर विचार करने के लिए कह सकता था 09.01.2024 को जांच कार्यवाही समाप्त करते समय शिकायतकर्ता को एक पत्र भेजा गया था, लेकिन 23.01.2024 को जांच कार्यवाही समाप्त होने के बाद 21.01.2025 के निलंबन आदेश के साथ डेनोवो जांच के लिए निर्देश जारी करना कानून के तहत स्वीकार्य नहीं है। श्री अपूर्व तिवारी का उपरोक्त तर्क सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा के.आर. देब बनाम केंद्रीय उत्पाद शुल्क कलेक्टर, शिलांग के मामले में दिए गए आदेश के मद्देनजर पुष्ट होता है, जिसकी रिपोर्ट 1971 (2) एससीसी 102 में दी गई थी। इसके पैरा 11, 12 और 13 का उल्लेख श्री तिवारी ने किया है, जो इस प्रकार हैं:-

"11. वर्गीकरण एवं नियंत्रण नियमों का नियम 15(1) इस प्रकार है:

"(1) लोक सेवक (जांच) अधिनियम, 1950 के प्रावधानों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, नियम 13 के खंड (iv) से (vii) में निर्दिष्ट किसी भी दंड को किसी सरकारी कर्मचारी पर अधिरोपित करने का कोई भी आदेश, यथासम्भव, इसके बाद दिए गए तरीके से की गई जांच के बाद ही पारित किया जाएगा।"

नियम 15 का खंड (2) आरोपों को तैयार करने और सरकारी कर्मचारी को उन आरोपों के विवरण के साथ लिखित रूप में संप्रेषित करने का प्रावधान करता है जिन पर वे आधारित हैं, और यह बचाव में लिखित बयान का भी प्रावधान करता है। खंड (3) के तहत, सरकारी कर्मचारी कुछ अपवादों के अधीन, ऐसे सरकारी अभिलेखों का निरीक्षण करने और उनसे उद्धरण लेने का हकदार है, जैसा वह निर्दिष्ट कर सकता है। खंड (4) के अधीन, बचाव पक्ष का लिखित कथन प्राप्त होने पर, अनुशासनात्मक प्राधिकारी स्वयं ऐसे आरोपों की जाँच कर सकता है जो स्वीकार नहीं किए गए हैं, या यदि वह ऐसा करना आवश्यक समझे, तो इस प्रयोजन के लिए एक जाँच बोर्ड या एक जाँच अधिकारी नियुक्त कर सकता है। खंड (7) में प्रावधान है कि जाँच के समापन पर, जाँच प्राधिकारी प्रत्येक आरोप पर अपने निष्कर्षों को उसके कारणों सहित अभिलिखित करते हुए, जाँच की एक रिपोर्ट तैयार करेगा।

यदि ऐसे प्राधिकारी की राय में जाँच की कार्यवाही मूल रूप से लगाए गए आरोपों से भिन्न आरोप स्थापित करती है, तो वह ऐसे आरोपों पर निष्कर्ष दर्ज कर सकता है, बशर्ते कि ऐसे आरोपों पर निष्कर्ष तब तक दर्ज नहीं किए जाएँगे जब तक कि सरकारी कर्मचारी ने उनसे संबंधित तथ्यों को स्वीकार नहीं कर लिया हो या उसे उनके विरुद्ध अपना बचाव करने का अवसर न मिल गया हो। खंड (9) के अंतर्गत, "अनुशासनात्मक प्राधिकारी, यदि वह जाँच प्राधिकारी नहीं है, तो जाँच के अभिलेख पर विचार करेगा और प्रत्येक आरोप पर अपने निष्कर्ष दर्ज करेगा।" खंड (10) कारण बताओ नोटिस जारी करने का प्रावधान करता है।

12. हमें ऐसा प्रतीत होता है कि नियम 15, पहली नज़र में, वास्तव में एक जाँच का प्रावधान करता है, लेकिन यह संभव हो सकता है कि यदि किसी विशेष मामले में उचित जाँच नहीं हुई है क्योंकि जाँच में कोई गंभीर त्रुटि आ गई है या जाँच के समय कुछ महत्वपूर्ण गवाह उपलब्ध नहीं थे या किसी अन्य कारण से उनकी जाँच नहीं की गई थी, तो अनुशासनात्मक प्राधिकारी जाँच अधिकारी से आगे साक्ष्य दर्ज करने के लिए कह सकता है। लेकिन नियम 15 में इस आधार पर पिछली जाँचों को पूरी तरह से रद्द करने का कोई प्रावधान नहीं है कि जाँच अधिकारी या अधिकारियों की रिपोर्ट अनुशासनात्मक प्राधिकारी को अपील नहीं करती। अनुशासनात्मक प्राधिकारी के पास नियम 9 के अंतर्गत साक्ष्यों पर स्वयं पुनर्विचार करने और अपने निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए पर्याप्त शक्तियाँ हैं।

13. हमारे विचार में, नियम 13 फ़रवरी, 1962 को कलेक्टर द्वारा की गई कार्रवाई जैसी किसी कार्रवाई की परिकल्पना नहीं करते। हमें ऐसा लगता है कि कलेक्टर ने स्वयं ज़िम्मेदारी लेने के बजाय, किसी अधिकारी से अपीलकर्ता के विरुद्ध रिपोर्ट लिखवाने की ठान ली थी। अपनाई गई प्रक्रिया न केवल नियमों के अनुरूप नहीं थी, बल्कि अपीलकर्ता के लिए उत्पीड़नकारी भी थी।

11. सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ ने उपरोक्त निर्णय के पैरा-12 में यह धारित किया है कि यदि जाँच अधिकारी के निष्कर्ष उचित नहीं हैं, तो अनुशासनात्मक प्राधिकारी जाँच अधिकारी को आगे साक्ष्य दर्ज करने के लिए कह सकता है, लेकिन बिना किसी पूर्व सूचना के जाँच का निर्देश नहीं दिया जा सकता।

12. के.आर. देब (उपरोक्त) के संबंध में उपरोक्त निर्णय पर सर्वोच्च न्यायालय ने कनाईलाल बेरा बनाम भारत संघ एवं अन्य (2007) 11 एससीसी 517 में दिए गए अपने बाद के निर्णय में विचार किया और उसका अनुसरण किया। इसका प्रासंगिक पैरा-6 इस प्रकार है:-

"6. यह प्रश्न कि सिविल लाइंस में नज़रबंदी की सज़ा दी जा सकती थी या नहीं, हमें अभिरक्षा में नहीं लेना चाहिए क्योंकि हम अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए इस तर्क से सहमत हैं कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी का दिनांक 5.4.1995 का कथित आदेश क़ानूनी तौर पर पोषणीय नही था। केंद्रीय रिज़र्व पुलिस बल नियम 1955 का नियम 27, अन्य बातों के साथ-साथ, विभागीय जाँच करने की प्रक्रिया निर्धारित करता है। एक बार अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू हो जाने के बाद, उसे उसके तार्किक निष्कर्ष तक पहुँचाया जाना चाहिए, अर्थात यह निष्कर्ष निकालना आवश्यक है कि दोषी अधिकारी अपने विरुद्ध लगाए गए आरोपों का दोषी है या नहीं। किसी दी गई स्थिति में अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने का निर्देश दिया जा सकता है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं होगा कि किसी दोषी अधिकारी को उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों में आंशिक रूप से दोषी ठहराए जाने के बावजूद, उन्हीं आरोपों पर एक और जांच शुरू करने का निर्देश दिया जाएगा, जिन्हें पहली जांच में साबित नहीं किया जा सका था।

13. इसके विपरीत, विपक्षी पक्षों के विद्वान अधिवक्ता श्री आर.पी. शुक्ला ने *भारत संघ एवं अन्य बनाम पी. त्यागराजन* मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 1998 में SUPP 3 SCR 114 में दिए गए निर्णय

का हवाला दिया है, जिसमें के.आर. देब (उपरोक्त) मामले में दिए गए निर्णय के पैरा-12 का उल्लेख किया गया है और सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि यदि अनुशासनात्मक प्राधिकारी इस बात से संतुष्ट है कि जांच कार्यालय ने कानून के अनुसार सख्ती से जांच नहीं की है, तो वह डेनोवो जांच का निर्देश दे सकता है। उपरोक्त निर्णय का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:-

"इस अनुच्छेद को ध्यानपूर्वक पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाएगा कि यह न्यायालय यदि किसी विशेष मामले में, जहाँ जाँच में कोई गंभीर त्रुटि होने के कारण उचित जाँच नहीं हुई है या जाँच के समय कुछ महत्वपूर्ण गवाह उपलब्ध नहीं थे या उनकी जाँच नहीं की गई थी, तो अनुशासनात्मक प्राधिकारी जाँच अधिकारी से आगे साक्ष्य दर्ज करने के लिए कह सकता है, लेकिन यह प्रावधान अनुशासनात्मक प्राधिकारी को इस आधार पर पिछली जाँचों को रद्द करने का अधिकार नहीं देता कि जाँच अधिकारी की रिपोर्ट अनुशासनात्मक प्राधिकारी को अपील नहीं करती। वर्तमान मामले में, अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने जाँच को रद्द करने का आधार यह रखा कि जाँच अधिकारी द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया प्रासंगिक नियमों के विपरीत थी और पक्षकारों के अधिकारों को प्रभावित करती है, न कि यह कि रिपोर्ट उसे अपील नहीं करती। जब महत्वपूर्ण साक्ष्य, जिस पर विभाग या दोषी अधिकारी द्वारा भरोसा किया जा सकता है, को खारिज कर दिया जाता है, तो इससे न्याय में कोई प्रगति नहीं होगी, बल्कि दूसरी ओर, मुकदमा विफल हो जाएगा। अतः हमारा विचार है कि नियम 27(सी) अनुशासनात्मक प्राधिकारी को रिपोर्ट पर अपने निष्कर्ष दर्ज करने और वर्तमान प्रकृति के मामले में नए सिरे से जांच का आदेश देने सहित उचित आदेश पारित करने में सक्षम बनाता है।

14. अतः श्री शुक्ला ने उपरोक्त निर्णय के आधार पर कहा है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी नए सिरे से जांच का निर्देश दे सकता है।

15. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का सर्वप्रथम अवलोकन करने के पश्चात्, मैं भारत संघ एवं अन्य बनाम पी. त्यागराजन (उपरोक्त) के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय के उस कथन का उल्लेख करना चाहूंगा जिसमें केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल नियम, 1955 के प्रासंगिक सेवा नियम विचाराधीन थे और नियम, 1966 के नियम 27(सी) के अंतर्गत यह अधिदेश था कि यदि अनुशासनात्मक प्राधिकारी जांच अधिकारी के निष्कर्षों से संतुष्ट नहीं है तो वह नए सिरे से जांच का निर्देश दे सकता है। वर्तमान मामले में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है, बल्कि विनियम, 1966 का विनियम 27(10)(i)(a) स्पष्ट रूप से यह अधिदेश देता है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी, यदि जांच अधिकारी के निष्कर्षों से असहमत हो, तो असहमति पर कारण बताओ नोटिस जारी कर सकता है और आरोपित कर्मचारी के आरोपों और उत्तर पर विचार करते हुए, जैसा वह उचित और उचित समझे, कोई भी उचित दंड आदेश पारित कर सकता है, लेकिन डेनोवो जांच अधिदेशित नहीं की गई है। इसलिए, भारत संघ एवं अन्य बनाम पी. त्यागराजन (उपरोक्त) के मामले में दिया गया निर्णय वर्तमान मामले में लागू नहीं होगा। इसके अलावा, सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ के निर्णय का दो माननीय न्यायाधीशों की कोरम वाले सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर बाध्यकारी प्रभाव होगा और

अनुवादित

उपरोक्त संविधान पीठ के निर्णय का सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कनाईलाल बेरा (उपरोक्त) के मामले में दिए गए बाद के निर्णय में अनुसरण किया गया है।

16. इसलिए, वर्तमान मामले में, के.आर. देब के मामले में दिया गया सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ का निर्णय (उपरोक्त) लागू होगा।

17. चूँकि अनुशासनात्मक प्राधिकारी को डेनोवो जाँच के लिए निर्देश देने हेतु अधिकृत करने वाला कोई कानूनी प्रावधान नहीं है, इसलिए, दिनांक 21.01.2025 (अनुलग्नक संख्या 1) का आक्षेपित आदेश स्पष्ट रूप से अवैध और अनुचित है। इसके अलावा, यदि वर्तमान मामले में डेनोवो जाँच का निर्देश नहीं दिया जा सकता है, तो उस डेनोवो जाँच के लंबित रहने तक याचिकाकर्ता को निलंबित रखना भी अनुचित और अनुचित होगा। यद्यपि 22.02.2024 का आदेश विपक्षीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत या दाखिल नहीं किया गया है, लेकिन श्री शुक्ला के निवेदन के अनुसार कि उपरोक्त आदेश के माध्यम से अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा डेनोवो जाँच करने का निर्णय लिया गया था, जिसमें प्रथम जाँच रिपोर्ट को अपास्त किया गया था, जो कानून के तहत अनुमेय नहीं है, इसलिए, दिनांक 22.02.2024 का वह आक्षेपित आदेश भी अपास्त किए जाने योग्य है।

18. पक्षकारों और उद्धृत केस विधि के आधार पर, मैं पाता हूं कि विपक्षी संख्या 1 द्वारा पारित दिनांक 21.01.2025 (अनुलग्नक संख्या 1) का आक्षेपित आदेश और विपक्षी संख्या 2 द्वारा पारित दिनांक 22.02.2024 का आदेश एतद्द्वारा अपास्त/रद्द किया जाता है। विपक्षी संख्या 2 को याचिकाकर्ता को सेवा में बहाल करने और उसे देय वेतन का भुगतान करने के साथ-साथ निलंबन अवधि के दौरान वेतन का बकाया भी देने का निर्देश दिया जाता है।

19. यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी, वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों और उसके द्वारा इस प्रकार विचार किए गए आरोपों के मद्देनजर, यदि आवश्यक हो, तो कानून और विनियम, 1966 के विनियम 27 के अनुसार उचित आदेश पारित कर सकता है, लेकिन ऐसा आदेश कानून के अनुसार शीघ्रता से पारित किया जा सकता है।

20. उपरोक्त शर्तों के मद्देनजर, रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

21. वादव्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(सी.एम. आवेदन (आईए) संख्या 04/2025)

22. पक्षकार बनाने के आवेदन पर आवेदक के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

23. आवेदक एक शिकायतकर्ता है, उसने याचिकाकर्ता के विरुद्ध शिकायत दर्ज की है और पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं के तर्कों पर विचार करते समय इस तथ्य पर विचार किया गया है और अनुशासनात्मक प्राधिकारी को कानून के अनुसार, अधिक सटीक रूप से कहें तो, विनियम, 1966 के विनियम 27 के अंतर्गत, यदि आवश्यक हो, तो उचित कदम उठाने की स्वतंत्रता देते हुए रिट याचिका को अनुमति दी गई है, तो इस आवेदन को अनुमति देने की कोई आवश्यकता नहीं है।

24. तदनुसार, वर्तमान आवेदन अस्वीकार किया जाता है।

(2025) 4 ILRA 89

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल वाद

दिनांक: इलाहाबाद 02.04.2025

माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट,

के समक्ष

रिट ए संख्या - 1680/2025

चंचल सोनकर **...याचिकाकर्ता**

बनाम

अध्यक्ष, एसबीआई व अन्य **...प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
अजय कुमार सिंह, आशीष कुमार सिंह

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
सतीश चतुर्वेदी

सिविल विधि - मृतक कर्मचारियों के आश्रितों को अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति या अनुग्रह वित्तीय राहत के भुगतान की योजना, 2022 - खंड 5 - भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 12, 14 से 16 - याचिकाकर्ता के पति, जो प्रतिवादी बैंक के कर्मचारी थे, का 17.11.2022 को निधन हो गया - उनका अंतिम प्राप्त सकल वेतन ₹1,18,800.14 था - अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति प्रदान करने के लिए याचिकाकर्ता का दावा इस आधार पर अस्वीकार कर दिया गया कि यदि परिवार की मासिक आय मृतक कर्मचारी के अंतिम प्राप्त वेतन के 75% से कम है, तो अनुकंपा नियुक्ति की अनुमति है - उक्त योजना का खंड 5 बताता है कि कर्मचारी की मृत्यु के बाद वित्तीय स्थिति निर्धारित करने के लिए मासिक पारिवारिक आय का आकलन कैसे किया जाता है - आक्षेपित आदेश रिकॉर्ड परिवार की सभी स्रोतों से आय - गणना की गई आय मृतक कर्मचारी के अंतिम प्राप्त वेतन के

अनुवादित

75% से अधिक है, जो दर्शाता है कि परिवार वित्तीय संकट में नहीं था। - याचिकाकर्ता को लागू योजना के तहत अनुकंपा नियुक्ति के लिए अयोग्य पाया गया। (पैरा 2, 3, 21, 25)

याचिका खारिज। (ई-13)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:

1. उमेश कुमार नागपाल बनाम हरियाणा राज्य 1994 (4) एससीसी 138, (पैरा 2)
2. शिक्षा निदेशक (माध्यमिक) बनाम पुष्पेंद्र कुमार, 1998 (5) एससीसी 192, (पैरा 8)
3. रूपम मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, रिट ए संख्या 15512/2019, (पैरा 16)
4. कर्नाटक में कोषागार निदेशक एवं अन्य बनाम सोम्याश्री, सिविल अपील संख्या 5122/2021, (पैरा 7)
5. इप्सिता चक्रवर्ती बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, 2018 (2) कैल एलटी 177 (एचसी)
6. श्री बिजोन मुखर्जी बनाम पश्चिम बंगाल राज्य एवं अन्य, 2018 (3) कैल एलटी 136 (एचसी), (पैरा 26)
7. अंकिता साहा एवं अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य एवं अन्य, डब्ल्यूपीए संख्या 12287/2019 (कलकत्ता उच्च न्यायालय)

(माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट द्वारा प्रदत्त)

1. दिनांक 24.07.2023 के आक्षेपित आदेश द्वारा, सक्षम प्राधिकारी ने अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति प्रदान करने के याचिकाकर्ता के दावे को अस्वीकार कर दिया है।

2. मामले के स्वीकृत तथ्य ये हैं: याचिकाकर्ता के पति प्रतिवादी बैंक में कर्मचारी थे। उनकी मृत्यु 17.11.2022 को हो गई। मृतक का अंतिम आहरित सकल वेतन ₹1,18,800.14/- था।

3. दिनांक 24.07.2023 के आक्षेपित आदेश द्वारा अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति प्रदान करने के याचिकाकर्ता के दावे को निम्नलिखित आधार पर अस्वीकार कर दिया गया है:

"7.3 परिवार की वित्तीय स्थिति:

परिवार निर्धन है और वित्तीय अभाव से राहत के लिए तत्काल सहायता का हकदार है। परिवार के आश्रितों की अनुकंपा नियुक्ति हेतु वित्तीय स्थिति/पात्रता निर्धारित करने के लिए निम्नलिखित दिशानिर्देशों को ध्यान में रखा जाना चाहिए:

मृतक/समय से पूर्व सेवानिवृत कर्मचारियों के आश्रितों को अनुकंपा नियुक्ति स्वीकृत की जाएगी, जहाँ परिवार की मासिक आय अंतिम आहरित सकल वेतन के 75% से कम होगी।"

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री राघव अरोड़ा और प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता श्री पंकज श्रीवास्तव को सुना गया।

5. भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थ के अंतर्गत सार्वजनिक पदों, सरकारी सेवाओं और राज्य के विभिन्न निकायों में नियुक्तियाँ संविधान में निहित व्यापक प्रावधानों द्वारा शासित और विनियमित होती हैं। संवैधानिक योजना में एक खुली भर्ती और एक पारदर्शी प्रक्रिया की परिकल्पना की गई है जो बड़े पैमाने पर नागरिक वर्ग के सभी पात्र वर्गों की अधिकतम भागीदारी को सक्षम बनाती है। अंतिम नियुक्तियां प्रतिस्पर्धी योग्यता के आधार पर निष्पक्ष चयन के बाद की जाती हैं। उक्त नियुक्तियां करते समय पिछड़े वर्गों, अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों और कानून के अनुसार पहचाने गए समाज के अन्य वर्गों के प्रतिनिधित्व और सशक्तिकरण के लिए संविधान के तहत आरक्षण नीति या सकारात्मक कार्रवाई का विधिवत पालन किया जाना चाहिए। सरकारी सेवाओं और सरकारी उपक्रमों में भर्ती और नियुक्ति की जांच संवैधानिक न्यायालयों द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 14, 15 और 16 के संदर्भ में की गई थी। संवैधानिक न्यायालयों के निर्णयों ने सरकार में पदों पर नियुक्तियों के लिए पूर्वोक्त तरीकों और प्रक्रियाओं और संवैधानिक कानून के ढांचे में अनुच्छेद 12 के प्रावधानों को अपरिवर्तनीय रूप से स्थापित कर दिया है।

6. इसके विपरीत अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियां स्वतंत्र रूप विज्ञापन द्वारा आवेदन आमंत्रित करने के बाद भर्ती की पारदर्शी और सार्वजनिक प्रक्रिया के माध्यम से नहीं की जाती हैं।अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियां भर्ती की नियमित प्रक्रियाओं से विचलन और अन्य छूट भी शामिल करती हैं। मृतक आश्रित नियमावली, 1974 के अंतर्गत नियुक्तियाँ, सरकार और सरकारी उपक्रमों में पदों पर नियुक्तियों के लिए पूर्वोक्त संवैधानिक रूप से अनिवार्य योजना का अपवाद हैं। अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियाँ विशिष्ट सेवा नियमों से उत्पन्न होती हैं और संवैधानिक न्यायालयों द्वारा विकसित सेवा कानून न्यायशास्त्र द्वारा युक्तिसंगत बनाई जाती हैं।

7. अनुकंपा के आधार पर की गई नियुक्तियाँ संवैधानिक वैधता की कसौटी पर मामूली अंतर से खरी उतरी हैं। अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियाँ करने का एकमात्र औचित्य यह है कि मृतक कर्मचारी की मृत्यु के बाद उसके आश्रितों को अप्रत्याशित वित्तीय विपन्नता का सामना करना पड़ता है और उन्हें तत्काल सहायता की आवश्यकता होती है। कर्मचारी की मृत्यु के कारण उत्पन्न अचानक वित्तीय संकट से तुरंत उबरने के लिए परिवार को अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियाँ प्रदान की जाती हैं। केवल इसी विशेषता के आधार पर मृतक कर्मचारी के परिजनों को एक वर्ग में रखा गया और इसी आधार पर संवैधानिक न्यायालयों द्वारा अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियों के औचित्य को उचित ठहराया गया।

8. अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति प्रदान करने का एकमात्र उद्देश्य परिवार के एकमात्र कमाने वाले सदस्य की मृत्यु से उत्पन्न तात्कालिक वित्तीय संकट से उबरने में परिवार को सक्षम बनाना है।

9. इस चर्चा से संबंधित अधिकारियों को लाभ होगा।

10. **उमेश कुमार नागपाल बनाम हरियाणा राज्य** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अनुकंपा के उद्देश्य को निम्नलिखित शब्दों में समझाया:

"2. प्रश्न उन विचारों से संबंधित है जो अनुकंपा के आधार पर लोक सेवाओं में नियुक्ति देते समय मार्गदर्शन प्रदान करने चाहिए। ऐसा प्रतीत होता है कि इस मुद्दे पर काफी अस्पष्टता रही है। एक नियम के रूप में, लोक सेवाओं में नियुक्तियाँ केवल आवेदनों के खुले आमंत्रण और योग्यता के आधार पर की जानी चाहिए। नियुक्ति का कोई अन्य तरीका या कोई अन्य विचार स्वीकार्य नहीं है। न तो सरकारें और न ही लोक प्राधिकरण किसी अन्य प्रक्रिया का पालन करने या पद के लिए नियमों द्वारा निर्धारित योग्यताओं में ढील देने के लिए स्वतंत्र हैं। हालाँकि, इस सामान्य नियम, जिसका हर मामले में कड़ाई से पालन किया जाना है, में न्याय के हित में और कुछ आकस्मिकताओं को पूरा करने के लिए कुछ अपवाद बनाए गए हैं। ऐसा ही एक अपवाद ऐसे कर्मचारी के आश्रितों के पक्ष में है जो सेवाकाल के दौरान मर जाता है और अपने परिवार को गरीबी और आजीविका के बिना छोड़ जाता है। ऐसे मामलों में, विशुद्ध मानवीय दृष्टिकोण से, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि जब तक आजीविका का कोई स्रोत उपलब्ध नहीं कराया जाता, परिवार अपनी ज़रूरतें पूरी नहीं कर पाएगा, नियमों में मृतक के आश्रितों में से एक को, जो ऐसे रोजगार के लिए पात्र हो, लाभकारी रोजगार प्रदान करने का प्रावधान किया गया है। इस प्रकार अनुकंपा आधारित रोजगार प्रदान करने का पूरा उद्देश्य परिवार को अचानक आए संकट से उबरने में सक्षम बनाना है। उद्देश्य ऐसे परिवार के किसी सदस्य को कोई पद देना नहीं है, मृतक द्वारा धारित पद के लिए कोई पद देना तो दूर की बात है। इसके अलावा, सेवाकाल के दौरान किसी कर्मचारी की मृत्यु मात्र से उसके परिवार को आजीविका के ऐसे स्रोत का अधिकार नहीं मिल जाता। सरकार या संबंधित लोक प्राधिकरण को मृतक के परिवार की आर्थिक स्थिति की जाँच करनी होगी, और केवल तभी जब वह इस बात से संतुष्ट हो कि रोजगार के प्रावधान के बिना परिवार संकट का सामना नहीं कर पाएगा, परिवार के पात्र सदस्य को नौकरी की पेशकश की जानी चाहिए। वर्ग III और IV के पद गैर-शारीरिक और शारीरिक श्रेणियों में सबसे निचले पद हैं और इसलिए केवल उन्हें ही अनुकंपा के आधार पर दिया जा सकता है, जिसका उद्देश्य परिवार को वित्तीय अभाव से राहत देना और आपातकाल से उबरने में मदद करना है। नियम में अपवाद बनाकर ऐसे निम्नतम पदों पर रोजगार का प्रावधान उचित और वैध है क्योंकि यह भेदभावपूर्ण नहीं है। ऐसे पदों पर मृतक कर्मचारी के आश्रित को दिए गए अनुकूल व्यवहार का उद्देश्य प्राप्त करने के लिए तर्कसंगत संबंध है, अर्थात अभाव के खिलाफ राहत। इस उद्देश्य के लिए सार्वजनिक अधिकारियों द्वारा कोई अन्य पद दिए जाने की उम्मीद या आवश्यकता नहीं है। इस संबंध में यह याद रखना चाहिए कि मृतक के निराश्रित परिवार के अलावा लाखों अन्य परिवार हैं जो समान रूप से, यदि अधिक नहीं तो, निराश्रित हैं। मृतक कर्मचारी के परिवार के पक्ष में बनाए गए नियम का अपवाद उसके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं और वैध अपेक्षाओं, तथा पूर्ववर्ती नियोजन से उत्पन्न परिवार की स्थिति और मामलों में आए परिवर्तन को ध्यान में रखते हुए है, जो अचानक बदल जाते हैं।

11. **शिक्षा निदेशक (माध्यमिक) बनाम पुष्पेंद्र कुमार** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने भी इसी प्रकार की भावना व्यक्त की थी:

"8. अनुकंपा आधारित रोजगार प्रदान करने के प्रावधान का उद्देश्य मृतक कर्मचारी के परिवार को कमाने वाले की मृत्यु के कारण उत्पन्न अचानक संकट से उबरने में सक्षम बनाना है, जिससे परिवार गरीबी और आजीविका के किसी साधन के बिना रह गया है। विशुद्ध मानवीय दृष्टिकोण से और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि जब तक आजीविका का कोई स्रोत प्रदान नहीं किया जाता, परिवार अपनी ज़रूरतें पूरी नहीं कर पाएगा, मृतक के आश्रितों में से एक को, जो ऐसी नियुक्ति के लिए पात्र हो, लाभकारी नियुक्ति देने का प्रावधान किया गया है। ऐसा प्रावधान एक विशेष प्रक्रिया का पालन करके पद पर नियुक्ति के सामान्य प्रावधानों से अलग है। चूँकि ऐसा प्रावधान उक्त प्रक्रिया का पालन किए बिना नियुक्ति करने में सक्षम बनाता है, इसलिए यह सामान्य प्रावधानों के अपवाद की प्रकृति का है। कोई अपवाद उस मुख्य प्रावधान को समाहित नहीं कर सकता जिसका वह अपवाद है और इस प्रकार मुख्य प्रावधान द्वारा प्रदत्त अधिकार को पूरी तरह से छीनकर मुख्य प्रावधान को निष्प्रभावी नहीं कर सकता। इसलिए, यह ध्यान रखना आवश्यक है कि अनुकंपा आधारित रोजगार प्रदान करने का प्रावधान, जो सामान्य प्रावधानों के अपवाद की प्रकृति का है, नियुक्ति के पात्र अन्य व्यक्तियों के उस पद पर रोजगार प्राप्त करने के अधिकार में अनुचित रूप से हस्तक्षेप न करे जो उन्हें उपलब्ध होता, यदि यह प्रावधान मृतक कर्मचारी के आश्रित की अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति करने में सक्षम न होता...।

12. **रूपम मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 4 अन्य** में इस न्यायालय ने निम्नलिखित निर्णय दिया:

"16. अनुकंपा आधारित नियुक्तियों का उद्देश्य ही उनका औचित्य प्रदान करता है। कमाने वाले की मृत्यु मृतक के परिवार को गरीबी में धकेल देती है। वित्तीय संकट की तात्कालिकता तत्काल निवारण की आवश्यकता उत्पन्न करती है। अनुकंपा नियुक्ति की अवधारणा केवल शोक संतप्त परिवार को तत्काल वित्तीय संकट से उबरने में सक्षम बनाने के लिए बनाई गई है।

13. ऐसी नियुक्तियों को नियंत्रित करने वाले नियमों के अनुरूप अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियाँ करने की आवश्यकता पर सर्वोच्च न्यायालय ने **कर्नाटक एवं अन्य बनाम सोम्याश्री** के कोषागार निदेशक के मामले में कानून का सारांश इस प्रकार प्रस्तुत करते हुए बल दिया था:

"7.....(i) यह कि अनुकंपा नियुक्ति सामान्य नियम का अपवाद है;
(ii) यह कि किसी भी अभ्यर्थी को अनुकंपा नियुक्ति का अधिकार नहीं है;
(iii) राज्य की सेवा में किसी भी सार्वजनिक पद पर नियुक्ति भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के अनुसार सिद्धांत के आधार पर की जानी चाहिए;
(iv) अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति केवल राज्य की नीति द्वारा निर्धारित मानदंडों को पूरा करने और/या नीति के अनुसार पात्रता मानदंडों को पूरा करने पर ही की जा सकती है;

(v) आवेदन पर विचार की तिथि को प्रचलित मानदंड अनुकंपा नियुक्ति के दावे पर विचार करने का आधार होने चाहिए।

14. इसी प्रकार, अनुकंपा के आधार पर संबंधित नियमों का कड़ाई से पालन करने की आवश्यकता को कलकत्ता उच्च न्यायालय ने **इप्सिता चक्रवर्ती बनाम पश्चिम बंगाल राज्य** में संक्षेप में प्रस्तुत किया था। **इप्सिता चक्रवर्ती** (उपरोक्त) ने विभिन्न संवैधानिक न्यायालयों के निर्णयों पर विचार करने के बाद कहा:

"(क) अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति उस सामान्य नियम का अपवाद है जिसके अनुसार सार्वजनिक सेवाओं में भर्ती पारदर्शी और जवाबदेह तरीके से की जानी चाहिए ताकि सभी पात्र व्यक्तियों को चयन प्रक्रिया में प्रतिस्पर्धा करने और भाग लेने का अवसर मिल सके।
(ख) सेवाकाल के दौरान मृत कर्मचारी के आश्रित का अनुकंपा नियुक्ति का अधिकार नियोक्ता द्वारा बनाई गई योजना, कार्यकारी निर्देशों, नियमों आदि पर आधारित है और नियोक्ता द्वारा प्रदत्त उपरोक्त योजना के अलावा किसी अन्य आधार पर अनुकंपा नियुक्ति का दावा करने का कोई अधिकार नहीं है।
(ग) अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति केवल कमाने वाले की मृत्यु के कारण परिवार को होने वाली तात्कालिक कठिनाई को पूरा करने के लिए दी जाती है। जब अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति की जाती है, तो उसे केवल उस उद्देश्य तक ही सीमित रखा जाना चाहिए जिसकी प्राप्ति प्रतीत होती है, इसका उद्देश्य अंतहीन अनुकंपा प्रदान करना नहीं है।
(घ) अनुकंपा नियुक्ति केवल तभी की जानी चाहिए जब नियुक्ति प्रदान करने के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ और परिस्थितियाँ मौजूद हों और मार्गदर्शक कारक परिवार की वित्तीय स्थिति होनी चाहिए।"

15. इसके अलावा, **श्री बिजोन मुखर्जी बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य** के मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय ने फिर से कहा कि अब तक कानून की स्थापित स्थिति यह है कि अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियाँ केवल कर्मचारी पर लागू विशिष्ट नियमों के अनुरूप ही की जानी चाहिए:

"26. पक्षों की ओर से उपस्थित अधिवक्तागणों द्वारा प्रस्तुत अनुपात और कानूनी स्थिति तथा ऊपर विवेचित उदाहरणों का अवलोकन करने के बाद, मैं यह निष्कर्ष निकालने के लिए सहमत हूँ कि अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति का उद्देश्य मृतक के आश्रितों को तत्काल आर्थिक कठिनाई से राहत दिलाना है। यह संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का अपवाद है क्योंकि प्रतिवादी को समान योग्यता वाले अन्य अभ्यर्थियों की तुलना में वरीयता दी जाती है और इसलिए इसे अधिकार के रूप में दावा नहीं किया जा सकता। अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए, मेरे लिए यह स्पष्ट है कि यह नियुक्ति ऐसी नियुक्ति के नियमों के अनुसार ही की जानी चाहिए। ऐसी नियुक्ति चाहने वाले आश्रित को इस तरह के विचार के लिए पात्र होना चाहिए और नियमों द्वारा निर्धारित सीमा तक वित्तीय कठिनाई का सामना करना चाहिए।

16. **इप्सिता चक्रवर्ती** (उपरोक्त) और **श्री बिजोन मुखर्जी** (उपरोक्त) के मामले का अनुसरण कलकत्ता उच्च न्यायालय ने **अंकिता साहा एवं अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य एवं अन्य** मामले में किया था।

17. अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति की अवधारणा एक आदर्श नियोक्ता द्वारा उठाया गया एक कल्याणकारी उपाय है। हालाँकि, एक चेतावनी है। अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के अधिकार की अति-उदार व्याख्या ऐसी नियुक्तियों की बाढ़ ला देगी और उन्हें भर्ती का एक वास्तविक स्रोत बना देगी। अनुकंपा के आधार पर एक अनुचित उदार दृष्टिकोण, जो लागू सेवा नियमों के अनुरूप नहीं है, अयोग्य और अयोग्य उम्मीदवारों को लाभ प्रदान करेगा, और साथ ही योग्य और मेधावी उम्मीदवारों के सरकारी पदों पर नियुक्ति पाने के अधिकारों और वैध दावों को भी नकार देगा। योग्यता माता-पिता से नहीं मानी जानी चाहिए, बल्कि खुली प्रतिस्पर्धा के माध्यम से प्राप्त की जानी चाहिए। अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियों को एक बिना शर्त और निहित अधिकार मानना और इसे एक स्रोत बनाना। भर्ती प्रक्रिया में संशोधन से वैधता का वह झीना पर्दा हट जाएगा जो ऐसी नियुक्तियों को असंवैधानिकता के दोष से बचाता है। तब अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति की अवधारणा ही भारत के संविधान के अनुच्छेद 14, 15, 16 के कोप का शिकार हो जाएगी।

18. अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियाँ प्रदान करने का उद्देश्य तभी पूरा हो सकता है और उनकी संवैधानिकता तभी सुरक्षित रह सकती है जब अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियाँ प्रदान करने के नियमों का कड़ाई से पालन किया जाए।

19. पूर्वोक्त चर्चा से पता चलता है कि कर्मचारी की मृत्यु के बाद परिवार की वित्तीय स्थिति या उसके सामने आने वाले वित्तीय संकटों की प्रकृति का निर्धारण अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए एक अनिवार्य पूर्व शर्त है।

20. विभिन्न संवैधानिक न्यायालयों के निर्णयों में वित्तीय दरिद्रता को परिभाषित नहीं किया गया है। कानून के लागू प्रावधानों के आलोक में इसकी जांच की जानी चाहिए। अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियों का उद्देश्य मृतक के परिजनों के लिए अप्रत्याशित लाभ अर्जित करना नहीं है। नियोक्ता को केवल उस वित्तीय स्थिति का आकलन करना आवश्यक है जो घर का खर्च चलाती है। इसके अतिरिक्त, पूर्व में चर्चा किए गए मामलों के आलोक में उपरोक्त प्रावधानों का कड़ाई से पालन किया जाना आवश्यक है।

21. प्रतिवादी बैंक में अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति को नियंत्रित और विनियमित करने वाले प्रासंगिक नियम अनुकंपा के आधार पर मृतक कर्मचारियों के आश्रितों को अनुग्रह वित्तीय राहत के भुगतान की अनुकंपा नियुक्तियों की योजना, 2022 हैं। उपरोक्त योजना का खंड 5 मृतक की मृत्यु के बाद उसके परिवार की वित्तीय स्थिति निर्धारित करने के लिए मासिक पारिवारिक आय के निर्धारण के तरीके का प्रावधान करता है। प्रासंगिक प्रावधान नीचे उद्धृत किया गया है:

अनुवादित

"5.1. मासिक पारिवारिक आय:

अनुकंपा नियुक्ति/अनुग्रह राशि वित्तीय राहत के लिए आवेदन पर केवल तभी विचार किया जाएगा जब परिवार निर्धन हो और वित्तीय अभाव से राहत के लिए तत्काल सहायता का पात्र हो। परिवार की स्थिति तभी निर्धन मानी जाएगी जब परिवार की सभी स्रोतों से मासिक आय निम्न प्रकार हो:

क) मृतक के अंतिम प्राप्त सकल वेतन के 50% से कम, जहाँ आश्रित परिवार में केवल पति/पत्नी और/या एक बच्चा ही जीवित हो।

ख) अन्य सभी मामलों में मृतक के अंतिम प्राप्त सकल वेतन के 60% से कम

यदि परिवार की कुल मासिक आय, मृतक कर्मचारी के अंतिम प्राप्त सकल वेतन के 50%/60% से कम है, तो अनुकंपा नियुक्ति या अनुग्रह राशि वित्तीय राहत प्रदान की जा सकती है, बशर्ते कि यहाँ दिए गए अन्य पात्रता मानदंडों को पूरा किया जाए।"

(प्रभाव वर्धित)

22. उक्त योजना का खंड 5 मृतक के परिवार की वित्तीय स्थिति निर्धारित करने और अनुकंपा नियुक्ति प्रदान करने की पात्रता पर निर्णय लेने के लिए एक ठोस और तर्कसंगत मानदंड प्रदान करता है।

23. यह प्रक्रिया बैंक द्वारा की गई है। "परिवार की सभी स्रोतों से मासिक आय" वाक्यांश में मृतक के परिवार को दिए गए वित्तीय लाभ, पारिवारिक पेंशन और ऐसी संपत्तियाँ शामिल हैं जिनसे आय प्राप्त हो सकती है। नियम 5.1 के अनुसार बैंक द्वारा गणना की गई परिवार की कुल आय निम्नानुसार है:

मृतक का नाम - स्वर्गीय धर्मेंद्र कुमार
मृतक कर्मचारी की अनुकंपा नियुक्ति के लिए पात्र आश्रित का नाम और संबंध - श्रीमती चंचल सोनकर
मासिक आय की गणना
I. परिवार की मासिक आय
A. टर्मिनल लाभ - ₹59,43,651/-
1. भविष्य निधि - ₹28,37,574.00
2. ग्रेच्युटी - ₹12,88,350.00
3. अवकाश नकदीकरण - ₹9,50,401.20
4. एनपीएस योजना - शून्य
उप-योग (A) - ₹50,76,325.12
B. देयता
उप-योग - ₹50,76,325.12
C. उपलब्ध सकल निधि (A-B) - ₹50,76,325.12
D. निवेश (LIC/अन्य पॉलिसियाँ) - ₹1,04,42,704/-
E. उपलब्ध शुद्ध निधि (C+D) -1,55,19,029.12/-
F. सभी स्रोतों से परिवार की कुल मासिक आय

i. उपलब्ध निवल निधि (ई) की 80% राशि पर जनता के लिए लागू बैंक की अधिकतम सावधि जमा दर पर मासिक काल्पनिक ब्याज @ 6.10 (लागू आरओआई) - 63,110.71/-

2. पारिवारिक पेंशन - 36445.00/-

G. परिवार की कुल मासिक आय (1+2+3+4) - 99,555.71/-

H. (i) स्वर्गीय धर्मेंद्र कुमार (एसआईसी) का अंतिम आहरित सकल वेतन - 1,18,800.14/-

(ii) अंतिम आहरित रक्षा पेंशन (यदि लागू हो) - लागू नहीं

(I) + (ii) का योग - 1,18,800.14/-

I. अंतिम आहरित सकल वेतन का 75% - 89,100.10/-

24. रिट याचिका के साथ संलग्न उपरोक्त चार्ट पर याचिकाकर्ता द्वारा कोई विवाद नहीं किया गया है।

25. आक्षेपित आदेश में मृतक के परिवार की विभिन्न स्रोतों से प्राप्त आय का स्पष्ट रूप से खुलासा किया गया है, जैसा कि पूर्वोक्त अनुकंपा आधार योजना के खंड 5 में परिकल्पित है। इस प्रकार गणना की गई मृतक के परिवार की आय मृतक द्वारा प्राप्त अंतिम वेतन के 60% से अधिक है। वास्तव में, उपरोक्त गणना के अनुसार, याचिकाकर्ता की पारिवारिक आय उसके द्वारा प्राप्त अंतिम वेतन के 75% से अधिक है। इस प्रकार निर्धारित परिवार की आय यह स्थापित करती है कि कर्मचारी की मृत्यु के परिणामस्वरूप परिवार को वित्तीय अभाव का सामना नहीं करना पड़ा। इस प्रकार आक्षेपित आदेश में प्रतिवादियों ने सही पाया है कि याचिकाकर्ता बैंक पर लागू अनुकंपा आधार नियुक्ति योजना के प्रावधानों के अनुसार अनुकंपा आधार नियुक्ति प्रदान करने के मानदंडों को पूरा नहीं करता है।

26. पूर्वोक्त चर्चा के मद्देनजर, आक्षेपित आदेश में कोई त्रुटि नहीं है। रिट याचिका खारिज किए जाने योग्य है और खारिज की जाती है।

(2025) 4 ILRA 96

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ, 11.04.2025

माननीय न्यायमूर्ति बृज राज सिंह

के समक्ष

रिट ए संख्या 1717/2000

हनुमंत लाल **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...प्रतिवादी**

अनुवादित

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
अनिल कुमार, अनुराग श्रीवास्तव, अपठनीय, रविंद्र कुमार रवि, सोम कार्तिक शुक्ला

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
सी.एस.सी., डॉ. एल.पी. मिश्रा

सिविल कानून - उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा आयोग (कठिनाइयों का निवारण) (द्वितीय) आदेश, 1981 - खण्ड 3 - तदर्थ नियुक्ति - वेतन भुगतान - सहायक अध्यापक (हिंदी), एल.टी. ग्रेड के लिए रिक्ति एक शिक्षक की पदोन्नति के कारण उत्पन्न हुई - अधिनियम, 1921 के तहत विनियमों के अनुसार, आवश्यक योग्यता हिंदी और संस्कृत के साथ बी.ए. है - याचिकाकर्ता के पास हिंदी, अर्थशास्त्र और सामाजिक विज्ञान में बी.ए. है, और संस्कृत की अनिवार्य योग्यता का अभाव है - याचिकाकर्ता उक्त पद के लिए पात्र नहीं है - प्रासंगिक विनियमों के परिशिष्ट-ए के क्रम संख्या 55 के अनुसार, सहायक अध्यापक (सामाजिक विज्ञान), एल.टी. ग्रेड के पद के लिए आवश्यक योग्यता चार में से कम से कम दो विषयों अर्थात् इतिहास, राजनीति विज्ञान, भूगोल और अर्थशास्त्र के साथ स्नातक की डिग्री (बी.ए.) थी - याचिकाकर्ता ने बी.ए. की पढ़ाई की है। निर्धारित सूची में से केवल एक विषय अर्थात अर्थशास्त्र के साथ - इस प्रकार याचिकाकर्ता नियुक्ति के लिए न्यूनतम पात्रता मानदंड पूरा नहीं करता है - इसलिए, याचिकाकर्ता को पद पर बने रहने की अनुमति न देने या वेतन रोकने में प्राधिकारियों की कार्रवाई को किसी भी कानूनी त्रुटि से ग्रस्त नहीं कहा जा सकता। (पैराग्राफ 8, 9)

याचिका खारिज की गई। (ई-13)

(माननीय न्यायमूर्ति बृज राज सिंह द्वारा प्रदत्त)

1. यह रिट याचिका निम्नलिखित राहतों के लिए दायर की गई है:-

"i) परमादेश की प्रकृति का एक रिट आदेश या निर्देश जारी करें, जिसके द्वारा प्रतिपक्षी संख्या 3 को आदेश दिया जाए कि वह द्वितीय कठिनाई निवारण (आदेश), 1981 के प्रावधानों अर्थात 1.9.97 से प्रभावी, के अनुसार एल.टी. ग्रेड में याचिकाकर्ता की तदर्थ नियुक्ति के आधार पर एल.टी. ग्रेड में सहायक अध्यापक के पद पर वेतन का भुगतान करे।
ii) परमादेश की प्रकृति में एक रिट आदेश या निर्देश जारी करें, जिसके द्वारा प्रतिपक्षी संख्या 3 को कठिनाई निवारण (द्वितीय) आदेश 1981 के खंड-3 के उप-खंड (iii) और खंड (iv) के प्रावधानों के अनुसार याचिकाकर्ता को वेतन के भुगतान के लिए अपनी मंजूरी/अनुमोदन देने और वर्तमान रिट याचिका के लंबित रहने और अंतिम निस्तारण के दौरान जब भी यह देय हो, उसके वर्तमान वेतन के रूप में भुगतान करने का आदेश दिया जाएगा।

iii) परमादेश की प्रकृति में रिट आदेश या निर्देश जारी करें, जिससे प्रतिपक्षियों को रिट याचिका के अनुलग्नक-ii में निहित याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन का निस्तारण करने का निर्देश दिया जा सके।"

2. वर्तमान रिट याचिका को जन्म देने वाले तथ्य यह हैं कि बप्पा श्रीनारायण वोकेशनल इंटर कॉलेज, चारबाग, लखनऊ (संक्षेप में "कॉलेज") हाई स्कूल और इंटरमीडिएट शिक्षा बोर्ड, यूपी, इलाहाबाद द्वारा मान्यता प्राप्त इंटरमीडिएट कॉलेज है और उत्तर प्रदेश इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 और उसके तहत बनाए गए विनियमों के प्रावधानों के साथ-साथ उत्तर प्रदेश हाई स्कूल और इंटरमीडिएट कॉलेज (शिक्षक और अन्य कर्मचारियों के वेतन का भुगतान) अधिनियम, 1971 के प्रावधानों द्वारा शासित है। सहायक अध्यापक (हिंदी), एल.टी. ग्रेड के पद पर एक अल्पकालिक रिक्ति, चंद्रमौली शुक्ला की प्रवक्ता (हिंदी) के पद पर पदोन्नति के कारण उत्पन्न हुई। प्रबंध समिति ने उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा आयोग (कठिनाइयों का निवारण) (द्वितीय) आदेश, 1981 के प्रावधानों के मद्देनजर अनुभाग प्रक्रिया अपनाई और याचिकाकर्ता को उचित प्रक्रिया का पालन करते हुए 27.08.1997 को नियुक्त किया गया। याचिकाकर्ता ने 01.09.1997 को सहायक अध्यापक (हिंदी), एल.टी. ग्रेड के पद पर सेवा ग्रहण की। तत्पश्चात, प्रबंध समिति द्वारा 02.07.1998 को वेतन के अनुमोदन एवं भुगतान हेतु पत्रावलियाँ जिला विद्यालय निरीक्षक, लखनऊ को प्रेषित की गईं। जब याचिकाकर्ता को वेतन का भुगतान नहीं किया गया, तो उसने वेतन भुगतान हेतु प्रार्थना के साथ वर्तमान रिट याचिका दायर की। इस न्यायालय ने दिनांक 07.04.2000 के आदेश द्वारा एक अंतरिम आदेश पारित किया कि जिला विद्यालय निरीक्षक, लखनऊ याचिकाकर्ता को वेतन का भुगतान करेंगे। तथापि, यह स्वीकार किया जाता है कि आज तक इस न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेश का अनुपालन नहीं किया गया है। रिट याचिका वर्ष 2000 से लंबित है और अब सुनवाई के लिए तैयार है क्योंकि दोनों पक्षों के बीच दलीलों का आदान-प्रदान हो चुका है।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि यद्यपि रिक्ति अल्पकालिक थी, अर्थात सहायक अध्यापक (हिंदी), एल.टी. ग्रेड, लेकिन नियुक्ति हेतु अधियाचन भेजते समय, प्रबंध समिति विषय को सामाजिक विज्ञान मान सकती थी और याचिकाकर्ता, जो सामाजिक विज्ञान विषय सहित बी.ए. स्नातक है, को संबंधित पद पर नियुक्त किया जा सकता था। उन्होंने आगे तर्क दिया है कि प्रबंध समिति विषयवार आवश्यकतानुसार रिक्ति में परिवर्तन कर सकती है। विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता को उचित प्रक्रिया का पालन करने के बाद नियुक्त किया गया है और उसके बाद प्रासंगिक दस्तावेजों के साथ अपेक्षित कागजात को अनुमोदन और वेतन भुगतान के लिए जिला विद्यालय निरीक्षक, लखनऊ को भेज दिया गया है, लेकिन प्रतिपक्षीगण याचिकाकर्ता को वेतन का भुगतान न करने पर अड़े हुए हैं और इस न्यायालय द्वारा 2000 में अंतरिम आदेश पारित किए जाने के बावजूद, याचिकाकर्ता को न तो काम करने की अनुमति दी गई है और न ही उसे कोई वेतन दिया गया है।

4. विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने दिनांक 04.07.2000 के अंतरिम आदेश को रद्द करने के लिए आवेदन के साथ दिनांक 04.07.2000 को प्रति-शपथपत्र दायर किया है, जिसमें यह स्पष्ट रुख अपनाया गया है कि याचिकाकर्ता को उचित प्रक्रिया का पालन किए बिना नियुक्त किया गया था। प्रबन्धक द्वारा नियुक्ति पत्र

27.08.1997 को जारी किया गया तथा याचिकाकर्ता को 01.09.1997 को ज्वाइनिंग भी दे दी गई, परन्तु वेतन भुगतान की स्वीकृति के लिए कागजात 02.07.1998 को अर्थात् एक वर्ष बाद भेजे गए।

5. विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने न्यायालय का ध्यान उत्तर प्रदेश इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 के अंतर्गत विनियमों और विशेष रूप से उक्त विनियमों के परिशिष्ट-ए की ओर आकर्षित किया है, जो निजी मान्यता प्राप्त उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में प्रधानाध्यापक और शिक्षकों की नियुक्ति के लिए न्यूनतम योग्यता से संबंधित है। दिनांक 04.05.2001 को दायर अनुपूरक प्रति-शपथपत्र के पैराग्राफ-7 में, एक विशिष्ट रुख अपनाया गया है कि याचिकाकर्ता को सहायक अध्यापक (सामाजिक विज्ञान), एल.टी. ग्रेड के रूप में नियुक्त किया गया है, लेकिन वह उपरोक्त विनियमों के परिशिष्ट-ए के क्रम संख्या 55 के अनुसार योग्य नहीं है, जो यह प्रावधान करता है कि सहायक अध्यापक (सामाजिक विज्ञान), एल.टी. ग्रेड की नियुक्ति के लिए, एक उम्मीदवार के पास बी.ए. में चार विषयों में से कम से कम दो विषय अर्थात इतिहास, राजनीति विज्ञान, भूगोल और अर्थशास्त्र होना चाहिए। हालाँकि, रिट याचिका के अनुलग्नक-3 में दिए गए याचिकाकर्ता के आवेदन से पता चलता है कि उसके पास हिंदी, अर्थशास्त्र और सामाजिक विज्ञान विषयों के साथ बी.ए. योग्यता है। इस प्रकार, चार विषयों में से, याचिकाकर्ता ने केवल एक विषय, अर्थात् अर्थशास्त्र, उत्तीर्ण किया है, इसलिए यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उसके पास सहायक अध्यापक (सामाजिक विज्ञान), एल.टी. ग्रेड के पद पर नियुक्ति हेतु विनियमों के परिशिष्ट-ए के क्रम संख्या 55 में उल्लिखित आवश्यक योग्यता नहीं है। इसके अलावा, पूरक प्रति-शपथपत्र के पैराग्राफ-9 में कहा गया है कि सहायक अध्यापक (हिंदी), एल.टी. ग्रेड के पद पर अल्पकालिक रिक्ति चंद्रमौली शुक्ला की प्रवक्ता (हिंदी) के पद पर पदोन्नति के कारण हुई, जिसके लिए विनियमों के परिशिष्ट-ए के क्रम संख्या 2 में निर्धारित आवश्यक योग्यता हिंदी और संस्कृत विषयों के साथ बी.ए. है, जबकि याचिकाकर्ता के पास संस्कृत के साथ बी.ए. की योग्यता नहीं है क्योंकि उसके पास हिंदी, अर्थशास्त्र और सामाजिक विज्ञान के साथ बी.ए. है।

6. प्रबंधन समिति के विद्वान अधिवक्ता ने प्रति-शपथपत्र दाखिल किया है और पैराग्राफ-10 में यह पक्ष रखा गया है कि रिट याचिका के अनुलग्नक-6 में निहित याचिकाकर्ता का नियुक्ति पत्र सहायक प्रबंधक, राम चंद्र मिश्रा द्वारा 27.07.1997 को जारी किया गया था और वह उस समय प्रबंधन समिति के प्रबंधक नहीं थे। यह भी बताया गया है कि प्रबंध समिति ने याचिकाकर्ता को सहायक अध्यापक (सामाजिक विज्ञान), एल.टी. ग्रेड के पद पर नियुक्त करने का कोई निर्णय नहीं लिया। प्रति-शपथपत्र के पैराग्राफ-10 में आगे उल्लेख किया गया है कि प्रबंध समिति ने किसी भी समय याचिकाकर्ता को सहायक अध्यापक (सामाजिक विज्ञान), एल.टी. ग्रेड के पद पर नियुक्त करने का निर्णय नहीं लिया और चयन की सारी कार्यवाही प्रधानाचार्य और सहायक प्रबंधक राम चंद्र मिश्रा की मिलीभगत से हुई।

7. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता सोम कार्तिक शुक्ला, प्रबंध समिति की ओर से विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री सुधीर कुमार सिंह तथा अन्य उपस्थितों को सुना गया तथा अभिलेख का अवलोकन किया गया।

8. अभिलेखों का अवलोकन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि सहायक अध्यापक (हिंदी), एल.टी. ग्रेड का अल्पकालिक रिक्त पद चंद्रमौली शुक्ला की प्रवक्ता (हिंदी) के पद पर पदोन्नति के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ था, अतः रिक्ति को विद्यमान नियमों और विनियमों के अनुसार भरा जाना है। याचिकाकर्ता ने हिंदी, अर्थशास्त्र और सामाजिक विज्ञान विषयों के साथ बी.ए. उत्तीर्ण किया है, जबकि विनियमों के परिशिष्ट-ए के क्रम संख्या 2 में निर्धारित आवश्यक योग्यता हिंदी और संस्कृत विषयों के साथ बी.ए. है और याचिकाकर्ता ने संस्कृत के साथ बी.ए. उत्तीर्ण नहीं किया है, अतः याचिकाकर्ता के पास प्रश्नगत पद पर नियुक्ति हेतु निर्धारित योग्यता का अभाव है।

9. विद्वान स्थायी अधिवक्ता के इस तर्क में भी बल है कि विनियमों के परिशिष्ट-ए की क्रम संख्या 55, जिस पर विचार करना भी प्रासंगिक है, में निर्धारित किया गया है कि चार विषयों अर्थात् इतिहास, राजनीति विज्ञान, भूगोल और अर्थशास्त्र में से, एक सहायक अध्यापक (सामाजिक विज्ञान), एल.टी. ग्रेड के पास उपरोक्त चार विषयों में से दो विषयों के साथ बी.ए. की डिग्री होनी चाहिए। हालाँकि, रिकॉर्ड से पता चलता है कि याचिकाकर्ता के पास उपरोक्त चार विषयों में से केवल अर्थशास्त्र के साथ बी.ए. की डिग्री है। इस प्रकार, याचिकाकर्ता सहायक अध्यापक (सामाजिक विज्ञान), एल.टी. ग्रेड के पद पर नियुक्ति के लिए अनिवार्य रूप से योग्य नहीं था और याचिकाकर्ता को काम करने की अनुमति न देने या उसे वेतन का भुगतान न करने के लिए प्रतिपक्षियों की कार्रवाई में कोई त्रुटि स्पष्ट नहीं है।

10. उपर्युक्त चर्चा के मद्देनजर, मुझे भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए रिट याचिका में हस्तक्षेप करने का कोई उचित आधार नहीं दिखता।

11. रिट याचिका में कोई मेरिट नहीं है। तदनुसार इसे खारिज किया जाता है।

(2025) 4 ILRA 99

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ, 30.04.2025

माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान

के समक्ष

रिट ए संख्या 2603 सन् 2025

सी/एम राम भरोसे मैकूलाल इंटर कॉलेज, लखनऊ ... **याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ... **प्रतिवादी**

4.इला सी/एम राम भरोसे मैकूलाल इंटर कॉलेज, लखनऊ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 125

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

महेंद्र बहादुर सिंह, विकास सिंह

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

सी.एस.सी., हरि प्रसाद गुप्ता, हरि राम गुप्ता

सिविल कानून - उ.प्र. इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 - धारा 16-जी - आदेश दिनांक 11.02.2025 द्वारा डीआईओएस ने प्रतिपक्षी संख्या 5 के विरुद्ध जारी निलंबन आदेश दिनांक 04.01.2025 को अस्वीकृत कर दिया - कानून के अनुसार, निलंबन आदेश अधिकतम 60 दिनों के लिए वैध रहता है जब तक कि उस अवधि के भीतर डीआईओएस द्वारा अनुमोदित न हो - तत्काल मामले में, प्रतिपक्षी संख्या 5 को 04.01.2025 को निलंबित कर दिया गया था - दिनांक 09.01.2025 को, डीआईओएस ने निर्देश दिया कि वह निलंबन के दौरान कार्यवाहक प्रधानाचार्य के रूप में कार्य करना जारी रखेंगे, निर्णय लंबित - संबंधित अधिनियम, 2021 के तहत कोई प्रावधान नहीं है, जो निलंबित शिक्षक को निलंबन के दौरान आधिकारिक कर्तव्यों का पालन करने की अनुमति देता हो- दिनांक 09.01.2025 का आदेश कानूनी प्रावधानों का उल्लंघन करते हुए पारित किया गया - याचिकाकर्ता ने दिनांक 11.01.2025 को अभ्यावेदन दाखिल करके दिनांक 09.01.2025 के आदेश पर आपत्ति जताई - डीआईओएस ने दिनांक 20.01.2025 को उक्त आदेश वापस ले लिया - आक्षेपित आदेश से पता चलता है कि प्रतिपक्षी संख्या 5 को सुना गया था, लेकिन याचिकाकर्ता को ऐसा कोई अवसर नहीं दिया गया, संबंधित पक्षों को सुनवाई का अवसर प्रदान करने के बाद, नया आदेश पारित करने के लिए मामले को वापस भेज दिया गया। (पैरा 2, 7, 8, 12, 13)

याचिका स्वीकृत। (ई-13)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. सत्य पाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, 2006 एससीसी ऑनलाइन आल 602, (पैरा 12)
2. प्रबंध समिति, महाराजगंज इंटर कॉलेज व अन्य बनाम जिला विद्यालय निरीक्षक, महाराजगंज व अन्य, 1999, एससीसी ऑनलाइन आल 693, (पैरा 4)
3. जनता इंटर कॉलेज व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, रिट-ए संख्या 909/2020, आदेश दिनांक 06.05.2020, (पैरा 20)
4. प्रबंध समिति, डी.पी.एस.एन. इंटर कॉलेज, कानपुर व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, 2018 (2) एडीजे 840

(माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान द्वारा प्रदत्त)

अनुवादित

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री एम.बी. सिंह, प्रतिपक्षी संख्या 1, 2, 3 और 6 के विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री विवेक शुक्ला और प्रतिपक्षी संख्या 5 के विद्वान अधिवक्ता श्री एच.पी. गुप्ता को सुना गया।

2. प्रतिपक्षी संख्या 5 के विद्वान अधिवक्ता श्री हरि प्रसाद गुप्ता द्वारा दायर रिट याचिका को खारिज करने के लिए आवेदन तथा याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री विकास सिंह द्वारा दायर संक्षिप्त प्रत्युत्तर शपथपत्र लेने के लिए आवेदन को अभिलेख पर लिया गया है।

3. चूंकि, डीआईओएस को प्रतिपक्षी संख्या 4 के रूप में नाम से अभियोजित किया गया है, और उन्हें कोई नोटिस जारी नहीं किया गया है, इसलिए प्रतिपक्षी संख्या 4 की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ है, यद्यपि, वर्तमान रिट याचिका में प्रतिपक्षी संख्या 4 के विरुद्ध पैराग्राफ संख्या 29 के तहत दुर्भावना का आरोप लगाया गया है, लेकिन दुर्भावना के उन आरोपों पर ध्यान दिए बिना, मैं केवल यू.पी. इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 (एतस्मिनपश्चात 'अधिनियम, 1921' के रूप में संदर्भित) की धारा 16-जी के आलोक में और इस न्यायालय द्वारा अधिनियम 1921 की धारा 16-जी के प्रासंगिक प्रावधानों की व्याख्या करने वाले निर्णयों के प्रकाश में ही आक्षेपित आदेश का परीक्षण कर रहा हूं। दिनांक 11.02.2025 के आक्षेपित आदेश के माध्यम से, डीआईओएस, लखनऊ ने प्रतिपक्षी संख्या 5 के विरुद्ध पारित दिनांक 04.01.2025 के निलंबन आदेश को अस्वीकृत कर दिया है। प्रश्नगत विवाद के लिए प्रासंगिक प्रावधान अधिनियम, 1921 की धारा 16-जी की उप-धारा 7 और 8 होगी, जो इस प्रकार है:-

"(7) ऐसा कोई भी निलम्बन आदेश, जब तक कि निरीक्षक द्वारा लिखित रूप में अनुमोदित न कर दिया जाए, उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा विधि (संशोधन) अधिनियम, 1975 के प्रारम्भ होने की तिथि से, या यथास्थिति, ऐसे आदेश की तिथि से साठ दिन से अधिक अवधि तक प्रवृत्त नहीं रहेगा और निरीक्षक का आदेश अन्तिम होगा तथा किसी न्यायालय में उस पर प्रश्न नहीं उठाया जा सकेगा।

(8) यदि किसी भी समय निरीक्षक को यह विश्वास हो जाए कि संस्था के प्रधान या शिक्षक के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही में संस्था के प्रधान या शिक्षक की किसी गलती के बिना ही विलम्ब हो रहा है, तो निरीक्षक, प्रबन्धन को अभ्यावेदन करने का अवसर देने के पश्चात् इस धारा के अधीन पारित निलंबन आदेश को रद्द कर सकेगा।"

4. संवैधानिक न्यायालयों के निर्णयों में स्पष्ट रूप से यह आदेश दिया गया है कि यदि किसी शिक्षक या संस्था के प्रधानाध्यापक को, जैसा भी मामला हो, निलंबित किया गया है, तो उसे समय-सीमा के भीतर जिला शिक्षा अधिकारी द्वारा अनुमोदित या अस्वीकृत किया जाना चाहिए और यदि निलंबन आदेश अस्वीकृत किया जाता है, तो प्रबंध समिति और आरोपित कर्मचारी को सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए, अन्यथा वह अस्वीकृति

आदेश अमान्य हो जाएगा। इस न्यायालय ने **सत्यपाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2006 एससीसी ऑनलाइन ऑल 602** के पैरा 12 में निम्नलिखित टिप्पणी की है:

"12. धारा 16-जी के खंड (5) के तहत, प्रबंधन समिति उसमें उल्लिखित कुछ आधारों पर एक शिक्षक या संस्था के प्रमुख को निलंबित कर सकती है। आदेश को खंड (6) के तहत अध्याय- III के विनियम 39 के तहत निर्धारित कागजात के साथ भेजा गया था। इन कागजात पर विचार किया जाना आवश्यक था और निरीक्षक को अपने विवेक का प्रयोग करने की आवश्यकता थी और निलंबन आदेश को मंजूरी या अस्वीकृति देते समय कारण बताने की आवश्यकता थी। वर्तमान मामले में, कोई कारण दर्ज नहीं किया गया है और इसलिए, यह स्पष्ट है कि निरीक्षक ने मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार नहीं किया। मामले का एक और पहलू भी है। निलंबन आदेश जारी करते समय प्रबंध समिति को शिक्षक या संस्था प्रमुख को सुनवाई का अवसर देना आवश्यक नहीं है। इसलिए, जिस स्तर पर निलंबन आदेश को स्वीकृत किया जा रहा है और निरीक्षक को अपना विवेक प्रयोग करना है, उसी स्तर पर निलंबित शिक्षक या प्रधानाचार्य, जैसी भी स्थिति हो, को सुनवाई का न्यूनतम अवसर दिया जाना आवश्यक है। यह प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों की न्यूनतम आवश्यकता है, जो निलंबन आदेश को स्वीकृत या अस्वीकृत करते समय निरीक्षक द्वारा उस समय दिया जाना आवश्यक है। ऐसा इसलिए है क्योंकि अध्याय III के विनियम 39 के अंतर्गत प्रबंध समिति द्वारा प्रस्तुत किए गए दस्तावेज़ों में कारण एकतरफा हो सकते हैं। सिक्के के दूसरे पहलू पर भी विचार किया जाना चाहिए और तभी निलंबित शिक्षक या प्रधानाचार्य की भूमिका सामने आएगी। परिणामस्वरूप, न्यायालय की राय में, निरीक्षक को निलंबन आदेश को स्वीकृत या अस्वीकृत करने से पहले निलंबित शिक्षक या प्रधानाचार्य को सुनवाई का अवसर देना और उनका पक्ष सुनना भी आवश्यक है। वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता को सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया।"

5. इस न्यायालय की खंडपीठ ने **प्रबंध समिति, महाराजगंज इंटर कॉलेज एवं अन्य बनाम जिला विद्यालय निरीक्षक, महाराजगंज एवं अन्य, 1999, एससीसी ऑनलाइन ऑल 693** के पैरा 4 में निम्नलिखित टिप्पणी की है:-

"4. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के पश्चात्, हमारा मत है कि जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा पारित आदेश कानून की दृष्टि से मान्य नहीं है। इस न्यायालय की खण्डपीठ ने प्रबंध समिति एस.एम.आर.के. इंटर कॉलेज बनाम जिला विद्यालय निरीक्षक, बलिया के मामले में स्पष्ट रूप से माना है कि प्रधानाचार्य या शिक्षक को निलंबित करने के प्रबंध समिति के प्रस्ताव को अनुमोदित या अस्वीकृत करने वाले आदेश में कारण अवश्य शामिल होने चाहिए और इसके अतिरिक्त कारणों के अभाव में आदेश अमान्य हो जाएगा। निस्संदेह, स्कूलों के जिला निरीक्षक ने निलंबन की मंजूरी मांगने वाले पत्र के साथ भेजे गए प्रासंगिक कागजात को संबोधित नहीं किया और प्रतिवादी-शिक्षक द्वारा किए गए अभ्यावेदन पर विचार करने के बाद अनुमोदन देने से इनकार कर दिया। यू.पी. इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 की धारा 16-जी (5) में प्रावधान है कि किसी भी संस्था के प्रमुख या शिक्षक को प्रबंधन द्वारा निलंबित नहीं किया जाएगा, जब तक कि प्रबंधन की राय में- (क) उसके खिलाफ आरोप उसके बर्खास्तगी या हटाने या रैंक में कमी के योग्य गंभीर न हों; या (ख) उसके पद पर बने रहने से उसके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही के संचालन में बाधा या पूर्वाग्रह होने की संभावना हो;

अनुवादित

या (ग) उसके खिलाफ आपराधिक अधमता से जुड़े किसी अपराध का कोई आपराधिक मामला जांच, पूछताछ या मुकदमे के अधीन न हो। उपधारा (6) के अनुसार, जहां किसी संस्था के प्रधान या शिक्षक को प्रबंध समिति द्वारा निलंबित किया जाता है, वहां इसकी रिपोर्ट निरीक्षक को निर्धारित अवधि के भीतर दी जाएगी और इसमें आगे यह भी प्रावधान है कि रिपोर्ट में ऐसे विवरण दिए जाएंगे जो विहित किए जाएं और उसके साथ सभी प्रासंगिक दस्तावेज संलग्न किए जाएंगे। अधिनियम के अध्याय III के विनियमन 39 में संस्था के प्रमुख या शिक्षक के निलंबन के संबंध में निरीक्षक को प्रस्तुत की जाने वाली रिपोर्ट में शामिल किए जाने वाले विवरणों का प्रावधान है तथा रिपोर्ट के साथ संलग्न किए जाने वाले दस्तावेजों का भी प्रावधान है। धारा 16 की उपधारा (7) में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि कोई भी निलंबन आदेश, निरीक्षक द्वारा लिखित रूप में अनुमोदित किए बिना, 60 दिनों से अधिक समय तक प्रभावी नहीं रहेगा। धारा 16-जी, जिला विद्यालय निरीक्षक को यह अधिकार देती है कि यदि वह इस बात से संतुष्ट हो कि संस्था के प्रमुख या शिक्षक के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही संबंधित शिक्षक की किसी गलती के बिना विलंबित हो रही है, तो वह प्रबंधन को अवसर प्रदान करने के बाद निलंबन आदेश को रद्द कर सकता है। ये प्रावधान स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं कि प्रधानाचार्य सहित किसी भी शिक्षक के निलंबन को स्वीकृत या अस्वीकृत करना कोई औपचारिकता नहीं है। निरीक्षक को निलंबन आदेश के आधारों के साथ-साथ संस्था प्रमुख या शिक्षक, जैसा भी मामला हो, के विरुद्ध लगाए गए आरोपों का प्रथम दृष्टया समर्थन करने वाले दस्तावेज़, यदि कोई हों, प्रस्तुत करने होंगे। यदि धारा 16-जी की उपधारा (5) में उल्लिखित प्रकृति के आरोप प्रथम दृष्टया साक्ष्य द्वारा समर्थित हैं, तो उस स्थिति में निरीक्षक अनुमोदन रोक नहीं सकता। दूसरी ओर, यदि आरोप मामूली प्रकृति के हैं और धारा 16-जी की उपधारा (5) में उल्लिखित आरोपों के अंतर्गत नहीं आते हैं और/या आरोपों के समर्थन में कोई प्रथम दृष्टया दस्तावेज़ या सामग्री उपलब्ध नहीं है, तो निरीक्षक, जैसा भी मामला हो, प्रधानाचार्य या शिक्षक के निलंबन को अस्वीकृत कर सकता है। इस मामले में, ऐसा प्रतीत होता है कि जिला विद्यालय निरीक्षक अपने वैधानिक कर्तव्य का निर्वहन करने में विफल रहे हैं और उन्होंने आदेश के समर्थन में कोई कारण नहीं बताया है। अतः, इन परिस्थितियों में, जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा पारित आदेश रद्द किए जाने योग्य था और विद्वान एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका खारिज करके विधिक त्रुटि की थी। वास्तव में, विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा उपरोक्त परिप्रेक्ष्य में इस प्रश्न की जाँच नहीं की गई, बल्कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह कहते हुए रिट याचिका खारिज कर दी कि निलंबन आदेश के अनुमोदन या अस्वीकृति पर विचार करते समय जिला विद्यालय निरीक्षक को सुनवाई का कोई अवसर दिए जाने की आवश्यकता नहीं थी। यह सत्य है कि इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने प्रबंध समिति, दयानंद इंटर कॉलेज बनाम जिला विद्यालय निरीक्षक के मामले में यह निर्णय दिया है कि निलंबन आदेश के अनुमोदन या अस्वीकृति के स्तर पर निरीक्षक को प्रबंधन को सुनवाई का कोई अवसर प्रदान करने की आवश्यकता नहीं है और उसे केवल विनियमों के अध्याय III के विनियमन संख्या 39 में संदर्भित प्रासंगिक सामग्री पर विचार करना है। हमारी राय में, उक्त निर्णय निरर्थक है। हालाँकि, वर्तमान मामले में, जैसा कि ऊपर बताया गया है, जिला विद्यालय निरीक्षक ने आरोपों और संबंधित दस्तावेजों पर स्वयं विचार नहीं किया और संबंधित शिक्षक द्वारा प्रस्तुत अभ्यावेदन के आधार पर निलंबन आदेश को अस्वीकृत कर दिया। यदि संबंधित शिक्षक द्वारा अभ्यावेदन के माध्यम से बताई गई किसी त्रुटि के आधार पर निलंबन को अस्वीकृत किया जाना है, तो कार्यवाही में ऐसी किसी भी त्रुटि के आधार पर निलंबन को अस्वीकृत करने से पहले प्रबंधन को अवसर प्रदान किया जाना चाहिए।"

6. इस न्यायालय ने **जनता इंटर कॉलेज के सी/एम एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं 3 अन्य, रिट-ए संख्या 909/2020** के संबंध में, दिनांक 06.05.2020 के निर्णय एवं आदेश के पैरा 20 में निम्नानुसार टिप्पणी की:-

"20. धारा 16जी(7) सपठित विनियम 39 के अंतर्गत विचार का दायरा बहुत सीमित है, जैसा कि राम औतार वर्मा (उपरोक्त) के मामले में भी स्पष्ट किया गया है। इस प्रकार, उपर्युक्त चार निर्णयों के संयुक्त वाचन से पता चलता है कि यदि प्रबंधन द्वारा अधिनियम, 1921 की धारा 16जी की उपधारा (7) और विनियम 39 के अंतर्गत निर्धारित सभी आवश्यक कागजात और सूचनाएं निलंबन का अनुमोदन प्राप्त करने के लिए जिला विद्यालय निरीक्षक को प्रस्तुत कर दी गई हैं, तो अनुमोदन या अस्वीकृति प्रदान करने के स्तर पर प्रबंधन या कर्मचारी को सुनवाई का अवसर प्रदान करने की आवश्यकता नहीं है। लेकिन अगर कर्मचारी ने निलंबन के आदेश के खिलाफ कोई अभ्यावेदन या आपत्ति प्रस्तुत की है, तो जिला विद्यालय निरीक्षक अनुमोदन या अस्वीकृति का आदेश पारित करते समय प्रबंधन और संबंधित कर्मचारी को सुनवाई का अवसर प्रदान करेगा, जिसमें संक्षिप्त कारण शामिल होने चाहिए। इस दृष्टिकोण को धारा 16जी की उपधारा (8) के प्रावधानों द्वारा और समर्थन मिलता है, जो विशेष रूप से उपधारा (7) के तहत पारित निलंबन के आदेश को रद्द करने पर विचार करते समय जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा प्रबंधन को बाद के चरण में सुनवाई का अवसर प्रदान करता है, जब निरीक्षक संतुष्ट हो जाता है कि संस्था के प्रमुख या शिक्षक के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही में संस्था के प्रमुख या शिक्षक की कोई गलती नहीं होने के कारण देरी हो रही है।"

7. उपर्युक्त प्रावधानों और न्याय दृष्टांतों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि निलंबन आदेश की अवधि अधिकतम 60 दिन होगी, जब तक कि डीआईओएस द्वारा 60 दिनों की अवधि के भीतर इसे अनुमोदित न कर दिया जाए। हालाँकि, वर्तमान मामले में, प्रतिपक्षी संख्या 5 को 04.01.2025 को निलंबित रखा गया था, लेकिन डीआईओएस ने 09.01.2025 (अनुलग्नक संख्या 8) को एक आदेश पारित किया है, जिसमें याचिकाकर्ता को प्रतिपक्षी संख्या 5 को निलंबन अवधि के दौरान कार्यवाहक प्रधानाचार्य के रूप में अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने की अनुमति देने का निर्देश दिया गया है, जब तक कि उनके निलंबन आदेश पर निर्णय नहीं हो जाता। अधिनियम, 2021 की धारा 16-जी के तहत किसी भी निलंबित शिक्षक या संस्था के प्रमुख को निलंबन आदेश के अनुमोदन/अस्वीकृति के लिए आवश्यक अभ्यास लंबित रहने तक निलंबन की अवधि के दौरान कार्यवाहक प्रधानाचार्य के रूप में अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने की अनुमति देने का कोई प्रावधान नहीं है।

8. अतः, दिनांक 09.01.2025 (उपर्युक्त) का आदेश कानून के प्रावधानों का घोर उल्लंघन करते हुए पारित किया गया है। यद्यपि निलंबन आदेश को दिनांक 11.02.2025 (अनुलग्नक संख्या 1) के आक्षेपित आदेश द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया है। उल्लेखनीय है कि दिनांक 09.01.2025 (अनुलग्नक संख्या 8) के आदेश के विरुद्ध, याचिकाकर्ता ने दिनांक 11.01.2025 (अनुलग्नक संख्या 9) को एक अभ्यावेदन प्रस्तुत किया, जिसमें उक्त आदेश पर आपत्ति उठाई गई और तत्पश्चात डीआईओएस ने दिनांक 20.01.2025 (अनुलग्नक संख्या 10) का आदेश पारित कर अपने पूर्व आदेश दिनांक 09.01.2025 को वापस ले लिया।

9. मैं यह समझने में असमर्थ हूं कि डीआईओएस ने दिनांक 09.01.2025 का आदेश क्यों पारित किया, जबकि, उनके पास निलंबन आदेश को अस्वीकृत करने का अधिनियम के तहत अधिकार था, लेकिन इस निलंबन आदेश को अस्वीकृत किए बिना, उन्होंने प्रतिपक्षी संख्या 5 को निलंबन के अनुमोदन/अस्वीकृति के संबंध में कोई उचित आदेश पारित होने तक कार्यवाहक प्रधानाचार्य के रूप में अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने के लिए अधिकृत करने वाले कानून के प्रावधान को दरकिनार कर दिया। दिनांक 09.01.2025 के आदेश के पारित होने के बाद, निलंबन आदेश सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए अपनी प्रभावकारिता खो चुका था, हालाँकि दिनांक 11.02.2025 के आक्षेपित आदेश के पारित होने के बाद निलंबन आदेश अपनी प्रभावकारिता खो चुका था। इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों के आलोक में एक सामान्य नियम यह है कि यदि किसी शिक्षक या संस्था के प्रधानाध्यापक के निलंबन आदेश को डीआईओएस द्वारा अस्वीकृत किया जाता है, तो प्रबंध समिति के साथ-साथ आरोपित शिक्षक/संस्था प्रमुख को भी सुनवाई का अवसर दिया जाएगा। कानून के इस स्थापित प्रावधान का उद्देश्य यह है कि यदि किसी शिक्षक या प्रधानाध्यापक को निलंबित करने संबंधी प्रबंध समिति का आदेश अस्वीकृत हो, तो उसे सुनवाई का अवसर प्रदान करके पारित किया जाना चाहिए ताकि प्रबंध समिति निलंबन आदेश की कमियों से अवगत हो सके। दिनांक 11.02.2025 के आक्षेपित आदेश में, जिसके द्वारा प्रतिपक्षी संख्या 5 के निलंबन आदेश को अस्वीकृत किया गया है, यह दर्शाया गया है कि याचिकाकर्ता आरोपित कर्मचारी के साथ दिनांक 10.02.2025 को डीआईओएस के समक्ष उपस्थित हुआ था, किन्तु निलंबन आदेश का बचाव करते हुए याचिकाकर्ता द्वारा डीआईओएस के समक्ष जो कुछ कहा गया है, वह दिनांक 11.02.2025 के आदेश में इंगित नहीं किया गया है। यद्यपि इस तथ्य को प्रतिपक्षी संख्या 6 के संक्षिप्त प्रति-शपथपत्र में सुधारा गया है, जिसमें कहा गया है कि दिनांक 10.02.2025 को याचिकाकर्ता डीआईओएस के समक्ष उपस्थित था, लेकिन उसने कहा है कि मामले को किसी अन्य डीआईओएस के समक्ष रखा जाना चाहिए, क्योंकि उसने निदेशक (शिक्षा) को एक आवेदन दिया है, जिसमें इस मुद्दे को स्थानांतरित करने की मांग की गई है, ताकि उसके खिलाफ आरोप लगाने वाले किसी अन्य डीआईओएस के समक्ष इसे रखा जा सके।

10. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि कमोबेश समान तथ्यों और परिस्थितियों में, इस न्यायालय ने **प्रबंध समिति, डी.पी.एस.एन. इंटर कॉलेज, कानपुर और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2018 (2) एडीजे 840** में अवधारित किया है कि यदि प्रबंध समिति किसी अन्य प्राधिकारी के समक्ष मुद्दे को स्थानांतरित करने के लिए किसी उच्च प्राधिकारी से संपर्क करती है, तो वही प्रयोग किए जा सकते हैं और उस मामले में डीआईओएस द्वारा तब तक कोई निर्णय नहीं लिया जाना चाहिए जब तक कि उस प्राधिकारी द्वारा कोई निर्णय नहीं लिया जाता है जिसके समक्ष कोई आवेदन दिया गया है।

11. तथापि, इस स्तर पर, श्री एम.बी. सिंह ने प्रस्तुत किया है कि चूंकि वर्तमान डीआईओएस ने याचिकाकर्ता को सुनवाई का कोई अवसर उचित रूप से प्रदान नहीं किया है, इसलिए वह इस मामले को किसी अन्य प्राधिकारी के समक्ष स्थानांतरित करने के लिए अपने अनुरोध पर जोर नहीं देंगे, बल्कि इस मामले को उसी डीआईओएस द्वारा उसे सुनवाई का पर्याप्त अवसर प्रदान करके नए सिरे से तय किया जा सकता है।

12. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं के तर्कों तथा उपरोक्त न्याय दृष्टांतों पर विचार करने तथा दिनांक 11.02.2025 के आक्षेपित आदेश पर विचार करने के पश्चात्, जिसमें इस तथ्य का खुलासा नहीं किया गया है कि दिनांक 11.02.2025 के आक्षेपित आदेश को पारित करने से पूर्व याचिकाकर्ता को सुनवाई का कोई अवसर प्रदान किया गया था या नहीं, तथा यदि याचिकाकर्ता ने कोई अन्य दलील प्रस्तुत करके सुनवाई का अवसर प्राप्त करने से इनकार किया था, तो उसी तथ्य को दिनांक 11.02.2025 के आक्षेपित आदेश में इंगित तथा प्रतिबिम्बित किया जाना चाहिए था, मैं पाता हूँ कि आक्षेपित आदेश अधिनियम, 1921 की धारा 16-जी के अनुसार उचित रूप से जारी नहीं किया गया है। आक्षेपित आदेश में कर्मचारी अर्थात प्रतिपक्षी संख्या 5 को सुनवाई का अवसर दिए जाने का उल्लेख किया गया है, लेकिन जहां तक वर्तमान याचिकाकर्ता का संबंध है, ऐसा कोई अवसर प्रदान नहीं किया गया है।

13. अतः उपरोक्त सीमित आधार पर, दिनांक 11.02.2025 के आक्षेपित आदेश को अपास्त/रद्द किया जाता है, तथा इसे डीआईओएस, लखनऊ के समक्ष पुनः भेजा जाता है, ताकि संबंधित पक्षों को सुनवाई का अवसर प्रदान करते हुए विध्यानुसार एक नया आदेश पारित किया जा सके।
इस आदेश की प्राप्ति के पश्चात् जिला अधिकारी कोई भी तिथि निर्धारित कर सकेंगे तथा पक्षकारों को सात दिनों के भीतर सुनवाई का अवसर प्रदान कर सकेंगे तथा निलंबन आदेश को स्वीकृत या अस्वीकृत करने के संबंध में कोई भी उचित निर्णय तीन सप्ताह की अतिरिक्त अवधि के भीतर लिया जा सकेगा।

14. यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि पक्षकार कार्यवाही में सहयोग करेंगे।

15. उपर्युक्त शर्तों के मद्देनजर रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

(2025) 4 ILRA 105

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 05.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट

रिट ए संख्या 4118/2025

सिम्मी कुमारी एवं अन्य **...याचिकाकर्ता**

बनाम

भारत संघ एवं अन्य **...प्रतिवादी**

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:

राजेश कुमार दुबे

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

ए.एस.जी.आई., अनूप तिवारी, आशुतोष मणि त्रिपाठी, सिद्धार्थ सिंघल

सिविल कानून - भारतीय जीवन बीमा निगम (श्रेणी-III और श्रेणी-IV कर्मचारियों की भर्ती) निर्देश, 1979 - खंड 21 - याचिकाकर्ता संख्या 1 मृतक कर्मचारी की बेटी है और याचिकाकर्ता संख्या 2 पत्नी है, जिनकी 19.05.2024 को सेवा के दौरान मृत्यु हो गई थी - याचिकाकर्ता संख्या 2 ने अपनी बेटी के पक्ष में अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदन किया, जिसमें कहा गया कि पंजाब नेशनल बैंक में कार्यरत उनके बेटे ने परिवार से संबंध तोड़ लिए थे और अलग रह रहे थे - दोनों याचिकाकर्ता मृतक कर्मचारी के आश्रित थे - आवेदन खारिज - लागू नियमों के तहत, अधिकारियों को यह जांच करनी चाहिए कि क्या मृतक कर्मचारी का लाभकारी रूप से कार्यरत बेटा आश्रितों का भरण-पोषण कर रहा है - यदि उसका उनसे कोई संबंध नहीं है या वह सहायता प्रदान करने में विफल रहता है, तो उसके रोजगार से अनुकंपा नियुक्ति पर निर्णय प्रभावित नहीं होना चाहिए - कोई भी विपरीत दृष्टिकोण ऐसी नियुक्तियों के उद्देश्य को विफल करता है (पैराग्राफ 4, 9, 13)

याचिका स्वीकृत। (ई-13)

(माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री राजेश कुमार दुबे, प्रतिवादी संख्या 2 से 3 के विद्वान अधिवक्ता श्री आशुतोष मणि त्रिपाठी और प्रतिवादी संख्या 1-भारत संघ के विद्वान केंद्रीय अधिवक्ता श्री अनूप तिवारी को सुना गया।

2. दिनांक 18.10.2024 के आक्षेपित आदेश द्वारा याचिकाकर्ता संख्या 1 का दावा अस्वीकार कर दिया गया है। दिनांक 18.10.2024 का आदेश गूढ़ है और इसमें अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति प्रदान करने के याचिकाकर्ता संख्या 1 के दावे को अमान्य करने का कोई कारण नहीं बताया गया है।

3. दिनांक 06.12.2024 के आक्षेपित आदेश द्वारा अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति प्रदान करने के लिए याचिकाकर्ता संख्या 1 के आवेदन को इस आधार पर खारिज कर दिया गया है कि याचिकाकर्ता संख्या 2 का पुत्र बैंक में लाभकारी रूप से कार्यरत था।

4. याचिकाकर्ता संख्या 1, मृतक कर्मचारी की पुत्री और याचिकाकर्ता संख्या 2, क्रमशः पत्नी हैं, जिनकी 19.05.2024 को सेवाकाल के दौरान मृत्यु हो गई थी। याचिकाकर्ता संख्या 2 ने अपनी पुत्री (याचिकाकर्ता संख्या 1) की अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति हेतु आवेदन प्रस्तुत किया। अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति हेतु आवेदन

के समर्थन में याचिकाकर्ता संख्या 2 द्वारा प्रस्तुत शपथपत्र में कहा गया है कि उसका पुत्र पंजाब नेशनल बैंक में कार्यरत था। उक्त शपथपत्र के अनुसार, नियुक्ति के बाद पुत्र ने परिवार से सभी संबंध तोड़ लिए थे और अलग रह रहा था। याचिकाकर्ता संख्या 2 अपनी बेटी (याचिकाकर्ता संख्या 1) पर आश्रित है। दोनों मृतक कर्मचारी के आश्रित थे।

5. अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति प्रदान करने संबंधी प्रासंगिक नियम नीचे दिए गए हैं:

"21. ऐसे कर्मचारी के निकट संबंधियों के पक्ष में छूट, जिनकी सेवाकाल के दौरान मृत्यु हो जाती है या जो सेवानिवृत्ति की तिथि से कम से कम 5 वर्ष पूर्व सेवानिवृत्त हो जाते हैं:

(iii) ये छूट केवल तभी मान्य होंगी जब परिवार का कोई भी सदस्य - पति/पत्नी, पुत्र या अविवाहित पुत्री - लाभकारी रोजगार में न हो। हालाँकि, यदि विधवा पहले से ही निजी क्षेत्र में कहीं और कार्यरत है, तो उसे अपनी योग्यता के अनुरूप निगम में तृतीय या चतुर्थ श्रेणी संवर्ग में नौकरी करने की अनुमति दी जाएगी, बशर्ते वह ऐसा विकल्प चुनती हो (परिपत्र संख्या MPP&R डेस्क/ZD/3/2001 दिनांक 29/12/2001)। इसके अतिरिक्त, लाभकारी रोजगार संबंधी शर्त वहाँ लागू नहीं होगी जहाँ दस्तावेज़ी साक्ष्य द्वारा यह स्थापित हो कि कर्मचारी की मृत्यु उसके रोजगार के कारण हुई है।

परन्तु यह प्रावधान केवल ऐसे कर्मचारी द्वारा प्रदर्शित साहस और बहादुरी के कार्य को मान्यता देने के लिए है।"

6. अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के नियमों की व्याख्या इस प्रकार की जानी चाहिए कि वे ऊपर बताए गए विधान के अनुरूप हों।

7. अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियाँ संवैधानिक वैधता की कसौटी पर मामूली अंतर से खरी उतरीं। अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियाँ करने का एकमात्र औचित्य यह है कि मृतक कर्मचारी की मृत्यु के बाद उसके आश्रितों को अप्रत्याशित आर्थिक तंगी का सामना करना पड़ता है और उन्हें तत्काल सहायता की आवश्यकता होती है। कर्मचारी की मृत्यु के कारण उत्पन्न अचानक आर्थिक संकट से तुरंत उबरने के लिए परिवार को अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियाँ प्रदान की जाती हैं। केवल इसी विशेषता के आधार पर मृतक कर्मचारी के परिजनों को एक वर्ग में रखा गया और इसी आधार पर संवैधानिक न्यायालयों द्वारा अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियों के औचित्य को उचित ठहराया गया।

8. इस प्रकार, कर्मचारी की मृत्यु के परिणामस्वरूप परिवार द्वारा सामना की जा रही वित्तीय स्थिति या वित्तीय संकट का निर्धारण अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए एक अनिवार्य पूर्व शर्त है।

9. उपर्युक्त नियमों के दायरे की व्याख्या संवैधानिक न्यायालयों के उपरोक्त निर्णयों और इस मामले के तथ्यों के आलोक में की जानी है। उक्त नियमों के तहत, प्राधिकारियों को यह जाँच करनी होगी कि मृतक का पुत्र,

अनुवादित

जो लाभकारी नौकरी में है, मृतक के आश्रितों का भरण-पोषण कर रहा है या नहीं। यदि परिवार का कोई सदस्य जो लाभकारी नौकरी में है, मृतक के आश्रितों से कोई संबंध नहीं रखता है या उनकी ज़रूरतों को पूरा नहीं करता है या उनका भरण-पोषण करने में असमर्थ है, तो उक्त नौकरी अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति देने के निर्णय को प्रभावित नहीं करेगी। कोई भी विपरीत व्याख्या अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति देने के उद्देश्य को विफल कर देगी। दिनांक 06.12.2024 के आक्षेपित आदेश में इन महत्वपूर्ण पहलुओं की अनदेखी की गई है।

10. जैसा कि पहले देखा जा चुका है, दिनांक 18.10.2024 का आक्षेपित आदेश बिना किसी कारण के है।

11. दिनांक 18.10.2024 और 06.12.2024 के आक्षेपित आदेशों में याचिकाकर्ताओं के दावे को अमान्य ठहराते हुए उपरोक्त प्रासंगिक पहलुओं पर विचार करने की उपेक्षा की गई है। दिनांक 18.10.2024 और 06.12.2024 के आक्षेपित आदेश प्रासंगिक विचारों पर विचार न करने के कारण अमान्य हैं।

12. इसके मद्देनजर, दिनांक 18.10.2024 और 06.12.2024 के आक्षेपित पत्र रद्द किए जाते हैं।

13. मामला प्रतिवादी-प्राधिकारियों को सौंप दिया गया है, जो उपरोक्त टिप्पणियों के आलोक में और इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तारीख से तीन महीने की अवधि के भीतर कानून के अनुसार मृतक के परिवार की वित्तीय स्थिति सहित सभी प्रासंगिक कारकों पर विचार करने के बाद याचिकाकर्ता के दावे का फैसला करेंगे।

14. रिट याचिका ऊपर बताई गई सीमा तक स्वीकार की जाती है।

(2025) 4 ILRA 107

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 08.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर

रिट ए संख्या 7119 सन् 2023

राम सुंदर **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री राम कृष्ण यादव, श्री जितेंद्र कुमार सिंह

अनुवादित

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
सी.एस.सी.

सेवा कानून - पुलिस कांस्टेबल भर्ती - आपराधिक पूर्ववृत्त का दमन - झूठा शपथपत्र - न्यायिक समीक्षा का दायरा - अवतार सिंह सिद्धांतों की प्रयोज्यता - निर्दोष बरी - तुच्छ मामला - भूतपूर्व गुंडा अधिनियम मामला - विवेक का प्रयोग न किया जाना - आपराधिक मामले के दमन को परिस्थितियों, बरी होने की प्रकृति और गंभीरता के आलोक में देखा जाना चाहिए - गुंडा अधिनियम की कार्यवाही आपराधिक मामले नहीं हैं - सार्थक जांच के बिना यांत्रिक रूप से रोजगार से इनकार नहीं किया जा सकता - विवेक का प्रयोग न करना रद्द करने के आदेश को मनमाना और अस्थिर बना देता है। (पैरा 15 से 27, 32 से 36)

याचिका स्वीकार की गई। (ई-14)

<u>अवधारित किया गया:</u>
अवतार सिंह मामले में निर्धारित सिद्धांत सार्वभौमिक रूप से और बिना किसी अपवाद के रोजगार के लिए आवेदन करते समय या चयन के बाद उसके चरित्र के सत्यापन के समय किसी ऐसे व्यक्ति की उम्मीदवारी पर विचार करने से मना नहीं किया जाता है जो किसी आपराधिक मामले में संलिप्तता की झूठी सूचना देने या छिपाने का दोषी हो। (पैरा 17)

सामान्य नियम यह है कि किसी उम्मीदवार को सेवा में आने से पहले या बाद में, दोषसिद्धि, दोषमुक्ति, गिरफ्तारी या किसी आपराधिक मामले के लंबित होने की जानकारी नहीं छिपानी चाहिए। लेकिन, अगर किसी आपराधिक मामले में संलिप्तता की जानकारी छिपाई जाती है, तो इसका किसी व्यक्ति की उम्मीदवारी, या यूँ कहें कि उसकी नियुक्ति के अधिकार पर क्या प्रभाव पड़ेगा? यह कई कारकों पर निर्भर करेगा। अवतार सिंह मामले में रिपोर्ट के पैराग्राफ संख्या 38 में जिन सिद्धांतों का सारांश दिया गया है, उनके पीछे विस्तृत कारण दिए गए हैं, जो मोटे तौर पर किसी उम्मीदवार द्वारा आपराधिक मामले में संलिप्तता की झूठी जानकारी छिपाने या प्रस्तुत करने पर आपत्ति जताते हैं, लेकिन यह इसे एक ऐसा अपरिहार्य आधार नहीं बनाता जिससे सभी मामलों में उम्मीदवारी खारिज कर दी जाए। निस्संदेह, अनुच्छेद 38.4 का सिद्धांत ऐसे मामले पर लागू होता है जहाँ किसी आपराधिक मामले में संलिप्तता की सूचना छिपाई गई हो या झूठी सूचना दी गई हो, जहाँ दोषसिद्धि या बरी पहले ही कर दी गई हो, लेकिन यह कोई गणितीय सूत्र नहीं है जहाँ निर्णय लंबित होने पर, उन्हीं सिद्धांतों को तर्कसंगत रूप से लागू नहीं किया जा सकता। यह एक सर्वमान्य सिद्धांत है कि किसी निर्णय को उस सिद्धांत के रूप में समझा जाना चाहिए जो वह निर्धारित करता है और उसे कभी भी किसी क़ानून की तरह नहीं पढ़ा जाना चाहिए। अवतार सिंह मामले में दिए गए सिद्धांत नियुक्ति प्राधिकारी को मामले में विवेकाधिकार का प्रयोग करने की पर्याप्त स्वतंत्रता देते हैं। इसमें नियोक्ता द्वारा आपराधिक मामले के बारे में गलत जानकारी देने पर सेवा समाप्ति या उम्मीदवारी रद्द करने का आदेश पारित करने से पहले मामले की

विशेष परिस्थितियों का संज्ञान लेने का प्रावधान है। यह आकस्मिकता उन मामलों में भी लागू होती है जहाँ निर्णय नहीं दिया गया है। (पैरा 18)

इन सभी सिद्धांतों के पीछे झाँकते हुए, इस तथ्य को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता कि किसी आपराधिक मामले के लंबित होने की जानकारी को छिपाये जाने की स्थिति में, जहाँ पहले ही निर्णय हो चुका हो, चाहे दोषसिद्धि का हो या दोषमुक्ति का, या फिर ऐसे मामले में जहाँ निर्णय कुछ ही समय बाद सुनाया गया हो, सबसे पहले यह देखा जाना चाहिए कि कर्मचारी पर लगाया गया अपराध मामूली प्रकृति का है या जघन्य। यदि यह जघन्य है, तब भी नियोक्ता किसी निर्णय पर पहुँचने से पहले कर्मचारी के पूर्ववृत्त से संबंधित प्रासंगिक तथ्यों पर विचार कर सकता है। (पैरा 20)

निस्संदेह, संदीप कुमार और राम कुमार के निर्णयों में अवतार सिंह मामले में बाद में लिए गए निर्णय को ध्यान में रखा गया है, जिसमें सिद्धांतों को आत्मसात और संक्षेपित किया गया है, लेकिन संदीप कुमार और राम कुमार मामले में उल्लिखित नियमों से कोई विचलन या असहमति नहीं है। इस मामले के अभिलेखों पर ध्यानपूर्वक नज़र डालने से पता चलता है कि याचिकाकर्ता की नियुक्ति की उपयुक्तता के लिए ज़िला मजिस्ट्रेट की राय लेने की प्रक्रिया के पालन में, उसका मामला भी ज़िला मजिस्ट्रेट को भेजा गया था। और, परिस्थितियों पर विचार करने के बाद, ऐसा प्रतीत होता है कि ज़िला मजिस्ट्रेट ने याचिकाकर्ता को पुलिस कांस्टेबल के पद पर सरकारी सेवा में नियुक्ति देने का पक्ष लिया है। यह तथ्य पुलिस अधीक्षक, हाथरस द्वारा वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, इटावा को संबोधित ज्ञापन संख्या भा.भा.-38/2017 दिनांक 18 अप्रैल, 2021 के अवलोकन से स्पष्ट होता है... (पैरा 39)

इन सभी भ्रांतियों के कारण, आक्षेपित आदेश को निरस्त किया जाना चाहिए तथा मामले को पुलिस अधीक्षक, हाथरस को वापस भेजा जाना चाहिए ताकि कानून और इस निर्णय में दिए गए मार्गदर्शन के अनुसार नए आदेश जारी किए जा सकें। हम यह जोड़ना चाहेंगे कि नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता की उपयुक्तता का आकलन करते समय, पुलिस अधीक्षक, हाथरस को उस अपराध से संबंधित परिस्थितियों को ध्यान में रखना होगा, जिसमें याचिकाकर्ता को फंसाया गया था और अब उसे बरी कर दिया गया है, यदि यह गांव के मूल निवासियों द्वारा सेवा से संबंधित निहितार्थ का एक विशिष्ट मामला था, क्योंकि याचिकाकर्ता ने पुलिस सेवा के लिए अपनी उम्मीदवारी प्रस्तुत की थी। पुलिस अधीक्षक को जिन बातों पर गौर करना और ध्यान रखना होगा, उनमें से एक है याचिकाकर्ता की सामान्य प्रतिष्ठा, ताकि यह पता लगाया जा सके कि वह आपराधिक प्रवृत्ति का व्यक्ति है या मुख्यधारा से जुड़ा हुआ है। हम ऐसा इसलिए कह रहे हैं क्योंकि उसकी भर्ती से संबंधित लगभग उसी समय दर्ज किए गए मुकदमा अपराध संख्या 564/2015 को छोड़कर, याचिकाकर्ता की पृष्ठभूमि की गहन जाँच के दौरान उसका कोई आपराधिक इतिहास सामने नहीं आया है, जिससे पता चले कि वह एक स्वच्छंद व्यक्ति है। (पैरा 45)

याचिका स्वीकृत। (ई-14)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. अवतार सिंह बनाम यू.ओ.आई. एवं अन्य, (2016) 8 एससीसी 471
2. विशेष अपील त्रुटिपूर्ण संख्या 734/2016, उत्तर प्रदेश जिला न्यायाधीश एवं अन्य बनाम विजय कुमार एवं अन्य, 06.12.2016 को निर्णीत
3. पवन कुमार बनाम यू.ओ.आई. एवं अन्य, (2023) 12 एससीसी 317
4. शिवम यादव बनाम उत्तर प्रदेश के जिला न्यायाधीश एवं अन्य, 2024 (11) एडीजे 749
5. पुलिस आयुक्त एवं अन्य बनाम संदीप कुमार, (2011) 4 एससीसी 644
6. राम कुमार बनाम उत्तर प्रदेश के जिला न्यायाधीश और अन्य, (2011) 14 एससीसी 709

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता पुलिस अधीक्षक, हाथरस के दिनांक 19.03.2023 के आदेश से व्यथित है, जिसमें पुलिस कांस्टेबल के पद पर नियुक्ति के लिए उसकी उम्मीदवारी रद्द कर दी गई थी। यह वह पद था जिसके लिए उसका चयन पुलिस भर्ती एवं प्रोन्नति बोर्ड, लखनऊ द्वारा जारी विज्ञापन के अनुसार नियमों के अनुसार आयोजित भर्ती के बाद हुआ था। याचिकाकर्ता ने परिणामी राहत की भी मांग की है।

2. उत्तर प्रदेश पुलिस भर्ती एवं प्रोन्नति बोर्ड, लखनऊ के अध्यक्ष ने अपनी वेबसाइट पर पुलिस एवं पीएसी कांस्टेबलों की भर्ती के लिए पीआरपीबी-1 (82)/15 नाम से एक विज्ञापन प्रकाशित किया था। याचिकाकर्ता ने वर्ष 2015 की सीधी भर्ती में पुलिस एवं पीएसी कांस्टेबल (पुरुष) के पद के लिए आवेदन किया था, जिसके लिए वह पात्र था। याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी का विवरण देना नितांत अनावश्यक होगा क्योंकि वे विवादित या विवादास्पद नहीं हैं। याचिकाकर्ता का चयन हो गया और उसका नाम मेरिट सूची में आ गया। उसे 05.05.2016 को होने वाली शारीरिक दक्षता परीक्षा में शामिल होने के लिए अनंतिम प्रवेश पत्र जारी किया गया। वह शारीरिक दक्षता परीक्षा में शामिल हुआ और सफल घोषित किया गया। इसके बाद याचिकाकर्ता को चरित्र सत्यापन, चिकित्सा परीक्षण और उसकी कक्षा 10वीं व 12वीं की अंकतालिकाओं के सत्यापन के लिए बुलाया गया। उसे 14.06.2018 को सुबह 8 बजे पुलिस लाइन, इटावा में उपस्थित होने का निर्देश दिया गया। उक्त सत्यापन एवं चिकित्सा परीक्षण के दौरान याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी स्वीकार कर ली गई। चयन पूर्ण होने पर, याचिकाकर्ता को अन्य चयनित अभ्यर्थियों के साथ उसकी नियुक्ति हेतु जिला आवंटित कर दिया गया। याचिकाकर्ता को उसकी नियुक्ति हेतु जिला हाथरस आवंटित किया गया था। जिला आवंटित होने के बावजूद, याचिकाकर्ता को नियुक्ति पत्र जारी नहीं किया गया। जब याचिकाकर्ता ने वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, इटावा से संपर्क किया, तो उन्हें बताया गया कि उनके खिलाफ लंबित आपराधिक मामले अर्थात, मुकदमा अपराध संख्या 564/2015, धारा 147, 452, 323, 504, 506 भा.दं.सं. और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 (संक्षेप में, 'एससी/एसटी अधिनियम') की धारा 3(1)(x) के तहत, थाना जसवंत नगर, जिला इटावा के कारण उनकी नियुक्ति रोक दी गई है।

3. याचिकाकर्ता का कहना है कि न केवल उसे इस अपराध में झूठा फंसाया गया, बल्कि उसे यह भी पता नहीं था कि उसके खिलाफ मामला लंबित है। 17.12.2015 की एक घटना पर आधारित इस अपराध के सिलसिले में पुलिस ने उसे न तो गिरफ्तार किया और न ही कभी तलब किया। याचिकाकर्ता को पुलिस ने पहली बार 16.03.2016 को अदालत में पेश होने का नोटिस दिया था। यह नोटिस अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट-द्वितीय, इटावा की अदालत द्वारा जारी किया गया था और आरोप पत्र प्रस्तुत करने के समय 17.03.2016 को सुबह 10.30 बजे उनकी उपस्थिति की आवश्यकता थी। याचिकाकर्ता पर सत्र परीक्षण संख्या 236/2016 के तहत मुकदमा चलाया गया और 17.07.2018 को उसे बरी कर दिया गया। बरी होने के बाद, याचिकाकर्ता ने 25.07.2018 को वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, इटावा को एक आवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें इस तथ्य को एस.एस.पी. के संज्ञान में लाया गया कि उसे मुकदमे के बाद बरी कर दिया गया था। जब याचिकाकर्ता को नहीं बुलाया गया या नियुक्ति पत्र जारी नहीं किया गया, तो उसने इस न्यायालय के समक्ष रिट-ए संख्या 17523/2018 स्थापित की, जिसमें कांस्टेबल के पद पर चयन के आधार पर नियुक्ति के अपने अधिकार को लागू करने की मांग की गई।

4. इस न्यायालय ने दिनांक 18.08.2018 के आदेश के तहत उक्त रिट याचिका का निपटारा इस निर्देश के साथ किया कि याचिकाकर्ता अपने दावे के समर्थन में सभी सामग्री संलग्न करने और वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, इटावा के समक्ष अपनी शिकायत प्रस्तुत करने के लिए स्वतंत्र होगा, जो **अवतार सिंह बनाम भारतीय संघ और अन्य, (2016) 8 एससीसी 471** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून को ध्यान में रखते हुए कानून के अनुसार दावे की जांच करेंगे और विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 734/2016, **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम विजय कुमार और अन्य**, 06.12.2016 को तय इस न्यायालय की पीठ के फैसले का पालन करेंगे। याचिकाकर्ता ने दिनांक 04.09.2018 को एक अभ्यावेदन, इस न्यायालय द्वारा रिट-ए संख्या 17523/2018 में पारित आदेश दिनांक 18.08.2018 की प्रमाणित प्रति, पंजीकृत डाक द्वारा प्रस्तुत किया, परन्तु इस न्यायालय के आदेश का अनुपालन नहीं किया गया। इसके परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता ने अवमानना प्रार्थना पत्र (सिविल) संख्या 2070/2020, राम सुन्दर बनाम डॉ. राज कुमार विश्वकर्मा, उ.प्र. पुलिस भर्ती एवं प्रोन्नति बोर्ड व अन्य, प्रस्तुत किया, जिसके अंतर्गत दिनांक 23.06.2020 के आदेश द्वारा अवमाननाकर्ताओं को कारण बताओ नोटिस जारी किया गया कि उनके विरुद्ध अवमानना कार्यवाही क्यों न शुरू की जाए।

5. याचिकाकर्ता का तर्क है कि जब याचिकाकर्ता को उसके चरित्र सत्यापन आदि के संबंध में शपथपत्र प्रस्तुत करने का निर्देश दिया गया, तो उसने न्यायालय में अपने विद्वान अधिवक्ता से सलाह ली, जहाँ उसे आरोपित किया गया था। विद्वान अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता को सूचित किया कि चूँकि उसे बरी कर दिया गया है, इसलिए उसके विरुद्ध कोई आपराधिक मामला लंबित नहीं है। याचिकाकर्ता का तर्क है कि आपराधिक मामले में उसका प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता ने वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, इटावा के समक्ष दायर करने के लिए शपथपत्र लिखवाया था। दिनांक 09.06.2018 के शपथपत्र की एक प्रति रिट याचिका के अभिलेख में संलग्न है।

6. इस न्यायालय द्वारा जारी अवमानना नोटिस प्राप्त होने पर, वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, इटावा द्वारा दिनांक 25.02.2021 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी रद्द कर दी गई। वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, इटावा द्वारा पारित दिनांक 25.02.2021 के आदेश पर याचिकाकर्ता द्वारा रिट-ए संख्या 4831/2021 के माध्यम से इस न्यायालय के समक्ष प्रश्न उठाया गया। उपरोक्त रिट याचिका की सुनवाई के दौरान, वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, इटावा को दिनांक 24.03.2021 को इस न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने का निर्देश दिया गया था। वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, इटावा ने दिनांक 22.03.2021 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता का चयन रद्द करने वाले दिनांक 25.02.2021 के आदेश को वापस ले लिया।

7. परिणामस्वरूप, इस न्यायालय ने दिनांक 24.03.2021 के आदेश के तहत रिट-ए संख्या 4831/2021 का निस्तारण कर दिया, जिसमें कहा गया कि उस याचिका में दिए गए आदेश को वापस ले लिया गया है और याचिकाकर्ता के मामले पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **अवतार सिंह** (उपरोक्त) के पैराग्राफ संख्या 38.5 और 38.6 में निर्धारित सिद्धांतों के अनुसार विचार किया जाना चाहिए, जिसमें नियुक्ति प्राधिकारी पर एक आपराधिक मामले में उसके अभियोग के बावजूद, विशेष रूप से उसके बरी होने के तथ्य के मद्देनजर, सेवा में शामिल करने के लिए उम्मीदवार की उपयुक्तता पर विचार करने का दायित्व डाला गया है। इस न्यायालय ने स्पष्ट किया कि याचिकाकर्ता की उपयुक्तता का आकलन नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा स्वतंत्र मूल्यांकन द्वारा किया जाना था और न्यायालय ने गुण-दोष के आधार पर कोई राय व्यक्त नहीं की है। इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 24.03.2021 के आदेश को याचिकाकर्ता ने दिनांक 27.03.2021 के एक आवेदन के साथ पुलिस अधीक्षक, हाथरस को पंजीकृत डाक द्वारा प्रस्तुत किया। याचिकाकर्ता के अनुसार, पुलिस अधीक्षक, हाथरस ने दिनांक 02.06.2021 के एक आदेश द्वारा, बिना विवेक का प्रयोग किए और रिट-ए संख्या 4831/2021 में पारित दिनांक 24.03.2021 के आदेश में दिए गए इस न्यायालय के निर्देशों और टिप्पणियों का पालन किए बिना याचिकाकर्ता के दावे को खारिज कर दिया।

8. याचिकाकर्ता ने अपनी उम्मीदवारी को फिर से खारिज किए जाने का सामना करते हुए इस न्यायालय के समक्ष रिट-ए संख्या 6576/2021 दायर की, जिस पर सुनवाई हुई और निम्नलिखित आदेश के अनुसार दिनांक 19.12.2022 के निर्णय और आदेश के तहत अनुमति दी गई:

"याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का तर्क यह है कि तथ्य को छिपाने मात्र से याचिकाकर्ता को सेवा से अयोग्य नहीं ठहराया जा सकता है, जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ***पवन कुमार बनाम भारत संघ; 2022 लाइव लॉ (एससी) 441*** *के मामले में निर्धारित कानून के अनुसार किया गया है और प्रतिवादी संबंधित तथ्यों पर विचार करने के लिए बाध्य हैं, जिसमें दमन का सेवाओं पर प्रभाव भी शामिल है, जैसा कि वर्तमान द्वारा मांगा गया है, इस प्रकार, पवन कुमार (उपरोक्त) के मामले में निर्धारित कानून के मद्देनजर आदेश दिया गया है, मुझे नहीं लगता कि आक्षेपित आदेश अपोषणीय है।*

तदनुसार, दिनांक 02.06.2021 का आक्षेपित आदेश प्रतिवादियों को पवन कुमार (उपरोक्त) मामले के निर्णय के आलोक में नए आदेश पारित करने के निर्देश के साथ रद्द किया जाता है।

नए आदेश पारित करते समय, प्रतिवादी स्पष्ट रूप से इस बात पर विचार करेगा कि याचिकाकर्ता को बरी कर दिया गया है और उक्त मामले का क्या प्रभाव होगा।

प्रतिवादी संख्या 4 इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से तीन महीने की अवधि के भीतर आदेश पारित करेगा।

उपरोक्त शर्तों के मद्देनजर, रिट याचिका स्वीकार की जाती है।"

9. याचिकाकर्ता ने रिट-ए संख्या 6576/2021 में पारित आदेश दिनांक 19.12.2022 की प्रमाणित प्रति और **पवन कुमार बनाम भारत संघ एवं अन्य (2023) 12 एससीसी 317** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 02.05.2022 के निर्णय की एक प्रति, जो उनके दिनांक 26.12.2022 के अभ्यावेदन के साथ संलग्न है, पुलिस अधीक्षक, हाथरस के समक्ष प्रस्तुत की। याचिकाकर्ता का तर्क है कि सत्र परीक्षण संख्या 236/2016 में दिनांक 17.07.2018 के निर्णय एवं आदेश द्वारा बरी होने के बाद, याचिकाकर्ता ने दिनांक 25.07.2018 के अपने आवेदन द्वारा इस तथ्य को वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, इटावा के संज्ञान में लाया था।

10. याचिकाकर्ता के अनुसार, जहाँ तक उत्तर प्रदेश गुंडा नियंत्रण अधिनियम, 1970 (संक्षेप में, 'गुंडा अधिनियम') की धारा 3(1) के अंतर्गत मामले का संबंध है, यह उनकी जानकारी में बिल्कुल भी नहीं था। उनका कहना है कि वर्ष 2018 में प्रस्तुत पुलिस रिपोर्ट में भी इसका कोई उल्लेख नहीं है। याचिकाकर्ता के अनुसार, उक्त तथ्य से यह स्पष्ट होता है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध गुंडा अधिनियम के अंतर्गत दर्ज बताया गया मामला प्रतिवादियों की जानकारी में भी नहीं था। तत्पश्चात, इस न्यायालय द्वारा रिट-ए संख्या 4831/2021 में पारित आदेशों के अनुपालन में इस पर विचार किया गया।

11. याचिकाकर्ता का यह भी कहना है कि जब उसने दिनांक 09.06.2021 को गुंडा अधिनियम की धारा 3(1) के अंतर्गत लंबित मामले की जानकारी प्राप्त करने हेतु सूचना का अधिकार अधिनियम के प्रावधानों का हवाला देते हुए आवेदन प्रस्तुत किया, तो उसका आवेदन अपर जिला मजिस्ट्रेट, इटावा को भेज दिया गया। अपर जिला मजिस्ट्रेट, इटावा ने 'प्रश्न' और 'उत्तर' के रूप में जानकारी प्रस्तुत की है कि गुंडा अधिनियम की धारा 3(1) के अंतर्गत मुकदमा अपराध संख्या 108/2016, थाना जसवंत नगर, जिला इटावा, राज्य बनाम राम सुंदर पाल, लंबित नहीं था। याचिकाकर्ता का कहना है कि मुकदमा अपराध संख्या 564/2015, धारा 147, 452, 323, 504, 506 भा.दं.सं. और धारा 3(1)(x) एससी/एसटी एक्ट के अंतर्गत, थाना जसवंत नगर, जिला इटावा, एक मामूली प्रकृति का मामला था, जिसमें याचिकाकर्ता को संदेह का लाभ देते हुए बरी कर दिया गया है। यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता का मामला **पवन कुमार** (उपरोक्त) मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के अंतर्गत पूरी तरह से आता है। यह भी दलील दी गई है कि यह आदेश इस न्यायालय द्वारा दिनांक 19.12.2022 को रिट-ए संख्या 6576/2021 में पारित रिमांड आदेश की अवहेलना करते हुए पारित किया गया है और यह **अवतार सिंह** और **पवन कुमार** मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांतों का उल्लंघन है। याचिकाकर्ता ने **अवतार सिंह** के पैराग्राफ संख्या 38.4.1 पर विशेष जोर देते हुए कहा है कि इस मामले में उक्त आदेश पारित करते समय सिद्धांतों का पूरी तरह से उल्लंघन किया गया है।

अनुवादित

12. व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत यह रिट याचिका दायर की है।

13. 10.05.2023 को एक प्रस्ताव नोटिस जारी किया गया था। प्रतिवादी संख्या 2 की ओर से 13.07.2023 को एक प्रति-शपथपत्र दायर किया गया, जिसका कोई प्रत्युत्तर दायर नहीं किया गया। प्रतिवादी संख्या 3 और 4 की ओर से 25.07.2023 को एक प्रति-शपथपत्र दायर किया गया था, लेकिन कार्यवाही के दौरान पता चला कि उसका कोई पता नहीं चल पाया। तदनुसार, उक्त शपथपत्र की एक पुनर्निर्मित प्रति 31.08.2024 को अभिलेख पर स्वीकार की गई। याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी संख्या 3 और 4 द्वारा दायर प्रति-शपथपत्र पर 13.09.2023 को प्रत्युत्तर दायर किया। 13.08.2024 को प्रवेश लंबित रहने तक, दोनों पक्षों द्वारा शपथपत्रों का पर्याप्त आदान-प्रदान करने के बाद, याचिका को सुनवाई के लिए स्वीकार कर लिया गया, जो उसी दिन आगे बढ़ी। सुनवाई 26.09.2024 तक के लिए स्थगित कर दी गई। इस बीच रोस्टर में बदलाव होने के कारण, मुख्य न्यायाधीश द्वारा नामांकन के बाद, 24.10.2024 को सुनवाई पुनः शुरू हुई। 24.10.2024 को सुनवाई समाप्त हुई और निर्णय सुरक्षित रखा गया।

14. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री राम कृष्ण यादव और राज्य प्रतिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री रूपेश तिवारी का पक्ष रखते हुए विद्वान अधिवक्ता श्री जितेंद्र कुमार सिंह को सुना गया।

15. हमने आक्षेपित आदेश और प्रतिवादीगण के प्रति-शपथपत्र में दिए गए पक्ष का, साथ ही प्रतिवादियों द्वारा नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता के दावे पर निष्पक्ष निर्णय हेतु प्रासंगिक अन्य परिस्थितियों का भी अवलोकन किया है। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि 09.06.2018 को याचिकाकर्ता ने अपने चरित्र के सत्यापन हेतु एक नोटरीकृत शपथपत्र प्रस्तुत किया था, जिसमें उसने बताया था कि उसके विरुद्ध न तो कोई आपराधिक मामला दर्ज है और न ही कोई पुलिस जाँच लंबित है। उसने यह भी कहा कि उसे कभी किसी आपराधिक मामले में गिरफ्तार नहीं किया गया और न ही पुलिस ने कभी किसी अपराध में उसका चालान किया है। यह स्पष्ट है कि 16.03.2016 को याचिकाकर्ता को अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट-II, इटावा की अदालत में 17.03.2016 को उपस्थित रहने का नोटिस दिया गया था। यह नोटिस मुकदमा अपराध संख्या 564/2015, धारा 147, 452, 323, 504, 506 भा.दं.सं. और धारा 3(1)(x) एससी/एसटी एक्ट, थाना जसवंत नगर, जिला इटावा के अंतर्गत उसके विरुद्ध आरोप-पत्र प्रस्तुत करने के समय दिया गया था। अतः, 16.03.2016 को याचिकाकर्ता को अपने विरुद्ध दर्ज मामले और पुलिस द्वारा की जा रही जाँच की जानकारी प्राप्त हुई, जिसके परिणामस्वरूप उसके विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल करने का प्रस्ताव था। समय के साथ, आरोप-पत्र दाखिल हुआ, याचिकाकर्ता पर मुकदमा चला और उसे बरी कर दिया गया। इसलिए, जिस दिन याचिकाकर्ता ने 09.06.2018 को अपने चरित्र सत्यापन के लिए शपथपत्र दाखिल किया, उस दिन उसे इस बात की पूरी जानकारी थी कि उसके खिलाफ एक आपराधिक मामला दर्ज किया गया है, जाँच की गई है और वह अभी भी मुकदमे का सामना कर रहा है। 17.07.2018 को उसे बरी करने का फैसला सुनाया गया।

16. इसमें कोई संदेह नहीं है कि याचिकाकर्ता ने जानबूझकर अपने खिलाफ लंबित आपराधिक मामले को छिपाया था। याचिकाकर्ता का यह स्पष्टीकरण स्वीकार्य नहीं है कि आपराधिक मामले में उसकी ओर से प्रस्तुत विद्वान अधिवक्ता ने उसे सलाह दी थी कि चूंकि बरी करने का फैसला सुनाया गया है, इसलिए उसके खिलाफ कोई मामला नहीं है। फैसला 17.07.2018 को आया, जबकि शपथपत्र 09.06.2018 को दायर किया गया था। ऐसा कोई तरीका नहीं है कि आपराधिक मामले में याचिकाकर्ता की ओर से प्रस्तुत विद्वान अधिवक्ता याचिकाकर्ता को बता सकें कि उन्हें 09.06.2018 को बरी कर दिया गया था, जब विद्वान अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता द्वारा दायर शपथपत्र को लिखवाया था, जैसा कि रिट याचिका के पैराग्राफ संख्या 19 में कहा गया है। इसलिए, यह वास्तव में एक ऐसा मामला है जहां याचिकाकर्ता ने प्रतिवादियों से यह तथ्य छिपाया कि पुलिस द्वारा जांच के बाद, वह एक आपराधिक मामले में मुकदमे का सामना कर रहा था।

17. **अवतार सिंह** मामले में निर्धारित सिद्धांत, बिना किसी अपवाद के, किसी ऐसे व्यक्ति की उम्मीदवारी पर विचार करने की सर्वत्र मनाही नहीं करते जो किसी आपराधिक मामले में संलिप्तता की झूठी जानकारी छिपाने या देने का दोषी हो, नौकरी के लिए आवेदन करते समय या चयन के बाद उसके चरित्र के सत्यापन के समय। **अवतार सिंह** मामले में निर्धारित सिद्धांत नीचे दिए गए हैं:

"38. हमने विभिन्न निर्णयों पर गौर किया है और यथासंभव उन्हें समझाने और उनमें सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया है। उपर्युक्त चर्चा के मद्देनजर, हम अपने निष्कर्ष को इस प्रकार संक्षेपित करते हैं:

38.1. किसी उम्मीदवार द्वारा नियोक्ता को दोषसिद्धि, बरी या गिरफ्तारी, या किसी आपराधिक मामले के लंबित होने के बारे में दी गई जानकारी, चाहे सेवा में आने से पहले हो या बाद में, सत्य होनी चाहिए और अपेक्षित जानकारी को छिपाया या गलत तरीके से उल्लेखित नहीं किया जाना चाहिए।

38.2. झूठी जानकारी देने पर सेवा समाप्ति या उम्मीदवारी रद्द करने का आदेश पारित करते समय, नियोक्ता ऐसी जानकारी देते समय मामले की विशेष परिस्थितियों, यदि कोई हो, का ध्यान रखना चाहिए।

38.3. नियोक्ता निर्णय लेते समय कर्मचारी पर लागू सरकारी आदेशों/निर्देशों/नियमों को ध्यान में रखेगा।

38.4. यदि किसी आपराधिक मामले में संलिप्तता की सूचना छिपाई गई हो या गलत सूचना दी गई हो, जिसमें आवेदन/सत्यापन प्रपत्र भरने से पहले ही दोषसिद्धि या बरी होने का रिकॉर्ड दर्ज किया जा चुका हो और ऐसा तथ्य बाद में नियोक्ता के संज्ञान में आता हो, तो मामले के लिए उपयुक्त निम्नलिखित में से कोई भी उपाय अपनाया जा सकता है:

38.4.1. किसी ऐसे मामले में जो प्रकृति में मामूली हो और जिसमें दोषसिद्धि दर्ज की गई हो, जैसे कि कम उम्र में नारे लगाना या कोई छोटा-मोटा अपराध, जिसका खुलासा होने पर कोई पदधारी संबंधित पद के लिए अयोग्य नहीं होता, नियोक्ता अपने विवेकानुसार, चूक को अनदेखा करके तथ्य को छिपाने या गलत सूचना देने की ऐसी घटना को नजरअंदाज कर सकता है।

38.4.2. जहां दोषसिद्धि ऐसे मामले में दर्ज की गई हो जो प्रकृति में मामूली नहीं है, नियोक्ता उम्मीदवारी रद्द कर सकता है या कर्मचारी की सेवाएं समाप्त कर सकता है।

38.4.3. यदि नैतिक अधमता या जघन्य/गंभीर प्रकृति के अपराध से संबंधित मामले में तकनीकी आधार पर पहले ही दोषमुक्ति दर्ज की जा चुकी है और यह स्पष्ट दोषमुक्ति का मामला नहीं है, या उचित संदेह का लाभ दिया गया है, तो नियोक्ता पूर्ववर्ती के संबंध में उपलब्ध सभी प्रासंगिक तथ्यों पर विचार कर सकता है, और कर्मचारी की सेवा जारी रखने के संबंध में उचित निर्णय ले सकता है।

38.5. ऐसे मामले में जहां कर्मचारी ने किसी समाप्त हो चुके आपराधिक मामले की सत्यतापूर्वक घोषणा की है, नियोक्ता को अभी भी पूर्ववृत्त पर विचार करने का अधिकार है, और उसे उम्मीदवार को नियुक्त करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है।

38.6. ऐसे मामले में जहां चरित्र सत्यापन प्रपत्र में तुच्छ प्रकृति के आपराधिक मामले के लंबित होने के संबंध में तथ्य सत्यतापूर्वक घोषित किया गया है, नियोक्ता, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, अपने विवेकानुसार, ऐसे मामले के निर्णय के अधीन उम्मीदवार को नियुक्त कर सकता है।

38.7. कई लंबित मामलों के संबंध में जानबूझकर तथ्य छिपाने की स्थिति में, ऐसी झूठी सूचना अपने आप में महत्वपूर्ण हो जाएगी और नियोक्ता उम्मीदवारी रद्द करने या सेवाएं समाप्त करने का उचित आदेश पारित कर सकता है, क्योंकि ऐसे व्यक्ति की नियुक्ति, जिसके विरुद्ध कई आपराधिक मामले लंबित हों, उचित नहीं होगी।

38.8. यदि कोई आपराधिक मामला लंबित था, लेकिन फॉर्म भरते समय उम्मीदवार को इसकी जानकारी नहीं थी, तब भी इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है और नियुक्ति प्राधिकारी अपराध की गंभीरता पर विचार करने के बाद निर्णय लेगा।

38.9. यदि कर्मचारी की सेवा में पुष्टि हो जाती है, तो सत्यापन फॉर्म में जानकारी छिपाने या झूठी जानकारी प्रस्तुत करने के आधार पर समाप्ति/निष्कासन या बर्खास्तगी का आदेश पारित करने से पहले विभागीय जांच करना आवश्यक होगा।

38.10. छिपाई गई या गलत जानकारी का निर्धारण करने के लिए, सत्यापन/सत्यापन प्रपत्र विशिष्ट होना चाहिए, अस्पष्ट नहीं। केवल वही जानकारी प्रकट की जानी चाहिए जिसका विशेष रूप से उल्लेख किया जाना आवश्यक था। यदि नियोक्ता को ऐसी जानकारी प्राप्त होती है जो मांगी नहीं गई है, लेकिन प्रासंगिक है, तो उपयुक्तता के प्रश्न का समाधान करते समय उस पर वस्तुनिष्ठ तरीके से विचार किया जा सकता है। हालाँकि, ऐसे मामलों में किसी तथ्य के बारे में जानकारी छिपाने या गलत जानकारी प्रस्तुत करने के आधार पर कार्रवाई नहीं की जा सकती, जिसके बारे में पूछा ही नहीं गया था।

38.11. किसी व्यक्ति को सत्य-दबाव या मिथ्या सुझाव का दोषी ठहराए जाने से पहले, तथ्य का ज्ञान उसे होना चाहिए।"

18. सामान्य नियम यह है कि उम्मीदवार को सेवा में आने से पहले या बाद में, दोषसिद्धि, बरी होने, गिरफ्तारी या किसी आपराधिक मामले के लंबित होने के बारे में कोई जानकारी नहीं छिपानी चाहिए। लेकिन, अगर किसी आपराधिक मामले में संलिप्तता के बारे में जानकारी छिपाई जाती है, तो इसका किसी व्यक्ति की उम्मीदवारी, या यूँ कहें कि उसकी नियुक्ति के अधिकार पर क्या प्रभाव पड़ेगा। यह कई कारकों पर निर्भर करेगा। **अवतार सिंह** मामले में रिपोर्ट के पैराग्राफ संख्या 38 में जिन सिद्धांतों का सारांश दिया गया है, उनके पीछे विस्तृत कारण दिए गए हैं, जो मोटे तौर पर किसी उम्मीदवार द्वारा आपराधिक मामले में संलिप्तता की झूठी जानकारी

छिपाने या प्रस्तुत करने पर नाराजगी जताते हैं, लेकिन इसे ऐसा कोई अपरिहार्य आधार नहीं बनाते जिससे सभी मामलों में उम्मीदवारी खारिज कर दी जाए। इसमें कोई संदेह नहीं है कि पैराग्राफ 38.4 का सिद्धांत उस मामले पर लागू होता है, जहां किसी आपराधिक मामले में संलिप्तता की सूचना छिपाई जाती है या गलत जानकारी दी जाती है, जहां पहले ही दोषसिद्धि या बरी हो चुकी है, लेकिन यह कोई गणितीय फार्मूला नहीं है जहां फैसला लंबित होने पर उन्हीं सिद्धांतों को तर्कसंगत रूप से लागू नहीं किया जा सकता। यह एक सर्वमान्य सिद्धांत है कि किसी फैसले को उस सिद्धांत से समझा जाना चाहिए जो वह निर्धारित करता है और उसे कभी भी कानून की तरह नहीं पढ़ा जाना चाहिए। **अवतार सिंह** मामले में दिए गए सिद्धांत नियुक्ति प्राधिकारी को मामले में विवेकाधिकार का प्रयोग करने की पर्याप्त स्वतंत्रता देते हैं। यह प्रावधान करता है कि आपराधिक मामले के बारे में गलत जानकारी देने पर सेवा समाप्ति या उम्मीदवारी रद्द करने का आदेश पारित करने से पहले नियोक्ता द्वारा मामले की विशेष परिस्थितियों पर ध्यान दिया जाए। यह आकस्मिकता उन मामलों में भी लागू होती है जहां फैसला नहीं सुनाया गया है।

19. अनुच्छेद संख्या 38.3 में यह भी प्रावधान है कि किसी आपराधिक मामले में संलिप्तता की जानकारी छिपाने आदि के आधार पर कर्मचारियों की उम्मीदवारी रद्द की जा सकती है या नहीं, यह निर्णय लेते समय उन पर लागू सरकारी आदेशों/निर्देशों/नियमों को ध्यान में रखा जाए। ऐसे मामलों में, जहाँ जानकारी छिपाई गई हो और दोषसिद्धि या बरी होने का निर्णय पहले ही हो चुका हो, मामूली प्रकृति के मामलों को, जिनमें दोषसिद्धि दर्ज हो चुकी हो, नियोक्ता को इस आधार पर उम्मीदवारी या नियुक्ति रद्द करने का अधिकार नहीं देने वाला माना गया है कि यदि मामूली अपराध का खुलासा किया गया होता, तो इससे कर्मचारी पद पर नियुक्ति के लिए अयोग्य नहीं होता। कम उम्र में नारे लगाने आदि के मामले का उल्लेख एक ऐसे अपराध की मामूली प्रकृति के उदाहरण के रूप में किया गया है जो उसे अयोग्य नहीं ठहराता। अनुच्छेद संख्या 38.4.3 उस आकस्मिकता की बात करता है यदि नैतिक अधमता या किसी जघन्य अपराध से जुड़े मामले में तकनीकी आधार पर पहले ही बरी किया जा चुका है और यह पूरी तरह से बरी होने या उचित संदेह का लाभ दिए जाने का मामला नहीं है। ऐसे मामलों में, नियोक्ता को किसी कर्मचारी की उम्मीदवारी रद्द करने का निर्णय लेने से पहले, पूर्ववृत्त के संबंध में उपलब्ध सभी प्रासंगिक तथ्यों पर विचार करने की स्वतंत्रता दी गई है। ये कमोबेश वही सिद्धांत हैं जो **अवतार सिंह** मामले में बताए गए सिद्धांतों से लिए गए हैं।

20. इन सभी सिद्धांतों पर विचार करते हुए, इस तथ्य को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता कि किसी आपराधिक मामले के लंबित होने की जानकारी को छिपाने की स्थिति में, जहाँ पहले ही निर्णय पारित हो चुका हो, चाहे दोषसिद्धि का हो या दोषमुक्ति का, या फिर ऐसे मामले में जहाँ निर्णय कुछ ही समय बाद पारित हो, सबसे पहले यह देखा जाना चाहिए कि कर्मचारी पर लगाया गया अपराध मामूली प्रकृति का है या जघन्य। यदि यह जघन्य है, तब भी नियोक्ता किसी निर्णय पर पहुँचने से पहले कर्मचारी के पूर्ववृत्त से संबंधित प्रासंगिक तथ्यों पर विचार करना चाहिए।

21. आगे बढ़ने से पहले, यह ध्यान रखना ज़रूरी है कि किसी आपराधिक मामले की जघन्य या छोटी प्रकृति का निर्धारण हमेशा उस क़ानून की धाराओं के आधार पर नहीं किया जा सकता, जिनके तहत अपराध आरोपित किया गया है, हालाँकि क़ानून के कुछ प्रावधान कमोबेश अपराध की गंभीरता के सूचनादाता होते हैं। कुछ मामलों में, यह लगभग हमेशा अपराध के जघन्य होने की ओर इशारा करता है, जैसे कि भारतीय दंड संहिता की धारा 302 या 376 के तहत दंडनीय अपराध। ऐसे अन्य अपराध भी हैं, जिनमें आरोपित धाराओं से प्रथम दृष्टया यह संकेत मिलता है कि अपराध गंभीर नहीं है या नैतिक पतन से युक्त नहीं है। याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोपित अपराध भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 452, 323, 504, 506 और अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम की धारा 3(1)(x) के अंतर्गत दंडनीय हैं।

22. यह निर्धारित करने में कि क्या याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए अपराध वास्तव में जघन्य या छोटे थे, पुलिस अधीक्षक, हाथरस, जिन्होंने आदेश पारित किया था, का यह दायित्व था कि वे आरोपों और साक्ष्यों पर संक्षेप में गौर करें और फिर अपनी राय बनाएं। पुलिस अधीक्षक ने इस तथ्य पर ध्यान दिया है कि बरी किया जाना सम्मानजनक नहीं है, बल्कि संदेह के लाभ पर आधारित है और मामले के सूचनादाता सज्जन सिंह को जानबूझकर और जानबूझकर अदालत में झूठी गवाही देने के लिए धारा 344 के तहत नोटिस जारी किया गया है। उन्होंने इस तथ्य की अनदेखी की है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई सबूत नहीं था। पुलिस अधीक्षक ने इस तथ्य की भी अनदेखी की है कि अदालत में झूठे और मनगढ़ंत साक्ष्य देने के आरोप में अभियोजन के लिए जारी नोटिस, स्पष्ट रूप से मुख्य परीक्षा में सूचनादाता द्वारा दी गई गवाही के दोषसिद्धि वाले हिस्से से संबंधित है, न कि उस दोषमुक्ति वाले हिस्से से जो जिरह के दौरान सामने आया है। इस मामले की जांच और विचार पुलिस अधीक्षक द्वारा किया जाना चाहिए था, इससे पहले कि वह याचिकाकर्ता के नियुक्ति मांगने के अधिकार पर बरी करने के फैसले के प्रभाव का आकलन करे।

23. आखिरकार, आज के सामाजिक परिवेश में, कड़ी मेहनत से अर्जित सरकारी नौकरी अक्सर उन उम्मीदवारों के खिलाफ लगाए गए झूठे मामलों के कारण खो जाती है, जो सरकारी सेवा में प्रवेश करने वाले हैं और यह मामला, जैसा कि निर्णय को प्रथम दृष्टया पढ़ने से पता चलता है, पंचायत चुनाव की प्रतिद्वंद्विता और समकालीन ग्रामीण जीवन में होने वाली सभी घटनाओं की पृष्ठभूमि में स्थापित है, जहां राजनीतिक प्रतिद्वंद्वियों पर हमले होते हैं और झूठे आरोप लगाए जाते हैं। मुकदमे के दौरान, विद्वान न्यायाधीश द्वारा याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई ठोस गवाही नहीं देखी गई, जैसा कि निर्णय को पढ़ने से प्रथम दृष्टया पता चलता है। हाथरस के पुलिस अधीक्षक द्वारा पारित आदेश, जिसमें याचिकाकर्ता के दावे को अस्वीकार कर दिया गया, उन परिस्थितियों पर सावधानीपूर्वक विचार नहीं करता है, जिसके कारण याचिकाकर्ता पर अपराध का मुकदमा चलाया गया, जिसमें मारपीट और जाति सूचनादाता शब्दों के साथ दुर्व्यवहार का आरोप लगाया गया था, जो सभी मुकदमे में साबित नहीं हुए थे। पुलिस अधीक्षक ने जिस तथ्य पर विचार करने से इनकार किया, वह यह है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोपित अपराध, जो बरी होने पर समाप्त हुआ, में उसके या उसके सह-अभियुक्तों द्वारा ऐसा कोई अपराध नहीं किया गया था, जो प्रकृति में जघन्य प्रतीत होता। शामिल आरोपों से यह नहीं पता चलता कि कोई गंभीर चोट पहुंचाई गई थी।

24. वास्तव में, मुकदमे के दौरान, चोटें, चाहे वे जो भी थीं, गवाहों द्वारा साबित नहीं की गईं, जिन्होंने घटना से इनकार किया। आरोप और साक्ष्य की प्रकृति, और फिर मुकदमे के दौरान गवाहों के रुख को, याचिकाकर्ता के पैतृक गाँव में पंचायत चुनावों से संबंधित राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता के संदर्भ में देखा जाए, जहाँ याचिकाकर्ता का हाल ही में सरकारी सेवा में चयन हुआ था, तर्कसंगत और यथार्थवादी रूप से समझा जाना चाहिए। यदि आरोप पर गौर किया जाए, तो उसमें कुछ भी नहीं निकला, बल्कि याचिकाकर्ता को उसकी मेहनत से कमाई गई सरकारी नौकरी से वंचित कर दिया गया। शायद, याचिकाकर्ता पर आरोप लगाने का यही मकसद था, और कुछ नहीं। पुलिस अधीक्षक ने इस नज़रिए से आरोप और सबूतों पर बिल्कुल भी विचार नहीं किया, जबकि ऐसा किया जाना चाहिए था। ऐसा करने के लिए, उन्हें याचिकाकर्ता की पृष्ठभूमि और उसके पूर्ववृत्त की और जाँच करनी थी। अगर याचिकाकर्ता कोई सम्मानित युवक होता और उसका कोई आपराधिक इतिहास नहीं होता, तो उसके खिलाफ असफल आपराधिक मामले का स्वरूप, उसके सरकारी नौकरी पाने के अधिकार पर अलग तरह से असर डाल सकता था। पुलिस अधीक्षक ने याचिकाकर्ता के खिलाफ एक और मामले पर विचार किया, जिसके बारे में उन्होंने कहा कि उसे भी दबा दिया गया था, और बाद में, छह महीने की समयावधि बीत जाने के कारण, एक नई पुलिस चरित्र सत्यापन रिपोर्ट मंगवाने के कारण वह सामने आया।

25. याचिकाकर्ता के खिलाफ पाया गया दूसरा मामला गुंडा अधिनियम की धारा 3(1) के तहत मुकदमा अपराध संख्या 108/2016, थाना जसवंत नगर, जिला इटावा बताया गया था। इसे वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, इटावा ने अपने वी.आर. संख्या 671/2021 दिनांक 24.05.2021 के माध्यम से रिपोर्ट किया था। इस मामले को भी याचिकाकर्ता द्वारा अपने शपथपत्र के माध्यम से किए गए चरित्र सत्यापन के समय दबा दिया गया था। याचिकाकर्ता के खिलाफ दर्ज इस अपराध के संबंध में एक और मामला जानबूझकर दबाए जाने के रूप में, याचिकाकर्ता के मामले पर पुलिस अधीक्षक द्वारा **अवतार सिंह** में कई लंबित मामलों के संबंध में निर्धारित दिशानिर्देशों के पैराग्राफ संख्या 38.7 द्वारा शासित माना गया था, जिसके बारे में एक उम्मीदवार द्वारा गलत जानकारी दी गई थी। यह एक सिद्धांत है, जहाँ किसी उम्मीदवार के विरुद्ध कई लंबित मामले, यदि उनका खुलासा न किया जाए, तो नियोक्ता को उचित आदेश पारित करने, उसकी उम्मीदवारी रद्द करने या उसकी नियुक्ति समाप्त करने का अधिकार है। लेकिन, क्या यह वास्तव में सच है या पुलिस अधीक्षक ने यह माना था कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध गुंडा अधिनियम की धारा 3(1) के तहत कोई अपराध दर्ज किया गया था या दर्ज किया जा सकता था? हमें नहीं लगता। गुंडा अधिनियम की धारा 3(1) किसी भी अपराध की बात नहीं करती, बल्कि जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष की जाने वाली कार्यवाही में गुंडा अधिनियम के तहत परिभाषित गुंडों के निष्कासन का प्रावधान करती है।

26. गुंडा अधिनियम की धारा 3(1) न तो किसी अपराध को परिभाषित करती है और न ही उसके लिए दंड निर्धारित करती है। यह जिला मजिस्ट्रेट द्वारा किसी ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध, जो गुंडा अधिनियम के अंतर्गत परिभाषित गुंडा है, निवारक कार्यवाही करने का प्रावधान करती है, जिसके विरुद्ध उसे उसके अधिकार क्षेत्र की स्थानीय सीमाओं या आदेश में निर्दिष्ट जिले या जिलों से बाहर कर दिया जाएगा, या ऐसे व्यक्ति को अपनी गतिविधियों की सूचना देने या ऐसे प्राधिकारी को रिपोर्ट करने का आदेश दिया जाएगा, जैसा कि निर्दिष्ट किया

जा सकता है, या आदेश में निर्दिष्ट किसी भी वस्तु के उपयोग हेतु उस व्यक्ति के कब्जे को प्रतिबंधित या प्रतिबंधित किया जा सकता है, जिसके विरुद्ध कार्यवाही की जा रही है, यह सब छह महीने की अवधि समाप्त होने तक। गुंडा अधिनियम की धारा 3(1) के प्रावधानों में कभी भी किसी आपराधिक अपराध का प्रावधान नहीं है। गुंडा अधिनियम के तहत एकमात्र आपराधिक अपराध धारा 10 के तहत ही है, जो धारा 3, 4, 5 या 6 के तहत पारित आदेशों के उल्लंघन से संबंधित है। याचिकाकर्ता के खिलाफ गुंडा अधिनियम की धारा 3 के तहत जारी किसी भी निषेधाज्ञा या निर्वासन आदेश का उल्लंघन करने और धारा 10 के तहत उसके खिलाफ कोई आपराधिक मामला दर्ज होने का कोई मामला नहीं है। यदि इस संबंध में कोई संदेह था कि पुलिस अधीक्षक ने गुंडा अधिनियम की धारा 3(1) के तहत 'अपराध' के रूप में किस प्रकार की कार्यवाही पर विचार किया, तो हमें दिनांक 02.07.2021 को प्रभारी निरीक्षक, थाना जसवंत नगर, जिला इटावा द्वारा प्रस्तुत की गई रिपोर्ट पर गौर करना होगा, जो इस तथाकथित अपराध के बारे में है कि याचिकाकर्ता ने गुंडा अधिनियम की धारा 3(1) के तहत अपराध किया और उक्त पुलिस स्टेशन पर मुकदमा अपराध संख्या 108/2016 के रूप में सर्कल अधिकारी, जसवंत नगर, इटावा को पंजीकृत किया गया। प्रभारी निरीक्षक, थाना जसवंत नगर, जिला इटावा द्वारा क्षेत्राधिकारी, जसवंत नगर, इटावा को प्रस्तुत रिपोर्ट, स्पष्ट रूप से उपरोक्त अपराध के संबंध में सूचना के अधिकार अधिनियम के तहत मांगी गई जानकारी के उत्तर में प्रस्तुत की गई थी। प्रभारी निरीक्षक, थाना जसवंत नगर, जिला इटावा द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट, जिसका अंतिम उल्लेख किया गया है, के प्रत्येक शब्द को उद्धृत किया जाना आवश्यक है:

"रिपोर्ट थाना जसवन्तनगर जनपद इटावा
सेवा मे,
श्रीमान क्षेत्राधिकारी महोदय
जसवन्तनगर इटावा

विषयः पत्रांक- ज0सू0अ0 (261/23) के सन्दर्भ मे RTI-2005 के तहत आवेदक श्री रामसुंदर पाल पुत्र श्री प्रीतम पाल निवासी ग्राम कैस्त थाना जसवन्तनगर इटावा को सूचना देने विषयक।

महोदय,

आवेदक उपरोक्त द्वारा चाही गयी प्रस्तरवार सूचना निम्नवत है-

1- बिन्दु संख्या 1 मे आवेदक उपरोक्त द्वारा मु0अ0सं0 108/2016 अन्तर्गत धारा 3 (1) गुण्डा अधि0 1970 अभियुक्त / प्रार्थी का चालानी रिपोर्ट की संलग्न प्रतिलिपि चाही गयी है उक्त बिन्दु की सूचना के क्रम मे अवगत कराना है कि थाना हाजा अभिलेख जीडी / डाक बही (वर्ष 2016) का अवलोकन करने पर पाया गया कि थाना हाजा पर दिनांक 31.03.2016 को मु0अ0सं0 108/2016 धारा 3(1) गुण्डा अधि0 वादी तत्कालीन SHO श्री दीपक दुबे द्वारा आवेदक उपरोक्त के विरुद्ध पंजीकृत कराया था जिसकी रिपोर्ट चालानी तत्कालीन

अनुवादित

डाक मुंशी का0 996 देव प्रकाश PNO- 112034199 मो0नं0- 9125560463 व तत्कालीन डाक रनर / पैरवी का0 404 तुलाराम PN0- 0872240173 मो0न0- 9412537431 द्वारा दिनांक 03.04.2016 को डाक बही मे चढाकर वाचक कार्यालय श्रीमान वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक महोदय इटावा (R/SSP) कार्यालय में प्रेषित की गयी है । जो कि डाक बही मे रिसीव नही हुई है। पुनः मु0अ0सं0 उपरोक्त से सम्बन्धित रिपोर्ट चालानी दिनांक 29.04.2016 को तत्कालीन डाक मुंशी का0 996 देव प्रकाश उपरोक्त व डाक रनर / पैरवी का0 404 तुलाराम उपरोक्त व का0 817 मौजीराम PNO-822390378 मो0नं0- 9450310224 द्वारा डाक बही मे चढाकर वाचक के कार्यालय श्रीमान वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक महोदय इटावा (R/SSP) कार्यालय मे प्रेषित की गयी है। जो कि डाक बही में रिसीव नही हुई है। मुकदमा उपरोक्त से सम्बन्धित रिपोर्ट चालानी पुनः एक बार दिनांक 23.06.2016 को तत्कालीन डाक मुंशी का0 299 मुकेश कुमार PNO- 942240032 मो0नं0-08528639602व तत्कालीन डाक रनर/पैरवी का0 404 तुलाराम उपरोक्त व का0 817 मौजीराम द्वारा डाक बही मे चढाकर वाचक के कार्यालय श्रीमान वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक महोदय इटावा (R/SSP) कार्यालय मे प्रेषित की गयी है। जो कि डाक बही मे रिसीव नही हुई है। उपरोक्त सभी दिनांको से सम्बन्धित डाक बही की छायाप्रतियां संलग्न है।

2- बिंन्दु संख्या 2 मे आवेदक द्वारा मु0अ0सं0 108/2016 अन्तर्गत धारा 3 (1) गुण्डा अधि0 1970 अभियुक्त/प्रार्थी के विरुद्ध न्यायालय अपर जिलाधिकारी महोदय के यहां थाना जसवन्तनगर द्वारा भेजा गया आरो पत्र / अन्तिम रिपोर्ट की सत्य प्रतिलिपि चाही गयी है उक्त बिन्दु के क्रम मे अवगत कराना है कि आदान प्रदान डाक बही (वर्ष 2016) का अवलोकन करने पर पाया गया कि मु0अ0सं0 उपरोक्त से सम्बन्धित रिपोर्ट चालानी प्रेषित की गयी है । जिसका बिन्दु संख्या 1 में विस्तृत वर्णन किया गया है । इसके अतिरिक्त उक्त से सम्बन्धित अन्य पारितोष सम्बन्धित कार्यालय न्यायालय अपर जिलाधिकारी महोदय इटावा से प्राप्त कर सकते है।

3- बिन्दु संख्या 3 मे आवेदक उपरोक्त द्वारा मु0अ0सं0 108/2016 अन्तर्गत धारा 3 (1) गुण्डा अधि0 1970 न्यायालय अपर जिला अधिकारी इटावा के यहां प्रचलित वाद की वास्तविक स्थिति / अन्तिम निर्णय की सत्य प्रतिलिपि चाही गयी है, उक्त बिन्दु का सम्बन्ध मा0 न्यायालय अपर जिलाधिकारी महोदय इटावा से है अतएव सम्बन्धित उक्त न्यायालय से पारितोष प्राप्त करने की कृपा करे।

श्रीमान जी रिपोर्ट सादर अवलोकनार्थ प्रेषित है।

ह0 अपठित
प्रभारी निरीक्षक
थाना जसवन्तनगर
जनपद इटावा"

27. रिपोर्ट में कहा गया है कि वर्ष 2016 की जी.डी./डाक बही के अवलोकन से पता चलता है कि दिनांक 31.03.2016 को पूर्व थाना प्रभारी दीपक दुबे द्वारा याची के विरुद्ध अपराध संख्या 108 वर्ष 2016 धारा 3(1) गुण्डा अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत कराया गया था, जिसकी चालानी रिपोर्ट पूर्व डाक मुंशी कांस्टेबल 996

देव प्रकाश एवं पूर्व डाक धावक/पैरवी कांस्टेबल 404 तुलाराम द्वारा दिनांक 03.04.2016 को डाक बही में दर्ज करके वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, इटावा के कार्यालय को भेजी गयी थी, जो वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक की डाक बही में प्राप्त नहीं हुई। उक्त अपराध से संबंधित एक रिपोर्ट चालानी पूर्व डाक मुंशी देव प्रकाश और डाक धावक तुलाराम तथा कांस्टेबल मौजी राम द्वारा डाक बही में दर्ज करके दिनांक 29.04.2016 को पुनः एसएसपी, इटावा को भेजी गई। परन्तु, यह डाक बही में प्राप्त नहीं हुई, जो स्पष्टतः एसएसपी की डाक बही को संदर्भित करती है। इस रिपोर्ट के अनुसार, दिनांक 23.06.2016 को थानेदार द्वारा अपनी डाक के माध्यम से एसएसपी को रिपोर्ट चालानी भेजने का एक और असफल प्रयास किया गया, जो भी एसएसपी कार्यालय में प्राप्त नहीं हुआ।

28. रिपोर्ट में आगे कहा गया है कि याचिकाकर्ता ने सूचना का अधिकार अधिनियम के तहत अपने आवेदन में सूचना संख्या 2 के माध्यम से गुंडा अधिनियम की धारा 3(1) के अंतर्गत अपराध संख्या 108/2016 के संबंध में अपर जिला मजिस्ट्रेट के न्यायालय को भेजे गए आरोप-पत्र/अंतिम रिपोर्ट का विवरण माँगा है, लेकिन रिपोर्ट चालान और उसके प्रेषण का विवरण पहले ही दिया जा चुका है। सूचना का अधिकार आवेदन की सूचना संख्या 1 के उत्तर में कहा गया है कि अन्य प्रासंगिक जानकारी अपर जिला मजिस्ट्रेट, इटावा के कार्यालय से प्राप्त की जा सकती है। रिपोर्ट में अंत में कहा गया कि सूचना के अधिकार अधिनियम के तहत मांगी गई अंतिम सूचना के उत्तर में, जहां याचिकाकर्ता ने मामले की वर्तमान स्थिति जानने की मांग की थी या गुंडा अधिनियम की धारा 3(1) के तहत अपराध संख्या 108/2016 से उत्पन्न मामले में अंतिम निर्णय की प्रमाणित प्रति के लिए आवेदन किया था, उत्तर में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि मामला अपर जिला मजिस्ट्रेट, इटावा के न्यायालय से संबंधित है और संबंधित जानकारी उस न्यायालय से प्राप्त की जा सकती है।

29. अपर जिला मजिस्ट्रेट, इटावा के न्यायालय द्वारा दिनांक 22.06.2021 को प्रस्तुत 'प्रश्न' और 'उत्तर' प्रपत्र में एक सूचना रिकॉर्ड में है, जहाँ प्रश्न इस प्रकार है:

"'प्रश्न
1- क्या मु0अ0सं0 108/16 थाना - जसवन्तनगर अन्तर्गत धारा 3 (1) उ0प्र0 गुण्डा नियंत्रण अधि0 राज्य बनाम रामसुन्दर पाल जिला इटावा विचारणीय है या नहीं"
30. दाहिने कॉलम में इस प्रश्न का उत्तर है:
"'उत्तर
श्रीमानजी
नहीं।"

31. पहली बात तो यह कि यह मामला, जिसका मुकदमा अपराध संख्या 108/2016, धारा 3(1) गुंडा अधिनियम के अंतर्गत, थाना जसवंत नगर, जिला इटावा, एक निरर्थक मामला प्रतीत होता है, जिसके बारे में किसी के पास कोई ठोस सबूत उपलब्ध नहीं है, सिवाय अस्पष्ट उत्तरों के। यह मानते हुए कि यह मामला थाना जसवंत नगर

में दर्ज किया गया था, यह आश्चर्य की बात है कि वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक ने कैसे सोचा कि गुंडा अधिनियम की धारा 3(1) के तहत अपराध दर्ज किया जा सकता है। उपरोक्त प्रावधान के तहत अपराध दर्ज किए जाने, आपराधिक मामले की जाँच किए जाने और याचिकाकर्ता पर गुंडा अधिनियम की धारा 3(1) के तहत मुकदमा चलाए जाने का विचार ही इतना बेतुका है कि एसएसपी की जगह कोई भी इस पर गंभीरता से विचार नहीं कर सकता था। हम पहले कह चुके हैं कि गुंडा अधिनियम की धारा 3(1) के प्रावधान किसी भी तरह से किसी अपराध या आपराधिक अपराध की कल्पना नहीं करते हैं, और इसलिए, अगर पुलिस रिपोर्ट भी हो, तो भी इस आधार पर सोचना और कार्य करना कि याचिकाकर्ता के खिलाफ गुंडा अधिनियम की धारा 3(1) के तहत अपराध दर्ज किया गया था, तर्क की सरासर विकृति है, जो आक्षेपित आदेश को दूषित करती है। इससे आक्षेपित आदेश और पुलिस अधीक्षक, हाथरस, जिन्होंने इसे केवल मुकदमा अपराध संख्या 564/2015, धारा 147, 452, 323, 504, 506 भा.दं.सं. और एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3(1)(x) के अंतर्गत, थाना जसवंत नगर, जिला इटावा, के साथ पारित किया था, विचारणीय हो जाएगा। हम पहले ही बता चुके हैं कि उक्त आपराधिक मामले के प्रभाव पर, जिसका वास्तव में याचिकाकर्ता द्वारा खुलासा नहीं किया गया था, पुलिस अधीक्षक, हाथरस द्वारा कितनी भ्रांतिपूर्ण तरीके से विचार किया गया है।

32. इस बिन्दु पर, मुकदमा अपराध संख्या 564/2015 के याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी पर पड़ने वाले प्रभाव पर आगे विचार करते हुए, यह उल्लेख करना आवश्यक है कि दिनांक 28.04.1958 के शासनादेश में अभ्यर्थी के चरित्र और उत्तर प्रदेश सरकार की सेवा में लोक नियोजन हेतु उसकी उपयुक्तता के सत्यापन की पद्धति और प्रक्रिया निर्धारित की गई है। दिनांक 28.04.1958 के शासनादेश के प्रासंगिक भाग में यह प्रावधान है:

"3. (क) उत्तर प्रदेश सरकार के अधीन किसी भी सेवा में सीधी भर्ती वाले प्रत्येक व्यक्ति को निम्नलिखित प्रस्तुत करना होगा:

(i) उस शैक्षणिक संस्थान के प्रमुख से आचरण और चरित्र का प्रमाण पत्र जहाँ उसने अंतिम बार अध्ययन किया था (यदि वह ऐसे किसी संस्थान में गया था)।

(ii) दो व्यक्तियों से चरित्र प्रमाण पत्र। नियुक्ति प्राधिकारी उन व्यक्तियों के प्रकार के संबंध में आवश्यकताएँ निर्धारित करेगा जिनसे वह ये प्रमाण पत्र चाहता है।

ख) संदेह की स्थिति में, नियुक्ति प्राधिकारी या तो आगे संदर्भ मांग सकता है, या मामले को संबंधित जिला मजिस्ट्रेट को भेज सकता है। इसके बाद जिला मजिस्ट्रेट आवश्यकतानुसार आगे की पूछताछ कर सकता है।
नोट (क) दोषसिद्धि में स्वयं अच्छे चरित्र का प्रमाण पत्र देने से इनकार करना शामिल नहीं है। दोषसिद्धि की परिस्थितियों को ध्यान में रखा जाना चाहिए और यदि वे नैतिक अधमता या हिंसा के अपराधों से संबद्ध हैं या किसी ऐसे आंदोलन से संबद्ध हैं जिसका उद्देश्य स्वतंत्र भारत में वर्तमान कानून द्वारा स्थापित सरकार को हिंसक तरीकों से उखाड़ फेंकना है, तो केवल दोषसिद्धि को अयोग्यता नहीं माना जाना चाहिए। (किसी व्यक्ति

को बचपन में दोषसिद्धि होना आवश्यक रूप से उसके सरकारी सेवा में प्रवेश में बाधा नहीं बननी चाहिए। जिन परिस्थितियों में उसकी दोषसिद्धि दर्ज की गई थी तथा जिन परिस्थितियों में वह अब है, उन सभी को ध्यान में रखा जाना चाहिए। यदि उसने समझ और विवेक की आयु प्राप्त करने पर स्वयं को पूरी तरह से सुधार लिया है, तो केवल बचपन में दोषसिद्धि होना उसके सरकारी सेवा में प्रवेश में बाधा नहीं बननी चाहिए।)

(ख) किसी भी व्यक्ति को केवल उसके राजनीतिक विचारों के कारण नियुक्ति के लिए अयोग्य नहीं माना जाना चाहिए, लेकिन इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि ऐसे व्यक्तियों को नौकरी पर न रखा जाए जो निष्ठाहीन हो सकते हैं और अपनी नियुक्ति के आधार पर उन पर रखे गए विश्वास का दुरुपयोग कर सकते हैं। सामान्यतः, ऐसे व्यक्ति जो विध्वंसकारी गतिविधियों में सक्रिय रूप से शामिल हैं, जिनमें किसी ऐसे संगठन के सदस्य भी शामिल हैं जिसका घोषित उद्देश्य हिंसक तरीकों से समाज की मौजूदा व्यवस्था को बदलना है, उन्हें सरकार के अधीन नियुक्ति के लिए अयोग्य माना जाना चाहिए। 21 वर्ष की आयु प्राप्त करने के बाद और जांच की तारीख से तीन वर्ष के भीतर किसी भी समय ऐसी गतिविधियों में भाग लेना इस बात का प्रमाण माना जाएगा कि व्यक्ति अभी भी ऐसी गतिविधियों में सक्रिय रूप से संलग्न है, जब तक कि इस अंतराल में उसके रवैये में परिवर्तन का सकारात्मक प्रमाण न हो।

(ग) केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार द्वारा बर्खास्त किए गए व्यक्ति भी इस सरकार के अधीन किसी भी सेवा में नियुक्ति के लिए अयोग्य माने जाएंगे।

2(घ) उत्तर प्रदेश सरकार के अधीन राज्य सेवाओं में सीधी भर्ती के मामले में अभ्यर्थियों से ऊपर पैरा 3(क) में उल्लिखित प्रमाण पत्र प्रस्तुत करने की अपेक्षा करना सम्मिलित है। नियुक्ति प्राधिकारी सभी मामलों को पुलिस उपमहानिरीक्षक, खुफिया और जिला मजिस्ट्रेट (गृह जिले के और उस जिले के जहां अभ्यर्थी ने जांच की तारीख से पांच वर्ष के भीतर एक वर्ष से अधिक समय तक निवास किया है) को अभ्यर्थी के बारे में पूर्ण विवरण देते हुए एक साथ भेजेगा। जिला मजिस्ट्रेट, पुलिस अधीक्षक से अभ्यर्थियों के संबंध में रिपोर्ट प्राप्त करेंगे, जो जिला पुलिस अभिलेखों और स्थानीय अभिसूचना इकाई के अभिलेखों का अवलोकन करेंगे। जिला पुलिस या जिला अभिसूचना इकाई मौके पर कोई पूछताछ नहीं करेगी, बल्कि अपने अभिलेखों से रिपोर्ट करेगी कि क्या अभ्यर्थी के विरुद्ध कुछ है, किन्तु यदि किसी विशिष्ट मामले में नियुक्ति प्राधिकारी के कहने पर जिला मजिस्ट्रेट मौके पर जाँच के लिए कहे, तो स्थानीय पुलिस या स्थानीय अभिसूचना इकाइयाँ ऐसा करेंगी और परिणाम की सूचना उन्हें देंगी। इसके बाद, जिला मजिस्ट्रेट नियुक्ति प्राधिकारी को अपने विचार प्रस्तुत करेगा। यदि जिला पुलिस या स्थानीय खुफिया इकाइयाँ किसी उम्मीदवार के बारे में प्रतिकूल रिपोर्ट देती हैं, तो जिला मजिस्ट्रेट अपनी रिपोर्ट भेजने से पहले उम्मीदवार को सुनवाई का अवसर दे सकता है।

(ङ) सीधे भर्ती किए गए कर्मचारियों (जो राज्य सेवा अधिकारी से निम्न रैंक के हैं) के मामले में:

(i) पुलिस (पुलिस अधिकारियों के अनुसचिवीय स्टाफ सहित)।

(ii) सचिवालय।

(iii) सरकारी कारखानों में कार्यरत कर्मचारी,

(iv) बिजलीघरों और बांधों में।

अभ्यर्थियों से ऊपर पैरा 3 (ए) में उल्लिखित प्रमाण-पत्र प्रस्तुत करने की अपेक्षा करने के अलावा, नियुक्ति प्राधिकारी सभी मामलों को उप महानिरीक्षक, सीआईडी और जिला पुलिस अधीक्षक (गृह जिले के और उस जिले के जहां अभ्यर्थी ने जांच की तारीख से पांच वर्ष के भीतर एक वर्ष से अधिक समय तक निवास किया है) को अभ्यर्थी के बारे में पूर्ण विवरण देते हुए एक साथ संदर्भित करेंगे। यदि अभ्यर्थी के विरुद्ध कोई प्रतिकूल बात न हो, तो पुलिस अधीक्षक अपनी रिपोर्ट सीधे नियुक्ति प्राधिकारी को भेजेंगे। जिन मामलों में रिपोर्ट प्रतिकूल हो, वहाँ पुलिस अधीक्षक उसे जिला मजिस्ट्रेट को भेजेंगे, जो संबंधित अभ्यर्थी को बुलाएँगे, उसकी सुनवाई करेंगे और फिर अपनी राय देंगे। इसके बाद सभी आवश्यक दस्तावेज़ (पुलिस अधीक्षक की रिपोर्ट, अभ्यर्थी का बयान और जिला मजिस्ट्रेट के निष्कर्ष) नियुक्ति प्राधिकारी को भेजे जाएँगे।

4. यह देखा जाएगा कि उपर्युक्त पैराग्राफ 3 (सी) और 3 (डी) में उल्लिखित सेवाओं के अलावा अन्य सेवाओं में सीधी भर्ती के मामलों में, सत्यापन नियमित रूप से आवश्यक नहीं होगा, सिवाय संदेह के मामलों में जब पैराग्राफ 3 (बी) में उल्लिखित प्रक्रिया का पालन किया जाएगा।

5. उपर्युक्त पैराग्राफ 3 (सी) और 3 (डी) में उल्लिखित सेवाओं के लिए उम्मीदवार के मामले में-

(i) यदि जांच के समय अभ्यर्थी उत्तर प्रदेश के बाहर स्थित किसी इलाके में निवास कर रहा है या यदि उसने जांच की तिथि से पांच वर्ष के भीतर किसी भी समय एक वर्ष या उससे अधिक अवधि के लिए ऐसे इलाके में निवास किया है, तो उप महानिरीक्षक, सी.आई.डी. का यह कर्तव्य होगा कि वह अपनी सत्यापन रिपोर्ट बनाने से पहले संबंधित राज्य के सी.आई.डी.डी. से भी परामर्श करें, जिसमें वह इलाका स्थित है।

(ii) यदि अभ्यर्थी विभाजन से पूर्व उस क्षेत्र में निवास कर रहा था, जो अब पाकिस्तान में आता है, तो उप महानिरीक्षक, सी.आई.डी. ऊपर बताई गई सामान्य जांच के अतिरिक्त, भारत सरकार के गृह मंत्रालय के खुफिया ब्यूरो के निदेशक को भी संदर्भ देगा।

6. यह भी देखा गया है कि जहां जिला मजिस्ट्रेटों को सत्यापन प्रपत्र भेजने की आवश्यकता होती है, वहां वे कभी-कभी स्वयं प्रपत्रों पर हस्ताक्षर नहीं करते हैं। सरकार यह बहुत वांछनीय मानती है कि ऐसे सभी मामलों में सत्यापन प्रपत्रों पर अनिवार्य रूप से जिला मजिस्ट्रेटों द्वारा स्वयं हस्ताक्षर किए जाने चाहिए।"

33. मुझे **शिवम यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2024 (11) एडीजे 749** में एक अभ्यर्थी के सरकारी सेवा में नियुक्ति के अधिकार पर दिनांक 28.04.1958 के शासनादेश के प्रभाव पर विचार करने का अवसर मिला, जिसके विरुद्ध आपराधिक मामला दर्ज किया गया था, जहां मैंने अवधारित किया था:

"14. दिनांक 28.04.1958 के शासनादेश के अवलोकन से पता चलता है कि जिला मजिस्ट्रेट को चरित्र सत्यापन की प्रक्रिया सौंपी गई थी ताकि सभी प्रासंगिक तथ्यों के आधार पर सरकारी सेवा के लिए उम्मीदवार की

उपयुक्तता के बारे में एक संतुलित राय प्राप्त की जा सके। राज्य की रोजगार नीति कभी भी यह नहीं रही कि किसी भी ऐसे व्यक्ति को, जिसके विरुद्ध कोई अपराध दर्ज हो, सरकारी रोजगार के लिए विचार से बाहर रखा जाए। बेशक, नैतिक पतन से जुड़ा एक जघन्य और गंभीर अपराध और संलिप्तता दिखाने वाली कुछ कार्यवाही हमेशा एक उम्मीदवार को बाहर करने का मानदंड होगी जब तक कि बाद की कार्यवाही उसे पूरी तरह से निर्दोष न साबित कर दे और इसमें शामिल न हो। लेकिन अन्य अपराधों की मेजबानी, मामूली या इतनी मामूली नहीं, या पूरी तरह से झूठे आरोप के मामले, जहां किसी व्यक्ति के खिलाफ कुछ भी नहीं निकला, राज्य के तहत रोजगार के लिए उम्मीदवार के चरित्र और उपयुक्तता को सत्यापित करने के उद्देश्य से जिला मजिस्ट्रेट द्वारा आंका जाना होगा। यदि यह राज्य की नीति नहीं होती, तो ऐसे विस्तृत प्रावधान की कोई आवश्यकता नहीं थी, जिसमें कलेक्टर, पुलिस अधीक्षक और कुछ मामलों में सीआईडी को शामिल किया जाता, ताकि यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि क्या कोई उम्मीदवार सार्वजनिक रोजगार के लिए उपयुक्त है, भले ही अपराध दर्ज किया गया हो।"

34. यह सही है कि **शिवम यादव** (उपरोक्त) एक ऐसा मामला था, जहाँ याचिकाकर्ता वैध रूप से यह कह सकता था कि उसे अपने विरुद्ध दर्ज अपराध की जानकारी नहीं थी, क्योंकि उसने अपने नोटरीकृत शपथपत्र में कहा था कि उस पर कोई आपराधिक मामला दर्ज नहीं है। लेकिन, 28.04.1958 के शासनादेश में निर्धारित प्रक्रिया उस व्यक्ति पर समान रूप से लागू होती है जिसने किसी आपराधिक मामले के लंबित होने की जानकारी छिपाई हो और उस व्यक्ति पर भी जिसे इसकी बिल्कुल भी जानकारी नहीं थी। अंतर कई मानदंडों पर निर्भर करेगा, जैसे कि अपराध जघन्य है, याचिकाकर्ता की संलिप्तता की प्रकृति, अपराध की गंभीरता, तथा सबसे बढ़कर, उम्मीदवार का समग्र चरित्र और पृष्ठभूमि। जघन्य अपराधों के मामलों को छोड़कर, यह समग्र रूप से देखा जाना चाहिए कि क्या याचिकाकर्ता वास्तव में अपराध में शामिल नहीं था, उसके विरुद्ध प्रस्तुत तथ्यों और साक्ष्यों पर विचार करने के बाद। प्रतिवादी प्राधिकारियों की यह धारणा कि किसी उम्मीदवार के विरुद्ध दर्ज प्रत्येक आपराधिक मामले और प्रत्येक आपराधिक मामले, जिसका वह खुलासा नहीं करता, के लिए उसे उसकी कड़ी मेहनत से अर्जित नौकरी से वंचित किया जाना चाहिए, पूरी तरह से गलत धारणा पर आधारित है। इस संबंध में **पुलिस आयुक्त एवं अन्य बनाम संदीप कुमार, (2011) 4 एससीसी 644** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का संदर्भ लिया जा सकता है। संदीप कुमार (उपरोक्त) मामले में, जैसा कि माननीय न्यायमूर्ति द्वारा वर्णित किया गया है, तथ्य इस प्रकार हैं:

"2. प्रतिवादी, संदीप कुमार ने 1999 में हेड कांस्टेबल (लिपिकीय) के पद के लिए आवेदन किया था। आवेदन पत्र में यह मुद्रित था:

"12(ए) क्या आपको कभी गिरफ्तार किया गया है, मुकदमा चलाया गया है, हिरासत में रखा गया है या बाध्य/जुर्माना लगाया गया है, किसी अपराध के लिए कानून की अदालत द्वारा दोषी ठहराया गया है, किसी भी लोक सेवा आयोग द्वारा अपनी परीक्षा/चयन में उपस्थित होने से वंचित/अयोग्य घोषित किया गया है या किसी

भी परीक्षा से वंचित किया गया है, किसी भी विश्वविद्यालय या किसी अन्य शिक्षा प्राधिकरण/संस्था द्वारा निष्कासित किया गया है।"

उस कॉलम के सामने प्रतिवादी ने लिखा: "नहीं"।

3. यह आरोप लगाया गया है कि प्रतिवादी द्वारा दिया गया यह एक झूठा बयान है क्योंकि वह और उसके परिवार के कुछ सदस्य भारतीय दंड संहिता की धारा 325/34 के अंतर्गत एफआईआर संख्या 362 नामक एक आपराधिक मामले में शामिल थे। इस मामले में 18-1-1998 को समझौता हो गया था और प्रतिवादी तथा उसके परिवार के सदस्यों को 18-1-1998 को बरी कर दिया गया था।

4. हेड कांस्टेबल (लिपिकीय) के कुछ पदों को भरने के लिए जनवरी 1999 में जारी विज्ञापन के जवाब में, प्रतिवादी ने 24-2-1999 को आवेदन किया लेकिन अपने आवेदन पत्र में यह उल्लेख नहीं किया कि वह उपरोक्त आपराधिक मामले में शामिल था। प्रतिवादी अस्थायी हेड कांस्टेबल (लिपिकीय) के पद पर चयन हेतु सभी परीक्षाओं में उत्तीर्ण हुआ। 3-4-2001 को उसने सत्यापन प्रपत्र भरा, जिसमें उसने पहली बार बताया कि वह अपने किरायेदार के साथ एक आपराधिक मामले में संलिप्त था, जिसका बाद में 1998 में समझौता हो गया था और वह बरी हो गया था।

5. दिनांक 2-8-2001 को प्रतिवादी को एक कारण बताओ नोटिस जारी किया गया जिसमें पूछा गया कि क्यों न इस पद के लिए उसकी उम्मीदवारी रद्द कर दी जाए, क्योंकि उसने उपरोक्त आपराधिक मामले में अपनी संलिप्तता के तथ्य को छुपाया था और अपने आवेदन पत्र में गलत विवरण दिया था। प्रतिवादी ने 17-8-2001 को अपना जवाब और एक अतिरिक्त जवाब प्रस्तुत किया, लेकिन अधिकारी उससे संतुष्ट नहीं हुए और 29-5-2003 को उसकी उम्मीदवारी रद्द कर दी।"

35. इन तथ्यों के आधार पर, **संदीप कुमार** मामले में यह निर्णय दिया गया:
"8. हम दिल्ली उच्च न्यायालय से सम्मानपूर्वक सहमत हैं कि उनकी उम्मीदवारी रद्द करना अवैध था, लेकिन हम इस मामले में अपनी राय देना चाहते हैं। जब यह घटना घटी, तब प्रतिवादी की आयु लगभग 20 वर्ष रही होगी। इस उम्र में युवा अक्सर अविवेकपूर्ण व्यवहार कर बैठते हैं, और ऐसी अविवेकपूर्णता को अक्सर क्षमा किया जा सकता है। आखिरकार, युवा तो युवा ही होते हैं। उनसे वृद्ध लोगों की तरह परिपक्व व्यवहार की अपेक्षा नहीं की जाती है।"
इसलिए, हमारा दृष्टिकोण युवाओं द्वारा की गई छोटी-मोटी असावधानियों को क्षमा करने का होना चाहिए, न कि उन्हें जीवन भर के लिए अपराधी के रूप में चिह्नित करने का।

11. जैसा कि ऊपर देखा जा चुका है, युवा अक्सर असावधानियां करते हैं, जिन्हें अक्सर क्षमा कर दिया जाता है।

12. यह सच है कि प्रतिवादी ने आवेदन पत्र में यह उल्लेख नहीं किया था कि वह भारतीय दंड संहिता की धारा 325/34 के तहत एक आपराधिक मामले में शामिल है। संभवतः उसने इस डर से इसका उल्लेख नहीं किया होगा कि ऐसा करने पर वह स्वतः ही अयोग्य हो जाएगा। वैसे भी, यह हत्या, डकैती या बलात्कार जैसा कोई गंभीर अपराध नहीं था, इसलिए इस मामले में अधिक उदार रुख अपनाया जाना चाहिए।"

36. इस विषय में एक अन्य प्रासंगिक प्राधिकारी **राम कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2011) 14 एससीसी 709** है। **राम कुमार** (उपरोक्त) में तथ्य, जैसा कि उनके माननीय न्यायाधीशों के निर्णय की रिपोर्ट में दिखाई देता है, इस प्रकार हैं:

"2. संक्षेप में तथ्य यह है कि उत्तर प्रदेश राज्य सरकार द्वारा 19-11-2006 को जारी एक विज्ञापन के अनुसार, अपीलकर्ता ने कांस्टेबल के पद के लिए आवेदन किया और उसने सत्यापन रोल के प्रारूप में भर्ती प्राधिकारी को दिनांक 12-6-2006 को एक शपथपत्र प्रस्तुत किया। दिनांक 12-6-2006 के शपथपत्र में, उसने भर्ती के लिए आवश्यक विभिन्न विवरण दिए और शपथपत्र के पैरा 4 में उसने कहा कि उसके विरुद्ध कोई आपराधिक मामला दर्ज नहीं है। उसे पुरुष कांस्टेबल के रूप में चयनित और नियुक्त किया गया और प्रशिक्षण के लिए प्रतिनियुक्त किया गया।

3. तत्पश्चात, जसवंत नगर थाना, जिला इटावा ने दिनांक 15-1-2007 को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें बताया गया कि अपीलकर्ता के विरुद्ध धारा 324/323/504 भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत आपराधिक मुकदमा संख्या 275/2001 पंजीकृत किया गया था और तत्पश्चात 18-7-2002 को अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, इटावा द्वारा आपराधिक मुकदमे का निस्तारण कर दिया गया तथा अपीलकर्ता को न्यायालय द्वारा बरी कर दिया गया। इस रिपोर्ट के साथ, अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के दिनांक 18-7-2002 के आदेश की प्रति भी संलग्न की गई थी।

4. जसवंत नगर थाना, जिला इटावा की दिनांक 15-1-2007 की रिपोर्ट वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, गाजियाबाद को भेजी गई थी। वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, गाजियाबाद ने दिनांक 8-8-2007 के आदेश द्वारा अपीलार्थी के चयन आदेश को इस आधार पर निरस्त कर दिया कि उसने गलत तथ्य प्रस्तुत करते हुए तथा सही तथ्यों को छिपाते हुए शपथ पत्र प्रस्तुत किया था और उसका चयन अनियमित एवं अवैध था।

5. व्यथित होकर, अपीलकर्ता ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट याचिका संख्या 40674/2007 दायर की, लेकिन विद्वान एकल न्यायाधीश ने अपने आदेश दिनांक 30-8-2007 [डब्ल्यूपी (सी) संख्या 40674/2007, आदेश दिनांक 30-8-2007 (सभी)] द्वारा रिट याचिका को खारिज कर दिया। विद्वान एकल न्यायाधीश ने माना कि चूंकि अपीलकर्ता ने प्रोफार्मा सत्यापन रोल में अपने शपथपत्र में गलत जानकारी दी थी, इसलिए उसका मामला इस न्यायालय द्वारा केन्द्रीय विद्यालय संगठन बनाम राम रतन यादव [(2003) 3 एससीसी 437: 2003 एससीसी (एल एंड एस) 306] में दिए गए निर्णय द्वारा पूरी तरह से सन्दर्भित किया गया है और उसे बिना किसी जांच के सेवा से बर्खास्त करना सही था। अपीलकर्ता ने विशेष

अपील संख्या 924/2009 में विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश को चुनौती दी लेकिन उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने अपील में कोई योग्यता नहीं पाई और उसे 31-8-2009 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया [विशेष अपील (दोषपूर्ण) संख्या 924/2009, आदेश दिनांक 31-8-2009 (आल)]।"

37. इन तथ्यों के आधार पर, राम कुमार मामले में यह माना गया:

"9. हमने "सरकारी कर्मचारियों की प्रथम नियुक्ति से पूर्व उनके चरित्र और पूर्ववृत्त का सत्यापन" विषय पर दिनांक 28-4-1958 के शासनादेश को ध्यानपूर्वक पढ़ा है और शासनादेश में कहा गया है कि राज्यपाल ने सभी पूर्व आदेशों को अधिक्रमित करते हुए निम्नलिखित निर्देश दिए हैं:

"राज्य सरकार के अधीन नियुक्ति के लिए अभ्यर्थी के चरित्र संबंधी नियम इस प्रकार रहेंगे:

सीधी नियुक्ति के लिए अभ्यर्थी का चरित्र ऐसा होना चाहिए जो उसे उस सेवा या पद पर नियुक्ति के लिए सभी प्रकार से उपयुक्त बनाए, जिस पर उसे नियुक्त किया जाना है। नियुक्ति प्राधिकारी का यह कर्तव्य होगा कि वह इस बिंदु पर स्वयं को संतुष्ट करे।"

10. राज्यपाल द्वारा जारी उपर्युक्त अनुदेशों से यह स्पष्ट होगा कि सरकारी सेवकों की प्रथम नियुक्ति से पूर्व उनके चरित्र और पूर्ववृत्त के सत्यापन का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि सीधी भर्ती के लिए सरकारी सेवक का चरित्र ऐसा हो कि वह उस सेवा या पद पर, जिस पर उसे नियुक्त किया जाना है, नियोजन के लिए सभी प्रकार से उपयुक्त हो और नियुक्ति प्राधिकारी का यह कर्तव्य होगा कि वह इस बिन्दु पर स्वयं को संतुष्ट कर ले।

11. वर्तमान मामले के तथ्यों में, हम पाते हैं कि यद्यपि जसवंत नगर पुलिस स्टेशन, जिला इटावा में अपीलकर्ता के खिलाफ धारा 324/323/504 भा.दं.सं. के तहत आपराधिक मामला संख्या 275/2001 पंजीकृत किया गया था, लेकिन अपीलकर्ता को अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, इटावा द्वारा दिनांक 18-7-2002 के आदेश द्वारा बरी कर दिया गया था।

12. अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के दिनांक 18-7-2002 के आदेश को पढ़ने पर यह पता चलता है कि अदालत के समक्ष परीक्षित एकमात्र गवाह, पीडब्लू 1, श्री अखिलेश कुमार ने अदालत के समक्ष बयान दिया था कि 2-12-2000 को शाम 4.00 बजे बच्चे झगड़ रहे थे और उस समय अपीलकर्ता, शैलेंद्र और अजय कुमार अन्य पड़ोसियों के साथ वहां पहुंचे और भीड़ में से किसी ने गालियां दीं और हाथापाई में अखिलेश कुमार गिर गए और उनका सिर ईंट के चबूतरे से टकराने से घायल हो गए और उन्हें आरोपियों ने किसी धारदार हथियार से नहीं पीटा था। अपीलकर्ता के विरुद्ध किसी अन्य गवाह के अभाव में, अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने अपीलकर्ता को भारतीय दंड संहिता की धारा 323/34/504 के तहत आरोपों से बरी कर दिया। इन तथ्यों के

आधार पर, नियुक्ति प्राधिकारी के लिए यह निष्कर्ष निकालना बिल्कुल भी संभव नहीं था कि अपीलकर्ता पुलिस कांस्टेबल के पद पर नियुक्ति के लिए उपयुक्त नहीं है।

13. अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट का दिनांक 18-7-2002 का आदेश जसवंत नगर थाने की दिनांक 15-1-2007 की रिपोर्ट के साथ वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, गाजियाबाद को भेजा गया था, लेकिन वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, गाजियाबाद के दिनांक 8-8-2007 के आदेश से ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने इस प्रश्न पर विचार नहीं किया है कि क्या अपीलकर्ता सेवा में नियुक्ति के लिए या कांस्टेबल के उस पद के लिए उपयुक्त था जिसमें उसे नियुक्त किया गया था और उन्होंने केवल यह माना है कि अपीलकर्ता का चयन अवैध और अनियमित था क्योंकि उसने सत्यापन रोल के प्रोफार्मा में अपने शपथपत्र में यह प्रस्तुत नहीं किया था कि उसके खिलाफ एक आपराधिक मामला दर्ज किया गया है।

14. जैसा कि दिनांक 28-4-1958 के शासनादेश में दिए गए निर्देशों में कहा गया है, नियुक्ति प्राधिकारी के रूप में, गाजियाबाद के वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक का यह कर्तव्य था कि वे इस बिंदु पर स्वयं संतुष्ट हों कि क्या अपीलकर्ता, दमन की प्रकृति और आपराधिक मामले की प्रकृति के संदर्भ में, कांस्टेबल के पद पर नियुक्ति के लिए उपयुक्त था। यह विचार करने के बजाय कि क्या अपीलकर्ता पुरुष कांस्टेबल के पद पर नियुक्ति के लिए उपयुक्त था, नियुक्ति प्राधिकारी ने यंत्रवत् यह मान लिया कि उसका चयन अनियमित और अवैध था क्योंकि अपीलकर्ता ने भर्ती के समय तथ्यों को गलत बताते हुए एक शपथपत्र प्रस्तुत किया था।"

38. **राम कुमार** मामले के सिद्धांतों को पढ़ने से पता चलता है कि न्यायालय ने अपीलकर्ता के खिलाफ प्रस्तुत साक्ष्य और अपराध में उसकी भूमिका पर गौर किया ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या वह पुलिस में कांस्टेबल के पद पर नियुक्ति के लिए उपयुक्त था। राम कुमार का मामला भी ऐसा था, जहां आपराधिक मामले के बारे में जानकारी छिपाई गई थी और रिपोर्ट के पैराग्राफ संख्या 14 में इस बात पर जोर दिया गया है कि दिनांक 28.04.1958 के शासनादेश में दिए गए निर्देशों के अनुसार वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक का यह कर्तव्य है कि वे उस मामले में अपीलकर्ता की कांस्टेबल के पद पर नियुक्ति के लिए उपयुक्तता के बारे में स्वयं संतुष्ट हो जाएं, जिसमें छिपाए जाने की प्रकृति और आपराधिक मामले की प्रकृति को ध्यान में रखा गया हो। न्यायालय ने अपीलकर्ता की उम्मीदवारी को अपराध में संलिप्तता तथा शपथपत्र में गलत जानकारी देने के कारण यांत्रिक रूप से खारिज करने पर नाराजगी जताई।

39. निस्संदेह, **संदीप कुमार** और **राम कुमार** के निर्णयों में **अवतार सिंह** मामले में बाद में लिए गए निर्णय को ध्यान में रखा गया है, जिसमें सिद्धांतों को आत्मसात और संक्षेपित किया गया है, लेकिन **संदीप कुमार** और **राम कुमार** मामले में उल्लिखित नियमों से कोई विचलन या असहमति नहीं है। इस मामले के अभिलेखों पर ध्यानपूर्वक नज़र डालने से पता चलता है कि याचिकाकर्ता की नियुक्ति की उपयुक्तता के लिए ज़िला मजिस्ट्रेट की राय लेने की प्रक्रिया के पालन में, उसका मामला भी ज़िला मजिस्ट्रेट को भेजा गया था। और, परिस्थितियों पर विचार करने के बाद, ऐसा प्रतीत होता है कि ज़िला मजिस्ट्रेट ने याचिकाकर्ता को पुलिस कांस्टेबल के पद

पर सरकारी सेवा में नियुक्ति देने का पक्ष लिया है। यह तथ्य हाथरस के पुलिस अधीक्षक द्वारा वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, इटावा को संबोधित ज्ञापन संख्या भा-38/2017 दिनांक 18 अप्रैल, 2021 के अवलोकन से स्पष्ट होता है। इस पत्र का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:

"उपरोक्त सम्बन्ध मे अवगत कराना है कि अभ्यर्थी अनुक्रमांक 00248372 राम सुन्दर पाल पुत्र श्री प्रीतम सिंह पाल निवासी ग्राम कैस्त. थाना जसवन्तनगर जनपद इटावा के विरूद्ध थाना जसवन्तनगर जनपद इटावा पर म्०अ०सं० 564 / 2015 धारा 147/ 452 / 323 /504/506 भादवि व 3 (1) एससी / एसटी पंजीकृत अभियोग मे जिलाधिकारी जनपद इटावा ने अपने पत्र संख्या 864 / ए०जे०ए० - चरित्र सत्यापन 2018 दिनांक 01-12-2018] कं अभिमत मे अभ्यर्थी के विरूद्ध पंजीकृत मुकदमा उपरोक्त मे मा० न्यायालय विशेष न्यायाधाश एससीएसटी एक्ट - इटावा के निर्णय दिनाक 17-07-2018 मे अभ्यर्थी रामसुन्दर पाल का आरोप से दोषमुक्त कर दिये जाने के अनुपालन मे अभ्यर्थी को पुलिस आरक्षी के पद पर भर्ती हेतु आपात नहीं है। अभ्यर्थी के सम्बन्ध मे कराया गया चरित्र सत्यापन आख्या 06 माह से अधिक गया है जो काल बाधित की श्रेणी में आता है। जिसके फलस्वरूप अभ्यर्थी का पुनः चरित्र सत्यापन कराया जाना आवश्यक है। जिससे स्पष्ट हो सके कि अभ्यर्थी के विरूद्ध किसी प्रकार का कोई अभियोग आदि पंजीकृत तो नही हुआ है।"

(न्यायालय द्वारा प्रभाव वर्धित)

40. जिला मजिस्ट्रेट ने विद्वान विशेष न्यायाधीश द्वारा दिनांक 17.07.2018 को पारित दोषमुक्ति के निर्णय पर विचार करते हुए, दिनांक 28.04.1958 के शासनादेश के अनुसार याचिकाकर्ता के मामले का परीक्षण किया और यह राय दी कि उन्हें याचिकाकर्ता की पुलिस में कांस्टेबल के पद पर नियुक्ति पर कोई आपत्ति नहीं है। जिला मजिस्ट्रेट, इटावा की इस निर्णायक राय पर पुलिस अधीक्षक, हाथरस ने आक्षेपित आदेश पारित करते समय बिल्कुल भी विचार नहीं किया। याचिकाकर्ता की नियुक्ति न करने के अपने निर्णय पर पहुँचने से पहले प्रासंगिक तथ्यों पर विचार न करना आक्षेपित आदेश को और भी अधिक दोषपूर्ण बनाता है।

41. अपने प्रस्तुतीकरण के अंत में, विद्वान अधिवक्ता श्री रूपेश तिवारी ने धारा 420, 199 भा.दं.सं. के तहत मुकदमा अपराध संख्या 63/2021, थाना सिविल लाइंस, जिला इटावा का उल्लेख किया है, जो याचिकाकर्ता के खिलाफ 23.02.2023 को वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, इटावा के आदेश पर उसके चरित्र सत्यापन शपथपत्र में गलत बयानी करने के कृत्य के लिए पंजीकृत किया गया था कि उसके खिलाफ पुलिस में कोई अपराध दर्ज नहीं है। श्री तिवारी का कहना है कि यह याचिकाकर्ता के खिलाफ दर्ज एक अतिरिक्त अपराध है, जिससे उनके खिलाफ कई आपराधिक मामले दर्ज हो जाते हैं, और **अवतार सिंह** मामले में रिपोर्ट के पैराग्राफ संख्या 38.7 के तहत उनकी उम्मीदवारी तत्काल रद्द की जानी चाहिए। हम इससे सहमत नहीं हैं।

42. पुलिस मुख्यालय के कुछ परिपत्र पर कार्रवाई करते हुए, दिनांक 23.02.2021 को वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, इटावा के आदेश के तहत मामला अपराध संख्या 63/2021 पंजीकृत किया गया है, जो पुलिस कांस्टेबल के रूप में भर्ती की प्रक्रिया में चरित्र सत्यापन से संबंधित अपना शपथपत्र प्रस्तुत करते समय याचिकाकर्ता के खिलाफ दर्ज आपराधिक मामले को कथित रूप से जानबूझकर दबाने के कृत्य के लिए है। दिनांक 19.03.2023 के

आक्षेपित आदेश में स्पष्ट कारणों से इस मामले का उल्लेख या विचार नहीं किया गया है। जब याचिकाकर्ता ने पुलिस में भर्ती के लिए चरित्र सत्यापन की प्रक्रिया के दौरान दिनांक 09.06.2018 को अपना शपथपत्र प्रस्तुत किया था, तब यह उसके विरुद्ध कोई लंबित मामला नहीं था। चूंकि यह वह सामग्री नहीं है जिस पर पुलिस अधीक्षक, हाथरस द्वारा आक्षेपित आदेश पारित करते समय विचार किया गया था, इसलिए आक्षेपित आदेश के समर्थन में इस न्यायालय द्वारा इस पर विचार नहीं किया जा सकता है, क्योंकि यह कानून के एक प्रस्ताव के लिए अच्छी तरह से स्थापित है कि आक्षेपित आदेश में कारणों को आदेश की वैधता को चुनौती देने वाली रिट याचिका की सुनवाई के दौरान शपथपत्र पर प्रस्तुत तथ्यों या सामग्रियों के माध्यम से पूरक नहीं किया जा सकता है।

43. इस न्यायालय की राय में, अन्य बातों के साथ-साथ, आक्षेपित आदेश निम्नलिखित कारणों से स्पष्ट रूप से दोषपूर्ण है:

(i) जिला मजिस्ट्रेट के पत्र संख्या 864/एजेए-चरित्र सत्यापान/2018 दिनांक 01.12.2018 में व्यक्त की गई राय पर विचार न करना, जो शासनादेश दिनांक 28.04.1958 के अनुसार प्रस्तुत किया गया था, जिसमें कहा गया है कि सामग्री की समीक्षा के बाद जिला मजिस्ट्रेट को याचिकाकर्ता की नियुक्ति पर कोई आपत्ति नहीं है;

(ii) अप्रासंगिक सामग्री पर विचार करना, जो गुंडा अधिनियम की धारा 3(1) के अंतर्गत मुकदमा अपराध संख्या 108/2016, थाना जसवंत नगर, जिला इटावा है, जिसे कानून के तहत कभी भी मुकदमा अपराध के रूप में पंजीकृत और जांचा नहीं जा सकता था;

(iii) यह दर्शाने के लिए सामग्री का पूर्णतः अभाव है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध गुंडा अधिनियम की धारा 3(1) के अंतर्गत निष्कासन आदि के लिए कोई कार्यवाही की गई थी या कलेक्टर या अपर कलेक्टर द्वारा कोई आदेश दिया गया था;

(iv) पुलिस अधीक्षक, हाथरस ने आक्षेपित आदेश पारित करते समय, एक स्पष्ट त्रुटि के आधार पर, यह कहा कि अवतार सिंह मामले में रिपोर्ट के पैराग्राफ संख्या 38.7 के अनुसार याचिकाकर्ता के विरुद्ध कई आपराधिक मामले दर्ज थे, जबकि उसका मामला एक एकल आपराधिक मामले में से एक था;

(v) पुलिस अधीक्षक, हाथरस ने याचिकाकर्ता के विरुद्ध पंजीकृत आपराधिक मामले को दबाने के एकमात्र आधार पर उसकी उम्मीदवारी को रद्द करने की कार्यवाही करके स्पष्ट अवैधता की है, इस तथ्य पर ध्यान दिए बिना कि मूलतः अपराध वास्तव में मामूली था या याचिकाकर्ता को सौंपी गई भूमिका और उसके विरुद्ध प्रस्तुत साक्ष्य मामूली और मामूली थे, जो उसे नियुक्ति के लिए अयोग्य नहीं बनाते थे;

(vi) पुलिस अधीक्षक, हाथरस द्वारा आरोप की प्रकृति, मुकदमे में याचिकाकर्ता के खिलाफ पेश किए गए साक्ष्य, वह पृष्ठभूमि जिसमें याचिकाकर्ता को फंसाया गया, जहां पक्षों के बीच कुछ पंचायत चुनाव प्रतिद्वंद्विता आदि शामिल थी, अपराध में याचिकाकर्ता को सौंपी गई भूमिका, याचिकाकर्ता के संबंध में अपराध की गंभीरता पर विचार करने में विफलता।

44. इन सभी मामलों में पुलिस अधीक्षक द्वारा, जिला मजिस्ट्रेट की रिपोर्ट के साथ, सावधानीपूर्वक विचार करके यह निष्कर्ष निकालना आवश्यक था कि याचिकाकर्ता सरकारी नौकरी के लिए उपयुक्त है या अनुपयुक्त, जो कि पुलिस अधीक्षक, हाथरस ने वर्तमान मामले में नहीं किया। उन्होंने इन सभी प्रासंगिक तथ्यों और सामग्रियों पर विचार किए बिना, यंत्रवत् रूप से आक्षेपित आदेश पारित किया है।

45. इन सभी भ्रांतियों के कारण, आक्षेपित आदेश निरस्त किया जाना चाहिए और मामला पुलिस अधीक्षक, हाथरस को वापस भेजा जाना चाहिए ताकि कानून और इस निर्णय में दिए गए निर्देशों के अनुसार नए आदेश जारी किए जा सकें। हम यह भी जोड़ना चाहेंगे कि नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता की उपयुक्तता का आकलन करते समय, पुलिस अधीक्षक, हाथरस उस अपराध से संबंधित स्पष्ट परिस्थितियों को ध्यान में रखेंगे और उन पर गौर करेंगे, जिसमें याचिकाकर्ता को फंसाया गया था और अब बरी कर दिया गया है, यदि यह गाँव के मूल निवासियों द्वारा सेवा संबंधी निहितार्थ का एक विशिष्ट मामला था, क्योंकि याचिकाकर्ता ने पुलिस सेवा के लिए अपनी उम्मीदवारी प्रस्तुत की थी। पुलिस अधीक्षक को जिन बातों को देखना और ध्यान में रखना होगा, उनमें से एक है याचिकाकर्ता की सामान्य प्रतिष्ठा, ताकि यह पता लगाया जा सके कि वह आपराधिक प्रवृत्ति वाला व्यक्ति है या जीवन की मुख्य धारा से जुड़ा हुआ व्यक्ति है। हम यह विशेष रूप से इसलिए कह रहे हैं क्योंकि 2015 के मुकदमा अपराध संख्या 564 को छोड़कर, जो उसकी भर्ती से संबंधित समय पर दर्ज किया गया था, याचिकाकर्ता का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है जो उसे एक स्वच्छंद व्यक्ति के रूप में दर्शाता हो, जो उसकी पृष्ठभूमि की गहन खोज के दौरान सामने आया है।

46. परिणामस्वरूप, यह रिट याचिका सफल होती है और स्वीकार की जाती है। पुलिस अधीक्षक, हाथरस द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 19.03.2023 एतद्द्वारा रद्द किया जाता है। पुलिस अधीक्षक, हाथरस को इस निर्णय में दिए गए मार्गदर्शन को ध्यान में रखते हुए, विज्ञापन संख्या पीआरपीबी-1 (82)/15 के अनुसरण में किए गए चयन के आधार पर पुलिस कांस्टेबल के रूप में नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता के मामले पर पुनर्विचार करने के लिए एक परमादेश जारी किया जाता है। चूंकि यह बहुत पुराना मामला है, इसलिए पुलिस अधीक्षक, हाथरस द्वारा इस आदेश की प्रति प्राप्त होने के चार सप्ताह के भीतर आवश्यक आदेश पारित किया जाएगा और परिणाम याचिकाकर्ता को सूचित किया जाएगा।

47. वादव्यय के सम्बन्ध में कोई आदेश नहीं होगा।

48. इस निर्णय की एक प्रति निबन्धक (अनुपालन) द्वारा पुलिस अधीक्षक, हाथरस को भेजी जाए।

अनुपालित

(2025) 4 ILRA.128

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद, 16.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार

रिट ए संख्या 10500/2024

डॉ. योगेंद्र भदौरिया **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
आई.एम. पांडे प्रथम, अजीत वर्मा

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
सी.एस.सी., राज कुमार उपाध्याय (आर.के. उपाध्याय)

अनुवादित

सेवा कानून - उ.प्र. सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियमावली, 1999 - नियम 7(vii) - अनुशासनात्मक कार्यवाही - लघु दण्ड - प्रक्रियागत अनियमितता - 1999 नियमावली के नियम 7 के अन्तर्गत अनिवार्य जांच प्रक्रिया - मौखिक साक्ष्य दर्ज न किया जाना - बाह्य कार्यालय रिपोर्ट पर निर्भरता - पदोन्नति एवं सीलबंद लिफाफे की प्रक्रिया - उ.प्र. सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियमावली, 1999 - नियम 7(vii) - दिनांक 28.05.1997 का शासनादेश - के.वी.एस. जानकीरमन मामले का सिद्धांत - मौखिक साक्ष्य दर्ज न करना और जिरह का अवसर न देना जांच को दूषित करता है - बिना सूचना के कार्यालय रिपोर्ट का प्रयोग बाह्य प्रतिफल है - दण्डादेश बरकरार रखने योग्य नहीं है - अनियमित अनुशासनात्मक कार्यवाही के लंबित रहने के कारण पदोन्नति को यंत्रवत् अस्वीकार नहीं किया जा सकता - याचिका स्वीकृत। (पैरा 6 से 11, 13 से 15)

अवधारित किया गया:

नियम 7(vii) के अवलोकन से पता चलता है कि 1999 के नियमों में प्रदान की गई प्रक्रिया बहुत स्पष्ट है कि जहां आरोपित सरकारी कर्मचारी आरोपों से इनकार करता है, तो जांच अधिकारी आरोप पत्र में उल्लिखित प्रस्तावित गवाहों को बुलाएगा और आरोपित सरकारी कर्मचारी की उपस्थिति में उनके मौखिक साक्ष्य दर्ज करेगा और फिर उसे उक्त गवाहों से जिरह करने का अवसर दिया जाएगा। आरोप पत्र में प्रस्तावित गवाहों के मौखिक साक्ष्य दर्ज करने की इस प्रक्रिया का जाँच अधिकारी द्वारा बिल्कुल भी पालन नहीं किया गया है। अनुशासनात्मक

प्राधिकारी ने कारण बताओ नोटिस के साथ दिनांक 24.7.2024 की जाँच रिपोर्ट की एक प्रति उपलब्ध कराई है, जिसका याचिकाकर्ता ने उत्तर दे दिया है। जाँच अधिकारी ने जाँच के दौरान आरोप पत्र में उल्लिखित किसी भी गवाह को तलब नहीं किया है। इस प्रकार, इस आधार पर जाँच दोषपूर्ण है। (पैराग्राफ 7)

उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने दंडादेश पारित करते समय कार्यालय की जाँच/राय ली है और इसके लिए याचिकाकर्ता को कोई अवसर नहीं दिया गया। इस प्रकार, आक्षेपित आदेश में ऐसी बाह्य सामग्री पर विचार किया गया है, जिसका नियमावली 1999 में कोई प्रावधान नहीं है। (पैराग्राफ 9)

सुभाष चंद्र गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश के मुख्य न्यायाधीश (आल) 2011 के मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ ने यह निर्णय दिया है कि जब कानून किसी कार्य को किसी विशेष तरीके से करने का प्रावधान करता है, तो वह कार्य उसी तरीके से किया जाना चाहिए। यह भी कहा गया है कि जब दंड, जाँच नियमों के अनुसार न की गई जाँच के आधार पर दिया जाता है, तो वह कानून की दृष्टि में टिकने योग्य नहीं होता। (पैराग्राफ 11)

यह भी ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि राज्य सरकार ने मामले को जांच अधिकारी को पुनः जांच करने के लिए वापस भेज दिया है, फिर भी जांच अधिकारी ने 1999 के नियमों की अनदेखी करते हुए अपनी मर्जी के अनुसार जांच को आगे बढ़ाया है, जिसके कारण वही बेहतर जानते हैं और इसलिए, यह अदालत राज्य सरकार को पुनः नई जांच करने की स्वतंत्रता देना उचित नहीं समझती है। इसके अतिरिक्त, चूँकि याचिकाकर्ता से कनिष्ठ व्यक्तियों को पहले ही पदोन्नत किया जा चुका है, इसलिए याचिकाकर्ता के मामले पर विभागीय पदोन्नति समिति में विचार किया गया और उसे सीलबंद लिफाफे में रखा गया। याचिकाकर्ता के समान पद पर कार्यरत और उससे कनिष्ठ व्यक्तियों के पदोन्नति आदेश 6.3.2024 को पारित किए जा चुके हैं, जो अभिलेख में उपलब्ध हैं। इसलिए, यह उचित होगा कि प्रतिवादियों को याचिकाकर्ता का सीलबंद लिफाफा खोलने और कानून के अनुसार आगे बढ़ने का निर्देश दिया जाए, साथ ही यू.ओ.आई. एवं अन्य बनाम के.वी.एस. जानकीरमन एवं अन्य 1991 एआईआर 2010 में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के आलोक में भी। (पैरा 13)
याचिका स्वीकृत। (ई-14)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. सुभाष चंद्र गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2011 मुख्य न्यायाधीश (आल) 2938
2. यू.ओ.आई. एवं अन्य बनाम के.वी.एस. जानकीरमन एवं अन्य 1991 एआईआर 2010

(माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री आई.एम.पाण्डेय, राज्य सरकार के विद्वान स्थायी अधिवक्ता तथा उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री आर.के. उपाध्याय को सुना गया।

2. याचिकाकर्ता ने याचिका में दिनांक 9.9.2024 के आक्षेपित आदेश को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण लेख की प्रकृति में रिट जारी करने की प्रार्थना की है, जिसके तहत प्रतिवादी सं. 1 ने याचिकाकर्ता के खिलाफ निंदा प्रविष्टि के साथ-साथ दो साल के लिए दो वेतन वृद्धि रोकने की सजा दी है।
प्रतिवादियों को दिनांक 9.9.2024 के आदेश के आधार पर याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं करने का निर्देश देने के लिए परमादेश रिट जारी करने की एक और प्रार्थना, साथ ही प्रतिवादियों को भूविज्ञानी के पद पर याचिकाकर्ता की पदोन्नति का सीलबंद लिफाफा खोलने और आक्षेपित आदेश, अनुलग्नक-1 की अनदेखी करते हुए पदोन्नति समिति की सिफारिश को लागू करने का एक और निर्देश भी मांगा गया है।

3. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने दिनांक 9.9.2024 के आक्षेपित आदेश को दो आधारों पर चुनौती दी है। पहला, जाँच अधिकारी द्वारा की गई जाँच, उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियमावली, 1999 (संक्षेप में, 1999 नियमावली) के नियम 7 के प्रावधानों के विरुद्ध है, और दूसरा, दण्डादेश पारित करते समय कार्यालय आख्या तलब की गई थी और कार्यालय आख्या के आधार पर आक्षेपित आदेश पारित किया गया है। यह प्रस्तुत किया गया है कि नियमावली 1999 में कार्यालय रिपोर्ट तलब करने का कोई प्रावधान नहीं है। दंडादेश आरोप पत्र के अनुसरण में की गई जाँच और दोषी सरकारी कर्मचारी द्वारा कारण बताओ नोटिस के उत्तर के आधार पर पारित किया जाना चाहिए और किसी अन्य बाहरी सामग्री की अनुमति नहीं है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि आरोप पत्र में उल्लिखित जाँच के दौरान प्रस्तावित मौखिक साक्ष्य इस मामले में दर्ज नहीं किए गए हैं और इस प्रकार, जाँच दोषपूर्ण है।

4. विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने इस तर्क का विरोध किया और कहा कि चूँकि मामूली दंड दिया गया है, इसलिए गवाहों से पूछताछ करने का कोई कारण नहीं है।

5. ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता को दिनांक 6.1.2022 के आदेश द्वारा निलंबित कर दिया गया है। जाँच अधिकारी द्वारा याचिकाकर्ता को दिनांक 8.12.2022 को आरोप पत्र जारी किया गया था, जिसमें केवल एक आरोप शामिल है। जाँच के दौरान जिन दस्तावेज़ी साक्ष्यों और मौखिक साक्ष्यों की जाँच प्रस्तावित थी, उनका उल्लेख किया गया। याचिकाकर्ता ने आरोप-पत्र पर अपना जवाब प्रस्तुत किया, जिसके बाद जाँच अधिकारी ने याचिकाकर्ता को व्यक्तिगत रूप से सुना और उसके आधार पर, आरोप-पत्र में प्रस्तावित किसी अन्य गवाह से पूछताछ किए बिना, जाँच अधिकारी ने राज्य सरकार को जाँच रिपोर्ट भेज दी। राज्य सरकार ने दिनांक 1.12.2023 के आदेश द्वारा मामले को जाँच अधिकारी को इस निर्देश के साथ वापस भेज दिया कि मौखिक जाँच की जाए और साक्ष्यों की भी जाँच की जाए तथा फिर नई जाँच रिपोर्ट प्रस्तुत की जाए।
राज्य सरकार द्वारा प्रतिप्रेषण के बाद, जांच अधिकारी ने फिर से जांच की और दिनांक 24.7.2024 को अपनी जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की, जो कि प्रतिउत्तर शपथपत्र के अनुलग्नक संख्या आरए-1 में निहित है।

6. जाँच रिपोर्ट के अवलोकन से पता चलता है कि जाँच के दौरान, प्रस्तावित मौखिक साक्ष्य, 1999 के नियमों के नियम 7(vii) के अनुसार, जाँच अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत नहीं किए गए। आरोप पत्र में उल्लिखित किसी

भी गवाह को जाँच के दौरान न तो बुलाया गया और न ही उनसे पूछताछ की गई। आगे बढ़ने से पहले, नियमावली 1999 के नियम 7(vii) का संदर्भ लेना उचित होगा, जिसका उद्धरण नीचे दिया गया है:

"जहां आरोपित सरकारी कर्मचारी आरोपों से इनकार करता है, वहां जांच अधिकारी आरोप-पत्र में प्रस्तावित गवाहों को बुलाएगा और आरोपित सरकारी कर्मचारी की उपस्थिति में उनके मौखिक साक्ष्य दर्ज करेगा, जिसे ऐसे गवाहों से जिरह करने का अवसर दिया जाएगा। पूर्वोक्त साक्ष्य दर्ज करने के बाद, जांच अधिकारी मौखिक साक्ष्य को बुलाएगा और दर्ज करेगा जिसे आरोपित सरकारी कर्मचारी ने अपने बचाव में लिखित बयान में पेश करने की इच्छा जताई थी:

परन्तु जांच अधिकारी लिखित में दर्ज किए जाने वाले कारणों से किसी गवाह को बुलाने से इंकार कर सकता है।"

7. नियम 7(vii) के अवलोकन से पता चलता है कि नियमावली 1999 में दी गई प्रक्रिया बिल्कुल स्पष्ट है कि जहाँ आरोपित सरकारी कर्मचारी आरोपों से इनकार करता है, वहाँ जाँच अधिकारी आरोप पत्र में उल्लिखित प्रस्तावित गवाहों को बुलाकर आरोपित सरकारी कर्मचारी की उपस्थिति में उनके मौखिक साक्ष्य दर्ज करेगा और फिर उसे उक्त गवाहों से जिरह करने का अवसर दिया जाएगा। जाँच अधिकारी द्वारा आरोप पत्र में प्रस्तावित गवाहों के मौखिक साक्ष्य दर्ज करने की इस प्रक्रिया का बिल्कुल भी पालन नहीं किया गया है।

अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने कारण बताओ नोटिस के साथ दिनांक 24.7.2024 की जाँच रिपोर्ट की एक प्रति उपलब्ध कराई है, जिसका याचिकाकर्ता ने जवाब दे दिया है।

जाँच अधिकारी ने जाँच के दौरान आरोप पत्र में उल्लिखित किसी भी गवाह को नहीं बुलाया है। इस प्रकार, इस आधार पर जाँच दोषपूर्ण है।

8. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा उठाए गए दूसरे आधार के संबंध में कि आक्षेपित आदेश बाहरी विचार के आधार पर पारित किया गया है, यह न्यायालय दंडादेश के अवलोकन से पाता है कि विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क महत्वपूर्ण है। आक्षेपित आदेश का प्रासंगिक भाग, जहाँ अनुशासनात्मक प्राधिकारी की राय पर विचार किया गया है, नीचे उद्धृत है:

कार्यालय का परीक्षण/अभिमत:

जांच अधिकारी द्वारा प्रश्नगत अनुशासनिक कार्यवाही में पुनरीक्षित जाँच आख्या उपलब्ध करायी गयी है, जिसमें जांच अधिकारी द्वारा विभागीय कार्यवाही के प्रकरण में Do's व Don'ts विषयक कार्मिक विभाग के शासनादेश दिनांक 19.07.2022 का अनुपालन करते हुए आर्डरशीट, परीक्षण सम्बन्धी आख्या प्रपत्र, व्यक्तिगत सुनवाई के उपस्थिति विवरण, अनुशासनिक कार्यवाही से सम्बन्धित प्रशिक्षण प्रमाण-पत्र उपलब्ध कराते हुए कार्यवाही का विवरण उपलब्ध कराया गया है तथा गवाहों व साक्ष्यों का परीक्षण किया गया है। जांच अधिकारी द्वारा अपने निष्कर्ष में कहा गया है कि अपचारी अधिकारी के ऊपर पट्टाधारकों से मिलीभगत/ दुरभिसंधि किया जाना सिद्ध नहीं होता है, किन्तु परिवहन के विरूद्ध प्रवर्तन कार्यों में शिथिलता बरते जाने एवं खनन क्षेत्रों का समुचित निरीक्षण/पर्यवेक्षण कार्य नहीं किया जाना सिद्ध होता है।

9. उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने दंडादेश पारित करते समय कार्यालय की जाँच/राय ली है और इसके लिए याचिकाकर्ता को कोई अवसर नहीं दिया गया। इस प्रकार, आक्षेपित आदेश में ऐसी बाह्य सामग्री पर विचार किया गया है, जिसका नियमावली 1999 में कोई प्रावधान नहीं है।

10. इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने **सुभाष चंद्र गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2011 मुख्य न्यायाधीश (आल) 2938** के मामले में यह निर्णय दिया है कि जब कानून किसी कार्य को किसी विशेष तरीके से करने का प्रावधान करता है, तो वह कार्य उसी तरीके से किया जाना चाहिए। यह भी माना गया है कि जब दंड जांच नियमों के अनुसार नहीं की गई जांच के आधार पर दिया जाता है, तो यह कानून की नजर में अपोषणीय है।

11. विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा उठाई गई आपत्ति कि चूंकि याचिकाकर्ता को मामूली सजा दी गई है, इसलिए जांच अधिकारी को मौखिक साक्ष्य दर्ज करने की आवश्यकता नहीं थी, साथ ही दोषी कर्मचारी को गवाहों से जिरह करने का अवसर देने की भी आवश्यकता नहीं थी, का कोई बल नहीं है।
अभिलेखों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता को निलंबित कर दिया गया था, जो तभी संभव है जब आरोप इतने गंभीर हों कि उन पर कड़ी सजा हो। इसके बाद आरोप पत्र जारी किया गया। हालाँकि, दंडादेश पारित करते समय, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों तथा अभिलेख में उपलब्ध सामग्री को ध्यान में रखते हुए, कम सजा दी जा सकती है।
इस प्रकार, विद्वान स्थायी अधिवक्ता का यह तर्क कि इस मामले में मौखिक पूछताछ की आवश्यकता नहीं थी, निराधार है। जाँच अधिकारी को 1999 के नियमों के तहत अनिवार्य प्रक्रिया का पालन करना चाहिए था और मौखिक पूछताछ के लिए आरोप पत्र में प्रस्तावित गवाहों को बुलाना चाहिए था, वह भी याचिकाकर्ता की उपस्थिति में और उसे उनसे जिरह करने का अवसर दिया जाना चाहिए था, जो इस मामले में नहीं किया गया है। आरोप पत्र में प्रस्तावित गवाहों से कोई मौखिक पूछताछ नहीं की गई है। इस प्रकार, उक्त जाँच पर आधारित दंडादेश बरकरार नहीं रह सकता। इसी प्रकार, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, दंडादेश भी बरकरार नहीं रह सकता क्योंकि यह बाह्य विचार पर आधारित है।

12. इस न्यायालय ने इस तथ्य पर ध्यान दिया है कि अनुशासनात्मक कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान, भूविज्ञानी के पद के लिए चयन किया गया और याचिकाकर्ता से कनिष्ठ आशीष चौधरी सहित कई सहायक भूविज्ञानी उच्च पद पर पदोन्नत हुए, जबकि अनुशासनात्मक कार्यवाही के लंबित रहने के कारण याचिकाकर्ता की पदोन्नति रोक दी गई। इस संबंध में रिट याचिका के पैरा 44 में विशेष दलील दी गई है, जिस पर राज्य द्वारा प्रति शपथपत्र दाखिल करते समय कोई जवाब नहीं दिया गया है।

13. यह भी ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि राज्य सरकार ने मामले को नए सिरे से जाँच करने के लिए जाँच अधिकारी को वापस भेज दिया है, फिर भी जाँच अधिकारी ने नियमावली 1999 की अनदेखी करते हुए अपनी मनमानी की है, जिसके कारण वही बेहतर जानते हैं और इसलिए, यह न्यायालय राज्य सरकार को नए सिरे से जाँच करने की पुनः स्वतंत्रता देना उचित नहीं समझता। इसके अतिरिक्त, चूँकि याचिकाकर्ता से कनिष्ठ व्यक्तियों

को पहले ही पदोन्नत किया जा चुका है, इसलिए याचिकाकर्ता के मामले पर विभागीय पदोन्नति समिति में विचार किया गया और उसे सीलबंद लिफाफे में रखा गया। याचिकाकर्ता के समान पदस्थ और कनिष्ठ पदधारी के पदोन्नति आदेश 6.3.2024 को पारित किए गए हैं जो अभिलेख में है। इसलिए, यह उचित होगा कि प्रतिवादियों को याचिकाकर्ता के सीलबंद लिफाफे को खोलने और साथ ही **भारत संघ और अन्य बनाम के.वी. जानकीरमन और अन्य 1991 एआईआर 2010** मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के आलोक में भी कानून के अनुसार आगे बढ़ने का निर्देश दिया जाए।

14. आयोग के विद्वान अधिवक्ता श्री आर.के. उपाध्याय ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता के मामले पर पदोन्नति के लिए सीलबंद लिफाफे को खोलने के बाद विचार किया जाएगा, यदि वह अन्यथा योग्य पाया जाता है और यह सरकारी आदेश दिनांक 28.5.1997 के अनुसार भी है।

15. उपरोक्त के मद्देनजर, रिट याचिका स्वीकार की जाती है और दिनांक 9.9.2024 (उपर्युक्त) का आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है। प्रतिवादियों को निर्देश दिया जाता है कि वे याचिकाकर्ता का सीलबंद लिफाफा खोलें और विधि अनुसार कार्यवाही करें, और यदि याचिकाकर्ता को उच्च पद पर पदोन्नति के लिए अन्यथा योग्य पाया जाता है, तो उसे उच्च पद पर पदोन्नति के लिए विचार किया जाएगा। यदि याचिकाकर्ता से कनिष्ठ किसी व्यक्ति को पदोन्नत किया गया है, तो उसे भी उसी तिथि से पदोन्नत करने पर विचार किया जाएगा जिस तिथि से उसके कनिष्ठों को पदोन्नत किया गया था तथा वरिष्ठता आदि का काल्पनिक लाभ भी दिया जाएगा। ऐसा कार्य इस आदेश की प्रमाणित प्रति की तामील की तिथि से तीन महीने की अवधि के भीतर किया जाएगा।

(2025) 4 ILRA 133

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 22.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अश्विनी कुमार मिश्रा

माननीय न्यायमूर्ति डोनाडी रमेश

रिट ए संख्या 12020 सन् 2022

रमेश कुमार यादव **...याचिकाकर्ता**

बनाम

इलाहाबाद उच्च न्यायालय एवं अन्य **...प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

अनुवादित

वरिष्ठ अधिवक्ता, उदयन नंदन

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
आशीष मिश्रा, सी.एस.सी.

सेवा कानून - न्यायिक अधिकारी - अनिवार्य सेवानिवृत्ति - वैधता - याचिकाकर्ता, एक उच्च न्यायिक सेवा अधिकारी, स्क्रीनिंग समिति की सिफारिश और पूर्ण न्यायालय द्वारा अनुमोदन पर अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त - चुनौती दी गई कि प्रतिकूल सामग्री या तो अप्रासंगिक थी, उचित परिप्रेक्ष्य में विचार नहीं की गई थी, या प्रतिनिधित्व लंबित था - अवधारित किया गया: प्रतिकूल प्रविष्टियाँ जिनमें सत्यनिष्ठा प्रमाणित नहीं है (2008-09), प्रशासनिक समिति द्वारा जारी परामर्श (2011), और 2012 में अधिरोपित निंदा प्रविष्टि ने अंतिम रूप प्राप्त कर लिया था और अनुपयुक्तता का आकलन करने के लिए वैध आधार का गठन किया था - यद्यपि 2018-19 के लिए टिप्पणी अभ्यावेदन के लिए लंबित थी और बाद में उसे हटा दिया गया, शेष सामग्री पर्याप्त थी - स्क्रीनिंग समिति ने संपूर्ण सेवा रिकॉर्ड पर विचार किया और जनहित में राय बनाई - कोई दुर्भावना, मनमानी या विकृति नहीं दिखाई गई - ऐसे मामलों में न्यायिक समीक्षा सीमित है - अनिवार्य सेवानिवृत्ति दंडात्मक नहीं है, और यहाँ तक कि असंप्रेषित प्रविष्टियों पर भी भरोसा किया जा सकता है - न्यायिक अधिकारियों से ईमानदारी और न्यायिक अनुशासन के उच्चतर मानकों की अपेक्षा की जाती है - रिट याचिका खारिज। (पैरा 10, 11, 12, 15, 16, 23 से 26)

<u>अवधारित किया गया:</u>
रिकॉर्ड में प्रस्तुत सामग्री के समग्र मूल्यांकन के बाद, हमारा विचार है कि स्क्रीनिंग समिति ने याचिकाकर्ता के विरुद्ध रिकॉर्ड में प्रतिकूल सामग्री पर ध्यान दिया था ताकि उसकी अनिवार्य सेवानिवृत्ति की अनुशंसा की जा सके। ऊपर उल्लिखित तीन सामग्रियों, 'ए', 'बी' और 'सी' में से, हम पाते हैं कि वर्ष 2008-09 के लिए प्रशासनिक न्यायाधीश की प्रतिकूल टिप्पणी और प्रशासनिक समिति द्वारा 11.10.2012 को याचिकाकर्ता को दी गई निंदा प्रविष्टि, अपने आप में इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए पर्याप्त थी कि याचिकाकर्ता का नौकरी में बने रहना उचित नहीं है और उसे अनिवार्य सेवानिवृत्ति दी जानी चाहिए। (पैरा 15)

मामले के तथ्यों और उपर्युक्त निर्णयों का विश्लेषण करने के बाद, हमें यह मानने में कोई संकोच नहीं है कि याचिकाकर्ता के सेवा अभिलेख में प्रतिकूल सामग्री मौजूद थी, जिसके आधार पर व्यक्तिपरक संतुष्टि के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता था कि याचिकाकर्ता अनिवार्य सेवानिवृत्ति के योग्य है। कानून सर्वविदित है कि ऐसी सामग्री की पर्याप्तता या अनुपस्थिति पर रिट में विचार नहीं किया जा सकता। प्रतिकूल सामग्री की सत्यता या अनुपस्थिति की जाँच भी तब नहीं की जा सकती जब ऐसी प्रविष्टियाँ अंतिम रूप ले चुकी हों। (पैरा 25)

अभिलेख में उपलब्ध सामग्री का मूल्यांकन करने के बाद, हम मानते हैं कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध प्रतिकूल सामग्री अभिलेख में मौजूद थी, जिससे स्क्रीनिंग समिति यह राय बना सकी कि याचिकाकर्ता को अनिवार्य सेवानिवृत्ति दी जानी चाहिए। इसलिए, पूर्ण न्यायालय द्वारा लिए गए निर्णय और उसके परिणामस्वरूप राज्य सरकार द्वारा याचिकाकर्ता को अनिवार्य सेवानिवृत्ति देने के निर्णय में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। यह विशेष रूप से इसलिए आवश्यक है क्योंकि याचिकाकर्ता एक न्यायिक अधिकारी है, जो राज्य की ओर से उसके संप्रभु कार्यों का निर्वहन करता है। सामान्य वादी को न्यायिक व्यवस्था में पूर्ण विश्वास होना चाहिए और वादी को ऐसी कोई धारणा नहीं दी जानी चाहिए जिससे न्याय व्यवस्था के विरुद्ध दूर-दूर तक कोई धारणा बने। अन्यथा, स्क्रीनिंग कमेटी के सदस्यों के विरुद्ध किसी भी प्रकार के पक्षपात या दुर्भावना का कोई आरोप नहीं है और न ही यह दर्शाया गया है कि स्क्रीनिंग कमेटी की व्यक्तिपरक राय किसी साक्ष्य पर आधारित नहीं है। ऐसी परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता को अनिवार्य सेवानिवृत्ति देने संबंधी आदेश में हस्तक्षेप करने की कोई आवश्यकता नहीं है। (पैरा 26)

पुनरीक्षण आवेदन आंशिक रूप से स्वीकृत। (ई-14)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. बैकुंठ नाथ दास बनाम मुख्य जिला चिकित्सा अधिकारी, बारीपदा, (1992) 2 एससीसी 299
2. उच्च न्यायालय पंजाब एवं हरियाणा बनाम ईश्वर चंद, (1999) 4 एससीसी 579
3. मदन मोहन चौधरी बनाम बिहार राज्य, (1993) 3 एससीसी 396
4. नंद कुमार वर्मा बनाम झारखंड राज्य एवं अन्य, (2012) 3 एससीसी 580
5. गुजरात राज्य बनाम उमेधाई एम. पटेल, 2001 एआईआर (एससी) 1109
6. मद्रास उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार बनाम आर. राजैया, (1988) 3 एससीसी 211
7. बृज बिहारी लाल अग्रवाल बनाम मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय, (1981) 2 एससीसी 297
8. योगीनाथ डी. बागड़े बनाम महाराष्ट्र उच्च न्यायालय, (1999) 7 एससीसी 739
9. विजेंद्र पाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश उच्च न्यायालय, 2001 (4) एडब्ल्यूसी 2738
10. सैयद टी ए नश्कबंदी एवं अन्य बनाम जम्मू और कश्मीर राज्य, (2003) 9 एससीसी 592
11. राजेंद्र सिंह वर्मा बनाम उपराज्यपाल (एनसीटी दिल्ली), (2011) 6 एससीसी 1
12. अरुण कुमार सक्सेना बनाम इलाहाबाद उच्च न्यायालय, 2018 एससीसी ऑनलाइन आल 5728 (आल एचसी-डीबी)
13. अनुपति राम यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 218 एससीसी ऑनलाइन आल 4472 (आल एचसी-डीबी)
14. राम मूर्ति यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2020) 1 एससीसी 801
15. प्यारे मोहन लाल बनाम झारखंड राज्य, (2010) 10 एससीसी 693

अनुवादित

16. यू.ओ.आई. बनाम के. के. धवन, (1993) 2 एससीसी 56

17. यू.ओ.आई. बनाम दुली चंद, (2006) 5 एससीसी 680

(माननीय न्यायमूर्ति अश्विनी कुमार मिश्रा द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता एक न्यायिक अधिकारी हैं। उनकी प्रारंभिक नियुक्ति 24.03.2001 को मुंसिफ/सिविल जज (जूनियर डिवीजन) के पद पर हुई थी। 16.10.2006 को उन्हें सिविल जज (सीनियर डिवीजन) के पद पर पदोन्नत किया गया। उन्हें उत्तर प्रदेश उच्चतर न्यायिक सेवा नियमावली, 1975 के नियम 22(1) के अंतर्गत 02.07.2015 को उच्चतर न्यायिक सेवा में पदोन्नति प्रदान की गई। उनकी जन्मतिथि 05.02.1966 है और उनकी सेवानिवृत्ति आयु फरवरी, 2026 में पूरी हो जानी चाहिए। हालाँकि, राज्य सरकार द्वारा 29.11.2021 को पारित आदेश के कारण उनका कार्यकाल कम कर दिया गया है, जिसमें वित्तीय हैंडबुक (खंड II, भाग II से IV) के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए उन्हें अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त कर दिया गया है, साथ ही संशोधित मूल नियम 56(C) भी शामिल है। इस आदेश के पारित होने के समय याचिकाकर्ता कौशाम्बी में विशेष न्यायाधीश (अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम) के पद पर तैनात थे। इस प्रकार, वर्तमान रिट याचिका में 29.11.2021 के अनिवार्य सेवानिवृत्ति आदेश को चुनौती दी गई है।

2. अभिलेखों से पता चलता है कि न्यायिक अधिकारियों के सेवा अभिलेखों की जाँच के लिए एक स्क्रीनिंग समिति गठित की गई थी, जिसकी बैठकें 11.06.2020 और 15.06.2020 को हुईं। अन्य न्यायिक अधिकारियों के अलावा, रिट याचिकाकर्ता के सेवा अभिलेख भी स्क्रीनिंग समिति के विचारार्थ प्रस्तुत किए गए। सेवा अभिलेखों के समग्र मूल्यांकन के बाद स्क्रीनिंग समिति ने याचिकाकर्ता की अनिवार्य सेवानिवृत्ति की अनुशंसा की। स्क्रीनिंग कमेटी की यह रिपोर्ट 25.11.2021 को पूर्ण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई। पूर्ण न्यायालय ने स्क्रीनिंग कमेटी की अनुशंसा से सहमति व्यक्त करते हुए याचिकाकर्ता की अनिवार्य सेवानिवृत्ति की अनुशंसा की। पूर्ण न्यायालय के इस निर्णय से रजिस्ट्री द्वारा राज्य सरकार को 26.11.2021 को अवगत कराया गया। न्यायालय की इसी अनुशंसा के आधार पर याचिकाकर्ता को उक्त आदेश के तहत सेवा से अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त किया गया है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि पूर्ण न्यायालय की दिनांक 25.11.2021 की बैठक में की गई अनुशंसा के आधार पर, 26.11.2021 से याचिकाकर्ता से न्यायिक एवं प्रशासनिक कार्य भी वापस ले लिया गया था।

3. याचिकाकर्ता स्वयं उपस्थित हुए और उन्होंने तर्क दिया कि अभिलेखों में ऐसी कोई प्रतिकूल सामग्री मौजूद नहीं है जिसके आधार पर अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश पारित किया जा सके। याचिकाकर्ता ने बहस के दौरान यह तर्क दिया कि स्क्रीनिंग कमेटी ने निम्नलिखित कारणों से याचिकाकर्ता की अनिवार्य सेवानिवृत्ति की सिफारिश करने में त्रुटि की है:-

(i) याचिकाकर्ता के विरुद्ध प्रतिकूल राय बनाने के लिए जो सामग्री उपलब्ध नहीं थी, उस पर विचार किया गया है;

(ii) याचिकाकर्ता के निरंतर संतोषजनक कामकाज से संबंधित सामग्री को विचार से हटा दिया गया है और इसलिए, स्क्रीनिंग कमेटी का निर्णय, जैसा कि पूर्ण न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई है और राज्य सरकार द्वारा उस पर कार्रवाई की गई है, पूरी तरह से त्रुटिपूर्ण और विकृत है और परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता को अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करने का आदेश रद्द किए जाने योग्य है। याचिकाकर्ता ने अपने तर्क के समर्थन में निम्नलिखित निर्णयों का हवाला दिया है:-

"1. बैकुंठ नाथ दास बनाम मुख्य जिला चिकित्सा अधिकारी, बारीपदा, (1992) 2 एससीसी 299;
2. उच्च न्यायालय पंजाब और हरियाणा बनाम ईश्वर चंद, (1999) 4 एससीसी 579;
3 मदन मोहन चौधरी बनाम बिहार राज्य, (1993) 3 एससीसी 396;
4. नंद कुमार वर्मा बनाम झारखंड राज्य और अन्य, (2012) 3 एससीसी 580;
5. गुजरात राज्य बनाम उमेधाई एम. पटेल, 2001 एआईआर (एससी) 1109;
6. रजिस्ट्रार उच्च न्यायालय मद्रास बनाम आर. राजैया, (1988) 3 एससीसी 211; और
7. बृजबिहारी लाल अग्रवाल बनाम माननीय मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय, (1981) 2 एससीसी 297।"

4. याचिकाकर्ता ने योगीनाथ डी. बागड़े बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1999) 7 एससीसी 739 के मामले में दिए गए फैसले के साथ-साथ विजेंद्र पाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2001 (4) एडब्ल्यूसी 2738 के मामले में इस न्यायालय की डिवीजन बेंच के फैसले पर भी भरोसा किया है।

5. प्रतिवादी संख्या 1 और 2 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री आशीष मिश्रा ने याचिकाकर्ता के तर्कों का खंडन करते हुए कहा कि अभिलेख में पर्याप्त साक्ष्य मौजूद हैं जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि याचिकाकर्ता एक अवांछित व्यक्ति है और उसे अनिवार्य सेवानिवृत्ति देने के लिए किसी भी बाहरी साक्ष्य का सहारा नहीं लिया गया है। यह प्रस्तुत किया गया है कि अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश वर्तमान रिट याचिका में हस्तक्षेप योग्य नहीं है। श्री मिश्रा ने बैकुंठ नाथ दास (उपरोक्त) मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का भी हवाला दिया है, जिस पर याचिकाकर्ता ने भी अवलम्ब लिया है। इसके अतिरिक्त, प्रतिवादी सर्वोच्च न्यायालय के निम्नलिखित निर्णयों का हवाला देते हैं:-

"1. सैयद टी ए नश्कबंदी और अन्य बनाम जम्मू और कश्मीर राज्य, (2003) 9 एससीसी 592;
2. राजेंद्र सिंह वर्मा बनाम उपराज्यपाल (एनसीटी दिल्ली), (2011) 6 एससीसी 1;
3. अरुण कुमार सक्सेना बनाम इलाहाबाद उच्च न्यायालय, 2018 एससीसी ऑनलाइन आल 5728 (सभी एचसी-डीबी);
4. अनुपति राम यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 218 एससीसी ऑनलाइन सभी 4472 (आल एचसी-डीबी);
5. राम मूर्ति यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2020) 1 एससीसी 801; और

6. प्यारे मोहन लाल बनाम झारखंड राज्य, (2010) 10 एससीसी 693।"

6. हमने याचिकाकर्ता को व्यक्तिगत रूप से सुना है और प्रतिवादी संख्या 1 और 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री आशीष मिश्रा और प्रतिवादी संख्या 3 के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना है और पक्षों द्वारा दिए गए निर्णयों के आलोक में रिकॉर्ड पर सामग्री का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है।

7. वर्तमान मामले के तथ्यों के आधार पर विचारणीय संक्षिप्त प्रश्न यह है कि क्या प्रतिवादियों द्वारा याचिकाकर्ता को अनिवार्य सेवानिवृत्ति देना उचित है? इस प्रश्न में यह मुद्दा निहित है कि क्या स्क्रीनिंग समिति द्वारा बनाई गई राय प्रासंगिक सामग्रियों पर विचार के आधार पर बनाई गई है या नहीं?

<u>प्रतिकूल सामग्री</u>

8. स्क्रीनिंग कमेटी की कार्यवृत्त का विवरण याचिकाकर्ता को उपलब्ध करा दिया गया है, जिसके आधार पर याचिकाकर्ता को अनिवार्य सेवानिवृत्ति दी जा रही है। विवाद के उचित निर्णय के लिए हम स्क्रीनिंग कमेटी द्वारा इस प्रयोजन के लिए उपयोग की गई सामग्री को पुनः प्रस्तुत करना चाहते हैं:-

"क. वर्ष 2008-09 में प्रशासनिक न्यायाधीश, मिर्जापुर ने अधिकारी/याचिकाकर्ता को निम्नलिखित प्रतिकूल टिप्पणी दी:
"ईमानदारी प्रमाणित नहीं/संदिग्ध।
समग्र मूल्यांकन पर, वह एक अच्छा अधिकारी नहीं है।"
याचिकाकर्ता ने ऐसी प्रतिकूल टिप्पणियों के विरुद्ध 08.01.2010 को एक अभ्यावेदन प्रस्तुत किया, जिसे अभ्यावेदन समिति ने 20.04.2010 को अस्वीकार कर दिया। प्रशासनिक समिति ने भी अपने दिनांक 24.05.2010 के संकल्प द्वारा इस अभ्यावेदन को अस्वीकार कर दिया। इसके बाद अधिकारी द्वारा 20.12.2012 को दूसरा अभ्यावेदन प्रस्तुत किया गया, जिसे अभ्यावेदन समिति ने 17.09.2013 को अस्वीकार कर दिया और प्रशासनिक समिति ने अपने दिनांक 13.11.2013 के संकल्प द्वारा इसे अनुमोदित कर दिया। वर्ष 2008-09 के लिए यह प्रतिकूल टिप्पणी, याचिकाकर्ता द्वारा इसके विरुद्ध प्रस्तुत अभ्यावेदन को अस्वीकार करने के साथ ही अंतिम रूप ले चुकी है। इस प्रतिकूल टिप्पणी को अब और चुनौती नहीं दी गई है।

ख. विशेष सचिव, विधानसभा, सचिवालय द्वारा दिनांक 16.06.2010 को की गई शिकायत के आधार पर प्रशासनिक समिति द्वारा दिनांक 14.10.2011 के कार्यवृत्त के माध्यम से याचिकाकर्ता को एक परामर्श जारी किया गया, जिसे आगे पुन: प्रस्तुत किया गया है:-

"... यह निर्णय लिया गया कि अधिकारी, अर्थात् श्री रमेश कुमार यादव, तत्कालीन सिविल जज (सीनियर डिवीजन) मिर्जापुर, वर्तमान में सिविल जज (सीनियर डिवीजन) कानपुर देहात को भविष्य में अधिक सावधानी बरतने की सलाह दी जाए।"

अनुवादित

यह परामर्श भी अंतिम रूप ले चुका है।

ग. याचिकाकर्ता के विरुद्ध वी.बी. जाँच संख्या 33/2009 के अंतर्गत एक सतर्कता जाँच शुरू की गई थी, जिसमें विशेष कार्य अधिकारी (जाँच) द्वारा 23.07.2012 को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी। अधिकारी की टिप्पणियाँ आमंत्रित की गईं और प्रशासनिक समिति ने 11.10.2012 को अपनी बैठक में इस मामले पर विचार किया। याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत स्पष्टीकरण पर विचार करने के बाद, प्रशासनिक समिति ने याचिकाकर्ता की चरित्र पंजिका में निंदा प्रविष्टि प्रदान की, जो आगे पुन: प्रस्तुत है:-

"श्री रमेश कुमार यादव-I, तत्कालीन ए.सी.जे.एम., मिर्जापुर को उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक आचरण नियम, 1956 के उल्लंघन के लिए निंदा की सजा दी जाती है, जिसमें उन्होंने एक रिवाल्वर संख्या सी-5856 एनपीबी 32 बोर को श्री मेहताब आलम नामक एक निजी व्यक्ति को 80,000 रुपये में बेचा और 30.03.2012 को लाइसेंस संख्या 220/पीएस-जीएस/2001 के विरुद्ध माननीय न्यायालय की अनुमति लिए बिना 1,14,912 रुपये का एक नया रिवाल्वर खरीदा और वाहन संख्या यू.पी. 63 एफ 9130 को धारा 307, 420, 468, 272, 273 आई.पी.सी. के साथ धारा 60 आबकारी अधिनियम, पी.एस. के तहत रिलीज करने से इनकार कर दिया। 20.1.2009 को कोतवाली देहात, जिला मिर्जापुर में जिला मजिस्ट्रेट, मिर्जापुर के समक्ष जब्ती कार्यवाही जारी रहने के आधार पर, जबकि 2.3.2009 को उसी वाहन को किसी भी शासनादेश या किसी विशेष परिस्थिति का उल्लेख किए बिना जारी कर दिया गया, जो पहले चरण में मौजूद नहीं थी। ऐसा आचरण न्यायिक मर्यादा के विरुद्ध है और एसीजेएम संवर्ग के एक जिम्मेदार न्यायिक अधिकारी के लिए अनुचित है। 23.7.2012 की जांच रिपोर्ट में यह भी उल्लेख किया गया है कि अधिकारी ने अभी तक माननीय न्यायमूर्ति इम्तियाज मुर्तजा द्वारा पारित न्यायालय के दिनांक 18.04.2008 के आदेश का अनुपालन नहीं किया है, जिसमें उनसे अपने मासिक खर्चों का विवरण प्रस्तुत करने की अपेक्षा की गई थी और इसके दिनांक 17.07.2008 के अनुस्मारक का भी पालन नहीं किया गया है।"

अधिकारी द्वारा निंदा प्रविष्टि के विरुद्ध एक अभ्यावेदन प्रस्तुत किया गया था, जिसे प्रशासनिक समिति ने 07.04.2014 को अस्वीकार कर दिया। एक पुनरीक्षण अभ्यावेदन भी प्रस्तुत किया गया था, जिसे भी प्रशासनिक समिति ने 15.10.2014 को अस्वीकार कर दिया। अभ्यावेदन के अस्वीकार होने के साथ ही अधिकारी को दी गई निंदा प्रविष्टि अंतिम हो गई है।

घ. वर्ष 2018-19 में जिला न्यायाधीश, चंदौली ने याचिकाकर्ता की गोपनीय सूची में निम्नलिखित प्रतिकूल टिप्पणी दी है, जिसे यहां पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

"मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट चंदौली के न्यायालय के पीठासीन अधिकारी श्री मुन्ना प्रसाद ने पुलिस अधिकारियों/कर्मचारियों से प्राप्त रिपोर्टों सहित अभिलेखों का हवाला देते हुए मुझे कई अनुलग्नकों के साथ लिखित रूप में सूचित किया (आगे निर्देश प्राप्त करने के लिए) कि यह अधिकारी श्री आर के यादव एक आपराधिक मामले के प्रथम सूचनादाता/शिकायतकर्ता हैं, जिसका मुकदमा अपराध संख्या 53/2019 राज्य बनाम

दीपक शर्मा आदि धारा 406, 409,420,467,468,471,120 बी भा.दं.सं. के तहत दिनांक 13.03.2019 को थाना और जिला चंदौली में पंजीकृत किया गया है। माननीय इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 7837/2019 दीपक शर्मा एवं तीन अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं तीन अन्य में पारित आदेश दिनांक 30.03.2019 के माध्यम से सूचीबद्ध होने की अगली तिथि तक याचिकाकर्ताओं (उस मामले के अभियुक्तों) के विरुद्ध कोई दंडात्मक कार्रवाई नहीं करने का आदेश दिया है। फिर भी उस मामले में, श्री आर.के. यादव ने लगातार चंदौली जिले के पुलिस अधिकारियों/कर्मचारियों यानी एस.पी., एडिशनल एस.पी., एस.एच.ओ. थाना चंदौली, जांच अधिकारी और यहां तक कि उनके (श्री मुन्ना प्रसाद) खिलाफ कई आवेदन दिए हैं, जिसमें गंभीर झूठे और निराधार आरोप लगाए गए हैं कि वे अभियुक्तों के साथ मिलीभगत करके श्री आर.के. यादव और उनके बेटे श्री त्रिवेश यादव की हत्या की साजिश कर रहे हैं और अगर भविष्य में श्री आर.के. यादव या श्री त्रिवेश यादव की हत्या होती है या उनकी संपत्ति को कोई नुकसान होता है, तो इन पुलिस अधिकारियों/कर्मचारियों और मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को इसके लिए जिम्मेदार ठहराया जाना चाहिए और श्री आर.के. यादव ने उन पर दबाव बनाने के लिए कई टेलीफोन कॉल और कई संदेश भेजे हैं ताकि वह जांच करवा सकें और उनके द्वारा पसंद किए गए आदेश पारित कर सकें। मेरे द्वारा अपनी टिप्पणियाँ प्रस्तुत करने के निर्देश दिए जाने पर, श्री आर.के. यादव ने कई अनुलग्नकों के साथ पाँच अलग-अलग टिप्पणियाँ प्रस्तुत कीं। इनमें उन्होंने स्वीकार किया कि उन्होंने ऐसे आरोपों वाले आवेदन प्रस्तुत किए हैं, टेलीफोन कॉल और संदेश भेजे हैं और आगे कहा कि भविष्य में भी, यदि आवश्यक हुआ, तो वे ऐसा करते रहेंगे, लेकिन वे ऐसा करने का उचित औचित्य नहीं बता सके। उन्होंने मेरी टिप्पणी मांगने के अधिकार पर भी सवाल उठाया और मनमाना, अनुशासनहीन, आपत्तिजनक और गैरकानूनी व्यवहार किया। मैंने इन सभी तथ्यों को विस्तार से माननीय उच्च न्यायालय को पत्र संख्या 790/I दिनांक 24.08.2019 के माध्यम से सूचित किया और प्रार्थना की कि मामले में आगे की जाँच करके उन्हें जिला चंदौली से स्थानांतरित किया जाए। उस पत्र की एक प्रति संलग्न है। इसके बाद श्री आर.के. यादव का सितंबर 2019 में जिला कौशाम्बी में स्थानांतरण कर दिया गया।"

उपर्युक्त प्रतिकूल टिप्पणी में किसी उच्चतर मंच द्वारा हस्तक्षेप नहीं किया गया है।

<u>प्रतिकूल सामग्री के संबंध में स्पष्टीकरण</u>

<u>'क'</u>

9. याचिकाकर्ता पर लगे आरोप को ध्यान में रखते हुए कि उसने गैर-जरूरी कारणों से ज़मानत आदेश पारित किए, उसकी ईमानदारी संदिग्ध पाई गई। याचिकाकर्ता ने दलील दी कि राजेश कुमार, एडवोकेट और विनय कुमार बघाट, अधिवक्ता द्वारा की गई शिकायत पर उसके खिलाफ सतर्कता जांच का भी आदेश दिया गया था। सतर्कता जांच रिपोर्ट 29/30.07.2009 को प्रस्तुत की गई, जिसमें गैर-जरूरी कारणों से ज़मानत आदेश पारित करने का आरोप सिद्ध नहीं पाया गया। सतर्कता जाँच रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि यद्यपि कथित शिकायतकर्ताओं को याचिकाकर्ता के विरुद्ध साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए नोटिस जारी किए गए थे, लेकिन दोनों नोटिस इस पुष्टि के साथ वापस आ गए कि जिला न्यायालय, मिर्जापुर में ऐसा कोई अधिवक्ता कार्यरत नहीं पाया गया। फिर भी, 23.07.2012 को इसी आरोप पर एक और सतर्कता जाँच रिपोर्ट प्रस्तुत की गई, जिसमें भी अतिरिक्त प्रतिफल के लिए ज़मानत देने का आरोप सिद्ध नहीं पाया गया। दिनांक 29/30.07.2009 की सतर्कता रिपोर्ट (रिट याचिका का अनुलग्नक-11) और दिनांक 23.07.2012 की सतर्कता जाँच रिपोर्ट (रिट

याचिका का अनुलग्नक-12) के आधार पर, याचिकाकर्ता ने दलील दी है कि बाहरी प्रतिफल के आधार पर ज़मानत आदेश पारित करने का आरोप सिद्ध नहीं होता। यह भी दलील दी गई है कि प्रशासनिक न्यायाधीश की वर्ष 2008-09 की प्रतिकूल टिप्पणी सतर्कता जाँच में प्रमाणित नहीं हुई है और न ही अभिलेख में कोई प्रतिकूल सामग्री मौजूद है, इसलिए, याचिकाकर्ता के विरुद्ध की गई प्रतिकूल टिप्पणी और उसकी सत्यनिष्ठा पर रोक लगाने पर जाँच समिति द्वारा भरोसा नहीं किया जा सकता था और जाँच समिति द्वारा लिया गया विपरीत दृष्टिकोण टिकने योग्य नहीं है, और अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश को कानूनन गलत ठहराता है।

'ख'

जहां तक विशेष सचिव, विधानसभा, सचिवालय की शिकायत पर प्रशासनिक समिति द्वारा जारी परामर्श का संबंध है, याचिकाकर्ता का कहना है कि परामर्श को अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश पारित करने के लिए उसके विरुद्ध प्रतिकूल सामग्री नहीं माना जा सकता। इसके अलावा यह भी बताया गया है कि समुद्रा देवी नामक व्यक्ति द्वारा जिला न्यायाधीश, मिर्जापुर के समक्ष प्रकीर्ण वाद संख्या 13/08 (सावित्री देवी एवं अन्य बनाम समुद्रा देवी एवं अन्य) में स्थानांतरण आवेदन प्रस्तुत किया गया था, जो सिविल जज (वरिष्ठ प्रभाग), मिर्जापुर के समक्ष लंबित था, जिसे उक्त न्यायालय द्वारा दिनांक 19.02.2010 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया तथा 1,000/- रुपये का जुर्माना भी लगाया गया। जिला न्यायाधीश, मिर्जापुर का यह आदेश रिट याचिका के अनुलग्नक-13 में निहित है। चूँकि जिला न्यायाधीश के आदेश का अनुपालन नहीं किया गया, अतः सक्षम न्यायालय द्वारा जिला मजिस्ट्रेट, मिर्जापुर को संबंधित पक्ष से भू-राजस्व के बकाया के रूप में उक्त धनराशि वसूल करने का निर्देश दिया गया। जिला मजिस्ट्रेट, मिर्जापुर ने उक्त आदेश का पालन किए बिना, ए.डी.जी.सी. (सिविल) के माध्यम से 1,000/- रुपये की राशि जमा कर दी। जब यह तथ्य याचिकाकर्ता के संज्ञान में लाया गया, तो उन्होंने जिला न्यायाधीश, मिर्जापुर के आदेश का पालन न करने के लिए जिला मजिस्ट्रेट के विरुद्ध जाँच के निर्देश दिए। इसके बाद, उत्तर प्रदेश सरकार के विशेष सचिव ने याचिकाकर्ता के विरुद्ध शिकायत की, जिसके आधार पर याचिकाकर्ता को जारी परामर्श जारी किया गया। यह तर्क दिया गया है कि परामर्श न तो अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश पारित करने के लिए ध्यान देने योग्य प्रतिकूल सामग्री है और न ही मामले के तथ्यों में इस पर भरोसा किया जा सकता है, क्योंकि याचिकाकर्ता ने केवल आधिकारिक कर्तव्यों का उचित निर्वहन किया था और चूंकि उसके आदेश में किसी भी उच्च मंच द्वारा हस्तक्षेप नहीं किया गया था, इसलिए इसे याचिकाकर्ता के लिए प्रतिकूल सामग्री के रूप में भरोसा नहीं किया जा सकता था।

'ग'

जहाँ तक न्यायालय की अनुमति के बिना रिवॉल्वर खरीदने और बेचने के आरोप का संबंध है, न्यायालय ने इस मामले में याचिकाकर्ता से स्पष्टीकरण माँगा था। तत्पश्चात, उप-निबंधक, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद द्वारा 15.04.2013 को जिला न्यायाधीश, रमाबाई नगर (कानपुर देहात) को एक पत्र जारी कर याचिकाकर्ता से अनुमति के लिए नए सिरे से आवेदन करने को कहा गया। इसके बाद, नए सिरे से अनुमति के लिए आवेदन किया गया, जिसके बाद मामले में कोई सुनवाई नहीं हुई। अतः यह कहा गया है कि इस परिस्थिति को भी याचिकाकर्ता के प्रतिकूल नहीं माना जा सकता था।

जहां तक वाहन यूपी63एफ9130 को छोड़ने का सवाल है, यह प्रस्तुत किया गया है कि सतर्कता जांच में आरोप की जांच की गई थी, जिसमें सतर्कता अधिकारी ने स्पष्ट रूप से माना है कि दूसरे रिलीज आवेदन पर विचार करने में कोई त्रुटि नहीं थी और बाहरी प्रतिफल का आरोप साबित नहीं हुआ था। याचिकाकर्ता ने यह भी दलील दी है कि मासिक खर्चों का ब्यौरा न देने का आरोप भी अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश पारित करने का आधार नहीं हो सकता। इसके अलावा, यह भी दलील दी गई है कि याचिकाकर्ता को दिनांक 18.04.2008 और 17.07.2008 के पत्र कभी प्राप्त नहीं हुए और बाद में उप-पंजीयक, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद के दिनांक 15.05.2008 के पत्र के अनुसरण में उन्होंने ये विवरण प्रस्तुत किए।

'घ'

अंततः यह कहा गया है कि वर्ष 2018-19 के लिए जिला न्यायाधीश, चंदौली द्वारा याचिकाकर्ता के विरुद्ध दर्ज की गई प्रतिकूल टिप्पणी अनुचित थी, क्योंकि अपराध संख्या 53/2019 में धारा 406, 409, 420, 467, 468, 471, 120बी भा.दं.सं. के अंतर्गत आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था। यह भी गया है कि ऐसी टिप्पणी के बावजूद, जिला न्यायाधीश ने याचिकाकर्ता को समग्र मूल्यांकन में "अच्छा" बताया और उसकी ईमानदारी को प्रमाणित किया। यह तर्क दिया गया है कि वर्ष 2018-19 के लिए उसे प्रदान की गई प्रविष्टि के विरुद्ध याचिकाकर्ता द्वारा प्रशासनिक न्यायाधीश के समक्ष 17.12.2019 को एक अभ्यावेदन दिया गया है, जो अभी भी लंबित है और इसलिए, उ.प्र. सरकारी सेवक (प्रतिकूल वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट और संबद्ध मामलों के विरुद्ध अभ्यावेदन का निस्तारण) नियमावली, 1995 में निहित प्रावधानों के आधार पर ऐसी सामग्री को प्रतिकूल नहीं माना जा सकता था जब अभ्यावेदन पर निर्णय नहीं लिया गया हो।

विश्लेषण

10. जहाँ तक प्रशासनिक न्यायाधीश, मिर्जापुर द्वारा याचिकाकर्ता को वर्ष 2008-09 के लिए दी गई प्रतिकूल टिप्पणी और उसके विरुद्ध प्रस्तुत अभ्यावेदन का संबंध है, यह प्रतिकूल टिप्पणी अंतिम हो गई है। याचिकाकर्ता का यह तर्क कि बाहरी प्रतिफल के लिए जमानत आदेश पारित करने के आरोप में की गई सतर्कता जाँच में याचिकाकर्ता के विरुद्ध कोई निष्कर्ष नहीं दिया गया, निर्णायक नहीं होगा। प्रशासनिक न्यायाधीश ने वर्ष 2008-09 के लिए अपनी प्रतिकूल टिप्पणी में स्पष्ट रूप से पाया है कि अधिकारी के विरुद्ध असंगत आधार पर ज़मानत आदेश पारित करने की शिकायतें मौजूद थीं। प्रशासनिक न्यायाधीश ने अधिकारी की सत्यनिष्ठा को संदिग्ध/अप्रमाणित पाया है और अधिकारी को "अच्छा अधिकारी नहीं" माना है। यह स्पष्ट नहीं है कि प्रशासनिक न्यायाधीश ने उसी सामग्री पर प्रतिकूल टिप्पणी की थी जिस पर बाद में याचिकाकर्ता के विरुद्ध सतर्कता जाँच की गई थी। याचिकाकर्ता द्वारा यह नहीं दर्शाया गया है कि वर्ष 2008-09 के लिए प्रशासनिक न्यायाधीश की टिप्पणियाँ केवल अधिवक्ता विनय कुमार भगत और राजेश कुमार की शिकायतों पर आधारित थीं। केवल इस तथ्य से कि सतर्कता जाँच में विनय कुमार भगत और राजेश कुमार द्वारा लगाए गए आरोप सिद्ध नहीं पाए गए, यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि प्रशासनिक न्यायाधीश के समक्ष वर्ष 2008-09 के संबंध में याचिकाकर्ता के विरुद्ध प्रतिकूल टिप्पणी करने के लिए कोई सामग्री मौजूद नहीं थी। अन्यथा, प्रशासनिक न्यायाधीश की प्रतिकूल टिप्पणी अंतिम हो चुकी है। विद्वान प्रशासनिक न्यायाधीश द्वारा वर्ष 2008-09 के लिए की गई प्रतिकूल

टिप्पणी की सत्यता या असत्यता पर वर्तमान रिट याचिका में टिप्पणी नहीं की जा सकती, खासकर जब प्रतिकूल टिप्पणी स्वयं हमारे समक्ष चुनौती के अधीन नहीं है। इस मामले को ध्यान में रखते हुए, हम पाते हैं कि प्रशासनिक न्यायाधीश द्वारा वर्ष 2008-09 के लिए याचिकाकर्ता के विरुद्ध दर्ज की गई प्रतिकूल टिप्पणी अभिलेख में मौजूद है और याचिकाकर्ता की अनिवार्य सेवानिवृत्ति की सिफारिश करने हेतु स्क्रीनिंग समिति द्वारा ध्यान में रखी जाने वाली एक प्रासंगिक सामग्री थी।

11. इसी प्रकार, याचिकाकर्ता को जारी की गई सलाह की सत्यता या असत्यता पर वर्तमान रिट में तब तक टिप्पणी नहीं की जा सकती जब तक कि ऐसी सलाह को चुनौती न दी गई हो। यद्यपि सलाह स्वयं अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश पारित करने के लिए प्रतिकूल सामग्री नहीं हो सकती है, लेकिन जब याचिकाकर्ता के संपूर्ण सेवा रिकॉर्ड की जाँच की जा रही हो, तो याचिकाकर्ता को अनिवार्य सेवानिवृत्ति देने की वांछनीयता के संबंध में राय बनाने के लिए ऐसी सामग्री पर विचार किया जा सकता है।

12. इसी प्रकार, दिनांक 23.07.2012 की सतर्कता जाँच रिपोर्ट की प्रशासनिक समिति द्वारा जाँच की गई है और याचिकाकर्ता को एक निंदा प्रविष्टि प्रदान की गई है। यह निंदा प्रविष्टि, याचिकाकर्ता द्वारा इसके विरुद्ध प्रस्तुत अभ्यावेदन और समीक्षा अभ्यावेदन को अस्वीकार करने के साथ ही अंतिम रूप ले चुकी है। इसके अतिरिक्त, निंदा प्रविष्टि को उपयोग से पूर्व चुनौती नहीं दी जा सकती। ऐसी परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत तथ्यात्मक जाँच, जिससे यह निर्णय लिया जा सके कि निंदा प्रविष्टि देने के लिए अभिलेखों में कोई सामग्री मौजूद है या नहीं, हमारे लिए उचित नहीं होगी। यह निंदा प्रविष्टि निस्संदेह एक ऐसी सामग्री है जिस पर स्क्रीनिंग कमेटी याचिकाकर्ता के विरुद्ध भरोसा कर सकती है।

13. जहाँ तक जिला न्यायाधीश, चंदौली की प्रतिकूल टिप्पणी का संबंध है, याचिकाकर्ता ने रिट याचिका के पैरा 52 में तर्क दिया है कि उन्होंने इसके विरुद्ध अभ्यावेदन प्रस्तुत किया था जिस पर विचार नहीं किया गया। प्रति-शपथपत्र के पैरा 44 में इसी पैराग्राफ का हवाला दिया गया है। प्रति-शपथपत्र में यह भी कहा गया है कि प्रशासनिक न्यायाधीश, चंदौली ने अपने आदेश दिनांक 25.08.2022 द्वारा वर्ष 2018-19 के लिए जिला न्यायाधीश की प्रतिकूल टिप्पणी को हटा दिया है। इसलिए, अनिवार्य सेवानिवृत्ति की सिफारिश करने के लिए स्क्रीनिंग कमेटी द्वारा इस सामग्री पर अवलम्ब नहीं लिया जा सकता था। इस पहलू पर, हम याचिकाकर्ता के इस तर्क में तथ्य पाते हैं कि चूंकि प्रतिकूल टिप्पणी के खिलाफ अभ्यावेदन उस समय लंबित था जब स्क्रीनिंग कमेटी की बैठक हुई थी, इसलिए 1995 के नियमों के नियम 5 के आधार पर अनिवार्य सेवानिवृत्ति की सिफारिश करने के लिए इस प्रतिकूल टिप्पणी पर विचार नहीं किया जा सकता था। इसलिए, रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री का विश्लेषण हमें इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए प्रेरित करता है कि अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश पारित करने के लिए याचिकाकर्ता के खिलाफ भरोसा की गई सामग्री में से 'क', 'ख' और 'ग' के रूप में उल्लिखित पहले तीन परिस्थितियाँ आक्षेपित आदेश पारित करने के लिए उपलब्ध थीं।

14. इसके अतिरिक्त, याचिकाकर्ता ने यह भी दलील दी है कि उसकी अनिवार्य सेवानिवृत्ति की सिफारिश करते समय अन्य वर्षों की उसकी चरित्र पंजिका प्रविष्टियों पर विचार नहीं किया गया। याचिकाकर्ता का यह तर्क सही नहीं है, क्योंकि प्रतिवादियों ने प्रति-शपथपत्र में स्पष्ट रूप से कहा है कि याचिकाकर्ता का संपूर्ण सेवा रिकॉर्ड स्क्रीनिंग समिति के समक्ष प्रस्तुत किया गया था। स्क्रीनिंग समिति ने याचिकाकर्ता के सेवा रिकॉर्ड में मौजूद प्रतिकूल सामग्री पर विशेष रूप से ध्यान दिया और केवल इसी आधार पर वह इस निष्कर्ष पर पहुँची कि याचिकाकर्ता को नौकरी पर बनाए रखना उचित नहीं है और उसे अनिवार्य सेवानिवृत्ति दी जानी चाहिए। इसके अलावा, स्क्रीनिंग कमेटी को याचिकाकर्ता के पक्ष में प्रत्येक वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट का विशेष रूप से उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं थी। याचिकाकर्ता के सेवा रिकॉर्ड में प्रतिकूल तथ्यों पर ध्यान देना आवश्यक था ताकि उसकी अनिवार्य सेवानिवृत्ति की सिफारिश की जा सके।

15. अभिलेख में प्रस्तुत सामग्री के समग्र मूल्यांकन के बाद, हमारा विचार है कि स्क्रीनिंग समिति ने याचिकाकर्ता के विरुद्ध अभिलेख में प्रतिकूल सामग्री का संज्ञान लिया था ताकि उसकी अनिवार्य सेवानिवृत्ति की अनुशंसा की जा सके। ऊपर उल्लिखित तीन सामग्रियों, 'क', 'ख' और 'ग' में से, हम पाते हैं कि वर्ष 2008-09 के लिए प्रशासनिक न्यायाधीश की प्रतिकूल टिप्पणी और प्रशासनिक समिति द्वारा 11.10.2012 को याचिकाकर्ता को दी गई निंदा प्रविष्टि, अपने आप में इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए पर्याप्त थी कि याचिकाकर्ता का नौकरी में बने रहना उचित नहीं है और उसे अनिवार्य सेवानिवृत्ति दी जानी चाहिए।

16. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं ने अपने तर्कों के समर्थन में ऊपर उल्लिखित निर्णयों का हवाला दिया है। बैकुंठ नाथ दास (उपरोक्त) मामले में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय इस प्रस्ताव का समर्थन करता है कि अनिवार्य सेवानिवृत्ति के लिए एक असंप्रेषित प्रतिकूल टिप्पणी पर भी विचार किया जा सकता है। न्यायालय ने माना कि अनिवार्य सेवानिवृत्ति के संबंध में प्राधिकारी की राय कर्मचारी के संपूर्ण सेवा अभिलेखों के आधार पर व्यक्तिपरक संतुष्टि पर आधारित है। यह भी निर्णायक रूप से माना गया है कि अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश दंड का आदेश नहीं है और अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश पारित करते समय प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन आवश्यक नहीं है। न्यायिक समीक्षा का दायरा दुर्भावना, मनमानी और विकृति के आधार तक सीमित है। बैकुंठ नाथ दास (उपरोक्त) मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के पैरा 31 से 33 में की गई टिप्पणियाँ निम्नलिखित हैं:-

"31. ध्यान देने योग्य एक और बात यह है: अक्सर, प्रतिकूल टिप्पणी करने वाला प्राधिकारी और उसे अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करने वाला प्राधिकारी एक ही नहीं होते। यह मानने का कोई कारण नहीं है कि उसे सेवानिवृत्त करने वाला प्राधिकारी सद्भावनापूर्वक कार्य नहीं करेगा या पूरे अभिलेख पर निष्पक्षता से विचार नहीं करेगा। जैसा कि निर्णीत मामलों से पता चलता है, अक्सर मामलों की जाँच करने और सरकार को अपनी सिफ़ारिशें देने के लिए एक से अधिक ज़िम्मेदार अधिकारियों वाली एक समीक्षा समिति गठित की जाती है। समीक्षा समिति, या सरकार, स्वाभाविक रूप से एक या दो टिप्पणियों, चाहे वे अनुकूल हों या प्रतिकूल, से प्रभावित नहीं होगी। वे संपूर्ण अभिलेख पर समग्रता से विचार करके एक राय बनाएंगे - जिसमें सरकारी कर्मचारी द्वारा

उपरोक्त टिप्पणियों के विरुद्ध प्रस्तुत किए गए अभ्यावेदन, यदि कोई हों, भी शामिल हैं - और निश्चित रूप से उनकी सेवा की बाद की अवधि को अधिक महत्व देंगे। ध्यान में रखने योग्य एक और परिस्थिति यह है कि किसी सरकारी कर्मचारी के विरुद्ध निराधार टिप्पणियाँ करने वाले अधिकारियों का उत्तराधिकार प्राप्त करना असंभव है।

32. हमें यह कहते हुए नहीं समझा जाना चाहिए कि प्रतिकूल टिप्पणियों को संप्रेषित करने की आवश्यकता नहीं है या सरकारी कर्मचारी द्वारा (ऐसी टिप्पणियों के विरुद्ध) प्रस्तुत किए गए अभ्यावेदन, यदि कोई हों, पर विचार करने या उनका निस्तारण करने की आवश्यकता नहीं है। प्रतिकूल टिप्पणियों को सामान्य क्रम में, उस संबंध में नियमों/आदेशों के अनुसार, संप्रेषित किया जाना चाहिए। उनके विरुद्ध किए गए किसी भी अभ्यावेदन पर सामान्य क्रम में, यथोचित तत्परता से कार्रवाई की जानी चाहिए। हम केवल इतना कह रहे हैं कि मूल नियम 56(j) (या उससे संबंधित नियम) के अंतर्गत कार्रवाई के लिए, यथास्थिति, ऐसे अभ्यावेदन या अभ्यावेदनों के निस्तारण या अंतिम निस्तारण की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है। कुछ मामलों में, ऐसा हो सकता है कि हाल के वर्षों की कुछ प्रतिकूल टिप्पणियाँ संप्रेषित न की गई हों या यदि संप्रेषित की गई हों, तो उस संबंध में प्राप्त अभ्यावेदन विचाराधीन हों। केवल इसी आधार पर, मूल नियम 56(j) के अंतर्गत कार्रवाई रोके जाने की आवश्यकता नहीं है। यह मानने का कोई कारण नहीं है कि समीक्षा समिति या सरकार, यदि ऐसी अप्रसारित टिप्पणियों पर विचार करना चाहती है, तो उसे इस तथ्य का ज्ञान या जानकारी नहीं होगी कि ये टिप्पणियाँ सरकारी कर्मचारी को संप्रेषित नहीं की गईं और उसे स्पष्टीकरण देने या खंडन करने का अवसर नहीं दिया गया। इसी प्रकार, यदि सरकारी कर्मचारी द्वारा कोई अभ्यावेदन दिया गया है, तो उस पर भी विचार किया जाएगा। हम दोहराना चाहेंगे कि न केवल समीक्षा समिति सामान्यतः उच्च और ज़िम्मेदार अधिकारियों से बनी होती है, बल्कि इसकी शक्तियाँ केवल सरकार के पास होती हैं, किसी छोटे अधिकारी के पास नहीं। यह असंभव है कि कई वर्षों से की गई प्रतिकूल टिप्पणियाँ असंप्रेषित रह जाएँ और फिर भी उन्हें कार्रवाई का प्राथमिक आधार बनाया जाए। ऐसी असंभावित स्थिति, यदि वास्तव में मौजूद हो, तो कानून में दुर्भावना का संकेत हो सकती है। इस संबंध में हम यह उल्लेख कर सकते हैं कि संविधान के अनुच्छेद 226 द्वारा प्रदत्त उपाय भी उतना ही महत्वपूर्ण है। अपनी सुविदित सीमाओं के बावजूद, यह उपाय दुर्भावनापूर्ण, विकृत या मनमानी कार्रवाई के विरुद्ध एक प्रभावी नियंत्रण है।

33. इस स्तर पर, हम एक स्पष्टीकरण नोट संलग्न करना उचित समझते हैं। सामान्यतः जो संप्रेषित करने की आवश्यकता होती है वह प्रतिकूल टिप्पणियाँ होती हैं - गोपनीय पंजिकाओं में की गई प्रत्येक टिप्पणी, टिप्पणी या अवलोकन नहीं। ऐसी अनेक टिप्पणियाँ, अवलोकन और टिप्पणियाँ हो सकती हैं, जो प्रतिकूल टिप्पणियाँ नहीं हैं, लेकिन फिर भी मूल नियम 56(j) या उससे संबंधित नियम के प्रयोजनार्थ प्रासंगिक हैं। जिन उद्देश्यों और उद्देश्यों के लिए इस शक्ति का प्रयोग किया जाना है, वे जे.एन. सिन्हा [(1970) 2 एससीसी 458 : (1971) 1 एससीआर 791] और ऊपर उल्लिखित अन्य निर्णयों में स्पष्ट रूप से वर्णित हैं।"

17. याचिकाकर्ता ने पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय बनाम ईश्वर चंद (उपरोक्त) मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का हवाला दिया है। इस मामले में न्यायिक अधिकारी उच्च न्यायिक सेवा का सदस्य था, जो परिवीक्षा पर था। हालाँकि उसके निरीक्षण न्यायाधीश ने उसके कामकाज को संतोषजनक पाया था, फिर भी, पूर्ण न्यायालय ने उसे पदावनत कर दिया और उसके कामकाज को असंतोषजनक पाते हुए उसकी नियुक्ति रद्द कर दी। इस आदेश को उच्च न्यायालय ने रद्द कर दिया और सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष दायर विशेष अनुमति याचिका (एसएलपी) भी खारिज कर दी गई। अधिकारी सेवा में बने रहे। जींद में कार्यरत रहते हुए अधिकारी के विरुद्ध कुछ शिकायतें प्राप्त हुईं। उन्हें निलंबित कर दिया गया और उनके विरुद्ध अनुशासनात्मक जाँच शुरू कर दी गई। जाँच लंबित रहने तक अधिकारी को अनिवार्य सेवानिवृत्ति दे दी गई। उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने समयपूर्व सेवानिवृत्ति के आदेश को मुख्यतः इस आधार पर रद्द कर दिया कि अधिकारी को सेवानिवृत्त करने का निर्णय कदाचार के आरोप पर आधारित था, जो जाँच का विषय था। उच्च न्यायालय के इस निर्णय को विशेष अनुमति याचिका (एसएलपी) खारिज करने के साथ ही बरकरार रखा गया। इस निर्णय में प्रतिपादित सिद्धांत अपने मामले के तथ्यों के लिए विशिष्ट हैं और वर्तमान मामले के तथ्यों में लागू नहीं होते। अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश कदाचार पर आधारित था, जिसकी जाँच पहले से ही लंबित थी। कानून में स्थापित स्थिति के अनुसार, अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश दंड के रूप में पारित नहीं किया जा सकता, जबकि ऐसा आदेश कदाचार पर आधारित था, जिसके कारण न्यायालय ने मामले में हस्तक्षेप किया। इसलिए, यह निर्णय याचिकाकर्ता के लिए किसी भी प्रकार से सहायक नहीं हो सकता क्योंकि अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश कदाचार के किसी भी आरोप पर आधारित नहीं है।

18. याचिकाकर्ता द्वारा लिया गया अगला निर्णय मदन मोहन चौधरी (उपरोक्त) के मामले में है। सर्वोच्च न्यायालय ने इस मामले के तथ्यों को निर्णय के पैरा 29 में देखा था, जिसके अनुसार, वर्ष 1991-92, 1992-93 और 1993-94 के लिए अधिकारी की चरित्र पंजिका में कोई प्रविष्टियाँ दर्ज नहीं की गईं। इन वर्षों के लिए प्रविष्टियाँ एक साथ की गईं और 11.09.1996 को अधिकारी को सूचित कर दिया गया। इन प्रविष्टियों पर 30.11.1996 को विचार किया गया। सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि ये प्रविष्टियाँ उस समय दर्ज की गईं जब स्क्रीनिंग कमेटी अधिकारी को अनिवार्य सेवानिवृत्ति देने का मन बना चुकी थी। यह तथ्य भी ध्यान में आया कि अधिकारी को पदोन्नति मिल चुकी थी और उसके खिलाफ रिकॉर्ड में कोई अन्य साक्ष्य मौजूद नहीं था। न्यायालय ने कहा कि इस बात पर कोई तार्किक राय नहीं बनाई जा सकती कि अधिकारी को सेवानिवृत्त करना जनहित में है। सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 37 में कहा कि अधिकारी को 1999 में 'बी+' श्रेणी में रखा गया था और तीन वर्षों तक अधिकारी को किसी भी प्रतिकूल प्रविष्टि की सूचना नहीं दी गई। केवल तभी जब धारा 307 भा.दं.सं. के तहत अग्रिम जमानत दी गई, अधिकारी को एक बार में तीन वर्षों के लिए 'अनुचित' के रूप में वर्गीकृत किया गया। अधिकारी को अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करने का निर्णय उसके 'अनुचित नहीं' मूल्यांकन से पहले लिया गया था। यह इस तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में है कि न्यायालय ने पाया कि अनिवार्य सेवानिवृत्ति का निर्णय उचित नहीं था। इसलिए, हम पाते हैं कि वर्तमान मामले के तथ्य पूरी तरह से अलग हैं और मदन मोहन चौधरी (उपरोक्त) में की गई टिप्पणियां याचिकाकर्ता के मामले में कोई मदद नहीं कर सकती हैं।

19. याचिकाकर्ता द्वारा नंद कुमार वर्मा (उपरोक्त) मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर अवलम्ब लिया गया है, जो वर्तमान मामले के तथ्यों से अप्रासंगिक है। उक्त मामले में विवाद निर्णय के पैरा 33 में उल्लेखित है, जिसे आगे पुन: प्रस्तुत किया गया है:-

"33. इस न्यायालय ने पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय बनाम ईश्वर चंद जैन [(1999) 4 एससीसी 579 : 1999 एससीसी (एल एंड एस) 881] में निरीक्षण के दौरान की गई टिप्पणियों के उद्देश्य, महत्व और प्रभाव पर चर्चा की है, जो अंततः संबंधित न्यायिक अधिकारी की वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट का हिस्सा बन जाती हैं। इस न्यायालय ने इस प्रकार टिप्पणी की है: (एससीसी पृष्ठ 597-98, पैरा 32)

"32. हाल ही में, यह न्यायालय इस आशंका पर नज़र रख रहा है कि जब किसी न्यायिक अधिकारी को समय से पहले सेवानिवृत्त करने का आदेश जारी होता है, तो न्यायिक अधिकारी या उच्च न्यायालय इस न्यायालय में आ सकते हैं। संविधान के अनुच्छेद 235 के अंतर्गत, उच्च न्यायालय अधीनस्थ न्यायालयों, जिनमें जिला न्यायालय भी शामिल हैं, पर पूर्ण नियंत्रण रखता है। अधीनस्थ न्यायालयों का निरीक्षण, अधीनस्थ न्यायालयों पर नियंत्रण के लिए उच्च न्यायालय द्वारा किए जाने वाले सबसे महत्वपूर्ण कार्यों में से एक है। इस निरीक्षण का उद्देश्य अधीनस्थ न्यायाधीश द्वारा किए गए कार्य, उनकी योग्यता, निष्ठा और योग्यता का आकलन करना है। चूँकि न्यायाधीश भी मनुष्य हैं और उनमें भी मानवीय कमियाँ पाई जाती हैं, इसलिए निरीक्षण उन्हें गलतियाँ बताने का अवसर प्रदान करता है ताकि भविष्य में उनसे बचा जा सके और अधीनस्थ न्यायालय के कामकाज में यदि कोई कमी हो, तो उसे दूर किया जा सके। निरीक्षण अधीनस्थ न्यायाधीशों को सर्वोत्तम परिणाम देने के लिए प्रेरित करने में उत्प्रेरक का काम करना चाहिए। उन्हें उपलब्धि का अहसास होना चाहिए। उन्हें प्रोत्साहन की आवश्यकता है। वे अत्यधिक तनाव में काम करते हैं और अत्यधिक असुविधा और कठिनाई के बीच न्यायालयों का संचालन करते हैं। एक संतोषजनक न्यायिक प्रणाली काफी हद तक जमीनी स्तर पर न्यायालयों के संतोषजनक कामकाज पर निर्भर करती है। निरीक्षण न्यायाधीश द्वारा दर्ज की गई टिप्पणियाँ आमतौर पर पूर्ण न्यायालय द्वारा अनुमोदित होती हैं और वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों का हिस्सा बन जाती हैं और वे आधार होती हैं जिन पर एक न्यायिक अधिकारी का करियर बनता या बिगड़ता है। इसलिए अधीनस्थ न्यायालय का निरीक्षण अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसे प्रभावी और उत्पादक दोनों होना चाहिए। यह तभी संभव है जब यह सुविचारित और कार्यकुशल हो। अधीनस्थ न्यायालयों का निरीक्षण एक दिन, एक घंटे या कुछ मिनटों का काम नहीं है। निरीक्षण न्यायाधीश द्वारा न्यायालय के कामकाज की निगरानी करते हुए इसे पूरे वर्ष चलना चाहिए। एक आकस्मिक निरीक्षण न्यायिक व्यवस्था के लिए शायद ही लाभकारी हो। यह लाभ से अधिक हानि पहुँचाता है।" पैरा 32 में सर्वोच्च न्यायालय ने पाया है कि अधिकारी के विरुद्ध संदर्भित और जिन पर अवलम्ब लिया गया है, एसीआर प्रविष्टियाँ वार्षिक रोल में दर्ज वास्तविक प्रविष्टियों से भिन्न थीं। इसलिए, यह पाया गया कि जिस आधार पर अधिकारी को अनिवार्य सेवानिवृत्ति दी गई थी, वह अभिलेख में मौजूद सामग्री नहीं थी और इसलिए, निर्णय अप्रासंगिक सामग्री पर आधारित था। इसलिए, उच्च न्यायालय की व्यक्तिपरक संतुष्टि को दोषपूर्ण पाया गया। यह भी विचाराधीन मामला नहीं है।

20. इसी प्रकार, गुजरात राज्य बनाम उम्मेदभाई एम. पटेल (उपरोक्त) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि सेवा अभिलेख में किसी अन्य सामग्री के अभाव में, जिन अप्रमाणित आरोपों के आधार पर विभागीय कार्यवाही शुरू की गई थी, उन्हें अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश पारित करने का आधार नहीं बनाया जा सकता। वर्तमान मामले के तथ्यों के अनुसार, अधिकारी के विरुद्ध कोई अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू नहीं की गई थी और हमने स्पष्ट रूप से माना है कि अधिकारी के विरुद्ध प्रतिकूल सामग्री अभिलेख में मौजूद थी।

21. मद्रास उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार (उपरोक्त) के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 21 में मामले के तथ्यों पर ध्यान दिया है। उच्च न्यायालय के इस निष्कर्ष को, कि न्यायालय के समक्ष कोई भी ऐसा तथ्य प्रस्तुत नहीं किया गया जिससे यह सिद्ध हो कि अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश जनहित में पारित किया गया है, किसी भी चुनौती के अधीन नहीं रखा गया। यद्यपि उच्च न्यायालय ने यह टिप्पणी की कि अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश पारित करने के लिए पर्याप्तता या पर्याप्तता पर प्रश्न नहीं उठाया जा सकता, किन्तु मामले के तथ्यों में ऐसी कोई भी सामग्री अभिलेख में मौजूद नहीं थी। ऐसी परिस्थितियों में अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश पारित करना उचित नहीं था। यह निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों से भी भिन्न है।

22. बृज बिहारी लाल अग्रवाल (उपरोक्त) मामले में अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश दो गोपनीय रिपोर्टों पर आधारित था जो एक-दूसरे का खंडन करती थीं। सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि अनिवार्य सेवानिवृत्ति के प्रश्न पर विचार करते समय मामले का यह पहलू न्यायालय के ध्यान से छूट गया। ऐसी परिस्थितियों में, अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश को रद्द किया जाता है। यह निर्णय भी अपने आप में तथ्यों पर आधारित है।

23. दूसरी ओर, प्रतिवादियों ने प्यारे मोहन लाल (उपरोक्त) मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर अवलम्ब लिया है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने अवधारित किया है कि न्यायिक अधिकारी के मामले में अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश देने के लिए सत्यनिष्ठा से संबंधित एक भी प्रतिकूल टिप्पणी पर्याप्त थी। रिपोर्ट के पैरा 29 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियाँ प्रासंगिक हैं और आगे पुन: प्रस्तुत हैं:-

"29. कानून के तहत प्राधिकारी को यह आकलन करते समय कि क्या कर्मचारी को अनिवार्य सेवानिवृत्ति दी जा सकती है, कर्मचारी के "संपूर्ण सेवा रिकॉर्ड" पर विचार करना आवश्यक है, भले ही उसे प्रतिकूल प्रविष्टियों के बारे में सूचित नहीं किया गया हो और उन प्रतिकूल प्रविष्टियों के बावजूद अधिकारी को पहले पदोन्नत किया गया हो। इसके अलावा, किसी अधिकारी की निष्ठा के संबंध में एक भी प्रतिकूल प्रविष्टि, चाहे वह सुदूर अतीत में ही क्यों न हो, अनिवार्य सेवानिवृत्ति देने के लिए पर्याप्त है। एक न्यायिक अधिकारी के मामले की जाँच की जानी आवश्यक है, उसे समाज के अन्य वर्गों से अलग मानते हुए, क्योंकि वह एक अलग क्षमता में राज्य की सेवा कर रहा है। एक न्यायिक अधिकारी के मामले पर माननीय मुख्य न्यायाधीश द्वारा विधिवत गठित उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की एक समिति द्वारा विचार किया जाता है और फिर समिति की रिपोर्ट पूर्ण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की जाती है। मामले पर उचित विचार-विमर्श के बाद पूर्ण न्यायालय द्वारा निर्णय लिया जाता है। इसलिए, विवेक का प्रयोग न करने या दुर्भावना के आरोप लगाने की कोई संभावना नहीं है।"

24. राम मूर्ति यादव (उपरोक्त) में न्यायिक अधिकारी के मामले में अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश की वैधता की विस्तृत जांच की गई, जिसमें भारत संघ बनाम के. के. धवन, (1993) 2 एससीसी 56 और भारत संघ बनाम दुली चंद, (2006) 5 एससीसी 680 में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया गया। सर्वोच्च न्यायालय ने राम मूर्ति यादव (उपरोक्त) में फैसले के पैरा 13 और 14 में निम्नानुसार टिप्पणी की: -

"13. पी.सी. जोशी [पी.सी. जोशी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2001) 6 एससीसी 491: 2001 एससीसी (एल एंड एस) 984] एक विभागीय कार्यवाही में सजा के आदेश से संबंधित मामला था, जिसे कदाचार के आरोपों के समर्थन में किसी भी कानूनी रूप से स्वीकार्य या प्रासंगिक सबूत के अभाव में दोषपूर्ण माना गया था। रमेश चंद्र सिंह [रमेश चंद्र सिंह बनाम इलाहाबाद उच्च न्यायालय, (2007) 4 एससीसी 247 : (2007) 2 एससीसी (क्रि) 266] ज़मानत के एक आदेश से संबंधित था, जो विवेकाधीन शक्तियों के प्रयोग से संबंधित था, खासकर जब एक सह-अभियुक्त को उच्च न्यायालय द्वारा ज़मानत दी गई हो। अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, दंड तो बिल्कुल नहीं था, और न ही आक्षेपित करने वाला था। राम एकबाल शर्मा [राम एकबाल शर्मा बनाम बिहार राज्य, (1990) 3 एससीसी 504: 1990 एससीसी (एल एंड एस) 491] इस मुद्दे से निपट रहा था कि आदेश का स्वरूप निर्णायक नहीं था और यह निर्धारित करने के लिए पर्दा उठाया जा सकता था कि क्या यह सजा के रूप में आदेश दिया गया था, गंभीर वित्तीय अनियमितताओं के संबंध में प्रति-शपथपत्र में लिए गए रुख के मद्देनजर, वर्तमान विवाद के लिए फिर से कोई प्रासंगिकता नहीं है।

14. न्यायिक सेवा में प्रवेश करने वाले व्यक्ति की निस्संदेह पदोन्नति सहित करियर संबंधी आकांक्षाएँ होती हैं। अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश निस्संदेह करियर संबंधी आकांक्षाओं को प्रभावित करता है। इतना कहने के बाद, हमें यह भी चेतावनी देनी चाहिए कि न्यायिक सेवा किसी भी अन्य सेवा की तरह नहीं है। न्यायिक कर्तव्यों का निर्वहन करने वाला व्यक्ति राज्य की ओर से उसके संप्रभु कार्यों का निर्वहन करता है। न्याय प्रदान करना न केवल एक कठिन कर्तव्य है, बल्कि इसे एक पवित्र कर्तव्य के निर्वहन के समान माना गया है, और इसलिए यह एक अत्यंत गंभीर मामला है। किसी अन्य नौकरी में कार्यरत व्यक्ति द्वारा अपने कर्तव्यों के निर्वहन के लिए जो ईमानदारी, आचरण और सत्यनिष्ठा के मानदंड प्रासंगिक हो सकते हैं, वे न्यायिक अधिकारी के लिए समान नहीं हो सकते। एक न्यायाधीश एक सार्वजनिक न्यास का पद धारण करता है। त्रुटिहीन सत्यनिष्ठा, निर्विवाद स्वतंत्रता और नैतिक मूल्य जो मूल में समाहित हों, ये परम आवश्यक हैं और इनमें कोई समझौता नहीं किया जा सकता। एक न्यायाधीश संपूर्ण न्याय व्यवस्था का आधार होता है और जनता को न्यायिक कार्य करने वाले किसी भी व्यक्ति से वस्तुतः दोषरहित आचरण की मांग करने का अधिकार है। न्यायाधीशों को अपने पेशेवर और व्यक्तिगत जीवन दोनों में सत्यनिष्ठा के उच्चतम मानकों के लिए प्रयास करना चाहिए।"

25. मामले के तथ्यों और उपर्युक्त निर्णयों का विश्लेषण करने के बाद, हमें यह मानने में कोई संकोच नहीं है कि याचिकाकर्ता के सेवा अभिलेख में प्रतिकूल सामग्री मौजूद थी, जिसके आधार पर व्यक्तिपरक संतुष्टि के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता था कि याचिकाकर्ता अनिवार्य सेवानिवृत्ति के योग्य है। कानून

सर्वविदित है कि ऐसी सामग्री की पर्याप्तता या अनुपस्थिति पर रिट में विचार नहीं किया जा सकता। प्रतिकूल सामग्री की सत्यता या अनुपस्थिति की जाँच भी तब नहीं की जा सकती जब ऐसी प्रविष्टियाँ अंतिम रूप ले चुकी हों।

26. अभिलेख में उपलब्ध सामग्री का मूल्यांकन करने के बाद, हम मानते हैं कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध प्रतिकूल सामग्री अभिलेख में मौजूद थी, जिससे स्क्रीनिंग कमेटी यह राय बना सकी कि याचिकाकर्ता को अनिवार्य सेवानिवृत्ति दी जानी चाहिए। इसलिए, पूर्ण न्यायालय द्वारा लिए गए निर्णय और उसके परिणामस्वरूप राज्य सरकार द्वारा याचिकाकर्ता को अनिवार्य सेवानिवृत्ति देने के निर्णय में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। यह विशेष रूप से इसलिए आवश्यक है, क्योंकि याचिकाकर्ता एक न्यायिक अधिकारी है, जो राज्य की ओर से अपने संप्रभु कार्यों के निर्वहन में कार्य करता है। सामान्य वादी को न्यायिक प्रणाली में पूर्ण विश्वास होना चाहिए तथा वादी को ऐसी कोई धारणा नहीं दी जानी चाहिए जिससे न्याय वितरण प्रणाली के विरुद्ध दूर-दूर तक कोई धारणा बने। स्क्रीनिंग कमेटी के सदस्यों के विरुद्ध किसी भी प्रकार के पक्षपात या दुर्भावना का कोई आरोप नहीं है और न ही यह दर्शाया गया है कि स्क्रीनिंग कमेटी की व्यक्तिपरक राय किसी साक्ष्य पर आधारित नहीं है। ऐसी परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता को अनिवार्य सेवानिवृत्ति देने संबंधी आदेश में हस्तक्षेप करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

27. तदनुसार, रिट याचिका खारिज की जाती है। लागत के संबंध में कोई आदेश पारित नहीं किया जाएगा।

(2025) 4 ILRA 147

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 01.04.2025

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर

के समक्ष

रिट ए संख्या 12070 सन् 2024

नागेंद्र कुमार **.....याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **.....प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
अभिनव त्रिपाठी, प्रशांत शुक्ला

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

सी.एस.सी., सिद्धार्थ सिंघल

(क) सेवा कानून - लोक नियोजन - जाली शैक्षिक प्रमाण पत्र के आधार पर सेवा समाप्ति - उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियमावली, 1999 - नियम 7 - उत्तर प्रदेश सरकारी विभाग अधीनस्थ लेखा संवर्ग (अराजपत्रित) सेवा नियमावली, 2014 - नियम 26 - जहाँ धोखाधड़ी से प्राप्त नियुक्ति स्पष्ट रूप से स्थापित हो, वहाँ नियमित विभागीय जाँच की आवश्यकता नहीं है - धोखाधड़ी से प्राप्त नियुक्ति प्रारंभ से ही शून्य है, स्थायी कर्मचारी अनुच्छेद 311(2) के अंतर्गत जाँच का हकदार नहीं है - धोखाधड़ी नियुक्ति को आरंभ में ही अमान्य कर देती है, न कि सेवा के दौरान कदाचार का मामला - जाली 'ओ' लेवल का प्रमाण पत्र, स्पष्ट रूप से गढ़ा हुआ, कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा जारी नहीं किया गया - जहाँ नियुक्ति स्वयं स्पष्ट जालसाजी और धोखाधड़ी पर आधारित हो, वहाँ अनुशासनात्मक कार्यवाही अनिवार्य नहीं है। (अनुच्छेद - 18 से 21, 28 से 30)

याचिकाकर्ता को 2020 में 'ओ' लेवल कंप्यूटर सर्टिफिकेट के आधार पर सहायक लेखाकार के रूप में नियुक्त किया गया था - बाद में यह फर्जी पाया गया क्योंकि यह कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा जारी नहीं किया गया था - 2023 में विभागीय जाँच के बिना ही सेवाएँ समाप्त कर दी गईं - इसलिए याचिका। **(पैरा - 1 से 5)**

अवधारित किया गया: - घोर धोखाधड़ी से प्राप्त नियुक्ति, भले ही कर्मचारी सेवा में स्थायी हो गया हो, उसे अनुशासनात्मक कार्यवाही का हकदार नहीं बनाती, जहाँ धोखाधड़ी स्पष्ट है और किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए दोनों पक्षों के साक्ष्यों पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है। लेकिन, वह कारण बताओ और उचित अवसर देने का हकदार होगा, जो इस मामले में याचिकाकर्ता को दिया गया है। **(पैरा - 29,30)**

याचिका खारिज। (ई-7)

<u>उद्धृत मामलों की सूची: -</u>

1. अवतार सिंह बनाम यू.ओ.आई. एवं अन्य, (2016) 8 एससीसी 471
2. अभिराम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2020 एससीसी ऑनलाइन ऑल 2248
3. श्रीमती परमी मौर्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2014 (2) एडीजे 633 (डीबी)
4. ए.पी. पी.एस.सी. बनाम कोनेटी वेंकटेश्वरुलु एवं अन्य, (2005) 7 एससीसी 177
5. देवेंद्र कुमार बनाम उत्तरांचल राज्य एवं अन्य, (2013) 9 एससीसी 363
6. मंजुल कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन आल 2161
7. रीना देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2019 एससीसी ऑनलाइन आल 4783
8. यू.ओ.आई. एवं अन्य बनाम बिपद भंजन गायेन (2008)11 एससीसी 314

9. जैनेंद्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2012) 8 एससीसी 748

10. नरेंद्र कुमार त्रिपाठी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2021 (1) एडीजे 654

11. पंजाब उ.प्र.डी.ए. बनाम करमजीत सिंह, (2019) 16 एससीसी782

12. राज कुमार सक्सेना बनाम बेसिक शिक्षा परिषद उत्तर प्रदेश एवं अन्य, 2019 एससीसी ऑनलाइन आल 4256

13. नरेंद्र कुमार गोंड बनाम उत्तर प्रदेश के सचिव (बेसिक शिक्षा) एवं अन्य के माध्यम से, 2018 एससीसी ऑनलाइन आल 5716

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर द्वारा प्रदत्त)

1. यह रिट याचिका निदेशक, आंतरिक लेखा एवं लेखा परीक्षा निदेशालय, उत्तर प्रदेश के दिनांक 22.12.2023 के उस आदेश के विरुद्ध है, जिसमें याचिकाकर्ता की सहायक लेखाकार के रूप में नियुक्ति रद्द कर दी गई थी। इसके अतिरिक्त, उपरोक्त निदेशक द्वारा दिनांक 20.10.2023 को पारित एक आदेश को भी चुनौती दी गई है, जिसमें कलकत्ता विश्वविद्यालय से प्राप्त याचिकाकर्ता के 'ओ' लेवल के कंप्यूटर प्रमाणपत्र की वैधता निर्धारित करने हेतु लंबित कार्यवाही के दौरान, याचिकाकर्ता के वेतन के भुगतान पर अग्रिम आदेश तक रोक लगा दी गई थी।

2. उत्तर प्रदेश अधीनस्थ सेवा चयन आयोग, लखनऊ (संक्षेप में, 'आयोग') द्वारा 2016 का विज्ञापन संख्या 12 जारी किया गया था, जिसमें सहायक लेखाकारों, लेखा परीक्षकों और सहायक कोषागार लेखाकारों के 2874 पदों को सीधी भर्ती द्वारा भरने का विज्ञापन दिया गया था। आयोग द्वारा लिखित परीक्षा और उसके बाद साक्षात्कार के आधार पर चयन किया जाना था। आवश्यक योग्यताओं में से एक भारत सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त संस्थान से 'ओ' लेवल का डिप्लोमा प्रमाणपत्र होना था।

3. याचिकाकर्ता का कहना है कि इन पदों में से एक पर चयन और नियुक्ति के लिए पात्र और अर्ह होते हुए, याचिकाकर्ता ने आयोग द्वारा जारी 2016 के विज्ञापन के अनुसार आवेदन किया था। उसे लिखित परीक्षा में भाग लेने के लिए प्रवेश पत्र जारी किया गया था। याचिकाकर्ता लिखित परीक्षा में उपस्थित हुआ और सफलतापूर्वक उत्तीर्ण हुआ। याचिकाकर्ता का कहना है कि आयोग ने उसे दस्तावेज़ सत्यापन के लिए साक्षात्कार के समय अपनी शैक्षिक योग्यता के प्रमाण पत्र प्रस्तुत करने का निर्देश दिया था। याचिकाकर्ता साक्षात्कार में सफल रहा और 16.10.2019 को सहायक लेखाकार एवं लेखा परीक्षक के पद पर नियुक्ति हेतु चयनित घोषित किया गया। आयोग द्वारा अंतिम तिथि को परिणाम घोषित किया गया। 16.10.2019 के परिणाम में उल्लेख किया गया था कि कुछ अभ्यर्थियों का सशर्त चयन किया गया है क्योंकि उनके 'ओ' लेवल कंप्यूटर प्रमाणपत्र का सत्यापन होना बाकी था। आयोग ने अपने पत्र दिनांक 31.10.2019 के माध्यम से नियोक्ताओं, अर्थात् निदेशक, आंतरिक लेखा एवं लेखा परीक्षा, निदेशालय, उत्तर प्रदेश को नियुक्ति पत्र जारी करने से पहले अभ्यर्थियों की शैक्षिक

योग्यताओं और प्रमाणपत्रों का सत्यापन करने का निर्देश दिया। आयोग के सचिव की उपरोक्त सलाह के जवाब में, चयनित उम्मीदवारों को निर्धारित प्रोफार्मा में अपनी शैक्षिक योग्यता के प्रमाण पत्र प्रस्तुत करने का निर्देश दिया गया था, जो याचिकाकर्ता द्वारा 17.12.2019 को प्रोफार्मा भरकर किया गया था। निदेशक, आंतरिक लेखा और लेखा परीक्षा निदेशालय, उ.प्र. के कार्यालय द्वारा याचिकाकर्ता की योग्यता के सत्यापन के बाद, याचिकाकर्ता को निदेशक द्वारा हस्ताक्षरित नियुक्ति पत्र, दिनांक 16.06.2020 जारी किया गया था। याचिकाकर्ता को खंड विकास अधिकारी, सुरियावां, भदोही के कार्यालय में सहायक लेखाकार के रूप में तैनात किया गया था। याचिकाकर्ता का नाम निदेशक द्वारा जारी नियुक्ति-सह-पोस्टिंग पत्र दिनांक 16.06.2020 के क्रम संख्या 14 पर है। याचिकाकर्ता ने दिनांक 24.06.2020 को सहायक लेखाकार के रूप में प्रतिवादियों की सेवा में प्रवेश किया।

4. याचिकाकर्ता के मामले के अनुसार, वह तब से लगातार खंड विकास अधिकारी, सुरियावां, भदोही के कार्यालय में अपने वरिष्ठों की संतुष्टि के अनुसार काम कर रहा है और उसके खिलाफ कोई शिकायत नहीं है। याचिकाकर्ता को अचानक प्रतिवादियों द्वारा दिनांक 07.06.2023 को एक कारण बताओ नोटिस जारी किया गया, जिसमें उसे अपने 'ओ' लेवल के कंप्यूटर डिप्लोमा प्रमाणपत्र को सत्यापित करने के लिए दस्तावेज प्रस्तुत करने को कहा गया था। उक्त कारण बताओ नोटिस दिनांक 07.06.2023 के जवाब में, याचिकाकर्ता ने अपने मामले को पुष्ट करने वाले दस्तावेज प्रस्तुत किए। याचिकाकर्ता ने 26.06.2023 को पूर्वोक्त रूप से अपना उत्तर प्रस्तुत किया। निदेशक द्वारा याचिकाकर्ता को दिनांक 12.10.2023 को एक बार फिर कारण बताओ नोटिस जारी किया गया, जिसमें याचिकाकर्ता से उसके 'ओ' लेवल कंप्यूटर प्रमाणपत्र की वैधता के संबंध में स्पष्टीकरण मांगा गया। उक्त कारण बताओ नोटिस के साथ ही, उसी तिथि के एक आदेश द्वारा, याचिकाकर्ता के अंतिम उल्लिखित प्रमाणपत्र की वैधता की जाँच लंबित रहने तक उसका वेतन रोक दिया गया। इसके बाद दिनांक 22.12.2023 को एक आदेश जारी किया गया, जिसमें याचिकाकर्ता की नियुक्ति इस आधार पर रद्द कर दी गई कि उसका 'ओ' लेवल कंप्यूटर प्रमाणपत्र जाली था और कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा जारी नहीं किया गया था।

5. निदेशक, आंतरिक लेखा एवं लेखापरीक्षा निदेशालय, उ.प्र. द्वारा पारित दिनांक 22.12.2023 एवं 12.10.2023 के आदेशों से व्यथित होकर, यह याचिका संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत प्रस्तुत की गई है।

6. दिनांक 12.08.2024 को एक तर्कपूर्ण आदेश द्वारा प्रस्ताव की सूचना जारी की गई और दोनों आक्षेपित आदेशों के क्रियान्वयन पर अंतरिम रोक लगा दी गई, साथ ही याचिकाकर्ता को नियमित रूप से अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने और वेतन का भुगतान करने की अनुमति देने का निर्देश दिया गया। प्रस्ताव की सूचना के उत्तर में, प्रतिवादी संख्या 2 और 3 ने दिनांक 31.08.2024 को एक प्रति-शपथपत्र दायर किया, जिस पर याचिकाकर्ता ने दिनांक 02.10.2024 को एक प्रत्युत्तर दायर किया। प्रस्ताव के नोटिस के अलावा, याचिकाकर्ता द्वारा अंतरिम आदेश का उल्लंघन किए जाने की शिकायत पर, इस न्यायालय ने 25.09.2024 को निदेशक को आदेश दिया कि वह याचिकाकर्ता को इस न्यायालय के दिनांक 12.08.2024 के अंतरिम आदेशों का अक्षरशः पालन करने और उन्हें कार्य में शामिल होने की अनुमति दें। निदेशक से यह भी पूछा गया कि यदि उल्लंघन

जारी रहा, तो इस न्यायालय के आदेश को लागू करने के लिए अन्य उपाय क्यों न अपनाए जाएँ। निदेशक ने कारण बताओ नोटिस का जवाब एक आवेदन के साथ दाखिल किया, जिसमें कुछ दस्तावेज़ भी अभिलेख में शामिल किए गए, जो इस मामले की दलीलों में शामिल हैं। कारण बताओ नोटिस के जवाब में दायर निदेशक के शपथपत्र के माध्यम से अभिलेख में लाए गए तथ्यों पर याचिकाकर्ता को दलील देने में सक्षम बनाने के लिए, याचिकाकर्ता को एक प्रति-शपथपत्र दाखिल करने का अवसर दिया गया, जो उसने 02.10.2024 को दाखिल किया। यह भी दलीलों का हिस्सा है।

7. दिनांक 03.10.2024 को जब यह याचिका सुनवाई के लिए आई, तो दोनों पक्षों ने अपने-अपने शपथपत्र प्रस्तुत किए, तथा इसे सुनवाई के लिए स्वीकार कर लिया गया, जो तत्काल शुरू हुई। निर्णय सुरक्षित रखा गया।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रशांत शुक्ला, प्रतिवादी संख्या 1, 2, 3, 5, 6 और 7 की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता सुश्री आकांक्षा शर्मा और प्रतिवादी संख्या 4 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री सिद्धार्थ सिंघल को सुना गया। कार्यालय की दिनांक 30.08.2024 की रिपोर्ट के अनुसार प्रतिवादी संख्या 8 को तामील की पुष्टि की गई है, लेकिन कोई भी उपस्थित नहीं हुआ है।

9. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रशांत शुक्ला ने तर्क दिया कि प्रतिवादियों ने याचिकाकर्ता द्वारा भरोसा किए गए 'ओ' लेवल के कंप्यूटर प्रमाणपत्र का पहले ही सत्यापन कर लिया था, जैसा कि आयोग द्वारा 16.10.2019 को घोषित परिणाम से स्पष्ट है। यह भी बताया गया कि आयोग ने प्रतिवादी विभाग को दिनांक 31.10.2019 के पत्र द्वारा नियुक्ति पत्र जारी करने से पहले शैक्षिक योग्यताओं और प्रमाणपत्रों का सत्यापन करने की विशेष सलाह दी थी। उपरोक्त सलाह के अनुसरण में, अभ्यर्थियों को अपनी शैक्षिक योग्यताओं से संबंधित अपने प्रशंसापत्र निर्धारित प्रारूप में प्रस्तुत करने का निर्देश दिया गया था। याचिकाकर्ता ने निर्धारित प्रपत्र भरकर 17.12.2019 को आवश्यक प्रमाण पत्र प्रस्तुत किए। उसकी शैक्षिक योग्यता से संबंधित सभी दस्तावेजों के सत्यापन के बाद ही निदेशक द्वारा याचिकाकर्ता को 16.06.2020 का नियुक्ति-सह-पदस्थापन पत्र जारी किया गया। अतः, प्रतिवादियों को अब कलकत्ता विश्वविद्यालय से प्राप्त कथित रिपोर्ट के आधार पर याचिकाकर्ता की नियुक्ति रद्द करने से रोका जा रहा है, जिसमें कहा गया है कि याचिकाकर्ता का प्रमाण पत्र उनके द्वारा जारी नहीं किया गया है। आखिरकार, प्रतिवादियों ने याचिकाकर्ता के 'ओ' लेवल के कंप्यूटर पाठ्यक्रम से संबंधित प्रमाण पत्र की सत्यता की पुष्टि की थी।

10. आगे यह भी कहा गया है कि याचिकाकर्ता की नियुक्ति तीन वर्ष की अवधि के बाद रद्द कर दी गई है, जो मनमाना और कानूनन अनुचित है। विज्ञापन वर्ष 2016 में जारी किया गया था और याचिकाकर्ता को लिखित परीक्षा और साक्षात्कार में उत्तीर्ण होने के बाद 16.06.2020 को नियुक्त किया गया था। तब से, वह अपने वरिष्ठों की संतुष्टि के लिए लगन से कार्य कर रहा है। लगभग तीन वर्ष की अवधि बीत जाने के कारण, याचिकाकर्ता की नियुक्ति को आक्षेपित आदेश द्वारा रद्द नहीं किया जा सकता। इसके बाद यह कहा गया कि

परिवीक्षा अवधि समाप्त होने और याचिकाकर्ता के विभाग का नियमित कर्मचारी बन जाने के बाद, नियमित विभागीय जाँच किए बिना उसकी नियुक्ति रद्द नहीं की जा सकती थी। इस मामले में जाँच उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियमावली, 1999 (संक्षेप में '1999 की नियमावली') के अंतर्गत निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार की जानी है, जो उत्तर प्रदेश सरकारी विभाग अधीनस्थ लेखा संवर्ग (अराजपत्रित) सेवा नियमावली, 2014 (संक्षेप में '2014 की नियमावली') के नियम 26 के अनुसार याचिकाकर्ता पर लागू होती है।

11. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने बताया कि याचिकाकर्ता ने 10.07.2012 से 05.08.2013 तक भारतीय तकनीकी संस्थान, आदर्श बाज़ार, गाज़ीपुर (संक्षेप में, 'तकनीकी संस्थान') से अध्ययन करते हुए अपना 'ओ' लेवल का कंप्यूटर प्रमाणपत्र प्राप्त किया। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी कि 07.07.2023 को कारण बताओ नोटिस जारी होने के बाद, याचिकाकर्ता ने राष्ट्रीय इलेक्ट्रॉनिक्स एवं सूचना प्रौद्योगिकी संस्थान (NIELIT) से अपना 'ओ' लेवल का कंप्यूटर प्रमाणपत्र पाठ्यक्रम पुनः उत्तीर्ण किया, जो उसे 30.05.2024 को प्रदान किया गया था। इसके बाद यह प्रस्तुत किया गया कि यदि तकनीकी संस्थान द्वारा कोई धोखाधड़ी की गई थी, तो याचिकाकर्ता, जो उक्त संस्थान का वास्तविक छात्र था, को तकनीकी संस्थान द्वारा उसके साथ की गई धोखाधड़ी के कारण पीड़ित नहीं बनाया जा सकता। याचिकाकर्ता को तकनीकी संस्थान द्वारा जारी 'ओ' लेवल कंप्यूटर प्रमाणपत्र के जाली और मनगढ़ंत होने के बारे में जानकारी नहीं थी। जहां तक उसका संबंध है, उसने आयोग या प्रतिवादियों के समक्ष, जिन्होंने उसे अपने प्रतिष्ठान में नियुक्त किया है, कोई भी भौतिक तथ्य नहीं छिपाया। श्री शुक्ला द्वारा इस बात पर जोर दिया गया है कि नियुक्ति रद्द करने के आदेश के रूप में लगाए गए आदेशों को पारित करने की आड़ में, याचिकाकर्ता की सेवाओं को समाप्त कर दिया गया है, जो अन्यथा एक नियमित और पुष्ट कर्मचारी है, जिसे नियमों के अनुसार नियुक्त किया गया था। आयोग द्वारा निर्धारित प्रक्रिया का पालन करने के बाद उनका चयन किया गया और फिर 16.06.2020 के आदेश के तहत निदेशक द्वारा नियुक्त किया गया। उन्हें एक कैडर पद पर नियुक्त किया गया था। दिनांक 22.12.2023 का आक्षेपित आदेश किसी परिवीक्षाधीन व्यक्ति को सेवा से मुक्त करने का आदेश नहीं है। यदि याचिकाकर्ता की सेवाएँ समाप्त करनी ही थीं, तो ऐसा 1999 के विनियमों और 2014 के विनियमों के अंतर्गत परिकल्पित नियमित अनुशासनात्मक कार्यवाही के भाग के रूप में विभागीय जाँच के बाद ही किया जा सकता था।

12. अपने प्रस्तुतीकरण के समर्थन में, श्री शुक्ला ने **अवतार सिंह बनाम भारत संघ और अन्य, (2016) 8 एससीसी 471** में सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार, **अभिराम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2020 एससीसी ऑनलाइन ऑल 2248** में न्यायमूर्ति पाडिया के निर्णय और **श्रीमती परमी मौर्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2014 (2) एडीजे 633 (डीबी)** में इस न्यायालय के एक खंडपीठ के निर्णय पर अवलम्ब लिया है।

13. प्रतिवादी संख्या 1, 2, 3, 5, 6 और 7 की ओर से विद्वान अपर महाधिवक्ता श्री मनीष गोयल के सहायक विद्वान स्थायी अधिवक्ता सुश्री आकांक्षा शर्मा ने मुख्य रूप से याचिकाकर्ता को उत्तर दिया है। श्री गोयल ने तर्क दिया है कि 'ओ' लेवल कंप्यूटर प्रमाणपत्र, जिसके बारे में याचिकाकर्ता ने दावा किया है कि उसने कोलकाता

विश्वविद्यालय से प्राप्त किया है, पूरी तरह से जाली है और उन्होंने न्यायालय का ध्यान प्रमाणपत्र की एक फोटोकॉपी की ओर आकर्षित किया है, जो इस न्यायालय द्वारा 25.09.2024 को जारी कारण बताओ नोटिस के जवाब में निदेशक, आंतरिक लेखा और लेखा परीक्षा, निदेशालय, उत्तर प्रदेश द्वारा दायर शपथपत्र के साथ संलग्न है। उन्होंने कहा है कि प्रमाणपत्र को देखने से पता चलता है कि यह 'कोलकाता विश्वविद्यालय' द्वारा जारी किया गया है। उनका कहना है कि 'कोलकाता विश्वविद्यालय' जैसा कोई विश्वविद्यालय नहीं है। 'कलकत्ता विश्वविद्यालय' खुद को 'कोलकाता विश्वविद्यालय' नहीं, बल्कि 'कलकत्ता विश्वविद्यालय' लिखता या वर्णित करता है। उन्होंने न्यायालय का ध्यान पिछले उल्लेखित कारण बताओ नोटिस के उत्तर के समर्थन में दायर उसी शपथपत्र की ओर भी आकर्षित किया है, जिसमें अनुलग्नक संख्या 2 के रूप में एक ज्ञापन संलग्न है, जिसका संदर्भ संख्या CE/Dip/Veri/11348/2023 दिनांक 26.09.2023 है, जो कलकत्ता विश्वविद्यालय के उप परीक्षा नियंत्रक द्वारा निदेशक, आंतरिक लेखा एवं लेखा परीक्षा, निदेशालय, उत्तर प्रदेश, लखनऊ को संबोधित है। उपरोक्त ज्ञापन में निदेशक, आंतरिक लेखा एवं लेखा परीक्षा, निदेशालय, उत्तर प्रदेश द्वारा पूछे गए प्रश्न के उत्तर में कहा गया है कि प्रस्तुत दस्तावेज़ कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा जारी नहीं किया गया है। इस प्रकार, श्री गोयल के अनुसार, कलकत्ता विश्वविद्यालय ने स्पष्ट रूप से इस बात से इनकार किया है कि उसने कभी 'ओ' लेवल का कंप्यूटर प्रमाणपत्र जारी किया है, जिस पर याचिकाकर्ता अपनी उम्मीदवारी के समर्थन में निर्भर है। उनका तर्क है कि सहायक लेखाकार के पद पर नियुक्ति के लिए 'ओ' लेवल का कंप्यूटर प्रमाणपत्र होना एक अनिवार्य योग्यता है। निदेशक द्वारा नियुक्ति रद्द करने का आदेश पारित करने से पहले, याचिकाकर्ता को कारण बताओ नोटिस और व्यक्तिगत सुनवाई सहित उचित अवसर दिया गया था। याचिकाकर्ता ने न तो उस प्रमाण पत्र पर विवाद किया, जिस पर उसने अपनी उम्मीदवारी के समर्थन में भरोसा किया था, और न ही कलकत्ता विश्वविद्यालय से प्राप्त सत्यापन रिपोर्ट पर। उसने न्यायालय का ध्यान प्रतिवादियों के दिनांक 07.06.2023 के पत्र के उत्तर में याचिकाकर्ता द्वारा कही गई बातों की ओर आकर्षित किया है, जिसमें उसे अपने 'ओ' लेवल के कंप्यूटर प्रमाण पत्र का सत्यापन करने के लिए कहा गया था। यह रिट याचिका पत्र पुस्तिका के पृष्ठ संख्या 76 पर दिया गया है और इसमें लिखा है:

"महोदय मेरे द्वारा 'ओ' लेवल वर्ष 2013 में किया गया है। जो कि आपके कार्यालय में जमा कर दिया गया है। जो सत्य है । निम्न document मैने जिन तथ्यो से अवगत कराया है। या जो अभिलेख प्रस्तुत किये है इसके अतिरिक्त और कुछ नही कहना है।"

14. विद्वान अपर महाधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि इस मामले में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करने के लिए नियमित अनुशासनात्मक कार्यवाही की आवश्यकता नहीं होगी क्योंकि याचिकाकर्ता की नियुक्ति ही एक जाली दस्तावेज पर आधारित है, जिससे याचिकाकर्ता इनकार नहीं करता है, वह वही दस्तावेज है जिस पर वह अपनी उम्मीदवारी के समर्थन में भरोसा करता है। इसलिए, नियमावली 1999 के नियम 7 के अनुसार, नियमित विभागीय जाँच या अनुशासनात्मक कार्यवाही न करने से याचिकाकर्ता को कोई नुकसान नहीं होगा। जहाँ तक NIELIT से याचिकाकर्ता द्वारा प्राप्त दिनांक 31.05.2024 के 'ओ' लेवल के कंप्यूटर प्रमाणपत्र का संबंध है, वह कोई मदद नहीं करेगा क्योंकि यह याचिकाकर्ता की नियुक्ति के बाद प्राप्त किया गया है। श्री गोयल ने इस

बात पर जोर दिया कि वास्तव में याचिकाकर्ता द्वारा कंप्यूटर में 'ओ' लेवल का प्रमाण पत्र प्राप्त करने का प्रयास, उसकी ओर से इस बात की स्वीकृति है कि जिस प्रमाण पत्र पर उसने अपनी उम्मीदवारी के समर्थन में भरोसा किया था, वह जाली था।

15. श्री मनीष गोयल ने **ए.पी. लोक सेवा आयोग बनाम कोनेटी वेंकटेश्वरुलु और अन्य, (2005) 7 एससीसी 177; देवेंद्र कुमार बनाम उत्तरांचल राज्य और अन्य, (2013) 9 एससीसी 363; मंजुल कुमार बनाम उ.प्र. राज्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन आल 2161; रीना देवी बनाम उ.प्र. राज्य, 2019 एससीसी ऑनलाइन आल 4783; और, भारत संघ और अन्य बनाम बिपद भंजन गायेन, (2008) 11 एससीसी 314** मामलों में सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार पर अवलम्ब लिया है।

16. हमने दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत प्रतिद्वन्द्वी दलीलों पर ध्यानपूर्वक विचार किया है तथा अभिलेख का अवलोकन किया है।

17. विचारणीय प्रश्न यह है कि, यदि सभी मामलों में, जहाँ किसी कर्मचारी को नियमों के अनुसार चयन के बाद सेवा में नियुक्त किया जाता है और सेवा में स्थायी किया जाता है, एक सामान्य नियम के रूप में, क्या उसकी सेवा समाप्त करने से पहले पूर्ण अनुशासनात्मक कार्यवाही करना अनिवार्य है, यदि मामला यह है कि उसने योग्यता के जाली दस्तावेजों का उपयोग करके धोखाधड़ी करके नियुक्ति प्राप्त की है? प्रश्न का निष्कर्ष यह है कि यदि कोई नियुक्ति पूरी तरह से धोखाधड़ी करके, जाली प्रशंसापत्रों के आधार पर प्राप्त की जाती है, तो क्या नियोक्ता को कर्मचारी के विरुद्ध नियमित अनुशासनात्मक कार्यवाही करने के लिए बाध्य किए बिना नियुक्ति रद्द की जा सकती है, भले ही वह सेवा में स्थायी हो, उसे कारण बताओ नोटिस देकर और दस्तावेज़ की वैधता पर उसकी सुनवाई करके।

18. अपने पक्ष में तर्क देने के लिए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अपनी दलीलों के दौरान **अवतार सिंह** (उपरोक्त) मामले का बहुत प्रभावी रूप से सन्दर्भित किया है, जो सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ का निर्णय है। **अवतार सिंह** मामले में दिए गए सिद्धांत और प्रासंगिक टिप्पणियाँ, जिनकी ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया गया था, रिपोर्ट के पैराग्राफ संख्या 33 से 38.11 में दी गई हैं। ये इस प्रकार हैं:

"33. धोखाधड़ी और गलत बयानी से लेन-देन ख़राब हो जाता है और यदि जाली दस्तावेज़ों के आधार पर रोज़गार प्राप्त किया गया है, जैसा कि एम. भास्करन मामले [यूनियन ऑफ़ इंडिया बनाम एम. भास्करन, 1995 सप्प (4) एससीसी 100: 1996 एससीसी (एल एंड एस) 162: (1996) 32 एटीसी 94] में देखा गया है, संदर्भ आदेश में यह भी देखा गया है कि यदि कोई नियुक्ति धोखाधड़ी से प्राप्त की गई थी, तो पदधारी को बिना कोई जांच किए समाप्त किया जा सकता है, हालाँकि, हम एक शर्त जोड़ते हैं कि यदि कर्मचारी की पुष्टि हो गई है, वह एक सिविल पद पर है और उसे अनुच्छेद 311(2) का संरक्षण प्राप्त है, तो सेवाओं को समाप्त करने से पहले उचित जांच की जानी चाहिए। जाली दस्तावेज़ों के आधार पर नियुक्ति प्राप्त करने का मामला संबंधित

पद के लिए पदधारी की पात्रता पर प्रभाव डालता है, हालाँकि, पूर्ववृत्त का सत्यापन संबंधित पद के लिए उसकी योग्यता का एक अलग पहलू है। धोखाधड़ी से प्राप्त नियुक्ति आदेश नियोक्ता के विकल्प पर रद्द किए जा सकते हैं, हालाँकि, इस आदेश में गलत जानकारी छिपाने या प्रस्तुत करने के प्रभाव पर की गई चर्चा के आलोक में प्रश्न का निर्धारण किया जाना है।

34. इसमें कोई संदेह नहीं है कि उपयुक्तता का आकलन करने के लिए चरित्र और पूर्ववृत्त का सत्यापन महत्वपूर्ण मानदंडों में से एक है और नियोक्ता को पदधारी के पूर्ववृत्त का आकलन करने की स्वतंत्रता है, लेकिन अंतिम कार्रवाई सभी प्रासंगिक पहलुओं पर उचित विचार के बाद वस्तुनिष्ठ मानदंडों पर आधारित होनी चाहिए।

35. "महत्वपूर्ण" जानकारी को छिपाने का तात्पर्य यह है कि जो छिपाया जा रहा है वह "महत्वपूर्ण" है, न कि केवल तकनीकी या मामूली मामला। नियोक्ता को उम्मीदवारी रद्द करने या कर्मचारी की सेवाएँ समाप्त करने के लिए शक्तियों का प्रयोग करते समय, यदि कोई हों, तो नियमों/निर्देशों पर उचित विचार करके कार्य करना होगा। हालाँकि, जिस व्यक्ति ने महत्वपूर्ण जानकारी छिपाई है, वह नियुक्ति या सेवा में निरंतरता के लिए अप्रतिबंधित अधिकार का दावा नहीं कर सकता, लेकिन उसे यह अधिकार है कि उसके साथ मनमाना व्यवहार न किया जाए और शक्ति का प्रयोग निष्पक्षता के साथ, मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, उचित तरीके से किया जाना चाहिए।

36. कौन सा मानदंड लागू किया जाए, यह पद की प्रकृति पर निर्भर करता है। उच्च पदों के लिए, केवल वर्दीधारी सेवा के लिए ही नहीं, सभी सेवाओं के लिए अधिक कठोर मानदंड लागू होंगे। निचले पदों के लिए, जो संवेदनशील नहीं हैं, कर्तव्यों की प्रकृति, उपयुक्तता पर दमन के प्रभाव पर संबंधित अधिकारियों द्वारा पद/कर्तव्यों/सेवाओं की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए विचार किया जाना चाहिए और विभिन्न पहलुओं पर उचित विचार करते हुए शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए।

37. "मैकार्थीवाद" संवैधानिक लक्ष्य के विपरीत है, उपयुक्त मामलों में युवा अपराधियों को सुधार का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए, सुधारात्मक सिद्धांत की परस्पर क्रिया को पूरी तरह से नकारा नहीं जा सकता है और न ही इसे सामान्य रूप से लागू किया जा सकता है, लेकिन उम्मीदवारी रद्द करने या किसी कर्मचारी को सेवा से बर्खास्त करने की शक्ति का प्रयोग करते समय इसे ध्यान में रखा जाना चाहिए।

38. हमने विभिन्न निर्णयों पर गौर किया है और यथासंभव उन्हें समझाने और उनमें सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया है। उपर्युक्त चर्चा के आधार पर, हम अपने निष्कर्ष को इस प्रकार संक्षेपित करते हैं:
38.1. किसी अभ्यर्थी द्वारा नियोक्ता को दोषसिद्धि, दोषमुक्ति या गिरफ्तारी, या किसी आपराधिक मामले के लंबित होने के संबंध में दी गई जानकारी, चाहे सेवा में आने से पहले हो या बाद में, सत्य होनी चाहिए और अपेक्षित जानकारी को छिपाया या गलत नहीं बताया जाना चाहिए।

38.2. झूठी जानकारी देने पर सेवा समाप्ति या अभ्यर्थिता रद्द करने का आदेश पारित करते समय, नियोक्ता ऐसी जानकारी देते समय मामले की विशेष परिस्थितियों, यदि कोई हो, का ध्यान रख सकता है।

38.3. नियोक्ता निर्णय लेते समय कर्मचारी पर लागू सरकारी आदेशों/निर्देशों/नियमों को ध्यान में रखेगा।

38.4. यदि किसी आपराधिक मामले में संलिप्तता की सूचना छिपाई गई हो या झूठी सूचना दी गई हो, जहाँ आवेदन/सत्यापन प्रपत्र भरने से पहले ही दोषसिद्धि या दोषमुक्ति दर्ज की जा चुकी हो और ऐसा तथ्य बाद में नियोक्ता के संज्ञान में आए, तो मामले के लिए उपयुक्त निम्नलिखित में से कोई भी उपाय अपनाया जा सकता है:

38.4.1. किसी ऐसे मामले में जो प्रकृति में मामूली हो, जिसमें दोषसिद्धि दर्ज की गई हो, जैसे कि कम उम्र में नारे लगाना या कोई छोटा-मोटा अपराध, जिसका खुलासा होने पर कोई पदधारी संबंधित पद के लिए अयोग्य नहीं होता, नियोक्ता अपने विवेकानुसार, चूक को अनदेखा करके तथ्य के ऐसे छिपाए जाने या झूठी सूचना को अनदेखा कर सकता है।

38.4.2. जहाँ किसी ऐसे मामले में दोषसिद्धि दर्ज की गई हो जो प्रकृति में मामूली न हो, नियोक्ता कर्मचारी की उम्मीदवारी रद्द कर सकता है या उसकी सेवाएँ समाप्त कर सकता है।

38.4.3. यदि नैतिक अधमता या जघन्य/गंभीर प्रकृति के अपराध से संबंधित मामले में तकनीकी आधार पर पहले ही दोषमुक्ति दर्ज की जा चुकी है और यह स्पष्ट दोषमुक्ति का मामला नहीं है, या उचित संदेह का लाभ दिया गया है, तो नियोक्ता पूर्ववर्ती के संबंध में उपलब्ध सभी प्रासंगिक तथ्यों पर विचार कर सकता है, और कर्मचारी की सेवा जारी रखने के संबंध में उचित निर्णय ले सकता है।

38.5. ऐसे मामले में जहां कर्मचारी ने किसी समाप्त हो चुके आपराधिक मामले की घोषणा सत्यतापूर्वक की है, नियोक्ता को अभी भी पूर्ववृत्त पर विचार करने का अधिकार है, और उसे उम्मीदवार को नियुक्त करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है।

38.6. ऐसे मामले में जहां चरित्र सत्यापन प्रपत्र में किसी तुच्छ प्रकृति के आपराधिक मामले के लंबित होने के संबंध में तथ्य सत्यतापूर्वक घोषित किया गया हो, नियोक्ता, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, अपने विवेकानुसार, ऐसे मामले के निर्णय के अधीन उम्मीदवार को नियुक्त कर सकता है।

38.7. कई लंबित मामलों के संबंध में जानबूझकर तथ्य छिपाने के मामले में ऐसी झूठी सूचना अपने आप में महत्वपूर्ण हो जाएगी और नियोक्ता उम्मीदवारी रद्द करने या सेवाएं समाप्त करने का उचित आदेश पारित कर सकता है क्योंकि ऐसे व्यक्ति की नियुक्ति, जिसके विरुद्ध कई आपराधिक मामले लंबित हों, उचित नहीं हो सकती है।

38.8 यदि कोई आपराधिक मामला लंबित है, लेकिन फॉर्म भरते समय अभ्यर्थी को इसकी जानकारी नहीं है, तो भी इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है और नियुक्ति प्राधिकारी अपराध की गंभीरता पर विचार करने के बाद निर्णय लेगा।

38.9. यदि कर्मचारी की सेवा स्थायी है, तो सत्यापन प्रपत्र में गलत जानकारी छिपाने या प्रस्तुत करने के आधार पर सेवा समाप्ति/निष्कासन या बर्खास्तगी का आदेश पारित करने से पहले विभागीय जांच करना आवश्यक होगा।

38.10. छिपाई गई या गलत जानकारी का निर्धारण करने के लिए सत्यापन/सत्यापन प्रपत्र विशिष्ट होना चाहिए, अस्पष्ट नहीं। केवल वही जानकारी प्रकट की जानी चाहिए जिसका विशेष रूप से उल्लेख किया जाना आवश्यक था। यदि नियोक्ता को ऐसी जानकारी प्राप्त होती है जो मांगी नहीं गई है, लेकिन प्रासंगिक है, तो उपयुक्तता के प्रश्न का समाधान करते समय उस पर निष्पक्ष रूप से विचार किया जा सकता है। हालाँकि, ऐसे मामलों में किसी तथ्य के बारे में जानकारी छिपाने या गलत जानकारी प्रस्तुत करने के आधार पर कार्रवाई नहीं की जा सकती, जिसके बारे में पूछा ही नहीं गया था।

38.11. किसी व्यक्ति को सत्य को दबाने या मिथ्या सुझाव देने का दोषी ठहराए जाने से पहले, तथ्य की जानकारी उसे अवश्य होनी चाहिए।"

19. निस्संदेह, **अवतार सिंह** मामले के पैराग्राफ संख्या 33 और पैराग्राफ संख्या 38 के उप-पैरा (9) में की गई टिप्पणियों को पढ़ने पर, ऐसा प्रतीत होता है कि यदि कर्मचारी की सेवा में पुष्टि हो गई है, तो सत्यापन फॉर्म में गलत जानकारी छिपाने या प्रस्तुत करने के आधार पर किसी लोक सेवक के खिलाफ समाप्ति, हटाने या बर्खास्तगी का आदेश पारित करने से पहले विभागीय जांच करना अनिवार्य है। लेकिन, अवतार सिंह मामले में दिए गए फैसले को तथ्यों और मुद्दे के संदर्भ में समझा जाना चाहिए, जिसके संबंध में सिद्धांत निर्धारित किए गए थे। यह एक ऐसा सिद्धांत है जो संदेह के लिए बहुत अच्छी तरह से स्थापित है कि एक निर्णय वास्तव में जो निर्णय लेता है उसके लिए एक मिसाल है। इसके अलावा, एक फैसले में दिए गए सिद्धांतों को तथ्यों और इसमें शामिल विवाद के संदर्भ में समझा जाना चाहिए, जिससे यह सूची उत्पन्न होती है।

20. **अवतार सिंह** मामले में उनके माननीय तीन न्यायाधीशों की पीठ के समक्ष दो न्यायाधीशों की खंडपीठों की परस्पर विरोधी राय थी, जिसे **जैनेंद्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2012) 8 एससीसी 748** मामले में खंडपीठ द्वारा आधिकारिक घोषणा के लिए भेजा गया था। **जैनेंद्र सिंह** (उपरोक्त) मामले में खंडपीठ ने इस प्रश्न पर सर्वोच्च न्यायालय के दो न्यायाधीशों वाली विभिन्न खंडपीठों के बीच विभाजित राय देखी थी कि क्या 'आपराधिक मुकदमा चलाए जाने, गिरफ्तार किए जाने या किसी आपराधिक मामले के लंबित होने के प्रश्न के संबंध में सत्यापन फॉर्म में सूचना को दबाना या गलत सूचना प्रस्तुत करना', सरकारी सेवा में नियुक्त कर्मचारी के अधिकारों पर प्रभाव डालेगा। उक्त प्रश्न और परस्पर विरोधी मत के संदर्भ में ही **अवतार सिंह** मामले में तीन न्यायाधीशों की पीठ ने उपरोक्त सिद्धांत निर्धारित किए थे। अतः, यह स्पष्ट है कि **अवतार सिंह** मामले में दिए गए सिद्धांतों को, तथ्यों का पता चलने पर, किसी सरकारी कर्मचारी द्वारा भर्ती के समय सेवा में बने रहने के अपने अधिकार के बारे में गलत जानकारी छिपाने या प्रस्तुत करने के संदर्भ में लिया गया है। ये उस मामले में लागू नहीं होते जो पूरी तरह से किसी उम्मीदवार द्वारा पात्रता को नियंत्रित करने वाली जाली शैक्षिक योग्यताओं, या यूँ कहें कि आवश्यक योग्यताओं के आधार पर धोखाधड़ी से नौकरी हासिल करने के आरोप पर आधारित है। इसलिए, हमारी राय में, याचिकाकर्ता द्वारा **अवतार सिंह** मामले में दिए गए सिद्धांतों पर भरोसा करना उसके लिए अधिक सहायक नहीं होगा।

21. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **परमी मौर्य** (उपरोक्त) मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ के निर्णय में विश्वास व्यक्त किया है। उन्होंने न्यायालय का ध्यान **परमी मौर्य** मामले में प्रस्तुत रिपोर्ट के पैराग्राफ संख्या 7, 9 और 10 की ओर आकर्षित किया है। ये पैराग्राफ इस प्रकार हैं:

"7. इन तथ्यों के आधार पर, हमारे विचार से, विद्वान एकल न्यायाधीश ने अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तुत प्रमाणपत्र और अंकतालिकाएँ असली थीं या नहीं, यह निर्धारित करने का कार्य न्यायालय को सौंपकर स्पष्ट रूप से त्रुटि की थी। यह, संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का हिस्सा नहीं था। जब राज्य के किसी कर्मचारी के विरुद्ध कदाचार का कोई ठोस आरोप लगाया जाता है, तो अनुशासनात्मक जाँच के दौरान कदाचार सिद्ध करना आवश्यक होता है। यह उन मामलों में से नहीं है जहाँ विभागीय जाँच से छूट दी गई हो या ऐसी जाँच से छूट देने का आधार बनाया गया हो। उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियमावली, 1999 के नियम 7 में वृहद दंड लगाने की विस्तृत प्रक्रिया निर्धारित है। यह सच है कि इस प्रकार की कोई प्रक्रिया नहीं अपनाई गई क्योंकि कोई अनुशासनात्मक जाँच न तो बुलाई गई और न ही आयोजित की गई।

9. अतः वर्तमान मामले के तथ्य स्पष्ट रूप से अलग-अलग हैं। कदाचार का आरोप विधिवत सिद्ध होना आवश्यक है। चूँकि कोई अनुशासनात्मक जाँच नहीं हुई, इसलिए आरोप कभी सिद्ध नहीं हुआ।

10. इस मामले में, हमारा मानना है कि विद्वान एकल न्यायाधीश का निर्णय और आदेश बनाये रखने योग्य नहीं है और विशेष अपील स्वीकार की जानी चाहिए। तदनुसार, हम निम्नलिखित निर्देशों के अनुसार विशेष अपील स्वीकार करते हैं:

(i) विद्वान एकल न्यायाधीश का 24 सितंबर 2013 का निर्णय रद्द और अपास्त किया जाता है;

(ii) परिणामस्वरूप, 30 नवंबर 2010 का सेवा समाप्ति आदेश रद्द माना जाएगा और;

(iii) प्रतिवादियों को कदाचार के आरोप के संबंध में विभागीय जाँच करने और उसके बाद कानून के अनुसार आवश्यक कार्रवाई करने की स्वतंत्रता होगी।"

22. इसमें कोई संदेह नहीं कि **परमी मौर्य** मामले के तथ्यों को पढ़ने पर, ऐसा प्रतीत होता है कि वहाँ दिया गया सिद्धांत यहाँ उठने वाले बिंदु के करीब है, लेकिन **परमी मौर्य** एक ऐसा मामला था जिसके बाद इस सिद्धांत पर सर्वोच्च न्यायालय का ध्यान गया, जो **परमी मौर्य** का समर्थन बिल्कुल नहीं कर सकता। इस न्यायालय द्वारा **नरेंद्र कुमार त्रिपाठी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2021 (1) एडीजे 654** में इस मुद्दे की जाँच की गई थी, और पंजाब शहरी नियोजन एवं विकास प्राधिकरण बनाम करमजीत सिंह, (2019) 16 एससीसी 782 के विस्तृत संदर्भ के बाद, इस न्यायालय ने यह निर्णय दिया:

"13. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि हमारे न्यायालयों का यह निरंतर मत रहा है कि जहाँ नियुक्ति धोखाधड़ी या मिथ्याबयान द्वारा प्राप्त होने का आरोप लगाया गया हो, वहाँ अनुशासनात्मक कार्यवाही के संचालन हेतु सामान्य नियमों का पालन नहीं किया जाना चाहिए। ऐसा इसलिए क्योंकि ऐसी स्थिति में सेवा समाप्ति रोजगार के

दौरान किए गए किसी कदाचार के कारण नहीं होती। ऐसी स्थिति में केवल इतना ही आवश्यक है कि कर्मचारी को सूचित किया जाए और प्राकृतिक न्याय के मूल सिद्धांतों का पालन किया जाए।

*14. **परमी मौर्या** मामला एक ऐसा मामला था जहाँ कर्मचारी द्वारा मनगढ़ंत आरोप पर गंभीर विवाद और चुनौती दी गई थी, जबकि कर्मचारी को वह सामग्री भी उपलब्ध नहीं कराई गई थी जिसके आधार पर उस आरोप को सिद्ध करने की कोशिश की गई थी। यह याद रखना उचित होगा कि उपरोक्त के विपरीत, यहाँ याचिकाकर्ता मनगढ़ंत आरोप पर विवाद नहीं करता है। इस प्रकार यह निर्णय स्पष्ट रूप से अलग है और याचिकाकर्ता के पक्ष में नहीं आता है। अभिराम मामले में दिया गया निर्णय केवल उपरोक्त निर्णय का अनुसरण करता है, इस न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय के अन्य निर्णयों पर ध्यान दिए बिना, जिन्होंने लगातार इसके विपरीत निर्णय दिया है और स्पष्ट शब्दों में यह विधि निर्धारित की है कि जहाँ प्रारंभिक नियुक्ति धोखाधड़ी से प्राप्त की गई हो, वहाँ नियमित विभागीय जाँच नहीं की जा सकती और इस प्रकार यह शून्य और असंवैधानिक है। यह निश्चित रूप से इस चेतावनी के अधीन है और जैसा कि ऊपर कहा गया है, कि प्राकृतिक न्याय के मूलभूत सिद्धांतों का अनिवार्य रूप से पालन किया जाना चाहिए।"*

23. हमें यह टिप्पणी करनी चाहिए कि **परमी मौर्या** एक ऐसा मामला था, जहां निर्माण के आरोप पर कर्मचारी द्वारा गंभीर विवाद किया गया और उसे चुनौती दी गई, जबकि **नरेंद्र कुमार त्रिपाठी** (उपरोक्त) में निर्माण के आरोप को न्यायालय ने विवादित नहीं बताया था। यह उन मानदंडों में से एक था, जिसके आधार पर **परमी मौर्या** को **नरेंद्र कुमार त्रिपाठी** के मामले में लागू नहीं माना गया था। बेशक, इसे अभिराम (उपरोक्त) में भी लागू नहीं माना गया था, इस कारण से कि अभिराम ने इस न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय के अन्य निर्णयों पर ध्यान दिए बिना **परमी मौर्या** का अनुसरण किया था, जहां एक विपरीत दृष्टिकोण लिया गया था। यहां यह भी टिप्पणी की जानी चाहिए कि हालांकि इस मामले में याचिकाकर्ता, नरेंद्र कुमार त्रिपाठी के विपरीत, अपने 'ओ' लेवल के कंप्यूटर प्रमाणपत्र के जाली होने के आरोप का विवाद करता है, लेकिन इनकार एक औपचारिकता मात्र है।

24. हम ऐसा इसलिए कह रहे हैं क्योंकि याचिकाकर्ता उस दस्तावेज़ पर कोई विवाद नहीं करता, जिसे वह कोलकाता विश्वविद्यालय से प्राप्त कंप्यूटर में 'ओ' लेवल का प्रमाणपत्र कहता है, और प्रतिवादियों द्वारा कलकत्ता विश्वविद्यालय से प्राप्त 26.09.2023 की सत्यापन रिपोर्ट की प्रामाणिकता पर भी कोई विवाद नहीं करता, जिसमें याचिकाकर्ता के कंप्यूटर में 'ओ' लेवल के प्रमाणपत्र को अस्वीकार किया गया है। याचिकाकर्ता, यदि चाहता, तो कलकत्ता विश्वविद्यालय से विपरीत रिपोर्ट प्रस्तुत करके सत्यापन रिपोर्ट पर विवाद कर सकता था, जिसमें कंप्यूटर में 'ओ' लेवल के प्रमाणपत्र की पुष्टि की गई हो, जिस पर वह अपनी उम्मीदवारी के समर्थन में निर्भर है। यदि ऐसा होता, तो मामला आरोपों से जुड़े तथ्यों पर पर्याप्त विवाद से जुड़ा हो सकता था, जो याचिकाकर्ता जैसे स्थायी कर्मचारी के मामले में प्रतिवादियों को अनुशासनात्मक कार्यवाही करने के लिए बाध्य करता। यह एक ऐसा मामला है जहाँ धोखाधड़ी और जालसाजी से इनकार नहीं किया जा सकता और दोनों ही प्रत्यक्ष रूप से स्पष्ट हैं।

25. हमने 'ओ' लेवल कंप्यूटर प्रमाणपत्र की फोटोस्टेट प्रति का अवलोकन किया है, जिस पर याचिकाकर्ता ने भरोसा किया है और जिसे कारण बताओ नोटिस के उत्तर में निदेशक, आंतरिक लेखा एवं लेखा परीक्षा निदेशालय, उत्तर प्रदेश, लखनऊ द्वारा दायर शपथपत्र के साथ अनुलग्नक संख्या 1 के रूप में संलग्न किया है। इस प्रमाणपत्र का उल्लेख निदेशक द्वारा पूर्वोक्त शपथपत्र के पैरा संख्या 8 में किया गया है। याचिकाकर्ता ने निदेशक द्वारा दायर इस शपथपत्र के विरुद्ध एक प्रति-शपथपत्र दायर किया है। याचिकाकर्ता द्वारा दायर प्रति-शपथपत्र के पैरा संख्या 7 में, निदेशक के शपथपत्र (कारण बताओ नोटिस के उत्तर में) के पैरा संख्या 7 से 11 की विषयवस्तु का उत्तर दिया गया है। यह कहा गया है कि ये सभी पैराग्राफ गलत, त्रुटिपूर्ण और अस्वीकृत हैं, लेकिन इनमें कहीं भी यह नहीं कहा गया है कि निदेशक के शपथपत्र के साथ संलग्नक संख्या 1 के रूप में संलग्न दस्तावेज़ वह 'ओ' लेवल कंप्यूटर प्रमाणपत्र नहीं है, जिस पर याचिकाकर्ता अपनी उम्मीदवारी का दावा करता है। केवल इतना कहा गया है कि याचिकाकर्ता ने उक्त संस्थान में 10.07.2012 से 05.08.2013 तक अध्ययन करने के बाद तकनीकी संस्थान से 'ओ' लेवल कंप्यूटर कोर्स किया था। उन्होंने अपने प्रति-शपथपत्र के साथ तकनीकी संस्थान द्वारा जारी पहचान पत्र की एक सत्य प्रति और उसी संस्थान द्वारा प्रदान किए गए प्रमाण पत्र की एक प्रति भी संलग्न की है। इस प्रकार, तथ्यतः, अनुलग्नक संख्या 1 के रूप में संलग्न दस्तावेज़ अस्वीकार नहीं किया गया है, जो कंप्यूटर में 'ओ' लेवल से संबंधित दिनांक 22.08.2013 का प्रमाण पत्र है, जिस पर याचिकाकर्ता ने प्रतिवादियों के समक्ष अपनी उम्मीदवारी के समर्थन में भरोसा किया था।

26. हमने तकनीकी संस्थान द्वारा जारी प्रमाण पत्र की भी जाँच की है, जिसमें याचिकाकर्ता का कहना है कि उसने कोलकाता विश्वविद्यालय से उक्त प्रमाण पत्र प्राप्त करने के लिए एक वर्ष तक पढ़ाई की। यह प्रमाण पत्र दिनांक 15.03.2022 की फोटोस्टेट प्रति है। तकनीकी संस्थान के लेटरहेड पर यह नहीं लिखा है कि यह कलकत्ता विश्वविद्यालय से संबद्ध है और उसकी विषयवस्तु, जिसमें कहा गया है कि याचिकाकर्ता ने संस्थान में अध्ययन किया है, हाथ से लिखी गई है। यह कहना गलत होगा कि हस्तलिखित प्रमाणपत्र किसी अधिकृत और प्रामाणिक शैक्षणिक संस्थान द्वारा जारी नहीं किया जा सकता, लेकिन प्रमाणपत्र को देखने से यह विश्वास बिल्कुल नहीं होता कि तकनीकी संस्थान का कलकत्ता विश्वविद्यालय से कोई संबंध है। कंप्यूटर में 'ओ' लेवल के जिस प्रमाणपत्र पर याचिकाकर्ता ने भरोसा किया है, उसके शीर्ष पर लिखा है, "कोलकाता विश्वविद्यालय, भारतीय तकनीकी संस्थान (सूचना प्रौद्योगिकी विभाग, संचार और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय, भारत सरकार की एक स्वायत्त वैज्ञानिक संस्था) के साथ, (एआईसीटीई-डीआईटी योजना) के तहत कंप्यूटर पाठ्यक्रमों के प्रत्यायन हेतु।" इस प्रमाणपत्र के बाईं ओर सबसे ऊपर विश्वविद्यालय का मोनोग्राम है, जिसमें इसे 'कलकत्ता विश्वविद्यालय' बताया गया है। इसकी बाकी सामग्री और डिज़ाइन कलकत्ता विश्वविद्यालय के मोनोग्राम के समान ही है। लेकिन, सबसे ऊपर, विश्वविद्यालय को 'कोलकाता विश्वविद्यालय' बताया गया है। कलकत्ता विश्वविद्यालय अपने किसी भी दस्तावेज़ या वेबसाइट में खुद को कोलकाता विश्वविद्यालय नहीं बताता। ये स्पष्ट तथ्य हैं, जो स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं कि यह प्रमाणपत्र जालसाज़ी का नतीजा है। इसके अलावा, जिस तरह से प्रमाणपत्र में इसे कोलकाता विश्वविद्यालय द्वारा तकनीकी संस्थान के साथ जारी किया गया बताया गया है, जिसमें यह उल्लेख नहीं है कि यह तकनीकी संस्थान कहाँ स्थित है, उससे जालसाज़ी का अनुमान लगाना असंभव हो जाता है।

27. इसके अलावा, प्रमाण पत्र के शीर्ष पर कुछ और गैर-ज़िम्मेदाराना बातें लिखी हैं, जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है। इसमें तकनीकी संस्थान को सूचना प्रौद्योगिकी विभाग, संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय, भारत सरकार की एक स्वायत्त वैज्ञानिक संस्था बताया गया है, जो (एआईसीटीई-डीआईटी योजना) के तहत कंप्यूटर पाठ्यक्रमों के प्रत्यायन के लिए कार्यरत है। ऐसा कोई सबूत नहीं है जिससे पता चले कि यह संस्थान भारत सरकार के सूचना प्रौद्योगिकी विभाग आदि की एक स्वायत्त वैज्ञानिक संस्था है। अदालत को ऐसा कुछ भी नहीं दिखाया गया है जिससे पता चले कि भारत सरकार का तकनीकी संस्थान जैसी किसी स्वायत्त वैज्ञानिक संस्था से कोई लेना-देना है। जिस लेटरहेड पर याचिकाकर्ता को दिनांक 15.03.2022 का प्रमाणपत्र जारी किया गया है, उसमें तकनीकी संस्थान के संगठन की प्रकृति के बारे में कुछ भी नहीं बताया गया है। इसमें यह भी नहीं बताया गया है कि यह कलकत्ता विश्वविद्यालय से संबद्ध है या यह सूचना प्रौद्योगिकी विभाग के अंतर्गत एक स्वायत्त वैज्ञानिक संस्था है।

28. याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 22.08.2013 को कोलकाता विश्वविद्यालय द्वारा जारी कंप्यूटर में 'ओ' लेवल प्रमाण पत्र पर वापस आते हुए, इसे 'परीक्षा नियंत्रक, कोलकाता' द्वारा हस्ताक्षरित दिखाया गया है। इसमें यह भी नहीं लिखा है कि इस पर कलकत्ता विश्वविद्यालय के परीक्षा नियंत्रक के हस्ताक्षर हैं। इस पर तकनीकी संस्थान के कार्यकारी निदेशक के भी हस्ताक्षर हैं। ये ऐसे तथ्य हैं जो प्रत्यक्षतः दर्शाते हैं कि याचिकाकर्ता द्वारा जिस कंप्यूटर 'ओ' लेवल के प्रमाणपत्र पर भरोसा किया गया है, वह जालसाजी का परिणाम है। हम कहते हैं कि यह दस्तावेज़ जाली है, क्योंकि इसे कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा जारी किया गया बताया गया है और इस पर उक्त विश्वविद्यालय के परीक्षा नियंत्रक के हस्ताक्षर हैं, जबकि वास्तव में ऐसा नहीं है। यही बात इस दस्तावेज़ को जाली बनाती है। यह बात तब और पुख्ता हो जाती है जब हम कलकत्ता विश्वविद्यालय के उप परीक्षा नियंत्रक द्वारा जारी ज्ञापन संख्या CE/Dip/Veri/11348/2023 दिनांक 26.09.2023 को देखते हैं। यह ज्ञापन कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा निदेशक, आंतरिक लेखा एवं लेखा परीक्षा निदेशालय, उत्तर प्रदेश द्वारा पूछे गए एक प्रश्न के उत्तर में जारी किया गया था, जिसमें पूछा गया था कि क्या याचिकाकर्ता को कंप्यूटर में 'ओ' लेवल का प्रमाणपत्र विश्वविद्यालय द्वारा प्रदान किया गया था। यद्यपि एक निर्धारित प्रपत्र में स्पष्ट उत्तर यह है कि प्रस्तुत दस्तावेज़ कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा जारी नहीं किया गया था। इसलिए, इसमें कोई संदेह नहीं है कि याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी नियुक्ति के लिए आवश्यक योग्यता से संबंधित एक पूरी तरह से जाली दस्तावेज़ पर आधारित है। इसलिए, याचिकाकर्ता की नियुक्ति धोखाधड़ी से घिरी हुई है।

29. अब, यह प्रश्न कि क्या किसी कर्मचारी को, जो सेवा में स्थायी हो चुका है, लेकिन यह पाया गया है कि उसने फर्जी पात्रता प्रमाणपत्रों के आधार पर धोखाधड़ी करके अपनी नियुक्ति प्राप्त की है, बिना अनुशासनात्मक कार्यवाही के नियुक्ति रद्द की जा सकती है, हमारा मानना है कि इस न्यायालय द्वारा **नरेंद्र कुमार त्रिपाठी** और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **करमजीत सिंह** (उपरोक्त) मामले में याचिकाकर्ता के विरुद्ध पर्याप्त उत्तर दिया गया है। घोर धोखाधड़ी से प्राप्त नियुक्ति, भले ही कर्मचारी सेवा में स्थायी हो गया हो, उसे अनुशासनात्मक कार्यवाही का हकदार नहीं बनाती, जहाँ धोखाधड़ी स्पष्ट है और किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए दोनों पक्षों के साक्ष्यों पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है। बेशक, कर्मचारी को कारण बताओ नोटिस का अधिकार

है, जो इस मामले में पर्याप्त मात्रा में दिया गया है। याचिकाकर्ता को दिनांक 07.06.2023 को कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था, जिसका जवाब उसने 26.06.2023 को प्रस्तुत किया। निदेशक द्वारा याचिकाकर्ता को दिनांक 12.10.2023 को दूसरा कारण बताओ नोटिस जारी किया गया, जिसमें उसे कंप्यूटर में अपने 'ओ' लेवल के प्रमाणपत्र की वैधता के संबंध में स्पष्टीकरण देने के लिए कहा गया था। इसलिए, यह ऐसा मामला नहीं है जहाँ याचिकाकर्ता को फर्जी पात्रता प्रमाण पत्र के आधार पर उसकी नियुक्ति को अमान्य करने वाले धोखाधड़ी के मामले में अपनी बात रखने का कोई अवसर नहीं दिया गया। इस तरह के मामले में, जहाँ धोखाधड़ी स्पष्ट है, कानून नियमित अनुशासनात्मक कार्यवाही की आवश्यकता नहीं रखता। आखिरकार, इस मामले में, धोखाधड़ी मामले की जड़ तक जाती है, और याचिकाकर्ता की नियुक्ति और सेवा के आरंभ में पद धारण करने के उसके अधिकार को ही दूषित करती है। यह उसके रोजगार के दौरान किए गए कदाचार का मामला नहीं है। इसका सेवा संबंधी कदाचार से कोई लेना-देना नहीं है। यह उसकी उम्मीदवारी की वैधता का मामला है।

30. हमारा मत है कि इस तरह के मामले में, एक स्थायी कर्मचारी भी, यहाँ लागू 1999 के विनियमों के तहत अनुशासनात्मक कार्यवाही का हकदार नहीं होगा। लेकिन, उसे कारण बताओ नोटिस और उचित अवसर देने का अधिकार होगा, जो इस मामले में याचिकाकर्ता को दिया गया है। इस संबंध में **मंजुल कुमार** (उपरोक्त) का संदर्भ लिया जा सकता है, जो एक सहायक अध्यापक का मामला था, जिसने फर्जी इंटरमीडिएट अंकतालिका, फर्जी बी.एससी. डिग्री और फर्जी शिक्षक पात्रता परीक्षा प्रमाण पत्र के आधार पर पंडित दीनदयाल पूर्व माध्यमिक विद्यालय, बिटिया, बेलहर, जिला संत कबीर नगर में नौकरी हासिल की थी। इन तथ्यों के संदर्भ में, न्यायमूर्ति सुनीत कुमार ने टिप्पणी की:

"11. इसका अर्थ यह है कि जब कोई उम्मीदवार जाली और मनगढ़ंत दस्तावेजों के आधार पर झूठा दावा पेश करके नियुक्ति प्राप्त करता पाया जाता है, तो उस व्यक्ति की सुरक्षा के लिए अनुच्छेद 226 के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करना विधि के शासन का उल्लंघन होगा। सामाजिक भलाई ईमानदारी सुनिश्चित करने में निहित है। यही एकमात्र तरीका है जिससे व्यवस्था की पवित्रता बनी रहेगी। कानूनी व्यवस्था को उन लोगों का समर्थन करने के माध्यम के रूप में नहीं देखा जा सकता जो जाली शैक्षिक दस्तावेजों के आधार पर झूठे दावे करते हैं।

12. राष्ट्र झूठ पर नहीं जी सकता। न्यायालय विधि-शासन की रक्षा में एक महत्वपूर्ण संस्थागत भूमिका निभाते हैं। न्यायिक प्रक्रिया का उपयोग अनैतिक लोगों को बचाने और समता के दिखावटी बहाने से किसी धोखेबाज़ को मिलने वाले लाभों को संरक्षित करने के लिए नहीं किया जाना चाहिए। (संदर्भ: निधि कैम बनाम मध्य प्रदेश राज्य)। याचिकाकर्ता द्वारा इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि दस्तावेजों का सक्षम प्राधिकारियों द्वारा विधिवत सत्यापन किया गया था और प्रमाण पत्र प्रदान करने वाले प्राधिकारियों ने प्रमाणित किया है कि याचिकाकर्ता द्वारा जिन दस्तावेजों पर भरोसा किया गया है, वे जाली और मनगढ़ंत दस्तावेज हैं। इन परिस्थितियों में याचिकाकर्ता को पद पर बने रहने और वेतन पाने का कोई अधिकार नहीं है। जिस आधार पर यह नियुक्ति आधारित है, वह मूलतः अमान्य है। अधिकारियों को नियुक्ति रद्द करने के अलावा और कुछ नहीं करना है। याचिकाकर्ता को सेवा में बने रहने और वेतन देने की अनुमति देने से धोखाधड़ी और मिथ्याबयानबाजी को

बढ़ावा मिलेगा, जो कानून के शासन का उल्लंघन होगा। याचिकाकर्ता, उसके पिता (लिपिक) और तत्कालीन बेसिक शिक्षा अधिकारी को पूरी जानकारी थी कि याचिकाकर्ता ने धोखाधड़ी से नियुक्ति प्राप्त की है।"

31. **राज कुमार सक्सेना बनाम बेसिक शिक्षा परिषद उ.प्र. एवं अन्य, 2019 एससीसी ऑनलाइन ऑल 4256** में कर्मचारी की अवैध एवं शून्य स्वीकृति के माध्यम से प्राप्त नियुक्ति के संदर्भ में भी यही मुद्दा उठा था। उक्त मामले में, इस बिंदु पर बहुत से प्रासंगिक प्राधिकारियों से विचार-विमर्श के बाद, यह माना गया था:

"35. इस विशिष्ट प्रश्न पर कि याचिकाकर्ता को 7 वर्ष की आयु में गोद लिए जाने के बावजूद, उसके जैविक माता-पिता के नाम हाई स्कूल और इंटरमीडिएट प्रमाणपत्रों में कैसे दर्ज हो गए। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने रवींद्र कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में इस न्यायालय की एकल पीठ द्वारा दिए गए निर्णय का हवाला देते हुए तर्क दिया कि हाई स्कूल और इंटरमीडिएट परीक्षा बोर्ड हाई स्कूल/और इंटरमीडिएट प्रमाणपत्रों में दत्तक माता-पिता के बजाय जैविक माता-पिता के नाम दर्ज करता है, इसलिए प्रमाणपत्रों में दत्तक माता के नाम नहीं, बल्कि जैविक माता-पिता के नाम दर्ज हुए। रवींद्र कुमार (उपरोक्त) में प्राप्त तथ्य अलग-अलग हैं। गोद लेने का विलेख एक पंजीकृत और वैध विलेख था; याचिकाकर्ता ने उसमें सुधार के लिए बोर्ड से संपर्क किया था, जिसे बोर्ड ने ऐसे सुधार की अनुमति देने वाले नियमों के अभाव में अस्वीकार कर दिया था। इस मामले में ऐसा नहीं है। गोद लेने का विलेख अवैध है और कानूनन लागू नहीं होता।

36. प्रथम दृष्टया यह दलील इस कारण से अस्वीकार्य है कि याचिकाकर्ता को उसके अपने मामले के अनुसार 7 वर्ष की आयु में गोद लिया गया था और अधिनियम, 1956 की धारा 12 के मद्देनजर, सभी प्रयोजनों के लिए गोद लिया गया बच्चा अपने दत्तक माता-पिता का बच्चा माना जाएगा। हालाँकि, दत्तक माता का नाम किसी भी प्रमाणपत्र (कक्षा 10 और 12) में दर्ज नहीं है। न ही उत्तर प्रदेश पंचायत राज (परिवार रजिस्टर का रखरखाव) नियमावली, 1970 के तहत तैयार परिवार रजिस्टर में ऐसा कोई संदर्भ मिलता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि कक्षा 12 की परीक्षा देने तक, कथित दत्तक विलेख प्रकाशित नहीं हुआ था। अनुकंपा नियुक्ति प्राप्त करने के उद्देश्य से एक अपंजीकृत दत्तक विलेख निष्पादित करवाना एक बाद का विचार था। ऐसे दस्तावेज़ के आधार पर धोखाधड़ी और मिथ्या निरूपण से बचने के लिए राज्य अधिनियम, 1956 और अधिनियम, 1908 में संशोधन किए गए।

37. विधि की स्थिति से यह निष्कर्ष निकलता है कि जहाँ नियुक्ति, नियुक्ति के आधार पर, धोखाधड़ी और मिथ्या कथन के आधार पर प्राप्त की गई हो, ऐसी नियुक्ति प्रारंभ से ही शून्य और अमान्य है। <u>यह निष्कर्ष दर्ज होने पर कि दस्तावेज़ अमान्य है, ऐसी नियुक्ति रद्द कर दी जाती है। यह नियुक्ति के दौरान कदाचार का मामला नहीं है जिसके लिए सेवा नियमों के अंतर्गत कोई बड़ा दंड लगाया जा सके।"</u>

(न्यायालय द्वारा प्रभाव वर्धित)

32. इसी प्रकार का प्रभाव इस न्यायालय द्वारा **नरेंद्र कुमार गोंड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य सचिव (बेसिक शिक्षा) एवं अन्य 2018 एससीसी ऑनलाइन ऑल 5716** में दिया गया निर्णय है, जिसमें यह अवधारित किया गया था:

"10. याचिकाकर्ता का यह तर्क कि इस मामले में अनुशासनात्मक कार्यवाही होनी चाहिए थी और चूंकि ऐसा नहीं किया गया है, इसलिए विवादित आदेश निष्प्रभावी है, कानून में स्वीकार्य नहीं है क्योंकि याचिकाकर्ता के पिता की मृत्यु के समय उसकी मां की नौकरी का तथ्य और याचिकाकर्ता की अनुकंपा नियुक्ति निर्विवाद है और दूसरी बात, नियुक्ति पत्र में निहित प्रावधानों और मामले के तथ्यों को देखते हुए, याचिकाकर्ता को सुनवाई का उचित अवसर देने के बाद, जो गलत नहीं हो सकता, नियुक्ति को यहां बताए गए कारणों से रद्द किया गया है और यह सही भी है और चूंकि यह सेवा के दौरान किए गए कदाचार का मामला नहीं है, लेकिन यह इस आधार पर उसकी नियुक्ति को रद्द करने का मामला है कि यह गलत बयानी/छिपाने और गलत तथ्यों के द्वारा प्राप्त किया गया था। आर. विश्वनाथ पिल्लई (उपरोक्त) मामले में भी सर्वोच्च न्यायालय स्वयं इस बात पर सहमत था कि संविधान के अनुच्छेद 311 के प्रावधानों के मद्देनजर ऐसे मामलों में पूर्ण जांच की आवश्यकता नहीं है, जैसा कि निम्नलिखित है: -

"पैरा-15. इसके अलावा, अपीलकर्ता ने अनुसूचित जाति समुदाय से होने के आधार पर सेवा में नियुक्ति प्राप्त की। जब छानबीन समिति ने पाया कि वह अनुसूचित जाति समुदाय से नहीं है, तो उसकी नियुक्ति का आधार ही रद्द कर दिया गया। कानून की नज़र में उसकी नियुक्ति कोई नियुक्ति नहीं थी। वह पद पर अधिकार का दावा नहीं कर सकता क्योंकि उसने धोखाधड़ी करके और झूठा जाति प्रमाण पत्र प्रस्तुत करके आरक्षित वर्ग के उम्मीदवार के लिए निर्धारित पद हड़प लिया था। जब तक अपीलकर्ता अपनी नियुक्ति के आधार पर पद पर दावा नहीं करता, तब तक वह संविधान के अनुच्छेद 311 के तहत दी गई संवैधानिक गारंटी का दावा नहीं कर सकता। चूँकि उसने झूठे जाति प्रमाण पत्र के आधार पर नियुक्ति प्राप्त की थी, इसलिए उसे भारत के संविधान के अनुच्छेद 311 के अर्थ में पद धारण करने वाला व्यक्ति नहीं माना जा सकता। जांच समिति द्वारा दर्ज किया गया यह निष्कर्ष कि अपीलकर्ता ने झूठे जाति प्रमाण पत्र के आधार पर नियुक्ति प्राप्त की थी, अंतिम हो गया है। अतः, स्थिति यह है कि अपीलकर्ता ने वह पद हड़प लिया है जो अनुसूचित जाति के किसी सदस्य को मिलना चाहिए था। जांच समिति द्वारा दर्ज किए गए और इस न्यायालय द्वारा मान्य निष्कर्ष के आलोक में, उसने स्वयं को उस पद पर बने रहने के लिए अयोग्य घोषित कर दिया है। यह नियुक्ति प्रारंभ से ही शून्य थी। यह नहीं कहा जा सकता कि उक्त निरस्त नियुक्ति अपीलकर्ता को यह दावा करने का अधिकार देती है कि वह भारत के संविधान के अनुच्छेद 311 के अर्थ में एक सिविल पद पर आसीन था। चूँकि अपीलकर्ता ने धोखाधड़ी करके नियुक्ति प्राप्त की थी, इसलिए उसे सेवा में प्रवेश करते समय अपनी धोखाधड़ी का लाभ उठाने और यह दावा करने की अनुमति नहीं दी जा सकती कि वह उस पद का धारक था जिसके साथ भारत के संविधान के अनुच्छेद 311 या उसके अंतर्गत बनाए गए नियमों के अनुसार व्यवहार किया जाना चाहिए। जहां किसी सेवा में नियुक्ति धोखाधड़ी या छल से प्राप्त की गई हो, ऐसी नियुक्ति विधि के अंतर्गत, सेवा में नियुक्ति नहीं है और ऐसी स्थिति में संविधान का अनुच्छेद 311 लागू नहीं होता।

पैरा-16. ईश्वर दयाल साह बनाम बिहार राज्य, 1987 लैब.आई.सी. 390 में, पटना उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने इस बिंदु पर विचार किया कि क्या झूठे जाति प्रमाण पत्र के आधार पर नियुक्ति प्राप्त करने वाला व्यक्ति

संविधान के अनुच्छेद 311 के तहत संरक्षण का हकदार है। उक्त मामले में, कर्मचारी ने अनुसूचित जाति समुदाय से संबंधित होने का जाति प्रमाण पत्र प्रस्तुत करके नियुक्ति प्राप्त की थी, जो बाद में झूठा पाया गया। उसकी नियुक्ति रद्द कर दी गई। कर्मचारी ने तर्क दिया कि उसकी नियुक्ति रद्द करना संविधान के अनुच्छेद 311 के अर्थ में सेवा से हटाने के समान है और इसलिए शून्य है। यह तर्क दिया गया कि नियमों के तहत विभागीय जाँच किए बिना उसे सेवा से बर्खास्त नहीं किया जा सकता। उपरोक्त तर्क पर विचार करते हुए, उच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि यदि सिविल पद पर नियुक्ति ही धोखाधड़ी, जालसाजी, अपराध या अवैधता से दूषित है, तो यह अनिवार्य रूप से इस बात का अनुसरण करेगा कि संविधान के अनुच्छेद 311 के तहत कोई भी संवैधानिक अधिकार संभवतः प्रवाहित नहीं हो सकता। यह टिप्पणी की गई:

"यदि सिविल पद पर नियुक्ति ही धोखाधड़ी, जालसाजी या अपराध या अवैधता से दूषित है, तो यह आवश्यक रूप से अनुसरण करेगा कि अनुच्छेद 311 के तहत कोई भी संवैधानिक अधिकार ऐसी दूषित शक्ति से प्रवाहित नहीं हो सकता है। ऐसी स्थिति में, प्रश्न यह है कि क्या संबंधित व्यक्ति संघ या राज्य का सिविल सेवक है और यदि वह वैध रूप से ऐसा नहीं है, तो यह मुद्दा अनुच्छेद 311 के दायरे से बाहर रहता है। यदि राज्य या संघ की सिविल सेवा के क्षेत्र में प्रवेश या दहलीज पार करना ही मुद्दा बना दिया जाता है और उसके खिलाफ दरवाजा बंद कर दिया जाता है, तो अनुच्छेद 311 के तहत संरक्षण का आवरण आकर्षित नहीं होता है।"

33. जो कुछ कहा गया है, उसके मद्देनजर, आक्षेपित आदेशों में हस्तक्षेप का कोई मामला नहीं बनता है।

34. परिणामस्वरूप, यह रिट याचिका विफल होती है और **खारिज** की जाती है।

35. अंतरिम आदेश 12.08.2024 एतद्द्वारा **निरस्त** किया जाता है।

(2025) 4 ILRA 162

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 01.04.2025

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर

रिट ए संख्या 12596/2024

के साथ अन्य संबद्ध वाद

सुधीर कुमार अग्रवाल **...याचिकाकर्ता**

बनाम

भारत संघ एवं अन्य **...प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
मनीष गुप्ता, सरिता सिंह, वरिष्ठ अधिवक्ता

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
ए.एस.जी.आई., ईशान शिशु, मनीष मेहरोत्रा

(ए) सेवा कानून - पेंशन - संराशीकरण - वसूली अवधि - केंद्रीय सिविल सेवा (पेंशन संराशीकरण) नियमावली, 1981 और बैंक पेंशन विनियम - विनियम 41(5) - नियम 10ए - पंजाब नेशनल बैंक (कर्मचारी) पेंशन विनियम, 1995 - नियम 41(4) और 41(5) - क्या 12 वर्ष से अधिक की वसूली अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करती है - कॉमन कॉज बनाम भारत संघ, (1987) 1 एससीसी 142 में सर्वोच्च न्यायालय ने 15 वर्ष की वसूली नियम को बरकरार रखा - न्यायालय ने 15 वर्ष की बहाली नियम को मनमाना या असंवैधानिक नहीं माना - अन्यायपूर्ण संवर्धन - जीवन प्रत्याशा - 15 वर्ष की वसूली अवधि का निर्धारण मनमाना या तर्कहीन नहीं है, क्योंकि यह एक नीतिगत मामला है जिसमें न्यायिक हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। (पैरा - 1, 14, 22 से 27)

याचिकाकर्ताओं, सेवानिवृत्त बैंक और सरकारी कर्मचारियों ने, 10 से 12 वर्षों के भीतर पूरी एकमुश्त राशि की प्रभावी वसूली के बाद भी, संराशीकृत पेंशन वसूली के लिए अपनी पेंशन से मासिक कटौती जारी रखने को चुनौती दी - दावा किया कि यह नियोक्ता द्वारा अनुचित लाभ पहुँचाने के समान है - याचिकाकर्ताओं ने बढ़ी हुई जीवन प्रत्याशा का हवाला दिया - निर्धारित 15 वर्ष की अवधि से पहले ही पूरी पेंशन बहाल करने का तर्क दिया। **(पैरा - 3,4,10)**

अवधारित किया गया: - 15 वर्ष की संराशीकरण वसूली अवधि निर्धारित करना एक नीतिगत मामला है, जिसे सर्वोच्च न्यायालय ने कॉमन कॉज मामले में बरकरार रखा है। न्यायिक हस्तक्षेप अनुचित है जब तक कि नीति स्वयं मनमानी या तर्कहीन न हो। इस अवधि को घटाकर 10 या 12 वर्ष करने के लिए कोई परमादेश जारी नहीं किया जा सकता है, और याचिकाकर्ताओं की शिकायत अनुच्छेद 226 के तहत रिट क्षेत्राधिकार में न्यायोचित नहीं है। **(पैरा 23 से 27)**

याचिकाएँ खारिज। (ई-7)

<u>उद्धृत मामलों की सूची: -</u>

1. "कॉमन कॉज", ए रजिस्टर्ड सोसायटी एवं अन्य बनाम यू.ओ.आई., (1987) 1 एससीसी 142
2. आर. गांधी बनाम यू.ओ.आई. एवं अन्य, (1999) 8 एससीसी 106
3. फोरम ऑफ रिटायर्ड आईपीएस ऑफिसर्स (एफओआरआईपीएसओ) बनाम यू.ओ.आई. एवं अन्य, 2019 एससीसी ऑनलाइन डेल 6610
4. एसएलपी (सिविल) संख्या 8852/2019, फोरम ऑफ रिटायर्ड आईपीएस ऑफिसर्स (एफओआरआईपीएसओ) बनाम यू.ओ.आई. एवं अन्य

5. शिला देवी एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य, 2024:पीएचएचसी:157352-डीबी
6. सेंट्रल गवर्नमेंट पेंशनर्स एसोसिएशन बनाम यू.ओ.आई., 2008 एससीसी ऑनलाइन केआर 291
7. राम नारायण गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 1994 (24) एएलआर 151
8. अशोक कुमार अग्रवाल एवं अन्य बनाम यू.ओ.आई. एवं अन्य, 2025:एएचसी:6439-डीबी

(माननीय न्यायमूर्ति अश्विनी कुमार मिश्रा द्वारा प्रदत्त)

1. रिट याचिकाओं के इस समूह में कानूनी प्रश्न यह है कि क्या किसी कर्मचारी, जो अनिवार्यतः 60 वर्ष की आयु प्राप्त करने पर सेवानिवृत्त होता है, के लिए पेंशन का संराशीकरण मूल्य, उसकी सेवानिवृत्ति पेंशन से मासिक किस्तों में काटा जाता है, जिसे 10 वर्ष और 8 महीने या 11 वर्ष या अधिकतम 12 वर्ष की समयावधि में पूरा किया जाता है, को संबंधित सेवा विनियमों के तहत सहमत या निर्धारित 15 वर्ष की अवधि के लिए वसूल किया जा सकता है, जिससे प्रतिवादियों को कर्मचारी से भुगतान किए गए संराशीकरण मूल्य से अधिक राशि प्राप्त हो सकती है?

2. रिट-ए संख्या 12596/2024 को प्रमुख रिट याचिका के रूप में सुना गया है। याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ताओं ने अपने-अपने मामलों से संबंधित तथ्यों और आंकड़ों पर प्रकाश डालने के अलावा, अधिकांशतः अपने तर्क उपरोक्त विधि प्रश्न तक ही सीमित रखे हैं। अतः, प्रमुख याचिका से तथ्यों पर ध्यान दिया जाएगा।

3. याचिकाकर्ता, सुधीर कुमार अग्रवाल, इंडियन ओवरसीज़ बैंक, स्टेशन रोड शाखा, मुरादाबाद में वरिष्ठ प्रबंधक थे और 31.01.2012 को अधिवर्षिता की आयु प्राप्त करने पर सेवानिवृत्त हुए। इंडियन ओवरसीज़ बैंक (संक्षेप में, 'बैंक') एक राष्ट्रीयकृत बैंक है।

4. अनावश्यक विवरण से बचते हुए, केवल इतना ध्यान देने योग्य है कि याचिकाकर्ता की पेंशन 01.02.2012 से देय थी। उनकी सेवानिवृत्ति के समय मूल औसत वेतन ₹36,400/- था। तदनुसार, उक्त राशि का 50%, अर्थात ₹18,200/- मूल पेंशन + महंगाई भत्ता के रूप में निर्धारित किया गया था। याचिकाकर्ता ने अपनी पेंशन का एक-तिहाई हिस्सा संराशीकरण करने का अनुरोध किया, जो ₹6,066/- प्रति माह होता है। उपरोक्त कम्युटेशन स्वीकृत किया गया और इसके बदले में उन्हें 7,14,090/- रुपये की एकमुश्त राशि का भुगतान किया गया। याचिकाकर्ता का तर्क है कि उन्हें भुगतान की गई पेंशन के कम्युटेशन मूल्य की वसूली की अवधि, जब याचिकाकर्ता सेवानिवृत्त हुए, 15 वर्ष निर्धारित की गई थी। 7,14,090/- रुपये के कम्युटेशन मूल्य की वसूली याचिकाकर्ता की पेंशन से 6,066/- रुपये + लागू महंगाई भत्ते की राशि की मासिक कटौती करके की जाती है। याचिकाकर्ता को ₹12,134/- + महंगाई भत्ता की मासिक पेंशन मिल रही है, जो ₹52,183/- होती है, जिसमें महंगाई भत्ता ₹40,049/- प्रति माह है। इस याचिका समूह के अन्य सभी याचिकाकर्ताओं की तरह, याचिकाकर्ता का मामला भी यह है कि उसकी मासिक पेंशन से निर्दिष्ट राशि की कटौती करने पर, कम्युटेशन मूल्य 10 वर्ष और 8 महीने की अवधि में पूरा हो जाता। संराशीकरण खाते का निस्तारण करने और 10 वर्ष 8 महीने की

अनुवादित

समाप्ति पर याचिकाकर्ता की पूरी पेंशन जारी करने के बजाय, प्रतिवादी इस बात पर अड़े हैं कि वे संराशीकरण के समय सहमत और तय की गई 15 वर्ष की अवधि के लिए पेंशन वसूलेंगे। याचिकाकर्ता ने रिट याचिका के साथ अनुलग्नक संख्या 2-ए के रूप में एक चार्ट संलग्न किया है, जो दर्शाता है कि 01.02.2012 से 31.07.2024 तक, बैंक ने याचिकाकर्ता से 6,066 रुपये की दर से 90,09,900 रुपये की राशि वसूल की होगी। 31.07.2024 तक वे संराशीकरण मूल्य से अधिक 1,95,810/- रुपये की राशि वसूल कर लेते। अतः, निवेदन यह है कि याचिकाकर्ता को उसकी एक-तिहाई पेंशन के संराशीकरण मूल्य के रूप में भुगतान की गई 7,14,060/- रुपये की राशि, निर्दिष्ट दर से 118 किश्तों में वसूल की जानी थी; 150 किश्तें पहले ही वसूल की जा चुकी हैं, जो उस खंड पर आधारित है जिसमें कहा गया है कि संराशीकरण मूल्य की वसूली 15 वर्षों की अवधि तक जारी रहेगी। अतः, याचिकाकर्ता प्रार्थना करता है कि प्रतिवादियों को एक परमादेश जारी किया जाए कि वे उसकी सेवानिवृत्ति के 10 वर्ष पूरे होने के बाद कोई भी राशि वसूल या कटौती न करें और याचिकाकर्ता की पूरी पेंशन बहाल करें।

5. जब यह याचिका सुनवाई के लिए आई, तो इस तर्क पर विचार करते हुए कि प्रतिवादी याचिकाकर्ता से संराशीकरण मूल्य के रूप में भुगतान की गई राशि से अधिक राशि नहीं वसूल सकते, याचिकाकर्ता की पेंशन से संराशीकरण मूल्य की वसूली पर अंतरिम रोक लगा दी गई। इस बैच की कई रिट याचिकाओं में भी इसी तरह का आदेश पारित किया गया था। दिनांक 11.12.2024 को जब पूर्वोक्त रिट याचिका में अंतरिम आदेश दिए जाने के बाद रिट-ए संख्या 16945/2024 आई तो उस मामले में प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता श्री अशोक भटनागर ने बताया कि यह मुद्दा अब एकीकृत नहीं है और यह उच्चतम न्यायालय द्वारा **"कॉमन कॉज", एक पंजीकृत सोसायटी और अन्य बनाम भारत संघ, (1987) 1 एससीसी 142 और आर. गांधी बनाम भारत संघ और अन्य, (1999) 8 एससीसी 106** में कर्मचारियों के खिलाफ दिया गया उत्तर है। उन्होंने **फोरम ऑफ रिटायर्ड आईपीएस ऑफिसर्स (एफओआरआईपीएसओ) बनाम भारत संघ और अन्य, 2019 एससीसी ऑनलाइन डेल 6610** में दिल्ली उच्च न्यायालय के अधिकार की ओर न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया। उन्होंने न्यायालय को इस तथ्य से भी अवगत कराया कि एसएलपी (सिविल) संख्या 8852/2019, फोरम ऑफ रिटायर्ड आईपीएस ऑफिसर्स (एफओआरआईपीएसओ) बनाम भारत संघ और अन्य, फोरम ऑफ रिटायर्ड आईपीएस ऑफिसर्स (उपरोक्त) में दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले से ली गई थी, जिसे सर्वोच्च न्यायालय ने 15.04.2019 को सरसरी तौर पर खारिज कर दिया था। उन्होंने न्यायालय का ध्यान पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय के **शीला देवी एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य, 2024:पीएचएचसी:157352-डीबी** मामले में दिए गए एक खंडपीठ के निर्णय की ओर भी आकर्षित किया, जिसमें इसी विवाद से जुड़े कई मामलों का निर्णय कर्मचारियों के विरुद्ध दिया गया था। हम अब उन निर्णयों का उल्लेख करेंगे। इस विषय पर कोई विवाद नहीं है कि इस प्रश्न पर अतीत में, हाल ही में, हाल के वर्षों में और लगभग कल भी न्यायिक ध्यान दिया गया है।

6. यहाँ यह दर्ज करना ज़रूरी है कि कुछ याचिकाओं में दलीलों का आदान-प्रदान नहीं किया गया है, जबकि अन्य में उन्हें विस्तार से प्रस्तुत किया गया है। लेकिन, जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, यह मामला विशुद्ध रूप से क़ानून का है, इसलिए अलग-अलग तथ्य और यहाँ तक कि उस समयावधि को नियंत्रित करने वाले

नियम, जिसके दौरान पूरी पेंशन वापस ली जाएगी, ज़्यादा मायने नहीं रखते। इसलिए, अलग-अलग मामलों के तथ्यों और उनकी दलीलों की जाँच करने से कोई लाभ नहीं होगा।

7. रिट-ए संख्या 12596/2024 में याचिकाकर्ता के वरिष्ठ विद्वान अधिवक्ता श्री अरुण कुमार गुप्ता के सहायक विद्वान अधिवक्ता, श्री मनीष गुप्ता; रिट-ए संख्या 13420/2024, 16537/2024, 16846/2024, 18065/2024, 19138/2024 में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री मनोज कुमार तिवारी; रिट-ए संख्या 14979/2024, 14984/2024, 16273/2024, 18469/2024, 16374/2024, 17614/2024, 17707/2024, 17741/2024, 18817/2024 में याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री हर्षवर्धन गुप्ता के साथ श्री सचिन सिंह; रिट-ए संख्या 16467/2024, 17294/2024, 18819/2024, 19675/2024 में याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रदीप वर्मा; रिट-ए संख्या 14346/2024, 15833/2024 में याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री नमित कुमार शर्मा; रिट-ए संख्या 14826/2024 में व्यक्तिगत रूप से प्रमोद कुमार अग्रवाल; रिट-ए संख्या 14864/2024 में याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री विनोद कुमार श्रीवास्तव; रिट-ए संख्या 14974/2024, 15822/2024, 18714/2024 में याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री राहुल मिश्रा; रिट-ए संख्या 15805/2024, 17132/2024 में याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री अंशुल कुमार सिंघल; रिट-ए संख्या 16750/2024 में याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री रमा कांत मिश्रा; रिट-ए संख्या 16945/2024 में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री ऋषि कांत राय; रिट-ए संख्या 18634/2024 में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सतीश चतुर्वेदी; रिट-ए संख्या 19104/2024, 19172/2024 में याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री एस.एन. सिन्हा के साथ श्री मोहम्मद मोहिउद्दीन सिद्दीकी; रिट-ए संख्या 15317/2024 में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री जे.पी. सिंह; रिट-ए संख्या 17776/2024 में याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री सूर्य प्रकाश दुबे; रिट-ए संख्या 18497/2024 में याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री नवीन कुमार श्रीवास्तव, और रिट-ए संख्या 14145/2024 में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अजय त्रिपाठी; प्रतिवादी-पंजाब नेशनल बैंक के विद्वान अधिवक्ता श्री अशोक शंकर भटनागर, प्रतिवादी-यूनियन बैंक ऑफ इंडिया के विद्वान अधिवक्ता श्री विवेक रतन अग्रवाल के ब्रीफ होल्डर श्री पीयूष भार्गव, प्रतिवादी-यूको बैंक के विद्वान अधिवक्ता श्री अजय शंकर, प्रतिवादी-बैंक ऑफ बड़ौदा के विद्वान अधिवक्ता श्री अशोक कुमार लाल के साथ श्री अनादि कृष्ण नारायण, प्रतिवादी-इंडियन बैंक के विद्वान अधिवक्ता श्री अभिषेक आहूजा, प्रतिवादी-सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया के विद्वान अधिवक्ता श्री अशोक कुमार सिंह, प्रतिवादी-इंडियन बैंक के विद्वान अधिवक्ता श्री पशुपति नाथ त्रिपाठी, प्रतिवादी-केनरा बैंक के विद्वान अधिवक्ता श्री मेहुल खरे, राज्य-प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता, प्रतिवादी-यूपी पावर कॉरपोरेशन लिमिटेड के विद्वान अधिवक्ता श्री अभिषेक श्रीवास्तव के साथ श्री उज्ज्वल श्रीवास्तव, प्रतिवादी-पूर्वांचल विद्युत वितरण निगम लिमिटेड के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री श्रवण कुमार त्रिपाठी, प्रतिवादी-दक्षिणांचल विद्युत वितरण निगम लिमिटेड के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री मनु घिल्डियाल के ब्रीफ होल्डर श्री इशान मिश्रा, प्रतिवादी-नगर निगम, वाराणसी के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री बिपिन बिहारी पांडे को सुना गया।

8. श्री प्रदीप वर्मा, विद्वान अधिवक्ता, जो इस बैच में अनेक रिट याचिकाओं में याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित हुए हैं, ने प्रस्तुत किया है कि विभिन्न रिट याचिकाओं में संबंधित प्रत्येक प्रतिवादी पर लागू विनियमों के तहत एकमुश्त भुगतान की गई संराशीकरण राशि या संराशीकरण मूल्य पर कोई ब्याज देय नहीं है। यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ताओं ने अपनी मासिक सेवानिवृत्ति पेंशन से की जाने वाली नियमित कटौतियों के अनुसार, अपनी सेवानिवृत्ति के 9-10 वर्षों के भीतर अपनी पेंशन का पूरा संराशीकृत हिस्सा या मूल्य चुका दिया है। यह तर्क दिया गया है कि 15 वर्षों की वसूली अवधि अतार्किक है, क्योंकि संराशीकरण के लिए भुगतान की गई राशि की दोगुनी राशि 15 वर्षों में वसूल हो जाएगी। उनका तर्क है कि हम एक कल्याणकारी राज्य हैं और इस कारण से, संराशीकृत वैल्यू के प्रावधान की योजना में ब्याज लगाने का प्रावधान नहीं है। भुगतान की गई संराशीकरण राशि आयकर अधिनियम के अंतर्गत कर योग्य नहीं है। इस बात पर ज़ोर दिया जाता है कि लागू पेंशन विनियमों के अंतर्गत, संराशीकृत वैल्यू से अधिक की वसूली का कोई उल्लेख नहीं है। प्रतिवादियों ने 31.08.2024 तक संराशीकरण मूल्य से अधिक राशि प्राप्त कर ली है। चूँकि 70-75 वर्ष की आयु के बीच मृत्यु दर कम हो गई है और जीवन काल बढ़ गया है, इसलिए भुगतान की गई संराशीकरण राशि की वसूली के तुरंत बाद पेंशन बहाल करने की आवश्यकता होगी।

9. इस बात पर भी ज़ोर दिया जाता है कि रिट-ए संख्या 16467/2024 से संबंधित विनियमों के साथ संलग्न संराशीकरण तालिका में संराशीकरण मूल्य/संराशीकरण कारक चार मानदंडों पर आधारित है: ब्याज दर, जीवन प्रत्याशा, मृत्यु दर और स्वास्थ्य लाभ की अवधि। भारतीय जीवन बीमा संस्थान द्वारा प्रकाशित मृत्यु दर का उपयोग एलआईसी (94-96 अंतिम तालिकाओं) में किया गया है। एक अंतिम मृत्यु दर तालिका, प्रत्येक निश्चित आयु में जीवित रहने की संभावना वाले जीवन बीमा खरीदारों के प्रतिशत को सूचीबद्ध करती है, जिसकी शुरुआत '0' (शून्य) आयु से होती है, जो 120 वर्ष की आयु तक जीवित रहने वाले बीमित व्यक्ति की 100% जनसंख्या के अनुरूप या उसका प्रतिनिधित्व करती है। आमतौर पर, यह आँकड़ा देश की जनसंख्या के बजाय, किसी विशेष बीमा कंपनी या उनके समूह से जीवन बीमा पॉलिसी धारकों की जनसंख्या पर आधारित होता है। जब किसी कर्मचारी की पेंशन से कम्युटेशन के लिए उसे दी गई एकमुश्त राशि के बदले में की जाने वाली मासिक कटौती की राशि को उसकी पेंशन बहाली अवधि यानी 180 महीने (15 वर्ष) से गुणा किया जाता है, तो यह राशि कम्युटेशन के लिए एकमुश्त भुगतान की गई राशि की लगभग दोगुनी हो जाती है। यह तर्क दिया जाता है कि कम्युटेशन पेंशन की बहाली के लिए 15 वर्ष की अवधि राज्य द्वारा उस समय निर्धारित की गई थी जब भारत में जीवन प्रत्याशा तुलनात्मक रूप से बहुत कम थी। जीवन प्रत्याशा केवल 57 वर्ष थी, जबकि सेवानिवृत्ति की आयु इससे कहीं अधिक थी। विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि केंद्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय द्वारा वर्ष 2011-15 के लिए जारी आधिकारिक आंकड़ों के अनुसार, भारत में औसत जीवन प्रत्याशा बढ़कर 68.5 वर्ष हो गई है। वर्तमान में, उनका तर्क है कि देश में औसत जीवन प्रत्याशा लगभग 70.42 वर्ष है, जो सेवानिवृत्ति की आयु से कहीं अधिक है।

10. यह रोचक तर्क दिया गया है कि सरकारी कर्मचारियों की जीवन प्रत्याशा सामान्य जनसंख्या की औसत जीवन प्रत्याशा से अधिक है। इस प्रकार, पेंशनभोगियों की अकाल मृत्यु के कारण संराशीकरण राशि की वसूली

न होने का जोखिम लगभग शून्य हो गया है। इसलिए, यह कहा गया है कि जीवन अवधि और अन्य मामलों के इन बदले हुए आंकड़ों के आधार पर वसूली/पुनर्स्थापना की अवधि को युक्तिसंगत बनाया जाना चाहिए। कानूनों और नियमों को इन बदली हुई बातों के अनुरूप होना होगा। श्री प्रदीप वर्मा ने आगे दलील दी कि राज्य इन प्रासंगिक तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने में विफल रहा है। 15 साल बाद संराशीकृत पेंशन बहाल करने का नियम मनमाना और अनुचित साबित हुआ है। यह संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करते हुए वरिष्ठ नागरिकों की कीमत पर प्रतिवादियों द्वारा की गई अतिरिक्त वसूली है। संराशीकरण मूल्य की वसूली की अवधि अंततः तीन कारकों अर्थात, ब्याज दर, पेंशनरों की जीवन प्रत्याशा और मृत्यु दर पर निर्भर होने के लिए फिर से जोर दिया गया है। जब विभिन्न प्रतिष्ठानों में वर्तमान में लागू संराशीकरण तालिकाएं तैयार की गईं, तो ब्याज दर अधिक थी, जीवन प्रत्याशा कम और मृत्यु दर अधिक थी। इस समय याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा इस बात पर जोर दिया गया है कि यह वरिष्ठ नागरिकों की कीमत पर सरकारी खजाने को अनुचित रूप से समृद्ध करने का मामला है। प्रतिवादियों द्वारा वसूली गई अतिरिक्त राशि अनुचित रूप से समृद्ध करने का गठन करती है, जो अवैध और असंवैधानिक भी है। 10 के बजाय 15 वर्षों के बाद पूर्ण पेंशन की बहाली में अंकगणितीय आधार का अभाव है और यह अपने आप में मनमाना और तर्कहीन है। राज्य एक आदर्श नियोक्ता है और जीवन के सांझ के वर्षों में नागरिकों की कीमत पर अपनी मर्जी से खुद को समृद्ध नहीं कर सकता।

11. श्री मोहम्मद मोहिउद्दीन सिद्दीकी, रिट-ए संख्या 19104/2024 और 19172/2024 में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कटौती की लंबी अवधि पर उसी तरह से आपत्ति जताई है, जैसा कि प्रमोद कुमार अग्रवाल ने रिट-ए संख्या 14826/2024 में व्यक्तिगत रूप से पेश होकर किया है।

12. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री मनोज कुमार तिवारी ने तर्क दिया है कि **कॉमन कॉज** (उपरोक्त) मामले में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय, संराशीकृत पेंशन जारी करने की 15 वर्ष की अवधि निर्धारित करने के समर्थन में केंद्र सरकार द्वारा प्रस्तुत किसी भी अभिलेख, कारक, सूत्र या आँकड़ों पर आधारित नहीं था। सर्वोच्च न्यायालय ने इस सिद्धांत पर कार्यवाही की कि पेंशनभोगियों की अकाल मृत्यु के कारण होने वाले नुकसान की भरपाई के लिए केंद्र सरकार के लिए 15 वर्ष की अवधि निर्धारित करना आवश्यक था। **कॉमन कॉज़** मामले में 1986 में निर्णय हुआ था। उनका तर्क है कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कॉमन कॉज़ मामले में निर्णय दिए जाने के 38 वर्ष बाद, कई पेंशनभोगियों की असमय मृत्यु के कारण नियोक्ता या सरकार को हुए नुकसान की भरपाई के लिए 15 वर्ष की अवधि को आवश्यक मानने का कोई आधार नहीं है, जिन्होंने अपनी पेंशन संराश करवा ली है। सरकार और प्रतिवादियों द्वारा ऐसा कोई आँकड़ा, सूत्र या कारक प्रस्तुत नहीं किया गया है जो यह दर्शाए कि संराश की गई पेंशन की वसूली की अवधि निर्धारित करने के लिए 15 वर्ष की अवधि की गणना किसी वैज्ञानिक या उचित आधार पर की गई है। श्री तिवारी ने विशेष रूप से बताया है कि जीवन प्रत्याशा में वृद्धि के साथ, केरल उच्च न्यायालय ने **सेंट्रल गवर्नमेंट पेंशनर्स एसोसिएशन बनाम भारत संघ, 2008 एससीसी ऑनलाइन कर 291** में केंद्र सरकार से इस बात पर विचार करने की सिफारिश की थी कि संराशीकरण मूल्य की वसूली की अवधि अब वरिष्ठ नागरिकों की कीमत पर नियोक्ता को अनुचित लाभ पहुंचा सकती है, और

संराशीकरण मूल्य को चुकाने की अवधि को घटाकर 12 वर्ष किया जा सकता है। सरकार को निर्देश दिया गया था कि वह फैसले में की गई टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए उस मामले में याचिकाकर्ताओं के अभ्यावेदन पर फैसला करे। श्री तिवारी ने कहा कि **सेंट्रल गवर्नमेंट पेंशनर्स एसोसिएशन** (उपरोक्त) का फैसला लगभग 16 साल पहले किया गया था, और आज तक न तो केंद्र सरकार और न ही सरकार के निगमों ने, प्रतिवादी प्रतिष्ठानों की तरह, औसत जीवन काल को देखते हुए, निस्तारित किए जाने वाले संराशीकरण मूल्य की अवधि को कम करने के बारे में सोचा है।

13. नौ रिट याचिकाओं में याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री हर्षवर्धन गुप्ता ने कहा है कि **कॉमन कॉज़** मामले में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय स्पष्ट रूप से वसूली की अवधि 12 वर्ष निर्धारित करता है। जहाँ तक **आर. गांधी** (उपरोक्त) मामले का संबंध है, श्री गुप्ता का कहना है कि उक्त मामले में निर्णय यह है कि बहाली की अवधि सेवानिवृत्ति की तिथि से गिनी जाए या संराशीकरण की तिथि से। वहाँ मुद्दा अलग है और प्रतिवादी इससे कोई लाभ नहीं उठा सकते।

14. रिट-ए संख्या 16945/2024 में प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित होकर विद्वान अधिवक्ता श्री अशोक भटनागर ने प्रस्तुत किया है कि पंजाब नेशनल बैंक (कर्मचारी) पेंशन विनियम, 1995 (संक्षेप में, '1995 के विनियम') के विनियम 41(4) और 41(5) द्वारा 15 वर्ष की अवधि निर्धारित की गई है और याचिकाकर्ता संराशीकरण की अवधि को 15 वर्ष से घटाकर 11 वर्ष करने का अनुरोध कर रहे हैं। पंजाब नेशनल बैंक के विरुद्ध सभी मामलों में शामिल नियमों के विरुद्ध ऐसा नहीं किया जा सकता। यह रिट याचिका, जो 1995 के विनियमों की वैधता को चुनौती नहीं देती, विचारणीय नहीं है। यह तर्क दिया गया है कि पंजाब नेशनल बैंक सहित सभी राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा, जहाँ तक यह कर्मचारियों, जो कामगार हैं, से संबंधित है, दिनांक 29.10.1993 के द्विपक्षीय समझौते के अनुसार, और जहाँ तक बैंक के अधिकारियों का संबंध है, दिनांक 29.10.1993 के एक संयुक्त नोट के आधार पर, भविष्य निधि में बैंक के अंशदान के बदले सेवानिवृत्ति लाभ के रूप में पेंशन का लाभ शुरू किया गया है। उपरोक्त नोट पर विभिन्न बैंकों के प्रबंधन और उद्योग स्तर पर अधिकारी संघों द्वारा हस्ताक्षर किए गए हैं। पेंशन का लाभ अनिवार्य नहीं, बल्कि वैकल्पिक है। वे कर्मचारी, जो प्रतिवादी द्वारा भविष्य निधि में अंशदान के बदले पेंशन का लाभ चुनते हैं, पेंशन विनियमों द्वारा शासित होते हैं।

15. दिनांक 29.10.1993 के उपर्युक्त द्विपक्षीय समझौते और दिनांक 29.10.1993 के संयुक्त नोट के परिणामस्वरूप 1995 के विनियम बने हैं, और ये विनियम प्रतिवादी के निदेशक मंडल द्वारा बैंकिंग कंपनी (एवं टी उपक्रम) अधिनियम, 1970 की धारा 19 के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए भारतीय रिज़र्व बैंक से परामर्श और केंद्र सरकार की पूर्व स्वीकृति के बाद तैयार किए गए हैं। उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया है कि पेंशनभोगियों को भविष्य में देय 1/3 पेंशन का संराशीकरण भी अनिवार्य नहीं है, बल्कि पूर्णतः वैकल्पिक है। संराशीकरण की मांग करना है या नहीं, यह कर्मचारी पर निर्भर है, लेकिन यदि वह संराशीकरण चाहता है, तो संराशीकृत हिस्से की बहाली का अधिकार विनियमों के तहत इसे लागू करने की तिथि से 15 वर्ष बाद प्राप्त होता है। अपने इस तर्क के समर्थन में कि 15 वर्ष की अवधि को कम नहीं किया जा सकता, श्री भटनागर ने

चार प्राधिकारियों का हवाला दिया है, जिनका उल्लेख इस निर्णय के पहले भाग में किया जा चुका है, तथा जिनका बाद में आवश्यक उल्लेख किया जाएगा।

16. अपने प्रस्तुतीकरण के दौरान, श्री भटनागर ने कहा कि समूह के एक मामले में, प्रस्तुतीकरण यह था कि 15 वर्ष की अवधि के कारण वरिष्ठ नागरिकों की कीमत पर प्रतिवादियों को अनुचित रूप से लाभ हुआ। प्रस्तुतीकरण इस तर्क के आधार पर आगे बढ़ता है कि पेंशन निधि में, संराशीकरण मूल्य की भरपाई के लिए मासिक पेंशन से किश्तों की कटौती से प्राप्त कुल प्राप्तियां, याचिकाकर्ताओं को एकमुश्त भुगतान की जाने वाली राशि से कहीं अधिक है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि वसूली 15 वर्षों की अवधि तक जारी रहती है। श्री भटनागर के अनुसार, याचिकाकर्ताओं की ओर से कहा गया कि पेंशन निधि उनकी कीमत पर बढ़ी है। श्री भटनागर बताते हैं कि याचिकाकर्ताओं की ओर से यह भी प्रस्तुतीकरण किया गया है कि वर्ष 1987 से औसत आयु 57 वर्ष से बढ़कर 69-70 वर्ष हो गई है, और दूसरी ओर, पेंशन के संराशीकरण की योजना लागू होने के बाद से कोष पर ब्याज दर भी बढ़ गई है। उन्होंने दलील दी कि रिट याचिका या प्रति शपथपत्र में ऐसा कोई मुद्दा नहीं उठाया गया है। उनका तर्क है कि प्रचलित ब्याज दर 1987 में 7-8% प्रति वर्ष से बढ़कर 1994-95 में 12-13% हो गई। हालांकि, तब से ब्याज दर में काफी गिरावट आई है और यह लगभग 6% प्रति वर्ष पर आ गई है। इस प्रकार, इस स्कोर पर याचिकाकर्ताओं का दावा तथ्यात्मक रूप से गलत है। जहां तक औसत आयु में वृद्धि का सवाल है, हालांकि यह 69-70 वर्ष हो गई है, लेकिन पंजाब नेशनल बैंक के पेंशन फंड का बैलेंस चार्ट एक अलग तस्वीर पेश करता है। यह दर्शाता है कि बैंक को भुगतान संतुलन को व्यवहार्य आंकड़ों में रखने के लिए धनराशि डालनी पड़ी, जिससे बैंक को नुकसान हुआ। श्री भटनागर ने बहस के दौरान एक चार्ट प्रस्तुत करने का प्रयास किया है जो वित्तीय वर्ष 2020-21, 2021-22, 2022-23 और 2023-24 के लिए पेंशन निधि में आई कमी को दर्शाता है, जबकि संराशीकृत पेंशन धारकों से अंशदान प्राप्त हुआ था, जिसकी भरपाई बैंक को अपने संसाधनों से करनी पड़ी। पेंशनभोगियों की असमय मृत्यु का जोखिम कारक मौजूद है, और यही कमी के लिए ज़िम्मेदार है, क्योंकि एक बार किया गया एकमुश्त भुगतान, पेंशनभोगियों की मृत्यु के बाद वसूल नहीं किया जा सकता।

17. विद्वान अधिवक्ता श्री अजय शंकर ने पेंशनभोगियों की अनेक अकाल मृत्यु के कारण उत्पन्न जोखिम कारक के बारे में श्री अशोक भटनागर के तर्क में कुछ और जोड़ा है। तथ्य यह है कि पेंशन का परिवर्तित मूल्य प्रदान करने के लिए एकमुश्त राशि का भुगतान करने से प्रतिवादियों के पास जमा राशि समाप्त हो जाती है और उस पर ब्याज की हानि होती है। याचिकाकर्ताओं को लंबी अवधि के लिए कम पेंशन देकर इसकी भरपाई की जा सकती है। इसके अतिरिक्त, यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ताओं ने अपनी इच्छा से संराशीकरण का विकल्प चुना है, क्योंकि उन्हें पूरी तरह पता है कि अगर वे 15 वर्षों की अवधि के लिए संराशीकरण का विकल्प चुनते हैं, तो उन्हें कम पेंशन मिलेगी। श्री अजय शंकर का कहना है कि विबंधन स्पष्ट रूप से याचिकाकर्ताओं पर लागू होता है, जिन्होंने संराशीकरण का लाभ स्वीकार किया है, जो एक पूर्ण पैकेज के रूप में आता है, जिसमें 15 साल की अवधि के लिए कम पेंशन भी शामिल है। वह बताते हैं कि याचिकाकर्ता इस बिंदु को फिर से खोलना चाहते हैं, जिस पर यह न्यायालय पहले ही **राम नारायण गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य**

और अन्य, 1994 (24) एएलआर 151 में निर्णय दे चुका है। श्री अजय शंकर केंद्रीय सिविल सेवा (पेंशन का संराशीकरण) नियमावली, 1981 (संक्षेप में, 'नियमावली 1981') के नियम 10ए के बारे में बात करते हैं और कहते हैं कि ये यूसीओ (कर्मचारी) पेंशन विनियम, 1995 के विनियम 41(5) के समरूप हैं। श्री अजय शंकर एक मामले में प्रतिवादियों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जहां वे यूको बैंक हैं। वह इस बात पर जोर देते हैं इसका रखरखाव मासिक पेंशन देने और कोविड-19 महामारी जैसी आकस्मिकताओं की योजना बनाने के लिए किया जाता है। ये उत्तरदाताओं के लिए अनुचित लाभ का स्रोत नहीं हैं, क्योंकि इनका उपयोग कहीं और नहीं किया जा सकता।

18. विद्वान अधिवक्ता श्री विवेक रतन अग्रवाल ने प्रतिवादियों की ओर से वही तर्क प्रस्तुत किए हैं जो श्री अशोक भटनागर ने दिए थे।

19. दोनों पक्षों के विद्वान वकीलों की बात सुनने के बाद, हम पाते हैं कि यहाँ शामिल मुद्दे ने, वास्तव में, **कॉमन कॉज़** मामले में सर्वोच्च न्यायालय का ध्यान पूरी तरह से आकर्षित किया था। **कॉमन कॉज़** मामले में दिए गए तथ्यों को उनके माननीय सदस्यों के शब्दों में सबसे अच्छी तरह से संक्षेपित किया जा सकता है, जो इस प्रकार हैं:

"1. संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत इन आवेदनों के माध्यम से कॉमन कॉज, एक पंजीकृत सोसायटी और तीन सेवानिवृत्त सरकारी कर्मचारियों ने नागरिक और रक्षा पेंशनभोगियों पर लागू पेंशन के संराशीकरण नियमों के कुछ प्रावधानों को रद्द करने की मांग की है क्योंकि वे भारत संघ को संराशीकरण पर पेंशनभोगियों को भुगतान की गई राशि से अधिक वसूलने की अनुमति देते हैं और यह निर्देश देने के लिए कहा है कि संराशीकरण से संबंधित प्रावधानों को तर्कसंगत बनाने वाली एक उपयुक्त योजना लागू की जाए। प्रतिवादी ने याचिका की स्वीकार्यता और याचिकाकर्ताओं के दावे को चुनौती देते हुए एक प्रति-शपथपत्र दायर किया है और इस मामले की समय-समय पर विस्तृत सुनवाई हो चुकी है। पक्षों ने अपने मौखिक तर्कों के साथ लिखित प्रस्तुतियाँ भी प्रस्तुत की हैं।

2. जहाँ तक भारत सरकार के अधीन असैनिक कर्मचारियों का संबंध है, केंद्रीय सिविल सेवा (पेंशन का संराशीकरण) नियम, 1981 उपयुक्त नियम हैं। रक्षा कर्मियों के संबंध में विनियमों का एक समूह लागू है।

3. यह विवादित नहीं है कि नागरिकों के मामले में पेंशन की कुल राशि जो संराश की जा सकती है वह एक तिहाई तक है जबकि रक्षा कर्मियों के मामले में, अधिकारियों के मामले में 43 प्रतिशत तक और अन्य रैंकों के संबंध में 45 प्रतिशत तक संराशीकरण स्वीकार्य है। याचिकाकर्ताओं की ओर से दी गई दलील कि भारत में लोगों की जीवन प्रत्याशा में काफी सुधार हुआ है, प्रतिवादी की ओर से खंडन नहीं किया गया है। इस न्यायालय ने सुनवाई के दौरान प्रतिवादी को सुझाव दिया कि देश में अब प्रचलित बदली हुई स्थिति में, मामले को एक नया रूप दिया जाना चाहिए। इस न्यायालय द्वारा दिए गए सुझाव के सम्मान में, प्रतिवादी ने रिट याचिकाओं में

उठाए गए विभिन्न पहलुओं और सुनवाई में दिए गए मौखिक प्रस्तुतियों के साथ-साथ अदालत में प्रस्तुत लिखित नोटों पर विचार करने के लिए समय लिया। इसने इस तथ्य को भी ध्यान में रखा कि कई राज्य सरकारों ने कम्युटेशन पर लागू नियम में बदलाव किया है और पंद्रह वर्ष बीत जाने के बाद अपनी पेंशन का एक हिस्सा कम्युट करने वाले पेंशनभोगियों की पूरी पेंशन बहाल कर दी है। भारत संघ अब सत्तर वर्ष की आयु या पंद्रह वर्ष के बाद, जो भी बाद में हो, सभी असैन्य कर्मचारियों के संबंध में पेंशन के कम्युट किए गए हिस्से को बहाल करने पर सहमत हो गया है, और इसे 1 अप्रैल, 1986 से प्रभावी बनाने पर सहमत हो गया है.....

4. वर्तमान स्थिति के अनुसार, जब कोई पेंशनभोगी अपनी पेंशन के किसी हिस्से को अधिकृत सीमा तक कम्युट करता है, तो मासिक पेंशन से कम्युट किए गए हिस्से को घटाकर उसके शेष जीवन के लिए उसकी पेंशन कम कर दी जाती है।

(न्यायालय द्वारा प्रभाव वर्धित)

20. संबंधित मुद्दे पर निर्णय देते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने **कॉमन कॉज** में कहा:

"5. याचिकाकर्ताओं ने तर्क दिया है कि पेंशन से संराशीकृत हिस्सा आमतौर पर लगभग 12 वर्षों में वसूल हो जाता है और इसलिए, अवधि 15 वर्ष निर्धारित करने का कोई औचित्य नहीं है। संराशीकरण से कुछ लाभ होते हैं। संराश करने वाले पेंशनभोगी को एकमुश्त राशि मिलती है जो आमतौर पर उसे अपने जीवित रहने के अधीन एक निश्चित अवधि में मिलती। इस प्रकार, संराशीकरण से निश्चित रूप से दो लाभ प्राप्त होंगे - (1) एकमुश्त राशि की उपलब्धता, और (2) जोखिम कारक। फिर से, कई राज्य सरकारों ने पहले ही 15 वर्ष के नियम को स्वीकार करते हुए योजनाएँ तैयार की हैं। इस पृष्ठभूमि में, हमें नहीं लगता कि जहाँ तक नागरिक पेंशनभोगियों का संबंध है, 15-वर्षीय फॉर्मूले में बदलाव करना उचित होगा।

6. सेवानिवृत्ति की आयु पहले 55 वर्ष हुआ करती थी, जिसे बढ़ाकर 58 वर्ष कर दिया गया। लाभ की बहाली के समय, पेंशनभोगी की आयु का उल्लेख करना आवश्यक नहीं है। यह बताना पर्याप्त है कि सेवानिवृत्ति की अवधि से पंद्रह वर्ष की समाप्ति पर ऐसी बहाली होगी।

9. इस प्रकार के मामले में, जीवन बीमा के उदाहरण से निर्देशित होना उचित नहीं है; ब्याज के आधार को अपनाना भी उतना ही अन्यायपूर्ण होगा। दूसरी ओर, निष्कर्ष को "क्रय-वर्ष" के आधार से जोड़कर निकाला जाना चाहिए। क्रय-वर्ष के आधार पर वसूली के लिए आवश्यक अवधि में दो वर्ष जोड़ना 15-वर्षीय नियम को अपनाने को उचित ठहराता है। कमोबेश यही वह आधार है जो न्यायसंगत प्रतीत होता है। हो सकता है कि इससे राजकोष पर अतिरिक्त बोझ पड़े, लेकिन यह भारी नहीं होगा और आखिरकार, इससे उन लोगों को कुछ राहत मिलेगी जिन्होंने महान बलिदान देकर राष्ट्र की सेवा की है। इसलिए, हमारा विचार है कि सशस्त्र बलों के कर्मियों के लिए कोई अलग अवधि निर्धारित करने की आवश्यकता नहीं है और उन्हें भी 15 वर्ष की समाप्ति पर पेंशन के

परिवर्तित हिस्से की बहाली का अधिकार होना चाहिए, जैसा कि सिविल पेंशनभोगियों के मामले में दिया जाता है। और उनके लिए भी, प्रभावी तिथि 1 अप्रैल, 1985 से होनी चाहिए।"

(न्यायालय द्वारा प्रभाव वर्धित)

21. **कॉमन कॉज** मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून का अवलोकन अत्यंत महत्वपूर्ण है। कॉमन कॉज मामले में पारित नियम ने उन पेंशनभोगियों के अधिकारों में भारी बदलाव लाया, जिन्होंने अपनी पेंशन को कम करने का विकल्प चुना था। **कॉमन कॉज** से पहले, जैसा कि प्रतीत होता है, कुछ राज्य सरकारों के मामलों को छोड़कर, जिन्होंने पेंशन में राशि परिवर्तन की तिथि से 15 वर्ष की अवधि समाप्त होने के बाद पूर्ण पेंशन बहाल करने का नियम अपनाया था, केंद्र सरकार, सिविल सेवाओं और रक्षा सेवाओं, दोनों के संबंध में, 1981 के नियमों में निहित कानून का अक्षरशः पालन कर रही थी, जिसके अनुसार सेवानिवृत्त होने वाले सरकारी कर्मचारी, चाहे वह सिविल सेवक हो या सैनिक, द्वारा पेंशन में राशि परिवर्तन करने पर उसकी पेंशन से एक स्थायी मासिक कटौती का भार वहन करना पड़ता था। यह स्पष्ट रूप से पेंशनभोगियों को एकमुश्त राशि में प्राप्त होने वाले राशि परिवर्तन से होने वाले लाभ से कहीं अधिक होता। उस समय भी, याचिकाकर्ताओं ने कॉमन कॉज़ में तर्क दिया था कि पेंशन के संराशीकृत मूल्य की वसूली 12 वर्षों में पूरी होती है और 15 वर्ष की समाप्ति पर पेंशन बहाल करने का नियम लाने का कोई औचित्य नहीं है। यह केंद्र सरकार द्वारा नियम में बदलाव करने पर सहमति जताने के परिणामस्वरूप हुआ, जिसमें पेंशनभोगियों के लिए पेंशन में स्थायी कटौती का प्रावधान था। इस नियम के अनुसार, संराशीकृत मूल्य की वसूली सेवानिवृत्ति की तिथि से 15 वर्ष पूरे होने पर या पेंशनभोगी के 70 वर्ष की आयु प्राप्त करने पर, जो भी बाद में हो, बंद हो जाएगी। माननीय न्यायाधीशों ने 70 वर्ष की अधिकतम सीमा को स्वीकार नहीं किया, लेकिन इस स्थिति को भी स्वीकार नहीं किया कि संराशीकरण मूल्य की पूरी वसूली 12 वर्षों में पूरी हो जाने के कारण, पेंशन बहाली की अवधि 15 वर्ष निर्धारित करने का कोई औचित्य नहीं है। यह टिप्पणी की गई कि संराशीकरण से कर्मचारी को कुछ लाभ होते हैं। पेंशनभोगी को एकमुश्त राशि मिलती है, जो उसे एक निश्चित अवधि में मिलती, बशर्ते कि वह जीवित रहे। इसलिए, यह टिप्पणी की गई कि संराशीकरण से पेंशनभोगी को दो लाभ हुए, पहला, एकमुश्त धनराशि की तत्काल उपलब्धता, और दूसरा, मृत्यु की स्थिति में उत्पन्न होने वाले जोखिम कारक का बहिष्करण। न्यायालय ने यह भी संज्ञान लिया कि कई राज्य सरकारों ने पहले ही 15 वर्ष के नियम को स्वीकार करते हुए योजनाएँ तैयार की थीं। इसी पृष्ठभूमि में, न्यायालय ने नागरिक पेंशनभोगियों के लिए 15 वर्ष के नियम को स्वीकार किया। न्यायालय ने पेंशन बहाल करने के लिए पेंशनभोगियों की आयु के मानदंड को विशेष रूप से खारिज कर दिया। रिपोर्ट के पैराग्राफ 9 की अन्य टिप्पणियाँ इस मामले के लिए बहुत प्रासंगिक नहीं हो सकती हैं, क्योंकि यह मामला अनिवार्य रूप से नागरिक सेवा में पेंशन से संबंधित है, भले ही वह बैंक या निगम की हो।

22. वास्तव में महत्वपूर्ण बात यह है कि कॉमन कॉज़ मामले में न्यायालय ने 15 साल का नियम बनाया, जिसमें जानबूझकर 12 साल की संराशीकरण वैल्यू की वसूली के बाद 3 साल की अवधि जोड़ी गई, यह ध्यान में रखते हुए कि कर्मचारी को एकमुश्त राशि मिलने का लाभ होगा, जो उसे जीवन प्रत्याशा के मामले में उसके भाग्य पर निर्भर करता है, और उसे मिल भी सकती थी और नहीं भी। दूसरा और अधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह

था कि मानव जीवन की अनिश्चितताओं को देखते हुए, जिन्हें एक जोखिम कारक माना जाता है, नियोक्ता को भी पेंशन निधि के रखरखाव के मामले में मुआवजा देना होगा क्योंकि नियोक्ता को निधि के बजट में उन कर्मचारियों के मामलों को भी शामिल करना होगा, जिन्होंने एकमुश्त राशि ली थी और पर्याप्त समय तक जीवित नहीं रह पाए, ताकि पुनःपूर्ति सुनिश्चित हो सके।

23. वर्तमान में, याचिकाकर्ताओं की ओर से प्रस्तुत किया गया तर्क यह है कि जीवन प्रत्याशा सामान्यतः बढ़ गई है, और इसलिए, कॉमन कॉज पर निर्णय लेने के समय की तुलना में पेंशन निधि की पुनःपूर्ति में योगदान देने वाले पेंशनभोगियों की संख्या अधिक होगी। इसलिए, इस तथ्य को देखते हुए कि औसत जीवन प्रत्याशा बढ़कर लगभग 70 वर्ष हो गई है, जो कॉमन कॉज़ पर निर्णय के समय 57 वर्ष थी, संराशीकरण मूल्य की 12 वर्ष की वसूली अवधि में 3 वर्ष जोड़ने और 15 वर्ष की अवधि निर्धारित करने का नियम, जिसके बाद पेंशन बहाल हो जाएगी, अब पूरी तरह से मनमाना और अनुचित है। इससे वरिष्ठ नागरिकों की कीमत पर प्रतिवादियों या राजकोष को अनुचित लाभ होगा। इसे कल्याणकारी राज्य के मूल्यों के विपरीत बताया जा रहा है। यह तर्क, हालांकि आकर्षक है, ज़्यादा दमदार नहीं है; कम से कम एक रिट याचिका में, या फिर, मौजूदा स्थिति के अनुसार, न्यायालय में, उपयुक्त नहीं है। इस तथ्य में कुछ दम हो सकता है कि औसत आयु में वृद्धि ने नियोक्ता के साथ पेंशन निधि को अधिक व्यवहार्य बना दिया होगा, लेकिन यह बड़े पैमाने पर मितव्ययिता का मामला है। न तो पर्याप्त दलीलें हैं और न ही न्यायालय में दायर कुछ रिट याचिकाओं में ऐसी दलीलें हो सकती हैं, जो न्यायालय को प्रतिवादियों के पेंशन कोष के बजट और मितव्ययिता को प्रभावित करने वाला कोई सुविचारित निर्णय लेने में सक्षम बना सकें। यह ऐसा कुछ नहीं है जो इतना स्पष्ट रूप से गलत या बेतुका हो कि न्यायालय इसे मनमाना मान ले। औसत आयु में वृद्धि के कारक के लिए प्रतिवादियों की ओर से नीतिगत निर्णय लेना आवश्यक हो सकता है, लेकिन इससे याचिकाकर्ताओं को हमारी रिट का अधिकार नहीं मिलेगा, जिसमें परिवर्तित पेंशन मूल्य की वसूली अवधि को 10 वर्ष या 11 वर्ष (जैसा कि याचिकाकर्ता चाहते हैं), या यहाँ तक कि 12 वर्ष तक सीमित किया जा सके। इस तरह के मितव्ययिता और धन संबंधी मामलों को कानून में प्राथमिक निर्णयकर्ता पर छोड़ देना सबसे अच्छा माना जाता है, जिसे बोझ उठाना होता है, बड़ी धनराशि का प्रबंधन करना होता है और बजट बनाना होता है। यह ऐसा मामला नहीं है, जिसका फैसला दलीलों और कुछ दस्तावेजों के आधार पर एक सूची के दायरे में किया जा सके।

24. श्री हर्षवर्धन गुप्ता का यह कहना सही है कि आर. गांधी मामले में सर्वोच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों का निर्णय प्रासंगिक नहीं है और यह पूरी तरह से अलग निर्णय देता है, अर्थात 15 वर्ष की अवधि की गणना: चाहे वह सेवानिवृत्ति की तिथि से शुरू हो या पेंशन के रूपान्तरण से। इस मुद्दे पर विचार करने के लिए, फोरम ऑफ रिटायर्ड आईपीएस ऑफिसर्स (एफओआरआईपीएसओ) (उपरोक्त) में दिल्ली उच्च न्यायालय की पीठ के निर्णय का संदर्भ लेना आवश्यक है, जहाँ यह निर्णय दिया गया था:

"21. पेंशन, पेंशन का संराशीकरण, आदि नीतिगत मामले हैं, जिनकी अधिकारियों द्वारा वेतन आयोगों की सिफारिशों के आधार पर जांच और निर्णय लिया जाता है। निस्संदेह, एक कार्यकारी आदेश या नीतिगत निर्णय

न्यायिक समीक्षा के दायरे से बाहर नहीं है, लेकिन न्यायालय विभिन्न गणनाओं और गणनाओं द्वारा तालिका को प्रतिस्थापित करने के लिए नीति की बारीकियों में नहीं जाते हैं, जो विभिन्न सूत्रों द्वारा या किसी विशेष सूत्र को लागू करके संभव है। मोटे तौर पर, नीतिगत निर्णयों की न्यायिक समीक्षा की जा सकती है जब वे अधिनियम और विनियमों के प्रावधानों के विरुद्ध असंवैधानिक हों, यदि प्रतिनिधि ने अपने प्रतिनिधिमंडल की शक्ति से परे काम किया हो और यदि कार्यकारी नीति मूल्य निर्धारण, वेतन निर्धारण आदि के मामलों में वैधानिक या व्यापक नीति के विपरीत हो। न्यायालय तब तक हस्तक्षेप नहीं करेंगे जब तक कि अपनाया गया सूत्र या तरीका स्वयं में और प्रत्यक्ष रूप से तर्कहीन, मनमाना या उपरोक्त चार आधारों पर इसे रद्द किया जा सकता है।

22. इन पहलुओं को ध्यान में रखा गया था और कॉमन कॉज (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उजागर किया गया था, जब उन्होंने इस तर्क को खारिज कर दिया था कि पेंशन का परिवर्तित हिस्सा सामान्यतः 12 वर्षों के भीतर वसूल किया जाएगा, और इसलिए, 15 वर्ष की अवधि निर्धारित करने का कोई औचित्य नहीं था। सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि संराशीकरण के अपने फायदे हैं, क्योंकि इसमें एकमुश्त राशि प्राप्त होती है, जो राशि अन्यथा व्यक्ति के जीवनकाल में एक निश्चित अवधि में चुकाई जाती। सर्वोच्च न्यायालय ने दो स्पष्ट लाभ बताए थे, अर्थात् पेंशन के रूप में एकमुश्त राशि की उपलब्धता और जोखिम कारक। हम एक और लाभ जोड़ सकते हैं क्योंकि पेंशन का संराशीकरण वर्तमान में आयकर अधिनियम, 1961 के तहत कर-मुक्त है। इससे पेंशनभोगियों को मिलने वाले मौद्रिक लाभ में उल्लेखनीय वृद्धि होती है। इसके अलावा, पेंशनभोगियों द्वारा निवेशित धनराशि पर प्रतिफल की दर भिन्न हो सकती है और यह बाज़ार आधारित ब्याज दर पर निर्भर करती है। वरिष्ठ नागरिकों के लिए ऐसी योजनाएँ हैं जिनमें रिटर्न की दर ऊँची है। याचिकाकर्ता द्वारा की गई गणना में पेंशनभोगी को मिलने वाले ब्याज के रिटर्न का उल्लेख नहीं है। उपरोक्त पृष्ठभूमि में, सर्वोच्च न्यायालय ने इसी तरह की दलील को यह कहते हुए विशेष रूप से खारिज कर दिया था कि संराशीकरण अवधि तय करते समय न्यायालय को जीवन बीमा के उदाहरण से निर्देशित नहीं होना चाहिए। सर्वोच्च न्यायालय ने कॉमन कॉज (उपरोक्त) में उक्त पहलुओं पर निम्नलिखित टिप्पणियां की थीं:–

"9. इस प्रकार के मामले में, जीवन बीमा के उदाहरण से निर्देशित होना उचित नहीं है; ब्याज के आधार को अपनाना भी उतना ही अन्यायपूर्ण होगा। दूसरी ओर, निष्कर्ष को "क्रय-वर्ष" के आधार से जोड़कर निकाला जाना चाहिए। क्रय-वर्ष के आधार पर वसूली के लिए आवश्यक अवधि में दो वर्ष जोड़ना 15-वर्ष के नियम को अपनाने को उचित ठहराता है। यही वह आधार है जो कमोबेश न्यायसंगत प्रतीत होता है। हो सकता है कि इससे राजकोष पर अतिरिक्त बोझ पड़े, लेकिन यह ज़्यादा नहीं होगा और आखिरकार इससे उन लोगों को कुछ राहत मिलेगी जिन्होंने बड़ी कुर्बानी देकर देश की सेवा की है। इसलिए, हमारा मानना है कि सशस्त्र बलों के कर्मियों के लिए कोई अलग अवधि निर्धारित करने की आवश्यकता नहीं है और उन्हें भी 15 वर्ष की अवधि समाप्त होने पर पेंशन के संराशीकृत हिस्से की बहाली का अधिकार होना चाहिए, जैसा कि सिविल पेंशनभोगियों के मामले में दिया जाता है। और उनके लिए भी, प्रभावी तिथि 1 अप्रैल, 1985 से होनी चाहिए।"

23. हम पेंशनभोगियों के लिए सबसे अनुकूल शर्तें चाहते हैं, लेकिन इसमें कुछ सीमाएँ हैं और विभिन्न व कुछ हद तक परस्पर विरोधी कारकों का मूल्यांकन करने के लिए न्यायालय नहीं, बल्कि क्षेत्र के विशेषज्ञ ही सबसे उपयुक्त न्यायाधीश हैं, जिन्हें ध्यान में रखा जाना चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं है कि न्यायालयों के पास अधिकार क्षेत्र नहीं है और यदि पीड़ित पेंशनभोगियों/कर्मचारियों के साथ अन्याय हुआ है, तो उन्हें राहत नहीं दी जा सकती, लेकिन ऐसे हस्तक्षेप के लिए न्यायालय को इस दृढ निष्कर्ष पर पहुँचना चाहिए कि एक गंभीर त्रुटि हुई है, जिसके कारण न्याय करने के लिए न्यायालय का हस्तक्षेप अनिवार्य है। ऐसे मामलों में हस्तक्षेप से सभी प्रकार की समस्याएँ और व्यापक प्रभाव उत्पन्न हो सकते हैं क्योंकि ये अत्यधिक जटिल और कठिन मामले हैं जिनमें विभिन्न प्रतिस्पर्धी हितों के बीच संतुलन की आवश्यकता होती है, जिसमें कुछ हद तक उपलब्ध वित्तीय संसाधन भी शामिल होंगे।

(न्यायालय द्वारा प्रभाव वर्धित)

25. शिला देवी (उपरोक्त) में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ के समक्ष एक समान मुद्दा उठाया गया था, जहां शामिल प्रश्नों और संक्षेप में तथ्यों को उनके माननीयों के शब्दों में इस प्रकार दोहराया जा सकता है:

"3. सभी याचिकाओं में रिट याचिकाकर्ता पंजाब राज्य के सेवानिवृत्त कर्मचारी हैं जिन्होंने इसके विभिन्न विभागों में सेवा की है। उन सभी ने पंजाब सिविल सेवा नियम, खंड-II (संक्षेप में 'पीसीएस, नियम), खंड-II) के अध्याय 11 के लागू प्रावधानों के अनुसार अपनी पेंशन के संराशीकरण का विकल्प चुना। विचार और न्यायनिर्णयन के लिए उठाया गया प्रश्न यह है कि क्या पेंशनभोगी द्वारा संराशीकृत पेंशन का हिस्सा, पीसीएस नियम, खंड-II के नियम 11.1 (2) के अनुसार संराशीकरण की वास्तविक तिथि से 15 वर्ष पूरे होने के बाद बहाल किया जाना चाहिए या इसे कम अवधि अर्थात लगभग 12 वर्ष बाद बहाल किया जाना चाहिए।

4. यह सर्वविदित है कि सभी याचिकाकर्ताओं ने लागू नियमों के अनुसार अपनी पेंशन के संराशीकरण का विकल्प चुना था। वे मोटे तौर पर दो श्रेणियों में आते हैं: वे याचिकाकर्ता जिनकी पेंशन संराशीकरण की तारीख से 15 वर्ष की अवधि पूरी होने के बाद बहाल हो जाती है और वे जिनकी 15 वर्ष की अवधि अभी पूरी नहीं हुई है। याचिकाकर्ताओं ने पीसीएस नियमों के नियम 11.1 के उपनियम (2) को भारत के संविधान के विरुद्ध बताते हुए मुख्यतः इस आधार पर चुनौती दी है कि संराशीकृत पेंशन निर्धारित अवधि से बहुत पहले ही वसूल कर ली जाती है और इस प्रकार यह असंवैधानिक है।

26. याचिकाकर्ताओं के तर्क को खारिज करते हुए, न्यायमूर्ति लिसा गिल ने कहा:

"25. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने यह इंगित करने में कष्ट उठाया कि छठे केंद्रीय वेतन आयोग ने ब्याज दरों और मृत्यु दर को ध्यान में रखते हुए, संराशीकरण तालिकाओं के आवधिक संशोधन और समीक्षा की सिफारिश की थी। गृह मंत्रालय के महापंजीयक और जनगणना आयुक्त द्वारा जारी नमूना पंजीकरण प्रणाली

(एसआरएस) आधारित संक्षिप्त जीवन तालिका 2013-2017 का हवाला देते हुए, यह तर्क दिया गया कि मृत्यु दर में स्पष्ट परिवर्तन का संकेत मिलता है, जो संबंधित मुद्दे पर अधिकारियों द्वारा पुनर्विचार की मांग करता है। इस तर्क के संबंध में, हम पंजाब सरकार के वित्त विभाग की अवर सचिव सरोज के अतिरिक्त शपथपत्र दिनांक 04.11.2024 के माध्यम से पंजाब राज्य के जवाब पर ध्यान देते हैं, सीडब्ल्यूपी संख्या 9426/2023 में जिसमें कहा गया है कि भारत सरकार के गृह मंत्रालय के रजिस्ट्रार जनरल और जनगणना आयुक्त द्वारा जारी नमूना पंजीकरण प्रणाली (एसआरएस) सांख्यिकीय आंकड़ों के आधार पर पंजाब राज्य के स्वास्थ्य विभाग द्वारा दिए गए आंकड़ों के अनुसार, पंजाब राज्य में मृत्यु दर वर्ष 2019 से पूरे देश की तुलना में अधिक है।

26. इस स्तर पर यह ध्यान रखना उचित है कि सातवें केंद्रीय वेतन आयोग ने बहाली की अवधि सहित वेतन में परिवर्तन के संबंध में किसी भी बदलाव की सिफारिश नहीं की थी। सातवें केंद्रीय वेतन आयोग की रिपोर्ट और कर्मचारी संघ के अभ्यावेदन पर विचार करने के बाद, पंजाब वेतन आयोग को कोई मतभेद का कारण नहीं मिला और उसने किसी भी बदलाव की सिफारिश नहीं की। दिनांक 04.11.2024 के शपथपत्र में पुन: प्रस्तुत टिप्पणियाँ और सिफारिशें इस प्रकार हैं:-

"अवलोकन और सिफारिशें

8.11.3कर्मचारी संघों ने कहा है कि संराशीकृत पेंशन को 12 वर्षों के बाद बहाल किया जाना चाहिए और पेंशन के 40% की दर से संराशीकरण की अनुमति दी जानी चाहिए, जैसा कि पहले था। इसके अलावा, केंद्र सरकार के पेंशनभोगियों के लिए संराशीकरण की मौजूदा दर 40% है।

8.11.4 सातवें केन्द्रीय वेतन आयोग ने न्यूनतम पेंशन राशि के अधिकतम प्रतिशत या पेंशन बहाली की अवधि में किसी भी बदलाव की सिफारिश नहीं की है। इस संदर्भ में, इसने 09.12.1986 के सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का हवाला दिया है, जिसमें माननीय न्यायालय ने विशेष रूप से कहा था कि यद्यपि राशि 12 वर्षों में वसूल हो जाती है, फिर भी चूँकि इसमें जोखिम कारक है और कुछ राज्य 15 वर्षों के बाद पेंशन बहाल कर रहे हैं, इसलिए बहाली की मौजूदा अवधि को बरकरार रखा जाना चाहिए।

8.11.5 आयोग के पास इससे असहमत होने का कोई कारण नहीं है और वह सिफारिश करता है कि न्यूनतम पेंशन राशि की बहाली की अवधि में कोई बदलाव किए बिना न्यूनतम पेंशन राशि की दर को बढ़ाकर 40% कर दिया जाए।"

27. यह अभिलेख में दर्ज है कि हमारे समक्ष प्रस्तुत सभी याचिकाकर्ता सेवानिवृत्त कर्मचारी हैं जिन्होंने पेंशन राशि-कटौती का लाभ उठाया है। यह सच है कि कुछ कर्मचारियों की पेंशन भी बहाल हो गई है। सभी याचिकाकर्ता 21.07.1998 की अधिसूचना जारी होने के समय सेवा में थे। उन्होंने पेंशन बहाली के लिए निर्धारित 15 वर्ष की अवधि पर कभी कोई आपत्ति नहीं जताई। एक ऐसे लाभ का लाभ उठाने के बाद जो स्पष्ट रूप से स्वैच्छिक प्रकृति का है, याचिकाकर्ताओं के लिए इस स्तर पर ऊपर उल्लिखित शिकायतें दर्ज करना, उनके द्वारा खुले मन से स्वीकार किए गए नियमों और शर्तों में बदलाव की मांग करना उचित नहीं है। वे स्वीकृत नियमों और शर्तों के अनुसार अपने द्वारा जमा की गई राशि की वसूली की मांग करने के हकदार नहीं हैं।

28. इस तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में, यह तर्क स्पष्ट रूप से अस्वीकार्य है कि यह पेंशन से संबंधित होने के कारण एक सतत वाद-कारण है। राज्य को प्रार्थना के अनुसार 11.5 वर्ष या 12 वर्ष की अवधि समाप्त होने पर पेंशन बहाल करने या इस प्रकार वसूली गई राशि वापस करने के निर्देश देने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। राज्य के लिए यह आवश्यक है कि वह जटिल प्रश्नों और अंतर्निहित मानदंडों पर गहन विचार करने के बाद, जो मुद्दों के मूल्यांकन में शामिल होंगे, एक सुविचारित निर्णय ले। यह सच है कि पेंशन के संराशीकरण से जुड़े मामले जटिल होते हैं और इनमें विविध क्षेत्रों से जुड़े जटिल मुद्दे शामिल होते हैं, जिसके लिए विशिष्ट विशेषज्ञता की आवश्यकता होती है। यह एक स्थापित स्थिति है कि ऐसे मामलों में न्यायालय केवल स्पष्ट और प्रत्यक्ष मनमानी के मामले में ही कदम उठाएगा। याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता रिकॉर्ड में ऐसा कोई भी तथ्य प्रस्तुत करने में असमर्थ रहे जिससे यह पता चले कि अपनाया गया फॉर्मूला अपने आप में और स्पष्टतः तर्कहीन या मनमाना है, जिसके लिए इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की आवश्यकता है।

29. इस स्तर पर, हम राज्य के उस विशिष्ट रुख पर ध्यान देते हैं जो हमारे समक्ष प्रस्तुत किया गया है कि वह अंतर्निहित मानदंडों में किसी भी प्रकार के परिवर्तन को ध्यान में रखते हुए, योजना/संशोधन अवधि की जाँच करने के लिए तैयार है और इस संबंध में एक विशेषज्ञ समिति का गठन किया जाएगा, जिसे ऐसे मामलों का आकलन करने में अपेक्षित ज्ञान और क्षमता रखने वाली मान्यता प्राप्त विशेषज्ञ एजेंसी या संस्थानों द्वारा सहायता प्रदान की जाएगी। इस प्रक्रिया में, समिति राज्य के पेंशनभोगियों के संघों से भी इस मामले में प्रस्तुतियाँ और अभ्यावेदन आमंत्रित करेगी और उन पर विचार करेगी।

30. राज्य के निष्पक्ष रुख को ध्यान में रखते हुए, हमें इस संबंध में कोई विशेष निर्देश जारी करने का कोई आधार नहीं दिखता, सिवाय इसके कि हमारे समक्ष प्रस्तुत रुख के अनुसार, यह अपेक्षा की जाती है कि राज्य द्वारा इस संबंध में आवश्यक कदम शीघ्रता से उठाए जाएंगे।"

27. निस्संदेह **केन्द्रीय सरकार पेंशनर्स एसोसिएशन** के मामले में केरल उच्च न्यायालय के एक विद्वान न्यायाधीश ने यह सोचा था कि इस तर्क में कुछ प्रभाव है कि पेंशन निधि को संराशीकरण के घटते प्रभाव से उबरने के लिए 12 वर्ष पर्याप्त हैं और 12 वर्ष से अधिक समय तक वसूली जारी रखना वरिष्ठ नागरिकों के खर्च पर नियोक्ता के लिए अनुचित संवर्धन प्रतीत होता है, लेकिन न्यायालय का यह दृष्टिकोण अस्थायी रूप से कायम रहा और विद्वान न्यायाधीश ने इस पर निर्णय नहीं दिया। यह स्पष्ट रूप से कहा गया था, हालाँकि वहाँ ऐसा नहीं कहा गया था, क्योंकि मितव्ययिता और बजट का निर्धारण एक बड़े पैमाने का और जटिल कार्य है जिसे प्राथमिक निर्णयकर्ता, जो धन और बजट का प्रबंधन करता है, ही सबसे बेहतर ढंग से कर सकता है। इसके अलावा, विद्वान न्यायाधीश को यह सोचने के लिए प्रेरित किया गया प्रतीत होता है कि 5वें वेतन आयोग की कुछ सिफारिशों के आधार पर, जो उस समय प्रासंगिक थीं, 12 वर्षों के अंत में वसूली पूरी हो गई थी, जिसमें कहा गया था कि 12 वर्षों में वसूली पूरी हो गई थी। केंद्रीय 5वें वेतन आयोग की सिफारिश के उस हिस्से को सरकार ने स्वीकार नहीं किया था। इसलिए, विद्वान न्यायाधीश ने सरकार को याचिकाकर्ताओं के दावे पर विचार करने और निर्णय लेने का आदेश दिया, और उन्हें अभ्यावेदन के आधार पर सुनने के बाद, न्यायालय की

टिप्पणियों को ध्यान में रखा। लेकिन, न्यायालय ने वसूली की अवधि को 15 वर्ष से घटाकर 12 वर्ष करने का आदेश जारी नहीं किया। **सेंट्रल गवर्नमेंट पेंशनर्स एसोसिएशन** मामले में न्यायालय की प्रासंगिक टिप्पणियाँ इस प्रकार हैं:

"11. पेंशन कम्युटेशन नियमों की तालिका में दिए गए क्रय वर्षों को लागू करके कम्युटेशन पर देय एकमुश्त राशि और की गई वसूली को देखते हुए, ऐसा प्रतीत होता है कि वेतन आयोग द्वारा की गई सिफ़ारिशों के पीछे कोई कारण था। वेतन आयोग की रिपोर्ट के पैरा 136.9 और 136.10 में ये कारण बताए गए हैं। 12 वर्षों की अवधि के बाद पेंशन बहाली के मामले में वेतन आयोग की सिफ़ारिशों को न मानने का निर्णय लेने के लिए सरकार को किस बात ने प्रेरित किया, इस पहलू पर प्रति-शपथपत्र में काफ़ी कुछ नहीं कहा गया है। प्रति-शपथपत्र में केवल इतना उल्लेख है कि किसी भी वेतन आयोग द्वारा की गई सिफ़ारिशें अनिवार्य नहीं हैं। ये सुझाव की प्रकृति की होती हैं जिन्हें सरकार स्वीकार कर सकती है या नहीं। दूसरे शब्दों में, प्रति-शपथपत्र में लिया गया रुख़ या तो वेतन आयोग की सिफ़ारिशों को स्वीकार न करने का फ़ैसला लेने में सरकार की ओर से विवेक का अभाव दर्शाता है, या इससे भी गंभीर बात यह है कि उसने ऐसे कारणों का खुलासा करने से इनकार कर दिया है।

12. वेतन आयोग की वर्षों की संख्या 15 से घटाकर 12 करने की सिफ़ारिश, सामान्यतः यह सुझाव देती है कि 12 वर्षों की अवधि में की गई वसूली पर्याप्त है। यदि ऐसा है, तो क्या यह मान लेना उचित नहीं है कि 12 वर्षों की समाप्ति के बाद, तीन वर्षों की अवधि के लिए की गई अतिरिक्त वसूली, प्रतिवादी की ओर से अनुचित संवर्धन मानी जाएगी? यदि ऐसा है, तो क्या सरकार के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह कम्युटेशन की तिथि से 12 वर्ष की अवधि तक वसूली को सीमित करे और पूर्ण पेंशन बहाल करने का आदेश दे? ज़ाहिर है, कोई भी सरकार ऐसी स्थिति को बर्दाश्त नहीं करेगी जहाँ वह अपने वरिष्ठ नागरिकों की कीमत पर खुद को अनुचित रूप से समृद्ध बनाए। मेरे विचार से, ये ऐसे मामले हैं जिन पर सरकार को गंभीरता से ध्यान देने की आवश्यकता है। इन सभी कारणों से, मेरा विचार है कि प्रथम प्रतिवादी को केंद्रीय पेंशनभोगियों द्वारा प्राप्त संराशीकृत पेंशन को 12 वर्षों के बाद बहाल करने के संबंध में पाँचवें केंद्रीय वेतन आयोग द्वारा की गई सिफारिश के मामले में नया निर्णय लेना चाहिए। याचिकाकर्ता के प्रतिनिधि की सुनवाई के बाद प्रथम प्रतिवादी द्वारा इस संबंध में एक तर्कसंगत आदेश पारित किया जा सकता है। सरकार इस निर्णय में की गई टिप्पणियों पर ध्यान देगी। याचिकाकर्ताओं को प्रदर्श पी1 और पी2 के साथ अतिरिक्त अभ्यावेदन प्रस्तुत करने और अपने तर्क के समर्थन में सामग्री प्रस्तुत करने की स्वतंत्रता है।"

28. इस मामले का एक और पहलू यह है कि याचिकाकर्ताओं ने कम्युटेशन की शर्तों को स्वतंत्र रूप से और अपनी इच्छा से स्वीकार किया है। कम्युटेशन की शर्तों का लाभ स्वीकार करने के बाद, अब उनके लिए कम्युटेशन योजना से जुड़े बोझ को अस्वीकार करना संभव नहीं है। कम्युटेशन एक संपूर्ण योजना है, जिसे पेंशनभोगी को इसके सभी लाभों के लिए स्वीकार करना होगा। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, किसी पेंशनभोगी के लिए, जिसने शर्तों को स्वीकार कर लिया है, लाभ उठाना और बोझ से मुक्ति पाना पूरी तरह से अनुचित होगा। पूर्ण

पेंशन की बहाली की अवधि 15 वर्ष है, जिसे इन प्रत्येक मामलों में याचिकाकर्ताओं ने संराशीकरण का विकल्प चुनते समय स्वीकार किया था। अब उन्हें इसे वापस लेने की अनुमति नहीं दी जा सकती। एक मामले में, जहां एक याचिकाकर्ता, जो यहां रिट याचिकाकर्ताओं के समान परिस्थितियों में था, ने नियमों की वैधता पर सवाल उठाने का विकल्प चुना, जिसके तहत संराशीकरण मूल्य की वसूली की समय अवधि तय की गई थी, **अशोक कुमार अग्रवाल और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य, 2025:एएचसी:6439-डीबी** में डिवीजन बेंच के समक्ष गया। अशोक कुमार अग्रवाल (उपरोक्त) में, यह अवधारित किया गया:

"विनियमों में निहित प्रावधान स्पष्ट रूप से इंगित करेंगे कि सेवानिवृत्त कर्मचारी पेंशन का एक अंश इंगित करेगा, जिसे वह संराश करना चाहता है, और इसकी अधिकतम सीमा इंगित कर सकता है, जो पेंशन के 1/3 से अधिक नहीं होगी। यदि अंश राशि रुपये के हिस्से में है, तो रुपये के ऐसे अंश को संराशीकरण के प्रयोजनों के लिए अनदेखा किया जाना है। नोट (2) स्पष्ट है और विशिष्ट शब्दों में प्रदान करता है कि जिन कर्मचारियों ने पेंशन के स्वीकार्य हिस्से को संराश किया है, वे संराशीकरण की तारीख से 15 साल की समाप्ति के बाद पेंशन के संराशीकृत हिस्से को बहाल करने के हकदार हैं। इसलिए, वैधानिक योजना में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि सेवानिवृत्त होने वाले कर्मचारी को गणना का लाभ लेने का विकल्प दिया गया है और ऐसी गणना विशिष्ट शर्तों पर की गई है कि ऐसे कम्युटेशन के 15 वर्ष की समाप्ति पर मूल पेंशन बहाल कर दी जाएगी।

याचिकाकर्ताओं का यह तर्क कि पूर्ण पेंशन की बहाली की अवधि 15 वर्ष से घटाकर 10 वर्ष कर दी जाए, केवल इसलिए कि बैंक वास्तव में 10 वर्ष की समाप्ति पर भुगतान की गई एकमुश्त राशि वसूल लेता है, एक गलत तर्क है। 1995 के विनियमों में निहित नीति सेवानिवृत्त कर्मचारी को विशिष्ट शर्तों पर संराशीकरण का लाभ उठाने का प्रस्ताव देती है। ये शर्तें स्पष्ट रूप से केवल 15 वर्ष की समाप्ति पर पेंशन की बहाली का प्रावधान करती हैं। याचिकाकर्ता अन्यथा यह नहीं कहते कि नीति की शर्तें असंवैधानिक या अनुचित हैं।

इस प्रस्ताव को स्वीकार करने के बाद, कर्मचारी और नियोक्ता के बीच एक बाध्यकारी अनुबंध अस्तित्व में आता है जिसके अनुसार 15 वर्षों के बाद मूल पेंशन बहाल की जाएगी। संराशीकरण नीति को खुले मन से स्वीकार करने के बाद, सेवानिवृत्त कर्मचारी बाद में यह तर्क नहीं दे सकता कि पूर्ण पेंशन की बहाली की अवधि 15 वर्ष से घटाकर 10 वर्ष कर दी जाए। 10 वर्ष या 11 वर्ष की समाप्ति पर एकमुश्त राशि समान हो या न हो, यह निर्णायक या महत्वपूर्ण नहीं है। महत्वपूर्ण बात यह है कि जब सेवानिवृत्त कर्मचारी पेंशन के संराशीकरण के प्रावधान को स्वीकार करता है, तो दोनों पक्षों पर दायित्व की प्रकृति क्या होती है। कर्मचारी ने अपनी खुली आँखों से पॉलिसी का लाभ उठाया है, और बाद में वह इसे वापस नहीं ले सकता या इसकी शर्तों में संशोधन की माँग नहीं कर सकता। यह तर्क कि तालिका या आँकड़े पर्याप्त रूप से प्रकट नहीं किए गए थे, भी स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि चार्ट में यह स्पष्ट रूप से दर्शाया गया है कि किस प्रकार संराशीकरण निर्धारित किया जाना है और वह अवधि जिसके बाद मूल पेंशन बहाल की जानी है। यदि कर्मचारियों को इस बारे में कोई संदेह था, तो वे प्रस्ताव स्वीकार करने से पहले उचित स्पष्टीकरण प्राप्त कर सकते थे। एक बार जब याचिकाकर्ताओं ने नीति

को स्वीकार कर लिया और प्रस्ताव स्वीकार कर लिया, तो इसके बाद इसकी गणना में बदलाव की मांग करने या इसे वापस लेने का उनका प्रयास स्पष्ट रूप से अस्वीकार्य होगा।"

29. उपरोक्त सभी बातों को ध्यान में रखते हुए, इन याचिकाओं में कोई प्रभाव नहीं है। सभी याचिकाएँ विफल हो जाती हैं और खारिज की जाती हैं।

30. जिन भी याचिकाओं में अंतरिम आदेश पारित किए गए हैं, वे निरस्त माने जाएँगे।

31. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

(2025) 4 ILRA 179

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 16.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट

रिट ए सं. 15450 सन् 2024

शैलेंद्र कुमार **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...प्रत्यर्थीगण**

अनवीक्षित

याचिकाकर्ता की ओर से अधिवक्ता : देवेश कुमार गिरि, सोमवीर

प्रत्यर्थीगण की ओर से अधिवक्ता : सी.एस.सी., गौरव बिशन

अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति- शासनादेशों की बुनियाद पर अनुकंपा के आधार पर सहायक अध्यापक के पद पर नियुक्ति का दावा - अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियाँ योग्यता के आधार पर प्राप्त की जानी चाहिए, न कि विरासत से प्राप्त की जानी चाहिए - ऐसी नियुक्तियों को भर्ती के स्रोत में बदलना असंवैधानिक है - अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियाँ कर्मचारी कल्याण को बढ़ावा नहीं देतीं - दिनांक 04.09.2000 और 15.02.2013 के शासनादेश, जहाँ तक वे अनुकंपा के आधार पर शिक्षकों के पदों पर नियुक्ति से संबंधित हैं - भारत के संविधान के अनुच्छेद 14, 16 और 21-ए के विरुद्ध माने गए।

रिट याचिका निस्तारित। (ई-9)

<u>उद्धृत मामले:</u>

1. उमेश कुमार नागपाल बनाम हरियाणा राज्य, (1994) 4 एससीसी 138
2. शिक्षा निदेशक (माध्यमिक) बनाम पुष्पेंद्र कुमार, (1998) 5 एससीसी 192
3. शिव कुमार दुबे एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य 2014 एससीसी ऑनलाइन इला. 16214
4. आशीष यादव बनाम प्रबंध निदेशक, उ. प्र. राज्य सड़क परिवहन निगम एवं 2 अन्य, 2025 एससीसी ऑनलाइन इला. 1266
5. इप्सिता चक्रवर्ती बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (2018) 2 सीएएल एलटी 177 (एचसी)
6. एन.सी. संतोष बनाम कर्नाटक राज्य एवं अन्य, (2020) 7 एससीसी 617
7. कोषागार निदेशक, कर्नाटक एवं अन्य बनाम सोम्याश्री, (2021) 12 एससीसी 20
8. हरियाणा राज्य एवं अन्य बनाम अंकुर गुप्ता (2003) 7 एससीसी 704
9. टिंकू बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य, 2024 एससीसी ऑनलाइन एससी 3292
10. केनरा बैंक बनाम अजीत कुमार जी.के., 2025 एससीसी ऑनलाइन एससी 290
11. विशेष अपील दोषपूर्ण सं. 620 सन् 2018
12. उ.प्र. राज्य एवं अन्य बनाम प्रेमलता, (2022) 1 एससीसी 30
13. दीपांशु बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य, (रिट-ए सं. 10832 सन् 2022)
14. राजीव कुमार बनाम उ.प्र. राज्य, 2019 (4) एडीजे 316
15. सोसाइटी फॉर अनएडेड प्राइवेट स्कूल्स ऑफ राजस्थान बनाम भारत संघ एवं अन्य, (2012) 6 एससीसी 1
16. अशोक कुमार ठाकुर बनाम भारत संघ एवं अन्य, (2008) 6 एससीसी 1
17. श्रीमती रेखा बनाम उ.प्र. राज्य, आपराधिक विविध जमानत आवेदन सं. 25993 सन् 2024
18. अविनाश नागरा बनाम नवोदय विद्यालय समिति और अन्य (1997) 2 एससीसी 534
19. सुस्मिता बसु और अन्य बनाम बल्लीगंज शिक्षा समिति एवं अन्य, (2006) 7 एससीसी 680
20. महाराष्ट्र राज्य बनाम विकास साहेबराव रौंदले एवं अन्य, (1992) 4 एससीसी 435
21. राम शरण मौर्य एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य, (2021) 15 एससीसी 401
22. देवेश शर्मा बनाम भारत संघ एवं अन्य, (2023) 18 एससीसी 339
23. श्री मोरवी सार्वजनिक केलावनी मंडल संचालिका एमएसकेएम बी.एड. कॉलेज बनाम राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद एवं अन्य, (2012) 2 एससीसी 16
24. मॉडर्न डेंटल कॉलेज एवं अनुसंधान केंद्र एवं अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य और अन्य, (2016) 7 एससीसी 353

अनुवादित

25. गुजरात बनाम मिर्जापुर मोती कुरैशी कसाब जमात और अन्य, (2005) 8 एससीसी 534

26. विजय सिंह एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य अन्य, 2004 एससीसी ऑनलाइन ऑल 1656

27. आंध्र प्रदेश सरकार, सामान्य प्रशासन, विभाग, हैदराबाद, एवं अन्य बनाम डी. गोपैया एवं अन्य, 2002 (2) एल.एल.एन. 484

28. राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान एवं अन्य बनाम नीरज कुमार सिंह, (2007) 2 एससीसी 481

29. बिहार राज्य दफादार चौकीदार पंचायत (मगध प्रमंडल) बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, विशेष अनुमति याचिका (सी) सं. 18983 सन् 2023

30. संजीव कुमार दुबे बनाम जिला विद्यालय निरीक्षक, इटावा एवं अन्य, 1998 एससीसी ऑनलाइन इला. 292 **(विशिष्ट)**

31. मोटर जनरल ट्रेडर्स एवं अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य एवं अन्य, (1984) 1 एससीसी 222

32. मालपे विश्वनाथ आचार्य एवं अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य, (1998) 2 एससीसी 1

33. जोसेफ शाइन बनाम भारत संघ, (2019) 3 एससीसी 39

(माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट)

1. परिचर्चा को सुविधाजनक बनाने के लिए निर्णय को निम्नलिखित अवधारणात्मक ढांचे में संरचित किया जा रहा है:

I	प्रस्तावना	I(क)	माँगा गया अनुतोष
		I(ख)	विचारार्थ उठने वाले मुद्दे
II	बार की ओर से दलीलें		
III	संविधान और सरकारी पदों/सेवाओं में नियुक्तियाँ		
IV	अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियाँ		
		IV(क)	सामान्य सिद्धान्त
		IV(ख)	केस लॉ
V	वैधानिक/कानूनी ढांचा	V(क)	डाइंग इन हार्नेस नियमावली, 1999 का नियम 5: दायरा

अनुवादित

		V(ख)	शासनादेश दिनांकित 04.09.2000 और 15.02.2013
VI	संवैधानिक और वैधानिक परिप्रेक्ष्य		
		VI(क)	बच्चे: संवैधानिक अधिकार, राज्य का कर्तव्य और न्यायालयों की भूमिका
		VI(ख)	भारत के संविधान का अनुच्छेद 21ए और निःशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009
		VI(ग)	शिक्षकों की भूमिका
		VI(घ)	शिक्षक और भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21A का कार्यान्वयन
VII	संवैधानिक कानून, वैधानिक प्रावधानों और शासनादेशों का परस्पर प्रभाव		
		VII(क)	भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21ए, निःशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 तथा दिनांक 04.09.2000 एवं 15.02.2013 के शासनादेश
		VII(ख)	अनुकंपा के आधार पर शिक्षक के रूप में नियुक्ति के लिए प्रतिस्पर्धी दावे और बाल शिक्षा अधिकार
		VII(ग)	डाइंग इन हार्नेस नियमावली, 1999 का नियम 5, दिनांक 04.09.2000 और 15.02.2013 के शासनादेश और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16
VIII			
		VIII(क)	अनुकंपा नियुक्तियों का दुरुपयोग

अनुवादित

		VIII(ख)	संजीव कुमार दुबे बनाम जिला विद्यालय निरीक्षक, इटावा: प्रासंगिकता
		VIII(ग)	न्यायालयों द्वारा स्वप्रेरणा से अधिकारों पर विचार
IX	निष्कर्ष और निर्देश		
X	परिशिष्ट		

I. प्रस्तावना:

(क). माँगा गया अनुतोष :

2. इस रिट याचिका में प्रत्यर्थीगण को याचिकाकर्ता को अनुकंपा के आधार पर सहायक अध्यापक के पद पर नियुक्त करने का परमादेश देने का अनुरोध किया गया है। याचिकाकर्ता ने अनुकंपा के आधार पर सहायक अध्यापक के पद पर नियुक्ति का दावा दिनांक 04.09.2000 और 15.02.2013 के शासनादेशों के आधार पर किया है।

3. यही प्रार्थना अन्य रिट याचिकाओं में भी की गई है। चूँकि सभी रिट याचिकाओं में विचार के लिए समान विधिक प्रश्न उठे हैं, इसलिए इन पर एक साथ निर्णय लिया जा रहा है।

I (ख) विचारार्थ उठने वाले मुद्दे :

4. निम्नलिखित प्रश्न विचारार्थ उठते हैं:

क) क्या याचिकाकर्ता को दिनांक 04.09.2000 और 15.02.2013 के शासनादेशों के आधार पर शिक्षक के रूप में नियुक्त करने के लिए परमादेश की प्रार्थना संविधान और कानून को लागू करेगी या उसके विपरीत होगी?
ख) क्या उपरोक्त दिनांक 04.09.2000 और 15.02.2013 के शासनादेश भारत के संविधान के अनुच्छेद 14, 16 और भारत के संविधान के अनुच्छेद 21ए के आधार पर बच्चों में निहित शिक्षा के मौलिक अधिकार और बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 (एतस्मिनपश्चात 'शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009' के रूप में संदर्भित) द्वारा बच्चों को प्रदत्त अधिकारों के अनुरूप हैं?
ग) क्या दिनांक 04.09.2000 और 15.02.2013 के शासनादेश उत्तर प्रदेश सेवाकालीन मृत सरकारी सेवकों के आश्रितों की भर्ती (पांचवां संशोधन) नियमावली, 1999 (एतस्मिनपश्चात डाइंग इन हार्नेस नियमावली, 1999 के रूप में संदर्भित) के नियम 5 के अनुरूप हैं?

II. बार की ओर से दलीलें :

5. संबंधित याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री इंद्र राज सिंह, विद्वान अधिवक्ता श्री सोम वीर, विद्वान अधिवक्ता श्री सिद्धार्थ खरे और विद्वान अधिवक्ता श्री आदित्य यादव ने निम्नलिखित दलीलें प्रस्तुत की हैं:

(I) याचिकाकर्ता दिनांक 04.09.2000 और 15.02.2013 के शासनादेशों के आलोक में अनुकंपा के आधार पर प्राथमिक विद्यालय में सहायक शिक्षक के रूप में नियुक्ति के लिए हकदार है।
(II) उपर्युक्त शासनादेश अनुकंपा नियुक्तियों से संबंधित हैं जो सार्वजनिक पदों पर नियुक्तियों की सामान्य पद्धति का अपवाद हैं। अतः दिनांक 04.09.2000 और 15.02.2013 के शासनादेश भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14, 16 और 21-ए के आधार पर परीक्षण के योग्य नहीं हैं।
(III) इसके विपरीत, उक्त शासनादेश भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14, 16 और 21-ए का उल्लंघन नहीं करते हैं और डाइंग इन हार्नेस नियमावली, 1999 के नियम 5 के प्रावधानों का उल्लंघन नहीं करते हैं।
(IV) याचिकाकर्ता उक्त शासनादेशों के अंतर्गत अनुकंपा के आधार पर सहायक अध्यापक के पद पर नियुक्ति के लिए न्यूनतम पात्रता रखता है। दिनांक 04.09.2000 और 15.02.2013 के उक्त शासनादेशों के अंतर्गत याचिकाकर्ता के अधिकारों को क्रियान्वित करने हेतु परमादेश जारी किया जाना आवश्यक है।

6. विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री कुणाल रवि सिंह और प्रत्यर्थी-राज्य के विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री सुभ्रांशु शेखर ने निम्नलिखित दलीलें प्रस्तुत की हैं:

(i) अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के नियम केवल कर्मचारियों के कल्याण के लिए बनाए गए हैं और ये सार्वजनिक पदों पर नियुक्ति की सामान्य पद्धति के अपवाद हैं। दिनांक 04.09.2000 और 15.02.2013 के शासनादेश संविधान के अनुच्छेद 21-ए के अंतर्गत परीक्षण से परे नहीं हैं।
(ii) वैकल्पिक रूप से, यह दलील दी गई है कि उक्त शासनादेश संविधान के अनुच्छेद 14, 16 और अनुच्छेद 21-ए के प्रावधानों का उल्लंघन नहीं करते हैं।
(iii) उक्त शासनादेश केवल डाइंग इन हार्नेस नियमावली, 1999 के नियम 5 की योजना के पूरक हैं और दोनों प्रावधानों को सामंजस्यपूर्ण ढंग से क्रियान्वित किया जा सकता है।
(iv) अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति की प्रक्रिया में अभ्यर्थियों की प्रतियोगी योग्यता की जाँच नहीं की जाती। हालाँकि, सभी अभ्यर्थियों के पास न्यूनतम पात्रता योग्यताएँ होनी आवश्यक हैं। पात्रता मानदंडों की पूर्ति ही योग्यता का सूचक है। अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के मामलों में योग्यता निर्धारित करने के लिए किसी और प्रक्रिया की आवश्यकता नहीं है।
(v) अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता का मामला, दिनांक 04.09.2000 और 15.02.2013 के शासनादेशों के अनुसार, सक्षम प्राधिकारी द्वारा प्रत्येक मामले के विशेष तथ्यों के आधार पर प्रथम दृष्टया निर्धारित किया जाना चाहिए।

7. उपरोक्त तर्कों को संबंधित प्रत्यर्थी-बेसिक शिक्षा अधिकारियों के विद्वान अधिवक्ता श्री अजीत सिंह, विद्वान अधिवक्ता श्री बिपिन बिहारी पांडे, विद्वान अधिवक्ता श्री गौरव बिशन, विद्वान अधिवक्ता श्री कृष्ण कुमार चंद, विद्वान अधिवक्ता श्री देवेश विक्रम द्वारा स्वीकार किया गया है।

8. विद्वान न्यायमित्र श्री कुणाल शाह और विद्वान न्यायमित्र श्री अभिनव मेहरोत्रा ने निम्नलिखित दलीलें दी हैं:

(क) दिनांक 04.09.2000 और 15.02.2013 के शासनादेशों का उनकी वैधता की जाँच के लिए संविधान के अनुच्छेद 14, 16 और 21-ए के संदर्भ में परीक्षण किया जाना चाहिए।

(ख) दिनांक 04.09.2000 और 15.02.2013 के शासनादेश अनुच्छेद 14, 16 और भारत के संविधान के अनुच्छेद 21-ए के तहत बच्चों को दिए गए शिक्षा के मौलिक अधिकार और शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 के तहत बच्चों को प्रदत्त वैधानिक अधिकारों का उल्लंघन करते हैं।

(ग) दिनांक 04.09.2000 और 15.02.2013 के शासनादेशों के तहत अनुकंपा के आधार पर शिक्षकों की नियुक्ति के लिए अपनाई गई प्रक्रिया उम्मीदवार की योग्यता का परीक्षण नहीं करती है।

(घ) गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का बच्चों का अधिकार तभी साकार हो सकता है जब खुले बाजार से सबसे अधिक मेधावी उम्मीदवारों को शिक्षक के रूप में नियुक्त किया जाए।

(ङ) दिनांक 04.09.2000 और 15.02.2013 के शासनादेश डाइंग इन हार्नेस नियमावली, 1999 के नियम 5 के साथ असंगत हैं।

(च) दिनांक 04.09.2000 और 15.02.2013 के शासनादेश संविधान के अनुच्छेद 14, 16 और 21-ए के विरुद्ध हैं।

III. संविधान एवं सरकारी पदों/सेवाओं में नियुक्तियाँ:

9. भारतीय संविधान में सरकारी पदों/सेवाओं में नियुक्ति के लिए प्रचुर प्रावधान हैं। कुछ प्रावधान जिनका संदर्भ लिया जा सकता है, वे हैं: संविधान का अनुच्छेद 14 जो संविधान में समानता का प्रावधान करता है, अनुच्छेद 15 जो भेदभाव का निषेध करता है और सामाजिक एवं आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों और अनुसूचित जातियों के लिए विशेष प्रावधान करता है। संविधान का अनुच्छेद 16 जो सरकारी सेवाओं में पदों पर भर्ती का प्रावधान करता है और अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़ा वर्गों सहित कुछ वर्गों के लिए आरक्षण प्रदान करता है। संविधान का अनुच्छेद 309 राज्य को सेवा नियमावली बनाने की शक्ति प्रदान करता है।

10. उपर्युक्त प्रावधानों के संवैधानिक विधि-प्रस्तुतीकरण में यह प्रावधान है कि सरकारी सेवाओं और पदों पर भर्ती एक पारदर्शी और खुली प्रक्रिया के माध्यम से की जानी चाहिए। सरकारी पदों पर नियुक्ति के लिए संविधान के अंतर्गत भर्ती प्रक्रियाएँ, योग्य नागरिकों की व्यापकतम भागीदारी और प्रतिस्पर्धी योग्यता के आधार पर चयन को सक्षम बनाकर, देश की सेवा के लिए सर्वश्रेष्ठ प्रतिभाओं को प्रोत्साहित करती हैं। संवैधानिक योजना चयन प्रक्रिया में भागीदारी के अवसर में समानता सुनिश्चित करती है, सरकारी सेवाओं में पिछड़े वर्गों और अनुसूचित

जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों की विभिन्न श्रेणियों के प्रतिनिधित्व का प्रावधान करती है, और नियुक्तियों में योग्यता के प्रभुत्व को बनाए रखती है।

11. उक्त भर्ती प्रक्रियाओं के अनुसरण में की गई नियुक्तियाँ एक कुशल प्रशासन सुनिश्चित करती हैं जो सामाजिक न्याय से ओतप्रोत हो और पूरी तरह से नागरिकों की सेवा के लिए समर्पित हो। संवैधानिक मानदंडों के अनुपालन में की गई भर्ती प्रक्रियाएँ असमानताओं से ग्रस्त राष्ट्र को एक समतावादी व्यवस्था द्वारा परिभाषित गणराज्य में परिवर्तित करने में सहायक होती हैं।

IV. अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियाँ:

(क). सामान्य सिद्धांत :

12. अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियाँ संविधान में निर्धारित सार्वजनिक नियुक्ति प्रक्रिया से एक विचलन और अपवाद हैं। अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियाँ, एक आदर्श नियोक्ता के रूप में राज्य की अपने कर्मचारियों के कल्याण के प्रति प्रतिबद्धता को दर्शाती हैं।

13. अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियों का एकमात्र उद्देश्य, मृतक सरकारी कर्मचारी के परिवार को तत्काल वित्तीय सहायता प्रदान करना है, जो कमाने वाले सदस्य की मृत्यु के बाद अचानक वित्तीय संकट का सामना करता है। अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियाँ स्थायी सामाजिक प्रतिष्ठा प्रदान करने के लिए नहीं हैं। अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियाँ संवैधानिकता की कसौटी पर बहुत कम अंतर से और केवल उपरोक्त आधारों पर ही उत्तीर्ण हुई हैं।

14. अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियां किसी मृत कर्मचारी के आश्रितों को खुली चयन प्रक्रिया की कठोरता के बिना सरकारी सेवा में सुरक्षित प्रवेश प्रदान करती हैं। उम्मीदवारों की प्रतिस्पर्धी योग्यता अप्रासंगिक है क्योंकि नियुक्तियां सार्वजनिक चयन प्रक्रिया को अपनाए बिना की जाती हैं। अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए भर्ती के मानदंड पूरी तरह से शिथिल किए जाते हैं। हालाँकि कानून के अनुसार आवेदकों के पास पदों के लिए न्यूनतम योग्यताएँ होनी आवश्यक होती हैं।

15. अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियों की उपरोक्त सीमाओं को ध्यान में रखते हुए, अच्छे प्राधिकार द्वारा यह माना गया है कि अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति का कोई निहित अधिकार नहीं होता है। इसके अलावा, अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति का अधिकार केवल इस संबंध में विशिष्ट प्रावधानों से प्राप्त होता है और इसका कड़ाई से पालन किया जाना चाहिए। उपरोक्त नियमावली की व्याख्या करते समय अत्यधिक उदार दृष्टिकोण, नियुक्तियों को संविधान के समानता खंड द्वारा निंदनीय बना सकता है।

16. कानून के अनुसार प्रासंगिक कारकों की जांच किए बिना या संवैधानिक न्यायालयों के निर्णयों के विपरीत अनुकंपा के आधार पर की गई असीमित नियुक्तियां, इन नियुक्तियों से "वैधता का आवरण हटा देंगी" तथा

उक्त नियुक्तियां वंशानुगत नियुक्तियों की श्रेणी में आ जाएंगी। संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 की संवैधानिक व्यवस्था के अनुसार, सरकारी पदों पर नियुक्तियाँ योग्यता के आधार पर होनी चाहिए, न कि विरासत से। संवैधानिक नियमों ने अनुकंपा नियुक्तियों को भर्ती के स्रोत के रूप में बदलने को अस्वीकार कर दिया है।

IV (ख) केस लॉ:

17. इस दृष्टिकोण को प्रासंगिक उदाहरणों का लाभ मिलता है। अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति का उद्देश्य सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **उमेश कुमार नागपाल बनाम हरियाणा राज्य** में स्पष्ट किया गया था। **उमेश कुमार नागपाल (उपरोक्त)** में निर्धारित न्यायशास्त्रीय तर्क वह लोकस क्लासिकस (शास्त्रीय आधार) है जो अनुकंपा नियुक्तियों के लिए एकमात्र तर्क प्रदान करता है:

"2. प्रश्न उन विचारों से संबंधित है जो अनुकंपा के आधार पर लोक सेवाओं में नियुक्ति देते समय मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इस मुद्दे पर काफी भ्रम फैलाया गया है। नियमानुसार, लोक सेवाओं में नियुक्तियाँ केवल खुले आवेदन और योग्यता के आधार पर की जानी चाहिए। नियुक्ति का कोई अन्य तरीका या कोई अन्य विचार स्वीकार्य नहीं है। न तो सरकारें और न ही लोक प्राधिकारी किसी अन्य प्रक्रिया का पालन करने या पद के लिए नियमों द्वारा निर्धारित योग्यताओं में ढील देने के लिए स्वतंत्र हैं। हालाँकि, इस सामान्य नियम, जिसका हर मामले में कड़ाई से पालन किया जाना चाहिए, में न्याय के हित में और कुछ आकस्मिकताओं से निपटने के लिए कुछ अपवाद बनाए गए हैं। ऐसा ही एक अपवाद ऐसे कर्मचारी के आश्रितों के लिए है जो सेवाकाल के दौरान मर जाता है और अपने परिवार को गरीबी और आजीविका के बिना छोड़ जाता है। ऐसे मामलों में, विशुद्ध मानवीय दृष्टिकोण से, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि जब तक आजीविका का कोई स्रोत उपलब्ध नहीं कराया जाता, परिवार अपनी ज़रूरतें पूरी नहीं कर पाएगा, नियमावली में मृतक के आश्रितों में से किसी एक को, जो ऐसे रोजगार के लिए पात्र हो, लाभकारी रोजगार प्रदान करने का प्रावधान किया गया है। इस प्रकार अनुकंपा आधारित रोजगार प्रदान करने का पूरा उद्देश्य परिवार को अचानक आए संकट से उबरने में सक्षम बनाना है। इसका उद्देश्य ऐसे परिवार के किसी सदस्य को कोई पद देना नहीं है, और न ही मृतक द्वारा धारित पद के बदले कोई पद देना है। इसके अलावा, किसी कर्मचारी की मात्र मृत्यु उसके परिवार को आजीविका के ऐसे स्रोत का अधिकार नहीं देती। सरकार या संबंधित लोक प्राधिकरण को मृतक के परिवार की आर्थिक स्थिति की जाँच करनी चाहिए, और केवल तभी जब वह इस बात से संतुष्ट हो कि रोजगार के प्रावधान के बिना, परिवार संकट का सामना करने में सक्षम नहीं होगा, परिवार के पात्र सदस्य को नौकरी की पेशकश की जानी चाहिए। श्रेणी III और IV के पद गैर-शारीरिक और शारीरिक श्रेणियों में सबसे निचले पद होते हैं और इसलिए केवल इन्हें ही अनुकंपा के आधार पर दिया जा सकता है, जिसका उद्देश्य परिवार को आर्थिक तंगी से मुक्त करना और आपात स्थिति से उबरने में मदद करना है। नियम में अपवाद बनाकर ऐसे निम्नतम पदों पर रोजगार का प्रावधान न्यायोचित और वैध है क्योंकि यह भेदभावपूर्ण नहीं है। ऐसे पदों पर मृतक कर्मचारी के आश्रित को दिए गए अनुकूल व्यवहार का प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य से तर्कसंगत संबंध है, अर्थात अभाव के विरुद्ध राहत। इस उद्देश्य के लिए सार्वजनिक प्राधिकारियों द्वारा कोई अन्य पद दिए जाने की अपेक्षा या आवश्यकता नहीं है। इस संबंध में यह याद रखना चाहिए कि मृतक के निराश्रित परिवार के विपरीत लाखों अन्य

परिवार हैं जो समान रूप से ही निराश्रित हैं। बनाए गए नियम का मृतक कर्मचारी के परिवार के पक्ष में अपवाद उसके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं, वैध अपेक्षाओं और पूर्ववर्ती रोजगार से उत्पन्न परिवार की स्थिति और मामलों में परिवर्तन को ध्यान में रखते हुए किया गया है, जो अचानक घटित हो जाते हैं।"

18. **शिक्षा निदेशक (माध्यमिक) बनाम पुष्पेंद्र कुमार** मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भी ऐसा ही प्रस्ताव प्रतिपादित किया गया:

"8. अनुकंपा आधारित रोजगार प्रदान करने के प्रावधान का उद्देश्य मृतक कर्मचारी के परिवार को कमाने वाले की मृत्यु के कारण उत्पन्न अचानक संकट से उबरने में सक्षम बनाना है, जिससे परिवार के सामने आर्थिक संकट आ जाता है और आजीविका को कोई साधन नहीं रह जाता है। विशुद्ध मानवीय दृष्टिकोण से और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि जब तक आजीविका का कोई स्रोत प्रदान नहीं किया जाता, परिवार अपनी ज़रूरतें पूरी नहीं कर पाएगा, मृतक के आश्रितों में से एक को, जो ऐसी नियुक्ति के लिए पात्र हो, लाभकारी नियुक्ति देने का प्रावधान किया गया है। ऐसा प्रावधान किसी विशेष प्रक्रिया का पालन करके पद पर नियुक्ति का प्रावधान करने वाले सामान्य प्रावधानों से विचलन करता है। चूँकि ऐसा प्रावधान उक्त प्रक्रिया का पालन किए बिना नियुक्ति को सक्षम बनाता है, यह सामान्य प्रावधानों के अपवाद की प्रकृति का है। कोई अपवाद उस मुख्य प्रावधान को समाहित नहीं कर सकता जिसका वह अपवाद है और इस प्रकार मुख्य प्रावधान द्वारा प्रदत्त अधिकार को पूरी तरह से छीनकर मुख्य प्रावधान को निष्प्रभावी नहीं कर सकता। इसलिए, यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि अनुकंपा के आधार पर रोजगार प्रदान करने का प्रावधान, जो सामान्य प्रावधानों के अपवाद की प्रकृति का है, उन अन्य व्यक्तियों के अधिकार में अनुचित रूप से हस्तक्षेप नहीं करता है जो नियुक्ति के लिए पात्र हैं और उस पद पर रोजगार की तलाश कर रहे हैं जो उन्हें उपलब्ध होता, यदि मृतक कर्मचारी के आश्रित की अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति का यह प्रावधान नहीं होता..."

19. **शिव कुमार दुबे एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य** मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ ने निम्नलिखित कानून निर्धारित किया:

"31. अब हम उन सिद्धांतों को सूत्रबद्ध करने जा रहे हैं जो डाइंग इन हार्नेस नियमावली के अनुसरण में अनुकंपा नियुक्ति को नियंत्रित करेंगे:
(i) अनुकंपा नियुक्ति का प्रावधान इस सिद्धांत का अपवाद है कि सार्वजनिक रोजगार के मामलों में अवसर की समानता होनी चाहिए। संवैधानिक रूप से वैध होने के लिए इस अपवाद को सावधानीपूर्वक संरचित और कार्यान्वित किया जाना चाहिए ताकि अनुकंपा नियुक्ति केवल उन्हीं स्थितियों तक सीमित रहे जो उस मूल उद्देश्य और प्रयोजन की पूर्ति करती हों जिसे प्राप्त करने का प्रयास किया जा रहा है;
(ii) अनुकंपा नियुक्ति का कोई सामान्य या निहित अधिकार नहीं है। अनुकंपा नियुक्ति का दावा केवल तभी किया जा सकता है जब किसी योजना या नियमावली में ऐसी नियुक्ति का प्रावधान हो। जहाँ किसी प्रशासनिक

योजना या वैधानिक नियमों में ऐसा प्रावधान किया गया हो, वहाँ अनुकंपा नियुक्ति पूरी तरह से योजना या, जैसा भी मामला हो, नियमावली के अंतर्गत ही होनी चाहिए;

(iii) अनुकंपा नियुक्ति प्रदान करने का उद्देश्य और प्रयोजन मृतक कर्मचारी के परिवार के आश्रित सदस्यों को कमाने वाले की मृत्यु के कारण उत्पन्न तात्कालिक वित्तीय संकट से उबरने में सक्षम बनाना है;

(iv) यह निर्धारित करते समय कि क्या परिवार वित्तीय संकट में है, परिवार की आय, उसकी देनदारियाँ, परिवार को मिलने वाले अंतिम लाभ, उसके सदस्यों की आयु, आश्रितता और वैवाहिक स्थिति, तथा रोजगार के किसी अन्य स्रोत से होने वाली आय सहित सभी प्रासंगिक पहलुओं को ध्यान में रखा जाना चाहिए;

(v) जहाँ मृतक कर्मचारी की मृत्यु की तिथि के बाद से काफी समय बीत चुका है, वहाँ अनुकंपा नियुक्ति प्राप्त करने की तत्काल आवश्यकता समाप्त हो जाएगी और यह एक प्रासंगिक परिस्थिति होगी जिसे अधिकारियों द्वारा यह निर्धारित करते समय ध्यान में रखा जाना चाहिए कि क्या अनुकंपा नियुक्ति प्रदान करने का मामला बनता है;

(vi) नियम 5 के अनुसार, सामान्यतः अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदन मृतक कर्मचारी की मृत्यु की तिथि से पाँच वर्ष के भीतर किया जाना चाहिए। प्रथम परंतुक द्वारा प्रदत्त शक्ति, अनुचित कठिनाई के मामले में अवधि में छूट देने और मामले को न्यायसंगत एवं समतापूर्ण तरीके से निपटाने का विवेकाधिकार दी गई है;

(vii) जहाँ पाँच वर्ष की अवधि के भीतर आवेदन करने में देरी होती है, वहाँ आवेदक पर यह दायित्व है कि वह कारणों और दस्तावेजी एवं अन्य साक्ष्यों द्वारा समर्थित औचित्य के आधार पर मामला स्थापित करे। राज्य सरकार को सभी तथ्यों पर विचार करने के बाद उचित निर्णय लेना होगा। छूट देने की शक्ति एक अपवाद की प्रकृति की है और सरकार की संतुष्टि के लिए वस्तुनिष्ठ विचारों के अस्तित्व पर निर्भर है;

(viii) अनुकंपा नियुक्ति प्रदान करने के प्रावधान मृतक कर्मचारी के परिवार के किसी सदस्य के पक्ष में पद आरक्षित नहीं करते हैं। अतः, ऐसा कोई सामान्य अधिकार नहीं है जिसका दावा इस प्रकार किया जा सके कि परिवार का कोई सदस्य, जो मृत्यु के समय नाबालिग था, वयस्क होने पर अनुकंपा नियुक्ति का दावा करने का हकदार होगा। जहाँ नियमों में एक निश्चित समयावधि का प्रावधान है जिसके भीतर आवेदन करना होता है, वहाँ परिवार के किसी सदस्य के अल्पवयस्क होने पर नियम का प्रभाव निलंबित नहीं होता।"

20. **आशीष यादव बनाम प्रबंध निदेशक, उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम व 2 अन्य** मामले में इस न्यायालय ने अनुकंपा नियुक्ति के उद्देश्य पर चर्चा करते हुए निम्नलिखित निर्णय दिया:

"10. .....अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियाँ करने का एकमात्र औचित्य यह है कि मृतक कर्मचारी के आश्रितों को उसकी मृत्यु के बाद अप्रत्याशित वित्तीय अभाव का सामना करना पड़ता है और उन्हें तत्काल सहायता की आवश्यकता होती है। कर्मचारी की मृत्यु के कारण उत्पन्न अचानक वित्तीय संकट से तुरंत उबरने के लिए परिवार को अनुकंपा नियुक्तियाँ प्रदान की जाती हैं। केवल इसी विशेषता के आधार पर मृतक कर्मचारी के परिजनों को एक वर्ग में शामिल किया गया और इसी आधार पर संवैधानिक न्यायालयों द्वारा अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियों के औचित्य को उचित ठहराया गया।

15. अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियाँ प्रदान करने का उद्देश्य तभी पूरा हो सकता है और उनकी संवैधानिकता तभी सुरक्षित रह सकती है जब अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियाँ प्रदान करने के नियमों का कड़ाई से पालन किया जाए।"

21. देश के सभी संवैधानिक न्यायालयों में अनुकंपा नियुक्ति के मुद्दे पर आम सहमति है। **इप्सिता चक्रवर्ती बनाम पश्चिम बंगाल राज्य** मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय ने अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियों के लिए दिशानिर्देश देने वाले उपरोक्त प्रमुख सिद्धांतों का सारांश इस प्रकार दिया:

"10. अनुकंपा नियुक्ति के मुद्दे पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णयों का अध्ययन करने के बाद, निम्नलिखित सिद्धांत सामने आते हैं:-
(क) अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति, उस सामान्य नियम का एक अपवाद है जिसके अनुसार सार्वजनिक सेवाओं में भर्ती पारदर्शी और जवाबदेह तरीके से की जानी चाहिए ताकि सभी पात्र व्यक्तियों को चयन प्रक्रिया में प्रतिस्पर्धा करने और भाग लेने का अवसर मिल सके।
(ख) सेवाकाल के दौरान मृत कर्मचारी के आश्रित का अनुकंपा नियुक्ति का अधिकार नियोक्ता द्वारा बनाई गई योजना, कार्यकारी निर्देशों, नियमों आदि पर आधारित है और नियोक्ता द्वारा प्रदत्त उपरोक्त योजना के अलावा किसी अन्य आधार पर अनुकंपा नियुक्ति का दावा करने का कोई अधिकार नहीं है।
(ग) अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति केवल कमाने वाले की मृत्यु के कारण परिवार को होने वाली तात्कालिक कठिनाई को पूरा करने के लिए दी जाती है। जब अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति की जाती है, तो उसे केवल उस उद्देश्य तक ही सीमित रखा जाना चाहिए जिसे प्राप्त करने का प्रयास किया जा रहा है, इसका उद्देश्य अंतहीन अनुकंपा प्रदान करना नहीं है।
(घ) अनुकंपा नियुक्ति केवल तभी की जानी चाहिए जब नियुक्ति प्रदान करने के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ मौजूद हों और मार्गदर्शक कारक परिवार की वित्तीय स्थिति होनी चाहिए।"

22. सरकारी नियुक्तियों के लिए संवैधानिक योजना के तहत सभी उम्मीदवारों को समान अवसर प्रदान करने के सर्वोच्च महत्व और अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियों की अवधारणा द्वारा बनाए गए अपवाद को **एन.सी. संतोष बनाम कर्नाटक राज्य और अन्य** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दोहराया गया था। **एन.सी. संतोष (उपरोक्त)** में मामलों का हवाला देते हुए पुष्टि की गई कि ऐसी नियुक्तियों से कोई निहित अधिकार नहीं बनता है और यह भी माना कि ऐसी नियुक्तियों के लिए मानदंडों का पालन करना कानून की एक अनिवार्य आवश्यकता है:

"13. यह सर्वमान्य है कि सभी सरकारी रिक्तियों के लिए सभी अभ्यर्थियों को समान अवसर प्रदान किए जाने चाहिए, जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 में अनिवार्य है। हालाँकि, मृतक कर्मचारी के आश्रित को अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति उक्त मानदंडों का अपवाद है। *सेल बनाम मधुसूदन दास [सेल बनाम मधुसूदन दास, (2008) 15 एससीसी 560 : (2009) 2 एससीसी (एल एंड एस) 378]* में तदनुसार यह टिप्पणी की गई

थी कि अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति एक रियायत है, न कि अधिकार और नियमों में निर्धारित मानदंडों को सभी अभ्यर्थियों द्वारा पूरा किया जाना चाहिए।

14. इस न्यायालय ने *एसबीआई बनाम राज कुमार [एसबीआई बनाम राज कुमार, (2010) 11 एससीसी 661: (2011) 1 एससीसी (एल एंड एस) 150]* में यह दोहराते हुए कि किसी भी अभ्यर्थी के पास अनुकंपा नियुक्ति का दावा करने का निहित अधिकार नहीं है, घोषित किया कि लागू मानदंड आवेदन पर वास्तव में विचार किए जाते समय लागू होंगे। अपनी नीतियों के आधार पर योजना को संशोधित करने के नियोक्ता के अधिकार को इस फैसले में मान्यता दी गई थी। इसी तरह, *एमजीबी ग्रामीण बैंक बनाम चक्रवर्ती सिंह [एमजीबी ग्रामीण बैंक बनाम चक्रवर्ती सिंह, (2014) 13 एससीसी 583: (2015) 1 एससीसी (एल एंड एस) 442]* में इस न्यायालय ने दोहराया कि अनुकंपा नियुक्ति पर प्रचलित योजना के अनुसार विचार किया जाना चाहिए और कोई भी अभ्यर्थी यह दावा नहीं कर सकता है कि उसके मामले पर सरकारी कर्मचारी की मृत्यु की तिथि पर मौजूद योजना के अनुसार विचार किया जाना चाहिए।

17. उपरोक्त चर्चा से पता चलता है कि *केनरा बैंक बनाम एम. महेश कुमार [केनरा बैंक बनाम एम. महेश कुमार, (2015) 7 एससीसी 412 : (2015) 2 एससीसी (एल एंड एस) 539]* में लिए गए दृष्टिकोण को, पहले के दो निर्णयों में समन्वय पीठ के विपरीत दृष्टिकोण के साथ सामंजस्य स्थापित करना होगा। इसलिए, अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा *केनरा बैंक बनाम एम. महेश कुमार [केनरा बैंक बनाम एम. महेश कुमार, (2015) 7 एससीसी 412: (2015) 2 एससीसी (एल एंड एस) 539]* मामले पर भारी अवलंब के बावजूद, और *उदय कृष्ण नाइक बनाम कर्नाटक राज्य [उदय कृष्ण नाइक बनाम कर्नाटक राज्य, 1999 एससीसी ऑनलाइन कर्नाटक 209: आईएलआर 1999 कर 2648]* में कर्नाटक उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश की राय के आधार पर, यह नहीं कहा जा सकता है कि अपीलकर्ता के दावे पर सरकारी कर्मचारी की मृत्यु की तिथि पर प्रचलित नियमों के असंशोधित प्रावधानों के तहत विचार किया जाना चाहिए।

18. *हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम शशि कुमार [हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम शशि कुमार, (2019) 3 एससीसी 653: (2019) 1 एससीसी (एल एंड एस) 542]* के सबसे हालिया फैसले में अनुकंपा नियुक्ति के सिद्धांतों को नियंत्रित करने वाले पहले के फैसलों पर चर्चा और विश्लेषण किया गया था। पीठ की ओर से बोलते हुए, न्यायमूर्ति डॉ. डी. वाई. चंद्रचूड़ ने दोहराया कि राज्य की सेवा में किसी भी सार्वजनिक पद पर नियुक्ति संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के अनुरूप सिद्धांतों के आधार पर की जानी चाहिए और अनुकंपा नियुक्ति सामान्य नियम का अपवाद है। एक मृत सरकारी कर्मचारी के आश्रितों को अनुकंपा नियुक्ति नीति के आधार पर पात्र बनाया जाता है और उन्हें राज्य की नीति द्वारा निर्धारित मानदंडों को पूरा करना होगा।"

23. निहित अधिकार के अभाव, भर्ती की संवैधानिक योजना के अधिदेश और अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति प्रदान करने के नियमों का कड़ाई से पालन करने की आवश्यकता पर भी सर्वोच्च न्यायालय ने **कर्नाटक कोषागार निदेशक और अन्य बनाम सोम्याश्री** मामले में जोर दिया था:

"7. प्रतिद्वंदी पक्षों की ओर से प्रस्तुत दलीलों पर विचार करते समय, अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति पर एन.सी. संतोष (उपरोक्त) मामले में इस न्यायालय के एक हालिया निर्णय का उल्लेख आवश्यक है। अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति पर इस न्यायालय के निर्णयों की श्रृंखला पर विचार करने के बाद, यह अवधारित किया गया है कि राज्य की सेवा में किसी भी सार्वजनिक पद पर नियुक्ति भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के सिद्धांतों के आधार पर की जानी चाहिए और अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति सामान्य नियम का अपवाद है। यह भी कहा गया है कि मृतक सरकारी कर्मचारी के आश्रित अनुकंपा नियुक्ति नीति के आधार पर पात्र होते हैं और उन्हें राज्य की नीति द्वारा निर्धारित मानदंडों को पूरा करना होगा। यह भी कहा गया है कि आवेदन पर विचार की तिथि पर प्रचलित मानदंड अनुकंपा नियुक्ति के दावे पर विचार का आधार होने चाहिए। किसी सरकारी कर्मचारी का आश्रित, सरकारी कर्मचारी की मृत्यु पर प्राप्त किसी निहित अधिकार के अभाव में, केवल अपने आवेदन पर विचार की मांग कर सकता है। यह भी कहा गया है कि वह, हालांकि, सरकारी कर्मचारी की मृत्यु के दिन लागू मानदंडों के अनुसार विचार किए जाने का का हकदार होता है। अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति प्रदान करने के संबंध में उपरोक्त निर्णय में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून को संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है:

(i) अनुकंपा नियुक्ति सामान्य नियम का अपवाद है;
(ii) किसी भी अभ्यर्थी को अनुकंपा नियुक्ति का अधिकार नहीं है;
(iii) राज्य की सेवा में किसी भी सार्वजनिक पद पर नियुक्ति भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के अनुसार सिद्धांत के आधार पर की जानी चाहिए;
(iv) अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति केवल राज्य की नीति द्वारा निर्धारित मानदंडों को पूरा करने और/या नीति के अनुसार पात्रता मानदंडों को पूरा करने पर ही की जा सकती है;
(v) आवेदन पर विचार की तिथि को प्रचलित मानदंड अनुकंपा नियुक्ति के दावे पर विचार करने का आधार होने चाहिए।"

24. अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियों के उद्देश्य और सीमाओं, जिनमें केवल सहानुभूति के आधार पर लाभ प्रदान करने से बचने की आवश्यकता भी शामिल है, को सर्वोच्च न्यायालय ने **हरियाणा राज्य एवं अन्य बनाम अंकुर गुप्ता** के मामले में दोहराया था। **अंकुर गुप्ता (उपरोक्त)** मामले में यह स्पष्ट रूप से कहा गया था कि अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियाँ भर्ती का स्रोत नहीं हैं और वे उस पद पर नियुक्ति के पात्र अन्य व्यक्तियों के अधिकारों में अनुचित रूप से हस्तक्षेप नहीं करती हैं:

"6. जैसा कि हरियाणा राज्य एवं अन्य बनाम रानी देवी एवं अन्य (जेटी 1996 (6) एससीसी 646) में कहा गया था, यह इंगित करने की आवश्यकता नहीं है कि अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए संबंधित व्यक्ति का दावा इस आधार पर है कि वह मृत कर्मचारी पर आश्रित था। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 या 16 की कसौटी पर इस दावे को सख्ती से स्वीकार नहीं किया जा सकता। हालाँकि, ऐसे कर्मचारी, जिसने राज्य की सेवा

की हो और सेवा के दौरान उसकी मृत्यु हो जाए, के परिवार में अचानक उत्पन्न संकट के आधार पर ऐसे दावे को उचित और स्वीकार्य माना जाता है। इसलिए अधिकारियों के लिए यह आवश्यक है कि वे ऐसे नियम, विनियम बनाएँ या ऐसे प्रशासनिक आदेश जारी करें जो अनुच्छेद 14 और 16 की कसौटी पर खरे उतर सकें। अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति को अधिकार के रूप में दावा नहीं किया जा सकता। मृत कर्मचारी द्वारा की गई सेवा की प्रकृति के बावजूद डाइ-इन-हार्नेस योजना को सभी प्रकार के पदों पर लागू नहीं किया जा सकता है। **रानी देवी (उपरोक्त)** में यह माना गया था कि अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के संबंध में योजना यदि सभी प्रकार के आकस्मिक या तदर्थ कर्मचारियों तक विस्तारित की जाती है, जिसमें प्रशिक्षु के रूप में काम करने वाले भी शामिल हैं, तो इसे संवैधानिक आधार पर उचित नहीं ठहराया जा सकता है। भारतीय जीवन बीमा निगम बनाम आशा रामचंद्र अम्बेकर (श्रीमती) और अन्य (1994 (2) एससीसी 718) में यह बताया गया था कि उच्च न्यायालय और प्रशासनिक न्यायाधिकरण सहानुभूतिपूर्ण विचारों से प्रेरित होकर अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियां करने का आशीर्वाद नहीं दे सकते हैं, जब इसके संबंध में बनाए गए नियम ऐसी नियुक्तियों को कवर नहीं करते हों और उन पर विचार न करते हों। उमेश कुमार नागपाल बनाम हरियाणा राज्य और अन्य (1994 (4) एससीसी 138) में यह नोट किया गया था कि सार्वजनिक सेवा में एक नियम के रूप में नियुक्ति खुले आवेदन और योग्यता के आधार पर की जानी चाहिए। अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति, भर्ती का एक अन्य स्रोत नहीं है, बल्कि सेवा के दौरान कर्मचारी की मृत्यु और उसके परिवार के बिना आजीविका के रहने के तथ्य को ध्यान में रखते हुए, पूर्वोक्त आवश्यकता का एक अपवाद मात्र है। ऐसे मामलों में उद्देश्य परिवार को अचानक वित्तीय संकट से उबरने में सक्षम बनाना होता है। लेकिन अनुकंपा के आधार पर ऐसी नियुक्तियां मृतक के परिवार की वित्तीय स्थिति को ध्यान में रखते हुए नियमावली, विनियमावली या प्रशासनिक निर्देशों के अनुसार की जानी चाहिए।

7. शिक्षा निदेशक (माध्यमिक) एवं अन्य बनाम पुष्पेंद्र कुमार एवं अन्य (1998 (5) एससीसी 192) में यह कहा गया कि अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के मामले में किसी विशेष पद के लिए आग्रह नहीं किया जा सकता है। विशुद्ध रूप से मानवीय आधार पर और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि जब तक आजीविका का कोई स्रोत प्रदान नहीं किया जाता है, परिवार अपनी जरूरतों को पूरा करने में सक्षम नहीं होगा, मृतक के आश्रितों में से एक को नियुक्ति देने का प्रावधान किया गया है, जो नियुक्ति के लिए पात्र हो। हालाँकि, इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि अनुकंपा आधारित रोजगार के आधार का प्रावधान, जो सामान्य प्रावधानों का अपवाद है, उन अन्य व्यक्तियों के अधिकार में अनुचित रूप से हस्तक्षेप न करे जो नियुक्ति के पात्र हैं और उस पद पर नियुक्ति चाहते हैं जो मृतक कर्मचारी के आश्रित की अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के प्रावधान के बिना उपलब्ध होता। चूँकि यह सामान्य प्रावधानों का अपवाद है, इसलिए यह उस प्रावधान का स्थान नहीं ले सकता जिसका यह अपवाद है और इस प्रकार मुख्य प्रावधान द्वारा प्रदत्त अधिकार को पूरी तरह से छीनकर मुख्य प्रावधान को निष्प्रभावी नहीं कर सकता।"

25. हाल ही में **टिंकू बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य** मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने वर्षों से स्थापित कानून की स्थिति का सारांश प्रस्तुत किया:

"12. जहां तक अनुकंपा नियुक्ति का संबंध है, जिसे नियुक्ति के लिए निहित अधिकार के रूप में दावा किया जा रहा है, यह कहना पर्याप्त है कि उक्त अधिकार सेवाकाल के दौरान मरने वाले कर्मचारी की सेवा की शर्त नहीं है, जिसे किसी भी प्रकार की जांच या चयन प्रक्रिया के बिना आश्रित को दिया जाना चाहिए। यह नियुक्ति विभिन्न मानदंडों की उचित और कड़ी जाँच के बाद दी जाती है, जिसका उद्देश्य किसी परिवार को अचानक आई आर्थिक तंगी से उबारना है, ताकि परिवार को उस आपात स्थिति से उबरने में मदद मिल सके जहाँ परिवार का एकमात्र कमाने वाला सदस्य मर जाता है और उसे असहाय और शायद कंगाल छोड़ जाता है। इसलिए, अनुकंपा नियुक्ति, मृतक कर्मचारी के उस परिवार को आर्थिक संकट से उबारने के लिए प्रदान की जाती है जो अत्यधिक आर्थिक संकट से जूझ रहा है और रोजगार के बिना, परिवार इस संकट का सामना करने में सक्षम नहीं होगा। यह किसी भी स्थिति में इस शर्त के अधीन होगा कि दावेदार ऐसी अनुकंपा नियुक्ति के लिए नीति, निर्देशों या नियमावली में निर्धारित आवश्यकताओं को पूरा करता हो।

14. जहाँ भी अनुकंपा नियुक्ति के लिए ऐसी नीतियाँ बनाई जाती हैं, उनका मूल आधार और औचित्य संकटग्रस्त और अभावग्रस्त परिवार को राहत प्रदान करने के उद्देश्य से होता है, और इस प्रकार मृतक कर्मचारी के परिवार के पक्ष में सामान्य नियम में एक अपवाद निकाला जाता है। ऐसा ऐसे कर्मचारी द्वारा प्रदान की गई सेवाओं और उसके परिणामस्वरूप उत्पन्न वैध कानूनी अपेक्षाओं को ध्यान में रखते हुए किया जाता है, साथ ही अप्रत्याशित घटनाओं, जैसे कि एकमात्र कमाने वाले की मृत्यु, के कारण परिवार की स्थिति और स्थितियों में अचानक आए बदलाव को भी ध्यान में रखा जाता है।

15. इसलिए, ऐसी नीतियों का उद्देश्य परिवार को तत्काल सहायता प्रदान करना होता है। इस परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो, आश्रित द्वारा दावा प्रस्तुत करने के लिए कर्मचारी की मृत्यु की तिथि से तीन वर्ष की अवधि, जिसमें हरियाणा सरकार द्वारा जारी 1999 के नीति निर्देशों के अनुसार वयस्कता प्राप्त करना भी शामिल है, किसी भी स्थिति में अनुचित या अतार्किक नहीं कही जा सकती, खासकर जब अनुकंपा नियुक्ति एक निहित अधिकार नहीं है।"

26. हाल ही में **केनरा बैंक बनाम अजीतकुमार जी.के.** में सर्वोच्च न्यायालय ने कुछ पदों पर उपयुक्तता का आकलन करने की आवश्यकता, वित्तीय कठिनाई का निर्धारण करने की आवश्यकता और अनुकंपा नियुक्तियाँ करते समय केवल एक पद के बदले दूसरा पद न देने की सावधानी पर विस्तार से प्रकाश डाला:

"33. अगला उप-मुद्दा, जिसे नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता, यह है। 1993 की योजना में अनुकंपा नियुक्ति के लिए दावेदार की उपयुक्तता का आकलन करने की परिकल्पना की गई है। जैसा कि इस न्यायालय के कई निर्णयों में निर्धारित किया गया है, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, अनुकंपा नियुक्ति के लिए नीति/योजना 30 के भागों का अक्षरशः पालन किया जाना चाहिए। प्रत्यर्थी की उपयुक्तता परीक्षा लिए बिना, खंडपीठ ने केनरा बैंक (उपरोक्त) के निर्णय का सहारा लेकर प्रत्यर्थी को क्लर्क की श्रेणी में नियुक्त करने का निर्देश देकर

स्पष्ट रूप से गलती की। यह भी महत्वपूर्ण है कि केनरा बैंक (उपरोक्त) ने भी नियुक्ति का आदेश नहीं दिया था, बल्कि दावे पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता बताई।

44. जैसा कि बी. किशोर (उपरोक्त) में उचित रूप से धारित किया गया है, मृतक कर्मचारी के आश्रितों की निर्धनता अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए किसी भी योजना के तहत पूरी की जाने वाली मौलिक शर्त है और यदि ऐसी निर्धनता साबित नहीं होती है, तो सुरक्षात्मक भेदभाव को आगे बढ़ाने के लिए राहत प्रदान करने से सेवा में मरने वाले कर्मचारी के आश्रितों के लिए एक प्रकार का आरक्षण हो जाएगा, जिससे संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के तहत गारंटीकृत समानता के आदर्श के साथ सीधे टकराव होगा। इसके अलावा, न्यायिक निर्णयों में यह भी कहा गया है कि अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के दावे पर निर्णय लेते समय, मृतक कर्मचारी के परिवार की आर्थिक स्थिति का आकलन किया जाना चाहिए। अन्यथा, योजना का उद्देश्य कमज़ोर हो सकता है; इस मूल्यांकन के बिना, सेवा के दौरान मरने वाले किसी भी कर्मचारी का आश्रित, रोजगार के अधिकार का दावा इस तरह कर सकता है जैसे कि वह उसे विरासत में मिला हो।

45. इन सभी निर्णयों के अनुपातिक निर्णयों को सामंजस्यपूर्वक पढ़ा जाना चाहिए ताकि सेवा में मरने वाले कर्मचारी के आश्रितों को, जो वास्तव में ज़रूरतमंद हैं, सहायता प्रदान करने के महान लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके, न कि उन्हें किसी पद पर नियुक्ति देने के बदले दूसरे पद पर नियुक्ति देने के उद्देश्य से। इस संबंध में, उमेश कुमार नागपाल (उपरोक्त) मामले में दी गई चेतावनी को याद रखना होगा कि मृतक के निराश्रित परिवार के अलावा, लाखों अन्य परिवार भी हैं जो, यदि उससे अधिक नहीं, तो उतने ही निराश्रित हैं।"

27. अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियाँ प्रदान करने के औचित्य और अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियों की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए विभिन्न सुरक्षा उपायों को संवैधानिक विधि न्यायशास्त्र में शामिल किया गया है। संवैधानिक न्यायालयों के उक्त निर्णयों को अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति प्रदान करने के प्रावधानों में शामिल किया जाएगा।

V. वैधानिक/कानूनी ढांचा:

V(क). डाइंग इन हार्नेस नियमावली, 1999 का नियम 5: विषय क्षेत्र

28. सहायक अध्यापकों के पदों पर अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति को नियंत्रित करने वाले प्रासंगिक नियमावली और शासनादेश उत्तर प्रदेश सेवाकालीन मृत्यु प्राप्त सरकारी सेवकों के आश्रितों की भर्ती (पांचवां संशोधन) नियमावली, 1999 (एतस्मिनपश्चात डाइंग इन हार्नेस नियमावली, 1999 ' के रूप में संदर्भित) और दिनांक 04.09.2000 और 15.02.2013 के शासनादेश हैं।

29. डाइंग इन हार्नेस नियमावली, 1999 का नियम 5 नीचे उद्धृत है:

"नियम 5. मृतक के परिवार के सदस्य की भर्ती-

(1) यदि इस नियमावली के लागू होने के पश्चात किसी सरकारी कर्मचारी की सेवाकाल में मृत्यु हो जाती है और मृतक सरकारी कर्मचारी का पति या पत्नी पहले से ही केंद्र सरकार या राज्य सरकार या केंद्र सरकार या राज्य सरकार के स्वामित्व या नियंत्रण वाले किसी निगम के अधीन नियोजित नहीं है, तो उसके परिवार के एक सदस्य को, जो पहले से ही केंद्र सरकार या राज्य सरकार या केंद्र सरकार या राज्य सरकार के स्वामित्व या नियंत्रण वाले किसी निगम के अधीन नियोजित नहीं है, इस प्रयोजन के लिए आवेदन करने पर, सामान्य भर्ती नियमावली में छूट के तहत, उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग के अधिकार क्षेत्र में आने वाले पद को छोड़कर, किसी पद पर सरकारी सेवा में उपयुक्त रोजगार दिया जाएगा, यदि ऐसा व्यक्ति-

(i) पद के लिए निर्धारित शैक्षणिक योग्यताएँ पूरी करता हो,
(ii) सरकारी सेवा के लिए अन्यथा योग्य हो, और
(iii) सरकारी सेवक की मृत्यु की तिथि से पाँच वर्ष के भीतर नियोजन के लिए आवेदन करता हो:
बशर्ते, जहाँ राज्य सरकार को यह समाधान हो कि नियोजन के लिए आवेदन करने हेतु निर्धारित समय-सीमा किसी विशिष्ट मामले में अनुचित कठिनाई उत्पन्न करती है, वहाँ वह मामले को न्यायसंगत और समतापूर्ण ढंग से निपटाने के लिए, जैसा वह आवश्यक समझे, आवश्यकता को समाप्त कर सकती है या शिथिल कर सकती है।

(2) जहाँ तक संभव हो, ऐसा नियोजन उसी विभाग में दिया जाना चाहिए जिसमें मृतक सरकारी सेवक अपनी मृत्यु से पूर्व कार्यरत था।
(3) उपनियम (1) के अधीन की गई प्रत्येक नियुक्ति इस शर्त के अधीन होगी कि उपनियम (1) के अधीन नियुक्त व्यक्ति, मृतक सरकारी सेवक के परिवार के उन अन्य सदस्यों का भरण-पोषण करेगा, जो उसकी मृत्यु से ठीक पूर्व उस पर आश्रित थे और अपना भरण-पोषण करने में असमर्थ हैं।

(4) जब उपनियम (1) के अधीन नियुक्त व्यक्ति, किसी ऐसे व्यक्ति का भरण-पोषण करने में उपेक्षा करता है या इंकार करता है, जिसका भरण-पोषण करने का दायित्व उसे उपनियम (3) के अधीन है, तो उसकी सेवा समय-समय पर यथा संशोधित उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियमावली, 1999 के अनुसार समाप्त की जा सकेगी।"

(प्रभाव वर्धित)

30. डाइंग इन हार्नेस नियमावली, 1999 का नियम 5, जो अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति प्रदान करने का प्रावधान करता है, भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए अधिनियमित किया गया था। डाइंग इन हार्नेस नियमावली, 1999 का नियम 5, सरकार द्वारा किसी पद पर उपयुक्त रोजगार प्रदान करने का प्रावधान करता है, बशर्ते आवेदक/अभ्यर्थी उस पद के लिए आवश्यक शैक्षणिक योग्यताएँ पूरी करता हो और सरकारी सेवा के लिए अन्यथा योग्य हो।

31. क़ानून ने अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियों की प्रक्रिया के मार्गदर्शन के लिए कानूनी मानक/मापदंड के रूप में डाइंग इन हार्नेस नियमावली, 1999 के नियम 5 में "किसी पद पर उपयुक्त रोज़गार" का प्रावधान किया है।

32. यह उल्लेखनीय है कि डाइंग इन हार्नेस नियमावली, 1999 में "किसी पद पर उपयुक्त रोज़गार दिया जाना" वाक्यांश का प्रयोग किया गया है, न कि "पात्रता के आधार पर किसी पद पर नियुक्ति" शब्दों का। "उपयुक्त रोज़गार" नियुक्ति के लिए पात्रता शब्द से अलग है। पात्रता केवल किसी पद पर नियुक्ति के लिए न्यूनतम योग्यताएँ निर्धारित करती है। "उपयुक्त रोज़गार" वाक्यांश का दायरा बहुत व्यापक है। पात्रता अपने आप में उपयुक्तता सुनिश्चित नहीं कर सकती, यद्यपि उपयुक्तता अन्य बातों के साथ-साथ पात्रता की भी पूर्वधारणा करती है।

33. डाइंग इन हार्नेस नियमावली, 1999 के नियम 5 में "उपयुक्त रोजगार" वाक्यांश कई कारकों का एक समुच्चय है। ब्लैक लॉ डिक्शनरी में "उपयुक्त" का अर्थ "अपने इच्छित उद्देश्य के लिए उपयुक्त और समीचीन" है।

34. डाइंग इन हार्नेस नियमावली, 1999 के नियम 5 के अनुसार, अनुकंपा नियुक्ति प्रदान करने से पहले सक्षम प्राधिकारी द्वारा "किसी पद पर उपयुक्त रोजगार" की प्रकृति की जाँच की जानी चाहिए। उक्त प्रक्रिया में "किसी पद पर उपयुक्त रोजगार" में शामिल विभिन्न तत्वों पर विचार करना आवश्यक है।

35. अतीत में न्यायिक प्राधिकारियों ने "किसी पद पर उपयुक्त रोज़गार" के कुछ पहलुओं की जाँच की है। इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों के एक समूह ने यह प्रतिपादित किया कि आश्रित के पास पात्रता योग्यताएँ होना ही उपयुक्त पद का निर्धारण करने का एकमात्र मानदंड है। **[संदर्भ: विशेष अपील डिफेक्टिव सं. 620 सन् 2018 (श्रीमती प्रेमलता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं 3 अन्य)]**

36. उपर्युक्त दृष्टिकोण को अस्वीकार करते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने **उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम प्रेमलता** मामले में यह मत व्यक्त किया कि अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए योग्यताएँ एकमात्र मानदंड नहीं होंगी और मृतक द्वारा धारित पद एक प्रासंगिक विचारणीय बिंदु है:

“10. इस प्रकार, उपरोक्त निर्णयों में इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून के अनुसार, अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति लोक सेवाओं में नियुक्ति के सामान्य नियम का अपवाद है और यह ऐसे मृतक के आश्रितों के पक्ष में होती है जो सेवाकाल में ही मर जाता है और अपने परिवार को गरीबी और आजीविका के बिना छोड़ जाता है, और ऐसे मामलों में, विशुद्ध मानवीय विचार से, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि जब तक आजीविका का कोई स्रोत प्रदान नहीं किया जाता है, परिवार अपनी जरूरतों को पूरा करने में सक्षम नहीं होगा, मृतक के आश्रितों में से ऐसे एक व्यक्ति को लाभकारी रोजगार प्रदान करने के लिए नियमावली में प्रावधान

किया गया है जो ऐसे रोजगार के लिए पात्र हो सकता है। इस प्रकार अनुकंपा के आधार पर रोजगार देने का पूरा उद्देश्य परिवार को अचानक आए संकट से उबरने में सक्षम बनाना है। उद्देश्य ऐसे परिवार को कोई पद देना नहीं है, मृतक द्वारा धारित पद तो बिल्कुल नहीं।

10.2 वर्तमान मामले में उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने नियमावली, 1974 के नियम 5 की व्याख्या की है और माना है कि नियमावली, 1974 के नियम 5 के तहत "उपयुक्त पद" का अर्थ मृतक कर्मचारी द्वारा धारण किए गए पद के बावजूद उम्मीदवार की योग्यता के हिसाब से उपयुक्त कोई भी पद होगा। उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पूर्वोक्त व्याख्या अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति देने के उद्देश्य और प्रयोजन के ठीक विपरीत है। "उपयुक्त पद" पर विचार किया जाना चाहिए, मृतक कर्मचारी द्वारा धारित स्थिति/पद पर विचार करना होगा और शैक्षणिक योग्यता/पात्रता मानदंड पर विचार किया जाना आवश्यक है, मृतक कर्मचारी द्वारा धारण किए गए पद पर विचार करना आवश्यक है और मृतक कर्मचारी द्वारा धारण किए गए पद के संबंध में पद की उपयुक्तता पर विचार किया जाना आवश्यक है, अन्यथा अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति और नियमित नियुक्ति के बीच कोई अंतर/अंतर नहीं होगा। किसी दिए गए मामले में, ऐसा हो सकता है कि मृतक कर्मचारी का आश्रित, जिसने अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए आवेदन किया है, के पास द्वितीय श्रेणी या प्रथम श्रेणी के पद की शैक्षिक योग्यता हो और मृतक कर्मचारी चतुर्थ श्रेणी/ग्रेड या आवेदित पद से निचले पद पर काम कर रहा था, उस स्थिति में अधिकार के रूप में, आश्रित/आवेदक मृतक कर्मचारी द्वारा धारित पद से उच्चतर पद पर अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति की मांग नहीं कर सकता है, इस आधार पर कि वह ऐसे उच्चतर पद की पात्रता मानदंडों को पूरा करने के योग्य है। उपरोक्त बात, अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति प्रदान करने के उद्देश्य और प्रयोजन के विपरीत होगा, जो कि जैसा कि ऊपर कहा गया है, कमाने वाले की मृत्यु होने के कारण परिवार पर आए अचानक संकट से उबारने में सक्षम बनाना है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति विशुद्ध मानवीय विचार से इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए प्रदान की जाती है कि आजीविका का कुछ स्रोत प्रदान करने से परिवार अपनी बुनियादी जरूरतों को पूरा करने में सक्षम होगा।"

37. इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने **दीपांशु बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं 2 अन्य** मामले में निम्नलिखित महत्वपूर्ण विधि प्रश्नों को वृहद पीठ को संदर्भित किया है:

"(i) क्या नियमावली,1974 के नियम 5 के अंतर्गत दी गई योग्यताओं के संदर्भ में "उपयुक्त नियुक्ति" का अर्थ यह होगा कि यदि किसी मृतक सरकारी कर्मचारी का आश्रित तृतीय श्रेणी का पद धारण करने के लिए योग्य है, तो उसके लिए एक अतिरिक्त तृतीय श्रेणी का पद सृजित किया जाना चाहिए और उसे नियुक्ति दी जानी चाहिए, खासकर तब जब माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह माना है कि जब कोई मृतक कर्मचारी का आश्रित अनुकंपा नियुक्ति का दावा करता है, तो वह सार्वजनिक रोजगार के मामलों में अवसर की समानता के लिए संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 द्वारा शासित सामान्य नियमों के विरुद्ध अपने लिए एक अपवाद की मांग कर रहा है?

(ii) क्या रिट-ए सं. 10149 सन् 2021, 'समीर पांडे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य' में समन्वय पीठ द्वारा शिव कुमार दुबे (उपरोक्त) मामले में पूर्ण पीठ द्वारा की गई टिप्पणियों को सही ढंग से समझा गया है?
(iii) क्या समीर पांडे (उपरोक्त) मामले में 18.05.2017 के शासनादेश की अनदेखी करने का निर्देश दिया जा सकता था, जबकि यह स्थापित कानून है कि अनुकंपा नियुक्ति केवल योजना के अनुसार ही दी जा सकती है, जिसमें सरकार द्वारा जारी शासनादेश, यदि कोई हो, भी शामिल है। दिनांक 18.05.2017 के शासनादेश को रिट-ए सं. 10149 सन् 2021 में चुनौती नहीं दी गई थी और अधिकारियों को योजना/शासनादेशों के प्रावधानों के विरुद्ध कार्रवाई करने के लिए कोई परमादेश जारी नहीं किया जा सकता था?"

38. वर्तमान विवाद डाइंग इन हार्नेस नियमावली, 1999 के नियम 5 में "किसी पद पर उपयुक्त रोजगार" के एक पूरी तरह से अलग पहलू के इर्द-गिर्द घूमता है।

39. इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में यह निर्धारित करने की आवश्यकता है कि डाइंग इन हार्नेस नियमावली, 1999 के नियम 5 के तहत "किसी पद पर उपयुक्त रोजगार" की प्रकृति का निर्धारण करते समय पद से संबंधित संस्थागत आवश्यकताओं और उद्देश्यों को किस तरह से ध्यान में रखा जाना चाहिए।

40. इस प्रकार, डाइंग इन हार्नेस नियमावली, 1999 के नियम 5 के तहत "किसी पद पर उपयुक्त रोजगार" की जांच की दिशा संबंधित पद द्वारा प्रदान किए गए सार्वजनिक उद्देश्य और संस्थागत आवश्यकताओं पर विचार के साथ शुरू होगी। इसमें संविधान और कानूनों द्वारा राज्य पर नागरिकों के अधिकारों को साकार करने के लिए निर्धारित दायित्वों का विश्लेषण शामिल होगा, जिनका निर्वहन उक्त पद के माध्यम से किया जाता है। इसके बाद, पद से जुड़े कर्तव्यों की प्रकृति और नागरिकों के मौलिक अधिकारों पर उनके प्रभाव का परीक्षण किया जाएगा। उक्त पद के निर्वहन के लिए आवश्यक विशेषज्ञता या ज्ञान और कौशल की मात्रा भी इस प्रक्रिया का हिस्सा होगी।

41. इस प्रक्रिया के दौरान यह भी देखना होगा कि क्या उक्त पद के लिए खुली भर्ती और प्रतिस्पर्धी योग्यता के आधार पर नियुक्ति की संवैधानिक रूप से स्वीकृत प्रक्रिया को छोड़कर संस्थागत आवश्यकताओं और सार्वजनिक उद्देश्यों की पूर्ति होगी। इसके परिणामस्वरूप, योग्यता के मानदंड के बिना प्रतिबंधित प्रक्रिया के माध्यम से उक्त पद पर नियुक्ति के परिणामों का भी आकलन किया जाएगा।

42. "किसी पद पर उपयुक्त रोजगार" निर्धारित करने की उक्त प्रक्रिया, उक्त पद पर नियुक्ति के लिए व्यक्तिगत दावों की तुलना में संस्थागत आवश्यकताओं को प्राथमिकता देती है।

43. डाइंग इन हार्नेस नियमावली, 1999 के नियम 5 के अंतर्गत उक्त जाँच से यह निर्धारित होगा कि उक्त पद अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के योग्य है या नहीं। हालाँकि, यदि कोई पद अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए उपयुक्त नहीं पाया जाता है, तो डाइंग इन हार्नेस नियमावली, 1999 के नियम 5 के अंतर्गत

जाँच प्रक्रिया रुकी नहीं रहेगी। रोजगार के वैकल्पिक रास्ते तलाशे जाएँगे और उक्त प्रक्रिया के माध्यम से "उपयुक्त रोजगार" के लिए उपयुक्त पदों की पहचान की जाएगी।

44. इस स्तर पर राज्य के इस तर्क की जाँच करना उचित होगा कि मृतक कर्मचारी के आश्रितों का कल्याण ही अन्य सभी पहलुओं को छोड़कर अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियाँ करने का एकमात्र आधार है।

45. इस दृष्टिकोण को अपनाकर प्रत्यर्थी अपने संवैधानिक दायित्वों और कर्तव्यों से बहुत दूर भटक गए हैं, और यही बात प्रत्यर्थीगण की अव्यवस्थित प्राथमिकताओं में परिलक्षित हो रही है।

46. राज्य की प्राथमिकताओं का संवैधानिक क्रम इस प्रकार है। संविधान की मर्यादा बनाए रखना और नागरिकों के मौलिक अधिकारों की प्राप्ति सरकार का घोषित लक्ष्य है। संवैधानिक रूप से स्वीकृत भर्ती प्रक्रिया द्वारा सर्वाधिक योग्य प्रतिभाओं की भर्ती करके इन लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु सरकार की क्षमता को सुदृढ़ बनाना, महत्व के पैमाने पर अगला स्थान रखता है। एक आदर्श नियोक्ता और एक कल्याणकारी राज्य में कर्मचारियों का कल्याण निहित होता है। हालाँकि, अनुकंपा नियुक्ति जैसे कल्याणकारी उपाय पहले दो उद्देश्यों की कीमत पर नहीं किए जा सकते।

V(ख). दिनांक 04.09.2000 और 15.02.2013 के शासनादेश:

47. दिनांक 04.09.2000 और 15.02.2013 के शासनादेशों द्वारा शिक्षा विभाग में अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियाँ करने के लिए डाइंग इन हार्नेस नियमावली, 1999 को अपनाया गया। इसके अतिरिक्त, दिनांक 04.09.2000 और 15.02.2013 के शासनादेशों में अनुकंपा के आधार पर शिक्षकों के पद पर नियुक्ति का विशेष प्रावधान किया गया है।

48. दिनांक 04.09.2000 के शासनादेश द्वारा अनुकंपा के आधार पर शिक्षकों की नियुक्ति हेतु योग्यताओं में छूट दी गई। नियुक्ति प्रदान किए जाने के बाद भी प्रशिक्षण योग्यताएँ पूरी करने का अवसर दिया गया। हालाँकि, 15.02.2013 के शासनादेश में अनुकंपा के आधार पर शिक्षकों की नियुक्ति का प्रावधान करते हुए, दिनांक 04.09.2000 के शासनादेश में दी गई उपरोक्त छूटों को वापस ले लिया गया है। दिनांक 15.02.2013 के शासनादेश में ऐसी नियुक्तियाँ करते समय शैक्षिक योग्यता के मानदंडों का कड़ाई से पालन करने का प्रावधान है। दिनांक 04.09.2000 और 15.02.2013 के शासनादेश परिशिष्ट I और II के रूप में संलग्न हैं।

49. संक्षेप में, दिनांक 04.09.2000 और 15.02.2013 के शासनादेशों में अनुकंपा के आधार पर शिक्षक के रूप में नियुक्ति हेतु शिक्षक के पद हेतु न्यूनतम योग्यता रखने को एकमात्र आवश्यकता बताया गया है। ये प्रावधान अनुकंपा के आधार पर शिक्षक के रूप में नियुक्ति हेतु आवेदकों की योग्यता निर्धारित करने हेतु कोई प्रक्रिया या मानदंड निर्धारित नहीं करते हैं।

50. दिनांक 04.09.2000 और 15.02.2013 के शासनादेशों का सार यह है कि मृतक कर्मचारी के आश्रित-दावेदार के पास उक्त पद के लिए न्यूनतम पात्रता योग्यता होने पर अनुकंपा के आधार पर शिक्षक के रूप में नियुक्ति हेतु वास्तविक अधिकार निर्मित हो जाता है।

VI. संवैधानिक और वैधानिक व्यवस्था:

VI(क). बच्चे: संवैधानिक अधिकार, राज्य के कर्तव्य और न्यायालयों की भूमिका:

51. बच्चे किसी भी राष्ट्र की सबसे बहुमूल्य संपत्ति होते हैं, लेकिन साथ ही मानव जाति का सबसे संवेदनशील वर्ग भी होते हैं। बच्चे अपनी परिस्थितियों को चुनौती देने में असमर्थ होते हैं।

संवैधानिक प्रावधान:

52. संविधान के तहत बच्चों के समग्र विकास, कल्याण और संरक्षण के लिए भारत के संविधान के तहत विशेष प्रावधानों पर इस न्यायालय ने **राजीव कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य**, में ध्यान दिया था:

"20. संविधान निर्माताओं ने बच्चों की विशेष आवश्यकताओं को समझा और संविधान में बच्चों के लिए एक अलग स्थान की परिकल्पना की। संविधान के तहत बच्चों को नागरिकों के एक अलग वर्ग में शामिल किया गया है। संविधान के पाठ में बच्चों को समर्पित विभिन्न प्रावधान हमारी संवैधानिक योजना में बच्चे के कल्याण को दिए गए सर्वोच्च महत्व को प्रमाणित करते हैं।

21. इस संबंध में भारत के संविधान के प्रासंगिक प्रावधान नीचे उद्धृत हैं:

22. भारत के संविधान का अनुच्छेद 15(3) राज्य सरकार को बच्चों के लिए विशेष प्रावधान करने में सक्षम बनाता है। प्रावधान इस प्रकार है:

"15(3) इस अनुच्छेद की कोई भी बात राज्य को महिलाओं और बच्चों के लिए कोई विशेष प्रावधान करने से नहीं रोकेगी।

23. भारतीय संविधान का अनुच्छेद 21ए 6-14 वर्ष की आयु के बच्चों के शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकार का दर्जा देता है।

24. उल्लेखनीय है कि बच्चों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा को राज्य नीति निर्माण के निर्देशक सिद्धांत के रूप में भी उल्लेखित किया गया है। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 45 इस प्रकार कहता है:

"45. बच्चों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान: राज्य, इस संविधान के प्रारंभ से दस वर्ष की अवधि के भीतर, सभी बच्चों के लिए चौदह वर्ष की आयु पूरी करने तक निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करेगा।"

25. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21ए और अनुच्छेद 47 इस प्रकार कहते हैं:

"21ए राज्य, छह से चौदह वर्ष की आयु के सभी बच्चों को ऐसी रीति से निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करेगा जैसा राज्य विधि द्वारा निर्धारित करे।

47. पोषण स्तर और जीवन स्तर को बढ़ाने तथा लोक स्वास्थ्य में सुधार करने का राज्य का कर्तव्य: राज्य अपने लोगों के पोषण स्तर और जीवन स्तर को बढ़ाने तथा लोक स्वास्थ्य में सुधार को अपने प्राथमिक कर्तव्यों में से एक मानेगा और विशेष रूप से, राज्य औषधीय प्रयोजनों को छोड़कर, मादक पेयों और स्वास्थ्य के लिए हानिकारक औषधियों के सेवन पर प्रतिषेध लगाने का प्रयास करेगा।

26. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 39(ई) और अनुच्छेद 39(एफ) शोषण तथा नैतिक एवं भौतिक परित्याग के प्रति बालक की संवेदनशीलता को स्वीकार करते हैं। यह प्रावधान ऐसी प्रतिकूल परिस्थितियों में बालकों की आत्मरक्षा करने में असमर्थता को भी स्वीकार करता है और बालकों के योग्य विकास हेतु अवसर और सुविधाएँ सृजित करने में राज्य की भूमिका पर विचार करता है।

"39(ई) कि श्रमिकों, पुरुषों और महिलाओं, तथा बालकों की कोमल आयु के स्वास्थ्य और शक्ति का दुरुपयोग न हो और नागरिकों को आर्थिक आवश्यकता के कारण अपनी आयु या शक्ति के अनुपयुक्त व्यवसायों में प्रवेश करने के लिए विवश न किया जाए;

39 (एफ) कि बच्चों को स्वस्थ तरीके से और स्वतंत्रता और सम्मान की स्थिति में विकसित होने के अवसर और सुविधाएं दी जाएं और बचपन और युवावस्था को शोषण और नैतिक और भौतिक परित्याग से बचाया जाए।"

राज्य का कर्तव्य:

53. संविधान ने बच्चों के शिक्षा के अधिकार को पूरा करने के लिए राज्य पर एक कठोर दायित्व भी डाला है। इसके अलावा, संविधान और विभिन्न क़ानूनों के तहत राज्य अधिकारों का गारंटर और वस्तुतः बच्चों का संरक्षक भी है।

54. बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने की राज्य पर एक स्पष्ट और प्रत्यक्ष ज़िम्मेदारी भारत के संविधान के अनुच्छेद 21ए के शब्दों से स्पष्ट होती है।

55. **राजस्थान के गैर-सहायता प्राप्त निजी स्कूलों के लिए सोसायटी बनाम भारत संघ और अन्य** मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा शिक्षकों के साथ-साथ राज्य को बच्चों के शिक्षा के अधिकार को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारकों के रूप में पहचाना गया था:

"5. शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें कई अलग-अलग कारक शामिल होते हैं: वह जो शिक्षा प्रदान करता है (शिक्षक, शैक्षणिक संस्थान का मालिक, माता-पिता), वह जो शिक्षा प्राप्त करता है (बच्चा, छात्र) और वह जो शिक्षा प्राप्त करने वाले के लिए कानूनी रूप से ज़िम्मेदार है (माता-पिता, कानूनी अभिभावक, समाज और राज्य)। ये लोग शिक्षा के अधिकार को प्रभावित करते हैं।

न्यायालयों की भूमिका:

56. अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियों की प्रक्रिया इन नियुक्तियों को जनता की नज़रों से और यहाँ तक कि जनता की जानकारी से भी छिपाती है। शिक्षकों की नियुक्ति में योग्यता के हनन से उनके शिक्षा के अधिकार पर पड़ने वाले प्रभावों को बच्चों द्वारा समझने की संभावना बहुत कम है, उसे चुनौती देना तो दूर की बात है। न्यायालय बच्चों के शिक्षा के मौलिक अधिकारों के हनन को मूकदर्शक बनकर नहीं देख सकते। संवैधानिक कानून इन परिस्थितियों में न्यायालयों की सक्रिय भूमिका की परिकल्पना करता है। इस संबंध में उदाहरणों का लाभप्रद संदर्भ दिया जा सकता है।

57. **अशोक कुमार ठाकुर बनाम भारत संघ एवं अन्य** मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने भी शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 का अनुमोदन करते हुए न्यायालयों के विशेष कर्तव्यों पर बल दिया:

"482.....यह आवश्यक हो गया है कि सरकार एक यथार्थवादी लक्ष्य निर्धारित करे जिसके अंतर्गत उसे पूरे देश में मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा से संबंधित अनुच्छेद 21ए को पूरी तरह से लागू करना होगा। सरकार को शिक्षा के लिए बजट आवंटन में उचित संशोधन करना चाहिए। प्राथमिकताएँ सही ढंग से निर्धारित की जानी चाहिए। सबसे महत्वपूर्ण मौलिक अधिकार अनुच्छेद 21ए हो सकता है, जिसका राष्ट्रहित में पूर्णतः पालन किया जाना आवश्यक है। अनुच्छेद 21ए के बिना, अन्य मौलिक अधिकार प्रभावी रूप से निरर्थक हो जाते हैं। शिक्षा अन्य अधिकारों से ऊपर है, क्योंकि किसी व्यक्ति के मौलिक अधिकारों को लागू करने की क्षमता उसकी शिक्षा से ही प्राप्त होती है। यही कारण है कि न्यायपालिका को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा पर सरकारी खर्च की निगरानी करनी चाहिए।"

58. **श्रीमती रेखा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** मामले में इस न्यायालय ने बच्चों के अधिकारों पर संवैधानिक न्यायालयों की निरंतर निगरानी को इस प्रकार सुदृढ़ किया:

"81. बच्चों के अधिकारों पर संवैधानिक निगरानी स्थायी है और न्यायालय बच्चों के स्थायी संरक्षक हैं। एक वरिष्ठ लेखक ने बच्चों के प्रति कानून की भूमिका और कानूनी साधनों के कर्तव्यों के संबंध में निम्नलिखित टिप्पणियाँ कीं:

"कानून उनके व्यक्तित्व की रक्षा करता है, उनके अधिकारों और संपदा का संरक्षण करता है, उनके अपराधों को क्षमा करता है और उनकी दलीलों में उनकी सहायता करता है, न्यायाधीश उनके परामर्शदाता हैं, जूरी उनके सेवक हैं और कानून उनका संरक्षक है।"

VI. (ख). भारतीय संविधान का अनुच्छेद 21ए और बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार (आरटीई) अधिनियम, 2009:

"यदि कोई राष्ट्र सभ्यता की अवस्था में अज्ञानी और स्वतंत्र होने की अपेक्षा करता है, तो वह ऐसी अपेक्षा करता है जो न कभी थी और न कभी होगी।"

~थॉमस जेफरसन

59. शिक्षा किसी राष्ट्र की स्वतंत्रता की रक्षा करता है और आर्थिक समृद्धि का इंजन है। शिक्षा ने मानव सभ्यता के अस्तित्व को सुनिश्चित किया है और यह मानव जाति की सफलता का वादा करती है।

60. भारतीय चिंतन के आरंभिक काल से ही शिक्षा का महत्व हमारी सभ्यतागत चेतना का एक अभिन्न अंग रहा है। संविधान के अनुच्छेद 21ए ने शिक्षा को संवैधानिक चेतना का एक अपरिवर्तनीय अंग बना दिया है। अनुच्छेद 21ए सभी बच्चों को शिक्षा का मौलिक अधिकार प्रदान करता है। शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 उपरोक्त अधिकार के कार्यान्वयन के लिए एक विस्तृत तंत्र का उपबंध करता है।

61. हमारी संवैधानिक योजना में बच्चों के लिए "गुणवत्तापूर्ण शिक्षा" का सर्वोच्च महत्व संविधान के अनुच्छेद 21-ए में संसद के उद्देश्यों और कारणों के कथन में प्रकट होता है:

"...भारतीय संविधान के अनुच्छेद 45 में निहित निर्देशक सिद्धांत में, संविधान लागू होने के दस वर्षों के भीतर चौदह वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों के लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान किया गया है। इस प्रावधान को अपनाने के 50 साल बाद भी हम इस लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सके। 1986 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनपीई) की घोषणा के बाद इस आयु वर्ग के सभी बच्चों को शिक्षा प्रदान करने के कार्य ने गति पकड़ी। भारत सरकार ने राज्य सरकारों के साथ साझेदारी में इस अधिदेश को पूरा करने के लिए कड़े प्रयास किए हैं और यद्यपि विभिन्न शैक्षिक संकेतकों में महत्वपूर्ण सुधार देखे गए हैं, फिर भी सार्वभौमिक और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने का अंतिम लक्ष्य अभी भी अधूरा है। इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए, यह महसूस किया गया कि संविधान के मौलिक अधिकारों से संबंधित भाग में एक स्पष्ट प्रावधान किया जाना चाहिए।

2. निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकार बनाने के उद्देश्य से, संविधान (तिरासीवाँ संशोधन) विधेयक, 1997 संसद में प्रस्तुत किया गया ताकि 6 से 14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार प्रदान करने वाला एक नया अनुच्छेद, अर्थात् अनुच्छेद 21-ए, जोड़ा जा सके। उक्त विधेयक की मानव संसाधन विकास संबंधी संसद की स्थायी समिति द्वारा समीक्षा की गई और भारतीय विधि आयोग ने अपनी 165वीं रिपोर्ट में भी इस विषय पर विचार किया।

3. भारतीय विधि आयोग की रिपोर्ट और संसद की स्थायी समिति की सिफारिशों को ध्यान में रखते हुए, संविधान के भाग III, भाग IV और भाग IV-ए में प्रस्तावित संशोधन किए जा रहे हैं, जो इस प्रकार हैं:

***

4. विधेयक उपरोक्त उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास करता है।"

62. अशोक कुमार ठाकुर (उपरोक्त) मामले में संविधान के अनुच्छेद 21ए के दायरे की व्याख्या करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने संवैधानिक कानून में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लक्ष्य को शामिल किया:

"490. यह अनुच्छेद सार्वभौमिक और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने के अंतिम लक्ष्य" की ओर अग्रसर है। (जोर दिया गया) "शिक्षा" में निहित विचार यह है कि यह प्रकृति में गुणवत्तापूर्ण होगी। वर्तमान प्रदर्शन दर्शाता है कि "शिक्षा" को "गुणवत्ता" के साथ जोड़ने से पहले अभी बहुत सुधार करने की आवश्यकता है। बेशक, स्कूल से बाहर रहने वाले बच्चों के लिए, सर्वोत्तम शिक्षा भी अप्रासंगिक होगी। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि छह से चौदह वर्ष की आयु के सभी बच्चों को स्कूल जाना चाहिए और शिक्षा गुणवत्तापूर्ण होनी चाहिए। इन दोनों लक्ष्यों को प्राप्त करने के बाद ही हम कह सकते हैं कि हमने अनुच्छेद 21-ए का पूर्ण अनुपालन कर लिया है।

491. यद्यपि प्रगति हुई है, फिर भी अनुच्छेद 21-ए पारित करते समय संसद की यह टिप्पणी अभी भी लागू होती है: सार्वभौमिक और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने का लक्ष्य "अभी भी अधूरा है"।

634. उच्च और प्राथमिक/माध्यमिक शिक्षा के बीच प्राथमिकताओं में उलटफेर से अनुच्छेद 21-ए का अनुपालन बेहद मुश्किल हो जाएगा। यह सुझाव नहीं दिया जा रहा है कि उच्च शिक्षा को प्रोत्साहन की आवश्यकता नहीं है या उच्च शिक्षा को अधिक धनराशि नहीं मिलनी चाहिए, लेकिन प्राथमिक शिक्षा पर अधिक जोर दिया जाना चाहिए। हमारी प्राथमिकताओं को बदलना होगा। अनुच्छेद 21-ए का पूर्ण अनुपालन सुनिश्चित करने से अधिक महत्वपूर्ण कुछ भी नहीं है। पूर्ण अनुपालन का अर्थ है अच्छी गुणवत्ता वाली शिक्षा प्रदान की जाए और छह से चौदह वर्ष की आयु के सभी बच्चे नियमित रूप से स्कूल जाएं।"

63. इसी प्रकार शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 की धारा 3 को संविधान के अनुच्छेद 21ए और बच्चों के गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के अधिकार के संबंध में संवैधानिक न्यायालयों के निर्णयों के अनुरूप पढ़ा जाना चाहिए। इस परिप्रेक्ष्य में जांच करने पर, सुरक्षित रूप से धारित किया जा सकता है कि शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 के तहत बच्चों के शिक्षा के अधिकार में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और उससे कम कुछ भी शामिल नहीं है।

VI (ग) शिक्षकों की भूमिका:

64. भारतीय परंपराओं में शिक्षकों का सम्मान किया जाता है और भारतीय संवैधानिक कानून में उन्हें आदरणीय माना जाता है। शिक्षा प्रदान करने में शिक्षकों की निर्णायक भूमिका होती है और वे बच्चों में मूल्यों का संचार करने में एक अनिवार्य भूमिका निभाते हैं।

65. शिक्षकों द्वारा प्रदान किया गया ज्ञान आगे की उन्नति के मार्ग प्रशस्त करता है, जबकि शिक्षकों से प्राप्त मूल्य युवा मन को उत्कृष्ट चरित्र गुणों से संपन्न करते हैं। सर्वश्रेष्ठ शिक्षक सदैव अपने छात्रों में सीखने की ललक और सेवा की आकांक्षा जगाने का प्रयास करते हैं। शिक्षक अपने छात्रों और समग्र समाज के लिए आदर्श होते हैं। संवेदनशील आयु के छात्र अपने शिक्षकों से अत्यधिक प्रभावित होते हैं, जिन्हें सद्गुणों का अग्रदूत और शिक्षा का आदर्श माना जाता है। शिक्षक छात्रों को कर्तव्यनिष्ठ नागरिक बनने और राष्ट्र के नेतृत्व की जिम्मेदारी संभालने के लिए तैयार करते हैं।

66. **अविनाश नागरा बनाम नवोदय विद्यालय समिति एवं अन्य** मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने हमारे देश के उन धर्मग्रंथों और विचारों को याद किया जो शिक्षकों को गौरवपूर्ण स्थान देते हैं और शिक्षकों की उच्च भूमिका को संवैधानिक विमर्श का हिस्सा बनाते हुए कहा:

"9. शिक्षक के कार्यों पर, पृष्ठ 133 पर, डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार, शैक्षिक प्रक्रिया की सफलता काफी हद तक शिक्षक पर निर्भर करती है, क्योंकि शिक्षक को ही छात्रों को लक्ष्य देना होता है और उनके चरित्र का निर्माण करना होता है। लास्की के अनुसार, शिक्षा के मूल में, किसी विश्वविद्यालय की गुणवत्ता हमेशा उसके शिक्षक की गुणवत्ता के समानुपाती होती है। एक अच्छा शिक्षक वह होता है जो अपने विषय को जानता हो, उसके प्रति उत्साही हो और जो सीखना कभी बंद न करे। छात्रों के साथ संवाद और अपने काम के प्रति प्रतिबद्धता की भावना आवश्यक है। इसलिए, डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार, एक अच्छा शिक्षक वह होता है जो वस्तुनिष्ठ, न्यायप्रिय, विनम्र और सुधार के लिए तैयार रहता है। व्हाइटहेड के अनुसार शिक्षक को आत्मविश्वासी और विद्वान होना चाहिए। इसलिए, शिक्षक युवाओं में बौद्धिक और नैतिक मूल्यों का संचार करने वाला प्राथमिक पदाधिकारी होता है। उसे स्वतंत्र अन्वेषण और तर्कसंगत चिंतन की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करना चाहिए। शिक्षक को अहंकार और पूर्वाग्रह, जुनून और इच्छा के बोझ को दूर करने का प्रयास करना चाहिए जो छात्र की दृष्टि को धुंधला कर सकते हैं। एक समर्पित शिक्षक न केवल बच्चे के बौद्धिक विकास के प्रति चिंतित होता है, बल्कि उसके नैतिक, भावनात्मक और सामाजिक विकास पर भी ध्यान देने का दायित्व निभाता है।

10. राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने कहा है कि "एक शिक्षक चरित्रहीन नहीं हो सकता। अगर उसमें चरित्र का अभाव है, तो वह स्वादहीन नमक के समान होगा। एक शिक्षक को अपने विद्यार्थियों के हृदय को छूना चाहिए। लड़के पुस्तकों से ज़्यादा शिक्षक के जीवन से सीखते हैं। अगर शिक्षक अपने विद्यार्थियों को दुनिया का सारा ज्ञान दे दें, लेकिन उनमें सत्य और पवित्रता का संचार न करें, तो वे उनके साथ विश्वासघात करेंगे।" श्री अरबिंदो ने कहा है कि "शिक्षक का कर्तव्य है कि वह मशाल को ऊँचा उठाए रखे, हर समय और हर जगह इस बात पर ज़ोर दे कि हमारे इस राष्ट्र की स्थापना आदर्शवाद पर हुई है और समय की प्रवृत्तियाँ चाहे जो भी हों, हमारे बच्चे उज्वल चोटियों के बीच रहना सीखेंगे।" डॉ. एस. राधाकृष्णन ने कहा है कि "हम अपने देश में शिक्षकों को गुरु या आचार्य मानते हैं।" आचार्य वह होता है जिसका आचार या आचरण अनुकरणीय हो। उसे सदाचार या अच्छे आचरण का उदाहरण होना चाहिए। उसे अपने शिष्यों को सद्गुण और भलाई के प्रति प्रेम से प्रेरित करना चाहिए। एक सच्चे शिक्षक का आदर्श है: *"अंधकारानिरीधाता गुरुर् इत्यभिधीयते* " अंधकार केवल बौद्धिक अज्ञान

नहीं है, बल्कि आध्यात्मिक अंधता भी है। जो इस प्रकार के आध्यात्मिक अंधता को दूर करने में सक्षम है, उसे गुरु कहते हैं। क्या हम आचार्य या गुरु की महान उपाधि के पात्र हैं?" स्वामी विवेकानंद ने कहा था कि "छात्र को बचपन से ही ऐसे व्यक्ति के साथ रहना चाहिए जिसका चरित्र प्रज्वलित अग्नि हो और उसके सामने सर्वोच्च शिक्षा का जीवंत उदाहरण हो। हमारे देश में ज्ञान का प्रसार सदैव त्यागी पुरुषों द्वारा किया जाता रहा है। ज्ञान प्रदान करने का दायित्व पुनः त्यागियों के कंधों पर आना चाहिए।"

11...अतः, जब समाज ने ऐसा पद दिया है, तो एक शिक्षक का आचरण, चरित्र, योग्यता और स्वभाव ऐसा होना चाहिए कि वह विद्यार्थी को एक अनुशासित नागरिक, सीखने के लिए जिज्ञासु, जीवन के किसी भी क्षेत्र में समर्पण, अनुशासन और निष्ठा के साथ आगे बढ़ने के लिए बुद्धिजीवी बनाए, जिज्ञासु मन वाला हो, न कि अंध-रूढ़िवादी मान्यताओं वाला..."□

VI(घ). शिक्षक और भारत के संविधान के अनुच्छेद 21ए की प्राप्ति:

67. बच्चों के गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के मौलिक अधिकार को प्राप्त करने के क्रम में, संवैधानिक न्यायालयों ने पाया कि मेधावी शिक्षकों की नियुक्ति भारत के संविधान के अनुच्छेद 21-ए की पारिस्थितिकी का अभिन्न अंग है। वास्तव में, बच्चों की गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का संवैधानिक लक्ष्य सर्वोत्तम योग्य और सर्वाधिक मेधावी शिक्षकों की नियुक्ति के बिना प्राप्त नहीं किया जा सकता। मेधावी शिक्षकों की नियुक्ति और बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, दोनों एक-दूसरे से इतने जुड़े हुए हैं कि इन्हें अलग करना असंभव है। इस विषय पर उच्च प्राधिकारियों द्वारा चर्चा को आगे बढ़ाया जाएगा।

68. बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने के अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने में शिक्षकों की क्षमता के महत्व को **अविनाश नागरा (उपरोक्त)** में इस प्रकार रेखांकित किया गया है:

"11..... शिक्षक द्वारा प्रदान की जाने वाली शिक्षा समाज के विकास, समृद्धि और कल्याण के लिए विद्यार्थी के स्तर का निर्धारण करती है। इसलिए, शिक्षक की गुणवत्ता, योग्यता और चरित्र, विद्यार्थियों की क्षमता, चरित्र और योग्यता को लोकतांत्रिक संस्थाओं के सफल संचालन हेतु ढालने और जीवन के बाद के वर्षों में उन्हें विभिन्न दायित्वों में एक जिम्मेदार नागरिक के रूप में बनाए रखने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होती हैं। एक समर्पित और अनुशासित शिक्षक के बिना, सर्वोत्तम शिक्षा प्रणाली भी असफल हो सकती है। इसलिए, शिक्षक का यह कर्तव्य है कि वह विद्यार्थियों की ऐसी देखभाल करे जैसा एक सावधान अभिभावक अपने बच्चों की करता है और जहाँ शिक्षक की लापरवाही हो, वहाँ प्रतिनिधि दायित्व का सामान्य सिद्धांत लागू होगा। विद्यार्थी की आयु और जिस गतिविधि में वह भाग लेता है उसकी प्रकृति, एक शिक्षक द्वारा अपेक्षित स्तर और पर्यवेक्षण को निर्धारित करने वाले महत्वपूर्ण कारक होते हैं।"

(प्रभाव वर्धित)

69. **सुष्मिता बसु एवं अन्य बनाम बल्लीगंज शिक्षा समिति एवं अन्य** मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने इस बात पर बल दिया कि शिक्षण का महान पेशा केवल रोजगार का साधन नहीं है:

"5. हमें याद रखना चाहिए कि शिक्षण का पेशा एक महान पेशा है। यह केवल रोजी-रोटी कमाने के अर्थ में रोजगार नहीं है। एक शिक्षक राष्ट्र के जीवन में एक महान भूमिका निभाता है। वह 'गुरु' है। शिक्षक ही है जो अपने छात्रों को न केवल ज्ञान, बल्कि कर्तव्य, धार्मिकता और राष्ट्र के कल्याण के प्रति समर्पण की भावना, साथ ही अन्य मन और मस्तिष्क के गुण प्रदान करके, देश के भावी नागरिकों का निर्माण करता है। यदि शिक्षक अधिक वेतन और सुविधाओं की मांग करते हैं, तो निजी शिक्षण संस्थानों के मामले में सामान्य परिणाम, यदि मांग मान ली जाती है, तो छात्रों द्वारा देय शुल्क में वृद्धि करके छात्रों पर बोझ डालना होगा। शिक्षकों को स्वयं से पूछना चाहिए कि क्या उन्हें औसत आय वाले औसत परिवारों के माता-पिता के बच्चों की पहुँच से परे शिक्षा को बढ़ावा देना चाहिए। एक शिक्षक का पेशा राष्ट्र के हित में थोड़ा त्याग मांगता है। एक शिक्षक की मुख्य संपत्ति उसके पूर्व और वर्तमान छात्र होते हैं। आदर्शों पर खरा उतरने वाले शिक्षकों को उनके शिष्य बहुत सम्मान देते हैं। हमारे लोकाचार में गुरु, शिक्षक का स्थान ईश्वर के समान है (मठ पीठ गुरु दैवम्)। आज के शिक्षकों को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि यह महान भारतीय अवधारणा और उनका आदरणीय स्थान लोभ की वेदी पर बलिदान न हो जाए।

(प्रभाव वर्धित)

70. **महाराष्ट्र राज्य बनाम विकास साहेबराव रौंदले एवं अन्य** मामले में, शिक्षा में उत्कृष्टता लाने के लिए शिक्षक की बौद्धिक क्षमताओं और कौशल के महत्व को देखते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने शिक्षकों के प्रशिक्षण के मानकों को कम करने से इनकार कर दिया:

"12... प्रभावशाली युवा बच्चों के करियर, चरित्र, नैतिक मूल्यों और शैक्षिक उत्कृष्टता के लिए योग्यता को आकार देने में शिक्षक की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। औपचारिक शिक्षा के लिए शिक्षकों को आज की चुनौतियों का सामना करने हेतु उचित रूप से सुसज्जित करने की आवश्यकता है ताकि वे छात्रों को धर्मनिरपेक्ष, वैज्ञानिक और तर्कसंगत दृष्टिकोण पर नवीनतम तकनीकों से शिक्षा प्रदान कर सकें। एक अच्छी तरह से सुसज्जित शिक्षक छात्रों को उनके लक्ष्यों के लिए आवश्यक कौशल और बौद्धिक क्षमताएँ प्रदान कर सकता है। शिक्षक को माता-पिता के बाद गुरुदेवो भव: की उपाधि से विभूषित किया जाता है, क्योंकि वह बच्चे को सांस्कृतिक लोकाचार, बौद्धिक उत्कृष्टता और अनुशासन के प्रति जागृत करने का एक प्रमुख माध्यम है। इसलिए, शिक्षकों को लगातार बदलती तकनीकों, समाज की जरूरतों और बच्चों की योग्यताओं के मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से सामंजस्य बिठाने के लिए उस महत्वपूर्ण भूमिका को निभाना चाहिए। संक्षेप में, शिक्षकों को समाज की जरूरतों को पूरा करने के लिए आवश्यक क्षमता से संपन्न और ऊर्जावान होना चाहिए। प्रशिक्षण महाविद्यालयों या स्कूलों में गुणात्मक प्रशिक्षण उन्हें छात्रों के लाभ के लिए कार्रवाई करने के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित करेगा। एक स्कूल या कॉलेज में ऐसे प्रशिक्षु छात्रों को सुसज्जित करने के लिए, सभी सुविधाओं और उपकरणों की बिल्कुल आवश्यकता होती है और इनसे रहित संस्थानों के अस्तित्व का कोई स्थान नहीं होता है और न ही वे मान्यता के हकदार होते

हैं। इस संबंध में वैधानिक आवश्यकताओं के अनुपालन पर जोर दिया जाता है। शिक्षा और परीक्षा प्रणाली के तरीके को नियंत्रित करने के लिए मानक और न्यायिक आदेश को ढीला करना शिक्षा के कुशल प्रबंधन के लिए हानिकारक है। अपीलकर्ताओं को कानून की अवज्ञा करने के निर्देश कानून के शासन को तोड़ने वाले हैं, भ्रष्टाचार और अनुशासनहीनता को बढ़ाते हैं। इसलिए, उच्च न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत प्रदत्त अपनी विशेषाधिकार शक्ति का प्रयोग करते हुए, अपीलकर्ताओं को छात्रों को परीक्षा आदि में बैठने की अनुमति देने का निर्देश देकर, कानून में स्पष्ट त्रुटि की है।"

71. उच्चतम न्यायालय ने **राम शरण मौर्य एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य** मामले में निम्नलिखित कानूनी प्रस्ताव प्रस्तुत करके उच्च परीक्षा स्तर निर्धारित करके सर्वश्रेष्ठ शिक्षकों को प्राप्त करने के राज्य के प्रयासों को अनुच्छेद 21ए के तहत गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के अधिकार से जोड़ा था:

"68. पहले प्रश्न का उत्तर देते हुए, हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि एटीआरई 2019 में कट-ऑफ 65-60% निर्धारित करना पूरी तरह से वैध और न्यायोचित था। एटीआरई 2019 में उपस्थित होने वाले उम्मीदवारों की बड़ी संख्या और परीक्षा की प्रकृति और कठिनाई स्तर को ध्यान में रखते हुए, कट-ऑफ सर्वश्रेष्ठ उपलब्ध प्रतिभाओं को आकर्षित करने के लिए डिज़ाइन किया गया था। इसलिए, सर्वश्रेष्ठ शिक्षकों को पाने के राज्य के प्रयास पूरी तरह से न्यायोचित थे। इस बात पर जोर देने की कोई जरूरत नहीं है कि संविधान के अनुच्छेद 21-ए के तहत गारंटीकृत शिक्षा का अधिकार बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने की परिकल्पना करता है, जिसका अर्थ है कि शिक्षक योग्य और सर्वश्रेष्ठ होने चाहिए। कोई भी प्रक्रिया जो सभी उम्मीदवारों पर समान रूप से लागू हो और सर्वश्रेष्ठ प्रतिभा को आकर्षित करने के लिए बनाई गई हो, उसे मनमाना या तर्कहीन नहीं कहा जा सकता।"

(प्रभाव वर्धित)

72. **देवेश शर्मा बनाम भारत संघ एवं अन्य** मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने के लिए सर्वश्रेष्ठ योग्य शिक्षकों की भर्ती पर जोर दिया था:

"22. यदि हम इसकी "गुणवत्ता" से समझौता करते हैं तो बच्चों के लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा निरर्थक हो जाती है। हमें सर्वश्रेष्ठ योग्य शिक्षकों की भर्ती करनी चाहिए। एक अच्छा शिक्षक किसी स्कूल में "गुणवत्तापूर्ण" शिक्षा का पहला आश्वासन होता है। शिक्षकों की योग्यता पर किसी भी समझौते का अर्थ अनिवार्य रूप से शिक्षा की "गुणवत्ता" से समझौता करना होगा। अमेरिकी शिक्षाविद् और इतिहासकार जैक्स बारजुन ने अपनी मौलिक कृति *टीचर इन अमेरिका* में कहा है, "शिक्षण कोई लुप्त कला नहीं है, बल्कि इसके प्रति सम्मान एक लुप्त परंपरा है" [बारजुन, जैक्स. "प्रोफेशन: टीचर"। टीचर इन अमेरिका , लिटिल ब्राउन 7 कंपनी द्वारा अटलांटिक मंथली प्रेस के सहयोग से प्रकाशित, 1945, पृष्ठ 3-13।]। हालाँकि यह टिप्पणी अमेरिका में उच्च शिक्षा की स्थिति के बारे में थी, लेकिन यह हमारे देश में प्राथमिक शिक्षा के व्यवहार के लिए भी उतनी ही प्रासंगिक है, क्योंकि यह हमारे सामने मौजूद तथ्यों से उभर कर सामने आती है।

60. ... एक बच्चा, यूँ कहें कि, कक्षा में पहली बार किसी "शिक्षक" का सामना करता है। यह बाल-छात्र के लिए एक यात्रा की शुरुआत होती है और इसलिए दुनिया भर में इन प्रारंभिक वर्षों में उचित नींव रखने में बहुत सावधानी बरती जाती है। प्राथमिक विद्यालय में एक सुयोग्य और प्रशिक्षित शिक्षक एक अत्यंत महत्वपूर्ण पहलू है...।

(प्रभाव वर्धित)

73. सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि **देवेश शर्मा (उपरोक्त)** मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने शिक्षकों की नियुक्तियों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदाता के बजाय केवल रोज़गार का स्रोत मानने की प्रवृत्ति के प्रति आगाह किया:

"49. एक शिक्षक के शैक्षणिक कौशल को बहुत उच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए। लेकिन हमारी प्राथमिकता अलग प्रतीत होती है।" इसका उद्देश्य "गुणवत्तापूर्ण" शिक्षा प्रदान करना नहीं है, बल्कि बीएड प्रशिक्षित अभ्यर्थियों को रोजगार के अधिक अवसर प्रदान करना है, क्योंकि इस बात के प्रबल प्रमाण मौजूद हैं कि बीएड पाठ्यक्रम प्राथमिक कक्षाओं के लिए उपयुक्त पाठ्यक्रम नहीं है, और यही उनके समावेश का एकमात्र कारण प्रतीत होता है।

(प्रभाव वर्धित)

74. पूर्वगामी चर्चा स्पष्ट रूप से नियुक्त शिक्षकों की योग्यता और प्रदान की जाने वाली शिक्षा की गुणवत्ता के बीच जीवंत संबंध स्थापित करती है, और यह कि सर्वाधिक योग्य शिक्षकों की नियुक्ति संविधान के अनुच्छेद 21ए के तहत गारंटीकृत बच्चों के मौलिक अधिकारों की प्राप्ति और शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 के तहत उनके अधिकारों को प्रभावी बनाने के लिए अनिवार्य पूर्वापेक्षा है।

VII. संवैधानिक कानून, वैधानिक प्रावधानों और शासनादेशों का परस्पर प्रभाव:

75. अनुकंपा के आधार पर शिक्षकों की नियुक्ति, दिनांक 04.09.2000 और 15.02.2013 के शासनादेशों और डाइंग इन हार्नेस नियमावली, 1999 के नियम 5, भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14, 16 और 21ए, शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 और संवैधानिक कानूनों के प्रावधानों के बीच एक अपरिहार्य अंतर्संबंध पैदा करती है। उक्त शासनादेश संविधान के अनुच्छेद 14, 16 और 21ए की जाँच से बच नहीं सकते, या उक्त विधियों और संवैधानिक कानूनों के प्रावधानों से बच नहीं सकते।

VII(क) भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21ए, निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 तथा शासनादेश दिनांकित 04.09.2000 एवं 15.02.2013:

76. प्रश्न यह उठता है कि क्या अनुकंपा के आधार पर शिक्षकों की नियुक्ति के लिए शासनादेश दिनांकित 04.09.2000 एवं 15.02.2013 द्वारा निर्मित व्यवस्था, भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21ए के तहत बच्चों को

प्रदत्त मौलिक अधिकार की प्राप्ति के लिए अनुकूल है या बच्चों के शिक्षा के मौलिक अधिकार के लिए विनाशकारी है?

77. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21ए के तहत प्रदत्त और शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 द्वारा प्रदत्त शिक्षा के मौलिक अधिकार के दायरे पर इस आख्यान के पिछले भाग में विस्तार से चर्चा की गई है।

78. संक्षेप में, शिक्षा का मौलिक अधिकार सभी बच्चों के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की परिकल्पना करता है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तभी संभव है जब सर्वाधिक योग्य शिक्षकों की नियुक्ति सुनिश्चित हो।

79. शिक्षकों के रूप में नियुक्ति के लिए सर्वोत्तम प्रतिभाओं को केवल भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के संवैधानिक अधिदेश के अनुसार सार्वजनिक भर्ती की एक खुली और पारदर्शी प्रक्रिया के माध्यम से ही निकाला जा सकता है। प्रतिस्पर्धी योग्यता के आधार पर उपरोक्त चयन यह सुनिश्चित करता है कि सर्वाधिक योग्य उम्मीदवारों को शिक्षक के रूप में नियुक्त किया जाए और बच्चों के गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के अधिकार को सफलतापूर्वक साकार किया जाए।

80. इसके विपरीत, अनुकंपा के आधार पर शिक्षकों की नियुक्ति की प्रक्रिया बंद है और कुछ चुनिंदा लोगों को ही प्रवेश की अनुमति देती है। उक्त प्रक्रिया व्यापक रूप से जनता की भागीदारी की अनुमति नहीं देती है। परिणामस्वरूप, खुले बाजार से सर्वश्रेष्ठ प्रतिभाओं को नियुक्ति के लिए आवेदन करने से रोक दिया जाता है।

81. शिक्षक के रूप में नियुक्त होने के लिए पात्रता या न्यूनतम योग्यता का होना, दिनांक 04.09.2000 और 15.02.2013 के उपरोक्त शासनादेशों के तहत अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए एकमात्र मानदंड है।

82. शिक्षक के रूप में नियुक्ति हेतु पात्रता केवल पद धारण करने या किसी खुले चयन में भाग लेने के लिए न्यूनतम प्रारंभिक योग्यता निर्धारित करती है। पात्रता अपने आप में योग्यता निर्धारित नहीं करती। वास्तव में, योग्यता ही योग्यता निर्धारण प्रक्रिया का प्रारंभिक बिंदु है। भर्ती की संवैधानिक प्रक्रियाएँ (जैसा कि पहले चर्चा की गई है) शिक्षक के रूप में नियुक्ति के लिए सभी योग्य उम्मीदवारों में से सबसे योग्य उम्मीदवारों का चयन करने के लिए सबसे विश्वसनीय तरीके हैं। राज्य का यह तर्क कि पात्रता अपने आप में योग्यता का निर्धारक है, तदनुसार अस्वीकार किया जाता है।

83. एक और तथ्य है जिस पर गौर करने की ज़रूरत है। सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि बड़े पैमाने पर अपर्याप्त सुविधाओं वाले, कम कर्मचारियों वाले और गैर-मान्यता प्राप्त शिक्षण संस्थान कॉलेज बढ़ रहे **हैं। [संदर्भ: श्री मोरवी सार्वजनिक केलावनी मंडल संचालित एमएसकेएम बी.एड. कॉलेज बनाम राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद और अन्य]**

84. ऐसे संस्थानों से डिग्री धारकों की योग्यता में भारी अंतर और उनकी योग्यता में भारी भिन्नता होती है। योग्यता परीक्षण या योग्यता निर्धारित करने वाली प्रणालीगत जाँच के बिना, कमज़ोर कॉलेजों से डिग्री धारकों को शिक्षक के रूप में नियुक्त करना गंभीर परिणामों से भरा है।

85. दिनांक 04.09.2000 और 15.02.2013 के उक्त शासनादेशों के तहत अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियाँ करते समय भर्ती की संवैधानिक प्रक्रियाओं द्वारा परखी गई उम्मीदवारों की योग्यता पर विचार नहीं किया गया है। दिनांक 04.09.2000 और 15.02.2013 के शासनादेशों के तहत उक्त प्रक्रिया अनिवार्य रूप से शिक्षकों की गुणवत्ता से समझौता करती है, अनिवार्य रूप से शिक्षण के स्तर को कम करती है, और अंततः गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए बच्चों के मौलिक अधिकारों को नकारती है।

86. दोषपूर्ण नियुक्ति प्रक्रियाओं द्वारा शिक्षकों की गुणवत्ता में गिरावट और परिणामस्वरूप शिक्षण के मानक में गिरावट को बर्दाश्त नहीं किया जा सकता है यदि संविधान के अनुच्छेद 21ए के तहत बच्चों के मौलिक अधिकार को साकार किया जाना है, और शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 के तहत बच्चों के अधिकारों को साकार करने के लिए राज्य के दायित्वों का ईमानदारी से निर्वहन किया जाना है।

VII.(ख). अनुकंपा के आधार पर शिक्षकों के रूप में नियुक्ति के लिए प्रतिस्पर्धी दावे और भारत के संविधान के अनुच्छेद 21ए के तहत शिक्षा के अधिकार के बच्चों के मौलिक अधिकार और बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009:

87. अनुकंपा के आधार पर शिक्षकों के रूप में नियुक्ति के लिए दिनांक 04.09.2000 और 15.02.2013 के शासनादेशों के तहत किए गए दावों को संविधान के अनुच्छेद 21-ए के आधार पर बच्चों को गारंटीकृत शिक्षा के मौलिक अधिकार और शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 के तहत बच्चों में निहित वैधानिक अधिकार के साथ माना जाना चाहिए।

88. शिक्षा का अधिकार भारत के संविधान के अनुच्छेद 21ए के आधार पर बच्चों में अपरिवर्तनीय रूप से निहित है, और सर्वोच्च न्यायालय के संवैधानिक कानून के निर्णयों में स्थायी रूप से अंतर्निहित है। इसके अलावा, बच्चों को शिक्षा का अधिकार भी शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 द्वारा बनाया गया एक वैधानिक अधिकार है। शिक्षा के महत्व और हमारी संवैधानिक योजना में बच्चों की स्थिति पर विवेचन के पिछले भाग में प्रकाश डाला गया है।

89. तुलनात्मक रूप से, अनुकंपा के आधार पर शिक्षकों की नियुक्ति एक निहित अधिकार नहीं है और यह बच्चों के गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के मौलिक अधिकार के अधीन है। संवैधानिक व्यवस्था में बच्चों के गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के मौलिक अधिकार को अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के आवेदकों के दावे पर प्राथमिकता दी जाएगी।

90. इसी प्रकार, सार्वजनिक भर्ती प्रक्रिया से चुने गए सर्वाधिक कुशल शिक्षकों की संस्थागत आवश्यकताओं को अनुकंपा के आधार पर शिक्षक के रूप में नियुक्ति के व्यक्तिगत दावों पर प्राथमिकता दी जाएगी।

91. प्रतिस्पर्धी अधिकारों और दावों के मुद्दे ने संवैधानिक न्यायालयों का भी ध्यान आकर्षित किया है। ये मामले इस चर्चा को और पुष्ट करेंगे। **मॉडर्न डेंटल कॉलेज एवं अनुसंधान केंद्र एवं अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य एवं अन्य** में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नवत अवधारित किया:

"173. निष्पक्ष व्यवहार पाने और बिना किसी मनमानी, भेदभाव रहित, निष्पक्ष और पारदर्शी प्रक्रिया के माध्यम से प्रवेश पाने का अधिकार अनुच्छेद 14 के तहत छात्रों का मौलिक अधिकार है। कोई भी कानून जो निजी गैर-सहायता प्राप्त संस्थानों और अन्य संस्थानों के बीच एक कृत्रिम वर्गीकरण बनाता है और प्रवेश के मामले में असमानता पैदा करता है, जिससे एक मेधावी छात्र को निजी गैर-सहायता प्राप्त संस्थान में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रवेश से वंचित किया जा सकता है, केवल इसलिए कि ऐसे संस्थान के पास एक समान और पारदर्शी प्रवेश प्रक्रिया का पालन किए बिना अपने छात्रों को चुनने का अप्रतिबंधित अधिकार है, अनुच्छेद 14 के तहत गारंटीकृत इच्छुक छात्रों के अधिकारों का उल्लंघन होगा।
निजी गैर-सहायता प्राप्त मेडिकल कॉलेजों में प्रवेश पाने के लिए छात्रों का अधिकार अवसर की समानता का अधिकार है। कई अवसरों पर, इससे एक ओर निजी शिक्षण संस्थानों के मौलिक अधिकारों और दूसरी ओर छात्रों और आम जनता के अधिकारों के बीच टकराव हुआ है। हालाँकि, अब कानून तय हो चुका है। ऐसे मामलों में जहाँ दो पक्षों के मौलिक अधिकारों के बीच टकराव होता है, इस न्यायालय ने *शारदा बनाम धर्मपाल [शारदा बनाम धर्मपाल, (2003) 4 एससीसी 493]* के पैरा 59 में यह माना कि केवल वही अधिकार मान्य होगा जो सार्वजनिक नैतिकता या सार्वजनिक हित को आगे बढ़ाए। *कुरैशी कसाब मामले [गुजरात राज्य बनाम मिर्जापुर मोती कुरैशी कसाब जमात, (2005) 8 एससीसी 534]* के पैरा 39 में, इस न्यायालय ने माना कि जब कोई मौलिक अधिकार समाज के बड़े हित से टकराता है, तो उसे समाज के हित में मान लेना चाहिए। नागरिकों या समुदाय के किसी वर्ग का हित, चाहे कितना भी महत्वपूर्ण क्यों न हो, राष्ट्र और आम जनता के हित के लिए गौण है और व्यावसायिक गैर-सहायता प्राप्त शैक्षणिक संस्थानों में योग्यता-आधारित प्रवेश का अवसर प्राप्त करने के छात्रों के अधिकार से सार्वजनिक हित को बढ़ावा मिलेगा और इस प्रकार छात्रों के अधिकार निजी गैर-सहायता प्राप्त व्यावसायिक शैक्षणिक संस्थानों के अधिकारों पर अभिभावी होंगे।"

92. **गुजरात राज्य बनाम मिर्जापुर मोती कुरैशी कसाब जमात एवं अन्य** में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नवत अवधारित किया:

"39..."(1) न्यायालय देश की सामाजिक स्थिति के अनुसार संवैधानिक प्रावधानों की व्याख्या इस प्रकार करते हैं कि समाज की बढ़ती आवश्यकताओं, राष्ट्र की बढ़ती आवश्यकताओं, वर्तमान की ज्वलंत समस्याओं और लोगों के समक्ष उपस्थित जटिल मुद्दों के प्रति पूर्ण चेतना और गहरी जागरूकता प्रदर्शित हो, जिनका समाधान विधायिका अपने विवेक से लाभकारी विधान के माध्यम से करना चाहती है। न्यायिक दृष्टिकोण स्थिर के बजाय

गतिशील, पांडित्यपूर्ण न होकर व्यावहारिक और कठोर के बजाय लचीला होना चाहिए। देश के नागरिकों को प्रदत्त मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए तत्पर प्रहरी के रूप में कार्य करते हुए, इस न्यायालय को मौलिक अधिकारों और समाज के व्यापक हितों के बीच एक न्यायोचित संतुलन बनाने का प्रयास करना चाहिए ताकि जब ऐसा कोई अधिकार देश के व्यापक हित से टकराए तो वह समाज के हित में झुक जाए।

(पैरा 5)

VII(ग). डाइंग इन हार्नेस नियमावली, 1999 का नियम 5, दिनांक 04.09.2000 और 15.02.2013 के शासनादेश और भारत के संविधान का अनुच्छेद 14 और 16:

93. इस विवाद का एक और उतना ही महत्वपूर्ण पहलू है। जैसा कि पहले चर्चा की गई है, डाइंग इन हार्नेस नियमावली, 1999 के नियम 5 के तहत जाँच में अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए पदों की पहचान करना आवश्यक है।

94. वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, "शिक्षक के पद पर उपयुक्त रोजगार" निर्धारित करने के लिए डाइंग इन हार्नेस नियमावली, 1999 के नियम 5 के तहत निम्नलिखित प्रासंगिक मानदंडों की जाँच पहले ही निर्णय में की जा चुकी है:

(i) छात्रों और राष्ट्र के प्रति शिक्षकों द्वारा निभाई जाने वाली भूमिका और कर्तव्य।
(ii) संविधान के अनुच्छेद 21-ए तथा शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 के अंतर्गत बच्चों को प्राप्त शिक्षा के मौलिक अधिकारों की प्रकृति और दायरा।
(iii) उपर्युक्त अधिकारों को साकार करने में शिक्षकों की भूमिका।
(iv) भर्ती मानदंडों में ढील और नियमित भर्ती प्रक्रिया को छोड़ने के शिक्षकों की गुणवत्ता पर परिणाम।
(v) केवल पात्रता के आधार पर और योग्यता पर विचार किए बिना शिक्षकों की नियुक्ति का बच्चों के गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के मौलिक अधिकार और समग्र समाज पर प्रभाव।

95. उपरोक्त विवेचन यह स्थापित करता है कि डाइंग इन हार्नेस नियमावली, 1999 का नियम 5 अनुकंपा के आधार पर शिक्षकों के पदों पर नियुक्तियों को स्वीकार नहीं करता है।

96. दिनांक 04.09.2000 और 15.02.2013 के शासनादेश, डाइंग इन हार्नेस नियमावली, 1999 के नियम 5 में उल्लिखित प्रासंगिक कारकों पर विचार किए बिना अनुकंपा के आधार पर शिक्षकों की नियुक्ति के लिए पूर्व-निर्धारित प्रावधान करके उक्त जांच को रोकते हैं। दिनांक 04.09.2000 और 15.02.2013 के शासनादेश, डाइंग इन हार्नेस नियमावली, 1999 के नियम 5 के अधिदेश के कार्यान्वयन में प्रत्यक्ष रूप से बाधा डालते हैं।

97. दिनांक 04.09.2000 और 15.02.2013 के शासनादेश, डाइंग इन हार्नेस नियमावली, 1999 के नियम 5 के अधिदेश के साथ सीधे और असंगत रूप से विरोधाभासी हैं। डाइंग इन हार्नेस नियमावली, 1999 के नियम 5 द्वारा प्रदत्त वैधानिक शक्तियों को दिनांक 04.09.2000 और 15.02.2013 के शासनादेशों द्वारा सीमित नहीं किया जा सकता। शासनादेशों को वैधानिक प्रावधानों के अधीन होना होगा।

98. इस कथन में संबंधित निर्णयों का बल है। इस न्यायालय की पूर्ण पीठ ने **विजय सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य** मामले में सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयों का सहारा लेते हुए निम्नवत अवधारित किया:

"4. यह स्थापित विधिक उपधारणा है कि कार्यकारी निर्देश वैधानिक प्रावधानों को दरकिनार नहीं कर सकते।" (देखें बी.एन. नागराजन बनाम मैसूर राज्य, एआईआर 1966 एससी 1942; संत राम शर्मा बनाम राजस्थान राज्य व अन्य, एआईआर 1967 एससी 1910; भारत संघ व अन्य बनाम मज्जी जंगम्मिया व अन्य, एआईआर 1977 एससी 757; बी.एन. नागराजन व अन्य बनाम कर्नाटक राज्य व अन्य, एआईआर 1979 एससी 1676; पी.डी. अग्रवाल व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, (1987) 3 एससीसी 622; मेसर्स व्यापार सहायक (प्रा.) लिमिटेड व अन्य बनाम विश्व नाथ व अन्य, एआईआर 1987 एससी 2111; महाराष्ट्र राज्य बनाम जगन्नाथ अच्युत करंदीकर, एआईआर 1989 एससी 1133; पलुरू रामकृष्णनय्या एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य, एआईआर 1990 एससी 166; भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक एवं अन्य बनाम मोहन लाल मेहरोत्रा एवं अन्य, एआईआर 1991 एससी 2288; मध्य प्रदेश राज्य बनाम जी.एस. दाल एवं फ्लोर मिल्स, एआईआर 1991 एससी 772; नागा पीपुल्स मूवमेंट ऑफ ह्यूमन राइट्स बनाम भारत संघ एवं अन्य, एआईआर 1998 एससी 431; सी. रंगास्वामी एवं अन्य बनाम कर्नाटक लोकायुक्त एवं अन्य, एआईआर 1998 एससी 96.)

5. कार्यकारी निर्देश वैधानिक नियमों को संशोधित या अधिक्रमित नहीं कर सकते हैं या उनमें कुछ जोड़ नहीं सकते हैं, न ही आदेश वैधानिक नियमों के उल्लंघन में जारी किए जा सकते हैं, इस कारण से कि एक प्रशासनिक निर्देश एक वैधानिक नियम नहीं होता है और न ही इसमें कानून का कोई बल होता है; जबकि वैधानिक नियमों में कानून का पूरा बल होता है, बशर्ते कि वे अधिनियम के प्रावधानों के विरोध में न हों। (देखें उ.प्र. राज्य एवं अन्य बनाम बाबू राम उपाध्याय, एआईआर 1961 एससी 751; और तमिलनाडु राज्य बनाम मेसर्स हिंद स्टोन आदि, एआईआर 1981 एससी 711)।

8. राम गणेश त्रिपाठी बनाम उ.प्र. राज्य, एआईआर 1997 एससी 1446 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इसी तरह के विवाद पर विचार किया और माना कि कोई भी कार्यकारी निर्देश/आदेश जो वैधानिक नियमों के विपरीत या असंगत है, उसे लागू नहीं किया जा सकता है, बल्कि उसे कानून का कोई बल नहीं होने के कारण रद्द कर दिया जाना चाहिए। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की:-

"उन्होंने (प्रत्यर्थीगण ने) राज्य द्वारा पारित आदेश का सहारा लिया। यह आदेश भी रद्द किए जाने योग्य है क्योंकि यह वैधानिक नियमों के अनुरूप नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह सरकार द्वारा प्रत्यर्थीगण और इसी तरह की स्थिति वाले तदर्थ नियुक्तियों को उपकृत करने के लिए पारित किया गया है।"

9. इस प्रकार, उपरोक्त के मद्देनजर, यह स्पष्ट है कि संविधान के अनुच्छेद 309 के प्रावधान के तहत बनाए गए नियमों के उल्लंघन में कार्यकारी निर्देश जारी नहीं किए जा सकते हैं और कार्यकारी आदेश द्वारा वैधानिक नियमों को रद्द नहीं किया जा सकता है।"

99. डाइंग इन हार्नेस नियमावली, 1999 के नियम 5 के तहत अनुकंपा नियुक्तियों द्वारा जो पद मान्य नहीं हैं, उन्हें केवल भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के तहत परिकल्पित सार्वजनिक भर्ती प्रक्रियाओं द्वारा भरा जा सकता है।

VIII(क). अनुकंपा नियुक्ति का दुरुपयोग:

100. संवैधानिक कानून के प्रावधानों के विपरीत अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियों के दायरे का व्यापक विस्तार संवैधानिक न्यायालयों की नज़रों से ओझल नहीं रहा है।

101. इस न्यायालय ने **आशीष यादव (उपरोक्त)** मामले में निम्नवत अवधारित किया:

14. अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति की अवधारणा एक आदर्श नियोक्ता द्वारा उठाया गया कल्याणकारी उपाय होता है। हालाँकि, इसमें एक सावधानी भी है। अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के अधिकार की अति-उदार व्याख्या ऐसी नियुक्तियों की बाढ़ ला देगी और उन्हें भर्ती का एक वास्तविक स्रोत बना देगी। अनुकंपा के आधार पर एक अनुचित उदार दृष्टिकोण, जो लागू सेवा नियमावली के अनुरूप नहीं है, अयोग्य उम्मीदवारों को लाभ पहुँचाएगा, और साथ ही योग्य और मेधावी उम्मीदवारों के सरकारी पदों पर नियुक्ति के अधिकारों और वैध दावों को भी नकार देगा। अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियों को बिना शर्त और निहित अधिकार मानना और इसे भर्ती का स्रोत बनाना वैधता के उस पतले पर्दे को हटा देगा जो इस तरह की नियुक्तियों को असंवैधानिकता के दोष से बचाता है। तब अनुकंपा के आधार की अवधारणा ही भारत के संविधान के अनुच्छेद 14, 15, 16 के प्रकोप के सामने आ जाएगी।"

102. **आंध्र प्रदेश सरकार, सामान्य प्रशासन, विभाग, हैदराबाद, और अन्य बनाम डी. गोपैया और अन्य** में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ के फैसले ने अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियां करने की प्रक्रिया के अंधाधुंध तरीके से दुरुपयोग को देखते हुए लाल रेखाएं खींची थीं। सरकारी नियुक्तियों को उदारता के रूप में देने और सरकारी पदों पर भर्ती के संवैधानिक तरीके से नियुक्तियों से बचने के लिए शासनादेश जैसे परिचित और सरल उपकरण बनाए गए थे। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि के विस्तार पर **डी. गोपैया (उपरोक्त)** में चर्चा की गई।

103. **डी. गोपैया (उपरोक्त)** मामले में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की टिप्पणियों की पुष्टि सर्वोच्च न्यायालय ने **राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान एवं अन्य बनाम नीरज कुमार सिंह** मामले में भी की, जिसमें निम्नवत अवधारित किया गया :

"19. आंध्र प्रदेश सरकार बनाम डी. गोपैया [(2001) 6 एन एलटी 553 : (2002) 93 एफएलआर 12 (एपी) (एफबी)] में, आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने उपर्युक्त निर्णय पर ध्यान देते हुए यह राय व्यक्त की: (एन एलटी पृष्ठ 555, पैरा 8)

"8. भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के कारण, भारत के लोगों के मन में बड़ी आशाएँ और आकांक्षाएँ उत्पन्न हुईं कि रोज़गार वंशानुक्रम पर नहीं दिया जाएगा। सार्वजनिक रोज़गार को सार्वजनिक संपत्ति माना जाता है। राज्य की अर्थव्यवस्था कृषि से सार्वजनिक रोज़गार की ओर झुक गई है और रोज़गार वृद्धि दर बढ़कर 34% हो गई है। साधारण शब्दों में कहें तो, भारतीय संविधान का अनुच्छेद 16 कोई अपवाद नहीं है। आगे कहा गया: (एन एलटी पृष्ठ 556, पैरा 11-14)

"11. केवल सीमित परिस्थितियों में ही अनुकंपा नियुक्ति प्रदान करने से संबंधित मामले ने सार्वजनिक रोजगार में अपनी जड़ें जमा लीं। राज्य और केंद्र सरकारों ने कई परिपत्र जारी किए, विभिन्न नीतिगत निर्णय लिए और समय-समय पर अपने नीतिगत निर्णयों में बदलाव भी किए, जिसके परिणामस्वरूप मुकदमेबाजी में तेजी आई। राज्य द्वारा जारी परिपत्रों और उनसे उत्पन्न होने वाले मुकदमों के पैटर्न का गहन अध्ययन करने पर हमें इन योजनाओं के घोर दुरुपयोग और सुरक्षा उपायों के अंतर्निहित अभाव का न्यायिक संज्ञान लेने की ओर अग्रसर होना पड़ता है।"

12. उपर्युक्त प्रश्न पर आगे विचार करने से पहले, हम यह देख सकते हैं कि याचिकाकर्ताओं ने स्वयं कहा है कि आंध्र प्रदेश राज्य में 1987 से ही कोई नियुक्ति नहीं की गई है क्योंकि इस पर प्रतिबंध लगा हुआ है। नियुक्तियाँ केवल योजनाओं के माध्यम से अनुबंध के आधार पर की जा रही हैं, जो भर्ती नियमावली और भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का सख्त उल्लंघन है। सेवाओं के नियमितीकरण की लोकलुभावन योजना के माध्यम से बहुत अधिक रोज़गार सृजित होता है। विस्थापित व्यक्तियों के लिए रोज़गार योजनाएँ, अधिग्रहित परियोजनाओं की सेवाओं को अपने हाथ में लेने की योजनाएँ, भूमिहीन व्यक्तियों आदि के लिए योजनाएँ हैं। कोई व्यक्ति उपर्युक्त योजनाओं के तहत या अनुबंध के आधार पर, राजनीतिक दबावों पर, ट्रेड यूनियनों की माँग पर, और गैर-सरकारी संगठनों के दबाव में भी नियुक्ति प्राप्त कर सकता है। संक्षेप में, जब तक कोई व्यक्ति अपने मामले को आगे बढ़ाने वाला न हो, तब तक भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के अनुसार किसी नागरिक को रोज़गार प्राप्त नहीं हो सकता। अधिकांश जनसंख्या को रोजगार प्राप्ति के लिए स्पष्ट कार्यक्रमों के विरोधाभास का सामना करना पड़ता है।

13. जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया गया है, चिकित्सा अक्षमता पर अनुकंपा नियुक्ति प्रदान करने की योजनाएँ लगातार व्यापक होती जा रही थीं। राज्य ने किसी न किसी कारण से सार्वजनिक रोजगार प्रदान करने के मूल सिद्धांतों से समझौता किया है और संवैधानिक मानदंडों से विचलन किया है; कभी-कभी तो उसने अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति प्रदान करने के दायरे को इतना बढ़ा दिया कि उसे अपने कदम पीछे खींचने पड़े। इस संबंध में राज्य का नीतिगत निर्णय कभी भी दृढ़ नहीं रहा। उन्होंने संबंधित अधिकारी की इच्छा और सनक के आधार पर या कर्मचारी संघों के दबाव में अलग-अलग समय पर अलग-अलग कदम उठाए।

14. इस संबंध में भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 की व्याख्या करने वाले कानून में भी उतार-चढ़ाव आए हैं।"

104. इस कानून ने सेवारत कर्मचारियों के लाभ के लिए सार्वजनिक रोजगार में पिछले दरवाजे से प्रवेश करने और सरकारी नौकरियों को दान मानकर उनके पक्ष में एकाधिकार बनाने के ऐसे हथकंडों के खिलाफ अपनी आवाज उठाई है।

105. **बिहार राज्य दफादार चौकीदार पंचायत (मगध प्रमंडल) बनाम बिहार राज्य एवं अन्य** मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ के फैसले का अवलंब लिया, जिसमें विद्वान खंडपीठ ने रेलवे द्वारा "सार्वजनिक रोजगार में पिछले दरवाजे से प्रवेश करने" के लिए विकसित किए गए तरीकों की पहचान की थी, जो बेशर्मी से "सार्वजनिक रोजगार में समानता के विरुद्ध" थे और इस प्रकार धारित किया :

22. केंद्रीय रेल मंत्रालय ने "सुरक्षा कर्मचारियों के लिए गारंटीकृत रोज़गार हेतु उदारीकृत सक्रिय सेवानिवृत्ति योजना" नामक एक योजना शुरू की। 20. इसने 50 से 57 वर्ष की आयु के ड्राइवरों और गैंगमैनों को 33 वर्ष की सेवा (बाद में घटाकर 20 वर्ष) पूरी करने के बाद स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति की अनुमति दी। सेवानिवृत्ति के बाद, सेवानिवृत्त कर्मचारी के "उपयुक्त आश्रित" को रोज़गार के लिए विचार किया जाएगा।

23. काला सिंह (उपरोक्त) मामले में खंडपीठ प्रतिदान से संबंधित एक रोज़गार विवाद से संबंधित एक रिट याचिका पर विचार कर रही थी, लेकिन प्रतिदान को चुनौती नहीं दी गई थी। खंडपीठ की ओर से बोलते हुए माननीय न्यायमूर्ति सूर्यकांत (तत्कालीन माननीय न्यायाधीश) ने कहा कि यह योजना प्रथम दृष्टया संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के अनुरूप नहीं है तथा यह रेलवे द्वारा सार्वजनिक रोजगार में पिछले दरवाजे से प्रवेश करने के लिए विकसित किया गया एक उपकरण है तथा सार्वजनिक रोजगार में समानता के विरुद्ध है। रिट याचिका को खारिज करते हुए और रेलवे को कोई भी नियुक्ति न करने का निर्देश देते हुए, खंडपीठ ने यह भी निर्देश दिया कि रेलवे को समान अवसर के सिद्धांतों और सार्वजनिक रोजगार में एकाधिकार के उन्मूलन को ध्यान में रखते हुए इस पर पुनर्विचार करना चाहिए। खंडपीठ के आदेश को वापस लेने की मांग वाली एक याचिका खारिज कर दी गई। खंडपीठ के आदेश को इस न्यायालय में चुनौती दिए जाने के कारण, एक समन्वय

पीठ ने हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया। उच्च न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों के मद्देनजर, रेलवे बोर्ड ने इस योजना को समाप्त कर दिया।"

106. अनुकंपा के आधार पर शिक्षक के रूप में नियुक्ति का आग्रह स्थायी सामाजिक प्रतिष्ठा की चाहत को अधिक दर्शाता है, और तत्काल वित्तीय अभाव से राहत के दावे को कम।

107. संस्थागत स्तर पर शिक्षकों के पदों पर अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियाँ कर्मचारी कल्याण को बढ़ावा नहीं देतीं, बल्कि निहित स्वार्थों का तुष्टिकरण हैं। 04.09.2000 और 15.02.2013 के शासनादेश शिक्षा विभाग के कर्मचारियों में सेवाभाव नहीं, बल्कि अधिकार की संस्कृति को दर्शाते हैं। 04.09.2000 और 15.02.2013 के शासनादेश शिक्षकों की नियुक्तियों को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14, 16 और 21-ए की पहुँच से बाहर रखने के लिए जानबूझकर बनाए गए हैं।

VIII(ख). संजीव कुमार दुबे बनाम जिला विद्यालय निरीक्षक, इटावा: प्रासंगिकता

108. दिनांक 04.09.2000 का शासनादेश इस न्यायालय द्वारा **संजीव कुमार दुबे बनाम जिला विद्यालय निरीक्षक, इटावा एवं अन्य** में दिए गए निर्णयों का संदर्भ देता है। दिनांक 04.09.2000 के शासनादेश में **संजीव कुमार दुबे (उपरोक्त)** में दिए गए निर्णय का उक्त संदर्भ गलत, भ्रामक और अनावश्यक है।

109. इस न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश ने **संजीव कुमार दुबे (उपरोक्त)** में घोषित किया कि उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा आयोग अधिनियम, 1982 की धारा 16(2), जो शिक्षण पदों पर अनुकंपा नियुक्ति प्रदान करने का प्रावधान करती है, अधिकारहीन और असंवैधानिक थी।

110. इस न्यायालय की विद्वान खण्डपीठ ने **संजीव कुमार दुबे बनाम जिला विद्यालय निरीक्षक, इटावा एवं अन्य** के मामले में विशेष अपील सं. 426 सन् 199833 में दिए गए निर्णय में विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय को रद्द कर दिया तथा उपरोक्त प्रावधानों की संवैधानिकता को बरकरार रखा।

111. **संजीव कुमार दुबे (उपरोक्त)** में इस न्यायालय की विद्वान खंडपीठ का निर्णय विभिन्न कारणों से मौजूदा विवाद के लिए प्रासंगिक नहीं है। सबसे पहले, मौजूदा मामले में अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति देने से संबंधित प्रावधान पूरी तरह से अलग हैं। दूसरे, डाइंग-इन-हार्नेस नियमावली, 1999 का नियम 5 **संजीव कुमार दुबे (उपरोक्त)** में मुद्दे में नहीं था और खंडपीठ द्वारा **संजीव कुमार दुबे (उपरोक्त)** का निर्णय दिए जाने के बाद काफी समय बीत जाने के कारण, संविधान और कानूनों में पर्याप्त परिवर्तन हुए हैं। संविधान के अनुच्छेद 21ए और शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 का समावेश **संजीव कुमार दुबे (उपरोक्त)** में खंडपीठ के निर्णय के बाद हुआ, यह तीसरा तथ्य है जो उक्त निर्णय को इस मामले के तथ्यों से अलग करता है। चौथा, **संजीव कुमार दुबे (उपरोक्त)** के बाद संवैधानिक कानून के प्रस्ताव भी भौतिक रूप से बदल गए हैं।

112. कानून इस बात पर पूरी तरह से स्थापित है कि एक पूर्णतः वैध कानून समय के साथ असंवैधानिक और भेदभावपूर्ण हो सकता है और उसे चुनौती दी जा सकती है।

113. **मोटर जनरल ट्रेडर्स एवं अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य एवं अन्य** मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह माना कि जो कानून कभी भेदभाव रहित था, वह समय के साथ भेदभावपूर्ण हो सकता है और इस आधार पर सफलतापूर्वक चुनौती दी जा सकती है कि उसने संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन किया है।

"22. इन सभी मामलों में, जबकि यह सच है कि वास्तव में किसी भी प्रावधान को रद्द नहीं किया गया था, इस प्रस्ताव के समर्थन में एक मजबूत आधार रखा गया है कि जो कानून कभी भेदभाव रहित था, वह समय के साथ भेदभावपूर्ण हो सकता है और इस आधार पर सफलतापूर्वक चुनौती दी जा सकती है कि उसने संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन किया है। यह इस तर्क का पर्याप्त उत्तर है कि यदि अधिनियम के अधिनियमित होने के समय अधिनियम की धारा 32(बी) असंवैधानिक नहीं थी, तो उसके बाद किसी भी समय इसे असंवैधानिकता के आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती।"

114. इसी प्रकार, किराया नियंत्रण अधिनियम की विभिन्नताओं पर विचार करते हुए**, मालपे विश्वनाथ आचार्य एवं अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य** मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने स्वीकार किया कि यद्यपि अधिनियमन के समय यह कानून न्यायोचित रहा होगा, समय बीतने के साथ यह मनमाना और अवैध हो सकता है:

"15. उपरोक्त निर्णय स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हैं और स्थापित करते हैं कि एक कानून जो अधिनियमन के समय न्यायोचित था, समय बीतने के साथ मनमाना और अनुचित हो सकता है। इसलिए, यह देखा जाना चाहिए कि क्या उपरोक्त सिद्धांत वर्तमान मामले में लागू होता है। क्या यह कहा जा सकता है कि यद्यपि मानक किराए के निर्धारण से संबंधित प्रावधान 1947 में बॉम्बे किराया अधिनियम पारित होने के समय वैध थे, संशोधित रूप में उक्त प्रावधान को अब भी वैध माना जा सकता है?

"29. जहाँ तक किराया नियंत्रण अधिनियम जैसे सामाजिक विधान का संबंध है, कानून को प्रतिद्वंद्वी हितों के बीच संतुलन बनाना चाहिए और उसे सभी के लिए न्यायसंगत होने का प्रयास करना चाहिए। कानून को किसी एक के प्रति अन्यायपूर्ण नहीं होना चाहिए और न ही समाज के दूसरे वर्ग को अनुपातहीन लाभ या सुरक्षा प्रदान करनी चाहिए। जब आवास की कमी हो तो यह वांछनीय, संभवतः आवश्यक है कि किरायेदारों को कुछ सुरक्षा प्रदान की जाए ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि उनका शोषण न हो। साथ ही ऐसे कानून में समय-समय पर संशोधन भी किया जाना चाहिए ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि किरायेदारों को अपेक्षित लाभ से कहीं अधिक अनुपातहीन लाभ न दिया जाए। ऐसा नहीं है कि सरकार मुद्रास्फीति के प्रभावों को कम करने के लिए उपचारात्मक उपाय नहीं करती। वेतनभोगी कर्मचारियों को उचित वेतन प्रदान करने के लिए सरकार समय-समय पर महंगाई और अन्य भत्तों के भुगतान का प्रावधान करती है। हैरानी की बात है कि मानक किराए में वृद्धि का प्रावधान

करते समय इस सिद्धांत की अनदेखी की जाती है - 1987 में की गई वृद्धि भी पर्याप्त, उचित या न्यायसंगत नहीं है और आज के संदर्भ में प्रावधान मनमाने ही हैं।

30. सामाजिक रूप से प्रगतिशील कानून बनाते समय, समस्या को समग्र दृष्टिकोण से देखने की आवश्यकता अधिक होती है, न कि संकीर्ण या अदूरदर्शी संकीर्ण दृष्टिकोण अपनाने की। समाज के एक मुखर वर्ग पर आवश्यकता से अधिक ज़ोर देने से न केवल न्याय की विफलता होती है, बल्कि विधायी प्राधिकार की ज़िम्मेदारी का भी परित्याग होता है। न्यायालय सामाजिक विधानों का सम्मान करते हैं, न केवल इसलिए कि विधायिका जनता का प्रतिनिधित्व करती है, बल्कि इसलिए भी कि उनका प्रतिनिधित्व करते समय सभी प्रकार के विचारों को ध्यान में रखा जाना अपेक्षित होता है। विधायिका पर न्यायालयों जैसी बाध्यताएँ नहीं होती हैं। लेकिन इसकी शक्ति के साथ एक ज़िम्मेदारी भी जुड़ी हुई है। संविधान के अनुच्छेद 14 के परिप्रेक्ष्य में विधानों को देखना भी न्यायालयों का दायित्व है। जैसा कि इसके शब्दों से स्पष्ट है, इस अनुच्छेद का उद्देश्य कुछ लोगों को दूसरों पर अनुचित वरीयता देने की प्रवृत्ति पर अंकुश लगाना है।"

115. हाल ही में, परिवर्तनकारी संवैधानिकता की अवधारणा को सर्वोच्च न्यायालय ने **जोसेफ शाइन बनाम भारत संघ** में व्यभिचार के प्रति न्यायिक दृष्टिकोण में आए बदलावों की जाँच करते हुए प्रतिपादित किया था:

"4. जब हम ऐसा कहते हैं, तो हमें यह नहीं समझना चाहिए कि पूर्व उदाहरणों को इस रूप में नहीं माना जाना चाहिए और अवधारणात्मक बदलाव के बहाने, पूर्व उदाहरणों की बाध्यकारी प्रकृति को उसकी स्थिति बनाए रखने या उसे कमजोर करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। जब एक संवैधानिक न्यायालय को ऐसी चुनौती का सामना करना पड़ता है, अर्थात्, कानून के अन्य क्षेत्रों में हुए मानक परिवर्तनों के कारण किसी पूर्व उदाहरण द्वारा रोका जाना या उससे आगे बढ़ना और प्राप्त पूर्व उदाहरण उसमें सुसंगत रूप से फिट नहीं बैठता है, तो सुसंगत समायोजन की अवधारणा को बढ़ती कानूनी व्याख्या के अनुरूप होना चाहिए और विश्लेषण अलग होना चाहिए, खासकर तब, जब उभरती अवधारणा किसी विशेष अधिकार को मौलिक अधिकार के अंतर्गत शामिल करने को मान्यता देती है, जैसे कि संविधान के अनुच्छेद 14 और 21। ऐसी पृष्ठभूमि में, जब किसी प्रावधान की संवैधानिकता पर प्रश्न उठाया जाता है, तो न्यायालय विकसित और प्रगतिशील व्याख्या के संदर्भ में प्रावधान की गहन जांच करने के लिए बाध्य होता है। एक संवैधानिक न्यायालय किसी मिसाल में जकड़ा नहीं रह सकता, क्योंकि विवाद उन मनुष्यों के जीवन से जुड़ा है जो पारलौकिक रूप से विकसित होते हैं। यह निश्चितता के साथ कहा जा सकता है कि परिवर्तनकारी संविधानवाद हर क्षण अपनी बात रखता है और अपनी जगह बनाने का दावा करता है। यह किसी भी प्रकार के प्रतिगामी दृष्टिकोण से घृणा करता है। पूरी बात को एक अलग नज़रिए से देखा जा सकता है। जो एक समय में स्वीकार्य हो सकता है, वह दूसरे समय में पूरी तरह से महत्वहीन हो सकता है। हालाँकि, यह ध्यान देने योग्य है कि महसूस किया गया परिवर्तन किसी कल्पना या व्यक्तिगत आकर्षण के दायरे में नहीं होना चाहिए, बल्कि उस परिवर्तन के ठोस आधार पर स्थापित होना चाहिए जिसे समाज ने महसूस किया है, जिन क्षेत्रों में विधायिका ने प्रतिक्रिया दी है और जिन अधिकारों को संवैधानिक न्यायालयों ने बल दिया है। स्पष्ट करने के लिए, प्रगतिशील न्यायशास्त्र और व्यापक संवैधानिक दृष्टि के

मानदंडों के भीतर महिलाओं को अनेक अधिकार प्रदान करने के बावजूद, न्यायालय यह नहीं मान सकता कि महिलाओं को अभी भी पुरुषों की संपत्ति माना जाए, और दूसरी बात, जहाँ पति-पत्नी के बीच का नाजुक रिश्ता ऐसा नहीं रहता, वहाँ किसी आपराधिक अपराध को प्रवेश करने देना और किसी तीसरे पक्ष को दोषी ठहराना असंभव प्रतीत होता है।"

VIII(ग). उल्लंघनों का न्यायालयों द्वारा स्वप्रेरणा से विचार:

116. निष्कर्ष निकालने से पहले यह बताना ज़रूरी है कि अनुकंपा के आधार पर शिक्षकों की नियुक्ति का प्रावधान करने वाले दिनांक 04.09.2000 और 15.02.2013 के शासनादेशों को कोई चुनौती नहीं दी गई है। हालाँकि, याचिकाकर्ता ने अपना मामला पूरी तरह से उपरोक्त आपत्तिजनक शासनादेशों पर ही आधारित किया है। उपरोक्त शासनादेशों की वैधता को किसी विशेष चुनौती का न होना इस न्यायालय को इन प्रावधानों की संवैधानिकता और उसके आधार पर प्रत्यर्थीगण को परमादेश की प्रार्थना स्वीकार करने के परिणामों की स्वतः जाँच करने से नहीं रोकेगा।

117. प्रक्रियात्मक औचित्य के आधार पर, राज्य सरकार को उपरोक्त शासनादेशों की संवैधानिकता के संबंध में पर्याप्त जानकारी दी गई थी। राज्य को अपना बचाव प्रस्तुत करने का पर्याप्त अवसर भी दिया गया था। संबंधित रिट याचिका में राज्य की ओर से प्रति-शपथपत्र भी दायर किया गया है। राज्य की ओर से प्रस्तुत दलीलों पर विधिवत विचार किया गया है।

118. **बिहार राज्य दफादार चौकीदार पंचायत (मगध प्रमंडल) (उपरोक्त)** में सर्वोच्च न्यायालय ने अधिकारिता के मुद्दे पर स्वतः संज्ञान लेने की उच्चतर न्यायालयों की शक्तियों की पुनः पुष्टि करते हुए कहा:

"39. यह तर्क, पहली नज़र में आकर्षक तो लगता है, लेकिन कोई प्रभाव नहीं डालता। प्रकाश चंद (उपरोक्त) मामले में दिए गए निर्णय का अनुपात वर्तमान प्रकृति के मामले में लागू नहीं होगा। खंडपीठ, जिसने आक्षेपित आदेश पारित किया था, के पास अंतर-न्यायालयीय अपील पर सुनवाई करने का अधिकार था। जिस विषय-वस्तु को चुनौती दी गई थी, वह मुख्य न्यायाधीश द्वारा निर्धारित रोस्टर के अंतर्गत आती थी। यह ऐसा मामला नहीं था जहाँ खंडपीठ ने किसी याचिका पर सुनवाई की हो जिसमें किसी वादी की ओर से किसी कानून की वैधता को चुनौती दी गई हो। इसके बजाय, खंडपीठ ने स्वप्रेरणा से अपनी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए वैधता के मुद्दे को विचार और निर्णय के लिए उठाया। जैसा कि इंडियन बैंक बनाम सत्यम फाइबर्स (इंडिया) (पी) लिमिटेड में माना गया है, जिसकी राज्य (एनसीटी दिल्ली) बनाम केएल राठी स्टील्स लिमिटेड में तीन न्यायाधीशों की पीठ ने पुष्टि की है, अंतर्निहित शक्तियां वे शक्तियां हैं जो सभी अदालतों में मौजूद होती हैं, विशेष रूप से उच्चतर क्षेत्राधिकार वाली और हालांकि ये शक्तियां कानून से नहीं बल्कि न्यायाधिकरणों या अदालतों की प्रकृति और संविधान से आती हैं ताकि वे अपनी गरिमा बनाए रख सकें, अपनी प्रक्रिया और नियमों का पालन सुनिश्चित कर सकें, अपने अधिकारियों को अपमान और अपकृत्य से बचा सकें और अनुचित व्यवहार को दंडित कर सकें, ऐसी शक्ति अदालतों द्वारा न्याय वितरण प्रणाली के व्यवस्थित प्रशासन के लिए आवश्यक

है। इसके अलावा, हम मानते हैं कि अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग वह करने के लिए भी किया जा सकता है जो अदालत के समक्ष मामले के न्याय की मांग को ध्यान में रखते हुए उचित हो।

40. उक्त निर्णयों के आधार पर, किसी दिए गए मामले में, जिस पर न्यायालय का अधिकार क्षेत्र है, उसकी अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग को उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश द्वारा निर्धारित रोस्टर द्वारा सीमित नहीं माना जा सकता।"

IX. निष्कर्ष और निर्देश:

119. पूर्ववर्ती चर्चा के मद्देनजर, निम्नलिखित निष्कर्ष दर्ज किए जा रहे हैं और राज्य प्राधिकारियों को संबंधित निर्देश जारी किए जा रहे हैं:

(क). दिनांक 04.09.2000 और 15.02.2013 के शासनादेश, जहाँ तक वे अनुकंपा के आधार पर शिक्षकों के पदों पर नियुक्ति से संबंधित हैं, भारत के संविधान के अनुच्छेद 14, 16 और 21-ए के विरुद्ध माने जाते हैं।

(ख). दिनांक 04.09.2000 और 15.02.2013 के शासनादेश, जहां तक वे अनुकंपा के आधार पर शिक्षकों के पदों पर नियुक्ति से संबंधित हैं, शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 की धारा 3 का उल्लंघन हैं, जो बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार प्रदान करता है।

(ग). दिनांक 04.09.2000 और 15.02.2013 के शासनादेश, जहाँ तक वे अनुकंपा के आधार पर शिक्षकों के पदों पर नियुक्ति से संबंधित हैं, डाइंग इन हार्नेस नियमावली, 1999 के नियम 5 के अधिदेश के विपरीत हैं।

(घ). दिनांक 04.09.2000 और 15.02.2013 के शासनादेश, जहाँ तक वे अनुकंपा के आधार पर शिक्षकों के पदों पर नियुक्ति का प्रावधान करते हैं, रद्द किए जाते हैं। तदनुसार, राज्य सरकार को दिनांक 04.09.2000 और 15.02.2013 के शासनादेशों के कार्यान्वयन को तत्काल रोकने का निर्देश दिया जाता है।

(ङ). मामला प्रत्यर्थी-प्राधिकारियों को वापस भेजा जाता है। याचिकाकर्ता के दावे पर प्रत्यर्थी -प्राधिकारियों द्वारा कानून के अनुसार और इस निर्णय में की गई टिप्पणियों के अनुरूप किसी अन्य पद पर अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए विचार किया जाएगा। इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तिथि से तीन माह की अवधि के भीतर प्रत्यर्थी -प्राधिकारी द्वारा निर्णय लिया जाएगा।

120. रिट याचिका का अंतिम रूप से निस्तारण किया जाता है।

121. रजिस्ट्री को निर्देश दिया जाता है कि इस आदेश की एक प्रति प्रमुख सचिव, बेसिक शिक्षा विभाग, उत्तर प्रदेश शासन, लखनऊ को भेजें।

(2025) 4 ILRA 215

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 21.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे. जे. मुनीर

रिट ए संख्या 15480/2015

मोहम्मद फहीम जमाल **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
मंसूर अहमद

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
आनंद प्रकाश पांडे, आशीष त्रिपाठी, सी.एस.सी., चौधरी एन.ए. खान

अनुवादित

<u>अवधारित किया गया:</u>

हमने ऊपर देखा है कि अध्यक्ष, तहतानिया अनुभाग में शिक्षक के चयन और नियुक्ति से संबंधित एजेंडा मद पर चर्चा होने से पहले ही बैठकों में भाग नहीं ले रहे थे। भले ही उन्होंने उस दिन से अनुपस्थित रहना शुरू कर दिया था जब प्रबंध समिति द्वारा रिक्त पद को भरने के मामले पर चर्चा की गई थी, फिर भी तथ्य यह है कि अध्यक्ष स्वीकार करते हैं कि वे स्वेच्छा से प्रबंध समिति की बैठकों में भाग लेने से परहेज कर रहे थे, जिसकी उन्हें सूचना थी। किसी सोसाइटी या संस्था की प्रबंध समिति को कोई महत्वपूर्ण कार्य करना है और यदि प्रबंध समिति का अध्यक्ष स्वेच्छा से अनुपस्थित रहता है, तो हमारी सुविचारित राय में, यह सोसाइटी/संस्था के उपनियम 10(ख) के अधीन होगा, जो उपाध्यक्ष को अध्यक्ष के कर्तव्यों का कार्यभार संभालने और निर्वहन करने के लिए अधिकृत करता है। उपनियमों में उल्लिखित 'अनुपस्थिति' शब्द का अर्थ हमेशा 'स्थान से अनुपस्थिति' या 'बीमारी के कारण' या इसी तरह के अन्य मामलों से नहीं होता है। इसमें अध्यक्ष द्वारा जानबूझकर अनुपस्थित रहने का मामला भी शामिल होगा। (अनुच्छेद 23)

यदि जानबूझकर अनुपस्थिति को संस्था के उपनियम 10(बी) के तहत 'अनुपस्थिति' नहीं माना जाता है, तो बैठक में बैठने से इनकार करने वाला अड़ियल अध्यक्ष संस्था को बंधक बना सकता है। सामान्यतः, कॉर्पोरेट निकायों, जैसे कि सोसाइटियों, जिनके पास कुछ मामलों का प्रबंधन होता है - जैसे कि इस मामले में एक

शैक्षणिक संस्थान - के संस्थागत कार्यों के निर्वहन के लिए, संस्था को नियंत्रित करने वाली योजना या उपनियमों में एक प्रावधान किया जाता है कि अनुपस्थित पदाधिकारी की जगह किसी अन्य पदाधिकारी को नियुक्त किया जा सके। उपनियमों में इस तरह के प्रावधान, सोसायटी द्वारा किए जाने वाले किसी भी कार्य को सुचारू रूप से चलाने के लिए बनाए गए हैं। यह किसी विशेष पदाधिकारी या पदाधिकारियों की व्यक्तिगत अड़ियल प्रवृत्ति, स्वच्छंदता या विघटनकारी व्यवहार पर काबू पाने का एक तरीका है। प्रति-शपथपत्र के पैराग्राफ संख्या 9 में, अध्यक्ष द्वारा प्रबंध समिति की बैठकों से अनुपस्थित रहने का औचित्य यह बताया गया है कि तहतानिया के पद पर चयन आदि अवैध था, जिसके आधार पर याचिकाकर्ता की नियुक्ति की गई थी। यदि छठे प्रतिवादी को यह प्रक्रिया अवैध लगी, तो वह प्रबंध समिति के अध्यक्ष थे और उसके कार्यों पर उनका नियंत्रण था। उनके पास कम से कम एक वोट था, जिसका प्रयोग वे असहमति जताने के लिए कर सकते थे। वह अनुपस्थित रहकर असहमति नहीं जता सकते थे, जैसा उन्होंने किया। जब छठे प्रतिवादी ने प्रबंध समिति की निर्धारित बैठकों में भाग लेने से स्पष्ट रूप से अनुपस्थित रहने की बात स्वीकार कर ली है, तो उपाध्यक्ष द्वारा उनकी भूमिका और कर्तव्यों का निर्वहन करने में कुछ भी अवैध नहीं है। स्पष्टतः, निरीक्षक ने इस मामले को इस दृष्टिकोण से नहीं देखा है या आदेश पारित करते समय अभिलेखों की जांच नहीं की है तथा दिनांक 27.06.2013 के आदेश के तहत याचिकाकर्ता की नियुक्ति के लिए दी गई पूर्व स्वीकृति को वापस नहीं लिया है। (पैरा 24)

हम इस मामले को इंस्पेक्टर के पास वापस भेजने पर विचार कर सकते थे, जो निश्चित रूप से याचिकाकर्ता की नियुक्ति के अनुमोदन के मामले पर विचार करने के लिए सक्षम प्राधिकारी हैं, लेकिन इस मामले में यह उचित कदम नहीं लगता। इसका कारण यह है कि प्रतिवादी यह तर्क नहीं देते कि याचिकाकर्ता की नियुक्ति ऐसे पद पर की गई जो स्वीकृत नहीं था या विज्ञापन सहित चयन और साक्षात्कार की कार्यवाही किसी भी तरह से दूषित थी। याचिकाकर्ता की नियुक्ति को निरीक्षक द्वारा पद के अस्तित्व और रिक्ति के संबंध में सुविचारित आदेश द्वारा अनुमोदित किया गया था। जिन शर्तों के अधीन अनुमोदन प्रदान किया गया था, उनमें कहा गया था कि जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी यह सुनिश्चित करेंगे कि की गई नियुक्ति स्वीकृत पद के विरुद्ध हो और संस्थान के लिए स्वीकृत पदों से अधिक न हो। जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, प्रतिवादियों ने ऐसा कोई मामला नहीं उठाया है। दूसरी शर्त याचिकाकर्ता की पात्रता और शैक्षिक योग्यता के सत्यापन से संबंधित है। इसमें भी कोई त्रुटि नहीं पाई गई है। इसके अलावा, यह भी प्रावधान है कि जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी यह सत्यापित करेंगे कि जिस पद पर वेतन दिया जाना है, वह विवाद मुक्त है या नहीं और कोई मामला न्यायालय में लंबित नहीं है। इसमें यह भी प्रावधान है कि जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी यह सुनिश्चित करेंगे कि नियुक्त व्यक्ति वर्ष 1998, 2000 और 2004 में संशोधित विनियमों के तहत निर्धारित प्रबंधन में किसी से संबंधित नहीं है। अनुमोदन आदेश में उल्लिखित नोट 1 से 4 तक की किसी भी शर्त का उल्लंघन याचिकाकर्ता की नियुक्ति के मामले में नहीं दर्शाया गया है। निरीक्षक द्वारा दिनांक 27.06.2013 को पारित अनुमोदन आदेश के नोट 5 में एक अवशिष्ट शर्त यह है कि यदि कोई तथ्य छिपाया गया पाया गया या कोई जानकारी गलत पाई गई, तो यह अनुमोदन स्वतः निरस्त माना जाएगा। इस अवशिष्ट खंड के आधार पर ही आक्षेपित आदेश पारित किया गया है, लेकिन विशेष रूप से केवल इस आधार पर कि अध्यक्ष ने प्रबंधन समिति की बैठकों की अध्यक्षता नहीं की थी, जहां पद के लिए विज्ञापन देने और याचिकाकर्ता की नियुक्ति के

प्रस्ताव को अपनाया गया था। उपाध्यक्ष के अधीन कार्य करने वाली समिति की कार्रवाई को हमने उन कारणों से पूर्णतः उचित पाया है, जिनका उल्लेख हमने ऊपर विस्तार से किया है। (पैराग्राफ 25)

इन परिस्थितियों में, निरीक्षक के पास याचिकाकर्ता की नियुक्ति को मंजूरी देने वाले 27.06.2013 के अपने आदेश को रद्द करने का कोई कारण नहीं था, जिसे, हमारी राय में, बहाल किया जाना चाहिए। (पैराग्राफ 26)

याचिका स्वीकृत। (ई-14)

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर द्वारा प्रदत्त)

1. यह रिट याचिका रजिस्ट्रार, अरबी और फारसी शिक्षा बोर्ड, उ.प्र., लखनऊ के आदेश दिनांक 02.12.2014 के विरुद्ध है, जिसमें याचिकाकर्ता की सहायक अध्यापक (तहतनिया) के रूप में नियुक्ति को दी गई स्वीकृति को रद्द कर दिया गया था।

2. संक्षेप में तथ्य यह है कि अल-जमायतुल इस्लामिया मम्बुल मारिफ, ग्राम सुम्भी, पोस्ट गम्भीरबन, जिला आजमगढ़, सोसाइटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 के अंतर्गत पंजीकृत एक सोसाइटी है, जिसका पंजीकरण संख्या 929/1992-93 है। इसे 12.12.1993 को सोसाइटी रजिस्ट्रार के पास पंजीकृत किया गया था। इसके बाद, इसे 'सोसाइटी' कहा जाएगा। सोसाइटी के अपने उपनियम भी पंजीकृत हैं। सोसायटी के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए, अरबी और फारसी भाषा और इस्लामी धार्मिक नैतिकता के शिक्षण को बढ़ावा देने के लिए, इसने एक संस्था की स्थापना की, जिसे मदरसा अल-जमाइअतुल इस्लामिया मम्बुल मारिफ, ग्राम सुम्भी, पोस्ट गम्भीरबन, जिला आजमगढ़ (संक्षेप में, 'संस्था') के रूप में जाना जाता है। संस्था को वर्ष 1996 में ही सक्षम प्राधिकारी द्वारा मान्यता प्राप्त हो गई थी। वर्ष 2005 में सरकार द्वारा इसे रखरखाव अनुदान प्रदान किया गया। संस्था के कार्यों का प्रबंधन सोसायटी/संस्था की एक प्रबंधन समिति द्वारा किया जाता है। सोसायटी के उपनियमों के अनुसार, इस प्रबंधन समिति में एक अध्यक्ष, जिसे सदर कहा जाता है, एक उपाध्यक्ष (नायब सदर), एक प्रबंधक, एक उप प्रबंधक, एक कैशियर और एक लेखा परीक्षक शामिल होते हैं। ये सभी सोसायटी और उसके द्वारा संचालित संस्था के पदाधिकारी होते हैं।

3. जिस समय यह मामला संबंधित है, उस समय मदरसों की मान्यता और उनके शिक्षकों की नियुक्ति मान्यता एवं सेवा नियमावली, अरबी तथा फारसी मदरसे, उत्तर प्रदेश (संक्षेप में 'विनियम') द्वारा शासित होती थी। ये विनियम राज्य सरकार द्वारा दिनांक 22.08.1987 के शासनादेश द्वारा अनुमोदित और प्रसारित किए गए थे। इनमें समय-समय पर संशोधन किए गए। विनियमों के नियम 20 में प्रावधान है कि प्रबंधन शैक्षणिक सत्र प्रारंभ होने से एक माह पूर्व एक चयन समिति का गठन करेगा ताकि शिक्षकों के रिक्त पदों पर उपयुक्त अभ्यर्थियों का चयन और नियुक्ति की जा सके। ऐसे मामलों में जहाँ सत्र के मध्य में कोई रिक्ति होती है, संस्थान का

प्रबंधन दो माह के लिए तदर्थ आधार पर एक उपयुक्त शिक्षक की नियुक्ति करने का हकदार होगा। सहायक शिक्षकों के चयन के मामले में, प्रधानाचार्य/प्रधानाध्यापक भी चयन समिति के सदस्य होंगे।

4. नियमावली के नियम 22 के अनुसार, मदरसे में किसी रिक्त पद को भरने के लिए, चाहे वह नव-सृजित, अस्थायी या स्थायी हो, कम से कम दो दैनिक समाचार पत्रों में विज्ञापन देना आवश्यक होगा, जिनमें से एक का प्रसार क्षेत्रीय और दूसरा राज्य स्तरीय होना चाहिए। विज्ञापन में योग्यता, आयु सीमा, वेतनमान आदि का उल्लेख होगा। विनियमावली में यह प्रावधान है कि ऐसे किसी पद पर नियुक्ति नहीं की जाएगी जो राज्य सरकार के अल्पसंख्यक कल्याण विभाग द्वारा अनुमोदित न हो।

5. संस्थान में सहायक अध्यापक (तहतनिया) के पाँच स्वीकृत पद थे। तहतनिया अनुभाग, किसी संस्थान के प्राथमिक अनुभाग के समकक्ष होता है और पारंपरिक शिक्षा प्रदान करता है। सहायक अध्यापक (तहतनिया) का एक पद, 23.08.2009 को मोहम्मद रईस नामक सहायक अध्यापक की मृत्यु के कारण रिक्त हो गया था। संस्थान की प्रबंध समिति ने सक्षम प्राधिकारी से अनुमति प्राप्त करने के पश्चात् दो दैनिक समाचार पत्रों, अर्थात् आवाज़ मुल्क, अंक दिनांक 17.04.2012 और देवव्रत, अंक दिनांक 20.04.2012, में पद का विज्ञापन दिया। याचिकाकर्ता ने विज्ञापन के प्रत्युत्तर में आवेदन किया और इस प्रयोजन हेतु गठित चयन समिति द्वारा उसे साक्षात्कार के लिए बुलाया गया। चयन समिति ने उपस्थित कुल छह उम्मीदवारों में से याचिकाकर्ता को नियुक्ति के लिए सबसे उपयुक्त पाया। चयन समिति की सिफ़ारिशें 28.10.2012 को हुई संस्थान की प्रबंधन समिति की बैठक में प्रस्तुत की गईं।

6. सोसायटी के अध्यक्ष और प्रबंध समिति के अध्यक्ष, विशेष रूप से, सोसायटी के कार्यों में रुचि नहीं लेते प्रतीत होते थे। वे प्रबंध समिति की बैठकों में भाग लेने से परहेज करते थे। उनकी अनुपस्थिति में, बैठक की अध्यक्षता सोसायटी के उपाध्यक्ष द्वारा की गई और सर्वसम्मति से प्रस्ताव पारित करके, प्रबंधक को याचिकाकर्ता को नियुक्ति पत्र जारी करने और वित्तीय स्वीकृति प्राप्त करने हेतु कदम उठाने के लिए अधिकृत किया गया। याचिकाकर्ता को संस्था के प्रबंधक द्वारा दिनांक 28.10.2012 को नियुक्ति पत्र जारी किया गया था। उसने 03.11.2012 को प्रधानाचार्य को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए सेवा ग्रहण की। याचिकाकर्ता के अनुसार, वह तब से अपने वरिष्ठों की पूर्ण संतुष्टि के साथ अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर रहा है। याचिकाकर्ता का कहना है कि उसकी नियुक्ति विनियमों के तहत निर्धारित नियमों के अनुसार ही की गई थी। संस्था के प्रबंधक ने उसकी नियुक्ति से संबंधित कागजात रजिस्ट्रार/निरीक्षक, अरबी, फ़ारसी मदरसा शिक्षा बोर्ड, उत्तर प्रदेश, लखनऊ को याचिकाकर्ता की नियुक्ति हेतु अनुमोदन हेतु प्रेषित किए।

7. रजिस्ट्रार/निरीक्षक, अरबी, फ़ारसी मदरसा शिक्षा बोर्ड, उत्तर प्रदेश, लखनऊ (संक्षेप में, 'निरीक्षक') ने अपने पत्र दिनांक 27.06.2013 द्वारा याचिकाकर्ता की नियुक्ति को स्वीकृति प्रदान की। निरीक्षक द्वारा याचिकाकर्ता की नियुक्ति को स्वीकृति प्रदान करने और याचिकाकर्ता द्वारा निरंतर सेवाएँ प्रदान करने के बावजूद, उसे उसका वेतन नहीं दिया गया। उसने संस्थान के प्रबंधक को दिनांक 26.10.2013 को एक विस्तृत अभ्यावेदन प्रस्तुत

किया। याचिकाकर्ता को प्रबंधक के पत्र दिनांक 15.02.2014 के माध्यम से पता चला कि इस न्यायालय ने प्रतिवादी संख्या 6, जो प्रबंध समिति का अध्यक्ष है और समिति की ओर से कार्य करने का दावा करता है, द्वारा दायर रिट-ए संख्या 60862/2013 में दिनांक 19.11.2013 को एक एकपक्षीय आदेश पारित किया था, जिसमें याचिकाकर्ता की नियुक्ति को चुनौती दी गई थी। इस न्यायालय के दिनांक 19.11.2013 के आदेशों के परिणामस्वरूप, जो भी थे, जिनके बारे में याचिकाकर्ता का कहना है कि उन्हें प्रबंधन द्वारा यह समझाया गया था कि वे अंतरिम आदेश थे, याचिकाकर्ता का वेतन रोक दिया गया था।

8. प्रबंधक ने याचिकाकर्ता को यह भी बताया कि निदेशक, अल्पसंख्यक कल्याण, उत्तर प्रदेश ने दिनांक 26.12.2013 को एक आदेश पारित कर याचिकाकर्ता के वेतन भुगतान पर रोक लगा दी थी। प्रबंधक ने याचिकाकर्ता को यह भी बताया कि दिनांक 19.11.2013 के आदेश के विरुद्ध प्रबंध समिति ने विशेष अपील त्रुटि संख्या 84/2014 दायर की थी, जिसका निस्तारण दिनांक 29.01.2014 के आदेश द्वारा कर दिया गया था, जिससे पीड़ित व्यक्ति, अर्थात् याचिकाकर्ता, निदेशक, अल्पसंख्यक कल्याण, उत्तर प्रदेश द्वारा पारित आदेश दिनांक 26.12.2013 को चुनौती देने के लिए स्वतंत्र हो गया। याचिकाकर्ता का यह भी कहना है कि सोसायटी के पंजीकृत उपनियमों के उपनियम संख्या 14 के अनुसार, सोसायटी के प्रबंधक ही सोसायटी के मामलों से संबंधित न्यायालय में कार्यवाही शुरू करने या बचाव करने के लिए सक्षम हैं। याचिकाकर्ता का तर्क है कि प्रबंध समिति के प्रस्ताव के बिना सोसायटी के अध्यक्ष द्वारा दायर रिट-ए संख्या 60862/2013, विचारणीय नहीं है। उन्होंने यह भी कहा कि प्रबंध समिति के दिनांक 25.12.2012 के एक प्रस्ताव द्वारा अध्यक्ष को पद से हटा दिया गया था। उनके पास निरीक्षक द्वारा पारित आदेश दिनांक 27.06.2013 जिसमें याचिकाकर्ता की नियुक्ति को मंजूरी दी गई थी, को चुनौती देने का कोई अधिकार नहीं था। फिर भी, चूँकि याचिकाकर्ता को अपना पक्ष रखने का कोई अवसर नहीं दिया गया, इसलिए विद्वान न्यायाधीश, जिन्होंने रिट याचिका पर सुनवाई की और दिनांक 19.11.2013 का आदेश पारित किया, के समक्ष सही तथ्य प्रस्तुत नहीं किए जा सके।

9. याचिकाकर्ता का यह भी तर्क है कि विनियमों के प्रावधानों के अंतर्गत, किसी संस्थान में शिक्षक या कर्मचारी की नियुक्ति के अनुमोदन के संबंध में निर्णय लेने का अधिकार केवल निरीक्षक को ही है। अतः, अल्पसंख्यक कल्याण निदेशक द्वारा दिनांक 26.12.2013 को पारित आदेश, जिसमें याचिकाकर्ता की नियुक्ति को अवैध घोषित किया गया और उसके वेतन का भुगतान रोक दिया गया, स्वयं क्षेत्राधिकार से बाहर और अवैध था। यह भी बताया गया है कि निदेशक को क्षेत्राधिकार के अभाव के बावजूद, 26.12.2013 का आदेश पारित करने से पहले याचिकाकर्ता का पक्ष सुनना चाहिए था, जो उन्होंने नहीं किया। यह आदेश भी याचिकाकर्ता को अवसर दिए बिना और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करते हुए पारित किया गया। याचिकाकर्ता ने रिट-ए संख्या 20572/2014 दायर करके इस न्यायालय में 26.12.2013 के आदेश को चुनौती दी, जिस पर इस न्यायालय ने निम्नलिखित आदेश के अनुसार निर्णय दिया:

"तदनुसार, अल्पसंख्यक कल्याण निदेशक द्वारा उक्त आदेश में दर्ज की गई टिप्पणियां और निष्कर्ष, जो याचिकाकर्ता के प्रतिकूल हैं, हटा दिए जाते हैं और रजिस्ट्रार/निरीक्षक, उत्तर प्रदेश मदरसा शिक्षा बोर्ड को निर्देश

दिया जाता है कि वे निदेशक द्वारा दिनांक 26.12.2013 के आदेश में की गई किसी भी टिप्पणी या निष्कर्ष से पूरी तरह अप्रभावित रहते हुए, कानून के अनुसार उचित निर्णय लें।
रिट याचिका का उपरोक्तानुसार निस्तारण किया जाता है।"

10. उपर्युक्त निर्णय एवं आदेश दिनांक 15.04.2014 के अनुपालन में, याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय के आदेश की प्रमाणित प्रति के साथ निरीक्षक के समक्ष दिनांक 06.05.2014 को अभ्यावेदन प्रस्तुत किया। कोई कार्रवाई न होने पर 27.05.2014 को स्मरण पत्र भेजा गया। याचिकाकर्ता को रिट-ए संख्या 20572/2014 में इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 15.04.2014 के अनुपालन में आदेश जारी करने के लिए दिनांक 11.06.2014 को एक पत्र द्वारा सभी मूल दस्तावेजों के साथ निरीक्षक के समक्ष उपस्थित होने के लिए कहा गया था। याचिकाकर्ता सभी संबंधित दस्तावेजों के साथ 25.06.2014 को निरीक्षक के समक्ष उपस्थित हुआ।

11. याचिकाकर्ता का कहना है कि उसे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि 03.01.2014 को एक पूर्व-तिथि वाला आदेश, फिर से उसकी पीठ पीछे, पारित कर दिया गया, जिसमें उसे उस दिन अनुपस्थित दिखाया गया। निरीक्षक द्वारा पारित आदेश में उसकी नियुक्ति को मंजूरी देने वाले 27.06.2013 के आदेश को वापस ले लिया गया। याचिकाकर्ता का तर्क है कि 03.01.2014 का आदेश न तो निदेशक, अल्पसंख्यक कल्याण या संस्थान के प्रबंधक को सूचित किया गया। यह एक पूर्व-तिथि वाला आदेश था। यदि यह अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए पारित किया गया आदेश था, तो निरीक्षक द्वारा कुछ भी नहीं किया जा सकता था। हालाँकि, जब रिट-ए संख्या 20572/2014 में पारित दिनांक 15.04.2014 के आदेश की एक प्रति निरीक्षक के समक्ष प्रस्तुत की गई, तो उन्होंने 27.06.2013 को याचिकाकर्ता की नियुक्ति को दिए गए अनुमोदन की वैधता की जाँच हेतु कार्यवाही शुरू कर दी। पुनः की गई सुनवाई के दौरान ही याचिकाकर्ता के संज्ञान में उनकी पीठ पीछे दिनांक 03.01.2014 को पारित पूर्व-दिनांकित आदेश आया। याचिकाकर्ता का यह भी कहना है कि उक्त आदेश की अनदेखी की गई और कार्यवाही पुनः शुरू की गई, जिसका परिणाम 02.12.2014 के आक्षेपित आदेश के रूप में सामने आया। इसलिए, 03.01.2014 के आदेश में ज्यादा कुछ नहीं है, जो अब लागू नहीं है।

12. निरीक्षक द्वारा पारित दिनांक 02.12.2014 के आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने वर्तमान रिट याचिका प्रस्तुत की है।

13. दिनांक 24.03.2015 को प्रस्ताव का नोटिस जारी किया गया और समय के साथ, पक्षकारों ने शपथपत्रों का आदान-प्रदान किया। दिनांक 10.01.2013 के एक आदेश द्वारा, इस न्यायालय ने प्रतिवादी संख्या 3 और 4 की हिरासत से याचिकाकर्ता की नियुक्ति से संबंधित संपूर्ण अभिलेख मंगवा लिए। इस आदेश का पालन नहीं किया गया और जब 07.10.2023 को मामला आया, तो इस न्यायालय ने जिला अल्पसंख्यक कल्याण, आजमगढ़, प्रतिवादी संख्या 4 को 5000/- रुपये की लागत अदा करने का आदेश दिया, जो जमा कर दी गई।

इस न्यायालय ने आदेश दिनांक 15.10.2023 में लागत राशि जमा किए जाने की बात देखी थी। जब 02.11.2023 को याचिका सुनवाई के लिए स्वीकार की गई, तो उस पर तुरंत सुनवाई हुई और फैसला सुरक्षित रख लिया गया। बाद में, फैसला सुनाते समय, यह पाया गया कि लागत राशि जमा होने के बावजूद, अभिलेख अभी भी गायब थे। इसलिए, मामले को आगे की सुनवाई के लिए स्थगित कर दिया गया और अभिलेख प्रस्तुत करने के लिए 24.04.2024 को आदेश पारित किए गए। कुछ अभिलेख 30.04.2024 को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए गए तथा उन्हें सीलबंद लिफाफे में महानिबंधक की सुरक्षित अभिरक्षा में रखने का निर्देश दिया गया। इसलिए, उर्दू में लिखी गई प्रबंध समिति की बैठक की कार्य-पुस्तिका को दिनांक 02.05.2024 के आदेश द्वारा हिंदी में अनुवादित करने का निर्देश दिया गया।

14. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री मंसूर अहमद, प्रतिवादी संख्या 1 से 4 की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री रूपेश तिवारी, प्रतिवादी संख्या 5 के विद्वान अधिवक्ता श्री आशीष त्रिपाठी और प्रतिवादी संख्या 6 के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री आनंद प्रकाश पांडे को सुना गया।

15. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने और आक्षेपित आदेश सहित अभिलेखों का अवलोकन करने के पश्चात, इस न्यायालय का निष्कर्ष है कि इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं है कि संस्थान के तहतानिया अनुभाग में सहायक अध्यापकों के पाँच पद हैं, जो सरकार द्वारा विधिवत स्वीकृत हैं और याचिकाकर्ता की नियुक्ति स्वीकृत पद से संबंधित एक रिक्ति पर की गई थी। इस बात पर भी कोई आपत्ति नहीं है कि यह रिक्ति वर्तमान अध्यापक के निधन के कारण उत्पन्न हुई थी। निरीक्षक ने अपने आदेश में चयन के लिए विज्ञापन की प्रक्रिया की भी आलोचना नहीं की है, बल्कि इस तथ्य को आधार बनाया है कि नियुक्ति करने का अधिकार सोसायटी/संस्था के विनियमों के उपनियम संख्या 10 (ए) (3) के तहत अध्यक्ष में निहित है और उपाध्यक्ष को अध्यक्ष के रूप में कार्य करने और अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उपनियम संख्या 10 (बी) के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करने का अधिकार प्राप्त है। निरीक्षक ने निष्कर्ष दर्ज किया है कि संस्थान के प्रबंधक ने ऐसा कोई दस्तावेज या साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया है जिससे यह पता चले कि प्रबंध समिति की बैठक बुलाई गई थी या चयन समिति का गठन अध्यक्ष के समक्ष प्रस्ताव प्रस्तुत करने और उनके अनुमोदन के बाद किया गया था।

16. इसके बाद यह टिप्पणी की गई कि यह तथ्य इस स्थिति की पुष्टि करता है कि सोसायटी/संस्था के अध्यक्ष प्रबंध समिति की बैठकों की अध्यक्षता करने के लिए अनुपस्थित नहीं थे। निरीक्षक द्वारा पुनः यह टिप्पणी की गई कि उपाध्यक्ष को अध्यक्ष के कार्यों का निर्वहन करने या अध्यक्ष की अनुपस्थिति में अपने अधिकारों का प्रयोग करने की शक्तियाँ प्राप्त हैं। निष्कर्ष यह निकला है कि प्रबंध समिति और चयन समिति दोनों की बैठकें प्रथम दृष्टया संदिग्ध हैं। प्रयुक्त उक्ति है, 'कार्यवाही प्रथम दृष्टया संदिग्ध है।' आगे जो टिप्पणी है, वह यह है कि प्रबंधक ज़फ़र अहमद सिद्दीकी ने अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए, अध्यक्ष के वैध अधिकार का उल्लंघन करते हुए, अपनी इच्छानुसार चयन किए, जो विधि विरुद्ध है। फिर इस तथ्य की पुनरावृत्ति होती है कि अध्यक्ष की उपस्थिति में उपाध्यक्ष प्रबंध समिति की बैठक नहीं कर सकते थे, जो उपनियमों के विरुद्ध है।

17. निरीक्षक का निष्कर्ष स्पष्टतः अध्यक्ष, सैय्यद अब्दुल्ला द्वारा जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी, आजमगढ़ के समक्ष प्रस्तुत दिनांक 17.10.2013 के शपथपत्र पर आधारित है। जैसा कि आक्षेपित आदेश के अवलोकन से स्पष्ट होता है, इस शपथपत्र में अध्यक्ष ने कहा था कि सहायक अध्यापक (तहतनिया) के पद पर नियुक्ति एक बैठक में की गई थी, जिसकी अध्यक्षता उनकी ओर से नहीं की गई थी। उन्होंने यह भी कहा कि यदि नियुक्ति को स्वीकार करने वाले प्रस्ताव पर अध्यक्ष के हस्ताक्षर हैं, तो वे पूरी तरह से झूठे और जाली हैं। शपथपत्र में कहा गया है कि संस्था के उपनियमों के अनुसार, बर्खास्त करने या नियुक्त करने का अधिकार अध्यक्ष के पास है, इसलिए उनकी अनुपस्थिति में की गई नियुक्ति त्रुटिपूर्ण और अवैध है। जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, नियुक्ति स्वीकृत पद के विरुद्ध है और निरीक्षक ने इस आधार पर अनुमोदन वापस नहीं लिया है कि पद वैध रूप से विज्ञापित नहीं था या याचिकाकर्ता के पास नियुक्ति के लिए आवश्यक योग्यताएं नहीं थीं; या चयन समिति सक्षम नहीं थी आदि। प्रक्रिया को गलत माना गया है क्योंकि प्रबंधन समिति, जिसने स्पष्टतः चयन प्रक्रिया शुरू करने और फिर नियुक्ति करने का संकल्प लिया था, ने अध्यक्ष के नेतृत्व में ऐसा नहीं किया। निरीक्षक ने यह अनुमान लगाया है कि ऐसा नहीं था कि अध्यक्ष उपलब्ध नहीं थे और इसलिए, उपनियमों के तहत, उपाध्यक्ष उनके स्थान पर कार्य कर सकते थे।

18. प्रतिवादी संख्या 1, 2, 3 और 4 की ओर से दायर प्रति-शपथपत्र में, आदेश में उल्लिखित इस आधार पर आदेश का मुख्यतः बचाव किया गया है कि याचिकाकर्ता की नियुक्ति ऐसी कार्यवाहियों में की गई थी जिनकी अध्यक्षता सोसाइटी/संस्था के अध्यक्ष द्वारा नहीं की गई थी। पैराग्राफ संख्या 2(क) में एक और दलील दी गई है कि 28.10.2012 को प्रबंधन समिति द्वारा याचिकाकर्ता की नियुक्ति के बाद, प्रबंधन समिति ने जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी की अनुशंसा के बिना ही सीधे निरीक्षक को पत्र भेज दिए। प्रथम आधार की सार्थकता की जांच की जानी है, किन्तु यह आधार कि याचिकाकर्ता की नियुक्ति के लिए प्रबंधन समिति द्वारा सिफारिशें जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी के माध्यम से नहीं की गई थीं, अब प्रतिवादियों के लिए तर्क देने योग्य नहीं है, क्योंकि यह ऐसा कोई आधार नहीं है, जिसके आधार पर आक्षेपित आदेश पारित किया गया है।

19. यह विधि का एक सर्वमान्य सिद्धांत है कि चुनौती दिए गए आदेश या आक्षेपित आदेश को उस आदेश में कही गई बातों से इतर किसी आधार पर समर्थित नहीं किया जा सकता। दूसरे शब्दों में, आक्षेपित आदेश को शपथपत्र के माध्यम से पुष्ट करने के लिए अतिरिक्त आधारों से अनुपूरित नहीं किया जा सकता। जहाँ तक प्रबंध समिति की बैठकों से अध्यक्ष की अनुपस्थिति का प्रश्न है, जो उपविधि संख्या 10(ख) के अंतर्गत उपाध्यक्ष को उनके स्थान पर कार्य करने का अधिकार देता है, प्रतिवादी संख्या 6, अध्यक्ष अब्दुल्ला द्वारा दायर प्रति-शपथपत्र सर्वाधिक प्रासंगिक है। उपरोक्त प्रति-शपथपत्र के पैराग्राफ संख्या 9 में यह कथन किया गया है:

"9. रिट याचिका के पैराग्राफ संख्या 16 की विषयवस्तु स्वीकार नहीं की जाती, अतः अस्वीकृत की जाती है। सही तथ्य यह है कि अभिसाक्षी ने संस्थान की प्रबंध समिति की कार्यवाही में भाग लेने से इनकार कर दिया था और इस संबंध में उसने दिनांक 21.04.2011 को एक पत्र भी भेजा था और प्रबंध समिति की बैठक की

अध्यक्षता संस्थान की प्रबंध समिति के उपाध्यक्ष ने की थी, परन्तु अभिसाक्षी ने संस्थान की प्रबंध समिति द्वारा प्रसारित नोटिस/एजेंडे पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया और सभी बैठकों में उसने स्वेच्छा से संस्थान की प्रबंध समिति की कार्यवाही में इस आधार पर भाग लेने से इनकार कर दिया कि चयन प्रक्रिया अवैध थी, अतः अभिसाक्षी की अनुपस्थिति में किया गया विज्ञापन, साक्षात्कार और संपूर्ण चयन प्रक्रिया कानून की दृष्टि में अवैध और अनुचित है।"

(न्यायालय द्वारा प्रभाव वर्धित)

20. सूचना रजिस्टर नामक पुस्तक की अनुवादित प्रति के अवलोकन से पता चलता है कि सोसायटी/संस्था के अध्यक्ष ने अंतिम बार 21.04.2011 को होने वाली एक बैठक की सूचना देते हुए उस पर हस्ताक्षर किए थे, लेकिन उसके बाद नहीं। उन्होंने 18.05.2011 को हुई बैठक के लिए उस पर हस्ताक्षर नहीं किए थे। सूचना रजिस्टर के पृष्ठ 3 के बाद उनके हस्ताक्षर नहीं हैं। ये पृष्ठ 5, 6, 9 और 11 पर अनुपस्थित हैं। अभिलेखों में अगला दस्तावेज़, जिसका अनुवाद किया गया है, वह दूसरी पुस्तक है, जिसे कार्यवाही रजिस्टर कहा जाता है। दिनांक 21.04.2011 को हुई कार्यवाही से पता चलता है कि इसकी अध्यक्षता उपाध्यक्ष वजीउद्दीन ने की थी, न कि अध्यक्ष अब्दुल्ला, प्रतिवादी संख्या 6 ने।

21. कार्यवाही रजिस्टर के पृष्ठ संख्या 7 पर दिनांक 18.05.2011 के अगले प्रस्ताव से पता चलता है कि बैठक की अध्यक्षता एक बार फिर उपाध्यक्ष ने की थी, न कि प्रतिवादी संख्या 6 ने। अगली कार्यवाही रजिस्टर दिनांक 25.12.2011 की है। इससे भी पता चलता है कि प्रबंध समिति की बैठक की अध्यक्षता उपाध्यक्ष ने की थी, न कि प्रतिवादी संख्या 6 ने। इन सभी बैठकों में, जाहिर तौर पर तहतनिया अनुभाग में सहायक अध्यापक की नियुक्ति से संबंधित कोई एजेंडा आइटम नहीं था। इसके बाद, 01.05.2012 को प्रबंध समिति की एक बैठक हुई, जिसमें संस्थान में सहायक अध्यापक (तहतनिया) की नियुक्ति से संबंधित मदों पर चर्चा की गई और पद के लिए विज्ञापन देने का निर्णय लिया गया। पिछली बैठकों की तरह, इस बैठक की अध्यक्षता भी उपाध्यक्ष ने की। अगली बैठक, जिसमें चयन समिति के चयन पर चर्चा और समाधान हुआ, 12.04.2012 को हुई, जिसकी अध्यक्षता भी अध्यक्ष ने नहीं, बल्कि उपाध्यक्ष ने की। अगला प्रस्ताव, जो पारित हुआ, उस चयन समिति की सिफारिशों को स्वीकार करने से संबंधित था जिसने साक्षात्कार के बाद याचिकाकर्ता को पद के लिए चुना था। प्रबंध समिति की यह बैठक 28.10.2012 को हुई। इस बैठक की अध्यक्षता भी अध्यक्ष ने नहीं, बल्कि उपाध्यक्ष ने की।

22. इस संदर्भ में, यदि प्रतिवादी संख्या 6 के रुख को देखा जाए, तो यह स्पष्ट है कि अध्यक्ष ने प्रबंध समिति की कार्यवाही में भाग लेने से इनकार कर दिया था, और निश्चित रूप से, इस संबंध में दिनांक 21.04.2011 को एक पत्र भी भेजा था। छठे प्रतिवादी, जिन्हें यह पत्र संबोधित किया गया था, द्वारा प्रस्तुत प्रति-शपथपत्र के पैराग्राफ संख्या 9 में इसका उल्लेख नहीं है, लेकिन यह स्पष्ट है कि प्रतिवादी संख्या 6 ने प्रबंध समिति की बैठकों के लिए जारी किए गए नोटिस/एजेंडे पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया था और उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि उन्होंने सभी बैठकों में इस आधार पर स्वेच्छा से भाग लेने से इनकार कर दिया था कि चयन

प्रक्रिया अवैध थी, जिसमें विज्ञापन और साक्षात्कार भी शामिल थे, जो स्पष्ट रूप से याचिकाकर्ता के चयन, साक्षात्कार, विज्ञापन और नियुक्ति का संदर्भ देते थे।

23. हमने ऊपर देखा है कि अध्यक्ष, तहतनिया अनुभाग में शिक्षक के चयन और नियुक्ति से संबंधित कार्यसूची मद पर चर्चा होने से पहले ही बैठकों में भाग नहीं ले रहे थे। भले ही उन्होंने उस दिन से अनुपस्थित रहना शुरू कर दिया था जिस दिन प्रबंध समिति द्वारा रिक्त पद को भरने के मामले पर चर्चा हुई थी, फिर भी तथ्य यह है कि अध्यक्ष स्वीकार करते हैं कि वे प्रबंध समिति की उन बैठकों में स्वेच्छा से अनुपस्थित रहे, जिनकी उन्हें सूचना थी। किसी सोसाइटी या संस्था की प्रबंध समिति को कोई महत्वपूर्ण कार्य करना है और यदि प्रबंध समिति का अध्यक्ष स्वेच्छा से अनुपस्थित रहता है, तो हमारी सुविचारित राय में, यह सोसाइटी/संस्था के उपनियम 10(बी) के अधीन होगा, जो उपाध्यक्ष को अध्यक्ष के कर्तव्यों का कार्यभार संभालने और निर्वहन करने के लिए अधिकृत करता है। उपनियमों में उल्लिखित 'अनुपस्थिति' शब्द का अर्थ हमेशा 'स्थान से अनुपस्थिति' या 'बीमारी के कारण' या इसी तरह के अन्य मामलों से नहीं होता है। इसमें अध्यक्ष द्वारा जानबूझकर अनुपस्थित रहने का मामला भी शामिल होगा।

24. यदि जानबूझकर अनुपस्थित रहना संस्था के उपनियम 10(बी) के तहत 'अनुपस्थिति' के रूप में नहीं माना जाता है, तो एक अड़ियल अध्यक्ष, जो बैठक में बैठने से इनकार करता है, संस्था को बंधक बना सकता है। योजना के अनुसार, कॉर्पोरेट निकायों, जैसे कि सोसाइटियों, जिनके पास कुछ मामलों का प्रबंधन करने का दायित्व होता है - जैसे कि इस मामले में एक शैक्षणिक संस्थान - के संस्थागत कार्यों के निर्वहन के लिए, योजना या सोसाइटी को नियंत्रित करने वाले उपनियमों में एक प्रावधान किया जाता है कि अनुपस्थित पदाधिकारी की जगह किसी अन्य पदाधिकारी द्वारा उसकी जगह ली जा सके। उपनियमों में इस तरह के प्रावधान सोसाइटी द्वारा किए जाने वाले किसी भी कार्य को सुचारू रूप से चलाने के लिए बनाए गए हैं। यह किसी विशेष पदाधिकारी या पदाधिकारियों की व्यक्तिगत अड़ियलपन, स्वच्छंदता या विघटनकारी व्यवहार पर काबू पाने का एक तरीका है। प्रति-शपथपत्र के पैराग्राफ संख्या 9 में, अध्यक्ष द्वारा प्रबंध समिति की बैठकों से अनुपस्थित रहने का औचित्य तहतनिया के पद पर अवैध चयन आदि को बताया गया है, जिसके आधार पर याचिकाकर्ता की नियुक्ति की गई थी। यदि छठे प्रतिवादी को यह प्रक्रिया अवैध लगी, तो वह प्रबंध समिति के अध्यक्ष थे और उसके कार्यों पर उनका नियंत्रण था। उनके पास कम से कम एक वोट था, जिसका इस्तेमाल वे असहमति जताने के लिए कर सकते थे। वे अनुपस्थित रहकर असहमति नहीं जता सकते थे, जैसा कि उन्होंने किया। जब छठे प्रतिवादी ने प्रबंध समिति की निर्धारित बैठकों में भाग लेने से स्पष्ट रूप से अनुपस्थित रहने की बात स्वीकार कर ली है, तो उपाध्यक्ष द्वारा उनकी भूमिका और कर्तव्यों का निर्वहन करने में कुछ भी अवैध नहीं है। स्पष्टतः, निरीक्षक ने इस दृष्टिकोण से मामले पर गौर नहीं किया है या आक्षेपित आदेश पारित करते समय और दिनांक 27.06.2013 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता की नियुक्ति को दी गई पूर्व स्वीकृति को वापस लेते समय अभिलेखों की जाँच नहीं की है।

25. हम इस मामले को निरीक्षक के पास वापस भेजने पर विचार कर सकते थे, जो निश्चित रूप से याचिकाकर्ता की नियुक्ति के अनुमोदन के मामले पर विचार करने के लिए सक्षम प्राधिकारी हैं, लेकिन इस मामले में यह उचित कदम नहीं लगता। इसका कारण यह है कि प्रतिवादी इस बात पर कोई रुख नहीं रखते कि याचिकाकर्ता की नियुक्ति ऐसे पद पर की गई जो स्वीकृत नहीं था या विज्ञापन सहित चयन और साक्षात्कार की कार्यवाही किसी भी तरह से दूषित थी। याचिकाकर्ता की नियुक्ति को निरीक्षक द्वारा पद के अस्तित्व और रिक्ति के संबंध में सुविचारित आदेश द्वारा अनुमोदित किया गया था। जिन शर्तों के अधीन अनुमोदन प्रदान किया गया था, उनमें कहा गया था कि जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी यह सुनिश्चित करेंगे कि की गई नियुक्ति स्वीकृत पद के विरुद्ध हो और संस्थान के लिए स्वीकृत पदों से अधिक न हो। जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, प्रतिवादियों ने ऐसा कोई मामला नहीं उठाया है। दूसरी शर्त याचिकाकर्ता की पात्रता और शैक्षणिक योग्यता के सत्यापन से संबंधित है। इस मामले में भी कोई त्रुटि नहीं पाई गई है। इसके अलावा, यह भी प्रावधान है कि जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी यह सत्यापित करेंगे कि जिस पद पर वेतन दिया जाना है, वह विवाद मुक्त है या नहीं और कोई मामला न्यायालय में लंबित नहीं है। इसमें यह भी प्रावधान है कि जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी यह सुनिश्चित करेंगे कि नियुक्त व्यक्ति वर्ष 1998, 2000 और 2004 में संशोधित विनियमों के तहत निर्धारित प्रबंधन में किसी से संबंधित नहीं है। अनुमोदन आदेश में उल्लिखित नोट 1 से 4 में उल्लिखित किसी भी शर्त का याचिकाकर्ता की नियुक्ति के मामले में उल्लंघन नहीं किया गया है। निरीक्षक द्वारा 27.06.2013 को पारित अनुमोदन आदेश के नोट 5 में एक अवशिष्ट शर्त है, जिसमें कहा गया है कि यदि कोई तथ्य छिपाया गया पाया गया या कोई जानकारी गलत पाई गई, तो यह अनुमोदन स्वतः ही निरस्त हो जाएगा। इसी अवशिष्ट खंड के आधार पर, आक्षेपित आदेश पारित किया गया है, लेकिन विशेष रूप से केवल इस आधार पर कि अध्यक्ष ने प्रबंध समिति की उन बैठकों की अध्यक्षता नहीं की थी, जहाँ पद के लिए विज्ञापन देने और याचिकाकर्ता की नियुक्ति के प्रस्ताव पारित किए गए थे। उपाध्यक्ष के अधीन कार्य करने वाली समिति की कार्रवाई को हमने उन कारणों से पूरी तरह उचित पाया है, जिनका हमने ऊपर विस्तार से उल्लेख किया है।

26. इन परिस्थितियों में, निरीक्षक के पास याचिकाकर्ता की नियुक्ति को मंजूरी देने वाले दिनांक 27.06.2013 के अपने आदेश को रद्द करने का कोई कारण नहीं था, जिसे, हमारी राय में, बहाल किया जाना चाहिए।

27. परिणामस्वरूप, यह रिट याचिका सफल होती है और स्वीकार की जाती है। निरीक्षक द्वारा पारित दिनांक 02.12.2014 का आक्षेपित आदेश एतद्द्वारा निरस्त किया जाता है और याचिकाकर्ता की नियुक्ति को मंजूरी देने वाला दिनांक 27.06.2013 का आदेश बहाल किया जाता है। याचिकाकर्ता बकाया राशि और अन्य परिणामी लाभों सहित वेतन का हकदार होगा, जिसे प्रतिवादी इस आदेश की प्रति प्राप्त होने की तिथि से दो महीने की समयावधि के भीतर सुनिश्चित करेंगे।

28. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

29. मूल अभिलेख संस्थान के प्रबंधन की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री आशीष त्रिपाठी को प्रतिवादी संख्या 5 को सुरक्षित रूप से प्रेषित करने के लिए तत्काल सौंप दिया जाए।

30. इस आदेश की एक प्रति निबंधक/निरीक्षक, अरबी, फारसी मदरसा शिक्षा बोर्ड, उ.प्र., लखनऊ, जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी, आजमगढ़ और प्रबंधक, मदरसा अल-जमायतुल इस्लामिया मम्बुल मारीफ, ग्राम सुम्भी, पोस्ट गम्भीरबान, जिला आजमगढ़ को निबंधक (अनुपालन) द्वारा प्रेषित की जाए।

(2025) 4 ILRA.225

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 01.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट

रिट ए सं. 15751 सन् 2023

सर्वेश कुमार **...याचिकाकर्ता**

बनाम

महाप्रबंधक, पंजाब नेशनल बैंक एवं अन्य **...प्रत्यर्थी**

याचिकाकर्ता की ओर से अधिवक्ता : अशोक कुमार निगम, रेखा सिंह, सत्य निवास प्रसाद

प्रत्यर्थीगण की ओर से अधिवक्ता :संजय सिंह

सेवा कानून - अनुकंपा नियुक्ति - वित्तीय विपन्नता - पारिवारिक आय सीमा - बैंकों में अनुकंपा नियुक्ति योजना - नियम 8.1 - अनुमानित सकल वेतन (कर-मुक्त) के 60% से अधिक मासिक आय - पारिवारिक पेंशन और ब्याज आय पर विचार - नियुक्ति का कोई निहित अधिकार नहीं - केवल निर्धनता की स्थिति स्थापित होने पर ही नियुक्ति - याचिकाकर्ता का परिवार गरीबी में न हो - योजना के अनुसार निर्धारण बरकरार - याचिका खारिज। (पैरा 4, 5, 6 से 11, 16 से 23)

धारित किया गया: भारतीय संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थ के अंतर्गत सार्वजनिक पदों, सरकारी सेवाओं और राज्य के विभिन्न निकायों में नियुक्तियाँ संविधान में निहित व्यापक प्रावधानों द्वारा शासित और विनियमित होती हैं। संवैधानिक योजना एक खुली भर्ती और एक पारदर्शी प्रक्रिया की परिकल्पना करती है जो बड़े पैमाने पर नागरिक वर्ग के सभी पात्र वर्गों की अधिकतम भागीदारी को सक्षम बनाती है। अंतिम नियुक्तियाँ प्रतिस्पर्धी योग्यता के आधार पर निष्पक्ष चयन के बाद की जाती हैं। उक्त नियुक्तियाँ करते समय पिछड़े वर्गों, अनुसूचित

अनुवादित

जातियों/अनुसूचित जनजातियों और कानून के अनुसार पहचाने गए समाज के अन्य वर्गों के प्रतिनिधित्व और सशक्तिकरण के लिए संविधान के तहत आरक्षण नीति या सकारात्मक कार्रवाई का विधिवत पालन किया जाना चाहिए। संवैधानिक न्यायालयों द्वारा भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14, 15 और 16 के संदर्भ में सरकारी सेवाओं और सरकारी उपक्रमों में भर्ती और नियुक्ति की जाँच की गई थी। संवैधानिक न्यायालयों के निर्णयों ने सरकार में पदों और अनुच्छेद 12 के निकायों में नियुक्तियों के लिए उपरोक्त तरीकों और प्रक्रियाओं को संवैधानिक कानून के ढांचे में अपरिवर्तनीय रूप से स्थापित कर दिया है। (पैरा 4)

इसके विपरीत, अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियाँ खुले बाज़ार से आवेदन आमंत्रित करने के बाद भर्ती की पारदर्शी और सार्वजनिक प्रक्रिया के माध्यम से नहीं की जाती हैं। अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियाँ नियमित भर्ती प्रक्रियाओं से विचलन और अन्य छूटों को भी जन्म देती हैं। अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियाँ, सरकारी और सरकारी उपक्रमों में पदों पर नियुक्तियों के लिए उपरोक्त संवैधानिक रूप से अनिवार्य योजना का अपवाद हैं। अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियाँ विशिष्ट सेवा नियमों से उत्पन्न होती हैं और संवैधानिक न्यायालयों द्वारा विकसित सेवा कानून न्यायशास्त्र द्वारा युक्तिसंगत बनाई जाती हैं। (अनुच्छेद 5)

अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियों की अवधारणा एक आदर्श नियोक्ता द्वारा उठाया गया एक कल्याणकारी उपाय है। हालाँकि, एक चेतावनी भी है। अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियों के अधिकार की अति-उदार व्याख्या ऐसी नियुक्तियों की बाढ़ ला देगी और उन्हें भर्ती का एक वास्तविक स्रोत बना देगी। अनुकंपा के आधार पर एक अनुचित उदार दृष्टिकोण, जो लागू सेवा नियमावली के अनुरूप नहीं है, अयोग्य और अपात्र उम्मीदवारों को लाभ पहुँचाएगा, और साथ ही योग्य एवं मेधावी उम्मीदवारों के सरकारी पदों पर नियुक्ति के अधिकारों और वैध दावों को भी नकार देगा। योग्यता माता-पिता से नहीं ली जानी चाहिए, बल्कि खुली प्रतिस्पर्धा के माध्यम से प्राप्त की जानी चाहिए। अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियों को एक बिना शर्त और निहित अधिकार मानकर और इसे भर्ती का स्रोत बनाकर, वैधता का वह झीना पर्दा हटा दिया जाएगा जो ऐसी नियुक्तियों को असंवैधानिकता के दोष से बचाता है। तब अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियों की अवधारणा ही भारत के संविधान के अनुच्छेद 14, 15, 16 के कोप का शिकार हो जाएगी। (अनुच्छेद 15)

अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियाँ प्रदान करने का उद्देश्य तभी पूरा हो सकता है और उनकी संवैधानिकता को तभी बचाया जा सकता है जब अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियों का उपबंध करने वाली नियमावली का कड़ाई से पालन किया जाए। (अनुच्छेद 16)

विभिन्न संवैधानिक न्यायालयों के निर्णयों में वित्तीय विपन्नता को परिभाषित नहीं किया गया है। इसकी जाँच कानून के लागू प्रावधानों और प्रत्येक मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों के आलोक में की जानी चाहिए। अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियों का उद्देश्य मृतक के परिजनों के लिए अप्रत्याशित लाभ अर्जित करना नहीं है। नियोक्ता को केवल उस वित्तीय स्थिति का आकलन करना आवश्यक है जो मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करती है। (अनुच्छेद 18)

आक्षेपित आदेश में मृतक के परिवार की विभिन्न स्रोतों से प्राप्त आय का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है, जैसा कि पूर्वोक्त अनुकंपा आधार योजना के खंड 8 में परिकल्पित है। इस प्रकार गणना की गई मृतक के परिवार की आय मृतक द्वारा प्राप्त अंतिम वेतन के 60% से अधिक है। इस प्रकार निर्धारित परिवार की आय यह स्थापित करती है कि कर्मचारी की मृत्यु के परिणामस्वरूप परिवार को वित्तीय अभाव का सामना नहीं करना पड़ा। इस प्रकार आक्षेपित आदेश में प्रत्यर्थीगण ने सही पाया है कि याचिकाकर्ता बैंक पर लागू अनुकंपा आधार नियुक्ति योजना के प्रावधानों के अनुसार अनुकंपा आधार नियुक्ति प्रदान करने के मानदंडों को पूरा नहीं करता है। (अनुच्छेद 23)

याचिका खारिज। (ई-14)

उद्धृत मामलों की सूची:

1.उमेश कुमार नागपाल बनाम हरियाणा राज्य, 1994 (4) एससीसी 138

2.शिक्षा निदेशक (माध्यमिक) बनाम पुष्पेंद्र कुमार, 1998 (5) एससीसी 192

3.रूपम मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, रिट ए सं. 15512 सन् 2019

4.कोषागार निदेशक, कर्नाटक व अन्य बनाम सोम्याश्री, सिविल अपील सं. 5122 सन् 2021

5.इप्सिता चक्रवर्ती बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, 2018 (2) कल. एलटी 177 (एचसी)

6.श्री बिजोन मुखर्जी बनाम पश्चिम बंगाल राज्य व अन्य, 2018 (3) कल. एलटी 136 (एचसी)

7.अंकिता साहा व अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य एवं अन्य, डब्लूपीए सं. 12287 सन् 2019 (कलकत्ता उच्च न्यायालय)

(माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट द्वारा प्रस्तुत)

1. दिनांक 21.12.2022 के आक्षेपित आदेश द्वारा सक्षम प्राधिकारी ने अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति देने के लिए याचिकाकर्ता के दावे को खारिज कर दिया है।

2. दिनांक 21.12.2022 के आक्षेपित आदेश द्वारा अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति प्रदान करने के लिए याचिकाकर्ता के दावे को निम्नलिखित आधार पर अमान्य कर दिया गया है:

"हमें मुख्यालय से दिनांक 20.12.2022 का पत्र प्राप्त हुआ है, जिसके माध्यम से यह सूचित किया गया है कि प्रस्ताव सक्षम प्राधिकारी के समक्ष रखा गया था, जिन्होंने इसे स्वीकार नहीं किया है क्योंकि परिवार की सभी स्रोतों से कुल मासिक आय प्रासंगिक नीति दिशानिर्देशों के अनुसार कर्मचारी के अनुमानित सकल वेतन

(अनुमानित कर के बाद) के 60% से अधिक है। इसलिए, श्री सर्वेश को अनुकंपा नियुक्ति का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया गया है।"

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता अशोक कुमार निगम और प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री संजय सिंह को सुना गया।

4. भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थ के अंतर्गत सार्वजनिक पदों, सरकारी सेवाओं और राज्य के विभिन्न निकायों में नियुक्तियाँ संविधान में निहित व्यापक प्रावधानों द्वारा शासित और विनियमित होती हैं। संवैधानिक योजना में एक खुली भर्ती और एक पारदर्शी प्रक्रिया की परिकल्पना की गई है जो नागरिकों के सभी पात्र वर्गों की अधिकतम भागीदारी को सक्षम बनाती है। अंतिम नियुक्तियाँ प्रतिस्पर्धी योग्यता के आधार पर निष्पक्ष चयन के बाद की जाती हैं। उक्त नियुक्तियाँ करते समय, पिछड़े वर्गों, अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों और कानून के अनुसार पहचाने गए समाज के अन्य वर्गों के प्रतिनिधित्व और सशक्तिकरण के लिए संविधान के तहत आरक्षण नीति या सकारात्मक कार्रवाई का विधिवत पालन किया जाना आवश्यक है। संवैधानिक न्यायालयों द्वारा सरकारी सेवाओं और सरकारी उपक्रमों में भर्ती और नियुक्ति की जाँच भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14, 15 और 16 के संदर्भ में की गई थी। संवैधानिक न्यायालयों के निर्णयों ने सरकारी पदों पर नियुक्ति के लिए उपरोक्त विधियों और प्रक्रियाओं तथा अनुच्छेद 12 के प्रावधानों को संवैधानिक कानून के मूल में अपरिवर्तनीय रूप से स्थापित कर दिया है।

5. इसके विपरीत, अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियाँ खुले बाजार से आवेदन आमंत्रित करने के बाद पारदर्शी और सार्वजनिक भर्ती प्रक्रिया के माध्यम से नहीं की जाती हैं। अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियाँ नियमित भर्ती प्रक्रियाओं से विचलन और अन्य छूटों को भी जन्म देती हैं। अनुकंपा नियुक्तियाँ सरकारी और सरकारी उपक्रमों में पदों पर नियुक्तियों के लिए पूर्वोक्त संवैधानिक रूप से अनिवार्य योजना का अपवाद हैं। अनुकंपा नियुक्तियाँ विशिष्ट सेवा नियमावली से उत्पन्न होती हैं और संवैधानिक न्यायालयों द्वारा विकसित सेवा कानून न्यायशास्त्र द्वारा युक्तिसंगत बनाई जाती हैं।

6. अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियाँ संवैधानिक वैधता की कसौटी पर मामूली अंतर से खरी उतरीं। अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति देने का एकमात्र उद्देश्य कर्मचारी की आकस्मिक मृत्यु से उत्पन्न तात्कालिक वित्तीय संकट से परिवार को उबारना है। केवल इसी विशेषता के आधार पर मृतक कर्मचारी के परिजनों को एक वर्ग में रखा गया और इसी आधार पर संवैधानिक न्यायालयों ने अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियों के औचित्य को उचित ठहराया।

7. इस चर्चा से प्राधिकारियों को लाभ होगा।

8. **उमेश कुमार नागपाल बनाम हरियाणा राज्य** में सर्वोच्च न्यायालय ने अनुकंपा के उद्देश्य को निम्नलिखित शब्दों में समझाया:

"2. यह प्रश्न उन विचारों से संबंधित है जो अनुकंपा के आधार पर सार्वजनिक सेवाओं में नियुक्ति देते समय मार्गदर्शन प्रदान करने चाहिए। ऐसा प्रतीत होता है कि इस मुद्दे पर काफी अस्पष्टता है। एक नियम के रूप में, सार्वजनिक सेवाओं में नियुक्तियाँ केवल आवेदनों के खुले निमंत्रण और योग्यता के आधार पर की जानी चाहिए। नियुक्ति का कोई अन्य तरीका या कोई अन्य विचार स्वीकार्य नहीं है। न तो सरकारें और न ही सार्वजनिक प्राधिकरण किसी अन्य प्रक्रिया का पालन करने या पद के लिए नियमों द्वारा निर्धारित योग्यताओं में ढील देने के लिए स्वतंत्र हैं। हालाँकि, इस सामान्य नियम, जिसका हर मामले में कड़ाई से पालन किया जाना है, में न्याय के हित में और कुछ आकस्मिकताओं से निपटने के लिए कुछ अपवाद भी हैं। ऐसा ही एक अपवाद ऐसे कर्मचारी के आश्रितों के लिए है जो सेवाकाल के दौरान मर जाता है और अपने परिवार को गरीबी और आजीविका के किसी भी साधन के बिना छोड़ जाता है। ऐसे मामलों में, विशुद्ध मानवीय दृष्टिकोण से, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि जब तक आजीविका का कोई स्रोत उपलब्ध नहीं कराया जाता, परिवार अपनी ज़रूरतें पूरी नहीं कर पाएगा, नियमावली में मृतक के आश्रितों में से किसी एक को, जो ऐसे रोजगार के लिए पात्र हो, लाभकारी रोजगार प्रदान करने का प्रावधान किया गया है। इस प्रकार, अनुकंपा के आधार पर नौकरी देने का पूरा उद्देश्य परिवार को अचानक आए संकट से उबरने में सक्षम बनाना है। इसका उद्देश्य ऐसे परिवार के किसी सदस्य को कोई पद देना नहीं है, मृतक के पद के बराबर पद देना तो दूर की बात है। इसके अलावा, किसी कर्मचारी की सेवाकाल में मृत्यु मात्र से उसके परिवार को आजीविका के ऐसे स्रोत का अधिकार नहीं मिल जाता। सरकार या संबंधित लोक प्राधिकरण को मृतक के परिवार की आर्थिक स्थिति की जाँच करनी होगी, और यदि वह इस बात से संतुष्ट हो जाए कि रोजगार के प्रावधान के बिना परिवार संकट का सामना करने में सक्षम नहीं होगा, तभी परिवार के पात्र सदस्य को नौकरी दी जानी चाहिए। तृतीय और चतुर्थ श्रेणी के पद गैर-शारीरिक और शारीरिक श्रेणियों में सबसे निचले पद हैं और इसलिए केवल इन्हें ही अनुकंपा के आधार पर दिया जा सकता है, जिसका उद्देश्य परिवार को आर्थिक तंगी से राहत दिलाना और आपात स्थिति से उबरने में मदद करना है। नियम में अपवाद बनाकर ऐसे निम्नतम पदों पर रोजगार का प्रावधान न्यायोचित और वैध है क्योंकि यह भेदभावपूर्ण नहीं है। ऐसे पदों पर मृतक कर्मचारी के आश्रितों को दिया जाने वाला अनुकूल व्यवहार, प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य, अर्थात, तंगी से राहत, के साथ तर्कसंगत संबंध रखता है। इस उद्देश्य के लिए सार्वजनिक प्राधिकारियों द्वारा कोई अन्य पद दिए जाने की अपेक्षा या आवश्यकता नहीं है। इस संबंध में यह याद रखना चाहिए कि मृतक के निराश्रित परिवार के अलावा, लाखों अन्य परिवार भी हैं जो उतने ही, यदि अधिक नहीं, तो निराश्रित हैं। मृतक कर्मचारी के परिवार के पक्ष में बनाए गए नियम का अपवाद उसके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं और वैध अपेक्षाओं, तथा पूर्व नियोजन से उत्पन्न परिवार की स्थिति और मामलों में अचानक आए परिवर्तन को ध्यान में रखते हुए है।"

9. **शिक्षा निदेशक (माध्यमिक) बनाम पुष्पेन्द्र कुमार** मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने भी इसी प्रकार की भावना व्यक्त की थी:

8. अनुकंपा के आधार पर रोजगार प्रदान करने के प्रावधान का उद्देश्य मृतक कर्मचारी के परिवार को कमाने वाले की मृत्यु के कारण उत्पन्न अचानक संकट से उबरने में सक्षम बनाना है, जिससे परिवार गरीबी में और आजीविका के बिना रह गया है। विशुद्ध मानवीय विचार से और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि जब तक आजीविका का कोई स्रोत प्रदान नहीं किया जाता है, परिवार दो वक्त की रोटी जुटाने में सक्षम नहीं होगा, मृतक के आश्रितों में से एक को लाभकारी नियुक्ति देने का प्रावधान किया गया है जो ऐसी नियुक्ति के लिए पात्र हो सकता है। ऐसा प्रावधान किसी विशेष प्रक्रिया का पालन करके पद पर नियुक्ति का प्रावधान करने वाले सामान्य प्रावधानों से विचलन करता है। चूँकि ऐसा प्रावधान उक्त प्रक्रिया का पालन किए बिना नियुक्ति को सक्षम बनाता है, इसलिए यह सामान्य प्रावधानों के अपवाद की प्रकृति का है। कोई अपवाद उस मुख्य प्रावधान को समाहित नहीं कर सकता जिसका वह अपवाद है और इस प्रकार मुख्य प्रावधान द्वारा प्रदत्त अधिकार को पूरी तरह से छीनकर मुख्य प्रावधान को निष्प्रभावी नहीं कर सकता। इसलिए, इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि अनुकंपा आधारित रोजगार प्रदान करने का प्रावधान, जो सामान्य प्रावधानों के अपवाद की प्रकृति का है, अन्य व्यक्तियों के अधिकार में अनुचित रूप से हस्तक्षेप नहीं करता है जो नियुक्ति के लिए पात्र हैं और उस पद के विरुद्ध रोजगार की मांग कर सकते हैं जो उन्हें उपलब्ध होता, लेकिन मृतक कर्मचारी के आश्रित की अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति करने में सक्षम प्रावधान के कारण.....

10. इस न्यायालय ने **रूपम मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं 4 अन्य** मामले में निम्नवत अवधारित किया:

"16. अनुकंपा नियुक्तियों का उद्देश्य ही उन्हें उचित ठहराता है। कमाने वाले की मृत्यु से मृतक का परिवार कंगाल हो जाता है। वित्तीय संकट की तात्कालिकता के कारण तत्काल निवारण की आवश्यकता होती है। अनुकंपा नियुक्तियों की अवधारणा केवल शोक संतप्त परिवार को तत्काल वित्तीय संकट से उबरने में सक्षम बनाने के लिए बनाई गई है।"

11. ऐसी नियुक्तियों का उपबंध करने वाली नियमावली के अनुरूप अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियां करने की आवश्यकता पर सर्वोच्च न्यायालय ने निदेशक कोषागार ,कर्नाटक एवं अन्य बनाम सोम्याश्री के मामले में में कानून का सारांश इस प्रकार प्रस्तुत करते हुए जोर दिया था:

“7....(i) अनुकंपा नियुक्ति सामान्य नियम का अपवाद है;

(ii) किसी भी अभ्यर्थी को अनुकंपा नियुक्ति का अधिकार नहीं है ;

(iii) राज्य की सेवा में किसी भी सार्वजनिक पद पर नियुक्ति भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के अनुसार सिद्धांत के आधार पर की जानी चाहिए ;

(iv) अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति केवल राज्य की नीति द्वारा निर्धारित मानदंडों को पूरा करने और/या नीति के अनुसार पात्रता मानदंडों को पूरा करने पर ही की जा सकती है;

(v) आवेदन पर विचार की तिथि को प्रचलित मानदंड अनुकंपा नियुक्ति के दावे पर विचार करने का आधार होना चाहिए।”

12. इसी प्रकार, अनुकंपा के आधार पर नियमों का कड़ाई से पालन करने की आवश्यकता को कलकत्ता उच्च न्यायालय ने **इप्सिता चक्रवर्ती बनाम पश्चिम बंगाल राज्य** मामले में संक्षेप में प्रस्तुत किया था। विभिन्न संवैधानिक न्यायालयों के निर्णयों पर विचार करने के बाद, **इप्सिता चक्रवर्ती (उपरोक्त)** में धारित किया गया:

(क) अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति उस सामान्य नियम का अपवाद है जिसके तहत सार्वजनिक सेवाओं में भर्ती पारदर्शी और जवाबदेह तरीके से की जानी चाहिए, जिससे सभी पात्र व्यक्तियों को चयन प्रक्रिया में प्रतिस्पर्धा करने और भाग लेने का अवसर मिल सके।
(ख) सेवाकाल के दौरान मृत कर्मचारी के आश्रित का अनुकंपा नियुक्ति का अधिकार नियोक्ता द्वारा बनाई गई योजना, कार्यकारी निर्देशों, नियमों आदि पर आधारित होता है और नियोक्ता द्वारा प्रदत्त उपरोक्त योजना के अलावा किसी अन्य आधार पर अनुकंपा नियुक्ति का दावा करने का कोई अधिकार नहीं है।
(ग) अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति केवल कमाने वाले की मृत्यु के कारण परिवार को होने वाली तात्कालिक कठिनाई को पूरा करने के लिए दी जाती है। जब अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति की जाती है, तो उसे केवल उस उद्देश्य तक ही सीमित रखा जाना चाहिए जिसकी प्राप्ति प्रतीत होती है, न कि अनंत अनुकंपा प्रदान करने के उद्देश्य से।
(घ) अनुकंपा नियुक्ति केवल तभी की जानी चाहिए जब नियुक्ति प्रदान करने के लिए आवश्यक परिस्थितियां और परिस्थितियां मौजूद हों तथा मार्गदर्शक कारक परिवार की वित्तीय स्थिति होनी चाहिए।"

13. इसके अलावा, **श्री बिजोन मुखर्जी बनाम पश्चिम बंगाल राज्य एवं अन्य** मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय ने पुनः कहा कि कानून की अब तक की स्थापित स्थिति यह है कि अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियां केवल कर्मचारी पर लागू विशिष्ट नियमों के अनुरूप ही की जानी चाहिए :

"26. पक्षों की ओर से उपस्थित अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत अनुपात और कानूनी स्थितियों तथा ऊपर जांचे गए उदाहरणों का अवलोकन करने के बाद, मैं यह राय देने के लिए सहमत हूँ कि अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति का उद्देश्य मृतक के आश्रितों द्वारा झेली जा रही तात्कालिक वित्तीय कठिनाई को दूर करना है। यह संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का अपवाद है क्योंकि प्रत्यर्थी को समान रूप से योग्य अन्य अभ्यर्थियों की तुलना में वरीयता दी जाती है और इसलिए इसे अधिकार के रूप में दावा नहीं किया जा सकता। अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए, मेरे लिए यह स्पष्ट है कि यह नियुक्ति ऐसी नियुक्ति के नियमों के अनुसार ही की जानी चाहिए। ऐसी नियुक्ति चाहने वाले आश्रित को इस तरह के विचार के लिए पात्र होना चाहिए और नियमों द्वारा निर्धारित सीमा तक वित्तीय कठिनाई का सामना करने वाला होना चाहिए।"

14. **इप्सिता चक्रवर्ती (उपरोक्त)** और **श्री बिजोन मुखर्जी (उपरोक्त)** के मामले का अनुसरण कलकत्ता उच्च न्यायालय ने **अंकिता साहा एवं अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य एवं अन्य** में किया था।

अनुवादित

15. अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति की अवधारणा एक आदर्श नियोक्ता द्वारा उठाया गया कल्याणकारी उपाय है। हालाँकि, इसमें एक चेतावनी भी है। अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के अधिकार की अति-उदार व्याख्या ऐसी नियुक्तियों की बाढ़ ला देगी और उन्हें भर्ती का एक वास्तविक स्रोत बना देगी। अनुकंपा के आधार पर एक अनुचित उदार दृष्टिकोण, जो लागू सेवा नियमों के अनुरूप नहीं है, अयोग्य और अपात्र उम्मीदवारों को लाभ पहुँचाएगा, और साथ ही योग्य और मेधावी उम्मीदवारों के सरकारी पदों पर नियुक्ति के अधिकारों और वैध दावों को भी नकार देगा। योग्यता माता-पिता से नहीं, बल्कि खुली प्रतिस्पर्धा के माध्यम से प्राप्त की जानी चाहिए। अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियों को बिना शर्त और निहित अधिकार मानकर और इसे भर्ती का स्रोत बनाकर, ऐसी नियुक्तियों को असंवैधानिकता के दोष से बचाने वाली वैधता का झीना पर्दा हटा दिया जाएगा। तब अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियों की अवधारणा ही भारत के संविधान के अनुच्छेद 14, 15, 16 के कोप का शिकार हो जाएगी।

16. अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति प्रदान करने के उद्देश्य की पूर्ति तथा उसकी संवैधानिकता को केवल अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति प्रदान करने के नियमों के कड़ाई से अनुपालन से ही बचाया जा सकता है।

17. पूर्वोक्त चर्चा से यह स्पष्ट होता है कि कर्मचारी की मृत्यु के पश्चात् परिवार की वित्तीय स्थिति या उसके समक्ष आने वाले वित्तीय संकट की प्रकृति का निर्धारण अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए एक अनिवार्य शर्त है।

18. विभिन्न संवैधानिक न्यायालयों के निर्णयों में वित्तीय विपन्नता को परिभाषित नहीं किया गया है। इसकी जाँच कानून के लागू प्रावधानों और प्रत्येक मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों के आलोक में की जानी चाहिए। अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियाँ मृतक के परिजनों के लिए अप्रत्याशित लाभ कमाने के उद्देश्य से नहीं की जाती हैं। नियोक्ता को केवल उस वित्तीय स्थिति का आकलन करना आवश्यक है जो घर का खर्च चलाती है।

19. प्रत्यर्थी बैंक में अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति "मृत कर्मचारी/चिकित्सा आधार पर सेवानिवृत्त कर्मचारी के आश्रित पारिवारिक सदस्य को अनुकंपा नियुक्ति योजना" द्वारा शासित होती है। मृतक कर्मचारी के परिवार द्वारा सामना की जा रही वित्तीय विपन्नता/वित्तीय तंगी का निर्धारण अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति हेतु उक्त योजना के निर्धारित मानदंडों/प्रासंगिक प्रावधानों के अनुसार किया जाएगा। उक्त प्रावधान नीचे उद्धृत है:

"8. पात्रता

8.1 परिवार निर्धन है और वित्तीय अभाव से राहत के लिए तत्काल सहायता का हकदार है।

यह सुनिश्चित करने के लिए, अनुकंपा नियुक्ति केवल तभी दी जाएगी जब परिवार की सभी स्रोतों से मासिक आय कर्मचारी के अंतिम मासिक वेतन (करों को छोड़कर) के 60% से कम हो।"

(जोर दिया गया)

20. उक्त योजना के खंड 8 में मृतक के परिवार की वित्तीय स्थिति का निर्धारण करने और यह पता लगाने के लिए एक ठोस और तर्कसंगत मानदंड प्रदान किया गया है कि क्या कार्यरत कर्मचारी की मृत्यु के बाद परिवार को वित्तीय अभाव का सामना करना पड़ रहा है, और अनुकंपा नियुक्ति के लिए पात्रता है।

21. यह कार्य बैंक द्वारा किया गया है। नियम 8 के अनुसार बैंक द्वारा गणना की गई परिवार की कुल आय इस प्रकार है:

देय राशि का भुगतान	**राशि रु. में**	**ब्याज सहित ओ/एस लोन**	**राशि रु. में**
भविष्य निधि/एनपीएस	7,29,584	स्वच्छ ओडी में ओ/एस	15,000
ग्रेच्युटी	7,18,107	वाहन ऋण	2,16,500
अवकाश नकदीकरण	3,42,472		
वित्तीय सहायता	50,000		
कुल (ए)	18,40,163	कुल (बी)	2,31,500
बैंक से प्राप्त शुद्ध टर्मिनल देय राशि (ए-बी) = 16,08,663			

(ग) पारिवारिक पेंशन: 15,087/- रुपये

(घ) अन्य स्रोतों/निवेशों से प्राप्त/प्राप्त होने वाली राशि: शून्य

(ङ) स्वर्गीय श्री प्रभु दयाल की मृत्यु के समय, कर्मचारी द्वारा प्राप्त मासिक सकल वेतन 42808.92/- रुपये था।

क्रम संख्या	**विवरण**	**राशियाँ रु. में**
1.	अंतिम बकाया राशि	18,40,163
2.	बैंक ऋणों की कुल राशि	2,31,500
3.	अंतिम बकाया राशि (1-2) की शुद्ध राशि	16,08,663
4.	अन्य निवेशों की कुल राशि	4,33,000
5.	अन्य निवेशों पर ऋण, यदि कोई हो	शून्य

अनवादित

6.	अन्य निवेशों की शुद्ध राशि	4,33,000
7.	शुद्ध अंतिम बकाया पर मासिक ब्याज (क्रम संख्या 3 के अनुसार) @ 6.30% (कर्मचारी की मृत्यु की तिथि पर कर्मचारियों के लिए बैंक का अधिकतम जीडी ब्याज लागू)	8,445.48
8.	अन्य निवेशों से मासिक आय (क्रम संख्या 6 के अनुसार) @ 6.30%	2,273.25
9.	मासिक पारिवारिक पेंशन की राशि	15,087.00
10.	कोई अन्य आय (प्रतिपाल, पुत्र की मासिक आय)	5,000
11.	कुल मासिक आय (7 से 10)	30,805.73
12.	अगस्त 2020 माह के लिए मृतक का अनुमानित सकल मासिक वेतन	42,808.92
13.	काटी गई अनुमानित आयकर राशि	शून्य
14.	वेतन (अनुमानित कर के बाद शुद्ध)	42,808.92
15.	पात्र राशि (14 का 60%)	25,685.35
16.	क्या अनुकंपा नियुक्ति के लिए पात्र हैं?	नहीं

अनुवादित

22. प्रति-शपथपत्र में बताए गए उपरोक्त चार्ट पर याचिकाकर्ता द्वारा कोई विवाद नहीं किया गया है।

23. आक्षेपित आदेश में मृतक के परिवार की विभिन्न स्रोतों से प्राप्त आय का स्पष्ट रूप से खुलासा किया गया है, जैसा कि पूर्व में उद्धृत अनुकंपा आधार योजना के खंड 8 में परिकल्पित है। इस प्रकार गणना की गई मृतक के परिवार की आय मृतक द्वारा प्राप्त अंतिम वेतन के 60% से अधिक है। इस प्रकार निर्धारित परिवार की आय यह स्थापित करती है कि कर्मचारी की मृत्यु के परिणामस्वरूप परिवार को वित्तीय अभाव का सामना नहीं करना पड़ा। इस प्रकार, आक्षेपित आदेश में प्रत्यर्थीगण ने सही पाया है कि याचिकाकर्ता बैंक पर लागू अनुकंपा नियुक्ति योजना के प्रावधानों के अनुसार अनुकंपा नियुक्ति प्रदान करने के मानदंडों को पूरा नहीं करता है।

26. पूर्वोक्त विवेचना के आलोक में, आक्षेपित आदेश में कोई त्रुटि नहीं है। रिट याचिका खारिज किए जाने योग्य है और खारिज की जाती है।

(2025) 4 ILRA 232

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 18.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी

रिट ए सं. 18309 सन् 2006

डॉ. इंद्र प्रताप सिंह ... **याचिकाकर्ता**

बनाम

बी.एच.यू., वाराणसी एवं अन्य ... **प्रत्यर्थी**

याचिकाकर्ता की ओर से अधिवक्ता: श्री विवेक कुमार सिंह, श्री रौनक तिवारी, श्री बी.पी. सिंह (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रत्यर्थी की ओर से अधिवक्ता : श्री ए.के. निगम, ए.एस.जी.आई., श्री एच.पी. सिंह, श्री के.एस. चौहान, श्री कुलदीप सिंह चौहान, श्री ऋत्विक उपाध्याय, एस.सी., श्री वी.के. उपाध्याय (वरिष्ठ अधिवक्ता)

सेवा कानून-भारत का संविधान, 1950- अनुच्छेद 226 - केंद्रीय सिविल सेवा पेंशन नियमावली, 1972-नियम 26,27 और 28 - केंद्रीय विश्वविद्यालय सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली, 1967- नियम 2.9 का नोट 2--- याचिकाकर्ता की 11 वर्ष की पूर्व सेवा को शामिल करके उसकी पेंशन को फिर से निर्धारित करने की प्रार्थना के साथ रिट याचिका--- वर्तमान मामले में, जब याचिकाकर्ता ने नागपुर विश्वविद्यालय में कार्यभार संभाला था, तब सेवा में आए अन्तराय को याचिकाकर्ता के नियंत्रण से परे कारण से आया अन्तराय नहीं माना जा सकता, क्योंकि उसने अपनी इच्छा से चयन प्रक्रिया में भाग लिया था। यह निर्विवाद है कि विश्वविद्यालय की कार्यकारिणी परिषद ने इस अन्तराय को स्वीकार नहीं किया है। इसलिए, याचिकाकर्ता का मामला केंद्रीय विश्वविद्यालय सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली, 1967 के नियम 2.9 के नोट 2 में उल्लिखित अन्तराय की अन्य परिस्थितियों के अंतर्गत नहीं आता है। याचिकाकर्ता ने बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में अपने तीन वर्ष का कार्यकाल पूरा होने के बाद, नागपुर विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित एक नई चयन प्रक्रिया में भाग लिया, जहाँ उसका चयन हुआ, इसलिए यह स्थानांतरण का मामला नहीं होगा। इसके बाद, एक नई नियुक्ति पर, वह बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में शामिल हो गया, इसलिए यह स्थानांतरण का मामला भी नहीं होगा। यदि किसी अन्य कर्मचारी को कानून के विपरीत कोई नकारात्मक समता और लाभ प्रदान किया गया है, तो वह याचिकाकर्ता को समान लाभ प्राप्त करने का हकदार नहीं बनाएगा।

रिट याचिका खारिज। (पैरा 37, 41 और 46) (ई-15)

संदर्भित मामलों की सूची:

1. रिट याचिका सं. 3396 सन् 1985, निर्णय दिनांकित 22.12.1987
2. सिविल अपील सं. 1626 सन् 1989 1992 अनुपूरक (2) एससीसी 2
3. महानिदेशक, सीएसआईआर बनाम के. नारायणस्वामी (डॉ.), (1995) 3 एससीसी 124
4. डॉ. राजेश कुमार शर्मा बनाम यू.ओ.आई. एवं अन्य (रिट-ए सं. 2315 सन् 2019), 14.02.2019 को निर्णीत
5. राज. एवं अन्य बनाम ओ.पी. गुप्ता (2022)18 एससीसी 382

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी द्वारा प्रस्तुत)

1. याचिकाकर्ता को बनारस हिंदू विश्वविद्यालय की कार्यकारिणी परिषद द्वारा 19.11.1968 के एक आदेश द्वारा 3 वर्ष की अवधि के लिए बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी के चिकित्सा विज्ञान संस्थान के डिपार्टमेंट ऑफ बेसिक प्रिंसिपल में 'डेमान्सट्रेटर' के रूप में नियुक्त किया गया था, जो 18.11.1971 को समाप्त हो गई।

2. इसके बाद याचिकाकर्ता को 26.08.1974 को बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के चिकित्सा विज्ञान संस्थान के डिपार्टमेंट ऑफ बेसिक प्रिंसिपल में अस्थायी लेक्चरर के रूप में नियुक्त किया गया और दिनांक 06/07.08.1980 के एक आदेश द्वारा उनकी सेवा 31.03.1980 तक बढ़ा दी गई। ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता को कोई और विस्तार नहीं दिया गया, हालाँकि उन्होंने 18.07.1980 तक काम किया और उन्हें केवल 31.03.1980 तक का ही वेतन दिया गया।

3. इसके बाद याचिकाकर्ता ने एक अन्य विश्वविद्यालय अर्थात नागपुर विश्वविद्यालय (उचित माध्यम के बिना) द्वारा आयोजित चयन प्रक्रिया में भाग लिया और उसे श्री आयुर्वेदिक महाविद्यालय, नागपुर में संस्कृत संहिता सिद्धांत (बेसिक प्रिंसिपल) में रीडर के पद के लिए चयन समिति द्वारा विधिवत चुना गया और वह 21.07.1980 को शामिल हुआ और 20.09.1982 तक सेवा की।

4. इसके बाद याचिकाकर्ता बनारस हिंदू विश्वविद्यालय की चयन समिति के समक्ष उपस्थित हुआ और 22.09.1982 को मूल पद के सापेक्ष बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के चिकित्सा विज्ञान संस्थान के डिपार्टमेंट ऑफ बेसिक प्रिंसिपल में 'लेक्चरर' के पद पर उसका चयन हुआ।

5. 'लेक्चरर' के रूप में कार्य करते समय याचिकाकर्ता को चौदह वेतन वृद्धि जैसे वित्तीय लाभ प्रदान किए गए, जिससे उसका अंतिम वेतन सुरक्षित रहा।

6. विवाद तब उत्पन्न हुआ जब याचिकाकर्ता ने 'मेरिट प्रमोशन स्कीम' के तहत रीडर के पद पर पदोन्नति के लिए दावा किया और चूंकि यह अस्वीकार कर दिया गया था कि उन्होंने बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में 'लेक्चरर' के रूप में 22.09.1982 को नियुक्ति के बाद से 8 साल की निरंतर सेवा पूरी नहीं की थी, इसलिए उन्होंने रिट याचिका सं. 3396 सन् 1985 दायर की है।

7. इस न्यायालय की एकल पीठ ने उक्त रिट याचिका में निर्धारण के लिए एकमात्र मुद्दे पर विचार किया कि क्या याचिकाकर्ता ने योजना के तहत अपेक्षित संवर्ग में 8 वर्ष की निरंतर सेवा पूरी कर ली है और इस संबंध में "मेरिट प्रमोशन स्कीम" के पैरा 2 के खंड (ए) पर विचार किया गया और संदर्भ के लिए योजना के उक्त भाग का उल्लेख इसके बाद किया गया है।

2(क) विश्वविद्यालय के विभागों में उन्नत शिक्षण और अनुसंधान में लगे शिक्षक, जिनका योगदान और उपलब्धियां ऐसी हैं कि उन्हें योग्यता के आधार पर मान्यता दी जा सकती है, को प्रथम दृष्टया अपने संबंधित संवर्ग में <u>आठ वर्ष की निरंतर सेवा पूरी करने के बाद योग्यता के आधार पर पदोन्नति के लिए विचार किया जाना चाहिए, जिसमें से कम से कम चार वर्ष उस संस्थान में होने चाहिए जहां ऐसे मूल्यांकन और योग्यता के आधार पर पदोन्नति के लिए उन पर विचार किया जा रहा है।</u>

8. एक समन्वय पीठ ने रिट याचिका सं. 3396 सन् 1985 को दिनांक 22.12.1987 के निर्णय द्वारा अनुमति प्रदान की और निर्देश दिया कि याचिकाकर्ता को रीडर के पद पर "मेरिट प्रमोशन स्कीम" के अंतर्गत पदोन्नति के लिए विचार किया जाए। निर्णय का प्रासंगिक अंश इसके बाद पुन: प्रस्तुत है:-

"9. याचिकाकर्ता, जिसने 26-8-1974 से 31-3-1980 तक विश्वविद्यालय में कार्य किया था और 22-9-1982 को पुनः उसी पद पर कार्यभार ग्रहण किया है, को रीडर के पद पर पदोन्नति के अवसरों से कानूनी रूप से केवल इस कारण से वंचित नहीं किया जा सकता कि वह श्री आयुर्वेद महाविद्यालय में 21-7-1980 से 20-9-1982 की अवधि के दौरान रीडर के पद पर कार्य करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उसे इस बात के लिए दंडित नहीं किया जा सकता कि उसने उस पद पर बहुत पहले काम किया है जिस पर वह पदोन्नति पाना चाहता है, अन्यथा यदि उसने विश्वविद्यालय नहीं छोड़ा होता तो वह पदोन्नति के लिए पात्र हो सकता था। ऐसी स्थिति के बारे में सोचना वास्तव में दुर्भाग्यपूर्ण होगा जिसमें किसी व्यक्ति को उसके अवसरों या उस पद पर पदोन्नति से वंचित कर दिया जाता है जिस पर वह पहले भी कुछ समय तक इसी कारण से काम कर चुका है।

10. याचिकाकर्ता इस न्यायालय के अंतरिम आदेश के तहत चयन समिति के समक्ष उपस्थित हुआ था। हालाँकि, इस न्यायालय द्वारा उपयुक्त निर्देशों के अभाव में, कार्यकारिणी परिषद द्वारा चयन समिति की सिफारिश पर विचार नहीं किया गया है। हमारे इस निष्कर्ष के मद्देनजर कि याचिकाकर्ता संबंधित तिथि पर पदोन्नति के लिए विचार किए जाने योग्य था, चयन समिति की सिफारिश को कार्यकारिणी परिषद के समक्ष विचारार्थ

प्रस्तुत किया जाना था। यदि याचिकाकर्ता को चयन समिति द्वारा पदोन्नति के लिए चुना गया है और इसकी सिफारिश कार्यकारिणी परिषद द्वारा अनुमोदित की गई है, तो वह उसी तिथि से रीडर के पद पर पदोन्नति के लिए हकदार होगा, जिस तिथि से विश्वविद्यालय के अन्य शिक्षक, जिनका पहले दौर में साक्षात्कार लिया गया था, को नियुक्त किया गया था।

11. परिणामस्वरूप, रिट याचिका सफल होती है और स्वीकार की जाती है। विश्वविद्यालय द्वारा याचिकाकर्ता की सेवा-अन्तराय को क्षमा करने और योग्यता-आधारित पदोन्नति हेतु विचार किए जाने के आवेदनों को अस्वीकार करने के आदेश निरस्त किए जाते हैं। विश्वविद्यालय को निर्देश दिया जाता है कि वह चयन समिति की अनुशंसा को कार्यकारिणी परिषद की अगली बैठक में प्रस्तुत करे। यह भी निर्देश दिया जाता है कि यदि याचिकाकर्ता को चयन समिति द्वारा पदोन्नति के लिए चुना जाता है और उसकी अनुशंसा कार्यकारिणी परिषद द्वारा अनुमोदित की जाती है, तो उसे विश्वविद्यालय के चिकित्सा विज्ञान संस्थान के डिपार्टमेंट ऑफ बेसिक प्रिंसिपल में रीडर के पद पर उसी तिथि से नियुक्त किया जाए जिस तिथि से विश्वविद्यालय के अन्य शिक्षक, जिनका पदोन्नति के लिए प्रथम चरण में साक्षात्कार हुआ था, नियुक्त किए गए थे। हम दोनों पक्षों को निर्देश देते हैं कि वे अपना खर्च स्वयं वहन करें।"

9. उपरोक्त निर्णय को बनारस हिंदू विश्वविद्यालय द्वारा सिविल अपील सं. 1626 सन् 1989 1992 अनुपूरक (2) एससीसी 2 दायर करके सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी गई थी, जिसे दिनांक 24.01.1992 के निर्णय द्वारा खारिज कर दिया गया था और इसके प्रासंगिक भाग का उल्लेख निम्नवत है: -

"9. हम प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता से सहमत हैं कि योजना के पैरा 2 (क) में "आठ वर्ष की निरंतर सेवा" पद को अंतर्निहित उद्देश्य और लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए उचित रूप से समझा जाना चाहिए। पैरा 2 (क) स्वयं स्पष्ट रूप से स्वीकार करता है कि आठ वर्ष की सेवा एक से अधिक संस्थानों में हो सकती है, केवल आवश्यकता यह है कि जिस संस्थान में योजना के तहत पदोन्नति के लिए विचार किया जा रहा है, वहाँ न्यूनतम चार वर्ष की सेवा हो। एक विश्वविद्यालय से दूसरे विश्वविद्यालय या एक संस्थान से दूसरे संस्थान में स्थानांतरण के मामले में यह उचित रूप से माना जा सकता है कि कुछ अंतराल अवश्य होगा। अंतराल एक दिन, एक सप्ताह या एक महीने का हो सकता है। जो प्रासंगिक है वह अंतराल या अन्तराय की अवधि नहीं है, जैसा कि इसे कहा जा सकता है, बल्कि इसकी प्रकृति है। हमारा यह कहने का मतलब नहीं है कि इस तरह के अंतराल की लंबाई पूरी तरह से अप्रासंगिक है, हालांकि, हमारा मतलब यह है कि किसी को उन परिस्थितियों के कारण को ध्यान में रखना चाहिए जिनमें ऐसा अन्तराय हुआ है। उक्त पद को समझने में ध्यान में रखा जाने वाला एक अन्य कारक उक्त आवश्यकता के अंतर्निहित उद्देश्य है। हमारे अनुसार, उद्देश्य आठ वर्षों का शिक्षण अनुभव सुनिश्चित करना है। यह सही है कि प्रत्यर्थी की सेवा और शिक्षण अनुभव में तीन महीने 20 दिन का अंतराल है। हम इस तथ्य पर भी ध्यान देते हैं कि यह शैक्षणिक संस्थानों के लिए अवकाश का समय नहीं था। लेकिन इस परिस्थिति को प्रत्यर्थी के पक्ष में एक प्रतिकूल परिस्थिति, अर्थात् वर्ष 1982 में विश्वविद्यालय के उसी विभाग में स्थायी आधार पर उसकी पुनर्नियुक्ति, के साथ विचार किया जाना चाहिए। जैसा कि ऊपर बताया

गया है, उन्होंने 26.8.1974 से 31.3.1980 तक अस्थायी लेक्चरर के रूप में कार्य किया। दिनांक 1.4.1980 से 20.7.1980 तक वे बिना किसी नौकरी के रहे। दिनांक 21.7.1980 को उन्हें नागपुर विश्वविद्यालय में उसी विषय में रीडर के पद पर नियुक्त किया गया जहाँ उन्होंने 20.9.1982 तक कार्य किया। दिनांक 22.9.1982 को उन्हें इसी विश्वविद्यालय में उसी श्रेणी और विषय में स्थायी लेक्चरर के रूप में नियुक्त किया गया। इस अवसर पर, उन्हें अच्छी संख्या में वेतन वृद्धि प्रदान की गई। विश्वविद्यालय का कहना है कि ये वेतन वृद्धियाँ नागपुर विश्वविद्यालय में उनके द्वारा प्राप्त विलंबित वेतन की सुरक्षा के लिए दी गई थीं, जबकि प्रत्यर्थी का कहना है कि यह न केवल उक्त उद्देश्य के लिए, बल्कि इस विश्वविद्यालय में उनकी पिछली सेवा के आलोक में भी दी गई थीं। यह सच है कि उन्हें 26.8.1974 से वरिष्ठता नहीं दी गई थी। फिर भी, प्रश्न यह है कि क्या तीन महीने 20 दिन का अंतराल इतना लंबा है कि उसे क्षमादान योग्य नहीं माना जा सकता या इस मामले में इसे योजना के पैरा 2 (क) के प्रयोजनों के लिए सेवा में अन्तराय कहा जा सकता है?"

"16. प्रत्यर्थी ने हमारे ध्यान में कई ऐसे उदाहरण लाए हैं, जहां विश्वविद्यालय ने दो बार के अन्तराय को माफ कर दिया है, हालांकि, दो को छोड़कर इन मामलों की जांच करना आवश्यक समझते हैं। एक डॉ. एल.के. पांडे इस विश्वविद्यालय के आयुर्विज्ञान संस्थान में प्रसूति एवं स्त्री रोग विभाग में शिक्षक थे। उन्हें 26.5.1973 को अस्थायी रूप से नियुक्त किया गया था और उन्होंने 5.2.1975 को इस्तीफा दे दिया था। कहा जाता है कि वे 5.2.1975 से 27.04.1975 के बीच (दो महीने 22 दिनों की अवधि के लिए) नौकरी से बाहर थे। उन्हें 28.4.1975 को अस्थायी आधार पर और 16.10.1979 को स्थायी आधार पर इस विश्वविद्यालय में लेक्चरर के रूप में पुनः नियुक्त किया गया था। प्रत्यर्थी का तर्क यह है कि विश्वविद्यालय ने उनके मामले में दो महीने 22 दिन के उक्त अंतराल को माफ कर दिया है और यदि ऐसा है, तो कोई कारण नहीं है कि प्रत्यर्थी के मामले में तीन महीने 20 दिन के अंतराल को माफ न किया जाए। हालाँकि, विश्वविद्यालय ने अपने प्रति-शपथपत्र में स्पष्ट किया है कि उसके मामले में ऐसी कोई माफी नहीं दी गई थी और उसकी सेवा की गणना 28.4.1975 से ही की गई थी। लेकिन यदि उसकी सेवा की गणना 28.4.1975 से ही की जाती है, तो यह ध्यान देने योग्य है कि उसने 15.1.1983 तक आठ वर्ष की सेवा पूरी नहीं की थी, जो कि विश्वविद्यालय की कार्यवाही दिनांक 11/21 दिसंबर, 1982 के अनुसार आवेदन करने का अंतिम दिन था। दूसरा मामला डॉ. ए. एम. त्रिपाठी का है जो इस विश्वविद्यालय के चिकित्सा विज्ञान संस्थान में बाल रोग विभाग में शिक्षक थे। उन्हें 11.5.1974 को अस्थायी रूप से नियुक्त किया गया था। प्रत्यर्थी के अनुसार, उन्होंने 12.8.1975 को इस्तीफा दे दिया और 24.8.1975 तक नौकरी से बाहर रहे, उसके बाद वे काबुल चले गए। उनके अनुसार उन्होंने 25.8.1975 से 8.4.1976 तक काबुल में गैर-शिक्षण क्षमता में काम किया और उन्हें 9.4.1976 को अस्थायी आधार पर इस विश्वविद्यालय में लेक्चरर के रूप में फिर से नियुक्त किया गया और 9.2.1979 को स्थायी कर दिया गया। प्रत्यर्थी का कहना है कि योजना के तहत उनके मामले पर विचार करने के लिए विश्वविद्यालय ने 12.8.1975 से 8.4 1976 के बीच के पूरे अंतराल को माफ कर दिया था। हालाँकि, अपीलकर्ता का मामला अलग है। अपीलकर्ता-विश्वविद्यालय के अनुसार, उसे प्रतिनियुक्ति पर काबुल भेजा गया था और काबुल जाने से पहले उसकी सेवा में जो अन्तराय हुआ था, उसे कभी भी क्षमा नहीं किया गया। हम पाते हैं कि इस न्यायालय में दायर विश्वविद्यालय के प्रत्युत्तर हलफनामे में, इन दोनों शिक्षकों के मामले में प्रासंगिक तिथियों में कुछ गड़बड़ी है। बहरहाल, ऐसा प्रतीत होता

है कि इन दोनों शिक्षकों की सेवाओं की गणना केवल उनकी पुनर्नियुक्ति की तिथि से की गई थी। अतः इस न्यायालय में दायर प्रत्युत्तर-हलफनामे में निम्नलिखित महत्वपूर्ण कथन है:

यह सही है कि 15.1.1983 तक उन्होंने एक ही संवर्ग में 8 वर्ष की निरंतर सेवा पूरी नहीं की थी। हालाँकि, इस बीच कुलपति और कार्यकारिणी परिषद ने निर्णय लिया कि मेरिट पदोन्नति योजना के अंतर्गत शिक्षण पदों पर नियुक्ति के लिए उम्मीदवारी की पात्रता अवधि, नियमित नियुक्तियों के लिए विद्यमान प्रथा के अनुसार, साक्षात्कार की तिथि से गिनी जाएगी, क्योंकि कार्यकारिणी परिषद दोनों श्रेणियों के पदों को एक दूसरे के विपरीत मानती है। तदनुसार, चूँकि डॉ. त्रिपाठी ने 23.6.1983 को साक्षात्कार की तिथि तक एक ही संवर्ग में 8 वर्ष की निरंतर सेवा पूरी कर ली थी, वे पात्र थे और वैधानिक चयन समिति द्वारा उनका चयन किया गया था। कार्यकारिणी परिषद द्वारा अनुमोदित उसी सिद्धांत को लागू करते हुए, डॉ. एल.के. पांडे पात्र हो गए और उनका चयन किया गया।

17. हमारी राय में, विश्वविद्यालय द्वारा दायर जवाबी हलफनामे में उपरोक्त कथन बहुत ही चौंकाने वाला है। यह दर्शाता है कि भले ही उक्त दोनों शिक्षकों ने निर्धारित तिथि अर्थात 15.1.1983 तक आठ वर्ष की सेवा पूरी नहीं की थी, फिर भी कुलपति और कार्यकारिणी परिषद ने उन्हें विचार के योग्य बनाने के लिए साक्षात्कार की तिथि तक पात्रता अवधि बढ़ाने का निर्णय लिया। हम विश्वविद्यालय को किसी भी प्रकार की दुर्भावना या अनुचित आचरण का सुझाव नहीं दे रहे हैं। हम केवल यह कह रहे हैं कि विश्वविद्यालय जहां भी किसी मामले में न्याय की मांग हो, उचित आदेश पारित करता रहा है। हमारी राय में, मामले की सभी परिस्थितियों में प्रत्यर्थी के साथ भी ऐसा ही व्यवहार किया जाना चाहिए था।

उपरोक्त कारणों से, अपील विफल होती है, और तदनुसार खारिज की जाती है।"

10. उपरोक्त निर्णयों के अनुसरण में, याचिकाकर्ता को विश्वविद्यालय द्वारा "मेरिट प्रमोशन स्कीम" के अंतर्गत पूर्वव्यापी प्रभाव से अर्थात 1983 से पदोन्नति प्रदान की गई।

11. याचिकाकर्ता की सेवानिवृत्ति आयु 31.08.2004 को हो गई और उसे रीडर के रूप में 30.06.2004 तक सत्र लाभ प्रदान किया गया।

12. हालांकि, सेवानिवृत्ति पेंशन तय होने के बाद, विश्वविद्यालय ने उस अवधि को छोड़ दिया जब याचिकाकर्ता ने 19.11.1968 से 31.03.1980 (लगभग 9 वर्ष) के बीच विश्वविद्यालय में "डेमान्सट्रेटर और लेक्चरर" के रूप में काम किया था और उस अवधि को भी जब उन्होंने 21.07.1980 से 20.09.1982 (लगभग 2 वर्ष) तक अन्य विश्वविद्यालय में "रीडर" के रूप में काम किया था, इस प्रकार 11 वर्ष की सेवा को उनके पेंशन लाभ की गणना के लिए शामिल नहीं किया गया था।

13. पेंशन की गणना के लिए उक्त 11 वर्ष की अवधि को शामिल करने का अभ्यावेदन अनिर्णीत है, इसलिए, वर्ष 2016 में वर्तमान रिट याचिका दायर की गई थी जिसमें निम्नलिखित राहत की मांग की गई थी:-

"(i) प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 बनारस हिंदू विश्वविद्यालय को निर्देश देने के लिए परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें कि याचिकाकर्ता द्वारा विश्वविद्यालय में लगभग 9 वर्षों तक दी गई सेवा को शामिल करने के बाद उसकी पेंशन को फिर से निर्धारित करें, अर्थात 19:11 1968 और 31.3.1980 के बीच की अवधि और वह अवधि (लगभग दो वर्ष) जब उन्होंने नागपुर विश्वविद्यालय के संबद्ध कॉलेज श्री आयुर्वेद कॉलेज, नागपुर में काम किया, अर्थात 21.7.1980 से 20.9.1982 तक।

(ii) प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय को आदेश, या निर्देश जारी कर, याचिकाकर्ता द्वारा 19.11.1968 से की गई पिछली सेवाओं को ध्यान में रखते हुए, याचिकाकर्ता की पेंशन के पुनर्निर्धारण के बाद 31.8.2003 से ब्याज सहित पेंशन का बकाया भुगतान करने का आदेश दे और प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय को निर्देश दे कि वह याचिकाकर्ता को 3.8.2003 से पुनर्निर्धारण के बाद पेंशन का 40% बेचने की अनुमति दे।

(iii) कोई अन्य उपयुक्त रिट, आदेश या निर्देश जारी करे, जैसा कि यह माननीय न्यायालय उचित और सही समझे।

(iv) याचिकाकर्ता को याचिका की लागत प्रदान करे।"

14. याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री बी.पी. सिंह व उनके सहयोगी विद्वान अधिवक्ता श्री रौनक तिवारी मुख्य रूप से मुकदमेबाजी के पहले दौर (1992 अनुपूरक (2) एससीसी 2) में पारित निर्णय में दिए गए कारणों और निष्कर्षों पर अपने तर्कों को आधारित किया है, जहां तक "निरंतर सेवा" की व्याख्या और नागपुर विश्वविद्यालय और बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में याचिकाकर्ता की 8 साल की नियमित सेवा को, "मेरिट प्रमोशन स्कीम" के तहत पदोन्नति के लिए विचार किए जाने का प्रश्न है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने दृढ़तापूर्वक तर्क दिया कि इसी व्याख्या के आधार पर उनकी 11 वर्ष की संपूर्ण पूर्व सेवा को पेंशन और अन्य सेवानिवृत्ति लाभों के निर्धारण के लिए गणना में लिया जाए।

15. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय के आचरण का भी उल्लेख किया कि याचिकाकर्ता को अलग कर दिया गया, जबकि अन्य कर्मचारियों को भी समान लाभ प्रदान किए गए। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित उपर्युक्त निर्णय (1992 अनुपूरक (2) एससीसी 2) में उद्धृत उदाहरण का हवाला दिया।

16. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया कि वर्तमान मामले में केंद्रीय सिविल सेवा पेंशन नियमावली, 1972 लागू नहीं होंगे और इसके स्थान पर केंद्रीय विश्वविद्यालय सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली, 1967 लागू होंगे और उन्होंने इसके कुछ प्रावधानों का भी उल्लेख किया। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता द्वारा दायर पूरक हलफनामे और पूरक प्रति-हलफनामे के प्रत्युत्तर में उल्लिखित भेदभाव के उदाहरणों का भी उल्लेख किया है। रिट याचिका के पैरा 8, 9 और 10, साथ ही पूरक हलफनामे के प्रासंगिक पैरा 3 और 4 तथा प्रति-पूरक हलफनामे के प्रत्युत्तर के पैरा 6, निम्नलिखित रूप से पुन: प्रस्तुत किए जा रहे हैं:

अनुवादित

रिट याचिका के पैरा 8, 9 और 10

"8. चूँकि उपरोक्त सेवाकाल परिवीक्षा पर था और याचिकाकर्ता का स्थायीकरण नहीं हुआ था, इसलिए बी.एच.यू. कैलेंडर के पृष्ठ 87 (2.3) के अनुसार, बी.एच.यू. में अस्थायी लेक्चरर के पद पर ग्रहणाधिकार जारी रहेगा। पृष्ठ 87 के उक्त पैरा 2.3 में निम्नलिखित प्रावधान है:-

"उच्च ग्रेड पर अपनी परिवीक्षा अवधि के दौरान, वह निम्न ग्रेड में अपने पद पर ग्रहणाधिकार रखेगा। परिवीक्षा पर या स्थायीकरण के बाद उच्च ग्रेड में नियुक्ति से न तो उसके अवकाश संबंधी विशेषाधिकार प्रभावित होंगे और न ही उसकी सेवा की निरंतरता प्रभावित होगी।"

9. यह भी कहा गया है कि बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के रेक्टर, जो कुलपति की शक्तियों का प्रयोग कर रहे थे, का दिनांक 29.05.1981 का एक प्रशासनिक आदेश इस प्रकार है:-

"उन मामलों में, जहाँ उन्हें वैधानिक चयन समिति की सिफारिश पर स्थायी आधार पर मौलिक रूप से नियुक्त किया गया है, अवकाश की अवधि को वेतन-हानि अवकाश मानकर, अवकाश अवधि को माफ किया जाए। आई.एम.एस. के विश्वविद्यालय शिक्षकों के सेवा अवकाश को उपरोक्त आधार पर माफ किया गया है।"

उक्त आदेश को विश्वविद्यालय की कार्यकारिणी परिषद द्वारा अनुमोदित किया गया था। सुविधा के लिए, रेक्टर के दिनांक 29.05.1981 के आदेश की सत्य प्रति इस रिट याचिका के साथ संलग्न है और अनुलग्नक-V के रूप में अंकित है।

10. याचिकाकर्ता को बनारस हिंदू विश्वविद्यालय की वैधानिक चयन समिति द्वारा पुनः चयनित किया गया और उसकी अनुशंसा पर, जैसा कि कार्यकारिणी परिषद द्वारा अनुमोदित किया गया था, उन्हें 22.09.1982 को बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी में स्थायी आधार पर लेक्चरर नियुक्त किया गया। तब से वे विश्वविद्यालय के चिकित्सा विज्ञान संस्थान के डिपार्टमेंट ऑफ प्रिंसिपल में इसी पद पर कार्यरत हैं।

पूरक शपथ पत्र के पैरा 3 और 4

"3- याचिकाकर्ता के डेमान्स्ट्रेटर के रूप में अनुभव को उसकी पेंशन की गणना करते समय नहीं गिना गया है। हालाँकि, मामले के समान तथ्यों और परिस्थितियों में, विश्वविद्यालय ने डॉ. एल.डी. द्विवेदी की सेवा को गिना है, जो विश्वविद्यालय से रीडर के रूप में सेवानिवृत्त हुए थे। डॉ. एल.डी. द्विवेदी ने 19.11.1968 से 07.10.1971 तक डिपार्टमेंट ऑफ बेसिक प्रिंसिपल में डेमान्स्ट्रेटर के रूप में काम किया था। इस अवधि को पेंशन लाभ के लिए गिना गया था। दिनांक 09.05.1998 के आदेश की फोटोस्टेट प्रति, जिसे सूचना का अधिकार अधिनियम के तहत सहायक कुलसचिव द्वारा श्री आशीष कुमार मिश्रा को जारी किया गया था, इसके साथ संलग्न की जा रही है और इसे इस शपथ पत्र पर अनुलग्नक -एसए-1 के रूप में अंकित किया गया है।

4- डॉ. ए.एम. त्रिपाठी, जो बाल रोग विभाग में प्रोफेसर थे, ने विश्वविद्यालय से त्यागपत्र दे दिया था और उन्हें अफ़गानिस्तान में नौकरी मिल गई थी। उन्हें विश्वविद्यालय में पुनः नियुक्त किया गया और पेंशन संबंधी लाभों के लिए, त्यागपत्र से पूर्व की उनकी संपूर्ण सेवा को भी ध्यान में रखा गया है और उनकी सेवा में हुए अंतराल को क्षमा कर दिया गया है। डॉ. ए.एम. त्रिपाठी के दिनांक 09.08.1975 के त्यागपत्र की फोटोस्टेट प्रति और विश्वविद्यालय द्वारा सूचना का अधिकार अधिनियम के अंतर्गत 31.05.2008 को दिया गया पत्र/सूचना

अनुमोदित

इसके साथ संलग्न की जा रही है और इस शपथपत्र के साथ अनुलग्नक एसए 2 और 3 के रूप में अंकित की गई है।

<u>पूरक प्रत्युत्तर शपथपत्र का पैरा 6</u>

6. पूरक प्रति-शपथपत्र के पैराग्राफ सं. 8 की विषयवस्तु पुनः भ्रामक है। डॉ. ए.एम. त्रिपाठी को जनवरी 1983 से लेक्चरर से रीडर के पद पर पदोन्नत किया गया है। इस पदोन्नति के लिए, यूजीसी के दिशानिर्देशों के अनुसार, उन्हें 15.01.1983 को 8 वर्ष की निरंतर सेवा पूरी करनी आवश्यक थी। उन्होंने बी.एच.यू. से बाहर, अर्थात् अफ़गानिस्तान में सेवा करने के लिए बनारस हिंदू विश्वविद्यालय से त्यागपत्र दे दिया। उन्होंने पुनः बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में अस्थायी लेक्चरर के रूप में कार्यभार ग्रहण किया। इससे यह सिद्ध होता है कि इस्तीफ़े और अफ़ग़ानिस्तान स्थित बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के बाहर सेवा के कारण हुए सेवा- अन्तराय को, बी.एच.यू. के बाहर की गई सेवा के लिए पूंजीकृत मूल्य मांगे बिना ही माफ़ कर दिया गया है। ऐसा रेक्टर के दिनांक 29.05.1981 के आदेश के अनुसार किया गया है, जो मेरिट-प्रमोशन स्कीम लागू होने से बहुत पहले का है। सेवा- अन्तराय को केवल पेंशन संबंधी लाभों के लिए माफ़ किया गया है।

इसी प्रकार, कई मामलों में प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय ने रेक्टर के दिनांक 29.05.1981 के आदेश को लागू करते हुए विभिन्न प्रकृति और अवधि के सेवा- अन्तराय को क्षमा कर दिया है, लेकिन केवल याचिकाकर्ता के मामले में, वे भारत सरकार के नियमों का सहारा ले रहे हैं। याचिकाकर्ता का यह तर्क रिट याचिका सं. 3396 सन् 1985 में विश्वविद्यालय के रुख से स्पष्ट है। सुविधा के लिए, रिट याचिका सं. 3396 सन् 1985 में प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय के प्रति-शपथपत्र के पैरा 7 और 9 नीचे उद्धृत हैं:-

"7. पूरक हलफनामे के पैराग्राफ 6 की सामग्री के जवाब में, यह कहा गया है कि डॉ. ए.एम. त्रिपाठी 11.5.1974 को अस्थायी आधार पर आई.एम.एस. के बाल रोग विभाग में लेक्चरर के रूप में शामिल हुए। उन्होंने भारत सरकार से प्रतिनियुक्ति पर अफगानिस्तान सरकार के अधीन कार्यभार संभालने के लिए 24.8.1975 से इस्तीफा दे दिया। उन्होंने वहां 700-1600 रुपये के ग्रेड वेतन पर लेक्चरर के रूप में 25.8.1975 से 8.4.1976 तक काम किया। डॉ. ए.एम. त्रिपाठी 9.4.1976 से फिर से बाल रोग विभाग में शामिल हुए और तब से विश्वविद्यालय में अस्थायी लेक्चरर के रूप में काम करते रहे।

(i) चूँकि डॉ. ए.एम. त्रिपाठी 11.5.1974 से ही 700-1600 रुपये के वेतनमान वाले लेक्चरर संवर्ग में कार्यरत थे, जब उन्होंने बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में अस्थायी लेक्चरर के रूप में कार्यभार संभाला था और प्रतिनियुक्ति के दौरान भी इसी संवर्ग में थे। 9.4.1976 को कार्यभार ग्रहण करने के बाद भी वे विश्वविद्यालय में अस्थायी लेक्चरर के रूप में कार्यरत रहे और अस्थायी कार्यकाल के कारण विश्वविद्यालय की सेवा में हुए अन्तराय को माफ़ करने के उनके आवेदन पर विधिवत विचार किया गया और उसे माफ़ कर दिया गया। विश्वविद्यालय द्वारा विचार की गई और माफ़ किया गया अन्तराय अवधि में दो अस्थायी नियुक्तियों के बीच सात दिनों का अन्तराय शामिल था, जिसका विवरण नीचे दिया गया है:

1. 9.3.1977 से 15.3.1977 तक

2. 16.2.1978 से 22.2.1978 तक

3. 23.1.1979 से 29.01.1979 तक

(ii) इस प्रकार यह प्रतीत होता है कि डॉ. त्रिपाठी 11.5.1974 से लेक्चरर ग्रेड में प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय में सेवारत हैं।

(iii) उनकी सेवा में यह अन्तराय तत्कालीन रेक्टर द्वारा कुलपति के कर्तव्यों और कार्यों का निर्वहन करते हुए दिनांक 29.5.1981 के आदेश द्वारा माफ कर दिया गया था और यह नवंबर 1982 में मेरिट प्रमोशन स्कीम की शुरुआत से बहुत पहले हुआ था। डॉ. त्रिपाठी की मेरिट प्रमोशन स्कीम के अंतर्गत पदोन्नति हेतु उम्मीदवारी पर पूर्व में लेक्चरर संवर्ग में 8 वर्षों की निरंतर सेवा के आधार पर विचार किया गया था। डॉ. त्रिपाठी को कार्यकारिणी परिषद के दिनांक 14.2.79 के प्रस्ताव के अंतर्गत परिवीक्षा पर नियमित आधार पर नियुक्त किया गया था और उन्होंने 9.2.1979 को कार्यभार ग्रहण किया था। इस प्रकार, डॉ. ए.एम. त्रिपाठी ने 11.5.1974 से लगातार लेक्चरर संवर्ग में रु. 700-00 के वेतनमान पर कार्य किया। परिणामस्वरूप, डॉ. ए.एम. त्रिपाठी ने मेरिट प्रमोशन स्कीम के दिशानिर्देशों के अंतर्गत अपेक्षित पात्रता मानदंड पूरे किए और प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय द्वारा योजना के अंतर्गत रीडर के पद पर पदोन्नति हेतु उनके नाम पर उचित रूप से विचार किया गया।

देरी को माफ करने की शक्ति कुलपति के पास निहित है और इस तरह याचिकाकर्ता को इसके लिए विश्वविद्यालय से संपर्क करना था।"

17. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने **इंडियन एक्स-सर्विसेज लीग और अन्य बनाम भारत संघ, (1991) 2 एससीसी 104; प्रेम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (2019) 10 एससीसी 516; और, राजस्थान राज्य और अन्य बनाम ओ.पी. गुप्ता, (2022) 18 एससीसी 382** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णयों के साथ-साथ **डॉ. इंद्र प्रताप सिंह बनाम बी.एच.यू. वाराणसी द्वारा रजिस्ट्रार एवं अन्य , 2023: एएचसी: 175175** में इस न्यायालय के निर्णय का सहारा लिया है।

18. इसके विपरीत, प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री वी.के. उपाध्याय एवं उनके सहयोगी विद्वान अधिवक्ता श्री ऋत्विक उपाध्याय ने प्रति शपथपत्र के निम्नलिखित पैराग्राफ का उल्लेख किया है:

"11-रिट याचिका के पैराग्राफ 9 की विषयवस्तु को गलत मानते हुए अस्वीकार किया जाता है। उत्तर में यह प्रस्तुत किया गया है कि वर्ष 1984 में याचिकाकर्ता ने 1974-1982 की अवधि के लिए पूर्ववर्ती पैराग्राफ में उल्लिखित सेवा के विभिन्न चरणों में सभी अन्तरायों को माफ करके सेवा की निरंतरता के लिए आवेदन किया था और भारत सरकार के प्रासंगिक नियमों के मद्देनजर विश्वविद्यालय ने इसे अस्वीकार कर दिया था। सेवा में आए अन्तराय को माफ करने के संबंध में भारत सरकार के प्रासंगिक नियम नीचे उद्धृत हैं:-

(क) सेवा पुस्तिका में किसी विपरीत विशिष्ट संकेत के अभाव में, रक्षा सेवा प्राक्कलन या रेलवे प्राक्कलन से की गई और भुगतान की गई सिविल सेवा की दो अवधियों के बीच का अन्तराय स्वतः माफ माना जाएगा और अन्तराय-पूर्व सेवा को अर्हक सेवा माना जाएगा।

(ख) खंड (क) की कोई भी बात त्यागपत्र, सेवा से बर्खास्तगी या हटाये जाने या हड़ताल में भाग लेने के कारण उत्पन्न अन्तराय पर लागू नहीं होगी।

(ग) खंड (क) में निर्दिष्ट अन्तराय की अवधि अर्हक सेवा के रूप में नहीं गिनी जाएगी।

यह भी प्रस्तुत किया गया है कि ऊपर उल्लिखित भारत सरकार के नियमों के अनुसार याचिकाकर्ता ने सेवा अवकाश के दौरान अर्थात 21.07.1980 से 20.09.1982 तक आयुर्वेद कॉलेज नागपुर में अस्थायी रीडर के पद पर काम किया और याचिकाकर्ता का मामला विश्वविद्यालय के रेक्टर द्वारा दिनांक 29.05.1981 को पारित आदेश के अंतर्गत शामिल नहीं है (रिट याचिका में अनुलग्नक सं. - V के रूप में पहले ही दायर किया जा चुका है) और विश्वविद्यालय द्वारा सेवा अवकाश की अवधि को उचित रूप से माफ नहीं किया गया।"

"15- रिट याचिका के पैराग्राफ सं. 13, 14 और 15 की विषय-वस्तु के प्रत्युत्तर में यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता द्वारा रिट याचिका सं. 3396 सन् 1985 मेरिट प्रोमोशन स्कीम के अंतर्गत रीडर के पद पर पदोन्नति के लिए दायर की गई थी। इस माननीय न्यायालय और भारत के सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसार, याचिकाकर्ता द्वारा प्रदान की गई अस्थायी सेवा की अवधि को मेरिट प्रोमोशन स्कीम के अंतर्गत प्रोन्नति के प्रस्तावों के लिए गिना गया था, न कि पेंशन लाभ के प्रयोजनों के लिए।"

"18- रिट याचिका के पैरा 18 और 19 के प्रत्युत्तर में यह प्रस्तुत किया गया है कि दिनांक 3/4.09.2004, 25.01.2005 के पत्रों के माध्यम से (रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या-X और XI के रूप में पहले ही दाखिल) याचिकाकर्ता ने सेवा में अन्तराय की माफी और पेंशन लाभ के लिए 21.07.1980- 20.09.1982 की अवधि की गणना करने का अनुरोध किया था, जिसे विश्वविद्यालय द्वारा सही रूप से अस्वीकार कर दिया गया था, क्योंकि याचिकाकर्ता ने डेमान्सट्रेटर के पद पर तीन वर्षों तक कार्य किया था, जो कि इस संबंध में नियमों के अनुसार पेंशन लाभ के लिए नहीं गिना जा सकता है। यहाँ यह उल्लेख करना उचित है कि जहाँ तक सेवा में अन्तराय की क्षमा का प्रश्न है, यह प्रस्तुत किया गया है कि कार्यकारिणी परिषद के संकल्प ईसीआर सं. 17 दिनांक 20/21.03.1999 के अनुसार, जो इस प्रकार है:

"यह संकल्प लिया गया कि वेतन निर्धारण और सेवा में अन्तराय आदि के मामले का निपटारा भारत सरकार के नियमों के अनुसार किया जाए।"

आगे यह भी कहा गया है कि विश्वविद्यालय द्वारा सरकारी नियमों के अनुसार सेवा में अन्तराय की अवधि को क्षमा नहीं किया गया था। सेवा में केवल एक अन्तराय (अर्थात पिछला अन्तराय) को क्षमा के लिए माना जा सकता है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि विश्वविद्यालय के पिछले सेवा अन्तराय के दौरान, अर्थात 01.04.1980 से 21.09.1982 तक, याचिकाकर्ता ने श्री आयुर्वेदिक कॉलेज नागपुर में रीडर के रूप में कार्य किया था।"

"20. रिट याचिका के पैराग्राफ सं. 21 की विषयवस्तु के प्रत्युत्तर में यह प्रस्तुत किया गया है कि इस माननीय न्यायालय और माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के अनुसार, याचिकाकर्ता द्वारा की गई अस्थायी

सेवाओं को केवल मेरिट प्रमोशन योजना के अंतर्गत रीडर के पद पर पदोन्नति के लिए गिना गया था, न कि पेंशन लाभ के लिए। यहाँ यह उल्लेख करना उचित है कि याचिकाकर्ता ने श्री आयुर्वेदिक महाविद्यालय, नागपुर, जहाँ उन्होंने अंतिम रूप से कार्य किया था, से पूर्व अनुमति लिए बिना, साथ ही बिना उचित माध्यम के विश्वविद्यालय में लेक्चरर के पद के लिए आवेदन किया था।"

19. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने केन्द्रीय सिविल सेवा पेंशन नियमावली, 1972 के नियम 13, 26, 27 और 28 का उल्लेख किया, जिन्हें आगे पुन: उद्धृत किया गया है:-

***"13. अर्हक सेवा का प्रारंभ**:- इन नियमों के उपबंधों के अधीन रहते हुए, किसी सरकारी सेवक की अर्हक सेवा उस तिथि से प्रारंभ होगी, जिस दिन वह उस पद का कार्यभार ग्रहण करता है, जिस पर उसे प्रथम बार मौलिक रूप से या स्थानापन्न या अस्थायी हैसियत में नियुक्त किया जाता है:*
बशर्ते कि स्थानापन्न या अस्थायी सेवा के बाद उसी या किसी अन्य सेवा या पद पर बिना किसी अन्तराय के मौलिक नियुक्ति की जाए:
बशर्ते यह भी कि-

(क) समूह 'घ' सेवा या पद पर कार्यरत किसी सरकारी कर्मचारी के मामले में, जिसने 17 अप्रैल, 1950 से पहले किसी स्थायी पेंशन योग्य पद पर धारणाधिकार या निलंबित धारणाधिकार धारण किया हो, सोलह वर्ष की आयु प्राप्त करने से पहले की गई सेवा किसी भी प्रयोजन के लिए नहीं गिनी जाएगी, और
(ख) खंड (क) के अंतर्गत न आने वाले किसी सरकारी कर्मचारी के मामले में, अठारह वर्ष की आयु प्राप्त करने से पहले की गई सेवा, क्षतिपूर्ति उपदान के अलावा, नहीं गिनी जाएगी।

***"26. सेवा का समपहरण या त्यागपत्र.-** (1) किसी सेवा या पद से त्यागपत्र, जब तक कि नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा लोकहित में वापस लिए गए व्यक्ति को इसकी अनुमति न दी जाए, पिछली सेवा का समपहरण माना जाएगा।*
(2) यदि पंजीकरण, सरकार के अधीन, जहां सेवा अर्हता रखती है, कोई अन्य नियुक्ति, चाहे अस्थायी हो या स्थायी, उचित अनुमति से लेने के लिए प्रस्तुत किया गया है, तो पिछली सेवा का समपहरण माना जाएगा।
(3) उप-नियम (2) के अंतर्गत आने वाले किसी मामले में, नियुक्ति विभिन्न स्टेशनों पर होने के कारण, जो स्थानांतरण के नियमों के अंतर्गत अनुमेय कार्यभार ग्रहण करने की अवधि से अधिक नहीं है, सेवा में अन्तराय, कार्यमुक्ति की तिथि पर सरकारी कर्मचारी को देय किसी भी प्रकार के अवकाश की स्वीकृति द्वारा या उस सीमा तक औपचारिक क्षमा द्वारा कवर किया जाएगा, जहां तक वह अवधि उसको देय अवकाश द्वारा कवर नहीं की जाती है।
(4) नियुक्ति प्राधिकारी किसी व्यक्ति को लोकहित में निम्नलिखित शर्तों पर अपना त्यागपत्र वापस लेने की अनुमति दे सकता है, अर्थात्:-

(i) कि सरकारी सेवक द्वारा त्यागपत्र कुछ बाध्यकारी कारणों से दिया गया था, जिससे उसकी सत्यनिष्ठा, कार्यकुशलता या आचरण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा और त्यागपत्र वापस लेने का अनुरोध उन परिस्थितियों में हुए किसी महत्वपूर्ण परिवर्तन के परिणामस्वरूप किया गया है, जिनके कारण मूलतः उसे त्यागपत्र देने के लिए बाध्य होना पड़ा था;

(ii) कि त्यागपत्र के प्रभावी होने की तिथि और त्यागपत्र वापस लेने का अनुरोध किए जाने की तिथि के बीच की अवधि के दौरान, संबंधित व्यक्ति का आचरण किसी भी प्रकार अनुचित नहीं था:

(iii) कि त्यागपत्र के प्रभावी होने की तारीख और त्यागपत्र वापस लेने की अनुमति के परिणामस्वरूप व्यक्ति को पुनः कार्यभार ग्रहण करने की अनुमति दिए जाने की तारीख के बीच कर्तव्य से अनुपस्थिति की अवधि नब्बे दिनों से अधिक नहीं है:

(iv) कि वह पद, जो सरकारी कर्मचारी द्वारा अपने त्यागपत्र के स्वीकार किए जाने पर रिक्त किया गया था या कोई अन्य तुलनीय पद उपलब्ध है।

(5) नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा त्यागपत्र वापस लेने का अनुरोध स्वीकार नहीं किया जाएगा, जहां कोई सरकारी कर्मचारी किसी निजी वाणिज्यिक कंपनी में या उसके अधीन या किसी निगम या कंपनी में या उसके अधीन, जो पूर्णतः या आंशिक रूप से सरकार के स्वामित्व या नियंत्रण में हो या सरकार द्वारा नियंत्रित या वित्तपोषित किसी निकाय में या उसके अधीन नियुक्ति लेने के उद्देश्य से अपनी सेवा या पद से त्यागपत्र देता है।

(6) जब नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा किसी व्यक्ति को अपना त्यागपत्र वापस लेने और पुनः कार्यभार ग्रहण करने की अनुमति देने वाला आदेश पारित किया जाता है, तो उस आदेश में सेवा में अन्तराय की क्षमा सम्मिलित मानी जाएगी, किन्तु अन्तराय की अवधि को अर्हक सेवा नहीं माना जाएगा।

(7) नियम 37 के प्रयोजनार्थ प्रस्तुत त्यागपत्र से सरकार के अधीन उसकी पिछली सेवा का समपहरण नहीं होगा।

***27. सेवा में अन्तराय का प्रभाव-** (1) किसी सरकारी सेवक की सेवा में अन्तराय से उसकी पिछली सेवा का समपहरण हो जाता है, सिवाय निम्नलिखित मामलों के:-*

(क) प्राधिकृत अनुपस्थिति अवकाश,

(ख) प्राधिकृत अनुपस्थिति अवकाश के क्रम में अनाधिकृत अनुपस्थिति, जब तक कि अनुपस्थिति का पद मौलिक रूप से भरा न जाए।

(ग) निलंबन, जहाँ उसके तुरंत बाद पुनः नियुक्ति हो जाती है, चाहे उसी पद पर या किसी अन्य पद पर, या जहाँ सरकारी कर्मचारी की मृत्यु हो जाती है या उसे सेवानिवृत्त होने की अनुमति दे दी जाती है या निलंबन के दौरान अनिवार्य सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने पर सेवानिवृत्त कर दिया जाता है।

(घ) सरकार के नियंत्रणाधीन किसी प्रतिष्ठान में गैर-अर्हक सेवा में स्थानांतरण, यदि ऐसा स्थानांतरण सक्षम प्राधिकारी द्वारा जनहित में आदेशित किया गया हो;

(ङ) एक पद से दूसरे पद पर स्थानांतरण के दौरान कार्यभार ग्रहण करने का समय।

(2) उप-नियम (1) में किसी बात के होते हुए भी, नियुक्ति प्राधिकारी, आदेश द्वारा, बिना छुट्टी के अनुपस्थिति की अवधि को पूर्वव्यापी प्रभाव से असाधारण छुट्टी के रूप में परिवर्तित कर सकता है।

28. सेवा में अन्तराय की माफी.- *(क) सेवा पुस्तिका में इसके विपरीत किसी विशिष्ट संकेत के अभाव में, (क) सरकार के अधीन किसी सरकारी कर्मचारी द्वारा की गई सिविल सेवा की दो अवधियों के बीच का अन्तराय, जिसमें रक्षा सेवा प्राक्कलन या रेलवे प्राक्कलन से की गई और भुगतान की गई सिविल सेवा भी शामिल है, स्वतः माफ माना जाएगा और अन्तराय-पूर्व सेवा को अर्हक सेवा माना जाएगा।*

(ख) खंड (क) की कोई भी बात त्यागपत्र, बर्खास्तगी या सेवा से हटाए जाने या हड़ताल में भाग लेने के कारण होने वाला अन्तराय पर लागू नहीं होगी।

(ग) खंड (घ) में उल्लिखित अन्तराय की अवधि अर्हक सेवा में नहीं गिनी जाएगी।

20. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने **महानिदेशक, सीएसआईआर बनाम के. नारायणस्वामी (डॉ.), (1995) 3 एससीसी 124** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित एक निर्णय का हवाला दिया और उसके प्रासंगिक पैराग्राफ पुनः प्रस्तुत किए जा रहे हैं:-

"7. हमारी असहमति के दो कारण हैं। पहला यह है कि ऊपर उद्धृत नियम 28 को 19-5-1980 की समसंख्यक अधिसूचना द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था। इससे पहले, नियम 28 निम्नलिखित भाषा में था:

"28. सेवा में अन्तराय की क्षमा - *(1) नियुक्ति प्राधिकारी, आदेश द्वारा, किसी सरकारी कर्मचारी की सेवा में अन्तराय की क्षमा कर सकता है:*
बशर्ते कि -

(i) अन्तराय सरकारी सेवक के नियंत्रण से परे कारणों से हुआ हो;
(ii) एक या अधिक अन्तरायों को छोड़कर, यदि कोई हो, कुल सेवा अवधि पांच वर्ष से कम न हो; और
(iii) दो या अधिक अन्तरायों सहित, यदि कोई हो, अन्तराय एक वर्ष से अधिक न हो।

(2) उप-नियम (1) के अंतर्गत माफ किया गया अन्तराय अवधि को अर्हक सेवा नहीं माना जाएगा।

8. यदि उपरोक्त नियम के तहत क्षमादान के प्रश्न का निर्धारण किया जाना था, तो नियुक्ति प्राधिकारी का विशिष्ट आदेश एक पूर्वापेक्षा थी। माना कि ऐसा कोई आदेश नहीं है। दूसरे, यदि प्रतिस्थापित नियम प्रत्यर्थी की 1992 में सेवानिवृत्ति के कारण लागू होता भी, जिस तिथि तक प्रतिस्थापित नियम लागू हो चुका था, तो भी हमारा विचार है कि यह नियम नियम 13 के उपरोक्त परंतुक में उल्लिखित प्रावधान को रद्द नहीं कर सकता। ऐसा इसलिए है क्योंकि कोई भी विपरीत राय इस परंतुक को पूरी तरह से निरर्थक बना देगी। व्याख्या का यह एक स्थापित नियम है कि जहाँ दो प्रावधान एक ही क्षेत्र में कार्य करते हैं, वहाँ दोनों को अपनी भूमिका

अनुवादित

निभाने की अनुमति दी जानी चाहिए, जब तक कि ऐसे संचालन से स्पष्ट असंगति या बेतुकापन उत्पन्न न हो। यदि नियम 28 को दो मूल नियुक्तियों के बीच अन्तराय तक सीमित रखा जाए, जैसा कि अपीलकर्ता की ओर से तर्क दिया गया है, तो हमारा मानना है कि उपरोक्त दोनों प्रावधान सह-अस्तित्व में सामंजस्यपूर्ण ढंग से रह सकते हैं। नियम 13 अर्हक सेवा के 'आरंभ' के विषय पर है, इसलिए पहले उसे ही आरंभ करना होगा, जो कि पदधारी के अस्थायी सेवा में होने की स्थिति में, अस्थायी सेवा और मौलिक नियुक्ति के बीच अन्तराय होने पर, पहले परंतुक में उल्लिखित कारणों से, नहीं होगा। जहाँ अर्हक सेवा आरंभ हो चुकी है, नियम 28 अन्तराय का ध्यान रखेगा; और सेवा-पुस्तिका में इसके विपरीत किसी विशिष्ट संकेत के अभाव में अन्तराय की अवधि को क्षमा कर दिया जाएगा। हमारे अनुसार, इन दोनों नियमों का कार्यक्षेत्र यही है, क्योंकि ऐसी स्थिति में, यह दोनों प्रावधानों को सह-अस्तित्व में रहने की अनुमति देगा।

21. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के क़ानून के खंड 43 का भी उल्लेख किया है और संदर्भ के लिए इसे आगे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"43. 31-3-1964 को या उससे पहले किसी मूल पद पर स्थायी रूप से या परिवीक्षा पर नियुक्त विश्वविद्यालय का प्रत्येक कर्मचारी, जब तक कि वह "केंद्रीय विश्वविद्यालय-सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली 1967, जैसा कि केंद्र सरकार द्वारा अनुमोदित हो, का विकल्प नहीं चुनता है, अपनी सेवा की शर्त के रूप में अपने वेतन का आठ और एक तिहाई प्रतिशत भविष्य निधि में अंशदान करेगा, ऐसा अंशदान उसके वेतन से हर महीने काटा जाएगा, वेतन के एक रुपये का अंश छोड़ दिया जाएगा। 1-4-64 को या उसके बाद विश्वविद्यालय में शामिल होने वाला कर्मचारी केंद्रीय सरकार द्वारा अनुमोदित केंद्रीय विश्वविद्यालय सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली 1967 द्वारा शासित होगा, बशर्ते कि सामान्य भविष्य निधि, अंशदायी भविष्य निधि, पेंशन, ग्रेच्युटी, आदि से संबंधित केंद्र सरकार के नियमों में कोई भी संशोधन केंद्रीय सरकार द्वारा ऐसे संशोधनों को लागू करने की तारीख से केंद्रीय विश्वविद्यालय सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली 1967 के प्रासंगिक प्रावधानों में संशोधन माना जाएगा।

22. उपरोक्त प्रावधान का उल्लेख करते हुए, उन्होंने तर्क दिया कि पेंशन निर्धारण की प्रक्रिया केवल केंद्रीय सिविल सेवा पेंशन नियमावली, 1972 के अनुसार होगी और इसका नियम 26 वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर पूरी तरह लागू होगा। उन्होंने पूरक प्रति-शपथपत्र के कुछ अंश का भी उल्लेख किया कि याचिकाकर्ता का यह आरोप कि उसे अलग किया गया है, टिकने योग्य नहीं है। इसके प्रासंगिक पैराग्राफ सं. 4, 5, 6, 7, 8 और 9 का उल्लेख आगे किया गया है:

"4- उक्त रिट याचिका में याचिकाकर्ता द्वारा दाखिल पूरक हलफनामे के पैराग्राफ सं 3 की विषय-वस्तु को गलत बताकर खारिज किया जाता है। जवाब में कहा गया है कि याचिकाकर्ता और पैराग्राफ में संदर्भित डॉ. एल.डी. द्विवेदी का मामला प्रकृति में समान नहीं है। याचिकाकर्ता ने पहले ही सेवा में अंतराल की माफी का अनुरोध किया है। उत्तरदाता विश्वविद्यालय द्वारा माननीय न्यायालय के समक्ष दाखिल जवाबी हलफनामे में पहले ही कहा जा चुका है कि भारत सरकार के नियमों के अनुसार केवल एक अंतराल (सेवा में अंतिम अंतराल

को माफी के लिए माना जा सकता है) इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि विश्वविद्यालय में अंतिम अवकाश के दौरान यानी 01.04.1980 से 21.09.1982 तक याचिकाकर्ता ने श्री आयुर्वेदिक कॉलेज नागपुर में रीडर के रूप में काम किया था। ऐसे में सेवा की इस अवधि को सेवा में अंतराल नहीं माना जा सकता क्योंकि वह श्री आयुर्वेदिक कॉलेज, नागपुर में कार्यरत थे।

5- डॉ. एल.डी. द्विवेदी के मामले में सेवा में कोई अंतराल नहीं है। डॉ. एल.डी. द्विवेदी का सेवा विवरण निम्नानुसार है:-

(i) प्रदर्शक, डिपार्टमेंट ऑफ बेसिक प्रिंसिपल, आई.एम.एस., बी.एच.यू.	*19.11.1968 से 07.10.1971*
(ii) सहायक अनुसंधान अधिकारी/अनुसंधान अधिकारी (आयुर्वेद), केंद्रीय आयुर्वेदिक एवं सिद्ध अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली	*08.10.1971 से 31.03.1980*
(iii) लेक्चरर एवं रीडर, डिपार्टमेंट ऑफ बेसिक प्रिंसिपल, आई.एम.एस., बी.एच.यू.	*01.04.1980 से 24.10.1986 (लेक्चरर)* *25.10.1986 से 28.02.1994 (रीडर)*

अनवधित

6- डॉ. एल.डी. द्विवेदी ने अपने पत्र दिनांक 19.03.1993 के माध्यम से पेंशन लाभ के लिए केन्द्रीय आयुर्वेद एवं सिद्ध अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली में सहायक अनुसंधान अधिकारी के रूप में 08.10.1971 से 31.03.1980 तक उनके द्वारा की गई पिछली सेवा को गणना में शामिल करने का अनुरोध किया था। निदेशक, सीसीआरएएस को कार्यालय पत्र सं. एबी/14-पी-256/25188-91, दिनांकित 21.12.1993 द्वारा डॉ. एल.डी. द्विवेदी द्वारा वहाँ प्रदान की गई सेवा अवधि के दौरान सेवा अभिलेख सहित आनुपातिक सेवानिवृत्ति लाभों की एकमुश्त राशि हस्तांतरित करने का अनुरोध किया गया था। विश्वविद्यालय को सूचित किया गया कि डॉ. द्विवेदी ने 08.10.1971 से 31.03.1980 तक सहायक अनुसंधान अधिकारी/अनुसंधान अधिकारी (आयुर्वेद) के रूप में कार्य किया था और पेंशन योजना 01.04.1982 से प्रारंभ की गई थी। अतः परिषद ने डॉ. एल.डी. द्विवेदी को अंशदायी भविष्य निधि का अंतिम भुगतान कर दिया था।

बाद में पेंशन लाभ के लिए सीसीआरएएस में उनके द्वारा प्रदान की गई पिछली सेवाओं की गणना के लिए डॉ द्विवेदी के अनुरोध को स्वीकार कर लिया गया था और पत्र सं. एबी/14-पी-256/1995-97, दिनांकित 09.09.1994 के द्वारा, उनसे अनुरोध किया गया था कि वे सीसीआरएएस अंशदान की राशि को अंशदायी भविष्य निधि में जमा करें, साथ ही 20.04.1993 (सीसीआरएएस द्वारा उन्हें भुगतान की तारीख) से 19.04.1994 (बीएचयू में उनके द्वारा जमा करने की तारीख) तक उस पर ब्याज भी जोड़ें। तदनुसार डॉ द्विवेदी ने चालान

सं. 4023, दिनांकित 19.09.1994 के द्वारा 3939/- रुपये की उपरोक्त राशि जमा की। पत्र दिनांकित. 09.09.1994 और चालान सं. 4023 दिनांकित 19.09.1994 की एक सत्य प्रतिलिपि को इस पूरक प्रति शपथ पत्र के साथ अनुलग्नक सं. सी ए- सं. 1 और 2 के रूप में अंकित किया जा रहा है।

7- यह कि डॉ. एल.डी. द्विवेदी द्वारा दिनांक 19.11.1968 से 07.10.1971 तक आईएमएस, बीएचयू में डेमान्स्ट्रेटर के रूप में प्रदान की गई सेवाओं को पेंशन लाभ हेतु गिनने के अनुरोध को भी विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकार कर लिया गया था।

8- यह कि उपर्युक्त रिट याचिका में याचिकाकर्ता द्वारा दायर पूरक हलफनामे के पैराग्राफ सं. 4 की विषय-वस्तु के उत्तर में, यह प्रस्तुत किया गया है कि डॉ. ए.एम. त्रिपाठी दिनांक 11.05.1974 से विश्वविद्यालय में अस्थायी आधार पर नियुक्त थे और समय-समय पर उन्हें उसी पद पर लेक्चरर के रूप में नियुक्त किया जाता रहा। उन्होंने दिनांक 09.04.1976 से अस्थायी आधार पर विश्वविद्यालय में लेक्चरर के रूप में कार्यभार ग्रहण किया। निम्नलिखित अवधि में उनकी सेवा अन्तराय रहा:

(1) 09.03.1977 से 15.03.1977
(ii) 16.02.1978 से 22.02.1978
(iii) 23.01.1979 से 29.01.1979
दिनांक 20.05.1981 को उनके द्वारा सेवा में अनिवार्य अन्तराय की माफी हेतु प्रस्तुत अभ्यावेदन में, उपरोक्त अवधि को एक विशेष मामले के रूप में वेतन-हानि अन्तराय माना गया था।

9- याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत पूरक हलफनामे के पैराग्राफ सं. 5 की विषय-वस्तु को स्वीकार नहीं किया जाता, अतः अस्वीकार किया जाता है। उत्तर में यह प्रस्तुत किया गया है कि, जैसा कि इस पूरक प्रति-शपथपत्र के पूर्ववर्ती पैराग्राफों और विश्वविद्यालय द्वारा माननीय न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत प्रति-शपथपत्रों में पहले ही कहा जा चुका है, याचिकाकर्ता का मामला डॉ. एल.डी. द्विवेदी और डॉ. ए.एम. त्रिपाठी के समान नहीं है। याचिकाकर्ता के मामले में, याचिकाकर्ता द्वारा 01.04.1980 से 21.09.1982 की अवधि के लिए प्रदान की गई विश्वविद्यालय सेवा में अन्तराय था, और सेवा अन्तराय के दौरान याचिकाकर्ता ने 21.07.1980 से 20.09.1982 तक नागपुर विद्यापीठ से संबद्ध श्री आयुर्वेद महाविद्यालय, नागपुर में अस्थायी रीडर के पद पर काम किया। वर्ष 1984 में याचिकाकर्ता ने 1974 से 1982 की अवधि के लिए सेवा के विभिन्न चरणों में अन्तराय को माफ करके सेवा की निरंतरता के लिए आवेदन किया और इसे भारत सरकार के प्रासंगिक नियमों के मद्देनजर विश्वविद्यालय द्वारा अस्वीकार कर दिया गया।"

23. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने भारत सरकार के नियमों के अनुप्रयोग के संबंध में अध्यादेश के निम्नलिखित भाग का भी उल्लेख किया:

"(जी) भारत सरकार के नियमों की प्रयोज्यता:

जहाँ कहीं भी सेवा की शर्तों और नियमों के संबंध में विश्वविद्यालय के अध्यादेश मौन या अपूर्ण हैं, विश्वविद्यालय के कर्मचारी तुलनीय केंद्रीय सरकारी कर्मचारियों पर लागू नियमों द्वारा शासित होंगे, जैसे वर्गीकरण और अपील नियम, आचरण नियम और मौलिक नियम आदि।"

24. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने "वेतन निर्धारण के प्रयोजनार्थ त्यागपत्र क्षमा" विषय पर भारत सरकार के दिनांक 22.01.1993 के एक कार्यालय ज्ञापन का भी उल्लेख किया, अर्थात्, जब त्यागपत्र को "तकनीकी त्यागपत्र" माना जा सकता है और इसका प्रासंगिक भाग इसके बाद उल्लिखित है:

"i) सरकारी कर्मचारी को कार्यभार ग्रहण करते समय ऐसे आवेदन का विवरण तुरंत सूचित करना चाहिए।
ii) सरकारी कर्मचारी को त्यागपत्र देते समय विशेष रूप से अनुरोध करना चाहिए, जिसमें उन तिथियों का उल्लेख हो जिन पर वह सरकार/सरकारी सेवा के अधीन कोई अन्य नियुक्ति लेने के लिए त्यागपत्र दे रहा है। सरकारी सेवा में आने से पहले उन्होंने जिस संगठन के लिए आवेदन किया था, उसे तकनीकी त्यागपत्र माना जाएगा और उनके त्यागपत्र को 'तकनीकी त्यागपत्र' माना जाएगा।
iii) त्यागपत्र स्वीकार करने वाले प्राधिकारी को स्वयं संतुष्ट होना चाहिए कि यदि कर्मचारी द्वारा उल्लिखित पद के लिए आवेदन की तिथि को कर्मचारी सेवा में होता, तो उसका आवेदन उचित माध्यम से अग्रेषित किया गया होता।

25. प्रत्युत्तर में, याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने दोहराया है कि केवल केंद्रीय विश्वविद्यालय सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली, 1967 ही लागू होंगे और उन्होंने रिट याचिका, प्रत्युत्तर हलफनामे और पूरक हलफनामे के प्रासंगिक पैराग्राफों का भी उल्लेख किया और साथ ही कहा कि वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों में, अन्तराय को माफ किया जा सकता है।

26. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना गया और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का परिशीलन किया गया।

27. विचारणीय पहला मुद्दा यह है कि क्या इस न्यायालय द्वारा मुकदमेबाजी के पहले दौर में पारित निर्णय, जिसे 1992 अनुपूरक (2 एससीसी 2 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बरकरार रखा गया था, वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू होगा, अर्थात, लगभग 11 वर्षों की पूर्व सेवा की गणना के उद्देश्य से, या क्या उक्त निर्णय "मेरिट प्रमोशन स्कीम" के पैरा 2 के खंड (क) पर विचार करने तक सीमित था। याचिकाकर्ता का तर्क है कि उपरोक्त निर्णय में दिए गए तर्क मामले के वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों पर लागू होंगे, हालाँकि, इसके विपरीत, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय का रुख इसके विपरीत है।

28. मुकदमेबाजी के पहले के दौर में, यह ज्यादा विवाद का विषय नहीं है कि इस न्यायालय के साथ-साथ सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष एकमात्र मुद्दा "मेरिट प्रमोशन स्कीम" के तहत विचार करने के उद्देश्य से 8 साल की निरंतर सेवा पर विचार करना था और विशेष रूप से ऐसी स्थिति में जहां एक कर्मचारी ने दो संस्थानों में काम किया है, जैसा कि पूर्वोक्त पैराग्राफ में विशेष रूप से विचार किया गया था।

29. उपर्युक्त पृष्ठभूमि में, इस न्यायालय के साथ-साथ सर्वोच्च न्यायालय ने अन्य संस्थान में चार वर्ष की सेवा के साथ-साथ समान संस्थान में चार वर्ष की सेवा का लाभ दिया है और इसलिए, इस संबंध में "निरंतर सेवा" शब्दों की व्याख्या की है और साथ ही उक्त दो सेवाओं के बीच एक छोटे अंतराल को माफ कर दिया है। उक्त खंड के प्रयोजन के लिए, विशिष्ट मुद्दा यह था कि एक व्यक्ति जिसने एक से अधिक संस्थानों में सेवा की है, उसे अभी भी "मेरिट प्रमोशन स्कीम" अर्थात एक लाभकारी योजना के तहत पदोन्नति के लिए विचार किया जा सकता है।

30. जहां तक इस मुद्दे का संबंध है कि क्या "निरंतर सेवा" की उक्त व्याख्या पेंशन के पुनर्निर्धारण के लिए सेवा की गणना के प्रयोजन के लिए भी लागू होगी, यह न तो उस मामले में विचाराधीन मुद्दा था और न ही प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कोई संदर्भ दिया गया था। इसलिए, याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के इस निवेदन को स्वीकार करना बहुत कठिन है कि उसमें दिए गए निष्कर्ष वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में पूरी तरह से लागू होंगे, अर्थात पेंशन के पुनर्निर्धारण के उद्देश्य से 11 वर्षों की संपूर्ण पूर्व सेवा की गणना करने के लिए, क्योंकि इसके लिए पेंशन निर्धारण के क्षेत्र को नियंत्रित करने वाले अन्य प्रावधानों की व्याख्या की आवश्यकता होगी।

31. यह बहुत विवाद का विषय नहीं है कि याचिकाकर्ता को नागपुर विश्वविद्यालय में लगभग दो वर्षों तक सेवा करने के बाद, 22.09.1982 को एक नई चयन प्रक्रिया में बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में नियुक्त किया गया था और सेवानिवृत्ति पर उनकी पेंशन का निर्धारण उक्त तिथि से उनकी सेवा को ध्यान में रखते हुए किया गया था।

32. बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के अपने क़ानून हैं और वर्तमान मामले में दो नियम लागू हैं, यानी केंद्रीय सिविल सेवा पेंशन नियमावली, 1972 और केंद्रीय विश्वविद्यालय सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली, 1967। अब न्यायालय को यह विचार करना है कि पेंशन के लिए अर्हक सेवा की गणना, अन्तराय की माफी और अन्य संस्थान में कार्य करने के प्रभाव आदि के प्रयोजन के लिए ये कैसे परस्पर क्रिया करते हैं।

33. केंद्रीय विश्वविद्यालय सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली, 1967 किसी केंद्रीय अधिनियम द्वारा या उसके तहत स्थापित या निगमित विश्वविद्यालय पर लागू होते हैं और इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि बनारस हिंदू विश्वविद्यालय उक्त परिभाषा के अनुसार एक केंद्रीय विश्वविद्यालय है, इसलिए, इन नियमों के प्रावधान उक्त विश्वविद्यालय के कर्मचारियों (शिक्षण और गैर-शिक्षण) पर लागू होते हैं। इस स्तर पर, यह उल्लेख करना

भी प्रासंगिक होगा कि केंद्रीय सिविल सेवा पेंशन नियमावली, 1972 भी लागू हैं और विवाद, यदि कोई हो, केवल तभी आएगा जब वे एक-दूसरे के विपरीत हों।

34. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने केंद्रीय विश्वविद्यालय सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली, 1967 के निम्नलिखित नियमों का हवाला दिया है, जो केंद्रीय सिविल सेवा पेंशन नियमावली, 1972 के समान हैं:

***"2.9 'अर्हक सेवा'** का अर्थ है विश्वविद्यालय के स्टाफ सदस्य के रूप में मूल क्षमता में की गई सेवा, जिसमें परिवीक्षा अवधि भी शामिल है। विश्वविद्यालय को पूर्णकालिक आधार पर अस्थायी या स्थानापन्न क्षमता में दी गई सभी सेवाएँ, जिसके बाद उसी या किसी अन्य पद पर बिना किसी अन्तराय के स्थायीकरण किया जाता है, अर्हक सेवा मानी जाएँगी, सिवाय उन सेवा अवधियों के जो "आकस्मिकता" से भुगतान की जाती हैं।*

***नोट:1** कोई कर्मचारी अपनी सेवा में अधिवर्षिता पेंशन के लिए अर्हक सेवा जोड़ सकता है, लेकिन किसी अन्य श्रेणी की पेंशन के लिए नहीं:*
उसकी सेवा की पूरी अवधि के एक-चौथाई से अधिक नहीं की वास्तविक अवधि या भर्ती के समय उसकी आयु पच्चीस वर्ष से अधिक होने की वास्तविक अवधि या पाँच वर्ष की अवधि, जो भी कम हो, यदि पद ऐसा है:-

(क) जिसके लिए स्नातकोत्तर अनुसंधान या विशेषज्ञ योग्यताएँ, या वैज्ञानिक, तकनीकी या व्यावसायिक क्षेत्र में अनुभव आवश्यक है, और
(ख) जिसके लिए सामान्यतः पच्चीस वर्ष से अधिक आयु के उम्मीदवारों की भर्ती की जाती है।
बशर्ते कि यह रियायत ऐसे किसी भी कर्मचारी को तब तक स्वीकार्य नहीं होगी जब तक कि विश्वविद्यालय सेवा छोड़ने के समय उसकी अर्हक सेवा दस वर्ष से कम न हो।
यह रियायत देने का निर्णय कर्मचारी की भर्ती के समय कार्यकारिणी परिषद द्वारा लिया जाएगा।

***नोट:2** सेवा में अन्तराय को क्षमा करने की शक्तियाँ सामान्यतः विश्वविद्यालय की कार्यकारिणी परिषद के पास होंगी। सेवा में अन्तराय की माफी निम्नलिखित परिस्थितियों में की जा सकती है:-*

(1) अन्तराय संबंधित कर्मचारी के नियंत्रण से परे कारणों से हुआ हो।
(2) अन्तराय से पहले की सेवा की अवधि पांच वर्ष से कम नहीं होनी चाहिए और ऐसे मामलों में जहां दो या अधिक अन्तराय हों, कुल सेवा, पेंशन लाभ जिसके संबंध में अन्तरायों को माफ नहीं किए जाने पर हानि होगी, पांच वर्ष से कम नहीं होनी चाहिए;
(3) अन्तराय एक वर्ष से अधिक अवधि का नहीं होना चाहिए। जिन मामलों में दो या अधिक अन्तराय हों, उन सभी क्षमा किए गए अन्तरायों की कुल अवधि एक वर्ष से अधिक नहीं होनी चाहिए।

अनुवादित

परन्तु, असाधारण मामलों में, कार्यकारिणी परिषद कुलाध्यक्ष को एक वर्ष से अधिक अवधि के लिए सेवा में हुए अन्तराय को क्षमा करने की अनुशंसा करेगी; ऐसे कर्मचारी के मामले में जिसने अन्तराय से पहले दस वर्ष की अर्हक सेवा की हो, या सेवा में अन्तरायों में से पहला, जब एक से अधिक अन्तराय हों; यदि ऐसा क्षमा विश्वविद्यालय के हित में आवश्यक समझा जाता है। कार्य परिषद द्वारा क्षमा किए जाने पर भी, अन्तराय की अवधि को अर्हक सेवा नहीं माना जाएगा।"

"2.19 "कर्मचारी" का अर्थ विश्वविद्यालय के स्टाफ (शैक्षणिक और गैर-शैक्षणिक दोनों) का सदस्य है।"

"5. (i) एक केंद्रीय विश्वविद्यालय के कर्मचारियों का दूसरे केंद्रीय विश्वविद्यालय में स्थानांतरण।
सामान्य नीति के अनुसार, जब किसी केंद्रीय विश्वविद्यालय का कोई कर्मचारी किसी अन्य केंद्रीय विश्वविद्यालय में स्थानांतरित होता है और विश्वविद्यालय उसे स्थायी रूप से समाहित करने का निर्णय लेता है, तो यह समाहित मूल विश्वविद्यालय की सहमति से किया जाना चाहिए, बशर्ते कि स्थानांतरण जनहित में है या नहीं, यह निर्णय मूल विश्वविद्यालय को ही लेना होगा।
" किसी अन्य केंद्रीय विश्वविद्यालय की सेवा छोड़ने के बाद किसी विश्वविद्यालय में शामिल होने वाले कर्मचारियों को, नए विश्वविद्यालय में उनके स्थायी समाहित होने की स्थिति में, पुराने विश्वविद्यालय में की गई उनकी पिछली सेवा के संबंध में सेवानिवृत्ति लाभ दिए जाएँगे, बशर्ते कि नए पद पर कार्यभार ग्रहण करने के लिए स्वीकार्य पारगमन समय को छोड़कर, सेवा में कोई अंतराल न हो और की गई सेवा अर्हक हो। हालाँकि, उन्हें परिशिष्ट 'क' में दी गई योजना से परिशिष्ट 'ख' में दी गई योजना में या इसके विपरीत परिवर्तन करने की अनुमति नहीं होगी।"

"**नोट**:- इन नियमों के प्रयोजन के लिए, किसी विश्वविद्यालय में नियुक्ति से त्यागपत्र देकर उचित अनुमति लेकर किसी अन्य विश्वविद्यालय में नियुक्ति लेना सेवा से त्यागपत्र नहीं है।"

35. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, "अर्हक सेवा" का अर्थ है, विश्वविद्यालय के स्टाफ के सदस्य के रूप में मूल क्षमता में की गई सेवा, जिसमें परिवीक्षा पर बिताई गई अवधि भी शामिल है। वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता की बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में 22.09.1982 को विधिवत नियुक्ति के बाद से उसकी सेवानिवृत्ति तक की सेवा की गणना की गई थी।

36. न्यायालय ने यह भी नोट किया कि नियम 2.9 के नोट 2 में कहा गया है कि सेवा में अन्तराय को माफ करने की शक्ति विश्वविद्यालय की कार्यकारिणी परिषद के पास है और उक्त नोट में ऐसी परिस्थितियाँ भी दी गई हैं जिनके तहत अन्तराय को माफ किया जा सकता है। सबसे प्रासंगिक यह है कि अन्तराय संबंधित कर्मचारी के नियंत्रण से परे किसी कारण से हुआ होगा।

37. वर्तमान मामले में, जब याचिकाकर्ता ने नागपुर विश्वविद्यालय में कार्यभार संभाला था, तब सेवा में आए अन्तराय को याचिकाकर्ता के नियंत्रण से परे किसी कारण से आया अन्तराय नहीं माना जा सकता, क्योंकि उसने अपनी इच्छा से चयन प्रक्रिया में भाग लिया था। यह निर्विवाद है कि विश्वविद्यालय की कार्यकारिणी परिषद ने इस अन्तराय को माफ नहीं किया है। इसलिए, याचिकाकर्ता का मामला केंद्रीय विश्वविद्यालय सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली, 1967 के नियम 2.9 के नोट 2 में उल्लिखित अन्तराय की अन्य परिस्थितियों के अंतर्गत नहीं आता।

38. अब न्यायालय केंद्रीय सिविल सेवा पेंशन नियमावरी, 1972 के प्रासंगिक प्रावधानों पर ध्यान देता है, जिनका विश्वविद्यालय की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने काफी सहारा लिया था।

39. नियम 13 अर्हक सेवा के प्रारंभ का प्रावधान करता है, अर्थात, किसी सरकारी कर्मचारी की अर्हक सेवा उस तिथि से शुरू होगी, जिस दिन वह उस पद का कार्यभार ग्रहण करता है, जिस पर उसे पहली बार मौलिक रूप से या स्थानापन्न या अस्थायी क्षमता में नियुक्त किया जाता है। इसलिए, दोनों नियमों में "अर्हक सेवा" की परिभाषा समान प्रतीत होती है।

40. न्यायालय ने उक्त नियम 13 के परंतुक पर भी ध्यान दिया है कि अस्थायी सेवा के स्थानापन्न के रूप में उसी या किसी अन्य सेवा या पद पर बिना किसी अन्तराय के मौलिक नियुक्ति की जाती है, जिसे "अर्हकारी सेवा" में शामिल किया जाएगा। हालाँकि, याचिकाकर्ता का मामला उक्त परंतुक के अंतर्गत नहीं आएगा क्योंकि इसका किसी अन्य विश्वविद्यालय में पूर्व सेवा से कोई संबंध नहीं है।

41. जहाँ तक सेवा में अन्तराय का संबंध है, प्रासंगिक नियम केंद्रीय सिविल सेवा पेंशन नियमावली, 1972 के नियम 27 और 28 होंगे। नियम 27 सेवा में अन्तराय का प्रभाव यह उपबंध करता है कि उसमें निर्धारित मामलों को छोड़कर, किसी सरकारी कर्मचारी की सेवा में अन्तराय से उसकी सेवा जब्त हो जाएगी और निर्विवाद रूप से याचिकाकर्ता का मामला किसी भी अपवाद के अंतर्गत नहीं आएगा क्योंकि यह स्थानांतरण का मामला नहीं है, बल्कि याचिकाकर्ता ने बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में अपने तीन वर्ष के कार्यकाल की समाप्ति के बाद, नागपुर विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित एक नई चयन प्रक्रिया में भाग लिया है जहाँ उसका चयन हुआ था, इसलिए, यह स्थानांतरण का मामला नहीं होगा। इसी प्रकार, चूँकि बाद में उन्होंने नई नियुक्ति के बाद बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में कार्यभार ग्रहण किया था, इसलिए यह स्थानांतरण का मामला नहीं होगा।

42. केंद्रीय सिविल सेवा पेंशन नियमावली, 1972 का नियम 28 सेवा में अन्तराय के लिए क्षमा का उपबंद करता है। इसमें प्रावधान है कि किसी सरकारी कर्मचारी द्वारा सरकार के अधीन प्रदान की गई सिविल सेवा की दो अवधियों के बीच का अन्तराय, जिसमें रक्षा सेवा प्राक्कलन या रेलवे प्राक्कलन से प्रदान की गई और भुगतान की गई सिविल सेवा भी शामिल है, स्वतः ही क्षमा माना जाएगा। हालाँकि, याचिकाकर्ता का मामला भी उक्त क्षमा के दायरे में नहीं आएगा क्योंकि याचिकाकर्ता ने किसी अन्य विश्वविद्यालय में कार्य किया है।

43. इस स्तर पर, न्यायालय ने केन्द्रीय सिविल सेवा पेंशन नियमावली, 1972 के नियम 26 का भी संज्ञान लिया है, जिसमें सेवा जब्त करने या त्यागपत्र देने का प्रावधान है, जिससे पिछली सेवा जब्त हो जाएगी और याचिकाकर्ता ने यह नहीं दिखाया है कि उसने नागपुर विश्वविद्यालय में उचित माध्यम से आवेदन किया था और चूंकि अस्थायी के रूप में पिछली सेवा केवल 31.03.1980 तक बढ़ाई गई थी, इसलिए यह मामला नहीं होगा कि याचिकाकर्ता ने त्यागपत्र देने के बाद नागपुर विश्वविद्यालय में नई चयन प्रक्रिया में भाग लिया हो।

44. उपर्युक्त परिस्थितियों में, **महानिदेशक, सीएसआईआर बनाम के. नारायणस्वामी** (उपरोक्त) और **डॉ. राजेश कुमार शर्मा बनाम भारत संघ एवं अन्य (रिट-ए सं. 2315सन् 2019), दिनांक 14.02.2019 को निर्णीत,** के मामलों पर विश्वविद्यालय के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा लिया गया अवलंब प्रासंगिक होंगे और इसके निम्नलिखित पैराग्राफ का उल्लेख आगे किया गया है:

महानिदेशक, सीएसआईआर बनाम के. नारायणस्वामी (उपरोक्त):

"8. यदि उपर्युक्त नियम द्वारा क्षमादान के प्रश्न का निर्धारण किया जाना था, तो नियुक्ति प्राधिकारी का विशिष्ट आदेश पूर्वापेक्षित था। स्वीकृत रूप से, ऐसा कोई आदेश नहीं है। दूसरे, भले ही प्रतिस्थापित नियम प्रत्यर्थी की 1992 में सेवानिवृत्ति के कारण लागू होता, जिस तिथि तक प्रतिस्थापित नियम लागू हो चुका था, हमारा विचार है कि नियम 13 के पूर्वोक्त परंतुक में उल्लिखित प्रावधान को रद्द नहीं कर सकता। ऐसा इसलिए है क्योंकि कोई भी विपरीत राय उस परंतुक को पूरी तरह से निरर्थक बना देगी। व्याख्या का यह एक स्थापित नियम है कि जहाँ दो प्रावधान एक ही क्षेत्र में लागू होते हैं, वहाँ दोनों को अपनी भूमिका निभाने की अनुमति दी जानी चाहिए, जब तक कि ऐसे प्रावधान स्पष्ट रूप से असंगत या बेतुके न हों। यदि नियम 28 को दो मूल नियुक्तियों के बीच के अन्तराय तक सीमित रखा जाता, जैसा कि अपीलकर्ता की ओर से तर्क दिया गया है, तो हमारा मानना है कि उपरोक्त दोनों प्रावधान सामंजस्यपूर्ण ढंग से सह-अस्तित्व में रह सकते हैं । नियम 13 अर्हक सेवा के 'आरंभ' के विषय पर है, इसलिए पहले उसे आरंभ करना होगा, जो कि पदधारी के अस्थायी सेवा में होने की स्थिति में, अस्थायी सेवा और मूल नियुक्ति के बीच अन्तराय होने पर नहीं होगा, जैसा कि पहले परंतुक में उल्लेख किया गया है। जहाँ अर्हक सेवा आरंभ हो चुकी है, नियम 28 अन्तराय का ध्यान रखेगा; और सेवा पुस्तिका में इसके विपरीत किसी विशिष्ट संकेत के अभाव में अन्तराय की अवधि को माफ कर दिया जाएगा। हमारे अनुसार, इन दोनों नियमों का कार्यक्षेत्र यही है, क्योंकि ऐसी स्थिति में, दोनों प्रावधान एक साथ लागू रह सकते हैं।"

डॉ. राजेश कुमार शर्मा (उपरोक्त):

"हालाँकि, जिस अनुवर्ती विज्ञापन सं. 7/2014-15 के अंतर्गत याचिकाकर्ता का चयन किया गया है, उसके सापेक्ष न तो उचित माध्यम से आवेदन किया गया था और न ही गोविंद बल्लभ पंत हिमालयी पर्यावरण एवं विकास संस्थान द्वारा उसे कोई अनापत्ति प्रमाण पत्र जारी किया गया था। यह पत्र जारी नहीं किया गया है। इसमें दिए

गए तथ्यों का उल्लेख, जिसके अनुसार याचिकाकर्ता ने पोस्ट कोड 3889 के सापेक्ष उचित माध्यम से आवेदन नहीं किया था, भी विवादित नहीं है। दिनांक 8.4.2016 के कार्यालय ज्ञापन के मद्देनजर, पिछले नियोक्ता से याचिकाकर्ता का इस्तीफा 'तकनीकी इस्तीफे' की परिभाषा के अंतर्गत नहीं आएगा, और इसलिए, वेतन संरक्षण का लाभ याचिकाकर्ता को उपलब्ध नहीं होगा।"

45. उपरोक्त परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का एकमात्र तर्क विचारणीय है, कि क्या याचिकाकर्ता के साथ मनमानी की गई और **राजस्थान राज्य और अन्य बनाम ओ.पी. गुप्ता (उपरोक्त)** लागू होता है या नहीं।

46. मनमानी के आरोप का वर्तमान मामले पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा क्योंकि, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, गुण-दोष के आधार पर अन्य सभी तर्क खारिज कर दिए गए हैं और यह पूरी तरह से स्थापित है कि कोई नकारात्मक समता नहीं है और यदि किसी अन्य कर्मचारी को कानून के विरुद्ध कोई लाभ दिया गया है, तो वह याचिकाकर्ता को उसी लाभ का हकदार नहीं बनाएगा। इसके अलावा, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण भी उनके मामले को अलग बनाता है। तदनुसार, मनमानी का तर्क भी खारिज किया जाता है।

47. अब न्यायालय याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा **राजस्थान राज्य एवं अन्य बनाम ओ.पी. गुप्ता (उपरोक्त)** मामले में पारित निर्णय पर विचार करता है, जिसमें पूर्व अनुमति का प्रश्न इसलिए मान लिया गया था क्योंकि दी गई परिस्थितियों में ढाई दशक से अधिक समय बीत जाने के बाद भी इसकी पुष्टि या इस पर आपत्ति नहीं की जा सकी थी, जबकि वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता ने यह दावा नहीं किया है कि उसने पूर्व अनुमति लेकर नागपुर विश्वविद्यालय में चयन प्रक्रिया में भाग लिया था। अतः, वर्तमान मामले के तथ्य भिन्न होने के कारण, **राजस्थान राज्य एवं अन्य बनाम ओ.पी. गुप्ता (उपरोक्त)** मामले में दिया गया निर्णय भी याचिकाकर्ता के लिए सहायक नहीं होगा।

48. उपरोक्त परिस्थितियों में, न्यायालय का विचार है कि याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत सभी तर्कों का कोई कानूनी आधार नहीं है, जबकि बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्कों में में सार है। अतः, इस रिट याचिका में याचिकाकर्ता की 11 वर्ष की पूर्व सेवा को शामिल करते हुए उसकी पेंशन पुनर्निर्धारित करने का अनुरोध, बिना किसी कानूनी आधार के, अस्वीकार किया जाता है।

49. तदनुसार, रिट याचिका खारिज की जाती है।

50. कॉस्ट के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2025) 4 ILRA 251

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 01.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजित कुमार

रिट ए सं. 20607 सन् 2024

देवेंद्र कुमार वर्मा **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...प्रत्यर्थी**

याचिकाकर्ता की ओर से अधिवक्ता : संतोष कुमार वर्मा

प्रत्यर्थीगण की ओर से अधिवक्ता : सी.एस.सी., सिद्धार्थ सिंघल

नार्मलाइजेशन नियम-विज्ञापन जारी किया गया था - विज्ञापन में नार्मलाइजेशन का उल्लेख नहीं था - तर्क दिया गया कि प्रकाशित संपूर्ण परिणाम रद्द किए जाने योग्य है - विभिन्न प्रश्नपत्रों में पूछे गए विभिन्न प्रश्नों के कारण नार्मलाइजेशन नियम लागू किए गए हैं - न्याय करने के लिए - क्योंकि प्रश्न कुछ मायनों में कठिन और अन्य मायनों में आसान हो सकते हैं - इसलिए योग्यता सूची बनाने के प्रयोजनों के लिए एक संतुलन बनाया जाना है - इस बात पर कोई तर्क नहीं दिया गया है कि नार्मलाइजेशन नियम खराब क्यों है - लिखित परीक्षा अधिसूचना के बाद आयोजित की गई थी - प्रश्नगत परीक्षा में नार्मलाइजेशन लागू करना उचित है।

रिट याचिका खारिज। (E-9)

(माननीय न्यायमूर्ति अजित कुमार द्वारा प्रस्तुत)

(सी.एम.ए. सं. 2, वर्ष 2025: पक्षकार बनाने हेतु आवेदन)

पक्षकार बनाने हेतु आवेदन स्वीकार किया जाता है।

याचिकाकर्ता को तत्काल आवश्यक पक्षकार प्रस्तुत करने का निर्देश दिया जाता है।

(रिट याचिका)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री संतोष कुमार वर्मा और प्रत्यर्थी सं. 2 अर्थात सचिव, उत्तर प्रदेश उच्चतर सेवा चयन आयोग, लखनऊ की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री सिद्धार्थ सिंघल को सुना गया।

2. संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत दायर इस याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता ने प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा घोषित/प्रकाशित दिनांक 22.09.2024 के चयन परिणाम को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण रिट के लिए प्रार्थना की है, जिसमें यह दलील दी गई है कि मामले में आयोजित लिखित परीक्षा में लागू किए गए नार्मलाइजेशन नियम 22.05.2019 को जारी अधिसूचना के मद्देनजर उचित कार्रवाई नहीं थी, जिसमें विशेष रूप से कुछ विज्ञापनों का हवाला दिया गया था जिसके अनुसार उस समय चयन चल रहा था।

3. यह कहा गया है कि ग्राम पंचायत अधिकारी, ग्राम विकास अधिकारी एवं समाज कल्याण परिरक्षक के पदों के लिए विज्ञापन संख्या 2-परीक्षा 2018 जारी किया गया था और यदि सरकार का नार्मलाइजेशन नियम लागू करने का इरादा होता, तो दिनांक 22.05.2019 के विज्ञापन में इसका उल्लेख किया जाना चाहिए था। अतः यह तर्क दिया गया है कि नार्मलाइजेशन नियमों के आधार पर प्रकाशित संपूर्ण परिणाम निरस्त किए जाने योग्य है।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्कों का उत्तर देते हुए श्री सिंघल ने तर्क दिया कि यद्यपि यह विज्ञापन वर्ष 2018 में जारी किया गया था, लेकिन प्रारंभिक चयन प्रक्रिया 22.05.2019 की अधिसूचना जारी होने से पहले ही समाप्त हो चुकी थी। हालाँकि, चूँकि राज्य सरकार द्वारा कुछ समय बाद ही चयन प्रक्रिया रद्द कर दी गई थी, इसलिए नए सिरे से लिखित परीक्षा आयोजित की जानी आवश्यक थी और इसलिए लिखित परीक्षा 26.06.2023 को आयोजित की गई और इसी कारण से उक्त विज्ञापन का उल्लेख 22.05.2019 की अधिसूचना में नहीं हो सका। यह तर्क दिया गया है कि यदि सरकार ने चयन प्रक्रिया को रद्द नहीं किया होता, तो चयन वर्ष 2018 में ही पूरा हो गया होता और नए सिरे से लिखित परीक्षा आयोजित करने और नार्मलाइजेशन नियम लागू करने का प्रश्न ही नहीं उठता। यह भी तर्क दिया गया है कि चूँकि चयन प्रक्रिया को रद्द कर दिया गया था और नए सिरे से लिखित परीक्षा वर्ष 2019 के बाद आयोजित की गई थी, इसलिए दिनांक 22.05.2019 की अधिसूचना के अंतिम पैराग्राफ के मद्देनजर और चूँकि लिखित परीक्षा एक से अधिक पालियों में आयोजित की गई थी, नार्मलाइजेशन नियम को अपनाया और लागू किया गया, इसलिए अपनाई गई प्रक्रिया में कोई त्रुटि नहीं थी।

5. संबंधित पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने और अभिलेखों का अवलोकन करने के बाद मैंने पाया कि दिनांक 22.05.2019 की अधिसूचना में विज्ञापन संख्या 2-परीक्षा 2018 का कोई उल्लेख नहीं है, लेकिन याचिकाकर्ता के अधिवक्ता इस बात पर विवाद नहीं कर सके कि उक्त विज्ञापन के अनुसरण में की गई चयन प्रक्रिया को दिनांक 22.05.2019 की अधिसूचना की तिथि से पहले ही रद्द कर दिया गया था। ऐसी परिस्थितियों में, आयोग लिखित परीक्षा आयोजित करने हेतु नई अधिसूचना जारी करने के लिए उत्तरदायी था और तदनुसार,

जिन उम्मीदवारों ने विज्ञापन के अनुसार पहले आवेदन किया था, उन्हें 26.06.2023 को आयोजित लिखित परीक्षा में भाग लेने की अनुमति दी गई। 22.05.2019 की अधिसूचना का अंतिम पैराग्राफ, जो यहाँ प्रासंगिक हो गया है, नीचे पुन: प्रस्तुत है:

"उल्लेखनीय है कि आयोग के आगामी विज्ञापनों के सापेक्ष प्राप्त आवेदन पत्रों की संख्या के अनुसार जहाँ एक से अधिक शिफ्टों में परीक्षा आयोजित की जाएगी, उन परीक्षाओं पर उक्त नार्मलाइजेशन प्रक्रिया लागू की जा सकेगी। आयोग द्वारा लागू की गयी नार्मलाइजेशन प्रक्रिया का सूत्र (formul) सुलभ सन्दर्भ हेतु संलग्न।"

6. उपर्युक्त पैराग्राफ को पढ़ने से यह पता चलता है कि आयोग का इरादा ऐसी सभी लिखित परीक्षाओं में नार्मलाइजेशन नियम लागू करने का है जो या तो 22.05.2019 की अधिसूचना के तहत अधिसूचित हैं या भविष्य में आयोजित की जानी हैं जहां परीक्षाएं दो पालियों में आयोजित की जानी हैं। मेरे विचार से, जब तक नार्मलाइजेशन नियमों पर ही त्रुटिपूर्ण होने का प्रश्न नहीं उठाया जाता, तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि आयोग ने दिनांक 22.05.2019 की अधिसूचना के अनुसार भविष्य की सभी परीक्षाओं में नार्मलाइजेशन नियमों को लागू करने में गलती की है।

7. अन्यथा भी, उद्देश्य को देखते हुए, मैं पाता हूं कि नार्मलाइजेशन नियम विभिन्न प्रश्नपत्रों में पूछे गए विभिन्न प्रश्नों के कारण तथा अभ्यर्थियों के साथ न्याय करने के लिए लागू किए गए हैं, क्योंकि प्रश्न कुछ मायनों में कठिन और अन्य मायनों में आसान हो सकते हैं, इसलिए योग्यता सूची बनाने के प्रयोजनों के लिए एक संतुलन बनाया जाना चाहिए। मेरे समक्ष इस बात पर कोई तर्क नहीं दिया गया कि नार्मलाइजेशन नियम खराब क्यों है और इसलिए इसे लागू नहीं किया जाना चाहिए था। मेरे विचार से, चूँकि लिखित परीक्षा 22.05.2019 की अधिसूचना के बाद आयोजित की गई थी, इसलिए आयोग द्वारा संबंधित परीक्षा में नार्मलाइजेशन लागू करना पूरी तरह से उचित था।

8. याचिका में कोई मेरिट नहीं है और तदनुसार इसे खारिज किया जाता है।

(2025) 4 ILRA 253

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद, 25.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी

रिट ए सं. 21727 सन् 2023

बिनय कुमार सिंह एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता: सरोज कुमार यादव, वरिष्ठ अधिवक्ता

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता : सी.एस.सी.

1. सेवा कानून-भारत का संविधान, 1950- अनुच्छेद 226-उत्तर प्रदेश परिवहन (अधीनस्थ) तकनीकी सेवा नियमावली, 1980 - उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक वरिष्ठता नियमावली, 1991 - उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों का आरक्षण) अधिनियम, 1994-धारा 3(7) - उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक वरिष्ठता (प्रथम संशोधन) नियमावली, 2002-नियम 8ए- यह निर्विवाद है कि याचिकाकर्ता अधिनियम, 1994 की धारा 3(7) के साथ-साथ नियमावली, 1991 के नियम 8ए अर्थात पदोन्नति में आरक्षण लागू होने से पहले भर्ती के समय वरिष्ठ थे, वे चयन वर्ष 2007-08 और 2008-09 के लिए पदोन्नति के हकदार हैं, जिसके लिए उनसे कनिष्ठ अर्थात अनुसूचित जाति श्रेणी के उम्मीदवारों को 31.12.2008 दिनांकित आदेश के तहत पदोन्नत किया गया है। ऐसी स्थिति में, वे वरिष्ठता सूची में क्रम सं. 196 और 197 पर अपना नाम पाने के भी हकदार थे, जो पहले एस.सी. श्रेणी के अभ्यर्थियों को दी जाती थी। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक वरिष्ठता (प्रथम संशोधन) नियमावली, 2002 (नियम 8ए को सम्मिलित करते हुए) में संशोधन से पूर्व, याचिकाकर्ता चयन वर्ष 2007-08 और 2008-09 के लिए क्रम सं. 196 और 197 पर वरिष्ठता के साथ अनुसूचित जाति श्रेणी के अभ्यर्थियों से पहले पदोन्नति के हकदार हैं।

2. मामले के तथ्यों के आलोक में, विशेष रूप से तीन सदस्यीय समिति की दिनांक 2.2.2023 की सिफारिश और परिवहन आयुक्त के दिनांक 21.7.2023 के स्पष्टीकरण से यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ताओं को नोशनल वरिष्ठता प्रदान करने में, दिनांक 21.8.2015 के शासनादेश को छोड़कर कोई कानूनी बाधा नहीं है, जो यह प्रावधान करता है कि अनारक्षित श्रेणी के उम्मीदवार अपनी वरिष्ठता के आधार पर कोई अतिरिक्त परिलब्धियां या व्यक्तिगत वेतन का दावा नहीं करेंगे, अन्यथा याचिकाकर्ता वरिष्ठता सूची में क्रम सं. 196 और 197 पर चयन वर्ष 2007-08 और 2008-09 के लिए नोशनल वरिष्ठता के लिए पूरी तरह से हकदार हैं --- इस न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ताओं ने हलफनामा दिया है कि वे 21.8.2015 के शासनादेश के अनुसार किसी अतिरिक्त परिलब्धियों या विशेष वेतन का दावा नहीं करेंगे --- प्रत्यर्थीगण को निर्देश दिया जाता है कि वे याचिकाकर्ताओं को वरिष्ठता सूची में क्रम सं. 196 और 197 पर रखते हुए उन्हें सभी परिणामी लाभ सहित नोशनल वरिष्ठता प्रदान करें ।

याचिका स्वीकृत। (अनुच्छेद 16, 23, 24 और 26) (ई-15)

<u>संदर्भित मामलों की सूची:</u>

1. उत्तर प्रदेश पावर कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम राजेश कुमार एवं अन्य (2012) 7 एससीसी 1

(माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी द्वारा प्रस्तुत)

1. याचिकाकर्ताओं के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एच.एन. सिंह एवं उनके सहयोगी अधिवक्ता श्री सरोज कुमार यादव और राज्य प्रत्यर्थीगण के विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता को सुना गया।

2. वर्तमान याचिका निम्नलिखित प्रार्थनाओं के साथ दायर की गई है:-

"(i) प्रमुख सचिव, परिवहन विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ द्वारा पारित दिनांक 21.11.2023 के आक्षेपित आदेश को निरस्त करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक उपयुक्त रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।

(ii) प्रत्यर्थीगण को आदेश देने के लिए परमादेश की प्रकृति में एक उपयुक्त रिट, आदेश या निर्देश जारी करें कि वे याचिकाकर्ताओं के नामों को सहायक क्षेत्रीय परिवहन अधिकारी की वरिष्ठता सूची के क्रम सं. 196 और 197 पर मानते हुए उस तिथि से पदोन्नत करें, जिस तिथि से 196 और 197 के बाद वरिष्ठता में नीचे के अन्य सहायक क्षेत्रीय परिवहन अधिकारी को पदोन्नत किया गया है।

(iii) प्रत्यर्थीगण को आदेश देने के लिए परमादेश की प्रकृति में एक उपयुक्त रिट, आदेश या निर्देश जारी करें, कि याचिकाकर्ताओं को सहायक क्षेत्रीय परिवहन अधिकारी की वरिष्ठता सूची के क्रम सं. 196 और 197 पर रखें और इसके परिणामस्वरूप सभी लाभ प्रदान करें।"

3. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग ने क्षेत्रीय निरीक्षक (तकनीकी)/तकनीकी निरीक्षक के पद पर नियुक्ति हेतु विज्ञापन जारी किया है। विज्ञापन के अनुसार, याचिकाकर्ताओं को अनुसूचित जाति वर्ग के 5 अभ्यर्थियों, अर्थात् सतीश कुमार, आनंद निर्मल, अशोक कुमार, मुंशी लाल और राजेश कर्दम सहित 12 अन्य अभ्यर्थियों के साथ उक्त पद पर चयन हेतु अनुशंसित किया गया। क्षेत्रीय निरीक्षक (तकनीकी)/तकनीकी निरीक्षक के पद पर कार्यभार ग्रहण करने के पश्चात, याचिकाकर्ता सं. 1 को वरिष्ठता सूची में क्रम सं. 61 पर तथा याचिकाकर्ता सं. 2 को क्रम सं. 62 पर रखा गया, जबकि अनुसूचित जाति वर्ग के अभ्यर्थी सतीश कुमार, आनंद निर्मल, अशोक कुमार, मुंशी लाल तथा राजेश कर्दम को क्रम सं. 65, 67, 71, 72, 73 पर रखा गया।

4. याचिकाकर्ताओं की सेवा शर्तें उत्तर प्रदेश परिवहन (अधीनस्थ) प्राविधिक सेवा नियमावली, 1980 (एसत्मिनपश्चात नियमावली, 1980 के रूप में संदर्भित) के प्रावधानों द्वारा शासित हैं। याचिकाकर्ताओं की वरिष्ठता उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक वरिष्ठता नियमावली, 1991 (एसत्मिनपश्चात नियमावली, 1991 के रूप में संदर्भित) के प्रावधानों द्वारा शासित होगी। आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थी भी उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों का आरक्षण) अधिनियम, 1994 (एसत्मिनपश्चात अधिनियम, 1994 के रूप में संदर्भित) के अनुसार पदोन्नति का लाभ पाने के हकदार हैं।

5. उत्तर प्रदेश राज्य ने अधिनियम, 1994 के अनुसार, उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक वरिष्ठता (प्रथम संशोधन) नियमावली, 2002 (नियम 8ए को सम्मिलित करते हुए) द्वारा नियमावली, 1991 को संशोधित किया, जो

पदोन्नति के बाद अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति श्रेणी के अभ्यर्थियों को परिणामी वरिष्ठता प्रदान करती है। पदोन्नति में आरक्षण का लाभ प्रदान करते हुए याचिकाकर्ताओं से कनिष्ठ, अर्थात् सतीश कुमार, आनन्द निर्मल, अशोक कुमार, मुंशी लाल और राजेश कर्दम को चयन वर्ष 2007-08 और 2008-09 के लिए दिनांक 31.12.2008 के आदेश द्वारा वरिष्ठता सहित एआरटीओ के पद पर पदोन्नति दी गई और उन्हें वरिष्ठता सूची में क्रम सं. 196 से 200 पर रखा गया है। तत्पश्चात, याचिकाकर्ता सं. 1 और 2 को भी दिनांक 21.11.2012 और 8.4.2013 के आदेशों द्वारा सहायक क्षेत्रीय परिवहन अधिकारी (संक्षेप में एआरटीओ) के पद पर पदोन्नत किया गया और उन्हें वरिष्ठता सूची में क्रम सं. 227 और 229 पर रखा गया है।

6. अधिनियम, 1994 की धारा 3(7) और नियमावली, 1991 के नियम 8ए को इस उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई और अंततः मामला ***उत्तर प्रदेश पावर कॉरपोरेशन लिमिटेड बनाम राजेश कुमार और अन्य (2012) 7 एससीसी 1*** के रूप में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष आया, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने 27.4.2012 के निर्णय और आदेश के तहत अधिनियम, 1994 की धारा 3(7) और नियमावली, 1991 के नियम 8ए को विधि विरुद्ध घोषित किया।

7. सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के अनुपालन हेतु, राज्य सरकार ने दिनांक 08.05.2012 और 21.8.2015 के शासनादेश जारी किए हैं। उपर्युक्त शासनादेशों द्वारा, अनुसूचित जाति वर्ग के अभ्यर्थियों को दिया गया वरिष्ठता का लाभ वापस ले लिया गया है और उन्हें वरिष्ठता सूची में उन अनारक्षित वर्ग के अभ्यर्थियों से नीचे कर दिया गया है जो वरिष्ठ थे और बाद में पदोन्नत हुए थे। शासनादेश दिनांकित 21.8.2015 में प्रावधान है कि अनारक्षित वर्ग के अभ्यर्थी अपनी वरिष्ठता के आधार पर किसी अतिरिक्त परिलब्धियों या वैयक्तिक वेतन का दावा नहीं करेंगे।

8. प्रमुख सचिव परिवहन, अनुभाग-3, लखनऊ ने दिनांक 9.9.2015 के आदेश द्वारा उन अभ्यर्थियों, अर्थात् सतीश कुमार, आनंद निर्मल, अशोक कुमार, मुंशी लाल और राजेश कर्दम, जिन्हें पहले पदोन्नति में आरक्षण का लाभ दिया गया था, को पद से वापस कर दिया। तत्पश्चात, दिनांक 27.1.2016 के आदेश द्वारा उनकी नई वरिष्ठता निर्धारित करते हुए क्रम सं. 231ए, 232ए, 235ए, 235बी एवं 235सी पर रखा गया है।

9. याचिकाकर्ताओं की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया कि उपरोक्त तथ्यों के आलोक में, अब वरिष्ठता सूची में क्रम सं. 196 से 200 तक के पद रिक्त हो गए हैं और अभी भी रिक्त हैं। निस्संदेह, याचिकाकर्ता अनुसूचित जाति वर्ग के समान अभ्यर्थियों, अर्थात् सतीश कुमार, आनंद निर्मल, अशोक कुमार, मुंशी लाल और राजेश कर्दम से वरिष्ठ हैं, इसलिए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसार, वे चयन वर्ष 2007-08 और 2008-09 की रिक्तियों के सापेक्ष, अपने से कनिष्ठ अभ्यर्थियों की पदोन्नति की तिथि अर्थात 31.12.2008 से पदोन्नति के हकदार हैं। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अनुपालन के पश्चात, उनसे कनिष्ठों को वरिष्ठता सूची में नीचे रखा गया था, तथा याचिकाकर्ताओं को उनके पात्रता की तिथि अर्थात 31.12.2008 से नोशनल वरिष्ठता प्रदान नहीं की गई है। उन्होंने यह भी बताया कि याचिकाकर्ता 21.08.2015 के शासनादेश

अनुवादित

के आलोक में किसी अतिरिक्त परिलब्धियों या व्यक्तिगत वेतन का दावा नहीं कर रहे हैं, बल्कि केवल नोशनल वरिष्ठता का दावा कर रहे हैं।

10. उन्होंने आगे दलील दी कि एआरटीओ के पद पर नियुक्ति के लिए तीन फीडिंग कैडर हैं, जिनमें से 50% सीधी भर्ती से और 50% पदोन्नति से होती हैं। इसके अलावा, 50% पदोन्नति में से 25% क्षेत्रीय निरीक्षक (तकनीकी) से और 25% यात्री/माल कर अधिकारी से होती है। उन्होंने यह भी बताया कि 31.12.2008 से 21.11.2012 के बीच अन्य फीडिंग कैडर से एआरटीओ के पद पर नियुक्ति/पदोन्नति की गई और वे याचिकाकर्ताओं से वरिष्ठ हो गए। नोशनल वरिष्ठता के बिना, वे अगले उच्च पद अर्थात क्षेत्रीय परिवहन अधिकारी (एतस्मिनपश्चात आर.टी.ओ. के रूप में संदर्भित) पर पदोन्नति से वंचित रह जाते हैं। इसलिए, याचिकाकर्ता ने लखनऊ पीठ के समक्ष रिट-ए सं. 5956 सन् 2022 दायर करके इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया, जिसे 14.9.2022 के आदेश द्वारा वापस लिया मानते हुए खारिज कर दिया गया और नई याचिका दायर करने की छूट दी गई। इसके बाद, याचिकाकर्ताओं ने इस न्यायालय के समक्ष एक और रिट-ए सं. 16767 सन् 2023 दायर की, जिसका निस्तारण 12.10.2023 के आदेश द्वारा राज्य सरकार को याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन पर निर्णय लेने के निर्देश के साथ किया गया। याचिकाकर्ताओं ने 12.10.2023 के आदेश की प्रमाणित प्रति के साथ अभ्यावेदन प्रस्तुत किया था।

11. अभ्यावेदन प्राप्त होने के पश्चात्, राज्य सरकार ने अपने आदेश दिनांकित 13.5.2023 द्वारा परिवहन आयुक्त से आख्या तलब की। तत्पश्चात, तीन सदस्यीय समिति गठित की गई तथा अपर संभागीय परिवहन आयुक्त (प्रशासन/प्रवर्तन) ने अपने पत्र दिनांक 9.2.2023 के साथ तीन सदस्यीय समिति की आख्या दिनांक 2.2.2023 को प्रमुख सचिव, उत्तर प्रदेश शासन के समक्ष प्रस्तुत की, जिसमें चयन वर्ष 2007-08 एवं 2008-09 के रिक्त पदों के सापेक्ष याचिकाकर्ताओं एवं तीन अन्य कर्मचारियों को नोशनल वरिष्ठता प्रदान करने की संस्तुति की गई। उक्त रिपोर्ट प्राप्त होने के पश्चात्, संयुक्त सचिव, परिवहन अनुभाग-3, लखनऊ ने अपने आदेश दिनांकित 3.5.2023 द्वारा तीन सदस्यीय समिति की संस्तुति के क्रियान्वयन के संबंध में छः प्रश्न उठाए हैं। परिवहन आयुक्त द्वारा दिनांक 21.7.2023 के पत्र द्वारा उक्त पत्र का उत्तर दिया गया, जिसमें चयन वर्ष 2007-08 एवं 2008-09 के सापेक्ष क्रमांक 196, 197 पर नोशनल वरिष्ठता प्रदान करने हेतु तीन सदस्यीय समिति की संस्तुति को उचित ठहराया गया, किन्तु याचिकाकर्ता के क्रमांक 196 एवं 197 पर नोशनल वरिष्ठता के आश्चर्यजनक दावे को दिनांक 21.11.2023 के आक्षेपित आदेश द्वारा अस्वीकार कर दिया गया। दिनांक 21.11.2023 के आक्षेपित आदेश में, याचिकाकर्ताओं के पक्ष में तीन सदस्यीय समिति की सिफारिश के साथ-साथ परिवहन आयुक्त के स्पष्टीकरण पर विवाद नहीं किया गया है, लेकिन केवल आधार यह लिया गया है कि उन्हें दिनांक 21.8.2015 के शासनादेश के अनुसार कोई अतिरिक्त परिलब्धियां या विशेष वेतन नहीं दिया जा सकता है और चयन वर्ष 2007-08 और 2008-09 के लिए नोशनल वरिष्ठता नहीं दी जा सकती है।

12. उन्होंने दृढ़ता से दलील दी कि याचिकाकर्ता न्यायालय के समक्ष वचनबद्ध हैं कि नोशनल वरिष्ठता प्रदान किए जाने की स्थिति में वे 21.8.2015 के शासनादेश के अनुसार किसी भी अतिरिक्त परिलब्धियों या विशेष

वेतन का दावा नहीं करेंगे। उन्होंने आगे बताया कि तीन सदस्यीय समिति की अनुशंसा के अनुसार, क्रमांक 196 और 197 पर याचिकाकर्ताओं की वरिष्ठता का पुनर्निर्धारण न किए जाने के कारण, याचिकाकर्ताओं को अपूरणीय क्षति हो रही है क्योंकि वे उन अभ्यर्थियों से कनिष्ठ हो गए हैं जिन्हें 31.12.2008 से 21.11.2022 के बीच अन्य फीडिंग संवर्ग से एआरटीओ के पद पर नियुक्त/पदोन्नत किया गया था और वे अगले उच्च पद अर्थात आरटीओ पर पदोन्नति से वंचित रह गए।

13. उन्होंने यह भी बताया कि हाल ही में एआरटीओ के पद पर नोशनल पदोन्नति हेतु, प्रमुख सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार ने सचिव, उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग को दिनांक 21.1.2025 को पत्र लिखकर उसी विभाग में यात्री/माल कर अधिकारी के पद पर कार्यरत अधिकारियों को नोशनल पदोन्नति प्रदान करने का अनुरोध किया है। उन्होंने पत्र सं. प्र.म. 142/तीस-3-2024 दिनांकित 21.1.2025 प्रस्तुत किया है, जिसे अभिलेख में दर्ज कर लिया गया है।

14. विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने दलील का विरोध किया तथा कहा कि दिनांक 21.8.2015 के शासनादेश के अनुसार याचिकाकर्ता परिलब्धियों या विशेष वेतन के हकदार नहीं हैं, इसलिए उन्हें नोशनल पदोन्नति प्रदान नहीं की जा सकती।

15. न्यायालय द्वारा आपत्ति किए जाने पर, वे इस तथ्य पर विवाद नहीं कर सके कि क्रम सं. 196 से 200 तक की वरिष्ठता सूची अभी भी रिक्त है और यदि याचिकाकर्ताओं को नोशनल वरिष्ठता प्रदान की जाती है, तो किसी अन्य कार्मिक की वरिष्ठता प्रभावित नहीं होगी। एआरटीओ के पद के लिए तीन फीडिंग कैडर हैं और इसके अतिरिक्त, तीन सदस्यीय समिति की सकारात्मक अनुशंसा के साथ-साथ परिवहन आयुक्त का स्पष्टीकरण भी याचिकाकर्ताओं के पक्ष में नोशनल पदोन्नति प्रदान करने के आशय का है। वे प्रमुख सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा सचिव, उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग को दिनांक 21.1.2025 को लिखे गए पत्र पर भी विवाद नहीं कर सके, जिसमें यात्री/माल कर अधिकारी के पद पर कार्यरत सभी अधिकारियों को एआरटीओ के पद पर नोशनल पदोन्नति प्रदान करने का अनुरोध किया गया था।

16. मैंने दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत प्रतिद्वंदी तर्कों पर विचार किया है और अभिलेख का अवलोकन किया है। यह निर्विवाद है कि याचिकाकर्ता अधिनियम, 1994 की धारा 3(7) और नियमावली, 1991 के नियम 8ए, अर्थात् पदोन्नति में आरक्षण, के लागू होने से पहले भर्ती के समय वरिष्ठ थे। वे चयन वर्ष 2007-08 और 2008-09 के लिए पदोन्नति के हकदार हैं, जिसके लिए उनसे कनिष्ठ अर्थात अनुसूचित जाति वर्ग के अभ्यर्थियों को दिनांक 31.12.2008 के आदेश द्वारा पदोन्नत किया गया है। ऐसी स्थिति में, वे वरिष्ठता सूची, क्रमांक 196 और 197 में भी अपना नाम पाने के हकदार थे, जो पहले अनुसूचित जाति वर्ग के अभ्यर्थियों को दी गई थी। प्रति-शपथपत्र में इस तथ्य से इनकार नहीं किया गया है कि उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक वरिष्ठता (प्रथम संशोधन) नियमावली, 2002 (नियम 8क का समावेश) में संशोधन से पूर्व, याचिकाकर्ता

चयन वर्ष 2007-08 और 2008-09 में अनुसूचित जाति वर्ग के अभ्यर्थियों से पहले क्रम सं. 196 और 197 पर वरिष्ठता के साथ पदोन्नति के हकदार थे।

17. मैंने दिनांक 2.2.2023 को प्रस्तुत तीन सदस्यीय समिति की रिपोर्ट और दिनांक 9.2.2023 के पत्र की अनुशंसा का अवलोकन किया है। इसका प्रासंगिक अंश नीचे उद्धृत किया जा रहा है:-

"अतः समिति का यह सुविचारित मत ह कि मा० सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 27.04.2012 के समादर में पदोन्नति में आरक्षण एवं परिणामी ज्येष्ठता का लाभ प्राप्त कर दिनांक 15.11.1997 से 28.04.2012 तक प्रोन्नत कर्मियो (श्री सतीश कुमार, श्री आनन्द निर्मल, श्री अशोक कुमार, श्री मुंशीलाल एवं श्री राजेश कदम) के पदावनत हो जाने से उक्त चयन वर्ष 2007-08 एवं 2008-09 में रिक्त 05 पदो के सापेक्ष श्री विनय कुमार सिंह व श्री सत्येन्द्र प्रकाश सिंह एवं अन्य 03 कार्मिको का चयन सहायक सम्भागीय परिवहन अधिकारी के पद पर करते हुए नियमानुसार ज्येष्ठता का निर्धारण शासन स्तर पर विचार कर किया जा सकता है।"

18. उपरोक्त रिपोर्ट के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ताओं और तीन अन्य व्यक्तियों के पक्ष में वरिष्ठता प्रदान करने की स्पष्ट सिफारिश की गई है।

19. रिपोर्ट प्राप्त होने के पश्चात्, राज्य सरकार ने परिवहन आयुक्त से छह प्रश्न पूछे तथा तत्पश्चात, परिवहन आयुक्त ने दिनांक 21.7.2023 को छह प्रश्नों के विशिष्ट उत्तर दिए। प्रश्नों का प्रासंगिक उत्तर नीचे उद्धृत किया जा रहा है:-

प्रस्तावित ज्येष्ठता निर्धारित किये जाने फलस्वरूप किसी अन्य कार्मिक की ज्येष्ठता प्रभावित तो नही होगी।	शासन के कार्यालय आदेश सं. '1482/30-3-14-73 जीडब्लू/1990, दि. 05.06.2014 द्वारा सीधी भर्ती / पदोन्नति से नियुक्त सहायक सम्भागीय परिवहन अधिकारी की ज्येष्ठता सूची निर्धारित की गयी। उक्त ज्येष्ठता सूची में चयन वर्ष 2007-08 एवं 2008-09 में संभागीय निरीक्षक (प्राविधिक) कोटे से चयनित कार्मिकों की ज्येष्ठता क्रमशः श्री सतीश कुमार (अनु०जा०) (ज्येष्ठता क्रमांक-196), श्री आनन्द निर्मल (अनु०जा०) (ज्येष्ठता क्रमांक- 197), श्री अशोक कुमार (अनु०जा०) (ज्येष्ठता कमांक- 198), श्री मुंशी लाल (अनु०जा०) (ज्येष्ठता कमांक- 199) एवं श्री राजेश कुमार (अनु०जा०) (ज्येष्ठता कमांक- 200) निर्धारित की गयी तथा श्री विनय कुमार सिह की ज्येष्ठता-227 एवं श्री सत्येन्द्र प्रकाश सिंह की ज्येष्ठता-229 निर्धारित की गयी।

अनुवादित

	पुनः पदावनति कार्मिकों में से सम्भागीय निरीक्षक संवर्ग के श्री सतीश कुमार, श्री आनन्द निर्मल, श्री अशोक कुमार, श्री मुंशीलाल एवं श्री राजेश कर्दम, जोकि संभागीय निरीक्षक (प्राविधिक) के पद से सहायक सम्भागीय परिवहन अधिकारी के पद पर पदोन्नति हुए थे। उ० प्र० शासन, परिवहन अनुभाग-3 के कार्यालय-आदेश सं0-1482/ 30-3-2014-73जीडब्लू / 90, दि० 05.06.2014 द्वारा जारी सहायक सम्भागीय परिवहन अधिकारी संवर्ग की ज्येष्ठता सूची को श्री सतीश कुमार, श्री आनन्द निर्मल, श्री अशोक कुमार, श्री मुंशीलाल एवं श्री राजेश कर्दम के पदावनति के उपरान्त उ० प्र० शासन, परिवहन अनुभाग-3 के कार्यालय-ज्ञाप सं0-178/ 30-3-16-73 जीडब्लू/'90, दि० 27.01.2016 द्वारा संशोधन करते हुए उक्त कार्मिकों की ज्येष्ठता क्रमशः श्री सतीश कुमार (अनु०जा०) (ज्येष्ठताः कमांक-231ए), श्री आनन्द निर्मल (अनु०जा०) (ज्येष्ठता कमांक- 232ए), श्री अशोक कुमार (अनु०जा०) (ज्येष्ठता क्रमांक- 235ए) श्री मुंशी लाल (अनु०जा०) (ज्येष्ठता 255 एवं श्री राजेश कुमार (अन्नु0जा0) (वरिष्ठता क्रमांक 235सी) निर्धारित की गयी। उक्त कार्मिकों की ज्येष्ठता नवीन निर्धारित हो जाने से ज्येष्धता क्रमांक 106 से 200 सक वर्तमान में किन्त्री कार्मिक की ज्येष्ठता निर्धारित नहीं है। दिनाँक 11.01.2023 की समिति द्वारा बैठक कर उपलब्ध कराई गयी कार्यवृत्त के अनुसार भयम वर्ष 2007-00 पूर्व 2008-09 में रिक्त 05 पदों के सापेक्ष श्री विनय कुमार सिंह ये श्री सत्येन्द्र प्रकारा सिंह एवं अन्य ०३ कार्मिकों का चयन सहायक सम्भागीय परिवहन अधिकारी क पद पर नियमानुसार पदौन्नति कप ज्येष्ठता 196 से 200 तक निर्धारण की जाने हेतु अपना अभिमत दिया गया है। अतः किसी अन्य कार्मिक की ज्येष्ठना प्रभावित नही होगी।

अनुवादित

20. उपरोक्त उत्तर के अवलोकन से परिवहन आयुक्त का स्पष्टीकरण भी याचिकाकर्ताओं और तीन अन्य व्यक्तियों के पक्ष में है, जिसमें विशेष रूप से कहा गया है कि वरिष्ठता सूची में क्रम सं. 196 से 200 तक का स्थान अभी भी रिक्त है और नोशनल वरिष्ठता प्रदान करने के बाद, किसी अन्य कार्मिक की वरिष्ठता प्रभावित नहीं होगी।

21. मैंने प्रति-शपथपत्र और आक्षेपित आदेश का अवलोकन किया है। तीन सदस्यीय समिति की रिपोर्ट और परिवहन आयुक्त के स्पष्टीकरण में उल्लिखित तथ्यों के बारे में कोई खंडन या विवाद नहीं है। इसका एकमात्र कारण यह दिया गया है कि दिनांक 21.8.2015 के शासनादेश के अनुसार, याचिकाकर्ता किसी भी अतिरिक्त परिलब्धियों या विशेष वेतन के हकदार नहीं हैं, इसलिए चयन वर्ष 2007-08 और 2008-09 के लिए नोशनल वरिष्ठता प्रदान नहीं की जा सकती।

22. इसके अतिरिक्त, यह पहली बार नहीं है जब विभाग के किसी अधिकारी द्वारा नोशनल वरिष्ठता का दावा किया गया हो। दिनांक 21.1.2025 के पत्र द्वारा, प्रमुख सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार ने सचिव, उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग को विभाग के कुछ अधिकारियों, जो यात्री/माल कर अधिकारी के पद पर कार्यरत थे, को एआरटीओ के पद पर नोशनल पदोन्नति प्रदान करने के लिए पत्र लिखा है। अतः, उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में, याचिकाकर्ताओं को भी नोशनल वरिष्ठता और पदोन्नति का परिणामी लाभ प्रदान करने में कोई विधिक बाधा नहीं है।

23. मामले के तथ्यों, विशेषकर तीन सदस्यीय समिति की दिनांक 2.2.2023 की अनुशंसा तथा परिवहन आयुक्त के दिनांक 21.7.2023 के स्पष्टीकरण के आलोक में यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ताओं को नोशनल वरिष्ठता प्रदान करने में, दिनांक 21.8.2015 के शासनादेश को छोड़कर कोई विधिक बाधा नहीं है, जिसमें यह प्रावधान है कि अनारक्षित श्रेणी के अभ्यर्थी अपनी वरिष्ठता के आधार पर किसी अतिरिक्त परिलब्धियों या वैयक्तिक वेतन का दावा नहीं करेंगे, अन्यथा याचिकाकर्ता चयन वर्ष 2007-08 एवं 2008-09 के लिए वरिष्ठता सूची में क्रम सं. 196 एवं 197 पर नोशनल वरिष्ठता के पूर्णतः हकदार हैं।

24. अब वर्तमान मामले पर आते हैं, इस न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ताओं ने वचन दिया है कि वे दिनांक 21.8.2015 के शासनादेश के अनुसार किसी भी अतिरिक्त परिलब्धियों या विशेष वेतन का दावा नहीं करेंगे और तथ्यों के प्रकाश में कि वरिष्ठता सूची में क्रम सं. 196 से 200 अभी भी रिक्त हैं और उपरोक्त वरिष्ठता प्रदान करने में किसी अन्य कार्मिक की वरिष्ठता प्रभावित नहीं होगी, इसलिए, याचिकाकर्ता नोशनल वरिष्ठता के लिए पूरी तरह से हकदार हैं और आक्षेपित आदेश द्वारा इससे इनकार करना पूरी तरह से गलत है और अपास्त किए जाने योग्य है।

25. अतः, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, दिनांक 21.11.2023 का आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है और रिट याचिका **स्वीकार** की जाती है। लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

26. प्रत्यर्थीगण को निर्देश दिया जाता है कि वे याचिकाकर्ताओं को वरिष्ठता सूची में क्रम सं. 196 और 197 पर रखते हुए, उन्हें सभी परिणामी लाभों सहित नोशनल वरिष्ठता प्रदान करें। यह भी निर्देश दिया जाता है कि नोशनल वरिष्ठता निर्धारण के बाद, यदि अगले उच्च पद पर पदोन्नति होनी है, तो पदोन्नति की प्रक्रिया भी पूरी की जाए।

27. उपर्युक्त प्रक्रिया इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से अधिकतम दो माह की अवधि के भीतर पूरी की जाएगी।

28. यह स्पष्ट किया जाता है कि याचिकाकर्ता नोशनल वरिष्ठता प्रदान किए जाने के बाद दिनांक 21.8.2015 के शासनादेश में दिए गए किसी भी अतिरिक्त परिलब्धियों या विशेष वेतन का दावा नहीं करेंगे।

(2025) 4 ILRA 260

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद, 11.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान

रिट ए सं. 23727 सन् 2018

योगेंद्र गिरि **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...प्रत्यर्थी**

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता: मीनाक्षी सिंह परिहार, अनवर अशरफ

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता : सी.एस.सी., आलोक शर्मा, राकेश कुमार चौधरी

सेवा कानून-भारत का संविधान, 1950- अनुच्छेद 226 - उत्तर प्रदेश सहकारी समिति कर्मचारी सेवा विनियमावली, 1975 - विनियम 85- 'सबलाटो फंडामेंटो कैडिट ओपस'--- जाँच अधिकारी/ जाँच रिपोर्ट के निष्कर्ष अपास्त/निरस्त किए जाने योग्य हैं क्योंकि विभागीय जाँच मौखिक जाँच के लिए तिथि, समय और स्थान निर्धारित किए बिना और याचिकाकर्ता को सुनवाई का पर्याप्त अवसर दिए बिना की गई और समाप्त की गई है---आक्षेपित आदेश का मूल आधार दोषपूर्ण जाँच रिपोर्ट पर आधारित है जो कानून की दृष्टि में टिकने योग्य नहीं है, इसलिए, आक्षेपित आदेश अपास्त/निरस्त किए जाने योग्य है।--- आक्षेपित आदेश ***"सबलाटो फंडामेंटो कैडिट ओपस"*** के

सिद्धांत के आधार पर रद्द किया गया है, जिसका अर्थ है कि यदि किसी संरचना की नींव ही गिर जाती है, तो उस पर निर्मित अधिरचना भी गिर जाएगी।

रिट याचिका स्वीकृत। (पैरा 19) (ई-15)

<u>संदर्भित मामलों की सूची-</u>

1.उ.प्र. कोऑपरेटिव फेडरेशन लिमिटेड एवं अन्य बनाम एल.पी. राय, (2007) 7 एससीसी 81

2. रूप सिंह नेगी बनाम पंजाब नेशनल बैंक एवं अन्य, (2009) 2 एससीसी 570

3. उ.प्र. राज्य एवं अन्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा, एआईआर 2010 एससी

4. पंजाब राज्य बनाम दविंदर पाल सिंह भुल्लर एवं अन्य, सुमेध सिंह सैनी बनाम दविंदर पाल सिंह भुल्लर एवं अन्य से संबंधित, (2011) 14 एससीसी 770

(माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान द्वारा प्रस्तुत)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अनवर अशफाक और प्रतिपक्षी सं. 1 के विद्वान स्थायी अधिवक्ता तथा प्रतिपक्षी सं. 2 से 7 के विद्वान अधिवक्ता श्री आलोक शर्मा को सुना गया।

2. हालाँकि, प्रतिपक्षी सं. 8 और 9 की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ है।

3. इस रिट याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता ने निम्नलिखित राहत के लिए प्रार्थना की है:

"(i) रिट याचिका के अनुलग्नक सं. 1 में निहित प्रतिपक्षी सं. 3 द्वारा पारित दिनांक 10.08.2018 के आक्षेपित आदेश को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।

(ii) उत्तर प्रदेश राज्य निर्माण सहकारी संघ लिमिटेड, लखनऊ के अंतरिम समिति प्रबंधन द्वारा दिनांक 08.06.2018 और 17.07.2018 को लिए गए निर्णय को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें, जिसमें याचिकाकर्ता को सेवा से बर्खास्त करने और प्रतिपक्षी से मूल रूप से समन करने के बाद याचिकाकर्ता की सेवा लाभ / संपत्ति से 7.55 लाख रुपये की वसूली की गई।

(iii) रिट याचिका के अनुलग्नक सं. 2 में निहित दिनांक 14.05.2018 की जाँच रिपोर्ट को निरस्त करने के लिए उत्प्रेषण-पत्र के रूप में रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।

(iv) प्रतिपक्षी सं. 6 द्वारा पारित अनुमोदन आदेश सं. 863/मंडल/अनु-1-92, दिनांकित 09.08.2018 को, जैसा कि आक्षेपित आदेश दिनांक 10.08.2018 में संदर्भित है, प्रतिपक्षी पक्षकारों से मूल प्रति तलब करने के पश्चात, उत्प्रेषण-पत्र के रूप में रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।

(v) प्रतिपक्षीगण को रिट, आदेश या निर्देश जारी कर याचिकाकर्ता को अधिशासी अभियंता, उत्तर प्रदेश राज्य निर्माण सहकारी संघ लिमिटेड, लखनऊ के पद पर अधिवर्षिता आयु अर्थात 31.08.2018 तक कार्य करने की

अनुमति देने तथा उसे सेवानिवृत्ति लाभों सहित सभी परिणामी सेवा लाभों सहित वेतन का भुगतान करने का आदेश दें।

4. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता को प्रारंभ में 18.05.1989 को तदर्थ आधार पर प्रशासनिक समिति के अध्यक्ष के अनुमोदन से उत्तर प्रदेश सहकारी प्रसंस्करण इकाई एवं शीतगृह केन्द्रीयकृत सेवा के सामान्य संवर्ग में प्रबंधक के पद पर नियुक्त किया गया था।

5. याचिकाकर्ता की सेवानिवृत्ति की तिथि 31.08.2018 थी, लेकिन सेवानिवृत्ति की तिथि से पहले प्रतिपक्षी सं. 3 अर्थात प्रबंध निदेशक, उत्तर प्रदेश राज्य निर्माण सहकारी संघ लिमिटेड, लखनऊ ने 10.08.2018 को बर्खास्तगी का आदेश पारित किया, साथ ही यह निर्देश भी दिया कि याचिकाकर्ता से सेवानिवृत्ति के बाद के देय राशि से 7,55,000/- रुपये की राशि वसूल की जाएगी।

6. चूंकि याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दृढ़तापूर्वक यह दलील दी है कि आरोपित दण्ड आदेश जांच रिपोर्ट के आधार पर पारित किया गया है, जिसमें याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोप सिद्ध करने के लिए मौखिक जांच करने हेतु जांच अधिकारी द्वारा कोई तिथि, समय और स्थान निर्धारित नहीं किया गया था, इसलिए मैं प्रश्नगत मुद्दे के अन्य तथ्यों पर विचार नहीं कर रहा हूँ।इसके अलावा, विभागीय जांच को कानून के अनुसार सख्ती से संचालित करने के बजाय जांच अधिकारी ने टेलीफोन पर आजमगढ़ डिवीजन के परियोजना अभियंता को सामग्री भेजने का निर्देश दिया और परियोजना अभियंता ने अपने पत्र दिनांक 05.10.2017 के माध्यम से कुछ सामग्री/झूठी रिपोर्ट भेजी और ऐसी रिपोर्ट के आधार पर जांच अधिकारी ने माना कि आरोप सं. 1 और 2 साबित होते हैं।

7. रिट याचिका के पैरा-54 और 55 की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है, जिसमें इस आशय का स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि जांच अधिकारी द्वारा मौखिक जांच करने के लिए कोई तिथि, समय और स्थान निर्धारित नहीं किया गया है। सुविधा के लिए, रिट याचिका के पैरा-54 और 55 इस प्रकार हैं:-

"54. यह भी प्रस्तुत किया जाता है कि जांच अधिकारी अनुशासनात्मक कार्यवाही में पक्ष बन गए थे क्योंकि उन्होंने टेलीफोन पर परियोजना अभियंता, आजमगढ़ डिवीजन को सामग्री भेजने का निर्देश दिया था और टेलीफोनिक निर्देशों पर, परियोजना अभियंता ने अपने पत्र दिनांक 05.10.2017 के माध्यम से सामग्री/झूठी रिपोर्ट भेजी, जिसके आधार पर जांच अधिकारी ने आरोप सं. 1 और 2 को सिद्ध माना है। जांच अधिकारी की यह कार्रवाई अनुशासनात्मक कार्यवाही के स्थापित सिद्धांत से परे है।

55. यह भी प्रस्तुत किया गया है कि यद्यपि जांच अधिकारी ने जांच रिपोर्ट में यह उल्लेख नहीं किया है कि मौखिक जांच करने के लिए उनके द्वारा कोई तारीख, समय और स्थान तय किया गया था, लेकिन आश्चर्यजनक रूप से, आक्षेपित आदेश में, प्रतिपक्षी सं. 3 ने उल्लेख किया है कि जांच अधिकारी ने व्यक्तिगत/मौखिक

सुनवाई के लिए 17.08.2017 की तारीख तय की थी, लेकिन याचिकाकर्ता ने इसका लाभ नहीं उठाया, जबकि सही तथ्य यह है कि किसी भी समय याचिकाकर्ता को जांच अधिकारी द्वारा 17.08.2017 को तारीख तय करने या व्यक्तिगत सुनवाई/मौखिक जांच के लिए उनके समक्ष उपस्थित होने के लिए कोई अन्य तारीख तय करने संबंधी कोई नोटिस, पत्र या आदेश नहीं दिया गया था।

8. याचिका की उपरोक्त विषय-वस्तु का उत्तर देते हुए, प्रति-शपथपत्र के पैरा-25 में प्रतिपक्षी मौखिक पूछताछ के लिए तिथि, समय और स्थान निर्धारित करने के संबंध में पूर्वोक्त स्पष्ट प्रस्तुतिकरण पर विवाद नहीं कर सके, लेकिन अस्पष्ट रूप से यह प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध जांच विनियमावली, 1975 के विनियम 85 के अनुसार की गई और समाप्त की गई। उपरोक्त पैरा में कहीं भी यह संकेत नहीं दिया गया है कि मौखिक पूछताछ के लिए तिथि, समय और स्थान कैसे और कब निर्धारित किया जाता है।

9. प्रत्यर्थी-बैंक के विद्वान अधिवक्ता से प्रति-शपथपत्र का कोई अन्य पैरा दिखाने को कहा गया था जिसमें याचिकाकर्ता के उपरोक्त तर्क का उत्तर दिया गया हो, लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं दिखाया गया कि जाँच अधिकारी ने आरोपों को सिद्ध करने के लिए मौखिक जाँच हेतु तिथि, समय और स्थान निर्धारित किया था। श्री आलोक शर्मा ने प्रति-शपथपत्र का पैरा-16 दिखाया है जिसमें स्पष्ट रूप से दर्शाया गया है कि जाँच अधिकारी ने याचिकाकर्ता के उत्तर और इस संबंध में उपलब्ध अन्य प्रासंगिक पत्रों पर विचार करने के बाद जाँच कार्यवाही पूरी की और दिनांक 14.05.2018 के पत्र द्वारा जाँच रिपोर्ट प्रस्तुत की। श्री शर्मा का तर्क यह था कि केवल दोषी कर्मचारी के उत्तर पर विचार करने के आधार पर जाँच पूरी नहीं की जा सकती थी, बल्कि विभाग द्वारा मौखिक जाँच के आधार पर दिनांक, समय और स्थान निर्धारित करके आरोपों को सिद्ध किया जाना चाहिए था। श्री शर्मा याचिकाकर्ता के इस तर्क का बचाव नहीं कर सके, हालाँकि, उन्होंने तर्क दिया कि आक्षेपित आदेश पारित करने से पहले याचिकाकर्ता ने उन्हें कारण बताओ नोटिस जारी करके स्पष्टीकरण माँगते हुए सुनवाई का अवसर दिया था। सुविधा के लिए, प्रति-शपथपत्र का पैरा-25 इस प्रकार है :-

"25. रिट याचिका के पैराग्राफ 54 और 55 की विषयवस्तु को जैसा कहा गया है, वैसा स्वीकार नहीं किया गया है और इसके उत्तर में इस प्रति-शपथपत्र के पूर्ववर्ती पैराग्राफों में दिए गए निवेदनों को यहाँ सही मानकर दोहराया जा रहा है। चूँकि विस्तृत उत्तर पहले ही दिया जा चुका है, इसलिए अनावश्यक विस्तार से बचने के लिए उसे दोबारा दोहराने की आवश्यकता नहीं है। अभिसाक्षी ने सादर निवेदन किया है कि जाँच प्रारंभ होने के पश्चात, जाँच अधिकारी ने परियोजना अभियंता, निर्माण खण्ड, आजमगढ़ को आवश्यक सूचना उपलब्ध कराने का निर्देश दिया और उसके अनुपालन में परियोजना अभियंता, निर्माण खण्ड, आजमगढ़ ने अपने पत्र दिनांक 05.10.2017 द्वारा दस्तावेजों के आधार पर सूचना उपलब्ध करा दी। अभिसाक्षी ने पुनः कहा है कि जाँच अधिकारी ने उत्तर प्रदेश सहकारी समिति कर्मचारी सेवा विनियमावली, 1975 के विनियम 85 के अनुसार जाँच की और इस विनियमावली के अनुसार याचिकाकर्ता को बचाव का पर्याप्त अवसर दिया गया।

10. उल्लेखनीय है कि प्रत्युत्तर हलफनामे के पैरा-4 में याचिकाकर्ता ने पुनः दोषपूर्ण जाँच का वही आधार लिया था और प्रत्युत्तर हलफनामे के पैरा-22 में प्रति-शपथपत्र के पैरा-25 की विषय-वस्तु को नकार दिया गया है, जिसमें यह दर्शाया गया है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध विभागीय जाँच उत्तर प्रदेश सहकारी समिति कर्मचारी सेवा विनियमावली, 1975 (एतस्मिनपश्चात "विनियमावली, 1975" कहा जाएगा) के विनियम 85 के अनुसार नहीं की जा सकती थी। हालाँकि, दिनांक 24.03.2025 के पूरक प्रति-हलफनामे के पैरा-5 में यह दर्शाया गया है कि याचिकाकर्ता को दिनांक 31.07.2017 के पत्र के माध्यम से 17.08.2017 की तिथि निर्धारित करते हुए व्यक्तिगत सुनवाई का अवसर दिया गया था, लेकिन याचिकाकर्ता ने इस अवसर का लाभ नहीं उठाया।

11. श्री शर्मा से इस बिंदु पर आगे सवाल किए जाने पर कि चूंकि विभागीय जांच कानून के अनुसार पूरी तरह से नहीं की गई है और निष्कर्ष नहीं निकाला गया है, इसलिए, आरोपित दंड आदेश, जो जांच रिपोर्ट पर निर्भर है, को रद्द किए जाने की संभावना है, श्री शर्मा ने कहा है कि किसी भी मामले में यदि आक्षेपित दंड आदेश दोषपूर्ण और अवैध जांच रिपोर्ट के कारण होता है, तो विभाग को विभागीय जांच में दोष के चरण से नवीन विभागीय जांच करने की स्वतंत्रता दी जा सकती है, भले ही याचिकाकर्ता पहले ही सेवानिवृत्त हो चुका हो। अपने पूर्वोक्त प्रस्तुतिकरण के समर्थन में, श्री शर्मा ने मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए उक्त निर्णय पर भरोसा किया है:- ***उ.प्र. कोऑपरेटिव फेडरेशन लिमिटेड और अन्य बनाम एल.पी. राय रिपोर्टेड इन (2007) 7 एससीसी 81*** जिसके तहत सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि दोषपूर्ण जांच के मामले में, यदि आरोप गंभीर हैं तो नए सिरे से विभागीय जांच की जानी चाहिए।

12. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने तथा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन करने के पश्चात् एक तथ्य बहुत स्पष्ट है कि जांच अधिकारी ने याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को साबित करने के लिए मौखिक जांच के लिए तारीख, समय और स्थान निर्धारित करके कानून के अनुसार विभागीय जांच नहीं की, इसलिए जांच अधिकारी के निष्कर्ष अवैध हैं क्योंकि ऐसे निष्कर्ष दोषपूर्ण जांच पर आधारित हैं।

13. ***रूप सिंह नेगी बनाम पंजाब नेशनल बैंक एवं अन्य (2009) 2 एससीसी 570*** में दर्ज मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि महज दस्तावेज पेश करना पर्याप्त नहीं है, बल्कि मौखिक पूछताछ के लिए तारीख, समय और स्थान तय करते हुए गवाहों से पूछताछ करके दस्तावेजी साक्ष्य की विषय-वस्तु को साबित करना होगा। **रूप सिंह नेगी (उपरोक्त)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने इस हद तक कहा कि भले ही अपचारी कर्मचारी ने उसी आरोप से संबंधित पुलिस के समक्ष अपना अपराध स्वीकार कर लिया हो, तथाकथित स्वीकारोक्ति अपने आप में पर्याप्त नहीं होगी और कुछ सबूत रिकॉर्ड पर लाए जाने चाहिए थे कि अपचारी कर्मचारी संबंधित अपराध में शामिल था। चूंकि विभाग ने अपचारी कर्मचारी के खिलाफ आरोप लगाए हैं, इसलिए मौखिक पूछताछ के माध्यम से उन आरोपों को साबित करना विभाग की जिम्मेदारी और कर्तव्य है।

14. सर्वोच्च न्यायालय ने ***उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा एआईआर 2010 एससी 3131*** में उपरोक्त विधिक प्रस्ताव को दोहराया है और कहा है कि यदि जाँच अधिकारी ने दोषी कर्मचारी के विरुद्ध

आरोपों को सिद्ध करने हेतु गवाहों से पूछताछ हेतु मौखिक जाँच हेतु तिथि, समय और स्थान निर्धारित नहीं किया है, तो संपूर्ण जाँच कार्यवाही प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन और निष्पक्षता की पूर्ण अवहेलना के कारण दूषित हो जाएगी। अतः, ऐसी स्थिति में, ऐसी जाँच रिपोर्ट निरस्त/रद्द किए जाने योग्य होगी और जाँच रिपोर्ट पर आधारित आक्षेपित दंड आदेश भी निरस्त/रद्द किए जाने योग्य होगा।

15. भले ही याचिकाकर्ता को व्यक्तिगत सुनवाई का कोई अवसर दिया गया हो, हालाँकि याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने उसे अस्वीकार कर दिया है, लेकिन व्यक्तिगत सुनवाई का वह अवसर उद्देश्य के लिए पर्याप्त नहीं होगा क्योंकि यदि दोषी कर्मचारी ने व्यक्तिगत सुनवाई के ऐसे अवसर का लाभ नहीं उठाया, तो भी जाँच अधिकारी को मौखिक पूछताछ के लिए तिथि, समय और स्थान निर्धारित करके गवाहों और दस्तावेजों की जाँच करके कर्मचारी के विरुद्ध आरोपों को सिद्ध करना होगा। उल्लेखनीय है कि वर्तमान मामले में, जाँच अधिकारी द्वारा याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोपों को सिद्ध करने हेतु मौखिक पूछताछ करने हेतु कोई तिथि, समय और स्थान निर्धारित नहीं किया गया है।

16. चूंकि मेरा यह विचार है कि दिनांक 10.08.2018 का आक्षेपित दण्ड, जो दिनांक 14.05.2018 की त्रुटिपूर्ण जांच रिपोर्ट के आधार पर जारी किया गया है, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन होने के कारण कानून की दृष्टि में अमान्य है, इसलिए, मैं यह भी मानता हूं कि आक्षेपित दण्ड आदेश और जांच रिपोर्ट कानून की दृष्टि में अमान्य है और कानूनी सिद्धांत ***'सब्लाटो फंडामेंटो कैडिट ओपस'*** के मद्देनजर उपरोक्त त्रुटिपूर्ण जांच रिपोर्ट के आधार पर याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई दण्ड आदेश पारित नहीं किया जा सकता है।

17. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **पंजाब राज्य बनाम दविंदर पाल सिंह भुल्लर और अन्य** संबंधित ***सुमेध सिंह सैनी बनाम दविंदर पाल सिंह भुल्लर और अन्य, (2011) 14 एससीसी 770*** के पैरा 107 से 111 में उपरोक्त सिद्धांत पर विचार किया है, जिसे नीचे पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है: -

*"107. यह एक स्थापित कानूनी प्रस्ताव है कि यदि प्रारंभिक कार्रवाई कानून के अनुरूप नहीं है, तो सभी बाद की और परिणामी कार्यवाहियां इस कारण से विफल हो जाएंगी कि अवैधता आदेश की जड़ तक जाती है। ऐसी तथ्यात्मक स्थिति में, कानूनी कहावत **"सब्लाटो फंडामेंटो कैडिट ओपस"** जिसका अर्थ है कि नींव हटा दिए जाने पर, संरचना/कार्य गिर जाता है, लागू होती है और वर्तमान मामले में सभी बिंदुओं पर लागू होती है।*

108. बद्रीनाथ बनाम तमिलनाडु राज्य एवं अन्य, एआईआर 2000 एससी 3243; और केरल राज्य बनाम पुथेनकावु एनएसएस कार्यायोगम एवं अन्य, (2001) 10 एससीसी 191 में, इस न्यायालय ने कहा कि एक बार कार्यवाही का आधार समाप्त हो जाने पर, सभी परिणामी कार्य, कार्रवाई, आदेश स्वतः ही समाप्त हो जाएंगे और यह सिद्धांत न्यायिक, अर्ध-न्यायिक और प्रशासनिक कार्यवाहियों पर समान रूप से लागू होता है।

109. इसी प्रकार, मंगल प्रसाद तमोली (मृत) द्वारा एलआरएस बनाम नर्वदेश्वर मिश्रा (मृत) द्वारा एलआरएस एवं अन्य, (2005) 3 एससीसी 422, में इस न्यायालय ने माना कि यदि प्रारंभिक चरण में कोई आदेश कानून की दृष्टि से गलत है, तो उसके परिणामस्वरूप आगे की सभी कार्यवाहियां अमान्य होंगी और उन्हें अनिवार्य रूप से रद्द करना होगा।

110. सी. अल्बर्ट मॉरिस बनाम के. चंद्रशेखरन एवं अन्य, (2006) 1 एससीसी 228 में, इस न्यायालय ने माना कि ***कानून में कोई अधिकार केवल और केवल तभी विद्यमान होता है जब उसका कोई वैध मूल हो****। (यह भी देखें: उपेन चंद्र गोगोई बनाम असम राज्य एवं अन्य, (1998) 3 एससीसी 381; सच्चिदानंद मिश्रा बनाम उड़ीसा राज्य एवं अन्य, (2004) 8 एससीसी 599; क्षेत्रीय प्रबंधक, एसबीआई बनाम राकेश कुमार तिवारी, (2006) 1 एससीसी 530; और रितेश तिवारी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, एआईआर 2010 एससी 3823)।*

111. इस प्रकार, उपरोक्त के मद्देनजर, हमारा विचार है कि आक्षेपित आदेश अमान्य होने के कारण कायम नहीं रह सकते। परिणामस्वरूप, आगामी कार्यवाही/आदेश/एफआईआर/जांच स्वतः ही अमान्य हो जाती है और अमान्य घोषित किए जाने योग्य है।

18. **दविंदर पाल सिंह भुल्लर (उपरोक्त)** के संबंध में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त आदेशों के मद्देनजर, मैं इस विचार पर हूं कि प्रतिपक्षी सं. 3 द्वारा पारित दिनांक 10.08.2018 का दंड आदेश, जो रिट याचिका के अनुलग्नक सं. 1 के रूप में निहित है, साथ ही दिनांक 14.05.2018 की जांच रिपोर्ट को कानूनी सिद्धांत ***सब्लाटो फंडामेंटो कैडिट ओपस"*** के मद्देनजर रद्द / रद्द किया जाता है।

19. उपरोक्त विचार के मद्देनजर तथा सर्वोच्च न्यायालय द्वारा स्थापित कानून के प्रस्ताव के मद्देनजर, मेरा विचार है कि जांच अधिकारी/जांच रिपोर्ट के निष्कर्ष को रद्द/खारिज किया जाना चाहिए, क्योंकि विभागीय जांच मौखिक जांच के लिए तारीख, समय और स्थान तय किए बिना तथा याचिकाकर्ता को सुनवाई का पर्याप्त अवसर दिए बिना की गई और समाप्त की गई। चूँकि आक्षेपित दंड आदेश का मूल आधार ही दोषपूर्ण जाँच रिपोर्ट पर आधारित है, जो कानून की दृष्टि में टिकने योग्य नहीं है, इसलिए आक्षेपित दंड आदेश अपास्त/निरस्त किए जाने योग्य है। परिणामस्वरूप, दिनांक 10.08.2018 का आक्षेपित दंड आदेश और दिनांक 14.05.2018 की जाँच रिपोर्ट को ***"सुब्लाटो फंडामेंटो कैडिट ओपस"*** जिसका अर्थ है कि यदि किसी संरचना की नींव ही गिर जाती है, तो उस पर निर्मित अधिरचना भी गिर जाएगी, के आधार पर अपास्त/निरस्त किया जाता है।

20. चूंकि आक्षेपित दंड आदेश और जांच रिपोर्ट को इस कारण से रद्द/खारिज कर दिया गया है कि विभागीय जांच कानून के अनुसार सख्ती से नहीं की गई और यह सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विभिन्न मामलों में स्थापित कानून के प्रस्ताव के विरुद्ध है, इसलिए सक्षम प्राधिकारी उचित निर्णय ले सकता है कि क्या याचिकाकर्ता के खिलाफ उसकी सेवानिवृत्ति के बाद कोई विभागीय जांच की जा सकती है और उसे समाप्त किया जा सकता है, क्योंकि याचिकाकर्ता की सेवानिवृत्ति की तारीख से छह वर्ष और आठ महीने से अधिक की अवधि बीत चुकी है।

ऐसा निर्णय इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत किए जाने की तिथि से तीन सप्ताह की अवधि के भीतर लिया जा सकता है और यदि याचिकाकर्ता, जो सहकारी समिति का सेवानिवृत्त कर्मचारी है, के विरुद्ध कोई विभागीय जांच अनुमन्य नहीं है, तो उसे दो महीने की अतिरिक्त अवधि के भीतर उसके सभी परिणामी सेवा लाभों का भुगतान किया जाएगा।

21. उपर्युक्त चर्चाओं के मद्देनजर, इस रिट याचिका को **स्वीकार** किया जाता है।

22. परिणाम तदनुसार।

23. कॉस्ट के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2025) 4 ILRA 266

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद, 11.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार

रिट ए सं. 30776 सन् 2016

शुभम कुमार **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...प्रत्यर्थीगण**

अनधिकृत

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: आलोक मिश्रा, व्यक्तिगत रूप से

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता : सी.एस.सी., जितेंद्र सिंह

सेवा कानून-भारत का संविधान, 1950- अनुच्छेद 226- याचिकाकर्ता ने पशु चिकित्सा फार्मासिस्ट के पद पर नियुक्ति के लिए आवश्यक योग्यता के रूप में पशु चिकित्सा फार्मेसी के दो वर्षीय डिप्लोमा पाठ्यक्रम को शामिल करने के लिए राज्य सरकार को निर्देश देने के लिए परमादेश की मांग की और साथ ही याचिकाकर्ता के दो वर्षीय डिप्लोमा पाठ्यक्रम को ध्यान में रखते हुए पशु चिकित्सा फार्मासिस्ट के पद पर नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता के मामले पर विचार करने के लिए भी कहा। याचिकाकर्ता के पास पशु चिकित्सा फार्मासिस्ट के पद पर नियुक्त होने का कोई निहित अधिकार नहीं है, जो कि सीधी भर्ती का पद है और प्रचलित प्रक्रिया के अनुसार, फार्मासिस्टों की रिक्तियों को राज्य सरकार की आवश्यकता के अनुसार भरा जाएगा। हालाँकि, यह

न्यायालय एक संवैधानिक न्यायालय होने के नाते, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून के मद्देनजर पशु चिकित्सा फार्मासिस्ट के पद पर नियुक्ति के लिए आवश्यक योग्यता के रूप में दो वर्षीय डिप्लोमा पाठ्यक्रम को शामिल करने के साथ-साथ राज्य सरकार को कानून बनाने और नियम बनाने का निर्देश देने के लिए परमादेश की प्रकृति में रिट जारी नहीं कर सकता है। **(पैरा 8) (ई-15)**

<u>संदर्भित मामलों की सूची -:</u>

1. सर्वोच्च न्यायालय कर्मचारी कल्याण संघ बनाम भारत संघ एवं अन्य (1989)4 एससीसी 187

2. जम्मू एवं कश्मीर राज्य बनाम ए.आर. ज़क्की एवं अन्य (1992) सप्लीमेन्ट (1) एससीसी 548

3.भारत संघ एवं अन्य बनाम के. पुष्पवनम एवं अन्य 2023 लाइव लॉ (एससी) 630

4. उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम इलाहाबाद स्थित सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीशों का संघ एवं अन्य [2024] 1 एस.सी.आर. 211

(माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार द्वारा प्रस्तुत)

1. याचिकाकर्ता श्री शुभम कुमार को व्यक्तिगत रूप से और राज्य के विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता संदीप शर्मा को सुना गया।

2. वर्तमान याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने निम्नलिखित प्रार्थना(ओं) के लिए प्रार्थना की है:

"(i) इस रिट याचिका के अनुलग्नक सं. 1 में निहित प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा पारित दिनांक 14.12.2016 के आक्षेपित आदेश को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण के रूप में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।

(ii) प्रत्यर्थीगण को इस रिट याचिका के अनुलग्नक सं. 1 में निहित प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा पारित दिनांक 14.12.2016 के आक्षेपित आदेश को प्रभावी न करने का आदेश देते हुए परमादेश के रूप में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।

(iii) राज्य सरकार द्वारा जारी दिनांक 30.6.2010 के पत्र को ध्यान में रखते हुए, जो इस रिट याचिका के अनुलग्नक सं. 2 के रूप में संलग्न है, प्रत्यर्थीगण को पशु चिकित्सा फार्मासिस्ट के पद पर नियुक्ति के लिए एक आवश्यक योग्यता के रूप में पशु चिकित्सा फार्मेसी के 2 वर्षीय डिप्लोमा पाठ्यक्रम को शामिल करने का आदेश देते हुए परमादेश के रूप में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।

(iv) प्रत्यर्थीगण को आदेश, रिट या निर्देश जारी करें, कि याचिकाकर्ता द्वारा वर्ष 2015 में ही उत्तर प्रदेश पंडित दीन दयाल उपाध्याय पशु चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय एवं गो-अनुसंधान संस्थान, मथुरा से पशु चिकित्सा फार्मेसी का दो वर्षीय डिप्लोमा पाठ्यक्रम पूरा करने को ध्यान में रखते हुए, पशु चिकित्सा फार्मासिस्ट के पद पर नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता के मामले पर विचार करें।

अनुवादित

(v) ऐसा अन्य आदेश या निर्देश पारित करें, जिसे यह माननीय न्यायालय मामले की परिस्थितियों के अनुसार उचित और सही समझे।

(vi) वर्तमान रिट याचिका के विनम्र याचिकाकर्ता को कॉस्ट का भुगतान करें।

3. मामले के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं:

ऐसा प्रतीत होता है कि दिनांक 30.6.2010 के शासनादेश (अनुलग्नक-2) के तहत, राज्य सरकार द्वारा पं. दीन दयाल उपाध्याय पशु चिकित्सा विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश, मथुरा (संक्षेप में, विश्वविद्यालय) के कुलपति को पशु चिकित्सा फार्मेसी में दो वर्षीय डिप्लोमा पाठ्यक्रम चलाने हेतु पाठ्यक्रम/कोर्स तैयार कर राज्य सरकार को उपलब्ध कराने का निर्देश दिया गया था। परिणामस्वरूप, विश्वविद्यालय में पशु चिकित्सा फार्मेसी में दो वर्षीय डिप्लोमा पाठ्यक्रम शुरू किया गया।

यह भी प्रतीत होता है कि प्रवेश लेने के बाद, याचिकाकर्ता ने विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में पशु चिकित्सा फार्मेसी में अपना दो वर्षीय डिप्लोमा पाठ्यक्रम सफलतापूर्वक पूरा कर लिया है। अंकतालिका और डिप्लोमा प्रमाणपत्र की प्रतियाँ रिकॉर्ड में हैं।

यह दलील दी गई है कि पशु चिकित्सा फार्मासिस्ट के कई पद रिक्त हैं और याचिकाकर्ता तथा अन्य सह-आवेदकों को पशु चिकित्सा फार्मासिस्ट के उन रिक्त पदों के लिए विचार नहीं किया जा रहा है। अभिलेखों से यह भी पता चलता है कि पशु चिकित्सा फार्मासिस्ट के पद पर नियुक्ति के लिए कोई सेवा नियमावली नहीं हैं। हालाँकि, राज्य सरकार द्वारा दिनांक 14.12.2004 को कार्यकारी निर्देश/शासनादेश जारी किया गया है, जिसमें संबंधित सेवा नियमावली के प्रख्यापित होने तक पशु चिकित्सा फार्मासिस्ट के पद पर नियुक्ति की प्रक्रिया का प्रावधान है। उपरोक्त मेमो में पशु चिकित्सा फार्मासिस्ट के पद के लिए नियुक्ति प्राधिकारी उप निदेशक, पशुपालन है और पद के लिए आवश्यक योग्यता जीव विज्ञान या कृषि के साथ इंटरमीडिएट है, जिसमें पशु चिकित्सा फार्मासिस्ट के पद पर चयन के बाद छह महीने के प्रशिक्षण का अतिरिक्त प्रावधान है।

इससे पहले, याचिकाकर्ता ने रिट याचिका सं. 22087 (एस/एस) सन् 2016 दायर की थी, जिसका निस्तारण 15.9.2016 के निर्णय और आदेश द्वारा किया गया था जिसमें प्रमुख सचिव को याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन पर निर्णय लेने का निर्देश दिया गया था। आदेश का प्रभावी भाग नीचे दिया गया है :

"जैसा भी हो, उपरोक्त पहलू राज्य सरकार की नीति के दायरे में आते हैं। हालाँकि, मामले के समग्र पहलू और रिट याचिका में दिए गए कथनों, विशेष रूप से 30.06.2010 के शासनादेश और पंडित दीन दयाल उपाध्याय पशु चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश, मथुरा में पशु चिकित्सा फार्मेसी में दो वर्षीय डिप्लोमा पाठ्यक्रम शुरू करने के लिए राज्य सरकार द्वारा किए गए प्रयासों को ध्यान में रखते हुए, इस याचिका का अंतिम रूप से निपटारा प्रमुख सचिव, पशुपालन, उत्तर प्रदेश, लखनऊ को याचिकाकर्ता की शिकायत से संबंधित निर्णय लेने के निर्देश के साथ किया जाता है।

इस आदेश के अंतर्गत प्रमुख सचिव द्वारा लिए जाने वाले निर्णय को सुगम बनाने के लिए, याचिकाकर्ता आज से एक पखवाड़े के भीतर प्रमुख सचिव को एक नया अभ्यावेदन प्रस्तुत करेगा, जिसमें उसके पास उपलब्ध सभी तर्क और वे सभी दस्तावेज़ संलग्न होंगे जिनका वह सहारा लेना चाहता है। इस आदेश की प्रमाणित प्रति सहित

उक्त अभ्यावेदन प्राप्त होने पर, प्रमुख सचिव द्वारा अगले तीन सप्ताह के भीतर एक तर्कपूर्ण और आख्यापक आदेश पारित करके, विधि के अनुसार याचिकाकर्ता के मामले पर विचार और निर्णय लिया जाएगा। प्रमुख सचिव द्वारा लिए गए इस निर्णय से याचिकाकर्ता को अवगत कराया जाएगा।"

राज्य सरकार ने एक तर्कपूर्ण और आख्यापक आदेश के माध्यम से याचिकाकर्ता के उस अभ्यावेदन को खारिज कर दिया है जिसमें कहा गया था कि पशु चिकित्सा फार्मासिस्ट के पद को भरने के लिए कोई प्रचलित नियमावली नहीं हैं। ये पद 14.12.2004 के कार्यकारी आदेश में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार भरे जा रहे हैं। पशु चिकित्सा फार्मासिस्ट के पद के लिए आवश्यक योग्यता कृषि या जीव विज्ञान में इंटरमीडिएट है। इसके अलावा, चयन के बाद उम्मीदवार को छह महीने का प्रशिक्षण प्राप्त करना आवश्यक है, जिसे 21.3.2005 के शासनादेश द्वारा एक वर्ष तक बढ़ा दिया गया है।

प्रत्यावेदन पर निर्णय लेते हुए यह भी कहा गया कि अब पशु चिकित्सा विभाग के फार्मासिस्टों को चिकित्सा विभाग के फार्मासिस्टों के समान वेतनमान अर्थात् रु. 4500-7000 प्राप्त हो रहा है। शासनादेश दिनांकित 8.9.2010 द्वारा फार्मासिस्टों को स्वास्थ्य विभाग के फार्मासिस्टों के समान प्रशिक्षण एवं पंजीकरण की सुविधा प्रदान करने का भी निर्णय लिया गया। तत्पश्चात, वेतन आयोग, 2008 की पूर्व संस्तुतियों पर पुनर्विचार करते हुए शासनादेश दिनांकित 18.3.2011 द्वारा रु. 5000-8000 का वेतनमान स्वीकृत किया गया तथा इस पद को इंटरमीडिएट गणित या जीव विज्ञान समूह की शैक्षिक योग्यता एवं राज्य चिकित्सा संकाय, उ.प्र. द्वारा प्रदान किया गया डिप्लोमा धारक अभ्यर्थियों की सीधी भर्ती द्वारा भरे जाने का निर्देश दिया गया। इस प्रकार, वर्तमान में फार्मासिस्ट के पद पर नियुक्ति की प्रक्रिया शासनादेश दिनांकित 18.3.2011 के अनुसार है।

याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन पर निर्णय करते हुए, यह भी पाया गया कि जहाँ तक शासनादेश दिनांक 30.6.2010 के आलोक में रिक्त पद पर पशु चिकित्सा फार्मासिस्ट के पद पर याचिकाकर्ता की नियुक्ति का प्रश्न है, संबंधित विश्वविद्यालय को केवल एक व्यावसायिक पाठ्यक्रम तैयार कर राज्य सरकार को उपलब्ध कराने के निर्देश दिए गए थे। उक्त शासनादेश दिनांक 30.6.2010 में पशु चिकित्सा फार्मासिस्ट/पशुधन प्रसार अधिकारी के पद हेतु कोई पाठ्यक्रम संचालित करने का प्रावधान नहीं था। यह पाया गया है कि पशु चिकित्सा विभाग के फार्मासिस्ट संवर्ग के लिए नियम बनाने की प्रक्रिया सक्रिय रूप से विचाराधीन है। यह सीधी भर्ती का पद है और चयनित अभ्यर्थियों में से निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार उचित नियुक्तियाँ की जाएँगी। ऐसा प्रतीत होता है कि दिनांक 14.12.2016 के आदेश के अनुपालन में, याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन पर विचार किया गया है और उसे इस याचिका में उल्लिखित आदेश द्वारा अस्वीकार कर दिया गया है।

4. याचिकाकर्ता ने व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होकर प्रस्तुत किया कि दिनांक 30.6.2010 के शासनादेश के तहत विश्वविद्यालय को पशुचिकित्सा फार्मासिस्ट/पशुधन प्रसार अधिकारी के लिए एक पाठ्यक्रम तैयार करने का निर्देश दिया गया था ताकि फार्मेसी में डिप्लोमा रखने वाले व्यक्तियों की नियुक्तियां की जा सकें।

याचिकाकर्ता ने राहत सं. (iii) के माध्यम से प्रत्यर्थीगण को 30.6.2010 के शासनादेश को ध्यान में रखते हुए पशु चिकित्सा फार्मासिस्ट के पद पर नियुक्ति के लिए आवश्यक योग्यता के रूप में पशु चिकित्सा फार्मेसी के दो वर्षीय डिप्लोमा पाठ्यक्रम को शामिल करने का निर्देश देने हेतु एक परमादेश (रिट) मांगा है। पंडित दीन

दयाल उपाध्याय पशु चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय एवं गौ-अनुसंधान संस्थान, मथुरा से किए गए दो वर्षीय डिप्लोमा पाठ्यक्रम को ध्यान में रखते हुए, पशु चिकित्सा फार्मासिस्ट के पद पर नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता के मामले पर विचार करने हेतु एक और परमादेश (रिट) भी मांगा गया है।

5. दूसरी ओर, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने इस तर्क का विरोध किया और तर्क दिया कि 30.6.2010 के शासनादेश के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि राज्य सरकार ने पशु चिकित्सा फार्मेसी में दो वर्षीय डिप्लोमा पाठ्यक्रम पूरा करने वाले व्यक्ति की नियुक्ति का कोई वादा नहीं किया है। तर्क दिया गया है कि वर्तमान में, पशु चिकित्सा विभाग में फार्मासिस्टों की सेवा शर्तों को नियंत्रित करने वाले कोई सेवा नियम नहीं हैं। ये नियुक्तियाँ कार्यकारी निर्देशों के तहत की जा रही हैं। ऐसा ही एक निर्देश 14.12.2004 को जारी किया गया था। चयन उत्तर प्रदेश समूह घ पदों पर सीधी भर्ती हेतु प्रक्रिया (उत्तर प्रदेश सेवा आयोग के कार्यक्षेत्र से बाहर) नियमावली, 2002 के प्रावधानों के अंतर्गत किया जाता है।

पूर्व में, प्रशिक्षण अवधि छह माह की थी जिसे दिनांक 21.3.2005 के शासनादेश द्वारा एक वर्ष के रूप में बढ़ा दिया गया है। दिनांक 30.6.2010 का शासनादेश केवल पशु चिकित्सा फार्मासिस्टों की शैक्षिक योग्यता में वृद्धि करके उनकी सेवाओं को सुदृढ़ बनाने के उद्देश्य से जारी किया गया था। यह भी प्रस्तुत है कि फार्मासिस्टों की सेवाओं को नियंत्रित करने वाले सेवा नियमों पर सक्रिय रूप से विचार किया जा रहा है। यह एक लंबी प्रक्रिया है और औपचारिकताएँ पूरी करने के बाद इसे जल्द ही अधिसूचित कर दिया जाएगा। पशु चिकित्सा फार्मेसी में डिप्लोमा प्राप्त याचिकाकर्ता को पशु चिकित्सा फार्मासिस्ट के पद पर नियुक्ति का कोई निहित अधिकार नहीं है और जब तक पशु चिकित्सा फार्मासिस्ट की सेवाओं को नियंत्रित करने वाले नियम नहीं बनाए जाते और अधिसूचित नहीं किए जाते, तब तक याचिकाकर्ता को उक्त पद पर नियुक्त करना संभव नहीं है।

प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से वर्ष 2019 में दाखिल पूरक प्रति-शपथपत्र में न्यायालय के संज्ञान में लाया गया है कि उत्तर प्रदेश पशु चिकित्सा फार्मासिस्ट एवं पशुधन प्राधिकार परिषद अधिनियम, 2019 का प्रारूप तैयार कर फाइल अनुमोदन हेतु विधि विभाग को भेज दी गई है तथा विधि विभाग से अनुमोदन प्राप्त होने के पश्चात इसे कैबिनेट सहित विभिन्न विभागों को भेजा जाएगा तथा कैबिनेट एवं विधानसभा की स्वीकृति के पश्चात नियमावली अधिसूचित की जाएगी। पूरक प्रति-शपथपत्र के प्रस्तर 5 के अनुसार, नियमावली, 2019 को लागू करने हेतु आवश्यक कार्यवाही को अंतिम रूप देने हेतु दो वर्ष का अतिरिक्त समय मांगा गया है।

6. मैंने प्रस्तुत प्रस्तुतियों पर विचार किया है और अभिलेख तथा आक्षेपित आदेश का अवलोकन किया है।

7. अभिलेख के अवलोकन से पता चलता है कि विश्वविद्यालय में पशु चिकित्सा फार्मेसी पाठ्यक्रम शुरू होने के बाद याचिकाकर्ता ने पशु चिकित्सा फार्मेसी पाठ्यक्रम में प्रवेश लिया और उसे उत्तीर्ण किया। ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता ने 30.6.2010 के शासनादेश की व्याख्या इस प्रकार की है मानो राज्य सरकार ने कोई वादा किया हो कि याचिकाकर्ता द्वारा डिप्लोमा पाठ्यक्रम पूरा करने पर उसे पशु चिकित्सा फार्मासिस्ट के पद पर नियुक्ति दी जाएगी।

".....उपर्युक्त विषय पर मुझे यह कहने का निदेश हुआ है कि प्रदेश के पशुपालन विभाग के अन्तर्गत पशुचिकित्सा चिकित्सा के क्षेत्र में पशुचिकित्सा अधिकारी, वेटनरी फार्मासिस्ट एवं पशुधन प्रसार अधिकारी की महत्वपूर्ण भूमिका है। पशुचिकित्सां अधिकारी के पद पर पशुचिकित्सा में स्नातक डिग्री रखने वाले अभ्यर्थियों को लोक सेवा आयोग के माध्यम से चयन कर नियुक्त किया जाता । पशुचिकित्सा में स्नातक की शिक्षा पशुचिकित्सा विश्वविद्यालय, मथुरा में उपलब्ध है। वेटनरी फार्मासिस्ट / पशुधन प्रसार अधिकारी के पद के कार्यों एवं दायित्वों के अनुरूप. शिक्षा की व्यवस्था प्रदेश के विश्वविद्यालय में उपलब्ध नहीं है, जिसके कारण वेटनरी / पशुधन प्रसार अधिकारी के पद पर अभ्यर्थियों को चयनित कर उन्हें, प्रशिक्षण प्रदान कर नियुक्त दी जाती है। यह अनुभव किया जा रहा है कि यदि प्रदेश के विद्यालय एवं विश्वविद्यालयों में वेटनरी फार्मासिस्ट / पशुधन प्रसार अधिकारी के पद के कार्यों एवं दायित्वों के अनुरूप कोई कोर्स हो तो उस योग्यता वाले अभ्यर्थी इन पदों पर नियुक्त होकर विभाग के अधिक उपयोगी सिद्ध होंगे।

अतः अनुरोध है कि वेटनरी फार्मासिस्ट / पशुधन प्रसार अधिकारी के पद के कार्यों एवं दायित्वों के अनुरूप शिक्षा हेतु एक व्यवसायिक पांतयक्रम तैयार कर शासन को उपलब्ध कराने का कष्ट करे।"

8. ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता ने दिनांक 30.6.2010 (उपरोक्त) के शासनादेश की गलत व्याख्या करते हुए, राज्य सरकार को पशु चिकित्सा फार्मासिस्ट के पद पर नियुक्ति के लिए आवश्यक योग्यता के रूप में पशु चिकित्सा फार्मेसी के दो वर्षीय डिप्लोमा पाठ्यक्रम को शामिल करने का निर्देश देने और याचिकाकर्ता के दो वर्षीय डिप्लोमा पाठ्यक्रम को ध्यान में रखते हुए पशु चिकित्सा फार्मासिस्ट के पद पर नियुक्ति के मामले पर विचार करने का निर्देश देने हेतु एक परमादेश (रिक्त) मांगा है। दूसरे शब्दों में, याचिकाकर्ता राज्य सरकार के विरुद्ध एक रिट की मांग कर रहा है ताकि वह किसी विशेष विषय पर और किसी विशेष तरीके से, जो याचिकाकर्ता के अनुकूल हो, कानून बना सके।

इस संबंध में कानून बिल्कुल स्पष्ट है। कोई भी संवैधानिक न्यायालय किसी विशेष विषय पर किसी विशेष तरीके से कानून बनाने के लिए विधायिका को परमादेश रिट जारी नहीं कर सकता, जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय ने **सर्वोच्च न्यायालय एम्प्लॉइज वेलफेयर एसोसिएशन बनाम भारत संघ एवं अन्य (1989)4 एससीसी 187**, **जम्मू और कश्मीर राज्य बनाम ए.आर. ज़क्की एवं अन्य (1992) सप्प(1) एससीसी 548, भारत संघ एवं अन्य बनाम के. पुष्पवनम एवं अन्य 2023 लाइव लॉ (एससी) 630** और **उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम इलाहाबाद में सेवानिवृत्त सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का संघ एवं अन्य [2024]1 एससीआर 211** में कहा है। इस प्रकार, स्थापित कानून के मद्देनजर, यह नहीं कहा जा सकता कि 14.12.2016 के आक्षेपित आदेश में कोई मनमानी या अवैधता है।

राज्य सरकार द्वारा वर्ष 2019 में आक्षेपित आदेश और संक्षिप्त प्रति-शपथपत्र में, नियम बनाने का वचन पहले ही दिया जा चुका है। याचिकाकर्ता को पशु चिकित्सा फार्मासिस्ट के पद पर नियुक्ति का कोई निहित अधिकार नहीं है, जो कि सीधी भर्ती का पद है और प्रचलित प्रक्रिया के अनुसार, फार्मासिस्ट के रिक्त पदों को राज्य सरकार की आवश्यकता के अनुसार भरा जाएगा।

तथापि, यह न्यायालय एक संवैधानिक न्यायालय होने के नाते राज्य सरकार को कानून बनाने और नियम बनाने का निर्देश देने के लिए परमादेश की प्रकृति में रिट जारी नहीं कर सकता है, साथ ही उपरोक्त मामलों

में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के मद्देनजर पशु चिकित्सा फार्मासिस्ट के पद पर नियुक्ति के लिए दो वर्षीय डिप्लोमा पाठ्यक्रम को आवश्यक योग्यता के रूप में शामिल करने का निर्देश नहीं दे सकता है।

9. यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा वर्ष 2019 में अनुपूरक प्रति-शपथपत्र दाखिल किया गया था। 2021 तक दो वर्ष बीत चुके हैं और अभी तक नियम अधिसूचित नहीं किए गए हैं। यह अपेक्षित है कि राज्य सरकार अनुपूरक प्रति-शपथपत्र दाखिल करते समय दिए गए वचन और दिनांक 14.12.2016 के आक्षेपित आदेश (उपरोक्त) में दिए गए वचन का पालन करेगी।

10. उपरोक्त टिप्पणी के अधीन, रिट याचिका खारिज की जाती है।

(2025) 4 ILRA 271

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 08.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति प्रकाश पाडिया

रिट ए सं. 32542 सन् 1993

सुलेमान **...याचिकाकर्ता**

बनाम

प्रधानाचार्य एस.टी. हाई स्कूल व अन्य **...प्रत्यर्थीगण**

याचिकाकर्ता की ओर से अधिवक्ता : आनंद तिवारी, कविश सुहैल

प्रत्यर्थीगण की ओर से अधिवक्ता : दिलीप गुप्ता, शशांक शेखर सिंह

सेवा कानून-भारत का संविधान, 1950- अनुच्छेद 226 - विश्वविद्यालय गैर-शिक्षण कर्मचारी (सेवा की शर्तें) नियमावली, 1972-नियम 11 और 14)- तदर्थ/अस्थायी/दैनिक वेतनभोगी कर्मचारी जो लंबे समय तक सेवा प्रदान करते हैं और जिन्हें सेवा में नियमितीकरण/पुष्टि के बिना सेवानिवृत्त होने की अनुमति दी गई थी, वे सेवानिवृत्ति के बाद के लाभों के हकदार हैं --- चूंकि याचिकाकर्ता ने दशकों तक निरंतर सेवा की थी, यह उचित सेवा लाभों के लिए एक वैध उम्मीद बनाता है --- याचिकाकर्ता ने सेवानिवृत्ति तक 27 वर्षों तक लगातार काम किया। विश्वविद्यालय ने व्यावहारिक रूप से उन्हें एक नियमित कर्मचारी माना और उनके कार्यकाल के दौरान उन्हें सभी सेवा लाभ प्रदान किए। केवल इसलिए कि उनकी औपचारिक रूप से पुष्टि नहीं हुई थी, उन्हें सेवानिवृत्ति के बाद के लाभों से वंचित करना अन्यायपूर्ण होगा और माननीय सर्वोच्च न्यायालय और इस न्यायालय द्वारा

अनवीक्षित

स्थापित सिद्धांतों के विपरीत होगा। याचिकाकर्ता सेवानिवृत्ति के बाद के सभी लाभ पाने का हकदार है। प्रत्यर्थी को तीन महीने की अवधि के भीतर याचिकाकर्ता को सेवानिवृत्ति के बाद के सभी लाभों की गणना करने और जारी करने का निर्देश दिया गया।

रिट याचिका स्वीकृत। (पैरा 30, 31 और 32) (ई-15)

<u>संदर्भित मामलों की सूची:</u>

1. हृदय शंकर मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, 2005 एससीसी ऑनलाइन ऑल 1627: 2005 इला. एलजे 2654

2. ओम प्रकाश गोयल बनाम हिमाचल प्रदेश पर्यटन विकास निगम लिमिटेड शिमला (1991) 2 यूपीएलबीईसी 967 ((1991) 3 एससीसी 291: एआईआर 1991 एससी 1490

3. सिविल अपील सं. 6118 सन् 2024, आनंद प्रकाश मणि त्रिपाठी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

4. गुजरात राज्य एवं अन्य बनाम तलसीभाई धनजीभाई पटेल 2022 लाइवलॉ (एससी) 187

5. यशवंत हरि कटक्कर बनाम यू.ओ.आई. एवं अन्य. ने 1996 (7) एससीसी 113

6. ए.पी. श्रीवास्तव बनाम यू.ओ.आई. एवं अन्य. (1995) 3 यूपीएलबीईसी 1842 (पूरक)

(माननीय न्यायमूर्ति प्रकाश पाडिया द्वारा प्रस्तुत)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री आनंद तिवारी और प्रत्यर्थी सं. 2/रजिस्ट्रार, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ के विद्वान अधिवक्ता श्री शशांक शेखर सिंह को सुना गया।

2. यह रिट याचिका वर्ष 1993 में दायर की गई थी जिसमें प्रधानाचार्य, एस.टी. हाई स्कूल, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ की ओर से अनुभाग अधिकारी द्वारा पारित दिनांक 27.07.1993 के आदेश को चुनौती दी गई थी। उपरोक्त आदेश द्वारा, याचिकाकर्ता को सूचित किया गया था कि 31.07.1993 के बाद उसकी सेवाओं की आवश्यकता नहीं हो सकती है। रिट याचिका पर विधिवत विचार किया गया और इस न्यायालय द्वारा दिनांक 14.09.1993 को निम्नलिखित अंतरिम आदेश दिया गया, जो नीचे उद्धृत है:-

"श्री दिलीप गुप्ता ने प्रत्यर्थी सं. 1, 2 और 3 की ओर से नोटिस स्वीकार कर लिया है। उन्होंने प्रति-शपथपत्र दाखिल करने के लिए एक महीने का समय माँगा है और उन्हें यह समय प्रदान किया जाता है। इसके बाद याचिकाकर्ताओं के पास प्रत्युत्तर दाखिल करने के लिए तीन सप्ताह का समय होगा।
इस याचिका को उपरोक्त अवधि की समाप्ति के तुरंत बाद सूचीबद्ध किया जाए।

अनुवादित

इस बीच, रिट याचिका के अनुलग्नक सं. 3, दिनांक 27 जुलाई, 1993 के आदेश का क्रियान्वयन स्थगित रहेगा। याचिकाकर्ताओं को माली के पद पर काम करने की अनुमति दी जाएगी और उन्हें वेतन दिया जाएगा।"

3. रिट याचिका दिनांक 07.12.2011 के आदेश द्वारा डिफ़ॉल्ट रूप से खारिज कर दी गई थी। याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 26.03.2019 को रेस्टोरेशन/रिकाल आवेदन सं. 2 सन् 2019 और विलंब क्षमा आवेदन सं. 1सन् 2019 दायर किए गए थे। इन्हें इस न्यायालय ने दिनांक 05.01.2023 के आदेश द्वारा स्वीकार कर लिया। उपरोक्त आदेश द्वारा, दिनांक 07.12.2011 के आदेश को वापस ले लिया गया और रिट याचिका को उसके मूल क्रमांक पर बहाल कर दिया गया।

4. यद्यपि रिट याचिका 07.12.2011 को डिफॉल्ट रूप से खारिज कर दी गई थी, क्योंकि पक्षकारों को उपरोक्त आदेश के बारे में कोई जानकारी नहीं थी, याचिकाकर्ता को काम करना जारी रखा गया और उसे नियमित रूप से वेतन भी दिया गया और इसके बाद 31 मार्च, 2018 को सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने के बाद उसे अपनी सेवाओं से सेवानिवृत्त भी कर दिया गया। अपनी सेवानिवृत्ति से पहले, याचिकाकर्ता द्वारा विश्वविद्यालय के कुलपति को दिनांक 29.05.2017 को एक पत्र लिखा गया था। उपर्युक्त पत्र में याचिकाकर्ता की सेवा की पुष्टि हेतु अनुरोध किया गया है ताकि उसे सेवानिवृत्ति के बाद मिलने वाले लाभ मिल सकें। उक्त आवेदन पर सहायक कुलसचिव (प्रशासन-एनटी) द्वारा दिनांक 04.02.2019 को प्रधानाचार्य, एस.टी. हाई स्कूल, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ को संबोधित एक आदेश पारित किया गया। उक्त पत्र द्वारा, याचिकाकर्ता द्वारा किए गए अनुरोध को इस आधार पर अस्वीकार कर दिया गया कि रिट याचिका को आदेश 07.12.2011 के तहत डिफ़ॉल्ट रूप से खारिज कर दिया गया था और उसके बाद कानूनी राय मांगी गई थी और उसी के अनुसरण में याचिकाकर्ता द्वारा उसकी स्थायीकरण और अन्य सेवानिवृत्ति लाभों के लिए दायर आवेदन को अस्वीकार कर दिया गया था।

5. उपरोक्त से व्यथित होकर याचिकाकर्ता द्वारा इस रिट याचिका में एक संशोधन आवेदन दायर किया गया था, जिसे संशोधन आवेदन सं. 11 सन् 2023 के रूप में क्रमांकित किया गया था। इसे इस न्यायालय ने दिनांक 06.11.2024 के आदेश द्वारा अनुमति दी थी। इसके बाद संशोधनों को रिट याचिका में विधिवत शामिल किया गया और रिट याचिका की संशोधित प्रति भी दायर की गई थी। संशोधित रिट याचिका पर प्रति शपथ पत्र और प्रत्युत्तर हलफनामे का आदान-प्रदान किया गया है और पक्षों की सहमति से प्रवेश चरण में ही इसका अंतिम रूप से निपटारा कर दिया गया था।

6. रिट याचिका में संक्षेप में तथ्य यह है कि संबंधित संस्थान, अर्थात एस.टी. हाई स्कूल, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ के प्रधानाचार्य माली के पद पर नियुक्ति प्राधिकारी हैं। प्रधानाचार्य ने अपने आदेश दिनांक 27.02.1991 के तहत याचिकाकर्ता को तीन महीने के लिए माली के पद पर नियुक्त किया। उपरोक्त नियुक्ति को प्रधानाचार्य द्वारा समय-समय पर बिना किसी रुकावट के बढ़ाया गया। प्रधानाचार्य ने अपनी सेवाओं को जारी रखते हुए, याचिकाकर्ता को एक वर्ष के लिए अर्थात् 4.02.1992 से 03.02.1993 तक परिवीक्षा पर

रखा। याचिकाकर्ता अपनी परिवीक्षा अवधि पूरी होने के बाद भी अपनी सेवाएँ जारी रखे हुए था और उसके कार्य में कोई हस्तक्षेप नहीं किया गया, और न ही याचिकाकर्ता के कार्य और आचरण में कोई शिकायत थी। यह तर्क दिया गया है कि पूरी तरह से अवैध और मनमाने तरीके से, अनुभाग अधिकारी द्वारा प्रधानाचार्य, एस.टी. हाई स्कूल की ओर से दिनांक 27.07.1993 का एक आदेश पारित किया गया था। यह तर्क दिया जाता है कि चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों अर्थात गैर-शिक्षण कर्मचारियों की सेवाएं "विश्वविद्यालय गैर-शिक्षण कर्मचारी (सेवा की शर्तें) नियमावली, 1972" द्वारा शासित होती हैं। इस संबंध में प्रासंगिक नियम, नियमावली, 1972 के नियम 11 और नियम 14 नीचे उद्धृत किए गए हैं:-

11- परिवीक्षा और स्थायीकरण:-

1. विश्वविद्यालय के प्रत्येक कर्मचारी को, जब किसी स्थायी पद पर नियुक्त किया जाता है, एक वर्ष के लिए परिवीक्षा पर रखा जाएगा, जब तक कि अनुबंध में अन्यथा प्रावधान न हो, जिसके समाप्त होने के बाद उसे उसके पद पर स्थायी किया जा सकता है। यदि उसे इस प्रकार स्थायी नहीं किया जाता है, तो कार्यकारी परिषद, नियुक्ति प्राधिकारी, यदि वह उचित समझे, तो उसकी सेवाओं को समाप्त कर सकता है या परिवीक्षा की अवधि बढ़ा सकता है, लेकिन किसी भी स्थिति में परिवीक्षा की अवधि दो वर्ष से अधिक नहीं बढ़ाई जाएगी, जब तक कि कार्यकारी परिषद/नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा विश्वविद्यालय के हित में अन्यथा निर्णय न लिया जाए।
यदि किसी कारणवश परिवीक्षा की निर्धारित अवधि के बाद स्थायीकरण के आदेश जारी नहीं किए जाते हैं, तो परिवीक्षा की अवधि इस संबंध में आदेश जारी होने की तिथि तक स्वतः विस्तारित मानी जाएगी।

2. जहां विश्वविद्यालय के अधीन किसी पद पर परिवीक्षा पर नियुक्त कोई व्यक्ति अपनी परिवीक्षा अवधि के दौरान, व्यक्तिपरक आधार पर उस पद को धारण करने के लिए अनुपयुक्त पाया जाता है या उसने अपनी परिवीक्षा अवधि संतोषजनक ढंग से पूरी नहीं की है, तो नियुक्ति प्राधिकारी:-
(i) पदोन्नति द्वारा नियुक्त व्यक्ति के मामले में, उसे ऐसी नियुक्ति से ठीक पहले उसके द्वारा धारित पद पर वापस कर सकता है और
(ii) सीधी भर्ती द्वारा नियुक्त व्यक्ति के मामले में, उसे इसके बदले में एक माह का वेतन देने के बाद विश्वविद्यालय के अधीन उसकी सेवाएं समाप्त कर सकता है।
3. विश्वविद्यालय के अधीन किसी स्थायी पद पर पदोन्नति या सीधी भर्ती द्वारा नियुक्त प्रत्येक व्यक्ति अपनी अवधि या परिवीक्षा संतोषजनक ढंग से पूरी करने पर उस पद पर स्थायीकरण के लिए पात्र होगा।
4. किसी भी कर्मचारी को किसी भी पद पर तब तक स्थायी नहीं किया जाएगा जब तक कि:-
(i) ऐसा पद स्थायी न हो और उस पद पर किसी अन्य व्यक्ति का ग्रहणाधिकार न हो।
(ii) विश्वविद्यालय के अधीन कर्मचारी की सेवा नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा अनुमोदित न हो।
7. नियम 14 सेवा समाप्ति से संबंधित है जो नीचे उद्धृत है:-

14- सेवाओं की समाप्ति:-

(1) किसी अस्थायी कर्मचारी/परिवीक्षाधीन कर्मचारी की सेवा कार्यकारी परिषद/नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा नीचे दर्शाए अनुसार समाप्त की जा सकती है:-

क. परिवीक्षाधीन नियुक्त कर्मचारी की सेवाएं परिवीक्षा अवधि के दौरान किसी भी समय एक माह का नोटिस देकर बिना कोई कारण बताए समाप्त की जा सकती हैं। कर्मचारी एक माह का नोटिस देने के बाद अपनी नियुक्ति छोड़ने का भी हकदार है; और

ख. किसी अस्थायी कर्मचारी की सेवा बिना किसी नोटिस या कारण बताए किसी भी समय समाप्त की जा सकती है।

ग. किसी स्थायी पद पर नियुक्त कर्मचारी की सेवाएं अधिवर्षिता की आयु प्राप्त करने पर स्वतः समाप्त हो जाएंगी और अधिवर्षिता के कारण उसकी सेवा समाप्ति की सूचना देने के लिए विश्वविद्यालय प्राधिकारियों से कोई नोटिस आवश्यक नहीं होगा।

8. यह तर्क दिया गया है कि 27.07.1993 का आदेश पूर्णतः अवैध और अधिकार क्षेत्र से बाहर है क्योंकि इसे सक्षम प्राधिकारी द्वारा पारित नहीं किया गया है। यह भी तर्क दिया गया है कि आक्षेपित आदेश याचिकाकर्ता को बिना किसी नोटिस और अवसर दिए पारित किया गया है।

9. रिट याचिका पर विचार किए जाने के बाद, जैसा कि ऊपर बताया गया है, याचिकाकर्ता के पक्ष में एक अंतरिम आदेश पारित किया गया। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के कुलपति ने इस आशय की सूची को मंजूरी दी है कि जो कर्मचारी अपने कौशल कार्य में प्रशिक्षण की आवश्यकता पूरी कर रहे हैं और जिनका सेवा रिकॉर्ड संतोषजनक है, उन्हें श्रेणी 'घ' से श्रेणी 'ग' में स्थानांतरित किया जाएगा और उन्हें "मल्टी टास्किंग स्टाफ" का सामान्य पदनाम दिया जाएगा। उपरोक्त व्यक्तियों को 01.01.2006 से या उनकी नियुक्ति की तिथि से 1800 रुपये के ग्रेड वेतन के साथ वेतन बैंड-1 में रखा जाएगा। उक्त सूची में याचिकाकर्ता का नाम क्रम सं. 34 पर रखा गया था।

10. यह आगे कहा गया है कि कार्यालय ज्ञापन दिनांकित 03.02.2012 के अनुसरण में, याचिकाकर्ता का वेतन प्रत्यर्थीगण द्वारा दिनांक 28.07.2012 के आदेश द्वारा निर्धारित किया गया है। यह आगे कहा गया है कि प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय ने 7वें वेतन आयोग की सिफारिश को स्वीकार कर लिया है और इस संबंध में प्रत्यर्थीगण ने याचिकाकर्ता के संबंध में वेतन निर्धारण का विवरण विधिवत जारी किया है। जुलाई, 2016 में याचिकाकर्ता को वेतन वृद्धि का भुगतान भी किया गया था। माली के पद पर सफलतापूर्वक सेवा पूरी करने के बाद, याचिकाकर्ता 31.03.2018 को सेवानिवृत्त हो गया। यह आगे तर्क दिया गया है कि प्रारंभिक नियुक्ति की तारीख से 31 मार्च, 2018 तक, याचिकाकर्ता ने नियमित रूप से काम किया और उसे वेतन मिला। यह आगे तर्क दिया गया है कि प्रत्यर्थीगण द्वारा याचिकाकर्ता को समय-समय पर सेवाओं के सभी लाभ विधिवत प्रदान किए गए थे।

11. यह भी कहा गया है कि इस न्यायालय ने अपने दिनांक 14.09.1993 के आदेश द्वारा दिनांक 27.07.1993 के समाप्ति आदेश के प्रभाव और संचालन पर रोक लगा दी थी और उसी के आधार पर याचिकाकर्ता माली के पद पर कार्यरत रहा और वेतन प्राप्त करता रहा। इस दृष्टि से, रिट याचिका स्वीकार किए जाने योग्य है और दिनांक 27.07.1993 का आदेश निरस्त किए जाने योग्य है। जहाँ तक सहायक रजिस्ट्रार (प्रशासन-एनटी) द्वारा पारित दिनांक 04.02.2019 के आदेश का संबंध है, वह रिट याचिका के 07.12.2011 को डिफ़ॉल्ट रूप से खारिज होने के कारण पारित किया गया था। यह तर्क दिया गया है कि चूंकि उपरोक्त आदेश अर्थात 07.12.2011 को पहले ही वापस ले लिया गया है, इसलिए सहायक रजिस्ट्रार द्वारा पारित दिनांक 04.02.2019 के आदेश को रद्द किया जाना चाहिए और प्रत्यर्थीगण को याचिकाकर्ता को सभी सेवानिवृत्ति के बाद के लाभों का भुगतान करने का निर्देश दिया जाना चाहिए, जिसके लिए याचिकाकर्ता कानूनी रूप से हकदार है।

12. प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय की ओर से दायर जवाबी हलफनामे में, निम्नलिखित आपत्तियां उठाई गई हैं:-

1. भारत संघ प्रत्यर्थी के रूप में शामिल नहीं हुआ है और इसके अभाव में, रिट याचिका पोषणीय नहीं है।
2. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग प्रत्यर्थी के रूप में शामिल नहीं हुआ है और चूंकि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग एक केंद्रीय निकाय है, जिसके पास भारत में विश्वविद्यालय और अन्य उच्च शिक्षण संस्थानों पर पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार है।
3. अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ अधिनियम 1920 की धारा 36-बी के तहत याचिकाकर्ता के लिए वैधानिक वैकल्पिक उपाय उपलब्ध है।

13. इसके अलावा, प्रति-शपथपत्र में आगे कहा गया है कि श्री कल्लन नामक व्यक्ति विद्यालय में 'माली' के पद पर कार्यरत थे। याचिकाकर्ता को श्री कल्लन की सेवानिवृत्ति के कारण उत्पन्न रिक्ति पर 04.02.1991 से तीन महीने की अवधि के लिए अस्थायी आधार पर 'माली' के रूप में नियुक्त किया गया था। उपरोक्त नियुक्ति को समय-समय पर बढ़ाया गया था।

14. प्रति-शपथपत्र में आगे कहा गया है कि कार्यकारी परिषद ने 16.11.1991 को आयोजित अपनी बैठक में स्पष्ट रूप से यह संकल्प लिया था कि समूह 'घ' पदों का पहला दावा अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के दावेदार का होना चाहिए। उपरोक्त के बावजूद, संबंधित संस्थान के प्रधानाचार्य ने याचिकाकर्ता को 04.02.1992 से 03.02.1993 तक एक वर्ष की अवधि के लिए परिवीक्षा पर रखा (गलत तरीके से 04.02.1991 से 03.02.1993 बताया गया)।

15. प्रति-शपथपत्र में आगे कहा गया है कि विद्यालय के प्रधानाचार्य के लिए विश्वविद्यालय/विद्यालय के किसी मृत कर्मचारी के आश्रित को ग्रेड 'घ' में रिक्त पद पर अनुकंपा के आधार पर नियुक्त करना अनिवार्य है। हालाँकि, याचिकाकर्ता को श्री कल्लन के स्थान पर नियुक्त किया गया था, जो 31.01.1991 को 'माली' के पद से सेवानिवृत हुए थे और उसके बाद याचिकाकर्ता का वेतन जारी कर दिया गया था। प्रति-शपथपत्र में आगे कहा

गया है कि विद्यालय के प्रधानाचार्य को अनुकंपा के आधार पर किसी व्यक्ति की नियुक्ति के लिए तत्काल कदम उठाने के लिए बाध्य किया गया था।

16. प्रति हलफनामे के पैराग्राफ 20 में आगे कहा गया है कि याचिकाकर्ता ने 14.09.1993 के एक अंतरिम आदेश के आधार पर काम करना और वेतन प्राप्त करना शुरू किया और वह 07.12.2011 तक सेवा में बना रहा। हालाँकि अंतरिम आदेश 07.12.2011 के बाद लागू नहीं था, जिस तारीख को इस न्यायालय ने रिट याचिका खारिज कर दी थी, लेकिन याचिकाकर्ता की सेवाओं को इस कारण से समाप्त नहीं किया जा सका क्योंकि बर्खास्तगी के आदेश को याचिकाकर्ता द्वारा विश्वविद्यालय अधिकारियों के संज्ञान में नहीं लाया गया था और वह सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने तक सेवा में बना रहा। आगे कहा गया है कि याचिकाकर्ता की सेवाओं की पुष्टि तब तक नहीं हुई थी जब तक वह सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त नहीं कर लेता यानी 31.03.2018 और वह अस्थायी कर्मचारी के रूप में सेवाओं से सेवानिवृत्त नहीं हो जाता।

17. जवाबी हलफनामे में आगे कहा गया है कि याचिकाकर्ता ने कुलपति को 29 मई 2017 को एक पत्र लिखकर अपनी सेवाएं संपुष्ट करने का अनुरोध किया था ताकि सेवानिवृत्ति के बाद उसे सभी सेवानिवृत्ति लाभ मिल सकें, लेकिन मामले को खारिज किए जाने के संबंध में जानकारी उसने उक्त पत्र में नहीं दी। आगे कहा गया है कि रिट याचिका खारिज होने के 11 वर्ष बाद और सेवानिवृत्ति की तिथि से लगभग 5 वर्ष बाद याचिकाकर्ता ने बहाली और संशोधन के लिए आवेदन दिया, जो यह दर्शाने के लिए पर्याप्त है कि याचिकाकर्ता ने अपने अधिकारों का दुरुपयोग किया और सेवा न्यायशास्त्र का यह स्थापित सिद्धांत है कि जो व्यक्ति अपने अधिकारों का दुरुपयोग करता है, वह किसी भी राहत का हकदार नहीं है। उपरोक्त के आधार पर यह तर्क दिया जाता है कि याचिकाकर्ता द्वारा दायर की गई रिट याचिका खारिज किए जाने योग्य है।

18. इसके जवाब में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री आनंद तिवारी ने तर्क दिया कि 03.02.1993 को परिवीक्षा अवधि पूरी होने के बाद, परिवीक्षा अवधि को आगे बढ़ाने के संबंध में कोई आदेश पारित नहीं किया गया है, इसलिए याचिकाकर्ता की सेवाएँ स्थायी मानी जाती हैं। आगे यह भी तर्क दिया गया कि याचिकाकर्ता ने लगभग 27 वर्षों तक लगातार काम किया है और उसे उसकी सेवा अवधि के दौरान सभी सेवा लाभ दिए गए हैं, इसलिए इस सेवानिवृत्ति के बाद वह सभी सेवानिवृत्ति-पश्चात लाभों का हकदार है।

19. जहां तक प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय के अधिवक्ता द्वारा उठाई गई प्रारंभिक आपत्तियों का संबंध है, यह तर्क दिया जाता है कि प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता द्वारा ये आपत्तियां न तो प्रारंभिक चरण में उठाई गई थीं जब याचिकाकर्ता के पक्ष में अंतरिम आदेश दिया गया था और न ही मुख्य रिट याचिका के जवाब में विश्वविद्यालय द्वारा शुरू में दायर जवाबी हलफनामे में। यह भी तर्क दिया जाता है कि रिट याचिका में विधिवत संशोधन किए जाने के बाद, पहली बार विश्वविद्यालय के अधिवक्ता द्वारा अपने जवाबी हलफनामे के माध्यम से पूरी तरह से अवैध रूप से प्रारंभिक आपत्तियां उठाई गई हैं, जो रिट याचिका दायर करने के 21 साल से अधिक समय बाद यानी 13.11.2024 को दायर किया गया था। यह भी तर्क दिया जाता है कि एक बार याचिकाकर्ता

ने इस न्यायालय द्वारा दिए गए अंतरिम आदेश के तहत काम किया था और उसके बाद उसे सभी सेवा लाभ प्रदान किए गए थे और उसके बाद काम करते हुए वह 31.03.2018 को सेवानिवृत्त हो गया था, इसलिए विशेष कर्तव्य अधिकारी, एस.टी. हाई स्कूल के निर्देश पर अनुभाग अधिकारी द्वारा 27 जुलाई, 1993 का आदेश रद्द किए जाने योग्य है। आगे यह तर्क दिया गया है कि जहां तक दिनांक 04.02.2019 के आदेश का संबंध है, वह भी केवल इस आधार पर रद्द किए जाने योग्य है कि दिनांक 07.12.2011 के रिट याचिका को खारिज करने के आदेश को इस न्यायालय ने अपने दिनांक 05.01.2023 के आदेश द्वारा पहले ही वापस ले लिया है, इसलिए दिनांक 04.02.2019 के आदेश का एकमात्र आधार आज की तारीख में अस्तित्व में नहीं है।

20. पक्षों के अधिवक्ताओं को सुना गया और अभिलेख का अवलोकन किया गया।

21. अभिलेख के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता को वर्ष 1991 में 'माली' के पद पर नियुक्त किया गया था और वह उक्त पद पर कार्यरत रहा तथा उसके बाद उसे एक वर्ष अर्थात 04.02.1992 से 03.02.1993 तक परिवीक्षा अवधि पर नियुक्त किया गया। परिवीक्षा अवधि पूरी होने के बाद भी याचिकाकर्ता को पद पर बने रहने की अनुमति दी गई, लेकिन उसके बाद 27.07.1993 को एक आदेश पारित किया गया जिसमें कहा गया कि 31.07.1993 के बाद याचिकाकर्ता की सेवाओं की आवश्यकता नहीं है।

22. इस न्यायालय ने अपने दिनांक 14.09.1993 के आदेश द्वारा उपरोक्त आदेश पर रोक लगा दी है, जिसके आधार पर याचिकाकर्ता संस्थान में कार्य करता रहा और उसे समान स्थिति वाले कर्मचारी को मिलने वाले सभी सेवा लाभ प्रदान किए गए। संस्थान में कार्य करते हुए, याचिकाकर्ता 31 मार्च, 2018 को सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने के बाद सेवानिवृत्त हो गया। इस मामले के इस दृष्टिकोण और विशेष रूप से इस तथ्य के मद्देनजर कि याचिकाकर्ता ने प्रारंभिक नियुक्ति की तिथि अर्थात 27.02.1991 से अपनी सेवानिवृत्ति की तिथि अर्थात 31 मार्च, 2018 तक प्रत्यर्थीगण के साथ काम किया और चूँकि उसे सभी सेवा लाभ 26 वर्षों से अधिक समय के बाद प्रदान किए गए, न्यायालय की राय है कि इस स्तर पर रिट याचिका खारिज नहीं की जाएगी।

23. जहां तक प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता द्वारा उठाई गई प्रारंभिक आपत्तियों का संबंध है, रिट याचिका (मुख्य रिट याचिका) के जवाब में दायर जवाबी हलफनामे के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि प्रारंभिक चरण में जब याचिकाकर्ता के पक्ष में अंतरिम आदेश दिया गया था या मुख्य रिट याचिका के जवाब में विश्वविद्यालय द्वारा शुरू में दायर जवाबी हलफनामे में ऐसी कोई आपत्ति नहीं उठाई गई थी। रिट याचिका दायर करने के 21 साल से अधिक समय बाद यानी 13.11.2024 को संशोधित रिट याचिका पर जवाबी हलफनामा दाखिल करते समय विश्वविद्यालय के अधिवक्ता द्वारा पहली बार उपरोक्त आपत्तियां उठाई गईं। यह स्थापित कानून है कि यदि व्यक्ति ने इस न्यायालय द्वारा दिए गए अंतरिम आदेश के आधार पर 25 साल से अधिक समय तक काम किया है और उन 21 वर्षों के दौरान किसी भी समय विश्वविद्यालय द्वारा कोई प्रारंभिक आपत्ति नहीं उठाई गई है, तो ये आपत्तियां कानून की नजर में विशेष रूप से याचिकाकर्ता की सेवानिवृत्ति के बाद पोषणीय नहीं हैं।

24. इस न्यायालय ने **हृदय शंकर मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2005 एससीसी ऑनलाइन ऑल 1627: 2005 ऑल एलजे 2654** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आगरा जिला सहकारी बैंक लिमिटेड बनाम विहित प्राधिकारी श्रम न्यायालय, उत्तर प्रदेश एवं अन्य के मामले में प्रतिपादित विधि को ध्यान में रखते हुए यह अभिनिर्धारित किया है कि भर्ती में अनियमितता हो सकती है, लेकिन यदि कोई व्यक्ति 21 वर्ष से अधिक समय से सेवा में है, तो उसकी दीर्घ सेवा के कारण वह अनियमितता दूर हो जाती है और उसे नियमित रूप से नियुक्त माना जाता है। उपरोक्त निर्णय के पैराग्राफ सं. 8 और 9 इस प्रकार हैं:-

"8. याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय की डिवीजन बेंच के मामले (2001) 1 यूपीएलबीईसी 622 स्टेट ऑफ यूपी बनाम डॉ. आर.पी. गोयल और अन्य पर भरोसा किया है। इस न्यायालय की डिवीजन बेंच ने 19 साल की सेवा पूरी करने के बाद कर्मचारी को अस्थायी कर्मचारी मानते हुए उसकी सेवा समाप्ति पर विचार करते हुए यह माना है कि 10 से 20 साल के बाद की सेवाओं को मनमाना माना जा सकता है। डिवीजन बेंच ने निम्नलिखित टिप्पणी की है :-

"वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता ने 1956 से 1975 तक यानी 19 वर्षों तक उत्तर प्रदेश सरकार की सेवा में काम किया था। हमारी राय में, भले ही वह एक अस्थायी कर्मचारी था, लेकिन इतने लंबे समय तक काम करने वाले व्यक्ति को अचानक बिना किसी कारण के जाने के लिए नहीं कहा जा सकता है। स्थिति अलग हो सकती है यदि किसी अस्थायी कर्मचारी की सेवा नियुक्ति के दो या तीन साल बाद ही समाप्त कर दी जाती है, और उस स्थिति में समाप्ति आदेश मनमाना नहीं हो सकता है। हालांकि, जहां किसी व्यक्ति ने अस्थायी क्षमता में 10 से 20 वर्षों तक काम किया है, हमारी राय में, सुनवाई का अवसर दिए बिना उसकी सेवा की समाप्ति निश्चित रूप से मनमाना होगी क्योंकि ऐसा कर्मचारी आमतौर पर विवाहित होता है और उसके बच्चे होते हैं, और वह अन्य रोजगार के लिए अधिक आयु का होता है, और उचित उम्मीद के साथ जीवन में स्थिर हो जाता है, इसलिए आमतौर पर उसे सेवानिवृत्ति की आयु तक सेवा में बनाए रखा जाएगा।

9. याचिकाकर्ता द्वारा जजमेंट टुडे 2001 (4) में प्रकाशित सुप्रीम कोर्ट, 382, आगरा डिस्ट्रिक्ट कोऑपरेटिव बैंक लिमिटेड बनाम विहित प्राधिकारी श्रम न्यायालय, उ.प्र. और अन्य का सहारा लिया है और सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की है-

"यद्यपि सेवाएँ समाप्त कर दी गईं, संबंधित पक्षों ने श्रम न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का आह्वान किया और श्रम न्यायालय ने उनकी बहाली का निर्देश दिया और उन्हें समाप्ति की तिथि से ही बहाल कर दिया गया। इन परिस्थितियों में उन्हें 20 वर्षों से अधिक समय से सेवा में माना जाना चाहिए और इस स्तर पर उनकी सेवाओं में बाधा डालना कठोर और अमानवीय होगा।

भले ही भर्ती में अनियमितता हो, लेकिन प्रत्यर्थीगण के 20 वर्षों से अधिक समय से रोजगार में रहने के कारण उनकी लंबी सेवा के कारण ठीक हो गए और उन्हें नियमित रूप से नियुक्त माना जाता है।"

25. **ओम प्रकाश गोयल बनाम हिमाचल प्रदेश पर्यटन विकास निगम लिमिटेड शिमला (1991) 2 यूपीएलबीईसी 967: ((1991) 3 एससीसी 291: एआईआर 1991 एससी 1490)** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह माना गया है कि अस्थायी कर्मचारी को संविधान के अनुच्छेद 311 का संरक्षण प्राप्त है। एनएसके नायर के

मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने इस तथ्य को ध्यान में रखा है कि यदि किसी व्यक्ति ने इस तथ्य के बावजूद 15 साल की सेवा पूरी कर ली है कि कोई स्थायीकरण आदेश पारित नहीं किया गया है, लेकिन इसे स्थायी कर्मचारी माना जाएगा और संबंधित व्यक्ति की सेवाओं को याचिकाकर्ता को अस्थायी कर्मचारी मानते हुए समाप्त नहीं किया जा सकता है।

26. याचिकाकर्ता ने 27.02.1991 से 31.03.2018 को अपनी सेवानिवृत्ति तक, लगभग 27 वर्षों तक लगातार काम किया। इस अवधि के दौरान, उन्हें एक नियमित कर्मचारी को मिलने वाले सभी सेवा लाभ प्राप्त हुए, जिनमें वेतन वृद्धि, वेतन आयोग की सिफारिशों के अनुसार वेतन निर्धारण और यहाँ तक कि श्रेणी 'घ' से श्रेणी 'ग' में उन्नयन भी शामिल है।

27. जहां तक याचिकाकर्ता को सेवानिवृत्ति के बाद सेवानिवृत्ति बकाया राशि प्राप्त करने में सक्षम बनाने से संबंधित आपत्ति का सवाल है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने हाल ही में **सिविल अपील सं. 6118 सन् 2024, आनंद प्रकाश मणि त्रिपाठी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य** में यह माना था कि उन्हें सेवानिवृत्ति के बाद के लाभ या टर्मिनल बकाया से वंचित करना अनुचित है, जो नियमित सरकारी कर्मचारियों को स्वीकार्य हो सकता है, जिन्होंने इतनी लंबी अवधि तक काम किया है, निर्णय के पैराग्राफ 5 का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:-
"इस तथ्य पर विचार करने के बाद कि अपीलकर्ता(ओं) ने इतनी लंबी अवधि तक काम किया है, उन्हें नियमित सरकारी कर्मचारियों के लिए स्वीकार्य सेवानिवृत्ति के बाद के लाभ या टर्मिनल बकाया से वंचित करना अनुचित और अन्यायपूर्ण होगा।"

28. **गुजरात राज्य और अन्य बनाम तलसीभाई धनजीभाई पटेल 2022 लाइव लॉ (एससी) 187** में यह माना गया है कि एक बार जब राज्य ने 30 वर्षों तक तदर्थ आधार पर भी किसी कर्मचारी से सेवा लेना जारी रखा है, तो राज्य को अपनी गलती और बिना किसी त्रुटि के लाभ लेने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। उच्च न्यायालय के फैसले में पाया गया कि नियमितीकरण के बिना तदर्थ के रूप में 30 साल से अधिक सेवा देने के बाद सेवानिवृत्त हुए कर्मचारी को पेंशन लाभ का भुगतान करने का निर्देश दिया गया था।

29. इसी प्रकार, **यशवंत हरि कटक्कर बनाम भारत संघ एवं अन्य 1996 (7) एससीसी 113** में यह माना गया था कि 20 वर्ष से अधिक सेवा देने वाला कर्मचारी पेंशन का हकदार होता है और किसी भी पद पर स्थायी न होने के आधार पर याचिकाकर्ता को सेवानिवृत्ति पेंशन देने से इनकार करना स्पष्ट रूप से फंडामेंटल रूल्स, 56 के खंड (ई) का उल्लंघन है। विभाग किसी व्यक्ति को अनिश्चित काल तक अस्थायी या दैनिक वेतन पर नहीं रख सकता। इसी प्रकार, **ए.पी. श्रीवास्तव बनाम भारत संघ एवं अन्य के एक अन्य मामले, (1995) 3 यूपीएलबीईसी 1842 (सप्लीमेंट)** में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से यह विचार रखा है कि 20 वर्ष की सेवा देने वाले अस्थायी कर्मचारी पेंशन के हकदार होते हैं।

30. उपरोक्त निर्णयों के आलोक में, यह स्पष्ट है कि लंबे समय तक सेवा प्रदान करने वाले तदर्थ/अस्थायी/दैनिक वेतनभोगी कर्मचारी, जिन्हें सेवा में नियमितीकरण/स्थायीकरण के बिना सेवानिवृत्त होने की अनुमति दी गई थी, सेवानिवृत्ति-पश्चात लाभों के हकदार हैं। इस मामले में, न्यायालय का मत है कि चूँकि याचिकाकर्ता ने दशकों तक निरंतर सेवा की है, इसलिए उचित सेवा लाभों की वैध अपेक्षा उत्पन्न होती है।

31. वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता ने सेवानिवृत्ति तक 27 वर्षों तक लगातार काम किया। विश्वविद्यालय ने व्यावहारिक रूप से उसे एक नियमित कर्मचारी माना और उसके कार्यकाल के दौरान उसे सभी सेवा लाभ प्रदान किए। केवल इसलिए कि उसे औपचारिक रूप से स्थायी नहीं किया गया था, उसे सेवानिवृत्ति के बाद के लाभों से वंचित करना अन्यायपूर्ण होगा और माननीय सर्वोच्च न्यायालय तथा इस न्यायालय द्वारा स्थापित सिद्धांतों के विपरीत होगा।

32. उपरोक्त के मद्देनजर, न्यायालय का मत है कि प्रधानाचार्य, एस.टी. हाई स्कूल, ए.एम.यू. अलीगढ़ की ओर से अनुभाग अधिकारी द्वारा पारित दिनांक 27.07.1993 का आदेश और सहायक रजिस्ट्रार (प्रशासन-एनटी) द्वारा पारित दिनांक 04.02.2019 का आदेश अपास्त किए जाने योग्य है और एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है। याचिकाकर्ता सभी सेवानिवृत्ति-पश्चात लाभ पाने का हकदार है, इसलिए प्रत्यर्थीगण को निर्देश दिया जाता है कि वे याचिकाकर्ता की 27.02.1991 से 31.03.2018 तक की संपूर्ण सेवा अवधि को सेवानिवृत्ति-पश्चात के सभी लाभों के निर्धारण हेतु अर्हक सेवा मानें और इस आदेश के संप्रेषण की तिथि से तीन माह की अवधि के भीतर याचिकाकर्ता को सेवानिवृत्ति-पश्चात के सभी लाभों की गणना करके उन्हें जारी करने का भी निर्देश दिया जाता है।

33. उपर्युक्त टिप्पणियों के साथ, वर्तमान रिट याचिका स्वीकार की जाती है। कॉस्ट के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2025) 4 ILRA 279

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 15.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शेखर बी. सराफ

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. योगेंद्र कुमार श्रीवास्तव

रिट सी सं 263 सन् 2025

मेसर्स के.सी. इंटरनेशनल सिचुएट एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

इंडियन बैंक कानपुर मुख्य शाखा ...प्रत्यर्थी

4.इला मेसर्स के.सी. इंटरनेशनल सिचुएट एवं अन्य बनाम इंडियन बैंक कानपुर मुख्य शाखा 345

याचिकाकर्ताओं की ओर से अधिवक्ता : प्रेरणा सुरोलिया, रविकांत सुरोलिया, शशिकांत शुक्ला

प्रत्यर्थी की ओर से अधिवक्ता : ए.एस.जी.आई., अनुज श्रीवास्तव

सिविल कानून -भारत का संविधान, 1950-अनुच्छेद 226-सरफेसी अधिनियम, 2002-धारा 13(3A), 13(4) और 13(8)-याचिकाकर्ताओं ने अधिनियम, 2002 की धारा 13(4) के तहत प्रत्यर्थी-बैंक की कार्रवाई को चुनौती दी-धारा 13(3A) के तहत उनकी दिनांक 05.10.2024 की आपत्ति पर बैंक द्वारा धारा 13(4) के तहत कार्यवाही शुरू करने से पहले निर्णय नहीं लिया गया था या सेवा नहीं दी गई थी-धारित किया गया, बैंक ने याचिकाकर्ताओं के अभ्यावेदन पर एक तर्कसंगत आदेश पारित किया था और डाक के माध्यम से तामील का प्रयास किया था, जो बैंक के नियंत्रण से परे कारणों से विफल हो गया ("दरवाजा हमेशा बंद रहता है: गलत पिनकोड)-याचिकाकर्ताओं को धारा 13(4) के तहत नोटिस प्राप्त हुआ था और उन्होंने डीआरटी के समक्ष पहले ही कार्यवाही दायर कर दी थी-रिलायंस ने यूनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया बनाम सत्यवती टंडन का सहारा लिया कि अनुच्छेद 226 के तहत रिट क्षेत्राधिकार का आह्वान नहीं किया जाना चाहिए प्रभावी वैकल्पिक उपाय मौजूद है - कोई दुर्भावनापूर्ण या स्पष्ट अवैधता का मामला नहीं बनता। (पैरा 1 से 17)

रिट याचिका खारिज की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. मल्होत्रा ट्रैक्टर्स बनाम एस.बी.आई. (2010) 1 बी.सी. 176
2. कृष्ण चंद्र साहू बनाम बी.ओ.आई. (2009) 2 बी.सी. 635
3. मार्डिया केमिकल्स बनाम यू.ओ.आई. (2004) 3 एस.सी.सी. 311
4. यूनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया बनाम सत्यवती टंडन एवं अन्य (2010) 8 एस.सी.सी. 110

(माननीय न्यायमूर्ति शेखर बी. सराफ एवं
माननीय न्यायमूर्ति डॉ. योगेंद्र कुमार श्रीवास्तव
द्वारा प्रस्तुत)

1. प्रति-शपथपत्र और प्रति-शपथपत्र पर प्रत्युत्तर शपथपत्र दाखिल किया गया है, जिसे रिकॉर्ड पर लिया गया है।

2. याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता सुश्री प्रेरणा सुरोलिया, प्रत्यर्थी सं. 2 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री विवेक कुमार सिंह और बैंक ऑफ इंडिया की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री कुश सक्सेना एवं उनके सहयोगी श्री अनुज श्रीवास्तव को सुना गया और रिकॉर्ड का अवलोकन किया गया।

अनुवादित

3. यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत एक रिट याचिका है जिसमें रिट याचिकाकर्ता ने निम्नलिखित प्रार्थना की है:-

*i)- माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **माडिया केमिकल्स (उपरोक्त)** के मामले में स्थापित न्यायिक मिसाल के मद्देनजर, अधिनियम की धारा 13(3ए) के अनुसार, एक तर्कसंगत आदेश द्वारा याचिकाकर्ता के दिनांक 05.10.2024 के अभ्यावेदन/आपत्ति (रिट याचिका के अनुलग्नक 1) पर निर्णय लेने के लिए प्रत्यर्थी बैंक को आदेश देने हेतु परमादेश की प्रकृति में रिट, आदेश या निर्देश जारी करें;*

*ii)- अधिनियम की धारा 13(3ए) के प्रावधानों के उल्लंघन के साथ-साथ **माडिया केमिकल्स (उपरोक्त)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के स्थापित न्यायिक मिसाल की अवहेलना में अधिनियम की धारा 13(4) के तहत प्रत्यर्थी बैंक द्वारा शुरू की गई कार्यवाही को रद्द करें;*

*iii)- **माडिया केमिकल्स (उपरोक्त)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के स्थापित न्यायिक मिसाल के मद्देनजर अधिनियम की धारा 13(4) के प्रावधानों के अनुसार आगे की कार्यवाही शुरू करने से प्रत्यर्थी बैंक को रोकने के लिए निषेध की प्रकृति में रिट, आदेश या निर्देश जारी करें ;*

4. याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित अधिवक्ता सुश्री प्रेरणा सुरोलिया द्वारा प्रस्तुत तर्क के अनुसार, याचिकाकर्ताओं का मुख्य तर्क यह है कि वित्तीय आस्तियों के प्रतिभूतिकरण एवं पुनर्निर्माण तथा प्रतिभूति हित प्रवर्तन अधिनियम, 2002 (एतस्मिनपश्चात 'सरफेसी अधिनियम' के रूप में संदर्भित) की धारा 13(3A) के अंतर्गत याचिकाकर्ताओं द्वारा 5 अक्टूबर, 2024 को प्रस्तुत अभ्यावेदन/आपत्ति पर बैंक द्वारा सरफेसी अधिनियम की धारा 13(4) और 13(8) के अंतर्गत कार्यवाही शुरू करने से पहले निर्णय नहीं लिया गया था। सहायक प्रार्थना सरफेसी अधिनियम की धारा 13(4) के अंतर्गत प्रत्यर्थी-बैंक द्वारा शुरू की गई कार्यवाही को रद्द करने के संबंध में भी है।

5. दस्तावेजों के अवलोकन और पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ताओं की सुनवाई के बाद जो तथ्य सामने आए, वे इस प्रकार हैं:-

क)- याचिकाकर्ताओं के दिनांक 5 अक्टूबर, 2024 के अभ्यावेदन/आपत्ति पर बैंक प्राधिकारियों द्वारा दिनांक 17 अक्टूबर, 2024 के आदेश द्वारा निर्णय लिया गया और उक्त आदेश को याचिकाकर्ता सं. 1 और अन्य याचिकाकर्ताओं को सुपुर्दगी के लिए भेज दिया गया।

ख)- याचिकाकर्ताओं ने दलील दी है कि यह आदेश किसी भी याचिकाकर्ता को प्राप्त नहीं हुआ। दोनों पक्षों द्वारा प्रस्तुत दस्तावेज़ों से यह स्पष्ट होता है कि यद्यपि डाक अधिकारियों द्वारा तामील का प्रयास किया गया था, तथापि, याचिकाकर्ता सं. 2 और 3 के आवास के द्वार बंद होने के कारण यह प्रयास असफल रहा, और इसलिए उक्त पत्र बिना तामील के वापस आ गया। याचिकाकर्ता सं. 1 के संबंध में, ऐसा प्रतीत होता है कि उचित तामील नहीं की गई होगी।

ग)- अधिनियम की धारा 13(4) के तहत 27 नवंबर, 2024 को याचिकाकर्ताओं को नोटिस जारी किया गया, जो उन्हें प्राप्त हो गया।

घ)- याचिकाकर्ताओं ने 13 दिसंबर, 2024 को ऋण वसूली न्यायाधिकरण का दरवाजा खटखटाया और एस.ए. संख्या- 1087सन् 2024 दायर किया।

ङ)- इसके बाद, 02 जनवरी, 2025 को वर्तमान रिट याचिका दायर की गई, और 08 जनवरी, 2025 को इस मामले को इस न्यायालय द्वारा उठाया गया, जिसमें याचिकाकर्ताओं द्वारा एक पूरक हलफनामा दायर किया गया, जिसमें पहली बार याचिकाकर्ताओं ने प्रस्तुत किया कि धारा 13(4) नोटिस को चुनौती देते हुए ऋण वसूली न्यायाधिकरण के समक्ष एक एस.ए. आवेदन दायर किया गया है। यह भी उल्लेखनीय है कि उस तिथि को धारा 13(3ए) के अंतर्गत पारित दिनांक 17 अक्टूबर, 2024 के आदेश की एक प्रति याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित अधिवक्ता को सौंप दी गई थी। 8 जनवरी, 2025 के बाद, इस मामले को कई बार सूचीबद्ध किया गया है, जिसमें पक्षकारों द्वारा प्रति-शपथपत्र, लघु-प्रति-शपथपत्र और प्रत्युत्तर-शपथपत्र के रूप में हलफनामे दायर किए गए हैं।

6. याचिकाकर्ताओं की दलीलें सरल हैं कि 17 अक्टूबर, 2024 का आदेश प्राप्त हुए बिना, बैंक सरफेसी अधिनियम की धारा 13(4) के तहत कार्यवाही नहीं कर सकता था। याचिकाकर्ताओं की ओर से पेश हुए अधिवक्ता ने **मल्होत्रा ट्रैक्टर्स बनाम भारतीय स्टेट बैंक (2010) 1 बीसी 176, कृष्ण चंद्र साहू बनाम बैंक ऑफ इंडिया (2009) (2) बीसी 635)** और **मार्डिया केमिकल्स बनाम भारत संघ (2004) 3 एससीसी 311** के मामलों में इलाहाबाद उच्च न्यायालय, उड़ीसा उच्च न्यायालय और माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णयों को अपनी दलील पुष्ट करने के लिए सहारा लिया कि धारा 13(3ए) के प्रावधान अनिवार्य प्रकृति के हैं और बैंक को सरफेसी अधिनियम की धारा 13(4) के तहत आगे बढ़ने से पहले याचिकाकर्ताओं की आपत्तियों/अभ्यावेदनों पर निर्णय लेना आवश्यक है। याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णयों से निम्नलिखित सिद्धांत निकाले गए हैं:-

(क)- जब तक धारा 13(3ए) के अंतर्गत कार्यवाही पूरी नहीं हो जाती, बैंक अधिनियम की धारा 13(4) के अंतर्गत आगे बढ़ने और कोई भी उपाय करने के लिए अधिकृत नहीं है।

(ख)- प्राधिकरण के लिए यह अनिवार्य है कि वह पहले आपत्ति पर विचार करे और तर्कपूर्ण आदेश द्वारा उसका निपटारा करे, और उसके बाद संबंधित को आदेश की सूचना दे। यह अधिनियम की धारा 13(4) के अंतर्गत नोटिस जारी करने के लिए एक पूर्व शर्त है।

(ग)- प्राधिकरण वैधानिक प्रावधानों को केवल सजावट की वस्तु मानकर उनकी उपेक्षा नहीं कर सकता, बल्कि उनसे उनका कड़ाई से पालन करने की अपेक्षा की जाती है।

7. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित अधिवक्ता ने आगे कहा कि चूंकि यह स्पष्ट है कि 17 अक्टूबर, 2024 के आदेश की तामील याचिकाकर्ताओं को पूरी नहीं हुई थी, इसलिए अधिनियम की धारा 13(4) के तहत की गई कार्रवाई को शून्य और अमान्य माना जाना चाहिए।

8. प्रत्यर्थी बैंक की ओर से उपस्थित अधिवक्ता ने प्रत्यर्थी पक्ष को बताया कि बैंक ने पूरी प्रक्रिया का पालन किया है। उन्होंने याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर आपत्ति के संबंध में 17 अक्टूबर, 2024 के आदेश के तहत एक तर्कसंगत आदेश पारित किया है। इसके बाद, दस्तावेज़ों से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि तीनों याचिकाकर्ताओं को तामील का प्रयास किया गया था, और याचिकाकर्ता सं. 2 और 3 के आवासीय पते पर भेजी गई खेप को इस डाक टिप्पणी के साथ वापस कर दिया गया था, " दरियाप्त किया लिखित पते पर गस्त के दौरान अनिश्चित काल के लिए ताला बन्द रहता है अतः Left Sd. 18.10.2024" याचिकाकर्ता सं. 1 को तामील के संबंध में, ऐसा प्रतीत होता है कि गलत पोस्टल पिन कोड दिया गया था और इसलिए तामील नहीं हो सकी। हालांकि, यह आश्चर्यजनक है कि सरफेसी अधिनियम की धारा 13(4) के तहत नोटिस याचिकाकर्ता सं. 2 और 3 द्वारा उसी पते पर दिया गया और प्राप्त किया गया, जिस पर 17 अक्टूबर, 2024 के आदेश के लिए नोटिस देने का प्रयास किया गया था। याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने भी इस तामील के तथ्य का खंडन किया है। उनका तर्क है कि सरफेसी अधिनियम की धारा 13(4) के अंतर्गत नोटिस याचिकाकर्ताओं द्वारा बैंक में व्यक्तिगत रूप से जाकर प्राप्त किया गया था। याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उपरोक्त तथ्य को किसी भी प्रकार से सिद्ध नहीं किया गया है।

9. सबसे पहले, हम उड़ीसा उच्च न्यायालय, इलाहाबाद उच्च न्यायालय और माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उपरोक्त निर्णयों में दिए गए सिद्धांतों पर कोई आपत्ति नहीं कर रहे हैं। हम उन निर्णयों में व्यक्त विचारों से सहमत हैं। हालाँकि, इस विशेष मामले के तथ्य थोड़े अलग हैं। सबसे पहले, याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाई गई आपत्ति का बैंक द्वारा 17 अक्टूबर, 2024 के आदेश द्वारा निर्विवाद रूप से निपटारा किया गया था। इसके अलावा, निर्विवाद रूप से उक्त आदेश याचिकाकर्ताओं को डाक द्वारा भेजा गया था। यह आदेश पारित करने और उसे केवल उक्त आदेश पारित करने वाले व्यक्ति के दराज में डाल देने का मामला नहीं है। यह एक ऐसा मामला है जहाँ बैंक ने याचिकाकर्ताओं को आदेश देने की विधिवत कोशिश की। इसके बाद, हम देखते हैं कि जब 17 नवंबर, 2024 को धारा 13(4) के तहत नोटिस जारी किया गया था, तो उसे याचिकाकर्ताओं ने प्राप्त किया और याचिकाकर्ताओं ने 13 दिसंबर, 2024 को ऋण वसूली न्यायाधिकरण के समक्ष एक एस.ए. के माध्यम से उसे चुनौती दी। उक्त चुनौती में, एस.ए. आवेदन के पैराग्राफ 19 में, याचिकाकर्ताओं ने कहा है कि सरफेसी अधिनियम की धारा 13(3)ए के प्रावधानों का अनुपालन नहीं किया गया और याचिकाकर्ताओं ने आगे चुनौती दी है कि बैंक ने कानून के अनिवार्य प्रावधानों का पालन नहीं किया है। हम आगे पाते हैं कि जब 02 जनवरी, 2025 को रिट याचिका दायर की गई थी, तो याचिकाकर्ताओं द्वारा एस.ए. आवेदन दायर किए जाने का कोई उल्लेख नहीं था। केवल 8 जनवरी, 2025 को, जब मामला उठाया गया था, तब याचिकाकर्ताओं द्वारा उक्त तथ्य को रिकॉर्ड पर लाया गया था। उस तारीख को 17 अक्टूबर, 2024 के आदेश की एक प्रति भी याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित अधिवक्ता को सौंप दी गई थी। इसके बाद, मामला ऋण वसूली न्यायाधिकरण के समक्ष जारी है और याचिकाकर्ता बैंक अधिकारियों की कार्रवाई को चुनौती दे रहे हैं।

10. इस न्यायालय के समक्ष चुनौती केवल इस संबंध में है कि क्या बैंक ने सरफेसी अधिनियम की धारा 13(4) के अनुसार सही ढंग से काम किया, जब बैंक द्वारा धारा 13(3ए) के तहत आदेश की उचित तामील निष्पादित नहीं की गई थी।

11. हमारे विचार में, सरफेसी अधिनियम की धारा 13(3ए) के तहत आदेश पारित करने और याचिकाकर्ताओं को उसकी तामील कराने के प्रयास के तथ्य, साथ ही याचिकाकर्ताओं द्वारा धारा 13(4) का नोटिस प्राप्त होने के तथ्य, हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचाते हैं कि याचिकाकर्ता मौका चूक गए हैं। अब ऋण वसूली न्यायाधिकरण के समक्ष धारा 13(4) के नोटिस को चुनौती देने के बाद, याचिकाकर्ताओं को इस न्यायालय के समक्ष सरफेसी अधिनियम की धारा 13(3ए) के तहत पहले की कार्यवाही को उठाकर एक ही समय में दो नावों की सवारी करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। यह भी ध्यान देने योग्य है कि याचिकाकर्ताओं ने ऋण वसूली न्यायाधिकरण के समक्ष एस.ए. आवेदन में धारा 13(3ए) के संबंध में भी आधार लिया है।

12. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के **यूनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया बनाम सत्यवती टंडन एवं अन्य 2010 (8) एससीसी 110** के पैराग्राफ सं. 45, 46 और 47 में दिए गए निर्णय को ध्यान में रखते हुए, जो नीचे उल्लिखित हैं:-

"45. यह सच है कि वैकल्पिक उपाय की समाप्ति का नियम विवेक का नियम है, न कि बाध्यता का, लेकिन यह समझ पाना कठिन है कि उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत दायर याचिका पर विचार क्यों करे और इस तथ्य की अनदेखी करते हुए अंतरिम आदेश क्यों पारित करे कि याचिकाकर्ता आवेदन, अपील, पुनरीक्षण आदि दायर करके प्रभावी वैकल्पिक उपाय का लाभ उठा सकता है और विशेष कानून में उसकी शिकायत के निवारण के लिए एक विस्तृत तंत्र निहित है।

46. यह याद रखना चाहिए कि करों, उपकरों, शुल्कों आदि की वसूली के लिए राज्य और/या उसकी एजेंसियों/संस्थाओं द्वारा शुरू की गई किसी कार्रवाई पर रोक लगाने से सार्वजनिक महत्व की परियोजनाओं के क्रियान्वयन में गंभीर बाधा उत्पन्न होती है और वे नागरिकों के प्रति अपने संवैधानिक एवं कानूनी दायित्वों का निर्वहन करने में असमर्थ हो जाते हैं। बैंकों, वित्तीय संस्थाओं और सुरक्षित ऋणदाताओं के बकाया की वसूली से संबंधित मामलों में, उच्च न्यायालय द्वारा दी गई रोक का ऐसे निकायों/संस्थाओं की वित्तीय स्थिति पर गंभीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा, जो अंततः राष्ट्र की अर्थव्यवस्था के लिए हानिकारक सिद्ध होगा। इसलिए, उच्च न्यायालय को ऐसे मामलों में स्थगन देने के अपने विवेक का प्रयोग करते समय अत्यंत सावधानी और सतर्कता बरतनी चाहिए। बेशक, अगर याचिकाकर्ता यह साबित करने में सक्षम है कि उसका मामला बाबूराम प्रकाश चंद्र माहेश्वरी बनाम अंतरिम जिला परिषद [एआईआर 1969 एससी 556], व्हर्लपूल कॉर्पोरेशन बनाम रजिस्ट्रार ऑफ ट्रेड मार्क्स [(1998) 8 एससीसी 1] और हरबंसलाल साहनिया बनाम इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड [(2003) 2 एससीसी 107] और कुछ अन्य निर्णयों में दिए गए अपवादों में से किसी के अंतर्गत आता है, तो उच्च न्यायालय सभी प्रासंगिक मानदंडों और जनहित पर विचार करने के बाद, एक उचित अंतरिम आदेश पारित कर सकता है।

47. थानसिंह नथमल बनाम कर अधीक्षक [एआईआर 1964 एससी 1419: (1964) 6 एससीआर 654] में संविधान पीठ ने इस प्रश्न पर विचार किया कि क्या असम उच्च न्यायालय को संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपीलकर्ता द्वारा दायर रिट याचिका पर विचार करना चाहिए था, जिसमें असम बिक्री कर अधिनियम, 1947 के तहत कर आयुक्त द्वारा पारित आदेश पर सवाल उठाया गया था। अपील को खारिज करते हुए, न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की: (एससीसी पृष्ठ 1423, पैरा 7)

7. संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उच्च न्यायालय का अधिकार क्षेत्र व्यापक है और इसका प्रयोग अनुच्छेदों में स्पष्ट रूप से उल्लिखित क्षेत्रीय प्रतिबंधों को छोड़कर किसी अन्य प्रतिबंध के अधीन नहीं है। लेकिन अधिकार क्षेत्र का प्रयोग विवेकाधीन है: इसका प्रयोग केवल इसलिए नहीं किया जाता क्योंकि ऐसा करना वैध है। अधिकार क्षेत्र की व्यापकता यह मांग करती है कि इसका प्रयोग सामान्यतः कुछ स्व-लगाए गए प्रतिबंधों के अधीन किया जाएगा। उस अधिकार क्षेत्र का सहारा राहत के लिए एक वैकल्पिक उपाय के रूप में नहीं है जिसे किसी मुकदमे या क़ानून द्वारा निर्धारित अन्य तरीके से प्राप्त किया जा सकता है। सामान्यतः न्यायालय अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट के लिए याचिका पर विचार नहीं करेगा, जहाँ याचिकाकर्ता के पास एक वैकल्पिक उपाय हो, जो अनावश्यक रूप से बोझिल हुए बिना, समान रूप से प्रभावोत्पादक उपाय प्रदान करता हो। फिर, उच्च न्यायालय सामान्यतः उन प्रश्नों के निर्धारण में शामिल नहीं होता जिनमें साक्ष्यों की विस्तृत जाँच की आवश्यकता होती है ताकि यह स्थापित किया जा सके कि रिट को लागू करने का अधिकार किस अधिकार का दावा किया गया है। इसलिए, उच्च न्यायालय तथ्यों की त्रुटियों को सुधारने के लिए किसी न्यायालय या न्यायाधिकरण के निर्णय के विरुद्ध अपील न्यायालय के रूप में कार्य नहीं करता है, और अनुच्छेद 226 के अंतर्गत अधिकार क्षेत्र ग्रहण करके राहत प्राप्त करने के लिए क़ानून द्वारा प्रदत्त किसी वैकल्पिक उपाय का अतिक्रमण नहीं करता है। जहाँ पीड़ित याचिकाकर्ता के लिए क़ानून द्वारा प्रदत्त तरीके से निवारण प्राप्त करने के लिए किसी अन्य न्यायाधिकरण, या यहाँ तक कि स्वयं किसी अन्य अधिकार क्षेत्र में जाने की स्वतंत्रता हो, वहाँ उच्च न्यायालय सामान्यतः संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत किसी याचिका पर विचार करके क़ानून के तहत निर्मित तंत्र को दरकिनार करने की अनुमति नहीं देगा, और आवेदन करने वाले पक्षकार को इस प्रकार स्थापित तंत्र का सहारा लेने के लिए छोड़ देगा।"

13. इस न्यायालय से अपेक्षा की जाती है कि वह सरफेसी अधिनियम से संबंधित मामलों में तब तक हस्तक्षेप न करे जब तक कि उसे बैंक प्राधिकारियों द्वारा की जा रही स्पष्ट अवैधता और/या दुर्भावनापूर्ण कार्रवाई का पता न चले। वर्तमान मामले में, बैंक ने कानून के अनुसार कार्य किया है क्योंकि उन्होंने सरफेसी अधिनियम की धारा 13(3ए) के तहत एक आदेश पारित किया है और आदेश की तामील (तामील करने का प्रयास) भी किया है, जो दो याचिकाकर्ताओं के मामले में "दरवाजा हमेशा बंद रहता है" के रूप में आया।

14. ऐसे मामले में, बैंक अधिकारियों पर कोई दुर्भावनापूर्ण इरादा नहीं लगाया जा सकता। इसके अलावा, चूँकि धारा 13(4) के तहत नोटिस जारी किया जा चुका है और तत्पश्चात धारा 13(8) के तहत बिक्री की कार्यवाही

भी हो चुकी है, इसलिए हम केवल इस आधार पर पूरी कार्यवाही में हस्तक्षेप करना उचित नहीं समझते कि सरफेसी अधिनियम की धारा 13(3ए) के तहत आदेश की तामील ठीक से नहीं की गई।

15. सरफेसी अधिनियम के अंतर्गत संपूर्ण कार्यवाही को याचिकाकर्ताओं द्वारा ऋण वसूली न्यायाधिकरण के समक्ष चुनौती दी जानी आवश्यक थी, जो उन्होंने इस रिट दायर करने से पहले ही कर दिया है और मामला ऋण वसूली न्यायाधिकरण के समक्ष लंबित है। इसके अतिरिक्त, ऋण वसूली न्यायाधिकरण द्वारा पारित आदेशों के विरुद्ध ऋण वसूली अपीलीय न्यायाधिकरण के समक्ष वैधानिक अपील का प्रावधान है।

16. इसके आलोक में, हमें धारा 13(4) की कार्यवाही और बैंक द्वारा की गई अनुवर्ती कार्यवाही में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं दिखता।

17. तदनुसार, उपरोक्त टिप्पणियों के साथ, रिट याचिका **खारिज** की जाती है।

(2025) 4 ILRA 285

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 15.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रोहित रंजन अग्रवाल

रिट सी सं. 6327 सन् 2025

अनुज त्यागी ...याचिकाकर्ता

बनाम

जिला निर्वाचन अधिकारी (नगर परिषद सामान्य चुनाव-2023), कलेक्ट्रेट जिला गाजियाबाद व अन्य ...प्रत्यर्थीगण

याचिकाकर्ता की ओर से अधिवक्ता : आकाश त्यागी, नेहा त्यागी, पंकज कुमार त्यागी, सतीश कुमार त्यागी

प्रत्यर्थीगण की ओर से अधिवक्ता : सी.एस.सी., रमेश कुमार पांडे, तरुण अग्रवाल

सिविल कानून - उत्तर प्रदेश नगर निगम अधिनियम, 1959 - धारा 63(3) और 62(4)- चुनाव याचिकाकर्ता/प्रत्यर्थी सं. 4 द्वारा संशोधन आवेदन पेश किया गया था- अन्य पांच असफल उम्मीदवारों को प्रत्यर्थी के रूप में शामिल करने के लिए- 17.09.2024 को एक पक्षीय आदेश द्वारा अनुमति दी गई - रिकाल आवेदन-अस्वीकृत -आक्षेपित-

चुनाव याचिका में सभी चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों के न जुड़ने का दोष एक सुधार योग्य दोष नहीं है- धारा 63(3) - एक चुनाव याचिका में, याचिकाकर्ता को अपनी याचिका में सभी चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों को प्रत्यर्थी के रूप में शामिल करना होगा - धारा 62(4)- चुनाव याचिका दायर करने की समय सीमा प्रदान करती है- किसी भी दोष को निर्धारित समय सीमा के भीतर ठीक किया जा सकता है- इसमें निर्धारित समय समाप्त होने के बाद कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता है 1959 के अधिनियम की धारा 62(4) सपठित धारा 63(3) के प्रावधानों के विरुद्ध आक्षेपित आदेश पारित किया गया।

रिट याचिका स्वीकृत (ई-9)

<u>उद्धृत मामले:</u>

1. श्रीमती. ज्योति बनाम कुसमा देवी, 2019 (2) ऑलएलजे 262;
2. रामानंद गौड़ बनाम राम सनेही एवं अन्य, 2012 (4) एडीजे 212
3. पतंगराव कदम बनाम पृथ्वीराज सयाजीराव यादव देशमुख एवं अन्य, (2001) 3 एससीसी 594।
4. हर स्वरूप बनाम बृज भूषण सरन, एआईआर 1967 एससी 836;
5. अमीन लाल बनाम हुन्ना लाल, एआईआर 1965 एससी 1243
6. मोहन राज बनाम सुरेंद्र कुमार, एआईआर 1969 एससी 677;
7. चतुर्भुज चुन्नीलाल बनाम चुनाव न्यायाधिकरण, कानपुर एआईआर 1958 इला. 809

(माननीय न्यायमूर्ति रोहित रंजन अग्रवाल द्वारा प्रस्तुत)

1. न्यायालय के समक्ष संक्षिप्त विवाद यह है - "क्या आदेश VI नियम 17 सि.प्र.सं. के तहत पेश किए गए संशोधन आवेदन द्वारा, एक असफल उम्मीदवार द्वारा दायर चुनाव याचिका में संशोधन किया जा सकता है, जिसमें अन्य चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों को शामिल किया गया हो, जो शुरू में चुनाव याचिका में शामिल नहीं थे?"

2. संक्षेप में तथ्य, जो वर्तमान मामले की ओर ले जाते हैं, वे हैं कि वार्ड सं. 87, ज्ञानखंड इंदिरापुरम, गाजियाबाद के पार्षद के लिए 11.05.2023 को चुनाव हुआ था। 13.05.2023 को मतगणना हुई और परिणाम घोषित किया गया और याचिकाकर्ता को 1291 वोट प्राप्त करके सफल घोषित किया गया, जबकि चुनाव याचिकाकर्ता, प्रत्यर्थी सं. 4 को केवल 1181 वोट मिले।

3. प्रत्यर्थी सं. 4 द्वारा एक चुनाव याचिका सं. 06 सन् 2023 दायर की गई थी जिसमें केवल निर्वाचित उम्मीदवार/याचिकाकर्ता के साथ जिला निर्वाचन अधिकारी, गाजियाबाद; राज्य चुनाव आयुक्त, लखनऊ और

रिटर्निंग ऑफिसर, वार्ड नंबर 87, गाजियाबाद को पक्ष बनाया गया था। वार्ड नंबर 87 के चुनाव के लिए सात उम्मीदवारों ने चुनाव लड़ा था, लेकिन याचिकाकर्ता ने अन्य पाँच असफल उम्मीदवारों को पक्ष नहीं बनाया था।

4. याचिकाकर्ता ने चुनाव याचिका का विरोध किया और अपना लिखित बयान दाखिल किया। चुनाव याचिकाकर्ता/प्रत्यर्थी सं. 4 द्वारा 12.09.2024 को एक संशोधन आवेदन प्रस्तुत किया गया, जिसे 17.09.2024 के एकपक्षीय आदेश द्वारा स्वीकार कर लिया गया, जिससे चुनाव याचिकाकर्ता को चुनाव याचिका में अन्य पाँच असफल उम्मीदवारों को प्रत्यर्थी बनाने की अनुमति मिल गई। याचिकाकर्ता/निर्वाचित उम्मीदवार ने एक रिकाल आवेदन दायर किया, जिसे 29.01.2025 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया, जिसे वर्तमान रिट याचिका में संशोधन आवेदन को स्वीकार करने वाले 17.09.2024 के आदेश के साथ चुनौती दी गई है।

5. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने दलील दी कि प्रत्यर्थी सं. 4 द्वारा दायर चुनाव याचिका दोषपूर्ण है और उत्तर प्रदेश नगर निगम अधिनियम, 1959 (एतस्मिनपश्चात "1959 का अधिनियम" के रूप में संदर्भित) की धारा 62(4) चुनाव याचिका दायर करने की अवधि निर्धारित करती है। इसके अलावा, धारा 63(3) में प्रावधान है कि जहाँ याचिकाकर्ता धारा 64 के तहत उद्घोषणा का दावा करता है, वहाँ याचिकाकर्ता के अलावा सभी चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों को प्रत्यर्थी के रूप में शामिल किया जाएगा। उनके अनुसार, दायर याचिका दोषपूर्ण थी और आवश्यक पक्षकारों को शामिल न करने से यह अपरिहार्य निष्कर्ष निकलता है कि धारा 66 के तहत समय सीमा से परे होने के कारण याचिका खारिज कर दी जानी चाहिए।

6. **श्रीमती ज्योति बनाम कुसमा देवी, 2019 (2) इला. एलजे 262**; **रामानंद गौड़ बनाम राम सनेही और अन्य, 2012 (4) एडीजे 212** के मामले में इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा दिए गए निर्णय और **पतंगराव कदम बनाम पृथ्वीराज सयाजीराव यादव देशमुख और अन्य, (2001) 3 एससीसी 594** में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का सहारा लिया गया है।

7. प्रत्यर्थी सं. 4 की ओर से उपस्थित अधिवक्ता ने दलील दी कि दोष एक सुधार योग्य दोष है और याचिकाकर्ता द्वारा उद्धृत मामले के कानून इस मामले में लागू नहीं होते क्योंकि यह 1959 के अधिनियम के अंतर्गत है जबकि इस प्रकार दिया गया निर्णय जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के संबंध में है। उनके अनुसार, धारा 66 में यह परिकल्पना की गई है कि यदि इस अधिनियम द्वारा अनुमत समय के भीतर या सुरक्षा जमा करने से संबंधित धारा 79 के प्रावधानों या आवश्यक न्यायालय शुल्क का पालन नहीं किया गया है तो चुनाव याचिका खारिज की जा सकती है।

8. इस मामले में, चुनाव याचिका निर्धारित अवधि के भीतर दायर की गई थी और केवल अन्य चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों को चुनाव याचिका में प्रत्यर्थी के रूप में शामिल नहीं किया गया था, जो मामले की जड़ तक

नहीं जाएगा और चुनाव याचिका को खारिज नहीं किया जा सकता है। मांगा गया संशोधन मामले के चरित्र को नहीं बदलता है और केवल अन्य चुनाव लड़ने वाले प्रत्यर्थी ही चुनाव याचिका में शामिल हुए हैं।

9. मैंने प्रतिद्वंद्वी दलीलें सुनी हैं और रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री का अवलोकन किया है।

10. विचाराधीन मुद्दे पर निर्णय लेने से पहले, मामले की बेहतर समझ के लिए 1959 के अधिनियम की धारा 62, 63, 64, 66 पर एक सरसरी निगाह डालना आवश्यक है, जो यहां उद्धृत हैं:-

"धारा 62. पार्षद के चुनाव पर प्रश्न उठाना *- (1) किसी भी व्यक्ति के पार्षद के रूप में निर्वाचन पर चुनाव में किसी असफल उम्मीदवार द्वारा या किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा जिसका नामांकन पत्र चुनाव में अस्वीकृत कर दिया गया हो, या संबंधित वार्ड के किसी भी मतदाता द्वारा प्रश्न उठाया जा सकता है।*
(2) याचिका धारा 71 में उल्लिखित किसी एक या अधिक आधारों पर प्रस्तुत की जा सकती है।
(3) किसी भी व्यक्ति के पार्षद के रूप में निर्वाचन पर इस आधार पर प्रश्न नहीं उठाया जाएगा कि मतदान के योग्य किसी व्यक्ति का नाम मतदाता सूची से हटा दिया गया है, या किसी ऐसे व्यक्ति का नाम मतदाता सूची या सूचियों में डाल दिया गया है जो मतदान के योग्य नहीं है।
(4) याचिका चुनाव परिणाम की घोषणा के 30 दिनों के भीतर शहर में अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने वाले जिला न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत की जाएगी।

धारा 63. याचिकाओं के प्रारूप और विषय-वस्तु*- (1) चुनाव याचिका में वह आधार या आधार निर्दिष्ट किए जाएँगे जिन पर प्रत्यर्थी के निर्वाचन पर प्रश्न उठाया गया है और उसमें उन महत्वपूर्ण तथ्यों का संक्षिप्त विवरण होगा जिन पर याचिकाकर्ता निर्भर करता है, और उसमें याचिकाकर्ता द्वारा आरोपित किसी भी भ्रष्ट आचरण का पूरा विवरण दिया जाएगा, जिसमें ऐसे भ्रष्ट आचरण करने वाले कथित पक्षों के नामों और प्रत्येक ऐसे आचरण के किए जाने की तिथि और स्थान का यथासंभव पूर्ण विवरण शामिल होगा।*

(2) याचिका और यदि याचिका के साथ कोई अनुसूची या अनुलग्नक है, तो ऐसी अनुसूची या अनुलग्नक पर भी याचिकाकर्ता द्वारा हस्ताक्षर किए जाएँगे और अभिवचनों के सत्यापन के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 में निर्धारित तरीके से उसका सत्यापन किया जाएगा।

(3) याचिकाकर्ता अपनी याचिका में प्रत्यर्थी के रूप में शामिल होगा -

(क) जहाँ याचिकाकर्ता धारा 64 के अंतर्गत घोषणा का दावा करता है, वहाँ याचिकाकर्ता के अलावा सभी चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवार, और किसी भी अन्य मामले में सभी निर्वाचित उम्मीदवार;
(ख) कोई अन्य उम्मीदवार जिसके विरुद्ध याचिका में किसी भ्रष्ट आचरण के आरोप लगाए गए हों।

धारा 64. याचिकाकर्ता द्वारा दावा किया जा सकने वाला अनुतोष -*याचिकाकर्ता, निर्वाचित सभी या किसी भी अभ्यर्थी के निर्वाचन को शून्य घोषित करने का दावा करने के अतिरिक्त, यह उद्घोषणा भी मांग सकता है कि वह स्वयं या कोई अन्य अभ्यर्थी विधिवत् निर्वाचित हो गया है।*

धारा 66. याचिका कब खारिज की जाएगी *- यदि कोई चुनाव याचिका इस अधिनियम द्वारा अनुमत समय के भीतर प्रस्तुत नहीं की जाती है या यह सुरक्षा जमा करने से संबंधित धारा 79 के तहत किए गए किसी भी प्रावधान का अनुपालन नहीं करती है या इसके लिए देय आवश्यक न्यायालय शुल्क अनुमत समय के भीतर प्रस्तुत नहीं किया जाता है, तो इसे जिला न्यायाधीश द्वारा तुरंत खारिज कर दिया जाएगा।*

11. धारा 62 किसी भी असफल उम्मीदवार द्वारा पार्षद के चुनाव पर सवाल उठाने का प्रावधान करती है। इसे धारा 71 में उल्लिखित किसी एक या अधिक आधारों पर प्रस्तुत किया जा सकता है। धारा 62 की उप-धारा (4) बहुत प्रासंगिक है क्योंकि यह समय सीमा निर्धारित करती है जिसके भीतर एक चुनाव याचिका प्रस्तुत की जा सकती है। चुनाव याचिका प्रस्तुत करने के लिए परिणाम की घोषणा से 30 दिनों की अवधि प्रदान की गई है।

12. धारा 63 याचिकाओं के प्रारूप और विषय-वस्तु का प्रावधान करती है। यह निर्धारित करती है कि चुनाव याचिका में वह आधार या आधार निर्दिष्ट किए जाएँगे जिन पर प्रत्यर्थी के निर्वाचन पर प्रश्न उठाया गया है और इसमें उन तथ्यों का संक्षिप्त विवरण होगा जिन पर याचिकाकर्ता निर्भर करता है। उप-धारा (2) में प्रावधान है कि यदि चुनाव याचिका में कोई अनुसूची या अनुलग्नक है, तो उस पर याचिकाकर्ता द्वारा हस्ताक्षर किए जाएँगे और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 में निर्धारित तरीके से उसका सत्यापन किया जाएगा, ताकि अभिवचनों का सत्यापन किया जा सके। धारा 63 की उप-धारा (3) अत्यंत प्रासंगिक है क्योंकि यह स्पष्ट रूप से प्रावधान करती है कि याचिकाकर्ता अपनी याचिका में याचिकाकर्ता के अलावा सभी चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों को प्रत्यर्थी के रूप में शामिल करेगा, जहाँ याचिकाकर्ता धारा 64 के तहत उद्घोषणा का दावा करता है, और किसी अन्य मामले में सभी निर्वाचित उम्मीदवारों की तरह। इस प्रकार, उप-धारा (3) स्पष्ट रूप से स्पष्ट करती है कि सभी चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों को चुनाव याचिका में प्रत्यर्थी के रूप में शामिल होना होगा। इस प्रावधान को धारा 62 की उप-धारा (4) के अनुरूप पढ़ा जाना चाहिए, जिसमें परिणाम की घोषणा के 30 दिनों के भीतर चुनाव याचिका प्रस्तुत करने की आवश्यकता होती है। धारा 63 के साथ धारा 62 के तहत किसी भी पार्षद के चुनाव पर सवाल उठाने वाली याचिका की स्थिरता के लिए सभी चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों का शामिल होना आवश्यक है। सभी आवश्यक पक्षों के न जुड़ने का नतीजा यह होगा कि धारा 64 की उप-धारा (4) के तहत अनिवार्य चुनाव परिणाम की घोषणा की तारीख से 30 दिनों के भीतर प्रस्तुत नहीं की गई , जिससे ऐसी स्थिति पैदा हो जाएगी जहां याचिका धारा 66 के तहत खारिज हो सकती है।

13. चुनाव याचिका में सभी चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों का शामिल न होना एक सुधार योग्य दोष नहीं है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **पतंगराव कदम (उपरोक्त)** में जनप्रतिनिधित्व अधिनियम के तहत मामले की

सुनवाई करते हुए **हर स्वरूप बनाम बृज भूषण सरन, एआईआर 1967 एससी 836; अमीन लाल बनाम हुन्ना लाल, एआईआर 1965 एससी 1243** और **मोहन राज बनाम सुरेंद्र कुमार, एआईआर 1969 एससी 677; चतुर्भुज चुन्नीलाल बनाम चुनाव न्यायाधिकरण, कानपुर एआईआर 1958 इला. 809** में दिए निर्णयों पर विचार करते हुए यह माना गया कि आदेश I नियम 10 के तहत अभियोग और आदेश VI नियम 17 के तहत संशोधन न्यायालय के लिए संरक्षित शक्ति है, लेकिन जब अधिनियम किसी व्यक्ति को आवश्यक पक्ष बनाता है और यह प्रावधान करता है कि यदि ऐसा कोई पक्ष शामिल नहीं होता है तो याचिका खारिज कर दी जाएगी। संशोधन या पक्षों को हटाने की शक्ति का प्रयोग बिल्कुल नहीं किया जा सकता। प्रासंगिक पैरा 20 यहां उद्धृत किया गया है:-

"20. यह विचार कि एक उम्मीदवार, जिसे विधिवत नामांकित किया गया है, नाम वापसी के बावजूद धारा 82(बी) के प्रयोजन के लिए उम्मीदवार बना रहता है, हर स्वरूप [एआईआर 1967 एससी 836: (1967) 1 एससीआर 342] और अमीन लाल बनाम हुन्ना मल [एआईआर 1965 एससी 1243: (1965) 1 एससीआर 393] के निर्णयों द्वारा समर्थित है। यह न्यायालय मोहन राज बनाम सुरेंद्र कुमार तापड़िया [एआईआर 1969 एससी 677: (1969) 1 एससीआर 630] में उक्त निर्णयों का उल्लेख करते हुए उक्त दृष्टिकोण से सहमत है। इसके अलावा चतुर्भुज चुन्नीलाल बनाम चुनाव न्यायाधिकरण, कानपुर [एआईआर 1958 ऑल 809] में इस प्रश्न से संबंधित सभी पहलुओं पर विस्तृत विचार करने के बाद समान दृष्टिकोण अपनाने वाला निर्णय अनुमोदित है। आदेश 1 नियम 10 के तहत पक्षकार बनाने और आदेश 6 नियम 17 के तहत संशोधन के लिए किए गए आवेदनों पर विचार करते हुए, उसी निर्णय के पैरा 10 में, इस न्यायालय ने इस प्रकार कहा था: (एआईआर पृष्ठ 681)

"निःसंदेह, संशोधन की शक्ति न्यायालय के पास सुरक्षित है और आदेश 1 नियम 10 न्यायालय को पक्षकारों को हटाने का अधिकार देता है, लेकिन न्यायालय आदेश 6 नियम 17 या आदेश 1 नियम 10 का उपयोग गैर-संयोजन के परिणामों से बचने के लिए नहीं कर सकता, जिसके लिए अधिनियम में एक विशेष प्रावधान है। न्यायालय संशोधन का आदेश दे सकता है और किसी ऐसे पक्षकार को भी हटा सकता है जो आवश्यक नहीं है। लेकिन जब अधिनियम किसी व्यक्ति को आवश्यक पक्षकार बनाता है और यह प्रावधान करता है कि यदि ऐसा पक्षकार शामिल नहीं होता है तो याचिका खारिज कर दी जाएगी, तो संशोधन या पक्षकारों को हटाने की शक्ति का उपयोग बिल्कुल नहीं किया जा सकता। सिविल प्रक्रिया संहिता, जनप्रतिनिधित्व अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए किसी भी नियम के प्रावधानों के अधीन लागू होती है (धारा 87 देखें)। जब अधिनियम किसी पक्षकार के शामिल न होने पर याचिका को खारिज करने के दंड का प्रावधान करता है, तो सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों को याचिका को बचाने के लिए उपचारात्मक उपाय के रूप में इस्तेमाल नहीं किया जा सकता है।"

14. **श्रीमती ज्योति (उपरोक्त)** में इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने उत्तर प्रदेश नगर पालिका अधिनियम, 1916 के तहत एक मामले पर विचार करते हुए, जहाँ प्रावधान कुछ हद तक 1959 के अधिनियम के प्रावधानों

के समान हैं, यह माना कि किसी ऐसे दोष को दूर करने के लिए संशोधन की अनुमति नहीं दी जा सकती जो चुनाव याचिका को खारिज करने का कारण बन सकता है।

15. बेहतर समझ के लिए, उत्तर प्रदेश नगर पालिका अधिनियम, 1916 की धारा 20 का उद्धरण यहां दिया गया है:-

"20. चुनाव याचिकाओं का प्रस्तुतीकरण और पपत्र:-

(1) चुनाव याचिका उस दिन के 30 दिनों के भीतर प्रस्तुत की जाएगी जिस दिन प्रश्नगत चुनाव का परिणाम रिटर्निंग ऑफिसर द्वारा घोषित किया जाता है, और उसमें वह आधार या आधार निर्दिष्ट किए जाएंगे जिन पर प्रत्यर्थी ने चुनाव पर प्रश्न उठाया गया है और उसमें उन तथ्यों का संक्षिप्त विवरण होगा जिन पर याचिकाकर्ता निर्भर करता है और याचिकाकर्ता द्वारा आरोपित किसी भी भ्रष्ट आचरण का पूरा विवरण दिया जाएगा, जिसमें ऐसे भ्रष्ट आचरण करने वाले आरोपित पक्षों के नामों और ऐसे प्रत्येक आचरण के किए जाने की तारीख और स्थान का यथासंभव पूर्ण विवरण शामिल होगा।

(2) याचिका पर याचिकाकर्ता द्वारा हस्ताक्षर किए जाएँगे और अभिवचनों के सत्यापन के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (V सन् 1908) में निर्धारित तरीके से उसका सत्यापन किया जाएगा।

(3) याचिका किसी ऐसे उम्मीदवार द्वारा प्रस्तुत की जा सकती है जिसके पक्ष में मत दर्ज किए गए हों और जो याचिका में यह दावा करता हो कि उसे उस व्यक्ति के कक्ष में निर्वाचित घोषित किया गया है जिसके निर्वाचन पर प्रश्न उठाया गया है या नगरपालिका के दस या अधिक निर्वाचकों द्वारा या ऐसे व्यक्ति द्वारा जो यह दावा करता हो कि उसका नामांकन पत्र अनुचित रूप से अस्वीकृत कर दिया गया था।

(4) वह व्यक्ति जिसके निर्वाचन पर प्रश्न उठाया गया है और जहाँ याचिकाकर्ता यह दावा करता है कि ऐसे व्यक्ति के कक्ष में किसी अन्य अभ्यर्थी को निर्वाचित घोषित किया जाना चाहिए, वहाँ प्रत्येक असफल अभ्यर्थी, जो याचिका में याचिकाकर्ता नहीं है, याचिका का प्रत्यर्थी बनाया जाएगा।

(5) याचिका उस क्षेत्र में अधिकारिता का प्रयोग करने वाले जिला न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत की जाएगी जिसमें वह नगरपालिका, जिससे निर्वाचन याचिका संबंधित है, स्थित है:
बशर्ते कि जिला न्यायाधीश द्वारा याचिका पर तब तक विचार नहीं किया जाएगा जब तक कि उसके साथ ट्रेजरी चालान न हो जिसमें यह दर्शाया गया हो कि निर्धारित प्रतिभूति जमा कर दी गई है।"

16. धारा 20 की उपधारा (4) में प्रावधान है कि जहां किसी निर्वाचन पर प्रश्न उठाया जाता है और याचिकाकर्ता दावा करता है कि ऐसे व्यक्ति के स्थान पर किसी अन्य अभ्यर्थी को निर्वाचित घोषित किया जाना चाहिए, वहां

प्रत्येक असफल अभ्यर्थी को, जो याचिका में याचिकाकर्ता नहीं है, याचिका में प्रत्यर्थी बनाया जाएगा। धारा 20 की उपधारा (4) कुछ हद तक 1959 के अधिनियम की धारा 63 की उपधारा (3) के समान है जो यह भी प्रावधान करती है कि याचिकाकर्ता अपनी याचिका में चुनाव लड़ने वाले सभी अभ्यर्थियों के साथ प्रत्यर्थी बनेगा। न्यायालय ने यह माना कि यदि संशोधन की अनुमति दी जाती है तो यह 1916 के अधिनियम की धारा 20(4) के वैधानिक प्रावधानों के विरुद्ध होगा। प्रासंगिक पैरा 20, 21, 22 और 23 यहां उद्धृत हैं:-

"20. अधिनियम, 1916 की धारा 23 के आधार पर, न्यायालयों ने संशोधनों की अनुमति देने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 6 नियम 17 के सामान्य प्रावधानों को लागू किया है। हालाँकि, अधिनियम, 1916 की धारा 23 को सीधे पढ़ने से पता चलता है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के सामान्य प्रावधान केवल तभी लागू किए जा सकते हैं जब अधिनियम या नियमों में कोई असंगत प्रावधान न हो। अधिनियम, 1916 की धारा 20 की उप-धारा (4) में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि जहां चुनाव याचिका में दावा किया जाता है कि किसी अन्य उम्मीदवार को ऐसे व्यक्ति के स्थान पर निर्वाचित घोषित किया जाना चाहिए जिसके चुनाव पर सवाल उठाया गया है, प्रत्येक असफल उम्मीदवार को, यदि याचिकाकर्ता के रूप में पक्षकार नहीं बनाया गया है, तो याचिका में प्रत्यर्थी बनाया जाएगा। इस संबंध में किसी भी दोष को अधिनियम, 1916 की धारा 22 में दिए गए तरीके से निपटाया जाना चाहिए। इन परिस्थितियों में, आदेश 6 नियम 17 सि.प्र.सं. के तहत उपलब्ध सामान्य शक्तियों को उस दोष को दूर करने के लिए लागू नहीं किया जा सकता है जो अधिनियम, 1916 की धारा 22 के तहत याचिका को अस्वीकार कर सकता है, जब तक कि ऐसे दोष को हटाने की मांग उस समय अवधि के भीतर नहीं की जाती है जो अधिनियम, 1916 के तहत अनुमेय हो सकती है।

21. हरिश्चंद्र मामले (उपरोक्त) तथा के. वेंकटेश्वर राव मामले (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय इस मुद्दे पर स्पष्ट है कि सि.प्र.सं.के आदेश 6 नियम 17 के तहत शक्ति का प्रयोग चुनाव याचिका के स्वरूप को बदलने के लिए नहीं किया जा सकता है, जिससे कि वह मूलतः एक नई याचिका बन जाए, यदि उस वाद हेतुक पर नई याचिका पर तब तक रोक लग चुकी हो।

22. वर्तमान मामले में, प्रस्तुत चुनाव याचिका केवल निर्वाचित उम्मीदवार के निर्वाचन को शून्य और अमान्य घोषित करने के लिए थी। चुनाव याचिकाकर्ता द्वारा उस व्यक्ति, जिसके निर्वाचन पर प्रश्न उठाया गया था, अर्थात् निर्वाचित उम्मीदवार, के स्थान पर उसे निर्वाचित घोषित करने का कोई अनुरोध नहीं किया गया था। संशोधन के साथ, याचिका के स्वरूप को बदलने का प्रयास किया गया ताकि ऐसी घोषणा के लिए एक अनुतोष शामिल किया जा सके और ऐसी अनुतोष को बनाए रखने के लिए, प्रत्येक असफल उम्मीदवार को पक्षकार प्रत्यर्थी के रूप में जोड़ा जा सके।

23. यह सच है कि संशोधन आवेदन, अधिनियम, 1916 के तहत ऐसी चुनाव याचिका प्रस्तुत करने के लिए निर्धारित समय सीमा समाप्त होने के बाद दायर किया गया था। इसलिए, हरिश्चंद्र मामले (उपरोक्त) और के. वेंकटेश्वर राव मामले (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के मद्देनजर, इस संशोधन आवेदन

पर विचार नहीं किया जा सकता था और न ही इसे अनुमति दी जा सकती थी। प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा श्रीमती सरिता गुप्ता (उपरोक्त) में दिए गए निर्णय का सहारा, पूरे सम्मान के साथ, प्रत्यर्थी के बचाव में नहीं आ सकता क्योंकि उक्त निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय के उन निर्णयों का ध्यान नहीं रखा गया है जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है।"

17. इस प्रकार, धारा 63 की उपधारा (3) स्पष्ट रूप से बताती है कि चुनाव याचिका में याचिकाकर्ता को अपनी याचिका में सभी चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों को प्रत्यर्थी के रूप में शामिल करना होगा।

18. वर्तमान मामले में, 31.05.2023 को दायर चुनाव याचिका में अन्य पांच असफल उम्मीदवार - 1. अश्विनी कुमार सिंह 2. सलेक चंद्र त्यागी 3. नंद लाल शर्मा 4. गौरव कुमार और 5. राहुल मणि कुदेसिया शामिल नहीं थे। एक वर्ष से अधिक समय के बाद संशोधन करके 12.09.2024 को आदेश VI नियम 17 के तहत एक आवेदन दायर किया गया ताकि याचिका में अन्य पांच असफल उम्मीदवारों को प्रत्यर्थी बनाया जा सके। उक्त संशोधन आवेदन पोषणीय नहीं है क्योंकि अधिनियम धारा 63 की उपधारा (3) में स्पष्ट रूप से प्रावधान करता है कि चुनाव याचिका में सभी चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों को प्रत्यर्थी के रूप में शामिल किया जाना चाहिए।

19. चुनाव याचिका में मौजूद दोष को चुनाव याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत संशोधन आवेदन के माध्यम से ठीक नहीं किया जा सकता है। धारा 62(4) चुनाव याचिका दायर करने की समय-सीमा प्रदान करती है। किसी भी दोष को उक्त प्रावधान के तहत निर्धारित समय-सीमा के भीतर ठीक किया जा सकता है और निर्धारित समय समाप्त होने के बाद कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता है।

20. निचली अदालत ने संशोधन आवेदन को गलत तरीके से स्वीकार किया और निर्वाचित उम्मीदवार द्वारा दायर रिकाल आवेदन को खारिज कर दिया, जो 1959 के अधिनियम की धारा 63(3) सपठित धारा 62(4) के प्रावधानों के विरुद्ध है।

21. उपरोक्त के मद्देनजर, संशोधन आवेदन पर पारित दिनांक 17.09.2024 का आदेश और रिकाल आवेदन पर पारित दिनांक 29.01.2025 का आदेश एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है।

22. रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

23. ऊपर प्रस्तुत प्रश्न का उत्तर दिया गया है जो याचिकाकर्ता के पक्ष में और प्रत्यर्थी सं. 4/चुनाव याचिकाकर्ता के विरुद्ध है।

(2025) 4 ILRA 291

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद, 10.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शेखर बी. सराफ

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. योगेंद्र कुमार श्रीवास्तव

रिट सी संख्या 10619 सन् 2025

ईशान चौधरी एवं अन्य **...याचिकाकर्ता**

बनाम

भारत संघ एवं अन्य **...प्रतिवादी**

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:
अखिलेश्वर प्रताप सिंह, अतुल कुमार

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
ए.एस.जी.आई., कोमल मेहरोत्रा

अनुवादित

सिविल कानून - उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006- धारा 80 - रिटेल दुकान (पेट्रोल पंप) की डीलरशिप के आवंटन के लिए आवेदन - खारिज - याचिकाकर्ताओं द्वारा पट्टे पर प्राप्त की गई भूमि - आवेदन 'डीलर चयन दिशानिर्देश 2023' को पूरा नहीं करता था - क्योंकि 'कई सह-मालिक हैं - जबकि पट्टा विलेख केवल एक सह-मालिक से किया जाता है - आक्षेपित - धारा 80 (4) - जोत का विभाजन और संयुक्त जोत में सह-भूमिधरों के शेयरों का निर्धारण - घोषणा प्राप्त करने के लिए एक पूर्व शर्त है धारा 80 (1) और (2) - विपरीत निहितार्थ का अनुमान नहीं लगाया जा सकता - यह प्रदर्शित करने के लिए कोई दस्तावेज नहीं है कि सभी सह-मालिकों के बीच संपत्ति का विभाजन - यदि सह-भूमिधरों में से केवल एक संयुक्त हित के साथ भूमि में अपने हिस्से के लिए घोषणा प्राप्त करने का इच्छुक है - सह-भूमिधरों की भूमि के संबंधित शेयरों के विभाजित होने के बाद ही आवेदन पर विचार किया जाएगा।

रिट याचिका खारिज। (ई-9)

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. योगेन्द्र कुमार श्रीवास्तव द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता और प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. वर्तमान रिट याचिका प्रतिवादी संख्या 4/क्षेत्र प्रबंधक (रिटेल) मथुरा द्वारा पारित दिनांक 4.3.2025 के आदेश को चुनौती देने के लिए दायर की गई है, जिसके अनुसार याचिकाकर्ताओं को रिटेल-आउटलेट (पेट्रोल पंप) डीलरशिप के आवंटन के लिए अपात्र पाया गया है।

3. रिट याचिका में प्रस्तुत दलीलों के अनुसार, याचिकाकर्ताओं ने प्रतिवादी संख्या 2-भारत पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड 1 द्वारा जारी दिनांक 28.6.2023 की अधिसूचना के प्रत्युत्तर में, खेरागढ़ से सैपु रोड, जिला आगरा, तहसील खेरागढ़ के ग्राम नगला संथल में एक रिटेल-आउटलेट (पेट्रोल पंप) की डीलरशिप के आवंटन के लिए आवेदन किया था।

4. रिटेल-आउटलेट स्थापित करने के उद्देश्य से प्रस्तावित भूमि को याचिकाकर्ताओं ने विजय सिंह नामक व्यक्ति द्वारा निष्पादित पट्टे पर प्राप्त किया था, जो खसरा संख्या 177 का हिस्सा है, जिसका क्षेत्रफल 1332 वर्ग मीटर है, और यह ग्राम नगला, संथाल, तहसील-खेरागढ़, जिला आगरा में स्थित है।

5. याचिकाकर्ताओं द्वारा अपलोड किए गए दस्तावेजों और आवेदन में उनके द्वारा प्रदान की गई जानकारी का मूल्यांकन प्रतिवादी संख्या 2-बीपीसीएल की जांच समिति द्वारा किया गया और यह पाया गया कि आवेदन 'डीलर चयन दिशानिर्देश 2023' को पूरा नहीं करता है और इसलिए, आवेदन को 16.8.2024 के ई-मेल के माध्यम से अस्वीकार कर दिया गया, जिसमें अस्वीकृति का कारण बताया गया था कि 'खतौनी की अपलोड की गई प्रति के अनुसार प्रस्तावित खसरा संख्या 177 के कई सह-स्वामी हैं, जबकि पट्टा विलेख केवल एक सह-स्वामी से किया गया है'।

6. इस स्तर पर, याचिकाकर्ताओं ने रिट याचिका दायर की, जो रिट-सी संख्या 40696/2024 थी, जिसका निस्तारण दिनांक 16.1.2025 के आदेश के माध्यम से किया गया, जिसमें प्रतिवादी संख्या 2-बीपीसीएल को याचिकाकर्ताओं द्वारा उनके दावे के संबंध में प्रस्तुत दिनांक 23.8.2024 के अभ्यावेदन पर निर्णय लेने का निर्देश दिया गया।

7. रिट-सी संख्या 40696/2024 में पारित उपरोक्त आदेश के अनुसरण में, याचिकाकर्ताओं के अभ्यावेदन की जाँच की गई और दिनांक 4.3.2025 के आदेश के अनुसार, याचिकाकर्ताओं को रिटेल-आउटलेट डीलरशिप के आवंटन हेतु अपात्र माना गया है। उक्त आदेश दिनांक 4.3.2025 से व्यथित होकर, वर्तमान रिट याचिका दायर की गई है।

8. याचिकाकर्ताओं की ओर से यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ताओं का चयन केवल इस आधार पर रद्द किया गया है कि पट्टा विलेख सभी सह-खातेदारों द्वारा निष्पादित किया जाना चाहिए था, जबकि उनके द्वारा प्रस्तावित भूमि का विभाजन दिनांक 20.12.2019 के एक आदेश द्वारा पहले ही किया जा चुका था, जिसमें याचिकाकर्ताओं के पक्ष में पट्टा विलेख निष्पादित करने वाले व्यक्ति विजय सिंह का हिस्सा घोषित किया गया था। यह कहा गया है कि उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 80 की उपधारा (4) के अनुसार, एक बार धारा 80 के तहत घोषणा हो जाने के बाद, यह पूर्वकल्पित होगा कि विचाराधीन भूमि का विभाजन/विभाजन विधि के प्रावधानों के अनुसार पहले ही हो चुका है।

9. प्रतिवादी संख्या 2 से 4 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने उपरोक्त तर्क का खंडन करते हुए कहा कि 20.12.2019 का आदेश संहिता, 2006 की धारा 80(1) के अंतर्गत पारित किया गया है, जो केवल भूमि के गैर-कृषि उपयोग की घोषणा के संबंध में है, और इसे ऐसा आदेश नहीं माना जा सकता जिसके द्वारा विचाराधीन भूमि का विभाजन किया गया कहा जा सके।

10. यह बताया गया है कि डीलरों के चयन के लिए 'चयन विवरणिका' के खंड संख्या 4(vi) के अनुसार, यदि प्रस्तावित भूमि दीर्घकालिक पट्टे पर है और कई सह-स्वामी हैं, तो ऐसा पट्टा विलेख प्रस्तावित भूखंड के सभी सह-स्वामियों द्वारा निष्पादित किया जाना चाहिए था। वर्तमान मामले में, चूंकि पट्टा विलेख सभी सह-स्वामियों द्वारा निष्पादित नहीं किया गया है, इसलिए इसे डीलरों के चयन के उद्देश्य से अमान्य माना जाना चाहिए।

11. हमने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना है तथा अभिलेखों का अवलोकन किया है।

12. डीलरों के चयन के लिए चयन ब्रोशर में खंड संख्या 4 (vi) के अंतर्गत स्पष्ट प्रावधान है कि जहां प्रस्तावित भूमि दीर्घकालिक पट्टे पर है और उसके एक से अधिक मालिक हैं, वहां पट्टा सभी सह-मालिकों द्वारा निष्पादित किया जाना चाहिए, और यदि पट्टा विलेख इस प्रकार निष्पादित नहीं किया गया है, तो इसे अवैध माना जाएगा।

13. यह निर्विवाद तथ्य है कि याचिकाकर्ताओं के पक्ष में पट्टा विलेख भूखंड के केवल एक सह-मालिक द्वारा निष्पादित किया गया था, जबकि राजस्व अभिलेख, अर्थात् खतौनी अर्क के अनुसार, संबंधित भूखंड के चार अन्य सह-मालिक हैं।

14. याचिकाकर्ताओं की ओर से यह तर्क दिया गया है कि दिनांक 20.12.2019 के आदेश के माध्यम से विचाराधीन भूमि का विभाजन कर दिया गया था, जिसे प्रतिवादी संख्या 4 ने इस कारण स्वीकार नहीं किया है कि संहिता, 2006 की धारा 80(1) के तहत पारित उक्त आदेश का प्रभाव भूमि के गैर-कृषि उपयोग की घोषणा करने का था और इसे ऐसा आदेश नहीं माना जा सकता जिसका प्रभाव विचाराधीन भूमि के सह-स्वामियों के बीच विभाजन करने का हो। प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पारित दिनांक 4.3.2025 के आक्षेपित आदेश में पैरा VIII और IX में इस तथ्यात्मक स्थिति का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है, जो नीचे उद्धृत हैं:

"VIII. इसके अलावा हम आपका ध्यान भूमि विवरण के संबंध में आपके आवेदन पत्र में उल्लिखित जानकारी की ओर आकर्षित करना चाहते हैं जिसमें आपने उल्लेख किया है कि स्थान खसरा/गाटा/सर्वे नंबर 177 का स्वामित्व पूरी तरह से आदित्य चंद्रा और ईशान चौधरी के पास है। आपने भूखंड का पट्टा केवल एक सह-स्वामी से लिया है। **हालांकि खतौनी के अनुसार उसी गाटा संख्या में चार अन्य सह-स्वामी हैं।** यह II (बी) के तहत इस पत्र में इंगित डीलर चयन दिशानिर्देश 2023 की धारा 22 की झूठी सूचना का उल्लंघन है।

IX. आपके द्वारा उपलब्ध कराए गए दस्तावेज़ों और आवेदन में भरे गए विवरणों के आधार पर, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्रस्तावित भूखंड का एक निश्चित भाग उत्तर प्रदेश राजस्व अधिनियम, 2006 की धारा 80 के अंतर्गत कृषि से गैर-कृषि में परिवर्तित हो चुका है, लेकिन उसका विभाजन नहीं हुआ है। साथ ही, उत्तर प्रदेश राजस्व अधिनियम, 2006 की धारा 80 के अंतर्गत भूमि परिवर्तन को विभाजन नहीं माना जा सकता क्योंकि यह सशर्त है और परिवर्तन आदेश में उल्लिखित शर्तों के अनुपालन के अधीन है। **इसलिए, डीलर चयन दिशानिर्देश, 2023 के ब्रोशर के अनुसार आपका पट्टा विलेख मान्य नहीं है।**

15. याचिकाकर्ताओं की ओर से प्रस्तुत इस तर्क की जाँच करने के लिए कि संहिता, 2006 की धारा 80 की उपधारा (4) के अनुसार, एक बार उपधारा (1) के अंतर्गत घोषणा कर देने से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि संबंधित भूमि का विभाजन पहले ही हो चुका है, हमें संबंधित वैधानिक प्रावधानों का संदर्भ लेना होगा।

16. उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006, उत्तर प्रदेश राज्य में भू-स्वामित्व और भू-राजस्व से संबंधित कानून को समेकित और संशोधित करने तथा उससे संबंधित और उसके आनुषंगिक विषयों का प्रावधान करने हेतु एक अधिनियम है। भूमि के गैर-कृषि उपयोग के संबंध में घोषणा संहिता, 2006 की धारा 80 के अनुसार की जानी है, जिसका उद्धरण नीचे दिया गया है:

"80. औद्योगिक, वाणिज्यिक या आवासीय प्रयोजनों के लिए जोत का उपयोग- (1) जहां हस्तांतरणीय अधिकारों वाला कोई भूमिधर अपनी जोत या उसके किसी भाग का उपयोग औद्योगिक, वाणिज्यिक या आवासीय प्रयोजनों के लिए करता है, वहां उप-जिलाधिकारी, स्वप्रेरणा से या ऐसे भूमिधर द्वारा प्रस्तुत आवेदन पर, विहित जांच करने के पश्चात, या तो यह घोषणा कर सकता है कि भूमि का उपयोग कृषि से असंबंधित प्रयोजन के लिए किया जा रहा है या आवेदन को अस्वीकार कर सकता है। उप-जिलाधिकारी आवेदन प्राप्ति की तिथि से पैंतालीस कार्य दिवसों के भीतर आवेदन पर निर्णय लेगा। यदि आवेदन अस्वीकार कर दिया जाता है, तो उप-जिलाधिकारी ऐसी अस्वीकृति के कारणों को लिखित रूप में बताएगा और आवेदक को अपने निर्णय से अवगत कराएगा।
परन्तु यदि घोषणा के लिए आवेदन के साथ निर्धारित शुल्क संलग्न हो और संयुक्त जोत की स्थिति में, सह-खातेदार की स्थिति में सह-खातेदार की कोई आपत्ति संलग्न न हो और यदि उप-जिलाधिकारी द्वारा पूर्वोक्त अनुसार पैंतालीस दिनों के भीतर घोषणा नहीं की जाती है, तो घोषणा की गई मानी जाएगी। तहसीलदार इसका अभिलेख रखेगा। राजस्व अभिलेखों में, "उप-जिलाधिकारी के आदेश के अधीन" टिप्पणी के साथ दर्ज किया जाएगा।

यदि कोई प्रभावित पक्ष उक्त घोषणा के संबंध में आपत्ति दर्ज कराना चाहता है, तो वह सक्षम न्यायालय में आपत्ति दर्ज करा सकता है।

(2) जहाँ संक्रमणीय अधिकारों वाला कोई भूमिधर भविष्य में अपनी जोत या उसके किसी भाग का उपयोग औद्योगिक, वाणिज्यिक या आवासीय प्रयोजनों के लिए करने का प्रस्ताव करता है, वहाँ उप-जिलाधिकारी ऐसे भूमिधर द्वारा प्रस्तुत आवेदन पर, विहित जाँच करने के पश्चात, आवेदन प्राप्त होने की तिथि से पैंतालीस कार्य दिवसों के भीतर या तो यह घोषणा कर सकता है कि भूमि का उपयोग कृषि से असंबंधित किसी प्रयोजन के लिए किया जा सकता है, या आवेदन को अस्वीकार कर सकता है। यदि आवेदन अस्वीकार कर दिया जाता है, तो उप-जिलाधिकारी ऐसी अस्वीकृति के कारणों को लिखित रूप में बताएगा और आवेदक को अपने निर्णय से अवगत कराएगा:

परंतु यह और कि यदि भूमिधर इस उपधारा के अधीन घोषणा की तारीख से पांच वर्ष की अवधि के भीतर प्रस्तावित गैर-कृषि क्रियाकलाप आरंभ करने में असफल रहता है, तो जोत या उसके भाग के लिए उपधारा (2) के अधीन घोषणा व्यपगत हो जाएगी।

परंतु यह भी कि इस उपधारा (2) के अधीन की गई घोषणा भूमि उपयोग में परिवर्तन नहीं मानी जाएगी और भूमि को केवल कृषि भूमि ही माना जाता रहेगा। तथापि, भूमिधर उस जोत या उसके किसी भाग पर प्रस्तावित क्रियाकलाप या परियोजना के लिए ऋण और अन्य आवश्यक अनुमतियाँ, मंज़ूरियाँ आदि प्राप्त करने का हकदार होगा, जिसके लिए इस उपधारा के अधीन घोषणा प्राप्त की गई है।

(3) कोई भूमिधर, जिसके पास उपधारा (2) के अधीन अपनी जोत या उसके किसी भाग के लिए घोषणा है, निर्माण कार्य पूरा होने या प्रस्तावित गैर-कृषि कार्यकलाप शुरू होने के पश्चात, उपधारा (2) के अधीन घोषणा से पाँच वर्ष की अवधि के भीतर, उपधारा (2) के अधीन घोषणा को उपधारा (1) के अधीन घोषणा में परिवर्तित करने के लिए उप-जिलाधिकारी को आवेदन कर सकता है। ऐसा आवेदन प्राप्त होने पर, उप-जिलाधिकारी, आवश्यकतानुसार जाँच करने के पश्चात, आवेदन प्राप्त होने के 15 दिन की अवधि के भीतर आवेदन को स्वीकृत या अस्वीकृत करेगा। अस्वीकृति की स्थिति में, वह ऐसी अस्वीकृति के कारणों को लिखित रूप में अभिलिखित करेगा:

परन्तु उपधारा (2) के तहत घोषणा को उपधारा (1) के तहत घोषणा में परिवर्तित करने के लिए, भूमिधर उपधारा (2) के तहत घोषणा के लिए उसके द्वारा पहले से भुगतान की गई राशि को समायोजित करने के बाद, प्रचलित सर्किल दर पर गणना की गई देय शुल्क की केवल शेष राशि का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी होगा।

(4) उपधारा (1) या उपधारा (2) के तहत घोषणा के लिए कोई भी आवेदन, भूमिधरी भूमि में अविभाजित हित रखने वाले किसी भी सह-भूमिधर द्वारा प्रस्तुत किया गया, तब तक पोषणीय नहीं होगा, जब तक कि ऐसी भूमिधरी भूमि के सभी सह-भूमिधरों द्वारा आवेदन प्रस्तुत न किया गया हो। यदि केवल एक सह-भूमिधर संयुक्त हित के साथ भूमि में अपने हिस्से के लिए घोषणा प्राप्त करना चाहता है, तो ऐसा आवेदन केवल तभी

स्वीकार किया जाएगा जब भूमि में सह-भूमिधरों के संबंधित हिस्से कानून के प्रावधानों के अनुसार विभाजित हो गए हों।

(5) घोषणा के लिए आवेदन [उपधारा (1) या उपधारा (2) के तहत] में ऐसे विवरण शामिल होंगे और ऐसी रीति से किया जाएगा जैसा कि निर्धारित किया जा सकता है।

(6) जहां उप-धारा (1) या उप-धारा (2) के अधीन आवेदन, जोत के किसी भाग के संबंध में किया जाता है, वहां उप-जिलाधिकारी, विहित रीति से, ऐसी घोषणा के प्रयोजनों के लिए ऐसे भाग का सीमांकन कर सकेगा।

(7) उप-जिलाधिकारी द्वारा इस धारा के अधीन कोई घोषणा नहीं की जाएगी, यदि वह इस बात से संतुष्ट है कि भूमि या उसका भाग ऐसे प्रयोजन के लिए उपयोग में लाया जा रहा है या उपयोग में लाया जाना प्रस्तावित है जिससे लोक न्यूसेंस उत्पन्न होने की संभावना है या लोक व्यवस्था, लोक स्वास्थ्य, सुरक्षा या सुविधा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है या जो मास्टर प्लान में प्रस्तावित उपयोगों के विरुद्ध है।

(8) यदि वह भूमि या उसका भाग, जिसके लिए इस धारा के अधीन घोषणा चाही जा रही है, किसी नगरीय या औद्योगिक विकास प्राधिकरण के अधीन अधिसूचित क्षेत्र में आता है, तो संबंधित विकास प्राधिकरण की पूर्व अनुमति अनिवार्य होगी।

(9) राज्य सरकार इस धारा के तहत घोषणा के लिए फीस का पैमाना तय कर सकती है और विभिन्न प्रयोजनों के लिए अलग-अलग फीस तय की जा सकती है:
परन्तु यदि आवेदक होल्डिंग या उसके किसी भाग का उपयोग अपने आवासीय प्रयोजन के लिए करता है, तो इस धारा के तहत घोषणा के लिए कोई फीस नहीं ली जाएगी।"

17. इस प्रावधान पर ध्यान देना उचित होगा, जैसा कि यह मूल रूप से उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता (संशोधन) अधिनियम, 2019 (2019 का अधिनियम संख्या 7) की धारा 8 द्वारा प्रतिस्थापित किए जाने से पहले था, जो इस प्रकार है:

"80. औद्योगिक, वाणिज्यिक या आवासीय प्रयोजनों के लिए जोत का उपयोग - (1) जहां संक्रमणीय अधिकारों वाला कोई भूमिधर अपनी जोत या उसके किसी भाग का उपयोग औद्योगिक, वाणिज्यिक या आवासीय प्रयोजनों के लिए करता है, वहां उप-जिलाधिकारी, स्वप्रेरणा से या ऐसे भूमिधर द्वारा प्रस्तुत आवेदन पर, ऐसी जांच करने के बाद, जैसी कि विहित की जा सकती है, या तो यह घोषणा कर सकता है कि भूमि का उपयोग कृषि से संबंधित उद्देश्य के लिए नहीं किया जा रहा है या आवेदन को अस्वीकार कर सकता है। उप-जिलाधिकारी ऐसी घोषणा या अस्वीकृति के कारणों को लिखित रूप में बताएगा और आवेदन प्राप्त होने की तिथि से पैंतालीस कार्य दिवसों के भीतर आवेदक को अपने निर्णय से अवगत कराएगा:

परन्तु इस धारा के अधीन ऐसी कोई घोषणा केवल इस आधार पर नहीं की जाएगी कि होल्डिंग या उसका कोई भाग चारदीवारी से घिरा हुआ है या मौके पर "पार्टी" है:

इसके अतिरिक्त यह भी प्रावधान है कि भूमिधरी भूमि में अविभाजित हित रखने वाले किसी सह-भूमिधर द्वारा इस उप-धारा के अधीन घोषणा के लिए प्रस्तुत कोई भी आवेदन तब तक पोषणीय नहीं होगा, जब तक कि ऐसी भूमिधरी भूमि के सभी सह-भूमिधरों द्वारा आवेदन प्रस्तुत न किया गया हो या उसमें उनके हित विधि के उपबंधों के अनुसार विभाजित न हों।

(2) उप-धारा (1) के अधीन घोषणा के लिए आवेदन में ऐसे विवरण अंतर्विष्ट होंगे और वह ऐसी रीति से किया जाएगा, जैसा विहित किया जा सकता है।

(3) जहां उप-धारा (1) के तहत आवेदन जोत के किसी हिस्से के संबंध में किया जाता है, उप-जिलाधिकारी, निर्धारित तरीके से, ऐसी घोषणा के प्रयोजनों के लिए ऐसे हिस्से का सीमांकन कर सकता है।

(4) इस धारा के तहत उप-जिलाधिकारी द्वारा कोई घोषणा जारी नहीं की जाएगी, यदि वह संतुष्ट है कि भूमि का उपयोग ऐसे उद्देश्य के लिए किया जाना है, जिससे सार्वजनिक उपद्रव होने या सार्वजनिक व्यवस्था, सार्वजनिक स्वास्थ्य, सुरक्षा या सुविधा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है या मास्टर प्लान में उपयोग के प्रयोजनों के विरुद्ध है।

(5) राज्य सरकार इस धारा के तहत घोषणा के लिए शुल्क का पैमाना तय कर सकती है और विभिन्न उद्देश्यों के लिए अलग-अलग शुल्क तय किए जा सकते हैं:

परन्तु यदि आवेदक अपने आवासीय उद्देश्य के लिए जोत या उसके हिस्से का उपयोग करता है, तो इस धारा के तहत घोषणा के लिए कोई शुल्क नहीं लिया जाएगा।"

18. उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता नियमावली, 2016 के अंतर्गत संहिता, 2006 की धारा 80 से संबंधित प्रासंगिक नियम भी नीचे पुन: प्रस्तुत किए गए हैं:

"85. घोषणा के लिए आवेदन (धारा 80) - (1) हस्तांतरणीय अधिकारों वाला कोई भूमिधर जो अपनी जोत या उसके किसी भाग का उपयोग कृषि से असंबंधित किसी उद्देश्य के लिए कर रहा है, वह धारा 80(1) के अंतर्गत घोषणा के लिए उप-जिलाधिकारी को राजस्व संहिता प्रपत्र-25 में आवेदन कर सकता है।

(2) आवेदक को घोषणा शुल्क की अपेक्षित राशि का भुगतान करना होगा, जो संबंधित जिले के कलेक्टर द्वारा कृषि प्रयोजन के लिए निर्धारित सर्किल रेट या राज्य सरकार द्वारा समय-समय पर निर्धारित दर के अनुसार गणना की गई राशि का एक प्रतिशत होगा।

(3) उप-नियम (1) के अंतर्गत आवेदन प्राप्त होने पर, उप-जिलाधिकारी स्वयं को संतुष्ट करने के उद्देश्य से कि जोत या उसके किसी भाग का उपयोग वास्तव में गैर-कृषि उद्देश्य के लिए किया जा रहा है, राजस्व निरीक्षक के पद से नीचे के राजस्व अधिकारी के माध्यम से जांच करवा सकता है। संबंधित अधिकारी, इसके बाद स्थल सत्यापन के पश्चात् उप-मण्डल अधिकारी को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा, जिसमें यह दर्शाया जाएगा कि होल्डिंग या उसके किसी भाग का वास्तव में किस प्रयोजन के लिए उपयोग किया जा रहा है।

86. भूमिधर को नोटिस (धारा 80).- जहाँ धारा 80(1) के अधीन कार्यवाही उप-मण्डल अधिकारी द्वारा स्वप्रेरणा से प्रारम्भ की गई है, वहाँ वह संबंधित भूमिधर को नोटिस जारी करेगा और नियम 85(3) में निर्दिष्ट जाँच, भूमिधर का उत्तर, यदि कोई हो, प्रस्तुत किए जाने के पश्चात की जाएगी।

87. घोषणा प्रदान करना (धारा 80).- यदि राजस्व अधिकारी की रिपोर्ट की जाँच के पश्चात, उप-मण्डल अधिकारी संतुष्ट हो जाता है कि:

(क) कि सम्पूर्ण जोत का उपयोग कृषि से असंबंधित किसी उद्देश्य के लिए किया जा रहा है; और
(ख) कि धारा 80(4) में निर्दिष्ट शर्तों का अनुपालन किया गया है, तो वह ऐसी जोत के संबंध में धारा 80(1) के अधीन घोषणा कर सकता है।

88. भू-राजस्व का विभाजन (धारा 80). - (1) यदि किसी हस्तांतरणीय अधिकार वाले भूमिधर द्वारा जोत के केवल एक भाग का उपयोग गैर-कृषि प्रयोजन के लिए किया जा रहा है, और उप-जिलाधिकारी का समाधान हो जाता है कि धारा 80(1) के द्वितीय परंतुक के उपबंधों का उल्लंघन नहीं हुआ है, तो वह केवल ऐसे भाग के संबंध में घोषणा कर सकेगा, बशर्ते कि नियम 22 के उप-नियम (2) के अनुसार सीमांकन की लागत भूमिधर द्वारा ऐसी घोषणा से पूर्व जमा कर दी जाए।
(2) जहां जोत के किसी भाग के संबंध में घोषणा की कार्यवाही उप-जिलाधिकारी द्वारा स्वप्रेरणा से आरंभ की जाती है, वहां ऐसे सीमांकन की लागत उप-जिलाधिकारी द्वारा भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूल की जाएगी।
(3) उप-नियम (1) या उप-नियम (2) के अधीन घोषणा के प्रत्येक मामले में, विद्यमान सर्वेक्षण मानचित्र के आधार पर सीमांकन किया जाएगा, और उप-जिलाधिकारी ऐसे भूमिधर द्वारा देय भू-राजस्व का विभाजन करेगा।
(4) उप-विभागीय अधिकारी धारा 80 की उप-धारा (1) के अधीन घोषणा के लिए कार्यवाही आवेदन के पंजीकरण की तारीख से 45 दिन की अवधि के भीतर समाप्त करने का प्रयास करेगा और यदि कार्यवाही ऐसी अवधि के भीतर समाप्त नहीं होती है तो उसके कारण अभिलिखित किए जाएंगे।"

19. संहिता, 2006 की धारा 80 की उप-धारा (1) का दूसरा परंतुक, जैसा कि यह मूलतः था, स्पष्ट शब्दों में यह उपबंधित करता है कि भूमिधरी भूमि में अविभाजित हित रखने वाले किसी सह-भूमिधर द्वारा उप-धारा (1) के अधीन घोषणा के लिए प्रस्तुत कोई भी आवेदन तब तक पोषणीय नहीं होगा, जब तक कि आवेदन ऐसी भूमिधरी भूमि के सभी सह-भूमिधरों द्वारा प्रस्तुत न किया गया हो या उसमें उनके हित विधि के उपबंधों के अनुसार विभाजित न किए गए हों।

20. नियमावली, 2016 का नियम 88, जो संहिता, 2006 की धारा 80 के अंतर्गत की गई घोषणा के परिणामस्वरूप भू-राजस्व के आबंटन से संबंधित है, उस स्थिति में सीमांकन का प्रावधान करता है जब घोषणा केवल उस जोत के भाग के लिए मांगी गई हो जिसका उपयोग गैर-कृषि उद्देश्यों के लिए किया जा रहा हो।

उक्त मामले में सीमांकन नियमावली, 2016 के नियम 22 के अंतर्गत निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार किया जाना है, जो संहिता, 2006 की धारा 24 के अंतर्गत परिकल्पित सीमा विवादों के निपटारे से संबंधित है।

21. उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता (संशोधन) 2019 (अधिनियम संख्या 7, 2019) की धारा 8 के अनुसार, संहिता, 2006 की धारा 80, जैसी वह मूल रूप में थी, पूर्णतः प्रतिस्थापित कर दी गई है। संहिता, 2006 की धारा 80 की उपधारा (4), जैसी वह वर्तमान में है, स्पष्ट शब्दों में यह प्रावधान करती है कि किसी सह-भूमिधर द्वारा, जिसका भूमिधरी भूमि में अविभाजित हित हो, उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन घोषणा के लिए किया गया कोई भी आवेदन, तब तक पोषणीय नहीं होगा, जब तक कि आवेदन ऐसी भूमिधरी भूमि के सभी सह-भूमिधरों द्वारा प्रस्तुत न किया गया हो। इसमें यह भी प्रावधान है कि यदि सह-भूमिधरों में से केवल एक ही संयुक्त हित वाली भूमि में अपने हिस्से के लिए घोषणा प्राप्त करना चाहता है, तो ऐसा आवेदन तभी स्वीकार किया जाएगा जब भूमि में सह-भूमिधरों के संबंधित हिस्से कानून के प्रावधानों के अनुसार विभाजित कर दिए गए हों। जोत का विभाजन जिसके परिणामस्वरूप भूमि में सह-भूमिधरों के हिस्से को विभाजित किया जा सकता है, संहिता, 2006 की धारा 116 के अनुसार होना चाहिए।

22. संहिता, 2006 की धारा 116 के अंतर्गत जोत के विभाजन के परिणामस्वरूप, धारा 117 की उपधारा (1) (ख) के अंतर्गत संबंधित न्यायालय को प्रत्येक ऐसे विभाजन के संबंध में देय भू-राजस्व का विभाजन करने का कर्तव्य सौंपा गया है। जोत के विभाजन से संबंधित प्रक्रिया नियमावली, 2016 के नियम 107, 108 और 109 के अंतर्गत प्रदान की गई है और नियम 109 (8) (ग) के अनुसार, यह प्रावधान है कि अंतिम डिक्री के चरण में, संबंधित न्यायालय पक्षकारों द्वारा देय भू-राजस्व का विभाजन करेगा।

23. संहिता, 2006 की धारा 80 की उपधारा (4) में भूमिधरी भूमि में अविभाजित हित रखने वाले किसी भी सह-भूमिधर द्वारा उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन घोषणा के लिए प्रस्तुत किए जा रहे किसी भी आवेदन के विरुद्ध स्पष्ट निषेधाज्ञा है, जब तक कि आवेदन ऐसी भूमिधरी भूमि के सभी सह-भूमिधरों द्वारा प्रस्तुत न किया गया हो। इसमें आगे यह भी प्रावधान है कि यदि सह-भूमिधरों में से केवल एक ही संयुक्त हित वाली भूमि में अपने हिस्से के लिए घोषणा प्राप्त करने का इच्छुक है, तो ऐसे आवेदन पर तभी विचार किया जाएगा जब भूमि में सह-भूमिधरों के संबंधित हिस्से विधि के उपबंधों के अनुसार विभाजित हो जाएँ।

24. उपर्युक्त प्रावधानों को सरलता से पढ़ने पर यह स्पष्ट हो जाएगा कि संयुक्त हित वाली भूमि में अपना हिस्सा रखने वाले सह-भूमिधर के कहने पर आवेदन करने से पहले, कानून के प्रावधानों के अनुसार संबंधित भूमि में सह-भूमिधरों के शेयरों का निर्धारण करना होगा। इसका अर्थ यह होगा कि भूमिधरी भूमि में अविभाजित हित रखने वाले किसी भी सह-भूमिधर के कहने पर उप-धारा (1) या उप-धारा (2) के तहत घोषणा के लिए आवेदन केवल इस आवश्यक पूर्व शर्त की पूर्ति पर ही स्वीकार्य होगा कि संबंधित भूमि को कानून के प्रावधानों के अनुसार, अर्थात संहिता, 2006 की धारा 116 और संबंधित नियमों में निहित प्रावधानों के अनुसार विभाजित किया गया हो।

25. याचिकाकर्ताओं की ओर से यह तर्क दिया गया है कि संहिता, 2006 की धारा 80 (1) के तहत घोषणा का अनिवार्य रूप से यह अर्थ होगा कि संबंधित भूमि पहले ही विभाजित हो चुकी है, इस कारण से स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि संहिता, 2006 की धारा 80 की उप-धारा (4) में निहित प्रावधानों के अनुसार, संयुक्त जोत में सह-भूमिधरों के शेयरों का निर्धारण और जोत का विभाजन, संहिता, 2006 की धारा 80 की उप-धारा (1) या उप-धारा (2) के तहत घोषणा प्राप्त करने के लिए एक पूर्व शर्त है; हालांकि विपरीत निहितार्थ का अनुमान नहीं लगाया जा सकता है।

26. वर्तमान मामले में, यह प्रदर्शित करने के लिए कोई दस्तावेज अभिलेख पर नहीं रखा गया है कि विचाराधीन संपत्ति का विभाजन सभी सह-स्वामियों के बीच संहिता, 2006 की धारा 116 में निहित प्रावधानों के अनुसार किया गया था।

27. उपर्युक्त स्थिति को ध्यान में रखते हुए, हमें आक्षेपितत आदेश में कोई भी भौतिक त्रुटि या अवैधता नहीं मिलती है, जिससे संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत इस न्यायालय के असाधारण क्षेत्राधिकार में हस्तक्षेप हो।

28. रिट याचिका मेरिट रहित है और तदनुसार, इसे खारिज किया जाता है।

(2025) 4 ILRA 298

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 29.04.2025

माननीय न्यायमूर्ति शेखर बी. सराफ

के समक्ष

रिट सी संख्या 21818/2023

संतोष कुमार **...याचिकाकर्ता**

बनाम

सहायक सचिव/उप सचिव/सचिव, बीमा लोकपाल, लखनऊ एवं अन्य **...प्रतिवादी**

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:

श्री हरि बंस सिंह

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

सुश्री श्रुति मालवीय

सिविल कानून - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - बीमा अधिनियम, 1938 - धारा 45 - बीमा लोकपाल नियमावली, 2017 - नियम 13(1), 14(1), 14(3), 14(5) और 17(3)(ii) - भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 - धारा 37 - उत्प्रेषण रिट - जीवन बीमा दावा -` पिछली पॉलिसी का खुलासा न करना - उबेरिमाए फिदेई का सिद्धांत - भौतिक तथ्य - कॉन्ट्रा प्रोफेरेंटम नियम - सबूत का बोझ - मनमाना अस्वीकृति।

<u>अभिनिर्धारित:</u>

याचिकाकर्ता ने जीवन बीमा निगम (एलआईसी) द्वारा 23.03.2021 और बीमा लोकपाल द्वारा 19.05.2023 को जारी आदेशों को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण रिट की मांग की, जिसमें पॉलिसी संख्या 205602934 के अंतर्गत 15 लाख रुपये के मृत्यु दावे को खारिज कर दिया गया था, और याचिकाकर्ता, उनकी दिवंगत पत्नी मीरा देवी के नामिती को भुगतान का निर्देश देने का अनुरोध किया गया था। 16.08.2018 को जारी की गई पॉलिसी को प्रस्ताव पत्र में पिछली एलआईसी पॉलिसी (संख्या 205601558, दिनांक 28.05.2018) का खुलासा न करने के कारण खारिज कर दिया गया था, जिसमें धोखाधड़ी से छिपाने का आरोप लगाया गया था। लोकपाल ने लिखित शिकायत के अभाव, आर्थिक क्षेत्राधिकार और परिसीमाओं सहित प्रक्रियात्मक आधारों का हवाला देते हुए इसे खारिज कर दिया। न्यायालय ने माना कि गैर-प्रकटीकरण धोखाधड़ी नहीं था, क्योंकि बीमित व्यक्ति ने एलआईसी एजेंट को पूर्व पॉलिसियों का खुलासा किया था, जिसने सलाह दी थी कि इस तरह के विवरण पहले से ही एलआईसी के रिकॉर्ड में हैं, जिससे कॉलम 9 खाली रह गया। *मनमोहन नंदा बनाम यूनाइटेड इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, (2022) 4 एससीसी 582* पर भरोसा करते हुए, न्यायालय ने फैसला सुनाया कि यदि कोई बीमाकर्ता प्रीमियम स्वीकार करता है और रिक्त कॉलम के बावजूद पॉलिसी जारी करता है, तो वह गैर-प्रकटीकरण के लिए अस्वीकार करने के अधिकार को समाप्त कर देता है जब तक कि चूक भौतिक और धोखाधड़ीपूर्ण न हो। एलआईसी बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 45 के अंतर्गत धोखाधड़ी साबित करने में विफल रही, और एलआईसी के रिकॉर्ड में पॉलिसी से जुड़ा खाली कॉलम, कोई महत्वपूर्ण छिपाव नहीं था, खासकर जब बीमित व्यक्ति की मृत्यु अचानक दिल के दौरे के कारण हुई थी, जिसका पहले कोई अन्य रोग नहीं था। लोकपाल का आदेश मनमाना था और उसमें योग्यता-आधारित विचार का अभाव था। दोनों आक्षेपित आदेशों को रद्द कर दिया गया और एलआईसी को छह सप्ताह के भीतर बीमित राशि का भुगतान करने का निर्देश दिया गया।

रिट याचिका स्वीकार की गई; आक्षेपित आदेश रद्द किए गए; एलआईसी को छह सप्ताह के भीतर बीमित राशि का भुगतान करने का निर्देश दिया गया।

विचाराधीन मामले: 1.

<u>केस लॉ जिन पर चर्चा की गई:</u>

1. *रिलायंस लाइफ इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम रेखाबेन नरेशभाई राठौड़, (2019) 6 एससीसी 175* - किसी अन्य बीमाकर्ता की पूर्व पॉलिसियों का खुलासा न करना अस्वीकृति को उचित ठहराता है।

2. *मनमोहन नंदा बनाम यूनाइटेड इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, (2022) 4 एससीसी 582* - बीमाकर्ता को प्रस्ताव प्रपत्रों में रिक्त कॉलमों को सत्यापित करना होगा; प्रीमियम स्वीकार करने से अस्वीकृति के अधिकार समाप्त हो जाते हैं जब तक कि प्रकटीकरण न करना भौतिक और धोखाधड़ीपूर्ण न हो।

3. *महाकाली सुजाता बनाम फ्यूचर जनरली इंडिया लाइफ इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, (2024) 8 एससीसी 712* - महत्वपूर्ण तथ्यों का धोखाधड़ीपूर्ण गैर-प्रकटीकरण साबित करने का भार बीमाकर्ता पर है।

4. *महावीर शर्मा बनाम एक्साइड लाइफ इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, 2025 एससीसी ऑनलाइन एससी 435* - गैर-प्रकटीकरण की भौतिकता का मामला-दर-मामला आकलन किया गया; धोखाधड़ी साबित करने का भार बीमाकर्ता पर है।

5. *श्रीमती पारुल अग्रवाल बनाम भारतीय जीवन बीमा निगम, 2024: एएचसी:36063-डीबी* - प्रस्ताव फॉर्म के विवरण को सत्यापित करने के बीमाकर्ता के कर्तव्य का समर्थन करता है।

6. *सतवंत कौर संधू बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, (2009) 8 एससीसी 316* - प्रस्ताव फॉर्म में मांगी गई जानकारी को महत्वपूर्ण माना गया।

7. *केनरा बैंक बनाम यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, (2020) 3 एससीसी 455* - खाली कॉलम गलत विवरण नहीं है; बीमाकर्ता को पॉलिसी जारी करने से पहले अस्पष्टताओं को स्पष्ट करना होगा।

<u>अवलोकन:</u>

न्यायालय ने पाया कि बीमित व्यक्ति ने एलआईसी एजेंट को अपनी पूर्व पॉलिसियों का खुलासा किया था, जिसने कॉलम 9 को खाली छोड़ दिया था, यह आश्वासन देते हुए कि एलआईसी के रिकॉर्ड में विवरण मौजूद हैं। एलआईसी ने प्रीमियम स्वीकार करने के बाद पॉलिसी बांड जारी किया, जिसमें प्रस्ताव फॉर्म और उससे जुड़े वित्तीय दस्तावेजों (आधार, पैन) का सत्यापन शामिल था। अघोषित पॉलिसी एलआईसी के पास ही थी, और थोड़ी सी भी जाँच-पड़ताल से इसका खुलासा हो जाता। बीमित व्यक्ति की हृदयाघात से मृत्यु का पूर्व स्वास्थ्य समस्याओं से कोई संबंध नहीं था, और एलआईसी द्वारा प्रीमियम वापस न करना यह दर्शाता है कि अस्वीकृति केवल गलत बयानी के कारण नहीं थी, बल्कि इसमें धोखाधड़ी का संकेत था, जो अप्रमाणित था। प्रक्रियात्मक आधार पर लोकपाल की अस्वीकृति मनमाना थी, जिसमें याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुतीकरण आवश्यकताओं के अनुपालन की अनदेखी की गई।

(माननीय न्यायमूर्ति शेखर बी. सराफ द्वारा प्रदत्त)

1. यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत एक रिट याचिका है, जिसमें याचिकाकर्ता ने 19 मई, 2023 के उस आक्षेपित आदेश को निरस्त करने हेतु एक उत्प्रेषण रिट जारी करने का अनुरोध किया है, जिसके अंतर्गत सहायक सचिव/उप सचिव/सचिव, बीमा लोकपाल, लखनऊ (जिसे आगे 'प्रतिवादी संख्या 1' कहा जाएगा) ने वरिष्ठ मंडल प्रबंधक, जीवन बीमा निगम (एलआईसी) प्रभाग कार्यालय, प्रयागराज (जिसे आगे 'प्रतिवादी

संख्या 3' कहा जाएगा) द्वारा पॉलिसी संख्या 205602934 के संबंध में 23 मार्च, 2021 के आदेश के अंतर्गत जीवन बीमा दावे को अस्वीकार करने के खिलाफ याचिकाकर्ता द्वारा दायर शिकायत को खारिज कर दिया था, जिसे भी चुनौती दी गई है। याचिकाकर्ता ने आगे प्रतिवादियों को याचिकाकर्ता के पक्ष में उसकी मृत पत्नी के बीमा दावे की राशि जारी करने का आदेश देने का अनुरोध किया है।

<u>तथ्य</u>

2. वर्तमान रिट याचिका का तथ्यात्मक आधार नीचे दिया गया है:

ए. 16 अगस्त, 2018 को याचिकाकर्ता की पत्नी, स्वर्गीय मीरा देवी (जिन्हें आगे 'बीमित' कहा जाएगा) ने एलआईसी एजेंट के माध्यम से भारतीय जीवन बीमा निगम (जिसे आगे 'एलआईसी' कहा जाएगा) से एक जीवन बीमा पॉलिसी प्राप्त की, जिसकी पॉलिसी संख्या 205602934 थी और जिसकी बीमित राशि 15 लाख रुपये थी। याचिकाकर्ता, बीमित व्यक्ति का पति होने के नाते, उक्त पॉलिसी में विधिवत नामित व्यक्ति के रूप में नामित था। 1,15,416/- रुपये की पहली प्रीमियम राशि जमा करने पर, पॉलिसी बांड जारी किया गया और एलआईसी एजेंट के माध्यम से बीमित व्यक्ति को सौंप दिया गया।

बी. पॉलिसी के लिए आवेदन करते समय, बीमित व्यक्ति ने एजेंट के निर्देशानुसार एलआईसी द्वारा निर्धारित नियमों और शर्तों के अनुसार आवेदन पत्र में सभी आवश्यक विवरण प्रस्तुत किए। इसके अलावा, यह पुष्टि की गई कि कोई भी महत्वपूर्ण जानकारी छिपाई या गलत तरीके से प्रस्तुत नहीं की गई थी।

सी. दुर्भाग्यवश, 8 जुलाई, 2019 को हृदयाघात से बीमित व्यक्ति का निधन हो गया। तत्पश्चात, याचिकाकर्ता ने नामित व्यक्ति के रूप में, शाखा प्रबंधक, एलआईसी, फूलपुर शाखा, प्रयागराज के समक्ष अपनी पत्नी की मृत्यु से उत्पन्न बीमा दावे के वितरण की मांग करते हुए एक प्रत्यावेदन प्रस्तुत किया।

डी. एलआईसी पॉलिसी के नियमों और शर्तों के अनुसार, बीमित व्यक्ति की मृत्यु होने पर, पूरी बीमित राशि नामित व्यक्ति को देय हो जाती है। वर्तमान मामले में, नामित व्यक्ति होने के नाते, याचिकाकर्ता मृत्यु दावा लाभ प्राप्त करने का हकदार हो गया।

ई. तदनुसार, याचिकाकर्ता ने 16 अगस्त, 2018 की पॉलिसी के अंतर्गत मृत्यु दावे के वितरण का अनुरोध करते हुए एक आवेदन प्रस्तुत किया। हालाँकि, 23 मार्च, 2021 के आक्षेपित आदेश के माध्यम से, प्रतिवादी संख्या 3 ने याचिकाकर्ता के दावे को यह कहते हुए अस्वीकार कर दिया कि बीमित व्यक्ति ने वर्तमान बीमा को प्रभावी करते समय अपनी पिछली पॉलिसी के बारे में सही जानकारी छिपाई थी, जिससे प्रकटीकरण आवश्यकताओं का उल्लंघन हुआ। यह आरोप लगाया गया था कि ऐसी महत्वपूर्ण जानकारी का खुलासा न करना छिपाना है, और इसलिए, दावा देय नहीं माना गया। हालाँकि, याचिकाकर्ता को दावे की अस्वीकृति से असंतुष्ट होने पर, कानपुर के क्षेत्रीय प्रबंधक से संपर्क करने की स्वतंत्रता दी गई थी।

एफ. इसके बाद, याचिकाकर्ता ने 16 अप्रैल, 2021 को क्षेत्रीय प्रबंधक, एलआईसी कानपुर (जिसे आगे 'प्रतिवादी संख्या 2' कहा जाएगा) के समक्ष एक आवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें मृत्यु दावे को जारी करने का अनुरोध किया गया था।

जी. याचिकाकर्ता ने 20 जुलाई, 2021 को योगक्षेम जीवन बीमा, मुंबई के अध्यक्ष के समक्ष एक और प्रत्यावेदन प्रस्तुत किया, जिसमें प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा जारी 23 मार्च, 2021 के आदेश के अनुसरण में बीमा दावे की अस्वीकृति के विरुद्ध निवारण की मांग की गई।

एच. 13 अगस्त, 2021 को, याचिकाकर्ता की पत्नी का बीमा दावा प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पिछली बीमा पॉलिसी का खुलासा न करने के आधार पर खारिज कर दिया गया था। उक्त निर्णय प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा याचिकाकर्ता को 17 सितंबर, 2021 के पत्र द्वारा सूचित किया गया था। याचिकाकर्ता को उपरोक्त आदेश से असंतुष्ट होने की स्थिति में एलआईसी केंद्रीय कार्यालय, मुंबई के कार्यकारी निदेशक से संपर्क करने की स्वतंत्रता दी गई थी।

आई. इसके बाद, 15 अप्रैल, 2023 को याचिकाकर्ता ने 23 मार्च, 2021 के अस्वीकृति आदेश के खिलाफ प्रतिवादी संख्या 1 के समक्ष एक बार फिर एक व्यापक प्रत्यावेदन प्रस्तुत किया। उक्त प्रत्यावेदन में, याचिकाकर्ता ने दोहराया कि पॉलिसी जारी करते समय बीमित व्यक्ति द्वारा कोई भी महत्वपूर्ण जानकारी नहीं छिपाई गई थी, इस प्रकार, अस्वीकृति का आधार गलत था। तदनुसार, उन्होंने अनुरोध किया कि नामित होने के नाते मृत्यु दावा उनके पक्ष में जारी किया जाए।

जे. उपर्युक्त प्रत्यावेदन के प्रत्युत्तर में, प्रतिवादी संख्या 1 ने दिनांक 21 अप्रैल, 2023 को एक पत्र जारी कर बीमा दावे पर पुनर्विचार हेतु याचिकाकर्ता से कुछ दस्तावेजों की मांग की।

के. उक्त पत्र के अनुपालन में, याचिकाकर्ता ने दिनांक 6 मई, 2023 को सभी आवश्यक दस्तावेजों के साथ पंजीकृत डाक द्वारा प्रतिवादी संख्या 1 को संबोधित एक नया प्रत्यावेदन प्रस्तुत किया।

एल. इस अनुपालन के बावजूद, प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा पारित दिनांक 19 मई, 2023 के आक्षेपित आदेश द्वारा याचिकाकर्ता के दावे को एक बार फिर निम्नलिखित आधारों पर खारिज कर दिया गया:

(i) कि याचिकाकर्ता ने बीमा लोकपाल नियम, 2017 के नियम 13(1), 14(1), 14(3), 14(5), 17(3)(ii) के अनुसार प्रतिवादी संख्या 1 के समक्ष लिखित रूप में शिकायत प्रस्तुत नहीं की है।

(ii) कि शिकायत प्रतिवादी संख्या 1 के कार्यालय को संबोधित नहीं की गई थी।

(iii) कि शिकायत परिसीमा द्वारा वर्जित थी।

(iv) कि शिकायत आर्थिक क्षेत्राधिकार से बाहर थी।

एम. 23 मार्च, 2021 और 19 मई, 2023 के अस्वीकृति आदेशों से व्यथित होकर याचिकाकर्ता ने उपर्युक्त राहत की मांग करते हुए इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है।

एन. प्रतिवादी संख्या 2 और 3 की ओर से एक प्रति-शपथ पत्र और पूरक प्रति-शपथ पत्र दायर किया गया है जिसमें तर्क दिया गया है कि प्रस्ताव पत्र में पिछली पॉलिसी संख्या 205601558 का खुलासा न करने के कारण बीमा दावा खारिज कर दिया गया था। यह भी दावा किया गया है कि बीमाधारक द्वारा प्रस्ताव पत्र के 'कॉलम 7a' और 'कॉलम 9' में गलत जानकारी प्रदान की गई थी, जिसे बीमाधारक ने स्वयं विधिवत भरा था और साथ ही एक स्व-घोषणा भी दी थी जिसमें पुष्टि की गई थी कि किसी भी तथ्य को छिपाया नहीं गया था।

ओ. याचिकाकर्ता ने रिट याचिका में लिए गए रुख को दोहराते हुए एक प्रत्युत्तर हलफनामा और पूरक प्रत्युत्तर हलफनामा दायर किया है। याचिकाकर्ता ने तर्क दिया है कि प्रस्ताव पत्र एलआईसी एजेंट द्वारा दिए गए निर्देशों के अनुसार भरा गया था और बीमित व्यक्ति के आधार कार्ड और पैन कार्ड जैसे वित्तीय दस्तावेजों की प्रतियां

उसके साथ संलग्न की गई थीं। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि प्रस्ताव पत्र का कॉलम 9 एजेंट की सलाह पर खाली छोड़ दिया गया था, जिसने कहा था कि पिछली पॉलिसी का विवरण एलआईसी के रिकॉर्ड में पहले से ही उपलब्ध होगा।

<u>याचिकाकर्ता के तर्क</u>

3. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित दलीलें दीं:

ए. उक्त पॉलिसी प्राप्त करने से पहले, बीमित व्यक्ति ने एलआईसी एजेंट द्वारा प्रस्तुत आवेदन पत्र में सभी आवश्यक विवरण प्रदान किए थे और अपनी मौजूदा एलआईसी पॉलिसियों का विवरण प्रकट किया था। कोई भी जानकारी छिपाई नहीं गई थी, और एक पिछली पॉलिसी को छोड़ना केवल एलआईसी एजेंट के इस आश्वासन पर आधारित था कि ऐसे विवरण एलआईसी के रिकॉर्ड में पहले से ही उपलब्ध थे। तदनुसार, एजेंट के निर्देश पर भरोसा करते हुए, बीमित व्यक्ति ने नियमित रूप से प्रस्ताव पत्र पर अपने हस्ताक्षर किए।

बी. प्रतिवादी कोई भी दस्तावेजी प्रमाण या सामग्री प्रस्तुत करने में विफल रहे हैं जो यह दर्शाता हो कि बीमित व्यक्ति ने किसी भी नियम व शर्तों का उल्लंघन किया है। प्रतिवादी अपनी आवश्यकता के अनुसार संपूर्ण अभिलेखों की जांच करने के लिए बाध्य थे और उक्त पॉलिसी जारी करने से पहले प्रतिवादियों द्वारा पिछली पॉलिसी के प्रकटीकरण के संबंध में कोई विशिष्ट प्रश्न नहीं उठाया गया था।

सी. प्रतिवादी संख्या 3 ने पिछली पॉलिसी को छिपाने के आधार पर 23 मार्च, 2021 के आदेश द्वारा बीमित व्यक्ति के दावे को खारिज कर दिया, और फिर 19 मई, 2023 को वित्तीय अधिकार क्षेत्र की कमी का हवाला देते हुए खारिज कर दिया। बीमित व्यक्ति ने अपने एजेंट के माध्यम से, पिछली पॉलिसी की जानकारी सहित सभी प्रासंगिक विवरणों का खुलासा किया था और प्रस्ताव पत्र में अपेक्षित घोषणाएं की थीं।

डी. प्रथम प्रीमियम प्राप्त होने पर बीमित व्यक्ति के पक्ष में पॉलिसी बांड जारी करने का तात्पर्य है कि प्रस्ताव पत्र को सक्षम प्राधिकारी द्वारा विधिवत सत्यापित, जांचा और स्वीकार किया गया था। प्रतिवादी प्राधिकारी बांड जारी करने से पहले प्रस्ताव पत्र की जांच करने के लिए कानूनी रूप से बाध्य है। यदि पिछली पॉलिसी का विवरण स्पष्ट रूप से नहीं बताया गया होता, तब भी ऐसी जानकारी एलआईसी के आंतरिक रिकॉर्ड या डिजिटल डेटाबेस से प्राप्त की जा सकती थी। यदि कोई विसंगति या छिपाव होता, तो पॉलिसी बांड जारी नहीं किया जाता।

इ. बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 45 के मद्देनजर वर्तमान मामले में मृत्यु दावे पर रोक नहीं लगाई जा सकती।

एफ. यदि बीमाधारक ने प्रस्ताव पत्र में किसी भी तरह से पिछली पॉलिसी का उल्लेख नहीं किया है, तब भी उक्त त्रुटि के आधार पर प्रतिवादियों द्वारा मृत्यु दावे को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

जी. प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा पारित 23 मार्च, 2021 का अस्वीकृति आदेश और साथ ही प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा पारित 19 मई, 2023 का बाद का अस्वीकृति आदेश मनमाना, अन्यायपूर्ण, अनुचित और बीमा कानून को नियंत्रित करने वाले वैधानिक प्रावधानों के विरुद्ध है।

एच. 23 मार्च, 2021 के आक्षेपित आदेश में, प्रतिवादियों ने केवल एक पिछली पॉलिसी संख्या 205601558 का उल्लेख नहीं करने पर आपत्ति जताई, हालाँकि 15 लाख रुपये की वर्तमान पॉलिसी लेने से पहले, बीमित व्यक्ति ने पहले ही तीन पॉलिसियाँ संख्या 311496904, 314004138 और 205601558 ले रखी थीं, जिनकी राशि क्रमशः 50,000 रुपये, 50,000 रुपये और 3,70,000 रुपये थी। ये सभी पॉलिसियाँ आवेदन करते समय एजेंट को बता दी गई थीं। प्रस्ताव पत्र में ऐसी जानकारी शामिल न करना केवल एजेंट के इस आश्वासन के कारण था कि विवरण पहले से ही एलआईसी के डेटाबेस में दर्ज हैं। इसलिए, बीमित व्यक्ति की ओर से कोई जानबूझकर जानकारी नहीं छिपाई गई थी।

आई. अपने तर्क को पुष्ट करने के लिए, अधिवक्ता ने **महावीर शर्मा बनाम एक्साइड लाइफ इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, 2025 एससीसी ऑनलाइन एससी 435** मामले का हवाला दिया है।

<u>प्रतिवादियों के तर्क</u>

4. प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित दलीलें दी हैं:

ए. पॉलिसी प्राप्त करने से पहले, बीमित व्यक्ति ने स्वयं प्रस्ताव पत्र भरा था जिसमें उसने जानबूझकर पिछली पॉलिसियों के संबंध में प्रस्ताव पत्र के कॉलम 7ए और कॉलम 9 में गलत जानकारी दी थी।

बी. बीमित व्यक्ति की मृत्यु 8 जुलाई, 2019 को हुई और प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा 13 अगस्त, 2021 को की गई अस्वीकृति की सूचना 17 सितंबर, 2021 को दी गई, लेकिन याचिकाकर्ता ने बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 45 के अनुसार, अस्वीकृति के तीन साल बाद, 15 अप्रैल, 2023 को बीमा लोकपाल के समक्ष प्रत्यावेदन दिया।

सी. बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 45, पॉलिसी की तिथि से तीन वर्ष के बाद, अर्थात् पॉलिसी जारी होने की तिथि, जोखिम प्रारंभ होने की तिथि, पॉलिसी के रीवाइवल की तिथि, या पॉलिसी राइडर की तिथि, जो भी बाद में हो, पॉलिसी पर प्रश्न उठाने के बीमाकर्ता के अधिकार को सीमित करती है। याचिकाकर्ता की पत्नी ने 16 अगस्त, 2018 को पॉलिसी ली, 8 जुलाई, 2019 को उनकी मृत्यु हो गई और प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा 23 मार्च, 2021 के आदेश के अंतर्गत गलत बयान के आधार पर पॉलिसी पर प्रश्न उठाया गया, जो कि तीन वर्षों के भीतर है। अतः, अस्वीकृति आदेश बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 45 के अनुरूप है।

डी. प्रतिवादी संख्या 1 ने उचित रीति से अधिकार क्षेत्र की कमी के आधार पर दिनांक 19 मई, 2023 को एक आदेश पारित किया, क्योंकि बीमा लोकपाल नियम, 2017 के नियम 17(3) (II) में लोकपाल को तीस लाख से अधिक मुआवजा देने पर स्पष्ट रूप से रोक लगाई गई है।

ई. बीमित व्यक्ति ने प्रस्ताव पत्र में दी गई जानकारी की सत्यता की पुष्टि करते हुए एक स्व-घोषणा की थी और फॉर्म पर उसके द्वारा विधिवत हस्ताक्षर भी किए गए थे। इस प्रकार, भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 37 के अनुसार फॉर्म में दी गई जानकारी पर अविश्वास करने का कोई वैध आधार नहीं है।

एफ. बीमित व्यक्ति का यह दायित्व था कि वह प्रस्ताव पत्र में अपनी सर्वोत्तम जानकारी के अनुसार सभी जानकारी प्रकट करे। एक बीमा पॉलिसी *उबेरिमाए फाइडेई* के सिद्धांत द्वारा शासित होती है, जिसका अर्थ है अत्यंत सद्भावना का एक अनुबंध जिसमें बीमित व्यक्ति को पूर्ण और सत्य प्रकटीकरण करने की आवश्यकता

होती है। जब प्रस्ताव पत्र में किसी विशिष्ट पहलू पर विशिष्ट जानकारी मांगी जाती है, तो बीमित व्यक्ति पूर्ण और सटीक विवरण प्रदान करने के लिए एक गंभीर दायित्व के अधीन होता है।

जी. पिछली पॉलिसी संख्या 205601558, 28 मई, 2018 से शुरू हुई थी, जबकि विवादित पॉलिसी संख्या 205602934, 16 अगस्त, 2018 से शुरू हुई थी और दोनों पॉलिसियां तीन महीने के भीतर खरीदी गई थीं। इसलिए, यह मानना अनुचित है कि याचिकाकर्ता को उसके द्वारा खरीदी गई पिछली पॉलिसी के बारे में जानकारी नहीं थी।

एच. अपने तर्क को पुष्ट करने के लिए, उन्होंने **रिलायंस लाइफ इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम रेखाबेन नरेशभाई राठौड़** (2019) 6 एससीसी 175 में सर्वोच्च न्यायालय के एक फैसले पर भरोसा किया है। फैसले के प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत हैं:

"31. बीमा में किसी भौतिक गलत बयानी या छिपाव का पता चलने पर विवाद की स्थिति में बीमित व्यक्ति और बीमाकर्ता दोनों पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। यह तथ्य कि यह एक विवेकशील बीमाकर्ता के जोखिम को स्वीकार करने या न करने के निर्णय को प्रभावित करेगा, एक भौतिक तथ्य है। जैसा कि इस न्यायालय ने सतवंत कौर [सतवंत कौर संधू बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, (2009) 8 एससीसी 316: (2009) 3 एससीसी (सिविल) 366] में कहा, "यह स्पष्ट अनुमान है कि प्रस्ताव पत्र में मांगी गई कोई भी जानकारी बीमा अनुबंध करने के उद्देश्य से महत्वपूर्ण है"। प्रत्येक प्रत्यावेदन या कथन जोखिम के लिए महत्वपूर्ण हो सकता है। बीमा कंपनी अभी भी परिवर्तित शर्तों पर बीमा सुरक्षा प्रदान कर सकती है।

32. वर्तमान मामले में, बीमाकर्ता ने बीमित व्यक्ति द्वारा प्राप्त पिछली बीमा पॉलिसियों के संबंध में जानकारी मांगी थी। पूर्ण प्रकटीकरण के कर्तव्य के तहत यह आवश्यक है कि बीमाकर्ता के लिए महत्वपूर्ण या हितकारी कोई भी जानकारी छोड़ी या छिपाई न जाए। बीमाकर्ता द्वारा पहले के बीमा कवर के बावजूद जीवन बीमा कवर जारी किया जाता या नहीं, यह निर्णय सभी प्रासंगिक तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद लिया जाना आवश्यक था। पहले के कवर का प्रकटीकरण बीमाकर्ता द्वारा उठाए जा रहे जोखिम के आकलन के लिए महत्वपूर्ण था। जोखिम उठाने से पहले, यह जानकारी बीमाकर्ता को यह प्रश्न करने का अवसर दे सकती थी कि बीमित व्यक्ति ने इतने कम समय में दो अलग-अलग जीवन बीमा पॉलिसियाँ क्यों प्राप्त कीं। ऐसा तथ्य बीमाकर्ता से पूछताछ करने के लिए पर्याप्त है।

*****

34. हम इस तर्क से प्रभावित नहीं हैं कि प्रस्तावक को उस फॉर्म की विषय-वस्तु की जानकारी नहीं थी जिसे उसे भरना था या किसी तीसरे पक्ष को ऐसा उत्तर सौंपने से, उसे प्रस्ताव पर अपने हस्ताक्षर करने के परिणाम से मुक्त कर दिया गया था। प्रस्तावक ने प्रस्ताव फॉर्म पर अपने हस्ताक्षर विधिवत रूप से किए थे और बीमा कवर का अनुदान प्रस्ताव पत्र में निहित कथनों के आधार पर किया गया था। अपीलकर्ता के साथ बीमा अनुबंध होने से बमुश्किल दो महीने पहले, बीमित व्यक्ति ने अपने जीवन के लिए 11 लाख रुपये का एक और बीमा कवर प्राप्त किया था। हमारा विचार है कि प्रस्ताव पत्र में पहले प्राप्त बीमा पॉलिसी का खुलासा न करने पर बीमाकर्ता को पॉलिसी के अंतर्गत दावे को अस्वीकार करने का अधिकार प्राप्त होता है।

आई. अपने तर्क को पुष्ट करने के लिए, अधिवक्ता ने **श्रीमती पारुल अग्रवाल बनाम भारतीय जीवन बीमा निगम एवं अन्य,** विशेष अपील त्रुटिपूर्ण संख्या 782/2023 (तटस्थ उद्धरण संख्या 2024:एएचसी:36063-डीबी) पर भरोसा किया है।

<u>विश्लेषण</u>

5. हमने दोनों पक्षों द्वारा प्रस्तुत प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर विचार किया है और रिकॉर्ड पर रखी गई सामग्रियों का अवलोकन किया है। दो मुद्दों के संदर्भ में हमारे विश्लेषण को प्रस्तुत करना आवश्यक है, पहला, प्रस्ताव पत्र में बीमित व्यक्ति द्वारा किए गए प्रकटीकरण की प्रकृति और दूसरा, दावे के अस्वीकार करने का आधार।

6. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी है कि बीमाकर्ता ने पिछली पॉलिसी का खुलासा न करने के आधार पर 23 मार्च, 2021 के आदेश के अंतर्गत दावे को अवैध रूप से खारिज कर दिया है। बीमित व्यक्ति ने एक एजेंट के माध्यम से पॉलिसी ली थी और उसने पॉलिसी लेने से पहले ही एजेंट को पिछली पॉलिसी की जानकारी दे दी थी, लेकिन एजेंट ने उसे आश्वासन दिया कि पिछली पॉलिसी पहले से ही एलआईसी के ज्ञान में थी, इसलिए प्रस्ताव पत्र में इसका उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है। फॉर्म भरा गया था और बीमित व्यक्ति ने प्रस्ताव पत्र में उल्लिखित प्रश्नों के विवरण में जाए बिना नियमित तरीके से उस पर हस्ताक्षर कर दिए थे। यह भी तर्क दिया गया है कि यद्यपि जानकारी जानबूझकर नहीं छिपाई गई है, फिर भी एलआईसी के एजेंट की गलती के कारण याचिकाकर्ता को बीमा का दावा करने के उसके वैध अधिकार से वंचित नहीं किया जाना चाहिए।

7. इसके विपरीत, प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता के तर्कों का पुरजोर खंडन किया और कहा कि पिछली पॉलिसी के बारे में जानकारी बीमाकर्ता द्वारा दावे पर निर्णय लेने के लिए प्रासंगिक है और बीमाधारक द्वारा प्रस्ताव पत्र में 'कॉलम 7ए' में 'नहीं' लिखकर इसे गलत तरीके से प्रस्तुत किया गया है और 'कॉलम 9' को खाली छोड़ दिया गया है, जिसमें पिछले 3 वर्षों के दौरान खरीदी गई पिछली पॉलिसियों (समर्पित या समाप्त हो चुकी पॉलिसियों सहित) का सावधानीपूर्वक उल्लेख करना आवश्यक था। इस प्रकार, प्रस्ताव पत्र के नीचे की गई घोषणा का उल्लंघन हुआ है, जिससे पॉलिसी अस्वीकृत होने योग्य हो जाती है।

8. इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं है कि विवादित पॉलिसी 16 अगस्त, 2018 को ली गई थी, बीमित व्यक्ति की मृत्यु 8 जुलाई, 2019 को दिल का दौरा पड़ने से हुई और बीमाकर्ता द्वारा 23 मार्च, 2021 को दावा अस्वीकार कर दिया गया। यह भी निर्विवाद है कि स्वर्गीय मीरा देवी (याचिकाकर्ता की पत्नी) के पक्ष में जारी संख्या 205601558 वाली एक पिछली पॉलिसी थी, जिसकी शुरुआत 28 मई, 2018 से हुई थी और इसके अलावा याचिकाकर्ता ने अपने पूरक प्रत्युत्तर हलफनामे में संख्या 311496904 और 314004138 वाली दो अन्य पॉलिसियों को भी स्वीकार किया है। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि पिछली तीन पॉलिसियों का भुगतान एलआईसी द्वारा किया गया था।

9. प्रतिवादियों ने क्रमशः वर्ष 2002 और 2010 में ली गई संख्या 311496904 और 314004138 वाली दो पॉलिसियों के बारे में कोई चिंता नहीं जताई है। विवाद केवल एक पूर्व पॉलिसी संख्या 205601558 (प्रारंभ की तिथि 28 मई, 2018) का प्रस्ताव फॉर्म में खुलासा न करने को लेकर है, जो कि 23 मार्च, 2021 के आदेश में एलआईसी द्वारा अस्वीकृति का आधार है।

10. प्रतिवादियों द्वारा अपने प्रति शपथपत्र में प्रस्तुत प्रस्ताव फॉर्म की प्रति के अवलोकन पर, यह ध्यान देने योग्य है कि जिस प्रश्न पर बीमाकर्ता द्वारा दावे की अस्वीकृति की गई थी, वह 'कॉलम 9' के संबंध में था, जिसे एलआईसी के एजेंट द्वारा खाली छोड़ दिया गया था। प्रस्ताव प्रपत्र में खाली छोड़े गए कॉलम 9 में पूछे गए प्रश्न शब्दशः इस प्रकार हैं:

"9. कृपया एलआईसी और निजी बीमा कंपनियों से लिए गए अपने पिछले बीमा का विवरण दें (पिछले 3 वर्षों के दौरान सरेंडर/लैप्स पॉलिसियों सहित)"

11. इसके अलावा, प्रस्ताव प्रपत्र के कॉलम 7a और कॉलम 8a में पूछे गए प्रश्न और बीमित व्यक्ति द्वारा दिए गए उनके उत्तर शब्दशः इस प्रकार हैं:

"7.a. क्या आपके जीवन के लिए अब किसी अन्य बीमा या आपके जीवन पर किसी पॉलिसी के आवेदन या रीवाइवल या निगम के किसी कार्यालय या किसी अन्य बीमाकर्ता के समक्ष विचाराधीन किसी अन्य प्रस्ताव का प्रस्ताव किया जा रहा है? यदि हाँ, तो विवरण दें:

उत्तर: नहीं

8.a क्या आपके जीवन पर निगम के किसी कार्यालय या किसी अन्य बीमाकर्ता को कोई प्रस्ताव (या पॉलिसी के पुनरुद्धार हेतु आवेदन) दिया गया है:

उत्तर: नहीं"

12. यह भी ध्यान देने योग्य है कि बीमित व्यक्ति ने 29 जून, 2018 को बीमाकर्ता द्वारा एक चिकित्सा परीक्षण भी कराया था, जिसमें उसकी चिकित्सा रिपोर्ट भी उसके अच्छे स्वास्थ्य की पुष्टि करती है, जिसका अर्थ है कि उसके स्वास्थ्य में कोई समस्या नहीं थी।

13. हम ***रेखाबेन नरेशभाई राठौड़ (उपरोक्त)*** मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय से अवगत और सचेत हैं, जिसमें बीमा दावे को अस्वीकार करने का कारण बीमित व्यक्ति द्वारा लिए गए पिछले बीमा दावे का पूर्णतः खुलासा न करना था। वर्तमान मामला *रेखाबेन नरेशभाई राठौड़ (उपरोक्त)* मामले से भिन्न है क्योंकि पूर्व मामले में उत्तर नकारात्मक में दिया गया था और वर्तमान मामले में कॉलम खाली छोड़ दिया गया था। पूर्व मामले में बीमित व्यक्ति ने एक अलग बीमाकर्ता से पूर्व अघोषित पॉलिसी ली थी, जबकि वर्तमान विवाद में दोनों पॉलिसियाँ एक ही बीमाकर्ता के पास हैं।

14. यह ध्यान देने योग्य है कि मूलतः प्रतिवादी संख्या 3 और प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा क्रमशः 23 मार्च, 2021 और 19 मई, 2023 को पारित दो अस्वीकृति आदेश हैं। प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा पारित 23 मार्च, 2021 का अस्वीकृति आदेश पिछली पॉलिसी संख्या 205601558 का खुलासा न करने के आधार पर है, लेकिन प्रतिवादी संख्या 1/बीमा लोकपाल द्वारा 19 मई, 2023 को पारित पिछले आदेश के अनुक्रम में 19 मई, 2023 का अनुवर्ती अस्वीकृति आदेश बेतुके आधार पर है, जिसका वर्णन नीचे शब्दशः किया गया है:

"रे: पॉलिसी संख्या: 205602934

हमें आपका दिनांक 08-मई-2023 का पत्र संलग्नकों सहित प्राप्त हुआ है।

इस संबंध में, हम आपको सूचित करते हैं कि आपकी शिकायत पर इस कार्यालय द्वारा विचार नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह शिकायत बीमा लोकपाल नियम, 2017 (आईओ नियम) के दायरे में नहीं आती है, जैसा कि निम्नलिखित है: -

1) बीमा लोकपाल नियमावली के नियम 14 (3) के अनुसार, "बीमा लोकपाल के समक्ष कोई भी शिकायत तब तक मान्य नहीं होगी जब तक कि-

(ए) शिकायतकर्ता शिकायत में नामित बीमाकर्ता को लिखित प्रत्यावेदन न दे और

(i) या तो बीमाकर्ता ने शिकायत को अस्वीकार कर दिया हो; या

(ii) शिकायतकर्ता को बीमाकर्ता द्वारा अपना प्रत्यावेदन प्राप्त होने के एक महीने के भीतर कोई उत्तर न मिला हो; या

(iii) शिकायतकर्ता बीमाकर्ता द्वारा दिए गए उत्तर से संतुष्ट न हो"।

आपकी शिकायत इस शर्त को पूरा नहीं करती है। कृपया बीमाकर्ता को लिखित प्रत्यावेदन दें।

2) 10 नियमावली के नियम 13 (1) के अनुसार -

"लोकपाल निम्नलिखित से संबंधित शिकायतों या विवादों को प्राप्त करेगा और उन पर विचार करेगा-

(ए) भारतीय बीमा विनियामक और विकास प्राधिकरण अधिनियम, 1999 के अंतर्गत बनाए गए विनियमों में निर्दिष्ट समय के बाद दावों के निपटान में देरी;

(बी) जीवन बीमाकर्ता, सामान्य बीमाकर्ता या स्वास्थ्य बीमाकर्ता द्वारा दावों का आंशिक या पूर्ण रूप से अस्वीकार;

(सी) बीमा पॉलिसी के अनुसार भुगतान किए गए या देय प्रीमियम पर विवाद;

(डी) पॉलिसी दस्तावेज़ या पॉलिसी अनुबंध में किसी भी समय पॉलिसी के नियमों और शर्तों का गलत प्रस्तुतीकरण;

(ई) दावे से संबंधित विवाद के संबंध में बीमा पॉलिसियों का कानूनी निर्माण;

(एफ) बीमाकर्ताओं और उनके एजेंटों और मध्यस्थों के विरुद्ध पॉलिसी सेवा संबंधी शिकायतें;

(जी) जीवन बीमा पॉलिसी, स्वास्थ्य बीमा पॉलिसी सहित सामान्य बीमा पॉलिसी जारी करना जो प्रस्तावक द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव प्रपत्र के अनुरूप नहीं है,

(एच) जीवन बीमा और स्वास्थ्य बीमा सहित सामान्य बीमा में प्रीमियम प्राप्त होने के बाद बीमा पॉलिसी जारी न करना; और

(आई) बीमा अधिनियम, 1938 के प्रावधानों या आईआरडीएआई द्वारा समय-समय पर जारी किए गए विनियमों, परिपत्रों, दिशानिर्देशों या निर्देशों या पॉलिसी अनुबंध के नियमों और शर्तों के उल्लंघन के परिणामस्वरूप उत्पन्न कोई अन्य मामला, जहाँ तक वे खंड (ए) से (एफ) में उल्लिखित मुद्दों से संबंधित हैं।

आपकी शिकायत उपरोक्त बिंदु संख्या (ए) से (आई) तक किसी भी बिंदु से संबंधित नहीं है।

3) आईओ नियमावली के नियम 14(1) के अनुसार, "कोई भी व्यक्ति जिसे किसी बीमाकर्ता के विरुद्ध शिकायत है, वह स्वयं या अपने कानूनी उत्तराधिकारियों, नामिती या समनुदेशिती के माध्यम से बीमा लोकपाल को लिखित रूप में शिकायत कर सकता है"।

आपकी शिकायत इस शर्त को पूरा नहीं करती है।

आईओ नियमावली के नियम 14(5) के अनुसार, "बीमा लोकपाल के समक्ष कोई भी शिकायत उसी विषय पर विचारणीय नहीं होगी जिस पर कार्यवाही किसी न्यायालय या उपभोक्ता फोरम या मध्यस्थ के समक्ष लंबित है या निस्तारित की जा चुकी है।

तदनुसार, आपकी शिकायत पर हम विचार नहीं कर सकते।

5) जिस पॉलिसी (जिसके अंतर्गत आपने शिकायत की है) को आईओ नियमावली के नियम 4 के अनुसार व्यक्तिगत बीमा, समूह बीमा पॉलिसियों, एकल स्वामित्व या सूक्ष्म उद्यमों को जारी पॉलिसियों के अंतर्गत जारी नहीं किया गया है। इसलिए आपकी शिकायत पर हम विचार नहीं कर सकते।

6) आईओ नियमावली के नियम 17 (3)(ii) के अनुसार, बीमा लोकपाल "तीस लाख रुपये (यदि कोई हो, प्रासंगिक व्यय सहित) से अधिक का मुआवज़ा नहीं दे सकता"। आपने 30 लाख रुपये से अधिक के मुआवज़े का दावा किया है; इसलिए ***आपकी शिकायत पर हम विचार नहीं कर सकते।***

7) शिकायत इस कार्यालय को संबोधित नहीं है।

8) शिकायत की समय सीमा समाप्त हो चुकी है।

15. 19 मई, 2023 के आदेश के अवलोकन से पता चलता है कि बीमा लोकपाल द्वारा पारित निर्णय में गुण-दोष पर विचार नहीं किया गया है और यह पूरी तरह से अस्पष्ट है। बीमित व्यक्ति के नामिती द्वारा 15 अप्रैल, 2023 को लिखित प्रत्यावेदन प्रस्तुत करने; बीमा दावे को अस्वीकार करने वाले बीमाकर्ता की ओर से 23 मार्च, 2021 के अस्वीकृति आदेश के अस्तित्व; किसी भी न्यायालय या मध्यस्थ के समक्ष कोई कार्यवाही लंबित न होने; व्यक्तिगत आधार पर जारी की गई बीमा पॉलिसी; शिकायतकर्ता द्वारा केवल 15 लाख रुपये की सुनिश्चित राशि की मांग; शिकायत बीमा लोकपाल कार्यालय को विधिवत संबोधित; और कुछ दस्तावेजों का अनुरोध करते हुए लोकपाल के 21 अप्रैल, 2023 के पत्र में निर्धारित समय सीमा के भीतर शिकायत दायर किए जाने के बावजूद; बीमा लोकपाल ने बीमा लोकपाल नियमावली 2017 के अनुसार शिकायत दर्ज करने के नियमों का हवाला देते हुए बिना किसी विचार-विमर्श के मनमाने ढंग से, स्वेच्छाचारी और सनकी तरीके से शिकायत को खारिज कर दिया है।

16. वर्तमान मामले में अस्वीकृति पॉलिसी प्रारंभ होने की तिथि से तीन वर्ष की अवधि के भीतर की गई थी। बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 45 के प्रावधानों के मद्देनजर यह महत्वपूर्ण हो जाता है। उक्त प्रावधान शब्दशः इस प्रकार है:

"45. तीन वर्ष के पश्चात गलत विवरण के आधार पर पॉलिसी पर प्रश्न नहीं उठाया जाएगा। -(1) जीवन बीमा की किसी भी पॉलिसी पर, पॉलिसी की तिथि से तीन वर्ष की समाप्ति के पश्चात, अर्थात पॉलिसी जारी होने की तिथि से या जोखिम प्रारंभ होने की तिथि से या पॉलिसी के पुनरुद्धार की तिथि से या पॉलिसी में राइडर की तिथि से, जो भी बाद में हो, किसी भी आधार पर प्रश्न नहीं उठाया जाएगा।

(2) जीवन बीमा पॉलिसी को, पॉलिसी जारी होने की तिथि या जोखिम प्रारंभ होने की तिथि या पॉलिसी के पुनरुद्धार की तिथि या पॉलिसी में राइडर की तिथि, जो भी बाद में हो, से तीन वर्ष के भीतर किसी भी समय <u>धोखाधड़ी के आधार पर</u> प्रश्नगत किया जा सकता है:

बशर्ते कि बीमाकर्ता को बीमित व्यक्ति या बीमित व्यक्ति के विधिक प्रतिनिधियों या नामितियों या समनुदेशितियों को लिखित रूप में उन आधारों और सामग्रियों की सूचना देनी होगी जिन पर ऐसा निर्णय आधारित है।

स्पष्टीकरण 1. - इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए, "कपट" शब्द का अर्थ बीमाकर्ता को धोखा देने या बीमाकर्ता को जीवन बीमा पॉलिसी जारी करने के लिए प्रेरित करने के आशय से बीमाकर्ता या उसके अभिकर्ता द्वारा किए गए निम्नलिखित कार्यों में से कोई भी कार्य है: -

(ए) किसी ऐसी बात का तथ्य के रूप में सुझाव देना जो सत्य नहीं है और जिसके सत्य होने पर बीमाकर्ता विश्वास नहीं करता है;

(बी) किसी तथ्य का ज्ञान या विश्वास होने पर बीमाकर्ता द्वारा सक्रिय रूप से छिपाना;

(सी) धोखा देने के लिए उपयुक्त कोई अन्य कार्य; और

(डी) ऐसा कोई कार्य या चूक जिसे कानून विशेष रूप से धोखाधड़ीपूर्ण घोषित करता है।

<u>स्पष्टीकरण II. - बीमाकर्ता द्वारा जोखिम के आकलन को प्रभावित करने वाले संभावित तथ्यों के बारे में केवल चुप्पी साधना धोखाधड़ी नहीं है, जब तक कि मामले की परिस्थितियाँ ऐसी न हों कि उन्हें ध्यान में रखते हुए, बीमाधारक या उसके एजेंट का मौन रहते हुए बोलना कर्तव्य हो, या जब तक कि उसका मौन अपने आप में बोलने के बराबर न हो।</u>

(3) उप-धारा (2) में किसी बात के होते हुए भी, कोई भी बीमाकर्ता धोखाधड़ी के आधार पर किसी जीवन बीमा पॉलिसी को अस्वीकार नहीं करेगा यदि बीमाधारक यह साबित कर सकता है कि किसी महत्वपूर्ण तथ्य का गलत कथन या उसका छिपाव उसके सर्वोत्तम ज्ञान और विश्वास के अनुसार सत्य था या तथ्य को छिपाने का कोई जानबूझकर इरादा नहीं था या किसी महत्वपूर्ण तथ्य का ऐसा गलत कथन या उसका छिपाव बीमाकर्ता के ज्ञान में है:

बशर्ते कि धोखाधड़ी के मामले में, यदि पॉलिसीधारक जीवित नहीं है, तो खंडन करने का भार लाभार्थियों पर होगा।

स्पष्टीकरण. - वह व्यक्ति जो बीमा अनुबंध की मांग करता है और उस पर बातचीत करता है, अनुबंध के निर्माण के प्रयोजन के लिए बीमाकर्ता का एजेंट माना जाएगा।

(4) जीवन बीमा पॉलिसी को, पॉलिसी जारी होने की तिथि या जोखिम प्रारंभ होने की तिथि या पॉलिसी के पुनरुद्धार की तिथि या पॉलिसी में राइडर की तिथि, जो भी बाद में हो, से तीन वर्ष के भीतर किसी भी समय इस आधार पर प्रश्नगत किया जा सकता है कि बीमित व्यक्ति के जीवन की प्रत्याशा से संबंधित किसी तथ्य का कथन या उसका दमन प्रस्ताव या अन्य दस्तावेज में गलत तरीके से किया गया था जिसके आधार पर पॉलिसी जारी की गई थी या पुनर्जीवित की गई थी या राइडर जारी किया गया था:

बशर्ते कि बीमाकर्ता को बीमित व्यक्ति या बीमित व्यक्ति के कानूनी प्रतिनिधियों या नामितियों या समनुदेशितियों को लिखित रूप में उन आधारों और सामग्रियों के बारे में सूचित करना होगा जिन पर जीवन बीमा पॉलिसी को अस्वीकार करने का ऐसा निर्णय आधारित है:

इसके अलावा यह भी प्रावधान है कि यदि पॉलिसी को गलत कथन या किसी महत्वपूर्ण तथ्य को छिपाने के आधार पर अस्वीकार किया जाता है, न कि धोखाधड़ी के आधार पर, तो अस्वीकृति की तिथि तक पॉलिसी पर एकत्रित प्रीमियम का भुगतान बीमित व्यक्ति या बीमित व्यक्ति के कानूनी प्रतिनिधियों या नामितियों या समनुदेशितियों को ऐसी अस्वीकृति की तिथि से नब्बे दिनों की अवधि के भीतर किया जाएगा।

स्पष्टीकरण.–इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए, तथ्य का गलत कथन या उसे छिपाना तब तक महत्वपूर्ण नहीं माना जाएगा जब तक कि उसका बीमाकर्ता द्वारा उठाए गए जोखिम पर सीधा प्रभाव न हो। बीमाकर्ता पर यह दर्शाने का दायित्व है कि यदि बीमाकर्ता को उक्त तथ्य की जानकारी होती, तो बीमित व्यक्ति को कोई जीवन बीमा पॉलिसी जारी नहीं की जाती।

(5) इस धारा की कोई भी बात बीमाकर्ता को किसी भी समय आयु का प्रमाण मांगने से नहीं रोकेगी, यदि वह ऐसा करने का हकदार है, और कोई भी पॉलिसी केवल इसलिए प्रश्नगत नहीं मानी जाएगी क्योंकि पॉलिसी की शर्तों को बाद में इस प्रमाण के आधार पर समायोजित किया जाता है कि प्रस्ताव में बीमित व्यक्ति की आयु गलत बताई गई थी। "

17. बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 45 के अनुसार, पॉलिसी को तीन वर्षों के भीतर मुख्यतः दो आधारों पर प्रश्नगत किया जा सकता है, पहला, धोखाधड़ी के आधार पर और दूसरा, गलत विवरण या किसी भौतिक तथ्य को छिपाने के आधार पर। बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 45 की उप-धारा (4) के दूसरे परंतुक के अनुसार, यह स्पष्ट है कि यदि पॉलिसी को गलत विवरण या किसी भौतिक तथ्य को छिपाने के आधार पर अस्वीकृत किया जा रहा है, न कि धोखाधड़ी के आधार पर, तो बीमाकर्ता द्वारा एकत्रित प्रीमियम ऐसे अस्वीकृत होने की तिथि से नब्बे दिनों की अवधि के भीतर वापस किए जाने हैं। वर्तमान मामले में, प्रतिवादी/बीमा कंपनी ने प्रीमियम की ऐसी कोई वापसी नहीं की है। तदनुसार, प्रतिवादियों की कार्रवाई से यह स्पष्ट है कि पॉलिसी को धोखाधड़ी के आधार पर अस्वीकृत किया गया है।

18. धारा 45 की उप-धारा (3) के अनुसार, बीमाकर्ता धोखाधड़ी के आधार पर पॉलिसी को अस्वीकृत नहीं कर सकता है, यदि बीमित व्यक्ति यह साबित कर सके कि भौतिक तथ्य को छिपाने का कोई जानबूझकर इरादा नहीं था या किसी भौतिक तथ्य को छिपाना बीमाकर्ता की जानकारी में है। **महावीर शर्मा (उपरोक्त)** के मामले

में, सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि धोखाधड़ी के आधार पर अस्वीकृति साबित करने का भार बीमाकर्ता पर है।

"16. महाकाली सुजाता (उपरोक्त) में, इस न्यायालय ने कहा कि यदि किसी दावे को इस आधार पर अस्वीकार कर दिया गया था कि पॉलिसीधारक ने अन्य बीमाकर्ताओं की मौजूदा जीवन बीमा पॉलिसियों के संबंध में अपने आवेदन पत्र में भौतिक तथ्यों को छिपाया है, तो भौतिक तथ्य का खुलासा न करने के आरोप को साबित करने का भार बीमाकर्ता पर है और यह कि खुलासा न करना धोखाधड़ीपूर्ण था।"

19. **मनमोहन नंदा बनाम यूनाइटेड इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** (2022) 4 एससीसी 582 में सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि सर्वोच्च सद्भावना का सिद्धांत बीमाधारक द्वारा बीमाकर्ता के प्रति और बीमाकर्ता द्वारा बीमाकर्ता के प्रति सार्थक पारस्परिक कर्तव्यों को लागू करता है। न्यायालय ने भौतिक तथ्यों के निर्धारण के लिए विभिन्न परीक्षण भी निर्धारित किए और मानक रूप अनुबंध में ***कॉन्ट्रा प्रोफेरेटम*** के सिद्धांत पर भी प्रकाश डाला। निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत हैं:

34. बीमा विनियामक और विकास प्राधिकरण (पॉलिसीधारकों के हितों का संरक्षण) विनियम, 2002 के प्रावधानों के अंतर्गत धारा 2(डी) में "प्रस्ताव प्रपत्र" को परिभाषित करने वाला स्पष्टीकरण "सामग्री" के अर्थ और विषयवस्तु पर प्रकाश डालता है। सुगम संदर्भ के लिए, उपरोक्त विनियमों के अंतर्गत स्पष्टीकरण सहित "प्रस्ताव प्रपत्र" की परिभाषा निम्नानुसार उद्धृत की गई है:

"2. परिभाषाएँ।- इन विनियमों में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो-

** * **

(डी) "प्रस्ताव प्रपत्र" का अर्थ है बीमा के लिए प्रस्तावक द्वारा भरा जाने वाला एक प्रपत्र, जिसमें बीमाकर्ता द्वारा जोखिम के संबंध में अपेक्षित सभी महत्वपूर्ण जानकारी प्रस्तुत की जाती है, ताकि बीमाकर्ता यह निर्णय ले सके कि जोखिम को स्वीकार करना है या अस्वीकार करना है, और जोखिम स्वीकार करने की स्थिति में, प्रदान किए जाने वाले कवर की दरें, नियम और शर्तें निर्धारित की जा सकें।

स्पष्टीकरण- इन विनियमों के प्रयोजन के लिए "सामग्री" का अर्थ बीमाकर्ता द्वारा कवर किए जाने वाले जोखिम के बीमाकरण के संदर्भ में सभी महत्वपूर्ण, आवश्यक और प्रासंगिक जानकारी होगी।"

इस प्रकार, विनियमन में "सामग्री" शब्द को परिभाषित किया गया है और इसमें सभी "महत्वपूर्ण", "आवश्यक" और "प्रासंगिक" जानकारी शामिल है, जो बीमाकर्ता को यह निर्णय लेने में मार्गदर्शन करती है कि जोखिम उठाना है या नहीं।

35. जिस प्रकार बीमाधारक का कर्तव्य है कि वह सभी महत्वपूर्ण तथ्यों का खुलासा करे, उसी प्रकार बीमाकर्ता को भी बीमाधारक को उस पॉलिसी के नियमों और शर्तों के बारे में सूचित करना चाहिए जो उसे जारी की जाने वाली है और प्रस्ताव पत्र या विवरणिका में दिए गए कथनों, या उसके एजेंटों के माध्यम से दिए गए कथनों के

पूर्णतः अनुरूप होनी चाहिए। इस प्रकार, परम सद्भावना का सिद्धांत बीमाधारक द्वारा बीमाकर्ता के प्रति और बीमाकर्ता द्वारा बीमाकर्ता के प्रति सार्थक पारस्परिक कर्तव्यों को लागू करता है। प्रकटीकरण का यह अंतर्निहित कर्तव्य मूल रूप से इक्विटी में स्थापित एक सामान्य कानूनी सद्भावना कर्तव्य था, लेकिन बाद में इसे ऊपर उल्लिखित अनुसार वैधानिक रूप से मान्यता दी गई है। अनुबंध करने वाले पक्ष अनुबंध की शर्तों द्वारा कर्तव्य का विस्तार या उसे प्रतिबंधित करने के लिए भी स्वतंत्र हैं।

36. बीमाधारक द्वारा परम सद्भावना का पालन करने के कर्तव्य को उस प्रस्ताव पत्र का उत्तर देने की आवश्यकता के द्वारा लागू किया जाता है, जो इस प्रकार तैयार किया गया है कि सभी प्रासंगिक जानकारी को इसमें शामिल किया जाए। पॉलिसी को एक अनुबंध का आधार बनाना और उसे एक अनुबंध का आधार बनाना। इस प्रकार लगाया गया संविदात्मक कर्तव्य यह है कि प्रस्ताव पत्र में दिए गए कथनों में किसी भी प्रकार का छिपाव या मिथ्यात्व सद्भावना के कर्तव्य का उल्लंघन होगा और पॉलिसी को शून्यकरणीय बना देगा और परिणामस्वरूप बीमाकर्ता के कहने पर उसे अस्वीकार कर दिया जाएगा।

*****

40. यदि कोई तथ्य, यद्यपि महत्वपूर्ण है, ऐसा है जिसे प्रस्तावक ने विशेष परिस्थितियों में जानने की अपेक्षा नहीं की थी और न ही कर सकता था, या यदि उसकी महत्वपूर्णता किसी विवेकशील व्यक्ति को स्पष्ट नहीं होती, तो उसे प्रकट न करना उसके कर्तव्य का उल्लंघन नहीं है।

*****

कॉन्ट्रा प्रोफेरेंटम नियम

45. कॉन्ट्रा प्रोफेरेंटम नियम की उत्पत्ति प्राचीन है। जब शब्दों की व्याख्या करनी हो, जिसके परिणामस्वरूप दो वैकल्पिक व्याख्याएँ हों, तो वह व्याख्या जो उन शब्दों या अभिव्यक्तियों का उपयोग करने या उन्हें तैयार करने वाले व्यक्ति के विरुद्ध है, जिन्होंने निर्माण में कठिनाई पैदा की है, लागू होती है। मानक प्रारूप अनुबंधों की व्याख्या करते समय अक्सर इस नियम का आह्वान किया जाता है। ऐसे अनुबंधों में मुद्रित शब्दों वाले प्रपत्रों का भारी उपयोग होता है जो हमेशा एक ही प्रकार के अनुबंधों के लिए उपयोग किए जाते हैं। इसके अलावा, ऐसे अनुबंध व्यक्तियों के विरुद्ध कठोर शब्दों में लिखे जाते हैं और अक्सर पढ़े-समझे नहीं जाते, जिसके परिणामस्वरूप गंभीर कानूनी परिणाम सामने आते हैं। जब ऐसे मानक प्रारूप अनुबंधों में अपवाद खंड होते हैं, तो उन्हें हमेशा उस व्यक्ति के विरुद्ध, जिसने उन्हें तैयार किया है, कॉन्ट्रा प्रोफेरेंटम नियम के रूप में समझा जाता है।

*****

52.6. केनरा बैंक बनाम यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड [केनरा बैंक बनाम यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, (2020) 3 एससीसी 455: (2020) 2 एससीसी (सिविल) 126], एक ऐसा मामला है जिसमें इस न्यायालय ने माना कि यदि कोई कॉलम खाली छोड़ दिया जाता है, तो बीमा कंपनी को बीमित व्यक्ति से कॉलम भरने के लिए कहना चाहिए। यदि बीमा कंपनी प्रस्ताव पत्र स्वीकार करते समय बीमित व्यक्ति से किसी अस्पष्टता को स्पष्ट करने के लिए नहीं कहती है, तो प्रीमियम स्वीकार करने के बाद बीमा कंपनी यह आग्रह नहीं कर सकती है कि बीमित व्यक्ति द्वारा गलत घोषणा की गई थी। एक कॉलम खाली छोड़ने का मतलब

अनुवादित

यह नहीं है कि तथ्यों का गलत वर्णन था। एक अनुबंध को शून्य बनाने के लिए, गैर-प्रकटीकरण कुछ बहुत ही महत्वपूर्ण तथ्य का होना चाहिए। इसलिए, बीमाकर्ता को मामले में बीमित व्यक्ति को क्षतिपूर्ति करने का निर्देश दिया गया था। सतवंत कौर संधू [सतवंत कौर संधू बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, (2009) 8 एससीसी 316: (2009) 3 एससीसी (सिविल) 366] के मामले में दिए गए फैसले को इस मामले में लागू नहीं माना गया।

55. उपरोक्त निर्णयों पर विचार करने पर, निम्नलिखित सिद्धांत सामने आते हैं:

55.1. प्रस्ताव बनाते समय किसी भी भौतिक तथ्य के बारे में बीमाधारक द्वारा प्रकटीकरण का कर्तव्य या दायित्व होता है। भौतिक तथ्य क्या है, यह ली जाने वाली बीमा पॉलिसी की प्रकृति, कवर किए जाने वाले जोखिम, और प्रस्ताव पत्र में उठाए गए प्रश्नों पर निर्भर करेगा।

55.2. किसी मामले में भौतिक तथ्य क्या हो सकता है, यह प्रस्तावक के स्वास्थ्य और चिकित्सा स्थिति पर भी निर्भर करेगा।

55.3. यदि प्रस्ताव पत्र में विशिष्ट प्रश्न पूछे जाते हैं, तो यह अपेक्षित है कि बीमाधारक द्वारा विशिष्ट उत्तर दिए जाएँ, जो सभी भौतिक तथ्यों का खुलासा करने के कर्तव्य से बंधा है।

55.4. यदि प्रस्ताव प्रपत्र में कोई प्रश्न या कॉलम रिक्त रह जाता है, तो बीमा कंपनी को बीमित व्यक्ति से उसे भरने के लिए कहना होगा। यदि किसी कॉलम के रिक्त रह जाने के बावजूद, बीमा कंपनी प्रीमियम स्वीकार कर लेती है और पॉलिसी जारी कर देती है, तो वह बाद में, जब पॉलिसी के अंतर्गत दावा किया जाता है, यह नहीं कह सकती कि किसी महत्वपूर्ण तथ्य को छिपाया गया है या उसका खुलासा नहीं किया गया है, और दावे को अस्वीकार करने का प्रयास नहीं कर सकती।

55.5. बीमा कंपनी को अपने पैनल में शामिल किसी डॉक्टर से प्रस्तावक की जाँच करवाकर, यदि कोई हो, तो उसकी चिकित्सा स्थिति के बारे में विवरण प्राप्त करने का अधिकार है। यदि, चिकित्सा रिपोर्ट पर विचार करने के बाद, बीमा कंपनी प्रस्तावक की चिकित्सा स्थिति और पहले से मौजूद किसी बीमारी के जोखिम से संतुष्ट हो जाती है, और इस संतुष्टि के आधार पर उसने पॉलिसी जारी कर दी है, तो वह उसके बाद यह तर्क नहीं दे सकती कि बीमित व्यक्ति को पहले से कोई बीमारी थी जिसके कारण उसने दावा किया है और इस कारण से दावे को अस्वीकार कर सकती है।

55.6. बीमाकर्ता को बीमा पॉलिसी जारी करने से पहले, प्रस्ताव पत्र में बीमित व्यक्ति द्वारा बताई गई स्वास्थ्य स्थिति और मौजूदा बीमारी (यदि कोई हो) से उत्पन्न होने वाले संभावित जोखिमों का आकलन करने में सक्षम होना चाहिए। एक बार बीमित व्यक्ति की चिकित्सा स्थिति का आकलन करने के बाद पॉलिसी जारी कर दी गई हो, तो बीमाकर्ता प्रस्ताव पत्र में बीमित व्यक्ति द्वारा बताई गई किसी मौजूदा चिकित्सा स्थिति का हवाला देकर दावे को अस्वीकार नहीं कर सकता, क्योंकि उस स्थिति के कारण कोई विशेष जोखिम उत्पन्न हुआ है जिसके संबंध में बीमित व्यक्ति ने दावा किया है।

55.7. दूसरे शब्दों में, एक विवेकशील बीमाकर्ता को उस संभावित जोखिम का आकलन करना होगा जिसे पॉलिसी में शामिल किया जाना है और तदनुसार, प्रस्ताव पत्र को स्वीकार करके पॉलिसी जारी करने या ऐसा करने से

इनकार करने का निर्णय लेना होगा। ऐसा करना प्रस्ताव पत्र में पूछे गए प्रश्नों और प्रस्तावक द्वारा दिए गए उत्तरों पर निर्भर करता है।

(जोर दिया गया)

20. **महाकाली सुजाता बनाम फ्यूचर जनरली इंडिया लाइफ इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** (2024) 8 एससीसी 712 में, सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा कि बीमा अनुबंधों में, महत्वपूर्ण तथ्यों का खुलासा न करने और किसी भी धोखाधड़ी के इरादे के आरोपों को साबित करने का दायित्व पूरी तरह से बीमाकर्ता का होता है। इसका अर्थ है कि बीमाकर्ता को बीमित व्यक्ति द्वारा गलत जानकारी देने या महत्वपूर्ण जानकारी छिपाने के दावों को प्रमाणित करने के लिए ठोस सबूत पेश करने होंगे। निर्णय के प्रासंगिक अनुच्छेद नीचे उद्धृत हैं:

"39. उपर्युक्त चर्चा से, यह स्पष्ट है कि परम सद्भावना का सिद्धांत बीमा अनुबंध के दोनों पक्षों पर प्रकटीकरण के पारस्परिक कर्तव्य डालता है। ये पारस्परिक कर्तव्य यह अनिवार्य करते हैं कि दोनों पक्ष एक-दूसरे के समक्ष पूर्ण प्रकटीकरण करें, ताकि पक्ष एक सूचित निर्णय ले सकें और उनके बीच एक निष्पक्ष बीमा अनुबंध बना रहे। किसी भी भौतिक तथ्य को दबाया नहीं जाना चाहिए, जिसका बीमा किए जा रहे जोखिम और उस जोखिम को उठाने के पक्ष के निर्णय पर असर पड़ सकता है। हालाँकि, हर प्रश्न को भौतिक तथ्य नहीं कहा जा सकता है और किसी तथ्य की भौतिकता का निर्णय उपर्युक्त निर्णय में बताए गए नियमों के अनुसार किया जाना चाहिए।

*****

42. रेखाबेन मामले [रिलायंस लाइफ इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम रेखाबेन नरेशभाई राठौड़, (2019) 6 एससीसी 175 : (2019) 3 एससीसी (सिविल) 174] में इस न्यायालय के समक्ष प्रश्न यह था कि क्या अस्वीकृति अन्य बीमा पॉलिसियों के बारे में जानकारी छिपाने के आधार पर मामला कायम रहा। यह ध्यान देने योग्य है कि इसमें बीमित व्यक्ति ने अपने द्वारा धारित जीवन बीमा के लिए पहले के कवर का खुलासा न करने की बात स्वीकार की थी, लेकिन तर्क दिया था कि ऐसी जानकारी का खुलासा न करना कोई ऐसा महत्वपूर्ण तथ्य नहीं था जिसे छिपाने से धारा 45 के अंतर्गत दावे को अस्वीकार किया जा सके। इसलिए, न्यायालय ने बीमा कंपनी के पक्ष में फैसला सुनाया और माना कि ऐसा छिपाना वास्तव में जानकारी का महत्वपूर्ण छिपाना था, क्योंकि इसका बीमाकर्ता के बीमा अनुबंध करने या न करने के निर्णय पर प्रभाव पड़ता था।

*****

44. हालाँकि, रेखाबेन मामले [रिलायंस लाइफ इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम रेखाबेन नरेशभाई राठौड़, (2019) 6 एससीसी 175 : (2019) 3 एससीसी (सिविल) 174] में उपरोक्त निर्णय वर्तमान मामले से अलग है, क्योंकि इसमें अपीलकर्ता द्वारा बीमित व्यक्ति द्वारा ली गई किसी भी पिछली पॉलिसी की कोई स्वीकारोक्ति नहीं है। उस स्थिति में, पॉलिसीधारक द्वारा स्वीकारोक्ति के बाद, न्यायालय को केवल यह प्रश्न सौंपा गया था कि क्या पिछली पॉलिसियों के बारे में तथ्य एक "महत्वपूर्ण तथ्य" माना जा सकता है जिसे छिपाया गया था। हालाँकि, वर्तमान मामले में, बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 45 के आलोक में, न्यायालय के समक्ष यह साबित करने का दायित्व बीमाकर्ता पर है कि बीमित व्यक्ति ने पिछली पॉलिसियों के बारे में जानकारी छिपाई थी। साक्ष्य के इस दायित्व का निर्वहन बीमाकर्ता द्वारा साक्ष्य के नियम के अनुसार विधिवत किया जाना चाहिए।

(जोर दिया गया)

21. **महावीर शर्मा (उपरोक्त)** मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि यद्यपि बीमा अनुबंध *उबेरिमा फ़ाइड्स* (अत्यंत सद्भावना) के सिद्धांत पर आधारित होते हैं, फिर भी हर चूक भौतिक दमन के बराबर नहीं होती। न्यायालय ने इस बात पर ज़ोर दिया कि किसी तथ्य की भौतिकता का आकलन एक विवेकशील बीमाकर्ता के दृष्टिकोण से किया जाना चाहिए और यह प्रत्येक मामले के तथ्यात्मक ढाँचे पर निर्भर करता है। निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत हैं:

"12. बीमा एक पूर्णतः वैध अनुबंध है। आवेदक का यह कर्तव्य है कि वह प्रस्तावित जोखिम को स्वीकार करते समय एक विवेकशील बीमाकर्ता के लिए महत्वपूर्ण सभी तथ्यों का खुलासा करे। ये तथ्य बीमा अनुबंध के लिए महत्वपूर्ण माने जाते हैं, और इनका खुलासा न करने पर दावे को अस्वीकार किया जा सकता है। किसी तथ्य की प्रासंगिकता का निर्धारण प्रत्येक मामले के आधार पर किया जाना है। उपर्युक्त निर्णय ऐसे महत्वपूर्ण तथ्यों के उदाहरणों को दर्शाते हैं, जिनमें मेडिक्लेम पॉलिसी के संदर्भ में कुछ चिकित्सीय स्थितियों का खुलासा न करना महत्वपूर्ण माना गया था।

*****

15. मनमोहन नंदा (उपरोक्त) मामले में, कई निर्णयों पर विचार करने के बाद, इस न्यायालय ने, अन्य बातों के साथ-साथ, निम्नलिखित सिद्धांतों का निष्कर्ष निकाला:

"xxx

55.1 प्रस्ताव प्रस्तुत करते समय किसी भी महत्वपूर्ण तथ्य के बारे में बीमाधारक द्वारा खुलासा करना एक कर्तव्य या दायित्व है। भौतिक तथ्य क्या है, यह ली जाने वाली बीमा पॉलिसी की प्रकृति, कवर किए जाने वाले जोखिम और प्रस्ताव पत्र में उठाए गए प्रश्नों पर निर्भर करेगा।

55.2 किसी मामले में भौतिक तथ्य क्या हो सकता है, यह प्रस्तावक के स्वास्थ्य और चिकित्सा स्थिति पर भी निर्भर करेगा।

55.3 यदि प्रस्ताव पत्र में विशिष्ट प्रश्न पूछे जाते हैं, तो यह अपेक्षित है कि बीमित व्यक्ति द्वारा विशिष्ट उत्तर दिए जाएँ, क्योंकि वह सभी भौतिक तथ्यों का खुलासा करने के अपने कर्तव्य से बंधा है।

55.4 यदि प्रस्ताव पत्र में कोई प्रश्न या कॉलम खाली छोड़ दिया जाता है, तो बीमा कंपनी को बीमित व्यक्ति से उसे भरने के लिए कहना चाहिए। यदि किसी कॉलम के खाली छोड़े जाने के बावजूद, बीमा कंपनी प्रीमियम स्वीकार करती है और पॉलिसी जारी करती है, तो वह बाद में, जब पॉलिसी के अंतर्गत कोई दावा किया जाता है, यह नहीं कह सकती कि किसी भौतिक तथ्य को छिपाया गया था या उसका खुलासा नहीं किया गया था, और दावे को अस्वीकार करने का प्रयास नहीं कर सकती।"

16. महाकाली सुजाता (उपरोक्त) में, इस न्यायालय ने कहा कि यदि किसी दावे को इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि पॉलिसी धारक ने अन्य बीमाकर्ताओं की मौजूदा जीवन बीमा पॉलिसियों के संबंध में अपने आवेदन पत्र में महत्वपूर्ण तथ्यों को छिपाया है, तो महत्वपूर्ण तथ्य का खुलासा न करने के आरोप को साबित करने का भार बीमाकर्ता पर है और यह कि खुलासा न करना धोखाधड़ी थी। इसके अलावा, इस तथ्य को साबित करने

अनुवादित

का भार, जो बीमाधारक के मुआवजे का भुगतान करने के दायित्व को समाप्त करता है, केवल बीमाधारक पर है, किसी और पर नहीं।

22. दोनों पक्षों द्वारा उद्धृत असंख्य निर्णयों के अवलोकन और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विभिन्न निर्णयों में निर्धारित अनुपातों को ध्यान में रखते हुए, निम्नलिखित सिद्धांत निकाले जा सकते हैं:

ए. प्रस्ताव बनाते समय किसी भी महत्वपूर्ण तथ्य के बारे में बीमाधारक द्वारा खुलासा करना एक कर्तव्य या दायित्व है और महत्वपूर्ण तथ्य क्या है यह ली गई बीमा पॉलिसी की प्रकृति, कवर किए गए जोखिम, साथ ही प्रस्ताव पत्र में उठाए गए प्रश्नों पर निर्भर करेगा।

बी. परीक्षण यह है कि विचाराधीन तथ्य विवेकशील बीमाकर्ता को प्रभावित करेंगे या नहीं। यदि किसी विवेकशील बीमाकर्ता का मन प्रभावित होता है, चाहे वह जोखिम उठाने का निर्णय लेने में हो या किसी विशेष तथ्य के ज्ञान से प्रीमियम तय करने में, तो वह तथ्य एक भौतिक तथ्य होगा।

सी. एक भौतिक तथ्य प्रस्तावक के स्वास्थ्य और चिकित्सा स्थिति पर भी निर्भर करेगा।

डी. *कॉन्ट्रा प्रोफेरेंटम* नियम की उत्पत्ति प्राचीन काल से है। जब शब्दों की व्याख्या करनी हो, जिसके परिणामस्वरूप दो वैकल्पिक व्याख्याएँ हों, तो वह व्याख्या लागू होती है जो उन शब्दों या अभिव्यक्तियों का उपयोग करने या उन्हें तैयार करने वाले व्यक्ति के विरुद्ध हो, जिन्होंने निर्माण में कठिनाई पैदा की है। जब ऐसे मानक रूप अनुबंधों में सामान्यतः अपवाद खंड होते हैं, तो उन्हें अनिवार्य रूप से उस व्यक्ति के विरुद्ध *कॉन्ट्रा प्रोफेरेंटम* नियम के रूप में समझा जाता है जिसने उन्हें तैयार किया है।

ई. यदि प्रस्ताव पत्र में विशिष्ट प्रश्न पूछे जाते हैं, तो उन विशिष्ट प्रश्नों का उत्तर देना बीमाधारक का कर्तव्य है, लेकिन यदि प्रस्ताव पत्र में कोई प्रश्न या कॉलम खाली छोड़ दिया जाता है, तो बीमा कंपनी को बीमाधारक से उसे भरने के लिए कहना चाहिए। यदि किसी कॉलम के छूट जाने के बावजूद बीमा कंपनी प्रीमियम स्वीकार कर लेती है और उसके बाद पॉलिसी बांड जारी कर देती है, तो वह बाद में बीमित व्यक्ति के दावे को अस्वीकार नहीं कर सकती। बीमाकर्ता का यह कर्तव्य है कि वह पिछली पॉलिसी के विवरण, जो पहले से ही उनके पास रिकॉर्ड में है, का सत्यापन करे।

<u>निष्कर्ष</u>

23. वर्तमान मामले के तथ्यों की जाँच करने पर, यह ध्यान देने योग्य है कि याचिकाकर्ता ने एलआईसी से चार पॉलिसियाँ ली थीं। इनमें से तीन पॉलिसियों के लिए, एलआईसी ने याचिकाकर्ता द्वारा किए गए दावों के संबंध में भुगतान कर दिया है। हालाँकि, 16 अगस्त, 2018 को ली गई अंतिम पॉलिसी, जिसकी बीमित राशि 15 लाख रुपये थी, को एलआईसी ने इस आधार पर अस्वीकार कर दिया था कि याचिकाकर्ता ने प्रस्ताव पत्र का 'कॉलम 9' खाली छोड़ दिया था। वास्तव में, खंड 9 में विशेष रूप से उन पॉलिसियों का विवरण मांगा गया था जो याचिकाकर्ता ने पिछले तीन वर्षों के दौरान ली हैं और याचिकाकर्ताओं ने यह उल्लेख नहीं किया कि याचिकाकर्ता ने वर्तमान पॉलिसी लेने से तीन महीने से भी कम समय पहले 28 मई, 2018 को 3,70,000 रुपये की बीमित राशि के लिए एलआईसी से ही पॉलिसी संख्या 205601558 ली थी।

24. हमारे विचार में, यह एक 'भौतिक तथ्य' का दमन नहीं है और तदनुसार एलआईसी केवल इस आधार पर जिम्मेदारी से नहीं बच सकता कि पिछली पॉलिसी का खुलासा नहीं किया गया था। याचिकाकर्ता ने दलील दी है कि उसने एलआईसी के एजेंट को जानकारी का खुलासा किया था और एजेंट के अनुसार उक्त पिछली पॉलिसी को फॉर्म में भरने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह पहले से ही एलआईसी के रिकॉर्ड में थी। प्रस्ताव पत्र भरते समय बीमित व्यक्ति ने प्रतिवादियों को अपने पैन कार्ड और आधार कार्ड की प्रति भी दी थी। इसके अलावा, पॉलिसी बॉन्ड जारी करने के लिए प्रस्ताव फॉर्म के साथ-साथ आधार और पैन जैसे वित्तीय दस्तावेज़ों का सत्यापन भी ज़रूरी है, जिनसे पिछली सभी पॉलिसियाँ जुड़ी होती हैं। पहले की सभी पॉलिसियाँ एलआईसी से खरीदी गई थीं, इसलिए उम्मीद की जा सकती है कि एलआईसी भी न्यूनतम जाँच-पड़ताल करेगी।

25. उपरोक्त निर्णय को मामले के तथ्यों पर लागू करते हुए, यह ध्यान देने योग्य है कि यदि किसी भी कॉलम को रिक्त छोड़ने के बावजूद, बीमा कंपनी प्रीमियम स्वीकार करती है और पॉलिसी बांड जारी करती है, तो यह माना जाएगा कि उसने बाद में किसी महत्वपूर्ण तथ्य को छिपाने या प्रकट न करने के आधार पर पॉलिसी को अस्वीकार करने के अपने अधिकार का परित्याग कर दिया है। इस प्रकार, पॉलिसी बांड जारी करने से पहले, बीमाधारक द्वारा उपलब्ध कराए गए विवरणों की पुष्टि करना प्रतिवादियों का दायित्व है, जो एलआईसी कार्यालय के पास उपलब्ध हैं। केवल याचिकाकर्ता पर उसके वैध दावे का भार डालने से प्रतिवादियों को किसी भी तरह से मदद नहीं मिलेगी, खासकर जब पिछली पॉलिसी और वर्तमान पॉलिसी दोनों एक ही बीमाकर्ता द्वारा दी गई हों।

26. यह ध्यान देने योग्य है कि ***महावीर शर्मा*** *(उपरोक्त)* के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने ***रेखाबेन नरेशभाई राठौड़*** *(उपरोक्त),* ***मनमोहन नंदा*** *(उपरोक्त)* और ***महाकाली सुजाता*** *(उपरोक्त)* के मामलों में निर्णयों की जांच करने के बाद, ***मनमोहन नंदा*** *(उपरोक्त)* के मामले में स्थापित सिद्धांतों की स्पष्ट रूप से पुष्टि की। ऊपर दिए गए पैराग्राफ 22 में निकाले गए सिद्धांत स्पष्ट रूप से बीमाकर्ता से पॉलिसी जारी करते समय अधिक सतर्क रहने की अपेक्षा करते हैं। जैसा कि ***मनमोहन नंदा*** *(उपरोक्त)* के मामले में निर्णय के पैराग्राफ 55.4 में स्पष्ट रूप से कहा गया है, बीमा कंपनी का यह कर्तव्य है कि वह बीमित व्यक्ति से किसी विशेष कॉलम को भरने के लिए कहे जो खाली रह गया हो और यदि बीमाकर्ता ऐसा नहीं करता है और बीमा बांड जारी करने में आगे बढ़ता है, तो वह बाद में किसी विशेष तथ्य को छिपाने या प्रकट न करने के आधार पर अनुबंध को अस्वीकार नहीं कर सकता है। इस मामले में, याचिकाकर्ता ने केवल एलआईसी से पॉलिसी ली थी और एलआईसी द्वारा न्यूनतम उचित जांच से पता चलता कि याचिकाकर्ता ने एलआईसी से पहले भी पॉलिसी ली थी। एलआईसी ने रिक्त कॉलम के संबंध में कोई स्पष्टीकरण नहीं मांगा और बाद में प्रीमियम स्वीकार करके और बीमा बांड जारी करके, महत्वपूर्ण तथ्यों को छिपाने या महत्वपूर्ण तथ्यों का खुलासा न करने के आधार पर अनुबंध को अस्वीकार करने के अपने अधिकार का त्याग कर दिया। यह भी ध्यान देने योग्य है कि वर्तमान मामले में कोई भी खुलासा न करना याचिकाकर्ता के स्वास्थ्य से संबंधित नहीं था और याचिकाकर्ता की मृत्यु अचानक दिल का दौरा पड़ने से हुई थी, जिसका किसी भी पिछली बीमारी से कोई संबंध नहीं था। इसके मद्देनजर, इस मामले में एलआईसी

अनुवादित

द्वारा अनुबंध को अस्वीकार करने की विशेष कार्रवाई मनमाना और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा स्थापित विधि के सिद्धांतों के विरुद्ध है।

27. बीमा लोकपाल द्वारा पारित आदेश भी प्रतिवादियों के लिए कोई सहायक नहीं है क्योंकि यह स्पष्ट रूप से बिना सोचे-समझे दिया गया आदेश है, जैसा कि ऊपर पैराग्राफ 14 में बताया गया है।

28. उपर्युक्त के आलोक में, आक्षेपित आदेश निरस्त किये जाते हैं और एलआईसी को निर्देश देते हुए अपास्त किये जाते हैं कि वह याचिकाकर्ता को बीमित राशि का भुगतान तिथि से छह सप्ताह के भीतर विधि के अनुसार करे।

29. उपर्युक्त निर्देशों के साथ, रिट याचिका का निस्तारण किया जाता है।

30. चूंकि इसमें विधि का प्रश्न सम्मिलित था, इसलिए लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाएगा।

(2025) 4 ILRA 315

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 10.04.2025

माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली

के समक्ष

रिट सी संख्या 1003201/2002

देवेश चंद्र द्विवेदी **...याचिकाकर्ता**

बनाम

आयुक्त फैजाबाद और अन्य **...प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

एच.एस. जैन, ए.के. बलेदिहा, डी.सी. मुखर्जी, हरिओम सिंह, प्रदीप शुक्ला, पं. एस. चंद्रा

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

सी.एस.सी., अशोक कुमार बलेदिहा, बी.के. सिंह, एम.ए. खान, एम.ए. सिद्दीकी, आर.एन. गुप्ता

सिविल कानून - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार नियमावली, 1952 - नियम 285-एच, 285-आई, 285-जे - उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार

नियमावली, 1952 - धारा 154 - रिट याचिका - याचिकाकर्ता (नीलामी क्रेता) द्वारा दायर - अपर आयुक्त के आदेश को चुनौती देता है, साथ ही दिसंबर 1999 के पूर्व म्यूटेशन-संबंधी आदेश, प्रश्नगत भूमि के संबंध में जो 1989 में उसके पक्ष में नीलाम की गई थी, जब उसके मूल मालिक ने बैंक ऋण पर चूक की थी - मूल काश्तकार ने उक्त भूमि के विरुद्ध बैंक से ऋण लिया था - ऋण भुगतान में चूक के कारण - डीएम ने एसडीएम को नीलामी आयोजित करने के लिए नियुक्त किया - एसडीएम ने मार्च 1989 में नियमानुसार नीलामी आयोजित की - एसडीएम ने नियमानुसार नीलामी की - मार्च 1989 में एसडीएम द्वारा याचिकाकर्ता के पक्ष में नीलामी बिक्री की गई - एसडीएम ने जून 1989 को नीलामी बिक्री की पुष्टि की - हालांकि, राजनीतिक दबाव और बाहरी कारणों से जुलाई 1989 में नीलामी बिक्री विलेख रद्द कर दिया - बाद में, याचिकाकर्ता ने आपत्ति दर्ज कराई - फरवरी 1990 में खारिज कर दी गई - बाद में, याचिकाकर्ता (नीलामी क्रेता) ने डीएम से संपर्क किया - निर्देश पर, एसडीएम ने जनवरी 1992 में बिक्री-प्रमाण पत्र का आदेश जारी किया, जो याचिकाकर्ता के पक्ष में सब रेजिस्ट्रार के कार्यालय में पंजीकृत किया गया - बिक्री की पुष्टि और याचिकाकर्ता के पक्ष में नीलामी बिक्री विलेख के बावजूद उसे जमीन पर कब्जा नहीं मिल सका और न ही बिक्री की राशि कभी वापस की गई - दूसरी ओर, उधारकर्ता की ओर से आपत्ति के अभाव में कानून की कल्पना से 30 दिनों के बाद नीलामी बिक्री स्वतः ही पुष्टि हो गई - इसके अलावा, उधारकर्ता की मृत्यु के बाद उसके बेटे ने जून, 1999 में धोखाधड़ी से बैंक में पैसा जमा किया और उसके बाद, किसी तीसरे व्यक्ति को संबंधित भूमि का विक्रय-पत्र निष्पादित किया, जिसके पक्ष में तहसीलदार ने राजस्व रिकॉर्ड में उसका नाम परिवर्तित कर दिया- जिसके खिलाफ याचिकाकर्ता (नीलामी क्रेता) ने एसडीएम से संपर्क किया - एसडीएम ने म्यूटेशन के आदेश को रद्द कर दिया - पुनरीक्षण - अपर आयुक्त ने एसडीएम के आदेश को रद्द कर दिया- वर्तमान रिट याचिका - न्यायालय ने यूपीजेडए और एलआर नियमावली के नियम 285-एच से 285-जे के अंतर्गत कानूनी प्रावधानों और रिकॉर्ड पर मौजूद तथ्यों की पूरी तरह से जांच करने के बाद अवधारित किया कि, (i) याचिकाकर्ता के पक्ष में विवादित भूमि की नीलामी बिक्री निर्धारित 30-दिवसीय अवधि के भीतर कोई आपत्ति दर्ज नहीं किए जाने के बाद अंतिम रूप ले चुकी थी, - (ii) तहसीलदार द्वारा म्यूटेशन करना और बैंक द्वारा तीसरे व्यक्ति के पक्ष में निष्पादित बिक्री-विलेख कानूनी रूप से अवैध थे और महत्वपूर्ण तथ्यों को छिपाने के समान थे - (iii) इसके अलावा, एसडीएम ने याचिकाकर्ता का नाम सही ढंग से बहाल किया था, - और (v) आयुक्त ने वैधानिक प्रावधानों पर उचित विचार किए बिना इसे उलटने में घोर अवैधता की है - परिणामस्वरूप, रिट याचिका को स्वीकार किया जाता है - आक्षेपित निर्णय और आदेश को रद्द किया जाता है - एसडीएम को याचिकाकर्ता को नीलाम की गई भूमि का कब्जा सौंपने और तहसीलदार को चार सप्ताह के भीतर उसके पक्ष में म्यूटेशन देने का निर्देश जारी किया जाता है। (पैरा संख्या 11,)

रिट याचिका स्वीकृत। (ई-11)

<u>संदर्भित वादों की सूची: -</u>

1. जगत पाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य - 1994 (12) एलसीडी 612 - डीबी इलाहाबाद।

(माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता पं. एस. चंद्रा और प्रतिवादी-राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री शिव गणेश सिंह को सुना गया।

2. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता रिट याचिका के अनुलग्नक-27 में निहित पुनरीक्षण संख्या 5583 में अपर आयुक्त (न्यायिक), फैजाबाद मंडल, फैजाबाद (विपक्षी संख्या 2) द्वारा पारित दिनांक 28.08.2002 के निर्णय और आदेश को और अपर/नायब तहसीलदार द्वारा पारित दिनांक 20.12.1999 के आदेश को चुनौती दे रहा है जिसमें याचिकाकर्ता के नामांतरण के आवेदन को अस्वीकार कर दिया गया था, जो अनुलग्नक-20 में निहित था और अपर/नायब तहसीलदार द्वारा पारित दिनांक 21.12.1999 के आदेश में विवादित भूमि पर अंजुम फ़रोज़ का नाम दर्ज करने का निर्देश दिया गया था, जो अनुलग्नक-21 में निहित था, साथ ही यह भी प्रार्थना की गई थी कि विपक्षी पक्षों को परमादेश के रूप में निर्देश जारी किया जाए कि वे विपक्षी पक्ष संख्या 2 द्वारा पारित दिनांक 28.08.2002 के आक्षेपित निर्णय और आदेश को लागू न करें।

3. मामले का तथ्यात्मक आधार यह है कि जगेशर पुत्र हरि चरण वर्ष 1981 में सुल्तानपुर जिले के सदर तहसील के ग्राम कटका खानपुर में स्थित प्लॉट संख्या 1025 क्षेत्रफल 0-8-0, प्लॉट संख्या 1344 क्षेत्रफल 0-3-10 और प्लॉट संख्या 961 क्षेत्रफल 0-2-5 के विरुद्ध बैंक ऑफ बड़ौदा से ऋण लिया था। ऋण भुगतान में चूक के कारण, जिला मजिस्ट्रेट ने नीलामी कराने के लिए एस.डी.एम. सदर को नियुक्त किया और एस.डी.एम. सदर, सुल्तानपुर ने नियमानुसार 8.3.1989 को नीलामी की। याचिकाकर्ता अर्थात देवेश चंद्र द्विवेदी के पक्ष में एस.डी.एम. द्वारा 8.3.1989 को नीलामी बिक्री की गई।

एस.डी.एम. ने 23.06.1989 के आदेश द्वारा नीलामी बिक्री की पुष्टि की। एस.डी.एम. सदर ने राजनीतिक दबाव में और बाहरी कारणों से बिना किसी शक्ति और अधिकार क्षेत्र के 28.07.1989 के आदेश द्वारा 8.3.1989 की नीलामी बिक्री को रद्द कर दिया। याचिकाकर्ता ने नियम 285एच के अंतर्गत 28.07.1989 के आदेश के खिलाफ जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष आपत्ति दायर की, लेकिन जिला मजिस्ट्रेट ने 9.2.1990 के आदेश द्वारा यह कहते हुए विचार करने से इनकार कर दिया कि यह उपचार उस पीड़ित व्यक्ति के लिए खुला है जिसकी भूमि नीलाम की गई है और यह उस व्यक्ति के लिए नहीं है जिसने भूमि खरीदी है।

याचिकाकर्ता (नीलामी क्रेता) ने जिला मजिस्ट्रेट, सुल्तानपुर से संपर्क किया और पूरे तथ्य बताए। उन्होंने एसडीएम से संपर्क करने का निर्देश दिया, एसडीएम, सदर ने 10.01.1992 को बिक्री प्रमाण पत्र का आदेश जारी किया, जिसमें एसडीएम के 28.07.1989 के पूर्व आदेश की अनदेखी की गई, जो क्षेत्राधिकार से बाहर था। बिक्री अधिकारी ने याचिकाकर्ता-देवेश चंद्र द्विवेदी के पक्ष में सब रजिस्ट्रार, सदर, तहसील सुल्तानपुर के कार्यालय में 10.01.1992 को बिक्री विलेख निष्पादित किया और यह अभी भी बरकरार है और किसी भी कार्यवाही में रद्द नहीं हुआ है लेकिन याचिकाकर्ता के पक्ष में बिक्री की पुष्टि और नीलामी विलेख के बावजूद उसे भूमि पर कब्जा नहीं मिल सका और न ही याचिकाकर्ता को बिक्री राशि कभी वापस की गई।

श्री जगेशर ने ऋण लिया और उनके कानूनी उत्तराधिकारी ने यूपीजेडए और एलआर नियमावली, 1952 के नियम 285-आई के अंतर्गत कलेक्टर या कमिश्नर, फैजाबाद के समक्ष 30 दिनों के भीतर आपत्ति दर्ज नहीं की। इस प्रकार, क़ानून के नियम 285-जे के अनुसार नीलामी बिक्री 30 दिनों के बाद स्वचालित रूप से विधिक कल्पना द्वारा पुष्टि की गई थी।

श्री जगेशर की मृत्यु के बाद, उनके बेटे ने तथ्य छिपाकर 16.06.1999 को बैंक में पैसा जमा किया और 23.06.1999 को किसी श्री अंजुम फ़रोज़ के पक्ष में अवैध रूप से बिक्री विलेख निष्पादित किया। तहसीलदार सदर ने 20.12.1999 के आदेश (रिट याचिका के अनुलग्नक -20) द्वारा दाखिल खारिज का आदेश पारित किया। बिक्री विलेख निष्पादित करने के आदेश के खिलाफ, याचिकाकर्ता ने एसडीएम से संपर्क किया और तथ्य यह बताया कि विचाराधीन भूमि की नीलामी की गई है और याचिकाकर्ता के पक्ष में बिक्री की पुष्टि की गई है। इसके बाद, एस.डी.एम. ने दिनांक 27.11.2000 के आदेश (अनुलग्नक संख्या 24) द्वारा तहसीलदार के आदेश को रद्द कर दिया और याचिकाकर्ता का नाम बहाल कर दिया।

उपरोक्त आदेश के विरुद्ध अपर आयुक्त, फैजाबाद मंडल, फैजाबाद के समक्ष पुनरीक्षण याचिका दायर की गई। आयुक्त ने अपने 28.8.2002 के आदेश द्वारा एसडीएम के आदेश को रद्द कर दिया, जिसे वर्तमान रिट याचिका में चुनौती नहीं दी गई है।

4. आक्षेपित आदेश का विरोध करते हुए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार नियमावली के नियम 285-जे में यह प्रावधान है कि बिक्री की तिथि से 30 दिन की समाप्ति पर यदि नियम 285-एच या नियम 285-आई में उल्लिखित कोई आवेदन नहीं किया गया है या यदि ऐसा आवेदन किया गया है और कलेक्टर या आयुक्त द्वारा उसे अस्वीकार कर दिया गया है, तो कलेक्टर स्वयं इस बात से संतुष्ट होने के बाद कि बोली लगाने वाले द्वारा विचाराधीन भूमि का क्रय धारा 154 के प्रावधानों का उल्लंघन नहीं करेगा, बिक्री की पुष्टि करने वाला आदेश पारित करेगा। इस दृष्टिकोण से, इस नियम के अंतर्गत पारित आदेश अंतिम होगा।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अगला तर्क यह दिया कि नियम 285-ए के अंतर्गत सहायक कलेक्टर/एसडीएम की शक्ति कलेक्टर द्वारा प्रत्यायोजित की जाती है, अतः एक बार जब 23.6.1989 को एसडीएम द्वारा बिक्री की पुष्टि हो गई, तो उसके बाद कलेक्टर द्वारा प्रत्यायोजित अपनी शक्ति की समीक्षा करने या उसे वापस लेने का उनके पास कोई कानूनी अधिकार नहीं है।

6. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का अगला तर्क यह है कि अपर आयुक्त ने दिनांक 28.8.2002 के आदेश को पारित करते समय इस तथ्य को छिपाकर स्पष्ट कानूनी त्रुटि की है कि जगेशर के बेटे ने 16.6.1999 को बैंक में धन जमा किया था और बैंक ने 23.6.1999 को श्री अंजुम फ़रोज़ के पक्ष में अवैध रूप से बिक्री विलेख निष्पादित किया था। तहसीलदार, सदर ने दिनांक 20.12.1999 के आदेश द्वारा दाखिल खारिज का आदेश पारित किया।

असंशोधित

7. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का अगला तर्क यह है कि अपीलीय न्यायालय ने 27.11.2000 को एसडीएम द्वारा पारित आदेश को अवैध रूप से रद्द कर दिया है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि यू.पी.जेड.ए. और एल.आर. नियमावली, 1952 के नियम 285-जे के अंतर्गत, 30 दिनों की समाप्ति के बाद नीलामी बिक्री की वैधानिक पुष्टि का प्रावधान है।

अपने तर्क के समर्थन में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **जगत पाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1994(12)एलसीडी पृष्ठ 612 डीबी इलाहाबाद** के मामले में दिए गए निर्णय पर भरोसा किया है।

8. दूसरी ओर, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि अपर आयुक्त द्वारा पारित आदेश में कोई अवैधता या त्रुटि नहीं है और यह न्यायसंगत एवं वैध आदेश है। विद्वान स्थायी अधिवक्ता का अगला तर्क यह है कि जगेशर के बेटे द्वारा धन जमा करने के बाद, बैंक ने श्री अंजुम फ़रोज़ के पक्ष में बिक्री विलेख निष्पादित किया।

9. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता के प्रतिद्वंद्वी तर्कों को सुनने के बाद, मैंने रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री के साथ-साथ याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत केस-लॉ का भी अवलोकन किया है।

10. विचाराधीन विवाद का निर्णय करने के लिए, उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार नियमावली, 1952 के नियम 285-एच, 285-आई और 285-जे के प्रावधान नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं:

"285-एच. *(1) कोई भी व्यक्ति जिसकी जोत या अन्य अचल संपत्ति अधिनियम के अंतर्गत बेची गई है, बिक्री की तिथि से तीस दिनों के भीतर किसी भी समय, कलेक्टर के कार्यालय में निम्न राशि जमा करने पर बिक्री को रद्द करने के लिए आवेदन कर सकता है-*

(क) क्रेता को भुगतान के लिए, क्रय राशि के 5 प्रतिशत के बराबर राशि; और

(ख) बकाया के भुगतान के लिए, जेडए फॉर्म 74 में उद्घोषणा में निर्दिष्ट राशि, जिसकी वसूली के लिए बिक्री का आदेश दिया गया था, उस राशि को घटाकर जो बिक्री की ऐसी उद्घोषणा की तिथि से उस मद में भुगतान की गई हो; और

(ग) बिक्री की लागत।

ऐसी जमा राशि जमा करने पर, कलेक्टर बिक्री को रद्द करने का आदेश पारित करेगा:

बशर्ते कि यदि कोई व्यक्ति नियम 258-I के अंतर्गत ऐसी बिक्री को रद्द करने के लिए आवेदन करता है, तो वह इस नियम के अंतर्गत आवेदन करने का हकदार नहीं होगा।

(2)[***]

सारांश

1. नियम 285-एच.....368 के अंतर्गत जमा करने की अवधि का विस्तार

2. बिक्री को रद्द करना - भौतिक अनियमितता 368

3. बिक्री को रद्द करना 368

4. 369 ..... के अंतर्गत आपत्ति

1. नियम 285-एच के अंतर्गत राशि जमा करने की अवधि का विस्तार.- नियमावली *1952 के नियम 285-एच में निर्धारित राशि जमा करने की अवधि बढ़ाने की न्यायालय की शक्ति, नियम 285-जे द्वारा किसी भी तरह से बाधित नहीं है। अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उच्च न्यायालय को न केवल विशेषाधिकार रिट जारी करने की शक्ति है, बल्कि वह भाग III द्वारा प्रदत्त अधिकारों के प्रवर्तन और किसी अन्य उद्देश्य के लिए न्याय के उद्देश्यों में उचित समझे जाने वाले आदेश भी जारी कर सकता है।*

2. विक्रय को अपास्त करना- भौतिक अनियमितता।- *नियमावली में प्रावधान है कि कोई भी व्यक्ति जिसकी होल्डिंग या अन्य अचल संपत्ति अधिनियम के अंतर्गत बेची गई है, वह विक्रय की तारीख से 30 दिनों के भीतर किसी भी समय कलेक्टर को आवेदन कर सकता है कि वह नियमावली के खंड (1) से (3) में उल्लिखित राशि कलेक्टर कार्यालय में जमा करने पर बिक्री को अपास्त कर दे।*

3. विक्रय को अपास्त करना।- *विक्रय की तारीख से 30 दिनों की समाप्ति पर, कलेक्टर को यह संतुष्टि करने के बाद कि बोली लगाने वाले द्वारा प्रश्नगत भूमि का क्रय अधिनियम की धारा 154 के प्रावधानों का उल्लंघन नहीं करेगा, विक्रय की पुष्टि करने वाला आदेश पारित करने के लिए आदेशित किया गया था, बशर्ते कि नियम 285-एच और 285-आई में उल्लिखित नीलामी विक्रय को रद्द करने के लिए कोई आवेदन नहीं किया गया हो या यदि किया गया हो तो कलेक्टर द्वारा अस्वीकार कर दिया गया हो।*

आदेश XXI, नियम 89 के साथ-साथ नियम 285-एच, उ.प्र. जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार नियमावली के अनुसार, यदि वह व्यक्ति जिसकी संपत्ति बेची गई है, इन प्रावधानों में निर्दिष्ट राशि जमा करने पर बिक्री को रद्द करने के लिए आवेदन करता है, तो बिक्री रद्द कर दी जाएगी। आवेदन जमा के परिणामस्वरूप है। परिसीमा अधिनियम की धारा 5 अपील और आवेदनों में सीमा पर लागू होती है, लेकिन धन जमा करने के कार्य पर नहीं, जो बिक्री को रद्द करने के लिए आवेदन दायर करने की पूर्व शर्त है, इस कारण से भी परिसीमा अधिनियम की धारा 5 लागू नहीं होती है।

4. आपत्ति अंतर्गत*- नियम 285-एच से ऐसा प्रतीत होता है कि केवल जोत के मालिक को नीलामी बिक्री के 30 दिनों के भीतर बिक्री को रद्द करने के लिए आपत्ति करने का अधिकार है और कलेक्टर को बिक्री को रद्द करने की शक्ति है। इसके अतिरिक्त, नियम 285(1) को पढ़ने पर पता चलता है कि बिक्री की तिथि से तीस दिनों की अवधि के भीतर, किसी भौतिक अनियमितता आदि के आधार पर बिक्री को रद्द करने के लिए आयुक्त को आवेदन किया जा सकता है, क्योंकि नियम 285-एच, 285(1) के अंतर्गत, कोई भी व्यक्ति आयुक्त के समक्ष आपत्ति कर सकता है।*

[285-I.(i) *बिक्री की तिथि से तीस दिनों के भीतर किसी भी समय, प्रकाशन या संचालन में किसी भौतिक अनियमितता या गलती के आधार पर बिक्री को रद्द करने के लिए आयुक्त को आवेदन किया जा सकता है; लेकिन ऐसे आधार पर कोई भी बिक्री रद्द नहीं की जाएगी जब तक कि आवेदक आयुक्त के समाधानप्रद रूप में यह साबित नहीं कर देता कि ऐसी अनियमितता या गलती के कारण उसे पर्याप्त क्षति हुई है।*

(ii)[***]

(iii) इस नियम के अंतर्गत पारित आयुक्त का आदेश अंतिम होगा।

सारांश

1. राजस्व बोर्ड से संपर्क करने का वैकल्पिक उपाय 369

2. पुनरीक्षण की पोषणीयता...369

3. विशेष अपील की पोषणीयता...369

4. .....369 की प्रकृति और दायरा

5. आयुक्त का आदेश अंतिम होगा 370

1. राजस्व बोर्ड से संपर्क करने का वैकल्पिक उपाय.- *जहां पुनरीक्षणकर्ता द्वारा ट्रायल कोर्ट के समक्ष डिक्री जारी करने के लिए कोई अनुरोध नहीं किया गया था, न ही इस प्रकार हुई देरी के लिए कोई संतोषजनक कारण दिया गया था, ऐसे अनुरोध को स्वीकार करने का कोई औचित्य नहीं था। चूंकि अवर न्यायालयों के निष्कर्ष समवर्ती हैं, कोई क्षेत्राधिकार संबंधी त्रुटि नहीं की गई है, पुनरीक्षण बिना किसी आधार के विफल हो जाता है।*

2. पुनरीक्षण की पोषणीयता.- *आयुक्त के समक्ष कोई भी व्यक्ति पुनरीक्षण दायर नहीं कर सकता है जो अधिनियम की धारा 173 या 174 के अंतर्गत या अधिनियम और नियमावली के नियम 285-एच या 285-आई के अंतर्गत आवेदन कर सकता है। अन्यथा, अधिनियम की धारा 175 और नियमावली के नियम 285-के द्वारा लगाई गई रोक निरर्थक हो जाएगी।*

3. विशेष अपील की पोषणीयता.- *आयुक्त पक्षकारों को नोटिस देने और उन्हें मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर देने के बाद निष्कर्ष दर्ज करता है। विवाद का निर्णय पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर निष्पक्ष एवं वस्तुनिष्ठ रूप से किया जाता है। ऐसा निर्णय प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों और विधि के सामान्य सिद्धांतों के अनुरूप होना चाहिए।*

4. प्रकृति और दायरा.- *नियम 285-I में निहित प्रावधानों पर विचार करते समय, व्याख्या के स्वर्णिम या उद्देश्यपूर्ण नियम के सिद्धांत को लागू किया जाना चाहिए। किसानों या समाज के निचले वर्ग के व्यक्तियों के लिए संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाना हमेशा संभव नहीं होगा।*

नियमावली के नियम 285-I में आयुक्त के समक्ष आपत्ति दर्ज करने का प्रावधान है। इसलिए, कलेक्टर के समक्ष दायर आवेदन पोषणीय नहीं है और याचिकाकर्ता आयुक्त से संपर्क करने के लिए स्वतंत्र है।

5. आयुक्त का आदेश- अंतिम होगा।- *नियम 285-I में दी गई समय-सीमा बिक्री की तारीख से 30 दिन है। यह स्वीकार किया जाता है कि बिक्री पर आपत्ति 30 दिनों से अधिक समय के लिए दायर की गई थी। इस नियम में यह भी उल्लेख किया गया है कि बिक्री को प्रकाशन या संचालन में अनियमितता या गलती के आधार पर तब तक रद्द नहीं किया जाएगा, जब तक कि आवेदक आयुक्त को यह साबित नहीं कर देता कि ऐसी अनियमितता या गलती के कारण उसे काफी नुकसान हुआ है। नियम 285-I (iii) यह स्पष्ट करता है कि इस नियम के अंतर्गत पारित आयुक्त का आदेश अंतिम होगा।*

285-जे. *विक्रय की तिथि से तीस दिन की समाप्ति पर, यदि नियम 285-एच या नियम 285-आई में उल्लिखित कोई आवेदन नहीं किया गया है, या यदि ऐसा आवेदन किया गया है और कलेक्टर या आयुक्त द्वारा उसे अस्वीकार कर दिया गया है, तो कलेक्टर स्वयं इस बात से संतुष्ट होने के बाद कि बोलीदाता द्वारा प्रश्नगत*

भूमि का क्रय धारा 154 के प्रावधानों का उल्लंघन नहीं करेगा, विक्रय की पुष्टि करने वाला आदेश पारित करेगा। इस नियम के अंतर्गत पारित आदेश भी अंतिम होगा।

11. नियम 285-जे के अंतर्गत निहित प्रावधानों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि बिक्री की तिथि से 30 दिन की समाप्ति पर यदि नियम 285-एच या नियम 285-आई में उल्लिखित ऐसा कोई आवेदन नहीं किया गया है या यदि ऐसा आवेदन किया गया है और कलेक्टर या आयुक्त द्वारा उसे अस्वीकार कर दिया गया है, तो कलेक्टर स्वयं इस बात से संतुष्ट होने के बाद कि बोली लगाने वाले द्वारा प्रश्नगत भूमि का क्रय धारा 154 के प्रावधानों का उल्लंघन नहीं करेगा, बिक्री की पुष्टि करने वाला आदेश पारित करेगा और उक्त नियमावली के अंतर्गत पारित आदेश अंतिम होगा। इसलिए, तहसीलदार, सदर ने बैंक द्वारा निष्पादित बिक्री विलेख पर श्री अंजुम फ़रोज़ को भौतिक तथ्य छिपाते हुए दिनांक 20.12.1999 को म्यूटेशन करने का आदेश पारित करके स्पष्ट कानूनी त्रुटि की है।

12. एस.डी.एम., सदर ने दिनांक 27.11.2000 के आदेश द्वारा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री पर विचार करते हुए तहसीलदार के आदेश को रद्द कर दिया और याचिकाकर्ता का नाम बहाल कर दिया।

13. अपने तर्क के समर्थन में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **जगत पाल सिंह (उपरोक्त)** के मामले में दिए गए निर्णय पर भरोसा किया। निर्णय के पैराग्राफ 4 और 6 नीचे उद्धृत हैं:

"4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, विपक्षी पक्ष 1, 2 और 3 के विद्वान स्थायी अधिवक्ता तथा विपक्षी पक्ष संख्या 6 के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया है। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि 10.2.1976 की नीलामी के माध्यम से राशि की वसूली के लिए बेची गई संपत्ति याचिकाकर्ता द्वारा खरीदी गई थी। उनके अनुसार, बोली की पूरी राशि याचिकाकर्ता द्वारा 24.2.1976 को जमा कर दी गई थी। तत्पश्चात, उप-मंडल अधिकारी ने अपने आदेश दिनांक 19.3.1976 द्वारा नीलामी की पुष्टि की, जिसकी एक प्रति रिट याचिका के अनुलग्नक-1 में है। इस आदेश के अवलोकन से पता चलता है कि उप-मंडल अधिकारी ने नीलामी की पुष्टि करते हुए आपत्तिकर्ता को देय राशि जमा करने के बाद भूमि मुक्त कराने के लिए 25 मार्च, 1976 तक का समय दिया था। इस स्तर पर यह स्मरणीय है कि विपक्षी पार्टी क्रमांक 4, श्रीमती सुरसता देवी द्वारा उप-मंडल अधिकारी के समक्ष कुछ आपत्ति दर्ज की गई थी। अब वर्तमान मामले में जो प्रश्न उठता है वह यह है कि क्या उप-मंडल अधिकारी के पास जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम और उसके अंतर्गत बनाए गए नियमों के प्रावधानों के अंतर्गत बिक्री की पुष्टि करने की शक्ति थी और क्या उनके पास बिक्री की पुष्टि के साथ ही आपत्तिकर्ता को देय राशि के भुगतान के लिए समय देने की भी शक्ति थी। पहले दूसरे बिंदु को लेते हुए यह कहा जा सकता है कि बिक्री की पुष्टि उप-मंडल अधिकारी द्वारा की गई थी। बिक्री की पुष्टि करने वाला प्राधिकारी आपत्तिकर्ता को उस राशि का भुगतान करने या जमा करने के लिए समय नहीं दे सकता है जिसके लिए वसूली की कार्यवाही की गई थी या जिसके लिए बिक्री हुई थी। इस संबंध में जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम के अंतर्गत बनाए गए नियमों के कुछ प्रावधानों पर गौर किया जाना चाहिए। जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार नियमावली,

1952 में दो प्रावधान हैं जिनके अंतर्गत कुर्क की गई संपत्ति बेची जाती है। ये हैं ज़ेडए और एल.आर. अधिनियम की धारा 284 और धारा 286। नियम 285 ए में प्रावधान है कि धाराओं के अंतर्गत प्रत्येक बिक्री धारा 284 और 286 या तो कलेक्टर द्वारा व्यक्तिगत रूप से या उनके द्वारा इस निमित्त विशेष रूप से नियुक्त सहायक कलेक्टर द्वारा की जाएगी। इससे पता चलता है कि जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की उपरोक्त धारा 284 और 286 दोनों के अंतर्गत बिक्री कलेक्टर द्वारा व्यक्तिगत रूप से या उनके द्वारा इस निमित्त विशेष रूप से नियुक्त सहायक कलेक्टर द्वारा की जानी है। जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार नियमावली, 1952 के नियम 285-सी में प्रावधान है कि यदि चूककर्ता उस बकाया राशि का भुगतान करता है जिसके संबंध में भूमि या अन्य अचल संपत्ति बेची जानी है, बिक्री के लिए नियत दिन से पहले किसी भी समय, बकाया राशि वसूलने के लिए अधिकृत व्यक्ति को या नियम 285-ए के अंतर्गत बिक्री करने के लिए नियुक्त व्यक्ति को, भुगतान से संतुष्ट होने पर बिक्री अधिकारी बिक्री पर रोक लगा देगा। बिक्री होने के बाद संपत्ति खरीदने वाले व्यक्ति यानी नीलामी क्रेता को बोली की राशि का 25% तुरंत जमा करना होगा और यदि वह राशि जमा नहीं की जाती है तो बिक्री पुनः करनी होगी। यह प्रावधान जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार नियमावली के नियम 285-घ में किया गया है। क्रेता द्वारा बिक्री के 15 दिन के भीतर क्रय राशि की पूरी राशि जिला कोषागार या उप-कोषागार में जमा करनी होगी और राशि जमा न करने की स्थिति में, नीलामी के समय जमा की गई 25% राशि सरकार द्वारा जब्त कर ली जाएगी और संपत्ति को पुनः बेचा जाएगा। यह प्रावधान ज़मींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार नियमावली के नियम 285-ई के अंतर्गत किया गया है। उपरोक्त नियमावली के नियम 285-एफ में यह भी प्रावधान है कि यदि अंततः की गई बिक्री की आय ऐसे चूककर्ता क्रेता द्वारा बोली गई कीमत से कम है, तो अंतर की राशि उससे राजस्व के बकाया के रूप में वसूल की जाएगी। तत्पश्चात, नियम 285-एच के प्रावधान उस व्यक्ति के हितों की रक्षा के लिए हैं जिसकी संपत्ति बेची गई है। इसमें प्रावधान है कि कोई भी व्यक्ति जिसकी जोत या अन्य अचल संपत्ति अधिनियम के तहत बेची गई है, किसी भी समय, बिक्री की तारीख से तीस दिनों के भीतर, कलेक्टर के कार्यालय में बकाया राशि के भुगतान, जेडए फॉर्म 74 में उद्घोषणा में निर्दिष्ट राशि, जिसकी वसूली के लिए बिक्री का आदेश दिया गया था, बिक्री की लागत और क्रेता को भुगतान के लिए क्रय राशि के 5 प्रतिशत के बराबर राशि, जमा की गई किसी भी राशि को घटाकर, जमा करने पर बिक्री को रद्द करने के लिए आवेदन कर सकता है। ऐसी जमा राशि जमा करने पर कलेक्टर बिक्री को रद्द करने का आदेश पारित करेगा। यह प्रावधान उस व्यक्ति को, जिसकी अचल संपत्ति बेची गई है, इस नियम में निर्दिष्ट राशि जमा करने के अधीन, उसे बनाए रखने का अवसर देने के लिए किया गया है। जिस व्यक्ति की अचल संपत्ति बेची गई है, उसके द्वारा जमा की गई नीलामी राशि का 5% नीलामी क्रेता को उसे हुए नुकसान की भरपाई के लिए दिया जाएगा। इस नियम के साथ एक परंतुक भी जुड़ा है जो कहता है कि यदि कोई व्यक्ति नियम 285-आई के अंतर्गत ऐसी बिक्री को रद्द करने के लिए आवेदन करता है, तो वह इस नियम के अंतर्गत आवेदन करने का हकदार नहीं होगा।

6. जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार नियमावली के नियम 285-जे में यह प्रावधान है कि विक्रय की तिथि से तीस दिन की समाप्ति के पश्चात् यदि नियम 285-एच या नियम 285-आई में उल्लिखित कोई आवेदन नहीं किया गया है या यदि ऐसा आवेदन किया गया है और कलेक्टर या कमिश्नर द्वारा उसे अस्वीकार कर दिया गया है, तो कलेक्टर स्वयं इस बात से संतुष्ट होने के पश्चात कि बोलीदाता द्वारा प्रश्नगत भूमि का क्रय उत्तर प्रदेश जमींदारी

उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम की धारा 154 के उपबंधों का उल्लंघन नहीं करेगा, विक्रय की पुष्टि का आदेश पारित करेगा। उपरोक्त अधिनियम की धारा 154, भूमिधर द्वारा भूमि के हस्तांतरण पर प्रतिबंध से संबंधित है, जहाँ भूमि इस धारा द्वारा निर्धारित सीमा से अधिक हो। इस प्रकार यदि नियम 285-एच या नियम 285-आई के अंतर्गत कोई आपत्ति नहीं की गई है या यदि की गई है, लेकिन कलेक्टर या आयुक्त द्वारा खारिज कर दी गई है, तो कलेक्टर के पास 30 दिनों की समाप्ति पर बिक्री की पुष्टि करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है और कलेक्टर स्वयं को संतुष्ट करने के बाद बिक्री की पुष्टि करने के लिए बाध्य है कि जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 154 के प्रावधानों का उल्लंघन नहीं किया गया है। इस प्रकार इस प्रावधान का अवलोकन करने से पता चलता है कि कलेक्टर के पास उस व्यक्ति को समय देने की कोई शक्ति नहीं है, जिसकी संपत्ति बेची गई है। कानून द्वारा जो समय निर्धारित किया गया है, उसका लाभ उस व्यक्ति द्वारा उठाया जा सकता है, जिसकी संपत्ति बेची गई है, लेकिन कलेक्टर द्वारा इसे बढ़ाया नहीं जा सकता, खासकर बिक्री की पुष्टि होने के बाद। इसलिए, जिस व्यक्ति की संपत्ति बेची गई है, उसे राशि जमा करने के लिए सब-डिवीजनल अधिकारी द्वारा 19.3.1976 को उस व्यक्ति को, जिसकी संपत्ति बेची गई है, राशि जमा करने के लिए दिया गया समय, कानूनी रूप से मान्य नहीं है और इसलिए इसे नज़रअंदाज़ किया जाना चाहिए।"

14. उपर्युक्त निर्णय के पैराग्राफ 4 के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि नीलामी के बाद, पूरी राशि नीलामी के अनुसरण में जमा कर दी गई थी। तत्पश्चात, सब-डिवीजनल अधिकारी ने अपने आदेश दिनांक 19.3.1976 द्वारा नीलामी की पुष्टि की और उसके बाद बिक्री की पुष्टि हुई और बिक्री की पुष्टि के बाद, सब-डिवीजनल अधिकारी आपत्तिकर्ता को उस राशि का भुगतान या जमा करने के लिए समय नहीं दे सकते जिसके लिए वसूली की कार्यवाही की गई थी या जिसके लिए बिक्री की गई थी। यह भी माना गया कि नियम 285-ए में प्रावधान है कि धारा 284 और 286 के अंतर्गत प्रत्येक बिक्री या तो कलेक्टर द्वारा व्यक्तिगत रूप से या उनके द्वारा इस हेतु विशेष रूप से नियुक्त सहायक कलेक्टर द्वारा की जाएगी।

वर्तमान मामले में, कलेक्टर द्वारा एस.डी.एम. को संपत्ति की नीलामी करने के लिए विशेष रूप से नियुक्त किया गया था।

15. यह भी प्रावधान किया गया है कि कोई भी व्यक्ति जिसकी जोत या अन्य अचल संपत्ति अधिनियम के अंतर्गत बेची गई है, किसी भी समय, बिक्री की तारीख से तीस दिनों के भीतर, कलेक्टर कार्यालय में बकाया राशि के भुगतान, जेडए फॉर्म 74 में उद्घोषणा में निर्दिष्ट राशि, जिसकी वसूली के लिए बिक्री का आदेश दिया गया था, जमा करने पर बिक्री को रद्द करने के लिए आवेदन कर सकता है।

वर्तमान मामले में, 30 दिनों से अधिक समय तक, उस व्यक्ति द्वारा कोई आवेदन या जमा नहीं किया गया था जिसकी भूमि नीलाम की गई थी।

16. नियम 285-एच और नियम 285-आई में निहित प्रावधानों के मद्देनजर, कलेक्टर के पास 30 दिनों की समाप्ति पर बिक्री की पुष्टि करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है, यदि उपरोक्त नियमों के अंतर्गत कोई आपत्ति नहीं की गई है।

17. वर्तमान मामले में, नीलामी बिक्री की पुष्टि एस.डी.एम. द्वारा की गई थी। जिसे आयुक्त द्वारा संपत्ति की नीलामी बिक्री के लिए अधिकृत किया गया था, इसलिए एस.डी.एम. द्वारा की गई नीलामी बिक्री की पुष्टि करने में किसी भी प्रकार की अवैधता नहीं की गई है। नीलामी बिक्री की संपत्ति के भूमि धारक द्वारा बैंक में धन जमा करने पर, बिक्री विलेख निष्पादित किया गया था जो कानून की दृष्टि में निरस्त है और बैंक द्वारा निष्पादित बिक्री विलेख पर कोई भरोसा नहीं किया जा सकता है और एस.डी.एम. द्वारा म्यूटेशन के आदेश को रद्द करने का आदेश न्यायसंगत और वैध है। आयुक्त ने दिनांक 28.8.2002 को आक्षेपित आदेश पारित करने में घोर अवैधता की है और इसमें ऊपर संदर्भित प्रावधानों और याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए निर्णय पर विचार नहीं किया गया है।

18. वाद के तथ्यों और परिस्थितियों को समग्र रूप से ध्यान में रखते हुए, रिट याचिका सफल होती है और एतदद्वारा स्वीकार की जाती है। अपर आयुक्त (न्यायिक), फैजाबाद मंडल, फैजाबाद (रिट याचिका के अनुलग्नक-27 में निहित पुनरीक्षण संख्या 5583 में विपक्षी पक्षकार संख्या 2) द्वारा पारित दिनांक 28.08.2002 का आक्षेपित निर्णय एवं आदेश, तथा अनुलग्नक-20 में निहित याचिकाकर्ता के दाखिल खारिज के आवेदन को खारिज करने वाला अपर/नायब तहसीलदार द्वारा पारित दिनांक 20.12.1999 का आदेश तथा अपर/नायब तहसीलदार द्वारा पारित दिनांक 21.12.1999 का आदेश अपास्त किया जाता है।

19. तथापि, एस.डी.एम., सदर, सुल्तानपुर को निर्देश दिया जाता है कि वे ग्राम कटका खानपुर, तहसील सदर, जिला सुल्तानपुर में स्थित प्लॉट संख्या 1025 क्षेत्रफल 0-8-0, प्लॉट संख्या 1344 क्षेत्रफल 0-3-10 और प्लॉट संख्या 961 क्षेत्रफल 0-2-5 का कब्जा उपरोक्त प्रावधानों के मद्देनजर बिक्री की पुष्टि के आधार पर म्यूटेशन प्रदान करने के बाद याचिकाकर्ता को इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से चार सप्ताह की अवधि के भीतर सौंप दें।

(2025) 4 ILRA 324

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 21.04.2025

माननीय न्यायमूर्ति राजन रॉय

माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला

के समक्ष

रिट टैक्स संख्या 303/2025

मेसर्स मनोज ग्लास **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

शोभित कांत, अंशुमान अस्थाना

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

सीएससी

सिविल कानून - उत्तर प्रदेश माल और सेवा कर अधिनियम, 2017 - धारा 44(1), 73(9) और 73(10) - उत्प्रेषण रिट - एकपक्षीय मूल्यांकन आदेश - परिसीमा अवधि - अधिसूचना द्वारा परिसीमा सीमा का विस्तार - क्षेत्राधिकार - अपील का वैकल्पिक उपचार।

निर्णय:

याचिकाकर्ता ने उत्तर प्रदेश जीएसटी अधिनियम, 2017 की धारा 73(9) के अन्तर्गत 13.12.2023 को जारी एकपक्षीय मूल्यांकन आदेश को चुनौती दी, जिसमें ₹1,12,827.38 की कर देयता, ₹20,000 का जुर्माना और ₹1,14,787.42 का ब्याज लगाया गया था, यह तर्क देते हुए कि यह धारा 73(10) के अन्तर्गत समय वर्जित हो गया है। याचिकाकर्ता ने *रिट टैक्स संख्या 264/2024* का हवाला दिया, जिसने वित्तीय वर्ष 2017-18 के लिए इसी तरह के आदेशों को 05.02.2020 की विस्तारित वार्षिक रिटर्न दाखिल करने की तिथि (अर्थात, प्रतिवादियों ने 05.02.2023 का हवाला दिया) से तीन साल की सीमा से परे होने के कारण रद्द कर दिया था। प्रतिवादियों ने वित्तीय वर्ष 2017-18 के लिए दिनांक 21.07.2022 (01.03.2020 से प्रभावी, सीमा को 30.09.2023 तक बढ़ाया गया) और 24.04.2023 (31.03.2023 से प्रभावी, सीमा को 31.12.2023 तक बढ़ाया गया) की अधिसूचनाओं का हवाला दिया। न्यायालय ने माना कि 21.07.2022 की अधिसूचना, जिस पर *रिट टैक्स संख्या 264/2024* में विचार नहीं किया गया है, ने वैध रूप से सीमा अवधि बढ़ा दी है, और 13.12.2023 का आदेश 31.12.2023 की विस्तारित सीमा के भीतर था। चूंकि अधिसूचनाओं को चुनौती नहीं दी गई थी और अपीलीय उपचार उपलब्ध था, इसलिए रिट याचिका को पोषणीय न मानते हुए खारिज कर दिया गया।

रिट याचिका खारिज; अपील का वैकल्पिक उपचार उपलब्ध है।

चर्चा किए गए केस लॉ:

1. *रिट टैक्स संख्या 264/2024* - वित्तीय वर्ष 2017-18 के लिए धारा 73(9) के अन्तर्गत जारी आदेश समय-बाधित होने के कारण रद्द कर दिए गए, लेकिन निर्णय में सीमा अवधि बढ़ाने वाली 21.07.2022 की अधिसूचना को नजरअंदाज कर दिया गया।

अवलोकन:

न्यायालय ने पाया कि 21.07.2022 की अधिसूचना, जो 01.03.2020 से प्रभावी हुई, ने धारा 73(10) के अन्तर्गत समय-सीमा को 30.09.2023 तक बढ़ा दिया, और उसके बाद 24.04.2023 की अधिसूचना ने इसे वित्तीय वर्ष 2017-18 के लिए 31.12.2023 तक बढ़ा दिया। इस प्रकार, 13.12.2023 का आक्षेपित आदेश

अनुमेय समय-सीमा के भीतर था। याचिकाकर्ता का *रिट टैक्स संख्या 264/2024* पर भरोसा गलत था क्योंकि पिछले फैसले में 21.07.2022 की अधिसूचना पर विचार नहीं किया गया था, जिसने सीमा अवधि में बदलाव किया था। याचिकाकर्ता ने अधिसूचनाओं को चुनौती नहीं दी और अपील का एक वैकल्पिक उपचार उपलब्ध था। न्यायालय ने 21.07.2022 की अधिसूचना की अनदेखी के कारण *रिट टैक्स संख्या 264/2024* के लिए प्रस्तावित समीक्षा आवेदन पर गौर किया।

(माननीय न्यायमूर्ति राजन रॉय, एवं माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला द्वारा निर्णीत)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री शोभित कांत और राज्य सरकार के विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री राजेश तिवारी।

2. इस रिट याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता ने वस्तु सेवा कर अधिनियम, 2017 की धारा 73(9) के अंतर्गत डिप्टी कमिश्नर, सेक्टर 21, राज्य जीएसटी, लखनऊ द्वारा पारित दिनांक 13.12.2023 के एकपक्षीय आदेश को चुनौती दी है, जिसके अन्तर्गत 1,12,827.38/- रुपये की कर देयता के साथ-साथ 20,000/- रुपये का जुर्माना और 1,14,787.42/- रुपये का ब्याज लगाया गया है।

3. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का तर्क था कि आदेश समय सीमा पार कर चुका है। उन्होंने रिट टैक्स संख्या 264/2024 में हमारे द्वारा दिनांक 12.11.2024 को पारित निर्णय की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए प्रस्तुत किया कि उक्त निर्णय के आधार पर यह रिट याचिका स्वीकार किए जाने योग्य है। उक्त निर्णय इस प्रकार है:-

"1. याचिकाकर्ता की ओर से आज दायर पूरक हलफनामा और राज्य की ओर से संक्षिप्त प्रति-हलफनामा रिकॉर्ड पर लिया जाता है।
2. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अनुज कुदेसिया और राज्य के विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता तथा श्री अखिलेश कुमार, उपायुक्त, राज्य जी.एस.टी., लखनऊ, जो इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित हैं, को सुना गया।
3. वर्तमान रिट याचिका निम्नलिखित अनुतोषों के साथ दायर की गई है:-

"i) इस रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 1 में निहित उपायुक्त, राज्य कर, सेक्टर 05, लखनऊ द्वारा दिनांक 05.10.2024 को जारी फॉर्म जीएसटी डीआरसी-13 पर आदेश को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करने के लिए।
ii) इस रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 2 में निहित डिप्टी कमिश्नर, राज्य कर, सेक्टर-5, लखनऊ द्वारा जारी किए गए दिनांक 02.12.2023 के कर निर्धारण आदेश और डीआरसी-07 को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना।

iii) प्रतिवादियों को आदेश देने के लिए परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना कि वे याचिकाकर्ता बैंक को याचिकाकर्ताओं द्वारा संचालित दो बैंक खातों अर्थात कोटक महिंद्रा बैंक में खाता संख्या 7711564951 और खाता संख्या 9946014812 को डी-फ्रीज करने का निर्देश दें। "

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि आक्षेपित आदेश यू.पी.जी.एस.टी. अधिनियम, 2017 (जिसे आगे अधिनियम, 2017 कहा जाएगा) की धारा 73 की उपधारा 10 द्वारा वर्जित हैं क्योंकि वे धारा 44 (1) में निर्धारित वार्षिक रिटर्न दाखिल करने की नियत तिथि से गणना के अनुसार निर्धारित समय सीमा से परे पारित किए गए हैं, जिसे 05.02.2020 तक बढ़ा दिया गया था और तीन साल की समय सीमा 05.02.2023 को समाप्त हो गई थी, लेकिन आक्षेपित आदेश 05.10.2024 और 02.12.2023 दिनांकित हैं, इसलिए, आक्षेपित आदेश क्षेत्राधिकार के बाहर हैं।

5. पक्षों को सुनने के बाद, जो बात सामने आती है वह यह है कि वित्तीय वर्ष के लिए अधिनियम, 2017 की धारा 73 (9) और (10) के अन्तर्गत आक्षेपित आदेश पारित किए गए समय सीमा को उचित ठहराने के लिए 2017-18 के संबंध में दिनांक 24.04.2023 की अधिसूचना पर भरोसा किया जा रहा है, जिसके द्वारा धारा 73 की उपधारा 10 में उल्लिखित तीन वर्ष की समय-सीमा को वित्तीय वर्ष 2017-18 के लिए 31.12.2023 तक बढ़ा दिया गया था, तथापि, विपक्षी द्वारा विचार से जो बात छोड़ी जा रही है, वह यह है कि दिनांक 24.04.2023 की इस अधिसूचना को पूर्वव्यापी प्रभाव केवल 31.03.2023 से दिया गया है, न कि इससे पहले, अब, इस संदर्भ में हम अधिनियम, 2017 की धारा 73 (10) का उल्लेख कर सकते हैं, जो इस प्रकार है:-

"(10) समुचित अधिकारी उप-धारा (9) के अधीन आदेश उस वित्तीय वर्ष के लिए वार्षिक रिटर्न प्रस्तुत करने की नियत तिथि से तीन वर्ष के भीतर जारी करेगा, जिससे कर का भुगतान नहीं किया गया है या कम भुगतान किया गया है या इनपुट टैक्स क्रेडिट का गलत तरीके से लाभ उठाया गया है या उपयोग किया गया है या गलत रिफंड की तिथि से तीन वर्ष के भीतर जारी करेगा।"

6. हम अधिनियम, 2017 की धारा 44(1) का भी संदर्भ ले सकते हैं, जो इस प्रकार है:-
"44. ऐन्यूअल रिटर्न -(1) इनपुट सेवा वितरक, धारा 51 या धारा 52 के अंतर्गत कर का भुगतान करने वाले व्यक्ति, आकस्मिक कर योग्य व्यक्ति और अनिवासी कर योग्य व्यक्ति को छोड़कर प्रत्येक पंजीकृत व्यक्ति, प्रत्येक वित्तीय वर्ष के लिए निर्धारित प्रारूप और तरीके से, ऐसे वित्तीय वर्ष की समाप्ति के बाद इकतीस दिसंबर को या उससे पहले, इलेक्ट्रॉनिक रूप से ऐन्यूअल रिटर्न प्रस्तुत करेगा।
बशर्ते कि आयुक्त, परिषद की सिफारिशों पर और लिखित रूप में दर्ज किए जाने वाले कारणों से, अधिसूचना द्वारा, पंजीकृत व्यक्तियों के ऐसे वर्ग के लिए वार्षिक विवरणी प्रस्तुत करने की समय-सीमा बढ़ा सकता है, जैसा कि उसमें निर्दिष्ट किया जा सकता है:
इसके अलावा, केंद्रीय कर आयुक्त द्वारा अधिसूचित समय-सीमा का कोई भी विस्तार आयुक्त द्वारा अधिसूचित माना जाएगा।"

7. सामान्यतः वार्षिक रिटर्न दाखिल करने की अंतिम तिथि वित्तीय वर्ष की समाप्ति की 31 दिसंबर होती है, जो वित्तीय वर्ष 2017-18 के मामले में 31.12.2018 होगी, हालाँकि, जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, वार्षिक रिटर्न दाखिल करने की यह अंतिम तिथि केंद्रीय प्रत्यक्ष कर एवं सीमा शुल्क बोर्ड की दिनांक 03.02.2018 की अधिसूचना द्वारा बढ़ाकर 05.02.2020 कर दी गई थी और इस अधिसूचना को उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा दिनांक 05.02.2020 की अधिसूचना द्वारा अपनाया गया था। इस अधिसूचना के आधार पर, धारा 73 की उपधारा 10 में उल्लिखित तीन वर्ष की अवधि 05.02.2023 को समाप्त होगी, अर्थात, वित्तीय वर्ष 2017-18 के लिए धारा 73 की उपधारा 9 के अंतर्गत आदेश 05.02.2023 तक पारित किया जा सकता था, लेकिन उसके बाद नहीं। अब विपक्षीगण दिनांक 24.04.2023 की अधिसूचना का हवाला देते हुए यह प्रस्तुत कर रहे हैं कि वास्तव में वे धारा 73 की उपधारा 9 के अंतर्गत 31.12.2023 तक आदेश पारित कर सकते थे, किन्तु ऐसा करते समय, वे उक्त अधिसूचना के पैरा 2 पर विचार नहीं करते हैं, जिसमें कहा गया है कि दिनांक 24.04.2023 की अधिसूचना पूर्वव्यापी रूप से लागू होगी, लेकिन केवल 31.03.2023 से, जिसका अर्थ है कि यदि धारा 73 की उपधारा 10 सपठित धारा 44 की उपधारा 1 में निर्धारित तीन वर्ष की समय-सीमा 31.03.2023 से पहले समाप्त हो जाती है, तो धारा 73 की उपधारा 9 के अंतर्गत आदेश पारित करने की समय-सीमा बढ़ाने वाली दिनांक 24.04.2023 की अधिसूचना लागू नहीं होगी, ऐसा स्पष्टतः प्रतीत होता है।

8. स्पष्टतः, आक्षेपित आदेश वित्तीय वर्ष 2017-18 के लिए धारा 73 की उपधारा 10 के अंतर्गत निर्धारित समय-सीमा से परे हैं और इसलिए आक्षेपित आदेश उक्त प्रावधान में दिए गए समय से वर्जित होने के कारण क्षेत्राधिकार से बाहर हैं, इसलिए हम रिट याचिका को स्वीकार करते हैं और उपायुक्त, राज्य कर, सेक्टर 05, लखनऊ द्वारा जारी किए गए दिनांक 05.10.2024 और 02.12.2023 के आक्षेपित आदेशों को रद्द करते हैं।

9. तदनुसार, परिणाम सामने आएंगे। याचिकाकर्ता के जो खाते फ्रीज कर दिए गए हैं, उन्हें डी-फ्रीज किया जाएगा।"

4. हालाँकि, राज्य के विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री राजेश तिवारी ने हमारे समक्ष दिनांक 21.07.2022 की एक अधिसूचना प्रस्तुत की है, जो रिट टैक्स संख्या 264/2024 पर निर्णय देते समय हमारे संज्ञान में नहीं लाई गई थी। उक्त अधिसूचना इस प्रकार है:-

"अधिसूचना

सं.-596/XI-2-22-9(47)/17-टी.सी.187-यू.पी. अधिनियम-1-2017-आदेश-(249)-2022 लखनऊ: दिनांक: 21 जुलाई, 2022

उत्तर प्रदेश माल और सेवा कर अधिनियम, 2017 (यूपी अधिनियम संख्या 1 वर्ष 2017) (जिसे आगे उक्त अधिनियम कहा जाएगा) की धारा 168ए सपठित एकीकृत माल और सेवा कर अधिनियम, 2017 (13 वर्ष 2017) की धारा 20 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए तथा अधिसूचना संख्या-445/XI-2-9(47)/17-

यूपी अधिनियम-1 वर्ष 2017-आदेश-(118)-2020 दिनांक 11.05.2020 के आंशिक संशोधन में तथा संख्या-496/XI-2-21-9(47)17-यूपी अधिनियम-1-2017-आदेश-(186)-2021 दिनांक 28.06.2021 के तहत, राज्यपाल, परिषद की सिफारिशों पर, एतद्द्वारा,-

(i) वित्तीय वर्ष 2017-18 के लिए कर अवधि के संबंध में, भुगतान न किए गए या कम भुगतान किए गए कर या गलत तरीके से प्राप्त या उपयोग किए गए इनपुट टैक्स क्रेडिट की वसूली के लिए, उक्त अधिनियम की धारा 73 की उप-धारा (9) के अन्तर्गत आदेश जारी करने के लिए धारा 73 की उप-धारा (10) के अन्तर्गत आदेश जारी करने के लिए धारा 73 की उप-धारा (10) के अन्तर्गत निर्दिष्ट समय-सीमा को 30 सितंबर, 2023 तक बढ़ाते हैं।

(ii) त्रुटिपूर्ण प्रतिदाय की वसूली के लिए उक्त अधिनियम की धारा 73 की उपधारा (9) के अधीन आदेश जारी करने के लिए उक्त अधिनियम की उपधारा (10) के अधीन परिसीमा अवधि की गणना हेतु 1 मार्च, 2020 से 28 फरवरी, 2022 तक की अवधि को इसमें शामिल नहीं किया गया है;

(iii) उक्त अधिनियम की धारा 54 या धारा 55 के अधीन प्रतिदाय आवेदन दाखिल करने हेतु परिसीमा अवधि की गणना हेतु 1 मार्च, 2020 से 28 फरवरी, 2022 तक की अवधि को इसमें शामिल नहीं किया गया है।

2. यह अधिसूचना 1 मार्च, 2020 से लागू मानी जाएगी।

5. जब हम उपरोक्त अधिसूचना पर विचार करते हैं तो हम पाते हैं कि यद्यपि केंद्रीय प्रत्यक्ष कर और सीमा शुल्क बोर्ड की अधिसूचना दिनांक 03.02.2018 के आधार पर वित्तीय वर्ष 2017-18 के लिए वार्षिक रिटर्न दाखिल करने की तिथि जो सामान्यतः 31.12.2018 होती, उसे 05.02.2020 तक बढ़ा दिया गया था और उक्त अधिसूचना के आधार पर धारा 73 की उप-धारा 10 में उल्लिखित तीन वर्षों की अवधि 05.02.2023 को समाप्त होगी, जिसका अर्थ है कि धारा 73 की उप-धारा 9 के अन्तर्गत वित्तीय वर्ष 2017-18 के लिए 05.02.2023 तक एक आदेश पारित किया जा सकता था, हालाँकि, 21.07.2022 की अधिसूचना के मद्देनजर जो 01.03.2020 से प्रभावी हुई वित्तीय वर्ष 2017-18 की कर अवधि के संबंध में भुगतान न किए गए या कम भुगतान किए गए करों या गलत तरीके से प्राप्त या उपयोग किए गए इनपुट टैक्स क्रेडिट की वसूली के लिए उत्तर प्रदेश जीएसटी अधिनियम, 2017 की धारा 73 की उपधारा 9 के अन्तर्गत आदेश जारी करने के लिए धारा 73 की उपधारा 10 के अन्तर्गत निर्दिष्ट उक्त समय सीमा, 30 सितंबर, 2023 तक बाहर रखी गई थी और राज्य सरकार की दिनांक 24.04.2023 की बाद की अधिसूचना द्वारा, जिसे 31.03.2023 से प्रभावी किया गया है, उक्त समय सीमा वित्तीय वर्ष 2017-18 के लिए 31.12.2023 तक बढ़ा दी गई थी।

6. वर्तमान वाद में, आक्षेपित आदेश 13.12.2023 को पारित किया गया है, इसलिए, इसे ऊपर संदर्भित अधिसूचनाओं द्वारा विस्तारित समय सीमा के भीतर पारित किया गया है। उक्त अधिसूचनाएं चुनौती के अधीन नहीं हैं।

7. रिट टैक्स संख्या 264/2024 में आदेश पारित करते समय दिनांक 21.07.2022 की उपरोक्त अधिसूचना न्यायालय के संज्ञान में नहीं लाई गई, अन्यथा परिणाम भिन्न हो सकते थे।

8. राज्य के विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री राजेश तिवारी का कहना है कि उक्त रिट कर संख्या 264/2024 और अन्य समान मामलों में, जहाँ उक्त निर्णय का लाभ प्रदान किया गया है, एक पुनरीक्षण आवेदन दायर किया जाना प्रस्तावित है।

9. जहाँ तक वर्तमान वाद के तथ्यों का संबंध है, दिनांक 13.12.2023 का आक्षेपित कर-निर्धारण आदेश समय से वर्जित नहीं है, इसलिए, रिट याचिका पोषणीय नहीं है क्योंकि ऐसे आदेश के विरुद्ध अपील का उपचार निर्धारित है।

10. याचिकाकर्ता ने उक्त परिपत्र को अभिलेख पर नहीं लाया है।

11. उपरोक्त के मद्देनजर, रिट याचिका **खारिज** की जाती है।

(2025) 4 ILRA 328

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 28.04.2025

माननीय न्यायमूर्ति पीयूष अग्रवाल

के समक्ष

रिट टैक्स संख्या 1386/2023

मेसर्स कामाख्या ट्रेडर **...याचिकाकर्ता**

बनाम

अपर आयुक्त ग्रेड 2 एवं अन्य **...प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
आदित्य पांडे

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
सीएससी

अनुवादित

सिविल लॉ - उत्तर प्रदेश माल और सेवा कर अधिनियम, 2017 - धारा 129 - उत्प्रेषण रिट - पारगमन में माल - भौतिक सत्यापन - एमओवी-04 रिपोर्ट - कर चालान - ई वे बिल - राजस्व द्वारा स्टैंड में परिवर्तन - प्रशासनिक कार्रवाई में निरंतरता।

<u>निर्णय:</u>

याचिकाकर्ता ने दिनांक 10.11.2023 के अपीलीय आदेश [अपील संख्या 0513/2023, आकलन वर्ष 2023-24] को चुनौती दी, जिसमें 21.09.2023 को अमरोहा में गुवाहाटी से दिल्ली उत्तर प्रदेश होते हुए माल को रोके जाने के बाद जारी की गई मांग को बरकरार रखा गया था। रोके जाने पर, याचिकाकर्ता ने वैध कर चालान, ई-चालान, ई-वे बिल और बिल्टी (जीआर) प्रस्तुत किए, और एमओवी-01 में चालक के बयान ने दस्तावेज़ की सटीकता की पुष्टि की। भौतिक सत्यापन रिपोर्ट (एमओवी-04) में माल और साथ के दस्तावेज़ों में कोई विसंगति नहीं पाई गई। हालांकि, बाद में अधिकारियों ने आरोप लगाया कि सामान दस्तावेज़ों में दिए गए सामान से अलग था, एक ऐसा स्टैंड जिसका समर्थन एमओवी-04 द्वारा नहीं किया गया। न्यायालय ने कहा कि जब एमओवी-04 में भौतिक सत्यापन से किसी विसंगति की पुष्टि नहीं हो जाती, तो राजस्व विभाग अपना रुख नहीं बदल सकता या बाद में कोई नया आधार नहीं बना सकता, क्योंकि इससे प्रशासनिक पदों के स्थानांतरण के विरुद्ध स्थापित कानून का उल्लंघन होता है। *जितेंद्र कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य*, रिट टैक्स संख्या 1425/2023 पर भरोसा करते हुए, न्यायालय ने आक्षेपित आदेश को रद्द कर दिया और इस बात पर ज़ोर दिया कि राजस्व विभाग सत्यापन के बाद असंगत आधारों पर माल को रोक नहीं सकता या माँग जारी नहीं कर सकता। याचिकाकर्ता द्वारा जमा की गई कोई भी राशि तीन सप्ताह के भीतर वापस करने का आदेश दिया गया।

रिट याचिका स्वीकार की गई।

<u>विचार किए गए वाद:</u>

1. *जितेंद्र कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य*, रिट टैक्स संख्या 1425/2023, (2024) एएचसी 56789 - राजस्व विभाग प्रारंभिक कार्रवाई के बाद अपना रुख नहीं बदल सकता या आधारों को पूरक नहीं कर सकता; अमान्य या असंगत आधारों पर रोक गैरकानूनी है।

<u>अवलोकन:</u>

न्यायालय ने पाया कि 22.09.2023 को उचित निरीक्षण के बाद तैयार की गई एमओवी-04 भौतिक सत्यापन रिपोर्ट ने पुष्टि की कि माल कर चालान, ई-चालान, ई-वे बिल और बिल्टी से मेल खाता था, और कोई विसंगति नहीं पाई गई। प्रतिवादियों द्वारा बाद में माल में भिन्नता का दावा साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं था और एमओवी-04 में मैन्युअल प्रविष्टियों का खंडन करता था, जिसके लिए अधिकारी द्वारा जानबूझकर इनपुट की आवश्यकता थी। प्रति-शपथपत्र में एमओवी-04 के निष्कर्षों को शामिल न करने से राजस्व विभाग का मामला और कमज़ोर हो गया। न्यायालय ने इस बात पर जोर दिया कि प्रशासनिक कार्रवाइयाँ, जैसे कि हिरासत या मांग, प्रारंभिक निष्कर्षों के अनुरूप होनी चाहिए, और कोई भी उलटफेर करदाता के प्रति पूर्वाग्रह का कारण बनता है।

अनुवादित

परिणाम: रिट याचिका स्वीकार की गई; 10.11.2023 का आक्षेपित आदेश रद्द कर दिया गया; जमा राशि तीन सप्ताह के भीतर वापस करने का आदेश दिया गया।

(माननीय न्यायमूर्ति पीयूष अग्रवाल द्वारा निर्णय दिया गया)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री आदित्य पांडे और राज्य प्रतिवादियों के विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री आर.एस. पांडे को सुना गया।

2. इस रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने अपील संख्या 0513/2023, कर निर्धारण वर्ष 2023-24 में प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा पारित दिनांक 10.11.2023 के आदेश को चुनौती दी है।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि विचाराधीन माल गुवाहाटी, असम से दिल्ली के लिए पारगमन में था और उत्तर प्रदेश राज्य से गुजरते समय, इसे प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा 21.09.2023 को जिला- अमरोहा में रोक लिया गया था। अवरोधन के समय, सभी दस्तावेज यानी कर चालान, ई-चालान और ई-वेबिल और बिल्टी (जीआर) प्रतिवादी संख्या 2 के समक्ष प्रस्तुत किए गए थे और वाहन के चालक का बयान 22.09.2023 को जारी एमओवी-01 में दर्ज किया गया था, जो दर्शाता है कि सभी दस्तावेज सही पाए गए थे, जिसकी एक प्रति इस रिट याचिका के साथ ***अनुलग्नक संख्या 3*** के रूप में संलग्न है।

4. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि एमओवी-04 यानी भौतिक सत्यापन रिपोर्ट में, चालान के अनुसार माल के विवरण के कॉलम में और वाहन में माल का विवरण नोट किया गया था और चालान और भौतिक सत्यापन के अनुसार कोई अंतर नहीं बताया गया था, लेकिन उसके बाद, प्राधिकारी द्वारा एक उलटफेर किया गया था कि माल संलग्न दस्तावेजों में उल्लिखित से अलग था। उन्होंने आगे कहा कि एक बार माल का भौतिक सत्यापन हो जाने और संलग्न कर चालानों में उल्लिखित माल का विवरण प्राप्त हो जाने के बाद, और भौतिक सत्यापन में एमओवी-04 में उल्लिखित कोई विसंगति न पाए जाने पर, बाद में प्राधिकारी कोई भिन्न रुख नहीं अपना सकते। उक्त आधार पर, माँग जारी की गई, जिसके विरुद्ध अपील दायर की गई, जिसे भी अभिलेख में उपलब्ध सामग्री पर विचार किए बिना खारिज कर दिया गया।

5. उन्होंने आगे कहा कि प्रति-शपथपत्र में भी, परिवहन में माल का उल्लेख करते समय एमओवी-04 के बारे में एक शब्द भी नहीं कहा गया है, क्योंकि संलग्न दस्तावेजों में कोई अंतर नहीं पाया गया। उन्होंने आगे कहा कि निरीक्षण के समय कोई अंतर न पाए जाने के बावजूद प्राधिकारियों को बाद में कोई भिन्न रुख अपनाने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

6. *इसके विपरीत,* विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता आक्षेपित आदेश का समर्थन करते हैं।

7. पक्षकारों के अधिवक्ताओं को सुनने के बाद, न्यायालय ने अभिलेखों का अवलोकन किया।

8. यह विवाद का विषय नहीं है कि विचाराधीन माल के साथ न केवल कर चालान, ई-वे बिल, बल्कि ई-कर चालान, ई-वे बिल के साथ-साथ जीआर (बिल्टी) भी थे और वाहन के चालक का बयान भी एमओवी-01 में दर्ज किया गया था, जिसकी एक प्रति इस रिट याचिका के ***अनुलग्नक संख्या 3*** के रूप में संलग्न है।

9. इसके अलावा, एमओवी-04 भी विचाराधीन माल के भौतिक सत्यापन के बाद जारी किया गया था, जिसकी एक प्रति इस रिट याचिका के ***अनुलग्नक संख्या 4*** के रूप में संलग्न है।

10. एमओवी-04 के अवलोकन से पता चलता है कि चालान के अनुसार माल के विवरण में एच.एस.एन. कोड और परिवहन में माल के विवरण में कोई अंतर नहीं बताया गया था। एक बार जब प्रश्नगत माल, भौतिक सत्यापन पर, चालान में बताए गए माल के अनुसार पाया गया, तो राजस्व को विभिन्न आधारों को पूरा करके अपना रुख पूरी तरह से बदलने की अनुमति नहीं दी जा सकती। श्री आर.एस. पांडे, ए.सी.एस.सी. द्वारा उठाया गया तर्क कि जैसे ही एच.एस.एन. कोड माल के विवरण में भरा जाता है, वही माल चालान के अनुसार माल के विवरण में दिखाई देता है (एमओवी-04 के कॉलम में) और इसलिए, राज्य प्राधिकारी क्षेत्र को सही करने की स्थिति में नहीं हैं, और इस प्रकार विवरण अलग पाया गया, परिवहन में माल के विवरण के कॉलम में सही ढंग से नहीं भरा जा सका।

11. राज्य से पूछे गए एक स्पष्ट प्रश्न पर कि जैसे ही चालान के अनुसार माल के विवरण के कॉलम में एच.एस.एन. कोड भरा जाता है, क्या माल कोड के अनुसार दिखाई देता है या इसे भरा जाना है, उत्तर नकारात्मक था अर्थात माल को मैन्युअल रूप से भरा जाना है।

12. कॉलम IV में परिवहन में माल के विवरण को भरने के संबंध में एक समान प्रश्न पूछा गया था, उन्होंने स्वीकार किया कि इसे मैन्युअल रूप से भरा गया है।

13. एक बार सत्यापन रिपोर्ट यानी एमओवी-04 पर, संबंधित अधिकारी द्वारा उचित सत्यापन के बाद आइटम भर दिए जाने के बाद, अधिकारियों को अपने रुख को पूरी तरह से बदलने या विभिन्न कारणों या आधारों को पूरक करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है, जिन्हें एमओवी-04 में भौतिक सत्यापन रिपोर्ट तैयार करते समय नहीं लिया गया था या उल्लेख नहीं किया गया था।

14. भौतिक सत्यापन के समय एमओवी-04 भरने का उद्देश्य संलग्न दस्तावेजों से पारगमन में माल की सत्यता का पता लगाना है और यदि अधिकारी एमओवी-04 तैयार करते समय संलग्न दस्तावेजों में उल्लिखित माल में कोई परिवर्तन या अंतर नहीं पाता है, तो बाद में एक अलग रुख अपनाने के लिए इसकी अनुमति नहीं दी जा सकती है, जैसा कि वर्तमान मामले में उल्लेख किया गया है।

15. यह न्यायालय ***जितेंद्र कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (रिट कर संख्या 1425/2023)*** के मामले में पैरा संख्या 5, 6 और 7 में निम्नलिखित निर्णय दिए गए हैं:-

"5. यह एक सामान्य कानून है, जो सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों की श्रृंखला द्वारा स्थापित है, कि राजस्व विभाग गोलमोल बातें नहीं कर सकता और प्रत्येक चरण में अपना लक्ष्य बदलता नहीं रह सकता। एक बार राजस्व विभाग ने एक विशेष रुख अपना लिया, तो उसे पूरी तरह से बदला नहीं जा सकता औरया किसी अन्य कारण या आधार से पूरक नहीं बनाया जा सकता।

6. वर्तमान मामले में, यह स्पष्ट है कि माल को इस आधार पर रोका गया था कि उसके साथ वैध दस्तावेज नहीं थे। हालाँकि, जब कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था, तो किसी भी अमान्य दस्तावेज का कोई उल्लेख नहीं है। वास्तव में, राजस्व विभाग ने अपना रुख पूरी तरह से बदल दिया था और इस पलटाव को यह न्यायालय स्वीकार नहीं कर सकता। माल को रोकना करदाता के लिए गंभीर पूर्वाग्रह का कारण बनता है और ऐसा केवल विशिष्ट, वैध और उचित आधारों पर ही किया जा सकता है। वर्तमान मामले में, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि रोक के समय, राजस्व विभाग द्वारा बताया गया आधार गलत था। इसके अलावा, राजस्व विभाग के पास माल को रोकने का कोई कारण नहीं था और उसके बाद की गई परिणामी कार्रवाइयाँ स्पष्ट रूप से दोषपूर्ण थीं।

7. उपरोक्त निष्कर्षों के आलोक में, हमारा विचार है कि निरोध आदेश और उसके बाद जारी कारण बताओ नोटिस कानून की दृष्टि में गलत थे, और तदनुसार, दोनों को रद्द और अपास्त किया जाता है।

16. ऊपर बताए गए तथ्यों के साथ-साथ पूर्वोक्त निर्णय के आलोक में, आक्षेपित आदेश कानून की दृष्टि में कायम नहीं रह सकता है और इसे रद्द किया जाता है।

17. तदनुसार, रिट याचिका **स्वीकार** की जाती है।

18. वर्तमान मुकदमे के लंबित रहने के दौरान याचिकाकर्ता द्वारा जमा की गई कोई भी राशि, इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से तीन सप्ताह की अवधि के भीतर याचिकाकर्ता को वापस कर दी जाएगी।

(2025) 4 ILRA 331

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 02.04.2025

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति अरुण भंसाली

माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेंद्र

के समक्ष

रिट टैक्स संख्या 1406/2025

मेसर्स मेरिनो इंडस्ट्रीज लिमिटेड, हापुड़, यू.पी. **...याचिकाकर्ता**

बनाम

यू.पी. राज्य एवं अन्य **...प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
श्री अनिल प्रकाश माथुर

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
अंकुर अग्रवाल (एससी)

सिविल लॉ - उत्तर प्रदेश माल और सेवा कर अधिनियम, 2017 - धारा 74 और 75 (4) - उत्प्रेषण की रिट - प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत - व्यक्तिगत सुनवाई का अवसर - कारण बताओ नोटिस - अनिवार्य प्रक्रियात्मक आवश्यकताओं का उल्लंघन - लगाया गया जुर्माना।

निर्णय:

पोटैटो फ्लैक्स के निर्माण में लगे याचिकाकर्ता ने यू.पी. जीएसटी अधिनियम, 2017 की धारा 74 के अन्तर्गत 04.02.2025 के आदेश को चुनौती दी, जिसमें जुलाई 2017 से मार्च 2018 की अवधि के लिए 5,82,67,589.12 रुपये की मांग की गई, जिसमें 1105-2000 के बजाय 2005-2000 टैरिफ शीर्षक के अन्तर्गत पोटैटो फ्लैक्स के गलत वर्गीकरण का आरोप लगाया गया। 03.08.2024 के कारण बताओ नोटिस में व्यक्तिगत सुनवाई की तारीख को 'एनए' के रूप में चिह्नित किया गया था और 19.08.2024 तक जवाब देने की आवश्यकता थी। याचिकाकर्ता के जवाब में विशेष रूप से व्यक्तिगत सुनवाई का अनुरोध किया गया था, लेकिन आक्षेपित आदेश बिना किसी सुनवाई के पारित कर दिया गया, जो धारा 75(4) का उल्लंघन करता है, जो लिखित में अनुरोध किए जाने पर या जब कोई प्रतिकूल निर्णय अपेक्षित हो, सुनवाई अनिवार्य करता है। *लास्किन इंजीनियरिंग प्राइवेट लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य* पर भरोसा करते हुए, न्यायालय ने माना कि व्यक्तिगत सुनवाई से इनकार करना प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों और राज्य के अपने परिपत्र दिनांक 13.06.2024 का उल्लंघन है। आदेश को रद्द कर दिया गया, वाद को सुनवाई के साथ नए सिरे से निर्णय के लिए वापस भेज दिया गया और गैर-अनुपालन के लिए संयुक्त आयुक्त एसजीएसटी पर 20,000 रुपये का जुर्माना लगाया, जिसे चार सप्ताह के भीतर उच्च न्यायालय विधिक सेवा समिति के पास जमा करना था।

रिट याचिका स्वीकार की गई।

विचार किए गए केस लॉ:

1. *लास्किन इंजीनियरिंग प्राइवेट लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य*, रिट टैक्स संख्या 674/2024, (2024) एएचसी 32456 - प्रतिकूल आदेश पारित करने से पहले धारा 75(4) के अन्तर्गत व्यक्तिगत सुनवाई का अवसर अनिवार्य है; इनकार प्राकृतिक न्याय का उल्लंघन करता है, जिसके लिए आदेशों को रद्द करना और संभावित अनुशासनात्मक कार्रवाई आवश्यक है।

अवलोकन:

न्यायालय ने देखा कि याचिकाकर्ता के उत्तर में एक विशिष्ट अनुरोध के बावजूद, व्यक्तिगत सुनवाई की तारीख के लिए कारण बताओ नोटिस में 'एनए' का संकेत और बाद में जारी एकपक्षीय आदेश ने अधिकारियों द्वारा एक यांत्रिक दृष्टिकोण को प्रदर्शित किया, जिसमें धारा 75(4) और राज्य के परिपत्र दिनांक 13.06.2024 की अनदेखी की गई, जिसमें *लास्किन इंजीनियरिंग* के शासनादेश को दोहराया गया था। प्रतिवादियों द्वारा अपने निर्देशों में गैर-अनुपालन को उचित ठहराने में विफलता ने प्रक्रियात्मक खामियों को और उजागर किया। न्यायालय ने जीएसटी कार्यवाही में प्राकृतिक न्याय के बार-बार होने वाले उल्लंघनों पर ध्यान दिया, जैसे सुनवाई से इनकार करना, अनुचित सुनवाई की तारीखें तय करना, या जवाबों को नजरअंदाज करना, जो न्यायपालिका और राज्य के संसाधनों पर बोझ डालते हैं। लागत लगाने और प्रशिक्षण और अनुशासनात्मक कार्रवाई के निर्देश ने प्रणालीगत सुधार की आवश्यकता को रेखांकित किया।

परिणाम: रिट याचिका स्वीकार की गई; दिनांक 04.02.2025 का आक्षेपित आदेश रद्द किया गया; वाद को व्यक्तिगत सुनवाई के साथ नए सिरे से निर्णय के लिए वापस भेजा गया; संयुक्त आयुक्त, एसजीएसटी पर 20,000 रुपये का जुर्माना लगाया गया, जिसे चार सप्ताह के भीतर जमा करना होगा।

(माननीय मुख्य न्यायमूर्ति अरुण भंसाली एवं
माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेंद्र द्वारा निर्णय दिया गया)

1. यह याचिका याचिकाकर्ता द्वारा संयुक्त आयुक्त, एसजीएसटी, कॉर्पोरेट सर्किल-1, गाजियाबाद (अनुलग्नक-1) द्वारा वस्तु एवं सेवा कर अधिनियम, 2017 (संक्षेप में, 'अधिनियम') की धारा 74 के अंतर्गत पारित दिनांक 04.02.2025 के आदेश से व्यथित होकर दायर की गई है, जिसमें 5,82,67,589.12/- रुपये की मांग की गई है।

2. याचिका में अन्य बातों के साथ-साथ यह भी इंगित किया गया है कि याचिकाकर्ता अन्य वस्तुओं के अलावा आलू के फ्लेक्स के निर्माण और आपूर्ति में लगा हुआ है। जुलाई 2017 से मार्च 2018 की अवधि के लिए दिनांक 03.08.2024 को एक कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था, जिसमें प्रश्नगत उत्पाद यानी आलू के फ्लेक्स को 1105-2000 के बजाय टैरिफ शीर्षक 2005-2000 के अंतर्गत वर्गीकृत करने का प्रस्ताव था। नोटिस में, जिस तारीख तक उत्तर प्रस्तुत करना आवश्यक था, वह 19.08.2024 दर्शाई गई थी और व्यक्तिगत सुनवाई की तारीख से संबंधित कॉलम में 'एनए' दर्शाया गया था और व्यक्तिगत सुनवाई के समय से संबंधित कॉलम के संबंध में भी यही स्थिति थी।

3. याचिकाकर्ता द्वारा 19.08.2024 को अधिवक्ता के माध्यम से दिनांक 03.08.2024 को नोटिस का उत्तर दायर किया गया, जिसमें उसमें लगाए गए आरोपों का विरोध किया गया। उत्तर में, याचिकाकर्ता की ओर से एक विशिष्ट प्रार्थना की गई थी कि याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर दिए बिना उसके विरुद्ध कोई प्रतिकूल आदेश पारित न किया जाए।

4. हालाँकि, दिनांक 04.02.2025 के आक्षेपित आदेश द्वारा, सुनवाई का कोई अवसर दिए बिना, मांग बनाई गई है।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रतिवादियों द्वारा याचिकाकर्ता को सुनवाई का कोई अवसर प्रदान किए बिना आक्षेपित आदेश पारित करने की कार्रवाई अधिनियम की धारा 75(4) के प्रावधानों के विपरीत है। इस बात पर बल दिया गया कि उप-धारा (4) के अंतर्गत कर के निर्धारण से संबंधित सामान्य प्रावधानों से संबंधित धारा स्पष्ट रूप से प्रावधान करती है कि सुनवाई का अवसर तब प्रदान किया जाएगा जब कर या जुर्माना के लिए उत्तरदायी व्यक्ति से लिखित में अनुरोध प्राप्त होता है, या जहां ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध कोई प्रतिकूल निर्णय अपेक्षित है।

6. कानून की अनिवार्य आवश्यकता के बावजूद, व्यक्तिगत सुनवाई की तिथि से संबंधित कॉलम में कारण बताओ नोटिस में 'एनए' दर्शाया गया है और व्यक्तिगत सुनवाई प्रदान करने के लिए कारण बताओ नोटिस के जवाब में की गई विशिष्ट प्रार्थना के बावजूद, व्यक्तिगत सुनवाई का कोई अवसर प्रदान नहीं किया गया, जो कि अधिनियम के प्रावधानों के विपरीत होने के अलावा, अपर आयुक्त विधि, वाणिज्य कर, उत्तर प्रदेश द्वारा जारी परिपत्र दिनांक 13.06.2024 के विपरीत है, विशेष रूप से **लास्किन इंजीनियरिंग प्राइवेट लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य: रिट टैक्स संख्या 674/2024,** दिनांक 16.05.2024 को निर्णीत मामले में इस न्यायालय के निर्णय का उल्लेख करते हुए। प्रतिवादी ने कानून के प्रावधानों के साथ-साथ इस न्यायालय और राज्य द्वारा दिए गए निर्देशों का उल्लंघन किया है और इसलिए, आक्षेपित आदेश रद्द किए जाने और अपास्त किए जाने योग्य है।

7. विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने निर्देश प्रस्तुत किए हैं जिनमें विवाद के गुण-दोष पर टिप्पणियां की गई हैं और इस बारे में एक शब्द भी नहीं बताया गया है कि अधिनियम की धारा 75(4) के अनिवार्य प्रावधानों का अनुपालन क्यों नहीं किया गया है।

8. इस न्यायालय ने **लास्किन इंजीनियरिंग प्राइवेट लिमिटेड (उपरोक्त)** के मामले में अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित टिप्पणी और निर्देश दिए:

"5. कर निर्धारण कानूनों के अंतर्गत प्रक्रियात्मक कानून का यह मूलभूत सिद्धांत है कि किसी करदाता के विरुद्ध कोई भी कर निर्धारण/न्यायिक आदेश पारित करने से पहले उसे व्यक्तिगत सुनवाई का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए। इस प्रकार, हम इसे केवल इसलिए अजीब और पूरी तरह से अस्वीकार्य पाते हैं क्योंकि मूल कानून बदल गया है, राजस्व अधिकारियों ने अपना दृष्टिकोण बदल दिया है और प्रक्रियात्मक कानून की उस अनिवार्य आवश्यकता का पालन करने में विफल रहे हैं। इस प्रकार उन्होंने करदाता को सुनवाई का अवसर देने से इनकार कर दिया है।

6. अधिनियम की धारा 75(4) इस प्रकार है:

"सुनवाई का अवसर तब प्रदान किया जाएगा जब कर या दंड से प्रभार्य व्यक्ति से लिखित में अनुरोध प्राप्त हो, या जहाँ ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध कोई प्रतिकूल निर्णय अपेक्षित हो।"

7. अभिलेखों से यह स्पष्ट होता है कि न तो न्यायनिर्णायक प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता को कारण बताओ नोटिस जारी किया या मौखिक सुनवाई में भाग लेने के लिए कहा, न ही उन्होंने याचिकाकर्ता को व्यक्तिगत सुनवाई का कोई अवसर प्रदान किया।

8. पूछे गए प्रश्न पर, विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया कि अन्य मुकदमों में देखी गई ऐसी ही घटनाओं के आलोक में, उन्होंने आयुक्त, वाणिज्य कर को सूचित किया था। इसके फलस्वरूप, आयुक्त, वाणिज्य कर, उत्तर प्रदेश ने कार्यालय ज्ञापन संख्या 1406 दिनांक 12.11.2024 जारी किया है। इसे सभी अपर आयुक्तों को संबोधित किया गया है ताकि आवश्यक अनुपालन हेतु सभी क्षेत्रीय कार्यालयों को सूचित किया जा सके। इसमें निम्नलिखित लिखा है:

"1. जिस कॉलम में व्यक्तिगत सुनवाई की तारीख का उल्लेख किया जाना है, उसमें किसी तारीख का उल्लेख किए बिना केवल एन.ए. का उल्लेख किया गया है।

2. जिस कॉलम में व्यक्तिगत सुनवाई के समय का उल्लेख किया जाना है, उसमें सुनवाई के समय का उल्लेख किए बिना केवल एन.ए. का उल्लेख किया गया है।

3. कुछ मामलों में, व्यक्तिगत सुनवाई की तारीख कारण बताओ नोटिस का जवाब देने से पहले होती है, यह गैर-कानूनी है और इस प्रथा को बंद किया जाना चाहिए। कारण बताओ नोटिस का जवाब देने की तारीख निश्चित रूप से व्यक्तिगत सुनवाई की तारीख से पहले होनी चाहिए।

4. कुछ मामलों में, व्यक्तिगत सुनवाई की तिथि उसी तिथि को होती है जिस तिथि को कारण बताओ नोटिस का उत्तर प्रस्तुत करना होता है - यह अनुचित है और इस प्रथा को बंद किया जाना चाहिए। कारण बताओ नोटिस के उत्तर की तिथि व्यक्तिगत सुनवाई की तिथि से निश्चित रूप से पूर्व होनी चाहिए।

5. देखे गए सभी वादों में, अधिनियम की धारा 73(9)/74(9) आदि के अंतर्गत आदेश पारित करने की तिथि व्यक्तिगत सुनवाई की तिथि के अनुरूप नहीं है। यह सामान्य कानून है कि आदेश की तिथि व्यक्तिगत सुनवाई की तिथि पर ही पारित की जानी चाहिए। उदाहरण के लिए, एससीएन का जवाब देने की तिथि 15.11.2023 है और व्यक्तिगत सुनवाई की तिथि 17.11.2023 है, तो आदेश की तिथि भी 17.11.2023 ही होनी चाहिए।

9. ऊपर उल्लिखित तथ्यों के मद्देनजर, किसी भी न्यायिक कार्यवाही में पारित किसी भी प्रतिकूल आदेश से पहले, नोटिस प्राप्तकर्ता को व्यक्तिगत सुनवाई का प्रस्ताव दिया जाना चाहिए। यदि नोटिस प्राप्तकर्ता उस अधिकार का परित्याग करना चाहता है, तो न्यायिक प्राधिकारी के पास (उन तथ्यों के आधार पर), मामले को एकतरफा, गुण-दोष के आधार पर निस्तारण करने के लिए आगे बढ़ने का अवसर उत्पन्न हो सकता है। इसके अलावा, एक और स्थिति मौजूद हो सकती है जहां व्यक्तिगत सुनवाई का ऐसा अवसर दिए जाने के बाद भी, नोटिस प्राप्तकर्ता इसका लाभ उठाने में विफल रहता है। ऐसी स्थितियों को छोड़कर, हम ऐसी प्रथा को उत्पन्न या विद्यमान होने की अनुमति नहीं दे सकते जहां न्यायिक कार्यवाही का सामना कर रहे व्यक्ति को व्यक्तिगत सुनवाई का अवसर देने से इनकार किया जा सकता है।

10. इस प्रकार, कानून की दृष्टि में आक्षेपित आदेश कायम नहीं रखा जा सकता। यह प्राकृतिक न्याय के मूल सिद्धांतों का घोर उल्लंघन करते हुए पारित किया गया है। ऐसे तथ्यों में वैकल्पिक उपचार पर स्व-लगाई गई रोक लागू नहीं की जा सकती। यदि लागू की जाती है, तो इसका कोई वास्तविक उपयोग नहीं होगा। वास्तव में, यह न्याय के हित के प्रतिकूल होगा। यहाँ, यह ध्यान देने योग्य है कि अपील प्राधिकारी के पास कार्यवाही को वापस भेजने का अधिकार नहीं है।

11. तदनुसार, रिट याचिका निम्नलिखित टिप्पणियों/निर्देशों के साथ निस्तारित की जाती है:
(i) प्रतिवादी संख्या 2-उपायुक्त, वाणिज्यिक कर विभाग, सिकंदराबाद, बुलंदशहर द्वारा पारित दिनांक 19.08.2021 का आक्षेपित आदेश एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है।
(ii) यह वाद प्रतिवादी संख्या 2-उपायुक्त, वाणिज्यिक कर विभाग, सिकंदराबाद, बुलंदशहर को याचिकाकर्ता को सुनवाई का उचित अवसर प्रदान करने के पश्चात्, कानून के अनुसार एक नया आदेश पारित करने हेतु प्रेषित किया जाता है।

12. यद्यपि, हमने प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा प्रस्तुत आचरण के लिए भारी जुर्माना लगाने का प्रस्ताव रखा है, तथापि, विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता द्वारा हमें आश्वासन दिया गया है कि भविष्य में ऐसी घटनाओं की पुनरावृत्ति नहीं होगी।

13. तदनुसार, हम उत्तर प्रदेश के वाणिज्य कर आयुक्त को निर्देश देते हैं कि वे दोषी अधिकारियों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही सहित सुधारात्मक उपाय करें, जहाँ न्यायनिर्णायक प्राधिकारियों द्वारा बिना किसी उचित कारण के प्राकृतिक न्याय के मूलभूत सिद्धांतों का उल्लंघन किया जा सकता है। "

9. ऐसा प्रतीत होता है कि इस न्यायालय द्वारा जारी निर्देश के अनुसरण में, आयुक्त कार्यालय ने **लास्किन इंजीनियरिंग प्राइवेट लिमिटेड (उपरोक्त)** के मामले में निर्णय के पैराग्राफ संख्या 9 से 13 का हवाला देते हुए सभी अतिरिक्त आयुक्तों, वाणिज्यिक करों को परिपत्र जारी किया और निम्नानुसार निर्देश दिया:

"अतः रिट टैक्स संख्या-672/2024, सर्वश्री एन०एस० एग्रो एण्ड इंजीनियरिंग प्रोडक्ट्स एवं रिट टैक्स संख्या-674/2024, सर्वश्री लास्किन इंजीनियरिंग प्रा०लि० बनाम उ०प्र० सरकार व अन्य के वाद के सम्बन्ध में मा० उच्च न्यायालय, इलाहाबाद के निर्णय दिनांक 16.05.2024 की प्रति प्रेषित करते हुए निर्देशित किया जाता है कि अपने अधीनस्थ समस्त अधिकारियों को उक्त से अवगत कराएं तथा मा० न्यायालय के उक्त आदेश के अनुसार उ०प्र० माल और सेवाकर अधिनियम की धारा-75 (4) के प्राविधानों का कड़ाई से पालन किया जाय तथा प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्त को अनिवार्यतः सुनिश्चित किया जाये। उपरोक्त के उल्लंघन पर कठोर कार्यवाही की जायेगी।

यह पत्र कमिश्नर, वाणिज्य कर, उ०प्र० के अनुमोदनोपरान्त जारी किया जा रहा है।"

10. उपरोक्त से, यह देखा जाएगा कि इस न्यायालय ने 12.11.2023 के कार्यालय ज्ञापन (गलती से 12.11.2024 टाइप किया गया) का हवाला देते हुए पाया है कि न्यायालय ऐसी प्रथा को उत्पन्न होने या अस्तित्व में रहने की अनुमति नहीं दे सकता है जहां न्यायिक कार्यवाही का सामना कर रहे व्यक्ति को व्यक्तिगत सुनवाई का अवसर देने से इनकार कर दिया गया हो। न्यायालय ने यह भी कहा कि वह अधिकारी के आचरण के लिए भारी लागत लगाने का प्रस्ताव करता है, हालांकि, अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता द्वारा दिए गए इस आश्वासन पर कि भविष्य में ऐसी घटनाओं की पुनरावृत्ति नहीं होगी, यह निर्देश दिया गया कि प्रतिवादियों द्वारा दोषी अधिकारियों के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही सहित सुधारात्मक उपाय किए जाएंगे।

11. यह देखा गया है कि उपरोक्त के अलावा, प्रतिदिन अनेक याचिकाएं दायर की जा रही हैं जो अधिकारियों द्वारा प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के घोर उल्लंघन को दर्शाती हैं, जिसमें स्पष्ट रूप से चूंकि पूरी प्रक्रिया ऑनलाइन है, अधिकारी रिकॉर्ड में उपलब्ध सामग्री अर्थात इलेक्ट्रॉनिक रूप में अपने सिस्टम में, पर ध्यान दिए बिना पूरी तरह से यांत्रिक तरीके से काम कर रहे हैं, ऐसे आदेश पारित किए जा रहे हैं जिनमें कारण बताओ नोटिस में सुनवाई का अवसर देने से इनकार किया जा रहा है, जवाब दाखिल करने और व्यक्तिगत सुनवाई की एक ही तारीखें तय की जा रही हैं, जवाब दाखिल करने की तारीख से पहले व्यक्तिगत सुनवाई की तारीख तय की जा रही है, जिन मामलों में जवाब दाखिल किया गया है, पारित आदेशों में यह दर्शाया गया है कि कोई जवाब दाखिल नहीं किया गया है, यदि कारण बताओ नोटिस में सुनवाई की तारीख तय की गई है, तो करदाता द्वारा दाखिल जवाब में, सिस्टम के कारण 'व्यक्तिगत सुनवाई के विकल्प' से संबंधित कॉलम हमेशा 'नहीं' दर्शाता है, अर्थात करदाता द्वारा व्यक्तिगत सुनवाई का अवसर देने से इनकार कर दिया जाता है, यहां तक कि उन मामलों में जहां जवाब में विशेष रूप से व्यक्तिगत सुनवाई का अवसर प्रदान करने की आवश्यकता होती है, उसे वाद के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए यानी केवल कारण बताओ नोटिस की तारीख का हवाला देते हुए और मांगों की पुष्टि करते हुए नजरअंदाज किया जा रहा है और बिना किसी कारण बताओ नोटिस के पूरी तरह से यांत्रिक तरीके से आदेश पारित किए जा रहे हैं। इस न्यायालय के समक्ष असंख्य मामले आए हैं जहां कारण बताओ नोटिस जारी किए गए हैं और फर्म के जीएसटी पंजीकरण को रद्द करने के बाद, पोर्टल पर नोटिस अपलोड करने के आधार पर, नोटिस की व्यक्तिगत सेवा सुनिश्चित किए बिना एकतरफा मूल्यांकन किया गया है। वादों पर विचार करने में अधिकारियों के इस तरह के आचरण के परिणामस्वरूप, राज्य सरकार की ओर से समय की भारी हानि के अलावा, इस न्यायालय का अनावश्यक रूप से बोझ बढ़ जाता है, जिसमें हर दिन कई याचिकाएं, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करते हुए दायर की जा रही हैं और चूंकि उल्लंघन इतने स्पष्ट हैं, इसलिए इस न्यायालय के पास याचिकाओं को अनुमति देने और मामलों को अधिकारियों को वापस भेजने के अलावा कोई विकल्प नहीं बचा है।

12. वर्तमान वाद राज्य के अधिकारियों की ओर से ऐसे आचरण का एक ज्वलंत उदाहरण प्रस्तुत करता है जिसमें व्यक्तिगत सुनवाई की तिथि से संबंधित कॉलम में 'एनए' दर्शाकर कारण बताओ नोटिस में व्यक्तिगत सुनवाई का अवसर देने से इनकार करने के अलावा, जवाब में सुनवाई का अवसर प्रदान करने के लिए की गई विशिष्ट प्रार्थना के बावजूद, सुनवाई का कोई अवसर दिए बिना ही आक्षेपित आदेश पारित कर दिया गया है।

13. उपरोक्त तथ्यात्मक स्थिति को देखते हुए, हमारे पास याचिकाकर्ता द्वारा दायर याचिका को लागत के साथ स्वीकार करने के अलावा कोई विकल्प नहीं बचा है।

14. परिणामस्वरूप, रिट याचिका **स्वीकार** की जाती है। आक्षेपित आदेश दिनांक 04.02.2025 (अनुलग्नक-1) को अपास्त एवं रद्द कर दिया गया है। मामला संयुक्त आयुक्त एसजीएसटी, कॉर्पोरेट सर्कल-1, गाजियाबाद, प्रतिवादी संख्या 2 को याचिकाकर्ता को व्यक्तिगत सुनवाई का अवसर देने के बाद एक नया आदेश पारित करने के लिए वापस भेज दिया गया है।

15. संयुक्त आयुक्त एसजीएसटी, कॉरपोरेट सर्किल-1, गाजियाबाद, जिन्होंने कारण बताओ नोटिस दिनांक 03.08.2024 जारी किया था और आदेश दिनांक 04.02.2025 पारित किया था, पर 20,000/- रुपये का जुर्माना लगाया जाता है।

16. अधिकारी द्वारा यह जुर्माना चार सप्ताह की अवधि के भीतर उच्च न्यायालय विधिक सेवा समिति, उच्च न्यायालय इलाहाबाद में जमा किया जाएगा।

17. विद्वान स्थायी अधिवक्ता की यह जिम्मेदारी होगी कि वे इस आदेश को संबंधित अधिकारी के साथ-साथ आयुक्त, वाणिज्य कर, यू.पी. को भी सूचित करें, जिन्हें यह सुनिश्चित करने का निर्देश दिया जाता है कि अधिकारियों को मामलों को उचित तरीके से निस्तारित के लिए उचित प्रशिक्षण दिया जाए क्योंकि स्पष्ट रूप से उक्त अधिकारियों को जारी किए गए परिपत्रों की अनदेखी की गई है और/या उन पर ध्यान नहीं दिया गया है।

18. इसके अलावा, जैसा कि **लास्किन इंजीनियरिंग प्राइवेट लिमिटेड (उपरोक्त)** के मामले में पहले ही सुझाया गया है, दोषी अधिकारियों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की जा सकती है, अन्यथा यह स्पष्ट है कि अधिकारियों द्वारा की गई ऐसी चूकों और गलतियों के कारण राज्य को नुकसान उठाना पड़ेगा, जिसे राज्य द्वारा बर्दाश्त नहीं किया जाना चाहिए।

(2025) 4 ILRA 337

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 10.04.2025

माननीय न्यायमूर्ति रोहित रंजन अग्रवाल

के समक्ष

रिट टैक्स संख्या 1559/2024

मेसर्स बी एम कंप्यूटर्स **...याचिकाकर्ता**

बनाम

आयुक्त, वाणिज्यिक कर लखनऊ और अन्य **...प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
सुश्री पूजा तलवार

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
सीएससी

सिविल लॉ - उत्तर प्रदेश माल और सेवा कर अधिनियम, 2017 - धारा 129 (3) - नियम 138 - उत्प्रेषण रिट - पारगमन में माल - ई-वे बिल - भाग बी गैर-अनुपालन - कर से बचने का इरादा - अनिवार्य प्रक्रियात्मक आवश्यकताएं - अप्रैल 2018 के बाद के लेनदेन।

निर्णय:
याचिकाकर्ता, जो कंप्यूटर हार्डवेयर का पंजीकृत विक्रेता है, ने उत्तर प्रदेश जीएसटी अधिनियम, 2017 की धारा 129(3) के अन्तर्गत दिनांक 06.03.2023 के एक जुर्माने आदेश और दिनांक 30.05.2024 के एक अपीलीय आदेश, जो 06.03.2023 को लुहारली टोल प्लाजा, ग्रेटर नोएडा पर रोके गए माल के लिए था, को चुनौती दी थी। आगरा से गाजियाबाद स्थानांतरित किए गए माल के साथ टैक्स इनवॉइस और ई-वे बिल भी थे, लेकिन ई-वे बिल संख्या 411318901103 का भाग बी भरा नहीं गया था और ई-वे बिल संख्या 411318916631 में आगरा से नोएडा की बजाय आगरा से आगरा की आवाजाही गलत दिखाई गई थी। न्यायालय ने माना कि उत्तर प्रदेश जीएसटी नियमावली, 2017 (01.04.2018 से प्रभावी) के 14वें संशोधन के बाद, नियम 138 के तहत भाग बी सहित एक पूर्ण ई-वे बिल अनिवार्य है। इसका पालन न करने पर कर चोरी की एक खंडनीय धारणा बनती है, जिसका खंडन याचिकाकर्ता ने नहीं किया, क्योंकि भाग बी अवरोधन के बाद तैयार किया गया था और ई-वे बिल में गंतव्य स्थान गलत बताया गया था। *अखिलेश ट्रेडर्स* और *झांसी एंटरप्राइजेज* पर भरोसा करते हुए, न्यायालय ने कर चोरी के इरादे का पता लगाते हुए जुर्माने को बरकरार रखा और याचिकाकर्ता के अप्रैल 2018 से पहले के मामलों पर भरोसा करने को अलग-अलग मानते हुए खारिज कर दिया। रिट याचिका खारिज कर दी गई, क्योंकि हस्तक्षेप का कोई मामला नहीं बनता था।

रिट याचिका खारिज।

चर्चा किए गए केस लॉ:
1. *अखिलेश ट्रेडर्स बनाम स्टेट ऑफ यू.पी.*, रिट टैक्स संख्या 1109/2019, (2024) एएचसी 18765 - अप्रैल 2018 के बाद ई-वे बिल आवश्यकताओं का पालन न करने पर कर चोरी की धारणा बनती है, जिसका मालिक/ट्रांसपोर्टर द्वारा खंडन किया जा सकता है; बाद में दस्तावेज़ प्रस्तुत करने से दायित्व से मुक्ति नहीं मिलती है।

2. *झांसी एंटरप्राइजेज बनाम स्टेट ऑफ यू.पी.*, रिट टैक्स संख्या 1081/2019, (2024) एएचसी 15432 - अप्रैल 2018 के बाद, पूर्ण ई-वे बिल अनिवार्य है; बाद में दस्तावेज़ प्रस्तुत करने से कर चोरी की मंशा खारिज नहीं होती है।

3. *मैसर्स वरुण बेवरेजेस लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य*, [2023] यूपीटीसी (113) 331 - अप्रैल 2018 से पहले के रूप में प्रतिष्ठित, जब ई-वे बिल जेनरेशन में तकनीकी समस्याओं का सामना करना पड़ा।

4. *मैसर्स फल्गुनी स्टील्स बनाम उत्तर प्रदेश राज्य*, [2024] यूपीटीसी 221 - अप्रैल 2018 से पहले के रूप में प्रतिष्ठित।

5. *इंड्यूश इंडस्ट्रीज प्राइवेट लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य*, [2024] यूपीटीसी (116) 579 - अप्रैल 2018 से पहले के रूप में प्रतिष्ठित।

6. *मैसर्स एक्सच थर्म इंजीनियरिंग कंपनी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य*, [2024] यूपीटीसी (116) 362 - अप्रैल 2018 से पहले के रूप में प्रतिष्ठित।

7. *मेसर्स रावल वासिया यार्न डाइंग प्राइवेट लिमिटेड बनाम आयुक्त वाणिज्यिक कर*, [2024] एनटीएन (84) 213 - अप्रैल 2018 से पहले के रूप में प्रतिष्ठित।

अवलोकन:

न्यायालय ने देखा कि याचिकाकर्ता द्वारा ई-वे बिल का भाग बी भरने में विफलता और ई-वे बिल संख्या 411318916631 में गलत गंतव्य (आगरा से नोएडा के बजाय आगरा से आगरा) कर चोरी के इरादे का संकेत देता है, क्योंकि अपूर्ण ई-वे बिल ने वैधता अवधि में देरी की, जिससे पता नहीं चला कि परिवहन हुआ है। 3:16 पूर्वाह्न अवरोधन के बाद 06.03.2023 को 4:28 पूर्वाह्न पर भाग बी का अवरोधन के बाद सृजन, इस इरादे का और समर्थन करता है। अपीलीय प्राधिकारी का आदेश, यद्यपि संक्षिप्त था, अप्रैल 2018 के बाद नियम 138 के स्पष्ट उल्लंघन को देखते हुए उचित था, जब ई-वे बिल जनरेशन संबंधी समस्याओं का समाधान किया गया था। याचिकाकर्ता का अप्रैल 2018 से पहले के मामलों पर भरोसा करना अनुचित था, क्योंकि 14वें संशोधन के बाद पूर्ण ई-वे बिल की अनिवार्य आवश्यकता और भी कठोर हो गई थी। न्यायालय ने इस बात पर ज़ोर दिया कि इस तरह का गैर-अनुपालन कर चोरी के विरुद्ध जीएसटी व्यवस्था के निवारक उपायों को कमज़ोर करता है।

परिणाम: रिट याचिका खारिज; 06.03.2023 का जुर्माना आदेश और 30.05.2024 का अपीलीय आदेश बरकरार रखा गया।

(माननीय न्यायमूर्ति रोहित रंजन अग्रवाल द्वारा निर्णय दिया गया)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री अरविंद कुमार मिश्रा को सुना गया।

2. इस रिट याचिका के माध्यम से, सहायक आयुक्त, राज्य कर, मोबाइल स्क्वायड-5, सेक्टर-5, यूनिट-1, नोएडा द्वारा उत्तर प्रदेश राज्य माल और सेवा कर अधिनियम, 2017 और केंद्रीय माल और सेवा कर अधिनियम, 2017 की धारा 129(3) के अन्तर्गत जुर्माना लगाने के दिनांक 06.03.2023 के आदेश और अपर आयुक्त, ग्रेड-2 (अपील)-3, राज्य कर, नोएडा द्वारा कर निर्धारण प्राधिकारी द्वारा पारित जुर्माने के आदेश की पुष्टि करते हुए दिनांक 30.05.2024 के अपीलीय आदेश को चुनौती दी गई है।

3. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता जीएसटी व्यवस्था के अन्तर्गत एक पंजीकृत डीलर है जिसका जीएसटीएन नंबर 09AEWPA1632E1ZN है। यह कंप्यूटर और अन्य हार्डवेयर सामग्री की बिक्री और खरीद में लगा हुआ है। याचिकाकर्ता फर्म ने अपने आगरा मुख्यालय से गाजियाबाद शाखा में कर सहित 8,45,000/- रुपये और 1,43,500/- रुपये के माल का स्टॉक ट्रांसफर किया था और उक्त लेनदेन के लिए क्रमशः चालान संख्या ST/OUT/BMC/365, ई-वे बिल संख्या 4113 1890 1103 और ST/OUT/BMC/366, ई-वे बिल संख्या 4113 1891 6631 जारी किए थे। उक्त ट्रांसफर मेसर्स शगुन लॉजिस्टिक्स कार्गो सर्विसेज की सेवाएं लेकर हो रहा था। माल के साथ वाहन को लुहारली टोल प्लाजा दादरी, ग्रेटर नोएडा में 06.03.2023 को लगभग 3:16 बजे प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा रोका गया था। माल की खेप का भौतिक सत्यापन किया गया और 06.03.2023 को एक निरोध आदेश पारित किया गया जिसमें कहा गया है कि ई-वे बिल में भाग बी को अपडेट नहीं किया गया है। उसी दिन, याचिकाकर्ता से उठाए गए बिंदुओं और प्रस्तावित मांग पर जवाब मांगते हुए एक कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था। याचिकाकर्ता मूल्यांकन प्राधिकारी के समक्ष उपस्थित हुआ और अपना जवाब दाखिल किया और यूपीजीएसटी/सीजीएसटी अधिनियम, 2017 की धारा 129(3) के अन्तर्गत जुर्माना लगाया गया। याचिकाकर्ता ने जुर्माने की पूरी राशि जमा कर दी और वाहन को रिलीज करा लिया। जुर्माने के आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता फर्म ने अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष अपील की, जिसे 30.05.2024 को खारिज कर दिया गया। इसलिए, वर्तमान रिट याचिका दायर की गई।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि प्रथम अपीलीय प्राधिकारी ने अपील को खारिज करते समय अपने विवेक का प्रयोग नहीं किया है और एक अनाख्यापक आदेश पारित किया गया है। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता के अनुसार, माल को टैक्स चालान के साथ विधिवत कवर किया गया था और एकमात्र कमी यह थी कि ई-वे बिल का भाग बी नहीं भरा गया था जो एक मानवीय भूल थी और इसे ट्रांसपोर्टर द्वारा भरा जाना था। **मेसर्स वरुण बेवरेजेज लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 2 अन्य [2023 यू.पी.टी.सी. (113) 331], मेसर्स फाल्गुनी स्टील्स बनाम यू.पी. राज्य और अन्य, 2024 यू.पी.टी.सी. 221, इंड्यूश इंडस्ट्रीज प्राइवेट लिमिटेड बनाम यू.पी. राज्य और अन्य [2024 यू.पी.टी.सी. (वॉल्यूम 116) 579], मेसर्स एक्सचेंज थर्म इंजीनियरिंग कंपनी बनाम यू.पी. राज्य और अन्य [2024 यू.पी.टी.सी. (वॉल्यूम 116) 362] और मेसर्स रावल वासिया यार्न डाइंग प्राइवेट लिमिटेड बनाम कमिश्नर कमर्शियल टैक्स और अन्य [2024 एनटीएन (वॉल्यूम 84) 213]** के मामले में निर्णयों का हवाला दिया गया है ।

5. विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने रिट याचिका का विरोध करते हुए प्रस्तुत किया कि कर से बचने का इरादा था। उन्होंने आगे कहा कि जब माल को रोका गया तो चालान संख्या ST/OUT/BMC/365, ई-वे बिल संख्या 4113 1890 1103 का केवल भाग ए भरा गया था और परिवहन के लिए आवश्यक ई-वे बिल का भाग बी नहीं भरा गया था और यह 06.03.2025 को सुबह 4:28 बजे जनरेट किया गया था, जो कि वाहन को रोके जाने के लगभग एक घंटे बाद था। यह भी तर्क दिया गया है कि चालान संख्या ST/OUT/BMC/366, ई-वे बिल संख्या 4113 1891 6631 से पता चलता है कि माल आगरा से आगरा ले जाया जा रहा था जबकि माल आगरा से नोएडा लाया गया था जिसके लिए कोई दस्तावेज उपलब्ध नहीं था।

6. यह भी तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता फर्म ने जानबूझकर ई-वे बिल का भाग बी नहीं भरा, जिसके कारण ई-वे बिल के लिए आवश्यक समय सीमा शुरू नहीं हुई और माल नोएडा पहुंच गया। ऐसे में टैक्स चोरी की नीयत से इस दस्तावेज का इस्तेमाल कर कई वाहनों में माल लाया गया। उन्होंने आगे कहा कि 2017 के अधिनियम के नियम 138 के अनुसार, पूर्ण ई-वे बिल अनिवार्य है।

7. अंत में यह तर्क दिया गया कि याचिकाकर्ता द्वारा जिस निर्णय पर भरोसा किया गया है, वह उस अवधि से संबंधित है जब माल को अप्रैल, 2018 से पहले रोक लिया गया था। उनके अनुसार, अप्रैल, 2018 के बाद रोके जाने के मामलों में, पूरा ई-वे बिल अनिवार्य है और उसे माल के साथ ले जाना आवश्यक है। **मेसर्स झांसी एंटरप्राइजेज, नंदनपुरा, झांसी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, रिट टैक्स संख्या 1081/2019**, 01.03.2024 को निर्णीत मामले में समन्वय पीठ के निर्णय और **मेसर्स अखिलेश ट्रेडर्स बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, रिट टैक्स संख्या 1109/2019,** 20.02.2024 को निर्णीत मामले में दिए गए निर्णय पर भरोसा किया गया है।

8. मैंने पक्षों के संबंधित अधिवक्ताओं को सुना है और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया है।

9. विचारणीय एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या माल को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने के लिए पूर्ण ई-वे बिल रखना अनिवार्य है। उत्तर प्रदेश माल एवं सेवा कर नियमावली, 2017 के 14वें संशोधन, जो 01.04.2018 से प्रभावी हुआ, के बाद यह प्रश्न अब प्रासंगिक नहीं रहा। नियम में संशोधन के बाद, माल के साथ पूर्ण ई-वे बिल रखना अनिवार्य हो गया है। **अखिलेश ट्रेडर्स (उपरोक्त)** मामले में समन्वय पीठ ने माना था कि यदि माल के साथ ई-वे बिल नहीं है, तो यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कर चोरी का इरादा है। कर चोरी का ऐसा अनुमान माल के स्वामी/परिवहनकर्ता द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली सामग्री द्वारा खंडनीय हो जाता है। प्रासंगिक पैराग्राफ 7 और 8 नीचे उद्धृत हैं:-

*"**7.** इस न्यायालय ने ऐसे अनेक मामलों में, जहाँ अधिनियम की धारा 129 के अंतर्गत जुर्माना लगाया जा रहा था, यह माना कि कर चोरी का इरादा मौजूद होना चाहिए, तथापि, यदि माल के साथ चालान या ई-वे बिल नहीं है, तो यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कर चोरी का इरादा है। कर चोरी का ऐसा अनुमान तब माल के स्वामी/परिवहनकर्ता द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली सामग्री द्वारा खंडनीय हो जाता है।*

8. वर्तमान मामले में, यह अटल निष्कर्ष निकलता है कि याचिकाकर्ता कर चोरी के अनुमान का खंडन नहीं कर पाया है, क्योंकि वह चालान और ई-वे बिल की अनुपस्थिति का स्पष्टीकरण नहीं दे पाया है। माल की जब्ती के बाद इन दस्तावेजों को प्रस्तुत करने से याचिकाकर्ता को जुर्माने की देयता से मुक्त नहीं किया जा सकता, क्योंकि जुर्माना लगाने का उद्देश्य ही उन लोगों को रोकना है जो सरकार को देय करों का भुगतान करने से बचना चाहते हैं। यह स्पष्ट है कि यदि माल की जब्ती नहीं हुई होती, तो सरकार को उक्त माल पर देय जीएसटी के संबंध में भारी नुकसान उठाना पड़ता।"

10. झांसी एंटरप्राइजेज (उपरोक्त) में, **अखिलेश ट्रेडर्स (उपरोक्त)** में दिए गए निर्णय के बाद समन्वय पीठ ने आगे कहा कि अवरोधन के बाद केवल दस्तावेज प्रस्तुत करना यह दिखाने का वैध आधार नहीं हो सकता कि कर चोरी का कोई इरादा नहीं था। न्यायालय ने आगे कहा कि याचिकाकर्ता द्वारा उस निर्णय पर भरोसा अप्रैल, 2018 से पहले के लेनदेन का था, लेकिन अप्रैल, 2018 के बाद, उन कठिनाइयों का समाधान हो गया है और ई-वे बिल बनाने और डाउनलोड करने में कोई कठिनाई नहीं है। न्यायालय ने निम्नलिखित निर्णय दिया:-

"11. अवरोधन के बाद केवल दस्तावेज़ प्रस्तुत करना यह दर्शाने का वैध आधार नहीं हो सकता कि कर चोरी का कोई इरादा नहीं था। उचित समय पर दस्तावेज़ प्रस्तुत न करने को उचित ठहराने के लिए कुछ उचित आधार होने चाहिए।

12. इसके अलावा, जिन निर्णयों पर याचिकाकर्ता भरोसा कर रहा है, वे अप्रैल 2018 से पहले के हैं, जब ई-वे बिल बनाने में वास्तव में कुछ कठिनाइयाँ थीं। लेकिन अप्रैल, 2018 के बाद उन कठिनाइयों का समाधान कर दिया गया है और अब ई-वे बिल बनाने और डाउनलोड करने में कोई कठिनाई नहीं है।

13. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित अधिवक्ता द्वारा उठाया गया यह तर्क कि वाहन अनलोडिंग के लिए गोदाम में खड़ा था, तथ्यों से समर्थित नहीं है। वाहन को गोदाम से दूर एक स्थान पर रोका गया था और यह पूरा तर्क स्पष्ट रूप से एक बाद का विचार है। तदनुसार, प्राधिकारियों द्वारा अधिनियम की धारा 129(3) का प्रयोग वैध और कानून की दृष्टि से न्यायसंगत है।

14. उपरोक्त के आलोक में, मेरा विचार है कि याचिकाकर्ता ने कानून के प्रावधानों का पालन नहीं किया है, इसलिए प्रतिवादी प्राधिकारियों द्वारा उठाए गए कदम उचित और कानून के अनुसार हैं और इसमें इस न्यायालय के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। "

11. वर्तमान मामले में, यह स्वीकृत मामला है कि प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा 06.03.2023 को प्रातः 3:16 बजे माल रोका गया था, जबकि चालान संख्या ST/OUT/BMC/365, ई-वे बिल संख्या 4113 1890 1103 का केवल भाग ए भरा गया था और परिवहन के लिए आवश्यक ई-वे बिल का भाग बी नहीं भरा गया था और यह 06.03.2025 को प्रातः 4:28 बजे तैयार किया गया था, अर्थात वाहन रोके जाने के लगभग एक घंटे बाद। इसके अलावा, चालान संख्या ST/OUT/BMC/366, ई-वे बिल संख्या 4113 1891 6631 से पता चलता है कि माल

आगरा से आगरा ले जाया जा रहा था, जबकि माल आगरा से नोएडा लाया गया था, जिसके लिए कोई दस्तावेज उपलब्ध नहीं था।

12. अधिनियम 2017 के नियम 138 में प्रावधान है कि माल की आवाजाही शुरू करने के लिए पूर्ण ई-वे बिल अनिवार्य है, जिसका विवरण निम्नानुसार है:-

"नियम-138. माल की आवाजाही शुरू होने और ई-वे बिल बनाने से पहले दी जाने वाली जानकारी।-

(1) प्रत्येक पंजीकृत व्यक्ति जो पचास हजार रुपये से अधिक मूल्य के माल की आवाजाही करता है -
(i) आपूर्ति के संबंध में; या
(ii) आपूर्ति के अलावा अन्य कारणों से; या
(iii) किसी अपंजीकृत व्यक्ति से आवक आपूर्ति के कारण, ऐसी आवाजाही शुरू होने से पहले, फॉर्म जीएसटी ईडब्ल्यूबी-01 के भाग ए में उक्त माल से संबंधित जानकारी इलेक्ट्रॉनिक रूप से, सामान्य पोर्टल पर प्रस्तुत करेगा।

(2) जहां माल का परिवहन पंजीकृत व्यक्ति द्वारा प्रेषक के रूप में या आपूर्ति के प्राप्तकर्ता द्वारा प्रेषक के रूप में किया जाता है, चाहे वह उसके स्वयं के वाहन से हो या किराये के वाहन से या रेलवे द्वारा या हवाई जहाज द्वारा या जलयान द्वारा, तो उक्त व्यक्ति या प्राप्तकर्ता फॉर्म जीएसटी ईडब्ल्यूबी-01 के भाग बी में सूचना देने के पश्चात सामान्य पोर्टल पर इलेक्ट्रॉनिक रूप से फॉर्म जीएसटी ईडब्ल्यूबी-01 में ई-वे बिल तैयार कर सकता है।

13. इसके अलावा, याचिकाकर्ता के आचरण से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि कर चोरी का इरादा था क्योंकि न केवल पारगमन में माल के साथ ई-वे बिल का भाग बी नहीं था, बल्कि माल आगरा से नोएडा ले जाया जा रहा था, जबकि ई-वे बिल याचिकाकर्ता फर्म द्वारा आगरा से आगरा जारी किया गया था।

14. वर्तमान मामले के तथ्यों में निर्णयों पर भरोसा अलग-अलग है क्योंकि उन मामलों में, लेनदेन अप्रैल, 2018 से पहले हुआ था, जहां उन करदाताओं को लाभ दिया गया था। माल के पारगमन में जाने के बाद विक्रेता के लिए पूरा ई-वे बिल डाउनलोड करना अनिवार्य है। केवल ई-वे बिल का भाग ए डाउनलोड करना और भाग बी न भरना अधिनियम के तहत दायित्व से मुक्त नहीं होगा।

15. हस्तक्षेप का कोई मामला नहीं बनता है।

16. रिट याचिका विफल हो जाती है और इसके द्वारा खारिज की जाती है।

(2025) 4 ILRA 342

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 21.04.2025

माननीय न्यायमूर्ति शेखर बी. सराफ

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. योगेंद्र कुमार श्रीवास्तव

के समक्ष

रिट टैक्स संख्या 1716/2025

मेसर्स एरिना सुपरस्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड ...याचिकाकर्ता

बनाम

भारत संघ एवं अन्य ...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

अमी टंडन, राहुल अग्रवाल, सौम्या श्रीवास्तव

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

ए.एस.जी.आई., सी.एस.सी., धनंजय अवस्थी

सिविल कानून - दिवाला और दिवालियापन संहिता, 2016 - धारा 31 - केंद्रीय माल और सेवा कर अधिनियम, 2017 - धारा 74 (9) - उत्प्रेषण रिट - कॉर्पोरेट दिवालियापन रिज़ॉल्यूशन प्रक्रिया - अनुमोदित रिज़ॉल्यूशन योजना - पूर्व-सीआईआरपी दावों का उन्मूलन - अनुमोदन के बाद की मांगों पर प्रतिबंध।

<u>निर्णय:</u>

याचिकाकर्ता, जो 10.10.2020 से कॉर्पोरेट दिवाला रिज़ॉल्यूशन प्रक्रिया (सीआईआरपी) के अन्तर्गत है, ने वित्तीय वर्ष 2017-18 के लिए सीजीएसटी/यूपीजीएसटी अधिनियम, 2017 की धारा 74(9) के अन्तर्गत 04.02.2025 के एक मूल्यांकन आदेश और मांग नोटिस को चुनौती दी, जो एनसीएलटी द्वारा 19.07.2022 को उसके रेज़ोल्यूशन प्लान को मंजूरी देने के बाद जारी किया गया था। जीएसटी विभाग ने, सीआईआरपी के दौरान नोटिस मिलने और रेज़ोल्यूशन प्रोफेशनल के सामने क्लेम फाइल करने के बाद, अप्रूवल के बाद नए दावे किए। न्यायालय ने माना कि आईबीसी, 2016 की धारा 31, एनसीएलटी की मंजूरी पर अनुमोदित रेज़ोल्यूशन प्लान में शामिल नहीं किए गए सभी पूर्व-सीआईआरपी वैधानिक बकाया को समाप्त कर देती है, जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय के उदाहरणों द्वारा स्थापित किया गया है। आक्षेपित आदेश और नोटिस ने नई देनदारियां लगाकर, आईबीसी के रिज़ॉल्यूशन आवेदकों के लिए क्लीन स्लेट सिद्धांत का उल्लंघन किया। *घनश्याम मिश्रा* और *वैभव गोयल* का हवाला देते हुए, न्यायालय ने मूल्यांकन आदेश और मांग नोटिस को कानूनी रूप से अपोषणीय

अनुवादित

मानते हुए रद्द कर दिया, जिससे रिज़ॉल्यूशन प्रक्रिया में व्यवधानों को मंजूरी के बाद होने वाली रुकावटों से बचाया जा सके।

रिट याचिका स्वीकार की गई; मूल्यांकन आदेश और 04.02.2025 का मांग नोटिस रद्द कर दिया गया।

चर्चा किए गए केस लॉ:

1. *घनश्याम मिश्रा एंड संस (पी) लिमिटेड बनाम एडलवाइस एसेट रिकंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड*, [2021] 126 Taxmann.com 132 (SC) / 166 SCL 237 - रिज़ॉल्यूशन योजना में शामिल नहीं किए गए पूर्व-सीआईआरपी बकाया आईबीसी की धारा 31 के अन्तर्गत NCLT की मंजूरी पर समाप्त हो जाते हैं।

2. *एन.एस. पेपर्स लिमिटेड बनाम यू.ओ.आई.*, रिट टैक्स संख्या 408/2021, (2024) एएचसी 78943 - रिज़ॉल्यूशन योजना के बाद के कर दावे अमान्य हैं; सीआईआरपी अनुमोदन के बाद जारी किए गए मूल्यांकन आदेशों को आईबीसी के क्लीन स्लेट सिद्धांत के विपरीत होने के कारण रद्द कर दिया गया है।

3. *वैभव गोयल और अन्य बनाम आयकर उपायुक्त और अन्य*, सिविल अपील संख्या 49/2022, (2025) एससीसी ऑनलाइन एससी 456 - सीआईआरपी से पहले की अवधि के लिए वैधानिक बकाया, जो रिज़ॉल्यूशन योजना का हिस्सा नहीं है, समाप्त हो गए हैं; अनुमोदन के बाद की मांगें लागू नहीं की जा सकतीं।

4. *एस्सार स्टील इंडिया लिमिटेड के लेनदारों की समिति बनाम सतीश कुमार गुप्ता और अन्य*, [2019] 16 एससीआर 275 - अनुमोदित रिज़ॉल्यूशन योजना रिज़ॉल्यूशन आवेदक के लिए एक क्लीन स्लेट सुनिश्चित करने के लिए नए या अनिर्णीत दावों पर रोक लगाती है।

<u>अवलोकन:</u>

न्यायालय ने पाया कि जीएसटी विभाग ने सीआईआरपी के बारे में सूचित होने और दावे दायर करके भाग लेने के बावजूद, 19.07.2022 को एनसीएलटी की मंजूरी के बाद आक्षेपित मूल्यांकन आदेश और मांग नोटिस जारी किया, जो आईबीसी के ढांचे का उल्लंघन है। *घनश्याम मिश्रा* और *वैभव गोयल* में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले स्पष्ट करते हैं कि रिज़ॉल्यूशन योजना में शामिल नहीं किए गए पूर्व-सीआईआरपी दावे अनुमोदन के बाद समाप्त हो जाते हैं, जिससे रिज़ॉल्यूशन आवेदक के लिए एक क्लीन स्लेट सुनिश्चित होती है। 2017-18 के बकाए के लिए विभाग की अनुमोदन के बाद की कार्रवाई अप्रत्याशित देनदारियों को थोपने का एक अनुचित प्रयास था, जिसने आईबीसी के एक नई शुरुआत के उद्देश्य को कमजोर कर दिया। न्यायालय ने जोर देकर कहा कि इस तरह के दावे रिज़ॉल्यूशन प्रक्रिया को बाधित करते हैं और इन्हें बरकरार नहीं रखा जा सकता।

(माननीय न्यायमूर्ति शेखर बी. सराफ द्वारा निर्णय दिया गया)

याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री राहुल अग्रवाल, सुश्री सौम्या श्रीवास्तव और श्री अमी टंडन तथा भारत संघ की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री नवीन चंद गुप्ता और श्री गोपाल वर्मा को सुना गया।

यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत एक रिट याचिका है, जिसमें रिट-याचिकाकर्ता ने कुछ सहायक राहतों के साथ निम्नलिखित प्रार्थनाएँ मांगी हैं:

"(i) उपायुक्त [प्रतिवादी संख्या 5] द्वारा सीजीएसटी/यूपीजीएसटी अधिनियम, 2017 की धारा 74(9) के अंतर्गत पारित दिनांक 04.02.2025 के आक्षेपित मूल्यांकन आदेश, जिसका संदर्भ संख्या: ZD090225039501M है, को रद्द करने के लिए **उत्प्रेक्षण** या किसी अन्य उपयुक्त रिट के रूप में एक उपयुक्त रिट, आदेश या निर्देश जारी करें, साथ ही वित्तीय वर्ष 2017-2018 से संबंधित याचिकाकर्ता के विरुद्ध सीजीएसटी/यूपीजीएसटी अधिनियम, 2017 की धारा 74 के अंतर्गत पारित दिनांक 04.02.2025 के आक्षेपित आदेश के अनुसरण में जारी आक्षेपित मांग नोटिस को रद्द करें।

(ii) **परमादेश** या किसी अन्य उचित रिट के रूप में एक उचित रिट, आदेश या निर्देश जारी करें, जिसमें प्रतिवादियों को डिमांड नोटिस और 04.02.2025 के आक्षेपित आदेश, जिसका रेफरेंस नंबर: ZD090225039501M है, के तहत याचिकाकर्ता पर लगाए गए टैक्स, ब्याज और पेनल्टी को वसूल न करने का आदेश/निर्देश दिया जाए, जो डिप्टी कमिश्नर [प्रतिवादी नंबर 5] द्वारा याचिकाकर्ता के खिलाफ पारित किया गया है।"

याचिकाकर्ता का मामला यह है कि याचिकाकर्ता 10 अक्टूबर, 2020 को एक कॉर्पोरेट दिवाला रिज़ॉल्यूशन प्रक्रिया (जिसे आगे सीआईआरपी कहा जाएगा) में चला गया। उसी दिन एक रिज़ॉल्यूशन प्रोफेशनल नियुक्त किया गया और उसके बाद राष्ट्रीय कंपनी कानून न्यायाधिकरण (संक्षेप में एनसीएलटी) के समक्ष कार्यवाही जारी रही। प्रक्रिया के अनुसार, लेनदारों को रिज़ॉल्यूशन प्रोफेशनल के समक्ष अपने दावे प्रस्तुत करने के लिए कहा गया। रिज़ॉल्यूशन प्रोफेशनल द्वारा याचिकाकर्ता को/के लिए नोएडा स्थित जी.एस.टी. विभाग को भी विशिष्ट सूचना भेजी गई। मूल्यांकन वर्ष 2017-18 के संबंध में आक्षेपित आदेश प्रतिवादी संख्या 5 द्वारा 4 फरवरी, 2025 को पारित किया गया था। 19.07.2022 को, रिज़ॉल्यूशन योजना को एनसीएलटी द्वारा अनुमोदित किया गया था।

याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री राहुल अग्रवाल ने अपने तर्क को पुष्ट करने के लिए कि एक बार रिज़ॉल्यूशन योजना को एनसीएलटी द्वारा अनुमोदित कर दिए जाने के बाद, जी.एस.टी. विभाग आदेश पारित करके और बकाया राशि नहीं बना सकता है, निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया है, अर्थात **(i) घनश्याम मिश्रा एंड संस (पी) लिमिटेड बनाम एडलवाइस एसेट रिकंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड,** [एससी] [2021] 126 Taxmann.com 132/166 एससीएल 237 (एससी), **(ii) एन.एस. पेपर्स लिमिटेड बनाम भारत संघ और अन्य** [रिट टैक्स संख्या 408/2021, 11 दिसंबर, 2024 को निर्णीत], **(iii) वैभव गोयल और अन्य बनाम**

आयकर उपायुक्त और अन्य [सिविल अपील संख्या 49/2022, 20 मार्च, 2025 को निर्णीत] (एससी) और **(iv) एस्सार स्टील इंडिया लिमिटेड के लेनदारों की समिति बनाम अधिकृत हस्ताक्षरकर्ता के माध्यम से सतीश कुमार गुप्ता और अन्य [2019] 16 एस.सी.आर. 275]।**

यह न्यायालय, रिट टैक्स संख्या 408/2021 [मेसर्स एनएस पेपर्स लिमिटेड और अन्य बनाम भारत संघ सचिव और अन्य के माध्यम से], सर्वोच्च न्यायालय और अन्य उच्च न्यायालयों द्वारा दिए गए निर्णयों की एक श्रृंखला पर विचार करने के बाद, इस प्रकार निर्णय दिया:

"11. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि यदि अधिनियम के अन्तर्गत कार्यवाही सीआईआरपी और संहिता की धारा 14 के अन्तर्गत स्थगन की स्थापना के दौरान शुरू, जारी और समाप्त हो सकती है, तो कृपया निम्नलिखित पर भी विचार किया जा सकता है, क्योंकि इनका इस तथ्य से संबंध है कि आयकर कार्यवाही केवल सीआरआईपी की स्थापना और स्थगन आदेश पारित करने से प्रभावित या समाप्त नहीं होनी चाहिए, जब तक कि कार्यवाही स्पष्ट रूप से संहिता के किसी प्रावधान के साथ असंगत या प्रतिकूल न हो, जो कि यहां मामला नहीं है।

12. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने पर, हमारा विचार है कि प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्क दो कारणों से निराधार हैं। सबसे पहले, 8 मार्च, 2021 के पत्र से यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता ने रिज़ॉल्यूशन योजना के अनुमोदन के संबंध में आयकर अधिकारियों को सूचित किया था। दूसरा, विभाग ने स्वयं रिज़ॉल्यूशन प्रोफेशनल के समक्ष दावा दायर किया था, और तदनुसार, यह तर्क कि विभाग को आईबीसी कार्यवाही की जानकारी नहीं थी, बेबुनियाद है।

13. यह मानते हुए भी कि विभाग को कार्यवाही की जानकारी नहीं थी, कानून बहुत स्पष्ट है जैसा कि ऊपर उद्धृत निर्णयों में बताया गया है। रिज़ॉल्यूशन योजना स्वीकृत होने के बाद, रिज़ॉल्यूशन आवेदक पर नए दावों का बोझ नहीं डाला जा सकता।

14. यह तर्क कि किसी मूल्यांकन को पूर्व अवधि के लिए लंबित रखा गया है और रिज़ॉल्यूशन योजना के अनुमोदन के बाद उसका परिमाणन किया जाता है, एक कुतर्कपूर्ण तर्क है। यदि यह तर्क स्वीकार कर लिया जाता है, तो सभी प्राधिकारी रिज़ॉल्यूशन योजना के पूरा होने तक मूल्यांकन/पुनर्मूल्यांकन को लंबित रखने और उसके बाद उसे समाप्त करके सफल रिज़ॉल्यूशन आवेदक पर एक अज्ञात भार डाल सकते हैं। ऐसी कार्रवाई को स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि यह संहिता के अन्तर्गत प्रदत्त अधिस्थगन के मूल सिद्धांतों के लिए अभिशाप होगा। कानून को इस तरह नहीं पढ़ा जा सकता कि अवरोधों और अवरोधों का निर्माण करके उसके प्रवाह में बाधा डालकर संहिता के मूल ढांचे का उल्लंघन किया जाए- संहिता का अंतर्निहित सिद्धांत रिज़ॉल्यूशन आवेदक को एक नई शुरुआत देना है। रिज़ॉल्यूशन योजना के अनुमोदन के बाद लगाया जाने वाला कोई भी नया दायित्व स्वाभाविक रूप से और स्पष्ट रूप से अवैध होगा और संहिता की लक्ष्मण रेखा से परे होगा।

15. उपरोक्त के आलोक में, 28 अप्रैल, 2021 का आक्षेपित मूल्यांकन आदेश निरस्त और अपास्त किया जाता है। यदि विभाग द्वारा कोई दंडात्मक कार्यवाही शुरू की गई है, तो रिट याचिकाकर्ता कानून के अनुसार उसे चुनौती देने के लिए स्वतंत्र होगा।"

उपरोक्त दृष्टिकोण को सर्वोच्च न्यायालय ने **वैभव गोयल एवं अन्य बनाम आयकर उपायुक्त एवं अन्य** [सिविल अपील संख्या 49/2022, 20 मार्च, 2025 को निर्णीत] (SC) में पुष्ट किया है। संबंधित पैराग्राफ नीचे दिए गए हैं:

"8. इस न्यायालय द्वारा कानून की घोषणा के मद्देनजर, केंद्र सरकार को देय वैधानिक बकाया सहित सभी बकाया, यदि रिज़ॉल्यूशन योजना का हिस्सा नहीं हैं, तो समाप्त हो जाएँगे और ऐसे बकाया के संबंध में उस तिथि से पहले की अवधि के लिए कोई कार्यवाही जारी नहीं रखी जा सकेगी, जिस तिथि को न्यायनिर्णायक प्राधिकारी आईबी संहिता की धारा 31 के अन्तर्गत अपनी स्वीकृति प्रदान करता है। इस मामले में, कर निर्धारण वर्ष 2012-13 और 2013-14 के लिए सीडी के आयकर बकाया स्वीकृत रिज़ॉल्यूशन योजना का हिस्सा नहीं थे। इसलिए, धारा 31 की उपधारा (1) के मद्देनजर, जैसा कि उपरोक्त निर्णय में इस न्यायालय द्वारा व्याख्या की गई है, कर निर्धारण वर्ष 2012-13 और 2013-14 के लिए सीडी द्वारा देय प्रथम प्रतिवादी के बकाया समाप्त हो जाते हैं।

...

12. एक बार जब रिज़ॉल्यूशन योजना एनसीएलटी द्वारा अनुमोदित हो जाती है, तो उसमें कोई भी विलंबित दावा शामिल नहीं किया जा सकता है जो पहले नहीं किया गया था। यदि ऐसी मांगों पर विचार किया जाता है, तो अपीलकर्ता सीडी के व्यवसाय को फिर से शुरू करने की स्थिति में नहीं होंगे। इस पहलू पर, हम **एस्सार स्टील इंडिया लिमिटेड के लेनदारों की समिति** के मामले में इस न्यायालय के निर्णय के पैराग्राफ 107 में कही गई बात पर ध्यान दे सकते हैं [सिविल अपील संख्या 49/2022]। पैराग्राफ 107 इस प्रकार है:

"107. इसी कारण से, एनसीएलएटी का आक्षेपित निर्णय [*स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक बनाम सतीश कुमार गुप्ता,* 2019 एससीसी ऑनलाइन एनसीएलएटी 388] यह मानते हुए कि रिज़ॉल्यूशन प्रोफेशनल और न्यायनिर्णायक प्राधिकरण/अपीलीय न्यायाधिकरण द्वारा गुण-दोष के आधार पर तय किए गए दावों के अलावा अन्य दावे भी संहिता की धारा 60(6) के अनुसार एक उपयुक्त मंच द्वारा तय किए जा सकते हैं, संहिता की धारा 31 के औचित्य के विरुद्ध भी है। **एक सफल रिज़ॉल्यूशन आवेदक को उसके द्वारा प्रस्तुत रिज़ॉल्यूशन योजना स्वीकार किए जाने के बाद अचानक "अनिश्चित" दावों का सामना नहीं करना चाहिए क्योंकि यह एक हाइड्रा हेड के उभरने के समान होगा जो एक संभावित रिज़ॉल्यूशन आवेदक द्वारा देय राशि को अनिश्चितता में डाल देगा जो कॉर्पोरेट देनदार के व्यवसाय को सफलतापूर्वक टेक ओवर कर लेगा। सभी दावों को रिज़ॉल्यूशन प्रोफेशनल के समक्ष प्रस्तुत और तय किया जाना चाहिए ताकि एक संभावित रिज़ॉल्यूशन आवेदक को ठीक-ठीक पता हो कि कितना भुगतान करना है ताकि वह कॉर्पोरेट देनदार के व्यवसाय को टेक ओवर कर सके और चला सके। यह सफल रिज़ॉल्यूशन आवेदक जैसा कि हमने ऊपर बताया है, यह एक नए सिरे से किया गया है।** इन कारणों से, इस मामले में भी एनसीएलएटी के फैसले को रद्द किया जाना चाहिए।"

(जोर दिया गया)

13. कर निर्धारण वर्ष 2012-13 और 2013-14 के संबंध में प्रथम प्रतिवादी द्वारा की गई अतिरिक्त मांगें अनुमोदित रिज़ॉल्यूशन योजना के कार्यान्वयन में बाधा उत्पन्न करेंगी और अपीलकर्ता रिज़ॉल्यूशन योजना के संचालन को पुनः शुरू नहीं कर पाएंगे।

14. इसलिए, हम मानते हैं कि कर निर्धारण वर्ष 2012-13 और 2013-14 के संबंध में प्रथम प्रतिवादी द्वारा रिज़ॉल्यूशन योजना के विरुद्ध उठाई गई मांगें अमान्य हैं और उन्हें लागू नहीं किया जा सकता। हम एनसीएलटी और एनसीएलएटी के आक्षेपित आदेशों को रद्द करते हैं और तदनुसार अपील स्वीकार करते हैं।"

सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित उपरोक्त कानून के मद्देनजर, हमारा मानना है कि यह सिद्धांत बिल्कुल स्पष्ट है कि एक बार रिज़ॉल्यूशन योजना एनसीएलटी द्वारा अनुमोदित हो जाने के बाद, अन्य सभी लेनदारों को बाद में अपने दावे उठाने से रोक दिया जाता है, क्योंकि इससे संपूर्ण रिज़ॉल्यूशन प्रक्रिया बाधित होगी। सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से ऊपर बताए अनुसार ही माना है।

तदनुसार, हमें इस मामले को लंबित रखने का कोई कारण नहीं मिलता है और तदनुसार, उपायुक्त [प्रतिवादी संख्या 5] द्वारा सीजीएसटी/यूपीजीएसटी अधिनियम, 2017 की धारा 74(9) के अन्तर्गत पारित आक्षेपित मूल्यांकन आदेश दिनांक 04.02.2025, संदर्भ संख्या: ZD090225039501M, के साथ-साथ याचिकाकर्ता के खिलाफ सीजीएसटी/यूपीजीएसटी अधिनियम, 2017 की धारा 74 के अन्तर्गत पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 04.02.2025 के अनुसरण में जारी आक्षेपित मांग नोटिस जो याचिकाकर्ता के खिलाफ वित्तीय वर्ष 2017-2018 से संबंधित से संबंधित है, रद्द किए जाते हैं।

तदनुसार, रिट याचिका **स्वीकार** की जाती है।

(2025) 4 ILRA 346

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 28.04.2025

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लावनिया

के समक्ष

आवेदन अन्तर्गत धारा 482 संख्या 1133/2025

जावेद अहमद @ जावेद एवं अन्य **...आवेदकगण**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...विपक्षीगण**

अनधिकृत

आवेदकों के अधिवक्ता:
सज्जाद हुसैन, ईशान गर्ग, प्राची आर्या

विपरीत पक्षों के अधिवक्ता:
जी.ए., मोहम्मद सऊद खान, प्राची आर्या

(ए) आपराधिक कानून - न्यायालय के साथ धोखाधड़ी - आपराधिक कार्यवाही को रद्द करना - महत्वपूर्ण तथ्यों को छिपाना और आवश्यक रूप से घायल पीड़ितों को पक्षकार न बनाना - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 482 और 362 - जहां धारा 482 सीआरपीसी के अन्तर्गत आदेश धोखाधड़ी से प्राप्त किया जाता है, धारा 362 के अन्तर्गत रोक के बावजूद इसे वापस लिया जा सकता है - न्यायालय के साथ धोखाधड़ी न्यायिक कार्यवाही को निष्प्रभावी बनाती है - घायल पक्षों को जानबूझकर पक्षकार न बनाना कदाचार और प्रक्रिया का दुरुपयोग है - छिपाने और धोखाधड़ी के आधार पर धारा 482 सीआरपीसी के अन्तर्गत आवेदन कायम नहीं रखा जा सकता है और इसमें पारित आदेश लागत के साथ वापस लिया जा सकता है। (पैरा - 3,6,8,14,24,25,26)
(बी) शब्द या वाक्यांश - "एक्टस क्यूरीए नेमिनम ग्रेवबिट" - न्यायालय का कार्य किसी के प्रति पूर्वाग्रह नहीं रखेगा और ऐसी स्थिति में, न्यायालय के कार्य द्वारा किसी पक्ष के साथ की गई गलती को ठीक करना न्यायालय का दायित्व है - "धोखाधड़ी हर गंभीर कार्यवाही को निष्प्रभावी कर देती है" - तकनीकी आधार पर धोखेबाज द्वारा कोई अधिकार का दावा नहीं किया जा सकता है। (पैरा - 15, 23)

(सी) अभ्यास और प्रक्रिया - अधिवक्ता का कर्तव्य न्यायालय की निष्पक्ष रूप से सहायता करना है - भौतिक तथ्यों का खुलासा न करना गंभीर पेशेवर कदाचार है - चेतावनी के साथ माफी स्वीकार की जाती है। (पैरा 24 (सी), 31)

धारा 482 सीआरपीसी के अन्तर्गत आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने का अंतिम आदेश समझौते के आधार पर पारित किया गया था - समझौता करने से इनकार करने वाले सभी घायल व्यक्तियों को शामिल किए बिना - राज्य द्वारा न्यायालय पर धोखाधड़ी का आरोप लगाते हुए वापस लेने के लिए आवेदन दायर किया गया। **(पैरा - 2,3,6,7,8)**

निर्णय: - यह न्यायालय के साथ धोखाधड़ी करने का मामला है। वर्तमान आवेदन लागत के साथ स्वीकार किया जाना चाहिए। राज्य द्वारा दायर आदेश को वापस लेने के लिए आवेदन स्वीकार किया गया। धारा 482 सीआरपीसी के अन्तर्गत आवेदन को उसके मूल नंबर पर बहाल किया गया। सत्र परीक्षण संख्या 110/2017 को उसके मूल नंबर पर बहाल किया गया। आवेदकों पर लागत लगाई गई। **(पैरा -25,26,28)**

धारा 482 सीआरपीसी के अन्तर्गत आवेदन को उपयुक्त न्यायालय के समक्ष जल्द से जल्द नए सिरे से सूचीबद्ध करने का निर्देश दिया गया। (ई-7)

उद्धृत वादों की सूची: -

1. श्रीमती सूरज देवी बनाम प्यारे लाल एवं अन्य, (1981) 1 एससीसी 500
2. होटल बालाजी एवं अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य एवं अन्य, एआईआर 1993 एससी 1048
3. पंजाब राज्य बनाम दविंदर पाल सिंह भुल्लर (2011) 14 एससीसी 770
4. गणेश पटेल बनाम उमाकांत ररोरिया, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 2050
5. बुधिया स्वैन बनाम गोपीनाथ देब (1999) 4 एससीसी 396
6. मुकेश उपाध्याय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2019:एएचसी:42284
7. कुशा दुरुका बनाम ओडिशा राज्य, (2024) 4 एससीसी 432
8. हुसैन बनाम ग्राम पंचायत रूण पंचायत समिति मुंडवा, 2025 एससीसी ऑनलाइन राज 271
9. एस.पी. चेंगलवरैया नायडू बनाम जगन्नाथ और अन्य, (1994) 1 एससीसी 1,
10. राम चंद्र सिंह बनाम सावित्री देवी, (2003) 8 एससीसी 319,
11. जय नारायण परसरामपुरिया बनाम पुष्पा देवी सराफ (2006) 7 एससीसी 756,
12. मधुकर सदभा शिवार्क मधुकर सदभा शिवारकर बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2015) 6 एससीसी 557,
13. जल विद्युत निगम बनाम राज कुमार राजिंदर सिंह, (2019) 14 एससीसी 449

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया द्वारा निर्णय दिया गया)

(आई.ए. संख्या 02/2025 पर आदेश, आदेश वापस लेने के लिए आवेदन)

1. आवेदकों की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री सज्जाद हुसैन और राज्य-विपरीत पक्ष की ओर से विद्वान ए.जी.ए. सुश्री अंकिता त्रिपाठी को सुना गया।

2. यह राज्य द्वारा इस न्यायालय द्वारा धारा 482 सीआरपीसी के अन्तर्गत अपनी अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए दिनांक 12.02.2025 को पारित अंतिम आदेश को वापस लेने के लिए दायर किया गया आवेदन है, जिसके अन्तर्गत इस न्यायालय ने पक्षों अर्थात आवेदकों अर्थात् जावेद अहमद उर्फ जावेद पुत्र कुर्बान अली, सरताज पुत्र कुर्बान अली, मो. जफर उर्फ जाफर पुत्र मो. नफीस और हमीदन उर्फ हमीदा पत्नी कुर्बान अहमद और विपरीत पक्ष संख्या 2 अर्थात् मोहम्मद नसीम उर्फ नसीम पुत्र छुटकऊ के बीच हुए समझौते के आधार पर संपूर्ण आपराधिक कार्यवाही को रद्द कर दिया था।

3. यह आवेदन इस आधार पर दायर किया गया है कि आवेदकों ने दिनांक 12.02.2025 के अंतिम आदेश को प्राप्त करने के उद्देश्य से न्यायालय के साथ धोखाधड़ी की है, जिसके अन्तर्गत इस न्यायालय ने मुकदमा अपराध संख्या 86/2017, धारा 323, 504, 506, 452, 308, 324, 325, 304, 147, 148 आईपीसी,

थाना देवा, जिला- बाराबंकी से उत्पन्न आपराधिक कार्यवाही को रद्द कर दिया था, जो सत्र परीक्षण संख्या 110/2017 (राज्य बनाम कुर्बान और अन्य) के रूप में लंबित थे, जब दिनांक 12.02.2025 को जारी आदेश पारित किया गया था।

4. उपर्युक्त को सिद्ध करने के लिए, यह कहा गया है कि आवेदकों ने ***जावेद अहमद उर्फ जावेद एवं 3 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, इसके प्रमुख सचिव गृह विभाग एवं 3 अन्य*** के माध्यम से ***धारा 482 के अन्तर्गत आवेदन संख्या 11901/2024*** के माध्यम से इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया था और इस न्यायालय द्वारा दिनांक 03.01.2025 के आदेश द्वारा ट्रायल कोर्ट द्वारा समझौते को सत्यापित कराने के प्रयोजनार्थ इसका निस्तारण किया गया था।

5. यह भी कहा गया है कि इस न्यायालय के आदेश के अनुपालन में, ट्रायल कोर्ट ने 27.01.2025 को समझौते को सत्यापित किया।

6. यह भी कहा गया है कि दिनांक 27.01.2025 की सत्यापन रिपोर्ट के अवलोकन से यह संकेत मिलता है कि घायल व्यक्ति अर्थात् मजरूब, मो. सलमान, मुफिदुल, महबूब, शबनम बानो और नसीरा (मृतक की मां) ने समझौता करने से इनकार कर दिया था और यह तथ्य जानबूझकर या अनजाने में इस न्यायालय के संज्ञान में नहीं लाया गया था, लेकिन तथ्य यह है कि यह तथ्य श्री सज्जाद हुसैन, एडवोकेट, विद्वान अधिवक्ता द्वारा इस न्यायालय के संज्ञान में नहीं लाया गया था, जिन्होंने आवेदकों के लिए धारा 482 सीआरपीसी का आवेदन तैयार किया था। दर्शाई गई सत्यापन रिपोर्ट नीचे उद्धृत है:

"मा० उच्च न्यायालय खण्डपीठ लखनऊ में योजित प्रार्थना पत्र U/S 482 No-11901/2024 जावेद आदि V/S सरकार आदि में पारित आदेश दिनांक-3/01/2025 के अनुपालन में न्यायालय के समक्ष उपस्थित होकर प्रथम पक्ष मोहम्मद नसीम को उनके अधिवक्ता श्री विनीत कुमार द्वारा पहचान पर एवं फोटो को एवं द्वितीय पक्ष अभियुक्तगण जावेद अहमद उर्फ जावेद, सरताज, हमीदन व मो. जफर को उनके अधिवक्ता श्री आदित्य कुमार द्वारा पहचान पत्र एवं फोटो को सत्यापित किया। एवं यह भी उल्लेखनीय है कि <u>मजरुब, मो० सलमान, मुफीदुल, महबूब, शबनम बानो एवं नसीरा (मृतक की मां) द्वारा शपथ पत्र दाखिल कर सुलह समझौता के तथ्य से इंकार किया।</u>

तदनुसार प्रथम पक्ष नसीम व द्वितीय पक्ष अभियुक्तगण जावेद अहमद उर्फ़ जावेद, सरताज, हमीदन व मो० जफर के सुलह समझौता को तस्दीक किया जाता है।"

7. यह भी कहा गया है कि संबंधित घटना में, जिसमें सूचनादाता सलमा द्वारा अभियुक्तों/आवेदकों के विरुद्ध दिनांक 11.02.2017 को, तौफीक (वादी का भाई) पर हमला करने और उसे गंभीर चोटें पहुँचाने के आरोप में, जिनकी चोटों के कारण मृत्यु हो गई, एफआईआर दर्ज की गई थी, और अन्य घायल व्यक्तियों, महबूब (वादी का देवर), शन्नो (वादी की बहन), मोहम्मद सलमान (वादी का भतीजा), मुफिदुल (वादी की भाभी),

शन्नो (वादी की बहन) और मोहम्मद नसीम (वादी का पति) को भी दोषी ठहराया गया था। हालाँकि, इन सभी पीड़ितों को न तो अभियुक्त व्यक्तियों/आवेदकों द्वारा धारा 482 सीआरपीसी के अन्तर्गत आवेदन संख्या 11901/2024 (जावेद अहमद @ जावेद और 3 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में पक्षकार बनाया गया था और न ही धारा 482 सीआरपीसी के अन्तर्गत वर्तमान आवेदन संख्या 1133/2025 में पक्षकार बनाया गया था।

8. यह भी कहा गया है कि आवेदकों ने जानबूझकर सभी पीड़ितों को पक्षकारों की श्रेणी में शामिल नहीं किया, जिससे न्यायालय को गुमराह किया गया, हालांकि सभी पीड़ित आवश्यक पक्ष थे/हैं, जो उस घटना में घायल हुए थे, जिसके लिए एसटी संख्या 110/2017 (राज्य सरकार बनाम कुर्बान और अन्य) की कार्यवाही सीएनआर संख्या UPBB010023332017 के रूप में पंजीकृत है, जो मुकदमा अपराध संख्या 86/2017 धारा 323, 504, 506, 452, 308, 324, 325, 204, 147 और 148 आईपीसी पुलिस स्टेशन देवा जिला- बाराबंकी के अन्तर्गत अभियुक्त व्यक्तियों/आवेदकों के खिलाफ लंबित थी।

9. यह भी कहा गया है कि मामले के इस दृष्टिकोण में दिनांक 12.02.2025 का आदेश वापस लेने योग्य है।

10. दिनांक 12.02.2025 के अंतिम आदेश को वापस लेने के राज्य के अनुरोध का विरोध करते हुए, श्री सज्जाद हुसैन, एडवोकेट, आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने धारा 482 सीआरपीसी के अन्तर्गत आवेदन में धारा 362 सीआरपीसी पर भरोसा किया और उसी के आधार पर, उन्होंने कहा कि धारा 482 सीआरपीसी के अन्तर्गत शक्ति के प्रयोग में पारित अंतिम आदेश को वापस नहीं लिया जा सकता है।

11. यह इंगित करना उचित होगा कि श्री सज्जाद हुसैन, एडवोकेट उपरोक्त तथ्यों पर विवाद नहीं कर सकते थे, जिसमें यह भी शामिल था कि घायलों अर्थात् मजरूब, मो. सलमान, मुफिदुल, महबूब, शबनम बानो और नसीरा (मृतक की मां) को धारा 482 सीआरपीसी के अन्तर्गत आवेदन में पक्षकार नहीं बनाया गया था, साथ ही यह भी कि इन घायल व्यक्तियों ने आवेदकों के साथ समझौता करने से इनकार कर दिया।

12. पूर्वोक्त पर विचार किया गया और अभिलेखों का अवलोकन किया गया।

13. दिनांक 12.02.2025 के अंतिम आदेश को वापस लेने के लिए वर्तमान आवेदन के निस्तारण के प्रयोजनार्थ, यह न्यायालय आवेदकों द्वारा धारा 482 सीआरपीसी के अंतर्गत प्रस्तुत आवेदन पर ध्यान देना उचित समझता है, जिसे श्री सज्जाद हुसैन, अधिवक्ता द्वारा प्रारूपित और हस्ताक्षरित किया गया है, जिसे नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:-

"धारा 482 सीआरपीसी के अंतर्गत आवेदन संख्या 2025

(अब धारा 528 बीएनएसएस 2023 के अंतर्गत)

1. जावेद अहमद उर्फ जावेद पुत्र कुर्बान अली, उम्र लगभग 52 वर्ष, निवासी सैदनपुर, सलदानपुर, बाराबंकी 225206

2. सरताज पुत्र कुर्बान अली, निवासी लालापुर, उम्र लगभग 30 वर्ष, दीवान, डाकघर: देवा शरीफ, जिला: बाराबंकी 225301

3. मो. जफर उर्फ जाफर पुत्र मो. नफीस, उम्र लगभग 27 वर्ष, निवास: वीटीसी: सिपाहिया, डाकघर: देवा शरीफ, जिला: बाराबंकी 225301

4. हमीदन उर्फ हमीदा पत्नी कुर्बान अहमद, उम्र लगभग 63 वर्ष, निवासी: लालापुर, देवां, डाकघर: देवा शरीफ, जिला: बाराबंकी 225301

.....आवेदक

बनाम

1. उत्तर प्रदेश राज्य, अपने प्रमुख सचिव, गृह विभाग, सिविल सचिवालय, हजरतगंज, लखनऊ उत्तर प्रदेश के माध्यम से

2. मोहम्मद नसीम उर्फ नसीम पुत्र चुटकऊ निवासी: सिपाहिया, थाना देवा, जिला बाराबंकी

.....विपक्षी

धारा 482 सीआरपीसी (528 बीएनएसएस) के अंतर्गत आवेदन

सेवा में,

माननीय मुख्य न्यायाधीश एवं उनके साथ आए न्यायाधीश/न्यायमूर्ति, उच्च न्यायालय इलाहाबाद लखनऊ पीठ, लखनऊ

आवेदकगण,अत्यंत सम्मानपूर्वक प्रकट करते हैं:

1. यह कि वर्तमान मामला सीबीआई/भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम/ईडी/एनआरएचएम घोटाला/जीपीएफ घोटाला/एमपी/एमएलए आदि से संबंधित मामलों से संबंधित नहीं है।

2. यह कि वर्तमान याचिका इस माननीय न्यायालय के समक्ष चार्जशीट संख्या ए 51/17 और संज्ञान आदेश दिनांक 05.05.2017, समन आदेश दिनांक 10.05.2017 के साथ-साथ संपूर्ण कार्यवाही एसटी संख्या 110/2017 (राज्य सरकार बनाम कुर्बान व अन्य) को रद्द करने के लिए दायर की जा रही है, जो सीएनआर संख्या UPBB010023332017 के रूप में पंजीकृत है, जो मुकदमा अपराध संख्या 86/2017 अंतर्गत धारा 323,504,506,452,308,324,325,304,147 और 148 आईपीसी पुलिस स्टेशन देवा जिला बाराबंकी से उत्पन्न हुई है, न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए सत्यापित समझौते के संदर्भ में अतिरिक्त जिला और सत्र न्यायाधीश बाराबंकी के समक्ष लंबित है।

अनुवादित

3. यह कि इससे पहले आवेदकों ने आवेदन अंतर्गत धारा 482 (528 बीएनएसएस) संख्या 11901/2024 (जावेद अहमद @ जावेद बनाम राज्य उत्तर प्रदेश और अन्य) के माध्यम से चार्जशीट संख्या ए 51/17 और संज्ञान आदेश दिनांक 05.05.2017, समन आदेश दिनांक 10.05.2017 के साथ-साथ संपूर्ण कार्यवाही एसटी संख्या 110/2017 (राज्य सरकार बनाम कुर्बान व अन्य), जो सीएनआर संख्या UPBB010023332017 के रूप में पंजीकृत है, जो मुकदमा अपराध संख्या 86/2017 अंतर्गत धारा 323,504,506,452,308,324,325,304,147 और 148 आईपीसी पुलिस स्टेशन देवा जिला बाराबंकी से उत्पन्न हुई है, को रद्द करने के लिए इस माननीय न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है, जो समझौते के संदर्भ में अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश बाराबंकी के समक्ष लंबित है, माननीय न्यायालय ने आवेदकों को समझौता सत्यापन के लिए ट्रायल कोर्ट के समक्ष अपील करने के निर्देश के साथ आवेदन का निस्तारण किया है और आवेदकों को समझौता सत्यापन के बाद इस माननीय न्यायालय का दरवाजा खटखटाने की स्वतंत्रता दी है। माननीय न्यायालय के आदेश की प्रति 03.01.2025 को आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 11901/2024 (जावेद अहमद @ जावेद और 3 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य अपने प्रमुख सचिव और 3 अन्य के माध्यम से) में इस आवेदन के साथ अनुलग्नक संख्या 1 के रूप में संलग्न है।

4. यह कि माननीय उच्च न्यायालय के दिनांक 03.01.2025 के आदेशानुसार आवेदकगण विपक्षी संख्या 4 के साथ विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुए, जिसने समस्त विधिक प्रक्रिया के पश्चात् मूल समझौता विलेख का सत्यापन किया तथा दिनांक 27.01.2025 को अपनी सत्यापन रिपोर्ट तैयार की। अवलोकनार्थ, सत्यापन रिपोर्ट की प्रमाणित प्रति तथा समझौता विलेख की प्रमाणित प्रति सामूहिक रूप से अनुलग्नक संख्या 2 के रूप में संलग्न है।

5. यह कि आरोप पत्र दिनांक 11.04.2017, संज्ञान आदेश दिनांक 05.05.2017 एवं समन आदेश दिनांक 10.05.2017 की प्रमाणित प्रति इस आवेदन के साथ अनुलग्नक संख्या 3 के रूप में संलग्न है।

6. यह कि अब अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश बाराबंकी के समक्ष लंबित सीएनआर संख्या UPBB010023332017 के रूप में पंजीकृत एसटी संख्या 110/2017 (राज्य सरकार बनाम कुर्बान एवं अन्य) की कार्यवाही जारी रखने का कोई सार्थक उद्देश्य नहीं है।

7. यह कि जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, दोनों पक्ष पहले ही विवाद सुलझा चुके हैं और मामले को लंबा नहीं खींचना चाहते हैं, इसलिए समझौता विलेख पहले ही प्राप्त हो चुका है।

8. यह कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ग्लेन सिंह बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य 2012 (एससीसी) सीआरएल लॉ जर्नल 4934 में कहा गया था, "54. जहाँ उच्च न्यायालय किसी आपराधिक कार्यवाही को इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए रद्द करता है कि अपराधी और पीड़ित के बीच विवाद सुलझ गया है, हालाँकि प्रस्ताव समझौता योग्य नहीं हैं, वह ऐसा इसलिए करता है क्योंकि उसकी राय में, आपराधिक कार्यवाही जारी रखना

अनुवादित

व्यर्थ होगा और मामले में न्याय की माँग है कि पक्षों के बीच विवाद समाप्त हो जाए और शांति बहाल हो जाए, न्याय के उद्देश्यों की सुरक्षा ही अंतिम मार्गदर्शक कारक है। निस्संदेह, अपराध ऐसे कार्य हैं जिनका जनता पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है और जिनमें गलत कार्य शामिल होते हैं जो समाज की भलाई को गंभीर रूप से खतरे में डालते हैं और अपराधी को केवल इसलिए छोड़ना सुरक्षित नहीं है क्योंकि उसने और पीड़ित ने विवाद को सौहार्दपूर्ण ढंग से सुलझा लिया है या पीड़ित को मुआवजा दे दिया गया है, फिर भी कुछ अपराधों को न्यायालय की अनुमति से या उसके बिना, कानून में समझौता योग्य बनाया गया है। हत्या, बलात्कार, डकैती आदि जैसे गंभीर अपराधों के संबंध में; या भारतीय दंड संहिता के अन्तर्गत मानसिक विकृति के अन्य अपराध या भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम जैसे विशेष क़ानूनों के अन्तर्गत नैतिक पतन के अपराध या लोक सेवकों द्वारा उस पद पर कार्य करते हुए किए गए अपराधों में, अपराधी और पीड़ित के बीच समझौते को कोई कानूनी मान्यता नहीं मिल सकती। हालाँकि, कुछ अपराध जो मुख्यतः और अत्यधिक रूप से दीवानी प्रकृति के होते हैं, जैसे कि दीवानी, व्यापारिक, वाणिज्यिक, वित्तीय, साझेदारी या ऐसे ही अन्य लेन-देन से उत्पन्न हुए हों या विवाह से उत्पन्न अपराध, विशेष रूप से दहेज आदि से संबंधित हों या पारिवारिक विवाद जहाँ मूलतः पीड़ित को नुकसान पहुँचा हो और अपराधी और पीड़ित ने आपस में सभी विवादों को सौहार्दपूर्ण ढंग से सुलझा लिया हो, इस तथ्य के बावजूद कि ऐसे अपराधों को समझौता योग्य नहीं बनाया गया है, उच्च न्यायालय अपनी अंतर्निहित शक्ति के ढांचे के भीतर, आपराधिक कार्यवाही या आपराधिक शिकायत या प्राथमिकी को रद्द कर सकता है यदि वह संतुष्ट हो कि ऐसे बयान के आधार पर, अपराधी के दोषी ठहराए जाने की कोई संभावना नहीं है और आपराधिक कार्यवाही को रद्द न करने से न्याय का हनन होगा और न्याय का उद्देश्य विफल हो जाएगा। उपरोक्त सूची उदाहरणात्मक है और संपूर्ण नहीं है। प्रत्येक मामला अपने तथ्यों पर निर्भर करेगा और कोई निश्चित श्रेणी निर्धारित नहीं की जा सकती।

9. न्याय के हित में उपर्युक्त आपराधिक कार्यवाही माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ज्ञान सिंह बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य 2012 (एससीसी) क्रिमिनल लॉ जर्नल 33 में दिए गए निर्णयों के आलोक में रद्द किए जाने योग्य है; शिजी एवं अन्य बनाम राधिका एवं अन्य मनु/एससी/1341/20011 नरिंदर सिंह बनाम पंजाब राज्य (2014) 6 एससीसी 466: योगेंद्र यादव बनाम झारखंड राज्य (2014) 9 एससीसी 653, परबतभाई दाहिर @ परबतभाई, भीमसिंह भाई करमूर एवं अन्य बनाम गुजरात राज्य (2017) 9 एससीसी 641।

10. आवेदक के पास सीआरपीसी की धारा 482 (528 बीएनएसएस) के अन्तर्गत यह आवेदन दायर करने के अलावा कोई उपाय उपलब्ध नहीं है।

<u>प्रार्थना</u>

इसलिए विनम्रतापूर्वक प्रार्थना की जाती है कि यह माननीय न्यायालय सीएनआर संख्या UPBB010023332017 के रूप में पंजीकृत एसटी संख्या 110/2017 (राज्य सरकार बनाम कुर्बान और अन्य) की संपूर्ण कार्यवाही को रद्द करने की कृपा करे, जो मुकदमा अपराध संख्या 86/2017 यू/एस 323,504,506,452,308,324,325,304,147 और 148 आईपीसी पुलिस स्टेशन देवा जिला-बाराबंकी से उत्पन्न हुई है, जो विद्वान ट्रायल कोर्ट द्वारा तैयार समझौता सत्यापन रिपोर्ट दिनांक 27.01.2025 के आधार पर अपर

जिला एवं सत्र न्यायाधीश बाराबंकी के समक्ष लंबित है, न्याय के हित में माननीय उच्च न्यायालय के संबंधित निर्देश पर धारा 482 के अन्तर्गत आवेदन संख्या -11901/2024 (जावेद अहमद @ जावेद और 3 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य अपने प्रमुख सचिव और 3 अन्य के माध्यम से) में पारित किया। सत्यापन रिपोर्ट की प्रमाणित प्रति के साथ समझौता विलेख की प्रमाणित प्रति सामूहिक रूप से इस आवेदन के साथ अनुलग्नक संख्या 2 के रूप में संलग्न है।

न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु माननीय न्यायालय द्वारा मामले की परिस्थितियों के अनुसार उचित समझे जाने वाले किसी अन्य आदेश या निर्देश को भी पारित किया जा सकता है।

14. इसमें कोई संदेह नहीं है कि धारा 362 सीआरपीसी के अंतर्गत अंतिम आदेश को वापस नहीं लिया जा सकता। हालाँकि, कुछ परिस्थितियों में अंतिम आदेश को वापस लिया जा सकता है, और इसका अनुमान नीचे दिए गए निर्णयों में की गई टिप्पणियों से लगाया जा सकता है।

15. निर्णयों को संदर्भित करने से पहले, *"एक्टस क्यूरी नेमिनम ग्रेवबिट"* कहावत का उल्लेख करना उचित होगा, जो यह दर्शाता है कि न्यायालय के कार्य से किसी को भी कोई नुकसान नहीं होगा और ऐसी स्थिति में, न्यायालय का दायित्व है कि वह अपने कार्य द्वारा किसी पक्ष के साथ किए गए अन्याय को दूर करे।

16. **श्रीमती सूरज देवी बनाम प्यारे लाल एवं अन्य (1981) 1 एससीसी 500** के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 362 सीआरपीसी के अंतर्गत निर्दिष्ट "लिपिकीय या अंकगणितीय त्रुटि" शब्द पर ध्यान दिया और उसके संबंध में निम्नलिखित टिप्पणी की गई:-

"लिपिकीय या अंकगणितीय त्रुटि न्यायालय की आकस्मिक चूक या चूक के कारण हुई त्रुटि है। यह उस बात का प्रतिनिधित्व करती है जिसे न्यायालय कभी कहना नहीं चाहता था। यह रिकॉर्ड पर स्पष्ट त्रुटि है और इसकी खोज के लिए तर्क या विवाद पर निर्भर नहीं है। अंकगणितीय त्रुटि गणना की गलती है, और लिपिकीय त्रुटि लेखन या टाइपिंग में गलती है। मास्टर कंस्ट्रक्शन कंपनी (पी) लिमिटेड बनाम उड़ीसा राज्य [एआईआर 1966 एससी 1047: (1966) 3 एससीआर 99: (1966) 17 एसटीसी 360]।"

17. ***होटल बालाजी एवं अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य एवं अन्य, एआईआर 1993 एससी 1048*** के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की:-

"त्रुटि को बनाए रखना कोई वीरता नहीं है। इसे सुधारना न्यायिक विवेक की विवशता है। इसमें, हमें पियर्स बनाम डेलामेटर [ए.एम.वाई., पृष्ठ 18] में न्यायमूर्ति ब्रॉनसन के ज्ञानपूर्ण और प्रेरक शब्दों से सांत्वना और शक्ति मिलती है: 'एक न्यायाधीश को इतना बुद्धिमान होना चाहिए कि वह जान सके कि वह त्रुटिपूर्ण है और इसलिए, सीखने के लिए सदैव तत्पर रहे; इतना महान और ईमानदार हो कि अपने सारे अभिमान को त्याग दे और सत्य का अनुसरण करे, चाहे वह उसे कहीं भी ले जाए; और इतना साहसी हो कि अपनी गलतियों को स्वीकार करे।'

18. **पंजाब राज्य बनाम दविंदर पाल सिंह भुल्लर (2011) 14 एससीसी 770** के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह अवलोकन किया और माना कि:-

"III. निर्णय की समीक्षा/परिवर्तन पर रोक

44. *निर्णय सुनाए जाने के बाद दंड न्यायालय के पास समीक्षा का कोई अधिकार नहीं है। उच्च न्यायालय अपने निर्णय पर हस्ताक्षर किए जाने से पहले उसे बदल या समीक्षा कर सकता है। जब कोई आदेश पारित हो जाता है, तो उसकी समीक्षा नहीं की जा सकती। धारा 362 सीआरपीसी विधि के एक स्वीकृत सिद्धांत पर आधारित है कि एक बार किसी मामले का न्यायालय द्वारा अंतिम रूप से निस्तारण कर दिए जाने के बाद, उक्त न्यायालय किसी विशिष्ट वैधानिक प्रावधान के अभाव में फंक्टस ऑफिशियो हो जाता है और किसी भी राहत के लिए नई प्रार्थना पर विचार करने के लिए तब तक पात्र नहीं होता है जब तक कि अंतिम निस्तारण का पूर्व आदेश सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय द्वारा कानून द्वारा निर्धारित तरीके से रद्द नहीं कर दिया जाता है। मामले के निस्तारण के आदेश पर हस्ताक्षर होते ही न्यायालय फंक्टस ऑफिशियो हो जाता है। ऐसे आदेश को लिपिकीय या अंकगणितीय त्रुटि को ठीक करने के अलावा बदला नहीं जा सकता है। फैसले में संशोधन का भी कोई प्रावधान नहीं है। (देखें: हरि सिंह मान बनाम हरभजन सिंह बाजवा एवं अन्य, एआईआर 2001 एससी 43; और छन्नी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 2006 एससी 3051)।*

45. *इसके अतिरिक्त, धारा 362 दंड प्रक्रिया संहिता में निहित निषेध पूर्णतः लागू है; निर्णय पर हस्ताक्षर होने के बाद, धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत अपनी अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय को भी उसे बदलने/समीक्षा करने का कोई अधिकार या क्षेत्राधिकार नहीं है। (देखें: मोती लाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2012) 11 एससीसी 427: एआईआर 1994 एससी 1544; हरि सिंह मान (2001) 1 एससीसी 169: 2001 एससीसी (क्रि) 113; और केरल राज्य बनाम एम.एम. मणिकांतन नायर, (2001) 4 एससीसी 752: एआईआर 2001 एससी 2145)।*

46. *<u>यदि कोई निर्णय अधिकार क्षेत्र के बिना या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करते हुए सुनाया गया हो या जहाँ आदेश उससे प्रभावित पक्षकार को सुनवाई का अवसर दिए बिना सुनाया गया हो या जहाँ आदेश न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग करके प्राप्त किया गया हो जो वास्तव में उसके अधिकार क्षेत्र के बिना होने के बराबर होगा, ऐसे आदेश को वापस लेने के लिए अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग किया जा सकता है, इस कारण से कि ऐसी स्थिति में आदेश अमान्य हो जाता है और धारा 362 सीआरपीसी के प्रावधान लागू नहीं होंगे। ऐसी स्थिति में, निर्णय स्पष्ट रूप से प्राकृतिक न्याय के ऑडी अल्टरम पार्टम नियम के विपरीत है। वापस लेने की शक्ति निर्णय को बदलने/समीक्षा करने की शक्ति से भिन्न है। हालाँकि, वापस लेने/परिवर्तन चाहने वाले पक्ष को यह स्थापित करना होगा कि उसकी कोई गलती नहीं थी।</u> (देखें: चितवन और अन्य बनाम महबूब इलाही, 1970 सीआरएल.एल.जे. 378 (एएलएल); दीपक थानवरदास बलवानी बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य, 1985 सीआरएल.एल.जे. 23 (बॉम्बे); हाबू बनाम राजस्थान राज्य, एआईआर 1987 राज. 83 (एफ.बी.); स्वार्थ महतो और अन्य बनाम धर्मदेव नारायण सिंह, एआईआर 1972 एससी 1300; मक्कपति नागस्वरा शास्त्री*

बनाम एस.एस. सत्यनारायण, एआईआर 1981 एससी 1156; असित कुमार कर बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य, (2009) 2 एससीसी 703; और विष्णु अग्रवाल बनाम राज्य ऑफ यू.पी. और अन्य।, एआईआर 2011 एससी 1232)।

***47.** संविधान के अनुच्छेद 137 के आधार पर इस न्यायालय को दंड विधि के किसी भी निर्णय की समीक्षा करने की स्पष्ट शक्ति प्रदान की गई है और यद्यपि उच्च न्यायालय को ऐसी कोई शक्ति प्रदान नहीं की गई है, फिर भी न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग उस कार्य के लिए नहीं किया जा सकता जो संहिता द्वारा विशेष रूप से निषिद्ध है। (देखें: राज्य का प्रतिनिधित्व डी.एस.पी., एस.बी.सी.आई.डी., चेन्नई द्वारा बनाम के.वी. राजेंद्रन एवं अन्य, एआईआर 2009 एससी 46)।*

***48.** श्रीमती सूरज देवी बनाम प्यारे लाल एवं अन्य, एआईआर 1981 एससी 736 में, इस न्यायालय ने यह माना कि सीआरपीसी की धारा 362 में न्यायालय द्वारा अपने निर्णय को बदलने या उसकी समीक्षा करने पर लगाया गया प्रतिबंध "इस संहिता या किसी अन्य तत्समय प्रवृत्त विधि द्वारा अन्यथा उपबंधित" के अधीन है। हालाँकि, ये शब्द केवल उन्हीं उपबंधों को संदर्भित करते हैं जहाँ न्यायालय को संहिता या अन्य विधि द्वारा अपने निर्णय को बदलने या उसकी समीक्षा करने के लिए स्पष्ट रूप से प्राधिकृत किया गया है। धारा 362 दंड प्रक्रिया संहिता में निहित व्यावृत्ति प्रावधान न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति की परिकल्पना नहीं करता है, इसलिए उस शक्ति का प्रयोग करने का प्रयास निरर्थक हो सकता है।*

***49.** इस प्रकार, इस मुद्दे पर कानून को संक्षेप में इस प्रकार कहा जा सकता है कि आपराधिक न्याय प्रणाली न्यायालय को किसी भी शब्द को जोड़ने या हटाने का अधिकार नहीं देती है, सिवाय इसके कि वह लिपिकीय या अंकगणितीय त्रुटि को ठीक कर सके, जैसा कि निर्णय सुनाए जाने के बाद, न्यायाधीश के पदेन होने पर, स्वयं कानून के अन्तर्गत विशेष रूप से प्रावधान किया गया है। किसी भी गलती या स्पष्ट चूक को केवल विधि के अनुसार उपयुक्त मंच द्वारा ही ठीक किया जा सकता है।"*

19. **गणेश पटेल बनाम उमाकांत रारोरिया, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 2050** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय का संदर्भ देना प्रासंगिक होगा, जिसमें यह माना गया था कि आदेश को वापस लेने का आवेदन विचारणीय था क्योंकि यह एक प्रक्रियात्मक समीक्षा की मांग करने वाला आवेदन था, न कि एक मूलभूत समीक्षा जिस पर धारा 362 सीआरपीसी लागू होगी। सर्वोच्च न्यायालय ने **बुधिया स्वैन बनाम गोपीनाथ देब (1999) 4 एससीसी 396** में पारित निर्णय का संदर्भ देकर आदेश वापस लेने और समीक्षा के बीच अंतर के पहलू पर संदर्भ दिया है।

20. **मुकेश उपाध्याय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2019:एएचसी:42284** के मामले में, इलाहाबाद स्थित इस न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की:-

"माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित निर्णयों में इस मुद्दे पर विचार किया है:-

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सूरजा देवी बनाम प्यारे लाल एवं अन्य (1981) 1 एससीसी 500 के मामले में पैरा संख्या 4, 5, 6 और 7 में कहा है कि:-

"4. हमारे सामने एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या उच्च न्यायालय द्वारा 1978 की आपराधिक विविध आवेदन संख्या 5127 पर इस आधार पर विचार करने से इनकार करना सही था कि उसके पास 1 सितंबर, 1970 के अपने आदेश की समीक्षा करने का अधिकार नहीं था। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 362 घोषित करती है:- "इस संहिता या किसी अन्य समय प्रवृत्त कानून द्वारा अन्यथा उपबंधित के सिवाय, कोई भी न्यायालय, किसी मामले के निस्तारण हेतु अपने निर्णय या अंतिम आदेश पर हस्ताक्षर करने के बाद, किसी लिपिकीय या अंकगणितीय त्रुटि को ठीक करने के अलावा उसमें कोई परिवर्तन या समीक्षा नहीं करेगा।" यह स्पष्ट है कि अपीलकर्ता आवेदन द्वारा किसी लिपिकीय या अंकगणितीय त्रुटि का सुधार नहीं चाहती है। वह यह घोषणा चाहती है कि 1 सितंबर, 1970 का उच्च न्यायालय का आदेश गृह संपत्ति में उसके अधिकारों को प्रभावित नहीं करता है और प्यारे लाल को कब्जा लौटाने का निर्देश गृह संपत्ति के केवल उस हिस्से तक ही सीमित है जिसके संबंध में अतिचार का अपराध किया गया था ताकि उसे अपने हिस्से से बेदखल न किया जाए। अपीलकर्ता, वास्तव में, यह अधिनिर्णय चाहती है कि उसके द्वारा आरोपित कब्ज़े का अधिकार 1 सितंबर, 1970 के आदेश से अप्रभावित रहे। प्यारे लाल का तर्क है कि यह आदेश उस पर बाध्यकारी नहीं है और वह जिस संपत्ति का दावा कर रही है, उस पर उसका अधिकार है। मामले पर विचार करने के बाद, हम इस बात से संतुष्ट नहीं हैं कि इस विवाद को "लिपिकीय या अंकगणितीय त्रुटि" के अंतर्गत लाया जा सकता है। लिपिकीय या अंकगणितीय त्रुटि न्यायालय की आकस्मिक चूक के कारण हुई त्रुटि है। यह वह त्रुटि दर्शाती है जो न्यायालय कभी कहना नहीं चाहता था। यह अभिलेख पर स्पष्ट रूप से दिखाई देने वाली त्रुटि है और इसकी खोज के लिए तर्क या विवाद पर निर्भर नहीं है। अंकगणितीय त्रुटि गणना की गलती है, और लिपिकीय त्रुटि लेखन या टाइपिंग में हुई गलती है। मास्टर कंस्ट्रक्शन कंपनी (प्रा.) लिमिटेड बनाम उड़ीसा राज्य।

5. अपीलकर्ता ने बताया कि उसने संहिता की धारा 482 द्वारा रक्षित उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग किया और धारा 362 द्वारा लगाए गए निषेध के बावजूद, उच्च न्यायालय को राहत देने का अधिकार था। अब यह सर्वविदित है कि न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग उस कार्य के लिए नहीं किया जा सकता जो संहिता द्वारा विशेष रूप से निषिद्ध है। संकठा सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य। यह सत्य है कि धारा 362 में न्यायालय द्वारा अपने निर्णय को बदलने या उसकी समीक्षा करने पर लगाया गया प्रतिबंध "इस संहिता या किसी अन्य तत्समय प्रवृत्त विधि द्वारा अन्यथा उपबंधित" के अधीन है। हालाँकि, ये शब्द केवल उन प्रावधानों को संदर्भित करते हैं जहाँ न्यायालय को संहिता या अन्य विधि द्वारा अपने निर्णय को बदलने या उसकी समीक्षा करने के लिए स्पष्ट रूप से अधिकृत किया गया है। धारा 362 में निहित व्यावृत्ति उपबंध न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति की परिकल्पना नहीं करता है और इसलिए, उस शक्ति का प्रयोग करने का प्रयास निरर्थक हो सकता है।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने नारायण प्रसाद बनाम बिहार राज्य मामले में, जो 2017 एससीसी ऑनलाइन एससी 1738 में प्रकाशित हुआ है, यह माना है कि:-

6. वर्तमान विवाद का समाधान करने के लिए, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 362 और 482 को पुनः उद्धृत करना उपयोगी होगा। [संक्षिप्तता के लिए इसके बाद 'सीआरपीसी' कहा जाएगा]

362. न्यायालय द्वारा निर्णय में परिवर्तन न किया जाना।- इस संहिता या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा अन्यथा उपबंधित के सिवाय, कोई भी न्यायालय, जब वह किसी मामले के निस्तारण संबंधी अपने निर्णय या अंतिम आदेश पर हस्ताक्षर कर देता है, तो लिपिकीय या अंकगणितीय त्रुटि को ठीक करने के अलावा उसमें परिवर्तन या पुनरीक्षण नहीं करेगा।

482. उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों की व्यावृत्ति।- इस संहिता की कोई भी बात उच्च न्यायालय की ऐसे आदेश देने की अंतर्निहित शक्तियों को सीमित या प्रभावित करने वाली नहीं समझी जाएगी जो इस संहिता के अधीन किसी आदेश को प्रभावी करने के लिए, या किसी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए आवश्यक हो सकते हैं।

7. इन धाराओं के वाचन से संकेत मिलता है कि सीआरपीसी की धारा 362 के अंतर्गत निषेध पूर्ण है; निर्णय पर हस्ताक्षर हो जाने के बाद भी सीआरपीसी की धारा 482 के अंतर्गत अपनी अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय को उसमें परिवर्तन/पुनरीक्षण करने का कोई अधिकार या क्षेत्राधिकार नहीं है। सीआरपीसी की धारा 482 के अंतर्गत अंतर्निहित शक्ति न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग से बचने और न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए ऐसा अधिकार दिया गया है। ऐसी शक्ति का प्रयोग किसी ऐसे कार्य के लिए नहीं किया जा सकता जो संहिता के अन्तर्गत स्पष्ट रूप से वर्जित है।

8. यदि संहिता के अन्तर्गत समीक्षा के माध्यम से तथ्यों पर विचार करना स्वीकार्य नहीं है और स्पष्ट रूप से वर्जित है, तो न्यायालय को मामले पर पुनर्विचार करने की अपनी अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग नहीं करना चाहिए।"

इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने दिनांक 30.5.2016 को आपराधिक विविध रिकॉल आवेदन संख्या 126367/2016 में धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या 5938/2016 में पारित निर्णय में यह माना है कि:-
<u>"महेश बनाम राज्य, 1971 एएलजे पृष्ठ 668 में पाँच न्यायाधीशों की पूर्ण पीठ ने कहा, "कानूनी स्थिति को संक्षेप में यह निर्धारित करके बताया जा सकता है कि उच्च न्यायालय के पास आपराधिक अपील या आपराधिक पुनरीक्षण में विधिवत सुनाए गए निर्णय या आदेश की समीक्षा, संशोधन या पुनर्विचार करने की सामान्य शक्ति नहीं है, हालांकि धारा 561-ए (वर्तमान में धारा 482), सीआरपीसी के अन्तर्गत अंतर्निहित शक्ति के अन्तर्गत असाधारण परिस्थितियों में निर्णय या आदेश की समीक्षा, संशोधन या पुनर्विचार किया जा सकता है, बशर्ते कि अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग उसमें वर्णित तीन उद्देश्यों में से किसी एक के लिए किया जाए"।</u>
निर्णय दिए जाने के बाद आपराधिक न्यायालय के पास समीक्षा की कोई शक्ति नहीं है। उच्च न्यायालय हस्ताक्षर करने से पहले अपने फैसले को बदल या समीक्षा कर सकता है। जब कोई आदेश पारित किया जाता

है, तो उसकी समीक्षा नहीं की जा सकती। धारा 362 सीआरपीसी कानून के एक स्वीकृत सिद्धांत पर आधारित है कि एक बार किसी मामले को न्यायालय द्वारा अंतिम रूप से निस्तारित किया जाता है, तो उक्त न्यायालय एक विशिष्ट वैधानिक प्रावधान के अभाव में फंक्टस ऑफिशियो हो जाती है और किसी भी राहत के लिए नई प्रार्थना पर विचार करने के लिए अयोग्य हो जाती है जब तक कि अंतिम निस्तारण का पूर्व आदेश कानून द्वारा निर्धारित तरीके से सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय द्वारा रद्द नहीं किया जाता है। न्यायालय उस समय फंक्टस ऑफिशियो हो जाती है जब किसी मामले के निस्तारण के आदेश पर हस्ताक्षर किए जाते हैं। इस तरह के आदेश को लिपिकीय या अंकगणितीय त्रुटि को ठीक करने की सीमा तक ही बदला जा सकता है। फैसले में संशोधन का कोई प्रावधान भी नहीं है। (देखें हरि सिंह मान बनाम हरभजन सिंह बाजवा, 2001 (1) एससीसी 169)।

इसके अलावा धारा 362 सीआरपीसी में निहित निषेध पूर्ण है; निर्णय पर हस्ताक्षर होने के बाद, धारा 482 सीआरपीसी के तहत अपनी अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय के पास भी इसे बदलने/समीक्षा करने का कोई अधिकार या क्षेत्राधिकार नहीं है (देखें मोती लाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2012) 11 एससीसी 427)।

यदि कोई निर्णय अधिकार क्षेत्र के बिना या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन करते हुए सुनाया गया है या जहां आदेश इससे प्रभावित पक्ष को सुनवाई का अवसर दिए बिना सुनाया गया है या जहां कोई आदेश अदालती प्रक्रिया के दुरुपयोग से प्राप्त किया गया था जो वास्तव में उसके अधिकार क्षेत्र के बिना होने के बराबर होगा, ऐसे आदेश को वापस लेने के लिए अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग किया जा सकता है क्योंकि ऐसी स्थिति में आदेश अमान्य हो जाता है और धारा 362 सीआरपीसी के प्रावधान लागू नहीं होंगे। ऐसी स्थिति में, निर्णय स्पष्ट रूप से प्राकृतिक न्याय के ऑडी अल्टरम पार्टम नियम के विपरीत है। हालांकि, रिकॉल/परिवर्तन चाहने वाले पक्ष को यह साबित करना होगा कि उसकी कोई गलती नहीं थी। (देखें चितावन बनाम महबूब इलाही, 1970 क्रि. एलजे 378 (सभी), असित कुमार कर बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (2009) 2 एससीसी 703)"।

उपर्युक्त निर्णयों के मद्देनजर, समीक्षा याचिका सीआरपीसी की धारा 362 के अन्तर्गत स्पष्ट रूप से वर्जित है और आवेदक यह इंगित करने में सक्षम नहीं है कि आक्षेपित निर्णय प्राकृतिक न्याय के नियम के विपरीत या अधिकार क्षेत्र के बिना पारित किया गया था, इसलिए, सीआरपीसी की धारा 482 की शक्ति के अन्तर्गत भी, इस समीक्षा आवेदन पर विचार नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार, वर्तमान समीक्षा आवेदन को खारिज कर दिया जाता है क्योंकि यह पोषणीय नहीं है।

21. **कुशा दुरुका बनाम ओडिशा राज्य, (2024) 4 एससीसी 432** के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की और निर्णय दिया: -

***"2.** लगभग तीन दशक पहले, चंद्र शशि बनाम अनिल कुमार वर्मा [चंद्र शशि बनाम अनिल कुमार वर्मा, (1995) 1 एससीसी 421: 1995 एससीसी (क्रि) 239] में इस न्यायालय को एक ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ा जहाँ न्यायालय को धोखा देने और न्याय प्रशासन में हस्तक्षेप करने का प्रयास किया गया था। वादी को न्यायालय की अवमानना का दोषी ठहराया गया। यह एक ऐसा मामला था जिसमें पति ने वैवाहिक कार्यवाही के*

स्थानांतरण की अपनी पत्नी की प्रार्थना का विरोध करने के लिए जाली दस्तावेज़ दायर किए थे। उसे न्यायालय की अवमानना का दोषी पाते हुए, इस न्यायालय ने उसे दो सप्ताह के कारावास की सजा सुनाई। इस न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की: (एससीसी पृष्ठ 423-24 और 427, पैरा 1-2 और 14)

"1. न्याय प्रशासन की धारा को अदूषित रहना आवश्यक है ताकि न्यायालय के वातावरण की शुद्धता राज्य के सभी अंगों को जीवन शक्ति प्रदान कर सके। इसलिए, न्यायालय के वातावरण की उत्कृष्टता बनाए रखने के लिए न्यायिक वातावरण के प्रदूषकों का अच्छी तरह से ध्यान रखा जाना आवश्यक है; ताकि न्यायालय निष्पक्ष रूप से और सभी संबंधितों की संतुष्टि के साथ न्याय कर सके।

2. जो कोई भी धोखाधड़ी का सहारा लेता है, वह न्यायिक कार्यवाही को भटकाता है; या यदि कोई कार्य परोक्ष उद्देश्य से किया जाता है, तो वह न्याय प्रशासन में हस्तक्षेप करता है। ऐसे व्यक्तियों के साथ उचित व्यवहार किया जाना आवश्यक है, न केवल उन्हें उनके द्वारा किए गए गलत कार्य के लिए दंडित करने के लिए, बल्कि दूसरों को भी ऐसे कृत्यों में लिप्त होने से रोकने के लिए जो न्याय प्रशासन की व्यवस्था में लोगों के विश्वास को हिला देते हैं।

14. इस प्रकार कानूनी स्थिति यह है कि यदि प्रकाशन न्यायालय को धोखा देने के इरादे से या धोखा देने के इरादे से किया गया है, तो यह अवमानना होगी, क्योंकि यह न्याय प्रशासन में हस्तक्षेप करेगा। किसी भी मामले में, यह न्याय प्रशासन में हस्तक्षेप करने की प्रवृत्ति रखेगा। यह निश्चित रूप से ऐसा होगा यदि कोई जाली दस्तावेज़ उपरोक्त मेन्स रीया के साथ दायर किया जाता है। वर्तमान मामले में जाली दस्तावेज़ स्पष्ट रूप से न्यायालय को धोखा देने के लिए था; धोखाधड़ी का इरादा स्पष्ट रूप से स्पष्ट है। इसलिए, अनिल कुमार अवमानना के दोषी हैं।"

***3.** के.डी. शर्मा बनाम सेल [के.डी. शर्मा बनाम सेल, (2008) 12 एससीसी 481] में इस न्यायालय ने यह टिप्पणी की थी: (एससीसी पृष्ठ 493, पैरा 39)*

"39. यदि कैंसिंग्टन आयकर आयुक्त [आर. बनाम कैंसिंग्टन जिले के आयकर अधिनियमों के प्रयोजनों के लिए महाआयुक्त, पूर्व पी. प्रिंसेस एडमंड डी पोलिग्नाक, (1917) 1 केबी 486: 86 एलजेकेबी 257: 116 एलटी 136 (केबी और सीए)] में उल्लिखित प्राथमिक उद्देश्य को ध्यान में रखा जाए, तो एक आवेदक जो स्पष्ट तथ्यों और "साफ दिल" के साथ नहीं आता है, वह "गंदे हाथों" से न्यायालय में रिट नहीं दायर कर सकता। भौतिक तथ्यों को दबाना या छिपाना वकालत नहीं है। यह एक बाजीगरी, हेराफेरी, चालाकी या मिथ्याबयान है, जिसका न्यायसंगत और विशेषाधिकार प्राप्त क्षेत्राधिकार में कोई स्थान नहीं है। यदि आवेदक सभी तथ्यों को निष्पक्ष और सत्यता से प्रकट नहीं करता, बल्कि उन्हें तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करता है और न्यायालय को गुमराह करता है, तो न्यायालय के पास स्वयं की रक्षा करने और अपनी प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए, नियम का पालन न करने और गुण-दोष के आधार पर मामले की आगे की जाँच से इनकार करने की अंतर्निहित शक्ति

है। यदि न्यायालय इस आधार पर याचिका को अस्वीकार नहीं करता है, तो न्यायालय अपने कर्तव्य का पालन करने में विफल होगा। वास्तव में, ऐसे आवेदक पर न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग करने के लिए न्यायालय की अवमानना का मुकदमा चलाया जाना आवश्यक है।"

(जोर दिया गया)

4. *दलीप सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [दलीप सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2010) 2 एससीसी 114 : (2010) 1 एससीसी (सिविल) 324] में, इस न्यायालय ने जीवन मूल्यों में उत्तरोत्तर गिरावट और वादियों के नए पंथ के आचरण पर ध्यान दिया, जो सत्य से कोसों दूर हैं। यह निम्नानुसार देखा गया: (एससीसी पृष्ठ 116-17, अनुच्छेद 1-2)*

"1. कई शताब्दियों तक भारतीय समाज ने जीवन के दो मूल मूल्यों, अर्थात् "सत्य" और "अहिंसा" को संजोया। महावीर, गौतम बुद्ध और महात्मा गांधी ने लोगों को इन मूल्यों को अपने दैनिक जीवन में आत्मसात करने के लिए मार्गदर्शन दिया। स्वतंत्रता-पूर्व काल में सत्य न्याय-प्रणाली का अभिन्न अंग था और लोग परिणामों की परवाह किए बिना न्यायालयों में सत्य बोलने में गर्व महसूस करते थे। हालाँकि, स्वतंत्रता-उत्तर काल में हमारी मूल्य-प्रणाली में भारी परिवर्तन हुए हैं। भौतिकवाद ने पुराने मूल्यों को पीछे छोड़ दिया है और व्यक्तिगत लाभ की चाह इतनी तीव्र हो गई है कि मुकदमेबाजी करने वाले लोग अदालती कार्यवाही में झूठ, मिथ्याबयान और तथ्यों को छिपाने का सहारा लेने से नहीं हिचकिचाते।

2. पिछले 40 वर्षों में, वादियों का एक नया पंथ उभरा है। इस पंथ के लोग सत्य का कोई सम्मान नहीं करते। वे अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए बेशर्मी से झूठ और अनैतिक साधनों का सहारा लेते हैं। वादियों के इस नए पंथ द्वारा प्रस्तुत चुनौती का सामना करने के लिए, न्यायालयों ने समय-समय पर नए नियम विकसित किए हैं और अब यह अच्छी तरह से स्थापित हो चुका है कि कोई भी वादी, जो न्याय की धारा को प्रदूषित करने का प्रयास करता है या जो न्याय के शुद्ध स्रोत को कलंकित हाथों से छूता है, वह किसी भी अंतरिम या अंतिम राहत का हकदार नहीं है।"

(जोर दिया गया)

5. *मोती लाल सोंगारा बनाम प्रेम प्रकाश [मोती लाल सोंगारा बनाम प्रेम प्रकाश, (2013) 9 एससीसी 199 : (2013) 3 एससीसी (क्रि) 872] में, इस न्यायालय ने न्यायालय के समक्ष तथ्यों को छिपाने संबंधी मुद्दे पर विचार करते हुए यह टिप्पणी की कि "न्यायालय कोई प्रयोगशाला नहीं है जहाँ बच्चे खेलने आते हैं", और निम्नलिखित राय व्यक्त की: (एससीसी पृष्ठ 208, पैरा 19-20)*

"19. प्रस्तुतीकरण का दूसरा पहलू यह है कि क्या प्राप्त तथ्यात्मक मैट्रिक्स में, प्रतिवादी-अभियुक्त को दोषमुक्त करने वाला उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश कानूनन उचित है। हमने स्पष्ट रूप से कहा है कि यद्यपि प्रतिवादी को इस तथ्य की पूरी जानकारी थी कि विद्वान अवर न्यायालय के न्यायाधीश द्वारा उसके विरुद्ध आरोप तय किए गए थे, फिर भी उसने संज्ञान लेने के आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण की सुनवाई कर रहे पुनरीक्षण

न्यायालय के संज्ञान में यह बात नहीं लाई। यह स्पष्ट रूप से छिपाए जाने का मामला है। यह अभियुक्त के विशेष ज्ञान में था। जो कोई भी दमन के तरीके का सहारा लेता है, न्यायालय में, वास्तव में, न्यायालय के साथ धोखाधड़ी कर रहा है, और सप्रेशनियो वेरी, एक्सप्रेसियो फाल्सी, यानी सत्य को दबाना झूठ की अभिव्यक्ति के बराबर है, की कहावत लागू होती है। हम ऐसा कहने के लिए बाध्य हैं क्योंकि पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष तथ्य को जानबूझकर छिपाया गया है। यह निश्चितता के साथ कहा जा सकता है कि प्रतिवादी-अभियुक्त ने इस तरह के तथ्यात्मक दमन से लाभ उठाने की कोशिश की। धोखाधड़ी का इरादा स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। वास्तव में, उसने अपनी अज्ञानता का साहस दिखाया है और झूठ बोलने की कोशिश की है।

20. जैसा कि हमने देखा है, उच्च न्यायालय ने "जब बुनियादी ढाँचा ढहता है, तो अधिरचना का ढहना तय है" सिद्धांत लागू किया। हालाँकि, चूँकि यह आदेश धोखाधड़ी करके और लाभ प्राप्त करने के लिए न्यायालय के समक्ष महत्वपूर्ण तथ्यों को दबाकर प्राप्त किया गया है, इसलिए उक्त आदेश को बरकरार नहीं रखा जा सकता। (जोर दिया गया)

***6.** उपर्युक्त निर्णयों में यह माना गया कि सदियों से भारतीय समाज द्वारा पोषित दो बुनियादी मूल्यों में से एक "सत्य" है और याचिकाकर्ता ने इसे नजरअंदाज कर दिया है। स्वतंत्रता-पूर्व युग में सत्य न्याय-प्रणाली का एक अभिन्न अंग था, हालाँकि, स्वतंत्रता के बाद के काल में हमारी मूल्य प्रणाली में भारी बदलाव आए हैं। भौतिकवाद ने पुराने लोकाचार को ढक दिया है और व्यक्तिगत लाभ की चाह इतनी तीव्र हो गई है कि मुकदमेबाजी में शामिल लोग अदालती कार्यवाही में झूठ, गलत बयानी और तथ्यों को दबाने में संकोच नहीं करते। पिछले 40 वर्षों में, मूल्यों में गिरावट आई है और अब वादी न्यायालय को गुमराह करने के लिए किसी भी हद तक जा सकते हैं। उनके मन में सत्य के लिए कोई सम्मान नहीं है। वादियों की इस नई नस्ल द्वारा प्रस्तुत चुनौतियों का सामना करने के लिए यह सिद्धांत विकसित किया गया है। अब यह अच्छी तरह से स्थापित है कि एक वादी, जो न्याय की धारा को प्रदूषित करने का प्रयास करता है या जो कलंकित हाथों से न्याय के शुद्ध स्रोत को छूता है, वह किसी भी अंतरिम या अंतिम राहत का हकदार नहीं है। कानून की न्यायालय से भौतिक तथ्यों को दबाना, वास्तव में न्यायालय के साथ धोखाधड़ी करना है। कहावत सप्रेसियो वेरी, एक्सप्रेसियो फाल्सी, यानी सत्य को दबाना झूठ की अभिव्यक्ति के बराबर है, लागू होती है। यह समाज में नैतिक मूल्यों के पतन के अलावा और कुछ नहीं है, शायद हमारी शिक्षा प्रणाली के कारण। अब हम सत्य के अलावा कुछ भी सुनने में अधिक प्रसन्न होते हैं; सत्य के अलावा कुछ भी पढ़ते हैं; सत्य के अलावा कुछ भी बोलते हैं और सत्य के अलावा कुछ भी मानते हैं। किसी ने सही कहा है कि: "झूठ बहुत मीठा होता है, जबकि सच कड़वा होता है, इसलिए ज्यादातर लोग झूठ बोलना पसंद करते हैं।"*

***7.** हाल ही के एक मामले में, यह न्यायालय फिर से एक ऐसे वादी के संपर्क में आया जिसने सौम्या चौरसिया बनाम प्रवर्तन निदेशालय [सौम्या चौरसिया बनाम प्रवर्तन निदेशालय, (2024) 6 एससीसी 401: 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 1674: 2023 आईएनएससी 1073] में महत्वपूर्ण तथ्यों को छिपाकर न्यायालय को दरकिनार करने की कोशिश की थी। यह एक ऐसा मामला था जिसमें इस न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ता ने उच्च*

न्यायालय [छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय बिलासपुर में विविध आपराधिक मामला संख्या 1258/2023] द्वारा उसकी जमानत याचिका को खारिज करने के आदेश [सौम्या चौरसिया बनाम प्रवर्तन निदेशालय, 2023 एससीसी ऑनलाइन सीएचएच 1907] को चुनौती दी थी। उन पर दंड संहिता, 1860 और धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002 के अन्तर्गत विभिन्न अपराध करने का आरोप लगाया गया था। उनकी जमानत याचिका 23-6-2023 को उच्च न्यायालय द्वारा खारिज कर दी गई थी [सौम्या चौरसिया बनाम प्रवर्तन निदेशालय, 2023 एससीसी ऑनलाइन सीएचएच 1907]। इस न्यायालय के समक्ष दलीलों में, यह उल्लेख किया गया था कि उच्च न्यायालय ने 8-6-2023 के आरोप-पत्र और 16-6-2023 के संज्ञान आदेश पर विचार न करके घोर त्रुटि की थी, जिससे स्पष्ट रूप से पता चलता है कि इस तथ्य पर एक त्रुटि स्पष्ट थी। अभिलेख में उपलब्ध तथ्य यह था कि जमानत अर्जी पर उच्च न्यायालय द्वारा 17-4-2023 [सौम्या चौरसिया बनाम प्रवर्तन निदेशालय, 2023 एससीसी ऑनलाइन सीएचएच 5838] को आदेश सुरक्षित रखा गया था और 23-6-2023 [सौम्या चौरसिया बनाम प्रवर्तन निदेशालय, 2023 एससीसी ऑनलाइन सीएचएच 1907] को सुनाया गया था। कुछ संदेह होने पर, इस न्यायालय ने अपीलकर्ता को उपरोक्त स्थिति स्पष्ट करने के लिए एक हलफनामा दायर करने का निर्देश दिया। न्यायालय को उपरोक्त प्रश्न का कोई विशिष्ट उत्तर नहीं दिया गया। बल्कि अस्पष्ट बयान दिए गए। उपलब्ध तथ्यों पर विचार करते हुए, इस न्यायालय ने पाया कि अपीलकर्ता द्वारा और उसकी ओर से आदेश को चुनौती देने के लिए तथ्यों को गलत तरीके से प्रस्तुत करने का एक साहसिक प्रयास किया गया था [सौम्या चौरसिया बनाम प्रवर्तन निदेशालय, 2023 एससीसी ऑनलाइन सीएचएच 1907], पक्षों और अधिवक्ता के आचरण के संबंध में, इस न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणियां कीं: (सौम्या चौरसिया मामला [सौम्या चौरसिया बनाम प्रवर्तन निदेशालय, (2024) 6 एससीसी 401: 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 1674: 2023 आईएनएससी 1073], एससीसी पैरा 13)

"13. यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता है कि न्याय की मांग करने वाले न्यायालय में आने वाले प्रत्येक पक्ष से भौतिक तथ्यों का पूर्ण और सही खुलासा करने की अपेक्षा की जाती है और प्रत्येक अधिवक्ता, न्यायालय का एक अधिकारी होने के नाते, यद्यपि किसी विशेष पक्ष की ओर से उपस्थित होता है, उससे अपेक्षा की जाती है कि वह न्याय प्रशासन के अपने कार्य को निष्पक्ष रूप से करने में न्यायालय की सहायता करे। इस बात पर ज़ोर देने की आवश्यकता नहीं है कि एक बहुत ही उच्च देश के सर्वोच्च न्यायालय में उपस्थित होने वाले अधिवक्ताओं, विशेष रूप से नामित वरिष्ठ अधिवक्ताओं से व्यावसायिकता और कानूनी कौशल के मानक की अपेक्षा की जाती है ताकि उच्च न्यायालयों और जिला न्यायालयों में कार्यरत अधिवक्ताओं द्वारा उनकी व्यावसायिकता का अनुसरण और अनुकरण किया जा सके। यद्यपि यह सत्य है कि अधिवक्ता अपने मुवक्किलों द्वारा दिए गए निर्देशों के अनुसार अदालतों में वादों का निस्तारण और बहस करेंगे, तथापि, जिस कानूनी कौशल के लिए वे कार्यरत हैं, उसका उपयोग करते हुए, मामले के अभिलेखों से तथ्यों का तत्परतापूर्वक सत्यापन करने के उनके कर्तव्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

(जोर दिया गया)

अंततः, इस न्यायालय ने 1,00,000 रुपये के जुर्माने के साथ अपील खारिज कर दी।

8. प्रदीप साहू बनाम असम राज्य [प्रदीप साहू बनाम असम राज्य, (2024) 4 एससीसी 448] में आरोपी, जिसे न्यायालय से भौतिक तथ्यों को छिपाने का दोषी पाया गया था और उसके खिलाफ उच्च न्यायालय [गुवाहाटी उच्च न्यायालय] ने उचित कानूनी कार्रवाई करने का निर्देश दिया था [प्रदीप साहू बनाम असम राज्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन गौ 2835], ने इस न्यायालय के समक्ष उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को चुनौती दी थी। उपरोक्त मामले में, अपीलकर्ता द्वारा दायर पहली जमानत अर्जी उच्च न्यायालय द्वारा [11-11-2021 को] खारिज कर दी गई थी [प्रदीप साहू बनाम असम राज्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन गौ 2832], उसके बाद उन्होंने उच्च न्यायालय के समक्ष दूसरी जमानत अर्जी दी, जिसमें 30-11-2021 को नोटिस जारी किया गया था [प्रदीप साहू बनाम असम राज्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन गौ 2833]। उच्च न्यायालय के समक्ष उपरोक्त अर्जी के लंबित रहने के दौरान, अपीलकर्ता ने 1-12-2021 को ट्रायल कोर्ट के समक्ष एक नई जमानत अर्जी दी, जिसे उसी दिन मंजूर कर लिया गया। उपरोक्त तथ्य 8-12-2021 [प्रदीप साहू बनाम असम राज्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन गौ 2834] को उच्च न्यायालय के संज्ञान में आए जब रजिस्ट्रार (न्यायिक) की एक रिपोर्ट प्राप्त हुई, जिन्हें मामले में जांच करने का निर्देश दिया गया था। हालांकि, अपीलकर्ता द्वारा उसमें दी गई माफी और इस तथ्य पर भी विचार करते हुए कि वह चाय जनजाति समुदाय से था और उसका भाई, एक साइकिल मैकेनिक, जो इस मामले की पैरवी कर रहा था, कानून की पेचीदगियों को नहीं समझ पाया। जिसके परिणामस्वरूप, यह गलती हुई। इस न्यायालय ने, उसमें अपीलकर्ता द्वारा दी गई बिना शर्त माफी को ध्यान में रखते हुए, अपीलकर्ता के खिलाफ एफआईआर/शिकायत दर्ज करने के उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को रद्द कर दिया था।

***9.** हो सकता है कि प्रदीप साहू मामले [प्रदीप साहू बनाम असम राज्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन गौ 2834] के तथ्यों के आधार पर, इस न्यायालय ने अपीलकर्ता द्वारा दी गई बिना शर्त माफी स्वीकार कर ली हो और वर्तमान तथ्यात्मक स्थिति में उसकी माफी स्वीकार कर ली हो, लेकिन यह स्थापित है कि वादियों द्वारा न्यायालय को जहाँ भी संभव हो, गलत तरीके से प्रस्तुत करने का लगातार प्रयास किया जा रहा है।*

22. वर्तमान मामले के तथ्यों के आधार पर, यह न्यायालय राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा **हुसैन बनाम ग्राम पंचायत रून पंचायत समिति मुंडवा, जिला नागौर, सरपंच के माध्यम से एवं अन्य, 2025 एससीसी ऑनलाइन राज 271** मामले में पारित निर्णय के कुछ पैराग्राफों का उल्लेख करना उचित समझता है, जो इस प्रकार हैं:-

***28.** इस न्यायालय द्वारा ऊपर दर्ज की गई उपरोक्त सभी टिप्पणियों और निष्कर्षों के मद्देनजर, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा न्यायालय को स्पष्ट रूप से गुमराह किया गया था। अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत सभी प्रस्तुतियाँ और तर्क पूरी तरह से गलत और भ्रामक थे/हैं।*

***29.** <u>वर्तमान परिदृश्य में, जब न्यायालय सूचीबद्ध मामलों की संख्या से अतिभारित और बोझिल हैं, जहाँ दैनिक वाद सूची में प्रतिदिन 300 से अधिक मामले होते हैं और कई बार, प्रतिदिन 600 मामले तक पहुँच जाते हैं,</u>*

न्यायालयों के पास अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत दलीलों पर भरोसा करने के अलावा कोई विकल्प नहीं होता है। ऐसी स्थिति में, न्यायालय अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत दलीलों पर भरोसा करते हुए आदेश भी पारित करते हैं। वादी और उसके अधिवक्ता का मूल दायित्व है कि वे न्यायालय को धोखा न दें या गुमराह न करें। यह ज़िम्मेदारी तथ्यों की प्रस्तुति और व्याख्या, दलीलों और दस्तावेजों का मसौदा तैयार करना, कानूनी तर्क और न्यायालय के साथ अन्य दलीलें या संचार सहित हर कार्य तक फैली हुई है। जानबूझकर गुमराह या धोखा न देने का कर्तव्य अधिवक्ता और सॉलिसिटर से केवल न्यूनतम अपेक्षित है। न्यायालय के एक अधिकारी के रूप में, उनसे न्याय के निष्पक्ष प्रशासन में जनहित को आगे बढ़ाने की अपेक्षा की जाती है, भले ही इससे उनके मुवक्किल के हितों को खतरा हो। इसलिए, उनसे न केवल उन सभी प्रासंगिक निर्णयों और विधायी प्रावधानों के बारे में न्यायालय को सूचित करने की अपेक्षा की जाती है, जिनके बारे में जागरूक है, लेकिन साथ ही ऐसा कोई भी बयान न देने के लिए बाध्य है जो गलत, असत्य और भ्रामक हो।

30. *जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने डी.पी. चड्ढा बनाम त्रियुगी नारायण मिश्रा, (2001) 2 एससीसी 221 के मामले में माना है, व्यावसायिक कदाचार गंभीर होता है जब इसमें मुवक्किल के विश्वास को धोखा देना शामिल हो और सबसे गंभीर तब होता है जब यह न्यायालय को गुमराह करने का जानबूझकर किया गया प्रयास हो या न्यायालय के साथ छल या धोखाधड़ी करने का प्रयास हो। इसमें, न्यायालय ने निम्नलिखित निर्णय दिया:*

"मुवक्किल उस मामले के लिए अपना विश्वास और भाग्य अधिवक्ता के हाथों में रखता है; न्यायालय भी मामले दर मामले और दिन-प्रतिदिन अधिवक्ता पर अपना भरोसा रखता है। अपने अधिवक्ता से असंतुष्ट मुवक्किल उसे बदल सकता है, लेकिन न्यायालय के साथ ऐसा नहीं होता। इसलिए न्यायालय और अधिवक्ता के बीच विश्वास का बंधन कभी नहीं टूटता।

.....

24. *यह कहावत उतनी ही पुरानी है जितनी कि यह पेशा कि न्यायालय और अधिवक्ता न्याय के रथ के दो पहिये हैं। विरोधात्मक प्रणाली में यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि जब न्यायाधीश लगाम थामे होता है, तो दो विरोधी अधिवक्ता रथ के पहिये होते हैं। जहाँ गति की दिशा लगाम थामे न्यायाधीश द्वारा नियंत्रित होती है, वहीं गति को स्वयं पहिये सुगम बनाते हैं, जिनके बिना न्याय का रथ गति नहीं कर सकता और यहाँ तक कि ध्वस्त भी हो सकता है। कर्तव्यों के निर्वहन में आपसी विश्वास और बेंच और बार के बीच सौहार्दपूर्ण संबंध रथ की गति को सुचारू बनाते हैं। न्यायालय के एक जिम्मेदार अधिकारी के रूप में, जैसा कि उन्हें कहा जाता है - और सही भी है, अधिवक्ताओं का यह समग्र दायित्व है कि वे न्याय के न्यायपूर्ण और उचित प्रशासन में अदालतों की न्यायसंगत और उचित तरीके से सहायता करें। जोश और उत्साह पेशे में सफलता के लक्षण हैं लेकिन अति उत्साह और गुमराह उत्साह का एक पेशेवर के व्यक्तित्व में कोई स्थान नहीं है। फिर भी एक अधिवक्ता को, अपने मुवक्किल के लिए सफलता अर्जित करने के अपने उत्साह में, औचित्य, प्रतिष्ठा और न्याय की सुपरिभाषित सीमाओं को लांघने की आवश्यकता नहीं है। स्वतंत्रता और निडरता न्यायालय में कुछ*

भी करने और अपने मुवक्किल को सफलता दिलाने की स्वतंत्रता के लाइसेंस नहीं हैं, इसके लिए चाहे कितनी भी कीमत चुकानी पड़े और पेशेवर मानदंडों का चाहे कितना भी त्याग करना पड़े।

31. *इस न्यायालय को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा वीरेंद्र सिंह बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार) रिट याचिका(याचिकाओं) (आपराधिक) संख्या(ओं) 296/2024 (10.09.2024 को निर्णीत) के मामले में की गई टिप्पणी से भी अपने दृष्टिकोण का समर्थन प्राप्त होता है जिसमें न्यायालय ने कहा कि, "न्यायाधीशों के लिए न्यायालय के समक्ष सूचीबद्ध प्रत्येक मामले के प्रत्येक पृष्ठ को पढ़ना संभव नहीं है। हमारी प्रणाली विश्वास पर काम करती है। जब हम मामलों की सुनवाई करते हैं तो हम बार के सदस्यों पर भरोसा करते हैं। लेकिन, जब हम इस तरह के मामलों का सामना करते हैं, तो हमारा विश्वास डगमगा जाता है।"*

32. *इस न्यायालय को यह देखकर दुख हो रहा है कि अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने न्यायालय के समक्ष तथ्यों को निष्पक्ष रूप से नहीं बताया बल्कि उन्हें इस तरह प्रस्तुत किया कि न्यायालय को सही तथ्यों के बारे में गुमराह किया जा सके और इस तरह, उन्होंने कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग किया। विद्वान अधिवक्ता ने न केवल झूठे और गलत प्रस्तुतियाँ कीं बल्कि मामले से संबंधित सही जानकारी को भी रोक दिया। अधिवक्ता ने एस.बी. रिट याचिका संख्या 9338/2024 में पारित 21.01.2025 के आदेश के तथ्य को पूरी तरह से रोक दिया जिसके अन्तर्गत इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने जिला कलेक्टर और पुलिस अधीक्षक, नागौर को ग्राम पंचायत को अतिक्रमण हटाने के लिए आवश्यक पुलिस बल और अन्य सहायता सुनिश्चित करने का निर्देश दिया था। इसमें न्यायालय ने आगे कहा कि यदि अतिक्रमणकारी अतिक्रमण हटाओ अभियान का विरोध करते हैं, तो ग्राम पंचायत उनके नाम दर्ज करे और वर्तमान रिट याचिका में एक आवेदन प्रस्तुत करे ताकि न्यायालय उनके विरुद्ध अवमानना की कार्यवाही शुरू कर सके।*

23. साथ ही, धोखाधड़ी हर गंभीर कार्यवाही को निष्प्रभावी कर देती है और तकनीकी आधार पर धोखाधड़ी करने वाले द्वारा किसी अधिकार का दावा नहीं किया जा सकता है। **(देखें: एस.पी. चेंगलवरैया नायडू बनाम जगन्नाथ और अन्य, (1994) 1 एससीसी 1, राम चंद्र सिंह बनाम सावित्री देवी, (2003) 8 एससीसी 319, जय नारायण परसरामपुरिया बनाम पुष्पा देवी सराफ (2006) 7 एससीसी 756, मधुकर सद्भा शिवार्क मधुकर सद्भा शिवार्कर बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2015) 6 एससीसी 557, जल विद्युत निगम बनाम राज कुमार राजिंदर सिंह, (2019) 14 एससीसी 449)।**

24. इस निर्णय के पैरा 6 से 8 में इंगित मामले के निर्विवाद तथ्यों के साथ-साथ निम्नलिखित तथ्यों/कारणों सहित पूर्वोक्त पर विचार किया गया।

(क) एक घायल/पीड़ित के साथ हुए समझौते के आधार पर संपूर्ण आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने का अनुरोध किया गया था;

(ख) इस न्यायालय द्वारा दिनांक 12.02.2025 को पारित अंतिम आदेश में पीड़ित/घायल व्यक्तियों अर्थात् मजरूब, मो. सलमान, मुफिदुल, महबूब, शबनम बानो और नसीरा (मृतक की माँ) का पक्ष नहीं सुना

गया क्योंकि उन्हें पक्षकार नहीं बनाया गया था, इस न्यायालय का मानना है कि उन्होंने जानबूझकर समझौता करने से इनकार कर दिया था;

(ग) पीड़ित/घायल व्यक्तियों को पक्षकार न बनाना और आवेदकों के पक्ष में आदेश प्राप्त करने के लिए न्यायालय से महत्वपूर्ण तथ्यों को छिपाना अधिवक्ता की ओर से कदाचार के समान है;

(घ) आईपीसी की धारा 304 से संबंधित आपराधिक कार्यवाही समझौते के आधार पर रद्द नहीं की जा सकती, जिसे अनजाने में अधिवक्ता के बयान पर भरोसा करके इस न्यायालय द्वारा रद्द कर दिया गया था।

25. उपर्युक्त पर समुचित विचार करने के पश्चात्, मेरा दृढ़ मत है कि यह इस न्यायालय के साथ धोखाधड़ी का मामला है और इस मामले के इस दृष्टिकोण से, यह न्यायालय यह पाता है कि यह आवेदन जुर्माने के साथ स्वीकार किए जाने योग्य है।

26. तदनुसार, राज्य द्वारा दायर आदेश को वापस लेने के लिए वर्तमान आवेदन ***स्वीकार*** किया जाता है।

धारा 482 सीआरपीसी के अंतर्गत आवेदन को उसके मूल क्रमांक पर बहाल किया जाता है।

सत्र परीक्षण संख्या 110/2017 (राज्य बनाम कुर्बान एवं अन्य), जो मुकदमा अपराध संख्या 86/2017, धारा 323, 504, 506, 452, 308, 324, 325, 304, 147, 148 आईपीसी, थाना देवा, जिला- बाराबंकी से उत्पन्न हुआ है, को भी उसके मूल क्रमांक पर बहाल किया जाता है।

27. धारा 482 सीआरपीसी के अंतर्गत आवेदन को ***उपयुक्त न्यायालय के समक्ष, यथाशीघ्र, नए वाद के रूप*** में सूचीबद्ध/प्रस्तुत करें।

28. इस निर्णय के पैरा 24 में दिनांक 12.02.2025 के अंतिम आदेश को वापस लेने के लिए दर्ज किए गए उपरोक्त तथ्यों/कारणों को ध्यान में रखते हुए, यह न्यायालय प्रत्येक अभियुक्त/आवेदक पर ₹ 25,000/- का जुर्माना लगाता है, जिसे आज से एक माह के भीतर उच्च न्यायालय विधिक सेवा, लखनऊ को भुगतान किया जाएगा, अन्यथा इसे भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूल किया जाएगा।

29. कार्यालय इस आदेश की एक प्रति जिला मजिस्ट्रेट को भेजेगा ताकि उपरोक्त के चूक में मामले में आगे की कार्रवाई की जा सके।

30. संबंधित न्यायालय को निर्देश दिया जाता है कि मुकदमे को समाप्त करने के उद्देश्य से अभियुक्तों/आवेदकों अर्थात् जावेद अहमद उर्फ जावेद पुत्र कुर्बान अली, सरताज पुत्र कुर्बान अली, मो. जफर उर्फ जाफर पुत्र मो. नफीस और हमीदन उर्फ हमीदा पत्नी कुर्बान अहमद की उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक कार्रवाई करें।

31. श्री सज्जाद हुसैन, अधिवक्ता द्वारा बिना शर्त माफी मांगने और पश्चाताप व्यक्त करने तथा भविष्य में ऐसा कदाचार न दोहराने का वादा करने तथा 'बार' के सदस्यों के अनुरोध पर विचार करते हुए,

यद्यपि अधिवक्ता का आचरण क्षमा के योग्य नहीं है क्योंकि बड़ी संख्या में लंबित मामलों के कारण यह न्यायालय बार के सदस्यों के बयानों पर निर्भर करता है, जिनसे न्यायालय के समक्ष सही बयान देने की अपेक्षा की जाती है, श्री सज्जाद हुसैन, अधिवक्ता की बिना शर्त माफी स्वीकार की जाती है और उन्हें भविष्य में इस प्रकार के कदाचार को न दोहराने के प्रति सावधान रहने की चेतावनी दी जाती है तथा निर्देश दिया जाता है।

32. कार्यालय को निर्देश दिया जाता है कि इस आदेश की प्रमाणित प्रति तत्काल अवर न्यायालय को प्रेषित की जाए।

(2025) 4 ILRA 363

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 24.04.2025

माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह

के समक्ष

अवमानना आवेदन (सिविल) संख्या 3413/2023

अंबरीश द्विवेदी एवं अन्य **...आवेदक**

बनाम

श्री अमनंद कुमार सिंह, एम.डी., प्रादेशिक कोऑपरेटिव डेयरी फेडरेशन लिमिटेड, लखनऊ एवं अन्य

...विपरीत पक्ष

आवेदकों के अधिवक्ता:

प्रदीप कुमार त्रिपाठी

विपरीत पक्षों के अधिवक्ता:

ललित शुक्ला

ए. अवमानना कानून - रिकॉल आवेदन - पोषणीयता - अवमानना याचिका का एकपक्षीय निस्तारण किया गया - रिट आदेश के अनुपालन में 7% ब्याज के भुगतान का अनुपालन नहीं किया गया, हालांकि, यह आरोप लगाया गया था कि ऐसा ही किया गया है - रिकॉल आवेदन में न्यायालय के समक्ष गलत बयानी करने का आरोप लगाया गया था - प्रभाव - अवधारित किया गया, गलत बयानी धोखाधड़ी के बराबर है और धोखाधड़ी सभी कार्यवाहियों को दूषित करती है और इस न्यायालय की यह सुविचारित राय है कि यह कानून अवमानना याचिका

पर भी उसी प्रकार लागू होगा, यदि आदेश किसी भी पक्ष के कहने पर गलत बयानी या धोखाधड़ी पर पारित किया जाता है - रिकॉल आवेदन पोषणीय है। (पैरा 23, 24 और 25)

रिकॉल आवेदन को स्वीकार किया गया। (ई-1)

<u>उद्धृत वादों की सूची:-</u>

1. राज्य बनाम बलदेव राज; 1991 एससीसी ऑनलाइन एएलएल 1070
2. महावीर प्रसाद वर्मा बनाम केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, लखनऊ; 2013 एससीसी ऑनलाइन एएलएल 13904
3. दुर्गा नागपाल बनाम सी/एम, पैट्रोनेज इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट स्टडीज; 2013 एससीसी ऑनलाइन एएलएल 13298
4. यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम राजेंद्र सिंह; 2003 एससीसी 581
5. हिमालयन कोऑपरेटिव ग्रुप हाउसिंग सोसाइटी बनाम बलवान सिंह; (2015) 7 एससीसी 373

(माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह द्वारा निर्णय दिया गया)

1. आवेदकों के अधिवक्ता श्री प्रदीप कुमार त्रिपाठी और विपरीत पक्ष के अधिवक्ता श्री ललित शुक्ला को सुना गया।

2. इस न्यायालय द्वारा अवमानना आवेदन (सिविल) संख्या 3413/2023 में पारित दिनांक 20.2.2024 के आदेश को वापस लेने के लिए वर्तमान आवेदन प्रस्तुत किया गया है और दिनांक 20.2.2024 का आदेश नीचे उद्धृत है:-

"वाद पुकारा गया।
याचिकाकर्ताओं की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ।
विपरीत पक्ष के विद्वान अधिवक्ता श्री ललित शुक्ला ने प्रस्तुत किया कि रिट न्यायालय द्वारा पारित आदेश का अनुपालन किया गया है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ताओं को ब्याज भाग पर राशि की गणना के संबंध में कुछ आपत्तियाँ हैं।
चूँकि ग्रेच्युटी के संबंध में गणना तथ्य का विवादित प्रश्न है और इसे उचित स्तर पर उपयुक्त मंच के समक्ष उठाया जा सकता है।
उपर्युक्त के मद्देनजर, इस स्तर पर कोई अवमानना नहीं बनती है।
अवमानना याचिका खारिज की जाती है।
नोटिस जारी किए जाते हैं।

अनुवादित

रिकॉर्ड के लिए भेजा जाता है।"

3. आवेदकों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि रिट ए संख्या 6142/2022 (अंबरीश द्विवेदी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य) में याचिकाकर्ताओं को ग्रेच्युटी के विलंबित भुगतान पर ब्याज के भुगतान के साथ-साथ अवकाश नकदीकरण का अनुरोध किया गया था। रिट कोर्ट ने उपरोक्त रिट याचिका पर दिनांक 8.5.2023 को आदेश पारित करते हुए, याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता के इस कथन पर ध्यान दिया कि याचिकाकर्ता वर्ष 2014 से 2020 के बीच सेवानिवृत्त हुए, जबकि ग्रेच्युटी का भुगतान अगस्त, 2021 में किया गया था और इसलिए, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों और विशेष रूप से, ग्रेच्युटी भुगतान अधिनियम 1972 की धारा 7(3ए) के प्रावधान को ध्यान में रखते हुए, प्रतिवादियों को ग्रेच्युटी के विलंबित भुगतान की राशि पर, उनकी सेवानिवृत्ति की तिथि से लेकर उन्हें किए गए वास्तविक भुगतान तक, तीन महीने की अवधि के भीतर, 7% प्रति वर्ष की दर से ब्याज का भुगतान सुनिश्चित करने का निर्देश दिया। रिट न्यायालय को पर्याप्त जानकारी थी और इसलिए, यह भी प्रावधान किया गया कि यदि राशि तीन महीने की अवधि के भीतर भुगतान नहीं की जाती है, तो उस पर बकाया ब्याज पर 7% प्रति वर्ष की दर से अतिरिक्त ब्याज लगेगा। उन्होंने प्रस्तुत किया कि यह आदेश पक्षों को सुनने के बाद पारित किया गया था और यह अंतिम रूप ले चुका है। रिट ए संख्या 6142/2022 में पारित आदेश दिनांक 8.5.2023 इस प्रकार है:-

"1. याचिकाकर्ताओं द्वारा ग्रेच्युटी के भुगतान में देरी के साथ-साथ अवकाश नकदीकरण पर ब्याज का दावा करते हुए वर्तमान याचिका दायर की गई है।

2. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि याचिकाकर्ता वर्ष 2014 से 2020 (जैसा कि अनुलग्नक संख्या 1 में विस्तृत है) में सेवानिवृत्त हुए, जबकि ग्रेच्युटी का भुगतान अगस्त, 2021 के महीने में किया गया था जैसा कि रिट याचिका के पैरा-18 में उल्लिखित है।

3. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि ग्रेच्युटी के भुगतान पर, ग्रेच्युटी भुगतान अधिनियम की धारा 7(3ए) के तहत वैधानिक ब्याज निर्धारित है, वर्तमान याचिका का निस्तारण प्रतिवादियों को ग्रेच्युटी के भुगतान में देरी की राशि पर 7% प्रति वर्ष की दर से ब्याज का भुगतान सुनिश्चित करने का निर्देश देते हुए किया जाता है।

4. ब्याज की राशि सेवानिवृत्ति की तिथि से वास्तविक भुगतान तक भुगतान की जाएगी जैसा कि रिट याचिका के पैरा-18 में दर्शाया गया है।

5. ऊपर दिए गए निर्देशानुसार ब्याज, इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से तीन महीने की अवधि के भीतर याचिकाकर्ताओं को निश्चित रूप से भुगतान किया जाएगा।

6. यदि ऊपर दिए गए निर्देशानुसार तीन महीने की अवधि के भीतर राशि का भुगतान नहीं किया जाता है, तो उस पर ऊपर दिए गए निर्देशानुसार अवैतनिक ब्याज पर 7% की दर से अतिरिक्त ब्याज लगेगा।

7. रिट याचिका उपरोक्त शर्तों के अनुसार निस्तारित की जाती है।

8. यह आदेश प्रतिवादी संख्या 2 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री शंकर लाल की उपस्थिति में पारित किया गया है।

4. उपर्युक्त का उल्लेख करते हुए, उन्होंने दलील दी कि विलंबित भुगतान के कुछ हिस्से पर ब्याज का भुगतान किया गया है, जबकि न्यायालय के समक्ष यह गलत प्रस्तुत किया गया है कि रिट न्यायालय द्वारा पारित आदेश का पालन किया गया है। उन्होंने वापसी के आवेदन पर दायर जवाबी हलफनामे की ओर ध्यान आकर्षित किया है और दलील दी है कि वास्तव में, विपरीत पक्ष यह जवाब देने में विफल रहे हैं कि विलंबित ग्रेच्युटी भुगतान के प्रत्येक हिस्से पर ब्याज का भुगतान किया गया है।

5. इसके अतिरिक्त, उन्होंने दलील दी है कि वास्तव में आवेदकों के अधिवक्ता 20.2.2024 को अवमानना न्यायालय के समक्ष उपस्थित नहीं हो सके, जो कि आदेश से ही स्पष्ट है और विपरीत पक्ष के अधिवक्ता के एकमात्र तर्क पर, अवमानना याचिका यह मानते हुए खारिज कर दी गई थी कि रिट न्यायालय द्वारा पारित आदेश का पालन किया गया है और वास्तव में विपरीत पक्ष के अधिवक्ता ने न्यायालय के समक्ष सही तथ्य नहीं रखे और इस प्रकार, धोखाधड़ी किया है और इसलिए, दलील दी गई है कि 20.2.2024 के आदेश को वापस लिया जा सकता है।

6. दूसरी ओर, विपरीत पक्ष के विद्वान अधिवक्ता ने उपरोक्त प्रस्तुतियों का कड़ा विरोध किया है और कहा है कि चूँकि शेष ग्रेच्युटी राशि पर ब्याज के विलंबित भुगतान के संबंध में विवाद था, इसलिए यह तथ्य का एक विवादित प्रश्न है और इस स्तर पर अवमानना याचिका में इस पर निर्णय नहीं दिया जा सकता। उन्होंने यह भी कहा कि बाद में, अवमानना न्यायालय की समन्वय पीठ ने अन्य अवमानना याचिकाओं में भी कई आदेश पारित किए हैं, जहाँ ऐसे अन्य याचिकाकर्ताओं/आवेदकों को ऐसे तथ्यात्मक विवादों के निर्णय हेतु उपयुक्त मंच के समक्ष भेज दिया गया है, अतः उनका कहना है कि आवेदक किसी भी राहत के हकदार नहीं हैं। अपने तर्कों को जोड़ते हुए, उन्होंने कहा कि जहाँ अवमानना याचिका का निर्णय गुण-दोष के आधार पर किया जाता है, वहाँ पुनर्विचार या वापसी आवेदन स्वीकार्य नहीं है।

7. पक्षकारों के अधिवक्ताओं को सुनने के पश्चात् यह स्पष्ट हुआ कि रिट न्यायालय ने रिट संख्या 6142/2022 में दिनांक 18.5.2023 को आदेश पारित करते हुए निर्देश दिया था कि विपरीत पक्ष विलंबित ग्रेच्युटी भुगतान की राशि पर 7% प्रति वर्ष की विशिष्ट दर से ब्याज का भुगतान सुनिश्चित करेगा। दिनांक 20.2.2024 के आदेश से यह भी स्पष्ट है कि आदेश पारित होने की तिथि पर आवेदकों के अधिवक्ता उपस्थित नहीं थे और केवल विपरीत पक्ष के अधिवक्ता द्वारा दिए गए कथन के आधार पर, इस न्यायालय ने अवमानना याचिका को यह मानते हुए खारिज कर दिया कि इसमें कुछ विवादित तथ्यगत प्रश्न हैं जिन पर निर्णय होना बाकी है।

8. वस्तुतः, आवेदकों के अधिवक्ताओं के तर्क का सार यह है कि ब्याज भुगतान में विलंब हुआ था और विलंबित ग्रेच्युटी राशि पर कुछ ब्याज दिया गया था और जहाँ तक पहली, दूसरी और तीसरी किस्तों का संबंध है, विलंबित भुगतान पर ब्याज नहीं दिया गया है।

9. रिट कोर्ट का निर्देश बिल्कुल स्पष्ट है कि ग्रेच्युटी के भुगतान की विलंबित राशि पर 7% प्रति वर्ष की दर से ब्याज दिया जाएगा और इसके अलावा, कोर्ट ने यह भी निर्देश दिया है कि ब्याज का भुगतान सेवानिवृत्ति की तिथि से वास्तविक भुगतान तक किया जाएगा जैसा कि रिट याचिका के पैराग्राफ संख्या 18 में दर्शाया गया है। वास्तव में यह तथ्य आदेश पारित होने की तिथि दिनांक 20.2.2024 को कोर्ट के संज्ञान में नहीं लाया गया था और बल्कि यह सूचित किया गया था कि आदेश का अनुपालन कर दिया गया है और अवमानना कोर्ट ने यह मानते हुए कि रिट कोर्ट द्वारा पारित आदेश का अक्षरशः अनुपालन कर दिया गया है, अवमानना याचिका को खारिज कर दिया।

10. प्रतिपक्ष के अधिवक्ता ने आपत्ति उठाई है कि एक बार अवमानना याचिका खारिज/निस्तारण हो जाने के बाद, ऐसे आदेश को वापस लेने का कोई प्रावधान नहीं है।

11. सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय के कई फैसलों में इस मुद्दे पर बार-बार विचार किया गया है। **राज्य बनाम बलदेव राज 1991 एससीसी ऑनलाइन एएलएल 1070** के मामले में, यह माना गया है कि न्यायालय अवमानना अधिनियम, 1971 में प्रक्रिया निर्धारित की गई है और उच्च न्यायालय को आदेश वापस लेने या पुनर्विचार करने का कोई स्पष्ट अंतर्निहित अधिकार नहीं है। उपरोक्त निर्णय के पैराग्राफ संख्या 13, 19 और 20 नीचे उद्धृत हैं:-

"13. स्पष्टतः न्यायालय अवमानना अधिनियम, 1971 न केवल सिविल और आपराधिक अवमानना को परिभाषित करता है, बल्कि प्रक्रिया भी निर्धारित करता है। यह अधिनियम न्यायालय की अवमानना के मामले में उच्च न्यायालय को स्पष्ट रूप से कोई अंतर्निहित शक्ति प्रदान नहीं करता है। यह धारा 19 में अवमानना के लिए दंडित करने के अपने अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में उच्च न्यायालय के आदेश या निर्णय के विरुद्ध अपील का प्रावधान करता है। जब अधिनियम अवमानना के मामलों में आदेश या निर्णय के विरुद्ध अंतर्निहित शक्ति या वापस लेने या समीक्षा करने की शक्ति प्रदान नहीं करता है और उपचार प्रदान करता है, तो अवमानना के मामलों में वापस लेने या समीक्षा करने की उच्च न्यायालय की शक्ति का आह्वान नहीं किया जा सकता है।

19. यह स्पष्ट है कि यह निर्णय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत प्रयोग की जाने वाली शक्ति के संबंध में उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों से संबंधित है। मामले के तथ्य बिल्कुल अलग थे। जिस व्यक्ति के आग्रह पर पुनरीक्षण की शक्ति का प्रयोग किया गया था, वह याचिका का पूर्व पक्षकार नहीं था। हमारा मत है कि उच्च न्यायालय की शक्तियाँ प्राकृतिक न्याय सुनिश्चित करने के लिए अनुच्छेद 226 कहीं अधिक व्यापक हैं। पुनरावृत्ति के जोखिम के साथ यह कहा जा सकता है कि न्यायालय की अवमानना के वादों में उच्च न्यायालय की शक्तियाँ न्यायालय की अवमानना अधिनियम, 1971 की प्रस्तावना द्वारा सीमित कर दी गई हैं। यह विस्तृत प्रक्रिया और फिर उच्च न्यायालय के आदेश या निर्णय के विरुद्ध अपील का प्रावधान करता है। हमारा मत है कि अधिनियम में प्रत्याहरण या पुनरीक्षण की शक्ति निहित रूप से शामिल नहीं है। हालाँकि, जैसा कि

पहले कहा गया है, न्यायालय की अवमानना के मामले में अंतिम आदेश या निर्णय के बाद भी, उच्च न्यायालय में लिपिकीय या टंकण त्रुटि को सुधारने की अंतर्निहित शक्ति होती है।

20. इस मामले में हमने बलदेव राज और विद्वान एजीए को विस्तार से सुना है। बेलदेव राज का तर्क है कि मामला सुनवाई के लिए नियत था और उस तिथि को निर्णय नहीं सुनाया जा सकता था। प्रथमतः इसे भूल नहीं कहा जा सकता। यह असामान्य नहीं है कि सुनवाई के बाद उसी दिन निर्णय सुनाया जाए। यदि कोई पक्ष तुच्छ प्रकृति का कोई तर्क देकर बहस करने और सुनवाई में भाग लेने से इनकार करता है, तो उच्च न्यायालय निर्णय सुना सकता है। इसे रिकॉर्ड पर स्पष्ट भूल या लिपिकीय प्रकृति की गलती नहीं कहा जा सकता। बलदेव राज ने आगे जोरदार ढंग से तर्क दिया कि पीठ उनके खिलाफ पक्षपाती थी। यह अपील में विचारणीय मामला हो सकता है लेकिन इसे लिपिकीय गलती नहीं कहा जा सकता। बलदेव राज बहुत दुखी थे क्योंकि एक समय उनके खिलाफ अवमानना मामले की सुनवाई कर रही पीठ ने पुलिस को बुलाया और फिर खेद व्यक्त किया। एक बार फिर यह अपील में विचारणीय मामला है और इसे रिकॉर्ड को देखते हुए स्पष्ट गलती या लिपिकीय गलती नहीं कहा जा सकता। यह तर्क कि बलदेव राज को सुनवाई का उचित अवसर नहीं मिला, अपील का आधार हो सकता है लेकिन फैसले और दोषसिद्धि के आदेश की समीक्षा या उसे वापस लेने या लिपिकीय गलती को सुधारने का आधार नहीं हो सकता।

12. इसके अलावा, **महावीर प्रसाद वर्मा बनाम केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, लखनऊ 2013 एससीसी ऑनलाइन एएलएल 13904** के मामले में दिए गए कानून पर भी भरोसा किया गया है। उपर्युक्त निर्णय का पैराग्राफ संख्या 4 नीचे पुनः प्रस्तुत हैः-

"दिनांक 10.1.2012 के आदेश द्वारा, याचिकाकर्ता द्वारा दायर अवमानना याचिका उसकी अनुपस्थिति में इस आधार पर खारिज कर दी गई कि याचिकाकर्ता प्रतिवादी ने अवमाननाकर्ता के स्थानांतरित होने के बाद से उत्तराधिकारी को रिकॉर्ड पर लाने के लिए कोई आवेदन प्रस्तुत नहीं किया है। न्यायाधिकरण ने नोट किया कि अवमानना कार्यवाही में पारित आदेश को वापस लेने का आवेदन पोषणीय नहीं है। जहां तक न्यायाधिकरण का यह निष्कर्ष है कि वापसी/समीक्षा आवेदन पोषणीय नहीं है, सही प्रतीत होता है। वस्तुतः, दिनांक 10.1.2012 के आदेश को वापस लेना, पहले के निर्णय की समीक्षा के बराबर होगा, जो इस सीमा तक गुण-दोष के आधार पर पारित किया गया था कि उत्तराधिकारी अधिकारी को रिकॉर्ड पर नहीं लाया गया है। समीक्षा/वापसी या अपील वैधानिक उपचार हैं, देखें एआईआर 1966 एससी 641, हरभजन सिंह बनाम करम सिंह एवं अन्य, 1988 (14) एएलआर 706, विजय बहादुर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1995 (26) एएलआर 627, राम जीवन सिंह और अन्य बनाम जिला विद्यालय निरीक्षक, कानपुर और अन्य, 1979 (5) एएलआर 168, 1998 (33) एएलआर 456, न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती बिमला देवी और अन्य, 1997 (88) आरडी 562, श्रीमती शिवराजी और अन्य बनाम उप संचालक, चकबंदी, इलाहाबाद और अन्य, एआईआर 1970 एससी 1273, पटेल नरशी ठाकरशी और अन्य बनाम प्रद्युम्नसिंहजी अर्जुनसिंहजी, 1987 (13) एएलआर 680, डॉ. (श्रीमती) कुंतेश गुप्ता बनाम हिंदू कन्या महाविद्यालय, सीतापुर आदि का प्रबंधन, एआईआर 1964 एससी 436, लक्ष्मण

पुरुषोत्तम पिम्पुतकर बनाम बॉम्बे राज्य और अन्य, और एआईआर 1965 एससी 1457, पटेल चुन्नीभाई दाजीभा आदि बनाम नारायणराव खंडेराव जाम्बेकर और अन्य। जब तक अधिनियम के तहत प्रावधान न हो, समीक्षा/वापस लेने के लिए कोई आवेदन नहीं दिया जा सकता है। न्यायालयों की अवमानना अधिनियम, 1971 में किसी फैसले की समीक्षा का कोई प्रावधान नहीं है। इसलिए 13.9.2012 का आक्षेपित आदेश किसी भी तरह की अनौचित्य या अवैधता से ग्रस्त नहीं लगता है।

13. यह कहा गया है कि उपरोक्त मामले में आदेश पारित करने के बाद दूसरा पक्ष न्यायालय को आदेश की समीक्षा/वापस लेने के लिए मनाने की कोशिश कर रहा था और उसे अस्वीकार कर दिया गया था।

14. **दुर्गा नागपाल बनाम प्रबंधन समिति, पैट्रोनेज इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट स्टडीज 2013 एससीसी ऑनलाइन एएलएल 13298** के मामले पर भी भरोसा किया गया है, और इसके पैराग्राफ संख्या 17 और 19 का हवाला दिया गया है। उपर्युक्त निर्णय के पैराग्राफ 17 और 19 नीचे उद्धृत हैं:-

"17. ऊपर चर्चित विधि के प्रस्ताव को ध्यान में रखते हुए, इसमें कोई संदेह की गुंजाइश नहीं है कि एक बार अवमानना कार्यवाही समाप्त हो जाने और अवमाननाकर्ता को उन्मुक्त कर दिए जाने के बाद, अवमानना न्यायाधीश के लिए अंतिम निर्णय में संशोधन हेतु विविध आवेदन पर विचार करने के बाद अपने आदेश की समीक्षा करना संभव नहीं था। चूँकि अभियुक्तों को उन्मुक्त कर दिया गया था (उपरोक्त) और कार्यवाही बंद हो चुकी थी, इसलिए संशोधन हेतु विविध आवेदन पोषणीय नहीं था। इस प्रकार, अवमानना न्यायाधीश ने अधिकार क्षेत्र के बिना आक्षेपित आदेश पारित किया प्रतीत होता है। चूँकि अवमानना न्यायाधीश ने बिना किसी प्राधिकार के अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किया, इसलिए विशेष अपील पोषणीय प्रतीत होती है। विशेष अपील की पोषणीयता के संबंध में प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्क गलत प्रतीत होते हैं और स्वीकार करने योग्य नहीं हैं।

19. ऐसा नहीं है कि प्रतिवादी याचिकाकर्ता के पास कोई उपचार नहीं है। आदेश में संशोधन के लिए विविध आवेदन प्रस्तुत करने के बजाय, प्रतिवादी याचिकाकर्ता न्यायालय के समक्ष दिए गए वचनपत्र के कथित उल्लंघन के कारण नई अवमानना याचिका दायर कर सकता था क्योंकि यह कार्रवाई का एक नया कारण बनता है, या भारत के संविधान के अनुच्छेद 215 के तहत एक आवेदन प्रस्तुत किया जा सकता था, जिसमें अवमाननाकर्ता को उन्मोचित करते समय न्यायालय द्वारा दिए गए वचनपत्र और उस पर भरोसा किए गए वचनपत्र के उल्लंघन के कारण उचित न्यायालय द्वारा कार्रवाई और दंड के लिए आवेदन किया जा सकता था।

15. उपर्युक्त का उल्लेख करते हुए, इस बात पर बल दिया गया है कि अंतिम निर्णय पारित होने के बाद संशोधन आवेदन प्रस्तुत करते समय, आदेश की समीक्षा का अनुरोध किया गया था और उसे अस्वीकार कर दिया गया था और यह माना गया था कि अवमानना न्यायाधीश को अपने आदेश को रीवाइव करने का कोई अधिकार नहीं है। जहाँ तक इस मामले में शामिल मुद्दों का संबंध है, गलत बयानी के कारण अवमानना याचिका

खारिज कर दी गई। इस पृष्ठभूमि में, यह तथ्यों और कानून में एक विशिष्ट मामला बन गया है, जहाँ गलत बयानी के प्रभाव और अर्थ को लागू/व्याख्यायित किया जाना है।

16. निस्संदेह, न्यायालय अवमानना अधिनियम 1971 में समीक्षा या वापसी का कोई प्रावधान नहीं है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि इस तरह के आदेश को वापस लेने के उद्देश्य से स्थापित कानूनों का अनुपात भी अनावश्यक होगा।

17. यह न्यायालय राम चंद्र सिंह बनाम सावित्री देवी मामले (2003) 8 एससीसी 319 का उल्लेख कर सकता है, जिसमें यह माना गया है कि 'धोखाधड़ी अक्षर या शब्दों द्वारा किया गया एक आचरण है जो दूसरे व्यक्ति या प्राधिकारी को' पूर्व के आचरण के जवाब में निश्चित रुख अपनाने के लिए प्रेरित करता है, चाहे वह शब्द हो या अक्षर और गलत बयानी अपने आप में धोखाधड़ी के बराबर है और गलत बयानी में किसी व्यक्ति को जानबूझकर या लापरवाही से झूठ पर विश्वास करने और उस पर कार्य करने के लिए प्रेरित करके उसे नुकसान पहुंचाना शामिल है।

18. इसके अलावा, **यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम राजेंद्र सिंह 2003 एससीसी 581** के मामले में पैराग्राफ संख्या 15 और 16 में बहुत स्पष्ट रूप से माना गया है कि किसी भी न्यायालय या न्यायाधिकरण को अपने आदेश को वापस लेने के लिए शक्तिहीन नहीं माना जा सकता है यदि वह गलत बयानी या धोखाधड़ी से प्रभावित हो। उपर्युक्त निर्णय के पैराग्राफ संख्या 15 और 16 नीचे उद्धृत हैं:-

"15. यह अपेक्षा करना अवास्तविक है कि अपीलकर्ता कंपनी धोखाधड़ी के आधार पर प्रथम दृष्टया दावे का विरोध करेगी, क्योंकि उस समय अपीलकर्ता कंपनी को दावेदारों द्वारा कथित रूप से की गई धोखाधड़ी के बारे में कोई जानकारी नहीं थी। यदि बीमा कंपनी को मुआवजे का दावा प्राप्त करने के कुटिल उद्देश्य से की गई किसी संदिग्ध साजिश का पता चलता है, और यदि उस समय तक पंचाट पारित हो चुका होता है, तो कंपनी के लिए पंचाट के विरुद्ध वैधानिक अपील दायर करना संभव नहीं होगा। न केवल अपील दायर करने की समय-सीमा के कारण, बल्कि यदि विलंब को क्षमा किया जा सकता है, तो भी अपील पर विचार उस समय तक की गई दलीलों से उत्पन्न मुद्दों तक ही सीमित रहेगा।

16. इसलिए, हमें इसमें कोई संदेह नहीं है कि उच्च स्तर की धोखाधड़ी के नए खोजे गए तथ्यों के आधार पर आदेश को वापस लेने के लिए आवेदन करने का उपाय ऐसी स्थिति में बंद नहीं किया जा सकता। कोई भी न्यायालय या न्यायाधिकरण अपने आदेश को वापस लेने में असमर्थ नहीं माना जा सकता यदि उसे यह विश्वास हो कि आदेश धोखाधड़ी या गलतबयानी के माध्यम से ऐसे आयाम में लाया गया है जो दावे के मूल आधार को प्रभावित करेगा।"

19. पुनः **हिमालयन कोऑपरेटिव ग्रुप हाउसिंग सोसाइटी बनाम बलवान सिंह (2015) 7 एससीसी 373** के मामले में, स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि न्यायालय अधिवक्ता के कथन या स्वीकारोक्ति को कानून या कानूनी

निष्कर्ष के रूप में मानने के लिए बाध्य नहीं है। इस संबंध में उपर्युक्त निर्णय का पैराग्राफ संख्या 32 नीचे उद्धृत है:-

"32. सामान्यतः, किसी अधिवक्ता द्वारा की गई तथ्यात्मक स्वीकारोक्ति उसके मुख्य न्यायाधीश पर तब तक बाध्यकारी होती है जब तक कि वे स्पष्ट हों; हालाँकि, जहाँ किसी कथित स्वीकारोक्ति के बारे में संदेह हो, वहाँ न्यायालय को ऐसी स्वीकारोक्ति को तब तक स्वीकार करने में सावधानी बरतनी चाहिए जब तक कि वकील या अधिवक्ता को उसके मुख्य न्यायाधीश द्वारा ऐसी स्वीकारोक्ति करने के लिए अधिकृत न किया गया हो। इसके अलावा, कोई मुवक्किल ऐसे कथन या स्वीकारोक्ति से बाध्य नहीं है जिसे देने के लिए उसे या उसके अधिवक्ता को अधिकृत नहीं किया गया हो। किसी अधिवक्ता के पास सामान्यतः ऐसी स्वीकारोक्ति या कथन देने का कोई निहित या प्रत्यक्ष अधिकार नहीं होता है जिससे मुवक्किल के मूल कानूनी अधिकारों का सीधे तौर पर समर्पण या समापन हो जाए, जब तक कि ऐसी स्वीकारोक्ति या कथन उस उद्देश्य की पूर्ति में स्पष्ट रूप से एक उचित कदम न हो जिसके लिए अधिवक्ता को नियुक्त किया गया था। हम यह जोड़ना चाहते हैं कि न तो मुवक्किल और न ही न्यायालय कानून या कानूनी निष्कर्षों के वादों में अधिवक्ता के कथनों या स्वीकारोक्ति से बाध्य है?"

20. उपर्युक्त स्थापित कानूनों पर एक नजर डालने से यह पता चलता है कि जहां तक विपरीत पक्ष के अधिवक्ता द्वारा संदर्भित बलदेव राज (उपरोक्त) का मामला है, वह अवमाननाकर्ता की सजा के आदेश के खिलाफ था और एक अपील दायर करने के बजाय, जैसा कि क़ानून में प्रावधान है, एक रिकॉल आवेदन दायर किया गया था, जबकि अपील का उपचार अधिनियम 1971 की धारा 19 के तहत निहित है और इसलिए, मामले का उपरोक्त तथ्यात्मक मैट्रिक्स वर्तमान मामले से पूरी तरह से अलग है।

21. जहां तक दुर्गा नागपाल (उपरोक्त) के मामले का संबंध है, इस मामले के तथ्य वर्तमान मामले से अलग हैं क्योंकि उपर्युक्त मामले में, गलत बयानी या धोखाधड़ी का आधार शामिल नहीं था, न ही उठाया गया था और न ही तय किया गया था और इसलिए, उपर्युक्त निर्णय का अनुपात वर्तमान मामले में भी लागू नहीं होगा।

22. अंत में, महावीर प्रसाद वर्मा (उपरोक्त) का मामला, जिसका हवाला विपरीत पक्ष के अधिवक्ता ने दिया है, से पता चलता है कि समीक्षा/रिकॉल पेश किया गया था, जिसे केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण ने डिफ़ॉल्ट रूप से खारिज कर दिया था और इसे रिट क्षेत्राधिकार में उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी और उसके बाद, इसे रद्द कर दिया गया था और अवमानना याचिका बहाल कर दी गई थी और न्यायाधिकरण को उत्तराधिकारी को रिकॉर्ड पर लाने के लिए उस पर निर्णय लेने का निर्देश दिया गया था, इस प्रकार, उपर्युक्त मामला तथ्यात्मक रूप से वर्तमान मामले से अलग है।

23. रिकॉल आवेदन इस आधार पर पेश किया गया है कि अवमानना न्यायालय के समक्ष यह अनुचित रूप से प्रस्तुत किया गया है कि रिट न्यायालय द्वारा पारित आदेश का पालन किया गया है, हालांकि, इसे न्यायालय

के समक्ष गलत तरीके से प्रस्तुत किया गया था। रिकॉल आवेदन के पैराग्राफ संख्या 4, 5 और 6 में, यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि कुछ किश्तों के ग्रेच्युटी के विलंबित भुगतान का ब्याज अभी तक नहीं दिया गया है और विपक्षी द्वारा दायर प्रति-शपथपत्र/आपत्तियों के पैराग्राफ संख्या 12 में दिए गए उत्तर के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि इसका स्पष्ट रूप से खंडन नहीं किया गया है, बल्कि यह कहा गया है कि धनराशि की उपलब्धता के अनुसार भुगतान कर दिया गया है, लेकिन विलंबित भुगतान पर 7% की दर से ब्याज के भुगतान के संबंध में क्या हुआ, इस बारे में कुछ नहीं बताया गया है।

24. यह सर्वविदित कानून है कि मिथ्याबयान धोखाधड़ी के समान है और धोखाधड़ी सभी कार्यवाहियों को दूषित करती है और इस न्यायालय का सुविचारित मत है कि यह कानून अवमानना याचिका में भी उसी प्रकार लागू होगा, यदि किसी भी पक्ष के कहने पर मिथ्याबयान या धोखाधड़ी पर आदेश पारित किया जाता है।

25. उपरोक्त प्रस्तुतियों और चर्चाओं के आलोक में, इस न्यायालय का सुविचारित मत है कि रीकॉल आवेदन पोषणीय है।

26. परिणामस्वरूप, रीकॉल आवेदन सफल होता है, अतः रीकॉल आवेदन **स्वीकार** किया जाता है और दिनांक 20.2.2024 का आदेश एतद्द्वारा वापस लिया जाता है।

<u>अवमानना याचिका पर आदेश</u>

1. अवमानना आवेदन (सिविल) संख्या 3413/2023 को उसके मूल क्रमांक पर बहाल किया जाता है।

2. इस मामले को अगले माह सूचीबद्ध/प्रस्तुत करें।

अनुवादित

(2025) 4 ILRA 370

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 23.04.2025

माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिरला

माननीय न्यायमूर्ति जितेंद्र कुमार सिन्हा

के समक्ष

आपराधिक अपील संख्या 475/1984

फेरासत **...अपीलकर्ता**

बनाम

राज्य उत्तर प्रदेश **...प्रतिवादी**

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:
एम. इस्लाम

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
डी.जी.ए.

(ए) आपराधिक कानून - अपील - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302 - हत्या - दोषसिद्धि - प्रत्यक्षदर्शी गवाही की चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा पुष्टि की गई - अपीलकर्ता और अधिवक्ता की अनुपस्थिति - अपीलकर्ता या उसके अधिवक्ता दोनों के अनुपस्थित होने की स्थिति में वाद को स्थगित करना हमेशा आवश्यक नहीं होता है - रिकॉर्ड और निर्णय के अवलोकन के बाद अपील का निर्णय गुण-दोष के आधार पर किया जा सकता है - न्यायमित्र की नियुक्ति अनिवार्य नहीं है - यदि अपीलकर्ता की अनुपस्थिति में वाद का निर्णय गुण-दोष के आधार पर किया जाता है, तो उच्च न्यायालय स्थिति को सुधार सकता है - प्रत्यक्ष साक्ष्य के मामले में, हेतुक का बहुत कम महत्व होता है या कोई महत्व नहीं होता है। (पैरा -3,21)

(बी) आपराधिक कानून - मृत्युपूर्व बयान - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 161, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 32(1) - धारा 161 सीआरपीसी के अन्तर्गत दर्ज मृतक का बयान मृत्युपूर्व बयान के रूप में स्वीकार्य है जब मृत्यु के कारण से संबंधित हो और मृतक की बाद में मृत्यु हो जाए। (पैरा -18)

अभियुक्त, मृतक का सौतेला बेटा, घर में योगदान नहीं दे रहा था - मृतक के साथ तनावपूर्ण संबंध थे - प्रत्यक्षदर्शी की मौजूदगी में चाकू से कई वार किए - तुरंत एफआईआर - हेतुक साबित हुआ - मृतक के बयान को मृत्युपूर्व बयान माना गया - धारा 302 आईपीसी के अन्तर्गत दोषसिद्धि को चुनौती दी गई। **(पैरा - 7, 10, 18)**

निर्णय: - अपीलीय न्यायालय ने धारा 302 आईपीसी के अन्तर्गत दोषसिद्धि की पुष्टि करने के लिए विश्वसनीय प्रत्यक्षदर्शी गवाह के बयान और मृत्युपूर्व बयान पर सही ढंग से भरोसा किया। अपीलकर्ता की अनुपस्थिति योग्यता आधारित निस्तारण को बाधित नहीं करती है। न्यायमित्र की नियुक्ति विवेकाधीन है, अनिवार्य नहीं। दोषसिद्धि और सजा बरकरार रखी गई। **(पैरा 20,22,23)**

आपराधिक अपील खारिज। (ई-7)

<u>उद्धृत वादों की सूची: -</u>

1. सूर्य बख्श सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2014) 14 एससीसी 222
2. प्रदीप बिसोई @ रंजीत बिसोई बनाम ओडिशा राज्य, 2019 (11) एससीसी 500

अनुवादित

(माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिरला एवं माननीय न्यायमूर्ति जितेंद्र कुमार सिन्हा द्वारा निर्णय दिया गया)

1. सूची संशोधित की गई है। अपीलकर्ता की ओर से वर्तमान अपील पर दबाव डालने के लिए कोई भी उपस्थित नहीं हुआ। अपील वर्ष 1983 की है।

2. कार्यालय रिपोर्ट दिनांक 3.3.2022 के अनुसार, एकमात्र अपीलकर्ता, फिरासत, का पता नहीं चल पा रहा है। इस न्यायालय के दिनांक 05.02.2024 के आदेश द्वारा अपीलकर्ता के विरुद्ध गैर-जमानती वारंट जारी किया गया था। लेकिन अपीलकर्ता के उपलब्ध पते पर न रहने के कारण उस पर अमल नहीं किया जा सका। जमानतदारों का भी पता नहीं चल पा रहा है।

3. इस अपील की सुनवाई और निस्तारण ***सूर्य बक्श सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2014) 14 एससीसी 222*** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून के मद्देनजर किया जा रहा है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि यदि अपीलकर्ता या उसके वकील/अधिवक्ता दोनों अनुपस्थित हैं तो वाद को स्थगित करना हमेशा आवश्यक नहीं होता है और न्यायालय रिकॉर्ड और ट्रायल कोर्ट के फैसले के अवलोकन के बाद अपील का गुण-दोष के आधार पर फैसला कर सकता है। यह भी देखा गया है कि यदि अपीलकर्ता की अनुपस्थिति में वाद का गुण-दोष के आधार पर फैसला किया जाता है, तो उच्च न्यायालय स्थिति को सुधार सकता है। यह भी देखा गया है कि न्याय मित्र की नियुक्ति भी न्यायालय के विवेक पर है। उक्त निर्णय के पैराग्राफ 26 में यह माना गया कि उच्च न्यायालय के लिए न्याय मित्र की नियुक्ति करना हमेशा आवश्यक नहीं होता है, उक्त निर्णय के पैराग्राफ 24 और 26 निम्नानुसार उद्धृत हैं:

"24. हमें ऐसा लगता है कि अपीलीय न्यायालय, जो दोषी और उसके अधिवक्ता दोनों की अनुपस्थिति का सामना कर रहा है, के लिए यह आवश्यक है कि वह उन व्यक्तियों के विरुद्ध तुरंत कार्यवाही करे जो दोषी को ज़मानत दिए जाने के समय ज़मानतदार थे, क्योंकि इससे उसकी खोज और न्यायालय में पेशी हो सकती है। यदि यह प्रक्रिया भी दोषी का पता लगाने और उसे पेश करने में विफल रहती है, तो अपीलीय न्यायालय अपील को खारिज करने के लिए अधिकृत है। हम के.एस. पांडुरंगा बनाम कर्नाटक राज्य, (2013) 3 एससीसी 721 में हाल ही में कानून की गहन किन्तु सुस्पष्ट व्याख्या से पूरी तरह और सम्मानपूर्वक सहमत हैं। पिछले निर्णयों के व्यापक विश्लेषण के बाद, हमारे विद्वान भाई ने कानूनी स्थिति को छह प्रस्तावों में विभाजित किया था:

"19.1. कि उच्च न्यायालय अभियोजन न करने की अपील को गुण-दोष की जाँच किए बिना सीधे खारिज नहीं कर सकता;

19.2. कि यदि अपीलकर्ता या उसके वकील/अधिवक्ता दोनों अनुपस्थित हों, तो न्यायालय वाद को स्थगित करने के लिए बाध्य नहीं है;

19.3. न्यायालय विवेक या उदारता के आधार पर वाद को स्थगित कर सकता है, लेकिन वह ऐसा करने के लिए बाध्य नहीं है;

19.4. वह अवर न्यायालय के अभिलेख और निर्णय का अवलोकन करने के बाद अपील का निस्तारण कर सकता है।

19.5. यदि अभियुक्त जेल में है और स्वयं न्यायालय में नहीं आ सकता है, तो वाद को स्थगित करना और अपीलकर्ता-अभियुक्त की उपस्थिति को सुगम बनाने के लिए कोई अन्य तिथि निर्धारित करना उचित होगा, यदि उसका अधिवक्ता उपस्थित न हो, और यदि अधिवक्ता अनुपस्थित है और न्यायालय अपनी सहायता के लिए राज्य के खर्च पर एक अधिवक्ता नियुक्त करना उचित समझता है, तो कानून में ऐसा करने से न्यायालय को कोई नहीं रोकेगा; और

19.6. यदि अपीलकर्ता की अनुपस्थिति में वाद का निर्णय गुण-दोष के आधार पर किया जाता है, तो उच्च न्यायालय स्थिति को सुधार सकता है।
25. . . ..

26. वर्तमान वाद के तथ्यों पर वापस लौटते हुए, आक्षेपित आदेश के अवलोकन से यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट हो जाता है कि उच्च न्यायालय ने वाद पर उसकी सभी जटिलताओं में विचार किया है। यह तर्क कि उच्च न्यायालय न्याय मित्र नियुक्त करने के लिए कर्तव्यबद्ध था, कानूनी रूप से सही नहीं है। पांडुरंगा ने मोहम्मद सुकुर अली बनाम असम राज्य (1996) 4 एससीसी 729 को इनक्युरियम के अनुसार सही माना है, क्योंकि बाद वाला न्याय मित्र की नियुक्ति को अनिवार्य करता है और इस प्रकार यह बानी सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1996) 4 एससीसी 720 के साथ असंगत है। इस वाद में उच्च न्यायालय ने प्रस्तुत साक्ष्य पर स्पष्ट रूप से चर्चा की है और इसे सत्यापन योग्य पाते हुए इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि दोषसिद्धि अपीलीय निंदा, सुधार और हस्तक्षेप से ऊपर है। कानून के विश्लेषण के मद्देनजर हमारे सामने उठाया गया यह तर्क कि उच्च न्यायालय के लिए न्याय मित्र नियुक्त करना आवश्यक था, पूरी तरह से अस्वीकार्य है। उच्च न्यायालय ने अपीलीय न्यायालय पर आने वाली न्याय मित्र की जिम्मेदारी को विधिवत रूप से ग्रहण किया है और इसके द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण में कोई दोष नहीं है। इस संबंध में, हमें कोई त्रुटि नहीं मिलती।"

4. उपरोक्त दृष्टिकोण का अनुसरण माननीय पूर्ण पीठ द्वारा आपराधिक संदर्भ संख्या 1/2024, आपराधिक अपील बनाम उत्तर प्रदेश राज्य की सुनवाई में पुनः प्रक्रिया के अन्तर्गत, 22.01.2025 को तय किया गया है, जिसके पैराग्राफ संख्या 151 और 152 निम्नानुसार उद्धृत हैं:

"151. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बानी सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 11, सूर्य बख्श सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 12 और के.एस. पांडुरंगा बनाम कर्नाटक राज्य 13 में दिए गए तीन प्रसिद्ध निर्णयों

की उपरोक्त टिप्पणियों का सार, इस प्रकार, लखनऊ स्थित खंडपीठ द्वारा इस खंडपीठ के विचारार्थ तैयार किए गए प्रश्न संख्या 5 के संपूर्ण विस्तार को कवर करता है और हमारी सुविचारित राय में, इस खंडपीठ द्वारा कोई नई कार्रवाई किए जाने की आवश्यकता नहीं है, जिसमें एक बिंदु भी शामिल है जिसे लखनऊ स्थित खंडपीठ ने उजागर किया है, अर्थात् क्या न्यायमित्र की नियुक्ति तब भी की जा सकती है जब दोषी, अपीलकर्ता या अभियुक्त-प्रतिवादी की उपस्थिति सुनिश्चित की जा सकती है और वह भी उसकी सहमति के बिना।

152. उपर्युक्त कानूनी मिसालों से स्पष्ट है कि सर्वोच्च न्यायालय का जोर अपीलकर्ता को सुनवाई का अवसर प्रदान करने पर रहा है जो अपीलीय न्यायालय या उसके अधिवक्ता के साथ सहयोग करने के लिए तैयार है और इस संबंध में सुनवाई का अवसर देने के उद्देश्य से उसकी उपस्थिति के लिए एक प्रक्रिया उसे जारी की जानी आवश्यक है और जब न्यायालय को यह विश्वास हो जाता है कि ऐसा अपीलकर्ता जानबूझकर न्यायालय के समक्ष अपनी उपस्थिति से बच रहा है, ऐसी स्थिति में न्यायालय माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बानी सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 11, सूर्य बख्श सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 12 और के.एस. पांडुरंगा बनाम कर्नाटक राज्य 13 (अर्थात अभियोजक और एमिकस, यदि नियुक्त किया गया हो, की सहायता से ट्रायल कोर्ट के फैसले के संबंध में रिकॉर्ड/साक्ष्य का अवलोकन करने के बाद) में अनुमोदित तरीके से अपील का निस्तारण कर सकता है। और हमारे पास उपर्युक्त वादों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित स्थापित प्रस्ताव से विचलित होने का कोई कारण नहीं है, इसके अलावा, एमिकस की नियुक्ति केवल अपीलकर्ता को निष्पक्ष सुनवाई प्रदान करने और न्यायालय को सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से है।

5. ऐसी परिस्थितियों में, हम राज्य के विद्वान ए.जी.ए. श्री राहुल अस्थाना की सहायता से गुण-दोष के आधार पर वर्तमान अपील पर विचार करने के लिए आगे बढ़ते हैं।

6. वर्तमान अपील अपीलकर्ता द्वारा श्री महेश चंद्र, विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश- अष्टम, बरेली द्वारा दिनांक 11.01.1984 के निर्णय और आदेश द्वारा पारित अपनी दोषसिद्धि और सजा को चुनौती देते हुए दायर की गई है, जिसके अन्तर्गत अपीलकर्ता को धारा 302 आईपीसी के अन्तर्गत दोषी ठहराया गया है और उसे आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई है और उसे आगे रु. 5,00/- का अर्थदंड और जुर्माना अदा न करने पर एक वर्ष के कारावास की सजा भी सुनाई गई है। सजाएँ साथ-साथ चलने का आदेश दिया गया है।

7. अभियोजन पक्ष की कहानी, संक्षेप में, यह है कि मृतक चुटई का विवाह घटना की तारीख से लगभग तीन वर्ष पूर्व हसीन बी के साथ हुआ था। हसीन बी के पहले विवाह से फिरासत सहित सात बच्चे थे। फिरासत ने अलग काम करना शुरू कर दिया था, लेकिन वह परिवार के खर्चों में योगदान नहीं दे रहा था। मृतक चुटई अभियुक्त से आर्थिक योगदान की माँग करता था, लेकिन अभियुक्त ने इस पर ध्यान नहीं दिया। मृतक चुटई ने अभियुक्त फिरासत को अलग रहने के लिए कहा, लेकिन इसके बाद भी अभियुक्त चुटई के साथ रहता रहा। इसके कारण अभियुक्त और मृतक के बीच संबंध तनावपूर्ण हो गए थे और दोनों के बीच कई बार कहासुनी और गाली-गलौज हुई थी। 23.06.1983 को, लगभग दोपहर में, सूचनादाता अजीज, जो मृतक चुटई का साला है,

उसके घर आया। अपीलकर्ता/अभियुक्त फिरासत चाकू से लैस होकर वहाँ आया और कहा कि उसने उसका जीना दुश्वार कर दिया था, इसलिए वह उसे मार डालेगा। यह कहकर अभियुक्त ने चुटई पर चाकू से कई वार किए और भाग निकला। इसके बाद सूचनादाता अजीज घायल चुटई को अपने रिक्शे पर थाने ले गया और रिपोर्ट दर्ज कराई। मूल रूप से मुकदमा धारा 307 आईपीसी के अन्तर्गत दर्ज किया गया था, लेकिन चुटई की मृत्यु के बाद मुकदमे को धारा 302 आईपीसी में बदल दिया गया। पुलिस ने विवेचना के बाद अपीलकर्ता-अभियुक्त फिरासत उर्फ गुड्डू के खिलाफ आरोप पत्र दाखिल किया।

8. विद्वान ट्रायल कोर्ट ने अभियुक्त के खिलाफ धारा 302 आईपीसी के अन्तर्गत आरोप तय किया, जिस पर अभियुक्त ने दोषी नहीं होने की दलील दी और विचारण की मांग की। अभियोजन पक्ष ने अपने मुकदमे के समर्थन में आठ गवाहों को परीक्षित किया। पीडब्लू-1 डॉ. एस.के. जैन, चिकित्सा अधिकारी, जिला अस्पताल, बरेली ने कहा कि 25.06.1983 को उन्होंने चुटई के शव का पोस्टमार्टम किया और उसके शव पर निम्नलिखित मरणोपरांत चोटें पाईं:-

"(i) छाती के सामने, 3 बजे की स्थिति में, दाहिने निप्पल से 6 सेमी मध्य में, 2.5 सेमी x 1.5 सेमी छाती गुहा में गहरा कटा हुआ घाव। किनारा साफ़ कटा हुआ। अनुप्रस्थ रूप से रखा गया।
(ii) 11 बजे की स्थिति में, नाभि से 9 सेमी ऊपर, दाहिनी ओर पेट पर 2 सेमी x 1.5 सेमी गुहा गहरा कटा हुआ घाव। अनुप्रस्थ रूप से रखा गया, किनारा साफ़ कटा हुआ।
(iii) कोहनी के जोड़ से 6 सेमी ऊपर, बाएँ ऊपरी भुजा के सामने, 1.5 सेमी x 0.5 सेमी मांसपेशी गहरा कटा हुआ घाव।
(iv) बाएँ कोहनी के जोड़ के बाहरी तरफ 1 सेमी x 0.5 सेमी त्वचा गहरा कटा हुआ घाव।
(v) बाएँ अग्र भुजा के बाहरी तरफ, कोहनी के जोड़ से 5 सेमी नीचे, 1.5 सेमी x 0.5 सेमी त्वचा गहरा कटा हुआ घाव।
(vi) बाएँ भुजा के पीछे, 3 सेमी नीचे और बगल (आर्म पिट) के नीचे 2 सेमी x 1 सेमी x 2 सेमी गहरा कटा हुआ घाव।
(vii) बाएं घुटने के जोड़ के सामने 1 सेमी x 0.5 सेमी त्वचा की गहराई तक कटा हुआ घाव।
(vii) बाएं जांघ के पीछे घुटने से 6 सेमी ऊपर 1 सेमी x 0.5 सेमी त्वचा की गहराई तक कटा हुआ घाव।

9. पीडब्लू -1 के मतानुसार, मृत्यु का कारण उपरोक्त चोटों के परिणामस्वरूप सदमा और रक्तस्राव था। पीडब्लू -1 ने पोस्टमार्टम रिपोर्ट प्रदर्श क 1 को सिद्ध कर दिया है।

10. सूचनादाता/पीडब्लू-2 अजीज ने कहा है कि मृतक चुटई उसका बहनोई था और उसने लगभग तीन वर्ष पूर्व हसीन बी से विवाह किया था। हसीन बी के अपने पहले विवाह से सात बच्चे थे। चुटई से एक बच्चा भी हुआ था, लेकिन वह मर गया था। इस साक्षी ने आगे कहा है कि घर का पूरा खर्च चुटई उठाता था और अभियुक्त फिरासत, जो चुटई का सौतेला पुत्र है, सिनेमा देखने में पैसा खर्च करता था और घर के खर्च में कोई योगदान

नहीं देता था। पीडब्लू-2 ने आगे कहा है कि फिरासत चुटई से जेब खर्च की मांग करता था और इसी कारण उनके बीच संबंध खराब थे। इस साक्षी ने आगे कहा है कि घटना के दिन वह चुटई (मृतक) के घर पर बैठकर उससे बातें कर रहा था। दोपहर करीब साढ़े बारह बजे अभियुक्त फिरासत चाकू लेकर वहां आया और चुटई को गालियां देने लगा, जान से मारने की धमकी दी और चाकू से कई वार किए। पीडब्लू -2 ने शोर मचाया लेकिन अभियुक्त चुटई को पांच-छह बार घायल करने के बाद भागने में सफल रहा। इस गवाह ने आगे कहा है कि उसने हस्तक्षेप नहीं किया क्योंकि वह निहत्था था। पीडब्लू-2 ने आगे कहा कि वह घायल चुटई को अपने रिक्शे पर पुलिस स्टेशन ले गया और रिपोर्ट प्रदर्श क3 दर्ज कराई। पुलिस स्टेशन ले जाते समय घायल चुटई होश में था और पीडब्लू-2 से बात कर रहा था। पुलिस स्टेशन में सब-इंस्पेक्टर ने चुटई का बयान दर्ज किया और फिर उसे एक कांस्टेबल के साथ मेडिकल जांच के लिए अस्पताल भेज दिया। हालांकि, उसी दिन चोटों के कारण चुटई की मृत्यु हो गई।

11. पीडब्लू-3 श्रीमती बिज्जन, एक वृद्ध महिला ने कहा है कि घटना की तारीख को दोपहर के समय उसने कुछ शोर सुना और वह चुटई के दरवाजे पर पहुंची, जब उसने अभियुक्त फिरासत उर्फ गुड्डू को हाथ में खून से सना चाकू लेकर दरवाजे से बाहर आते देखा। अभियुक्त मस्जिद की तरफ भाग गया और उसकी कमीज भी खून से सनी हुई थी।

12. पीडब्लू-4 सब-इंस्पेक्टर एच.एस. भरगोटी एक औपचारिक गवाह हैं, जिन्होंने इस मुकदमे की प्राथमिकी को प्रदर्श क 4 साबित किया है। पीडब्लू-4 एक विवेचना अधिकारी भी है, जिसने इस वाद की विवेचना की थी। पीडब्लू-4 ने पुलिस स्टेशन में घायल चुटई का बयान दर्ज किया है और उसकी एक प्रति ट्रायल कोर्ट में दाखिल की है, जो प्रदर्श क 5 है। उन्होंने चुटई को कांस्टेबल सोबरन सिंह के साथ जिला अस्पताल में मेडिकल परीक्षण के लिए भेजा। घटनास्थल से उसने खून से सनी और सादी मिट्टी अपने कब्जे में ली और उसे दो बक्सों में बंद कर दिया, जो प्रदर्श 1 और 2 हैं। उसने प्रदर्श क7 के रूप में फर्द बयान भी तैयार किया। पीडब्लू-4 ने उस खाट के खून से सने 'बान' को भी काटकर अपने कब्जे में ले लिया, जिस पर कथित घटना के समय मृतक बैठा था। इस गवाह ने कई गवाहों के बयान भी दर्ज किए और 24.06.1983 को, चुटई के घायल होने के बाद, मुकदमे को धारा 307 आईपीसी से धारा 302 आईपीसी में परिवर्तित कर दिया।

13. पीडब्लू-5 हेड कांस्टेबल राज बहादुर सिंह ने गवाही दी है कि 23.06.1983 को दोपहर लगभग 01:05 बजे थाना बारादरी में अजीज ने एफआईआर दर्ज कराई थी, जिसे उसने तैयार किया था। इस गवाह ने आगे कहा है कि जब चुटई थाने में था, तब वह होश में था और बात कर रहा था। इस साक्षी ने आगे कहा कि एस.आई. एच.एस. भरगोटी ने उसी दिन अपराह्न लगभग 3:30 बजे पुलिस स्टेशन में घायल चुटई का बयान दर्ज किया।

14. पी.डब्लू.-6 सोबरन सिंह ने इस आशय का बयान दिया है कि 23.06.1983 को वह घायल चुटई को मेडिकल परीक्षण के लिए अस्पताल ले गया और वह अस्पताल के गेट तक बात कर रहा था लेकिन जब उसे अस्पताल

के अंदर ले जाया गया तो चुटई की मृत्यु हो गई। पी.डब्लू.-6 अस्पताल से एक रिपोर्ट के साथ पी.डब्लू.-5 राज बहादुर के पास वापस आया कि घायल मर चुका है और इसे जी.डी. रिपोर्ट में दर्ज किया।

15. पी.डब्लू.-7 एस.आई. सहदेव सिंह ने कहा है कि 24.06.1983 को वह पी.एस. बारादरी में तैनात था। उसने कांस्टेबल लाल सिंह और मलखान सिंह के साथ अपने वरिष्ठ अधिकारी के निर्देशन में पंचायतनामा तैयार किया। इस साक्षी ने पंचायतनामा (पंचायतनामा) को प्रदर्श क15 के रूप में साबित किया है। इस साक्षी ने आगे कहा है कि मृतक के शव को उसने ही सील करके कांस्टेबल लाल सिंह और मलखान सिंह के माध्यम से पोस्टमार्टम के लिए भेजा था। सील का नमूना प्रदर्श क 16 है। फोटो लाश (शव की फोटो) प्रदर्श क 17 है, चालान लाश (शव का चालान) प्रदर्श क 18 है, चालान और सी.एम.ओ. का पत्र प्रदर्श क 19 है। आर.आई. का पत्र प्रदर्श क 20 में है।

16. पीडब्लू-8 कांस्टेबल लाल सिंह ने पंचायतनामा को साबित कर दिया है और विद्वान अवर न्यायालय के समक्ष अपने बयान में कहा है कि 24.06.1983 को एस.आई. सहदेव सिंह ने मृतक चुटाई की पंचायतनामा उसकी उपस्थिति में तैयार की थी। विद्वान अवर न्यायालय ने निष्कर्ष दर्ज किया है कि पीडब्लू-1 प्रत्यक्षदर्शी है और उसकी गवाही पूरी तरह विश्वसनीय है।

17. अपील में दिए गए आधार यह हैं कि दोषसिद्धि कानून की नज़र में खराब है और रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य के खिलाफ है और सजा बहुत कठोर है। अब इस न्यायालय को साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन करने और इस निष्कर्ष पर पहुंचने का दायित्व सौंपा गया है कि क्या विद्वान अवर न्यायालय ने साक्ष्यों का सही परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन किया है या नहीं?

18. पीडब्लू-2 सूचनाकर्ता है, जो प्रत्यक्षदर्शी है और उसने अपने बयान में स्पष्ट रूप से कहा है कि अभियुक्त ने उसकी उपस्थिति में मृतक चुटाई पर चाकू से कई वार किए। उसकी जिरह में ऐसा कुछ भी नहीं है जो उसके बयान का खंडन कर सके। इस गवाह ने आगे कहा है कि वह घायल चुटई को पुलिस स्टेशन ले गया था जहाँ इस गवाह द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई गई और घायल का बयान प्रदर्श क5 सब-इंस्पेक्टर द्वारा दर्ज किया गया, जिसमें घायल चुटई ने कहा है कि अभियुक्त ने ही उस पर चाकू से कई वार किए। कानून की यह स्थापित धारणा है कि धारा 161 सीआरपीसी के अन्तर्गत दर्ज घायल व्यक्ति का बयान मृत्युपूर्व बयान माना जाता है यदि बयान देने वाले व्यक्ति की बाद में मृत्यु हो जाती है और बयान उसकी मृत्यु के कारण से संबंधित है जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***प्रदीप बिसोई उर्फ रंजीत बिसोई बनाम ओडिशा राज्य 2019 (11) एससीसी 500*** के वाद में पुष्टि की है। प्रासंगिक पैराग्राफ संख्या 10 नीचे उल्लिखित है:-

*"10. **धारा 162** की उपधारा (2) उपधारा (1) में निर्धारित प्रावधानों के लिए एक स्पष्ट अपवाद को शामिल करती है। **धारा 161** के अन्तर्गत पुलिस द्वारा दर्ज किया गया बयान, भारतीय साक्ष्य अधिनियम की **धारा 32** के खंड (1) के प्रावधानों के अंतर्गत आता है, इसलिए, स्पष्ट रूप से प्रासंगिक और स्वीकार्य है। **मुकेशभाई***

गोपालभाई बरोट *(उपरोक्त) में, इस न्यायालय को सीआरपीसी की* ***धारा 161*** *और* ***162*** *और साक्ष्य अधिनियम की* ***धारा 32*** *पर विचार करने का अवसर मिला था।* ***उपरोक्त वाद में****, पीड़िता, जिसे 14.09.1993 को जलने की चोटें आईं थीं, को सिविल अस्पताल में भर्ती कराया गया था। उसका बयान कार्यकारी मजिस्ट्रेट और पुलिस द्वारा दर्ज किया गया था।* ***धारा 161*** *सीआरपीसी के अन्तर्गत पुलिस द्वारा दर्ज किए गए बयान को उच्च न्यायालय ने यह मानते हुए खारिज कर दिया था कि इसका कोई साक्ष्य मूल्य नहीं था। उच्च न्यायालय के इस निर्णय को इस न्यायालय ने स्वीकार नहीं किया। पैराग्राफ संख्या 4 और 5 में, इस न्यायालय ने माना कि* ***धारा 161*** *के अन्तर्गत दर्ज किए गए व्यक्तियों के बयान को मृत्यु के बाद मृत्यु पूर्व घोषणा माना जा सकता है। पैराग्राफ संख्या 4 और 5 में, निम्नलिखित अवधारित किया गया है:-*

"4. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलों पर विचार किया है। सबसे पहले, हमें उच्च न्यायालय की टिप्पणियों पर विचार करना होगा कि संचयी रूप से पढ़े जाने पर सीआरपीसी की ***धारा 161*** *और* ***162*** *के प्रावधानों के मद्देनजर मृत्यु पूर्व घोषणाओं प्र.44 और 48 को साक्ष्य के रूप में नहीं लिया जा सकता है। हालाँकि, ये निष्कर्ष गलत हैं। भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की* ***धारा 32*** *की उप-धारा (1) कई स्थितियों से निपटती है, जिसमें एक मृत व्यक्ति द्वारा दिए गए बयान की प्रासंगिकता भी शामिल है। प्रावधान इस प्रकार है:*

धारा 32 *ऐसे वाद जिनमें किसी मृत व्यक्ति या मिल न सकने वाले व्यक्ति आदि द्वारा दिए गए प्रासंगिक तथ्य के कथन प्रासंगिक हैं। -*

ऐसे व्यक्ति द्वारा दिए गए प्रासंगिक तथ्यों के लिखित या मौखिक कथन, जो मृत हो चुका है, या जो मिल न सके, या जो साक्ष्य देने में असमर्थ हो गया है, या जिसकी उपस्थिति बिना किसी विलम्ब या व्यय के प्राप्त नहीं की जा सकती, जो वाद की परिस्थितियों के अनुसार न्यायालय को अनुचित प्रतीत होती है, निम्नलिखित वादों में स्वयं प्रासंगिक तथ्य हैं:-

(1) जब यह मृत्यु के कारण से संबंधित हो। - जब किसी व्यक्ति द्वारा अपनी मृत्यु के कारण के बारे में, या उस लेन-देन की किसी परिस्थिति के बारे में बयान दिया जाता है जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हुई, ऐसे वादों में जिसमें उस व्यक्ति की मृत्यु का कारण प्रश्नगत हो।

ऐसे कथन प्रासंगिक हैं, चाहे उन्हें देने वाला व्यक्ति, उनके दिए जाने के समय मृत्यु की आशंका में था या नहीं, और कार्यवाही की प्रकृति चाहे जो भी हो जिसमें उसकी मृत्यु का कारण प्रश्नगत होता है।"

हम देखते हैं कि उपरोक्त मृत्युपूर्व कथन उपरोक्त प्रावधान के मद्देनजर प्रासंगिक हैं। वैसे भी, सीआरपीसी की ***धारा 161*** *और* ***162*** *में विवेचना के दौरान दर्ज किए गए कथनों के प्रतिबंधात्मक उपयोग का प्रावधान है, लेकिन* ***धारा 162*** *की उप-धारा (2) उस स्थिति से संबंधित है, जहां कथन देने वाले की मृत्यु हो जाती है और इस प्रकार है:*

*"(2) इस धारा की कोई भी बात भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) की **धारा 32** के खंड (1) के प्रावधानों के अंतर्गत आने वाले किसी भी कथन पर लागू नहीं मानी जाएगी, या उस अधिनियम की **धारा 27** के प्रावधानों को प्रभावित नहीं करेगी।"*

*5. उपरोक्त प्रावधान का केवल अवलोकन जब भारतीय साक्ष्य अधिनियम की **धारा 32** के साथ पढ़ने पर पता चलता है कि **धारा 161** के अन्तर्गत दर्ज किए गए व्यक्ति के बयान को उसकी मृत्यु के बाद मृत्यु पूर्व बयान माना जाएगा। उच्च न्यायालय की यह टिप्पणी कि मृत्यु पूर्व बयानों प्र.44 और 48 का कोई साक्ष्य मूल्य नहीं था, इसलिए गलत है। इस वाद के इस दृष्टिकोण से, 14 सितंबर 1993 को मजिस्ट्रेट को दिया गया पहला मृत्यु पूर्व बयान, वास्तव में, इस वाद में प्रथम सूचना रिपोर्ट होगी।*

19. पीडब्लू-3 बिज्जन, हालांकि वह एक प्रत्यक्षदर्शी गवाह नहीं है, ने इस आशय की गवाही दी है कि पीडब्लू-1 का चिकित्सीय साक्ष्य भी अभियोजन पक्ष के वाद का समर्थन करता है और पीडब्लू-2 की गवाही की पुष्टि करता है क्योंकि डॉक्टर ने शरीर के विभिन्न हिस्सों पर आठ कटे हुए घाव पाए हैं जिनमें छाती और पेट जैसे महत्वपूर्ण हिस्से शामिल हैं जैसा कि पहले ही ऊपर बताया गया है। अन्य गवाह औपचारिक गवाह हैं। पीडब्लू-4 विवेचना अधिकारी है, जिसने मुकदमे की विवेचना की है और अभियोजन पक्ष के विभिन्न कागजात साबित किए हैं। पीडब्लू-5 औपचारिक गवाह है। अन्य गवाह औपचारिक प्रकृति के हैं जिनका पहले ही फैसले में उल्लेख किया जा चुका है।

20. ऊपर की गई चर्चाओं के मद्देनजर, चूंकि पीडब्लू-2 घटना का चश्मदीद गवाह है जो पूरी तरह विश्वसनीय और प्रदर्श क 5, मृतक का धारा 161 के अन्तर्गत दिया गया बयान, उसकी मृत्यु के बाद मृत्युपूर्व कथन का दर्जा प्राप्त कर लेता है, इसलिए हमारा मानना है कि विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों का मूल्यांकन करते समय, दोषसिद्धि का निष्कर्ष दर्ज करते समय और दंडादेश पारित करते समय कोई त्रुटि या अनियमितता नहीं की गई है।

21. जहाँ तक हेतुक का संबंध है, यह सर्वविदित है कि प्रत्यक्ष साक्ष्य के वाद में हेतुक का बहुत कम या कोई महत्व नहीं होता है। तथापि, पीडब्लू-2 ने अपीलकर्ता/अभियुक्त द्वारा अपराध का कारण मृतक और अभियुक्त के बीच तनावपूर्ण संबंध को साबित किया है, जिसके कारण मृतक द्वारा अभियुक्त से घरेलू खर्च के लिए धन की मांग की गई थी। प्रथम सूचना रिपोर्ट शीघ्रता से दर्ज की गई और प्राथमिकी दर्ज करने में कोई देरी नहीं हुई, जिससे अभियोजन पक्ष को और अधिक विश्वसनीयता प्राप्त हुई।

22. उपर्युक्त के आलोक में, यह अपील गुण-दोष से रहित है और खारिज किये जाने योग्य है। अपील ***खारिज*** की जाती है। विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश-अष्टम, बरेली द्वारा एस.टी. संख्या-402/1983 (राज्य बनाम फिरासत) में पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 11.01.1984 की पुष्टि की जाती है।

23. चूँकि अभियुक्त अपीलार्थी फरार है, इसलिए उसके जमानत बांड निरस्त किये जाते हैं और जमानतदारों को उन्मोचित किया जाता है। उसे तत्काल हिरासत में लिया जाए। मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट और संबंधित वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक/पुलिस अधीक्षक अभियुक्त-अपीलार्थी, फिरासत की गिरफ्तारी सुनिश्चित करेंगे।

24. रजिस्ट्रार (अनुपालन) द्वारा इस आदेश की एक प्रति संबंधित मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को तत्काल अनुपालन हेतु प्रेषित की जाए।

25. संबंधित मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को यह भी निर्देश दिया जाता है कि वह इस आदेश की प्राप्ति की तिथि से एक माह के भीतर अपनी अनुपालन रिपोर्ट न्यायालय को भेजें।

(2025) 4 ILRA 378

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 11.04.2025

माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान

के समक्ष

रिट - ए संख्या 1059/2025

डॉ. ज्ञानवती दीक्षित ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
सुदीप कुमार, अवधेश कुमार पांडे, श्रेष्ठ श्रीवास्तव

प्रतिवादी के अधिवक्ता:
सी.एस.सी., आशुतोष सिंह

ए. सेवा कानून - यूपी इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 - धारा 16-जी - अध्याय III -विनियमनों का विनियमन 39 - निलंबन - कोई आरोप पत्र जारी नहीं किया गया - प्रभाव - डीआईओएस द्वारा निलंबन को मंजूरी दी गई - वैधता को चुनौती दी गई - अवधारित किया गया, 09.11.2024 के निलंबन आदेश जारी करने के समय कोई आरोप पत्र नहीं हो सकता है लेकिन निलंबन आदेश को मंजूरी देने के समय, डीआईओएस के समक्ष इसकी गंभीरता को दर्शाने वाले विशिष्ट आरोपों से युक्त एक आरोप पत्र होना चाहिए और यदि निलंबन आदेश को मंजूरी देने के समय डीआईओएस के समक्ष कोई आरोप पत्र नहीं था, तो 20.12.2024 का आक्षेपित

अनुवादित

अनुमोदन आदेश निष्प्रभावी हो जाएगा - डीआईओएस के पास अधिनियम, 1921 के अन्तर्गत निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार निलंबन आदेश को मंजूरी देने के लिए कोई सामग्री नहीं थी। (पैरा 35 और 41)

रिट याचिका स्वीकृत की गई। (ई-1)

<u>उद्धृत वादों की सूची:-</u>

1. सत्य पाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; 2006 एससीसी ऑनलाइन एएलएल 602
2. हरि सिंह राजपूत बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; 2015 एससीसी ऑनलाइन एएलएल 8499
3. देशराज सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य; 2019 एससीसी ऑनलाइन एएलएल 4473
4. राम विजय सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; 2023 एससीसी ऑनलाइन एएलएल 1310
5. रिट-ए संख्या 909/2020; जनता इंटर कॉलेज के सी/एम एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 3 अन्य 06.05.2020 को निर्णीत हुआ
6. महाराजगंज इंटर कॉलेज के सी/एम एवं अन्य बनाम जिला विद्यालय निरीक्षक, महाराजगंज एवं अन्य; 1999 एससीसी ऑनलाइन एएलएल 693
7. राम कृपाल कटियार बनाम जिला विद्यालय निरीक्षक एवं अन्य MANU/UP/0556/2009

(माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान द्वारा निर्णय दिया गया)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री श्रेष्ठ श्रीवास्तव और श्री आशुतोष शुक्ला की सहायता से श्री सुदीप कुमार को, राज्य-विपक्षी संख्या 1 से 4 के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री संजीव कुमार सिंह और विपक्षी संख्या 5 के विद्वान अधिवक्ता श्री आशुतोष सिंह को सुना गया।

2. इस याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने निम्नलिखित मुख्य अनुतोष का अनुरोध किया है:-

"I. प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा पारित दिनांक 20/12/2024 के आदेश, जिसका संदर्भ संख्या 6240-46/2024-25 2025 है, को निरस्त करने के लिए उत्प्रेषण के रूप में एक रिट आदेश या निर्देश जारी करें। जिसकी एक प्रति इस रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 1 में निहित है।

II. प्रतिवादियों को निर्देश देने के लिए परमादेश के रूप में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें कि वे याचिकाकर्ता को श्री दयानंद रामेश्वर प्रसाद हंसरानी आर्य कन्या इंटर कॉलेज, सीतापुर के प्रधानाचार्य के रूप में बने रहने दें और उन्हें नियमित रूप से वेतन का भुगतान करें, भले ही दिनांक 20.12.2024 के आदेश के बावजूद, जिसके द्वारा दिनांक 9.11.2024 के पूर्व निलंबन आदेश की पुष्टि की गई है।"

अनुवादित

3. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता की नियुक्ति प्रारंभ में दिनांक 23.01.1993 को एल.आर.एन.एस. इंटर कॉलेज, नैमिषारण में प्रवक्ता (हिंदी) के पद पर हुई थी। तत्पश्चात, उन्हें दिनांक 22.08.2011 को उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा आयोग की संस्तुति के अनुसरण में श्री दयानंद रामेश्वर प्रसाद हंसरानी आर्य कन्या इंटर कॉलेज, सीतापुर में प्रधानाचार्य के पद पर नियुक्त किया गया।

4. प्रश्नगत संस्था की प्रबंध समिति के लिए दो प्रतिद्वंद्वी समूहों के बीच प्रतिस्पर्धा के कारण, जिला विद्यालय निरीक्षक, सीतापुर द्वारा दिनांक 04.01.2019 को एकल संचालन का आदेश पारित किया गया था, अतः प्राधिकृत नियंत्रक नियुक्त किया गया।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सुदीप कुमार ने प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी संख्या 4 के अनुमोदन से प्रतिवादी संख्या 5 द्वारा संस्थान के विभिन्न कर्मचारियों/शिक्षकों के बार-बार स्थानांतरण के विरुद्ध आवाज उठाई, जिसके परिणामस्वरूप 33 पद रिक्त हो गए और साथ ही अपने उत्पीड़न के विरुद्ध भी आवाज उठाई, जिससे प्रतिवादी संख्या 5 और प्रतिवादी संख्या 4 को उसके विरुद्ध दंडात्मक कार्रवाई करने का कारण मिला।

6. विपक्षी संख्या 5 ने उत्तर प्रदेश इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 (जिसे आगे "अधिनियम, 1921" कहा जाएगा) की धारा 16(जी) के अंतर्गत याचिकाकर्ता के विरुद्ध प्रारंभ में 04.10.2024 को निलंबन आदेश जारी किया था, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता को *प्रथम दृष्टया* श्रीमती राजरानी को सेवा में बहाल करने के इस न्यायालय के निर्देशों का पालन करने में याचिकाकर्ता की ओर से विफलता के आधार पर श्री दयानंद रामेश्वर प्रसाद हंसरानी आर्य कन्या इंटर कॉलेज, सीतापुर के प्रधानाचार्य के पद से निलंबित कर दिया गया है।

7. उपर्युक्त निलंबन आदेश को याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष रिट-ए संख्या 9746/2024 डॉ. ज्ञानवती दीक्षित बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य रिट याचिका दायर करके चुनौती दी थी, जिसका निर्णय दिनांक 05.11.2024 के आदेश द्वारा किया गया। यह न्यायालय उपर्युक्त निलंबन आदेश को इस निर्देश के साथ रद्द करने पर प्रसन्न है कि कानून के अन्तर्गत परिणाम भुगतने होंगे। इस न्यायालय ने सक्षम प्राधिकारी को कानून के अनुसार, यदि आवश्यक हो, एक नया आदेश पारित करने की स्वतंत्रता दी है (अनुलग्नक संख्या 9)।

8. दिनांक 05.11.2024 का आदेश 06.11.2024 को अपलोड किया गया था और इसे विरोधी पक्ष संख्या 5 को दिया गया था, लेकिन विरोधी पक्ष संख्या 5 ने याचिकाकर्ता को बहाल किए बिना 09.11.2024 को अधिनियम, 1921 की धारा 16-जी के अन्तर्गत याचिकाकर्ता के खिलाफ फिर से निलंबन आदेश जारी कर दिया। याचिकाकर्ता ने रिट-ए संख्या 11061/2024 (डॉ. ज्ञानवती दीक्षित बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य) दायर करके इस न्यायालय के समक्ष दिनांक 09.11.2024 के निलंबन आदेश को चुनौती दी, जिसे दिनांक 27.11.2024 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया, लेकिन याचिकाकर्ता द्वारा बताए गए आधार पर कोई राय व्यक्त किए बिना, जहां तक यह अधिनियम, 1921 की धारा-16-जी (5)(ए) के उल्लंघन से संबंधित है।

9. याचिकाकर्ता ने दिनांक 12.11.2024 को विपक्षी संख्या 2 से मुलाकात की और उन्हें विपक्षी संख्या 5 के इशारे पर अपने उत्पीड़न के बारे में अवगत कराया।

10. बाद की रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान, विपक्षी संख्या 5 का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता ने संक्षिप्त प्रति-शपथ पत्र के माध्यम से, दिनांक 20.11.2024 के आरोप-पत्र/कारण बताओ शीर्षक के अन्तर्गत एक पत्र रिकॉर्ड पर लाया है, जिसमें याचिकाकर्ता से अपना जवाब देने के लिए कहा गया था।

11. उपरोक्त पत्र दिनांक 20.11.2024 के अवलोकन से यह पता चलता है कि उपरोक्त पत्र में आरोपों का उल्लेख करते हुए याचिकाकर्ता से जवाब मांगा गया था ताकि याचिकाकर्ता को आरोप-पत्र जारी किया जा सके। गौरतलब है कि आरोपों का आधार बनने वाली कोई भी सामग्री याचिकाकर्ता को नहीं दी गई। उपरोक्त पत्र से यह भी पता चलता है कि उपरोक्त पत्र जारी होने की तिथि तक विपक्षी संख्या 5 ने अभी तक कोई आरोप-पत्र जारी नहीं किया है।

12. उपरोक्त पत्र प्राप्त होने के बाद, याचिकाकर्ता ने अपने पत्र दिनांक 05.12.2024 के माध्यम से आरोपों का खंडन किया और दस्तावेजों के साथ आरोप-पत्र प्रस्तुत करने का अनुरोध किया ताकि याचिकाकर्ता आरोप-पत्र का जवाब दे सके।

13. याचिकाकर्ता को आरोप-पत्र जारी किया गया जो याचिकाकर्ता को 15.01.2025 को दिया गया। जिला विद्यालय निरीक्षक ने अधिनियम, 1921 की धारा 16-जी (7) के अन्तर्गत शक्तियों का प्रयोग करते हुए, आक्षेपित आदेश द्वारा दिनांक 09.11.2024 के निलंबन आदेश को मंजूरी दे दी।

14. उपरोक्त आक्षेपित आदेश दिनांक 20.12.2024 का विरोध करते हुए, श्री सुदीप कुमार ने कहा है कि धारा 16-जी (7) सपठित अधिनियम, 1921 के अन्तर्गत अध्याय-III के विनियम संख्या 39 के अन्तर्गत विपक्षी संख्या 4 द्वारा पारित आदेश, विनियम-39 सपठित अधिनियम, 1921 के अन्तर्गत अध्याय-III के विनियम-36 में निहित प्रावधानों के मद्देनजर, दोषी कर्मचारी को एक अवसर प्रदान करने के बाद ही पारित किया जा सकता है।

15. हालाँकि, श्री सुदीप कुमार ने प्रस्तुत किया है कि कानून का उपरोक्त प्रावधान कहीं भी स्पष्ट रूप से यह प्रावधान नहीं करता है कि कर्मचारी/शिक्षक/प्रधानाचार्य/प्रबंधन को सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए, फिर भी यह इस न्यायालय के विभिन्न न्यायिक निर्णयों के माध्यम से विकसित हुआ है, जिसमें इस न्यायालय ने कहा कि जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा निलंबन आदेश को स्वीकृत या अस्वीकृत करने से पूर्व पीड़ित व्यक्ति को सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए।

16. **सत्य पाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2006 एससीसी ऑनलाइन एएलएल 602** के पैरा-12, **हरि सिंह राजपूत बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2015 एससीसी ऑनलाइन एएलएल 8499** में इस न्यायालय की खंडपीठ के निर्णय के पैरा-3 और 5; **देशराज सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2019 एससीसी ऑनलाइन एएलएल 4473** के पैरा-8, और **राम विजय सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2023 एससीसी ऑनलाइन एएलएल 1310** के पैरा 6 और 11 की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है।

17. श्री सुदीप कुमार ने उचित रूप से प्रस्तुत किया है कि माननीय एकल न्यायाधीश ने **जनता इंटर कॉलेज के सी/एम एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 3 अन्य, रिट-ए संख्या 909/2020,** में दिनांक 06.05.2020 के निर्णय और आदेश के अनुसार, यह पाया गया है कि निलंबन आदेश को मंजूरी देने से पहले सुनवाई का अवसर आवश्यक नहीं है लेकिन माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा **हरि सिंह राजपूत** (उपरोक्त) के संबंध में खंडपीठ के निर्णय के अनुपात को सही परिप्रेक्ष्य में समझे बिना उपरोक्त निर्णय दिया गया है। हालाँकि, श्री सुदीप कुमार ने **सी/एम जनता इंटर कॉलेज** (उपरोक्त) के पैरा-20 का उल्लेख किया है, जो स्पष्ट रूप से कहता है कि यदि प्रबंधन द्वारा अधिनियम, 1921 की धारा 16-जी की उपधारा (7) और विनियम 39 के अन्तर्गत निर्धारित सभी आवश्यक कागजात और सूचनाएं निलंबन की मंजूरी प्राप्त करने के लिए जिला विद्यालय निरीक्षक को प्रस्तुत कर दी गई हैं, तो अनुमोदन या अस्वीकृति देने के चरण में प्रबंधन या कर्मचारी को सुनवाई का अवसर दिए जाने की आवश्यकता नहीं है। लेकिन यदि कर्मचारी ने निलंबन आदेश के विरुद्ध कोई प्रत्यावेदन या आपत्ति प्रस्तुत की है, तो जिला विद्यालय निरीक्षक अनुमोदन या अस्वीकृति का आदेश पारित करते समय प्रबंधन और संबंधित कर्मचारी को सुनवाई का अवसर प्रदान करेगा, जिसमें संक्षिप्त कारण अवश्य शामिल होने चाहिए। इसके अवलोकन से स्पष्ट रूप से दो शर्तें लागू होती हैं; पहला, यदि निलंबन अनुमोदन प्राप्त करने के लिए प्रबंधन द्वारा कानून के अन्तर्गत निर्धारित सभी आवश्यक कागजात और सूचनाएं जिला विद्यालय निरीक्षक को प्रस्तुत कर दी गई हैं, तो सुनवाई के अवसर की आवश्यकता नहीं है और यदि किसी कर्मचारी ने निलंबन आदेश के विरुद्ध कोई प्रत्यावेदन या आपत्ति प्रस्तुत की है, तो ऐसे अवसर की आवश्यकता होगी। वर्तमान मामले में, निलंबन आदेश को अनुमोदित करने वाला आक्षेपित आदेश यह संकेत नहीं देता है कि इसे उचित विवेक से पारित किया गया है क्योंकि जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा कोई संक्षिप्त कारण दर्ज नहीं किया गया है कि विरोधी पक्ष संख्या 5 द्वारा पारित निलंबन आदेश की पुष्टि कैसे की जाए। यह स्पष्ट है कि आक्षेपित आदेश पारित करते समय न तो विरोधी पक्ष संख्या 5 का कोई प्रत्यावेदन विरोधी पक्ष संख्या 4 के पास उपलब्ध था और न ही विरोधी पक्ष संख्या 4 के पास आरोप पत्र उपलब्ध था।

18. इसके अलावा, दिनांक 09.11.2024 को निलंबन आदेश पारित करने के बाद, याचिकाकर्ता ने व्यक्तिगत रूप से 12.11.2024 को निदेशक, माध्यमिक शिक्षा (विपरीत पक्ष संख्या 2) से मुलाकात की (अनुलग्नक संख्या 14) और विरोधी पक्ष संख्या 5 के इशारे पर उसके उत्पीड़न के बारे में जानकारी दी, इसलिए, विरोधी पक्ष संख्या 2 द्वारा विरोधी पक्ष संख्या 4 से विशिष्ट टिप्पणियां मांगी जानी चाहिए थीं और इस तरह विरोधी पक्ष संख्या 4 द्वारा दिनांक 20.12.2024 को आक्षेपित आदेश पारित करने से पहले, **सी/एम जनता इंटर कॉलेज** (उपरोक्त) के पैरा-20 के संदर्भ में उसे सुनवाई का एक अवसर दिया जा सकता था।

19. इसलिए, श्री सुदीप कुमार ने दलील दी है कि इस न्यायालय की खंडपीठ ने **प्रबंध समिति, महाराजगंज इंटर कॉलेज एवं अन्य बनाम जिला विद्यालय निरीक्षक, महाराजगंज एवं अन्य, 1999, एससीसी ऑनलाइन एएलएल 693,** के मामले में इसके पैरा-4 के अन्तर्गत माना है कि अधिनियम, 1921 के अध्याय-III का विनियम 39 उन विवरणों को उपलब्ध कराता है, जो निरीक्षक को प्रस्तुत की जाने वाली संस्था के प्रधान या शिक्षक के निलंबन से संबंधित रिपोर्ट में शामिल होने चाहिए और साथ ही रिपोर्ट के साथ दिए जाने वाले दस्तावेज भी उपलब्ध कराता है। ये प्रावधान स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं कि प्रधानाचार्य सहित किसी शिक्षक के निलंबन को मंजूरी या अस्वीकृति एक खाली औपचारिकता नहीं है। निरीक्षक से अपेक्षित है कि वह निलंबन आदेश के *आधारों* के साथ-साथ संस्था के प्रधान या शिक्षक के खिलाफ लगाए गए आरोपों का प्रथम दृष्टया समर्थन करने वाले *दस्तावेजों*, यदि कोई हों, को भी प्रस्तुत करे। श्री सुदीप कुमार ने दोहराया है कि निलंबन आदेश को मंजूरी देने वाला आक्षेपित आदेश स्पष्ट रूप से अवैध है और इसमें बिना सोचे-समझे निर्णय लिया गया है क्योंकि आक्षेपित आदेश पारित करते समय विपक्षी संख्या 4 ने धारा 16-जी (7) सपठित अधिनियम, 1921 के अध्याय-III के विनियम 39 के अन्तर्गत अपेक्षित अपनी राय दर्ज नहीं की है। इसके अलावा, आक्षेपित आदेश यह इंगित नहीं करता है कि क्या जिला विद्यालय निरीक्षक ने प्रासंगिक सामग्री पर विचार किया है, जिसे अधिनियम, 1921 के अन्तर्गत विनियमों के विनियम 39 के अन्तर्गत रिपोर्ट जमा करते समय कथित रूप से प्रस्तुत किया गया था। श्री सुदीप कुमार ने यह भी दोहराया है कि **हरि सिंह राजपूत** (उपरोक्त) के पैरा 3 के मद्देनजर निलंबन आदेश को मंजूरी देने से पहले प्रधानाचार्य को सुनवाई का अवसर दिया जाना है। चूंकि आक्षेपित आदेश कानून के उपरोक्त प्रावधानों का उल्लंघन करते हुए पारित किया गया है, इसलिए आक्षेपित आदेश रद्द किए जाने योग्य है।

20. श्री सुदीप कुमार ने अंततः प्रस्तुत किया है कि निलंबन आदेश को मंजूरी देने के लिए विनियमन 39 सपठित अधिनियम, 1921 के अन्तर्गत विनियमन 40 के अनुसार, आरोप पत्र जारी करना अनिवार्य है और वर्तमान मामले में, दिनांक 08.01.2025 का आरोप पत्र याचिकाकर्ता को 15.01.2025 को दिया गया है, जबकि निलंबन आदेश को जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा दिनांक 20.12.2024 के आक्षेपित आदेश के माध्यम से अनुमोदित किया गया है।

21. *इसके विपरीत*, विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री संजीव कुमार सिंह और विपक्षी पक्षकार संख्या 5 के विद्वान अधिवक्ता श्री आशुतोष सिंह ने दलील दी है कि चूंकि इस न्यायालय ने याचिकाकर्ता की रिट याचिका को रिट-ए संख्या 11061/2024 में पारित आदेश दिनांक 27.11.2024 के अन्तर्गत खारिज करते हुए, जिसके अन्तर्गत निलंबन आदेश दिनांक 09.11.2024 को चुनौती दी गई थी, पैरा 30 में कहा है कि चूंकि आरोप गंभीर हैं, इसलिए निलंबन आदेश पूरी तरह से अधिनियम, 1921 की धारा 16-जी (5)(ए) के प्रावधानों के अंतर्गत आएगा और इस प्रकार, याचिकाकर्ता को उपरोक्त प्रावधान के अनुसार सही ढंग से निलंबित किया गया है; निलंबन आदेश की वैधता को इस न्यायालय ने बरकरार रखा है और याचिकाकर्ता ने उच्च न्यायालय में अपील दायर करके उस आदेश का विरोध नहीं किया है। इसलिए, विपक्षी पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी है कि चूंकि निलंबन आदेश की वैधता को बरकरार रखा गया है, इसलिए उसका विरोध नहीं किया जा सकता। उन्होंने

यह भी कहा है कि इस न्यायालय ने **सी/एम जनता इंटर कॉलेज** (उपरोक्त) के मामले में यह माना है कि निलंबन आदेश को मंजूरी देने से पहले सुनवाई का अवसर आवश्यक नहीं है, इसलिए याचिकाकर्ता द्वारा यह आधार नहीं लिया जा सकता है। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता को विभागीय जांच में भाग लेना चाहिए और जांच में तेजी लाने के लिए निर्देश जारी किए जा सकते हैं। श्री आशुतोष सिंह ने **राम कृपाल कटियार बनाम जिला विद्यालय निरीक्षक और अन्य, MANU/UP/0556/2009** में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है, जिसमें कहा गया है कि निलंबन आदेश को मंजूरी देने से पहले, जिला विद्यालय निरीक्षक को उस कर्मचारी को सुनवाई का अवसर देने की आवश्यकता नहीं है, जिसे प्रबंधन समिति द्वारा निलंबित किया गया है।

22. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सुदीप कुमार ने प्रस्तुत किया है कि यद्यपि इस न्यायालय ने दिनांक 27.11.2024 (उपरोक्त) के आदेश के पैरा-30 में यह टिप्पणी की है कि गंभीर आरोपों के कारण याचिकाकर्ता को सही रूप से निलंबित किया गया है, लेकिन बाद के पैरा यानी पैरा-31 में इस न्यायालय ने स्पष्ट रूप से टिप्पणी की है कि उसने अधिनियम, 1921 की धारा 16-जी (5) (बी) के प्रावधानों के संबंध में कोई राय व्यक्त नहीं की है कि आरोप पत्र जारी किए बिना निलंबन आदेश पारित नहीं किया जा सकता है और यह प्रश्न किसी उपयुक्त मामले में विचार के लिए खुला छोड़ दिया गया है। इसलिए, इस मामले में इस संबंध में प्रासंगिक पहलू पर विचार किया जा सकता है।

23. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन करने के बाद, पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर विचार करने से पहले, मैं अधिनियम, 1921 की धारा 16-जी (5) का उल्लेख करना चाहूंगा, जो इस प्रकार है:-

"(5) किसी भी संस्थान के प्रमुख या शिक्षक को प्रबंधन द्वारा निलंबित नहीं किया जाएगा, जब तक कि प्रबंधन की राय में -

(क) उसके विरुद्ध आरोप इतने गंभीर न हों कि उसे बर्खास्त, हटाया या पद में कमी की जाए; या

(ख) उसके पद पर बने रहने से उसके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही में बाधा उत्पन्न होने या उसके संचालन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना हो; या

(ग) उसके विरुद्ध नैतिक अधमता से संबंधित किसी अपराध के लिए कोई आपराधिक मामला विवेचना, पूछताछ या सुनवाई के अधीन न हो।"

24. अधिनियम, 1921 के अंतर्गत विनियमों के अध्याय-III के विनियम 39 (क), (ग) एवं (घ) इस प्रकार हैं:-

"39. (क) धारा 16-जी की उपधारा (6) के अंतर्गत निरीक्षक को प्रस्तुत की जाने वाली संस्था के प्रधान या शिक्षक के निलंबन के संबंध में रिपोर्ट में निम्नलिखित विवरण होंगे और उसके साथ निम्नलिखित दस्तावेज संलग्न होंगे -

(क) निलंबित व्यक्ति का नाम, उसकी मूल नियुक्ति की तिथि से निलंबन के समय तक उसके द्वारा धारित पदों (ग्रेड सहित) का विवरण, जिसमें निलंबन के समय उसके कार्यकाल की प्रकृति, जैसे अस्थायी, स्थायी या स्थानापन्न, का विवरण शामिल है;

(ग) उन सभी आरोपों का विवरण जिनके आधार पर ऐसे व्यक्ति को निलंबित किया गया था;

(घ) जाँच अधिकारी की शिकायतों, रिपोर्टों और जाँच रिपोर्ट, यदि कोई हो, की प्रमाणित प्रतियाँ, जिनके आधार पर ऐसे व्यक्ति को निलंबित किया गया था।"

25. **सत्यपाल सिंह** (उपरोक्त) में पैरा-12, **हरि सिंह राजपूत (उपरोक्त)** में इस न्यायालय की डिवीजन बेंच के फैसले के पैरा -3 और 5, **देशराज सिंह** (उपरोक्त) का पैरा-8, **राम विजय सिंह** (उपरोक्त) का पैरा 6 और 11, **प्रबंधन समिति, महाराजगंज इंटर कॉलेज** (उपरोक्त) का पैरा-4, **राम कृपाल कटियार** (उपरोक्त) का पैरा-7 और **सी/एम जनता इंटर कॉलेज** (उपरोक्त) में पैरा-20 को यहां नीचे पुन: प्रस्तुत करना आवश्यक है।

26. **सत्यपाल सिंह** (उपरोक्त) के पैरा-12 में निम्नलिखित लिखा है:-

"12. *धारा 16-जी के खंड (5) के अंतर्गत, प्रबंध समिति किसी शिक्षक या संस्था के प्रधान को उसमें उल्लिखित कुछ आधारों पर निलंबित कर सकती है। यह आदेश खंड (6) के अंतर्गत अध्याय-III के विनियम 39 में निर्धारित कागजातों के साथ भेजा गया था। इन कागजातों पर विचार किया जाना आवश्यक था और निरीक्षक को निलंबन आदेश को स्वीकृत या अस्वीकृत करते समय अपने विवेक का प्रयोग करना था और कारण बताना था। वर्तमान मामले में, कोई कारण दर्ज नहीं किया गया है और इसलिए, यह स्पष्ट है कि निरीक्षक ने मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार नहीं किया। मामले का एक और पहलू भी है। निलंबन आदेश जारी करते समय प्रबंध समिति को शिक्षक या संस्था के प्रधान को सुनवाई का अवसर देने की आवश्यकता नहीं है। इसलिए, जिस स्तर पर निलंबन आदेश को स्वीकृत किया जा रहा है और निरीक्षक को अपने विवेक का प्रयोग करने की आवश्यकता है, उसी स्तर पर निलंबित शिक्षक या प्रधानाचार्य को, जैसा भी मामला हो, सुनवाई का न्यूनतम अवसर दिया जाना आवश्यक है। निलंबन आदेश को स्वीकृत या अस्वीकृत करते समय निरीक्षक द्वारा उस समय दिए जाने वाले प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों की न्यूनतम आवश्यकता को ध्यान में रखा जाना आवश्यक है। ऐसा इसलिए है क्योंकि अध्याय III के विनियम 39 के अन्तर्गत प्रबंधन समिति द्वारा भेजे गए कागजात में केवल एकतरफा कारण हो सकते हैं। सिक्के के दूसरे पहलू पर भी विचार किया जाना चाहिए और तभी निलंबित शिक्षक या प्रधानाचार्य तस्वीर में आएंगे। परिणामस्वरूप, न्यायालय की राय में, निरीक्षक को निलंबन आदेश को स्वीकृत या अस्वीकृत करने से पहले निलंबित शिक्षक या प्रधानाचार्य को सुनवाई का अवसर देना और उनका पक्ष सुनना भी आवश्यक है। वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता को सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया।"*

27. **हरि सिंह राजपूत** (उपरोक्त) में इस न्यायालय की खंडपीठ के निर्णय के पैराग्राफ संख्या 3 और 5 इस प्रकार हैं:-

*"**3.** जब जिला विद्यालय निरीक्षक अधिनियम की धारा 16-जी के अन्तर्गत निलंबन के आदेश को मंजूरी देने पर विचार करता है, तो यह कानून का एक सुस्थापित सिद्धांत है कि शिक्षक, प्रधानाचार्य और प्रबंधन को सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए। इसके अलावा, यह भी कानून का एक सुस्थापित सिद्धांत है कि जिला विद्यालय निरीक्षक को एक तर्कपूर्ण आदेश पारित करना चाहिए जिसमें शिक्षक के निलंबन के लिए उसकी स्वीकृति या अस्वीकृति देने के कम से कम संक्षिप्त कारण बताए जाएं (देखें: प्रबंधन समिति, महाराजगंज इंटर कॉलेज बनाम जिला विद्यालय निरीक्षक1)। वर्तमान मामले में, जिला विद्यालय निरीक्षक के 9 दिसंबर 2014 के आदेश, जो विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष विचाराधीन था, में कोई कारण नहीं बताया गया था।*

***5.** हमने जिला विद्यालय निरीक्षक के 9 दिसंबर 2014 के आदेश का विधिवत अवलोकन किया है। आदेश के पहले पैराग्राफ में केवल इस तथ्य का वर्णन है कि जांच रिपोर्ट के बाद, प्रबंधन ने 16 नवंबर 2014 को अपीलकर्ता शिक्षक को निलंबित करने का निर्णय लिया था और तदनुसार, 4 दिसंबर 2014 को अनुमोदन के लिए आवेदन प्रस्तुत किया गया था। आदेश के दूसरे पैराग्राफ में केवल अनुमोदन प्रदान करने का उनका निष्कर्ष शामिल है। आदेश में संक्षिप्त कारण भी नहीं बताए गए, जो किसी भी तरह के तर्क से पूरी तरह रहित है। इसके अलावा, इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि अपीलकर्ता को सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया, जिसे उपरोक्त खंडपीठ के निर्णय में आवश्यक माना गया है।*

28. **देशराज सिंह** (उपरोक्त) का पैरा-8 इस प्रकार है:-

"8. धर्मपाल सत्यपाल लिमिटेड बनाम केंद्रीय उत्पाद शुल्क उपायुक्त, गुवाहाटी, (2015) 8 एससीसी 519 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि की व्याख्या तथा हरि सिंह राजपूत (उपरोक्त) में इस न्यायालय की बाद की खंडपीठ के निर्णय की टिप्पणियों और ऊपर वर्णित कारणों के मद्देनजर, यह न्यायालय प्रतिवादियों के इस तर्क को स्वीकार करने के लिए इच्छुक नहीं है कि निलंबन के प्रस्ताव को मंजूरी देने के चरण में निरीक्षक द्वारा सुनवाई का अवसर दिए जाने की आवश्यकता नहीं होगी।"

29. **राम विजय सिंह** (उपरोक्त) के पैरा 6 और 11 इस प्रकार हैं:-

***"6.** मैंने विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा दिए गए निर्देशों का भी अवलोकन किया है और दलीलों से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि जब याचिकाकर्ता को निलंबित किया गया था और निलंबन आदेश जिला विद्यालय निरीक्षक को भेजा गया था, तो उसमें प्रबंध समिति का संकल्प, आरोप पत्र और उसके समर्थन में अन्य कोई भी दस्तावेज शामिल नहीं थे।*

***11.** प्रबंध समिति को निर्देश दिया जाता है कि वह आज से दो सप्ताह के भीतर दिनांक 23.3.2023 के आरोप पत्र और आरोप पत्र के समर्थन में सभी प्रासंगिक दस्तावेजों सहित सभी आवश्यक दस्तावेज उपलब्ध कराए। इसके बाद, जिला विद्यालय निरीक्षक याचिकाकर्ता और प्रबंध समिति को दस दिनों के भीतर सुनवाई का अवसर देते हुए एक तिथि निर्धारित करेंगे और अगले 15 दिनों के भीतर आगे के आदेश पारित करेंगे।"*

30. **महाराजगंज इंटर कॉलेज की प्रबंध समिति** (उपरोक्त) का पैरा-4 इस प्रकार है:-

*"**4.** पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के बाद, हमारा विचार है कि जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा पारित आदेश कानून की दृष्टि से मान्य नहीं है। इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने प्रबंध समिति एस.एम.आर.के. इंटर कॉलेज बनाम जिला विद्यालय निरीक्षक, बलिया के मामले में स्पष्ट रूप से माना है कि प्रधानाचार्य या शिक्षक को निलंबित करने के प्रबंध समिति के प्रस्ताव को अनुमोदित या अस्वीकृत करने वाले आदेश में कारण अवश्य शामिल होने चाहिए और इसके अतिरिक्त कारणों के अभाव में आदेश अमान्य हो जाएगा। निस्संदेह, जिला विद्यालय निरीक्षक ने निलंबन के अनुमोदन हेतु पत्र के साथ भेजे गए प्रासंगिक कागजातों का अवलोकन नहीं किया और प्रतिवादी-शिक्षक द्वारा प्रस्तुत प्रत्यावेदन पर विचार करने के बाद अनुमोदन देने से इनकार कर दिया। उत्तर प्रदेश इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 की धारा 16-जी(5) में प्रावधान है कि किसी भी संस्था के प्रधान या शिक्षक को प्रबंध द्वारा तब तक निलंबित नहीं किया जाएगा, जब तक कि प्रबंध की राय में-(क) उसके विरुद्ध आरोप इतने गंभीर न हों कि उसे बर्खास्त या हटाया या पद में कमी की जा सकती है; या (ख) उसके पद पर बने रहने से उसके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही में बाधा उत्पन्न होने या उसके प्रति पूर्वाग्रह उत्पन्न होने की संभावना है; या (ग) उसके विरुद्ध आपराधिक अधमता से संबंधित किसी अपराध का कोई मामला विवेचना, पूछताछ या विचारण के अधीन है। उप-धारा (6) के अनुसार, जहां किसी संस्था के प्रधान या शिक्षक को प्रबंध समिति द्वारा निलंबित किया जाता है, वहां इसकी सूचना निरीक्षक को उसमें निर्धारित अवधि के भीतर दी जाएगी और यह आगे प्रावधान करती है कि रिपोर्ट में ऐसे विवरण शामिल होंगे जो विहित किए जा सकते हैं और सभी प्रासंगिक दस्तावेजों के साथ दिए जाएंगे। अधिनियम के अध्याय III का विनियम 39 उन विवरणों का प्रावधान करता है, जो संस्था के प्रधान या शिक्षक के निलंबन के संबंध में निरीक्षक को प्रस्तुत की जाने वाली रिपोर्ट में शामिल होने चाहिए और उन दस्तावेजों का भी प्रावधान करता है, जो रिपोर्ट के साथ होने चाहिए। धारा 16 की उप-धारा (7) स्पष्ट रूप से प्रावधान करती है कि कोई भी निलंबन आदेश, निरीक्षक द्वारा लिखित रूप में अनुमोदित किए जाने के बिना, 60 दिनों से अधिक समय तक लागू नहीं रहेगा। धारा 16-जी जिला विद्यालय निरीक्षक को प्रबंधन को अवसर देने के बाद निलंबन आदेश को रद्द करने का अधिकार देती है, यदि वह इस बात से संतुष्ट है कि संस्था प्रमुख या शिक्षक के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही संबंधित शिक्षक की किसी गलती के बिना विलंबित की जा रही है। ये प्रावधान स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं कि प्रधानाचार्य सहित किसी भी शिक्षक के निलंबन को स्वीकृत या अस्वीकृत करना कोई औपचारिकता नहीं है। निरीक्षक को निलंबन आदेश के आधारों के साथ-साथ संस्था प्रमुख या शिक्षक, जैसा भी मामला हो, के विरुद्ध लगाए गए आरोपों का प्रथम दृष्टया समर्थन करने वाले दस्तावेज़, यदि कोई हों, प्रस्तुत करने होंगे। यदि धारा 16-जी की उपधारा (5) में उल्लिखित प्रकृति के आरोप प्रथम दृष्टया साक्ष्य द्वारा समर्थित हैं, तो उस स्थिति में निरीक्षक अनुमोदन नहीं रोक सकता। दूसरी ओर, यदि आरोप तुच्छ प्रकृति के हैं और धारा 16-जी की उपधारा (5) में उल्लिखित आरोपों के अंतर्गत नहीं आते हैं और/या आरोपों के समर्थन में कोई प्रथम दृष्टया दस्तावेज़ या सामग्री नहीं है, तो निरीक्षक, जैसा भी मामला हो, प्रधानाचार्य या शिक्षक के निलंबन को अस्वीकृत कर सकता है। वर्तमान मामले में, ऐसा प्रतीत होता है कि जिला विद्यालय निरीक्षक अपने वैधानिक कर्तव्य का निर्वहन करने में विफल रहे हैं और उन्होंने आदेश के समर्थन में कोई कारण नहीं दिया।

अतः, इन परिस्थितियों में, जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा पारित आदेश निरस्त किए जाने योग्य था और विद्वान एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका को खारिज करके विधिक त्रुटि की। वास्तव में, विद्वान एकल न्यायाधीश ने उपरोक्त परिप्रेक्ष्य में इस प्रश्न की जाँच नहीं की, बल्कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह कहते हुए रिट याचिका खारिज कर दी कि निलंबन आदेश के अनुमोदन या अस्वीकृति पर विचार करते समय जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा सुनवाई का कोई अवसर दिए जाने की आवश्यकता नहीं थी। यह सत्य है कि इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने प्रबंध समिति, दयानंद इंटर कॉलेज बनाम जिला विद्यालय निरीक्षक के मामले में यह निर्णय दिया था कि निलंबन आदेश के अनुमोदन या अस्वीकृति के चरण में निरीक्षक को प्रबंधन को सुनवाई का कोई अवसर प्रदान करने की आवश्यकता नहीं है और उसे केवल विनियमों के अध्याय III के विनियम संख्या 39 में उल्लिखित प्रासंगिक सामग्री पर विचार करना है। हमारी राय में, उक्त निर्णय निरर्थक है। हालाँकि, वर्तमान मामले में, जैसा कि ऊपर बताया गया है, जिला विद्यालय निरीक्षक ने आरोपों और संबंधित दस्तावेजों पर स्वयं विचार नहीं किया और संबंधित शिक्षक द्वारा प्रस्तुत प्रत्यावेदन के आधार पर निलंबन आदेश को अस्वीकृत कर दिया। यदि संबंधित शिक्षक द्वारा प्रत्यावेदन के माध्यम से बताई गई किसी त्रुटि के आधार पर निलंबन को अस्वीकृत किया जाना है, तो कार्यवाही में ऐसी किसी भी त्रुटि के आधार पर निलंबन को अस्वीकृत करने से पहले प्रबंधन को अवसर प्रदान किया जाना चाहिए।

31. **राम कृपाल कटियार** (उपरोक्त) के पैरा-7 में निम्नलिखित लिखा है:-

*"**7.** नियोक्ता या नियुक्ति प्राधिकारी कार्यवाही आरंभ करने का निर्णय लेने से पहले तथ्यान्वेषी जाँच कर सकता है, जिसमें कर्मचारी सुनवाई या भाग लेने के अधिकार का दावा नहीं कर सकता। दोषी कर्मचारी को सुनवाई या अवसर प्रदान करने का अधिकार केवल उस चरण से उत्पन्न होता है जब अनुशासनात्मक कार्यवाही में उसके विरुद्ध आरोप निर्धारित किए जाते हैं, न कि आरोप निर्धारित होने से पहले किसी भी चरण से। किसी लंबित कार्यवाही या प्रस्तावित कार्यवाही में किसी कर्मचारी को निलंबित करने का आदेश अर्ध-न्यायिक आदेश नहीं, बल्कि एक प्रशासनिक आदेश है और इसलिए, उसे निलंबित करने से पहले सरकारी कर्मचारी से स्पष्टीकरण प्राप्त करना आवश्यक नहीं है। निलंबन आदेश पारित करते समय प्राधिकारी को केवल यह विचार करना आवश्यक है कि आक्षेपित आरोप निराधार, असत्य या दुर्भावनापूर्ण प्रतीत नहीं होता है और इसकी जाँच आवश्यक है, और निष्पक्ष जाँच के लिए उसे कर्तव्य से दूर रखना आवश्यक है। (देखें मोहम्मद गौस बनाम आंध्र प्रदेश राज्य MANU/SC/0090/1956: एआईआर 1957 एससी 246)। अतः, हमारा स्पष्ट मत है कि किसी विचाराधीन या लंबित विभागीय कार्यवाही में निलंबन आदेश पारित करने के चरण में, सरकारी कर्मचारी को सुनवाई का अवसर देने या कारण बताओ नोटिस जारी करने की भी आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार, उपरोक्त विधिक स्थिति को देखते हुए, याचिकाकर्ता-अपीलकर्ता को सुनवाई का अवसर न देने से निलंबन का आक्षेपित आदेश अमान्य नहीं होगा।*

32. **सी/एम जनता इंटर कॉलेज** (उपरोक्त) के पैरा-20 में निम्नलिखित प्रावधान है:-

"20. धारा 16जी(7) सपठित विनियम 39 के अंतर्गत विचार का दायरा बहुत सीमित है, जैसा कि राम औतार वर्मा (उपरोक्त) के मामले में भी स्पष्ट किया गया है। इस प्रकार, उपर्युक्त चार निर्णयों के संयुक्त वाचन से पता चलता है कि यदि प्रबंधन द्वारा अधिनियम, 1921 की धारा 16जी की उपधारा (7) और विनियम 39 के अंतर्गत निर्धारित सभी आवश्यक कागजात और सूचनाएं निलंबन का अनुमोदन प्राप्त करने के लिए जिला विद्यालय निरीक्षक को प्रस्तुत कर दी गई हैं, तो अनुमोदन या अस्वीकृति प्रदान करने के चरण में प्रबंधन या कर्मचारी को सुनवाई का अवसर प्रदान करने की आवश्यकता नहीं है। लेकिन यदि कर्मचारी ने निलंबन आदेश के विरुद्ध कोई प्रत्यावेदन या आपत्ति प्रस्तुत की है, तो जिला विद्यालय निरीक्षक अनुमोदन या अस्वीकृति का आदेश पारित करते समय प्रबंधन और संबंधित कर्मचारी को सुनवाई का अवसर प्रदान करेंगे, जिसमें संक्षिप्त कारण अवश्य शामिल होने चाहिए। इस दृष्टिकोण को धारा 16जी की उपधारा (8) के प्रावधानों द्वारा और अधिक समर्थन प्राप्त होता है, जो विशेष रूप से उप-धारा (7) के अन्तर्गत पारित निलंबन आदेश को रद्द करने पर विचार करते समय जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा प्रबंधन को आगामी चरण में सुनवाई का अवसर प्रदान करती है, जब निरीक्षक को यह विश्वास हो जाता है कि संस्था प्रमुख या शिक्षक के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही संस्था प्रमुख या शिक्षक की किसी गलती के बिना विलंबित हो रही है।

33. उल्लेखनीय है कि अधिनियम, 1921 के अंतर्गत विनियमों के अध्याय-III के विनियम 39 (क), (ग) और (घ) में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि संस्था प्रमुख आदि के निलंबन के संबंध में रिपोर्ट में प्रासंगिक विवरण और दस्तावेज शामिल होंगे, जिसमें उन सभी आरोपों का विवरण शामिल होगा जिनके आधार पर ऐसे व्यक्ति को निलंबित किया गया था, साथ ही उन शिकायतों, रिपोर्टों और जांच अधिकारी की जांच रिपोर्ट, यदि कोई हो, की प्रमाणित प्रतियां भी शामिल होंगी जिनके आधार पर ऐसे व्यक्ति को निलंबित किया गया था। यदि उपरोक्त विनियम को अधिनियम, 1921 की धारा 16-जी (5) के साथ पढ़ा जाए, तो किसी भी संस्था के प्रधान आदि को प्रबंधन द्वारा तब तक निलंबित नहीं किया जाएगा जब तक कि प्रबंधन की राय में कर्मचारी के विरुद्ध आरोप इतने गंभीर न हों कि उन्हें कड़ी सज़ा मिल सके और जिला विद्यालय निरीक्षक को आरोपों पर व्यक्तिगत संतुष्टि होनी चाहिए और निलंबन आदेश को मंजूरी देने वाले आदेश में इस तरह का विचार प्रतिबिंबित होना चाहिए। वर्तमान मामले में, निश्चित रूप से, याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोप पत्र 08.01.2025 को जारी किया गया है, लेकिन आक्षेपित निलंबन आदेश को 20.12.2024 के आक्षेपित आदेश द्वारा अनुमोदित किया गया है।

34. इस न्यायालय ने याचिकाकर्ता की पूर्व रिट याचिका को खारिज करते हुए, जिसमें निलंबन आदेश पर आपत्ति की गई थी, पैरा-31 में स्पष्ट रूप से टिप्पणी की है कि उसने अधिनियम, 1921 की धारा 16-जी (5) (बी) के प्रावधानों के संबंध में कोई राय व्यक्त नहीं की है कि आरोप पत्र जारी किए बिना निलंबन आदेश पारित नहीं किया जा सकता है और उक्त प्रश्न पर उचित स्तर पर विचार किया जाएगा और मुझे लगता है कि इस याचिका के माध्यम से इस तथ्य पर विचार किया जा सकता है।

35. जब जिला विद्यालय निरीक्षक के समक्ष कोई आरोप पत्र नहीं था, तो उनके द्वारा निलंबन आदेश कैसे अनुमोदित किया जा सकता था। दिनांक 09.11.2024 के निलंबन आदेश जारी करने के समय कोई आरोप पत्र

नहीं हो सकता है, लेकिन निलंबन आदेश को अनुमोदित करते समय, जिला विद्यालय निरीक्षक के समक्ष उसकी गंभीरता को दर्शाने वाले विशिष्ट आरोपों वाला एक आरोप पत्र अवश्य होना चाहिए और यदि निलंबन आदेश को अनुमोदित करते समय जिला विद्यालय निरीक्षक के समक्ष कोई आरोप पत्र नहीं था, तो दिनांक 20.12.2024 का आक्षेपित अनुमोदन आदेश अमान्य हो जाएगा। इस न्यायालय ने दिनांक 27.11.2024 (उपरोक्त) के आदेश द्वारा निलंबन आदेश को मंजूरी दे दी है, लेकिन उस समय निलंबन आदेश को मंजूरी देने वाला आदेश न्यायालय के समक्ष नहीं था और न्यायालय ने उपरोक्त आदेश में इस प्रश्न को इस साधारण कारण से खुला छोड़ दिया था कि यदि जिला विद्यालय निरीक्षक आरोपों की गंभीरता पर विचार किए बिना निलंबन आदेश को मंजूरी दे देते हैं, जो आरोप पत्र में इंगित किया जा सकता था, तो निलंबन आदेश का अनुमोदन निष्प्रभावी हो जाएगा।

36. यद्यपि **सी/एम जनता इंटर कॉलेज** (उपरोक्त) में इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने टिप्पणी की है कि निलंबन आदेश को मंजूरी देने से पहले कर्मचारी को सुनवाई का अवसर देना आवश्यक नहीं है, लेकिन यह देखा गया है कि प्रबंधन अधिनियम, 1921 की धारा 16-जी सपठित अधिनियम, 1921 के अन्तर्गत विनियमों के विनियम 39 के अनुसार सभी आवश्यक कागजात और सूचनाएं प्रदान करेगा, इसलिए जिला विद्यालय निरीक्षक उन सभी दस्तावेजों और प्रासंगिक सामग्री का अवलोकन करने के बाद या तो निलंबन आदेश को मंजूरी दे सकते हैं या उसे अस्वीकृत कर सकते हैं। यदि आदेश अस्वीकृत हो जाता है तो अधिनियम 1921 की धारा 16-जी (8) के अनुसार प्रबंधन समिति और आरोपित कर्मचारी को सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए, लेकिन यदि उस आदेश को मंजूरी दे दी जाती है तो ऐसे किसी अवसर की आवश्यकता नहीं होगी। हालांकि, यदि कर्मचारी ने निलंबन आदेश के खिलाफ कोई प्रत्यावेदन या आपत्ति प्रस्तुत की है तो जिला विद्यालय निरीक्षक अनुमोदन या अस्वीकृति का आदेश पारित करते समय प्रबंधन के साथ-साथ संबंधित कर्मचारी को भी सुनवाई का अवसर प्रदान करेगा, जिसमें संक्षिप्त कारण शामिल होने चाहिए। वर्तमान मामले में आरोप पत्र सहित सभी आवश्यक कागजात और सूचनाएं जिला विद्यालय निरीक्षक को नहीं भेजी गई हैं, इसलिए निलंबन आदेश को मंजूरी देने से पहले उचित विचार करना संभव नहीं था और याचिकाकर्ता ने निदेशक, माध्यमिक शिक्षा को 12.11.2024 को एक विस्तृत प्रत्यावेदन दिया था, इसलिए निलंबन आदेश को मंजूरी देने से पहले याचिकाकर्ता को जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए था। इसलिए, **सी/एम जनता इंटर कॉलेज** (उपरोक्त) में एकल न्यायाधीश की टिप्पणी के आलोक में, निलंबन आदेश को मंजूरी देने से पहले याचिकाकर्ता को सुनवाई का उचित अवसर दिया जाना चाहिए। यदि याचिकाकर्ता को आक्षेपित आदेश पारित करने से पहले सुनवाई का अवसर दिया गया होता, तो याचिकाकर्ता ने जिला विद्यालय निरीक्षक को सूचित किया होता कि उसे आक्षेपित निलंबन आदेश दिनांक 09.11.2024 के अनुसरण में कोई आरोप पत्र प्राप्त नहीं हुआ है।

37. इस न्यायालय ने **महाराजगंज इंटर कॉलेज की प्रबंध समिति** (उपरोक्त) के संबंध में स्पष्ट रूप से कहा है कि अधिनियम, 1921 की धारा 16-जी के प्रावधानों सपठित विनियमों के अध्याय-III के विनियम 39 से स्पष्ट रूप से प्रदर्शित होता है कि संस्था के प्रधान आदि के निलंबन का अनुमोदन या अस्वीकृति एक खाली औपचारिकता नहीं है और जिला विद्यालय निरीक्षक को उन आधारों पर स्वयं विचार करना आवश्यक है जिन

पर निलंबन का आदेश आधारित है और साथ ही वे दस्तावेज, यदि कोई हों, प्रथम दृष्टया संस्था के प्रधान के खिलाफ लगाए गए आरोपों का समर्थन करते हैं।

38. इस न्यायालय ने **सत्य पाल सिंह** (उपरोक्त) के मामले में स्पष्ट रूप से माना है कि यदि आवश्यक कागजात जिला विद्यालय निरीक्षक के समक्ष प्रस्तुत किए जाते हैं, तो निरीक्षक को अपना विवेक लगाना आवश्यक था और निलंबन आदेश को मंजूरी या अस्वीकृति के संबंध में कारण भी बताना आवश्यक था। **सत्य पाल सिंह** (उपरोक्त) के मामले में, जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा कोई कारण दर्ज नहीं किया गया था, इसलिए, इस न्यायालय का मानना था कि निरीक्षक ने मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर अपना विवेक नहीं लगाया। वर्तमान मामले में भी, न तो आरोप पत्र की प्रति सहित सभी आवश्यक कागजात जिला विद्यालय निरीक्षक के समक्ष प्रस्तुत किए गए और न ही जिला विद्यालय निरीक्षक ने निलंबन आदेश को मंजूरी देते हुए अपनी व्यक्तिपरक संतुष्टि दी है। उपरोक्त कारण से, इस न्यायालय ने **सत्य पाल सिंह** (उपरोक्त) के मामले में निलंबन आदेश को मंजूरी देने वाले आक्षेपित आदेश को रद्द कर दिया।

39. इस न्यायालय की डिवीजन बेंच ने **हरि सिंह राजपूत** (उपरोक्त) में कानून की उपरोक्त स्थिति को दोहराया और यह भी कहा कि निलंबन आदेश को मंजूरी देने से पहले कर्मचारी को सुनवाई का उचित अवसर दिया जाना चाहिए। उपरोक्त फैसले के पैरा-5 में, डिवीजन बेंच ने पाया कि आदेश में संक्षिप्त कारण भी नहीं बताए गए थे, जो कि किसी भी कारण से पूरी तरह से रहित था और वर्तमान मामले में भी, स्कूलों के जिला निरीक्षक ने अपनी व्यक्तिपरक संतुष्टि नहीं दी है और 07.08.2024 के एक पत्र-नोटिस को दोहराया गया है, जो पहले की रिट याचिका का विषय था। केवल उपरोक्त ही नहीं, अगर आरोपों को उसके अंकित मूल्य पर लिया जाता है, जिसे 20.12.2024 के आक्षेपित आदेश में माना गया है, तो प्रथम दृष्टया ऐसा प्रतीत होता है कि आरोप अस्पष्ट हैं जो यह बताता है कि याचिकाकर्ता ने कथित तौर पर कुछ छात्रों को प्रताड़ित किया है और छात्रों को मध्याह्न भोजन सहित बुनियादी सुविधाएं और आवश्यकताएं प्रदान नहीं की हैं।

40. इस न्यायालय ने **राम विजय सिंह** (उपरोक्त) में निलंबन आदेश को मंजूरी देने वाले जिला विद्यालय निरीक्षक के आदेश को इस कारण से रद्द कर दिया कि इसमें प्रबंधन समिति के प्रस्ताव, आरोप पत्र और इसके समर्थन में अन्य दस्तावेजों जैसे कोई दस्तावेज शामिल नहीं थे। वर्तमान मामले में, बेशक, जिला विद्यालय निरीक्षक को कोई आरोप पत्र नहीं भेजा गया था क्योंकि याचिकाकर्ता को दिनांक 08.01.2025 का आरोप पत्र 15.01.2025 को दिया गया था, यानी निलंबन आदेश को मंजूरी देने वाले दिनांक 20.12.2024 के आक्षेपित आदेश को पारित करने के बाद।

41. इसलिए, उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों और पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत केस लॉ के मद्देनजर, यह स्पष्ट है कि जिला विद्यालय निरीक्षक ने मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर अपने विवेक का प्रयोग नहीं किया है क्योंकि यह दिनांक 20.12.2024 के आक्षेपित आदेश में परिलक्षित नहीं हो रहा है। यह सच है कि निलंबन की स्वीकृति के लिए आरोप पत्र जिला विद्यालय निरीक्षक के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया

है, अतः स्थापित कानूनी प्रस्ताव के मद्देनजर, जिला विद्यालय निरीक्षक के पास अधिनियम, 1921 के अन्तर्गत निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार निलंबन आदेश को अनुमोदित करने के लिए कोई सामग्री उपलब्ध नहीं थी। न केवल उपरोक्त, बल्कि दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों के मद्देनजर, जिला विद्यालय निरीक्षक को निलंबन आदेश के अनुमोदन के प्रश्न पर याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर भी प्रदान करना आवश्यक था।

42. चूंकि उपरोक्त त्रुटि अभिलेखों में स्पष्ट है, इसलिए जिला विद्यालय निरीक्षक, सीतापुर द्वारा पारित दिनांक 20.12.2024 (अनुलग्नक संख्या 1) का आक्षेपित आदेश कायम रखने योग्य नहीं है, तदनुसार, इसे अपास्त/रद्द किया जाता है।

43. प्रबंध समिति को निर्देश दिया जाता है कि वह दिनांक 08.01.2025 के आरोप पत्र की प्रति सहित सभी आवश्यक दस्तावेज, जो याचिकाकर्ता को 15.01.2025 को तामील किया गया था, और आरोप पत्र के समर्थन में सभी प्रासंगिक दस्तावेज आज से तीन सप्ताह के भीतर जिला विद्यालय निरीक्षक, सीतापुर को उपलब्ध कराएँ। इसके बाद, जिला विद्यालय निरीक्षक याचिकाकर्ता और प्रबंध समिति को पंद्रह दिनों के भीतर सुनवाई का अवसर प्रदान करते हुए तिथि निर्धारित करेंगे और पंद्रह दिनों की अतिरिक्त अवधि के भीतर एक नया आदेश पारित करेंगे।

44. उपरोक्त के मद्देनजर, रिट याचिका **स्वीकार** की जाती है।

(2025) 4 ILRA 390

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 16.04.2025

माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान

के समक्ष

रिट - ए संख्या 3861/2025

संतोष जी मिश्रा **...याचिकाकर्ता**

बनाम

यू.पी. राज्य एवं अन्य **...प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

पं. एस. चंद्रा, पूनम नारायण

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

अनुवादित

सी.एस.सी.

सिविल लॉ - यू.पी. इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 - धारा 16-जी - यू.पी. इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 के अन्तर्गत विनियम - विनियम 2(2), 101 - वर्तमान मामले में, सरकारी आदेश और संशोधित विनियमन दिनांक 06.01.2022 के अनुसार यह आवश्यक है कि श्रेणी-III के पदों पर पदोन्नति के लिए उम्मीदवारों के पास अनिवार्य टाइपिंग टेस्ट सहित सीधी भर्ती के समकक्ष योग्यताएं होनी चाहिए - चूंकि संशोधन के बाद याचिकाकर्ता की पदोन्नति पर विचार किया गया, इसलिए टाइपिंग की आवश्यकता का अनुपालन आवश्यक था - कोई टाइपिंग टेस्ट आयोजित नहीं किया गया, डीआईओएस ने आवश्यकता की अनदेखी करते हुए 22.10.2024 को गलती से पदोन्नति को मंजूरी दे दी - सुधांशु त्यागी (इन्फ्रा) में सरकारी आदेश को बरकरार रखने का फैसला अंतिम हो गया - यदि याचिकाकर्ता के पास डीओईएसीसी से सीसीसी प्रमाणपत्र है, तो टाइपिंग टेस्ट में बैठने की उसकी अनिच्छा अनुचित है - याचिकाकर्ता को आक्षेपित आदेश के अनुसार टाइपिंग टेस्ट में उपस्थित होने से कोई पूर्वाग्रह नहीं होगा, उसके अनुभव और सेवा की अवधि पर उचित रूप से विचार किया जाएगा। (पैरा 15, 16)

याचिका खारिज। (ई-13)

<u>उद्धृत वादों की सूची:</u>

1. उ.प्र. राज्य और अन्य बनाम उमेश चंद्र श्रीवास्तव, विशेष अपील (दोषपूर्ण) संख्या 477/2010
2. सुधांशु त्यागी बनाम उ.प्र. राज्य और अन्य, रिट-ए संख्या 23580/2018, (पैरा 14 से 18)

(माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान द्वारा निर्णय दिया गया)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता पं. एस. चंद्रा, राज्य- विपक्षी पक्षकार संख्या 1, 2 एवं 3 के विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री रण विजय सिंह, श्री घनश्याम वर्मा, जिन्होंने विपक्षी पक्षकार संख्या 6 की ओर से वकालतनामा दाखिल किया है और श्री अजय प्रताप सिंह-II, जिन्होंने विपक्षी पक्षकार संख्या 7 की ओर से वकालतनामा दाखिल किया है, को सुना गया। उक्त वकालतनामों को अभिलेख में लिया जाता है।

2. प्रस्तावित आदेश के मद्देनजर, विपक्षी पक्षकार संख्या 4 एवं 5 को नोटिस जारी करने से छूट दी जाती है।

3. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता की सहमति से, इस रिट याचिका पर प्रवेश स्तर पर अंतिम निर्णय लिया जा रहा है।

4. इस याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने निम्नलिखित मुख्य अनुतोषों की प्रार्थना की है:-

अनुवादित

"(i) इस रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 1 में निहित शिक्षा निदेशक (माध्यमिक) उत्तर प्रदेश, लखनऊ द्वारा पारित दिनांक 28.03.2025 के आक्षेपित आदेश को निरस्त करने हेतु उत्प्रेषणात्मक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।

(ii) प्रतिपक्षकारों को आदेशित करने हेतु परमादेशात्मक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें कि वे याचिकाकर्ता के बी.पी. इंटर कॉलेज, कुड़वार, सुल्तानपुर के लिपिक के पद पर कार्य करने में बाधा उत्पन्न न करें।"

5. चुनौती दिए गए आदेश के माध्यम से, शिक्षा निदेशक (माध्यमिक) ने निर्देश दिया है कि चतुर्थ श्रेणी के पद से सहायक लिपिक के पद को भरने के लिए, दिनांक 06.01.2022 की सरकारी अधिसूचना के मद्देनजर उम्मीदवारों/आवेदकों का टाइपिंग टेस्ट आयोजित किया जाए।

6. पं. एस. चंद्रा ने प्रस्तुत किया है कि वर्तमान याचिकाकर्ता ने रिट-ए संख्या 7291/2024 के अन्तर्गत एक रिट याचिका दायर की थी, जिस पर इस न्यायालय ने निर्णय दिया था और सक्षम प्राधिकारी को याचिकाकर्ता की तृतीय श्रेणी के पद पर पदोन्नति के संबंध में उचित निर्णय लेने का निर्देश दिया था। संबंधित संस्थान के प्राधिकृत नियंत्रक ने दिनांक 10.10.2024 (अनुलग्नक संख्या 4) का आदेश पारित किया जिसमें कहा गया कि याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी कनिष्ठ सहायक के पद पर पदोन्नति के लिए उपयुक्त है। जिला विद्यालय निरीक्षक, सुल्तानपुर ने दिनांक 22.10.2024 (अनुलग्नक संख्या 2) के आदेश द्वारा उपरोक्त आदेश दिनांक 10.10.2024 को स्वीकृति प्रदान की है। तत्पश्चात, संस्था के प्राधिकृत नियंत्रक द्वारा दिनांक 23.10.2024 (अनुलग्नक संख्या 3) को नियुक्ति पत्र जारी किया गया तथा याचिकाकर्ता ने उसी तिथि अर्थात् 23.10.2024 को सहायक लिपिक के पद पर कार्यभार ग्रहण कर लिया। तब से याचिकाकर्ता सहायक लिपिक के पद पर अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर रहा है।

7. विपक्षी पक्ष संख्या 6 ने शिक्षा निदेशक (माध्यमिक) को दिनांक 11.11.2024 को एक पत्र प्रस्तुत किया जिसमें याचिकाकर्ता के उपरोक्त पदोन्नति आदेश को इस आधार पर चुनौती दी गई कि याचिकाकर्ता को टाइपिंग का ज्ञान नहीं है, जो एक आवश्यक योग्यता है, इसलिए उसे सहायक लिपिक के पद पर नियुक्त नहीं किया जा सकता था। विपक्षी पक्ष संख्या 6 की ऐसी शिकायत पर, शिक्षा निदेशक (माध्यमिक) ने संबंधित जिला विद्यालय निरीक्षक से रिपोर्ट मांगी और जिला विद्यालय निरीक्षक की रिपोर्ट और संबंधित परिपत्र/नियमावली/विनियम आदि पर विचार करने के बाद, सहायक लिपिक के पद पर पदोन्नति करने के लिए टाइपिंग परीक्षा आयोजित करने का निर्देश देते हुए दिनांक 28.03.2025 का आक्षेपित आदेश पारित किया है।

8. पं. एस. चन्द्रा ने इस न्यायालय का ध्यान रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 8 की ओर आकर्षित किया है, जो कि उत्तर प्रदेश इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 (जिसे आगे "अधिनियम, 1921 के तहत विनियम" कहा जाएगा) के तहत विनियमों का अध्याय- III है, जो उत्तर प्रदेश इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 (जिसे आगे "अधिनियम, 1921" कहा जाएगा) की धारा 16-जी के तहत सेवा की शर्तों को दर्शाता है। अधिनियम, 1921 के तहत विनियमों के विनियम-2(2) के अनुसार, हेड क्लर्क/क्लर्क का पद क्लर्क और चतुर्थ श्रेणी

कर्मचारियों के बीच 50% पदोन्नति कोटे के तहत पदोन्नति के माध्यम से भरा जा सकता है, जिनके पास संबंधित पद के लिए निर्धारित पात्रता है और उन्होंने पांच साल की लगातार सेवा पूरी कर ली है। श्री चन्द्रा ने कहा है कि याचिकाकर्ता एक पात्र व्यक्ति है क्योंकि उसके पास आवश्यक योग्यता है और उसने पांच साल से अधिक की निरंतर सेवा पूरी कर ली है। याचिकाकर्ता की योग्यता इंटरमीडिएट है और उसके पास सीसीसी प्रमाणपत्र है, जैसा कि उपरोक्त प्रमाणपत्रों की फोटोकॉपी अदालत को दिखाई गई है, जो रिट याचिका के साथ संलग्न है। उन्होंने यह भी कहा है कि सहायक लिपिक के पद पर पदोन्नति के लिए टाइपिंग टेस्ट की कोई आवश्यकता नहीं है।

9. रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 9 की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है, जो कि **विशेष अपील (दोषपूर्ण) संख्या 477/2010, उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम उमेश चंद्र श्रीवास्तव** में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा दिनांक 20.07.2010 को पारित एक निर्णय और आदेश है। उपरोक्त निर्णय में, इस न्यायालय की खंडपीठ ने स्पष्ट रूप से इंगित किया है कि भर्ती नियमावली (खंडपीठ के समक्ष विचाराधीन नियमों से संबंधित) के नियम 8(2) के अंतर्गत भर्ती का स्रोत, जो पदोन्नति द्वारा भर्ती की प्रक्रिया प्रदान करता है, में टाइपिंग टेस्ट उत्तीर्ण करने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसलिए, खंडपीठ ने विभाग को निर्देश दिया कि वह उस अपील के प्रतिवादी के उस दावे पर विचार करे, जिसमें प्रतिवादी को टाइपिंग टेस्ट उत्तीर्ण करने के लिए कहे बिना, उसके द्वारा प्राप्त अंकों के आधार पर पदोन्नति दी गई है।

10. पं. एस. चंद्रा ने इस न्यायालय का ध्यान रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 11 की ओर आकर्षित किया है, जो दिनांक 04.01.2017 का एक सरकारी आदेश है जो चतुर्थ श्रेणी पद से कनिष्ठ सहायक के पद पर पदोन्नति के लिए योग्यता प्रदान करता है। उपरोक्त सरकारी आदेश के अनुसार, 50% कोटे के अन्तर्गत सीधी भर्ती के लिए योग्यता इंटरमीडिएट होगी, डीओईएसीसी से जारी सीसीसी प्रमाणपत्र और हिंदी/अंग्रेजी में टाइपिंग का ज्ञान और 25/30 शब्द प्रति मिनट की गति होगी। 50% पदोन्नति कोटे के लिए, यह इंगित किया गया है कि उम्मीदवार के पास सीधी भर्ती के लिए निर्धारित योग्यता होनी चाहिए और लगातार सेवा में पांच साल का अनुभव होना चाहिए। पं. एस. चंद्रा ने कहा है कि चूंकि सहायक क्लर्क के पद के लिए टाइपिंग टेस्ट की आवश्यकता नहीं है और याचिकाकर्ता के पास इंटरमीडिएट की योग्यता और डीओईएसीसी से जारी सीसीसी प्रमाणपत्र है, इसलिए वह सहायक क्लर्क के पद पर पदोन्नति के लिए पूरी तरह से योग्य था। उनके अनुसार, उपरोक्त तथ्य को ध्यान में रखते हुए, प्राधिकृत नियंत्रक ने सहायक लिपिक के पद पर उनकी पदोन्नति का प्रस्ताव सही ढंग से रखा है और जिला विद्यालय निरीक्षक ने याचिकाकर्ता की उस पदोन्नति को सही ढंग से अनुमोदित किया है और उसी के अनुसरण में, याचिकाकर्ता 23.10.2024 से सहायक लिपिक के पद पर अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर रहा है। इसके अतिरिक्त, यह भी तर्क दिया गया है कि दिनांक 06.01.2022 की सरकारी अधिसूचना के अन्तर्गत निर्धारित योग्यता सीधी भर्ती के लिए है, पदोन्नति पदों के लिए नहीं। पं. एस. चन्द्रा ने आगे कहा है कि शिक्षा निदेशक (माध्यमिक) को आक्षेपित आदेश पारित करने का कोई अधिकार नहीं है। इसलिए, आक्षेपित आदेश दिनांक 28.03.2025 के माध्यम से टाइपिंग टेस्ट आयोजित करने का निर्देश जारी करना पूरी तरह से अवैध, अनुचित और अनावश्यक है।

11. इसके विपरीत, प्रतिपक्ष के विद्वान अधिवक्ताओं ने कहा है कि अधिनियम, 1921 की धारा 16-जी से संबंधित अधिनियम, 1921 के अन्तर्गत विनियमों के अध्याय-III के अनुसार, अर्थात सेवा की शर्त, जिसे अधिनियम, 1921 के अन्तर्गत विनियमों के विनियम 2 के अन्तर्गत स्पष्ट रूप से इंगित किया गया है कि चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी को सहायक लिपिक के पद पर पदोन्नत किया जा सकता है, यदि वह उस पद के लिए योग्यता रखता है और उसने पांच साल की निरंतर सेवा पूरी कर ली है। पदोन्नति हेतु पात्रता का निर्धारण शासनादेश दिनांक 04.01.2017 में किया गया है, जिसमें स्पष्ट रूप से कहा गया है कि चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी को तृतीय श्रेणी के पद पर पदोन्नत किया जा सकता है, बशर्ते वह सीधी भर्ती के लिए निर्धारित सभी योग्यताएँ रखता हो और उसे पाँच वर्षों का निरंतर सेवा अनुभव हो। चूँकि सीधी भर्ती के लिए निर्धारित योग्यता यह है कि अभ्यर्थी के पास इंटरमीडिएट की योग्यता, डीओईएसीसी से जारी सीसीसी प्रमाणपत्र, हिंदी/अंग्रेजी में टाइपिंग की गति 25/30 शब्द प्रति मिनट होनी चाहिए और साथ ही उसे पाँच वर्षों का सेवा अनुभव भी होना चाहिए। चूँकि याचिकाकर्ता ने अपनी याचिका में यह नहीं बताया है कि उसकी हिंदी/अंग्रेजी में टाइपिंग की गति 25/30 शब्द प्रति मिनट है, इसलिए उसके पास ऐसी कोई योग्यता नहीं है। इसके अलावा, यदि याचिकाकर्ता के पास डीओईएसीसी से सीसीसी प्रमाणपत्र है और उसकी हिंदी/अंग्रेजी में टाइपिंग गति 25/30 शब्द प्रति मिनट है, तो उसे टाइपिंग टेस्ट में बैठने में संकोच नहीं करना चाहिए, जैसा कि शिक्षा निदेशक (माध्यमिक) द्वारा निर्देशित किया गया है, क्योंकि निदेशक केवल निर्धारित प्रक्रिया का पालन कर रहे हैं और कुछ मामलों में इस न्यायालय द्वारा भी इसे बरकरार रखा गया है।

12. विपक्षीगण के विद्वान अधिवक्ताओं ने यह भी कहा है कि दिनांक 06.01.2022 की अधिसूचना के माध्यम से संशोधन के माध्यम से, अधिनियम, 1921 के अन्तर्गत बनाए गए विनियमों के विनियम 101 के अन्तर्गत ऐसी योग्यता जोड़ी गई है। उन्होंने यह भी कहा है कि याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णय वर्तमान मामले में लागू नहीं होगा क्योंकि डिवीजन बेंच के समक्ष संदर्भित नियमों के अन्तर्गत, बेशक, टाइपिंग टेस्ट उत्तीर्ण करने की कोई आवश्यकता नहीं थी, लेकिन वर्तमान मामले में, सरकारी आदेश दिनांक 04.01.2017 के साथ-साथ अधिसूचना दिनांक 06.01.2022 के अनुसार टाइपिंग टेस्ट एक अनिवार्य योग्यता है।

13. विपक्षीगण के विद्वान अधिवक्ताओं ने इस न्यायालय द्वारा **रिट-ए संख्या 23580/2018, सुधांशु त्यागी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 4 अन्य,** में पारित दिनांक 22.11.2018 के निर्णय और आदेश पर भरोसा रखा है, जिनमें इसी तरह के विवाद पर निर्णय दिया गया है और इस न्यायालय ने दिनांक 04.01.2017 के सरकारी आदेश की वैधता को बरकरार रखा है। सुधांशु त्यागी (उपरोक्त) के संबंध में दिए गए निर्णय के पैराग्राफ संख्या 14 से 18 नीचे पुन: प्रस्तुत किए जा रहे हैं:-

"14. तथापि, इस मुद्दे की जांच एक अलग परिप्रेक्ष्य से की जानी चाहिए। उत्तर प्रदेश इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 की धारा 9 राज्य सरकार को अधिनियम में ही परिकल्पित तरीके से आवश्यक निर्देश जारी करने की शक्ति प्रदान करती है। अधिनियम की धारा 9(4) वर्तमान प्रयोजनों के लिए प्रासंगिक है और इसे इसके बाद पुन: प्रस्तुत किया जाता है:-

"9(4). जब कभी राज्य सरकार की राय में तुरन्त कार्रवाई करना आवश्यक या शीघ्र हो, तो वह पूर्वगामी उपबंधों के अधीन बोर्ड को कोई निर्देश दिए बिना, ऐसा आदेश पारित कर सकेगी या इस अधिनियम के उपबंधों के अनुरूप ऐसी अन्य कार्रवाई कर सकेगी, जैसी वह आवश्यक समझे, और विशिष्टतया, ऐसे आदेश द्वारा किसी मामले के संबंध में कोई उपांतरण कर सकेगी, विखंडित कर सकेगी या कोई विनियम बना सकेगी और तदनुसार बोर्ड को तुरन्त सूचित करेगी।"

15. राज्य सरकार की शक्तियाँ व्यापक और समग्र हैं, जिसमें ऐसा आदेश पारित करना या इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुरूप ऐसी अन्य कार्रवाई करना शामिल है, जैसा कि वह आवश्यक समझे, और आदेश पारित करके किसी भी मामले के संबंध में कोई विनियमन संशोधित या रद्द या बना सकती है और बोर्ड को तुरंत तदनुसार सूचित करेगी। इसलिए, नियम 9 के उपनियम (4) के आधार पर राज्य में प्रदत्त शक्ति का प्रयोग 23.8.2016 और 4.1.2017 के सरकारी आदेश जारी करने में शक्ति के स्रोत का पता लगाने के लिए किया जा सकता है। यह भी देखा गया है कि क्लास-III के पद पर पदोन्नति के लिए प्रक्रिया और योग्यता, अन्यथा, विनियमन में विशेष रूप से प्रदान नहीं की गई है। इसलिए, राज्य सरकार अपनी क्षमता के भीतर होगी कि वह योग्यता निर्धारित करे और साथ ही क्लास-IV के पद से क्लास-III के पद पर पदोन्नति के लिए प्रक्रिया का पालन करे। शक्ति का ऐसा प्रयोग अन्यथा 1921 के अधिनियम के प्रावधानों के साथ असंगत नहीं दिखाया गया है। इसके अलावा, अधिनियम की धारा 9(4) के तहत शक्ति में संशोधन, निरस्तीकरण या विनियमन बनाने की शक्ति शामिल है। ऐसी परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता की ओर से 23.8.2016 और 4.1.2017 के सरकारी आदेशों और उनके तहत परिणामी कार्रवाइयों का विरोध करने के लिए विनियमों के साथ असंगतता का तर्क नहीं दिया जा सकता है। 23.8.2016 और 4.1.2017 के सरकारी आदेशों को चुनौती दी गई है, लेकिन कोई भी वैध कारण या आधार नहीं दिया गया है जिसके आधार पर किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता हो, एक बार ऐसा निर्देश जारी करने की शक्ति क़ानून से जुड़ी हो और अन्यथा तर्कहीन या भेदभावपूर्ण न हो।

16. याचिकाकर्ताओं की ओर से सरकारी आदेशों को चुनौती देने के लिए दिए गए एकमात्र आधार ये हैं:
(i) सरकारी आदेश में स्पष्ट प्रावधान के बावजूद वैधानिक विनियमों में संशोधन नहीं किया गया है;
(ii) सरकारी आदेश 2014 के वैधानिक नियमावली के विपरीत हैं, जिन्हें अध्याय-III के अंतर्गत बनाए गए विनियमों के विनियम 2(1) के आधार पर अपनाया गया है।

17. जहाँ तक विनियमन में संशोधन का संबंध है, यह केवल एक मंत्रिस्तरीय कार्य है और सरकारी आदेश में हस्तक्षेप करने का आधार नहीं होगा, विशेष रूप से इसलिए क्योंकि कानून में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है, जहाँ अधिनियम की धारा 9(4) के अन्तर्गत लिए गए निर्णय को विनियमों में संशोधन करके ही शामिल किया जाना आवश्यक हो। इस संबंध में न्यायालय के समक्ष कोई वैधानिक दायित्व नहीं रखा गया है। इसलिए, इस संबंध में प्रस्तुत तर्क को स्वीकार नहीं किया जा सकता।

18. याचिकाकर्ता की ओर से दिया गया दूसरा आधार भी, अधिनियम की धारा 9(4) के आधार पर, राज्य को विनियमों में संशोधन करने की स्पष्ट शक्ति के मद्देनजर, कायम नहीं रखा जा सकता। यह क़ानून राज्य सरकार को विनियमन में संशोधन या परिवर्तन करने या विनियमन बनाने की शक्ति प्रदान करता है। इसलिए, अधिनियम के अन्तर्गत प्राधिकरण के विशिष्ट आह्वान या उसके अन्तर्गत पारित किसी आदेश को चुनौती देने के लिए विनियमों के किसी भी प्रावधान पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। इसलिए, विनियमन के विनियमन 2(1) की तुलना में सरकारी आदेश में कोई असंगति नहीं पाई जाती है। इन सभी कारणों से, दिनांक 4.1.2017 के सरकारी आदेश के खंड-2 को दी गई चुनौती विफल हो जाती है।"

14. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री तथा पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा उद्धृत निर्णय का अवलोकन करने के पश्चात्, मेरा यह सुविचारित मत है कि दिनांक 28.03.2025 के आक्षेपित आदेश के माध्यम से, पदोन्नति कोटे के अंतर्गत सहायक लिपिक के पद को भरने के लिए टाइपिंग परीक्षा आयोजित करने का निदेशक का निर्देश पूर्णतः उचित है, क्योंकि यह शासनादेश दिनांक 04.01.2017 और अधिसूचना दिनांक 06.01.2022 के अनुसार जारी किया गया है।

15. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णय वर्तमान मामले में लागू नहीं होगा क्योंकि उस मामले में संदर्भित नियमावली में ऐसा कोई प्रावधान नहीं था जहाँ टाइपिंग टेस्ट उत्तीर्ण करने की आवश्यकता अनिवार्य थी, जबकि वर्तमान मामले में ऐसी योग्यता अनिवार्य है। दिनांक 04.01.2017 के सरकारी आदेश में, यह स्पष्ट रूप से इंगित किया गया है कि तृतीय श्रेणी के पद के लिए पदोन्नति कोटे के अन्तर्गत पद उन उम्मीदवारों से भरा जाएगा, जिनके पास सीधी भर्ती के उम्मीदवारों के लिए निर्धारित योग्यता है और उनके पास पाँच वर्ष का अनुभव है और सीधी भर्ती के उम्मीदवारों के लिए टाइपिंग टेस्ट की आवश्यकता अनिवार्य है। उपरोक्त शर्त को दिनांक 06.01.2022 की अधिसूचना द्वारा जारी संशोधन के माध्यम से विनियमन के अन्तर्गत डाला गया है और याचिकाकर्ता के लिए वर्तमान मामले में यह कार्य 06.01.2022 के बाद किया गया था। यह सच है कि जब प्राधिकृत नियंत्रक द्वारा याचिकाकर्ता की तृतीय श्रेणी के पद पर पदोन्नति का प्रस्ताव रखा गया था, तब कोई टाइपिंग परीक्षा आयोजित नहीं की गई थी और जिला विद्यालय निरीक्षक ने 22.10.2024 को अनुमोदन प्रदान करते समय इस पहलू को नज़रअंदाज़ कर दिया। इसके अलावा, इस न्यायालय ने **सुधांशु त्यागी** (उपरोक्त) के मामले में 04.01.2017 के सरकारी आदेश को बरकरार रखा है और उस निर्णय और आदेश को अभी तक चुनौती नहीं दी गई है, इसलिए, आज की स्थिति में, वह निर्णय और आदेश अंतिम हो गया है, इसलिए मैं **सुधांशु त्यागी** (उपरोक्त) के मामले में समन्वय पीठ द्वारा पारित निर्णय और आदेश का पालन कर रहा हूँ। यदि याचिकाकर्ता को कंप्यूटर का अच्छा ज्ञान है क्योंकि उसके पास डीओईएसीसी से सीसीसी प्रमाणपत्र है, तो उसे टाइपिंग परीक्षा में बैठने में संकोच नहीं करना चाहिए।

16. यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि यदि याचिकाकर्ता दिनांक 28.03.2025 के आक्षेपित आदेश के अनुसार टाइपिंग परीक्षा में उपस्थित होता है, तो उसे इस आधार पर कोई पूर्वाग्रह नहीं होगा कि उसने शिक्षा निदेशक (माध्यमिक), उ.प्र., लखनऊ द्वारा पारित दिनांक 28.03.2025 के आक्षेपित आदेश को चुनौती दी थी और

याचिकाकर्ता की अन्य योग्यताओं, जैसे उसका अनुभव, सेवाकाल आदि पर उचित रूप से विचार किया जाएगा। हालाँकि, मैं शिक्षा निदेशक (माध्यमिक), उ.प्र., लखनऊ द्वारा पारित दिनांक 28.03.2025 के आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने का इच्छुक नहीं हूँ।

17. तदनुसार, यह रिट याचिका **खारिज** की जाती है।

18. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2025) 4 ILRA 396

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 22.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान

रिट-ए संख्या 4208/2025

जयंत कुमार सिंह **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...प्रत्यर्थी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
आदित्य सिंह

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता:
सी.एस.सी., बृजेश कुमार सिंह

सिविल विधि - बकाया वेतन - बहाली - 14.02.2025 का सेवा समाप्ति आदेश मनमाना और अवैध है, क्योंकि यह बिना किसी जांच के पारित किया गया था और नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है - यदि सेवा समाप्ति का एकमात्र आधार याचिकाकर्ता के विरूद्ध दर्ज एफआईआर और 10.01.2025 से 17.01.2025 तक उसकी न्यायिक अभिरक्षा थी, तो उचित कदम उसे निलंबित करना और विभागीय जांच करना था - इस आधार पर सीधे बर्खास्तगी से कलंक लगता है - भले ही दोषी कर्मचारी के विरुद्ध विभागीय जांच करने के लिए कोई सेवा नियमावली न हों, फिर भी दंड आदेश पारित करने से पहले निष्पक्ष सुनवाई की बुनियादी आवश्यकता का पालन किया जाना चाहिए - सक्षम प्राधिकारी याचिकाकर्ता की सुनवाई के बाद, शीघ्रता से उचित आदेश पारित कर सकता है। (प्रस्तर 11, 13)

अनुवादित

याचिका स्वीकृत। (ई-13)

<u>उद्धृत वादों की सूची:</u>

1. बासुदेव तिवारी बनाम सिदो कान्हू विश्वविद्यालय एवं अन्य (1998) 8 एससीसी 194 में प्रतिवेदित किया गया, (प्रस्तर 9, 10)

2. शस्य सिंह बनाम यू.पी. व अन्य, 2020 एससीसी ऑनलाइन ऑल 106 में प्रतिवेदित किया गया, सेवा एकल संख्या 854/2020; (प्रस्तर 11, 13)

3. नर सिंह पाल बनाम भारत संघ व अन्य, (2000) 3 एससीसी 588 में प्रतिवेदित किया गया, (प्रस्तर 6, 8, 10)

(माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री आदित्य सिंह का पक्ष रख रहे विद्वान अधिवक्ता विक्रम सिंह, राज्य-विपक्षी संख्या 1, 2, और 3 के विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री विवेक शुक्ला और विपक्षी संख्या 4 की ओर से वकालतनामा दायर करने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री विकास श्रीवास्तव बख्शी को सुना गया, तथा उक्त को अभिलेख पर लिया गया।

2. इस रिट याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता ने निम्नलिखित अनुतोष की प्रार्थना की गयी है:-

"(I) प्रत्यर्थी संख्या 4 द्वारा पारित दिनांक 14.02.2025 के आक्षेपित बर्खास्तगी आदेश को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें, जो रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 1 के रूप में निहित है।

(II) प्रत्यर्थीगण को परमादेश की प्रकृति में रिट, आदेश या निर्देश जारी कर याचिकाकर्ता को सेवा में बहाल करने का आदेश दिया जाए, ताकि वह बकाया वेतन और सभी परिणामी लाभों के साथ अपने कर्तव्यों का पालन कर सके, साथ ही याचिकाकर्ता को अन्य समान स्थिति वाले व्यक्तियों के समान सेवाएं प्रदान की जा सकें।"

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का सटीक तर्क यह है कि दिनांक 14.02.2025 का आक्षेपित आदेश एक कलंकपूर्ण आदेश है, जिसे इस तथ्य के आधार पर पारित किया गया है कि याचिकाकर्ता के विरूद्ध एक एफआईआर लंबित है, जिसका विचारण विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पूरी नहीं किया गया है।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि विधि इस बात पर अडिग है कि यदि कोई प्राधिकारी किसी कर्मचारी पर नैतिक पतन आदि का अभिकथन करते हुए आदेश पारित करता है, तो उसे सुनवाई का कम से कम एक अवसर अवश्य प्रदान किया जाना चाहिए। वर्तमान वाद में, याचिकाकर्ता को सुनवाई का ऐसा कोई

अवसर प्रदान नहीं किया गया और केवल इस तथ्य के आधार पर कि उसके विरुद्ध एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई है, उसकी सेवाएँ तुरंत समाप्त कर दी गईं।

5. पिछली तिथि पर, जब वाद की सुनवाई हुई थी, विपक्षी पक्षों के विद्वान अधिवक्तागण को मौखिक रूप से मामले में निर्देश प्राप्त करने का दिशा-निर्देश दिया गया था।

6. आज, विपक्षी संख्या 4 के विद्वान अधिवक्ता श्री विकास श्रीवास्तव बख्शी ने तर्क प्रस्तुत किया है कि उन्हें मामले में निर्देश प्राप्त हुए हैं और ऐसे निर्देशों के आधार पर उन्होंने प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता अप्रशिक्षित और अस्थायी कर्मचारी था और उसके नियुक्ति पत्र दिनांक 11.02.2020 (अनुलग्नक संख्या 4) में स्पष्ट रूप से संकेत दिया गया था कि यदि याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई अनियमितता या शिकायत प्राप्त होती है, तो उसकी सेवाएं तुरंत समाप्त कर दी जाएंगी।

7. विपक्षी संख्या 4 के विद्वान अधिवक्ता से यह पूछे जाने पर कि क्या सक्षम प्राधिकारी ने एफआईआर को याचिकाकर्ता के विरूद्ध अनियमितता या शिकायत के रूप में माना है, उन्होंने कहा है कि उपरोक्त एफआईआर को याचिकाकर्ता के खिलाफ अनियमितता/शिकायत के रूप में माना गया है। श्री विकास श्रीवास्तव बख्शी से यह पूछे जाने पर कि क्या किसी कर्मचारी की सेवाओं को समाप्त करने के लिए कोई सेवा नियमावली हैं, उन्होंने कहा कि अस्थायी आधार पर नियुक्त किसी कर्मचारी की सेवाओं को समाप्त करने के लिए कोई सेवा नियमावली नहीं हैं। उन्होंने यह भी कहा कि किसी भी दोषी कर्मचारी के विरुद्ध विभागीय जाँच करने से संबंधित कोई सेवा नियमावली भी नहीं हैं, भले ही उसकी स्थिति स्थायी प्रकृति की ही क्यों न हो।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय का ध्यान **बासुदेव तिवारी बनाम सिदो कान्हू विश्वविद्यालय एवं अन्य (1998) 8 एससीसी 194** वाद में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए उस आदेश की ओर आकर्षित किया है, जिसमें प्रस्तर 9 और 10 का हवाला दिया गया है, जिसमें स्पष्ट रूप से कहा गया है कि यदि कोई दंड आदेश पारित किया जाता है, तो कर्मचारी को सुनवाई का कम से कम एक अवसर अवश्य दिया जाना चाहिए। सुविधा के लिए, प्रस्तर 9 और 10 इस प्रकार हैं:-

"9. विधि में यह स्थापित है कि मनमानी न करना अनुच्छेद 14 का एक आवश्यक पहलू है, जो अनुच्छेद 14 द्वारा शासित राज्य कार्रवाई के संपूर्ण क्षेत्र में व्याप्त है। इसके अतिरिक्त, यह भी स्थापित हो चुका है कि नैसर्गिक न्याय का 'ऑडी अल्टरम पार्टम' पहलू मनमानी का प्रतिपक्ष है। सार्वजनिक रोजगार के क्षेत्र में, यह सर्वविदित है कि नियोक्ता द्वारा किसी कर्मचारी के विरुद्ध की गई कोई भी कार्रवाई निष्पक्ष, न्यायसंगत और उचित होनी चाहिए, जो निष्पक्ष व्यवहार के घटक हैं। किसी कर्मचारी की सेवाएँ समाप्त करने का पूर्ण अधिकार प्रदान करना निष्पक्ष, न्यायसंगत और उचित व्यवहार के विपरीत है। इस पहलू पर इस न्यायालय की संविधान पीठ ने दिल्ली परिवहन निगम बनाम डी.टी.सी. मजदूर कांग्रेस वाद में विस्तृत रूप से विचार किया था।

10. प्रक्रियात्मक सुरक्षा उपाय लागू करने के लिए, इस न्यायालय ने उन सभी परिस्थितियों में नैसर्गिक न्याय की आवश्यकता को पढ़ा है जहाँ विधि इस बिंदु पर मौन है। इस संबंध में इस न्यायालय का दृष्टिकोण यह है कि जिस विधि के तहत आक्षेपित कार्रवाई की जा रही है, उसमें सुनवाई की आवश्यकता लागू न करने से सुनवाई की आवश्यकता समाप्त नहीं होती - यह शक्ति की प्रकृति से निहित हो सकती है - विशेष रूप से तब जब किसी पक्ष के अधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हो। ऐसी आवश्यकता को पढ़ने का औचित्य यह है कि न्यायालय केवल विधायिका की चूक की आपूर्ति करता है। (देखें मोहिंदर सिंह गिल एवं अन्य बनाम मुख्य चुनाव आयुक्त एवं अन्य एआईआर 1978 एससी 851) और प्रत्यक्ष विधायी निषेध या निहित बहिष्करण के वाद को छोड़कर। (देखें एस.एल. कपूर बनाम जगमोहन एवं अन्य)।"

9. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय का ध्यान ***सेवा एकल संख्या 854/2020; शस्य सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2020 एससीसी ऑनलाइन इला 106*** में प्रतिवेदित वाद में इस न्यायालय द्वारा दिए गए एक निर्णय की ओर भी आकर्षित किया है, जिसमें प्रस्तर 11 और 13 का उल्लेख है, जिसके तहत इस न्यायालय ने रिट याचिका को यह कहते हुए स्वीकार कर लिया कि किसी कर्मचारी की सेवाएँ समाप्त करने से पहले, यदि आक्षेपित आदेश में कर्मचारी के विरुद्ध कोई अभिकथन हैं, तो उचित जाँच की जानी चाहिए। सुविधा के लिए, प्रस्तर 11 और 13 नीचे पुन: प्रस्तुत किए जा रहे हैं:-

"11. इस न्यायालय ने फ़राज़ हमीद अंसारी बनाम भारतीय जीवन बीमा निगम के अध्यक्ष एवं अन्य के माध्यम से 2018(36) एलसीडी 2062 में प्रतिवेदित वाद में प्रस्तर 15 में निर्णय दिया है, जबकि माननीय सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयों पर विचार करते हुए, प्रस्तर 15 इस अभिनिर्धारित किया है:

"15. इस प्रकार, भले ही याचिकाकर्ताओं की सेवाओं को समाप्त करने वाली आक्षेपित कार्रवाई एक अनुबंध के दायरे में हो, लेकिन इसे भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उपलब्ध इस न्यायालय द्वारा न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्तियों के प्रयोग में जांच से रोका नहीं जाएगा। मेरा यह सुविचारित मत है कि निगम की प्रत्येक कार्रवाई, चाहे वह वैधानिक हो, गैर-वैधानिक हो या प्रशासनिक प्रकृति की हो, अनिवार्य रूप से संवैधानिक आदेश के अनुरूप होनी चाहिए और इस प्रकार, आक्षेपित आदेश को भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 की कसौटी पर परखा जा सकता है। यदि आक्षेपित कार्रवाई अनुचित, अविवेकपूर्ण, अवैध, विकृत या अनुचित पाई जाती है, तो ग्रिडको लिमिटेड (पूर्वोक्त) के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि के आलोक में उसमें हस्तक्षेप किया जा सकता है।

13. जैसा भी हो, चूँकि नियुक्ति प्राधिकारी याचिकाकर्ता के आचरण से संतुष्ट नहीं हैं, जैसा कि आक्षेपित आदेशों और निर्देश पत्र में परिलक्षित है और इस आशय का उल्लेख आक्षेपित आदेश में भी किया गया है, इसलिए, यदि आवश्यक हो, तो याचिकाकर्ता के विरुद्ध विधिसम्मत विभागीय जाँच की जानी चाहिए और उसे पूरा किया जाना चाहिए तथा याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर प्रदान करने के बाद ही कोई उचित आदेश पारित किया

जा सकता है। कोई भी उचित आदेश केवल अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा स्वतंत्र रूप से पारित किया जा सकता है और ऐसा आदेश उच्च प्राधिकारी द्वारा पारित निर्देश के अनुसरण में पारित नहीं किया जा सकता है।

10. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय का ध्यान ***नर सिंह पाल बनाम भारत संघ एवं अन्य (2000) 3 एससीसी 588*** वाद में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए उस आदेश की ओर आकर्षित किया है, जिसमें प्रस्तर 6, 8 और 10 के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि:

"अपीलकर्ता, यद्यपि एक दिहाड़ी मजदूर था, ने अस्थायी दर्जा प्राप्त कर लिया था। एक बार जब कोई कर्मचारी "अस्थायी" दर्जा प्राप्त कर लेता है, तो वह कुछ लाभों का हकदार हो जाता है, जिनमें से एक यह है कि वह संविधान के अनुच्छेद 311 और भारत संघ के अधीन सेवाओं से संबंधित अन्य अनुच्छेदों द्वारा परिकल्पित संवैधानिक संरक्षण का हकदार हो जाता है। अपीलकर्ता के विरुद्ध मारपीट के आरोप के कारण सेवाएँ समाप्त कर दी गईं। इस वाद में सेवा समाप्ति के आदेश को केवल छंटनी का आदेश नहीं माना जा सकता। यह दंड के रूप में पारित एक आदेश था और इसलिए, यह बर्खास्तगी का आदेश था, जो प्रारंभिक जाँच के आधार पर और नियमित विभागीय जाँच किए बिना पारित किया गया था, इसलिए इसे बरकरार नहीं रखा जा सकता।"

11. उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों तथा उपरोक्त उद्धृत निर्णयों के आलोक में आक्षेपित आदेश का परीक्षण करने के पश्चात्, मैं पाता हूँ कि दिनांक 14.02.2025 का आक्षेपित आदेश अवैध, मनमाना और अनुचित है, क्योंकि उपरोक्त दण्ड आदेश नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का पूर्ण उल्लंघन करते हुए और उस संबंध में कोई जांच किए बिना पारित किया गया है। यदि याचिकाकर्ता की सेवाएँ समाप्त करने का कारण यह भी है कि उसके विरुद्ध एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी, जिसमें वह 10.01.2025 से 17.01.2025 तक न्यायिक अभिरक्षा में रहा, तो भी विभागीय जाँच लंबित रहने तक याचिकाकर्ता को निलंबित रखा जाना चाहिए था। परन्तु केवल उपरोक्त कारण से उसकी सेवाएँ समाप्त करना उसके लिए कलंक है। इसके अलावा, यदि दोषी कर्मचारी के विरुद्ध विभागीय जांच करने के लिए कोई सेवा नियम नहीं हैं, तो कम से कम दण्ड आदेश पारित करने से पहले नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का पालन किया जाना चाहिए।

12. इसलिए, दिनांक 14.02.2025 के आक्षेपित आदेश में स्पष्ट त्रुटि है, इसलिए, इसे केवल सीमित आधार पर अपास्त/रद्द किया जाता है।

13. सक्षम प्राधिकारी के लिए यह सदैव खुला है कि वह याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर प्रदान करके विधि के अनुसार उचित आदेश पारित करें और यदि ऐसा आदेश अपेक्षित हो तो उसे शीघ्रता से पारित किया जा सकता है।

14. चूंकि दिनांक 14.02.2025 का आक्षेपित आदेश अपास्त/रद्द कर दिया गया है, इसलिए विधि के अनुसार परिणामी आदेश पारित किया जा सकता है।

15. अतः रिट याचिका ***स्वीकार*** की जाती है।

16. परिणाम अनुगामी होंगे।

17. वाद व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं है।

(2025) 4 ILRA 399

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ, 17.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया

रिट ए संख्या 4420/2024

मोहन शर्मा **...याचिकाकर्ता**

बनाम

अपर जिला न्यायाधीश/विशेष (एस.सी./एस.टी.) अधिनियम, बहराइच एवं अन्य **...प्रत्यर्थीगण**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
प्रीतिश कुमार, अमल रस्तोगी

प्रत्यर्थी के अधिवक्ता:
शोभित हर्ष, गिरीश चंद्र सिन्हा, जतिन रहेजा, शक्ति कुमार शर्मा

सिविल विधि - उ.प्र. नगरीय भवन (किराये पर देने, किराया एवं बेदखली विनियमन) अधिनियम, 1972 (उ.प्र. अधिनियम संख्या 13/1972), धारा 21(1)(क) - मकान मालिक-किराएदार विवाद - मुक्ति आवेदन - सद्भावनापूर्ण आवश्यकता - तुलनात्मक कठिनाई - मकान मालिक और किरायेदार का संबंध - किरायेदार द्वारा सह-स्वामित्व का दावा - सह-स्वामियों के बीच पारिवारिक समझौते का प्रभाव - विभाजित किरायेदारी - मुक्ति आवेदन की पोषणीयता - नामांतरण प्रविष्टियाँ - न्यायसंगत अनुतोष - मौखिक पारिवारिक विभाजन वैध - आंशिक खरीद द्वारा किरायेदार की स्थिति सह-स्वामी में परिवर्तित नहीं हुई - मुक्ति आवेदन पोषणीय - सद्भावनापूर्ण आवश्यकता और तुलनात्मक कठिनाई सही पाई गई - याचिका खारिज। (प्रस्तर 6, 13, 15 से 18, 21 से 29)

<u>अभिनिर्धारित किया:-</u>

अनुवादित

4.इला मोहन शर्मा बनाम अपर जिला न्यायाधीश/विशेष (एस.सी./एस.टी.) अधिनियम, बहराइच एवं अन्य497

इस न्यायालय में दायर पूरी याचिका और ऊपर दर्ज तर्कों के अनुसार, याचिकाकर्ता का दावा यह है कि उसने प्रत्यर्थी संख्या 4 से संपत्ति का एक हिस्सा खरीदा था और इस प्रकार, वह सह-स्वामी बन गया। उक्त तर्क केवल इस कारण से खारिज करने योग्य है कि अपीलीय न्यायालय ने यह दर्ज किया था कि निर्दिष्ट सीमाओं वाली संपत्तियाँ विक्रय-पत्रों के आधार पर खरीदी गई थीं, और पूरी याचिका में ऐसा कोई कथन/तर्क नहीं है कि अपीलीय न्यायालय द्वारा दर्ज किया गया उक्त निष्कर्ष त्रुटिपूर्ण या विकृत है। इस प्रकार, यह तर्क दलीलों के विपरीत है। (प्रस्तर 15)

याचिकाकर्ता के इस तर्क के संबंध में कि मकान मालिक और किरायेदार का संबंध मौजूद नहीं है, यह तर्क अस्वीकार करने योग्य है क्योंकि किराया नियंत्रण अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार, प्रयुक्त शब्द हैं 'कि मकान मालिक एक ऐसा व्यक्ति है जिसे किराया देय है और वास्तव में भुगतान नहीं किया गया है।' (प्रस्तर 16)

दर्ज किए गए निष्कर्षों के अनुसार, पारिवारिक समझौता/विभाजन हुआ था, स्पष्ट रूप से, जिस हिस्से का प्रत्यर्थी संख्या 3 स्वामी बन गया था, उसका किराया उसे देय था और इस प्रकार, यह तर्क कि मकान मालिक और किरायेदार के बीच संबंध स्थापित नहीं हुआ था, भी अस्वीकार करने योग्य है और इसे खारिज किया जाता है। (प्रस्तर 17)

जहाँ तक किरायेदारी के बँटवारे से संबंधित तीसरे तर्क का प्रश्न है, वह इस आधार पर भी अस्वीकार किए जाने योग्य है कि किरायेदारी का कोई बँटवारा नहीं हुआ था। पारिवारिक समझौते के बाद, प्रत्यर्थी संख्या 4 के हिस्से में आने वाला हिस्सा याचिकाकर्ता द्वारा खरीद लिया गया था, जिसका याचिकाकर्ता स्वामी बन गया और प्रत्यर्थी संख्या 3 के हिस्से में आने वाले हिस्से के संबंध में किरायेदारी जारी रही, जो याचिकाकर्ता के कब्जे में था, इस प्रकार, इस तर्क को इस सीमा तक अस्वीकार किया जाता है। (प्रस्तर 18)

याचिका खारिज। (ई-14)

<u>उद्धृत वादों की सूची:</u>

1.अब्दुल अलीम बनाम शेख जमाल उद्दीन अंसारी; एआईआर ऑनलाइन 1997 एससी 185

2.केवल सिंह बनाम एमटी.लाजवंती; एआईआर 1980 एससी 161

3.प्रमोद कुमार जयसवाल एवं अन्य बनाम बीबी हुस्न बानो एवं अन्य; 2005 एआईआर एससीडब्ल्यू 3240

4. शब्बीर अहमद बनाम सैयद मोहम्मद अली अहमद कबीर; 2016 (2) एएलजे 1

5.गुलाब चंद वर्मा बनाम बद्री नारायण मिश्र; एआईआर 2005 इलाहाबाद 133

6.नज़र मोहम्मद और अन्य बनाम पुष्पा देवी एवं अन्य; 2014 लॉ सूट (इला) 983

7.पेरियाम्मल (मृत), द्वारा विधिक प्रतिनिधि और अन्य बनाम राजमणि एवं अन्य आदि, (सिविल अपील संख्या 3640-3642/2025) को 06.03.2025 को निर्णीत।

(माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रीतिश कुमार और प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री शोभित हर्ष को सुना गया।

2. वर्तमान याचिका याचिकाकर्ता द्वारा दायर की गई है, जिसमें विहित प्राधिकारी द्वारा 15.04.2023 को उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 13/1972 की धारा 12(1)(ए) के अंतर्गत पारित मुक्ति के आदेश के साथ-साथ दिनांक 29.03.2024 के आदेश को चुनौती दी गई है जिसके द्वारा याचिकाकर्ता द्वारा दायर किराया अपील को खारिज कर दिया गया था।

3. संक्षेप में तथ्य यह है कि प्रत्यर्थी संख्या 3 ने उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 13/1972 (जिसे आगे किराया नियंत्रण अधिनियम कहा जाएगा) की धारा 21(1)(ए) के अंतर्गत आवेदन संख्या 6/2009 दायर किया था, जिसमें किरायेदार के रूप में याचिकाकर्ता के कब्जे वाले परिसर को मुक्त करने की मांग की गई थी। मुक्ति आवेदन के अनुसार, उक्त परिसर में एक कोठरी, एक खपरैल, एक टिन शेड और उससे संबंधित भूमि शामिल थी, और यह बहराइच जिले में गाटा संख्या 339, 340/1 और 346 पर स्थित था। उक्त आवेदन में कहा गया था कि प्रत्यर्थी संख्या 3 की आयु लगभग 16 वर्ष थी और किरायेदारी प्रत्यर्थी संख्या 4 द्वारा याचिकाकर्ता के पिता के पक्ष में जनवरी, 1972 में किसी समय स्थापित की गई थी। प्रत्यर्थी संख्या 3 ने आगे दलील दी कि संबंधित संपत्ति उसके दो बेटों के लिए वास्तविक रूप से आवश्यक थी, जो बेरोजगार हैं और निर्माण सामग्री बेचने का व्यवसाय शुरू करने वाले थे। यह भी कहा गया कि प्रत्यर्थी संख्या 3 सेवानिवृत्त होने वाला था और सेवानिवृत्ति के बाद परिसर के एक हिस्से में जनरल मर्चेन्ट की दुकान खोलेगा। याचिकाकर्ता ने उपस्थित होकर मुक्ति आवेदन पर जवाब दाखिल किया और तर्क दिया कि संबंधित किरायेदारी प्रत्यर्थी संख्या 4 द्वारा याचिकाकर्ता के पिता के पक्ष में बनाई गई थी। यह भी कहा गया कि प्रत्यर्थी संख्या 3 और प्रत्यर्थी संख्या 4 सगे भाई हैं। यह भी दलील दी गई कि किरायेदारी के तहत संपत्ति का आकार 18 फीट गुणा 175 फीट है। यह भी कहा गया कि संबंधित किराया याचिकाकर्ता द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 4 को हमेशा दिया जाता था और इस प्रकार मकान मालिक और किरायेदार का संबंध केवल याचिकाकर्ता और प्रत्यर्थी संख्या 4 के बीच ही है, तथा याचिकाकर्ता और प्रत्यर्थी संख्या 3 के बीच मकान मालिक और किरायेदार का कोई संबंध नहीं है। यह भी दलील दी गई कि याचिकाकर्ता संबंधित संपत्ति पर लकड़ी का व्यवसाय और आरा मशीन चला रहा था और संबंधित किराया प्रत्यर्थी संख्या 4 को दिया जाता था। यह भी कहा गया कि याचिकाकर्ता के पिता का देहांत 16.11.1995 को हो गया और उसके बाद, किरायेदारी याचिकाकर्ता के पक्ष में 2,400/- रुपये प्रति वर्ष के किराए पर जारी रही, जिसका भुगतान प्रत्यर्थी संख्या 4 को किया जा रहा था।

4. यह भी दलील दी गई कि याचिका के लंबित रहने के दौरान, प्रत्यर्थी संख्या 4 ने प्रत्यर्थी संख्या 3 और 4 के स्वामित्व वाली कुल भूमि में से 2000 वर्ग फुट भूमि, दिनांक 24.12.2008 के पंजीकृत विलेख के माध्यम से याचिकाकर्ता और उसकी पत्नी को बेच दी। प्रत्यर्थी संख्या 4 के हिस्से का एक और हिस्सा, जिसका क्षेत्रफल 1298.74 वर्ग फुट है, दिनांक 13.10.2011 के पंजीकृत विलेख के माध्यम से याचिकाकर्ता के पक्ष में बेच दिया गया और प्रत्यर्थी संख्या 4 के हिस्से से तीसरा विलेख, जिसका क्षेत्रफल 3701.6 वर्ग फुट है, दिनांक 13.02.2012 के पंजीकृत विलेख के माध्यम से निष्पादित किया गया और उसके बाद, राजस्व अभिलेखों में याचिकाकर्ता और उसकी पत्नी के नाम विधिवत रूप से दर्ज कर लिए गए।

5. उक्त के आलोक में, यह तर्क दिया गया कि प्रत्यर्थी संख्या 4 से संपत्ति खरीदने के बाद, याचिकाकर्ता संपत्ति का सह-स्वामी बन गया था और इस प्रकार, उसके विरुद्ध मुक्ति आवेदन स्वीकार्य नहीं था। याचिका में यह तर्क दिया गया है कि प्रत्यर्थी संख्या 3 और प्रत्यर्थी संख्या 4 के बीच कोई सीमा-विभाजन नहीं हुआ था या प्रत्यर्थी संख्या 3 के साथ प्रत्यर्थी संख्या 4 का हिस्सा खरीदने के बाद, वह संपत्ति में सह-हिस्सेदार बन गया था।

6. उक्त दलीलों के आलोक में, मुक्ति आवेदन पर सुनवाई की गई और प्रत्यर्थी संख्या 3 के पक्ष में निर्णय दिया गया, जिसमें वास्तविक आवश्यकता और तुलनात्मक कठिनाई के संबंध में निष्कर्ष दर्ज करने के बाद संपत्ति के उस हिस्से को रिहा कर दिया गया, जो प्रत्यर्थी संख्या 3 के हिस्से में आता था।

7. यह ध्यान रखना आवश्यक है कि याचिकाकर्ता ने दलील दी है कि पंजीकृत बिक्री विलेख को रद्द करने के लिए दिनांक 24.12.2008 का वाद सिविल न्यायाधीश (जूनियर डिवीजन), बहराइच के न्यायालय में नियमित वाद संख्या 142/2011 के रूप में लंबित है।

8. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, प्रत्यर्थी संख्या 3 के पक्ष में मुक्ति आवेदन स्वीकार कर लिया गया था। 15.04.2023 को पारित उक्त मुक्ति आदेश से व्यथित होकर, अधिनियम की धारा 22 के अंतर्गत अपील प्रस्तुत की गई थी, तथापि, 29.03.2024 के निर्णय द्वारा उसे खारिज कर दिया गया। उक्त निर्णयों को वर्तमान रिट याचिका में चुनौती दी गई है।

9. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि चूंकि याचिकाकर्ता ने प्रत्यर्थी संख्या 4 से पूरी संपत्ति का एक हिस्सा खरीदा था, इसलिए याचिकाकर्ता और प्रत्यर्थी संख्या 3 के बीच मकान मालिक और किरायेदार का कोई संबंध नहीं था। उन्होंने मेरा ध्यान किराया नियंत्रण अधिनियम की धारा 3(जे) की ओर दिलाया जो "मकान मालिक" को परिभाषित करती है। इसके बाद उन्होंने तर्क दिया कि याचिकाकर्ता निस्संदेह पूरे परिसर का किरायेदार था, जिसका कुछ हिस्सा उसे प्रत्यर्थी संख्या 4 ने बेचा था, और इस प्रकार, किरायेदारी का कोई बंटवारा नहीं हो सकता। उनका तर्क है कि एक बार किरायेदारी का बंटवारा नहीं हो सकता, तो प्रत्यर्थी संख्या 3 के कहने पर मुक्ति आवेदन पोषणीय नहीं था। उन्होंने आगे तर्क दिया कि प्रत्यर्थी संख्या 4 से संपत्ति का

एक हिस्सा खरीदने के बाद, वह संपत्ति का सह-मालिक बन गया और इस प्रकार, एक किरायेदार के रूप में उसकी स्थिति सह-मालिक में बदल गई।

10. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए तर्कों का कड़ा विरोध किया। उनका तर्क है कि विचाराधीन संपत्ति प्रत्यर्थी संख्या 3 और प्रत्यर्थी संख्या 4 के बीच हुए पारिवारिक समझौते के आधार पर प्रत्यर्थी संख्या 3 के हिस्से में आई थी और इस प्रकार, प्रत्यर्थी संख्या 3 के कहने पर याचिकाकर्ता के विरुद्ध दायर मुक्ति आवेदन उस हिस्से के संबंध में विचारणीय है जो उक्त पारिवारिक समझौते के आधार पर उसके हिस्से में आया था। यह तर्क दिया गया है कि उक्त समझौता एक मौखिक पारिवारिक समझौता था और उक्त मौखिक पारिवारिक समझौते के बाद, प्रत्यर्थी संख्या 4 ने अपने हिस्से का एक हिस्सा याचिकाकर्ता को बेच दिया था और इस प्रकार, यह तर्क कि याचिकाकर्ता पूरी संपत्ति का सह-हिस्सेदार बन गया, पूरी तरह से अनुचित है। उनका तर्क है कि प्रत्यर्थी संख्या 3 के हिस्से में आए हिस्से के संबंध में पारिवारिक समझौते के बाद भी, याचिकाकर्ता का किरायेदार का दर्जा बना रहा और इस प्रकार, इस सीमा तक, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का तर्क अस्वीकार करने योग्य है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि याचिकाकर्ता ने प्रत्यर्थी संख्या 3 या प्रत्यर्थी संख्या 4 को कोई भी किराया देना बंद कर दिया है और इस प्रकार, अधिकार भी याचिकाकर्ता के विरुद्ध हैं। उन्होंने आगे तर्क दिया कि किरायेदारी के विभाजन के संबंध में तर्क अस्वीकार करने योग्य है, क्योंकि याचिकाकर्ता संपत्ति के उस हिस्से का किरायेदार बना रहा, जो प्रत्यर्थी संख्या 3 के हिस्से में आता था और वह उसके द्वारा खरीदे गए हिस्से के संबंध में संपत्ति का मालिक बन गया, जो पारिवारिक समझौते के आधार पर प्रत्यर्थी संख्या 4 के हिस्से में आया और इस प्रकार, याचिकाकर्ता कभी भी उस संपत्ति का सह-स्वामी नहीं बना, जो प्रत्यर्थी संख्या 3 के हिस्से में आती थी।

11. विक्रय विलेख को रद्द करने के लिए दायर वाद के संबंध में, यह तर्क दिया गया है कि उक्त वाद इस आधार पर दायर किया गया था कि विक्रय विलेख में दर्शाई गई सीमाएं गलत थीं।

12. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता ने निर्णयों पर भरोसा किया है, जिनका मैं बाद में उल्लेख करूंगा।

13. दलीलों के आलोक में, अपीलीय न्यायालय के निर्णय पर ध्यान देना आवश्यक है, जिसमें अपीलीय न्यायालय ने दलीलों को दर्ज करने के बाद माना कि विचाराधीन संपत्ति याचिकाकर्ता के पिता द्वारा अपने जीवनकाल के दौरान किराए पर ली गई थी, जिस पर एक आरा मिल और लकड़ी से संबंधित व्यवसाय चलाया जा रहा था। न्यायालय ने यह भी देखा कि एक पारिवारिक समझौता हुआ था और प्रत्यर्थी संख्या 3 और प्रत्यर्थी संख्या 4 के बीच हुए उक्त पारिवारिक समझौते में, पारिवारिक समझौते के अनुसार, संपत्ति का एक हिस्सा प्रत्यर्थी संख्या 3 के हिस्से में आया था। न्यायालय ने उत्तर प्रदेश शासन एवं विधिक सेवा कर अधिनियम की धारा 333 के अन्तर्गत दायर पुनरीक्षण संख्या 883 तथा उसमें दिनांक 18.09.2003 को पारित आदेश के सम्बन्ध में तथ्यों पर भी गौर किया, जिसमें यह पाया गया कि उक्त कार्यवाही में पी.डब्लू. 3 द्वारा यह स्वीकार किया गया था कि पारिवारिक समझौता हो चुका है तथा प्रश्नगत सम्पत्ति का विभाजन हो चुका है। न्यायालय ने यह भी पाया

कि ऐसा कोई प्रमाण नहीं था जिससे यह पता चले कि पारिवारिक बँटवारा नहीं हुआ था। न्यायालय ने यह भी पाया कि याचिकाकर्ता ने प्रत्यर्थी संख्या 4 से संपत्ति का एक हिस्सा खरीदा था जिसकी स्पष्ट सीमाएँ अंकित थीं, जिससे यह स्पष्ट होता है कि याचिकाकर्ता को भी संपत्ति के बँटवारे की जानकारी थी और इसलिए उसने निश्चित हिस्से खरीदे थे जिनकी सीमाएँ प्रत्यर्थी संख्या 4 के हिस्से में आने वाले हिस्से से निर्धारित थीं। न्यायालय ने वर्ष 2011 में दायर किए गए नियमित वाद संख्या 142 पर भी गौर किया, जिसमें दिनांक 24.12.2008 के विक्रय विलेख को केवल इस आधार पर रद्द करने की मांग की गई थी कि विक्रय विलेख में दर्शाई गई सीमाएं अनुचित थीं और उक्त साक्ष्यों के आलोक में, न्यायालय ने माना कि प्रत्यर्थी संख्या 3 और प्रत्यर्थी संख्या 4 के बीच पारिवारिक विभाजन हुआ था और इस प्रकार, याचिकाकर्ता और प्रत्यर्थी संख्या 3 के बीच मकान मालिक और किरायेदार का संबंध स्थापित हो गया तथा उसे उस हिस्से का मालिक माना गया जो पारिवारिक समझौते/विभाजन के अनुसार था। न्यायालय ने इस दलील पर भी गौर किया कि दाखिल-खारिज की प्रविष्टियाँ प्रभावित नहीं हुईं और यह दर्ज किया कि यह सर्वमान्य है कि दाखिल-खारिज की प्रविष्टियाँ केवल कराधान प्रविष्टियाँ हैं। न्यायालय ने यह भी गौर किया कि एससीसी वाद संख्या 11/2009 में एक विवाद्यक विरचित किया गया था, जिसका निर्णय उक्त वाद के वादी के पक्ष में यह कहते हुए किया गया था कि एससीसी वाद उसके आग्रह पर विचारणीय है। न्यायालय ने याचिकाकर्ता के इस तर्क पर भी गौर किया कि उसने निर्माण कार्य किया था और वह संपत्ति के एक हिस्से का सह-स्वामी था। इस संदर्भ में न्यायालय ने विक्रय-पत्रों पर गौर किया, जिनमें केवल भूमि को ही प्रत्यर्थी संख्या 4 द्वारा याचिकाकर्ता के पक्ष में बेचा गया दर्शाया गया था, और साक्ष्यों का विश्लेषण करने के बाद यह निष्कर्ष दर्ज किया कि प्रत्यर्थी संख्या 3 के आग्रह पर दायर याचिका किराया नियंत्रण अधिनियम की धारा 21(1)(ए) के तहत विचारणीय है। इसके बाद न्यायालय ने वास्तविक आवश्यकता पर विचार किया और निष्कर्ष दर्ज किया, साथ ही इस बात पर भी विचार किया कि मकान मालिक का एक बेटा अधिवक्ता था और वह संपत्ति पर अपना चैंबर बनाना चाहता था। न्यायालय ने याचिकाकर्ता के इस तर्क पर भी ध्यान दिया और उसे दर्ज किया कि मकान मालिक का बेटा, जो अधिवक्ता था, लखनऊ में प्रैक्टिस कर रहा था, बहराइच में नहीं। न्यायालय ने दर्ज किया कि सिर्फ़ इसलिए कि वह लखनऊ में प्रैक्टिस कर रहा था, इसका मतलब यह नहीं कि वह बहराइच, जहाँ उसकी संपत्ति स्थित थी, में प्रैक्टिस शुरू करने की इच्छा नहीं रख सकता। न्यायालय ने तुलनात्मक कठिनाई के संबंध में याचिकाकर्ता के तर्क पर भी गौर किया और यह भी दर्ज किया कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेशों के मद्देनजर, जो आरा मिल चल रही थी, वह बंद है। न्यायालय ने यह भी पाया कि याचिका के लंबित रहने के दौरान याचिकाकर्ता द्वारा कोई अन्य किराएदार परिसर प्राप्त करने का कोई प्रयास नहीं किया गया, जिसे याचिकाकर्ता के विरुद्ध माना गया।

14. याचिकाकर्ता/किरायेदार के स्वामित्व वाली अन्य संपत्ति के संबंध में, न्यायालय ने पाया कि यह दलील दी गई थी कि किरायेदार का पुत्र उक्त संपत्ति से अपना व्यवसाय चला रहा था। न्यायालय ने याचिकाकर्ता के विरुद्ध यह तर्क देते हुए कहा कि मकान मालिक के उक्त तर्क को खारिज करने के लिए याचिकाकर्ता की पत्नी या पुत्र के बयान के रूप में कोई साक्ष्य अभिलेख पर नहीं लाया गया। उक्त संदर्भ में, अपील खारिज की जाती है।

15. इस न्यायालय में दायर पूरी याचिका और ऊपर दर्ज तर्कों के अनुसार, याचिकाकर्ता का दावा यह है कि उसने प्रत्यर्थी संख्या 4 से संपत्ति का एक हिस्सा खरीदा था और इस प्रकार, वह सह-स्वामी बन गया। उक्त तर्क केवल इस कारण से खारिज करने योग्य है कि अपीलीय न्यायालय ने यह दर्ज किया था कि निर्दिष्ट सीमाओं वाली संपत्तियाँ विक्रय-पत्रों के आधार पर खरीदी गई थीं, और पूरी याचिका में ऐसा कोई कथन/अभिकथन नहीं है कि अपीलीय न्यायालय द्वारा दर्ज किया गया उक्त निष्कर्ष त्रुटिपूर्ण या विकृत है। इस प्रकार, यह तर्क अभिकथनों के विपरीत है।

16. जहां तक याचिकाकर्ता के इस तर्क का प्रश्न है कि मकान मालिक और किरायेदार के बीच कोई संबंध नहीं है, यह तर्क अस्वीकार करने योग्य है क्योंकि किराया नियंत्रण अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार, प्रयुक्त शब्द हैं कि *"मकान मालिक एक ऐसा व्यक्ति है, जिसे किराया देय है और वास्तव में भुगतान नहीं किया गया है"।*

17. दर्ज किए गए निष्कर्षों के अनुसार, पारिवारिक समझौता/विभाजन हुआ था, स्पष्ट रूप से, जिस हिस्से का प्रत्यर्थी संख्या 3 मालिक बन गया था, उसके संबंध में किराया उसे देय था और इस प्रकार, यह तर्क कि मकान मालिक और किरायेदार का संबंध स्थापित नहीं हुआ था, भी अस्वीकार करने योग्य है और इसे खारिज किया जाता है।

18. जहाँ तक किरायेदारी के बँटवारे से संबंधित तीसरे तर्क का प्रश्न है, वह इस आधार पर भी अस्वीकार किए जाने योग्य है कि किरायेदारी का कोई बँटवारा नहीं हुआ था। पारिवारिक समझौते के बाद, प्रत्यर्थी संख्या 4 के हिस्से में आने वाला हिस्सा याचिकाकर्ता द्वारा खरीद लिया गया था, जिसका याचिकाकर्ता स्वामी बन गया और प्रत्यर्थी संख्या 3 के हिस्से में आने वाले हिस्से के संबंध में किरायेदारी जारी रही, जो याचिकाकर्ता के कब्जे में था, इस प्रकार, इस तर्क को इस सीमा तक अस्वीकार किया जाता है।

19. यह ध्यान रखना आवश्यक है कि पूरी याचिका में ऐसा कोई तर्क नहीं था कि किराया किसी भी समय प्रत्यर्थी संख्या 3 या प्रत्यर्थी संख्या 4 को दिया गया था, जो तथ्य दर्शाता है कि न्यायसंगत क्षेत्राधिकार के प्रयोग में भी, याचिकाकर्ता इस न्यायालय से किसी भी राहत का हकदार नहीं है।

20. अब हम पक्षकारों द्वारा उद्धृत निर्णयों पर आते हैं।

21. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ***अब्दुल अलीम बनाम शेख जमाल उद्दीन अंसारी; एआईआर ऑनलाइन 1997 एससी 185*** के वाद में दिए गए निर्णय पर भरोसा करते हैं। उक्त निर्णय वर्तमान वाद के तथ्यों पर लागू नहीं होगा क्योंकि प्रत्यर्थी संख्या 4 द्वारा याचिकाकर्ता को बेचा गया हिस्सा प्रत्यर्थी संख्या 3 और प्रत्यर्थी संख्या 4 के बीच पारिवारिक समझौते के माध्यम से विभाजन के बाद सह-स्वामी के रूप में नहीं था, और वह अपने हिस्से का एकमात्र मालिक था।

22. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा उद्धृत दूसरा निर्णय ***केवल सिंह बनाम एमटी. लाजवंती; एआईआर 1980 एससी 161*** का वाद है। उन्होंने उक्त निर्णय के प्रस्तर 21 का हवाला देते हुए तर्क दिया कि प्रत्यर्थी के लिए संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम के तहत परिसर खाली करने के लिए वाद दायर करना अनिवार्य था। यह तर्क अस्वीकार करने योग्य है क्योंकि पारिवारिक समझौते के बाद भी याचिकाकर्ता प्रत्यर्थी संख्या 3 का किरायेदार बना रहा।

23. अगला निर्णय ***प्रमोद कुमार जायसवाल एवं अन्य बनाम बीबी हुस्न बानो एवं अन्य; 2005 एआईआर एससीडब्ल्यू 3240*** का वाद है, जो संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 111(डी) के प्रावधान पर आधारित है। उनका तर्क है कि किराया नियंत्रण अधिनियम एक विशेष विधि है, जो किराया नियंत्रण अधिनियम के अंतर्गत शासित परिसरों के संबंध में संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम के प्रावधानों को ग्रहण करता है।

24. उक्त तर्क भी अस्वीकार करने योग्य है क्योंकि उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 13/1972 के अनुसार, संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम के अंतर्गत पट्टाकर्ता और पट्टाधारक के पक्ष में प्रवाहित होने वाले सामान्य अधिकार केवल किराए की दर, किरायेदार के चयन और परिसर खाली करने के संबंध में ही समाप्त हो गए थे। किराया नियंत्रण अधिनियम, संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम को पूरी तरह से समाप्त नहीं करता है। हालाँकि, वर्तमान वाद में यह मुद्दा नहीं उठता क्योंकि तर्क उन साक्ष्यों के मूल्यांकन के बाद दर्ज किया गया है कि विचाराधीन संपत्ति पारिवारिक समझौते के बाद प्रत्यर्थी संख्या 3 के हिस्से में आ गई थी।

25. ***शब्बीर अहमद बनाम सैयद मोहम्मद अली अहमद कबीर; 2016 (2) एएलजे 1*** के वाद में उद्धृत अन्य निर्णय की वर्तमान वाद में कोई प्रासंगिकता नहीं है, क्योंकि निष्कर्ष यह है कि आपसी समझौते के बाद संपत्ति प्रत्यर्थी संख्या 3 के हिस्से में आ गई।

26. इसी प्रकार, ***गुलाब चंद वर्मा बनाम बद्री नारायण मिश्र; एआईआर 2005 इलाहाबाद 133*** के वाद में इस न्यायालय का निर्णय भी वर्तमान वाद के तथ्यों पर लागू नहीं होगा।

27. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा ***नज़र मोहम्मद एवं अन्य बनाम पुष्पा देवी एवं अन्य; 2014 लॉ सूट (इला) 983*** के वाद में उद्धृत निर्णय वर्तमान वाद के तथ्यों पर लागू नहीं होता है, क्योंकि विचाराधीन संपत्ति को सह-स्वामी द्वारा कभी बेचा नहीं गया था और इसे एक व्यक्तिगत स्वामी अर्थात प्रत्यर्थी संख्या 4 द्वारा उस संपत्ति के संबंध में बेचा गया था, जो पारिवारिक समझौते के आधार पर उसके हिस्से में आई थी।

28. अपीलीय न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों के मद्देनजर तथा रिट याचिका में तथ्यों के निष्कर्षों के संबंध में कोई भी ऐसा कथन न होने के कारण, जो विशेष रूप से पारिवारिक समझौते/विभाजन के संबंध में मनमाना या विकृत हो, संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत शक्तियों के प्रयोग में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

29. वर्तमान याचिका में गुण-दोष का अभाव है और इसलिए इसे ***खारिज*** किया जाता है।

30. अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित डिक्री का निष्पादन ***पेरियाम्मल (मृत) द्वारा विधिक प्रतिनिधि एवं अन्य बनाम राजमणि एवं अन्य इत्यादि (सिविल अपील संख्या 3640-3642/2025)*** के वाद में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जारी निर्देशों के आलोक में छह माह के भीतर शीघ्रता से पूरा किया जाएगा, जिसका निर्णय 06.03.2025 को हुआ था।

(2025) 4 ILRA 406

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 09.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट

रिट ए संख्या 14482/2023

प्रदीप पाल **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...प्रत्यर्थीगण**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
कौंतेय सिंह, सिद्धार्थ खरे

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता:
सी.एस.सी., सत्यम सिंह, उदयन नंदन

अनुवादित

सेवा विधि - अनुकंपा नियुक्ति - मृत कर्मचारी की स्थायी स्थिति - सेवा अभिलेख में कमी - सेवा पुस्तिका बनाए रखने का नियोक्ता का कर्तव्य - केवल पुष्टिकरण प्रविष्टि के अभाव में नियुक्ति अस्वीकृत - विवेक का प्रयोग न करना - सेवा की प्रकृति का पता लाभ और निरंतरता से लगाया जा सकता है - नियोक्ता द्वारा सटीक सेवा अभिलेख बनाए रखने में विफलता कर्मचारी के आश्रितों के लिए प्रतिकूल नहीं हो सकती - स्थायित्व के गुण जैसे निर्बाध लंबी सेवा और सेवा लाभ पर विचार किया जाना चाहिए - केवल अपूर्ण अभिलेख के आधार पर नियुक्ति से इनकार करना मनमाना है - नए सिरे से विचार के लिए प्रतिप्रेषित - याचिका आंशिक रूप से स्वीकृत। (प्रस्तर 6 से 11)

<u>अभिनिर्धारित:-</u>

सेवा पुस्तिका और सेवा अभिलेखों में प्रविष्टियाँ नियोक्ता द्वारा की जाती हैं। ये दस्तावेज़ पूर्णतः नियोक्ता के पास ही रहते हैं। कर्मचारियों के सेवा अभिलेखों का रखरखाव और अद्यतन करना नियोक्ता का कर्तव्य है। किसी कर्मचारी को दंडित करने या दोषी ठहराने से पहले सेवा पुस्तिका या अभिलेखों में विसंगतियों या कमियों की जाँच की जानी आवश्यक है। ऐसी जाँच के अभाव में, केवल सेवा अभिलेखों में उक्त कमियों को, बिना उचित जाँच के, याचिकाकर्ता के मृतक पिता की नियुक्ति की प्रकृति पर विवाद का आधार नहीं बनाया जा सकता। (प्रस्तर 7)

याचिकाकर्ता के पिता की नियुक्ति की प्रकृति निर्धारित करने के लिए स्थायी नियुक्ति की सभी प्रासंगिक विशेषताओं की भी जांच की जानी चाहिए। (प्रस्तर 8)

प्रत्यर्थी-प्राधिकारियों ने याचिकाकर्ता के दावे पर विचार करते समय विवाद से संबंधित उपरोक्त पहलुओं का मूल्यांकन करने की उपेक्षा की। उपरोक्त प्रासंगिक विचारों पर विचार न करने से दिनांक 17.05.2023 का आक्षेपित आदेश अमान्य हो जाता है। (प्रस्तर 9)

याचिका स्वीकृत। (ई-14)

(माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट द्वारा प्रदत्त)

I. प्रस्तावना:

1. उप गन्ना आयुक्त/अध्यक्ष, क्षेत्रीय गन्ना सेवा प्राधिकरण, बरेली क्षेत्र, बरेली द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 17.05.2023 द्वारा अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति प्रदान करने के लिए याचिकाकर्ता के दावे को अस्वीकार कर दिया गया है।

2. दिनांक 17.05.2023 का आक्षेपित आदेश याचिकाकर्ता के दावे को इस आधार पर अमान्य करता है कि विभाग के पास उपलब्ध सेवा अभिलेखों में उस तिथि का उल्लेख नहीं है, जिस तिथि को याचिकाकर्ता के दिवंगत पिता को स्थायी किया गया था। आक्षेपित आदेश में यह भी खुलासा किया गया है कि याचिकाकर्ता के पिता को पहली बार 09.03.1983 को सर्वर के रूप में नियुक्त किया गया था। इसके बाद उन्होंने चपरासी के रूप में काम किया लेकिन स्थायी कर्मचारी के रूप में कार्यभार ग्रहण करने की तारीख सेवा पुस्तिका या अभिलेख में नहीं बताई गई।

II. अधिवक्तागण द्वारा प्रस्तुत तर्क

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सिद्धार्थ खरे ने निम्नलिखित दलीलें पेश की हैं:

(i) याचिकाकर्ता के पिता प्रत्यर्थी निगम में स्थायी कर्मचारी थे।

अनुवादित

(ii) याचिकाकर्ता या उसके पिता प्रत्यर्थी निगम द्वारा रखे जा रहे सेवा अभिलेखों में विसंगतियों के लिए उत्तरदायी नहीं हैं।

(iii) याचिकाकर्ता के पिता को हमेशा एक स्थायी कर्मचारी माना गया। दिनांक 17.05.2023 का आक्षेपित आदेश केवल याचिकाकर्ता के अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के अधिकार को समाप्त करने के लिए पारित किया गया है।

4. प्रत्यर्थी संख्या 5 के विद्वान अधिवक्ता श्री उदयन नंदन और विद्वान अधिवक्ता श्री कौंतेय सिंह ने निम्नलिखित दलीलें प्रस्तुत की हैं:

(i) प्रत्यर्थी-निगम द्वारा रखी जा रही सेवा पुस्तिका में याचिकाकर्ता के पिता को स्थायी कर्मचारी के रूप में नहीं दर्शाया गया है।

(ii) याचिकाकर्ता अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति पाने का हकदार नहीं है।

III. चर्चा और निष्कर्ष:

5. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना गया।

6. इस वाद के तथ्यों से याचिकाकर्ता के पिता की स्थायी नियुक्ति के विभिन्न पहलू प्रथम दृष्टया उजागर होते हैं। याचिकाकर्ता के पिता लगभग 29 वर्षों तक बिना किसी रुकावट के सेवा में रहे। उनके पिता के नाम से एक सेवा पुस्तिका बनाई गई थी। उक्त सेवा पुस्तिका प्रत्यर्थीगण द्वारा केवल स्थायी कर्मचारियों के लिए ही रखी जाती है। याचिकाकर्ता के परिवार को सामान्य भविष्य निधि, ग्रेच्युटी और अवकाश नकदीकरण का भुगतान किया गया था। ये सभी सेवा लाभ केवल स्थायी कर्मचारियों को ही देय हैं।

7. सेवा पुस्तिका और सेवा अभिलेखों में प्रविष्टियाँ नियोक्ता द्वारा की जाती हैं। ये दस्तावेज़ पूर्णतः नियोक्ता के पास ही रहते हैं। कर्मचारियों के सेवा अभिलेखों का रखरखाव और उन्हें अद्यतन करना नियोक्ता का कर्तव्य है। किसी कर्मचारी को दंडित करने या दोषी ठहराने से पहले सेवा पुस्तिका या अभिलेखों में विसंगतियों या कमियों की जाँच की जानी चाहिए। ऐसी जाँच के अभाव में, केवल सेवा अभिलेखों में उक्त कमियों को, बिना उचित जाँच के, याचिकाकर्ता के मृतक पिता की नियुक्ति की प्रकृति पर विवाद का आधार नहीं बनाया जा सकता।

8. याचिकाकर्ता के पिता की नियुक्ति की प्रकृति निर्धारित करने के लिए स्थायी नियुक्ति की सभी प्रासंगिक विशेषताओं की भी जाँच की जानी चाहिए।

9. प्रत्यर्थी-प्राधिकारियों ने याचिकाकर्ता के दावे पर विचार करते समय उपरोक्त पहलुओं का मूल्यांकन करने की उपेक्षा की, जो विवाद से संबंधित हैं। उपरोक्त प्रासंगिक विचारों पर विचार न करने से दिनांक 17.05.2023 का आक्षेपित आदेश अमान्य हो जाता है।

असंशोधित

IV. निष्कर्ष और निर्देश:

10. दिनांक 17.05.2023 का आक्षेपित आदेश विधि सम्मत नहीं है। दिनांक 17.05.2023 का आक्षेपित आदेश अपास्त किये जाने योग्य है तथा अपास्त किया जाता है।

11. यह मामला निम्नलिखित निर्देशों के साथ प्रत्यर्थी-प्राधिकारियों को प्रेषित किया जाता है:

I). अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता के आवेदन पर प्रत्यर्थी-प्राधिकारियों द्वारा इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तिथि से तीन माह की अवधि के भीतर विधि के अनुसार निर्णय लिया जाए।
II). याचिकाकर्ता की नियुक्ति पर निर्णय लेते समय, उसके मृतक पिता की नियुक्ति की प्रकृति का निर्धारण ऊपर की गई टिप्पणियों के प्रकाश में किया जाए।
III). याचिकाकर्ता के पिता की मृत्यु के समय याचिकाकर्ता के परिवार की वित्तीय स्थिति, मृतक पर निर्भरता और विधि के अनुसार अन्य सभी प्रासंगिक तथ्य प्राधिकरण द्वारा निर्धारित किए जाने योग्य हैं।

12. रिट याचिका को ऊपर बताई गई सीमा तक स्वीकार किया जाता है।

(2025) 4 ILRA 408

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 09.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजित कुमार

रिट ए संख्या 15804/2024

श्रीमती पूजा यादव उर्फ पूजा यादव **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...प्रत्यर्थी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

ओम प्रकाश यादव, सुरेश चंद्र कुशवाहा

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता:

सी.एस.सी.

अनुवादित

सेवा विधि - अनुकंपा नियुक्ति - विवाहित पुत्री - 16 वर्ष का विलम्ब - उत्तर प्रदेश सेवाकाल में मृत सरकारी सेवकों के आश्रितों की भर्ती नियमावली, 1974 - नियम 2 (सी) (iii) निरस्त - 2021 में नियम 2 (सी) में संशोधन - विवाहित पुत्रियों के बहिष्कार को असंवैधानिक घोषित करने वाले पूर्व न्यायालय के निर्णय का प्रभाव - पूर्वव्यापी प्रयोज्यता का प्रश्न नहीं उठता - निर्भरता का आकलन नहीं किया गया - अनुमानों के आधार पर अस्वीकृति आदेश - जहां मुकदमेबाजी कारण स्पष्ट करती है, वहां विलम्ब क्षमा योग्य - संशोधन प्रकृति में घोषणात्मक माना गया - आक्षेपित आदेश रद्द - नए सिरे से विचार के लिए भेजा जाता है।

अभिनिर्धारितः-

जहां तक पहले बिंदु का संबंध है, मुझे लगता है कि याचिकाकर्ता ने अनुकंपा नियुक्ति की मांग करते हुए पहले ही आवेदन दे दिया था और उक्त आवेदन पर विचार नहीं किया गया तथा मामला लटका हुआ है और इसलिए वह रिट ए संख्या 52986/2016 के तहत रिट याचिका दायर करने के लिए मजबूर हुई। उस मामले में न्यायालय ने इस आधार पर परमादेश देने से इनकार कर दिया कि याचिकाकर्ता निर्भरता स्थापित करने में सक्षम नहीं थी और कारण यह बताया गया कि वह विवाहित पुत्री थी और विवाहित पुत्रियां सामान्यतः अपने माता-पिता के घर से बाहर चली जाती हैं, इसलिए उन्हें माता-पिता पर आर्थिक रूप से निर्भर नहीं माना जा सकता। न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि पत्नी का भरण-पोषण उसके पति पर निर्भर करता है। उक्त निर्णय को खंडपीठ के उस निर्णय द्वारा निरस्त कर दिया गया, जिसका उल्लेख मैंने ऊपर किया है और जिसमें याचिकाकर्ता को नए सिरे से आवेदन प्रस्तुत करने का निर्देश दिया गया था और प्राधिकारी को उस पर विचार करने का निर्देश दिया गया था। इस प्रकार यह मानने का कोई औचित्य नहीं बनता कि याचिकाकर्ता ने अनुकंपा नियुक्ति के दावे से खुद को वंचित करने के लिए वर्ष 2016 में देरी से आवेदन दायर किया था। याचिकाकर्ता ने पहले जो भी आवेदन दायर किया था, उसका निस्तारण नहीं हुआ और चूँकि खंडपीठ ने याचिकाकर्ता को 2016 में नए सिरे से आवेदन दायर करने का आदेश दिया था, इसलिए याचिकाकर्ता ने 2016 में ही उक्त आवेदन दायर किया और इसलिए प्रत्यर्थीगण द्वारा इस आधार पर उसका दावा खारिज करना उचित नहीं था कि वह केवल वर्ष 2016 में ही अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदन दायर कर सकती थी, जबकि परिवार के कमाने वाले सदस्य की मृत्यु वर्ष 2008 में हो गई थी। इसलिए, याचिकाकर्ता के आवेदन को देरी के आधार पर खारिज करने के बजाय, गुण-दोष के आधार पर विचार किया जाना चाहिए।

इस प्रकार, प्राधिकारी को आवेदक की स्थिति के तथ्यों की जाँच करनी थी और फिर यह निष्कर्ष निकालना था कि क्या याचिकाकर्ता अब अनुकंपा का पात्र नहीं है क्योंकि उसका परिवार जीवित है और इसलिए अब कोई वित्तीय संकट नहीं है। अतः, इस आधार पर आदेश को बरकरार नहीं रखा जा सकता और बिंदु संख्या 1 याचिकाकर्ता के पक्ष में निर्णीत किया जाता है।

जहां तक संशोधन के पूर्वव्यापी प्रभाव के संबंध में दूसरे बिंदु का संबंध है, मुझे लगता है कि इस न्यायालय की खंडपीठ ने श्रीमती विमला श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य के वाद में, जो रिट सी संख्या 6081/2013 और संबंधित वाद है, बहुत स्पष्ट शब्दों में अभिनिर्धारित किया था कि सेवाकाल में मृत्यु नियमावली, 1974 के

नियम 2(सी) में परिवार की अभिव्यक्ति के दायरे से विवाहित बेटियों को बाहर करना अवैध और असंवैधानिक था क्योंकि यह संविधान के अनुच्छेद 14-15 का उल्लंघन था और तदनुसार इसने नियमावली के नियम 2(सी) में विवाहित शब्द को रद्द कर (हटा) दिया...

उपरोक्त के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि न्यायालय ने 'अविवाहित' शब्द को निरस्त कर दिया है। किसी विशेष प्रावधान या विधि या वैधानिक नियम में किसी शब्द या अभिव्यक्ति को निरस्त करने और उसे असंवैधानिक ठहराने का अर्थ है कि ऐसे शब्द और अभिव्यक्ति विधि में कभी अस्तित्व में ही नहीं थे और इसलिए, यह सुरक्षित रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि संशोधन के लागू होने में पूर्वव्यापी प्रभाव डालने का कोई मुद्दा नहीं था, बल्कि न्यायालय ने इसे हमेशा से मौजूद माना था और वर्ष 2021 में लाए गए संशोधन द्वारा, न्यायालय ने इसे केवल वैधानिक रूप से मान्यता दी। खंडपीठ के उपरोक्त निर्णय के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम नेहा श्रीवास्तव के वाद में विशेष अनुमति याचिका (सी) संख्या 22646/2016 दायर की गई थी, जो 23 जुलाई, 2019 को खारिज कर दी गई। एक सामान्य विधिक निर्णय में किसी भी वैधानिक अधिनियम या नियम के समान ही बल होता है।

याचिका स्वीकृत। (ई-14)

<u>उद्धृत वादों की सूची:</u>

1. उधम सिंह नगर जिला सहकारी बैंक लिमिटेड एवं अन्य बनाम अंजुला सिंह अन्य, 2019 0 सुप्रीम (यूके) 153
2. सरकारी शिक्षा विभाग (प्राथमिक) एवं अन्य बनाम बीमेश उर्फ भीमप्पा, 2022 एआईआर (एससी) 402
3. मध्य प्रदेश एवं अन्य बनाम आशीष अवस्थी सिविल अपील संख्या 6903/2021 18 नवंबर, 2021 को निर्णीत।
4. श्रीमती विमला श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य, रिट सी संख्या 6081/2013

(माननीय न्यायमूर्ति अजित कुमार द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री एस.सी.कुशवाहा और विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री पंकज कुशवाह को सुना गया।

2. इस न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता, सचिव, माध्यमिक शिक्षा परिषद/प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा दिनांक 25 जुलाई, 2024 के निर्णय से व्यथित है, जिसमें याचिकाकर्ता के अनुकंपा नियुक्ति के आवेदन को केवल इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि मृतक कर्मचारी की मृत्यु के सोलह वर्ष बाद, अनुकंपा नियुक्ति की

अनुवादित

पेशकश नहीं की जा सकती क्योंकि कर्मचारी की मृत्यु पर उत्पन्न हुआ, आकस्मिक स्थिति और वित्तीय संकट समय बीतने के कारण अब मौजूद नहीं है।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत प्रस्तुतिकरण यह है कि याचिकाकर्ता अनुकंपा नियुक्ति के लिए स्थापित किए जाने के दावे के मामले में किसी भी देरी के लिए जिम्मेदार नहीं थी क्योंकि उसने मामले को आगे बढ़ाया और जब कोई प्रगति नहीं हुई, तो उसने रिट ए संख्या 59286/2016 के तहत एक रिट याचिका दायर करके इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया, जिसे 23 दिसंबर, 2016 के आदेश के द्वारा खारिज कर दिया गया, जिसमें कहा गया कि मृतक कर्मचारी पर आवेदक की निर्भरता स्थापित नहीं की जा सकती क्योंकि याचिकाकर्ता एक विवाहित महिला थी।

4. विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय के विरुद्ध विशेष अपील संख्या 61/2017 के अंतर्गत अपील प्रस्तुत किए जाने पर, न्यायालय ने निर्देश दिया कि यदि याचिकाकर्ता उप शिक्षा निदेशक, प्रयागराज, क्षेत्र प्रयागराज के समक्ष पुनः आवेदन प्रस्तुत करता है, तो लंबित आवेदन के निस्तारण हेतु प्राधिकारी मामले के सभी पहलुओं पर विचार करने के पश्चात तीन माह के भीतर विधि अनुसार आदेश पारित करेंगे। खण्डपीठ के दिनांक 14 फरवरी, 2023 के आदेश का प्रभावी अंश नीचे पुन: प्रस्तुत है:

"माननीय कार्यवाहक मुख्य न्यायमूर्ति प्रीतिंकर दिवाकर,

माननीय न्यायमूर्ति सौमित्र दयाल सिंह

श्री एस.सी. कुशवाहा, अपीलकर्ता के अधिवक्ता और राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता।

अपीलकर्ता, श्रीमती पूजा यादव, स्वर्गीय रंजीत यादव की विवाहित पुत्री हैं, जिनका 01.01.2008 को सेवाकाल के दौरान निधन हो गया था। दलीलों से ऐसा प्रतीत होता है कि जब अपीलकर्ता को अनुकंपा नियुक्ति नहीं दी गई, तो उसने सक्षम प्राधिकारी को प्रत्यावेदन दिया, लेकिन कोई कार्रवाई नहीं हुई और अंततः उसे इस न्यायालय में रिट याचिका दायर करने के लिए बाध्य होना पड़ा। रिट कोर्ट में राज्य सरकार की ओर से कोई प्रतिवाद दायर नहीं किया गया। हालाँकि, दिनांक 23.12.2016 के आक्षेपित निर्णय के तहत, रिट याचिका इस आधार पर खारिज कर दी गई कि अपीलकर्ता एक विवाहित पुत्री है और सरकार द्वारा अपनी अधिसूचना में निर्धारित किसी भी श्रेणी में नहीं आती है।

इस अपील में विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश को इस आधार पर चुनौती दी गई है कि विवाहित पुत्रियां भी अनुकंपा नियुक्ति की हकदार हैं।

राज्य के अधिवक्ता ने स्पष्ट रूप से कहा कि आज तक अपीलकर्ता के वाद पर गुण-दोष के आधार पर विचार नहीं किया गया है और यदि अपीलकर्ता आज से तीन सप्ताह के भीतर उचित आवेदन दायर करती है, तो इस पर विचार किया जाएगा।

राज्य के अधिवक्ता द्वारा दिए गए निष्पक्ष बयान के मद्देनजर, वाद के गुण-दोष पर आगे विचार किए बिना, अपील का निस्तारण किया जाता है और अपीलकर्ता को उप शिक्षा निदेशक, प्रयागराज क्षेत्र, प्रयागराज के समक्ष नया आवेदन दायर करने का निर्देश दिया जाता है और उक्त प्राधिकारी वाद के सभी पहलुओं पर यथासंभव

शीघ्रता से, अधिमानतः तीन माह की अवधि के भीतर विचार करने के बाद विधि के अनुसार उचित आदेश पारित करें।

यह स्पष्ट किया जाता है कि इस न्यायालय ने वाद के गुण-दोष पर कोई टिप्पणी नहीं की है तथा सक्षम प्राधिकारी विधि के अनुसार आदेश पारित करने के लिए स्वतंत्र है।"

5. उक्त आदेश में संशोधन किया गया और याचिकाकर्ता को दो सप्ताह के भीतर नए सिरे से अनुपालन करने की अनुमति दी गई। इस न्यायालय का दिनांक 13.3.2024 का आदेश नीचे पुन: प्रस्तुत है:

माननीय न्यायमूर्ति सौमित्र दयाल सिंह

माननीय न्यायमूर्ति सुरेन्द्र सिंह-I

संदर्भ: सिविल प्रकीर्ण आवेदन (सुधार) संख्या 7 वर्ष 2023

1. उप शिक्षा निदेशक (इंटरमीडिएट), प्रयागराज मंडल, प्रयागराज द्वारा जारी दिनांक 8.8.2023 के पत्र सहित सुधार आवेदन के समर्थन में शपथपत्र में बताए गए तथ्यों के मद्देनजर, दिनांक 14.2.2023 के आदेश के पांचवें प्रस्तर की तीसरी पंक्ति में दिखाई देने वाले प्राधिकारी का विवरण - "उप शिक्षा निदेशक, प्रयागराज क्षेत्र, प्रयागराज" को हटा दिया गया है और इसे सचिव, हाई स्कूल और इंटरमीडिएट बोर्ड, उत्तर प्रदेश, प्रयागराज के साथ बदल दिया गया है।

2. सुधार आवेदन स्वीकार किया जाता है।

3. आज किए गए सुधार के मद्देनजर, याचिकाकर्ता आज से दो सप्ताह की अवधि के भीतर दिनांक 14.2.2023 के आदेश का नए सिरे से अनुपालन कर सकता है। याचिकाकर्ता द्वारा किए गए ऐसे अनुपालन के अधीन, उक्त प्राधिकारी द्वारा दिनांक 14.2.2023 के आदेश का अनुपालन किया जा सकता है।

6. अब प्रत्यर्थीगण ने यह आदेश पारित किया कि मृतक कर्मचारी की मृत्यु की तिथि से 16 वर्ष बाद अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदन स्वीकृत नहीं किया जा सकता।

7. विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने इस आधार पर आदेश का बचाव करने का प्रयास किया कि याचिकाकर्ता की आश्रितता का निर्धारण इस तथ्य के आलोक में किया जाना था कि कर्मचारी की मृत्यु की तिथि पर वह पहले से ही विवाहित थी और यदि विवाहित पुत्री कर्मचारी की मृत्यु की तिथि पर अविवाहित थी, तो दावे पर परिवार के अन्य आश्रितों के समान विचार नहीं किया जा सकता। विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि सेवाकाल में मृत्यु नियमावली, 1974 में वर्ष 2021 में संशोधन किया गया है, इसलिए यह पूर्वव्यापी रूप से लागू नहीं होगा और इसलिए याचिकाकर्ता का दावा उचित रूप से अस्वीकार कर दिया गया।

8. उपरोक्त प्रस्तुतिकरण के समर्थन में, विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने **उधम सिंह नगर जिला सहकारी बैंक लिमिटेड और अन्य बनाम अंजुला सिंह अन्य, 2019 0 सुप्रीम (यूके) 153** के वाद में निर्णय पर भरोसा किया है और निर्णय के प्रस्तर 65 पर भरोसा किया है, जिसे यहां पुन: प्रस्तुत किया गया है:

65. कोई भी व्यक्ति, जो मृतक सरकारी कर्मचारी के "परिवार" का हिस्सा है, उक्त परिभाषा में शामिल होगा। परिणामस्वरूप, एक "विवाहित पुत्री" भी 1974 के नियमावली के नियम 2(ग) और 1975 के नियमावली के विनियम 104 के नीचे दिए गए नोट, दोनों में "परिवार" की परिभाषा के अंतर्गत आएगी। यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि 1974 के नियमावली के नियम 2(ग) के खंड (i) से (iii) और 1975 के विनियम के विनियम 104 के नीचे दिए गए नोट में मृतक सरकारी कर्मचारी के "परिवार" के सदस्य, जिनमें एक "विवाहित पुत्री" शामिल होगी, अनुकंपा नियुक्ति के लिए केवल तभी विचार किए जाने के हकदार होंगे यदि वे सरकारी कर्मचारी की मृत्यु के समय उस पर आश्रित थे और 1974 के नियमावली और 1975 के विनियम में निर्धारित अन्य सभी शर्तों को पूरा करते हों।

9. विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने **सचिव, सरकारी शिक्षा विभाग (प्राथमिक) एवं अन्य बनाम बीमेश @ भीमप्पा, 2022 एआईआर (एससी) 402** के वाद में दिए गए निर्णय पर भरोसा किया है और निर्णय के प्रस्तर 19 पर भरोसा किया है, जिसे नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

19. मतभेद का महत्वपूर्ण पहलू यह है कि यह दो तिथियों के इर्द-गिर्द घूमता है, अर्थात् (i) कर्मचारी की मृत्यु की तिथि; और (ii) आश्रित के आवेदन पर विचार की तिथि। इन दोनों तिथियों में से केवल एक, अर्थात् मृत्यु की तिथि ही एक स्थिर कारक है जो नहीं बदलती। अगली तिथि अर्थात दावे पर विचार की तिथि, कई कारकों पर निर्भर करती है, जैसे आवेदन दाखिल करने की तिथि, दावेदार के वयस्क होने की तिथि तथा वह तिथि जब फाइल सक्षम प्राधिकारी के समक्ष प्रस्तुत की जाती है। वैधानिक व्याख्या का कोई सिद्धांत नहीं है जो किसी नियम की प्रयोज्यता पर निर्णय को किसी अनिश्चित या परिवर्तनशील कारक के आधार पर लेने की अनुमति देता हो। उदाहरण के लिए, एक काल्पनिक मामला लेते हैं जहाँ 1 जनवरी, 2020 को दो सरकारी कर्मचारियों की सेवा के दौरान मृत्यु हो जाती है। आइए हम यह मान लें कि इन 2 दिवंगत सरकारी कर्मचारियों के आश्रितों ने 2 अलग-अलग तारीखों 29.05.2020 और 02.06.2020 को नियुक्ति के लिए आवेदन किया और एक संशोधित योजना 01 जून, 2020 को लागू हुई। यदि दावे पर विचार करने की तारीख को यह निर्धारित करने के लिए मानदंड माना जाता है कि संशोधित योजना लागू होती है या नहीं, तो इससे दो अलग-अलग परिणाम सामने आएंगे, एक उस व्यक्ति के संबंध में जिसने 01 जून, 2020 से पहले आवेदन किया था और दूसरा उस व्यक्ति के संबंध में जिसने 01 जून, 2020 के बाद आवेदन किया था। दूसरे शब्दों में, यदि दो कर्मचारियों की मृत्यु एक ही तिथि को होती है और उन कर्मचारियों के आश्रित दो अलग-अलग तिथियों पर आवेदन करते हैं, एक संशोधित योजना के लागू होने से पहले और दूसरा उसके बाद, तो उनके साथ अलग व्यवहार किया जाएगा, यदि आवेदन की तिथि और उस पर विचार की तिथि को निर्णायक कारक माना जाए। व्याख्या का ऐसा नियम जो अलग-अलग व्यक्तियों के कार्यों और न करने के आधार पर अलग-अलग परिणाम देता हो, अकल्पनीय है। यही कारण है कि ऊपर सूचीबद्ध मामलों में, कुछ बैंकों के प्रबंधन ने संशोधित योजना में ही एक नियम लागू कर दिया है, जिसके तहत सभी लंबित आवेदनों पर नई/संशोधित योजना के तहत निर्णय लेने का प्रावधान है। इसलिए, हमारा यह सुविचारित मत है कि संशोधित योजना की प्रयोज्यता के संबंध में व्याख्या केवल निश्चित

एवं नियत मानदण्ड जैसे कि मृत्यु की तिथि पर और, न कि किसी अनिश्चित एवं परिवर्तनशील कारक पर निर्भर होनी चाहिए।

10. विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने **मध्य प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम आशीष अवस्थी सिविल अपील संख्या 6903/2021,** 18 नवंबर, 2021 को निर्णीत के वाद के निर्मय पर भी भरोसा किया है। उन्होंने निर्णय के प्रस्तर 4 पर भरोसा किया है, जो निम्नानुसार है:

4. मृतक कर्मचारी की मृत्यु 08.10.2015 को हुई थी। मृत्यु के समय वह वर्कचार्ज कर्मचारी के रूप में कार्यरत था, जिसे आकस्मिकता निधि से वेतन दिया जाता था। मृतक कर्मचारी की मृत्यु के समय प्रचलित नीति/परिपत्र, अर्थात् नीति/परिपत्र संख्या सी-3-12/2013/1-3 दिनांक 29.09.2014 के अनुसार, वर्कचार्ज पर कार्यरत कर्मचारी की मृत्यु होने पर, उसके आश्रित/उत्तराधिकारी अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के हकदार नहीं थे और उन्हें 2 लाख रुपये की क्षतिपूर्ति राशि प्राप्त करने का अधिकार था। तत्पश्चात, 31.08.2016 के परिपत्र द्वारा नीति में संशोधन किया गया, जिसके अंतर्गत कार्यभारित कर्मचारी की मृत्यु होने पर भी, उसके उत्तराधिकारी/आश्रित अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के हकदार होंगे। 31.08.2016 के बाद के परिपत्र/नीति पर भरोसा करते हुए, उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने अपीलकर्ताओं को अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए प्रत्यर्थी के वाद पर विचार करने का निर्देश दिया है। अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए इस न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि के स्थापित प्रावधान के अनुसार, केवल मृतक कर्मचारी की मृत्यु के समय प्रचलित नीति पर ही, न कि उसके बाद की नीति पर विचार किया जाना आवश्यक है।

11. संबंधित पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने और अभिलेखों का अवलोकन करने के पश्चात, संबंधित पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा मेरे समक्ष प्रस्तुत किए गए विधिक सिद्धांतों को समझने के लिए, यह आवश्यक है कि पहले आक्षेपित आदेश में दिए गए कारणों पर विचार किया जाए: आक्षेपित आदेश का प्रभावी भाग, जिसमें पांच कारण बताए गए हैं, नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"उक्त वर्णित स्थिति के आलोक में माननीय उच्च न्यायालय, इलाहाबाद के विशेष अपील संख्या-61/2017 में पारित निर्णय दिनांक 14.02.2023 यथा संशोधित 13.02.2024 के अनुपालन में प्रकरण का अभिलेखीय परीक्षण किया गया जिसमें निम्नवत स्थिति पायी गयीः-

1. याची श्रीमती पूजा यादव के पिता स्व० रणजीत सिंह माध्यमिक शिक्षा परिषद्, उत्तर प्रदेश के मुख्य कार्यालय, प्रयागराज में वरिष्ठ सहायक के पद पर कार्यरत थे जिनका सेवाकाल में आकस्मिक निधन दिनांक 01.01.2008 को हुआ था।
2. स्व० रणजीत सिंह, वरिष्ठ सहायक के निधन के उपरान्त उनके आश्रितों द्वारा उत्तर प्रदेश शासन की अधिसूचना संख्याः 6/12/1973 नियुक्ति 4 दिनांक 07.10.1974 द्वारा प्रख्यापित "उत्तर प्रदेश सेवाकाल में मृत

सरकारी सेवकों के आश्रितों की भर्ती नियमावली-1974" यथा अद्यतन संशोधित के अधीन अनुकम्पा नियुक्ति प्रदान किये जाने के आशय से समयान्तर्गत प्रार्थना पत्र प्रस्तुत नही किया गया।

3. वर्ष 2008 में विवाहित पुत्रियों को मृतक आश्रित के अन्तर्गत अनुकम्पा नियुक्ति प्रदान किये जाने का कोई प्राविधान संगत नियमावलियों में नही था, अपितु उत्तर प्रदेश शासन द्वारा निर्गत अधिसूचना संख्याः-6/12/73-का-2/2021 टी० सी० IV दिनांक 12 नवम्बर, 2021 में विवाहित पुत्रियों को मृतक सरकारी कर्मचारी के कुटुम्ब के अन्तर्गत माना गया है। उक्त नियमावली निर्गमन की तिथि 12 नवम्बर, 2021 से प्रभारी है न कि पूर्ववर्ती तिथि से प्रभावी है।

4. उत्तर प्रदेश शासन की अधिसूचना संख्याः-6/12/1973/ नियुक्ति-4 दिनांक 07.10.1974 द्वारा प्रख्यापित "उत्तर प्रदेश सेवाकाल में मृत सरकारी सेवकों के आश्रितों की भर्ती नियमावली 1974" मे मृत कर्मचारी के परिवार को तात्कालिक राहत देने के आशय से अनुकम्पा नियुक्ति दिये जाने के प्राविधान है।

5. याची श्रीमती पूजा यादव द्वारा अपने पिता स्व० रणजीत सिंह के दिनांक 01.01.2008 को निधन होने के लगभग 16 वर्षों के उपरान्त अनुकम्पा नियुक्ति प्रदान किये जाने हेतु प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया गया है।

सूच्य है कि मृतक आश्रित सेवायोजन की व्यवस्था मृतक कार्मिक की मृत्यु के बाद, परिवार पर अचानक उत्पन्न आर्थिक संकट को दूर करने हेतु की गयी है, ताकि वे अपनी बुनियादी आवश्यकता की पूर्ति कर सके तथा सामाजिक सम्मान व सुरक्षा बनी रही। प्रस्तुत प्रकरण में 16 वर्ष बाद दिये गये आवेदन केवल रोजगार पाने के उद्देश्य से दिया गया प्रतीत होता है जो औचित्यपूर्ण नहीं है।

12. आक्षेपित आदेश के उपरोक्त उद्धृत भाग को पढ़ने से, मैं पाता हूं कि आवेदन को अस्वीकार करने का पहला कारण यह है कि विवाहित पुत्री को परिवार की परिभाषा में शामिल करने का प्रावधान वर्ष 2008 के आदेश में उपलब्ध नहीं था और चूंकि इसे 12 नवंबर, 2021 को संशोधन के माध्यम से लाया गया है, इसलिए इसे पूर्वव्यापी प्रभाव नहीं दिया जा सकता है।

13. दूसरा कारण यह बताया गया कि मृतक के आश्रितों को नियुक्ति देने के लिए सेवाकाल में मृत्यु नियमावली बनाए गए हैं, ताकि परिवार को तुरंत सहायता प्रदान की जा सके, जो कि याचिकाकर्ता के मामले में नहीं था।

14. तीसरा कारण यह बताया गया कि याचिकाकर्ता ने सोलह वर्ष बाद अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदन दिया था, इसलिए आवेदन अस्वीकार किया जाना उचित है।

15. अब इस न्यायालय के विचारार्थ दो बिंदु उठते हैं:

(ए). क्या अनुकंपा नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता का आवेदन 1974 के नियमावली के तहत समय सीमा समाप्त होने के कारण खारिज किए जाने योग्य था और क्या अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदन में देरी के लिए याचिकाकर्ता स्वयं दोषी है; और

(बी). क्या 1974 के नियमावली के तहत 12 नवंबर, 2021 की अधिसूचना के तहत परिवार की परिभाषा में किए गए संशोधन ऐसे आवेदकों के दावे को अमान्य कर देंगे, जिन्होंने विधि के भावी संचालन के सिद्धांत पर राज्य सरकार द्वारा जारी उक्त अधिसूचना के लिए पहले ही आवेदन प्रार्थना प्रस्तुत कर दी थी।

16. जहां तक पहले बिंदु का संबंध है, मुझे लगता है कि याचिकाकर्ता ने अनुकंपा नियुक्ति की मांग करते हुए पहले ही आवेदन दे दिया था और उक्त आवेदन पर विचार नहीं किया गया तथा मामला लटका हुआ है और इसलिए वह रिट ए संख्या 52986/2016 के तहत रिट याचिका दायर करने के लिए मजबूर हुई। उस मामले में न्यायालय ने इस आधार पर परमादेश रिट देने से इनकार कर दिया कि याचिकाकर्ता निर्भरता साबित नहीं कर पाई और कारण यह बताया गया कि वह विवाहित पुत्री है और विवाहित पुत्रियाँ आमतौर पर अपने माता-पिता के घर से बाहर चली जाती हैं, इसलिए उन्हें आर्थिक रूप से माता-पिता पर निर्भर नहीं माना जा सकता। न्यायालय ने कहा कि पत्नी का भरण-पोषण उसके पति पर निर्भर करता है। उक्त निर्णय खंडपीठ के उस निर्णय द्वारा निरस्त कर दिया गया, जिसका मैंने ऊपर उल्लेख किया है और जिसमें याचिकाकर्ता को नए सिरे से आवेदन प्रस्तुत करने का निर्देश दिया गया था और प्राधिकारी को उस पर विचार करने का निर्देश दिया गया था। अतः यह मानने का कोई औचित्य नहीं है कि याचिकाकर्ता ने अनुकंपा नियुक्ति के दावे से वंचित करने के लिए वर्ष 2016 में विलम्ब से आवेदन प्रस्तुत किया था। याचिकाकर्ता ने पहले जो भी आवेदन दिया था, उसका निपटारा नहीं हुआ और चूंकि खंडपीठ ने याचिकाकर्ता को 2016 में नए सिरे से आवेदन देने का आदेश दिया था, इसलिए याचिकाकर्ता ने 2016 में उक्त आवेदन दिया और इसलिए प्रत्यर्थीगण द्वारा उसके दावे को इस आधार पर खारिज करना उचित नहीं था कि वह केवल वर्ष 2016 में ही अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदन दे सकती थी, जबकि परिवार के कमाने वाले सदस्य की वर्ष 2008 में मृत्यु हो गई थी। इसलिए, याचिकाकर्ता के आवेदन को देरी के बिंदु पर खारिज करने के बजाय, गुण-दोष के आधार पर विचार किया जाना चाहिए।

17. जहाँ तक निर्भरता का सवाल है, मुझे लगता है कि आक्षेपित आदेश में इस बात पर कोई चर्चा नहीं है कि वह अधिकारी किस वजह से इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि जीवनयापन के लिए वित्तीय आवश्यकता अब मौजूद नहीं है। यह निष्कर्ष कि सोलह साल बाद आवेदन करने का मतलब यह होगा कि परिवार को अनुकंपा नियुक्ति की कोई ज़रूरत नहीं है, पूरी तरह से अनुमानों और अटकलों पर आधारित है। यह प्रश्न कि क्या नियुक्ति का प्रस्ताव 16 वर्षों के बाद दिया गया था क्योंकि आवेदन नियमावली 1974 के अनुसार प्रस्तुत नहीं किया गया था, इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा जारी निर्देशों के आलोक में, जिसने प्राधिकारी के लिए गुण-दोष के आधार पर आदेश पारित करना बाध्यकारी बना दिया था, स्वयं किसी दावे को अस्वीकार करने का आधार नहीं हो सकता। इस प्रकार, प्राधिकारी को आवेदक की स्थिति के तथ्यों की जाँच करनी थी और फिर इस निष्कर्ष पर पहुँचना था कि क्या याचिकाकर्ता अब अनुकंपा का पात्र नहीं है क्योंकि परिवार जीवित है और इसलिए अब कोई वित्तीय संकट नहीं है। अतः, इस आधार पर आदेश को बरकरार नहीं रखा जा सकता और बिंदु संख्या 1 याचिकाकर्ता के पक्ष में निर्णीत माना जाता है।

18. जहाँ तक संशोधन के पूर्वव्यापी प्रभाव से संबंधित दूसरे बिंदु का संबंध है, मैं पाता हूँ कि इस न्यायालय की खंडपीठ ने श्रीमती विमला श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, रिट सी संख्या 6081/2013 और उससे जुड़े वाद में, बहुत ही स्पष्ट शब्दों में यह निर्णय दिया था कि सेवाकाल में मृत्यु नियमावली, 1974 के नियम 2(ग) में विवाहित पुत्रियों को परिवार की परिभाषा से बाहर रखना संविधान के अनुच्छेद 14-15 का उल्लंघन होने के कारण अवैध और असंवैधानिक था और तदनुसार, नियम 2(ग) में विवाहित शब्द को निरस्त कर दिया। खंडपीठ के आदेश का प्रासंगिक अंश नीचे पुन: प्रस्तुत है:

"निष्कर्षत:, हम मानते हैं कि सेवाकाल में मृत्यु नियमावली के नियम (सी) में 'परिवार' अभिव्यक्ति के दायरे से विवाहित बेटियों को बाहर करना अवैध और असंवैधानिक है, जो संविधान के अनुच्छेद 14 और 15 का उल्लंघन है।

तदनुसार, हम सेवाकाल में मृत्यु नियमावली के नियम 2 (सी) (iii) में 'अविवाहित' शब्द को रद्द करते हैं।

19. उपरोक्त के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि न्यायालय ने 'अविवाहित' शब्द को निरस्त कर दिया(हटा दिया) है। किसी विशेष प्रावधान या विधि या वैधानिक नियम में किसी शब्द या अभिव्यक्ति को निरस्त करने और उसे असंवैधानिक ठहराने का अर्थ है कि ऐसे शब्द और अभिव्यक्ति विधि में कभी अस्तित्व में ही नहीं थे और इसलिए, यह सुरक्षित रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि संशोधन के लागू होने में पूर्वव्यापी प्रभाव डालने का कोई मुद्दा नहीं था, बल्कि न्यायालय ने इसे हमेशा से मौजूद माना था और वर्ष 2021 में लाए गए संशोधन द्वारा, राज्य ने इसे केवल वैधानिक रूप से मान्यता दी। डिवीजन बेंच के उपरोक्त निर्णय के खिलाफ सुप्रीम कोर्ट के समक्ष उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम नेहा श्रीवास्तव के मामले में विशेष अनुमति याचिका दायर की गई थी, जो विशेष अनुमति अपील (सी) संख्या 22646/2016 थी, जो 23 जुलाई, 2019 को खारिज हो गई। एक सामान्य विधि निर्णय में किसी भी वैधानिक अधिनियम या नियम के समान बल होता है।

20. उपरोक्त के मद्देनजर, आक्षेपित आदेश विधि में पोषणीय नहीं रह सकता। इस प्रकार, नियम के लागू होने के मामले में विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णय तथ्यों के आधार पर भिन्न माना जाता है और इसलिए लागू नहीं होता। न्यायालय के एक आदेश द्वारा ही उस प्रावधान को असंवैधानिक माना गया है और इसलिए यह ऐसा मामला नहीं है जिसमें राज्य के विधायिका द्वारा स्वतः ही कोई नया विधिक अधिकार लागू करने हेतु वैधानिक संशोधन लाया गया हो। इस प्रकार, दूसरा बिंदु भी याचिकाकर्ता के पक्ष में उत्तरित होता है।

21. इस प्रकार, उत्तर प्रदेश सरकार के सचिव द्वारा दिनांक 25 जुलाई, 2024 को पारित आक्षेपित आदेश को अपोषणीय माना जाता है और तदनुसार निरस्त किया जाता है। मामला नए सिरे से निर्णय लेने के लिए प्राधिकरण को भेजा जाता है। हालाँकि, इस बार, जब मामला नए सिरे से निर्णय लेने के लिए प्राधिकरण को भेजा जाता है, तो प्राधिकरण याचिकाकर्ता के दावे पर नए सिरे से विचार करेगा और मृतक कर्मचारी पर आश्रित होने के नाते याचिकाकर्ता की स्थिति का विधिवत सत्यापन करने के बाद ही निर्णय लेगा। प्राधिकरण याचिकाकर्ता से उसके पति की वित्तीय स्थिति के बारे में अपेक्षित कागजात तथा अन्य दस्तावेज भी दाखिल करवाएगा, यदि

याचिकाकर्ता के पति के पास आय के स्रोत हैं, तो उसकी भी जांच की जाएगी। किसी भी निष्कर्ष पर पहुँचने से पहले, प्राधिकारी को यह निर्णीत करना होगा कि क्या परिवार में आज भी आर्थिक संकट जारी है ताकि उसे अनुकंपा नियुक्ति दी जा सके। यह स्पष्ट किया जाता है कि इस बार याचिकाकर्ता का आवेदन इस आधार पर खारिज नहीं किया जाएगा कि यह देरी से दायर किया गया था। नियमावली के अंतर्गत निर्धारित 5 वर्ष की अवधि का प्रतिबंध, विशेष तथ्यों और परिस्थितियों के कारण, इस वाद में लागू नहीं होगा। इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत किए जाने की तिथि से तीन माह की अवधि के भीतर प्राधिकारी द्वारा उचित निर्णय लिया जाएगा।

22. उपर्युक्त टिप्पणियों और निर्देशों के साथ, इस याचिका को वाद व्यय के संबंध में कोई आदेश दिए बिना स्वीकार किया जाता है।

(2025) 4 ILRA 416

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 07.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया

रिट-बी संख्या 285/2025

कैलाश **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उप निदेशक, चकबंदी, सीतापुर एवं अन्य **...प्रत्यर्थीगण**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: राम आसरे वर्मा

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता: सी.एस.सी.

उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम, 1953, धारा 48 - पुनरीक्षण और संदर्भ - चुनौती के तहत उप निदेशक चकबंदी द्वारा पारित रिमांड का आदेश - धारा 48 का दायरा - अधिनियम, 1953 की धारा 48 चकबंदी निदेशक को किसी भी आदेश की शुद्धता / वैधानिकता / औचित्य की जांच करने के लिए पर्याप्त शक्ति प्रदान करती है, जिसमें किसी भी अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा दर्ज किए गए किसी भी निष्कर्ष, चाहे तथ्य या विधि का हो, की जांच करने की शक्ति, साथ ही किसी भी मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य को फिर से समझने की शक्ति शामिल है। अभिनिर्धारित: वाद को चकबंदी अधिकारी के पास वापस भेजने के प्रयोजनार्थ, डी.डी.सी. ने अपने समक्ष प्रस्तुत आदेश/आदेशों में कुछ त्रुटियाँ इंगित कीं, जिन पर, उच्च न्यायालय के विचार में, डी.डी.सी. को

अनधिकृत

अधिनियम, 1953 की धारा 48 के अंतर्गत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए स्वयं विचार करना चाहिए था, क्योंकि समस्त सामग्री उनके समक्ष उपलब्ध थी। (प्रस्तर 34) (ई-5)
स्वीकृत

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री राम आसरे वर्मा, राज्य/विपक्षी संख्या 1 के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री हेमंत कुमार पांडे को सुना गया तथा अभिलेख का अवलोकन किया गया।

2. विपक्षी संख्या 2 को नोटिस जारी करने से विपक्षी संख्या 2 को इस आदेश से व्यथित होने पर, इस आदेश को वापस लेने हेतु उचित आवेदन दायर करने की स्वतंत्रता से वंचित किया जाता है। ऐसा निम्नलिखित कारणों से किया जा रहा है:-

(ए) वाद के गुण-दोष पर विचार किए बिना, उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम, 1953 (संक्षेप में "1953 का अधिनियम") की धारा 48 के अंतर्गत उप निदेशक चकबंदी (संक्षेप में "डी.डी.सी.") की शक्ति से संबंधित स्थापित सिद्धांत के आलोक में, यह न्यायालय वाद को गुण-दोष के आधार पर निर्णय करने के लिए डी.डी.सी. को वापस भेज रहा है;

(बी) नोटिस जारी करने से संबंधित कार्यवाही में अनावश्यक देरी होगी; और

(सी) 1953 के अधिनियम की धारा 48 के तहत डी.डी.सी. की शक्ति से संबंधित स्थापित सिद्धांत को वर्तमान विपक्षीगण द्वारा खारिज नहीं किया जा सका।

3. वर्तमान याचिका में निम्नलिखित मुख्य अनुतोष की मांग की गई है:-
"(i) प्रत्यर्थी संख्या-1 द्वारा पारित दिनांक 14.02.2025 के आदेश, जो पुनरीक्षण संख्या 308/2023, कंप्यूटर संख्या 20235410640000308, धारा 48(1), उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम में "निर्मला देवी बनाम कैलाश" शीर्षक वाद में पारित किया गया है तथा जो इस रिट याचिका के अनुलग्नक-संख्या-1 के रूप में संलग्न है, को निरस्त किए जाने हेतु उत्प्रेषण की प्रकृति का रिट, आदेश या निर्देश जारी किया जाए।
(ii) परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें, जिससे विपक्षीगण को यह सलाह दी जा सके कि वे संबंधित भूमि पर याचिकाकर्ता के शांतिपूर्ण कब्जे को बाधित न करें।"

4. इस याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने अधिनियम, 1953 की धारा 48(1) के अंतर्गत पुनरीक्षण संख्या 308/2023 (निर्मला देवी बनाम कैलाश) में पारित दिनांक 14.02.2025 के आदेश को चुनौती दी है, जिसके द्वारा विपक्षी संख्या 1/उप निदेशक चकबंदी/अपर जिला मजिस्ट्रेट (वित्त/राजस्व), सीतापुर ने वाद के पक्षकारों को सुनवाई का अवसर प्रदान करने के पश्चात मामले को पुनः निर्णीत करने हेतु संबंधित चकबंदी अधिकारी को वापस भेज दिया था। दिनांक 14.02.2025 के आदेश का प्रासंगिक अंश त्वरित संदर्भ हेतु नीचे उद्धृत है:-

मैंने उभयपक्षों के विद्वान अधिवक्ता की बहस सुनी तथा निगरानी एवं अधीनस्थ न्यायालय की पत्रावलियों का अवलोकन किया, जिससे विदित होता है कि ग्राम हरनी परगना व तहसील व जिला सीतापुर के आधार वर्ष खतौनी खाता संख्या 69 पर वंशगोपाल, श्रीपाल, शिवराम, रामरतन पुत्रगण रघुबर दयाल के नाम अंकित है। वंशगोपाल पुत्र रघुबर मृतक हो गये, विवाद मृतक वंशगोपाल के वारिसों को लेकर है। निगरानीकर्ता श्रीमती निर्मला देवी पत्नी स्व० रामरतन द्वारा अपने पक्ष में निष्पादित अपंजीकृत वसीयत दिनांकित 26.12.1998 के आधार पर मृतक वंशगोपाल के स्थान पर नाम दर्ज करने की मांग की गयी है तथा प्रत्यर्थी कैलाश पुत्र श्रीपाल द्वारा अपने पक्ष में निष्पादित पंजीकृत वसीयत दिनांकित 14.08.1997 के आधार पर मृतक वंशगोपाल के स्थान पर नाम दर्ज करने की मांग की गयी है। चकबन्दी अधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 13.01.2023 द्वारा मृतक वंशगोपाल के स्थान पर पंजीकृत वसीयत दिनांक 14.08.1997 के आधार पर विवादित भूमि पर कैलाश पुत्र श्रीपाल का नाम दर्ज करते हुए आपत्ति निर्मला देवी निरस्त की गयी है, जिससे क्षुब्ध होकर निर्मला देवी द्वारा अपीलीय न्यायालय पर अपील योजित की गयी, जो अपीलीय न्यायालय द्वारा दिनांक 25.08.2023 को अपील निरस्त कर दी गयी। अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 25.08.2023 से क्षुब्ध होकर निगरानीकर्ता निर्मला देवी द्वारा उक्त निगरानी योजित करके अपने स्वत्व के आधार पर मांग की गयी है। इस प्रकार इस प्रकरण में दो वसीयतें हैं, उनके आधार पर निगरानीकर्ता एवं प्रत्यर्थी द्वारा वाद प्रतिवाद किया जा रहा है। उल्लेखनीय है कि विवादित भूमि खाता संख्या 69 पर दर्ज खातेदार वंशगोपाल, श्रीपाल, शिवराम, रामरतन आपस में सगे भाई है तथा निगरानीकर्ता श्रीमती निर्मला देवी, रामरतन की पत्नी है और प्रत्यर्थी कैलाश श्रीपाल पुत्र रघुवर दयाल का पुत्र है। प्रत्यर्थी कैलाश पुत्र श्रीपाल के पक्ष में वंशगोपाल पुत्र रघुवर दयाल द्वारा निष्पादित पंजीकृत वसीयत दिनांक 14.08.1997 के हासिया गवाह छत्रपाल सिंह पुत्र बल्देव सिंह तथा दूसरे हासिया गवाह प्रत्यर्थी कैलाश के सगे चाचा शिवराम पुत्र रघुवर दयाल निवासी हरनी है, परन्तु अवर न्यायालय में दूसरे गवाह शिवराम द्वारा कैलाश के पक्ष में निष्पादित वसीयत के सम्बन्ध में पक्षद्रोही हो जाने के कारण प्रत्यर्थी कैलाश द्वारा पंजीकृत वसीयत 14.08.1997 को गवाह छत्रपाल सिंह के बयान द्वारा प्रमाणित कराया है और वसीयत का अभिप्रमाणन होने पर अवर न्यायालय द्वारा आदेश पारित किया गया है।

जहाँ तक निगरानीकर्ता निर्मला देवी द्वारा प्रस्तुत अपंजीकृत वसीयत दिनांक 26.12.1998 के आधार पर विवादित भूमि पर अपना नाम दर्ज किए जाने की मांग है। यह वसीयत कैलाश द्वारा प्रस्तुत वसीयत के बाद की है, परन्तु अवर न्यायालय में प्रत्यर्थी कैलाश पुत्र श्रीपाल द्वारा जिला चिकित्सालय सीतापुर के चिकित्साधिकारी द्वारा दिनांक 26.02.1999 को जारी मृत्यु प्रमाण पत्र प्रस्तुत किया गया है, जिससे विदित है कि निगरानीकर्ता के पक्ष में निष्पादित अपंजीकृत वसीयत दिनांक 26.12.1998 से लगभग 9 दिन पूर्व दिनांक 16.12.1998 को वंशगोपाल पुत्र रघुवर दयाल को जिला अस्पताल सीतापुर में भर्ती कराया गया था, जिनका देहान्त दिनांक 01.01.1999 को हो गया। इस प्रकार इससे स्पष्ट होता है कि वसीयत के दिन, दिनांकित 26.12.1998 को वंशगोपाल अस्पताल में भर्ती थे, जिनका देहान्त दिनांक 01.01.1999 को हो गया। इस प्रकार वंशगोपाल पुत्र रघुवर को प्रसन्न चित, स्वस्थ बुद्धि की अवस्था में वसीयत दिनांक 16.12.1998 को उल्लेखित है, सन्देहात्मक और विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता है।

इस वाद में एक आपत्ति श्रीमती रानी पत्नी शिवराम द्वारा अवर न्यायालय में दिनांक 17.01.2019 को प्रस्तुत करके मांग की है कि वंशगोपाल मृतक हो गये हैं, उन्होंने अपने जीवनकाल में कोई वसीयत नहीं लिखी है, कैलाश पुत्र श्रीपाल तथा श्रीमती निर्मला देवी पत्नी रामरतन द्वारा प्रस्तुत वसीयतें वंशगोपाल की मृत्यु के बाद फर्जी तैयार की गयी है। वंशगोपाल की मृत्यु के समय वंशगोपाल के भाई श्रीपाल, शिवराम व रामरतन जीवित थे, इस कारण वरासत के आधार पर वंशगोपाल की सम्पत्ति के जायज वारिस श्रीपाल, शिवराम व रामरतन हुए और श्रीपाल की मृत्यु के बाद उनकी सम्पत्ति के उत्तराधिकारी शिवसागर, कैलाश, शिवराम की मृत्यु के उपरान्त उत्तराधिकारी रानी व रामरतन की मृत्यु के बाद उनकी पत्नी निर्मला देवी हैं। इस प्रार्थना पत्र का विरोध कैलाश व श्रीमती निर्मला देवी द्वारा किया गया, परन्तु आगे श्रीमती रानी द्वारा इस पर कोई पैरवी नहीं की गयी। यहां पर उल्लेखनीय यह है कि शिवराम पुत्र रघुवर दयाल की पत्नी रानी देवी व सगे भाई रामरतन की पत्नी निगरानीकर्ता निर्मला देवी आपस में सगी बहनें हैं और इसी रिश्ते के चलते ऐसा प्रतीत होता है कि मृतक खातेदार वंशगोपाल पुत्र रघुवर दयाल की भूमि को प्राप्त करने की नीयत से निर्मला देवी के साथ मिलकर एक अन्य वसीयत बनवाई गयी और कैलाश के पक्ष में निष्पादित पंजीकृत वसीयत जिसमें शिवराम हासिया गवाह हैं तथा कैलाश के सगे चाचा हैं, के द्वारा कैलाश के पक्ष में निष्पादित वसीयत का विरोध किया जाने लगा। गवाह शिवराम का वसीयत दिनांक 14.08.1997 पर लगे निशानी अंगूठे का अंगुष्ठ विशेषज्ञ द्वारा दो बार परीक्षित कराया गया है, जिसमें शिवराम के सम्बन्ध में दोनो अंगुष्ठ विशेषज्ञ द्वारा आख्याएं भी विरोधाभाषी हैं।

उपरोक्त विवेचना के आधार पर यह सिध्द होता है कि मृतक वंशगोपाल पुत्र रघुवर दयाल की भूमि के सम्बन्ध में दो वसीयतें हैं, दोनों ही वसीयतें संदिग्धता लिए हुए हैं। यद्यपि वसीयत दिनांक 14.08.1997 को दूसरे गवाह छत्रपाल सिंह के द्वारा अवर न्यायालय में अभिप्रमाणन कराते हुए वसीयत के आधार पर कैलाश पुत्र श्रीपाल का नाम अंकित किया गया है, परन्तु दोनों वसीयतें संदिग्ध की परिधि में हैं। प्रस्तुत प्रकरण में साक्ष्यों की आवश्यकता है। अतः वाद के न्यायहित में वाद चकबन्दी अधिकारी अन्तिम अभिलेख प्रथम के न्यायालय पर प्रत्यावर्तित किया जाना उचित प्रतीत होता है कि वह दोनों वसीयतों के सम्बन्ध में गहन परीक्षण करते हुए तथा उभयपक्षों द्वारा साक्ष्य आदि प्राप्त कर वाद का निर्णय गुणदोष के आधार पर करें। तदनुसार निगरानीकर्ता द्वारा प्रस्तुत निगरानी स्वीकार किये जाने योग्य है। अतः आदेश हुआ कि

आदेश

उपरोक्त विवेचना के आधार पर निगरानीकर्ता निर्मला देवी पत्नी स्व रामरतन निवासी ग्राम हरनी परगना सीतापुर तहसील सीतापुर वर्तमान तहसील महोली जिला सीतापुर द्वारा प्रस्तुत निगरानी स्वीकार की जाती है। अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 25.08.2023 तथा चकबन्दी अधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 13.01.2023 निरस्त किया जाता है। वाद चकबन्दी अधिकारी अन्तिम अभिलेख - प्रथम के न्यायालय में इस निर्देश के साथ प्रत्यावर्तित किया जाता है कि वह वाद में प्रस्तुत वसीयत दिनांक 14.08.1997 व 26.12.1998 के सम्बन्ध में गहन परीक्षण करते हुए तथा साक्ष्य आदि लेकर वाद का निस्तारण नियमानुसार / विधि अनुकूल गुणदोष के आधार पर करें। पक्ष चकबन्दी अधिकारी अन्तिम अभिलेख प्रथम के न्यायालय पर दिनांक 28.02.2025 को उपस्थित हों। आदेश की एक प्रति चकबन्दी अधिकारी अन्तिम अभिलेख प्रथम के न्यायालय को भेजी जाय । पत्रावली बाद आवश्यक कार्यवाही संचित अभिलेखागार हो।

ह० अपठनीय
(नीतीस कुमार सिंह)
अपर जिलाधिकारी (वि० / रा०) / उप निदेशक चकबन्दी
सीतापुर

5. दिनांक 14.02.2025 के आक्षेपित आदेश से, जिसमें उपरोक्त उद्धृत अंश भी शामिल है, यह स्पष्ट है कि डी.डी.सी. को मुकदमे के पक्षकारों को केवल सुनवाई का उचित अवसर प्रदान करना है और उसके बाद उसे प्रत्येक मुद्दे पर एक तर्कसंगत आदेश पारित करना है।

6. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दिनांक 14.02.2025 के आक्षेपित आदेश पर आपत्ति जताते हुए कहा कि दिनांक 14.02.2025 का चुनौती दिया गया रिमांड आदेश, 1953 के अधिनियम की धारा 48 के तहत विभिन्न घोषणाओं/निर्णयों और विचारित भाषा के मद्देनजर, विधि की नजर में टिकने योग्य नहीं है। इस प्रकार, इस मामले में इस न्यायालय का हस्तक्षेप अपेक्षित है।

7. इसके क्रम में, यह भी कहा गया है कि समस्त सामग्री उप-निदेशक, चकबंदी के समक्ष उपलब्ध थी और अधिनियम, 1953 स्वयं उप-निदेशक, चकबंदी को व्यापक शक्तियाँ प्रदान करता है, जैसा कि अधिनियम, 1953 की धारा 48 के अंतर्गत विचारित भाषा, जिसमें स्पष्टीकरण भी शामिल हैं, से स्पष्ट है और उन्हें पक्षकारों को सुनवाई का उचित अवसर प्रदान करने के बाद, गुण-दोष के आधार पर उनके मामले का निर्णय करना चाहिए था। इस प्रकार, विपक्षी संख्या 1 ने दिनांक 14.02.2025 को पारित आदेश पारित करते समय विधि और तथ्य की दृष्टि से त्रुटि किया है।

8. राज्य/विपक्षी संख्या 1 के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री हेमंत कुमार पांडे ने वर्तमान याचिका से संबंधित मुद्दे पर इस न्यायालय की सहायता की। वे 1953 के अधिनियम की धारा 48 के तहत विपक्षी संख्या 1 की शक्ति पर भी विवाद नहीं कर सके।

9. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर विचार किया गया तथा अभिलेख का अवलोकन किया गया।

10. वर्तमान याचिका पर निर्णय देने के लिए, यह न्यायालय 1953 के अधिनियम की धारा 48 को पुनः उद्धृत करना उचित समझता है, जो इस प्रकार है:-

"[48. संशोधन और संदर्भ.- *(1) चकबंदी निदेशक किसी अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा विनिश्चित किसी वाद या की गई कार्यवाही के अभिलेख को मंगा सकता है और उसकी जांच कर सकता है, ताकि वह कार्यवाही की नियमितता के बारे में या वाद या कार्यवाही में ऐसे प्राधिकारी द्वारा पारित किसी आदेश [अंतरवर्ती आदेश*

से भिन्न] की शुद्धता, वैधता या औचित्य के बारे में स्वयं को संतुष्ट कर सके, तथा संबंधित पक्षों को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात वाद या कार्यवाही में ऐसा आदेश दे सकता है, जैसा वह ठीक समझे।

(2) उपधारा (1) के अधीन शक्तियों का प्रयोग चकबंदी निदेशक द्वारा उपधारा (3) के अधीन निर्देश पर भी किया जा सकेगा।

(3) चकबंदी निदेशक के अधीनस्थ कोई भी प्राधिकारी, संबंधित पक्षों को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात, किसी मामले या कार्यवाही के अभिलेख को उपधारा (1) के अधीन कार्रवाई के लिए चकबंदी निदेशक को निर्दिष्ट कर सकेगा।

[स्पष्टीकरण। -] *[(1)] इस धारा के प्रयोजनों के लिए बंदोबस्त अधिकारी, चकबंदी, चकबंदी अधिकारी, सहायक चकबंदी अधिकारी, चकबंदीकर्ता और चकबंदी लेखपाल, चकबंदी निदेशक के अधीनस्थ होंगे।*

स्पष्टीकरण (2)- *इस धारा के प्रयोजनों के लिए किसी मामले या कार्यवाही के संबंध में 'अंतरवर्ती आदेश' से ऐसा आदेश अभिप्रेत है जो ऐसे मामले या कार्यवाही या उसके संपार्श्विक में उत्पन्न होने वाले किसी मामले का निर्णय करता है, जिसका ऐसे मामले या कार्यवाही के अंतिम रूप से निपटान पर प्रभाव नहीं पड़ता है।*

[स्पष्टीकरण (3).- *इस धारा के अधीन किसी आदेश की शुद्धता, वैधता या औचित्य की जांच करने की शक्ति में किसी अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा अभिलिखित किसी निष्कर्ष की, चाहे वह तथ्य का हो या विधि का, जांच करने की शक्ति सम्मिलित है, तथा इसमें किसी मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने की शक्ति भी सम्मिलित है।*

11. इस स्तर पर, 1953 के अधिनियम की धारा 48 के तहत उप निदेशक चकबंदी के कार्यक्षेत्र/शक्ति पर विभिन्न घोषणाओं का संदर्भ देना भी उचित है।

12. इस न्यायालय द्वारा दिनांक 24.09.2014 को पारित निर्णय में, **राम उदित बनाम डी.डी.सी.**, मनु/यूपी/1768/2014 में प्रतिवेदित किया गया था, इस न्यायालय ने 1953 के अधिनियम की योजना और धारा 48 पर विचार करते हुए निम्नानुसार टिप्पणी की:-

"10. इस विधि की योजना में एक अस्थायी योजना की परिकल्पना की गई है, जिसमें हितधारकों, अर्थात् पट्टेधारकों से आपत्ति आमंत्रित की गई है, तथा उस पर विचार करने के बाद योजना को अंतिम रूप दिया गया है, अर्थात् चकों का आवंटन किया गया है। इसके विरुद्ध अपीलीय शक्ति अधिनियम 1953 की धारा 21(2) के अंतर्गत एसओसी को प्रदान की गई है। डीडीसी द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्ति को अधिनियम, 1953 की धारा 48 के तहत " पुनरीक्षण और संदर्भ" कहा जाता है।

11. मूल धारा 48, जैसा कि प्रारंभ में अधिनियमित किया गया था, इस प्रकार थी:
"48. ***पुनरीक्षण.-*** *चकबंदी निदेशक किसी मामले का अभिलेख मंगा सकता है यदि अधिकारी (मध्यस्थ को छोड़कर) जिसके द्वारा मामले का निर्णय किया गया हो, ऐसा प्रतीत होता है कि उसने ऐसी क्षेत्राधिकार का*

प्रयोग किया है जो विधि द्वारा उसमें निहित नहीं है या वह इस प्रकार निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने में असफल रहा है, या उसने अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग अवैध रूप से या पर्याप्त अनियमितता के साथ किया है और वह मामले में ऐसे आदेश पारित कर सकता है जैसा वह उचित समझे।"

12. इसे उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 24, 1956 द्वारा प्रतिस्थापित करके संशोधित किया गया:

*"48. **चकबंदी निदेशक की अभिलेख मंगाने और आदेशों को संशोधित करने की शक्तियां**.- चकबंदी निदेशक किसी वाद या कार्यवाही का अभिलेख मांग सकता है, यदि ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकारी (मध्यस्थ को छोड़कर) जिसके द्वारा वाद का निर्णय किया गया था या कार्यवाही की गई थी, उसने ऐसी क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया है जो विधि द्वारा उसे प्रदान नहीं की गई है या वह ऐसी क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने में असफल रहा है, या उसने अपनी क्षेत्राधिकार का प्रयोग अवैध रूप से या पर्याप्त अनियमितता के साथ किया है, और वह मामले में ऐसे आदेश पारित कर सकता है, जैसा वह उचित समझे।*

(संशोधन मोटे अक्षरों में)

13. थोड़े समय के भीतर ही इसे पुनः उत्तर प्रदेश संशोधन अधिनियम संख्या 38/1958 द्वारा निम्नानुसार संशोधित किया गया:

*"48. **पुनरीक्षण**.- चकबंदी निदेशक किसी विनिश्चित मामले या की गई कार्यवाही का अभिलेख मांग सकता है, जहां उसकी राय हो कि उप निदेशक, चकबंदी ने -*

(i) विधि द्वारा उसे प्रदान न किए गए क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया हो, या

(ii) अपने में निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने में विफल रहा, या

(iii) अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग अवैध रूप से या पर्याप्त अनियमितता के साथ किया है, और जिसके परिणामस्वरूप, एक किरायेदार के साथ पर्याप्त अन्याय हुआ प्रतीत होता है और वह संबंधित पक्षों को सुनवाई का उचित अवसर देने के बाद, मामले या कार्यवाही में ऐसा आदेश पारित कर सकता है जैसा वह ठीक समझे।"

(संशोधन मोटे अक्षरों में)

14. उत्तर प्रदेश (संशोधन) अधिनियम संख्या VIII, 1963 की धारा 39 द्वारा धारा 48 में एक लघु संशोधन किया गया। अधिनियम संख्या 4/1969 द्वारा भूतलक्षी प्रभाव से एक स्पष्टीकरण जोड़ा गया। उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 20/1982 द्वारा एक प्रमुख संशोधन किया गया, जिसमें उपधारा (1) में "अंतर्वर्ती आदेश से भिन्न" शब्द 10.11.1980 से जोड़े गए। 1969 में सम्मिलित स्पष्टीकरण को 1982 के अधिनियम संख्या 20 द्वारा 10.11.1980 से स्पष्टीकरण-(1) के रूप में पुनः संख्यांकित किया गया और तत्पश्चात् 10.11.1980 से स्पष्टीकरण (2) जोड़ा गया।

15. वर्तमान में, धारा 48 इस प्रकार है:

*"48. **संशोधन एवं संदर्भ.-** (1) चकबंदी निदेशक किसी अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा विनिश्चित किसी मामले या की गई कार्यवाही के अभिलेख को मंगा सकता है और उसकी जांच कर सकता है, ताकि वह कार्यवाही की*

नियमितता के बारे में या कार्यवाही के मामले में ऐसे प्राधिकारी द्वारा पारित किसी आदेश [अंतरिम आदेश से भिन्न] की शुद्धता, वैधता या औचित्य के बारे में स्वयं को संतुष्ट कर सके और संबंधित पक्षों को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात कार्यवाही के मामले में ऐसा आदेश दे सकता है, जैसा वह ठीक समझे।

(2) उपधारा (1) के अधीन शक्तियों का प्रयोग चकबंदी निदेशक द्वारा उपधारा (3) के अधीन निर्देश पर भी किया जा सकेगा।

(3) चकबंदी निदेशक के अधीनस्थ कोई भी प्राधिकारी, संबंधित पक्षों को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात, किसी वाद या कार्यवाही के अभिलेख को उपधारा (1) के अधीन कार्रवाई के लिए चकबंदी निदेशक को संदर्भित कर सकेगा।

स्पष्टीकरण (1)- *इस धारा के प्रयोजनों के लिए बंदोबस्त अधिकारी, चकबंदी, चकबंदी अधिकारी, सहायक चकबंदी अधिकारी, चकबंदीकर्ता और चकबंदी लेखपाल, चकबंदी निदेशक के अधीनस्थ होंगे।*

स्पष्टीकरण (2). *इस धारा के प्रयोजन के लिए किसी वाद या कार्यवाही के संबंध में 'अंतरवर्ती आदेश' से ऐसा आदेश अभिप्रेत है जो ऐसे वाद या कार्यवाही या उसके संपार्श्विक में उत्पन्न होने वाले किसी वाद का निर्णय करता है, जिसका ऐसे वाद या कार्यवाही का अंतिम रूप से निस्तारण करने का प्रभाव नहीं होता है।*

स्पष्टीकरण (3).- *इस धारा के अंतर्गत किसी आदेश की सत्यता, वैधता या औचित्य की जांच करने की शक्ति में किसी अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा अभिलिखित किसी निष्कर्ष, चाहे वह तथ्य या विधि का हो, की जांच करने की शक्ति सम्मिलित है, तथा इसमें किसी मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य का पुनः मूल्यांकन करने की शक्ति भी सम्मिलित है।"*

(बल दिया गया)

16. धारा 48, जैसा कि इसे शुरू में अधिनियमित किया गया था, शेर सिंह (मृत) बनाम संयुक्त निदेशक, चकबंदी और अन्य मनु/एससी/0514/1978 : (1978) 3 एससीसी 172 में विचार किया गया। न्यायालय ने कहा कि इसे पढ़ने से पता चलता है कि यह धारा 115 सीपीसी के समरूप है, जो उच्च न्यायालय के पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार को अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा क्षेत्राधिकार के अवैध या अनियमित प्रयोग या प्रयोग न करने या अवैध रूप से ग्रहण करने के मामलों तक सीमित करता है। यदि किसी अधीनस्थ न्यायालय के पास किसी मामले पर निर्णय देने का अधिकार पाया जाता है, तो यह नहीं कहा जा सकता कि उसने इसका प्रयोग अवैध रूप से या भौतिक अनियमितता के साथ किया है, भले ही उसने मामले पर गलत निर्णय दिया हो। धारा 115 सीपीसी की व्याख्या करने वाले मामलों पर भरोसा करते हुए, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किय कि धारा 115 के तहत उच्च न्यायालय को जो भी पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार उपलब्ध था, वही धारा 48 के तहत डीडीसी के पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का दायरा था और तथ्यों की त्रुटियों में जाने का उसके पास कोई क्षेत्राधिकार नहीं है। न्यायालय ने कहा कि अधीनस्थ न्यायालय द्वारा तथ्य या विधि के किसी प्रश्न पर लिया गया गलत निर्णय, जिसका उस न्यायालय के क्षेत्राधिकार से कोई संबंध नहीं है, को उच्च न्यायालय द्वारा सीपीसी की धारा 115 के अंतर्गत सही नहीं किया जा सकता है और यही बात डीडीसी पर धारा 48 के अंतर्गत लागू होगी। न्यायालय ने आगे कहा कि संयुक्त निदेशक के अधीनस्थ चकबंदी प्राधिकारियों के पास राजस्व अभिलेखों में प्रविष्टियों की सत्यता या असत्यता के प्रश्न की जांच करने का पूर्ण अधिकार और क्षमता है। यदि दो न्यायालयों के तथ्य

एक साथ प्राप्त हों, जो पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार में कोई आधार नहीं छोड़ते, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, तो संयुक्त निदेशक, चकबंदी द्वारा हस्तक्षेप मान्य नहीं होगा। निर्णय के प्रस्तर 16 में, न्यायालय ने कहा: "इस प्रकार अधीनस्थ चकबंदी प्राधिकारियों ने अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए अवैधानिक रूप से कार्य नहीं किया है, इसलिए चकबंदी के संयुक्त निदेशक उनके निर्णयों में हस्तक्षेप करने के लिए सक्षम नहीं थे।"

17. 1963 में संशोधित धारा 48 पर रमाकांत सिंह बनाम उप निदेशक चकबंदी, उ.प्र. एवं अन्य मनु//यूपी/0026/1975 : एआईआर 1975 इला 126 में विचार किया गया, लेकिन इसमें न्यायालय ने धारा 48(1) पर विचार करते समय इस प्रश्न पर विचार किया कि क्या उप निदेशक चकबंदी द्वारा एक बार अभिलेख मांगे जाने के बाद, क्या यह आवश्यक है कि वह मामले का गुण-दोष के आधार पर निर्णय करे या वह किसी तकनीकी आधार जैसे उचित पक्षकार के शामिल न होने आदि के आधार पर पुनरीक्षण को अस्वीकार कर सकता है।

18. 1963 में धारा 48 में संशोधन किया गया, फिर शांति प्रकाश गुप्ता बनाम डीडीसी 1981 एससीसी (सप्लिमेंट) 73 में इस पर विचार किया गया। इसमें न्यायालय ने पाया कि 1963 के संशोधन के अनुसार धारा 48, सीपीसी की धारा 115 से अधिक व्यापक थी। हालाँकि, इसने यह निर्णय दिया कि निदेशक को सी.ओ. के विवेकाधिकार में तब तक हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए जब तक कि जिस आदेश को उलटने की माँग की जा रही है वह स्पष्ट रूप से त्रुटिपूर्ण न हो या न्याय की विफलता का कारण न बन रहा हो। इसी आशय से और समान प्रतिबंध लगाते हुए, राम दुलार बनाम उप-चकबंदी निदेशक मनु/एससी /1004/1994 : (1994) सप्प(2) एससीसी 198 में निम्नलिखित टिप्पणियाँ की गईं:

" यह स्पष्ट है कि निदेशक को कार्यवाही की वैधता या कार्यवाही की शुद्धता या अधिनियम के तहत प्राधिकारियों द्वारा पारित अंतरिम आदेश के अलावा किसी अन्य आदेश की शुद्धता, वैधता या औचित्य के संबंध में स्वयं को संतुष्ट करने की शक्ति थी। लेकिन आदेश की सत्यता, वैधानिकता या औचित्य, या कार्यवाही की सत्यता या उसकी नियमितता पर विचार करते समय, वह उन तथ्यों का स्वयं नए सिरे से मूल्यांकन करके, एक तथ्यान्वेषी प्राधिकारी के रूप में मूल प्राधिकारी के क्षेत्राधिकार को अपने ऊपर नहीं ले सकता। उसे यह विचार करना होगा कि क्या प्राधिकारियों ने तथ्य या विधि का निष्कर्ष दर्ज करते समय कानूनी रूप से स्वीकार्य साक्ष्य पर विचार नहीं किया था, या उसके द्वारा निकाला गया निष्कर्ष किसी साक्ष्य पर आधारित नहीं है, कोई स्पष्ट अवैधता या अनौचित्य किया गया था, या आदेश या निष्कर्ष दर्ज करते समय कोई प्रक्रियात्मक अनियमितता हुई थी, जो मामले की जड़ तक जाती है।

19. प्रीतम सिंह बनाम सहायक निदेशक चकबंदी एवं अन्य मनु/एससी /0742/1996 : (1996) 2 एससीसी 270 में थोड़ी अलग टिप्पणी की गई, जहां न्यायालय ने कहा:

" जब मामला सहायक निदेशक (चकबंदी) के समक्ष पुनरीक्षणाधीन था, तब पूरा मामला उनके पास था और उनका क्षेत्राधिकार अप्रतिबंधित था। जब मामला उनके पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार में था, तब वे पूर्ण नियंत्रण में थे और बंदोबस्त अधिकारी (चकबंदी) द्वारा रिमांड के संबंध में दिए गए आदेश की सत्यता की जाँच करने की स्थिति में थे। दूसरे शब्दों में, पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए सहायक निदेशक (चकबंदी) बंदोबस्त अधिकारी द्वारा विवादित भूमि को उन काश्तकारों द्वारा छोड़े जाने के संबंध में दर्ज निष्कर्ष की जांच कर सकता है, जिनका नाम निर्णायक समय पर 1359 फसली के खसरा में दर्ज किया गया था। एक उच्च न्यायालय के रूप में सहायक निदेशक (चकबंदी) के पास वह शक्ति थी, भले ही बंदोबस्त अधिकारी के रिमांड आदेश को अलग और स्वतंत्र कार्यवाही में विशेष रूप से चुनौती न दी गई हो। उल्लेखनीय है कि सहायक निदेशक (चकबंदी) का न्यायालय पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार वाला न्यायालय है, अन्यथा अधीनस्थ अधिकारी के किसी भी आदेश को स्वतः संज्ञान लेकर सही करने की शक्ति रखता है। ऐसी स्थिति में, जब पूरा मामला सहायक निदेशक (चकबंदी) के समक्ष था, तो उन्हें पक्षकारों के बीच पूर्ण न्याय करने में कोई बाधा महसूस नहीं करनी चाहिए थी। उच्च न्यायालय में लड़ी गई कानूनी लड़ाई से अपीलकर्ताओं को कोई भौतिक लाभ नहीं हुआ। सहायक निदेशक (चकबंदी) द्वारा पूरे विवाद को शामिल करते हुए गुण-दोष के आधार पर निर्णय अपेक्षित था। (प्रस्तर-6)

(बल दिया गया)

20. फिर भी राम अवतार बनाम राम धनी, मनु/एससी /0034/1997 : एआईआर 1997 एससी 107 में, न्यायालय ने प्रस्तर 8 में टिप्पणी की:

"इस न्यायालय ने बार-बार यह इंगित किया है कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के विपरीत वैधानिक पुनरीक्षण के तहत शक्ति चाहे कितनी भी व्यापक क्यों न हो, फिर भी उस शक्ति का प्रयोग करते समय संबंधित प्राधिकारी अपील न्यायालय के रूप में कार्य नहीं कर सकता है ताकि तथ्य के प्रश्न पर निष्कर्ष दर्ज करने के लिए अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य की सराहना की जा सके।

21. इन टिप्पणियों ने पुनः चीजों को इस रूप में प्रस्तुत किया कि धारा 48 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार का दायरा, धारा 115 सी.पी.सी. में निहित क्षेत्राधिकार के निकट आ गया।

22. धारा 48(1) जैसा कि यह 1963 में संशोधन से पहले थी और उसके बाद, दोनों को शेषमणि और अन्य बनाम उप निदेशक चकबंदी, जिला बस्ती, यू.पी. और अन्य मनु/एससी /0079/2000: 2000(2) एससीसी 523 में देखा गया। शेर सिंह बनाम संयुक्त निदेशक चकबंदी (पूर्वोक्त) और राम दुलार बनाम डीडीसी (पूर्वोक्त) और हस्तक्षेप संशोधन में पहले के फैसले का हवाला देते हुए, न्यायालय ने राम दुलार में की गई टिप्पणियों का पालन किया, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है और फिर डीडीसी द्वारा पारित आदेश को बरकरार रखा, जिसमें कहा गया कि सीओ और अपर बंदोबस्त चकबंदी अधिकारी के आदेश विधि के स्थापित सिद्धांतों के खिलाफ थे, इसलिए, डीडीसी द्वारा एक अलग निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए पुनरीक्षण शक्ति का प्रयोग करना उचित था।

अनुवादित

23. इन परिस्थितियों में, विधायिका ने उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 3/2002 द्वारा स्पष्टीकरण-3 को शामिल करके हस्तक्षेप किया, जो 10.11.1980 से प्रभावी हुआ, लेकिन करण सिंह बनाम डीडीसी 2003(94) आरडी 382 में इस न्यायालय ने कहा कि स्पष्टीकरण-3 को शामिल करने के बाद भी, डीडीसी अधीनस्थ प्राधिकारियों के स्थान पर अपने स्वयं के निष्कर्ष को प्रतिस्थापित नहीं कर सकता है।

24. जगदम्बा प्रसाद बनाम कृपा शंकर मनु/एससी/0274/2014 : (2014) 5 एससीसी 707 में हाल ही में लिए गए निर्णय में, प्रस्तर 15 में, 1963 में संशोधित धारा 48 पर भी विचार किया गया है, जो शेर सिंह बनाम संयुक्त निदेशक चकबंदी (पूर्वोक्त) में पहले के निर्णय का अनुसरण करता है, इसमें कहा गया है:
"15. उपर्युक्त वाद में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानूनी सिद्धांत के अनुसार, अधिनियम की धारा 48 के अंतर्गत पुनरीक्षण प्राधिकारी की शक्ति केवल यह पता लगाने तक विस्तारित है कि क्या अधीनस्थ न्यायालयों ने निष्कर्ष पर पहुंचने में अपने क्षेत्राधिकार का अतिक्रमण किया है। इसलिए, यदि मूल और अपीलीय प्राधिकारी अपने क्षेत्राधिकार में हैं, तो पुनरीक्षण प्राधिकारी, निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए, दस्तावेजों के रूप में या अन्यथा नए तथ्यों को स्वीकार करके, अपने क्षेत्राधिकार का अतिक्रमण नहीं कर सकता। इसलिए, हम अपीलकर्ताओं के पक्ष में बिंदु संख्या 1 का उत्तर देते हुए कहते हैं कि पुनरीक्षण प्राधिकारी ने पुनरीक्षण चरण में दस्तावेजों को स्वीकार करके और अधीनस्थ न्यायालयों के निर्णय को बदलकर अधिनियम की धारा 48 के तहत अपने क्षेत्राधिकार का अतिक्रमण किया है।

25. इस प्रकार, यह देखना कठिन है कि धारा 48 के स्पष्टीकरण III ने पुनरीक्षण के दायरे को अपीलीय क्षेत्राधिकार के समतुल्य कर दिया है ताकि तथ्यों के विशुद्ध मुद्दे पर साक्ष्य का आकलन किया जा सके और निष्कर्षों को नए सिरे से दर्ज किया जा सके। पुनरीक्षण का अधिकार प्रथम या द्वितीय अपीलीय न्यायालय का नहीं है, जो तथ्यों के अंतिम न्यायालय हैं और उनमें दर्ज निष्कर्षों पर राम दुलार (पूर्वोक्त), शेषमणि (पूर्वोक्त) और जगदंबा प्रसाद (पूर्वोक्त) में वर्णित आधार पर धारा 48 के तहत हस्तक्षेप किया जा सकता है।

26. इन मामलो में आक्षेपित सभी आदेश 1980 के बाद के हैं, इसलिए, ये पूर्वोक्त प्रावधान द्वारा शासित हो सकते हैं। धारा 48 की उपधारा (1) वास्तव में पुनरीक्षण शक्ति से संबंधित है, जबकि उपधारा (2) और (3) चकबंदी निदेशक के अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा किए गए निर्देश से संबंधित हैं। धारा 48(1) के स्पष्ट एवं स्पष्ट वाचन से यह स्पष्ट है कि चकबंदी निदेशक को किसी अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा विनिश्चित किसी मामले या की गई कार्यवाही को मंगाने और उसकी जांच करने की शक्ति दी गई है, ताकि वह स्वयं को (i) कार्यवाही की नियमितता और (ii) किसी आदेश की शुद्धता, वैधानिकता या औचित्य के बारे में संतुष्ट कर सके।

13. **रिट याचिका संख्या 436 (चकबंदी)/2015 (प्रेम नाथ एवं अन्य बनाम डी.डी.सी., बाराबंकी एवं अन्य)** में पारित दिनांक 18.06.2015 के निर्णय में इस न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की:-
"अधिनियम 1953 की धारा 11 के अंतर्गत अपील और धारा 48 के अंतर्गत पुनरीक्षण दो अलग-अलग वैधानिक उपाय हैं। दोनों उपायों का दायरा भी अलग-अलग है। धारा 48 के अंतर्गत पुनरीक्षण की शक्तियाँ और धारा 11

के अंतर्गत अपील की शक्तियाँ अलग-अलग हैं। अपीलीय शक्तियाँ व्यापक हैं। धारा 48 के अंतर्गत शक्ति चाहे कितनी भी व्यापक क्यों न हो, वर्ष 2002 में किए गए संशोधन के बाद भी, यह पुनरीक्षण प्राधिकारी को अभिलेखों को तलब करने तथा धारा 11 के अंतर्गत एसओसी के समक्ष लंबित अपील के गुण-दोष पर निर्णय लेने की अनुमति नहीं देता है, जब तक कि अपीलीय प्राधिकारी ने अपील पर निर्णय देने वाला कोई आदेश पारित न किया हो या किसी मामले पर निर्णय देने वाला कोई आदेश पारित न किया हो, जिसका प्रभाव अपील के निपटान पर पड़ता हो। इस तरह की कार्रवाई अधिनियम 1953 के तहत अपील के वैधानिक उपाय को नष्ट करने वाली है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि डीडीसी के पास धारा 48 के तहत स्वत: संज्ञान लेने की शक्तियां हैं लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि वह एसओसी के समक्ष लंबित अपील के रिकॉर्ड की मांग कर सकता है और अपीलीय प्राधिकारी द्वारा निर्णय लिए बिना गुण दोष के आधार पर उस पर फैसला कर सकता है। इस संबंध में रणजीत और अन्य बनाम उप निदेशक चकबंदी बलिया और अन्य के मामले में इस न्यायालय के एक निर्णय को संदर्भित किया जा सकता है, जिसकी रिपोर्ट 1999(90) आरडी 363 में की गई थी, जिसमें अधीनस्थ प्राधिकारी के आदेश के खिलाफ अपील के लंबित रहने के दौरान उसी आदेश के खिलाफ धारा 48 के तहत डीडीसी के समक्ष एक पुनरीक्षण दायर किया गया था। प्रत्यर्थीगण ने इस न्यायालय के रमाकांत सिंह बनाम उप निदेशक चकबंदी के मामले में पूर्ण पीठ के फैसले सहित विभिन्न निर्णयों पर भरोसा रखा, जिसकी रिपोर्ट 1974 (सप्ल) आरडी 262 में की गई थी। इस न्यायालय ने उक्त पूर्ण पीठ और अन्य निर्णयों पर विचार करने के पश्चात् निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:--

"6. प्रत्यर्थी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा इन तीनों मामलों के तथ्यों पर भरोसा किया गया है, इन तीनों मामलों में बंदोबस्त अधिकारी के समक्ष अपील लंबित नहीं थी, वर्तमान वाद में, जैसा कि ऊपर देखा गया है, अपील और क्रॉस-अपील बंदोबस्त अधिकारी (चकबंदी) के समक्ष लंबित थे, याचिकाकर्ताओं ने उप निदेशक चकबंदी के समक्ष विशेष रूप से आग्रह किया कि अपील के लंबित होने के मद्देनजर, पुनरीक्षण पोषणीय नहीं था। वर्तमान वाद एक ऐसा वाद है, जिसमें चकबंदी उपनिदेशक द्वारा प्रयोग किया गया क्षेत्राधिकार अपील के वैधानिक उपाय को नष्ट करने वाला है और यह एक उपयुक्त वाद है, जिसमें भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत याचिकाओं में हस्तक्षेप की आवश्यकता है।"

[2007 (102) आरडी 250] छक्कू राम एवं अन्य बनाम उप निदेशक चकबंदी, वाराणसी एवं अन्य में दर्ज एक अन्य वाद में, धारा 48 के अंतर्गत एक पुनरीक्षण दायर किया गया था जिसमें एसओसी द्वारा अपील को परिसीमा के आधार पर खारिज करने के आदेश को चुनौती दी गई थी। मुद्दा यह था कि क्या एसओसी द्वारा पारित आदेश की वैधता पर विचार करते समय पुनरीक्षण प्राधिकारी विवाद के गुण-दोष पर भी विचार कर सकता था और निर्णय ले सकता था। रमाकांत सिंह वाद (पूर्वोक्त) में पूर्ण पीठ के निर्णय पर विचार करने के बाद, इस न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया:--

"3. प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता श्री संकठा राय ने श्री प्रदीप राय की सहायता से वाद की पोषणीयता के मुद्दे पर दो दलीलें दीं। पहली यह कि भले ही उप-निदेशक चकबंदी ने विलंब की क्षमा के संबंध में कोई विशिष्ट निष्कर्ष न दिया हो, फिर भी मामले के गुण-दोष पर विचार करते समय यह माना जाएगा कि उन्होंने विलंब को क्षमा कर दिया है। इस मुद्दे पर उन्होंने एम. बी. शाह बनाम बी. एन. अग्रवाल (एआईआर 2002 एससी 451) वाद में दिए गए निर्णय का हवाला दिया। यह निर्णय वर्तमान वाद पर लागू नहीं होता। इसमें कोई विवाद नहीं है

कि प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा प्रस्तुत पुनरीक्षण याचिका, बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी के आदेश के विरुद्ध समय के भीतर दायर की गई थी। यह बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी के समक्ष दायर अपील थी, जिसे समय-सीमा के आधार पर खारिज कर दिया गया था। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि वाद का अभिलेख उप-निदेशक चकबंदी के समक्ष था और इसलिए, वे गुण-दोष के आधार पर वाद का निर्णय कर सकते थे। इसके समर्थन में रमाकांत सिंह बनाम उप निदेशक चकबंदी (एआईआर 1975 एएलएलडी 126) में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के निर्णय पर भरोसा किया गया है। उस मामले में संदर्भित प्रश्न यह था कि क्या धारा 48 के अधीन अभिलेख मंगाए जाने के पश्चात् उप निदेशक चकबंदी पुनरीक्षण ज्ञापन में आवश्यक पक्षकार को पक्षकार न बनाए जाने के कारण पुनरीक्षण को खारिज कर सकता है या वह पक्षकार न बनाए गए पक्षकार को सुनने के पश्चात् मामले का निर्णय कर सकता है। यह माना गया कि अभिलेख की जांच के बाद उप निदेशक चकबंदी स्वप्रेरणा से पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर सकते हैं और प्रभावित पक्षों को सुनने के बाद उचित निर्णय ले सकते हैं। पूर्ण पीठ ने आगे कहा कि यदि पुनरीक्षण आवेदन दोषपूर्ण नहीं है, तो पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग पक्षकारों के आग्रह पर होगा, न कि स्वप्रेरणा से। वर्तमान मामले में पुनरीक्षण दोषपूर्ण नहीं था। इसलिए, क्षेत्राधिकार का प्रयोग याचिकाकर्ता के आग्रह पर हुआ था, न कि स्वप्रेरणा से। इसलिए उप निदेशक चकबंदी को बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी के उस आदेश की सत्यता की जांच करनी थी, जिसमें अपील को सीमा अवधि के आधार पर खारिज कर दिया गया था, जिसे चुनौती दी गई थी, न कि चक आवंटन के गुण-दोष के आधार पर। याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने बशीर अहमद खान बनाम उप निदेशक चकबंदी, गाजीपुर और अन्य (2005(98) आरडी 378) में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया, जिसमें इस न्यायालय ने समान परिस्थितियों में यह विचार व्यक्त किया था कि उप निदेशक चकबंदी के लिए बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी के उस आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण में उचित कदम, जिसमें सीमा के प्रश्न पर अपील को खारिज कर दिया गया था, उस आदेश की सत्यता की जांच करना है। इस वाद के तथ्यों और परिस्थितियों से भी यही प्रतीत होता है कि उप-निदेशक चकबंदी द्वारा अपनाया जाने वाला उचित कदम बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी के आदेश की सत्यता की जाँच करना था, जो उन्होंने नहीं किया। गुण-दोष के संबंध में भी, मेरा मानना है कि उप-निदेशक चकबंदी का आदेश मान्य नहीं है। याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि उप-निदेशक चकबंदी द्वारा चकों में किए गए संशोधन से याचिकाकर्ताओं को होने वाले नुकसान पर विचार नहीं किया गया है। रिट याचिका के प्रस्तर 6 में दिए गए कथनों पर भरोसा किया गया है, जिसमें कहा गया है कि प्लॉट संख्या 368 से सटे याचिकाकर्ता संख्या 2 का मकान है। यदि यह सच है कि याचिकाकर्ता संख्या 2 का मकान प्लॉट संख्या 368 से सटा हुआ है, तो यह याचिकाकर्ता संख्या 2 के लिए उसकी आबादी के पास एक चक आवंटन के पक्ष में एक परिस्थिति होगी। हालाँकि, इस बिंदु पर इस न्यायालय द्वारा कोई राय व्यक्त नहीं की जा रही है, क्योंकि मामले को नए सिरे से निर्णय के लिए उप निदेशक चकबंदी को वापस भेजने का प्रस्ताव है।

इस वाद में, एसओसी द्वारा न तो पूरी अपील पर और न ही किसी मामले/मुद्दे पर कोई निर्णय दिया गया है। वर्ष 2002 में संशोधन और धारा 48 में स्पष्टीकरण 3 जोड़ने के बाद भी, पुनरीक्षण प्राधिकारी को इस मामले में उनके द्वारा अपनाई गई कार्रवाई का अधिकार नहीं है। स्पष्टीकरण 3 उन्हें केवल तथ्य के प्रश्न पर विचार करने और अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा दर्ज किए गए किसी भी निष्कर्ष की, चाहे वह तथ्य पर हो या विधि पर, जाँच करने का अधिकार देता है और इस संदर्भ में, इसमें किसी भी ऐसे निष्कर्ष की सत्यता, वैधता या औचित्य

की जाँच के उद्देश्य से साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने की शक्ति भी शामिल है। इसका अर्थ यह नहीं है कि पुनरीक्षण प्राधिकारी अपीलीय प्राधिकारी के अभिलेखों को मंगा सकता है और अपनी पुनरीक्षण शक्तियों का प्रयोग करते हुए अपीलीय प्राधिकारी द्वारा कोई निष्कर्ष दर्ज किए बिना या अपील पर निर्णय लिए बिना स्वयं अपील पर निर्णय कर सकता है। इस संबंध में इस न्यायालय द्वारा करण सिंह (मृत) द्वारा एल.आरएस. बनाम उप निदेशक चकबंदी, अलीगढ़ और अन्य के वाद में दिए गए निर्णय का संदर्भ लिया जा सकता है, जो [2003(94) आर.डी. 382 में प्रतिवेदित किया गया था, जिसमें गया दीन (डी) द्वारा एल.आरएस. और अन्य बनाम हनुमान प्रसाद (डी) द्वारा एल.आरएस. और अन्य में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को ध्यान में रखते हुए [2001(92) आर.डी. 79 (एस.सी.) में प्रतिवेदित किया गया था और साथ ही 2002 के संशोधन में न्यायालय ने प्रस्तर 6 में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:--

"..... अधिनियम की धारा 48 में संशोधन से उप-निदेशक चकबंदी की शक्तियों का दायरा बढ़ गया है। इससे उसे साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन करने का अधिकार तो मिल गया है, लेकिन इसमें यह कहीं भी प्रावधान नहीं है कि उप-निदेशक चकबंदी को अधीनस्थ प्राधिकारियों द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों को पलटने का अधिकार होगा और वह अपने निष्कर्षों को प्रतिस्थापित कर सकेगा। सर्वोच्च न्यायालय ने एल.आर. और अन्य बनाम हनुमान प्रसाद (डी) द्वारा एल.आर. और अन्य [(2001(92) आरडी 79 (एससी)] द्वारा गया दीन (डी) में विशेष रूप से निर्धारित किया कि उप-निदेशक चकबंदी को चकबंदी अधिकारी या बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी के रूप में कार्य करने का कोई अधिकार नहीं है, अन्यथा मूल रूप से मामलों के निस्तारण, अपील और पुनरीक्षण में चकबंदी अधिकारी, बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी और उप-निदेशक चकबंदी की शक्तियों में कोई अंतर नहीं रहेगा। यदि उप-निदेशक चकबंदी की राय में दर्ज किए गए निष्कर्ष विधि की दृष्टि से गलत हैं, तो वे साक्ष्यों के पुनर्मूल्यांकन के बाद उन्हें रद्द कर सकते हैं और वाद को नए सिरे से निर्णय के लिए वापस भेज सकते हैं।

इस न्यायालय के एक अन्य निर्णय का भी संदर्भ लिया जा सकता है, जो बशीर अहमद खान (डी) द्वारा एल.आर.एस. बनाम उप निदेशक, चकबंदी एवं अन्य, 2005(1) ए.डब्ल्यू.सी. 924 (एएलएलडी) में प्रतिवेदित वाद में, जिसमें विचारणीय प्रश्न, अपीलीय प्राधिकारी द्वारा परिसीमा के आधार पर अपील को खारिज करने के आदेश को चुनौती देने वाले पुनरीक्षण पर निर्णय लेने के पुनरीक्षण प्राधिकारी के क्षेत्राधिकार के बारे में था। इस न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश ने 1985 आरडी 276 में प्रतिवेदित किए गए तीरथ बनाम संयुक्त निदेशक चकबंदी के वाद में इस न्यायालय के एक खंडपीठ के निर्णय का हवाला देते हुए निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:--

"10. इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने तीरथ बनाम उप निदेशक चकबंदी (पूर्वोक्त) के वाद में निर्णय के माध्यम से प्रश्न का उत्तर नकारात्मक में दिया। इस तर्क को निरस्त करते हुए कि अधिनियम की धारा 48 के तहत शक्ति का प्रयोग करने वाले प्राधिकारी के पास स्वप्रेरणा शक्ति सहित बहुत व्यापक शक्ति है और वह अभिलेख की जांच कर सकता है और यदि कोई त्रुटि है तो उसे उसके द्वारा ठीक किया जा सकता है, खण्ड पीठ ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

" इस मामले को देखते हुए, पुनरीक्षण प्राधिकारी को मामले के अभिलेख की जाँच करने के लिए कहा गया क्योंकि यह अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष अपील से संबंधित था। अपीलीय प्राधिकारी द्वारा अपील खारिज करने का मुख्य कारण यह था कि परिसीमा समाप्त हो चुकी थी। पुनरीक्षण प्राधिकारी को यह देखना था कि आदेश

विधिन उचित था या नहीं। उसे यह जांचना था कि क्या विलम्ब की क्षमा के लिए कोई आवेदन किया गया है और क्या उसके लिए कोई पर्याप्त कारण दिया गया है या नहीं, और क्या अपील को समय बीत जाने के कारण खारिज करने का आदेश मामले की परिस्थितियों में न्यायोचित था और हम यहां यह देखेंगे कि अधिनियम की धारा 48 (1) के तहत पुनरीक्षण में, जहां पुनरीक्षण में ही उसे समय रहते खारिज करने के लिए कोई दोष नहीं है, पुनरीक्षण प्राधिकारी को अपील में निर्णय और उस आदेश में निर्णय के लिए दिए गए आधार तक ही अपने आप को सीमित रखना होगा। हम इस राय पर भी सहमत हैं कि उपरोक्त परिस्थितियों में धारा 48(1) के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते समय पुनरीक्षण प्राधिकारी के लिए गुण-दोष के प्रश्न पर विचार करना उचित नहीं था।"

तीरथ बनाम उप निदेशक चकबंदी (पूर्वोक्त) वाद में खंडपीठ द्वारा निर्धारित विधि इस वाद के तथ्यों पर पूरी तरह लागू होता है।

11. वर्तमान वाद में भी, बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी द्वारा पारित आदेश पक्षकारों के दावे का गुण-दोष के आधार पर निर्णय नहीं था, बल्कि अपील को समय-सीमा के कारण वर्जित मानते हुए खारिज करने का आदेश था। उप-निदेशक चकबंदी ने बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी द्वारा पारित आदेश की वैधता या अन्यथा पर विचार किए बिना और अपने निष्कर्षों को रद्द किए बिना, गुण-दोष के आधार पर पुनरीक्षण का निर्णय कर दिया। उप-निदेशक चकबंदी का यह दायित्व था कि वे अपील दायर करने में हुई देरी को क्षमा करने से इनकार करने वाले बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी के आदेश पर उसके गुण-दोष के आधार पर विचार करते और यदि वे देरी के पर्याप्त आधार से संतुष्ट होते, तो अपील को समयबाधित बताते हुए बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी के उस आदेश को रद्द कर देते और मामले को गुण-दोष के आधार पर निर्णय के लिए वापस उनके पास भेज देते। उनके लिए आगे बढ़ना और पुनरीक्षण पर गुण-दोष के आधार पर निर्णय लेना संभव नहीं था।

इस प्रकार स्पष्ट रूप से धारा 48 के अंतर्गत पुनरीक्षण और धारा 11 के अंतर्गत अपील का दायरा भिन्न होने और दो अलग-अलग वैधानिक उपचार प्रदान किए जाने के कारण, अपीलीय प्राधिकारी द्वारा अपील या उसमें शामिल किसी भी महत्वपूर्ण मुद्दे पर कोई निर्णय न दिए जाने के कारण, उप-निदेशक, चकबंदी के लिए धारा 48 के अंतर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए लंबित अपील के गुण-दोष पर निर्णय लेना संभव नहीं था। स्पष्ट रूप से, ऊपर उल्लिखित सीमित सीमा को छोड़कर, यह पुनरीक्षण का दायरा नहीं था। संपूर्ण विवाद पुनरीक्षण प्राधिकारी के समक्ष निर्णय के लिए उपलब्ध नहीं था। पुनरीक्षण स्वयं स्वीकार्य नहीं था क्योंकि आक्षेपित आदेश विशुद्ध रूप से अंतर्वर्ती थे।"

14. इस न्यायालय ने ***गुलाब चंद बनाम डी.डी.सी. 2019 एससीसी ऑनलाइन इला 4756*** में प्रतिवेदित वाद में दिनांक 30.04.2019 को पारित निर्णय में निम्नानुसार टिप्पणी की है:-

"14. इस न्यायालय ने दोनों पक्षों की ओर से प्रस्तुत प्रतिद्वन्द्वियों पर गहन विचार किया है। इसमें कोई संदेह नहीं कि अधिनियम की धारा 48 के अंतर्गत उप-निदेशक चकबंदी की शक्तियों को सदैव व्यापक माना गया है, हालाँकि पुनरीक्षण न्यायालय होने के नाते, कुछ मामलों में सीमित भी रही हैं। अधिनियम की धारा 48 के तहत उप निदेशक चकबंदी की शक्तियों का आशय, जैसा कि हमेशा से समझा जाता रहा है, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा

शिव नंद बनाम उप निदेशक चकबंदी, इलाहाबाद, (2000) 3 एससीसी 103 में संक्षेप में निर्धारित किया गया है, जहां रिपोर्ट के प्रस्तर 20 और 21 में यह अभिनिर्धारित किया है:

"20. यह धारा उप निदेशक को व्यापक अधिकार प्रदान करती है। यह उसे स्वप्रेरणा से या किसी व्यक्ति के आवेदन पर अधिनियम के अंतर्गत की गई सभी कार्यवाहियों की औचित्य, वैधता, नियमितता और शुद्धता पर विचार करने और उचित आदेश पारित करने का अधिकार देती है। उप निदेशक को ये शक्तियां व्यापक रूप से प्रदान की गई हैं, ताकि अधिनियम के तहत पक्षकारों के दावों पर प्रभावी ढंग से निर्णय लिया जा सके और उनका निर्धारण किया जा सके, ताकि पक्षकारों के अधिकारों को अंतिम रूप प्रदान किया जा सके और राजस्व अभिलेख तदनुसार तैयार किए जा सकें।

21. सामान्यतः उप निदेशक से यह अपेक्षा नहीं की जाती है कि वह अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए चकबंदी अधिकारी तथा बंदोबस्त अधिकारी (चकबंदी) द्वारा समवर्ती रूप से दर्ज किए गए तथ्यों के निष्कर्षों में परिवर्तन करेगा, किन्तु जहां निष्कर्ष विकृत हों, इस अर्थ में कि वे पक्षकारों द्वारा अभिलेख पर लाए गए साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं हैं या वे साक्ष्य के भार के विरुद्ध हैं, वहां उप निदेशक का यह कर्तव्य होगा कि वह सम्पूर्ण मामले की पुनः जांच करे, ताकि उसके अधीनस्थ प्राधिकारियों द्वारा पारित आदेशों की सत्यता, वैधता या औचित्य का निर्धारण किया जा सके। वर्तमान मामले की तरह, जहां राजस्व अभिलेखों में प्रविष्टियां काल्पनिक या जाली हैं या उन्हें यू.पी. भूमि अभिलेख मैनुअल या अन्य संबद्ध वैधानिक प्रावधानों के उल्लंघन में दर्ज किया गया है, उप निदेशक को धारा 48 के तहत रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने की पूरी शक्ति होगी ताकि जाली और काल्पनिक राजस्व प्रविष्टियों या विधि के अनुसार नहीं की गई प्रविष्टियों को बाहर करके अंततः पक्षकारों के अधिकारों का निर्धारण किया जा सके।

15. ***शिव नंद बनाम डी.डी.सी., इलाहाबाद, (2000) 3 एससीसी 103*** के वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी कहा कि, "उप निदेशक का यह कर्तव्य होगा कि वह पूरे वाद की जाँच करे ताकि उसके अधीनस्थ प्राधिकारियों द्वारा पारित आदेशों की सत्यता, वैधता या औचित्य का निर्धारण किया जा सके।" उपर्युक्त निर्णय के प्रस्तर 20 से 22 नीचे उद्धृत हैं:-

"20. यह धारा उप निदेशक को व्यापक अधिकार प्रदान करती है। यह उसे स्वप्रेरणा से या किसी व्यक्ति के आवेदन पर अधिनियम के अंतर्गत की गई सभी कार्यवाहियों की औचित्य, वैधता, नियमितता और शुद्धता पर विचार करने और उचित आदेश पारित करने का अधिकार देती है। उप निदेशक को ये शक्तियां व्यापक रूप से प्रदान की गई हैं, ताकि अधिनियम के तहत पक्षकारों के दावों पर प्रभावी ढंग से निर्णय लिया जा सके और उनका निर्धारण किया जा सके, ताकि पक्षकारों के अधिकारों को अंतिम रूप प्रदान किया जा सके और राजस्व अभिलेख तदनुसार तैयार किए जा सकें।

21. सामान्यतः उप निदेशक से यह अपेक्षा नहीं की जाती है कि वह अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए चकबंदी अधिकारी तथा बंदोबस्त अधिकारी (चकबंदी) द्वारा समवर्ती रूप से दर्ज किए गए तथ्यों के निष्कर्षों में परिवर्तन करेगा, किन्तु जहां निष्कर्ष विकृत हों, इस अर्थ में कि वे पक्षकारों द्वारा अभिलेख पर लाए गए साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं हैं या वे साक्ष्य के भार के विरुद्ध हैं, वहां उप निदेशक का यह कर्तव्य होगा कि वह सम्पूर्ण

मामले की पुनः जांच करे, ताकि उसके अधीनस्थ प्राधिकारियों द्वारा पारित आदेशों की सत्यता, वैधता या औचित्य का निर्धारण किया जा सके। वर्तमान मामले की तरह, जहां राजस्व अभिलेखों में प्रविष्टियां काल्पनिक या जाली हैं या उन्हें उत्तर प्रदेश भूमि अभिलेख मैनुअल या अन्य संबद्ध वैधानिक प्रावधानों के उल्लंघन में दर्ज किया गया है, उप निदेशक को धारा 48 के तहत रिकॉर्ड पर साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने की पूरी शक्ति होगी ताकि जाली और काल्पनिक राजस्व प्रविष्टियों या विधि के अनुसार नहीं की गई प्रविष्टियों को बाहर करके पक्षकारों के अधिकारों को अंतिम रूप से निर्धारित किया जा सके।

22. इसलिए, यदि अधिनियम की धारा 48 के अंतर्गत अपीलकर्ता द्वारा दायर पुनरीक्षण याचिका की सुनवाई के दौरान, उप निदेशक ने पूरे मामले को पुनः खोला और दो अन्य गाँवों के संबंध में अपीलकर्ताओं के दावे की जाँच की, तो यह नहीं कहा जा सकता कि उप निदेशक ने किसी भी तरह से अपने क्षेत्राधिकार का अतिक्रमण किया है। यह ध्यान देने योग्य है कि अभिलेखों में उपलब्ध साक्ष्यों की जाँच करते समय, उप निदेशक ने पाया कि प्रविष्टियाँ काल्पनिक थीं और अपीलकर्ताओं के पक्ष में राजस्व अभिलेखों में कुछ प्रविष्टियाँ दर्ज करते समय, उत्तर प्रदेश भू-अभिलेख नियमावली सहित वैधानिक प्रावधानों का पालन नहीं किया गया था। ऐसी स्थिति में, उप निदेशक द्वारा सम्पूर्ण कार्यवाही की वैधानिकता की जांच करना तथा पुनरीक्षण वाद को उसी तरीके से निस्तारण पूरी तरह से उचित था, जैसा उन्होंने किया।"

16. अधिनियम, 1953 की धारा 48 के अंतर्गत उप निदेशक चकबंदी की पुनरीक्षण शक्तियों के दायरे के संबंध में इस न्यायालय ने ***राम जीत बनाम उप निदेशक चकबंदी, जौनपुर एवं अन्य, रिट-बी संख्या 42465/1999***, दिनांक 31.05.2013 को निर्णीत, में निम्न प्रकार टिप्पणी की है:-

"17. ..... राम दुलार बनाम डीडीसी, 1994 सप (2) एससीसी 198, प्रीतम सिंह बनाम डीडीसी, (1996) 2 एससीसी 270, शिव नंद बनाम डीडीसी, (2000) 3 एससीसी 103, गुलजार सिंह बनाम डीडीसी, (2009) 12 एससीसी 590 में सर्वोच्च न्यायालय ने लगातार माना है कि चकबंदी के उप निदेशक के पास रिकॉर्ड पर साक्ष्य की फिर से सराहना करने के बाद अधिनियम की धारा 48 के तहत तथ्य और विधि दोनों से संबंधित मुद्दे पर निर्णय करने की बहुत व्यापक शक्ति है। इसके अतिरिक्त अधिनियम की धारा 48 में दिनांक 10.11.1980 से पूर्वव्यापी प्रभाव से स्पष्टीकरण III जोड़ा गया है, जो यह प्रावधान करता है कि इस धारा के अंतर्गत किसी आदेश की सत्यता, वैधानिकता या औचित्य की जांच करने की शक्ति में किसी अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा अभिलिखित किसी निष्कर्ष, चाहे वह तथ्य या विधि का हो, की जांच करने की शक्ति सम्मिलित है तथा इसमें किसी मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य का पुनः मूल्यांकन करने की शक्ति भी सम्मिलित है। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा जिस मामले पर भरोसा किया गया है, वह सही विधि नहीं है और सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के विपरीत है।"

17. चूंकि इस मामले में उप निदेशक चकबंदी द्वारा पारित रिमांड आदेश मुद्दागत है, इसलिए यह न्यायालय इस पहलू पर कुछ निर्णयों का संदर्भ देना भी उचित समझता है।

18. **बशीर अहमद बनाम डीडीसी 1986 आरडी 164** में प्रतिवेदित वाद में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जब सम्पूर्ण साक्ष्य चकबंदी अधिकारी के समक्ष थे, तो मामले को उनके पास वापस भेजने का आदेश उचित नहीं था और डीडीसी को मामले का निर्णय स्वयं करना चाहिए था, क्योंकि वह अधिनियम की धारा 48 के अंतर्गत बहुत व्यापक शक्ति का प्रयोग कर रहे थे।

19. ***राम औतार व अन्य बनाम उप निदेशक चकबंदी व अन्य, 1991 सप (1) एससीसी 552*** के वाद में दिए गए निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि उच्च न्यायालय को मामले को चकबंदी अधिकारी के बजाय उप निदेशक चकबंदी के पास वापस भेजना चाहिए था, क्योंकि इससे पक्षकारों को तीन चरणों में लड़ने से बचाया जा सकता था और मामले का अंतिम निपटारा शीघ्र किया जा सकता था। सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष प्रश्न उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 9-ए के अंतर्गत आपत्तियों के संबंध में था, जिनका निर्णय चकबंदी अधिकारी द्वारा एक पक्ष के पक्ष में किया गया था, जिसके विरुद्ध दूसरे पक्ष ने अपील की थी। अपील में, चकबंदी अधिकारी द्वारा खारिज की गई आपत्तियों को वैध आपत्तियाँ बताया गया और उन्हें स्वीकार कर लिया गया। अपीलकर्ताओं ने उप निदेशक चकबंदी के समक्ष पुनरीक्षण याचिका दायर करने में असफल रहने के बाद उच्च न्यायालय में एक रिट याचिका दायर की, जिसे रिट न्यायालय ने खारिज कर दिया और उसके बाद अपीलकर्ताओं ने एक अपील दायर की, जिसे भी खंडपीठ ने खारिज कर दिया। सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि प्रत्यर्थीगण का तर्क यह था कि अपीलकर्ताओं के पक्ष में आदेश पारित होने के अंतिम चरण में उन्हें कोई नोटिस नहीं भेजा गया था और एकपक्षीय होने के कारण बिना सुनवाई के आदेश को रद्द कर दिया जाना चाहिए था और मामले को वापस भेजना उचित ही था। हालाँकि, सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी कहा कि उच्च न्यायालय को यह मामला चकबंदी अधिकारी के बजाय उप-निदेशक, चकबंदी को वापस भेजना चाहिए था क्योंकि इससे पक्षकारों को राजस्व अधिकारियों के समक्ष तीन चरणों में लड़ने से बचाया जा सकता था और मामले का अंतिम निपटारा शीघ्रता से हो सकता था।

20. इसके अलावा, ***अश्विन कुमार पटेल बनाम उपेंद्र जे. पटेल, एआईआर 1999 एससी 1125*** के वाद में पारित निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि वापस भेजने की शक्ति का प्रयोग क्षेत्राधिकार का एक विलासितापूर्ण प्रयोग है। न्यायालय को वाद को वापस भेजने से बचना चाहिए और वाद को वापस भेजने के बजाय वाद का अंतिम रूप से निर्णय लेने का प्रयास करना चाहिए।

21. इस न्यायालय ने ***भागवत प्रसाद बनाम डीडीसी 2016 आरडी (101) 383*** वाद में पुनः यह निर्णय दिया है कि पुनरीक्षण न्यायालय तथ्यों या विधि के आधार पर निष्कर्षों की जाँच करने के लिए पूर्णतः अधिकृत है और वाद को वापस भेजने की कोई आवश्यकता नहीं है। इन परिस्थितियों में, पुनरीक्षण न्यायालय को पुनरीक्षण वाद पर स्वयं निर्णय लेने के निर्देश दिए गए थे। फेकू बनाम डीडीसी 2007 आरडी (103) 402 के वाद में भी यही दृष्टिकोण अपनाया गया है।

22. ***सीताराम बनाम डीडीसी 2007 आरडी (102) 113*** में प्रतिवेदित वाद में, इस न्यायालय ने वापस भेजने के आदेश को अपास्त कर दिया और डीडीसी को निर्देश दिया कि यदि आवश्यक हो तो अतिरिक्त साक्ष्य लेने के बाद मामले का स्वयं निर्णय करें।

23. ***बाबू लाल बनाम डीडीसी 2008 आरडी (104) 521*** में प्रतिवेदित वाद में, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि वापस भेजने के आदेश का सहारा बहुत ही असाधारण वाद/परिस्थितियों में लिया जाना चाहिए क्योंकि यह न्यायालय का बहुमूल्य समय लेता है और दोनों पक्षों को आर्थिक नुकसान पहुंचाता है, साथ ही अनुचित उत्पीड़न भी होता है।

24. ***शेख नाथू बनाम डीडीसी, (2009) 106 आरडी 96*** के वाद में, इस न्यायालय ने पाया कि चकबंदी अधिकारी और बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी ने अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर प्रत्यर्थीगण की आपत्ति को निराधार माना। डीडीसी ने अधीनस्थ प्राधिकारियों के निष्कर्षों को खारिज किए बिना मामले को वापस भेज दिया। इसलिए, इस न्यायालय ने माना कि वापस भेजने का यह आदेश मुकदमे को नया जीवन देने के समान है और वापस भेजने का आदेश नियमित रूप से पारित नहीं किया जाना चाहिए।

25. ***दीना नाथ एवं अन्य बनाम उप निदेशक चकबंदी एवं अन्य, 2010 (110) आर.डी. 584*** में, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि वापस भेजने के आदेश को अधिनियम की धारा 48 के स्पष्टीकरण-2 के अर्थ में अन्तरवर्ती आदेश नहीं माना जा सकता है और पुनरीक्षण अनुरक्षणीय है और यह भी देखा गया है कि चूंकि पूरा अभिलेख उपलब्ध था, इसलिए मामले को वापस करने के बजाय, पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा गुण-दोष के आधार पर निर्णय लिया जाना चाहिए था।

26. इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने ***रिट-बी संख्या 4377/2014 (संतोष कुमार बनाम डी.डी.सी. एवं अन्य) में, 29.1.2014 को निर्णीत***, यह टिप्पणी की है कि यदि बंदोबस्त अधिकारी, चकबंदी के आदेश में त्रुटियाँ थीं, तो उप निदेशक, चकबंदी मामले को वापस भेजने के बजाय स्वयं विचार कर उचित आदेश पारित कर सकते थे। वाद को वापस भेजने से विलंब होता है और मुकदमेबाजी लंबी होती है, साथ ही पक्षकारों को परेशानी भी होती है।

27. ***विजय नाथ एवं अन्य बनाम उप निदेशक चकबंदी एवं अन्य, 2019 (9) एडीजे 85*** में इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने कहा है कि अधिनियम की धारा 48 में स्पष्टीकरण 3 को शामिल करने के बाद, उप निदेशक चकबंदी को अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा दर्ज किए गए किसी भी तथ्य या विधि के निष्कर्ष की जांच करने और किसी भी मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य की पुनर्मूल्यांकन करने का अधिकार है। इस न्यायालय ने कहा है कि मामले को चकबंदी अधिकारी को वापस भेजने के बजाय, उप निदेशक चकबंदी को धारा 48 (3) के तहत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करना चाहिए था और मामले को गुण-दोष के आधार पर तय करना चाहिए था।

28. ***रिट-बी संख्या 23608/2014 (राम सेवक एवं अन्य बनाम डी.डी.सी. एवं अन्य)*** में पारित दिनांक 06.05.2014 के निर्णय में, इस न्यायालय ने निम्नलिखित अवलोकन करते हुए वापस भेजने के आदेश में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया:-

"यह स्वीकार्य वाद है कि पक्षों द्वारा दो अलग-अलग वसीयतें बनाई गई थीं। आपत्ति का निर्णय सहायक चकबंदी अधिकारी (एसीओ) द्वारा समझौते के आधार पर किया गया था। यह स्थापित कानूनी स्थिति है कि सहायक चकबंदी अधिकारी को केवल सुलह के आधार पर आदेश पारित करने का अधिकार है, गुण-दोष के आधार पर नहीं। इन परिस्थितियों में, यह कहना सुरक्षित होगा कि सहायक चकबंदी अधिकारी ने समझौते के आधार पर आदेश पारित करते समय वसीयत की वैधता की जाँच नहीं की थी। इस संबंध में, यह भी ध्यान देने योग्य है कि समझौते को समग्र रूप से स्वीकार नहीं किया गया था।

समझौते के आधार पर पारित आदेश को बिना किसी मध्यवर्ती अपील के पुनरीक्षण के माध्यम से चुनौती दी गई। डीडीसी ने पक्षकारों को साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान करने के बाद मामले को नए सिरे से निर्णय के लिए वापस भेज दिया।

उपरोक्त तथ्यों के वर्णन से यह स्पष्ट है कि पक्षकारों द्वारा कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया। यदि कोई साक्ष्य प्रस्तुत भी किया गया, तो उसकी समीक्षा का कोई कारण नहीं बनता। इसके अतिरिक्त, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि पक्षकार अपने विवाद का निपटारा एक कथित समझौते के माध्यम से कर रहे थे, उनके लिए अपने-अपने दावों के गुण-दोष के आधार पर साक्ष्य प्रस्तुत करने का कोई कारण नहीं था।

अधिनियम की धारा 48 का स्पष्टीकरण-3 डीडीसी को अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों का पुनः मूल्यांकन करने का अधिकार देता है और साथ ही उसे अधीनस्थ न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष के विपरीत निष्कर्ष दर्ज करने का भी अधिकार देता है। हालाँकि, वर्तमान मामले में साक्ष्यों का पहले कोई मूल्यांकन नहीं किया गया है। इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता कि अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा साक्ष्य की पुनः समीक्षा न किए जाने के कारण डीडीसी ने साक्ष्य की पुनः समीक्षा करने के अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने में असफलता पाई है।

इन परिस्थितियों में, मेरा मत है कि रिमांड के आदेश में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता।

मेरी राय में, एक और कारण है जिसके कारण डीडीसी द्वारा पारित आदेश में हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। रिट याचिका संख्या 42 (कॉन्स) 2007; हरि लाल एवं अन्य बनाम डीडीसी, बाराबंकी, जिसमें एक समान विवाद शामिल था, पर निर्णय करते समय मैंने निम्नलिखित बातें दर्ज की हैं:

" अन्यथा भी, अधिनियम की योजना से यह स्पष्ट है कि प्रथम न्यायालय अर्थात् सहायक चकबंदी अधिकारी या चकबंदी अधिकारी द्वारा पारित आदेश, चाहे स्वामित्व कार्यवाही में हो या आवंटन कार्यवाही में, एसओसी के समक्ष अपील के अधीन हैं और उसके बाद अधिनियम की धारा 48 के तहत डीडीसी के पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के अधीन हैं। यह भी सर्वविदित है कि अपील का अधिकार एक वैधानिक अधिकार है और जब तक क़ानून में इसके लिए प्रावधान न हो, तब तक कोई अपील दायर नहीं की जा सकती। हालाँकि, एक बार जब क़ानून अधिनियम के तहत कार्यवाही में पारित किसी भी आदेश के विरुद्ध अपील का प्रावधान करता है, जो धारा 48 के तहत पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के अधीन है, तो यदि प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता का तर्क स्वीकार कर लिया जाता है, तो याचिकाकर्ता अधिनियम के तहत दिए गए अपील या पुनरीक्षण के अपने अधिकार से वंचित हो

जाएँगे। चूँकि अपील का यह वैधानिक उपाय अधिनियम के अंतर्गत प्रदान किया गया है, इसलिए मेरी राय में, डीडीसी के आदेश को लागू रहने देने से याचिकाकर्ता न केवल अपील के वैधानिक उपाय से वंचित हो जाएँगे, बल्कि बाद में पुनरीक्षण से भी वंचित हो जाएँगे, जो कि सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए अधिनियम की योजना के अंतर्गत किसी पक्ष को उपलब्ध दूसरी अपील है। किसी भी स्थिति में, अधिनियम की योजना के अनुसार, प्रत्येक पक्ष को कार्यवाही में कम से कम एक अपील का अधिकार दिया जाना चाहिए, और यह आवश्यकता तभी पूरी होगी जब मामले को नए निर्णय के लिए एसओसी को वापस भेज दिया जाए। एसओसी द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध, पीड़ित पक्ष के पास पुनरीक्षण, द्वितीय पारी, दायर करने का विकल्प होगा, जो अधिनियम की सामान्य योजना के अनुरूप होगा। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए और इस तथ्य को भी ध्यान में रखते हुए कि डीडीसी ने याचिकाकर्ताओं के मामले पर विचार किए बिना और उनके द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों पर ध्यान दिए बिना आदेश पारित किया है, यह आदेश अपास्त किए जाने योग्य है।

इस प्रकार, इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, रिमांड के आदेश को रद्द करना और डीडीसी को मामले का स्वयं निर्णय करने का निर्देश देना, मेरी सुविचारित राय में, अधिनियम की मूल योजना के साथ उल्लंघन होगा।"

29. ***शिवपूजन बनाम उप निदेशक चकबंदी एवं अन्य, मनु/यूपी/0992/1992 : 1993 (91) एएलजे 769*** के वाद में, यह निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया है:-

"7. इस न्यायालय ने मनभावती देवी बनाम उप निदेशक चकबंदी उत्तर प्रदेश, 1969 आरडी 425 के वाद में अपने निर्णय में स्पष्ट किया था कि "सुनवाई का अवसर" शब्द की व्याख्या उदारतापूर्वक इस प्रकार की जा सकती है कि इसमें अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर भी शामिल है, जहां कोई पक्षकार इसकी अनुमति देने के लिए उचित आधार प्रस्तुत करने में सक्षम हो। अतिरिक्त साक्ष्य को स्वीकार करने के लिए चकबंदी प्राधिकारी के क्षेत्राधिकार के बारे में प्रश्न बिहारी बनाम राज्य के वाद में न्यायालय के समक्ष विचारार्थ आया था, जिसका निर्णय खंडपीठ द्वारा 1973 रेव. दिसंबर 342 में दिया गया था, जिसमें अरबिंद कुमार सिंह बनाम नंद किशोर प्रसाद 1968 एससी 1227 के वाद में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय में प्रतिपादित सिद्धांतों को उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 48 के तहत कार्यवाही पर लागू माना गया था। उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 11 के अंतर्गत कार्यवाही में उक्त सिद्धांतों को लागू न करने का कोई औचित्य नहीं हो सकता, जो अपीलीय प्राधिकारी को एक ऐसा क्षेत्राधिकार प्रदान करता है जो उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 48 के अंतर्गत परिकल्पित क्षेत्राधिकार से कम नहीं माना जा सकता। हालाँकि, मैं इस संबंध में यह जोड़ना चाहूँगा कि अपीलीय या पुनरीक्षणात्मक स्तर पर अतिरिक्त साक्ष्य पर विचार करने के विवेकाधिकार का प्रयोग करते समय सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41 के नियम 27 में निहित हितकारी सिद्धांतों को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

30. ***बिहारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, मनु//यूपी/0176/1973 : एआईआर 1973 इला 507*** के वाद में, यह अभिनिर्धारित किया:-

"2. हमारे समक्ष अपीलकर्ता का मुख्य तर्क यह था कि जिन दस्तावेजों को उप निदेशक चकबंदी के समक्ष अतिरिक्त साक्ष्य के रूप में दाखिल करने की मांग की गई थी, वे वाद के सही और उचित निर्णय के लिए बहुत महत्वपूर्ण थे और उप निदेशक, चकबंदी ने विधि की स्पष्ट त्रुटि की और वास्तव में उक्त आवेदन को अस्वीकार करने में अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से इनकार कर दिया। अतिरिक्त साक्ष्य के लिए आवेदन को खारिज करने वाले उप निदेशक, चकबंदी द्वारा पारित 27 जुलाई, 1963 के आदेश की प्रमाणित प्रति रिट याचिका में दाखिल की गई थी और इसके अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त आवेदन को दो आधारों पर खारिज किया गया था:

1. इतनी देर से दस्तावेजों को स्वीकार करने से पक्षों के वाद में भौतिक परिवर्तन आएगा; और
2. जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 48 में पुनरीक्षण चरण में नए साक्ष्य पर विचार करने का कोई प्रावधान नहीं था।

प्रत्यर्थी रूपई के विद्वान अधिवक्ता ने आग्रह किया कि उप निदेशक, चकबंदी द्वारा अतिरिक्त साक्ष्य के लिए आवेदन को खारिज करना सही था और इसे खारिज करने के लिए उनके द्वारा दिए गए दोनों आधार उचित थे। उन्होंने कुछ अन्य तकनीकी आपत्तियाँ उठाईं, जिन पर हम बाद में विचार करेंगे। जहाँ तक उप निदेशक, चकबंदी द्वारा पूर्वोक्त आवेदन को खारिज करने के लिए उल्लिखित प्रथम आधार का संबंध है, हमारा मत है कि उप निदेशक, चकबंदी ने यह मानकर स्पष्ट कानूनी त्रुटि की है कि दस्तावेज दाखिल करके अपीलकर्ता अपने मामले में भौतिक परिवर्तन करना चाहता था। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, अपीलकर्ता का लगातार यह तर्क रहा कि विवादित भूखंडों का एकमात्र काश्तकार बादल था और बादल का दत्तक पुत्र होने के नाते उसे ये भूखंड विरासत में मिले थे और गाँव के कागज़ात में उसका नाम सही दर्ज था। उप निदेशक, चकबंदी के समक्ष अतिरिक्त साक्ष्य के रूप में दाखिल किए जाने वाले दस्तावेजों की प्रतियाँ रिट याचिका के साथ दाखिल की गई हैं। हमने इन दस्तावेज़ों का अवलोकन किया है। इनमें से दो दस्तावेज़ एक मुकदमे में समझौता आवेदन और उसके आधार पर पारित डिक्री हैं। दूसरा दस्तावेज़, रूपाई प्रत्यर्थी द्वारा स्वयं अपीलकर्ता, जो उस समय नाबालिग था, के अभिभावक के रूप में विवादित भूखंडों पर अपने नाम परिवर्तन के लिए दिए गए आवेदन की प्रति है। पहले के दो दस्तावेज़ यह दर्शाने के लिए दाखिल किए गए थे कि समझौते के तहत हुए बंटवारे में विवादित भूखंड पूरी तरह से जसाई पिता बादल के हिस्से में आवंटित किए गए थे। यह समझौता आगरा काश्तकारी अधिनियम, 1926 की धारा 37 के तहत एक पक्ष की ओर से जसाई पिता बादल और दूसरी ओर से घूरे पिता रूपई के बीच जोत के बंटवारे के लिए दायर किए गए एक मुकदमे में दाखिल किया गया था। तीसरे दस्तावेज, अर्थात् नामांतरण के लिए आवेदन में यह कथन है कि विवादित भूखंड बादल के थे, अपीलकर्ता बादल का दत्तक पुत्र था और इस प्रकार वह इन भूखंडों पर नामांतरण का हकदार था। ये दस्तावेज़ स्पष्ट रूप से इस तथ्य के प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किए गए थे कि विवादित भूखंडों पर बादल एकमात्र किरायेदार था और अपीलकर्ता, उसका दत्तक पुत्र होने के नाते, इन भूखंडों का पूर्णतः उत्तराधिकारी था। अपीलकर्ता का मामला शुरू से ही ऐसा रहा है और यदि इस मामले को सिद्ध करने के लिए वह उपरोक्त दस्तावेज़ प्रस्तुत करना चाहता था, तो किसी भी तरह से यह नहीं कहा जा सकता कि इन दस्तावेज़ों को प्रस्तुत करके अपीलकर्ता पुनरीक्षण चरण में एक

नया मामला स्थापित करना चाहता था। इसलिए, जिस प्रथम आधार पर इन दस्तावेज़ों को अस्वीकार किया गया था, वह स्पष्ट रूप से पोषणीय नहीं है।

3. अब हम दूसरे आधार पर विचार करने का प्रस्ताव रखते हैं जिस पर उपरोक्त आवेदन खारिज कर दिया गया था, अर्थात् पुनरीक्षण सत्र में अतिरिक्त साक्ष्य स्वीकार नहीं किया जा सका। केरल राज्य बनाम के.एम.सी. अब्दुल्लाह मामले के प्राधिकार पर रूपाई प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने मनु/एससी/0265/1964 : [1965] 1 एससीआर 601 में आग्रह किया कि चकबंदी उप निदेशक द्वारा अतिरिक्त साक्ष्य स्वीकार किए जाने से पहले उन्हें पहले बिना साक्ष्य के मामले पर विचार करना होगा और स्वतंत्र रूप से इस निष्कर्ष पर पहुंचना होगा कि चकबंदी अधिनियम की धारा 48 की आवश्यकताएं पूरी होती हैं और केवल तभी जब वह संतुष्ट हो जाएं कि धारा 48 के तहत हस्तक्षेप के आधार तैयार किए गए हैं, तब वह अतिरिक्त साक्ष्य स्वीकार करके आगे की जांच का निर्देश दे सकते हैं। हमने उस निर्णय का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है, लेकिन हम प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा व्यक्त किए गए दृष्टिकोण से सहमत नहीं हैं। उपर्युक्त मामले में उनके माननीय न्यायाधीश मद्रास जनरल सेल्स टैक्स अधिनियम (1939 का अधिनियम IX) की धारा 12 के दायरे पर विचार कर रहे थे। धारा 12 के उप-खंड (2) में यह प्रावधान है कि उपायुक्त अपने अधीनस्थ किसी अधिकारी द्वारा उस अधिनियम के प्रावधानों के तहत पारित किसी आदेश या दर्ज की गई कार्यवाही के रिकॉर्ड को मंगा सकता है और उसकी जांच कर सकता है ताकि वह ऐसे आदेश की वैधता या औचित्य या ऐसी कार्यवाही की अनियमितता के बारे में खुद को संतुष्ट कर सके और उसके संबंध में ऐसा आदेश पारित कर सकता है जैसा वह ठीक समझे। यह माना गया कि पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा उचित समझे जाने वाले आदेश को पारित करने की शक्ति में कुछ मामलों में ऐसी अतिरिक्त जांच करने या निर्देश देने की शक्ति भी शामिल हो सकती है, जिसे उपायुक्त आदेश की अवैधता या अनौचित्य या कार्यवाही में अनियमितता को सुधारने के लिए आवश्यक समझे और यह स्पष्ट रूप से प्रतिपादित करना उचित नहीं है कि अपने पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के प्रयोग में आदेश पारित करने में उपायुक्त को सभी मामलों में अपने अधीनस्थ अधिकारी द्वारा रखे गए रिकॉर्ड तक ही सीमित रहना चाहिए और वह उस रिकॉर्ड के बाहर कभी भी जांच नहीं कर सकता है। आगे यह भी माना गया कि यह नहीं कहा जा सकता कि कोई प्रावधान जो अपीलीय या पुनरीक्षण प्राधिकारी को ऐसी जाँच करने की शक्ति प्रदान करता है जिसे वह आवश्यक समझे, अपने आप में पुनरीक्षण या अपीलीय क्षेत्राधिकार का विस्तार करता है। उपरोक्त निर्णय का वास्तविक आशय सर्वोच्च न्यायालय के ही एक बाद के निर्णय, स्वस्तिक ऑयल मिल्स लिमिटेड बनाम एच.बी. मुंशी मनु/एससी/0317/1967 : [1968] 2 एससीआर 492, से पता चलता है, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था:

जब भी किसी प्राधिकारी को किसी आदेश को संशोधित करने की शक्ति प्रदान की जाती है, तो वह प्राधिकारी उस आदेश की सत्यता, वैधानिकता और औचित्य की जाँच करने और अपने समक्ष उपस्थित विशिष्ट मामले की परिस्थितियों के अनुसार उपयुक्त आदेश पारित करने का हकदार होता है। ऐसी शक्तियों का प्रयोग करते समय, कोई कारण नहीं है कि प्राधिकारी को जाँच करने या जाँच कराने का निर्देश देने और उस उद्देश्य के लिए अतिरिक्त तथ्यात्मक सामग्री स्वीकार करने का अधिकार न हो। उपरोक्त मामले का उल्लेख करते हुए, यह आगे कहा गया:

वास्तव में मद्रास जनरल सेल्स टैक्स एक्ट की धारा 12(2) में डिप्टी कमिश्नर को अपनी शक्तियों का प्रयोग करते समय, किसी भी आदेश को पारित करने से पहले आदेश या कार्यवाही के रिकॉर्ड को मंगाना था, जिसे वह उचित समझता था, इसलिए एक अभिव्यक्ति का प्रयोग किया गया था, जिसकी व्याख्या इस प्रकार की जा सकती थी कि उसकी शक्तियों को बिना किसी और जांच के केवल रिकॉर्ड की जांच तक सीमित कर दिया गया था, और, फिर भी, इस न्यायालय ने माना कि डिप्टी कमिश्नर को अभिलेख तक सीमित नहीं किया जा सकता था और उसे उस अभिलेख के बाहर जांच करने का अधिकार था।

4. अतिरिक्त साक्ष्य स्वीकार करने के लिए पुनरीक्षण प्राधिकारी के क्षेत्राधिकार से संबंधित प्रश्न अरबिंद कुमार सिंह बनाम नंद किशोर प्रसाद, मनु/एससी/0129/1968 : [1968] 3 एससीआर 322 के वाद में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष पुनः विचारार्थ आया। उक्त मामले में, बिहार अधिनियम XVII, 1950 द्वारा संशोधित मोटर वाहन अधिनियम, 1939 की धारा 64-ए में निहित शक्तियों के दायरे पर विचार किया गया। यह निर्णय दिया गया: "ऐसे आदेश पारित करना जो वह उचित समझे" की अभिव्यक्ति केवल अंतिम प्रकृति के आदेश पारित करने तक सीमित नहीं है। यदि पक्षकारों के बीच पूर्ण न्याय करने के उद्देश्य से पुनरीक्षण याचिका पर सुनवाई करने वाला प्राधिकारी इस बात से संतुष्ट है कि अतिरिक्त साक्ष्य मांगना आवश्यक है, तो वह ऐसे साक्ष्य मांग सकता है। अधिनियम या नियमों में अपीलीय या पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा रिकार्ड पर लाए गए अतिरिक्त साक्ष्य पर विचार करने पर कोई रोक नहीं है, यदि प्राधिकारी को रिकार्ड पर अतिरिक्त साक्ष्य लाने की आवश्यकता हो या वह पक्षों के बीच पूर्ण न्याय करने के लिए रिकार्ड पर अतिरिक्त साक्ष्य लाने की अनुमति देता हो।

5. उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 48 के प्रावधान, उपर्युक्त मामलों में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचारार्थ आए विभिन्न प्रावधानों के समतुल्य हैं। धारा 48 के प्रावधानों की व्याख्या करते हुए, इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि उप निदेशक, चकबंदी को अतिरिक्त साक्ष्य ग्रहण करने का अधिकार है। देखें मनभावती देवी बनाम उप निदेशक, चकबंदी [1969 ए.एल.जे. 730.], एमएसटी. महरी बनाम उप निदेशक, चकबंदी [1969 आर.डी. 260 (एच.सी.) (एएच)]; बैज नाथ सिंह बनाम उप निदेशक, चकबंदी [1969 आर.डी. 397 (एच.सी.) (इला)]; और मीर-ची बनाम उप निदेशक, चकबंदी [1971 आर.डी. 201 (एच.सी.) (इला)]।

6. अतः, हमारा मत है कि उप निदेशक, चकबंदी को अतिरिक्त साक्ष्य स्वीकार करने का अधिकार था। उन्होंने इस गलत धारणा के आधार पर अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से इनकार कर दिया कि उन्हें अतिरिक्त साक्ष्य स्वीकार करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं है।

7. रूपई प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने तब आग्रह किया कि वास्तव में आगरा काश्तकारी अधिनियम की धारा 37 के तहत जोतों के विभाजन के लिए वाद में समझौता आवेदन और उसके आधार पर पारित डिक्री को दाखिल करके अपीलकर्ता न्यायिक निर्णय की दलील स्थापित करने की कोशिश कर रहा था और चूंकि कार्यवाही के किसी भी पहले चरण में उसके द्वारा यह दलील नहीं उठाई गई थी, इसलिए ऐसी दलील को प्रमाणित करने के लिए अतिरिक्त साक्ष्य पर विचार नहीं किया जा सकता था। इसके समर्थन में उन्होंने राम किंकर राय बनाम तुफानी अहीर, मनु/यूपी/0238/1930:एआईआर 1931 इला 35 का हवाला दिया। यह सच है कि अतिरिक्त साक्ष्य केवल उस बिंदु के समर्थन में लिया जा सकता है जो पहले ही उठाया जा चुका है, लेकिन हमारी राय में उपरोक्त मामला तत्काल मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होता है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, अपीलकर्ता का यह लगातार तर्क रहा है कि विवादित भूखंडों का एकमात्र काश्तकार बादल था और बादल का दत्तक पुत्र होने

के नाते उसका नाम गाँव के कागज़ों में सही दर्ज था। इस मामले के समर्थन में अपीलकर्ता ने अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने का प्रयास किया था और वह कोई नया मामला बनाने या अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करके कोई नया मामला साबित करने का प्रयास नहीं कर रहा था।

31. ***अब्दुल जुनैद बनाम उप निदेशक चकबंदी एवं अन्य, मनु/यूपी/0330/1972*** के वाद में, यह निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया है:-

"2. जोत चकबंदी नियमावली का नियम 111, जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 54 के अंतर्गत बनाया गया है। 25 मार्च, 1964 से पहले यह इस प्रकार था: अधिनियम की धारा 48 के अंतर्गत आवेदन पत्र आवेदक या उसके अधिवक्ता द्वारा निदेशक या उसकी ओर से नियुक्त किसी अन्य अधिकारी के समक्ष तैयार करके प्रस्तुत किया जाएगा। इसके साथ उस डिक्री या आदेश की प्रति संलग्न की जाएगी जिसके संबंध में आवेदन किया जा रहा है और उस निर्णय की प्रति, यदि कोई हो, जिस पर डिक्री या आदेश आधारित है। अन्य अधीनस्थ प्राधिकारियों की डिक्री, आदेश या निर्णयों की प्रतियां तब तक दाखिल करने की आवश्यकता नहीं होगी, जब तक कि विशेष कारणों से निदेशक द्वारा इन दस्तावेजों को दाखिल करना आवश्यक न समझा जाए। यह नियम लंबे समय से लागू है। संभवतः इस विश्वास के साथ कि 16 मई, 1964 को भी यह नियम लागू था, याचिकाकर्ता ने पुनरीक्षण ज्ञापन के साथ केवल विशेष आयुक्त के फैसले की एक प्रति ही दाखिल की। उसने मुख्य आयुक्त के आदेश की प्रति दाखिल नहीं की। ऐसा प्रतीत होता है कि 16 मई, 1964 को सीओ के आदेश की एक प्रति दाखिल करना आवश्यक था (हम इस बिंदु पर कोई राय व्यक्त नहीं करते हैं), क्योंकि उस तारीख को नियम 111 ने यह रूप धारण कर लिया था: "अधिनियम की धारा 48 के तहत एक आवेदन आवेदक या उसके विधिवत अधिकृत एजेंट द्वारा जिला उप डीसी को उस आदेश के 30 दिनों के भीतर प्रस्तुत किया जाएगा जिसके खिलाफ आवेदन निर्देशित किया गया है। इसके साथ वह निर्णय और आदेश संलग्न किया जाएगा जिसके संबंध में आवेदन प्रस्तुत किया गया है। विवाद के संबंध में अन्य अधीनस्थ प्राधिकारियों के निर्णयों और आदेशों की प्रतियां, यदि कोई हों, भी आवेदन के साथ प्रस्तुत की जाएंगी।" इस प्रावधान के तहत कार्य करते हुए, उप निदेशक ने याचिकाकर्ता के पुनरीक्षण को इस आधार पर सरसरी तौर पर खारिज कर दिया कि वह सीओ के आदेश की प्रति प्रस्तुत करने में विफल रहा था।

3. याचिका एक विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष सुनवाई के लिए आई। उनके समक्ष यह तर्क दिया गया कि संशोधित नियम का अंतिम भाग निर्देशात्मक है, अनिवार्य नहीं। लेकिन यह तर्क श्रीमती शांति बनाम बृज लाल (सीएमडब्ल्यू संख्या 1506/1968 दिनांक 16 मई, 1969) में एक अन्य विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए निर्णय के विपरीत था। तदनुसार, उन्होंने मामले को एक बड़ी पीठ को भेज दिया। इसलिए यह मामला हमारे समक्ष है।

4. वर्तमान में बताए जाने वाले कारणों से, हमारी राय है कि इस प्रश्न पर कोई राय व्यक्त करना आवश्यक नहीं है कि संशोधित नियम 111 का अंतिम भाग अनिवार्य है या निर्देशात्मक। हमारे समक्ष उपस्थित पक्षों के अधिवक्ता ने स्वीकार किया है कि उप-निदेशक ने अवर प्राधिकारियों का अभिलेख मंगवाया था। यह भी स्वीकार

किया जाता है कि अभिलेख उनके समक्ष था और उन्होंने पक्षकारों के अधिवक्ता की दलीलें सुनने के बाद, जैसा कि पहले कहा गया है, समय रहते पुनरीक्षण को खारिज कर दिया। इन परिस्थितियों में हमारा मत है कि उप निदेशक को समय रहते संशोधन को खारिज नहीं करना चाहिए था। धारा 48(1) में यह प्रावधान है कि चकबंदी निदेशक किसी अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा विनिश्चित किसी मामले या की गई कार्यवाही के अभिलेख को मंगा सकता है और उसकी जांच कर सकता है, ताकि वह कार्यवाही की नियमितता के बारे में या मामले या कार्यवाही में ऐसे प्राधिकारी द्वारा पारित किसी आदेश की शुद्धता, वैधानिकता या औचित्य के बारे में स्वयं को संतुष्ट कर सके और संबंधित पक्षों को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात मामले या कार्यवाही में ऐसा आदेश दे सकता है, जैसा वह उचित समझे। धारा 48 किसी पक्षकार को पुनरीक्षण आवेदन दायर करने का कोई अधिकार नहीं देती: यह निर्दिष्ट प्राधिकारी को अधीनस्थ प्राधिकारियों को सीमा के भीतर रखने की शक्ति प्रदान करती है। इस प्रयोजन के लिए, वह अधीनस्थ प्राधिकारी का अभिलेख मंगवा सकता है, उसकी जाँच कर सकता है और उचित आदेश पारित कर सकता है। धारा 48 के अंतर्निहित उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए, हमें ऐसा प्रतीत होता है कि एक बार जब निर्दिष्ट प्राधिकारी द्वारा अभिलेख मँगवा लिया जाता है, तो उसे सामान्यतः अभिलेख की जाँच करने और यह जाँचने से इनकार नहीं करना चाहिए कि क्या अवर प्राधिकारी ने कोई गलती की है। जब तक अभिलेख मँगवाया नहीं जाता, तब तक धारा 48 के अधीन आवेदन करने वाले व्यक्ति को घटनास्थल पर उपस्थित कर्ता कहा जा सकता है। परन्तु जब अभिलेख मँगवा लिया जाता है, तो हमें ऐसा प्रतीत होता है कि वह घटनास्थल पर उपस्थित कर्ता नहीं रह जाता। जिस निर्दिष्ट प्राधिकारी ने अभिलेख मंगवाया है, वह घटनास्थल पर उपस्थित कर्ता है। तदनुसार, उसे अभिलेख की जाँच करनी चाहिए और ऐसा आदेश पारित करना चाहिए जिससे न्याय को बढ़ावा मिले।

5. हम जो दृष्टिकोण अपना रहे हैं, उसका समर्थन जे.पी. ओझा बनाम आर.आर. टंडन मनु/यूपी/0120/1962:[ए.आई.आर. 1962 इला 485] से होता है। उस वाद में जिला न्यायाधीश द्वारा सुनवाई के दौरान पुनरीक्षण याचिका को इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि इसे वकालतनामा दाखिल किए बिना एक अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया था। एक विद्वान एकल न्यायाधीश ने कहा कि अभिलेख मंगवाए जाने के बाद, जिला न्यायाधीश को तकनीकी आधार पर पुनरीक्षण याचिका खारिज नहीं करनी चाहिए थी। ओम प्रगाश बनाम मोती लाल [1958 ए.एल.जे. 210] में मुख्य न्यायमूर्ति मूथम ने कहा: न्यायालय ने इन मामलों के अभिलेख केवल इस उद्देश्य से मंगवाए हैं कि वह यह निर्धारित कर सके कि उसे अपनी पुनरीक्षण शक्तियों का प्रयोग करना चाहिए या नहीं। इस टिप्पणी से यह संकेत मिलता है कि पुनरीक्षण प्राधिकारी किसी मामले का अभिलेख तभी मंगवाता है जब वह प्रथम दृष्टया संतुष्ट हो कि पुनरीक्षण शक्तियों का प्रयोग करने और न्याय करने के उद्देश्य से मामले के अभिलेख की जाँच करना न्यायोचित और उचित है। इसलिए, हमारे विचार से, अभिलेख मँगवाने के बाद, उन्हें केवल तकनीकी आधार पर संशोधन को खारिज नहीं करना चाहिए। आख़िरकार, न्याय करने के लिए उन्हें स्वतः हस्तक्षेप करना चाहिए और कर सकते हैं।

6. संशोधन प्राधिकारी को सामान्यतः केवल प्रक्रियागत दोषों के आधार पर संशोधन को खारिज नहीं करना चाहिए, क्योंकि प्रक्रिया ही तो विधि का तंत्र है - वह माध्यम और साधन जिसके द्वारा विधि का प्रशासन होता

है और न्याय प्राप्त होता है। यह विचित्र रूप से अपने उचित कार्य से विमुख हो जाता है जब इसे सुविधा प्रदान करने के बजाय, कानूनी अधिकारों में बाधा डालने और यहाँ तक कि उन्हें समाप्त करने की अनुमति दी जाती है, और इस प्रकार इसे वहीं शासन करने दिया जाता है जहाँ इसे कार्य करना चाहिए। (देखें हेनरी जे.बी. केंडल बनाम पीटर हैमिल्टन (1879) 4 एसी 504)। मा श्वे म्या बनाम माउंग मो ह्नांग मनु/पीआर/0130/1921 : एआईआर 1922 PC 249 में लॉर्ड बकमास्टर ने कहा: न्यायालयों के सभी नियम न्याय के समुचित प्रशासन को सुनिश्चित करने के लिए बनाए गए प्रावधानों के अलावा और कुछ नहीं हैं, और इसलिए यह आवश्यक है कि उन्हें उस उद्देश्य के अनुरूप बनाया जाए और उसके अधीन बनाया जाए। हनीफुन्निसा बनाम चुन्नी लाल मनु /यूपी/0192/1921 : एआईआर 1921 इला 321 में इस न्यायालय ने कहा:

जब पक्षकारों का अधिकार स्पष्ट हो और दूसरे पक्ष को कोई गलतफहमी, आश्चर्य या पूर्वाग्रह न हो, तो न्यायालय अनुशासनात्मक निकाय के रूप में अयोग्य प्रक्रिया के लिए उन्हें दंडित नहीं करते। इस मामले में, रिकॉर्ड आ चुका था। चकबंदी अधिकारी का आदेश, जो याचिकाकर्ता द्वारा दाखिल नहीं किया गया था, पुनरीक्षण प्राधिकारी के समक्ष था। वह उस आदेश को पढ़ सकता था। याचिकाकर्ता द्वारा चकबंदी अधिकारी के आदेश की प्रमाणित प्रति दाखिल न करने से दूसरे पक्ष को कोई नुकसान नहीं हुआ।"

32. ***प्रीतम सिंह (मृत) द्वारा एलआरएस एवं अन्य बनाम सहायक निदेशक चकबंदी एवं अन्य, (1996) 2 एससीसी 270*** के वाद में, यह निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया है:-

"6. जब मामला सहायक निदेशक (चकबंदी) के समक्ष पुनरीक्षणाधीन था, तब पूरा मामला उनके पास था और उनका क्षेत्राधिकार अप्रतिबंधित था। जब मामला उनके पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार में था, तब वे पूर्ण नियंत्रण में थे और बंदोबस्त अधिकारी (चकबंदी) द्वारा प्रतिप्रेषण हेतु दिए गए आदेश की सत्यता की जाँच करने की स्थिति में थे। दूसरे शब्दों में, पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए सहायक निदेशक (चकबंदी) बंदोबस्त अधिकारी द्वारा विवादित भूमि को उन काश्तकारों द्वारा छोड़े जाने के संबंध में दर्ज निष्कर्ष की जांच कर सकता है, जिनका नाम निर्णायक समय पर 1359 फसली के खसरा में दर्ज किया गया था। एक उच्च न्यायालय के रूप में यह शक्ति सहायक निदेशक (समेकन) के पास थी, भले ही बंदोबस्त अधिकारी के रिमांड आदेश को अलग और स्वतंत्र कार्यवाही में विशेष रूप से चुनौती नहीं दी गई हो। उल्लेखनीय है कि सहायक निदेशक (चकबंदी) का न्यायालय पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार वाला न्यायालय है, अन्यथा उसे अधीनस्थ अधिकारी के किसी भी आदेश को स्वप्रेरणा से संशोधित करने का अधिकार है। ऐसी स्थिति में, जब पूरा मामला सहायक निदेशक (चकबंदी) के समक्ष था, तो उन्हें पक्षकारों के बीच पूर्ण न्याय करने में कोई बाधा महसूस नहीं करनी चाहिए थी। उच्च न्यायालय में लड़ी गई कानूनी लड़ाई से अपीलकर्ताओं को कोई भौतिक लाभ नहीं हुआ। सहायक निदेशक (चकबंदी) द्वारा पूरे विवाद पर गुण-दोष के आधार पर निर्णय लिया जाना अपेक्षित था।

33. अधिनियम, 1953 की धारा 38 और 39, प्रासंगिक होने के कारण, यहां उद्धृत की गई हैं:-

"38. साक्षियों की उपस्थिति सुनिश्चित करने की शक्तियाँ तथा कुछ मामलों में - *(1) [चकबंदी निदेशक तथा उपनिदेशक चकबंदी] [उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 38 सन् 1958 द्वारा अंतःस्थापित], बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी, चकबंदी अधिकारी तथा सहायक चकबंदी अधिकारी को निम्नलिखित मामलों के संबंध में ऐसी समस्त*

शक्तियाँ, अधिकार तथा विशेषाधिकार प्राप्त होंगे जो किसी कार्यवाही के अवसर पर सिविल न्यायालय में निहित हैं -

(ए) गवाहों की उपस्थिति सुनिश्चित करना तथा शपथ, प्रतिज्ञान या अन्यथा उनको परीक्षित करना तथा विदेश में गवाहों की जांच करने के लिए कमीशन या अनुरोध जारी करना;

(बी) किसी को भी कोई दस्तावेज प्रस्तुत करने के लिए बाध्य करना;

(सी) अवमानना के दोषी व्यक्तियों को दण्डित करने के लिए, तथा ऐसे अधिकारी द्वारा हस्ताक्षरित समन को प्रतिस्थापित किया जा सकेगा तथा वह किसी औपचारिक आदेशिका के समतुल्य होगा जो गवाहों की उपस्थिति सुनिश्चित करने तथा दस्तावेज प्रस्तुत करने के लिए बाध्य करने के लिए सिविल न्यायालय द्वारा किसी कार्यवाही में जारी की जा सकती है।

(2)[* * *] [उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 38 सन् 1958 द्वारा विलोपित।]

*39. **दस्तावेजों आदि को प्रस्तुत करने की शक्तियां-** (1) किन्हीं शर्तों या प्रतिबंधों के अधीन रहते हुए, जो विहित किए जा सकते हैं, चकबंदी निदेशक, उप निदेशक चकबंदी, बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी, चकबंदी अधिकारी या सहायक चकबंदी अधिकारी लिखित आदेश द्वारा किसी व्यक्ति से ऐसे दस्तावेज, कागज-पत्र और रजिस्टर प्रस्तुत करने या ऐसी जानकारी देने की अपेक्षा कर सकते हैं, जिन्हें वह इस अधिनियम के अधीन अपनी शक्तियों के उचित प्रयोग या अपने कर्तव्यों के उचित निर्वहन के लिए आवश्यक समझे।*

(2) इस धारा के अधीन कोई दस्तावेज, कागज या रजिस्टर प्रस्तुत करने या कोई सूचना देने के लिए अपेक्षित प्रत्येक व्यक्ति भारतीय दंड संहिता की धारा 175 और 176 के अर्थ के अंतर्गत ऐसा करने के लिए विधिक रूप से बाध्य समझा जाएगा।

34. अधिनियम, 1953 की धारा 48 के अंतर्गत उप निदेशक चकबंदी की शक्ति के मुद्दे पर, साथ ही उप निदेशक चकबंदी द्वारा मामले को वापस भेजने के औचित्य के संबंध में, ऊपर संदर्भित विधि के मद्देनजर, इस न्यायालय ने दिनांक 14.02.2025 के आक्षेपित आदेश पर विचार किया और उसके अवलोकन से पता चलता है कि वाद को चकबंदी अधिकारी को वापस भेजने के प्रयोजनों के लिए, विपक्षी संख्या 1 ने उनके समक्ष आक्षेपित आदेश (आदेशों) में कुछ त्रुटियों को इंगित किया है, जो इस न्यायालय के विचार से, विपक्षी संख्या 1 द्वारा अधिनियम, 1953 की धारा 48 के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करते हुए स्वयं देखा जाना चाहिए था, क्योंकि उनके समक्ष पूरी सामग्री उपलब्ध थी, जिसके लिए, उप निदेशक चकबंदी की शक्ति पर प्रतिपादित विधि के अनुसार, उन्हें जांच करने का अधिकार था। संक्षेप में, अधिनियम, 1953 की धारा 48 किसी भी आदेश की सत्यता/वैधता/औचित्य की जांच करने के लिए पर्याप्त शक्ति प्रदान करती है, जिसमें किसी अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा दर्ज किए गए किसी भी निष्कर्ष, चाहे वह तथ्य या विधि का हो, की जांच करने की शक्ति शामिल है, साथ ही किसी मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य की पुनः मूल्यांकन करने की शक्ति भी शामिल है।

35. उपरोक्त कारणों से, इस न्यायालय का विचार है कि आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप आवश्यक है।

36. तदनुसार, रिट याचिका स्वीकार की जाती है। विपक्षी संख्या 1 द्वारा पारित दिनांक 14.02.2025 का आक्षेपित आदेश एतद्द्वारा निरस्त किया जाता है। यह मामला विपक्षी संख्या 1/उप निदेशक चकबंदी/अपर जिला मजिस्ट्रेट, (वित्त/आबकारी), सीतापुर को वापस भेजा जाता है ताकि वे मुकदमे के पक्षकारों को सुनवाई का समुचित अवसर प्रदान करते हुए, यदि इस संबंध में कोई अन्य विधिक बाधा न हो, तो इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत किए जाने की तिथि से छह माह की अवधि के भीतर, मामले का नए सिरे से निर्णय कर सकें।

37. कार्यवाही करते समय, संबंधित प्राधिकरण को निर्देश दिया जाता है कि वह किसी भी पक्ष को अनावश्यक स्थगन न प्रदान करे।

(2025) 4 ILRA 441

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 04.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया

रिट-बी संख्या 287/2025

जोधराम **...याचिकाकर्ता**

बनाम

डी.डी.सी., जिला हरदोई व अन्य **...प्रत्यर्थी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
देवेंद्र प्रताप, शशांक शेखर सिंह

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता:
सी.एस.सी., दिलीप कुमार पांडे

सिविल विधि - ऊसर भूमि - उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950- धारा 132 - वह भूमि जिसमें भूमिधरी अधिकार प्राप्त नहीं होते - उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम, 1953 - धारा 3(2) - "चकबंदी" का अर्थ है, एक इकाई में कई खातेदारों के बीच जोतों का पुनःव्यवस्थापन, ताकि उन्हें अधिक सघन बनाया जा सके, जिसमें उत्तर प्रदेश ज़मींदारी और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 132 के अंतर्गत आने वाली भूमि शामिल नहीं है - अभिनिर्धारित किया: याचिकाकर्ता को "ऊसर" के रूप में दर्ज भूमि पर कोई अधिकार प्रदान नहीं किया जा सकता, जो याचिकाकर्ता को वृक्षारोपण के प्रयोजनों के लिए प्रदान की गई थी। (प्रस्तर 9)

अनुवादित

खारिज। (ई-5)

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री हेमंत कुमार पांडे, राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया तथा अभिलेख का अवलोकन किया गया।

2. पारित किए जाने वाले प्रस्तावित आदेश के मद्देनजर, निजी प्रत्यर्थी (प्रत्यर्थीगण) को नोटिस जारी करने से, यदि कोई हो, छूट दी जाती है।

3. वर्तमान याचिका में निम्नलिखित मुख्य अनुतोष की मांग की गई है:-

"(i) उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम, 1953 की धारा 40(1) के अंतर्गत पुनरीक्षण संख्या 83/2024, वाद संख्या 0052/2018 (कल्लू बनाम जोधाराम व अन्य) में विपक्षी संख्या 1 द्वारा पारित दिनांक 17.10.2024 के आक्षेपित आदेश को निरस्त करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में रिट आदेश या निर्देश जारी करें, जो गाटा संख्या 814, मिलजुमला/क्षेत्रफल 0.2202 हेक्टेयर; गाटा संख्या 1135/2, क्षेत्रफल 0.1592 हेक्टेयर; गाटा संख्या 1135/3, क्षेत्रफल 0.0075 हेक्टेयर; और गाटा संख्या 1131/2, मिलजुमला/क्षेत्रफल 0.1548 हेक्टेयर के संबंध में है। विवादित भूमि ग्राम मुसनाखेड़ा, मजरा कासिमपुर, तहसील संडीला, जिला हरदोई में स्थित है। इस रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 1 में संलग्न है।"

4. दिनांक 17.10.2024 का आक्षेपित आदेश नीचे उद्धृत है:-

आदेश तिथि:- 17/10/2024
निगरानी संख्या - 83/2024
ग्राम- कासिमपुर परगना- सण्डीला, तहसील- सण्डीला, जिला हरदोई।
निर्णय

प्रस्तुत निगरानी कल्लू पुत्र नत्था निवासी ग्राम - कासिमपुर, परगना व तहसील सण्डीला, जिला- हरदोई के द्वारा जोधाराम पुत्र मंगलू निवासी ग्राम-मुसनाखेड़ा मजरा कासिमपुर तहसील- सण्डीला जिला हरदोई एवं 02 अन्य को पक्षकार बनाकर चकबन्दी अधिकारी द्वारा अपील संख्या-744 अंतर्गत 21(2) 302 उ०प्र०जो०च०अधि० में पारित आदेश दिनांक 09.06.1994/05.08.1997 के विरूद्ध दिनांक 26.02.2018 को इस न्यायालय में योजित की गयी है। निगरानीकर्ता द्वारा विलम्ब मर्षण हेतु सपथ-पत्र सहित सम्यक कारण दर्शाते हुए प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत किया गया है।

निगरानी मेमों के माधाम से निगरानीकर्ता का कथन है कि ब०अ०च० द्वारा पारित आदेश दिनांक 744/05 08.1997 चकबन्दी प्राविधानों एवं विधि से परे जाकर व्यक्ति विशेष को अनुचित लाभ पहुंचाने के

उद्देश्य से पारित किया गया है। चकदार संख्या 180 जोधाराम पुत्र मंगलू बहुत ही चतुर चालाक व्यक्ति है जिसने च०अ० बेहदर/सण्डीला के न्यायालय में दिनाक 11.02.1994 को धारा-20 उ०प्र०जो०च० अधि० के अतर्गत आपत्ति देकर चक में चकरोड व नाली की मांग के साथ पड़ोस के गा०सं० की 10 पैसे मालियत लगाकर चक बनाने की मांग की। तत्कालीन च०अ० सण्डीला/बेंहदर विजय कुमार थे जिन्होंने जोधाराम पुत्र मंगलू की मांग को निराधा पाते हुये गुण-दोष पर आपत्ति दिनांक 27.04.1994 को निरस्त कर दी। जोधाराम पुत्र मंगलू ने च०अ० के आदेश दिनांक 27.04.1994 के विरूद्ध ब०अ०च० न्यायालय में धारा-21 उ०प्र०जो०च० अधि० के अन्तर्गत अपील करके ऊष व वृक्षारोपण के गा०सं० 814 व 1135 की दर 10 पैसे लगाकर मांग करते हुये दिनांक 12.05.1994/17.05. 1994 को अपील योजित की। तत्कालीन ब०अ०च० पी०डी वर्मा ने दिनांक 09.06.1994 को जोधाराम चकदार सख्या 180 की अपील मांग के विपरीत एवं निराधार होने के कारण दिनांक 09.06.1994 को गुण-दोष पर निरस्त कर दी। दिनांक 30.06. 1994 को तत्कालीन ब०अ०च० पी०डी० वर्मा सेवानिवृत्त हो गये। दिनांक 13.06.1997 को पी०डी० वर्मा तत्कालीन ब०अ०च० द्वारा गुण-दोष पर पारित आदेश दिनांक 09.06.1994 के विरूद्ध जोधाराम द्वारा रिकाल आवेदन प्रस्तुत किया गया। जोधाराम ने एक रणनीति के तहत तत्कालीन ब०अ०च० विजय कुमार से सांठ-गांठ के तहत वाददायर दिया गया, जिसे सरकार व ग्रामसभा को बिनां सुने पी०डी० वर्मा के गुणदोष के आदेश दिनाक 09.06 1994 को दिनांक 15.07 1997 को रिकाल कर लिया गया। दिनांक 05.08.1997 को तत्कालीन ब०अ०च० द्वारा जोधाराम की अपील पुनः स्वीकार करते हुये व ऊसर वृक्षारोपण के गा० सं० 814 व 1135/2 1135/3 की दर 20 पैसे निर्धारित कर जोधाराम पुत्र मल्लू को आवंटित कर दिया तथा जोधाराम का चक गा०सं० 1131/2 रकबा 0.1548 एयर, दर 50 पैसे को वृक्षारोपण में दर्ज करके जोधाराम को 2.5 गुना लाभ गैरविधिरी दिया गया तथा ऊसर गाटे के बदले ऊसर का गाटा निल कर दिया गया। जबकि च०अ० स्तर पर विजय कुमार सण्डीला/बेंहदर रहते हुये दिनांक 27.04.1994 की जोधाराम की आपत्ति बलहीन होने के कारण निरस्त की थी वही च०अ० प्रमोशन पाकर हरदोई मुख्यालय पर 1997 में बतौर ब०अ०च० न्यायिक हुये तथा जोधाराम द्वारा दाखिल चक अपील ब०अ०च० पी०डी० वर्मा दिनांक 09.06 1997 को निरस्त कर दी थी तब विजय कुमार को गुण-दोष पर पारित आदेश दिनांक 09.06.1994 को अपने आदेश दिनांक 15.07.1997 द्वारा रिकाल करने व पुनः गअपील को दिनाक 05.08.1997 स्वीकार कर ग्रामसभा व वृक्षारोपण की भूमि की मालियत 20 पैसे लगाकर लुटाना का क्षेत्राधिकार प्राप्त नहीं है। विजय कुमार ने प्रलोभन में पड़कर विधि के विपरीत जाकर ग्रामसभा के ऊसर व वृक्षारोपण के गा०सं० 814 व 1135/2 व1135/3 जिसका नया गाटा क्रमशः 1452/0.2202 व 2004/0.1667 बना है 20 पैसा दर लगाकर 2.5 गुना जोधाराम पुत्र मंगलू चकदार 180 को लाभ दिया है। जोधाराम के नाम प्रस्तावित चक का नया गा०सं० 1452,2004 है। निगरानीकर्ता का भूमिधरी का गा०सं० 815 है, जिसके मिले ऊसर का गाटा संख्या 814 है। चूंकि निगरानीकर्ता हरिजन (चमार) है उसका बहुत पुराना अनाधिकार कब्जा चला आ रहा है। निगरानीकर्ता के पूर्वजों से कब्जा व दखल है। गा०सं० 814 में निगरानी कर्ता के पूर्वजों की कब्रे, मकान व पक्का कुंआ है तथा पेड़ पूर्वजों द्वारा लगाये गये खड़े हैं। अंत में याचना की है कि निगरानी स्वीकार की जाये। ब०अ०च० द्वारा पारित आदेश दिनांक 05.08.1997 निरस्त कर गा०सं० 814 व 1135/2, 1135/3 जिनका नया गा०सं० 1452 व 2004 बना है को ऊसर व वृक्षारोपण में पूर्ववत दर्ज किया जाये।

उभय पक्ष हाजिर आये, उनके द्वारा दिये गये तों को ध्यानपूर्वक सुना गया। निगरानीकर्ता की ओर से तर्क दिया गया कि ग्राम सभा के ऊसर व वृक्षारोपण के गा०सं० 814 व 1135/2 व 1135/3 जिसका नया गाटा क्रमशः 1452/0.2202 व 2004/0.1667 बना है की दर 20 पैसा लगाकर 5 गुना जोधाराम पुत्र मंगलू चकदार 180 को लाभ दिया है। उक्त गाटों को यथावत ऊसर व वृक्षारोपण के मद में अंकित किया जाये। उत्तरवादी की ओर से तर्क दिया गया है कि कोई भी संशोधन न किया जाये।

मैनें पत्रावली का विधिवत अवलोकन किया। अवलोकन से स्पष्ट है कि ब०अ०च० द्वारा अपने आदेश दिनांक 05.08.1997 के द्वारा चकदार संख्या-180 जोधाराम पुत्र मंगलू को ऊसर व वृक्षारोपण को प्रभावित करते हुये चक दिया गया है। ब०अ०च० के आदेश के साथ संलग्न संशोधन तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि ऊसर के गा०सं० 814 मि०/0.2202 हे० की कीमत 20 पैसे व वृक्षारोपण के गा०सं० 1135/2/0.1592 व गा०सं० 1135/3/0.0075 की कीमत 20 पैसा निर्धारित है।

चूंकि ग्रामसभा - 132 की भूमि पर किसी भी खातेदार को किसी भी दशा में संक्रमणीय भूमिधर के अधिकार नही दिये जा सकते है एवं ब०अ०च० द्वारा जोत चकबन्दी अधिनियम में निहित प्राविधानों के विपरीत जाकर ऊसर व बंजर के गाटों की कीमत 20 पैसे निर्धारित करते हुये जोधाराम को चक प्रदिष्ट किया है, जो किसी भी दशा में विधिसंगत नहीं।

उपरोक्त विवेचना के आधार पर ऊसर के गा०दसं० 814 मि०/0.2202 हे० की निर्धारित कीमत 20 पैसे निरस्त करके यथावत ऊसर में व वृक्षारोपण के गा०सं० 1135/2/0.1592 व गा०सं० 1135/3/0.0075 की निर्धारित कीमत 20 निरस्त करते हुये यथावत वृक्षारोपण में दर्ज करते हुये चकदार संख्या 180 जोधाराम पुत्र मंगलू का गा०सं० 1131/2 मि० रकबा 0.1548 हे० दर 50 पैसे मू० 77.38 पैसे का चक पूर्ववत उनके नाम रखा जाना विधि संगत है। तद्नुसार प्रस्तुत निगरानी स्वीकार किये जाने योग्य है। उपरोक्त विवेचना के आधार पर आदेश हुआ कि-निगरानी संख्या- 83/2024 कल्लू बनाम जोधाराम आदि स्वीकार की जाती है। ग्राम-कासिमपुर, परगना- सण्डीला, तहसील- सण्डीला, जिला-हरदोई के बावत ब०अ०च० द्वारा पारित आदेश दिनांक 05.08.1997 निरस्त किया जाता है। ऊसर के गा०सं० 814 मि०/0.2202 हे० की निर्धारित कीमत 20 पैसे निरस्त करके यथावत ऊसर में व वृक्षारोपण के गा०सं० 1135/2/0.1592 व गा०सं० 1135/3/0.0075 की निर्धारित कीमत 20 निरस्त करते हुये यथावत वृक्षारोपण में दर्ज करते हुये चकदार संख्या 180 जोधाराम पुत्र मंगलू का गा०सं० 1131/2 मि० रकबा 0.1548 हे० दर 50 पैसे मू० 77.38 पैसे का चक पूर्ववत उनके नाम दर्ज किया जाता है।

पत्रावली बाद अमलदरामद दाखिल-दफ्तर हो।

दिनांक:

(ज्ञानेश कुमार त्रिपाठी)
उप संचालक
चकबन्दी हरदोई।

5. उपरोक्त उद्धृत आदेश से यह स्पष्ट है कि वर्तमान रिट याचिका में मुद्दा यू.पी. जेड.ए. एवं एल.आर. अधिनियम, 1950 (संक्षेप में "अधिनियम, 1950") की धारा 132 से संबंधित है, क्योंकि जिस भूमि के संबंध में याचिकाकर्ता अधिकार का दावा कर रहा है, वह अधिनियम, 1950 की धारा 132 के अंतर्गत आने वाली भूमि

है, जो गाटा संख्या 814एम/0.2202 हेक्टेयर, गाटा संख्या 1135/2/0.1592 हेक्टेयर, गाटा संख्या 1135/3/0.0075 हेक्टेयर है और इस तथ्य का खंडन नहीं किया गया है।

6. अधिनियम, 1950 की धारा 132 नीचे उद्धृत है:-

"132. वह भूमि जिसमें भूमिधरी अधिकार प्रोद्भूत नहीं होंगे।*- धारा 131 में किसी बात के होते हुए भी, किन्तु धारा 19 के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, भूमिधरी अधिकार निम्नलिखित में प्रोद्भूत नहीं होंगे -*

(ए) चारागाह भूमि या जल से ढकी हुई भूमि जो सिंघाड़ा या अन्य उपज उगाने के लिए उपयोग की जाती है या नदी के तल में स्थित भूमि जो आकस्मिक या कभी-कभार खेती के लिए उपयोग की जाती है;

(बी) स्थानान्तरित या अस्थिर खेती के ऐसे क्षेत्र जिन्हें राज्य सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा निर्दिष्ट करे; और

(सी) राज्य सरकार द्वारा राजपत्र में अधिसूचना द्वारा घोषित भूमि, जो किसी [गांव सभा] या स्थानीय प्राधिकरण की टोंग्या वृक्षारोपण या उपवन भूमि के लिए अभिप्रेत या अलग रखी गई है या किसी सार्वजनिक प्रयोजन के लिए अर्जित या धारित भूमि है और विशिष्टतया तथा इस खंड की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना-

(i) सैन्य शिविरों के लिए अलग रखी गई भूमि;

(ii) रेलवे या नहर की सीमाओं के भीतर स्थित भूमि;

(iii) किसी छावनी की सीमा के भीतर स्थित भूमि;

(iv) स्थानीय प्राधिकरण के स्वामित्व वाले मल-शोधन फार्मों या ट्रेंचिंग ग्राउंडों में शामिल भूमि;

(v) उत्तर प्रदेश नगर सुधार अधिनियम, 1919 (उत्तर प्रदेश अधिनियम V11, 1919) की धारा 42 के अंतर्गत स्वीकृत योजना के अनुसार नगर सुधार ट्रस्ट द्वारा या उत्तर प्रदेश नगर पालिका अधिनियम, 1916 (उत्तर प्रदेश अधिनियम VII, 1916) की धारा 8 के खंड (क) या खंड (ग) में उल्लिखित किसी उद्देश्य के लिए नगरपालिका द्वारा अर्जित भूमि; और

(vi) उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम, 1953 (उत्तर प्रदेश अधिनियम V, 1954) के अंतर्गत सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए अलग रखी गई भूमि।]"

7. उत्तर प्रदेश चकबन्दी अधिनियम, 1953 (संक्षेप में "अधिनियम, 1953") की धारा 3 की उपधारा 2 भी प्रासंगिक होने के कारण, नीचे उद्धृत की जाती है:-

"3. परिभाषाएँ.- इस अधिनियम में, जब तक कि विषय या संदर्भ में कोई प्रतिकूल बात न हो -

(1) X X X

(2) "चकबंदी" का अर्थ है एक इकाई में कई खातेदारों के बीच जोतों का इस प्रकार पुनर्व्यवस्थापन जिससे उनकी संबंधित जोतें अधिक सघन हो जाएं];

<u>स्पष्टीकरण - इस खंड के प्रयोजन के लिए, जोत में निम्नलिखित शामिल नहीं होंगे:</u>

(i) वह भूमि जो धारा 4 के अंतर्गत अधिसूचना जारी होने के वर्ष से ठीक पहले के कृषि वर्ष में उपवन थी;
(ii) नदीय क्रिया और गहन मृदा अपरदन वाली भूमि;
(iii) उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 132 में उल्लिखित भूमि;
(iv) ऐसे सघन क्षेत्र जो सामान्यतः लंबे समय तक जल-जमाव के अधीन रहते हैं;
(v) ऊसर, कल्लर और रिहाला भूखंड जो सघन क्षेत्र बनाते हैं, जिसमें ऐसे क्षेत्र के भीतर कृषि योग्य भूमि भी शामिल है।

8. उत्तर प्रदेश जोत चकबन्दी अधिनियम, 1953 (संक्षेप में "अधिनियम, 1953") की धारा 29-सी भी प्रासंगिक है और उसे भी यहां उद्धृत किया गया है:-

*"29-सी. **सार्वजनिक प्रयोजनों के लिए दान की गई भूमि का स्वामित्व**- (1) इस अधिनियम के अधीन सार्वजनिक प्रयोजनों के लिए दी गई भूमि, उस तारीख से, जिसको खातेदार समय-समय पर संशोधित इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन उन्हें आवंटित चकों पर कब्जा लेने के हकदार हो गए थे, गांव सभा में [उस क्षेत्र में जहां उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 117 लागू होती है और किसी अन्य क्षेत्र में राज्य सरकार में] निहित होगी और सदैव निहित समझी जाएगी तथा उसका उपयोग उस प्रयोजन के लिए किया जाएगा जिसके लिए उसे अंतिम चकबंदी योजना में निर्धारित किया गया था, या उस प्रयोजन के पूरा न होने की स्थिति में, ऐसे अन्य प्रयोजनों के लिए, जैसा विहित किया जाए।*

(2) उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 1/1951) की धारा 117 के उपबंध, यथावश्यक परिवर्तनों सहित, ऐसी भूमि पर [जो गांव सभा में निहित है] वैसे ही लागू होंगे मानो वह भूमि उस धारा की उपधारा (1) के अधीन राज्य सरकार द्वारा की गई घोषणा के आधार पर गांव सभा में निहित हो गई हो और मानो वह घोषणा इस धारा की उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट उपयोग संबंधी शर्तों के अधीन की गई हो।

(3) [* *]"*

9. उपर्युक्त वैधानिक प्रावधान पर समुचित विचार करने के बाद, यह न्यायालय पाता है कि याचिकाकर्ता को "ऊसर" के रूप में दर्ज भूमि पर कोई अधिकार प्रदान नहीं किया जा सकता है, जो याचिकाकर्ता को वृक्षारोपण के प्रयोजनों के लिए प्रदान की गई थी। तदनुसार, इस न्यायालय को पुनरीक्षण संख्या 83/2024, प्रकरण संख्या 0052/2018 (कल्लू बनाम जोधाराम एवं अन्य) में ओ.पी. संख्या 1 द्वारा पारित दिनांक 17.10.2024 के आदेश में कोई अवैधता या त्रुटि नहीं प्रतीत होती। रिट याचिका एतद्द्वारा खारिज की जाती है।

10. वाद व्यय सरलीकृत।

(2025) 4 ILRA 445

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 17.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया

रिट बी संख्या 338/2025

रमाकांत **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उप निदेशक, चकबंदी एवं अन्य **...प्रत्यर्थीगण**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
रवीन्द्र कुमार सिंह राज, अमिता शुक्ला, राजेश कुमार

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता:
मुख्य स्थायी अधिवक्ता

अनुवादित

क. उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम, 1953 - "ऊसर" भूमि - "ऊसर" के रूप में दर्ज भूमि पर कोई अधिकार प्रदान नहीं किया जा सकता। चकबंदी प्राधिकारी, जब यह पाया जाता है कि कोई वैध स्वामित्व धारक नहीं है और विधि के अनुसार भूमि सरकार और फिर गाँव सभा में निहित हो गई है, भले ही सरकार या गाँव सभा ने कोई आपत्ति दर्ज न की हो, तो वह भूमि गाँव सभा या राज्य सरकार के नाम दर्ज करने का निर्देश दे सकते हैं। (प्रस्तर 10, 12)

ख. उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम, 1953 - प्रतिप्रेषण आदेश - वर्तमान वाद में, उप निदेशक चकबंदी ने अपने आदेश में यह टिप्पणी की कि विवादित भूमि राजस्व अभिलेखों में प्रारंभ में "ऊसर" के रूप में दर्ज थी और निजी विपक्षीगण के बीच विवाद का निर्णय करते समय गाँव सभा/राज्य के हितों का ध्यान नहीं रखा गया था। उप निदेशक चकबंदी ने मुकदमे के पक्षकारों को गुण-दोष के आधार पर कुछ मुद्दों पर निर्णय लेने हेतु सुनवाई का अवसर प्रदान करने के बाद, मामले को पुनः निर्धारित करने के लिए चकबंदी अधिकारी को वापस भेज दिया। न्यायालय ने प्रतिप्रेषण मात्र के आक्षेपित आदेश में इस आधार पर हस्तक्षेप नहीं किया कि चकबंदी अधिकारी साक्ष्य प्राप्त करने के बाद वाद का निर्णय करेंगे। (प्रस्तर 13)

खारिज। (ई-5)

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री रवींद्र कुमार सिंह, राज्य/विपक्षी संख्या 1 के विद्वान अधिवक्ता श्री हेमंत कुमार पांडे को सुना गया तथा अभिलेख का अवलोकन किया गया।
2. विपक्षी संख्या 2 को नोटिस जारी करने से छूट दी जाती है।

3. वर्तमान याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने निम्नलिखित मुख्य अनुतोष मांगा है:-

"न्याय के हित में, उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 48 (1) के अंतर्गत राम बक्स बनाम रमा कांत, पुनरीक्षण संख्या 69/2025 में उप निदेशक चकबंदी लखनऊ द्वारा पारित दिनांक 6.3.2025 के आक्षेपित आदेश को निरस्त करने हेतु उत्प्रेषण आदेश या निर्देश जारी किया जाए। यह आदेश इस रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 1 के रूप में संलग्न है।

4. इस याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने अधिनियम, 1953 की धारा 48(1) के अंतर्गत पुनरीक्षण संख्या 69/2025 (राम बक्स बनाम रमा कांत) में पारित दिनांक 06.03.2025 के आदेश को चुनौती दी है, जिसके द्वारा विपक्षी संख्या 1/उप निदेशक चकबंदी, लखनऊ (संक्षेप में 'डी.डी.सी.') ने मुकदमे के पक्षकारों को सुनवाई का अवसर प्रदान करने के बाद, गुण-दोष के आधार पर कुछ मुद्दों पर निर्णय लेने हेतु मामले को पुनः चकबंदी अधिकारी, सरोजिनी नगर, लखनऊ (संक्षेप में "सी.ओ.") को वापस भेज दिया था। उप निदेशक चकबंदी, लखनऊ (संक्षेप में "डी.डी.सी.") द्वारा पारित दिनांक 06.03.2025 के आक्षेपित आदेश का प्रासंगिक अंश निम्नलिखित है:-

"मेरे द्वारा उभयपक्षों द्वारा प्रस्तुत की गयी बहस को देखा गया एवं अवर न्यायालय की पत्रावली में उपलब्ध साक्ष्यों का परिशीलन किया गया। निगरानीकर्ता द्वारा आधार वर्ष खाता संख्या 67 के गाटा संख्या 83, 164, 167, 183, 209, 253, 383 में सहखातेदारी की मांग की गयी है। निगरानीकर्ता का कथन है कि विवादित आराजी पैतृक है जबकि प्रतिपक्षी रामबक्श पुत्र कुशाल का कहना है कि विवादित आराजी पैतृक नहीं है। उक्त आराजी पट्टे से प्राप्त हुई थी। यह पट्टा उसके पिता को मिला था और पिता के मरने के बाद रामबक्श पुत्र कुशाल के नाम यह आराजी दर्ज हुई। विपक्षी द्वारा मूल पट्टा दिनांक 25.01.1955 का बताया गया है और खतौनी सन् 1369-1371 फसली तथा 1382-1384 फसली की नकल प्रस्तुत की गयी है। विपक्षी का यह भी कहना है कि प्रथम चक चकबन्दी में विवादित आराजी कुशाल पुत्र गोपाल के नाम अंकित थी। उस समय निगरानीकर्ता रामबवश के पिता नन्हे जीवित थे उनके द्वारा कोई आपत्ति नहीं की गयी। दूसरी चकबन्दी में इनके द्वारा यह आपत्ति प्रस्तुत की गयी है जो उत्तर प्रदेश जोत चकबन्दी अधिनियम 1953 के धारा-11 (ए) से बाधित है इसी बिन्दु पर चकबन्दी अधिकारी एवं अपीलीय न्यायालय द्वारा निगरानीकर्ता की आपत्ति और अपील निरस्त की दी गयी है। पत्रावली में निगरानीकर्ता द्वारा जो पारिवारिक सिजरा दिया गया है उसमें गोपाल के लड़के बदलू, कुशाल और नन्हे थे। कुशाल के लड़के प्रतिपक्षी रमाकान्त है। और नन्हे के लड़के रामबक्श है।

अनुवादित

पारिवारिक सिजरा दोनों पक्षों को स्वीकार है। बिन्दु यहां पर केवल यह है कि क्या जिस समय यह आराजी कुशाल को प्राप्त हुई थी उस समय कुशाल और नन्हें एक संयुक्त परिवार के सदस्य थे और क्या कुशाल की हैसियत कर्ता खानदान की थी और क्या पटटा कुशाल और नन्हे के संयुक्त प्रयासों से प्राप्त किया गया था। यह बिन्द विचारणीय है। इस सम्बन्ध में चकबन्दी अधिकारी सरोजनीनगर की मूल पत्रावली का अवलोकन किया गया। दिनांक 22.09.2014 को निगरानीकर्ता रामबक्श का बयान चकबन्दी अधिकारी की पत्रावली में हुआ है और उस समय उन्होंने अपनी उम्र 45 से 47 वर्ष बताया है और इससे स्पष्ट है कि जब क्या यह पटट्टा बताया जा रहा है उस समय रामबक्श पैदा नहीं हुए थे और प्रथम चक चकबन्दी में भी रामबक्श पुत्र नन्हे पैदा नहीं हुए थे। पत्रावली में रामशंकर पुत्र हरी प्रसाद निवासी खानपुर खान मऊ का बयान चकबन्दी अधिकारी के यहां हुआ है। यह बयान 2015 में रामशंकर द्वारा दिया गया है। उस समय उनकी उम्र 64 वर्ष थी। इनके द्वारा यह बताया गया है कि कुशाल और नन्हे विवादित आराजी पर आधे-आधे भाग पर काबिज है। दूसरे गवाह मुन्ना सिंह द्वारा भी यही कथन किया गया है कि विवादित आराजी पर दोनो आधे-आधे भाग है। पत्रावली में रामलली पत्नी रणजीत सिंह पुत्री कुशाल का भी बयान हुआ है। इनके द्वारा कहा गया है कि 1955 में 6 बीघा भूमि का अकेले पटटा हुआ था। रमाकान्त अपने पट्टे वाली भूमि पर काबिज है। पत्रावली में जो पूर्व रजिस्टर की नकल लगी है। उसके अनुसार मकान नम्बर 350 रमाकान्त का परिवार रमाकान्त के मुखिया के रुप में अंकित है तथा 398 पर भी रमाकान्त का नाम अकित है। 350 पर रामबक्श का भी नाम अंकित है तथा एक पूर्व रजिस्टर की नकल और संलग्न है जिसमें कर्ता खानदान कुशाल है। उसमें रामबक्श पुत्र नन्हा का नाम भी अंकित है। पत्रावली में 1369-1371 फसली की खतौनी पर एक आदेश का अंकन है। यह आदेश दिनाक 05.10.1961 को पारित किया गया है। जिसमें कुशाल पुत्र गोपाल का नाम गाटा संख्या-222 रकबा 10 विस्वा एवं दूसरा गाटा स्पष्ट नहीं है जिसपर आदेश बतौर सीरदार अकित किया गया है। मूल रुप से यह खाता ऊसर खाता था पटटे के रुप में दिनाक 25.01.1995 का जो पटटा प्रस्तुत किया गया है पटटा नियम 176 के अन्तर्गत प्रस्तुत किया गया है। उसमें गाटा सख्या-422 रकबा 5 बीघा अकित किया गया है। गाटा संख्या 222 रकबा 10 विस्वा और 401 रकबा 2. बीध हा अकित किया गया है यह पटटा भूमि प्रबन्धक समिति द्वारा दिनांक 25.01.1955 को दिया गया है लेकिन पत्रावली में जो खतौनी सलग्न है उसमे ऊसर खाते का गाटा संख्या-401 और 222 है। 422 गाटें पर ओवर राइटिंग है और जो फार्म 58 पत्रावली में सलंग्न है उसमें भी गाटा संख्या 422 रकबा 5 बीघा भी भिन्न स्याही से अंकित है तथा एस०डी०ओ० के आदेश दिनांक 05.10.1961 में भी गाटा संख्या-422 पर ओवर राइटिंग करके अंकन किया गया है। ऐसे में यह प्रकरण एक बार फर्जी अंकन का भी प्रतीत होता है। क्योंकि ऊसर खाते का 5 बीघा रकबा ओवर राइटिंग और भिन्न स्याही से अंकित करके किसी भी खातेदार का नाम अंकित नहीं किया जा सकता। इसमें गांवसभा का भी तथा सरकार का भी हित देखा जाना चाहिए। दोनों अवर न्यायालय द्वारा अपने आदेश में इन साक्ष्यों को नहीं देखा गया है तथा प्रतिपक्षी द्वारा जो कथन 1955 के पट्टे के सम्बन्ध में किया जा रहा है उसका अनुपालन 1961 में 1369-1371 फसली की खतीनी में किया जा रहा है। यह भी एक संदिग्ध प्रकरण है। निगरानीकर्ता रामबक्श की निगरानी का प्रश्न सहखातेदारी का है लेकिन इससे भी बड़ा बिन्दु सरकार के हित का है। क्योंकि गाटा संख्या 422 पर ओवर राइटिंग करके 5 बीघा ऊसर खाते का रकबा खारिज करके कुशाल पुत्र गोपाल के नाम अंकित किया गया और यही रकबा उनके वारिस प्रतिपक्षी रमाकान्त के नाम भी दर्ज हो गया। जिसके सम्बंध में दोनों अवर न्यायालयों द्वारा कोई भी विवेचना

नहीं की गयी है। इस कारण अवर न्यायालय के आदेश को स्थापित नहीं किया जा सकता। रामबक्श की निगरानी स्वीकार किये जाने योग्य है।

आदेश

ग्राम-खानपुर मऊ परगना-काकोरी, तहसील व जिला-लखनऊ के खाता संख्या 67 के सम्बन्ध में निगरानीकर्ता रामबक्श पुत्र नन्हे की निगरानी स्वीकार की जाती है। चकबन्दी अधिकारी का आदेश दिनांक 31.05.2019 तथा अपीलीय न्यायालय का आदेश दिनांक 17.10.2022 निरस्त करके पत्रावली चकबन्दी अधिकारी सरोजनीनगर को इस निर्देश के साथ प्रत्यावर्तित की जाती है। निगरानी के सम्बंध में विधिक परीक्षण करें कि क्या 1955 में वह संयुक्त परिवार का सदस्य था तथा परिवार के कर्ता खानदान कुशाल थे और संयुक्त संग्रह से पटटा प्राप्त किया गया था और उस पर रामबक्श का क्या हक बनता है? तथा मूल खातेदार कुशाल पुत्र गोपाल के नाम गाटा संख्या-422 रकवा 5 बीधा ऊसर खाते में खारिज करके दर्ज किया गया है। इस सम्बन्ध में 1955 का फार्म 58 जो पटटे के रुप में प्रस्तुत किया गया है। उसमें गाटा संख्या-422 का अंकन भिन्न स्याही से अंकित है तथा जो आदेश ऊसर खाते पर परंगनाधिकारी द्वारा अंकित दिखाया जा रहा है उसमें भी आदेश में गाटा संख्या-422 को ओवर राइटिंग किया गया है। इन तथ्यों को विधिवत् परीक्षण गांव सभा को एवं सरकार को पक्षकार बनाते हुए परीक्षण करके तथा अन्य मूल बिन्दुओं पर भी दोनों पक्षों को सुन करके बाद को चार माह के अन्दर निर्णीत करें। पत्रावली चकबन्दी अधिकारी सरोजनीनगर न्यायालय पर दिनांक 20.03.2025 को प्रस्तुत हो।"

5. रिट याचिका में वर्णित वाद के निस्तारण के संक्षिप्त तथ्य निम्नानुसार हैं:-

"4. याचिकाकर्ता के पिता भूमिहीन व्यक्ति थे और उन्हें खाता संख्या 67 गाटा संख्या 422, 222, 401 का भूमि प्रबंधन समिति द्वारा दिनांक 25.01.1955 को पट्टा प्रदान किया गया था।

5. यहां यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि जैसा कि अभिलेखों से पता चलता है, याचिकाकर्ता के पिता खुशाला के विरुद्ध ग्राम समाज खानपुर मऊ द्वारा कागजों में सुधार/पट्टे को रद्द करने की कार्यवाही शुरू की गई थी, जिसे बाद में उप-खण्ड अधिकारी लखनऊ द्वारा पारित आदेश दिनांक 05.10.1961 द्वारा रद्द कर दिया गया था।

6. यह कि वर्ष 1962 में प्रथम चकबंदी योजना के दौरान, एस.डी.ओ लखनऊ द्वारा पारित आदेश दिनांक 5.10.1961 के अनुसरण में, याचिकाकर्ता के पिता का नाम दिनांक 13.1.1963 के आदेश के द्वारा सहायक चकबंदी अधिकारी द्वारा खाता संख्या 67 गाटा संख्या 422, 222, 401 पर वाद संख्या 143 में दर्ज किया गया था और तब से उसके पिता का नाम अभिलेखों में दर्ज किया गया था और वर्ष 1955 से उसके पिता विवादित संपत्ति पर शांतिपूर्ण कब्जे में थे और उनकी मृत्यु के बाद याचिकाकर्ता उस पर शांतिपूर्ण कब्जे में है।

7. यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि वर्ष 1976 में विपक्षी संख्या 2 नन्हे के पिता भूमिहीन व्यक्ति होने के कारण उन्हें भी पट्टा प्रदान किया गया था, जिसे दिनांक 13.1.1963 के आदेश के द्वारा राजस्व अभिलेखों में दर्ज किया गया था। 23.04.1976 को सुपरवाइजर विधिगो द्वारा पारित आदेश के अनुसार, 1976 से उनके पिता विवादित संपत्ति पर शांतिपूर्ण कब्जे में थे और उनकी मृत्यु के बाद प्रत्यर्थी संख्या 2 उस पर शांतिपूर्ण कब्जे में है और राजस्व अभिलेखों में दर्ज है।

8. 1955 से लेकर वर्ष 1962 में प्रथम चकबंदी के प्रारंभ होने तक, जो वर्ष 1982 में संपन्न हुआ, विपक्षी संख्या 2 के पिता नन्हे या विपक्षी संख्या 2 राम बक्स ने कभी भी प्रश्नगत संपत्ति के पैतृक या संयुक्त हिंदू परिवार की संपत्ति होने के संबंध में कोई आपत्ति/दावा नहीं किया था और याचिकाकर्ता के पिता को कर्ता खानदान के रूप में दर्ज किया गया था।

9. कि नन्हे की मृत्यु के पश्चात विपक्षी संख्या 2 के पिता राम बक्स ने पहली बार यू.पी.जेड.ए. व एल.आर. अधिनियम की धारा 229/176 के अन्तर्गत झूठे एवं तुच्छ आधार पर वाद दायर किया है, जिसमें 1/2 हिस्से के सह-किरायेदारी अधिकार की घोषणा एवं उसी के विभाजन का दावा किया गया है, जो कि वाद संख्या 31/41/85/115 वर्ष 1985/86 राम बक्स बनाम खुशाल एवं अन्य है।

10. कि यहां यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि याचिकाकर्ता खुशाल के पिता को कोई नोटिस या सूचना दिए बिना, विपक्षी संख्या 2 के दावे को स्वीकार करते हुए, जाली हस्ताक्षर करके एक संक्षिप्त लिखित बयान दाखिल किया गया था।

11. कि केवल अपने पक्ष में साक्ष्य तैयार करने के इरादे से, जाली हस्ताक्षर करके यह जाली लिखित बयान दाखिल किया गया था और उसके बाद मामले को आगे बढ़ाने और उप-खण्ड मजिस्ट्रेट लखनऊ द्वारा पारित आदेश दिनांक 20.03.1990 के द्वारा इसे गैर-अभियोजन में खारिज करवा दिया गया।

12. इसके बाद विपक्षी संख्या 2 ने कई वर्षों तक चुप्पी साधे रखी और गांव को दूसरी चकबंदी के तहत दिनांक 27.9.2008 की अधिसूचना द्वारा पुनः अधिसूचित किया गया और दिनांक 3.9.2014 की अधिसूचना द्वारा विमुक्त किया गया।

13. उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 52 के अंतर्गत गांव के विमुक्त होने से ठीक पहले विपक्षी संख्या 2 ने उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 9ए (2) के अंतर्गत एक तुच्छ विलंबित आपत्ति दायर की, जिसमें विवादित संपत्ति में 1/2 हिस्से के सह-किरायेदारी अधिकार का दावा इस आधार पर किया गया कि भूमि संयुक्त परिवार की संपत्ति है और याचिकाकर्ता के पिता कर्ता खानदान थे और उनका नाम राजस्व अभिलेखों में व्यक्तिगत रूप से दर्ज है।

14. नोटिस प्राप्त होने के पश्चात् याचिकाकर्ता ने विस्तृत आपत्ति प्रस्तुत की है, जिसमें उल्लेख किया गया है कि विवादित भूमि पैतृक नहीं है, अपितु भूमिहीन व्यक्ति होने के कारण खाता संख्या 67 की गाटा संख्या 422/5 बीघा, 222/10 बिस्वा, 401/2 बीघा भूमि याचिकाकर्ता के पिता को व्यक्तिगत हैसियत में आवंटित की गई थी तथा तब से उनके पिता का नाम सिरदार के रूप में दर्ज है तथा उसके बाद से वे राजस्व अभिलेखों में दर्ज हैं तथा प्रश्नगत संपत्ति पर निरंतर काबिज हैं।

15. विद्वान चकबंदी अधिकारी सरोजनी नगर लखनऊ ने न्यायहित में दिनांक 26.9.2013 के आदेश द्वारा विलम्ब को क्षमा करते हुए आदेश पारित किया है।

16. यह भी तर्क प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता ने अपनी आपत्ति के समर्थन में दिनांक 25.1.1955 के पट्टे की प्रतिलिपि, खाता संख्या 67 की वर्ष 1369 से 1371 फसली की खतौनी की प्रतिलिपि, आकार पत्र 23 की प्रतिलिपि, गाटा संख्या 83, 164, 167, 183, 209, 253, 383 के संबंध में आकार पत्र 41 की प्रतिलिपि, प्रथम चकबंदी के आकार पत्र 45 की प्रतिलिपि तथा रमाकांत पुत्र खुशाल के नाम खाता संख्या 140 के संबंध में द्वितीय चकबंदी की भूमि 45 की प्रतिलिपि, रामबक्स पुत्र नन्हे के नाम खाता संख्या 180 के आकार पत्र

41 और 45 की प्रतिलिपि, वर्ष 1382 से 1384 की खतौनी की प्रतिलिपि, राम बक्स के मकान संख्या 350 के परिवार रजिस्टर की प्रतिलिपि, रमाकांत के स्वामित्व वाला मकान संख्या 398, दिनांक 20.3.1990 के आदेश की प्रति और स्वयं उनके, राम चंद्र यादव, आलोक यादव और श्रीमती राम लली के शपथपत्र पर साक्ष्य दाखिल किया है।

17. कि अपने वाद के समर्थन में विपक्षी संख्या 2-राम बक्स ने यू.पी.जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम की धारा 229/176 के अंतर्गत दायर वाद के वाद पत्र की प्रति, लिखित बयान की प्रति, परिवार रजिस्टर की प्रति और स्वयं राम बक्स और कुंवर बहादुर, राम शंकर, मुन्ना सिंह के शपथ पत्र दाखिल किए हैं।

18. कि यहां यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि याचिकाकर्ता ने लिखित बयान दाखिल करने और उस पर कोई हस्ताक्षर करने के तथ्य से इनकार करते हुए एक आपत्ति दायर की है और लिखित बयान जो उसके वाद के समर्थन में साक्ष्य के रूप में दायर किया गया है, एक जाली और मनगढ़ंत दस्तावेज है।

19. कि इसके बाद दोनों पक्षों के अधिवक्तागण ने एक-दूसरे के गवाहों से जिरह किया है।

20. यह कि पक्षकारों को विस्तार से सुनने तथा पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्यों का मूल्यांकन करने के पश्चात विद्वान चकबंदी अधिकारी सरोजनी नगर लखनऊ ने विपक्षी संख्या 2 की आपत्ति को निराधार पाते हुए आदेश दिनांक 31.5.2019 द्वारा इस टिप्पणी के साथ खारिज कर दिया है कि विपक्षी संख्या 2 पैतृक संपत्ति या संयुक्त हिंदू परिवार की संपत्ति के संबंध में कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं कर सका।

21. यह कि चकबंदी अधिकारी सरोजनी नगर लखनऊ द्वारा पारित आदेश दिनांक 31.5.2019 से व्यथित होकर विपक्षी संख्या 2 ने बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी लखनऊ के समक्ष उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 11 के अंतर्गत अपील दायर की है, जो अपील संख्या 102/2022 (राम बक्स बनाम रमाकांत) के रूप में पंजीकृत है।

22. कि याचिकाकर्ता ने अपील के विरुद्ध विस्तृत आपत्ति तथा शपथपत्र के साथ अंतरिम राहत आवेदन प्रस्तुत किया है।

23. कि विद्वान अपीलीय न्यायालय ने अवर न्यायालय के अभिलेख मंगवाकर सम्पूर्ण अभिलेख, समस्त दस्तावेजी एवं मौखिक साक्ष्यों का अवलोकन करने तथा संबंधित पक्षों को सुनवाई का अवसर प्रदान करने के पश्चात् दिनांक 17.10.2022 के आदेश द्वारा अपील को खारिज कर दिया है, जिसमें चकबंदी अधिकारी, सरोजनी नगर, लखनऊ द्वारा पारित दिनांक 31.5.2019 के आदेश की पुष्टि इस टिप्पणी के साथ की गई है कि अपीलकर्ता प्रश्नगत संपत्ति को पैतृक संपत्ति सिद्ध करने के लिए कोई विश्वसनीय साक्ष्य प्रस्तुत नहीं कर सका तथा द्वितीय चकबंदी कार्यवाही में प्रारम्भ की गई कार्यवाही उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 11-ए द्वारा वर्जित है। याचिकाकर्ता के पिता तथा उसके पश्चात् याचिकाकर्ता का नाम प्रथम चकबंदी कार्यवाही के बाद से लगातार दर्ज है।

24. चकबंदी अधिकारी, सरोजनी नगर, लखनऊ द्वारा पारित आदेश दिनांक 31.5.2019 तथा बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी, लखनऊ द्वारा पारित आदेश दिनांक 17.10.2022 से व्यथित होकर विपक्षी संख्या 2 ने उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 48(1) के अन्तर्गत पुनरीक्षण वाद संख्या 69 सन् 2025 (राम बक्स बनाम रमा कान्त) दाखिल किया है।

25. तामील के पश्चात् याचिकाकर्ता उपस्थित हुआ तथा उसने शपथ पत्र के साथ पुनरीक्षण एवं अन्तरिम राहत आवेदन के विरूद्ध विस्तृत आपत्तियां दाखिल किया।

26. विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय ने वाद के साक्ष्यों, तथ्यों और परिस्थितियों का परीक्षण करने तथा दलीलों से आगे बढ़कर, अत्यंत मनमाने तरीके से, आदेश दिनांक 6.3.2025 द्वारा मामले को चकबंदी अधिकारी सरोजनी नगर लखनऊ के समक्ष आदेश में की गई टिप्पणियों के आलोक में नए सिरे से निर्णय लेने के लिए वापस भेज दिया है, जबकि यह टिप्पणी स्वयं अनुचित है और विधि की दृष्टि में पोषणीय नहीं है।

6. उपरोक्त दलीलों के आधार पर, याचिकाकर्ता ने उप निदेशक चकबंदी, लखनऊ द्वारा पारित आदेश दिनांक 06.03.2025 को चुनौती देते हुए इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है।

7. वर्तमान याचिका का विरोध करते हुए, राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री हेमंत कुमार पाण्डेय ने तर्क प्रस्तुत किया है कि आक्षेपित आदेश से यह स्पष्ट है कि वर्तमान वाद में मुद्दा यू.पी.जेड.ए.एवं एल.आर. अधिनियम, 1950 (संक्षेप में "अधिनियम, 1950") की धारा 132 से संबंधित है, क्योंकि जिस भूमि के संबंध में याचिकाकर्ता अधिकार का दावा कर रहा है, वह अधिनियम, 1950 की धारा 132 के अंतर्गत आती है और इस प्रकार राज्य/गाँव सभा का हित, जो संबंधित चकबंदी अधिकारी के समक्ष अपना पक्ष प्रस्तुत करेगा और सिद्ध करेगा, आक्षेपित आदेश से प्रभावित होगा, इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किया जाता है।

8. उपरोक्त पर विचार किया गया और आक्षेपित आदेश दिनांक 06.03.2025 सहित अभिलेख का अवलोकन किया गया।

9. मामले को समाप्त करने के लिए इस न्यायालय ने प्रासंगिक प्रावधानों पर ध्यान दिया, जो निम्नानुसार हैं।

(क) अधिनियम, 1950 की धारा 132 नीचे उद्धृत है:-

"132. वह भूमि जिसमें [भूमिधारी] अधिकार प्राप्त नहीं होंगे।*- धारा 131 में किसी बात के होते हुए भी, किन्तु धारा 19 के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, [भूमिधारी] अधिकार निम्नलिखित में प्राप्त नहीं होंगे -*

(क) चारागाह भूमि या जल से आच्छादित भूमि जिसका उपयोग सिंघाड़ा या अन्य उपज उगाने के लिए किया जाता है या नदी तल में स्थित भूमि जिसका उपयोग आकस्मिक या कभी-कभार खेती के लिए किया जाता है;

(ख) स्थानान्तरित या अस्थिर खेती के ऐसे क्षेत्र जिन्हें राज्य सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा निर्दिष्ट करे; और

(ग) राज्य सरकार द्वारा राजपत्र में अधिसूचना द्वारा घोषित भूमि, जो किसी [गाँव सभा] या स्थानीय प्राधिकरण की टोंग्या वृक्षारोपण या उपवन भूमि के लिए अभिप्रेत या अलग रखी गई है या किसी सार्वजनिक उद्देश्य के लिए अर्जित या धारित भूमि है और विशेष रूप से तथा इस खंड की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना-

(i) सैन्य पड़ाव स्थलों के लिए अलग रखी गई भूमि;

(ii) रेलवे या नहर की सीमाओं के भीतर शामिल भूमि;

(iii) किसी छावनी की सीमा के भीतर स्थित भूमि;

(iv) स्थानीय प्राधिकरण के स्वामित्व वाले मल-शोधन फार्मों या खाई खोदने के मैदानों में शामिल भूमि;

(v) उत्तर प्रदेश नगर सुधार अधिनियम, 1919 (उत्तर प्रदेश अधिनियम V11, 1919) की धारा 42 के अंतर्गत स्वीकृत योजना के अनुसार नगर सुधार न्यास द्वारा या उत्तर प्रदेश नगर पालिका अधिनियम, 1916 (उत्तर प्रदेश अधिनियम VII, 1916) की धारा 8 के खंड (क) या खंड (ग) में उल्लिखित किसी प्रयोजन हेतु किसी नगरपालिका द्वारा अर्जित भूमि; और

(vi) उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम, 1953 (उत्तर प्रदेश अधिनियम V, 1954) के अंतर्गत सार्वजनिक प्रयोजनों के लिए अलग रखी गई भूमि।]"

(ख) उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम, 1953 (संक्षेप में "अधिनियम, 1953") की धारा 3 की उपधारा 2, यहाँ उद्धृत है:-

"3. परिभाषाएँ.- इस अधिनियम में, जब तक कि विषय या संदर्भ में कोई प्रतिकूल बात न हो -

(1) X X X

(2) "चकबंदी" का अर्थ है एक इकाई में कई खातेदारों के बीच जोतों का इस प्रकार पुनर्व्यवस्थापन जिससे उनकी संबंधित जोतें अधिक सघन हो जाएँ;

***स्पष्टीकरण**.- इस खंड के प्रयोजन के लिए, जोत में निम्नलिखित शामिल नहीं होंगे:*

(i) वह भूमि जो धारा 4 के अधीन अधिसूचना जारी होने के वर्ष से ठीक पहले के कृषि वर्ष में उपवन थी;

(ii) नदीय क्रिया और गहन मृदा अपरदन के अधीन भूमि;

(iii) उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 132 में उल्लिखित भूमि;

(iv) ऐसे सघन क्षेत्र जो सामान्यतः लंबे समय तक जल-जमाव के अधीन रहते हैं;

(v) ऊसर, कल्लर और रिहाला भूखंड जो एक सघन क्षेत्र बनाते हैं, जिसमें ऐसे क्षेत्र के भीतर कृषि योग्य भूमि भी शामिल है।"

(ग). उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम, 1953 (संक्षेप में "अधिनियम, 1953") की धारा 29-सी का उद्धरण इस प्रकार दिया गया है:-

"29-सी. सार्वजनिक प्रयोजनों के लिए दान की गई भूमि का स्वामित्व - *(1) इस अधिनियम के अधीन सार्वजनिक प्रयोजनों के लिए दी गई भूमि, उस तिथि से प्रभावी होगी, जिस दिन खातेदार समय-समय पर संशोधित इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन उन्हें आवंटित चकों पर कब्जा लेने के हकदार हो गए थे, वह गांव सभा में [उस क्षेत्र में जहां उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 117 लागू होती है और किसी अन्य क्षेत्र में राज्य सरकार में] निहित होगी और हमेशा निहित समझी जाएगी तथा उसका उपयोग उस प्रयोजन के लिए किया जाएगा, जिसके लिए उसे अंतिम चकबंदी योजना में निर्धारित किया गया था, या उस प्रयोजन के असफल होने की स्थिति में, ऐसे अन्य प्रयोजनों के लिए, जैसा विहित किया जाए।*

(2) उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 1, 1951) की धारा 117 के उपबंध, यथावश्यक परिवर्तनों सहित, ऐसी भूमि पर [जो गांव सभा में निहित है] वैसे ही लागू होंगे मानो वह भूमि उस धारा की उपधारा (1) के अधीन राज्य सरकार द्वारा की गई घोषणा के आधार पर

गांव सभा में निहित हो, और मानो वह घोषणा इस धारा की उपधारा (1) में निर्दिष्ट उपयोग संबंधी शर्तों के अधीन की गई हो।

(3) [* *]"*

(घ) 1953 के अधिनियम की धारा 11 में निम्नलिखित प्रावधान है:-

***11. अपीलें। -** (1) धारा 9-क के अधीन कार्यवाही में कोई भी पक्षकार, जो उस धारा के अधीन सहायक चकबंदी अधिकारी या चकबंदी अधिकारी के आदेश से व्यथित है, आदेश की तिथि से 21 दिन के भीतर, बंदोबस्त अधिकारी, चकबंदी के समक्ष अपील दायर कर सकता है, जो अपील प्रस्तुत करने के पश्चात् संबंधित पक्षों को सुनवाई का अवसर प्रदान करते हुए, उस पर अपना निर्णय देगा जो इस अधिनियम द्वारा या उसके अधीन अन्यथा उपबंधित के सिवाय अंतिम होगा और किसी न्यायालय में प्रश्नगत नहीं किया जा सकेगा।*

(2) उपधारा (1) के अधीन अपील की सुनवाई करने वाला बंदोबस्त अधिकारी, चकबंदी, सक्षम क्षेत्राधिकार वाला न्यायालय समझा जाएगा, चाहे तत्समय प्रवृत्त किसी विधि में इसके विपरीत कोई बात अवश्य हो।"

10. उपर्युक्त वैधानिक प्रावधान पर समुचित विचार करने के बाद, यह न्यायालय यह पाता है कि "ऊसर" के रूप में दर्ज भूमि पर कोई अधिकार प्रदान नहीं किया जा सकता।

11. इस विषय पर, ***राम गोपाल बनाम उप निदेशक चकबंदी, बहराइच एवं अन्य [चकबंदी संख्या 33557/2018, निर्णीत दिनांक 22.01.2019] के वाद में पारित निर्णय में निम्नलिखित टिप्पणियां की गई हैं:-***

"मैंने संबंधित पक्षों का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए प्रतिस्पर्धी तर्कों पर गहन विचार किया है और इस याचिका पर उपलब्ध अभिलेखों का भी अवलोकन किया है।

जहां तक याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत प्रथम निवेदन का संबंध है कि चकबंदी अधिकारी द्वारा पारित आदेशों के विरुद्ध कुछ व्यक्तियों द्वारा बंदोबस्त अधिकारी, चकबंदी के समक्ष दायर अपीलें पोषणीय नहीं थीं, इस बिंदु पर केवल यह देखा जा सकता है कि चकबंदी प्राधिकारियों/न्यायालयों को राज्य और गाँव सभा के अधिकार और हितों की रक्षा करने का भारी कर्तव्य सौंपा गया है, यदि कोई मामला उनके समक्ष लाया जाता है।

अधिनियम की धारा 11-सी में विशेष रूप से प्रावधान है कि धारा 9-ए के अंतर्गत किसी आपत्ति या धारा 11 के अंतर्गत किसी अपील या धारा 48 के अंतर्गत पुनरीक्षण याचिका की सुनवाई के दौरान, चकबंदी प्राधिकारी यह निर्देश दे सकते हैं कि राज्य सरकार या गाँव सभा में निहित किसी भी भूमि को उनके नाम पर दर्ज किया जाए, भले ही ऐसी सरकार या गाँव सभा या स्थानीय प्राधिकारियों द्वारा कोई आपत्ति, अपील या पुनरीक्षण दायर न किया गया हो। धारा 11-सी नीचे पुन: प्रस्तुत है:-

***11सी.** धारा 9-ए के अंतर्गत किसी आपत्ति या धारा 11 के अंतर्गत किसी अपील या धारा 48 के अंतर्गत कार्यवाही की सुनवाई के दौरान, चकबंदी अधिकारी, बंदोबस्त अधिकारी (चकबंदी) या चकबंदी निदेशक, जैसा भी मामला हो, यह निर्देश दे सकते हैं कि राज्य सरकार या गाँव सभा या किसी अन्य स्थानीय निकाय या प्राधिकरण*

में निहित किसी भी भूमि को उनके नाम पर दर्ज किया जाए, भले ही ऐसी सरकार, गाँव सभा, निकाय या प्राधिकरण द्वारा कोई आपत्ति, अपील या पुनरीक्षण दायर न किया गया हो।

चकबंदी कार्यों के दौरान उठने वाले विवादों की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, विधानमंडल ने अधिनियम की धारा 11-सी को अधिनियमित करते समय चकबंदी न्यायालयों द्वारा निष्पादित किए जाने वाले कार्यों के प्रति सचेत था। विधानमंडल द्वारा अधिनियम में धारा 11-सी को एक उद्देश्य के साथ शामिल किया गया था और यह उद्देश्य स्पष्ट है।

कई बार ऐसी स्थिति हो सकती है जहाँ भूमि प्रबंधन समिति या ग्राम प्रधान, कुछ आशंकाओं और कुछ अन्य कारणों से, गाँव सभा या राज्य सरकार में निहित संपत्ति के हितों की रक्षा करने की उपेक्षा कर सकते हैं।

गाँव सभा या राज्य सरकार में निहित भूमि को सुरक्षित और संरक्षित करने के उपरोक्त उद्देश्य के लिए ही विधानमंडल ने अधिनियम की धारा 11-सी को सचेत रूप से अधिनियमित किया है और इस प्रकार चकबंदी अधिकारी, बंदोबस्त अधिकारी, चकबंदी और उप निदेशक, चकबंदी पर यह कर्तव्य डाला है कि वे ऐसी भूमि को राज्य या गाँव सभा के नाम दर्ज करने का आदेश पारित करें, भले ही राज्य सरकार या गाँव सभा या संबंधित स्थानीय प्राधिकरण द्वारा धारा 9-ए, धारा 11 या धारा 48 के अंतर्गत कोई आपत्ति, अपील या पुनरीक्षण प्रस्तुत न किया गया हो।

यह स्थापित विधि है कि अपील का अधिकार एक वैधानिक अधिकार है, जो उस विधि के दायरे में आता है जो किसी व्यक्ति या पक्षकार को ऐसा अधिकार प्रदान करता है। हालाँकि, जहाँ तक पुनरीक्षण न्यायालय के क्षेत्राधिकार का संबंध है, विशेष रूप से उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम के अंतर्गत बनाए गए पुनरीक्षण न्यायालय के मामले में, जो उक्त अधिनियम की धारा 48 के अंतर्गत पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है, संबंधित पक्षकार को पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने का अधिकार नहीं है; बल्कि धारा 48 उप निदेशक चकबंदी को किसी भी निर्णीत मामले या की गई कार्यवाही के अभिलेख को मँगवाने या उसकी जाँच करने का अधिकार प्रदान करती है। इस प्रकार पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने के लिए, व्यथित पक्ष धारा 48 का प्रयोग कर भी सकता है और नहीं भी कर सकता है और किसी उपयुक्त मामले में, उप निदेशक चकबंदी स्वतः ही पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार की अपनी शक्तियों का प्रयोग कर सकता है।

12. इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा ***अमीर हुसैन एवं अन्य बनाम उप निदेशक चकबंदी एवं अन्य, मनु/यूपी/0417/1976 : 1977 एडब्लूसी 1 इला : 1978 आरडी 204*** के वाद में की गई टिप्पणियों के अनुसार, जब यह पाया जाता है कि कोई वैध स्वामित्व धारक नहीं है और विधि के अंतर्गत भूमि सरकार और फिर गांव सभा में निहित थी, भले ही सरकार या गांव सभा ने कोई आपत्ति दर्ज नहीं की हो, तो चकबंदी प्राधिकारी गांव सभा या राज्य सरकार का नाम दर्ज करने का निर्देश दे सकते हैं।

13. वर्तमान वाद के तथ्यों और प्रासंगिक स्थापित प्रावधानों के साथ-साथ ऊपर संदर्भित निर्णय में इस न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों पर विचार करने के बाद, यह न्यायालय *रिमांड सिम्पलिसिटर* के आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए इच्छुक नहीं है क्योंकि सी.ओ. साक्ष्य लेने के बाद वाद के निम्नलिखित पहलुओं पर निर्णय करेंगे:-

(i) डी.डी.सी. ने आक्षेपित आदेश में यह पाया है कि विवादित भूमि अर्थात् गाटा संख्या 422, राजस्व अभिलेख में प्रारम्भ में 'ऊसर' के रूप में दर्ज थी।

(ii) आक्षेपित आदेश में यह भी पाया गया है कि उप-खण्ड अधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 05.10.1961 में ओवरराइटिंग है।

(iii) अभिलेखों से यह प्रतीत होता है कि निजी विपक्षीगणों के मध्य विवाद का निर्णय करते समय ग्राम सभा/राज्य के हित का ध्यान नहीं रखा गया।

(iv) डी.डी.सी. ने आक्षेपित आदेश में यह भी पाया कि पट्टा प्रदान करते समय रामबक्स का जन्म भी नहीं हुआ था।

(v) डी.डी.सी. ने *रिमांड सिम्पलिसिटर* के आक्षेपित आदेश दिनांक 6.3.2025 में यह भी पाया है कि प्रपत्र-58 में कुछ प्रविष्टियाँ भिन्न स्याही से की गई हैं।

14. तदनुसार, उपरोक्त कारणों से रिट याचिका **खारिज** की जाती है।

(2025) 4 ILRA 453

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 09.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति चंद्र कुमार राय

रिट बी संख्या 4903/1993

सुमेर सिंह **...याचिकाकर्ता**

बनाम

राजस्व बोर्ड एवं अन्य **...प्रत्यर्थीगण**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री आदित्य प्रसाद तिवारी, श्री एस.के. तिवारी

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता:

श्री इंद्रसेन सिंह तोमर, अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता, श्री दीपक गौड़

क. पट्टा निरस्तीकरण - पट्टा निरस्तीकरण की परिसीमा - यू.पी.जेड.ए. व एल.आर. अधिनियम - यू.पी.जेड.ए. व एल.आर. नियमावली - यू.पी.जेड.ए. व एल.आर. नियमावली के नियम 338 के अंतर्गत तैयार की गई अनुसूची 3, जिलाधिकारी को भूमि आवंटन की जानकारी होने की तिथि से तीन वर्ष की अवधि के भीतर स्वप्रेरणा

अनुवादित

कार्यवाही के आधार पर पट्टा रद्द करने की परिसीमा प्रदान करती है - यू.पी.जेड.ए. व एल.आर. अधिनियम, धारा 337 - धारा 337 के अनुसार, अधिनियम के किसी भी प्रावधान के अंतर्गत निर्धारित क्षेत्रफल की गणना के प्रयोजनों के लिए, बुंदेलखंड क्षेत्रों में दो एकड़ को एक एकड़ के रूप में गिना जाएगा - यू.पी.जेड.ए. व एल.आर. अधिनियम, धारा 198 का स्पष्टीकरण 'ए' - यू.पी.जेड.ए. व एल.आर. अधिनियम की धारा 198 के स्पष्टीकरण 'ए' में निहित प्रावधानों के मद्देनजर, पिता के नाम पर जोत को पुत्र की जोत नहीं माना जाएगा। अभिनिर्धारित - कई वर्षों के बाद और उचित अवधि के भीतर नहीं, स्वप्रेरणा से शक्ति का प्रयोग करने की अनुमति नहीं दी जा सकती, यहाँ तक कि उन कार्यवाहियों में भी जहाँ रद्दीकरण के लिए कोई परिसीमा निर्धारित नहीं है। (प्रस्तर 14)

ख. वर्तमान वाद में, याचिकाकर्ता संख्या 1, 2, 3, 4 और प्रत्यर्थी संख्या 5/6 के पिता को वर्ष 1959 (1366 फसली) में लगभग 34.95 एकड़ का भूखंड आवंटित किया गया था। याचिकाकर्ताओं के पक्ष में पट्टा निष्पादन की तिथि से लगभग 20 वर्ष बाद स्वतः संज्ञान रद्दीकरण की कार्यवाही शुरू की गई। जिलाधिकारी ने दिनांक 16.10.1982 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ताओं का पट्टा रद्द कर दिया। अभिनिर्धारित: 34.95 एकड़ का आवंटित क्षेत्रफल लगभग 17.45 एकड़ होगा। याचिकाकर्ताओं की संख्या पाँच थी और उन्होंने दावा किया कि वे अपने पिता से अलग रह रहे थे; इस प्रकार, 17.45 एकड़ को पाँच भागों में विभाजित किया जाएगा, तदनुसार, प्रत्येक याचिकाकर्ता को 3.49 एकड़ आवंटित किया गया, जबकि यू.पी.जेड.ए. व एल.आर. अधिनियम की धारा 198 के अंतर्गत आवंटन की अधिकतम सीमा 6¼ एकड़ थी; इस प्रकार, आवंटन अनुमेय सीमा के भीतर था। याचिकाकर्ताओं के पक्ष में पट्टा वर्ष 1959 में निष्पादित किया गया था; इसलिए, याचिकाकर्ताओं के पट्टे के संबंध में वर्ष 1979-80 में शुरू की गई निरस्तीकरण कार्यवाही को उचित अवधि के भीतर नहीं कहा जा सकता। आक्षेपित आदेश अपास्त किए जाते हैं। (प्रस्तर 19, 20)

स्वीकार किया गया। (ई-5)

(माननीय न्यायमूर्ति चंद्र कुमार राय द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री आद्या प्रसाद तिवारी और श्री एस.के. तिवारी, राज्य प्रत्यर्थीगण की ओर से विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री इंद्रसेन सिंह तोमर और प्रत्यर्थी-भूमि प्रबंधन समिति की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री दीपक गौड़ को सुना गया।

2. वाद के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता संख्या 1, 2, 3, 4 और प्रत्यर्थी संख्या 5/6 के पिता को वर्ष 1959 में विवादित भूखंड आवंटित किया गया था, जो ग्राम- खिरिया छतारा, तहसील एवं जिला- ललितपुर में स्थित है और इसका क्षेत्रफल लगभग 34.95 एकड़ (1366 *फसली*) है। सी.एल.आर.डी. योजना के दौरान, उप-खण्ड अधिकारी द्वारा भूमि के अधिभोगियों को पट्टे प्रदान किए गए थे। याचिकाकर्ताओं के अनुसार, पट्टा विलेख के निष्पादन के बाद भी, याचिकाकर्ताओं का कब्जा बना रहा। वर्ष 1978 तक याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध

किसी भी प्रकार की कोई शिकायत या कार्यवाही आरंभ नहीं की गई थी। वर्ष 1979 में उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध स्वतः संज्ञान लेते हुए एक कार्यवाही इस आधार पर आरंभ की गई कि पट्टाधारकों के पास पहले से ही पर्याप्त भूमि थी, अतः याचिकाकर्ताओं के पक्ष में निष्पादित पट्टा रद्द किया जाना चाहिए। एक अन्य आधार यह भी लिया गया कि याचिकाकर्ताओं में से एक का भाई भूमि प्रबंधन समिति का सदस्य था, अतः याचिकाकर्ताओं के पक्ष में पट्टा प्रदान नहीं किया जा सकता, साथ ही यह तथ्य भी कि याचिकाकर्ता भूमिहीन कृषि श्रमिक की श्रेणी में नहीं आते, अतः पट्टा रद्द किया जाना चाहिए। याचिकाकर्ताओं ने विचारण न्यायालय में उपस्थित होकर अपनी आपत्ति दर्ज कराई, जिसमें कहा गया कि याचिकाकर्ताओं को सीएलआरडी योजना के तहत पट्टा प्रदान किया गया था और उसके बाद से वे 1959 से आवंटित भूमि पर शांतिपूर्ण कब्जे में हैं और लगभग 20 वर्षों की अवधि तक उनका पट्टा बिना किसी चुनौती के रहा, अतः याचिकाकर्ताओं का पट्टा रद्द नहीं किया जा सकता। विचारण न्यायालय/जिलाधिकारी ने दिनांक 16.10.1982 के आदेश के द्वारा याचिकाकर्ताओं का पट्टा रद्द कर दिया। दिनांक 16.10.1982 के आदेश के विरुद्ध, याचिकाकर्ताओं ने आयुक्त के समक्ष पुनरीक्षण दायर किया, जिसे पुनरीक्षण संख्या 96/1982-83 के रूप में पंजीकृत किया गया। आयुक्त ने दिनांक 8.8.1983 के आदेश के द्वारा पुनरीक्षण को स्वीकार करने, जिलाधिकारी के आदेश को अपास्त करने और कार्यवाही को नए सिरे से निर्णीत करने के लिए मामले को जिलाधिकारी के समक्ष वापस भेजने के लिए राजस्व परिषद के समक्ष संदर्भित किया। उपर्युक्त संदर्भ को इलाहाबाद में राजस्व परिषद, उत्तर प्रदेश के समक्ष संदर्भ वाद संख्या 113/1983-84 के रूप में पंजीकृत किया गया था। राजस्व परिषद ने दिनांक 12.11.1992 के आदेश के द्वारा आयुक्त द्वारा भेजे गए संदर्भ को स्वीकार नहीं किया और पुनरीक्षण को खारिज कर दिया। अतः, यह रिट याचिका निम्नलिखित अनुतोषों के लिए है:-

"(i) वाद का अभिलेख मंगाने और प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा पारित दिनांक 12.11.1992 के निर्णय और आदेश तथा अनुलग्नक संख्या 3 और 1 में निहित क्रमशः प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा पारित दिनांक 16.10.1982 के आदेश को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण के प्रकृति में निर्देश या आदेश जारी किया जाये।

(ii) प्रत्यर्थीगण को इस रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान याचिकाकर्ताओं को बेदखल न करने या किसी अन्य व्यक्ति को यह भूमि पुनः आवंटित न करने का निर्देश देने के लिए परमादेश के प्रकृति में निर्देश या आदेश जारी किया जाये।"

3. इस न्यायालय ने दिनांक 18.2.1993 को रिट याचिका दायर करने की अनुमति दी और आक्षेपित आदेशों के क्रियान्वयन को स्थगित कर दिया। इस न्यायालय के दिनांक 18.2.1993 के आदेशों के अनुसरण में, केवल भूमि प्रबंधन समिति द्वारा प्रति-शपथपत्र दायर किया गया है। याचिकाकर्ताओं की ओर से एक पूरक शपथपत्र दायर किया गया है, जिसमें कहा गया है कि याचिकाकर्ताओं का नाम अभी भी राजस्व अभिलेक में दर्ज है और वे 1959 से संबंधित प्लॉट पर काबिज हैं।

4. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने दलील दी कि प्रत्यर्थी संख्या 1 और 2 ने अवैध रूप से आक्षेपित आदेश पारित किए हैं, जिनमें वर्ष 1959 में याचिकाकर्ताओं के पक्ष में निष्पादित पट्टे को रद्द करने के साथ-साथ

याचिकाकर्ताओं के पुनरीक्षण को भी खारिज कर दिया गया है। उन्होंने आगे दलील दी कि याचिकाकर्ताओं के पक्ष में पट्टे के निष्पादन की तिथि से लगभग 20 साल बाद स्वतः संज्ञान लेकर रद्दीकरण की कार्यवाही शुरू की गई है, इसलिए इस पर विचार नहीं किया जा सकता। उन्होंने आगे दलील दी कि याचिकाकर्ता 1959 से ही संबंधित भूखंड पर काबिज हैं और इस न्यायालय ने रिट याचिका पर विचार करते हुए, आक्षेपित आदेशों के क्रियान्वयन पर रोक लगाते हुए अंतरिम आदेश भी दिया है, इसलिए आक्षेपित आदेशों को अपास्त किया जाना चाहिए। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि उत्तर प्रदेश ज़मींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (जिसे आगे "यू.पी.जेड.ए व एल.आर. अधिनियम" कहा जाएगा) और उसके अंतर्गत बनाए गए नियमावली के अंतर्गत निर्धारित प्रक्रिया का उचित तरीके से पालन किया जाना चाहिए। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि संबंधित व्यक्ति के पक्ष में निष्पादित पट्टे के संबंध में किसी भी समय स्वप्रेरणा से कार्यवाही भी शुरू नहीं की जा सकती। उन्होंने यह दर्शाने के लिए इस न्यायालय के निम्नलिखित निर्णयों का हवाला दिया कि अधिनियम और उसके अंतर्गत बनाए गए नियमावली के तहत निर्धारित अवधि के बाद समय-बाधित कार्यवाही पर विचार नहीं किया जा सकता और उसे स्वीकार नहीं किया जा सक्ता:-

"(i) प्रभु दयाल एवं अन्य, सिविल प्रकीर्म रिट संख्या 3367/1978, 11 मई, 1984 को निर्णीत;"
(ii) सुरेश गिरि एवं अन्य बनाम राजस्व परिषद, उत्तर प्रदेश इलाहाबाद एवं अन्य, 2010 (2) एडीजे 514;
(iii) शांति देवी एवं अन्य बनाम राजस्व परिषद एवं अन्य, रिट बी संख्या 14704/2013, 10.2.2025 को निर्णीत;
(iv) ऋषि पाल एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2017 (7) एडीजे 391;
(v) यादराम एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2020 (146) आरडी 780;
(vi) जितेंद्र कुमार उर्फ गोपाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2018 (8) एडीजे 503;
(vii) छिद्दा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2019 (8) एडीजे 122;
(viii) देव शर्मा एवं अन्य बनाम राजस्व बोर्ड एवं अन्य, 2011 (9) एडीजे 716;
(ix) जियाछी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2014 (124) आरडी 805

उन्होंने अपने तर्कों के समर्थन में यू.पी.जेड.ए. व एल.आर. अधिनियम की धारा 198 और यू.पी.जेड.ए. व एल.आर. अधिनियम की धारा 337 के प्रावधानों को भी प्रस्तुत किया।

5. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी-गाँव सभा के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि याचिकाकर्ता पट्टे के हकदार नहीं हैं क्योंकि संबंधित समय पर उनके नाम पर पर्याप्त भूमि है, ऐसे में उन्हें भूमिहीन कृषि श्रमिक नहीं माना जा सकता। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि पट्टाधारकों के पिता *जमींदार* थे, ऐसे में उन्हें संबंधित भूखंड का पट्टा आवंटित नहीं किया जा सकता। उन्होंने दलील दी कि राजस्व परिषद ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि याचिकाकर्ता अपने अधिकार और स्वामित्व की घोषणा के लिए वाद दायर कर सकते हैं क्योंकि याचिकाकर्ता यह भी दावा कर रहे हैं कि भूमि उन्हें सीएलआरडी योजना के अंतर्गत आवंटित की गई थी। उन्होंने दलील दी कि इस मामले में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है और रिट याचिका खारिज किए जाने योग्य है।

6. दूसरी ओर, राज्य प्रत्यर्थीगण के विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री इंद्रसेन सिंह तोमर ने तर्क दिया कि याचिकाकर्ता विचाराधीन भूखंड के कृषि पट्टे के हकदार नहीं थे क्योंकि उनके पास उस समय पर्याप्त भूमि थी। उन्होंने आगे तर्क दिया कि याचिकाकर्ता भूमिहीन कृषि श्रमिक नहीं थे, इसलिए उनके पक्ष में कृषि पट्टा निष्पादित नहीं किया जा सकता। उन्होंने तर्क दिया कि मण्डलीय जिलाधिकारी द्वारा यह निष्कर्ष दर्ज किया गया है कि याचिकाकर्ताओं के पिता ज़मींदार थे और उनके नाम पर पर्याप्त भूमि थी, इसलिए पाँच याचिकाकर्ताओं के नाम पर 34.95 एकड़ भूमि का आवंटन पूरी तरह से अवैध था। उन्होंने यह प्रदर्शित करने के लिए कि वर्ष 1979/1980 में शुरू की गई रद्दीकरण कार्यवाही परिसीमा के भीतर थी, यू.पी.जेड.ए. व एल.आर. अधिनियम की धारा 198 में वर्ष 1975 में किए गए आठवें संशोधन का भी हवाला दिया। उन्होंने आगे दलील दी कि इस मामले में, राजस्व परिषद की पूर्ण पीठ द्वारा ***1994 आरडी 540 वीरेंद्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य*** में दिए गए निर्णय के आलोक में, यू.पी.जेड.ए. व एल.आर. अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार स्वतः संज्ञान कार्यवाही शुरू की गई थी। उन्होंने आगे दलील दी कि आवंटन की तिथि पर भूमि खाली नहीं थी, इसलिए याचिकाकर्ताओं के पक्ष में किया गया आवंटन पूरी तरह से अवैध था। उन्होंने आगे दलील दी कि यू.पी.जेड.ए. व एल.आर. नियमावली के नियम 338 के अंतर्गत तैयार की गई अनुसूची 3, जिलाधिकारी को भूमि आवंटन की जानकारी होने की तिथि से तीन वर्ष की अवधि के भीतर स्वतः संज्ञान कार्यवाही के आधार पर पट्टा रद्द करने की परिसीमा प्रदान करती है। उन्होंने आगे कहा कि कृषि पट्टा देने की सीमा 3.125 एकड़ थी, ऐसे में बुंदेलखंड क्षेत्र के लिए लगभग 34.95 एकड़ = 17.47 एकड़ का आवंटन उन पांच याचिकाकर्ताओं को नहीं किया जा सकता, जो उनके पिता के साथ रह रहे थे। उन्होंने आगे कहा कि याचिकाकर्ताओं के परिवार का एक सदस्य भूमि प्रबंधन समिति का सदस्य था, ऐसे में राजस्व अभिलेखों में बंजर के रूप में दर्ज भूमि के संबंध में याचिकाकर्ताओं के पक्ष में आवंटन नहीं किया जा सकता। उन्होंने कहा कि अपर जिलाधिकारी ने याचिकाकर्ताओं के पक्ष में निष्पादित कृषि पट्टे को रद्द करके सही किया है। उन्होंने आगे कहा कि आयुक्त ने अवैध रूप से राजस्व परिषद को पुनरीक्षण को स्वीकृति देने के लिए संदर्भित किया है, लेकिन राजस्व परिषद ने याचिकाकर्ताओं के पुनरीक्षण को सही तरीके से खारिज कर दिया है और संदर्भ को यह पाते हुए खारिज कर दिया है कि याचिकाकर्ता सी.एल.आर.डी. योजना के अंतर्गत हुई कार्यवाही के आधार पर अपने अधिकार की घोषणा के लिए उचित उपाय का लाभ उठा सकते हैं। उन्होंने आगे कहा कि रिट याचिका में इस आशय का कोई तर्क नहीं है कि याचिकाकर्ताओं का परिवार का सदस्य प्रासंगिक समय पर भूमि प्रबंधन समिति का सदस्य नहीं था, ऐसे में याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा दी गई दलील को स्वीकार नहीं किया जा सकता। उन्होंने कहा कि राजस्व परिषद द्वारा दर्ज किए गए तथ्यों के मद्देनजर मामले में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है और रिट याचिका खारिज किए जाने योग्य है।

7. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलों पर विचार किया है और अभिलेखों का अवलोकन किया है।

8. इस तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं है कि यू.पी.जेड.ए और एल.आर. अधिनियम की धारा 198 (4) के अंतरग्त याचिकाकर्ताओं के पट्टे को रद्द करने की कार्यवाही वर्ष 1979-80 में शुरू की गई थी और अपर

जिलाधिकारी ने 16.10.1982 के आदेश के द्वारा याचिकाकर्ता के पट्टे को रद्द कर दिया था। इस तथ्य के बारे में भी कोई विवाद नहीं है कि पुनरीक्षण में, आयुक्त झांसी मंडल झांसी ने अपर जिलाधिकारी के आदेश को रद्द करते हुए पुनरीक्षण की स्वीकृति देने के लिए राजस्व परिषद के समक्ष संदर्भ भेजा था। इस तथ्य पर भी कोई विवाद नहीं है कि राजस्व परिषद ने पुनरीक्षण को खारिज कर दिया है और आयुक्त द्वारा भेजे गए संदर्भ को अस्वीकार कर दिया है।

9. मामले में शामिल विवाद को समझने के लिए, प्रासंगिक समय पर यू.पी.जेड.ए और एल.आर. अधिनियम की धारा 198 का अवलोकन प्रासंगिक होगा, जो इस प्रकार है:-

धारा 198. धारा 195 और 197 के अधीन व्यक्तियों को भूमि पर प्रवेश देने में वरीयता क्रम- (1) धारा 195 या 197 के अधीन किसी व्यक्ति को सिरदार या असामी के रूप में प्रवेश देने में, [भूमि प्रबंधन समिति] धारा 178 के अधीन न्यायालय द्वारा बनाए गए नियमावली या दिए गए आदेश के अधीन रहते हुए निम्नलिखित वरीयता क्रम का पालन करेगी-

(I.ए) कृषि, बागवानी या पशुपालन में शिक्षा से संबंधित उद्देश्य के लिए एक मान्यता प्राप्त शैक्षणिक संस्थान;

(क) उस क्षेत्र में निवास करने वाला कोई भूमिहीन कृषि श्रमिक या असामी, जिसके पास भूमिधर, सिरदार या अधिवासी के रूप में कोई भूमि नहीं है,

(ख) कोई भूमिधर, सिरदार या अधिवासी जो उस क्षेत्र में 6¼ एकड़ से कम भूमि रखता हो,

(ग) इस अधिनियम के अंतर्गत स्थापित कोई सहकारी फार्म जो [भूमि प्रबंधन समिति] के क्षेत्राधिकार में भूमि रखता हो ताकि वह उपयुक्त भूमि क्षेत्र पर कब्जा कर सके, और

(घ) कोई अन्य व्यक्ति:

परंतुक यदि खंड (ग) के अंतर्गत किसी सहकारी फार्म को आवंटित भूमि का पंजीकरण आवंटन के दो वर्ष के भीतर रद्द कर दिया जाता है, तो ऐसे रद्दीकरण पर वह भूमि गाँव समाज को वापस कर दी जाएगी, और ऐसी भूमि पर कब्जा रखने या उस पर कब्जा बनाए रखने वाले किसी भी व्यक्ति को धारा 209 के खंड (ख) के अंतर्गत बेदखली के लिए उत्तरदायी बिना हक के उस पर कब्जा करने वाला व्यक्ति माना जाएगा:

परंतुक जिन मामलों में खंड (ख) लागू होता है, ऐसे खातेदार को केवल उतनी ही भूमि आवंटित की जाएगी जितनी उसके द्वारा धारित कुल क्षेत्रफल को सवा छह एकड़ तक लाने के लिए पर्याप्त होगी।

पर्तुक खंड (क) में उल्लिखित किसी भी व्यक्ति को, यदि उपलब्ध हो, 31/8 एकड़ से कम भूमि की अनुमति नहीं दी जाएगी, किन्तु किसी भी स्थिति में 6 1/4 एकड़ से अधिक की अनुमति नहीं दी जाएगी।
स्पष्टीकरण- कोई व्यक्ति भूमिहीन कृषि श्रमिक समझा जाएगा यदि उसके पास राज्य सरकार द्वारा सामान्यतः या किसी विशेष क्षेत्र के लिए निर्धारित अधिकतम भूमि से अधिक भूमि न हो।

[2) उप-खंड का प्रभारी सहायक जिलाधिकारी, स्वप्रेरणा से और उप-धारा (1) के अधीन पारित भूमि प्रबंधन समिति के आदेश से व्यथित किसी व्यक्ति के आवेदन पर, उप-धारा (1) के अधीन किए गए आवंटन की विहित रीति से जांच कर सकेगा और यदि उसका समाधान हो जाता है कि भूमि प्रबंधन समिति ने इस

अधिनियम के उपबंधों के अनुसार या अन्यथा कार्य किया है, तो वह उस पर ऐसा आदेश पारित कर सकेगा जैसा वह उचित समझे।]

[(3) जहां उप-खंड का प्रभारी सहायक जिलाधिकारी किसी आवंटन को रद्द करता है, वहां उप-धारा (4) के उपबंधों के अंतर्गत अधिकार और हित, उसके अधीन आवंटित भूमि पर समाप्त हो जाते हैं, जो गोवा समाज को वापस कर दिए जाएंगे और ऐसी भूमि पर कब्जा रखने वाले या उस पर कब्जा बनाए रखने वाले किसी भी व्यक्ति को ऐसी भूमि पर अतिक्रमण करने वाला व्यक्ति माना जाएगा और विहित रीति से बेदखल किया जा सकेगा।

(4) उपधारा (2) के अधीन पारित निरस्तीकरण आदेश से व्यथित कोई भी व्यक्ति अपने द्वारा दावा किए गए अधिकार को सिद्ध करने के लिए वाद संस्थित कर सकेगा, किन्तु ऐसे वाद के परिणामों के अधीन रहते हुए निरस्तीकरण आदेश अंतिम होगा।]

10. प्रासंगिक समय पर यू.पी.जेड.ए. व एल.आर. अधिनियम की धारा 337 का अवलोकन भी प्रासंगिक होगा, जो निम्नानुसार है:-

[एस. 337. कतिपय जिलों में निर्धारित क्षेत्रफल की गणना - इस अधिनियम के किसी भी उपबंध के अधीन निर्धारित क्षेत्रफल की गणना के प्रयोजनार्थ, निम्नलिखित क्षेत्रों में 2 एकड़ की गणना 1 एकड़ के रूप में की जाएगी:-

(क) बुंदेलखंड;

[(कक) नैनीताल जिले के तराई और काशीपुर उपखंड।]

(ख) इलाहाबाद, इटावा, आगरा और मथुरा जिलों के यमुना पार के भाग;

(ग) कैमूर पर्वतमाला के दक्षिण में मिर्जापुर जिले का भाग;

(घ) मिर्जापुर जिले की सदर तहसील के टप्पा उपरौध और टप्पा चौरासी (बलाई पहाड़);

(ङ) मिर्जापुर जिले की रॉबर्ट्सगंज तहसील का वह भाग जो कैमूर पर्वतमाला के उत्तर में स्थित है; और

(च) परगना सक्तेशगढ़ तथा जिला मिर्जापुर की तहसील चुनार के परगना अहरौरा और भगवत की पहाड़ी पट्टियों में अनुसूची 6 की सूची 'क' और 'ख' में उल्लिखित ग्राम:

11. उत्तर प्रदेश ज़ेड.ए. एवं एल.आर. नियमावली के नियम 338 के अंतर्गत तैयार परिशिष्ट-III का अवलोकन

परिशिष्ट III

(नियम 338 देखें)

अधिनियम की धारा	वाद आवेदन और अन्य कार्यवाही का विवरण	परिसीमा अवधि	वह समय जिससे अवधि प्रारंभ होती है	उचित न्यायालय शुल्क

198(2)	**(1) भूमि आवंटन के संबंध में [भूमि प्रबंधन समिति] के आदेश को अपास्त करने हेतु आवेदन।**	**छह माह**	**[भूमि प्रबंधन समिति] के आदेश की तिथि से**	**एक रुपया**
	(2) भूमि आवंटन के संबंध में [भूमि प्रबंधन समिति] के आदेश को अपास्त करने हेतु उप-खण्ड अधिकारी द्वारा स्वप्रेरणा से की गई कार्रवाई।	**तीन वर्ष**	**जब उप-खण्ड अधिकारी को भूमि के अनियमित आवंटन के बारे में पहली बार पता चला।**	**शून्य।**

12. प्रासंगिक समय पर उत्तर प्रदेश ज़ेड.ए. एवं एल.आर. अधिनियम की धारा 337 के अवलोकन से पता चलता है कि 34.95 एकड़ आवंटित क्षेत्रफल लगभग 17.45 एकड़ होगा। याचिकाकर्ताओं की संख्या पाँच है और याचिकाकर्ताओं का दावा है कि वे अपने पिता से अलग रह रहे हैं, इसलिए 17.45 एकड़ क्षेत्र को पाँच भागों में विभाजित किया जाएगा, तदनुसार, प्रत्येक याचिकाकर्ता को 3.49 एकड़ क्षेत्र आवंटित किया गया, जबकि उत्तर प्रदेश ज़ेड.ए. और एल.आर. अधिनियम की धारा 198 के अंतर्गत आवंटन की अधिकतम सीमा 6 1/4 एकड़ है, इसलिए, याचिकाकर्ता को अनुमेय सीमा के तहत आवंटन किया गया था।

13. इस न्यायालय ने ***प्रभु दयाल (पूर्वोक्त)*** के वाद में यह अभिनिर्धारित किया है कि उत्तर प्रदेश ज़ेड.ए. और एल.आर. अधिनियम की धारा 198 के स्पष्टीकरण ए के अंतर्गत निहित प्रावधानों के मद्देनजर पिता के नाम पर जोत को पुत्र की जोत नहीं माना जाएगा। ***प्रभु दयाल (पूर्वोक्त)*** में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का प्रासंगिक अंश इस प्रकार है:-

"वर्ष 1970 में यू.पी.जेड.ए. व एल.आर. अधिनियम की धारा 198 का स्पष्टीकरण I इस प्रकार है:-
इस उपधारा (i) के प्रयोजनों के लिए, 'भूमिहीन' का अर्थ है वह व्यक्ति या व्यक्ति जिनके पति/पत्नी या नाबालिग बच्चे भूमिधर, सिरदार या असामी के रूप में कोई भूमि नहीं रखते हैं; और खंड (ग) को छोड़कर, आवंटन की तिथि से ठीक पहले के दो वर्षों के भीतर, उनके पास भी कोई भूमि नहीं थी; और
(ii) "कृषि श्रमिक" का अर्थ है वह व्यक्ति जिसकी आजीविका का मुख्य स्रोत कृषि श्रमिक हो या किसी भूमि पर उगाई गई उपज में हिस्सेदारी के अधिकार के बदले में किसी व्यक्ति के साथ किसी भूमि पर कृषि कार्यों के वास्तविक निष्पादन में भागीदारी में सहायता करना।
चूँकि पुनरीक्षण न्यायालय ने 17 अगस्त, 1977 के अपने आदेश में याचिकाकर्ता के पक्ष में पट्टे को केवल इस आधार पर रद्द करने को बरकरार रखा है कि याचिकाकर्ताओं के पिता के पास पर्याप्त भूमि थी। मेरा मानना है कि पुनरीक्षण न्यायालय ने यू.पी.जेड.ए. व एल.आर. अधिनियम की धारा 198 के स्पष्टीकरण I का परीक्षण करने में विफल रहा है। स्पष्टीकरण (I) के मात्र अवलोकन से ही यह संकेत मिलता है कि यदि पिता के पास पर्याप्त भूमि होती, तो भी याचिकाकर्ताओं को भूमिहीन कहा जा सकता था और वाद का यह पहलू पुनरीक्षण न्यायालय के ध्यान से बच गया है। किसी व्यक्ति के 'भूमिहीन' होने के लिए निर्धारित एकमात्र सीमा यह है

कि वह या उसका पति/पत्नी और उसके नाबालिग बच्चे भूमिधर, सिरदार या असामी के रूप में भूमि नहीं रखते। किसी व्यक्ति के पिता को परिभाषा में शामिल नहीं किया गया है, इसलिए पुनरीक्षण न्यायालय ने स्पष्टीकरण पर ध्यान दिए बिना प्रथम अपीलीय न्यायालय के निर्णय को बरकरार रखने में स्पष्ट रूप से गलती की है। चूंकि पुनरीक्षण न्यायालय ने अपना निर्णय केवल इस आधार पर दिया है कि याचिकाकर्ताओं के पिता के पास पर्याप्त जमीन थी, मेरे पास आक्षेपित निर्णय को रद्द करने और पुनरीक्षण न्यायालय से संबंधित विधि के आलोक में याचिकाकर्ताओं के दावे का पुनः परीक्षण करने के लिए कहने के अलावा कोई विकल्प नहीं है।
यदि पुनरीक्षण न्यायालय ने प्रथम अपीलीय न्यायालय के निर्णय की पुष्टि इस आधार पर भी की होती कि यू.पी.जेड.ए और एल.आर. अधिनियम की अनिवार्य आर. 173 और 174 का अनुपालन नहीं किया गया था, तो परिणाम अलग हो सकता था, लेकिन पुनरीक्षण न्यायालय ने अपना निर्णय केवल एक आधार पर सीमित कर दिया है कि याचिकाकर्ता के पिता के पास पर्याप्त जमीन थी, मुझे लगता है कि न्याय का उद्देश्य यह मांग करता है कि पुनरीक्षण न्यायालय को याचिकाकर्ताओं के दावे को सख्ती से विधि के अनुसार निर्णीत करने के लिए कहा जाना चाहिए। "

14. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **श्यामो देवी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2024 (164) 206** में प्रतिवेदित वाद में यह अभिनिर्धारित किया है कि कई वर्षों के बाद और उचित अवधि के भीतर नहीं, स्वप्रेरणा शक्ति का प्रयोग करने की अनुमति नहीं दी जा सकती, यहाँ तक कि उस कार्यवाही में भी जहाँ रद्दीकरण के लिए कोई परिसीमा प्रदान नहीं की गई है। **श्यामो देवी** (पूर्वोक्त) में दिए गए निर्णय के प्रस्तर संख्या 15 और 18 अवलोकनार्थ प्रासंगिक होंगे, जो इस प्रकार है:-

"15. इब्राहिमपटनम वाद (पूर्वोक्त) में, जिसमें धारा 50-बी की उप-धारा (4) को लागू किया गया था, यह प्रकट करता है कि 'जिलाधिकारी किसी भी समय स्वप्रेरणा से आदेश दे सकता है;' अभिव्यक्ति आ रही है, जबकि ऐसी अभिव्यक्ति यूपीजेडएएलआर अधिनियम की धारा 122-(सी) की उप-धारा (6) में स्पष्ट रूप से अनुपस्थित है। उपर्युक्त वाद में, सर्वोच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि स्वप्रेरणा शक्ति का प्रयोग धोखाधड़ी के वाद में भी उचित अवधि के भीतर और धोखाधड़ी का पता चलने की तिथि से उचित समय के भीतर किया जाना चाहिए और यह प्रत्येक वाद के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है। आगे यह भी अभिनिर्धारित किया गया:
12. विद्वान एकल न्यायाधीश ने अधिनियम की धारा 50-बी की उपधारा (4) में "किसी भी समय" शब्दों के प्रयोग को किस प्रकार समझा जाना चाहिए, इस बारे में इस न्यायालय के निर्णयों सहित विभिन्न निर्णयों का उल्लेख किया है और उन पर भरोसा किया है। इस आदेश में, उच्च न्यायालय की खंडपीठ विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय का अनुमोदन और पुष्टि करती है। जहाँ कोई विधि बिना किसी परिसीमा का निर्धारण किए स्वप्रेरणा से पुनरीक्षण की शक्ति प्रदान करता है, वहाँ इस शक्ति का प्रयोग एक उचित समय के भीतर किया जाना चाहिए और "उचित समय" क्या है, यह प्रत्येक वाद के तथ्यों के आधार पर निर्धारित किया जाना चाहिए।

13. उपरोक्त वर्णित बातों के आलोक में, हमारा विचार है कि उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश के इस मत की पुष्टि करके सही निर्णय दिया कि अधिनियम की धारा 50-बी की उपधारा (4) के अंतर्गत स्वप्रेरणा शक्ति का प्रयोग उचित समय के भीतर किया जाना चाहिए।

18. एक और कारक जिसने हमारे मन में आक्षेपित आदेश को रद्द करने का विचार उत्पन्न किया है, वह यह है कि 27.06.1994 को किए गए आवंटन के अनुसार, गरीब ग्रामीण आवंटियों ने अपने घरों का निर्माण किया है और यह आवंटन तत्कालीन उप-जिला मजिस्ट्रेट द्वारा दी गई स्वीकृति के आधार पर किया गया था और वे पिछले कई वर्षों से अपने द्वारा निर्मित आवासीय भवन में रह रहे हैं और इसे अस्थिर करने से उन गरीब असहाय व्यक्तियों के साथ अन्याय होगा और विशेष रूप से तब, जब संबंधित भूमि का उपयोग गरीब और बेघर व्यक्तियों को आवंटन के लिए किया गया हो।'

15. इस न्यायालय द्वारा **प्रभु दयाल** (पूर्वोक्त) में दिए गए निर्णय के साथ-साथ माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **श्यामो देवी** (पूर्वोक्त) में दिए गए निर्णय, राजस्व परिषद द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय, विधि की दृष्टि में पोषणीय नहीं है।

16. वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता वर्ष 1959 में कृषि प्रयोजन के लिए किए गए आवंटन के आधार पर दावा कर रहे हैं और निरस्तीकरण की कार्यवाही वर्ष 1979-80 में शुरू की गई है, इस प्रकार, वर्तमान मामले में शुरू की गई निरस्तीकरण की कार्यवाही विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग है।

17. इस न्यायालय *ने **जितेंद्र कुमार उर्फ गोपाल (पूर्वोक्त)*** के वाद में अभिनिर्धारित किया है कि स्वप्रेरणा कार्यवाही में भी, जिलाधिकारी उस भूखंड के संबंध में पट्टा रद्द नहीं कर सकता है, जो कि पट्टेदार को आवंटित किया गया था और विधि के संचालन के कारण, वह हस्तांतरणीय अधिकारों के साथ भूमिधर बन गया। इस न्यायालय द्वारा ***जितेंद्र कुमार उर्फ गोपाल (पूर्वोक्त)*** में दिए गए निर्णय के प्रस्तर संख्या 7 और 8 प्रासंगिक होंगे, जो इस प्रकार हैं:-

"(7) पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के पश्चात्, मेरा विचार है कि आक्षेपित आदेश पोषणीय नहीं रह सकते। प्रथमतः, नोटिस परिसीमा द्वारा वर्जित था। द्वितीय, राज्य के एक आदेश द्वारा याचिकाकर्ता को हस्तांतरणीय अधिकारों सहित भूमिधर घोषित किया जा चुका था और पट्टे को रद्द करने का कोई महत्व नहीं था और तृतीय, पट्टे को रद्द करने का आधार भी अस्तित्व में नहीं था। यदि 1950 के अधिनियम के अंतर्गत निर्धारित परिसीमा समाप्त हो जाती है, तो पट्टे में अनियमितताएँ होने पर भी कोई नोटिस जारी नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त, यदि जिलाधिकारी द्वारा स्वप्रेरणा से नोटिस जारी किया जाता है, तब भी परिसीमा का प्रश्न उठेगा और नोटिस 1950 के अधिनियम द्वारा निर्धारित परिसीमा के भीतर जारी किए जाने चाहिए।

(8). इसके अतिरिक्त, जब एक बार कोई भू-धारक, जिसे पहले पट्टा प्रदान किया गया था, हस्तांतरणीय अधिकारों के साथ भूमिधर बन जाता है, तो चाहे पहले प्रदान किया गया पट्टा कितना भी रद्द कर दिया जाए,

इससे भूमिधर के रूप में उसके अधिकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा और वह संबंधित भूमि पर भूमिधर बना रहेगा।"

18. विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री इन्द्रसेन सिंह तोमर द्वारा प्रस्तुत तर्क कि विवादित भूमि पट्टा विलेख के निष्पादन की तिथि को रिक्त नहीं थी तथा याचिकाकर्ता के पट्टे के संबंध में प्रारम्भ की गई निरस्तीकरण कार्यवाही, यू.पी.जेड.ए एवं एल.आर. अधिनियम की धारा 198 में वर्ष 1975 में किए गए 8वें संशोधन के अनुसार परिसीमा के भीतर थी, इस तथ्य पर विचार करते हुए स्वीकार नहीं किया जा सकता कि पट्टा वर्ष 1959 में सी.एल.आर.डी. योजना के अंतर्गत याचिकाकर्ताओं के पक्ष में निष्पादित किया गया था या व्यवस्था की गई थी, ऐसे में याचिकाकर्ताओं के पट्टे के संबंध में वर्ष 1979-80 में प्रारम्भ की गई निरस्तीकरण कार्यवाही को उचित अवधि के भीतर नहीं कहा जा सकता।

19. समस्त तथ्यों और परिस्थितियों के साथ-साथ इस न्यायालय द्वारा ***प्रभु दयाल (पूर्वोक्त)*** में दिए गए निर्णय, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि पिता की जोत उनके पुत्रों की जोत में सम्मिलित नहीं होगी, तथा बुंदेलखंड क्षेत्र में विचाराधीन भूखंड की स्थिति को ध्यान में रखते हुए, प्रत्यर्थी संख्या 1/राजस्व परिषद द्वारा पारित दिनांक 12.11.1992 का आक्षेपित आदेश और प्रत्यर्थी संख्या 2/अपर जिलाधिकारी द्वारा पारित दिनांक 16.10.1982 का आदेश विधि की दृष्टि में पोषणीय नहीं है और इन्हें एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है।

20. रिट याचिका **स्वीकार** की जाती है और प्राधिकारियों को निर्देश दिया जाता है कि वे संबंधित भूखंड पर याचिकाकर्ताओं के नाम तत्काल दर्ज करें।

21. वाद व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं है।

(2025) 4 ILRA 462

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति दिनेश पाठक

रिट बी संख्या 13075/2012

राजकुमार दुबे **...याचिकाकर्ता**

बनाम

राजस्व परिषद एवं अन्य **...प्रत्यर्थीगण**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

अनुराग सिंह, आशुतोष श्रीवास्तव, गोविंद कृष्ण, सत्येन्द्र नाथ श्रीवास्तव, श्रेयस श्रीवास्तव

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता:

डी.डी. चौहान, मधुर प्रकाश, सत्य प्रकाश

क. उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम, 1953 - धारा 49 - सिविल न्यायालयों के क्षेत्राधिकार का निषेध - धोखाधड़ी - केवल अभिकथन के आधार पर धोखाधड़ी का अनुमान नहीं लगाया जा सकता - धोखाधड़ी को साबित किया जाना चाहिए न कि केवल अभिकथित किया जाना व अनुमान लगाया जाना चाहिए। धोखाधड़ी का केवल दावा करना सक्षम न्यायालय द्वारा संपन्न न्यायिक कार्यवाही को अवैध बनाने के लिए पर्याप्त नहीं है, जब तक कि यह विश्वसनीय और निर्विवाद साक्ष्य से साबित न हो जाए। वादी के वाद के अनुसार, उसने चकबंदी कार्रवाई के दौरान अपने नाम पर भू-राजस्व प्रविष्टि को सही कराने के लिए नन्हू सिंह के पक्ष में एक मुख्तारनामा निष्पादित किया है। उस संबंध में वाद में की गई दलील को प्रतिवादीगण-प्रत्यर्थीगण ने लिखित बयान में विशेष रूप से नकार दिया था। उपरोक्त दलील के समर्थन में तीनों राजस्व न्यायालयों में से किसी के समक्ष कोई दस्तावेजी साक्ष्य दाखिल नहीं किया गया। हालाँकि, पहली बार याचिकाकर्ता ने रिट याचिका के अनुलग्नक के रूप में दिनांक 22.08.1966 की कथित मुख्तारनामा की छायाप्रति दाखिल की। यह एक अपंजीकृत दस्तावेज था जिस पर वर्तमान याचिकाकर्ता और दो साक्षीगण के हस्ताक्षर थे। न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि उच्च न्यायालय के समक्ष पहली बार दायर किया गया दस्तावेज साक्ष्य के रूप में स्वीकार्य नहीं है, यदि वह अपंजीकृत दस्तावेज की छायाप्रति है (प्रस्तर 27, 28)

ख. प्रस्तुत वाद में याचिकाकर्ता का कहना था कि उसने संपत्ति की देखभाल करने और चकबंदी अभिलेख में वादी-याचिकाकर्ता का नाम दर्ज कराने के लिए नन्हू सिंह (प्रतिवादी संख्या 2 के भाई) के पक्ष में मुख्तारनामा निष्पादित किया था, हालांकि, उसने अभिलेख से वादी-याचिकाकर्ता का नाम हटवा दिया। वादी-याचिकाकर्ता के साथ धोखाधड़ी करके उसने अपना और प्रतिवादियों का नाम चकबंदी अभिलेख में दर्ज करा लिया। प्रतिवादियों का नाम धोखाधड़ी से राजस्व अभिलेख में दर्ज किया गया था, जो वादी-याचिकाकर्ता को पहली बार 27.1.1987 को पता चला और परिणामस्वरूप, उसने घोषणा के लिए वाद दायर किया। तीनों राजस्व न्यायालयों ने यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 49 के अंतर्गत वाद को वर्जित माना। *अभिनिर्धारित*: वादी-याचिकाकर्ता ने बंधकदार होने के नाते विचाराधीन संपत्ति पर अपने अधिकार और स्वामित्व का दावा किया। हालाँकि, उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 3/1926 की धारा 99 के अंतर्गत वाद संख्या 4/5 में पारित निर्णय के अनुसरण में, संपत्ति का कब्जा बंधककर्ता (प्रतिवादी-प्रत्यर्थी) को सौंप दिया गया। इस प्रकार, बंधकदार का अधिकार समाप्त हो गया। बंधककर्ता (वादी-याचिकाकर्ता या उसके हित में उसके पूर्ववर्ती) का व्यक्तिगत रूप से भू-राजस्व अभिलेख में कभी भी नाम दर्ज नहीं किया गया। चकबंदी प्रक्रिया प्रारंभ होने की तिथि पर, उनका नाम मूल चकबंदी अभिलेख में दर्ज नहीं था। न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि वादी-याचिकाकर्ता की ओर से प्रस्तुत धोखाधड़ी की दलील सिद्ध नहीं होती। चुनौती दिए गए आदेश में कोई अवैधानिकता नहीं है। रिट याचिका खारिज (प्रस्तर 3, 30, 32)

खारिज। (ई-5)

(माननीय न्यायमूर्ति दिनेश पाठक द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, मुकदमा लड़ने वाले निजी प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता तथा राज्य - प्रत्यर्थीगण के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया।

2. याचिकाकर्ता, उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (संक्षेप में 'अधिनियम, 1950') के अंतर्गत राजस्व न्यायालयों द्वारा पारित आदेशों से व्यथित है, जिसके द्वारा अधिनियम, 1950 की धारा 229-बी के अंतर्गत उसके अधिकारों और स्वामित्व की घोषणा के लिए उसकी ओर से दायर वाद को तीनों राजस्व न्यायालयों द्वारा, विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा तैयार किए गए विवाद्यक संख्या 7 को निर्णीत करते समय, उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम, 1953 (संक्षेप में 'यू.पी.सी.एच. अधिनियम') की धारा 49 के अंतर्गत वर्जित होने के कारण वाद की पोषणीयता के बिंदु पर एक साथ खारिज कर दिया गया है।

3. वाद पत्र के अनुसार, वादी-याचिकाकर्ता दिनांक 27.2.1901 के बंधक विलेख, जो 04.3.1901 को पंजीकृत हुआ था, के आधार पर संबंधित संपत्ति पर अपने अधिकार, स्वामित्व और हित का दावा कर रहा है, जिसके बारे में कहा जाता है कि इसे खुमान सिंह पुत्र प्रीतम सिंह (प्रतिवादियों-प्रत्यर्थीगण के हित-पूर्ववर्ती) ने राधा किशन पुत्र भोला नाथ (वादी-याचिकाकर्ता के हित-पूर्ववर्ती) के पक्ष में निष्पादित किया था। उपरोक्त बंधक विलेख के माध्यम से, संबंधित भूमि 290/- रुपये के ऋण के विरुद्ध तीस वर्षों के लिए बंधक रखी गई थी। बंधक राशि का भुगतान हिंदू अविभाजित परिवार कोष से किया गया था। इसके बाद, याचिकाकर्ता के हित-पूर्ववर्तियों ने खुमान सिंह (प्रतिवादी संख्या 1 के पिता) के विरुद्ध कब्जे के लिए सिविल वाद संख्या 418/1911 (पीतांबर लाल एवं अन्य बनाम खुमान सिंह एवं अन्य) दायर किया था। उपरोक्त वाद की डिक्री 24.2.1912 को हुई तथा उक्त डिक्री के आधार पर 29.3.1912 को कब्जा प्रदान किया गया। 1348 फसली से श्रीमती राम दुलारी (वादी-याचिकाकर्ता की दादी) का नाम दर्ज हुआ तथा तत्पश्चात वादी-याचिकाकर्ता का नाम बंधकदार के रूप में खतौनी में दर्ज है। वादी-याचिकाकर्ता प्रारंभ में प्रश्नगत संपत्ति का सीरदार था। तत्पश्चात, विधि द्वारा, संक्रमणीय अधिकारों सहित भूमिधर बन गया। चकबंदी प्रक्रिया के प्रारंभ होने पर, उसने संपत्ति की देखभाल करने तथा चकबंदी अभिलेख में वादी-याचिकाकर्ता का नाम दर्ज कराने हेतु नन्हू सिंह (प्रतिवादी संख्या 2 राजेन्द्र का भाई) के पक्ष में मुख्तारनामा निष्पादित किया, किन्तु उसने कुछ नहीं किया तथा अभिलेख से वादी-याचिकाकर्ता का नाम हटवा दिया। वादी-याचिकाकर्ता के साथ धोखाधड़ी करके उसने चकबंदी अभिलेख में अपना तथा प्रतिवादियों का नाम दर्ज करा लिया। इस प्रकार, प्रतिवादियों का नाम धोखाधड़ी और अवैध रूप से राजस्व रिकॉर्ड में दर्ज किया गया है, जो वादी-याचिकाकर्ता के संज्ञान में पहली बार 27.1.1987 को आया और, परिणामस्वरूप, उन्होंने घोषणा के लिए वाद दायर किया।

4. इसके विपरीत, प्रतिवादियों ने लिखित बयान दाखिल कर वादपत्र में की गई दलीलों का खंडन करते हुए तर्क दिया है कि दिनांक 27.2.1901 का बंधक विलेख, जो दिनांक 4.3.1901 को पंजीकृत हुआ था, वाद संख्या 4/5

में सहायक कलेक्टर (प्रथम श्रेणी) द्वारा पारित दिनांक 29.2.1936 के निर्णय और दिनांक 3.3.1946 की डिक्री द्वारा मोचित किया गया था। नन्हू सिंह को वादी-याचिकाकर्ता द्वारा प्रश्नगत संपत्ति की देखभाल के लिए कभी भी मुख्तारनामा नियुक्त नहीं किया गया था। वादी-याचिकाकर्ता मूल बंधकदार के परिवार से संबंधित नहीं है और उसका नाम कभी राजस्व अभिलेखों में दर्ज नहीं है, इसलिए, उसकी ओर से वाद उत्तर प्रदेश राज्य ग्रामीण विकास अधिनियम की धारा 49 के अंतर्गत वर्जित होने के कारण पोषणीय नहीं है।

5. विद्वान विचारण न्यायालय ने, दलीलों के आदान-प्रदान के पश्चात, वाद का निर्णय करने के लिए 10 विवाद्यक विरचित किए हैं। इनमें से, उ.प्र.सी.एच. अधिनियम की धारा 49 के अंतर्गत वाद के निषेध के संबंध में विवाद्यक संख्या 7 विरचित किया गया था, जो नीचे उद्धृत है:-

"क्या वादी का वाद अधिनियम की धारा 49 के अंतर्गत वर्जित है?"

6. सहायक कलेक्टर (प्रथम श्रेणी)/उपखंड अधिकारी, बिल्हौर, कानपुर नगर ने दिनांक 7.11.2007 के निर्णय द्वारा उपरोक्त वाद को प्रतिवादियों के पक्ष में सकारात्मक रूप से निर्णीत किया है और अभिनिर्धारित किया कि वाद उ.प्र.सी.एच. अधिनियम की धारा 49 के अंतर्गत वर्जित है। दिनांक 7.11.2007 के निर्णय से व्यथित होकर, वादी ने अधिनियम, 1950 की धारा 331(3) के अंतर्गत अपील संख्या 46/2008 के रूप में प्रथम अपील दायर की है। विद्वान अपर आयुक्त, कानपुर मंडल, कानपुर ने दिनांक 3.11.2008 के आदेश द्वारा, विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश की पुष्टि करते हुए अपील को खारिज कर दिया। प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित आदेश से असंतुष्ट होकर वादी-याचिकाकर्ता ने राजस्व परिषद, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद के समक्ष द्वितीय अपील संख्या 14 वर्ष 2008/09 दायर किया, जिसे भी दिनांक 20.1.2011 के निर्णय द्वारा खारिज कर दिया गया, जिसे इस न्यायालय में चुनौती दी गई है।

7. वादी-याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अधिनियम, 1950 की धारा 229-बी के अंतर्गत वाद से उत्पन्न कार्यवाही में तीनों राजस्व न्यायालयों द्वारा दिए गए तथ्यों के समवर्ती निष्कर्ष पर आपत्ति करते हुए निम्नलिखित चार तर्क प्रस्तुत किए हैं:-

7.1- यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 49 के अंतर्गत प्रतिबंध केवल एक निश्चित अवधि के लिए लागू है, अर्थात यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत अधिसूचना जारी होने की तिथि से लेकर यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 52 के अंतर्गत अधिसूचना रद्द होने तक। उनके निवेदन के अनुसार, यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 4 16.9.1965 को प्रख्यापित की गई थी और 14.5.1977 को प्रख्यापित अधिसूचना द्वारा यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 52 के अंतर्गत गाँव को गैर-अधिसूचित किया गया था, हालाँकि, वाद 23.5.1988 को दायर किया गया था, इसलिए, यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 49 के अंतर्गत प्रतिपादित प्रावधान प्रस्तुत मामले में लागू नहीं होते हैं। अपने निवेदन के समर्थन में, वादी-याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रशांत सिंह एवं अन्य बनाम मीना एवं अन्य 2024 (9) एडीजे 187 में प्रतिवेदित वाद पर भरोसा किया है।

7.2- उन्होंने वादी-याचिकाकर्ता के विरुद्ध की गई जालसाजी की ओर इशारा करने की कोशिश की है और यह दलील दी है कि धोखाधड़ी हर चीज को, यहाँ तक कि गंभीर कार्यवाही को भी, दूषित कर देती है। उन्होंने वाद की दलीलों पर जोर दिया है कि वादी-याचिकाकर्ता ने चकबंदी कार्यवाही के दौरान भू-राजस्व अभिलेख में अपना नाम दर्ज कराने के लिए नन्हू सिंह (प्रतिवादियों-प्रत्यर्थीगण के भाई) के पक्ष में एक मुख्तारनामा निष्पादित किया था, हालांकि, धोखाधड़ी करके नन्हू सिंह ने अपना और अपने भाई का नाम प्रश्नगत संपत्ति पर दर्ज करा लिया और वादी-याचिकाकर्ता का नाम हटाने में कामयाब रहे। धोखाधड़ी की दलील पर तीनों राजस्व न्यायालयों ने उचित रूप से विचार नहीं किया और अवैध रूप से यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 49 के अंतर्गत वाद को वर्जित ठहराया। अपनी दलील के समर्थन में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने राम बृक्ष एवं अन्य बनाम उप निदेशक चकबंदी एवं 3 अन्य 2017 (6) एडीजे 356 (डीबी) में प्रतिवेदित; सगीर अहमद एवं अन्य बनाम उप निदेशक चकबंदी एवं अन्य, 2019 (6) एडीजे 336 में प्रतिवेदित और अमर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2008 (2) एडीजे 688 में प्रतिवेदित वाद पर भरोसा किया।

7.3- इसके बाद यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि श्रीमती राम दुलारी (वादी-याचिकाकर्ता की पूर्ववर्ती हितधारक) का नाम बंधकदार होने के नाते 1348 फसली और 1366 फसली से 1369 फसली में दर्ज किया गया था। वादी-याचिकाकर्ता के पूर्ववर्ती हितधारक और उसके बाद, वह स्वयं प्रश्नगत संपत्ति पर निरंतर कब्जे में हैं।

7.4- उन्होंने बंधक विलेख की शर्त संख्या 6 पर भी ज़ोर दिया है, जिसके अनुसार बंधक तीस वर्षों के बाद जब्त कर लिया जाएगा, और वाद संख्या 418 वर्ष 1911 में पारित निर्णय, जिसके अंतर्गत बंधकदार (वादी-याचिकाकर्ता के हित-पूर्ववर्ती) के पक्ष में कब्ज़ा दिया गया है। मूल वाद संख्या 418 वर्ष 2011 में पारित निर्णय और बंधक विलेख की शर्त संख्या 6 के अनुसार बंधक विलेख के जब्त होने के बाद, प्रतिवादियों का संबंधित संपत्ति पर कोई अधिकार, स्वामित्व और कब्ज़ा नहीं है। अतः, वर्तमान रिट याचिका स्वीकार की जाए और राजस्व न्यायालयों द्वारा पारित आक्षेपित आदेशों को, जो विधि के अंतर्गत अवैध और अनुचित हैं, रद्द किया जाए।

8. अनुबंध के अनुसार, प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत प्रस्तुतियों का पुरजोर विरोध किया और तर्क दिया कि:-

8.1- आगरा काश्तकारी अधिनियम (अधिनियम संख्या 3/ 2026) की धारा 99 के अंतर्गत बंधककर्ता की ओर से बंधकदार के विरुद्ध संपार्श्विक संपत्ति के मोचन और कब्जे के लिए दायर वाद 29.2.1936 को डिक्री किया गया था और 3.3.1946 को निष्पादित हुआ था। इस प्रकार, बंधकदार (याचिकाकर्ता के हित-पूर्ववर्ती) का प्रश्नगत संपत्ति पर कोई अधिकार, स्वामित्व और कब्जा नहीं है।

8.2- उन्होंने नन्हू सिंह के पक्ष में किसी भी मुख्तारनामा (अपंजीकृत) के निष्पादन का पुरजोर विरोध किया, जैसा कि वादपत्र के प्रस्तर संख्या 13 में कहा गया है, और तर्क दिया कि ऐसे मुख्तारनामा की प्रति तीनों राजस्व न्यायालयों में से किसी के समक्ष कभी भी दायर नहीं की गई थी। हालाँकि, पहली बार, कथित दस्तावेज़ इस न्यायालय के समक्ष दाखिल किया गया है, जो एक जाली दस्तावेज़ है।

8.3- प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने इस बात पर ज़ोर दिया है कि याचिकाकर्ता का नाम अधिकार अभिलेख, यानी खतौनी 1356 फसली, 1348 फसली और 1359 फसली में कभी दर्ज नहीं किया गया था। यहाँ

तक कि उनका नाम मूल चकबंदी अभिलेख में, अर्थात्, उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 4(2) के तहत अधिसूचना के माध्यम से चकबंदी कार्रवाई शुरू होने पर भी दर्ज नहीं किया गया था।

8.4- इसके बाद यह तर्क दिया गया है कि वादी-याचिकाकर्ता के विरूद्ध कोई बेईमानी या धोखाधड़ी नहीं की गई है, जो चकबंदी कार्रवाई के दौरान अपने अधिकार के प्रति अनिच्छुक था। धोखाधड़ी के संबंध में केवल तथ्य का दावा उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 49 के तहत रोक को टालने के लिए पर्याप्त नहीं है। वादपत्र के प्रस्तर 13 में वादी ने विरोधाभासी दलील दी है कि वह संबंधित समय में स्वयं विचाराधीन संपत्ति की देखभाल कर रहा था।

8.5- इसके बाद यह तर्क दिया गया है कि चुनौती दिए गए आदेश, यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 49 के अंतर्गत वाद को वर्जित मानते हुए, रिट क्षेत्राधिकार में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है, इसलिए इसे गलत और गुण-दोष रहित होने के कारण खारिज किया जा सकता है। अपने तर्क के समर्थन में, मुकदमा लड़ले वाले प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा निर्णीत कुशहर बनाम अहमद खान, 1962 आर.डी. 172, मदन मोहन मिश्रा बनाम चंद्रिका पांडे (मृत) द्वारा एल.आर.एस., 2009 (107) आर.डी. 2 एस.सी. और राम बृक्ष एवं अन्य (पूर्वोक्त) तथा सगीर अहमद एवं अन्य (पूर्वोक्त) के वाद का हवाला दिया है।

9. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत प्रतिद्वन्द्वी दलीलों पर विचार करने तथा अभिलेख के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि इस मामले में विचारणीय प्रश्न इस संकीर्ण दायरे में है कि क्या वादी की ओर से अधिनियम, 1950 की धारा 229 बी के अन्तर्गत दायर घोषणा वाद वर्जित है तथा उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 49 के अन्तर्गत पोषणीय नहीं है। इस प्रकार, यूपीसीएच अधिनियम की धारा 49 की प्रकृति और दायरे पर चर्चा आवश्यक है, जिसे नीचे उद्धृत किया गया है:

*"49. **सिविल न्यायालयों के क्षेत्राधिकार पर प्रतिबंध।** वर्तमान में प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, किसी क्षेत्र में स्थित भूमि के संबंध में खातेदार के अधिकार की घोषणा और न्यायनिर्णयन, जिसके लिए धारा 4 की उपधारा (2) के अधीन अधिसूचना जारी की गई है, या चकबंदी कार्यवाही से उत्पन्न किसी अन्य अधिकार का न्यायनिर्णयन, जिसके संबंध में इस अधिनियम के अधीन कार्यवाही की जा सकती थी या की जानी चाहिए थी, इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार किया जाएगा, और कोई भी सिविल या राजस्व न्यायालय ऐसी भूमि में अधिकारों के संबंध में या किसी अन्य मामले के संबंध में कोई वाद या कार्यवाही स्वीकार नहीं करेगा, जिसके लिए इस अधिनियम के अधीन कार्यवाही की जा सकती थी:]*

[परन्तु इस धारा की कोई बात सहायक कलेक्टर को उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 122-ख के अधीन किसी ऐसी भूमि के सम्बन्ध में कार्यवाही प्रारम्भ करने से नहीं रोकेगी, जिसका कब्जा इस अधिनियम के उपबन्धों के अधीन या उसके अनुसार किसी गांव सभा को सौंप दिया गया है या सौंप दिया जाना समझा गया है।]"

10. यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम का उद्देश्य कृषि के विकास हेतु कृषि जोतों की चकबंदी का प्रावधान करना है। यह एक संपूर्ण संहिता है जिसमें काश्तकारों की जोत पर उनके

अधिकार, स्वामित्व और हित से संबंधित शिकायतों के निवारण के साथ-साथ चक आवंटन, उसके मूल्यांकन और क्षेत्रफल आदि से संबंधित शिकायतों के निवारण के प्रावधान हैं। उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम के उद्देश्य को लागू करते हुए, जोतों को समेकित करने और विखंडन या बिखरी हुई जोतों से बचने के लिए, चकबंदी प्राधिकारियों को काश्तकारों के पक्ष में की गई राजस्व प्रविष्टियों का परीक्षण करने के लिए भी अधिकृत किया गया है। इस प्रयोजन के लिए, धारा 8ए सिद्धांतों का विवरण तैयार करने का प्रावधान करती है, जिसमें इकाई में चकबंदी कार्य करने में अपनाए जाने वाले सिद्धांतों का तुरंत उल्लेख किया गया है। धारा 9 में, उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 8 और 8 ए के अंतर्गत तैयार किए गए सिद्धांत कथन पर संबंधित खातेदारों और हितबद्ध व्यक्तियों को नोटिस जारी करने का प्रावधान है, जिसमें उनसे अनुरोध किया गया है कि वे, यदि कोई हो, तो उद्धरण में प्रविष्टि की सत्यता या प्रकृति पर विवाद करते हुए और उसमें किसी चूक को इंगित करते हुए, उसके समक्ष आपत्ति दर्ज कराएँ। धारा 10 में प्रावधान है कि चकबंदी अधिकारी द्वारा पारित आदेश के आधार पर वार्षिक रजिस्टर का पुनरीक्षण किया जाएगा। धारा 19 से आगे, धारा 20 और 21 अनंतिम चकबंदी योजना (चक आवंटन कार्यवाही) से संबंधित हैं। इस प्रकार, उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम के अंतर्गत प्रविष्टियों की सत्यता का परीक्षण करते समय खातेदारों के अधिकार, स्वामित्व और हित का परीक्षण करने का प्रावधान है। हालाँकि, कार्यवाहियों की बहुलता को हतोत्साहित करने के उद्देश्य से, विधायिका ने उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 49 के अंतर्गत सिविल और राजस्व न्यायालय के क्षेत्राधिकार को निम्नलिखित में से किसी भी मामले पर विचार करने से प्रतिबंधित कर दिया है:-

(i) उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 4(2) के अंतर्गत अधिसूचना द्वारा आच्छादित भूमि पर काश्तकारों के अधिकार की घोषणा और न्यायनिर्णयन,

या

(ii) चकबंदी कार्यवाही से उत्पन्न न्यायनिर्णयन या कोई अन्य अधिकार,

और

(iii) इन मामलों के संबंध में (जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है), कार्यवाही उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम के अंतर्गत की जा सकती थी या की जानी चाहिए थी,
(iv) उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार की जाएगी।

11. उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 49 के प्रारंभ में प्रयुक्त 'गैर-बाधा खंड', धारा के उत्तरार्द्ध भाग, अर्थात् "कार्यवाही इस अधिनियम के अंतर्गत की जा सकती थी या की जानी चाहिए थी" के साथ मिलकर, सिविल या राजस्व न्यायालयों पर किसी खातेदार के अधिकार की घोषणा और न्यायनिर्णयन या चकबंदी कार्यों से उत्पन्न किसी अन्य अधिकार के न्यायनिर्णयन के संबंध में कोई कार्यवाही करने पर पूर्ण प्रतिबंध लगाता है, जिसके लिए संबंधित व्यक्ति को उस समय कार्यवाही करनी चाहिए थी या कर सकता था जब उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 4(2) के अंतर्गत अधिसूचना जारी करके गाँव को चकबंदी कार्यों के अंतर्गत लाया गया था। इसका अर्थ यह है कि उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत तैयार अधिकारों का अंतिम अभिलेख खातेदारों के अधिकारों की घोषणा और न्यायनिर्णयन के संबंध में अंतिमता प्रदान करता

है, इसलिए, उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 52 के अंतर्गत अधिसूचना रद्द करने के बाद, सिविल या राजस्व न्यायालयों को ऐसे न्यायनिर्णयन या अधिकारों की घोषणा को पुनः खोलने का कोई अधिकार नहीं है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **सीता राम बनाम छोटा भोंडे एवं अन्य, एआईआर 1991 सर्वोच्च न्यायालय 249** के वाद में उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 49 के दायरे पर चर्चा करते हुए अभिनिर्धारित किया है कि यह व्यापक और विस्तृत है। उपर्युक्त उद्धृत वाद को जन्म देने वाले तथ्य यह हैं कि छोटा और नन्हा सगे भाई हैं। मूल चकबंदी अभिलेख में, नन्हा का नाम स्वयं और उसके भाइयों की ओर से प्रतिनिधि क्षमता में दर्ज किया गया था। छोटा के पुत्र ने प्रश्नगत संपत्ति पर अपने सह-किरायेदारी अधिकार का दावा करते हुए आपत्ति दर्ज की है। चकबंदी अधिकारी ने सह-किरायेदारी अधिकार प्रदान किया है, हालांकि, अपील दायर होने के बाद, चकबंदी अधिकारी के आदेश को उलट दिया गया। व्यथित होने के बाद, पुनरीक्षण को प्राथमिकता दी गई और उप निदेशक चकबंदी ने चकबंदी अधिकारी द्वारा पारित आदेश को बरकरार रखा। रिट याचिका में, चकबंदी अधिकारी के आदेश की पुष्टि की गई थी। बाद के चरण में, यह घोषित करने के लिए सिविल वाद दायर किया गया था कि चकबंदी के उप निदेशक का आदेश क्षेत्राधिकार के बाहर था। मुकदमे का विरोध करते हुए, दूसरे पक्ष ने प्रारंभिक आपत्ति उठाई है कि वाद उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 49 के अंतर्गत वर्जित है। विद्वान विचारण न्यायालय ने प्रारंभिक आपत्ति स्वीकार कर ली है, जिसे माननीय उच्च न्यायालय के समक्ष द्वितीय अपील के चरण तक बरकरार रखा गया है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी कि उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 49 के अंतर्गत वर्जित दो आधारों पर वाद पर लागू नहीं होता; चकबंदी प्राधिकारी भूमि के स्वामित्व के प्रश्न और प्रत्यर्थी के पितृत्व से संबंधित प्रश्न पर निर्णय नहीं कर सकते, जिसका निर्णय केवल सिविल न्यायालय ही कर सकता है।

12. इस तथ्य की पृष्ठभूमि में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि:

"धारा 49 के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि उस क्षेत्र में स्थित भूमि के संबंध में, जिसके लिए धारा 4(2) के अंतर्गत अधिसूचना जारी की गई है, काश्तकारों के अधिकारों की घोषणा और न्यायनिर्णयन तथा चकबंदी कार्यवाही से उत्पन्न किसी अन्य अधिकार का न्यायनिर्णयन, जिसके संबंध में अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाही की जा सकती थी या की जानी चाहिए थी, केवल अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार ही किया जाना था और ऐसी भूमि में अधिकारों के संबंध में या किसी अन्य मामले के संबंध में, जिसके लिए अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाही की जा सकती थी या की जानी चाहिए थी, किसी भी वाद या कार्यवाही पर विचार करने का सिविल या राजस्व न्यायालयों का क्षेत्राधिकार समाप्त कर दिया गया है। धारा 49 में प्रयुक्त भाषा व्यापक और सारगर्भित है। अधिनियम की धारा 4(2) के अंतर्गत अधिसूचना द्वारा आच्छादित क्षेत्र में स्थित भूमि के संबंध में खातेदारों के अधिकारों की घोषणा और न्यायनिर्णयन, तथा चकबंदी कार्यवाही से उत्पन्न किसी अन्य अधिकार का न्यायनिर्णयन, जिसके संबंध में अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाही की जा सकती थी या की जानी चाहिए थी, उक्त भूमि के संबंध में स्वामित्व संबंधी प्रश्नों के न्यायनिर्णयन को भी शामिल करेगा। इस दृष्टिकोण को अधिनियम के अन्य प्रावधानों और उनमें किए गए संशोधनों से भी समर्थन मिलता है।"

13. उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 49, जो सिविल न्यायालय और राजस्व न्यायालय के क्षेत्राधिकार पर रोक लगाती है, उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 5(2) के अंतर्गत प्रतिपादित प्रावधानों को प्रभावी बनाती है। अतः, उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 49 के प्रावधानों को बेहतर ढंग से समझने के लिए, उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 5(2) के अंतर्गत प्रतिपादित प्रावधानों का भी संदर्भ लिया जा सकता है, जो उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 4(2) के अंतर्गत अधिसूचना के प्रभाव को दर्शाता है कि, उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 4(2) के अंतर्गत राजपत्र में अधिसूचना के माध्यम से चकबंदी प्रक्रिया के प्रारंभ होने पर, उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 52 के अंतर्गत अधिसूचना के प्रकाशन या उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 6 के अंतर्गत ऐसी अधिसूचना के रद्द होने तक, जैसा भी मामला हो, अभिलेखों में सुधार के लिए प्रत्येक कार्यवाही और प्रत्येक वाद और किसी भी भूमि पर अधिकार या हित की घोषणा के संबंध में कार्यवाही अधिसूचना, या किसी अन्य अधिकार की घोषणा या न्यायनिर्णयन के क्षेत्र में, जिसके संबंध में इस अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाही की जा सकती है या की जानी चाहिए, किसी न्यायालय या प्राधिकारी के समक्ष लंबित, चाहे वह प्रथम दृष्टया हो या अपील, संदर्भ या पुनरीक्षण का, उस न्यायालय या प्राधिकारी की ओर से पारित आदेश पर समाप्त हो जाएगा जिसके समक्ष ऐसा वाद या कार्यवाही लंबित है। इस प्रकार, उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 5(2) के अंतर्गत प्रतिबंध और उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 49 के अंतर्गत प्रतिबंध अलग-अलग आयामों में कार्य कर रहे हैं, तथापि, चकबंदी प्रक्रिया के दौरान किसी भी अधिकार की घोषणा और न्यायनिर्णयन की विधिक पवित्रता को बनाए रखने के लिए धारा 49 सहायक है। उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 5 तब लागू होती है जब इकाई/क्षेत्र को उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 4(2) के अंतर्गत चकबंदी कार्रवाई के लिए अधिसूचित किया जाता है, अर्थात चकबंदी कार्रवाई के दौरान, धारा 6 के अंतर्गत इसकी समाप्ति या धारा 52 के अंतर्गत अधिसूचना रद्द होने से पहले। हालाँकि, धारा 5 के अनुसरण में, उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 49 के अंतर्गत प्रतिबंध, उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 52 के अंतर्गत अधिसूचना रद्द होने के बाद भी लागू होता है, जब चकबंदी कार्रवाई से उत्पन्न पक्षों के अधिकार, स्वामित्व और हित तथा अन्य अधिकार अंतिम रूप ले लेते हैं। उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 49 के अंतर्गत प्रतिबंध को लागू करते समय, विधि का उद्देश्य बहुविध मुकदमों को कम करना है और वादियों को संबंधित संपत्ति के संबंध में अपने अधिकार, स्वामित्व और हित के लिए न्यायनिर्णयन हेतु अंतहीन मुकदमेबाजी प्रक्रिया में शामिल होने के लिए प्रोत्साहित नहीं करना है। उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 49 के अंतिम भाग में प्रयुक्त वाक्यांश, अर्थात् "जिसके लिए इस अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाही की जा सकती थी या की जानी चाहिए थी", काफी सार्थक और महत्वपूर्ण है। यह सिविल न्यायालयों और राजस्व न्यायालयों के क्षेत्राधिकार को, उस भूमि के संबंध में पक्षकारों के अधिकार, स्वामित्व और हित का न्यायनिर्णयन और घोषणा करने से रोकता है जो पहले ही चकबंदी प्रक्रिया से गुजर चुकी है और उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 52 के अंतर्गत विमुद्रीकरण के बाद उसके संबंध में अधिकारों का अभिलेख अंतिम रूप से तैयार हो चुका है। कोई भी खातेदार, जिसे चकबंदी प्रक्रिया के दौरान उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम के अंतर्गत उचित आपत्ति दर्ज कराने के लिए सतर्क रहना चाहिए था और अपनी आवाज उठा सकता था, यदि वह ऐसा करने में अनिच्छुक है और

उचित आपत्ति दर्ज नहीं करता है, तो उसे बाद में किसी भी सिविल या राजस्व न्यायालय के समक्ष ऐसी आपत्ति दर्ज कराने से रोक दिया जाएगा। **सीता राम (पूर्वोक्त)** वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि:

"धारा 5 में किए गए उक्त संशोधन के परिणामस्वरूप, उस क्षेत्र में स्थित किसी भी भूमि में अधिकारों या हितों की घोषणा के संबंध में, जिसके लिए धारा 4(2) के अंतर्गत अधिसूचना जारी की गई है या किसी अन्य अधिकार की घोषणा या न्यायनिर्णयन के संबंध में, जिसके संबंध में अधिनियम के तहत कार्यवाही की जा सकती है या की जानी चाहिए, न्यायनिर्णयन करने का न्यायालयों का अधिकार पूरी तरह से छीन लिया गया है और इन अधिकारों का न्यायनिर्णयन अधिनियम और उसके तहत बनाए गए नियमावली के प्रावधानों के तहत और उनके अनुसार चकबंदी अधिकारियों द्वारा किया जाना है। अधिनियम की धारा 49, जो सिविल और राजस्व न्यायालयों के क्षेत्राधिकार को रोकती है, अधिनियम की धारा 5(2) में निहित उपरोक्त प्रावधानों को प्रभावी बनाती है। इन संशोधनों के परिणामस्वरूप, उस क्षेत्र में स्थित किसी भी भूमि में अधिकारों या हितों के निर्धारण के मामले में, जिसके लिए अधिनियम की धारा 4(2) के अंतर्गत नोटिस जारी किया गया है या किसी अन्य अधिकार की घोषणा या न्यायनिर्णयन के मामले में, जिसके संबंध में अधिनियम के तहत कार्यवाही की जा सकती है या की जानी चाहिए, सिविल और राजस्व न्यायालयों की कोई भूमिका नहीं है।

Xx xx xx

इस वाद में, प्रत्यर्थी संख्या 1, धारा 4(2) के अंतर्गत जारी अधिसूचना के अंतर्गत आने वाले क्षेत्र में स्थित भूमि पर इस आधार पर दावा कर रहा था कि वह छोटा का पुत्र और नन्हा का भाई है और भूमि नन्हा के नाम पर उसकी और उसके अन्य भाइयों की ओर से प्रतिनिधि के रूप में दर्ज है। यह दावा, जो धारा 5(2) के अंतर्गत आता था, चकबंदी प्राधिकारियों द्वारा अधिनिर्णित किया जाना था। चूँकि यह मामला अधिनियम के अंतर्गत चकबंदी प्राधिकारियों को सौंपे गए न्यायनिर्णयन कार्यों के दायरे में आता था, इसलिए उक्त मामले के संबंध में वाद पर विचार करने का सिविल न्यायालय का अधिकार अधिनियम की धारा 49 द्वारा स्पष्ट रूप से वर्जित था और अपीलकर्ता का वाद इसी आधार पर उचित रूप से खारिज कर दिया गया था।

(बल दिया गया)

14. हालाँकि, न्यायिक उद्घोषणा के माध्यम से, धोखाधड़ी के आधार पर एक अपवाद इस विधिक धारणा के तहत बनाया गया है कि धोखाधड़ी हर चीज को, यहाँ तक कि न्यायिक कार्यवाही के गंभीर कार्यों को भी, दूषित कर देती है। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इस बिन्दु पर बल दिया और कहा कि वादी/याचिकाकर्ता के साथ धोखाधड़ी की गई है और उसका नाम राजस्व अभिलेख से हटा दिया गया है। प्रतिवादियों ने चकबंदी कार्रवाई के दौरान अपने नाम दर्ज करा लिए, इस तथ्य के बावजूद कि वादी/याचिकाकर्ता ने चकबंदी कार्रवाई के दौरान प्रविष्टि को सही कराने के लिए नन्हू सिंह के पक्ष में मुख्तारनामा निष्पादित किया था। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत सभी मामलों में, एक बात समान है, जिसे माननीय उच्च न्यायालय और माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ध्यान में रखा है कि पीड़ित व्यक्तियों का प्रश्नगत जोत पर पहले से सह-किरायेदारी है और पहले से मौजूद अधिकार पर विचार करने के बाद, संबंधित माननीय न्यायालयों ने संक्षेप में कहा है कि पक्षकार के साथ धोखाधड़ी करके उसका नाम चकबंदी कार्रवाई के दौरान, अर्थात् उत्तर प्रदेश जोत

चकबंदी अधिनियम की धारा 4(2) के तहत अधिसूचना जारी होने के बाद और धारा 52 के तहत अधिसूचना रद्द होने से पहले, दर्ज होने के लिए छोड़ दिया गया था। इस प्रकार, धोखाधड़ी की स्थिति में, पीड़ित व्यक्ति की ओर से बाद में दायर वाद को यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 49 के तहत वर्जित करना न्यायोचित नहीं होगा।

15. इस प्रस्ताव को स्पष्ट करने के लिए, मैं याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत सभी मामलों पर चर्चा करना चाहूंगा। इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा निर्णीत **राम बृक्ष एवं अन्य (पूर्वोक्त**) मामले में, उक्त रिट याचिका को जन्म देने वाले तथ्य यह हैं कि राम बृक्ष (याचिकाकर्ता) का नाम मूल चकबंदी अभिलेख में दर्ज था। पिछली चकबंदी कार्रवाई में, रामविलास द्वारा कोई आपत्ति दर्ज नहीं की गई थी, तथापि, बाद की चकबंदी कार्रवाई में, उन्होंने उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 9ए-2 के तहत एक आपत्ति दर्ज की है, जिसमें उन्होंने स्वयं को उस याचिकाकर्ता का सगा भाई बताया है, जिसका नाम धोखाधड़ी से हटा दिया गया था। याचिकाकर्ता (राम बृक्ष) ने इस तर्क के साथ मामले का विरोध किया है कि यद्यपि पिछली चकबंदी कार्रवाई में आपत्ति दर्ज नहीं की गई थी और अंतिम चकबंदी अभिलेख के साथ अंतिम रूप से संलग्न है, परन्तु बाद की चकबंदी कार्रवाई में दर्ज की गई आपत्ति उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 49 के तहत वर्जित है। तथ्यों की इस पृष्ठभूमि में, इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने तीन प्रश्न तैयार किए हैं और मामले को विचारार्थ खंडपीठ के समक्ष भेजा है, जो नीचे उद्धृत हैं:-

"(i) क्या अधिनियम की धारा 49 के उत्तरार्द्ध में "लिया जा सकता था या लिया जाना चाहिए था" शब्दों का प्रयोग, उन सह-हिस्सेदारों को, जो संयुक्त रूप से शांतिपूर्वक रह रहे हैं और जिन्हें अपने पिता/भाई/सह-हिस्सेदार, जिनका नाम प्रतिनिधि क्षमता में दर्ज है, के विरुद्ध कोई शिकायत नहीं है, या वे अपने परिवार की स्थिति के कारण संयुक्त रूप से रहने को तैयार थे, अर्थात् (पिता और नाबालिग पुत्र), (माता और नाबालिग पुत्र), (भाई और नाबालिग भाई) और (कुछ सह-हिस्सेदार छात्र थे और अध्ययन के लिए विदेश गए थे और पूरी तरह से अन्य सह-हिस्सेदारों पर निर्भर हैं) आदि, अधिनियम की धारा 9 के तहत अपने हिस्से के पृथक्करण हेतु आपत्ति दर्ज करने के लिए बाध्य करता है?

(ii) क्या विधि के अनुसार, पक्षकारों को उनकी इच्छा/आवश्यकता के विरुद्ध मुकदमे में धकेला जा सकता है और भूमि या चक के विभाजन एवं पृथक्करण पर दावा न करने पर संविधान के अनुच्छेद 19(1)(एफ) और अब अनुच्छेद 300-ए के अंतर्गत उपलब्ध संरक्षण के बावजूद, उनकी संपत्ति का अधिकार छीना जा सकता है?

(iii) क्या संयुक्त संपत्ति के संबंध में सुस्थापित विधिक सिद्धांत के बावजूद, धारा 52 के अंतर्गत अधिसूचना जारी होने पर, अपने हिस्से के विभाजन और अपने नाम पर अलग चक का दावा न करने के कारण, अधिनियम की धारा 49 के अंतर्गत सह-हिस्सेदार का अधिकार समाप्त हो जाएगा, हालाँकि, संयुक्त संपत्ति से कोई बेदखली नहीं हुई थी?

16. तीनों प्रश्नों का उत्तर देते हुए माननीय खंडपीठ ने अभिनिर्धारित किया कि जोतों में पक्षकारों के अधिकार को केवल इस आधार पर पराजित नहीं किया जा सकता कि उन्होंने चकबंदी कार्यवाही में भाग नहीं लिया है और उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 49 के तहत रोक लगेगी या नहीं, यह अनिवार्य रूप से तथ्य

का प्रश्न है जिसका उत्तर प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर दिया जा सकता है और उक्त रोक के लिए अपवाद तैयार किए जाने चाहिए, जिसमें प्रश्नगत वाद पर रोक नहीं होगी और उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 49 लागू नहीं होगी, जहां दस्तावेजों और परिस्थितियों की श्रृंखला से यह परिलक्षित होता है कि राजस्व अभिलेख से वादी का नाम हटाने के लिए योजनाबद्ध धोखाधड़ी की गई है। चकबंदी के अभिलेखों से यह स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है कि न तो पदधारी, जिसने अपना नाम दर्ज कराने की कार्यवाही की है, और न ही चकबंदी प्राधिकारियों ने उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम के प्रावधानों के अनुरूप अपने कर्तव्यों का ईमानदारी से निर्वहन किया है, जिसके तहत चकबंदी प्राधिकारियों को प्रत्येक मालिक के हिस्से का पता लगाने का अधिकार है, यदि एक से अधिक मालिक हैं और यदि ऐसा नहीं किया गया है, तो यह विधिक दुर्भावना का मामला होगा और यह स्वतः ही नहीं माना जा सकता है कि संबंधित संपत्ति से बेदखल कर दिया गया है और ऐसी स्थिति में कोई भी पदधारी, जो संबंधित संपत्ति में अपने अधिकार का दावा करता है, को स्वामित्व के आधार पर अपनी संपत्ति वापस पाने का पूरा अधिकार है, क्योंकि धोखाधड़ी और हेरफेर के आधार पर अधिकार को पराजित करने की कोशिश की गई है।

(बल दिया गया)

17. माननीय खंडपीठ द्वारा तीनों संदर्भित प्रश्नों के दिए गए उत्तर नीचे उद्धृत हैं:

विवाद्यक संख्या I:- अधिनियम की धारा 49 के उत्तरार्द्ध में "लिया जा सकता था या लिया जाना चाहिए था" शब्दों के कारण, यह उन सह-हिस्सेदारों को अनिवार्य रूप से बाध्य नहीं करता है, जो संयुक्त रूप से शांतिपूर्वक रह रहे हैं और जिन्हें अपने पिता/भाई/सह-हिस्सेदार, जिनका नाम प्रतिनिधि हैसियत में दर्ज है या जो अपने परिवार की स्थिति के कारण संयुक्त रूप से रहने को तैयार थे, के विरुद्ध कोई शिकायत नहीं है और जिन्होंने अधिनियम की धारा 49 के अंतर्गत अपने हिस्से के पृथक्करण हेतु कोई आपत्ति दर्ज नहीं की है, क्योंकि उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम, 1953 के प्रावधानों के अंतर्गत, प्राधिकारियों और प्रतिनिधि हैसियत में विचाराधीन संपत्ति पर कब्जा रखने वाले व्यक्ति का यह वैधानिक दायित्व है कि वे अभिलेखों को सही करवाएँ और यदि चकबंदी प्राधिकारियों के साथ-साथ प्रतिनिधि हैसियत में संपत्ति पर कब्जा रखने वाले व्यक्ति द्वारा निर्धारित तरीके से प्रश्नगत दायित्व का निर्वहन नहीं किया गया है, तो तो ऐसी स्थिति में अधिनियम की धारा 49 लागू नहीं होगी और ऐसी स्थिति अन्य सह-हिस्सेदारों के नाम राजस्व अभिलेखों से हटाने के लिए योजनाबद्ध धोखाधड़ी की आकस्मिकता के अंतर्गत आएगी।

विवाद्यक क्रमांक II:- इसका उत्तर यह है कि किसी पक्षकार को उसकी इच्छा/आवश्यकता के विरुद्ध मुकदमेबाजी में नहीं डाला जा सकता है और विभाजन एवं चक पृथक्करण की भूमि पर दावा न करने से, भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(1)(एफ)/अनुच्छेद 300-ए के तहत प्रदत्त संरक्षण के अंतर्गत उसकी संपत्ति के अधिकार को नहीं छीना जा सकता है।

विवाद्यक क्रमांक III:- अपने हिस्से के विभाजन एवं अपने नाम से पृथक चक का दावा न करने के कारण धारा 52 के तहत अधिसूचना जारी होने पर अधिनियम की धारा 49 के तहत सह-हिस्सेदारों के अधिकार बिल्कुल समाप्त नहीं होंगे और जब तक संयुक्त संपत्ति से बेदखल नहीं किया जाता है, तब तक संपत्ति में उसका अधिकार विद्यमान रहेगा।

18. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, माननीय खंडपीठ ने रामविलास के अपने भाई के साथ सह-हिस्सेदार होने के नाते पूर्व-विद्यमान सह-काश्तकारी अधिकार को स्वीकार किया है, जिसका नाम किसी अनजाने में हुई गलती या धोखाधड़ी के कारण प्रथम चकबंदी कार्रवाई में दर्ज नहीं किया जा सका था। इस प्रकार, इस पृष्ठभूमि में, माननीय खंडपीठ इस निष्कर्ष पर पहुँची है कि यूपीसीएच अधिनियम की धारा 49 के अंतर्गत निषेध के आधार पर उनके पूर्व-विद्यमान अधिकार को कम नहीं किया जा सकता है।

19. इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा **सगीर अहमद एवं अन्य** (पूर्वोक्त) के वाद में लगभग समान तथ्यों का परीक्षण किया गया था, जिसमें दोनों पक्षों की वंशावली स्वीकार की गई थी। श्री बेचई शाह और भग्गू शाह पुत्र वाजिद शाह सगे भाई थे। प्रथम चकबंदी कार्रवाई में बेचई शाह का नाम विशेष रूप से दर्ज किया गया था, हालाँकि, भग्गू शाह का नाम दर्ज नहीं किया गया था, इस तथ्य के बावजूद कि 1359 एफ से संबंधित खतौनी में दोनों भाइयों का नाम संयुक्त रूप से दर्ज था। दूसरी चकबंदी कार्रवाई शुरू होने पर, भग्गू शाह ने अपने भाई की मृत्यु के बाद, उसके उत्तराधिकारियों के साथ, संबंधित भूमि पर सह-काश्तकार के अधिकार का दावा करते हुए, यूपीसीएच अधिनियम की धारा 9ए-2 के अंतर्गत आपत्ति दायर की है। इस न्यायालय की समन्वय पीठ, राम बृक्ष (पूर्वोक्त) वाद में इस न्यायालय की खंडपीठ के निर्णय पर भरोसा करते हुए, इस निष्कर्ष पर पहुंची है कि यूपीसीएच अधिनियम की धारा 49 का प्रतिबंध तब लागू नहीं होगा जब अभिलेखों और परिस्थितियों से यह परिलक्षित हो कि दर्ज खातेदार का नाम धोखाधड़ी करके हटाया गया है। तदनुसार, यदि यह पाया जाता है कि दर्ज खातेदार या सहखातेदार का नाम सुनियोजित धोखाधड़ी करके राजस्व अभिलेख से हटा दिया गया है, तो यह विधिक द्वेष का मामला होगा और ऐसी स्थिति में, जिस व्यक्ति का नाम हटाया गया है, उसे स्वामित्व के आधार पर संबंधित संपत्ति पर दावा करने का अधिकार होगा क्योंकि ऐसा अधिकार हेरफेर के आधार पर पराजित साबित हो चुका है।

20. अमर सिंह (पूर्वोक्त) का वाद, जिस पर याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने भरोसा किया है, उसी नाव पर सवार है जहां तक यह वाद के तथ्यों से संबंधित है जिसमें विवादित भूखंड वादी (सरू) और प्रतिवादी (अमर सिंह याचिकाकर्ता) द्वारा 17.03.1969 की पंजीकृत बिक्री विलेख के माध्यम से खरीदा गया था। वादी का वाद यह था कि प्रतिवादी/याचिकाकर्ता विभिन्न न्यायालयों में मामलों को देखता था और वादी एक *गड़रिया* के रूप में जंगल में रहता था और अपनी बकरियों की देखभाल करता था। हालांकि, राजस्व अभिलेख से उसका नाम हटाकर प्रतिवादी ने उसे धोखा दिया है। वादी ने यह भी दावा किया है कि 17.03.1969 की पंजीकृत बिक्री विलेख के बाद, दोनों पक्षों को बिक्री विलेख (मुकदमे की संपत्ति) की विषय वस्तु का कब्जा मिल गया। इस प्रकार, तथ्यों की इस पृष्ठभूमि में, यह अभिनिर्धारात किया गया कि एक सह-हिस्सेदार, जिसने दावा किया है कि वह संबंधित संपत्ति का मालिक है और उसका नाम चकबंदी कार्यवाही में दर्ज नहीं है, उसे भू-राजस्व प्रविष्टियों को सही करने और अपना नाम दर्ज करने के लिए अधिनियम, 1950 की धारा 229बी के तहत वाद दायर करने से नहीं रोका जा सकता, यदि आरोप यह है कि उसके साथ धोखाधड़ी करके उसका नाम हटा दिया गया था। अपनी टिप्पणी के समर्थन में, इस न्यायालय की विद्वान समन्वय पीठ ने **करबलाई बेगम बनाम मोहम्मद सईद व अन्य, एआईआर 1981 एससी 77** के वाद का हवाला दिया है।

अनुवादित

21. कर्बलाई बेगम (पूर्वोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय को उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 49 के अंतर्गत निषेध के दायरे पर विचार करने का अवसर मिला। विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों में, कर्बलाई बेगम (माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ता) को उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 49 के अंतर्गत निषेध के आधार पर विचाराधीन संपत्ति पर सह-किरायेदारी के अधिकार से वंचित कर दिया गया था। उपरोक्त वाद को जन्म देने वाले तथ्य यह थे कि कर्बलाई बेगम (विधवा) प्रतिवादी संख्या 1 और 2 के साथ सह-किरायेदार थीं, जो उनके पति के चचेरे भाई थे। सह-भूमिधर होने के नाते वे विवादित भूखंड के संयुक्त कब्जे में थे। 1959 की फसली तक उनके पास एक संयुक्त खाता था। चकबंदी कार्यवाही के दौरान, प्रतिवादियों का नाम विशेष रूप से विचाराधीन भूखंड पर दर्ज किया गया था। बाद में, कर्बलाई बेगम ने अपने हिस्से की सीमा तक सह-किरायेदारी के लिए वाद दायर किया था। प्रतिवादियों ने दलील दी कि चकबंदी प्रक्रिया के दौरान पक्षकारों के अधिकार और स्वामित्व अंतिम हो जाने के कारण, उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 49 के अंतर्गत वाद पर रोक है। विचारण न्यायालय ने वाद को खारिज कर दिया, हालाँकि, अपील दायर होने पर, जिला न्यायाधीश ने इस तथ्य के विशिष्ट निष्कर्ष के साथ वाद को स्वीकार कर लिया कि चकबंदी प्रक्रिया के दौरान प्रतिवादियों या किसी अन्य द्वारा स्पष्ट धोखाधड़ी की गई थी, जिसके परिणामस्वरूप वादी के अधिकार समाप्त हो गए थे। माननीय उच्च न्यायालय ने दूसरी अपील में, चकबंदी प्राधिकारियों द्वारा की गई धोखाधड़ी को सिद्ध करने हेतु साक्ष्य के अभाव में जिला न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय को रद्द कर दिया। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने जिला न्यायाधीश द्वारा दिए गए निष्कर्ष की पुष्टि की और अभिनिर्धारित कि करबलाई बेगम के साथ धोखाधड़ी की गई थी, जिसके परिणामस्वरूप चकबंदी प्रक्रिया के दौरान उनका नाम समाप्त हो गया। इन तथ्यों की पृष्ठभूमि में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 49 के अंतर्गत प्रतिबंध उस धोखाधड़ी के मामले में लागू नहीं होगा जहाँ सह-किरायेदारी से इनकार किया गया हो। यह भी कहा गया है कि यह सर्वमान्य है कि सह-हिस्सेदार की भूमि के किराये और लाभ में केवल गैर-भागीदारी, प्रतिकूल कब्जे द्वारा स्वामित्व प्रदान करने के लिए बेदखल करने के समान नहीं है। वास्तव में, यदि इस तथ्य को स्वीकार भी कर लिया जाए, तो विधिक स्थिति यह होगी कि प्रतिवादी संख्या 1 (मोहम्मद बशीर) और प्रतिवादी संख्या 2 (मोहम्मद राशिद), वादी के सह-हिस्सेदार होने के नाते, वादी की ओर से रचनात्मक न्यासी बन जाएँगे और वादी के अधिकार न्यासियों द्वारा संरक्षित माने जाएँगे।

(बल दिया गया)

22. हालाँकि, **नरेंद्र सिंह एवं अन्य बनाम जय भगवान एआईआर 2005 एससी 582** के वाद में, जिस पर माननीय खंडपीठ ने **राम बृक्ष** एवं अन्य (पूर्वोक्त) के मामले में भरोसा किया था, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि उच्च न्यायालय द्वारा उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 49 के अंतर्गत निषेधाज्ञा का आह्वान करना सही था। उद्धृत मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह टिप्पणी की है कि यह तर्क कि पिता के नाम की प्रासंगिक प्रविष्टि को पुत्रों के प्रतिनिधि के रूप में माना जाना चाहिए, भ्रामक है। क्या पिता परिवार का *कर्ता* या प्रबंधक था और इस प्रकार, वह परिवार के सभी वर्गों के प्रतिनिधि

के रूप में दर्ज हो सकता था, यह भी स्वामित्व का प्रश्न था, जो अधिनियम के अंतर्गत प्राधिकारियों के अनन्य क्षेत्राधिकार में आता था।

23. पूर्ववर्ती प्रस्तर में की गई चर्चा के मद्देनजर, यह न्यायालय याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत इस दलील पर संदेह करता है कि धारा 49 के अंतर्गत प्रतिबंध केवल निश्चित अवधि के लिए लागू होता है, जो यूपीसीएच अधिनियम की धारा 4(2) के अंतर्गत अधिसूचना के प्रख्यापन से शुरू होकर यूपीसीएच अधिनियम की धारा 52 के अंतर्गत अधिसूचना प्रख्यापित होने तक लागू होता है। इस दलील के समर्थन में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **प्रशांत सिंह एवं अन्य बनाम मीना एवं अन्य 2024(9) एडीजे 187** के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के नवीनतम निर्णय का हवाला दिया है। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा जिस प्रस्तर 9 पर भरोसा किया गया है, उसे नीचे उद्धृत किया गया है:

"9. साधारण रूप से पढ़ने पर, हम पाते हैं कि 1953 के अधिनियम की धारा 49, उस क्षेत्र में स्थित भूमि के संबंध में, जिसके लिए चकबंदी की कार्यवाही शुरू हो चुकी है, काश्तकारों के अधिकारों की घोषणा या न्यायनिर्णयन प्रदान करने के लिए सिविल या राजस्व न्यायालय के क्षेत्राधिकार पर रोक लगाती है। 1953 के अधिनियम की धारा 49, चकबंदी की कार्यवाही लंबित रहने की अवधि के दौरान ही सिविल या राजस्व न्यायालय के क्षेत्राधिकार के अस्थायी निलंबन का प्रावधान करती है। उल्लेखनीय है कि गैर-बाधित प्रावधान के माध्यम से इन न्यायालयों के क्षेत्राधिकार का निलंबन केवल काश्तकारों के अधिकारों की घोषणा और न्यायनिर्णयन के संबंध में है। दूसरे शब्दों में, जब तक कोई व्यक्ति पहले से काश्तकार न हो, धारा 49 लागू नहीं होती।"

24. उद्धृत वाद को जन्म देने वाले तथ्य, ऊपर वर्णित तथ्यों के समान हैं, जिसमें दर्ज खातेदारों द्वारा पीड़ित व्यक्ति के सह-किरायेदारी अधिकार को अस्वीकार कर दिया गया है। उद्धृत मामले में, वाद का विषय एक पैतृक संपत्ति है, जिसका मूल स्वामित्व अंगत नामक व्यक्ति के पास था, जो अपने तीन पुत्रों, रामजी लाल, खुशी राम और प्यारा को छोड़कर मर गया। तत्पश्चात, प्यारा निःसंतान मर गया और उसका हिस्सा उसके दो भाइयों को समान रूप से प्राप्त हुआ। खुशी राम की भी मृत्यु हो गई, वह अपने पुत्र कल्याण सिंह को छोड़कर चला गया। चकबंदी प्रक्रिया के दौरान, कल्याण सिंह का नाम हटाने के लिए अभिलेखों में हेराफेरी की गई थी और उसे लापता दिखाया गया था। व्यथित होकर, कल्याण सिंह ने विचाराधीन संपत्ति में अपने आधे हिस्से की सीमा तक घोषणा हेतु वाद संस्थित किया है। विद्वान विचारण न्यायालय ने कल्याण सिंह को सह-किरायेदारी का अधिकार देते हुए वाद का आदेश पारित किया है। प्रथम अपीलीय न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश की पुष्टि की है। राजस्व बोर्ड ने दूसरी अपील दायर होने पर विशिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 34 की प्रयोज्यता के संबंध में विवाद्यक विरचित करने के बाद मामले को नए सिरे से निर्णीत करने के लिए विचारण न्यायालय के समक्ष भेज दिया। राजस्व बोर्ड द्वारा पारित आदेश को चुनौती देते हुए कल्याण सिंह द्वारा दायर रिट याचिका को स्वीकृति दी गई। माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष दलील दी गई कि कल्याण सिंह द्वारा दायर वाद यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 49 के अंतर्गत वर्जित था। तथ्यों की इस पृष्ठभूमि में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि यू.पी.सी.एच. अधिनियम के अंतर्गत प्रावधान चकबंदी

अधिकारी को रामजी लाल (कल्याण सिंह के चाचा) को एक संपत्ति के संबंध में स्वामित्व देने में सक्षम नहीं बनाते हैं, जो चकबंदी कार्यवाही से पहले, उनके पास कभी निहित नहीं थी। इसके विपरीत, चकबंदी अधिकारी कल्याण सिंह के स्वामित्व के अधिकार को नहीं छीन सकता था, जो उन्हें चकबंदी कार्यवाही शुरू होने से बहुत पहले ही विरासत में मिला था। इसमें कोई संदेह नहीं है कि किसी अचल संपत्ति में स्वामित्व घोषित करने की शक्ति का प्रयोग सिविल न्यायालय द्वारा किया जा सकता है, हालाँकि, इसकी व्याख्या सी.पी.सी. की धारा 5 के प्रावधानों के आलोक में की जा सकती है, जहाँ स्थानीय विधि को प्राथमिकता दी गई है। इस प्रकार, कृषि भूमि से संबंधित पक्षों के अधिकार और स्वामित्व की घोषणा का परीक्षण केवल राजस्व न्यायालयों में ही की जा सकती है, अर्थात अधिनियम संख्या 50 (जिसे अब उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2016 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है) या यू.पी.सी.एच. अधिनियम के अंतर्गत। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने, उद्धृत मामले में, यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 49 के अंतर्गत प्रतिपादित नॉन ऑब्स्टेंटे क्लॉज़ पर विचार करने के बाद, प्रस्तर संख्या 9 के उत्तरार्ध में स्पष्ट किया है कि नॉन ऑब्स्टेंटे प्रावधानों के माध्यम से सिविल न्यायालय और राजस्व न्यायालय के क्षेत्राधिकार का निलंबन केवल काश्तकारों के अधिकारों की घोषणा और न्यायनिर्णयन के संबंध में है। यह भी स्पष्ट किया गया है कि जब तक कोई व्यक्ति पूर्व से ही पट्टेदार न हो, धारा 49 लागू नहीं होती है, इसलिए यदि पीड़ित व्यक्ति उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 49 के तहत प्रतिबंध को दरकिनार करना चाहता है तो उसे संबंधित संपत्ति पर अपने पूर्व से मौजूद विधिक अधिकार और स्वामित्व को साबित करना होगा। वर्तमान वाद की दी गई परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता दिनांक 04.03.1901 के बंधक विलेख और मूल वाद संख्या 418/1911 में पारित बाद के आदेश के माध्यम से अपने कथित पूर्व विद्यमान अधिकार का दावा कर रहा है। हालांकि, मोचन/कब्जे के लिए वाद में दिनांक 03.03.1946 को पारित बाद के डिक्री को वादी द्वारा वाद संख्या 418/1911 में पारित पिछले डिक्री के आधार पर इसकी वैधता पर सवाल उठाने के अलावा अस्वीकार नहीं किया गया है। मेरी सुविचारित राय में, एक बार जब बंधककर्ता की ओर से मोचन/कब्जे की वसूली के लिए दायर वाद पर डिक्री हो गई है और उसे कब्जा दे दिया गया है, तो याचिकाकर्ता (बंधकदार के कथित वंशज) की ओर से बंधक के फौजदारी और वाद संख्या 418/1911 में पिछले निर्णय के संबंध में उठाई गई दलील का विधि की दृष्टि में कोई आधार नहीं है। यह उल्लेख करना समीचीन होगा कि बंधककर्ता ने आगरा काश्तकारी अधिनियम 1926 (यू.पी. अधिनियम संख्या 3/1926) की धारा 99 के अंतर्गत वाद दायर किया है, जिसका उल्लेख नीचे किया गया है:

" 99. गलत तरीके से बेदखली का समाधान।–*(1) किसी काश्तकार या किराया-मुक्त अनुदानकर्ता को, इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार के अलावा, उसकी जोत या उसके किसी भाग से बेदखल किया गया हो या उस पर कब्जा प्राप्त करने से रोका गया हो, -*

(क) उसके भू-स्वामी या किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा जो भू-स्वामी होने का दावा करता है कि उसे बेदखल करने का अधिकार है, या

(ख) ऐसे भू-स्वामी या व्यक्ति के माध्यम से किसी भी प्रकार की ओअरिंग, चाहे वह काश्तकार के रूप में हो या अन्यथा,

उस व्यक्ति पर मुकदमा कर सकता है, जिसने उसे इस प्रकार बेदखल किया है या उसे कब्जे से बाहर रखा है–

(i) जोत के कब्जे के लिए;

(ii) गलत तरीके से बेदखली के लिए मुआवजे के लिए; और

(iii) उसके द्वारा किए गए किसी भी सुधार के लिए मुआवजे के लिए: बशर्ते कि कब्जे के लिए कोई डिक्री पारित नहीं की जाएगी जहां काश्तकार, डिक्री पारित होने के समय, चालू कृषि वर्ष के भीतर इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार बेदखल होने के लिए उत्तरदायी है।

(2) यदि डिक्री कब्जे के लिए है तो किसी सुधार के लिए कोई मुआवजा नहीं दिया जाएगा।

(3) जब गलत तरीके से बेदखली के लिए मुआवजे के लिए डिक्री दी जाती है, लेकिन कब्जे के लिए नहीं, तो दिया गया मुआवजा उस पूरी अवधि के लिए होगा जिसके दौरान किरायेदार कब्जे में रहने का हकदार था।

(4) कोई किरायेदार जिसने केवल कब्जे के लिए वाद दायर किया है, वह उसी वाद हेतु के संबंध में गलत तरीके से बेदखली के लिए मुआवजे के लिए या सुधार के लिए अलग से वाद दायर करने का हकदार नहीं होगा।

25. जैसा कि ऊपर उद्धृत किया गया है, आगरा काश्तकारी अधिनियम 1926 (उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 3/1926) की धारा 99 यह निर्दिष्ट करती है कि गलत तरीके से बेदखल किए जाने के विरुद्ध कब्जे की वसूली के लिए वाद दायर किया जा सकता है। उपरोक्त वाद, जो कि मूल वाद संख्या 4/5 है, 09.09.1935 को दायर किया गया था, 29.02.1936 को इस निर्देश के साथ स्वीकृत किया गया था कि वादी को प्रश्नगत संपत्ति पर 133/- रुपये की लागत के साथ कब्जा प्रदान किया जाए। 29.02.1936 के निर्णय और 03.03.1946 के आदेश की प्रतियां अनुलग्नक संख्या सीए-1 और सीए-2 के रूप में प्रति-शपथपत्र के साथ संलग्न हैं। प्रत्युत्तर शपथपत्र के प्रस्तर संख्या 5 में उपरोक्त निर्णय और डिक्री के अस्तित्व को स्पष्ट रूप से नकारा नहीं गया है, सिवाय इसके कि उत्तर के अंतर्गत प्रस्तर में अभिकथित बाद के वाद का कोई महत्व नहीं है और वाद संख्या 418/1911 में पारित दिनांक 26.02.1912 की पिछली डिक्री के अस्तित्व के कारण पक्षों के बीच शामिल विवाद पर इसका कोई भौतिक प्रभाव नहीं है।

26. जहाँ तक भू-राजस्व अभिलेख में प्रविष्टि का संबंध है, विद्वान विचारण न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 07.11.2007 में स्पष्ट रूप से टिप्पणी की है कि 1356 फसली, 1348 फसली और 1359 फसली में याचिकाकर्ता का नाम राजस्व अभिलेख में दर्ज नहीं है। याचिकाकर्ता ने खतौनी 1348 फसली और खतौनी 1366-1369 फसली का उद्धरण प्रस्तुत कर यह दर्शाया है कि राम दुलारी पत्नी उर्मखन लाल दुबे का नाम बंधकदार के रूप में दर्ज है। रिट याचिका में संलग्न उपरोक्त दस्तावेज़ के अवलोकन से पता चलता है कि खातेदार के कॉलम में प्रतिवादियों/प्रत्यर्थीगण के हित-पूर्ववर्तियों का नाम दर्ज है और उनके नाम के नीचे, राम दुलारी का नाम बंधकदार के रूप में दर्ज है। यह उल्लेख करना समीचीन होगा कि वाद संख्या 4/5 में पारित दिनांक 29.02.1936 के निर्णय में, राम दुलारी को दौलत सिंह (मुकदमा लड़ने वाले प्रत्यर्थी के हित में पूर्ववर्ती) के पक्ष में प्रश्नगत संपत्ति का कब्जा देने का निर्देश दिया गया था। अभिलेख पर ऐसा कोई विश्वसनीय साक्ष्य नहीं है, जो साबित करे कि वादी या उसके पूर्ववर्तियों का नाम कभी भी प्रश्नगत भूमि के सह-काश्तकार के रूप में भू-राजस्व अभिलेख में दर्ज किया गया था। पुराने अधिनियमों अर्थात एन.डब्ल्यू.पी. टेनेंसी एक्ट 1901, यू.पी. एक्ट संख्या 3 वर्ष 1926 और यू.पी. टेनेंसी एक्ट 1939 के तहत, केवल बंधकदार की प्रविष्टि, प्रथम दृष्टया, प्रश्नगत संपत्ति

पर वादी-याचिकाकर्ता के पक्ष में किसी भी प्रकार का काश्तकारी अधिकार प्रदान नहीं करती, वह भी उस भूमि के रूप में जिसे वर्ग 6(1) के तहत "असामियान दखीकार" के रूप में दर्ज किया गया था। इस समय, खतौनी में ऊपर उल्लिखित प्रविष्टियों के संबंध में कोई टिप्पणी करना उचित नहीं होगा, जिस पर अवर न्यायालयों द्वारा चर्चा नहीं की गई है। इसलिए, यू.पी. अधिनियम संख्या 3/ 1926 की धारा 99 के अंतर्गत सक्षम न्यायालय द्वारा पारित बाद के निर्णय के आलोक में, वादी/याचिकाकर्ता को सह-खातेदार या सह-हिस्सेदार/भूमिधर या अपने अनन्य स्वामित्व में हस्तांतरणीय अधिकार वाला भूमिधर नहीं माना जा सकता है। इस प्रकार, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्णीत **प्रशांत सिंह** (पूर्वोक्त) का वाद प्रस्तुत मामले में लागू नहीं होता है।

27. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा नन्हू सिंह द्वारा वादी/याचिकाकर्ता पर की गई धोखाधड़ी के संबंध में दी गई अंतिम दलील भी विधि की नजर में कोई आधार नहीं रखती है। धोखाधड़ी का मात्र दावा ही सक्षम न्यायालय द्वारा संपन्न न्यायिक कार्यवाही को अवैध घोषित करने के लिए पर्याप्त नहीं है, जब तक कि यह विश्वसनीय और निर्विवाद साक्ष्यों से सिद्ध न हो जाए। वादी के वाद के अनुसार, उसने चकबंदी कार्रवाई के दौरान अपने नाम पर भू-राजस्व प्रविष्टि सही करवाने के लिए नन्हू सिंह के पक्ष में एक मुख्तारनामा निष्पादित किया था। इस संबंध में वादपत्र में की गई दलील का प्रतिवादी-प्रत्यर्थीगण ने लिखित बयान में स्पष्ट रूप से खंडन किया है। उपरोक्त दलील के समर्थन में तीनों राजस्व न्यायालयों में से किसी के समक्ष कोई दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है। हालाँकि, पहली बार, याचिकाकर्ता ने रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 5 के रूप में दिनांक 22.08.1966 की कथित मुख्तारनामा की छायाप्रति प्रस्तुत की है। उपरोक्त मुख्तारनामा के मात्र अवलोकन से पता चलता है कि यह एक अपंजीकृत दस्तावेज है जिस पर वर्तमान याचिकाकर्ता और दो साक्षीगण के हस्ताक्षर हैं। प्रत्यर्थीगण ने प्रति-शपथपत्र के प्रस्तर 12 में इस दस्तावेज का स्पष्ट रूप से खंडन किया है और तर्क दिया है कि जाली मुख्तारनामा की आड़ में याचिकाकर्ता ने धोखाधड़ी की है।

28. मेरी सुविचारित राय में, इस न्यायालय में पहली बार दाखिल किया गया दस्तावेज़ साक्ष्य के रूप में स्वीकार्य नहीं है, वह भी अपंजीकृत दस्तावेज़ की छायाप्रति। इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने मंगरू (मृत) जरिये विधिक प्रतिनिधि एवं अन्य बनाम उप निदेशक चकबंदी, देवरिया एवं अन्य, (2011) 113 आरडी 300 के वाद में यह टिप्पणी की है कि केवल अभिकथन के आधार पर धोखाधड़ी का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। उपरोक्त निर्णय का प्रासंगिक प्रस्तर संख्या 9 नीचे उद्धृत किया गया है:

"9. प्रत्यर्थीगण ने यह भी अभिकथित किया कि उनके साथ धोखाधड़ी की गई है। न्यायालय की राय में, केवल अभिकथनों के आधार पर धोखाधड़ी का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। इसे तथ्यों या सिद्ध तथ्यों के आधार पर स्थापित किया जाना चाहिए। धोखाधड़ी के अर्थ को आंध्र प्रदेश राज्य बनाम टी. सूर्यचंद्र राव के वाद में प्रस्तर 4 से 14 में स्पष्ट किया गया है। इसलिए धोखाधड़ी को साबित करना होगा। केवल अभिकथन ही धोखाधड़ी को स्थापित करने के लिए पर्याप्त नहीं होगा। इस पहलू पर सर्वोच्च न्यायालय ने इंडियन बैंक बनाम सत्यम फाइबर्स (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड2 के वाद में भी विचार किया है। उक्त निर्णय सतीश चंद्र चटर्जी बनाम

कुमार सतीश कंठ रॉय के वाद में प्रिवी काउंसिल के निर्णय पर आधारित है, और सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय में उद्धृत उक्त प्रस्ताव के लिए प्रासंगिक प्रस्तर नीचे उद्धृत किया गया है:

"इस वाद में वादपत्र में शामिल धोखाधड़ी और मिलीभगत के आरोपों को, निस्संदेह, उन लोगों द्वारा सिद्ध किया जाना चाहिए जिन्होंने उन्हें लगाया है - स्थापित तथ्यों या उन तथ्यों को समग्र रूप से लेकर उनसे वैध रूप से निकाले गए निष्कर्षों द्वारा सिद्ध। संदेह, अनुमान और अटकलें उन तथ्यों या निष्कर्षों के लिए स्वीकार्य विकल्प नहीं हैं, लेकिन इसका यह कतई आवश्यक नहीं है कि धोखाधड़ी के अभियुक्त द्वारा अपनाई गई हर पेचीदा चालाकी या युक्ति को पूरी तरह से उजागर किया जाए, स्पष्ट किया जाए और उसके खिलाफ उचित निर्णय सुनाए जाने से पहले उसे स्पष्ट किया जाए। अगर ऐसा न होता, तो कई चतुर और कुशल बदमाश बच निकलते।"

29. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **हरजस राय मखीजा (डी) द्वारा विधिक प्रतिनिधि बनाम पुष्पारानी जैन और अन्य** वाद में धोखाधड़ी के दायरे को स्पष्ट किया है, जिसका निर्णय 2 जनवरी, 2017 को हुआ था और 2017 (134) आरडी 811 में प्रतिवेदित है और कहा है कि धोखाधड़ी का विधि में एक निश्चित अर्थ है और इसे साबित किया जाना चाहिए, न कि केवल अभिकथन और अनुमानित हो। उपरोक्त निर्णय का प्रासंगिक प्रस्तर संख्या 21 नीचे उद्धृत किया गया है:

" 21. हम इस बात से सहमत हैं कि जब आवश्यक और प्रासंगिक तथ्यों का खुलासा न करने या महत्वपूर्ण तथ्यों को छिपाने के कारण धोखाधड़ी का अभिकथन किया जाता है, तो इसकी जाँच अवश्य की जानी चाहिए। धोखाधड़ी के इरादे के साथ साक्ष्य प्रस्तुत करने के बाद ही धोखाधड़ी के निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है। धोखा देने के इरादे के बिना केवल छिपाना या खुलासा न करना या बिना सबूत और धोखा देने के इरादे के धोखाधड़ी का एक स्पष्ट आरोप किसी पक्ष द्वारा प्राप्त डिक्री को धोखाधड़ी नहीं ठहराएगा। यह निष्कर्ष निकालना कि हर वाद में जहाँ प्रासंगिक तथ्यों का खुलासा नहीं किया गया है, प्राप्त डिक्री धोखाधड़ी होगी, इस सिद्धांत को एक लुप्त बिंदु तक खींचना है।"

30. वर्तमान वाद की परिस्थितियों और इस न्यायालय द्वारा पूर्ववर्ती प्रस्तरों में की गई चर्चा में उपरोक्त निर्णयों पर विचार करने के बाद, यह स्पष्ट है कि इस मामले में धोखाधड़ी का कोई वाद नहीं बनता, क्योंकि वादी-याचिकाकर्ता, बंधकदार होने के नाते, विचाराधीन संपत्ति पर अपने अधिकार और स्वामित्व का दावा कर रहा है। हालाँकि, उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 3/ 1926 की धारा 99 के अंतर्गत वाद संख्या 4/5 में पारित निर्णय के अनुसरण में, संपत्ति का कब्जा बंधककर्ता (प्रतिवादी-प्रत्यर्थी) को सौंप दिया गया है। इस प्रकार, बंधकदार का अधिकार, यदि कोई हो, समाप्त हो जाता है। बंधकदार (वादी-याचिकाकर्ता या उसके हित में उसके पूर्ववर्ती) को प्रतिवादियों (बंधककर्ता) के साथ सह-खातेदार होने के नाते, उनकी व्यक्तिगत हैसियत में कभी भी भू-राजस्व अभिलेख में दर्ज नहीं किया गया था। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत सभी मामलों के तथ्य और परिस्थितियाँ वर्तमान मामले की दी गई परिस्थितियों में भिन्न हैं। विचाराधीन संपत्ति पर वादी/याचिकाकर्ता का अधिकार और स्वामित्व पूर्व-विद्यमान सह-किरायेदारी अधिकार नहीं कहा जा सकता। यह मानते हुए कि वर्ष 1912 में पारित डिक्री के अनुसरण में वह विचाराधीन संपत्ति पर काबिज था, उसका कब्जा वाद संख्या 4/5

में पारित निर्णय और डिक्री के अनुपालन में वर्ष 1946 में, अर्थात, जमींदारी उन्मूलन और उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम के लागू होने से पहले समाप्त हो गया। चकबंदी प्रक्रिया शुरू होने की तिथि पर उसका नाम मूल चकबंदी अभिलेख में दर्ज नहीं था, इस प्रकार, वादी-याचिकाकर्ता की ओर से उठाई गई धोखाधड़ी की दलील वर्तमान वाद के तथ्यों और परिस्थितियों में सिद्ध नहीं हो सकती। जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, वादी द्वारा जिस कथित मुख्तारनामा पर भरोसा किया गया है, वह स्वयं संदिग्ध है।

31. इस संक्षिप्त विवरण में, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, मुझे भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत असाधारण क्षेत्राधिकार के प्रयोग में इस न्यायालय द्वारा विचार किए जाने का कोई न्यायोचित और ठोस आधार नहीं मिलता। अभिलेखों में ऐसा कुछ भी नहीं है, जो यह प्रदर्शित करे कि याचिकाकर्ता किस प्रकार पूर्वाग्रह से ग्रस्त है, या तीनों राजस्व न्यायालयों द्वारा पारित आक्षेपित आदेश के कारण उसके साथ न्याय का हनन होने की कोई संभावना है। चुनौती दिए गए आदेश में कोई अवैधता, विकृति, अस्पष्टता या दुर्बलता नहीं है।

32. परिणामस्वरूप, यह रिट याचिका गुण-दोष से रहित और गलत होने के कारण, वाद व्यय संबंधी कोई आदेश दिए बिना **खारिज** की जाती है।

(2025) 4 ILRA 479

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 09.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति चंद्र कुमार राय

रिट बी संख्या 26270/1997

राज कुमार एवं अन्य **...याचिकाकर्तागण**

बनाम

राजस्व परिषद एवं अन्य **...प्रत्यर्थीगण**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

अनिल कुमार मिश्र, नागेंद्र कुमार श्रीवास्तव, नीरज त्रिपाठी, प्रदीप कुमार राय, प्रज्योत राय, प्रतिमा श्रीवास्तव, राजेंद्र कुमार, रामेंद्र अस्थाना, संदीप कुमार श्रीवास्तव, श्रवण कुमार मिश्र, उदय चंदानी

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता:

आ खान, अभिनव कृष्ण श्रीवास्तव, प्रदीप कुमार

क. उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 - धारा 229-बी - यू.पी.जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम की धारा 229-बी, 209 के अंतर्गत वाद का दायरा और साथ ही उपर्युक्त धारा के तहत वाद के लिए प्रदान की गई परिसीमा- परिसीमा - यू.पी.जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम की धारा 229-बी के अंतर्गत वाद के लिए *कोई परिसीमा प्रदान नहीं की गई है* - यू.पी.जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम की धारा 209 के अंतर्गत वाद के संबंध में यू.पी.जेड.ए. और एल.आर. नियमावली के नियम 338 के तहत तैयार परिशिष्ट III के तहत तीन वर्ष की परिसीमा प्रदान की गई है - यू.पी.जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम की धारा 229-बी के अंतर्गत वाद का निर्णय विवाद्यक विरचित किये बिना और पक्षकारों को साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर दिए बिना नहीं किया जा सकता है। (प्रस्तर 11, 12)

ख. उत्तर प्रदेश ज़मींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 - धारा 331 (4) - राजस्व परिषद के द्वितीय अपीलीय क्षेत्राधिकार का दायरा - यू.पी.जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम की धारा 331 (4) के अंतर्गत राजस्व परिषद के समक्ष द्वितीय अपील विधि के प्रश्न पर, न कि विधि के सारवान प्रश्न पर आधारित होगी (प्रस्तर 15)।

ग. वर्तमान मामले में, कानपुर विकास प्राधिकरण द्वारा 1983 में यू.पी.जेड.ए. और एल.आर. की धारा 229-बी/209 के अंतर्गत दायर वाद को विचारण न्यायालय ने खारिज कर दिया था और विचारण न्यायालय के डिक्री को प्रथम अपीलीय न्यायालय/अपर आयुक्त द्वारा अपील में बरकरार रखा गया है, लेकिन द्वितीय अपीलीय क्षेत्राधिकार में, राजस्व परिषद ने द्वितीय अपील को स्वीकार कर लिया है और वादी के वाद का डिक्री किया गया है, इस तथ्य पर विचार किए बिना कि प्रतिवादी याचिकाकर्ता विवादित भूखंड पर स्वामित्व की तिथि से पहले से ही काबिज पाए गए हैं। प्रतिवादी-याचिकाकर्ताओं के पक्ष में भूमिधारी सनद जारी की गई थी और तदनुसार, प्रतिवादी याचिकाकर्ता निहित होने की तिथि से पहले से ही संबंधित भूखंड पर काबिज थे। राज्य सरकार द्वारा उत्तर प्रदेश भूमिधारी सनद को रद्द करने की कोई कार्यवाही शुरू नहीं की गई, जैसा कि यू.पी.जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम की धारा 137-ए के अंतर्गत प्रावधान है, अतः 1983 में यू.पी.जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम की धारा 229-बी/209 के अंतर्गत वाद दायर करना विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग है। राजस्व परिषद द्वारा द्वितीय अपीलीय क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए वादी के वाद को डिक्री करने और संबंधित भूखंड की लंबे समय से चली आ रही प्रविष्टि को हटाने का निर्णय विधि की दृष्टि में पोषणीय नहीं है। आक्षेपित निर्णय अपास्त किया गया। (प्रस्तर 14, 17, 22)

स्वीकृत। (ई-5)

(माननीय न्यायमूर्ति चंद्र कुमार राय द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री रामेंद्र अस्थाना, श्री प्रदीप कुमार राय, श्री प्रज्योत राय, राज्य प्रत्यर्थीगण के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री अंशुल निगम और प्रत्यर्थी संख्या 3/ कानपुर विकास प्राधिकरण

के विद्वान अधिवक्ता श्री अभिनव कृष्ण श्रीवास्तव की सहायता से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एम.सी. चतुर्वेदी को सुना गया।

2. वाद के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि प्रत्यर्थी संख्या 3/ कानपुर विकास प्राधिकरण ने उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (जिसे आगे यू.पी.जेड.ए. एवं एल.आर. अधिनियम कहा जाएगा) की धारा 229-बी/209 के अंतर्गत भूखंड संख्या 196, 197, 199, कुल क्षेत्रफल 15 बीघा 19 बिस्वा, ग्राम चकेरी, तहसील और जिला कानपुर नगर में स्थित, के संबंध में वाद दायर किया है, जिसमें यह घोषित करने का अनुरोध किया गया है कि विचाराधीन भूखंड पर प्रतिवादी संख्या 1 से 9 की प्रविष्टियाँ मिटा दी जाएँ और यदि प्रतिवादियों का उस भूखंड पर कब्जा पाया जाता है, तो उन्हें विचाराधीन भूखंड से बेदखल किया जा सकता है। उपर्युक्त वाद को वाद संख्या 52/85/46/87 के रूप में पंजीकृत किया गया था और उत्तर प्रदेश राज्य को प्रतिवादी संख्या 10 के रूप में पक्षकार बनाया गया था। प्रतिवादियों ने उपर्युक्त वाद में उपस्थिति दर्ज कराई है और अपना लिखित बयान दाखिल किया है। उपर्युक्त वाद में विचारण न्यायालय के समक्ष नौ विवाद्यक विरचित किए गए थे और पक्षकारों ने अपने-अपने पक्ष में मौखिक एवं दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किए थे। विचारण न्यायालय ने विवाद्यक संख्या 1 से 4 और 6 पर निर्णय देते समय यह तथ्य दर्ज किया है कि प्रतिवादीगण विचाराधीन भूखंड पर स्वामित्व की तिथि से पूर्व से ही काबिज हैं, अतः वे आदिवासी और बाद में भूमिधर बन गए, अतः प्रतिवादियों के नाम से विचाराधीन भूखंड के संबंध में की गई प्रविष्टि को विलोपित नहीं किया जा सकता। विचारण न्यायालय ने अंततः दिनांक 5.12.1987 के निर्णय एवं डिक्री द्वारा उपर्युक्त वाद को खारिज कर दिया। विचारण न्यायालय के दिनांक 5.12.1987 के निर्णय एवं डिक्री के विरुद्ध, प्रत्यर्थी संख्या 3/कानपुर विकास प्राधिकरण की ओर से आयुक्त के समक्ष यू.पी.जेड.ए. एवं एल.आर. अधिनियम की धारा 331 के अंतर्गत अपील दायर की गई, जिसे अपील संख्या 8/1987 के रूप में पंजीकृत किया गया। उपर्युक्त अपील पर अपर आयुक्त ने सुनवाई की और दिनांक 1.8.1988 के निर्णय एवं डिक्री द्वारा उसे खारिज कर दिया। अपर आयुक्त के दिनांक 1.8.1988 के निर्णय एवं डिक्री के विरुद्ध प्रत्यर्थी संख्या 3/कानपुर विकास प्राधिकरण ने राजस्व परिषद के समक्ष द्वितीय अपील दायर की, जो द्वितीय अपील संख्या 13/1988-89 के रूप में पंजीकृत हुई। राजस्व परिषद ने दिनांक 23.4.1997 के निर्णय द्वारा द्वितीय अपील को स्वीकार कर लिया और विचारण न्यायालय के साथ-साथ प्रथम अपीलीय न्यायालय के निर्णय को भी निरस्त कर दिया तथा वादी के वाद पर डिक्री कर दिया। अतः निम्नलिखित अनुतोष हेतु यह रिट याचिका दायर की गई:-

"विपक्षी संख्या 1 के दिनांक 23.4.1997 के आदेश को निरस्त करने और अवर न्यायालयों के आदेश को बहाल करने के लिए उत्प्रेषण के प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी किया जाए।"

3. इस न्यायालय ने 12.8.1997 को मामले पर विचार किया और राजस्व परिषद द्वारा पारित दिनांक 24.3.1997 के आदेश के क्रियान्वयन पर रोक लगा दी।

4. इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 12.8.1997 के आदेश के अनुसरण में, पक्षकारों ने अपनी दलीलों का आदान-प्रदान किया है।

5. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री रामेंद्र अस्थाना, श्री प्रदीप कुमार राय और श्री प्रज्योत राय ने तर्क दिया कि विवादित भूखंड और कुछ अन्य भूखंडों के संबंध में द्वारिका प्रसाद, द्वारिका प्रसाद की पत्नी विश्वनाथ के पक्ष में ज़मींदार द्वारा 30.6.1949 को पट्टा विलेख निष्पादित किया गया था। उन्होंने आगे तर्क दिया कि उत्तर प्रदेश काश्तकारी अधिनियम की धारा 59 के अंतर्गत एक वाद में, संबंधित भूखंड के संबंध में प्रतिवादियों के पक्ष में 22.11.1952 को एक डिक्री पारित की गई थी। उन्होंने आगे तर्क दिया कि विधि के अनुसार, प्रतिवादियों ने अपने पक्ष में भूमिधर सनद जारी होने के बाद आदिवासी, सिरदार और भूमिधर के अधिकार प्राप्त कर लिए। उन्होंने आगे दलील दी कि यू.पी.जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम की धारा 229-बी/209 के अंतर्गत दायर वाद में कानपुर विकास प्राधिकरण एकमात्र वादी था और उत्तर प्रदेश राज्य प्रतिवादी संख्या 10 था। उन्होंने दलील दी कि विचारण न्यायालय ने 5.12.1987 के निर्णय/डिक्री के द्वारा वादी के वाद को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि प्रतिवादी निहित होने की तिथि से पूर्व से ही विचाराधीन भूखंड पर काबिज हैं और विचारण न्यायालय के निर्णय को केवल कानपुर विकास प्राधिकरण द्वारा चुनौती दी गई थी और राज्य सरकार द्वारा किसी भी न्यायालय में कोई चुनौती नहीं दी गई थी। उन्होंने दलील दी कि राजस्व अभिलेखों में भूखंड संख्या 196, 197, 199 ऊसर और बंजर के रूप में दर्ज हैं। उन्होंने दलील दी कि भूमिधारी सनद प्रतिवादियों के पक्ष में जारी की गई थी, इसलिए सभी प्रतिवादियों के पक्ष में जो अधिकार सृजित किया गया है, उसे कानपुर विकास प्राधिकरण द्वारा यू.पी.जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम की धारा 229-बी/209 के अंतर्गत दायर वाद के आधार पर रद्द नहीं किया जा सकता। उन्होंने दलील दी कि कानपुर विकास प्राधिकरण द्वारा दायर अपील को अपर आयुक्त ने विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री की पुष्टि करते हुए खारिज कर दिया था। उन्होंने दलील दी कि राजस्व परिषद के समक्ष द्वितीय अपील कानपुर विकास प्राधिकरण द्वारा ही दायर की गई थी। उन्होंने दलील दी कि नगर नियोजन एवं विकास अधिनियम, 1973 की धारा 4 में निहित प्रावधानों के मद्देनजर, कानपुर विकास प्राधिकरण के कहने पर यू.पी.जेड.ए एवं एल.आर. अधिनियम की धारा 229-बी/209 के अंतर्गत दायर वाद पर विचार नहीं किया जा सकता। उन्होंने आगे दलील दी कि उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 53 और उत्तर प्रदेश भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 की धारा 57 के प्रावधानों के मद्देनजर, राजस्व अभिलेखों में प्रविष्टियों की सत्यता की धारणा होगी क्योंकि संबंधित भूखंड की दीर्घकालिक प्रविष्टि के संबंध में कानपुर विकास प्राधिकरण या राज्य द्वारा कोई चुनौती नहीं दी गई थी। उन्होंने दलील दी कि यू.पी.जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम की धारा 229-बी/209 के अंतर्गत उपर्युक्त वाद पहली बार वर्ष 1983 में दायर किया गया था, जिस पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ***1996 (7) एससीसी 767, मोहम्मद नूरुल हौदा बनाम बीबी रईफुन्निसा एवं अन्य*** में प्रतिवेदित वाद में दिए गए विधि के अनुसार निर्धारित साक्ष्य के अनुपात को देखते हुए विचार नहीं किया जा सकता। उन्होंने आगे दलील दी कि यू.पी.जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम की धारा 20 के अंतर्गत निहित प्रावधानों के मद्देनजर, प्रतिवादियों के पक्ष में अर्जित अधिकार और स्वामित्व को किसी भी तरह से नकारा नहीं जा सकता। उन्होंने दलील दी कि राजस्व परिषद द्वारा द्वितीय अपील स्वीकार करते हुए और साथ ही वादी के वाद पर डिक्री देते हुए पारित निर्णय और डिक्री, ***2004 (1997) आरडी 119 वेद प्रकाश बनाम राजस्व परिषद, यूपी लखनऊ*** में प्रतिवेदित वाद में इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि के अनुपात के मद्देनजर विधि की दृष्टि में पोषणीय नहीं रह सकता। उन्होंने दलील दी कि ***2024 (3) एआरसी 641 राम चंद्रन और अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य*** में प्रतिवेदित वाद में प्रतिपादित विधि के

अनुपात के मद्देनजर जब तक विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज तथ्य की खोज को उचित तरीके से उलट नहीं दिया जाता, तब तक अपीलीय न्यायालय द्वारा उलटने का निर्णय पारित नहीं किया जा सकता। उन्होंने दलील दी कि किसी भी मामले में, राजस्व परिषद द्वितिया अपीलीय क्षेत्राधिकार के तहत वादी के वाद पर डिक्री नहीं कर सकता, बल्कि उन्हें सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41 नियम 23, 23-ए, 24, 25, 27 के तहत निर्धारित प्रक्रिया का पालन करना चाहिए। उन्होंने तर्क प्रस्तुत किया कि विधि के संचालन के कारण, प्रतिवादियों को विचाराधीन भूखंड के भूमिधर के रूप में दर्ज किया गया है, इस प्रकार, ***2018 एसीजे 1181 जितेंद्र कुमार बनाम यूपी राज्य और अन्य*** में प्रतिवेदित वाद में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि के अनुपात के मद्देनजर यूपीजेडए और एलआर अधिनियम की धारा 229-बी / 209 के अंतर्गत दायर वाद के आधार पर इतनी लंबी अवधि के बाद विचाराधीन भूखंड की प्रविष्टि को समाप्त नहीं किया जा सकता है। उन्होंने आगे कहा कि विचाराधीन भूखंड पर प्रतिवादियों के निरंतर और निर्बाध कब्जे को देखते हुए, कानपुर विकास प्राधिकरण द्वारा दायर यूपीजेडए और एलआर अधिनियम की धारा 229-बी / 209 के तहत वाद ***एआईआर 1970 (एससी) 1778 पश्चिम बंगाल राज्य बनाम डलहौजी इंस्टीट्यूट सोसाइटी*** में प्रतिवेदित वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि के अनुपात के मद्देनजर निर्णय नहीं सुनाया जा सकता है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि ***2019 (5) एडीजे 302 राकेश और अन्य बनाम बोर्ड ऑफ रेवेन्यू और अन्य*** में प्रतिवेदित वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि के अनुपात के मद्देनजर, प्रतिवादियों के पक्ष में बनाए गए अधिकार और स्वामित्व को यूपीजेडए और एलआर अधिनियम की धारा 229-बी / 209 के अंतर्गत कानपुर विकास प्राधिकरण द्वारा दायर वाद के आधार पर नहीं छीना जा सकता है। उन्होंने आगे दलील दी कि इस न्यायालय ने ***2022 (7) एडीजे 16 भगवती दीन बनाम शीतलदीन एवं अन्य*** में प्रतिवेदित वाद में 1359 फसली की प्रविष्टि के आधार पर सरदारी/आदिवासी/भूमिधारी अधिकार के उपार्जन से संबंधित विवाद पर विचार किया है, जो इस मामले में लागू होगा। उन्होंने दलील दी कि राजस्व परिषद द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को अपास्त किया जाना चाहिए और तदनुसार वादी का वाद खारिज किया जाना चाहिए।

6. दूसरी ओर, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एम.सी. चतुर्वेदी ने, जिनकी सहायता प्रतिवादी संख्या 3/कानपुर विकास प्राधिकरण के विद्वान अधिवक्ता श्री अभिनव कृष्ण श्रीवास्तव ने की, दलील दी कि विचाराधीन भूखंड निहित होने की तिथि से पूर्व खाली भूमि थी और जमींदारी उन्मूलन के बाद, विचाराधीन भूखंड शुरू में राज्य में निहित था और बाद में ग्राम सभा के पक्ष में हो गया। उन्होंने आगे कहा कि दिनांक 6.9.1978 की अधिसूचना के तहत, विचाराधीन भूखंड नगर महापालिका के अधीन आ गया और बाद में उसे कानपुर विकास प्राधिकरण में निहित कर दिया गया। उन्होंने आगे कहा कि विचाराधीन भूखंड 1362 फसली तक ग्राम सभा के नाम पर दर्ज रहा, लेकिन 1962 फसली के बाद, राजस्व अधिकारियों की मिलीभगत से प्रतिवादियों के नाम धोखाधड़ी से दर्ज कर लिए गए। उन्होंने कहा कि यू.पी.जेड.ए. एवं एल.आर. अधिनियम की धारा 20 (ख) के अंतर्गत निहित प्रावधानों के मद्देनजर प्रतिवादियों के पक्ष में कोई सरदारी या भूमिधारी अर्जित नहीं की जा सकती। उन्होंने आगे कहा कि यू.पी.जेड.ए. एवं एल.आर. अधिनियम की धारा 24 के अंतर्गत निहित प्रावधानों के मद्देनजर, प्रतिवादियों द्वारा स्थापित पट्टे के वाद पर किसी भी न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया जा सकता और उसे अनुमति नहीं दी जा सकती। उन्होंने आगे दलील दी कि उत्तर प्रदेश काश्तकारी अधिनियम की धारा 59 के

अंतर्गत दो निजी पक्षों के बीच पारित निर्णय प्रतिवादी संख्या 3/कानपुर विकास प्राधिकरण पर बाध्यकारी नहीं होगा। उन्होंने आगे दलील दी कि उत्तर प्रदेश काश्तकारी अधिनियम की धारा 56 के प्रावधानों के मद्देनजर, राजस्व परिषद द्वारा यू.पी.जेड.ए. एवं एल.आर. अधिनियम की धारा 229-बी/209 के अंतर्गत वादी के वाद पर डिक्री जारी करने वाले आक्षेपित निर्णय में कोई अवैधानिकता नहीं है। उन्होंने दलील दी कि यू.पी.जेड.ए और एल.आर. अधिनियम की धारा 331(4) के तहत द्वितीय अपीलीय क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय राजस्व परिषद द्वारा विधि का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न तैयार करने की आवश्यकता नहीं है, जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***उत्तराखंड राज्य (पूर्ववर्ती यू.पी.) बनाम मोहन सिंह 2012 (13) एससीसी 281*** के वाद में अभिनिर्धारित किया है। उन्होंने आगे दलील दी कि राजस्व परिषद ने सिविल प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत निहित प्रावधानों के मद्देनजर द्वितीय अपीलीय क्षेत्राधिकार का सही प्रयोग किया है। उन्होंने आगे दलील दी कि द्वितीय अपीलीय न्यायालय वाद को विचारण न्यायालय के समक्ष वापस भेजने के बजाय अंतिम रूप से निर्णीत कर सकता है। उन्होंने आगे दलील दी कि राजस्व परिषद द्वारा पारित आक्षेपित आदेश के विरूद्ध कोई हस्तक्षेप आवश्यक नहीं है और रिट याचिका खारिज किए जाने योग्य है। उन्होंने अपने तर्क के समर्थन में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ इस न्यायालय के निम्नलिखित निर्णयों पर भी भरोसा जताया:-

1. 2018 0 सुप्रीम (इला) 2484 अमृत लाल एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, द्वारा कलेक्टर, लखनऊ एवं अन्य

2. 2013 0 एआईआर (एससी) 38 उत्तराखंड राज्य (पूर्व में उत्तर प्रदेश राज्य) बनाम मोहन सिंह एवं अन्य

3. 2005 0 एआईआर (एससी) 3110 आंध्र प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम टी. सूर्यचंद्र राव

4. 2010(2) एडीजे 514 सुरेश गिरि एवं अन्य बनाम राजस्व परिषद, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद एवं अन्य

5. 2003 8 एससीसी 319 राम चंद्र सिंह बनाम सावित्री देवी एवं अन्य

6. 2012 0 एआईआर (एससी) 3285 भारतीय सेवा समाज ट्रस्ट, द्वारा अध्यक्ष एवं अन्य बनाम योगेशभाई अंबाला पटेल एवं अन्य

7. 2023(9) एडीजे 208 बासदेव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

8. 1964 (7) एससीआर 800 अंबा प्रसाद बनाम अब्दुल नूर खान एवं अन्य

9. 2015 (128) आरडी 24 राज किशोर (मृत) द्वारा विधिक प्रतिनिधि एवं अन्य बनाम हीरा (मृत) द्वारा विधिक प्रतिनिधि एवं अन्य

10. एसपीएल (सिविल) संख्या 15774/2022 मेसर्स पॉल रबर इंडस्ट्रीज प्राइवेट लिमिटेड बनाम अमित चंद मित्रा एवं अन्य

11. चकबंदी संख्या 168/1985 हनुमान एवं अन्य बनाम बंसराज एवं अन्य।'

7. राज्य प्रत्यर्थीगण के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री अंशुल निगम ने तर्क प्रस्तुत किया कि उत्तर प्रदेश नगर नियोजन एवं विकास अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत निहित प्रावधानों के मद्देनजर, कानपुर विकास प्राधिकरण द्वारा दायर वाद की द्वितीय अपील पर निर्णय करते हुए राजस्व परिषद द्वारा पारित निर्णय एवं डिक्री में कोई अवैधानिकता नहीं थी। उन्होंने आगे दलील दी कि यू.पी.जेड.ए. एवं एल.आर. अधिनियम की धारा 229-

बी/209 के तहत उपर्युक्त वाद में, राज्य ने कानपुर विकास प्राधिकरण द्वारा दायर वाद के वादपत्र के अभिकथनों को स्वीकार कर लिया है, इस प्रकार, राज्य को वादी के रूप में शामिल किए बिना कानपुर विकास प्राधिकरण द्वारा वाद दायर करना कोई अवैधानिकता नहीं थी। उन्होंने दलील दी कि याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर रिट याचिका खारिज की जानी चाहिए।

8. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर विचार किया है और अभिलेखों का अवलोकन किया है।

9. इस तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं है कि प्रत्यर्थी संख्या 3/ कानपुर विकास प्राधिकरण द्वारा यू.पी.जेड.ए. एवं एल.आर. अधिनियम की धारा 229-बी के अंतर्गत दायर वाद को विचारण न्यायालय ने खारिज कर दिया था और विचराण न्यायालय के निर्णय और डिक्री को अपर आयुक्त द्वारा अपील में बरकरार रखा गया था। इस तथ्य पर भी कोई विवाद नहीं है कि प्रत्यर्थी संख्या 3/कानपुर विकास प्राधिकरण द्वारा दायर द्वितीय अपील को विचारण न्यायालय के साथ-साथ प्रथम अपीलीय न्यायालय के निर्णय और डिक्री को निरस्त करते हुए स्वीकार कर लिया गया था और वादी के वाद पर तदनुसार डिक्री पारित की गई थी।

10. रिट याचिका में शामिल निर्धारण बिंदु यू.पी.जेड.ए. एवं एल.आर. अधिनियम की धारा 229-बी, 209 के अंतर्गत वाद के दायरे के साथ-साथ उपर्युक्त धारा के अंतर्गत वाद हेतु प्रदत्त सीमाओं और यू.पी.जेड.ए. एवं एल.आर. अधिनियम की धारा 331(4) के अंतर्गत राजस्व परिषद के द्वितीय अपीलीय क्षेत्राधिकार के दायरे से संबंधित हैं। भूमिधारी सनद प्रदान करने और रद्द करने संबंधी कार्यवाही के दायरे पर भी वर्तमान याचिका में विचार किया जाना है, साथ ही विवादित भूखंड के क्षेत्र के एक हिस्से के प्राधिकारियों द्वारा अधिग्रहण और विवादित भूखंड के पंजीकृत स्वामी को मुआवजे के भुगतान से संबंधित तथ्य पर भी विचार किया जाना है।

11. जहाँ तक यू.पी.जेड.ए. एवं एल.आर. अधिनियम की धारा 229-बी के अंतर्गत वाद का संबंध है, इस न्यायालय ने ***2005 (99) आर.डी. 529, पान कुमारी बनाम राजस्व परिषद एवं अन्य***, में प्रतिवेदित वाद में यह अभिनिर्धारित किया है कि उपर्युक्त श्रेणी का वाद विशेष प्रकृति का वाद माना जाता है और यू.पी.जेड.ए. एवं एल.आर. अधिनियम की धारा 229-बी के अंतर्गत वाद के लिए कोई परिसीमा प्रदान नहीं की गई है, तथापि यू.पी.जेड.ए. एवं एल.आर. अधिनियम की धारा 209 के अंतर्गत वाद के संबंध में, परिसीमा परिशिष्ट III के अंतर्गत प्रदान की गई थी। ***पान कुमारी (पूर्वोक्त)*** में दिए गए निर्णय का प्रस्तर संख्या 6 अवलोकनार्थ प्रासंगिक होगा, जो इस प्रकार है:-

6. श्री आर.सी. सिंह का तर्क है कि धारा 229-बी के अंतर्गत वाद परिसीमा द्वारा वर्जित था। इस तर्क के समर्थन में वे उत्तर प्रदेश ज़मींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम की धारा 341 का हवाला देते हैं, जिसमें प्रावधान है कि उत्तर प्रदेश ज़मींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाहियों पर परिसीमा अधिनियम लागू होगा और घोषणा के वाद में परिसीमा अधिनियम की अनुसूची 1 के अनुच्छेद 137 द्वारा

शासित होगी, क्योंकि उत्तर प्रदेश ज़मींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम के अंतर्गत ऐसे वाद के लिए कोई अवधि निर्धारित नहीं है। धारा 341 में ही प्रावधान है कि परिसीमा अधिनियम सहित कुछ अधिनियमों के प्रावधान उत्तर प्रदेश ज़मींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाहियों पर लागू होंगे, जब तक कि उत्तर प्रदेश ज़मींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम में अन्यथा प्रावधान न किया गया हो। उत्तर प्रदेश ज़मींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार नियमावली के नियम 338 में यह प्रावधान है कि परिशिष्ट III में निर्दिष्ट वाद, आवेदन और अन्य कार्यवाहियाँ क्रमशः उनके लिए निर्दिष्ट समय के भीतर संस्थित की जाएँगी। परिसीमा अधिनियम के प्रावधानों का सहारा तभी लिया जा सकेगा जब नियामावली के अंतर्गत उल्लिखित विभिन्न वर्गों के वादों या कार्यवाहियों के लिए परिसीमा अवधि के संबंध में कोई प्रावधान न हो। परिशिष्ट III में विभिन्न वर्गों के वादों के लिए प्रदान की गई परिसीमा अवधि दी गई है। धारा 229-बी के अंतर्गत वादों के संबंध में, स्तंभ 4, जो विभिन्न वर्गों के वादों के लिए परिसीमा अवधि निर्धारित करता है, "कोई नहीं" कहता है। इसलिए यह माना जाएगा कि धारा 229-बी के अंतर्गत वाद दायर करने के लिए कोई परिसीमा नहीं है। सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 9 में प्रावधान है कि सिविल प्रकृति के सभी वाद, सिवाय उनके जो स्वीकार कर लिए गए हैं, सिविल न्यायालय में संस्थित किए जाएँगे। धारा 229-बी के अंतर्गत वाद अपवादित श्रेणी में आता है और ऐसे वाद, भले ही उनमें घोषणा शामिल हो, विशेष प्रकृति के वाद होते हैं। श्री सिंह द्वारा किसी भी मामले में जिस परिसीमा अधिनियम की धारा 137 पर भरोसा किया गया है, वह केवल आवेदनों पर लागू होती है, मुकदमों पर नहीं, इसलिए इसका कोई महत्व नहीं है। जब नियम बनाने वाले प्राधिकारी ने विभिन्न प्रकार के वादों के लिए अलग-अलग परिसीमा अवधि निर्धारित की है, तो यह माना जाएगा कि परिसीमा अधिनियम में परिसीमा अवधि निर्धारित करने वाले उत्तर प्रदेश ज़मींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम के अंतर्गत वादों पर लागू नहीं होती, उत्तर प्रदेश ज़मींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम की धारा 189 उन परिस्थितियों को निर्धारित करती है, जिनमें भूमिधारक का हित समाप्त हो जाता है। खंड (क) (कक) और (ख) उन वादों से संबंधित हैं जहाँ भूमिधारक की मृत्यु हो जाती है और उसका कोई उत्तराधिकारी नहीं बचता, या जहाँ उसने अधिनियम के प्रावधानों के उल्लंघन में अपनी जोत किराए पर दे दी हो, या जहाँ भूमि अर्जित की गई हो। धारा 189 की उप-धारा (ग) में प्रावधान है कि जहाँ भूमिधारक ने कब्जा खो दिया है, वहाँ कब्जा पुनः प्राप्त करने का अधिकार समाप्त होने पर भूमिदारी अधिकार समाप्त हो जाएगा। राम नरेश बनाम राजस्व परिषद 1985 आर.डी. 444 में श्री आर.सी. सिंह द्वारा भरोसा करते हुए यह माना गया था कि सीमा अधिनियम की धारा 27 के प्रावधान धारा 229-बी के तहत शुरू किए गए मुकदमों पर लागू होंगे। धारा 27 में प्रावधान है कि कब्जे के लिए वाद शुरू करने की सीमित अवधि के निर्धारण पर ऐसी संपत्ति पर अधिकार समाप्त हो जाएगा। यह नियम उस सामान्य नियम का अपवाद है कि सीमा उपाय पर रोक लगाती है लेकिन अधिकार को समाप्त नहीं करती है। हालांकि, अगर किसी व्यक्ति के पास कब्जा है तो उसका अधिकार तब तक समाप्त नहीं हो सकता जब तक कि वाद धारा 189 के खंड (क) (कक) और (ख) के अंतर्गत न आता हो। इसलिए वह किसी भी समय अपने अधिकार की घोषणा की मांग कर सकता है। अगर किसी व्यक्ति को बेदखल कर दिया गया है तो उसे यूपीजेडए और एल.आर. अधिनियम की धारा 209 के तहत वाद शुरू करना होगा। परिशिष्ट III धारा 209 के अंतर्गत वाद दायर करने की परिसीमा प्रदान करता है। अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि धारा 229-बी के अंतर्गत वाद दायर करने का अधिकार परिसीमा द्वारा वर्जित होगा। भूमिधर के पास भूमि का कब्जा नहीं है

और धारा 209 के अंतर्गत वाद दायर करने का उसका अधिकार परिसीमा द्वारा वर्जित है। कब्जे के प्रश्न पर अभिलिखित तथ्य यह है कि वादीगण ने विवादित भूमि पर अपना निरंतर कब्जा स्थापित कर लिया है। यह निष्कर्ष किसी भी त्रुटि से दूषित नहीं दिखाया गया है। चूँकि वादीगण के अधिकार कभी समाप्त नहीं हुए, इसलिए परिसीमा का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। उपरोक्त कारणों से रिट याचिका में कोई गुण-दोष नहीं है और इसे खारिज किया जाता है।

12. इस न्यायालय ने ***2020 (146) आरडी 186 बाबू बनाम महावीर एवं अन्य*** में प्रतिवेदित वाद में यह अभिनिर्धारित किया है कि यू.पी.जेड.ए एवं एल.आर. अधिनियम की धारा 229-बी के अंतर्गत वाद का निस्तारण विवाद्यक विरचित किए बिना और पक्षकारों को साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर दिए बिना नहीं किया जा सकता। प्रस्तर संख्या 2, 3 एवं 4 अवलोकनार्थ प्रासंगिक होंगे, जो इस प्रकार हैं:-

"2. जिस प्रकार प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा यू.पी.जेड.ए एवं एल.आर. अधिनियम की धारा 229-बी के अंतर्गत संस्थित वाद का निर्णय आक्षेपित आदेश दिनांक 28.01.2019 द्वारा किया गया है, उसकी सराहना नहीं की जा सकती। विचारण न्यायालय ने न तो विवाद्यक विरचित किये हैं और न ही पक्षकारों को अपने-अपने वाद सिद्ध करने के लिए साक्ष्य प्रस्तुत करने का कोई अवसर प्रदान किया है। सिविल प्रक्रिया संहिता में निहित प्रावधानों को त्याज्य माना गया है।

3. जैसा कि न्यायालय द्वारा दिनांक 21.02.2019 के अपने आदेश में पहले ही ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, यू.पी.जेड.ए एवं एल.आर. अधिनियम की धारा 229-बी के अंतर्गत कार्यवाही नियमित कार्यवाही है, जहाँ किसी जोत में अधिकारों की घोषणा साक्ष्य के आधार पर निर्णीत की जाती है।

4. प्रत्यर्थी संख्या 1 के विद्वान अधिवक्ता भी आक्षेपित आदेश का बचाव करने में असमर्थ रहे हैं; बल्कि वह इस बात से सहमत प्रतीत होते है कि मामला संबंधित उप-खण्ड अधिकारी को वापस भेज दिया जाना चाहिए था।"

13. यू.पी.जेड.ए एवं एल.आर. नियमावली के नियम 338 के अंतर्गत तैयार परिशिष्ट III में दी गई परिसीमा इस प्रकार है:-

क्रम संख्या	अधिनियम की धारा	वाद, आवेदन और अन्य कार्यवाहियों का विवरण	परिसीमा अवधि	वह समय जिससे अवधि प्रारंभ होती है	उचित न्यायालय शुल्क
1	2	3	4	5	6
	209	भूमि पर अवैध रूप से कब्जा करने या उसे बनाए रखने वाले			

		व्यक्ति की बेदखली और हर्जाने के लिए वाद:			न्यायालय शुल्क अधिनियम, 1870 की तरह, वंशानुगत दरों पर गणना किए गए एक वर्ष के किराए पर।
		(I) यदि व्यक्ति भूमि पर अधिकार निहित होने की तिथि पर काबिज था और उत्तर प्रदेश काश्तकारी अधिनियम, 1939 में निर्दिष्ट उसकी बेदखली की परिसीमा अवधि समाप्त नहीं हुई थी।	तीन वर्ष	निहित होने की तिथि से	
		(ii) धारा 144 में निर्दिष्ट अधिभोगी के वाद में।		धारा 144 के अंतर्गत घोषणा की तिथि से	यथोपरि
		(iii) सरकारी सम्पदाओं में भूमिधर द्वारा धारित भूमि के अधिभोगियों के वाद में, जिन पर अधिनियम के प्रावधानों को समय-समय पर विस्तारित किया गया है (तराई और भाबर सरकारी सम्पदाओं के 85 बसे हुए भाबर गाँवों सहित)।	तीन वर्ष छः वर्ष	कब्जे की तिथि के बाद 1 जुलाई से	यथोपरि
		(iv) भूमिधर या असामी द्वारा धारित किसी अन्य भूमि के अधिभोगियों के वाद में, जहाँ ऐसी भूमि का कब्ज़ा अवैध रूप से लिया गया है या रखा गया है।	बारह वर्ष	यथोपरि	यथोपरि

सत्यापित

14. वर्तमान वाद में, कानपुर विकास प्राधिकरण द्वारा 1983 में यू.पी.जेड.ए. एवं एल.आर. अधिनियम की धारा 229-बी/209 के अंतर्गत दायर वाद को विचारण न्यायालय ने खारिज कर दिया था और विचारण न्यायालय के निर्णय को प्रथम अपीलीय न्यायालय/अपर आयुक्त द्वारा अपील में बरकरार रखा गया है, लेकिन द्वितीय अपीलीय क्षेत्राधिकार में, राजस्व परिषद ने द्वितीय अपील को स्वीकार कर लिया है और वादी के वाद पर इस तथ्य पर विचार किए बिना निर्णय सुनाया है कि प्रतिवादी याचिकाकर्ता विवादित भूखंड पर स्वामित्व की तिथि से पूर्व से ही काबिज हैं।

15. जहाँ तक राजस्व परिषद द्वारा यू.पी.जेड.ए. एवं एल.आर. अधिनियम की धारा 331(4) के अंतर्गत प्रयोग की जाने वाली द्वितीय अपीलीय क्षेत्राधिकार का संबंध है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***उत्तराखंड राज्य (पूर्वोक्त)*** के वाद में यह अभिनिर्धारित किया है कि राजस्व परिषद के समक्ष यू.पी.जेड.ए. एवं एल.आर. अधिनियम की धारा 331(4) के अंतर्गत द्वितीय अपील विधि के प्रश्न पर, न कि विधि के सारवान प्रश्न पर आधारित होगी। ***उत्तराखंड राज्य (पूर्वोक्त)*** में दिए गए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के प्रस्तर संख्या 26, 27 और 28 अवलोकनार्थ प्रासंगिक होंगे, जो इस प्रकार हैं:-

"26. हमारा विचार है कि महिंद्रा एंड महिंद्रा में प्रतिपादित सिद्धांत और पूर्व में संदर्भित निर्णय स्पष्ट रूप से लागू होते हैं जब हम उत्तर प्रदेश अधिनियम की धारा 331 की उपधारा (4) की व्याख्या करते हैं। जैसा कि हम पहले ही बता चुके हैं, उपधारा (4) में सी.पी.सी. की धारा 100 में निर्दिष्ट "किसी भी आधार पर" पद का प्रयोग किया गया है। परिणामस्वरूप, तत्कालीन विद्यमान धारा 100 (अर्थात धारा 100, जैसा कि यह 1908 में असंशोधित रूप में विद्यमान थी) को धारा 331 की उपधारा (4) में समाहित कर दिया गया और नई धारा 100 के प्रतिस्थापन से समाहित आधार प्रभावित या प्रतिबंधित नहीं होते हैं। धारा 331 की उपधारा (4) के अंतर्गत राजस्व परिषद के समक्ष अपील का अधिकार स्पष्ट रूप से तत्कालीन विद्यमान धारा 100 में निर्धारित आधारों तक सीमित करने का इरादा रखता है, क्योंकि ये वे आधार थे जो विधायिका के समक्ष थे और जिन पर विधायिका विचार कर सकता था और यह मान लेना उचित है कि विधायिका का इरादा अपील के अधिकार को सीमित करने का था, यह उन विशिष्ट और ज्ञात आधारों के संदर्भ में था।

27. इसलिए, राजस्व परिषद के समक्ष अपील विधि के प्रश्न पर आधारित होगी। इस विधिक पहलू पर न तो राजस्व परिषद और न ही उच्च न्यायालय द्वारा उचित रूप से विचार किया गया। इसके अलावा, हम यह भी देखते हैं कि राजस्व परिषद ने भूमि अभिलेख और लेखपाल डायरी संख्या, दिनांक और पी.ए. 10 के प्रावधानों का परीक्षण नहीं किया है। अपर आयुक्त ने विशेष रूप से ध्यान दिया था कि वर्ष 1976 से संबंधित दायर पी.ए. 10 पर किसी के हस्ताक्षर नहीं थे और यह संदिग्ध पाया गया था, और यह भी कि विवादित भूमि के मूल काश्तकार (जोतने वाले) थारू जनजाति के थे या नहीं, इसकी भी उचित रूप से जाँच नहीं की गई थी। इसके अलावा, राजस्व परिषद को यह भी परीक्षण करना चाहिए था कि क्या भूमि थारू जनजाति की है और वादी उत्तर प्रदेश अधिनियम की धारा 210 का लाभ प्राप्त कर सकता है। ये सभी पहलू विवाद के उचित और न्यायसंगत निर्णय के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, जो नहीं किया गया है।

28. ऐसी परिस्थितियों में, हम अपीलों को स्वीकार करने और उच्च न्यायालय के साथ-साथ राजस्व परिषद द्वारा पारित आदेश को अपास्त करने के लिए इच्छुक हैं और मामले को विधि के अनुसार नए सिरे से विचार करने के लिए राजस्व परिषद को वापस भेजा जाता है। हालांकि, हम वाद के गुण-दोष पर कोई राय व्यक्त नहीं कर रहे हैं, क्योंकि हम मामले को राजस्व परिषद को भेज रहे हैं। राजस्व परिषद इस आदेश की प्राप्ति की तिथि से तीन माह की अवधि के भीतर अंतिम आदेश पारित करे।'

16. इस न्यायालय ***ने 2018 इला सीजे 1181 जितेंद्र कुमार उर्फ गोपाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य*** में प्रतिवेदित वाद में याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि जब पहले पट्टा प्रदान किया गया था, तो खातेदार हस्तांतरणीय अधिकारों के साथ भूमिधर बन जाता है, फिर चाहे पहले दिया गया पट्टा कितना भी रद्द हो जाए, इससे उसके भूमिधर होने के अधिकार प्रभावित नहीं होंगे। इस न्यायालय द्वारा ***जितेंद्र कुमार उर्फ गोपाल (पूर्वोक्त)*** में दिए गए निर्णय के प्रस्तर संख्या 8 और 9 अवलोकनार्थ प्रासंगिक होंगे, जो निम्नानुसार हैं:-

"(8) पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद, मेरा विचार है कि आक्षेपित आदेश पोषणीय नहीं रखे जा सकते। सबसे पहले, नोटिस पर परिसीमा लागू थी। दूसरे, याचिकाकर्ता को राज्य के एक आदेश द्वारा हस्तांतरणीय अधिकारों वाला भूमिधर घोषित किया गया था और पट्टे को रद्द करने का कोई महत्व नहीं था और तीसरे, पट्टे को रद्द करने का आधार भी अस्तित्व में नहीं था। यदि 1950 के अधिनियम के तहत निर्धारित परिसीमा समाप्त हो जाती है, तो पट्टे में अनियमितताएँ होने पर भी कोई नोटिस जारी नहीं किया जा सकता। इसके अलावा, यदि कलेक्टर द्वारा स्वप्रेरणा से नोटिस जारी किया जाता है, तब भी परिसीमा का प्रश्न उठेगा और नोटिस 1950 के अधिनियम द्वारा निर्धारित परिसीमा के भीतर जारी किए जाने चाहिए।

(9). इसके अलावा, जब एक बार कोई भू-धारक, जिसे पहले पट्टा दिया गया था, हस्तांतरणीय अधिकारों के साथ भूमिधर बन जाता है, तो पहले दिया गया पट्टा चाहे कितना भी रद्द कर दिया जाए, इससे भूमिधर के रूप में उसके अधिकार पर कोई असर नहीं पड़ेगा और वह संबंधित भूमि पर भूमिधर बना रहेगा।

17. यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि वर्तमान वाद में, प्रतिवादी याचिकाकर्ता निहित होने की तिथि से पहले से ही विचाराधीन भूखंड पर काबिज हैं और विवादित भूमि का एक हिस्सा प्राधिकारियों द्वारा अधिग्रहित कर लिया गया है, साथ ही अभिलेखित खातेदारों के पक्ष में अधिनिर्णय भी हो चुका है और अभिलेखित खातेदारों द्वारा मुआवजे की राशि प्राप्त कर ली गई है। अतः, कानपुर विकास प्राधिकरण द्वारा शेष अप्राप्त भूमि के लिए दायर वाद को विचारण न्यायालय और प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा उचित रूप से खारिज कर दिया गया। यह भी उल्लेख करना प्रासंगिक है कि यू.पी.जेड.ए. एवं एल.आर. अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार प्रतिवादी-याचिकाकर्ताओं के पक्ष में भूमिधारी सनद जारी की गई थी और तदनुसार, प्रतिवादी याचिकाकर्ता निहित होने की तिथि से पहले से ही विचाराधीन भूखंड पर काबिज थे। यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि राज्य सरकार द्वारा भूमिधारी सनद को रद्द करने की कोई कार्यवाही शुरू नहीं की गई थी, जैसा कि यू.पी.जेड.ए. और

एल.आर. अधिनियम की धारा 137-ए के अंतर्गत प्रावधान किया गया था, ऐसे में यू.पी.जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम की धारा 229-बी/209 के अंतर्गत 1983 में वाद दायर करना विधिक प्रक्रिया का दुरुपयोग है।

18. यू.पी.जेड.ए. एवं एल.आर. अधिनियम की धारा 134 से 137-ए के अंतर्गत भूमिधारी सनद प्रदान करने से संबंधित प्रावधान भी अवलोकनार्थ प्रासंगिक होंगे, जो निम्नानुसार हैं:-

"एस. 134. सिरदार द्वारा भूमिधारी अधिकारों का अर्जन.-(1) यदि धारा 131 के खंड (क) में उल्लिखित वर्ग का कोई सिरदार, उस भूमि के लिए, जिसका वह सिरदार है, आवेदन की तिथि को देय या देय समझे जाने वाले भू-राजस्व के दस गुने के बराबर राशि राज्य सरकार के खाते में जमा करता है या जमा करने की पेशकश करता है, तो वह सहायक कलेक्टर को इस संबंध में विधिवत आवेदन करने पर, उस तिथि से, जिस तिथि को राशि जमा की गई है, यह घोषणा करने का हकदार होगा कि उसने ऐसी भूमि के संबंध में धारा 137 में उल्लिखित अधिकार अर्जित कर लिए हैं:

परंतु उपर्युक्त राशि का भुगतान करने या भुगतान करने की पेशकश करने का अधिकार राज्य सरकार द्वारा अधिसूचित की जाने वाली तिथि से तीन महीने की समाप्ति पर समाप्त हो जाएगा।

स्पष्टीकरण 1.-इस उपधारा में 'भूमि' में भूमि में हिस्सा शामिल है।

स्पष्टीकरण II- इस धारा के प्रयोजन के लिए देय भू-राजस्व-

(क) धारा 246 की उपधारा (1) के खंड (क) के परंतुक में निर्दिष्ट भूमि के संबंध में, सभी वृद्धियों के प्रभावी होने के पश्चात् निर्धारित राशि होगी; और

(ख) उस भूमि के संबंध में, जिस पर धारा 247 का परंतुक लागू होता है, उस धारा के अधीन वंशानुगत दरों पर निर्धारित राशि होगी।

(2) उपधारा (1) में निर्दिष्ट राशि नकद में या, यदि राज्य सरकार ऐसा विहित करे, तो बांड के रूप में या अन्यथा भुगतान की जा सकेगी।

धारा 135. धारा 134 के अधीन आवेदन के साथ राजकोष चालान- धारा 134 में निर्दिष्ट आवेदन के साथ, जहां राशि नकद में भुगतान की जाती है, राजकोष चालान और किसी अन्य मामले में, ऐसे दस्तावेज या साक्ष्य, जो विहित किया जाए, संलग्न किया जाएगा जो यह दर्शाता हो कि पूर्वोक्त राशि जमा कर दी गई है और उसमें उस अधिकार का संक्षेप में वर्णन होगा जिसके अंतर्गत आवेदन में भूमि का दावा किया गया है।

धारा 136. धारा 134 के अधीन जमा की जाने वाली राशि.-जहां सिरदार या उसका हित-पूर्ववर्ती, निहित होने की तारीख से ठीक पहले की तारीख को, जोत का वंशानुगत काश्तकार था, वहां धारा 134 के अधीन जमा की जाने वाली रकम, इस अधिनियम में किसी बात के होते हुए भी, [उसके द्वारा देय भू-राजस्व के दस गुना के बराबर होगी या, यदि उक्त भू-राजस्व लागू वंशानुगत दरों पर संगणित रकम के दोगुने से अधिक है, तो ऐसी रकम के दस गुना के बराबर होगी]।

<u>धारा 137. प्रमाण-पत्र प्रदान करना -</u> (1) यदि आवेदन सम्यक् रूप से किया गया है और सहायक कलेक्टर का यह समाधान हो जाता है कि आवेदक धारा 134 में उल्लिखित घोषणा का हकदार है, तो वह उस आशय का प्रमाण-पत्र प्रदान करेगा।

(2) उपधारा (1) के अधीन, प्रमाण-पत्र प्रदान किए जाने पर, सिरदार, उसकी तिथि से-

(क) उस जोत या हिस्से का भूमिधर बन जाएगा और समझा जाएगा जिसके संबंध में प्रमाण-पत्र प्रदान किया गया है, और

(ख) जोत या उसमें अपने हिस्से के लिए, यथास्थिति, भू-राजस्व के मद्दे ऐसी कम की गई राशि के भुगतान के लिए दायी होगा, जो आवेदन की तिथि को उसके द्वारा देय या देय समझी गई भू-राजस्व की राशि का आधा होगा।

परन्तुक यह और कि धारा 134 के स्पष्टीकरण 2 में निर्दिष्ट मामलों में सिरदार, उस अवधि के दौरान, जब धारा 246 या 247 के अनुसार कम की गई राशि देय है, समय-समय पर देय राशि के आधे के भुगतान के लिए दायी होगा।

स्पष्टीकरण- खंड (ख) के प्रयोजनों के लिए, पूर्वोक्त तिथि को सिरदार द्वारा देय भू-राजस्व, जहां वह लागू वंशानुगत दरों पर संगणित राशि के दोगुने से अधिक हो, उस राशि के बराबर समझा जाएगा।

(2-क) जहां प्रमाणपत्र कृषि वर्ष के प्रथम दिन के अलावा किसी अन्य तिथि को प्रदान किया जाता है, वहां उपधारा (2) के खंड (ख) के अधीन भूमिधर द्वारा उस कृषि वर्ष के शेष भाग के लिए, जिसमें वह प्रदान किया जाता है, देय भू-राजस्व ऐसी रीति से अवधारित किया जाएगा, जैसी विहित की जाए।

<u>धारा 137-क. प्रमाणपत्र का रद्दीकरण.-</u>(1) धारा 137 के अधीन प्रदान किया गया प्रमाणपत्र, राज्य सरकार या किसी हितबद्ध व्यक्ति के आवेदन पर, सहायक कलेक्टर द्वारा निम्नलिखित में से किसी भी कारण से रद्द या संशोधित किया जा सकेगा, अर्थात्-

(क) कि प्रमाणपत्र मिथ्या सुझाव देकर, या सहायक कलेक्टर से मामले से संबंधित किसी महत्वपूर्ण बात को छिपाकर कपटपूर्वक प्राप्त किया गया था;

(ख) कि प्रमाणपत्र, उसके अनुदान को उचित ठहराने के लिए विधि की दृष्टि से आवश्यक किसी तथ्य के असत्य आरोप के माध्यम से प्राप्त किया गया था, यद्यपि ऐसा आरोप अज्ञानतावश या अनजाने में लगाया गया था;

(ग) कि जिस खाते के लिए प्रमाणपत्र प्रदान किया गया है, उसके संबंध में किसी वाद या अन्य कार्यवाही में किसी सक्षम न्यायालय द्वारा पारित डिक्री या आदेश से यह पता चलता है कि आवेदक प्रमाणपत्र का हकदार नहीं था।

(2) जहाँ प्रमाणपत्र उपधारा (1) के अधीन रद्द कर दिया जाता है, वहाँ धारा 134 में निर्दिष्ट राशि जमा करने वाला व्यक्ति उसकी वापसी का हकदार होगा:

परन्तुक धारा 137 की उपधारा (2) के खंड (ख) के अधीन देय भू-राजस्व की कम की गई राशि के बराबर राशि उसमें से काट ली जाएगी।

19. उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 8/1977 (28.1.1977 से) द्वारा यू.पी.जेड.ए. एवं. एल.आर. अधिनियम की धारा 134, 135, 136 के प्रावधानों को हटा दिया गया था और यू.पी.जेड.ए. एवं. एल.आर. अधिनियम की धारा 137-ए के अंतर्गत निहित प्रावधानों को उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 35/1976 द्वारा हटा दिया गया था, लेकिन यू.पी.जेड.ए. एवं. एल.आर. अधिनियम की धारा 136 को उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 35/1976 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था, जो इस प्रकार था:-

" यू.पी.जेड.ए. एवं. एल.आर. अधिनियम की धारा 136- धारा 134 के अंतर्गत जमा की जाने वाली राशि----. जहाँ कोई सरदारी या उसका हित-पूर्ववर्ती, निहित होने की तिथि से ठीक पहले की तिथि को, जोत का वंशानुगत काश्तकार था, वहाँ धारा 134 के अधीन जमा की जाने वाली राशि, इस अधिनियम में किसी बात के होते हुए भी, ["उसके द्वारा देय भू-राजस्व का दस गुना या, यदि उक्त भू-राजस्व लागू वंशानुगत दरों पर संगणित राशि के दोगुने से अधिक है, तो ऐसी राशि का दस गुना] के बराबर होगी।"

20. इस न्यायालय की पूर्ण पीठ ने ***1971 आरडी 371 बंशीधर बनाम श्रीमती धीरजधारी एवं अन्य*** में प्रतिवेदित वाद तथा माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***2000 (91) आरडी देव नारायण एवं अन्य बनाम राम शरण एवं अन्य*** में प्रतिवेदित वाद में भूमिधारी सनद प्रदान करने संबंधी प्रावधान पर विचार किया है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ***देव नारायण (पूर्वोक्त)*** के वाद में दिए गए निर्णय के प्रस्तर संख्या 6 से 9 अवलोकनार्थ प्रासंगिक होंगे, जो इस प्रकार हैं:-

"6. जैसा कि हम पहले ही बता चुके हैं, इस अपील में निर्णय उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम की धारा 134 और 137 की व्याख्या पर निर्भर करता है। ये धाराएँ इस प्रकार हैं:

"धारा 134. सिरदार द्वारा भूमिधारी अधिकारों का अर्जन। -(1) यदि धारा 131 के खंड (क) में उल्लिखित वर्ग का कोई सिरदार, उस भूमि के लिए, जिसके लिए वह सिरदार है, आवेदन की तारीख को देय या देय समझे जाने वाले भू-राजस्व के दस गुने के बराबर रकम राज्य सरकार के खाते में जमा करता है या जमा करने की पेशकश करता है, तो वह सहायक कलेक्टर को इस संबंध में सम्यक् रूप से आवेदन करने पर, उस तारीख से, जिसको रकम जमा की गई है, यह घोषणा करने का हकदार होगा कि उसने ऐसी भूमि के संबंध में धारा 137 में वर्णित अधिकार अर्जित कर लिए हैं।

परन्तुक उपर्युक्त राशि का भुगतान करने या भुगतान करने का प्रस्ताव करने का अधिकार राज्य सरकार द्वारा अधिसूचित तिथि से तीन माह की समाप्ति पर समाप्त हो जाएगा।

स्पष्टीकरण I - इस उपधारा में 'भूमि' के अंतर्गत भूमि के अंश भी शामिल हैं।

स्पष्टीकरण II - इस धारा के प्रयोजन के लिए देय भू-राजस्व -

(क) धारा 246 की उपधारा (1) के खंड (क) के परंतुक में निर्दिष्ट भूमि के संबंध में, सभी वृद्धियों के प्रभावी होने के पश्चात् निर्धारित राशि होगी; और

(ख) उस भूमि के संबंध में, जिस पर धारा 247 का परंतुक लागू होता है, उस धारा के अंतर्गत वंशानुगत दरों पर निर्धारित राशि होगी।

(2) उपधारा (1) में निर्दिष्ट राशि, यदि राज्य सरकार ऐसा विहित करे, तो सीमा के रूप में या अन्यथा संदत्त की जा सकेगी।

धारा 137. प्रमाण पत्र प्रदान करना।- (1) यदि आवेदन विधिवत किया गया है और सहायक कलेक्टर का समाधान हो जाता है कि आवेदक धारा 134 में उल्लिखित घोषणा का हकदार है, तो वह इस आशय का प्रमाण पत्र प्रदान करेगा।

(2) उपधारा (1) के अधीन प्रमाण पत्र प्रदान किए जाने पर, सिरदार, उस तारीख से, जिसको धारा 134 की उपधारा (1) में निर्दिष्ट राशि जमा की गई है-

(क) उस जोत या हिस्से का भूमिधर बन जाएगा और समझा जाएगा जिसके संबंध में प्रमाण पत्र प्रदान किया गया है; और

(ख) जोत या उसमें उसके हिस्से के लिए भू-राजस्व के कारण ऐसी कम की गई राशि के भुगतान के लिए उत्तरदायी होगा, जैसा भी मामला हो, आवेदन की तारीख को उसके द्वारा देय या देय समझी जाने वाली भू-राजस्व की राशि का आधा।

इसके अतिरिक्त, धारा 134 के स्पष्टीकरण II में निर्दिष्ट मामलों में, सिरदार, उस अवधि के दौरान, जब धारा 246 या 247 के अनुसार कम राशि देय है, समय-समय पर देय राशि के आधे के भुगतान के लिए उत्तरदायी होगा।

स्पष्टीकरण.- खंड (ख) के प्रयोजनों के लिए, पूर्वोक्त तिथि को सिरदार द्वारा देय भू-राजस्व, जहां वह लागू वंशानुगत दरों पर संगणित राशि के दोगुने से अधिक है, ऐसी राशि के बराबर समझा जाएगा।

(2क) जहां धारा 134 की उपधारा (1) में निर्दिष्ट राशि कृषि वर्ष के प्रथम दिन से भिन्न किसी तिथि को जमा की जाती है, वहां उपधारा (2) के खंड (ख) के अधीन भूमिधर द्वारा उस कृषि वर्ष के शेष भाग के लिए, जिसमें राशि जमा की जाती है, देय भू-राजस्व ऐसी रीति से अवधारित किया जाएगा, जैसी विहित की जाए।

7. धारा 134 अपनी स्पष्ट भाषा में यह दर्शाती है कि आवेदन करने और भू-राजस्व का दस गुना भुगतान करने पर, सिरदार 'राशि जमा करने की तिथि से' यह घोषणा करने का हकदार हो जाता है कि उसने अधिनियम की धारा 137 में उल्लिखित अधिकार अर्जित कर लिए हैं। यह धारा स्पष्ट रूप से उस तिथि को निर्दिष्ट करती है जिससे अधिकार अर्जित माने जाएँगे: वह तिथि वह है जिस दिन धारा 134 द्वारा परिकल्पित राशि जमा की जाती है। यह स्पष्ट रूप से उस समय की अनिश्चितता को दूर करता है जब स्वामित्व हस्तांतरित किया जाता है, क्योंकि यह तिथि राशि जमा करने की तिथि निर्धारित करती है। यह बात मायने नहीं रखती कि धारा 137 के तहत घोषणा कब की जाती है क्योंकि वह घोषणा अनिवार्य रूप से राशि जमा करने की तिथि से प्रभावी होनी चाहिए।

8. धारा 134 की इस व्याख्या में जो भी संदेह हो, वह धारा 137 की उपधारा (2) के अवलोकन से समाप्त हो जाता है। यह ध्यान देने योग्य है कि, जैसा कि अवर अपीलीय न्यायालय ने कहा है, 1962 में संशोधन से पहले, अधिनियम की धारा 137 की उपधारा (2) में यह प्रावधान था कि धारा 137 की उपधारा (1) के अधीन प्रमाण-पत्र प्रदान किए जाने पर ही सिरदार, उस तिथि से उस जोत या हिस्से का भूमिदार बन जाएगा या समझा

जाएगा जिसके संबंध में प्रमाण-पत्र प्रदान किया गया है। 13 दिसंबर, 1962 से प्रभावी, संशोधन अधिनियम 21, 1962 द्वारा धारा 137 की उपधारा (2) में संशोधन करके धारा 137(2) को धारा 134 के अनुरूप बना दिया गया। दोनों प्रावधानों को एक साथ पढ़ने से स्पष्ट रूप से यह प्रावधान है कि जब भी धारा 137 के तहत प्रमाण पत्र प्रदान किया जाता है, तो यह उस तिथि से संबंधित होना चाहिए और प्रभावी होना चाहिए जिस दिन धारा 134 की उपधारा (1) में निर्दिष्ट राशि जमा की गई हो।

9. इसमें कोई संदेह नहीं है कि बंशीधर बनाम श्रीमती धीरजधारी और अन्य (पूर्वोक्त) में पूर्ण पीठ के निर्णय में, मोबिन खान बनाम चुन्नू खान और अन्य (पूर्वोक्त) में एकल न्यायाधीश के निर्णय में और रघुनंदन सिंह और अन्य बनाम वश्वंत सिंह, 1978 के राजस्व निर्णय 183 में निर्णय में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा एक अलग दृष्टिकोण व्यक्त किया गया है। पूर्ण पीठ के निर्णय में, यह दृष्टिकोण लिया गया है कि यह उस तारीख से है जब धारा 137 के तहत आदेश पारित किया जाता है कि सिरदार एक भूमिदार बन जाता है। बाद के दो वादों में, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि यदि आवेदन दायर करने और भूमि राजस्व का भुगतान करने के बाद आवेदक की मृत्यु हो जाती है हमारी राय में, उक्त निर्णय धारा 134 और 137 की स्पष्ट भाषा और अर्थ के विपरीत हैं, जैसा कि वे प्रासंगिक समय पर थे। जब धारा 137 के तहत एक प्रमाण पत्र जारी किया जाता है, तो यह वास्तव में उस तारीख को स्थिति को मान्यता देता है जब आवेदन किया गया था और धारा 134 (1) के तहत भुगतान जमा किया गया था। दूसरे शब्दों में, प्रमाण पत्र का पूर्वव्यापी प्रभाव होगा और आवेदन की तारीख से संबंधित होगा। राजस्व अधिकारियों को धारा 134 (1) के तहत दायर आवेदन को उस दिन अनुमति देने से रोकने के लिए कुछ भी नहीं था जब इसे प्रस्तुत किया गया था। इसलिए, विधायिका का अंतर्निहित इरादा स्पष्ट रूप से यह है कि जब भी उक्त आवेदन स्वीकार किया जाता है और धारा 137 के अंतर्गत आदेश पारित किया जाता है, तो इसे उस तारीख से संबंधित होना चाहिए जब आवेदन दायर किया गया था। ऐसी स्थिति विधि के लिए अज्ञात नहीं है। अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रेम प्रसाद जुनेजा ने उदाहरण के तौर पर, हमारा ध्यान आदेश 22 नियम 6, सी.पी.सी. की ओर आकर्षित किया है, जिसमें प्रावधान है कि यदि किसी वाद के किसी भी पक्षकार की सुनवाई पूरी होने के बाद और निर्णय सुनाए जाने से पहले मृत्यु हो जाती है, तो वाद समाप्त नहीं होगा। उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम की धारा 134 और 137 में संबंध-वापसी के सिद्धांत को शामिल किया गया है।

21. जहां तक कानपुर विकास प्राधिकरण के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा उद्धृत न्याय-विधि का संबंध है, जिसके अनुसार धोखाधड़ी प्रत्येक गंभीर कार्यवाही को दूषित कर सकता है तथा द्वितीय अपीलीय क्षेत्राधिकार के प्रयोग में वाद पारित किया जा सकता है, वह वर्तमान वाद के तथ्यों और परिस्थितियों में लागू नहीं होगा, जहां कानपुर विकास प्राधिकरण ने सक्षम प्राधिकारी द्वारा भूमि अधिग्रहण अधिनियम के अंतर्गत पारित निर्णय के आधार पर संबंधित भूखंड के क्षेत्र के हिस्से के संबंध में किए गए अधिग्रहण के बदले में प्रतिवादी याचिकाकर्ताओं के पूर्ववर्ती को स्वयं मुआवजा दिया है।

22. वाद के संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, द्वितीय अपीलीय क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए राजस्व परिषद द्वारा पारित निर्णय और डिक्री, जिसमें वादी के वाद को खारिज किया गया और संबंधित भूखंड की लंबे समय से चली आ रही प्रविष्टि को हटा दिया गया, विधि की दृष्टि में पोषणीय नहीं रह सकता, ऐसे में, प्रत्यर्थी संख्या 1, राजस्व परिषद, उत्तर प्रदेश इलाहाबाद द्वारा पारित दिनांक 23.4.1997 का आक्षेपित निर्णय अपास्त किए जाने योग्य है और इसे एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है। रिट याचिका **स्वीकार** की जाती है और वादी के वाद को खारिज करने वाले विचारण न्यायालय के दिनांक 5.12.1987 के निर्णय/डिक्री की पुष्टि की जाती है। विचाराधीन प्लॉट की प्रविष्टि तदनुसार संशोधित की जाएगी।

23. वाद व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं है।

(2025) 4 ILRA 493

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 17.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजन रॉय

माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला

रिट सी संख्या 386/2025

मेसर्स क्लासिक एंटरप्राइजेज **...याचिकाकर्ता**

बनाम

एन.एच.ए.आई. सड़क परिवहन एवं राजमार्ग मंत्रालय एवं अन्य **... प्रत्यर्थी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

चन्द्र शेखर सिन्हा, अक्षत सिन्हा,गौरव वर्मा

प्रत्यर्थी के अधिवक्ता:

सर्वेश कुमार दुबे, ए.एस.जी.आई., अभिषेक पाठक

सिविल विधि - भारतीय संविधान, 1950- अनुच्छेद 226- मेसर्स क्लासिक एंटरप्राइजेज ने एनएचएआई द्वारा जारी एक निविदा में भाग लिया एफओबी के निर्माण के लिए- याचिकाकर्ता को सबसे कम बोली लगाने वाला घोषित किया गया और उसे 20.08.2024 को एक स्वीकृति पत्र (एलओए) जारी किया गया, जिसमें 10 दिनों के भीतर निष्पादन प्रतिभूति जमा करने की आवश्यकता थी। हालाँकि निष्पादन प्रतिभूति समय पर जमा कर दी गई थी, लेकिन फर्म के साझेदार की बीमारी और त्योहार से संबंधित बैंक व्यवधानों के कारण अतिरिक्त

अनधिकृत

निष्पादन प्रतिभूति जमा करने में 8 दिन की देरी हुई। क्षेत्रीय अधिकारी ने मौखिक रूप से 10 दिन का विस्तार दिया था। बाद में, याचिकाकर्ता को एक पिछली तारीख का पत्र दिया गया जिसमें एलओए रद्द कर दिया गया और बोली प्रतिभूति जब्त कर ली गई इस आधार पर कि सक्षम प्राधिकारी ने देरी को मंजूरी नहीं दी थी। न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि एनएचएआई का आचरण-जुर्माना मांगना और स्वीकार करना, याचिकाकर्ता को समझौते पर हस्ताक्षर करने के लिए बुलाना और बाद में रद्द करना एलओए मनमाना और अनुचित था- रद्द करना जनहित में नहीं था और देरी के लिए क्षमा का सुझाव देने वाले पूर्व संचारों का खंडन करता था- यहाँ तक कि एनएचएआई जैसे वैधानिक प्राधिकरणों से जुड़े संविदात्मक मामलों में भी, निष्पक्षता, पारदर्शिता और तर्कसंगतता अनिवार्य है- न्यायालय ने एलओए रद्द करने को रद्द कर दिया और एनएचएआई को याचिकाकर्ता के मामले पर 15 दिनों के भीतर पुनर्विचार करने का निर्देश दिया। (प्रस्तर 1 से 42)

रिट याचिका स्वीकार की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वादों की सूची:</u>

1. साउथ ईस्टर्न कोल फील्ड्स लिमिटेड एवं अन्य बनाम सुश्री एस. कुमार्स एसोसिएट्स (अपील संख्या 4358/2016)
2. राज. को-ऑप. डेयरी फेडरेशन लिमिटेड बनाम महा लक्ष्मी मिंरेट मार्केटिंग सर्विसेज (प्रा.) लिमिटेड (1996) 10 एससीसी 405
3. ग्लोबल एनर्जी लिमिटेड बनाम अदानी एक्सपोर्ट्स लिमिटेड (2005) 4 एससीसी 435

(माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला द्वारा प्रदत्त)

(1) याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री चंद्रशेखर सिन्हा, विपक्षी संख्या 1 से 3 के विद्वान अधिवक्ता श्री अभिषेक पाठक और भारत संघ/विपक्षी संख्या 4 के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

(2) वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत इस न्यायालय के असाधारण क्षेत्राधिकार का आह्वान किया है, और अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित अनुतोष की भी प्रार्थना की है:-

"(i) दिनांक 20.12.2024 के पत्र संख्या 23001/1/आरपीडब्ल्यू-यूपी/ए-के/पैकेज-IV/एनएच-34/एफओबी/25292 के माध्यम से विपक्षी संख्या 1 द्वारा क्षेत्रीय अधिकारी (विपक्षी संख्या 2) के माध्यम से पारित आक्षेपित आदेश को रद्द करने के लिए एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें, जो रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 1 में निहित है;

(ii) परमादेश की प्रकृति की एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें जो विपक्षीगणों को आदेश दे कि याचिकाकर्ता फर्म की निविदा प्रक्रिया को उसी चरण से बहाल करें जिस चरण में उसे रद्द किया गया था और पारदर्शिता और निष्पक्षता के साथ आगे बढ़ें;

(iii) अंतिम निर्णय तक परियोजना से संबंधित किसी भी आगे की निविदा प्रक्रिया या न्यायनिर्णयन पर रोक लगाने के लिए परमादेश की प्रकृति में रिट, आदेश या निर्देश जारी करें..."

(3) वर्तमान रिट याचिका के तथ्यात्मक सार से पता चलता है कि भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण (एनएचएआई) ने उत्तर प्रदेश राज्य में राष्ट्रीय राजमार्ग-34 (91) के अलीगढ़ कानपुर खंड पर फुटओवर ब्रिज (एफओबी) के निर्माण के लिए ई-टेंडरिंग प्रक्रिया के माध्यम से बोलियाँ आमंत्रित की थीं, जिसकी निविदा आईडी:2024_एनएचएआई_194363_1 थी, जिसमें याचिकाकर्ता फर्म ने भाग लिया था। तकनीकी बोली 14.6.2024 को खोली गई और हालाँकि प्रारंभ में कार्यालय आदेश दिनांक 9.7.2024 के अनुसार, याचिकाकर्ता फर्म को "गैर-उत्तरदायी" घोषित किया गया था और बोली को अस्वीकार कर दिया गया था, हालाँकि, उक्त फर्म के दिनांक 10.07.2024 के स्पष्टीकरण और अभ्यावेदन पर, एनएचएआई के सक्षम प्राधिकारी अर्थात डीजीएम (तकनीकी) आरओ-यूपी (पश्चिम) ने क्षेत्रीय अधिकारी के अनुमोदन से फर्म की बोली को 'उत्तरदायी' घोषित किया। याचिकाकर्ता फर्म की वित्तीय बोली एनएचएआई द्वारा 9.8.2024 को अन्य बोलीदाताओं के साथ खोली गई और एनएचएआई ने याचिकाकर्ता फर्म को सबसे कम बोली लगाने वाली अर्थात 'L1' घोषित किया। इस प्रकार, एनएचएआई के क्षेत्रीय अधिकारी उत्तर प्रदेश (पश्चिम) ने दिनांक 20.8.2024 को स्वीकृति पत्र (एलओए) जारी किया और याचिकाकर्ता फर्म को सूचित किया कि फुट ओवर ब्रिज (एफओबी) के निर्माण के लिए उनकी बोली, उद्धृत बोली मूल्य 5,30,06,222.71 रुपये (पांच करोड़ तीस लाख छह हजार दो सौ बाईस रूपये और इकहत्तर पैसे) के लिए, सबसे कम मूल्यांकित बोली पाई गई है।

(4) उपरोक्त स्वीकृति पत्र (एलओए) के अनुसार, याचिकाकर्ता फर्म को तीन वर्ष की अवधि के लिए निष्पादन प्रतिभूति के रूप में 53,00,622/- रुपये (तिरपन लाख छह सौ बाईस रुपये) की बैंक गारंटी प्रस्तुत करनी थी, जो बोली मूल्य का 10% थी और प्रस्ताव के लिए अनुरोध (आरएफपी) की शर्तों के अनुसार, चूँकि बोली राशि अनुमानित लागत से 26.97% कम थी, इसलिए याचिकाकर्ता फर्म को स्वीकृति पत्र प्राप्त होने के 10 दिनों के भीतर आरएफपी के खंड 33.1 के अनुसार 36,95,121/- रुपये की अतिरिक्त निष्पादन प्रतिभूति भी जमा करनी थी, जो कार्य पूरा होने तक मान्य थी। विफलता की स्थिति में, निर्णय रद्द माना जाएगा और बोली प्रतिभूति आरएफपी के खंड 33.3 के अनुसार जब्त कर ली जाएगी और याचिकाकर्ता फर्म को आरएफपी के खंड 16.7 में निर्दिष्ट अवधि के लिए प्रतिबंधित कर दिया जाएगा। याचिकाकर्ता फर्म को एलओए की एक प्रति पावती के रूप में वापस करने और बोली दस्तावेज़ में निर्धारित अवधि के भीतर अनुबंध समझौते पर हस्ताक्षर करने के लिए भी कहा गया था।

(5) याचिकाकर्ता के अनुसार, आरएफपी के खंड 33.1 और खंड 47.1 में कुछ विसंगति थी, इसलिए, याचिकाकर्ता फर्म के भागीदार श्री अमित खत्री ने लखनऊ स्थित क्षेत्रीय मुख्यालय से संपर्क किया और इस बारे में बताया,

जिस पर क्षेत्रीय प्रमुख ने याचिकाकर्ता फर्म को बोली राशि का तीन प्रतिशत नहीं बल्कि दस प्रतिशत जमा करने को कहा। संलग्नक 6 के रूप में संलग्न दस्तावेज़ से, ऐसा प्रतीत होता है कि यह 27.08.2024/28.08.2024 को हुआ था और उसी दिन जैसा कि रिट याचिका के प्रस्तर-11 में कहा गया है, अतिरिक्त निष्पादन गारंटी के रूप में 36,95,121/- रुपये (छत्तीस लाख पंचानवे हजार एक सौ इक्कीस रुपये) जमा करना आवश्यक था, लेकिन चल रहे त्यौहारों की छुट्टियों और हस्ताक्षरकर्ता प्राधिकारी की बीमारी के कारण बैंकिंग सेवाओं में व्यवधान के कारण, अतिरिक्त प्रतिभूति जमा करने के लिए दस दिन का अतिरिक्त समय मांगा गया था, जिसकी अनुमति, याचिकाकर्ता फर्म के अनुसार, क्षेत्रीय प्रमुख द्वारा मौखिक रूप से दी गई थी। इसके बाद, अगले ही दिन यानी 29.08.2024 को, याचिकाकर्ता फर्म ने 53,00,622/- रुपये (तिरपन लाख छह सौ बाईस रुपये) की निष्पादन प्रतिभूति के रूप में दिनांक 29.08.2024 की बैंक गारंटी जमा की और उसके बाद मूल बैंक गारंटी एनएचएआई के लखनऊ कार्यालय में जमा कर दी। याचिकाकर्ता फर्म ने एनएचएआई के क्षेत्रीय कार्यालय को दिनांक 30.08.2024 को ई-मेल द्वारा एक पत्र भेजा, जिसमें 28.08.2024 को क्षेत्रीय अधिकारी के साथ उनके कार्यालय में हुई बैठक सहित पूरी घटना का विवरण दिया गया था, जब उन्होंने याचिकाकर्ता को दस दिनों के भीतर अतिरिक्त निष्पादन प्रतिभूति जमा करने की अनुमति दी थी। ई-मेल के माध्यम से भेजे गए दिनांक 30.08.2024 के उक्त पत्र की प्रति रिट याचिका के साथ अनुलग्नक-6 के रूप में संलग्न है। 07.09.2024 को, भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण के अध्यक्ष को एक पत्र भेजा गया, जिसमें 3695121/- रुपये की अतिरिक्त निष्पादन प्रतिभूति के लिए मूल बैंक गारंटी प्रस्तुत की गई, जिसकी प्रति रिट याचिका के साथ अनुलग्नक-7 के रूप में संलग्न है।

(6) चूँकि याचिकाकर्ता फर्म को समझौते पर हस्ताक्षर करने के लिए कोई सूचना प्राप्त नहीं हुई, इसलिए उसने 26.09.2024 को एनएचएआई के क्षेत्रीय कार्यालय को एक पत्र भेजा, जिसमें याचिकाकर्ता फर्म द्वारा प्रस्तुत बैंक गारंटी का उल्लेख किया गया था और साथ ही ऐसी जमा राशि से पहले हुई घटनाओं का विवरण भी दिया गया था, जिसमें 28.08.2024 को हुई बैठक भी शामिल थी, जिसमें दावा किया गया था कि अतिरिक्त निष्पादन प्रतिभूति जमा करने के लिए मौखिक रूप से दस दिन का अतिरिक्त समय दिया गया था।

(7) 01.10.2024 को, पहली बार, डी.जी.एम. (तकनीकी) ने दिनांक 26.9.2024 के पत्र में दिए गए दावे का खंडन किया जिसमें याचिकाकर्ता द्वारा अतिरिक्त निष्पादन प्रतिभूति जमा करने के ऐसे किसी भी दावे को विस्तारित अवधि के भीतर स्वीकार करने के संबंध में स्पष्ट रूप से कहा गया था कि अतिरिक्त निष्पादन प्रतिभूति जमा करने में आठ दिनों की देरी पर विचार करने का प्रस्ताव सक्षम प्राधिकारी एनएचएआई मुख्यालय को भेज दिया गया है और इसकी प्राप्ति पर, याचिकाकर्ता को तदनुसार सूचित किया जाएगा।

(8) इसके बाद, याचिकाकर्ता ने 19.11.2024 को एक पत्र प्रस्तुत किया जो क्षेत्रीय कार्यालय, एनएचएआई को संबोधित था जिसमें याचिकाकर्ता फर्म के साझेदार के 26.08.2024 से 5.09.2024 तक अस्पताल में भर्ती होने का उल्लेख था जिसके समर्थन में चिकित्सा प्रमाण पत्र संलग्न था और अस्पताल से छुट्टी मिलने के बाद, अतिरिक्त निष्पादन गारंटी 7.09.2024 को प्रस्तुत की गई थी और तदनुसार अतिरिक्त निष्पादन गारंटी प्रस्तुत

करने में हुई देरी को माफ करने का अनुरोध किया गया था और साथ ही यह भी कहा गया था कि याचिकाकर्ता देरी के लिए वित्तीय दंड स्वीकार करने और उसे प्रस्तुत करने के लिए तैयार है।

(9) 26.11.2024 को, उप महाप्रबंधक (तकनीकी) क्षेत्रीय कार्यालय उत्तर प्रदेश (पश्चिम) ने याचिकाकर्ता फर्म को एक पत्र भेजा जिसमें अनुरोध किया गया कि अतिरिक्त निष्पादन प्रतिभूति जमा करने में आठ दिनों की देरी के लिए क्षतिपूर्ति के रूप में 42,405/- रुपये (बयालीस हजार चार सौ पाँच रुपये) उसमें उल्लिखित बैंक खाते में जमा कराए जाएँ। इसके अलावा, याचिकाकर्ता से अनुरोध किया गया कि वह मूल बोली दस्तावेज़ जमा करे और उपरोक्त क्षतिग्रस्त राशि जमा करने के बाद समझौते पर हस्ताक्षर के लिए कार्यालय में उपस्थित हो। दिनांक 26.11.2024 के इस पत्र में ऐसा कोई उल्लेख नहीं था कि विलंब को क्षमा नहीं किया जा सकता या मामला अभी भी लंबित है, इसके बजाय याचिकाकर्ता को उक्त दिनांक 26.11.2024 के पत्र पर कार्रवाई करने और आठ दिनों की देरी के लिए 42,405/- रुपये (बयालीस हजार चार सौ पाँच रुपये) का हर्जाना जमा करने और मूल बोली दस्तावेज़ जमा करने और उसमें उल्लिखित हर्जाना जमा करने के बाद समझौते पर हस्ताक्षर के लिए कार्यालय में उपस्थित होने के लिए कहा गया था।

(10) उक्त पत्र पर कार्रवाई करते हुए, याचिकाकर्ता ने उपरोक्त हर्जाना 26.11.2024 को ही जमा कर दिया जैसा कि रिट याचिका के प्रस्तर-20 में उल्लेखित है।

(11) दिनांक 12.12.2024 को, उप महाप्रबंधक (तकनीकी) क्षेत्रीय कार्यालय उ.प्र. (पश्चिम) ने याचिकाकर्ता फर्म को पुनः पत्र लिखा जिसमें दिनांक 20.08.2024 के एल ए ओ का हवाला दिया गया और याचिकाकर्ता से मूल बोली प्रस्तुत करने और 24.12.2024 को समझौते पर हस्ताक्षर के लिए कार्यालय में उपस्थित होने का अनुरोध किया गया।

(12) एनएचएआई के उपरोक्त पत्र दिनांक 12.12.2024 के अनुसरण में, याचिकाकर्ता फर्म के हस्ताक्षरकर्ता अधिकारी 24.12.2024 को एनएचएआई के कार्यालय पहुँचे, जिसके बाद उन्हें पहली बार मौखिक रूप से सूचित किया गया कि उन्हें दी गई निविदा रद्द कर दी गई है। यह पूछे जाने पर कि याचिकाकर्ता फर्म को ऐसा कोई रद्दीकरण प्राप्त नहीं हुआ है, अधिकारी ने याचिकाकर्ता के प्रतिनिधि को प्रतीक्षा करने के लिए कहा और इसके बाद याचिकाकर्ता फर्म को 24.12.2024 को अपराह्न 3:50 बजे एक ईमेल प्राप्त हुआ जिसमें पत्र संख्या 23001/1/ आरओ-डब्लू-यूपी/ए-के/ पीकेजीIV/ एनएच-34/एफओबी /25292 दिनांक 20.12.2024 क्षेत्रीय अधिकारी उत्तर प्रदेश (पश्चिम) द्वारा हस्ताक्षरित कहा गया था कि अतिरिक्त निष्पादन प्रतिभूति जमा करने में 8 दिनों की देरी के साथ 42,405/- रुपये (बयालीस हजार चार सौ पाँच रुपये) की क्षति सक्षम प्राधिकारी को विलंब अवधि के अनुमोदन के लिए भेजा गया था, लेकिन उस पर सहमति नहीं बनी है। पत्र में कहा गया है कि कार्यालय पत्र संख्या 23820 दिनांक 20.8.2024 के तहत जारी एलओए को अतिरिक्त निष्पादन प्रतिभूति जमा करने में देरी के कारण रद्द कर दिया गया है और बोली के साथ जमा की गई 14,51,629 रुपये (चौदह लाख

इक्यावन हजार छह सौ उनतीस रुपये) की बोली प्रतिभूति आरएफपी खंड 33.3 के अनुसार जब्त कर ली गई है।

(13) यह दिनांक 20.12.2024 का पत्र है, जिसे याचिकाकर्ता द्वारा वर्तमान कार्यवाही में इस न्यायालय के समक्ष चुनौती देने का अनुरोध किया गया है।

(14) याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का तर्क था कि निष्पादन प्रतिभूति से संबंधित बैंक गारंटी समय पर जमा कर दी गई थी और चूंकि क्षेत्रीय अधिकारी के साथ एक बैठक में याचिकाकर्ता के अनुरोध पर अतिरिक्त निष्पादन प्रतिभूति जमा करने के लिए मौखिक रूप से याचिकाकर्ता को दस दिन का अतिरिक्त समय दिया गया था, इसलिए इसे भी बाद में जमा कर दिया गया और संबंधित विपक्षीगणों को पूरे परिदृश्य की जानकारी 30.08.2024 को ई-मेल द्वारा भेजे गए पत्र के माध्यम से दी गई, जिसमें क्षेत्रीय अधिकारी द्वारा 28.08.2024 को दी गई मौखिक अनुमति का तथ्य भी शामिल था और विपक्षीगणों ने स्वयं याचिकाकर्ता से आठ दिनों की देरी के लिए 42,000/- रुपये (बयालीस हजार रुपये) और विषम राशि का हर्जाना जमा करने के लिए कहा, जो 26.11.2024 को पत्र के माध्यम से जमा किया गया था और एक अन्य पत्र के माध्यम से दिनांक 12.12.2024 को, याचिकाकर्ता को समझौते पर हस्ताक्षर करने और अन्य औपचारिकताओं को पूरा करने के लिए 24.12.2024 को उपस्थित होने के लिए भी कहा गया था, इसलिए, एलओए को रद्द करने और प्रतिभूति राशि को जब्त करने की कार्रवाई, इस आधार पर कि उपरोक्त जमा राशि में आठ दिनों की देरी को माफ करने के लिए सक्षम प्राधिकारी द्वारा अनुमोदन नहीं दिया गया था, बिल्कुल अनुचित और अन्यायपूर्ण है। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि एक अन्य मामले में देरी को माफ कर दिया गया था, इसलिए, इसके लिए एक मिसाल मौजूद है और याचिकाकर्ता ने क्षेत्रीय अधिकारी द्वारा 26.11.2024 और 12.12.2024 के पत्रों द्वारा दी गई अनुमति के आधार पर कार्रवाई की, इसलिए, केवल अतिरिक्त निष्पादन प्रतिभूति जमा करने में आठ दिनों की देरी के कारण एलओए को रद्द करना बिल्कुल अनुचित है।

(15) याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया कि देरी अत्यधिक नहीं थी और याचिकाकर्ता ने क्षेत्रीय अधिकारी द्वारा दिनांक 26.11.2024 के पत्र के अनुसार अतिरिक्त निष्पादन गारंटी प्रस्तुत की। किसी भी स्थिति में, उनके अनुसार, प्रतिवादी प्राधिकारी को उक्त देरी के लिए कोई क्षति या हानि नहीं हुई। देरी के लिए दंड के रूप में, एनएचएआई द्वारा गणना की गई और मांगी गई राशि 42,405/- रुपये (बयालीस हजार चार सौ पांच रुपये) उन्हें उसी दिन तुरंत भुगतान कर दी गई और उन्हें उक्त बोली को रद्द करने और उन्हें दी गई गारंटी को जब्त करने का कोई कारण नहीं था। आरएफपी के अनुसार, एकमात्र सक्षम प्राधिकारी क्षेत्रीय अधिकारी है, जिसने देरी को मंजूरी दी थी और उसके लिए जुर्माना भी जमा करवाया था, हालाँकि, बाद में बोली को इस तर्क पर खारिज करने की मांग की गई कि सक्षम प्राधिकारी ने मंजूरी नहीं दी है और एनएचएआई ने उक्त सक्षम प्राधिकारी के आदेश को संलग्न करने की भी जहमत नहीं उठाई। विद्वान अधिवक्ता ने उस समय और तरीके पर भी प्रकाश डाला जिससे एलओए को रद्द करने की मांग की गई है, क्योंकि उनके अनुसार, यद्यपि याचिकाकर्ता को अनुबंध पर हस्ताक्षर करने के लिए 24.12.2024 को बुलाया गया था, हालाँकि, उसी

दिन, उन्हें 20.12.2024 से पहले का विवादित पत्र भेजा गया, जिसने 24.12.2024 के ईमेल के माध्यम से एलओए को रद्द कर दिया। उन्होंने आगे कहा कि निविदा रद्द करने से खरीद प्रक्रिया बाधित होगी और संभावित रूप से उस सार्वजनिक परियोजना में देरी हो सकती है जिसके लिए निविदा जारी की गई थी, जो जनहित के लिए हानिकारक होगा और इसलिए न्यायिक हस्तक्षेप की आवश्यकता है।

(16) दूसरी ओर, एनएचएआई की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि निश्चित रूप से निर्धारित समय के भीतर अतिरिक्त निष्पादन प्रतिभूति के बदले बैंक गारंटी प्रदान करने में देरी हुई है और 8 दिनों की देरी हुई है। उनके अनुसार, याचिकाकर्ता की फर्म द्वारा एक साझेदार के अस्वस्थ होने का दिया गया कारण उनके द्वारा प्रस्तावित कार्य की गंभीरता को देखते हुए बेहद गैर-पेशेवर था। उन्होंने कहा कि देरी को माफ करने का प्रस्ताव उत्तर प्रदेश के आरओ (पश्चिम) द्वारा सद्भावनापूर्वक सक्षम प्राधिकारी को भेजा गया था। उनके अनुसार, देरी को माफ़ करने के लिए एनएचएआई के दिनांक 21.08.2017 के नीतिगत निर्णय के अनुसार सक्षम प्राधिकारी मुख्य महाप्रबंधक (गृह) एनएचएआई थे और किसी भी स्थिति में, याचिकाकर्ता फर्म को दिनांक 01.10.2024 के पत्र द्वारा उक्त पहलू से विधिवत अवगत करा दिया गया था। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया है कि 26.11.2024 का पत्र, जो 42,405/- रुपये (बयालीस हजार चार सौ पाँच रुपये) की क्षतिपूर्ति जमा करने से संबंधित था, एनएचएआई द्वारा याचिकाकर्ता की फर्म के अनुरोध पर भेजा गया था और इसमें कहीं भी देरी को स्वीकार करने का संकेत नहीं था और यहाँ तक कि 12.12.2024 का पत्र, जिसमें याचिकाकर्ता को 24.12.2024 को औपचारिकताओं के साथ तैयार रहने का निर्देश दिया गया था, केवल अस्थायी प्रकृति का था और यह सक्षम प्राधिकारी के आदेशों के अधीन था। इस प्रकार, उनका तर्क है कि ये संचार केवल पूर्व-निवारक पत्रों के रूप में, वह भी सद्भावनापूर्वक जारी किए गए थे।

(17) विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि सक्षम प्राधिकारी से प्राप्त दिनांक 13.12.2024 के निर्देश/स्पष्टीकरण के अनुसार, यह मामला मूल्यांकन समिति को भेजा गया था, जिसने एलओए को रद्द करने और 36,95,121/- रुपये (छत्तीस लाख पंचानवे हजार एक सौ इक्कीस रुपये) की अतिरिक्त निष्पादन प्रतिभूति राशि को जब्त करने और शेष बैंक गारंटी वापस करने और जमा की गई 42,405/- रुपये (बयालीस हजार चार सौ पाँच रुपये) की क्षतिपूर्ति राशि वापस करने का प्रस्ताव रखा। इसके अतिरिक्त, विद्वान अधिवक्ता ने कार्य को निष्पादित करने में याचिकाकर्ता की वित्तीय क्षमता पर भी प्रश्न उठाया है क्योंकि कथित तौर पर अतिरिक्त निष्पादन प्रतिभूति जमा करने में देरी याचिकाकर्ता द्वारा अल्पकालिक ऋण प्राप्त करने में देरी के कारण हुई थी। उन्होंने दलील दी कि एलओए को रद्द करने का आदेश एलओए और आरएफपी की अनिवार्य शर्तों के उल्लंघन के कारण पारित किया गया है और पक्षों के बीच कोई अनुबंध संपन्न नहीं हुआ था। यह भी दलील दी गई कि केवल स्वीकृति पत्र जारी करने से कोई अधिकार नहीं बनता क्योंकि पक्षों के बीच कोई बाध्यकारी संबंध नहीं है। इस संबंध में, उन्होंने सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **साउथ ईस्टर्न कोल फील्ड्स लिमिटेड एवं अन्य बनाम सुश्री एस. कुमार्स एसोसिएट्स** (सिविल अपील संख्या 4358/2016 23.07.2021 को निर्णीत) और **राजस्थान कोऑपरेटिव डेयरी फेडरेशन लिमिटेड बनाम महा लक्ष्मी मिंग्रेट मार्केटिंग सर्विसेज (प्रा.) लिमिटेड : (1996) 10 एससीसी 405** में दिए गए निर्णय का हवाला दिया है।

(18) विद्वान अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया है कि एलओए को रद्द करने का आदेश आरएफपी के अनिवार्य नियमावली और शर्तों के उल्लंघन के कारण पारित किया गया है, जैसा कि आरएफपी के खंड 33.3 में उल्लिखित है और एनएचएआई ने अपने वैधानिक कर्तव्य का पालन पूरी निष्पक्षता से किया है और विवादित मामले में उसका कोई व्यक्तिगत हित नहीं है। उन्होंने यह भी कहा कि रद्द करना आरएफपी की शर्तों के अनुसार है और आरएफपी की शर्तें न्यायिक जाँच के अधीन नहीं हैं और वे **ग्लोबल एनर्जी लिमिटेड बनाम अडानी एक्सपोर्ट्स लिमिटेड (2005) 4 एससीसी 435** के वाद में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर निर्भर हैं। इस प्रकार, उन्होंने कहा कि एलओए को रद्द करना पक्षों के बीच समझौते पर हस्ताक्षर करने से पहले अनुमेय था और एनएचएआई ने इसे सही तरीके से किया है और इस प्रकार, वर्तमान वाद में इस न्यायालय द्वारा किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

(19) पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने और अभिलेखों में उपलब्ध सामग्री का अवलोकन करने के बाद, पहली बात यह है कि क्या इस मामले के तथ्यों के आधार पर एलओए को रद्द करने की विवादित कार्रवाई शक्ति का उचित और तर्कसंगत प्रयोग है। संविदात्मक मामलों में भी, विशेषकर जहाँ अनुबंध समाप्त नहीं हुआ है, एनएचएआई जैसे वैधानिक प्राधिकरण, अनुबंध द्वारा प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए निष्पक्ष और तर्कसंगत तरीके से कार्य करने के लिए बाध्य हैं और ऐसे मामले स्पष्टतः अनुचित और अनुचित होने के आधार पर भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत न्यायिक पुनर्विलोकन के अधीन हैं।

(20) आरएफपी का खंड 33, निष्पादन प्रतिभूति से संबंधित है जिसके आधार पर एलओए रद्द किया गया है, इस प्रकार है:-

"33. निष्पादन प्रतिभूति

33.1 स्वीकृति पत्र प्राप्त होने के 10 (दस) दिनों के भीतर, सफल बोलीदाता, नियोक्ता को अनुबंध मूल्य के दस प्रतिशत की निष्पादन प्रतिभूति प्रदान करेगा, जो आईटीबी के खंड 28.3 के अनुसार, असंतुलित बोलियों के लिए 3 वर्ष की दोष देयता की समाप्ति के बाद 28 दिनों की अवधि के लिए वैध होगी और अतिरिक्त प्रतिभूति भी प्रदान करेगा। और अनुबंध पर हस्ताक्षर करेगा। वैधता में बैंक गारंटी सत्यापन, अनुबंध पर हस्ताक्षर और आरंभ तिथि के लिए अतिरिक्त 3 महीने का समय शामिल होगा।

33.2 निष्पादन प्रतिभूति/अतिरिक्त प्रतिभूति, नियोक्ता के नाम पर, बोली प्रतिभूति के मामले में निर्दिष्ट बैंक से बैंक गारंटी के रूप में होगी।

33.3 सफल बोलीदाता द्वारा उप-खंड 33.1 की आवश्यकताओं का पालन करने में विफलता, पुरस्कार को रद्द करने और बोली प्रतिभूति की वापसी के लिए पर्याप्त आधार होगी और धारा 16.7 में निर्दिष्ट अवधि के लिए निषेध। "

(21) दिनांक 20.08.2024 का स्वीकृति पत्र याचिकाकर्ता को 21.08.2024 को प्राप्त हुआ था, जैसा कि याचिका के अनुलग्नक-8 से स्पष्ट है। दिनांक 20.08.2024 के स्वीकृति पत्र में याचिकाकर्ता को प्राप्ति के दस दिनों के

भीतर निष्पादन प्रतिभूति और अतिरिक्त प्रतिभूति जमा करने की आवश्यकता थी। याचिकाकर्ता के अनुसार, आरएफपी के खंड 33.1 और उसी दस्तावेज़ के खंड 47.1 में निहित आवश्यकता में कुछ विसंगति थी। पूर्व में अनुबंध मूल्य का दस प्रतिशत जमा करने का उल्लेख था, जबकि बाद में अनुबंध मूल्य का केवल तीन प्रतिशत और असंतुलित बोलियों के लिए अतिरिक्त प्रतिभूति जमा करने का उल्लेख था। तदनुसार, 28.08.2024 को, याचिकाकर्ता फर्म के एक साझेदार ने लखनऊ स्थित क्षेत्रीय मुख्यालय से संपर्क किया और उपरोक्त विसंगति की ओर इशारा किया और पूछा कि अनुबंध मूल्य का तीन प्रतिशत या दस प्रतिशत जमा किया जाना है, जिस पर क्षेत्रीय प्रमुख ने याचिकाकर्ता फर्म को बोली राशि का तीन प्रतिशत नहीं बल्कि दस प्रतिशत जमा करने को कहा। उसी दिन, याचिकाकर्ता फर्म के साझेदार ने लखनऊ स्थित क्षेत्रीय अधिकारी से अनुरोध किया कि चूँकि 36,95,121/- रुपये (छत्तीस लाख पंचानवे हजार एक सौ इक्कीस रुपये) की अतिरिक्त निष्पादन गारंटी लगाई गई थी, जो एक अतिरिक्त आवश्यकता थी और जिसके लिए आवेदन बैंक में प्रस्तुत किया गया था, लेकिन त्योहारों की छुट्टियों और हस्ताक्षरकर्ता प्राधिकारी की बीमारी के कारण बैंकिंग सेवाओं में व्यवधान के कारण, उक्त अतिरिक्त प्रतिभूति राशि 36,95,121/- रुपये (छत्तीस लाख पंचानवे हजार एक सौ इक्कीस रुपये) जमा करने के लिए अतिरिक्त दस दिन का समय दिया जाए। याचिकाकर्ता के अनुसार, क्षेत्रीय प्रमुख ने मौखिक रूप से याचिकाकर्ता फर्म को अगले दस दिनों के भीतर अतिरिक्त प्रतिभूति राशि जमा करने की अनुमति दी।

(22) अगले ही दिन, यानी 29.8.2024 को, याचिकाकर्ता फर्म ने 53,00,622/- रुपये (तिरपन लाख छह सौ बाईस रुपये) की बैंक गारंटी तैयार करवाई, जो कि निष्पादन प्रतिभूति के लिए थी और उसे उसी दिन मूल रूप में एनएचएआई के लखनऊ कार्यालय में जमा कर दिया।

(23) इसके अलावा, याचिकाकर्ता ने 30.08.2024 को एक ई-मेल भेजा, जिसमें 28.08.2024 को क्षेत्रीय अधिकारी के साथ उनके कार्यालय में हुई बैठक का उल्लेख था, जिसमें कहा गया था कि उन्होंने अतिरिक्त निष्पादन प्रतिभूति जमा करने के लिए याचिकाकर्ता के अतिरिक्त दस दिनों के अनुरोध को स्वीकार कर लिया है। ई-मेल की प्रति रिट याचिका के साथ अनुलग्नक-6 के रूप में संलग्न है। इसके बाद, प्रतिबद्धता के अनुसार, अतिरिक्त निष्पादन प्रतिभूति के लिए बैंक गारंटी 36,95,121/- रुपये (छत्तीस लाख पंचानवे हजार एक सौ इक्कीस रुपये) 07.09.2024 को जमा कर दी गई, अर्थात उक्त अधिकारी द्वारा दिए गए दस दिनों के भीतर। यह तथ्य एनएचएआई को 07.09.2024 को ही भेजे गए एक ईमेल के माध्यम से सूचित कर दिया गया था। इस प्रकार, याचिकाकर्ता के अनुसार, उपरोक्त तथ्यों के मद्देनजर अतिरिक्त निष्पादन प्रतिभूति जमा करने में कोई देरी नहीं हुई। तब तक 30.08.2024 के संचार में बताए गए तथ्यों का कोई खंडन नहीं किया गया था।

(24) चूँकि याचिकाकर्ता द्वारा समझौते पर हस्ताक्षर करने के लिए पर्याप्त समय बीत जाने के बाद भी कोई प्रतिक्रिया नहीं मिली, इसलिए सक्षम प्राधिकारी से संपर्क किया गया, जिन्होंने याचिकाकर्ता को बताया कि उसने निर्धारित समय के भीतर अतिरिक्त निष्पादन प्रतिभूति राशि जमा नहीं की है, इसलिए, अतिरिक्त जुर्माना लगाया जाएगा। याचिकाकर्ता फर्म ने अपनी इच्छानुसार जुर्माना जमा करने पर सहमति व्यक्त की, लेकिन उसे इसकी सूचना भी नहीं दी गई और, इसलिए, याचिकाकर्ता फर्म ने दिनांक 26.09.2024 को क्षेत्रीय कार्यालय,

एनएचएआई को एक पत्र भेजा, जिसमें शुरू से ही घटित घटनाओं का उल्लेख किया गया था। इसकी प्रति याचिका के साथ अनुलग्नक-8 के रूप में संलग्न है।

(25) जवाब में, डी.जी.एम. (तकनीकी) से दिनांक 01.10.2024 का एक पत्र प्राप्त हुआ। क्षेत्रीय अधिकारी उत्तर प्रदेश (पश्चिम) के अनुमोदन से कि अतिरिक्त निष्पादन प्रतिभूति जमा करने में आठ दिन की देरी पर विचार करने का प्रस्ताव अनुमोदन के लिए एनएचएआई मुख्यालय के सक्षम प्राधिकारी को भेजा गया था और याचिकाकर्ता के दावे को स्वीकार करने से भी इनकार कर दिया गया था अपने पत्र दिनांक 26.09.2024 में समझौते और निष्पादन प्रतिभूति आदि की स्वीकृति के संबंध में। उक्त दस्तावेज याचिका के अनुलग्नक-9 में है।

(26) इसके बाद, 19.11.2024 को, याचिकाकर्ता फर्म ने क्षेत्रीय प्रमुख को एक पत्र भेजा, जिसमें हस्ताक्षरकर्ता प्राधिकारी/ याचिकाकर्ता फर्म के साझेदार का चिकित्सा प्रमाणपत्र संलग्न था, जिसमें प्रमाणित किया गया था कि वह 26.08.2024 से 05.09.2024 तक अस्पताल में भर्ती था और अतिरिक्त प्रदर्शन गारंटी जमा करने में हुई देरी को माफ करने का अनुरोध किया और यह वचन भी दिया कि याचिकाकर्ता इस देरी के लिए, यदि कोई हो, तो वित्तीय दंड देगा। यह दस्तावेज़ रिट याचिका के साथ अनुलग्नक-10 के रूप में संलग्न है।

(27) उपरोक्त के प्रत्युत्तर में, डी.जी.एम. (तकनीकी) ने क्षेत्रीय अधिकारी (पश्चिम), उत्तर प्रदेश के अनुमोदन से, दिनांक 26.11.2024 को एक पत्र सहित एक ईमेल भेजा जिसमें याचिकाकर्ता फर्म को अतिरिक्त निष्पादन प्रतिभूति जमा करने में आठ दिनों की देरी के लिए हर्जाना/जुर्माना के रूप में 42,405/- रुपये (बयालीस हजार चार सौ पाँच रुपये) जमा करने और मूल बोली दस्तावेज जमा करने और माँगी गई हर्जाना राशि जमा करने के बाद समझौते पर हस्ताक्षर के लिए कार्यालय में उपस्थित होने के लिए कहा गया। यह दस्तावेज़ रिट याचिका का अनुलग्नक-11 है। एनएचएआई द्वारा याचिकाकर्ता को दिनांक 26.11.2024 को भेजे गए पत्र में निम्नलिखित लिखा है:-

"प्रति,
प्राधिकृत हस्ताक्षरकर्ता
मेसर्स क्लासिक एंटरप्राइजेज,
9/82, आर्य नगर, कानपुर200002
ईमेल: classickanpur982@gmail.com
विषय: उत्तर प्रदेश राज्य में राष्ट्रीय राजमार्ग-34 (91) के अलीगढ़-कानपुर खंड पर फुटओवर ब्रिज (एफओबी) का निर्माण, किमी 358.650 पर एफओबी और किमी 368.320 पर एफओबी।
संदर्भ: 1. निविदा आईडी: 2024_एनएचएआई_194363_1
2. इस कार्यालय का एलओए संख्या 23820 दिनांक 20.08.2024
3. आपका पत्र दिनांक 29.08.2024

4. आपका पत्र दिनांक 07.09.2024।
महोदय,

विषय बोली के संदर्भ में और इस कार्यालय के पत्र द्वारा जारी एलओए दिनांक 20.08.2024 के अनुसार, आपसे अनुरोध है कि आप अतिरिक्त निष्पादन प्रतिभूति जमा करने में 8 दिन की देरी के लिए क्षतिपूर्ति के रूप में 42,405/- रुपये निम्नलिखित बैंक खाते में जमा करें:-

विवरण	विस्तार
खाता धारक का नाम	एनएचएआई क्षेत्रीय कार्यालय
खाता संख्या	84811010002035
बैंक का नाम	केनरा बैंक
आईएफएससी कोड	CNRB0018481

इसके अलावा, आपसे अनुरोध है कि मूल बोली दस्तावेज़ जमा करें और उपरोक्त क्षतिपूर्ति जमा करने के बाद समझौते पर हस्ताक्षर हेतु कार्यालय में उपस्थित हों।
यह मुद्दा आरओ-यूपी (पश्चिम) की मंजूरी से जारी किया गया है।
एसडी/-
(एन.पी. सिंह)
उप महाप्रबंधक (तकनीकी) क्षेत्रीय कार्यालय-उत्तर प्रदेश (पश्चिम)"

(28) दिनांक 26.11.2024 के इस पत्र में, अतिरिक्त निष्पादन प्रतिभूति जमा करने में देरी का कोई उल्लेख नहीं है या यह इस संबंध में सक्षम प्राधिकारी द्वारा लिए जाने वाले किसी निर्णय के अधीन नहीं है। याचिकाकर्ता फर्म ने दिनांक 26.11.2024 के पत्र का तुरंत पालन किया और 26.11.2024 को ही 42,405/- रुपये (बयालीस हजार चार सौ पाँच रुपये) जमा कर दिए। एनईएफटी लेनदेन पर्ची की एक प्रति रिट याचिका के साथ अनुलग्नक-12 के रूप में संलग्न है।

(29) दिनांक 12.12.2024 को, याचिकाकर्ता को क्षेत्रीय कार्यालय, उत्तर प्रदेश (पश्चिम) के अनुमोदन से उप महाप्रबंधक (तकनीकी) से एक पत्र प्राप्त हुआ ई-मेल के माध्यम से याचिकाकर्ता फर्म से अनुरोध किया गया कि वह मूल बोली दस्तावेज़ जमा करे और 24.12.2024 को समझौते पर हस्ताक्षर के लिए कार्यालय में उपस्थित हो। 12.12.2024 के इस पत्र में याचिकाकर्ता द्वारा अतिरिक्त निष्पादन प्रतिभूति जमा करने में देरी के संबंध में कोई आपत्ति नहीं जताई गई, बल्कि इसने याचिकाकर्ता को यह मानने का उचित आधार दिया कि उसे माफ कर दिया गया है।

(30) इस प्रकार, स्पष्ट रूप से, अतिरिक्त निष्पादन प्रतिभूति जमा करने में देरी के संबंध में आरएफपी दस्तावेज़ के खंड 33.3 के तहत एनएचएआई के अधिकार से संबंधित मुद्दे को याचिकाकर्ता से 42,405/- रुपये (बयालीस हजार चार सौ पांच रुपये) की जुर्माना राशि की मांग के साथ माफ कर दिया गया है। उक्त तथ्य एनएचएआई के दिनांक 12.12.2024 के बाद के पत्र से पुष्ट होता है, जिसमें याचिकाकर्ता को मूल बोली दस्तावेज़ जमा करने और 24.12.2024 को समझौते पर हस्ताक्षर के लिए कार्यालय में उपस्थित होने के लिए कहा गया था, जो क्षेत्रीय कार्यालय-यूपी (पश्चिम) के अनुमोदन से भी जारी किया गया था।

(31) जवाब में, याचिकाकर्ता फर्म के हस्ताक्षरकर्ता प्राधिकारी और एक अन्य भागीदार 24.12.2024 को दोपहर 3:30 बजे गोमती नगर, लखनऊ स्थित एनएचएआई कार्यालय पहुँचे और क्षेत्रीय प्रमुख से मिले, लेकिन उन्हें यह जानकर आश्चर्य हुआ कि उन्हें बताया गया कि याचिकाकर्ता फर्म को जारी किया गया एलओए रद्द कर दिया गया है और प्रतिभूति राशि जब्त कर ली गई है। जैसा कि पहले ही चर्चा की जा चुकी है, 20.12.2024 को एक पत्र ई-मेल द्वारा 24.12.2024 को भेजा गया था, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित कहा गया था:-

"2. बोलीदाता ने बैंकर पत्र दिनांक 29.08.2024 के माध्यम से 53,00,677/- रुपये की निष्पादन प्रतिभूति जमा की है, जिसका बैंक गारंटी पत्र संख्या 00417241PG014967 दिनांक 07.09.2024 है, जो कि 30.08.2024 की निर्धारित तिथि से 08 दिन की देरी है।
3. लेकिन बोलीदाता ने पत्र दिनांक 07.09.2024 के माध्यम से 36,95,121/- रुपये की अतिरिक्त निष्पादन प्रतिभूति जमा की है, जिसका बैंक गारंटी पत्र संख्या 00417241PG014 967 दिनांक 07.09.2024 है। 30.08.2024 की निर्धारित तिथि के बाद 08 दिन की देरी।
4. चूँकि बोलीदाता ने 08 दिन की देरी के साथ अतिरिक्त निष्पादन प्रतिभूति जमा की है, इसलिए 08 दिन की देरी के साथ हर्जाना - 5,30,06,222 x 0.01% x 8 = 42,405/- पर विचार करने का प्रस्ताव विलंब अवधि के अनुमोदन के लिए सक्षम प्राधिकारी को भेजा गया था। लेकिन इस पर सहमति नहीं बनी है।
5. इसलिए, इस कार्यालय के पत्र संख्या 23820 दिनांक 20.08.2024 के तहत जारी एलओए अतिरिक्त निष्पादन प्रतिभूति जमा करने में देरी के कारण रद्द किया जाता है और बोली के साथ जमा की गई 14,51,629/- रुपये की बोली प्रतिभूति राशि RFP खंड 33.3 के अनुसार जब्त की जाती है।

(32) यह कार्रवाई स्पष्ट रूप से क्षेत्रीय अधिकारी एनएचएआई द्वारा दिनांक 26.11.2024 और 12.12.2024 को जारी किए गए पत्रों के विपरीत है, जैसा कि पहले ही चर्चा की जा चुकी है।

(33) विपक्षीगणों ने इस तथ्य से इनकार नहीं किया है कि याचिकाकर्ता को दिनांक 26.11.2024 के पत्र द्वारा 42405/- रुपये (बयालीस हजार चार सौ पाँच रुपये) की जुर्माना राशि जमा करने के लिए कहा गया था, जो उसने संबंधित विपक्षीगणों के कहने पर किया था, और न ही इस तथ्य से कि याचिकाकर्ता को दिनांक

अनुवादित

12.12.2024 के पत्र द्वारा समझौते पर हस्ताक्षर करने के लिए आने के लिए कहा गया था, जिसमें यह दर्शाया गया था कि उल्लिखित आठ दिनों की देरी को माफ कर दिया गया था।

(34) प्रति-शपथपत्र के प्रस्तर-11 में विपक्षीकारों का यह मामला है कि एन.एच.ए.आई. की नीति/दिशानिर्देशों दिनांक 21.08.2017 के अनुसार, इस प्रकार की देरी की माफी से संबंधित मुद्दों पर सी.जी.एम. (मुख्यालय), एन.एच.ए.आई. द्वारा विचार किया जाना था, जो सक्षम प्राधिकारी थे, हालाँकि, प्रति-शपथपत्र के प्रस्तर-14 और 15 में, विपक्षीकारों ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि याचिकाकर्ता फर्म द्वारा किए गए अनुरोध पर विचार करते हुए, एन.एच.ए.आई. द्वारा दिनांक 26.11.2024 को एक पत्र जारी किया गया था, जिसमें याचिकाकर्ता फर्म को आठ दिनों की देरी के लिए 42405/- रुपये (बयालीस हजार चार सौ पाँच रुपये) की क्षतिपूर्ति राशि जमा करने के लिए कहा गया था। हालाँकि, इसके लिए दिया गया स्पष्टीकरण यह है कि उक्त राशि केवल याचिकाकर्ता फर्म के सद्भावनापूर्ण इरादे और इच्छा को प्रमाणित करने के लिए मांगी गई थी और इसका अर्थ कहीं भी स्वीकार करना नहीं था। हम यह समझने में असफल हैं कि इस कथन का क्या अर्थ है। यह और कुछ नहीं बल्कि विपक्षीगणों द्वारा उस दलदल से बाहर निकलने का प्रयास है जिसमें वे स्वयं अपने आचरण के कारण फँसे हुए हैं, जहाँ उन्होंने स्वयं याचिकाकर्ता से हर्जाना जमा करने को कहा था, जो उसने जमा किया और फिर बाद में कथित तौर पर मनमाने ढंग से एलओए रद्द कर दिया।

(35) प्रस्तर-14 में यह भी स्वीकार किया गया है कि हर्जाने की गणना समान तरीके से की गई थी, अर्थात उक्त राशि की गणना/सूत्रीकरण उसी तरह किया गया था जैसा कि समान आरएफपी में किया जाता है, जिसमें गणना में देरी के लिए क्षमा का खंड मौजूद है। प्रति-शपथपत्र के प्रस्तर 15 में, उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि उन्होंने याचिकाकर्ता को एक अस्थायी तिथि, अर्थात् 24.12.2024, उक्त तिथि तक औपचारिकताओं के साथ तैयार रहने के लिए दी थी। हालाँकि, यह भी कहा गया है कि काफी विचार-विमर्श के बाद, चूँकि देरी को माफ नहीं किया जा सका, इसलिए याचिकाकर्ता फर्म को 20.12.2024 के पत्र द्वारा इसकी सूचना दी गई, जिस पर रिट याचिका में आपत्ति जताई गई है। कहा गया है कि देरी की अस्वीकृति के संबंध में सक्षम प्राधिकारी से 13.12.2024 को सूचना प्राप्त हुई थी। आंतरिक पत्राचार की प्रति अनुलग्नक-सीए-3 के रूप में संलग्न है। इसके बाद, इस मामले पर एक समिति द्वारा विचार किया गया, जिसने प्रति-शपथपत्र के प्रस्तर-17 में उल्लिखित एलए आदि को रद्द करने का प्रस्ताव करने का निर्णय लिया और अंततः, क्षेत्रीय अधिकारी द्वारा उक्त सिफारिशों के अनुमोदन के बाद, इसे 20.12.2024 को याचिकाकर्ता को सूचित किया गया।

(36) विचाराधीन निविदा प्रक्रिया जून, 2024 में शुरू की गई थी। यह उत्तर प्रदेश राज्य में एनएच-34 (91) के अलीगढ़-कानपुर खंड पर एक फुटओवर ब्रिज के निर्माण के संबंध में थी, जिसका अर्थ था कि यह एक बड़े सार्वजनिक हित को साधने के लिए थी, लेकिन उपरोक्त कार्रवाई के कारण, केवल आठ दिनों की कथित देरी के कारण और कुछ नहीं, उक्त मामला स्पष्ट रूप से सात महीने से अधिक समय बीत जाने के बाद भी विफल बना हुआ है और आक्षेपित कार्रवाई ने विपक्षीगणों या आम जनता के हित को कितना आगे बढ़ाया है, जिन्हें

फुटओवर ब्रिज के निर्माण से लाभ होता, यह किसी के भी अनुमान पर निर्भर है, क्योंकि रिकॉर्ड में ऐसा कुछ भी नहीं है जो यह दर्शाता हो कि कोई नई निविदा प्रक्रिया शुरू की गई थी।

(37) ऊपर दिए गए तथ्यों पर गौर करने पर, हम यह समझने में असफल रहे हैं कि इस वाद में केवल तथ्यों के आधार पर एलओए को रद्द करने से क्या उद्देश्य पूरा होता है और निविदा प्रक्रिया से व्यापक जनहित को किस हद तक बढ़ावा मिलता है। वास्तव में, ऐसा प्रतीत होता है कि इसे विफल कर दिया गया है। ऐसा नहीं है कि याचिकाकर्ता फर्म योग्य नहीं थी या किसी भी तरह से तकनीकी रूप से कमज़ोर थी। विपक्षीगणों का भी यह मामला नहीं है कि आरएफपी खंड के अनुसार निर्धारित अवधि के भीतर 52 लाख रुपये या उससे अधिक की निष्पादन प्रतिभूति राशि जमा नहीं की गई। एकमात्र मुद्दा अतिरिक्त निष्पादन प्रतिभूति राशि जमा करने में आठ दिनों की देरी का है, जिसके बारे में याचिकाकर्ता के पास कुछ स्पष्टीकरण है, जैसा कि पहले ही चर्चा की जा चुकी है। लेकिन इसके बिना भी, अन्य मामलों में ऐसी देरी को माफ करने के उदाहरण हैं, किसी भी कारण से । सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि क्षेत्रीय कार्यालय ने स्वयं याचिकाकर्ता से 42405/- रुपये (बयालीस हजार चार सौ पाँच रुपये) का जुर्माना जमा करने को कहा था, जो याचिकाकर्ता द्वारा विधिवत जमा कर दिया गया था, स्पष्ट रूप से अतिरिक्त निष्पादन प्रतिभूति जमा करने में मात्र आठ दिनों की देरी के लिए क्षमा की प्रत्याशा में, लेकिन इसके बाद सक्षम प्राधिकारी ने देरी के लिए क्षमा को अस्वीकार कर दिया, परिणामस्वरूप, एलओए रद्द कर दिया गया है और याचिकाकर्ता द्वारा जमा की गई प्रतिभूति राशि जब्त कर ली गई है। प्रति-शपथ पत्र में इस तथ्य से कोई इनकार नहीं किया गया है कि अतिरिक्त निष्पादन प्रतिभूति भी याचिकाकर्ता द्वारा दावा किए अनुसार, वांछित दस दिनों के भीतर जमा कर दी गई थी।

(38) यद्यपि अपने प्रति-शपथपत्र में, विपक्षीगणों ने 20.08.2024 को याचिकाकर्ता को किसी भी बैठक और मौखिक अनुमति से इनकार कर दिया है कि वह अगले दस दिनों के भीतर अतिरिक्त निष्पादन प्रतिभूति जमा करे, लेकिन न तो 30.08.2024 के ई-मेल की प्राप्ति हुई है और न ही उसके जवाब में उक्त बैठक और अनुमति से कोई विशिष्ट इनकार किया गया है, सिवाय इसके कि 28.09.2024 को दिनांक 01.10.2024 के पत्र द्वारा उठाए गए दावे का अस्पष्ट रूप से खंडन किया गया है। इसके बाद भी 26.11.2024 के पत्र द्वारा याचिकाकर्ता को देरी के लिए हर्जाना जमा करने के लिए कहा गया। इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि वास्तव में अतिरिक्त निष्पादन प्रतिभूति राशि जमा कर दी गई थी और विपक्षीगणों को सूचित कर दिया गया था और उस समय, क्षेत्रीय कार्यालय के संबंधित विपक्षीगणों ने याचिकाकर्ता को कभी सूचित नहीं किया कि यह पूरी तरह से अवैध है और ऐसा कोई समय नहीं दिया गया था, बल्कि क्षेत्रीय कार्यालय ने विलंब की माफी का अनुरोध अग्रेषित किया और उसके बाद याचिकाकर्ता को दिनांक 26.11.2024 के पत्र द्वारा 42405/- रुपये (बयालीस हजार चार सौ पाँच रुपये) की क्षतिपूर्ति राशि जमा करने को कहा, जो याचिकाकर्ता द्वारा उसी दिन जमा कर दी गई।

(39) उप महाप्रबंधक, उत्तर प्रदेश (पश्चिम) द्वारा भेजा गया अनुलग्नक-सीए3, जिसमें निष्पादन प्रतिभूति जमा करने में सात दिनों की इसी तरह की देरी का उल्लेख है, जिसे 309वीं बैठक के दौरान एक समान मामले में

माफ और अनुमोदित किया गया था और एनएचएआई द्वारा समझौता किया गया था। इस संबंध में ये पहले के उदाहरण थे, और अन्यथा भी, विशुद्ध रूप से इस मामले के तथ्यों के आधार पर, एलओए को रद्द करने और प्रतिभूति राशि को जब्त करने का कोई औचित्य नहीं था, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है।

(40) वाद के समग्र तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, एलओए को रद्द करने का कारण अनुचित प्रतीत होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि विपक्षी व्यावहारिक निर्णय लेने का साहस नहीं जुटा सके, जिससे निविदा जारी करने के उद्देश्य और उसमें निहित व्यापक जनहित को बढ़ावा मिलता, और उन्हें वित्तीय या अन्य कोई नुकसान नहीं होता। लेकिन उन्होंने आरएफपी खंड के अक्षरशः पालन करके एक सुरक्षित रास्ता चुना, और निविदा प्रक्रिया की भावना और उद्देश्य को नज़रअंदाज़ कर दिया।

(41) इसलिए, हम एलओए रद्द करने की आक्षेपित कार्रवाई को रद्द करते हैं और विपक्षीगणों को निर्देश देते हैं कि वे पूर्वोक्त के आलोक में प्रकरण पर पुनर्विचार करें, विशेष रूप से व्यापक जनहित में, जिसकी पूर्ति प्रस्तावित फुटओवर ब्रिज के निर्माण से की जानी है, जो किसी भी स्थिति में विलंबित है और इस तथ्य को भी ध्यान में रखते हुए कि किसी भी नए निविदा के परिणामस्वरूप और अधिक विलंब हो सकता है और संभवतः लागत में वृद्धि हो सकती है। भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण के सक्षम प्राधिकारी इस वाद में इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तिथि से पंद्रह दिनों के भीतर सकारात्मक रूप से पूर्वोक्त अनुसार एक सुविचारित निर्णय लें।

(42) रिट याचिका **स्वीकार** की जाती है। हालाँकि, लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं है।

(2025) 4 ILRA 505

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 28.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति पीयूष अग्रवाल

रिट सी संख्या 1920/2018

सहित

रिट सी संख्या 30283/2018

मेसर्स एसडीएस इंफ्राकॉन प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य **...याचिकाकर्तागण**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...प्रत्यर्थीगण**

अनुवादित

याचिकाकर्तागण के अधिवक्ता:

श्री निशीथ यादव

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता:

श्री आदित्य भूषण सिंघल, मुख्य स्थायी अधिवक्ता, श्री प्रमोद जैन (वरिष्ठ अधिवक्ता)

सिविल विधि - भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 - धारा 23 - याचिकाकर्ता कंपनी को यमुना एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण द्वारा आवासीय टाउनशिप विकसित करने के लिए एक भूखंड आवंटित किया गया था। आवंटन में कुल प्रीमियम का भुगतान शामिल था, जिसका एक हिस्सा ब्याज सहित 20 समान किश्तों में देय था - कुल प्रीमियम पर 5% स्टाम्प शुल्क का भुगतान करने के बाद तदनुसार पट्टा विलेख निष्पादित किया गया था - बाद में, उप-पंजीयक ने मामले को उत्तर प्रदेश स्टाम्प अधिनियम के अंतर्गत संदर्भित किया, जिसमें स्टाम्प शुल्क में कमी का दावा, इस आधार पर किया गया कि किश्तों में भुगतान किए गए ब्याज को स्टाम्प शुल्क की गणना में शामिल किया जाना चाहिए था - इसके परिणामस्वरूप स्टाम्प वाद संख्या 119/2012-13 के तहत कार्यवाही शुरू हुई और बाद में अतिरिक्त शुल्क की मांग करते हुए आदेश पारित किए गए-न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि पट्टा विलेख के अंतर्गत किश्तों में देय ब्याज पर स्टाम्प शुल्क नहीं लगाया जा सकता, क्योंकि ऐसा ब्याज भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 23 के अंतर्गत स्टाम्प शुल्क की गणना के लिए प्रतिफल का हिस्सा नहीं बनता है। - बिहार राज्य आवास बोर्ड बनाम आत्मा शाह वाद में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया गया, जिसमें अभिनिर्धारित किया गया कि आस्थगित भुगतान पर ब्याज पर अतिरिक्त स्टाम्प शुल्क नहीं लगता है - आक्षेपित संदर्भ और वसूली कार्यवाही रद्द कर दी गई - ब्याज सहित राशि वापस करने का निर्देश दिया गया। (प्रस्तर 1 से 23)

रिट याचिका स्वीकार की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वादों की सूची:</u>

1. बिहार राज्य आवास बोर्ड एवं अन्य बनाम आत्मा राम शाह, मनु/एससी/2185/1995, सिविल अपील संख्या 1713/1993

(माननीय न्यायमूर्ति पीयूष अग्रवाल द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सी.बी. यादव और प्रत्यर्थीगण की ओर से विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री सिद्धार्थ सिंह को सुना गया।

2. स्टाम्प वाद संख्या 119/2012-13 में दिनांक 18.10.2012 के संदर्भ को निरस्त करने हेतु रिट सी संख्या 1920/2018 दायर की गई है और दिनांक 30.5.2018 और 21.7.2018 के आदेश के साथ दिनांक 28.8.2018 के वसूली प्रोद्धरण को रद्द करने हेतु रिट सी संख्या 30283/2018 दायर की गई है।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया कि दिनांक 18.10.2012 का आक्षेपित संदर्भ और परिणामी नोटिस क्षेत्राधिकार से बाहर हैं और वर्तमान रिट सी संख्या 1920/2018 के लंबित रहने के दौरान आक्षेपित आदेश पारित किए गए हैं, जिन्हें बाद की रिट सी संख्या 30283/2018 में चुनौती दी गई है। उन्होंने तर्क प्रस्तुत किया कि जब स्टांप अधिनियम की धारा 23 के अनुसार संदर्भ स्वयं विधि के अधिकार के बिना है और वर्तमान रिट याचिका को स्वीकार किया जा सकता है, तो सभी परिणामी कार्रवाई और आदेश स्वतः ही समाप्त हो जाते हैं।

4. रिट याचिकाओं में बताए गए वाद के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता एक निजी लिमिटेड कंपनी है जो 'भारतीय कंपनी अधिनियम, 1956' के प्रावधानों के अंतर्गत निगमित है और इसका व्यवसाय अवसंरचना के विकास का है। यमुना एक्सप्रेस वे विकास प्राधिकरण का गठन उत्तर प्रदेश औद्योगिक विकास अधिनियम, 1976 की धारा 3 के अंतर्गत जिला गौतम बुद्ध नगर में किया गया है। राज्य सरकार ने भूमि अधिग्रहण अधिनियम के अंतर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए जगनपुर गाँव की भूमि का अधिग्रहण कर, उसे नियोजित विकास हेतु प्राधिकारियों को सौंप दिया और इसके अनुसरण में आवासीय टाउनशिप के आवंटन हेतु वाईईए-आरटी-01 योजना जारी की गई है, जिसके लिए याचिकाकर्ता की कंपनी ने आवेदन किया। जाँच के बाद दिनांक 14.6.2010 को एक पत्र जारी किया गया, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता को सेक्टर 26ए में प्लॉट संख्या टीएस-01 आवंटित किया गया। दिनांक 20.7.2010 के प्राधिकार पत्र के खंड 6 के अनुसार, विकास प्राधिकरण द्वारा कुल प्रीमियम के 5% की दर से स्टाम्प शुल्क के भुगतान की गणना की गई और उसके अनुसरण में याचिकाकर्ता ने प्रीमियम राशि का भुगतान किया। इसके बाद 31.7.2010 को पट्टा विलेख निष्पादित की गई, लेकिन उसके बाद 18.10.2012 को उप-पंजीयक द्वारा कलेक्टर स्टाम्प को एक संदर्भ दिया गया, जिसमें कहा गया कि याचिकाकर्ता ने भूमि के वास्तविक कुल प्रीमियम पर स्टाम्प शुल्क का भुगतान किया है, न कि ब्याज पर, जो प्राधिकरण को 20 समान किश्तों में भुगतान किया गया है। उक्त संदर्भ पर, स्टाम्प वाद संख्या 119/2012-13 पंजीकृत किया गया और याचिकाकर्ता को स्टाम्प शुल्क की कमी का अभिकथन करते हुए नोटिस जारी किए गए, इस आधार पर कि स्टाम्प शुल्क का भुगतान करते समय ब्याज की राशि शामिल नहीं की गई थी। इसके बाद याचिकाकर्ता ने रिट सी संख्या 1920/2018 के माध्यम से इस न्यायालय के समक्ष उक्त संदर्भ को चुनौती दी।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया कि दिनांक 18.10.2012 का संदर्भ स्वयं ही गलत और विधि के अधिकार से रहित है, जो कि उत्तर प्रदेश स्टाम्प अधिनियम की धारा 23 के प्रतिकूल है। उन्होंने तर्क प्रस्तुत किया कि विकास प्राधिकरण ने योजना के अनुसार भूमि आवंटित करते समय निर्धारित कुल प्रीमियम पर 5% स्टाम्प शुल्क के भुगतान का विचार किया है। उक्त तथ्य का उल्लेख रिट याचिका के

अनुलग्नक संख्या 5 में किया गया है। इसके अलावा, कार्यवाही इस कथित आधार पर शुरू की गई है कि कुल प्रीमियम के अलावा, याचिकाकर्ता ने ब्याज का भुगतान किया है, जिस पर प्रीमियम की राशि बढ़ा दी गई है, जिसके विरुद्ध कोई स्टाम्प शुल्क नहीं दिया गया है। उन्होंने तर्क प्रस्तुत किया कि ब्याज के किसी भी भुगतान की गणना नहीं की जा सकती है और स्टाम्प शुल्क के भुगतान के लिए प्रीमियम राशि में नहीं जोड़ा जा सकता है।

6. उन्होंने आगे वैकल्पिक तर्क दिया कि यह संपत्ति का पट्टा है, जिसे संपत्ति की बिक्री नहीं माना जा सकता है, इसलिए, केवल इसी आधार पर कार्यवाही स्वयं ही गलत है।

7. *इसके विपरीत*, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने आक्षेपित कार्यवाही और आक्षेपित आदेशों का समर्थन करते हुए तर्क दिया कि भूमि 30 वर्ष से अधिक समय के लिए पट्टे पर दी गई है, इसलिए स्टाम्प शुल्क देय है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि विचाराधीन भूखंड प्रीमियम राशि से अतिरिक्त दिया गया है, जिसमें 20 समान किश्तें निर्धारित की गई हैं, जिन पर विकास प्राधिकरण द्वारा ब्याज लिया गया है, लेकिन स्टाम्प शुल्क के भुगतान के लिए उसकी गणना नहीं की गई है, इसलिए कार्यवाही उचित रूप से शुरू की गई है।

8. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के बाद, न्यायालय ने अभिलेखों का अवलोकन किया गया।

9. अभिलेख से पता चलता है कि विचाराधीन भूमि याचिकाकर्ता को दिनांक 14.6.2010 के पत्र द्वारा आवासीय टाउनशिप के विकास के लिए आवंटित की गई थी और दिनांक 20.7.2010 के पत्र के खंड 6 के अनुसार, कुल प्रीमियम पर 5% की दर से स्टाम्प शुल्क अर्थात 9,86,00,715/- रुपये याचिकाकर्ता द्वारा भुगतान किया जाना अपेक्षित था और स्टाम्प शुल्क के साथ-साथ 30% (कुल प्रीमियम का) अर्थात 1,77,65,895/- रुपये, जो एक पूर्व शर्त थी, के भुगतान पर पट्टा विलेख निष्पादित किया गया है।

10. उत्तर प्रदेश स्टाम्प (संपत्ति मूल्यांकन) नियमावली, 1997 के नियम 4 के अंतर्गत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, जिला मजिस्ट्रेट ने भूमि का न्यूनतम मूल्य जारी किया है, जिस पर स्टाम्प शुल्क की गणना उत्तर प्रदेश स्टाम्प (संपत्ति मूल्यांकन) नियमावली, 1997 के अंतर्गत निर्धारित प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए की गई थी और आवंटित भूमि के संबंध में न्यूनतम मूल्य 5000/- रुपये निर्धारित किया गया था। अधिनियम के अंतर्गत अपेक्षित उक्त प्रावधान का याचिकाकर्ता द्वारा अनुपालन किया गया है।

11. इसके बाद, उप-पंजीयक द्वारा गौतम बुद्ध नगर के जिलाधिकारी को आक्षेपित संदर्भ प्रस्तुत किया गया, जिसमें अभिकथित किया गया कि याचिकाकर्ता ने आवंटित भूमि के संबंध में केवल वास्तविक प्रीमियम राशि पर ही स्टाम्प शुल्क का भुगतान किया है। तथापि, ब्याज के भुगतान पर, जैसा कि दस्तावेज़ में उल्लिखित है, 20 समान किश्तों में कोई स्टाम्प शुल्क का भुगतान नहीं किया गया है। अतः, याचिकाकर्ता के विरुद्ध कार्यवाही प्रारंभ की गई है।

अनुवादित

12. पक्षकारों के बीच यह स्वीकार किया गया है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध कार्यवाही केवल इस कथित आधार पर शुरू की गई है कि वास्तविक प्रीमियम राशि पर स्टाम्प शुल्क का भुगतान किया गया था, लेकिन ब्याज सहित 20 समान किस्तों में भुगतान के लिए, ब्याज पर स्टाम्प शुल्क का भुगतान भी किया जाना था, लेकिन याचिकाकर्ता द्वारा न तो इसकी गणना की गई है और न ही इसका भुगतान किया गया है।

13. विचाराधीन मुद्दे को निर्णीत करने के लिए, स्टाम्प अधिनियम की धारा 23 को उद्धृत करना प्रासंगिक है:-

"23. ब्याज आरक्षित करने वाले लिखत" "जहाँ किसी लिखत की शर्तों द्वारा ब्याज स्पष्ट रूप से देय बनाया गया है, वहाँ ऐसे लिखत पर उससे अधिक शुल्क नहीं लगेगा जो उस पर लगता यदि उसमें ब्याज का उल्लेख न किया गया होता।"

14. उपरोक्त धारा के अवलोकन से, किसी लिखत में ब्याज का भुगतान उसे अधिक शुल्क लगाने योग्य नहीं बनाता। शुल्क केवल मूलधन पर लगेगा और मूलधन तथा ब्याज पर आधारित नहीं होगा। दूसरे शब्दों में, यह लिखत में उल्लिखित ब्याज पर स्टाम्प शुल्क लगाने पर विशेष रूप से प्रतिबंध लगाता है। लेकिन वर्तमान वाद में, प्रत्यर्थी प्राधिकारियों ने अपनी बुद्धिमत्ता से पट्टा विलेख में उल्लिखित ब्याज पर स्टाम्प शुल्क की कमी वसूलने का निर्णय लिया है, जिसका भुगतान 20 समान किश्तों में किया जाना था।

15. वर्तमान मुद्दे का निर्णय ***पटना उच्च न्यायालय द्वारा आत्मा राम शाह बनाम बिहार राज्य आवास बोर्ड एवं अन्य, 1992 एससीसी ऑनलाइन पट 13*** के वाद में पहले ही किया जा चुका है। निर्णय का प्रासंगिक भाग नीचे प्रस्तुत किया गया है:-

"मूल रूप से रिट याचिका में याचिकाकर्ता ने प्रत्यर्थीगण को यह निर्देश देने का अनुरोध किया था कि वे अरगोड़ा हाउसिंग कॉलोनी, रांची स्थित मध्यम आय वर्ग आवास योजना के अंतर्गत मकान संख्या एम/2 (दो मंजिला) को उचित लिखत निष्पादित करके याचिकाकर्ता के नाम पर स्थानांतरित करें। इस आवेदन के लंबित रहने के दौरान, प्रत्यर्थीगण ने अनुलग्नक 12 जारी किया जिसके द्वारा याचिकाकर्ता को सूचित किया गया कि चूँकि उसने मूलधन और ब्याज सहित कुल 60,357/- रुपये का भुगतान कर दिया है, इसलिए उसे स्टाम्प पेपर पर बिक्री विलेख की टाइप की हुई प्रति, जिसका मूल्य 60,357/- रुपये होगा, बोर्ड को भेजनी चाहिए। अनुलग्नक 13 द्वारा, अनुलग्नक 12 का संदर्भ दिया गया और याचिकाकर्ता से स्टाम्प पेपर पर तैयार बिक्री विलेख भेजने का अनुरोध किया गया, जिसका एक प्रारूप अनुलग्नक 13 द्वारा भेजा गया था, जिसे रिट याचिका के अनुलग्नक 14 के रूप में चिह्नित किया गया है। इस घटनाक्रम के मद्देनजर, याचिकाकर्ता ने अनुलग्नक 12, 13 और 14 के उस भाग को चुनौती देने के लिए रिट याचिका में संशोधन के लिए एक आवेदन दायर किया, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता से अनुरोध किया गया था कि वह बिक्री विलेख का मूल्य 60,357 रुपये निर्धारित करे और उस पर स्टांप शुल्क लगाए।

2. इस वाद में जो प्रश्न उठता है वह यह है कि प्रश्नगत मकान के संबंध में याचिकाकर्ता के पक्ष में प्रत्यर्थीगण द्वारा निष्पादित किए जाने वाले बिक्री विलेख का मूल्य क्या होना चाहिए।

3. याचिकाकर्ता ने संबंधित मकान के संबंध में 15 फरवरी, 1967 को पक्षकारों के बीच हुए रिट याचिका के अनुलग्नक 2 में दिए गए समझौते की एक प्रति दाखिल की है। पक्षकारों के बीच सहमति हुई थी कि मकान का कुल बिक्री मूल्य 34,500/- रुपये होगा। इसमें से याचिकाकर्ता ने पहले ही 14,500/- रुपये का भुगतान कर दिया था और शेष 20,000/- रुपये उसे 282 मासिक किश्तों में ब्याज सहित देय होंगे।

4. इस प्रकार अनुलग्नक 2 से स्पष्ट है कि पक्षकारों ने इस बात पर सहमति व्यक्त की थी कि मकान का मूल्य 34,500/- रुपये है, इस तथ्य के बावजूद कि बिक्री मूल्य की शेष राशि याचिकाकर्ता द्वारा 282 मासिक किश्तों में ब्याज सहित चुकाई जाएगी। पक्षकारों ने इस बात पर कभी सहमति नहीं जताई कि ब्याज भी संबंधित मकान के बिक्री मूल्य में जोड़ा जाना चाहिए। ऐसी स्थिति में, मेरा विचार है कि इस मकान के संबंध में प्रत्यर्थीगण द्वारा याचिकाकर्ता के पक्ष में निष्पादित किए जाने वाले विक्रय विलेख का मूल्य 34,500/- रुपये होगा।

5. याचिकाकर्ता अपेक्षित स्टाम्प पेपर पर एक विक्रय विलेख तैयार करेगा, जिसका प्रारूप रिट याचिका के अनुलग्नक 14 में दिया गया है। प्रत्यर्थी- बोर्ड, याचिकाकर्ता से अपेक्षित स्टाम्प पेपर पर तैयार किए गए विक्रय विलेख की प्राप्ति की तिथि से तीस दिनों के भीतर विक्रय विलेख निष्पादित और पंजीकृत करेगा।

6. आवेदन का निस्तारण उपरोक्त अवलोकन और निर्देश के साथ किया जाता है।"

16. उपरोक्त निर्णय को बिहार राज्य आवास बोर्ड एवं अन्य द्वारा **सिविल अपील संख्या 1713/1993 (बिहार राज्य आवास बोर्ड एवं अन्य बनाम आत्मा राम शाह)** (मनुपत्र में प्रतिवेदित **मनु/एससी/2185/1995**) में सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी गई थी, जिसे माननीय न्यायमूर्ति एम.एम. पुंछी और माननीय न्यायमूर्ति जे.के. वेंकटस्वामी की पीठ द्वारा पारित दिनांक 6.8.1995 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था। निर्णय का प्रासंगिक अंश नीचे उद्धृत है:-

"न्यायमूर्ति श्री एम.एम. पुंछी, *- अपीलकर्ता बिहार राज्य आवास बोर्ड और उसके अधिकारियों ने प्रत्यर्थी से न केवल निर्धारित मूल मूल्य 34,500/- रुपये पर, बल्कि समय-समय पर किश्तों के आस्थगित भुगतान पर दिए जाने वाले ब्याज पर भी स्टाम्प शुल्क का भुगतान करने की माँग की। पटना उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ ने उनके इस प्रयास को विफल कर दिया और ब्याज से संबंधित स्टाम्प शुल्क वसूलने पर रोक लगा दी, लेकिन केवल 34,500/- रुपये के विक्रय मूल्य पर स्टाम्प शुल्क वसूलने की अनुमति दी।*

2. प्रत्यर्थी पक्ष द्वारा वहन किया गया मुख्य दायित्व पहले से निष्पादित विलेख के प्रस्तर 2 में सन्निहित है। इसमें उल्लेख है कि घर की कुल बिक्री कीमत 34,500/- रुपये थी और घर का कब्ज़ा प्रत्यर्थी को पहले ही दे दिया गया था। यह स्वीकार किया गया कि प्रत्यर्थीगण ने उस समय तक 14,500/- रुपये की राशि का भुगतान कर दिया था और शेष 20,000/- रुपये को उनके हाथों में ऋण राशि के रूप में माना जाएगा, जिसे उन्हें निर्धारित तरीके से 282 मासिक किश्तों में ब्याज सहित चुकाना होगा। समय पर भुगतान करने में विफलता की स्थिति में कदम उठाने और कार्रवाई करने की परिकल्पना की गई थी, जिससे हम वर्तमान में चिंतित नहीं

हैं। जिस बात पर बल देने की जरूरत है वह यह है कि स्पष्ट रूप से एक कल्पना बनाई गई थी, जिससे कीमत, जो देय थी/अन्यथा देय थी, क्रेता के पास ऋण के रूप में छोड़ दी गई थी, जिस पर निर्धारित दरों पर ब्याज मिलेगा। भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 23 में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि जहाँ किसी लिखत की शर्तों के अनुसार ब्याज स्पष्ट रूप से देय है, वहाँ ऐसे लिखत पर उससे अधिक शुल्क नहीं लगेगा, जो उस पर तब लगता यदि उसमें ब्याज का कोई उल्लेख न किया गया होता। विधि में किसी लिखत के प्रतिफल और किसी निश्चित स्थिति में उस पर अर्जित ब्याज को अलग-अलग माना गया है। अधिनियम की धारा 24 में यह विधि प्रदान की गई है कि ऋण के प्रतिफल में या भविष्य में भुगतान आदि के अधीन स्टाम्प शुल्क कैसे लगाया जाता है। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए प्रावधान का वर्तमान तथ्यों पर कोई लागू नहीं होगा। ऋण पर देय ब्याज को भार के बराबर नहीं रखा जा सकता; हालांकि यह एक देयता बनी हुई है। इस प्रकार, हमारे विचार में, उच्च न्यायालय ने मामले में हस्तक्षेप करके और अपीलकर्ता को 34,500/- रुपये के विचार से अधिक स्टांप शुल्क वसूलने पर, न कि हस्तांतरिती द्वारा बिक्री विचार में जोड़कर भुगतान किए गए ब्याज की कुल राशि पर रोक लगाकर सही किया था।

3. इसलिए हमें इस अपील में कोई गुण-दोष नहीं मिली और इसे खारिज कर दिया गया। कोई विरोध नहीं होने के कारण कोई वाद व्यय नहीं होगा।'

17. अभिलेख से पता चलता है कि याचिकाकर्ता द्वारा भुगतान किए गए ब्याज पर स्टांप शुल्क की कमी के आधार पर कार्यवाही शुरू की गई है। स्टांप अधिनियम की धारा 23 विशेष रूप से ब्याज के भुगतान पर स्टांप शुल्क वसूलने पर रोक लगाती है।

18. यह विवाद में नहीं है कि याचिकाकर्ता ने वास्तविक प्रीमियम की राशि पर स्टांप शुल्क का भुगतान किया है जिस पर भूमि आवंटित की गई है। संदर्भ के आधार पर स्टाम्प शुल्क की कमी को 20 समान किस्तों में चुकाए गए ब्याज पर वसूलने का प्रस्ताव है। यद्यपि धारा 23 में यह परिकल्पना की गई है कि यदि लिखत में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि ब्याज वास्तविक राशि पर चुकाया जाना चाहिए, तो उस लिखत के लिए स्टाम्प शुल्क उससे अधिक नहीं होगा, जितना कि तब होता यदि ब्याज का उसमें उल्लेख ही नहीं किया गया होता। लिखत पर ब्याज का भुगतान प्राधिकारियों को लिखत पर अधिक स्टाम्प शुल्क वसूलने का अधिकार नहीं देता है। यदि ब्याज क्रेता द्वारा देय राशि पर या उससे अधिक चुकाया जाता है, तो उस पर विधि के अनुसार विचार किया जा सकता है, लेकिन भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 23 के तहत उच्च दर से स्टाम्प शुल्क नहीं वसूला जा सकता है।

19. इसके अतिरिक्त, माननीय सर्वोच्च न्यायालय को **बिहार राज्य आवास बोर्ड (पूर्वोक्त)** के वाद में उस मुद्दे पर विचार करने का अवसर मिला, जो वर्तमान मुद्दे के समान है और विस्तृत चर्चा के बाद, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि भारतीय स्टाम्प अधिनियम के अंतर्गत चुकाई गई ब्याज की राशि पर स्टाम्प शुल्क नहीं वसूला जा सकता है।

20. चूंकि भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 23 ऐसे लिखत पर उच्च स्टाम्प शुल्क वसूलने पर रोक लगाती है, जहां ब्याज स्पष्ट रूप से देय है और साथ ही इस विषय पर विधि बहुत स्पष्ट है, जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **बिहार राज्य आवास बोर्ड (पूर्वोक्त)** के वाद में अभिनिर्धारित किया है, याचिकाकर्ता द्वारा भुगतान किए गए ब्याज के आधार पर स्टाम्प शुल्क की कमी वसूलने के लिए आक्षेपित संदर्भ देकर याचिकाकर्ता के विरूद्ध शुरू की गई कार्यवाही उचित नहीं है।

21. उपरोक्त चर्चा के साथ-साथ माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि के मद्देनजर, स्टाम्प वाद संख्या 119/2012-13 में दिनांक 18.10.2012 के आक्षेपित संदर्भ को विधि की नजर में उचित नहीं ठहराया जा सकता है और इसे एतद्द्वारा रद्द किया जाता है।

22. चूंकि आक्षेपित संदर्भ स्वयं रद्द किया जाता है, इसलिए सभी परिणामी कार्यवाहियां तथा आक्षेपित आदेश दिनांक 30.5.2018, 21.7.2018 व वसूली प्रोद्धरण दिनांक 28.8.2018 भी एतद्द्वारा रद्द किए जाते हैं।

23. तदनुसार, दोनों रिट याचिकाएं **स्वीकार** की जाती हैं।

24. संबंधित प्राधिकारी को निर्देश दिया जाता है कि वह याचिकाकर्ता द्वारा जमा की गई किसी भी राशि को, जमा करने की तिथि से वापसी की तिथि तक 4% प्रति वर्ष की दर से ब्याज सहित, इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से दो माह की अवधि के भीतर वापस करे।

(2025) 4 ILRA 510

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 01.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चंद्रा

रिट सी संख्या 35050/2019

सुनीता निषाद एवं अन्य **..याचिकाकर्ता**

बनाम

ऋण वसूली अपीलीय न्यायाधिकरण एवं अन्य **.. प्रत्यर्थीगण**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

सुशील कुमार, अभ्युदय प्रताप सिंह, अमरेंद्र नाथ त्रिपाठी, मीनाक्षी सिंह परिहार, राकेश चन्द्र तिवारी

अनधिकृत

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता:

राकेश पाल, पीसी चौहान, प्रशांत के. श्रीवास्तव, रमेश चंद्र, एस.सी. तिवारी, शैलेन्द्र सिंह राजावत, विद्या कांत शर्मा

सिविल विधि - भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण एवं पुनर्निर्माण और प्रतिभूति हित प्रवर्तन अधिनियम, 2002 - धारा 13, 13(2), 13(4), 1 और, 17)1) - प्रतिभूति हित (प्रवर्तन) नियमावली, 2002 - नियम - 3(1), 3(4), 8(1), 8(2), 8(6), 8(6)(क), 13, - उत्तर प्रदेश कृषि ऋण अधिनियम, 1973 - धाराएँ - 6(1), 11, 12, 12-ए, 12-बी और 12-सी - सामान्य खंड अधिनियम, 1897 - धारा - 27 - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा - 114 - पंजीकरण अधिनियम, 1908 - धाराएँ 17(1)(बी), 17(1)(सी) और 17(2)(xii)- रिट याचिका - अपीलीय न्यायाधिकरण (डीआरएटी) के आदेश को चुनौती, जिसने बैंक द्वारा याचिकाकर्ताओं की आवासीय संपत्ति की नीलामी बिक्री और कब्जे को बरकरार रखा - याचिकाकर्ता संख्या 2 के भाई ने उत्तर प्रदेश राज्य सरकार के तहत बैंक ऑफ बड़ौदा के माध्यम से 90 लाख रुपये के 5 साल के सावधि ऋण के लिए आवेदन किया। प्रायोजित योजना 'कामधेनु डेयरी योजना' - जिसमें दोनों याचिकाकर्ता उधारकर्ता के रिश्तेदार होने के नाते, बैंक द्वारा धोखाधड़ी से ऋण के गारंटर के रूप में दिखाए गए थे और उन्होंने संबंधित मकान के मूल कागजात का उपयोग किया जो पहले से ही बैंक के पास एक अन्य गृह ऋण में गिरवी था, ज़मानत के रूप में - ऋण खाते में चूक - जिसके कारण मांग नोटिस जारी किए गए - याचिकाकर्ताओं द्वारा आपत्तियाँ उठाई गईं जिसमें सरफेसी अधिनियम के तहत कब्जे और नीलामी बिक्री के लिए जारी किए गए नोटिसों की प्रक्रियात्मक औचित्य को चुनौती दी गई - रिट याचिका - खारिज, वैधानिक उपाय के लिए - याचिकाकर्ताओं ने डीआरटी का रुख किया - डीआरटी ने बैंक की कार्रवाई को आरंभ से ही शून्य घोषित कर दिया - बैंक द्वारा डीआरएटी में अपील दायर की गई - अपीलीय न्यायाधिकरण ने निर्णय को पलट दिया, यह मानते हुए कि दोनों याचिकाकर्ताओं को विधिवत वैधानिक नोटिस दिए गए थे और उन्होंने एक विस्तारित बंधक समझौता निष्पादित किया था, जिससे उन्हें अपनी स्थिति को अस्वीकार करने से रोक दिया गया गारंटर - रिट याचिका - याचिकाकर्ताओं ने बैंक के दावे का खंडन किया और आरोप लगाया कि बैंक ने, उधारकर्ता के साथ मिलीभगत करके, धोखाधड़ी से उनके आवास ऋण बंधक को गारंटी के रूप में बढ़ा दिया उनकी सहमति या हस्ताक्षर के बिना, और इसमें शामिल बैंक प्रबंधक को बाद में निलंबित कर दिया गया - इसके अलावा, याचिकाकर्ताओं ने उधारकर्ता को प्रत्यर्थी के रूप में शामिल करने की मांग की, लेकिन बैंक ने इसे विलंब की रणनीति के रूप में विरोध किया - न्यायालय ने अंततः इस बात को ध्यान में रखते हुए, प्रत्यर्थी अनुरोध को अस्वीकार कर दिया कि उधारकर्ता मूल डीआरटी या डीआरएटी कार्यवाही में पक्ष नहीं था, और उसे वर्तमान रिट याचिका में शामिल करना अनावश्यक था - न्यायालय ने पाया कि, - याचिकाकर्ताओं ने तथ्यों को गलत तरीके से प्रस्तुत किया और जानबूझकर मुकदमेबाजी को लंबा खींचा ताकि नीलाम की गई संपत्ति पर कब्ज़ा बरकरार रखा जा सके, जबकि यह संपत्ति 2017 में प्रत्यर्थी संख्या 4 को बेची गई थी - न्यायालय ने यह भी देखा कि प्रत्यर्थी संख्या 4 को काफी आर्थिक और भावनात्मक कष्ट सहना पड़ा था, जिसमें सात साल तक संपत्ति का आनंद लिए बिना किराया और ईएमआई का भुगतान करना भी शामिल था, और वह मुआवजे का हकदार था - न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि, याचिकाकर्ताओं ने न्यायिक प्रक्रिया का दुरुपयोग किया

है और न्यायालय का समय बर्बाद किया है - इसलिए, रिट याचिका 25 लाख रुपये के जुर्माने के साथ खारिज की जाती है, जिसका भुगतान उच्च न्यायालय के वरिष्ठ रजिस्ट्रार को तीन महीने के भीतर करना होगा। भुगतान न करने पर भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूली होगी - इसके अलावा, निर्देश जारी किया गया कि राशि, जमा होने के बाद, प्रत्यर्थी संख्या 4 के पक्ष में एक उचित आवेदन पर जारी की जाएगी - डीआरएटी का आदेश पुष्टि योग्य है, इसलिए, याचिकाकर्ता एक महीने के भीतर संपत्ति खाली करने के लिए बाध्य थे। (प्रस्तर - 37, 42, 43, 45, 53, 54, 55, 57, 58, 59, 60)

रिट याचिका खारिज (ई-11)

<u>उद्धृत वादों की सूची:</u>

1. उड़ीसा राज्य व अन्य बनाम लक्ष्मी नारायण दास (2023) 15 एससीसी 273,
2. हरि नारायण बनाम बदरी एआईआर 1963 सर्वोच्च न्यायालय 1558,
3. जी. नारायण स्वामी रेड्डी बनाम कर्नाटक सरकार 1991 (3) एससीसी 261,
4. कृष्ण कुमार गुप्ता बनाम मनोज के. साहू (2022) एससीसी ऑनलाइन इला. 528 में प्रतिवेदित
5. सी.सी. अलवी हाजी बनाम पलापेट्टी मुहम्मद व अन्य (2007) 6 एससीसी 555 में प्रतिवेदित
6. मेसर्स अजीत सीड्स लिमिटेड बनाम के. गोपाला कृष्णैया ने (2014) 12 एससीसी 685 में प्रतिवेदित
7. बी. अरविंद कुमार बनाम भारत सरकार व अन्य- (2007) 5 एससीसी 745,
8. शकीना व अन्य बनाम बैंक ऑफ इंडिया व अन्य- (2021) 12 एससीसी 761,
9. इंडियन ओवरसीज बैंक बनाम आरसीएम इंफ्रास्ट्रक्चर लिमिटेड व अन्य- (2022) 8 एससीसी 516,
10. मार्डिया केमिकल्स लिमिटेड बनाम भारत संघ- (2004) 4 एससीसी 311.
11. एस. कार्तिक व अन्य बनाम एन. सुभाष चंद जैन व अन्य- (2022) 10 एससीसी 641,
12. उड़ीसा राज्य बनाम लक्ष्मी नारायण दास (2023) 15 एससीसी 273,

13 के.जयराम बनाम बीडीए, (2022) 12 एससीसी 815,

14. उद्यमी एवं खादी ग्रामोद्योग कल्याण संस्था बनाम उत्तर प्रदेश राज्य - (2008) 1 एससीसी 560,
15. ए. शनमुगम बनाम एरिया क्षत्रिय राजकुल वामसथु मदालय नन्दवना परिपलानि संगम, (2012) 6 एससीसी 430: (2012) 3 एससीसी (सिविल) 735: 2012 एससीसी ऑनलाइन एससी 384

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चंद्रा द्वारा प्रदत्त)

1. यह रिट याचिका याचिकाकर्तागण सुनीता निषाद और उनके पति ओम प्रकाश द्वारा दायर की गई है, जिसमें बैंक ऑफ बड़ौदा द्वारा दायर अपील संख्या 18/2018 में ऋण वसूली अपीलीय न्यायाधिकरण

इलाहाबाद (डीआरएटी) द्वारा पारित दिनांक 22.10.2019 के आदेश को चुनौती दी गई है, जिसके माध्यम से ऋण वसूली न्यायाधिकरण, लखनऊ (जिसे आगे "डीआरटी" कहा जाएगा) द्वारा पारित दिनांक 20.08.2018 के आदेश को रद्द कर दिया गया है और दिनांक 11.12.2017 की नीलामी बिक्री और दिनांक 05.10.2016 के कब्जे के नोटिस की पुष्टि की गई है और मकान संख्या 13/88, सेक्टर-13, इंदिरा नगर विस्तार योजना, लखनऊ का भौतिक कब्जा इस याचिका में प्रत्यर्थी संख्या 4 श्रीमती ममता यादव को सौंपने का निर्देश दिया गया है। याचिकाकर्ताओं ने इससे पहले इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका संख्या 31115 (एमबी)/ 2017 दायर किया था जिसमें 11.12.2017 की नीलामी सूचना को चुनौती दी गई थी, जिसका इस न्यायालय ने निस्तारण कर दिया था और याचिकाकर्ताओं को निर्देश दिया था कि वे डीआरटी से संपर्क करें क्योंकि कार्यवाही सरफेसी अधिनियम के तहत थी।

2. वाद के निर्णय के लिए आवश्यक संक्षिप्त तथ्य, जैसा कि रिट याचिका संख्या 35050/2019 में उल्लिखित है, यह है कि राज्य सरकार ने "कामधेनु डेयरी योजना" नामक एक योजना शुरू की जिसका उद्देश्य उत्तर प्रदेश राज्य में डेयरी फार्मिंग को बढ़ावा देना है ताकि देश में सबसे अधिक दूध उत्पादक राज्य के रूप में अपना दर्जा बनाए रखा जा सके। याचिकाकर्ता संख्या 2 के भाई और याचिकाकर्ता संख्या 1 के बहनोई, जय प्रकाश ने पाँच वर्ष की अवधि के लिए ऋण के लिए आवेदन किया था और राज्य प्रायोजित योजना के तहत बैंक ऑफ बड़ौदा द्वारा 90 लाख रुपये स्वीकृत किए गए थे। याचिकाकर्ता संख्या 1 और याचिकाकर्ता संख्या 2, ऋणी जय प्रकाश के रिश्तेदार होने के नाते और पहले से ही बैंक ऑफ बड़ौदा, गोमती नगर शाखा के ग्राहक होने के नाते, बैंक द्वारा धोखाधड़ी से ऋण के गारंटर के रूप में दिखाए गए थे, जिसने याचिकाकर्ता की इंदिरा नगर स्थित संयुक्त स्वामित्व वाली संपत्ति से संबंधित मूल कागजात का इस्तेमाल किया था, जो पहले से ही बैंक के पास आवास ऋण के रूप में गिरवी थी, उधारकर्ता के कृषि ऋण के लिए ज़मानत के रूप में। प्रस्तर 10 से 13 में कहा गया है कि याचिकाकर्ता संख्या 1 से बैंक ने कभी परामर्श नहीं किया, न ही उसने बंधक विस्तार के लिए किसी भी कागजात पर हस्ताक्षर किए और वह जय प्रकाश द्वारा लिए गए ऋण के लिए कभी भी गारंटर या ज़मानतदार नहीं बनी। याचिकाकर्ता संख्या 1 और याचिकाकर्ता संख्या 2 ने इंदिरा नगर स्थित मकान खरीदने के लिए 30.07.2011 को एचडीएफसी बैंक से 32 लाख रुपये का आवास ऋण लिया था और ऋण को शुरू में एचडीएफसी को ब्याज सहित चुकाना था, लेकिन बैंक ऑफ बड़ौदा द्वारा दी जा रही कम ब्याज दर के कारण, याचिकाकर्ताओं ने 23.01.2015 को अपना ऋण प्रत्यर्थी संख्या 3, बैंक ऑफ बड़ौदा को हस्तांतरित करवा लिया, जिसने उन्हें 29,50,000 रुपये का ऋण प्रदान किया और इंदिरा नगर स्थित मकान से संबंधित कागजात याचिकाकर्ताओं द्वारा उक्त बैंक को जनवरी, 2015 में ही जमा कर दिए गए थे। मार्च 2015 में, जब जय प्रकाश ने कामधेनु डेयरी योजना के तहत 90,00,000 रुपये के ऋण के लिए आवेदन किया, तो इंदिरा नगर स्थित मकान से संबंधित कागजात पहले ही बैंक में जमा कर दिए गए थे क्योंकि मकान को आवास ऋण की अदायगी के लिए गिरवी रखा गया था, जिसे 217 मासिक किश्तों में चुकाना था। ऋणी जय प्रकाश यादव के ऋण खाते को बैंक द्वारा 30.06.2016 को एनपीए घोषित कर दिया गया और 21.07.2016 को सरफेसी अधिनियम की धारा 13(2) के तहत एक डिमांड नोटिस जारी किया गया।

3. यह कहा गया है कि याचिकाकर्ता संख्या 1 को सरफेसी अधिनियम की धारा 13(2) के तहत ऐसा कोई डिमांड नोटिस कभी प्राप्त नहीं हुआ। 05.10.2016 को, बैंक द्वारा सरफेसी अधिनियम, 2002 की धारा 13(4) के तहत कब्ज़ा नोटिस जारी किया गया और उसने संपत्ति का प्रतीकात्मक कब्ज़ा ले लिया, लेकिन याचिकाकर्ता संख्या 1 को ऐसा कोई नोटिस कभी नहीं दिया गया और याचिकाकर्ता को बैंक द्वारा संपत्ति के अधिग्रहण की कोई जानकारी नहीं थी। 27.01.2017 को, बैंक द्वारा स्पीड पोस्ट के माध्यम से याचिकाकर्ताओं को मोचन पत्र भेजा गया। इसके बाद, जिला मजिस्ट्रेट, लखनऊ द्वारा सरफेसी अधिनियम, 2002 की धारा 14 के तहत 21.03.2017 को समन जारी किए गए।

4. यह कहा गया है कि याचिकाकर्ताओं ने अपनी आपत्तियाँ दर्ज कीं, लेकिन उन पर विचार नहीं किया गया और इंदिरा नगर स्थित मकान की संपत्ति को नीलामी के लिए रख दिया गया। बैंक सुरक्षा हित (प्रवर्तन) नियम, 2002 (जिसे आगे 2002 के नियम कहा जाएगा) के नियम 8(6)(ए) का पालन करने में विफल रहा, जिसमें विशेष रूप से यह प्रावधान है कि नीलामी बिक्री सूचना के प्रकाशन में संपत्ति पर भार का विवरण शामिल होना चाहिए जो सुरक्षित लेनदार को ज्ञात हो। बैंक अच्छी तरह जानता था कि उक्त संपत्ति पर 29 लाख रुपये का आवास ऋण बकाया था, जो कि प्राथमिक भार था और ऐसे भार का विवरण प्रकाशित नहीं किया गया था।

5. याचिकाकर्ताओं ने रिट याचिका संख्या 31115 (एमबी) वर्ष 2017 लखनऊ में दिनांक 11.12.2017 की नीलामी बिक्री सूचना को चुनौती देते हुए दायर की, जिसका इस न्यायालय ने निस्तारण कर दिया और याचिकाकर्ताओं को डीआरटी से संपर्क करने का निर्देश दिया। याचिकाकर्ताओं ने वर्ष 2002 के अधिनियम की धारा 17 (1) के तहत डीआरटी लखनऊ के समक्ष एक आवेदन दायर किया और दलीलों के आदान-प्रदान के बाद, प्रतिभूतिकरण आवेदन संख्या 19 वर्ष 2018 को डीआरटी द्वारा अपने दिनांक 20.08.2018 के आदेश द्वारा स्वीकार कर लिया गया, जिसकी एक प्रति याचिका के अनुलग्नक-12 के रूप में दायर की गई है।

6. याचिकाकर्ताओं की ओर से यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रतिभूतिकरण आवेदन संख्या 19/2018 को डीआरटी द्वारा एक विशिष्ट निष्कर्ष दर्ज करने के बाद अनुमति दी गई थी कि 2002 के अधिनियम की धारा 13(2) के तहत जारी मांग नोटिस याचिकाकर्ता संख्या 1 को तामील नहीं किया गया था। बैंक द्वारा प्रस्तुत डाक रसीद सुनीता के नाम से नहीं, बल्कि 'सविता' के नाम से जारी की गई थी। डीआरटी ने कहा कि बैंक को 25.07.2016 की डाक रसीद पर भरोसा करने के बजाय, सेवा के और प्रमाण जुटाने चाहिए थे, जो श्रीमती सुनीता निषाद के नाम से नहीं, बल्कि 'सविता' के नाम से थी। डीआरटी ने 2002 के नियमावली के नियम 3(4) पर भरोसा करते हुए, जिसमें यह आवश्यक था कि मांग नोटिस प्रत्येक उधारकर्ता को व्यक्तिगत रूप से दिया जाना चाहिए जहाँ एक से अधिक उधारकर्ता हों; यह माना कि मांग नोटिस केवल याचिकाकर्ता संख्या 1 के पति ओम प्रकाश को दिया गया था, न कि सुनीता निषाद को, हालाँकि संपत्ति पति और पत्नी के संयुक्त स्वामित्व में थी। डीआरटी ने यह भी कहा कि धारा 13(2) के तहत नोटिस भेजने के समर्थन में केवल डाक रसीद प्रस्तुत करना यह स्थापित करने के लिए पर्याप्त नहीं है कि संदेश वास्तव में प्राप्तकर्ता को दिया गया था। नियम 2002 के नियम 3(4) का पालन न करने के कारण, प्रत्यर्थी बैंक द्वारा शुरू की गई पूरी

कार्रवाई शुरू से ही शून्य थी, और इसलिए, बैंक द्वारा प्रकाशित दिनांक 05.10.2016 का कब्ज़ा नोटिस और ई-नीलामी बिक्री नोटिस भी इस आधार पर अमान्य थे कि कब्ज़ा नोटिस 05.10.2016 को पंजीकृत डाक के माध्यम से याचिकाकर्ताओं को भेजा गया था और बैंक द्वारा 05.10.2016 को ही प्रतीकात्मक कब्ज़ा ले लिया गया था। ऐसी कार्रवाई कर्नाटक उच्च न्यायालय द्वारा ***के.आर. कृष्णा गौड़ा एवं अन्य बनाम कोटक महिंद्रा बैंक के मुख्य प्रबंधक/प्राधिकृत अधिकारी मनु/केए/0689/2012*** में प्रतिवेदित वाद में स्थापित विधि के विरुद्ध थी, जिसमें कर्नाटक उच्च न्यायालय ने कहा कि उधारकर्ता को यह पता चल सके कि सुरक्षित ऋणदाता द्वारा कब्ज़ा लेने की तिथि नियम 8 के नियम (1) और (2) का पालन नोटिस जारी करके किया जाना चाहिए जिसमें कब्ज़ा लेने की तिथि का उल्लेख हो। डीआरटी ने आगे कहा कि कोटक महिंद्रा बैंक द्वारा दायर विशेष अनुमति याचिका को सर्वोच्च न्यायालय ने खारिज कर दिया था, इसलिए प्रतीकात्मक कब्ज़ा लेने से पहले कब्ज़ा नोटिस देने के संबंध में कर्नाटक उच्च न्यायालय द्वारा दिया गया निर्णय मान्य है।

7. डीआरटी ने यह भी पाया कि प्रत्यर्थी बैंक द्वारा प्रकाशित नीलामी बिक्री नोटिस में बिक्री के लिए प्रस्तावित सुरक्षित संपत्ति पर पहले से मौजूद भार का उल्लेख नहीं था। 2002 के नियम 8(6) के अनुसार, सुनीता निषाद, सुरक्षित संपत्ति की संयुक्त मालिक होने के नाते, अपने पति ओम प्रकाश के साथ, इस संपत्ति पर बैंक से पहले आवास ऋण ले चुकी थीं, जिसका बिक्री नोटिस में उल्लेख नहीं था। परिणामस्वरूप, चूँकि बैंक सुनीता निषाद को 21.07.2016 के मांग नोटिस की तामील साबित करने में विफल रहा, इसलिए, प्रत्यर्थी बैंक द्वारा सरफेसी अधिनियम, 2002 के तहत की गई पूरी कार्रवाई शुरू से ही कमी और अमान्य थी।

8. यह भी कहा गया है कि इससे व्यथित होकर बैंक ने डीआरएटी के समक्ष अपील दायर की, जिसे मुख्य रूप से तीन आधारों पर अनुमति दी गई। यह देखा गया कि भले ही नोटिस भेजा गया था जिसमें सुनीता निषाद के बजाय 'सविता' का गलत नाम लिखा था, इसे डाक विभाग की मुद्रण त्रुटि माना जा सकता है और नोटिस को विधिवत भेजा गया माना जाएगा क्योंकि यह बिना डिलीवर हुए वापस नहीं लौटा था। ऐसा नोटिस याचिकाकर्ता संख्या 1 को भेजा गया माना जाएगा क्योंकि यह न केवल याचिकाकर्ता संख्या 1 को, बल्कि उसके पति ओम प्रकाश को भी संबोधित था, जो उसी पते पर रह रहे थे। प्रतिभूतिकरण आवेदन पति और पत्नी दोनों द्वारा दायर किया गया था। प्रतिभूतिकरण आवेदन में याचना केवल आवेदक संख्या 1, श्रीमती सुनीता निषाद द्वारा नोटिस प्राप्त न होने के लिए थी। यह अनुमान लगाना पर्याप्त है कि नोटिस पति और पत्नी दोनों को भेजे गए थे क्योंकि वे एक ही पते पर भेजे गए थे और उनके पति ओम प्रकाश ने यह आरोप नहीं लगाया कि उन्हें कभी नोटिस नहीं भेजा गया, और यहाँ तक कि सुनीता निषाद को भेजा गया नोटिस भी बिना तामील हुए वापस नहीं आया।

9. डीआरएटी ने यह भी पाया है कि धारा 13(4) के तहत प्रतीकात्मक कब्ज़ा लेने की पूर्व सूचना न देना भी तब कोई मायने नहीं रखता जब जिला मजिस्ट्रेट द्वारा अधिनियम की धारा 14 के प्रावधानों के तहत समन जारी कर दिए गए हों। डीआरएटी ने यह भी पाया कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ***स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक बनाम वी. नोबल कुमार, 2013 (9) एससीसी 620*** में दिए गए निर्णय के मद्देनजर, संपत्ति का प्रतीकात्मक कब्ज़ा

लेने से पहले कोई नोटिस देने की कोई आवश्यकता नहीं थी। डीआरएटी ने इलाहाबाद स्थित इस न्यायालय द्वारा रिट-सी संख्या 9731/2019, 'मेसर्स महेश इंडस्ट्रीज प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य बनाम करूर व्यास बैंक लिमिटेड', दिनांक 08.08.2019 को, जहाँ *नोबल कुमार* (उपरोक्त) पर भरोसा करते हुए, इस न्यायालय ने यह टिप्पणी की थी कि ऋणदाता को कब्ज़ा लेने की प्रस्तावित तिथि के लिए कोई नोटिस जारी करने की कोई आवश्यकता नहीं है। सुरक्षित ऋणदाता, संपत्ति का प्रतीकात्मक कब्ज़ा लेने से पहले ऋणदाता/गारंटर को सूचित करने के लिए बाध्य नहीं है।

10. डीआरएटी ने बैंक की अपील को इस आधार पर भी स्वीकार कर लिया है कि आवेदकों ने अपने रिश्तेदार जय प्रकाश, जो ऋणदाता थे, को दिए गए ऋण को सुरक्षित करने के लिए संपत्ति का एक विस्तारित बंधक बनाया था। दिनांक 07.05.2015 के विस्तारित बंधक पत्र पर सुनीता निषाद और उनके पति ओम प्रकाश दोनों ने हस्ताक्षर किए थे, और इसलिए सुनीता निषाद को यह कहने की अनुमति नहीं दी जा सकती कि उन्होंने जय प्रकाश द्वारा लिए गए ऋण को सुरक्षित करने के लिए कोई गारंटी नहीं दी थी। नियम 8(6) के अनुसार, सुरक्षित ऋणदाता को बिक्री सूचना में भार का उल्लेख करना आवश्यक है, लेकिन इस मामले में संपत्तियाँ मुख्य रूप से सुनीता निषाद और उनके पति को बैंक ऑफ़ बड़ौदा द्वारा दिए गए आवास ऋण के विरुद्ध गिरवी रखी गई थीं और चूँकि माँग सूचना में ऐसे आवास ऋण का कोई उल्लेख नहीं किया गया था, इसलिए यह स्पष्ट था कि ऐसा आवास ऋण नियमित था। इसके अलावा, यदि भार मौजूद भी था, तो संपत्ति उसी बैंक के पास गिरवी रखी गई थी और भार किसी तीसरे पक्ष (संस्था) का नहीं था, इसलिए यदि इससे किसी पक्ष के अधिकारों पर कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़ा, तो वह केवल बैंक का था। बिक्री सूचना में संपत्तियों पर ऐसे भार का उल्लेख न करना कोई मायने नहीं रखता था और यह नहीं कहा जा सकता था कि बैंक ने ऐसी गंभीर अनियमितता की थी जिससे बिक्री की कार्यवाही पूरी तरह से दूषित हो गई।

11. प्रारंभ में, जब यह याचिका दायर की गई और नए सिरे से विचार के लिए ली गई, तो याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने तर्क दिया था कि 2002 के नियमावली के नियम 13 की आवश्यकता पूरी नहीं हुई है और अपीलीय न्यायाधिकरण ने धारा 13 के तहत नोटिस की पर्याप्तता के संबंध में गलत निष्कर्ष दिया है। न्यायालय ने प्रत्यर्थी को नोटिस जारी किया और निर्देश दिया कि अगली सुनवाई की तारीख तक, पक्षकार यथास्थिति बनाए रखेंगे। इस दौरान अंतरिम आदेश की अवधि बढ़ाई जाती रही और प्रत्यर्थी बैंक द्वारा 26.03.2021 को अंतरिम आदेश को रद्द करने के लिए एक आवेदन के साथ प्रति-शपथपत्र दायर किया गया।

12. प्रति-शपथपत्र में, बैंक ने रिट याचिका में याचिकाकर्ताओं के दावे को खारिज कर दिया और कहा कि याचिकाकर्ताओं ने शपथ पत्र पर यह कहते हुए महत्वपूर्ण भौतिक छिपाव का सहारा लिया और गलत बयानी की है कि उन्होंने कामधेनु योजना के तहत जय प्रकाश को दिए गए 90 लाख रुपये के सावधि ऋण सुविधा में कोई गारंटी नहीं ली है। यह कहा गया कि ऋणी जय प्रकाश द्वारा इस न्यायालय के समक्ष पूर्व में रिट-सी संख्या 16546/2021 दायर की गई थी, जिसमें अभियोजन के अभाव में प्रतिभूतिकरण आवेदन संख्या 15/2017 को वापस बुलाने के लिए उनके आवेदन के शीघ्र निस्तारण की प्रार्थना की गई थी। उच्च न्यायालय ने रिट-सी

संख्या 16546/2021 का 07.04.2022 को निस्तारण कर दिया और डीआरटी को निर्देश दिया कि वह जय प्रकाश द्वारा दायर किए गए वापसी और विलंब माफी आवेदन पर शीघ्र निर्णय ले, लेकिन ऐसा आदेश पारित होने से पहले ही डीआरटी ने अपने 04.04.2022 के आदेश द्वारा दोनों आवेदनों का निस्तारण कर दिया था और जय प्रकाश द्वारा दायर प्रतिभूतिकरण आवेदन संख्या 15/2017 को पुनर्जीवित कर दिया गया था।

13. बैंक के प्रति-शपथपत्र में यह भी कहा गया है कि 2002 के अधिनियम के नियम 13(2) के अंतर्गत जारी दिनांक 21.07.2016 का मांग नोटिस, ऋणी और गारंटर को 25.07.2017 को पंजीकृत स्पीड पोस्ट के माध्यम से भेजा गया था, जो नोटिस बिना सुपुर्द किए वापस नहीं लौटा है, और इसलिए, उनकी तामील मानी गई। बैंक ने 05.10.2016 को सुरक्षित संपत्ति का प्रतीकात्मक कब्ज़ा ले लिया और जिला मजिस्ट्रेट द्वारा अधिनियम की धारा 14 के अंतर्गत सम्मन जारी किए गए, जिन्हें गृह संपत्ति/सुरक्षित संपत्ति पर एक प्रमुख स्थान पर चिपका दिया गया क्योंकि ऋणी/गारंटर ने इसकी व्यक्तिगत तामील स्वीकार करने से इनकार कर दिया था।

14. यह भी कहा गया है कि याचिकाकर्ताओं ने रिट याचिका के प्रस्तर 3 और 15 में स्वीकार किया है कि वे जय प्रकाश को दी गई ऋण सुविधा के लिए गारंटर थे। कामधेनु डेयरी ऋण एक व्यावसायिक ऋण है, जो उधारकर्ता को कुछ सुरक्षा के बदले दिया जाता है। उधारकर्ता जय प्रकाश और गारंटरों ने इस संबंध में आवश्यक दस्तावेज तैयार किए हैं और इंदिरा नगर विस्तार योजना में गृह संपत्ति संख्या 13/88 और शारदा नगर, रायबरेली रोड स्कीम में स्थित एक प्लॉट की गारंटी देकर उक्त सावधि ऋण को सुरक्षित किया है, इसलिए बैंक सरफेसी अधिनियम के तहत वसूली कार्यवाही शुरू कर सकता है, जो ऋणदाता द्वारा धारित सुरक्षित संपत्तियों से एन.पी.ए की वसूली से संबंधित है। इसके अलावा, उत्तर प्रदेश कृषि ऋण अधिनियम, 1973 कृषि संपत्ति की बिक्री पर प्रतिबंध लगाता है, जबकि इंदिरा नगर विस्तार योजना में स्थित आवास संपत्ति और शारदा नगर रायबरेली रोड आवास योजना में स्थित भूखंड कृषि संपत्ति नहीं थे।

15. यह भी कहा गया है कि जिला मजिस्ट्रेट, लखनऊ द्वारा अधिनियम 2002 की धारा 14 के तहत समन जारी किए जाने के बाद, जब नामित अधिकारी द्वारा अधिनियम की धारा 14 के तहत आदेश पारित किए गए, तो याचिकाकर्ताओं ने कोई आपत्ति दर्ज नहीं की। बैंक ने अधिनियम और नियमावली के तहत आवश्यक होने पर 18.11.2017 को दो प्रमुख समाचार पत्रों, अर्थात् टाइम्स ऑफ इंडिया और अमर उजाला में नीलामी नोटिस प्रकाशित किया था। डीआरटी ने तकनीकी आधार पर याचिकाकर्ताओं के प्रतिभूतिकरण आवेदन को स्वीकार कर लिया था, जिसमें कहा गया था कि मांग सूचना याचिकाकर्ता संख्या 1 के नाम के गलत उल्लेख के कारण तामील नहीं हुई, याचिकाकर्ता संख्या 1 का नाम सुनीता था, लेकिन टाइप किया गया था 'सविता'। यह कहा गया है कि 'सविता' के नाम से जारी डाक रसीद उस सूचना के लिए जारी की गई थी जिसमें गारंटरों का सही नाम और पता दर्ज था। याचिकाकर्ता संख्या 1 और याचिकाकर्ता संख्या 2 दोनों संपत्ति के संयुक्त मालिक थे। पंजीकृत डाक द्वारा भेजा गया मांग नोटिस कभी भी बिना तामील हुए वापस नहीं आया, और इसलिए, याचिकाकर्ताओं पर तामील मानी जाती है। प्रतीकात्मक कब्ज़ा लेने के संबंध में, बैंक ने स्टैंडर्ड चार्टर्ड

बैंक बनाम नोबल कुमार (उपरोक्त), जहाँ सर्वोच्च न्यायालय ने यह टिप्पणी की है कि अधिनियम की धारा 14 के तहत आवेदन अधिनियम की धारा 13(2) के तहत माँग सूचना जारी होने के तुरंत बाद प्रस्तुत किया जा सकता है।

16. बैंक ने अपने प्रति-शपथपत्र में यह भी कहा है कि ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जिसके तहत बैंक को केवल एक बोली प्राप्त होने की स्थिति में बिक्री कार्यवाही रद्द करने की आवश्यकता हो। चूँकि बैंक द्वारा निर्धारित आरक्षित मूल्य बोलीदाता द्वारा पूरा कर लिया गया था, इसलिए मकान संपत्ति ऐसे बोलीदाता को बेची जा सकती थी। यह एक खुली बोली प्रक्रिया थी और याचिकाकर्ता नीलामी में बेहतर प्रस्ताव रखने के लिए स्वतंत्र थे।

17. बैंक के प्रति-शपथपत्र पर याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर प्रत्युत्तर शपथपत्र में, यह कहा गया है कि रिट-सी संख्या 16546/2021, उधारकर्ता जय प्रकाश द्वारा याचिकाकर्ताओं की जानकारी के बिना दायर की गई थी। जब याचिकाकर्ताओं को याचिका की सामग्री का ज्ञान हुआ, तो उन्होंने उस पर आपत्ति जताई। चूँकि जय प्रकाश, उधारकर्ता याचिकाकर्ता संख्या 1 का साला था, उसने अपनी गलती स्वीकार की, लेकिन याचिकाकर्ता संख्या 1 से रिट याचिका संख्या 16546/2021 की सामग्री को नकारने का अनुरोध किया। उसे बचाने के लिए, उसने अपनी रिट याचिका संख्या 31115 (एमबी)/2017 में कहा था कि वह जय प्रकाश को दिए गए ऋण की गारंटर थी। वास्तव में, रिट याचिका संख्या 31115 (एमबी) 2017 का इस न्यायालय द्वारा निराकरण किया गया था, जिसमें गुण-दोष पर कोई टिप्पणी नहीं की गई थी, बल्कि याचिकाकर्ताओं को सरफेसी अधिनियम के तहत डीआरटी से संपर्क करने का निर्देश दिया गया था। इस रिट याचिका में याचिकाकर्ताओं ने जय प्रकाश को दी गई सावधि ऋण सुविधा के लिए गारंटर होने की कोई स्वीकारोक्ति नहीं की थी। याचिकाकर्ताओं ने इंदिरा नगर के सेक्टर-13 में स्थित एक मकान खरीदने के लिए बैंक ऑफ बड़ौदा से 29 लाख रुपये का आवास ऋण लिया था और ऋण सुरक्षित करने के लिए उक्त मकान को गिरवी रख दिया था। उन्होंने कामधेनु डेयरी योजना के तहत लिए गए सावधि ऋण को सुरक्षित करने के लिए जय प्रकाश के पक्ष में गारंटी देने वाले किसी भी दस्तावेज़ पर हस्ताक्षर नहीं किए थे। हालाँकि, बैंक ने उधारकर्ता जय प्रकाश के साथ मिलीभगत करके गारंटी बढ़ा दी थी, जिसे याचिकाकर्ताओं ने कभी पूरा नहीं किया। इस तरह के कपटपूर्ण व्यवहार के परिणामस्वरूप, बैंक प्रबंधक, जिसने जय प्रकाश को दिए गए ऋण को संसाधित किया था, को निलंबित कर दिया गया था और बाद में पदावनत कर दिया गया था।

18. इस प्रतिउत्तर शपथपत्र में यह भी कहा गया था कि 27.11.2017 को जारी कथित पत्र, जिसमें मुख्य उधारकर्ता को दिए गए ऋण को सुरक्षित करने के लिए इंदिरा नगर स्थित गृह संपत्ति को गिरवी रखने की बात स्वीकार की गई थी, पर याचिकाकर्ताओं के हस्ताक्षर नहीं थे और जय प्रकाश ने उसमें जालसाजी की हो सकती है। इंदिरा नगर स्थित गृह संपत्ति कभी गिरवी नहीं रखी गई थी, और इसलिए, गिरवी विलेख का विस्तार नहीं हो सकता था।

19. यह दोहराया गया कि बैंक ने कब्जे की तारीख निर्दिष्ट करते हुए नोटिस जारी न करके नियम 8(1) और 8(2) का पालन नहीं किया। कथित प्रतीकात्मक कब्ज़े की सूचना दिनांक 05.10.2016 केवल 07.10.2016 को प्रकाशित हुई और उसके बाद एकपक्षीय कार्यवाही शुरू हुई।

20. शपथपत्रों के आदान-प्रदान के बाद और याचिका सुनवाई के लिए तैयार होने के बाद, याचिकाकर्ताओं द्वारा 25.04.2022 को एक अभियोग आवेदन संख्या 9 वर्ष 2022 दायर किया गया, जिसमें मुख्य उधारकर्ता जय प्रकाश को प्रत्यर्थी संख्या 5 के रूप में अभियोग लगाने का अनुरोध किया गया जिसमें आरोप लगाया गया कि प्रतिभूतिकरण आवेदन संख्या 150 वर्ष 2017 डीआरटी के समक्ष लंबित है और इसका परिणाम याचिकाकर्ताओं को प्रभावित करेगा, और इसलिए, याचिका में जय प्रकाश को प्रत्यर्थी संख्या 5 के रूप में शामिल करना आवश्यक था।

21. बैंक द्वारा 18.07.2022 को इस तरह के पक्षकारीकरण के आवेदन के खिलाफ आपत्तियाँ दायर की गईं जिसमें कहा गया कि इस तरह का पक्षकारीकरण आवेदन मिलीभगत की प्रकृति का था और केवल रिट याचिका में निर्णय में देरी करने के लिए दायर किया गया था, जहाँ तर्कों का आदान-प्रदान हो चुका था और मामला अंतिम सुनवाई के लिए तैयार था। यह कहा गया कि शुरू में एक प्रतिभूतिकरण आवेदन संख्या 150/2017 जय प्रकाश द्वारा दायर किया गया था, याचिकाकर्ताओं को उसमें प्रत्यर्थी के रूप में पक्षकार नहीं बनाया गया था। जब प्रतिभूतिकरण आवेदन संख्या 19/2018 याचिकाकर्ताओं सुनीता निषाद और ओम प्रकाश द्वारा दायर किया गया था, तो उन्होंने जय प्रकाश को प्रत्यर्थी के रूप में पक्षकार नहीं बनाया, हालाँकि उनके द्वारा एक ही अधिवक्ता नियुक्त किया गया था और उन्होंने एक-दूसरे की ओर से दलीलें दी थीं। इसके अलावा, जब प्रतिभूतिकरण आवेदन संख्या 19/2018 को डीआरटी द्वारा अनुमति दी गई, तो बैंक ने डीआरएटी इलाहाबाद के समक्ष अपील दायर की। ऋणी जय प्रकाश ऐसी कार्यवाही में पक्षकार नहीं थे और ऋणी के गैर-संयुक्तीकरण के संबंध में याचिकाकर्ताओं द्वारा कभी कोई आपत्ति नहीं उठाई गई।

22. इस न्यायालय ने 14.03.2023 को एक विस्तृत आदेश पारित किया, जिसमें बैंक द्वारा बताई गई आपत्तियों पर ध्यान देते हुए और यह पाते हुए कि ऋणी जय प्रकाश का प्रतिभूतिकरण आवेदन डीआरटी के समक्ष लंबित है, जहाँ गारंटरों को पक्षकार नहीं बनाया गया है, 14.03.2023 को पक्षकार आवेदन को खारिज कर दिया। गारंटर सुनीता निषाद और ओम प्रकाश का प्रतिभूतिकरण आवेदन स्वीकार किए जाने के बाद, बैंक ने इलाहाबाद स्थित डीआरएटी के समक्ष अपील दायर की थी, और अपील के लंबित रहने के दौरान, याचिकाकर्ताओं ने मुख्य ऋणी को पक्षकार न बनाए जाने के संबंध में कोई मुद्दा नहीं उठाया। चूँकि रिट-सी संख्या 35050/2019, प्रतिभूतिकरण आवेदन संख्या 19/2018 की कार्यवाही से उत्पन्न हुई थी और इसमें डीआरएटी, इलाहाबाद द्वारा अपील में पारित आदेश को चुनौती दी गई थी, जहाँ जय प्रकाश पक्षकार नहीं थे, इसलिए इस याचिका में जय प्रकाश को पक्षकार बनाने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

23. याचिका में संशोधन के लिए एक आवेदन याचिकाकर्ताओं द्वारा 20.09.2023 को प्रस्तुत किया गया था, जिसमें कहा गया था कि रिट याचिका संख्या 31115 (एमबी)/2017 का निस्तारण 20.12.2017 को कर दिया गया था और उसमें कुछ गलत दलीलें दी गई थीं और याचिकाकर्ताओं ने एक संशोधन आवेदन दायर किया था जो अंतिम रूप से निपटाई गई याचिका में लंबित था।

24. इस न्यायालय ने 01.03.2024 को ऐसे संशोधन आवेदन को आंशिक रूप से स्वीकार कर लिया, जिसका प्रासंगिक अंश नीचे उद्धृत किया जा रहा है:-

*1. ****

2. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने, ऐसे संशोधन आवेदन के समर्थन में दायर शपथपत्र के आधार पर, रिट-सी संख्या 35050/2019 में प्रस्तर 1 के बाद प्रस्तर 1ए जोड़ने की अनुमति मांगी है, कि प्रारंभ में याचिकाकर्ताओं द्वारा रिट याचिका संख्या 31115 (एम/बी)/2017 दायर की गई थी, जिसका इस न्यायालय द्वारा दिनांक 20.12.2017 के आदेश द्वारा निस्तारण कर दिया गया था। उक्त रिट याचिका सं. 31115 (एम/बी) वर्ष 2017 में, प्रस्तर-3 और 15 में कुछ गलत कथन दिए गए थे, ताकि याचिकाकर्ताओं के इस दावे को पुष्ट किया जा सके कि ऋण की वसूली सबसे पहले मुख्य उधारकर्ताओं से की जानी चाहिए और केवल तभी जब मुख्य उधारकर्ताओं से वसूली संभव न हो, गारंटरों अर्थात याचिकाकर्ताओं के खिलाफ वसूली की कार्यवाही शुरू की जा सकती है। रिट याचिका सं. 31115 (एम/बी) वर्ष 2017 में याचिकाकर्ताओं द्वारा ऐसी दलीलें केवल इस न्यायालय को यह विश्वास दिलाने के लिए दी गई थीं कि गारंटर होने के नाते याचिकाकर्ताओं पर बैंक द्वारा मुख्य उधारकर्ता के खिलाफ कार्यवाही शुरू करने से पहले मुख्य उधारकर्ता के ऋण की अदायगी का दायित्व नहीं लगाया जा सकता। लेकिन ऐसी दलीलों से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि याचिकाकर्ताओं ने बैंक के इस दावे को स्वीकार कर लिया है कि वे मुख्य उधारकर्ता द्वारा लिए गए ऋण के गारंटर हैं। दरअसल, याचिकाकर्ता यह दावा करना चाहते थे कि बैंक मनमाने ढंग से याचिकाकर्ताओं के खिलाफ गारंटर के रूप में कार्रवाई कर रहा है।

याचिकाकर्ताओं ने रिट याचिका संख्या 31115 (एम/बी)/ 2017 में दलीलें इसलिए दी थीं क्योंकि वे रिट याचिका संख्या 31115 (एम/बी)/ 2017 में उनके लिए उपस्थित हुए विद्वान अधिवक्ता द्वारा इस्तेमाल की गई अंग्रेजी भाषा की बारीकियों को नहीं समझ पाए थे और यहां तक कि याचिकाकर्ताओं द्वारा जिस दस्तावेज़ पर भरोसा किया गया है, उससे भी पता चलता है कि याचिकाकर्ता संख्या 1 सुनीता निषाद ने ऋण दस्तावेज़ की शर्तों और न्यायसंगत बंधक के विस्तार पर कभी हस्ताक्षर नहीं किए, न ही उन्होंने जय प्रकाश, जो कि मुख्य उधारकर्ता हैं, के ऋण के खिलाफ सुरक्षा के रूप में अपना घर बढ़ाया। याचिकाकर्ता भारी दबाव में थे क्योंकि उनका आवासीय घर, जिसे बैंक अधिकारियों ने धोखाधड़ी से मुख्य उधारकर्ता द्वारा समय पर ऋण चुकाने के लिए जमानत के रूप में दिया हुआ दिखाया था, नीलामी में था और उन्हें बेदखल करने की धमकी दी जा रही थी। इसलिए, रिट याचिका संख्या 31115 (एम/बी)/ 2017 में उक्त दलील में अनजाने में गलती हो गई।

3. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय के समक्ष यह भी कहा है कि रिट याचिका संख्या 31115 (एम/बी) 2017 का इस न्यायालय द्वारा अपने आदेश दिनांक 20.12.2017 द्वारा पहले ही निस्तारण कर दिया

गया है, और उक्त रिट याचिका संख्या 31115 (एम/बी)/ 2017 में दलीलों में संशोधन के लिए एक आवेदन भी दायर किया गया है, जो खंडपीठ के समक्ष निपटान के लिए लंबित है।

4. इसके अतिरिक्त, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने रिट-सी संख्या 35050/2019 में प्रस्तर-70 ए जोड़ने की स्वतंत्रता का अनुरोध किया है, जिसमें बैंक द्वारा प्रतिभूतिकरण और वित्तीय आस्तियों के पुनर्निर्माण एवं प्रतिभूति हित प्रवर्तन अधिनियम (सरफेसी अधिनियम) के तहत अवैध रूप से की गई कार्यवाही के संबंध में दलील दी गई है, क्योंकि मुख्य उधारकर्ता को दिया गया ऋण उत्तर प्रदेश कृषि ऋण अधिनियम, 1973 के तहत शुरू की गई "कामधेनु डेयरी ब्याज सब्सिडी योजना" के तहत था। उक्त ऋण में सब्सिडी राज्य सरकार द्वारा दी गई थी। अतः, यदि कोई वसूली हो, तो वह केवल उत्तर प्रदेश कृषि ऋण अधिनियम, 1973 की धारा 11, 12, 12ए, 12बी और 12सी के प्रावधानों के तहत ही की जा सकती है। कृषि ऋण अधिनियम, 1973 के तहत, बैंक को ऋण वसूली न्यायाधिकरण के समक्ष सरफेसी अधिनियम के तहत उपाय करने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

5. इसके अलावा, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने रिट-सी संख्या 35050 वर्ष 2019 में दायर याचिकाओं में अनुच्छेद 70-बी जोड़ने की अनुमति देने का अनुरोध किया है, जिसमें कहा गया है कि उत्तर प्रदेश कृषि ऋण अधिनियम, 1973 के तहत कामधेनु डेयरी ब्याज सब्सिडी योजना के तहत विचाराधीन ऋण, कृषि उद्देश्यों के लिए दिया गया एक कृषि ऋण है और इसलिए, कृषि ऋण की वसूली के लिए सरफेसी अधिनियम के तहत कोई कार्यवाही शुरू नहीं की जा सकती।

*6.,7.,8.****

9. प्रस्तावित दलीलों पर कड़ी आपत्ति की गई है, जिन्हें प्रस्तर-1ए के रूप में जोड़ा जाना है, जिसमें कहा गया है कि याचिकाकर्ताओं ने जानबूझकर सभी दस्तावेजों पर हस्ताक्षर किए हैं और वे गारंटर के रूप में ऐसे दस्तावेजों पर अपने हस्ताक्षरों से मुकर नहीं सकते और याचिकाकर्ताओं द्वारा रिट याचिका सं.31115 (एम/बी)/2017 के साथ दायर किए गए अनुलग्नक स्वयं उनके इस दावे को झुठलाते हैं कि वे मुख्य उधारकर्ता द्वारा लिए गए ऋण के गारंटर नहीं थे और उन्होंने मुख्य उधारकर्ता द्वारा लिए गए ऋण के लिए ज़मानत के रूप में अपना आवासीय घर पेश नहीं किया था।

10. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रशांत कुमार श्रीवास्तव ने तर्क दिया है कि याचिकाकर्ताओं ने जानबूझकर एक संशोधन आवेदन दायर किया है जिसमें प्रस्तर-1ए में प्रस्तावित दलीलों को जोड़ने का अनुरोध किया गया है, ताकि बाद में दायर की गई रिट याचिका, यानी रिट-सी संख्या 35050 (एम/एस)/2019 में दलीलों से निकाले गए निष्कर्ष को कम किया जा सके, जिसमें उन्होंने कहा था कि उन्होंने गारंटर के रूप में हस्ताक्षर नहीं किए हैं और न ही मुख्य उधारकर्ता द्वारा लिए गए ऋण के लिए घर को ज़मानत के रूप में पेश किया है। संशोधन के लिए आवेदन के माध्यम से, याचिकाकर्ता नए आधार प्रस्तुत करने और याचिका की प्रकृति और स्वरूप को बदलने का प्रयास कर रहे हैं।

11. यह भी तर्क दिया गया है कि आवेदकों द्वारा दायर संशोधन आवेदन इस कारण से सांठगांठ वाला है कि प्रारंभिक चरण में जब प्रतिभूतिकरण आवेदन संख्या 150/2017 मुख्य उधारकर्ता जय प्रकाश द्वारा दायर किया गया था, और प्रतिभूतिकरण आवेदन संख्या 19/2018 श्रीमती सुनीता निषाद और उनके पति द्वारा दायर किया

अनुवादित

गया था, तब उन्होंने एक ही अधिवक्ता नियुक्त किया था और उन्होंने उक्त प्रतिभूतिकरण आवेदनों में एक-दूसरे की ओर से दलीलें दी थीं।

*12., 13., ****

14. इस न्यायालय ने मूल रिट याचिका रिट-सी संख्या 35050/2019 और रिट याचिका संख्या 31115/2017 के साथ दायर प्रति-शपथपत्र का भी अध्ययन किया है, जिसकी एक प्रति वर्तमान याचिका में दायर प्रति-शपथपत्र के साथ संलग्न है। इससे यह स्पष्ट है कि बैंक द्वारा यह दर्शाने के लिए दस्तावेज़ दायर किए गए हैं कि याचिकाकर्ताओं ने मुख्य उधारकर्ता के गारंटर के रूप में दस्तावेज़ों पर हस्ताक्षर किए थे, जो प्रति-शपथपत्र के साथ अनुलग्नक-5 के रूप में संलग्न हैं। इसलिए, प्रस्तर 1ए को जोड़कर प्रस्तावित संशोधन को अनुमति नहीं दी जा सकती। यह केवल याचिकाकर्ताओं को अपनी दलीलों से पीछे हटने और इस न्यायालय के समक्ष एक नया मामला स्थापित करने की अनुमति देगा।

15. जहाँ तक प्रस्तावित संशोधनों और प्रस्तर 70ए और 70बी को जोड़ने का संबंध है, दलीलों में इस तरह के जोड़ विधिक आधार उत्पन्न करते हैं, जिन्हें किसी भी स्तर पर उठाया जा सकता है।

16. ऐसी दलीलों को विधिक आधारों का आधार बनाने का प्रस्ताव है, जिन्हें किसी भी स्तर पर, यहाँ तक कि अंतिम सुनवाई के स्तर पर भी, उठाया जा सकता है क्योंकि इनके लिए अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं होती है। ऐसे प्रस्तावित संशोधनों में प्रस्तर 70ए और 70बी, आधार (एचएच) और (ii) के साथ-साथ राहत खंड (v) को जोड़ना विधि में अनुमेय है और इसलिए इन्हें अनुमति दी जाती है।

17. परिणामस्वरूप, संशोधन आवेदन सी.एम. आवेदन सं. आई.ए 12/2023 ***आंशिक रूप से स्वीकार*** *किया जाता है।"*

25. वास्तव में, इस न्यायालय ने उत्तर प्रदेश कृषि ऋण अधिनियम, 1973 से संबंधित संशोधनों को अनुमति दी थी, प्रस्तर 70ए और 70बी को जोड़कर और उससे संबंधित आधारों पर। हालाँकि, इसने प्रस्तर 1ए को जोड़ने की अनुमति नहीं दी जहाँ याचिकाकर्ताओं ने कहा था कि, हालाँकि रिट याचिका संख्या 31115 (एमबी)/ 2017 में, उन्होंने कहा था कि गारंटर के खिलाफ कार्यवाही करने से पहले मुख्य उधारकर्ता से वसूली की जानी चाहिए और अनजाने में जय प्रकाश द्वारा लिए गए ऋण के लिए गारंटर के रूप में उनकी स्वीकृति का सुझाव दिया था, याचिकाकर्ताओं का केवल यही आशय था कि भले ही उन्हें गारंटर माना जाए, वसूली के लिए पहले उचित विधिक प्रक्रिया का पालन किया जाना चाहिए। यह भी कहा गया था कि उन्होंने अनजाने में दबाव में याचिकाओं पर हस्ताक्षर कर दिए थे क्योंकि उनका आवासीय घर
नीलामी में था।

26. याचिका में संशोधन के बाद, प्रस्तर 70ए और 70बी जोड़कर, प्रत्यर्थी बैंक ने 03.04.2024 को याचिका खारिज करने के लिए एक और आवेदन दायर किया, साथ ही एक पूरक प्रति-शपथपत्र भी दिया, जिसमें कहा गया कि याचिकाकर्ताओं ने कामधेनु डेयरी योजना के तहत जय प्रकाश को दिए गए 90 लाख रुपये के सावधि ऋण के लिए गारंटर के रूप में अपनी भूमिका स्वीकार की है। इसके अतिरिक्त, 27.11.2017 के पत्र के माध्यम से, उन्होंने गारंटी प्रदान करने की बात स्वीकार की और बैंक से अनुरोध किया कि वह पहले

उधारकर्ता की संपत्ति की नीलामी करे। उन्होंने शारदा नगर योजना और इंदिरा नगर विस्तार में स्थित अपनी आवासीय संपत्ति की नीलामी स्थगित करने का भी अनुरोध किया था। इसके अलावा, प्रतिभूतिकरण आवेदन में अंतरिम राहत आवेदन खारिज होने के बाद, याचिकाकर्ताओं ने रिट याचिका संख्या 31115 (एमबी) 2017 दायर की थी और उधारकर्ता की ओर से विभिन्न कथन किए थे और उन्होंने उसी अधिवक्ता को भी नियुक्त किया था और इस याचिका के साथ-साथ याचिकाकर्ताओं द्वारा बार-बार दायर किए गए आवेदनों के माध्यम से, उन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से उधारकर्ता को लाभ पहुँचाया है।

27. इसके अलावा, याचिकाकर्ताओं ने इस न्यायालय के समक्ष झूठे शपथपत्र दायर किए हैं और ***उड़ीसा राज्य एवं अन्य बनाम लक्ष्मी नारायण दास (2023) 15 एससीसी 273*** के वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने यह टिप्पणी की है कि यदि कोई याचिकाकर्ता न्यायालय के समक्ष सभी महत्वपूर्ण तथ्यों का निष्पक्ष और सत्यतापूर्वक खुलासा नहीं करता है, बल्कि उन्हें विकृत तरीके से प्रस्तुत करता है और न्यायालय को गुमराह करने का प्रयास करता है, तो न्यायालय के पास स्वयं की रक्षा करने और अपनी प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने और याचिका को खारिज करने की अंतर्निहित शक्ति है। प्रत्यर्थी बैंक ने ***हरि नारायण बनाम बदरी एआईआर 1963 सर्वोच्च न्यायालय 1558, जी. नारायण स्वामी रेड्डी बनाम कर्नाटक सरकार 1991 (3) एससीसी 261*** और कई अन्य मामलों का भी हवाला दिया है, जहाँ उच्च न्यायालय ने वादी को इस आधार पर राहत देने से इनकार कर दिया था कि उसने न्यायालय में निष्पक्षता से आवेदन नहीं किया था और रिट क्षेत्राधिकार न्यायसंगत क्षेत्राधिकार था, जिसका दुरुपयोग नहीं किया जा सकता था। प्रस्तर 70ए और 70बी की विषय-वस्तु के संबंध में, यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रतिभूतिकरण कार्यवाही किसी सुरक्षित ऋणदाता द्वारा ऋण की वसूली के लिए सुरक्षित संपत्ति पर निर्मित प्रतिभूति हित के हस्तांतरण के माध्यम से बिक्री/पट्टे आदि के माध्यम से 2002 के अधिनियम के तहत शुरू की जा सकती है। 2002 के अधिनियम में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो बैंक को कामधेनु योजना के तहत प्रतिभूतिकरण कार्यवाही शुरू करने से रोकता हो।

28. प्रत्यर्थी संख्या 4 ममता यादव द्वारा 19.04.2024 को एक संक्षिप्त प्रति-शपथपत्र दायर किया गया है, जिसमें कहा गया है कि उन्होंने बैंक द्वारा आयोजित नीलामी बिक्री में संबंधित संपत्ति खरीदी थी और सभी औपचारिकताएँ पूरी की थीं और 14.12.2017 को स्वीकृत भारतीय बैंक से 75 लाख रुपये का गृह ऋण लेकर धन जमा किया था। नीलामी क्रेता ऐसे ऋण की अदायगी के लिए मासिक किश्तें भारतीय बैंक को दे रहा था, लेकिन उसे संपत्ति का वास्तविक भौतिक कब्ज़ा नहीं दिया गया था, जिसके संबंध में बिक्री प्रमाण पत्र प्रत्यर्थी बैंक द्वारा जारी किया गया था।

श्री शैलेन्द्र सिंह राजावत, नीलामी क्रेता प्रत्यर्थी संख्या 4 की ओर से उपस्थित अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि विचाराधीन संपत्ति के संबंध में, यदि कोई भार या प्रभार है, तो उसे केवल नीलामी क्रेता द्वारा ही चुनौती दी जा सकती है, और इसलिए, याचिकाकर्ता, जो कि गारंटर और बंधककर्ता हैं, के पास, इस मामले में, कथित भार या प्रभार के विरुद्ध कोई आपत्ति उठाने का कोई अधिकार नहीं है। भार या भार स्थापित करने के लिए, याचिकाकर्ता को तीन पक्ष दर्शाने होंगे, एक जिसने भार बनाया है, दो, जिसके पास किसी भी क़ानून के तहत उच्च या प्रथम भार है और तीन, जिसके पास निम्न या द्वितीय भार है।

प्रत्यर्थी संख्या 4 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि चूँकि बैंक द्वारा एक बिक्री प्रमाणपत्र जारी किया गया है, जिसके पास विचाराधीन संपत्ति पर पहला अधिकार था, जिसमें उल्लेख है कि ऐसी बिक्री सरफेसी अधिनियम के तहत एक सार्वजनिक नीलामी में की गई है और स्वामित्व हस्तांतरित किया गया है, नीलामी क्रेता पर सभी भारों से मुक्त, ऐसा बिक्री प्रमाणपत्र नीलामी क्रेता को प्रश्नगत संपत्ति पर पूर्ण अधिकार और हित प्रदान करता है।

29. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री अमरेंद्र नाथ त्रिपाठी ने तर्क दिया है कि न्यायाधिकरण तथ्यों और विधि का सही ढंग से आकलन करने में विफल रहा है। डीआरटी ने प्रतिभूतिकरण आवेदन को तीन आधारों पर स्वीकार किया था, अर्थात्, माँग नोटिस सुनीता निषाद को नहीं दिया गया था; प्रतीकात्मक कब्ज़ा लेने से पहले गारंटर को पूर्व सूचना जारी नहीं की गई थी; सुरक्षित संपत्ति पर भार का बिक्री नोटिस में उल्लेख नहीं किया गया था। डीआरएटी ने अपील स्वीकार करते हुए यह गलत निष्कर्ष निकाला कि डाक रसीद पर 'सविता' नाम का उल्लेख एक मुद्रण त्रुटि थी और चूँकि प्रतिभूतिकरण आवेदन सुनीता निषाद और उनके पति ओम प्रकाश दोनों द्वारा दायर किया गया था और अभिलेख में ऐसा कोई तर्क नहीं था कि ओम प्रकाश, जो सुनीता के पते पर उसी संपत्ति में रहते थे, को मांग नोटिस की प्रति नहीं दी गई थी, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि सुनीता निषाद को नोटिस नहीं दिया गया था। नोटिस बिना दिए वापस न आने पर उसे तामील किया गया माना जाएगा।

30. यह तर्क दिया गया है कि अपीलीय न्यायाधिकरण ने भी गलती से यह टिप्पणी की कि कब्जे का नोटिस न देने का कोई परिणाम नहीं होगा क्योंकि बैंक ने सरफेसी अधिनियम की धारा 14 का सहारा लिया था और जिला मजिस्ट्रेट द्वारा समन जारी किया गया था जो गारंटर को दिया गया था। यह प्रस्तुत किया गया है कि अपीलीय न्यायाधिकरण ने *स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक बनाम नोबल कुमार (उपरोक्त)* में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय की व्याख्या करने में गलती की है।

31. यह भी तर्क दिया गया है कि न्यायाधिकरण ने यह मानकर घोर विधिक त्रुटि की है कि याचिकाकर्ताओं ने संपत्ति का विस्तारित बंधक बनाया है जब मूल बंधक बनाया और हस्ताक्षरित नहीं किया गया था, विस्तारित बंधक बिल्कुल भी नहीं बनाया जा सकता था।

32. याचिकाकर्ताओं की ओर से यह भी तर्क दिया गया है कि न्यायाधिकरण ने गलत तरीके से यह माना है कि बेची जाने वाली प्रस्तावित संपत्ति पर भार का उल्लेख न करने का कोई महत्व नहीं है क्योंकि याचिकाकर्ताओं द्वारा उसी बैंक के पक्ष में पूर्व बंधक बनाया गया था।

33. याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी तर्क दिया गया है कि कामधेनु डेयरी योजना उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा उत्तर प्रदेश कृषि ऋण अधिनियम, 1973 के अंतर्गत एक कृषि ऋण योजना के रूप में शुरू की गई थी। यदि ऋण जय प्रकाश को कृषि ऋण योजना के अंतर्गत दिया गया था,

जिसे उधारकर्ता द्वारा चुकाया नहीं जा सका, तो उत्तर प्रदेश कृषि ऋण अधिनियम, 1973 की धारा 11, 12, 12ए, 12बी और 12सी के अंतर्गत कार्यवाही शुरू की जानी चाहिए थी। कृषि ऋण की वसूली के लिए अधिनियम 2002 के अंतर्गत कोई कार्यवाही शुरू नहीं की जा सकती थी। इसके अलावा, कथित तौर पर जय प्रकाश द्वारा स्थापित की जाने वाली एक परियोजना के लिए कृषि ऋण प्राप्त करने हेतु बैंक के पास गिरवी रखी गई संपत्तियाँ कृषि क्षेत्र की थीं और बाराबंकी में स्थित थीं और मुख्य उधारकर्ता लखनऊ में था और गोमती नगर स्थित बैंक ऑफ बड़ौदा शाखा के पास बाराबंकी जिले में ऋण स्वीकृत करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं था। जब यह अनियमितता बैंक के उच्च प्रबंधन के सामने आई, तो उन्होंने मुख्य उधारकर्ता जय प्रकाश को ऋण स्वीकृत करने वाले कर्मचारियों के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्रवाई की।

34. अभिलेखों में दर्ज दलीलों के आधार पर, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि सबसे पहले, याचिकाकर्ताओं ने कोई बंधक नहीं बनाया और कामधेनु डेयरी योजना के तहत जय प्रकाश द्वारा लिए गए ऋण के मामले में कभी कोई गारंटी भी नहीं ली। भले ही बैंक द्वारा ऐसा बंधक बनाया हुआ दिखाया गया हो, वह दोषपूर्ण है। दूसरे, बैंक ने याचिकाकर्ता की संपत्ति की नीलामी के लिए सरफेसी अधिनियम और नियमावली के तहत निर्धारित प्रक्रिया का पालन नहीं किया, क्योंकि याचिकाकर्ता संख्या 1 को धारा 13(2) के तहत कोई मांग नोटिस प्राप्त नहीं हुआ, प्रतीकात्मक कब्ज़ा लेने से पहले धारा 13(4) के तहत कोई कब्ज़ा नोटिस समय पर नहीं दिया गया, और नीलामी नोटिस में संपत्ति पर भार का खुलासा नहीं किया गया। यहाँ तक कि प्रत्यर्थी संख्या 4 को जारी किया गया बिक्री प्रमाण पत्र भी दोषपूर्ण था।

35. इन तर्कों को पुष्ट करने के लिए, याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने कहा कि याचिकाकर्ता संख्या 2, जो याचिकाकर्ता संख्या 1 का पति है, को मांग नोटिस की तामील को याचिकाकर्ता संख्या 1 पर पर्याप्त तामील नहीं कहा जा सकता। अपीलीय न्यायाधिकरण के निष्कर्ष, 2002 के नियमावली के नियम 3(1) और नियम 3(4) के तहत अनिवार्य आवश्यकता के विपरीत हैं, जिसके अनुसार मांग नोटिस ऋणदाता या उसके एजेंट को हाथ से या पंजीकृत डाक द्वारा पावती सहित, या स्पीड पोस्ट या कूरियर द्वारा, या फैक्स या इलेक्ट्रॉनिक मेल सेवा जैसे दस्तावेज़ों के किसी अन्य माध्यम से भेजा जाना चाहिए और मांग नोटिस प्रत्येक ऋणदाता को दिया जाना चाहिए। याचिकाकर्ताओं के मामले में, बैंक द्वारा दर्शाए गए अनुसार मांग नोटिस की सेवा का एकमात्र तरीका पंजीकृत डाक है और बैंक के प्रति-शपथपत्र के पृष्ठ 413 पर दायर मांग नोटिस के अवलोकन से पता चलता है कि इसमें उल्लेख है कि इसे दिनांक 02.03.2015 के किसी 'सामान्य गारंटी प्रपत्र' के अनुसरण में जारी किया गया था। बैंक द्वारा 02.03.2015 का ऐसा कोई भी प्रपत्र या गारंटी न तो न्यायाधिकरण के समक्ष और न ही इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई है। याचिकाकर्ताओं का यह मामला है कि जय प्रकाश के 01.03.2015 के ऋण स्वीकृति पत्र में केवल एक 'सामान्य गारंटी प्रपत्र' था, जो याचिकाकर्ता संख्या 2 ओम प्रकाश का था, न कि याचिकाकर्ता संख्या 1 का, जैसा कि प्रत्यर्थी संख्या 3 बैंक के प्रति-शपथपत्र के पृष्ठ 292 पर उल्लिखित जमानतदारों की क्रम संख्या 4 से स्पष्ट है।

36. जैसा कि याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने बताया है, मैंने पृष्ठ सं. 292 का अवलोकन किया है, जो बैंक ऑफ बड़ौदा के मुख्य प्रबंधक द्वारा प्रतिभूतिकरण आवेदन संख्या 19/2018 में दायर पूरक शपथ पत्र एसए 19/2018 के अनुलग्नकों का हिस्सा है। एसए -1 ऋण स्वीकृति पत्र है और यह दर्शाता है कि जय प्रकाश ने कामधेनु डेयरी योजना के तहत 90 लाख रुपये का सावधि ऋण लिया था और प्रतिभूतियों के रूप में कई संपत्तियाँ पेश की थीं, जिनमें से कुछ ओम प्रकाश और सुनीता निषाद की भी थीं। 01.03.2015 को जय प्रकाश को ऋण स्वीकृत होने से पहले, याचिकाकर्ताओं ने 28.01.2015 को 29.50 लाख रुपये का आवास ऋण लिया था। ओम प्रकाश और सुनीता निषाद को 28.01.2015 को जारी ऋण स्वीकृति पत्र और जय प्रकाश के पक्ष में 01.03.2015 को जारी ऋण स्वीकृति पत्र की प्रतियां, प्रतिभूतिकरण आवेदन संख्या 19/2018 में उक्त पूरक शपथपत्र के साथ दाखिल की गई हैं। याचिकाकर्ताओं के पक्ष में 28.01.2015 को जारी ऋण स्वीकृति पत्र में उल्लिखित प्रतिभूति दस्तावेजों में इंदिरा नगर, लखनऊ में स्थित ओम प्रकाश और उनकी पत्नी सुनीता निषाद के मकान संख्या 13/88 और रजनी खंड शारदा नगर, रायबरेली रोड, लखनऊ में स्थित प्लॉट संख्या 3/334 को संपार्श्विक के रूप में उल्लेखित किया गया है। बंधक निर्माण हेतु उपस्थिति पत्रक, संपत्ति के स्वामित्व विलेख जमा करके बंधक के मामले में घोषणा, बिक्री विलेख के निष्पादन के तुरंत बाद समतामूलक बंधक निर्माण हेतु मुद्रांकित वचनपत्र, बंधक निर्माण/विस्तार की पुष्टि का पत्र; ये सभी स्वीकृति पत्र के साथ संलग्नक के रूप में उल्लिखित हैं। इन सभी दस्तावेजों पर सुनीता निषाद और उनके पति ओम प्रकाश के हस्ताक्षर हैं।

37. जय प्रकाश के पक्ष में दिनांक 01.03.2015 के ऋण स्वीकृति पत्र में कामधेनु डेयरी ब्याज सब्सिडी योजना के तहत 90 लाख रुपये के सावधि ऋण की स्वीकृति का उल्लेख है और प्रतिभूति के रूप में ओम प्रकाश द्वारा हस्ताक्षरित गारंटी के सामान्य प्रपत्र क्रमांक 4 और क्रमांक 1 पर उल्लेख है। कृषि ऋण अधिनियम, 1973 की धारा 6(1) के अंतर्गत खसरा प्लॉट संख्या 71, 73, 72, 81 और उसके कुछ हिस्सों की घोषणा, जो ग्राम अथरी परगना भेटौली, तहसील रामनगर, जिला बाराबंकी में स्थित हैं। ये चार संपत्तियाँ, जिनका उल्लेख क्रमांक 5 से 8 पर प्रतिभूतियों के रूप में है, कृषि संपत्ति होने के कारण सरफेसी अधिनियम और नियमावली के तहत कार्यवाही नहीं की गई है। इसी दस्तावेज़ के क्रमांक 9 पर, जय प्रकाश मकान संख्या 645B, प्लॉट संख्या 223, अभिषेक पुरम मंडियांव, जानकीपुरम विस्तार, लखनऊ की संपत्ति के विस्तार का उल्लेख किया गया है। क्रमांक 1 पर 10 में ओम प्रकाश और उनकी पत्नी सुनीता निषाद के स्वामित्व वाली मकान संख्या 13/88, सेक्टर 13, इंदिरा नगर विस्तार योजना की संपत्ति के विस्तार का उल्लेख किया गया है। क्रमांक 11 पर, ओम प्रकाश और सुनीता निषाद द्वारा प्लॉट संख्या 3/334, टाइप-सी रजनी खंड शारदा नगर योजना, रायबरेली रोड, लखनऊ की संपत्ति के विस्तार का उल्लेख किया गया है। इस दस्तावेज़ पर सुनीता और उनके पति ओम प्रकाश के साथ-साथ मुख्य उधारकर्ता जयप्रकाश ने भी हस्ताक्षर किए हैं।

38. उसी पूरक शपथपत्र में, बंधक निर्माण/विस्तार की पुष्टि के पत्र से संबंधित एलडीओसी 90 (पी) की प्रतियां दिनांक 07.05.2015; एलडीओसी 90 (सी) अचल संपत्तियों के संबंध में स्वामित्व विलेख जमा करके बंधक के मामले में घोषणा दिनांक 06.05.2015, और दो या अधिक बंधककर्ताओं द्वारा स्वामित्व विलेखों के

विस्तार हेतु संयुक्त ज्ञापन दिनांक 06.05.2015; और बंधककर्ता का उपस्थिति नोट दिनांक 06.05.2015 को प्रदर्श-एस.ए.2 के रूप में दाखिल किया गया है।

39. इस न्यायालय ने एस.ए.-2 का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है और पाया है कि याचिकाकर्ता संख्या 1 और याचिकाकर्ता संख्या 2 दोनों ने बंधक निर्माण/विस्तार के लिए ऐसे दस्तावेज़ 90(पी) पर हस्ताक्षर किए थे और बैंक के पक्ष में 90,00,000/- रुपये की ऋण सुविधाओं के देय पुनर्भुगतान या मोचन के लिए प्रभार बनाने का वचन दिया था, जिसमें ब्याज और उस पर देय लागतें और शुल्क शामिल थे। इसी प्रकार, घोषणा दस्तावेज़ 90(सी) और संपत्तियों की अनुसूची में रजनी खंड, शारदा नगर, योजना में स्थित भूखंड संख्या 3/33 4सी प्रकार के समतुल्य बंधक के विस्तार और इंदिरा नगर विस्तार योजना, लखनऊ में स्थित मकान संख्या 13/88 के समतुल्य बंधक के विस्तार का भी उल्लेख है। बैंक के मुख्य प्रबंधक द्वारा प्रतिभूतिकरण मामले में डी.आर.टी. के समक्ष दायर पूरक शपथपत्र में प्रदर्शित सभी दस्तावेज़ों पर सुनीता निषाद और उनके पति द्वारा हस्ताक्षर किए गए हैं, और प्रति-शपथपत्र के पृष्ठ 300 पर अनुसूची 2ए और 2बी में उल्लिखित संपत्तियों का विशेष उल्लेख किया गया है, जो ओम प्रकाश और सुनीता निषाद के 29.50 लाख रुपये के आवास ऋण में बंधक हैं; जिनके कागजात पहले ही बैंक में जमा किए जा चुके हैं, जिन्हें जय प्रकाश को 90 लाख रुपये के ऋण के लिए गारंटी/सुरक्षा के रूप में दिया जा रहा है।

40. इस न्यायालय ने बंधक के उपस्थिति नोट का भी अवलोकन किया है, जिसमें ओम प्रकाश और सुनीता निषाद के साथ-साथ जय प्रकाश और बैंक के दो अधिकारियों के नाम और हस्ताक्षर अंकित हैं। डी.आर.टी. लखनऊ ने इन्हीं दस्तावेजों पर भरोसा करते हुए एक विशिष्ट निष्कर्ष दिया है कि सुनीता निषाद और उनके पति ओम प्रकाश दोनों ने जय प्रकाश द्वारा 90 लाख रुपये के ऋण के भुगतान हेतु सुरक्षा के रूप में लखनऊ के सेक्टर 13 इंदिरा नगर में स्थित मकान और संपत्ति के समतुल्य बंधक के विस्तार से संबंधित दस्तावेजों पर हस्ताक्षर किए थे। डी.आर.टी. के दिनांक 20.08.2018 के निर्णय में दिए गए इस विशिष्ट निष्कर्ष को याचिकाकर्ताओं द्वारा चुनौती नहीं दी गई है और यह तथ्यात्मक निष्कर्ष है जिसकी पुष्टि बैंक के प्रति-शपथपत्र के साथ दायर दस्तावेजों द्वारा की गई है और इस न्यायालय द्वारा इसका ध्यानपूर्वक अध्ययन किया गया है, जिससे यह संकेत मिलता है कि याचिकाकर्ताओं ने इस न्यायालय के समक्ष गलत बयानी और जानबूझकर झूठ बोला है, जो समतुल्य और असाधारण रिट क्षेत्राधिकार में आता है।

41. जहाँ तक अधिनियम की धारा 13, उप-खंड 2 के अंतर्गत माँग नोटिस की तामील न करने से संबंधित तर्क का संबंध है और नियम 3 (4) का संदर्भ याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा दिया गया है, इस न्यायालय ने प्रत्यर्थी बैंक के प्रति-शपथपत्र के साथ संलग्न दस्तावेजों का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है और बैंक के अधिवक्ता के तर्कों का उल्लेख किया है। रिट याचिका संख्या 35050/2019 में दायर प्रति-शपथपत्र के साथ संपूर्ण याचिका संख्या 31115/2017 की प्रति संलग्न है। प्रस्तर-3 और उसके बाद के प्रस्तरग्राफों में, याचिकाकर्ताओं ने जय प्रकाश द्वारा लिए गए ऋण के लिए गारंटर होने की स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है और उन्होंने 18.10.2017 के बिक्री नोटिस को इस आधार पर चुनौती दी है कि बैंक को पहले मुख्य उधारकर्ता के

खिलाफ कार्रवाई करनी चाहिए थी। सुनीता निषाद और उनके पति ओम प्रकाश द्वारा लिखित दिनांक 27.10.2017 के पत्र की एक प्रति, उक्त रिट याचिका संख्या 31115/2017 के अनुलग्नक 5 में दाखिल की गई है, जिसमें याचिकाकर्ताओं द्वारा स्पष्ट रूप से कहा गया है कि वे जय प्रकाश द्वारा लिए गए ऋण के गारंटर हैं और उन्होंने लखनऊ के इंदिरा नगर, सेक्टर 13 स्थित मकान संख्या 88 को जय प्रकाश द्वारा लिए गए ऋण की सुरक्षा के रूप में पेश किया था और बैंक द्वारा न केवल ऋणी को, बल्कि उन याचिकाकर्ताओं को भी नोटिस भेजा गया है जो संबंधित संपत्ति की बिक्री के लिए गारंटर हैं, जबकि पहले ऋणी की संपत्ति की नीलामी की जानी चाहिए थी और उसके बाद ही याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रतिभूतियों के रूप में पेश की गई संपत्तियों की नीलामी की जानी चाहिए थी। इस याचिका में, याचिकाकर्ताओं को धारा 13(2) और धारा 13(4) के तहत नोटिस न दिए जाने का कोई उल्लेख नहीं है।

42. इस न्यायालय ने देखा है कि रिट याचिका संख्या 35050/2019 के समर्थन में दायर शपथपत्र के प्रस्तर 3 में, सुनीता निषाद ने शपथ पर सत्यनिष्ठा से पुष्टि की है कि याचिका का अनुलग्नक संख्या 4, अन्य अनुलग्नकों सहित, इसकी मूल प्रति की सत्य प्रति है। 21.07.2016 का मांग नोटिस रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 4 के रूप में दायर किया गया है और यह दर्शाता है कि इसे याचिकाकर्ता संख्या 1 को भी उचित रूप से तामील किया गया था। 21.07.2016 के मांग नोटिस के साथ, बैंक ने उधारकर्ता को एक मांग नोटिस भी भेजा था और इंदिरा नगर स्थित आवास संपत्ति का उल्लेख उक्त मांग नोटिस के प्रस्तर 2 में याचिकाकर्ताओं की संपत्ति के रूप में किया गया था। सुरक्षित संपत्ति का पूरा विवरण दिनांक 21.07.2016 को अधिनियम की धारा 13(2) के अंतर्गत जारी मांग सूचना में स्पष्ट रूप से उल्लिखित था, जिसे पंजीकृत डाक द्वारा पावती सहित याचिकाकर्ता संख्या 1 और याचिकाकर्ता संख्या 2 को उनके सही पते, अर्थात मकान संख्या 88, सेक्टर-13, इंदिरा नगर, लखनऊ पर भेजा गया था। ऐसा पत्र कभी भी बिना तामील के वापस नहीं लौटाया गया। दिनांक 21.07.2016 के मांग सूचना/पत्र में याचिकाकर्ता संख्या 1 का नाम और पता स्पष्ट रूप से सही ढंग से अंकित है। डाकघर द्वारा सुनीता का नाम दर्शाने के बजाय 'सविता' के नाम से जारी की गई डाक रसीद, सामान्य खंड अधिनियम, 1897 की धारा 27 के मद्देनजर कोई प्रासंगिकता नहीं रखती है, जो डाक द्वारा सेवा को परिभाषित करती है और सेवा को उचित रूप से, पते पर लिखकर, पूर्व-भुगतान करके और पंजीकृत डाक द्वारा डाक द्वारा, एक पत्र जिसमें दस्तावेज़ (मांग सूचना) शामिल है, भेजकर प्रभावी माना जाएगा, और जब तक विपरीत साबित न हो जाए, इसे उस समय प्रभावी माना जाएगा जिस समय पत्र डाक के सामान्य क्रम में वितरित किया जाएगा।

43. ***कृष्ण कुमार गुप्ता बनाम मनोज के साहू (2022) एससीसी ऑनलाइन इला. 528*** में प्रतिवेदित, इस न्यायालय ने सामान्य खंड अधिनियम की धारा 27 और सी.सी. अलवी हाजी बनाम पलापेट्टी मुहम्मद एवं अन्य (2007) 6 एससीसी 555 में प्रतिवेदित वाद में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय पर विचार किया, जहाँ सर्वोच्च न्यायालय ने भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1872 की धारा 114 पर विचार किया और कहा कि यदि किसी व्यक्ति को उसके आवासीय पते पर भेजा गया पंजीकृत पत्र सामान्य रूप से तामील नहीं होता है और वापस कर दिया जाता है, तो इसे केवल प्राप्तकर्ता के अपने आचरण के कारण माना जा सकता है। पंजीकृत डाक द्वारा नोटिस भेजना मकान मालिक द्वारा किरायेदार को नोटिस भेजने का पर्याप्त अनुपालन है। सर्वोच्च

न्यायालय ने यह भी कहा था कि 1872 के अधिनियम की धारा 114 के तहत यह अनुमान लगाया जा सकता है कि प्रत्यर्थी को नोटिस तब तक तामील किया गया था जब तक कि वह खंडन में साक्ष्य प्रस्तुत करके उक्त अनुमान का खंडन नहीं करता। जहाँ सही पते वाला एक पंजीकृत लिफाफा डाक से भेजा जाता है। अनुमान उसके वितरण के संबंध में है जब तक कि उसे बिना दावे के वापस नहीं कर दिया जाता। इस न्यायालय ने **मेसर्स अजीत सीड्स लिमिटेड बनाम के. गोपाल कृष्णैया (2014) 12 एससीसी 685** में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भी भरोसा किया। सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 के तहत जब न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि कार्य के सामान्य क्रम के कारण यह संभाव्य है कि कोई घटना घटित होगी, तो न्यायालय यह अनुमान लगा सकता है कि वह घटना घटित हुई होगी, जब तक कि किसी विशेष मामले में ऐसी परिस्थितियाँ न हों जो यह दर्शाती हों कि कार्य के सामान्य क्रम का पालन नहीं किया गया था। इस प्रकार, धारा 114 न्यायालय को किसी भी ऐसे तथ्य के अस्तित्व की उपधारणा करने में सक्षम बनाती है जिसके बारे में वह सोचता है कि वह घटना घटित हुई होगी, बशर्ते कि प्राकृतिक घटनाओं, मानवीय आचरण, और सार्वजनिक एवं निजी व्यवसाय के सामान्य क्रम को ध्यान में रखा जाए, जो विशेष मामले के तथ्यों से संबंधित हों। परिणामस्वरूप, न्यायालय यह मान सकता है कि कार्य के सामान्य क्रम का पालन किया गया है। डाक द्वारा भेजे गए संचार पर लागू होने पर, धारा 114 न्यायालय को यह मानने में सक्षम बनाती है कि प्राकृतिक घटनाओं के सामान्य क्रम में, संचार प्राप्तकर्ता के पते पर पहुँचाया गया होगा। लेकिन सामान्य खंड अधिनियम की धारा 27 के तहत जो अनुमान लगाया गया है वह कहीं अधिक मजबूत अनुमान है। इसके अलावा, साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 एक सामान्य अनुमान को संदर्भित करती है, सामान्य खंड अधिनियम की धारा 27 एक विशिष्ट अनुमान को संदर्भित करती है। धारा 27 एक अनुमान को जन्म देती है कि नोटिस की तामील तब प्रभावी हुई है जब इसे पंजीकृत डाक द्वारा सही पते पर भेजा गया हो। उक्त धारणा के मद्देनजर, जब यह कहा जाता है कि नोटिस पंजीकृत डाक द्वारा प्राप्तकर्ता के पते पर भेजा गया है, तो यह कहना अनावश्यक है कि नोटिस के बिना तामील हुए वापस आने के बावजूद, यह माना जाता है कि यह तामील हो गया है या प्राप्तकर्ता को नोटिस के बारे में जानकारी है। जब तक प्राप्तकर्ता द्वारा इसके विपरीत साबित नहीं किया जाता, तब तक नोटिस की तामील उस समय हुई मानी जाएगी जिस समय पत्र सामान्य कार्य-क्रम में वितरित किया जाता।

44. इस न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि बिक्री सूचना में भारों का खुलासा न करने संबंधी तर्क अस्वीकार्य है क्योंकि याचिकाकर्ता गारंटर और बंधककर्ता होने के नाते ऐसी आपत्ति नहीं उठा सकता। भार को भार के रूप में स्थापित करने के लिए, याचिकाकर्ताओं को तीन पक्षों को दर्शाना होगा। एक, जिसने भार बनाया, दो, जिसके पास किसी क़ानून के तहत उच्चतर या प्रथम भार है, और तीन, जिसके पास निम्नतर या द्वितीय भार है। यह भी आवश्यक था कि ऐसे भार के कारण, संपत्ति का मूल्य कम हो। हालाँकि, इस मामले में, केवल दो पक्ष हैं। जिस बैंक के पास पहला भार है, उसके पास दूसरा भार भी है। इस मामले में दूसरा पक्ष प्रत्यर्थी संख्या 4, ममता यादव है। इसलिए बिक्री प्रमाणपत्र सभी भारों से मुक्त होकर सही ढंग से जारी किया गया है। यह उप-पंजीयक, लखनऊ के कार्यालय में भी 21.12.2017 को पंजीकृत है, जैसा कि बैंक द्वारा 27.03.2021 को दायर प्रति-शपथपत्र के पृष्ठ-265 से स्पष्ट है। सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी माना है कि

सरफेसी कार्यवाही पूरी होने पर बिक्री प्रमाणपत्र जारी होने के ***बाद, बी. अरविंद कुमार बनाम भारत सरकार एवं अन्य (2007) 5 एससीसी 745 में प्रतिवेदित; शकीना एवं अन्य बनाम बैंक ऑफ इंडिया एवं अन्य (2021) 12 एससीसी 761 में प्रतिवेदित; इंडियन ओवरसीज बैंक बनाम आरसीएम इन्फ्रास्ट्रक्चर लिमिटेड और अन्य ने (2022) 8 एससीसी 516*** में प्रतिवेदित वाद में बिक्री प्रमाणपत्र के पंजीकरण का कोई प्रावधान नहीं है।

45. *बी. अरविंद कुमार (उपरोक्त)* वाद में, सर्वोच्च न्यायालय ने प्रस्तर 10 में कहा कि बिक्री प्रमाणपत्र केवल इस बात का प्रमाण है कि स्वामित्व नीलामी क्रेता के पक्ष में हस्तांतरित किया गया है। यह सर्वमान्य है कि जब एक नीलामी क्रेता ने अपने पक्ष में स्वामित्व और बिक्री की पुष्टि प्राप्त की है, और बिक्री प्रमाणपत्र जारी होने पर, वह ऐसी बिक्री और स्वामित्व का प्रमाण है। न्यायालय से किसी अन्य हस्तांतरण विलेख की परिकल्पना या आवश्यकता नहीं है। न्यायालय द्वारा अधिकृत अधिकारी द्वारा जारी बिक्री प्रमाणपत्र को पंजीकृत करने की आवश्यकता नहीं है। पंजीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 17 (2) (xii) विशेष रूप से यह प्रावधान करती है कि किसी भी खरीदार को किसी सिविल या राजस्व अधिकारी द्वारा सार्वजनिक नीलामी में बेची गई संपत्ति प्रदान किया गया बिक्री प्रमाणपत्र गैर-वसीयती दस्तावेजों की श्रेणी में नहीं आता है जिसके लिए उक्त अधिनियम की धारा 17 (1) की उपधारा (ख) और (ग) के तहत पंजीकरण आवश्यक है।

46. *शकीना बनाम बैंक ऑफ इंडिया (उपरोक्त)* में, सर्वोच्च न्यायालय ने मार्डिया केमिकल्स लिमिटेड बनाम भारत संघ ने (2004) 4 एससीसी 311 में प्रतिवेदित में की गई टिप्पणियों पर भरोसा किया। यह पाया गया कि पंजीकरण अधिनियम की धारा 17 (2) (xii) के अनुसार बिक्री प्रमाणपत्र का पंजीकरण, सार्वजनिक नीलामी के अनुसार बिक्री को पूरा करने और सरफेसी अधिनियम की योजना के तहत बिक्री प्रमाणपत्र जारी करने के लिए अनिवार्य नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया:-

"यह मानते हुए कि संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम के तहत प्रदत्त मोचन का अधिकार सरफेसी अधिनियम की धारा 37 के तहत संरक्षित है, और पंजीकरण अधिनियम की धारा 17 (2) (xiii) के तहत बिक्री प्रमाणपत्र के पंजीकरण के संदर्भ के बिना स्वतंत्र रूप से उपलब्ध है, सरफेसी अधिनियम की धारा 13 (8) के तहत परिकल्पित शर्तों को पूरा करते हुए पहले से की गई बिक्री, सरफेसी अधिनियम की धारा 37 के आधार पर, ऐसे अन्य अधिकारों पर प्रबल होगी, संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम के तहत प्रदत्त मोचन के अधिकार पर तो और भी कम, जो सरफेसी अधिनियम की धारा 37 के तहत संरक्षित है, सरफेसी अधिनियम की धारा 35 के तहत प्रदान किए गए गैर-बाधक खंड के मद्देनजर, क्योंकि सरफेसी अधिनियम की धारा 35 के तहत प्रदान किया गया गैर-बाधक खंड यह स्पष्ट करता है कि भले ही ऐसे अन्य अधिकारों में विसंगतियां हों किसी भी अन्य विधि के तहत प्रदान की गई कार्रवाई जो वर्तमान में लागू है और जो सरफेसी अधिनियम की धारा 37 के तहत संरक्षित है, सरफेसी अधिनियम के प्रावधानों के तहत शुरू की गई कार्रवाई सरफेसी अधिनियम की धारा 35 के अनुसार अधिभावी प्रभाव रखेगी, क्योंकि सरफेसी अधिनियम एक विशेष अधिनियम है, जिसका उद्देश्य हमारे देश की अर्थव्यवस्था के विकास में तेजी लाना है, ऋणदाताओं, जैसे राष्ट्रीयकृत बैंकों, निजी क्षेत्र के बैंकों और अन्य वित्तीय संस्थानों को उन चूककर्ता उधारकर्ताओं से बकाया राशि वसूलने के लिए सशक्त बनाना है जो अपने

द्वारा लिए गए ऋणों के पुनर्भुगतान में बहुत सुस्त हैं, सुरक्षा के प्रवर्तन के लिए शीघ्र कुर्की और फौजदारी के अधिकार का प्रयोग करके, और इसलिए, सरफेसी अधिनियम की धारा 35 और धारा 37 को सरफेसी अधिनियम के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए संयुक्त रूप से पढ़ा जाना चाहिए, लेकिन उसे विफल करने के लिए नहीं, और इसलिए, हम उनके बीच कोई विरोधाभास नहीं दिखता।"

47. इंडियन ओवरसीज बैंक बनाम आर.सी.एम. इंफ्रास्ट्रक्चर लिमिटेड (उपरोक्त) वाद में, सर्वोच्च न्यायालय ने यह पाया है कि शकीना मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने पहले ही यह अभिनिर्धारित किया गया था कि प्रत्यर्थी के पक्ष में जारी बिक्री प्रमाणपत्र के लिए पंजीकरण की आवश्यकता नहीं थी और बिक्री प्रमाणपत्र जारी होने पर बिक्री प्रक्रिया पूरी हो गई थी। ऐसी टिप्पणियों का पालन सर्वोच्च न्यायालय ने ***एस. कार्तिक एवं अन्य बनाम एन. सुभाष चंद जैन एवं अन्य (2022) 10 एससीसी 641*** में प्रतिवेदित के वाद में किया गया।

48. यह न्यायालय, उनके साथ दायर सभी शपथपत्रों और दस्तावेजों का सावधानीपूर्वक अवलोकन करने के बाद, इस विचार पर है कि याचिकाकर्ताओं ने इस न्यायालय में साफ-सुथरे हाथों से संपर्क नहीं किया है और मुकदमे को उनके द्वारा अनावश्यक रूप से लंबा खींचा गया है केवल इस न्यायालय द्वारा उन्हें शुरू में दिए गए अंतरिम आदेश का लाभ उठाने के लिए।

49. ***उड़ीसा राज्य बनाम लक्ष्मी नारायण दास (2023) 15 एससीसी 273*** में, सर्वोच्च न्यायालय ने टिप्पणी की है कि वादी की ओर से गलत बयानी और जानकारी छिपाने को निराश किया जाना चाहिए और गंभीरता से लिया जाना चाहिए। न्यायालय ने प्रस्तर 40, 41, 43, 44, 45, 47 और 49 में निम्नलिखित टिप्पणी की है:-

40. ऐसे वादी जो न्यायालय से महत्वपूर्ण तथ्य छुपाता है, उसके साथ कैसे व्यवहार किया जाए, इस पर इस न्यायालय ने कई मामलों में बार-बार विचार किया है और लगातार यही राय है कि उसे गुण-दोष के आधार पर सुनवाई का भी अधिकार नहीं है।

41. ***अभ्युदय संस्था बनाम भारत संघ [अभ्युदय संस्था बनाम भारत संघ, (2011) 6 एससीसी 145 : (2011) 3 एससीसी (सिविल) 241 : 4 एससीईसी 185]*** में, इस न्यायालय ने उन याचिकाकर्ताओं को राहत देने से इनकार करते हुए, जिन्होंने न्यायालय में साफ-सुथरे हाथों से आवेदन नहीं किया था, निम्नलिखित राय व्यक्त की:

"18. ... हमारे विचार से, अपीलकर्ता गैर-मुकदमे के पात्र हैं क्योंकि उन्होंने न्यायालय में साफ-सुथरे हाथों से आवेदन नहीं किया है। अपीलकर्ताओं के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत अनजाने में हुई गलती का तर्क और उनका यह निवेदन कि न्यायालय उदार दृष्टिकोण अपना सकता है और पहले से किए गए प्रवेशों को नियमित करने का आदेश दे सकता है आकर्षक लगता है, लेकिन स्वीकार करने योग्य नहीं है। प्रत्येक

अपीलकर्ता ने जानबूझकर यह बयान दिया कि उसे एनसीटीई द्वारा मान्यता प्रदान की गई है, जो अनिवार्य रूप से इसका तात्पर्य यह है कि मान्यता अधिनियम की धारा 14 के अनुसार, 2007 के विनियम 7 और 8 के साथ, प्रदान की गई थी। अपीलकर्ताओं के मामलों का प्रबंधन करने वाले लोग निर्दोष, निरक्षर/अशिक्षित व्यक्तियों की श्रेणी में नहीं आते हैं, जो संबंधित वैधानिक प्रावधानों और अदालती प्रक्रिया से परिचित नहीं हैं। यह तथ्य कि प्रत्येक अपीलकर्ता ने विनियम 7 के अनुसार आवेदन प्रस्तुत किया था और जल संसाधन केंद्र, भोपाल द्वारा गठित टीम के निरीक्षण के लिए स्वयं को उपलब्ध कराया था, यह दर्शाता है कि वे इस तथ्य से पूरी तरह अवगत थे कि उन्हें अधिनियम और विनियमावली में निर्दिष्ट शर्तों को पूरा करने के बाद ही मान्यता मिल सकती है और जल संसाधन केंद्र, भोपाल ने उन्हें मान्यता प्रदान नहीं की थी। इसके बावजूद, उन्होंने एक साहसिक बयान दिया कि उन्हें सक्षम प्राधिकारी द्वारा मान्यता प्रदान की गई थी और इस प्रकार वे इस न्यायालय को विशेष अनुमति याचिकाओं पर विचार करने और अंतरिम आदेश पारित करने के लिए राजी करने में सफल रहे। न्यूनतम अपीलकर्ताओं के बारे में जो कहा जा सकता है वह यह है कि उन्होंने न्यायालय में साफ-सुथरे हाथों से प्रवेश नहीं किया है और स्पष्ट रूप से झूठा बयान देकर न्याय की धारा को दूषित करने में सफल रहे हैं। इसलिए, वे संविधान के अनुच्छेद 136 के अंतर्गत राहत के हकदार नहीं हैं। इस दृष्टिकोण को कई उदाहरणों से समर्थन मिलता है।"

(बल दिया गया)

43. ***जी. नारायणस्वामी रेड्डी बनाम कर्नाटक राज्य [जी. नारायणस्वामी रेड्डी बनाम कर्नाटक राज्य, (1991) 3 एससीसी 261]*** में, इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय द्वारा पारित स्थगन आदेश के संबंध में तथ्य को ध्यान में रखते हुए, जिसने भूमि अधिग्रहण अधिकारी द्वारा निर्धारित समयावधि के भीतर निर्णय पारित करने से रोका था, छिपा दिया गया था और उपरोक्त संदर्भ में, यह टिप्पणी की कि:

"2.....विधि में यह सर्वविदित है कि संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत राहत विवेकाधीन है और ऐसी राहत के लिए इस न्यायालय का रुख करने वाले याचिकाकर्ता को तथ्यों का स्पष्ट और पूर्ण खुलासा करना होगा। यदि वह ऐसा करने में विफल रहता है और महत्वपूर्ण तथ्यों को दबाता है, तो उसका आवेदन खारिज किए जाने योग्य है। तदनुसार, हम विशेष अनुमति याचिकाओं को खारिज करते हैं।"

44. **दलीप सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [दलीप सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2010) 2 एससीसी 114 : (2010) 1 एससीसी (सिविल) 324],** इस न्यायालय ने जीवन मूल्यों में उत्तरोत्तर गिरावट देखी और कहा:

"1. कई शताब्दियों तक भारतीय समाज ने जीवन के दो मूल मूल्यों को संजोया अर्थात "सत्य" और "अहिंसा"। महावीर, गौतम बुद्ध और महात्मा गांधी ने लोगों को इन मूल्यों को अपने दैनिक जीवन में आत्मसात करने के लिए मार्गदर्शन किया। सत्य, न्याय-प्रणाली का एक अभिन्न अंग था जो स्वतंत्रता-पूर्व काल में प्रचलित थी और लोग परिणामों की परवाह किए बिना अदालतों में सच बोलने में गर्व महसूस करते थे। हालाँकि, स्वतंत्रता के बाद के काल में हमारी मूल्य प्रणाली में भारी परिवर्तन हुए हैं। भौतिकवाद ने पुराने लोकचारों को ढक दिया

है और व्यक्तिगत लाभ की चाहत इतनी तीव्र हो गई है कि मुकदमेबाजी में शामिल लोग न्यायिक कार्यवाही में झूठ, गलत बयानी और तथ्यों को दबाने का सहारा लेने से नहीं हिचकिचाते।

2. पिछले 40 वर्षों में, वादियों का एक नया पंथ उभरा है। जो इस पंथ से जुड़े लोग सत्य का कोई सम्मान नहीं करते। वे अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए बेशर्मी से झूठ और अनैतिक साधनों का सहारा लेते हैं। वादियों के इस नए पंथ द्वारा प्रस्तुत चुनौती का सामना करने के लिए, अदालतों ने समय-समय पर नए नियम बनाए हैं और अब यह अच्छी तरह से स्थापित हो चुका है कि जो वादी न्याय की धारा को प्रदूषित करने का प्रयास करता है या न्याय के शुद्ध स्रोत को दूषित हाथों से छूता है, वह अंतरिम या अंतिम किसी भी राहत का हकदार नहीं है।

(बल दिया गया)

45. ***मोती लाल सोंगारा बनाम प्रेम प्रकाश [मोती लाल सोंगारा बनाम प्रेम प्रकाश, (2013) 9 एससीसी 199 : (2013) 3 एससीसी (क्रि) 872***] में, इस न्यायालय ने, न्यायालय के समक्ष तथ्यों को छिपाने से संबंधित मुद्दे पर विचार करते हुए, यह टिप्पणी की कि "न्यायालय कोई प्रयोगशाला नहीं है जहाँ बच्चे खेलने आते हैं", और निम्नलिखित राय दी:

"<u>.....कोई भी व्यक्ति जो न्यायालय में तथ्यों को छिपाने का प्रयास करता है, वास्तव में न्यायालय के साथ धोखाधड़ी कर रहा है</u>, और यह कहावत लागू होती है कि सत्य को दबाना, मिथ्यात्व को प्रकट करने के समान है। हम ऐसा कहने के लिए बाध्य हैं क्योंकि पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष तथ्यों को जानबूझकर छिपाया गया है। यह निश्चितता के साथ कहा जा सकता है कि प्रत्यर्थी-अभियुक्त ने इस तरह के तथ्यात्मक दबाव से लाभ। धोखाधड़ी का इरादा स्पष्ट रूप से स्पष्ट है। वास्तव में, उसने अपनी अज्ञानता का साहस दिखाया है और संदेह करने की कोशिश की है।

20. जैसा कि हमने देखा, उच्च न्यायालय ने इस सिद्धांत को लागू किया है कि 'जब बुनियादी ढाँचा ढहता है, तो अधिरचना ढहने के लिए बाध्य है'। हालाँकि, चूँकि यह आदेश धोखाधड़ी करके और लाभ प्राप्त करने के लिए न्यायालय के समक्ष भौतिक तथ्यों को दबाकर प्राप्त किया गया है, इसलिए उक्त आदेश को बरकरार नहीं रखा जा सकता।

(बल दिया गया)

47. ***इस न्यायालय द्वारा चंद्र शशि बनाम अनिल कुमार वर्मा [चंद्र शशि बनाम अनिल कुमार वर्मा, (1995) 1 एससीसी 421 : 1995 एससीसी (क्रि) 239]*** में यह भी निर्धारित किया गया है कि जो व्यक्ति न्यायालय को धोखा देने का प्रयास करता है, वह न्याय प्रशासन में हस्तक्षेप करता है और उसे न्यायालय की अवमानना का दोषी ठहराया जा सकता है। इस मामले में, एक पति, जिसने अपनी पत्नी की वैवाहिक कार्यवाही के स्थानांतरण की मांग का विरोध करने के लिए एक फर्जी दस्तावेज दायर किया था, को न्यायालय की अवमानना का दोषी पाया गया और उसे दो सप्ताह के कारावास की सजा सुनाई गई। यह निम्नलिखित रूप में देखा गया:

***

"1. न्याय प्रशासन की धारा अदूषित रहनी चाहिए ताकि न्यायालय के वातावरण की शुद्धता राज्य के सभी अंगों को जीवन शक्ति प्रदान कर सके। इसलिए, न्यायिक वातावरण को प्रदूषित करने वालों का अच्छी तरह से ध्यान रखा जाना आवश्यक है ताकि न्यायालय के वातावरण की उत्कृष्टता बनी रहे; ताकि वह निष्पक्ष रूप से और सभी संबंधितों की संतुष्टि के साथ न्याय कर सके।

2. जो कोई भी धोखाधड़ी का सहारा लेता है, न्यायिक कार्यवाही को विचलित करता है; या यदि कोई भी कार्य अप्रत्यक्ष उद्देश्य से किया जाता है, तो वह न्याय प्रशासन में हस्तक्षेप करता है। ऐसे व्यक्तियों के साथ उचित व्यवहार किया जाना आवश्यक है, न केवल उन्हें उनके द्वारा किए गए गलत कार्यों के लिए दंडित करने के लिए, बल्कि दूसरों को भी ऐसे कार्यों में लिप्त होने से रोकने के लिए जो न्याय प्रशासन प्रणाली में लोगों के विश्वास को हिला देते हैं।"

(बल दिया गया)

49. **धनंजय शर्मा बनाम हरियाणा राज्य [धनंजय शर्मा बनाम हरियाणा राज्य, (1995) 3 एससीसी 757: 1995 एससीसी (क्रि) 608]** में, झूठा शपथपत्र दायर करना अवमानना क्षेत्राधिकार में कार्रवाई शुरू करने का आधार था और संबंधित व्यक्तियों को इसके लिए दंडित किया गया था।

50. **के. जयराम बनाम बीडीए, (2022) 12 एससीसी 815** में, सर्वोच्च न्यायालय ने यह टिप्पणी की:-

10. यह सर्वविदित है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग किया जाने वाला क्षेत्राधिकार असाधारण, न्यायसंगत और विवेकाधीन है और यह अनिवार्य है कि रिट न्यायालय में आने वाला याचिकाकर्ता साफ-सुथरे हाथों से आए और बिना कुछ छिपाए या दबाए सभी तथ्य न्यायालय के सामने रखे। एक वादी वाद से संबंधित सभी तथ्यों को बताने के लिए बाध्य है। यदि वह दूसरे पक्ष पर लाभ प्राप्त करने के लिए कुछ महत्वपूर्ण या प्रासंगिक सामग्री को छुपाता है, तो वह न्यायालय के साथ-साथ विपक्षी पक्षों के साथ भी धोखाधड़ी करने का दोषी होगा, जिसे स्वीकार नहीं किया जा सकता।

11. इस न्यायालय **ने प्रेस्टीज लाइट्स लिमिटेड बनाम एसबीआई [प्रेस्टीज लाइट्स लिमिटेड बनाम एसबीआई, (2007) 8 एससीसी 449]** में यह अभिनिर्धारित किया है कि विशेषाधिकार उपचार स्वाभाविक रूप से उपलब्ध नहीं है। असाधारण शक्ति का प्रयोग करते समय, एक रिट न्यायालय उस पक्ष के आचरण को ध्यान में रखेगा जो ऐसे क्षेत्राधिकार का आह्वान कर रहा है। यदि आवेदक पूरे तथ्यों का खुलासा नहीं करता है या प्रासंगिक सामग्री को दबाता है या न्यायालय को गुमराह करने का अन्यथा दोषी है, तो न्यायालय मामले का निर्णय सुनाए बिना ही मुकदमा खारिज कर सकती है। यह इस प्रकार अभिनिर्धारित किया गया:

"33. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि यद्यपि अपीलकर्ता कंपनी ने संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया था, लेकिन उसने न्यायालय के समक्ष सभी तथ्य स्पष्ट रूप से नहीं बताए थे। उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत विवेकाधीन और असाधारण क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर रहा है। इसके अलावा, एक न्यायालय एक समता न्यायालय भी है। इसलिए, यह अत्यंत आवश्यक है कि

जब कोई पक्ष उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाए, तो उसे बिना किसी संकोच के सभी तथ्य न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने चाहिए। यदि आवेदक की ओर से महत्वपूर्ण तथ्यों को छिपाया गया है या न्यायालय के समक्ष तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत किया गया है, तो रिट न्यायालय याचिका पर विचार करने से इनकार कर सकता है और मामले के गुण-दोष पर विचार किए बिना उसे खारिज कर सकता है।"

(बल दिया गया)

13. **के.डी. शर्मा बनाम सेल में [के.डी. शर्मा बनाम सेल, (2008) 12 एससीसी 481],** प्रस्तर 36 और 38 में यह अभिनिर्धारित किया गया:-

36. विशेषाधिकार उपाय कोई स्वाभाविक बात नहीं है। असाधारण शक्ति का प्रयोग करते समय एक रिट न्यायालय निश्चित रूप से उस पक्ष के आचरण को ध्यान में रखेगा जो न्यायालय के क्षेत्राधिकार का आह्वान करता है। यदि आवेदक कोई झूठा बयान देता है या महत्वपूर्ण तथ्य को दबाता है या न्यायालय को गुमराह करने का प्रयास करता है, तो न्यायालय केवल इसी आधार पर मामले को खारिज कर सकता है और यह कहकर मामले के गुण-दोष पर विचार करने से इनकार कर सकता है कि, 'आपके द्वारा किए गए कार्य के कारण हम आपके आवेदन पर सुनवाई नहीं करेंगे।' यह नियम व्यापक जनहित में बेईमान वादियों को न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग करने से रोकने के लिए विकसित किया गया है।

38. रिट क्षेत्राधिकार का मूल आधार सत्य और पूर्ण (सही) तथ्यों का प्रकटीकरण है। यदि महत्वपूर्ण तथ्यों को दबाया या विकृत किया जाता है, तो रिट न्यायालयों का कार्य और उनका प्रयोग असंभव हो जाएगा। याचिकाकर्ता को बिना किसी शर्त के मांगी गई राहत से संबंधित सभी तथ्यों का खुलासा करना होगा। ऐसा इसलिए है क्योंकि "न्यायालय विधि जानता है, लेकिन तथ्य नहीं"।

51. **उद्यमी एवं खादी ग्रामोद्योग कल्याण संस्था बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [उद्यमी एवं खादी ग्रामोद्योग कल्याण संस्था बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2008) 1 एससीसी 560 : (2008) 1 एससीसी (सिव) 359]** में, सर्वोच्च न्यायालय ने दोहराया है कि रिट उपाय एक न्यायसंगत है और किसी व्यक्ति को उच्च न्यायालय में जाने के लिए साफ हाथों से आना चाहिए। ऐसे व्यक्ति को किसी भी महत्वपूर्ण तथ्य को दबाना नहीं चाहिए, बल्कि बार-बार विधिक कार्यवाही का सहारा भी नहीं लेना चाहिए, जो विधिक प्रक्रिया का दुरुपयोग है।

52. **ए. षणमुगम बनाम अरिया क्षत्रिय राजकुला वम्सथु मदालय नंदवन परिपलानी संगम, (2012) 6 एससीसी 430 : (2012) 3 एससीसी (सिविल) 735 : 2012 एससीसी ऑनलाइन एससी 384** में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की है:-

"43.4. जब न्यायालय को दलीलों और दस्तावेजों में झूठ, छिपाव, विकृति, बाधा या भ्रम का पता चलता है, तो न्यायालय को पूर्ण क्षतिपूर्ति के अलावा उचित लागत भी लगानी चाहिए। न्यायालय को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि न्याय के मंदिर में गलत काम करने वालों को कोई प्रोत्साहन न मिले। सत्य ही न्याय का आधार है और सत्य को कायम रखना सभी का साझा प्रयास होना चाहिए और किसी को भी न्याय की धारा को प्रदूषित करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।"

(बल दिया गया)

53. प्रत्यर्थी संख्या 4 के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि यद्यपि नीलामी क्रेता द्वारा पूरा भुगतान कर दिया गया है और बिक्री प्रमाण पत्र उसके पक्ष में जारी कर दिया गया है, परंतु याचिकाकर्ताओं द्वारा तुच्छ आधारों पर दायर किए गए लंबित मुकदमे के कारण संपत्ति का वास्तविक भौतिक कब्ज़ा उसे नहीं दिया गया है।

54. प्रत्यर्थी सं. 4 के अधिवक्ता ने अपने लिखित तर्कों में यह तथ्य दर्ज किया है कि प्रत्यर्थी सं. 4 किराए के परिसर में रह रही है और अपने द्वारा खरीदी गई संपत्ति का लाभ नहीं उठा पा रही है, जिससे वह मध्यवर्ती लाभ की भी हकदार है। यह कहा गया है कि नीलामी क्रेता पिछले सात वर्षों से संपत्ति खरीदने के लिए लिए गए ऋण के लिए भारतीय बैंक को लगातार ईएमआई का भुगतान कर रहा है और उसे भारी आर्थिक नुकसान हुआ है और वह वास्तविक नुकसान की भरपाई का हकदार है। लिखित प्रस्तुतियों में दिए गए सारणीबद्ध चार्ट के रूप में मौद्रिक हानि का उल्लेख किया गया है, जिसमें प्रत्यर्थी संख्या 4 द्वारा जनवरी 2018 से 10% वार्षिक वृद्धि के साथ भुगतान किया गया मध्यवर्ती लाभ, मानसिक पीड़ा और उत्पीड़न, विधिक खर्च, किराया, बैंक ऋण पर चुकाया गया ब्याज और गृह कर, जल कर और बिजली शुल्क आदि, संपत्ति के मूल्यह्रास के लिए अन्य खर्चों के अलावा, सभी का विस्तार से वर्णन किया गया है। कुल हानि एक करोड़ रुपये से अधिक आंकी गई है।

55. यह न्यायालय, पूर्वोक्त न्यायिक उदाहरणों का अध्ययन करने के बाद, जो रिट क्षेत्राधिकार के एक न्यायसंगत क्षेत्राधिकार होने और वादी की इस न्यायालय में तथ्यों का स्पष्ट और पूर्ण प्रकटीकरण करने, किसी भी सक्रिय गलत बयानी और भौतिक तथ्यों को दबाने से बचने के लिए, संबंधित हैं, पाता है कि याचिकाकर्ताओं ने यह रिट याचिका जानबूझकर न्याय की धारा को प्रदूषित करने के प्रयास में दायर की है। इस न्यायालय ने न केवल बैंक द्वारा अपने शपथपत्रों में दर्ज अभिलेखों और दस्तावेजी साक्ष्यों पर आधारित दलीलों में गलत बयानी पाई है, बल्कि यह भी पाया है कि मुकदमे को जानबूझकर लंबा खींचने का प्रयास किया गया है ताकि याचिकाकर्ताओं को लखनऊ के सेक्टर 13, इंदिरा नगर विस्तार योजना के मकान संख्या 88 पर कब्जा जारी रखने में मदद मिल सके, जबकि संपत्ति की नीलामी 21.12.2017 को ही हो चुकी है।

56. न केवल न्यायालय का कीमती समय, जो वास्तव में पीड़ित वादियों के लिए उपयोग किया जा सकता था, बर्बाद हुआ है, बल्कि प्रत्यर्थी संख्या 4 को भी गंभीर रूप से नुकसान उठाना पड़ा है।

57. इस न्यायालय ने गुण-दोष के आधार पर भी याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्कों को मान्य नहीं पाया है। अतः, यह रिट याचिका खारिज किए जाने योग्य है और इसे 25 लाख रुपये (केवल पच्चीस लाख रुपये) की लागत के साथ **खारिज** किया जाता है, जो इस न्यायालय के समक्ष तीन माह के भीतर देय होगी। यह डिमांड ड्राफ्ट **वरिष्ठ रजिस्ट्रार उच्च न्यायालय लखनऊ पीठ** के पक्ष में बनाया जाएगा।

58. ऐसा न करने की स्थिति में, इस न्यायालय के वरिष्ठ रजिस्ट्रार जिला मजिस्ट्रेट लखनऊ को एक वसूली प्रमाण पत्र जारी करेंगे, जो याचिकाकर्ताओं की चल और अचल संपत्तियों से भू-राजस्व के बकाया के रूप में ऐसी लागत वसूल करेंगे और उसे लखनऊ स्थित उच्च न्यायालय में जमा करेंगे।

59. जमा की गई ऐसी लागतें वरिष्ठ रजिस्ट्रार द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 4, अर्थात् श्रीमती ममता यादव के पक्ष में प्रत्यर्थी संख्या 4 द्वारा इस संबंध में प्रस्तुत किए गए उचित आवेदन पर जारी की जाएंगी।

60. चूँकि यह रिट याचिका खारिज कर दी गई है और डीआरएटी का आदेश बरकरार है, इसलिए याचिकाकर्ता आज से एक माह के भीतर संबंधित संपत्ति खाली करने के लिए बाध्य हैं।

(2025) 4 ILRA 533

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र

रिट सी संख्या 41221/2024

जयराज सिहं **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...प्रत्यर्थीगण**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
श्री पुलक गांगुली

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता:
मुख्य स्थायी अधिवक्ता, श्री सुनील कुमार सिंह

सिविल विधि - उ.प्र. राजस्व संहिता, 2006 - धारा 144 - भू-धृतिधारक द्वारा घोषणात्मक वाद - उ.प्र. राजस्व संहिता, 2006, धारा 76 - उत्तर प्रदेश ज़मींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 - धारा 131ए एवं 131बी - हस्तांतरणीय अधिकारों वाले भूमिधर को हस्तांतरणीय अधिकारों वाले भूमिधर का दर्जा प्रदान करना - भले ही किसी व्यक्ति ने हस्तांतरणीय अधिकारों वाले भूमिधर का दर्जा प्राप्त कर लिया हो, ऐसे पहलू पर संहिता, 2006 की धारा 144 के अंतर्गत उपयुक्त वाद कार्यवाही में उप-खण्ड अधिकारी द्वारा न्यायनिर्णयन आवश्यक है, जहाँ राज्य और ग्राम पंचायत दोनों आवश्यक पक्ष होंगे और कार्यवाही में अपनी बात रखेंगे, न कि

अनुवादित

केवल एक आवेदन पर प्रशासनिक पक्ष की ओर से - उप-खण्ड अधिकारी के पास प्रशासनिक पक्ष में भूमिधरी अधिकारों की घोषणा प्रदान करने की कोई वैधानिक क्षमता नहीं है, अतः उक्त राहत के लिए कोई परमादेश रिट जारी नहीं की जा सकती - पक्षकार उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 144 के अंतर्गत वैधानिक कार्यवाही शुरू करने के लिए सदैव स्वतंत्र है। (प्रस्तर 8, 11, 15)

खारिज। (ई-5)

(माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र ,द्वारा प्रदत्त)

<u>क्या प्रशासनिक पक्ष के उप-खण्ड अधिकारी द्वारा भूमिधारी अधिकार प्रदान या घोषित किए जा सकते हैं</u>

1. याचिकाकर्ता की ओर से श्री पुलक गांगुली के होल्डिंग ब्रीफ विद्वान अधिवक्ता श्री एच.सी. द्विवेदी, राज्य प्रत्यर्थीगण की ओर से विद्वान स्थायी अधिवक्ता और गाँव सभा की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री सुनील कुमार सिंह को सुना गया।

<u>आग्रहित राहत:</u>

2. रिट याचिका में प्रार्थना की गई है कि उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 (संक्षेप में 'संहिता, 2006') की धारा 76 के साथ पठित उत्तर प्रदेश ज़मींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (संक्षेप में 'अधिनियम, 1950') की धारा 131ए और 131बी के मद्देनजर प्रत्यर्थीगण को याचिकाकर्ता के पक्ष में पूर्ण भूमिधरी अधिकार प्रदान करने का आदेश देते हुए एक परमादेश रिट जारी की जाए। इसके अतिरिक्त, संबंधित उप-खण्ड अधिकारी के समक्ष याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 07.05.2022 और 15.06.2024 को प्रस्तुत किए गए अभ्यावेदनों पर विचार करने का निर्देश जारी करने का अनुरोध किया गया है।

<u>याचिकाकर्ता का तर्क</u>

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि याचिकाकर्ता के पक्ष में प्रदान किए गए पट्टे के संबंध में कुछ पूर्व कार्यवाहियों के कारण और समय बीतने के साथ, याचिकाकर्ता ने हस्तांतरणीय अधिकारों सहित भूमिधर का दर्जा प्राप्त कर लिया है। इस संबंध में, 1950 के अधिनियम की धारा 131ए और 131बी का संदर्भ दिया गया है और संहिता-2006 की धारा 76 का हवाला देते हुए, यह आग्रह किया गया है कि इसकी उपधारा (2) के अनुसार, संहिता, 2006 के प्रारंभ होने से पूर्व अहस्तांतरणीय अधिकारों सहित भूमिधर का दर्जा प्राप्त करने के पाँच वर्ष की अवधि समाप्त होने के पश्चात, भू-स्वामी हस्तांतरणीय अधिकारों सहित भूमिधर का दर्जा प्राप्त कर लेगा, इसलिए उसे ऐसे अधिकार उप-खण्ड अधिकारी द्वारा प्रदान किए जाने चाहिए।

<u>विश्लेषण</u>:

असंशोधित

4. न्यायालय ने प्रस्तुत प्रस्तुतियों पर विचार किया है और उत्तर प्रदेश ज़मींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 तथा उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 के प्रावधानों का भी अध्ययन किया है। वाद के प्रयोजनार्थ, अधिनियम, 1950 की धारा 131ए और 131बी को निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया जाता है:-

"131ए. कुछ परिस्थितियों में गाँव सभा या राज्य सरकार की भूमि पर भूमिधरी अधिकार।- धारा 132 और धारा 133-ए के प्रावधानों के अधीन, कैमूर रेंज के दक्षिण में जिला मिर्जापुर के भाग में, भारतीय वन अधिनियम, 1927 की धारा 20 के अंतर्गत अधिसूचित भूमि के अलावा, धारा 117 के अंतर्गत गाँव सभा में निहित या राज्य सरकार से संबंधित किसी भी भूमि पर कृषिगत कब्जा रखने वाला प्रत्येक व्यक्ति, 30 जून, 1978 से पूर्व **ऐसी भूमि के अहस्तांतरणीय अधिकारों के साथ भूमिधर माना जाएगा।** :

परन्तु जहां किसी व्यक्ति के कृषि कब्जे की भूमि, उत्तर प्रदेश में उसके द्वारा धारित किसी अन्य भूमि के साथ मिलकर, उत्तर प्रदेश भूमि जोत अधिकतम सीमा अधिरोपण अधिनियम, 1960 के अधीन निर्धारित अधिकतम सीमा से अधिक है, **वहां अहस्तांतरणीय अधिकारों वाले भूमिधर के अधिकार** ऐसे व्यक्ति के पक्ष में प्रथम वर्णित भूमि के उतने क्षेत्र के संबंध में प्रोद्भूत होंगे, जो उसके द्वारा धारित ऐसी अन्य भूमि के साथ मिलकर, उस पर लागू अधिकतम सीमा से अधिक न हो, और उक्त क्षेत्र का सीमांकन पूर्वोक्त अधिनियम में अधिकथित सिद्धांतों के अनुसार विहित रीति से किया जाएगा।

131ख. अहस्तांतरणीय अधिकारों वाले भूमिधर का दस वर्ष पश्चात् हस्तान्तरणीय अधिकारों वाला भूमिधर बनना।- (1) प्रत्येक व्यक्ति जो उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार (संशोधन) अधिनियम, 1995 के प्रारम्भ होने के ठीक पूर्व अहस्तांतरणीय अधिकारों वाला भूमिधर था और दस वर्ष या उससे अधिक अवधि तक ऐसा भूमिधर रहा हो, **ऐसे प्रारम्भ पर हस्तान्तरणीय अधिकारों वाला भूमिधर बन जाएगा।**

(2) प्रत्येक व्यक्ति जो उपधारा (1) में निर्दिष्ट प्रारम्भ पर अहस्तान्तरणीय अधिकारों वाला भूमिधर है या ऐसे प्रारम्भ के पश्चात् अहस्तान्तरणीय अधिकारों वाला भूमिधर बन जाता है, अहस्तान्तरणीय अधिकारों वाला भूमिधर बनने से दस वर्ष की अवधि की समाप्ति पर **हस्तान्तरणीय अधिकारों वाला भूमिधर बन जाएगा।**

(3) ...?"

(न्यायालय द्वारा बल)

5. उपर्युक्त प्रावधानों के मात्र अवलोकन से यह प्रतिबिम्बित होगा कि अधिनियम, 1950 में उन लोगों को हस्तांतरणीय अधिकारों के साथ भूमिधर का दर्जा प्रदान करने का प्रावधान था, जो समय के साथ अधिनियम, 1950 में किए गए संशोधनों के अनुसरण में अस्तित्व में आए कुछ प्रावधानों के संदर्भ में अहस्तांतरणीय अधिकारों के साथ भूमिधर थे।

6. जहाँ तक संहिता, 2006 की धारा 76 का संबंध है, उसे निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया जाता है:-

"76. अहस्तांतरणीय अधिकारों के साथ भूमिधर। - (1) निम्नलिखित में से किसी भी वर्ग से संबंधित प्रत्येक व्यक्ति **अहस्तांतरणीय अधिकारों के साथ भूमिधर कहलाएगा** और उसके पास इस संहिता द्वारा या इसके अधीन ऐसे भूमिधर को प्रदान किए गए या उस पर लगाए गए सभी अधिकार होंगे और वह उन सभी दायित्वों के अधीन होगा, अर्थात्:-

(क) से (ङ) ..

(2) प्रत्येक व्यक्ति जो **इस संहिता के प्रारंभ से ठीक पहले अहस्तांतरणीय अधिकारों वाला भूमिधर था** और [पांच वर्ष] या उससे अधिक की अवधि तक ऐसा भूमिधर रहा था, ऐसे प्रारंभ पर हस्तांतरणीय अधिकारों वाला भूमिधर ***बन जाएगा***।

(3) प्रत्येक व्यक्ति जो [उपधारा (1) और (2)] में निर्दिष्ट प्रारंभ पर अहस्तांतरणीय अधिकारों वाला भूमिधर था या ऐसे प्रारंभ के बाद अहस्तांतरणीय अधिकारों वाला भूमिधर बन जाता है, अहस्तांतरणीय अधिकारों वाला भूमिधर बनने से [पांच वर्ष] की समाप्ति के बाद हस्तांतरणीय अधिकारों वाला भूमिधर **बन जाएगा।**

(4) ...?"

7. धारा 76 की उपधारा (2) में यह प्रावधान है कि प्रत्येक व्यक्ति जो इस संहिता के प्रारंभ से ठीक पूर्व अहस्तांतरणीय अधिकारों वाला भूमिधर था और पांच वर्ष या उससे अधिक अवधि तक ऐसा भूमिधर रहा है, ऐसे प्रारंभ पर हस्तांतरणीय अधिकारों वाला भूमिधर **बन जाएगा।**

8. उपर्युक्त प्रावधानों को ध्यानपूर्वक पढ़ने पर पता चलता है कि तीनों प्रावधान; अधिनियम, 1950 की धारा 131ए, 131बी और संहिता, 2006 की धारा 76, संबंधित भू-धृतिधारक को हस्तांतरणीय अधिकारों वाले भूमिधर का दर्जा प्रदान करने की बात करते हैं, तथापि, **ये प्रावधान ऐसा दर्जा प्रदान करने या ऐसी घोषणा करने के लिए किसी मंच का प्रावधान नहीं करते हैं। निश्चित रूप से, प्रशासनिक पक्ष के उप-खण्ड अधिकारी या कोई अन्य अधिकारी, उपरोक्त प्रावधानों के अंतर्गत संबंधित भू-धृतिधारक के पक्ष में ऐसी घोषणा प्रदान करने के लिए सशक्त नहीं माना गया है।**

9. न्यायालय अब अधिकारों की घोषणा प्रदान करने वाले वैधानिक प्रावधानों पर विचार करता है और पाता है कि संहिता, 2006 की धारा 144, उस खातेदार द्वारा दायर किए जाने वाले **घोषणात्मक वाद** से संबंधित है, जो किसी जोत या उसके भाग का भूमिधर होने का दावा करता है। प्रावधान इस प्रकार है:-

"144. खातेदारों द्वारा घोषणात्मक वाद.- (1) कोई भी व्यक्ति, जो किसी जोत या उसके भाग का भूमिधर या असामी होने का **दावा** करता है, चाहे अनन्य रूप से या किसी अन्य व्यक्ति के साथ संयुक्त रूप से, ऐसी जोत या भाग में **अपने अधिकारों की घोषणा के लिए वाद दायर** कर सकता है।

(2) उप-धारा (1) के अंतर्गत निम्नलिखित द्वारा या उनकी ओर से दायर किए गए प्रत्येक वाद में:-

(क) भूमिधर, राज्य और [ग्राम पंचायत] आवश्यक पक्षकार होंगे;

(ख) असामी, भूमि-धारक एक आवश्यक पक्षकार होगा।"

10. धारा 144 को सरल और स्पष्ट रूप से पढ़ने पर यह प्रतिबिम्बित होगा कि कोई व्यक्ति जो किसी जोत या उसके भाग का भूमिधर या असामी होने का दावा करता है, वह ऐसी जोत या उसके भाग में अपने अधिकारों की घोषणा के लिए वाद दायर कर सकता है और यदि ऐसी कार्यवाही शुरू की जाती है, तो उत्तर प्रदेश राज्य और ग्राम पंचायत आवश्यक पक्षकार होंगे।

<u>अभिनिर्धारित</u>:

11. संहिता, 2006 की योजना के मद्देनजर, भले ही याचिकाकर्ता ने हस्तांतरणीय अधिकारों के साथ भूमिधर का दर्जा प्राप्त कर लिया हो, ऐसे पहलू पर संहिता, 2006 की धारा 144 के अंतर्गत उपयुक्त वाद कार्यवाही में उप-खण्ड अधिकारी द्वारा न्यायनिर्णयन की आवश्यकता है, जहाँ राज्य के साथ-साथ ग्राम पंचायत भी आवश्यक पक्षकार होंगे और कार्यवाही में , न कि केवल एक आवेदन पर प्रशासनिक पक्ष में अपनी बात रखेंगे।

12. उपरोक्त के मद्देनजर, हस्तांतरणीय अधिकारों के साथ भूमिधर के रूप में याचिकाकर्ता के दावे के गुण-दोष का परीक्षण किए बिना, यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि उप-खण्ड अधिकारी के पास प्रशासनिक पक्ष पर ऐसी घोषणा देने का कोई अधिकार नहीं है, हालांकि, वह निश्चित रूप से संहिता, 2006 की धारा 144 के अंतर्गत उचित वैधानिक कार्यवाही में ऐसी घोषणा देने के लिए सक्षम है।

<u>परमादेश जारी नहीं किया जा सकता:-</u>

13. जहां तक परमादेश रिट का संबंध है**, ओरिएंटल बैंक ऑफ कॉमर्स बनाम सुंदर लाल जैन एवं अन्य (2008) 2 एससीसी 280** में, सर्वोच्च न्यायालय ने **बिहार ईस्टर्न गांगेय फिशरमैन कोऑपरेटिव सोसाइटी लिमिटेड बनाम सिपाही सिंह (1977) 4 एससीसी 145 ; लेखराज सथरामदास लालवानी बनाम एन.एम. शाह, एआईआर 1966 एससी 334 और डॉ. उमा कांत सरन बनाम बिहार राज्य 1993(1) एससीसी 485** में अपने पूर्व निर्णयों का हवाला देते कहा कि परमादेश रिट केवल तभी जारी की जा सकती है जब संबंधित अधिकारी पर कोई वैधानिक कर्तव्य आरोपित किया गया हो और वह अधिकारी वैधानिक दायित्व का निर्वहन करने में विफल रहा हो।"

14. विधि की उपरोक्त व्याख्या से यह स्पष्ट होता है कि परमादेश रिट केवल मांगने पर तब तक जारी नहीं की जा सकती जब तक कि पूर्व शर्तें पूरी न हों। वर्तमान वाद में ऐसी सुपरिभाषित शर्तें पूरी नहीं होतीं है।

15. चूंकि यह पाया गया है कि उप-खण्ड अधिकारी के पास प्रशासनिक पक्ष पर भूमिधरी अधिकारों की घोषणा करने की कोई वैधानिक क्षमता नहीं है, इसलिए प्रार्थना के अनुसार परमादेश रिट जारी नहीं की जा सकती। हालांकि, याचिकाकर्ता को उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 144 के अंतर्गत वैधानिक कार्यवाही शुरू करने की हमेशा स्वतंत्रता है।

16. तदनुसार, रिट याचिका का **निस्तारण** उपर्युक्त स्वतंत्रता के साथ किया जाता है।

(2025) 4 ILRA 537

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 28.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति पीयूष अग्रवाल

रिट सी संख्या 41272/2024

मुरादाबाद बरेली एक्सप्रेसवे लिमिटेड **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...प्रत्यर्थीगण**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
श्री प्रशांत मिश्रा, तरुण अग्रवाल

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता:
मुख्य स्थायी अधिवक्ता

अनुवादित

सिविल विधि - भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 - धारा 3, 19(क), 33, 33(4) एवं 33(5) - रिट याचिका - स्टाम्प की कमी के एक वाद में जिलाधिकारी द्वारा परिसीमा की आपत्ति को खारिज करने के आक्षेपित आदेश को चुनौती - एनएच-24 के रखरखाव के लिए याचिकाकर्ता और एनएचएआई के बीच वर्ष 2010 में निष्पादित एक रियायत समझौता (लिखत) - स्टाम्प शुल्क की कमी के लिए राज्य प्राधिकारियों द्वारा कार्यवाही शुरू की गई - वाद 2020 में दर्ज किया गया - याचिकाकर्ता द्वारा देय स्टाम्प शुल्क में कमी का निर्धारण करते हुए 2022 में आदेश पारित किया गया - याचिकाकर्ता ने एक रिकॉल प्रार्थना पत्र दायर किया - खारिज कर दिया गया - रिट याचिका - मामले को नए सिरे से निर्णय के लिए जिलाधिकारी के पास वापस भेज दिया गया, जिसमें याचिकाकर्ता को परिसीमा और क्षेत्राधिकार की दलील उठाने की स्वतंत्रता दी गई - आक्षेपित आदेश पारित - परिसीमा के संबंध में याचिकाकर्ता के तर्क को खारिज करते हुए - वर्तमान रिट याचिका - न्यायालय ने पाया कि, विधायिका ने लिखत के निष्पादन की तिथि से 8 वर्ष से अधिक समय तक परिसीमा अवधि नहीं बढ़ाई थी - समझौता 2010 में निष्पादित किया गया था, - 2020 में अनुमति और नोटिस जारी किया गया जो कि परिसीमा की वैधानिक अवधि से परे था - अभिनिर्धारित किया गया कि कार्यवाही क्षेत्राधिकार के बाहर थी - रिट याचिका स्वीकार किया गया - राज्य प्राधिकारियों को याचिकाकर्ता द्वारा जमा की गई अतिरिक्त राशि को चार सप्ताह के भीतर 4% ब्याज सहित वापस करने का निर्देश जारी किया गया।

रिट याचिका स्वीकार किया गया। (ई-11)

<u>संदर्भित वादों की सूची:</u>

1. सोम दत्त बिल्डर्स लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य - 2005 (3) ईएससी 1939 (इला),
2. हरभजन सिंह बनाम आयुक्त, मुरादाबाद मंडल, मुरादाबाद एवं अन्य - 2022(5) एडीजे 71,
3. मेसर्स रीवा टोलवे प्राइवेट लिमिटेड बनाम मध्य प्रदेश राज्य एवं अन्य -

(माननीय न्यायमूर्ति पीयूष अग्रवाल द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री तरुण अग्रवाल और राज्य प्रत्यर्थीगण की ओर से विद्वान एसीएससी श्री ए.सी. मिश्रा को सुना गया।

2. यह रिट याचिका जिलाधिकारी, मुरादाबाद द्वारा पारित दिनांक 16.10.2024 के आक्षेपित आदेश के विरुद्ध दायर की गई है।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता और भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण (एनएचएआई) के बीच 19.02.2010 को मुरादाबाद-बरेली खंड पर एनएच-24 के किलोमीटर 148 से किलोमीटर 262 (लगभग 114 किलोमीटर) तक के रखरखाव और प्रबंधन हेतु डिजाइन, निर्माण, वित्त, संचालन और हस्तांतरण (डीबीएफओटी) के लिए एक रियायत समझौता किया गया था। इस वर्ष, राज्य सरकार से अनुमति प्राप्त करने के बाद याचिकाकर्ता के विरूद्ध भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 (जिसे आगे **'अधिनियम'** कहा जाएगा) की धारा 33 के अंतर्गत कार्यवाही शुरू की गई और याचिकाकर्ता के विरूद्ध एक वाद दर्ज किया गया। इसके बाद, 17.08.2022 को प्रत्यर्थी संख्या 3 ने याचिकाकर्ता पर स्टाम्प शुल्क की कमी का निर्धारण करते हुए आदेश पारित किया। उन्होंने आगे कहा कि 18.07.2023 को याचिकाकर्ता ने जिलाधिकारी, मुरादाबाद के समक्ष दिनांक 17.08.2022 के आदेश को वापस लेने के लिए एक रिकाल आवेदन दायर किया, लेकिन उसे दिनांक 27.07.2023 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया। 17.08.2022 के उक्त आदेशों को इस न्यायालय में रिट सी संख्या 45484/2023 दायर करके चुनौती दी गई, जिसे इस न्यायालय ने दिनांक 08.05.2024 के आदेश द्वारा स्वीकार कर लिया और मामले को जिलाधिकारी के पास नए सिरे से निर्णय लेने के लिए वापस भेज दिया गया तथा याचिकाकर्ता को जिलाधिकारी के समक्ष परिसीमा और क्षेत्राधिकार का मुद्दा उठाने की स्वतंत्रता दी गई। उन्होंने आगे कहा कि इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 08.05.2024 के आदेश के अनुसरण में, प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा दिनांक 16.10.2024 का आक्षेपित आदेश पारित किया गया है, जिसमें याचिकाकर्ता द्वारा परिसीमा के संबंध में लिए गए आधार को खारिज कर दिया गया है।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी कि, निश्चित रूप से, रियायत समझौता 19.02.2010 को किया गया था और कार्यवाही निष्पादन की तिथि, अर्थात 18.02.2018 से 8 वर्ष की अवधि के भीतर पूरी हो जानी चाहिए थी। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने अधिनियम की धारा 33 की उप-धारा (4) और (5) तथा उससे जुड़े परंतुक का हवाला दिया है। उन्होंने आगे दलील दी कि अधिनियम के अंतर्गत निर्धारित परिसीमा के अनुसार, निष्पादन की तिथि से राज्य सरकार से पूर्वानुमति प्राप्त करने के बाद कार्यवाही 8 वर्षों के भीतर पूरी होनी चाहिए। उन्होंने आगे दलील दी कि अनुमति स्वयं 8 वर्ष की अवधि के बाद दी गई थी और इसलिए, कार्यवाही क्षेत्राधिकार से बाहर है। अपने तर्कों के समर्थन में, उन्होंने ***सोम दत्त बिल्डर्स लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य*** [2005 (3) ईएससी 1939 (इला)] और ***हरभजन सिंह बनाम कमिश्नर, मुरादाबाद डिवीजन, मुरादाबाद एवं अन्य*** [2022 (5) एडीजे 71] में इस न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा किया।

5. इसके विपरीत, विद्वान एसीएससी आक्षेपित आदेश का समर्थन करता है और तर्क प्रस्तुत किया कि विचाराधीन मुद्दा ***मेसर्स रीवा टोलवे प्राइवेट लिमिटेड बनाम मध्य प्रदेश राज्य एवं अन्य*** के वाद में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय द्वारा आच्छादित है और इसलिए, याचिकाकर्ता के पक्ष में कोई इक्विटी नहीं है। उन्होंने आगे तर्क प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता का यह स्वीकृत प्रकरण है कि वे वैध स्टांप शुल्क के भुगतान के लिए उत्तरदायी हैं, लेकिन गुप्त उद्देश्यों से, याचिकाकर्ता ने इसका भुगतान नहीं किया है। वह अधिनियम की धारा 19 (क) का भी हवाला देते हैं, जो धारा 3 के खंड 66 के अंतर्गत उत्तर प्रदेश में बढ़े हुए शुल्क के लिए उत्तरदायी कुछ लिखतों पर शुल्क के भुगतान का प्रावधान करती है। वह आगे दलील देते हैं कि याचिकाकर्ता राज्य को वैध स्टाम्प शुल्क का भुगतान करने के लिए बाध्य है, लेकिन स्टाम्प शुल्क का भुगतान करने के बजाय, याचिकाकर्ता इससे बचने की कोशिश कर रहा है। वह आगे दलील देते हैं कि यह स्वीकार किया जाता है कि समझौता उत्तर प्रदेश राज्य के बाहर निष्पादित किया गया था और इसलिए, उक्त समझौते के ज्ञान की तिथि से, परिसीमा अवधि, लिखत के निष्पादन की तिथि के बजाय उक्त तिथि से शुरू होगी।

6. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के पश्चात् न्यायालय ने अभिलेख का अवलोकन किया।

7. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया एकमात्र तर्क कार्यवाही आरंभ करने के क्षेत्राधिकार के साथ-साथ कार्यवाही आरंभ करने की परिसीमा के संबंध में है। इस वाद में, स्वीकार्य रूप से, रियायत समझौता, जो वर्तमान कार्यवाही का विषय है, 19.02.2010 को निष्पादित किया गया था। अनुमति पत्र दिनांक 05.03.2016 द्वारा मांगी गई थी और स्वीकार्य रूप से, अनुमति पत्र दिनांक 31.12.2019 द्वारा प्रदान की गई थी और उसके बाद, वाद संख्या 00563/2020 के रूप में पंजीकृत किया गया और 20.02.2020 को पहली बार नोटिस जारी किया गया।

8. वर्तमान वाद में शामिल विवाद को बेहतर ढंग से समझने के लिए, धारा 33 की उप-धारा (4) और (5) को, इसके परंतुक सहित, नीचे उद्धृत किया गया है:-

"धारा 33. लिखतों का परीक्षण और जब्ती:

(4) जहाँ किसी लिखत की प्रति से भुगतान किए गए स्टाम्प शुल्क में कमी पाई जाती है, वहाँ जिलाधिकारी स्वप्रेरणा से या किसी न्यायालय या स्टाम्प आयुक्त या अतिरिक्त स्टाम्प आयुक्त या स्टाम्प उप आयुक्त या सहायक आयुक्त या राजस्व बोर्ड द्वारा इस संबंध में प्राधिकृत किसी अधिकारी के निर्देश पर, उस पर भुगतान किए गए शुल्क की पर्याप्तता के बारे में स्वयं को संतुष्ट करने के उद्देश्य से मूल लिखत की माँग कर सकता है, और जिलाधिकारी के समक्ष इस प्रकार प्रस्तुत किया गया लिखत उसके कार्यों के निष्पादन में उसके समक्ष प्रस्तुत किया गया या आया हुआ माना जाएगा।

(5) यदि जिलाधिकारी द्वारा निर्दिष्ट अवधि के भीतर लिखत प्रस्तुत नहीं की जाती है, तो वह लिखत की प्रति पर धारा 40 के अंतर्गत दंड सहित, यदि कोई कमी वाला स्टाम्प शुल्क हो, का भुगतान मांग सकता है:

बशर्ते कि उप-धारा (4) या उप-धारा (5) के अंतर्गत कोई कार्रवाई लिखत के निष्पादन की तिथि से चार वर्ष की अवधि के पश्चात नहीं की जाएगी।

इसके अतिरिक्त, राज्य सरकार की पूर्व अनुमति से उप-धारा (4) या उप-धारा (5) के अंतर्गत कोई कार्रवाई लिखत के निष्पादन की तिथि से चार वर्ष की अवधि के पश्चात, किन्तु आठ वर्ष की अवधि से पूर्व की जा सकेगी।

9. अधिनियम की धारा 33 की उप-धारा (4) को पढ़ने से यह पता चलता है कि जहाँ किसी लिखत से भुगतान किए गए स्टाम्प शुल्क में कमी पाई जाती है, जिलाधिकारी स्वप्रेरणा से या राज्य की ओर से अधिनियम के अंतर्गत परिकल्पित किसी अन्य प्राधिकारी के संदर्भ पर, भुगतान किए गए शुल्क की पर्याप्तता के संबंध में संतुष्टि के प्रयोजनार्थ मूल लिखत की मांग कर सकता है। मूल लिखत प्रस्तुत करने में विफल रहने की स्थिति में, उप-धारा (5) में यह प्रावधान है कि जिलाधिकारी लिखत की प्रति पर धारा 40 के अंतर्गत जुर्माने के साथ-साथ स्टांप शुल्क की कमी, यदि कोई हो, का भुगतान मांग सकता है। इसके अलावा, एक शर्त लगाई गई है कि उप-धारा (4) या उप-धारा (5) के अंतर्गत कोई भी कार्रवाई लिखत के निष्पादन की तिथि से चार वर्ष की अवधि के बाद नहीं की जाएगी, लेकिन चार साल के बाद कार्यवाही करने की स्थिति में, राज्य सरकार की पूर्व अनुमति, लेकिन लिखत के निष्पादन की तारीख से आठ वर्ष की अवधि से पहले आवश्यक है।

10. दूसरे शब्दों में, विधायिका ने अपनी बुद्धिमत्ता से, किसी भी लिखत पर स्टांप शुल्क की कमी को उसके निष्पादन की तिथि से 8 वर्ष की अवधि के भीतर पूरा करने के लिए राज्य सरकार की पूर्व अनुमति लेने का नियम बनाया है। उक्त धारा से संलग्न परन्तुक में यह उपबंध है कि राज्य सरकार की पूर्व अनुमति से उपधारा (4) या उपधारा (5) के अधीन कोई कार्रवाई, लिखत के निष्पादन की तारीख से चार वर्ष की अवधि के पश्चात् किन्तु आठ वर्ष की अवधि से पूर्व की जा सकेगी।

11. वर्तमान वाद में राज्य सरकार द्वारा 31.12.2019 को अनुमति प्रदान की गई थी और उसके बाद 20.02.2020 को याचिकाकर्ता को नोटिस जारी करके पहली बार कार्यवाही शुरू की गई थी।

12. विद्वान एसीएससी ने पत्र (प्रति-शपथपत्र के अनुलग्नक संख्या सीए-1) के आधार पर परिसीमा को आच्छादित करने का प्रयास किया है कि दिनांक 05.03.2016 के पत्र द्वारा समय के भीतर अनुमति मांगी गई थी, अनुमति प्रदान करने की परिसीमा 8 वर्षों के भीतर है और इसलिए, कार्रवाई परिसीमा के भीतर है और आदेश क्षेत्राधिकार में है।

13. उक्त तर्क आकर्षक प्रतीत होता है, लेकिन अधिनियम की धारा 33 की उप-धारा (4) और (5) के साथ-साथ संलग्न परंतुक की बारीकी से जांच करने पर स्पष्ट रूप से पता चलता है कि कार्यवाही केवल पूर्व अनुमति से ही शुरू की जा सकती है और अनुमति स्वयं 8 साल बाद, यानी 31.12.2019 को दी गई थी।

14. अधिनियम की धारा 33 की उप-धारा (4) और (5) के साथ-साथ संलग्न परंतुक स्पष्ट है कि 4 साल की अवधि से परे कोई कार्रवाई नहीं की जा सकती है या यदि कार्रवाई उपकरण के निष्पादन की तारीख से 4 साल बाद की जानी है, तो पूर्व अनुमति लेनी होगी, लेकिन 8 साल से पहले। विधायिका का आशय स्पष्ट है कि चार साल की परिसीमा के बाद, यदि कोई कार्रवाई की जानी आवश्यक है, तो उसे केवल राज्य सरकार की पूर्व अनुमति से, लेकिन 8 साल से पहले किया जा सकता है। परिसीमा अवधि, अधिकतम, चार या आठ वर्षों के भीतर नोटिस जारी करके शुरू की जा सकती है और उक्त अवधि से आगे किसी भी कार्रवाई के लिए, परिसीमा अवधि को बढ़ाया नहीं जा सकता है और यदि ऐसा किया जाता है, तो ऐसी कार्रवाई को स्वयं अवैध और क्षेत्राधिकार के बाहर माना जाएगा।

15. बेशक, इस वाद में, अनुमति 05.03.2016 को मांगी गई थी, लेकिन राज्य सरकार से अनुमति प्राप्त करने के बाद, कम से कम, लिखत के निष्पादन की तिथि से निर्धारित अवधि, अर्थात 8 वर्ष, के भीतर नोटिस जारी किया जाना चाहिए, लेकिन इस मामले में, माना कि, 31.12.2019 की अनुमति और 20.02.2020 का नोटिस जारी करना, दोनों ही 8 वर्ष की निर्धारित अवधि से परे थे।

16. इसलिए, किसी भी तरह से यह कहा जा सकता है कि विधायिका का इरादा प्रश्नगत लिखत के निष्पादन की तिथि से 8 वर्ष से अधिक अवधि बढ़ाने का है, क्योंकि रियायत समझौता 19.02.2010 को निष्पादित किया गया था।

17. विद्वान एसीएससी का यह तर्क कि लिखत के ज्ञान की तिथि से ही परिसीमा अवधि की गणना की जानी चाहिए, स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि स्टाम्प अधिनियम में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है। इसके अलावा, यदि इस तरह के तर्क को स्वीकार कर लिया जाता है, तो इससे मुकदमों की बाढ़ आ जाएगी और साथ ही कार्यवाही में अनिश्चितता पैदा हो जाएगी, जो सरकार का कभी इरादा नहीं रहा है।

18. इस न्यायालय ने ***सोम दत्त बिल्डर्स लिमिटेड*** (पूर्वोक्त) में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:-
"6. पहले मुद्दे के संबंध में, यद्यपि समझौता 11.6.1987 को निष्पादित किया गया था, फिर भी पहली बार कार्रवाई 31.10.1994 को ही शुरू करने की मांग की गई थी, जो कि 7 वर्ष से अधिक समय बीत जाने के बाद

था। बेशक उक्त कार्रवाई मूल लिखत को तलब करके, दिनांक 11.6.1987 के लिखत की एक छायाप्रति के आधार पर शुरू की गई थी। अधिनियम की धारा 33 का पहला प्रावधान यह स्पष्ट करता है कि अधिनियम की धारा 33(4) (जो उन प्रकरणों से संबंधित है जहाँ लिखत की प्रतिलिपि प्रस्तुत की जाती है और मूल लिखत की माँग की जाती है) के तहत लिखत के निष्पादन की तारीख से चार वर्ष की अवधि के बाद कोई कार्रवाई नहीं की जा सकती है। चूँकि बेशक कार्रवाई 11.6.1987 को निष्पादित लिखत के आधार पर की जा रही थी और चार साल से अधिक समय बीत चुका था, इसलिए अधिनियम की धारा 33(4) का प्रावधान लागू नहीं हो सका। अधिनियम की धारा 33 का दूसरा प्रावधान केवल 1.9.1998 से डाला गया है, इस वाद में लागू नहीं होगा।

19. अभिलेख से पता चलता है कि अनुमति 31.12.2019 को दी गई थी और उसके बाद वाद दर्ज किया गया और पहली बार याचिकाकर्ता को दिनांक 20.02.2020 का नोटिस जारी किया गया और इस प्रकार, अनुमति और नोटिस दोनों धारा 33 की उपधारा (5) के दूसरे परंतुक में प्रदत्त आठ वर्ष की अवधि के बाद जारी किए गए, जो कि परिसीमा अवधि से परे है। इसलिए, वर्तमान कार्यवाही पूरी तरह से क्षेत्राधिकार से बाहर है।

20. वाद के उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों के साथ-साथ ऊपर उद्धृत वादों में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि को देखते हुए, जिलाधिकारी, मुरादाबाद द्वारा पारित दिनांक 16.10.2024 का आक्षेपित आदेश विधि की दृष्टि में पोषणीय नहीं रह सकता। तदनुसार इसे रद्द किया जाता है।

21. रिट याचिका सफल होती है और स्वीकार किया जाता है।

22. संबंधित प्राधिकारी को निर्देश दिया जाता है कि वह याचिकाकर्ता द्वारा जमा की गई किसी भी अतिरिक्त राशि को, जमा की तिथि से वापसी की तिथि तक 4% प्रति वर्ष की दर से ब्याज सहित, इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से चार सप्ताह की अवधि के भीतर वापस करे।

(2025) 4 ILRA 542

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 21.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति बृज राज सिंह

रिट ए संख्या - 1540/2005

अशोक कुमार सेठ **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश कोऑपरेटिव संघ लिमिटेड एवं अन्य **...प्रत्यर्थीगण**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
वीरेंद्र मिश्रा

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता:
आर. सिद्दीकी, कपिल देव, शिरीष कुमार

क. सेवा विधि - उत्तर प्रदेश सहकारी समिति कर्मचारी सेवा विनियमावली, 1975 - विनियम 85 (i) - सजा - अनुशासनात्मक कार्यवाही - नैसर्गिक न्याय का सिद्धांत - दिनांक, समय और स्थान तय करके जांच पूरी नहीं की गई थी - जांच अधिकारी ने संबंधित कार्यालय से अभिलेख पर उपलब्ध दस्तावेजों को तलब करने के बाद इसे साबित नहीं किया - प्रभाव - अभिनिर्धारित किया गया, जांच अधिकारी ने दस्तावेजों को साबित करने के लिए गवाहों को नहीं बुलाया और एक जगह, उन्होंने उल्लेख किया है कि दस्तावेजों की छायाप्रति उनके पास उपलब्ध हैं। इस प्रकार, जांच रिपोर्ट को दण्ड का आधार नहीं बनाया जा सकता क्योंकि जांच अधिकारी ने विनियमावली, 1975 के विनियम 85 (i) के अनुसार अभिलेख पर साक्ष्य पेश करके नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का पालन नहीं किया - विधि की दृष्टि में आक्षेपित दण्ड आदेश को बरकरार नहीं रखा जा सकता क्योंकि जांच अधिकारी द्वारा विनियम 85 (i) और 85 (i) (सी) के अंतर्गत निर्धारित प्रक्रिया का पूर्ण विचलन है। (प्रस्तर 25, 26 और 27)

रिट याचिका स्वीकार की गई। (ई-1)

<u>उद्धृत वादों की सूची:</u>

1. उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा; (2010) 2 एससीसी 772
2. चमोली जिला सहकारी बैंक बनाम रघुनाथ सिंह राम; (2016) 12 एससीसी 204
3. शिव राज सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य; 2018 (5) एडीजे 679 (डीबी)
4. रूप नारायण पांडे बनाम उत्तर प्रदेश सहकारी संस्थागत सेवा बोर्ड एवं अन्य; 2019 (37) एलसीडी 978
5. रूप सिंह नेगी बनाम पंजाब नेशनल बैंक एवं अन्य; (2009) 2 एससीसी 570
6. श्रीमती आमिना बनाम नगर पालिका परिषद, प्रतापगढ़ एवं अन्य; 2012 (30) एलसीडी 1671
7. देव प्रकाश तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश सहकारी संस्थागत सेवा बोर्ड, लखनऊ एवं अन्य; (2014) 7 एससीसी 260
8. ब्रह्मानंद त्यागी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य; 2022 (8) एडीजे 624
9. भारतीय स्टेट बैंक एवं अन्य बनाम नरेंद्र कुमार पांडे; 2013 (2) एससीसी 740
10. पेप्सू सड़क परिवहन निगम बनाम रवेल सिंह; 2008 (4) एससीसी 42
11. निर्मला जे झाला बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य; (2013) 4 एससीसी 301

अनुवादित

12. सरजू राम बनाम उत्तर प्रदेश सहकारी संस्थागत सेवा मंडल, लखनऊ व अन्य; (2004) 1 यूपीएलबीईसी 761

13. भागीरथी जेना बनाम निदेशक बार्ड, ओ.एस.एफ.सी. व अन्य; (1999) 3 एससीसी 666

(माननीय न्यायमूर्ति बृज राज सिंह द्वारा प्रदत्त)

1. यह रिट याचिका निम्नलिखित राहतों की मांग करते हुए दायर की गई है:-

"*1) उत्प्रेषण की प्रकृति का रिट आदेश या निर्देश जारी करना या अनुलग्नक संख्या 8 में निहित प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा पारित दिनांक 10.01.2005 के आक्षेपित दंड के आदेश को रद्द करना। 11) परमादेश की प्रकृति में रिट आदेश या निर्देश जारी करना या इसी तरह प्रत्यर्थी संख्या 1 और 2 को आदेश देना कि वे याचिकाकर्ता को परिणामी लाभों के साथ सेवा में बहाल करें।*"

2. वर्तमान रिट याचिका को जन्म देने वाले तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता को वर्ष 1976 में उत्तर प्रदेश सहकारी संघ लिमिटेड (संक्षेप में "संघ") में सहायक के पद पर नियुक्त किया गया था और परिवीक्षा अवधि संतोषजनक रूप से पूरी करने के बाद, उसे 1978 में उक्त पद पर स्थायी कर दिया गया था। बारह वर्षों की निरंतर एवं संतोषजनक सेवा पूरी करने के पश्चात, याचिकाकर्ता को 1988 में सहायक गोदाम कीपर के पद पर पदोन्नत किया गया। याचिकाकर्ता और सहकारी समितियों के कर्मचारियों की सेवाएँ "उत्तर प्रदेश सहकारी समिति कर्मचारी सेवा विनियमावली, 1975" (संक्षेप में "विनियमावली, 1975") नामक विनियमावली द्वारा शासित होती हैं और ये दिशानिर्देश उत्तर प्रदेश सहकारी संस्थागत सेवा बोर्ड द्वारा तैयार किए गए थे और राज्य के महामहिम राज्यपाल द्वारा अनुमोदित किए गए थे। 1996 में, याचिकाकर्ता को लखीमपुर खीरी स्थित विपक्षी संख्या 3 के कार्यालय में स्टोर प्रभारी के पद पर स्थानांतरित कर दिया गया।

3. 19.04.2003 को, याचिकाकर्ता को दो आरोपों सहित आरोप पत्र जारी किया गया, जिसमें उसे पंद्रह दिनों के भीतर अपना उत्तर/स्पष्टीकरण दाखिल करने को कहा गया। चूंकि याचिकाकर्ता जवाब प्रस्तुत करने में असफल रहा, इसलिए जांच अधिकारी द्वारा 16.10.2003 को उसके विरूद्ध लगाए गए आरोपों के लिए दोषी मानते हुए जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की गई। यह उल्लेख किया गया है कि सितंबर, 1998 में इफको यूरिया के उर्वरक का एक रैक प्राप्त हुआ था, जो रेलवे साइडिंग पर बारिश के कारण बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो गया था और वजन करने के बाद डिलीवरी ली गई और 16.475 मीट्रिक टन की कमी की सूचना दी गई और इसे अभिलेख में दर्ज किया गया। इसके बाद, दिसंबर, 2000 में स्टॉक की फिर से पैकिंग करने के उद्देश्य से इफको द्वारा नए बैग प्रदान किए गए, जिन्हें सितंबर, 1998 में बहुत खराब स्थिति में स्टोर में रखा गया था। विपक्षी संख्या 3 के निर्देशानुसार, 28.12.2000 से 25.01.2001 तक जमाकर्ता के स्थानीय प्रतिनिधि की उपस्थिति में री-बैगिंग की

गई और 26.681 मीट्रिक टन का अंतर देखा गया। आरोप पत्र में उल्लेख किया गया है कि उपरोक्त अंतर के लिए, जमाकर्ता द्वारा संघ के बिलों से 1,55,498.50 रुपये की राशि काट ली गई है।

4. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया है कि जाँच अधिकारी ने जाँच के लिए कोई तिथि, समय और स्थान निर्धारित नहीं किया और न ही जाँच अधिकारी द्वारा संदर्भित/आश्रित कुछ कागजातों की छायाप्रति को सिद्ध करने के लिए किसी गवाह को परीक्षित किया गया। 12.05.2004 को, विपक्षी संख्या 2 के प्रबंध निदेशक ने याचिकाकर्ता को दो दंड प्रस्तावित करते हुए कारण बताओ नोटिस जारी किया। 02.07.2004 को, याचिकाकर्ता को अपना उत्तर दाखिल करने के लिए तीन दिन का अतिरिक्त समय दिया गया। हालाँकि, 13.08.2004 को, याचिकाकर्ता को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि अपर प्रबंध निदेशक द्वारा एक और कारण बताओ नोटिस जारी किया गया और प्रस्तावित दंड को अवैध रूप से, मनमाने ढंग से और पूरी तरह से क्षेत्राधिकार के बिना, वह भी उन्हीं साक्ष्यों, सामग्रियों के आधार पर और बिना किसी नए घटनाक्रम के बदल दिया गया। 18.08.2004 को याचिकाकर्ता को निलंबित कर दिया गया और उसके बाद 27.08.2004 को उसने कारण बताओ नोटिस का विस्तृत उत्तर प्रस्तुत किया और आरोपों और जाँच अधिकारी के निष्कर्षों का खंडन किया। 10.01.2005 को, विपक्षी संख्या 2 ने बिना विवेक का प्रयोग किए और यहाँ तक कि याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत उत्तर पर भी विचार किए बिना ही आक्षेपित आदेश पारित कर दिया।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया कि विनियमावली, 1975 के विनियम 85 में अनुशासनात्मक कार्यवाही करने की प्रक्रिया का प्रावधान है, जो इस प्रकार है:-

85. अनुशासनात्मक कार्यवाही.---*(i) किसी कर्मचारी के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही, जांच अधिकारी [नीचे खंड (iv) में संदर्भित] द्वारा नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का सम्यक पालन करते हुए की जाएगी, जिसके लिए यह आवश्यक होगा कि -*

(क) कर्मचारी को एक आरोप-पत्र दिया जाएगा जिसमें विशिष्ट आरोप और प्रत्येक आरोप के समर्थन में साक्ष्य का उल्लेख होगा और उसे आरोपों के संबंध में उचित समय के भीतर, जो पंद्रह दिनों से कम नहीं होगा, स्पष्टीकरण प्रस्तुत करना होगा;

(ख) ऐसे कर्मचारी को अपने खर्चे पर अपने बचाव में गवाहों को पेश करने या उनसे जिरह करने का अवसर भी दिया जाएगा और यदि वह चाहे तो उसे व्यक्तिगत रूप से सुनवाई का अवसर भी दिया जाएगा;

(ग) यदि आरोप-पत्र के संबंध में कोई स्पष्टीकरण प्राप्त नहीं होता है या प्रस्तुत स्पष्टीकरण असंतोषजनक है, तो सक्षम प्राधिकारी उसे आवश्यक समझे जाने पर उचित दंड दे सकता है।

(ii) (क) जहां किसी कर्मचारी को ऐसे आचरण के आधार पर सेवा से बर्खास्त या हटाया जाता है जिसके कारण उसे आपराधिक आरोप में दोषसिद्धि हुई है; या
(ख) जहाँ कर्मचारी फरार हो गया हो और उसका ठिकाना तीन माह से अधिक समय से सोसायटी को ज्ञात न हो; या
(ग) जहाँ कर्मचारी लिखित रूप में विशेष रूप से बुलाए जाने पर भी जाँच अधिकारी के समक्ष उपस्थित होने से इनकार कर दे या पर्याप्त कारण के बिना उपस्थित न हो; या
(घ) जहाँ अन्यथा (कारणों को दर्ज करके) उससे संपर्क करना संभव न हो,
तो सक्षम प्राधिकारी अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू किए बिना या जारी रखे बिना उचित दंड दे सकता है।
(iii) ....."

6. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार ढंग से तर्क दिया है कि विनियमावली, 1975 के विनियम 85(i) में निर्धारित किया गया है कि जांच अधिकारी को नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करते हुए जांच पूरी करनी होगी। विनियमावली, 1975 के विनियम 85(i)(सी) में आगे यह भी कहा गया है कि यदि आरोप पत्र के संबंध में कोई स्पष्टीकरण प्राप्त नहीं होता है या प्रस्तुत स्पष्टीकरण असंतोषजनक है, तो सक्षम प्राधिकारी उसे आवश्यक समझे जाने पर उचित दंड दे सकता है, लेकिन अनुशासनात्मक कार्यवाही करते समय, जांच अधिकारी को विनियमावली, 1975 के विनियम 85(i) के तहत निर्धारित प्रक्रिया का पालन करना होता है, जबकि वर्तमान वाद में, यह स्पष्ट है कि जांच अधिकारी ने याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर प्रदान करके जांच नहीं की।

7. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा है कि जांच अधिकारी ने जांच करने के लिए कोई तिथि, समय और स्थान निश्चित नहीं किया था और यहां तक कि प्रस्तुतकर्ता अधिकारी भी नियुक्त नहीं किया गया था। जांच अधिकारी द्वारा किसी गवाह को परीक्षित नहीं किया गया था। उन्होंने आगे कहा है कि आरोप संख्या 1 के समर्थन में छह पत्र हैं और आरोप संख्या 2 के संबंध में, आरोप पत्र में पांच पत्रों का उल्लेख है, लेकिन जांच अधिकारी ने संबंधित विभाग से मूल प्रति मंगाकर उपरोक्त पत्रों को प्रमाणित नहीं किया। आगे दलील दी है कि जाँच अधिकारी ने स्टॉक रजिस्टर की छायाप्रति, दिनांक 04.10.2001 का पत्र और अन्य दस्तावेज़ों पर भरोसा किया है, जो याचिकाकर्ता को न तो कभी दिए गए और न ही बताए गए। जाँच अधिकारी ने निष्पक्षता से काम नहीं किया और विभागीय कार्यवाही करते हुए, वह प्रबंधन का एजेंट बन गया और पूर्वाग्रह से ग्रस्त होकर जाँच रिपोर्ट तैयार की। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने ***उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा***, (2010) 2 एससीसी 772 के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का हवाला देते हुए दलील दी है कि वर्तमान वाद में की गई जाँच कार्यवाही उपरोक्त निर्णय का सरासर उल्लंघन है।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क प्रस्तुत किया है कि जिला प्रबंधक पर भी आरोप लगाया गया था, लेकिन उन्हें दोषमुक्त कर दिया गया, जबकि याचिकाकर्ता को दोषी ठहराया गया है और उसके विरुद्ध दंड दिया गया है। उन्होंने आगे तर्क प्रस्तुत किया है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने कारण बताओ नोटिस

जारी करते हुए और जांच अधिकारी की एकपक्षीय रिपोर्ट के आधार पर याचिकाकर्ता को सेवा से बर्खास्त करने का पूर्वनिर्णय लिया है, जो कि ***चमोली जिला सहकारी बैंक बनाम रघुनाथ सिंह राम***, (2016) 12 एससीसी 204 के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय और ***शिव राज सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य***, 2018 (5) एडीजे 679 (डीबी) के वाद में इस न्यायालय की खंडपीठ के निर्णय का पूर्ण उल्लंघन है।

9. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे कहा है कि अगर कर्मचारी जांच में भाग लेने से इनकार भी करता है, तो इसे एकपक्षीय अभिनिर्धारित करना चाहिए जहां साक्ष्य पेश किए जाने चाहिए। जवाब दाखिल न करने के कारण आरोपों को स्वचालित रूप से साबित करने का जांच अधिकारी का दृष्टिकोण गलत है। इस संबंध में, उन्होंने रू***प नारायण पांडे बनाम यू.पी. सहकारी संस्थागत सेवा बोर्ड और अन्य,*** 2019 (37) एलसीडी 978 के वाद में इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ के निर्णय पर भरोसा किया है। ***रूप सिंह नेगी बनाम पंजाब नेशनल बैंक और अन्य,*** (2009) 2 एससीसी 570 के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करके याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने कहा है कि केवल दस्तावेज या पत्र का उत्पादन पर्याप्त नहीं है। गवाहों का परीक्षण करके दस्तावेजी साक्ष्य की सामग्री को साबित करना होगा। इसमें आगे कहा गया है कि भले ही दोषी कर्मचारी ने न तो आरोप पत्र पर अपना जवाब प्रस्तुत किया हो और न ही जांच में सहयोग किया हो, फिर भी जांच अधिकारी का यह दायित्व है कि वह बचाव के लिए तिथि निर्धारित करने के लिए एकपक्षीय जांच करे और आरोपित कर्मचारी को सूचित करे। इस संबंध में, उन्होंने ***श्रीमती आमिना बनाम नगर पालिका परिषद, प्रतापगढ़ एवं अन्य,*** 2012 (30) एलसीडी 1671 के वाद में इस न्यायालय की समन्वय पीठ के निर्णय का हवाला दिया।

10. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का आगे कहना है कि रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान याचिकाकर्ता ने 30.06.2013 को सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त कर ली है और विनियमावली, 1975 में जांच कार्यवाही जारी रखने का कोई प्रावधान नहीं है और इस संबंध में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ***देव प्रकाश तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश सहकारी संस्थागत सेवा बोर्ड, लखनऊ और अन्य,*** (2014) 7 एससीसी 260 और ***ब्रह्मानंद त्यागी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2022*** (8) एडीजे 624 के वाद में इस न्यायालय के एक निर्णय में विधि स्थापित किया गया है। इसलिए, उन्होंने कहा है कि उपरोक्त परिस्थितियों में, आक्षेपित दंड आदेश को बरकरार नहीं रखा जा सकता है और इसे रद्द किया जाना चाहिए।

11. दूसरी ओर, संघ के विद्वान अधिवक्ता श्री शिरीष कुमार ने दलील दी कि याचिकाकर्ता ने आरोप-पत्र के विरुद्ध कोई आधार प्रस्तुत नहीं किया, इसलिए यह माना जाना चाहिए कि उसने अपने विरुद्ध लगाए गए आरोपों का खंडन नहीं किया है। 19.04.2003 को आरोप-पत्र प्राप्त होने के बाद, याचिकाकर्ता ने कोई उत्तर प्रस्तुत नहीं किया। इस प्रकार, उसने आरोपों में उद्धृत साक्ष्यों की प्रामाणिकता पर कोई विवाद नहीं किया और न ही जिरह के लिए किसी गवाह का नाम लिया। इसलिए, जाँच अधिकारी ने नियमावली के अंतर्गत निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार जाँच की और अभिलेख में उपलब्ध दस्तावेजों पर विचार करने के बाद जाँच रिपोर्ट प्रस्तुत की। इसके बाद, याचिकाकर्ता को कारण बताओ नोटिस दिया गया और उसके उत्तर पर विचार करने के बाद, आक्षेपित दंड आदेश पारित किया गया।

12. संघ के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया है कि एक बार जब याचिकाकर्ता ने स्वयं जाँच कार्यवाही में भाग न लेने का निर्णय ले लिया है, तो उसे अनुशासनात्मक कार्यवाही की प्रामाणिकता के विरुद्ध आपत्ति उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती। याचिकाकर्ता को आरोप-पत्र में उल्लिखित आरोपों की जानकारी है। उसे अपना उत्तर प्रस्तुत करने और जाँच में भाग लेने के लिए बार-बार अवसर दिए गए, लेकिन वह अनुपस्थित रहा और साक्ष्य प्रस्तुत करके जाँच कार्यवाही में शामिल न होने का निर्णय लिया। उन्होंने यह भी तर्क प्रस्तुत किया कि जांच विनियमावली, 1975 के विनियम 85 के तहत निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार की गई थी, जिसमें प्रावधान है कि दोषी कर्मचारी को व्यक्तिगत सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए यदि वह ऐसा अवसर चाहता है, लेकिन वह जांच अधिकारी के समक्ष उपस्थित नहीं हुआ, इसलिए, विपक्षीगण की कार्रवाई ***भारतीय स्टेट बैंक और अन्य बनाम नरेंद्र कुमार पांडे***, 2013 (2) एससीसी 740 और ***पीईपीएसयू रोड ट्रांसपोर्ट कॉर्पोरेशन बनाम रवेल सिंह***, 2008 (4) एससीसी 42 के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय द्वारा समर्थित है।

13. संघ के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क प्रस्तुत किया कि दंड आदेश दिनांक 10.01.2005 एक तर्कसंगत आदेश है और याचिकाकर्ता द्वारा कारण बताओ नोटिस दिनांक 13.08.2004 के खिलाफ प्रस्तुत आपत्तियों पर विचार करने के बाद पारित किया गया है। इसलिए, याचिकाकर्ता को इस स्तर पर अपना पक्ष सुधारने की अनुमति नहीं दी जा सकती, जबकि उसने स्वयं अनुशासनात्मक कार्यवाही में भाग न लेने का विकल्प चुना है। आगे यह भी तर्क दिया गया है कि किसी दोषी कर्मचारी को संभाव्यता की प्रबलता के आधार पर, न कि आरोपों को संदेह से परे साबित करने पर दंडित किया जाता है। वर्तमान वाद में, याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 13.08.2004 को जारी कारण बताओ नोटिस के विरुद्ध प्रस्तुत आरोप-पत्र, साक्ष्यों और आपत्तियों के अवलोकन से, उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों में उसकी संलिप्तता स्पष्ट है, इसलिए दिनांक 10.01.2005 का ऐसा दंड आदेश न्यायोचित है। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ***निर्मला जे झाला बनाम गुजरात राज्य व अन्य*** (2013) 4 एससीसी 301 वाद में दिए गए निर्णय का हवाला दिया है। उन्होंने आगे कहा है कि पहले कारण बताओ नोटिस को वापस लेना और उसके बाद जांच रिपोर्ट की प्रति के साथ दूसरा कारण बताओ नोटिस जारी करना स्वीकार्य है और इसमें कोई अवैधानिकता नहीं है, जैसा कि इस न्यायालय ने ***सरजू राम बनाम उत्तर प्रदेश सहकारी संस्थागत सेवा मंडल, लखनऊ व अन्य*** (2004) 1 यूपीएलबीईसी 761 वाद में अभिनिर्धारित किया है। इसलिए, उन्होंने कहा है कि आक्षेपित दंड आदेश अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य पर विचार करने के बाद पारित किया गया है, इसलिए इस न्यायालय द्वारा किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

14. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री वीरेंद्र मिश्रा और संघ की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री शिरीष कुमार को सुना गया और रिकॉर्ड का अवलोकन किया गया।

15. ***सरोज कुमार सिन्हा*** (पूर्वोक्त) के वाद में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि एक जाँच अधिकारी एक अर्ध-न्यायिक प्राधिकारी होता है और उसे स्वतंत्र रूप से, न कि विभाग के एजेंट की तरह अपना विचार रखना होता है। यहाँ तक कि दोषी कर्मचारी की अनुपस्थिति में भी, उसे यह देखना होता है कि आरोपों को सिद्ध करने के लिए अखंडित साक्ष्य उपलब्ध हैं या नहीं। यदि कोई मौखिक जाँच नहीं की जाती है या दस्तावेज़

सिद्ध नहीं होते हैं, तो यह नहीं कहा जा सकता कि जाँच उचित प्रक्रिया का पालन करने के बाद पूरी हुई है। उपरोक्त निर्णय के प्रस्तर 28, 29 और 30 नीचे उद्धृत हैं:-

"28. एक अर्ध-न्यायिक प्राधिकारी में कार्यरत एक जाँच अधिकारी एक स्वतंत्र निर्णायक की स्थिति में होता है। उसे विभाग/अनुशासनात्मक प्राधिकारी/सरकार का प्रतिनिधि नहीं माना जाता है। उनका कार्य विभाग द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों का परीक्षण करना है, यहाँ तक कि दोषी अधिकारी की अनुपस्थिति में भी, ताकि यह देखा जा सके कि क्या अखंडित साक्ष्य आरोपों को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं। वर्तमान वाद में उपरोक्त प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है। चूँकि किसी मौखिक साक्ष्य की जाँच नहीं की गई है, इसलिए दस्तावेज़ सिद्ध नहीं हुए हैं, और यह निष्कर्ष निकालने के लिए उन पर विचार नहीं किया जा सकता था कि प्रत्यर्थीगण के विरुद्ध आरोप सिद्ध हो गए हैं।

29. उपरोक्त के अतिरिक्त, भारतीय संविधान के अनुच्छेद 311(2) के अनुसार विभागीय जाँच नैसर्गिक न्याय के नियमों के अनुसार की जानी चाहिए। नैसर्गिक न्याय के नियमों की यह एक मूलभूत आवश्यकता है कि किसी भी कार्यवाही में, जिसके परिणामस्वरूप कर्मचारी को दंड दिया जा सकता है, कर्मचारी को सुनवाई का उचित अवसर दिया जाए।

30. जब किसी सरकारी कर्मचारी के विरुद्ध विभागीय जाँच की जाती है, तो उसे एक आकस्मिक कार्यवाही नहीं माना जा सकता। जाँच कार्यवाही भी बंद दिमाग से नहीं की जा सकती। जाँच अधिकारी को पूर्णतः निष्पक्ष होना चाहिए। नैसर्गिक न्याय के नियमों का पालन न केवल यह सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है कि न्याय हो, बल्कि यह भी सुनिश्चित किया जाए कि न्याय स्पष्ट रूप से होता हुआ दिखाई दे। नैसर्गिक न्याय के नियमों का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि किसी सरकारी कर्मचारी के साथ ऐसी कार्यवाहियों में निष्पक्ष व्यवहार किया जाए, जिनका परिणाम सेवा से बर्खास्तगी/हटाने सहित दंडात्मक कार्रवाई के रूप में सामने आ सकता है।

16. ***रूप सिंह नेगी*** (पूर्वोक्त) के वाद में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने प्रस्तर-14 में यह अभिनिर्धारित किया है कि प्रबंधन के गवाहों ने केवल दस्तावेज प्रस्तुत किए थे और उनकी विषय-वस्तु को सिद्ध नहीं किया था। जाँच अधिकारी का यह कर्तव्य है कि वह पक्षकारों द्वारा अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री को ध्यान में रखते हुए किसी निष्कर्ष पर पहुँचे। उपरोक्त निर्णय का प्रस्तर 14 नीचे उद्धृत है:-

"14. निस्संदेह, विभागीय कार्यवाही एक अर्ध-न्यायिक कार्यवाही है। जाँच अधिकारी एक अर्ध-न्यायिक कार्य करता है। दोषी अधिकारी के विरुद्ध लगाए गए आरोप सिद्ध होने चाहिए। जाँच अधिकारी का यह कर्तव्य है कि वह पक्षकारों द्वारा अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री को ध्यान में रखते हुए किसी निष्कर्ष पर पहुँचे। जांच अधिकारी द्वारा सभी आरोपियों के खिलाफ जांच के दौरान एकत्र किए गए कथित साक्ष्य को अनुशासनात्मक कार्यवाही में साक्ष्य नहीं माना जा सकता था। उक्त दस्तावेजों को साबित करने के लिए किसी गवाह को परीक्षित नहीं किया गया था। प्रबंधन के गवाहों ने केवल दस्तावेज प्रस्तुत किए और उनकी सामग्री को साबित नहीं किया। अन्य

बातों के साथ-साथ, जांच अधिकारी ने एफआईआर पर भरोसा किया, जिसे साक्ष्य के रूप में नहीं माना जा सकता था।"

17. ***श्रीमती आमिना*** (पूर्वोक्त) के वाद में, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि यह स्थापित विधि है कि एक पक्षीय जांच के मामले में भी, दोषी कर्मचारी को मौखिक जांच की तारीख, समय और स्थान के बारे में सूचना दी जानी चाहिए और आरोप साबित किए जाने चाहिए, भले ही संबंधित कर्मचारी द्वारा आरोप पत्र पर कोई प्रतिक्रिया प्रस्तुत न की गई हो। दोषी कर्मचारी की अनुपस्थिति में, ऊपर बताई गई प्रक्रिया का पालन करने के बाद आरोप साबित किया जाना चाहिए। ***शिव राज सिंह*** (पूर्वोक्त) के वाद में, इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने अभिनिर्धारित किया है कि यदि अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने कारण बताओ नोटिस जारी करते समय अपना मन बना लिया है, तो बर्खास्तगी आदेश विधि की दृष्टि में गलत है।

18. ***देव प्रकाश तिवारी*** (पूर्वोक्त) के वाद में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने प्रस्तर 7 और 8 में अभिनिर्धारित किया है कि एक बार जब दोषी कर्मचारी सेवा से सेवानिवृत्त हो जाता है और नए सिरे से कार्यवाही करने के लिए किसी नियम के अभाव में, कर्मचारी को देय सेवानिवृत्ति लाभों में कोई कमी लागू करने के उद्देश्य से भी विभागीय कार्यवाही की अनुमति नहीं दी जा सकती है। उपरोक्त निर्णय का प्रस्तर-8 नीचे उद्धृत है:-
"8. एक बार जब अपीलकर्ता 31.3.2009 को सेवा से सेवानिवृत्त हो गया, तो प्रत्यर्थीगण के पास अपीलकर्ता को देय सेवानिवृत्ति लाभों में कोई कमी लागू करने के उद्देश्य से भी अनुशासनात्मक कार्यवाही जारी रखने का कोई अधिकार नहीं था। ऐसे प्राधिकारी के अभाव में यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि जांच समाप्त हो गई थी और अपीलकर्ता पूर्ण सेवानिवृत्ति लाभ पाने का हकदार था।"

19. ***भागीरथी जेना बनाम निदेशक मंडल, ओ.एस.एफ.सी. और अन्य***, (1999) 3 एससीसी 666 के वाद में, इसी तरह के प्रश्न पर विचार करते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने प्रस्तर-7 में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया दिया था:-

"7. उपर्युक्त विनियमावली में ऐसे प्रावधान के अभाव को देखते हुए, यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि निगम के पास अपीलकर्ता के सेवानिवृत्ति लाभों में कोई कटौती करने का कोई विधिक अधिकार नहीं था। अपीलकर्ता की सेवानिवृत्ति के बाद अनुशासनात्मक जाँच करने का भी कोई प्रावधान नहीं है और न ही ऐसा कोई प्रावधान है कि कदाचार सिद्ध होने की स्थिति में सेवानिवृत्ति लाभों में कटौती की जा सकती है। एक बार अपीलकर्ता 30.6.95 को सेवा से सेवानिवृत्त हो गया, तो निगम को या विभागीय जाँच जारी रखने का कोई अधिकार नहीं था, यहाँ तक कि अपीलकर्ता को देय सेवानिवृत्ति लाभों में कोई कटौती करने के उद्देश्य से भी। ऐसे अधिकार के अभाव में, यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि जाँच समाप्त हो गई थी और अपीलकर्ता सेवानिवृत्ति पर पूर्ण सेवानिवृत्ति लाभों का हकदार था।"

20. ***ब्रह्मानंद त्यागी*** (पूर्वोक्त) के वाद में भी ऐसा ही विचार लिया गया है और इस न्यायालय ने निर्णय के प्रस्तर-8 में यह अभिनिर्धारित किया है कि सेवानिवृत्ति के बाद अनुशासनात्मक कार्यवाही जारी नहीं रखी जा सकती। बेशक, वर्तमान वाद में याचिकाकर्ता ने 30.06.2013 को सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त कर ली है और ऐसा कोई नियम या विनियमन नहीं है, जो यह प्रावधान करता हो कि सेवानिवृत्ति के बाद विभागीय कार्यवाही जारी रखी जा सकती है।

21. संघ के विद्वान अधिवक्ता श्री शिरीष कुमार ने ***नरेंद्र कुमार पांडे*** (पूर्वोक्त) के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के प्रस्तर-22 पर भरोसा किया है, जो इस प्रकार है:-

"22. हमारा विचार है कि उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करने में भी त्रुटि की है कि चूंकि आरोपों के समर्थन में किसी गवाह को परीक्षित नहीं किया गया था, इसलिए यह साक्ष्य के अभाव का मामला था। एक पक्षीय जांच में, हमारे विचार में, यदि आरोप सामान्य व्यावसायिक क्रम में रखे गए दस्तावेजों से सिद्ध होते हैं, तो उन आरोपों को साबित करने के लिए कोई मौखिक साक्ष्य आवश्यक नहीं है। जब आरोपित अधिकारी जांच में शामिल नहीं होता है, तो वह यह तर्क नहीं दे सकता कि जांच प्राधिकारी को उन दस्तावेजों पर भरोसा नहीं करना चाहिए था जो उसे उपलब्ध नहीं कराए गए थे या प्रकट नहीं किए गए थे। बेशक, एकपक्षीय जाँच में भी, आरोपों को स्थापित करने के लिए कुछ साक्ष्य आवश्यक होते हैं, खासकर जब आरोपित अधिकारी आरोपों से इनकार करता है, ऐसी स्थिति में निर्विवाद दस्तावेजी साक्ष्य आरोपों को साबित करने के लिए पर्याप्त होते हैं।"

22. नरेंद्र कुमार पांडे के वाद के तथ्य वर्तमान वाद के परिप्रेक्ष्य में देखने योग्य हैं, जिसमें जाँच अधिकारी द्वारा दिनांक और समय निर्धारित किया गया था, लेकिन दोषी कर्मचारी अनुपस्थित रहा और उसने अवसर का लाभ नहीं उठाया। प्रस्तुतकर्ता अधिकारी ने जाँच अधिकारी के समक्ष मूल दस्तावेज प्रस्तुत किए थे और आरोपों पर विस्तृत विचार-विमर्श के बाद, आरोपों के विवरण और सहायक दस्तावेजों पर जाँच अधिकारी द्वारा विचार किया गया था। इस प्रकार, वर्तमान वाद के तथ्य नरेंद्र कुमार पांडे के वाद से पूरी तरह भिन्न हैं, जिसमें यह उल्लेख करना उचित है कि निस्संदेह जाँच अधिकारी द्वारा कोई दिनांक, समय और स्थान कभी निर्धारित नहीं किया गया था और न ही प्रस्तुतकर्ता अधिकारी नियुक्त किया गया था और न ही आरोपों के समर्थन में उल्लिखित दस्तावेजों को संबंधित विभाग से मूल दस्तावेज मंगवाकर सिद्ध किया गया था।

23. संघ के अधिवक्ता ने ***रावेल सिंह*** (पूर्वोक्त) वाद में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के प्रस्तर 3, 4 और 14 पर भी भरोसा जताया है, लेकिन चूंकि प्रस्तर 14 प्रासंगिक है, इसलिए इसे नीचे उद्धृत किया गया है:-

"14. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने तथा तथ्यों और परिस्थितियों पर समग्रता से विचार करने के पश्चात्, हमारी राय में, अपील आंशिक रूप से स्वीकृत किए जाने योग्य है। जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं, पहले भी एक अवसर पर, जब प्रत्यर्थी-कर्मकार के विरुद्ध आरोप लगाए गए थे, नोटिस जारी किया गया था और जाँच शुरू की गई थी, वह स्वयं उपस्थित नहीं हुआ और जाँच अधिकारी को एकपक्षीय जाँच करने के लिए

बाध्य होना पड़ा और सेवाएँ समाप्त करने का आदेश पारित किया गया। यह सही है कि प्रत्यर्थी-कर्मकार ने सिविल न्यायालय का दरवाजा खटखटाया और उसके द्वारा दायर वाद स्वीकृत हुआ और अपील में डिक्री की पुष्टि हुई। लेकिन यह भी उतना ही सच है कि निगम को उन्हीं आरोपों पर नए सिरे से कार्यवाही शुरू करने की स्वतंत्रता दी गई थी और इसलिए कार्यवाही शुरू करना अवैध या विधि के विपरीत नहीं कहा जा सकता। अभिलेख से यह स्पष्ट है कि प्रत्यर्थी को नोटिस जारी किया गया था और उसे प्राप्त भी किया गया था, उसने अपना उत्तर दाखिल किया, वह जाँच अधिकारी के समक्ष उपस्थित भी हुआ, लेकिन बाद में वह उपस्थित नहीं हुआ और अनुपस्थित रहा। यदि उपरोक्त तथ्यों के आलोक में, जाँच अधिकारी एकपक्षीय जाँच करने के लिए बाध्य था, तो यह नहीं कहा जा सकता था कि ऐसा करके जाँच अधिकारी ने तथ्यात्मक या विधिक त्रुटि की है और जाँच कार्यवाही रद्द किए जाने योग्य है।"

24. उपरोक्त निर्णय के प्रस्तर 14 को ध्यानपूर्वक पढ़ने से पता चलता है कि दोषी कर्मचारी-कर्मचारी जाँच अधिकारी के समक्ष उपस्थित नहीं हुआ और उसके बाद जाँच अधिकारी ने जाँच जारी रखी और एकपक्षीय कार्यवाही तैयार की गई और समाप्त हुई। उक्त वाद औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के प्रावधानों के अंतर्गत पारित सेवा समाप्ति आदेश से संबंधित है। निस्संदेह, वर्तमान वाद में, विनियमावली, 1975 के रूप में ज्ञात विशिष्ट सेवा विनियम हैं और विनियम 85 में प्रावधान है कि किसी कर्मचारी के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही जाँच अधिकारी द्वारा नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के सम्यक पालन के साथ की जाएगी। दस्तावेज़ सिद्ध नहीं हुए और जाँच अधिकारी ने नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का पालन किए बिना जाँच रिपोर्ट भेज दी, जो विनियमावली, 1975 के विनियम 85 का घोर उल्लंघन है। 19.04.2003 के आरोप पत्र में दो आरोप दर्शाए गए हैं और आरोप संख्या 1 के समर्थन में छह पत्र और आरोप संख्या 2 के समर्थन में पाँच पत्र हैं, लेकिन अभिलेखों से पता चलता है कि जाँच अधिकारी ने संबंधित कार्यालय से उपरोक्त पत्रों को मँगवाकर उन्हें सिद्ध नहीं किया। उक्त पत्रों को संबंधित व्यक्तियों द्वारा सिद्ध किया जा सकता था, जिन्होंने उपरोक्त पत्र भेजे थे। हालाँकि, जाँच रिपोर्ट दिनांक 16.10.2003 स्पष्ट रूप से इंगित करती है कि जाँच अधिकारी ने आरोप संख्या 1 के समर्थन में जाँच रिपोर्ट अग्रेषित करते समय उल्लेख किया है कि "*इस संबन्ध में उपलब्ध अभिलेख, स्टॉक रजिस्टर की छायाप्रति आदि से यह स्पष्ट हुआ है कि जनपद खीरी में इफ्को यूरिया की रैक सितंबर 98 में प्राप्त हुई थी।*"

25. रिट याचिका के प्रस्तर-10 एवं 11 में याचिकाकर्ता ने कहा है कि उसके विरुद्ध जांच कार्यवाही दिनांक 01.10.2003 को एकपक्षीय रूप से पूर्ण कर ली गई थी। रिट याचिका के प्रस्तर-10 एवं 11 के प्रत्युत्तर में विपक्षीगण ने प्रति शपथ पत्र के प्रस्तर-9 में कहा है कि याचिकाकर्ता ने अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत नहीं किया तथा जांच अधिकारी ने उपलब्ध दस्तावेजों के आधार पर जांच पूरी कर ली। इस बात से कहीं भी इनकार नहीं किया गया है कि जांच कार्यवाही दिनांक 01.10.2003 को पूरी कर ली गई थी। जांच रिपोर्ट में यह नहीं दर्शाया गया है कि जांच अधिकारी ने दिनांक, समय एवं स्थान निर्धारित करके जांच पूरी की तथा उन्होंने संबंधित

कार्यालय से अभिलेख पर उपलब्ध दस्तावेजों को मंगवाने के पश्चात्, उन्हें लिखित रूप में प्रस्तुत करने वाले गवाहों के मौखिक बयानों के साथ भी प्रमाणित नहीं किया।

26. विनियमावली, 1975 के विनियम 85(i) का पहला भाग यह निर्धारित करता है कि किसी कर्मचारी के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही नीचे खंड (iv) में निर्दिष्ट अधिकारी द्वारा नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का समुचित पालन करते हुए की जाएगी। विनियमावली, 1975 के विनियम 85(i)(सी) में आगे प्रावधान है कि यदि आरोप-पत्र के संबंध में कोई स्पष्टीकरण प्राप्त नहीं होता है या प्रस्तुत स्पष्टीकरण असंतोषजनक है, तो सक्षम प्राधिकारी उसे आवश्यक समझे जाने पर उचित दंड दे सकता है। इस प्रकार, विनियम 85(i)(सी) में प्रदान की गई प्रक्रिया का विनियमावली, 1975 के विनियम 85(i) के साथ निश्चित रूप से पालन किया जाएगा, जिसमें यह निर्धारित किया गया था कि किसी कर्मचारी के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही करते समय नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का समुचित पालन किया जाएगा। बेशक, वर्तमान वाद में, जांच अधिकारी ने दस्तावेजों को साबित करने के लिए गवाहों को नहीं बुलाया और एक जगह उन्होंने उल्लेख किया है कि दस्तावेजों की छायाप्रति उनके पास उपलब्ध हैं। इस प्रकार, जांच रिपोर्ट को दंड का आधार नहीं बनाया जा सकता क्योंकि जांच अधिकारी ने विनियमावली, 1975 के विनियम 85(i) के अनुसार अभिलेख पर साक्ष्य प्रस्तुत करके नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का पालन नहीं किया।

27. तथ्यों और विधि के आधार पर निष्कर्ष दर्ज करने के बाद, आक्षेपित दंड आदेश विधि की दृष्टि में पोषणीय नहीं रह सकता क्योंकि जांच अधिकारी द्वारा जांच कार्यवाही करते समय विनियमावली, 1975 के विनियम 85(i) और 85(i)(सी) के अंतर्गत निर्धारित प्रक्रिया का पूर्ण विचलन किया गया है, इसलिए इसे रद्द किया जाना चाहिए। इसके अलावा, ***देव प्रकाश तिवारी*** (पूर्वोक्त) और ***भागीरथी जेना*** (पूर्वोक्त) के वाद में ऊपर चर्चा की गई विधि की दृष्टि से, विभागीय कार्यवाही शुरू करने की नई कार्यवाही की अनुमति इस कारण से नहीं दी जा सकती क्योंकि याचिकाकर्ता ने वर्ष 2013 में सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त कर ली थी और इस समय वह 72 वर्ष के हैं।

28. तदनुसार, रिट याचिका ***स्वीकार*** की जाती है और विपक्षी संख्या 2 द्वारा पारित दिनांक 10.01.2005 के आक्षेपित दंड आदेश, जो रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 8 में निहित है, को निरस्त करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट जारी की जाती है। याचिकाकर्ता विधि द्वारा अनुमेय 30% बकाया वेतन और सेवानिवृत्ति लाभों का हकदार है।

29. चूँकि याचिकाकर्ता 2005 से मुकदमा लड़ रहा है और 2013 में सेवानिवृत्त हो गया है, इसलिए न्याय के हित में यह समीचीन होगा कि विपक्षीगण को निर्देश दिया जाए कि वे संबंधित प्राधिकारी के समक्ष इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत किए जाने की तिथि से तीन माह की अवधि के भीतर, याचिकाकर्ता को 30% बकाया वेतन और सेवानिवृत्ति लाभों का भुगतान करने की प्रक्रिया पूरी करें।

(2025) 4 ILRA 551

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 04.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी

रिट - ए संख्या 10478/2022

संबंधित अन्य वाद

सुनील कुमार यादव एवं अन्य **...याचिकाकर्तागण**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...प्रत्यर्थीगण**

याचिकाकर्तागण के अधिवक्ता:
श्री रामेश्वर प्रसाद मिश्रा, श्री अब्दुल्ला कलाम, श्री अशोक खरे (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता:
मुख्य स्थायी अधिवक्ता

अनुवादित

क. सिविल विधि - भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - रिट - पोषणीयता - सर्वोच्च न्यायालय ने *शिव कुमार पाठक* के वाद में पहले ही विवाद का निस्तराण कर दिया है और यह अभिनिर्धारित किया है कि एनसीटीई द्वारा निर्धारित योग्यताएँ बाध्यकारी हैं, टीईटी अंकों के वेटेज की आवश्यकता अनिवार्य आवश्यकता नहीं है - हालाँकि, फिर से रिट याचिका दायर की गई - अनुमति - अभिनिर्धारित किया गया कि याचिकाकर्ताओं की प्रार्थनाएँ *शिव कुमार पाठक* के वाद में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित टिप्पणियों और निर्देशों के विपरीत हैं, इसलिए उन्हें अस्वीकार किया जाता है। (प्रस्तर 3 और 9)

ख. इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियमावली, 1952 - अध्याय XXII, R. 9 - लागत - विलासितापूर्ण मुकदमेबाजी से न्यायालय का महत्वपूर्ण समय बर्बाद होता है - वाद व्यय लगाना कहाँ तक आवश्यक है - अभिनिर्धारित किया गया कि ये मुकदमे विलासितापूर्ण मुकदमेबाजी प्रतीत होते हैं क्योंकि वर्तमान रिट याचिकाओं में उठाए गए मुद्दों का निस्तारण सर्वोच्च न्यायालय द्वारा शिव कुमार पाठक वाद में पहले ही किया जा चुका है और सभी रिट याचिकाओं में याचिकाकर्ता (संख्या 6402) भी इन तथ्यों से अवगत थे, और *शिव कुमार पाठक* के वाद के निर्णय के बावजूद उन्होंने वर्तमान रिट याचिकाएँ दायर की हैं, इसलिए, सभी रिट याचिकाकर्ताओं को

वाद व्यय के रूप में 100/- रुपये का भुगतान करना होगा क्योंकि इन मुकदमों ने इस न्यायालय का महत्वपूर्ण समय बर्बाद किया है। (प्रस्तर 12)

रिट याचिका खारिज। (ई-1)

<u>उद्धृत वाद की सूची:-</u>

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम शिव कुमार पाठक एवं अन्य; 2018 (12) एससीसी 595

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी द्वारा प्रदत्त)

1. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक खरे को अग्रणी रिट याचिका संख्या 10478/2022 में याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री अब्दुल्ला कलाम, श्री रामेश्वर प्रसाद मिश्रा की सहायता से, श्री आर.के.ओझा, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता को रिट याचिका संख्या 4933/2024 में याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री अब्दुल्ला कलाम की सहायता से और श्री जमील अहमद अंसारी की सहायता से, और संबंधित रिट याचिकाओं में अन्य विद्वान अधिवक्ताओं, राज्य की ओर से विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री अभिषेक श्रीवास्तव को श्री आशीष के. नागवंशी विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता व सुश्री मधु (ब्रीफ होल्डर) की सहायता से, सुना गया।

2. रिट याचिकाओं का यह समूह याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर किया गया है कि उन्होंने शिक्षक पात्रता परीक्षा (प्राथमिक स्तर) परीक्षा-2011 उत्तीर्ण की है और उनके परिणाम 25.11.2011, 30.11.2011 और 29.1.2015 को प्रकाशित किए गए थे।

3. यह मुद्दा कि क्या टीईटी परीक्षा में प्राप्त अंक रिक्तियों को भरने के लिए एकमात्र मानदंड हो सकते हैं, अंतिम रूप से सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, ईटीसी, ईटीसी बनाम शिव कुमार पाठक एवं अन्य, ईटीसी, ईटीसी, 2018 (12) एससीसी 595 में निर्णीत किया गया था और इसके प्रस्तर 16,17,18,19 और 20 में दिए गए निष्कर्ष और निर्देश यहाँ पुन: प्रस्तुत किए जाते हैं:

16. इसमें कोई संदेह नहीं है कि एनसीटीई, आरटीई अधिनियम की धारा 23 के अंतर्गत एक 'शैक्षणिक प्राधिकरण' के रूप में कार्य करते हुए, केंद्र सरकार द्वारा जारी 31 मार्च, 2010 की अधिसूचना के साथ-साथ एनसीटीई अधिनियम की धारा 12 और 12 ए के अंतर्गत, 23 अगस्त, 2010 और 11 फरवरी, 2011 की अधिसूचनाएं जारी करने के लिए सक्षम थी। राज्य सरकार उक्त अधिसूचनाओं के अनुसार कार्य करने और किसी भी विपरीत नियम को प्रभावी नहीं करने के लिए बाध्य थी। हालांकि, चूंकि एनसीटीई ने स्वयं यह रुख अपनाया है कि टीईटी में प्राप्त अंकों को दिए जाने वाले वेटेज के संबंध में 11 फरवरी, 2011 की अधिसूचना अनिवार्य नहीं है, जो एक संभावित व्याख्या भी है, इसलिए 1981 के नियमावली में 15वें संशोधन को रद्द करने में

अनुवादित

उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण में हस्तक्षेप किया जाना चाहिए। तदनुसार, जबकि हम इस दृष्टिकोण को बनाए रखते हैं कि एनसीटीई द्वारा निर्धारित योग्यताएं बाध्यकारी हैं, टीईटी अंकों को वेटेज की आवश्यकता अनिवार्य आवश्यकता नहीं है।

17. उपरोक्त के परिणामस्वरूप, सामान्य तौर पर राज्य को 15वें संशोधन के माध्यम से संशोधित नियमावली के अनुसार 7 दिसंबर, 2012 के विज्ञापन के अनुसार चयन के लिए आगे बढ़ने की स्वतंत्रता होती, इन अपीलों के लंबित रहने के दौरान हुए घटनाक्रमों को देखते हुए, उक्त विज्ञापन आगे नहीं बढ़ सकता है और उक्त विज्ञापन को बरकरार रखते हुए, अंतराल में हुए घटनाक्रमों के मद्देनजर राहत को ढाला जाना चाहिए।

18. 25 मार्च, 2014 के अंतरिम आदेश के द्वारा इस न्यायालय ने उत्तर प्रदेश राज्य को आक्षेपित निर्णय के अनुसार सहायक अध्यापकों के रिक्त पदों को भरने का निर्देश दिया था। इसके बाद, 17 दिसंबर, 2014 को उक्त आदेश को संशोधित किया गया और राज्य को ऐसे अभ्यर्थियों की नियुक्ति करने का निर्देश दिया गया जिनके नाम टीईटी परीक्षा में गड़बड़ी में शामिल नहीं थे और जिन्होंने 70% अंक (एससी, एसटी, ओबीसी और शारीरिक रूप से विकलांग या आरक्षण के लिए सरकारी नीति द्वारा कवर की गई किसी अन्य श्रेणी के लिए 65%) प्राप्त किए थे। इस न्यायालय के आदेशों के अनुपालन में 54,464 पद पहले ही भरे जा चुके हैं। उक्त नियुक्तियाँ इन मामलों के परिणाम के अधीन थीं। यह भी देखा गया कि यदि टीईटी योग्यता के बिना किसी को नियुक्त किया जाता है तो उसकी सेवाएँ समाप्त कर दी जाएँगी। 2 नवंबर, 2015 के आदेश के अनुसार, यह उल्लेख किया गया था कि विज्ञापित 72,825 पदों में से 43,077 उम्मीदवारों ने प्रशिक्षण पूरा कर लिया था और कार्यरत थे, जबकि 15,058 उम्मीदवार प्रशिक्षण ले रहे थे। लगभग 14,690 पद रिक्त थे। यह भी देखा गया कि जिन उम्मीदवारों के पास 27 जुलाई, 2015 के आदेश के अनुसार आवश्यक प्रतिशत अंक थे, उन्हें अपने आवेदन जमा करने थे और उक्त उद्देश्य के लिए गठित एक समिति ऐसे प्रतिशत का सत्यापन कर सकती थी और यदि समानता पाई जाती थी, तो समान लाभ दिया जा सकता था।

19. हमें सूचित किया गया है कि इस न्यायालय के अंतरिम आदेशों के अनुसरण में 66,655 शिक्षकों की नियुक्ति पहले ही की जा चुकी है। संपूर्ण परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, हम इसमें कोई परिवर्तन नहीं करना चाहते हैं। हम यह स्पष्ट करते हैं कि राज्य एक नया विज्ञापन जारी करने के बाद विधि के अनुसार शेष रिक्तियों को भरने के लिए स्वतंत्र है।

20. मामले का निस्तारण उपरोक्त शर्तों के अनुसार किया जाएगा।

4. याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने उपरोक्त प्रार्थनाओं के समर्थन में विभिन्न तर्क प्रस्तुत किए हैं, हालाँकि उन्होंने रिट-ए संख्या 10478/2022 में केवल प्रार्थना संख्या 4 पर ही प्रभावी रूप से बल दिया है, जिसे आगे पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है:

"iv. प्रत्यर्थी/राज्य सरकार को निर्देश देते हुए परमादेश की प्रकृति का एक रिट आदेश या निर्देश जारी करें कि चयन प्रक्रिया बेसिक शिक्षा विभाग, राज्य सरकार द्वारा जारी दिनांक 07.12.2012 के विज्ञापन (अनुलग्नक संख्या 21) के अनुसार शुरू की जाए।"

5. वर्तमान रिट याचिका में यह भी प्रार्थना की गई थी कि शिक्षक पात्रता परीक्षा (प्राथमिक स्तर)-परीक्षा-2011 के 25.11.2011, 30.11.2011 और 29.1.2015 को घोषित परिणामों को रद्द कर दिया जाए और शिक्षक पात्रता परीक्षा (प्राथमिक स्तर)-परीक्षा-2011 की ओएमआर शीट का पुनर्मूल्यांकन किया जाए और साथ ही उन अभ्यर्थियों की उम्मीदवारी रद्द की जाए, जिन्होंने ओएमआर शीट पर व्हाइटनर का उपयोग किया है और चयन प्रक्रिया दिनांक 7.12.2012 के विज्ञापन अर्थात उसके बाद के विज्ञापन के अनुसरण में शुरू की जाए।

6. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि शिव कुमार पाठक (पूर्वोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय में इस बात पर रोक नहीं लगाई गई है कि दिनांक 7.12.2012 के बाद के विज्ञापन के अनुसरण में चयन प्रक्रिया शुरू नहीं की जा सकती।

7. इसके विपरीत, प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने शिव कुमार पाठक (पूर्वोक्त) के प्रभावी भाग का हवाला देते हुए दलील दी कि याचिकाकर्ताओं को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्देशों से परे कोई राहत नहीं दी जा सकती और साथ ही यह न्यायालय भी उक्त निर्देशों से बाध्य है।

8. प्रतिद्वंद्वी दलीलों का मूल्यांकन करने के लिए, मैंने शिव कुमार पाठक (पूर्वोक्त) में पारित निर्णय के ऊपर संदर्भित प्रभावी भाग के साथ-साथ उसमें दिए गए निर्देशों का भी अवलोकन किया है।

9. शिव कुमार पाठक (पूर्वोक्त) के प्रस्तर संख्या 17 में, सर्वोच्च न्यायालय ने इस बात पर ध्यान दिया है कि सामान्य तौर पर राज्य को संशोधित नियमावली के अनुसार 7 दिसंबर, 2012 के विज्ञापन के संदर्भ में चयन के लिए आगे बढ़ने की स्वतंत्रता होती। हालांकि, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेश के अनुसरण में 66,655 शिक्षकों की नियुक्ति पहले ही की जा चुकी है और इसलिए, 7.12.2012 के विज्ञापन के अनुसार चयन प्रक्रिया जारी रखने का निर्देश देने के बजाय, सर्वोच्च न्यायालय ने शिव कुमार पाठक (पूर्वोक्त) के प्रस्तर 19 में राज्य को एक नया विज्ञापन जारी करने के बाद विधि के अनुसार शेष रिक्तियों को भरने की स्वतंत्रता दी है, इसलिए, प्रभावी रूप से सर्वोच्च न्यायालय ने एक निर्देश पारित किया है कि 7.12.2012 के विज्ञापन के अनुसार चयन आगे नहीं बढ़ेगा। तदनुसार, याचिकाकर्ताओं की प्रार्थना शिव कुमार पाठक (पूर्वोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित टिप्पणियों और निर्देशों के विपरीत होने के कारण खारिज की जाती है।

10. जहां तक अन्य प्रार्थनाओं का संबंध है, इसे भी सर्वोच्च न्यायालय ने शिव कुमार पाठक (पूर्वोक्त) में उनके विरूद्ध स्थापित किया है और अब इसे फिर से नहीं खोला जा सकता क्योंकि पहले की चयन प्रक्रिया के अनुसरण में की गई नियुक्तियों को भी संरक्षित किया गया है, इसलिए, अन्य प्रार्थनाएँ भी अस्वीकृत की जाती हैं।

अनुवादित

11. सभी रिट याचिकाएँ बलहीन हैं, तदनुसार खारिज की जाती हैं।

12. वर्तमान परिस्थितियों में, न्यायालय को यह मानना होगा कि ये मुकदमे विलासितापूर्ण मुकदमे प्रतीत होते हैं क्योंकि वर्तमान रिट याचिकाओं में उठाए गए मुद्दों का निस्तारण सर्वोच्च न्यायालय द्वारा शिव कुमार पाठक (पूर्वोक्त) वाद में पहले ही किया जा चुका है और सभी रिट याचिकाओं में याचिकाकर्ता (संख्या 6402) भी इन तथ्यों और शिव कुमार पाठक (पूर्वोक्त) के निर्णय से अवगत थे, फिर भी उन्होंने वर्तमान रिट याचिकाएँ दायर की हैं, इसलिए, सभी रिट याचिकाकर्ताओं को 100/- रुपये प्रत्येक को वाद व्यय के रूप में देना होगा क्योंकि इन मुकदमों ने इस न्यायालय का महत्वपूर्ण समय बर्बाद किया है।

13. प्रत्येक रिट याचिका के साथ संलग्न शपथपत्र के शपथकर्ता इस बात के लिए उत्तरदायी होंगे कि प्रत्येक याचिकाकर्ता द्वारा वाद व्यय का भुगतान किया जाए, क्योंकि उन्होंने स्वयं को संबंधित रिट याचिकाओं के पैरोकार घोषित किया है ।

14. वाद व्यय का भुगतान एक सप्ताह के भीतर उच्च न्यायालय बार एसोसिएशन, इलाहाबाद के समक्ष किया जाएगा और अनुपालन शपथपत्र दायर किया जाएगा, जिसे इन रिट याचिकाओं के अभिलेख में रखा जाएगा। चूक की स्थिति में, इस न्यायालय के महानिबंधक को प्रत्येक रिट याचिका के शपथकर्ता/पैरोकार से वसूली के लिए उचित कदम उठाने का निर्देश दिया जाता है।

15. प्रत्येक रिट याचिका में याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता शपथकर्ता/पैरोकार को इस आदेश के बारे में सूचित करें।

(2025) 4 ILRA 555

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 09.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजित कुमार

रिट-ए संख्या 10689/2024

और 5 संबंधित वाद

सीता राम शर्मा एवं अन्य **...याचिकाकर्तागण**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...प्रत्यर्थीगण**

याचिकाकर्तागण के अधिवक्ता:

अनुवादित

आदित्य प्रकाश वर्मा, शैलेश वर्मा

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता:
मुख्य स्थायी अधिवक्ता

सेवा विधि - भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - पुनर्नियोजन-आरक्षी (जीडी) उत्तर प्रदेश पुलिस 2018 के लिए चयन-याचिकाकर्ताओं को दिनांक 23.12.2020 के शासनादेश के अंतर्गत वेतन संरक्षण से वंचित कर दिया गया, जबकि पहले के प्रशिक्षण बैच में समान स्थिति वाले उम्मीदवारों को यह लाभ दिया गया था - याचिकाकर्तागण जो पूर्व सैन्यकर्मी थे और आरक्षी (जीडी) उत्तर प्रदेश पुलिस 2018 के लिए उसी भर्ती विज्ञापन के अंतर्गत चयनित हुए थे, वे पहले नियुक्त किए गए अन्य लोगों के साथ एक समरूप वर्ग बनाते हैं - केवल महामारी के कारण प्रशिक्षण और नियुक्ति में प्रशासनिक देरी के आधार पर वेतन संरक्षण से इनकार करना संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करता है - शासनादेश भावी होने के कारण इसे जारी होने से पहले चयनित उम्मीदवारों पर लागू नहीं किया जा सकता - अभिनिर्धारित किया गया कि पूरी चयन प्रक्रिया एक समरूप समूह बनाती है - प्रशासनिक निर्णयों (कोविड-19) के कारण बैचों में विभाजन विभेदक व्यवहार को उचित नहीं ठहरा सकता - शासनादेश भावी प्रकृति का है - याचिकाकर्ता प्रथम बैच के समान लाभ के हकदार हैं - 30 दिनों के भीतर वेतन संरक्षण बढ़ाने के निर्देश जारी किए गए। (प्रस्तर 1 से 16)

रिट याचिका स्वीकार की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वादों की सूची:-</u>

1. भारत संघ बनाम अनिल प्रसाद (2022) 5 एससीसी 461
2. मणिलाल बनाम राजस्थान राज्य व अन्य (2024) 0 एससी 764
3. फिरंगी प्रसाद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य (2011) 2 यूपीएलबीईसी 987
4. महेश नारायण व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य (रिट ए संख्या 55606/2008)

(माननीय न्यायमूर्ति अजित कुमार द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता और विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता को सुना गया।

2. संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत दायर उपरोक्त रिट याचिकाओं के माध्यम से, याचिकाकर्ता, जो उत्तर प्रदेश सिविल पुलिस 2018 में आरक्षी जीडी के लिए चुने गए थे, प्रत्यर्थीगण द्वारा पूर्व सैन्य कर्मियों के रूप में उनके द्वारा प्राप्त अंतिम वेतन के संदर्भ में उन्हें वेतन संरक्षण प्रदान न करने के भेदभावपूर्ण रुख से व्यथित हैं। सभी याचिकाकर्ताओं का चयन और नियुक्ति पूर्व सैन्य कर्मियों की श्रेणी में हुई थी और उनका कहना है कि

यदि एक ही चयन के परिणामस्वरूप, चयनितों को अलग-अलग समय पर प्रशिक्षण के लिए चार बैचों में भेजा जाता है, तो राज्य द्वारा प्रशिक्षुओं के प्रथम बैच को वेतन संरक्षण प्रदान करना और अन्य प्रशिक्षुओं को केवल इस आधार पर इससे वंचित करना उचित नहीं है कि शासनादेश में पूर्व सैनिकों को बाद की तिथि से वेतन संरक्षण न देने का निर्णय लिया गया है।

3. यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि चयन प्रक्रिया पूरी होने के बाद चयनित अभ्यर्थियों को प्रशिक्षण के लिए भेजा जाना आवश्यक था, किन्तु कोविड-19 महामारी की तत्कालीन परिस्थितियों के कारण, उत्तर प्रदेश पुलिस प्रशिक्षण निदेशालय ने अपने 25 जुलाई, 2020 के आदेश द्वारा चयनित अभ्यर्थियों को चार बैचों में विभाजित कर अलग-अलग तिथियों पर अलग-अलग अवधि के लिए प्रशिक्षण हेतु भेजा। प्रथम बैच को अगस्त, 2020 में छह माह की अवधि के लिए, द्वितीय बैच को मार्च, 2021 में छह माह की अवधि के लिए, तृतीय बैच को अक्टूबर 2021 में छह माह की अवधि के लिए तथा अंतिम एवं चतुर्थ बैच को मई, 2022 में छह माह की अवधि के लिए प्रशिक्षण हेतु भेजा गया।

4. इस न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ताओं ने दावा किया है कि उन्हें द्वितीय बैच में प्रशिक्षण के लिए भेजा गया था, जो मार्च, 2021 से शुरू हुआ और सितंबर, 2021 तक छह माह तक चला। जब प्रथम बैच अपना प्रशिक्षण पूरा कर रहा था, तब उनके संबंध में नियुक्ति आदेश 23 दिसंबर, 2020 के शासनादेश से पूर्व जारी कर दिया गया था। यह वही तिथि थी, जिस दिन शासनादेश जारी किया गया था, जिसमें यह निर्णय लिया गया था कि चयनित पूर्व सैन्यकर्मियों को अब कोई वेतन संरक्षण नहीं दिया जाएगा। शासनादेश में आगे यह भी प्रावधान किया गया था कि यह तत्काल प्रभाव से लागू होगा। शासनादेश के प्रस्तर 22 में निहित प्रासंगिक प्रस्तर नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"उपर्युक्त प्रस्तर-1 में वर्णित तथ्यों को ध्यान में रखते हुये शासन स्तर पर सम्यक् विचारोपरान्त लिये गये निर्णय के क्रम में मुझे यह कहने का निदेश हुआ है कि राज्य सरकार की सेवा में भूतपूर्व सैनिकों का पुनर्योजन किये जाने की दशा में उनके वेतन निर्धारण के संबंध में राज्यपाल महोदया द्वारा निम्नवत प्रक्रिया निर्धारित करने की स्वीकृति प्रदान की गयी है:-

(1) सेना से सेवानिवृत सैन्य कर्मियों का राज्य सरकार की सेवा में पुनर्योजन होने पर उन्हें उस पद के वेतनमान में ही वेतन ग्राह्य होगा जिस पद पर उनका पुनर्योजन हुआ है। सेवानिवृत्ति के पूर्व धारित पद के वेतनमान का संरक्षण नहीं किया जायेगा।

(2) ऐसे पुनर्योजित सैन्य पेंशर जिनकी पूरी पेंशन वेतन निर्धारण हेतु उपेक्षाणीय (ignored) है, का वेतन पुनर्योजन के पद के वेतनमान के न्यूनतम पर निर्धारित किया जायेगा।
(3) ऐसे प्रकरण जिनमें वेतन निर्धारण हेतु पूरी पेंशन उपेक्षणीय (ignored) नहीं है, उनमें पुनर्योजन पर प्रारम्भिक वेतन सेवानिवृत्ति के पूर्व प्राप्त वेतन के प्रक्रम पर निर्धारित किया जायेगा, परन्तु-

(i) यदि पुनर्योजन के पद के वेतनमान में ऐसा प्रक्रम उपलब्ध नहीं है, तो उक्त प्रक्रम के ठीक नीचे वाले प्रक्रम पर वेतन निर्धारित किया जायेगा।

(ii) यदि पुनर्योजन के पद के वेतनमान का अधिकतम सेवानिवृत्ति के पूर्व आहरित वेतन से कम है, तो पुनर्योजन के पद के वेतनमान के अधिकतम पर वेतन निर्धारित किया जायेगा।

(iii) यदि पुनर्योजन के पद के वेतनमान का न्यूनतम सेवानिवृत्ति के पूर्व आहरित अन्तिम वेतन से अधिक है, तो वेतन निर्धारण पुनर्योजन के पद के न्यूनतम पर किया जायेगा।

उपरोक्तानुसार निर्धारित होने वाले वेतन में से, सैन्य सेवा से प्राप्त पेंशन का वह भाग जो उपेक्षणीय (ignored) नहीं है, घटा दिया जायेगा।

(4) राज्य सरकार की सेवा में पुनयोजित सैन्य पेंशनर उपरोक्तानुसार निर्धारित वेतन के अतिरिक्त अपनी पूरी पेंशन अन्य सेवानैवृत्तिक लाभ सहित आहरित करते रहेंगे।

4- उपरोक्त आदेश तात्कालिक प्रभाव से लागू होंगे अर्थात शासनादेश निर्गत होने की तिथि अथवा उसके उपरान्त राज्य सरकार की सेवा में नियुक्ति पाने वाले भूतपूर्व सैनिकों के प्रकरण इन आदेशों से आच्छादित होंगे। शासनादेश की तिथि के पूर्व राज्य सरकार की सेवा में पुनयोजित हो चुके सैन्य पेंशनरों के प्रकरण पुनरूदघटित (रीओपेन) नहीं किये जायेंगे।"

5. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि प्रथम बैच ने जनवरी, 2021 में अपना प्रशिक्षण पूरा करने के बाद, उन्हें वेतन संरक्षण प्रदान किया गया था और उदाहरण के लिए, कुलदीप सिंह नव चयनित आरक्षी पीएनओ संख्या 202641386 का वेतन निर्धारण दिनांक 24 जनवरी, 2024 को अभिलेख में लाया गया है। यह तर्क दिया गया है कि प्रथम बैच को लाभ दिए जाने के बाद, द्वितीय, तृतीय व चतुर्थ बैच में चयनित उम्मीदवार, जो पूर्व सैन्यकर्मी भी थे, उन्हें यह लाभ नहीं दिया गया।

6. ये उपरोक्त दलीलें रिट याचिका के प्रस्तर 14 में उठाई गई हैं, जिसमें विभिन्न अन्य आरक्षीगण का विवरण है, जिन्हें अंतिम वेतन संरक्षण का लाभ मिला था, जिसका वे पूर्व सैन्यकर्मी होने का दावा कर रहे थे। प्रस्तर 14 के जवाब में प्रति शपथपत्र में, प्रस्तर 16 के अनुसार, यह इस प्रकार कहा गया है:

"रिट याचिका की धारा 14 को इस सीमा तक स्वीकार किया जाता है कि 11.10.2020 को पुलिस विभाग में आरक्षी कुलदीप सिंह पीएनओ संख्या 202641386 की नियुक्ति के समय दिनांक 26.8.1977 और 18.5.1983 के शासनादेश प्रभावी थे। वर्तमान में, भूतपूर्व सैनिक की राज्य सरकार की सेवा में पुनर्नियुक्ति हेतु दिनांक 23.12.2020 का शासनादेश प्रभावी है, जिसमें स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि उपरोक्त आदेश तत्काल प्रभाव से लागू होगा, अर्थात, जिन भूतपूर्व सैनिकों की नियुक्ति शासनादेश जारी होने की तिथि को या उसके बाद राज्य सरकार की सेवाओं में हुई है, वे इस आदेश के अंतर्गत आएंगे।"

7. ऊपर उद्धृत प्रति-शपथपत्र के प्रस्तर 14 में दिए गए कथनों को पढ़ने से पता चलता है कि यद्यपि कुलदीप सिंह को प्रथम बैच में प्रशिक्षण के लिए भेजा गया था, उन्हें 11.10.2020 को नियुक्ति की पेशकश की गई थी, जब 26.8.1977 और 18.5.1983 के शासनादेश लागू थे और इसलिए उन्हें वेतन संरक्षण का लाभ दिया गया था। हालाँकि, पूर्व सैनिकों की पुनर्नियुक्ति के संबंध में 23.12.2020 के शासनादेश के लागू होने पर उन्हें अपनी पिछली स्थापना के वेतन संरक्षण का हकदार नहीं माना गया और इसलिए वर्तमान याचिकाकर्ता को ऐसा कोई लाभ नहीं दिया जा सकता था। इस प्रकार, यह तथ्य की स्वीकृत स्थिति है कि याचिकाकर्ताओं को केवल प्रशिक्षण के प्रथम बैच के बाद, उनके प्रशिक्षण के पूरा होने के कारण वेतन संरक्षण से वंचित किया गया है, जबकि याचिकाकर्ता भी प्रथम बैच की तरह प्रशिक्षु थे, जो बाद में आरक्षी बन गए। इस प्रकार सभी नियुक्तियों को वर्ष 2018 में आयोजित चयन और भर्ती के अनुसार चुना गया था और इसलिए उन्होंने वेतन समानता का दावा किया।

8. विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने वेतन संरक्षण से इनकार करने वाले शासनादेश के अंतर्गत अपनाए गए रुख का बचाव करने का प्रयास किया है, और **भारत संघ बनाम अनिल प्रसाद 2022 5 एससीसी 461** वाद में सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्णय का हवाला दिया है, जिसमें पूर्व सैनिकों को वेतन संरक्षण का लाभ देने से इनकार करने वाले केंद्र सरकार के नियमावली को बरकरार रखा गया था। अतः, यह निवेदन किया गया कि वेतन संरक्षण लाभ देने से इनकार करने में सरकार की कार्रवाई में कोई दोष नहीं पाया जा सकता है जिससे, इसे विकृत, भेदभावपूर्ण या मनमाना माना जा सके। विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने निर्णय के प्रस्तर 4.5 का हवाला दिया है, जो इस प्रकार है:

"5.4 अतः, सरकारी सेवा में प्रत्यर्थी का वेतन निर्धारण, केन्द्रीय सिविल सेवा आदेश, 1986 के पैरा 8 के पूर्णतः अनुरूप था। प्रस्तर 8 में यह प्रावधान नहीं है कि सरकारी सेवा में पुनः नियुक्ति पर सेवानिवृत्त सशस्त्र बल कर्मी अपने अंतिम आहरित वेतन के बराबर मूल वेतन पाने का हकदार होगा। ऐसा मानना केन्द्रीय सिविल सेवा आदेश के प्रस्तर 8 का उल्लंघन होगा। इन परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय ने यह अवलोकन और निर्णय देकर गंभीर त्रुटि की है कि सरकारी सेवा में पुनः नियुक्ति पर सेवानिवृत्त सशस्त्र बल कर्मी सशस्त्र बल कर्मी के रूप में अंतिम आहरित वेतन पाने के हकदार होंगे। अतः, उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश, केन्द्रीय सिविल सेवा आदेश, 1986 के प्रस्तर 8 के विपरीत होने के कारण पोषणीय नहीं है।"

9. संबंधित पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने और अभिलेखों का अवलोकन करने के बाद, मैं पाता हूँ कि इस याचिका में, सरकारी गैर-रक्षा प्रतिष्ठानों में पुनर्नियुक्ति प्राप्त करते समय पूर्व सैन्य कर्मियों को वेतन संरक्षण का लाभ देने से इनकार करने वाले शासनादेश में निहित प्रासंगिक प्रावधान की तुलना में याचिकाकर्ताओं के साथ हो रहे भेदभाव को अधिक चुनौती दी गई है।

10. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **मणिलाल बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य, 2024 0 एससी 764** के वाद में दिए गए निर्णय पर जोर दिया है और तर्क दिया है कि यदि काउंसलिंग नहीं हुई और इसमें देरी हुई,

तो समान चयन के आधार पर समान और एकरूप पदों पर आसीन शिक्षकों के साथ भेदभाव नहीं किया जा सकता था। उन्होंने निर्णय के प्रस्तर 15 पर भरोसा किया है, जो इस प्रकार है:

"अपीलकर्ता का वाद राकेश गौड़ (पूर्वोक्त) के वाद से अधिक मिलता-जुलता था, जिन्होंने 05.11.2009 को प्रवेश लिया था। इस वाद के विशेष तथ्यों के आधार पर हमारी स्पष्ट राय है कि खंडपीठ ने अंकुल सिंघल (पूर्वोक्त) और राकेश गौड़ (पूर्वोक्त) के निर्णय में दिए गए तर्क को इस वाद के तथ्यों पर लागू करने के बजाय दिनेश चंद्र डामोर (पूर्वोक्त) के वाद को लागू करके गलती की। जैसा कि अंकुल सिंघल (पूर्वोक्त) में अभिनिर्धारित किया गया था, शैक्षणिक सत्र 2009-10 के लिए प्रवेश पाने वाले छात्रों के एक समरूप समूह के बीच परस्पर भेदभाव करना अनुचित होगा। जैसा कि उसमें बताया गया था, ऐसा नहीं हो सकता कि काउंसलिंग के पहले दौर में प्रवेश पाने वाले छात्र स्नातक में 50% से कम अंकों के साथ भी पात्र होंगे, जबकि काउंसलिंग के बाद के दौर में प्रवेश पाने वाले अन्य छात्र पात्र नहीं होंगे। राकेश गौड़ (पूर्वोक्त) का मामला अपीलकर्ता के वाद के समान ही था। "समान परिस्थिति में समान व्यवहार किया जाना चाहिए "

11. इस प्रकार इस याचिका में इस न्यायालय द्वारा निर्धारण किए जाने वाला एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या उसी चयन के चयनित उम्मीदवारों को, जब उन्हें पहले प्रशिक्षण के लिए भेजा गया था, दी गई वेतन सुरक्षा उन याचिकाकर्ताओं को अस्वीकार की जा सकती है, जिन्होंने बाद में प्रशिक्षण प्राप्त किया क्योंकि कोविड-19 महामारी के प्रभाव के कारण प्रशिक्षण चार अलग-अलग बैचों में आयोजित किया जा रहा था। प्रत्यर्थीगण की ओर से इस बात से कोई इनकार नहीं किया गया है कि सभी याचिकाकर्ता जिन्हें प्रशिक्षण के लिए द्वितीय बैच में भेजा गया था और बाद में उसी विज्ञापन के अनुसार उसी चयन के तहत आरक्षी (जीडी) उत्तर प्रदेश पुलिस के पद के लिए चुना गया था। प्रशिक्षण ऐसे चयनित उम्मीदवारों को नियुक्ति देने के लिए किया जाने वाला एक आंशिक अभ्यास है और एक बार उम्मीदवार का चयन हो जाने के बाद, अंतिम रूप से प्रकाशित और घोषित चयन सूची में विचार किए जाने के परिणामस्वरूप प्रशिक्षण होता है। इस प्रकार, नियुक्ति के प्रयोजनों के लिए प्रशिक्षण के लिए भेजे जाने वाले उम्मीदवार के लिए चयनित सूची तैयार होने के बाद चयन का कोई और चरण शेष नहीं रहता है। इसलिए, चयनित उम्मीदवारों को नियुक्ति प्रदान करना प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग है, और इसलिए, न्यायालय के सुविचारित दृष्टिकोण में, यदि प्रत्यर्थी अपनी प्रशासनिक शक्ति का प्रयोग करते हुए प्रशिक्षुओं को अलग-अलग क्लस्टर और समूहों में विभाजित करने का निर्णय लेते हैं, जिन्हें अलग-अलग तिथियों पर प्रशिक्षण के लिए भेजा जाना है और सफलतापूर्वक प्रशिक्षण पूरा होने पर ऐसे प्रशिक्षुओं को नियुक्ति की पेशकश की जा रही है, तो वेतनमान, भत्ते और अन्य परिलब्धियों जैसे सेवा लाभों के मामले में उनके साथ निश्चित रूप से भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए, जो संबंधित पद के लिए स्वीकार्य हैं। वरिष्ठता के मामले में भी, केवल चयन सूची का ही पालन किया जाना है। मणिलाल (पूर्वोक्त) वाद में उद्धृत निर्णय याचिकाकर्ताओं के वाद को पूरी तरह से आच्छादित करता है। न्यायालय ने उसमें यह अभिनिर्धारित किया था कि समरूप समूह के बीच परस्पर भेदभाव को स्वीकार नहीं किया जा सकता। इस प्रकार, एक ही चयन के तहत चयनित सभी लोग एक समरूप समूह का निर्माण करेंगे और उनकी नियुक्ति केवल प्रशिक्षण पाठ्यक्रम का एक

परिणामी परिणाम होगी, जो प्रशिक्षण के दौरान उनकी अस्वीकृति के अधीन है। एक बार जब एक समरूप समूह को प्रशिक्षण के लिए भेज दिया जाता है, तो सभी सदस्यों के साथ समान व्यवहार किया जाना चाहिए।

12. प्रशिक्षण के लिए भेजे जा रहे समूह या समूहों के आधार पर कोई भी वर्गीकरण संविधान के अनुच्छेद 14 के विरुद्ध होगा क्योंकि यह समान पदों पर कार्यरत कर्मचारियों को लाभ प्रदान करने के उद्देश्य से उचित वर्गीकरण नहीं होगा। समानता का एक सुस्थापित नियम यह है कि असमान लोगों के साथ समान व्यवहार नहीं किया जा सकता और समान पदों पर कार्यरत लोगों को वेतन समानता और सेवा लाभ प्रदान करने के लिए समान व्यवहार किया जाना चाहिए।

13. **फिरंगी प्रसाद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (2011) 2 यूपीएलबीईसी 987** के वाद में, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि नियुक्ति पत्र जारी करने में नियुक्ति प्राधिकारी की गलती के कारण याचिकाकर्ताओं को नुकसानदेह स्थिति में नहीं डाला जा सकता। यद्यपि यह मामला नियमितीकरण से संबंधित था, लेकिन चूंकि प्रबंधन ने नियुक्ति आदेश देरी से और नियमितीकरण नियमावली की कट-ऑफ तिथि के बाद भी जारी किए थे, इसलिए सभी को नियमितीकरण का लाभ देने के लिए समान माना गया। इस निर्णय का अनुसरण **महेश नारायण एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (रिट ए संख्या 55606/2008)** के वाद में भी किया गया है, जिसका निर्णय 19.12.2019 को हुआ था, जिसमें एक विज्ञापन के सभी आवेदकों को चयनित होने पर पुरानी पेंशन योजना का लाभ देने के लिए एक समरूप समूह बना लिया गया था, क्योंकि विज्ञापन और चयन पुरानी पेंशन योजना को समाप्त करने से पहले हुए थे, जबकि नियुक्ति आदेश बाद में जारी किए गए थे।

14. इस वाद के उपरोक्त दृष्टिकोण से, जहाँ तक पूर्व सैनिकों को वेतन संरक्षण से वंचित करने का प्रश्न है, मुझे शासनादेश के अनुप्रयोग में कोई भेदभावपूर्ण बात नहीं लगती, परन्तु शासनादेश केवल उन्हीं मामलों में लागू होगा जहाँ उम्मीदवारों का चयन उसके जारी होने के बाद हुआ हो। वे सभी जिन्हें अंततः नियुक्ति के लिए प्रशिक्षण के लिए भेजा गया है, एक समरूप समूह का निर्माण करेंगे जिन्हें वेतन संरक्षण सहित सभी लाभ प्राप्त होंगे और उनका दावा अभी शासनादेश से प्रभावित नहीं होगा।

15. जहाँ तक विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णय का प्रश्न है, मुझे उसमें प्रतिपादित विधि के संबंध में कोई विवाद नहीं दिखता, क्योंकि मेरा भी यह मत है कि इस वाद की विशेष परिस्थितियों में शासनादेश को रद्द करने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि यह अभिनिर्धारित किया गया है कि वर्तमान वाद पर लागू नहीं होता है।

16. उपरोक्त के मद्देनजर, रिट याचिका सफल होती है और उसे स्वीकार किया जाता है। प्रत्यर्थी संख्या 3 को निर्देश दिया जाता है कि वे याचिकाकर्ताओं को अंतिम वेतन संरक्षण का लाभ प्रदान करें, जैसा कि उत्तर प्रदेश पुलिस आरक्षी भर्ती 2018 के अनुसार प्रशिक्षुओं के प्रथम बैच को दिया गया है। उचित आदेश पारित किया जाए

और इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से तीस दिनों की अधिकतम अवधि के भीतर याचिकाकर्ताओं को परिणामी लाभ प्रदान किया जाए।

(2025) 4 ILRA 560

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 15.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजित कुमार

रिट-ए संख्या 16760/2023

नावेद अख्तर **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...प्रत्यर्थीगण**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
श्री नरेंद्र कुमार, श्री प्रदीप कुमार मौर्य, श्री रमेश नारायण

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता:
मुख्य स्थायी अधिवक्ता

अनुवादित

सेवा विधि - भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - याचिकाकर्ता के रोजगार अनुबंध को इस आधार पर रद्द करने के आक्षेपित आदेश के विरूद्ध रिट याचिका कि वह एक संविदा कर्मचारी के रूप में अपने कर्तव्यों के निर्वहन में लापरवाह पाया गया था--- याचिकाकर्ता को सात दिनों तक अनुपस्थित रहने के लिए कारण बताओ नोटिस जारी किया गया--- याचिकाकर्ता ने डॉक्टर द्वारा 'बिस्तर पर आराम करने की सलाह' के पर्चे के साथ जवाब प्रस्तुत किया लेकिन जवाब पर कोई विचार नहीं किया गया और यहां तक कि चिकित्सकीय सलाह का भी आक्षेपित आदेश में उल्लेख नहीं किया गया--- जिला अस्पताल के चिकित्सा अधिकारी द्वारा बिस्तर पर आराम करने की सलाह के चिकित्सकीय पर्चे पर विचार नहीं किया गया और याचिकाकर्ता को कर्तव्यों के निर्वहन में लापरवाही का दोषी मानते हुए मनमाने ढंग से उसके अनुबंध को रद्द करने का निर्णय लिया गया--- आक्षेपित आदेश विधि में पोषणीय नहीं रह सकता और तदनुसार इसे रद्द किया जाता है--- प्रत्यर्थीगण को निर्देश दिया जाता है कि वे याचिकाकर्ता की संविदा कर्मचारी के रूप में बहाली पर विचार करें और 7 मार्च, 2019 के परिपत्र के आलोक में उचित आदेश पारित करें। (प्रस्तर 7, 8 और 9) (ई-15)

(माननीय न्यायमूर्ति अजित कुमार द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री नरेंद्र कुमार पांडे के ब्रीफ होल्डर श्री वेद प्रकाश शुक्ला और राज्य प्रत्यर्थीगण के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया।

2. संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत दायर इस याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने मुख्य चिकित्सा अधिकारी, मेरठ द्वारा पारित 24 मई, 2022 के आदेश का विरोध किया है, जिसमें याचिकाकर्ता के 'वार्ड बॉय' के रूप में रोजगार अनुबंध को इस आधार पर रद्द कर दिया गया था कि वह एक संविदा कर्मचारी के रूप में अपने कर्तव्यों के निर्वहन में लापरवाह पाया गया था और तदनुसार, जिला स्वास्थ्य समिति ने उसका अनुबंध रद्द करने का निर्णय लिया।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि याचिकाकर्ता बीमार पड़ गया था और तदनुसार उसे डॉक्टर, अर्थात् डॉ. अन्नू गुप्ता, राजकीय जिला अस्पताल, मेरठ के आपातकालीन चिकित्सा अधिकारी द्वारा 19 अप्रैल, 2022 से 25 अप्रैल, 2022 तक बिस्तर पर आराम करने की सलाह दी गई थी और याचिकाकर्ता को सात दिनों तक अनुपस्थित रहने के लिए 28 अप्रैल, 2022 को कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था। उन्होंने डॉक्टर द्वारा 'बिस्तर पर आराम करने की सलाह' के पर्चे के साथ जवाब प्रस्तुत किया। यह जवाब याचिकाकर्ता द्वारा 4 मई, 2022 को प्रस्तुत किया गया था, लेकिन जवाब पर कोई विचार नहीं किया गया और यहां तक कि चिकित्सा सलाह का भी आदेश में उल्लेख नहीं किया गया। यह भी तर्क प्रस्तुत किया गया है कि जिला स्तरीय समिति के निर्णय से याचिकाकर्ता को किसी भी समय अवगत नहीं कराया गया।

4. श्री शुक्ला ने तर्क दिया है कि निदेशक स्वास्थ्य मिशन, उत्तर प्रदेश द्वारा दिनांक 7 मार्च, 2019 को जारी दिशा-निर्देशों/परिपत्र के मद्देनजर, जिला स्तरीय स्वास्थ्य समिति केवल उन दुर्लभतम मामलों में ही रोजगार अनुबंध को रद्द करने की कार्यवाही कर सकती है जहाँ आरोप अत्यंत गंभीर हों। अन्यथा, कुछ अन्य दंड लगाने का निर्देश दिया गया है, जैसे वेतन में 15 दिन की कटौती या अगले एक वर्ष में कोई वेतन वृद्धि न होना या किसी अन्य ब्लॉक में स्थानांतरण या यदि पोस्टिंग जिला स्तर पर है, तो किसी अन्य जिले में स्थानांतरण या कोई भी दंड जो समिति द्वारा उचित और नियमावली के अनुसार हो। 7 मार्च, 2019 का प्रासंगिक परिपत्र नीचे पुन: प्रस्तुत है:

"प्रेषक,

मिशन निदेशक,
राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन,
उत्तर प्रदेश।

सेवा में,

समस्त मुख्य चिकित्साधिकारी,
समस्त जनपद,

पत्रांकः 197/SPMU/DAP-HR/GRC/2018-19/12394-75 दिनांक: 07.3.2019

विषयः राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन के अन्तर्गत जनपदों में कार्यरत संविदा कर्मचारियों द्वारा कार्य में अनियमितता पाये जाने के विरुद्ध कार्यवाही प्रक्रिया हेतु।

महोदय/महोदया,

उपरोक्त विषयक अवगत कराना है कि राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन के अंतर्गत जनपदों में कार्यरत संविदा कर्मचारियों द्वारा कार्य में अनियमितता पाये जाने के विरुद्ध निम्न प्रक्रिया का पालन करना सुनिश्चित करें:

अ. <u>जिला स्तरीय संविदा कर्मी (जिसकी नियुक्ति प्राधिकारी जिला स्वास्थ्य समिति है)</u>

संविदा कर्मी द्वारा किसी भी अनियमितता होने पर सर्वप्रथम कर्मी को लिखित चेतावनी व स्पष्टीकरण लिया जाये और उससे संतुष्ट न होने की दशा में जिला स्तर पर मुख्य चिकित्साधिकारी की अध्यक्षता में गठित समिति के समक्ष रखा जायेगा। समिति के सदस्य निम्नवत् हैः-

1. जिलाधिकारी द्वारा नामित अधिकारी।
2. अपर मुख्य चिकित्साधिकारी / नोडल अधिकारी सम्बन्धित जिला।
3. जिलाधिकारी द्वारा वित्त विभाग का नामित अधिकारी।
4. चिकित्सा अधीक्षक (अगर अनियमितता सम्बन्धित इकाई से है)।

यदि उपरोक्त समिति द्वारा कर्मचारी दोषी पाया जाता है तो आरोप की गंभीरता को देखते हुए समिति द्वारा निम्न बिन्दुओं में से अपनी संस्तुति जिला स्वास्थ्य समिति को निर्णय हेतु अग्रसारित की जायेगी।

1. 15 दिन की वेतन की कटौती।
2.01 वर्ष के वार्षिक बढोत्तरी की कटौती।
3. यदि ब्लॉक स्तरीय कर्मचारी हो तो अन्य ब्लॉक में स्थानान्तरण की संस्तुति।
4. यदि जिला स्तरीय कर्मचारी हो तो अन्य जिला में स्थानान्तरण की संस्तुति।
5. समिति द्वारा अन्य कोई नियमानुसार देय दण्ड।
6. यदि आरोप अत्यंत गंभीर हो तो संविदा समाप्ति की संस्तुति।

जिला स्वास्थ्य समिति द्वारा लिया गया निर्णय ही अन्तिम निर्णय माना जायेगा।

नोट- यदि जनपद में कार्यरत संविदा कर्मी प्रदेश स्तर से नियुक्त हैं एवं नियुक्ति प्राधिकारी राज्य स्तर पर है अथवा जनपद से स्थानान्तरण प्रस्तावित है तो जिला स्वास्थ्य समिति अपनी संस्तुति मिशन निदेशक, राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन को निर्णय हेतु प्रेषित करेगी।

<u>ब. इसी प्रकार राज्य स्तर पर भी समिति का गठन सिंशन निदेशक, राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन की अध्यक्षता में किया जायेगा। समिति के सदस्य निम्नवत हैः-</u>

1. संबंधित महाप्रबंधक।
2. महाप्रबंधक, मानव संसाधन।
3. महानिदेशक, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य द्वारा नामित अधिकारी (संबंधित कार्यक्रम)।
4 महानिदेशक, परिवार कल्याण द्वारा नामित अधिकारी (संबंधित कार्यक्रम)।

अनुमोदित

5. वित्त नियंत्रक, राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन।

यदि उपरोक्त समिति द्वारा कर्मचारी दोषी पाया जाता है तो आरोप की गंभीरता को देखते हुए निम्नवत् दण्ड हेतु निर्णय लिया जायेगा-

1. 15 दिन की वेतन की कटौती।

2.01 वर्ष के वार्षिक बढ़ोत्तरी की कटौती।

3. यदि कार्यक्रम का कर्मचारी हो तो अन्य कार्यक्रम में स्थानान्तरण की संस्तुति ।

4. समिति द्वारा अन्य कोई नियमानुसार देय दण्ड।

5. यदि आरोप अत्यन्त गंभीर हो तो संविदा समाप्ति की संस्तुति।

उक्त दिशा निर्देशों का तत्काल प्रभाव से पालन करना सुनिश्चित करें। राज्य स्तर पर गठित समिति निर्णय अन्तिम होगा।

भवदीया,
ह० अप०
(सुधा यादव)
महाप्रबन्धक (मानव संसाधन)।"

5. यह परिपत्र, जिस पर याचिकाकर्ता ने भरोसा किया है और इस आशय की दलीलें रिट याचिका के प्रस्तर 8 में उठाई गई हैं, प्रति-शपथपत्र के प्रस्तर 7 में अस्वीकार नहीं किया गया है। केवल इतना ही कहा गया है कि ये अभिलेख में दर्ज मामले हैं और उनसे सत्यापित किए जा सकते हैं।

6. रिट याचिका के प्रस्तर 17 और 19 में पर्याप्त दलीलें दी गई हैं कि याचिकाकर्ता उन सात दिनों को छोड़कर, जब वह चिकित्सा आधार पर अनुपस्थित रहा था, अपने कर्तव्यों का निष्ठापूर्वक निर्वहन कर रहा था और दैनिक कर्तव्यों के निर्वहन में कोई लापरवाही नहीं थी। इन प्रस्तरों का उत्तर प्रति-शपथपत्र के प्रस्तर 12 और 13 में दिया गया है, लेकिन इस बात का कोई स्पष्ट खंडन नहीं किया गया है कि याचिकाकर्ता को इन सात दिनों की अनुपस्थिति को छोड़कर, अपने कर्तव्यों के निर्वहन में लापरवाही के लिए कैसे दोषी पाया गया। यहाँ तक कि जिला स्वास्थ्य समिति की सिफारिश, जिस पर मुख्य चिकित्सा अधिकारी ने आक्षेपित आदेश पारित करते समय भरोसा किया था, को भी प्रति-शपथपत्र के साथ संलग्न नहीं किया गया है।

7. मामले के उपरोक्त दृष्टिकोण में, अभिलेखों से यह स्पष्ट है कि जिला अस्पताल के चिकित्सा अधिकारी द्वारा दी गई बिस्तर पर आराम करने की सलाह पर विचार नहीं किया गया है और याचिकाकर्ता को कर्तव्यों के निर्वहन में लापरवाही का दोषी मानते हुए मनमाने ढंग से उसका अनुबंध रद्द करने का निर्णय लिया गया है।

अनुवादित

8. ऐसी परिस्थितियों में, मुख्य चिकित्सा अधिकारी द्वारा 24 मई, 2022 को पारित आदेश विधि की दृष्टि में पोषणीय नहीं है और तदनुसार इसे रद्द किया जाता है। परिणामस्वरूप, जिला स्वास्थ्य समिति की 28 अप्रैल, 2022 की सिफारिश भी रद्द की जाती है।

9. प्रत्यर्थीगण को निर्देश दिया जाता है कि वे याचिकाकर्ता को संविदा कर्मचारी के रूप में बहाल करने पर विचार करें और 7 मार्च, 2019 के परिपत्र के आलोक में उचित आदेश पारित करें।

10. इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से अधिकतम एक माह की अवधि के भीतर उचित आदेश पारित किया जाए।

(2025) 4 ILRA 563

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 01.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शेखर बी. सराफ

माननीय न्यायमूर्ति विपिन चन्द्र दीक्षित,

रिट-सी संख्या 169/2025

वीर बहादुर सिंह **...याचिकाकर्ता**

बनाम

हिंदुस्तान पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड और अन्य **...प्रत्यर्थीगण**

अनुवादित

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री अंशुल कुमार सिंघल

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता:

श्री अजय कुमार सिंह, श्री आशीष कुमार सिंह, श्री निशांत मेहरोत्रा

पट्टा विलेख-निष्पादन-प्रत्यर्थी को स्थान संख्या 1375 के संबंध में खुदरा दुकान डीलरशिप के लिए लॉटरी के माध्यम से चुना गया था-अवैध चयन का दावा-चूंकि प्रस्तावित पट्टा संपत्ति के पट्टा विलेख पर केवल एक सह-स्वामी द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे-अन्य सह-स्वामी पट्टे के साक्षी थे-किसी विशेष दस्तावेज को निष्पादित करने और उसी दस्तावेज के साक्षी होने के बीच अंतर है-सह-स्वामी द्वारा किसी विशेष दस्तावेज को देखना उस

ब्राउचर के अनुपालन के बराबर नहीं होगा जिसमें स्पष्ट रूप से सभी सह-स्वामी द्वारा निष्पादन की आवश्यकता होती है-आक्षेपित आदेश रद्द किया गया।

रिट याचिका स्वीकार किया गया। (ई-9)

<u>उद्धृत वादों की सूची:-</u>

1. पूनम वर्मा व अन्य बनाम दिल्ली विकास प्राधिकरण (2007) 13 एससीसी 154 में प्रतिवेदित
2. राहुल सिंह बनाम इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड व अन्य, तटस्थ उद्धरण संख्या - 2024:एएचसी:40545-डीबी
3. अक्षय कुमार जायसवाल बनाम भारत संघ व अन्य, तटस्थ उद्धरण संख्या - 2024: एएचसी:107416- डीबी
4. अबरार कुरैशी बनाम भारत संघ व अन्य, तटस्थ उद्धरण संख्या - 2025:एएचसी:42480-डीबी
5. रश्मि सरोज बनाम पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस मंत्रालय, द्वारा इसके सचिव ए विंग शास्त्री भवन व अन्य

(माननीय न्यायमूर्ति शेखर बी. सराफ
व माननीय न्यायमूर्ति विपिन चंद्र दीक्षित द्वारा प्रदत्त)

1. पक्षकारों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत एक रिट याचिका है, जिसमें याचिकाकर्ता, प्रत्यर्थी संख्या 3 के अवैध चयन के संबंध में प्रत्यर्थी संख्या 2 के समक्ष दिनांक 24.01.2024 को दायर अपनी शिकायत की अस्वीकृति से व्यथित है।

3. वाद के तथ्य यह हैं कि प्रत्यर्थी संख्या 3 को रिटेल आउटलेट डीलरशिप के लिए स्थान संख्या 1375 के संबंध में लॉटरी के माध्यम से चुना गया था। याचिकाकर्ता की मुख्य शिकायत यह है कि प्रत्यर्थी संख्या 3 ने एक पट्टे पर दी गई संपत्ति की पेशकश की थी जो जून, 2023 के ब्राउचर के खंड 4 (vi) (ए) के अंतर्गत निर्धारित अनिवार्य प्रावधान का अनुपालन नहीं करता था, जो इस प्रकार है:-

"भूमि की पेशकश के संबंध में अन्य शर्तें इस प्रकार हैं:-
क) आवेदन की तिथि तक आवेदक के पास भूमि उपलब्ध होनी चाहिए और विज्ञापन की तिथि से या उसके बाद न्यूनतम 19 वर्ष और 11 महीने (संबंधित तेल कंपनी द्वारा विज्ञापित) का पट्टा होना चाहिए, लेकिन आवेदन की तिथि के बाद नहीं। यदि प्रस्तावित भूमि दीर्घकालिक पट्टे पर है और उसके कई मालिक हैं, तो प्रस्तावित भूखंड के सभी सह-स्वामियों द्वारा पट्टा विलेख निष्पादित किया जाना चाहिए। यदि सभी सह-स्वामियों द्वारा पट्टा विलेख निष्पादित नहीं किया जाता है, तो ऐसा पट्टा विलेख अमान्य माना जाएगा।"

अनुवादित

4. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री अंशुल कुमार सिंघल ने दलील दी है कि पट्टा विलेख पर केवल एक सह-स्वामी ने हस्ताक्षर किए थे, जबकि अन्य सह-स्वामी पट्टा विलेख के साक्षी थे। उनका आगे तर्क यह है कि प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा दिनांक 24.7.2023 और 18.9.2023 को दो पट्टा विलेख दाखिल किए गए थे। उन्होंने दलील दी है कि बाद के विलेख को अंतिम पट्टा विलेख माना गया था। उन्होंने दलील दी है कि बाद का विलेख पूर्व विलेख का संशोधन नहीं था, बल्कि प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा उसे ऐसा माना गया था।

5. प्रत्यर्थी संख्या 3 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री आशीष कुमार सिंह ने दलील दी है कि संबंधित खंड का उद्देश्य केवल यह सुनिश्चित करना है कि पक्षों के बीच भविष्य में कोई मुकदमा न हो। उन्होंने दलील दी है कि चूँकि अन्य सह-स्वामियों ने पट्टा विलेख पर गवाह के रूप में हस्ताक्षर किए हैं, इसलिए उन्होंने वास्तव में उक्त पट्टा विलेख से सहमति व्यक्त की थी, और एक तरह से, पुष्टि करने वाले पक्ष के रूप में कार्य किया था। उसने ***पूनम वर्मा एवं अन्य बनाम दिल्ली विकास प्राधिकरण (2007) 13 एससीसी 154*** में प्रतिवेदित (निर्णय के प्रस्तर 26 से 28) में सर्वोच्च न्यायालय पर भरोसा किया।

6. प्रत्यर्थी संख्या 1 और 2 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने भी प्रत्यर्थी संख्या 3 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता का समर्थन किया है और कहा है कि प्रदान किए गए दोनों पट्टा विलेख कट ऑफ तारीख से पहले के थे और तदनुसार, उन्होंने बाद के विलेख को स्वीकार कर लिया है।

7. पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई दलीलों पर विचार करने और अभिलेख पर मौजूद सामग्रियों के अवलोकन के बाद, हम याचिकाकर्ता द्वारा दायर की गई शिकायत पर विचार करते समय प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा दिए गए तर्क को पचा नहीं पा रहे हैं। प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा कोई विशेष कारण नहीं बताया गया है कि दूसरे पट्टा विलेख को संशोधित पट्टा विलेख के रूप में क्यों स्वीकार किया जाए। द्वितीय, प्रत्यर्थी संख्या 2 ने कहा है कि पट्टा विलेख के साक्षी सह-स्वामी डीलर चयन दिशानिर्देशों को पूरा करेंगे।

8. सबसे पहले, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के इस तर्क में गुण-दोष है कि जब एक पूर्व पट्टा विलेख अस्तित्व में था, तो पहले पट्टा विलेख को रद्द किए बिना दूसरा पट्टा विलेख निष्पादित नहीं किया जा सकता था। वास्तव में, दूसरा पट्टा विलेख किसी संशोधन की बात नहीं करता, बल्कि एक नया पट्टा विलेख है। यह प्रक्रिया अपने आप में गलत और विधि में स्थापित सिद्धांतों के विरुद्ध प्रतीत होती है। द्वितीय, विवरणिका का खंड 4 (vi) (ए) एक अनिवार्य प्रावधान है और सभी सह-स्वामियों के लिए पट्टा विलेख निष्पादित करना आवश्यक है। इस उच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयों ने इस विशेष खंड को अनिवार्य प्रकृति का माना है। *[देखें: राहुल सिंह बनाम इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड एवं अन्य, तटस्थ उद्धरण संख्या - 2024:एएचसी:40545-डीबी, अक्षय कुमार जायसवाल बनाम भारत संघ एवं अन्य, तटस्थ उद्धरण संख्या - 2024: एएचसी:107416-डीबी, अबरार कुरैशी बनाम भारत संघ एवं अन्य, तटस्थ उद्धरण संख्या - 2025: एएचसी:42480- डीबी और रश्मि सरोज बनाम पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस मंत्रालय, द्वारा इसके सचिव ए विंग शास्त्री भवन एवं अन्य, तटस्थ उद्धरण संख्या - 2024: एएचसी -एलकेओ:69732- डीबी]*। **प्रत्यर्थी संख्या 3 की ओर से उपस्थित**

विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिया गया तर्क कि अन्य सह-स्वामियों ने पट्टा विलेख देखी है, और तदनुसार, पुष्टि करने वाले पक्ष बन गए हैं, एक कुतर्कपूर्ण तर्क है और इसे हमारे द्वारा पूरी तरह से खारिज किया जाना आवश्यक है। किसी विशिष्ट दस्तावेज़ को निष्पादित करने और उसी दस्तावेज़ का गवाह होने में बहुत अंतर है। गवाह किसी भी तरह से उक्त पट्टा विलेख में दिए गए नियमों व शर्तों से सहमत नहीं होता है, जबकि दस्तावेज़ निष्पादित करने वाला व्यक्ति नियमों व शर्तों से सहमत होता है। इसके मद्देनजर, सह-स्वामियों द्वारा किसी विशिष्ट दस्तावेज़ का साक्ष्य देना ब्राउचर के खंड 4 (vi) (ए) का अनुपालन नहीं माना जाएगा, जिसमें स्पष्ट रूप से सभी सह-स्वामियों द्वारा निष्पादन की आवश्यकता होती है।

9. प्रत्यर्थी संख्या 3 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णय एक भिन्न तथ्यात्मक पृष्ठभूमि पर आधारित है, और तदनुसार, वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों पर लागू नहीं होता है, जहाँ विज्ञापन के समय उपलब्ध कराए गए ब्राउचर में नियम व शर्तें विशेष रूप से प्रदान की गई हैं।

10. उपरोक्त टिप्पणियों के साथ, दिनांक 18.11.2024 का आक्षेपित आदेश रद्द और अपास्त किया जाता है और रिट याचिका स्वीकार की जाती है। प्राधिकारी को प्रत्यर्थी संख्या 3 को किए गए आवंटन को रद्द करने और विधि के अनुसार नए सिरे से लॉटरी निकालने का निर्देश दिया जाता है।

(2025) 4 ILRA 565

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 10.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया

रिट-सी संख्या 1380/2023

सतीश धुरिया **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **..प्रत्यर्थीगण**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

हेमंत कुमार मिश्रा, आरती गांगुली

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता, कृष्ण राम यादव, प्रह्लाद सिंह

सिविल विधि - याचिकाकर्ता को अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित एक सीट पर ग्राम प्रधान के रूप में एक जाति प्रमाण पत्र (दिनांक 23.07.2015) के आधार पर चुना गया था, जिसमें कहा गया था कि वह "गोंड" (अनुसूचित जाति) जाति से संबंधित है। चुनाव हारने वाले एक प्रतिद्वंद्वी उम्मीदवार ने याचिकाकर्ता के लिए एक और जाति प्रमाण पत्र प्राप्त किया, जिसमें उसकी जाति "कहार" (ओबीसी) दिखाई गई थी, और जिला मजिस्ट्रेट से अनुसूचित जाति प्रमाण पत्र रद्द करने की शिकायत की - जिला स्तरीय समिति ने मामले को सतर्कता विभाग को भेजे बिना याचिकाकर्ता का अनुसूचित जाति प्रमाण पत्र रद्द कर दिया और उसे ओबीसी घोषित कर दिया। याचिकाकर्ता ने मण्डलीय और फिर राज्य स्तरीय जाति जांच समितियों में अपील की - न्यायालय ने पाया कि सतर्कता रिपोर्ट ने याचिकाकर्ता के अनुसूचित जाति के दर्जे के दावे की पुष्टि की है - कुमारी मधुरती पाटिल बनाम अपर आयुक्त में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसार, राज्य स्तरीय समिति एक अनुकूल सतर्कता रिपोर्ट की अवहेलना नहीं कर सकती - राज्य स्तरीय समिति ने एक अनुकूल सतर्कता रिपोर्ट के बावजूद याचिकाकर्ता की अपील को खारिज करके अपने क्षेत्राधिकार का अतिक्रमण किया - न्यायालय ने अपील खारिज करने के राज्य स्तरीय समिति के आदेश और याचिकाकर्ता के चुनाव को रद्द करने के जिला मजिस्ट्रेट के आदेश को रद्द कर दिया- सतर्कता रिपोर्ट के अनुसार याचिकाकर्ता को नया जाति प्रमाण पत्र जारी करने का निर्देश दिया- याचिकाकर्ता को उसके वैध चुनाव के आधार पर ग्राम प्रधान के रूप में बहाल करने का आदेश दिया - न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि प्रशासनिक निकाय शासनादेशों और न्यायिक पूर्व निर्णयों में निर्धारित प्रक्रिया से बंधे हैं - समिति के पास एक अनुकूल सतर्कता रिपोर्ट को रद्द करने का अधिकार नहीं था, और याचिकाकर्ता के चुनाव को रद्द करना अवैध था। (प्रस्तर 1 से 21)

रिट याचिका स्वीकार की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वादों की सूची:</u>

1. कुमारी माधुरी पाटिल बनाम अपर आयुक्त, जनजाति विकास (1994) 6 एससीसी 241
2. धीरेंद्र कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य रिट-सी संख्या 7137/2020

(माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया द्वारा प्रदत्त)

1. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 07.03.2025 को विशेष अनुमति याचिका (सिविल) डायरी संख्या 2764/2025 में पारित आदेश के अंतर्गत, मामले का शीघ्र, अधिमानतः तीन माह की अवधि के भीतर, निर्णीत करने का अनुरोध किया गया है। उक्त अनुरोध के अनुसरण में, मामले पर निर्णय लिया जा रहा है।

2. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सहर्ष श्रीवास्तव, विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता और शिकायतकर्ता/विपक्षी संख्या 4 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री कृष्ण राम यादव को सुना गया।

अनुवादित

3. वर्तमान याचिका याचिकाकर्ता द्वारा विपक्षी पक्ष संख्या 1/ राज्य स्तरीय जाति जाँच समिति, लखनऊ द्वारा पारित दिनांक 25.01.2023 के आदेश को चुनौती देते हुए दायर किया गया है, जिसमें याचिकाकर्ता द्वारा दायर अपील को खारिज कर दिया गया था और साथ ही विपक्षी संख्या 3/ जिला मजिस्ट्रेट, सुल्तानपुर द्वारा पारित दिनांक 10.02.2023 के परिणामी आदेश को चुनौती दी गई थी, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता को ग्राम प्रधान के रूप में दिया गया चुनाव प्रमाण पत्र रद्द कर दिया गया था।

4. संक्षेप में तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता ग्राम- सेमरी कला, ब्लॉक- प्रतापपुर कमैचा, जिला- सुल्तानपुर का प्रधान निर्वाचित होने का दावा करता है, जो अनुसूचित जाति के उम्मीदवार के लिए आरक्षित था और याचिकाकर्ता ने खुद को अनुसूचित जाति का उम्मीदवार होने का दावा करते हुए 19.04.2021 को हुए चुनाव, लड़ा और 02.05.2021 को निर्वाचित घोषित किया गया। याचिकाकर्ता का दावा था कि वह "गोंड" जाति और उपजाति "धुरिया" से संबंधित है, जो उसके अनुसार अनुसूचित जाति के रूप में मान्यता प्राप्त है। यह दावा भी याचिकाकर्ता को जारी जाति प्रमाण पत्र संख्या 490541503125 दिनांक 23.07.2015 के आधार पर किया गया था, जिसमें याचिकाकर्ता की जाति "गोंड" बताई गई थी। दावा किया गया है कि विपक्षी संख्या 4 ने भी यही चुनाव लड़ा था और हार गया था, हालाँकि, विपक्षी संख्या 4 ने 15.05.2021 को याचिकाकर्ता का एक नया जाति प्रमाण पत्र प्राप्त कर लिया, जिसकी संख्या 495213010301 थी, जिसमें याचिकाकर्ता की जाति "कहार" दिखाई गई थी, जो ओबीसी श्रेणी में आती है। याचिकाकर्ता ने विपक्षी संख्या 4 दिनांक 15.05.2021 द्वारा प्राप्त जाली जाति प्रमाण पत्र को रद्द करने के लिए जिला स्तरीय प्राधिकरण से संपर्क किया, लेकिन जब उन्हें कोई राहत नहीं मिली, तो उन्होंने रिट याचिका संख्या 12656/2021 (एम/बी) दायर करके इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया, जिसका निस्तारण इस न्यायालय ने यह कहते हुए किया कि याचिकाकर्ता का उपाय या तो तहसीलदार के समक्ष या जिला स्तरीय जाति जांच समिति के समक्ष होगा। तत्पश्चात, विपक्षी संख्या 4 ने याचिकाकर्ता के अनुसूचित जाति प्रमाण पत्र को रद्द करने के लिए दिनांक 23.07.2015 को जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष शिकायत की, जिन्होंने याचिकाकर्ता को नोटिस जारी किया और शासनादेश के तहत गठित जिला स्तरीय समिति ने मामले को सतर्कता को संदर्भित किए बिना, याचिकाकर्ता के प्रमाण पत्र को रद्द कर दिया, जो दिनांक 23.07.2015 को एक आदेश दिनांक 08.09.2021 के माध्यम से था और विपक्षी संख्या 4 द्वारा 15.05.2021 को प्राप्त प्रमाण पत्र के आधार पर याचिकाकर्ता को ओबीसी घोषित किया गया।

5. जिला स्तरीय समिति के उक्त आदेश के विरुद्ध, याचिकाकर्ता द्वारा मण्डल स्तरीय समिति के समक्ष अपील प्रस्तुत की गई और उसे भी दिनांक 17.11.2021 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया। उक्त दोनों आदेशों अर्थात जिला स्तरीय समिति के साथ-साथ मण्डल स्तरीय समिति द्वारा पारित आदेशों को राज्य स्तरीय समिति के समक्ष अपील दायर करके चुनौती दी गई थी। राज्य स्तरीय जाति जाँच समिति ने याचिकाकर्ता के मामले को शासनादेश दिनांक 05.01.1996 के अनुसरण में गठित सतर्कता प्रकोष्ठ को विवेचना हेतु भेज दिया।

6. सतर्कता प्रकोष्ठ की रिपोर्ट प्रस्तुत की गई, जिसमें पाया गया कि याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 23.07.2015 को प्राप्त जाति प्रमाण पत्र सही है। उक्त रिपोर्ट अनुलग्नक संख्या 7 के रूप में अभिलेख में है।

7. तत्पश्चात, राज्य स्तरीय समिति ने सतर्कता प्रकोष्ठ की जाँच रिपोर्ट पर विचार करते हुए उसका विश्लेषण किया और अंततः अपील को खारिज कर दिया। उक्त आदेश के परिणामस्वरूप, पारित आदेश द्वारा याचिकाकर्ता का निर्वाचन रद्द कर दिया गया, जिसे अनुलग्नक संख्या 2 के रूप में भी आक्षेपित किया गया है।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि **कुमारी माधुरी पाटिल बनाम अपर आयुक्त, जनजाति विकास 1994 (6) एससीसी 241** में प्रतिवेदित वाद में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्देशों के अनुसार, मेरा ध्यान उक्त निर्णय के प्रस्तर 5 से 9 की ओर भी आकर्षित किया गया, जो नीचे उद्धृत हैं:-

5. प्रत्येक निदेशालय को सामाजिक स्थिति के दावों की विवेचना के लिए एक सतर्कता प्रकोष्ठ का गठन करना चाहिए जिसमें वरिष्ठ पुलिस उपाधीक्षक और कुछ पुलिस निरीक्षक शामिल हों। निरीक्षक उस स्थानीय निवास स्थान और मूल स्थान पर जाएँगे जहाँ से उम्मीदवार आते हैं और आमतौर पर रहते हैं, या प्रवास की स्थिति में उस कस्बे या शहर में, जहाँ से वह मूल रूप से आए थे। सतर्कता अधिकारी को व्यक्तिगत रूप से उम्मीदवार या माता-पिता या अभिभावक द्वारा, जैसा भी मामला हो, दावा की गई सामाजिक स्थिति के सभी तथ्यों का सत्यापन और संग्रह करना चाहिए। उसे विद्यालय अभिलेख, जन्म पंजीकरण, यदि कोई हो, का भी परीक्षण करना चाहिए। उसे माता-पिता, अभिभावक या अभ्यर्थी की जाति आदि के संबंध में या ऐसे अन्य व्यक्तियों से, जिन्हें अभ्यर्थी की सामाजिक स्थिति का ज्ञान हो, को परीक्षित करना चाहिए और फिर निदेशालय को प्रोफार्मा में उल्लिखित सभी विवरणों के साथ एक रिपोर्ट प्रस्तुत करनी चाहिए, विशेष रूप से अनुसूचित जनजातियों के संबंध में, जिसमें संबंधित जातियों या जनजातियों या जनजातीय समुदायों आदि द्वारा उनके विशिष्ट मानवशास्त्रीय और नृजातीय लक्षणों, देवता, अनुष्ठानों, रीति-रिवाजों, विवाह के तरीके, मृत्यु समारोह, शवों को दफनाने की विधि आदि के बारे में जानकारी हो।

6. सतर्कता अधिकारी से रिपोर्ट प्राप्त होने पर, यदि संबंधित निदेशक को सामाजिक स्थिति के लिए दावा "वास्तविक नहीं" या "संदिग्ध" या नकली या झूठा या गलत तरीके से दावा किया गया लगता है, तो संबंधित निदेशक को सतर्कता अधिकारी की रिपोर्ट की एक प्रति अभ्यर्थी को पंजीकृत डाक द्वारा पावती सहित या संबंधित शैक्षणिक संस्थान के प्रमुख के माध्यम से, जिसमें अभ्यर्थी अध्ययन कर रहा है या कार्यरत है, भेजकर कारण बताओ नोटिस जारी करना चाहिए। नोटिस में यह दर्शाया जाना चाहिए कि अभ्यावेदन या उत्तर, यदि कोई हो, नोटिस प्राप्त होने की तिथि से दो सप्ताह के भीतर दिया जाएगा और किसी भी मामले में अनुरोध पर नोटिस प्राप्त होने की तिथि से 30 दिनों से अधिक नहीं। यदि उम्मीदवार सुनवाई का अवसर चाहता है और उस संबंध में जांच किए जाने का दावा करता है, तो निदेशक ऐसे अभ्यावेदन/उत्तर प्राप्त होने पर समिति का गठन करेगा और संयुक्त/अपर सचिव अध्यक्ष के रूप में उम्मीदवार/माता-पिता/संरक्षक को अपने दावे के समर्थन में सभी साक्ष्य प्रस्तुत करने का उचित अवसर देंगे। ढोल बजाकर या किसी अन्य सुविधाजनक तरीके से गांव या इलाके में एक सार्वजनिक सूचना प्रकाशित की जा सकती है और यदि कोई व्यक्ति या संगठन ऐसे दावे का विरोध करता है, तो उसे साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर दिया जा सकता है। व्यक्तिगत रूप से या अधिवक्ता के माध्यम से ऐसा अवसर देने के बाद, समिति ऐसी जांच कर सकती है जैसा वह उचित समझे और उम्मीदवार

या प्रतिद्वंद्वी द्वारा उठाई गई आपत्तियों के संबंध में दावों पर विचार करे और उसके समर्थन में संक्षिप्त कारणों के साथ एक उचित आदेश पारित करे।

7. यदि रिपोर्ट अभ्यर्थी के पक्ष में है और वास्तविक एवं सत्य पाई जाती है, तो आगे कोई कार्रवाई करने की आवश्यकता नहीं है, सिवाय इसके कि रिपोर्ट या दिए गए विवरण प्राप्त किए गए हों या झूठे या धोखाधड़ी से प्राप्त किए गए पाए गए हों और बाद की स्थिति में प्रस्तर 6 में उल्लिखित प्रक्रिया का पालन किया जाए।

8. यदि अभ्यर्थी नाबालिग है, तो प्रस्तर 6 में उल्लिखित माता-पिता/संरक्षक को भी सामाजिक स्थिति प्रमाण-पत्र के लिए अपने दावे के समर्थन में सभी साक्ष्यों के साथ समिति के समक्ष उपस्थित होने के लिए नोटिस जारी किया जाना चाहिए।

9. जांच यथासंभव शीघ्रता से, अधिमानतः दिन-प्रतिदिन की कार्यवाही द्वारा, अधिकतम दो माह की अवधि के भीतर पूरी की जानी चाहिए। यदि जांच के बाद, जाति जांच समिति दावे को झूठा या नकली पाती है, तो उन्हें जारी किए गए प्रमाण-पत्र को रद्द करने का आदेश पारित करना चाहिए और उसे जब्त कर लेना चाहिए। कार्यवाही की समाप्ति की तिथि से एक माह के भीतर जांच का परिणाम माता-पिता/संरक्षक और आवेदक को सूचित किया जाना चाहिए।"

9. उक्त निर्देश के अनुसरण में राज्य सरकार ने दिनांक 05.01.1996 को एक शासनादेश जारी किया है, जो याचिका के अनुलग्नक संख्या 9 में निहित है।

10. मेरा ध्यान शासनादेश की ओर आकर्षित किया गया, जो अभिलेख में है और खंड 5 और 6 पर विशेष ध्यान आकर्षित किया गया, जो निम्नानुसार हैं: -

"(5) जाति प्रमाण पत्र के सत्यापन हेतु स्कूटनी कमेटी को आवेदन पत्र प्रस्तुत किये जाने पर वे यथाशीघ उसे संबंधित निदेशालय को प्रेषित करेंगे, जो उसे अपने अधीन कार्यरत सतर्कता-कोष्ठक को सौपेंगे। सतर्कता-कोष्ठक के संबंधित पुलिस निरीक्षक अभ्यर्थी के निवास स्थान, उसके मूल निवास व सामान्यतः निवास किये जाने के स्थानों आदि पर जाकर जाति प्रमाण पत्र की जांच करेंगे तथा उसकी जांच के पश्चात सतर्कता अधिकारी व्यक्तिगत रूप से तथ्यों का सत्यापन करेंगे तथा संबंधित तथ्यों को एकत्र करेंगे। वे शैक्षिक संस्थओं के अभिलेखों, जन्म पंजीयन आदि का परीक्षक कर सकेंगे तथा अभ्यर्थी, उसके माता-पिता या अभिभावक अथवा अभ्यर्थी के सामाजिक स्तर की जानकारी रखले वाले किसी अन्य व्यक्ति का परीक्षण कर सकेंगे तथा परीक्षणोपरान्त विस्तृत विवरणों सहित निर्धारित प्रपत्र पर अपनी आख्या संबंधित निदेशालय को प्रस्तुत करेंगे।

अनुवादित

(6) यदि संबंधित सर्तकता-कोष्ठक की जांच-पड़ताल के अनुसार जाति प्रमाण पत्र सत्यापित हो जाता है तो संबंधित निदेशक द्वारा 'जाति प्रमाण पत्र का सत्यापन कर दिया जायेगा, परन्तु जाति प्रमाण पत्र के सत्यापित न होने की दशा में निम्नलिखित कार्यवाही की जायेगी:-

(1) संबंधित निदेशक द्वारा सतर्कता अधिकारी की आख्या की प्रति भेजते हुए अभ्यर्थी को एक कारण बताओ नोटिस पावती पंजीकृत डाक द्वारा अथवा संबंधित संस्था, जहां यह अध्ययनरत् हो या सेवारत हो, के अध्यक्ष (हेड) के माध्यम से दी जायेगी, जिसमें नोटिस की प्राप्ति से दो सप्ताह के भीतर अभ्यर्थी से अभ्यावेदन या उत्तर, यदि वह देना चाहे, दिये जाने की अपेक्षा की जायेगी।

(2) ऐसा अभ्यावेदन या उत्तर देने के लिए अभ्यर्थी के अनुसार पर अधिक से अधिक नोटिस की प्राप्ति के 30 दिन का समय दिया जा सकता है, इससे अधिक नहीं।

(3) समयान्तर्गत प्रस्तुत अपने अभ्यावेदन या उत्तर में यदि अभ्यर्थी सुनवाई का अवसर प्रदान करने या इस विषय में अन्वेषण (इनक्वायरी) कराने का अनुरोध करता है तो अभ्यावेदन/उत्तर प्राप्त होने पर संबंधित निदेशक स्कूटनी-कमेटी और उसके अध्यक्ष को अवगत करायेंगे, जा अभ्यर्थी या यथास्थिति उसके माता-पिता या अभिभवक को उक्त जाति प्रमाण पत्र की सत्यता के पक्ष में समस्त साक्ष्य प्रस्तुत करने का युक्ति-युक्त अवसर प्रदान करेंगे और संबंधित गांव या आबादी में उद्घोषणा द्वारा या अन्य सुलभरीति से एक सार्वजनिक सूचना प्रसारित करेंगे और ऐसी सार्वजनिक सूचना पर यदि का जाति प्रमाण पत्र की सत्यता का कोई व्यक्ति या संगठन, स्वंय या अपने अधिवक्ता के माध्यम से, विरोध करता है तो उसे अपने विरोध के पक्ष में साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान किया जायेगा। इस अवसर पर अभ्यर्थी भी अपने पक्ष को अधिवक्ता के माध्यम से प्रस्तुत कर सकेगा।

(4) स्कूटनी-कमेटी, अभ्यर्थी द्वारा प्रस्तुत तथ्यों व विपक्षियों द्वारा उठाई गई आपत्तियां आदि के प्रकाश में, विचारोपरान्त समुचित आदेश पारित करेगी, जिसमें कमेटी के निष्कर्षों के समर्थन में संक्षिप्त कारणों का भी उलेख किया जायेगा।

(5) उपरोक्त कार्यवाही शीघ्रतिशीघ्र दिन प्रतिदिन के आधार पर इस प्रकार की जायेगी कि अनाधिक 2 मास की अवधि में पूरी हो जाय।

(6) कमेटी के निर्णयों से अभ्यर्थी या यथास्थिति उसके माता-पिता या अभिभावक को निर्णय लेने के एक माह के भीतर अवगत कराया जायेगा।

(7) यदि स्कूटनी-कमेटी के निर्णयानुसार जाति प्रमाण पत्र असत्य पाया जाता है तो :-

(क) कमेटी द्वारा जाति प्रमाण पत्र को निरस्त करने के आदेश पारित किये जायेंगे व उक्त जाति प्रमाण पत्र को जब्त कर लिया जायेगा।

(ख) यथास्थिति, संबंधित शैक्षिक आदि संस्था या नियुक्ति प्राधिकारी से, पंजीकृत डाक से अनुरोध किया जायेगा कि यथास्थिति संबंधित अभ्यर्थी के प्रवेश / नियुक्ति को बिना कोई नोटिस दिये तत्काल निरस्त कर दें और तदनुसार आगे अध्ययनरत या यथास्थिति उसे पद सेवा पर बने रहने से वंचित कर दिया जायेगा।

(ग) संबंधित अभ्यर्थी या यथास्थिति उसके माता-पिता या अभिभावक के विरूद्ध झूठा दावा करने के लिए अभियोजन की कार्यवाही की जायेगी।"

11. उक्त के आलोक में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि एक बार सतर्कता रिपोर्ट याचिकाकर्ता के पक्ष में आ जाने के बाद, राज्य स्तरीय समिति के लिए उक्त रिपोर्ट पर विचार करना या न्यायिक पुनर्विलोकन के अधिकार का प्रयोग करना संभव नहीं था, जैसा कि आक्षेपित आदेश के माध्यम से किया गया है। आगे तर्क दिया गया कि शासनादेश का खंड 6 बहुत विशिष्ट और स्पष्ट है और विस्तार से बताता है कि यदि सतर्कता रिपोर्ट व्यक्ति के पक्ष में नहीं पाई जाती है, तो खंड 6 के तहत निर्धारित प्रक्रिया का पालन किया जाएगा। इस प्रकार उनका तर्क है कि राज्य स्तरीय समिति के पास सतर्कता रिपोर्ट पर विचार करने और सतर्कता रिपोर्ट के विपरीत कोई रुख अपनाने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं है, जैसा कि आक्षेपित आदेश के माध्यम से किया गया है।

12. वह मेरा ध्यान अनुलग्नक संख्या 1 की ओर आकर्षित करते हैं, जिसमें सतर्कता रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी और राज्य स्तरीय समिति द्वारा उस पर विचार किया गया था, तत्पश्चात राज्य स्तरीय समिति ने उक्त रिपोर्ट का विश्लेषण किया और सामग्री के विश्लेषण के आधार पर अपनी असहमति दर्ज की, जिसके आधार पर सतर्कता रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी और इस प्रकार अपील को खारिज कर दिया गया।

13. ऊपर उठाए गए तर्कों के आलोक में, यह तर्क दिया जाता है कि चूंकि सतर्कता रिपोर्ट याचिकाकर्ता के पक्ष में थी, इसलिए अपील को खारिज करने का आदेश पारित करना राज्य स्तरीय समिति की शक्ति और दायरे से बाहर था, इसलिए रिट याचिका को स्वीकार किया जाना चाहिए। अनुलग्नक संख्या 2 पर हमला करते हुए यह एक परिणामी आदेश है, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता का चुनाव रद्द कर दिया गया था, **धीरेंद्र कुमार बनाम राज्य उत्तर प्रदेश और अन्य, रिट-सी संख्या 7137/2020** 08.09.2020 को निर्णीत वाद में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया गया है, यह तर्क देने के लिए कि चुनाव को उलटने की प्रक्रिया पंचायत राज अधिनियम और नियमावली के अंतर्गत निर्धारित है और उक्त प्रक्रिया का पालन किए बिना, निर्वाचित उम्मीदवार को हटाया नहीं किया जा सकता है। यह भी तर्क दिया गया है कि यह प्रश्न कि क्या जाति प्रमाण पत्र रद्द करने के आधार पर चुनाव रद्द करना पंचायत राज अधिनियम और नियमावली के प्रावधानों के अंतर्गत किया जा सकता है या केवल एक चुनाव याचिका के माध्यम से, एक पूर्ण पीठ को भेजा गया है, हालांकि, पूर्ण पीठ द्वारा उक्त मुद्दे का निर्धारण करने के लिए कोई आदेश पारित नहीं किया है।

14. दूसरी ओर, विपक्षी संख्या 4 के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि दस्तावेजों के अनुसार, जिनमें याचिकाकर्ता के पिता, जो सरकारी कर्मचारी थे और अपनी सेवा में थे, का दस्तावेज भी शामिल है, उनकी जाति "कहार" दर्ज है और इस बात पर कोई राय बनाने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि याचिकाकर्ता अनुसूचित जाति का कैसे हो गया जबकि उसके पिता की जाति "कहार" थी। वह मेरा ध्यान उन दस्तावेजों की ओर भी आकर्षित करते हैं जो यह दर्शाते हैं कि परिवार रजिस्टर में याचिकाकर्ता के नाम के आगे "गोड़िया के कहार" लिखा है।

15. उक्त के आलोक में, यह तर्क दिया जाना प्रस्तावित है कि याचिकाकर्ता ने "गोंड" शब्द का प्रयोग केवल एक उपाधि के रूप में किया है और इस शब्द का उक्त प्रयोग जाति परिवर्तन नहीं माना जाएगा। उनका तर्क है कि सतर्कता समिति द्वारा इन पहलुओं पर विचार नहीं किया गया था और राज्य स्तरीय समिति द्वारा अपील को खारिज करते समय इन पर पर्याप्त रूप से विचार किया गया है, जो अनुच्छेद 226 के अंतर्गत हस्तक्षेप का कोई आधार नहीं है।

16. विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता का तर्क है कि राज्य स्तरीय समिति द्वारा देखे गए तथ्यों और विसंगतियों का विश्लेषण करने और आक्षेपित आदेश के आलोक में यह निष्कर्ष निकालने के बाद आदेश पारित किया गया है कि अपील अस्वीकार किए जाने योग्य है। उनका तर्क है कि सतर्कता रिपोर्ट में याचिकाकर्ता के पिता की सेवा पुस्तिका पर उसके सही परिप्रेक्ष्य में विचार नहीं किया गया था और इस प्रकार, राज्य स्तरीय समिति के आदेश में कोई त्रुटि नहीं पाई जा सकती है, जिसके लिए हस्तक्षेप का प्रावधान हो। उन्होंने आगे तर्क दिया कि चूंकि याचिकाकर्ता का जाति प्रमाण पत्र जाली पाया गया था, इसलिए उक्त जाति प्रमाण पत्र के आधार पर उनके द्वारा लड़ा गया चुनाव रद्द किया जाना चाहिए और इसे अनुलग्नक संख्या 2 के रूप में दिए गए आदेश के माध्यम से सही ढंग से रद्द किया गया है।

17. मेरा ध्यान बॉम्बे उच्च न्यायालय के एक निर्णय की ओर आकर्षित किया गया था, जिसमें यह देखा गया था कि सतर्कता की रिपोर्ट को राज्य स्तरीय समिति द्वारा निर्णय लेने की प्रक्रिया में साक्ष्य के रूप में माना जाना है और इस प्रकार इसे केवल साक्ष्य के रूप में देखा जा सकता है और यह राज्य स्तरीय समिति के लिए बाध्यकारी नहीं है। विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने बहुत ही निष्पक्षता से कहा है कि **कुमारी माधुरी पाटिल (पूर्वोक्त)** के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जारी दिशानिर्देशों के अनुसरण में महाराष्ट्र में बनाए गए नियमावली के अनुसार यह शर्त है कि सतर्कता समिति की रिपोर्ट राज्य स्तरीय समिति द्वारा विचार किए जाने के लिए प्रासंगिक सामग्री होगी। हालांकि उन्होंने कहा है कि उत्तर प्रदेश राज्य में जारी शासनादेश के अनुसार शासनादेश के खंड 6 को सीधे पढ़ने पर यह बाध्यकारी है। न्यायालय उनकी निष्पक्षता की सराहना करता है।

18. बार में प्रस्तुत और ऊपर दर्ज किए गए निवेदनों पर विचार करते हुए, यह स्पष्ट होता है कि **कुमारी माधुरी पाटिल (पूर्वोक्त)** के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जारी सामान्य निर्देशों के अनुसार, राज्य सरकार ने एक शासनादेश जारी किया है, जो जाति प्रमाण पत्र को चुनौती दिए जाने की स्थिति में निर्णय लेने के तरीके को निर्धारित करता है और उक्त शासनादेश का खंड 6, स्पष्ट रूप से राज्य स्तरीय समिति की शक्ति को सीमित करता है, यदि सतर्कता रिपोर्ट किसी उम्मीदवार के पक्ष में है, न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति राज्य स्तरीय समिति द्वारा तभी प्रयोग की जा सकती है, जब रिपोर्ट उस व्यक्ति के विपरीत हो जिसके जाति प्रमाण पत्र की जांच की जानी है। किसी भी प्रतिकूल रिपोर्ट के अभाव में, शासनादेश के अनुसार राज्य स्तरीय समिति के पास सतर्कता समिति की रिपोर्ट पर न्यायिक पुनर्विलोकन की कोई शक्ति नहीं थी, जैसा कि आक्षेपित आदेश के माध्यम से किया गया है। यह भी ध्यान रखना प्रासंगिक है कि राज्य स्तरीय समिति, शासनादेश द्वारा ही बनाई गई है और इस प्रकार, वह उन शक्तियों का प्रयोग नहीं कर सकती है, जो उक्त शासनादेश में किसी निकाय में निहित नहीं हैं।

19. वर्तमान वाद में, इस सतर्कता समिति की रिपोर्ट का विश्लेषण करने और उससे मतभेद होने के बाद अपील को खारिज करने वाला राज्य स्तरीय समिति का आदेश, राज्य स्तरीय समिति को प्रदत्त निर्णय लेने की शक्ति के दायरे से बाहर है और इसे राज्य स्तरीय समिति की निर्णय लेने की शक्ति से परे पाते हुए, इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है और तदनुसार इसे रद्द किया जाता है। राज्य स्तरीय समिति खंड 6 के अधिदेश के अनुसार सतर्कता समिति की रिपोर्ट को स्वीकार करने के लिए बाध्य थी, इसलिए राज्य स्तरीय समिति द्वारा पारित आदेश रद्द किया जाता है। राज्य स्तरीय समिति को निर्देश जारी किए जाते हैं कि वह संबंधित प्राधिकारी को आज से चार सप्ताह की अवधि के भीतर सतर्कता समिति की सिफारिश के अनुसार, याचिकाकर्ता को जाति प्रमाण पत्र जारी करने का निर्देश जारी करे। इस तथ्य के मद्देनजर कि राज्य स्तरीय समिति के आदेश को रद्द कर दिया गया है, उत्तर प्रदेश पंचायत राज अधिनियम, 1947 के अंतर्गत जिला मजिस्ट्रेट द्वारा पारित परिणामी आदेश, जो पूरी तरह से जाति प्रमाण पत्र को रद्द करने पर आधारित है, भी रद्द किए जाने योग्य है और तदनुसार रद्द किया जाता है।

20. यह भी निर्देश दिया जाता है कि आज से चार सप्ताह की अवधि के भीतर याचिकाकर्ता को जारी किए जाने वाले जाति प्रमाण पत्र के आधार पर, याचिकाकर्ता को उसके चुनाव के अनुसार प्रधान के पद पर बहाल किया जाएगा।

21. राज्य स्तरीय समिति एक आदेश पारित करेगी और यह सुनिश्चित करेगी कि सक्षम प्राधिकारी याचिकाकर्ता को 23.07.2015 को जारी किए गए पूर्व जाति प्रमाण पत्र के अनुसार उसकी जाति का एक नया प्रमाण पत्र जारी करे।

(2025) 4 ILRA 573

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 29.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजन रॉय

माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला

रिट-सी संख्या 1953/2021

कैरियर कॉन्वेंट एजुकेशन एंड चैरिटेबल ट्रस्ट, द्वारा प्रबंधक एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ..प्रत्यर्थीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

लालता प्रसाद मिश्रा, अमित जायसवाल-ओजस लॉ, गौरव मेहरोत्रा, शरद पाठक

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता, दिलीप कुमार पांडे

क. सिविल विधि - उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 - धारा 67, 210(1), 216, 219 एवं 230(2) - उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता नियम, 2016 - नियम 67 - उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम, 1901 - धारा 15, 221 एवं 224 - उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 - धारा 122-बी - उत्तर प्रदेश सामान्य खण्ड अधिनियम, 1904 - धारा 24 - *विवाद्यक*: क्या उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 के प्रख्यापन की तिथि अर्थात् 11.02.2016 से पूर्वव्यापी प्रभाव से तहसीलदार को सहायक कलेक्टर में निहित शक्तियों का प्रयोग करने हेतु सशक्त करने वाली दिनांक 29.12.2020 की अधिसूचना, पोषणीय है? *अभिनिर्धारित*: विधि यह स्थापित है कि जब तक स्वयं विधि में नियमावली और उसके अंतर्गत बनाई गई अधिसूचनाओं को पूर्वव्यापी प्रभाव से लागू करने की अनुमति देने वाला कोई प्रावधान न हो, तब तक ऐसा नहीं किया जा सकता - दिनांक 29-12-2020 की अधिसूचना को अधिकारातीत और अस्थिर अभिनिर्धारित किया गया, क्योंकि: (i) संहिता, 2006 में पूर्वव्यापी प्रभाव से ऐसी अधिसूचना जारी करने की अनुमति देने वाला कोई प्रावधान नहीं है (ii) धारा 219 केवल राज्य सरकार की अपनी शक्तियों के प्रत्यायोजन की अनुमति देती है, जबकि धारा 67 के अंतर्गत शक्तियाँ राज्य सरकार की नहीं हैं, (iii) दिनांक 29.12.2020 की अधिसूचना को बरकरार नहीं रखा जा सकता क्योंकि यह प्रक्रियात्मक पहलू से संबंधित नहीं है, बल्कि तहसीलदार को क्षेत्राधिकार प्रदान करती है - 1901 और 1950 के निरस्त अधिनियमों के अंतर्गत जारी दिनांक 06-06-1953, 25-07-1960 और 07-01-1964 की अधिसूचनाएं तहसीलदारों को सहायक कलेक्टर के रूप में सशक्त बनाती हैं और धारा 122-बी (संहिता, 2006

की धारा 67 के अनुरूप) के तहत कार्य करने के लिए संहिता के प्रावधानों के साथ असंगत नहीं हैं और इसलिए संहिता, 2006 की धारा 230(2) के तहत सहेजी गई हैं और सामान्य खंड अधिनियम, 1904 की धारा 24 द्वारा जारी रखी मानी गई हैं - 2020 में नई अधिसूचना जारी करने की कोई आवश्यकता नहीं है - 29-12-2020 की अधिसूचना को विधिक रूप से अस्थिर और व्यर्थ के रूप में रद्द कर दिया गया - राज्य सरकार को यह स्वतंत्रता दी गई कि यदि वह चाहे तो स्पष्टीकरण अधिसूचना जारी कर सकता है - तब तक, तहसीलदार पहले सहेजी गई अधिसूचनाओं के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग जारी रखेंगे। (प्रस्तर 12, 13, 20, 33, 36, 40, 41)

ख. सिविल विधि - उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006- धारा 67 और 216 - उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता नियमावली, 2016, नियम 67 - ग्राम पंचायत संपत्ति पर अतिक्रमण - धारा 216 के प्रावधानों के अनुसार, उस पर नोटिस तामील किये बिना और उसे सुने बिना अंतिम बेदखली आदेश पारित किया गया - अपीलीय प्राधिकारी ने भी उठाई गई दलीलों पर विचार किए बिना अपील खारिज कर दी - *अभिनिर्धारित*: अपीलीय न्यायालय ने संहिता, 2006 की धारा 67 और धारा 216 के साथ नियम, 2016 के नियम 67 का अनुपालन सुनिश्चित किए बिना याचिकाकर्ताओं की अपील खारिज करने में त्रुटि की (प्रस्तर 43)

सी. सिविल विधि - उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 - धारा 67(1) एवं 67(5) - धारा 210(1) के अंतर्गत पुनरीक्षण - उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 210(1) के अंतर्गत पुनरीक्षण तभी दायर किया जा सकता है, जब चुनौती दिए गए आदेश के विरुद्ध कोई अपील न हो। चूँकि संहिता की धारा 67(3) के अंतर्गत पारित आदेश के विरुद्ध धारा 67(5) के अंतर्गत अपील की जा सकती है, इसलिए ऐसी अपील में पारित आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण स्वीकार्य नहीं है। (प्रस्तर 7)

स्वीकार किया गया। (ई-5)

(माननीय न्यायमूर्ति राजन रॉय
एवं माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला द्वारा प्रदत्त)

(1) राज्य के विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री मनीष मिश्रा द्वारा आज दाखिल पूरक प्रति-शपथपत्र अभिलेख पर लिया गया।

(2) हमने याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री गौरव मेहरोत्रा, विद्वान अधिवक्ता जिनकी सहायता श्री अमित जायसवाल, सुश्री मारिया फातिमा, सुश्री मंजरी और श्री आदित्य सिंह ने की, तथा राज्य के विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री मनीष मिश्रा को सुना है।

(3) याचिकाकर्ता एक शैक्षणिक संस्थान है। इसका परिसर लगभग 15 लाख वर्ग फुट क्षेत्र में फैला हुआ है, जिसके एक छोटे से हिस्से अर्थात 5080 वर्ग फुट पर अतिक्रमण होने का अभिकथन है। इस अतिक्रमण का अभिकथन करते हुए, इसके विरुद्ध उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 (जिसे आगे "संहिता, 2006" कहा जाएगा) की धारा 67 के अंतर्गत कार्यवाही की गई। याचिकाकर्ता के अनुसार, उसे नोटिस तामील बिना और उसे सुने बिना, 29.02.2020 को अंतिम आदेश पारित कर दिया गया। व्यथित होकर, याचिकाकर्ता द्वारा उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 67 (5) के अंतर्गत एक अपील दायर की गई थी, लेकिन, अपीलीय प्राधिकारी ने उठाए गए तर्कों पर विचार किए बिना 05.10.2020 को इसे खारिज कर दिया, जिसके कारण उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 210 के अंतर्गत राजस्व परिषद के समक्ष एक पुनरीक्षण दायर किया गया। पुनरीक्षण को शुरू में 27.10.2020 को इस आधार पर स्वीकार किया गया था कि तहसीलदार के पास उस शक्ति का प्रयोग करने का अधिकार नहीं है, जो वास्तव में सहायक कलेक्टर (संहिता, 2006 की धारा 67 के अंतर्गत) में निहित थी। हालांकि, इसके बाद, राज्य सरकार द्वारा 29.12.2020 की एक अधिसूचना जारी की गई, जिसमें तहसीलदार को ऐसी शक्तियों का प्रयोग करने का अधिकार, वह भी पूर्वव्यापी प्रभाव से यानी संहिता, 2006 के लागू होने की तिथि यानी 11.02.2016 से दिया गया। इसी के आधार पर, राज्य प्राधिकारियों द्वारा राजस्व परिषद के समक्ष एक पुनर्विलोकन आवेदन दायर किया गया, जिसे स्वीकार कर लिया गया। उपरोक्त से व्यथित होकर, यह याचिका अन्य बातों के साथ-साथ, दिनांक 29.12.2020 की अधिसूचना, संहिता, 2006 की धारा 67(1) के अंतर्गत पारित दिनांक 29.02.202 के आदेश, संहिता, 2006 की धारा 67(5) के अंतर्गत पारित दिनांक 05.10.2020 के अपीलीय आदेश और पुनरीक्षण से उत्पन्न पुनर्विलोकन कार्यवाही में राजस्व परिषद द्वारा दिनांक 08.01.2021 को पारित आदेश को चुनौती देते हुए दायर की गई है।

(4) यह भी हमारे ध्यान में लाया गया है कि याचिकाकर्ता के अनुसार, इस अंतराल में, विवादित क्षेत्र उसके द्वारा खरीदा गया था और दिनांक 01.10.1995 के ट्रस्ट विलेख द्वारा खरीदी गई संपत्ति का हिस्सा है, लेकिन आगे किसी मुकदमेबाजी या विवाद से बचने के लिए याचिकाकर्ता, चूंकि वह संहिता, 2006 की धारा 101 और विषय पर प्रासंगिक शासनादेशों के अनुसार उक्त संपत्ति को खरीदने या उसका आदान-प्रदान करने के लिए तैयार था, इसलिए उसने तदनुसार आवेदन किया और उक्त विनिमय कार्यवाही आयुक्त के समक्ष विचाराधीन है क्योंकि राज्य सरकार ने संहिता, 2006 की धारा 101 की उपधारा 2 के प्रावधान के तहत अपनी शक्तियों को प्रत्यायोजित किया है, एक तथ्य जिसे राज्य अधिवक्ता के समक्ष स्वीकार किया गया है। इन परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह भी तर्क दिया गया कि इस तथ्य के अलावा कि अधिसूचना सहित आक्षेपित आदेश तथ्यों और विधि के आधार पर पोषणीय हैं, भले ही यह न्यायालय किसी भिन्न निष्कर्ष पर पहुंचे या वैकल्पिक रूप से, चूंकि विनिमय कार्यवाही लंबित है, तो उस पर भी जल्द से जल्द निर्णय लेने का आदेश दिया जाए, क्योंकि अंततः, यदि विनिमय होता है, तो विवाद का गुण-दोष अप्रासंगिक हो सकता है।

(5) मामले पर विस्तार से बहस के बाद, पक्षकारों के बीच आम सहमति बनी, जो आज राज्य द्वारा दाखिल पूरक प्रति-शपथपत्र में दिए गए कथनों पर भी आधारित है, कि उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता नियमावली, 2016 (जिसे आगे "नियमावली, 2016" कहा जाएगा) के नियम 67, सहपठित संहिता, 2006 की धारा 67 में निर्धारित

प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है और संहिता, 2006 के प्रावधानों, विशेषकर संहिता, 2006 की धारा 216 के अनुसार याचिकाकर्ताओं को नोटिस तामील नहीं किए गए हैं। हम भी इसे ऐसा ही पाते हैं। मामले के इस पहलू को अपीलीय न्यायालय ने उचित रूप से नहीं देखा, जिसने दिनांक 05.10.2020 के निर्णय द्वारा याचिकाकर्ताओं की अपील को खारिज कर दिया। जहां तक याचिकाकर्ता द्वारा दायर पुनरीक्षण की बात है, जिसे शुरू में 27.10.2020 को अनुमति दी गई थी, उसी का पुनर्विलोकन 08.01.2021 के बाद के निर्णय द्वारा इस आधार पर किया गया था कि पुनरीक्षण में प्रारंभिक निर्णय के बाद, राज्य सरकार द्वारा 29.12.2020 से पूर्वव्यापी प्रभाव के साथ एक अधिसूचना जारी की गई थी, जिसमें तहसीलदार को संहिता, 2006 की धारा 67 के अंतर्गत सहायक कलेक्टर की शक्तियों का प्रयोग करने का अधिकार दिया गया था; दूसरे, संहिता, 2006 की धारा 210(1) के मद्देनजर पहली जगह में पुनरीक्षण पोषणीय नहीं था क्योंकि पुनरीक्षणवादी द्वारा पहले ही अपील किया जा चुका था, इसलिए, चूंकि उपरोक्त आधारों ने पुनर्विलोकन की अनुमति देने के लिए अभिलेख के चेहरे पर एक स्पष्ट त्रुटि का गठन किया, पुनर्विलोकन आवेदन को स्वीकार किया गया और पुनरीक्षण को खारिज कर दिया गया।

(6) हमने संहिता, 2006 की धारा 210(1) का अवलोकन किया है और पाया है कि इसके अंतर्गत पुनरीक्षण तभी दायर किया जा सकता है, जब चुनौती दिए गए आदेश के विरुद्ध संहिता, 2006 के अंतर्गत अपील नहीं की जा सकती, जबकि संहिता, 2006 की धारा 62 के अंतर्गत पारित आदेश के विरुद्ध संहिता, 2006 की धारा 67(5) के अंतर्गत अपील की जा सकती है, अतः याचिकाकर्ता द्वारा दायर पुनरीक्षण पोषणीय नहीं था। इस सीमा तक, पुनरीक्षण में पारित आदेश को त्रुटिपूर्ण नहीं कहा जा सकता।

(7) हालाँकि, जिस प्रश्न पर विचार किया जाना आवश्यक है, वह यह है कि क्या 29.12.2020 की अधिसूचना, जो तहसीलदार को संहिता, 2006 की धारा 67 के अंतर्गत सहायक कलेक्टर (प्रथम श्रेणी) की शक्तियों का प्रयोग करने के लिए सशक्त बनाती है, वह भी 11.02.2016 से पूर्वव्यापी प्रभाव से, धारणीय है, क्या इसकी आवश्यकता थी?

(8) इस संदर्भ में, हम अपने दिनांक 08.04.2025 के आदेश का संदर्भ दे सकते हैं, जो इस प्रकार है:-

"1. श्री गौरव मेहरोत्रा, अधिवक्ता, जिनकी सहायता याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री अमित जायसवाल और आदित्य सिंह ने किया, राज्य के लिए अपर मुख्य राजस्व आयुक्त और गाँव सभा के विद्वान अधिवक्ता श्री दिलीप कुमार पांडे, को सुना।

2. पक्षों को सुनने के बाद, विचारणीय विवाद्यकों में से एक यह है कि क्या तहसीलदार को उत्तर प्रदेश भू-राजस्व संहिता, 2006 (जिसे आगे 'संहिता' कहा जाएगा) की धारा 67 के तहत कार्यवाही शुरू करने और अंतिम आदेश पारित करने का अधिकार था या नहीं?

3. यद्यपि याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने इसी तरह का प्रश्न पूछते हुए इस न्यायालय के आदेश पर भरोसा किया है, जिसके आधार पर राज्य सरकार ने संहिता की धारा 14(2) और धारा 2(1)(9) के तहत दिनांक 29.12.2020 को एक अधिसूचना जारी की, जिसमें तहसीलदार और तहसीलदार (न्यायिक) को उक्त संहिता की

धारा 67 के तहत निर्धारित सहायक कलेक्टर के कार्यों का निर्वहन करने के लिए अधिकृत किया गया, जो 11.2.2016, अर्थात पूर्वव्यापी प्रभाव से प्रभावी है।

4. इस विवाद्यक के अलावा कि क्या यह पूर्वव्यापी प्रभाव से किया जा सकता था, इस संदर्भ में एक और विवाद्यक यह उठता है कि क्या तहसीलदार को समान प्रावधान, अर्थात् उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (जिसे आगे 'अधिनियम 1950' कहा जाएगा) की धारा 122-बी के अंतर्गत समान कार्रवाई के लिए अधिकृत करने वाली अधिसूचना पहले से मौजूद थी और क्या यह उत्तर प्रदेश भूमि राजस्व संहिता, 2006 की धारा 67 के प्रयोजनों के लिए लागू रही या नहीं, धारा 230 की उपधारा (2) के प्रावधान के तहत, ऐसी अधिसूचनाएं, जहां तक वे उत्तर प्रदेश भूमि राजस्व संहिता, 2006 के प्रावधानों से असंगत नहीं हैं, उक्त संहिता के संगत प्रावधानों के तहत की गई मानी जाएंगी और तदनुसार लागू रहेंगी, जब तक कि वे उक्त संहिता के तहत की गई किसी कार्रवाई या किए गए कार्य द्वारा अधिक्रांत न हो जाएं।

5. उत्तर प्रदेश सामान्य खण्ड अधिनियम 1904 की धारा 24 में एक अन्य प्रक्रिया निहित है, जो इस संबंध में भी प्रासंगिक है।

6. इसलिए, हम धारा 122-बी के अंतर्गत तहसीलदार द्वारा शक्ति का प्रयोग करने के लिए अधिनियम 1950 या अधिनियम 1901 के तहत अधिसूचनाएं, यदि कोई हों, प्राप्त करना चाहेंगे, क्योंकि गाँव सभा के विद्वान अधिवक्ता श्री पांडे का कहना है कि पूर्व के अंतर्गत अधिसूचनाएं थीं, जो तहसीलदार को उक्त कर्तव्य करने के लिए अधिकृत करती थीं।

7. एक बार अधिसूचनाएं अभिलेख पर आ जाने के बाद, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता पर यह प्रदर्शित करने का भार होगा कि क्या वे संहिता 2006 के साथ असंगत हैं, यदि हां, तो कैसे? कम से कम अब तक अधिनियम 1950 की धारा 122-बी और संहिता 2006 की धारा 67 के प्रावधान एक ही विषय पर प्रतीत होते हैं।

8. विचारणीय एक अन्य पहलू यह है, जैसा कि श्री मेहरोत्रा ने कहा है, कि उत्तर प्रदेश नगर निगम अधिनियम 1959 (जिसे आगे 'अधिनियम 1959' कहा जाएगा) की धारा 3 के अंतर्गत अधिसूचना दिनांक 5.12.2019 के मद्देनजर विचाराधीन भूमि किसी भी गांव सभा की भूमि नहीं रह गई है, क्योंकि उक्त भूमि नगर निगम, लखनऊ की नगरपालिका सीमा में शामिल थी, और उसके बाद हालांकि गांव जारी रह सकते हैं, लेकिन विचाराधीन भूमि गांव सभा की नहीं होगी, बल्कि नगर निगम, लखनऊ की होगी। हालांकि, इस संदर्भ में जब हम धारा 67 का अवलोकन करते हैं, तो हम पाते हैं कि ऐसी भूमि, यदि वे स्थानीय प्राधिकरण की हैं, तो भी उक्त प्रावधान लागू होगा और 'स्थानीय प्राधिकरण' शब्द, हालांकि इसे यू.पी. राजस्व संहिता 2006 में परिभाषित नहीं किया गया है, उत्तर प्रदेश सामान्य खंड अधिनियम 1904 की धारा 4(25) में परिभाषित किया गया है, जिसमें नगर महा पालिका शामिल है, इसलिए, भूमि, भले ही नगर निगम, लखनऊ की हो, संहिता 2006 की धारा 67 को आकर्षित करेगी, हालांकि, यहां फिर से एक मोड़ है। भले ही धारा 67 लागू हो, ऐसा मानते हुए, उसके तहत कोई भी कार्रवाई करने की प्रक्रिया नियम 67 में निर्धारित है, और यह श्री मेहरोत्रा का मामला है कि उक्त प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है। वास्तव में, कोई भी नोटिस, जो भी हो, जैसा कि उसमें परिकल्पित है, और संहिता 2006 की धारा 67 के तहत कभी भी जारी नहीं किया गया था और याचिकाकर्ता को तामील नहीं किया गया था।

9. श्री तिवारी से जब पूछा गया तो वे कम से कम अभी तक यह साबित नहीं कर पाए कि धारा 67 के तहत कोई आदेश पारित करने से पूर्व याचिकाकर्ता को जारी किया गया ऐसा कोई नोटिस तामील किया गया था।

10. 29.12.2020 की अधिसूचना की वैधता से संबंधित अन्य विवाद्यक, यानी पूर्वव्यापी प्रभाव, पुनर्विलोकन आवेदन पर राजस्व परिषद द्वारा पारित आदेश की वैधता और साथ ही धारा 67, उत्तर प्रदेश भूमि राजस्व संहिता, 2006 के अंतर्गत पारित आदेशों की वैधता और गुण-दोष के आधार पर अपीलीय आदेश (आदेशों) पर भी, यदि आवश्यक हो, विचार किया जाएगा।

11. इस वाद को कल, यानी 9.4.2025 को आगे की सुनवाई के लिए सूचीबद्ध/प्रस्तुत किया जाए।

12. हम अपेक्षा करते हैं कि सरकार के राजस्व विभाग में संयुक्त सचिव के पद से नीचे का न हो और राजस्व परिषद में अपर आयुक्त के पद से नीचे का न हो, कोई जिम्मेदार अधिकारी कल हमें उपर्युक्त बिंदुओं पर सहायता प्रदान करेगा।"

(9) ऐसा प्रतीत होता है कि इलाहाबाद स्थित इस न्यायालय द्वारा रिट-सी संख्या 2111/2020 के आदेश दिनांक 10.06.2020 के तहत कुछ प्रश्न पूछे गए थे, जो इस प्रकार हैं:-

"उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 (जिसे आगे 'संहिता' कहा जाएगा) की धारा 233(3) के अनुसार, संहिता के अधिनियमन से पूर्व पारित राज्य सरकार या राजस्व परिषद के केवल ऐसे आदेश ही जारी रहेंगे जो संहिता के प्रावधानों से असंगत न हों।

वर्तमान वाद में, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने तहसीलदार द्वारा पारित आदेशों को उचित ठहराने के लिए दिनांक 25.7.1960 और 7.1.1964 के कुछ शासनादेशों का सहारा लिया है और तर्क दिया है कि एक तहसीलदार इन शासनादेशों के आधार पर संहिता की धारा 67 के अंतर्गत सहायक कलेक्टर की शक्तियों का प्रयोग कर सकता है।

तथापि, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि यदि धारा 233(3) के प्रावधानों का अवलोकन किया जाए, तो ये शासनादेश संहिता के प्रावधानों के साथ असंगत हो जाएँगे और इसलिए इन्हें समाप्त माना जाएगा।

अतः, विद्वान स्थायी अधिवक्ता संहिता की धारा 14 और 219 के अंतर्गत प्रत्यायोजन के ऐसे नए आदेश, यदि वे मौजूद हैं, अगली सूचीबद्धता तिथि तक प्रस्तुत करें, अन्यथा यह स्थापित हो जाएगा कि तहसीलदार को संहिता की धारा 67 के अंतर्गत आदेश पारित करने का कोई अधिकार नहीं था।

चूँकि, तहसीलदार के क्षेत्राधिकार पर ही प्रश्न उठाया गया है और तहसीलदार ने ही आक्षेपित नोटिस भेजा था, इसलिए आक्षेपित नोटिस द्वारा शुरू की गई कार्यवाही अगली सूचीबद्धता तिथि तक स्थगित रहेगी।

इस याचिका को संबंधित याचिकाओं के साथ 6.7.2020 को उपयुक्त न्यायालय के समक्ष प्रथम वाद के रूप में सूचीबद्ध करें।"

(10) उपर्युक्त आदेश पारित होने के पश्चात, दिनांक 29.12.2020 की आक्षेपित अधिसूचना जारी की गई।

(11) हमारे आदेश दिनांक 08.04.2025 में, हमने इस संबंध में दो बिंदु उठाए थे; पहला, क्या ऐसी अधिसूचना को संहिता, 2006 की धारा 219 के अंतर्गत भूतलक्षी प्रभाव दिया जा सकता था और दूसरा, तहसीलदार को पूर्वोक्त रूप से सशक्त बनाने वाली आक्षेपित अधिसूचना जारी करने की आवश्यकता के बारे में, यदि पूर्ववर्ती उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम, 1901 (जिसे आगे "**अधिनियम, 1901**" कहा जाएगा) या उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (जिसे आगे "**अधिनियम, 1950**" कहा जाएगा) के अंतर्गत पहले से ही अधिसूचनाएं थीं जो उसे अधिनियम, 1950 की धारा 122-बी के अंतर्गत सशक्त बनाती थीं और यदि उक्त अधिसूचनाएं संहिता, 2006 की धारा 67 के प्रयोजनों के लिए प्रचालन में बनी रहीं, तो धारा 122-बी के अनुरूप एक प्रावधान लागू होगा।

(12) अब, जहां तक प्रथम विवाद्यक का संबंध है, विधि में यह स्थापित है कि जब तक विधि में ऐसा प्रावधान नहीं होगा, जो इसके अंतर्गत बनाए गए नियमावली और अधिसूचनाओं को पूर्वव्यापी प्रभाव की अनुमति देता हो, जैसा कि इसमें आक्षेपित किया गया है, ऐसा नहीं किया जा सकता। इस संदर्भ में ***हम भारत संघ और अन्य बनाम जी.एस. चट्ठा राइस मिल्स और अन्य***, ***2020 एससीसी ऑनलाइन एससी 770*** में प्रतिवेदित, कुलपति, ***एम.डी. विश्वविद्यालय रोहतक बनाम जहान सिंह (2007) 5 एससीसी 77*** में प्रतिवेदित, **राजस्थान राज्य और अन्य बनाम बसंत एग्रोटेक (इंडिया) लिमिटेड (2013) 15 एससीसी 1** में प्रतिवेदित और ***भारत संघ और अन्य बनाम डॉ. एस. कृष्ण मूर्ति और अन्य (1989) 4 एससीसी 689*** में प्रतिवेदित वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों का उल्लेख कर सकते हैं।

(13) ऐसा कोई प्रावधान हमारे सामने नहीं रखा गया है और न ही हम संहिता, 2006 में ऐसा कोई प्रावधान पा सके हैं जो पूर्वव्यापी प्रभाव से ऐसी अधिसूचना जारी करने की अनुमति देता हो। इस प्रकार, दिनांक 29.12.2020 की अधिसूचना, जिस सीमा तक इसे पूर्वव्यापी प्रभाव दिया गया है, विधि में पोषणीय नहीं रह सकता, खासकर क्योंकि अधिसूचना प्रक्रियात्मक पहलू से संबंधित नहीं है, बल्कि तहसीलदार को क्षेत्राधिकार प्रदान करता है।

(14) दिनांक 29.12.2020 की ऐसी अधिसूचना की जरूरत/आवश्यकता के संबंध में अन्य विवाद्यक पर, हमारे द्वारा 08.04.2025 को किए गए प्रश्नों के मद्देनजर, पूर्ववर्ती अधिनियम, 1950 और अधिनियम, 1901 के तहत जारी कुछ अधिसूचनाएं, जो दिनांक 06.06.1953, 25.07.1960 और 07.01.1964 की हैं, को आज दायर किए गए पूरक प्रति-शपथपत्र के साथ अभिलेख में लाया गया है।

(15) अधिसूचना दिनांक 06.06.1953 के अनुसार अधिनियम, 1901 की धारा 221 और 224 के साथ धारा 15 के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग करते हुए सभी तहसीलदारों को प्रथम श्रेणी के पदेन सहायक कलेक्टर नियुक्त किया गया था। दूसरी अधिसूचना दिनांक 25.07.1960 द्वारा अधिनियम, 1901 की धारा 221 और 224 के साथ धारा 15 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, जैसा कि उन क्षेत्रों पर लागू होता है जिन पर उत्तर प्रदेश भूमि सुधार (संशोधन) अधिनियम, 1958 (जिसे आगे '**अधिनियम, 1958**' कहा जाएगा) का विस्तार है,

राज्यपाल उक्त क्षेत्रों के तहसीलदारों को प्रथम श्रेणी के सहायक कलेक्टरों की सभी शक्तियाँ प्रदान करते हैं। दिनांक 07.01.1964 की तीसरी अधिसूचना द्वारा, उन क्षेत्रों के संबंध में जिन पर अधिनियम, 1950 लागू होता था और अधिनियम, 1901 की धारा 221 और 224 के साथ पठित धारा 15 के संदर्भ में, राज्यपाल ने सभी तहसीलदारों को प्रथम श्रेणी सहायक कलेक्टर नियुक्त किया। उसी तिथि अर्थात् 07.01.1964 की एक अन्य अधिसूचना द्वारा, ऐसे सभी प्रथम श्रेणी सहायक कलेक्टरों को अधिनियम, 1950 की धारा 122-बी आदि के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग करने का अधिकार दिया गया, जिनका पालन उसमें निर्दिष्ट कलेक्टरों द्वारा किया जाना था।

(16) जैसा कि पूर्वोक्त अधिसूचनाओं को पढ़ने से स्पष्ट है, ये अधिनियम, 1901 की धारा 221 और 224 के साथ धारा 15 के अंतर्गत जारी की गई हैं। उक्त अधिनियम, 1901 संयुक्त प्रांत में राजस्व अधिकारियों के क्षेत्राधिकार से संबंधित था, जो बाद में उत्तर प्रदेश राज्य बन गया। अधिनियम, 1901 की धारा 15 राज्य सरकार को प्रत्येक जिले में उतने ही अन्य व्यक्तियों को नियुक्त करने का अधिकार देती है, जितने वह उचित समझे, प्रथम या द्वितीय श्रेणी के सहायक कलेक्टर के रूप में। इसलिए, इस प्रावधान के संदर्भ में पूर्वोक्त अधिसूचनाओं के आधार पर, तहसीलदारों को अधिसूचना दिनांक 06.06.1953 द्वारा पदेन सहायक कलेक्टर नियुक्त किया गया और बाद की अधिसूचना दिनांक 25.07.1960 द्वारा उन्हें प्रथम श्रेणी के सहायक कलेक्टरों की सभी शक्तियाँ प्रदान की गईं। तीसरी अधिसूचना दिनांक 07.01.1964 द्वारा, उन क्षेत्रों से संबंधित सभी तहसीलदारों को, जिन पर अधिनियम, 1950 लागू होता था, प्रथम श्रेणी के सहायक कलेक्टर नियुक्त किया गया और एक अन्य अधिसूचना दिनांक 071.01.1964 द्वारा, ऐसे सभी प्रथम श्रेणी के सहायक कलेक्टरों को अधिनियम, 1950 की धारा 122-बी के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग करने का अधिकार दिया गया।

(17) अधिनियम, 1950 की धारा 122-बी के अनुसार, सहायक कलेक्टर उन मामलों में कार्रवाई कर सकता है जहाँ उक्त अधिनियम के तहत किसी गाँव सभा या स्थानीय प्राधिकरण में निहित किसी संपत्ति को नुकसान पहुँचाया जाता है या उसका दुरुपयोग किया जाता है और ऐसी गाँव सभा और स्थानीय प्राधिकरण ऐसी किसी भी भूमि पर कब्ज़ा करने या उसे अपने कब्ज़े में रखने का हकदार है। संहिता, 2006 की धारा 67, जिससे हम इस वाद में संबंधित हैं, एक संगत/समान प्रावधान है।

(18) हम यह भी बताना चाहेंगे कि अधिनियम, 1901 की धारा 221 राज्य सरकार को उक्त अधिनियम, 1901 के अधीन शक्तियाँ प्रदान करने और व्यक्तियों को नाम से, या पदाधिकारियों के वर्गों को सामान्यतः उनके पदवियों से सशक्त करने तथा ऐसे किसी आदेश में परिवर्तन करने या उसे रद्द करने का अधिकार देती है। अधिनियम, 1901 की धारा 224 राज्य सरकार को किसी तहसीलदार या प्रथम या द्वितीय श्रेणी के सहायक कलेक्टर आदि को कोई शक्ति प्रदान करने का अधिकार देती है।

(19) अब, उपरोक्त अधिनियम, 1901 और अधिनियम, 1950 को संहिता, 2006 की धारा 230(1) द्वारा, इसके साथ संलग्न प्रथम अनुसूची के साथ पठित, निरस्त कर दिया गया है। धारा 230 की उपधारा 2 में एक व्यावृत्ति खंड है। निरसन और व्यावृत्ति खंड संहिता, 2006 की धारा 230 में निहित है, जो इस प्रकार है:-

"230. निरसन।

(1) प्रथम अनुसूची में निर्दिष्ट अधिनियम इसके द्वारा निरसित किए जाते हैं।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, ऐसे अधिनियमों का निरसन निम्नलिखित पर प्रभाव नहीं डालेगा -

(क) उत्तरांचल राज्य में ऐसे किसी अधिनियम के लागू रहने पर।

(ख) ऐसे किसी अधिनियम या उसके अधीन विधिवत् किए गए या सहन किए गए किसी कार्य के पूर्व प्रवर्तन पर; या

(ग) किसी अन्य अधिनियम पर जिसमें ऐसे अधिनियम को लागू किया गया है, सम्मिलित किया गया है या संदर्भित किया गया है; या

(घ) पहले से किए गए या भुगते गए किसी भी कार्य की वैधता, अमान्यता, प्रभाव या परिणाम, या पहले से अर्जित, उपार्जित या उपगत कोई अधिकार, शीर्षक या दायित्व या देयता (विशेष रूप से, सभी सम्पदाओं के शीर्षक राज्य में निहित होना और उसमें सभी मध्यस्थों के सभी अधिकारों, शीर्षक और हितों की समाप्ति सहित), या उसके संबंध में कोई उपाय या कार्यवाही, या किसी ऋण दंड, दायित्व, देयता, दावे या मांग से मुक्ति या उन्मोचन, या पहले से दी गई कोई क्षतिपूर्ति या किसी पिछले कार्य या बात का प्रमाण; या

(ङ) विधि का कोई सिद्धांत या नियम या स्थापित क्षेत्राधिकार, अभिवचन पद्धति या प्रक्रिया का स्वरूप या क्रम या विद्यमान प्रथा, प्रथा, विशेषाधिकार, प्रतिबंध, छूट, पद या नियुक्ति:

*बशर्ते कि ऐसे किसी अधिनियम के अधीन की गई कोई भी बात या की गई कोई भी कार्रवाई (जिसमें कोई भी नियम, नियमावली, आकलन, नियुक्तियाँ और स्थानांतरण, **अधिसूचनाएँ**, समन, नोटिस, वारंट, जारी की गई घोषणाएँ, **प्रदत्त शक्तियाँ**, पट्टे, निर्धारित सीमा चिह्न, अधिकारों के अभिलेख और तैयार या अनुरक्षित अन्य अभिलेख, अर्जित अधिकार या उपगत दायित्व शामिल हैं) जहाँ तक वे इस संहिता के प्रावधानों से असंगत नहीं हैं, इस संहिता के संगत प्रावधानों के अधीन की गई **मानी जाएँगी और तदनुसार तब तक लागू रहेंगी, जब तक कि उन्हें इस संहिता के तहत की गई किसी भी बात या की गई कार्रवाई द्वारा प्रतिस्थापित नहीं कर दिया जाता।***

(20) संहिता, 2006 की धारा 230 की उपधारा 2 का प्रावधान प्रासंगिक है, जिसके अनुसार, 'किसी भी नियम, मैनुअल, मूल्यांकन, नियुक्तियां और स्थानांतरण, ***अधिसूचनाएं, किसी भी ऐसे अधिनियम के अंतर्गत प्रदत्त शक्तियों*** सहित की गई कोई भी कार्रवाई या की गई कोई भी कार्रवाई, जहां तक वे इस संहिता के प्रावधानों के साथ असंगत नहीं हैं, इस संहिता के अनुरूप प्रावधानों के तहत की गई या की गई समझी जाएंगी, और तदनुसार लागू रहेंगी, जब तक कि वे इस संहिता के तहत की गई किसी भी चीज या की गई कार्रवाई से अधिक्रमित न हो जाएं।

(21) अब, परन्तुक में आने वाले शब्द 'ऐसे किसी अधिनियम के अधीन' उन अधिनियमों के प्रति निर्देश हैं जिन्हें संहिता, 2006 की धारा 230 की उपधारा 1 द्वारा निरसित किया जा रहा था। अधिनियम, 1950 और अधिनियम, 1901 ऐसे अधिनियम थे, जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है। उपर्युक्त संदर्भित अधिसूचनाएं उक्त अधिनियम के तहत जारी की गई थीं, जो विशेष रूप से अधिनियम, 1950 की धारा 122-बी के संबंध में तहसीलदार को सहायक कलेक्टर की शक्ति प्रदान करती हैं।

(22) प्रश्न यह है कि क्या उपरोक्त अधिसूचनाएं, जिनके द्वारा तहसीलदार को, जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, अधिनियम, 1950 की धारा 122-बी के तहत कार्रवाई करने की शक्ति प्रदान की गई थी, जिसके अनुरूप संहिता, 2006 की धारा 67 है, संहिता, 2006 के प्रावधानों के साथ असंगत हैं, यदि नहीं, तो संहिता, 2006 की धारा 230 की उप-धारा 2 का प्रावधान लागू होता है। यदि वे असंगत हैं, तो, निश्चित रूप से, परिणाम अन्यथा होगा, और वे संहिता, 2006 की धारा 67 के तहत कार्यवाही पर लागू नहीं होंगे।

(23) जब हम संहिता, 2006 का अवलोकन करते हैं, तो हम पाते हैं कि संहिता, 2006 की धारा 13 (1) अधिनियम, 1901 की धारा 15 (1) के प्रावधानों के समतुल्य है क्योंकि यह प्रावधान करता है कि राज्य सरकार प्रत्येक जिले में उतने व्यक्तियों को नियुक्त कर सकती है, जितने वह प्रथम या द्वितीय श्रेणी के सहायक कलेक्टर के रूप में उचित समझे। अधिनियम, 1901 की धारा 15 की उपधारा 1 में निहित ऐसे प्रावधान के अंतर्गत, उपर्युक्त अधिसूचनाएं, अधिनियम, 1901 की धारा 221 और 224 के साथ पठित, जारी की गई थीं।

(24) इस संदर्भ में, हम यह उल्लेख कर सकते हैं कि प्रथम या द्वितीय श्रेणी के प्रत्येक सहायक कलेक्टर को जिले के एक या अधिक उप-खण्डों का प्रभारी नहीं बनाया जाता है, जैसा कि संहिता, 2006 की धारा 13 की उप-धारा 2 में निर्दिष्ट है। जहां ऐसा अधिकारी अर्थात प्रथम श्रेणी का सहायक कलेक्टर किसी जिले के एक या अधिक उप-खण्डों का प्रभारी बनाया जाता है, उसे उप-खण्ड का प्रभारी प्रथम श्रेणी सहायक कलेक्टर या उप-खण्ड अधिकारी कहा जाएगा।

(25) संहिता, 2006 की धारा 14(2) के अनुसार, संहिता के प्रावधानों के अधीन, तहसीलदार और तहसीलदार (न्यायिक) ऐसी शक्तियों का प्रयोग और ऐसे कर्तव्यों का निर्वहन करेंगे जैसा कि राज्य सरकार या बोर्ड या राज्य सरकार या बोर्ड से किसी निर्देश के अभाव में, कलेक्टर निर्देशित कर सकते हैं।

(26) संहिता, 2006 की धारा 17 में प्रावधान है कि राज्य सरकार या नियुक्ति के लिए सक्षम प्राधिकारी के लिए, जैसा भी मामला हो, उक्त अध्याय में प्रदान किए गए किन्हीं दो या अधिक पदों के लिए विधि के अनुसार अन्यथा सक्षम एक ही व्यक्ति को नियुक्त करना या एक संप्रदाय के किसी अधिकारी को कुछ स्थानीय सीमाओं के भीतर या अन्यथा किसी अन्य अधिकारी या अधिकारियों की सभी या कोई शक्तियां या कर्तव्य प्रदान करना वैध होगा, जैसा कि वह समीचीन समझे।

(27) हम अधिनियम, 1901 की धारा 19 (2) का भी उल्लेख कर सकते हैं, जिसके अनुसार, संहिता, 2006 के अधीन नियुक्त राजस्व अधिकारी, राज्य सरकार के नियंत्रण के अधीन रहते हुए, ऐसी अन्य शक्तियों का प्रयोग और ऐसे अन्य कर्तव्यों का निर्वहन करेंगे, जैसा कि राज्य सरकार सामान्य या विशेष आदेश द्वारा निर्देशित करे।

(28) धारा 225-घ के अनुसार, प्रथम श्रेणी का सहायक कलेक्टर, जो किसी जिले के उप-खण्ड का प्रभारी नहीं है, ऐसे वादों या वादों के वर्गों में, जिन्हें कलेक्टर समय-समय पर निस्तारण के लिए उसे संदर्भित करे, उप-खण्ड के प्रभारी प्रथम श्रेणी के सहायक कलेक्टर को प्रदत्त सभी या किन्हीं शक्तियों का प्रयोग करेगा।

(29) इस प्रकार, संहिता, 2006 के ऊपर उल्लिखित प्रावधान अधिनियम, 1901 में निहित प्रावधानों के लगभग समान हैं, जिनके अंतर्गत अधिसूचनाएं जारी की गई हैं, जिसका अर्थ है कि अधिनियम, 1901 के अंतर्गत जारी की गई अधिसूचनाओं के समान अधिसूचनाएं राज्य सरकार द्वारा उपरोक्त प्रावधानों के अंतर्गत भी जारी की जा सकती हैं।

(30) इसी प्रकार, संहिता, 2006 की धारा 67, जिसके अंतर्गत याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध कार्रवाई की गई है, अधिनियम, 1950 की धारा 122-बी के *समरूप* है।

(31) हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि इस धारा 122-बी के अंतर्गत सहायक कलेक्टर को ही उक्त प्रावधान द्वारा कार्रवाई करने का अधिकार दिया गया था। अब सहायक कलेक्टर का पदनाम धारा 15 में स्पष्ट रूप से उल्लिखित था, जो तहसीलदार के पदनाम/पद से भिन्न था, जिसका उल्लेख अधिनियम, 1901 की धारा 17 में किया गया था, किन्तु तहसीलदारों को सशक्त बनाने और उन्हें धारा 15 में निर्दिष्ट सहायक कलेक्टरों की शक्तियाँ प्रदान करने की आवश्यकता को देखते हुए, अधिनियम, 1901 के अंतर्गत उपर्युक्त अधिसूचनाएँ जारी की गईं, जिसके आधार पर तहसीलदार ने अधिनियम, 1950 की धारा 122-बी और अन्य प्रावधानों के अंतर्गत सहायक कलेक्टर की शक्तियों का प्रयोग किया।

(32) हमें ऊपर उल्लिखित अधिसूचनाओं में, जो अधिनियम, 1901 के अंतर्गत जारी की गई थीं, संहिता, 2006 के प्रावधानों या उसके अंतर्गत जारी किसी अधिसूचना, जिसमें दिनांक 29.12.2020 की आक्षेपित अधिसूचना भी शामिल है, के साथ कोई असंगति नहीं पाते है।

(33) इस न्यायालय ने 2020 की रिट-सी संख्या 2111 में दिनांक 10.06.2020 का अंतरिम आदेश पारित करते समय, जिसने वास्तव में आक्षेपित अधिसूचना जारी करने को प्रेरित किया, संहिता, 2006 की धारा 230 में निहित प्रावधानों पर ध्यान नहीं दिया है और न ही इसने अपनी इस टिप्पणी का आधार बताया है कि संहिता, 2006 की तुलना में दिनांक 25.07.1960 और 07.01.1964 की अधिसूचनाओं के बीच असंगति होगी। कोई कारण नहीं बताए गए हैं। उक्त कार्यवाही में कोई अंतिम आदेश पारित नहीं किया गया है। अभिलेख में ऐसा कुछ भी नहीं है जो यह दर्शाता हो कि उक्त अधिसूचनाएं किसी भी तरह से संहिता, 2006 के प्रावधानों

4.इला कैरियर कॉन्वेंट एजुकेशन एंड चैरिटेबल ट्रस्ट, द्वारा प्रबंधक एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 715

के साथ असंगत थीं/हैं। न तो याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता और न ही राज्य के अधिवक्ता ऐसी किसी असंगति की ओर इशारा कर सके। इसलिए, तार्किक परिणाम के रूप में, दिनांक 06.06.1953, 25.07.1960, 07.01.1964 की अधिसूचनाएँ संहिता, 2006 के संगत प्रावधानों, जो संहिता, 2006 की धारा 13(1), 14, 17 और 19 हैं, के अंतर्गत की गई या जारी की गई मानी जाएँगी और वे संहिता, 2006 की धारा 230 की उपधारा 2 के प्रावधान के अंतर्गत तदनुसार लागू रहेंगी, विशेष रूप से क्योंकि दिनांक 29.12.2020 की अधिसूचना अधिनियम, 1901 के अंतर्गत पूर्व की अधिसूचनाओं का अधिरोहण नहीं करती है।

(34) हम इसी संदर्भ में यह इंगित कर सकते हैं कि संहिता, 2006 के कार्यान्वयन से पूर्व, उप-खण्ड अधिकारी को संहिता, 2006 की धारा 67 के अंतर्गत कार्य करने का अधिकार था। हालाँकि, यूपी अधिनियम संख्या 4, 2016 द्वारा उप-विभागीय अधिकारी शब्द को सहायक कलेक्टर शब्दों द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था। यह संहिता, 2006 की धारा 13(1), 17 और 19 के साथ संयुक्त रूप से पढ़े जाने पर प्रासंगिक है।

(35) हम इसी संदर्भ में उत्तर प्रदेश सामान्य खंड अधिनियम, 1904 (जिसे आगे "अधिनियम, 1904" कहा जाएगा) की धारा 24 का उल्लेख कर सकते हैं, जो इस प्रकार है:-

"धारा 24. निरसित और पुनः अधिनियमित अधिनियमों के अधीन जारी की गई नियुक्तियों, अधिसूचनाओं, आदेशों आदि का जारी रहना। -
जहां किसी अधिनियम को किसी [उत्तर प्रदेश] अधिनियम द्वारा, संशोधन सहित या उसके बिना, निरसित और पुनः अधिनियमित किया जाता है, वहां, जब तक कि अन्यथा स्पष्ट रूप से उपबंधित न हो, निरसित अधिनियम के अधीन की गई या जारी की गई कोई नियुक्ति, [या वैधानिक लिखत या प्ररूप], जहां तक वह पुनः अधिनियमित उपबंधों से असंगत न हो, प्रवृत्त बनी रहेगी और इस प्रकार पुनः अधिनियमित उपबंधों के अधीन की गई या जारी की गई मानी जाएगी, जब तक कि उसे इस प्रकार पुनः अधिनियमित उपबंधों के अधीन की गई या जारी की गई किसी नियुक्ति, [या वैधानिक लिखत या प्ररूप] द्वारा अधिक्रांत न कर दिया जाए।"

(36) उपर्युक्त उद्धृत प्रावधान के अनुसार, जहां किसी अधिनियम को किसी [उत्तर प्रदेश] अधिनियम द्वारा निरसित और पुनः अधिनियमित किया जाता है, संशोधन के साथ या उसके बिना, तब, जब तक कि अन्यथा स्पष्ट रूप से प्रावधान न किया गया हो, निरसित अधिनियम के तहत बनाई गई या जारी की गई कोई नियुक्ति, [या वैधानिक उपकरण या प्ररूप], जहां तक यह पुनः अधिनियमित प्रावधानों से असंगत नहीं है, लागू रहेगी, और इस प्रकार पुनः अधिनियमित प्रावधानों के तहत बनाई गई या जारी की गई मानी जाएगी, जब तक कि इसे इस प्रकार पुनः अधिनियमित प्रावधानों के तहत बनाई गई या जारी की गई किसी नियुक्ति, [या वैधानिक उपकरण या प्ररूप] द्वारा अधिक्रांत नहीं कर दिया जाता है। वैधानिक उपकरण शब्द को अधिनियम, 1904 की धारा 4 (42बी) में परिभाषित किया गया है, जिसका अर्थ है किसी अधिनियम के अंतर्गत जारी की गई कोई अधिसूचना, आदेश या योजना, नियम या उपविधि और जिसमें विधि का बल हो। यह संदेह से परे है कि अधिनियम, 1901 और अधिनियम, 1950 के तहत जारी अधिसूचनाएं, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है,

अधिनियम, 1904 की धारा 24 में संदर्भित वैधानिक उपकरण हैं, इसलिए, अधिनियम, 1904 के उक्त प्रावधान के आधार पर भी, जो संहिता, 2006 की धारा 230 में निहित निरसन और व्यावृत्ति प्रावधान के समान है, उपरोक्त अधिसूचनाएं न केवल व्यावर्तित हैं बल्कि संहिता, 2006 पर लागू होती रहती हैं और इस संदर्भ में, संहिता, 2006 की धारा 67 के अंतर्गत कार्यवाही के लिए भी लागू होती हैं, ऐसे में 29.12.2020 की अधिसूचना जारी करने की कोई आवश्यकता नहीं थी, जो किसी भी मामले में पहले की अधिसूचनाओं में कुछ भी नहीं जोड़ती है और न ही उससे कुछ घटाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह न्यायालय को सही तथ्यात्मक और विधिक प्रावधान के बारे में सूचित करने के बजाय पहले संदर्भित 10.06.2020 के आदेश में केवल अस्थायी टिप्पणियों के कारण जारी की गई है।

(37) उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, अपरिहार्य निष्कर्ष यह है कि दिनांक 29.12.2020 की आक्षेपित अधिसूचना तथ्यों और विधि की कुछ गलत धारणा के अंतर्गत जारी की गई प्रतीत होती है और संभवतः अधिनियम, 1901 और अधिनियम, 1950 के अंतर्गत जारी अधिसूचनाओं की संहिता, 2006 के अंतर्गत कार्यवाही के लिए इसमें निहित धारा 230 के प्रकाश में प्रयोज्यता के बारे में उचित जांच के बिना, इस तथ्य के अलावा कि इसे पूर्वव्यापी प्रभाव से लागू नहीं किया जा सकता था।

(38) एक और विसंगति जो हम दिनांक 29.12.2020 की आक्षेपित अधिसूचना में पाते हैं, वह यह है कि यह संहिता, 2006 की धारा 219 के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग करते हुए जारी की गई प्रतीत होती है, जबकि उक्त प्रावधान राज्य सरकार को संहिता, 2006 के अंतर्गत उसमें निहित शक्तियों को बोर्ड या उसके अधीनस्थ किसी अन्य अधिकारी या प्राधिकरण को प्रत्यायोजित करने का अधिकार देता है। संहिता, 2006 की धारा 67 के अंतर्गत जो शक्ति प्रयोग की जाती है, वह राज्य सरकार द्वारा प्रयोग नहीं की जाती है, इसलिए, इस कारण से भी आक्षेपित अधिसूचना द्वारा कथित प्रत्यायोजन पोषणीय नहीं है।

(39) किसी भी स्थिति में, हम पहले ही, ऊपर चर्चा किए गए कारणों से, यह मान चुके हैं कि अधिसूचना विधि की दृष्टि से अनैतिक होने के अलावा, निरर्थक भी है।

(40) इन विसंगतियों और अवैधताओं को देखते हुए, हम दिनांक 29.12.2020 की अधिसूचना को रद्द करते हैं, तथापि, राज्य सरकार को इस बात की स्वतंत्रता देते हुए कि वह ऊपर चर्चा किए गए प्रावधानों या ऐसे अन्य प्रावधानों के संदर्भ में स्पष्टीकरण अधिसूचना जारी कर सकती है, कि, तहसीलदार संहिता, 2006 की धारा 67 के प्रयोजनों के लिए अधिनियम, 1901 की धारा 221 और 224 के साथ धारा 15 के अंतर्गत दिनांक 06.06.1953, 25.07.1960, 07.01.1964 की अधिसूचनाओं द्वारा उसमें निहित शक्तियों का प्रयोग करना जारी रखेगा, जैसा कि वह कर रहा है, यदि वह ऐसा करना चाहता है।

(41) इस बीच, उपर्युक्त तहसीलदार, संहिता, 2006 की धारा 230(2) के परन्तुक के अनुसार, उपर्युक्त अधिसूचनाओं के अधीन, संहिता, 2006 की धारा 67 के अधीन कार्यवाही के प्रयोजनों के लिए सहायक कलेक्टर की शक्तियों का प्रयोग करते रहेंगे।

(42) परिणामस्वरूप, राजस्व परिषद का आदेश, जहाँ तक वह दिनांक 29.12.2020 की अधिसूचना पर निर्भर करता है, पोषणीय नहीं रखा जा सकता। हालाँकि, जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, संहिता, 2006 की धारा 210 के अंतर्गत संशोधन स्वयं अपोषणीय होने के आधार पर इसे कायम रखा गया है।

(43) अब, जहां तक संहिता, 2006 की धारा 67 के तहत पारित आदेशों और अपीलीय आदेश को दी गई चुनौती के गुण-दोष का संबंध है, राज्य की ओर से आज दायर पूरक प्रति-शपथपत्र में स्वीकार की गई स्थिति के मद्देनजर कि संहिता, 2006 की धारा 67 के साथ नियम 67, 2016 में निर्धारित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया था, क्योंकि अपीलीय न्यायालय ने इस पहलू की सराहना नहीं की है, भले ही याचिकाकर्ता का पुनरीक्षण पोषणीय नहीं था, इसलिए स्पष्ट रूप से, हम संहिता, 2006 की धारा 67 के तहत पारित दिनांक 29.02.2020 के आदेश और दिनांक 05.10.2020 के अपीलीय आदेश को रद्द करते हैं और कार्यवाही को विधि के अनुसार नए सिरे से विचार के लिए तहसीलदार को वापस भेजते हैं। याचिकाकर्ता अब अगले एक माह के भीतर नोटिस का इंतजार किए बिना तहसीलदार के समक्ष उपस्थित होगा।

(44) जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, संहिता, 2006 की धारा 101 के अंतर्गत याचिकाकर्ता द्वारा कथित रूप से अतिक्रमित भूमि के विनिमय हेतु कार्यवाही लखनऊ के मंडलायुक्त के समक्ष लंबित है। यह सूचित किया जाता है कि इससे पूर्व अपर जिला मजिस्ट्रेट, लखनऊ ने नगर निगम, लखनऊ द्वारा 08.02.2024 को दी गई अनापत्ति प्रमाण पत्र (एन.ओ.सी.) के आधार पर याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तावित विनिमय/क्रय हेतु अनुकूल अनुशंसा की थी, तथापि, बाद में ऐसा प्रतीत होता है कि नगर निगम, लखनऊ ने अपर जिला मजिस्ट्रेट, लखनऊ को सूचित किया है कि मामला नगर निगम के सदन में अपेक्षित रूप से नहीं लाया गया है, जिसे अब प्रस्तावित किया गया है, इसलिए मामला अभी भी लंबित है। यदि सदन अनुमति या अनापत्ति प्रमाण पत्र प्रदान करता है, जैसा भी मामला हो, तो उसे संहिता, 2006 की धारा 101 के तहत निर्णय के लिए मंडलायुक्त, लखनऊ को भेजा जाएगा। यद्यपि, नगर निगम, लखनऊ इसमें विरोधी पक्ष नहीं है, लेकिन चूंकि हम इन कार्यवाहियों में उसके किसी भी अधिकार का न्यायनिर्णयन नहीं कर रहे हैं, इसलिए यह आदेश/निर्देश दिया जाता है कि जब तक संहिता, 2006 की धारा 101 के तहत विनिमय कार्यवाही, शासनादेशों और अधिसूचनाओं के साथ, जो भी लागू हो, लंबित है, तब तक संहिता, 2006 की धारा 67 के तहत आगे की कार्यवाही नहीं की जाएगी। हालांकि, जैसे ही विनिमय कार्यवाही में अंतिम निर्णय लिया जाता है, यदि यह याचिकाकर्ता के खिलाफ है, तो तहसीलदार विधि के अनुसार उक्त कार्यवाही पर विचार करने और उसका निपटान करने के लिए आगे बढ़ेंगे, जैसा कि पहले ही देखा गया है। यदि विनिमय की अनुमति दी जाती है, तो यह तथ्य तहसीलदार के संज्ञान में लाया जाएगा। नगर निगम, लखनऊ के सदन को इस मामले में शीघ्र निर्णय लेने का निर्देश दिया जाता है, अर्थात तीन महीने के भीतर, विशेष रूप से याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता के इस कथन के मद्देनजर कि उसने विश्वविद्यालय के रूप में उन्नयन के लिए आवेदन किया है और इस संबंध में राज्य सरकार द्वारा

एक आशय पत्र जारी किया गया है। श्री मनीष मिश्रा, अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता हमारे आदेश को अनुपालन के लिए नगर आयुक्त, लखनऊ को सूचित करेंगे।

(45) हम राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता और राज्य सरकार के अधिकारियों, अर्थात् श्री राज कुमार द्विवेदी, ओ.एस.डी., राजस्व परिषद और श्री घनश्याम चतुर्वेदी, अनु सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार, जो उपस्थित हैं, द्वारा प्रदान की गई सहायता की सराहना करते हैं। लेकिन हम चाहते हैं कि यह प्रयास 29.12.2020 की आक्षेपित अधिसूचना जारी करने से पहले किया गया होता ताकि इस वाद में उत्पन्न स्थिति से बचा जा सके।
(46) **उपर्युक्त शर्तों के अधीन**, याचिका **आंशिक रूप से स्वीकार** किया जाता है।

(47) इस निर्णय की प्रति अध्यक्ष, राजस्व परिषद, उत्तर प्रदेश सरकार, अपर मुख्य सचिव/प्रमुख सचिव, राजस्व, उत्तर प्रदेश सरकार तथा विधि परामर्शी, उत्तर प्रदेश सरकार को भेजी जाएगी।

(2025) 4 ILRA 585

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 01.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया

रिट - सी सं. 2884/2025

श्रीमती सुशीला देवी उर्फ सुशीला **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...प्रत्यर्थीगण**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
संतोष कुमार त्रिपाठी, परितोष शुक्ल

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता, पंकज गुप्ता
अकारण आदेश- आदेश सकारण और युक्ति युक्त होना चाहिए- संपूर्ण तथ्यों और संगत उपबंधों को ध्यान में नहीं रखा गया- आक्षेपित आदेश विधि की दृष्टि में अपोषणीय हैं-आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है।

रिट याचिका निस्तारित। (ई-9)

<u>उद्धृत वाद:</u>

1. सी.सी.टी. बनाम शुक्ला एंड ब्रदर्स, (2010) 4 एससीसी 785

2. राज्य परियोजना निर्देशक, उ.प्र. सर्व शिक्षा के लिए परियोजना बोर्ड एवं अन्य बनाम सरोज मौर्य एवं अन्य, सिविल अपील सं. 3465/2023

3. इरकॉन इंटरनेशनल लि. द्वारा महाप्रबंधक बनाम दीपक यादव, 2019 एससीसी ऑनलाइन ऑल 4239

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री संतोष कुमार, विपक्षी सं. 1 से 5 की ओर से उपस्थित विद्वान राज्य अधिवक्ता श्री हेमंत कुमार पांडेय, और विपक्षी सं. 6/गाँव सभा के लिए उपस्थित श्री पंकज गुप्ता को सुना गया।

2. वर्तमान याचिका निम्नलिखित मुख्य अनुतोष मांगते हुए दायर की गई है:-
"*i. 'उत्प्रेषण' की प्रकृति का रिट, आदेश या निर्देश जारी करें, जिससे वाद सं. 1226/2024, 'श्रीमती सुशीला देवी बनाम अध्यक्ष, एल.एम.सी.' में विद्वान अपर आयुक्त (प्रशासन-I), देवीपाटन मंडल द्वारा पारित दिनांक 31/01/2025 का आक्षेपित आदेश और विद्वान उप-जिलाधिकारी, भिंगा, श्रावस्ती द्वारा पारित दिनांक 23/02/2024 का आक्षेपित आदेश (संलग्नक-1 और 2) न्याय के हित में अपास्त और खारिज किया जाए;*
ii. 'परमादेश' की प्रकृति का रिट, आदेश या निर्देश जारी करें जिससे प्रत्यर्थी प्राधिकारियों को दिनांक 31/01/2025 और 23/02/2024 के आक्षेपित आदेश पर कार्य न करने और न्याय के हित में, इस रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान याचिकाकर्ता के शांतिपूर्ण कब्जे में विघ्न न डालने का निर्देश दिया जाए;"

3. यह बताना उचित होगा कि विपक्षी सं. 4/उप-जिलाधिकारी, भिंगा, श्रावस्ती द्वारा पारित दिनांक 23.02.2024 का आदेश एक अकारण आदेश है, जो निम्नवत है:-
"यथाप्रस्तावित स्वीकृत"

4. इस स्तर पर, यह भी प्रासंगिक होगा कि आदेश सकारण और युक्ति युक्त होना चाहिए, जो विधि के सुस्थापित सिद्धांतों को देखते हुए अपेक्षित हैं (***सी.सी.टी. बनाम शुक्ला एंड ब्रदर्स, (2010) 4 एससीसी 785 जो सिविल अपील सं. 3465/2023 (राज्य परियोजना निर्देशक, उ.प्र. सर्व शिक्षा सर्व परियोजना बोर्ड एवं अन्य बनाम सरोज मौर्य एवं अन्य, दिनांक 21.08.2024 को निर्णीत और इरकॉन इंटरनेशनल लिमिटेड द्वारा महाप्रबंधक बनाम दीपक यादव, 2019 एससीसी ऑनलाइन इला 4239)*** *में विचार किया गया।*

5. विपक्षी 4/उपजिलाधिकारी, भिनगा, श्रावस्ती द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 23.02.2024 के अनुसार, गाटा संख्या 128/0.3200 हेक्टेयर से संबंधित राजस्व अभिलेख में रामफेरन पुत्र छेदी, जिनकी मृत्यु लगभग

15 वर्ष पूर्व हो चुकी थी, के पक्ष में प्रविष्टि को विलोपित कर दिया गया है, जिस पर रामफेरन अपने पक्ष में निष्पादित 'पट्टे' के अनुसार काबिज थे।

6. विपक्षी सं. 2/अपर आयुक्त (प्रशासन-I), देवीपाटन मंडल, श्रावस्ती (संक्षेप में 'पुनरीक्षण प्राधिकारी') द्वारा उ.प्र. राजस्व संहिता, 2006 (संक्षेप में 'संहिता 2006') की धारा 210 के अनुसार याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत पुनरीक्षण में पारित दिनांक 31.01.2025 के आदेश द्वारा पुनरीक्षण सं. 1266/2024, कम्प्यूटरीकृत वाद सं. सी202408000001226 (श्रीमती सुशीला देवी बनाम अध्यक्ष, भूमि प्रबंधन समिति एवं अन्य) में, पुनरीक्षण प्राधिकारी ने पुनरीक्षण को खारिज कर दिया। दिनांक 31.01.2025 का आदेश निम्नवत है:-

"31.01.2025- पत्रावली आदेशार्थ प्रस्तुत हुई। दिनाँक 02.01.2025 को उभयपक्ष के विद्वान अधिवक्तागण न्यायालय पर उपस्थित हुए, जिन्हे निगरानी की ग्राहयता के बिन्दु पर सुना गया तथा निगरानी पत्रावली का अवलोकन किया गया।

उपरोक्त निगरानी उपजिलाधिकारी भिनगा द्वारा पारित आदेश दिनॉक 23.02.2024 के विरुद्ध दिनॉक 09.08.2024 को योजित की गयी है। निगरानीकत्री के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि प्रश्नगत आराजी गाटा संख्या-128/0.320 हे० स्थित ग्राम शाहपुर बरगदवा का सीलिंग कृषि आवंटन करीब 60 वर्ष पूर्व रामफेरन पुत्र छेदी के पक्ष में हुआ था। सीलिंग कृषि आवंटन पर कोई विवाद नहीं है। रामफेरन अपने जीवनकाल में उक्त भूमि के मालिक हुए। कालान्तर में रामफेरन ने उक्त भूमि का दिनॉक 16.11.2007 को निगरानीकत्री के पक्ष में पंजीकृत वसीयतनामा निष्पादित कर दिया गया, जिसके सम्बन्ध में नामान्तरण का वाद तहसीलदार भिनगा के न्यायालय में विचाराधीन है। दिनॉक 26.11.2022 को ग्रामप्रधान शाहपुर बरगदवा द्वारा जिलाधिकारी श्रावस्ती के समक्ष इस आशय का प्रार्थनापत्र दिया कि रामफेरन लावल्द मरे है इनका कोई वारिस नहीं है इसलिए सीलिंग आवंटन निरस्त कर दिया जाये तथा भूमि गाँवसभा में घोषित कर दी जाये। ग्रामप्रधान के उक्त प्रार्थनापत्र पर हल्का लेखपाल / राजस्व निरीक्षक द्वारा दिनॉक 12.02.2024 को आख्या प्रस्तुत की गयी तथा बगैर किसी नोटिस के, उपजिलाधिकारी भिनगा द्वारा दिनॉक 23.02.2024 को यथा प्रस्तावित स्वीकृत लिखकर सीलिंग कृषि आवंटन निरस्त कर दिया गया है, जो उचित नहीं है। उपजिलाधिकारी भिनगा को सीलिंग आवंटन निरस्त करने का अधिकार प्राप्त नही है। अंत में निगरानीकत्री द्वारा निगरानी को ग्राहय कर प्रश्नगत आदेश का क्रियान्वयन स्थगित किये जाने पर बल दिया गया।

दूसरी ओर मण्डलीय शासकीय अधिवक्ता (राजस्व) द्वारा अपने लिखित आपत्ति में यह कहा गया कि प्रस्तुत निगरानी त्रुटिपूर्ण व विधिक बाधा से ग्रसित है क्योंकि अवर न्यायालय ने विवादित आराजी श्रेणी-4 क उ०प्र० अधिकतम जोत सीमा आरोपण अधिनियम के अन्तर्गत दर्ज करके अभिलेख में अंकना की गयी। इस प्रकार उ०प्र०राजस्व संहिता 2006 का प्राविधान सीलिंग अधिनियम के ऊपर प्रभावी नहीं होगा। प्रस्तुत निगरानी पोषणीय नहीं है, इसलिए निरस्त की जाये।

उभयपक्ष के विद्वान अधिवक्तागण के तर्को को सुनने तथा निगरानी पत्रावली पर उपलब्ध अभिलेखों के अवलोकन से स्पष्ट है कि उपरोक्त निगरानी लेखपाल / राजस्व निरीक्षक द्वारा प्रस्तुत की गयी आख्या पर पारित आदेश दिनॉक 23.02.2024 के विरूद्ध है, जिसके विरूद्ध उ०प्र० राजस्व संहिता 2006 के अन्तर्गत

निगरानी पोषणीय नहीं है। पक्षकार यदि चाहे तो नियत प्राधिकारी के यहाँ वाद प्रस्तुत कर अनुतोष प्राप्त कर सकते हैं। पत्रावली बाद आवश्यक कार्यवाही दाखिल दफ्तर की जाये।"

7. अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के साथ-साथ पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत निवेदनों पर सम्यक विचार करने पर, न्यायालय का यह विचार है कि मामले में हस्तक्षेप आवश्यक है। यह निम्नलिखित तथ्यों/कारणों के लिए है:-

(i) ग्राम शाहपुर बरगदवा, पोस्ट और तहसील भिंगा, जिला-श्रावस्ती में स्थित गाटा सं. 128/0.3200 हेक्टेयर के संबंध में एक 'पट्टा' रामफेरन पुत्र छेद्दी के पक्ष में निष्पादित किया गया था;

(ii) विवादग्रस्त भूमि अर्थात गाटा सं. 128/0.3200 हेक्टेयर, जैसा कि ऊपर विस्तृत किया गया है, जोत भूमि थी और उत्तर प्रदेश अधिकतम भूमि जोत सीमा आरोपण अधिनियम 1960 (संक्षेप में अधिनियम 1/1961) के अंतर्गत आच्छादित थी;

(iii) अपने जीवनकाल के दौरान स्वर्गीय रामफेरन पुत्र छेद्दी ने उप-रजिस्ट्रार, भिंगा, जिला-श्रावस्ती के समक्ष याचिकाकर्ता के पक्ष में दिनांक 16.11.2007 की एक पंजीकृत 'वसीयत' निष्पादित की;

(iv) उ.प्र. ज़ेडए और एल.आर. अधिनियम, 1950 (संक्षेप में 'अधिनियम 1950') की धारा 131 को उ.प्र. अधिनियम सं. 14/1987 द्वारा दिनांक 14.04.1987 से संशोधित किया गया। इस संशोधन द्वारा अधिनियम 1950 की धारा 131 में उपधारा 'घ' अंतःस्थापित की गई। वह निम्नवत है:-

"131. अहस्तांतरणीय अधिकारों वाला भूमिधर।

निम्नलिखित वर्गों में से किसी से संबंधित प्रत्येक व्यक्ति अहस्तांतरणीय अधिकारों वाला भूमिधर कहलाएगा और उसे वे सभी अधिकार होंगे और वह उन सभी दायित्वों के अधीन होगा जो इस अधिनियम द्वारा या के अधीन ऐसे भूमिधरों को प्रदत्त या उन पर अधिरोपित किए गए हैं, नामतः-

(क) उत्तर प्रदेश भूमि विधि (संशोधन) अधिनियम, 1977 के प्रारंभ की तिथि से पूर्व धारा 195 के अधीन किसी भूमि का सिरदार या उक्त तिथि को या उसके बाद उक्त धारा के अधीन अहस्तांतरणीय अधिकारों वाला भूमिधर के रूप में स्वीकृत किया गया हो;

(ख) प्रत्येक व्यक्ति जो किसी अन्य रीति से उक्त तिथि को या उसके बाद, इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन या के अनुसार ऐसे भूमिधर के अधिकार अर्जित करता है;

(ग) प्रत्येक व्यक्ति जिसे उत्तर प्रदेश भूदान यज्ञ अधिनियम, 1952 के उपबंधों के अधीन किसी भूमि का आवंटन किया गया है या किया जाता है।

(घ) [1 जुलाई, 1981 से प्रत्येक व्यक्ति जिसके साथ उत्तर प्रदेश अधिकतम भूमि जोत हदबंदी अधिनियम, 1960 की धारा 26-क या धारा 27 की उपधारा (3) के अधीन अधिशेष भूमि का बंदोबस्त किया गया है या किया जाता है।] [उ.प्र. अधिनियम सं. 24/1986 द्वारा अंतःस्थापित।]"

(v) उपरोक्त के बाद, अधिनियम 1950 को अधिनियम सं. 14/1987 द्वारा संशोधित किया गया, जो 15 अप्रैल, 1987 से प्रभावी हुआ और इससे धारा 131-क अंतःस्थापित की गई। धारा 131-क निम्नवत है:-

*131-क. **कुछ परिस्थितियों में गाँव सभा या राज्य सरकार की भूमि में भूमिधरी अधिकार.-** धारा 132 और धारा 133-क के उपबंधों के अधीन रहते हुए, धारा 117 के अधीन गाँव सभा में निहित या राज्य सरकार की किसी भूमि का, कैमूर श्रेणी के दक्षिण में जिला मिर्जापुर के भाग में, भारतीय वन अधिनियम, 1927 की धारा 20 के अधीन अधिसूचित भूमि से भिन्न, 30 जून, 1978 से पूर्व कृषि कब्जे में प्रत्येक व्यक्ति ऐसी भूमि का अहस्तांतरणीय अधिकारों वाला भूमिधर बन गया समझा जाएगा:*

परंतु जहाँ किसी व्यक्ति के कृषि कब्जे में भूमि, उत्तर प्रदेश में उसके द्वारा धारित किसी अन्य भूमि के साथ, उत्तर प्रदेश अधिकतम भूमि जोत सीमा आरोपण अधिनियम, 1960 के अधीन अवधारित अधिकतम सीमा क्षेत्र से अधिक है, ऐसे व्यक्ति के पक्ष में अहस्तांतरणीय अधिकारों वाले भूमिधर के अधिकार प्रथम उल्लिखित भूमि के उतने क्षेत्र के संबंध में प्रोद्भूत होंगे, जो उसके द्वारा धारित ऐसी अन्य भूमि के साथ, उस पर लागू अधिकतम सीमा क्षेत्र से अधिक नहीं है और उक्त क्षेत्र का सीमांकन पूर्वोक्त अधिनियम में अधिकथित सिद्धांतों के अनुसार विहित रीति से किया जाएगा।

(vi) उपरोक्त के बाद, धारा 131-ख को उ.प्र. अधिनियम सं. 19/1995 द्वारा, दिनांक 14.01.1995 से प्रभावी, अंतःस्थापित किया गया। धारा 131-ख निम्नवत है:-

"131-ख. अहस्तांतरणीय अधिकारों वाला भूमिधर दस वर्ष के बाद हस्तांतरणीय अधिकारों वाला भूमिधर बन जाएगा.-

(1) प्रत्येक व्यक्ति जो उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार (संशोधन) अधिनियम, 1995 के प्रारंभ से ठीक पूर्व अहस्तांतरणीय अधिकारों वाला भूमिधर था और दस वर्ष या अधिक की अवधि से ऐसा भूमिधर रहा था, ऐसे प्रारंभ पर हस्तांतरणीय अधिकारों वाला भूमिधर बन जाएगा।

(2) प्रत्येक व्यक्ति जो उपधारा (1) में निर्दिष्ट प्रारंभ पर अहस्तांतरणीय अधिकारों वाला भूमिधर है या ऐसे प्रारंभ के बाद अहस्तांतरणीय अधिकारों वाला भूमिधर बनता है, अहस्तांतरणीय अधिकारों वाला भूमिधर बनने से दस वर्ष की अवधि की समाप्ति पर हस्तांतरणीय अधिकारों वाला भूमिधर बन जाएगा।

(3) इस अधिनियम के किसी अन्य उपबंध में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, यदि कोई व्यक्ति, उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन हस्तांतरणीय अधिकारों वाला भूमिधर बनने के बाद विक्रय द्वारा भूमि का अंतरण करता है, तो वह गाँव सभा या राज्य सरकार में निहित किसी भूमि या उत्तर प्रदेश अधिकतम भूमि सीमा आरोपण अधिनियम, 1960 में यथा परिभाषित अधिशेष भूमि के पट्टे के लिए अपात्र हो जाएगा।"

(vii) इस स्तर पर, अधिनियम, 1950 की धारा 132 पर ध्यान देना प्रासंगिक होगा, जो यह इंगित करती है कि 'भूमिधरी अधिकार' कब प्रोद्भूत नहीं होंगे। अधिनियम, **1950 की धारा 132** निम्नवत है:-

"132. भूमि जिसमें [भूमिधरी] अधिकार प्रोद्भूत नहीं होंगे.- *धारा 131 में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, किंतु धारा 19 के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, [भूमिधरी] अधिकार निम्नलिखित में प्रोद्भूत नहीं होंगे-*

(क) चरागाह भूमि या जल से आच्छादित भूमि और सिंघाड़ा या अन्य उपज उगाने के प्रयोजन के लिए प्रयुक्त या नदी के तल में भूमि और आकस्मिक या कभी-कभार कृषि के लिए प्रयुक्त;

(ख) स्थानांतरित या अस्थिर कृषि के ऐसे क्षेत्र जिन्हें राज्य सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा विनिर्दिष्ट करे; और

(ग) राज्य सरकार द्वारा आधिकारिक राजपत्र में अधिसूचना द्वारा घोषित भूमि, जो किसी [गांव सभा] या स्थानीय प्राधिकरण की टोंग्या बागान या उपवन भूमि के लिए अभिप्रेत या अलग रखी गई है या किसी सार्वजनिक प्रयोजन के लिए अर्जित या धारित भूमि है और विशेष रूप से तथा इस खंड की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना-

(i) सैन्य शिविर मैदान के लिए अलग रखी गई भूमि;

(ii) रेलवे या नहर सीमाओं के भीतर समाविष्ट भूमि;

(iii) किसी छावनी की सीमाओं के भीतर स्थित भूमि;

(iv) स्थानीय प्राधिकरण की ऐसी मल-जल कृषि या खाई मैदान में समाविष्ट भूमि;

(v) उ.प्र. नगर सुधार अधिनियम, 1919 (उ.प्र. अधिनियम VII/1919) की धारा 42 के अधीन स्वीकृत योजना के अनुसार नगर सुधार न्यास द्वारा या उ.प्र. नगरपालिका अधिनियम, 1916 (उ.प्र. अधिनियम VII/1916) की धारा 8 के खंड (क) या खंड (ग) में उल्लिखित प्रयोजन के लिए नगरपालिका द्वारा अर्जित भूमि; और

(vi) उ.प्र. चकबंदी अधिनियम, 1953 (उ.प्र. अधिनियम V/1954) के अधीन लोक प्रयोजनों के लिए अलग रखी गई भूमि।]"

(viii) यह भी यहाँ उल्लेख करना प्रासंगिक है कि विवाद्यक के विषय पर एक शासनादेश है, अर्थात शा.आ. सं. 258/16(1)/73-राजस्व-1, दिनांक 9 मई, 1984।

(ix) यह भी यहाँ उल्लेख करना अप्रासंगिक नहीं होगा कि इस न्यायालय के दिनांक 06.12.2017 के निर्णय, जो सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका सं. 54990/2007 ***(मतलूब एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य), 2018 (7) एडीजे 240 : 2018 139 आरडी 491*** में पारित किया गया, के अनुसार, वह व्यक्ति जिसे जोत की अधिशेष भूमि के संबंध में 'पट्टा' प्रदान किया गया था, धारा 131 से प्रवाहित होने वाले लाभों का हकदार होगा। निर्णय के संगत प्रस्तर यहाँ उद्धृत किए जाते हैं:-

"1. गाँव हरोड़ा, जिला सहारनपुर में स्थित खसरा सं. 107/2, क्षेत्रफल 0.165 हेक्टेयर की भूमि याचिकाकर्ता के पिता स्वर्गीय बुंदू को उत्तर प्रदेश अधिकतम भूमि जोत सीमा आरोपण अधिनियम, 1960 (जिसे आगे 'अधिनियम' कहा गया है) की धारा 27 के अधीन आवंटित की गई थी, उसके एक अन्य काश्तकार के अधिशेष धारण के रूप में घोषित किए जाने के बाद। याचिकाकर्ताओं ने दिनांक 24.4.2006 को विवादग्रस्त संपत्ति को प्रत्यर्थी सं. 5 और 6 को एक पंजीकृत विक्रय विलेख द्वारा बेच दिया। तथापि, प्रत्यर्थी सं. 5 और 6 को अपर कलेक्टर सहारनपुर द्वारा नोटिस दिया गया कि विक्रय विलेख जिसके द्वारा उन्होंने भूखंड सं. 107/2 खरीदा था, वह शून्य था और, इसलिए, उनको कोई स्वत्व प्रोद्भूत नहीं हुआ। नोटिस के उत्तर में, प्रत्यर्थीगण ने उत्तर दिया लेकिन दिनांक 29.2.2007 के आदेश द्वारा, विक्रय को रद्द कर दिया गया क्योंकि यह उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1951 (जिसे आगे 'यू.पी.जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम' कहा गया है) की धारा 131 का उल्लंघन पाया गया। उ यू.पी.जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम की धारा 166 और 167 के अनुसार, यह अभिनिर्धारित किया गया कि भूमि राज्य सरकार में निहित हो गई थी। याचिकाकर्ता जो विक्रेता

थे तत्पश्चात क्रेताओं द्वारा परेशान किए जा रहे थे क्योंकि वे विक्रय प्रतिफल की वापसी मांग रहे थे। इसने याचिकाकर्ताओं को एक पुनरीक्षण दायर करने के लिए बाध्य किया, जो दिनांक 5.7.2007 को एकपक्षीय निर्णीत किया गया। तत्पश्चात, प्रत्याहरण आवेदन भी दिनांक 10.9.2007 को खारिज कर दिया गया। इससे व्यथित होकर, याचिकाकर्ताओं ने वर्तमान रिट याचिका दायर की है।

2. याचिकाकर्ताओं का तर्क है कि याचिकाकर्ताओं के पिता को दिनांक 14.7.1976 को अधिशेष भूमि का पट्टा दिए जाने के बाद फिर दिनांक 1.7.1981 को, याचिकाकर्ताओं के हित के पूर्वाधिकारी अर्थात उनके पिता अहस्तांतरणीय अधिकारों वाले भूमिधर बन गए। यू.पी.जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम, 1950 की धारा 131 याचिकाकर्ता द्वारा पढ़ी गई। इसलिए, यह यहाँ निम्नवत पुनरुद्धृत की जा रही है:-

"धारा 131. अहस्तांतरणीय अधिकारों वाला भूमिधर.- निम्नलिखित वर्गों में से किसी से संबंधित प्रत्येक व्यक्ति अहस्तांतरणीय अधिकारों वाला भूमिधर कहलाएगा और उसे वे सभी अधिकार होंगे और वह उन सभी दायित्वों के अधीन होगा जो इस अधिनियम द्वारा या के अधीन ऐसे भूमिधरों को प्रदत्त या उन पर अधिरोपित किए गए हैं, नामतः-

(क) उत्तर प्रदेश भूमि विधि (संशोधन) अधिनियम, 1977 के प्रारंभ की तिथि से पूर्व धारा 195 के अधीन किसी भूमि का सिरदार या उक्त तिथि को या उसके बाद उक्त धारा के अधीन अहस्तांतरणीय अधिकारों वाला भूमिधर के रूप में स्वीकृत किया गया हो;

(ख) प्रत्येक व्यक्ति जो किसी अन्य रीति से उक्त तिथि को या उसके बाद, इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन या के अनुसार ऐसे भूमिधर के अधिकार अर्जित करता है;

(ग) प्रत्येक व्यक्ति जिसे उत्तर प्रदेश भूदान यज्ञ अधिनियम, 1952 के उपबंधों के अधीन किसी भूमि का आवंटन किया गया है या किया जाता है।

(घ) 1 जुलाई, 1981 से प्रत्येक व्यक्ति जिसके साथ उत्तर प्रदेश अधिकतम भूमि जोत सीमा आरोपण अधिनियम, 1960 की धारा 26-क या धारा 27 की उपधारा (3) के अधीन अधिशेष भूमि का बंदोबस्त किया गया है या किया जाता है।"

3. तत्पश्चात उत्तर प्रदेश अधिनियम सं. 19/1995 के प्रवृत्त होने के साथ जो दिनांक 14.1.1995 को प्रभावी हुआ, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने निवेदन किया, याचिकाकर्ता हस्तांतरणीय अधिकारों वाले भूमिधर बन गए। जैसा कि याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने यू.पी.जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम की धारा 131-ख पढ़ी वह यहाँ निम्नवत पुनरुद्धृत की जा रही है:-

"131-ख अहस्तांतरणीय अधिकारों वाला भूमिधर दस वर्ष के बाद हस्तांतरणीय अधिकारों वाला भूमिधर हो जाएगा.- (1) प्रत्येक व्यक्ति जो उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार (संशोधन) अधिनियम, 1995 के प्रारंभ से ठीक पूर्व अहस्तांतरणीय अधिकारों वाला भूमिधर था और दस वर्ष या अधिक की अवधि से ऐसा भूमिधर रहा था, ऐसे प्रारंभ पर हस्तांतरणीय अधिकारों वाला भूमिधर बन जाएगा।

(2) प्रत्येक व्यक्ति जो उपधारा (1) में निर्दिष्ट प्रारंभ पर अहस्तांतरणीय अधिकारों वाला भूमिधर है या ऐसे प्रारंभ के बाद अहस्तांतरणीय अधिकारों वाला भूमिधर बनता है, अहस्तांतरणीय अधिकारों वाला भूमिधर बनने से दस वर्ष की अवधि की समाप्ति पर हस्तांतरणीय अधिकारों वाला भूमिधर बन जाएगा। (3) इस अधिनियम के किसी अन्य उपबंध में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, यदि कोई व्यक्ति, उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन हस्तांतरणीय अधिकारों वाला भूमिधर बनने के बाद विक्रय द्वारा भूमि का अंतरण करता है, तो वह गाँव सभा या राज्य सरकार में निहित किसी भूमि या उत्तर प्रदेश अधिकतम भूमि जोत सीमा आरोपण अधिनियम, 1960 में यथा परिभाषित अधिशेष भूमि के पट्टे के लिए अपात्र हो जाएगा।"

4. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने, तत्पश्चात निवेदन किया कि चूंकि वे दिनांक 14.1.1995 से हस्तांतरणीय अधिकारों वाले भूमिधर थे, दिनांक 24.4.2006 को हुआ विक्रय एक वैध विक्रय विलेख था और इसमें कोई त्रुटि नहीं पाई जा सकती। यह आधार दोनों अधीनस्थ न्यायालयों के समक्ष उठाया गया था। विशिष्ट तर्क आक्षेपित निर्णयों के मूल में भी पाया जाता है।

5. तथापि, केवल इसलिए कि याचिकाकर्ता राजस्व अभिलेख में अहस्तांतरणीय अधिकारों वाले भूमिधर के रूप में दर्ज थे, दोनों अधीनस्थ न्यायालयों ने अभिनिर्धारित किया कि विक्रय विलेख निष्पादित नहीं किया जा सकता था।

6. विद्वान स्थायी अधिवक्ता मामले के तथ्यात्मक और विधिक पहलू पर विवाद नहीं कर सके और निवेदन किया कि याचिकाकर्ता, वास्तव में, जिस तिथि को विक्रय विलेख निष्पादित किया गया था हस्तांतरणीय अधिकारों वाले भूमिधर थे।

7. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के बाद, मेरा विचार है कि यू.पी.जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम की धारा 131 और 131(ख) के उपबंधों के कारण, याचिकाकर्ता प्रारंभ में अहस्तांतरणीय अधिकारों वाले भूमिधर बन गए थे और तत्पश्चात हस्तांतरणीय अधिकारों वाली भूमिधरी अर्जित कर ली थी और वे निश्चित रूप से अपनी भूमि बेच सकते थे। राजस्व प्रविष्टियाँ मायने नहीं रखतीं, इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि याचिकाकर्ताओं को अहस्तांतरणीय अधिकारों वाले भूमिधर के रूप में दर्ज किया गया था।

8. इसलिए, अपर आयुक्त सहारनपुर द्वारा पारित दिनांक 10.9.2007 और 5.7.2009 के आक्षेपित आदेश और अपर कलेक्टर (प्रशासन) सहारनपुर द्वारा पारित दिनांक 28.2.2007 का आदेश क़ायम नहीं रह सकते हैं और इस प्रकार, खारिज किए जाते हैं। रिट याचिका स्वीकृत की जाती है।"

(x) उपरोक्त और दिनांक 23.02.2024 और 31.01.2025 के आक्षेपित आदेश(शों) के सहपठन से, यह न्यायालय पाता है कि संपूर्ण तथ्यों और संगत उपबंधों को विपक्षी पक्षकार सं. 2/संबंधित उप जिलाधिकारी के साथ-साथ पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा ध्यान में नहीं रखा गया था, इस प्रकार वे विधि की दृष्टि में असंधार्य हैं।

8. तदनुसार, अपर आयुक्त (प्रशासन-I), देवीपाटन मंडल, गोंडा द्वारा पारित दिनांक 31.01.2025 का आदेश और विद्वान उप जिलाधिकारी, भिंगा, श्रावस्ती द्वारा पारित दिनांक 23.02.2024 का आदेश एतद्द्वारा अपास्त/रद्द किए जाते हैं।

9. मामला विपक्षी सं. 2/संबंधित उप जिलाधिकारी को उपरोक्त तथ्यों और संगत सांविधिक उपबंधों को ध्यान में रखते हुए, एक आख्यापक और सकारण आदेश द्वारा, नए सिरे से उपयुक्त आदेश पारित करने के लिए प्रतिप्रेषित किया जाता है। याचिकाकर्ता विवादग्रस्त संपत्ति/भूमि पे क़ाबिज़ रहेगा, जो इस आदेश के अनुसार विपक्षी सं. 2/उप जिलाधिकारी द्वारा नए सिरे से पारित आदेश के अधीन होगा।

(2025) 4 ILRA 592

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 02.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया

रिट-सी संख्या 3033/2025

रमेश कुमार सिंह **...याचिकाकर्ता**

बनाम

आयुक्त, लखनऊ मंडल, लखनऊ एवं अन्य **..प्रत्यर्थीगण**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

मोहम्मद एहतेशाम खान, शशि कांत मिश्रा

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता, दिलीप कुमार पांडे, हरि अनुज बहादुर सिन्हा

सिविल विधि - भारत का संविधान, 1950-अनुच्छेद 226- उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006-धारा 128- उपजीकरण एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950-धारा 198(4)-याचिकाकर्ता ने 1993 में उसे मूल रूप से 2 बीघा भूमि के लिए प्रदान किए गए पट्टे को रद्द करने को चुनौती दी थी - इस पट्टे को एडीएम द्वारा 1998 में अधिनियम, 1950 की धारा 198(4) के अंतर्गत इस आधार पर रद्द कर दिया गया था कि याचिकाकर्ता गाँव का भूमिहीन निवासी नहीं था और भूमि का उपयोग गैर-कृषि उद्देश्य (पेट्रोल पंप) के लिए कर रहा था। इसके बावजूद, उसने भूमि पर कब्जा जारी रखा। वर्ष 2023 में, निजी प्रत्यर्थीगण द्वारा संहिता, 2006 की धारा 128 के अंतर्गत नई कार्यवाही शुरू की गई। सुनवाई का अवसर दिए जाने के बाद, जिला मजिस्ट्रेट ने 30.12.2024

अनुवादित

को पुनः पट्टा रद्द कर दिया। पुनरीक्षण प्राधिकारी ने इस निर्णय की पुष्टि की - न्यायालय ने जिला मजिस्ट्रेट और आयुक्त के समवर्ती निष्कर्षों को बरकरार रखा - यह पाया गया कि भूमि का आवंटन वैधानिक प्रावधानों का उल्लंघन करके किया गया था - याचिकाकर्ता ने अपनी आवासीय स्थिति और भूमिहीनता के बारे में गलत जानकारी दी थी। (प्रस्तर 1 से 10)

रिट याचिका खारिज की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वादों की सूची:</u>

1. ए.एम. एलिसन बनाम बी.एल. सेन (1957) एआईआर एससी 227

2. ग्रही शंकर सिंह बनाम अष्टम एडीजे व अन्य (1991) आरडी 10

3. बक्स सिंह बनाम संयुक्त निदेशक, चकबंदी, उत्तर प्रदेश, लखनऊ व अन्य (1966) एआईआर 156 इला

4. ओम प्रकाश बनाम उत्तर प्रदेश एसईएससी एलनगंज, सभी और अन्य (1990) यूपी एलबीईसी 983

5. पुलुकुरी कोट्टाया बनाम एम्परर मनु/पीआर/0049/1946: एआईआर 1947 पीसी 67

6. राम निहोर बनाम अपर आयुक्त (प्रशासन), विंध्याचल मंडल रिट-सी संख्या 24211/2006

7. नोहर लाल वर्मा बनाम जिला सहकारी सेंट्रल बैंक लिमिटेड, जगदलपुर (2008) 14 एससीसी 445

8. गड्डे वेंकटेश्वर राव बनाम आंध्र प्रदेश सरकार व अन्य (1966) एआईआर एससी- 828 चंपालाल बिनानी बनाम सीआईटी, पश्चिम बंगाल (1970) एआईआर एससी 645

9. महाराजा चिंतामणि शरण नाथ शाहदेव बनाम बिहार राज्य व अन्य (1999) एआईआर एससी 3609

10. मलिकार्जुन मुधगल नागप्पा व अन्य बनाम कर्नाटक राज्य व अन्य (2000) एआईआर एससी 2976

11 चंद्र सिंह बनाम राजस्थान राज्य (2003) एआईआर एससी 2889

12 एस.डी.एस. शिपिंग प्राइवेट लिमिटेड बनाम जय कंटेनर सर्विसेज कंपनी प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य (2003)4 सुप्रीम 44

13. उत्तरांचल राज्य एवं अन्य बनाम अजीत सिंह भोला एवं अन्य (2004) 6 एससीसी 800 उड़ीसा राज्य एवं अन्य बनाम ममता मोहंती (2011) 3 एससीसी 437

14. भरत सिंह बनाम अपर आयुक्त एवं अन्य (2017) 5 एडीजे 466

15. जोधे बनाम राज्य (1952) एआईआर इला 788

16. दुख हरण वर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2004) 2 एडब्ल्यूसी 1147

17. केंद्रीय आयुर्वेदिक विज्ञान अनुसंधान परिषद बनाम बिकारतन दास (2023) एससीसी ऑनलाइन एससी 99

18. एस.पी. चेंगलवरैया नायडू बनाम जगन्नाथ एवं अन्य (1994) 1 एससीसी 1

19. राम चन्द्र सिंह बनाम सावित्री देवी (2003) 8 एससीसी 319

अनुवादित

20. जय नारायण परसरामपुरिया बनाम पुष्पा देवी सराफ (2006) 7 एससीसी 756 मधुकर सदभा शिवार्क मधुकर सदभा शिवारकर बनाम महाराष्ट्र राज्य (2015) 6 एससीसी 557

21. जय विद्युत निगम बनाम राज कुमार राजिंदर सिंह (2019) 14 एससीसी 449

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री एम.ई.खान, श्री हरि अनुज बहादुर सिन्हा अधिवक्ता, जिन्होंने रिट याचिका को खारिज करने के लिए आवेदन दायर किया था, को सुना गया, जिसके साथ संबंधित दस्तावेजों को संलग्न करते हुए एक शपथपत्र (संक्षेप में 'प्रतिक्रिया में शपथपत्र') दिया गया था, जिसे अभिलेख में लिया गया है, और साथ ही विद्वान राज्य अधिवक्ता श्री हेमंत कुमार पांडे को भी सुना गया।

2. यह इंगित करना उचित होगा कि याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा 'प्रतिक्रिया में शपथपत्र' के प्रत्युत्तर में शपथपत्र दाखिल करने के लिए समय की मांग नहीं की गई है।

3. वर्तमान याचिका निम्नलिखित मुख्य अनुतोषों के लिए दायर की गई है:-

"(i) रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 1 के रूप में निहित वाद संख्या 152/2025 कम्प्यूटरीकृत वाद संख्या C202510000000152 रमेश सिंह बनाम दिनेश यादव और अन्य में विपक्षी संख्या 1 द्वारा पारित दिनांक 11.03.2025 के आक्षेपित निर्णय और आदेश को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।

(ii) इस रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 8 में निहित वाद संख्या 3999/2023 दिनेश यादव और अन्य बनाम रमेश सिंह में विपक्षी संख्या 2 द्वारा पारित दिनांक 30.12.2024 के आक्षेपित आदेश को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।

(iii) राज्य प्राधिकारियों को आदेश देने हेतु परमादेश की प्रकृति का एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें, जिससे उन्हें विवादित भूमि से याचिकाकर्ता को बेदखल करने से रोका जा सके।

4. वर्तमान याचिकाकर्ता ने उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता 2006 (संक्षेप में 'संहिता 2006') की धारा 128 के अंतर्गत संस्थित वाद संख्या 3999/2023 (दिनेश यादव एवं अन्य बनाम रमेश सिंह) में विपक्षी संख्या 2/कलेक्टर/जिला मजिस्ट्रेट, उन्नाव द्वारा पारित दिनांक 30.12.2024 के आदेश, तथा वाद संख्या 152/2025, कम्प्यूटरीकृत वाद संख्या C202510000000152, धारा 210 के अंतर्गत संस्थित वाद संख्या 152/2025 में विपक्षी संख्या 1/आयुक्त, लखनऊ मण्डल, लखनऊ (संक्षेप में 'पुनरीक्षण प्राधिकारी') द्वारा पारित दिनांक 11.03.2025 के आदेश को चुनौती देते हुए इस न्यायालय में आवेदन किया है, जिसके द्वारा विपक्षी संख्या 1 ने विपक्षी संख्या 2 के दिनांक 30.12.2024 के आदेश की पुष्टि की थी।

5. वाद के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं:-

(i) विवादित भूमि, अर्थात् गाटा संख्या 2669 क्षेत्रफल 2 बीघा, ग्राम मेथी टीकुर, परगना एवं तहसील सफीपुर, जिला उन्नाव में स्थित है, जो दिनांक 26.11.1993 को स्वीकृत 'पट्टे' के माध्यम से याचिकाकर्ता को प्रदान की गई थी।

(ii) उपरोक्त के पश्चात् याचिकाकर्ता के विरुद्ध उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1950 (संक्षेप में '1950 का अधिनियम') की धारा 198(4) के अंतर्गत वाद संख्या 437/174 (राज्य बनाम रमेश सिंह) के रूप में पंजीकृत कार्यवाही प्रारम्भ की गई।

(iii) अधिनियम, 1950 की धारा 198(4) के अंतर्गत प्रारम्भ की गई कार्यवाही, अपर जिला मजिस्ट्रेट (वित्त एवं राजस्व) उन्नाव द्वारा दिनांक 16.01.1998 के आदेश द्वारा समाप्त की गई। अभिलेख में उपलब्ध आदेश इस प्रकार है:-

'तहसीलदार सफीपुर की आख्या के आधार पर वाद अन्तर्गत धारा 198 (4) ज०वि० अधिनियम दिनांक 16.05.1994 को कलेक्टर के न्यायालय में प्रस्तुत हुआ। वाद दर्ज रजिस्टर होकर इस न्यायालय को निस्तारण हेतु प्राप्त हुआ। रिपोर्ट में कहा गया है कि भूखण्ड संख्या 2669 रकबा 2 बीघा का पट्टा भू०प्र०सं० द्वारा रमेश सिंह पुत्र केशनपाल सिंह के नाम किया गया था। यह जाति के ठाकुर है यह पेट्रोल पम्प चकलवंशी के लड़के है और ग्राम में अन्य व्यक्ति जिनकी संलग्न सूत्री 184 है आवंटन से छूट गये है। यह समस्त व्यक्ति भूमिहीन खेतिहर मजदूर है परन्तु आवंटी खेतिहर मजदूर नहीं है। यह भूमि आवंटन की तारतम्य की श्रेणी में नहीं आता है। उक्त कारणों से विवादित भूखण्ड का किया गया पट्टा निरस्त करने की संस्तुति की है।

विपक्षी को नोटिस जारी की गई। विपक्षी ने आपत्ति दिनांक14.05.96 प्रस्तुत कर कहा है कि पट्टा निरस्तीकरण के सम्बन्ध में जो आख्या तहसील से आयी है वह विधि व नियम के विपरीत है। विवादित भूखण्ड का पट्टा उसे नियमानुसार किया गया था। यह भी कहा है कि उसका परिवार खतम है तथा वह अलग ही रहता है। प्रार्थी के नाम विवादित भूखण्ड का अमल दरामद भी राजस्व अभिलेखों में हो चुका है। कार्यवाही मियाद बाहर है। दी गई नोटिस वापस लेने की प्रार्थना की गई है।

राज्य सरकार की ओर से विजय प्रताप सिंह लेखपाल का बयान कराया गया। लेखपाल ने अपने बयान में कहा है कि मैं हाजिर अदालत रमेश सिंह को जानता हूँ इनके पास पट्टे वाली भूमि के अलावा अन्य भूमि नहीं है। पेट्रोल पम्प जो मेथीटीकुर में है उसमें रमेश सिंह के चाचा पार्टनर है वह रमेश सिंह का नहीं है। रमेश सिंह वहां उठते बैठते है। रमेश सिंह भूमिहीन खेतिहर मजदूर नहीं है। यह पात्रता श्रेणी में नहीं आते। ग्राम में कई भूमिहीन अनु० जाति के लोग है जिन्हें पट्टा नहीं हुआ। लेखपाल ने अपने बयान में तहसील रिपोर्ट की पुष्टि भी की है जिरह में कहा कि विवादित मुकदमें के कोई कागज मुझे जांच के लिए नहीं दिये गये। जिस समय पट्टे की कार्यवाही हुई थी उस समय मैं यहां तैनात नहीं था। रमेश सिंह का पट्टा केवल इस कारण मैं गलत बताता हूँ क्योंकि ग्राम में अन्य अनु० जाति के व्यक्ति मौजूद है जिन्हें पट्टा नहीं हुआ। इसके अतिरिक्त अन्य कोई कारण नहीं है। फिर कहा कि वह ठेकेदारी भी करते है परन्तु मैंने रमेश सिंह के ठेकेदारी के सम्बन्ध में कोई कागज अपनी आंखों से नहीं देखा केवल मैने सुना है।

डी०डब्लू०-1 रमेश कुमार सिंह पुत्र श्री कृष्णपाल सिंह निवासी-मेथीटीकुर परगना व तहसील सफीपुर ने अपने बयान में कहा है कि विवादित भूमि का रकबा काफी बड़ा है इसके जुज भाग में 2 बीघे का पट्टा मेरे पक्ष में नियमानुसार भू०प्र०सं० द्वारा किया गया था जिसका अमल दरामद भी परगनाधिकारी के आदेश दिनांक 21.11.93 के द्वारा राजस्व अभिलेखों में हो चुका है। विवादित भूमि के अलावा मेरे पास अन्य जमीन नहीं है मैं अपने परिवार से अलग रहता हूँ। पट्टे वाली जमीन पर मैं काबिज हूँ मेरा कब्जा गाटा संख्या 2669 के उत्तर और पश्चिम कोने में है। जिरह में कहा है कि मैं जाति का ठाकुर हूँ चकलवंशी में मेरा पेट्रोल पम्प नहीं है। मेरे पिता के नाम भी नहीं है। राजाराम सिंह व राम चरन मिश्र के नाम है। मेरे पिता मिलेट्री में थे अब रिटायर हो गये है उनके नाम भी खेती नहीं है। पट्टे के समय लेखपाल, प्रधान सदस्य तथा अन्य जनता भी थी। चकलवंशी में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जिसके पास जमीन न हो। मैं ठेकेदारी नहीं करता हूँ विवादित भूमि का कब्जा नवम्बर 93 में लेखपाल विधिगो व प्रधान ने दिलाया था। सिंचाई किराये के इंजन से करता हूँ।

डी०डब्लू०-2 शिवबरन प्रसाद पुत्र राम शंकर ने अपने बयान में कहा है कि विवादित भूमि को मैंने देखा है इस पर रमेश सिंह का कब्जा है लगभग 4 साल से कब्जा है। रमेश सिंह भूमिहीन खेतिहर मजदूर की श्रेणी में आते है इनके पास पट्टे वाली जमीन के अलावा परिवार में अन्य जमीन नहीं है जिरह में कहा है कि विवादित भूमि का नम्बर 2669 है कुल रकबा नहीं मालूम चौहद्दी जानता हूँ। मेरे पास पिता की कुल जमीन मिलाकर 8 बीघा जमीन है। रमेश सिंह पहले बटाई खेती करते थे। किसकी करते थे यह नहीं मालूम चकलवंशी में इनके पिता का पेट्रोल पम्प नहीं है। पेट्रोल पम्प राम शरण मिश्रा राजाराम सिंह व शिव शंकर सिंह का है। राजाराम सिंह इनके खानदान के नहीं है। चकलवंशी में हरिजन भी रहते है वह भी मजदूरी करते है जमीन सभी हरिजनों के पास है कोई हरिजन भूमिहीन नहीं है। रमेश सिंह के पिता के पास भी जमीन नहीं है। लेखपाल ने कब्जा दिलाया था। पट्टे हुये लगभग 4 साल हो गये है।

डी०डब्लू०-3 राज किशोर पुत्र टेढ़ा ने अपने बयान में कहा है कि गाटा संख्या 2669 का रकबा बहुत बड़ा है इसी के पूरब 2669 नम्बर है इसी 2669 नम्बर में मेरे बाबा को पट्टा किया गया था। मेरे बाबा व पिता का निधन हो गया तब से मेरा कब्जा है। इसी कारण मेरा आना जाना है गाटा संख्या 2669 के उत्तर पश्चिम कोने पर 2 बीघे रकबे पर रमेश सिंह का कब्जा करीब 4 साल से देख रहा हूँ। इस भूमि के अलावा रमेश सिंह के पास तथा उनके परिवार में नहीं है। रमेश अपने परिवार से अलग रहते है मै जाति का पासी हूँ जिरह में कहा कि मैने रमेश सिंह के यहां कभी काम नहीं किया विवादित भूमि की चौहद्दी जानता हूँ रमेश सिंह के पिता के पास कोई जमीन नहीं है। रमेश सिंह के पास भी नहीं है रमेश सिंह पट्टे वाली भूमि पाने से पहले भैसे पाले थे। रमेश सिंह को 3-4 साल से जोतते बोते देख रहा हूँ पेट्रोल पम्प टेबई के ठाकुर राजाराम सिंह का है।

मैने विपक्षी के विद्वान अधिवक्ता व जिला राजकीय अधिवक्ता राजस्व की बहस को सुना तथा पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्यों/अभिलेखों का भली भांति अवलोकन किया। जिला राजकीय अधिवक्ता द्वारा तर्क किया गया कि आवंटी पात्रता की श्रेणी में नहीं आता है ग्राम में कई भूमिहीन हरिजन है जिन्हें पट्टा नहीं किया गया। यह भी कहा कि इनका पेट्रोल पम्प है तथा ठेकेदारी भी करते है पट्टा अनियमित है निरस्त किया जाये। विपक्षी ने अपने तर्क में कहा है कि पट्टा उसे नियमानुसार किया गया था। राजस्व अभिलेखों में अमल दरामद भी हो चुका है पट्टे वाली भूमि पर उसका कब्जा बराबर चला आ रहा है। तहसील रिपोर्ट में कहा गया है कि 184 भूमिहीनों की सूत्री रिपोर्ट के साथ में संलग्न था परन्तु इस तरह की कोई सूची साथ में संलग्न नहीं है। लेखपाल

ने स्वयं अपने बयान में कहा है कि रमेश सिंह के पास पट्टे वाली जमीन के अलावा अन्य कोई जमीन नहीं है। यह भी कहा है कि रमेश सिंह का पेट्रोल पम्प नहीं है इनके ..... चाचा इसमें पार्टनर है यह वहां उठते बैठते है लेखपाल ने यह भी कहा है कि मैने सुना है कि यह ठेकेदारी करते है तथा ठेकेदारी के सम्बन्ध में कोई कागज मैंने अपनी आखों से नहीं देखा उभय पक्षों की बहस सुनने तथा पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्यों के अवलोकन से मै इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूँ कि राज्य सरकार की ओर से ऐसा कोई अभिलेखीय साक्ष्य नहीं प्रस्तुत किया गया जिससे तहसील रिपोर्ट की पुष्टि होती है।

भूमिहीनों की सूची जो रिपोर्ट में संलग्न होना कहा गया है कि वह भी प्रस्तुत नहीं की गयी। लेखपाल तथा अन्य गवाहानों के बयान से यह स्पष्ट है कि आवंटी के पास पट्टे वाली भूमि के अलावा अन्य कोई भूमि नहीं है। उपर्युक्त विवेचना के आधार पर विपक्षी पर जारी की गयी नोटिस वापस लिये जाने योग्य है।

आदेश

विपक्षी पर जारी की गई नोटिस वापस ली जाती है। विपक्षी को विवादित भूखण्ड का किया गया पट्टा बहाल रखा जाता है। वाद आवश्यक कार्यवाही पत्रावली दाखिल दफतर हो।'

(iv) 1950 के अधिनियम को 2006 की संहिता द्वारा निरस्त कर दिया गया, जो 11.02.2016 से लागू हुआ। संहिता 2006 की धारा 128, 1950 के अधिनियम की धारा 198(4) के समान है। संहिता 2006 की धारा 128, वर्तमान याचिका के निस्तारण के लिए प्रासंगिक होने के कारण, नीचे पुन: प्रस्तुत की जा रही है:-

"उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 128

128. आवंटन और पट्टे का निरस्तीकरण।

(1) कलेक्टर, स्वप्रेरणा से और किसी भी व्यथित व्यक्ति के आवेदन पर, किसी भी आवंटन की विहित रीति से जाँच कर सकेगा और यदि उसका समाधान हो जाता है कि आवंटन इस संहिता या इस संहिता द्वारा निरसित किसी अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंधों का उल्लंघन है, तो वह आवंटन और पट्टे, यदि कोई हो, को रद्द कर सकेगा।

[(1-क) उपधारा (1) के अधीन कोई भी आवेदन, इस संहिता के प्रारम्भ से पूर्व किए गए भूमि आवंटन की दशा में, ऐसे प्रारम्भ की तिथि से पाँच वर्ष के भीतर और ऐसे प्रारम्भ की तिथि को या उसके पश्चात किए गए भूमि आवंटन की दशा में, ऐसे आवंटन या पट्टे की तिथि से पाँच वर्ष के भीतर प्रस्तुत किया जा सकेगा।] [उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 4/2016, दिनांक 11.3.2016 द्वारा अंत:स्थापित।]

(क) आवंटी, पट्टाधारी या उसके माध्यम से ऐसी भूमि और उस पर विद्यमान प्रत्येक वृक्ष या अन्य सुधार में दावा करने वाले किसी अन्य व्यक्ति का अधिकार, हक और हित समाप्त हो जाएगा, और वह [ग्राम पंचायत] को वापस हो जाएगा [उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 4/2016, दिनांक 11.3.2016 द्वारा 'ग्राम सभा' प्रतिस्थापित।];

(ख) कलेक्टर ऐसी भूमि, वृक्ष या सुधार पर कब्जा रखने वाले या उस पर कब्जा बनाए रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति को बेदखल करने के पश्चात् [ग्राम पंचायत] [उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 4/2016, दिनांक 11.3.2016 द्वारा 'ग्राम सभा' प्रतिस्थापित] को तत्काल कब्जा सौंपने का निर्देश दे सकता है और उस प्रयोजन के लिए आवश्यक बल का प्रयोग कर सकता है या करवा सकता है।

(3) जहां उपधारा (1) के खंड (ख) में निर्दिष्ट आवंटन या पट्टे को रद्द करने की कार्यवाही में कलेक्टर का यह समाधान हो जाता है कि धारा 77 में निर्दिष्ट कोई भूमि, उसके खंड (क) या खंड (ज) या (झ) को छोड़कर, किसी व्यक्ति को अहस्तांतरणीय अधिकारों के साथ भूमिधर के रूप में आवंटित की गई है, वहां वह आवंटन या पट्टे को रद्द करने के बजाय यह निर्देश दे सकेगा कि आवंटी या पट्टेदार को धारा 125 के खंड (ख) के अधीन असामी माना जाएगा।

(4) इस धारा के अधीन कलेक्टर द्वारा दिया गया प्रत्येक आदेश, धारा 211 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, अंतिम होगा।

(5) उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम, 1953 की धारा 5 और 49 के प्रावधान इस धारा के अंतर्गत कार्यवाही पर लागू नहीं होंगे।

(v) 11.02.2016 से संहिता 2006 के लागू होने के पश्चात, निजी विपक्षी संख्या 4 और 5 अर्थात् दिनेश यादव पुत्र कैलाश और राजदीप सिंह चौहान पुत्र रुद्र दीप सिंह चौहान ने संहिता 2006 की धारा 128 के अंतर्गत याचिकाकर्ता को विपक्षी संख्या 1 के रूप में पक्षकार बनाते हुए कार्यवाही शुरू किया।

(vi) 2006 की संहिता की धारा 128 के तहत उपरोक्त कार्यवाही को चुनौती देते हुए, याचिकाकर्ता ने रिट-सी संख्या 9622/2024 (रमेश सिंह बनाम कलेक्टर/जिला मजिस्ट्रेट, उन्नाव और 4 अन्य) दायर करके इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया। इस न्यायालय ने दिनांक 12.11.2024 के आदेश द्वारा याचिका खारिज कर दी, जो इस प्रकार है:-

"याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया। प्रत्यर्थी संख्या 1 से 3 की ओर से नोटिस विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता के कार्यालय द्वारा स्वीकार कर लिया गया है। विद्वान अधिवक्ता श्री दिलीप कुमार पांडे ने प्रत्यर्थी संख्या 4 और 5 की ओर से नोटिस स्वीकार कर लिया है।

इस याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता निम्नलिखित मुख्य अनुतोष की प्रार्थना करता है:-

"(i) दिनेश यादव एवं अन्य बनाम रमेश सिंह एवं अन्य के विरुद्ध उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 128 के अंतर्गत शुरू की गई कार्यवाही में, रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 1 में निहित, वाद संख्या 202310690003999 में विपक्षी संख्या 1 द्वारा जारी दिनांक 10.10.2024 के आक्षेपित नोटिस को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण के रूप में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी किया जाए।"

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता से एक विशिष्ट प्रश्न पूछा गया कि क्या याचिकाकर्ता ने दिनांक 10.10.2024 के नोटिस का उत्तर दिया है, जिसका उत्तर उन्होंने नकारात्मक में दिया है।

इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 128 के अंतर्गत नोटिस जारी किया गया है और याचिकाकर्ता के पास इसका उत्तर देने का पर्याप्त अवसर है, जिस पर निस्संदेह संबंधित प्राधिकारी द्वारा विचार किया जाएगा, इसलिए, यह न्यायालय इस स्तर पर वर्तमान याचिका पर विचार करने के लिए इच्छुक नहीं है, जिससे याचिकाकर्ता को उक्त नोटिस का उत्तर देने का अवसर प्राप्त हो सके।

उपर्युक्त के साथ, याचिका खारिज की जाती है।"

(vii) इसके बाद, याचिकाकर्ता ने दिनांक 24.10.2024 को आपत्ति दर्ज कराई। आपत्ति का प्रासंगिक अंश नीचे दिया गया है:-

"धारा 1- यहकि उपरोक्त वाद अन्तर्गत धारा 128 उ०प्र० राजस्व संहिता 2006 के तहत वादीगण दिनेश यादव व राजदीप सिंह चौहान द्वारा मुझ प्रत्यर्थी सं०-1 के पक्ष में ग्राम पंचायत मेथीटीकुर परगना तहसील सफीपुर जिला उन्नाव द्वारा भूमि न०-2669 में से प्रार्थी के पक्ष में निष्पादित 2 बीघा भूमि का पट्टा के निरस्तीकरण हेतु दिनांक 19.06.2023 को दायर किया गया है जबकि पट्टा नियमानुसार निष्पादित हुआ और प्रत्यर्थी ग्राम मेथीटीकुर का ही मूल निवासी था।

धारा 2- यह कि वादी के अनुसार प्रश्नगत पट्टा ग्राम सभा मेथीटीकुर द्वारा दिनांक 26.11.1993 को 31 वर्ष पूर्व मुझ प्रत्यर्थी के पक्ष मे निष्पादित हुआ था तथा यह वाद उपरोक्त पट्टा निष्पादित के 30 वर्ष बाद दायर किया गया है तथा विलम्ब का आधार पट्टे की जानकारी की तिथि से दिनांक 16.06.2023 से होना और धारा 5 मियाद अधिनियम का लाभ दिये जाने के साथ में अभिकथन करके उक्त दिनांक 19.06.2023 को दायर किया गया।

धारा 3- यहकि उपरोक्त पट्टे के निरस्तीकरण हेतु यह आधार लिया गया कि प्रार्थी पट्टे के निष्पादन की तिथि पर ग्राम मेथीटीकुर का निवासी नही था और तत्समय उसके पास 5 बीघा से अधिक कृषक भूमि थी वादीगण के यह अभिकथन एकदम गलत है और मैं प्रत्यर्थी तत्समय मेथीटीकुर का निवासी और भूमिहीन रहा मुझ प्रत्यर्थी के पिता भारतीय सेना में कार्यरत भी रहे।

धारा 4- यहकि उपरोक्त धारा 128 उ०प्र० राजस्व संहिता के अन्तर्गत दिनेश यादव जो दूध व खोये का व्यापारी है तथा राजदीप सिंह जो बिजली विभाग में नौकर है की ओर से दायर किया गया है और यह दोनो लोग मुझ प्रत्यर्थी के पट्टे से पीड़ित व्यक्ति नहीं है तथा धारा 128 उ०प्र० राजस्व संहिता के तहत किसी भी पट्टे के निरस्तीकरण का वाद वही व्यक्ति दायर कर सकता है जो पीड़ित व्यक्ति हो। चूंकि वादीगण सिर्फ रंजिश की वजह से यह वाद दायर किया है। वादी सं०-2 राजदीप सिंह से कई मुकदमे दीवानी न्यायालय व राजस्व न्यायालय में चल रहे है तथा दिनेश यादव उनके गिरोह का आदमी है इसलिए यह दोनो एग्रीव्ड परसन्स नहीं है तथा उनके द्वारा दायर किया गया मुकदमा बाबत निरस्तीकरण पट्टा इसी आधार पर निरस्त होने योग्य है।

धारा 5- यहकि वास्तव में स्वीकृत रुप से प्रश्नगत पट्टा 26.11.1993 का है तथा उ०प्र० राजस्व संहिता के प्राविधान मय धारा 128 दिनांक 11.02.2016 से प्रभावी किये जा चुके थे और वादीगण ने यह वाद दिनांक 19.06.2023 यानि कि सात वर्ष चार माह व 8 दिन पश्चात दायर किया है तथा धारा 128 उ0प्र0 राजस्व संहिता की धारा 128(1)-A के अनुसार तथा नियम 126 के अनुसार उपरोक्त अधिनियम उ०प्र० राजस्व संहिता 2006 के लागू होने से पांच वर्ष के अन्दर ही किसी भी पट्टे का निरस्तीकरण वाद चाहे वह इस अधिनियम के आने के पूर्व का हो या उसके पश्चात का हो ही दायर किया जा सकता है और इस मियाद के पश्चात दायर किया गया वाद पोषणीय नही होगा।

धारा-6 यहकि जहां तक वादीगण द्वारा धारा 5 मियाद अधिनियम का फायदा देने की बात कही गयी है तो उसका फायदा केवल अपील/निगरानी में दिया जा सकता है न कि मूल वाद में और मूल याद निर्धारित अवधि चाहे वह विशिष्ट अधिनियम के अन्तर्गत दी गयी हो या जनरल लिमिटेशन के अन्तर्गत दी गयी हो के अन्दर ही दायर किया जा सकता है।

धारा 7- यह कि नियम 126 के अन्तर्गत वाद की सुनवायी के पूर्व न्यायालय को नियम 126(2) के तहत सर्वप्रथम यह देखना होता है कि पट्टा निरस्तीकरण की वाद पीड़ित व्यक्ति द्वारा तथा अधिनियम में दी गयी मियाद के अन्तर्गत दायर किया गया है अथवा नहीं और यदि उसका अनुपालन नहीं है तो वाद प्रारम्भिक स्तर पर ही निरस्त होगा।

धारा 8- यहकि वास्तव में इस वाद के पूर्व सरकार की ओर से एक वाद सं0-437/174 धारा 198 के तहत प्रार्थी के प्रश्नगत पट्टे के निरस्तीकरण हेतु वाद दायर किया गया था और उक्त मुकदमा दोनो पक्षों की साक्ष्य लेने के पश्चात न्यायालय अपर जिलाधिकारी वित्त एवं राजस्व द्वारा अपने निर्णय दिनांकित 16.01.1998 से पट्टे को बहाल कर दिया था और निरस्तीकरण नोटिस वापस ले ली गयी थी तथा उक्त निर्णय अंतिम हो चुका है इसलिए पुनः प्रार्थी के प्रश्नगत पट्टे के निरस्तीकरण की कार्यवाही नही हो सकती है।

धारा 9- यहकि वास्तव में वर्ष 2001 में भी सरकार भी ओर से एक नोटिस पट्टा निरस्तीकरण हेतु दी गयी थी जिस पर माननीय उच्च न्यायालय ने पूर्व उपरोक्त निर्णय को मानते हुए नोटिस स्थगित की और उपरोक्त वाद बादहू वापस हो गया था।

धारा10- यहकि वास्तव में वादीगण ने रंजिशन यह वाद मुझ प्रत्यर्थी के विरुद्ध दायर किया है जो उपरोक्त कारणों से निरस्त होने योग्य है।"

(viii) इसके बाद विपक्षी संख्या 2 ने दिनांक 30.12.2024 को आक्षेपित आदेश पारित किया। इसका प्रासंगिक भाग यहां निकाला गया है:

"वादीगण द्वारा वाद अन्तर्गत धारा 128 राजस्व संहिता दिनाँक 19.06.2023 को न्यायालय में प्रस्तुत किया गया। वाद पत्र में कहा गया कि विवादित आराजी सं0 2669 रकबा 11 वीघा 4 बिसुवा स्थित ग्राम मेथीटीकुर पर० व तह० सफीपुर जिला उन्नाव की खतौनी 1397-1402 फसली खाता सं0 1018 में बंजर दर्ज है। विपक्षी सं० 01 रमेष सिंह पुत्र कृश्णपाल सिंह ग्राम कोरारीकलां पर० आसीवन रसूलाबाद के मूल निवासी है। कृश्णपाल सिंह पुत्र छत्रपाल सिंह नि०ग्राम कोरारीकलां सन् 1996 से 2006 तक कोरारीकलां के ग्राम प्रधान तथा इसके पूर्व सरकारी विभाग में नौकरी करते थे रमेष सिंह के नाम 10 बीघे खेती योग्य भूमि है। यह सम्पन्न व्यक्ति है। अभिलेखो की जाँच करने पर ज्ञात हुआ कि रमेष सिंह पुत्र कृश्ण पाल के पक्ष में गाटा सं0 2669 रकबा 02 बीघा गाँवसभा से खारिज कर अपने नाम दर्ज करा लिया है। नकल प्राप्त करने पर उसे जानकारी हुयी कि विपक्षी सं० 01 ने विधि विरूद्ध गाटा सं0 2669 रकबा 02 बीघा स्थित ग्राम मेथीटीकुर का पट्टा 26.11.1993 अपने हक में करवा लिया है जो निरस्त होने योग्य है रमेष सिंह सम्पन्न व्यक्ति है और इनके पास पट्टे के समय 05 बीघा से अधिक कृशि भूमि थी। आवंटी के पिता ने अपने पद का दुरूपयोग करते हुए अपने पुत्र के नाम ग्राम कोरारीकलां में आवंटन दिनाँक 26.11.1993 को किया है। विपक्षी सं0 01 के पक्ष में किया गया पट्टा दिनाँक 26.11.1993 को जानकारी के दिनाँक से अंदर मियाद मानते हुए धारा 05 मियाद अधिनियम का लाभ देकर निरस्त किये जाने की माँग की है।

वादी ने अपने कथन के समर्थन में खतौनी फसली सन् 1427 से 1432 बावत खाता सं० 10718 दाखिल किया है।

वादपत्र की प्रति भेजकर तहसील से प्रस्तरवार व बिन्दुवार आख्या मॅगायी गयी। विपक्षीगण को नोटिस निर्गत की गयी। विपक्षी सं० 01 की ओर से आपत्ति दिनांक 24.10.2024 प्रस्तुत कर कहा गया कि विपक्षी के विरूद्ध गाटा सं0 2669 में से प्रार्थी के पक्ष में निश्पादित 02 बीघा भूमि के पट्टा निरस्तीकरण हेतु दिनॉक 19.06.2023 को वाद दायर किया गया है। जबकि पट्टा नियमानुसार किया गया है। प्रत्यर्थी ग्राम मेथीटीकुर का मूल निवासी था वाद पत्र 30 वर्श बाद प्रस्तुत किया गया है। विलम्ब का आधार जानकारी के दिनांक से होना कहते हुए धारा 05 मियाद अधि० का लाभ दिये जाने की माँग की गयी है। वादीगण का कथन गलत है। प्रत्यर्थी के पिता भारतीय सेना में कार्यरत रहे है। वादीगण विपक्षी के पट्टे से पीडित व्यक्ति नहीं है। दीवानी न्यायालय में कई मुकदमे वादी सं० 02 से चल रहे है। पट्टा निरस्तीकरण वाद राजस्व संहिता के अनुसार 05 वर्श के अन्दर दायर किये जाने का प्राविधान है। मूल वाद मे म्यूटेषन का लाभ नहीं दिया जा सकता। इस वाद के पूर्व सरकार की ओर से एक वाद 437/174 धारा 198 के तहत प्रष्नगत पट्टे के निरस्त हेतु दायर किया गया था उक्त मुकदमा अपर जिलाधिकारी राजस्व ने अपने निर्णय दिनाँक 16.01.98 से पट्टे को बहाल कर दिया था वर्ष 2001 में भी सरकार की ओर से एक नोटिस पट्टा निरस्तीकरण हेतु दी गयी जिसे मा० उच्च न्यायालय ने पूर्व निर्णय को मानते हुए नोटिस स्थगित की बादहू वाद वापस हो गया था। प्रष्नगत वाद रंजिषन प्रत्यर्थीगणो के विरूद्ध दायर किया गया है।

तहसीलदार सफीपुर ने अपनी विस्तृत आख्या दिनाँक 28.10.2024 न्यायालय में प्रस्तुत की जिसके अनुसार गाटा सं० 2669मि० 2669 मि० रकबा 0.506 हे० का आवंटन रमेष सिंह पुत्र कृश्णपाल सिंह नि० चकलवंशी मजरे मेथीटीकुर को भू०प्र०स० मेथीटीकुर द्वारा किया गया। आख्या में यह भी अंकित किया गया कि प्रत्यर्थी रमेष सिंह पुत्र कृश्णपाल सिंह का मूल निवास ग्राम कोरारीकलां पर० आसीवन रसूलाबाद प्रतीत होता है। वर्तमान समय में रमेष सिंह ग्राम मेथीटीकुर में निवासरत है। रमेष सिंह के पिता कृष्णपाल सिंह के पास पैतृक भूमि 3.630 हे० में से 1/3 भाग यानी 1.210 हे० होने के सम्बन्ध में सी०एच०11 के खाता सं० 85 पृष्ठ सं० 42.43 संलग्न है। प्रत्यर्थी के पक्ष में किया गया आवंटन प्रत्यर्थी नियमानुसार पात्र नहीं है।

न्यायालय के आदेष दिनाँक 29.10.2024 द्वारा विपक्षी के पेट्रोल पम्प की भूमि के स्वामित्व के सम्बन्ध मे जॉच कर आख्या चाही गयी। तहसीलदार सफीपुर ने अपनी आख्या दिनाँक 12.11.2024 न्यायालय मे प्रस्तुत की जिसके अनुसार गणेष पेट्रोलियम चकलवंशी के संचालन में कृश्णपाल सिंह व कृश्णपाल के पुत्र रमेष सिंह यानी प्रत्यर्थी के द्वारा कृशि भूमि आवंटन के दौरान कार्य किया जाना पाया गया। पेट्रोल पम्प के मिनजुमला गाटे की भूमि गाटा सं0 2560/01 रकबा 0.2530 हे० व गाटा सं० 2560/3 क्षेत्र फल 0.2530 हे० फसली सन् 1404 से बतौर वादी रमेष सिंह सह खातेदार दर्ज है।

मैने न्यायालय में उपस्थित उभयपक्ष के विद्वान अधिवक्ता व अपर जिला षासकीय अधिवक्ता राजस्व के तर्क को सुना। वादीगण की ओर से वाद पत्र पर बल देते हुए कहा गया कि आवंटी रमेष सिंह पुत्र कृश्णपाल सिंह ग्राम कोरारीकलां पर० आसीवन रसूलाबाद तह० हसनगंज के मूल निवासी है। रमेष सिंह के पिता कृश्ण पाल सिंह पुत्र छत्रपाल सिंह ग्राम कोरारीकलां के वर्श 1996 से 2006 तक प्रधान रहे। रमेष सिंह काफी साधन सम्पन्न व्यक्ति है। विपक्षी सं० 01 ने विधि विरूद्ध साजिषन गाटा सं0 2669 रकबा 02 बीघा स्थित ग्राम मेथीटीकुर का पट्टा अपने नाम करा लिया। विपक्षी के पास पट्टे के समय 05 बीघा से अधिक भूमि थी। विपक्षी ग्राम मेथीटींकुर के मूल निवासी नहीं है। बल्कि कोरारी कलां तहसील हसनगंज के मूल निवासी है। ग्राम मेथीटीकुर

के निवासी न होने के कारण पट्टा निरस्त किये जाने की माँग की। वाद पत्र मे जानकारी के दिनांक 16.06.2023 से वाद को अन्दर मियाद मानते हुए धारा 05 मियाद अधि० का लाभ दिये जाने की मॉग की गयी है।

विपक्षी के विद्वान अधिवक्ता ने अपने तर्क में न्यायालय का ध्यान आपत्ति पत्र दिनाँक 24.10.2024 की ओर ध्यान आकृष्ट कर कहा कि पट्टा निरस्तीकरण हेतु वाद 19.06.2023 को दायर किया गया है। जबकि विवादित भूमि का पट्टा विपक्षी के पक्ष में 26.11.1993 को निश्पादित किया गया है। निरस्तीकरण हेतु आवंटी को ग्राम का निवासी न होने और आवंटी के पास 05 बीघे से अधिक भूमि होने का उल्लेख किया गया है। आपत्ति में यह भी उल्लिखित है कि राजस्व संहिता मे आवंटन निरस्तीकरण हेतु वाद प्रस्तुत करने की समय सीमा 05 वर्श निर्धारित की गयी है। इस वाद के पूर्व सरकार की ओर से एक वाद 437/174 धारा 198 प्रष्नगत पट्टे के निरस्तीकरण हेतु दायर किया गया था जिसे अपर जिलाधिकारी वि०/रा० ने अपने निर्णय दिनाँक 16.01.98 द्वारा नोटिस वापस ले ली थी उक्त निर्णय अंतिम हो चुका है। वर्ष 2001 में भी सरकार की ओर से एक नोटिस दी गयी थी जिसपर मा० न्यायालय ने उक्त निर्णय मानते हुए नोटिस स्थगित की और बादहू वाद वापस हो गया। वाद पत्र को निरस्त किये जाने की माँग की।

अपर जिला षासकीय अधिवक्ता राजस्व ने अपने तर्क में न्यायालय का ध्यान वाद पत्र तहसील आख्या दिनाँक 28.10.2024 व आख्या दिनाँक 12.11.2024 की ओर ध्यान आकृष्ट कर कहा कि आवंटी रमेष सिंह के पिता ग्राम कोरारीकलां के प्रधान रहे है। रमेष सिंह का मूल निवास ग्राम कोरारीकलां है। वर्तमान मे रमेष सिंह मेथीटीकुर में निवास कर रहे है। रमेष सिंह के पास पट्टे के समय पूर्व से घृत भूमि 0.329 हे० अंकित है जिससे स्पष्ट है कि रमेष सिंह भूमिहीन कृशक मजदूर नहीं थे रमेष सिंह साधन सम्पन्न व्यक्ति है और इनके पास पेट्रोल पम्प है। जिसके वह सह स्वामी है।

मैने न्यायालय की पत्रावली का परिषीलन किया। पत्रावली पर उपलब्ध तहसील की आख्या दिनाँक 28.10.2024 व आख्या दिनाँक 12.11.2024 के अनुसार रमेष सिंह पुत्र कृश्णपाल सिंह हाल निवास चकलवंषी मजरे मेथीटीकुर पर० व तह० सफीपुर भू अभिलेख व मतदाता सूची से स्पष्ट है कि इनका मूल निवास कोरारीकलाॅ पर० आसीवन रसूलाबाद तह० हसनगंज जिला उन्नाव है। प्रत्यर्थी रमेष सिंह को ग्राम मेथीटीकुर में कृशि आवंटन के समय भूमि के क्रय किये जाने के साक्ष्य उपलब्ध है। प्रत्यर्थी रमेष सिंह के पिता कृश्णपाल सिंह के पास 1.210 हे० भूमि सह खातेदारी की है। गाटा सं० 2669 चकलवंशी से सण्डीला मार्ग पर होने के कारण बेषकीमती है। प्रत्यर्थी के पक्ष में किये गये कृशि आवंटन का पट्टा नियमानुसार पात्र नहीं है। आख्या दिनाँक 12.10.2024 के अनुसार गणेष पेट्रोलियम चकलवंशी के संचालन मे कश्णपाल सिंह व कश्णपाल के पुत्र रमेष सिंह यानी प्रत्यर्थी के द्वारा भूमि आवंटन के दौरान कार्य किया जाना पाया गया है। जहाँ तक विपक्षी के आवंटन के निरस्तीकरण हेतु स्वप्रेरित आख्या के आधार पर वाद सं0 437/174 धारा 198 (4) ज०वि० ग्राम मेथीटीकुर सरकार बनाम रमेष सिंह निर्णय दिनाँक 16.01.98 का प्रष्न है। पूर्ववत् प्रचलित मामले में आवंटी का खेतिहर मजदूर नहीं माने जाने की आख्या प्रस्तुत की गयी थी बल्कि आख्या में यह भी अंकित किया गया था कि आवंटी जाति के ठाकुर है और पेट्रोल पम्प चकलवंशी के लडके है जबकि प्रचलित वाद में विपक्षी को ग्राम चकलवंशी का मूल निवासी न होने व विपक्षी के पिता के पास आवंटन के समय भूमि होने का उल्लेख किया गया है। चूंकि दोनो मामलो के वाद के आधार प्रथक प्रथक है ऐसी स्थिति मे इस मामले मे वाद को दर्ज कर न्यायालय के आदेष दिनॉक 18.09.2023 द्वारा स्थलीय रिपोर्ट माँगी गयी। पत्रावली पर तहसील आख्या दिनाँक 28.10.2024 व

12.11.2024 से स्पष्ट है कि आवंटी आवंटन के समय भूमिहीन कृशक मजदूर नहीं था और न ही वह आवंटन के लिये पात्र था बल्कि पत्रावली पर उपलब्ध परिवार रजिस्टर ग्राम कोरारीकलां के अनुसार म०नं0 102अ/2 में रमेष सिंह पुत्र कृश्णपाल सिंह व उसके परिवार का नाम दर्ज अभिलेख है जिससे स्पश्ट है कि रमेष सिंह आवंटन के समय ग्राम कोरारीकलां के निवासी थे। विपक्षी के पक्ष में किया गया आवंटन दिनाँक 26.11.93 यथावत् रखा जाना उचित नही पाता हूँ।

उपर्युक्त विवेचना एवं पत्रावली पर उपलब्ध अभिलेखीय साक्ष्यों से मै इस निश्कर्श पर हूँ, कि आवंटी के पक्ष मे किया गया आवंटन निरस्त किये जाने योग्य है।

आदेश

विपक्षी के पक्ष में गाटा सं0 2669 मि० रकबा 0.506 हे० ग्राम मेथीटीकुर पर० व तह० सफीपुर का किया गया आवंटन निरस्त किया जाता है। आदेष की प्रति तहसीलदार सफीपुर को इस निर्देष के साथ भेजी जाती है, कि वह तद्नुसार अभिलेखो में अंकन की कार्यवाही करें। आवष्यक कार्यवाही के उपरान्त पत्रावली अभिलेखागार में सुरक्षित की जाय।"

(ix) व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने ऊपर वर्णित पुनरीक्षण संख्या 152/2024 के माध्यम से विपक्षी संख्या 2 की ओर रूख किया। विपक्षी संख्या 1/पुनरीक्षण प्राधिकारी ने दिनांक 11.03.2025 के आक्षेपित आदेश द्वारा पुनरीक्षण को खारिज कर दिया तथा विपक्षी संख्या 2 द्वारा पारित दिनांक 30.12.2024 के आदेश की पुष्टि की। दिनांक 11.03.2025 के आदेश का प्रासंगिक अंश इस प्रकार है:-

"6. उभयपक्ष के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना गया तथा निगरानी मेमो, निगरानी मेमो के साथ प्रस्तुत किये गये अन्य संलग्नकों, मैटर्स अण्डर आर्टिकिल 227 नम्बर 382 आफ 2025 रमेश कुमार सिंह बनाम कमिश्नर, लखनऊ डिवीजन, लखनऊ व अन्य में पारित मा० उच्च न्यायालय के आदेश दिनांक 27-01-2025 तथा पत्रावली का सम्यक अवलोकन किया गया। विपक्षी संख्या 02 की ओर से दिनांक 11.02.2025 को प्रार्थना पत्र के साथ वकालतनामा प्रस्तुत किया गया तथा लिखित आपत्ति हेतु समय माँगा गया। विपक्षी संख्या-02 की ओर से 17-02-2025 को लिखित आपत्ति दाखिल की गई है जिसका अवलोकन किया गया।

प्रश्नगत निगरानी वाद संख्या-3999/2023 धारा-128 राजस्व संहिता-2006 दिनेश यादव आदि बनाम रमेश सिंह आदि में पारित कलेक्टर, उन्नाव के आदेश दिनांक 30-12-2024 के के विरुद्ध दाखिल की गई है।

कलेक्टर, उन्नाव द्वारा पारित आदेश दिनांक 30-12-2024 में स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि तहसील आख्या दिनांक 28-10-2024 व आख्या दिनांक 12-11-2024 के अनुसार रमेश सिंह पुत्र कृष्णपाल सिंह हाल निवासी चकलवंशी मजरे मेथीटीकुर परगना व तहसील सफीपुर भू अभिलेख व मतदाता सूची से स्पष्ट है कि अनका मूल निवास कोरारीकलाॅ परगना आसीवन रसूलाबाद तहसील हसनगंज जिला उन्नाव है। प्रत्यर्थी रमेश सिंह को ग्राम मेथीटीकुर में कृषि आवंटन के समय भूमि के क्रय किये जाने के साक्ष्य उपलब्ध है। प्रत्यर्थी रमेश सिंह के पिता कृष्णपाल सिंह के पास 1.210हे० भूम सह खातेदारी की है। प्रत्यर्थी के पक्ष में किये गये कृषि आवंटन का पट्टा नियमानुसार पात्र नहीं है। आख्या दिनाँक 12-10-2024 के अनुसार गणेश पेट्रोलियम चकलवंशी के संचालन में कृष्णपाल सिंह व कृष्णपाल सिंह के पुत्र रमेश सिंह यानी प्रत्यर्थी के द्वारा भूमि आवंटन के दौरान कार्य किया जाना पाया गया है। जहाँ तक विपक्षी के आवंटन के निरस्तीकरण हेतु स्वप्रेरित आख्या के आधार पर

वाद संख्या 437/174 धारा-1984 ज०वि० ग्राम मेथीटीकुर सरकार बनाम रमेश सिंह निर्णय दिनांक 16-01-98 का प्रश्न है। पूर्ववत प्रचलित मामले में आवंटी को खेतिहर मजदूर नहीं माने जाने की आख्या प्रस्तुत की गई थी, बल्कि आख्या में यह भी अंकित किया गया था कि आवंटी जाति के ठाकुर है और पेट्रोल पम्प चकलवंशी के लड़के है जबकि प्रचलित वाद में विपक्षी को ग्राम चकलवंशी का मूल निवासी न होने व विपक्षी के पिता के पास आवंटन के समय भूमि होने का उल्लेख किया गया है। चूंकि दोनो मामलों के वाद के आधार पृथक-पृथक हैं। ऐसी स्थिति में इस मामले में वाद को दर्ज कर न्यायालय के आदेश दिनांक 18-09-2023 द्वारा स्थलीय रिपोर्ट मंगाई गई। तहसील आख्या दिनाँक 28-10-2024 व 12-11-2024 से स्पष्ट है कि आवंटी आवंटन के समय भूमहीन कृषक मजदूर नहीं था और न ही वह आवंटन के लिये पात्र था बल्कि परिवार रजिस्टर ग्राम कोरारीकलाॅ के अनुसार म०नं० 102अ/2 में रमेश सिंह पुत्र कृष्णपाल सिंह व उसके परिवार का नाम दर्ज अभिलेख है, जिससे स्पष्ट है कि रमेश सिंह आवंटन के समय ग्राम कोरारीकलां के निवासी थे।

निगरानीकर्ता को इस न्यायालय द्वारा सुनवाई का समुचित अवसर प्रदान किया गया किन्तु निगरानीकर्ता की ओर से ऐसा कोई ठोस आधार नहीं बताया जा सका जिससे कलेक्टर, उन्नाव द्वारा पारित आदेश में कोई विधिक त्रुटि परिलक्षित होती हो।

कलेक्टर, उन्नाव द्वारा पारित आदेश के अवलोकन से विदित है कि कलेक्टर, उन्नाव ने पक्षों को साक्ष्य प्रस्तुत करने एवं सुनवाई का समुचित अवसर देकर उपलब्ध अभिलेखीय साक्ष्यों की विस्तृत विवेचना करते हुये गुणदोष पर मुखर आदेश पारित किया है जिसमें कोई विधिक त्रुटि परिलक्षित नहीं होती है। निगरानी आधारहीन एवं बल्हीन होने के कारण निरस्त किये जाने योग्य है।

7- उपरोक्त विवेचना के प्रकाश में निगरानी आधारहीन एवं बलहीन होने के कारण निरस्त की जाती है। आदेश की एक प्रति अवर न्यायालय को भेजी जाये। बाद आवश्यक कार्यवाही इस न्यायालय की पत्रावली दाखिल दफ्तर हो।"

5. वाद की उपर्युक्त पृष्ठभूमि में, उपरोक्त अनुतोष की मांग करते हुए वर्तमान याचिका याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत और इंगित आधारों पर दायर की गई है, जो इस प्रकार हैं:-

(क) 2006 की संहिता की धारा 128 के अंतर्गत शुरू की गई कार्यवाही, परिसीमा के कारण अत्यधिक वर्जित थी, अर्थात लगभग 31 वर्ष, और इस प्रकार, इसे विपक्षी संख्या 2 द्वारा वाद के गुण-दोष पर विचार किए बिना ही खारिज कर दिया जाना चाहिए था।

(ख) 1950 के अधिनियम की धारा 198(4) के अंतर्गत शुरू की गई 'पट्टा' को रद्द करने की कार्यवाही समाप्त कर दी गई थी, और इस प्रकार इसे पुनः शुरू नहीं किया जा सका।

(ग) इससे पहले, 1950 के अधिनियम की धारा 198(4) के तहत 'पट्टा' रद्द करने के लिए शुरू की गई कार्यवाही को 16.01.1998 के आदेश द्वारा समाप्त कर दिया गया था और उसके बाद, उक्त आदेश को चुनौती नहीं दी गई थी और तदनुसार, 2006 की संहिता की धारा 128 के तहत बाद की कार्यवाही को पूर्व निर्णय के सिद्धांत द्वारा रोक दिया गया था।

(घ) 2006 की संहिता की धारा 128 के तहत शुरू की गई बाद की कार्यवाही भी धारा 11 सी.पी.सी. के स्पष्टीकरण-IV के अनुसार रोक दी गई थी।

(ई) स्थगन आवेदन पर बहस विपक्षी पक्ष संख्या 1/पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा दिनांक 11.02.2025 को पुनरीक्षण में सुनी गई थी और वाद को दिनांक 11.03.2025 को आदेश के लिए सुरक्षित रखा गया था, लेकिन बाद में विपक्षी संख्या 5 द्वारा प्रस्तुत दो आवेदनों पर विपक्षी पक्ष संख्या 1/पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा याचिकाकर्ता की पीठ पीछे विचार किया गया, क्योंकि उनमें से किसी की भी प्रति याचिकाकर्ता या उसके अधिवक्ता को नहीं दी गई थी।

(च) विपक्षी संख्या 1/पुनरीक्षण प्राधिकारी ने विपक्षी संख्या 2 से अवर न्यायालय का अभिलेख मांगे बिना ही गुण-दोष के आधार पर पुनरीक्षण का निर्णय कर दिया है।

7. वर्तमान याचिका का विरोध करते हुए विपक्षी के विद्वान अधिवक्ता ने निम्नानुसार तर्क प्रस्तुत किया:-

(i) आक्षेपित आदेश/आदेशों द्वारा पर्याप्त न्याय किया गया है, और इस प्रकार यदि यह मान लिया जाए कि आदेश, संहिता 2006 की धारा 128 में प्रदत्त परिसीमा की समाप्ति के पश्चात संस्थित वाद में पारित किया गया है, अर्थात् आदेश परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 3 के अनुसार क्षेत्राधिकार से बाहर है, तब भी इस न्यायालय द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग करते हुए इसमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता।

(ii) वर्तमान वाद में परिसीमा का प्रश्न लागू नहीं होगा, क्योंकि 'पट्टा' उस व्यक्ति के पक्ष में निष्पादित किया गया था, जो प्रासंगिक समय पर पात्र नहीं था।

(iii) पात्रता के मुद्दे पर, 1950 के अधिनियम की धारा 198, जो 26.11.1993 (वर्तमान वाद में 'पट्टा' के अनुमोदन की तिथि) को लागू थी, का हवाला दिया गया है, जो इस प्रकार है:-

"198. धारा 195 और 197 के अंतर्गत व्यक्तियों को भूमि में प्रवेश देने में वरीयता क्रम।

(1) धारा 195 या धारा 197 (जिसे इस धारा में आगे भूमि आवंटन कहा गया है) के अंतर्गत [अहस्तांतरणीय अधिकारों वाले भूमिधर] या असामी के रूप में भूमि में व्यक्तियों को प्रवेश देने में, भूमि प्रबंधन समिति, धारा 178 के अंतर्गत न्यायालय द्वारा दिए गए किसी आदेश के अधीन रहते हुए, निम्नलिखित वरीयता क्रम का पालन करेगा:

(क) संघ की सशस्त्र सेनाओं में सक्रिय सेवा के दौरान शत्रु कार्रवाई में अपनी जान गंवाने वाले व्यक्ति की भूमिहीन विधवा, पुत्र, अविवाहित पुत्रियाँ या माता-पिता;

(ख) उस क्षेत्र में रहने वाला कोई व्यक्ति, जो संघ की सशस्त्र सेनाओं में सक्रिय सेवा के दौरान शत्रु द्वारा की गई कार्रवाई के कारण पूर्णतः विकलांग हो गया हो;

(ग) उस क्षेत्र में रहने वाला कोई भूमिहीन कृषि श्रमिक जो अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति से संबंधित हो;

(गग) उस क्षेत्र में रहने वाले किसी अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के व्यक्ति या उस क्षेत्र में रहने वाले भूमिहीन कृषि श्रमिक द्वारा अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के लिए स्थापित कोई धर्मार्थ संस्था, जो निर्धारित शर्तों और उद्देश्यों के लिए हो;

(घ) उस क्षेत्र में रहने वाला कोई अन्य भूमिहीन कृषि श्रमिक;

(ङ) उस क्षेत्र में रहने वाला कोई भूमिधर या असामी जो 1.26 हेक्टेयर (3.125 एकड़) से कम भूमि रखता हो;

(च) उस क्षेत्र में रहने वाला कोई भूमिहीन व्यक्ति जो संघ की सशस्त्र सेनाओं में अधिकारी के रूप में सेवा के अलावा किसी अन्य सेवा से सेवानिवृत्त, मुक्त या सेवामुक्त हो;

(छ) उस क्षेत्र में रहने वाला कोई भूमिहीन स्वतंत्रता सेनानी जिसे राजनीतिक पेंशन नहीं दी गई हो;

(ज) अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी व्यक्ति द्वारा निर्धारित शर्तों और निबंधनों पर स्थापित क्षेत्र पंचायत के अंतिम क्षेत्र में स्थित कोई शैक्षणिक संस्था।

स्पष्टीकरण.- इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए,-

(1) 'भूमिहीन' से तात्पर्य ऐसे व्यक्ति से है जिसके पति/पत्नी या अवयस्क बच्चों के पास भूमिधर या असामी के रूप में कोई भूमि नहीं है, और आवंटन की तिथि से ठीक पहले दो वर्षों के भीतर भी उसके पास ऐसी कोई भूमि नहीं थी; और

(2) 'कृषि मजदूर' से तात्पर्य ऐसे व्यक्ति से है जिसकी आजीविका का मुख्य स्रोत कृषि मजदूरी है;

(3) 'स्वतंत्रता सेनानी' से तात्पर्य उत्तर प्रदेश के उस निवासी से है जिसे कलेक्टर द्वारा 1930 और 1947 के बीच की अवधि के दौरान राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने के लिए प्रमाणित किया गया हो और जो ऐसी भागीदारी के संबंध में, इसी प्रकार प्रमाणित हो कि उसने-

(क) कम से कम दो माह की अवधि के लिए कारावास की सजा काटी हो; या

(ख) निवारक निरोध के रूप में या विचाराधीन कैदी के रूप में कम से कम तीन महीने की अवधि के लिए जेल में रहा हो; या

(ग) कोड़े मारने की सजा के निष्पादन में कम से कम दस कोड़े खाए गए हों;

(घ) फरार अपराधी घोषित किया गया हो; या

(ई) गोली लगने से घायल हुआ हो;

और इसमें वह व्यक्ति शामिल है जो पेशावर-कांड में शामिल था या जो आज़ाद हिंद फौज या पूर्व भारतीय स्वतंत्रता लीग का मान्यता प्राप्त सदस्य था; लेकिन इसमें वह व्यक्ति शामिल नहीं है जिसे उसकी क्षमा याचना या ऐसी भागीदारी के लिए खेद व्यक्त करने के कारण क्षमादान दिया गया था।

परन्तुक जहाँ सूची दो या सूची तीन में एक से अधिक व्यक्तियों या सूची एक में दो से अधिक व्यक्तियों के नाम हैं, वहाँ प्रत्येक उत्तरवर्ती अवसर पर जिन व्यक्तियों के पक्ष में आवंटन किया जाना है, उनका चयन लॉटरी द्वारा किया जाएगा।

(3) उप-धारा (1) के अंतर्गत आवंटित की जा सकने वाली भूमि निम्न से अधिक नहीं होगी-

(i) खंड (ई) के अंतर्गत आने वाले व्यक्ति के मामले में, ऐसा क्षेत्र जो आवंटन से ठीक पहले भूमिधर या असामी के रूप में उसके द्वारा धारित भूमि के साथ कुल मिलाकर 1.26 हेक्टेयर (3.125 एकड़) होगा;

(ii) किसी अन्य मामले में, 1.26 हेक्टेयर (3.125 एकड़) का क्षेत्र।

(4) [उप-खण्ड का प्रभारी सहायक कलेक्टर] स्वप्रेरणा से और भूमि आवंटन से व्यथित किसी व्यक्ति के आवेदन पर, निर्धारित तरीके से ऐसे आवंटन की जांच कर सकेगा और यदि वह संतुष्ट हो जाता है कि आवंटन अनियमित है, तो वह आवंटन और पट्टा, यदि कोई हो, रद्द कर सकेगा।

(4-ए) कलेक्टर स्वप्रेरणा से या किसी व्यथित व्यक्ति के आवेदन पर, उप-धारा (4) के अधीन उप-विभाग के प्रभारी सहायक कलेक्टर द्वारा विनिश्चित किसी वाद या कार्यवाही का अभिलेख मंगा सकेगा, ताकि ऐसे वाद या कार्यवाही में पारित किसी आदेश की वैधता या औचित्य के बारे में स्वयं को संतुष्ट किया जा सके और यदि उप-खण्ड का प्रभारी सहायक कलेक्टर ऐसा प्रतीत होता है कि उसने-

(i) ऐसी क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया है जो विधि द्वारा उसमें निहित नहीं है; या

(ii) ऐसी क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने में विफल रहा है; या

(iii) क्षेत्राधिकार का प्रयोग अवैध रूप से या तात्विक अनियमितता के साथ किया है;

कलेक्टर मामले में ऐसा आदेश पारित कर सकेगा जैसा वह उचित समझे और इस उपधारा के अधीन कलेक्टर द्वारा पारित प्रत्येक आदेश अंतिम होगा;

(5) उपधारा (4) के अधीन किसी आवंटन या पट्टे को रद्द करने का कोई आदेश तब तक नहीं दिया जाएगा, जब तक कि उस व्यक्ति को, जिसके पक्ष में आवंटन या पट्टा किया गया था, या उसके विधिक प्रतिनिधि को कारण बताओ नोटिस तामील न कर दिया जाए;

परन्तुक किसी आवंटन या पट्टे को रद्द करने की कार्यवाही में ऐसा कोई नोटिस आवश्यक नहीं होगा, जहाँ ऐसी कार्यवाही 18 अगस्त, 1980 को कलेक्टर के समक्ष किसी अन्य न्यायालय या प्राधिकरण में लंबित थी।

(6) उपधारा (5) में उल्लिखित कारण बताओ नोटिस निम्नलिखित के लिए जारी किया जा सकेगा-

(क) 10 नवंबर, 1980 (जिसे इसके पश्चात उक्त तिथि कहा जाएगा) से पूर्व किए गए भूमि आवंटन के मामले में, उक्त तिथि से [सात वर्ष] की अवधि समाप्त होने से पूर्व; और

(ख) उक्त तिथि को या उसके पश्चात किए गए भूमि आवंटन के मामले में, [ऐसे आवंटन या पट्टे की तिथि से पांच वर्ष या 10 नवंबर, 1987 तक, जो भी बाद में हो] की अवधि की समाप्ति से पूर्व।

(7) जहाँ उप-धारा (4) के अधीन किसी भूमि का आबंटन या पट्टा रद्द किया जाता है, वहाँ निम्नलिखित परिणाम सुनिश्चित होंगे, अर्थात्:

(i) आबंटी या पट्टेदार या उसके माध्यम से ऐसी भूमि पर दावा करने वाले किसी अन्य व्यक्ति का अधिकार, स्वामित्व और हित समाप्त हो जाएगा और भूमि ग्राम सभा को वापस कर दी जाएगी;

(ii) [उप-विभाग का प्रभारी सहायक कलेक्टर] ऐसी भूमि पर कब्जा रखने वाले या उसे बनाए रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति को बेदखल करने के पश्चात् तुरंत ग्राम सभा को भूमि का कब्जा सौंपने का निर्देश दे सकता है और इस प्रयोजन के लिए आवश्यक बल का प्रयोग कर सकता है या करवा सकता है।

(8) उप-धारा (4) के अधीन उप-विभाग के प्रभारी सहायक कलेक्टर द्वारा दिया गया प्रत्येक आदेश उप-धारा (4-क) के उपबंधों के अधीन रहते हुए अंतिम होगा।

(9) जहां किसी व्यक्ति को उक्त तिथि से पूर्व किसी भी समय धारा 132 में निर्दिष्ट किसी भूमि पर सरदार या भूमिधर के रूप में अहस्तांतरणीय अधिकारों के साथ प्रवेश दिया गया हो और ऐसा प्रवेश उपधारा (3) में उल्लिखित अनुज्ञेय क्षेत्र के संबंध में उपखंड के प्रभारी सहायक कलेक्टर के पूर्व अनुमोदन से किया गया हो, वहां इस अधिनियम के अन्य प्रावधानों में या आवंटन या पट्टे के नियमों और शर्तों में, जिसके तहत ऐसे व्यक्ति को उस भूमि पर प्रवेश दिया गया था, किसी भी बात के होते हुए भी, उक्त तिथि से निम्नलिखित परिणाम प्रभावी होंगे, अर्थात्:

(क) आवंटी या पट्टेदार को ऐसी भूमि का असामी माना जाएगा और वह उसे वर्ष-दर-वर्ष धारण करता हुआ समझा जाएगा, और ऊपर वर्णित सीमा तक भूमि का आवंटन या पट्टा उपधारा (4) के प्रयोजनों के लिए अनियमित नहीं माना जाएगा;

(ख) उक्त तिथि को कलेक्टर या किसी अन्य न्यायालय या प्राधिकरण के समक्ष ऐसी भूमि के आवंटन या पट्टे को रद्द करने के लिए लंबित कार्यवाही, यदि कोई हो, उपशमित हो जाएगी।"

(iv) वर्तमान याचिका में विशेष रूप से खंडन न किए गए तथ्यों के मद्देनजर, जो संक्षेप में इस आशय के हैं कि प्रासंगिक समय पर अर्थात् 26.11.1993 को जब विवादित 'पट्टा' स्वीकृत किया गया था, याचिकाकर्ता वैधानिक प्रावधानों के मद्देनजर पात्र व्यक्ति नहीं था और तदनुसार यह अनुमोदन संबंधित प्राधिकरण द्वारा की गई अवैधता की श्रेणी में आएगा और 'अनियमितताओं' की श्रेणी में नहीं आएगा। यदि किसी प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया था, तो अनियमितता शब्द का अर्थ होगा, जबकि इस मामले में याचिकाकर्ता पात्र नहीं था। इस प्रकार, मामले में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

(v) इस न्यायालय को परिसीमा के बिंदु पर या पूर्व न्याय के सिद्धांतों पर या संबंधित प्राधिकारी द्वारा की गई प्रक्रियागत अनियमितताओं के कारण, अनुलग्नक संख्या 11 पर आधारित दलीलों सहित प्रस्तुत तथ्यों के आलोक में, जिसमें अंतरिम राहत आवेदन पर 11.02.2015 को मामले की सुनवाई हुई थी, आक्षेपित आदेश में कोई हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है, जो पूरी तरह से गलत और निराधार हैं क्योंकि इसे स्थापित करने के लिए, आदेश पत्र को अभिलेख पर नहीं रखा गया है और केवल पोर्टल का वाद सारांश अभिलेख पर रखा गया है। ऐसा इसलिए है क्योंकि यदि आक्षेपित आदेश(ओं) में हस्तक्षेप किया जाता है, तो उस स्थिति में याचिकाकर्ताओं को 'पट्टा' प्रदान करने में संबंधित प्राधिकारी द्वारा की गई 'अवैधता' पुनर्जीवित हो जाएगी, जो याचिकाकर्ता द्वारा धोखाधड़ी से प्राप्त की गई प्रतीत होती है।

(vi) उपर्युक्त को सिद्ध करने के लिए अर्थात् याचिकाकर्तागण पात्र व्यक्ति नहीं थे, 'प्रतिउत्तर में शपथ पत्र' के निम्नलिखित प्रस्तरों पर भरोसा किया गया है:-

7. यह कि मूल निवास एवं भू-स्वामी के समर्थन में, विपक्षी ने ग्राम कौरारी कला परगना आसीवन रसूलाबाद तहसील हसनगंज जिला उन्नाव का आकार पत्र 11 तथा "परिवार रजिस्टर" की प्रतिलिपि प्रस्तुत की है, जिसमें पृष्ठ संख्या 42 एवं 43 पर क्रम संख्या 85 में याचिकाकर्तागण के दादा छत्रपाल सिंह पुत्र जगे सिंह का नाम अंकित है। यहां यह भी बताना महत्वपूर्ण है कि आकार पत्र 11 के अवलोकन से याचिकाकर्तागण का नाम परिवार के उत्तराधिकारी के रूप में दर्शाया गया है तथा समस्त भूमि ग्राम कौरारी, परगना आसीवन रसूलाबाद, तहसील हसनगंज, जिला उन्नाव में है। इस प्रति-शपथपत्र के साथ आकार पत्र 11 की प्रतियां और परिवार रजिस्टर की प्रति सामूहिक रूप से अनुलग्नक संख्या सीए-1 के रूप में संलग्न की गई हैं।

8. यह कि उत्तर प्रदेश भू-राजस्व संहिता की धारा 128 के अन्तर्गत दाखिल प्रार्थना पत्र के समर्थन में विपक्षीगण ने ग्राम बरम्भोला तहसील सफीपुर जिला उन्नाव की फसली खतौनी 1400 से 1405 की छायाप्रति भी दाखिल की थी, जिसमें याचिकाकर्ता का नाम उक्त पट्टा आवंटन से पूर्व याचिकाकर्ता द्वारा क्रय की गई भूमि का भू-

स्वामी दर्शाया गया है, जबकि भूमि संख्या 2669 क्षेत्रफल 2 बीघा के पट्टा आवंटन के समय याचिकाकर्ता ने घोषित किया था कि उसके पास भूमि नहीं है।

(1) खाता संख्या 345 में, जिसका क्षेत्रफल 0.284 हेक्टेयर है, दिनांक 14.04.1993 के पंजीकृत विक्रय विलेख द्वारा

(ii) गाटा संख्या 376 का भाग, जिसका क्षेत्रफल 0.531 हेक्टेयर है, तथा गाटा संख्या 377 का भाग, जिसका क्षेत्रफल 0.253 हेक्टेयर है, तथा गाटा संख्या 387 में, दिनांक 10.04.1992 और 26.12.1992 के पंजीकृत विक्रय विलेख द्वारा

(iii) उपरोक्त खतौनी के खाता संख्या 52 में, याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 14.06.1993 के पंजीकृत विक्रय विलेख द्वारा भूमि क्रय करने का आदेश अंकित है।

(iv) खाता संख्या 126 में, याचिकाकर्ता ने दिनांक 14.04.1993 के विक्रय विलेख द्वारा खाता संख्या 345 में, जिसका क्षेत्रफल 0.284 हेक्टेयर है, भूमि क्रय की थी।

ग्राम कोरारी कला, परगना आसीवन रसूलाबाद, तहसील हसनगंज, जिला उन्नाव की खतौनी 1400-1405 फसली की एक प्रति इसके साथ संलग्न है और इस प्रति शपथपत्र में अनुलग्नक संख्या सीए-2 के रूप में अंकित है।

9. यह कि निवास के सम्बन्ध में आवेदन के समर्थन में विपक्षी ने ग्राम कोरारी कला, परगना आसीवन रसूलाबाद, तहसील हसनगंज, जिला उन्नाव की फसली वर्ष 1423 से 1426 तक की खतौनी की प्रतियां तथा साथ ही सीएच_23 की प्रतिलिपि दाखिल की है, जिसमें याचिकाकर्ता का नाम भूमि स्वामी के रूप में दर्शाया गया है तथा खाता संख्या 662, प्लाट संख्या 1925/1.475, 2016/0.098, खाता संख्या 247, प्लाट संख्या 1787/0.0030, 2014/0.0380, खाता संख्या 128, प्लाट संख्या 2389/0.9920 तथा याचिकाकर्ता के पिता मृतक कृष्णपाल का खाता संख्या 121 में नामान्तरण/विरासत दर्शाया गया है। वर्ष 1423 से 1426 फसली की खतौनी की प्रतिलिपि तथा ग्राम कोरारी कला, परगना आसीवन रसूलाबाद, तहसील हसनगंज, जिला उन्नाव की सीएच 23 की प्रतिलिपि इस प्रति-शपथपत्र के साथ संलग्न है तथा अनुलग्नक संख्या सीए-3 के रूप में अंकित है।

10. विपक्षीगण द्वारा प्रस्तुत आवेदन की विषय-वस्तु को देखने के पश्चात् प्रत्यर्थी संख्या 2 ने दिनांक 18/09/2023 को एक आदेश पारित किया तथा विपक्षी संख्या 3 से निरीक्षण आख्या मांगी।

11. यह कि विपक्षी संख्या 3 अर्थात तहसीलदार सफीपुर, जिला उन्नाव ने विपक्षी संख्या 2 के न्यायालय के समक्ष दिनांक 28.10.2024 को विस्तृत रिपोर्ट प्रस्तुत की है, जिसके अनुसार विपक्षी संख्या 7 अर्थात ग्राम मेथीटीकुर की भूमि प्रबंधन समिति द्वारा याची को भूखंड संख्या 2669 एम क्षेत्रफल 0.506 हेक्टेयर का आवंटन किया गया था। रिपोर्ट में यह भी उल्लेख किया गया कि, प्रश्नगत गाटा संख्या 2669 का मिलान चकबंदी बंदोबस्त एवं खसरा 1359 एफ से किया गया, जिससे यह पाया गया कि प्रश्नगत गाटा भूमि आरक्षित श्रेणी की नहीं है तथा जोत का उल्लेख बंजार में आकार पत्र 41 एवं 45 में है। गाटा संख्या 2669 का कुल क्षेत्रफल 2.834 हेक्टेयर तथा गाटा संख्या 2669, क्षेत्रफल-0.506 हेक्टेयर अंकित भूमि, जैसा कि याचिकाकर्ता द्वारा

आरोप लगाया गया है, दिनांक 29.09.2011 को उप-जिलाधिकारी, सफीपुर, उन्नाव द्वारा अहस्तांतरणीय भूमिधर से संक्रमणीय भूमिधर घोषित किया गया तथा मतदाता सूची जिला उन्नाव के अवलोकन तथा दस्तावेजी साक्ष्य के अनुसार याचिकाकर्ता का मूल निवास ग्राम कोरारी कला परगना आसीवन रसूलाबाद तहसील हसनगंज जिला उन्नाव प्रतीत होता है। विपक्षी संख्या 3 द्वारा प्रस्तुत दिनांक 28/10/24 की रिपोर्ट की एक प्रति इसके साथ संलग्न है तथा इस प्रति-शपथपत्र के अनुलग्नक संख्या सीए-4 के रूप में अंकित है।

12. यहां यह भी उल्लेख करना आवश्यक है कि विपक्षी संख्या 2 ने भी उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता 2006 की धारा 128 के अंतर्गत दर्ज वाद संख्या 3999/2023, कम्प्यूटरीकृत वाद संख्या D202310690003999, दिनेश यादव एवं अन्य... बनाम रमेश सिंह एवं अन्य में दिनांक 29/10/94 को एक आदेश पारित किया था तथा विपक्षी संख्या 3 को कथित पेट्रोल पंप की भूमि के स्वामित्व के संबंध में एक जांच रिपोर्ट प्रस्तुत करने का निर्देश दिया था।

13. विपक्षी संख्या 3 अर्थात तहसीलदार सफीपुर ने दिनांक 12.11.2024 को रिपोर्ट प्रस्तुत की थी, जो इसके साथ संलग्न है तथा इस प्रति-शपथपत्र के अनुलग्नक संख्या सीए-5 के रूप में अंकित है।

(vi) वर्तमान वाद में शामिल मुद्दे पर विपक्षी द्वारा निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया गया है -

क) ***ए.एम. एलिसन बनाम बी.एल. सेन, एआईआर 1957 एससी 227*** के वाद में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की:-

"उत्प्रेषण के माध्यम से की गई कार्यवाही "निश्चित रूप से नहीं" है। (हेल्सबरी के 'लॉज़ ऑफ़ इंग्लैंड', हेलशम संस्करण, खंड 9, अनुच्छेद 1480 और 1481, पृष्ठ 877-878 देखें)। असम उच्च न्यायालय के पास रिटों को अस्वीकार करने का अधिकार था, यदि वह संतुष्ट हो कि न्याय में कोई विफलता नहीं हुई है और इन अपीलों में, जो अनुच्छेद 226 के अंतर्गत आवेदनों में उच्च न्यायालय के आदेशों के विरुद्ध दायर किए गये हैं, हम हस्तक्षेप करने से तब तक इनकार कर सकते थे, जब तक कि हम संतुष्ट न हों कि वाद का न्याय ऐसा करना आवश्यक है। लेकिन हम इससे संतुष्ट नहीं हैं। हमारी राय है कि, उप आयुक्त, सिबसागर और उच्च न्यायालय दोनों द्वारा प्रत्यर्थीगण के पक्ष में समवर्ती रूप से पाए गए गुण-दोषों को ध्यान में रखते हुए, हमें हस्तक्षेप करने से इनकार करना चाहिए।"

ख) ***ग्राही शंकर सिंह बनाम अष्टम अपर जिला न्यायाधीश एवं अन्य, 1991 आरडी 10*** के वाद में न्यायालय ने जिला न्यायाधीश द्वारा पुनरीक्षण में पारित आदेश में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया और इस तर्क को खारिज कर दिया कि उप-खण्ड अधिकारी के आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण पोषणीय नहीं था, इस आधार पर कि यदि पर्याप्त न्याय किया गया है, तो अनुच्छेद 226 के अंतर्गत न्यायालय सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयों पर भरोसा करते हुए किसी भी प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश को रद्द करने के लिए बाध्य नहीं है।

ग) ***बक्स सिंह बनाम संयुक्त निदेशक चकबंदी, उत्तर प्रदेश, लखनऊ व अन्य, एआईआर 1966 इला 156*** के वाद में, इस न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की:-

"जहाँ आक्षेपित आदेश न्यायसंगत हैं और पक्षकारों के साथ पर्याप्त न्याय किया गया प्रतीत होता है, वहाँ उच्च न्यायालय केवल इस आधार पर उसके रिट क्षेत्राधिकार में हस्तक्षेप करने के लिए इच्छुक नहीं होगा कि ऐसे आदेश विधि की दृष्टि से गलत हैं।

घ) उपर्युक्त कथन पराहू बनाम उप निदेशक चकबंदी, 1964 एडब्ल्यूआर 155 और बेगम ए.एच. खान बनाम क्षेत्रीय परिवहन प्राधिकरण मेरठ 1963 एएलजे 909 के वाद में पारित निर्णय पर आधारित है।

ङ) ***ओम प्रकाश बनाम उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा आयोग, एलनगंज, इलाहाबाद व अन्य, (1990) यूपी एलबीईसी 983*** के वाद में, इस न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की:-

"यह सर्वविदित है कि किसी प्राधिकारी का निर्णय, भले ही वह क्षेत्राधिकार के बाहर हो, संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत कार्यवाही में रद्द नहीं किया जा सकता, यदि उस निर्णय से पक्षकारों के बीच पर्याप्त न्याय होता है।" (प्रस्तर 9)

वर्तमान वाद में, प्रत्यर्थी संख्या 1 ने पाया कि यद्यपि निरीक्षण किया गया था, परंतु निरीक्षण ज्ञापन अभिलेख में नहीं था, इसलिए उसने उचित ही पुनः निरीक्षण करने और उसके बाद पक्षकारों को सुनवाई का अवसर देने के बाद वाद का नए सिरे से निर्णय करने का निर्देश दिया। मुझे नहीं लगता कि यह भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत हस्तक्षेप का उपयुक्त वाद है।

च***) पुलुकुरी कोट्टाया बनाम सम्राट मनु/पाआर/0049/1946: एआईआर 1947 पीसी 67*** के वाद में, प्रिवी काउंसिल ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 537 की व्याख्या करते हुए इस प्रश्न पर विचार किया कि क्या विधि के किसी स्पष्ट प्रावधान का पालन न करना अनियमितता माना जाएगा। प्रिवी काउंसिल ने अभिनिर्धारित किया कि अवैधता और अनियमितता के बीच का अंतर प्रकार के बजाय मात्रा पर आधारित है। यदि निर्धारित प्रक्रिया का पर्याप्त अनुपालन होता है, तो दोष, यदि कोई हो, अनियमितता होगी, लेकिन यदि गैर-अनुपालन विधि के अनिवार्य प्रावधान का है, तो वह अवैधता होगी।

छ) इलाहाबाद में ***रिट-सी संख्या 24211/2006 (राम निहोर बनाम अपर आयुक्त (प्रशासनिक), विंध्याचल मंडल)*** में पारित दिनांक 14.07.2014 के निर्णय में, इस न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि यदि भूमि आवंटन आदेश धोखाधड़ी या मिलीभगत से प्राप्त किया गया है, तो उसे मान्य नहीं माना जा सकता और न्यायालय ऐसे मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगा जिससे गाँव सभा में निहित राज्य की संपत्ति को बर्बाद करने की अनुमति मिल सके। हालाँकि, आवंटन/पट्टे को रद्द करने की कार्रवाई शुरू करके राज्य की संपत्ति को ऐसी धोखाधड़ी से बचाना, अधिनियम की धारा 198(4) के तहत परिकल्पित ऐसे आवंटन को रद्द करने की शक्ति से स्वतंत्र होगा।

ज) ***नोहर लाल वर्मा बनाम जिला सहकारी केंद्रीय बैंक लिमिटेड, जगदलपुर, 2008 (14) एससीसी 445*** के वाद में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने प्रस्तर - 32 में निम्नानुसार टिप्पणी की है:

"अब, परिसीमा मामले की जड़ तक जाती है। यदि कोई वाद, अपील या आवेदन परिसीमा द्वारा वर्जित है, तो न्यायालय या न्यायनिर्णायक प्राधिकारी के पास ऐसे वाद, अपील या आवेदन पर विचार करने और गुण-दोष के आधार पर निर्णय देने का कोई क्षेत्राधिकार, शक्ति या प्राधिकार नहीं है।"

तथा परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 3 की उपधारा (1) का संदर्भ देते हुए यह भी अभिनिर्धारित किया कि निर्धारित अवधि के बाद प्रस्तुत किए गए किसी वाद या अपील को न्यायालय द्वारा स्वयं खारिज कर दिया जाना चाहिए, भले ही ऐसी कोई दलील न दी गई हो या आरंभ में कोई बचाव प्रस्तुत न किया गया हो।

झ) माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि यदि अवैध आदेश को रद्द करने से कोई अन्य अवैधता पुनर्जीवित हो जाती है, तो उस स्थिति में, न्यायालय को रिट क्षेत्राधिकार के अंतर्गत ऐसे आदेश में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए (देखें ***गद्दे वेंकटेश्वर राव बनाम आंध्र प्रदेश सरकार और अन्य, एआईआर 1966 एससी - 828, चंपालाल बिनानी बनाम सीआईटी, पश्चिम बंगाल, एआईआर 1970 एससी 645, महाराजा चिंतामणि सरन नाथ शाहदेव बनाम बिहार राज्य और अन्य, एआईआर 1999 एससी 3609, मलिकार्जुन मुधगल नागप्पा और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य और अन्य, एआईआर 2000 एससी 2976, चंद्र सिंह बनाम राजस्थान राज्य, एआईआर 2003 एससी 2889, एसडीएस शिपिंग प्राइवेट लिमिटेड बनाम जय कंटेनर सर्विसेज कंपनी प्राइवेट लिमिटेड और अन्य, 2003(4) सुप्रीम 44, उत्तरांचल राज्य और अन्य बनाम अजीत सिंह भोला और अन्य, (2004) 6 एससीसी 800 और उड़ीसा राज्य और अन्य बनाम ममता मोहंती, (2011) 3 एससीसी 437)***।

ञ) ***भारत सिंह बनाम अपर आयुक्त और अन्य 2017 (5) एडीजे 466 में प्रतिवेदित***, वाद में इस न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की:-

20. इस न्यायालय का विचार है कि जब संबंधित प्राधिकारी के संज्ञान में आया कि गांव सभा की भूमि का आवंटन उसी गांव के कई अन्य लोगों के सही दावे की अनदेखी करते हुए अपात्र व्यक्ति को अवैध रूप से किया गया था, जो अधिनियम की धारा 1998 की उप-धारा (1) के तहत दिए गए पात्रता क्षेत्र/वरीयता क्रम के भीतर आते थे, तो संबंधित प्राधिकारी का कर्तव्य था कि वह एक जांच स्थापित करे और गलत को ठीक करने के लिए विधिक रूप से स्वीकार्य कार्रवाई करे। अतः, आवंटन आदेश स्पष्टतः अवैध है, भले ही राजस्व प्राधिकारी द्वारा स्वप्रेरणा से जाँच बैठा दी गई हो और उसके बाद गलती को सुधारने के लिए की गई कार्रवाई को थोड़ा विलंबित कहा जा सकता है, यह न्यायालय हस्तक्षेप नहीं करेगा और ऐसे आदेश को रद्द नहीं करेगा क्योंकि यह याचिकाकर्ता के पक्ष में किए गए अवैध आवंटन को पुनर्जीवित कर देगा।

21. याचिकाकर्ता का आवंटन भाई-भतीजावाद और भ्रष्टाचार का परिणाम था जो क़ानून के साथ धोखाधड़ी के बराबर है। विचाराधीन भूमि पर याचिकाकर्ता के आवंटन के साथ प्रत्येक दिन बीतने पर कार्रवाई का एक नया कारण उत्पन्न होगा। कार्रवाई का एक सतत कारण होने के नाते, जिसका अपर जिला मजिस्ट्रेट द्वारा स्वप्रेरणा से संज्ञान लिया गया था, इसे राजस्व प्राधिकारियों द्वारा क्षेत्राधिकार का अवैध या मनमाना प्रयोग नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार, मुझे नहीं लगता कि ऐसा कोई अच्छा आधार है जिसके आधार पर संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत असाधारण क्षेत्राधिकार का प्रयोग मेरे द्वारा उक्त आदेश को रद्द करने के लिए किया जाना चाहिए।

ट) **जोधे बनाम राज्य एआईआर 1952 इला 788** में प्रतिवेदित, में इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय के विवेकाधीन और न्यायसंगत क्षेत्राधिकार और उसके प्रयोग के तरीके पर विचार किया। इसका प्रासंगिक अंश इस प्रकार है:-

"इस खंड में अधीक्षण की इस शक्ति पर कोई सीमाएँ, बंधन या प्रतिबंध नहीं लगाए गए हैं और इस अनुच्छेद का उद्देश्य उच्च न्यायालय को अपने क्षेत्राधिकार की क्षेत्रीय सीमाओं के भीतर सभी न्याय का संरक्षक बनाना और उसे एक ऐसे हथियार से सुसज्जित करना प्रतीत होता है जिसका उपयोग यह सुनिश्चित करने के लिए

किया जा सके कि इसमें उल्लिखित निकायों द्वारा न्याय निष्पक्ष और उचित रूप से किया जाए।" (बल दिया गया)

ठ***) दुख हरण वर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2004) 2 एडब्लूसी 1147*** के वाद में, इस न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की है:-

"4. यह याद रखना चाहिए कि रिट एक विवेकाधीन उपाय है, जैसा कि चंद्र सिंह बनाम राजस्थान राज्य, (2003) 6 एससीसी 545: जेटी (2003) 6 एससी 20 में बताया गया है। रिट याचिका में याचिकाकर्ता को न केवल विधि का उल्लंघन दिखाना होता है, बल्कि यह भी दिखाना होता है कि समता उसके पक्ष में है। इस प्रकार, रिट प्राप्त करने के लिए याचिकाकर्ता को न्यायालय को विधि और समता दोनों के बारे में संतुष्ट करना होगा। यदि याचिकाकर्ता ने न्यायालय को केवल इस बात से संतुष्ट कर दिया है कि विधि का उल्लंघन हुआ है, लेकिन समता उसके पक्ष में नहीं है, तो न्यायालय रिट जारी नहीं करेगा।

5. वर्तमान वाद में, नियम 460 के अनुसार, बैंक के निदेशक मंडल के 2/3 सदस्यों द्वारा अविश्वास प्रस्ताव पारित किया गया था। इसलिए यह मानते हुए कि नोटिस के माध्यम से कार्यवाही शुरू करना गलत था क्योंकि नोटिस वैध नहीं था, फिर भी प्रस्ताव बैंक के निदेशक मंडल के 2/3 सदस्यों द्वारा वैध रूप से पारित किया गया है। यह याद रखना चाहिए कि यदि बोर्ड के दो-तिहाई सदस्य याचिकाकर्ता के विरुद्ध हों तो नियमों के अनुसार उसे अपना पद छोड़ना होगा।"

ड) ***केंद्रीय आयुर्वेदिक विज्ञान अनुसंधान परिषद बनाम बिकर्तन दास 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 99*** के वाद में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की:-

"52. संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत असाधारण क्षेत्राधिकार के प्रयोग का दूसरा प्रमुख सिद्धांत यह है कि किसी मामले में, यदि रिट याचिका में चुनौती दी गई कोई कार्रवाई या आदेश अवैध और अमान्य पाया जाता है, तो भी उच्च न्यायालय अपने असाधारण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए, पक्षकारों के बीच पर्याप्त न्याय करने की दृष्टि से उसे रद्द करने से इनकार कर सकता है। संविधान का अनुच्छेद 226 एक असाधारण उपाय प्रदान करता है, जो अनिवार्य रूप से विवेकाधीन है, हालाँकि यह विधिक क्षति पर आधारित है। रिट न्यायालय, इस लचीली शक्ति का प्रयोग करते हुए, जनहित और समता के आधार पर ऐसे आदेश पारित करने के लिए पूरी तरह स्वतंत्र है। विधिक नियमों को मामले की वास्तविक स्थिति से अलग करके लागू नहीं किया जा सकता। विधि का प्रशासन करते समय, इसमें समता का समावेश होना चाहिए और यदि समतापूर्ण स्थिति विधिक नियमों को सही करने के बाद भी उसे तार्किक निष्कर्ष तक न ले जाने की माँग करती है, तो उच्च न्यायालय अपने कर्तव्य से विमुख होगा यदि वह समतापूर्ण विचार पर ध्यान नहीं देता और अपने असाधारण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए अंतिम आदेश नहीं देता। कोई भी अन्य दृष्टिकोण उच्च न्यायालय को एक सामान्य अपील न्यायालय बना देगा, जो वह नहीं है।"

ढ) धोखाधड़ी हर गंभीर कार्यवाही को दूषित कर देती है और तकनीकी आधार पर धोखेबाज द्वारा किसी भी अधिकार का दावा नहीं किया जा सकता है (देखें: ***एस.पी. चेंगलवरैया नायडू बनाम जगन्नाथ और अन्य, (1994) 1 एससीसी 1, राम चंद्र सिंह बनाम सावित्री देवी, (2003) 8 एससीसी 319, जय नारायण परसरामपुरिया बनाम पुष्पा देवी सराफ (2006) 7 एससीसी 756, मधुकर सदभा शिवार्क मधुकर सदभा शिवारकर बनाम महाराष्ट्र***

राज्य, (2015) 6 एससीसी 557, जल विद्युत निगम बनाम राज कुमार राजिंदर सिंह, (2019) 14 एससीसी 449)

8. उपरोक्त पर विचार किया और अभिलेखों का अवलोकन किया।

9. वाद के निम्नलिखित तथ्यों पर, जो अभिलेखों से सामने आए हैं, समुचित विचार करने के पश्चात्, इस न्यायालय का दृढ़ मत है कि याचिकाकर्ता को 'पट्टा' अवैध रूप से प्रदान किया गया था क्योंकि वह 1950 के अधिनियम की धारा 198 के अनुसार पात्र व्यक्ति नहीं था। ऐसा निम्नलिखित तथ्यों/कारणों से है:-

(i) दिनांक 26.11.1993 को विवादित 'पट्टा' भूमि अर्थात गाटा संख्या 2669 क्षेत्रफल 2 बीघा, ग्राम मेथी टीकुर, परगना एवं तहसील सफीपुर, जिला उन्नाव में स्थित, के संबंध में स्वीकृत किया गया था।

(ii) चूँकि इस निर्णय के प्रस्तर 7(v) में 'प्रतिउत्तर शपथ पत्र' के उद्धृत प्रस्तर में उल्लिखित दस्तावेज़ों से, स्थिति निम्नानुसार प्रकट होती है:-

(क) याचिकाकर्ता ग्राम मेथी टीकुर, परगना एवं तहसील सफीपुर, जिला उन्नाव का निवासी नहीं था, जहाँ विवादित भूमि अर्थात् गाटा संख्या 2669 स्थित है।

(ख) वास्तव में याचिकाकर्ता ग्राम कोरारी खालन, परगना-आसीवन रसूलाबाद, तहसील-हसनगंज, जिला उन्नाव का निवासी था।

(ग) याचिकाकर्ता दिनांक 26.11.1993 (विवादित 'पट्टा' के अनुमोदन की तिथि) को 'भूमिहीन कृषि श्रमिक' नहीं था, क्योंकि उसने दिनांक 10.04.1992, 26.12.1992 और 14.04.1993 के पंजीकृत विक्रय विलेखों के माध्यम से तीन संपत्तियाँ खरीदी थीं।

(iii) याचिकाकर्ता द्वारा पूर्वोक्त तथ्यों का खंडन नहीं किया गया है।

9. इस प्रकार, पूर्वोक्त के मद्देनजर, यह न्यायालय पाता है कि यदि परिसीमा के आधार के साथ-साथ पूर्व निर्णय के सिद्धांत पर आधारित आधार सहित ऊपर बताए गए आधारों पर आक्षेपित आदेश(ओं) में हस्तक्षेप किया जाता है, तो याचिकाकर्ता को 'पट्टा' प्रदान करने में अवैधता पुनर्जीवित हो जाएगी, जो वर्तमान याचिकाकर्ता द्वारा की गई धोखाधड़ी के कारण थी और इस संबंध में सिद्धांत यह है कि धोखाधड़ी हर गंभीर कार्य को निष्प्रभावी कर देती है।

10. तदनुसार, वर्तमान याचिका ***खारिज*** किए जाने योग्य है। इसे खारिज किया जाता है। वाद व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं है।

11. न्यायालय इस निर्णय के प्रारूपण एवं वर्तमान वाद से संबंधित प्रासंगिक निर्णयज विधि के संधान में प्रदान की गई बहुमूल्य सहायता हेतु रिसर्च एसोसिएट सुश्री उर्मिश शंकर के प्रति अपनी सराहना अभिलेखित करता है।

(2025) 4 ILRA 609

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 23.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया

रिट सी संख्या 3684/2024

एवं

रिट सी संख्या 3683/2024

मयूर आहू **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...प्रत्यर्थीगण**

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:
श्री प्रांजल कृष्णा

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता:
मुख्य स्थायी अधिवक्ता

अनुवादित

अकारण आदेश-याचिकाकर्ता का देशी मदिरा के थोक विक्रय की अनुज्ञप्ति को रद्द किया गया- और प्रतिभूति जमा समपहृत कर ली गई- संपूर्ण वाद सहकारी कंपनी से संबंधित एक ट्रक की अवरोधन पर आधारित है- चालक द्वारा दिया गया कथन- बिना किसी सामग्री के जो या तो चालक द्वारा याचिकाकर्ता के विरुद्ध अभिकथित की गई हो या कारण बताओ नोटिस में इस आशय का कोई अभिकथन हो- किसी अभिकथन के अभाव में- अनुज्ञप्ति का रद्दीकरण पूर्णतः मनमाना और अवैध है- आक्षेपित आदेश रद्द किया गया।

रिट याचिका स्वीकृत। (ई-9)

उद्धृत वाद:

1. जय प्रताप सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (रिट-सी संख्या 5098/2017)

(माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता एवं विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया।

2. रिट-सी संख्या 3684/2024 की याचिका दिनांक 27.03.2021 के आदेश को चुनौती देते हुए दायर की गई है जिसके द्वारा, जनपद बदायूं में देशी मदिरा के थोक विक्रय के लिए याचिकाकर्ता की अनुज्ञप्ति को रद्द किया गया है और दिनांक 23.02.2024 का आदेश जिसके द्वारा, रद्दीकरण आदेश के विरुद्ध दायर पुनरीक्षण भी खारिज कर दिया गया है।

3. रिट-सी संख्या 3683/2024 दिनांक 31.03.2021 के आदेश को चुनौती देते हुए दायर की गई है जिसके द्वारा, जनपद संभल में देशी मदिरा के थोक विक्रय के लिए याचिकाकर्ता की अनुज्ञप्ति को रद्द किया गया है और दिनांक 23.02.2024 का आदेश जिसके द्वारा, दायर पुनरीक्षण भी खारिज कर दिया गया है।

4. दोनों याचिकाएं समान आदेशों से उद्भूत हुई हैं, अतः दोनों को इस समान निर्णय के माध्यम से निर्णीत किया जा रहा है।

5. संक्षिप्तता के लिए, रिट-सी संख्या 3684/2024 के तथ्य नोट किए जाते हैं। याचिकाकर्ता कैलेंडर वर्ष 2020-21 के लिए जनपद बदायूं का सीएल-2 अनुज्ञप्तिधारी (थोक विक्रेता) है और इसी प्रकार उसी कैलेंडर वर्ष के लिए जनपद संभल का भी है और *उत्तर प्रदेश आबकारी (देशी मदिरा की थोक बिक्री के लिए अनुज्ञापनों का व्यवस्थापन) (तेरहवां संशोधन) नियमावली, 2020* (संक्षेप में 'नियमावली 2020') के रूप में ज्ञात नियमावली के अनुसार संचालित था। यह दावा किया गया है कि गेट-पास के साथ देशी मदिरा ले के कर के उन्नाव जा रहे कुछ ट्रकों के संबंध में एक गोपनीय सूचना प्राप्त हुई। जांच पर, उक्त ट्रक के चालकों द्वारा कुछ कथन दिए गए और उक्त कथनों के आधार पर, याचिकाकर्ता के परिसर में तलाशी ली गई और दिनांक 04.03.2021 को एक *प्रथम दृष्टया* रिपोर्ट दी गई (रिट याचिका का संलग्नक-2), जिसमें चार विसंगतियां पाई गईं। उक्त किए गए निरीक्षण के संदर्भ में, याचिकाकर्ता को दिनांक 05.03.2021 को एक कारण बताओ नोटिस दिया गया, जिसमें यह इंगित किया गया था कि दिनांक 04.03.2021 को की गई तलाशी के आधार पर, निम्नलिखित विसंगतियां पाई गईं:

> "1- साइनबोर्ड नियमानुसार नहीं लगा पाया गया।
> 2- अभिलेखानुसार स्टाक से 3670 वी/वी तीव्रता व 200 मिली० धारिता के 1980 पौवे कम पाए गए।
> 3- गोदाम कक्ष के अन्दर कैमरे नहीं लगे पाये गए। बाहर लगे दोनों कैमरो की रिकार्डिंग का बैक-अप नहीं रखा गया है। कैमरे की मेमोरी में दिनांक 12.02.2021 से अद्यतन रिकार्डिंग सुरक्षित है। कैमरे का आई.पी. एड्रेस विक्रेता द्वारा उपलब्ध नहीं कराया गया। सम्बन्धित निवास संलग्न है।
> 4-अग्नि सुरक्षा हेतु आवश्यक अग्निशमक यन्त्रों का प्रबन्ध नहीं पाया गया ।"

6. यह भी कहा गया कि ट्रक के अवरोधन पर, उक्त ट्रक के चालक से कुछ जानकारी प्राप्त हुई, जिसमें उसने मदिरा निर्माता द्वारा की गई कुछ अनियमितताओं का संकेत दिया था। यह भी पाया गया कि निर्माता की लेखा बहियों में अनियमितताएं पाई गईं। यह भी पाया गया कि आबकारी अधिनियम की धारा 60 के अंतर्गत प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 97/2021 और भारतीय दंड संहिता की धारा 420, 467, 468, 471, 477-ए के अंतर्गत प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 98/2021 में पंजीकृत प्रथम सूचना रिपोर्टों के अनुसार, यह पाया गया कि

मदिरा अवैध रूप से सीएल-2 गोदामों में परिवहन की जा रही थी और इसके आधार पर यह दृष्टिकोण अपनाया गया कि निर्माता द्वारा निर्मित मदिरा का परिवहन किया जा रहा था, जिसके परिणामस्वरूप राज्य को राजस्व की हानि हुई। यह भी अभिकथित किया गया कि मदिरा निर्माता के साथ मिलीभगत में, अवैध मदिरा पर जाली बारकोड लगाए गए और एक गेट पास से दो बार मदिरा का परिवहन किया गया, जो अवैध था और राज्य सरकार के राजस्व की हानि का कारण बना।

7. यह भी अभिकथन किया गया कि नियमावली 2000 के नियम 16 में निहित उपबंधों के अनुसार याचिकाकर्ता के विरुद्ध कार्रवाई प्रस्तावित की गई थी। याचिकाकर्ता ने उक्त कारण बताओ नोटिस का जवाब दिया, अभिकथनो से प्रत्याख्यान किया और विशेष रूप से कहा कि ट्रक के अवरोधन और चालक के कथनों के आधार पर निकाला गया निष्कर्ष, किसी भी तरह से याचिकाकर्ता को दोषी नहीं ठहराता या उसे प्रश्नगत अपराध से नहीं जोड़ता। यह भी अभिलेख पर है कि तत्पश्चात, याचिकाकर्ता ने रिट कर संख्या 261/2021 दायर करके इलाहाबाद में इस न्यायालय से अनुरोध किया, जिसमें यह अभिवचन किया गया कि कारण बताओ नोटिस में याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए अभिकथन शमनीय थे, तथापि, न्यायालय ने गुणागुण में प्रवेश किए बिना पाया कि याचिकाकर्ता ने पहले ही आयुक्त (आबकारी) से संपर्क किया है और याचिकाकर्ता द्वारा दायर आवेदन पर निर्णय लेने के निर्देश दिए गए। उक्त आदेश दिनांक 25.03.2021 को पारित किया गया। उक्त आदेश पारित होने के पश्चात, उत्तर प्रदेश आबकारी आयुक्त द्वारा दिनांक 27.03.2021 का आदेश पारित किया गया, जो अभिलेख पर संलग्नक-7 के रूप में है। उक्त आदेश के माध्यम से, आयुक्त ने उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश, कारण बताओ नोटिस में लगाए गए अभिकथनो, याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत जवाब को देखा और उसके बाद यह अभिलिखित किया कि कुछ तथ्य न्यायनिर्णयन के लिए प्रासंगिक थे। ऐसा करते हुए, प्रस्तर 4 में, यह अभिलिखित किया गया कि एसआईटी द्वारा एक प्रारंभिक रिपोर्ट के रूप में कुछ रिपोर्ट प्रस्तुत की गई है, जिसमें यह अभिकथन किया गया है कि संबंधित नियमों का उल्लंघन करके मदिरा का परिवहन किया जा रहा है। उक्त रिपोर्ट के आधार पर, एक आदेश पारित किया गया जिसमें यह माना गया कि याचिकाकर्ता को शर्त 1, 4, 10, 21, और 23 के उल्लंघन का दोषी पाया गया और परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता की अनुज्ञप्ति को रद्द कर दिया गया और प्रतिभूति जमा राज्य सरकार में समपहृत कर ली गई। याचिकाकर्ता ने उक्त आदेश को राज्य सरकार के समक्ष पुनरीक्षण दायर करके चुनौती दी, जिसे भी आक्षेपित आदेश दिनांक 23.02.2024 के माध्यम से खारिज कर दिया गया। उक्त आदेश इस न्यायालय के समक्ष चुनौती के अधीन हैं।

8. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का तर्क है कि कारण बताओ नोटिस अस्पष्ट था। याचिकाकर्ता के विरुद्ध कोई विशिष्ट अभिकथन नहीं क़िया गया। वह तर्क देते हैं कि एफआईआर और चालकों के कथनों के आधार पर निकाला गया निष्कर्ष मनमाना था। यह भी तर्क दिया गया है कि आदेश में उल्लिखित याचिकाकर्ता को प्रदत्त अनुज्ञप्ति की किसी भी शर्त का उल्लंघन नहीं किया गया, यहां तक कि तर्क के लिए यदि सभी अभिकथनो को सही माना जाए। यह भी तर्क दिया गया है कि नियमावली 2020 के अनुसार याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए सभी अभिकथन, यद्यपि स्वीकार नहीं किए गए हैं, शमनीय होंगे और इस प्रकार प्रतिभूति समपहृत करने की कार्रवाई विधि में दोषपूर्ण है। वह आगे तर्क देते हैं कि अनुज्ञप्ति रद्द करने के लिए प्रयोग की गई शक्ति

धारा 16 के आदेश के प्रतिकूल है और धारा 16 में उल्लिखित उल्लंघनों में से, जो रद्दीकरण का कारण बन सकते हैं, याचिकाकर्ता के वाद में कभी मौजूद नहीं थे। वह ***अजय प्रताप सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (रिट-सी संख्या 5098/2017)*** के वाद में इस न्यायालय के दिनांक 06.07.2022 के निर्णय पर भरोसा करते हैं। वह इस प्रकार तर्क देते हैं कि प्रतिभूतियों को समपहृत करने का आदेश खारिज किए जाने योग्य है, क्योंकि अनुज्ञप्ति पहले ही समाप्त हो चुकी है जिसे नवीकृत नहीं किया जा सकता।

9. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता यह भी तर्क देते हैं कि जिस एसआईटी रिपोर्ट पर भारी निर्भरता है, उसकी प्रति याचिकाकर्ता को कभी उपलब्ध नहीं कराई गई और न ही उसे कभी दी गई और वास्तव में, उक्त एसआईटी रिपोर्ट रद्दीकरण आदेश पारित होने के बाद दायर की गई थी।

10. विद्वान स्थायी अधिवक्ता, दूसरी ओर, आक्षेपित आदेश को न्यायोचित ठहराते हुए तर्क देते हैं कि लगाए गए अभिकथनो के विस्तृत विश्लेषण के बाद आदेश पारित किया गया है। वह आगे तर्क देते हैं कि चूंकि बेईमान लोगों द्वारा राज्य कोष को भारी नुकसान पहुंचाया गया है, जिसमें याचिकाकर्ता भी शामिल था, राज्य सरकार के हित की रक्षा के लिए उचित कदम उठाए गए। वह आगे तर्क देते हैं कि कुछ अधिकारी भी, जिनके शामिल होने का अभिकथन है, निलंबित हैं और विभागीय कार्यवाही चल रही है। इसके प्रकाश में, वह तर्क देते हैं कि रिट याचिकाएं खारिज किए जाने योग्य हैं।

11. पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत और ऊपर अभिलिखित तर्कों पर विचार करते हुए, यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता को अनुज्ञप्ति में उल्लिखित शर्तों, जो दोनों रिट याचिकाओं में संलग्नक-1 के रूप में निहित हैं, साथ ही नियमावली, जो समय-समय पर बनाए गए और लागू हैं और उत्तर प्रदेश आबकारी (देशी मदिरा की थोक बिक्री के लिए अनुज्ञापनों का व्यवस्थापन) नियमावली, 2020 के अधीन अनुज्ञप्ति प्रदान की गई थी ।

12. कारण बताओ नोटिस के संदर्भ में अनुज्ञप्ति के रद्दीकरण आदेश का अवलोकन प्रकट करता है कि कारण बताओ नोटिस ऊपर अभिलिखित चार अभिकथनो तक सीमित था और नियमावली 2020 के नियम 16 (क), (ख), (ड) और (छ) का उल्लंघन बताया गया था। लगाए गए पांच अभिकथन अनुज्ञप्ति के रद्दीकरण के लिए आवश्यक नहीं हैं, मात्र उल्लंघन हैं, जो नियमों के खंड संख्या 4, 5, 7 और 17 में उल्लिखित शमनीय उल्लंघनों की सूची से संदर्भित हैं। यहां तक कि माल के परिवहन और एक कंपनी का माल ले जा रहे माल की अवरोधन के संबंध में अन्य अभिकथन और उसमें दिए गए कथन, याचिकाकर्ता के विरुद्ध कोई विशिष्ट अभिकथन नहीं लगाया गया था जो नियम 16(1) में उल्लिखित किसी भी खंड के आह्वान को न्यायोचित ठहराए जो अनुज्ञप्ति के रद्दीकरण का कारण बन सकते हैं।

13. यह भी ध्यान देने योग्य है कि रद्दीकरण का आदेश, जो शर्त संख्या 4 के उल्लंघन को अभिलिखित करता है। आदेश अभिलिखित करता है कि देशी मदिरा की थोक आपूर्ति पास पी.डी.-25ए के माध्यम से की जानी थी और उसका अभिलेख रखा जाएगा, यह निष्कर्ष अभिलिखित किया गया कि माल का परिवहन वैध पी.डी.-25ए

के बिना किया गया, जो अनुज्ञप्ति की शर्त संख्या 4 का उल्लंघन था। कारण बताओ नोटिस के संदर्भ में, इस आशय का कोई अभिकथन नहीं लगाया गया था और इस प्रकार, निष्कर्ष कारण बताओ नोटिस में किसी अभिकथन के बिना है या इसे अभिकथित करने के लिए बदनाम किया गया है।

14. आक्षेपित आदेश आगे अभिलिखित करता है कि अनुज्ञप्ति की शर्त संख्या 10 का उल्लंघन हुआ था, जो निर्धारित करती है कि अनुज्ञप्तिधारी नियम 11 के उपबंधों के अनुसार आबकारी आयुक्त द्वारा निर्धारित प्रारूप में तीन प्रतियों में कंप्यूटर जनित परिवहन पास तैयार करेगा और जारी करेगा, जिसमें खुदरा विक्रेता का नाम, जारी करने की तिथि, खरीदी गई मात्रा और शामिल प्रतिफल शुल्क दर्ज किया जाएगा, जबकि याचिकाकर्ता द्वारा इसका उल्लंघन किया गया। उक्त तर्क भी कारण बताओ नोटिस में लगाए गए किसी अभिकथन से रहित है और आक्षेपित आदेश में या तो अभिकथित या अभिलिखित किसी सामग्री के बिना है।

15. रद्दीकरण आदेश पारित करने का तीसरा तर्क शर्त संख्या 21 का उल्लंघन है, जो निर्धारित करती है कि अनुज्ञप्तिधारी अनुज्ञप्ति प्राप्त परिसर के प्रवेश द्वार के पास और गोदाम के भीतर सक्रिय सी.सी.टी.वी. कैमरे लगाएगा जिनकी आसानी से आबकारी मुख्यालय से निगरानी की जा सके, जिसका उल्लंघन याचिकाकर्ता के वाद में पाया गया है। उक्त अभिकथन भी कारण बताओ नोटिस में नहीं लगाया गया था। इस आशय के किसी अभिकथन के अभाव में और उस आधार पर उल्लंघन स्थापित करने के लिए किसी सामग्री के न होने पर, आक्षेपित आदेश पोषणीय नहीं रह सकता है।

16. अभिलिखित अगला तर्क था कि शर्त संख्या 23 का उल्लंघन हुआ था, जो निर्धारित करती है कि उत्तर प्रदेश की आसवनियों या उत्तर प्रदेश में स्थापित अन्य राज्यों के बीडब्ल्यूसीएल-1 अनुज्ञप्ति से देशी शराब की खेप का परिवहन केवल ग्लोबल पोजिशनिंग सिस्टम (जीपीएस) लगे वाहन के माध्यम से ही किया जाएगा। यह अभिलिखित किया गया कि याचिकाकर्ता ने उल्लंघन किया है क्योंकि उसने ऐसे वाहन से मदिरा प्राप्त की जिसमें जीपीएस नहीं था। उक्त निष्कर्ष भी विकृत है और कारण बताओ नोटिस में किसी अभिकथन के बिना या याचिकाकर्ता के विरुद्ध उल्लंघन का अभिकथन लगाने और स्थापित करने के लिए किसी भी सामग्री के बिना है और इस प्रकार कारण बताओ नोटिस में लगाए गए किसी अभिकथन के अभाव में और याचिकाकर्ता के दृष्टांत पर उल्लंघन का अभिकथन लगाने और स्थापित करने के लिए किसी सामग्री के न होने पर, उक्त आदेश पोषणीय नहीं रह सकता था।

17. रद्दीकरण आदेश में अभिलिखित सभी उपरोक्त तर्क याचिकाकर्ता के परिसर में किए गए निरीक्षण में लिए गए प्रतीत होते हैं, तथापि, उन्हें कभी कारण बताओ नोटिस का हिस्सा नहीं बनाया गया और इस प्रकार उल्लंघनों के आधार पर अभिलिखित निष्कर्ष पूर्णतः मनमाना है।

18. पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश, इन पहलुओं पर समग्रता में विचार नहीं करता है। याचिकाकर्ता के विरुद्ध संपूर्ण वाद सहकारी कंपनी लिमिटेड, सहारनपुर से संबंधित एक ट्रक के अवरोधन और उक्त वाहन

के चालक द्वारा दिए गए कथन पर आधारित है बिना किसी सामग्री के जो या तो चालक द्वारा याचिकाकर्ता के विरुद्ध अभिकथित की गई हो या कारण बताओ नोटिस में इस आशय का कोई अभिकथन हो। किसी अभिकथन के अभाव में, अनुज्ञप्ति का रद्दीकरण पूर्णतः मनमाना और अवैध है। इस प्रकार, रिट-सी संख्या 3684/2024 में चुनौती दिए गए दिनांक 27.03.2021 एवं 23.02.2024 के आदेश और रिट-सी संख्या 3683/2024 में चुनौती दिए गए दिनांक 31.03.2021 एवं 23.02.2024 के आदेश पोषणीय नहीं रह सकते और तदनुसार रद्द किए जाते हैं।

19. आक्षेपित आदेश के माध्यम से की गई प्रतिभूति जमा का समपहरण याचिकाकर्ता द्वारा उपयुक्त आवेदन प्रस्तुत करने की तिथि से दो माह की अवधि के भीतर याचिकाकर्ता को लौटा दी जाएगी।

20. अनुज्ञप्ति के रद्दीकरण के समय माल की अवैध अभिग्रहण के कारण याचिकाकर्ता को देय राशि नियमावली के अनुसार याचिकाकर्ता को लौटा दी जाएगी।

21. याचिकाकर्ता रद्दीकरण के समय समपहृत किए गए माल के लिए नियमावली के अनुसार देय धन की वापसी के लिए आयुक्त, केंद्रीय उत्पाद शुल्क के समक्ष उपयुक्त आवेदन प्रस्तुत कर सकता है जिस पर निर्णय लिया जाएगा और यदि संदेय पाया जाता है, तो याचिकाकर्ता को आगे तीन माह की अवधि के भीतर भुगतान किया जाएगा।

22. रिट याचिकाएं उपरोक्त शर्तों के साथ ***स्वीकृत*** की जाती हैं।

(2025) 4 ILRA 614

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 08.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया

रिट - सी सं. 4944/2023

आर.एस. फिलिंग स्टेशन इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लि. खीरी एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लि. एवं अन्य ...प्रत्यर्थीगण

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:

अभिनव त्रिवेदी, अंशुमान सिंह, अशोक कुमार सिंह, गीतिका यादव, राधिका सिंह

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता:
मनीष जौहरी

सुनवाई का अवसर- याचिकाकर्ता को इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन द्वारा खुदरा आउटलेट डीलर के रूप में नियुक्त किया गया था- याचिकाकर्ता के आउटलेट का निरीक्षण भी किया गया- आदेश द्वारा याचिकाकर्ता की खुदरा आउटलेट डीलरशिप समाप्त कर दी गई- स्पष्टीकरण ई-मेल, जिस पर दो आदेशों में भरोसा किया गया, कभी याचिकाकर्ता को आपूर्ति नहीं की गई और कभी कारण बताओ नोटिस में भरोसा किया गया दस्तावेज नहीं बनाया गया-आक्षेपित आदेश रद्द किया गया।

रिट याचिका स्वीकृत। (ई-9)

<u>उद्धृत वाद:</u>

1. पंजाब राज्य बनाम दविंदर पाल सिंह भुल्लर; (2011) 14 एससीसी 770
2. इंडियन ऑयल कॉर्प. लि. बनाम पुल्लारेड्डी सर्विस सेंटर (2021) एससीसी ऑनलाइन एपी 2909
3. मैसर्स चौधरी फिलिंग पॉइंट काजीपुर माध्यम इसके स्वामी एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य द्वारा प्रमुख सचिव, खाद्य एवं नागरिक आपूर्ति एवं अन्य दिनांक 30.01.2019 को विविध खंडपीठ सं. 27043/2018 में निर्णीत
4. इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लि. एवं अन्य बनाम मैसर्स मॉडर्न सर्विस स्टेशन, दिनांक 06.03.2024 को विशेष अपील सं. 456/2023 में निर्णीत
5. मैसर्स लालटू फिलिंग स्टेशन बनाम भारत संघ एवं अन्य; 2016 एससीसी ऑनलाइन कल 626
6. हिंदुस्तान पेट्रोलियम कॉर्प. लि. बनाम सुपर हाईवे सर्विसेज एवं अन्य (2010) 3 एससीसी 321
7. रिट-सी सं. 20271/2018 (मैसर्स महर्षि फिलिंग स्टेशन (इंडियन ऑयल डीलर) बनाम इंडियन ऑयल कॉर्प. लि. उ.प्र. राज्य अधिकारी एवं अन्य
8. मैसर्स किसान सेवा केंद्र सराय दुबौलिया बनाम भारत संघ एवं अन्य; रिट सी सं. 32973/2018
9. मैसर्स श्री राजेंद्र एग्रो सर्विस सेंटर बनाम इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लि. डीबी विशेष अपील रिट सं. 456/2023
10. विशेष अपील सं. 215/2024 (कार्यकारी निदेशक खुदरा एवं विक्रय इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लि. एवं अन्य बनाम मैसर्स मिश्रा ऑटोमोबाइल्स द्वारा जगदीश मिश्रा एवं अन्य)
11. सावित्री देवी एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य; रिट सी सं. 29859/2017

(माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया द्वारा प्रदत्त)

1. सुश्री गीतिका यादव, याचिकाकर्ताओं की विद्वान अधिवक्ता और डॉ. एल.पी. मिश्रा एवं श्री मनीष जौहरी, प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. वर्तमान याचिका याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 12.01.2023 के आदेश को चुनौती देते हुए दायर की गई है जिसके द्वारा इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन के खुदरा आउटलेट डीलर के रूप में याचिकाकर्ता की अनुज्ञप्ति समाप्त कर दिया गया था और साथ ही दिनांक 15.05.2023 के आदेश को जिसके द्वारा उक्त आदेश के विरुद्ध प्रस्तुत अपील खारिज कर दी गई थी।

3. संक्षेप में तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता को इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन (संक्षेप में 'निगम') द्वारा दिनांक 02.12.2005 के नियुक्ति पत्र के माध्यम से बरिहा तारनपुर, जिला लखीमपुर खीरी में एक खुदरा आउटलेट चलाने के लिए खुदरा आउटलेट डीलर के रूप में नियुक्त किया गया था, जिसे याचिकाकर्ता द्वारा मैसर्स आर.एस. फिलिंग स्टेशन के नाम और शैली में चलाया जा रहा था। पक्षकारों के बीच दिनांक 01.04.2006 को एक करार निष्पादित किया गया। यह भी सामान्य आधार है कि याचिकाकर्ता को प्रदान की गई डीलरशिप पक्षकारों के बीच निष्पादित करार और समय-समय पर जारी विपणन अनुशासन दिशानिर्देशों (जिसे आगे "एमडीजी" कहा गया है) द्वारा शासित होती है।

4. अप्रैल, 2017 के महीने में राज्य सरकार द्वारा दिए गए निर्देशों के अनुसरण में, प्राधिकारियों द्वारा विभिन्न पेट्रोल और डीजल आउटलेटों पर शासनादेश में यथा विनिर्दिष्ट निरीक्षण किए गए और दिनांक 31.05.2017 को तीन व्यक्तियों की एक टीम द्वारा याचिकाकर्ता के आउटलेट का भी निरीक्षण किया गया। एक निरीक्षण रिपोर्ट तैयार की गई, जो अभिलेख पर है। यह भी उल्लेखनीय है कि मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा दिनांक 15.06.2017 के संप्रेषण द्वारा निरीक्षण करने के लिए 5 व्यक्तियों की एक टीम गठित करते हुए विस्तृत अनुदेश जारी किए गए थे। तैयार की गई निरीक्षण रिपोर्ट में, यह अभिलिखित किया गया था कि एक निरीक्षण किया गया और मशीनों की जाँच की गई। निरीक्षण के समय, चार वितरण इकाइयाँ (8 नोजल) पाई गईं, जिनमें से 6 नोजल कार्यशील स्थिति में पाए गए। प्रत्येक नोजल से, पेट्रोल और डीजल के 15-15 लीटर निकाले गए और निरीक्षण के बाद, वे उचित वितरण दर्शाते हुए पाए गए। 2 नोजल कार्यशील स्थिति में नहीं पाए गए। नोजलों के पल्सर कार्डों के निरीक्षण पर, 2 पल्सर कार्ड संदिग्ध प्रतीत हुए, जिन्हें जब्त कर लिया गया और अभिरक्षा में ले लिया गया और उन पर एक प्लास्टिक मुहर लगा दी गई।

5. दिनांक 31.05.2017 की निरीक्षण रिपोर्ट के आधार पर, प्रत्यर्थी-निगम ने दिनांक 31.05.2017 का एक पत्र जारी किया जिसमें याचिकाकर्ता से प्रतिक्रिया मांगी गई। उक्त पत्र को "तथ्यान्वेषण पत्र" कहा गया। यह उल्लेख किया गया था कि निरीक्षण के दौरान निम्नलिखित टिप्पणियाँ की गईं और याचिकाकर्ता से 15 दिन की अवधि के भीतर अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने को कहा गया कि निगम के विपणन हित की रक्षा के लिए एमडीजी/डीलरशिप करार के अनुसार कार्रवाई क्यों न की जाए:

"2 पल्सर कार्ड छेड़छाड़ के चिह्न के साथ पाए गए, जिसके कारण 3 नोजल (2 एमएस और 1 एचएसडी) इन 2 पल्सर कार्ड से प्रभावित थे।"

6. याचिकाकर्ता ने दिनांक 15.06.2017 को एक उत्तर प्रस्तुत किया जिसमें अभिकथनों से इनकार किया और निवेदन किया कि मशीनों में कोई अतिरिक्त चिप नहीं पाई गईं, मशीनों की मुहरें अविकल पाई गईं, जाँची गई माप व्यवस्थित पाई गईं और मशीनों का अंशांकन, बाट और माप अधिकारी द्वारा किया गया था और उनके द्वारा एक प्रमाण पत्र जारी किया गया था, इस प्रकार, याचिकाकर्ता को कोई दोष नहीं दिया जा सकता था।
7. पश्चातवर्ती रूप से, याचिकाकर्ता को 30.08.2018 को एक कारण बताओ नोटिस जारी किया गया। उक्त कारण बताओ नोटिस में, अभिकथित प्रथम आरोप यह था कि निरीक्षण के दौरान, खुदरा आउटलेट पर निम्नलिखित अनियमितताएं पाई गईं:

"2 पल्सर कार्ड छेड़छाड़ के चिह्न के साथ पाए गए, जिसके कारण 3 नोजल (2 एमएस और 1 एचएसडी) इन 2 पल्सर कार्ड से प्रभावित थे।"

कारण बताओ नोटिस के साथ निरीक्षण रिपोर्ट की एक प्रति संलग्न की गई थी। यह भी उल्लेख किया गया था कि तथ्यान्वेषण पत्र जारी किया गया था जिसका याचिकाकर्ता ने उत्तर दिया था। यह भी ध्यान दिया गया कि याचिकाकर्ता के उत्तर में उसने पल्सर कार्ड की जाँच रिपोर्ट प्राप्त होने तक कोई कार्रवाई न करने का अनुरोध किया था। यह भी ध्यान दिया कि जिला पूर्ति अधिकारी ने याचिकाकर्ता का डीजल विक्रय अनुज्ञप्ति निलंबित कर दिया था। उक्त कारण बताओ नोटिस में यह इंगित किया गया था कि एमआईडीसीओ कंपनी ने अपने दिनांक 15.06.2018 के पत्र द्वारा निम्नलिखित टिप्पणियों के साथ एक जाँच रिपोर्ट जारी/भेजी थी:

"(I) पल्सर पीसीबी पर आर1 प्रतिरोधक गायब पाया गया।

(II) सी8 कैपेसिटर-लीड पर अतिरिक्त सोल्डर चिह्न देखे गए।

(III) पल्सर पीसीबी के एल4 स्थान पर अतिरिक्त सोल्डर चिह्न देखे गए।"

रिपोर्ट की एक प्रति कारण बताओ नोटिस के साथ संलग्न की गई थी। यह भी अभिलिखित किया गया कि दिनांक 15.06.2017 के उत्तर का अवलोकन करने के बाद, वह प्रत्यर्थी को संतोषजनक/विश्वसनीय प्रतीत नहीं हुआ और याचिकाकर्ता का ध्यान खंड सं. 16, 44, 58(एम) और एमडीजी2012 के यथा संशोधित खंड सं. 5.1.4 की ओर आकर्षित किया गया, जो खंड 8.2 IV के अधीन दंडात्मक कार्रवाई को आकर्षित करता है - गंभीर अनियमितताएँ: प्रथम दृष्टया बर्खास्तगी के अंतर्गत दंडात्मक कार्रवाई की जा सकती है। एमआईडीसीओ द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट का उद्धरण निम्नवत है:

परीक्षण रिपोर्ट

प्राप्त हुआ	**आइटम नंबर 1 - नोजल नंबर 1 के लिए एमआईडीसीओ श्योर फिल**

पॉसीबो डिज़ाइन संदर्भ संख्या	आइटम नंबर 1 - एमआईडी03323B201003

जाँच/प्रस्तरमीटर	**परिणाम**	**टिप्पणियां**
दृश्य निरीक्षण टिप्पणी: परीक्षण के तहत प्राप्त सामग्री को शक्ति प्रदान किए बिना दृश्य निरीक्षण किया गया है।	ठीक नहीं है (टिप्पणियों का संदर्भ देखें)	**मद संख्या** 1 1. पल्सर पीसीबी पर आर1 प्रतिरोधक गायब पाया गया है। 2. सी8 संधारित्र लीड पर अतिरिक्त सोल्डर चिह्न देखे गए। 3. पल्सर पीसीबी के एल4 स्थान पर अतिरिक्त सोल्डर चिह्न देखे गए।
डिलीवरी परीक्षण:	परीक्षण नहीं किया गया (टिप्पणी देखें)	एमआईडीसीओ डिजाइन के अनुरूप न होने के कारण परीक्षण नहीं किया गया।

अनुवादित

दूसरा अभिकथन यह था कि अनियमितता की व्यापक रूप से प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में रिपोर्टिंग की गई है, जिसने आम जनता और ग्राहकों के मन में पूर्वाग्रह उत्पन्न किया है और इस प्रकार निगम की अच्छी छवि और प्रतिष्ठा को धूमिल किया है और यह निगम के विपणन हित के विरुद्ध था।

टिप्पणी:	**पल्सर कार्ड दृश्य निरीक्षण परीक्षण के अनुसार एमआईडीसीओ मानक डिजाइन के अनुरूप नहीं पाया जाता है।**

नोट:	परीक्षण केवल एमआईडीसीओ मानदंडों के अनुसार किए गए हैं।

8. याचिकाकर्ता से 15 दिन की अवधि के भीतर अपना उत्तर दायर करने को कहा गया। यह कहा गया है कि

याचिकाकर्ता ने दिनांक 05.10.2018 को उक्त कारण बताओ नोटिस का एक विस्तृत उत्तर प्रस्तुत किया, जो अभिलेख पर है। यह भी अभिलेख पर है कि मध्यवर्ती अवधि में, याचिकाकर्ता की अनुज्ञप्ति, जो राज्य द्वारा खारिज किया गया था, दिनांक 31.09.2017 को बहाल कर दिया गया। यह अभिलेख पर है कि 2 पल्सर कार्ड, जो दिनांक 31.05.2017 को निरीक्षण टीम द्वारा अभिरक्षा में लिए गए थे, जिला पूर्ति अधिकारी को सौंप दिए गए थे, तथापि, तत्पश्चात, उन्हें निगम द्वारा जिला पूर्ति अधिकारी से ले लिया गया और एक पल्सर कार्ड दिनांक 15.12.2017 को जाँच के लिए मूल उपकरण निर्माता (ओईएम) एमआईडीसीओ को सौंप दिया गया और दूसरा कार्ड दिनांक 08.12.2017 को नोएडा में जाँच के लिए दूसरे ओईएम ड्रेसर वेन को सौंप दिया गया। उक्त दो ओईएम द्वारा दी गई दो रिपोर्टें अभिलेख पर हैं।

9. एमआईडीसीओ की रिपोर्ट को पहले ही ऊपर पुनरुद्धृत किया जा चुका है। दूसरे ओईएम ड्रेसर वेन की रिपोर्ट में, क्षति के कोई चिह्न नहीं पाए गए। उक्त रिपोर्ट ने यह भी अवलोकित किया कि यद्यपि पल्सर पीसीबी परिपथ में सोल्डरिंग चिह्न के निशान देखे गए हैं, तथापि, जाँच के दौरान सभी प्रचालन सामान्य पाए गए।

10. याचिकाकर्ता ने अपनी प्रतिरक्षा में और ओईएम-एमआईडीसीओ की रिपोर्ट को अविश्वसनीय ठहराने के लिए ड्रेसर वेन की रिपोर्ट पर भी भरोसा किया ताकि यह प्रभावित किया जा सके कि मात्र आँख के अनुमान से, यह नहीं माना जा सकता कि कुछ गलत किया गया था, जो दूसरे ड्रेसर वेन (ओईएम) द्वारा यह अभिलिखित करते हुए पुष्ट हुआ कि यद्यपि पल्सर पीसीबी पर सोल्डरिंग के निशान पाए गए, तथापि, जाँच के दौरान सभी प्रचालन सामान्य पाए गए। दूसरे ओईएम ड्रेसर वेन की रिपोर्ट याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 27.11.2018 के अनुपूरक उत्तर के साथ प्रस्तुत की गई थी।

11. यह अभिलेख पर है कि निरीक्षण के बाद, याचिकाकर्ता के विरुद्ध आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3/7 के अधीन एक प्रथम सूचना रिपोर्ट भी दर्ज की गई थी, तथापि, तत्पश्चात, विवेचना अधिकारी द्वारा दिनांक 26.12.2018 को एक अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी, जिसे विचारण न्यायालय द्वारा भी स्वीकार किया गया था। यह अभिलेख पर है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट के समाप्त होने और जिला पूर्ति अधिकारी द्वारा दिनांक 13.09.2017 को आपूर्ति अनुज्ञप्ति बहाल किए जाने के बाद, पेट्रोल आदि की बिक्री प्रत्यर्थीगण द्वारा आपूर्ति की गई और प्रचालन दिनांक 01.07.2017 से अबाधित जारी रहा और एचएसडी की आपूर्ति दिनांक 13.09.2017 से पुनः प्रारंभ की गई।

12. दिनांक 14.03.2019 को प्रत्यर्थी-निगम ने याचिकाकर्ता की खुदरा आउटलेट डीलरशिप को बर्खास्त करने का एक आदेश पारित किया। उक्त बर्खास्तगी आदेश की एक प्रति अभिलेख पर है।

13. दिनांक 14.03.2019 के बर्खास्तगी आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका सं. 9062 (एमबी)/2019 (आर.एस. फिलिंग स्टेशन बनाम इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन एवं अन्य) प्रस्तुत की जिसमें इस न्यायालय ने अपीलीय फोरम द्वारा अंतरिम राहत के आवेदन के निस्तारण तक बर्खास्तगी आदेश के क्रियान्वयन पर रोक लगाकर एक अंतरिम अनुग्रह प्रदान किया और याचिकाकर्ता को विवाद समाधान पैनल के समक्ष अपील दायर करने के लिए निर्देशित किया गया।

14. याचिकाकर्ता ने दिनांक 14.03.2019 के बर्खास्तगी आदेश को चुनौती देते हुए एक अपील प्रस्तुत की। उक्त अपील का दिनांक 15.10.2019 के आदेश द्वारा निस्तारण किया गया, जिसके द्वारा अपीलीय प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता के तर्क को ध्यान में रखते हुए मामले को केवल इस आधार पर प्रतिप्रेषित किया कि दिनांक 14.03.2019 का आदेश पारित करने से पूर्व याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया था और एमडीजी के खंड 8.6 के अधीन यथा उपबंधित व्यक्तिगत सुनवाई प्रदान करने के स्तर से मामले को आगे बढ़ाने का निर्देश दिया। दिनांक 14.03.2019 का आदेश अपास्त कर दिया गया।

15. अपीलीय न्यायालय के उक्त आदेश को याचिकाकर्ता द्वारा रिट-सी सं. 21992/2020 दायर करके चुनौती दी गई, तथापि, उक्त रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान, प्रत्यर्थी सं. 4 द्वारा याचिकाकर्ता को दिनांक 15.10.2019 के प्रतिप्रेषण आदेश के अनुसार व्यक्तिगत सुनवाई प्रदान करने के लिए दिनांक 02.01.2020 नियत करते हुए एक व्यक्तिगत सुनवाई पत्र जारी किया गया। याचिकाकर्ता ने अपने दिनांक 27.12.2019 के पत्र द्वारा शीतकालीन अवकाश के कारण अपने विधिक सलाहकार से संपर्क न कर पाने के तथ्य को देखते हुए स्थगन का अनुरोध किया, तथापि, दिनांक 19.10.2020 को एक आदेश पारित किया गया जिसमें एक बार फिर याचिकाकर्ता के डीलरशिप करार को खारिज कर दिया गया। उक्त समाप्ति आदेश को रिट याचिका सं. 1262 (एमएस)/2020, जो लंबित थी, के अंतिम परिणाम के अधीन किया गया।

16. चूंकि आदेश रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान पारित किया गया था, एक संशोधन आवेदन दायर किया गया जिसे स्वीकृत करते हुए याचिकाकर्ता को रिट याचिका में संशोधन करने की अनुमति दी गई और यह भी ध्यान दिया गया कि पूर्व में रिट-सी सं. 21992/2020 याचिकाकर्ता द्वारा उत्तरवर्ती घटनाक्रमों को देखते हुए वापस ले ली गई थी।

17. रद्दीकरण के आदेश को याचिकाकर्ता द्वारा रिट-सी सं. 1262/2020 में भी चुनौती दी गई। इस न्यायालय ने, मामले की सुनवाई की और दिनांक 31.05.2022 के निर्णय द्वारा रिट याचिका स्वीकृत की। उक्त दिनांक 31.05.2022 के निर्णय को निगम द्वारा इस न्यायालय की खंडपीठ के समक्ष विशेष अपील सं. 307/2022 प्रस्तुत करके चुनौती दी गई। उक्त विशेष अपील का दिनांक 07.09.2022 के निर्णय द्वारा निस्तारण किया गया जिसमें खंडपीठ ने अभिनिर्धारित किया कि वे एकल न्यायाधीश के निर्णय को क़ायम रख रहे हैं और ऊपर किए गए अवलोकनों के आधार पर, संबंधित प्राधिकारी को निम्नलिखित शर्तों में मामले का नए सिरे से निर्णय करने का निर्देश दिया:

"*28. उपरोक्त कारणों से, हम विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 31.05.2022 के निर्णय और आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए प्रवृत्त नहीं हैं। तदनुसार हम उसकी पुष्टि करते हैं।*

29. तथापि, वाद को समाप्त करणे से पूर्व, हम यह भी उचित समझते हैं कि अपीलार्थी -निगम को दिनांक 12.10.2018 की दूसरी रिपोर्ट सहित सभी संगत सामग्री पर विचार करते हुए ऊपर किए गए अवलोकनों के प्रकाश में संपूर्ण मामले पर पुनर्विचार करने और नए सिरे से निर्णय लेने का निर्देश दें।

30. प्रत्यर्थी-निगम का सक्षम प्राधिकारी, इस प्रकार, मामले का नए सिरे से निर्णय ऊपर अवलोकित अनुसार इस आदेश की एक प्रमाणित प्रति प्रत्यर्थी सं. 1-याचिकाकर्ता द्वारा उसके समक्ष प्रस्तुत किए जाने की तिथि से दो माह के भीतर करेगा।

31. हम अपीलार्थी-निगम को संपूर्ण मामले पर <u>नए सिरे से पुनर्विचार करने का निर्देश इस कारण से जारी कर रहे हैं कि दिनांक 12.10.2018 की दूसरी रिपोर्ट के सटीक तात्पर्य का विश्लेषण किया जा सकता है और उक्त रिपोर्ट के प्रभाव पर केवल क्षेत्र के विशेषज्ञों द्वारा विचार किया जा सकता है क्योंकि रिपोर्ट तकनीकी प्रकृति की है जो तकनीकी विशेषज्ञों के विशिष्ट क्षेत्र में आती है।</u>

32. विशेष अपील को, इस प्रकार, उपरोक्त शर्तों में निस्तारित किया जाता है।"

18. कि निगम ने उक्त निर्णय से व्यथित होकर विशेष अनुमति याचिका सं. 17686/2022 प्रस्तुत की जो निम्नलिखित अवलोकनों के साथ निस्तारित की गई:

"चूंकि आक्षेपित आदेश केवल प्रतिप्रेषण पर पुनर्विचार का निर्देश देता है, हम इसमें हस्तक्षेप करने के लिए प्रवृत नहीं हैं। विशेष अनुमति याचिका तदनुसार खारिज की जाती है।

तथापि, हम स्पष्ट करते हैं कि प्रत्यर्थीगण प्रतिप्रेषण पर जाँच के त्वरित निस्तारण में सहयोग करेंगे और जब भी ऐसा करने के लिए बुलाया जाए, उपस्थित रहेंगे।

यह कहना अनावश्यक है कि जाँच करते समय, सक्षम प्राधिकारी दोनों रिपोर्टों के प्रभाव पर विचार करेगा।

हम आगे स्पष्ट करते हैं कि सक्षम प्राधिकारी विद्वान एकल न्यायाधीश या खंडपीठ के आक्षेपित निर्णय में किए गए किसी अवलोकन से प्रभावित हुए बिना आगे बढ़ेगा।"

19. कि इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा दी गई स्वतंत्रता के साथ-साथ माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किए गए अवलोकनों के अनुसार, दिनांक 12.01.2023 को याचिकाकर्ता की डीलरशिप को बर्खास्त करते हुए एक नया आदेश पारित किया गया। याचिकाकर्ता ने उक्त दिनांक 12.01.2023 के आदेश को एक अपील प्रस्तुत करके चुनौती दी, जिसका निर्णय अपीलीय प्राधिकारी द्वारा दिनांक 15.05.2023 के निर्णय द्वारा किया गया जिसके द्वारा अपील खारिज कर दी गई। दिनांक 12.01.2023 और 15.05.2023 के आक्षेपित आदेश वर्तमान रिट याचिका की विषयवस्तु हैं।

20. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता तर्क करते हैं कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 04.11.2022 के आदेश का अनुपालन किया जाना था, तथापि दो ओईएम की रिपोर्टें उनकी राय के लिए तकनीकी विशेषज्ञों

के समक्ष नहीं रखी गईं और कारण बताओ नोटिस में उस आशय का कोई अभिकथन या उसकी पुष्टि के लिए कोई सामग्री न होने के बावजूद निष्कर्ष अभिलिखित किए गए हैं। वह तर्क करती हैं कि यह अभिलिखित किया गया है कि याचिकाकर्ता वितरण में छलसाधन में शामिल रहा होगा, जिसकी न तो ओईएम द्वारा रिपोर्ट की गई थी और न ही उस आशय का कोई कारण बताओ नोटिस तामील किया गया था। वह आगे तर्क करती हैं कि ओईएम की रिपोर्टें खंडपीठ के साथ-साथ सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्देशित अनुसार तकनीकी विशेषज्ञों की किसी जाँच के लिए प्रस्तुत नहीं की गईं। वह आगे तर्क करती हैं कि दोनों आदेशों में यह गलत तरीके से अभिलिखित किया गया है कि चूंकि याचिकाकर्ता द्वारा किए गए नए निवेदनों पर विचार करने का सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कोई निर्देश नहीं था, उन पर कोई विचार नहीं किया गया। वह आगे तर्क करती हैं कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध एकमात्र रिपोर्ट ओईएम, एमआईडीसीओ द्वारा प्रस्तुत की गई थी, जो स्वयं किसी तकनीकी परीक्षण के बिना दृश्य निरीक्षण पर आधारित है, जबकि दूसरे ओईएम ड्रेसर एंड वेन की रिपोर्ट एक तकनीकी परीक्षण पर आधारित है और जब्त किए गए पल्सर कार्डों पर प्रयोगशाला परीक्षण करने के बाद है। वह आगे तर्क करती हैं कि एमआईडीसीओ एक सरकार द्वारा अनुमोदित परीक्षण एजेंसी नहीं है। आगे यह तर्क दिया गया है कि प्रतिवादी निगम ने संयुक्त निरीक्षण रिपोर्ट तथा ड्रेसर और वेन की रिपोर्ट को यह आरोप लगाकर बदलने का प्रयास किया है कि चूंकि यह बताया गया था कि एक चिप हटा दी गई है, इसलिए जब ड्रेसर और वेन द्वारा परीक्षण किया गया था, तो सभी कार्य सामान्य पाए गए थे।

21. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता आगे तर्क करते हैं कि उक्त निष्कर्ष बिना किसी आधार और बिना किसी सामग्री के है और इस सीमा तक विकृत है। वह आगे तर्क करती हैं कि दोनों रिपोर्टों पर विचार करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशों का भी अनुपालन नहीं किया गया है। यह भी तर्क दिया गया है कि एमआईडीसीओ द्वारा प्रत्यर्थी निगम को भेजे गए दिनांक 20.06.2018 के स्पष्टीकरण ई-मेल पर भरोसा करते हुए, जो कभी याचिकाकर्ता को तामील नहीं किया गया और न ही कारण बताओ नोटिस में भरोसा किए गए दस्तावेजों की विषयवस्तु बनाया गया। वह आगे तर्क करती हैं कि एमआईडीसीओ का उक्त ई-मेल (आक्षेपित आदेशों में भरोसा किया गया) एक प्राप्त किया गया दस्तावेज है क्योंकि यह एमआईडीसीओ की रिपोर्ट के अनुरूप नहीं है। वह आगे तर्क करती हैं कि उक्त ई-मेल संयुक्त निरीक्षण रिपोर्ट के विरुद्ध है। वह आगे तर्क करती हैं कि सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय में निर्देशित किया कि जाँच करते समय, प्राधिकारी दोनों रिपोर्टों के प्रभाव पर विचार करेगा और यह भी अभिनिर्धारित किया गया था कि सक्षम प्राधिकारी विद्वान एकल न्यायाधीश या खंडपीठ के निर्णय में किए गए किसी अवलोकन से प्रभावित हुए बिना आगे बढ़ेगा। इस प्रकार, प्राधिकारी के लिए दोनों रिपोर्टों के प्रभाव पर नए सिरे से विचार करना आवश्यक था, जबकि वर्तमान वाद में, दो रिपोर्टों के अलावा अन्य रिपोर्टों के साथ-साथ आदेशों में व्यक्त की गई व्यक्तिगत राय पर विचार करते हुए आदेश पारित किया गया है।

22. यह भी तर्क किया गया है कि वही अपीलीय प्राधिकारी, जिसने आक्षेपित आदेश पारित किया है, **फिरोजाबाद फ्यूल्स एंड सर्विसेज बनाम इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड आगरा** के वाद में अपीलीय प्राधिकारी के रूप में समान मामले का निर्णय करते समय एक भिन्न दृष्टिकोण अपनाया और इस प्रकार, अपीलीय प्राधिकारी द्वारा

पारित दो आदेश एक-दूसरे के विरोधाभासी हैं जहाँ तक ओईएम की रिपोर्ट का प्रभाव संबंधित है। यह भी तर्क किया गया है कि एमडीजी के खंड 8.5.6 के अनुसार, यह आवश्यक है कि तीस दिन की अवधि के भीतर एक कारण बताओ नोटिस जारी किया जाए, जबकि कारण बताओ नोटिस लगभग ढाई माह से अधिक के बाद जारी किया गया, जो स्वयं संपूर्ण कार्यवाही को आरंभ से ही शून्य बनाता है।

23. वह आगे तर्क करती हैं कि संयुक्त निरीक्षण समिति का गठन शासनादेश दिनांक 02.05.2017 के अनुसरण में किया गया था, न कि एम.डी.जी. के उपबंधों के तहत, अतः याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई भी कार्रवाई करने से पहले एम.डी.जी. के खंड 8.7 के तहत प्रक्रिया का पालन करना अनिवार्य है। खंड 8.7 प्रदान करता है कि जहाँ तेल कंपनियों से भिन्न प्राधिकारियों द्वारा निरीक्षण किया गया है, दोषी खुदरा आउटलेट के विरुद्ध कार्रवाई केवल तभी की जाएगी जब कदाचार या अनियमितता "ऐसे प्राधिकारियों द्वारा स्थापित" की जाती है और कोई कार्रवाई "ऐसे प्राधिकारी से सलाह प्राप्त होने पर" की जाएगी। तथापि, याचिकाकर्ता के वाद में, विवेचना अधिकारी द्वारा एक अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत किए जाने और विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा स्वीकार किए जाने के बावजूद, किसी अकल्पनीय कारण से, प्रत्यर्थी निगम ने विवेचना का प्रभार ग्रहण करने की जल्दबाजी में एमडीजी के खंड 8.7 के स्पष्ट उल्लंघन में याचिकाकर्ता के विरुद्ध दंडात्मक कार्रवाई की है।

24. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता विशेष रूप से इस न्यायालय का ध्यान एमडीजी के खंड 5.1.4 की ओर आकर्षित करते हैं यह तर्क करने के लिए कि उक्त उपबंध के अनुसार, अभिकथित 'जोड़ना', 'हटाना', 'प्रतिस्थापन' या 'छलसाधन' 'अनुचित लाभ प्राप्त करने के लिए वितरण में छलसाधन की संभावना' *के साथ* होना चाहिए, जबकि याचिकाकर्ता के मामले में, स्वीकृत रूप से न तो बिक्री कम थी, न वितरण में छलसाधन था और न ही वे अभिकथित किए गए थे, और इस प्रकार खंड 5.1.4 पर भरोसा अनुचित है। याचिकाकर्ता द्वारा यह भी तर्क किया गया है कि अपील प्रस्तुत करने के लिए किया गया 50% पूर्व-जमा भी याचिकाकर्ता को वापस किए जाने योग्य है।

25. याचिकाकर्ता ने **पंजाब राज्य बनाम दविंदर पाल सिंह भुल्लर; 2011 (14) एससीसी 770** के वाद में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर अपने तर्कों के समर्थन में भरोसा किया है कि जब नींव गिरती है, तो संपूर्ण अधिरचना गिर जाती है। वह तर्क करती हैं कि जब प्रारंभिक निरीक्षण दिनांक 02.05.2017 के शासनादेश के बाहर था, उक्त निरीक्षण के आधार पर कोई आगे की कार्यवाही नहीं की जा सकती थी। वह आगे तर्क करती हैं कि चूंकि खुदरा आउटलेट पर मुहरें बाट और माप विभाग द्वारा लगाई गई थीं, उक्त मुहरों के साथ छेड़छाड़ का कोई अभिकथन न होने पर, इसलिए इस आधार पर याचिकाकर्ता पर कोई दोष नहीं लगाया जा सकता क्योंकि याचिकाकर्ता उस संबंध में मुहरों के साथ छेड़छाड़ किए बिना मशीनरी तक कभी पहुँच ही नहीं सकता था। **इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम पुल्लारेड्डी सर्विस सेंटर; 2021 एससीसी ऑनलाइन एपी 2909 और मैसर्स चौधरी फिलिंग पॉइंट एवं उत्तर प्रदेश राज्य [विविध खंडपीठ सं. 2703/2018] और आईओसीएल बनाम मैसर्स मॉडर्न सर्विस स्टेशन [विशेष अपील सं. 456/2023]** के वाद में निर्णय पर भरोसा किया गया है।

26. वह आगे तर्क करती हैं कि की गई जाँच विधिक माप विज्ञान अधिनियम, 2009 और आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 में निहित उपबंधों के प्रतिकूल है। वह अंत में तर्क करती हैं कि जिस रीति से डीलरशिप समाप्त की गई है वह विधि के प्रतिकूल है और याचिकाकर्ता की आजीविका को प्रभावित करती है इस प्रकार, **हिंदुस्तान पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम सुपर हाईवे सर्विसेज (2010) 3 एससीसी 321** के वाद में अभिनिर्धारित अनुसार इसकी कड़ी व्याख्या की आवश्यकता है। उक्त के प्रकाश में, यह तर्क किया गया है कि रिट याचिका स्वीकृत किए जाने योग्य है।

27. प्रत्यर्थी निगम के अधिवक्ता डॉ. एल.पी. मिश्रा श्री मनीष जौहरी की सहायता से तर्क करते हैं कि जनहित याचिका (सिविल) सं. 10652/2017 में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्देशों के प्रकाश में, याचिकाकर्ता की डीलरशिप सहित राज्यव्यापी निरीक्षण अभियान चलाया गया। यह तर्क किया गया है कि संयुक्त निरीक्षण में, दो वितरण इकाइयों में, प्रथम दृष्टया, पल्सर कार्डों में छेड़छाड़ पाई गई जैसा कि कारण बताओ नोटिस में इंगित किया गया था। यह भी तर्क किया गया है कि दो पल्सर कार्ड, जो संदिग्ध पाए गए थे, जाँच के लिए लिए गए थे और एक तथ्यान्वेषण पत्र भी याचिकाकर्ता को तामील किया गया था। यह निवेदन किया गया है कि रिपोर्टें ओईएम एमआईडीसीओ से प्राप्त की गईं जिसने अपना निष्कर्ष अभिलिखित किया था, जैसा कि याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा भी भरोसा किया गया है।

28. रिट याचिका, विशेष अपील के साथ-साथ विशेष अनुमति याचिका के दायर करने के संबंध में अन्य तर्कों को प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता द्वारा दोहराया गया है। यह तर्क किया गया है कि सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अनुपालन में, दिनांक 12.01.2023 के आदेश ने, दोनों रिपोर्टों के प्रभाव पर पर्याप्त रूप से विस्तार से विचार किया जैसा कि आक्षेपित आदेशों से स्पष्ट है। यह भी तर्क किया गया है कि यह तर्क कि विशेषज्ञ से कोई राय नहीं ली गई थी, उच्च न्यायालय द्वारा विशेष अपील में पारित अपने आदेश में किया गया एक अवलोकन था जबकि सर्वोच्च न्यायालय ने विशिष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया था कि निगम विद्वान एकल न्यायाधीश या खंडपीठ द्वारा किए गए किसी अवलोकन से प्रभावित नहीं होगा।

29. उसी अपीलीय प्राधिकारी द्वारा उसके द्वारा निर्णीत दो अपीलों में दो विरोधाभासी दृष्टिकोण अपनाए जाने के निवेदन के संबंध में, यह तर्क किया गया है कि वह भिन्न तथ्यों पर आधारित था। यह भी तर्क किया गया है कि किसी भी स्थिति में, याचिकाकर्ता उसी अपीलीय फोरम द्वारा पारित दूसरे आदेश के साथ नकारात्मक समानता का अभिवचन नहीं कर सकता। वह आगे तर्क करते हैं कि ड्रेसर एंड वेन की रिपोर्ट में भी, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि उक्त ओईएम ने विशिष्ट अवलोकन किया है कि पल्सर यूनिट में छेड़छाड़ थी और यह वही उत्पाद नहीं था जो कंपनी द्वारा मूल रूप से स्थापित किया गया था। वह आगे तर्क करते हैं कि एमआईडीसीओ द्वारा जारी स्पष्टीकरण ई-मेल याचिकाकर्ता को वर्ष 2019 में अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष मामले का विरोध करते समय संप्रेषित किया गया था और स्पष्टीकरण ई-मेल की विषयवस्तु का उत्तर देने का उचित अवसर याचिकाकर्ता को दिया गया था लेकिन याचिकाकर्ता ने प्रतिक्रिया नहीं दी।

30. प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया है:

i. एसएलपी (सी) सं. 33100/2015 से उद्भूत सिविल अपील सं. 6748/2018 (इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लि. एवं अन्य बनाम टी. नटराजन)।

ii. 2017 एससीसी ऑनलाइन इला 2912; (2018) 127 एएलआर 692; ईसीआई एसपीआईसी एसएमओ एमसीएमएल (जेवी) बनाम केंद्रीय रेलवे विद्युतीकरण संगठन एवं अन्य।

iii. रिट सी सं. 20271/2018; मैसर्स महर्षि फिलिंग स्टेशन (इंडियन ऑयल डीलर) बनाम इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लि. उ.प्र. राज्य अधिकारी एवं अन्य।

iv. रिट-सी सं. 32973/2018; मैसर्स किसान सेवा केंद्र, सराय दुबौलिया बनाम भारत संघ एवं 3 अन्य।

v. राजस्थान उच्च न्यायालय, जोधपुर पीठ; डीबी विशेष अपील रिट सं. 456/2023 (मैसर्स श्री राजेंद्र एग्रो सर्विस सेंटर माध्यम इसके स्वामी बनाम इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लि. माध्यम इसके मुख्य प्रबंधक एवं 02 अन्य)।

vi. विशेष अपील सं. 215/2024 (कार्यकारी निदेशक खुदरा एवं विक्रय इंडियन ऑयल कं. लि. एवं 2 अन्य बनाम मैसर्स मिश्रा ऑटो-मोबाइल्स माध्यम जगदीश मिश्रा एवं 2 अन्य)।

vii. रिट-सी सं. 29859/2017 (सावित्री देवी एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं चार अन्य)।

viii. रिट-सी सं. 16611/2021; (एस.जे. लाल फिलिंग स्टेशन इंडियन ऑयल खुदरा आउटलेट एवं अन्य बनाम इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लि. एवं अन्य)।

31. उक्त निवेदनों के प्रकाश में, यह तर्क किया गया है कि रिट याचिका खारिज किए जाने के लिए बाध्य है और तदनुसार खारिज की जानी चाहिए।

32. न्यायालय में उठाए गए तर्कों पर विचार करने से पूर्व, यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि पक्षकारों के बीच करार निष्पादित किया गया था जो दिनांक 03.08.2018 को यथा संशोधित दिनांक 08.01.2013 से प्रभावी विपणन अनुशासन दिशानिर्देश (एमडीजी) के उपबंधों की प्रयोज्यता प्रदान करता था, उन पर याचिकाकर्ता द्वारा भी भरोसा किया गया है और संलग्नक सं. 4 के रूप में दायर किया गया है। प्रति शपथ पत्र में, कोई अभिवचन नहीं है कि दिनांक 03.08.2018 को संशोधित दिनांक 08.01.2013 का उक्त एमडीजी लागू नहीं है। उस आशय का विशिष्ट कथन याचिकाकर्ता द्वारा रिट याचिका के प्रस्तर 10 में किया गया है और प्रति शपथ पत्र के प्रस्तर 30 में, यह अभिलिखित किया गया है कि उक्त प्रस्तर का कोई उत्तर आवश्यक नहीं है।

33. विपणन अनुशासन दिशानिर्देशों का प्रस्तर 5.1.4 यहाँ निम्नवत उद्धृत किया जा रहा है:

5.1.4 वितरण इकाइयों में पाए गए अतिरिक्त/अनधिकृत फिटिंग/गियर/वितरण इकाई के साथ छेड़छाड़ - वितरण इकाई में लगी पाई गई कोई यांत्रिकी/फिटिंग/गियर जो वितरण में छलसाधन करने की संभावना रखती है।

वितरण इकाई के किसी भाग में जिसमें कोई यांत्रिकी, गियर, माइक्रोप्रोसेसर चिप/इलेक्ट्रॉनिक पार्ट्स/ओईएम सॉफ्टवेयर शामिल हैं, जोड़ना, हटाना, प्रतिस्थापन या छलसाधन को वितरण इकाई के साथ छेड़छाड़ माना जाएगा।

ऐसे वादों में, मूल उपकरण निर्माता के विचार और स्वतंत्र राय प्राप्त की जाएगी और उपयुक्त निर्णय लिया जाएगा।

इस अनियमितता के वाद में संबंधित वितरण इकाई से बिक्री निलंबित की जाए, डीयू सील की जाए। सभी उत्पादों के नमूने लिए जाएं और जाँच के लिए प्रयोगशाला को भेजे जाएं।"

34. यह भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि विपणन अनुशासन दिशानिर्देशों के अनुसार, जो स्वीकृत रूप से पक्षकारों के बीच निष्पादित करार पर लागू हैं और निर्णय लेने का आधार हैं। एमडीजी के प्रस्तर 8.7 के उपबंधों को भी ध्यान में रखना आवश्यक है जो निम्नवत हैं:

"विद्यमान विधियों, नियंत्रण आदेशों आदि के अधीन, तेल कंपनी अधिकारियों के अतिरिक्त केंद्र सरकार/राज्य सरकार के विभिन्न प्राधिकारी, अधिनियम/नियम ऐसी विधियों/नियंत्रण आदेश के अनुपालन का निर्धारण और सुनिश्चित करने के लिए डीलरशिप की जाँच करने के लिए सशक्त हैं। यदि जाँच के बाद ऐसे प्राधिकारियों द्वारा कोई "कदाचार या अनियमितता" स्थापित की जाती है, तो उसे भी इन दिशानिर्देशों के अधीन एक "कदाचार या अनियमितता" माना जाएगा और ऐसे प्राधिकारी से सलाह प्राप्त होने पर तेल कंपनी द्वारा निर्धारित कार्रवाई की जाएगी।"

35. एमडीजी के अनुसार निगम कार्रवाई करने के लिए प्राधिकृत है, जो दो तरीकों से प्रारंभ होती है, पहला राज्य सरकार द्वारा की गई कार्रवाई जब वे कदाचार या अनियमितता देखते हैं, एमडीजी के अधीन निर्धारण के अनुसार ऐसे प्राधिकारी से सलाह प्राप्त होने के आधार पर कार्रवाई की जा सकती है। दूसरा तरीका जिससे कार्यवाही प्रारंभ की जा सकती है, वह स्वयं निगम द्वारा है, जब कदाचार या अनियमितता उसके ध्यान में लाई जाती है।

36. वर्तमान वाद में, यद्यपि राज्य सरकार ने पहली कार्यवाही की थी और कदाचार या अनियमितता देखी थी, तथापि वर्तमान वाद में याचिकाकर्ता के विरुद्ध कार्रवाई निगम द्वारा, एमडीजी के प्रस्तर 5.1.4 में निहित उपबंधों के अनुसार उनके पास उपलब्ध सामग्री के आधार पर की गई है, इस प्रकार उस सीमा तक याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का पहला निवेदन कि समिति का गठन, जिसने पहली बार निरीक्षण किया था, शासनादेश के अधीन यथा निर्धारित उचित रूप से गठित नहीं किया गया था, खारिज किए जाने योग्य है और तदनुसार खारिज किया जाता है।

37. विचार के लिए उठने वाला दूसरा विवाद्यक मामले को प्रतिप्रेषित करते समय सर्वोच्च न्यायालय का अधिदेश है। मुकदमेबाजी के पिछले दौर में पारित तीन आदेशों के अवलोकन पर, जो प्रकट होता है वह यह है कि दिनांक 31.05.2022 के निर्णय द्वारा, रिट याचिका स्वीकृत की गई थी। दिनांक 07.09.2022 के विशेष

अपील के निर्णय में, विशेष अपील न्यायालय ने विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय पर ध्यान दिया था और उसकी पुष्टि की थी, तथापि, निगम को किए गए अवलोकनों के प्रकाश में और दिनांक 21.10.2018 की दूसरी रिपोर्ट सहित सभी सामग्री पर विचार करने के बाद संपूर्ण मामले पर पुनर्विचार करने की स्वतंत्रता दी गई थी और नए सिरे से निर्णय लेने की स्वतंत्रता थी।

38. सर्वोच्च न्यायालय ने अपने दिनांक 04.11.2022 के निर्णय में, जैसा कि ऊपर के प्रस्तर में अभिलिखित है, यह स्पष्ट किया है कि विशेष अपीलीय न्यायालय द्वारा दिए गए निर्देश के अतिरिक्त, यह स्पष्ट किया गया था कि प्राधिकारी दोनों रिपोर्टों के प्रभाव पर विचार करेगा और आक्षेपित निर्णय में किए गए किसी अवलोकन से प्रभावित नहीं होगा।

39. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय का शुद्ध प्रभाव यह है कि जबकि सर्वोच्च न्यायालय ने व्यक्त किया था कि उसे विशेष अपील निर्णय में हस्तक्षेप करने की कोई प्रवृत्ति नहीं थी, तथापि, स्पष्टीकरण के रूप में, यह निर्देशित किया गया था कि प्रतिप्रेषण पर, उपयुक्त प्राधिकारी दोनों रिपोर्टों के प्रभाव पर विचार करने के लिए सक्षम होगा और रिट न्यायालय या विशेष अपील न्यायालय के किसी अवलोकन से प्रभावित नहीं होगा।

40. उक्त स्पष्टीकरण तथा विशेष अपीलीय न्यायालय द्वारा दिए गए निर्देशों के अनुसार, निगम के लिए नए आदेश पारित करना संभव था।

41. अनुज्ञापन प्राधिकारी द्वारा प्रथम अवसर पर पारित आदेश उन सभी सामग्रियों को अभिलिखित करता है जिन्होंने विशेष अपील न्यायालय के साथ-साथ सर्वोच्च न्यायालय के आदेश को पारित करने की ओर ले गई और याचिकाकर्ता द्वारा दायर किए गए अतिरिक्त लिखित निवेदनों पर विचार करते हुए, यद्यपि यह अवलोकित किया गया कि यद्यपि निर्धारण प्राधिकारी अतिरिक्त लिखित तर्कों पर विचार करने के लिए बाध्य नहीं था, तथापि किसी बाहुल्यता से बचने के लिए, उन पर पुनर्विचार किया जा रहा था। आदेश ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि प्रथम अवसर पर याचिकाकर्ता को जारी किए गए कारण बताओ नोटिस में, वह एमआईडीसीओ की रिपोर्ट पर आधारित था और निगम ने दूसरी रिपोर्ट के आधार पर याचिकाकर्ता के विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं की यद्यपि वह विधिक रूप से ऐसा करने का हकदार था। आदेश आगे अभिलिखित करता है कि कार्रवाई एमआईडीसीओ द्वारा दी गई रिपोर्ट के साथ-साथ ओईएम एमआईडीसीओ द्वारा अपने स्पष्टीकरण ई-मेल के माध्यम से दिए गए आगे के स्पष्टीकरण के आधार पर की जा रही थी।

42. एनआईटी कर्नाटक की रिपोर्ट पर भरोसा करते हुए याचिकाकर्ता के तर्क को खारिज कर दिया गया। ओईएम एमआईडीसीओ की रिपोर्ट का विश्लेषण किया गया और अभिनिर्धारित किया गया कि दिनांक 15.06.2018 की जाँच रिपोर्ट और दिनांक 20.06.2018 के स्पष्टीकरण ई-मेल की टिप्पणियों/टिप्पणों/निष्कर्ष के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि एमआईडीसीओ निर्मित पल्सर कार्ड में एक निश्चित छेड़छाड़ थी। दूसरे ओईएम की रिपोर्ट

अनुवादित

पर भी विचार किया गया, यद्यपि वह रद्दीकरण आदेश पारित करने का आधार नहीं था। मैसर्स ड्रेसर वेन की ओईएम रिपोर्ट पर विचार किया गया और निम्नवत अवलोकित किया गया:

"इसके अतिरिक्त, ओईएम - ड्रेसर वेन (अर्थात जीईएमएस) द्वारा किए गए अवलोकनों के संबंध में कि 'जाँच के दौरान सभी प्रचालन सामान्य पाए गए, यह उल्लेखनीय है कि इलेक्ट्रॉनिक चिप्स ने व्यतिक्रमी या दोषी डीलरों के बीच ठीक इसी कारण से लोकप्रियता प्राप्त की थी कि जब तक डीलर अपने कब्जे में रिमोट का प्रयोग वितरण कम करने के लिए नहीं करता था, पल्सर कार्ड का वितरण और कार्य सामान्य था। डीलर रिमोट की सहायता से कार्यों को नियंत्रित करते थे, जिसका पता एसटीएफ द्वारा की गई छापेमारी में चला। तथापि, जब उक्त छापेमारी की मीडिया में व्यापक रूप से प्रचार-प्रसार किया गया, दोषी डीलरों ने इलेक्ट्रॉनिक चिप्स हटा दीं जिससे सोल्डरिंग चिह्न/निशान छूट गए, जैसा कि वर्तमान वाद में पल्सर कार्डों पर पाया गया। इसलिए, जब ड्रेसर वेन पल्सर कार्ड का प्रयोगशाला में परीक्षण किया गया, तो पाया गया कि उस पर कोई नकली इलेक्ट्रॉनिक चिप नहीं है, तथा सभी कार्य सामान्य रूप से किए गए। मात्र इसलिए कि जाँच सामान्य पाई गई, इसका अर्थ यह नहीं होगा कि पल्सर कार्ड के साथ कोई छेड़छाड़ नहीं की गई थी। यह दोहराया जाता है कि ओईएम - ड्रेसर वेन ने राय दी थी (केवल पल्सर कार्ड के जाँच परिणाम देखने के बाद) कि पल्सर कार्ड पर सोल्डरिंग चिह्न इंगित करते हैं कि एक बाहरी तार को उसके पल्सर कार्ड पर सोल्डर किया गया था और हटाया गया था। इस प्रकार, यह स्पष्ट करते हुए कि ड्रेसर वेन पल्सर कार्ड के साथ छेड़छाड़ की गई थी और एमडीजी एवं डीलरशिप करार के अधीन आपकी डीलरशिप के विरुद्ध उपयुक्त कार्रवाई (अर्थात बर्खास्तगी) की जा सकती है।

उपरोक्त दो भिन्न ओईएम द्वारा अपने स्वयं के उपकरणों (अर्थात पल्सर कार्ड) के संबंध में दी गई दो अलग जाँच रिपोर्टों को देखते हुए, यह स्पष्ट है कि:

(क) उक्त दोनों रिपोर्टें पूर्णतः भिन्न और एक-दूसरे से स्वतंत्र हैं और उनके बीच कोई अतिव्यापन नहीं हो सकता।

(ख) दोनों ओईएम ने उन्हें आपूर्ति किए गए दो अलग पल्सर कार्डों की स्वतंत्र रूप से अपनी जाँच/निरीक्षण किया है, जिसके बाद दोनों ओईएम ने राय दी/निष्कर्ष निकाला है कि पल्सर कार्डों के साथ कुछ छलसाधन/छेड़छाड़ की गई है।

(ग) उक्त प्रत्येक रिपोर्ट स्पष्ट रूप से इंगित करती है कि उक्त दोनों इकाइयों के पल्सर कार्डों में छेड़छाड़ की गई है और उक्त दोनों इकाइयों के पल्सर कार्डों में सोल्डरिंग चिह्न/निशान पाए गए जो इस प्रकार स्पष्ट रूप से इंगित करते हैं कि पल्सर कार्डों से एक चिप हटाई गई थी और जहाँ से उक्त चिप हटाई गई/प्रतिस्थापित की गई थी वहाँ तत्पश्चात सोल्डर किया गया था।

(घ) प्रत्येक रिपोर्ट स्वयं में एक पृथक और स्वतंत्र वाद हेतुक गठित करती है, जिसके लिए खंड 15, 16, 44, 58(i) एवं (m) के साथ पठित एमडीजी के खंड 5.1.4 एवं 8.2 iv. के अधीन कार्रवाई (अर्थात समाप्ति) पृथक रूप से और/या संचयी रूप से की जा सकती है।"

यह भी अवलोकित किया गया कि एमआईडीसीओ की जाँच रिपोर्ट और दिनांक 20.06.2018 को प्राप्त स्पष्टीकरण ई-मेल के अनुसार, पहला कारण बताओ नोटिस निगम द्वारा दिनांक 30.08.2018 को जारी किया जा सकता

था। यह भी अवलोकित किया गया कि डीयू के एक इलेक्ट्रॉनिक घटक के साथ छेड़छाड़ को एमडीजी के खंड 5.1.4 के अधीन छेड़छाड़ माना जाएगा, इस प्रकार, दिनांक 12.01.2023 को डीलरशिप को समाप्त करते हुए नया आदेश पारित किया गया। एमआईडीसीओ की रिपोर्ट और स्पष्टीकरण ई-मेल मूल रूप से रद्दीकरण का आदेश पारित करने का आधार हैं।

43. अपीलीय आदेश निवेदनों को अभिलिखित करता है और श्री विज्ञान कुमार, निगम के कार्यकारी निदेशक द्वारा अपीलीय प्राधिकारी के रूप में निम्नलिखित कारणों से अपील को खारिज करते हुए निर्णीत किया गया:

क. उपरोक्त विवेचनाओं से, यह स्पष्ट है कि वर्तमान वाद एमडीजी के खंड 5.1.4 में उल्लिखित अनियमितताओं से संबंधित है और कि उक्त अनियमितताएं ओईएम द्वारा स्थापित की गई हैं जैसा कि उनकी रिपोर्टों में परिलक्षित है। दो ओईएम की दो रिपोर्टों से संबंधित कोई नया तथ्य अपीलार्थी-डीलर द्वारा प्रस्तुत नहीं किया गया है। निःसंदेह एक आरओ डीलर निगम द्वारा प्रदान किए गए डीयू सहित उपकरणों का अभिरक्षक है और डीयू में पाई गई कोई छेड़छाड़ आरओ डीलर की जिम्मेदारी है और डीलर के अलावा कोई अन्य उसके साथ छेड़छाड़ से लाभान्वित नहीं होता है। वास्तव में, आम जनता को हानि होती है और उक्त छेड़छाड़ के कारण धोखा दिया जाता है, जिससे प्रत्यर्थी निगम की साख को हानि होती है। डीयू के साथ छेड़छाड़ एमडीजी 2012 में परिभाषित एक गंभीर अनियमितता है। यदि किसी डीयू में किसी प्रकार की छेड़छाड़ देखी जाती है तो डीयू के मेक और मॉडल पर ध्यान दिए बिना डीलरशिप करार के साथ-साथ एमडीजी 2012 के अनुसार कार्रवाई की जानी चाहिए।

ख. डीलर को पक्षकारों के बीच निष्पादित डीलरशिप करार के निबंधनों के अनुसार खुदरा आउटलेट का संचालन करना है। डीलरशिप करार के अनुसार, वितरण इकाई के उपकरणों की देखभाल करना डीलर की जिम्मेदारी है। निगम की लिखित में पूर्व अनुमति/प्राधिकार के बिना डीलर द्वारा उपकरणों की कोई मरम्मत नहीं की जाएगी। डीलर उपकरण या वितरण इकाई के किसी भाग में हस्तक्षेप नहीं कर सकता या उसे समायोजित करने का प्रयास नहीं कर सकता।

ग. स्वीकृत रूप से निरीक्षण की तिथि को, दोनों वितरण इकाइयों के घटकों में छेड़छाड़ के संबंध में अनियमितताएं देखी गईं और उसे संयुक्त निरीक्षण रिपोर्ट में अभिलिखित किया गया। ये अनियमितताएं ओईएम रिपोर्टों के माध्यम से भी स्थापित की गईं।

घ. बाट एवं माप विभाग की मुहरें अविकल पाई जाना और कम आपूर्ति का कोई अभिकथन न होना, विपणन अनुशासन दिशानिर्देश, 2012 के संशोधित उपबंधों को देखते हुए प्रासंगिक नहीं हैं।

ङ. यह तर्क कि कम आपूर्ति और अपीलार्थी द्वारा किसी अवैध लाभ का कोई अभिकथन नहीं है, केवल इसलिए स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि मुहरें अविकल पाई गईं या उस समय वितरण इकाई से वितरण सही पाया गया। यह ध्यान में रखा जाना है कि एमडीजी 2012 के खंड 5.1.4 के प्रकाश में निरीक्षण के दौरान पता लगाई गई और ओईएम रिपोर्ट में स्थापित अनियमितताओं के तथ्य पर इसका कोई प्रभाव नहीं है।

च. आर1 प्रतिरोधक के संबंध में तर्क को ओईएम द्वारा पहले ही स्पष्ट कर दिया गया है कि चूंकि पल्सर पीसीबी/कार्ड पर अतिरिक्त/असामान्य सोल्डर चिह्न थे जो ओईएम के मानक डिजाइन के अनुसार नहीं हैं, वह स्पष्ट रूप से उक्त पल्सर यूनिट में छलसाधन/छेड़छाड़ की ओर इंगित करता है।

छ. याचिकाकर्ता डीलरशिप करार के अनुसार वितरण इकाइयों का अभिरक्षक था इसके अतिरिक्त खुदरा आउटलेट परिसर भी उसके नियंत्रण में था। नियंत्रण कार्ड या उस पर किसी फिटिंग के साथ कोई छेड़छाड़ अपीलार्थी-डीलर की जानकारी/संलिप्तता के बिना नहीं की जा सकती थी। अतः, खुदरा आउटलेट, परिसर में किए गए कार्यों की उसकी जिम्मेदारी किसी अन्य व्यक्ति पर स्थानांतरित नहीं की जा सकती।

43. अभिलिखित निष्कर्षों के प्रकाश में, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का एक निवेदन है कि कारण बताओ नोटिस तीस दिन के अंतराल के बाद जारी किया गया था, जो विनियमों के प्रतिकूल है और इस प्रकार, संपूर्ण कार्यवाही को विधि की दृष्टि से त्रुटिपूर्ण बनाता है, आगे खारिज किए जाने योग्य है क्योंकि उसे अनिवार्य नहीं माना जा सकता क्योंकि तीस दिन के भीतर कारण बताओ नोटिस जारी न करने का कोई परिणाम, दिशानिर्देशों के अधीन निर्धारित नहीं है, इस प्रकार, वह स्पष्ट रूप से निदेशात्मक प्रकृति का है और मात्र इसलिए कि कारण बताओ नोटिस जारी करने में कुछ विलंब था, याचिकाकर्ता का तर्क कि संपूर्ण कार्यवाही विधि में दूषित हो जाती है खारिज किए जाने योग्य है और तदनुसार खारिज किया जाता है।

44. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का तर्क कि अपीलीय प्राधिकारी ने दो खुदरा आउटलेट के संबंध में समान रिपोर्ट के आधार पर अपीलीय प्राधिकारी के रूप में कार्य करते हुए दो भिन्न दृष्टिकोण अपनाए हैं, पर विचार किया जाना है। वही अपीलीय प्राधिकारी नामतः श्री विज्ञान कुमार ने एक **फिरोजाबाद फ्यूल्स एंड सर्विसेज** द्वारा दायर की गई अपील का निर्णय करते हुए, उस खुदरा आउटलेट के संबंध में भी ओईएम की रिपोर्ट पर विचार किया और ओईएम की रिपोर्ट को निम्नवत अभिलिखित किया:

"इस बीच, डीयू के पल्सर कार्ड अर्थात 1204135 (ए1) और 13020600503 (ए2) जो डीयू से निकाले गए थे और प्रयोगशाला जाँच के लिए भेजे गए थे। ओईएम रिपोर्ट ने कहा कि पल्सर कार्डों में छेड़छाड़ की जा सकती थी। ओईएम ने अपनी रिपोर्टर संदर्भ: 18001 दिनांक 28.03.2018 द्वारा निम्नवत कहा है:-

"पल्सर कार्ड ए1 और पल्सर कार्ड ए2 काम नहीं कर रहे हैं। यू3आईसी पिन ठीक से सोल्डर नहीं किए गए हैं और पैड क्षतिग्रस्त हैं। यह गिलबार्को द्वारा अपनाई जाने वाली मानक प्रथा नहीं है। यह वितरण को बदलने के लिए कार्डों में छेड़छाड़ करने का प्रयास हो सकता है।"

एमडीजी के प्रस्तर 5.1.4 के संदर्भ में उपरोक्त उद्धृत उक्त रिपोर्ट के प्रभाव की व्याख्या करते हुए, अपने निष्कर्ष निम्नवत अभिलिखित किए:

"ओईएम रिपोर्ट संदर्भ: 18001 दिनांक: 28.03.2018 कहती है कि "पल्सर कार्ड ए1 और पल्सर कार्ड ए2 काम नहीं कर रहे हैं। यू3आईसी पिन ठीक से सोल्डर नहीं किए गए हैं और पैड क्षतिग्रस्त हैं। यह गिलबार्को द्वारा अपनाई जाने वाली मानक प्रथा नहीं है। यह वितरण में बदलाव के लिए कार्डों में छेड़छाड़ करने का प्रयास हो सकता है"।

<u>ओईएम का अवलोकन निश्चयात्मक नहीं है। यह ध्यान में रखा जा सकता है कि डीयू और पल्सर कार्ड हटाने/जब्त करने के समय कार्यशील स्थिति में थे और इसलिए पल्सर के काम न करने का कारण डीलरशिप को नहीं दिया जा सकता और न ही डीलरशिप उसके लिए दायी है।</u>

45. इस प्रकार, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता के निवेदन और बचाव पर याचिकाकर्ता द्वारा दावा की गई समानता के प्रकाश में विचार किया जाना है। वितरण इकाई के इलेक्ट्रॉनिक भाग में छलसाधन होने के संबंध में दोनों रिपोर्टें समान हैं; ओईएम की दोनों रिपोर्टें अभिलिखित करती हैं कि सोल्डरिंग चिह्न ओईएम द्वारा अपनाई जाने वाली मानक प्रथा नहीं पाए गए। वास्तव में, फिरोजाबाद फ्यूल्स के वाद में रिपोर्ट आगे ओईएम की राय अभिलिखित करती है कि यह वितरण को बदलने के लिए कार्डों में छेड़छाड़ करने का प्रयास हो सकता है, जो याचिकाकर्ता के वाद में एमआईडीसीओ द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट में अनुपस्थित है। एमडीजी के प्रस्तर 5.1.4 के अधीन माना जाने वाला अनुमान निकालते हुए, अपीलीय प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता द्वारा दायर की गई अपील खारिज कर दी है। उक्त अवलोकन नहीं किए गए हैं और फिरोजाबाद फ्यूल्स के वाद में निर्णीत अपील में माने जाने वाला अनुमान अभिलिखित नहीं किया गया है।

46. यह भी स्पष्ट है कि उसी अपीलीय प्राधिकारी के दिनांक 30.08.2022 के निर्णय को निगम द्वारा स्वीकार किया गया है और उसे चुनौती नहीं दी गई है। इस प्रकार, यह बात सामने आती है कि इलेक्ट्रॉनिक चिप्स में छलसाधन/त्रुटियाँ होने के संबंध में एमडीजी के 5.1.4 के अधीन 'माना जाने वाला अनुमान' निकालने के लिए दो भिन्न दृष्टिकोण अपनाए गए हैं जबकि पल्सर कार्डों पर विसंगतियों के संबंध में रिपोर्टें समान हैं। यद्यपि, प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता के अनुसार, याचिकाकर्ता नकारात्मक समानता का दावा नहीं कर सकता, एक दृष्टिकोण है जो स्पष्ट रूप से सुस्थापित है, तथापि, निगम एक 'राज्य' होने के नाते समान अभिकथनों के वादों में दो भिन्न डीलरों के संबंध में दो रुख नहीं अपना सकता है। दोनों रिपोर्टें लगभग समान त्रुटियों को इंगित करती हैं और दोनों रिपोर्टें यह भी इंगित करती हैं कि ये त्रुटियाँ ओईएम द्वारा आपूर्ति उपकरण में मानक नहीं थीं। निगम जो अनुच्छेद 12 के अर्थ के भीतर 'राज्य' है, संविदात्मक वादों में भी, निष्पक्ष और युक्तियुक्त रीति से कार्य करने के लिए बाध्य है, दोनों अपीलों में अपीलीय प्राधिकारी द्वारा दिया गया तर्क सर्वथा प्रतिकूल है। एक बार जब निगम ने उसी अपीलीय प्राधिकारी द्वारा अपने दिनांक 30.08.2022 के निर्णय में दिए गए तर्क को स्वीकार कर लिया है और उक्त आदेश को आगे चुनौती नहीं दी है, उसी अपीलीय प्राधिकारी द्वारा याचिकाकर्ता के मामले में अभिलिखित प्रतिकूल निष्कर्ष, स्पष्ट रूप से अपीलीय शक्तियों का मनमाना प्रयोग है।

47. इस स्तर पर यह भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि एमडीजी का प्रस्तर 5.1.4 निर्धारित करता है कि यदि वितरण इकाई में कोई अनधिकृत फिटिंग आदि पाई जाती हैं, *जो वितरण में छलसाधन करने की संभावना रखती हैं*, तो यह प्रदर्शित करने के लिए सामग्री मौजूद होनी चाहिए कि पल्सर कार्ड में देखी गई अनियमितताएं वितरण में छलसाधन का कारण बन सकती थीं। एमडीजी के प्रस्तर 5.1.4 के दूसरे भाग के संबंध में उक्त अभिकथनों की पुष्टि के लिए, निगम ने मिडको के स्पष्टीकरणात्मक ई-मेल के आधार पर दो अभियुक्त आदेशों

की नींव रखी है, जिसे आदेश में संदर्भित किया गया है साथ ही ड्रेसर वेन की रिपोर्ट का विश्लेषण करते समय लाइसेंसिंग प्राधिकारी द्वारा व्यक्त की गई राय, जैसा कि ऊपर उद्धृत किया गया है। स्पष्टीकरण ई-मेल, आक्षेपित आदेशों के अनुसार भी, पहले कारण बताओ नोटिस जारी करने से पूर्व निगम के पास उपलब्ध था, तथापि, उसे कारण बताओ नोटिस में *'भरोसा किया गया दस्तावेज'* या 'भरोसा किए जाने के लिए प्रस्तावित दस्तावेज' नहीं बनाया गया, जो कारण बताओ नोटिस के अवलोकन से स्पष्ट है। किसी भी बिंदु पर, सर्वोच्च न्यायालय से प्रतिप्रेषण के बाद भी कोई नया कारण बताओ नोटिस यह इंगित करते हुए जारी नहीं किया गया कि प्रत्यर्थीगण याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए अभिकथनों को स्थापित करने के लिए उक्त दस्तावेज (स्पष्टीकरण ई-मेल) पर भरोसा करने का आशय रखते थे।

48. प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता का निवेदन है कि स्पष्टीकरण ई-मेल प्रथम अवसर पर अपीलीय कार्यवाही के दौरान प्रदान किया गया था और इस प्रकार, वह उपलब्ध था, को नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का पर्याप्त अनुपालन केवल इस कारण से स्वीकार नहीं किया जा सकता कि कारण बताओ नोटिस में सामग्री पर भरोसा किया जाना और सुनवाई के दौरान सामग्री प्रदान करना दो भिन्न बातें हैं। जब भरोसा किए जाने के लिए प्रस्तावित सामग्री को कारण बताओ नोटिस में इंगित किया जाता है, डीलर का सामना किया जाता है और वह भरोसा किए जाने के लिए प्रस्तावित सामग्री से अवगत होता है और इस प्रकार, प्रतिपरीक्षा के अधिकार के माध्यम से सहित उक्त सामग्री को चुनौती देने का हकदार होगा। अपीलीय कार्यवाही के दौरान यह इंगित करने के लिए कुछ भी न होने के बिना कि उक्त सामग्री पर भरोसा किया जाना प्रस्तावित है, किसी व्यक्ति को सामग्री से अवगत कराना, स्पष्ट रूप से नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है क्योंकि, जिस व्यक्ति के विरुद्ध दस्तावेज पर भरोसा किया जाता है उसे कभी उक्त साक्ष्य का बचाव करने या उसे किसी भी रीति से खंडित करने का अवसर नहीं दिया जाता। इस प्रकार, मुझे यह अभिनिर्धारित करने में कोई संकोच नहीं है कि स्पष्टीकरण ई-मेल पर भरोसा जो पहले कारण बताओ नोटिस जारी करने से भी पूर्व निगम के पास उपलब्ध था और उसे कारण बताओ नोटिस में भरोसा किए गए दस्तावेज का भाग न बनाए जाने से, नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन हुआ है।

49. यह भी ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है कि दूसरे ओईएम ड्रेसर वेन की रिपोर्ट, जिस पर याचिकाकर्ता ने अपने समर्थन में भारी भरोसा किया है, का विश्लेषण करते समय, अनुज्ञापन प्राधिकारी द्वारा ऐसी सामग्री के आधार पर दृष्टिकोण अभिलिखित किया गया है जो न तो कारण बताओ नोटिस का भाग था, और न ही उक्त दृष्टिकोण का कभी किसी समय याचिकाकर्ता का सामना कराया गया और न ही उक्त दृष्टिकोण किसी मौजूद सामग्री द्वारा समर्थित है। उक्त अनुज्ञापन प्राधिकारी का एक व्यक्तिगत दृष्टिकोण प्रतीत होता है। बिना किसी ऐसी सामग्री के जो यह सुझाए कि याचिकाकर्ता को कभी संदर्भित प्रकृति के किसी संभावित दृष्टिकोण से सूचित किया गया या उसका सामना कराया गया, उक्त व्यक्तिगत दृष्टिकोण पर भरोसा करना, आदेश को विधि की दृष्टि से ग़लत और मनमाना भी बनाता है। विशेष अपील न्यायालय के साथ-साथ सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश ओईएम के विशेषज्ञ दृष्टिकोणों पर विचार करने के थे, किसी व्यक्तिगत दृष्टिकोण को प्रतिस्थापित करने की

कोई अनुमति नहीं दी गई थी जैसा कि आक्षेपित आदेश में किया गया है वह भी बिना किसी सामग्री के आधार पर उक्त दृष्टिकोण के संबंध में याचिकाकर्ता का सामना किए बिना।

50. दोनों पक्षकारों द्वारा उद्धृत निर्णयों पर आते हुए, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने ***पंजाब राज्य बनाम दविंदर पाल सिंह भुल्लर; (2011) 14 एससीसी 770*** के वाद में निर्णय पर यह तर्क करने के लिए भरोसा किया है कि निर्णय लेने की प्रक्रिया में एक न्यायिक पूर्वाग्रह था। उक्त निर्णय याचिकाकर्ता के लिए लाभकारी नहीं है क्योंकि वह एक आपराधिक कार्यवाही के न्यायनिर्णयन से उद्भूत हुआ था जिसमें कड़ी न्यायिक जाँच की आवश्यकता होती है। ***इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम पुल्लारेड्डी सर्विस सेंटर (2021) एससीसी ऑनलाइन एपी 2909*** के वाद में अगले निर्णय पर आते हुए, जिसमें प्रस्तर सं. 18 से 27 पर विशिष्ट भरोसा किया गया है, वह मशीन में छलसाधन के अभिकथन के संबंध में था, न्यायालय ने निम्नवत अवलोकित किया:

18. राम लाल अग्रवाल के वाद में (उपर्युक्त 2 संदर्भित), जिसमें पी. लक्ष्मीकांत राव के वाद (उपर्युक्त 1 संदर्भित) में निर्णय पर भरोसा किया गया था जिसे बाद में डब्ल्यू.ए. सं. 318/2011 में खंडपीठ द्वारा क़ायम रखा गया था, विद्वान एकल न्यायाधीश लगभग समान तथ्यात्मक स्थिति की जाँच कर रहे थे, लेकिन विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा इंगित किए गए अनुसार स्टॉक में अंतर का कोई अभिकथन नहीं है। उक्त वाद में, निरीक्षण टीम ने एक वितरण इकाई में दोहरे गियर की उपस्थिति देखी। तथापि, उन्होंने वितरण इकाइयों के कार्य में कोई अनियमितता या अवैधता नहीं पाई, ईंधन के वितरण में कोई अंतर नहीं देखा गया और न ही पेट्रोलियम उत्पादों की मात्रा किसी भी प्रकार से कम पाई गई। तेल कंपनी/प्रतिवादी की ओर से अन्य बातों के साथ-साथ यह तर्क दिया गया कि था कि वितरण इकाई में दोहरे गियर का मात्र अस्तित्व एक डीलर को जिम्मेदार ठहराने के लिए पर्याप्त है क्योंकि दोहरा गियर केवल वितरण में छलसाधन करने के लिए स्थापित किया जाता है और वितरण की वास्तविक कमी महत्वपूर्ण नहीं है।

19. विद्वान एकल न्यायाधीश ने एमडीजी के खंड 5.1.4 की व्याख्या करते हुए जो वर्तमान वाद में भी प्रयुक्त किया गया है, राय दी कि वितरण इकाई में दोहरा गियर केवल तभी गंभीर अनियमितता मानी जाएगी यदि वितरित किए गए ईंधन की मात्रा में कमी देखी जाती है। उक्त खंड इस प्रकार है:

5.1.4 वितरण इकाई में पाए गए अतिरिक्त/अनधिकृत फिटिंग/गियर/वितरण इकाई के साथ छेड़छाड़:
वितरण में छलसाधन करने के आशय से वितरण इकाई में लगी पाई गई कोई यांत्रिकी/फिटिंग/गियर....."
20. निर्णय के प्रस्तर 27 में, विद्वान एकल न्यायाधीश ने निम्नवत राय दी:
".....यदि अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री आवश्यक रूप से इस निष्कर्ष की ओर नहीं ले जाती कि छेड़छाड़ और फेरबदल रिट याचिकाकर्ता के हाथों हुई है, तो उसे दंडित करना पूर्णतः अन्यायपूर्ण होगा। यह विधि का एक मौलिक सिद्धांत है कि किसी निर्दोष व्यक्ति को उसकी कोई गलती न होने पर दंडित नहीं किया जाना चाहिए। वह न्याय के सिद्धांतों के प्रतिकूल होगा। याचिकाकर्ता द्वारा संचालित खुदरा आउटलेट के परिसर में

उपकरण में 39 दांतों वाले अतिरिक्त गियर की उपस्थिति का उससे संबंध न होने की स्थिति में, यह अनुमान लगाना उचित नहीं होगा कि वह उपकरण के साथ छेड़छाड़ का दोषी है। यदि इस निष्कर्ष का कोई युक्तियुक्त आधार नहीं है कि याचिकाकर्ता उपकरण के साथ छेड़छाड़ का दोषी है, तो उसके विरुद्ध उसके डीलरशिप करार की समाप्ति की कोई प्रतिकूल कार्रवाई नहीं की जा सकती थी। इसलिए याचिकाकर्ता को अनावश्यक रूप से दोषी नहीं ठहराया जा सकता था।"

21. यहाँ यह अवलोकन करना तुच्छ हो सकता है कि यह अपीलार्थियों का वाद यह नहीं है कि दोहरे गियर की उपस्थिति/या सहायता से, दिनांक 05.02.2015 को किए गए निरीक्षण के समय जाँच पर पेट्रोल/डीजल की कम मात्रा वितरित की गई। निःसंदेह, स्टॉक में अंतर के संबंध में कोई संतोषजनक स्पष्टीकरण नहीं आ रहा है। तथापि, इस आशय के किसी साक्ष्य के अभाव में कि अतिरिक्त गियर याचिकाकर्ता/डीलर द्वारा/या उसके इशारे पर डाला गया था और उसके परिणामस्वरूप, स्टॉक में अंतर था जो याचिकाकर्ता को लाभ पहुँचाता है, याचिकाकर्ता को दंडित करने के लिए कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। इस संबंध में, श्री एन. अश्विनी कुमार द्वारा अपने तर्कों के समर्थन में उद्धृत खंडपीठ के निर्णय का संदर्भ देना उचित हो सकता है। डब्ल्यू.ए. सं. 318/2011 में, माननीय खंडपीठ ने पी. लक्ष्मीकांत राव के वाद (संदर्भित 1 उपरोक्त) में विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेशों की दिनांक 21.07.2011 के आदेशों द्वारा पुष्टि करते हुए समान विवाद्यकों पर विस्तार से विचार किया। उक्त वाद में, वहाँ याचिकाकर्ता की डीलरशिप इस अभिकथन पर समाप्त कर दी गई थी कि इकाई में एक नकली गियर डाला गया पाया गया था जिसके परिणामस्वरूप हाई स्पीड डीजल (एचएसडी) की कम आपूर्ति हुई। तेल कंपनी का वाद यह है कि डीलर ने निगम के उपकरण, अर्थात् अनाधिकृत फिटिंग/गियर का उपयोग करके वितरण इकाई के साथ छेड़छाड़ करके कम आपूर्ति का कदाचार/अनियमितता किया है और डीलर द्वारा वितरण इकाई में अतिरिक्त गियर लगाने के परिणामस्वरूप कम आपूर्ति होना वितरण इकाई के साथ छेड़छाड़ के समान है। विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष यह तर्क किया गया कि एक बार जब मुहर अविकल पाई जाती है, डीलर को माप के संबंध में किसी त्रुटि या दोष के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता और आगे कि डीलर का वितरण इकाई पर कोई नियंत्रण नहीं है और निगम और रखरखाव एजेंसी का इकाइयों पर पूर्ण नियंत्रण है।

22. विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय को क़ायम रखते हुए, खंडपीठ ने निम्नवत अभिनिर्धारित किया:

"अभिकथन के आधार पर, यह उचित है कि डीलर द्वारा कदाचार या अनाचार या छेड़छाड़ के संबंध में किसी निष्कर्ष पर पहुँचने से पूर्व, अपीलार्थियों द्वारा संभाव्यताओं की प्रबलता के मानकों से (विधि में ज्ञात कोई कम मानक मौजूद नहीं है) यह प्रदर्शित किया जाना चाहिए कि डीलर इकाई की आंतरिक यांत्रिकी तक पहुँच सकता था और नकली गियर डाल सकता था। वैकल्पिक रूप से, डीलर द्वारा या उसकी ओर से छेड़छाड़ के संबंध में एक बाध्यकारी अनुमान शायद वैध रूप से निकाला जा सकता था यदि प्रत्यर्थीगण यह स्थापित कर सकते थे कि उचित गियर वास्तव में पूर्व अवसर पर इकाई में स्थापित किया गया था और डीलर या उसके एजेंटों ने गियर को नकली से प्रतिस्थापित किया हो सकता था, यहाँ तक कि जब इकाई की मुहर अविकल थी। बाट और माप विभाग के अधिकारियों की अनुपस्थिति में और केवल उनकी टेलीफोनिक स्वीकृति प्राप्त करके, मुहरें अपीलार्थियों के एजेंटों द्वारा तोड़ी गईं और मीटरिंग यूनिट खोली गई। यह स्वीकृत तथ्यात्मक परिदृश्य है कि वितरण इकाई की मुहरें अविकल थीं और जैसा कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने अवलोकित किया यह अपीलार्थियों

का वाद नहीं है कि डीलर या किसी अन्य व्यक्ति ने इकाई तक पहुँच प्राप्त कर सकता था जहाँ "नकली गियर" डाला गया था यहाँ तक कि जब इकाई की मुहर अविकल थी। यह अपीलार्थियों का वाद यह नहीं है कि इकाई की मुहरों के साथ छेड़छाड़ की गई थी या विधिक माप विज्ञान विभाग के अधिकारियों द्वारा लगाई गई मुहरों के लिए नकली मुहरें प्रतिस्थापित की गईं। न तो कारण बताओ नोटिस और न ही रिट याचिका में आक्षेपित अंतिम आदेश बंद इकाई और इकाई में नकली गियर के अतींद्रिय प्रवेश के रहस्य को उजागर करता है। यह डीलरशिप की बर्खास्तगी के आदेश में एक घातक त्रुटि थी, जिसके कारण विद्वान एकल न्यायाधीश अपीलार्थियों द्वारा प्रत्यर्थी की डीलरशिप की बर्खास्तगी के आदेश को अवैध ठहराने के लिए प्रेरित हुए।"

23. इसके अतिरिक्त, नकली गियर की उपस्थिति के संबंध में, माननीय न्यायालय ने अपने निष्कर्ष निम्नवत अभिलिखित किए:

"एक बंद इकाई के अंदर नकली गियर के विचित्र वाद की व्याख्या अपीलार्थी कैसे कर सकते हैं, इस न्यायालय के प्रश्न के उत्तर में, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आग्रह किया कि चूंकि लार्सन एंड टुर्बो द्वारा आपूर्ति गियर के प्राधिकृत डीलर ने दिनांक 10.05.2010 के पत्र के माध्यम से, अपीलार्थियों को सूचित किया था कि डीलर की इकाई में पाया गया गियर एक अनधिकृत गियर था और प्राधिकृत आपूर्तिकर्ता द्वारा निर्मित और आपूर्ति नहीं किया गया था, अनुमान बाध्यकारी है कि चूंकि केवल डीलर ही था जो एचएसडी की कम डिलीवरी से लाभान्वित होता था, उसने गियर डाला होगा इस तथ्य के बावजूद कि इकाई सीलबंद थी और इस बात की व्याख्या के अभाव में कि एक सीलबंद इकाई में नकली गियर कैसे डाला जा सकता था। उनका तर्क इस न्यायालय द्वारा स्वीकृति की सिफारिश नहीं करता क्योंकि यह एक अवितरित मध्य की तार्किक त्रुटि से ग्रस्त है। दिनांक 10.05.2010 का आपूर्तिकर्ता का अपीलार्थियों को पत्र इस तथ्य का निश्चयात्मक नहीं है कि निरीक्षण तक एक मानक गियर मौजूद था और न ही यह विधि के किसी सिद्धांत द्वारा यह माना जाना है कि एक नकली गियर स्थापित नहीं किया गया था।

चूंकि डीलर द्वारा वितरित एचएसडी स्पष्ट रूप से कम आपूर्ति में पाया गया है और वह एक अविवादित तथ्य है, और चूंकि 38 के स्थान पर 39 दांतों वाला एक नकली गियर भी एचएसडी यूनिट के अंदर अंतर्निहित पाया गया था, भौतिक नियमों द्वारा शासित दुनिया में यह निष्कर्ष अपरिहार्य है कि किसी व्यक्ति या किसी एजेंट ने एचएसडी यूनिट में एक गैर-मानक गियर डाला। लेकिन इस तथ्य से यह अनुमान लगाने के लिए एक तार्किक छलांग लगाना कि यह डीलर द्वारा डाला गया था, अतार्किक है। परिस्थितियों की श्रृंखला पूर्ण नहीं है और मात्र इसलिए कि केवल डीलर कम आपूर्ति से लाभान्वित होगा, ऐसा कोई अनुमान वैध रूप से नहीं निकाला जा सकता।

यह स्वीकृत स्थिति है कि गियर का आपूर्तिकर्ता एक निजी एजेंट है। न तो राज्य और न ही राज्य का कोई उपकरण अपीलार्थियों का प्रत्यायित आपूर्ति एजेंट है। अभिवचनों में, विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष यहाँ अपीलार्थियों के प्रति शपथ पत्र सहित कुछ भी नहीं है जो यह स्थापित करता है कि गियर का प्रवेश या प्रतिस्थापन प्रत्यर्थी डीलर द्वारा है।"

24. रिट अपील का निस्तारण करते हुए, खंडपीठ ने राय दी कि "डीलर के कदाचार के संबंध में निष्कर्ष वहाँ अपीलार्थियों द्वारा इस एकल तथ्य पर पहुँचा गया था कि एचएसडी की कम आपूर्ति थी और इकाई की मुहर

को तोड़ने के बाद खोलने पर, नकली गियर पाया गया।" यह भी अवलोकित किया गया कि "पाए गए इन दो तथ्यों का आधार अपर्याप्त है और दोषपूर्ण है क्योंकि यह तथ्य कि एक नकली गियर डीलर द्वारा डाला गया था वैध रूप से अनुमान नहीं लगाया गया था और इकाई की बाहरी मुहरों के अविकल होने के तथ्य पर न तो ध्यान दिया गया और न ही बर्खास्तगी के आदेश में स्पष्ट किया गया।"

25. यह न्यायालय का विचारित मत का है कि माननीय खंडपीठ का उपरोक्त निर्णय सिद्धांत में वाद के तथ्यों पर लागू होता है और इसलिए, वाद के तथ्यों और परिस्थितियों में कोई भिन्न दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रेरित नहीं है, जिसमें इस आशय की कोई सामग्री/साक्ष्य अभिलेख पर नहीं लाया गया कि अतिरिक्त गियर पेट्रोल/डीजल के वितरण में छलसाधन करने के उद्देश्य से डीलर द्वारा डाला गया था। यह अपीलार्थियों का वाद भी नहीं है कि वितरण इकाइयों में अनधिकृत फिटिंग/अतिरिक्त गियर प्राधिकारियों के साथ मिलीभगत में डीलर द्वारा डाले गए थे और न ही उस आशय के कोई अभिकथन लगाए गए थे। जिसकी अनुपस्थिति में, याचिकाकर्ता/डीलर के विरुद्ध कुछ भी प्रतिकूल अनुमान नहीं लगाया गया सकता। यह न्यायालय, इसलिए, प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा किए गए निवेदनों को क़ायम रखने और अपीलार्थी सं. 1/निगम के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के प्रतिकूल तर्कों को खारिज करने की ओर प्रवृत्त है।

26. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निर्भर इंडियन ऑयल कॉरपोरेशन के वाद में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने वाद के तथ्यों एवं परिस्थितियों को देखते हुए और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन करने पर अभिनिर्धारित किया कि मोहर एवं हस्ताक्षर लगाकर निरीक्षण रिपोर्ट की स्वीकृति से इस आधार पर पीछे हटने की अनुमति नहीं दी जा सकती कि वे सद्भाव में हस्ताक्षरित किए गए थे और तेल कंपनी के अधिकारी इसका लाभ नहीं उठा सकते। इस न्यायालय के सुविचारित मत में, उक्त निर्णय वर्तमान वाद के तथ्यों पर लागू नहीं होता है। अतिरिक्त गियर की उपस्थिति को स्वीकार करते हुए निरीक्षण रिपोर्ट पर हस्ताक्षर करना स्वतः ही याचिकाकर्ता द्वारा इसके अंतःस्थापन को स्वीकार करना नहीं माना जा सकता। अपीलार्थीगण पर यह स्थापित करने का भार है कि ईंधन की डिलीवरी में छलसाधन करने के लिए इसे अंतःस्थापित किया गया था। वर्तमान वाद में, प्रत्यर्थी संख्या 3/मूल प्राधिकारी इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि आउटलेट/उपकरण का अभिरक्षक होने के नाते, याचिकाकर्ता अतिरिक्त/अनधिकृत गियर की उपस्थिति के लिए उत्तरदायी है, बिना इस अभिवचन पर ध्यान दिए कि जब सील सुरक्षित हैं तो ऐसा करना संभव नहीं है। यहां तक कि अपीलार्थी संख्या 2/अपीलीय प्राधिकारी ने भी अपने निष्कर्ष धारणाओं और अनुमानों पर आधारित किए, जबकि यह अभिमत व्यक्त करते हुए कि डीलरशिप का पर्यवसान केवल अनधिकृत फिटिंग के स्थापित तथ्य पर आधारित था और एमएस के अतिरिक्त स्टॉक तथा एचएसडी में नकारात्मक स्टॉक का विवाद्यक अब कोई परिणाम नहीं रखता, इस पर विचार नहीं किया जा रहा है। जैसा कि खंडपीठ द्वारा इंगित किया गया, इस बारे में कोई निष्कर्ष अभिलिखित नहीं किया गया कि जब सील सुरक्षित हैं तो वितरण इकाई में नक़ली गियर कैसे अंतःस्थापित किया जा सकता है। यहां यह उल्लेख करना प्रासंगिक हो सकता है कि एमडीजी का खंड 8.5.2 निम्नानुसार है: "किसी डीलर के विरुद्ध कोई कार्रवाई करने से पूर्व सभी अनियमितताओं के वादों को स्थापित किया जाना आवश्यक है।"

27. उपरोक्त वर्णित तथ्यात्मक एवं विधिक स्थिति की पृष्ठभूमि में, रिट याचिका में आक्षेपित आदेश विधिक जाँच के दायरे में नहीं आ सकते।

51. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा उद्धृत अगला निर्णय ***मैसर्स चौधरी फिलिंग पॉइंट काजीपुर के वाद में है जो इसके स्वामी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा प्रमुख सचिव, खाद्य एवं नागरिक आपूर्ति एवं अन्य में दिनांक 30.01.2019 को विविध खंडपीठ संख्या 27043/2018*** में निर्णीत हुआ, जिसमें इस न्यायालय ने पेट्रोल पंप डीलर के विरुद्ध लगाए गए अभिकथनों पर विचार किया था जो पल्सर कार्ड में छलसाधन के संबंध में याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए अभिकथनों के समान थे। न्यायालय ने पाया कि स्वतंत्र ओईएम की राय नहीं ली गई थी और इस प्रकार, आक्षेपित आदेश को संधार्य नहीं पाया गया। न्यायालय ने यह भी पाया कि पल्सर कार्ड में छलसाधन के संबंध में लगाए गए अभिकथन ओईएम की किसी स्वतंत्र राय द्वारा प्रमाणित नहीं थे और किसी सक्षम न्यायालय द्वारा भी समर्थित नहीं थे। उक्त निर्णय वर्तमान वाद के तथ्यों पर अधिक लागू नहीं होगा क्योंकि वर्तमान वाद में, ओईएम की राय मौजूद है और डीलर के विरुद्ध कार्रवाई एमडीजी के खंड 5.1.4 के उपबंधों का उल्लंघन पाई गई थी।

52. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा उद्धृत चौथा निर्णय ***इंडियन ऑयल कॉरपोरेशन लिमिटेड एवं अन्य बनाम मैसर्स मॉडर्न सर्विस स्टेशन के वाद में है, जो विशेष अपील संख्या 456/2023*** में दिनांक 06.03.2024 को निर्णीत हुआ। पक्षकारों के तर्क और बचाव को देखते हुए कि पाई गई छलसाधन ओईएम के कृत्य का परिणाम थी और अनुज्ञप्तिधारी का उक्त छलसाधन में कोई हाथ नहीं था, वाद को वापस भेज दिया गया। उक्त निर्णय का भी वर्तमान वाद के तथ्यों पर कोई प्रयोज्यता नहीं है।

53. अगला उद्धृत निर्णय ***मैसर्स लालटू फिलिंग स्टेशन बनाम भारत संघ एवं अन्य के वाद में है; 2016 एससीसी ऑनलाइन कैल 626*** जिसमें कलकत्ता उच्च न्यायालय को विशेषज्ञों की राय न लेने के प्रभाव पर विचार करने का अवसर प्राप्त हुआ और न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि एमडीजी 2005 के संशोधन के पश्चात, निलंबन और आपूर्ति रोकने के लिए अपेक्षित प्रक्रिया का पालन किया जाना चाहिए, उक्त वाद भी याचिकाकर्ता के पक्ष में सहायक नहीं है

54. अगला उद्धृत निर्णय ***हिंदुस्तान पेट्रोलियम कॉरपोरेशन लिमिटेड बनाम सुपर हाईवे सर्विसेज एवं अन्य (2010) 3 एससीसी 321*** के वाद में है। उक्त वाद में, सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि किसी पक्षकार के डीलरशिप करार का रद्दीकरण एक गंभीर विषय है और इसे हल्के में नहीं लिया जा सकता। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का प्रस्तर 31 से 33 निम्नवत उद्धृत है:

"31. किसी पक्षकार के डीलरशिप करार का रद्दीकरण एक गंभीर विषय है और इसे हल्के में नहीं लिया जा सकता। ऐसे करार को बर्खास्त करने के लिए की गई कार्रवाई को न्यायोचित ठहराने के लिए, संबंधित प्राधिकारी को निष्पक्षता से और उक्त प्रयोजन के लिए निर्मित नियमों/दिशानिर्देशों का पूर्ण अनुपालन करते हुए कार्य

करना होगा। डीलरशिप करार के समापन से पूर्व व्यथित व्यक्ति को नोटिस की तामील न किया जाना इस सुस्थापित सिद्धांत का भी उल्लंघन करता है कि किसी व्यक्ति को बिना सुने दोषी नहीं ठहराया जाना चाहिए। यह याचिकाकर्ता का कर्तव्य था कि प्रत्यर्थी संख्या 1 को सुनवाई का अवसर दिया जाता या कम से कम उसके करार को समाप्त करने से पूर्व कार्यवाही का नोटिस तामील करने के लिए गंभीर प्रयास किए जाते।"

32. वर्तमान वाद में, हम श्री भट्ट के तर्कों से सहमत होने के लिए प्रवृत्त हैं कि उच्च न्यायालय ने यहां प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा दायर रिट याचिका को स्वीकार करने में कोई त्रुटि नहीं की, यह अभिनिर्धारित करते हुए कि बरौनी टर्मिनल में किए जाने वाले प्रयोगशाला परीक्षण का नोटिस प्रत्यर्थी संख्या 1 को तामील नहीं किया गया था, जिससे उक्त प्रत्यर्थी को गंभीर क्षति हुई क्योंकि उसका डीलरशिप करार ऐसे परीक्षण के निष्कर्षों के आधार पर बर्खास्त कर दिया गया। स्वीकृत रूप से डीलरशिप करार इस आधार पर बर्खास्त किया गया था कि याचिकाकर्ता निगम द्वारा आपूर्ति उत्पाद प्रत्यर्थी द्वारा दूषित किया गया था। ऐसे संदूषण को बरौनी टर्मिनल की प्रयोगशाला में टीटी प्रतिधारण नमूने के परीक्षण द्वारा सिद्ध करने का प्रयास किया गया।

33. निगम द्वारा अनुसरण किए जा रहे दिशानिर्देश यह अपेक्षा करते हैं कि डीलर को परीक्षण के संबंध में पूर्व नोटिस दिया जाना चाहिए ताकि वह या उसका प्रतिनिधि भी परीक्षण के समय उपस्थित रह सके। उक्त अपेक्षा नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों और डीलरशिप करार को बर्खास्त करने के वाद में निष्पक्षता की आवश्यकता के अनुरूप है और इसे एक खोखली औपचारिकता नहीं बनाया जा सकता। डीलर को नोटिस पर्याप्त समय से पूर्व तामील किया जाना चाहिए ताकि उसे परीक्षण के दौरान अपनी उपस्थिति की व्यवस्था करने के लिए पर्याप्त समय और अवसर मिल सके और डीलर को ऐसे नोटिस की तामील का ग्राह्य साक्ष्य होना चाहिए। उपरोक्त अपेक्षा का कड़ाई से पालन आवश्यक है, परीक्षण के संचालन में छलसाधन की संभावना को देखते हुए, यदि यह डीलर की पीठ पीछे किया जाता है।"

उक्त निर्णय इस आशय का है कि एमडीजी दिशानिर्देशों के अनुसार डीलरशिप के पर्यवसान की कड़ाई से व्याख्या की जानी चाहिए।

55. प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णयों पर आते हुए, पहला उद्धृत निर्णय **रिट-सी संख्या 20271/2018 (मैसर्स महर्षि फिलिंग स्टेशन (इंडियन ऑयल डीलर) बनाम इंडियन ऑयल कॉरपोरेशन लिमिटेड उत्तर प्रदेश राज्य अधिकारी एवं अन्य)** में है, जिसमें न्यायालय ने जिला पूर्ति अधिकारी द्वारा अनुज्ञप्ति के रद्दीकरण और ओईएम की रिपोर्ट पर विचार किया और यह भी पाया कि प्रत्यर्थी निगम द्वारा रद्दीकरण आदेश सरकारी प्राधिकारियों द्वारा याचिकाकर्ता के अनुज्ञप्ति के पर्यवसान का परिणाम था। यह समझ में नहीं आता कि निर्णय वर्तमान वाद के तथ्यों पर कैसे लागू होगा, क्योंकि आदेश निगम द्वारा राज्य प्राधिकारियों द्वारा की गई कार्रवाई से स्वतंत्र रूप से पारित किया गया है।

56. अगला निर्णय **मैसर्स किसान सेवा केंद्र सराय दुबौलिया बनाम भारत संघ एवं अन्य के वाद में; रिट सी संख्या 32973/2018,** इस न्यायालय ने डीलर के विरुद्ध लगाए गए उल्लंघनों और ओईएम द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट पर भी ध्यान दिया, वर्तमान रिट याचिका में उठाए गए किसी भी विवाद्यक को उक्त निर्णय में न तो उठाया गया और न ही विचार किया गया, अतः वह वर्तमान वाद के तथ्यों पर कोई प्रयोज्यता नहीं रखेगा।

57. **मैसर्स श्री राजेंद्र एग्रो सर्विस सेंटर बनाम इंडियन ऑयल कॉरपोरेशन लिमिटेड** के वाद में उद्धृत अगले निर्णय पर आते हुए; **डीबी विशेष अपील रिट संख्या 456/2023,** जिसमें राजस्थान उच्च न्यायालय ने एमडीजी के प्रस्तर 5.1.4 में निहित 'धारणा उपबंध' पर विचार किया था यह अभिनिर्धारित करने के लिए कि यह छेड़छाड़ की परिभाषा के अंतर्गत आएगा। वर्तमान वाद में उठाए गए तर्क न तो उठाए गए और न ही विचार किए गए और इस प्रकार कोई पूर्व निर्णय मूल्य नहीं रख सकते।

58. अगला उद्धृत आदेश **विशेष अपील संख्या 215/2024 (कार्यकारी निदेशक खुदरा एवं बिक्री इंडियन ऑयल कॉरपोरेशन लिमिटेड एवं अन्य बनाम मैसर्स मिश्रा ऑटोमोबाइल्स द्वारा जगदीश मिश्रा एवं अन्य)** में पारित एक अंतरिम आदेश है जिसमें इस न्यायालय ने अंतरिम आदेश प्रदान करते हुए पाया कि एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश असंशोधित एमडीजी के आधार पर था जबकि एमडीजी संशोधित हो चुका था और विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा इस पहलू पर विचार नहीं किया गया था। एक अंतरिम आदेश का कोई पूर्व निर्णय मूल्य नहीं होता और अन्यथा भी उक्त अंतरिम आदेश का वर्तमान वाद के तथ्यों पर कोई प्रभाव नहीं है।

59. **सावित्री देवी एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य** के वाद में उद्धृत अगला निर्णय; **रिट सी संख्या 29859/2017,** जिसमें इस न्यायालय की खंडपीठ ने यह अवलोकन करते हुए रिट याचिका खारिज कर दी थी कि कोई त्रुटि नहीं पाई जा सकी, उठाए गए किसी भी तर्क पर न तो खंडपीठ द्वारा विचार किया गया और न ही निर्णीत किया गया।

60. वर्तमान वाद में, जैसा कि ऊपर व्यक्त किया गया है, आक्षेपित आदेश निम्नलिखित कारणों से संधार्य नहीं हैं:

i. दो आदेशों में निर्भर स्पष्टीकरण ई-मेल, याचिकाकर्ता को कभी प्रदान नहीं की गई और कारण बताओ नोटिस में कभी निर्भर दस्तावेज नहीं बनाई गई यद्यपि वह प्रत्यर्थीगण द्वारा दावा किए अनुसार कारण बताओ नोटिस जारी करने से पूर्व उपलब्ध थी;

ii. प्रथम प्राधिकारी द्वारा ओईएम ड्रेसर वेन की रिपोर्ट पर विचार करते हुए अभिलिखित निष्कर्ष, जैसा कि ऊपर प्रस्तर 42 में पाया गया, बिना किसी सामग्री के थे जो या तो कारण बताओ नोटिस में अभिकथित की गई थी

या कार्यवाही के दौरान उपलब्ध कराई गई थी, उक्त दृष्टिकोण एक व्यक्तिगत दृष्टिकोण प्रतीत होता है और उक्त दृष्टिकोण को न्यायोचित ठहराने के लिए किसी सामग्री के अभाव में विकृत है।

iii. अपीलीय प्राधिकारी ने एमडीजी के प्रस्तर 5.1.4 में 'धारणा उपबंधों' का आह्वान करते हुए ओईएम द्वारा प्रस्तुत समान रिपोर्टों के संबंध में दो प्रतिकूल दृष्टिकोण अपनाए हैं और मैसर्स फिरोजाबाद फ्यूल्स के वाद में अपीलीय प्राधिकारी द्वारा लिया गया दूसरा दृष्टिकोण निगम द्वारा स्वीकार किया गया है और इस प्रकार, एक समान उपबंध की व्याख्या करते हुए दो भिन्न दृष्टिकोण मनमाने हैं; और

iv. एमडीजी का प्रस्तर 5.1.4, दो भागों में विभाजित है, पहला अतिरिक्त, हटाना, प्रतिस्थापन या छलसाधन होना, तथापि इसे अनुचित लाभ प्राप्त करने के लिए वितरण में छलसाधन की संभावना के साथ संयुक्त रूप से पढ़ा जाना चाहिए, खंड 5.1.4 के दूसरे भाग को प्रमाणित करने के लिए, स्पष्टीकरण ई-मेल के अतिरिक्त कोई सामग्री मौजूद नहीं है जो कभी कारण बताओ नोटिस का हिस्सा नहीं बनाई गई और कभी निर्भर किए जाने का प्रस्ताव नहीं किया गया।

61. उक्त तर्क और उपर्युक्त अभिलिखित युक्ति के प्रकाश में, रिट याचिका स्वीकार किए जाने योग्य है और स्वीकार किया जाता है। दिनांक 12.01.2023 और 15.05.2023 के आक्षेपित आदेश रद्द किए जाते हैं।

(2025) 4 ILRA 635

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 08.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शेखर बी. सराफ

माननीय न्यायमूर्ति विपिन चंद्र दीक्षित

रिट सी संख्या 6408/2025

बेबी आलिया (नाबालिग) एवं अन्य **...याचिकाकर्तागण**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...प्रत्यर्थीगण**

याचिकाकर्तागण के अधिवक्ता:

श्री संतोष प्रजापति, श्री सैय्यद काशिफ़ अब्बास रिज़वी

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता

अनुवादित

लिव-इन रिलेशनशिप-बच्चे के पिता और माता अलग-अलग धर्मों के हैं-2018 से साथ रह रहे हैं-बच्चे के माता-पिता निजी प्रत्यर्थीगण, जो जैविक मां के पूर्व ससुराल वाले हैं, से कुछ खतरों के प्रति आशंकित हैं-पूर्व पति की मृत्यु के बाद-जैविक मां जैविक पिता के साथ रहने लगी-माता-पिता बालिग हैं-साथ रहने के हकदार हैं-भले ही उनका विवाह न हुआ हो-पुलिस अधीक्षक को यह सुनिश्चित करने का निर्देश दिया जाता है कि यदि बच्चे के माता-पिता थाने आते हैं तो प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की जानी चाहिए।

रिट याचिका स्वीकार किया गया। (ई-9)

<u>उद्धृत वादों की सूची:</u>

1. ज्ञान देवी बनाम अधीक्षक, नारी निकेतन, दिल्ली एवं अन्य, (1976) 3 एससीसी 234
2. लता सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2006) 5 एससीसी 475;
3. भगवान दास बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) (2011) 6 एससीसी 396)

(माननीय न्यायमूर्ति शेखर बी. सराफ
एवं
माननीय न्यायमूर्ति विपीन चन्द्र दीक्षित द्वारा प्रदत्त)

<u>सिविल प्रकीर्ण अभियोग आवेदन संख्या 3/2025</u>

1. पक्षकारों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।
2. हमने अभियोग आवेदन के साथ दिए गए शपथपत्र का अवलोकन किया है और पाया कि इसे स्वीकार करने के लिए पर्याप्त कारण दिए गए हैं। तदनुसार, आवेदन स्वीकार किया जाता है।
3. आवश्यक पक्षकारों का अभिप्रवेश आज के दिवस में सुनिश्चित किया जाए।

<u>याचिका पर आदेश</u>

4. पक्षकारों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

5. यह याचिकाकर्ता, जो एक बच्ची है, द्वारा अपने जैविक माता-पिता के माध्यम से भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत दायर एक रिट याचिका है।

6. ऐसा प्रतीत होता है कि बच्चे के पिता और माता अलग-अलग धर्मों के हैं और 2018 से साथ रह रहे हैं। बच्चा वर्तमान में एक वर्ष और चार माह का है। बच्चे के माता-पिता निजी प्रत्यर्थीगण, जो जैविक माँ के पूर्व ससुराल वाले हैं, से कुछ खतरों के प्रति आशंकित हैं।

7. यह ध्यान देने योग्य है कि पूर्व पति की मृत्यु के बाद, जैविक माँ जैविक पिता के साथ रहने लगी।

8. हमारे विचार में, संवैधानिक व्यवस्था के अंतर्गत, बालिग माता-पिता, साथ रहने के हकदार हैं, भले ही उनका विवाह न हुआ हो (*देखें: ज्ञान देवी बनाम अधीक्षक, नारी निकेतन, दिल्ली और अन्य, (1976) 3 एससीसी 234 में प्रतिवेदित; लता सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (2006) 5 एससीसी 475 में प्रतिवेदित; और भगवान दास बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) (2011) 6 एससीसी 396*)।

9. बच्चे के माता-पिता का कहना है कि पुलिस अधिकारी निजी प्रत्यर्थीगण के विरूद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने को तैयार नहीं हैं और जब वे प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने के लिए थाने जाते हैं, तो पुलिस अधिकारी बार-बार उन्हें अपमानित करते हैं।

10 इसी के मद्देनजर, पुलिस अधीक्षक, संभल को निर्देश दिया जाता है कि यदि बच्चे के माता-पिता पुलिस थाने में आते हैं, तो थाना चंदौसी, जिला संभल में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की जाए। पुलिस अधीक्षक, संभल को यह भी निर्देश दिया जाता है कि वे इस पहलू पर भी विचार करें कि क्या बच्चे और माता-पिता को विधि के अनुसार कोई सुरक्षा प्रदान किया जाना आवश्यक है। प्राधिकारियों को उपरोक्त निर्णयों के अनुसार कार्य करने का भी निर्देश दिया जाता है।

11. उपरोक्त निर्देशों के साथ, रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

(2025) 4 ILRA 637

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 02.04.2025 व 08.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शेखर बी. सराफ

माननीय न्यायमूर्ति विपिन चंद्र दीक्षित

रिट सी संख्या 14904/2016

रामजी एवं अन्य **...याचिकाकर्तागण**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...प्रत्यर्थीगण**

याचिकाकर्तागण के अधिवक्ता:

श्री संजय गोस्वामी

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता:

सुश्री शुभ्रा सिंह, श्री मोहन श्रीवास्तव (एस.सी.), श्री नीलाम्बर त्रिपाठी

सिविल विधि - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - शहरी भूमि (हदबंदी और विनियमन) अधिनियम, 1976 - धारा 6(1), 8(3), 8(4), 10(1), 10(3), 10(5) और 10(6) - शहरी भूमि (हदबंदी और विनियमन) निरसन अधिनियम, 1999 - धारा 3 और 4 - परमादेश का रिट - अधिशेष भूमि - वास्तविक कब्जा - कार्यवाही का उपशमन - नोटिस की आवश्यकता - रिट न्यायालय का क्षेत्राधिकार - विधि और तथ्य का मिश्रित प्रश्न - रिट याचिका दायर करने में देरी।

<u>अभिनिर्धारित</u>:

याचिकाकर्ताओं ने जनपद इलाहाबाद के लवायन गाँव में नगरीय भूमि (हदबंदी एवं विनियमन) अधिनियम, 1976 के अंतर्गत अधिशेष घोषित 67,138.12 वर्ग मीटर भूमि से प्रत्यर्थीगण को बेदखल करने से रोकने के लिए परमादेश के रिट की मांग की थी। मूल भू-धृतिधारक भोलानाथ के विरुद्ध हदबंदी की कार्यवाही के परिणामस्वरूप धारा 8(4) के अंतर्गत दिनांक 24.05.1983 को एक पक्षीय आदेश, उसके बाद धारा 10(1) और 10(3) के अंतर्गत अधिसूचनाएँ, और धारा 10(5) के अंतर्गत दिनांक 27.05.1996 को एक नोटिस जारी किया गया। धारा 10(6) के अंतर्गत कोई स्वैच्छिक समर्पण या बलपूर्वक बेदखली नहीं हुई, और भोलानाथ और उनके उत्तराधिकारी 2005 में उनकी मृत्यु तक और उसके बाद भी भौतिक रूप से कब्जे में रहे। शहरी भूमि (हदबंदी और विनियमन) निरसन अधिनियम, 1999 के समक्ष, राज्य सरकार वास्तविक कब्जे का प्रमाण, जैसे कि कब्जे का ज्ञापन या पंचनामा, प्रस्तुत करने में विफल रही। *उत्तर प्रदेश राज्य बनाम हरि राम, (2013) 4 एससीसी 280*, और *मेसर्स ए.पी. इलेक्ट्रिकल इक्विपमेंट कॉर्पोरेशन बनाम तहसीलदार, 2025 एससीसी ऑनलाइन एससी 447* के आधार पर, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि धारा 10(3) के अंतर्गत केवल निहित होने से वास्तविक कब्जा नहीं मिल जाता है, और यदि कब्जा नहीं लिया गया है, तो निरसन अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत कार्यवाही समाप्त हो जाती है। कब्जे का मुद्दा, जो विधि और तथ्य का एक मिश्रित प्रश्न है, 20 साल की देरी के बावजूद, अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट न्यायालय के क्षेत्राधिकार में था, क्योंकि 2015 में राज्य द्वारा बेदखली की धमकी ने कार्रवाई का एक नया कारण प्रदान किया। याचिका को स्वीकार किया गया और राज्य को आठ सप्ताह के भीतर याचिकाकर्ताओं के पक्ष में राजस्व अभिलेख अद्यतन करने का निर्देश दिया गया। अधिवक्ता का नाम जोड़ने संबंधी सुधार आवेदन भी स्वीकार कर लिया गया।

रिट याचिका स्वीकृत; राजस्व अभिलेखों को याचिकाकर्ताओं के पक्ष में अद्यतन किया जाए।

<u>चर्चा किए गये निर्णयज विधि:</u>

1. पं. मदन स्वरूप श्रोतिया पब्लिक चैरिटेबल ट्रस्ट बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2000) 6 एससीसी 325* - कब्जे के साक्ष्य के अभाव में निरसन अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत कार्यवाही समाप्त।

2. विनायक काशीनाथ शेलकर बनाम डिप्टी कलेक्टर, (2012) 4 एससीसी 718* - कब्जे का अर्थ वास्तविक भौतिक कब्जा है, न कि विधिक कब्जा।

3. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम हरि राम, (2013) 4 एससीसी 280* - धारा 10(3) के तहत निहित होने मात्र से वास्तविक कब्जा नहीं मिल जाता; राज्य को स्वैच्छिक समर्पण या बलपूर्वक बेदखली साबित करना होगा।

4. गजानन कामल्या पाटिल बनाम अपर कलेक्टर, एआईआर 2014 एससी 1843* - हदबंदी अधिनियम के अंतर्गत वास्तविक भौतिक कब्जा आवश्यक है।

5. असम राज्य बनाम भास्कर ज्योति शर्मा, (2015) 5 एससीसी 321* - धारा 10(5) के अंतर्गत बिना सूचना के बेदखली, यदि समय पर चुनौती नहीं दी जाती है, तो निरसन अधिनियम के प्रयोजनों के लिए कब्जे को अमान्य नहीं करती है।

6. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम एहसान, 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 1331* - रिट न्यायालय को अत्यधिक विलंब से कब्जे के विवादों पर निर्णय लेने से बचना चाहिए; उपयुक्त के अनुरूप निर्वासन

7. मेसर्स ए.पी. इलेक्ट्रिकल इक्विपमेंट कॉर्पोरेशन बनाम तहसीलदार, 2025 एससीसी ऑनलाइन एससी 447* - निरसन अधिनियम के अंतर्गत कब्जा वास्तविक है; रिट न्यायालय न्याय की त्रुटि को रोकने के लिए विधि और तथ्य के मिश्रित प्रश्नों पर निर्णय दे सकता है।

8. डिप कंपनी ऑप. एचएसजी. सोसाइटी लिमिटेड बनाम गुजरात राज्य, 2020 एससीसी ऑनलाइन गुजरात 693* - हदबंदी अधिनियम के अंतर्गत कब्जा वास्तविक भौतिक कब्जे को संदर्भित करता है।

9. जोर सिंह उर्फ छोटेलाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, रिट सी संख्या 36691/2004* - वास्तविक कब्जे के अभाव में कार्यवाही को समाप्त करने का समर्थन करता है।

10. नेत्र पाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, रिट सी संख्या 34859/2013* - हदबंदी अधिनियम की कार्यवाही के लिए वास्तविक कब्जे की आवश्यकता को मजबूत करता है।

11. उड़ीसा राज्य बनाम डॉ. (कुमारी) बिनापानी देई, एआईआर 1967 एससी 1269* - रिट न्यायालय को उचित प्रकरणों में तथ्यात्मक प्रश्नों पर निर्णय लेने से नहीं रोका गया है।

<u>अवलोकन</u>:

न्यायालय ने राजस्व अभिलेखों में विरोधाभास पाया, जिसमें याचिकाकर्ताओं के नाम खसरा संख्या 1422 फसली (2012) और संत का नाम खतौनी संख्या 1414-1419 फसली (2004-2009) और 1426-1431 फसली (2016-2021) में दर्ज थे। प्रयागराज विकास प्राधिकरण को भूमि हस्तांतरित करने वाले 1996 के शासनादेश के माध्यम से राज्य द्वारा किए गए कब्जे के दावे में वास्तविक कब्जे या मुआवजे के भुगतान के साक्ष्य का अभाव था। 20 साल की देरी को 2015 में बेदखली के खतरे के कारण क्षमा कर दिया गया, जिसके कारण वाद हेतुक बना।

राज्य के दावों को बिना जाँच के स्वीकार करने से अन्याय का खतरा था, जो अनुच्छेद 226 के अंतर्गत न्यायनिर्णयन को उचित ठहराता है।

(माननीय न्यायमूर्ति शेखर बी. सराफ द्वारा प्रदत्त)

1. यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत एक रिट याचिका है, जिसमें याचिकाकर्ताओं ने एक परमादेश रिट जारी करने की प्रार्थना की है, जो प्रत्यर्थीगण को इलाहाबाद जिले के करछना तहसील के लवायन परगना अरैल गांव में स्थित उनकी घोषित अधिशेष भूमि से याचिकाकर्ताओं के शांतिपूर्ण कब्जे में हस्तक्षेप करने या बेदखल करने से रोके और साथ ही प्रत्यर्थीगण को निर्देश दे कि वे उपर्युक्त स्थान पर स्थित 67138.12 वर्ग मीटर क्षेत्रफल की भूमि/भूखंडों पर याचिकाकर्ताओं के शांतिपूर्ण कब्जे में कोई हस्तक्षेप न करें।

<u>तथ्य</u>

2. इस रिट याचिका को जन्म देने वाले तथ्यात्मक सार का विवरण नीचे दिया गया है:

क) वर्तमान सूची में, भोलानाथ (याचिकाकर्ता संख्या 1 से 4 के पिता, याचिकाकर्ता संख्या 5 और 6 के ससुर, और याचिकाकर्ता संख्या 7 से 11 के दादा) ग्राम लवायन कला, परगना अरैल, तहसील करछना, जिला इलाहाबाद में स्थित विभिन्न कृषि भूमि के स्वामी थे। उनका नाम फसली वर्ष 1422 (तदनुरूपी वर्ष 2012) के खसरे में भी दर्ज था। वे तब से इस भूमि पर खेती कर रहे थे।

ख) राज्य ने खाली भूमि के संबंध में उनके बयान के आधार पर नगरीय भूमि (हदबंदी एवं विनियमन) अधिनियम, 1976 (जिसे आगे 'हदबंदी अधिनियम' कहा जाएगा) की धारा 6(1) के अंतर्गत वाद संख्या के-3770/1976 (राज्य बनाम भोलानाथ) में भोलानाथ के विरुद्ध हदबंदी की कार्यवाही शुरू की।

ग) इसके बाद, सक्षम प्राधिकारी, शहरी भूमि हदबंदी, इलाहाबाद (जिसे आगे 'प्रत्यर्थी संख्या 3' कहा जाएगा) ने हदबंदी अधिनियम की धारा 8(4) के अंतर्गत 24 मई, 1983 को एक-पक्षीय आदेश पारित किया, जिसमें 67,138.12 वर्ग मीटर भूमि को अधिशेष घोषित किया गया।

घ) 24 जुलाई, 1993 को हदबंदी अधिनियम की धारा 10(1) के अंतर्गत एक अधिसूचना प्रकाशित की गई, जिसके बाद आधिकारिक राजपत्र में हदबंदी अधिनियम की धारा 10(3) के अंतर्गत एक घोषणा प्रकाशित की गई।

ङ) इसके बाद, प्रत्यर्थी संख्या 3 ने हदबंदी अधिनियम की धारा 10(5) के अंतर्गत 27 मई, 1996 को एक नोटिस जारी किया, जिसमें भोलानाथ को नोटिस प्राप्त होने के 30 दिनों के भीतर अधिशेष भूमि का कब्जा कलेक्टर/जिला मजिस्ट्रेट, इलाहाबाद को स्वेच्छा से सौंपने/समर्पित करने का निर्देश दिया गया।

च) हालाँकि, भोलानाथ ने न तो स्वेच्छा से प्राधिकरण के समक्ष भूमि का कब्जा छोड़ा, न ही इलाहाबाद के जिला मजिस्ट्रेट/कलेक्टर या किसी अन्य प्राधिकारी ने हदबंदी अधिनियम की धारा 10(6) के अंतर्गत उस पर बलपूर्वक कब्जा किया। हदबंदी की कार्यवाही केवल हदबंदी अधिनियम की धारा 10(5) के चरण तक ही पहुँची।

छ) भोलानाथ मई, 2005 में अपनी मृत्यु तक भूमि के वास्तविक भौतिक कब्जे में बने रहे। उनके निधन के बाद, उनके विधिक उत्तराधिकारियों को अतिरिक्त भूमि सहित संपत्ति विरासत में मिली, और तब से वे वास्तविक भौतिक कब्जे में हैं।

ज) चूँकि राज्य सरकार द्वारा भूमि का न तो वास्तविक भौतिक कब्जा लिया गया था और न ही घोषित अतिरिक्त भूमि के लिए उन्हें कोई मुआवजा दिया गया था, इसलिए अधिनियम के अंतर्गत सभी कार्यवाहियाँ शहरी भूमि (हदबंदी और विनियमन) निरसन अधिनियम, 1999 (जिसे आगे 'निरसन अधिनियम' कहा जाएगा) के लागू होने के बाद समाप्त हो गईं।

झ) दिसंबर 2015 में, प्रत्यर्थी प्राधिकारियों ने भूमि का दौरा किया और याचिकाकर्ताओं को 30 दिनों के भीतर अतिरिक्त भूमि खाली करने की धमकी दी। उन्होंने चेतावनी दी कि यदि भूमि वापस नहीं की गई, तो उन्हें जबरन बेदखल कर दिया जाएगा।

ञ) *एकपक्षीय* आदेश और प्रत्यर्थीगण द्वारा शांतिपूर्ण कब्जे से बेदखल करने की धमकी से व्यथित होकर, याचिकाकर्ताओं ने अनुतोष की मांग करते हुए इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है।

<u>याचिकाकर्ताओं की दलीलें</u>

3. याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित दलीलें दी हैं:

क) हदबंदी अधिनियम की धारा 8(4) के अंतर्गत आदेश पारित करने से पूर्व, संबंधित व्यक्ति को हदबंदी अधिनियम की धारा 8(3) के अंतर्गत एक मसौदा विवरण के साथ उचित और प्रभावी नोटिस जारी करना एक वैधानिक आदेश है। वर्तमान वाद में, याचिकाकर्ताओं को धारा 8(3) के अंतर्गत कभी भी नोटिस तामील नहीं किया गया। अन्य बातों के साथ-साथ, राज्य ने अपने प्रति-शपथपत्र में यह तर्क दिया है कि हदबंदी अधिनियम की धारा 8(3) के अंतर्गत नोटिस संगम लाल (याचिकाकर्ता संख्या 4) को दिया गया था, जो भोलानाथ के पुत्र हैं और मूल भू-धृतिधारक थे। हालांकि, भोलानाथ अपने जीवनकाल के दौरान 2005 तक मूल भू-धृतिधारक थे।

ख) अधिशेष भूमि का वास्तविक भौतिक कब्जा याचिकाकर्ताओं के पास है, हालांकि राज्य अपने प्रति-शपथ पत्र में बताए गए तथ्य से वास्तविक कब्जा दिखा रहा है कि भूमि निरसन अधिनियम लागू होने से पूर्व 11 दिसंबर, 1996 के शासनादेश के माध्यम से प्रयागराज विकास प्राधिकरण को हस्तांतरित कर दी गई थी।

ग) **विनायक काशीनाथ शेलकर बनाम डिप्टी कलेक्टर और सक्षम प्राधिकारी और अन्य (2012) 4 एससीसी 718** में प्रतिवेदित**; गजानन कामल्या पाटिल बनाम अपर कलेक्टर और सक्षम प्राधिकारी (यूएलसी) और अन्य एआईआर 2014 एससी 1843** में प्रतिवेदित; और **डिप कंपनी ऑप एचएसजी सोसाइटी लिमिटेड बनाम गुजरात राज्य, 2020 एससीसी ऑनलाइन गुजरात 693** में प्रतिवेदित, जैसे सर्वोच्च न्यायालय के असंख्य निर्णयों पर भरोसा किया गया है, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि 'कब्जे' का अर्थ वास्तविक भौतिक कब्जा है, न तो वास्तविक कब्जा है और न ही केवल कागजी या विधिक कब्जा है।

घ) भोलानाथ को सुनवाई का कोई अवसर दिए बिना उनके विरुद्ध पूरी कार्यवाही एकपक्षीय रूप से संचालित की गई।

ङ) हदबंदी अधिनियम की धारा 10(5) के अंतर्गत जारी नोटिस के आधार पर राज्य द्वारा राजस्व अभिलेखों में प्रविष्टियों को मनमाने ढंग से बदल दिया गया।

च) राज्य ने राजस्व अभिलेखों में प्रविष्टियों को उचित ठहराने वाले कोई दस्तावेज/कब्जे का ज्ञापन दाखिल नहीं किया है। राज्य ने यह दर्शाने के लिए कोई पंचनामा भी तैयार नहीं किया है कि कब्जा उनके द्वारा ले लिया गया है।

छ) विवादित भूमि का वास्तविक भौतिक कब्जा राज्य द्वारा नहीं लिया गया था और कार्यवाही केवल हदबंदी अधिनियम की धारा 10(5) के चरण तक ही गई है। निरसन अधिनियम के अनुसार अधिग्रहण की कार्यवाही समाप्त हो गई है। अतः, याचिकाकर्ताओं के शांतिपूर्ण कब्जे में हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए।

ज) तर्कों को पुष्ट करने के लिए, **पं. मदन स्वरूप श्रोतिया पब्लिक चैरिटेबल ट्रस्ट बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2000) 6 एससीसी 325** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का हवाला दिया गया है, जिसमें न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि अधिशेष भूमि पर कब्जे को दर्शाने वाले अभिलेखों के अभाव में, निरसन अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत कार्यवाही समाप्त कर दी जानी चाहिए। तर्कों को पुष्ट करने के लिए उक्त निर्णय का प्रासंगिक प्रस्तर नीचे उद्धृत किया गया है:

"5. चूँकि अभिलेखों में ऐसा कुछ भी नहीं है जो यह दर्शाता हो कि राज्य ने अधिशेष भूमि पर कब्जा कर लिया था, इसलिए वर्तमान कार्यवाही उपशमित की जानी चाहिए और शहरी भूमि (हदबंदी और विनियमन) निरसन अधिनियम, 1999 की धारा 4 के अंतर्गत उपशमित की जाती है।"

झ) **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम हरि राम (2013) 4 एससीसी 280** में प्रतिवेदित वाद में, सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि हदबंदी अधिनियम की धारा 10 (3) के अंतर्गत अधिकार प्रदान करने मात्र से राज्य को कब्जे का कोई वास्तविक अधिकार नहीं मिल जाता है, जब तक कि हदबंदी अधिनियम की धारा 10 (5) के अंतर्गत स्वैच्छिक आत्मसमर्पण या शांतिपूर्वक कब्जे की डिलीवरी या हदबंदी अधिनियम की धारा 10 (6) के अंतर्गत बलपूर्वक बेदखली न हो। निर्णय के प्रासंगिक प्रस्तर नीचे उद्धृत हैं:

"निरसन अधिनियम का प्रभाव

41. आइए अब हम निरसन अधिनियम, 15/1999 की धारा 3 के अधिनियम की धारा 10 की उप-धारा (3) पर प्रभाव का परीक्षण करें। निरसन अधिनियम, 1999 ने 1976 के अधिनियम 33 को स्पष्ट रूप से निरस्त कर दिया है। निरसन अधिनियम के उद्देश्यों और कारणों का उल्लेख इस निर्णय के पूर्व भाग में पहले ही किया जा चुका है। हालाँकि, निरसन अधिनियम में एक व्यावृत्ति खंड को बरकरार रखा गया है। यह प्रश्न कि क्या किसी विधि के तहत निरसन से पहले कोई अधिकार अर्जित किया गया है या दायित्व वहन किया गया है, प्रत्येक वाद में विधि की व्याख्या और विशिष्ट वाद के तथ्यों पर निर्भर करेगा।

42. धारा 10 की उपधारा (3) के अंतर्गत भूमि का निहित होना मात्र राज्य सरकार को खाली भूमि पर वास्तविक कब्जा प्राप्त करने का कोई अधिकार प्रदान नहीं करता, जब तक कि 18-3-1999 से पहले खाली भूमि का स्वैच्छिक समर्पण न हुआ हो। राज्य को यह स्थापित करना होगा कि धारा 10 की उपधारा (5) के अंतर्गत खाली भूमि का स्वैच्छिक समर्पण या शांतिपूर्ण कब्जे का समर्पण और वितरण या धारा 10 की उपधारा (6) के अंतर्गत बलपूर्वक बेदखली हुई है। इनमें से किसी भी स्थिति को स्थापित न कर पाने पर, भूमि स्वामी या धारक

निरसन अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत लाभ का दावा कर सकता है। इस अपील में राज्य सरकार इनमें से किसी भी स्थिति को स्थापित नहीं कर सका और इसलिए उच्च न्यायालय का यह मानना सही है कि प्रत्यर्थी निरसन अधिनियम की धारा 4 का लाभ पाने का हकदार है।

ञ) इस न्यायालय की खंडपीठ के जिन निर्णयों पर तर्कों को पुष्ट करने के लिए भरोसा किया गया है, वे हैं: **जोर सिंह उर्फ छोटेलाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, रिट सी संख्या 36691/2004; नेत्र पाल सिंह व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, रिट सी संख्या 34859/2013**

<u>प्रत्यर्थीगण के तर्क</u>

4. राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने निम्नलिखित प्रस्तुतियाँ दी हैं:

क) याचिकाकर्ताओं ने अभिकथन किया है कि 67138.12 वर्ग मीटर भूमि को अधिशेष भूमि घोषित करने वाले हदबंदी अधिनियम की धारा 8(4) के अंतर्गत एकपक्षीय आदेश पारित करने से पूर्व उन्हें हदबंदी अधिनियम की धारा 8(3) के अंतर्गत 10 दिसंबर, 1980 का नोटिस नहीं दिया गया था। इस संबंध में, यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि हदबंदी अधिनियम की धारा 8(3) के अंतर्गत मसौदा विवरण सहित नोटिस विधिवत जारी किया गया था और 13 अप्रैल, 1983 को संगम लाल (याचिकाकर्ता संख्या 4) पुत्र भोलानाथ को तामील किया गया था, जो भूमि के मूल भू-धृतिधारक थे।

ख) हदबंदी अधिनियम की धारा 10(3) के अंतर्गत अधिशेष भूमि की घोषणा के प्रकाशन के साथ ही, 3 फरवरी, 1996 की अधिसूचना द्वारा आधिकारिक राजपत्र में उक्त अधिसूचना में निर्दिष्ट तिथि से सभी भारों से मुक्त होकर, राज्य सरकार को पूर्ण अधिकार प्राप्त हो गया।

ग) हदबंदी अधिनियम की धारा 10(5) के अंतर्गत नोटिस की तामील और 27 मई, 1996 को आदेश पारित होने पर, भोलानाथ ने विवादित भूमि का कब्जा शांतिपूर्वक प्रत्यर्थी संख्या 3 को हस्तांतरित कर दिया। तदनुसार, राजस्व अभिलेखों को संशोधित कर मूल खातेदार का नाम राज्य सरकार के नाम पर दर्ज कर दिया गया। अतः, निरसन अधिनियम के लागू होने से पूर्व, प्रत्यर्थीगण द्वारा अधिनियम के अनुसार वैध रूप से भौतिक कब्ज़ा कर लिया गया था। नोटिस जारी करना और उसकी तामील अधिनियम के अनुसार की गई थी।

घ) राज्य के नाम और कब्जे वाली भूमि 11 दिसंबर, 1996 के शासनादेश द्वारा प्रयागराज विकास प्राधिकरण को हस्तांतरित कर दी गई थी। अतः, भूमि का वास्तविक कब्ज़ा राज्य का है।

ङ) आवंटन समिति के 2 सितंबर, 2009 के निर्णय के अनुसार, जिला मजिस्ट्रेट, प्रयागराज ने राज्य में निहित भूमि को हाईटेक टाउनशिप के विकास हेतु प्रयागराज विकास प्राधिकरण (पीडीए) को आवंटित किया था और उपरोक्त निर्णय के अनुसरण में, प्रयागराज विकास प्राधिकरण द्वारा मेसर्स पंचम रियलकॉन प्राइवेट लिमिटेड के पक्ष में 28 जून, 2010 को एक पट्टा विलेख भी निष्पादित किया गया था।

च) हदबंदी अधिनियम की धारा 8(4) के अंतर्गत पारित आदेश के विरुद्ध हदबंदी अधिनियम की धारा 32 के अंतर्गत एक वैकल्पिक उपाय उपलब्ध है। याचिकाकर्ताओं ने न तो धारा 8(4) के अंतर्गत पारित 24 मई, 1983 के आदेश को चुनौती दी और न ही हदबंदी अधिनियम की धारा 10(5) के अंतर्गत 27 मई, 1996 के नोटिस

को चुनौती दी, बल्कि अत्यधिक विलंब के बाद वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया।

छ) तर्कों को पुष्ट करने के लिए, **असम राज्य बनाम भास्कर ज्योति शर्मा, 2015 (5) एससीसी 321** में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का हवाला दिया गया है। निर्णय के प्रासंगिक प्रस्तर नीचे उद्धृत हैं:

"11. निरसन अधिनियम की धारा 3 यह निर्धारित करती है कि धारा 10 की उपधारा (3) के अंतर्गत किसी भी खाली भूमि का स्वामित्व इस शर्त के अधीन है कि उसका कब्ज़ा सक्षम प्राधिकारी या राज्य सरकार या राज्य सरकार द्वारा विधिवत अधिकृत किसी व्यक्ति द्वारा ले लिया गया हो। धारा 3 (पूर्वोक्त) में प्रयुक्त "कब्ज़े" शब्द की व्याख्या अधिशेष भूमि के "वास्तविक भौतिक कब्ज़े" के रूप में की गई है, न कि केवल उस कब्जे के रूप में जो अधिनियम की धारा 10(3) के अनुसार अतिरिक्त भूमि के स्वामित्व के साथ आता है।

12. हालाँकि, प्रश्न यह है कि क्या विवादित भूमि का वास्तविक भौतिक कब्ज़ा वर्तमान वाद में सक्षम प्राधिकारी या राज्य सरकार या राज्य सरकार द्वारा उस निमित्त अधिकृत किसी अधिकारी द्वारा लिया गया है।

13. अपीलकर्ता का वाद यह है कि भूमि का वास्तविक भौतिक कब्जा 7-12-1991 को एकतरफा और पूर्व भूस्वामी को नोटिस दिए बिना लिया गया था। प्रत्यर्थीगण द्वारा इस दावे का दृढ़ता से खंडन किया जाता है, जिससे तथ्य का गंभीर रूप से विवादित प्रश्न उठता है, जो उच्च न्यायालय द्वारा अपने रिट क्षेत्राधिकार के प्रयोग में संतोषजनक निर्धारण के लिए उत्तरदायी नहीं हो सकता है। लेकिन यह मानते हुए कि संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत कार्यवाही में भी ऐसा कोई निर्धारण संभव है, जिस बात की जांच की आवश्यकता है वह यह है कि क्या सरकार या अधिकृत अधिकारी या सक्षम प्राधिकारी द्वारा धारा 10(5) के अनुसार भूस्वामियों को नोटिस जारी करने में विफलता का अर्थ अपने आप में यह होगा कि ऐसा बेदखली विधि की नजर में बेदखली नहीं है और इसलिए निरसन अधिनियम की धारा 3 को आकर्षित करने के लिए अपर्याप्त है। इस प्रश्न का हमारा उत्तर नकारात्मक है।

***

17. प्रत्यर्थीगण ने हरि राम मामले [उत्तर प्रदेश राज्य बनाम हरि राम, (2013) 4 एससीसी 280 : (2013) 2 एससीसी (सिविल) 583] में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया। हमारे विचार से, वह निर्णय प्रत्यर्थीगण के लिए अधिक सहायक नहीं है। हम ऐसा इसलिए कह रहे हैं, क्योंकि यह न्यायालय हरि राम वाद [उत्तर प्रदेश राज्य बनाम हरि राम, (2013) 4 एससीसी 280 : (2013) 2 एससीसी (सिविल) 583] में इस बात पर विचार कर रहा था कि क्या धारा 10(5) में प्रयुक्त शब्द "कर सकता है" सक्षम प्राधिकारी को धारा 10(6) के अंतर्गत विचाराधीन भूमि का भौतिक कब्जा लेने से पहले नोटिस जारी करने या न करने का विवेकाधिकार देता है। इस मामले में यह प्रश्न विचारणीय नहीं था कि क्या धारा 10(5) का उल्लंघन और बिना नोटिस के संभावित बेदखली, बेदखली के कार्य को ही निष्प्रभावी कर देगी या उसे विधि की नज़र में अमान्य बना देगी। हमारी राय में, धारा 10(5) जो निर्धारित करती है वह एक सामान्य और तार्किक कार्यवाही है, जिसका पालन प्राधिकारियों द्वारा धारा 10(6) के अंतर्गत बल प्रयोग करके कब्जाधारी को बेदखल करने का निर्णय लेने से पहले किया जाना चाहिए। इस वाद में यदि दिसंबर 1991 में पूर्ववर्ती मालिक को बेदखल करने के संबंध में अपीलकर्ता का कथन सही है, तो यह तथ्य कि धारा 10(5) के अंतर्गत बिना नोटिस के बेदखली की गई थी, कोई महत्व नहीं

रखेगा और निरसन अधिनियम की धारा 3 के प्रयोजनों के लिए कब्जा लेने के कार्य को निष्प्रभावी या नष्ट नहीं करेगा। ऐसा इसलिए है क्योंकि पूर्व मालिक, भबदेव शर्मा ने अपने जीवनकाल में किसी भी स्तर पर धारा 10(5) के उल्लंघन के आधार पर कोई शिकायत दर्ज नहीं की थी, जिससे यह संकेत मिलता हो कि उन्होंने ऐसा करने के अपने अधिकार का त्याग कर दिया था।"

<u>चर्चा और विश्लेषण</u>

5. हमने प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर विचार किया है और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों का अवलोकन किया है। दोनों पक्षों द्वारा प्रस्तुत प्रतिद्वंद्वी तर्कों पर आगे बढ़ने से पहले, हमें निरसन अधिनियम, 1999 की धारा 3 और 4 पर गौर करना होगा, जो नीचे उल्लिखित हैं:

***"धारा 3. व्यावृतियाँ** -*

(1) मूल अधिनियम का निरसन निम्नलिखित को प्रभावित नहीं करेगा -

(क) धारा 10 की उप-धारा (3) के अंतर्गत किसी खाली भूमि का निहित होना, जिसका कब्जा राज्य सरकार या राज्य सरकार द्वारा इस संबंध में विधिवत अधिकृत किसी व्यक्ति या सक्षम प्राधिकारी द्वारा ले लिया गया हो;

(ख) धारा 20 की उपधारा (1) के अधीन छूट प्रदान करने वाले किसी आदेश या उसके अधीन की गई किसी कार्रवाई की वैधता, किसी न्यायालय या उसके किसी निर्णय के विपरीत होने के बावजूद;

(ग) धारा 20 की उपधारा (1) के अधीन छूट प्रदान करने की शर्त के रूप में राज्य सरकार को किया गया कोई भुगतान।

(2) जहां-

(क) कोई भूमि मूल अधिनियम की धारा 10 की उपधारा (3) के अधीन राज्य सरकार में निहित समझी जाती है, किन्तु जिसका कब्जा राज्य सरकार या राज्य सरकार द्वारा इस निमित्त विधिवत् प्राधिकृत किसी व्यक्ति या सक्षम प्राधिकारी द्वारा नहीं लिया गया है; और (ख) ऐसी भूमि के संबंध में राज्य सरकार द्वारा कोई राशि चुकाई गई है, तो ऐसी भूमि तब तक वापस नहीं की जाएगी जब तक कि चुकाई गई राशि, यदि कोई हो, राज्य सरकार को वापस नहीं कर दी जाती।

***धारा 4. विधिक कार्यवाहियों का उपशमन:**–इस अधिनियम के प्रारंभ से ठीक पूर्व किसी न्यायालय, न्यायाधिकरण या किसी प्राधिकारी के समक्ष मूल अधिनियम के अधीन किए गए या किए जाने हेतु प्रकल्पित किसी आदेश से संबंधित सभी कार्यवाहियां उपशमित हो जाएंगी; परंतु यह धारा मूल अधिनियम की धारा 11, 12, 13 और 14 से संबंधित कार्यवाहियों पर लागू नहीं होगी, जहां तक ऐसी कार्यवाहियां उस भूमि से संबंधित हैं, जिसका कब्जा राज्य सरकार या राज्य सरकार द्वारा इस निमित्त विधिवत् प्राधिकृत किसी व्यक्ति या सक्षम प्राधिकारी द्वारा ले लिया गया है।"*

अनधिकृत

6. निरसन अधिनियम की धारा 3 में प्रावधान है कि यदि निरसन अधिनियम के लागू होने से पहले राज्य सरकार या उसके द्वारा विधिवत अधिकृत किसी व्यक्ति द्वारा खाली भूमि पर कब्जा नहीं लिया गया है, तो निरसन अधिनियम की धारा 4 के आधार पर कार्यवाही समाप्त हो जाएगी। इसके अलावा, यदि हदबंदी अधिनियम की धारा 10(3) के तहत स्वामित्व राज्य सरकार में निहित है, तो राज्य द्वारा ऐसी भूमि के लिए भुगतान किए गए किसी भी मुआवजे के पुनर्भुगतान पर इसे मूल भूमिधारक को वापस कर दिया जाना चाहिए।

7. **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम हरि राम (पूर्वोक्त)** में, सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि हदबंदी अधिनियम की धारा 10(3) के अंतर्गत केवल स्वामित्व निहित होने का अर्थ यह नहीं है कि राज्य ने भूमि पर वास्तविक कब्जा कर लिया है क्योंकि इसे साबित करने का दायित्व राज्य पर है। निर्णय के प्रासंगिक प्रस्तर नीचे दिए गए हैं:

"41. आइए अब हम निरसन अधिनियम, 15, 1999 की धारा 3 का अधिनियम की धारा 10 की उप-धारा (3) पर प्रभाव का परीक्षण करें। निरसन अधिनियम, 1999 ने 1976 के अधिनियम 33 को स्पष्ट रूप से निरस्त कर दिया है। निरसन अधिनियम के उद्देश्यों और कारणों का उल्लेख इस निर्णय के पूर्व भाग में किया जा चुका है। हालाँकि, निरसन अधिनियम में एक व्यावृत्ति खंड को बरकरार रखा गया है। यह प्रश्न कि क्या किसी विधि के तहत उसके निरसन से पहले कोई अधिकार अर्जित किया गया है या दायित्व वहन किया गया है, प्रत्येक मामले में विधि की व्याख्या और विशेष वाद के तथ्यों पर निर्भर करेगा।

42. धारा 10 की उप-धारा (3) के तहत भूमि का निहित होना मात्र राज्य सरकार को खाली भूमि पर वास्तविक कब्जा रखने का कोई अधिकार प्रदान नहीं करता है, जब तक कि 18-3-1999 से पहले खाली भूमि का स्वैच्छिक समर्पण न किया गया हो। राज्य को यह सिद्ध करना होगा कि धारा 10 की उपधारा (5) के अंतर्गत खाली भूमि का स्वैच्छिक समर्पण या शांतिपूर्ण कब्जे का समर्पण और वितरण हुआ है, या धारा 10 की उपधारा (6) के अंतर्गत बलपूर्वक बेदखली हुई है। इनमें से किसी भी स्थिति को सिद्ध न कर पाने पर, भूमि स्वामी या धारक निरसन अधिनियम की धारा 4 के तहत लाभ का दावा कर सकता है। इस अपील में राज्य सरकार इनमें से किसी भी स्थिति को सिद्ध नहीं कर सकी, इसलिए उच्च न्यायालय का यह मानना सही है कि प्रत्यर्थी निरसन अधिनियम की धारा 4 का लाभ पाने का हकदार है।

(बल दिया गया)

8. इस मुद्दे पर गहराई से विचार करने से पहले, उन तथ्यों को स्पष्ट करना उपयोगी होगा जिन पर दोनों पक्षों द्वारा विवाद नहीं है। ये तथ्य नीचे दिए गए हैं:

क) हदबंदी अधिनियम की धारा 8(4) के अंतर्गत सक्षम प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश द्वारा 67,138.12 वर्ग मीटर भूमि को अधिशेष घोषित किया गया।

ख) अधिनियम की धारा 10(1) के अंतर्गत 24 जुलाई, 1993 को एक अधिसूचना प्रकाशित की गई।

ग) हदबंदी अधिनियम की धारा 10(5) के अंतर्गत राज्य को भूमि का कब्जा सौंपने/समर्पित करने हेतु 27 मई, 1996 को नोटिस जारी किया गया।

9. याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी कि अधिशेष भूमि का वास्तविक भौतिक कब्जा याचिकाकर्ताओं के पास है और हदबंदी अधिनियम की धारा 10(5) के अंतर्गत नोटिस जारी होने के बाद न तो कभी राज्य को कब्जा सौंपा गया है और न ही राज्य ने हदबंदी अधिनियम की धारा 10(6) के अंतर्गत भूमि पर बलपूर्वक कब्जा किया है। इसके अलावा, राज्य वह तारीख दिखाने में असमर्थ है, जिस दिन उनके द्वारा कब्जा लिया गया था या वह तारीख जिस दिन भूमि प्रयागराज विकास प्राधिकरण को हस्तांतरित की गई थी जिस पर प्रत्यर्थीगण द्वारा भूमि पर वास्तविक कब्जे का दावा किया गया है।

10. इसलिए, अधिशेष भूमि पर कब्जा साबित करने का दायित्व राज्य पर है, यदि वे ऐसा दावा कर रहे हैं; लेकिन इसे दर्शाने के लिए कोई दस्तावेजी साक्ष्य जैसे कब्जे का ज्ञापन या पंचनामा अभिलेख पर नहीं लाया गया है।

11. इसके विपरीत, प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने याचिकाकर्ताओं के तर्कों को खारिज करते हुए तर्क प्रस्तुत किया कि हदबंदी अधिनियम की धारा 10(5) के अंतर्गत नोटिस जारी करने के बाद राज्य द्वारा अधिशेष भूमि पर कब्जा पहले ही ले लिया गया था। इसके अतिरिक्त, अपने तर्कों को पुष्ट करने के लिए, राज्य इस तथ्य से भी भूमि पर वास्तविक कब्जा दर्शा रहा है कि इसे 11 दिसंबर, 1996 के शासनादेश के अनुसरण में प्रयागराज विकास प्राधिकरण को हस्तांतरित कर दिया गया है और उसके बाद, 28 जून, 2010 को हाई टेक टाउनशिप के विकास हेतु मेसर्स पंचम रियलकॉन प्राइवेट लिमिटेड के पक्ष में पट्टे पर दे दिया गया।

12. इस मुद्दे पर निर्णय लेने से पहले, इस न्यायालय के समक्ष उठे मुद्दे की प्रकृति पर विचार करना उचित है।

13. कब्जे का तथ्य मुख्य रूप से तथ्य का प्रश्न है और यह स्थापित विधि है कि सामान्यतः तथ्य के विवादित प्रश्न का विवेचना, न्यायनिर्णयन या हस्तक्षेप भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग करते समय रिट न्यायालय द्वारा नहीं किया जाता है। लेकिन तथ्य के विवादित प्रश्न का अस्तित्व मात्र उचित राहत देने में रिट न्यायालय के क्षेत्राधिकार को नहीं छीनेगा।

14. **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम एहसान 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 1331** में प्रतिवेदित, सर्वोच्च न्यायालय ने रिट सी संख्या 21009/2012 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पारित आदेश को रद्द करते हुए अभिनिर्धारित किया कि न्यायालय को रिट याचिका के माध्यम से अधिशेष भूमि के कब्जे से संबंधित प्रश्नों पर निर्णय लेने से बचना चाहिए क्योंकि कब्जे का तथ्य मुख्य रूप से तथ्य का प्रश्न है। इसलिए, राज्य द्वारा दायर विशेष अनुमति याचिका को स्वीकार किया गया तथा प्रत्यर्थीगण को कब्जे से संबंधित प्रश्न पर निर्णय करने के लिए भेज दिया गया। निर्णय के प्रासंगिक प्रस्तर नीचे दिए गए हैं:

"35. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर और निम्नलिखित को ध्यान में रखते हुए: (क) कि अधिशेष भूमि पर कब्ज़ा लेने के संबंध में एक गंभीर विवाद था; (ख) कि निहितीकरण अधिसूचना के प्रकाशन के बाद, राज्य द्वारा कथित रूप से कब्ज़ा लिए जाने की तिथि से पहली रिट याचिका दायर करने में लगभग सात वर्षों का विलंब हुआ था; (ग) कि मूल याचिकाकर्ता द्वारा कथित रूप से कब्ज़ा लेने की तिथि और पहली रिट याचिका दायर करने के बीच की अवधि का कोई दस्तावेजी साक्ष्य जैसे खसरा या खतौनी दायर नहीं किया गया था; (घ) कि मुकदमेबाजी के पहले के दो दौरों में, उच्च न्यायालय ने अधिशेष भूमि पर कब्ज़ा करने के मुद्दे पर निर्णय लेने से परहेज किया, भले ही वह मुद्दा सीधे पक्षों के बीच उत्पन्न हुआ था; और (ई) कि कब्जा लेने के लिए निर्धारित वैधानिक प्रक्रिया का उल्लंघन राज्य के कब्जे के दावे को खारिज करने का एकमात्र आधार नहीं हो सकता है, जब यह कहा गया है कि यह मुद्दा उठाए जाने की तिथि से बहुत पहले लिया गया था, हमारा विचार है कि उच्च न्यायालय को निरसन अधिनियम, 1999 में निर्दिष्ट कट ऑफ तिथि से पहले अधिशेष भूमि का वास्तविक कब्जा लेने के संबंध में मुद्दे पर निर्णय करने से बचना चाहिए था। इसके बजाय, रिट याचिकाकर्ता को एक वाद में भेज दिया जाना चाहिए था।

36. उपरोक्त निष्कर्ष के मद्देनजर, अपील को स्वीकार किया जाता है। उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश को अपास्त किया जाता है। प्रथम प्रत्यर्थी की रिट याचिका वाद दायर करने के उसके अधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना खारिज की जाती है। पक्षकार अपनी लागत स्वयं वहन करेंगे।

15. हाल ही में, **मेसर्स ए.पी. इलेक्ट्रिकल इक्विपमेंट कॉर्पोरेशन बनाम तहसीलदार 2025 एससीसी ऑनलाइन एससी 447** में प्रतिवेदित, न्यायमूर्ति जे.बी. पारदीवाला द्वारा लिखित सर्वोच्च न्यायालय की दो-न्यायाधीशों की पीठ ने, **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम एहसान (पूर्वोक्त)** वाद की सुनवाई करते हुए, भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट क्षेत्राधिकार के दायरे की, विशेष रूप से विवादित तथ्यों के प्रश्नों के संबंध में, व्यापक रूप से परीक्षण किया है। न्यायालय ने स्पष्ट किया कि रिट न्यायालय सामान्यतः तथ्यात्मक विवादों पर निर्णय देने से बचते हैं, लेकिन केवल इसलिए कि राज्य या कोई पक्ष ऐसे विवाद उठाता है, उनका क्षेत्राधिकार स्वतः ही समाप्त नहीं हो जाता। यदि तथ्यों को केवल न्यायिक जाँच से बचने के लिए चुनौती दी जाती है, तो रिट न्यायालय को न्याय के हित में उनकी जाँच करने का अधिकार है। न्यायालय ने इस बात पर भी बल दिया कि जब परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाले उदाहरणों का सामना करना पड़े, तो उच्च न्यायालय को किसी निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए वाद के तथ्यों को तदनुसार सुसंगत बनाने का प्रयास करना चाहिए। इसके अलावा, यह भी देखा गया कि कुछ मुद्दे, जैसे कि अतिरिक्त भूमि पर कब्ज़ा तय करना, प्रत्येक वाद के तथ्यात्मक ढाँचे पर निर्भर करते हैं। इसमें विधि और तथ्य के मिश्रित प्रश्न शामिल हैं, जो रिट क्षेत्राधिकार को बाधित नहीं करते, खासकर जब विधिक व्याख्या समाधान का अभिन्न अंग हो। यह निर्णय इस बात पर ज़ोर देता है कि रिट न्यायालयों को तथ्यात्मक विवादों से निपटने से पूरी तरह प्रतिबंधित नहीं किया गया है, और यह अभिनिर्धारित किया गया कि रिट न्यायालय को प्रत्येक वाद के तथ्यों और न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत दस्तावेज़ी साक्ष्य के आधार पर, इन विवादों पर विचार करने का विवेकाधिकार है। निर्णय के प्रासंगिक प्रस्तर नीचे दिए गए हैं:

"41. निरसन अधिनियम, 1999 की धारा 3 के साथ पठित अधिनियम, 1976 की धारा 10(5) और 10(6) के संदर्भ में कब्जे के मुद्दे को नियंत्रित करने वाले विधि के प्रस्तावों को इस प्रकार संक्षेपित किया जा सकता है:

[1] निरसन अधिनियम, 1999 स्पष्ट रूप से अधिनियम, 1976 की धारा 10(5) या धारा 10(6) के तहत लिए गए कब्जे के बारे में बात करता है, जैसा भी मामला हो।

[2] सक्षम प्राधिकारी या राज्य का यह वैधानिक दायित्व है कि वह विधि में अनुमत अनुसार सख्ती से कब्जा ले।[3] यदि कब्जा अधिनियम, 1976 की धारा 10(6) के अंतर्गत लिया गया माना जाता है, तो न्यायालय अभी भी यह देखने के लिए बाध्य है कि क्या "ऐसा कब्जा लेना" विधि में किसी भी विचार पर वैध है या अमान्य है।

[3] निरसन अधिनियम, 1999 की धारा 3 के अंतर्गत परिकल्पित कब्ज़ा वास्तविक है, केवल विधिसम्मत नहीं है।

[4] अधिनियम के अंतर्गत "अतिरिक्त घोषित भूमि" को "वास्तविक कब्ज़ा" पुनः प्राप्त किए बिना केवल निहित कर देने का कोई महत्व नहीं है और भूमि धारक निरसन अधिनियम, 1999 के लाभों का हकदार है।

[5] धारा 10 की उप-धारा (5) और (6) के अंतर्गत क्रमशः सूचना देने की आवश्यकता अनिवार्य है। यद्यपि इसमें "हो सकता है" शब्द का प्रयोग किया गया है, फिर भी दोनों उप-धाराओं में "हो सकता है" शब्द को "होगा" के रूप में समझा जाना चाहिए क्योंकि न्यायालय उन परिणामों पर निर्णय लेने के लिए बाध्य है जो विधायिका ने आवश्यकता को लागू करने में विफलता के परिणामस्वरूप उत्पन्न करने का इरादा किया था।

[6] धारा 10 की उपधारा (3) के तहत भूमि का केवल निहित होना राज्य सरकार को खाली भूमि पर वास्तविक कब्जा रखने का कोई अधिकार नहीं देता, जब तक कि 18 मार्च 1999 से पहले खाली भूमि का स्वैच्छिक समर्पण न हुआ हो।

[7] राज्य को अभिलेख पर ठोस साक्ष्य द्वारा यह स्थापित करना होगा कि धारा 10 की उपधारा (6) के तहत खाली भूमि का स्वैच्छिक समर्पण या शांतिपूर्ण कब्जे का समर्पण और वितरण या धारा 10 की उपधारा (6) के अंतर्गत बलपूर्वक बेदखली हुई है।

****

49. संविधान के अनुच्छेद 226 में ऐसा कुछ भी नहीं है जो यह इंगित करे कि कार्यवाही में उच्च न्यायालय, वर्तमान की तरह, ऐसी जाँच करने से वंचित है। यह प्रस्ताव कि अनुच्छेद 226 के अंतर्गत एक याचिका को केवल इस आधार पर खारिज कर दिया जाना चाहिए कि तथ्य के विवादित प्रश्न का निर्धारण किए बिना इसका निर्णय नहीं किया जा सकता, विधि के किसी भी प्रावधान या इस न्यायालय के किसी भी निर्णय द्वारा समर्थित नहीं है। ऐसे प्रस्ताव का कठोर प्रयोग या उसे विधि या विवेक के एक अनम्य नियम के रूप में मानना, अनुच्छेद 226 के प्रावधानों को, विशेष रूप से अधिनियम, 1976 की धारा 10(5) और 10(6) को, अनिवार्य रूप से पूरी तरह से भ्रामक और अप्रभावी बना देगा। स्पष्टतः, उच्च न्यायालय को ऐसे परिणामों से बचना चाहिए।

50. उपर्युक्त संदर्भ में, हम उड़ीसा राज्य बनाम डॉ. (कुमारी) बिनापानी देई, एआईआर 1967 एससी 1269 के वाद में इस न्यायालय के निर्णय पर विचार कर सकते हैं। उक्त निर्णय के पृष्ठ 1270 के प्रस्तर 6 में, इस न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:–

"संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उच्च न्यायालय को याचिका द्वारा उठाए गए तथ्यात्मक प्रश्नों पर निर्णय लेने से नहीं रोका गया है। जहाँ संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत किसी याचिका में तथ्यात्मक जटिल प्रश्नों की जाँच उत्पन्न होती है, वहाँ पीड़ित पक्ष द्वारा दावा की गई राहत प्राप्त करने के अधिकार का निर्धारण किया जा सकता है। उच्च न्यायालय उपयुक्त वाद में उस जाँच में भाग लेने से इनकार कर सकता है और राहत का दावा करने वाले पक्ष को वाद के लिए संदर्भित कर सकता है। लेकिन यह प्रश्न विवेकाधिकार का है, न्यायालय के क्षेत्राधिकार का नहीं।"

***

52. उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम एहसान एवं अन्य, 2023 आईएनएससी 906 में प्रतिवेदित, इस न्यायालय के हालिया निर्णयों में से एक में, इस न्यायालय ने टिप्पणी की कि:-

"28. हम विधि के प्रति सचेत हैं कि वैकल्पिक उपाय का अस्तित्व रिट क्षेत्राधिकार के प्रयोग पर पूर्ण प्रतिबंध नहीं है। इसके अलावा, जब किसी रिट याचिका पर विचार किया जाता है, तो पक्षकारों ने अपनी दलीलें/शपथपत्र प्रस्तुत किए हैं और मामला लंबे समय तक लंबित रहा है। ऐसी स्थिति में, मामले का गुण-दोष के आधार पर निर्णय करने और रिट याचिकाकर्ता को वैकल्पिक उपाय के लिए बाध्य न करने का ईमानदार प्रयास किया जाना चाहिए, जब तक कि ऐसा करने के लिए बाध्यकारी कारण न हों। ऐसा एक बाध्यकारी कारण तब उत्पन्न हो सकता है, जब तथ्य के किसी प्रश्न पर पक्षों के बीच गंभीर विवाद हो और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री/साक्ष्य न्यायालय को किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचने में सक्षम बनाने के लिए अपर्याप्त/अनिर्णायक हों।

29. उपर्युक्त विधिक सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, हमें इस बात पर विचार करना होगा कि क्या वाद के तथ्यों को देखते हुए उच्च न्यायालय को प्रथम प्रत्यर्थी की तीसरी रिट याचिका को खारिज कर देना चाहिए था और उसे वाद में शामिल कर लेना चाहिए था, क्योंकि पक्षकारों के बीच कब्जा लेने के संबंध में एक गंभीर विवाद मौजूद था। इससे भी अधिक, जब उच्च न्यायालय ने मुकदमेबाजी के पहले दौर में उक्त मुद्दे पर विचार करने से परहेज किया था, जबकि यह पक्षकारों के बीच उत्पन्न हुआ था।

30. निस्संदेह, राज्य और भूमिधारक के बीच एक रिट कार्यवाही में, न्यायालय अभिलेख पर रखी गई सामग्री/साक्ष्य(ओं) के आधार पर यह निर्धारित कर सकता है कि कब्जा लिया गया है या नहीं और ऐसा करते समय, यह राज्य के खिलाफ प्रतिकूल निष्कर्ष निकाल सकता है जहां कब्जा लेने की वैधानिक विधि का पालन नहीं किया गया है [देखें उत्तर प्रदेश राज्य बनाम हरि राम (पूर्वोक्त)]। हालाँकि, जहाँ यह कहा गया है कि कब्ज़ा बहुत पहले ले लिया गया था और भूमिधारक की ओर से रिट न्यायालय जाने में अनुचित देरी हुई है, वहाँ कब्ज़ा लेने की निर्धारित प्रक्रिया का उल्लंघन निर्णायक कारक नहीं होगा, क्योंकि यह अभिनिर्धारित किया जा सकता है कि जिस व्यक्ति के लाभ के लिए यह प्रक्रिया मौजूद थी, उसने इसके अंतर्गत अपने अधिकार का त्याग कर दिया था [देखें असम राज्य सीए संख्या 4526-4527 वर्ष 2024 पृष्ठ 139/145 बनाम भास्कर ज्योति सरमा, (पूर्वोक्त)]। ऐसी स्थिति में, वास्तविक कब्ज़े का तथ्य अभिलेख में उपलब्ध सामग्री/साक्ष्य(ों) के आधार पर

निर्धारित किया जाना चाहिए, न कि केवल भूमिधारक से कब्ज़ा लेने के लिए अपनाई गई प्रक्रिया में दोष ढूंढकर। और यदि रिट न्यायालय को ऐसे प्रश्न का निर्धारण करना कठिन लगता है, तो या तो अभिलेख पर अपर्याप्त/अनिश्चित सामग्री/साक्ष्य के कारण या क्योंकि एक निश्चित राय बनाने के लिए मौखिक साक्ष्य की भी आवश्यकता होगी, तो वह रिट याचिकाकर्ता को वाद में शामिल कर सकता है, यदि वाद अन्यथा बनाए रखने योग्य है।

53. इस प्रकार, यह सब तथ्य के प्रश्न की प्रकृति पर निर्भर करेगा। दूसरे शब्दों में, सही निर्णय पर पहुँचने के लिए रिट न्यायालय को वास्तव में क्या निर्धारित करने की आवश्यकता है। यदि संपूर्ण बहस के इर्द-गिर्द घूमने वाला एकमात्र मुद्दा अधिनियम, 1976 की धारा 10 की उप-धारा (5) और (6) के प्रावधानों के अंतर्गत अतिरिक्त भूमि के वास्तविक कब्जे को लेने से संबंधित है, तो ऐसी परिस्थितियों में, रिट न्यायालय के पास तथ्यात्मक पहलुओं पर विचार करने और उस संबंध में उचित निर्णय लेने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। कब्जे का मुद्दा, अपने आप में, तथ्य का विवादित प्रश्न नहीं बनेगा। यदि राज्य द्वारा कही गई सभी बातों को एक सत्य के रूप में स्वीकार कर लिया जाए और भूस्वामी द्वारा प्रस्तुत किसी भी बात पर इस आधार पर विचार न किया जाए कि रिट न्यायालय तथ्य के विवादित प्रश्नों पर विचार नहीं कर सकता, तो इससे न्याय का गंभीर हनन हो सकता है।

54. हमारा यह सुविचारित मत है कि अधिनियम, 1976 की धारा 10 की उपधारा (5) और (6) के प्रावधानों के अनुसार अतिरिक्त भूमि का वास्तविक भौतिक कब्जा लेने से संबंधित मुद्दे को विधि और तथ्य का मिश्रित प्रश्न कहा जा सकता है, न कि केवल तथ्य का प्रश्न। विधि और तथ्य का मिश्रित प्रश्न उस प्रश्न को संदर्भित करता है जो अपने समाधान के लिए विधि और तथ्य दोनों पर निर्भर करता है। विधि और तथ्य के मिश्रित प्रश्न को हल करने में, एक पुनरीक्षण न्यायालय को वाद के तथ्यों का न्यायनिर्णयन करना चाहिए और साथ ही प्रासंगिक विधिक मुद्दों पर निर्णय देना चाहिए। विधि और तथ्य के मिश्रित प्रश्नों को "ऐसे प्रश्नों के रूप में परिभाषित किया जाता है, जिनमें ऐतिहासिक तथ्यों को स्वीकार या स्थापित किया जाता है, विधि के नियम का समाधान किया जाता है और मुद्दा यह होता है कि क्या तथ्य वैधानिक मानक को संतुष्ट करते हैं, या दूसरे शब्दों में कहें तो, क्या स्थापित तथ्यों पर लागू विधि के नियम का उल्लंघन होता है या नहीं"। [बॉश एंड लोम्ब बनाम यूनाइटेड स्टेट्स सी.आई.टी. 166, 169 (सीटी. इंटरनेशनल ट्रेड 1997]"

16. वर्तमान वाद में, याचिकाकर्ताओं ने फसली वर्ष 1422 (तदनुसार वर्ष 2012) का खसरा दिखाया, जिसमें रामजी और उनके विधिक उत्तराधिकारियों का नाम दर्शाया गया है और प्रत्यर्थीगण ने अपने प्रति-शपथपत्र में फसली वर्ष 1426-1431 (तदनुसार वर्ष 2016-2021) की खतौनी अभिलेख में लाया गया, जिसमें राज्य का नाम दर्शाया गया है। प्रत्यर्थीगण ने फसली वर्ष 1414-1419 (तदनुसार वर्ष 2004-2009) की खतौनी भी अभिलेख में लाया गया, जिसमें हाई टेक टाउनशिप का नाम दर्शाया गया है।

<u>निष्कर्ष</u>

17. दोनों पक्षों द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजी साक्ष्यों के मद्देनजर, इस संबंध में कुछ भ्रम प्रतीत होता है कि क्या वास्तव में राज्य द्वारा कब्जा लिया गया था। वर्तमान रिट याचिका वर्ष 2016, अर्थात राज्य द्वारा कथित रूप से कब्जा लिए जाने के 20 वर्ष बाद में दायर की गई है। याचिकाकर्ताओं द्वारा इतनी देर से यह रिट याचिका दायर करने में हुई लापरवाही के संबंध में रिट याचिका में दिया गया कारण यह है कि राज्य 20 वर्षों से याचिकाकर्ताओं को परेशान कर रहा था और उनकी भूमि पर कब्जा करने का प्रयास कर रहा था।

18. **मेसर्स ए.पी. इलेक्ट्रिकल इक्विपमेंट कॉर्पोरेशन (पूर्वोक्त)** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए मत के अनुसार, हदबंदी अधिनियम की धारा 10(5) और 10(6) के प्रावधानों के अनुसार अतिरिक्त भूमि का वास्तविक भौतिक कब्जा लेने का मुद्दा विधि और तथ्य का मिश्रित प्रश्न है, न कि केवल तथ्य का प्रश्न है। सर्वोच्च न्यायालय ने आगे स्पष्ट किया है कि यदि राज्य द्वारा कही गई सभी बातों को सत्य मान लिया जाए और भूमि स्वामी द्वारा प्रस्तुत किसी भी बात पर इस आधार पर विचार न किया जाए कि रिट न्यायालय तथ्य के किसी विवादित प्रश्न पर विचार नहीं कर सकता, तो इससे न्याय की गंभीर विफलता हो सकती है।

19. उपरोक्त अनुपात के आलोक में, हमारा विचार है कि रिट न्यायालय भूमि के वास्तविक कब्जे के पहलू पर निर्णय दे सकता है, यदि विवादित तथ्यों को समझा जा सके और रिट न्यायालय द्वारा सही स्थिति का पता लगाया जा सके।

20. इसके अतिरिक्त, **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम एहसान (पूर्वोक्त)** वाद में प्रतिपादित अनुपात को ध्यान में रखा जा सकता है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने विभिन्न पहलुओं पर विचार किया था और यह अभिनिर्धारित किया था कि कुछ परिस्थितियों में उच्च न्यायालय को तथ्य के किसी विवादित प्रश्न पर निर्णय लेने से बचना चाहिए, खासकर जब रिट याचिका दायर करने में बहुत अधिक विलंब हो। सर्वोच्च न्यायालय ने यह राय दी थी कि तदनुसार, इस मामले को वाद में स्थानांतरित कर दिया जाना चाहिए, जहाँ विवादित प्रश्न का निर्णय उचित विचारण के माध्यम से किया जा सकता है।

21. वर्तमान वाद में, हालांकि राज्य यह स्पष्ट रूप से इंगित नहीं कर पाया है कि राज्य ने कब कब्जा लिया था, तथ्यों से यह स्पष्ट है कि 11 दिसंबर, 1996 के एक शासनादेश द्वारा राज्य ने कथित तौर पर भूमि पर कब्जा लेने के बाद, इसे प्रयागराज विकास प्राधिकरण को हस्तांतरित कर दिया था। हालांकि, प्रति-शपथ पत्र में राज्य यह इंगित नहीं कर पाया है कि हदबंदी अधिनियम की धारा 10(6) के अंतर्गत भूमि धारक को बलपूर्वक बेदखली के लिए न तो कोई नोटिस जारी किया गया था और न ही राज्य सरकार द्वारा ऐसी भूमि के संबंध में मुआवजे के रूप में कोई राशि का भुगतान किया गया था। ये उपरोक्त तथ्य याचिकाकर्ताओं के पक्ष में तराजू को झुकाते हैं और यह निष्कर्ष निकालना पड़ता है कि भले ही याचिकाकर्ताओं की ओर से लापरवाही हुई हो, राज्य अंततः कभी भी वास्तविक कब्जा नहीं दिखा पाया है।

22. जैसा कि **मेसर्स ए.पी. इलेक्ट्रिकल इक्विपमेंट कॉरपोरेशन (पूर्वोक्त)** के निर्णय में परिकल्पित है, निरसन अधिनियम की धारा 3 के अंतर्गत परिकल्पित कब्जा वास्तविक कब्जा है न कि विधि सम्मत कब्जा है। इसके अलावा, वास्तविक कब्जे को फिर से शुरू किए बिना अधिनियम के अंतर्गत अधिशेष घोषित भूमि को निहित करना कोई परिणाम नहीं देता है और भूमि धारक निरसन अधिनियम के लाभ का हकदार है।

23. उपरोक्त अनुपात के प्रकाश में, हमारा मानना है कि वर्तमान वाद का तथ्यात्मक सार स्पष्ट रूप से याचिकाकर्ताओं के पक्ष में है क्योंकि राज्य किसी भी तरह से यह इंगित नहीं कर पाया है कि राज्य द्वारा वास्तविक कब्जा कैसे लिया गया था। तथ्यों से यह भी संकेत मिलता है कि खसरे में याचिकाकर्ताओं का नाम 2012 से 2016 तक मौजूद था।

24. उपरोक्त के प्रकाश में, कोई भी स्पष्ट निष्कर्ष पर पहुंचता है कि राज्य यह साबित करने के लिए कोई दस्तावेज अभिलेख पर नहीं ला पाया है कि अधिशेष भूमि का वास्तविक कब्जा राज्य द्वारा निरसन अधिनियम में निर्दिष्ट कट ऑफ तारीख से पहले लिया गया था। ऐसी स्थिति में, यह न्यायालय **मेसर्स ए.पी. इलेक्ट्रिकल इक्विपमेंट कॉर्पोरेशन (पूर्वोक्त)** के निर्णय का अनुसरण करते हुए, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत अपनी विवेकाधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए, याचिकाकर्ताओं के पक्ष में निर्णय देने के लिए बाध्य है।

25. तदनुसार, रिट याचिका को स्वीकार किया गया है। इसके बाद परिणामी राहत दी जाएगी। अधिकारियों को निर्देश दिया जाता है कि वे तिथि से आठ सप्ताह की अवधि के भीतर याचिकाकर्ताओं के पक्ष में राजस्व अभिलेख में बदलाव करें।

26. यह न्यायालय सुश्री सौम्या पटेल और श्री आशुतोष श्रीवास्तव, रिसर्ट एसोसिएट को धन्यवाद और सराहना करना चाहता है, जिन्होंने व्यापक शोध और विश्लेषण करने में इस न्यायालय की सहायता की है। यह न्यायालय उन अधिवक्तागण के प्रति भी आभार व्यक्त करना चाहता है, जो अपने मुवक्किलों की ओर से इस मामले में उपस्थित हुए और लगन से बहस किया है।

<u>सिविल प्रकीर्ण सुधार आवेदन संख्या 21/2025</u>

आवेदक की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री सुरेश कुमार शुक्ला और राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया।

वर्तमान सुधार आवेदन 2 अप्रैल, 2025 के आदेश में सुधार हेतु दायर किया गया है।

सुधार आवेदन में उल्लिखित कारणों से, इसे स्वीकार किया जाता है।

2 अप्रैल, 2025 के आदेश में, श्री सुरेश कुमार शुक्ला का नाम याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित अधिवक्ता के रूप में भी पढ़ा जाए।

इस आदेश को 2 अप्रैल, 2025 के आदेश का अभिन्न अंग माना जाए।

अनुवादित

(2025) 4 ILRA 650

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 02.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शेखर बी. सराफ

माननीय न्यायमूर्ति विपिन चंद्र दीक्षित

रिट सी संख्या 25120/2020

राजेंद्र प्रसाद व अन्य **...याचिकाकर्तागण**

बनाम

जिला मजिस्ट्रेट, बरेली व अन्य **...प्रत्यर्थीगण**

याचिकाकर्तागण के अधिवक्ता:
श्री उदित चंद्रा, श्री सुबोध कुमार

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता:
मुख्य स्थायी अधिवक्ता, श्री प्रतीक जे. नागर, श्री जे. नागर (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अनुवादित

क. खंभों/टावरों के निर्माण से हुए नुकसान के लिए मुआवजा - विद्युत अधिनियम, 2003, धारा 164 - टेलीग्राफ प्राधिकरण की शक्तियों का प्रयोग - टेलीग्राफ अधिनियम, 1885, धारा 10(डी), 16(3), 18(2) - टेलीग्राफ प्राधिकरण को किसी भी अचल संपत्ति पर टेलीग्राफ लाइनें और पोस्ट लगाने का अधिकार है। टेलीग्राफ अधिनियम की धारा 10(डी) के तहत, टेलीग्राफ प्राधिकरण ऐसी शक्तियों के प्रयोग के कारण हुए किसी भी नुकसान के लिए सभी व्यक्तियों को पूर्ण मुआवजा देगा। धारा 16(3) में प्रावधान है कि जहां धारा 10(डी) के अंतर्गत देय मुआवजे की पर्याप्तता के संबंध में कोई विवाद उत्पन्न होता है, ऐसे विवाद का निर्धारण जनपद न्यायाधीश द्वारा किया जाएगा। केंद्र सरकार ने पेड़ों के मुआवजे के अलावा, खंभों/टावरों के निर्माण के कारण भूमि को हुए नुकसान के लिए मुआवजा देने हेतु 15 अक्टूबर 2015 को एक नीति तैयार की; यह नीति 19 नवंबर 2019 को उत्तर प्रदेश राज्य में लागू की गई।

ख. पावर ग्रिड कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड ने खंभे/टावर लगाने और ट्रांसमिशन लाइनें बिछाने के लिए ग्रामीणों की ज़मीन का चयन किया। याचिकाकर्ताओं ने ज़िला मजिस्ट्रेट के समक्ष अपनी ज़मीन को हुए नुकसान के संबंध में अभ्यावेदन प्रस्तुत किया। *अभिनिर्धारित*: - टेलीग्राफ अधिनियम की धारा 16(3) के अंतर्गत मुआवज़े की पर्याप्तता और प्रचुरता से संबंधित मुद्दों का निर्धारण जनपद न्यायाधीश को है, न कि ज़िला मजिस्ट्रेट को

है। याचिकाकर्ताओं को अपनी शिकायतों के निवारण के लिए जनपद न्यायाधीश के पास जाने का अधिकार दिया गया। (प्रस्तर 27, 28)

स्वीकार किया गया। (ई-5)

(माननीय न्यायमूर्ति शेखर बी. सराफ द्वारा प्रदत्त)

1. यह भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत एक रिट याचिका है, जिसमें याचिकाकर्ता जिला मजिस्ट्रेट, बरेली (जिन्हें आगे 'प्रत्यर्थी संख्या 1' कहा जाएगा) को 30 सितंबर, 2020 को उनके अभ्यावेदन पर निर्णय लेने का आदेश और निर्देश देने हेतु परमादेश रिट जारी करने का अनुरोध कर रहे हैं।

<u>तथ्य</u>

2. इस रिट याचिका का तथ्यात्मक सार नीचे दिया गया है:

क) याचिकाकर्ता छोटे किसान हैं, जिनके पास जिला बरेली में कृषि भूमि है। विद्युत अधिनियम, 2003 की धारा 68 द्वारा प्रदत्त प्राधिकार के अंतर्गत, भारत सरकार के विद्युत मंत्रालय ने 16 नवंबर, 2009 की अधिसूचना के माध्यम से, 400 केवी बरेली-काशीपुर-रुड़की-सहारनपुर डी/सी (क्वाड) पारेषण लाइन बिछाने के लिए उत्तरी क्षेत्र प्रणाली सुदृढ़ीकरण योजना-XXI (जिसे आगे 'योजना' कहा जाएगा) की एक योजना को मंजूरी दी थी।

ख) इस अधिसूचना के अनुसरण में, भारत सरकार के एक उपक्रम, पावर ग्रिड कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड (जिसे आगे 'पीजीसीआईएल' कहा जाएगा) को इस परियोजना के लिए प्राधिकार प्रदान किया गया था। विद्युत अधिनियम, 2003 की धारा 164 के साथ पठित टेलीग्राफ अधिनियम, 1885 (जिसे आगे 'टेलीग्राफ अधिनियम' कहा जाएगा) की धारा 10 के अंतर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए, योजना के क्रियान्वयन हेतु खंभे/टावर लगाने और पारेषण लाइनें बिछाने के लिए याचिकाकर्ताओं की भूमि और कुछ अन्य ग्रामीणों का चयन किया। जैसा कि याचिकाकर्ताओं ने दावा किया है, यह परियोजना कथित तौर पर वर्ष 2011 में शुरू हुई थी और 2019 में पूरी हुई।

ग) वर्ष 2014 में, पीजीसीआईएल ने विद्युत आपूर्ति अधिनियम, 1948 की धारा 42 (सपठित टेलीग्राफ अधिनियम के भाग III) के अंतर्गत संबंधित याचिकाकर्ताओं को अलग-अलग नोटिस जारी किए, जिसमें नोटिस प्राप्त होने के 30 दिनों के भीतर ट्रांसमिशन लाइन बिछाने के लिए पेड़ों की कटाई करने का निर्देश दिया गया था। पीजीसीआईएल ने तहसीलदार या संबंधित सरकारी विभाग से ट्रांसमिशन लाइन बिछाने से उत्पन्न होने वाले मार्गाधिकार (आरओडब्ल्यू) के लिए मुआवजे का निर्धारण करने का भी अनुरोध किया, जिसका भुगतान पीजीसीआईएल द्वारा किया जाना था। उक्त नोटिस की एक प्रति मुआवजे के निर्धारण के लिए तहसीलदार और अपर जिला मजिस्ट्रेट को भी भेजी गई थी।

अनुवादित

घ) इसके बाद, वर्ष 2015 में, पीजीसीआईएल ने याचिकाकर्ताओं को मुआवजे के रूप में अलग-अलग राशियों के अलग-अलग चेक जारी किए।

ङ) इस बीच, उसी जिले के कुछ अन्य किसानों ने रिट याचिका संख्या 26594/2016 (धर्म पाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) दायर की, जिसमें अभिकथित किया गया कि उन्हें पड़ोसी जिले रामपुर के किसानों की तुलना में कम मुआवजा मिला है। यह रिट याचिका, समय से पहले होने के कारण, 30 मई, 2016 के आदेश द्वारा निस्तारित कर दी गई, जिसमें याचिकाकर्ताओं को भूमि और पेड़ों दोनों के मुआवजे के निर्धारण के लिए प्रत्यर्थी संख्या 1 से संपर्क करने का निर्देश दिया गया।

च) उपर्युक्त आदेश के अनुपालन में, प्रत्यर्थी संख्या 1 ने 13 जुलाई, 2016 को एक आदेश पारित किया, जिसमें रामपुर और बरेली जिले के किसानों के बीच मुआवजे में असमानता देखी गई। परिणामस्वरूप, पीजीसीआईएल को बरेली के किसानों को रामपुर के किसानों के बराबर मुआवजा प्रदान करने का निर्देश दिया गया। इस आदेश को 3 सितंबर, 2016 को संशोधित किया गया, जिससे यह रिट याचिका संख्या 26594/2016 में शामिल सभी किसानों पर लागू हो गया।

छ) पीजीसीआईएल ने प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा 13 जुलाई, 2016 और 3 सितंबर, 2016 को पारित आदेशों को रिट याचिका संख्या 3679/2017 (पावर ग्रिड कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड बनाम डी.एम., बरेली एवं अन्य) के माध्यम से इस न्यायालय में इस आधार पर चुनौती दी कि जिला मजिस्ट्रेट मुआवज़ा बढ़ाने के लिए सक्षम प्राधिकारी नहीं है, क्योंकि ऐसी शक्ति जनपद न्यायाधीश के पास निहित है। उक्त रिट याचिका को 5 सितंबर, 2018 के आदेश के तहत इस टिप्पणी के साथ खारिज कर दिया गया कि आक्षेपित आदेश उच्च न्यायालय के निर्देशानुसार प्रशासनिक क्षमता में पारित किया गया था और यह टेलीग्राफ अधिनियम की धारा 18 के अंतर्गत अर्ध-न्यायिक आदेश नहीं है।

ज) अंततः, पीजीसीआईएल ने प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा पारित आदेश को स्वीकार कर लिया और तदनुसार उन किसानों को मुआवजा दिया, जिन्होंने उपर्युक्त रिट याचिका का मुकदमा लड़ा था।

झ) वर्तमान रिट याचिका में याचिकाकर्ताओं ने, रिट याचिका संख्या 3679/2017 में याचिकाकर्ता रहे अन्य किसानों को दिए गए मुआवजे की जानकारी प्राप्त करने के बाद, प्रत्यर्थी संख्या 1 के समक्ष 10 अक्टूबर, 2018 और 1 जनवरी, 2020 को अभ्यावेदन प्रस्तुत किए, जिसमें उनकी संबंधित भूमि पर पेड़ों की कटाई के लिए मुआवजे की मांग की गई।

ञ) चूँकि 10 अक्टूबर, 2018 और 1 जनवरी, 2020 के अभ्यावेदनों पर प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा निर्णय नहीं लिया गया था, इसलिए कई याचिकाकर्ताओं ने व्यक्तिगत रिट याचिकाएँ दायर कीं, जिनमें रिट याचिका संख्या 37675/2018, 37407/2018, 37675/2018, 38594/2018, 37780/2018 और 12576/2020 शामिल हैं,

अनुवादित

जिनमें अपने अभ्यावेदनों पर निर्णय हेतु इस न्यायालय से परमादेश रिट की माँग की गई है। वर्तमान याचिका को छोड़कर, अन्य सभी रिट याचिकाएँ केवल पेड़ों के मुआवजे से संबंधित हैं।

ट) उपर्युक्त रिट याचिकाओं के लंबित रहने के दौरान, इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने रिट सी संख्या 37675/2018 का दिनांक 29 मार्च, 2019 के आदेश द्वारा निस्तारित किया, जिसमें कहा गया कि पक्षकारों को जिला मजिस्ट्रेट के पास जाने के लिए स्वतंत्र किया जाना चाहिए, जो उक्त आदेश के अनुसार गठित समिति द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के आधार पर दावे का निर्णय करेंगे।

ठ) पीजीसीआईएल ने उपर्युक्त रिट याचिका के विरूद्ध एक पुनर्विलोकन याचिका दायर की, जिसे दिनांक 26 अगस्त, 2019 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया। इस बीच, प्रत्यर्थी संख्या 1 ने उसे जारी निर्देश के अनुपालन में दिनांक 14 जून, 2019 के आदेश द्वारा अभ्यावेदन का निर्णय किया।

ड) पीजीसीआईएल ने रिट याचिका संख्या 21207/2019 (पावर ग्रिड कॉर्पोरेशन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) के माध्यम से इस न्यायालय के समक्ष दिनांक 14 जून, 2019 के आदेश को इस आधार पर चुनौती दी कि जिला मजिस्ट्रेट के पास उक्त अभ्यावेदन पर निर्णय करने का कोई अधिकार नहीं है। हालाँकि, रिट याचिका को 7 नवंबर, 2019 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया।

ढ) जिन याचिकाकर्ताओं की रिट याचिकाओं पर निर्णय हो चुका था, उन्हें पीजीसीआईएल द्वारा मुआवज़ा दिया गया, जबकि जिन याचिकाकर्ताओं की रिट याचिकाएँ अभी भी न्यायालय में लंबित हैं, वे अपने मुआवज़े के वितरण की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

ण) इस बीच, राष्ट्रीय हरित न्यायाधिकरण के आदेश के अनुसरण में, केंद्र सरकार ने 15 अक्टूबर, 2015 को एक नीति तैयार की, जिसके तहत खंभों/टावरों के निर्माण के कारण भूमि को हुए नुकसान के लिए मुआवज़ा देने के साथ-साथ पेड़ों के लिए मुआवज़ा भी दिया जाना था, जिसका निर्धारण ज़िला मजिस्ट्रेट द्वारा किया जाना था।

त) उपर्युक्त नीति उत्तर प्रदेश राज्य में 19 नवंबर, 2019 को लागू की गई थी। इसे पीजीसीआईएल द्वारा उत्तर प्रदेश सरकार के मुख्य सचिव को भेजे गए अनुरोध पर 20 जून, 2019 के पत्र द्वारा प्रभावी बनाया गया था।

थ) याचिकाकर्ताओं ने अपने अधिवक्ता के माध्यम से 30 सितंबर, 2020 को केंद्र सरकार द्वारा बनाई गई नीति के मद्देनजर अपनी भूमि को हुए नुकसान के संबंध में एक अभ्यावेदन प्रस्तुत किया। हालाँकि, जिला मजिस्ट्रेट ने इस पर कोई कार्रवाई नहीं की, जिससे भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 और 300ए के अंतर्गत उनके मौलिक अधिकारों का उल्लंघन हुआ।

द) चूँकि प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा नीति के तहत मुआवजे की मांग करते हुए 30 सितंबर, 2020 को प्रस्तुत अभ्यावेदन पर कोई निर्णय नहीं लिया गया, इसलिए याचिकाकर्ताओं ने वर्तमान रिट याचिका दायर की है।

याचिकाकर्ताओं की दलीलें

3. सभी याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित श्री उदित चंद्रा ने निम्नलिखित दलीलें पेश की हैं:

क) वर्तमान रिट याचिका एक नए वाद-हेतुक पर आधारित है और रचनात्मक पूर्व न्याय द्वारा प्रतिबंधित नहीं है। पेड़ों को हुए नुकसान के मुआवजे के संबंध में अभ्यावेदन पर निर्णय लेने के लिए याचिकाकर्ताओं द्वारा पहले भी रिट याचिकाएँ दायर की गई थीं और उन पर टेलीग्राफ अधिनियम की धारा 18(2) के अंतर्गत निर्णय लिया गया था।

ख) याचिकाकर्ताओं को जो नोटिस जारी किए गए थे, वे केवल पेड़ों को हुए नुकसान के लिए मुआवजे का निर्धारण करने के संबंध में थे, न कि बिजली के खंभे/टावर लगाने से भूमि को हुए नुकसान के लिए। बिजली के खंभे/टावर लगाने के लिए भूमि अधिग्रहण के संबंध में कोई विशेष नोटिस नहीं था, इसलिए वर्तमान कार्यवाही विभिन्न वाद-हेतुकों से उत्पन्न होने वाली अलग-अलग कार्यवाही है। इसलिए, रचनात्मक पूर्व न्याय का सिद्धांत वर्तमान स्थिति में लागू नहीं होगा।

ग) प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा पहले जो मुआवजा तय किया गया था और भुगतान किया गया था, वह केवल टेलीग्राफ अधिनियम की धारा 18 (2) के अंतर्गत पेड़ों की कटाई के संबंध में था, जबकि बिजली के खंभे/टावरों के निर्माण से भूमि को हुए नुकसान के लिए किसी भी प्रकार का कोई मुआवजा नहीं दिया गया है, जिसका मूल्यांकन टेलीग्राफ अधिनियम की धारा 10 (डी) के अंतर्गत जिला मजिस्ट्रेट द्वारा किया जाना चाहिए था।

घ) याचिकाकर्ता केंद्र सरकार की 15 अक्टूबर, 2015 की नीति के अनुसार मुआवज़ा पाने के हकदार हैं, जिसके तहत किसानों को फसलों या पेड़ों को हुए नुकसान के अलावा टावर बेस के लिए भूमि मूल्य का 80% प्राप्त करने का अधिकार है। याचिकाकर्ताओं को पेड़ों को हुए नुकसान के संबंध में मुआवज़ा मिला और वे उस पर विवाद नहीं कर रहे हैं, लेकिन उन्हें ज़मीन को हुए नुकसान के संबंध में मुआवज़ा नहीं मिला है। वर्तमान मुद्दा सरकार द्वारा बनाई गई नीति के अनुसार ज़मीन के संबंध में मुआवज़ा का दावा करना है।

ङ) दलीलों को पुष्ट करने के लिए याचिकाकर्ताओं के अधिवक्तागण ने **कुकरेजा कंस्ट्रक्शन कंपनी बनाम महाराष्ट्र राज्य 2024 एससीसी ऑनलाइन एससी 2547** में प्रतिवेदित, वाद में सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्णय पर भरोसा किया है, जिसमें दो मुख्य जोत वितरित की गई थीं। सबसे प्रथम, इसने पुष्टि की कि एक बार डेवलपर्स ने निहित विकास अधिकार प्राप्त कर लिए हों–जैसे कि अतिरिक्त फ्लोर स्पेस इंडेक्स (एफएसआई) या विकास अधिकार प्रमाणपत्र (डीआरसी) के माध्यम से हस्तांतरणीय विकास अधिकार (टीडीआर)–तो इन अधिकारों को बाद के संशोधनों द्वारा पूर्वव्यापी रूप से रद्द नहीं किया जा सकता। द्वितीय, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया

कि एक बार भूमि अधिग्रहण के लिए मुआवज़ा निर्धारित हो जाने पर, यह राज्य द्वारा बिना किसी अतिरिक्त प्रतिनिधित्व की आवश्यकता के तुरंत देय हो जाता है, और किसी भी देरी से अनुच्छेद 300-ए के अंतर्गत संवैधानिक दायित्वों का उल्लंघन होगा।

च) अधिवक्ता ने **कोलकाता नगर निगम बनाम बिमल कुमार शाह (2024) 10 एससीसी 533** में प्रतिवेदित किए गए सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्णय का भी हवाला दिया, जिसमें न्यायालय ने इस बात पर बल दिया था कि किसी भी अधिग्रहण को न्यूनतम प्रक्रियात्मक सुरक्षा उपायों के एक सेट का पालन करना होगा, जिसमें सात उप-अधिकार शामिल हैं, जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 300-ए के अंतर्गत संवैधानिक गारंटी में निहित हैं, जिससे यह सुनिश्चित होता है कि उचित विधिक प्राधिकारी के अलावा संपत्ति से वंचित न किया जाए।

<u>प्रत्यर्थीगण के तर्क</u>

4. पीजीसीआईएल की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री प्रतीक जे. नागर की सहायता से वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जे. नागर ने निम्नलिखित दलीलें प्रस्तुत की हैं:

क) वर्तमान रिट याचिका तीन आधारों पर विधिक रूप से पोषणीय नहीं है। प्रथम यह है कि वर्तमान रिट याचिका उसी वाद हेतुक पर द्वितीय रिट याचिका है और इसलिए सिविल प्रक्रिया संहिता (सीपीसी) की धारा 11 के स्पष्टीकरण IV और आदेश II, नियम 2 के अंतर्गत रचनात्मक पूर्व न्याय के सिद्धांतों द्वारा वर्जित है।
ख) याचिकाकर्ताओं ने पहले भी इसी तरह की राहत की मांग करते हुए रिट याचिका संख्या 37407/2018 दायर की थी। उक्त रिट याचिका का निस्तारण इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने 13 सितंबर, 2019 को किया था, जिसमें जिला मजिस्ट्रेट को तीन सदस्यीय समिति गठित करके उनके दावे का परीक्षण करने का निर्देश दिया था। याचिकाकर्ताओं को अपनी पिछली रिट में वर्तमान राहत का दावा करने का अवसर मिला था, लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया, इसलिए उन्हें एक और रिट याचिका दायर करके उसी मुद्दे को उठाने से रोक दिया गया है।
ग) 15 अक्टूबर, 2015 की कथित नीति अस्तित्व में थी और उपरोक्त रिट याचिका दायर करते समय याचिकाकर्ताओं को इसकी अच्छी जानकारी थी, लेकिन फिर भी याचिकाकर्ता उस रिट याचिका में राहत का दावा करने में विफल रहे।

घ) परियोजना का कार्य वर्ष 2015 में पूरा हो गया था और विभिन्न याचिकाकर्ताओं को वर्ष 2015 में पीजीसीआईएल से अलग-अलग चेक प्राप्त हुए, जो वन संरक्षक, मुरादाबाद द्वारा परिकल्पित वृक्षों के मूल्यांकन पर आधारित थे, जब जिला प्राधिकारी मुआवज़ा निर्धारित करने के संबंध में बहुत लंबे समय तक चुप रहे थे। इस प्रकार प्राप्त चेकों को याचिकाकर्ताओं द्वारा उचित रूप से स्वीकार कर लिया गया है और विधिवत भुना भी लिया गया है। इसलिए उन्हें विबंधन के सिद्धांत के कारण न्यायालय जाने से रोक दिया गया है।

ङ) **आयकर आयुक्त, बॉम्बे बनाम टी.पी. कुमारन (1996) 10 एससीसी 561** में सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि उसी वाद हेतुक पर बाद में दावा वर्जित है।

च) द्वितीय आधार यह है कि जिस नीति पर याचिकाकर्ता ने भरोसा किया था, वह वर्ष 2015 में बनाई गई थी और याचिकाकर्ताओं की भूमि पर पेड़ों की कटाई और बिजली के खंभे लगाने का काम वर्ष 2013-14 में ही हो चुका था और उस समय वन संरक्षक, मुरादाबाद द्वारा निर्धारित पेड़ों के मूल्यांकन के अनुसार मुआवजा दिया गया था और सभी प्रभावित पक्षों को मुआवजा दिया गया था। परिणामस्वरूप, बाद में आई नीति का उस वाद हेतुक पर कोई पूर्वव्यापी प्रभाव नहीं पड़ता जो बहुत पहले उत्पन्न हुआ था।

छ) याचिकाकर्ताओं ने 30 सितंबर, 2020 को जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष अभ्यावेदन प्रस्तुत किया और उसके बाद तीन वर्ष से अधिक की अत्यधिक देरी के बाद वर्तमान रिट याचिका दायर की। अतः, परिसीमा और लापरवाही के कारण उनका दावा वर्जित है।

ज) **केरल राज्य विद्युत बोर्ड बनाम टी.पी. कुन्हालिउम्मा (1976) 4 एससीसी 634** में सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि तीन साल की परिसीमा अवधि (परिसीमा अधिनियम, 1963 का अनुच्छेद 137) टेलीग्राफ अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाही पर लागू होती है।

झ) तृतीय आधार यह है कि वर्तमान रिट याचिका स्वीकार्य नहीं है क्योंकि याचिकाकर्ताओं के पास टेलीग्राफ अधिनियम की धारा 16(3) के अंतर्गत एक वैकल्पिक वैधानिक उपाय है, जो टेलीग्राफ अधिनियम की धारा 10(डी) के अंतर्गत प्राप्त मुआवजे से असंतुष्ट होने पर जनपद न्यायाधीश के समक्ष मुआवजे के विवादों के न्यायनिर्णयन का प्रावधान करता है।

ञ) **पावर ग्रिड कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड बनाम सेंचुरी टेक्सटाइल्स एंड इंडस्ट्रीज लिमिटेड (2017) 5 एससीसी 143** में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया है कि मुआवजे से संबंधित किसी भी विवाद का न्यायनिर्णयन जनपद न्यायाधीश द्वारा, न कि जिला मजिस्ट्रेट द्वारा किया जाना चाहिए। याचिकाकर्ताओं ने बिना किसी विरोध के मुआवजा स्वीकार कर लिया है, अब वे इसे रिट याचिका के माध्यम से चुनौती नहीं दे सकते।

चर्चा और विश्लेषण

5. हमने प्रतिद्वंदी प्रस्तुतियों पर विचार किया है और अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री का अवलोकन किया है। दोनों पक्षों द्वारा प्रस्तुत प्रतिद्वंदी तर्क पर आगे बढ़ने से पहले, हमें टेलीग्राफ अधिनियम की धारा 10 (घ), 16 (3) और 18 (2) पर गौर करना होगा, जो नीचे उद्धृत हैं:

"10. टेलीग्राफ प्राधिकरण को टेलीग्राफ लाइनें और पोस्ट लगाने और उनका रखरखाव करने की शक्ति।– टेलीग्राफ प्राधिकरण समय-समय पर किसी भी अचल संपत्ति के नीचे, ऊपर, साथ या आर-पार टेलीग्राफ लाइन लगा सकता है और उसका रखरखाव कर सकता है, और उसमें या उसके ऊपर पोस्ट लगा सकता है:

बशर्ते कि–

(क) ...

(ख) ...

(ग) ...

(घ) इस धारा द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, टेलीग्राफ प्राधिकरण यथासंभव कम क्षति करेगा, और जब वह खंड (ग) में निर्दिष्ट संपत्ति के अलावा किसी अन्य संपत्ति के संबंध में उन शक्तियों का प्रयोग करता है, तो उन शक्तियों के प्रयोग के कारण उन्हें हुई किसी भी क्षति के लिए सभी हितधारक व्यक्तियों को पूर्ण मुआवजा देगा।"

*****

"16. धारा 10 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग, तथा स्थानीय प्राधिकरण की संपत्ति से भिन्न संपत्ति के वाद में प्रतिकर संबंधी विवाद।–

(1) ...

(2) ...

(3) यदि धारा 10, खंड (घ) के अधीन संदत्त किए जाने वाले प्रतिकर की पर्याप्तता के संबंध में कोई विवाद उत्पन्न होता है, तो विवाद करने वाले पक्षों में से किसी एक द्वारा उस प्रयोजन के लिए उस जनपद न्यायाधीश को आवेदन करने पर, जिसके क्षेत्राधिकार में संपत्ति स्थित है, उसका निर्धारण उसके द्वारा किया जाएगा।

*****

"18. टेलीग्राफिक संचार में बाधा डालने वाले वृक्षों को हटाना।–

(1) ...

(2) उपधारा (1) के अधीन किसी आवेदन का निस्तारण करते समय, मजिस्ट्रेट, टेलीग्राफ लाइन बिछाए जाने से पूर्व विद्यमान किसी वृक्ष के वाद में, उस वृक्ष में हितबद्ध व्यक्तियों को ऐसा प्रतिकर प्रदान करेगा जैसा वह उचित समझे, और यह प्रतिकर अंतिम होगा।"

6. याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया कि 15 अक्टूबर, 2015 की नीति के मद्देनजर जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष 30 सितंबर, 2020 को एक अभ्यावेदन दायर किया गया है। यह अभ्यावेदन पूरी तरह से भूमि पर बिजली के खंभों/टावरों के निर्माण से उत्पन्न होने वाले विभिन्न कारणों पर आधारित है। भूमि के लिए मुआवजे का दावा करने का अधिकार 15 अक्टूबर, 2015 की नीति के कार्यान्वयन के बाद उत्पन्न हुआ, जो पेड़ों को हुए नुकसान के मुआवजे के अलावा भूमि को हुए नुकसान के लिए मुआवजे को अनिवार्य करता है। इसके अलावा, पिछली सभी रिट याचिकाओं में, याचिकाकर्ताओं के अभ्यावेदन टेलीग्राफ अधिनियम की धारा 18 (2) के अंतर्गत तय किए गए थे, जिसके तहत विशेष रूप से पेड़ों के लिए मुआवजा दिया गया था।

7. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि याचिकाकर्ता टेलीग्राफ अधिनियम की धारा 16(3) के अंतर्गत अभ्यावेदन दायर नहीं कर सकते, क्योंकि यह एक अपीलीय प्रावधान है जो क्षतिपूर्ति के प्रारंभिक दावे

के बजाय मुआवजे की पर्याप्तता से संबंधित है। टेलीग्राफ अधिनियम की धारा 16(3) के अंतर्गत जनपद न्यायाधीश के पास जाने के लिए भूमि को हुए नुकसान के मुआवजे के संबंध में अपील करने के लिए एक मूल आदेश होना चाहिए। इसलिए, याचिकाकर्ताओं ने नीति के मद्देनजर जनपद न्यायाधीश के समक्ष नहीं, बल्कि जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष अपने अभ्यावेदन दायर किए हैं।

8. इसके विपरीत, प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित वरिष्ठ अधिवक्ता ने याचिकाकर्ताओं के तर्कों को खारिज करते हुए तर्क प्रस्तुत किया कि पहले पीजीसीआईएल द्वारा याचिकाकर्ताओं को मुआवजा प्रदान किया गया था। इसलिए, वर्तमान अभ्यावेदन टेलीग्राफ अधिनियम की धारा 16(3) के अनुसार जनपद न्यायाधीश के समक्ष दायर किया जाना चाहिए, क्योंकि यह उस मुआवजे में वृद्धि से संबंधित है, जो पहले पीजीसीआईएल द्वारा टेलीग्राफ अधिनियम की धारा 10(डी) के तहत दी गई थी। इसके अलावा, याचिकाकर्ताओं ने बिना किसी विरोध के पूर्व में दिए गए मुआवजे को विधिवत स्वीकार कर लिया था।

9. प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी कि जिस नीति का याचिकाकर्ता सहारा ले रहे हैं, उसे पूर्वव्यापी रूप से लागू नहीं किया जा सकता, क्योंकि इसे पेड़ों के कटने और टावरों के खड़े होने के बाद लागू किया गया था।

10. टेलीग्राफ अधिनियम की धारा 10 टेलीग्राफ प्राधिकरण को लाइनें और खंभे लगाने और उनके रखरखाव का अधिकार देती है। इस प्रावधान का खंड (घ) टेलीग्राफ प्राधिकरण को प्रदत्त शक्तियों पर नियंत्रण और संतुलन का काम करता है, और यह सुनिश्चित करता है कि इन शक्तियों का प्रयोग करते समय प्रभावित व्यक्तियों को मुआवजा प्रदान किया जाए।

11. टेलीग्राफ अधिनियम की धारा 18 (2) टेलीग्राफिक संचार में बाधा डालने वाले पेड़ों को हटाने का प्रावधान करती है। इस प्रावधान के तहत, प्रथम या द्वितीय श्रेणी के मजिस्ट्रेट को टेलीग्राफ प्राधिकरण के आवेदन पर टेलीग्राफिक संचार में बाधा डालने वाले पेड़ों को हटाने का आदेश देने का अधिकार है। मजिस्ट्रेट हटाए गए पेड़ों के लिए मुआवजा निर्धारित करने और उसे देने के लिए भी जिम्मेदार है और ऐसा अधिनिर्णय अंतिम माना जाता है।

12. टेलीग्राफ अधिनियम की धारा 16, टेलीग्राफ अधिनियम की धारा 10 के अंतर्गत टेलीग्राफ प्राधिकरण को दी गई शक्तियों के प्रयोग से उत्पन्न विवादों को संबोधित करती है। इस प्रावधान के अनुसार, यदि कोई प्रतिरोध या बाधा है, तो जिला मजिस्ट्रेट अपने विवेक पर टेलीग्राफ प्राधिकरण को अपने कार्यों के साथ आगे बढ़ने की अनुमति दे सकता है। इस धारा के खंड (घ) में आगे यह प्रावधान है कि यदि टेलीग्राफ अधिनियम की धारा 10 (घ) के अंतर्गत भुगतान किए गए मुआवजे की प्रचुरता या पर्याप्तता के संबंध में कोई विवाद उत्पन्न होता है, तो पीड़ित पक्ष उक्त क्षेत्राधिकार के जनपद न्यायाधीश से संपर्क कर सकते हैं जहां प्रभावित संपत्ति स्थित है।

13. नीति का परीक्षण करने पर, इस न्यायालय ने पाया कि यद्यपि इसे 15 अक्टूबर, 2015 को तैयार किया गया था, इसे 20 जून, 2019 को पीजीसीआईएल द्वारा मुख्य सचिव, यूपी, लखनऊ को लिखे गए अनुरोध पत्र के बाद ही प्रभावी बनाया गया था। इसके बाद मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश, लखनऊ द्वारा सभी जिलाधिकारियों को दिनांक 19 नवंबर, 2019 को एक कार्यान्वयन पत्र जारी किया गया।

14. पीजीसीआईएल द्वारा मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश, लखनऊ को 20 जून, 2019 को लिखा गया पत्र नीचे उद्धृत है:

"सेवा में,

मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ-226001

विषय: उत्तर प्रदेश में पारेषण लाइनों के निर्माण हेतु किसानों और भूमि स्वामियों को मुआवज़ा भुगतान के संबंध में ऊर्जा मंत्रालय, जीडी के निर्देश का कार्यान्वयन।

महोदय,

कृपया यूपीपीसीएल पारेषण लाइनों के निर्माण हेतु किसानों और भूमि स्वामियों को ***तत्काल प्रभाव*** *से मुआवज़ा भुगतान हेतु ऊर्जा मंत्रालय, भारत सरकार के निर्देश के कार्यान्वयन के संबंध में एमडी, यूपीपीसीएल शक्ति भवन लखनऊ को संबोधित पत्र संख्या 2023/चौबिस/पी-3-2018 दिनांक 06.09.2018 (प्रति संलग्न) का संदर्भ लें। उपर्युक्त पत्र में दिए गए निर्देश के अनुसार, किसानों/भूमि स्वामियों को टावर बेस भूमि क्षेत्र के 85% की लागत का मुआवज़ा दिया जाना है। मुआवज़े की राशि की गणना संबंधित जिला मजिस्ट्रेट द्वारा सर्किल दरों के आधार पर की जाएगी।*

विनम्रतापूर्वक प्रार्थना है कि उत्तर प्रदेश राज्य में पावरग्रिड/अन्य एजेंसियों द्वारा ट्रांसमिशन लाइनों के निर्माण हेतु किसानों/भूमि स्वामियों को मुआवजे के भुगतान के संबंध में जिलाधिकारियों को भेजे गए उपरोक्त पत्र के अनुरूप दिशा-निर्देश जारी करने हेतु राजस्व बिभाग को आवश्यक निर्देश जारी किए जाएं।"

15. नीति के कार्यान्वयन हेतु दिनांक 19 नवंबर, 2019 को मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश, लखनऊ द्वारा सभी जिलाधिकारियों को लिखा गया पत्र नीचे उद्धृत है:

"सेवा में,

समस्त जिलाधिकारी,

उत्तर पदेश।

ऊर्जाअनुभाग-3 / लखनऊ: दिनांक 19 नवम्बर, 2019

विषय- पावर ग्रिड कारपोरेशन आफ इण्डिया लि० के अन्तर्गत निर्मित होने वाली *765/400/220/132* के०वी० पारेषण लाइनों में लगाये जाने वाले विभिन्न कृषकों / भूस्वामियों को भूमि मुआवजे सम्बन्धी दिये जाने वाले क्षतिपूर्ति को भारत सरकार के ऊर्जा मन्त्रालय के दिशा-निर्देशों के अनुरूप अंगीकृत करने के सम्बन्ध में।

महोदय,

उपर्युक्त विषय के सम्बन्ध में अवगत कराना है कि ऊर्जा अनुभाग-3 के शासनादेश संख्या-2023/24-पी-3-2018 दिनांक 06 सितम्बर, 2018 द्वारा उत्तर प्रदेश पावर ट्रांसमिशन कारपोरेशन लि० के अन्तर्गत निर्मित होने वाली 765/400/220/132 के०वी० पारेषण लाईनों में लगाये जाने वाले विभिन्न कृषकों/भूस्वामियों को भूमि

मुआवजे संबंधी दिये जाने वलो क्षतिपूर्ति को भारत सरकार के ऊर्जा मन्त्रालय के दिशा-निर्देशों के अनुरूप उ०प्र० पा०टा०का०लि० के अन्तर्गत निर्माण होने वाली विभिन्न विभव की लाइनों में वर्तमान क्षतिपूर्ति के अतिरिक्त *भूमि मुआवजा* के पद से टावर बेस के नीचे 85 प्रतिशत क्षेत्रफल भूमि की लागत के रूप में अतिरिक्त क्षतिपूर्ति अनुमन्य किये जाने का प्राविधान किया गया है।

2. इस सम्बन्ध में उक्त शासनादेश दिनांक-06.09.2018 एवं अधिशासी, निदेशक, पावर ग्रिड कारपोरेशन आफ इण्डिया लि० के पत्र संख्या-पावर ग्रिड/एनआर-3/पीईएसए / 17684 दिनांक-20.06.2019 की प्रति प्रेषित करते हुये मुझे यह कहने का निर्देश हुआ है कि। ऊर्जा विभाग की उपरोक्त व्यवस्था उत्तर प्रदेश में पावर ग्रिड कारपोरेशन ऑफ इण्डिया लि० के द्वारा स्थापित की जाने वाली पारेषण लाईनों पर भी लागू करने के लिये पावर ग्रिड कारपोरेशन ऑफ इण्डिया लि० के अनुरोध पर अन्तर्गत आवश्यक कार्यवाही की जाय।

3. उक्त आदेश राजस्व विभाग की सहमति से निर्गत किये जा रहे हैं।"

16. 20 जून, 2019 को पीजीसीआईएल द्वारा मुख्य सचिव को भेजे गए अनुरोध पत्र के बाद, 2015 की नीति 19 नवंबर, 2019 को लागू हुई। पत्र में, पीजीसीआईएल ने ऊर्जा मंत्रालय द्वारा पेड़ों के मुआवजे के अलावा, भूमि के मुआवजे के कार्यान्वयन के संबंध में दिशानिर्देश जारी करने के लिए यूपीपीसीएल के साथ समानता की मांग की। पत्र में यूपीपीसीएल के लिए नीति को 'तत्काल प्रभाव से' लागू करने का निर्देश दिया गया।

17. 'तत्काल प्रभाव' वाक्यांश का अर्थ है कि नीति तुरंत या निर्दिष्ट समय से प्रभावी होती है। इसलिए, नीति इसके कार्यान्वयन की तिथि यानी 19 नवंबर, 2019 से तुरंत प्रभावी हो गई।

18. यह ध्यान देने योग्य है कि इस समय तक परियोजना का काम पूरा हो चुका है। याचिकाकर्ताओं के अनुसार, परियोजना 2016 में पूरी हुई थी, जबकि प्रत्यर्थीगण का दावा है कि यह 2019 में पूरी हुई थी। हालाँकि, इस तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं है कि काम पूरा हो गया है।

19. पहले बनाई गई और बाद में लागू की गई इस नीति का उद्देश्य स्पष्ट रूप से उन किसानों की चिंताओं का समाधान करना था जिनके पेड़ काटे गए थे और जिनकी ज़मीन का उपयोग टावर लगाने के लिए किया गया था। इससे पता चलता है कि इस नीति को पीजीसीआईएल द्वारा पहले से निष्पादित परियोजना कार्यों पर पूर्वव्यापी रूप से लागू किया जा सकता है। हालाँकि पीजीसीआईएल पूरे भारत में विभिन्न परियोजनाएँ चलाता है, लेकिन यह नीति उस विशेष परियोजना कार्य को निर्दिष्ट नहीं करती है, जिस पर यह लागू होती है।

20. **पावर ग्रिड कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड (पूर्वोक्त)** वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि एक केंद्रीय पारेषण उपयोगिता और विद्युत अधिनियम, 2003 के अंतर्गत मान्य लाइसेंसधारी के रूप में पावर ग्रिड के पास टेलीग्राफ अधिनियम के अंतर्गत एक टेलीग्राफ प्राधिकरण के समान शक्तियाँ हैं। इसमें मालिक की

सहमति के बिना निजी भूमि पर पारेषण लाइनें बिछाने और उनका रखरखाव करने और इन शक्तियों के प्रयोग में हुए किसी भी नुकसान के लिए मुआवज़ा देने का अधिकार शामिल है। न्यायालय ने इस बात पर बल दिया कि ऐसी शक्तियाँ जनहित में काम करने वाली बुनियादी ढाँचा परियोजनाओं, जैसे कि विद्युत पारेषण, के विकास को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक हैं और इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए व्यक्तिगत संपत्ति अधिकारों पर उचित प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं। धारा 16(3) के अनुसार, टेलीग्राफ अधिनियम के अंतर्गत मुआवजे की पर्याप्तता के निर्धारण हेतु उचित मंच जनपद न्यायाधीश है, न कि जिला मजिस्ट्रेट है। निर्णय के प्रासंगिक प्रस्तर नीचे उद्धृत हैं:

"28. ये पावर ग्रिड द्वारा प्रस्तुत सिविल अपील संख्या 10951/2016 को इन निर्देशों को रद्द करके स्वीकार करने के लिए पर्याप्त कारण हैं। तदनुसार आदेश दिया जाता है। हम यह स्पष्ट करते हैं कि यदि रिट याचिकाकर्ता को लगता है कि वह किसी भी मुआवजे का हकदार है, तो इस उद्देश्य के लिए संबंधित जनपद न्यायाधीश के समक्ष वाद दायर करना उचित होगा। इस स्तर पर यह भी बताना उचित होगा कि केंद्र सरकार ने इस संबंध में दिनांक 15-10-2015 को दिशानिर्देश तैयार किए हैं, जिनमें अन्य बातों के साथ-साथ यह प्रावधान है कि मुआवजे के मुद्दे को उक्त दिशानिर्देशों के अनुसार मुआवजे के आकलन के तरीके और तरीके को ध्यान में रखते हुए हल किया जा सकता है। इसलिए, रिट याचिकाकर्ता के लिए उक्त दिशानिर्देशों के अनुसार उपाय का लाभ उठाना हमेशा खुला रहेगा।"

"29. यह अपील पावर ग्रिड द्वारा राम नरेश सिंह के वाद में दायर की गई है। इस वाद में, ट्रांसमिशन लाइनें बिहार राज्य के सासाराम जिले में हैं। ट्रांसमिशन लाइनें बिछाने का पूरा काम, जहाँ पावर ग्रिड द्वारा 524 ओवरहेड टावर लगाए गए हैं, पूरा हो चुका है। इनमें से केवल 1 टावर राम नरेश सिंह की ज़मीन पर स्थित है। उठाया गया विवाद मुआवज़े की मात्रा के संबंध में है और टेलीग्राफ अधिनियम, 1885 की धारा 16 के प्रावधानों के अनुसार, इसे जनपद न्यायाधीश द्वारा निपटाया जाना है। इस प्रकार, सेंचुरी टेक्सटाइल्स एंड इंडस्ट्रीज लिमिटेड के वाद में ऊपर दिए गए सभी कारणों [ऊपर प्रस्तर 1 से 28 में निर्धारित] के लिए, पावर ग्रिड की यह अपील स्वीकार की जाती है और उच्च न्यायालय के निर्णय [पावर ग्रिड कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड बनाम राम नरेश सिंह, 2011 एससीसी ऑनलाइन पैट 603: एआईआर 2011 पैट 83] को अपास्त किया जाता है।"

21. इस न्यायालय की खंडपीठ ने **प्रेम पाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2011 एससीसी ऑनलाइन इला 370** वाद में स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया है कि प्राधिकारी कार्य करते समय अपने कृत्य से हुई किसी भी क्षति के लिए मुआवज़ा देने के लिए बाध्य है और मुआवज़े से असंतुष्ट होने पर, पक्षकार विवाद के निवारण के लिए जनपद न्यायाधीश से संपर्क कर सकते हैं। निर्णय के प्रासंगिक प्रस्तर नीचे उद्धृत हैं:

"इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि टेलीग्राफ अधिनियम की धारा 10 के अंतर्गत प्राधिकरण, भूमि का उपयोग करने या उस पर कोई संरचना बनाने के कारण हुई किसी भी क्षति के लिए सभी संबंधित व्यक्तियों को पूर्ण मुआवज़ा

देने के लिए बाध्य है, जिससे बर्बादी या क्षति हुई हो। यह भी प्रावधान है कि यदि कोई व्यक्ति मुआवज़े से असंतुष्ट है, तो वह उस जनपद न्यायाधीश से संपर्क कर सकता है जिसके क्षेत्राधिकार में संपत्ति स्थित है, जो मुआवज़े की पर्याप्तता पर निर्णय लेंगे।"

***

"विद्युत अधिनियम की धारा 2(39) के अंतर्गत लाइसेंसधारी वह व्यक्ति है, जिसे उक्त अधिनियम की धारा 14 के अंतर्गत लाइसेंस प्रदान किया गया है। धारा 14, उपयुक्त आयोग को किसी भी व्यक्ति को लाइसेंस में निर्दिष्ट किसी भी क्षेत्र में पारेषण लाइसेंसधारी के रूप में विद्युत संचारित करने, या वितरण लाइसेंसधारी के रूप में विद्युत वितरित करने, या विद्युत व्यापारी के रूप में विद्युत व्यापार करने के लिए लाइसेंस प्रदान करने की शक्ति प्रदान करती है। इसलिए, 'लाइसेंसधारी' शब्द एक व्यापक शब्द है, जिसमें विभिन्न प्रकार के लाइसेंसधारी शामिल हो सकते हैं। सामान्यतः, मुआवज़ा लाइसेंसधारी नियमों के अनुसार निर्धारित किया जाएगा। ऐसे मामलों में, जहाँ विद्युत अधिनियम की धारा 164 के अंतर्गत, टेलीग्राफ अधिनियम के भाग III की शक्तियाँ किसी लाइसेंसधारी को प्रदान की गई हैं, तो उस श्रेणी के मामलों में, निर्धारित मुआवज़ा विद्युत अधिनियम या उसके अंतर्गत बनाए गए नियमों के अंतर्गत नहीं, बल्कि टेलीग्राफ अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत होगा। इस तरह से प्रावधानों का निर्माण सामंजस्यपूर्ण निर्माण की ओर ले जाएगा और एक ओर विद्युत अधिनियम और दूसरी ओर टेलीग्राफ अधिनियम के तहत क्षेत्राधिकार के प्रयोग में टकराव नहीं होगा। टेलीग्राफ अधिनियम की धारा 10 के तहत, मुआवजे का निर्धारण जिला मजिस्ट्रेट या पुलिस आयुक्त द्वारा नहीं, बल्कि लाइसेंसधारी द्वारा, वर्तमान वाद में, पावर ग्रिड कॉर्पोरेशन द्वारा किया जाना है। वर्तमान वाद में, पावर ग्रिड कॉर्पोरेशन ने मुआवजे का निर्धारण किया है। याचिकाकर्ता को एक चेक दिया गया था जिसे उसने 15.01.2011 को स्वीकार कर लिया था। इसलिए, हमारी राय में, यदि याचिकाकर्ता मुआवजे की अपर्याप्तता या अपर्याप्तता से व्यथित है, तो उसके लिए उपाय यह होगा कि वह उस जनपद न्यायाधीश के समक्ष आवेदन करे जिसके क्षेत्राधिकार में भूमि स्थित है, मुआवजे में वृद्धि या इसी तरह की राशि के लिए, जिसका वह हकदार है।

***

"निजी व्यक्तियों के स्वामित्व वाली भूमि पर टावर लगाने की शक्ति है और ऐसा व्यक्ति अपने द्वारा हुए नुकसान के लिए मुआवजे का हकदार होगा, यह बात इस न्यायालय की खंडपीठ ने जनार्दन पांडे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, सिविल विविध रिट याचिका संख्या 41411/2007 में 5 सितंबर, 2007 को निर्णीत किया था।

उपर्युक्त चर्चा पर विचार करते हुए, इस याचिका का निस्तारण किया जाता है, तथा याचिकाकर्ता को निर्देश दिया जाता है कि यदि उसने पहले से आवेदन नहीं किया है तो वह मुआवजे में वृद्धि के लिए क्षेत्राधिकार रखने वाले जनपद न्यायाधीश के समक्ष आवेदन करे, और यदि ऐसा आवेदन किया जाता है तो जनपद न्यायाधीश, जिसके पास विधि के अनुसार मुआवजे का निर्धारण करने के लिए आगे बढ़ने का अधिकार है, तथा मामले का यथासंभव शीघ्रता से निस्तारण करे।

<u>निष्कर्ष</u>

22. कार्यान्वयन पत्र को पढ़ने से ही ऐसा प्रतीत होता है कि नीति के शब्द थोड़े अस्पष्ट हैं। पत्र में न तो यह स्पष्ट रूप से बताया गया है कि क्या यह उन दावेदारों पर लागू होता है जिनकी भूमि नीति लागू होने से पहले

ही अधिग्रहित कर ली गई थी, न ही यह स्पष्ट रूप से बताता है कि यह पीजीसीआईएल द्वारा शुरू की गई विशिष्ट परियोजनाओं पर लागू होता है। इसके अलावा, इस बात को लेकर भी अस्पष्टता बनी हुई है कि क्या यह नीति उन किसानों पर भी लागू होती है जिन्हें पीजीसीआईएल से मुआवज़ा मिल चुका है, लेकिन वे भुगतान की गई राशि से असंतुष्ट हैं।

23. सर्वप्रथम, यह न्यायालय यह स्पष्ट करना आवश्यक समझता है कि नीतिगत निर्णयों से संबंधित मामले कार्यपालिका के अनन्य क्षेत्राधिकार में आते हैं, और ऐसे मामलों में न्यायिक हस्तक्षेप केवल स्पष्ट मनमानी, अनुचितता या मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के वाद में ही उचित है। रिट न्यायालय अपनी बुद्धिमत्ता का उपयोग नीति-निर्माता प्राधिकारियों के साथ तब तक नहीं कर सकता जब तक कि वह सशर्त दुर्बलता से ग्रस्त न हो। उपरोक्त के मद्देनजर, वर्तमान रिट याचिका, जो मुख्य रूप से नीतिगत विषय में न्यायिक हस्तक्षेप की मांग करता है, वह इस चरण पर न्यायालय के हस्तक्षेप का औचित्य नहीं बनाता।

24. वर्तमान वाद में, पीजीसीआईएल द्वारा पूर्व में दिया गया मुआवजा वन संरक्षक, मुरादाबाद की एक रिपोर्ट पर आधारित था, जैसा कि प्रत्यर्थीगण द्वारा दायर प्रति-शपथ पत्र में कहा गया है। हालाँकि, कोई सहायक अभिलेख संलग्न नहीं किया गया है। इसके अलावा, मुआवजा वितरित करने से पहले, जनपद न्यायाधीश द्वारा इसके लिए कोई औपचारिक अधिनिर्णय पारित नहीं किया गया था।

25. तदनुसार, यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि पीजीसीआईएल द्वारा पूर्व में दिया गया मुआवजा, अधिनिर्णय के अभाव में, केवल पीजीसीआईएल, अर्थात् टेलीग्राफ प्राधिकरण द्वारा टेलीग्राफ अधिनियम की धारा 10(डी) के तहत किया गया एक स्वप्रेरणा भुगतान था, न कि टेलीग्राफ अधिनियम की धारा 18(2) के अंतर्गत, जिसके लिए टेलीग्राफ प्राधिकरण द्वारा एक परिश्रमपूर्वक आवेदन के बाद अधिनिर्णय पारित किया जाना आवश्यक है।

26. इस प्रकार, याचिकाकर्ता का यह तर्क कि पूर्व में दिया गया मुआवजा टेलीग्राफ अधिनियम की धारा 18(2) के अंतर्गत दिया गया था, इस न्यायालय द्वारा स्पष्ट रूप से खारिज किया जाता है, क्योंकि मजिस्ट्रेट द्वारा कोई अधिनिर्णय पारित नहीं किया गया था। परिणामस्वरूप, यदि याचिकाकर्ता मुआवजे से व्यथित हैं या टेलीग्राफ प्राधिकरण द्वारा पहले दिए गए मुआवजे को बढ़ाना चाहते हैं, तो उनकी शिकायतों के लिए उनके पास उपलब्ध एकमात्र उपाय टेलीग्राफ अधिनियम की धारा 16 (3) के अंतर्गत जनपद न्यायाधीश से उचित आवेदन दायर करके संपर्क करना है।

27. सर्वोच्च न्यायालय ने **पावर ग्रिड कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड (पूर्वोक्त)** में भी पुष्टि की कि यह जनपद न्यायाधीश है, न कि जिला मजिस्ट्रेट, जिनके पास टेलीग्राफ अधिनियम की धारा 16 (3) के अंतर्गत मुआवजे की प्रचुरता और पर्याप्तता से संबंधित मुद्दों को निर्धारित करने का अधिकार है।

28. तदनुसार, वर्तमान रिट याचिका टेलीग्राफ अधिनियम की धारा 16 (3) के अंतर्गत उपलब्ध वैकल्पिक उपाय के आधार पर निस्तारित की जाती है। याचिकाकर्ताओं को अपनी शिकायतों के निवारण के लिए जनपद न्यायाधीश से संपर्क करने के लिए बाध्य किया जाता है।

(2025) 4 ILRA 661

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनोज कुमार गुप्ता

माननीय न्यायमूर्ति अनीश कुमार गुप्ता

रिट सी संख्या 28104/2024

के साथ

रिट सी संख्या 33280/2024

के साथ

रिट सी संख्या 33439/2024

श्री कृष्ण एवं अन्य **... याचिकाकर्तागण**

बनाम

भारत संघ और अन्य **...प्रत्यर्थीगण**

अनवादित

याचिकाकर्तागण की ओर से अधिवक्ता:
श्री सुरेश सिंह

प्रत्यर्थीगण की ओर से अधिवक्ता:
ए.एस.जी.आई., सी.एस.सी., श्री सुबोध कुमार

सिविल विधि - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226, - उ0प्र0 जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 - धारा 198, 198 (4), 198 (5), 198 (6) और 333 - भूमि अधिग्रहण, पुनर्वास और पुनर्व्यवस्थापन में उचित मुआवजे और पारदर्शिता का अधिकार अधिनियम, 2013 - धारा 11 और 19:- रिट याचिका - भूमि अधिग्रहण के अनुसार मुआवजा जारी करने के लिए निर्देश मांगा गया - कृषि भूमि मूल रूप से याचिकाकर्तागण को 2003 में पट्टे (पट्टा) पर आवंटित की गई थी - राजस्व अभिलेख में नामांतरण विधिवत दर्ज किया गया - पट्टा आवंटन में अनियमितताओं का अभिकथन करते हुए 2009 में शिकायत प्राप्त हुई - अधिनियम, 1950 की धारा 198 (4) के अंतर्गत कार्यवाही शुरू की गई - 2015 में कलेक्टर द्वारा पट्टा रद्द

कर दिया गया - 2016 में क्षेत्राधिकार की कमी के आधार पर पुनरीक्षण की अनुमति दी गई - रद्दीकरण को अपास्त किया गया - कार्यवाही अंतिम रूप ले चुकी है - बाद में, सरकार द्वारा भूमि का अधिग्रहण कर लिया गया - 2023 में मुआवजा दिया गया - अधिकारियों ने इस आधार पर मुआवजा देने से इनकार कर दिया कि, पट्टे रद्द करने के लिए एसडीएम द्वारा एक नई कार्यवाही शुरू की गई थी - *क्या अधिनिर्णय की घोषणा के बाद एसडीएम के आदेश के अंतर्गत याचिकाकर्तागण को अधिग्रहित भूमि के मुआवजे से इनकार किया जा सकता है* - न्यायालय ने पाया कि, 2023 में प्राप्त रिपोर्ट के आधार पर रद्दीकरण की कार्यवाही फिर से शुरू की गई थी, - लगभग 21 साल बीत जाने के बाद, 2024 में नोटिस जारी किए गए थे, - अधिनियम, 1950 की धारा 198(4) के अंतर्गत शुरू की गई कार्यवाही को परिसीमा द्वारा पूर्व दृष्टया वर्जित माना गया - इस तरह की कार्रवाई विधिक अतिक्रमण के बराबर है - इसके अलावा, उ0प्र0 जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 को उ0प्र0 राजस्व संहिता, 2006 द्वारा निरस्त कर दिया गया है और संहिता की धारा 128 के अनुसार, आवंटन या पट्टे को रद्द करने की परिसीमा 5 वर्ष है आवंटन रद्द करने की नई कार्यवाही परिसीमा से परे थी और क्षेत्राधिकार का अभाव था, इसलिए उसे निरस्त किया जाता है - रिट याचिका को इस निर्देश के साथ स्वीकृत की गई कि वे चार सप्ताह के भीतर निर्णय के अनुसार याचिकाकर्तागण को 25000/- रुपये प्रति पट्टा की लागत सहित मुआवजा दें, तदनुसार निर्देश जारी किए गए। (प्रस्तर - 11, 18, 21, 23, 24)

रिट याचिका स्वीकृत। (ई-11)

<u>संदर्भित प्रकरण की सूची: -</u>

1. सुरेश गिरी एवं अन्य बनाम राजस्व बोर्ड एवं अन्य - 2010 खंड 2 एडीजे 514,
2. रामकेर चौहान बनाम आयुक्त, आज़मगढ़ एवं अन्य - 2012 खंड 8 एडीजे 713,
3. ऋषि पाल एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य - 2018 खंड 7 एडीजे 391,
4. श्रीमती शकुंतला व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य - 2019 खंड 5 एडीजे 871,
5. संयुक्त आयुक्त रंगा रेड्डी जिला एवं अन्य बनाम डी. नरसिंह राव एवं अन्य - 2015 खंड 3 एससीसी 695

(माननीय न्यायमूर्ति मनोज कुमार गुप्ता
एवं
माननीय न्यायमूर्ति अनीश कुमार गुप्ता द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाओं के वर्तमान समूह में समान तथ्य और विधिक मुद्दे, साथ ही मांगा गया अनुतोष भी शामिल है, और इसलिए उन पर एक साथ सुनवाई किया गया है और एक सामान आदेश और निर्णय द्वारा निर्णीत किया जा रहा है।

2. सभी याचिकाओं में प्रार्थना की गई है कि प्रत्यर्थीगण द्वारा की गई भूमि अधिग्रहण कार्यवाही के अनुसरण में याचिकाकर्तागण की अधिग्रहित भूमि के लिए मुआवजा राशि जारी करने का आदेश देते हुए परमादेश जारी किया जाए।

3. पक्षों द्वारा यह स्वीकार किया गया है कि याचिकाकर्तागण को 31.3.2003 को, प्रासंगिक समय पर प्रचलित विधि के अनुसार सक्षम प्राधिकारी से अनुमोदन प्राप्त करने के बाद, ग्राम मनियापुर, परगना और तहसील नरवल, जिला कानपुर नगर में स्थित 0.2000/0.3000 हेक्टेयर माप वाली भूमि के विभिन्न टुकड़ों का कृषि पट्टा प्रदान किया गया था। उसी के आधार पर, याचिकाकर्तागण के नाम राजस्व अभिलेखों में परिवर्तित कर दिए गए थे। 16.9.2009 को, राम खिलावन द्वारा आवंटन कार्यवाही में अनियमितताओं का अभिकथन करते हुए एक शिकायत की गई थी। इसे कलेक्टर, कानपुर नगर की न्यायालय में उ0प्र0 जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (संक्षेप में 'उ0प्र0 जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम') की धारा 198(4) के अंतर्गत वाद संख्या 18/2009-2010 के रूप में पंजीकृत किया गया था। उक्त कार्यवाही में, कलेक्टर के दिनांक 29.6.2015 के आदेश द्वारा, दिनांक 31.3.2003 का आवंटन यह कहते हुए रद्द कर दिया गया था कि पट्टा प्रदान करने में विभिन्न अनियमितताएँ बरती गई थीं। कलेक्टर के दिनांक 29.6.2015 के आदेश को आवंटियों ने उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 333 सपठित उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत, पुनरीक्षण संख्या 134/2015 में चुनौती दी थी। अपर आयुक्त ने दिनांक 26.10.2016 के आदेश द्वारा पुनरीक्षण को स्वीकार करते हुए कहा कि पट्टों को रद्द करने का अधिकार कलेक्टर के पास नहीं, बल्कि उप-खण्ड के प्रभारी सहायक कलेक्टर के पास है। दिनांक 26.10.2016 के पुनरीक्षण की स्वीकृति देने वाले आदेश को किसी भी पक्ष द्वारा चुनौती नहीं दी गई और इस प्रकार यह अंतिम हो गया।

4. 11.04.2022 को प्रत्यर्थीगण ने भूमि अर्जन, पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन में उचित प्रतिकर और पारदर्शिता का अधिकार अधिनियम, 2013 की धारा 11 के अंतर्गत एक अधिसूचना जारी की। इसके बाद धारा 19 के अंतर्गत 20.12.2022 को अधिसूचना जारी की गई और 2.3.2023 को अधिनिर्णय दिया गया। अधिनिर्णय घोषित करने से पूर्व, याचिकाकर्तागण को 28.2.2023 को नोटिस जारी किए गए, जिसमें उन्हें सूचित किया गया कि अधिनिर्णय 2.3.2023 को घोषित किया जाएगा और उन्हें अपने पक्ष में मुआवज़ा राशि जारी करने हेतु आवश्यक दस्तावेज़ (पासपोर्ट आकार की तस्वीर के साथ एक नोटरी शपथपत्र, एक राजस्व टिकट, बैंक पासबुक, पैन कार्ड, आधार कार्ड, खतौनी की प्रमाणित प्रति और तहसीलदार से अंशदान प्रमाण पत्र) जमा करने होंगे।

5. हाल ही में, 6.3.2024 को, प्रत्यर्थीगण ने याचिकाकर्तागण और अन्य आवंटियों को नोटिस जारी किए, जिसमें कहा गया कि 31.03.2003 के आवंटनों को रद्द करने की कार्यवाही पुनः शुरू करने के लिए तहसीलदार द्वारा 23.03.2023 की एक रिपोर्ट प्रस्तुत की गई है। याचिकाकर्तागण को अगली तिथि, अर्थात् 18.3.2024 तक अपना जवाब प्रस्तुत करना आवश्यक था, अन्यथा कार्यवाही एकपक्षीय की जायेगी।

6. याचिकाकर्तागण का वाद यह है कि उन्होंने दिनांक 02.03.2023 के निर्णय के अनुसार मुआवजा जारी करने के लिए आवश्यक दस्तावेज प्रस्तुत किए हैं, लेकिन उन्हें मुआवजा नहीं दिया गया है और इसलिए, उक्त प्रभाव के लिए निर्देश मांगने हेतु याचिकाओं का वर्तमान समूह दायर किया गया है।

7. प्रत्यर्थी संख्या 5 यानी सक्षम प्राधिकारी (भूमि अधिग्रहण)/अपर जिला मजिस्ट्रेट, कानपुर नगर की ओर से नायब तहसीलदार, नरवाल, जिला कानपुर नगर द्वारा एक जवाबी शपथपत्र दायर किया गया है। जिसमें यह विवादित नहीं है कि याचिकाकर्तागण को 31.3.2003 के अनुमोदन आदेश के अनुसरण में अलग-अलग कृषि पट्टे प्रदान किए गए थे और वे अधिनियम संख्या 30 वर्ष 2013 और दिनांक 2.3.2023 के निर्णय के अंतर्गत जारी अधिग्रहण अधिसूचनाओं के अंतर्गत आते हैं। यह भी विवादित नहीं है कि याचिकाकर्तागण को प्रत्यर्थी संख्या 5 द्वारा उनके समक्ष उपस्थित होने और निर्णय के अनुसार मुआवज़ा राशि जारी करने में सहायता हेतु दस्तावेज़ प्रस्तुत करने के लिए अलग-अलग नोटिस जारी किए गए थे। हालाँकि, प्रत्यर्थीगण ने यह तर्क दिया है कि मुआवज़े के भुगतान के चरण में, उन्हें पता चला कि याचिकाकर्तागण के पक्ष में पट्टे वैध नहीं थे और अपर आयुक्त ने आवंटियों द्वारा दायर पुनरीक्षण को इस निष्कर्ष पर स्वीकृति दी कि पट्टों को रद्द करने के लिए सक्षम प्राधिकारी उप-खण्ड मजिस्ट्रेट, न कि जिला मजिस्ट्रेट थे। तदनुसार, उप-खण्ड मजिस्ट्रेट ने 31.3.2003 को याचिकाकर्तागण को दिए गए कृषि पट्टों को रद्द करने के लिए 30प्र0 जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 198(4) के अंतर्गत वाद संख्या टी2016034104088882 (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम अशोक कुमार एवं अन्य) दर्ज किया है। उक्त कार्यवाही लंबित बताई गई है और इन तथ्यों के आधार पर, यह प्रार्थना की गई है कि रिट याचिकाओं को खारिज कर दिया जाए।

8. अपर जिला मजिस्ट्रेट/विशेष भूमि अर्जन अधिकारी, कानपुर नगर द्वारा दिनांक 19.12.2024 के आदेश के अनुपालन में एक और शपथपत्र दाखिल किया गया है। इसमें याचिकाकर्तागण के पक्ष में दिनांक 31.3.2003 के आदेश द्वारा कृषि पट्टों के आवंटन और वाद संख्या 18/2009-2010 के अंतर्गत कृषि पट्टों को रद्द करने की कार्यवाही के संबंध में अपनाया गया रुख याचिकाकर्तागण द्वारा प्रस्तुत किए गए रुख के समान ही है। यह भी स्वीकार किया गया है कि उक्त भूमि रक्षा गलियारे की स्थापना हेतु अधिनियम संख्या 30/2013 के प्रावधानों के अंतर्गत दिनांक 11.4.2022 और 20.12.2022 की अधिसूचनाओं के माध्यम से अधिग्रहित की गई थी। यह भी स्वीकार किया गया है कि पूर्व में कलेक्टर द्वारा दिनांक 29.6.2015 के आदेश द्वारा पट्टों को रद्द कर दिया गया था और उक्त आदेश को अपर आयुक्त द्वारा दिनांक 26.10.2016 के आदेश द्वारा जिला मजिस्ट्रेट के पास क्षेत्राधिकार के अभाव के आधार पर रद्द कर दिया गया था। यह कहा गया है कि चूंकि आवंटन कार्यवाही में अनियमितताओं के संबंध में जिला मजिस्ट्रेट द्वारा दर्ज किए गए गुण-दोष के आधार पर निष्कर्षों को पुनरीक्षण की अनुमति देते समय रद्द नहीं किया गया था, इसलिए उप-खण्ड मजिस्ट्रेट/सहायक कलेक्टर प्रथम, तहसील नरवल, जिला कानपुर नगर की न्यायालय ने पट्टों को रद्द करने की कार्यवाही फिर से शुरू की है। यह कहा गया है कि उक्त कार्यवाही में याचिकाकर्तागण को नोटिस जारी किए गए थे और उन्हें विधिवत तामील कराया गया था। अशोक कुमार को छोड़कर अन्य उपस्थित नहीं हुए और इसलिए उनकी ओर से दलीलें सुनने के बाद उप-खण्ड मजिस्ट्रेट ने 31.3.2003 के पट्टों के अनुमोदन के आदेश

को रद्द करते हुए 18.12.2024 को अंतिम आदेश पारित किया। यह कहा गया है कि उक्त आदेश के मद्देनजर याचिकाकर्ता किसी भी मुआवजे के हकदार नहीं हैं।

9. दूसरी ओर, याचिकाकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी कि पट्टों को रद्द करने की पूरी कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण और क्षेत्राधिकार से बाहर है, क्योंकि उ0प्र0 जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 198(6) के तहत आवंटन की तारीख से पाँच वर्ष बीत जाने के बाद रद्दीकरण की कार्यवाही शुरू करने के लिए कारण बताओ नोटिस भी जारी नहीं किया जा सकता था। दलील दी गई कि 16.09.2009 को राम खेलावन की शिकायत पर शुरू की गई पिछली कार्यवाही, हालाँकि याचिकाकर्तागण के पक्ष में समाप्त हो गई थी, लेकिन परिसीमा के कारण बाधित थी। दलील दी गई कि इस संबंध में अशोक कुमार द्वारा विधिवत आपत्ति ली गई थी और उक्त तथ्य आदेश में भी दर्ज है, लेकिन इस पर विचार नहीं किया गया। दलील दी गई कि यह स्थापित विधि है कि राज्य अपनी भूमि का अधिग्रहण नहीं करता है और एक बार जब विषयगत भूमि को निजी व्यक्तियों की भूमि मानकर अधिग्रहण के लिए अधिसूचित कर दिया गया, तो यह आरोप लगाने में बहुत देर हो चुकी है कि याचिकाकर्तागण के पक्ष में दिया गया पट्टा अनियमित या अवैध था। एक आवश्यक परिणाम के रूप में, मार्च 2024 के महीने में कारण बताओ नोटिस जारी करने और 18.12.2024 के आदेश के साथ एसडीएम द्वारा धारा 198 (4) के तहत शुरू की गई कार्यवाही पूरी तरह से अवैध और क्षेत्राधिकार से बाहर है।

10. अभिलेखों के अवलोकन और पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों से यह स्पष्ट है कि पक्षकारों के बीच इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि याचिकाकर्तागण और अन्य (कुल 176 व्यक्तियों) के पक्ष में 0.2000/0.3000 हेक्टेयर क्षेत्रफल के कृषि पट्टे भूमि प्रबंधन समिति के प्रस्ताव के आधार पर प्रदान किए गए थे, जिसे 31.03.2003 को एसडीएम द्वारा विधिवत अनुमोदित किया गया था। उसी के प्रभाव में, याचिकाकर्तागण के नाम राजस्व अभिलेखों में दर्ज किए गए थे। हाल ही की खतौनी साक्ष्यों से पता चलता है कि याचिकाकर्तागण को गैर-हस्तांतरणीय अधिकारों के साथ भूमिधर का दर्जा दिया गया था।

11. विचारणीय एकमात्र मुद्दा यह है कि क्या निर्णय की घोषणा के बाद एसडीएम द्वारा पारित दिनांक 18.12.2024 के आदेश के मद्देनजर याचिकाकर्तागण को अधिग्रहित भूमि के लिए मुआवजे से वंचित किया जा सकता है। मूलतः, राज्य की दलील यह है कि याचिकाकर्तागण के पक्ष में दिया गया पट्टा अवैध था और दिनांक 18.12.2024 के आदेश द्वारा इसे रद्द कर दिया गया था, भूमि राज्य में निहित थी और इसलिए, दिनांक 02.03.2023 के निर्णय के बावजूद, याचिकाकर्ता किसी भी मुआवजे के हकदार नहीं हैं। चूंकि याचिकाकर्तागण को मुआवजा देने से इनकार करने के लिए दलील दी गई है और वह भी रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान पारित आदेश के आधार पर और उक्त दलील के विरोध में, यह तर्क दिया गया है कि पूरी कार्यवाही क्षेत्राधिकार के बाहर है, इसलिए, वर्तमान वाद के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों में, हम इसका परीक्षण करने के लिए आगे बढ़ते हैं, जहां तक यह स्वीकृत तथ्यों पर आधारित है।

12. आवंटन रद्द करने की शक्ति नियंत्रण और संतुलन से सुरक्षित है। इस प्रकार, जबकि उ0प्र0 जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 198 की उप-धारा (4) कलेक्टर को यह जांच करने की शक्ति प्रदान करती है कि क्या आवंटन निर्धारित तरीके से, स्वप्रेरणा से या किसी पीड़ित व्यक्ति के आवेदन पर किया गया है, उप-धारा (5) यह निर्धारित करती है कि आवंटन या पट्टे को रद्द करने का कोई आदेश तब तक नहीं दिया जाएगा जब तक कि आवंटी या उसके विधिक प्रतिनिधि को कारण बताओ नोटिस न दिया जाए। सीमा के रूप में एक और प्रतिबंध है जिसके भीतर कारण बताओ नोटिस जारी किया जा सकता है, जो वर्तमान प्रकरण में जहां पट्टा 31.03.2003 का है, आवंटन की तारीख से पांच वर्ष यानी 31.03.2008 तक था। धारा 198 की उप-धारा (4), (5) और (6) जो प्रासंगिक हैं, वे इस प्रकार हैं:

"(4) *[उप-खण्ड का प्रभारी सहायक कलेक्टर] स्वप्रेरणा से और भूमि के आवंटन से व्यथित किसी व्यक्ति के आवेदन पर, निर्धारित तरीके से ऐसे आवंटन की जांच कर सकेगा और यदि वह संतुष्ट हो जाता है कि आवंटन अनियमित है, तो वह आवंटन और पट्टा, यदि कोई हो, रद्द कर सकेगा।

**[(4-क) कलेक्टर स्वप्रेरणा से या किसी व्यथित व्यक्ति के आवेदन पर उप-धारा (4) के अधीन उप-खण्ड के प्रभारी सहायक कलेक्टर द्वारा विनिश्चित किसी वाद या कार्यवाही का अभिलेख इस प्रयोजन के लिए मंगा सकेगा कि ऐसे वाद या कार्यवाही में पारित किसी आदेश की औचित्य की वैधता के बारे में वह स्वयं संतुष्ट हो सके और यदि उप-खण्ड के प्रभारी सहायक कलेक्टर को ऐसा प्रतीत होता है कि -

(i) किसी ऐसे क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया है जो विधि द्वारा उसमें निहित नहीं है; या

(ii) इस प्रकार निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने में असफल रहा हो; या

(iii) क्षेत्राधिकार का प्रयोग अवैध रूप से या भौतिक अनियमितता के साथ किया गया हो;

कलेक्टर प्रकरण में ऐसा आदेश पारित कर सकेगा जैसा वह ठीक समझे और इस उपधारा के अधीन कलेक्टर द्वारा पारित प्रत्येक आदेश अंतिम होगा;]

(5) उपधारा (4) के अधीन किसी आबंटन या पट्टे को रद्द करने का कोई आदेश तब तक नहीं दिया जाएगा, जब तक कि उस व्यक्ति को, जिसके पक्ष में आबंटन या पट्टा किया गया था, या उसके विधिक प्रतिनिधियों को कारण बताओ नोटिस तामील न कर दिया जाए:

बशर्ते यह कि किसी आबंटन या पट्टे को रद्द करने की कार्यवाही में ऐसी कोई सूचना आवश्यक नहीं होगी, जहां ऐसी कार्यवाही 18 अगस्त, 1980 को कलेक्टर या किसी अन्य न्यायालय या प्राधिकरण के समक्ष लंबित थी।

(6) उपधारा (5) में उल्लिखित कारण बताओ नोटिस निम्नलिखित के माध्यम से जारी किया जा सकेगा-

(क) 10 नवम्बर, 1980 (जिसे इसके पश्चात उक्त तिथि कहा जाएगा) से पूर्व किए गए भूमि आवंटन के प्रकरण में, उक्त तिथि से [सात वर्ष] की अवधि की समाप्ति से पूर्व; और

(ख) उक्त तिथि को या उसके पश्चात किए गए भूमि आवंटन के प्रकरण में, [ऐसे आवंटन या पट्टे की तिथि से पांच वर्ष या 10 नवंबर, 1987 तक, जो भी बाद में हो] की अवधि की समाप्ति से पहले।

13. इन प्रावधानों की इस न्यायालय द्वारा विभिन्न निर्णयों में बार-बार व्याख्या की गई है और यह लगातार अभिनिर्धारित किया गया है कि रद्दीकरण के लिए कारण बताओ नोटिस, चाहे स्वप्रेरणा से हो या किसी पीड़ित व्यक्ति के आवेदन पर, निर्धारित अवधि के भीतर जारी किया जाना चाहिए, अन्यथा, यह परिसीमा के कारण वर्जित हो जाएगा। इस बिंदु पर कुछ निर्णयों का संदर्भ लेना लाभप्रद होगा।

14. **सुरेश गिरि एवं अन्य बनाम राजस्व बोर्ड एवं अन्य, 2010 (2) एडीजे 514** में, यह निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया है:

"(10) संबंधित प्राधिकारी द्वारा भूमि/पट्टे के आवंटन को रद्द करने का नोटिस जारी करने की परिसीमा अधिनियम की धारा 198(6) में निर्धारित की गई है, जिसमें कहा गया है कि जिन प्रकरण में आवंटन 10 नवंबर, 1980 से पहले किया गया है, वहां नोटिस उक्त तिथि से सात वर्ष की अवधि के भीतर जारी किया जा सकता है और जिन प्रकरण में आवंटन 10 नवंबर, 1980 को या उसके बाद किया गया है, वहां ऐसे आवंटन से पांच वर्ष की समाप्ति से पहले या 10 नवंबर, 1987 तक, जो भी बाद में हो, जारी किया जा सकता है। संक्षेप में, जहां कारण बताओ नोटिस 10 नवंबर, 1980 को या उसके बाद किया गया है, वहां आवंटन से पांच वर्ष की अवधि है।

(11) अधिनियम की धारा 198 की उपधारा (4), (5) और (6) के प्रावधानों को एक दूसरे के साथ संयोजन में समझा जाना चाहिए और उन्हें अलग-अलग नहीं पढ़ा जा सकता है। उपर्युक्त प्रावधान स्पष्ट हैं और उनमें प्रयुक्त भाषा स्पष्ट और सरल है जो आवंटन को रद्द करने की कार्यवाही के बीच कोई अंतर नहीं करती है, जो स्वप्रेरणा से या किसी व्यथित व्यक्ति के आवेदन पर शुरू की गई है। इसलिए, उन्हें सामान्य अर्थों में और किसी अन्य तरीके से नहीं समझा जाना चाहिए। अधिनियम की धारा 198 की उपधारा (4) में कलेक्टर द्वारा स्वप्रेरणा के साथ-साथ व्यथित व्यक्ति के आवेदन पर आवंटन/पट्टे को रद्द करने का प्रावधान है। दोनों प्रकरण में, आवंटी या संबंधित व्यक्ति को सुनवाई का अवसर दिए बिना आवंटन/पट्टा रद्द नहीं किया जा सकता है, क्योंकि अन्यथा रद्द करने की कार्रवाई को मनमाना और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन माना जाएगा। अधिनियम की धारा 198 की उपधारा (6) अधिनियम की धारा 198(4) का अनुसरण करती है, जो निरस्तीकरण के लिए दोनों प्रकार की कार्यवाहियों अर्थात स्वप्रेरणा से तथा पीड़ित व्यक्ति के आवेदन को आच्छादित करती है।

(12) तदनुसार, मेरी राय में, अपरिहार्य निष्कर्ष यह है कि अधिनियम की धारा 198 की उपधारा (6) के तहत प्रदान की गई भूमि के आवंटन/पट्टे को रद्द करने से पहले नोटिस जारी करने के लिए निर्धारित परिसीमा, स्वप्रेरणा कार्यवाही के साथ-साथ पीड़ित व्यक्ति के आवेदन पर कार्यवाही दोनों पर लागू होती है।

15. **रामकेर चौहान बनाम कमिश्नर, आजमगढ़ एवं अन्य, 2012 (8) एडीजे 713** में, जहां परिसीमा के प्रतिबंध को पराजित करने के लिए यह तर्क दिया गया था कि यह केवल अनियमित आवंटन के प्रकरण पर

लागू होगा, अवैध आवंटन के प्रकरण पर नहीं, दलील को निम्नलिखित अवलोकन करते हुए निरस्त कर दिया गया था:

"अधिनियम की धारा 198(4) के तहत भूमि को रद्द करने की कार्यवाही शुरू करने की शक्ति प्रदान की गई है। इस धारा के अनुसार, कलेक्टर स्वप्रेरणा से या भूमि के आवंटन से व्यथित किसी व्यक्ति के आवेदन पर, उक्त आवंटन को रद्द कर सकता है यदि वह संतुष्ट है कि यह अनियमित है। धारा 198 की उपधारा (5) में प्रावधान है कि उपधारा (4) के तहत आवंटन या पट्टे को रद्द करने का कोई आदेश तब तक नहीं दिया जाएगा, जब तक कि कारण बताओ नोटिस उस व्यक्ति को, जिसके पक्ष में आवंटन या पट्टा किया गया था, या उसके विधिक प्रतिनिधियों को न दिया जाए। धारा 198(6) के खंड (बी) में प्रावधान है कि उपधारा (5) में उल्लिखित कारण बताओ नोटिस 10 नवंबर, 1980 को या उसके बाद किए गए भूमि आवंटन के प्रकरण में, ऐसे आवंटन या पट्टे की तिथि से पांच वर्ष की अवधि की समाप्ति से पहले या 10 नवंबर, 1987 तक, जो भी बाद में हो, जारी किया जा सकता है। इस प्रकार, यह उपधारा से कहीं भी उभर कर नहीं आता है। धारा 198 की धारा (6) के अनुसार, उन आवंटनों के संबंध में कोई अपवाद प्रदान नहीं किया गया है, जो विधि का उल्लंघन करके किए गए हैं। धारा 198(4) के अंतर्गत कलेक्टर द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्ति का मूल उद्देश्य उन आवंटनों को रद्द करना है जो या तो अनियमित या अवैध रूप से प्राप्त किए गए हैं। विधि के तहत प्रदान की गई परिसीमा के बाद कोई भी कार्यवाही शुरू नहीं की जा सकती, चाहे वह आवंटन अनियमित या अवैध हो।"

16. **ऋषि पाल एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2018 (7) एडीजे 391** और **श्रीमती शकुंतला एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2019 (5) एडीजे 871** में भी इस न्यायालय द्वारा यही दृष्टिकोण अपनाया गया है।

17. वर्तमान वाद में, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, यह निर्विवाद है कि पट्टों को 31.03.2003 को एसडीएम द्वारा अनुमोदित किया गया था, जो संबंधित समय पर अनुमोदन प्रदान करने के लिए सक्षम प्राधिकारी थे। 16.09.2009 को, राम खेलावन द्वारा दायर शिकायत को उ0प्र0 जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 198 (4) के अंतर्गत वाद संख्या 18/2009-10 के रूप में पंजीकृत किया गया था। उक्त कार्यवाही पांच साल से अधिक समय बीत जाने के बाद शुरू की गई थी और स्पष्ट रूप से परिसीमा से बाधित थी। इसके अतिरिक्त, जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है, उक्त कार्यवाही आवंटियों के पक्ष में समाप्त हुई, जिसके परिणामस्वरूप पुनरीक्षण संख्या 134/2015 को अपर आयुक्त द्वारा दिनांक 28.10.2016 के आदेश के तहत अनुमति दी गई थी। पुनरीक्षण न्यायालय ने क्षेत्राधिकार की कमी के आधार पर कलेक्टर के 29.06.2015 के आदेश को खारिज कर दिया है। उक्त आदेश का प्रभाव यह था कि सक्षम प्राधिकारी, अर्थात् एसडीएम, को रद्दीकरण की कार्यवाही पुनः शुरू करने का अधिकार था। वास्तव में, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, यह भी अस्वीकार्य था क्योंकि 16.09.2009 को की गई प्रारंभिक शिकायत ही कारण बताओ नोटिस जारी करने की निर्धारित सीमा से परे थी।

अनुवादित

18. आदेश दिनांक 28.12.2024 से यह स्पष्ट है कि राजस्व अधिकारियों द्वारा 23.03.2023 को प्रस्तुत रिपोर्ट के आधार पर निरस्तीकरण की कार्यवाही पुनः शुरू की गई थी। एसडीएम ने आवंटियों को 06.03.2024 को नोटिस जारी किया, अर्थात आवंटन की तिथि अर्थात 31.03.2003 से लगभग इक्कीस वर्ष बीत जाने के बाद, लिखित बयान दाखिल करने के लिए 18.03.2024 की तिथि निर्धारित की। इससे पहले, संबंधित भूमि को याचिकाकर्तागण की भूमि मानते हुए अधिग्रहण के लिए अधिसूचित किया गया था। इसके लिए विधिवत अधिनिर्णय भी दिया गया था। 06.03.2024 को जारी नोटिस के आधार पर शुरू की गई कार्यवाही स्पष्टतः परिसीमा द्वारा वर्जित है और क्षेत्राधिकार से बाहर है।

19. यहाँ, हम इस वाद की एक दिलचस्प बात देख सकते हैं। यह स्पष्ट है कि प्राधिकारी इस तथ्य से भी अवगत थे कि परिसीमा समाप्त हो चुकी है। इसलिए, रद्दीकरण के लिए नई कार्यवाही शुरू करने के बजाय, उन्होंने परिसीमा को तोड़ने के लिए एक नया तरीका ईजाद किया। इस प्रकार, वाद संख्या 18/2009-2010, जो दिनांक 26.10.2016 के आदेश द्वारा आवंटियों को दी गई अनुमति के पुनरीक्षण के परिणामस्वरूप स्थगित हो गया था, को एक नया कंप्यूटर संख्या, अर्थात् टी20160341040882 आवंटित किया गया और उसी प्रकरण में लिखित बयान दाखिल करने के लिए 18.02.2024 की तिथि तय करते हुए नोटिस जारी किया गया।

20. यह सुस्थापित है कि जो प्रत्यक्ष रूप से नहीं किया जा सकता, वह अप्रत्यक्ष रूप से भी नहीं किया जा सकता। निस्संदेह, अब शुरू की गई कार्यवाही किसी निजी व्यक्ति की शिकायत का परिणाम नहीं, बल्कि स्वप्रेरणा से ली गई शक्ति का प्रयोग है। यहाँ तक कि धोखाधड़ी के प्रकरण में, जहाँ कार्यवाही शुरू करने में देरी आमतौर पर घातक नहीं होती, सर्वोच्च न्यायालय ने **संयुक्त कलेक्टर रंगा रेड्डी जिला एवं अन्य बनाम डी. नरसिंह राव एवं अन्य, (2015) 3 एससीसी 695** में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया:

"25. इस न्यायालय के निर्णयों की एक लंबी श्रृंखला द्वारा विधिक स्थिति काफी हद तक स्थापित हो चुकी है, जिनमें यह निर्धारित किया गया है कि जब किसी शक्ति, पुनरीक्षणात्मक या अन्यथा, के प्रयोग के लिए कोई परिसीमा निर्धारित नहीं की गई है, तब भी ऐसी शक्ति का प्रयोग उचित अवधि के भीतर किया जाना चाहिए। यह उन प्रकरण में भी लागू है जहाँ धोखाधड़ी के आरोपों के कारण किसी सुधारात्मक शक्ति का प्रयोग आवश्यक हो गया है। हम संक्षेप में कुछ निर्णयों का उल्लेख केवल इस बात पर जोर देने के लिए कर सकते हैं कि सीमा की निर्धारित अवधि की अनुपस्थिति शक्ति के प्रयोग के संबंध में बहुत कम या कोई अंतर नहीं डालती है, जो केवल तभी अनुमेय होनी चाहिए जब शक्ति का प्रयोग उचित अवधि के भीतर किया जाए।

31. संक्षेप में, पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का विलंबित प्रयोग अस्वीकार्य है क्योंकि यदि कार्य या लेन-देन हमेशा चुनौती के लिए खुले रहेंगे, तो इसका अर्थ होगा मानवीय प्रकरण में अपरिहार्य और अंतहीन अनिश्चितता, जो विधि की नीति नहीं है। क्योंकि, जब ऐसी शक्तियों के प्रयोग के लिए कोई परिसीमा निर्धारित नहीं होती है, तब भी बीच में हुई देरी के कारण तीसरे पक्ष का निर्माण हो सकता है। अधिकार, जिन्हें विवेकाधीन शक्ति के विलंबित प्रयोग द्वारा कुचला नहीं जा सकता, खासकर जब देरी का कोई ठोस कारण नज़र न आए। कहा जाता है कि विधि का शासन जीवन के शासन के साथ निकटता से चलना चाहिए। यहाँ तक कि उन प्रकरण में भी

जहाँ पुनरीक्षित किए जाने वाले आदेश कपटपूर्ण हैं, शक्ति का प्रयोग धोखाधड़ी का पता चलने के एक उचित समय के भीतर होना चाहिए। किसी कार्य या लेन-देन को केवल कपटपूर्ण बता देने से उसके सुधार का समय अनंत तक नहीं बढ़ जाएगा; अन्यथा पुनरीक्षण शक्ति का प्रयोग स्वयं उस विधि के साथ धोखाधड़ी के समान होगा जो किसी प्राधिकारी को ऐसी शक्ति प्रदान करता है।

32. इस वाद में, जबकि सही की जाने वाली प्रविष्टि को धोखाधड़ी के रूप में वर्णित किया गया है, उच्च न्यायालय के समक्ष पेश किए गए नोटिस में ऐसा कुछ भी नहीं है कि राज्य को कथित धोखाधड़ी का पता कब चला। उस संबंध में एक विशिष्ट बयान आवश्यक था क्योंकि यह एक क्षेत्राधिकार संबंधी तथ्य था, जिसे प्रत्यर्थीगण को जारी किए गए नोटिस में स्पष्ट रूप से बताया जाना चाहिए था। इसलिए, अपीलकर्ता-राज्य का यह प्रदर्शित करने का प्रयास कि कथित धोखाधड़ी का पता चलने के उचित समय के भीतर नोटिस जारी किया गया था, व्यर्थ है। किसी भी स्थिति में, जब सरकार ने वर्ष 1991 में सरकारी कर्मचारियों को आवास स्थलों के लिए विचाराधीन भूमि की अनुमति दी थी, तो यह माना जाना चाहिए कि उसे आधिकारिक व्यवसाय के सामान्य क्रम में किए गए भूमि के टुकड़े से संबंधित अभिलेख और राजस्व प्रविष्टियों के बारे में पता था। चूँकि नोटिस 31 दिसंबर, 2004 को जारी किया गया था, इसमें लगभग 13 वर्षों की देरी हुई। इस देरी के लिए भी कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है, यह मानते हुए कि इसे केवल वर्ष 1991 से ही गिना जाना चाहिए। किसी भी दृष्टिकोण से देखा जाए तो आधी सदी पहले की गई प्रविष्टियों को पलटने की मांग करने वाला नोटिस स्पष्ट रूप से उचित समय से परे था और इसे सही तरीके से रद्द किया गया।"

21. एक और पहलू है, जिस पर भले ही बहस न हुई हो, लेकिन यह विवाद से जुड़ा है। उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 (संक्षेप में 'संहिता') द्वारा 30प्र0 जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम निरस्त कर दिया गया है। संहिता की धारा 128 आवंटन और पट्टे के निरस्तीकरण से संबंधित है। धारा 128 की उपधारा (1), जो प्रासंगिक है, नीचे उद्धृत है: -

128. **आबंटन और पट्टे का निरस्तीकरण-** (1) कलेक्टर स्वप्रेरणा से और किसी व्यथित व्यक्ति के आवेदन पर, किसी आबंटन के संबंध में विहित रीति से जांच कर सकेगा और यदि उसका समाधान हो जाता है कि आबंटन इस संहिता या इस संहिता द्वारा निरसित किसी अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंधों का उल्लंघन है, तो वह आबंटन और पट्टे को, यदि कोई हो, रद्द कर सकेगा -

(क) इस संहिता के प्रारंभ से पूर्व किए गए भूमि आवंटन की दशा में, ऐसे प्रारंभ की तारीख से पांच वर्ष के भीतर;

(ख) ऐसे प्रारंभ की तारीख को या उसके पश्चात किए गए भूमि आवंटन के प्रकरण में, ऐसे आवंटन या पट्टे की तिथि से पांच वर्ष के भीतर।

22. संहिता के लागू होने की तिथि 11.02.2016 है। इस प्रकार, संहिता के अंतर्गत भी, परिसीमा प्रारंभ तिथि से पाँच वर्ष, अर्थात् 11.02.2021 तक थी, जबकि कार्यवाही पुनः आरंभ करने के लिए पहली बार नोटिस 06.03.2024 को जारी किए गए, जो निर्धारित अवधि से बहुत आगे था।

23. चूँकि हमने पाया है कि निर्विवाद तथ्यों के आधार पर भी, आवंटन रद्द करने की कार्यवाही सीमा से परे थी, इसलिए पट्टा रद्द करने का परिणामी आदेश अवैध है और विधि की नज़र में शून्य है। ऐसी स्थिति में, हमारा विचार है कि याचिकाकर्तागण को राहत देने से इनकार करना और आवंटन रद्द करने वाली रिट याचिकाओं के लंबित रहने के दौरान पारित आदेश को चुनौती देने के लिए उन्हें अन्य उपायों का सहारा लेना एक खोखली औपचारिकता होगी और इससे केवल अनावश्यक उत्पीड़न होगा और कार्यवाही में कई गुना वृद्धि होगी। इसलिए, हम ऐसा कोई रास्ता अपनाने से परहेज करते हैं और दिनांक 06.03.2024 के नोटिस के अनुसरण में पट्टा रद्द करने की कार्यवाही को समय से वर्जित और इस प्रकार, क्षेत्राधिकार से बाहर घोषित करते हैं। तदनुसार, सहायक अनुतोष के रूप में, उक्त आदेश को रद्द किया जाता है। प्रत्यर्थी संख्या 5 को निर्देश दिया जाता है कि वह वर्तमान आदेश के संप्रेषण की तिथि से आठ सप्ताह के भीतर दिनांक 02.03.2023 के निर्णय के अनुसार याचिकाकर्तागण को मुआवजा दे।

24. परिणामस्वरूप, याचिकाएँ सफल होती हैं और **स्वीकार** की जाती हैं। चूँकि याचिकाकर्तागण को अनावश्यक रूप से परेशान किया गया है और एक दिखावटी दलील के आधार पर मुआवज़ा रोक दिया गया है, जो स्पष्ट रूप से बाद में सोचा गया और विधि की दृष्टि में पोषणीय नहीं है, इसलिए याचिकाकर्तागण को वाद-व्यय और हर्जाने का हकदार माना जाता है, जिसकी राशि 25,000/- रुपये प्रति पट्टा है, जिसका भुगतान प्रत्यर्थी संख्या 5 द्वारा वर्तमान आदेश की सूचना की तिथि से चार सप्ताह के भीतर किया जाना है।

25. आदेश की एक प्रति प्रत्येक वाद की पत्रावली पर रखी जाएगी।

(2025) 4 ILRA 670

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 16.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शेखर बी. सराफ

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. योगेन्द्र कुमार श्रीवास्तव

रिट सी संख्या 31506/2023

डॉ. सबा सरीफ़ **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...प्रत्यर्थीगण**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

सुश्री आकांक्षा मिश्रा

अनुवादित

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता:
मुख्य स्थायी अधिवक्ता

सिविल विधि-भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - रिट याचिका - परमादेश रिट की मांग - मेडिकल कॉलेज (प्रत्यर्थी संख्या 2) को याचिकाकर्ता के मूल दस्तावेज़ वापस करने का आदेश - याचिकाकर्ता ने पूर्व न्यायालय के आदेश के अनुपालन में बैंक गारंटी प्रस्तुत की - प्रत्यर्थी संख्या 2 ने मूल दस्तावेज़ वापस कर दिए - हालाँकि, न्यायालय ने पाया कि - मेडिकल कॉलेज द्वारा बंधपत्र के अंतर्गत ली गई 5,00,000/- रुपये की प्रतिभूति राशि प्रवर्तनीय नहीं थी और साथ ही यह सार्वजनिक नीति के अनुरूप भी नहीं थी - अभिनिर्धारित, मध्य प्रदेश और गुजरात उच्च न्यायालयों के उदाहरणों पर भरोसा करते हुए, न्यायालय ने प्रत्यर्थी संख्या 2 को निर्देश दिया कि वह 5,00,000/- रुपये की प्रतिभूति राशि, भुगतान की तिथि से 4% प्रति वर्ष की दर से ब्याज सहित, बैंक गारंटी सहित, चार सप्ताह के भीतर वापस करे - तदनुसार निर्देश जारी किया गया - रिट याचिका निस्तारित किया गया।

रिट याचिका निस्तारित किया गया। (ई-11)

<u>संदर्भित वादों की सूची:</u>

1. रुक्मणीबेन दीपचंद गार्डी मेडिकल कॉलेज बनाम डॉ. अंशुल जैन एवं अन्य - रिट अपील संख्या 757/2020,
2. डॉ. अंशुल जैन बनाम मध्य प्रदेश राज्य एवं अन्य - रिट याचिका संख्या 7982/2019,
3. शीतांशु शेखर मनोहरलाल बनाम गुजरात राज्य - पी/एसटीए/18840/2014।

अनुवादित

(माननीय न्यायमूर्ति शेखर बी. सराफ
एवं
माननीय न्यायमूर्ति डॉ. योगेन्द्र कुमार श्रीवास्तव द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता की ओर से दायर पूरक शपथपत्र अभिलेख पर लिया गया है। पूरक शपथपत्र से पता चलता है कि इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ द्वारा पारित दिनांक 22.09.2023 के आदेश के अनुसरण में, याचिकाकर्ता ने प्रत्यर्थी संख्या 2 के समक्ष बैंक गारंटी दायर की है।

2. बैंक गारंटी जमा करने पर, प्रत्यर्थी संख्या 2 ने याचिकाकर्ता को मूल प्रमाण पत्र/दस्तावेज जारी कर दिए हैं।

3. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया कि प्रत्यर्थी संख्या 2 को अभी भी 5,00,000/- रुपये की प्रतिभूति जमा राशि ब्याज सहित वापस करनी है, जो याचिकाकर्ता से बंधपत्र की शर्त के

रूप में ली गई थी। **रिट अपील संख्या 757/2020 (रुक्समणिबेन दीपचंद गार्डी मेडिकल कॉलेज बनाम डॉ. अंसुल जैन और अन्य)** में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय की खंडपीठ के निर्णय पर भरोसा करते हुए, विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क प्रस्तुत किया कि प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा लिया गया बंधपत्र वैध नहीं है और इसे शून्य और अमान्य माना जाना आवश्यक है।

4. यह ध्यान देने योग्य है कि उपर्युक्त रिट अपील में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने **रिट याचिका संख्या 7982/2019 (डॉ. अंशुल जैन पुत्री विमल जैन बनाम मध्य प्रदेश राज्य एवं अन्य)** में विद्वान एकल न्यायाधीश के पूर्व के निर्णय की पुष्टि की थी, जिसमें **शीतांशु शेखर मनोहरलाल बनाम गुजरात राज्य (पी/एसटीए/18840/2014)** में गुजरात उच्च न्यायालय के एक निर्णय पर भरोसा किया गया था, जिसमें निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया था:-

"17. इस समय, यह उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि सर्वोच्च न्यायालय ने सेवा अनुबंध में निहित उन धाराओं या शर्तों को बार-बार निरस्त किया है, जिन्हें अनुचित, अवैध, अविवेकपूर्ण और लोक नीति के विरुद्ध पाया गया था। जैसा कि पहले कहा गया है, दिनांक 28.06.2013 के जी.आर. के अनुसार, स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में प्रवेश लेते समय छात्रों द्वारा बंधपत्र निष्पादित किया जाना आवश्यक है। छात्रों के पास निर्धारित प्रारूप में अनुबंध बंधपत्र पर हस्ताक्षर करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। न्यायालय की राय में, भारतीय अनुबंध अधिनियम में निहित प्रावधानों के मद्देनजर, ऐसे बंधपत्र को छात्रों की स्वतंत्र इच्छा या सहमति से निष्पादित नहीं कहा जा सकता। भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 19ए के अनुसार, जब किसी करार के लिए सहमति अनुचित प्रभाव के कारण होती है, तो वह करार उस पक्षकार के विकल्प पर शून्यकरणीय संविदा होता है जिसकी सहमति से ऐसा किया गया था। धारा 16 की उपधारा (1) "अनुचित प्रभाव" को इस प्रकार परिभाषित करती है कि एक संविदा "अनुचित प्रभाव" से प्रेरित कही जाती है जहाँ पक्षकारों के बीच विद्यमान संबंध ऐसे हों कि एक पक्षकार दूसरे पक्षकार की इच्छा पर हावी होने की स्थिति में हो और उस स्थिति का उपयोग दूसरे पक्षकार पर अनुचित लाभ प्राप्त करने के लिए करता हो। धारा 16 की उपधारा (2) अन्य बातों के साथ-साथ यह भी प्रावधान करती है कि एक व्यक्ति दूसरे पक्षकार की इच्छा पर हावी होने की स्थिति में तब माना जाता है जब वह दूसरे पक्षकार पर वास्तविक या प्रत्यक्ष अधिकार रखता हो। इस स्थिति में, संविदा अधिनियम की धारा 23 का संदर्भ लेना भी प्रासंगिक होगा। धारा 23 में कहा गया है कि किसी करार का प्रतिफल या उद्देश्य वैध है, जब तक कि न्यायालय इसे लोक नीति के विरुद्ध न माने। इसमें यह भी प्रावधान है कि प्रत्येक करार जिसका उद्देश्य या प्रतिफल अवैध है, शून्य है।

18. सर्वोच्च न्यायालय ने, केंद्रीय अंतर्देशीय जल परिवहन निगम बनाम ब्रोजो नाथ गांगुली (1986) 3 एससीसी 156 में प्रतिवेदित वाद में, भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 में निहित तर्कसंगतता और निष्पक्षता के सिद्धांतों के तहत अनुबंध अधिनियम के प्रावधानों को लागू करते हुए, अन्य बातों के साथ-साथ यह अभिनिर्धारित किया है कि जब अनुबंध कमजोर पक्ष द्वारा परिस्थितियों के दबाव में किए जाते हैं, जिसके परिणामस्वरूप सौदेबाजी

की शक्ति में असमानता होती है, तो ऐसे अनुबंध अनुबंध अधिनियम की धारा 16(1) में दी गई "अनुचित प्रभाव" की परिभाषा के दायरे में नहीं आएंगे, भले ही कभी-कभी वे उन पक्षों के बीच होते हैं जिनमें से एक दूसरे पर वास्तविक या स्पष्ट अधिकार रखता है। ऐसे अनुबंध, जो बड़ी संख्या में व्यक्तियों या व्यक्तियों के समूह को प्रभावित करते हैं, यदि वे अनुचित, अनैतिक और अविवेकपूर्ण हैं, तो जनहित के लिए हानिकारक हैं। ऐसे अनुबंध, जो बड़ी संख्या में व्यक्तियों या व्यक्तियों के समूह को प्रभावित करते हैं, यदि वे अनुचित, अवैध और अविवेकपूर्ण हैं, तो सार्वजनिक हित के लिए हानिकारक हैं। उक्त वाद में सर्वोच्च न्यायालय एक सरकारी कंपनी, अर्थात् केंद्रीय अंतर्देशीय जल परिवहन निगम, द्वारा बनाए गए सेवा नियम की वैधता के प्रश्न का परीक्षण कर रहा था। नियम 9(i) अर्थात् नियम 9, निगम को अपनी इच्छानुसार अपने कर्मचारियों की सेवाएँ समाप्त करने का अधिकार देता था। सर्वोच्च न्यायालय ने उक्त नियम को न केवल मनमाना, अनुचित और अविवेकपूर्ण माना, बल्कि संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन भी किया, बल्कि उक्त संविदा नियम में निहित शब्दों को लोक नीति के विरुद्ध माना और इसलिए संविदा अधिनियम की धारा 23 के अंतर्गत शून्य घोषित किया। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई प्रासंगिक टिप्पणियों को निम्नलिखित रूप में पुनः उद्धृत किया जा सकता है:

"91. क्या ऊपर वर्णित प्रकार के अनुबंध को शून्यकरणीय या अमान्य घोषित किया जा सकता है? यदि यह अनुचित प्रभाव से प्रेरित था, तो भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 19ए के तहत, यह शून्यकरणीय होगा। हालाँकि, ऐसा बहुत कम होता है कि जिस प्रकार के अनुबंधों पर हमारे द्वारा ऊपर प्रतिपादित सिद्धांत लागू होता है, वे भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 16(1) द्वारा परिभाषित अनुचित प्रभाव से प्रेरित हों, भले ही कभी-कभी वे पक्षों के बीच होते हैं जिनमें से एक के पास दूसरे पर वास्तविक या स्पष्ट अधिकार होता है। हालाँकि, अधिकांश मामलों में, ऐसे अनुबंध कमज़ोर पक्ष द्वारा परिस्थितियों के दबाव में किए जाते हैं, आमतौर पर आर्थिक, जिसके परिणामस्वरूप सौदेबाजी की शक्ति में असमानता होती है। ऐसे अनुबंध धारा 16(1) में दी गई "अनुचित प्रभाव" की परिभाषा के दायरे में नहीं आएंगे। इसके अलावा, ऐसे अधिकांश अनुबंध एक मानक या निर्धारित रूप में होते हैं या नियमों के एक समूह से मिलकर बने होते हैं। वे व्यक्तियों के बीच अनुबंध नहीं हैं जिनमें केवल उन व्यक्तियों के लिए शर्तें शामिल हैं, निर्धारित या मानक रूपों में अनुबंध या जो अनुबंध के हिस्से के रूप में नियमों का एक समूह शामिल करते हैं, वे बेहतर सौदेबाजी की शक्ति वाले पक्ष द्वारा बड़ी संख्या में ऐसे व्यक्तियों के साथ किए जाते हैं जिनके पास बहुत कम सौदेबाजी की शक्ति होती है या बिल्कुल भी सौदेबाजी की शक्ति नहीं होती है। ऐसे अनुबंध जो बड़ी संख्या में व्यक्तियों या व्यक्तियों के समूह या समूहों को प्रभावित करते हैं, यदि वे अनुचित, अनुचित और अनुचित हैं, तो सार्वजनिक हित के लिए हानिकारक हैं। यह कहना कि ऐसा अनुबंध केवल शून्यकरणीय है, प्रत्येक व्यक्ति को मजबूर करना होगा जिसके साथ बेहतर सौदेबाजी की शक्ति वाले पक्ष ने अनुबंध को शून्यकरणीय घोषित करने के लिए अदालत में जाने के लिए अनुबंध किया था। इसका परिणाम केवल मुकदमेबाजी की बहुलता में होगा जिसे किसी भी न्यायालय को प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए और यह सार्वजनिक हित में भी नहीं होगा। इसलिए, इस तरह के अनुबंध या अनुबंध में ऐसे खंड को शून्य घोषित किया जाना चाहिए। जबकि इंग्लैंड में अनुबंधों का विधि अधिकांशतः न्यायाधीशों द्वारा बनाया जाता है, भारत में अनुबंधों का विधि एक

विधि, अर्थात् भारतीय अनुबंध अधिनियम, 1872, द्वारा अधिनियमित होता है। ऐसे अनुबंध को शून्य घोषित करने के लिए, उसे भारतीय अनुबंध अधिनियम की किसी प्रासंगिक धारा के अंतर्गत आना आवश्यक है। भारतीय अनुबंध अधिनियम में एकमात्र प्रासंगिक प्रावधान जो लागू हो सकता है, वह धारा 23 है, जिसमें कहा गया है कि "किसी समझौते का प्रतिफल या उद्देश्य तब तक वैध है, जब तक कि... न्यायालय उसे... लोक नीति के विरुद्ध न समझे।"

92. भारतीय अनुबंध अधिनियम "लोक नीति" या "लोक नीति के विरुद्ध" शब्दों को परिभाषित नहीं करता। वस्तु की प्रकृति के कारण, "लोक नीति", "लोक नीति के विरुद्ध" या "लोक नीति के विपरीत" शब्दों की सटीक परिभाषा नहीं दी जा सकती। हालाँकि, लोक नीति किसी विशेष सरकार की नीति नहीं है। यह किसी ऐसे विषय को दर्शाती है जो लोक कल्याण और लोक हित से संबंधित है। जनहित में क्या है या लोकहित में क्या है या जनहित या लोकहित के लिए क्या हानिकारक या नुकसानदेह होगा, इसकी अवधारणा समय-समय पर बदलती रही है। जैसे-जैसे नई अवधारणाएँ पुरानी अवधारणाओं का स्थान ले रही हैं, वैसे-वैसे वे लेन-देन जिन्हें कभी लोक नीति के विरुद्ध माना जाता था, अब न्यायालयों द्वारा मान्य माने जा रहे हैं और इसी प्रकार, जहाँ लोक नीति का एक सुप्रसिद्ध मानक रहा है, न्यायालयों ने उसे नए लेन-देन और बदली हुई परिस्थितियों पर भी लागू करने से परहेज नहीं किया है और कभी-कभी तो लोक नीति के एक नए मानक का आविष्कार करने से भी नहीं हिचकिचाए हैं। दो विचारधाराएँ हैं: "संकीर्ण दृष्टिकोण" और "व्यापक दृष्टिकोण"। पूर्व के अनुसार, न्यायालय लोक नीति के नए मानक नहीं बना सकते, जबकि बाद वाला इस क्षेत्र में न्यायिक विधि-निर्माण का समर्थन करता है। "संकीर्ण दृष्टिकोण" के अनुयायी लोक नीति के आधार पर किसी अनुबंध को तब तक अमान्य नहीं करेंगे जब तक कि वह विशेष आधार प्राधिकारियों द्वारा अच्छी तरह से स्थापित न किया गया हो। डरपोक लोगों की आवाज़ शायद ही कभी इतनी स्पष्टता और ज़ोर से उठी हो, जितनी कि जैनसन बनाम यूरीफोंटेन कंसोलिडेटेड माइंस लिमिटेड मामले में लॉर्ड डेवी के इन शब्दों में: "सार्वजनिक नीति हमेशा विधिक फ़ैसलों के लिए एक असुरक्षित और विश्वासघाती आधार होती है।" यह 1902 की बात है। 78 साल पहले, रिचर्डसन बनाम मेलिश मामले में जस्टिस एंड बरोस ने सार्वजनिक नीति का वर्णन "एक बहुत ही अनियंत्रित घोड़ा, और एक बार जब आप उस पर सवार हो जाते हैं, तो आपको कभी पता नहीं चलता कि यह आपको कहाँ ले जाएगा" के रूप में किया था। हालाँकि, रोल्स के मास्टर, लॉर्ड डेनिंग अनियंत्रित घोड़ों से कतराने वाले व्यक्ति नहीं थे और उनके शब्दों से हमारी आँखों के सामने युवा सिकंदर महान द्वारा बुसेफालस को वश में करने की तस्वीर उभर आती है, जो उन्होंने एंडरीबी टाउन फुटबॉल क्लब लिमिटेड बनाम फुटबॉल एसोसिएशन लिमिटेड मामले में कहा था; "एक अच्छे आदमी की ज़ीनत से, अनियंत्रित घोड़े को भी नियंत्रण में रखा जा सकता है। वह बाधाओं को पार कर सकता है।" अगर हमेशा डरपोक लोग ही मैदान में रहते, तो न केवल लोक नीति का सिद्धांत, बल्कि सामान्य विधि या समता के सिद्धांत भी कभी विकसित नहीं होते। सर विलियम होल्ड्सवर्थ ने अपने "हिस्ट्री ऑफ़ इंग्लिश लॉ", खंड III, पृष्ठ 55 में कहा है:

"वास्तव में, सामान्य विधि जैसा विधि, जो राष्ट्र के विकास के साथ-साथ धीरे-धीरे विकसित हुआ है, अनिवार्य रूप से कुछ निश्चित सिद्धांत ग्रहण करता है, और यदि उसे इन सिद्धांतों को बनाए रखना है, तो उसे लोक

नीति या किसी अन्य समान आधार पर, उन प्रथाओं का दमन करने में सक्षम होना चाहिए जो नित नए रूपों में उन्हें कमज़ोर या नकारात्मक बनाने का प्रयास करती हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि लोक नीति को नियंत्रित करने वाले सिद्धांतों का उचित अवसर पर विस्तार या संशोधन किया जा सकता है और किया भी जा सकता है। जो प्रथाएँ एक समय में पूरी तरह से सामान्य मानी जाती थीं, वे आज लोक विवेक के लिए घृणित और दमनकारी बन गई हैं। यदि लोक नीति का कोई ऐसा शीर्षक नहीं है जो किसी मामले को कवर करता हो, तो न्यायालय को लोक विवेक के अनुरूप और लोकहित एवं लोकहित को ध्यान में रखते हुए ऐसी प्रथा को लोक नीति के विरुद्ध घोषित करना चाहिए। सबसे बढ़कर, किसी भी ऐसे वाद का निर्णय करते समय, जो प्राधिकार द्वारा कवर नहीं किया जा सकता, हमारे न्यायालयों के सामने संविधान की प्रस्तावना का प्रकाश स्तंभ होता है। पूर्व उदाहरण के अभाव में, न्यायालय हमेशा उस प्रकाश और हमारे संविधान में निहित मौलिक अधिकारों और नीति निर्देशक सिद्धांतों के अंतर्निहित सिद्धांतों द्वारा निर्देशित हो सकता है।"

*93. **** जिन प्रकार के अनुबंधों पर हमारे द्वारा ऊपर तैयार किया गया सिद्धांत लागू होता है, वे ऐसे अनुबंध नहीं हैं जो अवैधता से दूषित हैं, बल्कि ऐसे अनुबंध हैं जिनमें ऐसी शर्तें निहित हैं जो इतनी अनुचित और अवैध हैं कि वे न्यायालय की अंतरात्मा को झकझोर देती हैं। वे सार्वजनिक नीति के विरुद्ध हैं और इन्हें अमान्य घोषित किया जाना आवश्यक है।*

19. संविधान पीठ ने दिल्ली परिवहन निगम बनाम डीटीसी मजदूर कांग्रेस एवं अन्य (1991 अनुपूरक (1) एससीसी 600) के वाद में पूर्वोक्त निर्णय की पुष्टि की है। उक्त निर्णय का पालन इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम नीलोफर सिद्दीकी एवं अन्य (2015) 16 एससीसी 125) के वाद में भी किया गया है। उक्त निर्णयों में निर्धारित विधिक स्थिति के अनुसार, यद्यपि नागरिकों के अधिकार संविदात्मक अधिकारों की प्रकृति के हैं, फिर भी किसी अनुबंध में प्रवेश करने के निर्णय का तरीका, विधि और उद्देश्य न्यायिक पुनर्विलोकन के अधीन हैं, जिसकी तर्कसंगतता, निष्पक्षता, समानता और भेदभाव रहितता की कसौटी पर जाँच की जानी है। अन्य बातों के साथ-साथ यह भी कहा गया है कि न्यायालय किसी अनुचित और अवैध समझौते या समझौते के किसी खंड या शर्त को लागू नहीं करेंगे, और ऐसा करने के लिए कहे जाने पर उसे रद्द कर देंगे, जो सौदेबाजी की शक्ति में समान नहीं हैं। उक्त में निर्धारित अनुपात निर्णय तब भी लागू होंगे जब व्यक्ति के पास कोई विकल्प नहीं होगा, बल्कि कोई सार्थक विकल्प नहीं होगा, सिवाय इसके कि वह किसी शर्त पर अपनी सहमति दे, चाहे वह कितनी भी अनुचित और अवैध क्यों न हो, और समझौते के निर्धारित या मानक रूप में एक बिंदीदार रेखा पर हस्ताक्षर करे।

20. यदि वर्तमान वाद के तथ्यों को पूर्वोक्त विधिक स्थिति के आलोक में देखा जाए तो यह स्पष्ट रूप से सामने आता है कि याचिकाकर्ता जो मेधावी छात्र हैं और जिन्होंने प्रवेश नियमों के अनुसार सरकारी कॉलेजों में पीजी पाठ्यक्रमों में अपनी योग्यता के आधार पर प्रवेश पाया है, उन्हें दिनांक

28.06.2013 के जीआर के मद्देनजर बंधपत्र के निष्पादन के लिए वचनबद्धता देने के लिए कहा गया है। उन्हें बंधपत्र समझौते के निर्धारित प्रारूप में बिंदीदार रेखाओं पर हस्ताक्षर करने के लिए भी कहा गया है, जिसकी प्रति विशेष सिविल आवेदन संख्या 2690/2016 के अभिलेख में प्रस्तुत की गई है। प्रत्यर्थी प्राधिकारी प्रभावशाली स्थिति में होने के कारण, याचिकाकर्ताओं और याचिकाकर्ताओं के समान स्थिति वाले छात्रों के पास उक्त बंधपत्र समझौते में उल्लिखित शर्तों पर सहमति देने के अलावा कोई विकल्प नहीं है, हालांकि उक्त शर्तें बहुत कठोर, अनुचित और बोझिल हैं। संबंधित प्रत्यर्थी प्राधिकारियों ने दिनांक 28.02.2019 को परिपत्र जारी करके छात्रों के मन में सचमुच यह डर पैदा करने की कोशिश की है कि यदि उन्होंने बंधपत्र समझौता प्रस्तुत नहीं किया तो उनका वजीफा रोक दिया जाएगा और उन्हें परीक्षा हॉल टिकट आवंटित नहीं किए जाएंगे। इस प्रकार, प्रत्यर्थीगण द्वारा पीजी छात्रों को तीन वर्षों के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में सेवा देने के लिए 10,00,000/- रुपये का नया बंधपत्र निष्पादित करने के लिए बाध्य करना और 28.06.2013 के जीआर के मद्देनजर यूजी छात्रों के रूप में पहले से प्रस्तुत बंधपत्र को तीन वर्षों की अतिरिक्त अवधि के लिए विस्तारित करना और उन्हें बंधपत्र समझौते की बिंदीदार रेखाओं पर हस्ताक्षर करने के लिए बाध्य करना, जिसमें बिल्कुल अनुचित और अनुचित शर्तें शामिल हैं, प्रत्यर्थी प्राधिकारियों के इशारे पर शक्तियों के मनमाने प्रयोग की बू आती है। ऐसा बंधपत्र समझौता और उसमें उल्लिखित शर्तें अनुचित, अन्यायपूर्ण और अविवेकपूर्ण होने के कारण, केंद्रीय अंतर्देशीय जल परिवहन निगम (पूर्वोक्त) के निर्णय के मद्देनजर, लोक नीति के विपरीत समझी जानी चाहिए और इसलिए शून्य तथा संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करने वाली भी है।"

5. वर्तमान वाद में, हमारा विचार है कि मेडिकल कॉलेज द्वारा निष्पादित बंधपत्र लोक नीति के अनुरूप नहीं था, और तदनुसार, बंधपत्र को प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा लागू नहीं किया जा सकता है।

6. इसके आलोक में, प्रत्यर्थी संख्या 2 को निर्देश दिया जाता है कि वह याचिकाकर्ता द्वारा भुगतान की तिथि से प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा याचिकाकर्ता को किए जाने वाले भुगतान तक, मूल राशि पर 4% प्रति वर्ष की दर से ब्याज सहित 5,00,000/- रुपये की प्रतिभूति जमा राशि वापस करे।

7. उपरोक्त वापसी इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तिथि से चार सप्ताह की अवधि के भीतर की जानी चाहिए।

8. इसके अतिरिक्त, इस न्यायालय की समन्वय पीठ के आदेश के अनुसरण में याचिकाकर्ता द्वारा जमा की गई बैंक गारंटी भी प्रतिभूति जमा राशि की वापसी के साथ याचिकाकर्ता को वापस कर दी जानी चाहिए।

9. उपरोक्त निर्देशों के साथ, रिट याचिका का निस्तारण किया जाता है।

(2025) 4 ILRA 675

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 16.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विक्रम डी. चौहान

रिट - सी संख्या- 31742 वर्ष 2024

श्रीमती केहकशान **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...प्रत्यर्थीगण**

याचिकाकर्ता की ओर से अधिवक्ता:

श्री इम्तियाज हुसैन, श्री सिद्धार्थ नंदन, श्री एच.एन. सिंह (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रत्यर्थीगण की ओर से अधिवक्ता:

सी.एस.सी., श्री गणेश प्रताप सिंह, श्री आर.पी.एस. चौहान, श्री राजीव कुमार सिंह, श्री सिद्धार्थ खरे, श्री नवीन सिन्हा (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अनुवादित

सिविल विधि - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - उ0प्र0 पंचायत राज अधिनियम, 1947 - धारा 12-सी, - उ0प्र0 पंचायत राज (सदस्यों, प्रधान और उप-प्रधानों का चुनाव) नियमावली, 1994 - नियम 33, 82, 86, 86 (1), 86 (2), 86 (2) (बी), 105, 105 (2)- रिट याचिका - ग्राम प्रधान के चुनाव को चुनौती देते हुए - याचिकाकर्ता ने शुरू में 664 वोट हासिल किए जबकि प्रत्यर्थी संख्या 4 को 658 मिले - हालांकि, प्रत्यर्थी संख्या 4 ने उ0प्र0 पंचायत राज अधिनियम, 1947 की धारा 12-सी के तहत एक चुनाव याचिका दायर की, जिससे पुनर्मतगणना हुई - व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने रिट याचिका दायर की - उच्च न्यायालय ने पहले के आदेश से प्रकरण को निर्धारित प्राधिकारी के समक्ष चुनाव याचिका पर नए सिरे से निर्णय लेने के लिए वापस भेज दिया - जिससे प्रकरण सर्वोच्च न्यायालय पहुंचा - सर्वोच्च न्यायालय ने एक कोर्ट कमिश्नर की उपस्थिति में पुनर्मतगणना का निर्देश दिया - पुनर्गणना में प्रत्यर्थी संख्या 4 के लिए 659 और याचिकाकर्ता के लिए 657 मतों का खुलासा करते हुए, 114 मतपत्रों को अवैध घोषित किया गया - सर्वोच्च न्यायालय ने प्रकरण को उच्च न्यायालय में वापस भेज दिया ताकि केवल विवादित मतपत्रों की शीघ्र समीक्षा की जा सके और बिना किसी देरी के वाद का निर्णय किया जा सके - दोनों प्रतियोगी दलों को अवैध मतों के संबंध में निरीक्षण करने और अपनी आपत्तियां दर्ज करने की अनुमति दी गई - न्यायालय ने विधिक मैक्सिम *एक्सप्रेसियो यूनियस एस्ट एक्सक्लूसियो अल्टरियस (एक की अभिव्यक्ति दूसरे का बहिष्कार है)* पर भरोसा करते हुए कहा कि, निर्धारित विधि से कोई भी विचलन, जैसे स्याही के बिंदु या अंगूठे के निशान का उपयोग करना, मतपत्र को अवैध बना

देता है और चुनाव प्रक्रिया की अखंडता को खतरा पहुंचाता है - इसलिए, न्यायालय ने ग्राम प्रधान चुनाव में कई विवादित मतपत्रों को खारिज करने का निर्णय बरकरार रखा, जिसमें उ0प्र0 पंचायत राज नियमावली, 1994 के नियम 86 और 105 के तहत अनिवार्य मतदान प्रक्रिया के उल्लंघन का हवाला दिया गया - इस प्रकार, संशोधित गणना से याचिकाकर्ता के कुल मत 659 हो गए और प्रत्यर्थी संख्या 4 के कुल मत 661 हो गए - जिससे प्रत्यर्थी संख्या 4 को विजयी उम्मीदवार घोषित किया गया - प्रत्यर्थी प्राधिकारियों को प्रत्यर्थी संख्या 4 को एक महीने के भीतर ग्राम प्रधान के रूप में दर्ज करने के लिए परिणामी कदम उठाने के निर्देश जारी किए गए - तदनुसार, रिट याचिका का निस्तारण किया जाता है। (प्रस्तर संख्या 30, 37, 50, 51).

रिट याचिका का निस्तारित। (ई-11)

<u>संदर्भित प्रकरण की सूची: -</u>

1. एरा सेझियान बनाम टी.आर. बालू एवं अन्य - 1990 (पूरक) एससीसी 322,
2. राम औतार सिंह भदौरिया बनाम राम गोपाल सिंह एवं अन्य- एआईआर 1975 एससी 2182,
3. एस. शिवस्वामी बनाम मलाइकन्नन एवं अन्य - 1984 खंड 1 एससीसी 296

(माननीय न्यायमूर्ति विक्रम डी. चौहान द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एच.एन. सिंह, जिनकी सहायता विद्वान अधिवक्ता श्री इम्तियाज हुसैन ने की, तथा प्रत्यर्थी संख्या 4 की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री नवीन सिन्हा, जिनकी सहायता विद्वान अधिवक्ता श्री आर.पी.एस. चौहान ने की तथा प्रत्यर्थी-राज्य की ओर से विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया।

2. वर्तमान रिट याचिका, उत्तर प्रदेश पंचायत राज अधिनियम, 1947 की धारा 12-सी के तहत दायर चुनाव याचिका संख्या 04085/2021 (कम्प्यूटरीकृत वाद संख्या टी202113740404085) (अशरफ खान बनाम श्रीमती केहकशान और अन्य) में प्रत्यर्थी संख्या 2 - विहित प्राधिकारी/उप जिलाधिकारी, चंदौसी, जिला संभल द्वारा पारित आदेश दिनांक 9.9.2024 को चुनौती देने के साथ-साथ चुनाव याचिका संख्या 04085/2021 के अनुसरण में शुरू की गई संपूर्ण कार्यवाही को रद्द करने के लिए प्रस्तुत की गई है।

3. वर्तमान रिट याचिका को जन्म देने वाले संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि ग्राम मोहम्मदपुर काशी, तहसील चंदौसी, जिला संभल के लिए ग्राम प्रधान पद हेतु चुनाव की अधिसूचना जारी की गई थी। याचिकाकर्ता और प्रत्यर्थी संख्या 4 ने अन्य अभ्यर्थियों के साथ ग्राम प्रधान पद के लिए अपना नामांकन प्रस्तुत किया था। अभ्यर्थियों के चुनाव चिह्न इस प्रकार हैं:-

अशरफ खान - इमली
श्रीमती केहकशान - कार
श्रीमती इशरत जहां - कन्नी
मोहम्मद कासिब - किताब
जाकिर - कैमरा
जाहिद - कैरम बोर्ड

4. चुनाव/मतदान 29.4.2021 को हुआ। मतगणना 2.5.2021 को हुई और मतगणना पूरी हो गई। मतगणना पूरी होने पर, याचिकाकर्ता (श्रीमती केहकशान) को 664 मत प्राप्त होने पर निर्वाचित उम्मीदवार घोषित किया गया और प्रत्यर्थी संख्या 4 (श्री अशरफ खान) को 658 मत, मोहम्मद अंसार को एक मत, श्रीमती इशरत जहाँ को 6 मत, मोहम्मद कासिब को 2 मत, जाकिर को 16 मत और जाहिद को 2 मत प्राप्त हुए।

5. इसके बाद प्रत्यर्थी संख्या 4 ने उ0प्र0 पंचायत राज अधिनियम, 1947 की धारा 12-सी के तहत दिनांक 28.5.2021 को एक चुनाव याचिका दायर की। विहित प्राधिकारी ने दिनांक 9.9.2024 के आदेश द्वारा मतों की पुनर्गणना का निर्देश दिया है।

6. इससे पहले, इस न्यायालय ने दिनांक 23.9.2024 के निर्णय द्वारा वर्तमान याचिका पर निर्णय दिया था। प्रत्यर्थी संख्या 4 (अशरफ खान) ने दिनांक 23.9.2024 के आदेश से व्यथित होकर माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष सिविल अपील संख्या 12308/2024 (विशेष अनुमति याचिका (सी) संख्या 25059/2024 से उत्पन्न) (अशरफ खान बनाम केहकशान एवं अन्य) दायर किया।

7. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दिनांक 23.10.2024 के आदेश द्वारा माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा नियुक्त न्यायालय कमिश्नर की उपस्थिति में पुनर्गणना का निर्देश दिया था। इसके बाद, एक बार फिर पुनर्गणना की गई, जिसमें प्रत्यर्थी संख्या 4 (अशरफ खान) को 659 और याचिकाकर्ता (श्रीमती केहकशान) को 657 मत प्राप्त हुए। इस प्रक्रिया में, 114 मतों को अवैध घोषित कर दिया गया। इसके बाद माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दिनांक 13.11.2024 के आदेश द्वारा प्रकरण को इस न्यायालय के समक्ष पुनः भेज दिया।

8. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 13.11.2024 के आदेश के अनुसरण में, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने इस न्यायालय के समक्ष (याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और प्रत्यर्थी संख्या 4 व 7 के विद्वान अधिवक्ता की उपस्थिति में) अमान्य मतपत्रों से युक्त एक सीलबंद लिफाफा प्रस्तुत किया और उसे 21.11.2024 को अभिलेख में दर्ज कर लिया गया। इसके अतिरिक्त, पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं के अनुरोध पर दिनांक 21.11.2024 के आदेश द्वारा, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और प्रत्यर्थी संख्या 4 के विद्वान अधिवक्ता को इस न्यायालय के महानिबंधक के समक्ष अमान्य मतपत्रों (विद्वान स्थायी अधिवक्ता

द्वारा प्रस्तुत) का निरीक्षण करने की अनुमति दी गई। इसके अतिरिक्त, पक्षकारों को निरीक्षण के बाद अमान्य मतपत्रों के संबंध में अपनी आपत्तियाँ दर्ज करने की अनुमति दी गई।

9. इस न्यायालय द्वारा पारित उपर्युक्त आदेश दिनांक 21.11.2024 के अनुसरण में, रजिस्ट्रार जनरल ने दिनांक 28.11.2024 को अपनी आख्या प्रस्तुत की जिसमें बताया गया कि अवैध मतपत्रों का निरीक्षण किया गया है और उसके बाद पक्षों के विद्वान अधिवक्ता की उपस्थिति में उन्हें सील कर दिया गया है।

10. इसके बाद, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने (याचिकाकर्ता की ओर से) दिनांक 2.12.2024 को अवैध मतों के संबंध में आपत्ति दायर की। प्रत्यर्थी संख्या 4 के विद्वान अधिवक्ता ने भी इस न्यायालय की रजिस्ट्री के समक्ष याचिकाकर्ता की दिनांक 2.12.2024 की आपत्ति का उत्तर दिनांक 9.1.2025 को दायर किया। प्रत्यर्थी संख्या 4 ने भी अवैध मतपत्रों के संबंध में दिनांक 11.12.2024 को आपत्ति दायर की।

11. याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित उपर्युक्त आदेश दिनांक 13.11.2024 के पश्चात्, इस न्यायालय के दिनांक 21.11.2024 के आदेश के अनुसरण में अवैध मतों का निरीक्षण किया गया है और अब केवल कुछ अवैध मतों के संबंध में उठाई गई आपत्तियों के संबंध में ही तर्क प्रस्तुत किए जा रहे हैं। प्रत्यर्थी संख्या 4 के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता और याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, दोनों इस बात पर सहमत हैं कि अब केवल 114 अवैध मतों में से कुछ अवैध मतों की वैधता के संबंध में ही निर्णय होना शेष है, जिनका विवरण उनकी आपत्ति में दिया गया है।

12. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे दलील दी कि अवैध मतों की जाँच के बाद, याचिकाकर्ता, याचिकाकर्ता की ओर से दायर दिनांक 2.12.2024 की आपत्ति के प्रस्तर संख्या 12, 13 और 14 में वर्णित मतपत्रों/मतों के संबंध में आपत्ति उठा रहा है। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी कि कुछ अवैध मतों में उम्मीदवार के पक्ष में वोट डालने के लिए अंगूठे का निशान है और अन्य अवैध मतपत्र आपत्तियों से संबंधित हैं जिनका व्यक्तिगत रूप से परीक्षण किया जाना है।

13. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे कहा कि ग्राम प्रधान पद के लिए चुनाव उत्तर प्रदेश पंचायत राज (सदस्यों, प्रधानों और उप-प्रधानों का चुनाव) नियमावली, 1994 (संक्षिप्त में इसे आगे "1994 का नियमावली" कहा जाएगा) के अनुसार आयोजित किए जाते हैं। आगे यह भी कहा गया कि नियमावली 1994 के नियम 105 में मतपत्रों को अस्वीकार करने का आधार प्रदान किया गया है। याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने नियमावली 1994 के नियम 86(2)(बी) का हवाला देते हुए कहा कि मतदाता के मतदान करने के इरादे के संबंध में मतपत्र पर एक निशान पर्याप्त होगा। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि जहां तक मतदाता द्वारा मतपत्र पर अंगूठे के निशान का संबंध है, वह मान्य होगा क्योंकि वह किसी विशेष उम्मीदवार के पक्ष में वोट का संकेत देने वाला एक निशान होगा। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि नियमावली 1994 के नियम 86 (2) की प्रकृति अनिवार्य नहीं है और मतपत्र को केवल नियमावली 1994

के नियम 105 में उल्लिखित आधारों पर ही अस्वीकार किया जा सकता है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि मतपत्र पर कोई भी चिह्न पर्याप्त होगा, सिवाय इसके कि वह चिह्न मतदाता की पहचान प्रकट करता हो।

14. इस संबंध में, याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि मतपत्र संख्या 9बीई 2245141 (मतदान केंद्र संख्या 172), 9बीई 2245421 (मतदान केंद्र संख्या 172), 9बीई 2245115 (मतदान केंद्र संख्या 172), 9बीई 2245336 (मतदान केंद्र संख्या 172), 9बीई 2245476 (मतदान केंद्र संख्या 172), 9बीई 2245490 (मतदान केंद्र संख्या 172) जिसमें मतपत्र पर अंगूठे का निशान है, वैध है। इसी प्रकार, यह भी प्रस्तुत किया गया है कि मतपत्र संख्या 9बीई 2245647 (मतदान केंद्र संख्या 173), 9बीई 2245760 (मतदान केंद्र संख्या 173), 9बीई 2244037 (मतदान केंद्र संख्या 173), 9बीई 2245934 (मतदान केंद्र संख्या 173), 9बीई 2245935 (मतदान केंद्र संख्या 173), 9बीई 2245852 (मतदान केंद्र संख्या 173), 9बीई 2245606 (मतदान केंद्र संख्या 173) जिन पर अंगूठे का निशान है, वैध हैं। याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि मतपत्र संख्या 9बीई 2244354 (मतदान केंद्र संख्या 174), 9बीई 2244211 (मतदान केंद्र संख्या 174), 9बीई 224433 (मतदान केंद्र संख्या 174), 9बीई 2244297 (मतदान केंद्र संख्या 174), 9बीई 2244204 (मतदान केंद्र संख्या 174), 9बीई 2244375 (मतदान केंद्र संख्या 174), 9बीई 2244284 (मतदान केंद्र संख्या 174), 9बीई 2244503 (मतदान केंद्र संख्या 174), 9बीई 2244210 (मतदान केंद्र संख्या 174), 9बीई 2244294 (मतदान केंद्र संख्या 174), 9बीई 2244195 (मतदान केन्द्र सं. 174), 9बीई 2244330 (मतदान केन्द्र सं. 174) के मतपत्र पर अंगूठे के निशान वाला हस्ताक्षर वैध है।

15. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे कहा कि:-

ए) याचिकाकर्ता (श्रीमती केहकशान) को "कार" चुनाव चिन्ह आवंटित किया गया था, जबकि प्रत्यर्थी क्रमांक 4 (अशरफ) को चुनाव के उद्देश्य से "इमली" चुनाव चिन्ह आवंटित किया गया था। याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने दलील दी है कि मतपत्र क्रमांक 9बीई 2245090 (मतदान केंद्र क्रमांक 172) में "कार" चुनाव चिन्ह पर पूरी मुहर और "किताब" चुनाव चिन्ह पर आधी मुहर लगी है। प्रत्यर्थी क्रमांक 7 - मोहम्मद कासिब का चुनाव चिन्ह "किताब" था। सुनवाई के दौरान याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता को मतपत्र क्रमांक 9बीई 2245090 फिर से दिखाया गया। याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने उक्त मतपत्र की जांच करने के बाद दलील दी कि उक्त मतपत्र में दोहरा चिन्ह है, एक "कार" चुनाव चिन्ह पर और दूसरा "किताब" चुनाव चिन्ह पर, ऐसे में वह उपरोक्त मतपत्र के संबंध में अपनी आपत्ति नहीं जता रहे हैं।

बी) मतपत्र संख्या 9बीई 2245380 (मतदान केंद्र संख्या 172) में चुनाव चिह्न "कार" पर पूरी मुहर और चुनाव चिह्न "किताब" पर आधी मुहर लगी है। प्रत्यर्थी संख्या 7 - मोहम्मद कासिब का चुनाव चिह्न "किताब" था। सुनवाई के दौरान याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता को मतपत्र संख्या 9बीई 2245380 दिखाया गया। याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने उक्त मतपत्र की जाँच के बाद

कहा कि उक्त मतपत्र में दो चुनाव चिह्न हैं, एक "कार" पर और दूसरा "किताब" पर। इसलिए, वह उपरोक्त मतपत्र के संबंध में अपनी आपत्ति नहीं जता रहे हैं।

सी) मतपत्र संख्या 9बीई 2244006 (मतदान केंद्र संख्या 173) में "कार" चिन्ह पर मोहर/चिह्न और "कैरम बोर्ड" चिन्ह पर हल्की मोहर है। याचिकाकर्ता को "कार" चिन्ह आवंटित किया गया था, जबकि प्रत्यर्थी संख्या 9 - जाहिद को "कैरम बोर्ड" चिन्ह आवंटित किया गया था। याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि उक्त मतपत्र में मुख्य मोहर "कार" चिन्ह पर है और "कैरम बोर्ड" चिन्ह पर स्याही लगी है, अतः यह "कैरम बोर्ड" चिन्ह पर डाला गया मत नहीं है। उक्त मतपत्र को याचिकाकर्ता के पक्ष में माना जाना चाहिए।

डी) मतपत्र संख्या 9बीई 2244216 (मतदान केंद्र संख्या 174) में "कार" चिन्ह पर हल्की मुहर/चिह्न है। याचिकाकर्ता को "कार" चिन्ह आवंटित किया गया था। उक्त मतपत्र को याचिकाकर्ता के पक्ष में माना जाए।

ई) मतपत्र संख्या 9बीई 2244136 (मतदान केंद्र संख्या 174) में "कार" चिन्ह पर एक मोहर और "किताब" चिन्ह पर एक बहुत हल्की मोहर है। याचिकाकर्ता को "कार" चिन्ह आवंटित किया गया था। प्रत्यर्थी संख्या 7 - मोहम्मद कासिब का चुनाव चिन्ह "किताब" था। याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि उक्त मतपत्र पर "कार" चिन्ह पर मुहर और "किताब" चिन्ह पर स्याही लगी है। यह प्रस्तुत किया गया है कि मतदाता की मंशा का अनुमान लगाया जा सकता है कि उसने वास्तव में "कार" चिन्ह के लिए मतदान किया था। उक्त मतपत्र को याचिकाकर्ता के पक्ष में माना जाना चाहिए।

एफ) मतपत्र संख्या 9बीई 2244330 (मतदान केंद्र संख्या 174) में "कार" चिन्ह पर अंगूठे का निशान और "कैरम बोर्ड" चिन्ह पर मुहर लगी है। याचिकाकर्ता को "कार" चिन्ह आवंटित किया गया था, जबकि प्रत्यर्थी संख्या 9 - जाहिद को "कैरम बोर्ड" चिन्ह आवंटित किया गया था। याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि उक्त मतपत्र में अंगूठे का निशान "कार" चिन्ह पर है और "कैरम बोर्ड" चिन्ह पर स्याही लगी है, अतः यह "कैरम बोर्ड" चिन्ह पर डाला गया मत नहीं है। उक्त मतपत्र को याचिकाकर्ता के पक्ष में माना जाना चाहिए।

जी) मतपत्र संख्या 9बीई 2244148 (मतदान केंद्र संख्या 174) में चुनाव चिह्न “कार” पर पूरी मुहर और चुनाव चिह्न “किताब” पर आधी मुहर लगी है। याचिकाकर्ता को “कार ” चुनाव चिह्न आवंटित किया गया था जबकि चुनाव चिह्न “किताब” प्रत्यर्थी संख्या 7 - मोहम्मद कासिब को आवंटित किया गया था। याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि उक्त मतपत्र में प्राथमिक मुहर “कार” चुनाव चिह्न पर है और चुनाव चिह्न “किताब” पर आधी मुहर है और यह चुनाव चिह्न “किताब” पर डाला गया वोट नहीं है क्योंकि मतपत्र को मोड़ते समय छाप दूसरे चुनाव चिह्न पर लग जाती है। उक्त मतपत्र को याचिकाकर्ता के पक्ष में माना जाना चाहिए। याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने उक्त मतपत्र की जांच करने के बाद प्रस्तुत किया कि उक्त मतपत्र में दोहरा चुनाव चिह्न है, एक चुनाव चिह्न “कार” पर और दूसरा चुनाव चिह्न “किताब” पर

16. प्रत्यर्थी सं. 4 की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री नवीन सिन्हा ने प्रस्तुत किया कि किसी विशेष उम्मीदवार के पक्ष में वोट को इंगित करने के लिए मतपत्र पर जो चिह्न लगाना आवश्यक है,

वह उस उम्मीदवार के प्रतीक पर या उसके निकट उस उद्देश्य के लिए दिए गए उपकरणों से मतपत्र पर चिह्न लगाकर लगाया जा सकता है जिसे मतदाता वोट देना चाहता है। नियमावली 1994 के नियम 86(2) प्रकृति में अनिवार्य हैं। प्रत्यर्थी सं. 4 के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि उपर्युक्त नियम चुनाव संचालन नियमावली, 1961 (जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के अंतर्गत) के नियम 39 के समरूप है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने **एरा सेझियान बनाम टीआर बालू एवं अन्य, 1990 (पूरक) एससीसी 322** और **राम औतार सिंह भदौरिया बनाम राम गोपाल सिंह एवं अन्य, एआईआर 1975 एससी 2182** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर यह तर्क देने के लिये भरोसा जताया है कि चिह्न और उपकरण, मतदाता द्वारा किसी विशेष उम्मीदवार के पक्ष में मतदान करने के इरादे को दर्शाने के लिए आवश्यक है। यह भी तर्क दिया गया कि किसी अन्य चिह्न का उपयोग विधिन मान्य नहीं होगा और ऐसे मतपत्र अस्वीकृत किए जा सकते हैं। प्रत्यर्थी संख्या 4 के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि अंगूठे का निशान, मतदाता द्वारा किसी विशेष उम्मीदवार के पक्ष में मतदान करने के इरादे को दर्शाने के उद्देश्य से प्रदान नहीं किया गया था।

17. प्रत्यर्थी संख्या 4 की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किया:-

ए) मतपत्र संख्या 9बीई 2245512 (मतदान केंद्र संख्या 172) पर "इमली" और "कन्नी" चिह्न के बीच की मध्य रेखा पर पूरी और उचित मुहर लगी हुई है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का तर्क है कि मतदाता का इरादा प्रत्यर्थी संख्या 4 के पक्ष में अपना मत देने का था (प्रत्यर्थी संख्या 4 को चुनाव के लिए "इमली" चिह्न आवंटित किया गया था)। यह तर्क दिया गया है कि उपरोक्त मतपत्र को गलत तरीके से अमान्य घोषित किया गया है।

ख) मतपत्र संख्या 9बीई 2245086 (मतदान केंद्र संख्या 172) पर "इमली" और "कन्नी" चिह्न के बीच की मध्य रेखा पर पूरी और उचित मुहर लगी है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का तर्क है कि मतदाता का इरादा प्रत्यर्थी संख्या 4 (जिसे चुनाव के लिए "इमली" चिह्न आवंटित किया गया था) के पक्ष में अपना मत देने का था। यह तर्क दिया गया है कि उपरोक्त मतपत्र को गलत तरीके से अमान्य घोषित किया गया है।

सी) मतपत्र संख्या 9बीई 2245305 (मतदान केंद्र संख्या 172) पर "इमली" और "कन्नी" चिह्न के बीच की मध्य रेखा पर पूरी और उचित मुहर लगी हुई है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का तर्क है कि मतदाता का इरादा प्रत्यर्थी संख्या 4 (जिसे चुनाव के लिए "इमली" चिह्न आवंटित किया गया था) के पक्ष में अपना मत देने का था। यह तर्क दिया गया है कि उपरोक्त मतपत्र को गलत तरीके से अमान्य घोषित किया गया है।

डी) मतपत्र संख्या 9बीई 2245813 (मतदान केंद्र संख्या 173) में "इमली" चिह्न पर पूरी और उचित मुहर लगी है और एक अन्य चिह्न पर आंशिक छाप है। प्रकरण की सुनवाई के दौरान दोनों पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता को उक्त मतपत्र दिखाया गया और उक्त मतपत्र की जाँच करने के बाद, प्रत्यर्थी संख्या 4 की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने निष्पक्ष रूप से कहा कि उक्त मतपत्र में दो चिह्नों पर मुहर लगी है और इसलिए प्रत्यर्थी संख्या 4 के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने इस स्तर पर यह दलील दी कि वह मतपत्र संख्या 9बीई 2245813 को चुनौती नहीं देंगे, जिसे प्राधिकारियों द्वारा अमान्य घोषित कर दिया गया है।

ई) मतपत्र संख्या 9बीई 2244073 (मतदान केंद्र संख्या 173) में "इमली" चिह्न पर पूरी और उचित मुहर लगी है और एक अन्य चिह्न पर आंशिक छाप है। प्रकरण की सुनवाई के दौरान दोनों पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता को उक्त मतपत्र दिखाया गया और उक्त मतपत्र की जाँच करने के बाद, प्रत्यर्थी संख्या 4 की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने निष्पक्ष रूप से कहा कि उक्त मतपत्र में दो चिह्नों पर मुहर लगी है और इसलिए, इस स्तर पर विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने कहा कि वह मतपत्र संख्या 9बीई 2244073 को चुनौती नहीं देंगे, जिसे प्राधिकारियों द्वारा अमान्य घोषित कर दिया गया है।

एफ) मतपत्र संख्या 9बीई 2245690 (मतदान केंद्र संख्या 173) में "इमली" और "कन्नी" चिह्न के बीच की मध्य रेखा पर पूरी और उचित मुहर लगी हुई है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का तर्क है कि मतदाता का इरादा प्रत्यर्थी संख्या 4 के पक्ष में अपना वोट डालने का था, जिसे चुनाव के लिए "इमली" चिह्न आवंटित किया गया था। यह तर्क दिया गया है कि उपरोक्त मतपत्र को गलत तरीके से अमान्य घोषित किया गया है।

जी) प्रत्यर्थी संख्या 4 की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने यह भी दलील दी है कि मतपत्र संख्या 9बीई 2245962 (मतदान केंद्र संख्या 173) में "इमली" और "अनाज किसान" चिन्ह के बीच की मध्य रेखा पर पूरी और उचित मुहर लगी हुई है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने दलील दी है कि मतदाता का इरादा प्रत्यर्थी संख्या 4 (जिन्हें चुनाव के लिए "इमली" चिन्ह आवंटित किया गया था) के पक्ष में अपना वोट डालने का था। दलील दी गई है कि उपरोक्त मतपत्र को गलत तरीके से अमान्य घोषित किया गया है।

एच) प्रत्यर्थी संख्या 4 की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने यह भी दलील दी है कि मतपत्र संख्या 9बीई 2245963 (मतदान केंद्र संख्या 173) पर मध्य रेखा के प्रतीक चिन्ह "इमली" और "अनाज का आटा किसान" पर पूरी और उचित मुहर लगी हुई थी। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने दलील दी है कि मतदाता का इरादा प्रत्यर्थी संख्या 4 के पक्ष में वोट डालने का था, जिसे चुनाव के लिए "इमली" प्रतीक चिन्ह आवंटित किया गया था। दलील दी गई है कि उपरोक्त मतपत्र को गलत तरीके से अमान्य घोषित किया गया है।

आई) प्रत्यर्थी सं. 4 की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह भी प्रस्तुत किया गया है कि मतपत्र सं. 9बीई 2244273 (मतदान केंद्र सं. 174), प्रत्यर्थी सं. 4 को चुनाव के उद्देश्य के लिए "इमली" का प्रतीक आवंटित किया गया था। मतपत्र में "इमली" प्रतीक पर पूर्ण और उचित मुहर और एक अन्य प्रतीक पर एक और छाप है। जब प्रकरण की सुनवाई हो रही थी तब उक्त मतपत्र दोनों पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता को दिखाया गया था और उक्त मतपत्र की जांच करने के बाद प्रत्यर्थी सं. 4 की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने निष्पक्ष रूप से प्रस्तुत किया कि उक्त मतपत्र में दो प्रतीकों के सामने मुहर है और इस प्रकार इस स्तर पर विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि वह मतपत्र सं. 9बीई 2244273 को चुनौती नहीं देंगे, जिसे अवैध घोषित किया गया है।

18. ग्राम मोहम्मदपुर काशी, तहसील-चंदौसी, जिला-संभल के लिए ग्राम प्रधान पद के चुनाव की अधिसूचना जारी की गई और 29.4.2021 को मतदान हुआ। मतगणना 2.5.2021 को हुई और उसी दिन संपन्न हुई तथा परिणाम घोषित किया गया जिसमें याचिकाकर्ता को 664 मत प्राप्त कर निर्वाचित उम्मीदवार घोषित किया गया, जबकि प्रत्यर्थी संख्या 4 को 658 मत प्राप्त हुए। इसके बाद प्रत्यर्थी संख्या 4 ने चुनाव परिणाम

को चुनौती देते हुए चुनाव याचिका दायर की। प्रत्यर्थी संख्या 4 द्वारा दायर उपर्युक्त चुनाव याचिका में पारित आदेश दिनांक 9.9.2024 द्वारा पुनर्मतगणना का आदेश पारित किया गया।

19. उपर्युक्त आदेश दिनांक 9.9.2024 वर्तमान रिट याचिका में चुनौती का विषय था। वर्तमान रिट याचिका (पूर्व में एक अवसर पर) दिनांक 23.9.2024 के निर्णय द्वारा अनुमति दी गई थी और प्रकरण को प्रत्यर्थी संख्या 2 - उप जिलाधिकारी/निर्धारित प्राधिकारी को वापस भेज दिया गया था, इस निर्देश के साथ कि इसे नए सिरे से निर्णीत किया जाए। उपर्युक्त निर्णय दिनांक 23.9.2024 सिविल अपील संख्या 12308/2024 (अशरफ खान बनाम केहकशान और अन्य) में चुनौती का विषय था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दिनांक 23.10.2024 के आदेश द्वारा सर्वोच्च न्यायालय द्वारा नियुक्त न्यायालय कमिश्नर की उपस्थिति में मतों की पुनर्गणना के लिए निर्देश दिया। इसके अनुसरण में, पुनर्गणना की प्रक्रिया शुरू की गई, जिसमें प्रत्यर्थी संख्या 4 को 659 वोट मिले और याचिकाकर्ता को 657 वोट मिले। इसके अलावा 114 मत अवैध घोषित किये गये।

20. सर्वोच्च न्यायालय ने दिनांक 13.11.2024 के आदेश द्वारा निम्नलिखित टिप्पणियों के साथ प्रकरण को इस न्यायालय को वापस भेज दिया:-

"8. वर्तमान स्थिति के अनुसार, अपीलकर्ता को प्रत्यर्थी संख्या 1 पर बढ़त प्राप्त प्रतीत होती है, क्योंकि न्यायालय आयुक्त की देखरेख में पुनः की गई पुनर्गणना में, अपीलकर्ता को 659 मत प्राप्त हुए, जबकि प्रत्यर्थी संख्या 1 के पक्ष में 657 मत पड़े। हालाँकि, अमान्य घोषित किए गए कुछ मतों के संबंध में कुछ विवादास्पद मुद्दे हैं। चूँकि अंतर केवल दो मतों का है, हमारा विचार है कि न्याय के हित में दोनों पक्षों को उच्च न्यायालय के समक्ष स्थगित करना उचित होगा। ऐसी स्थिति में, सभी 114 अस्वीकृत मतों को उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करना आवश्यक होगा। हमारे सुविचारित विचार में, जिन मतों की जाँच की गई है, उनमें से कुछ ऐसे हैं जिन्हें सीधे तौर पर अस्वीकार किया जा सकता है। जहाँ तक उन मतों का संबंध है, उच्च न्यायालय को आपत्तियाँ न आमंत्रित करने का पूर्ण अधिकार है। हालाँकि, यदि कुछ ऐसे मत हैं जिनके संबंध में कोई विवादास्पद मुद्दा है, तो हम उच्च न्यायालय से अनुरोध करते हैं कि वह पक्षकारों को अपनी आपत्तियाँ प्रस्तुत करने के लिए एक सप्ताह का समय दे और उसके बाद प्रकरण को वापस भेजने के बजाय, चुनाव न्यायाधिकरण को भेजे गए इस प्रकरण में, उच्च न्यायालय को अंतिम निर्णय लेने दें। हम ऐसा इसलिए कह रहे हैं क्योंकि ग्राम प्रधान का कार्यकाल का एक बड़ा हिस्सा पहले ही समाप्त हो चुका है और आगे रिमांड की स्थिति में, प्रकरण निष्फल हो जाने का खतरा है।

9. उपर्युक्त कारणों से, यह अपील स्वीकार की जाती है। उच्च न्यायालय के विवादित निर्णय को निरस्त किया जाता है और प्रकरण को उच्च न्यायालय को प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा दायर रिट याचिका पर नए सिरे से और उपर्युक्त टिप्पणियों के आलोक में निर्णय लेने हेतु वापस भेजा जाता है। तदनुसार, पक्षकारों को 20.11.2024 को उच्च न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने का निर्देश दिया जाता है।

10. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता इस आदेश की एक प्रति उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल के समक्ष प्रस्तुत करें, जिन्हें बदले में इसे उच्च न्यायालय के माननीय मुख्य न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत करने

का निर्देश दिया जाता है, ताकि प्रकरण को रोस्टर के अनुसार उपयुक्त पीठ को सौंपा जा सके, इस विशेष अनुरोध के साथ कि इस पर यथाशीघ्र और अधिमानतः तीन सप्ताह की अवधि के भीतर गुण-दोष के आधार पर निर्णय लिया जाए।"

21. याचिकाकर्ता और प्रत्यर्थी संख्या 4 के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ताओं ने प्रस्तुत किया है कि केवल कुछ अवैध मतों पर ही आपत्ति की जा रही है और उन्होंने अपने तर्कों को कुछ अवैध मतों तक ही सीमित रखा है, जैसा कि उनकी आपत्तियों में कहा गया है और ऊपर उठाया गया है।

22. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की ओर से यह तर्क दिया गया कि मतदान केंद्र संख्या 172 में - मतपत्र संख्या 9बीई 2245141, 9बीई 2245421, 9बीई 2245115, 9बीई 2245336, 9बीई 2245476, 9बीई 2245490 में "कार" प्रतीक पर अंगूठे का निशान है, जो याचिकाकर्ता को आवंटित किया गया था, हालांकि, उपरोक्त वोट को गलत तरीके से अवैध घोषित किया गया है। याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा आगे प्रस्तुत किया गया है कि मतदान केंद्र संख्या 173 में - मतपत्र संख्या 9बीई 2245647, 9बीई 2245760, 9बीई 2244037, 9बीई 2245934, 9बीई 2245935, 9बीई 2245852, 9बीई 2245606 में प्रतीक "कार" पर अंगूठे का निशान है, जो याचिकाकर्ता को आवंटित किया गया था, हालांकि, उपरोक्त वोट को गलत तरीके से अवैध घोषित किया गया है। इसी प्रकार, मतदान केंद्र संख्या 174 में - मतपत्र संख्या 9बीई 2244354, 9बीई 2244211, 9बीई 224433, 9बीई 2244297, 9बीई 2244204, 9बीई 2244375, 9बीई 2244284, 9बीई 2244503, 9बीई 2244210, 9बीई 2244294, 9बीई 2244195 में "कार" चिन्ह (जो याचिकाकर्ता को आवंटित किया गया था) पर अंगूठे का निशान है, हालाँकि, उपरोक्त मतपत्र को गलत तरीके से अवैध घोषित किया गया है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि मतपत्र संख्या 9बीई 2244330 में "कार" चिन्ह और "कैरम बोर्ड" चिन्ह पर अंगूठे का निशान है। इसे गलत तरीके से अवैध घोषित किया गया है क्योंकि याचिकाकर्ता के चिन्ह पर अंगूठे का निशान वोट को वैध बनाता।

23. ग्राम प्रधान पद का चुनाव उत्तर प्रदेश पंचायत राज अधिनियम, 1947 (संक्षिप्त में इसे आगे "1947 का अधिनियम" कहा जाएगा) और उत्तर प्रदेश पंचायत राज (सदस्यों, प्रधानों एवं उप-प्रधानों का निर्वाचन) नियमावली, 1994 (संक्षिप्त में इसे आगे "1994 की नियमावली" कहा जाएगा) के प्रावधानों के अनुसार होता है। ग्राम प्रधान के चुनाव की प्रक्रिया नियमावली, 1994 के अध्याय III में दी गई है। मतपत्र प्राप्त करने पर निर्वाचक के लिए प्रक्रिया नियमावली, 1994 के नियम 86(2) के अंतर्गत दी गई है। नियमावली, 1994 का नियम 86(2) नीचे उद्धृत है:-

"86. मतदान केन्द्र के भीतर मतदाताओं द्वारा मतदान की गोपनीयता बनाए रखना और मतदान प्रक्रिया- *(1) ...*

(2) मतपत्र प्राप्त होने पर निर्वाचक तत्काल, -

(ए) मतदान कक्षों में से किसी एक में जाएं;

(बी) वहां उस प्रयोजन के लिए उपलब्ध कराए गए उपकरण से मतपत्र पर उस अभ्यर्थी के प्रतीक पर या उसके निकट निशान लगाएगा, जिसे वह वोट देना चाहता है;

(सी) अपना मत छिपाने के लिए मतपत्र को मोड़ना;

(डी) यदि आवश्यक हो तो मतपत्र पर लगे विशिष्ट चिह्न को मतदान अध्यक्ष को दिखाएं;

(ई) मुड़े हुए मतपत्र को मतपेटी में डालना; और

(एफ) मतदान स्थल छोड़ दें।"

24. यह भी ध्यान देने योग्य है कि नियमावली 1994 के नियम 86 के तहत ग्राम प्रधान के पद पर चुनाव की प्रक्रिया के संबंध में मतदान की गोपनीयता एक महत्वपूर्ण वस्तु है। नियमावली 1994 के नियम 86 (2) (बी) के अवलोकन से यह प्रावधान है कि मतदाता उस उम्मीदवार के प्रतीक पर या उसके निकट, जिसे वह वोट देना चाहता है, इस उद्देश्य के लिए दिए गए उपकरण से मतपत्र पर एक निशान लगाएगा। उक्त नियम के अनुसार, किसी विशेष उम्मीदवार के खिलाफ मतदाता के वोट देने के इरादे को दर्शाने के लिए मतपत्र पर निशान चुनाव के उद्देश्य से दिए गए उपकरण से लगाया जाना चाहिए। नियम 1994 के नियमावली 82 में यह प्रावधान है कि निर्वाचन अधिकारी (चुनाव अधिकारी) मतदाताओं को मतपत्र पर निशान लगाने में सक्षम बनाने के उद्देश्य से मतदान केंद्र पर सामग्री उपलब्ध कराएगा।

25. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क नहीं है कि मतदान के समय निर्वाचन अधिकारी द्वारा मतपत्र पर निशान लगाने के उद्देश्य से कोई उपकरण उपलब्ध नहीं कराया गया था। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क यह है कि अंगूठे का निशान भी किसी विशेष अभ्यर्थी के पक्ष में मतदान का संकेत देने वाला चिह्न माना जाएगा और उपरोक्त मतपत्र को इस आधार पर अमान्य नहीं ठहराया जा सकता कि अंगूठे का निशान मतपत्र पर एक निशान के रूप में लगाया गया था ताकि मतदाता द्वारा किसी विशेष अभ्यर्थी के पक्ष में मतदान करने का इरादा दर्शाया जा सके।

26. नियमावली 1994 के नियम 86(1) के अनुसार प्रत्येक मतदाता, जिसे नियम 33 के अंतर्गत या उक्त नियमावली के किसी अन्य प्रावधान के अंतर्गत मतपत्र जारी किया गया है, मतदान केंद्र के भीतर मतदान की गोपनीयता बनाए रखेगा और इस प्रयोजन के लिए 1994 के नियमावली में निर्धारित मतदान प्रक्रिया का पालन करेगा। मतदान की गोपनीयता बनाए रखने के प्रयोजन के लिए, 1994 के नियम 86(2) में प्रक्रिया का प्रावधान है जिसका मतदाता को मतपत्र प्राप्त करने पर पालन करना होता है, जो इस प्रकार है:-

"(ए) मतदान कक्षों में से किसी एक में जाएं;

(बी) वहां उस प्रयोजन के लिए उपलब्ध कराए गए उपकरण से मतपत्र पर उस अभ्यर्थी के प्रतीक पर या उसके निकट निशान लगाएगा, जिसे वह वोट देना चाहता है;

(सी) अपना मत छिपाने के लिए मतपत्र को मोड़ना;

(डी) यदि आवश्यक हो तो मतपत्र पर लगे विशिष्ट चिह्न को मतदान अध्यक्ष को दिखाएं;

(ई) मुड़े हुए मतपत्र को मतपेटी में डालना; और
(एफ) मतदान स्थल छोड़ दें।"

27. नियमावली 1994 के नियम 82(2)(बी) में विशेष रूप से उस अभ्यर्थी के प्रतीक पर या उसके निकट मतपत्र पर निशान बनाने के प्रयोजन हेतु आपूर्ति किए गए उपकरण के उपयोग का प्रावधान है, जिसे मतदाता वोट देना चाहता है। नियम 86(2) शब्द "करेगा" से शुरू होता है, जो मतपत्र प्राप्त करने पर मतदाता द्वारा अपनाई जाने वाली निर्धारित प्रक्रिया की अनिवार्य प्रकृति का सूचक है। इसके अलावा, यह ध्यान देने योग्य है कि नियमावली 1994 के नियम 86(2)(बी) के तहत किसी अभ्यर्थी विशेष के पक्ष में मतदान करने के मतदाता के इरादे को प्रदर्शित करने हेतु मतपत्र पर निशान बनाने हेतु आपूर्ति किए गए उपकरण के उपयोग के लिए विधि का ऐसा निर्देश, नियमावली 1994 के नियम 86(1) के तहत प्रदान किए गए मतदान की गोपनीयता के बड़े उद्देश्य से संबंधित है।

28. यह भी ध्यान देने योग्य है कि वर्तमान प्रकरण में कुछ अमान्य मतों (जिनका विवरण ऊपर दिया गया है) में अंगूठे का निशान (मतपत्र पर निशान लगाने के लिए उपकरण के उपयोग के बजाय) शामिल था, ताकि याचिकाकर्ता के अनुसार किसी विशेष उम्मीदवार के पक्ष में मतदान करने के मतदाता के इरादे को प्रदर्शित किया जा सके। अंगूठे का निशान चुनाव अधिकारियों द्वारा किसी विशेष उम्मीदवार के पक्ष में निशान लगाने के उद्देश्य से निर्धारित निशान नहीं था। इस न्यायालय के समक्ष पक्षों के विद्वान अधिवक्तागण द्वारा इस बात पर विवाद नहीं किया गया है कि मतदान के समय एक अलग निशान वाला उपकरण दिया गया था। पूर्वोक्त को इस कारण से भी समझा जा सकता है कि कुछ अमान्य मतपत्र, जिन्हें इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई है (और प्रस्तुत किए गए हैं) में उक्त उद्देश्य के लिए दिए गए उपकरण द्वारा मतपत्र पर बनाया गया निशान शामिल था।

29. यह भी ध्यान देने योग्य है कि चुनाव अधिकारियों द्वारा मतपत्र पर उस उम्मीदवार के प्रतीक चिह्न के निकट चिह्न लगाने हेतु उपकरण उपलब्ध कराने का अंतर्निहित उद्देश्य चुनाव प्रक्रिया में निष्पक्षता लाना है। इस उपकरण के प्रयोग से चुनाव प्रक्रिया में एकरूपता आएगी। चुनाव में मतपत्र पर चिह्न लगाने हेतु उपकरण का उपयोग करने का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि मतदाता की पसंद स्पष्ट, सटीक और सुरक्षित रूप से दर्ज हो। मतपत्र पर अनधिकृत चिह्न लगाने से इन सिद्धांतों का उल्लंघन हो सकता है, जिससे संभावित विवाद और चुनाव की वैधता को चुनौती मिल सकती है। मतपत्र पर मतदाता की मंशा अंकित करने हेतु उपकरण का उपयोग मतदाता द्वारा चुने गए उम्मीदवार की गोपनीयता और सत्यनिष्ठा सुनिश्चित करने के लिए किया जाता है।

30. किसी विशिष्ट अभ्यर्थी के पक्ष में मतदान करने के मतदाता के इरादे को दर्शाने के लिए चुनाव अधिकारियों द्वारा उपलब्ध कराए गए उपकरण के बजाय अंगूठे के निशान का उपयोग करने से मतपत्र पर अंगूठे का निशान लगाने वाले व्यक्ति की पहचान उजागर हो सकती है। अंगूठे के निशान की विशिष्टता के

कारण अंगूठे का निशान किसी व्यक्ति से जुड़ा और संबंधित हो सकता है। वैसे भी, यदि विधि किसी कार्य को किसी विशेष तरीके से करने का प्रावधान करता है तो अन्य तरीके या प्रक्रिया को विधि द्वारा बहिष्कृत कर दिया जाता है। इस संबंध में विधिक कहावत "एक्सप्रेसियो यूनियस एस्ट एक्सक्लूसियो अल्टरियस" लागू होती है, जिसका अर्थ है "एक बात की अभिव्यक्ति दूसरी बात का बहिष्करण है"। एक बार जब विधि ने स्पष्ट रूप से उस तरीके का प्रावधान कर दिया है जिससे मतदाता को मतपत्र पर निशान लगाना है, तो मतदाता को किसी विशेष अभ्यर्थी के पक्ष में मतदान करने के इरादे को दर्शाने के लिए कोई अन्य निशान (अंगूठे के निशान सहित) उपलब्ध नहीं होगा। उपर्युक्त सिद्धांत को कमजोर करने से चुनाव प्रक्रिया की निष्पक्षता पर गंभीर प्रभाव पड़ेगा क्योंकि तब चुनाव प्रक्रिया में शामिल पक्ष यह दावा कर सकते हैं कि मतपत्र पर (स्याही से) एक "बिंदु" भी एक चिह्न माना जाएगा, जिसके परिणामस्वरूप विवाद उत्पन्न होगा।

31. **राम औतार सिंह भदौरिया (पूर्वोक्त)** वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्वाचन संचालन नियम, 1961 (जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के अंतर्गत निर्मित) के नियम 38 और 39, जो नियमावली 1994 के नियम 86 के समरूप हैं, पर विचार करते हुए यह अभिनिर्धारित किया है कि उक्त नियम अनिवार्य प्रकृति के हैं और इनका पालन न करने से उत्पन्न होने वाले किसी भी दोष के लिए दोषपूर्ण मतपत्र को अस्वीकार करना अनिवार्य है। उक्त निर्णय के प्रस्तर संख्या 19 से 21 नीचे उद्धृत हैं:-

"19. नियम 56(2) के खंड (ए) और (बी) नियम 38 के संदर्भ में हैं, जिसके अनुसार प्रत्येक मतदाता, जिसे नियम 38 के तहत मतपत्र जारी किया गया है, को मतदान की गोपनीयता बनाए रखने और "जिस उम्मीदवार को वह वोट देना चाहता है, उसके प्रतीक पर या उसके निकट इस प्रयोजन के लिए दिए गए उपकरण से मतपत्र पर एक निशान बनाने की आवश्यकता होती है।"

20. नियम 38 भी प्रासंगिक है। इस नियम के अनुसार, प्रत्येक मतपत्र और उससे जुड़ी प्रति-पन्नी पर पीठासीन अधिकारी द्वारा निर्वाचन आयोग द्वारा निर्देशित किसी विशिष्ट चिह्न की मुहर लगाई जानी आवश्यक है। ऐसे प्रत्येक मतपत्र को जारी किए जाने से पूर्व, पीठासीन अधिकारी द्वारा उसके पीछे पूर्ण हस्ताक्षर किए जाने आवश्यक हैं। उप-नियम (2) के अनुसार, मतपत्र जारी करते समय, मतदान अधिकारी उसके प्रति-पन्नी पर मतदाता की निर्वाचक नामावली संख्या अंकित करेगा और उसके हस्ताक्षर या अंगूठे का निशान लेगा।

21. इन नियमावली का उद्देश्य न केवल मतपत्र की गोपनीयता सुनिश्चित करना है, बल्कि चुनाव संचालन में धांधली की संभावना को भी समाप्त करना है। इसलिए, ये आवश्यकताएँ अनिवार्य हैं, और इनका पालन न करने से उत्पन्न होने वाले किसी भी दोष के लिए, नियम 56(2) के प्रावधानों द्वारा कवर की गई सीमा को छोड़कर, दोषपूर्ण मतपत्र को अस्वीकार करना अनिवार्य है।

32. यह भी ध्यान देने योग्य है कि नियमावली 1994 के नियम 105 के अंतर्गत यह प्रावधान है कि यदि मतपत्र पर कोई मत दर्ज नहीं किया गया है तो उसे अस्वीकार कर दिया जाएगा। नियमावली 1994 के नियम 86 के अनुसार, मतदाता द्वारा मतपत्र पर दिए गए उपकरण से चिह्न बनाकर मत दर्ज किया जा सकता है। यदि मतपत्र पर अंगूठे का निशान लगाया गया है (जो कि दिए गए उपकरण से मतपत्र पर चिह्न नहीं है), तो विधि के अनुसार मतदाता द्वारा कोई मत दर्ज नहीं किया जाएगा। मतपत्र पर मत दर्ज करने की प्रक्रिया

निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार होनी चाहिए और मतपत्र के माध्यम से मतदाता के इरादे को दर्शाने के लिए किसी अन्य चिह्न के उपयोग की अनुमति नहीं दी जा सकती। नियमावली 1994 के नियम 105(एफ) को नियम 1994 के नियम 86 के साथ पढ़ा जाना आवश्यक है और जो मतपत्र नियमावली 1997 के नियम 86(2)(बी) के अंतर्गत प्रदत्त शर्तों को पूरा नहीं करते हैं, उन्हें मतदाता द्वारा मतपत्र पर कोई मत दर्ज नहीं किया गया माना जाएगा और इसलिए ऐसे मतपत्र जिनमें अंगूठे का निशान हो और निर्धारित उपकरण द्वारा निशान न हो, उन्हें अस्वीकार कर दिया जाएगा। तदनुसार, मतदाता के इरादे को मतपत्र के माध्यम से चिह्नित करने के लिए अंगूठे के निशान वाले अमान्य मतपत्रों को अस्वीकार कर दिया गया है और उन्हें अमान्य घोषित किया गया है।

33. याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा उठाई गई आपत्ति कि मतपत्र संख्या 9बीई 2245090 (मतदान केंद्र संख्या 172) और 9बीई 2245380 (मतदान केंद्र संख्या 172) में "कार" चिन्ह पर पूरी मुहर और "किताब" चिन्ह पर आधी मुहर लगी है। प्रत्यर्थी संख्या 7 - मोहम्मद कासिब का चुनाव चिह्न "किताब" था। सुनवाई के दौरान याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता को मतपत्र संख्या 9बीई 2245090 और 9बीई 2245380 फिर से दिखाए गए। याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता उक्त मतपत्रों की जाँच करने के बाद इस तथ्य से इनकार नहीं कर सके कि उक्त मतपत्रों में दोहरे चिन्ह हैं, एक "कार" चिन्ह पर और दूसरा "किताब" चिन्ह पर। उपर्युक्त मतपत्रों के अवलोकन से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि निशान/वोट एक से अधिक अभ्यर्थियों के पक्ष में दिया गया है और इस प्रकार मतपत्र 1994 के नियम 105 (ई) के तहत अस्वीकृत होने योग्य है। परिणामस्वरूप, चुनाव अधिकारियों ने मतपत्र संख्या 9बीई 2245090 (मतदान केंद्र संख्या 172) और 9बीई 2245380 (मतदान केंद्र संख्या 172) को अस्वीकृत करने में कोई त्रुटि नहीं की।

34. याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया कि मतपत्र संख्या 9बीई 2244006 (मतदान केंद्र संख्या 173) में “कार” चिन्ह पर मुहर है और “कैरम बोर्ड” चिन्ह पर हल्की मुहर है। याचिकाकर्ता को “कार” चिन्ह आवंटित किया गया था जबकि प्रत्यर्थी संख्या 9-जाहिद को “कैरम बोर्ड” चिन्ह आवंटित किया गया था। याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि उक्त मतपत्र में प्राथमिक मुहर “कार” चिन्ह पर है और “कैरम बोर्ड” चिन्ह पर स्याही है और यह “कैरम बोर्ड” चिन्ह पर डाला गया वोट नहीं है। उक्त मतपत्र को याचिकाकर्ता के पक्ष में माना जाना चाहिए। इस न्यायालय ने उपर्युक्त मतपत्र का अवलोकन किया है और पाया है कि “कार” चिन्ह के साथ-साथ “किताब” चिन्ह के सामने भी निशान है। नियमावली 1994 के नियम 105(1)(ई) में यह प्रावधान है कि यदि किसी निर्वाचन क्षेत्र में भरी जाने वाली सीटों की संख्या से अधिक उम्मीदवारों के पक्ष में वोट दिया जाता है तो मतपत्र को अस्वीकार कर दिया जाएगा। पार्टियों के बीच यह विवाद नहीं है कि ग्राम प्रधान पद के लिए केवल एक वोट दिया जाना है क्योंकि प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में ग्राम प्रधान का केवल एक ही पद होता है। तदनुसार, किसी भी मतदाता द्वारा ग्राम प्रधान के पद के लिए चुनाव लड़ रहे किसी विशेष उम्मीदवार के नाम/प्रतीक के सामने दिए गए उपकरण द्वारा निशान लगाकर केवल एक वोट दिया जा सकता था। यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि नियमावली 1994 के नियम 105(2) के अनुसार मतपत्र

पर दर्ज वोट को अस्वीकार कर दिया जाएगा यदि वोट को इंगित करने वाला निशान मतपत्र पर इस तरह से रखा गया है जिससे यह संदेह हो कि वोट किस उम्मीदवार को दिया गया है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि विचाराधीन मतपत्र लंबवत मोड़ा हुआ है और ग्राम प्रधान पद के लिए चुनाव लड़ रहे उम्मीदवारों के नाम मतपत्र में क्षैतिज रूप से अंकित हैं, इसलिए मतपत्र को लंबवत मोड़ने से किसी अन्य उम्मीदवार के चुनाव चिह्न पर चिह्न या छाप की नकल नहीं की जा सकती। नियमावली 1994 के नियम 105(1)(ई) के अनुसार, एक से अधिक उम्मीदवारों के पक्ष में मत दिए जाने पर मतपत्र को अस्वीकार करने के संबंध में कोई अपवाद नहीं है। एक से अधिक उम्मीदवारों के पक्ष में मत दिए जाने पर मतदाता के इरादे का पता नहीं लगाया जा सकता। इस संबंध में, यह देखा जाना चाहिए कि उत्तर प्रदेश के राज्य निर्वाचन आयोग द्वारा पंचायत आम चुनाव 2021 के दौरान मतदान के लिए निर्देश जारी किए गए हैं (प्रत्यर्थी संख्या 4 की आपत्ति दिनांक 11.12.2024 के साथ दायर) में यह प्रावधान है कि पहली बार में मतपत्र को लंबवत मोड़ा जाना है, जिसका अर्थ है कि यदि स्टाम्प/उपकरण की स्याही दूसरी तरफ कॉपी की गई है, तो यह उसी प्रतीक के सामने दो बार कॉपी होगी और किसी अन्य उम्मीदवार के प्रतीक पर कॉपी नहीं की जाएगी जो क्षैतिज रूप से रखे गए हैं। इसके अलावा, यदि एक से अधिक उम्मीदवारों के पक्ष में वोट दिया जाता है, तो मतपत्र को अस्वीकार करने का सिद्धांत यह सुनिश्चित करता है कि प्रत्येक मतदाता की चुनावी प्रक्रिया में समान भूमिका हो, जिससे अनुचित प्रभाव या हेरफेर को रोका जा सके। उक्त सिद्धांत यह भी सुनिश्चित करता है कि एक मतदाता का वोट निष्पक्ष और सटीक रूप से दर्ज किया जाए।

35. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का कहना है कि मतपत्र संख्या 9बीई 2244216 (मतदान केंद्र संख्या 174) में "कार" चिन्ह पर हल्की सील है। याचिकाकर्ता को "कार" चिन्ह आवंटित किया गया था और इसलिए संबंधित चुनाव अधिकारियों ने इसे गलत तरीके से अवैध ठहराया है। प्रत्यर्थी संख्या 4 द्वारा प्रस्तर 8 में दायर दिनांक 2.12.2024 की आपत्ति पर दिनांक 9.1.2025 के उत्तर में कहा गया है कि उपर्युक्त मतपत्र पर कोई सील नहीं है और यह किसी भी उम्मीदवार के पक्ष में वोट डाले बिना एक खाली वोट है। उपर्युक्त मतपत्र के अवलोकन से पता चलता है कि "कार" चिन्ह पर बहुत हल्का निशान/मोहर है। मतपत्र पर केवल एक निशान है जो बहुत हल्का निशान है और नंगी आंखों से स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। उक्त मतपत्र को प्रत्यर्थी अधिकारियों ने इस आधार पर खारिज कर दिया

36. उक्त मतपत्र के अवलोकन से पता चलता है कि प्रत्यर्थी प्राधिकारियों द्वारा मतपत्र को अस्वीकार करने का उपरोक्त आधार अस्तित्वहीन है क्योंकि मतपत्र पर "कार" चिह्न के सामने एक चिह्न है, हालाँकि वह बहुत हल्का चिह्न हो सकता है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि नियमावली 1994 के नियम 105(2) के प्रावधान में यह प्रावधान है कि किसी मतपत्र को केवल इस आधार पर अस्वीकार नहीं किया जाएगा कि मत को दर्शाने वाला चिह्न अस्पष्ट है, यदि यह आशय कि मत किसी विशेष उम्मीदवार को दिया जाएगा, उस स्थान से स्पष्ट रूप से प्रकट होता है जहाँ पर मत अंकित है।

37. वर्तमान वाद में, मतपत्र पर दर्ज वोट "कार" चुनाव चिह्न पर किया गया है और प्रत्यर्थी संख्या 4 के अधिवक्ता और विद्वान स्थायी अधिवक्ता यह प्रदर्शित नहीं कर सके कि मतपत्र पर उपरोक्त चिह्न संदेह पैदा करता है कि वोट किस उम्मीदवार को दिया गया है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि निशान याचिकाकर्ता के चुनाव चिह्न के खिलाफ बनाया गया है और नियमावली 1994 के नियम 105(2) का प्रावधान आगे यह अधिदेश देता है कि जहां मतपत्र पर निशान लगाने से मतदाता का इरादा स्पष्ट हो जाता है और तब मतपत्र को केवल इस आधार पर खारिज नहीं किया जाएगा कि वोट को दर्शाने वाला निशान अस्पष्ट है। यदि अस्पष्ट या अपूर्ण निशान के बावजूद मतदाता की पसंद का उचित रूप से निर्धारण किया जा सकता है, तो वोट को वैध माना जाएगा। पूर्वोक्त के मद्देनजर, मतपत्र संख्या 9बीई 2244216 (मतदान केंद्र संख्या 174) को चुनाव अधिकारियों द्वारा गलत तरीके से खारिज कर दिया गया है

38. याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने कहा कि मतपत्र संख्या 9बीई 2244136 (मतदान केंद्र संख्या 174) में "कार" चिन्ह पर मुहर लगी है और "किताब" चिन्ह पर बहुत हल्की मुहर लगी है। याचिकाकर्ता को "कार" चिन्ह आवंटित किया गया था। प्रत्यर्थी संख्या 7 - मोहम्मद कासिब का चुनाव चिन्ह "किताब" था। उपर्युक्त मतपत्र के अवलोकन से पता चलता है कि मतपत्र पर "कार" चिन्ह के सामने एक स्पष्ट निशान है और "किताब" चिन्ह पर स्याही का निशान है। यदि मतदाता का इरादा स्पष्ट है तो वोट की गणना की जानी चाहिए, भले ही मतपत्र पर पूरी तरह से निशान न लगा हो। यह भी देखा जाना चाहिए कि उपरोक्त मतपत्र के अवलोकन से पता चलेगा कि इसमें कोई संदेह नहीं है कि वोट याचिकाकर्ता के पक्ष में डाला गया है जिसका चिन्ह "कार" था। "कार" चिन्ह के सामने का वोट या निशान स्पष्ट है और मतदाता की मंशा को दर्शाता है, जबकि "किताब" चिन्ह पर स्याही का निशान स्पष्ट नहीं है, इसलिए इसे "किताब" चिन्ह के पक्ष में मतदान करने की मंशा नहीं माना जा सकता। इसके अलावा, "किताब" चिन्ह के सामने का स्याही का निशान स्पष्ट नहीं होने के कारण, इसे "किताब" चिन्ह वाले उम्मीदवार के पक्ष में मतदाता की मंशा की अभिव्यक्ति नहीं माना जा सकता। उपरोक्त के मद्देनजर, मतपत्र संख्या 9बीई 2244136 (मतदान केंद्र संख्या 174) को चुनाव अधिकारियों द्वारा गलत तरीके से खारिज कर दिया गया है और इसे याचिकाकर्ता के पक्ष में मतदान माना गया है।

39. याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया कि मतपत्र संख्या 9बीई 2244330 (मतदान केंद्र संख्या 174) पर "कार" चिह्न पर मुहर लगी है और साथ ही "कैरम बोर्ड" चिह्न पर भी मुहर लगी है। उपर्युक्त मतपत्र के अवलोकन से पता चलता है कि "कार" चिह्न के सामने अंगूठे का निशान है और "कैरम बोर्ड" चिह्न के सामने आंशिक अंगूठे का निशान है। मतपत्र पर अंगूठे का निशान वैध चिह्न नहीं है जैसा कि ऊपर कहा गया है और इसलिए इसे वैध मत नहीं माना जा सकता। चुनाव अधिकारियों ने मतपत्र संख्या 9बीई 2244330 (मतदान केंद्र संख्या 174) को अस्वीकार करने में कोई त्रुटि नहीं की।

40. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने बताया है कि मतपत्र संख्या 9बीई 2244148 (मतदान केंद्र संख्या 174) में “कार” चिन्ह पर पूरी मुहर और “किताब” चिन्ह पर आधी मुहर है।

मतपत्र के अवलोकन के बाद, याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि उक्त मतपत्र में दोहरा निशान है और इस प्रकार वह उक्त मतपत्र को अस्वीकार करने पर आपत्ति नहीं कर रहे हैं। वैसे भी, इस न्यायालय ने उपर्युक्त मतपत्र को भी देखा है जहाँ मतपत्र में दोहरे निशान हैं, एक "कार" चिन्ह के सामने और दूसरा "किताब" चिन्ह के सामने। पूर्वोक्त के मद्देनजर, मतपत्र संख्या 9बीई 2244148 (मतदान केंद्र संख्या 174) को चुनाव अधिकारियों द्वारा सही रूप से अस्वीकार कर दिया गया है।

41. प्रत्यर्थी संख्या 4 के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का कहना है कि मतपत्र संख्या 9बीई 2245512 (मतदान केंद्र संख्या 172) पर "इमली" और "कन्नी" चिह्न के बीच की मध्य रेखा पर पूरी और उचित मुहर लगी है। उक्त मतपत्र को देखने से पता चलता है कि निशान आंशिक रूप से "इमली" और "कन्नी" चिह्न के बीच की मध्य रेखा पर लगाया गया है, जहाँ मतपत्र संख्या छपी होती है। निशान का कोई भी भाग "कन्नी" चिह्न के लिए दिए गए स्थान में नहीं लगाया गया है, हालाँकि निशान का एक भाग "इमली" चिह्न के लिए दिए गए स्थान में फैला हुआ है। ऐसा नहीं है कि मत को दर्शाने वाला निशान मतपत्र पर इस तरह से लगाया गया हो जिससे यह संदेह हो कि मत किस उम्मीदवार को दिया गया है। नियम 1994 के नियम 105(2) के अनुसार, यदि मतपत्र पर निशान इस तरह से लगाया गया हो जिससे यह संदेह हो कि मत किस उम्मीदवार को दिया गया है, तो मत को अस्वीकार कर दिया जाना चाहिए। हालांकि, उक्त नियम के प्रावधान में यह अनिवार्य किया गया है कि मतपत्र को केवल इस आधार पर खारिज नहीं किया जाएगा कि वोट को दर्शाने वाला निशान अस्पष्ट है, यदि किसी विशेष उम्मीदवार को वोट देने का इरादा स्पष्ट है। निशान का हिस्सा प्रतीक "इमली" के लिए प्रदान की गई जगह में है और निशान का कोई भी हिस्सा प्रतीक "कन्नी" के अलावा प्रदान की गई जगह में नहीं है जो प्रतीक "इमली" के पक्ष में मतदान करने के मतदाता के इरादे का सूचक है। नियमावली 1994 के नियम 86 (2) (बी) में यह परिकल्पना की गई है कि मतपत्र पर निशान उस उम्मीदवार के प्रतीक पर या उसके पास बनाया जाना है, जिसे मतदाता वोट देने का इरादा रखता है। इसलिए, मतपत्र संख्या 9बीई 2245512 (मतदान केंद्र संख्या 172) को गलत तरीके से अमान्य घोषित कर दिया गया है और प्रत्यर्थी संख्या 4 से संबंधित प्रतीक "इमली" के पक्ष में मतदान किया गया है।

42. प्रत्यर्थी संख्या 4 के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के तर्क के संबंध में कि मतपत्र संख्या 9बीई 2245086 (मतदान केंद्र संख्या 172) और मतपत्र संख्या 9बीई 2245305 (मतदान केंद्र संख्या 172) में प्रतीक "इमली" और "कन्नी" के बीच की रेखा पर पूरी और उचित मुहर लगी है, उपर्युक्त मतपत्र के अवलोकन से पता चलता है कि निशान प्रतीक "इमली" और प्रतीक "कन्नी" के बीच की रेखा पर बनाया गया है जहाँ मतपत्र संख्या छपी है। वोट को इंगित करने वाला निशान मतपत्र पर इस तरह से रखा गया है जिससे यह संदिग्ध हो जाता है कि वोट किस उम्मीदवार को दिया गया है। मतपत्रों पर निशान दो प्रतीकों (जिनके बीच निशान बनाया गया है) के बराबर दूरी पर है और किसी विशेष उम्मीदवार के पक्ष में मतदान करने के मतदाता के इरादे को स्पष्ट रूप से दर्शाया नहीं गया है और इस तरह उपरोक्त मतपत्रों को सही रूप से खारिज कर दिया गया है।

43. मतपत्र संख्या 9बीई 2245813 (मतदान केंद्र संख्या 173) में "इमली" चिन्ह पर पूरी और उचित मुहर लगी है और एक अन्य चिन्ह पर आंशिक छाप है। प्रकरण की सुनवाई के दौरान दोनों पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता को उक्त मतपत्र दिखाया गया और उक्त मतपत्र की जांच करने के बाद प्रत्यर्थी संख्या 4 की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने निष्पक्ष रूप से कहा कि उक्त मतपत्र में दो चिन्हों के सामने मुहर लगी है। नियमावली 1994 के नियम 105(ई) में यह प्रावधान है कि यदि किसी निर्वाचन क्षेत्र में भरी जाने वाली सीटों की संख्या से अधिक उम्मीदवारों के पक्ष में वोट दिए जाते हैं तो उक्त मतपत्र को अस्वीकार कर दिया जाएगा। वर्तमान प्रकरण में पक्षों की यह स्वीकार्य स्थिति है कि ग्राम प्रधान के एक पद के संबंध में मतपत्र में दो निशान हैं और इस प्रकार उक्त मतपत्र को सही रूप से अस्वीकार कर दिया गया है।

44. प्रत्यर्थी संख्या 4 के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का तर्क है कि मतपत्र संख्या 9बीई 2244073 (मतदान केंद्र संख्या 173) में "इमली" चिन्ह पर पूरी और उचित मुहर लगी है और दूसरे चिन्ह पर आंशिक छाप है। जब प्रकरण की सुनवाई हो रही थी तब दोनों पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता को उक्त मतपत्र दिखाया गया और उक्त मतपत्र की जांच करने के बाद प्रत्यर्थी संख्या 4 की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने निष्पक्ष रूप से कहा कि उक्त मतपत्र में दो चिन्हों के सामने मुहर लगी है। नियमावली 1994 के नियम 105(ई) में यह प्रावधान है कि यदि किसी निर्वाचन क्षेत्र में भरी जाने वाली सीटों की संख्या से अधिक उम्मीदवारों के पक्ष में वोट दिए जाते हैं तो उक्त मतपत्र को खारिज कर दिया जाएगा। वर्तमान प्रकरण में पक्षों की यह स्वीकार्य स्थिति है कि ग्राम प्रधान के एक पद के संबंध में मतपत्र में दो निशान हैं और इस स्थिति में कथित बैलट पेपर को सही तरीके से निरस्त किया गया है।

45. प्रत्यर्थी संख्या 4 की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह भी प्रस्तुत किया गया है कि मतपत्र संख्या 9बीई 2244273 (मतदान केंद्र संख्या 174) प्रत्यर्थी संख्या 4 को चुनाव के उद्देश्य से "इमली" प्रतीक आवंटित किया गया था। मतपत्र में "इमली" प्रतीक पर पूरी और उचित मुहर लगी है और दूसरे प्रतीक पर एक और छाप है। जब प्रकरण की सुनवाई हो रही थी, तब उक्त मतपत्र दोनों पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता को दिखाया गया और उक्त मतपत्र की जांच करने के बाद प्रत्यर्थी संख्या 4 की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने उचित रूप से प्रस्तुत किया कि उक्त मतपत्र में दो प्रतीकों के सामने मुहर लगी है। उक्त मतपत्र नियमावली 1994 के नियम 105(ई) के अंतर्गत आता है। उक्त मतपत्र को सही रूप से अस्वीकृत किया गया है।

46. प्रत्यर्थी संख्या 4 की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का तर्क यह है कि मतपत्र संख्या 9बीई 2245690 (मतदान केंद्र संख्या 173) में “इमली” और “कन्नी” चिह्न के बीच की मध्य रेखा पर पूरी और उचित मुहर लगी हुई है। उन्होंने आगे कहा कि मतदाता का इरादा प्रत्यर्थी संख्या 4 के पक्ष में अपना वोट डालने का था, जिसे चुनाव के उद्देश्य से “इमली” चिह्न आवंटित किया गया था। यह भी कहा गया है कि उपरोक्त मतपत्र को गलत तरीके से अवैध घोषित किया गया है। उपर्युक्त मतपत्र के मात्र अवलोकन से पता

चल जाएगा कि चिह्न "इमली" और "कन्नी" चिह्न के बीच में है। चिह्न उस स्थान पर बनाया गया है जहां मतपत्र संख्या छपी है। नियमावली 1994 के नियम 105(2) में यह प्रावधान है कि किसी मतपत्र पर दर्ज मत को अस्वीकार कर दिया जाएगा यदि मत को दर्शाने वाला चिह्न मतपत्र पर इस प्रकार लगाया गया हो जिससे यह संदेह हो कि मत किस उम्मीदवार को दिया गया है। मतपत्र पर चिह्न दो प्रतीकों (जिनके बीच चिह्न बनाया गया है) के बीच समान दूरी पर है और मतदाता का किसी विशेष अभ्यर्थी के पक्ष में मतदान करने का इरादा स्पष्ट रूप से इंगित नहीं किया गया है और इस प्रकार उपरोक्त मतपत्र को सही रूप से अस्वीकृत कर दिया गया है।

47. प्रत्यर्थी संख्या 4 की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह भी प्रस्तुत किया गया है कि मतपत्र संख्या 9बीई 2245962 (मतदान केंद्र संख्या 173) में प्रतीक चिन्ह "इमली" और "अनाज ओषता किसान" प्रतीक चिन्ह के बीच की मध्य रेखा पर पूर्ण और उचित मुहर लगी हुई है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि मतदाता का इरादा प्रत्यर्थी संख्या 4 के पक्ष में अपना वोट डालने का था, जिसे चुनाव के उद्देश्य से "इमली" का प्रतीक आवंटित किया गया था। यह प्रस्तुत किया गया है कि उपरोक्त मतपत्र को गलत तरीके से अवैध घोषित किया गया है। उपर्युक्त मतपत्र के अवलोकन से पता चलता है कि प्रतीक चिन्ह "अनाज ओषता किसान" और प्रतीक चिन्ह "इमली" के बीच निशान बनाया गया है। मतपत्र पर निशान आंशिक रूप से प्रतीक "इमली" पर और आंशिक रूप से "प्रधान ग्राम पंचायत 2020" दिखाने वाली रेखा पर है। निश्चित रूप से यह चिह्न "अनाज ओषता किसान" चिह्न के लिए दिए गए स्थान में नहीं बनाया गया है, हालाँकि चिह्न का वह भाग मतपत्र पर "इमली" चिह्न के लिए दिए गए स्थान में है। **एस. शिवस्वामी बनाम वी. मलाइकन्नन एवं अन्य, (1984) 1 एससीसी 296** के वाद में, सर्वोच्च न्यायालय ने प्रस्तर संख्या 7 में निम्नलिखित टिप्पणी की है:-

"7. ...यदि स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनावों की प्रक्रिया के माध्यम से राज्य विधानमंडलों और संसद के लिए अपने प्रतिनिधियों को चुनने के लिए लोगों को दिया गया अधिकार सार्थक होना है तो निरक्षर और अपरिष्कृत मतदाता की इच्छा मतपत्र पर एक निशान के माध्यम से व्यक्त की जाती है, जो हालांकि विशेष उम्मीदवार के कॉलम के अंदर नहीं है, लेकिन स्पष्ट रूप से उस उम्मीदवार की पहचान का संकेत देता है जिसके लिए वोट डाला गया है, इसका सम्मान किया जाना चाहिए और इसका पूरा प्रभाव दिया जाना चाहिए..."

48. मतदाता की मंशा स्पष्ट रूप से "इमली" चिन्ह के पक्ष में प्रतीत होती है। उक्त चिन्ह प्रत्यर्थी संख्या 4 का है। उक्त मतपत्र प्रत्यर्थी संख्या 4 के संबंध में एक मत है।

49. प्रत्यर्थी संख्या 4 की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि मतपत्र संख्या 9बीई 2245963 (मतदान केंद्र संख्या 173) में मध्य रेखा के प्रतीक "इमली" और "अनाज ओषता किसान" प्रतीक पर पूर्ण और उचित मुहर लगी है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि मतदाता का इरादा प्रत्यर्थी संख्या 4 के पक्ष में अपना वोट डालना था, जिसे चुनाव के उद्देश्य से "इमली" का प्रतीक आवंटित

किया गया था। यह प्रस्तुत किया गया है कि उपरोक्त मतपत्र को गलत तरीके से अवैध घोषित किया गया है। उपर्युक्त मतपत्र के मात्र अवलोकन से पता चलता है कि निशान "अनाज ओषता किसान" और प्रतीक "इमली" के बीच बनाया गया है। निशान मतपत्र पर "प्रधान ग्राम पंचायत 2020" के निशान पर उपर्युक्त दो प्रतीकों के बीच दिए गए स्थान में बनाया गया है। उपर्युक्त चिह्न उपर्युक्त दोनों प्रतीकों से समान दूरी पर है और यह स्पष्ट नहीं है कि मतदाता ने किसी विशेष अभ्यर्थी के पक्ष में मतदान करने का क्या इरादा किया था। तदनुसार, उक्त मतपत्र को अवैध घोषित कर अस्वीकृत कर दिया गया है।

50. उपर्युक्त चर्चा/निष्कर्ष के आलोक में, यह ध्यान देने योग्य है कि पूर्व में याचिकाकर्ता को 657 मत प्राप्त हुए थे और प्रत्यर्थी संख्या 4 को 659 मत प्राप्त हुए थे तथा 114 मतों को अवैध घोषित किया गया था (माननीय सर्वोच्च न्यायालय के दिनांक 23.10.2024 के आदेश द्वारा पुनर्गणना के अनुसरण में)। इस न्यायालय के समक्ष पक्षकारों द्वारा उठाई गई आपत्तियाँ 40 अवैध मतों पर हैं। चर्चा का परिणाम नीचे दिया गया है:-

क्रम संख्या	**मतपत्र संख्या**	**मतकेन्द्र संख्या**	**वैध या अवैध मत (उपर्युक्त तर्क के अनुसार)**	**पक्ष में निर्धारित वैध मत (उपर्युक्त तर्क के अनुसार)**
1.	9बीई2245141	172	अवैध	-अप्रयोज्य-
2.	9बीई2245421	172	अवैध	-अप्रयोज्य-
3.	9बीई2245115	172	अवैध	-अप्रयोज्य-
4.	9बीई2245336	172	अवैध	-अप्रयोज्य-
5.	9बीई2245476	172	अवैध	-अप्रयोज्य-
6.	9बीई2245490	172	अवैध	-अप्रयोज्य-
7.	9बीई2245090	172	अवैध	-अप्रयोज्य-
8.	9बीई2245380	172	अवैध	-अप्रयोज्य-
9.	9बीई2245512	172	वैध	प्रत्यर्थी सं0 4 (इमली)
10.	9बीई2245086	172	अवैध	-अप्रयोज्य-
11.	9बीई2245305	172	अवैध	-अप्रयोज्य-
12.	9बीई2245647	173	अवैध	-अप्रयोज्य-
13.	9बीई2245760	173	अवैध	-अप्रयोज्य-
14.	9बीई2244037	173	अवैध	-अप्रयोज्य-
15.	9बीई2245934	173	अवैध	-अप्रयोज्य-
16.	9बीई2245935	173	अवैध	-अप्रयोज्य-
17.	9बीई2245852	173	अवैध	-अप्रयोज्य-
18.	9बीई2245606	173	अवैध	-अप्रयोज्य-

अनुवादित प्रति

19.	9बीई2244006	173	अवैध	-अप्रयोज्य-
20.	9बीई2245813	173	अवैध	-अप्रयोज्य-
21.	9बीई2244073	173	अवैध	-अप्रयोज्य-
22.	9बीई2245690	173	अवैध	-अप्रयोज्य-
23.	9बीई2245962	173	वैध	प्रत्यर्थी सं0 4 (इमली)
24.	9बीई2245963	173	अवैध	-अप्रयोज्य-
25.	9बीई2244354	174	अवैध	-अप्रयोज्य-
26.	9बीई2244216	174	वैध	याचिकाकर्ता
27.	9बीई2244211	174	अवैध	-अप्रयोज्य-
28.	9बीई224433	174	अवैध	-अप्रयोज्य-
29.	9बीई2244297	174	अवैध	-अप्रयोज्य-
30.	9बीई2244204	174	अवैध	-अप्रयोज्य-
31.	9बीई2244136	174	वैध	याचिकाकर्ता
32.	9बीई2244375	174	अवैध	-अप्रयोज्य-
33.	9बीई2244284	174	अवैध	-अप्रयोज्य-
34.	9बीई2244503	174	अवैध	-अप्रयोज्य-
35.	9बीई2244210	174	अवैध	-अप्रयोज्य-
36.	9बीई2244294	174	अवैध	-अप्रयोज्य-
37.	9बीई2244159	174	अवैध	-अप्रयोज्य-
38.	9बीई2244330	174	अवैध	-अप्रयोज्य-
39.	9बीई2244148	174	अवैध	-अप्रयोज्य-
40.	9बीई2244273	174	अवैध	-अप्रयोज्य-

अनुवादित

51. उपर्युक्त निष्कर्ष और निष्कर्षों तथा पक्षों द्वारा चालीस अवैध मतों पर की गई आपत्तियों के मद्देनजर, यह न्यायालय पाता है कि छत्तीस मतपत्र अवैध हैं और दो मतपत्र याचिकाकर्ता के पक्ष में तथा दो मतपत्र प्रत्यर्थी संख्या 4 के पक्ष में मतदान किए गए हैं। अतः, वर्तमान निष्कर्ष का अंतिम परिणाम यह है कि याचिकाकर्ता (केहकशान) को 659 मत और प्रत्यर्थी संख्या 4 (अशरफ खान) को 661 मत प्राप्त हुए हैं। तदनुसार, प्रत्यर्थी संख्या 4 (अशरफ खान) को विजयी उम्मीदवार घोषित किया जाता है। प्रत्यर्थी प्राधिकारियों को निर्देश दिया जाता है कि वे इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से एक माह के भीतर प्रत्यर्थी संख्या 4 को संबंधित गाँव का ग्राम प्रधान नियुक्त करने के लिए आवश्यक कदम उठाएँ।

52. रिट याचिका का निस्तारण उपरोक्त टिप्पणियों/निर्देशों के साथ किया जाता है।

(2025) 4 ILRA 693

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल वाद

दिनांक: इलाहाबाद 18.04.2025

माननीय न्यायमूर्ति शेखर बी. सराफ,

माननीय न्यायमूर्ति विपिन चंद्र दीक्षित

के समक्ष

रिट सी संख्या - 34248/2024

मेसर्स राजन कंस्ट्रक्शन कंपनी **....याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
श्री सत्येंद्र चंद्र त्रिपाठी, श्री शिवपूजन यादव

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
श्री मुकुल त्रिपाठी, एस.सी., श्री शाद खान, श्री शिशिर प्रकाश

अनुवादित

सिविल विधि - भारतीय संविधान, 1950 -अनुच्छेद 14, 19, 19(1)(जी), 19(6), 21, 226 और 301- रिट याचिका - आक्षेपित ई-निविदा के प्रतिबंधात्मक खंड को चुनौती देते हुए - याचिकाकर्ता, एक बायोमास पेलेट आपूर्तिकर्ता, को उत्तर प्रदेश राज्य विद्युत उत्पादन निगम लिमिटेड द्वारा जारी एक ई-निविदा में भाग लेने से प्रतिबंधित किया गया था - निविदा कृषि-आधारित गैर-टोरेफाइड बायोमास पेलेट की आपूर्ति के लिए थी - न्यायिक समीक्षा - अदालत ने पाया कि, निविदा दस्तावेजों में एक प्रतिबंधात्मक खंड था 3(i) एक पूर्व-योग्यता शर्त के रूप में, जिसके अनुसार केवल एनसीआर क्षेत्र में मौजूदा निर्माता या वे जो एचटीपी स्टेशन, अलीगढ़ के 100 किलोमीटर के दायरे में स्थित हैं, ही इसका उपयोग कर सकते हैं।- यह दलील दी गई कि, खंड 3(i) मनमाना, असंवैधानिक है और भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14, 19(1)(g), 21 और 301 का उल्लंघन करता है।- अदालत ने कहा कि,प्रतिबंध का उद्देश्य एनसीआर में पराली जलाने से होने वाले वायु प्रदूषण को कम करना है - और यह सरकारी नीतियों, जिनमें पर्यावरण नियम, 2023 और विद्युत मंत्रालय के परामर्श शामिल हैं, के अनुरूप है।- अदालत ने कहा कि, - (i)सार्वजनिक हित की कीमत पर निजी हितों की रक्षा के लिए न्यायिक समीक्षा की अनुमति नहीं दी जाएगी - (ii) मौलिक अधिकारों के संरक्षक होने के नाते अदालतें केवल उन्हीं मामलों में हस्तक्षेप करने के लिए बाध्य हैं जब मनमानी, तर्कहीनता, दुर्भावना और पक्षपात हो। अन्यथा नहीं, - (iii) निविदा में प्रतिबंधात्मकशर्तों को मनमाना और भेदभावपूर्ण नहीं माना जा सकता क्योंकि, यह नियोक्ता की बुद्धिमत्ता है कि वह ऐसी शर्तें/धाराएँ निर्धारित करे जो जनहित में किए जाने वाले कार्य के लिए

उपयुक्त हों -(iv) दुर्भावनापूर्ण इरादे यालक्षित बहिष्कार का कोई सबूत नहीं मिला - तदनुसार,रिट याचिका खारिज की जाती है। (पैरा संख्या 16, 22, 23, 24, 26, 27, 28, 29, 31,32)

रिट याचिका खारिज। (ई-11)

<u>संदर्भित मामलों की सूची</u>: -

1. माँ बिंदा एक्सप्रेस कैरियर बनाम उत्तर-पूर्व सीमांत रेलवे - (2014) 3 एससीसी 760,
2. रिलायंस एनर्जी लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य सड़क विकास निगम लिमिटेड - (2007) 8 एससीसी
3. टाटा सेलुलर बनाम यू.ओ.आई. - (1994) 6 एससीसी 651,
4. केयरटेल इन्फोटेक लिमिटेड बनाम हिंदुस्तान पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड - (2019) 14 एससीसी 81,
5. सिल्पी कंस्ट्रक्शन्स कॉन्ट्रैक्टर्स बनाम यू.ओ.आई. - (2020) 16 एससीसी 489,
6. मोंटेकार्लो लिमिटेड बनाम एनटीपीसी लिमिटेड - (2016) 15 एससीसी 272,
7. एग्माटेल इंडिया (पी) लिमिटेड बनाम रिसोर्सिस टेलीकॉम - (2022) 5 एससीसी 362,
8. बालाजी वेंचर्स (पी) लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र स्टेट पावर जनरेशन कंपनी लिमिटेड - 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1967,
9. एन.जी. प्रोजेक्ट्स लिमिटेड बनाम विनोद कुमार जैन - (2022) 6 एससीसी 127,
10. भारतीय विमानपत्तन प्राधिकरण बनाम विमानन नीति, सुरक्षा एवं अनुसंधान केंद्र (CAPSR) - 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1334,
11. इंजीनियरिंग कामगार यूनियन बनाम इलेक्ट्रो स्टील्स कास्टिंग्स लिमिटेड व अन्य - (2004) 6 एससीसी 36,
12. यूपीएस एवं पावर कंडीशनिंग सिस्टम्स मैन्युफैक्चरर एसोसिएशन बनाम एप्लाइड माइक्रोवेव इलेक्ट्रॉनिक्स इंजीनियरिंग एवं अनुसंधान सोसायटी (समीर) एवं अन्य - 2002 (65) डीआरजे 678,
13. रमण दयाराम शेट्टी बनाम अंतर्राष्ट्रीय भारतीय विमानपत्तन प्राधिकरण एवं अन्य - (1979) 3 एससीसी 489,
14. रास बिहारी पांडा बनाम उड़ीसा राज्य - (1969) 1 एससीसी 414

(माननीय न्यायमूर्ति शेखर बी. सराफ द्वारा प्रदत्त)

1. वर्तमान रिट याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत दायर की गई है, जिसमें याचिकाकर्ता ने अधीक्षण अभियंता, सामग्री प्रबंधन वृत्त (एमएमसी), हरदुआगंज द्वारा जारी, यथा संशोधित 13 अगस्त, 2024, आक्षेपित ई-निविदा संख्या ET-60/MMC/PD/ETPS/HTPS/2024 दिनांक 10 जुलाई, 2024 को निरस्त करने

हेतु एक उत्प्रेषण रिट जारी करने का अनुरोध किया है। थर्मल पावर स्टेशन (एचओपीएस), उत्तर प्रदेश राज्य विद्युत उत्पादन निगम लिमिटेड, कासिमपुर, अलीगढ़ (जिसे आगे 'प्रतिवादी संख्या 3' कहा जाएगा) के साथ एक समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए गए थे, जिसके तहत याचिकाकर्ता को ई-टेंडर में भाग लेने से प्रतिबंधित कर दिया गया था। याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी संख्या 3 को उपरोक्त स्थान पर कोयला हैंडलिंग प्लांट के लिए कृषि-आधारित नॉन-टॉरिफाइड बायोमास पेलेट्स की आपूर्ति के लिए एक नई निविदा आमंत्रित करने और याचिकाकर्ता को उक्त ई-टेंडर के खंड 3(i) में उल्लिखित किसी भी पूर्व-योग्यता शर्त को लागू किए बिना निविदा प्रक्रिया में भाग लेने की अनुमति देने का निर्देश देने का भी अनुरोध किया है।

<u>तथ्य</u>

2. वर्तमान रिट याचिका का तथ्यात्मक सार नीचे दिया गया है:

क. याचिकाकर्ता जिला अंबेडकर नगर, उत्तर प्रदेश में पंजीकृत एक फर्म है, जो कोयला हैंडलिंग प्लांट के लिए नॉन-टॉरिफाइड बायोमास पेलेट्स की आपूर्ति के लघु-स्तरीय व्यवसाय में लगी हुई है।

ख. 17 नवंबर, 2017 को विद्युत मंत्रालय ने कोयला आधारित बिजली संयंत्रों में को-फायरिंग के माध्यम से बिजली उत्पादन के लिए बायोमास के उपयोग के संबंध में एक मानक संचालन प्रक्रिया (एसओपी) प्रकाशित की। इसके बाद 24 नवंबर, 2017 को एक एडवाइजरी जारी की गई, जिसमें सभी राज्य विद्युत सचिवों, ताप विद्युत उत्पादन संयंत्रों/यूटिलिटीज (सार्वजनिक या निजी) के साथ-साथ उत्तर प्रदेश राज्य विद्युत उत्पादन निगम लिमिटेड, लखनऊ के प्रबंध निदेशक (जिन्हें आगे 'प्रतिवादी संख्या 2' कहा जाएगा) को 5-10% तक बायोमास पेलेट्स का उपयोग करने का निर्देश दिया गया था।

सी. इसके बाद, उक्त एडवाइजरी को 8 अक्टूबर, 2021 को संशोधित किया गया, जिसमें कोयला आधारित बिजली संयंत्रों में को-फायरिंग के माध्यम से बिजली उत्पादन के लिए बायोमास के उपयोग पर और अधिक जोर दिया गया।

डी. 2 मार्च, 2022 को विद्युत मंत्रालय ने ताप विद्युत संयंत्रों (टीपीपी) में बायोमास के उपयोग के लिए एक मॉडल अनुबंध जारी किया, जिसे बाद में 6 जनवरी, 2023 को संशोधित किया गया।

ई. उपर्युक्त मॉडल अनुबंध के खंड 2(बी) में प्रावधान है कि राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र (एनसीआर) के 300 किलोमीटर के भीतर स्थित बिजलीघरों को कम से कम 50% कच्चे माल का उपयोग करना होगा, जिसमें विशेष रूप से पंजाब, हरियाणा या एनसीआर क्षेत्र से प्राप्त चावल के धान से प्राप्त पराली/भूसा/फसल अवशेष शामिल होंगे।

एफ. 11 जुलाई, 2023 को पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय ने पर्यावरण (ताप विद्युत संयंत्रों द्वारा फसल अवशेषों का उपयोग) नियमावली, 2023 को अधिसूचित किया, जो एनसीआर क्षेत्र पर लागू हैं। इन नियमों के अनुसार सभी कोयला आधारित ताप विद्युत संयंत्रों को कोयले के साथ फसल अवशेषों से बने पैलेट्स या ब्रिकेट के न्यूनतम पांच प्रतिशत मिश्रण का उपयोग करना होगा।

जी. 10 जुलाई, 2024 को, उत्तर प्रदेश राज्य विद्युत उत्पादन निगम लिमिटेड के नियंत्रण में प्रतिवादी संख्या 3 ने एक ई-निविदा (सं. ET-60/MMC/PD/ETPS/HTPS/2024) जारी की, जिसमें गैर-टोरेफाइड बायोमास पैलेट की आपूर्ति के लिए बोलियां आमंत्रित की गईं, जो केंद्र सरकार द्वारा प्रदूषण को कम करने और ताप

विद्युत संयंत्रों में स्वच्छ ऊर्जा को प्रोत्साहित करने के लिए प्रवर्तित एक नवीकरणीय ईंधन स्रोत है और उक्त ई-निविदा को 13 अगस्त, 2024 को संशोधित किया गया था।

एच. हालाँकि, निविदा दस्तावेजों में पूर्व-योग्यता शर्त के रूप में एक प्रतिबंधात्मक खंड 3(i) शामिल था, जिसमें यह अनिवार्य था कि केवल एनसीआर क्षेत्र में मौजूदा निर्माता या जिनके विनिर्माण संयंत्र ट्रक गेट (सामग्री प्रवेश द्वार), हरदुआगंज थर्मल पावर स्टेशन, कासिमपुर, अलीगढ़ से 100 किमी के भीतर स्थित हैं, निविदा में भाग लेने के लिए पात्र हैं। तकनीकी बोलियां, जिनमें आरोपित प्रतिबंधात्मक खंड की पुष्टि अनिवार्य थी, 12 सितंबर, 2024 को खोली गईं।

जे. इसके बाद, 8 अक्टूबर, 2024 को, भारत सरकार के विद्युत मंत्रालय ने बायोमास को-फायरिंग मासिक लक्ष्यों में महत्वपूर्ण कमी के संबंध में एक अधिसूचना जारी की, जिसमें सभी थर्मल पावर प्लांटों के प्रमुखों से प्रत्येक थर्मल पावर प्लांट में बायोमास पैलेट्स की को-फायरिंग के लिए निर्धारित अधिदेश को प्राप्त करके एनसीआर क्षेत्र में पराली जलाने के कारण होने वाले वायु प्रदूषण को कम करने के लिए तत्काल कार्रवाई की आवश्यकता थी।

के. इसके बाद, 13 नवंबर, 2024 को वित्तीय बोलियां खोली गईं और कृषि-आधारित गैर-टोरेफाइड बायोमास पैलेट्स की आपूर्ति के लिए बारह फर्मों का चयन किया गया।

एल. उत्तर प्रदेश के जिला अंबेडकर नगर में स्थित याचिकाकर्ता की फर्म को निविदा दस्तावेजों में उल्लिखित प्रतिबंधात्मक खंड के कारण भाग लेने से बाहर रखा गया था।

एम. निविदा के खंड 3(आई) के तहत बहिष्करण की शर्त से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है।

<u>याचिकाकर्ता के तर्क</u>

3. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित प्रस्तुतियाँ दी हैं:

क. विशिष्ट क्षेत्रों से कच्चा माल प्राप्त करने के उद्देश्य और किसी विशेष भौगोलिक क्षेत्र में आवश्यकतानुसार विनिर्माण इकाई के स्थान के बीच कोई संबंध नहीं है। याचिकाकर्ता ने आगे जोर दिया कि प्रतिबंध का निविदा के उद्देश्य से कोई उचित संबंध नहीं है और यह केवल प्रतिस्पर्धा को अनुचित रूप से सीमित करने का काम करता है।

ख. निविदा की शर्तें भारत के संविधान के अनुच्छेद 19 और अनुच्छेद 21 का उल्लंघन करती हैं, क्योंकि वे आवेदकों को एक विशिष्ट स्थान तक सीमित करती हैं, विशेष रूप से एनसीआर क्षेत्र के भीतर और इसलिए, भेदभावपूर्ण, मनमानी और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के विपरीत हैं।

ग. निविदा दस्तावेज में पूर्व-योग्यता शर्त के रूप में खंड 3(i) पूरी तरह से अवैध, मनमाना और अनुच्छेद 14 के तहत समानता के अधिकार, अनुच्छेद 19(1)(जी) के तहत किसी भी पेशे या व्यापार का अभ्यास करने का अधिकार, और भारत के संविधान के अनुच्छेद 301 के तहत भारत भर में व्यापार और वाणिज्य की स्वतंत्रता का घोर उल्लंघन है।

अनुवादित

घ. भारत के संविधान का अनुच्छेद 14 यह अधिदेश देता है कि राज्य कानून के समक्ष समानता या कानूनों के समान संरक्षण से इनकार नहीं करेगा। ऐसी प्रतिबंधात्मक शर्त लगाकर, राज्य का एक साधन होने के नाते प्रतिवादी प्राधिकारी ने ई-टेंडरिंग प्रक्रिया में याचिकाकर्ता के साथ भेदभाव किया है।

ङ. भारत के संविधान का अनुच्छेद 19(1)(जी) अपने सभी नागरिकों को किसी भी पेशे का अभ्यास करने या किसी भी व्यवसाय, व्यापार या व्यवसाय को चलाने का अधिकार देता है। पूर्व-योग्यता शर्त के रूप में खंड 3(i) किसी भी स्पष्ट अंतर पर आधारित नहीं है। इसमें इस बात के पर्याप्त तर्क या औचित्य का अभाव है कि यह किस प्रकार जनहित में कार्य करता है और यह राज्य के अन्य भागों के कई सक्षम आपूर्तिकर्ताओं को निविदा प्रक्रिया में भाग लेने से प्रभावी रूप से बाहर कर देता है।

छ. सभी आवश्यक पंजीकरण, तकनीकी क्षमताएं, और पंजाब, हरियाणा या एनसीआर क्षेत्र से चावल के धान के ठूंठ, पुआल या फसल अवशेष के रूप में 50% कच्चा माल प्राप्त करने की आवश्यकता सहित सरकारी दिशानिर्देशों का पालन करने की इच्छा रखने के बावजूद, याचिकाकर्ता को केवल इस कारण अयोग्य घोषित कर दिया गया क्योंकि उनका स्थान मनमाने 100 किमी के दायरे से बाहर था।

ज. केंद्र सरकार ने 6 जनवरी, 2023 के एक परिपत्र के माध्यम से एक संशोधित मॉडल अनुबंध जारी किया जिसमें ऐसा कोई प्रतिबंध नहीं लगाया गया है। इसलिए, आक्षेपित ई-निविदा के खंड 3(i) के तहत प्रतिबंध उक्त परिपत्र का घोर उल्लंघन है और केंद्र सरकार की विभिन्न नीतियों की भावना और मंशा के विपरीत है।

झ. विद्युत मंत्रालय ने अपने मॉडल अनुबंध और अन्य सलाह के माध्यम से वायु प्रदूषण से निपटने के लिए बायोमास के उपयोग को बढ़ावा देने पर लगातार जोर दिया है, विशेष रूप से उत्तरी राज्यों में पराली जलाने से होने वाले प्रदूषण से बचने के लिए। हालांकि, इनमें से कोई भी दिशानिर्देश बायोमास ईंधन की आपूर्ति कौन कर सकता है, इस पर कोई क्षेत्रीय प्रतिबंध निर्धारित नहीं करता है। केंद्र और राज्य के दिशानिर्देशों के बीच किसी भी तरह के विरोध की स्थिति में, केंद्रीय दिशानिर्देश ही मान्य होंगे। परिणामस्वरूप, राज्य सरकार द्वारा जारी निविदा केंद्रीय नीतियों के अनुरूप होनी चाहिए।

जे. याचिकाकर्ता के पास प्रतिवादी अधिकारियों की मनमानी कार्रवाइयों के खिलाफ इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाने के अलावा कोई वैकल्पिक उपाय नहीं बचा है।

के. अपने तर्कों को पुष्ट करने के लिए, अधिवक्ता ने इंजीनियरिंग कामगार यूनियन बनाम इलेक्ट्रो स्टील्स कास्टिंग्स लिमिटेड और अन्य (2004) 6 एससीसी 36 में; एसोसिएशन ऑफ यूपीएस एंड पावर कंडीशनिंग सिस्टम्स मैन्युफैक्चरर बनाम सोसाइटी ऑफ एप्लाइड माइक्रोवेव इलेक्ट्रॉनिक्स इंजीनियरिंग एंड रिसर्च (समीर) और अन्य (2002) (65) डीआरजे 678; रमना दयाराम शेट्टी बनाम इंटरनेशनल एयरपोर्ट अथॉरिटी ऑफ इंडिया और अन्य (1979) 3 एससीसी 489 में रिपोर्ट किए गए और रशबिहारी पांडा बनाम उड़ीसा राज्य (1969) 1 एससीसी 414 के मामलों में निर्णीत निर्णय पर अवलंब लिया है।

<u>प्रतिवादी के तर्क</u>

4. प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित प्रस्तुतियाँ दी हैं:

ए. विचाराधीन खंड एनसीआर क्षेत्र में वायु प्रदूषण के महत्वपूर्ण मुद्दे के समाधान के उद्देश्य से कुछ प्रतिबंध लगाता है, जो मुख्य रूप से कृषि पराली जलाने की व्यापक प्रथा के कारण होता है। यह पर्यावरणीय विनियमन ताप विद्युत उत्पादन से जुड़े कार्बन फुटप्रिंट को कम करने के उद्देश्य से लागू किया गया है, विशेष रूप से एनसीआर क्षेत्र में, जहाँ वायु गुणवत्ता एक सतत चिंता का विषय रही है।

बी. इस संदर्भ में, आक्षेपित ई-निविदा एनसीआर क्षेत्र में पर्यावरण प्रदूषण को कम करने के विशिष्ट उद्देश्य से जारी की गई थी, जिसमें बायोमास पैलेट्स के उपयोग को बढ़ावा दिया गया था, जिससे कृषि अवशेषों को जलाने के माध्यम से पारंपरिक निपटान का एक स्थायी विकल्प उपलब्ध कराया जा सके। निविदा का अंतिम उद्देश्य पर्यावरण के अनुकूल पहलों का समर्थन करना है जो स्वच्छ हवा में योगदान करते हैं और पर्यावरण संरक्षण और जलवायु परिवर्तन शमन के व्यापक लक्ष्यों के साथ संरेखित होते हैं।

सी. विचाराधीन खंड पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय द्वारा जारी 11 जुलाई, 2023 की मसौदा अधिसूचना के अनुरूप है, जिसके तहत पर्यावरण (थर्मल पावर प्लांट द्वारा फसल अवशेषों का उपयोग) नियमावली, 2023 ने थर्मल पावर प्लांटों को एनसीआर क्षेत्र में फसल अवशेषों का उपयोग करने का निर्देश दिया था ताकि पराली जलाने से होने वाले वायु प्रदूषण को कम किया जा सके।

डी. निविदा की शर्तें भी अनुरूप हैं और जानबूझकर एनसीआर क्षेत्र में पराली जलाने के कारण होने वाले वायु प्रदूषण को कम करने के लिए बनाई गई हैं, जैसा कि भारत सरकार के विद्युत मंत्रालय द्वारा 8 अक्टूबर, 2024 को जारी अधिसूचना के माध्यम से निर्देशित किया गया था, जिसमें बायोमास सह-फायरिंग मासिक लक्ष्यों में महत्वपूर्ण कमी के संबंध में कहा गया था।

ई. यह ध्यान रखना उचित है कि याचिकाकर्ता को बोली मूल्यांकन प्रक्रिया के दौरान तकनीकी रूप से योग्य नहीं पाया गया था। इसके बाद, उत्तर प्रदेश राज्य विद्युत उत्पादन निगम लिमिटेड और बारह सफल निर्माताओं के बीच अनुबंध प्रदान किया गया और निष्पादित किया गया। इन निर्माताओं ने पहले ही नामित थर्मल पावर प्लांट को बायोमास पैलेट्स की आपूर्ति शुरू कर दी है, और यह आपूर्ति एक महीने से अधिक समय से चल रही है।

एफ. अपने तर्कों को पुष्ट करने के लिए, अधिवक्ता ने **टाटा सेल्युलर बनाम भारत संघ (1994) 6 एससीसी 651; केयरटेल इन्फोटेक लिमिटेड बनाम हिंदुस्तान पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड** (2019) 14 एससीसी 81**; सिल्पी कंस्ट्रक्शन कॉन्ट्रैक्टर्स बनाम भारत संघ (**2020) 16 एससीसी 489**; मोंटेकार्लो लिमिटेड बनाम एनटीपीसी लिमिटेड** (2016) 15 एससीसी 272**; एग्माटेल इंडिया (प्रा.) लिमिटेड बनाम रिसोर्सिस टेलीकॉम** (2022) 5 एससीसी 362**; बालाजी वेंचर्स (प्रा.) लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र स्टेट पावर जनरेशन कंपनी लिमिटेड (**2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1967**; एन.जी. प्रोजेक्ट्स लिमिटेड बनाम विनोद कुमार जैन** (2022) 6 एससीसी 127**; एयरपोर्ट अथॉरिटी ऑफ इंडिया बनाम सेंटर फॉर एविएशन पॉलिसी, सेफ्टी एंड रिसर्च (सीएपीएसआर)** (2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1334) के मामलों पर अवलंब लिया है।

<u>विश्लेषण</u>

5. हमने प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर विचार किया है और रिकॉर्ड पर रखी गई सामग्रियों का अवलोकन किया है।

6. दोनों पक्षों द्वारा प्रस्तुत प्रतिद्वंदी तर्कों पर विचार करने से पहले, 10 जुलाई, 2024 की ई-निविदा की पूर्व-योग्यता शर्त के रूप में खंड 3(i) की जाँच करना आवश्यक है। उक्त खंड शब्दशः इस प्रकार है:

"(1) केवल एनसीआर क्षेत्र में स्थित मौजूदा पेलेट निर्माताओं को ही निविदा में भाग लेने की अनुमति होगी। प्रत्येक बोलीदाता को केवल निविदा के भाग-1 में इसकी पुष्टि करनी होगी।"

7. इसके बाद, उक्त निविदा को 13 अगस्त, 2024 को संशोधित किया गया। संशोधित खंड शब्दशः इस प्रकार है:

"1. केवल मौजूदा पेलेट निर्माताओं को ही निविदा में भाग लेने की अनुमति दी जाएगी, जिनका विनिर्माण संयंत्र एनसीआर क्षेत्र में स्थित है। प्रत्येक बोलीदाता को निविदा के भाग-I में इसकी पुष्टि करनी होगी।

या

2. केवल वे निर्माता जिनका विनिर्माण संयंत्र ट्रक गेट (सामग्री प्रवेश द्वार), हरदुआगंज थर्मल पावर स्टेशन, कासिमपुर अलीगढ़ से 100 किलोमीटर के दायरे में है, उन्हें भी निविदा में भाग लेने की अनुमति दी जाएगी। प्रत्येक बोलीदाता को निविदा के भाग-I में इसकी पुष्टि करनी होगी।

नोट: ट्रक गेट (सामग्री प्रवेश द्वार), हरदुआगंज थर्मल पावर स्टेशन, कासिमपुर अलीगढ़ से विनिर्माण संयंत्र स्थान तक किलोमीटर (किलोमीटर) की माप के लिए, केवल गूगल मैप लागू होगा।"

8. निविदा दस्तावेजों में तकनीकी विनिर्देश के खंड 2(बी) के अनुसार निर्माताओं को पेलेट निर्माण के लिए कच्चा माल केवल पंजाब, हरियाणा या राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र (एनसीआर) से खरीदना अनिवार्य है। उक्त खंड शब्दशः इस प्रकार है:

"चूँकि हरदुआगंज थर्मल पावर स्टेशन एनसीआर के 300 किलोमीटर के दायरे में है, इसलिए न्यूनतम 50% कच्चे माल का उपयोग केवल पंजाब, हरियाणा या राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र से प्राप्त चावल के ठूंठ/भूसे/फसल अवशेष के रूप में करना अनिवार्य है। सफल बोलीदाता को उस राज्य प्राधिकरण से प्रमाण पत्र के रूप में दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत करना होगा जहाँ से धान का भूसा प्राप्त किया गया है/इस संबंध में समर्थ पोर्टल द्वारा कोई भी संशोधन (यदि कोई हो) समय-समय पर शामिल किया जा सकता है।"

9. भारत सरकार के विद्युत मंत्रालय द्वारा 17 नवंबर, 2017 को प्रकाशित बायोमास पेलेट को-फायरिंग के लिए मानक संचालन प्रक्रिया (एसओपी) कोयला आधारित बिजली संयंत्रों में बायोमास के उपयोग की आवश्यकता, लाभ और प्रभाव पर प्रकाश डालती है। यह मॉडल एसओपी के आधार पर साइट-विशिष्ट एसओपी के विकास का भी निर्देश देता है।

10. विद्युत मंत्रालय ने इसके बाद 24 नवंबर, 2017 को सभी राज्य विद्युत सचिवों को एक एडवाइजरी जारी की, जिसमें पराली जलाने से उत्तर-पश्चिम भारत में उत्पन्न होने वाले स्मॉग की समस्या का समाधान किया गया। एडवाइजरी के प्रासंगिक पैराग्राफ शब्दशः इस प्रकार हैं:

"जैसा कि आप जानते होंगे कि उत्तर-पश्चिम भारत में हाल ही में स्मॉग का एक प्रमुख कारण पराली जलाना बताया गया है। धान और अन्य फसलों की कटाई के बाद बचे हुए पुआल के ठूंठ को पराली जलाने का एक प्रमुख कारण बताया गया है। खुले खेतों में जलाने के बजाय, इन्हें एकत्र किया जा सकता है, संसाधित किया जा सकता है और बिजली उत्पन्न करने के लिए बायोमास ईंधन के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।

बायोमास को-फायरिंग एक अच्छी तरह से सिद्ध तकनीक है। बढ़ती पर्यावरणीय जागरूकता के साथ, दुनिया भर के बिजली संयंत्रों ने प्रदूषण से निपटने की रणनीति के रूप में बायोमास को-फायरिंग को अपनाया है। यूएनएफसीसीसी कोयला आधारित बिजली संयंत्रों से कार्बन उत्सर्जन को कम करने के लिए बायोमास को-फायरिंग को एक कार्बन तटस्थ तकनीक के रूप में मान्यता देता है।

एनटीपीसी ने अपने दादरी पावर प्लांट में कोयले के साथ 7% बायोमास पेलेट्स के मिश्रण के सह-प्रज्वलन का सफलतापूर्वक प्रदर्शन किया है। इसे बाउल मिल/वर्टिकल रोलर मिल/बीटर मिल वाले अन्य कोयला आधारित बिजली संयंत्रों में भी दोहराया जा सकता है।"

11. उपर्युक्त परामर्श को बाद में 8 अक्टूबर, 2021 को विशेष रूप से कोयला आधारित बिजली संयंत्रों के लिए संशोधित किया गया था। परामर्श का प्रासंगिक पैराग्राफ शब्दशः इस प्रकार है:

"(1). बाउल मिल वाले बिजली उत्पादन उपयोगिताओं के सभी कोयला आधारित ताप विद्युत संयंत्रों को इस दिशानिर्देश के जारी होने की तिथि से एक वर्ष की अवधि से वार्षिक आधार पर कोयले के साथ मुख्य रूप से कृषि अवशेषों से बने बायोमास पेलेट्स के 5 प्रतिशत मिश्रण का अनिवार्य रूप से उपयोग करना होगा। इस आदेश के जारी होने की तिथि के दो वर्ष बाद और उसके बाद यह दायित्व बढ़कर 7 प्रतिशत हो जाएगा।"

12. ताप विद्युत संयंत्रों में बायोमास के उपयोग हेतु 6 जनवरी, 2023 के संशोधित मॉडल अनुबंध में विशिष्ट क्षेत्रों से पराली की खरीद अनिवार्य कर दी गई है। उपरोक्त मॉडल अनुबंध का प्रासंगिक अनुच्छेद शब्दशः इस प्रकार है:

"एनसीआर के 300 किलोमीटर के भीतर स्थित बिजलीघरों के लिए, केवल पंजाब, हरियाणा या एनसीआर क्षेत्र से प्राप्त चावल के धान के पराली/भूसे/फसल अवशेष के रूप में न्यूनतम 50% कच्चे माल का उपयोग अनिवार्य है। सफल बोलीदाता को उस राज्य प्राधिकरण से प्रमाण पत्र के रूप में दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत करना होगा जहाँ से धान का भूसा प्राप्त किया गया है।"

13. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्क मुख्यतः दो-तरफ़ा हैं। पहला, विशिष्ट क्षेत्रों से बायोमास प्राप्त करने की आवश्यकता और एक निर्धारित भौगोलिक क्षेत्र के भीतर विनिर्माण इकाइयों के स्थान के बीच कथित रूप से कोई संबंध नहीं है। दूसरा, बायोमास उपयोग के संबंध में केंद्र सरकार द्वारा जारी दिशानिर्देश ऐसे कड़े क्षेत्रीय प्रतिबंध नहीं लगाते हैं। इसलिए, किसी भी विसंगति की स्थिति में, केंद्र सरकार के दिशानिर्देश राज्य की निविदा शर्तों पर लागू होने चाहिए।

14. इसके विपरीत, प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यद्यपि भारतीय संविधान का अनुच्छेद 19(1)(g) और अनुच्छेद 301, देश भर में सभी नागरिकों को पेशा, व्यापार, व्यवसाय या कारोबार करने के अधिकार की गारंटी देता है, लेकिन यह अधिकार जनहित में उचित प्रतिबंधों के अधीन है। प्रतिबंधात्मक खंड का प्राथमिक उद्देश्य मुख्य रूप से वायु प्रदूषण को कम करना है, एक ऐसी चिंता जिसे माननीय सर्वोच्च न्यायालय और केंद्र सरकार ने एनसीआर क्षेत्र की लगातार खराब पर्यावरणीय स्थिति को देखते हुए अपने विभिन्न दिशानिर्देशों के माध्यम से बार-बार संबोधित किया है। यह खंड स्थानीय निर्माताओं की भागीदारी को सीमित करता है, यह सुनिश्चित करता है कि वे पंजाब, हरियाणा या एनसीआर क्षेत्र से बायोमास की आपूर्ति करता है। यह इन क्षेत्रों में किसानों द्वारा खुले में जलाने के लिए पराली की उपलब्धता को सीधे कम करता है, जिससे प्रदूषण के मूल कारण का समाधान होता है। इस प्रकार, निर्दिष्ट क्षेत्रों से बायोमास प्राप्त करने और आस-पास विनिर्माण इकाइयों को स्थापित करने के बीच एक तर्कसंगत संबंध मौजूद है। निविदा में राज्य द्वारा लगाई गई पूर्व-योग्यता शर्त तदनुसार, उचित है और एक वैध उद्देश्य की पूर्ति करती है।

15. विचाराधीन निविदा अलीगढ़ के हरदुआगंज थर्मल पावर स्टेशन को कृषि-आधारित गैर-टोरेफाइड बायोमास पैलेट्स की आपूर्ति के लिए जारी की गई थी। गैर-टोरेफाइड बायोमास पैलेट्स कृषि-आधारित अवशेषों से बिना टोरेफिकेशन (बायोमास को कोयले जैसे पदार्थ में बदलने की एक प्रक्रिया) के बनाए जाते हैं। लकड़ी, फसलें, समुद्री शैवाल, पराली और पशु अपशिष्ट सहित बायोमास एक कार्बनिक पदार्थ है जिसमें सूर्य से संग्रहित ऊर्जा होती है। ऐतिहासिक रूप से हीटिंग और खाना पकाने के लिए उपयोग किया जाने वाला बायोमास अब बड़े पैमाने पर ऊर्जा उत्पादन में उपयोग किया जा रहा है। फसलों की कटाई के बाद बचे हुए उत्पाद, पराली को अक्सर किसान जला देते हैं। खेतों को जल्दी से साफ करें और इसे अगली बुवाई के लिए तैयार करें। इस अभ्यास के परिणामस्वरूप गंभीर वायु प्रदूषण होता है जिससे राख के साथ बड़ी मात्रा में बिना जले कार्बन निकलता है जो मिट्टी की उर्वरता को कम करता है। टोरीफ़ेक्शन और सघनता (पेलेटीकरण या ब्रिकेटिंग) के माध्यम से, बायोमास परिवहन और भंडारण के लिए अधिक उपयुक्त हो जाता है। जब कोयला आधारित बिजली संयंत्रों में ईंधन के रूप में उपयोग किया जाता है, तो बायोमास पैलेट्स अधिक कुशलता से जलते हैं, और उनकी राख इलेक्ट्रोस्टैटिक अवक्षेपकों द्वारा पकड़ ली जाती है, जिससे प्रदूषण कम होता है। कोयले के साथ बायोमास का सह-जलावन ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को काफी कम करता है। संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क कन्वेंशन ऑन क्लाइमेट चेंज (यूएनएफसीसी) द्वारा कार्बन-तटस्थ एक्सरसाईज के रूप में मान्यता प्राप्त, यह विधि बायोमास दहन के दौरान जारी कार्बन को प्रकाश संश्लेषण के माध्यम से अगले फसल चक्र में अवशोषित करने की अनुमति देती है

16. इसके अतिरिक्त, ताप विद्युत संयंत्रों में कृषि-आधारित अवशेष पैलेट्स के उपयोग से कार्बन उत्सर्जन कम होता है और पराली को हाथ से जलाने से होने वाले वायु प्रदूषण में कमी आती है, क्योंकि पराली जलाने से भारी मात्रा में बिना जले कार्बन, राख, सल्फर और पारा निकलता है। बायोमास में कोयले की तुलना में ऑक्सीजन की मात्रा भी अधिक होती है।

17. **टाटा सेल्युलर बनाम भारत संघ (उपरोक्त)** के एक प्रसिद्ध मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने प्रशासनिक निर्णयों की न्यायिक समीक्षा के संबंध में महत्वपूर्ण सिद्धांत निर्धारित किए थे, विशेष रूप से न्यायिक संयम की अवधारणा पर बल देते हुए। न्यायालय ने इस बात पर ज़ोर दिया कि न्यायिक समीक्षा निर्णय लेने की प्रक्रिया से संबंधित है, न कि स्वयं निर्णय से सम्बन्धित है। न्यायालय ने इस बात पर ज़ोर दिया कि न्यायालयों को प्रशासनिक निर्णयों पर अपीलीय प्राधिकारी के रूप में कार्य नहीं करना चाहिए और न ही प्राधिकारी के निर्णय के स्थान पर अपना निर्णय देना चाहिए। निर्णय के प्रासंगिक अनुच्छेद नीचे उद्धृत हैं:

"70. इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि न्यायिक समीक्षा के सिद्धांत सरकारी निकायों द्वारा मनमानी या पक्षपात को रोकने के लिए संविदात्मक शक्तियों के प्रयोग पर लागू होंगे। हालाँकि, यह स्पष्ट रूप से कहा जाना चाहिए कि न्यायिक समीक्षा की उस शक्ति के प्रयोग में अंतर्निहित सीमाएँ हैं। सरकार राज्य के वित्त की संरक्षक है। उससे राज्य के वित्तीय हितों की रक्षा की अपेक्षा की जाती है। सबसे कम या किसी अन्य निविदा को अस्वीकार करने का अधिकार सरकार के पास हमेशा उपलब्ध है। लेकिन, किसी निविदा को स्वीकार या अस्वीकार करते समय संविधान के अनुच्छेद 14 में निहित सिद्धांतों को ध्यान में रखना होगा। यदि सरकार सर्वोत्तम व्यक्ति या सर्वोत्तम बोली प्राप्त करने का प्रयास करती है तो अनुच्छेद 14 के उल्लंघन का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। चुनने के अधिकार को मनमानी शक्ति नहीं माना जा सकता। बेशक, यदि उक्त शक्ति का प्रयोग किसी अन्य उद्देश्य के लिए किया जाता है तो उस शक्ति का प्रयोग रद्द कर दिया जाएगा।

***

94. उपरोक्त से उद्घृत किए जा सकने वाले सिद्धांत हैं:

(1) आधुनिक प्रवृत्ति प्रशासनिक कार्रवाई में न्यायिक संयम की ओर इशारा करती है।

(2) न्यायालय अपील न्यायालय के रूप में कार्य नहीं करता, बल्कि केवल उस तरीके की समीक्षा करता है जिससे निर्णय लिया गया था।

(3) न्यायालय के पास प्रशासनिक निर्णय को सही करने की विशेषज्ञता नहीं है। यदि प्रशासनिक निर्णय की समीक्षा की अनुमति दी जाती है, तो वह आवश्यक विशेषज्ञता के बिना, अपने ही निर्णय को प्रतिस्थापित कर रहा होगा, जो स्वयं त्रुटिपूर्ण हो सकता है।

(4) निविदा आमंत्रण की शर्तें न्यायिक जांच के लिए खुली नहीं हो सकतीं क्योंकि निविदा आमंत्रण अनुबंध के दायरे में आता है। सामान्यतः, निविदा स्वीकार करने या अनुबंध प्रदान करने का निर्णय कई स्तरों पर बातचीत की प्रक्रिया द्वारा लिया जाता है। अधिकतर, ऐसे निर्णय विशेषज्ञों द्वारा गुणात्मक रूप से लिए जाते हैं।

(5) सरकार को अनुबंध की स्वतंत्रता होनी चाहिए। दूसरे शब्दों में, प्रशासनिक क्षेत्र या अर्ध-प्रशासनिक क्षेत्र में कार्यरत किसी प्रशासनिक निकाय के लिए संयुक्त रूप से निष्पक्ष कार्य एक आवश्यक सहवर्ती है। हालाँकि, निर्णय का परीक्षण न केवल तर्कसंगतता के वेडनसबरी सिद्धांत (ऊपर बताए गए इसके अन्य तथ्यों सहित) के अनुप्रयोग द्वारा किया जाना चाहिए, बल्कि मनमानी और पूर्वाग्रह से प्रभावित या दुर्भावना से प्रेरित से भी मुक्त होना चाहिए।

(6) निर्णयों को रद्द करने से प्रशासन पर भारी प्रशासनिक बोझ पड़ सकता है और इससे बजट से बाहर खर्च बढ़ सकता है।

इन सिद्धांतों के आधार पर हम इस मामले के तथ्यों की जाँच करेंगे क्योंकि ये हमारे लिए सही सिद्धांत हैं।

18. **रिलायंस एनर्जी लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य सड़क विकास निगम लिमिटेड (2007) 8 एससीसी 1** में रिपोर्ट किए गए मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि अनुबंध में आवश्यक शर्तों को 'उचितता' की कसौटी पर खरा उतरना होगा। निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किया गया है:

"36. हमें इस सिविल अपील में योग्यता नज़र आती है। न्यायिक समीक्षा में न्यायालयों द्वारा लागू मानकों को संवैधानिक सिद्धांतों द्वारा उचित ठहराया जाना चाहिए जो लोकतंत्र में सार्वजनिक शक्ति के उचित प्रयोग को नियंत्रित करते हैं। संविधान का अनुच्छेद 14 "गैर-भेदभाव" के सिद्धांत को समाहित करता है। हालाँकि, यह एक स्वतंत्र प्रावधान नहीं है। इसे संविधान के अनुच्छेद 21 जैसे अन्य अनुच्छेदों द्वारा प्रदत्त अधिकारों के साथ पढ़ा जाना चाहिए। उक्त अनुच्छेद 21 "जीवन के अधिकार" को संदर्भित करता है। इसमें "अवसर" शामिल है। हमारे विचार में, जैसा कि आई.आर. कोएलो बनाम टी.एन. राज्य [(2007) 2 एससीसी 1] में नौ न्यायाधीशों की संविधान पीठ के नवीनतम निर्णय में कहा गया है, अनुच्छेद 21/14 मौलिक अधिकारों पर अध्याय का हृदय हैं। ये जीवन के विभिन्न पहलुओं को कवर करते हैं। संविधान के अनुच्छेद 19(1)(जी) की व्याख्या करते समय "समान अवसर" एक महत्वपूर्ण अवधारणा है। वर्तमान मामले में जब अनुच्छेद 19(1)(g) किसी कंपनी को व्यवसाय करने का मौलिक अधिकार प्रदान करता है, तो वह "समान अवसर" के उक्त सिद्धांत का आह्वान करने की हकदार है। हम स्पष्ट कर सकते हैं कि यह सिद्धांत, हालांकि, जनहित के अधीन है। वैश्वीकरण की दुनिया में, प्रतिस्पर्धा एक महत्वपूर्ण कारक है जिसे ध्यान में रखा जाना चाहिए। "समान अवसर" का सिद्धांत एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है जो संविधान के अनुच्छेद 19(1)(g) में निहित है। ऐसा इसलिए है क्योंकि उक्त सिद्धांत एक ऐसा स्थान प्रदान करता है जिसके भीतर समान स्तर के प्रतिस्पर्धियों को व्यापक जनहित को ध्यान में रखते हुए बोली लगाने की अनुमति होती है। "वैश्वीकरण", संक्षेप में, व्यापार का उदारीकरण है। आज भारत ने लाइसेंस राज को समाप्त कर दिया है। 1992 के बाद शुरू किए गए आर्थिक सुधारों ने "वैश्वीकरण" की अवधारणा को जन्म दिया है। ऐसे निर्णय या कार्य जिनके परिणामस्वरूप असमान और भेदभावपूर्ण व्यवहार होता है, अनुच्छेद 19(1)(g) में निहित "समान अवसर" के सिद्धांत का उल्लंघन करेंगे। इसलिए, यह कहने का समय आ गया है कि अनुच्छेद 14, जो "समानता" के सिद्धांत का उल्लेख करता है, को एक अलग खंड के रूप में नहीं पढ़ा जाना चाहिए, बल्कि इसे अनुच्छेद 21 के साथ जोड़कर पढ़ा जाना चाहिए, जो जीवन के कई पहलुओं को समाहित करता है। "समान अवसर" के पूर्वोक्त सिद्धांत के कार्यान्वयन के मामले में एक और पहलू का उल्लेख आवश्यक है। लॉर्ड गोल्डस्मिथ के अनुसार, "कानून के शासन" के प्रति प्रतिबद्धता संसदीय लोकतंत्र का मूल है। "कानून के शासन" के महत्वपूर्ण तत्वों में से एक कानूनी निश्चितता है। अनुच्छेद 14 सरकारी नीतियों पर लागू होता है और यदि सरकार की नीति या कार्य, संविदात्मक मामलों में भी, "तर्कसंगतता" की कसौटी पर खरा नहीं उतरता है, तो ऐसा कार्य या निर्णय असंवैधानिक होगा।"

19. **मां बिंदा एक्सप्रेस कैरियर बनाम नॉर्थ-ईस्ट फ्रंटियर रेलवे के मामले में (2014) 3 एससीसी 760**, सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि हालांकि सार्वजनिक खरीद में निष्पक्षता और पारदर्शिता आवश्यक है, प्रशासनिक अधिकारियों को सार्वजनिक हित में सर्वोत्तम निर्णय लेने के लिए आवश्यक स्वायत्तता प्रदान की जानी चाहिए। निर्णय के प्रासंगिक अनुच्छेद नीचे उद्धृत हैं:

"8. राज्य और उसके निकायों द्वारा ठेके प्रदान करने से संबंधित मामलों में न्यायिक समीक्षा का दायरा इस न्यायालय के कई निर्णयों द्वारा निर्धारित किया गया है। हालाँकि ये निर्णय स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हैं कि ठेके के आवंटन के संबंध में सरकार और उसके निकायों द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्ति पीड़ित पक्ष के कहने पर न्यायिक समीक्षा के अधीन है, फिर भी ऐसी निविदाओं को आमंत्रित करने वाले नोटिस के जवाब में निविदा प्रस्तुत करना एक प्रस्ताव देने से अधिक कुछ नहीं है जिसे स्वीकार करने के लिए राज्य या उसकी एजेंसियां बाध्य नहीं हैं। इसलिए, निविदा प्रक्रिया में भाग लेने वाले बोलीदाता इस बात पर ज़ोर नहीं दे सकते कि उनकी निविदाएँ केवल इसलिए स्वीकार कर ली जाएँ क्योंकि दी गई निविदा उच्चतम या निम्नतम है, यह इस बात पर निर्भर करता है कि ठेका सार्वजनिक संपत्ति की बिक्री के लिए है या सरकार की ओर से कार्यों के निष्पादन के लिए। भाग लेने वाले बोलीदाताओं को केवल अपनी निविदाओं के मूल्यांकन के मामले में निष्पक्ष, समान और गैर-भेदभावपूर्ण व्यवहार का अधिकार है। यह भी पूरी तरह से स्थापित है कि ठेका प्रदान करना अनिवार्य रूप से एक वाणिज्यिक लेनदेन है जिसका निर्धारण ऐसे वाणिज्यिक निर्णय से संबंधित विचारों के आधार पर किया जाना चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि जिन विषयों के तहत निविदाएं आमंत्रित की जाती हैं, वे न्यायिक जांच के दायरे में नहीं आतीं, जब तक कि यह न पाया जाए कि उन्हें किसी विशेष निविदाकर्ता या निविदाकर्ताओं के वर्ग को लाभ पहुंचाने के लिए तैयार किया गया है। इसी प्रकार, निविदाएं आमंत्रित करने वाला प्राधिकारी भी वास्तविक और ठोस कारणों से बातचीत कर सकता है या छूट दे सकता है, बशर्ते ऐसी छूट निविदा प्रक्रिया को नियंत्रित करने वाली शर्तों के तहत स्वीकार्य हो।

9. यह कहना पर्याप्त है कि ठेके देने के मामले में सरकार और उसकी एजेंसियों को हर समय उचित और निष्पक्ष तरीके से काम करना होगा। इस सीमा तक, निविदाकर्ता के पास न्यायालय में प्रवर्तनीय अधिकार है जो यह जांच करने के लिए सक्षम है कि क्या पीड़ित पक्ष के साथ अनुचित व्यवहार किया गया है या जनहित को नुकसान पहुंचाने के लिए भेदभाव किया गया है। (सन्दर्भः मेरठ विकास प्राधिकरण बनाम प्रबंधन अध्ययन संघ [(2009) 6 एससीसी 171 : (2009) 2 एससीसी (सिविल) 803] और एयर इंडिया लिमिटेड बनाम कोचीन इंटरनेशनल एयरपोर्ट लिमिटेड [(2000) 2 एससीसी 617 : (2000) 1 एससीआर 505])"

(प्रभाव वर्धित)

20. **एफकॉन्स इंफ्रास्ट्रक्चर लिमिटेड बनाम नागपुर मेट्रो रेल कॉर्पोरेशन लिमिटेड (उपरोक्त)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि परियोजना स्वामी या नियोक्ता द्वारा निविदा की शर्तों और नियमों की व्याख्या का सम्मान किया जाना चाहिए, जब तक कि वह मनमाना या दुर्भावनापूर्ण न हो। स्वामी अपनी आवश्यकताओं को समझने के लिए सबसे बेहतर स्थिति में होता है, और इसलिए, न्यायिक समीक्षा कार्यवाही में न्यायालय द्वारा

उसकी व्याख्या पर पुनर्विचार नहीं किया जाना चाहिए। यह मामला प्रशासनिक निर्णयों में न्यायिक हस्तक्षेप के सीमित दायरे को पुष्ट करता है, और निविदा प्राधिकरण के विवेकाधिकार और निविदा की शर्तों और नियमों को तैयार करने के संबंध में उसकी विशेषज्ञता पर प्रकाश डालता है। निर्णय का प्रासंगिक अनुच्छेद नीचे उद्धृत किया गया है:

"15. हम यह जोड़ सकते हैं कि किसी परियोजना का स्वामी या नियोक्ता, निविदा दस्तावेज़ों का लेखक होने के नाते, उसकी आवश्यकताओं को समझने, उनका मूल्यांकन करने और उनके दस्तावेज़ों की व्याख्या करने के लिए सबसे उपयुक्त व्यक्ति है। संवैधानिक न्यायालयों को निविदा दस्तावेज़ों की इस समझ और मूल्यांकन को स्वीकार करना चाहिए, जब तक कि निविदा की शर्तों की समझ या मूल्यांकन या उनके अनुप्रयोग में कोई दुर्भावना या विकृति न हो। यह संभव है कि किसी परियोजना का स्वामी या नियोक्ता निविदा दस्तावेज़ों की ऐसी व्याख्या कर दे जो संवैधानिक न्यायालयों को स्वीकार्य न हो, लेकिन वह व्याख्या अपने आप में दी गई व्याख्या में हस्तक्षेप करने का कारण नहीं है।"

21. **सिल्पी कंस्ट्रक्शन्स कॉन्ट्रैक्टर्स बनाम भारत संघ** (उपरोक्त) मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने टाटा सेल्युलर (उपरोक्त), एफकॉन्स इन्फ्रास्ट्रक्चर लिमिटेड (उपरोक्त), एयर इंडिया लिमिटेड (उपरोक्त), रौनक इंटरनेशनल लिमिटेड (उपरोक्त) व अन्य उदाहरणों का हवाला देते हुए दोहराया कि निविदाओं का मूल्यांकन निविदा प्राधिकरण के अनन्य अधिकार क्षेत्र में आता है, और न्यायालयों को अपने निर्णय को प्राधिकरण के निर्णय से प्रतिस्थापित करने से बचना चाहिए, जब तक कि संवैधानिक या कानूनी प्रावधानों का स्पष्ट उल्लंघन न हो। यह निर्णय इस सिद्धांत को पुष्ट करता है कि प्रशासनिक प्राधिकारियों के पास निविदा मामलों का मूल्यांकन और निर्णय लेने का विवेकाधिकार है, और न्यायिक हस्तक्षेप केवल असाधारण परिस्थितियों में ही उचित है जहाँ निर्णय लेने की प्रक्रिया में त्रुटि हो। निर्णय के प्रासंगिक अनुच्छेद नीचे उद्धृत हैं:

"8. रौनक इंटरनेशनल लिमिटेड बनाम आई.वी.आर. कंस्ट्रक्शन लिमिटेड [रौनक इंटरनेशनल लिमिटेड बनाम आई.वी.आर. कंस्ट्रक्शन लिमिटेड, (1999) 1 एससीसी 492] में, इस न्यायालय ने माना कि उच्च न्यायालयों को निविदाओं के मामलों में तब तक हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए जब तक कि पर्याप्त जनहित शामिल न हो या लेनदेन दुर्भावनापूर्ण न हो।

9. एयर इंडिया लिमिटेड बनाम कोचीन इंटरनेशनल एयरपोर्ट लिमिटेड [एयर इंडिया लिमिटेड बनाम कोचीन इंटरनेशनल एयरपोर्ट लिमिटेड, (2000) 2 एससीसी 617] में, इस न्यायालय ने एक बार फिर राज्य और उसके उपकरणों से जुड़े अनुबंधों में न्यायिक हस्तक्षेप को उचित ठहराने के लिए अत्यधिक जनहित की आवश्यकता पर बल दिया। यह माना गया कि न्यायालयों को अपनी विवेकाधीन शक्तियों का प्रयोग करते समय बहुत सावधानी से आगे बढ़ना चाहिए और इन शक्तियों का प्रयोग केवल जनहित को बढ़ावा देने के लिए करना चाहिए, न कि केवल कानूनी मुद्दा बनाने के लिए।

******

11. मास्टर मरीन सर्विसेज (पी) लिमिटेड बनाम मेटकाफ एंड हॉजकिन्सन (पी) लिमिटेड [मास्टर मरीन सर्विसेज (पी) लिमिटेड बनाम मेटकाफ एंड हॉजकिन्सन (पी) लिमिटेड, (2005) 6 एससीसी 138] में यह माना गया था कि अनुबंधों के संबंध में न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करते समय, न्यायालय को मुख्य रूप से इस प्रश्न पर ध्यान देना चाहिए कि क्या निर्णय लेने की प्रक्रिया में कोई त्रुटि हुई है। न्यायिक समीक्षा के माध्यम से, न्यायालय सार्वजनिक निकायों या राज्य द्वारा किए गए अनुबंध की शर्तों के विवरण की जांच नहीं कर सकता है।

*****

14. मिशिगन रबर (इंडिया) लिमिटेड बनाम कर्नाटक राज्य [मिशिगन रबर (इंडिया) लिमिटेड बनाम कर्नाटक राज्य, (2012) 8 एससीसी 216] में यह माना गया था कि यदि राज्य या उसके उपकरण अनुबंध देने में उचित, निष्पक्ष और सार्वजनिक हित में कार्य करते हैं, तो न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप बहुत प्रतिबंधात्मक होगा इसलिए, न्यायालय सामान्यतः नीतिगत निर्णयों और राज्य या सार्वजनिक प्राधिकरणों द्वारा ठेका दिए जाने को चुनौती देने वाले मामलों में हस्तक्षेप नहीं करते।

15. एफकॉन्स इन्फ्रास्ट्रक्चर लिमिटेड बनाम नागपुर मेट्रो रेल कॉर्पोरेशन लिमिटेड [एफकॉन्स इन्फ्रास्ट्रक्चर लिमिटेड बनाम नागपुर मेट्रो रेल कॉर्पोरेशन लिमिटेड, (2016) 16 एससीसी 818] में यह माना गया कि निर्णय लेने की प्रक्रिया या प्रशासनिक प्राधिकरण के निर्णय से केवल असहमति संवैधानिक न्यायालय के हस्तक्षेप का कोई कारण नहीं है। संवैधानिक न्यायालय द्वारा निर्णय लेने की प्रक्रिया या निर्णय में हस्तक्षेप करने से पहले दुर्भावना, किसी को लाभ पहुँचाने की मंशा या मनमानी, अतार्किकता या विकृति की सीमा पार होनी चाहिए। किसी परियोजना का स्वामी या नियोक्ता, निविदा दस्तावेज़ों का लेखक होने के नाते, इसकी आवश्यकताओं को समझने, समझने और इसके दस्तावेजों की व्याख्या करने के लिए सबसे उपयुक्त व्यक्ति होता है। यह संभव है कि किसी परियोजना का स्वामी या नियोक्ता निविदा दस्तावेज़ों की ऐसी व्याख्या कर दे जो संवैधानिक न्यायालयों को स्वीकार्य न हो, लेकिन वह अपने आप में दी गई व्याख्या में हस्तक्षेप करने का कारण नहीं है।

*****

17. नगर निगम, उज्जैन बनाम बीवीजी (इंडिया) लिमिटेड [नगर निगम, उज्जैन बनाम बीवीजी (इंडिया) लिमिटेड, (2018) 5 एससीसी 462 : (2018) 3 एससीसी (सिविल) 291] में यह माना गया था कि संबंधित प्राधिकारी अनुबंध के तहत सौंपे जाने वाले कार्य के आधार पर सर्वोत्तम व्यक्ति या सर्वोत्तम कोटेशन खोजने की सर्वोत्तम स्थिति में है। न्यायालय प्राधिकारी को ऐसे अयोग्य व्यक्ति/कंपनी को कार्य करने के लिए चुनने के लिए बाध्य नहीं कर सकता। कार्य या माल की खराब गुणवत्ता से जनता को भारी कठिनाई हो सकती है और गलतियों को सुधारने, दोषों को दूर करने या कभी-कभी पूरे कार्य को दोबारा करने में भी भारी वित्तीय व्यय हो सकता है।

(प्रभाव वर्धित)

22. दोनों पक्षों द्वारा उद्धृत असंख्य निर्णयों के अवलोकन और विभिन्न निर्णयों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित अनुपातों को छानने पर, यह उभर कर आता है कि न्यायालय मनमानी या पक्षपात को रोकने के लिए न्यायिक समीक्षा की अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए सरकार या उसकी एजेंसियों द्वारा अनुबंधों के पुरस्कार

की जांच कर सकते हैं, लेकिन ऐसी शक्ति के प्रयोग में अंतर्निहित सीमाएं हैं। यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि पारंपरिक रूप से रिट कोर्ट निविदा दस्तावेजों में उल्लिखित नियमों और शर्तों में हस्तक्षेप नहीं करता है, जब तक कि प्रथम दृष्टया मनमानी, पक्षपात, तर्कहीनता या विकृति न हो। इस न्यायालय के समक्ष उद्धृत निर्णयों की एक श्रृंखला की जांच करने के बाद, निविदा मामलों में न्यायिक हस्तक्षेप के सिद्धांतों को निम्नानुसार तैयार किया जा सकता है:-

ए. वैश्वीकरण और प्रतिस्पर्धा की उभरती प्रवृत्ति निविदा मामलों में न्यायिक समीक्षा को न्यायिक संयम के बराबर मानती है। रिट न्यायालय अपील न्यायालय के रूप में कार्य नहीं करता, बल्कि निविदाकर्ता प्राधिकारी (निजी या सार्वजनिक) द्वारा निर्णय लेने में अपनाई गई कार्यप्रणाली की समीक्षा मात्र करता है क्योंकि उसके पास प्रशासनिक निर्णय को सही करने की विशेषज्ञता नहीं होती। किसी वाणिज्यिक निर्णय पर पहुँचने में वाणिज्यिक विचार सर्वोपरि होते हैं। प्राधिकारी निर्णय लेने के लिए अपना तरीका चुन सकता है। यदि रिट न्यायालय आवश्यक विशेषज्ञता के बिना प्रशासनिक निर्णय की समीक्षा की अनुमति देता है, तो इससे स्पष्ट अन्याय होगा। निविदा के मामले में समता और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत सामान्यतः दूर ही रहेंगे, जब तक कि स्पष्ट रूप से अवैधता न हो।

बी. निविदा आमंत्रण की शर्तों की न्यायिक जाँच नहीं की जा सकती क्योंकि निविदा आमंत्रण, प्रस्ताव आमंत्रण के समान है, जो अनुबंध के दायरे में आता है। निविदा दस्तावेजों के नियमों और शर्तों की जाँच करते समय, यह ध्यान रखना होगा कि निविदाकर्ता प्राधिकारियों द्वारा विशिष्ट नियम और शर्तें एक विशिष्ट लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए बनाई जाती हैं जो आम जनता के हित में प्राधिकारी के उद्देश्य की पूर्ति करेगी, भले ही ये शर्तें व्यक्तिगत आवेदकों के हितों की कीमत पर हों। निविदा शर्तों का अस्तित्व अनुचित या विकृत नहीं होना चाहिए, बल्कि उनका कोई सार्थक उद्देश्य होना चाहिए।

सी. निविदा बनाने वाले प्राधिकारी को अनुबंध की स्वतंत्रता होनी चाहिए। दूसरे शब्दों में, किसी प्रशासनिक निकाय के लिए प्रशासनिक क्षेत्र या अर्ध-प्रशासनिक क्षेत्र में अपने कार्य करने हेतु निष्पक्षता एक आवश्यक सहवर्ती शर्त है और इस स्वतंत्रता में तब तक कोई कमी नहीं की जाएगी जब तक कि यह जनहित के लिए हानिकारक न हो।

डी. निविदा बनाने वाला प्राधिकारी अपनी आवश्यकताओं को समझने और उनका मूल्यांकन करने वाला सर्वोत्तम व्यक्ति है और उसे अपनी आवश्यकता के अनुसार सर्वोत्तम बोली चुनने का अधिकार है। वह सद्भावनापूर्ण कारणों से कोई भी छूट देने या कोई प्रतिबंध लगाने के लिए स्वतंत्र है। यदि निविदा की शर्तें ऐसी छूट या प्रतिबंध की अनुमति देती हैं, तो वह प्रस्ताव को स्वीकार नहीं कर सकता, भले ही वह उच्चतम या निम्नतम क्यों न हो। कोई शर्त आवश्यक है या नहीं, यह नियोक्ता द्वारा लिया गया निर्णय है, जिसका सम्मान किया जाना चाहिए और उस निर्णय की वैधता पर रिट न्यायालय द्वारा प्रश्न नहीं उठाया जा सकता। प्रतिबंध की तर्कसंगतता का निर्धारण वस्तुनिष्ठ तरीके से आम जनता के हितों के दृष्टिकोण से किया जाना चाहिए, न कि उन व्यक्तियों के हितों के दृष्टिकोण से जिन पर प्रतिबंध लगाए गए हैं या अमूर्त विचार के आधार पर।

ई. कोई भी व्यक्ति सरकार के साथ व्यापार करने के मौलिक अधिकार का दावा नहीं कर सकता। यदि प्राधिकारी सर्वोत्तम व्यक्ति या सर्वोत्तम बोली प्राप्त करने के लिए अपने चयन के अधिकार का प्रयोग कर रहा है, तो

मौलिक अधिकारों के उल्लंघन का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19(1)(g) के साथ अनुच्छेद 14, व्यापार या व्यवसाय में गैर-भेदभाव के सिद्धांत को समाहित करता है। हालाँकि, यह अधिकार पूर्ण नहीं है और यथोचित रूप से लगाए गए प्रतिबंधों के अधीन है। समान अवसर का सिद्धांत भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19(1)(g) में अंतर्निहित एक महत्वपूर्ण अवधारणा है, लेकिन यह जनहित के अधीन है। उक्त सिद्धांत समान स्तर के प्रतिस्पर्धियों को व्यापक जनहित को ध्यान में रखते हुए बोली लगाने की अनुमति प्रदान करता है।

एफ. निर्णयों को रद्द करने से प्रशासन पर भारी प्रशासनिक बोझ पड़ सकता है और इससे बजट से बाहर व्यय में वृद्धि हो सकती है।

23. वर्तमान मामले में, एनसीआर क्षेत्र में खतरनाक पर्यावरणीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, प्रतिवादी प्राधिकारी ने एक पूर्व-योग्यता शर्त के साथ निविदा जारी की, जिसके तहत केवल एनसीआर क्षेत्र में स्थित या पावर प्लांट के ट्रक गेट (मुख्य द्वार) से 100 किमी के भीतर स्थित निर्माताओं को ही निविदा प्रक्रिया में भाग लेने की अनुमति दी गई। इससे यह सुनिश्चित होता है कि कच्चा माल पंजाब, हरियाणा और एनसीआर क्षेत्र जैसे आस-पास के क्षेत्रों से खरीदा जाए। यदि इस क्षेत्र से बाहर के निर्माताओं को अनुमति दी जाती, तो वे लक्षित क्षेत्रों के बजाय अपने स्थानीय क्षेत्रों से बायोमास प्राप्त कर सकते थे, जिससे एनसीआर से सटे कृषि क्षेत्रों में पराली जलाने को कम करने का उद्देश्य विफल हो जाता। इस प्रकार, यह प्रतिबंध स्थानीय प्रदूषण को रोकने के विशिष्ट पर्यावरणीय लक्ष्य की पूर्ति करता है।

24. इस न्यायालय का विचार है कि आक्षेपित शर्तें जनहित के विशिष्ट उद्देश्य से बनाई और शामिल की गई हैं और यह दर्शाने के लिए कोई सामग्री रिकॉर्ड में नहीं रखी गई है कि निविदा प्रक्रिया में याचिकाकर्ता को शामिल न करने के लिए उन्हें कैसे लक्षित किया गया है। यह दर्शाने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि आक्षेपित शर्त किसी विशेष बोलीदाता के पक्ष में बनाई गई है। आवश्यक विवरणों के अभाव में, हम याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के तर्कों को स्वीकार करने के लिए इच्छुक नहीं हैं।

25. प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि इस प्रतियोगिता में बारह फर्में शामिल थीं, जिनका चयन किया गया था और उन्होंने पेलेट्स की आपूर्ति का ऑर्डर भी दिया था। इसका अर्थ यह है कि, ऐसे बोलीदाता थे जो निविदा प्रक्रिया में भाग लेने में रुचि रखते थे और निविदा की शर्तों के अनुसार निकटता में निर्माता होने की निविदा की शर्तों का अनुपालन भी कर रहे थे।

निष्कर्ष

26. निविदा की शर्तें सरकार की नीति के अनुरूप भी हैं। ऐसी शर्तों को शामिल करने का उद्देश्य सरकार द्वारा बनाई गई नीति और इस संबंध में जारी किए गए परामर्श से स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है। प्रतिवादियों ने अपने प्रति-शपथपत्र में यह भी दावा किया है कि निविदा की पूर्व-योग्यता शर्त के रूप में इस तरह के कड़े खंड को शामिल करने का उद्देश्य एनसीआर क्षेत्र में पर्यावरणीय स्थिति की चिंताजनक स्थिति है। इससे यह संकेत मिलता है कि केवल एनसीआर क्षेत्र में या पावर स्टेशन के ट्रक गेट से 100 किमी के भीतर संयंत्र लगाने

वाले मौजूदा पेलेट निर्माताओं को निविदा प्रक्रिया में भाग लेने की अनुमति देने जैसी कठोर शर्तें लगाने का उद्देश्य किसानों द्वारा पराली जलाने को कम करना है, जो एनसीआर क्षेत्र में वायु प्रदूषण का लगातार और मूल कारण है।

(प्रभाव वर्धित)

27. इसलिए, निविदा में प्रतिबंधात्मक शर्त को मनमाना और भेदभावपूर्ण नहीं माना जा सकता। जनहित में किए जाने वाले कार्य के लिए सबसे उपयुक्त शर्तें/धाराएँ निर्धारित करना नियोक्ता के विवेक पर निर्भर है।

28. वर्तमान मामले में, प्रतिवादी संख्या 3 ने हरदुआगंज थर्मल पावर स्टेशन में बायोमास पेलेट की आपूर्ति के लिए 10 जुलाई, 2024 की तारीख वाली एक निविदा जारी की। निविदा की धारा 3(i) प्रतिभागियों पर एनसीआर क्षेत्र में लगातार खराब वायु प्रदूषण पर कड़ी लगाम लगाने के लिए प्रतिबंध लगाती है। यह खंड भारत सरकार के विद्युत मंत्रालय द्वारा जारी दिनांक 6 जनवरी, 2023 के संशोधित मॉडल अनुबंध से भी सहमत है। नीतिगत निर्णयों के अनुसार निविदा के नियम व शर्तें निर्धारित करना प्रतिवादियों का विशेषाधिकार है। इसलिए, हमें याचिकाकर्ता की ओर से प्रस्तुत तर्कों में कोई सार नहीं दिखता।

29. सार्वजनिक हित की कीमत पर निजी हितों की रक्षा के लिए न्यायिक समीक्षा के अधिकार का प्रयोग करने की अनुमति नहीं दी जाएगी। यह एक सुस्थापित सिद्धांत है कि संविदात्मक मामलों में न्यायिक समीक्षा सीमित है, विशेषकर जब निविदा प्राधिकारी का निर्णय सद्भावनापूर्ण हो और सार्वजनिक हित में लिया गया हो।

30. मौलिक अधिकारों का संरक्षक होने के नाते यह न्यायालय केवल मनमानी, अतार्किकता, दुर्भावना और पक्षपातपूर्ण मामलों में ही हस्तक्षेप करने के लिए बाध्य है, अन्यथा नहीं।

31. उपर्युक्त निर्णयों की श्रृंखला में प्रतिपादित कानून का सार न्यायिक संयम और सावधानी की आवश्यकता पर बल देता है, और यह कि केवल प्रबल जनहित ही राज्य संस्थाओं से जुड़े संविदात्मक मामलों में न्यायिक हस्तक्षेप को उचित ठहरा सकता है। न्यायालय को यह स्वीकार करना चाहिए कि निविदा जारी करने वाला प्राधिकारी इसकी आवश्यकताओं का सर्वोत्तम निर्णायक है और इसलिए, न्यायालय का हस्तक्षेप न्यूनतम होना चाहिए।

32. न्यायालय को एनसीआर क्षेत्र के बाहर के निर्माताओं को बाहर करने के उद्देश्य से दुर्भावनापूर्ण इरादे या पक्षपात का कोई सबूत नहीं मिला। बल्कि, शर्तें सरकारी नीति के प्रभावी और सुरक्षित कार्यान्वयन को सुनिश्चित करके जनहित को आगे बढ़ाने के लिए तैयार की गई थीं, जो जन सुरक्षा और कल्याण के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

33. तदनुसार, रिट याचिका खारिज की जाती है।

(2025) 4 ILRA 707

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल वाद

दिनांक: लखनऊ 22.04.2025

माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली

रिट सी संख्या - 1002939/2001

विनय कुमार **...याचिकाकर्ता**

बनाम

कलेक्टर/जिला मजिस्ट्रेट, बलरामपुर एवं अन्य **...प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री उमेश कुमार श्रीवास्तव, श्री मोहम्मद असलम खान, श्री शिशिर चंद्र

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

सी.एस.सी., श्री आर.एन. गुप्ता

अनुवादित

सिविल विधि - भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - रिट याचिका - वर्ष 2001 में भूमि आवंटन रद्द करने को चुनौती देते हुए - आवंटन का आदेश वर्ष 1986 में पारित किया गया था - एक आवासीय भवन के निर्माण के लिए, ग्राम पंचायत द्वारा और एसडीएम द्वारा विधिवत अनुमोदित -इसके बाद, याचिकाकर्ता को कब्ज़ा सौंप दिया गया - याचिकाकर्ता ने ₹2,50,000/- मकान के निर्माण पर खर्च किए - आवंटन रद्द करने की कार्यवाही शुरू की गई - आवंटन रद्द कर दिया गया - रिट याचिका - यह दलील दी गई कि आक्षेपित आदेश बिना कोई कारण बताओ नोटिस या सुनवाई का अवसर दिए पारित किया गया था - रिट याचिका - प्रवेश के चरण में, अदालत ने आक्षेपित आदेश पर रोक लगा दी और अधिकारियों को निर्देश दिया कि वे याचिकाकर्ता को उचित अवसर प्रदान करके कानून के अनुसार उचित कार्यवाही शुरू करें - अदालत ने पाया कि, अंतरिम आदेश के अनुसरण में, प्रतिवादियों ने नया आदेश पारित करने जैसी कोई कार्यवाही शुरू नहीं की - इसलिए, आक्षेपित आदेश स्पष्ट रूप से अवैध है और इसे रद्द किया जाना चाहिए - माना गया कि आक्षेपित आदेश स्पष्ट रूप से अवैध है और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन करता है - तदनुसार, रिट याचिका ने प्रतिवादियों को कानून के अनुसार सुनवाई का अवसर देने के बाद नया आदेश पारित करने की स्वतंत्रता देकर आक्षेपित आदेश को रद्द कर दिया। (पैरा सं. 7, 9, 10, 11)

रिट याचिका स्वीकृत। (ई-11)

<u>संदर्भित मामलों की सूची</u>: - कोई मामला संदर्भित नहीं किया गया

(माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली द्वारा प्रदत्त)

1. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री मोहम्मद आरिफ खान को सुना गया, जिनकी सहायता याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री मोहम्मद असलम खान और राज्य-प्रतिवादी के विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री राजीव श्रीवास्तव ने की।

2. आवंटन आदेश दिनांक 18.6.1986 के अनुसार, ग्राम पंडरी, परगना, तहसील और जिला बलरामपुर में स्थित प्लॉट संख्या 828-गामा एम में शामिल अन्य आबादी स्थल का 0.03 दशमलव क्षेत्रफल, उक्त गांव की भूमि प्रबंधन समिति द्वारा याचिकाकर्ता को आवासीय भवन के निर्माण हेतु निर्धारित प्रक्रिया का पालन करने के बाद आवंटित किया गया था, जिसे उप-मंडल मजिस्ट्रेट, बलरामपुर द्वारा विधिवत अनुमोदित किया गया था। याचिकाकर्ता को कब्जा दिया गया, जिस पर उसने 2,50,000/- रुपये खर्च करके अपने आवासीय भवन का निर्माण कराया।

3. दिनांक 15.6.2001 के आक्षेपित आदेश के माध्यम से, याचिकाकर्ता के पक्ष में किया गया भूमि आवंटन उसे मामले में पक्षकार बनाए बिना और उसे कोई कारण बताओ नोटिस या सुनवाई का अवसर दिए बिना रद्द कर दिया गया था।

4. प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा पारित दिनांक 15.6.2001 के आक्षेपित आदेश, जो रिट याचिका के अनुलग्नक-1 में शामिल है, का विरोध करते हुए, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का तर्क है कि आक्षेपित आदेश याचिकाकर्ता को नोटिस और सुनवाई का अवसर दिए बिना पारित किया गया है। इस संबंध में रिट याचिका के पैराग्राफ-2 में विशिष्ट उल्लेख किया गया है।

5. प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा दायर प्रति-शपथ पत्र में याचिकाकर्ता द्वारा रिट याचिका के पैराग्राफ-2 में किए गए उल्लेख के संबंध में कोई खंडन नहीं किया गया है।

6. रिट याचिका पर विचार करते हुए, इस न्यायालय ने दिनांक 29.10.2001 को एक आदेश पारित किया, जिसका प्रभावी अंश नीचे उद्धृत किया जा रहा है:-

"इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि आवंटन रद्द करने के आक्षेपित आदेश को पारित करने से पहले याचिकाकर्ता को कोई अवसर नहीं दिया गया था, दिनांक 15.6.2001 के आक्षेपित आदेश का क्रियान्वयन न्यायालय के अगले आदेश तक स्थगित रहेगा। हालाँकि, संबंधित प्राधिकारी को कानून के अनुसार याचिकाकर्ता को उचित अवसर प्रदान करने के बाद उचित कार्यवाही शुरू करने और आदेश पारित करने का अधिकार होगा। इस बीच, याचिकाकर्ता के आवासीय घर को ध्वस्त नहीं किया जाएगा।"

7. अंतरिम आदेश देते समय, यह देखा गया कि आवंटन रद्द करने के आक्षेपित आदेश को पारित करते समय याचिकाकर्ता को सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया था और आदेश के क्रियान्वयन को अगले आदेश तक स्थगित कर दिया गया था और संबंधित प्राधिकारी को कानून के अनुसार याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर प्रदान करने के बाद उचित कार्यवाही शुरू करने और आदेश पारित करने का अधिकार दिया गया था। यह भी आदेश दिया गया कि इस बीच, याचिकाकर्ता के आवासीय घर को ध्वस्त नहीं किया जाएगा।

8. इस न्यायालय के आदेश के अनुसरण में, प्रतिवादियों ने याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर देने के बाद नया आदेश पारित करने की कार्यवाही शुरू नहीं की।

9. याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर न दिए जाने की स्वीकृति के मद्देनजर, आक्षेपित आदेश स्पष्ट रूप से अवैध है और इसे रद्द किया जाना चाहिए। दिनांक 29.10.2001 को दिए गए अंतरिम आदेश में भी प्रतिवादियों को याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर देने के बाद एक नया आदेश पारित करने की स्वतंत्रता दी गई थी, लेकिन ऐसा नहीं किया गया।

10. इस मामले में स्वीकृत स्थिति के मद्देनजर कि याचिकाकर्ता को न तो कोई नोटिस दिया गया और न ही सुनवाई का अवसर दिया गया, आक्षेपित आदेश स्पष्ट रूप से अवैध है और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करता है।

11. तदनुसार, दिनांक 15.6.2001 का आक्षेपित आदेश (रिट याचिका का अनुलग्नक-1) प्रतिवादियों को विधि के अनुसार याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर प्रदान करने के पश्चात् नया आदेश पारित करने की स्वतंत्रता प्रदान करते हुए अपास्त किया जाता है।

12. उपरोक्त अवलोकन और निर्देश के साथ, रिट याचिका सफल होती है और स्वीकृत की जाती है।

(2025) 4 ILRA 709

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल वाद

दिनांक: लखनऊ 28.04.2025

माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया

के समक्ष

अनुच्छेद 227 के अंतर्गत मामला संख्या - 1281/2024

हरि शंकर कुशवाहा **...याचिकाकर्ता**

बनाम

ए.डी.जे. ई.सी. अधिनियम, लखनऊ एवं अन्य **...प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

अदनान अहमद

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

अनुराग शुक्ला

सिविल कानून-भारतीय संविधान, 1950- अनुच्छेद 227 - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908-आदेश 21 - नियम 97, 98 और 101- आदेश 21 नियम 97 सि.प्र.सं. के तहत आवेदन केवल उस अजनबी के लिए उपलब्ध है, जो अपने अधिकारों में संपत्तियों के कब्जे का दावा करता है, जो स्वतंत्र हैं और संपत्ति में अधिकार, शीर्षक या हित का दावा करने वाला तीसरा व्यक्ति है, जो आदेश 21 नियम 35 के तहत शक्तियों के विपरीत, डिक्रीटल संपत्ति की बहाली की मांग करता है, जो किसी भी व्यक्ति को हटाने का प्रावधान करता है जो डिक्री से बाध्य है --- वर्तमान मामले में प्रतिवादी किरायेदार के जवाब में किए गए अपने किसी भी बचाव को साबित करने में विफल रहा है श्रृंखला एससीसी मुकदमे ने निष्पादन से बचने के लिए एक के बाद एक कई हथकंडे अपनाए हैं--- आदेश 21 नियम 97, 98 और 101 सि.प्र.सं. के तहत कार्यवाही पोषणीय नहीं है और यह कानूनी प्रक्रिया का दुरुपयोग मात्र है--- निष्पादन न्यायालय ने मुद्दे तय करने का निर्देश देने में त्रुटि की है--- आक्षेपित आदेश रद्द किया जाता है।

याचिका स्वीकार की जाती है। (पैरा 7 और 8) (ई-15)

<u>संदर्भित मामलों की सूची</u>-:

1. ब्रह्मदेव चौधरी बनाम ऋषिकेश प्रसाद जायसवाल एवं अन्य (1997) 3 एससीसी 694
2. श्रीनाथ एवं अन्य बनाम राजेश एवं अन्य (1998) 4 एससीसी 543
3. सिल्वरलाइन फोरम प्राइवेट लिमिटेड लिमिटेड बनाम राजीव ट्रस्ट एवं अन्य (1998) 3 एससीसी 723
4. एनएसएस नारायण शर्मा एवं अन्य बनाम गोल्डस्टोन एक्सपोर्ट्स (प्रा.) लिमिटेड एवं अन्य (2002) 1 एससीसी 662
5. समीर सिंह एवं अन्य बनाम अब्दुल रब (2015) 1 एससीसी 379
6. पेरियाम्मल (मृत) बनाम एलआरएस एवं अन्य बनाम वी. राजमणि एवं अन्य (2025) लीगल ईगल एससी 274

(न्यायमूर्ति माननीय पंकज भाटिया द्वारा प्रदत्त)

अनुवादित

1. वर्तमान याचिका याचिकाकर्ता द्वारा अपर जिला न्यायाधीश, ई.सी. अधिनियम न्यायालय संख्या 4 लखनऊ द्वारा प्रकीर्ण वाद संख्या 257/2023 (जय प्रकाश सिंह बनाम हरि शंकर कुशवाहा) में पारित दिनांक 20.02.2024 के आदेश को चुनौती देते हुए दायर की गई है, जिसके तहत आदेश 21 नियम 101 सि.प्र.सं. के तहत मुद्दों को तैयार करने के निर्देश जारी किए गए थे। याचिकाकर्ता ने अपर जिला न्यायाधीश, ई.सी. अधिनियम, न्यायालय संख्या 4 के समक्ष लंबित प्रकीर्ण वाद संख्या 257/2023 (जय प्रकाश सिंह बनाम हरि शंकर कुशवाहा) आदेश 21 नियम 97, 98 और 101 सि.प्र.सं. के तहत संपूर्ण कार्यवाही को रद्द करने की भी मांग की है। निष्पादन वाद संख्या 23/2021 (हरि शंकर कुशवाहा बनाम जय प्रकाश सिंह) को समाप्त करने के लिए निर्देश मांगने के लिए एक और प्रार्थना की गई है।

2. संक्षेप में तथ्य यह है कि मकान मालिक, जो कि याचिकाकर्ता है, ने किराए के बकाया, बेदखली और हर्जाने के लिए किरायेदार जय प्रकाश सिंह के खिलाफ एससीसी वाद संख्या 26/2010 दायर किया है। दिनांक 01.02.2011 को, किरायेदार श्री जय प्रकाश सिंह ने एक लिखित बयान दायर किया, जिसमें यह आधार लिया गया कि उन्होंने मकान मालिक को 50,000/- रुपये की राशि उधार दी थी और दोनों पक्षों के बीच एक समझौता भी किया गया था, जो कि नोटरीकृत समझौता था। दिनांक 29.10.2013 को, एससीसी न्यायालय ने मकान मालिक द्वारा दायर मुकदमे को खारिज कर दिया, जिसके खिलाफ एससीसी पुनरीक्षण संख्या 1/2014 पेश किया गया था और पुनरीक्षण के लंबित रहने के दौरान, अदालत ने एक विशेषज्ञ के माध्यम से कथित समझौते पर हस्ताक्षरों का सत्यापन करने का निर्देश दिया, जिसमें यह पता चला कि कथित समझौते पर हस्ताक्षर जाली थे, इस प्रकार, 07.11.2016 को एससीसी पुनरीक्षण संख्या 1/2014 को अनुमति दी गई थी। एससीसी कोर्ट के 29.10.2013 के फैसले को खारिज कर दिया गया और मुकदमे को शीघ्रता से तय करने के लिए मामले को वापस भेज दिया गया। अंततः 08.02.2021 को एससीसी सूट का फैसला सुनाया गया और बेदखली का फैसला पारित किया गया, जिसके खिलाफ एससीसी पुनरीक्षण संख्या 5/2021 पेश किया गया और यह माननीय उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित है। उच्च न्यायालय ने अपने दिनांक 02.09.2021 के आदेश द्वारा स्पष्ट किया है कि कोई अंतरिम आदेश लंबित नहीं है और निष्पादन न्यायालय को निष्पादन हेतु आगे बढ़ने के निर्देश भी जारी किए गए थे, जिसे लंबित बताया गया है।

3. निष्पादन के लंबित रहने के दौरान, किरायेदार द्वारा शुरू में सि.प्र.सं. की धारा 47 के तहत आपत्तियां दायर की गई थीं, जो अभी भी लंबित बताई जा रही हैं। उक्त आपत्ति में, एससीसी वाद संख्या 26/2010 में पारित दिनांक 08.02.2021 के निर्णय और डिक्री को रद्द करने की प्रार्थना की गई थी। इसके बाद किरायेदार ने भा.द.सं. के आदेश 21 नियम 97, 98 और 101 के तहत एक आवेदन दायर किया। उक्त आवेदन में, जो अनुलग्नक संख्या 10 के रूप में रिकॉर्ड में है, मामले का पूरा इतिहास प्रस्तुत किया गया था और एससीसी वाद संख्या 26/2010 में पारित दिनांक 08.02.2021 के निर्णय और डिक्री को रद्द करने का अनुरोध किया गया था। याचिकाकर्ता ने आपत्ति दर्ज की और आवेदन को खारिज करने की मांग की, जिसे प्रकीर्ण वाद संख्या 257/2023 के रूप में पंजीकृत किया गया था, हालांकि, उक्त आवेदन पर कोई आदेश पारित नहीं किया गया

और सीधे आदेश 21 नियम 101 सि.प्र.सं. के तहत मुद्दों को तैयार करने के लिए एक आदेश पारित किया गया।

4. उक्त तथ्यों की पृष्ठभूमि में, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का तर्क यह है कि चूंकि याचिकाकर्ता एक निर्णय ऋणी था और उसने पूरे मुकदमे का विरोध किया था, इसलिए उसके कहने पर आदेश 21 नियम 97 सि.प्र.सं. के तहत आवेदन पोषणीय नहीं था और इस प्रकार, पूरी कार्यवाही रद्द करने योग्य है।

5. दूसरी ओर, प्रतिवादियों के अधिवक्ता ने सि.प्र.सं. के आदेश 21 नियम 97 के बल पर दृढ़ता से तर्क दिया कि आवेदन किसी भी पक्ष के कहने पर बनाए रखने योग्य है**। ब्रह्मदेव चौधरी बनाम ऋषिकेश प्रसाद जायसवाल और अन्य (1997) 3 एससीसी 694; श्रीमती वेद कुमारी अपने एलआर के माध्यम से डॉ विजय अग्रवाल बनाम दिल्ली नगर निगम अपने आयुक्त के माध्यम से (2023) लाइव लॉ (एससी) 712; श्रीनाथ और अन्य बनाम राजेश और अन्य (1998) 4 एससीसी 543; समीर सिंह और अन्य बनाम अब्दुल रब और अन्य (2015) 1 एससीसी 379; जिनी धनराजगीर एवं अन्य बनाम शिबू मैथ्यू एवं अन्य (2023) एससीसी ऑनलाइन एससी 643 के** मामलों में माननीय उच्चतम न्यायालय ने अवलंब लिया है। उक्त निर्णयों पर यह तर्क देने के लिए दबाव डाला जा रहा है कि यह आवश्यक नहीं है कि आदेश 21 नियम 97 सि.प्र.सं. के तहत आवेदन दायर करने और जारी रखने के लिए किसी व्यक्ति को मुकदमे से अपरिचित होना चाहिए।

6. दूसरी ओर, मकान मालिक के अधिवक्ता **पेरियाम्मल (मृत) द्वारा विधिक प्रतिनिधि एवं अन्य बनाम वी. राजमणि एवं अन्य आदि (2025) लीगल ईगल एससी 274** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर पूरा भरोसा करते हैं।

7. वर्जन में उठाए गए तर्क और जिस फैसले पर भरोसा किया गया है, उसे ध्यान में रखते हुए, विचार करने का एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या आदेश 21 नियम 97 सि.प्र.सं. के तहत आवेदन उस व्यक्ति के कहने पर बनाए रखने योग्य है जिसे किरायेदार माना गया है और जिसने कार्यवाही का विरोध किया था, वह एक निर्णय ऋणी था। **पेरियाम्मल (मृत)** (उपरोक्त) मामले में उक्त मुद्दे पर व्यापक रूप से विचार किया गया था। सर्वोच्च न्यायालय ने अपना विश्लेषण पैराग्राफ (ई) में दर्ज किया, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 47, आदेश 21 नियम 97, 98, 99, 100, 102 और 103 सि.प्र.सं. के दायरे पर विचार किया। आदेश 21 नियम 97 सि.प्र.सं. के तहत आवेदन की प्रकृति की व्याख्या करते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने **ब्रह्मदेव चौधरी (उपरोक्त), श्रीनाथ (उपरोक्त), सिल्वरलाइन फोरम प्राइवेट लिमिटेड बनाम राजीव ट्रस्ट और अन्य (1998) 3 एससीसी 723, एनएसएस नारायण सरमा और अन्य बनाम गोल्डस्टोन एक्सपोर्ट्स (पी) लिमिटेड और अन्य (2002) 1 एससीसी 662 और समीर सिंह और अन्य बनाम अब्दुल रब (2015) 1 एससीसी 379 के** मामलों में दिए गए निर्णयों पर विचार किया और अंततः यह माना गया कि आदेश 21 नियम 97 सि.प्र.सं. के तहत आवेदन केवल एक अजनबी के लिए उपलब्ध है, जो अपने अधिकारों में संपत्तियों के कब्जे का दावा करता है जो स्वतंत्र हैं और एक तीसरा व्यक्ति है जो संपत्ति में अधिकार, शीर्षक या हित का दावा करता है ताकि आदेश 21 नियम 35 के तहत

शक्तियों के विपरीत वादग्रस्त संपत्ति की बहाली की मांग की जा सके जो किसी भी व्यक्ति को हटाने के लिए निर्धारित करता है जो डिक्री से बाध्य है।

8. उक्त निर्णयों पर विचार करने और उनका अनुसरण करने के बाद, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा की गई प्रस्तुतियाँ स्वीकृति के योग्य हैं और स्वीकार की जाती हैं। वर्तमान मामले में यह भी ध्यान देने योग्य है कि प्रतिवादी किरायेदार, एससीसी सूट के जवाब में अपने किसी भी बचाव को स्थापित करने में विफल रहा है, उसने निष्पादन से बचने के लिए एक के बाद एक चालें चलने की कोशिश की है। आदेश 21 नियम 97, 98 और 101 सि.प्र.सं. के तहत कार्यवाही उसके कहने पर चलने योग्य नहीं थी और कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग के अलावा कुछ नहीं थी, इस तरह, निष्पादन न्यायालय ने मुद्दों को तैयार करने का निर्देश देने में गलती की है।

9. इस प्रकार, निष्पादन न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 20.02.2024 के आदेश के साथ-साथ आदेश 21 नियम 97, 98 और 101 सि.प्र.सं. के तहत दायर आवेदन को खारिज कर दिया जाना चाहिए और तदनुसार खारिज कर दिया गया है।

10. निष्पादन न्यायालय को **पेरियाम्मल (मृत)** (उपरोक्त) के मामले में आयोजित दो महीने की अवधि के भीतर डिक्री को निष्पादित करने का निर्देश दिया गया है। निष्पादन न्यायालय यह सुनिश्चित करने के लिए कार्यवाही करेगा कि वादग्रस्त संपत्ति का खाली और शांतिपूर्ण कब्जा याचिकाकर्ता को डिक्रीधारक के रूप में और यदि आवश्यक हो, तो पुलिस की सहायता से सौंप दिया जाए। उक्त प्रक्रिया आज से दो महीने की अवधि के भीतर पूरी कर ली जाएगी।

11. उक्त आदेश के अनुसार रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

(2025) 4 ILRA 712

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक वाद

दिनांक: इलाहाबाद 04.04.2025

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्रीवास्तव,

के समक्ष

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या - 551/2025

देवेंद्र पांडे **...आवेदक**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...प्रतिवादी**

आवेदक के अधिवक्ता:

अनुवादित

पंकज कुमार गुप्ता

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
जी.ए., नरेंद्र कुमार तिवारी

आपराधिक विधि - भारतीय विद्युत अधिनियम, 2003 - धारा 135 और 149 - समन के विरुद्ध आदेश - निरस्तीकरण - आवेदक ने कार्यवाही को चुनौती दी है जो मुख्यतः उसे 'प्रबंधक' की हैसियत से फंसाने और विद्युत अधिनियम, 2003 के तहत संस्थान के विरुद्ध प्राथमिकी दर्ज करने की प्रक्रियात्मक अवैधता पर आधारित है - ऐसा अभियोजन अनुरक्षणीय नहीं है, क्योंकि लागू प्रावधान है अधिनियम की धारा 149, जो व्यक्तियों के समूह या व्यक्तियों के संघ द्वारा किए गए अपराधों को नियंत्रित करती है, जैसे प्रबंधन समिति जो शैक्षणिक संस्थान चलाती है, धारा 135, 136 और 138 के तहत अपराधों को भी कवर करती है - इसलिए, ऐसे संस्थान के विरुद्ध प्राथमिकी केवल धारा 149 के तहत ही आगे बढ़नी चाहिए - दिनांक 02.05.2024 का संज्ञान आदेश, आवेदक को संस्थान के प्रबंधक के रूप में सम्मन करने वाला, स्थायी नहीं है क्योंकि यह धारा 149 के अनिवार्य अनुप्रयोग की अनदेखी करता है, और अतः निरस्त किया जाता है। (अनुच्छेद 6, 11, 14)
आवेदन स्वीकृत (ई-13)

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्रीवास्तव द्वारा प्रदत्त)

<u>छूट आवेदन संख्या निल/2025 पर आदेश</u>

1. प्रतिपक्षी संख्या 2 और 3 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री नरेन्द्र कुमार तिवारी ने छूट आवेदन के साथ प्रति-शपथपत्र प्रस्तुत किया, जिसे अभिलेख में दर्ज कर लिया गया है। इसमें उस अधिकारी की व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट मांगी गई है, जिसे 09.01.2025 के आदेश द्वारा व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने का निर्देश दिया गया है। आवेदन में उल्लिखित कारण उचित प्रतीत होते हैं।

2. छूट आवेदन एतद्द्वारा स्वीकार किया जाता है।

3. संबंधित अधिकारी को एतद्द्वारा व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट दी जाती है।

<u>धारा 482, दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत आवेदन पर आदेश</u>

1. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री पंकज कुमार गुप्ता, प्रतिपक्षी संख्या 2 और 3 के विद्वान अधिवक्ता श्री नरेन्द्र कुमार तिवारी और राज्य के विद्वान अपर महाधिवक्ता को सुना गया।

2. संपूर्ण कार्यवाही को तत्काल आवेदन के माध्यम से इस आधार पर चुनौती दी गई है कि भारतीय विद्युत अधिनियम, 2003 (जिसे आगे '2003 का अधिनियम' कहा जाएगा) की धारा 135 के तहत केस अपराध संख्या

0215/2019 में दर्ज की गई एफआईआर और विस्तृत जांच करने के बाद, दिनांक 24.06.2020 को आरोप पत्र पेश किया गया है, जिसके बाद 2003 के अधिनियम की धारा 135 के अनुसरण में दिनांक 02.05.2024 को अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, कोर्ट संख्या 9, प्रयागराज के विद्वान न्यायालय द्वारा अपराध का संज्ञान लिया गया है।

3. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि एफआईआर राज नारायण पांडे, पी.जी. नामक एक संस्थान के खिलाफ दर्ज की गई है। कॉलेज, बेरुई, गरापुर, थरवई, प्रयागराज में अधिनियम 2003 की धारा 135 के तहत मामला दर्ज किया गया है, लेकिन यह अधिनियम 2003 के विपरीत है, जिसमें कंपनियों द्वारा किए गए अपराध, यदि कोई हो, के लिए विशिष्ट प्रावधान है, जिसे अधिनियम 2003 की धारा 149(2)(ए) के तहत आगे समझाया गया है कि 'कंपनी' का अर्थ एक निगमित निकाय है और इसमें एक फर्म या व्यक्तियों का अन्य संघ शामिल है; और अधिनियम 2003 की धारा 149(2)(बी) के तहत कि एक फर्म के संबंध में 'निदेशक' का अर्थ फर्म में भागीदार है।

4. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि 2003 के अधिनियम की धारा 135, जिसके अंतर्गत आवेदक को आरोपित किया गया है, केवल किसी व्यक्ति द्वारा की गई बिजली चोरी से संबंधित है, क्योंकि व्यक्ति समूह या संस्था को 2003 के अधिनियम की धारा 149 के अंतर्गत स्पष्ट रूप से परिभाषित किया गया है।

5. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि संबंधित जांच अधिकारी द्वारा प्रस्तुत आरोप पत्र में राज नारायण पांडे, पी.जी. कॉलेज, बेरुई, गारापुर, थरवई, प्रयागराज के प्रबंधक देवेंद्र पांडे को आरोपित किया गया है, जिससे स्पष्ट है कि आवेदक का अभिप्राय केवल संस्थान का उप प्रबंधक होना है, जो कि रजिस्ट्रार सोसायटी ऑफ रजिस्ट्रेशन द्वारा जारी प्रमाण पत्र से स्पष्ट होता है, जिसका समय-समय पर नवीनीकरण किया गया है और इसे 15.12.2025 तक बढ़ा दिया गया है, जिसमें आवेदक का नाम क्रम संख्या 4 पर दर्शाया गया है और जिम्मेदारी 'उप-मंत्री' के रूप में उल्लिखित है।

6. संपूर्ण कार्यवाही को चुनौती देने के संबंध में आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्क पूरी तरह से अभियोजन पक्ष द्वारा आवेदक को 'प्रबंधक' की क्षमता में फंसाने और संस्थान यानी राज नारायण पांडे, पीजी कॉलेज, बेरुई, गारापुर, थरवई, प्रयागराज के खिलाफ एफआईआर दर्ज करने के तरीके पर आधारित हैं, विशेष रूप से 2003 के अधिनियम की धारा 135 के तहत, जो बनाए रखने योग्य नहीं है क्योंकि कानून के अनुसार निहित और अनिवार्य प्रावधान केवल 2003 के अधिनियम की धारा 149 है, जो व्यक्तियों के समूह, व्यक्तियों के संघ आदि द्वारा किए गए अपराध, यदि कोई हो, से संबंधित है और शैक्षणिक संस्थान निर्विवाद रूप से प्रबंधन समिति (व्यक्तियों का समूह, संघ) द्वारा चलाया जाता है।

7. इसके विपरीत, श्री नरेंद्र कुमार तिवारी, प्रतिपक्षी पक्ष 2 और 3 ने दलील दी कि चोरी के अपराध को केवल 2003 के अधिनियम की धारा 135 के तहत परिभाषित किया गया है और यदि किसी भी मामले में, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्क को स्वीकार किया जा सकता है, तो संबंधित अधिकारियों को 2003

के अधिनियम की धारा 152 के अनुसरण में अपराध को कम करने के लिए कोई भी अनुरोध लेने से रोक दिया जाएगा, जिसमें चोरी का अपराध बकाया राशि के साथ-साथ समझौता शुल्क का भुगतान करके समझौता योग्य है। श्री नरेंद्र कुमार तिवारी ने आगे दलील दी कि बिजली चोरी का अपराध केवल 2003 के अधिनियम की धारा 135 के तहत उपलब्ध है, न कि 2003 के अधिनियम की धारा 149 के तहत और इस तरह अगर किसी भी मामले में, एफआईआर शुरू की जानी है यानी केवल 2003 के अधिनियम की धारा 135 के तहत और कंपनी/व्यक्तियों के समूह/संबद्ध कुछ व्यक्तियों के समूह के खिलाफ एफआईआर करते समय 2003 के अधिनियम की धारा 149 के तहत निहितार्थ लागू नहीं होंगे।

8. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत प्रतिद्वन्द्वी दलीलों को सुनने के पश्चात, 2003 के अधिनियम की धारा 135 के तहत उल्लिखित स्पष्ट शब्दों की जांच करना आवश्यक है, जिसे नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:-

धारा 135. बिजली की चोरी- *(1) जो कोई बेईमानी से,--(क) किसी लाइसेंसधारी या आपूर्तिकर्ता की ओवरहेड, भूमिगत या पानी के नीचे की लाइनों या केबलों, या सर्विस तारों, या सेवा सुविधाओं के साथ, जैसा भी मामला हो, कोई कनेक्शन टैप करता है, बनाता है या बनवाता है; या*

(ख) मीटर से छेड़छाड़ करता है, छेड़छाड़ किया हुआ मीटर, करंट रिवर्सिंग ट्रांसफार्मर, लूप कनेक्शन या कोई अन्य उपकरण या विधि स्थापित या उपयोग करता है जो विद्युत प्रवाह के सटीक या उचित पंजीकरण, अंशांकन या मीटरिंग में हस्तक्षेप करता है या अन्यथा इस तरह से परिणाम देता है जिससे बिजली चोरी या बर्बाद होती है; या

(ग) किसी विद्युत मीटर, उपकरण, उपकरण, या तार को नुकसान पहुंचाता है या नष्ट करता है या उनमें से किसी को इस प्रकार क्षतिग्रस्त या नष्ट होने देता है जिससे बिजली की उचित या सटीक मीटरिंग में हस्तक्षेप होता है; या

(घ) छेड़छाड़ किए गए मीटर के माध्यम से बिजली का उपयोग करता है; या

(ङ) बिजली का उपयोग उस उद्देश्य के अलावा किसी अन्य उद्देश्य के लिए करता है जिसके लिए बिजली का उपयोग अधिकृत किया गया था, ताकि बिजली निकाली जाए, उसका उपभोग किया जाए या उसका उपयोग किया जाए, उसे कारावास से दंडित किया जाएगा, जिसकी अवधि तीन साल तक की सजा या जुर्माने या दोनों से:

बशर्ते कि ऐसे मामले में जहां निकाला गया, उपभोग किया गया या उपयोग किया गया या निकालने का प्रयास किया गया या उपभोग का प्रयास किया गया या उपयोग का प्रयास किया गया भार-- (i) 10 किलोवाट से अधिक न हो, पहली दोषसिद्धि पर लगाया गया जुर्माना ऐसी बिजली चोरी के कारण होने वाले वित्तीय लाभ के तीन गुना से कम नहीं होगा और दूसरी या बाद की दोषसिद्धि की स्थिति में लगाया गया जुर्माना ऐसी बिजली चोरी के कारण होने वाले वित्तीय लाभ के छह गुना से कम नहीं होगा;

(ii) 10 किलोवाट से अधिक हो, पहली दोषसिद्धि पर लगाया गया जुर्माना ऐसी बिजली चोरी के कारण होने वाले वित्तीय लाभ के तीन गुना से कम नहीं होगा और दूसरी या बाद की दोषसिद्धि की स्थिति में, सजा छह

महीने से कम अवधि के कारावास की होगी, लेकिन जो पांच साल तक बढ़ सकती है और बिजली की ऐसी चोरी के कारण होने वाले वित्तीय लाभ के छह गुना से कम नहीं जुर्माने के साथ:

इसके अलावा यह भी प्रावधान है कि किसी व्यक्ति की दूसरी और बाद की दोषसिद्धि की स्थिति में जहां निकाला गया, उपभोग किया गया या उपयोग किया गया या निकालने का प्रयास किया गया या उपभोग का प्रयास किया गया या उपयोग का प्रयास किया गया भार 10 किलोवाट से अधिक हो, ऐसे व्यक्ति को भी किसी भी अवधि के लिए बिजली की आपूर्ति प्राप्त करने से वंचित किया जाएगा, जो तीन महीने से कम नहीं होगी, लेकिन दो साल तक बढ़ सकती है और किसी अन्य स्रोत या उत्पादन केंद्र से उस अवधि के लिए बिजली की आपूर्ति प्राप्त करने से भी वंचित किया जाएगा:

यह भी प्रदान किया गया है कि यदि यह साबित हो जाता है कि उपभोक्ता द्वारा बिजली के निष्कर्षण, उपभोग या उपयोग के लिए कोई कृत्रिम साधन या साधन मौजूद हैं, जो बोर्ड या लाइसेंसधारी या आपूर्तिकर्ता द्वारा अधिकृत नहीं हैं, तो यह माना जाएगा, जब तक कि इसके विपरीत साबित न हो जाए, कि ऐसे उपभोक्ता द्वारा बिजली का कोई निष्कर्षण, उपभोग या उपयोग बेईमानी से किया गया है।

(1ए) इस अधिनियम के प्रावधानों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, लाइसेंसधारी या आपूर्तिकर्ता, जैसा भी मामला हो, बिजली की ऐसी चोरी का पता चलने पर तुरंत बिजली की आपूर्ति काट सकता है:

बशर्ते कि लाइसेंसधारी या आपूर्तिकर्ता का केवल ऐसा अधिकारी, जिसे समुचित आयोग द्वारा इस प्रयोजन के लिए अधिकृत किया गया हो या लाइसेंसधारी या आपूर्तिकर्ता का कोई अन्य अधिकारी, जैसा भी मामला हो, जो अधिकृत पद से उच्च पद का हो, बिजली की आपूर्ति लाइन काटेगा:

बशर्ते इसके अतिरिक्त, लाइसेंसधारी या आपूर्तिकर्ता का ऐसा अधिकारी, जैसा भी मामला हो, ऐसे कनेक्शन काटे जाने के समय से चौबीस घंटे के भीतर अधिकार क्षेत्र वाले पुलिस थाने में ऐसे अपराध के किए जाने से संबंधित लिखित शिकायत दर्ज कराएगा:

परंतु यह भी कि लाइसेंसधारी या आपूर्तिकर्ता, जैसा भी मामला हो, इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार निर्धारित राशि या बिजली शुल्क जमा करने या भुगतान करने पर, इस खंड के दूसरे परंतुक में निर्दिष्ट शिकायत दर्ज करने के दायित्व पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे जमा या भुगतान के अड़तालीस घंटे के भीतर बिजली की आपूर्ति लाइन बहाल करेगा।]

(2) 2 [राज्य सरकार द्वारा इस संबंध में अधिकृत लाइसेंसधारी या आपूर्तिकर्ता का कोई भी अधिकारी]--(क) किसी ऐसे स्थान या परिसर में प्रवेश कर सकता है, निरीक्षण कर सकता है, तोड़ सकता है और तलाशी ले सकता है जिसमें उसके पास यह विश्वास करने का कारण हो कि बिजली का अनधिकृत रूप से उपयोग किया गया है या किया जा रहा है;

(ख) ऐसे सभी उपकरणों, यंत्रों, तारों और किसी अन्य सुविधाकर्ता या वस्तु की तलाशी ले सकता है, जब्त कर सकता है और हटा सकता है, बिजली के अनधिकृत उपयोग के लिए प्रयुक्त;

(ग) किसी लेखा-पुस्तक या दस्तावेज की जांच या अभिग्रहण कर सकेगा, जो उसकी राय में उप-धारा (1) के अधीन अपराध के संबंध में किसी कार्यवाही के लिए उपयोगी या सुसंगत होगा और उस व्यक्ति को, जिसकी अभिरक्षा से ऐसी लेखा-पुस्तक या दस्तावेज अभिगृहीत किए गए हैं, अपनी उपस्थिति में उनकी प्रतियां बनाने या उनसे उद्धरण लेने की अनुमति दे सकेगा।

(3) तलाशी के स्थान का अधिभोगी या उसकी ओर से कोई भी व्यक्ति तलाशी के दौरान उपस्थित रहेगा और ऐसी तलाशी के दौरान जब्त की गई सभी चीजों की एक सूची तैयार की जाएगी और उसे ऐसे अधिभोगी या उस व्यक्ति को सौंपा जाएगा जो सूची पर हस्ताक्षर करेगा:

परंतु सूर्यास्त और सूर्योदय के बीच किसी भी घरेलू स्थान या घरेलू परिसर का निरीक्षण, तलाशी और जब्ती ऐसे परिसर में रहने वाले वयस्क पुरुष सदस्य की उपस्थिति के अलावा नहीं की जाएगी।

(4) तलाशी और जब्ती से संबंधित दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के प्रावधान, जहां तक हो सके, इस अधिनियम के तहत तलाशी और जब्ती पर लागू होंगे।

9. 2003 के अधिनियम की धारा 149, जिसे नीचे भी पुन: प्रस्तुत किया गया है:-

***"धारा 149. कंपनियों द्वारा अपराध**- (1) जहां इस अधिनियम के तहत कोई अपराध किसी कंपनी द्वारा किया गया है, वहां प्रत्येक व्यक्ति जो अपराध के समय कंपनी के कारोबार के संचालन के लिए कंपनी का प्रभारी और उसके प्रति उत्तरदायी था, साथ ही कंपनी भी अपराध करने का दोषी मानी जाएगी और उसके विरुद्ध कार्यवाही की जा सकेगी और तदनुसार दंडित किया जा सकेगा: बशर्ते कि इस उप-धारा में निहित कोई भी बात ऐसे किसी व्यक्ति को किसी भी दंड का भागी नहीं बनाएगी यदि वह साबित कर देता है कि अपराध उसकी जानकारी के बिना किया गया था या उसने ऐसे अपराध को रोकने के लिए सभी उचित तत्परता बरती थी।*

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध किसी कंपनी द्वारा किया गया है और यह साबित हो जाता है कि वह अपराध कंपनी के किसी निदेशक, प्रबंधक, सचिव या अन्य अधिकारी की सहमति या मिलीभगत से किया गया है या उसकी ओर से किसी उपेक्षा के कारण हुआ है, वहां ऐसा निदेशक, प्रबंधक, सचिव या अन्य अधिकारी भी ऐसा अपराध करने का दोषी समझा जाएगा और तदनुसार अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने और दंडित किए जाने का भागी होगा। स्पष्टीकरण- इस धारा के प्रयोजनों के लिए- (क) "कंपनी" से कोई निगमित निकाय अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत कोई फर्म या व्यक्तियों का अन्य संघ भी है; और (ख) किसी फर्म के संबंध में "निदेशक" से उस फर्म में भागीदार अभिप्रेत है।

10. साथ ही, प्रतिपक्षी संख्या 2 और 3 के विद्वान वकील श्री नरेन्द्र कुमार तिवारी द्वारा अधिनियम 2003 की धारा 152 के क्रियान्वयन के संबंध में उठाए गए तर्क, जो कि यदि अधिनियम 2003 की धारा 149 के तहत कोई एफआईआर दर्ज की जाती है, तो उचित प्राधिकारियों को आगे बढ़ने के लिए हथकड़ी लगाने के रूप में हो सकता है, और इस प्रकार अधिनियम 2003 की धारा 152 को भी यहां नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:-

***"धारा 152. अपराधों का शमन**- (1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में निहित किसी भी बात के होते हुए भी, उपयुक्त सरकार या इस संबंध में उसके द्वारा अधिकृत कोई अधिकारी किसी भी उपभोक्ता या व्यक्ति*

से, जिसने इस अधिनियम के तहत दंडनीय बिजली की चोरी का अपराध किया है या जिसके द्वारा अपराध किए जाने का उचित संदेह है, नीचे दी गई तालिका में निर्दिष्ट अपराध के शमन के रूप में धनराशि स्वीकार कर सकता है:

सेवा की प्रकृति	निम्न के लिए प्रति किलोवाट (केडब्ल्यू)/हार्सपावर (एचपी) या उसके भाग के लिए शमन के लिए धनराशि की दर उच्च दाब (एचटी) के लिए प्रति किलो वोल्ट एम्पीयर (केवीए) आपूर्ति और अनुबंधित मांग की दर:
1. औद्योगिक सेवा	बीस हज़ार रुपये;
2. वाणिज्यिक सेवा	दस हज़ार रुपये;
3. कृषि सेवा	दो हज़ार रुपये;
4. अन्य सेवाएँ	चार हज़ार रुपये:

परंतु समुचित सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, उपरोक्त सारणी में निर्दिष्ट दरों में संशोधन कर सकती है।

(2) उप-धारा (1) के अनुसार धनराशि का भुगतान करने पर, उस अपराध के संबंध में हिरासत में लिए गए किसी भी व्यक्ति को रिहा कर दिया जाएगा और ऐसे उपभोक्ता या व्यक्ति के विरुद्ध किसी भी आपराधिक न्यायालय में कोई कार्यवाही शुरू नहीं की जाएगी या जारी नहीं रखी जाएगी।

(3) समुचित सरकार या इस निमित्त सशक्त किसी अधिकारी द्वारा उप-धारा (1) के अनुसार किसी अपराध के शमन हेतु धनराशि की स्वीकृति, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (2 का) की धारा 300 के अर्थ में दोषमुक्ति के समान मानी जाएगी। 1974)।

(4) उपधारा (1) के अधीन किसी अपराध का शमन किसी व्यक्ति या उपभोक्ता के लिए केवल एक बार ही किया जाएगा।

11. अधिनियम 2003 की धारा 135 के अवलोकन से, यद्यपि इसमें किसी व्यक्ति या व्यक्ति समूह के संबंध में कोई विशेष उल्लेख नहीं है, यह केवल बिजली की चोरी से संबंधित है, लेकिन व्यक्ति और कुछ लोगों के समूह/व्यक्तियों के संघ के संबंध में स्पष्टीकरण अधिनियम 2003 की धारा 149 के अंतर्गत बाद में उपलब्ध अनुभाग में स्पष्ट किया गया है, जो कंपनियों द्वारा किए गए अपराधों को स्पष्ट करता है। 'अपराध' शब्द 2003 के अधिनियम के अध्याय XIV के तहत उपलब्ध है, जिसमें 2003 के अधिनियम की धारा 135 के तहत 'बिजली की चोरी' और 2003 के अधिनियम की धारा 136 के तहत 'बिजली की लाइनों और सामग्रियों की चोरी' अपराध हैं, जिन्हें 2003 के अधिनियम की धारा 138 के तहत भी निपटाया गया है और इस प्रकार तीन धाराओं यानी 2003 के अधिनियम की धारा 135, 136 और 138 के तहत उल्लिखित अपराधों को मोटे तौर पर 2003 के अधिनियम की धारा 149 के तहत केवल एक शब्द में उल्लेख किया गया है यानी 'अपराध' जो प्रकृति में बहुवचन है और 2003 के अधिनियम की धारा 149 से पहले उल्लिखित सभी अपराधों को शामिल करता है। कानून द्वारा पेश किए गए अधिनियम का गठन लगभग स्पष्ट है, प्रत्येक कानून में जिसे 'ए से जेड / 1 से

100' तक पढ़ा जाना है। समान शब्दों के पुनरुत्पादन को प्रत्येक खंड में निपटाए जाने की आवश्यकता नहीं है और कानून के छात्र होने के नाते, यह प्रत्येक व्यक्ति का दायित्व और कर्तव्य है कि वह अधिनियम में उपलब्ध कानून की बारीक रेखाओं को आरोही क्रम में ध्यान से पढ़े। 'अपराध' शब्द जो कि 2003 के अधिनियम की धारा 149 के तहत बहुवचन है, 2003 के अधिनियम की धारा 149 से पहले उल्लिखित सभी अपराधों से संबंधित है जो 2003 के अधिनियम की धारा 135, 136 और 138 के तहत उपलब्ध है, जिसका अर्थ है कि कंपनियों/निगम निकाय के निहितार्थ में एक फर्म या व्यक्तियों का अन्य संघ शामिल है जो कि तत्काल मामले में पूरी तरह से लागू होता है कि एक बार किसी संस्थान के खिलाफ एफआईआर दर्ज होने के बाद जो व्यक्तियों के संघ की श्रेणी में आता है, वह सीधे 2003 के अधिनियम की धारा 149 को ही आकर्षित करता है।

12. जहां तक प्रतिपक्षी सं जहां तक 2003 के अधिनियम की धारा 152 के उल्लंघन में बाधा के संबंध में धारा 2 और 3 का संबंध है, यह उपलब्ध नहीं है और 2003 के अधिनियम की धारा 152 के अनुसार यह केवल 2003 के अधिनियम की धारा 135 के संबंध में ही लागू होगी। यदि ऐसा है, तो 2003 के अधिनियम की धारा 136 और 138 के रूप में उल्लिखित अन्य धाराएं 2003 के अधिनियम की धारा 152 के दायरे से बाहर होंगी। 2003 के अधिनियम की धारा 152 के तहत कार्यवाही के लिए उपलब्ध दायरा उन सभी धाराओं को आकर्षित करता है जिनमें अपराध का उल्लेख 2003 के अधिनियम में ठीक धारा 135, 136, 138 के साथ-साथ 2003 के अधिनियम की धारा 149 के तहत भी किया गया है। 13. अधिनियम 2003 की धारा 135 के तहत एफआईआर दर्ज करना कानून के अधिदेश के अनुरूप नहीं था और कथित प्रबंधक-आवेदक के खिलाफ संबंधित न्यायालय के समक्ष आरोप-पत्र पेश करने के रूप में आगे की कार्यवाही, विशेष रूप से अधिनियम 2003 की धारा 135 के तहत, जिस पर संबंधित विद्वान न्यायालय द्वारा संज्ञान लिया गया है, कानून की नजर में भी पोषणीय नहीं है।

14. उपर्युक्त तथ्यों और परिस्थितियों के मद्देनजर, चूंकि आवेदक का उस संस्थान का 'प्रबंधक' होना, जिसके खिलाफ एफआईआर दर्ज की गई है, वैधता के सभी सिद्धांतों के विपरीत है और अधिनियम 2003 की धारा 149 के आकर्षण पर संबंधित विद्वान न्यायालय द्वारा दिनांक 02.05.2024 के आदेश को पारित करते समय विचार नहीं किया गया है, जिसके माध्यम से आवेदक को समन जारी करते समय अपराध का संज्ञान लिया गया है, इसे रद्द किया जाना चाहिए।

15. उपर्युक्त चर्चाओं के आलोक में, भारतीय विद्युत अधिनियम, 2003 की धारा 135 के अंतर्गत मुकदमा अपराध संख्या 215/2019 से उत्पन्न संपूर्ण कार्यवाही एतद्द्वारा निरस्त एवं अपास्त की जाती है।

16. तदनुसार, धारा 482 द.प्र.सं. के अंतर्गत वर्तमान आवेदन स्वीकार किया जाता है।

17. तथापि, यह स्पष्ट किया जाता है कि यह आदेश संबंधित प्राधिकारियों को भारतीय विद्युत अधिनियम, 2003 के अंतर्गत उपलब्ध विशिष्ट धाराओं के अंतर्गत, यदि आवश्यक हो, आवेदक के विरुद्ध नए सिरे से कार्यवाही करने से नहीं रोकेगा।

(2025) 4 ILRA 718

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक वाद

दिनांक: इलाहाबाद 05.04.2025

माननीय न्यायमूर्ति राजीव गुप्ता

माननीय न्यायमूर्ति समित गोपाल

के समक्ष

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या - 3099/2024

अभिषेक मिश्रा उर्फ पिंटू **...आवेदक**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...प्रतिवादी**

आवेदक के अधिवक्ता:
श्री विजय कुमार पांडे

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
श्री अशोक कुमार गुप्ता, जी.ए., श्री सुनील वशिष्ठ

अनुवादित

(क) आपराधिक विधि - परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 - धारा 138 और 143 - अभियोजन पक्ष के अभाव में शिकायत खारिज करना - पुनरीक्षण बनाम अपील की स्वीकार्यता पर वृहद पीठ को संदर्भ - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 203, 204, 256(1), 378(4) और 397 - क्या समन जारी होने से पहले शिकायत खारिज करना बरी करने के बराबर है - जहाँ द.प्र.सं. की धारा 204 के तहत कोई समन आदेश पारित होने नहीं पर, शिकायत धारा 203 द.प्र.सं. के अंतर्गत खारिज की जाती है, और धारा 256(1) के अंतर्गत दोषमुक्त नहीं की जाती। द.प्र.सं. - धारा 256(1) द.प्र.सं. लागू नहीं होती जहाँ शिकायत धारा 203 द.प्र.सं. के अंतर्गत समन चरण से पहले खारिज कर दी गई हो - धारा 378(4) के अंतर्गत अपील, द.प्र.सं. लागू नहीं होती जहाँ शिकायत धारा 203 द.प्र.सं. के अंतर्गत खारिज कर दी गई हो - केवल उपाय पुनरीक्षण है - शिकायत समन से पहले, संज्ञान-प्रारम्भिक चरण में खारिज कर दी गई - संदर्भ का उत्तर नहीं दिया गया क्योंकि मूलभूत तथ्य कानूनी मुद्दे को आकर्षित नहीं करते थे - धारा 203 के अंतर्गत शिकायत खारिज कर दी गई द.प्र.सं. समन

जारी होने से पहले धारा 256 के तहत बरी होना नहीं माना जाएगा द.प्र.सं. - उपाय पुनरीक्षण में है, अपील में नहीं। (पैरा - 1,2,5,10,11,13)

धारा 138 एन.आई. अधिनियम के तहत शिकायत समन जारी होने से पहले अपर्याप्त सामग्री के कारण खारिज कर दी गई - पुनरीक्षण न्यायालय ने आदेश को रद्द कर दिया और मामले को वापस भेज दिया - आवेदक ने विनय कुमार मामले में समन्वय पीठ के निर्णय का हवाला देते हुए पुनरीक्षण की धारणीयता को चुनौती दी। (पैरा - 4 से 8)

अवधारित किया गया: - चूँकि 13.03.2019 का आदेश समन जारी होने से पहले का है और इस प्रकार यह द.प्र.सं. की धारा 203 के तहत पारित एक आदेश है, वर्तमान मामले में धारा 256 द.प्र.सं. का चरण अभी तक नहीं उठा है। प्रश्न यह है कि क्या एन.आई. अधिनियम की धारा 138 के तहत शिकायत को खारिज करने का आदेश अभियोजन के अभाव में किया गया कार्य द.प्र.सं. की धारा 256(1) के अंतर्गत दोषमुक्ति के समान होगा और क्या इसे द.प्र.सं. की धारा 378(4) के अंतर्गत अपील में चुनौती दी जा सकती है या यह आदेश द.प्र.सं. की धारा 397 के अंतर्गत पुनरीक्षण योग्य है, यह प्रश्न वर्तमान मामले में उत्पन्न नहीं होता। (पैरा-11)
संदर्भ पर विचार-विमर्श की आवश्यकता नहीं है, इसे उचित पीठ को लौटा दिया जाता है और मामले को उसके समक्ष सूचीबद्ध करने का निर्देश दिया जाता है। (ई-7)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u> -

1. विनय कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य आपराधिक पुनरीक्षण सं. 3426/2005

(न्यायमूर्ति समित गोपाल के द्वारा प्रदत्त)

1. विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिनांक 13.03.2024 के आदेश के पैराग्राफ 13 में एक संदर्भ दिया गया है, जो इस प्रकार है:-

"13. इस मामले के इस दृष्टिकोण में, न्यायिक औचित्य की मांग है कि इस मामले को इन प्रश्नों पर निर्णय लेने के लिए एक बड़ी पीठ को भेजा जाए:
(i) क्या अभियोजन के अभाव में अधिनियम, 1881 की धारा 138 के तहत शिकायत को खारिज करना द.प्र.सं. की धारा 256(1) के तहत बरी करने के बराबर होगा, और इसे द.प्र.सं. की धारा 378(4) के तहत अपील में चुनौती दी जा सकती है, या क्या वह आदेश द.प्र.सं. की धारा 397 के तहत संशोधित किया जा सकता है?
(ii) क्या विनय कुमार (उपरोक्त) के मामले में यह मानकर सही ढंग से निर्णय दिया गया है कि अधिनियम, 1881 की धारा 138 के तहत शिकायत को खारिज करने के खिलाफ अपील की जा सकती है 378(4) द.प्र.सं., पुनरीक्षण नहीं?"

2. दिनांक 18.04.2024 के आदेश के तहत माननीय मुख्य न्यायाधीश ने मामले में वर्तमान वृहद पीठ का गठन किया है।

3. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री विजय कुमार पांडे, प्रतिपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री सुनील वशिष्ठ, श्री अशोक कुमार गुप्ता, तथा राज्य/प्रतिपक्षी संख्या 1 के विद्वान अधिवक्ता श्री शशि शेखर तिवारी एवं श्री जितेंद्र कुमार जायसवाल के तर्क सुने और अभिलेखों का अवलोकन किया।

4. विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष संपूर्ण मामला अपर सत्र न्यायाधीश/एफ.टी.सी. (महिलाओं के विरुद्ध अपराध), जौनपुर द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 67/2019 (शिवनाथ पांडे बनाम अभिषेक मिश्रा उर्फ पिंटू) में पारित आदेश दिनांक 26.10.2019 और अपर सिविल जज (जे.डी.)/न्यायिक मजिस्ट्रेट-तृतीय, जौनपुर द्वारा मुकदमा संख्या 311/2022 (शिवनाथ पांडे बनाम अभिषेक) में परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 (जिसे आगे "एन.आई. अधिनियम" कहा जाएगा) की धारा 138 के अंतर्गत पारित आदेश दिनांक 18.08.2023 को चुनौती देने का था।

5. आदेश दिनांक 13.03.2019 के तहत शिकायतकर्ता द्वारा दायर एक शिकायत को अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट-द्वितीय, जौनपुर द्वारा धारा 138 एन.आई. अधिनियम के अंतर्गत इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि मामला वर्ष 2018 से लंबित है, लेकिन 01 वर्ष बीत जाने के बावजूद समन के लिए कोई तर्क नहीं दिया जा रहा है। अभिलेखों में अपर्याप्त साक्ष्य हैं और कार्यवाही के लिए कोई आधार नहीं दिखता है। इस प्रकार, पर्याप्त सामग्री की अनुपलब्धता के कारण, शिकायत खारिज किए जाने योग्य है। इस प्रकार न्यायालय ने सामग्री की अपर्याप्तता के आधार पर उक्त शिकायत को खारिज कर दिया।

6. उक्त आदेश के विरुद्ध दिनांक 13.03.2019 को एक आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 67/2019 (शिवनाथ पांडे बनाम अभिषेक मिश्रा @ पिंटू) दायर की गई थी, जिसे दिनांक 26.10.2019 के निर्णय और आदेश द्वारा अनुमति दी गई थी और उसमें दिनांक 13.03.2019 के आक्षेपित आदेश को इस निर्देश के साथ अपास्त कर दिया गया था कि शिकायतकर्ता को सुनवाई का अवसर दिया जाए और मामले का निर्णय उसके गुण-दोष के आधार पर किया जाए।

7. तत्पश्चात दिनांक 18.08.2023 के आदेश द्वारा अभियुक्त-आवेदक को धारा 138 एन.आई. अधिनियम के तहत अपराध के लिए तलब किया गया था।

8. इस प्रकार उक्त दोनों आदेश वर्तमान याचिका में चुनौती का विषय थे।

9. विद्वान एकल न्यायाधीश ने दिनांक 13.03.2024 को उपरोक्त प्रश्न निर्धारित करते हुए तथा मामले को एक वृहद पीठ को संदर्भित करते हुए एक आदेश पारित किया। अतः यह मामला इस वृहद पीठ के समक्ष है। आदेश नीचे उद्धृत है:-

"1. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री अशोक कुमार गुप्ता, प्रतिपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के राज्य विधि अधिकारी श्री राजीव कुमार सोनकर को सुना गया।

2. वर्तमान 482 द.प्र.सं. आवेदन, विद्वान अपर सिविल न्यायाधीश (जे.डी.)/न्यायिक मजिस्ट्रेट तृतीय, जौनपुर के न्यायालय में लंबित परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 (जिसे आगे 'अधिनियम, 1881' कहा जाएगा) की धारा-138 के अंतर्गत मुकदमा संख्या 311/2022 (पुराना संख्या 744/2018) (शिवनाथ बनाम अभिषेक) की संपूर्ण कार्यवाही तथा दिनांक 26.10.2019 के आक्षेपित आदेश को निरस्त करने के लिए दायर किया गया है।

3. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि विपक्षी संख्या 2 की शिकायत दिनांक 26.10.2019 के आदेश द्वारा खारिज कर दी गई थी। दिनांक 13.03.2019 को गैर-अभियोजन के साथ-साथ बार-बार अवसर दिए जाने के बावजूद कोई सबूत पेश नहीं करने के लिए और उस आदेश के खिलाफ, विपरीत पक्ष संख्या 2 द्वारा पुनरीक्षण पेश किया गया था, जिसे 26.10.2019 के आदेश द्वारा अनुमति दी गई थी, और मामले को योग्यता के आधार पर विचार करने के लिए निचली अदालत में वापस भेज दिया गया था। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि पुनरीक्षण न्यायालय का आदेश त्रुटिपूर्ण है क्योंकि कोई पुनरीक्षण बनाए रखने योग्य नहीं था क्योंकि शिकायत को खारिज करने का आदेश बरी करने के बराबर है और इसे द.प्र.सं. की धारा-378(4) के तहत अपील में चुनौती दी जा सकती है और पुनरीक्षण न्यायालय के पास उस आदेश के खिलाफ पुनरीक्षण को स्वीकार करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं है। अपने तर्क के समर्थन में, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने विनय कुमार बनाम यूपी राज्य में आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 3426/2005 में 04.09.2007 को तय इस न्यायालय की समन्वय पीठ के फैसले पर भी भरोसा किया है।

4. इसके विपरीत, प्रतिपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता और राज्य विधि अधिकारी ने प्रस्तुत किया है कि अधिनियम, 1881 के तहत कार्यवाही एक सारांश कार्यवाही है और द.प्र.सं. की प्रक्रियाएं अधिनियम, 1881 की कार्यवाही में लागू नहीं होती हैं। यह भी प्रस्तुत किया गया कि धारा143 द.प्र.सं. के तहत, यह स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया था कि अधिनियम, 1881 की कार्यवाही में, द.प्र.सं. की धारा 262 से 265 लागू होंगी, और अधिनियम, 1881 की धारा 138 के तहत दोषसिद्धि के खिलाफ अधिनियम, 1881 की धारा 148 के तहत अपील का प्रावधान है।

5. पक्षों के प्रस्तुतीकरण पर विचार करने और रिकॉर्ड के अवलोकन के बाद, यह निर्विवाद है कि अधिनियम 1881 के तहत कार्यवाही सारांश कार्यवाही है, और अधिनियम 1881 की धारा-143, स्वयं अधिनियम 1881 के तहत शिकायत की प्रक्रिया प्रदान करती है इसमें आगे यह भी प्रावधान है कि धारा 262 से 265 सीआरपीसी, सम्मन मामलों की सख्त प्रक्रिया अपनाए बिना भी लागू होगी। त्वरित संदर्भ के लिए, अधिनियम 1881 की धारा 143 को निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है:

"143. न्यायालय की मामलों का संक्षिप्त विचारण करने की शक्ति।-(1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (2/1974) में किसी बात के होते हुए भी, इस अध्याय के अंतर्गत सभी अपराधों का विचारण प्रथम श्रेणी न्यायिक मजिस्ट्रेट या महानगर मजिस्ट्रेट द्वारा किया जाएगा और उक्त संहिता की धारा 262 से 265 (दोनों सम्मिलित) के प्रावधान, यथाशक्य, ऐसे परीक्षणों पर लागू होंगे:

बशर्ते कि इस धारा के अंतर्गत संक्षिप्त विचारण में किसी दोषसिद्धि की स्थिति में, मजिस्ट्रेट के लिए एक वर्ष से अनधिक अवधि के कारावास और पाँच हज़ार रुपये से अधिक जुर्माने की राशि का दंड पारित करना वैध होगा:

इसके अतिरिक्त, जब इस धारा के अंतर्गत संक्षिप्त विचारण के प्रारंभ में या उसके दौरान, मजिस्ट्रेट को यह प्रतीत होता है कि मामले की प्रकृति ऐसी है कि एक वर्ष से अधिक अवधि के कारावास का दंड पारित करना पड़ सकता है या यदि किसी अन्य कारण से मामले का संक्षिप्त विचारण अवांछनीय है, तो मजिस्ट्रेट पक्षकारों की सुनवाई के पश्चात् उस आशय का आदेश अभिलिखित करेगा और उसके पश्चात् किसी भी गवाह को, जिसकी परीक्षा हो चुकी हो, पुनः बुलाएगा और उक्त संहिता द्वारा उपबंधित रीति से मामले की सुनवाई या पुनर्विचार करेगा।

(2) इस धारा के अधीन किसी मामले का विचारण, जहां तक साध्य हो, न्याय के हितों के अनुरूप, उसके समापन तक दिन-प्रतिदिन जारी रहेगा, जब तक कि न्यायालय लिखित रूप में अभिलिखित किए जाने वाले कारणों से परीक्षण को अगले दिन के बाद स्थगित करना आवश्यक न समझे।

(3) इस धारा के अधीन प्रत्येक विचारण यथासंभव शीघ्रता से किया जाएगा और शिकायत दर्ज होने की तिथि से छह माह के भीतर विचारण समाप्त करने का प्रयास किया जाएगा।

6. इसी प्रकार, अधिनियम, 1881 में समन जारी करने और साक्ष्य लेने की प्रक्रिया भी प्रदान की गई थी और अधिनियम, 1881 की धारा 138 के तहत दोषसिद्धि के आदेश के खिलाफ अधिनियम, 1881 की धारा 148 के तहत अपील का प्रावधान किया गया है, इस चेतावनी के साथ कि द.प्र.सं. में निहित किसी भी बात के बावजूद, इसलिए, यदि कोई शिकायत खारिज कर दी जाती है, तो वह आदेश अधिनियम, 1881 की धारा 148 के तहत अपील योग्य नहीं होगा। शिकायत के लिए उपलब्ध एकमात्र उपाय पुनरीक्षण दायर करना है।

7. अधिनियम, 1881 की धारा-143 के दूसरे प्रावधान के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि यदि मजिस्ट्रेट को लगता है कि मामला ऐसी प्रकृति का है कि एक वर्ष से अधिक कारावास की सजा पारित करनी पड़ सकती है, या किसी अन्य कारण से, सारांश का परीक्षण करना अवांछनीय है। उस स्थिति में, मजिस्ट्रेट अपना कारण दर्ज करने के बाद, द.प्र.सं. में समन मामले के लिए प्रदान की गई प्रक्रिया के अनुसार मामले की सुनवाई के लिए आगे बढ़ेंगे। इसलिए, यह स्पष्ट है कि यदि मजिस्ट्रेट ने मुकदमे को सारांश से समन मामले में बदलने के लिए कोई कारण दर्ज नहीं किया है, तो सारांश परीक्षण प्रक्रिया जारी रहेगी।

8. सर्वोच्च न्यायालय ने एनआई अधिनियम, 1881 की धारा 138 के तहत मामलों के त्वरित परीक्षण में आरई स्वप्रेरणा रिट याचिका (आप०) संख्या 2/2020 में, दिनांक 16.04.2021 को तय किया, पैराग्राफ संख्या 24.1 में यह भी देखा कि अधिनियम, 1881 की धारा 138 के तहत एक शिकायत मामले को सारांश परीक्षण से समन मामले में परिवर्तित करने से पहले, मजिस्ट्रेट को कारण दर्ज करने होंगे और निर्णय के पैरा संख्या 9

और 20 में अधिनियम, 1881 की योजना पर चर्चा करनी होगी। मामलों के त्वरित परीक्षण (उपरोक्त) के निर्णय के पैराग्राफ संख्या 9, 20, 24.1 का उल्लेख निम्नानुसार किया जा रहा है:

9. अधिनियम की धारा 143 को वर्ष 2002 में अधिनियम की धारा 138 के अंतर्गत दायर शिकायतों के त्वरित निस्तारण हेतु एक सहायक उपाय के रूप में प्रस्तुत किया गया था। इस स्तर पर, संहिता के अध्याय 21 का संदर्भ लेना आवश्यक है, जो संक्षिप्त सुनवाई से संबंधित है। ऐसे मामले में जहाँ संक्षिप्त सुनवाई हो रही हो और अभियुक्त दोषी न हो, मजिस्ट्रेट के लिए साक्ष्य का सार दर्ज करना और अपने निष्कर्षों के कारणों का संक्षिप्त विवरण देते हुए निर्णय देना पर्याप्त है। यह प्रतिबंध है कि धारा 262 के अंतर्गत संक्षिप्त सुनवाई की प्रक्रिया तीन महीने से अधिक के कारावास की किसी भी सजा के लिए लागू नहीं होगी। हालाँकि, संहिता में निहित किसी भी बात के बावजूद, संहिता की धारा 262 से 265 को अधिनियम के अध्याय XVII के अंतर्गत किसी अपराध के विचारण के लिए "यथासंभव" लागू किया गया था। केवल ऐसे मामले में जहाँ मजिस्ट्रेट की राय हो कि अभियुक्त को एक वर्ष से अधिक की सजा देना आवश्यक हो सकता है, शिकायत पर समन सुनवाई के रूप में विचारण किया जाएगा। विभिन्न उच्च न्यायालयों के उत्तरों से यह स्पष्ट होता है कि यह स्पष्ट है कि धारा 138 के अंतर्गत शिकायतों को संक्षिप्त सुनवाई से समन सुनवाई में परिवर्तित करने का कार्य निचली अदालतों द्वारा बिना कारण दर्ज किए यंत्रवत् किया जा रहा है। धारा 138 के अंतर्गत शिकायतों को संक्षिप्त सुनवाई से समन सुनवाई में परिवर्तित करने के परिणामस्वरूप मामलों के निपटारे में देरी हो रही है। इसके अतिरिक्त, धारा 143 का दूसरा परंतुक यह आदेश देता है कि मजिस्ट्रेट को ऐसे परिवर्तन के कारणों को स्पष्ट करते हुए एक आदेश दर्ज करना होगा। अधिनियम की धारा 143 का उद्देश्य, यथासंभव संहिता के अंतर्गत संक्षिप्त सुनवाई के लिए निर्धारित प्रक्रिया का पालन करते हुए, धारा 138 के अंतर्गत शिकायतों का शीघ्र निपटारा करना है। धारा 143 के दूसरे परंतुक द्वारा मजिस्ट्रेट को प्रदत्त विवेकाधिकार का प्रयोग, शिकायत की सुनवाई को संक्षिप्त सुनवाई से समन सुनवाई में परिवर्तित करने के कारणों को दर्ज करने के बाद, उचित सावधानी और सतर्कता के साथ किया जाना है। अन्यथा, जिस उद्देश्य के लिए अधिनियम की धारा 143 शुरू की गई है, वह विफल हो जाएगा। हम उच्च न्यायालयों के परामर्श से विद्वान न्यायमित्र द्वारा दिए गए सुझावों को स्वीकार करते हैं। उच्च न्यायालय मजिस्ट्रेटों को कार्यवाही से पहले कारण दर्ज करने के लिए व्यावहारिक निर्देश जारी कर सकते हैं। अधिनियम की धारा 143 के दूसरे परंतुक के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए धारा138 के तहत शिकायतों के परीक्षण को सारांश परीक्षण से समन परीक्षण में परिवर्तित करना।

20. अधिनियम की धारा 143 में यह अनिवार्य है कि संहिता के सारांश परीक्षण के प्रावधान धारा 138 के तहत शिकायतों के परीक्षणों पर "जहां तक हो सके" लागू होंगे। संहिता की धारा 258 मजिस्ट्रेट को लिखित रूप में दर्ज किए जाने वाले कारणों से किसी भी स्तर पर कार्यवाही को रोकने और शिकायत के अलावा अन्य किसी भी समन मामले में बरी करने का फैसला सुनाने का अधिकार देती है। संहिता की धारा 258 किसी शिकायत पर शुरू किए गए समन मामले पर लागू नहीं होती है। इसलिए, अधिनियम की धारा 138 के तहत दायर शिकायतों के संबंध में धारा 258 लागू नहीं हो सकती है। मीटर्स एंड इंस्ट्रूमेंट्स [मीटर्स एंड इंस्ट्रूमेंट्स (पी) लिमिटेड बनाम कंचन मेहता, (2018) 1 एससीसी 560: (2018) 1 एससीसी (सिविल) 405: (2018) 1 एससीसी (क्रि) 477] जहाँ तक यह निचली अदालत को किसी अभियुक्त को बरी करने की शक्ति प्रदान करता है, अच्छा कानून नहीं है। अधिनियम की धारा 143 में "जहाँ तक हो सके" शब्दों से लिया गया समर्थन अनुचित है। धारा

143 में "जहाँ तक हो सके" शब्दों का प्रयोग केवल संहिता की धारा 262 से 265 की प्रयोज्यता और अध्याय XVII के अंतर्गत मुकदमों के लिए अपनाई जाने वाली संक्षिप्त प्रक्रिया के संबंध में किया गया है। प्रावधानों में कुछ शब्दों को पढ़कर न्यायालय को शक्ति प्रदान करना अनुचित है। एक न्यायाधीश को किसी क़ानून को न तो विस्तृत करने के लिए और न ही संक्षिप्त करने के लिए पुनर्लेखन करना चाहिए। नीति-निर्माण की राज्य-कौशलता चाहे जो भी प्रलोभन सुझाए, निर्माण में अंतर्वेशन और विच्छेदन से बचना चाहिए। उसे सृजनात्मक रूप से नहीं पढ़ना चाहिए [जे. फ्रैंकफर्टर, ऑफ लॉ एंड मेन: पेपर्स एंड एड्रेसेस ऑफ फेलिक्स फ्रैंकफर्टर।]। न्यायाधीश का कर्तव्य कानून की व्याख्या करना और उसे लागू करना है, न कि उसे आवश्यकताओं के अनुरूप बदलना। न्याय के लिए क्या आवश्यक है, इस बारे में न्यायाधीश का विचार इस मामले मे दिया गया है[ड्रुपोर्ट स्टील्स लिमिटेड बनाम सरस, (1980) 1 डब्ल्यूएलआर 142: (1980) 1 ऑल ईआर 529 (एचएल)]। न्यायालय किसी कानून में ऐसे शब्द नहीं जोड़ सकता या उसमें ऐसे शब्द नहीं पढ़ सकता जो उसमें हैं ही नहीं [यूनियन ऑफ इंडिया बनाम देवकी नंदन अग्रवाल, 1992 सप्प (1) एससीसी 323: 1992 एससीसी (एल एंड एस) 248]। 24.1. उच्च न्यायालयों से अनुरोध है कि वे अधिनियम की धारा 138 के तहत शिकायतों के मुकदमे को सारांश मुकदमे से सम्मन मुकदमे में बदलने से पहले मजिस्ट्रेटों को कारण दर्ज करने के लिए व्यावहारिक निर्देश जारी करें।"

9. इसलिए, उपरोक्त कानूनी स्थिति से यह स्पष्ट है कि जब तक यह मामला मजिस्ट्रेट के विशिष्ट आदेश द्वारा सारांश परीक्षण से समन परीक्षण में परिवर्तित नहीं हो जाता, तब तक द.प्र.सं. के अध्याय XX में उल्लिखित समन परीक्षण की प्रक्रिया को सारांश परीक्षण के रूप में मामले की सुनवाई करते समय नहीं अपनाया जा सकता है। इसलिए, यदि मामले की सुनवाई द.प्र.सं. के अध्याय XXI के अनुसार सख्ती से सारांश परीक्षण के रूप में की जा रही है, तो द.प्र.सं. की धारा 251 से 259 तक द.प्र.सं. के अध्याय XX में उल्लिखित प्रक्रिया लागू नहीं होगी।

10. इसलिए, इस न्यायालय का विचार है कि यदि अधिनियम, 1881 की धारा 138 के तहत कोई शिकायत अभियोजन के अभाव में खारिज कर दी जाती है, तो उसे द.प्र.सं. की धारा 256(1) के तहत बरी नहीं माना जा सकता समन मामले की प्रक्रिया के अंतर्गत आता है, इसलिए शिकायत को खारिज करने के खिलाफ द.प्र.सं. की धारा 378(4) के तहत कोई अपील नहीं हो सकती। शिकायत की अस्वीकृति के खिलाफ एकमात्र उपाय, चाहे वह गुण-दोष के आधार पर हो या अभियोजन के अभाव में, पुनरीक्षण दायर करना है।

11. मामलों के त्वरित परीक्षण (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी देखा कि अधिनियम, 1881 के तहत कार्यवाही एक संक्षिप्त कार्यवाही है और अधिनियम, 1881 के तहत पूरी प्रक्रिया प्रदान की गई है, इसलिए द.प्र.सं. के सभी प्रावधान लागू नहीं होते हैं। जहां तक आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए फैसले का संबंध है, उस मामले में, यह देखा गया है कि शिकायतकर्ता की अनुपस्थिति में शिकायत को खारिज करना द.प्र.सं. की धारा 256(1) के तहत आरोपी को बरी करने के समान होगा। और उस आदेश को केवल धारा 378(4) द.प्र.सं. के तहत अपील में चुनौती दी जा सकती है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियों के साथ-साथ अधिनियम, 1881 की योजना के विपरीत है।

12. इसलिए, यह न्यायालय विनय कुमार के मामले (उपरोक्त) में समन्वय पीठ के फैसले से सम्मानपूर्वक असहमत है। विनय कुमार के मामले (उपरोक्त) के पैराग्राफ संख्या 14 को निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है:

"14) उपर्युक्त धारा के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि यदि किसी शिकायत पर स्थापित मामले में दोषमुक्ति का आदेश पारित किया गया है, तो शिकायतकर्ता द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष किए गए आवेदन पर, उच्च न्यायालय दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपील करने की विशेष अनुमति दे सकता है। इस प्रकार वर्तमान मामले में, शिकायत को खारिज करने के विरुद्ध, जो आरोपी शिकायतकर्ता को दोषमुक्त करने के समान थी, प्रतिवादी संख्या 2 संजय कुमार दीक्षित को इस न्यायालय में धारा 378(4) द.प्र.सं. के अंतर्गत विशेष अपील दायर करने का अधिकार प्राप्त था, जो स्वाभाविक रूप से नहीं किया गया है। धारा 401(4) द.प्र.सं. में प्रावधान है कि दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत यदि कोई अपील होती है और कोई अपील नहीं की जाती है, तो उस पक्षकार के कहने पर पुनरीक्षण के माध्यम से कोई कार्यवाही नहीं की जाएगी जो अपील कर सकता था। उक्त उपधारा नीचे उद्धृत है: धारा 401 - उच्च न्यायालय की पुनरीक्षण की शक्तियाँ। (4) जहां इस संहिता के तहत कोई अपील होती है और कोई अपील नहीं की जाती है, वहां उस पक्षकार के कहने पर पुनरीक्षण के माध्यम से कोई कार्यवाही नहीं की जाएगी, जो अपील कर सकता था।

13. मामले के इस दृष्टिकोण में, न्यायिक औचित्य की मांग है कि इस मामले को इन प्रश्नों पर निर्णय लेने के लिए एक वृहद पीठ को भेजा जाए:

(i) क्या अभियोजन के अभाव में अधिनियम, 1881 की धारा 138 के तहत शिकायत को खारिज करना द.प्र.सं. की धारा 256(1) के तहत बरी करने के बराबर होगा, और इसे द.प्र.सं. की धारा 378(4) के तहत अपील में चुनौती दी जा सकती है, या क्या वह आदेश द.प्र.सं. की धारा 397 के तहत पुनरीक्षण योग्य है?

(ii) क्या विनय कुमार (उपरोक्त) के मामले में यह मानकर सही ढंग से निर्णय दिया गया है कि अधिनियम, 1881 की धारा 138 के तहत शिकायत को खारिज करने के खिलाफ द.प्र.सं. की धारा 378(4) के तहत अपील की जा सकती है। , पुनरीक्षण नहीं?

14. कार्यालय को इस मामले का अभिलेख उचित आदेश हेतु माननीय मुख्य न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत करने का निर्देश दिया जाता है।

15. इस मामले को वृहद पीठ के निर्णय के बाद सूचीबद्ध किया जाए।

16. इस बीच, निचली अदालत की कार्यवाही स्थगित रहेगी।

10. सर्वप्रथम, इस मामले से संबंधित कुछ प्रावधानों को उद्धृत करना उचित होगा, जो इस प्रकार हैं:-

(क) एन.आई. अधिनियम, 1881 की धारा 143

"143. मामलों का संक्षिप्त विचारण करने की न्यायालय की शक्ति- (1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में किसी बात के होते हुए भी, इस अध्याय के अधीन सभी अपराधों का विचारण प्रथम श्रेणी न्यायिक मजिस्ट्रेट या महानगर मजिस्ट्रेट द्वारा किया जाएगा और उक्त संहिता की धारा 262 से 265 (दोनों सम्मिलित) के उपबंध, जहां तक हो सके, ऐसे परीक्षणों पर लागू होंगे:

बशर्ते कि इस धारा के अधीन संक्षिप्त विचारण में किसी दोषसिद्धि की स्थिति में, मजिस्ट्रेट के लिए एक वर्ष से अनधिक अवधि के कारावास और पांच हजार रुपए से अधिक जुर्माने की राशि का दंड पारित करना वैध होगा:

परन्तु यह भी कि जब इस धारा के अधीन संक्षिप्त विचारण के प्रारम्भ में या उसके दौरान मजिस्ट्रेट को यह प्रतीत हो कि मामले की प्रकृति ऐसी है कि एक वर्ष से अधिक अवधि के कारावास का दण्डादेश दिया जाना आवश्यक है या किसी अन्य कारण से मामले का संक्षिप्त विचारण करना अवांछनीय है, तो मजिस्ट्रेट पक्षकारों की सुनवाई के पश्चात् उस आशय का आदेश अभिलिखित करेगा और उसके पश्चात् किसी भी साक्षी को, जिसकी परीक्षा हो चुकी हो, पुनः बुलाएगा और उक्त संहिता द्वारा उपबंधित रीति से मामले की सुनवाई या पुनः सुनवाई करेगा।

(2) इस धारा के अधीन किसी मामले का विचारण, जहां तक साध्य हो, न्याय के हितों के अनुरूप, उसके समापन तक दिन-प्रतिदिन जारी रहेगा, जब तक कि न्यायालय लिखित रूप में अभिलिखित किए जाने वाले कारणों से विचारण को अगले दिन के बाद स्थगित करना आवश्यक न समझे।

(3) इस धारा के अंतर्गत प्रत्येक परीक्षण यथासंभव शीघ्रता से किया जाएगा और शिकायत दर्ज होने की तिथि से छह महीने के भीतर परीक्षण समाप्त करने का प्रयास किया जाएगा।

(ख) एन.आई. अधिनियम, 1881 की धारा 148

"दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील लंबित रहने तक भुगतान का आदेश देने की अपील न्यायालय की शक्ति-

(1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में किसी बात के होते हुए भी, धारा 138 के अंतर्गत दोषसिद्धि के विरुद्ध अपीलकर्ता द्वारा की गई अपील में, अपील न्यायालय अपीलकर्ता को ऐसी राशि जमा करने का आदेश दे सकता है जो कि विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए जुर्माने या मुआवजे का कम से कम बीस प्रतिशत होगी:

बशर्ते कि इस उप-धारा के अंतर्गत देय राशि, धारा 143ए के अंतर्गत अपीलकर्ता द्वारा भुगतान किए गए किसी भी अंतरिम मुआवजे के अतिरिक्त होगी।

(2) उप-धारा (1) में निर्दिष्ट राशि आदेश की तिथि से साठ दिनों के भीतर, या अपीलकर्ता द्वारा पर्याप्त कारण दर्शाए जाने पर न्यायालय द्वारा निर्देशित तीस दिनों से अनधिक की अतिरिक्त अवधि के भीतर जमा की जाएगी।

(3) अपील न्यायालय अपील के लंबित रहने के दौरान किसी भी समय अपीलकर्ता द्वारा जमा की गई राशि को शिकायतकर्ता को जारी करने का निर्देश दे सकता है:

परंतु यदि अपीलकर्ता को दोषमुक्त कर दिया जाता है, तो न्यायालय शिकायतकर्ता को निर्देश देगा कि वह इस प्रकार जारी की गई राशि, भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा प्रकाशित बैंक दर पर ब्याज सहित, जो संबंधित वित्तीय वर्ष के आरंभ में प्रचलित हो, आदेश की तिथि से साठ दिनों के भीतर, या शिकायतकर्ता द्वारा पर्याप्त कारण दर्शाए जाने पर न्यायालय द्वारा निर्देशित तीस दिनों से अनधिक की अतिरिक्त अवधि के भीतर अपीलकर्ता को वापस कर दे।

(ग) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 203

"203. शिकायत को खारिज करना- यदि शिकायतकर्ता और गवाहों के शपथ-पत्र (यदि कोई हो) और धारा 202 के अधीन जांच या अन्वेषण (यदि कोई हो) के परिणाम पर विचार करने के पश्चात् मजिस्ट्रेट की राय है कि कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार नहीं है, तो वह शिकायत को खारिज कर देगा और ऐसे प्रत्येक मामले में वह ऐसा करने के अपने कारणों को संक्षेप में अभिलिखित करेगा।

(घ) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 256

"256. शिकायतकर्ता की अनुपस्थिति या मृत्यु- (1) यदि शिकायत पर समन जारी किया गया है, और अभियुक्त की उपस्थिति के लिए नियत दिन, या उसके बाद के किसी भी दिन, जिसके लिए सुनवाई स्थगित की जा सकती है, शिकायतकर्ता उपस्थित नहीं होता है, तो मजिस्ट्रेट, इसमें पूर्व में किसी बात के होते हुए भी, अभियुक्त को दोषमुक्त कर देगा, जब तक कि किसी कारण से वह मामले की सुनवाई किसी अन्य दिन के लिए स्थगित करना उचित न समझे:

परन्तु जहां शिकायतकर्ता का प्रतिनिधित्व किसी अधिवक्ता या अभियोजन का संचालन करने वाले अधिकारी द्वारा किया जाता है या जहां मजिस्ट्रेट की राय है कि शिकायतकर्ता की व्यक्तिगत उपस्थिति आवश्यक नहीं है, मजिस्ट्रेट उसकी उपस्थिति से छूट दे सकता है और मामले को आगे बढ़ा सकता है।

(2) उपधारा (1) के प्रावधान, जहां तक हो सके, उन मामलों पर भी लागू होंगे जहां शिकायतकर्ता की अनुपस्थिति उसकी मृत्यु के कारण है।

11. यहां दंड प्रक्रिया संहिता के दो प्रावधानों पर संदर्भ और जोर दिया गया है। धारा 203 द.प्र.सं. और धारा 256 द.प्र.सं. के बीच का अंतर इसमें आदेश पारित करने के चरण का है। धारा 203 द.प्र.सं. के तहत एक आदेश संज्ञान लेने और समन करने से पहले पारित किया जाता है जबकि धारा 256 द.प्र.सं. के तहत शक्ति का प्रयोग समन जारी करने के बाद होता है। वर्तमान मामले में स्वीकृत स्थिति यह है कि अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट-द्वितीय, जौनपुर द्वारा पारित 13.03.2019 का आदेश समन जारी करने से पहले का आदेश है और इस प्रकार यह धारा 203 द.प्र.सं. के तहत पारित आदेश है। वर्तमान मामले में द.प्र.सं. की धारा 256 का चरण अभी तक नहीं उठा है और इस प्रकार यह प्रश्न कि क्या अभियोजन के अभाव में एन आई अधिनियम की धारा 138 के तहत शिकायत को खारिज करने का आदेश द.प्र.सं. की धारा 256 (1) के तहत बरी करने के बराबर होगा और क्या इसे द.प्र.सं. की धारा 378 (4) के तहत अपील में चुनौती दी जा सकती है या क्या यह आदेश द.प्र.सं. की धारा 397 के तहत पुनरीक्षण योग्य है, वर्तमान मामले में नहीं उठता है। उक्त प्रश्न संदर्भ में पहला प्रश्न है।

12. जहां तक *विनय कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य: आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 3426/2005* के निर्णय की सत्यता को चुनौती देने वाले दूसरे प्रश्न का संबंध है, जो विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा *04.09.2007 को तय* किया गया था, वर्तमान मामले में प्रासंगिकता नहीं रखता है क्योंकि उक्त मामले में यद्यपि संबंधित ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित आदेश दिनांक 05.02.2004 के तहत डिफ़ॉल्ट रूप से शिकायत को खारिज कर दिया गया था, लेकिन यह तब हुआ जब उसमें अभियुक्तों को एन.आई. अधिनियम की धारा 138 के तहत अपराध के

लिए, धारा 204 सीआरपीसी के तहत दिनांक 19.09.2002 के आदेश के तहत बुलाया गया था। इस प्रकार उसमें दिया गया आदेश धारा 256 सीआरपीसी के तहत एक आदेश था न कि धारा 203 सीआरपीसी के तहत। इस प्रकार दूसरा प्रश्न भी वर्तमान मामले में विचारणीय नहीं है।

13. इस प्रकार संदर्भ में इसके मुद्दों पर विचार-विमर्श की आवश्यकता नहीं है और यह उत्तर दिए जाने योग्य नहीं है।

14. इस प्रकार उपरोक्त चर्चा के आलोक में संदर्भ को उपयुक्त पीठ को वापस भेजा जाता है।

15. इस मामले को 15 अप्रैल, 2025 से शुरू होने वाले सप्ताह में रोस्टर वाली उपयुक्त पीठ के समक्ष सूचीबद्ध करने का निर्देश दिया जाता है।

(2025) 4 ILRA 726

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक वाद

दिनांक: लखनऊ, 10.04.2025

माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह

के समक्ष

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या - 4859/2013

रमेश कुमार श्रीवास्तव एवं अन्य **...आवेदक**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...प्रतिवादी**

आवेदक के अधिवक्ता:

संजय कुमार श्रीवास्तव

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

जी.ए.

आपराधिक विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 482-भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 325, 506-समन आदेश को चुनौती-यह मामला शिकायतकर्ता के आरोपों से उपजा है कि आवेदक संख्या 2, डॉक्टर ने लापरवाही से सर्जरी की थी, जिससे कैंसर हो गया और बाद में दोनों आवेदकों ने कथित तौर पर उसके विरोध के दौरान मोटरसाइकिल से उस पर हमला किया। हालाँकि, लगभग एक महीने की देरी के बाद प्राथमिकी दर्ज की गई थी,

और बाद में विभागीय जाँच में डॉक्टर को दोषमुक्त कर दिया गया था, जिसमें एक निजी अस्पताल को जिम्मेदार ठहराया गया था। न्यायालय ने विश्वसनीय प्रत्यक्षदर्शियों की अनुपस्थिति, पुष्टि करने वाले चिकित्सा साक्ष्य की कमी और कथित घटना के समय आवेदकों की कहीं और सत्यापित उपस्थिति पर ध्यान दिया। अदालत ने पाया कि शिकायतकर्ता द्वारा विभागीय माध्यमों से आवेदकों को फंसाने के पहले के प्रयासों में विफल रहने के बाद प्राथमिकी दुर्भावनापूर्ण इरादे से दर्ज की गई थी।-हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल और प्रशांत भारती बनाम दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के मामले में सिद्धांतों को लागू करते हु न्यायालय ने माना कि कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण थी और कानूनी प्रक्रिया का दुरुपयोग थी। (पैरा 1 से 30)

आवेदन स्वीकार किया जाता है। (ई-6)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल (1992) एआईआर 604
4. अखिल रमेश कुमार श्रीवास्तव एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 727
2. प्रशांत भारती बनाम दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र (2013) 9 एससीसी 293

(माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदकों की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री संजय कुमार श्रीवास्तव और राज्य-प्रतिवादी की ओर से विद्वान अपर महाधिवक्ता श्री निर्मल कुमार पाण्डेय को सुना गया।

2. धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत वर्तमान आवेदन, विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट लखनऊ द्वारा वाद संख्या 17162/2007, राज्य बनाम रमेश कुमार श्रीवास्तव एवं अन्य में पारित दिनांक 19.12.2007 और 22.7.2013 के आक्षेपित आदेशों, साथ ही धारा 325 और 506 भारतीय दंड संहिता, वाद अपराध संख्या 77/2007, थाना-कोतवाली हजरतगंज, जिला-लखनऊ के अंतर्गत दिनांक 18.12.2007 के आक्षेपित आरोपपत्र संख्या 202/207 को निरस्त करने के अनुरोध के साथ प्रस्तुत किया गया है।

3. आदेश पत्र के अवलोकन से पता चलता है कि प्रतिपक्षी संख्या 2 को दिनांक 08-10-2013 को नोटिस जारी किया गया था और उसी आदेश में आवेदकों के पक्ष में स्थायी प्रकृति का अंतरिम संरक्षण भी प्रदान किया गया था। रजिस्ट्री ने दिनांक 06-12-2013 को रिपोर्ट दी, जिसमें उल्लेख किया गया था कि मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, लखनऊ की दिनांक 18-11-2013 की रिपोर्ट के अनुसार, प्रतिपक्षी संख्या 2 अर्थात् श्रीमती शीला गुप्ता की मृत्यु 23-06-2009 को कैंसर से पीड़ित होने के दौरान हो गई थी। रिपोर्ट से पता चलता है कि मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, लखनऊ ने प्रतिपक्षी संख्या 2 अर्थात् योगेश चंद्र गुप्ता के पति का बयान दर्ज किया है, और प्रतिपक्षी संख्या 2 की मृत्यु के संबंध में हेड कांस्टेबल सुनील चंद्र का बयान भी दर्ज किया गया है।

4. यह मामला एक पुलिस मामले से उत्पन्न हुआ है और राज्य सरकार ने दिनांक 07-01-2014 को अपना प्रति-शपथपत्र दाखिल किया है।

5. मामले का तथ्यात्मक सार यह है कि 15-01-2007 को कथित रूप से घटित घटना के संबंध में प्रथम सूचना रिपोर्ट 08-02-2007 को 20.10 बजे दर्ज की गई थी। इसमें वर्णित है कि आवेदक संख्या 2, डॉ. राजेश कुमार श्रीवास्तव ने प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, मलिहाबाद, जिला लखनऊ में लापरवाही और उपेक्षापूर्ण तरीके से ऑपरेशन किया, जिसके परिणामस्वरूप प्रतिपक्षी संख्या 2 के शरीर में कैंसर विकसित हो गया। आगे आरोप लगाया गया है कि जब सूचनादाता/प्रतिपक्षी संख्या 2 मुआवजे के लिए 'धरने' पर बैठी थी और शौचालय से लौट रही थी, दोनों आवेदकों ने उसे जान से मारने की नीयत से मोटरसाइकिल से टक्कर मार दी और उन्होंने उसे 'धरना' छोड़ने या गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी भी दी, जिसके परिणामस्वरूप, वह अपनी बाईं कोहनी के बल गिर गई, जिसके बाद लोगों ने उसे उठाया और उसका के.जी.एम.यू. लखनऊ में इलाज चला, जहाँ उसकी बाईं कोहनी में फ्रैक्चर पाया गया और उस पर छह सप्ताह तक प्लास्टर चढ़ा रहा।

6. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि कथित घटना की तारीख से लगभग दो महीने की देरी से पहली सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी और इसका कोई उचित स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है और इसके अलावा बहुत जल्दबाजी में, पहली सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के 10 दिनों के भीतर, जांच अधिकारी ने पर्याप्त साक्ष्य एकत्र किए बिना, आरोप पत्र दायर कर दिया। उन्होंने प्रस्तुत किया कि प्रतिपक्षी पक्ष संख्या 2 के पति, अर्थात् वाई.सी. गुप्ता, राम गोपाल भुर्जी और दो अन्य गवाह, जिनके बयान दर्ज किए गए थे, ने कभी घटना को नहीं देखा था और उन सभी ने कथित तौर पर घटना के बारे में सुना है।

7. उन्होंने प्रस्तुत किया कि आवेदकों को प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने और आरोप पत्र दाखिल करने की कोई जानकारी नहीं थी और जैसे ही यह उनके संज्ञान में आया, उन्होंने तत्कालीन उप मुख्य चिकित्सा अधिकारी डॉ. एम.के.गुप्ता द्वारा की गई जांच रिपोर्ट, आवेदक संख्या 1 द्वारा सूचनादाता के नोटिस पर दिए गए दिनांक 28-07-2006 के उत्तर, सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र के अधीक्षक द्वारा दिए गए दिनांक 22-02-2007 के प्रमाण पत्र, आवेदक संख्या 1 के कई मामलों को दर्शाती उच्च न्यायालय की वाद सूची को संलग्न करते हुए आगे की जांच के लिए एक आवेदन प्रस्तुत किया। उच्च न्यायालय में 15-01-2007 को सूचीबद्ध किया गया था, अर्थात कथित घटना की तारीख, काशी नाथ शुक्ला, अधिवक्ता का हलफनामा, एस के ओझा, अधिवक्ता का हलफनामा, राज कुमार द्विवेदी, अधिवक्ता का हलफनामा और फारुख, अधिवक्ता का हलफनामा और उपरोक्त आवेदन पर, सर्कल अधिकारी ने पहले जांच अधिकारी द्वारा की गई जांच से संतुष्ट नहीं होते हुए, आगे की जांच के आदेश के साथ आरोप पत्र वापस कर दिया, जबकि एक अन्य जांच अधिकारी को नियुक्त किया और आगे की जांच के लिए आवेदकों द्वारा दिए गए आवेदन को संलग्न किया। उन्होंने कहा कि बचाव पक्ष के गवाहों के बयान भी बाद के जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए थे और आवेदकों द्वारा रखे गए सबूतों को नजरअंदाज करते हुए आरोप पत्र दायर किया गया है। आगे प्रस्तुत किया गया कि संबंधित विद्वान ट्रायल कोर्ट ने बिना दिमाग लगाए, आवेदकों को तलब करते हुए 19-12-2007 को आक्षेपित आदेश पारित किया है।

8. यह भी तर्क दिया गया है कि पहली सूचना रिपोर्ट दर्ज करने से पहले, आवेदक संख्या 2 के खिलाफ एक झूठी शिकायत दी गई थी, अर्थात डॉ. राजेश कुमार श्रीवास्तव को संबंधित सीएमओ को भेजा गया, जिसके बाद एक जांच कराई गई और जांच अधिकारी ने 29-08-2006 को रिपोर्ट प्रस्तुत की। जिसमें यह पाया गया कि ऐसा कोई सबूत नहीं है, जो यह साबित कर सके कि डॉ. राजेश कुमार श्रीवास्तव ने प्रतिपक्षी संख्या 2 का ऑपरेशन किया था और इस प्रकार, आवेदक संख्या 2 के खिलाफ जांच बंद कर दी गई थी लेकिन प्रतिपक्षी संख्या 2 इस धारणा के तहत कि आवेदक संख्या 1, प्रतिपक्षी संख्या 2 का भाई है और एक प्रैक्टिसिंग अधिवक्ता है, इस मामले में पैरवी करेगा, इसलिए, बिना किसी ठोस सबूत के, उसे भी आपराधिक साजिश में फंसाया गया है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि एक बार प्रतिपक्षी संख्या 2, प्रतिपक्षी संख्या 2, प्रतिपक्षी संख्या 2 से जबरन वसूली करने में विफल रही, उसने आवेदकों के खिलाफ एक और झूठी और मनगढ़ंत कहानी गढ़ी, ताकि वह उन्हें झूठा फंसा सके और जो उद्देश्य प्रतिपक्षी संख्या 2 के खिलाफ शिकायत करने से पूरा नहीं हो सकता था, वह उनके खिलाफ पहली सूचना रिपोर्ट दर्ज करके प्राप्त किया जा सकता था।

9. उन्होंने आगे कहा कि आवेदकों ने विशेष दलील दी है कि आवेदक संख्या 2, पी.एच.सी., मलीहाबाद में तत्कालीन चिकित्सा अधिकारी के रूप में तैनात था और दिनांक 14-01-2007 से 15-01-2007 तक आपातकालीन ड्यूटी पर था और उसके बाद, वह पल्स पोलियो ड्यूटी पर था और ड्यूटी अवधि को पी.एच.सी., मलीहाबाद के अधीक्षक द्वारा प्रमाणित किया गया है और पी.एच.सी., मलीहाबाद के अधीक्षक का बयान भी 25-03-2007 को पर्चा एससीडी-I में दर्ज किया गया है। उन्होंने यह भी कहा कि आवेदक संख्या 1, 15-01-2007 को कथित घटनास्थल पर उपस्थित नहीं हो सकता था, क्योंकि वह उच्च न्यायालय परिसर में उपस्थित था, क्योंकि वह एक अधिवक्ता है और उसके कई मामले सुनवाई के लिए नियत थे, लेकिन, जांच अधिकारी ने चार प्रत्यक्षदर्शी गवाहों, अर्थात् श्री काशी नाथ शुक्ला, श्री एस.के.ओझा, श्री राज कुमार द्विवेदी और श्री फारुख, अधिवक्ता के बयानों की अनदेखी करते हुए, आवेदक संख्या 1 के खिलाफ भी गलत तरीके से आरोप पत्र दायर किया है।

10. अपने तर्क को जोड़ते हुए, उन्होंने प्रस्तुत किया कि सूचनादाता को कोहनी में चोटें आई हैं, जो उसके स्वयं के कथन के अनुसार, गिरने के कारण हुई थीं और यह उसके स्वयं के कारण हो सकती है, क्योंकि यदि आवेदकों का प्रतिपक्षी संख्या 2 को मोटरसाइकिल से कुचलकर टक्कर मारने का कोई इरादा होता, तो उसे निश्चित रूप से अधिक गंभीर चोटें आतीं, इसके अलावा, सूचनादाता के इस आरोप को पुष्ट करने के लिए कोई मेडिकल रिपोर्ट भी नहीं है कि वह कैंसर से पीड़ित थी।

11. उन्होंने आगे दलील दी कि स्पष्ट रूप से कहा गया है कि पीड़िता मोटरसाइकिल का नंबर नोट नहीं कर सकी, जो स्वाभाविक भी हो सकता है, लेकिन चूँकि वह स्थान, जहाँ कथित घटना घटी थी, एक सार्वजनिक स्थान है और उसका कोई प्रत्यक्षदर्शी नहीं है, जबकि गवाहों में से एक, राम गोपाल भुर्जी ने कहा है कि सूचनादाता और उसके पति ने उसे बताया था कि मोटरसाइकिल पर सवार व्यक्ति आवेदक थे और इस प्रकार, वह भी घटना का प्रत्यक्षदर्शी गवाह नहीं है।

12. अपनी दलीलों का समापन करते हुए, उन्होंने दलील दी कि आवेदक कानून का पालन करने वाले नागरिक हैं और वे कभी किसी आपराधिक गतिविधि में शामिल नहीं रहे क्योंकि उनका कोई पूर्व आपराधिक इतिहास नहीं है। आगे दलील यह है कि आवेदकों के खिलाफ पहली सूचना तब दर्ज की गई, जब विरोधी पक्ष संख्या 2 आवेदक संख्या 2 से पैसे ऐंठने के अपने दुर्भावनापूर्ण और दुर्भावनापूर्ण इरादे में विफल रही क्योंकि उसकी शिकायत को जाँच अधिकारी ने खारिज कर दिया था और ऐसी स्थिति में उसे आवेदक संख्या 2 से पैसे लेने में विफल महसूस हुआ। प्रतिपक्षी पक्षकार संख्या 2 द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराते समय दूसरा कठोर तरीका अपनाया गया है, जो पूरी तरह से दुर्भावनापूर्ण है और आवेदकों को परेशान करने के इरादे से किया गया है। उन्होंने आगे कहा कि राज्य सरकार आवेदकों के विरुद्ध शुरू की गई दुर्भावनापूर्ण आपराधिक कार्यवाही के संबंध में आवेदन में दिए गए विशिष्ट कथनों को भी अस्वीकार करने में विफल रही है। इसलिए, यह तर्क दिया जाता है कि आवेदकों के विरुद्ध संपूर्ण आपराधिक कार्यवाही रद्द किए जाने योग्य है।

13. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता के उपरोक्त तर्कों का खंडन करते हुए, राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान ए.जी.ए. ने तर्क दिया है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में आवेदकों के नाम हैं और दो बार जाँच की जा चुकी है क्योंकि प्रथम जाँच अधिकारी द्वारा आरोप पत्र दायर किया गया था और बाद में, वर्तमान आवेदकों द्वारा अंचल अधिकारी के समक्ष एक आवेदन प्रस्तुत किया गया था जिसमें गवाहों के बयान और अन्य दस्तावेज संलग्न थे और उसके बाद, एक अन्य जाँच अधिकारी की नियुक्ति करते हुए मामले की आगे जाँच करने का निर्देश दिया गया था, जिसने मामले में गहन जाँच करने और सभी गवाहों के बयान दर्ज करने के बाद आरोप पत्र दायर किया। उन्होंने आगे कहा कि प्रतिपक्षी पक्ष संख्या 2 द्वारा अपराध करने के लिए आवेदकों का नाम लेने का कोई अन्य कारण नहीं हो सकता। उन्होंने यह भी दलील दी कि विद्वान निचली अदालत ने सभी गवाहों के बयानों समेत सभी सबूतों पर विचार करते हुए आवेदकों के खिलाफ समन जारी किया है और इसलिए समन आदेश और आरोपपत्र में कोई त्रुटि नहीं है। इस प्रकार, दलील यह है कि आवेदकों द्वारा दायर तत्काल आवेदन खारिज किया जाए।

14. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने और अभिलेख पर रखी गई सामग्री के अवलोकन के बाद, यह पता चला है कि शुरुआत में दिनांक 25.7.2006 को शिकायत प्रतिपक्षी संख्या 2 द्वारा स्वास्थ्य विभाग के अधिकारियों के समक्ष की गई थी, जिसके बाद मुख्य चिकित्सा अधिकारी, लखनऊ ने तत्कालीन उप मुख्य चिकित्सा अधिकारी (जे.डी.-ग्रेड) डॉ. एम.के. गुप्ता को जांच अधिकारी नियुक्त किया और गहन जांच के बाद, 28/29-08-2006 को मुख्य चिकित्सा अधिकारी के समक्ष जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की गई, जिसमें यह निष्कर्ष निकाला गया कि आवेदक संख्या 2 के खिलाफ कोई सबूत नहीं है। डॉ. राजेश कुमार श्रीवास्तव ने कहा कि उन्होंने सूचनादाता का ऑपरेशन किया था, जबकि मामला 'ईशा हॉस्पिटल' से संबंधित है और इसलिए, यदि कोई लापरवाही हुई है, तो वह निजी अस्पताल अर्थात् 'ईशा हॉस्पिटल' की है और इसलिए, जाँच बंद कर दी गई थी। ऐसा प्रतीत होता है कि जब जाँच बंद हो गई और प्रतिपक्षी संख्या 2 अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो पाई, तो उसने 15-01-2007 की घटना का आरोप लगाते हुए 08-02-2007 को प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई, हालाँकि देरी का कोई स्पष्टीकरण नहीं है, जिसमें यह आरोप लगाया गया है कि आवेदक प्रतिपक्षी संख्या 2 के

'धरना स्थल' पर आए और उसे मोटरसाइकिल से टक्कर मार दी, जिस पर दोनों आवेदक सवार थे, जिसके परिणामस्वरूप प्रतिपक्षी संख्या 2 गिर गई और उसके हाथ में फ्रैक्चर हो गया। वास्तव में पूरे परिदृश्य पर नज़र डालने पर, यह समझ में नहीं आता है कि किस कारण और मकसद से आवेदकों ने ऐसा अपराध करने का इरादा किया होगा।

15. यह भी स्पष्ट है कि जिस स्थान पर घटना घटी बताई जा रही है, वह एक सार्वजनिक स्थान है, लेकिन घटना का कोई प्रत्यक्षदर्शी गवाह नहीं है, जबकि एक गवाह, राम गोपाल भुर्जी, जिसने अभियोजन पक्ष के कथन का समर्थन किया, वह भी घटना का प्रत्यक्षदर्शी गवाह नहीं है और उसने प्रतिपक्षी संख्या 2 के पति से सूचना प्राप्त करने के आधार पर पुलिस के समक्ष गवाही दी है।

16. आवेदकों द्वारा आगे विशेष दलील दी गई है कि आवेदक संख्या 2 14-01-2007 से 15-01-2007 तक आपातकालीन ड्यूटी पर था और उसके बाद, वह पल्स पोलियो ड्यूटी पर था, जिस तथ्य को अधीक्षक, पी.एच.सी, मलिहाबाद द्वारा प्रमाणित किया गया है और उसका बयान भी दर्ज किया गया है, लेकिन, राज्य-प्रतिवादी की ओर से दायर प्रत्युत्तर हलफनामे में कहीं भी इस तथ्य का खंडन नहीं किया गया है। जो पिछले 30 वर्षों से अधिक समय से इस न्यायालय में कार्यरत एक अधिवक्ता हैं और जिनकी अच्छी प्रतिष्ठा है, के कथन का समर्थन चार अन्य गवाहों द्वारा किया गया है कि आवेदक संख्या-1 दिनांक 15-01-2007 को उच्च न्यायालय में उपस्थित था क्योंकि आवेदक संख्या 1 के कई मामले सुनवाई के लिए नियत थे, लेकिन, ऐसा प्रतीत होता है कि जांच अधिकारी और विद्वान निचली अदालत ने समन जारी करते समय इस तथ्य की अनदेखी की। इसके अलावा, राज्य ने अपने प्रति-शपथपत्र में भी इस तथ्य का खंडन नहीं किया है।

17. यह न्यायालय स्थापित कानून से भी अवगत है कि मुकदमे के समय अली-बाई की दलील पर विचार किया जा सकता है, फिर भी, ऐसा प्रतीत होता है कि, एक बार आवेदक संख्या 1 के संबंध में चार गवाह हो जाने पर, 1 कि 15-01-2007 को वह उच्च न्यायालय परिसर में उपस्थित थे, लेकिन जांच अधिकारी ने उनके खिलाफ आरोप पत्र दाखिल करते समय इस पर विचार नहीं किया क्योंकि यह न केवल आवेदक संख्या 1/अभियुक्त का बयान है, बल्कि, वह भी चार प्रत्यक्षदर्शियों के बयान द्वारा समर्थित है और उनके बयान भी जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए थे और इसलिए, यह तथ्य तत्काल मामले में आरोप के संबंध में अधिक विशिष्ट और महत्वपूर्ण हो गया है।

18. जब तक आवेदक संख्या 2, जो एक प्रतिष्ठित डॉक्टर हैं, के संबंध में, वे भी पी.एच.सी., मलिहाबाद में ड्यूटी पर मौजूद थे, जैसा कि पी.एच.सी., मलिहाबाद के अधीक्षक के जांच अधिकारी द्वारा दर्ज बयान में कहा गया है, क्योंकि वे 14-01-2007 से 15-01-2007 तक ड्यूटी पर थे और बाद में, वे पल्स पोलियो ड्यूटी पर थे और इसलिए, यह समझ में नहीं आता है कि जांच अधिकारी पी.एच.सी., मलिहाबाद के अधीक्षक के बयान को खारिज करने पर इतने अड़े क्यों थे।

19. इस अदालत ने इस तथ्य पर भी गौर किया है कि यदि सूचना देने वाली महिला को जान से मारने के इरादे से मोटरसाइकिल से टक्कर मारी गई होती, तो निश्चित रूप से, उसे फ्रैक्चर के अलावा अन्य चोटें भी लग सकती थीं और इसलिए, यदि पूरी कहानी को चैनलाइज़ किया जाता है, तो यह निर्णायक है कि एक बार विभागीय जांच अधिकारी ने जांच समाप्त करने के बाद अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की और आवेदक संख्या 2 की इस मामले में संलिप्तता नहीं पाई और एक बार आवेदक संख्या 2 के कानूनी नोटिस का जवाब आवेदक संख्या 1 द्वारा दिया गया, तो उनके खिलाफ झूठी और निराधार कहानी गढ़ते हुए पहली सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई है।
20. बार-बार, आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए हस्तक्षेप के संबंध में धारा 482 द.प्र.सं. के दायरे और दायरे पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बहस की गई है और विस्तृत रूप से समझाया/व्याख्या की गई है।

21. दुर्भावना या द्वेष के साथ आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए धारा 482 द.प्र.सं. के तहत शक्तियों के प्रयोग के संबंध में महत्वपूर्ण निर्णय हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल, 1992 एआईआर 604 के मामले में दिया गया है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय के पैराग्राफ संख्या 102 में, मामलों की 7 श्रेणियों को सूचीबद्ध किया है, जहां धारा 482 द.प्र.सं. के तहत शक्तियां प्रयोग किया जा सकता है, जो इस प्रकार दिए गए हैं:-

"102. अध्याय XIV के तहत संहिता के विभिन्न प्रासंगिक प्रावधानों की व्याख्या और अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण शक्ति या संहिता की धारा 482 के तहत अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग से संबंधित निर्णयों की एक श्रृंखला में इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि के सिद्धांतों की पृष्ठभूमि में, जिन्हें हमने ऊपर उद्धृत और पुन: प्रस्तुत किया है, हम उदाहरण के तौर पर मामलों की निम्नलिखित श्रेणियां देते हैं जिनमें ऐसी शक्ति का प्रयोग या तो किसी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए किया जा सकता है, हालांकि कोई सटीक, स्पष्ट रूप से परिभाषित और पर्याप्त रूप से चैनलाइज्ड और अनम्य दिशानिर्देश या कठोर सूत्र निर्धारित करना संभव नहीं हो सकता है और असंख्य प्रकार के मामलों की एक विस्तृत सूची देना संभव नहीं है जिनमें ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए।

(1) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए आरोप, भले ही उन्हें उनके अंकित मूल्य पर लिया जाए और उनकी संपूर्णता में स्वीकार किया जाए, प्रथम दृष्टया कोई अपराध नहीं बनाते हैं या अभियुक्त के खिलाफ कोई मामला नहीं बनाते हैं।

(2) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट और एफआईआर के साथ दी गई अन्य सामग्री, यदि कोई हो, किसी संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं करती है, जिससे पुलिस अधिकारियों द्वारा संहिता की धारा 156 (1) के तहत जांच को उचित ठहराया जा सके, सिवाय इसके कि संहिता की धारा 155 (2) के दायरे में मजिस्ट्रेट के आदेश के तहत जांच की जाए।

(3) जहां एफआईआर या शिकायत में लगाए गए निर्विवाद आरोप और उनके समर्थन में एकत्र किए गए साक्ष्य किसी अपराध के होने का खुलासा नहीं करते हैं और आरोपी के खिलाफ मामला नहीं बनाते हैं।

(4) जहां एफआईआर में लगाए गए आरोप संज्ञेय अपराध नहीं बनाते हैं, बल्कि केवल एक असंज्ञेय अपराध बनाते हैं, वहां मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना पुलिस अधिकारी द्वारा किसी भी जांच की अनुमति नहीं है, जैसा कि संहिता की धारा 155 (2) के तहत परिकल्पित है।

(5) जहां एफआईआर या शिकायत में लगाए गए आरोप इतने बेतुके और स्वाभाविक रूप से असंभव हैं कि उनके आधार पर कोई भी विवेकशील व्यक्ति कभी भी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है कि आरोपी के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है।

(6) जहां धारा 155 (2) के किसी भी प्रावधान में स्पष्ट कानूनी रोक निहित है। संहिता या संबंधित अधिनियम (जिसके तहत आपराधिक कार्यवाही शुरू की जाती है) के तहत कार्यवाही शुरू करने और जारी रखने के लिए और/या जहाँ संहिता या संबंधित अधिनियम में कोई विशिष्ट प्रावधान है, जो पीड़ित पक्ष की शिकायत का प्रभावी निवारण प्रदान करता है, के लिए कोई प्रावधान नहीं है।

(7) जहाँ आपराधिक कार्यवाही स्पष्ट रूप से दुर्भावना से प्रेरित हो और/या जहाँ कार्यवाही अभियुक्त पर प्रतिशोध लेने और निजी एवं व्यक्तिगत द्वेष के कारण उसे परेशान करने के गुप्त उद्देश्य से दुर्भावनापूर्ण रूप से शुरू की गई हो।

22. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने संक्षेप में सात दिशानिर्देश तैयार किए हैं और विशेष रूप से, वर्तमान मामला बिंदु संख्या 7 से पूरी तरह से आच्छादित है, जिसमें यह माना गया है कि यदि कोई आपराधिक कार्यवाही दुर्भावना या द्वेष से प्रभावित है या किसी अभियुक्त को निजी या व्यक्तिगत द्वेष के कारण आपराधिक कार्यवाही में फंसाने के गुप्त उद्देश्य से शुरू की गई है, तो उसे आगे बढ़ने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

23. जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है, प्रथम दृष्टया यह स्पष्ट है कि प्रतिपक्षी संख्या 2 ने बिना किसी ठोस कारण या साक्ष्य के मुख्य चिकित्सा अधिकारी को एक आवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें आरोप लगाया गया कि आवेदक संख्या 2 द्वारा किए गए ऑपरेशन के कारण, वह कैंसर से पीड़ित हो गई है, हालांकि उसकी शिकायत के समर्थन में कोई मेडिकल रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की गई है और जब जांच की गई, तो पाया गया कि आवेदक संख्या 2 के खिलाफ शिकायत झूठी है और इसके बाद, व्यक्तिगत द्वेष के लिए आवेदकों द्वारा आपराधिक षड्यंत्र रचते हुए, प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई है।

24. इसके अलावा, अभियोजन पक्ष के एक गवाह ने, हालांकि वह प्रत्यक्षदर्शी नहीं है, सूचना प्राप्त होने पर अपनी गवाही दी है, जो भी अविश्वसनीय है, क्योंकि यह किसी भी साक्ष्य द्वारा समर्थित या पुष्ट नहीं है और इसलिए, वर्तमान मामले के तथ्य और परिस्थितियां यह संकेत देती हैं कि प्रथम सूचना रिपोर्ट दुर्भावनापूर्ण और दुर्भावनापूर्ण इरादे से दर्ज की गई है, जो भजन लाल (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के अनुपात के साथ पूरी तरह से कवर की गई है।

अनुवादित

25. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने *प्रशांत भारती बनाम दिल्ली राज्य एनसीटी के मामले में (2013) 9 एससीसी, 293* में रिपोर्ट किया है कि द.प्र.सं. की धारा 482 के तहत आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए एक निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए, एक न्यायाधीश के दिमाग में निम्नलिखित प्रश्न रखे जाएंगे।

"1. क्या अभियुक्त द्वारा जिस सामग्री पर भरोसा किया गया है वह ठोस, उचित और असंदिग्ध है, अर्थात सामग्री उत्कृष्ट और त्रुटिहीन गुणवत्ता की है?
2. क्या अभियुक्त द्वारा जिस सामग्री पर भरोसा किया गया है वह शिकायत में निहित तथ्यात्मक कथनों को अस्वीकार करने और उन्हें खारिज करने के लिए पर्याप्त है, अर्थात सामग्री ऐसी है, जो किसी भी विवेकशील व्यक्ति को आरोप के तथ्यात्मक आधार को झूठा ठहराने और खारिज करने के लिए प्रेरित करेगी?
3. क्या अभियुक्त द्वारा जिस सामग्री पर भरोसा किया गया है, उसका अभियोजन/शिकायतकर्ता द्वारा खंडन नहीं किया गया है; और/या सामग्री ऐसी है, जिसका अभियोजन/शिकायतकर्ता द्वारा उचित रूप से खंडन नहीं किया जा सकता है?
4. क्या मुकदमे को आगे बढ़ाने से न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा और इसलिए, न्याय का उद्देश्य पूरा नहीं होगा?"

26. यह सर्वविदित है कि न्यायालय के लिए केवल प्रथम सूचना रिपोर्ट/शिकायत में दिए गए कथनों पर ही गौर करना पर्याप्त नहीं होगा ताकि यह पता लगाया जा सके कि कथित अपराध के लिए आवश्यक तत्व प्रकट किए गए हैं या नहीं, बल्कि न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह कथनों के अतिरिक्त मामले के अभिलेख से उभरने वाली अन्य परिस्थितियों पर भी गौर करे और यदि आवश्यक हो, तो न्यायालय उचित सावधानी और सतर्कता के साथ मामले की पंक्तियों के बीच के तथ्यों को समझने का प्रयास करेगा। जहाँ तक वर्तमान मामले का संबंध है, परिस्थितियों की पृष्ठभूमि यह दर्शाती है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोप प्रतिशोध और दुर्भावना से प्रेरित प्रतीत होते हैं।

27. तदनुसार, यह न्यायालय यह पाता है कि आवेदकों/अभियुक्तों द्वारा जिस सामग्री पर भरोसा किया गया है, वह ठोस और उचित है और प्रस्तुत की गई सामग्री किसी भी विवेकशील व्यक्ति को तथ्यात्मक आधार को खारिज करने और उसकी निंदा करने के लिए प्रेरित करेगी। इसके अलावा, अभियोजन पक्ष ने भी प्रति-शपथपत्र में आवेदकों के विरुद्ध आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए उठाए गए विशिष्ट तर्कों और आधारों का खंडन नहीं किया है और इसलिए, इस न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि इस मुकदमे के परिणामस्वरूप कानून की प्रक्रिया का घोर दुरुपयोग होगा और इससे न्याय के उद्देश्य पूरे नहीं होंगे।

28. उपरोक्त प्रस्तुतियों और चर्चाओं के मद्देनजर, आक्षेपित समन आदेश के साथ-साथ मामले की संपूर्ण आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए पर्याप्त आधार मौजूद हैं।

29. परिणामस्वरूप, विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट लखनऊ द्वारा वाद संख्या 17162/2007, राज्य बनाम रमेश कुमार श्रीवास्तव एवं अन्य में पारित दिनांक 19.12.2007 एवं 22.7.2013 के आक्षेपित आदेशों सहित सम्पूर्ण आपराधिक कार्यवाही, साथ ही धारा 325 एवं 506 भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत दिनांक 18.12.2007 का आक्षेपित आरोप पत्र संख्या 202/207, वाद अपराध संख्या 77/2007, थाना-कोतवाली हजरतगंज, जिला-लखनऊ, एतद्द्वारा निरस्त की जाती है।

30. परिणामस्वरूप, धारा 482 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत आवेदन स्वीकार किया जाता है।

31. रजिस्ट्री को निर्देश दिया जाता है कि इस आदेश की एक प्रति संबंधित निचली अदालत को तत्काल भेजें।

(2025) 4 ILRA 733

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक वाद

दिनांक: लखनऊ 21.04.2025

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

के समक्ष

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या - 8370/2024

दानिश खान **...आवेदक**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...प्रतिवादी**

आवेदक के अधिवक्ता:

अनुज टंडन

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

जी.ए., कुलदीप श्रीवास्तव, रोहित त्रिपाठी

आपराधिक विधि - धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002 - धारा 44 (1) - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 419, 420, 467, 468, 471 और 120-बी - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 323 और 325 - मामले का स्थानांतरण - वैधता - प्रवर्तन निदेशालय द्वारा दायर सत्र न्यायाधीश के समक्ष शिकायत, अपराधों के लिए एटीएस द्वारा दर्ज की गई प्राथमिकी पर आधारित - आवेदक उक्त प्राथमिकियों में आरोपी है, लेकिन प्रवर्तन निदेशालय की शिकायत में उसका नाम नहीं है - मामला 03.02.2016 को सत्र न्यायालय को सौंपा गया था, बाद में स्थानांतरित कर दिया गया विशेष पीएमएलए न्यायालय के गठन पर - आवेदक की विशेष पीएमएलए

अनुवादित

न्यायालय से मजिस्ट्रेट को मुकदमा स्थानांतरित करने की याचिका खारिज - भले ही अपराध मजिस्ट्रेट की दंडात्मक शक्तियों से अधिक हो , मजिस्ट्रेट को मुकदमा चलाना होगा, साक्ष्य दर्ज करने होंगे और यदि उच्चतर दंड की आवश्यकता हो तो मामले को सत्र न्यायालय को सौंपने के लिए मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को भेजना होगा - इस प्रकार, मजिस्ट्रेट द्वारा मुकदमा चलाना कानून के तहत अधिकतम सजा को नहीं रोकता - आवेदक का यह दावा कि मजिस्ट्रेट द्वारा मुकदमा चलाना सजा को सात साल तक सीमित करता है गलत है और मुकदमे को विशेष न्यायालय में स्थानांतरित करने से कोई पूर्वाग्रह नहीं होता - आलोचना आदेश में दम नहीं है, खारिज किया जाता है। (पैरा 3, 4, 5, 14, 15, 17)

आवेदन खारिज। (ई-13)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:

1. विजय मदन लाल चौधरी बनाम यू.ओ.आई.: (2023) 12 एससीसी 1, (पैरा 264)
2. राणा अय्यूब बनाम प्रवर्तन निदेशालय, (2023) 4 एससीसी 357, (पैरा 28, 30, 31)

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी, द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री अनुज टंडन और प्रतिवादी-प्रवर्तन निदेशालय के विद्वान अधिवक्ता श्री कुलदीप श्रीवास्तव को सुना गया।

2. धारा 528 बीएनएसएस के तहत दायर वर्तमान आवेदन के माध्यम से, आवेदक ने विशेष न्यायाधीश, भ्रष्टाचार निरोधक, सीबीआई पश्चिम/ईडी, लखनऊ द्वारा शिकायत संख्या 2/2025 में पारित दिनांक 03.07.2024 के आदेश की वैधता को चुनौती दी है, जिसके तहत पीएमएलए अधिनियम के तहत विशेष न्यायाधीश से मजिस्ट्रेट की अदालत में मामला स्थानांतरित करने के लिए आवेदक द्वारा दायर आवेदन को खारिज कर दिया गया था।

3. दिनांक 28.03.2014 को प्रवर्तन निदेशालय ने सत्र न्यायाधीश, लखनऊ की अदालत में ईसीआईआर/15/पीएमएलए/एलजेडओ/2012 से उत्पन्न शिकायत संख्या 1/2014 दायर की। शिकायत अनुसूचित अपराधों के आधार पर दर्ज की गई है, जिसके संबंध में आतंकवाद निरोधी दस्ता (एटीएस), उत्तर प्रदेश पुलिस, लखनऊ द्वारा दिनांक 17.08.2011 को थाना एटीएस में धारा 419, 420, 467, 468, 471, 120-बी भा.द.सं. के तहत अपराधों के लिए एफआईआर संख्या 1/2011, 2/2011 और 3/2011 दर्ज की गई थी, जिसमें आवेदक भी एक आरोपी है।

4. निर्धारित अपराध के संबंध में आरोप पत्र अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष दायर किया गया था और दिनांक 03.02.2016 को, प्रथम अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, लखनऊ ने एक आदेश पारित कर मामले को

अनुवादित

सत्र न्यायालय को सौंप दिया क्योंकि उस समय, सत्र न्यायाधीश, लखनऊ धारा 45 पीएमएलए अधिनियम के तहत अपराध के मुकदमे के लिए नामित विशेष अदालत थे।

5. दिनांक 24.05.2024 को आवेदक ने अनुसूचित अपराध के मुकदमे को पीएमएलए के विशेष न्यायालय से मजिस्ट्रेट के न्यायालय में स्थानांतरित करने के लिए एक आवेदन दायर किया, जिसे दिनांक 03.07.2024 के आक्षेपित आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया।

6. यह भी ध्यान देने योग्य है कि मामला वर्ष 2016 में विशेष न्यायालय को सौंप दिया गया था, आवेदक तब से मुकदमे में भाग ले रहा है। मामले को मजिस्ट्रेट की अदालत में स्थानांतरित करने के लिए आवेदन वर्ष 2024 में ही दायर किया गया है।

7. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि आवेदन दायर करने का कारण माननीय सर्वोच्च न्यायालय का विजय मदन लाल चौधरी बनाम भारत संघ: (2023) 12 एससीसी 1 का निर्णय है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि: -

"264. याचिकाकर्ताओं की यह शिकायत उचित हो सकती है कि प्रावधान हालांकि विशेष न्यायालय को अनुसूचित अपराध के संबंध में मुकदमे को आगे बढ़ाने की अनुमति देता है, फिर भी यह उस अभियुक्त के खिलाफ दमनकारी हो सकता है जिस पर मनी लॉन्ड्रिंग के अपराध का नहीं बल्कि केवल अनुसूचित अपराध का आरोप है। क्योंकि, उसे उच्च मंच के समक्ष, जैसा भी मामला हो, एक अपील या पुनरीक्षण के अवसर से वंचित किया जा सकता है। यदि अधिकृत प्राधिकारी द्वारा आवेदन किया जाता है तो ऐसी शिकायत पर विशेष न्यायालय द्वारा निश्चित रूप से विचार किया जा सकता है। चूँकि हमने माना है कि प्रावधान केवल विशेष न्यायालय में सक्षम शक्ति प्रदान करने के लिए है, इसलिए यह अनुसरण करना चाहिए कि विशेष न्यायालय विधेय के मुकदमे के स्थानांतरण के लिए अधिकृत प्राधिकारी के अनुरोध की जांच करेगा। अपराध के संबंध में विशेष न्यायालय द्वारा मामला-दर-मामला आधार पर स्वयं विचार किया जा सकता है। इसी प्रकार, पीसी अधिनियम, एनडीपीएस अधिनियम आदि जैसे किसी अन्य विशेष कानून के तहत अपराध के परीक्षण के अनुरोध पर भी मामले के सभी पहलुओं की जांच करने के बाद विशेष न्यायालय द्वारा मामला-दर-मामला आधार पर विचार किया जा सकता है।

8. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने 03.07.2024 के आक्षेपित आदेश की वैधता पर सवाल उठाते हुए कहा है कि यद्यपि आवेदक अनुसूचित अपराध में अभियुक्त है, लेकिन वह पीएमएलए के तहत ईडी द्वारा दायर शिकायत में अभियुक्त नहीं है। चूंकि वह पीएमएलए के तहत अभियुक्त नहीं है, इसलिए उसके मामले की सुनवाई पीएमएलए के प्रावधानों के तहत विशेष न्यायालय द्वारा नहीं की जा सकती है। उन्होंने कहा है कि पीएमएलए के तहत विशेष न्यायालय द्वारा अनुसूचित अपराध से संबंधित मामले की सुनवाई से आवेदक को गंभीर नुकसान होगा क्योंकि उसकी अपील का अधिकार समाप्त हो जाएगा।

9. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता के इस निवेदन पर विचार करने से पहले पीएमएलए की धारा 44(1) में निहित प्रावधान पर एक नज़र डालना उचित होगा, जो इस प्रकार है: -

"44. विशेष न्यायालयों द्वारा विचारणीय अपराध–(1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (2/1974) में निहित किसी बात के होते हुए भी–

(क) धारा 4 के तहत दंडनीय अपराध और उस धारा के तहत अपराध से संबंधित कोई अनुसूचित अपराध उस क्षेत्र के लिए गठित विशेष न्यायालय द्वारा विचारणीय होगा जिसमें अपराध किया गया है:

बशर्ते कि इस अधिनियम के प्रारंभ से पहले किसी अनुसूचित अपराध का विचारण करने वाला विशेष न्यायालय ऐसे अनुसूचित अपराध का विचारण करना जारी रखेगा; या;

(ख) कोई विशेष न्यायालय, इस अधिनियम के तहत इस संबंध में अधिकृत किसी प्राधिकारी द्वारा की गई शिकायत पर, अभियुक्त को विचारण के लिए उसके सुपुर्द किए बिना, धारा 3 के तहत अपराध का संज्ञान ले सकता है:

बशर्ते कि जांच के समापन के बाद, यदि धन-शोधन का कोई ऐसा अपराध नहीं बनता है जिसके लिए ऐसी शिकायत दर्ज करना आवश्यक हो, तो उक्त प्राधिकारी विशेष न्यायालय के समक्ष समापन रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा; या

(ग) यदि वह न्यायालय, जिसने अनुसूचित अपराध का संज्ञान लिया है, उस विशेष न्यायालय से भिन्न है जिसने उप-खंड (ख) के अधीन धन-शोधन के अपराध की शिकायत का संज्ञान लिया है, तो वह इस अधिनियम के अधीन शिकायत दर्ज करने के लिए प्राधिकृत प्राधिकारी द्वारा आवेदन किए जाने पर, अनुसूचित अपराध से संबंधित मामले को विशेष न्यायालय को सौंप देगा और विशेष न्यायालय, ऐसे मामले की प्राप्ति पर, उस चरण से उस पर कार्यवाही शुरू करेगा जिस पर वह किया गया है।

(घ) कोई विशेष न्यायालय, अनुसूचित अपराध या धन-शोधन के अपराध का विचारण करते समय, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के उपबंधों के अनुसार विचारण करेगा, जैसा कि वह सत्र न्यायालय के समक्ष विचारण पर लागू होता है।

स्पष्टीकरण.–संदेहों के निवारण हेतु, यह स्पष्ट किया जाता है कि–

(i) इस अधिनियम के अंतर्गत अपराध से निपटने, जाँच, पूछताछ या विचारण के दौरान विशेष न्यायालय का अधिकार क्षेत्र अनुसूचित अपराध के संबंध में पारित किसी आदेश पर निर्भर नहीं होगा, और एक ही न्यायालय द्वारा दोनों प्रकार के अपराधों के विचारण को संयुक्त विचारण नहीं माना जाएगा;

(ii) शिकायत में आगे की जाँच के संबंध में कोई भी अनुवर्ती शिकायत शामिल मानी जाएगी जो उस अपराध के संबंध में शामिल किसी भी आरोपी व्यक्ति के विरुद्ध, जिसके लिए शिकायत पहले ही दायर की जा चुकी है, चाहे उसका नाम मूल शिकायत में हो या नहीं, कोई और मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य लाने के लिए की जा सकती है।

पीएमएलए की धारा 44(1) में निहित प्रावधान पर विचार करने के बाद, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने राणा अय्यूब बनाम प्रवर्तन निदेशालय, (2023) 4 एससीसी 357 में यह निर्णय दिया कि:-

इसलिए, यह स्पष्ट है कि अनुसूचित अपराध का मुकदमा उस विशेष न्यायालय में चलना चाहिए जिसने धन शोधन के अपराध का संज्ञान लिया हो। दूसरे शब्दों में, जहाँ तक क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र का प्रश्न है, अनुसूचित अपराध का मुकदमा धन शोधन के अपराध के मुकदमे के बाद चलना चाहिए, न कि इसके विपरीत।

** * **

30. धारा 44 की उप-धारा (1) के खंड (क) और (ग) का सावधानीपूर्वक विश्लेषण करने पर पता चलता है कि वे पीएमएलए की धारा 43(1) के अंतर्गत गठित विशेष न्यायालय को प्राथमिकता प्रदान करते हैं। इन दोनों खंडों में दो नियम हैं, अर्थात्: (i) पीएमएलए के अंतर्गत दंडनीय अपराध और उससे संबंधित अनुसूचित अपराध, उस क्षेत्र के लिए गठित विशेष न्यायालय द्वारा विचारणीय होंगे जिसमें धन-शोधन का अपराध किया गया है; और (ii) यदि अनुसूचित अपराध के संबंध में एक न्यायालय द्वारा संज्ञान लिया गया है और धन-शोधन के अपराध के संबंध में विशेष न्यायालय द्वारा संज्ञान लिया गया है, तो अनुसूचित अपराध का विचारण करने वाला न्यायालय उसे धन-शोधन के अपराध का विचारण करने वाले विशेष न्यायालय को सौंप देगा।

31. धारा 43(1) के अंतर्गत गठित विशेष न्यायालय को प्रधानता प्रदान किए जाने के कारण ही धारा 44(1) "दंड प्रक्रिया संहिता में किसी बात के होते हुए भी" शब्दों से आरंभ होती है। यद्यपि पीएमएलए में धारा 44(1) और धारा 45(1) दोनों में द.प्र.सं. के संबंध में एक गैर-बाधित खंड शामिल है, फिर भी दो अन्य प्रावधान ऐसे हैं जहाँ दंड प्रक्रिया संहिता को विशेष न्यायालय के समक्ष कार्यवाही पर विशेष रूप से लागू घोषित किया गया है। धारा 46(1) विशेष न्यायालय के समक्ष कार्यवाही पर द.प्र.सं. के प्रावधानों को विशेष रूप से लागू करती है। इसी प्रकार, पीएमएलए की धारा 65 द.प्र.सं. के प्रावधानों को गिरफ्तारी, तलाशी और जब्ती, कुर्की, जब्ती, जाँच, अभियोजन और अधिनियम के तहत अन्य सभी कार्यवाहियों पर लागू करती है।

10. दिनांक 03.07.2024 के आक्षेपित आदेश में, विचारण न्यायालय ने राणा अय्यूब (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित उपरोक्त कानून पर भरोसा किया है।

11. भले ही आवेदक मनी लॉन्ड्रिंग से संबंधित मामले में अभियुक्त न हो, लेकिन अनुसूचित अपराध में अन्य सह-अभियुक्त व्यक्ति मनी लॉन्ड्रिंग से संबंधित मामले में अभियुक्त हैं, विचारण न्यायालय सही रूप से इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि आवेदक का मुकदमा विशेष न्यायालय में होना चाहिए क्योंकि अन्य सह-अभियुक्त व्यक्तियों का मुकदमा पीएमएलए के तहत विशेष न्यायालय द्वारा संचालित किया जाना है।

12. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिया गया दूसरा आधार यह है कि यदि अनुसूचित अपराधों का मुकदमा अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट की अदालत द्वारा चलाया जाता है, तो उसके दोषसिद्ध होने की स्थिति में उसे केवल 7 वर्ष तक की अवधि के कारावास से दंडित किया जा सकता है, जबकि विशेष न्यायालय द्वारा मुकदमे के मामले में, उसे आजीवन कारावास तक की सजा दी जा सकती है।

13. इस संबंध में प्रासंगिक वैधानिक प्रावधान द.प्र.सं. की धारा 323 और 325 में निहित हैं, जो इस प्रकार हैं: -

"323. प्रक्रिया जब, जांच या परीक्षण शुरू होने के बाद, मजिस्ट्रेट पाता है कि मामला सुपुर्द किया जाना चाहिए।– यदि, किसी अपराध की जांच या मजिस्ट्रेट के समक्ष परीक्षण में, निर्णय पर हस्ताक्षर करने से पहले कार्यवाही के किसी भी चरण में उसे यह प्रतीत होता है कि मामला ऐसा है जिसे सत्र न्यायालय द्वारा सुपुर्द किया जाना चाहिए, तो वह इसे इसमें पूर्व में निहित प्रावधानों के तहत उस न्यायालय को सुपुर्द करेगा और उसके बाद अध्याय XVIII के प्रावधान इस प्रकार की गई सुपुर्दगी पर लागू होंगे।

* * *

325. प्रक्रिया जब मजिस्ट्रेट पर्याप्त रूप से कठोर दंड पारित नहीं कर सकता है।–

(1) जब भी किसी मजिस्ट्रेट की, अभियोजन पक्ष और अभियुक्त के साक्ष्य को सुनने के बाद, यह राय हो कि अभियुक्त दोषी है, और उसे उस दंड से भिन्न प्रकार का या अधिक कठोर दंड मिलना चाहिए, जिसे देने के लिए ऐसे मजिस्ट्रेट को अधिकार दिया गया है, या द्वितीय श्रेणी मजिस्ट्रेट होने के नाते, उसकी राय हो कि अभियुक्त धारा 106 के अधीन बंधपत्र निष्पादित करने के लिए अपेक्षित होने पर, वह अपनी राय अभिलिखित कर सकता है और अपनी कार्यवाही प्रस्तुत कर सकता है, तथा अभियुक्त को उस मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के पास भेज सकता है, जिसके वह अधीनस्थ है।

(2) जब एक से अधिक अभियुक्तों पर एक साथ विचारण किया जा रहा हो, और मजिस्ट्रेट उप-धारा (1) के अधीन कार्यवाही करना आवश्यक समझता है, तो ऐसे किसी भी अभियुक्त के संबंध में, वह उन सभी अभियुक्तों को, जो उसकी राय में दोषी हों, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के पास भेजेगा।

(3) वह मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, जिसके पास कार्यवाही प्रस्तुत की जाती है, यदि वह उचित समझे, तो पक्षकारों की परीक्षा कर सकता है और मामले में पहले ही साक्ष्य दे चुके किसी भी साक्षी को वापस बुलाकर उसकी परीक्षा कर सकता है और कोई और साक्ष्य मंगवा सकता है तथा ले सकता है, और मामले में ऐसा निर्णय, दंडादेश या आदेश पारित कर सकता है, जैसा वह उचित समझे, और जो विधि के अनुसार हो।

14. यहाँ तक कि जहाँ किसी अपराध के लिए मजिस्ट्रेट की शक्तियों से परे अधिकतम दंड का प्रावधान है, वहाँ भी मजिस्ट्रेट को विचारण को आगे बढ़ाना होगा, साक्ष्य अभिलिखित करना होगा, यह राय बनानी होगी कि अभियुक्त दोषी है और उसके बाद यह राय बनानी होगी कि अभियुक्त को उस दंड से अधिक दंड दिया जाना चाहिए, जिसके लिए उसे अधिकार दिया गया है। इसके बाद वह कार्यवाही को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत कर सकता है, जो कार्यवाही को सत्र न्यायालय को सौंप सकते हैं। इसलिए, मजिस्ट्रेट द्वारा अपराध की सुनवाई का अर्थ यह नहीं है कि अभियुक्त को कानून द्वारा निर्धारित अपराध के लिए अधिकतम दंड नहीं दिया जा सकता है।

अनुवादित

15. इसलिए, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क कि यदि मामले की सुनवाई मजिस्ट्रेट द्वारा की जाती है, तो आवेदक को केवल सात साल तक के कारावास की सजा से दंडित किया जा सकता है और सुनवाई को विशेष अदालत में स्थानांतरित करने से आवेदक को नुकसान होगा क्योंकि उस स्थिति में उसे सात साल की सजा दी जा सकती है, गलत है।

16. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा कोई अन्य दलील नहीं दी गई।

17. पूर्वगामी चर्चा के मद्देनजर, दिनांकित आदेश में किसी भी हस्तक्षेप का कोई मामला नहीं बनता है। धारा 528 बीएनएसएस के तहत आवेदन में मेरिट का अभाव है और इसे खारिज किया जाता है।

(2025) 4 ILRA 738

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक वाद

दिनांक: लखनऊ 01.04.2025

माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर

के समक्ष

धारा 438 द.प्र.सं. के अंतर्गत आपराधिक प्रकीर्ण अग्रिम

जमानत आवेदन संख्या 118/2025

तथीर जाफरी एवं अन्य **...आवेदक**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य **...प्रतिवादी**

आवेदकों के अधिवक्ता:

अंजनी कुमार मिश्रा, नदीम मुर्तजा, शशांक तिलहारी

प्रतिवादी के अधिवक्ता:

जी.ए.

आपराधिक विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 438-बीएनएसएस, 2023-धारा 482-उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियाँ (रोकथाम) अधिनियम, 1986- स्थिरता-आवेदक ने गैंगस्टर अधिनियम के तहत दर्ज एक मामले के संबंध में अग्रिम जमानत मांगी थी-राज्य ने सीआरपीसी, 1973 में उत्तर प्रदेश संशोधन का हवाला देते हुए आवेदन का विरोध किया, जिसने गैंगस्टर अधिनियम के मामलों में अग्रिम जमानत पर रोक लगा दी थी-आवेदन स्थिरता योग्य नहीं था क्योंकि आरोप पत्र और जमानती वारंट 1 जुलाई 2024 को बीएनएसएस

2023 के प्रभावी होने से पहले जारी किए गए थे-न्यायालय ने आपत्ति को खारिज कर दिया, यह मानते हुए कि 2 जुलाई 2024 को जारी किया गया दूसरा जमानती वारंट (बीएनएसएस 2023 के लागू होने के बाद) कार्रवाई का एक नया कारण बनता है और अग्रिम जमानत धारा 482 बीएनएसएस 2023 द्वारा शासित होगी जो ऐसे आवेदनों की अनुमति देती है-दीपू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और ईरा बनाम राज्य पर भरोसा करते हुए, अदालत ने इस बात पर ज़ोर दिया कि अग्रिम ज़मानत अनुच्छेद 21 से जुड़ा एक लाभकारी प्रावधान है और इसकी व्यापक व्याख्या की जानी चाहिए। आवेदकों के ख़िलाफ़ केवल एक पिछला मामला पाया गया, जिसमें पहले ज़मानत दी गई थी। अदालत ने शर्तों के अधीन अग्रिम ज़मानत दी। इस प्रकार, बीएनएसएस 2023 के तहत अग्रिम ज़मानत आवेदन विचारणीय है। (पैरा 1 से 24)

आवेदन स्वीकार किया जाता है। (ई-6)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. दीपू व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य (क्रि.एम.डब्ल्यू.पी.सं. 12287/2024)
2. ईरा बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) व अन्य (2017) 15 एससीसी 133
3. एम. रविंद्रन बनाम इंटेलिजेंस ऑफिसर, निदेशक राजस्व खुफिया (2021) 2 एससीसी 485

(माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदकगण के विद्वान अधिवक्ता श्री नदीम मुर्तजा एवं श्री अंजनी कुमार मिश्रा तथा प्रतिपक्षी संख्या 1 की ओर से उपस्थित विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री रणविजय सिंह को सुना गया।

2. प्रथम अग्रिम जमानत आवेदन, मुकदमा अपराध संख्या 632/2023, धारा 3(1) उ.प्र. गैंगस्टर्स एवं समाज विरोधी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1986, थाना कोतवाली नगर, जिला बाराबंकी के अंतर्गत दाखिल किया गया है।

3. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री रणविजय सिंह ने प्रारम्भ में ही इस अग्रिम जमानत आवेदन की पोषणीयता के संबंध में प्रारंभिक आपत्ति उठाई है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि विचाराधीन एफआईआर वर्ष 2023 में पंजीकृत की गई है, जिसमें आवेदकों के खिलाफ जिला बाराबंकी में धारा 419, 420, 467, 468, 471, 379, 504, 506 भा.द.सं. के तहत मामला अपराध संख्या-102/2021 के रूप में एक ही मामला दिखाया गया है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि उक्त मामले में आरोप पत्र11.2.2024 को दायर किया गया था, दिनांक 25.4.2024 को समन आदेश जारी किया गया था और पहला जमानती वारंट 30.5.2024 को जारी किया गया था जबकि दूसरा जमानती वारंट 2.7.2024 को जारी किया गया था। उन्होंने दंड प्रक्रिया संहिता (यू.पी. संशोधन) विधेयक, 2022, विशेष रूप से इसकी धारा 2 का उल्लेख करते हुए प्रस्तुत किया है कि उपरोक्त प्रावधान के

अनुवादित

तहत, यू.पी. गैंगस्टर्स और असामाजिक गतिविधियाँ (रोकथाम) अधिनियम, 1986 के संबंध में अग्रिम जमानत आवेदन पोषणीय नहीं है। इसलिए, यह प्रस्तुत किया गया है कि चूंकि आरोप पत्र दाखिल करने एवं विचारण न्यायालय द्वारा संज्ञान लेने और जमानती वारंट जारी करने के समय, भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता (बीएनएसएस 2023) लागू नहीं हुई थी, यह 1.7.2024 से लागू होने के साथ, आवेदकों का मामला उक्त अधिसूचना द्वारा शासित होगा, जिसके तहत वर्तमान अग्रिम जमानत आवेदन पोषणीय नहीं है।

4. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता श्री नदीम मुर्तजा ने विद्वान एजीए द्वारा प्रस्तुत दलीलों का खंडन करते हुए कहा है कि बीएनएसएस, 2023 के तहत, अग्रिम जमानत का प्रावधान धारा 482 द.प्र.सं. के तहत स्पष्ट रूप से इंगित किया गया है और यह तब लागू होगा जब किसी व्यक्ति के पास यह मानने का कारण हो इसलिए, यह प्रस्तुत किया जाता है कि आरोप पत्र दाखिल करने और विचारण न्यायालय द्वारा समन आदेश जारी करने की तारीख अप्रासंगिक होगी, क्योंकि केवल गिरफ्तारी की आशंका ही प्रासंगिक होगी। इसके अलावा, चूँकि वर्तमान मामले में गिरफ्तारी की आशंका दूसरे जमानती वारंट से भी संबंधित है, जो 2.7.2024 को जारी किया गया था, अर्थात, बीएनएसएस, 2023 के अधिनियमित होने के बाद, वर्तमान अग्रिम जमानत आवेदन पोषणीय है।

5. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने दीपू एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 12287/2024) के मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ के निर्णय पर भरोसा किया है।

6. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत प्रस्तुतियों पर विचार करने और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि आरोप पत्र दाखिल करने, समन आदेश जारी करने और प्रथम जमानतीय वारंट जारी करने के समय, बीएनएसएस, 2023 के प्रावधान लागू नहीं हुए थे और आवेदक का मामला उस समय दंड प्रक्रिया संहिता (उत्तर प्रदेश संशोधन) विधेयक, 2022 द्वारा शासित होना था, जिसके तहत गैंगस्टर अधिनियम के प्रावधानों के संबंध में अग्रिम जमानत आवेदनों पर विशेष रूप से रोक लगाई गई थी।

7. हालांकि, यह भी स्पष्ट है कि 1.7.2024 को बीएनएसएस, 2023 के कार्यान्वयन के बाद, 2.7.2024 को दूसरा जमानतीय वारंट जारी किया गया था।

8. विद्वान एजीए द्वारा यह स्वीकार किया जाता है कि दंड प्रक्रिया संहिता (यू.पी. संशोधन) विधेयक, 2022 में उल्लिखित कोई नया निषेध बीएनएसएस, 2023 के संबंध में बाद में अधिसूचित नहीं किया गया है।

9. बीएनएसएस, 2023 की धारा 482 के अवलोकन से पता चलता है कि यह अग्रिम जमानत देने के लिए एक तंत्र प्रदान करती है। उपरोक्त धारा की उपधारा 1 स्पष्ट रूप से इंगित करती है कि ऐसा आवेदन तभी स्वीकार्य होगा जब किसी व्यक्ति के पास यह विश्वास करने का कारण हो कि उसे गिरफ्तार किया जा सकता है।

10. वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों में उक्त प्रावधान के लागू होने पर, आवेदकों की ऐसी आशंका 30.5.2024 को प्रथम जमानतीय वारंट जारी होने के समय स्पष्ट रूप से लागू हुई। हालाँकि, यह भी प्रासंगिक है कि आवेदकों के विरुद्ध दूसरा जमानतीय वारंट 2.7.2024 को जारी किया गया था। यह भी एक स्वीकृत तथ्य है कि आवेदकों को अभी तक दोनों जमानतीय वारंटों में से किसी के भी तहत गिरफ्तार नहीं किया गया है।

11. धारा 482 बीएनएसएस, 2023 के शब्दांकन में इस बात का कोई संकेत नहीं है कि किसी व्यक्ति के पास कब यह मानने का कारण होगा कि उसे गिरफ्तार किया जा सकता है।

12. यह प्रासंगिक है कि अग्रिम जमानत के प्रावधान के संबंध में द.प्र.सं. की धारा 438 को उत्तर प्रदेश राज्य के लिए उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 16/1976 द्वारा हटा दिया गया था और उसके बाद उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 4, 2019 के माध्यम से पुनः शामिल किया गया है। इस तरह के पुन: समावेशन के उद्देश्यों और कारणों का कथन यह है कि इसके पुनरुद्धार की निरंतर मांग की जा रही थी जिसके लिए इस न्यायालय में रिट याचिकाएं भी दायर की गई थीं। राज्य विधि आयोग ने भी 2009 में अपनी तीसरी रिपोर्ट में उक्त प्रावधानों को पुनर्जीवित करने की सिफारिश की थी, जिसे उत्तर प्रदेश सरकार के गृह विभाग के प्रमुख सचिव की अध्यक्षता में गठित समिति ने भी दोहराया था।

13. उद्देश्यों और कारणों का उपरोक्त कथन स्पष्ट रूप से अग्रिम जमानत के प्रावधानों को फिर से शामिल करने की निरंतर मांग को इंगित करता है जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 से सीधे संबंधित हैं। उद्देश्यों और कारणों के कथन और अग्रिम जमानत के प्रावधानों को पुनर्जीवित करने की सिफारिशों में इंगित उद्देश्य स्पष्ट रूप से अभियुक्तों के जीवन और स्वतंत्रता की रक्षा करना है, जिन्हें केवल प्रथम सूचना रिपोर्ट में उनके खिलाफ लगाए गए आरोपों के आधार पर गिरफ्तार नहीं किया जाना चाहिए जब तक कि उनके खिलाफ कुछ ठोस सबूत न हों।

14. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **ईईआरए बनाम के मामले में राज्य (एनसीटी दिल्ली) और अन्य** (2017) 15 एससीसी 133 ने निम्नलिखित तरीके से एक क़ानून की उद्देश्यपूर्ण व्याख्या की ओर ध्यान दिलाया है:"
"41. उपर्युक्त प्राधिकारी के समुचित विश्लेषण पर, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि जब दो व्याख्याएँ उचित रूप से संभव हों, तो उस व्याख्या को प्राथमिकता दी जानी चाहिए जो अधिनियम के लाभकारी उद्देश्य को पूरा करने में मदद करे; और इसके अलावा, उक्त व्याख्या किसी प्रावधान के दायरे का अनावश्यक रूप से विस्तार नहीं करनी चाहिए। इस प्रकार, न्यायालय को वैकल्पिक उचित व्याख्या अपनाते समय सावधान और सतर्क रहना होगा। वैकल्पिक उचित व्याख्या की स्वीकार्यता अधिनियम के अनुमेय दायरे में होनी चाहिए। विस्तार से कहें तो, संतुलन के सिद्धांत का परिचय हवा में नहीं दिया जा सकता है और किसी भी स्थिति में, न्यायालयों को, किसी अवधारणा को वैधानिक मानदंडों के भीतर समाहित करने के विचार से, इस तरह की जाँच द्वारा प्रावधान द्वारा परिकल्पित विस्तार का मार्ग प्रशस्त नहीं करना चाहिए।

47. दीपक महाजन मामले में, न्यायालय ने मैक्सवेल ऑन इंटरप्रिटेशन ऑफ स्टैच्यूट्स, 10वें संस्करण, पृष्ठ 229 से एक अंश का उल्लेख किया, जिसका उद्धरण नीचे दिया गया है: (एससीसी, पृष्ठ 454, पैरा 25)

"25. ... 'जहाँ किसी क़ानून की भाषा, अपने सामान्य अर्थ और व्याकरणिक संरचना में, अधिनियमन के प्रत्यक्ष उद्देश्य के स्पष्ट विरोधाभास, या किसी असुविधा या बेतुकेपन, कठिनाई या अन्याय की ओर ले जाती है, जो संभवतः अभिप्रेत नहीं है, वहाँ उस पर एक ऐसी व्याख्या की जा सकती है जो शब्दों के अर्थ और यहाँ तक कि वाक्य की संरचना को भी संशोधित करती है.... जहाँ किसी क़ानून का मुख्य उद्देश्य और आशय स्पष्ट हो, उसे मसौदाकार की अकुशलता या कानून की अज्ञानता के कारण, आवश्यकता पड़ने पर या प्रयुक्त भाषा की पूर्ण अशिष्टता को छोड़कर, अमान्य नहीं किया जाना चाहिए।"

न्यायालय ने विभिन्न अन्य निर्णयों का भी हवाला दिया और अंततः फैसला सुनाया कि न्यायालयों के लिए कार्यात्मक दृष्टिकोण अपनाना और विधायी मंशा पर गौर करना स्वीकार्य है और कभी-कभी विधायी मंशा और अधिनियम के उद्देश्य और भावना को प्रभावी बनाने के लिए शब्दों और अधिनियम के पीछे जाकर अन्य कारकों को भी ध्यान में रखना आवश्यक हो सकता है ताकि कोई बेतुकापन या व्यावहारिक असुविधा न हो और विधायी अभ्यास और उसका दायरा और उद्देश्य निरर्थक न हो जाए। जैसा कि पूर्वोक्त कथन से पता चलता है कि न्यायालय विधायी मंशा तक पहुंचने के लिए एक कार्यात्मक दृष्टिकोण अपनाने के लिए इच्छुक है। इस बात पर जोर देने की आवश्यकता नहीं है कि ऐसा करना आवश्यक है।

64. मैंने पूर्वोक्त प्राधिकारियों का उल्लेख इस बात पर प्रकाश डालने के लिए किया है कि विधायी मंशा और कानून के उद्देश्य को इस तथ्य के संबंध में ध्यान में रखा जाना चाहिए कि संदर्भ को उचित रूप से समझा जाना चाहिए। किसी प्रावधान की रचना करते समय विधायिका की मंशा का पता लगाना न्यायालय का सबसे प्रमुख कर्तव्य है, क्योंकि यह एक स्वीकृत सिद्धांत है कि विधायिका सही शब्दों के प्रयोग से अपनी बात व्यक्त करती है और किसी अस्पष्टता के अभाव में या परिणामी परिणाम से कोई बेतुकापन उत्पन्न नहीं होता, रचनात्मकता के नाम पर किसी अन्य सहायता की तलाश करने की कोई गुंजाइश नहीं है। इस प्रस्ताव पर कोई विवाद नहीं है कि उद्देश्यपूर्ण निर्माण की विधि को कानून के पाठ और संदर्भ को ध्यान में रखते हुए अपनाया गया है, यह उस शरारत को मिटाना चाहता है और सामाजिक कल्याण कानूनों की बात आने पर विधायिका का मूल इरादा है। यदि उद्देश्य विफल हो जाता है, तो बेतुका परिणाम सामने आता है। न्यायालय को कंजूस होने की आवश्यकता नहीं है और जहां आवश्यक हो, शब्द की आपूर्ति करने के लिए व्यापक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। ऊपर संदर्भित प्राधिकारी विभिन्न कानूनों को शामिल करते हैं जिनमें विधायिका का इरादा विभिन्न क्षेत्रों को शामिल करना और मुद्दों को संबोधित करना था। किसी सामाजिक कल्याणकारी या लाभकारी कानून की व्याख्या करते समय व्यक्ति को "रंग", "विषय-वस्तु" और "विधियों के संदर्भ" से निर्देशित होना चाहिए और यदि इसमें मानवाधिकार शामिल हैं, तो प्रोक्रस्टियन न्याय और लिलिपुटियन खोखलेपन के दृष्टिकोण की अवधारणाओं को त्याग दिया जाना चाहिए। न्यायाधीश को स्वयं को कठोर भाषाई व्याख्या की बेड़ियों से मुक्त करना होगा और उस मार्ग को प्रशस्त करना होगा जो विधायी आशय की आत्मा की सेवा करता है और उस स्थिति में, वह एक वास्तविक रचनात्मक निर्माणवादी न्यायाधीश बन जाता है।

65. मैंने हिंदुस्तान लीवर लिमिटेड और दीपक महाजन, प्रताप सिंह और कई अन्य मामलों में इस दृष्टिकोण को देखा है। मैंने यह भी विश्लेषण किया है कि न्यायालय ने आर.एम.डी. चमारबागवाला और अन्य निर्णयों की तरह उक्त दृष्टिकोण का पालन करने से कहाँ इनकार किया है। न्यायालय ने यह सिद्धांत विकसित किया है कि विधायी आशय को विधान के पाठ, विषय-वस्तु और संदर्भ से ग्रहण किया जाना चाहिए और उद्देश्यपूर्ण दृष्टिकोण को अधिनियमन के कार्यात्मक सिद्धांत में सहायता और वृद्धि करनी चाहिए। इसके अलावा, यदि किसी व्याख्या से असुविधा होने की संभावना है, तो उसे टाला जाना चाहिए, और क़ानून के निर्माताओं के इरादे के संबंध में न्यायाधीश की व्यक्तिगत धारणा या विश्वास के बारे में नहीं सोचा जाना चाहिए। और, कहने की आवश्यकता नहीं है कि उद्देश्यपूर्ण दृष्टिकोण अपनाने के लिए आवश्यकता मौजूद होनी चाहिए। न्यायाधीश, रचनात्मक रूप से निर्माणवादी व्यक्तित्व की भूमिका निभाते हुए, अपने विचार और विचार के अनुरूप किसी भी रंग की टोपी नहीं पहननी चाहिए और अपनी सोच प्रक्रिया को एक अनुमेय या स्वीकार्य सीमा से परे शब्दों से जूझने के लिए प्रेरित नहीं करना चाहिए। इससे विधायिका द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली भाषा के लिए हिंसा पैदा करने की क्षमता है। इसके अलावा, न्यायालय केवल स्पष्ट आवश्यकता के मामले में ही कैसस ओमिसस की सहायता ले सकता है और इसके अलावा इसे क़ानून के चारों कोनों से समझा जाना चाहिए। यदि अर्थ समझ में आता है, तो उक्त सिद्धांत का कोई प्रवेश नहीं है। यह न्यायाधीश के हाथ में एक तैयार उपकरण नहीं हो सकता कि वह इसे अपनी इच्छानुसार पेश कर दे।"

15. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने एम. रविंद्रन बनाम खुफिया अधिकारी, राजस्व खुफिया निदेशालय के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के पैराग्राफ 17.9 पर भरोसा किया है, जो (2021) 2 एससीसी 485 में रिपोर्ट किया गया है, जो इस प्रकार है:

"17.9. इसके अतिरिक्त, यह अच्छी तरह से स्थापित है कि दंडात्मक क़ानून के निर्माण में किसी भी अस्पष्टता के मामले में, अदालतों को उस व्याख्या का पक्ष लेना चाहिए जो अभियुक्तों के अधिकारों की रक्षा की ओर झुकती है, व्यक्तिगत अभियुक्त और राज्य मशीनरी के बीच सर्वव्यापी शक्ति असमानता को देखते हुए। यह न केवल मूल दंड विधानों के मामले में बल्कि अभियुक्त की स्वतंत्रता में कटौती करने वाली प्रक्रियाओं के मामले में भी लागू होता है।

16. मामले के वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों में उपरोक्त निर्णयों की प्रयोज्यता पर, यह स्पष्ट है कि अग्रिम जमानत का प्रावधान एक लाभकारी प्रावधान की प्रकृति का है ताकि किसी व्यक्ति को केवल प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोप के आधार पर हिरासत में लेने से रोका जा सके। यह भी स्पष्ट है कि किसी कानून के प्रावधान के उद्देश्य को व्यापक आयाम दिए जाने की आवश्यकता है ताकि उक्त प्रावधान को दबाने के बजाय ऐसे कानून की प्रभावी व्याख्या की जा सके।

17. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून की उपरोक्त परिभाषाओं के मद्देनजर, यह स्पष्ट है कि बीएनएसएस, 2023 की धारा 482 में इंगित अग्रिम जमानत के प्रावधानों को उनके प्रभावी कार्यान्वयन के

लिए व्यापक आयाम दिए जाने की आवश्यकता है, विशेष रूप से इस सिद्धांत के प्रकाश में कि एक व्यक्ति को जब तक दोषी साबित न हो जाएं, तब तक निर्दोष होंगे।

18. वर्तमान मामले में, चूंकि यह स्पष्ट है कि आवेदकों को 30.5.2024 के पहले जमानती वारंट के अनुसार हिरासत में नहीं लिया गया था, इसलिए इस न्यायालय की सुविचारित राय में, आवेदकों को हिरासत में लिए जाने की आशंका ऐसी आशंका से संबंधित कार्रवाई का एक सतत कारण होगी, खासकर तब, जब उन्हें 2.7.2024 के दूसरे जमानती वारंट जारी होने के बाद भी हिरासत में नहीं लिया गया है।

19. उपरोक्त पहलू पर इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने दीपू (उपरोक्त) के मामले में धारा 531(2)(ए) बीएनएसएस, 2023 के अनुसार निम्नलिखित तरीके से विचार किया है:

"16. उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर, यह न्यायालय भा.द.सं. और द.प्र.सं. को निरस्त करने के प्रभाव के संबंध में कानून का भी सारांश प्रस्तुत कर रहा है। बीएनएस और बीएनएसएस द्वारा क्रमशः और इसका उल्लेख नीचे किया जा रहा है:

(i) यदि 1.7.2024 से पहले किए गए अपराध के लिए 1.7.2024 को या उसके बाद एफआईआर दर्ज की जाती है, तो भा.द.सं. के प्रावधानों के तहत एफआईआर दर्ज की जाएगी लेकिन जांच बीएनएसएस के अनुसार जारी रहेगी।

(ii) 01.07.2024 (नए आपराधिक कानूनों के शुरू होने की तारीख) को लंबित जांच में, पुलिस रिपोर्ट पर संज्ञान लेने तक द.प्र.सं. के अनुसार जांच जारी रहेगी और यदि सक्षम न्यायालय द्वारा आगे की जांच के लिए कोई निर्देश दिया जाता है तो वह द.प्र.सं. के अनुसार जारी रहेगी;

(iii) 01.07.2024 को या उसके बाद लंबित जांच पर संज्ञान बीएनएसएस के अनुसार लिया जाएगा और जांच, परीक्षण या अपील सहित सभी अनुवर्ती कार्यवाही बीएनएसएस की प्रक्रिया के अनुसार संचालित की जाएगी।

(iv) बीएनएसएस की धारा 531(2)(ए) केवल लंबित जांच, परीक्षण, अपील, आवेदन और जांच को ही सुरक्षित रखती है, इसलिए, यदि कोई परीक्षण, अपील, पुनरीक्षण या आवेदन 01.07.2024 के बाद शुरू किया जाता है, तो उस पर बीएनएसएस की प्रक्रिया के अनुसार कार्यवाही की जाएगी।

(v) 01.07.2024 को लंबित परीक्षण, यदि 01.07.2024 को या उसके बाद समाप्त होता है, तो ऐसे परीक्षण में पारित निर्णय के विरुद्ध अपील या पुनरीक्षण बीएनएसएस के अनुसार होगा। हालाँकि, यदि कोई आवेदन अपील में दायर किया जाता है, जो 01.07.2024 को लंबित था, तो द.प्र.सं. की प्रक्रिया लागू होगी।

(vi) यदि आपराधिक कार्यवाही या आरोपपत्र को 01.07.2024 को या उसके बाद उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी जाती है, जहां जांच द.प्र.सं. के अनुसार की गई थी। तो इसे बीएनएसएस की धारा 528 के तहत दायर किया जाएगा, न कि धारा 482 द.प्र.सं. के तहत दायर किया जायेगा।"

20. इस न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा विचार किए गए धारा 531 के उपरोक्त प्रावधान से यह भी संकेत मिलता है कि पहले के प्रावधानों को निरस्त करने से केवल लंबित जांच, परीक्षण, अपील, आवेदन और पूछताछ

ही बचेंगे। इसलिए, यह स्वाभाविक रूप से इस प्रकार है कि निरसन खंड केवल उन आवेदनों को बचाएगा जो बीएनएसएस, 2023 के कार्यान्वयन की तिथि तक लंबित थे और चूंकि वर्तमान मामले में, बीएनएसएस, 2023 के लागू होने से पहले कोई अग्रिम जमानत आवेदन दायर नहीं किया गया था, इसलिए निरसन और बख्शने वाले खंड का उपरोक्त प्रावधान वर्तमान मामले में लागू नहीं होगा जो वास्तव में बीएनएसएस, 2023 द्वारा शासित होगा।

21. उपरोक्त चर्चाओं के मद्देनजर, वर्तमान अग्रिम जमानत आवेदन की स्थिरता के संबंध में उठाई गई प्रारंभिक आपत्ति को एतद्द्वारा खारिज किया जाता है।

22. मुद्दे के गुण-दोष के आधार पर, गैंगचार्ट के अवलोकन से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि जैसा कि ऊपर दर्शाया गया है, केवल एक ही मामला मामला अपराध संख्या 102/2021 में आवेदकों की संलिप्तता को दर्शाता है, जिसमें इस न्यायालय ने प्रारंभ में आपराधिक प्रकीर्ण अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 650/2023 में पारित आदेश दिनांक 3.3.2023 के तहत आवेदकों को अंतरिम अग्रिम जमानत प्रदान की थी और उसके बाद 19.7.2023 के आदेश के तहत उक्त आदेश को पूर्ण बना दिया गया और अग्रिम जमानत आवेदन को अनुमति दी गई थी। यह भी प्रासंगिक है कि इससे पहले इस न्यायालय ने सीआरएल विविध रिट याचिका संख्या 4726/2023 में दिनांक 19.6.2023 के आदेश के तहत आवेदकों को सुरक्षा प्रदान की थी, जिसे, हालांकि, आरोप पत्र दाखिल होने के कारण दिनांक 5.12.2024 के आदेश के तहत वापस लेते हुए खारिज कर दिया गया था।

23. उपरोक्त के मद्देनजर, यह प्रावधान किया जाता है कि गिरफ्तारी की स्थिति में, आवेदक **तथीर जाफरी (एफआईआर-तथीर जाफरी में अल्लिका), रौशनी रिज़वी और सैय्यद नसीम** को उपरोक्त अपराध संख्या वाद में संबंधित गिरफ्तारकर्ता अधिकारी/जांच अधिकारी/थानाध्यक्ष की संतुष्टि के अनुसार समान राशि के दो-दो जमानतदारों सहित निजी मुचलका भरने पर निम्नलिखित शर्तों के साथ अग्रिम जमानत पर रिहा किया जाएगा:-

(1) आवेदक/आवेदक जांच में सहयोग करेंगे और गवाहों को प्रभावित नहीं करेंगे।

(2) संबंधित गिरफ्तारकर्ता अधिकारी/थानाध्यक्ष/थानाध्यक्ष द्वारा जांच/पूछताछ के लिए बुलाए जाने पर आरोपी-आवेदक/आवेदक उपस्थित रहेंगे।

(3) आवेदक/आवेदक न्यायालय की पूर्व अनुमति के बिना भारत नहीं छोड़ेंगे।

(4) चूक की स्थिति में, जांच एजेंसी इस अंतरिम संरक्षण को रद्द करने के लिए आवेदन कर सकती है।

24. आवेदन का निस्तारण किया जाता है।

(2025) 4 ILRA 744

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक वाद

दिनांक: लखनऊ 09.04.2025

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

के समक्ष

आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या - 8027/2024

राजीव यादव उर्फ रिंकू **...आवेदक**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य **...प्रतिवादी**

आवेदक के अधिवक्ता:

करुणेश सिंह, अरुण सिन्हा, राम चंद्रसिंह, विजय प्रताप सिंह

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

जी.ए., रीना पांडे, संजय शंकर पांडे

अनुवादित

आपराधिक विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 439- भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 302/34-आवेदक ने मृतक की हत्या के संबंध में जमानत मांगी- अभियोजन पक्ष ने मुख्य रूप से एक सह-अभियुक्त के हिरासत में दिए गए इकबालिया बयान और द.प्र.सं. की धारा 161 के तहत एक गवाह के बयान से अनुमानित एक विवादित मृत्युकालिक घोषणा पर भरोसा किया- आवेदक को सीधे तौर पर जोड़ने वाली एकमात्र सामग्री सह-अभियुक्त का इकबालिया बयान था, जो केवल दोषसिद्धि के लिए पर्याप्त नहीं है- संतोष यादव के बयान, जिसे मृत्युकालिक घोषणा बताया गया था, में आवेदक की ओर से समय और प्रत्यक्ष धमकी जैसे महत्वपूर्ण विवरणों का अभाव था- अदालत ने पाया कि बयान में स्पष्ट रूप से आवेदक को दोषी नहीं ठहराया, न ही यह मृतक की मृत्यु के समय के निकट था या उससे संतुष्ट था, जिससे इसके साक्ष्य का महत्व प्रभावित हुआ। न्यायालय ने यह भी माना कि गवाहों को धमकाने का आरोप लगाने वाली बाद की प्राथमिकी में आवेदक सीधे तौर पर शामिल नहीं था। सुनवाई के दौरान स्वीकार्यता और साक्ष्य मूल्य के प्रश्नों की जांच की जानी चाहिए। जमानत शर्तों के अधीन दी जा सकती है। (पैरा 1 से 26)

आवेदन स्वीकार किया जाता है। (ई-6)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. पकाला नारायण स्वामी बनाम सम्राट (1939) 41 बम्बई एलआर 428

2. इरफान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2023) एससीसी ऑनलाइन एससी 1060

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री अरुण सिन्हा, राज्य की ओर से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री जयंत सिंह तोमर, सूचनादाता-शिकायतकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री संजय शंकर पाण्डेय को सुना गया तथा अभिलेखों का अवलोकन किया गया।

2. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने 'शिकायतकर्ता के पूरक शपथपत्र का प्रत्युत्तर/प्रतिउत्तर' दाखिल किया है, जिसे अभिलेख में दर्ज कर लिया गया है।

3. वर्तमान आवेदन, थाना कैंट, जिला अयोध्या में पंजीकृत मुकदमा अपराध संख्या 063/2024, धारा 302/34 भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत आवेदक को जमानत पर रिहा करने के लिए दाखिल किया गया है।

4. उपरोक्त मामला एक प्राथमिकी के आधार पर दिनांक26.02.2024 को 04:58 बजे दर्ज किया गया, जिसमें कहा गया कि दिनांक26.02.2024 की रात 12:30 बजे कुछ अज्ञात ग्रामीणों ने सूचनादाता को बताया कि उनके 25 वर्षीय बेटे का राम करण यादव के घर के पास एक्सीडेंट हो गया है। घायल को अस्पताल ले जाया गया जहाँ डॉक्टर ने बताया कि गोली लगने से उसकी मौत हो गई।

5. पोस्टमार्टम रिपोर्ट में छाती के पीछे, कमर के साथ-साथ बाएं हाथ पर भी गंभीर प्रवेश घाव और बाएं हाथ पर गंभीर निकास घाव का उल्लेख है। मृत्यु का कारण मृत्युपूर्व बन्दूक की चोटों के परिणामस्वरूप सदमा और रक्तस्राव बताया गया है।

6. द.प्र.सं. की धारा 161 के तहत दर्ज किए गए सूचनादाता के बयान में, उसने एफआईआर के कथानक को दोहराया।

7. दिनांक 01.03.2024 को, जांच अधिकारी ने सुनील यादव नाम के व्यक्ति का बयान दर्ज किया, जिसने कहा कि रितेश यादव और आवेदक राजीव यादव उसके पास आए थे और उन्होंने बताया था कि उन्होंने विशाल यादव की हत्या कर दी है। उन्होंने कहा कि पुलिस को अपराध में उनकी संलिप्तता का संदेह था और वह उनकी तलाश कर रही थी और उन्होंने उक्त गवाह से उन्हें बचाने का अनुरोध किया था। पुलिस ने दावा किया कि उपरोक्त जानकारी के आधार पर, जब पुलिस दल ने आवेदक और सह-अभियुक्त रितेश यादव को पकड़ा, तो आरोपियों ने पुलिसकर्मियों पर गोलियां चलाईं, लेकिन इस घटना में किसी भी पुलिसकर्मी को कोई चोट नहीं आई। जवाबी गोलीबारी में सह-अभियुक्त रितेश यादव के पैर में गोली लग गई।

8. उस मामले में दर्ज अपने हिरासत में स्वीकारोक्ति बयान में, रितेश यादव ने वर्तमान मामले में आवेदक की भी संलिप्तता का आरोप लगाया।

9. जमानत आवेदन के समर्थन में दायर शपथपत्र के पैरा-25 में, आवेदक की दस अन्य आपराधिक मामलों में संलिप्तता का खुलासा किया गया है। चार मामलों में आवेदक को जमानत मिल चुकी है। चार मामलों में, वर्तमान मामले में उसकी गिरफ्तारी के बाद उसे फंसाया गया है और अन्य मामलों में आवेदक की संलिप्तता के आधार पर गैंगस्टर अधिनियम के तहत दो मामले दर्ज किए गए हैं।

10. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी कि सह-अभियुक्त रितेश यादव के हिरासत में दिए गए इकबालिया बयान के अलावा, आवेदक को कथित अपराध के साथ जोड़ने के लिए कोई अन्य सामग्री नहीं है।

11. विद्वान ए.जी.ए.-I श्री जयंत सिंह तोमर ने जमानत अर्जी का विरोध किया और उन्होंने दलील दी कि जांच के दौरान अपराध के कारित होने में आवेदक की संलिप्तता स्थापित हो गई है और उसके खिलाफ आरोप पत्र दाखिल किया जा चुका है। हालांकि, वह आवेदक के विद्वान अधिवक्ता की इस दलील का खंडन नहीं कर सके कि आवेदक के खिलाफ एकमात्र सबूत सह-अभियुक्त रितेश यादव का हिरासत में दिया गया इकबालिया बयान है।

12. सूचनादाता के विद्वान अधिवक्ता श्री संजय शंकर पांडे ने जमानत आवेदन का पुरजोर विरोध किया और उन्होंने दलील दी कि मृतक ने मृत्युपूर्व बयान दिया था जिसमें आवेदक को फंसाया गया था। उनके अनुसार, मृत्युपूर्व बयान का अनुमान जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए सूचनादाता के बेटे संतोष यादव के बयान से लगाया जा सकता है, जिसे जमानत आवेदन के साथ-साथ राज्य द्वारा दायर जवाबी हलफनामे के साथ संलग्न किया गया है। उन्होंने कहा कि चंद्रदेव यादव के बेटे संदीप यादव ने विनोद यादव को टेलीफोन पर सूचित किया था कि विशाल यादव का एक्सीडेंट हो गया है। इस गवाह ने आगे कहा कि यह जानकारी नवीन गौड़ ने फोन करके विनोद यादव को दी थी। बयान में इस विसंगति को स्पष्ट करने के लिए अदालत द्वारा सूचनादाता के विद्वान अधिवक्ता से पूछे जाने के बावजूद कि क्या घटना की जानकारी विनोद यादव को संदीप यादव या नवीन गौड़ ने दी थी, सूचनादाता के विद्वान अधिवक्ता कोई जवाब नहीं दे सके। संतोष यादव ने आगे बताया कि सूचना मिलने पर वह अपने भाई आकाश और पिता रामबली यादव (सूचनाकर्ता) के साथ घटनास्थल पर गए थे और अपने भाई को वहाँ पड़ा पाया। संतोष यादव उन्हें जिला अस्पताल ले गए जहाँ डॉक्टर ने बताया कि गोली लगने से उनकी मृत्यु हो गई है। इसके बाद, प्राथमिकी दर्ज की गई।

13. संतोष यादव ने आगे बताया कि उनके पिता रितेश यादव के साथ ज़मीन का कारोबार करते थे। उनके भाई विशाल यादव भी अपने पिता रामबली यादव (सूचनाकर्ता) के साथ जाते थे। रामबली यादव और रितेश यादव ने वर्ष 2021 में श्रीमती पूनम देवी की जमीन के संबंध में एक समझौता किया था, जो एक पारिवारिक मुकदमे के अधीन था। मुकदमे का फैसला जनवरी माह में श्रीमती पूनम देवी के पक्ष में हुआ था। इस बीच, जमीन की

कीमत बढ़ गई थी और रितेश यादव अपने पक्ष में विक्रय-पत्र निष्पादित करना चाहता था, जिसका विशाल यादव ने विरोध किया था। विशाल यादव ने अपने भाई संतोष यादव को बताया था कि रितेश यादव ने उसे धमकी दी है, लेकिन संतोष यादव ने इस सूचना को कोई महत्व नहीं दिया।

14. सूचनादाता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि संतोष यादव का उपरोक्त कथन, जिसमें उसने कहा है कि मृतक ने उसे सूचित किया था कि रितेश यादव ने उसे धमकी दी है, उसकी मृत्यु-पूर्व घोषणा के समान है।

15. मृत्युपूर्व कथनों के संबंध में वैधानिक प्रावधान साक्ष्य अधिनियम की धारा 32(1) में निहित है, जो इस प्रकार है: -

"32. ऐसे मामले जिनमें किसी मृत व्यक्ति या मिल न सकने वाले व्यक्ति आदि द्वारा प्रासंगिक तथ्य का कथन प्रासंगिक है–किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा दिए गए प्रासंगिक तथ्यों के लिखित या मौखिक कथन, जो मर चुका है, या मिल न सकने वाला है, या जो साक्ष्य देने में असमर्थ हो गया है, या जिसकी उपस्थिति बिना किसी विलंब या व्यय के प्राप्त नहीं की जा सकती है, जो मामले की परिस्थितियों के तहत न्यायालय को अनुचित प्रतीत होती है, निम्नलिखित मामलों में स्वयं प्रासंगिक तथ्य हैं:–

***(1) जब यह मृत्यु के कारण से संबंधित हो** - जब किसी व्यक्ति द्वारा अपनी मृत्यु के कारण के बारे में, या उस लेन-देन की किसी भी परिस्थिति के बारे में कथन किया जाता है जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हुई, ऐसे मामलों में जिनमें उस व्यक्ति की मृत्यु का कारण प्रश्नगत होता है।*

ऐसे कथन प्रासंगिक हैं, चाहे उन्हें देने वाला व्यक्ति, उनके दिए जाने के समय मृत्यु की आशंका में था या नहीं, और चाहे जो भी हो कार्यवाही की प्रकृति जिसमें उसकी मृत्यु का कारण प्रश्न में आता है।"

16. न्यायालय के इस प्रश्न के उत्तर में कि संतोष यादव के बयान में इस बात का उल्लेख नहीं है कि मृतक ने ऐसा बयान कब दिया था और क्या वह बयान, जो पीड़ित की मृत्यु के तत्काल बाद या जब वह अपनी मृत्यु की आशंका कर रहा था, नहीं दिया गया था, को उसका मृत्युपूर्व कथन माना जा सकता है, सूचनादाता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि इस संबंध में कानून पकाला नारायण स्वामी के मामले में तय हो चुका था। हालाँकि, उन्होंने अपने द्वारा भरोसा किए गए फैसले की एक प्रति प्रदान नहीं की और वे फैसले का उद्धरण भी नहीं दे सके।

17. न्यायालय के समक्ष किसी निर्णय-विधि पर भरोसा करने का यह उचित तरीका नहीं है। इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियमों के भाग III में आपराधिक क्षेत्राधिकार के संबंध में प्रावधान हैं। नियमों के भाग III में आने वाला अध्याय XVIII मूल परीक्षणों के अलावा अन्य कार्यवाहियों से संबंधित है। इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियमावली के अध्याय XVIII में आने वाले नियम 3(2) में प्रावधान है कि: -

"यदि अधिवक्ता किसी निर्णय पर भरोसा कर रहे हैं, तो उनके पास उसकी तीन फोटोकॉपी तैयार होनी चाहिए, दो न्यायाधीशों के लिए और एक दूसरे पक्ष के लिए।"

18. उच्च न्यायालय में उपस्थित होने वाले अधिवक्ता को उच्च न्यायालय के नियमों से अच्छी तरह वाकिफ होना चाहिए और उनका पालन करना चाहिए। वैसे भी, जब न्यायालयों पर मामलों का अत्यधिक बोझ होता है, तो न्यायालयों में उपस्थित होने वाले अधिवक्ताओं - जो न्यायालय के अधिकारी होते हैं, का प्रयास होना चाहिए कि वे सटीक और संक्षिप्त तरीके से प्रस्तुतियाँ देकर सहायता प्रदान करें ताकि न्यायालय का बहुमूल्य समय बर्बाद होने से बचाया जा सके। न्यायालय को उसकी फोटोकॉपी उपलब्ध कराए बिना और उसका उद्धरण दिए बिना किसी केस-लॉ पर भरोसा करना, न्याय प्रदान करने में उचित सहायता के रूप में कार्य नहीं करता है।

19. श्री अरुण सिन्हा ने श्री द्वारा लिए गए निर्णय का उद्धरण प्रदान किया है। शंजय शंकर पांडे, जो "**पाकला नारायण स्वामी बनाम समाट: (1939) 41 बोमएलआर 428**" है। **पकाला नारायण स्वामी** के तथ्य ये थे कि 20 मार्च 1937 को मृतक व्यक्ति को एक अहस्ताक्षरित पत्र मिला था जिसमें उसे उसी दिन या अगले दिन ब्रह्मपुर आने के लिए आमंत्रित किया गया था। मृतक की विधवा ने कहा कि उस दिन उसके पति ने उसे एक पत्र दिखाया था और कहा था कि वह ब्रह्मपुर जा रहा है क्योंकि अपीलकर्ता की पत्नी ने उसे लिखा था और उसे अपने बकाये का भुगतान प्राप्त करने के लिए कहा था। मृतक रविवार, 21 मार्च को ब्रह्मपुर के लिए ट्रेन पकड़ने के लिए समय पर अपने घर से निकला था। मंगलवार, 23 मार्च को पुरी में ट्रेन में उसका शव मिला। मृतक की पत्नी के इस बयान को स्वीकार करने को अपील में चुनौती दी गई थी। न्यायालय द्वारा तैयार किया गया पहला प्रश्न यह था कि क्या विधवा का यह कथन कि 20 मार्च को मृतक ने उसे बताया था कि वह बेरहामपुर जा रहा है, जैसा कि अभियुक्त की पत्नी ने लिखा था और उसे अपना बकाया भुगतान प्राप्त करने के लिए कहा था, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 32(1) के तहत स्वीकार्य था। बॉम्बे उच्च न्यायालय ने माना कि: -

"यह कथन मृत्यु का कारण उत्पन्न होने से पहले, या मृतक के पास मारे जाने की आशंका का कोई कारण होने से पहले दिया जा सकता है। परिस्थितियाँ लेन-देन की परिस्थितियाँ होनी चाहिए: किसी व्यक्ति विशेष या अन्य के प्रति भय या संदेह को दर्शाने वाले सामान्य भाव, जो मृत्यु के अवसर से सीधे संबंधित न हों, स्वीकार्य नहीं होंगे। लेकिन मृतक द्वारा दिए गए बयान कि वह उस स्थान की ओर जा रहा था जहाँ वास्तव में उसकी हत्या हुई थी, या उसके ऐसा करने के कारणों के बारे में, या कि वह किसी व्यक्ति विशेष से मिलने जा रहा था, या कि उसे ऐसे व्यक्ति ने मिलने के लिए आमंत्रित किया था, ये सभी लेन-देन की परिस्थितियाँ होंगी, और चाहे वह व्यक्ति अज्ञात हो, या अभियुक्त न हो, परिस्थितियाँ ऐसी ही होंगी। ऐसा बयान वास्तव में अभियुक्त व्यक्ति को दोषमुक्त करने वाला हो सकता है। "लेन-देन की परिस्थितियाँ" निस्संदेह एक ऐसा वाक्यांश है, जो कुछ सीमाएँ बताता है। यह "परिस्थितिजन्य साक्ष्य" में समानार्थी प्रयोग जितना व्यापक नहीं है, जिसमें सभी प्रासंगिक तथ्यों के साक्ष्य शामिल हैं। दूसरी ओर, यह "रिजेस्ट" से संकुचित है। परिस्थितियों का वास्तविक घटना से कुछ निकट संबंध अवश्य होना चाहिए: हालाँकि, उदाहरण के लिए, लंबे समय तक विषाक्तता के मामले में, वे वास्तविक घातक खुराक की तारीख से काफी दूर की तारीखों से संबंधित हो सकती हैं।"

(प्रभाव वर्धित)

20. **इरफान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 1060** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने मृत्युपूर्व कथनों से संबंधित कानून पर विचार किया है और इस मुद्दे पर कई उदाहरणों का हवाला दिया है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले हैं:-

"62. यह निर्धारित करने के लिए कोई निश्चित नियम नहीं है कि मृत्युपूर्व कथन कब स्वीकार किया जाना चाहिए; न्यायालय का कर्तव्य है कि वह मामले के तथ्यों और आसपास की परिस्थितियों के आधार पर इस प्रश्न का निर्णय करे और इसकी सत्यता के बारे में पूरी तरह आश्वस्त हो। नीचे दिए गए कुछ कारकों पर विचार किया जा सकता है, हालाँकि, वे केवल मृत्युपूर्व कथन के महत्व को प्रभावित करेंगे, उसकी स्वीकार्यता को नहीं:–

(i) क्या बयान देने वाले व्यक्ति को मृत्यु की आशंका थी?

(ii) क्या मृत्यु पूर्व घोषणा शीघ्रातिशीघ्र की गई थी? "प्रथम अवसर का नियम"

(iii) क्या यह मानने का कोई उचित संदेह है कि मृत्यु पूर्व घोषणा मरते हुए व्यक्ति के मुँह से निकलवाई गई थी?

(iv) क्या मृत्यु पूर्व घोषणा पुलिस या किसी हितबद्ध पक्ष के कहने पर उकसाने, सिखाने या बहकाने का परिणाम थी?

(v) क्या बयान ठीक से दर्ज नहीं किया गया था?

(vi) क्या मृत्यु पूर्व घोषणाकर्ता को घटना को स्पष्ट रूप से देखने का अवसर मिला था?

(vii) क्या मृत्यु पूर्व घोषणा पूरी तरह से सुसंगत रही है?

(viii) क्या मृत्यु पूर्व घोषणा स्वयं में मरते हुए व्यक्ति की कल्पना की अभिव्यक्ति/कल्पना है कि क्या घटित हुआ था?

(ix) क्या मृत्यु पूर्व घोषणा स्वयं स्वैच्छिक थी?

(x) एक से अधिक मृत्यु पूर्व घोषणाओं के मामले में, क्या पहली घोषणा सत्य को प्रेरित करती है और दूसरी मृत्यु पूर्व घोषणा के अनुरूप है?

(xi) क्या, चोटों के अनुसार, मृतक के लिए मृत्यु पूर्व घोषणा करना असंभव होता?

63. अभियोजन पक्ष का यह कर्तव्य है कि वह अभियुक्त के विरुद्ध लगाए गए आरोप को उचित संदेह से परे सिद्ध करे। संदेह का लाभ हमेशा अभियुक्त के पक्ष में जाना चाहिए। यह सत्य है कि मृत्यु पूर्व कथन एक ठोस साक्ष्य है जिस पर भरोसा किया जा सकता है, बशर्ते यह सिद्ध हो जाए कि यह स्वैच्छिक और सत्य था और पीड़िता मानसिक रूप से स्वस्थ थी। न्यायालय के लिए केवल यह कहना पर्याप्त नहीं है कि मृत्यु पूर्व कथन विश्वसनीय है क्योंकि अभियुक्त का नाम उसमें हमलावर के रूप में दिया गया है।

64. ऐसे मामलों में, जहाँ वर्तमान मामले की तरह, मृत्यु पूर्व कथन की सत्यता के संबंध में संदेह उत्पन्न होता है, केवल मृत्यु पूर्व कथन के आधार पर दोषसिद्धि दर्ज करना असुरक्षित है। ऐसे मामलों में, न्यायालय को केवल मृत्यु पूर्व कथन को साक्ष्य मानकर कुछ पुष्टिकारी साक्ष्यों की तलाश करनी पड़ सकती है। उचित निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए प्रत्येक मामले में रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्य और सामग्री का उचित रूप से मूल्यांकन किया जाना चाहिए..."

(प्रभाव वर्धित)

अनुवादित

21. जब हम माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित उपरोक्त कानून के आलोक में वर्तमान मामले के तथ्यों की जांच करते हैं, तो यह बात सामने आती है कि संतोष यादव का यह कथन कि विशाल यादव ने उसे बताया था कि रितेश यादव ने उसे धमकी दी थी लेकिन संतोष यादव ने इस जानकारी को कोई महत्व नहीं दिया, यह खुलासा नहीं करता है कि सह-अभियुक्त रितेश यादव द्वारा धमकी कब दी गई थी और विशाल यादव ने संतोष यादव को यह बात कब बताई थी। आवेदक द्वारा धमकी नहीं दी गई थी। धमकी विशाल यादव को मारने के लिए नहीं थी। धमकी के बारे में पता चलने के बाद भी, संतोष यादव ने स्वयं इसे कोई महत्व नहीं दिया था। ये तथ्य तथाकथित मृत्युकालिक कथन के महत्व को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करते हैं।

22. साक्ष्य की स्वीकार्यता, प्रासंगिकता और महत्व से संबंधित प्रश्नों पर विचारण न्यायालय द्वारा ही विचार किया जाना बेहतर होगा, लेकिन चूँकि इन बिंदुओं पर सूचनादाता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दलीलें दी गई हैं, अतः केवल इतना ही कहा जा रहा है कि जमानत आवेदन पर निर्णय लेने के लिए, यह ध्यान रखना प्रासंगिक है कि गवाह संतोष यादव मृतक का भाई और सूचनादाता का पुत्र है। उसने दर्ज कराए गए अपने बयान में कहा है कि वह अपने पिता के साथ घटनास्थल पर पहुँचा था। उसके पिता ने बाद में प्राथमिकी दर्ज कराई थी। इस गवाह ने यह तथ्य नहीं बताया कि मृतक को सह-अभियुक्त रितेश यादव ने प्राथमिकी दर्ज कराने से पहले धमकी दी थी और यह तथ्य पहली बार धारा 161 द.प्र.सं. के तहत उसके बयान दर्ज कराते समय सामने आया है। इस बयान में आवेदक के नाम का उल्लेख तक नहीं है।

23. इसलिए, मेरा विचार है कि धारा 161 द.प्र.सं. के तहत दर्ज संतोष यादव का बयान आवेदक की जमानत याचिका को खारिज करने का मामला नहीं बनता है।

24. सूचनादाता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि आरोपीगण वर्तमान मामले के गवाहों को धमका रहे हैं और इस संबंध में एफआईआर संख्या 0070/2025 पुलिस स्टेशन पूरा कलंदर, जिला अयोध्या में धारा 351(3) बीएनएस के अंतर्गत दर्ज की गई है, जिसमें आरोप लगाया गया है कि वर्तमान मामले के गवाह सुनील यादव को 09.01.2025 को किसी अज्ञात व्यक्ति का फोन आया, जिसने अपना परिचय रितेश के रूप में दिया, जिसने उक्त व्यक्ति को मामले में गवाही न देने की धमकी दी। कहा जाता है कि टेलीफोन कॉल दिनांक 09.01.2025 को प्राप्त हुई थी, जबकि एफआईआर 09.02.2025 को दर्ज की गई थी। एफआईआर में आवेदक के नाम का कोई उल्लेख नहीं है और ऐसा कोई आरोप नहीं है कि आवेदक के कहने पर फोन कॉल किया गया था। उस फोन कॉल में हुई सटीक बातचीत को एफआईआर में पुन: प्रस्तुत नहीं किया गया है। अतः, मेरा यह सुविचारित मत है कि कथित फोन कॉल प्राप्त होने के एक माह बाद उपरोक्त प्राथमिकी दर्ज करने से आवेदक की जमानत अर्जी पर विचार करते समय कोई अंतर नहीं पड़ता।

25. मामले के उपरोक्त सभी तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के पश्चात्, मेरा यह मत है कि उपरोक्त तथ्य उपरोक्त अपराध में आवेदक को जमानत पर रिहा करने का मामला बनाने के लिए पर्याप्त हैं। तथापि,

यह स्पष्ट किया जाता है कि इस आदेश में की गई टिप्पणियों का मुकदमे के परिणाम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

26. आवेदक- राजीव यादव उर्फ रिंकू को उपरोक्त मामले में संबंधित मजिस्ट्रेट/न्यायालय की संतुष्टि के अनुसार एक निजी मुचलका और समान राशि के दो जमानतदार प्रस्तुत करने पर निम्नलिखित शर्तों के अधीन जमानत पर रिहा किया जाए: -

(i) आवेदक अभियोजन पक्ष के साक्ष्यों के साथ छेड़छाड़ नहीं करेगा;

(ii) आवेदक अभियोजन पक्ष के गवाहों पर दबाव नहीं डालेगा;

(iii) आवेदक निचली अदालत द्वारा निर्धारित प्रत्येक तिथि पर उपस्थित होगा, जब तक कि विद्वान निचली अदालत द्वारा उसकी उपस्थिति से छूट न दी जाए।

(2025) 4 ILRA 750

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक वाद

दिनांक: इलाहाबाद 09.04.2025

न्यायाधीश माननीय कृष्ण पहल

के समक्ष

आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या - 9861/2025

अरुण कुमार मिश्रा **...आवेदक**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य **...प्रतिवादी**

आवेदक के अधिवक्ता:

श्री नितिन चंद्र मिश्रा, श्री आर.बी. त्रिपाठी, श्री अनूप त्रिवेदी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

जी.ए., श्री देवेंद्र सिंह

आपराधिक विधि - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 313 और 377 - जमानत - शादी का झूठा वादा करके बलात्कार का आरोप - सहमति - वयस्क अभियोक्त्री - एफआईआर में पाँच महीने की देरी - सहमति से संबंध स्वीकार किया गया - भा.द.सं. की धारा 313 और 377 के तहत आरोपों को हटाने की बात स्वीकार की गई - विवादित वैवाहिक स्थिति - प्रथम दृष्टया शुरू से ही धोखा देने का कोई इरादा नहीं - अदालतें असफल रिश्तों

को आपराधिक नहीं बनातीं - कानून नैतिकता के सभी पहलुओं को लागू नहीं करता - जमानत मंजूर। (पैरा 5, 30 से 42)

<u>अवधारित किया गया</u>:

यह मामला एक व्यापक सामाजिक बदलाव को दर्शाता है, जहाँ अंतरंग संबंधों से जुड़ी पवित्रता और गंभीरता में उल्लेखनीय गिरावट देखी गई है। क्षणिक और अप्रतिबद्ध संबंधों का प्रचलन, जो अक्सर अपनी इच्छा से बनते और टूटते हैं, व्यक्तिगत ज़िम्मेदारी और क़ानूनी प्रावधानों के दुरुपयोग के बारे में गंभीर प्रश्न उठाता है, खासकर जब ऐसे रिश्ते ख़राब हो जाते हैं। यह तेज़ी से देखा जा रहा है कि व्यक्तिगत मतभेदों और भावनात्मक कलह को दंडात्मक क़ानूनों के ज़रिए, ख़ासकर असफल अंतरंग संबंधों के बाद, आपराधिक रंग दिया जा रहा है। (पैरा 31)आवेदक और पीड़िता के बीच संबंध टूटने के बाद दर्ज की गई तत्काल प्राथमिकी, आपराधिक ग़लती की वास्तविक शिकायत के बजाय, ऐसे ही भावनात्मक परिणामों का परिणाम प्रतीत होती है। शिकायत दर्ज करने का समय और परिस्थितियाँ न्याय की वास्तविक खोज के बजाय प्रतिशोधात्मक मंशा का संकेत देती हैं। (पैरा 32)

सभी सामाजिक या नैतिक रूप से संदिग्ध कार्यों के लिए क़ानूनी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं होती। यह न्यायशास्त्र के एक मूलभूत सिद्धांत को भी दर्शाता है - कानून नैतिकता के सभी पहलुओं को लागू नहीं करता। (पैरा 33)

"दोष सिद्ध होने तक निर्दोषता की धारणा" का सुप्रसिद्ध सिद्धांत, नियम के रूप में जमानत और अपवाद के रूप में कारावास की अवधारणा को जन्म देता है। (पैरा 37)

कानून का यह स्थापित सिद्धांत है कि जमानत का उद्देश्य मुकदमे में अभियुक्त की उपस्थिति सुनिश्चित करना है। विद्वान एजीए द्वारा आवेदक द्वारा न्याय से भागने, न्याय प्रक्रिया को बाधित करने, या अपराधों को दोहराने या गवाहों को धमकाने आदि के रूप में अन्य परेशानियाँ पैदा करने का कोई भी भौतिक विवरण या परिस्थितियाँ प्रस्तुत नहीं की गई हैं। (पैरा 41)

आवेदन स्वीकृत। (ई-14)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. शेख आरिफ बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य, 2024 आईएनएससी 70
2. रजनीश सिंह उर्फ सोनी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2025 आईएनएससी 308
3. एसएलपी (सीआरएल) नं.1889/2024 (नितिन बी. निखारे बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य)
4. प्रमोद सूर्यभान पवार बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य, 2019 (9) एससीसी 608
5. अंसार मोहम्मद बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 886
6. निरंजन सिंह एवं अन्य बनाम प्रभाकर राजाराम खरोटे एवं अन्य, एआईआर 1980 एससी 785

7.प्रभाकर तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2020 (11) एससीसी 648

8.सतेंद्र कुमार अंतिल बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो एवं अन्य, 2022 आईएनएससी 690

9.मनीष सिसौदिया बनाम प्रवर्तन निदेशालय, 2024 आईएनएससी 595

(माननीय न्यायमूर्ति कृष्ण पहल द्वारा प्रदत्त)

1. सूची परिवर्तित की गई है।

2. आवेदक के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अनूप त्रिवेदी के सहायक विद्वान अधिवक्ता श्री नितिन चंद्र मिश्रा और सूचनादाता के विद्वान अधिवक्ता श्री देवेंद्र सिंह तथा राज्य के विद्वान सहायक महाधिवक्ता श्री सुनील कुमार की सहायता से सुना गया और अभिलेख का अवलोकन किया गया।

3. आवेदक मुकदमा संख्या 3227/IX/24 (राज्य बनाम अरुण कुमार मिश्रा), जो मुकदमा अपराध संख्या 0035/2024 से उत्पन्न हुआ है, धारा 323, 376, 420, 504, 506 भारतीय दंड संहिता, थाना-महिला थाना, जिला-बांदा में विचारण के दौरान जमानत चाहता है।

अभियोजन पक्ष की कहानी:

4. सूचनादाता ने यस बैंक की ओल्ड राजेंद्र नगर, नई दिल्ली शाखा में रिलेशनशिप मैनेजर के रूप में कार्यभार ग्रहण किया। आवेदक उक्त बैंक में खाताधारक बताया गया है। बताया गया है कि उसने पीड़िता/सूचनाकर्ता को अपनी कंपनी में 75,000 रुपये प्रति माह वेतन, आवास और अन्य सुविधाओं के साथ निजी सहायक की नौकरी की पेशकश की थी। सूचनाकर्ता ने 2.1.2024 को बैंक से इस्तीफा देने के बाद आवेदक की कंपनी में नौकरी ज्वाइन की थी।

5. बताया गया है कि दिनांक 12.1.2024 को रात लगभग 9:30 बजे आवेदक अचानक कोल्ड कॉफी के साथ सूचनाकर्ता के घर आया और कहा कि उसे कंपनी में भारी मुनाफा हुआ है, इसलिए वह उसे उपहार देगा। कॉफी पीने के बाद पीड़िता नशे में धुत हो गई और आवेदक ने उसके पूरे कपड़े उतार दिए और उसके साथ बलात्कार किया क्योंकि वह कॉफी में मिलावट के कारण खुद को रोक नहीं पाई। आवेदक ने इस कृत्य का वीडियो भी बनाया और बाद में उसे ब्लैकमेल करना शुरू कर दिया।

6. दिनांक 13.1.2024 को आवेदक पीड़िता को फ्लाइट से मुम्बई ले गया और उसके आधार कार्ड के आधार पर ताज होटल में एक कमरा बुक कराया। दिनांक 15.1.2024 को आवेदक उसे कहीं और ले गया और उससे कुछ कागजों पर हस्ताक्षर करवाए और सप्तपदी कर उसकी मांग में सिंदूर भर दिया। दिनांक 16.1.2024 को दोनों दिल्ली लौट आए और उसके बाद बलात्कार और अप्राकृतिक अपराध जारी रहा।

अनुवादित

7. दिनांक 17.2.2024 को आवेदक अपनी मौसी के घर बबेरू, जिला बांदा आया और उसका एक अश्लील वीडियो दिखाकर उसके साथ बलात्कार किया और उसे अपने साथ दिल्ली चलने को कहा, जहाँ वह उससे शादी करेगा क्योंकि उसने अपनी पत्नी को तलाक दे दिया है और उसे अपने साथ दिल्ली चलने के लिए मजबूर किया गया।

8. दिनांक 20.2.2024 को सूचनादाता ने आवेदक को बताया कि वह गर्भवती है। दिनांक 4.3.2024 को, आवेदक की पहली पत्नी ने उसे बताया कि उसने सूचना देने वाली महिला से पहले तीन महिलाओं से शादी कर ली है और उन सभी से उसके बच्चे हैं।

9. आवेदक ने पीड़िता को 28.3.2024 को फिर से गोल्डन ट्यूलिप होटल, लखनऊ आने के लिए मजबूर किया और उसके साथ फिर से बलात्कार किया गया। आवेदक ने पीड़िता को मारा, जिससे उसका गर्भ गिर गया। आवेदक ने पीड़िता के सभी मूल शैक्षिक दस्तावेजों के साथ-साथ उसके कपड़े और गहने भी अपने कब्जे में ले लिए और जनवरी, 2024 में उससे शादी करने का वादा किया।

10. सूचना देने वाली महिला उक्त विवाह की तैयारी के लिए 29.4.2024 को अपने मायके गई थी, लेकिन बाद में, आवेदक ने टेलीफोन पर विवाह के उक्त वादे को पूरा करने से इनकार कर दिया और उसे सूचित किया कि उसने कुछ दस्तावेजों में हेराफेरी की है और उसकी शादी आर्य समाज मंदिर में हुई दिखाई है। आवेदक ने उसका वेतन भी अपने पास रख लिया।

आवेदक की ओर से तर्क:

11. आवेदक पूरी तरह से निर्दोष है और उसे इस मामले में झूठा फंसाया गया है।

12. एफआईआर में लगभग छह महीने की देरी हुई है और इस देरी का कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है। पीड़िता ने जनवरी, 2024 में पहली बार सहमति से संबंध स्थापित होने के समय मामले की रिपोर्ट दर्ज नहीं कराई थी।

13. आवेदक ने इस न्यायालय में आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 10952/2024 दायर करके प्रथम सूचना रिपोर्ट को चुनौती दी थी, जिसके तहत उसे दिनांक 1.7.2024 के आदेश द्वारा अंतरिम संरक्षण प्रदान किया गया था।

14. पीड़ित ने द.प्र.सं. की धारा 161 और 164 के तहत एफआईआर में दर्ज बयानों के विपरीत बयान दिए हैं।

अनुवादित

15. जाँच अधिकारी ने आवेदक को भारतीय दंड संहिता की धारा 313 और 377 के अपराधों से दोषमुक्त कर दिया है, अतः अभियोजन पक्ष की कहानी झूठी साबित होती है, क्योंकि गर्भपात और अप्राकृतिक अपराध के संबंध में कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है।

16. यह स्पष्ट है कि पीड़िता आवेदक के साथ संबंध में थी। उनके बीच हुई व्हाट्सएप चैट को ज़मानत आवेदन के साथ दायर शपथपत्र के अनुलग्नक-5 के रूप में प्रस्तुत किया गया है। पीड़िता आवेदक के साथ मुंबई और शिरडी जैसे कई स्थानों पर गई थी और आवेदक तथा अपने नाम से संयुक्त रूप से बुक किए गए कई होटलों में रुकी थी। हवाई टिकट और होटल बुकिंग सहित यात्रा का विवरण ज़मानत आवेदन के साथ दायर शपथपत्र के अनुलग्नक-6 के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

17. इस मामले में सूचनादाता ने अपनी सहेली के माध्यम से थाना कोतवाली नगर, जिला बांदा में धारा 70, 308(5), 351(3), 123 और 115(2) भा दं सं के अंतर्गत एफआईआर संख्या 753/2024 दर्ज कराई और जांच अधिकारी ने उक्त मामले में क्लोजर रिपोर्ट दाखिल कर दी। यद्यपि उक्त मामले में उक्त सूचनादाता द्वारा विरोध याचिका दायर की गई थी।

18. यह सत्य है कि आवेदक एक विवाहित व्यक्ति है और उसे पीड़िता से प्रेम हो गया तथा उसने उसके साथ शारीरिक संबंध स्थापित कर लिए। पीड़िता लगभग 30 वर्ष की एक बालिग महिला है और आवेदक लगभग 42 वर्ष का है, इस प्रकार, उक्त संबंध सहमति से था। यह सत्य है कि उक्त संबंध वैध नहीं है, लेकिन यह बलात्कार का मामला भी नहीं है। यह अपराध केवल भारतीय दंड संहिता की धारा 494 के अंतर्गत ही आ सकता है, जिसका विचारण प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट द्वारा किया जा सकता है।

19. यह मामला अनैतिकता की श्रेणी में आ सकता है, लेकिन इसे दंडात्मक नहीं कहा जा सकता, जिसका तात्पर्य यह है कि विचाराधीन कृत्य सामाजिक या नैतिक मानदंडों के अनुसार अनैतिक या गलत माना जा सकता है, लेकिन यह आवश्यक रूप से किसी ऐसे कानून का उल्लंघन नहीं करता है जो कानूनी दंड निर्धारित करता हो।

20. यह आरोप कि आवेदक ने पहले तीन महिलाओं से विवाह किया था, झूठा हैं।

21. आवेदक की ओर से उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों की असत्यता को प्रदर्शित करने के लिए कई अन्य प्रस्तुतियाँ दी गई हैं। अधिवक्ता के अनुसार, जिन परिस्थितियों के कारण आवेदक को झूठा फंसाया गया, उन पर भी विस्तार से चर्चा की गई है।

22. आवेदक के विरुद्ध वर्तमान मामले में सूचनादाता के कहने पर जिला बांदा में उसके विरुद्ध दर्ज एक मामले के अलावा कोई अन्य आपराधिक पृष्ठभूमि नहीं है। आवेदक 8.1.2025 से जेल में बंद है। आवेदक

मुकदमे में सहयोग करने के लिए तैयार है। यदि आवेदक को जमानत पर रिहा कर दिया जाता है, तो वह जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं करेगा।

23. शेख आरिफ बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के अनुच्छेद 12 और 13 पर काफी भरोसा किया गया है, जो इस प्रकार है:-

"12) यदि इस सामग्री का, जो जांच पत्रों का एक हिस्सा है, ध्यानपूर्वक अध्ययन किया जाए, तो यह स्पष्ट है कि अपीलकर्ता और द्वितीय प्रतिवादी के बीच शारीरिक संबंध कम से कम 2013 से 2017 तक सहमति से बने थे। द्वितीय प्रतिवादी ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि उनकी सगाई हो चुकी थी। द्वितीय प्रतिवादी ने इस तथ्य को भी स्वीकार किया है कि 2011 में अपीलकर्ता ने उसे प्रपोज किया था और 2017 में सगाई हुई थी। वास्तव में, उसने बिना किसी विरोध के सगाई समारोह में भाग लिया था। हालाँकि, उसने इस बात से इनकार किया है कि उसकी शादी अपीलकर्ता के साथ हुई थी। अभियोजन पक्ष के मामले को सही मानते हुए, यह स्वीकार करना संभव नहीं है कि द्वितीय प्रतिवादी ने केवल इसलिए शारीरिक संबंध बनाए रखा क्योंकि अपीलकर्ता ने शादी का वादा किया था।

13) इस प्रकार, हमारे विचार में, वर्तमान मामले में अभियोजन जारी रखना कानून की प्रक्रिया का घोर दुरुपयोग होगा। इसलिए, अभियोजन जारी रखने से कोई उद्देश्य पूरा नहीं होगा।"

24. **रजनीश सिंह @ सोनी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य** में पारित सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के पैरा 34 और 35 पर भी भरोसा किया गया है, जो इस प्रकार हैं:-

*"34. यह सामान्य बात है कि बलात्कार और सहमति से बनाए गए संभोग में अंतर होता है। इस न्यायालय ने **दीपक गुलाटी बनाम हरियाणा राज्य, (2013) 7 एससीसी 675** में केवल वादाखिलाफी और झूठे वादे को पूरा न करने के बीच अंतर किया और कहा कि एक अभियुक्त तभी उत्तरदायी होगा जब न्यायालय यह निष्कर्ष निकाले कि उसके इरादे दुर्भावनापूर्ण हैं और उसके गुप्त उद्देश्य हैं। संबंधित अंश नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:-*
"21. सहमति व्यक्त या निहित, जबरदस्ती या गुमराह, स्वेच्छा से या धोखे से प्राप्त की जा सकती है। सहमति तर्क का एक कार्य है, जिसमें विचार-विमर्श होता है, मन तराजू की तरह दोनों पक्षों की अच्छाई और बुराई को तौलता है। बलात्कार और सहमति से बनाए गए यौन संबंध में स्पष्ट अंतर है और इस तरह के मामले में, अदालत को बहुत सावधानी से जांच करनी चाहिए कि क्या अभियुक्त वास्तव में पीड़िता से शादी करना चाहता था, या उसके दुर्भावनापूर्ण इरादे थे, और उसने केवल अपनी वासना को संतुष्ट करने के लिए इस आशय का झूठा वादा किया था, क्योंकि बाद वाला धोखाधड़ी या छल के दायरे में आता है। केवल वादा तोड़ने और झूठा वादा पूरा न करने के बीच अंतर है।इस प्रकार, अदालत को यह जांच करनी चाहिए कि क्या अभियुक्त द्वारा प्रारंभिक चरण में शादी का झूठा वादा किया गया था; और क्या सहमति यौन भोग की प्रकृति और परिणामों को पूरी तरह से समझने के बाद दी गई थी। ऐसा मामला हो सकता है जहां अभियोक्ता अभियुक्त के प्रति

अपने प्रेम और जुनून के कारण यौन संबंध बनाने के लिए सहमत हो, न कि केवल अभियुक्त द्वारा उसे दी गई गलत बयानी के कारण, या जहां अभियुक्त उन परिस्थितियों के कारण, जिन्हें वह पूर्वानुमान नहीं लगा सकता था, या जो उसके नियंत्रण से परे थीं, उससे विवाह करने में असमर्थ था, जबकि उसकी ऐसा करने की पूरी मंशा थी। ऐसे मामलों को अलग तरीके से देखा जाना चाहिए। अभियुक्त को बलात्कार के लिए तभी दोषी ठहराया जा सकता है जब अदालत इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि अभियुक्त का इरादा दुर्भावनापूर्ण था, और उसके गुप्त उद्देश्य थे।

. . .

24. इसलिए, यह स्पष्ट है कि यह दिखाने के लिए पर्याप्त साक्ष्य होने चाहिए कि प्रासंगिक समय पर यानी शुरुआती चरण में ही अभियुक्त का पीड़िता से विवाह करने के अपने वादे को निभाने का कोई इरादा नहीं था। बेशक, ऐसी परिस्थितियां हो सकती हैं, जब सबसे अच्छे इरादे रखने वाला व्यक्ति विभिन्न अपरिहार्य परिस्थितियों के कारण पीड़िता से विवाह करने में असमर्थ हो। "भविष्य की अनिश्चित तिथि के संबंध में किए गए वादे को पूरा न करना, ऐसे कारणों से जो उपलब्ध साक्ष्यों से स्पष्ट नहीं हैं, हमेशा तथ्य की भ्रांति नहीं माना जाता। "तथ्य की भ्रांति" शब्द के अर्थ में आने के लिए, तथ्य की तत्काल प्रासंगिकता होनी चाहिए।" ऐसी स्थिति में, किसी लड़की के कृत्य को पूरी तरह से क्षमा करने और दूसरे पर आपराधिक दायित्व थोपने के लिए, भारतीय दंड संहिता की धारा 90 का सहारा नहीं लिया जा सकता, जब तक कि अदालत इस तथ्य के प्रति आश्वस्त न हो जाए कि शुरू से ही, अभियुक्त का उससे विवाह करने का कोई वास्तविक इरादा नहीं था।"

(प्रभाव वर्धित)

35. इसलिए, यह स्पष्ट है कि यदि पीड़िता ने जानबूझकर यौन संबंध बनाए रखने के लिए सहमति व्यक्त की है, तो अभियुक्त बलात्कार के अपराध के लिए उत्तरदायी नहीं है। न्यायालय ने यह भी माना है कि अभियोक्ता अभियुक्त के प्रति अपने प्रेम और जुनून के कारण यौन संबंध बनाने के लिए सहमत हो सकती है।"

25. ***एसएलपी (आप०) संख्या 1889/2024 (नितिन बी निखारे बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य)*** में पारित सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के पैराग्राफ 6, 7 और 8 पर भी भरोसा किया गया है, जो इस प्रकार हैं:-

6. इस न्यायालय ने कई फैसलों में माना है कि महज यह तथ्य कि शादी करने के वादे के तहत शारीरिक संबंध स्थापित किए गए थे, हर मामले में बलात्कार नहीं होगा। बलात्कार का अपराध बनने के लिए दो शर्तों को पूरा करने की जरूरत है, यानी आरोपी ने शादी का वादा केवल यौन संबंधों के लिए सहमति प्राप्त करने के उद्देश्य से किया था, शुरू से ही उक्त वादे को पूरा करने का कोई इरादा नहीं था और शादी के झूठे वादे का अभियोजन पक्ष द्वारा यौन संबंधों के लिए सहमति देने पर सीधा असर पड़ा। [सन्दर्भ: प्रमोद सूर्यभान पवार बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य (2019) 9 एससीसी 608 2024 एससीसी ऑनलाइन एससी 347]

7. अभिलेखों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि यह शुरू से ही सहमति से बनाए गए संबंध का मामला था। यदि अभियोक्ता का मामला स्वीकार भी कर लिया जाए, तो भी ऐसा नहीं लगता कि विवाह का प्रारंभिक वादा दुर्भावना से किया गया था। केवल बाद की परिस्थितियों ने ही विवाह के कथित झूठे वादे को पूरा होने से रोका।

परिणामस्वरूप, संबंध खराब हो गए, जिसके कारण वर्तमान प्राथमिकी दर्ज की गई। इसके अलावा, अभिलेख में उपलब्ध सामग्री को देखते हुए, हम इसे ऐसे मामले के रूप में नहीं देखते जहाँ अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम के प्रावधान लागू हो सकते हैं।

8. अतः, अपीलकर्ता के विरुद्ध शुरू की गई संपूर्ण आपराधिक कार्यवाही कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग मात्र है। हमारी राय में, उच्च न्यायालय को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत अपनी अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करके कार्यवाही को रद्द करना चाहिए था।

<u>राज्य/विपक्षी पक्ष की ओर से तर्क:</u>

26. सूचनादाता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि आवेदक पहले से ही तीन अन्य महिलाओं से विवाहित है और एक कैसानोवा है और विभिन्न महिलाओं को सहमति से संबंध बनाने के लिए प्रलोभित करता है। उसकी पत्नी के अलावा दो अन्य महिलाओं के बयान जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए हैं, जिन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि आवेदक का विवाह XXXX से हुआ था और उसके बाद उसने दो अन्य महिलाओं से विवाह किया और उन दोनों से उसके बच्चे हैं।

27. आवेदक एक अमीर व्यक्ति है और उसने अपने धन और प्रभाव का दुरुपयोग किया है, जिससे इस मामले में पीड़िता/सूचनादाता का जीवन बर्बाद हो गया है।

28. पीड़िता की आयु लगभग 25 वर्ष है और आवेदक ने आर्य समाज मंदिर, ग्रेटर नोएडा, गौतम बुद्ध नगर में संपन्न विवाह प्रमाण पत्र में जालसाजी की थी। इस न्यायालय ने उक्त मंदिर चलाने वाले व्यक्तियों के खिलाफ विस्तृत जांच के आदेश दिए थे, इसलिए, विवाह के उक्त दस्तावेजों में जालसाजी करने के कारण आवेदक जमानत का हकदार नहीं है।

29. यह भी तर्क दिया गया है कि आवेदक के विरुद्ध थाना कोतवाली नगर, जिला बांदा में दर्ज मुकदमा अपराध संख्या 753/2024 में संबंधित मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने मामले में आगे की जांच के आदेश दिए थे और पाया था कि पूर्व में की गई पूरी जांच त्रुटिपूर्ण थी।

<u>निष्कर्ष:</u>

30. वर्तमान मामले में, समकालीन समाज में यौन संबंधों की बदलती गतिशीलता और घटते मानकों को सामने लाना अनिवार्य है। पीड़िता ने आवेदक के पिछले वैवाहिक इतिहास की पूरी और सचेत जानकारी होने के बावजूद - क्योंकि वह पहले तीन बार विवाहित हो चुकी थी - उसके साथ शारीरिक संबंध स्थापित करने का निर्णय लिया। यह संबंध, यद्यपि अपने अस्तित्व के दौरान पारस्परिक और सहमति से बना था, पारंपरिक रूप से स्वीकृत विवाह संस्था या कानूनी रूप से मान्यता प्राप्त किसी भी प्रकार के मिलन के अनुरूप नहीं था। यद्यपि भावनात्मक और रोमांटिक गतिशीलता पारंपरिक रूप से बहुपत्नीत्व वाली नहीं लगती, यह संबंध सहमति से

होता है और इसमें दो परिपक्व व्यक्ति शामिल होते हैं: कथित पीड़िता, जो लगभग 25 वर्ष की है, और आवेदक, जो लगभग 42 वर्ष का है।

31. यह मामला एक व्यापक सामाजिक बदलाव को दर्शाता है, जहाँ अंतरंग संबंधों से जुड़ी पवित्रता और गंभीरता में उल्लेखनीय गिरावट देखी गई है। क्षणिक और अप्रतिबद्ध संबंधों का प्रचलन, जो अक्सर अपनी इच्छा से बनते और टूटते हैं, व्यक्तिगत उत्तरदायित्व और कानूनी प्रावधानों के दुरुपयोग के बारे में गंभीर प्रश्न उठाता है, खासकर जब ऐसे रिश्ते खराब हो जाते हैं। यह तेजी से देखा जा रहा है कि व्यक्तिगत मतभेदों और भावनात्मक कलह को दंडात्मक कानूनों के माध्यम से, विशेष रूप से असफल अंतरंग संबंधों के बाद, आपराधिक रंग दिया जा रहा है।

32. आवेदक और पीड़िता के बीच संबंध टूटने के बाद दर्ज की गई तत्काल प्राथमिकी, आपराधिक गलत काम की वास्तविक शिकायत के बजाय, ऐसे भावनात्मक परिणामों का परिणाम प्रतीत होती है। शिकायत दर्ज करने का समय और परिस्थितियाँ न्याय की वास्तविक खोज के बजाय प्रतिशोधात्मक उद्देश्य का संकेत देती हैं।

33. सभी सामाजिक या नैतिक रूप से संदिग्ध कार्यों के लिए कानूनी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं होती। यह न्यायशास्त्र के एक मूलभूत सिद्धांत को भी दर्शाता है - कानून नैतिकता के सभी पहलुओं को लागू नहीं करता।

34. *प्रमोद सूर्यभान पवार बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य* और *अंसार मोहम्मद बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य* के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि शादी का झूठा वादा करके किसी व्यक्ति के साथ किसी भी प्रकार का शारीरिक संबंध बनाना बलात्कार नहीं कहा जा सकता।

35. *निरंजन सिंह एवं अन्य बनाम प्रभाकर राजाराम खरोटे एवं अन्य* में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के आलोक में, इस न्यायालय ने साक्ष्यों की विस्तृत जाँच और मामले के गुण-दोषों के विस्तृत दस्तावेजीकरण से परहेज किया है क्योंकि किसी भी पक्ष को यह आभास नहीं होना चाहिए कि उसके मामले में पक्षपात किया गया है। मामले की प्रथम दृष्टया संतुष्टि आवश्यक है, लेकिन यह आदेश के गुण-दोषों की विस्तृत जाँच के समान नहीं है।

36. प्रभाकर तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य6 ने यह टिप्पणी की है कि किसी अभियुक्त के विरुद्ध कई आपराधिक मामलों का लंबित होना ही जमानत से इनकार करने का आधार नहीं हो सकता, यदि अन्यथा उसकी जमानत का मामला बनता है।

37. *"दोष सिद्ध होने तक निर्दोषता की धारणा"* का सुप्रसिद्ध सिद्धांत, नियम के रूप में जमानत और अपवाद के रूप में कारावास की अवधारणा को जन्म देता है।

38. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा प्रदत्त किसी व्यक्ति के जीवन और स्वतंत्रता के अधिकार को केवल इसलिए नहीं छीना जा सकता क्योंकि उस व्यक्ति पर अपराध करने का आरोप है, जब तक कि अपराध किसी उचित संदेह से परे सिद्ध न हो जाए। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 में कहा गया है कि किसी के जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता को तब तक नहीं छीना जा सकता जब तक कि विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया का पालन न किया जाए, और यह प्रक्रिया न्यायसंगत और युक्तिसंगत होनी चाहिए। उक्त सिद्धांत को सर्वोच्च न्यायालय ने सतेंद्र कुमार अंतिल बनाम केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो एवं अन्य 7 में दोहराया है।

39. उपरोक्त दृष्टिकोण को दोहराते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने *मनीष सिसोदिया बनाम प्रवर्तन निदेशालय* के मामले में फिर से इस बात पर ज़ोर दिया है कि कानून का यह सुस्थापित सिद्धांत कि दंड के रूप में ज़मानत नहीं रोकी जानी चाहिए, भुलाया नहीं जाना चाहिए। अब समय आ गया है कि न्यायालय इस सिद्धांत को स्वीकार करें कि "ज़मानत एक नियम है और जेल एक अपवाद" है।

40. विद्वान एजीए ऐसी कोई असाधारण परिस्थितियाँ प्रस्तुत नहीं कर सके जो आवेदक को ज़मानत देने से इनकार करने का औचित्य सिद्ध करें।

41. विधि का यह स्थापित सिद्धांत है कि जमानत का उद्देश्य अभियुक्त की सुनवाई में उपस्थिति सुनिश्चित करना है। विद्वान ए.जी.ए. द्वारा ऐसा कोई भी भौतिक विवरण या परिस्थितियाँ प्रस्तुत नहीं की गई हैं जिनसे यह पता चलता हो कि आवेदक न्याय से भाग रहा है या न्याय की प्रक्रिया को बाधित कर रहा है या अपराधों को दोहराकर या गवाहों को डराकर अन्य परेशानियाँ पैदा कर रहा है।

42. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों, पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत प्रस्तुतियों, अभिलेख में उपलब्ध साक्ष्यों, तथा इस बात को ध्यान में रखते हुए कि दोनों पक्षों ने यह भी स्वीकार किया है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 313 और 377 हटा दी गई हैं, साथ ही यह तथ्य भी है कि प्राथमिकी में लगभग पाँच महीने की देरी हुई है और पीड़िता एक सुयोग्य महिला है, जैसा कि संदर्भित केस लॉ में उल्लेख किया गया है और मामले के गुण-दोष पर कोई राय व्यक्त किए बिना, न्यायालय का विचार है कि आवेदक ने जमानत का मामला बनाया है। जमानत आवेदन स्वीकार किया जाता है।

43. उपर्युक्त अपराध संख्या में संलिप्त आवेदक **अरुण कुमार मिश्रा** को संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के अनुसार व्यक्तिगत बंधपत्र और समान राशि के दो जमानतदार प्रस्तुत करने पर निम्नलिखित शर्तों के अधीन जमानत पर रिहा किया जाए।

(i) आवेदक साक्ष्यों से छेड़छाड़ नहीं करेगा।

(ii) आवेदक (1) मामले के प्रारंभ, (2) आरोप-निर्धारण और (3) धारा 313 द.प्र.सं./351 बी.एन.एस.एस. के अंतर्गत बयान दर्ज कराने हेतु नियत तिथियों पर, व्यक्तिगत रूप से, विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित रहेगा। यदि विचारण न्यायालय की राय में आवेदक की अनुपस्थिति जानबूझकर या बिना पर्याप्त कारण के है,

तो विचारण न्यायालय ऐसे चूक को जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग मानकर उसके विरुद्ध विधि के अनुसार कार्यवाही कर सकता है।

44. उपरोक्त किसी भी शर्त के उल्लंघन की स्थिति में, यह जमानत रद्द करने का आधार होगा। बंधपत्र स्वीकार किए जाने से पहले, संबंधित न्यायालय द्वारा आवेदक और जमानतदारों की पहचान, स्थिति और निवास प्रमाण का सत्यापन किया जाएगा।

45. यह स्पष्ट किया जाता है कि आवेदक को जमानत देने में की गई टिप्पणियां किसी भी तरह से गवाहों की गवाही के आधार पर स्वतंत्र राय बनाने में विद्वान विचारण न्यायाधीश को प्रभावित नहीं करेंगी।

(2025) 4 ILRA 758

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 09.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्री अजय भनोट

आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या-25993 वर्ष 2024

श्रीमती रेखा ... **आवेदक**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ... **प्रतिपक्षी**

अनवीक्षित

आवेदक के लिए अधिवक्ता: राहुल उपाध्याय

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता, आर.पी.एस. चौहान

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 363, 302 और 201 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 309 - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 15(3), 21, 21-ए, 45, 47, 39 (ई) और 39 (एफ) - किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2015 - धारा 2 (14)(v), 2 (22), 2 (21), 30, 31 और 37 - बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 - धारा 2(डी), 3, 4, 13, 14 और 15 - यूपी जेल मैनुअल, 2022 - नियम 335, 336, 337, 339 - मॉडल जेल मैनुअल, 2016 - नियम 26.36 से 26.44 - विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 - धारा 2(सी), 12 और 13 - जमानत - अदालत के समक्ष मुद्दा शिक्षा, कल्याण, विकास के लिए समग्र वातावरण, जेल कैदियों के बच्चों में मजबूत नैतिक ताने-बाने का विकास और उनके साथ जेलों में रहने वाले कैदियों के बच्चों में नैतिक ढांचे का विकास

था - आवेदक 16.10.2023 से जेल में थी - जमानत 14.05.2024 को विचारण न्यायालय ने आवेदन खारिज कर दिया - आवेदक का 5 साल का बेटा जेल में उसके साथ रह रहा था और पूरी तरह से उस पर निर्भर था। (प्रस्तर-4)

अवधारित, आवेदक की पहचान मुख्य अपराधी के रूप में की गई है, जिसने अपने नाबालिग सौतेले बच्चे की हत्या कर दी और उसके शरीर को घर में स्थित टैंक में फेंक दिया और उसे इंगित करने पर शव बरामद किया गया - आवेदक का अपराध करने का मकसद था जो गंभीर था - संभावना है कि आवेदक ने अपराध किया था - जमानत के लिए कोई मामला नहीं बनाया गया था - इस प्रकार, विचारण में तेजी लाने के लिए विचारण न्यायालय को निर्देश दिए गए हैं और संबंधित अधिकारियों को भी निर्देश दिए गए हैं कि वे विभिन्न प्राधिकारियों और विशेषज्ञों के साथ उचित परामर्श के बाद दो माह के भीतर आवेदक के पुत्र के लिए बाल देखभाल योजना तैयार करें। (प्रस्तर-93, 96, 114)

प्रार्थना-पत्र स्वीकार (ई-14)

उद्धृत वादों / निर्णय विधियों की सूची:

1. रामू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2024 एस.सी.सी. ऑनलाइन इला० 4618
2. अनिल गौर @ सोनू @ सोनू तोमर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन इला 623
3. जुनैद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2021 (6) 511
4. अमन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2023 (8) ए.डी.जे. 523
5. भंवर सिंह @ करमवीर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2023 एस.सी.सी. ऑनलाइन इला 734
6. नूर आलम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2024 (5) ए.डी.जे. 766
7. अनुरुद्ध बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2024 (8) ए.डी.जे. 469
8. अविनाश मेहरोत्रा बनाम यू.ओ.आई. और अन्य, 2009 (6) एस.सी.सी. 398, (प्रस्तर-28, 30, 32, 33)
9. प्रताप सिंह बनाम झारखंड राज्य, 2005 (3) एस.सी.सी. 551, (प्रस्तर-63-ए)
10. राजीव कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2019 (4) ए.डी.जे. 316, (प्रस्तर-38, 39)
11. एम.सी. मेहता बनाम तमिलनाडु राज्य, 1996 (6) एस.सी.सी. 756, (प्रस्तर-17)
12. पुन: किशोरों की निजता का अधिकार, 2024 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 2055, (प्रस्तर-28.2, 29.1)
13. शीला बरसे बनाम चिल्ड्रन एड सोसाइटी, 1987 (3) एस.सी.सी. 50, (प्रस्तर-5)
14. लक्ष्मी कांत पांडे बनाम यू.ओ.आई., 1984 (2) एस.सी.सी. 244, (प्रस्तर-6, 7)
15 आर.डी. उपाध्याय बनाम स्टेट आफ ए.पी. 2007 (15) एस.सी.सी. 337

अनुवादित

16. जन अदालत, सेंटर ऑफ पैरा-लीगल सर्विसेज एंड लीगल एड ए सोसाइटी बनाम महाराष्ट्र राज्य, सचिव, गृह विकास विभाग के माध्यम से, 2017 एस.सी.सी. ऑनलाइन बॉम 239, (प्रस्तर-38)

17. बाबुल खान बनाम कर्नाटक राज्य, 2020 एस.सी.सी. ऑनलाइन कर 3438, (प्रस्तर-96)

18. सुपूर्णानंद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2018 (11) ए.डी.जे. 550, (प्रस्तर-32 से 35)

19. तेल और प्राकृतिक गैस आयोग और अन्य बनाम केंद्रीय उत्पाद शुल्क, 1995 पूरक (4) एस.सी.सी. 541, (प्रस्तर-3, 4)

20. तेल और प्राकृतिक गैस आयोग बनाम केंद्रीय उत्पाद शुल्क, 2004 (6) एस.सी.सी. 437 (प्रस्तर-3)

21. एलिजाबेथ जैकब बनाम जिला कलेक्टर, इडुक्की और अन्य, 2008 (15) एस.सी.सी. 166, (प्रस्तर-19)

22. सोसाइटी फॉर एनलाइटनमेंट एंड स्वैच्छिक एक्शन और अन्य बनाम यू.ओ.आई.
2024 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 2922, (प्रस्तर-3)

23. जुनैद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2021 (6) ए.डी.जे. 511, (प्रस्तर-58)

24. न्यू इंडिया एश्योरेंस कॉम्प लिमिटेड बनाम श्री यामिन और अन्य, 2023 (10) ए.डी.जे. 421, (प्रस्तर-48 से 51)

25. जुनैद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2021 एस.सी.सी. ऑनलाइन ऑल 463 (प्रस्तर-42)

26. राजेंद्र प्रसाद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या-30292 वर्ष 2024, (प्रस्तर-9, 10, 13)

27. जितेंद्र बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या-9126 वर्ष 2023

अनुवादित

(माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट द्वारा दिया गया)

संदर्भ : आपराधिक विविध संशोधन आवेदन संख्या-2 वर्ष, 2025

सुना गया।

संशोधन आवेदन स्वीकार किया जाता है।

दिनांक 20.01.2025 के आदेश में आवश्यक संशोधन कर दिया गया है। शुद्ध आदेश निम्नवत् पढ़ा जाएगा :–

1- चर्चा को सुविधाजनक बनाने के लिए निर्णय को निम्नलिखित वैचारिक ढांचे में संरचित किया जा रहा है:

I	परिचय

II	पक्षों के लिए अधिवक्ताओं की प्रस्तुतियाँ		
III	इस मामले में उत्पन्न होने वाले कानूनी मुद्दे और जमानत क्षेत्राधिकार		
IV	बच्चे		
		A	सामान्य
		B	संविधान और बच्चे
		C	बच्चों की शिक्षा और समग्र विकास
		D	अंतर्राष्ट्रीय उपकरण
V	जेल में बच्चे: अदृश्य परीक्षण और पिंजरे में बंद बचपन - एक अध्ययन		
VI	वैधानिक ढांचा:		
		A	किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 20151
		B	बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 20092
		C	यूपी जेल मैनुअल, 2022
		D	मॉडल जेल मैनुअल, 2016
		E	विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987
		F	संवैधानिक कानून प्रवचन : निर्णयज विधि
VII			
		A	बाल संरक्षण प्रणाली: हितधारकों के कर्तव्य और निर्देश
		B	हितधारकों का प्रशिक्षण
		C	राज्य सरकार की प्रतिक्रिया और विभिन्न विभागों के बीच तालमेल

अनुवादित

VIII	कानून का कार्यान्वयन और न्यायालयों की भूमिका: जुनैद बनाम उत्तर प्रदेश 3 राज्य और राजेंद्र प्रसाद बनाम उत्तर प्रदेश 4 राज्य		
IX	जमानत आवेदन में आदेश		
		A	जमानत के गुण-दोष और मुकदमे में तेजी लाने के निर्देश
		B	चाइल्ड केयर प्लान बनाने और आवेदक के नाबालिग बच्चे के अधिकारों का एहसास करने के निर्देश
X	अनुपालन के लिए प्रतियों का संचलन		

अनुवादित

I. प्रस्तावना

1. जमानत की अस्वीकृति के परिणामस्वरूप अपने माता-पिता के साथ जेल में बंद होने वाले बच्चों के अधिकार इस मामले में विचार के लिए उठते हैं (जमानत के लिए अन्य आधारों के अलावा)।

II. पक्षों के लिए अधिवक्ताओं की प्रस्तुतियाँ

2. आवेदक के अधिवक्ता श्री राहुल उपाध्याय ने निम्नलिखित प्रस्तुतियाँ दीं:

i. आवेदक का बेटा जो 5 वर्ष का है, उसकी कैद के बाद जेल में उसके साथ रह रहा है। आवेदक के बच्चे के अधिकारों का उल्लंघन भारत के संविधान के अनुच्छेद 21-ए के साथ अन्य लाभकारी कानूनों के साथ किया जा रहा है, जो जेल में उसके कारावास के कारण किया जा रहा है।

ii. जेल में नाबालिग बच्चे के समग्र विकास को सुनिश्चित करने के लिए अपेक्षित समर्थन प्रणाली नहीं है जैसा कि कानून के उपरोक्त प्रावधानों में माना गया है।

iii. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, जेल में रहने से बच्चे के जीवन पर छाया पड़ेगी और उसके भविष्य पर असर पड़ेगा।

iv. आवेदक अकेले इस आधार पर जमानत का हकदार है।

<u>राज्य की ओर से प्रस्तुतियाँ</u>

3. श्री अशोक मेहता, अतिरिक्त महाधिवक्ता श्री परितोष कुमार मालवीय, एजीए-I की सहायता से निम्नलिखित प्रस्तुतियाँ दीं:

I. राज्य सरकार की संविधान के तहत और उन बच्चों के लिए विभिन्न लाभकारी कानूनों में एक अनुकूल वातावरण प्रदान करने और पर्याप्त समर्थन प्रणाली का निर्माण करने के लिए बिना शर्त प्रतिबद्धता है जो अपने माता-पिता के कारावास के परिणामस्वरूप जेल में रहते हैं।
II. राज्य सरकार संवैधानिक न्यायालयों की धारकों में प्रतिपादित बच्चों के उक्त वर्ग के मौलिक अधिकारों और लागू सांविधिक अधिनियमों द्वारा निहित अधिकारों को प्राप्त करने के लिए सभी प्रयास करेगी।
III. राज्य इस तथ्य से अवगत है कि सभी बच्चों को देश के कर्तव्यनिष्ठ नागरिकों के रूप में विकसित करने की आवश्यकता है, जिनमें वे भी शामिल हैं जो अपने माता-पिता के साथ जेल में रह रहे हैं।
IV. राज्य की ओर से दाखिल शपथ-पत्र का हवाला देते हुए यह कहा गया है कि राज्य सरकार आवश्यक अधोसंरचना विकसित करेगी, वैधानिक सहयोगी तंत्र को सक्रिय करेगी तथा इस माननीय न्यायालय द्वारा दिनांक 01.10.2024 को पारित पूर्व आदेशानुसार बच्चों को सभी सुविधाएं प्रदान करेगी। राज्य सरकार उक्त निर्देशों का अनुपालन करने के लिए कदम उठा रही है तथा इस वाद में विरोधी पक्षकार नहीं है। यद्यपि यह निष्पक्ष रूप से प्रस्तुत किया गया कि विभिन्न विभागों के बीच पूर्ण समन्वय और सहयोग स्थापित करने में समय लग रहा है।

III. इस मामले में उत्पन्न होने वाले कानूनी मुद्दे और जमानत क्षेत्राधिकार:

4. आवेदक का 5 साल का बेटा पूरी तरह से उस पर निर्भर है। इस मामले में आवेदक को जमानत देने से इनकार करने पर पांच साल का बच्चा उसके साथ जेल परिसर में रहने के लिए मजबूर होगा। पारिवारिक परिस्थितियां और सामाजिक जड़ें उन मानदंडों में से हैं जिन्हें किसी आरोपी की जमानत याचिका पर निर्णय लेते समय ध्यान में रखा जाता है।

5. अपने 6 माता-पिता को जमानत देने से इनकार करने के परिणामस्वरूप एक बच्चे को दी गई संपार्श्विक क्षति सबसे महत्वपूर्ण हो जाती है जब बच्चे को आरोपी माता-पिता के साथ जेल में रहना पड़ता है। न्यायालय डिफ़ॉल्ट रूप से जेल में कैद होने के परिणामस्वरूप ऐसे बच्चों की दुर्दशा के प्रति अपनी आँखें बंद नहीं कर सकता है।

6. प्रत्येक माता-पिता का कर्तव्य है कि वे अपने बच्चे की भलाई, शिक्षा और अच्छी तरह से विकास सुनिश्चित करें। हालांकि, माता-पिता यदि जेल में हैं, वे इन दायित्वों को पूरा नहीं कर सकते हैं। प्रत्येक बच्चे को शिक्षा का मौलिक अधिकार है, और देश के कर्तव्यनिष्ठ नागरिक के रूप में उनके विकास के लिए अनुकूल वातावरण है। जेल में इस तरह के डिफ़ॉल्ट कारावास से पीड़ित बच्चों के अधिकारों की उपेक्षा राज्य की विफलता और न्यायिक प्रक्रिया की अपर्याप्तता को दर्शाएगी। इन बच्चों के अधिकारों से वंचित होने से राज्य की क्षमता और

संविधान और कानूनों को बनाए रखने की न्यायिक प्रक्रिया की क्षमता पर सवालिया निशान लग जाएगा। ऐसे गंभीर मुद्दों से बचना जो जमानत क्षेत्राधिकार में विचार के लिए सीधे उठते हैं, न्यायिक कार्यों के परित्याग के समान होगा। इस तरह के प्रविधि को अच्छे और सुसंगत अधिकारियों द्वारा छोड़ दिया गया है।

7. जमानत क्षेत्राधिकार में न्याय का निष्पक्ष प्रशासन इस न्यायालय को यह सुनिश्चित करने का आदेश देता है कि अपने माता-पिता (इस मामले में मां) की जमानत याचिका को अस्वीकार करने के परिणामस्वरूप बच्चे को होने वाले प्रतिकूल परिणामों को कम किया जाए और जेलों में रहने वाले कैदियों के नाबालिग बच्चों के अधिकारों की रक्षा की जाए।

8. इस न्यायालय की संवैधानिक स्थिति जमानत के अधिकार क्षेत्र में नहीं है। जमानत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय, किसी मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में विचार के लिए विभिन्न कानूनी मुद्दे उत्पन्न हो सकते हैं जो सीधे न्याय के निष्पक्ष प्रशासन को प्रभावित करते हैं। जमानत आवेदनों पर निर्णय लेते समय कानून के अनुसार ऐसे मुद्दों को निर्धारित करने के लिए न्यायालय के पास अधिकार क्षेत्र है।

9. जमानत क्षेत्राधिकार में निष्पक्ष न्याय प्रदान करने के लिए कानून के अनुसार ऐसे मुद्दों का निर्धारण इस न्यायालय के विभिन्न अधिकारियों द्वारा किया गया है। [संदर्भ: **रामू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, अनिल गौर @ सोनू @ सोनू तोमर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, जुनैद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, अमन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, भंवर सिंह @ करमवीर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, नूर आलम बनाम उत्तर प्रदेश और अनुरुद्ध बनाम उत्तर प्रदेश) बच्चों के अधिकार : संवैधानिक प्रावधान और वैधानिक और कानूनी ढांचे**

चतुर्थ (ए) सामान्य

10. बच्चे निरंतर संघर्ष से घिरी दुनिया में प्रकृति के अटूट आशावाद के वादे को पकड़ते हैं। बच्चे मानव जाति की सबसे कीमती संपत्ति हैं, लेकिन मानव प्रजाति का सबसे कमजोर वर्ग भी हैं। बच्चों को हमेशा कानून में एक अलग वर्ग माना गया है।

चतुर्थ (बी) संविधान और बच्चे

11. संविधान निर्माताओं ने स्वीकार किया कि बच्चे राष्ट्र की सबसे कीमती संपत्ति हैं, और बच्चों की विशेष जरूरतों को समझा। संविधान में बच्चों के लिए एक अलग जगह बनाई गई थी। संविधान में बच्चों के लिए समर्पित विभिन्न प्रावधान हमारी संवैधानिक योजना में बच्चों के कल्याण को दिए गए सर्वोपरि स्थान को प्रमाणित करते हैं।

12. इस संबंध में भारत के संविधान के प्रासंगिक प्रावधान नीचे दिए गए हैं:

I. भारत के संविधान का अनुच्छेद 15 (3) राज्य सरकार को बच्चों के लिए विशेष प्रावधान करने में सक्षम बनाता है:

"15(3) इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को महिलाओं और बच्चों के लिए कोई विशेष उपबंध करने से नहीं रोकेगी।

II. बच्चों के लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का उल्लेख राज्य नीति के गठन के लिए एक निर्देशक सिद्धांत के रूप में किया गया है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 45 में इस प्रकार कहा गया है:

45. बच्चों के लिए निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का उपबंध: राज्य, इस संविधान के प्रारंभ से दस वर्ष की अवधि के भीतर, चौदह वर्ष की आयु पूरी करने तक सभी बच्चों के लिए निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करेगा।

III. भारत के संविधान का अनुच्छेद 21-A 6-14 वर्ष की आयु के बच्चों की शिक्षा के अधिकारों को मौलिक अधिकार तक बढ़ाता है।

"21 (क) राज्य छह से चौदह वर्ष की आयु के सभी बच्चों को निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा इस रीति से प्रदान करेगा जो राज्य विधि द्वारा निर्धारित करे।

IV. भारत के संविधान का अनुच्छेद 47:
47. पोषण के स्तर और जीवन स्तर को ऊँचा उठाना तथा लोक स्वास्थ्य में सुधार करना राज्य का कर्त्तव्य: राज्य, अपने लोगों के पोषण के स्तर और जीवन स्तर को ऊँचा उठाने तथा लोक स्वास्थ्य के सुधार को अपने प्राथमिक कर्तव्यों में से एक मानेगा और विशेष रूप से, राज्य मादक पेयों और औषधियों के औषधीय प्रयोजनों को छोड़कर उपभोग का प्रतिषेध करने का प्रयास करेगा जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं।

V. भारत के संविधान के अनुच्छेद 39 (e) और अनुच्छेद 39 (f) बच्चों को शोषण के अभिशाप से बचाने और बच्चों को योग्य नागरिकों के रूप में विकसित करने के लिए अवसर और सुविधाएं पैदा करने के लिए राज्य की भूमिका पर विचार करते हैं।

"39 (ई) कि श्रमिकों, पुरुषों और महिलाओं के स्वास्थ्य और शक्ति, और बच्चों की निविदा उम्र का दुरुपयोग नहीं किया जाता है और नागरिकों को आर्थिक आवश्यकता के कारण उनकी उम्र या ताकत के लिए अनुपयुक्त व्यवसायों में प्रवेश करने के लिए मजबूर नहीं किया जाता है;
39 (च) कि बच्चों को स्वस्थ तरीके से और स्वतंत्रता और गरिमा की स्थिति में विकसित होने के अवसर और सुविधाएं दी जाती हैं और यह कि बचपन और युवाओं को शोषण और नैतिक और भौतिक परित्याग के खिलाफ संरक्षित किया जाता है।

चतुर्थ (सी)। बच्चे: शिक्षा और समग्र विकास

"यदि कोई राष्ट्र सभ्यता की स्थिति में अज्ञानी और स्वतंत्र होने की उम्मीद करता है, तो वह अपेक्षा करता है जो कभी नहीं था और न कभी होगा"

~ थॉमस जेफरसन

13. शिक्षा किसी राष्ट्र की स्वतंत्रता और आर्थिक समृद्धि का इंजन है। शिक्षा ने मानव प्रजातियों के संरक्षण का आश्वासन दिया है, और मानव सभ्यता की उन्नति की गारंटी दी है।

14. शिक्षा केवल रोजगार सुरक्षित करने के लिए कक्षा में दी जाने वाली किताबी शिक्षा नहीं है। शिक्षा की अवधारणा मानव अस्तित्व के विभिन्न पहलुओं को अपनाने के लिए पर्याप्त व्यापक है और मानव जीवन के हर पहलू को छूती है। होमो सेपियन्स की अपने स्थान और अपने आसपास के ब्रह्मांड के संबंध को जानकर खुद को समझने और विकसित करने की क्षमता भी शिक्षा में शामिल है।

15. शिक्षा एक समग्र वातावरण पर विचार करती है जो उत्कृष्टता की तर्ज पर मानव संकायों के विकास के लिए अनुकूल है। स्वस्थ जीवन शैली की आदतों को विकसित करना, मजबूत नैतिक मूल्यों और चरित्र का विकास, और व्यावसायिक और शैक्षणिक ज्ञान को आत्मसात करना कानून द्वारा शासित किसी भी राष्ट्र की शिक्षा के दृष्टिकोण का हिस्सा है।

16. शिक्षा हमारी संवैधानिक दृष्टि को प्राप्त करने का प्राथमिक साधन है। सर्वपल्ली राधाकृष्णन का यह विचार कि "सरकार का उद्देश्य इतनी दक्षता नहीं है क्योंकि शिक्षा हर समय के लिए सच है" देश के शासन में एक मार्गदर्शक कारक है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 21ए के तहत शिक्षा के अधिकार को एक मौलिक अधिकार के रूप में शामिल किया गया था ताकि प्रस्तावना में संक्षेप में दर्शाए गए हमारे संवैधानिक लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके। विधायिका ने शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 को अधिनियमित करके शिक्षा के मौलिक अधिकार को साकार करने के लिए व्यापक ढांचा और विस्तृत तंत्र भी तैयार किया।

17. जेल के कैदियों के बच्चे जो जेलों में बाद वाले के साथ रहते हैं, कारावास की स्थिति में रहते हैं। जेल समग्र विकास के लिए वातावरण प्रदान नहीं करती है और एक अच्छी तरह से गोल व्यक्तित्व के विकास में बाधा डालती है। बच्चे वास्तविक दुनिया से कट जाते हैं और अपने आयु वर्ग के साथ स्वतंत्र रूप से घुलने-मिलने में असमर्थ होते हैं। वे जेल में नकारात्मक प्रभावों के लिए भी अतिसंवेदनशील होते हैं। इस वर्ग के बच्चों की शिक्षा के लिए जेल का माहौल अनुकूल नहीं है। वास्तव में, भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 ए द्वारा बच्चों को गारंटीकृत शिक्षा के अधिकार, और शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 द्वारा उनमें निहित शिक्षा के अधिकार को जेलों की सीमित शर्तों द्वारा प्रभावी रूप से नकारा जा सकता है।

18. संवैधानिक योजना में शिक्षा का पवित्र स्थान और कैदियों के बच्चों को इसे प्रदान करने की प्रस्तुत आवश्यकता को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अविनाश मेहरोत्रा बनाम भारत संघ और अन्य में इस प्रकार विस्तृत किया गया था:

28. शिक्षा हमारे संविधान और संस्कृति में एक पवित्र स्थान रखती है.

30. अनुच्छेद 21-ए को शामिल किए जाने के बाद के वर्षों में, हमने स्पष्ट किया है कि शिक्षा का अधिकार व्यक्ति को एक अहस्तांतरणीय मानव अधिकार के रूप में जोड़ता है। हमने *आरडी उपाध्याय बनाम आंध्र प्रदेश राज्य में इस अधिकार के व्यापक दायरे का पता लगाया है।*[(2007) 15 एस.सी.सी. 337 : ए.आई.आर. 2006 एस.सी. 1946] यह मानते हुए कि राज्य को सभी स्थानों पर सभी बच्चों को शिक्षा प्रदान करनी चाहिए, यहां तक कि जेलों में भी, कैदियों के बच्चों को शिक्षा प्रदान करनी चाहिए। हमने शिक्षा के अधिकार की अनुल्लंघनीयता की भी पुष्टि की है। (महत्व सन्निविष्ट)

32. शिक्षा व्यक्ति के जीवन के लिए उतना ही आवश्यक है, जितना कि स्वास्थ्य और गरिमा, और नागरिकों के प्रति अपने सर्वोच्च कर्तव्य को पूरा करने के लिए राज्य को इसे व्यापक और पूरी तरह से प्रदान करना चाहिए।

33. अन्य मौलिक अधिकारों के विपरीत, शिक्षा का अधिकार न केवल राज्य पर, बल्कि प्रत्येक बच्चे के माता-पिता या अभिभावक पर और स्वयं बच्चे पर भी बोझ डालता है। अनुच्छेद 21-ए, जो इस प्रकार है, मुख्य रूप से राज्य पर एक दायित्व रखता है:

"21-ए। *शिक्षा का अधिकार।*- राज्य छह से चौदह वर्ष की आयु के सभी बच्चों को इस रीति से निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करेगा जो राज्य विधि द्वारा निर्धारित करे।
(महत्व सन्निविष्ट)

चतुर्थ (डी)। अंतर्राष्ट्रीय उपकरण
19. बच्चों के जीवन में सुधार लाने के लिए राष्ट्रों के समूह की आम सहमति को बच्चों के अधिकारों से संबंधित कानून के अंतर्राष्ट्रीय उपकरणों में दर्शाया गया है।

20. किशोर न्याय कानून के लिए अंतर्राष्ट्रीय कानून की प्रयोज्यता को स्वीकार करते हुए, प्रताप सिंह बनाम झारखंड राज्य में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया:

"63. किशोर न्याय से संबंधित कानून को किशोर न्याय की समस्या के समाधान के लिए एक कदम के रूप में माना जाना चाहिए, जो दुखद मानवीय हितों में से एक था जो राष्ट्रीय सीमाओं को पार करता है। उक्त

अधिनियम को न केवल नियमों के संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए, बल्कि मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा और किशोरों के संरक्षण के लिए संयुक्त राष्ट्र मानक न्यूनतम नियमों को भी पढ़ा जाना चाहिए।

21. राजीव कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में इस न्यायालय ने अंतर्राष्ट्रीय कानून के विकास और विभिन्न अंतरराष्ट्रीय उपकरणों में अंतर्राष्ट्रीय कानूनी मूल्यों के अभिसरण पर ध्यान दिया था:

"38. कानून के साथ संघर्ष में बच्चों की स्थिति ने विश्व समुदाय की चिंताओं को उलझा दिया। 1985 में बीजिंग नियमों और किशोर न्याय के प्रशासन के लिए संयुक्त राष्ट्र मानक न्यूनतम नियमों को अपनाने से चिंताओं को अंतर्राष्ट्रीय समुदाय की चेतना में रखा गया था।

39. किशोर न्याय के प्रशासन के लिए संयुक्त राष्ट्र मानक न्यूनतम नियम एक ऐसा दस्तावेज है जो सभ्य राष्ट्रों के बीच अंतरराष्ट्रीय राय और मूल्यों के अभिसरण की आम सहमति को दर्शाता है। वास्तव में, किशोर न्याय के प्रशासन के लिए संयुक्त राष्ट्र मानक न्यूनतम नियम सार्वभौमिक मूल्यों का एक बयान है। भारत में किशोर न्याय अधिनियमों की उत्पत्ति उपर्युक्त अंतर्राष्ट्रीय मानकों और इस विषय पर संयुक्त राष्ट्र के अन्य अभिसमयों से हुई है। जैसा कि देखा जाएगा, अदालतों ने आसानी से अंतरराष्ट्रीय संधियों और सम्मेलनों को हमारे मामले कानून न्यायशास्त्र के कोष में शामिल कर लिया है।

22. एम.सी. मेहता बनाम तमिलनाडु राज्य में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का भी लाभप्रद रूप से संदर्भ दिया जा सकता है:

"17. विश्व समुदाय के प्रति हमारी प्रतिबद्धता के बारे में भी खुद को अवगत कराना उचित होगा। मौजूदा मामले के लिए यह ध्यान रखना पर्याप्त होगा कि भारत ने बाल अधिकारों पर कन्वेंशन को स्वीकार कर लिया है, जिसे 20-11-1989 को संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा संपन्न किया गया था। यह कन्वेंशन इस बात की पुष्टि करता है कि बच्चों के अधिकारों के लिए विशेष सुरक्षा की आवश्यकता होती है और इसका उद्देश्य न केवल इस तरह की सुरक्षा प्रदान करना है, बल्कि दुनिया भर में बच्चों की स्थिति में निरंतर सुधार सुनिश्चित करना है, साथ ही साथ शांति और सुरक्षा की स्थिति में उनके विकास और शिक्षा को भी सुनिश्चित करना है। इस प्रकार, कन्वेंशन न केवल बच्चे के नागरिक और राजनीतिक अधिकारों की रक्षा करता है, बल्कि बच्चे के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और मानवीय अधिकारों की सुरक्षा भी प्रदान करता है।

V. जेल में बच्चे: अदृश्य परीक्षण और पिंजरे में बंद बचपन - एक अध्ययन

23. विभिन्न विशेषज्ञ निकायों ने जेलों में रहने वाले कैदियों के बच्चों की स्थिति की जांच की है। इस संबंध में एक प्रमुख अध्ययन टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, मुंबई द्वारा किया गया था। उक्त अध्ययन का प्रासंगिक भाग यह बताता है कि कैसे जेल का वातावरण बच्चों के मानस में कहर बरपाता है, और उनके जीवन को प्रभावित करता है, यहां निकाला गया है:

पिंजरे में बंद बचपन: माताओं के साथ जेल के अंदर बच्चे

सिर्फ जीना ही काफी नहीं है... व्यक्ति के पास धूप, स्वतंत्रता और थोड़ा सा फूल होना चाहिए।
हंस क्रिश्चियन एंडरसन

वयस्क आपराधिक न्याय प्रणाली के साथ संपर्क बच्चों और परिवारों के लिए हानिकारक हो सकता है। विभिन्न अपराधों को करने के लिए आरोपी या दोषी महिलाओं के बीच हिरासत में रहना छह साल या उससे कम उम्र के किसी भी बच्चे के लिए कभी भी सामान्य नहीं हो सकता है। जेल का माहौल बच्चों के समग्र विकास के लिए अनुकूल नहीं है। जेल में पैदा होने वाले कई बच्चे कभी भी सामान्य पारिवारिक जीवन का अनुभव नहीं करते हैं, कभी-कभी छह साल की अनुमत आयु तक। बच्चों को उनकी माताओं के साथ कैद करने से उनके मानस को कैद कर लिया जाता है। लंबे समय तक नकारात्मक और हिरासत के वातावरण में रहने के कारण, इन बच्चों के समाजीकरण पैटर्न गंभीर रूप से प्रभावित होते हैं। पुरुष आकृतियों की एकमात्र छवि आधिकारिक पुलिस और जेल अधिकारियों की है। वे घर की अवधारणा से अनजान हैं, जैसा कि सामान्य बच्चे इसे समझते हैं। उनके मानस पर उनके पर्यावरण का प्रभाव इतना मजबूत है कि लड़कों को महिला लिंग की तरह प्रतिरूपण करते और बात करते हुए पाया जा सकता है, जो केवल महिला वार्ड में सीमित महिलाओं के बीच बड़े हुए हैं। सड़क पर आवारा जानवरों (माँ के साथ अदालत के रास्ते में देखे गए) जैसे असामान्य दृश्य उनके लिए भयावह हैं। बच्चों को अपनी माताओं के साथ बार-बार एक जेल से दूसरी जेल में स्थानांतरित करने के सामान्य उदाहरण हैं, जिससे वे उखड़ जाते हैं और परेशान हो जाते हैं। ऐसे बच्चे हिंसक और आक्रामक हो जाते हैं, या वैकल्पिक रूप से, जेल में वापस ले लिया गया व्यवहार दिखाते हैं। वे अपनी माताओं द्वारा शारीरिक पिटाई का भी शिकार हो जाते हैं जो कभी-कभी अपने प्रियजनों पर अपनी कुंठा निकालते हैं।

VI. वैधानिक ढांचा

24. वैधानिक ढांचे जो कमजोर बच्चों के अधिकारों को विनियमित और नियंत्रित करते हैं और इस मामले पर लागू होते हैं, उनमें किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम 2015-20, कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987, बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम 200921, यूपी जेल मैनुअल 2022 और मॉडल जेल मैनुअल, 2016 शामिल हैं।

VI (A) किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2015

25. किशोर न्याय अधिनियम एक व्यापक अधिनियम है जो उन बच्चों की पहचान करने के लिए प्रदान करता है जो हाशिए पर रहने वाले वर्गों से संबंधित हैं या अन्यथा देखभाल और संरक्षण की आवश्यकता है। अधिनियमन बच्चों के अधिकारों को फलीभूत करने के लिए प्राधिकरण और तंत्र भी बनाता है।

26. जो माता-पिता जेल में हैं, वे अपने बच्चों की भलाई के लिए उपाय करने में असमर्थ हैं। बच्चों की उक्त श्रेणी जे.जे. अधिनियम की धारा 2(14)(v) के दायरे में है:

"धारा 2 (14) *"देखभाल और संरक्षण की आवश्यकता वाले बच्चे" का अर्थ है एक बच्चा-*

(v) जिसके माता-पिता या अभिभावक हैं और ऐसे माता-पिता या अभिभावक को समिति या बोर्ड द्वारा बच्चे की सुरक्षा और कल्याण की देखभाल और सुरक्षा के लिए अयोग्य या अक्षम पाया जाता है; नहीं तो

धारा 2 (22) *"समिति" का अर्थ है धारा 27 के तहत गठित बाल कल्याण समिति*

धारा 2 (21) *"बाल देखभाल संस्थान" का अर्थ है बाल गृह, खुला आश्रय, पर्यवेक्षण गृह, विशेष गृह, सुरक्षा का स्थान, विशेष दत्तक ग्रहण एजेंसी और बच्चों को देखभाल और सुरक्षा प्रदान करने के लिए इस अधिनियम के तहत मान्यता प्राप्त एक उपयुक्त सुविधा, जिन्हें ऐसी सेवाओं की आवश्यकता है;*

27. किशोर न्याय अधिनियम की धारा 30 बाल कल्याण समिति के कार्यों और जिम्मेदारियों को निर्धारित करती है। इस प्रावधान का विधायी उद्देश्य बच्चों की उपरोक्त श्रेणी को सी.डब्ल्यू.सी. के कर्तव्यों के दायरे में लाना भी है:

"धारा 30- समिति के कार्यों और जिम्मेदारियों में निम्नलिखित शामिल होंगे-

(i) अपने समक्ष पेश किए गए बच्चों का संज्ञान लेना और उन्हें प्राप्त करना;

(ii) इस अधिनियम के अंतर्गत बच्चों की सुरक्षा और कल्याण से संबंधित और उन्हें प्रभावित करने वाले सभी मुद्दों की जांच करना;

(iii) बाल कल्याण अधिकारियों या परिवीक्षा अधिकारियों या जिला बाल संरक्षण इकाई या गैर-सरकारी संगठनों को सामाजिक जांच करने और समिति के समक्ष एक रिपोर्ट प्रस्तुत करने का निदेश देना;

(iv) देखरेख और संरक्षण के जरूरतमंद बच्चों की देखरेख के लिए फिट व्यक्तियों को घोषित करने के लिए जांच करना;

(v) पालक देखभाल में बच्चे को रखने का निर्देश देना;

(vi) बाल व्यक्तिगत देखभाल योजना के आधार पर देखभाल और संरक्षण के जरूरतमंद बच्चों की देखभाल, संरक्षण, उचित पुनर्वास या बहाली सुनिश्चित करना और इस संबंध में माता-पिता या अभिभावकों या फिट व्यक्तियों या बाल गृहों या उपयुक्त सुविधा को आवश्यक निर्देश देना;

(vii) बच्चे की आयु, लिंग, विकलांगता और आवश्यकताओं के आधार पर संस्थागत सहायता की आवश्यकता वाले प्रत्येक बच्चे को नियुक्त करने के लिए पंजीकृत संस्थान का चयन करना और संस्था की उपलब्ध क्षमता को ध्यान में रखते हुए;

(viii) देखरेख और संरक्षण के जरूरतमंद बच्चों के लिए आवासीय सुविधाओं के प्रति माह कम से कम दो निरीक्षण दौरे अवधारित करना और जिला बाल संरक्षण इकाई और राज्य सरकार को सेवाओं की गुणवत्ता में सुधार के लिए कार्रवाई की सिफारिश करना;

(ix) माता-पिता द्वारा समर्पण विलेख के निष्पादन को प्रमाणित करना और यह सुनिश्चित करना कि उन्हें अपने निर्णय पर पुनर्विचार करने के साथ-साथ परिवार को एक साथ रखने के लिए सभी प्रयास करने का समय दिया जाए;

(x) यह सुनिश्चित करना कि परित्यक्त या खोए हुए बच्चों को उनके परिवारों को वापस लाने के लिए सभी प्रयास यथानिर्धारित प्रक्रिया का पालन करते हुए, जैसा कि निर्धारित किया जाए;

(xi) अनाथ, परित्यक्त और आत्मसमर्पण किए गए बच्चे को उचित जांच के बाद दत्तक ग्रहण के लिए कानूनी रूप से निशुल्क घोषित करना;

(xii) मामलों का स्वत: संज्ञान लेना और देखरेख और संरक्षण के जरूरतमंद बच्चों तक पहुंचना, जिन्हें समिति के समक्ष पेश नहीं किया जाता है, बशर्ते कि ऐसा निर्णय कम से कम तीन सदस्यों द्वारा लिया गया हो;

(xiii) यौन अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 (32 वर्ष 2012) के अंतर्गत विशेष किशोर पुलिस इकाई अथवा स्थानीय पुलिस द्वारा, जैसा भी मामला हो, यौन शोषण के शिकार बच्चों के पुनर्वास के लिए कार्रवाई करना, जिन्हें देखभाल और संरक्षण की आवश्यकता वाले बच्चों के रूप में सूचित किया गया है, के पुनर्वास के लिए कार्रवाई करना;

(xiv) धारा 17 की उप-धारा (2) के तहत बोर्ड द्वारा निर्दिष्ट मामलों से निपटना;

(xv) जिला बाल संरक्षण इकाई या राज्य सरकार के सहयोग से बच्चों की देखरेख और संरक्षण में शामिल पुलिस, श्रम विभाग और अन्य एजेंसियों के साथ समन्वय करना;

(xvi) किसी बाल देखभाल संस्था में किसी बच्चे के साथ दुर्व्यवहार की शिकायत होने की स्थिति में, समिति जांच करेगी और पुलिस या जिला बाल संरक्षण इकाई या श्रम विभाग या चाइल्ड लाइन सेवाओं, जैसा भी मामला हो, को निदेश देगी;

(xvii) बच्चों के लिए उपयुक्त कानूनी सेवाओं तक पहुंचना;

(xviii) ऐसे अन्य कार्य और जिम्मेदारियां, जो निर्धारित की जा सकती हैं।

28. जे.जे. अधिनियम की धारा 31 सी.डब्ल्यू.सी. के समक्ष देखभाल की आवश्यकता वाले बच्चों के उत्पादन पर विचार करती है। जेलों में रहने वाले कैदियों के बच्चों को भी सी.डब्ल्यू.सी. के समक्ष पेश किया जा सकता है। इस प्रावधान के तहत जेल अधिकारी और पुलिस अधिकारी 'किसी भी लोक सेवक' के दायरे में आते हैं।

"31. समिति के समक्ष पेश करना:

(1) देखरेख और संरक्षण के अपेक्षित किसी भी बच्चे को निम्नलिखित में से किसी भी व्यक्ति द्वारा समिति के समक्ष प्रस्तुत किया जा सकेगा, अर्थात्: -

(i) कोई पुलिस अधिकारी या विशेष किशोर पुलिस इकाई या नामित बाल कल्याण पुलिस अधिकारी या जिला बाल संरक्षण इकाई का कोई अधिकारी या तत्समय प्रवृत्त किसी श्रम कानून के तहत नियुक्त निरीक्षक;

(ii) कोई लोक सेवक;

(iii) चाइल्डलाइन सेवाएं या कोई स्वैच्छिक या गैर-सरकारी संगठन या कोई एजेंसी, जो राज्य सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त हो;

(iv) बाल कल्याण अधिकारी या परिवीक्षा अधिकारी;

(v) कोई सामाजिक कार्यकर्ता या जन-उत्साही नागरिक;

(vi) स्वयं बच्चे द्वारा; नहीं तो

(vii) नर्सिंग होम, अस्पताल या प्रसूति गृह की कोई नर्स, चिकित्सक या प्रबंधन: परन्तु बालक को यात्रा के लिए आवश्यक समय को छोड़कर बिना किसी समय की हानि के लेकिन चौबीस घंटे की अवधि के भीतर समिति के समक्ष प्रस्तुत किया जाएगा।

(2) राज्य सरकार, जांच की अवधि के दौरान, समिति को रिपोर्ट प्रस्तुत करने की रीति और बालक को बाल गृह या फिट सुविधा या योग्य व्यक्ति, जैसा भी मामला हो, भेजने और सौंपने के तरीके का उपबंध करने के लिए इस अधिनियम के अनुरूप नियम बना सकेगी।

29. सी.डब्ल्यू.सी. द्वारा पारित किए जाने वाले प्रकृति के आदेशों की गणना जे.जे. अधिनियम की धारा 37 में की गई है:

"37. देखभाल और संरक्षण की आवश्यकता वाले बच्चे के संबंध में पारित आदेश।

(1) समिति इस जांच के माध्यम से संतुष्ट होने पर कि समिति के समक्ष बच्चा एक बच्चा है जिसे देखभाल और संरक्षण की आवश्यकता है, सामाजिक जांच रिपोर्ट 1 [***] पर विचार करने और बच्चे की इच्छाओं को ध्यान में रखते हुए यदि बच्चा एक दृष्टिकोण लेने के लिए पर्याप्त रूप से परिपक्व है, निम्नलिखित में से एक या अधिक आदेश पारित कर सकता है, अर्थात्:-

(ए) घोषणा कि एक बच्चे को देखभाल और संरक्षण की आवश्यकता है;

(ख) बाल कल्याण अधिकारी या नामित सामाजिक कार्यकर्ता के पर्यवेक्षण के साथ या उसके बिना माता-पिता या अभिभावक या परिवार को बच्चे की बहाली;

(ग) ऐसे बच्चों के आवास के लिए संस्था की क्षमता को ध्यान में रखते हुए, या तो इस निष्कर्ष पर पहुंचने के बाद कि बच्चे के परिवार का पता नहीं लगाया जा सकता है या यदि उसका पता लगाया जा सकता है तो भी दत्तक ग्रहण के प्रयोजन के लिए बच्चे को बाल गृह या फिट सुविधा या विशेष दत्तक ग्रहण एजेंसी में रखना, परिवार में बच्चे की बहाली बच्चे के सर्वोत्तम हित में नहीं है;

(घ) दीर्घकालिक या अस्थायी देखभाल के लिए उपयुक्त व्यक्ति के साथ बच्चे की नियुक्ति;

(ई) धारा 44 के तहत पालक देखभाल आदेश;

(च) धारा 45 के तहत प्रायोजन आदेश;

(छ) बच्चे की देखभाल, सुरक्षा और पुनर्वास के संबंध में व्यक्तियों या संस्थानों या सुविधाओं को निदेश जिनमें बच्चे को रखा गया है, जिसमें प्रस्तुत आश्रय और सेवाओं जैसे चिकित्सा देखभाल, मनोरोग और मनोवैज्ञानिक सहायता से संबंधित निर्देश शामिल हैं, जिसमें आवश्यकता आधारित परामर्श, व्यावसायिक चिकित्सा या व्यवहार संशोधन चिकित्सा, कौशल प्रशिक्षण, कानूनी सहायता, शैक्षिक सेवाएं और अन्य विकासात्मक गतिविधियां शामिल हैं, आवश्यकतानुसार, साथ ही जिला बाल संरक्षण इकाई या राज्य सरकार और अन्य एजेंसियों के साथ अनुवर्ती कार्रवाई और समन्वय;

(ज) धारा 38 के अधीन यह घोषणा करना कि बच्चा दत्तक ग्रहण के लिए कानूनी रूप से स्वतंत्र है।

(2) समिति निम्नलिखित आदेश भी पारित कर सकेगी-

(i) पालक परिचर्या के लिए उपयुक्त व्यक्तियों की घोषणा;
(ii) अधिनियम की धारा 46 के तहत देखभाल के बाद सहायता प्राप्त करना; नहीं तो
(iii) किसी अन्य कार्य से संबंधित कोई अन्य आदेश जैसा कि विहित किया जा सकता है"

30. सी.डब्ल्यू.सी. के कार्यों को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इन री: किशोरों की निजता का अधिकार में निम्नानुसार निर्धारित किया गया था:

"28.2 यदि कोई बच्चा किसी ऐसे व्यक्ति के साथ रह रहा है जिसने बच्चे को चोट, शोषण या दुर्व्यवहार किया है या बच्चे की सुरक्षा के लिए लागू किसी अन्य कानून का उल्लंघन किया है, तो उक्त बच्चा देखभाल और संरक्षण की आवश्यकता वाला बच्चा बन जाता है। इस प्रकार, यदि कोई बच्चा जो पाक्सो अधिनियम के तहत किसी अपराध का शिकार है, आरोपी के साथ रह रहा है, तो बच्चा देखभाल और सुरक्षा की आवश्यकता वाला बच्चा बन जाता है। यहां तक कि एक बच्चा जिसके माता-पिता या अभिभावक हैं और यदि ऐसे माता-पिता या अभिभावक बच्चे की देखभाल करने के लिए अयोग्य पाए जाते हैं, तो ऐसे मामले में, बच्चा किशोर न्याय अधिनियम की धारा 2 की उप-धारा (14) के तहत परिभाषा के अंतर्गत आता है। इसलिए, सी.डब्ल्यू.सी. को देखभाल और सुरक्षा की आवश्यकता वाले ऐसे बच्चों को बुनियादी जरूरतों और सुरक्षा प्रदान करने की शक्ति का प्रयोग करना होगा।

29.1 धारा 30 के खंड (vi) के तहत, सी.डब्ल्यू.सी. का यह कर्तव्य है कि वह बच्चे की व्यक्तिगत देखभाल योजना के आधार पर देखभाल और सुरक्षा की आवश्यकता वाले बच्चों की देखभाल, सुरक्षा, उचित पुनर्वास या बहाली सुनिश्चित करे। सी.डब्ल्यू.सी. तब तक इंतजार नहीं कर सकती जब तक कि देखभाल और सुरक्षा की जरूरत वाले बच्चों को उसके सामने पेश नहीं किया जाता। धारा 30 के खंड (xii) के तहत, सी.डब्ल्यू.सी. को मामलों का स्वत: संज्ञान लेना चाहिए और देखभाल और सुरक्षा की आवश्यकता वाले बच्चों तक पहुंचना चाहिए। यहां जो महत्वपूर्ण है वह धारा 30 का खंड (xiii) है, जो अनिवार्य करता है कि यौन शोषण के शिकार बच्चों के पुनर्वास के लिए कार्रवाई करना सी.डब्ल्यू.सी. का कर्तव्य है, जो देखभाल और सुरक्षा की आवश्यकता वाले बच्चे हैं।

छठा (बी) बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009

31. शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009, जिसे भारत के संविधान के अनुच्छेद 21ए के बाद अधिनियमित किया गया था, देश में सभी बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने के संवैधानिक इरादे को पूरा करने के लिए कानूनी साधन है।

32. इस मामले से संबंधित शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 के कुछ प्रावधानों पर अब चर्चा की जाएगी।

33. जो बच्चे जेल में अपने माता-पिता के साथ रहते हैं, वे भी अपनी विशेष और प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण विभिन्न नुकसानों से पीड़ित होते हैं। उक्त बच्चे शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 की धारा 2 (डी) की श्रेणी में आते हैं:

"2 (घ) "वंचित समूह से संबंधित बच्चा" का अर्थ है [विकलांग बच्चा या] अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्ग या ऐसे अन्य समूह से संबंधित बच्चा जो सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, भौगोलिक, भाषाई, लिंग या ऐसे अन्य कारक के कारण नुकसान उठाता है, जैसा कि उपयुक्त सरकार द्वारा अधिसूचना द्वारा निर्दिष्ट किया जा सकता है;

34. धारा 3 बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार प्रदान करती है:

धारा 3. बच्चे को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार।

[(1) धारा 2 के खंड (घ) या खंड (ङ) में निर्दिष्ट बालक सहित छह से चौदह वर्ष की आयु के प्रत्येक बच्चे को अपनी प्रारंभिक शिक्षा पूरी होने तक पड़ोस के स्कूल में निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार होगा।

(2) उपधारा (1) के प्रयोजन के लिए, कोई भी बच्चा किसी भी प्रकार की फीस या प्रभार या व्यय का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी नहीं होगा जो उसे प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त करने और पूरा करने से रोक सके।

(3) धारा 2 के खंड (ई) के उपखंड (ए) में निर्दिष्ट विकलांगता वाला बच्चा, विकलांग व्यक्ति (समान अवसर, अधिकारों का संरक्षण और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम, 1995 (1 वर्ष 1996) के प्रावधानों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, और धारा 2 के खंड (ई) के उपखंड (बी) और (सी) में निर्दिष्ट बच्चा, नि:शुल्क और अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए निशक्त बच्चों को वही अधिकार प्राप्त हैं जो निशक्त व्यक्ति (समान अवसर, अधिकारों का संरक्षण और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम, 1995 के अध्याय V के उपबंधों के अंतर्गत निशक्त बच्चों को प्राप्त हैं:

बशर्ते कि खंड (एच) में निर्दिष्ट "बहु-विकलांगता" वाले बच्चे और ऑटिज्म, सेरेब्रल पाल्सी, मानसिक मंदता और बहु-विकलांगता वाले व्यक्तियों के कल्याण के लिए राष्ट्रीय न्यास अधिनियम, 1999 (44 वर्ष 1999) की धारा 2 के खंड (ओ) में निर्दिष्ट "गंभीर विकलांगता" वाले बच्चे को भी घर आधारित शिक्षा का विकल्प चुनने का अधिकार हो सकता है।

35. शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 की धारा 4 में उन बच्चों के लिए विशेष प्रावधान हैं जिन्हें प्रारंभिक शिक्षा में प्रवेश नहीं दिया गया है या जिन्होंने प्रारंभिक शिक्षा पूरी नहीं की है:

"धारा 4. प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त नहीं करने वाले या पूरी नहीं किए गए बच्चों के लिए विशेष प्रावधान-

जहां छह वर्ष से अधिक आयु के बच्चे को किसी भी स्कूल में प्रवेश नहीं दिया गया है या यद्यपि वह भर्ती है, अपनी प्रारंभिक शिक्षा पूरी नहीं कर सकता है, तो उसे उसकी आयु के लिए उपयुक्त कक्षा में प्रवेश दिया जाएगा: बशर्ते कि जहां एक बच्चे को उसकी उम्र के लिए उपयुक्त कक्षा में सीधे प्रवेश दिया जाता है, तो, उसे दूसरों के बराबर होने के लिए, विशेष प्रशिक्षण प्राप्त करने का अधिकार होगा, इस तरह से, और ऐसी समय-सीमा के

भीतर, जैसा कि निर्धारित किया जा सकता है: परन्तु यह भी कि इस प्रकार प्रारंभिक शिक्षा में प्रवेश लेने वाला बच्चा चौदह वर्ष के बाद भी प्रारंभिक शिक्षा पूरी होने तक निशुल्क शिक्षा का हकदार होगा।

36. शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 की धारा 13 कोई कैपिटेशन शुल्क नहीं देती है और प्रवेश के लिए स्क्रीनिंग प्रक्रिया का प्रावधान करती है:

"धारा 13: प्रवेश के लिए कोई कैपिटेशन शुल्क और स्क्रीनिंग प्रक्रिया नहीं।

(1) कोई भी स्कूल या व्यक्ति, किसी बच्चे को प्रवेश देते समय, कोई कैपिटेशन शुल्क नहीं लेगा और बच्चे या उसके माता-पिता या अभिभावक को किसी स्क्रीनिंग प्रक्रिया के अधीन नहीं करेगा।

(2) कोई स्कूल या व्यक्ति, यदि उपधारा (1) के प्रावधानों का उल्लंघन करता है, -

(ए) कैपिटेशन शुल्क प्राप्त करता है, जुर्माने से दंडनीय होगा जो लगाए गए कैपिटेशन शुल्क के दस गुना तक बढ़ सकता है;

(ख) किसी बच्चे को स्क्रीनिंग प्रक्रिया के अधीन करने पर, वह जुर्माने से दंडनीय होगा जो पहले उल्लंघन के लिए पच्चीस हजार रुपये और प्रत्येक बाद के उल्लंघन के लिए पचास हजार रुपये तक बढ़ाया जा सकता है।

37. शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 की धारा 14 में कहा गया है कि किसी भी बच्चे को आयु प्रमाण के अभाव में स्कूल में प्रवेश से वंचित नहीं किया जाएगा:

" धारा 14. प्रवेश के लिए उम्र का प्रमाण।

(1) प्रारंभिक शिक्षा में प्रवेश के प्रयोजनों के लिए, किसी बच्चे की आयु जन्म, मृत्यु और विवाह पंजीकरण अधिनियम, 1886 (6 वर्ष 1886) के उपबंधों के अनुसार जारी किए गए जन्म प्रमाण पत्र के आधार पर या ऐसे अन्य दस्तावेज के आधार पर, जो विहित की जाए, के आधार पर निर्धारित की जाएगी।

(2) किसी भी बच्चे को आयु प्रमाण के अभाव में स्कूल में प्रवेश से वंचित नहीं किया जाएगा।

38. शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 की धारा 15 शैक्षणिक वर्ष के प्रारंभ के बाद भी बच्चे के प्रवेश की कल्पना करती है।

"धारा 15. प्रवेश से इनकार नहीं।

एक बच्चे को शैक्षणिक वर्ष के प्रारंभ में या ऐसी विस्तारित अवधि के भीतर स्कूल में प्रवेश दिया जाएगा जैसा कि निर्धारित किया जा सकता है:

बशर्ते कि किसी भी बच्चे को प्रवेश से वंचित नहीं किया जाएगा यदि विस्तारित अवधि के बाद ऐसा प्रवेश मांगा जाता है:

परन्तु यह भी कि विस्तारित अवधि के बाद भर्ती किया गया कोई भी बच्चा अपनी पढ़ाई उस रीति से पूरा करेगा जैसा कि समुचित सरकार द्वारा निर्धारित किया जाए।

39. भारत के संविधान के अनुच्छेद 21-ए के तहत गारंटीकृत संवैधानिक अधिकार और शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 के आधार पर बच्चों को निहित शिक्षा का अधिकार उन बच्चों पर पूरी ताकत के साथ लागू होता है जो अपने कैदी माता-पिता के साथ जेल में रह रहे हैं। जेल कैदियों के उक्त बच्चे अपने अधिक सौभाग्य से परिचालित समकक्षों के रूप में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के पूरी तरह से हकदार हैं। राज्य सरकार के साथ-साथ स्थानीय प्राधिकारी भी उपर्युक्त बच्चों की शिक्षा के अधिकार को प्राप्त करने के लिए कानून से बंधे हैं।

40. राज्य को जेलों में बच्चों के लिए शिक्षा के उनके संवैधानिक और वैधानिक अधिकारों की प्राप्ति को सुविधाजनक बनाने के लिए आवश्यक संवैधानिक दायित्वों और अनिवार्य वैधानिक कार्यों का निर्वहन करना होगा। न्यायालयों को शिक्षा के अधिकार सहित बच्चों के अधिकारों को बनाए रखने के अपने पवित्र कर्तव्य का पालन करना होगा।

41. किंडरगार्टन और प्ले स्कूलों में गतिविधियाँ उन प्रारंभिक वर्षों में बच्चों के विकास के लिए महत्वपूर्ण हैं। ऐसे प्ले स्कूलों और किंडरगार्टन में पेशेवर रूप से डिजाइन की गई शिक्षाशास्त्र और गतिविधियाँ बच्चों को बड़े पैमाने पर प्रभावित करती हैं। छोटे शिक्षार्थियों के लिए विशेषज्ञों द्वारा बनाई गई गतिविधि आधारित शिक्षा उनके शारीरिक विकास, मानसिक विकास और भावनात्मक स्थिरता में योगदान कर सकती है। इस प्रकृति की शिक्षा और गतिविधियाँ उस आयु वर्ग के बच्चों के लिए जीवन के अर्थ को बढ़ाती हैं। राज्य के अधिकारियों/स्थानीय प्रशासन द्वारा बच्चों को उनकी पात्रता के अनुसार प्रीस्कूल/किंडरगार्टन/प्ले स्कूल/प्राथमिक स्कूलों में भी प्रवेश दिया जाएगा। स्कूल जेल परिसर के बाहर स्थित होंगे।

VI (C)। उत्तर प्रदेश जेल मैनुअल, 2022

42. यूपी जेल मैनुअल, 2022 में अपनी माताओं के साथ जेल में रहने वाले बच्चों के कल्याण को संरक्षित किया गया है। जेल मैनुअल उनके अधिकारों को सुनिश्चित करता है और उपरोक्त अधिकारों को बनाए रखने के लिए जेल अधिकारियों पर एक कर्तव्य डालता है:

"335. जेल में पैदा हुए बच्चे:

(क) जहां तक संभव हो और बशर्ते कि महिला कैदी के पास उपयुक्त विकल्प हो, अधीक्षक संबंधित न्यायालय को अवगत कराएगा और चिकित्सा विवरण के साथ तथ्य की रिपोर्ट भेजेगा, ताकि न्यायालय गर्भवती कैदी को जमानत पर रिहा करने की संभावना पर विचार कर सके।

(ख) जेल में जन्म, स्थानीय जन्म पंजीकरण कार्यालय में पंजीकृत किया जाएगा, लेकिन यह तथ्य कि बच्चे का जन्म जेल में हुआ है, प्रमाण पत्र में दर्ज नहीं किया जाएगा। केवल इलाके के पते का उल्लेख किया जाएगा।

(ग) जहां तक परिस्थितियां अनुमति देती हैं, जेल में जन्म लेने वाले बच्चों के नामकरण संस्कार (नामकरण संस्कार) के लिए सभी सुविधाएं बढ़ाई जाएंगी।

(घ) माता-पिता द्वारा वहन किए गए खर्च पर इस प्रकार पैदा हुए बच्चे के लिए धार्मिक संस्कार करने की अनुमति दी जा सकती है।

(ङ) जेल में रहने के दौरान एक बच्चे को विचाराधीन कैदी या दोषी के रूप में नहीं माना जाएगा।

336. बच्चों को अपनी माताओं के साथ रहने की अनुमति दी जानी चाहिए

विशेष परिस्थिति में, अधीक्षक जेल में मां को अपने बच्चों को अदालत के आदेश के बिना जेल में रखने की अनुमति देगा, जब तक कि वे छह वर्ष की आयु प्राप्त नहीं कर लेते।

337. ऐसे मामले जिनमें बच्चे को जेल में नहीं रखा जा सकता

(क) जब कोई बच्चा 6 वर्ष की आयु प्राप्त कर लेता है या एक महिला कैदी की मृत्यु हो जाती है और वह अपने पीछे एक बच्चा छोड़ जाती है, तो अधीक्षक संबंधित जिला मजिस्ट्रेट को सूचित करेगा जो बच्चे की उचित देखभाल की व्यवस्था करेगा। यदि संबंधित रिश्तेदार बच्चे का समर्थन करने के लिए तैयार नहीं हैं, तो जिला मजिस्ट्रेट बच्चे को या तो एक अनुमोदित संस्थान या राज्य समाज कल्याण विभाग द्वारा संचालित घर में रखेगा।

(ख) समाज कल्याण विभाग द्वारा संचालित किसी संस्था या गृह में सुरक्षात्मक अभिरक्षा में रखे गए बच्चों को सप्ताह में कम से कम एक बार मां से मिलने की अनुमति दी जाएगी। निदेशक, समाज कल्याण विभाग, यह सुनिश्चित करेगा कि ऐसे बच्चों को अधीक्षक द्वारा निर्धारित तिथियों पर इस उद्देश्य के लिए जेल में लाया जाए।

339. बच्चों की देखभाल

(क) कारागार से जुड़ी एक क्रेच और एक नर्सरी होगी जहां महिला कैदियों के बच्चों की देखभाल की जाएगी। तीन साल से कम उम्र के बच्चों को क्रेच में जाने की अनुमति दी जाएगी और तीन से छह साल के बीच के बच्चों की देखभाल नर्सरी में की जाएगी। जेल अधिकारी अधिमानतः जेल परिसर में उक्त क्रेच और नर्सरी चलाएंगे।

(ख) जेल में रहने वाली महिला कैदियों के बच्चों को उचित शिक्षा और मनोरंजन के अवसर दिए जाएंगे। जब उनकी माताएं जेल में काम कर रही हों, तो बच्चों को एक महिला हेड वार्डर या महिला वार्डर के प्रभार में क्रेच या नर्सरी में रखा जाएगा। क्रेच या नर्सरी की सुविधा वार्डर और अन्य महिला जेल कर्मचारियों के बच्चों तक बढ़ाई जा सकती है।

(ग) कैदियों के बच्चों को मिलने का अधिकार होगा।

(घ) बच्चों के शारीरिक विकास की निगरानी के लिए चिकित्सा अधिकारी द्वारा नियमित रूप से उनकी जांच की जाएगी और समय पर टीकाकरण भी किया जाएगा। प्रत्येक बच्चे के टीकाकरण चार्ट को अभिलेखों में रखा जाएगा। यदि आवश्यक हो तो अतिरिक्त कपड़े, आहार और चिकित्सा उपचार प्रदान किया जाएगा।

(ङ) किसी महिला कैदी के बीमार पड़ने की स्थिति में उसके बच्चों की देखभाल के लिए वैकल्पिक व्यवस्था की जाएगी।

(च) 4 से 6 वर्ष के आयु वर्ग के बच्चों को मां की सहमति प्राप्त करने के बाद जेल के बाहर किसी शैक्षणिक संस्थान में प्रवेश दिया जाएगा और उचित बजट शीर्ष पर प्रभारित सरकारी व्यय पर उचित व्यवस्था और हस्तांतरण किया जाएगा।

43. यूपी जेल मैनुअल, 2022 के नियम 339 (एफ) को बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 और अनुच्छेद 21-ए के अनुरूप पढ़ा जाना चाहिए। यहां तक कि माता-पिता भी जेल में रह रहे अपने बच्चों को शिक्षा से वंचित नहीं कर सकते। उक्त बच्चों को स्कूल में प्रवेश देने के लिए माता-पिता की सहमति से इनकार करना संविधान के अनुच्छेद 21-ए और आरटीई अधिनियम का उल्लंघन होगा। भारत के संविधान के अनुच्छेद 21-ए और आरटीई अधिनियम के अनुच्छेद 21-ए और इस फैसले में दिए गए निर्देशों के आलोक में जेल में रहने वाले प्रत्येक बच्चे को अनिवार्य रूप से स्कूल में प्रवेश दिया जाएगा। बच्चे के माता-पिता को सूचित किया जाएगा कि अनुच्छेद 21-ए और आरटीई अधिनियम द्वारा निहित शिक्षा का अधिकार और इस फैसले में दिए गए निर्देश अनुल्लंघनीय हैं।

छठा (डी)। मॉडल जेल मैनुअल, 2016

44. मॉडल जेल मैनुअल, 2016 में जेल जीवन की कठिन परिस्थितियों में भी बच्चों की सुरक्षा और समग्र विकास के लिए विभिन्न प्रावधान शामिल हैं:

26.36 - समाज कल्याण विभाग के एक घर में सुरक्षात्मक हिरासत में रखे गए बच्चों को सप्ताह में कम से कम एक बार अपनी माताओं से मिलने की अनुमति दी जाएगी। समाज कल्याण विभाग के निदेशक यह सुनिश्चित करेंगे कि ऐसे बच्चों को कारागार अधीक्षक द्वारा इस उद्देश्य के लिए निर्धारित तिथियों पर जेल लाया जाए।

उच्चतम न्यायालय द्वारा महिला कैदियों के बच्चों के लिए जारी दिशा-निर्देश **(आरडी थॉमस) उपाध्याय बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, ए.आई.आर. 2006 एस.सी. 1946**)

> एक जेल में महिला कैदियों के साथ-साथ उनके बच्चों के लिए प्रसवपूर्व और प्रसवोत्तर देखभाल के लिए पर्याप्त सुविधाएं होनी चाहिए।

> महिला कैदियों की स्त्री रोग संबंधी जांच जिला शासकीय अस्पताल में की जाएगी। चिकित्सा सलाह के अनुसार कैदी को प्रसवपूर्व और प्रसवोत्तर उचित देखभाल प्रदान की जाएगी

> जहां तक संभव हो और बशर्ते उसके पास उपयुक्त विकल्प हो, अस्थायी रिहाई/पैरोल (या नाबालिग और आकस्मिक अपराधी के मामले में निलंबित सजा) की व्यवस्था की जानी चाहिए ताकि गर्भवती कैदी जेल के बाहर उसकी सुपुर्दगी कर सके। केवल उच्च सुरक्षा जोखिम या समकक्ष गंभीर विवरण के मामलों का गठन करने वाले असाधारण मामलों को इस सुविधा से वंचित किया जा सकता है,

> जेलों में गर्भवती महिलाओं को जेल की सुविधा के बाहर (कुछ चरम मामलों को छोड़कर) जन्म देने में सक्षम होना चाहिए, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि नवजात शिशु की उचित देखभाल की जाए।

> यह तथ्य कि बच्चे का जन्म जेल में हुआ है, जारी किए गए जन्म प्रमाण पत्र में दर्ज नहीं किया जाएगा। केवल इलाके के पते का उल्लेख किया जाएगा

> जेलों के भीतर, बच्चों को भोजन, आश्रय, चिकित्सा सहायता, आवश्यकता पड़ने पर शिक्षा और मनोरंजक स्थान तक पहुंच प्राप्त करने में सक्षम होना चाहिए।

>बच्चों के शारीरिक विकास की निगरानी के लिए महिला चिकित्सा अधिकारी द्वारा नियमित रूप से बच्चों की जांच की जाएगी और समय पर टीकाकरण भी किया जाएगा। प्रत्येक बच्चे के बारे में टीकाकरण चार्ट अभिलेखों में रखा जाएगा। चिकित्सा अधिकारी की सिफारिश पर अतिरिक्त कपड़े, आहार आदि भी प्रदान किए जा सकते हैं।

> महिलाएं अपने बच्चों को अपने साथ तब तक रख सकती हैं जब तक कि बच्चे छह साल की उम्र तक न पहुंच जाएं। फिर उन्हें समाज कल्याण विभाग द्वारा बनाए गए कल्याणकारी संस्थानों को सौंप दिया जाना चाहिए, अधिमानतः उसी शहर या कस्बे के भीतर।

> बच्चा ऐसी संस्था में तब तक रह सकता है जब तक कि मां को रिहा नहीं कर दिया जाता या बच्चा आजीविका कमाने में सक्षम नहीं हो जाता।

> समाज कल्याण विभाग के एक घर में सुरक्षात्मक हिरासत में रखे गए बच्चों को सप्ताह में कम से कम एक बार अपनी मां से मिलने की अनुमति दी जाएगी। निदेशक, समाज कल्याण विभाग, यह सुनिश्चित करेगा कि ऐसे बच्चों को इस उद्देश्य के लिए कारागार अधीक्षक द्वारा निर्धारित तिथि पर जेल में लाया जाए।

> राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण समय-समय पर जेलों का निरीक्षण करने के लिए आवश्यक उपाय करेंगे ताकि यह निगरानी की जा सके कि बच्चों और माताओं के संबंध में निर्देशों का अक्षरश: अनुपालन किया जा रहा है।

महिला कैदियों के बच्चों का कल्याण

26.37 कारागार प्रशासन को जेलों में बंद कैदियों के बच्चों का समग्र विकास सुनिश्चित करना चाहिए। जहां तक संभव हो, जेल प्रशासन बच्चों की परवरिश के लिए एक उपयुक्त वातावरण बनाने का प्रयास करेगा जो जेल के बाहर के बच्चे के जितना संभव हो उतना करीब हो। बोर्ड ऑफ विजिटर्स नियमित अंतराल पर इन सुविधाओं का निरीक्षण करेगा।

45. मॉडल जेल मैनुअल, 2016 के अन्य प्रावधान बच्चों की शिक्षा और आहार से संबंधित हैं:

पढ़ाई

"26.38 जेल में रहने वाली महिला कैदियों के बच्चों को उचित शिक्षा और मनोरंजन के अवसर दिए जाएंगे। महिलाओं के लिए एक जेल से जुड़ी एक अच्छी तरह से सुसज्जित क्रेच और एक नर्सरी स्कूल होगा जहां महिला कैदियों के बच्चों की देखभाल की जाएगी, जबकि माताओं जेल में काम करती हैं। तीन वर्ष से कम आयु के

बच्चों को शिशु गृह में प्रवेश की अनुमति दी जाएगी और नर्सरी स्कूल में उनकी देखभाल की जाएगी। इन सुविधाओं को वार्डरों और अन्य महिला जेल कर्मचारियों के बच्चों के लिए भी बढ़ाया जा सकता है।

26.39 क्रेच और नर्सरी स्कूल जेल प्रशासन द्वारा चलाया जाएगा, अधिमानतः जेल के बाहर गैर सरकारी संगठनों या राज्य कल्याण सेवाओं की सहायता से। यदि जेल प्रशासन क्रेच चलाना मुश्किल समझता है, तो बच्चों को उचित सुरक्षा के तहत निजी तौर पर संचालित क्रेच में भेजने की व्यवस्था की जानी चाहिए। प्रक्रिया में शामिल परिवहन शुल्क और क्रेच शुल्क जेल प्रशासन द्वारा वहन किया जाएगा।

26.40 जेल में बच्चों को स्थानीय जलवायु आवश्यकताओं के अनुरूप पर्याप्त कपड़े प्रदान किए जाएंगे। इसके लिए राज्य/संघ राज्य क्षेत्र की सरकारें उचित पैमाने निर्धारित करेंगी। आवश्यकतानुसार डायपर और अन्य वस्तुएं उन महिला कैदियों को प्रदान की जानी चाहिए जो अपने शिशु बच्चों की देखभाल कर रही हैं।

26.41 नियमित आवश्यकता के अलावा, बच्चों के साथ महिला कैदियों को 150 ग्राम साबुन/डिटर्जेंट के दो केक प्रदान किए जाएंगे।

आहार/भोजन:

26.42 बच्चों के लिए आहार के पैमाने का निर्धारण चिकित्सा मानदंडों और जलवायु परिस्थितियों के अनुसार बढ़ते बच्चों की कैलोरी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए किया जाएगा। प्रत्येक कैदी को अपने बच्चे को खिलाने के लिए उपयुक्त आकार और सामग्री के अलग-अलग बर्तन भी उपलब्ध कराए जाने चाहिए।

26.43 यदि बच्चों के साथ एक महिला कैदी बीमार पड़ जाती है, तो जेल कर्मचारियों द्वारा उसकी देखभाल में आने वाले किसी भी बच्चे की देखभाल के लिए वैकल्पिक व्यवस्था की जानी चाहिए।

स्वास्थ्य देखभाल

26.44 महिला कैदियों के बच्चों को पर्याप्त स्वास्थ्य सुविधाएं प्रदान की जाएंगी (सामुदायिक स्वास्थ्य सेवाओं के सहयोग से), बच्चों की नियमित रूप से एक महिला चिकित्सा अधिकारी द्वारा जांच की जाएगी ताकि उनके शारीरिक विकास की निगरानी की जा सके, जिन्हें उचित समय पर पोलियो और छोटे पीईएस सहित विभिन्न रोगों के लिए भी टीका लगाया जाएगा। चिकित्सा अधिकारी की लिखित सिफारिशों पर ऐसे बच्चों को अतिरिक्त कपड़े और आहार भी प्रदान किए जा सकते हैं।

VI (ई)। विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987

46. विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 नागरिकों के विभिन्न पात्र वर्गों को कानूनी सेवाओं और कानूनी सहायता का अधिकार प्रदान करता है। इस प्रस्तुत विवाद के प्रयोजनों के लिए प्रासंगिक प्रावधान यहां निकाले गए हैं:

2(ग) कानूनी सेवा" में किसी भी मामले के संचालन में किसी भी सेवा का प्रतिपादन या किसी भी अदालत या अन्य प्राधिकरण या न्यायाधिकरण के समक्ष अन्य कानूनी कार्यवाही और किसी भी कानूनी मामले पर सलाह देना शामिल है;

12-कानूनी सेवाएं देने के लिए मानदंड-:
(ग) एक महिला या एक बच्चा;

13. कानूनी सेवाओं का अधिकार।
(1) जो व्यक्ति धारा 12 में विनिर्दिष्ट सभी या किन्हीं मानदंडों को पूरा करते हैं, वे विधिक सेवाएं प्राप्त करने के हकदार होंगे बशर्ते कि संबंधित प्राधिकारी इस बात से संतुष्ट हो कि ऐसे व्यक्ति के पास अभियोजन या बचाव करने के लिए प्रथम दृष्टया मामला है।
(2) किसी व्यक्ति द्वारा अपनी आय के संबंध में किए गए शपथ-पत्र को इस अधिनियम के अधीन विधिक सेवाओं की पात्रता के लिए पात्र बनाने के लिए पर्याप्त माना जा सकेगा, जब तक कि संबंधित प्राधिकारी के पास ऐसे शपथ-पत्र पर अविश्वास करने का कारण न हो।

47. सचिव, संबंधित जिलों के जिला विधिक सेवा प्राधिकरण (डी.एल.एस.ए.) को उक्त श्रेणी के बच्चों के माता-पिता को कानूनी सलाह या परामर्श के माध्यम से आवश्यक कानूनी सहायता प्रदान करनी होगी ताकि उन्हें बच्चों के अधिकारों और अधिकारों से अवगत कराया जा सके। संबंधित जिलों के डी.एल.एस.ए. के सचिव भी वैधानिक अधिकारियों को उक्त बच्चों के अधिकारों को साकार करने के लिए उनके दायित्वों के बारे में सचेत करेंगे, जैसा कि इस निर्णय में चर्चा की गई है।
VI (एफ)। संवैधानिक कानून प्रवचन : निर्णयज विधि

48. बच्चों के अधिकारों को शीला बरसे बनाम चिल्ड्रन एड सोसाइटी में संवैधानिक कानून प्रवचन में शामिल किया गया था, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की:

"5. बच्चे भविष्य के युग के नागरिक हैं। बच्चों की उचित परवरिश और उन्हें अच्छे नागरिक बनने के लिए उचित प्रशिक्षण देना देश के भविष्य पर निर्भर करता है। हाल के वर्षों में, इस स्थिति को अच्छी तरह से महसूस किया गया है। 1959 में, बच्चे के सभी अधिकारों की घोषणा को संयुक्त राष्ट्र की महासभा द्वारा और नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय वाचा, 1966 के अनुच्छेद 24 में अपनाया गया था। बच्चे के महत्व को उचित रूप से पहचाना गया है। घोषणाओं का अनुसमर्थन करने के बाद इन अंतर्राष्ट्रीय चार्टरों के एक पक्ष के रूप में भारत सरकार के साथ-साथ राज्य तंत्र का भी दायित्व है कि वह इसे उचित तरीके से कार्यान्वित करे।

49. इसी तरह, सर्वोच्च न्यायालय ने **लक्ष्मीकांत पांडे बनाम भारत संघ** में संवैधानिक प्रावधानों की पृष्ठभूमि में बच्चों के अधिकारों की व्याख्या करते हुए सर्वोच्च मूल्य की राष्ट्रीय संपत्ति के रूप में बच्चों के महत्व को

रेखांकित किया, और राज्य द्वारा बच्चों को दुर्व्यवहार से बचाने और सम्मान के साथ विकास के लिए वातावरण प्रदान करने के लिए परिस्थितियां बनाने की आवश्यकता को रेखांकित किया:

"6. यह स्पष्ट है कि एक सभ्य समाज में बाल कल्याण के महत्व पर अधिक जोर नहीं दिया जा सकता है, क्योंकि पूरे समुदाय का कल्याण, इसकी वृद्धि और विकास, उसके बच्चों के स्वास्थ्य और कल्याण पर निर्भर करता है। बच्चे एक "सर्वोच्च महत्वपूर्ण राष्ट्रीय संपत्ति" हैं और राष्ट्र की भविष्य की भलाई इस बात पर निर्भर करती है कि उसके बच्चे कैसे बढ़ते और विकसित होते हैं। महान कवि मिल्टन ने इसे बोधगम्य रूप से रखा जब उन्होंने कहा: "बच्चा आदमी को सुबह के रूप में दिखाता है" और समाज कल्याण पर अध्ययन दल ने उसी प्रभाव के लिए बहुत कुछ कहा जब यह देखा गया कि "राष्ट्र का शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य काफी हद तक उस तरीके से निर्धारित होता है जिस तरह से इसे प्रारंभिक अवस्था में आकार दिया जाता है।" बच्चा एक आत्मा है जिसके पास एक प्राणी, एक प्रकृति और अपनी खुद की क्षमता है, जिसे उन्हें खोजने में मदद की जानी चाहिए, उनकी परिपक्वता में विकसित होने के लिए, शारीरिक और महत्वपूर्ण ऊर्जा की परिपूर्णता और इसके भावनात्मक, बौद्धिक और आध्यात्मिक अस्तित्व की अत्यधिक सांस, गहराई और ऊंचाई; अन्यथा राष्ट्र का स्वस्थ विकास नहीं हो सकता है। अब जाहिर है कि बच्चों को उनकी कम उम्र और काया, मानसिक अपरिपक्वता और खुद की देखभाल करने में असमर्थता के कारण विशेष सुरक्षा की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि दुनिया के हर हिस्से में यह अहसास बढ़ रहा है कि बच्चों को प्यार और स्नेह के माहौल में और माता-पिता की कोमल देखभाल और ध्यान में लाया जाना चाहिए ताकि वे पूर्ण भावनात्मक, बौद्धिक और आध्यात्मिक स्थिरता और परिपक्वता प्राप्त कर सकें और आत्मविश्वास और आत्म-सम्मान और जीवन के प्रति संतुलित दृष्टिकोण प्राप्त कर सकें और अपनी भूमिका की पूरी मूल्यांकन और बोध के साथ जीवन के बारे में एक संतुलित दृष्टिकोण प्राप्त कर सकें राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में खेलें, जिसके बिना राष्ट्र का विकास नहीं हो सकता है और वास्तविक समृद्धि प्राप्त नहीं हो सकती है क्योंकि तब समाज का एक बड़ा हिस्सा विकास प्रक्रिया से बाहर रह जाएगा। भारत में यह चेतना संविधान में अधिनियमित प्रावधानों में परिलक्षित होती है। अनुच्छेद 15 का खंड (3) राज्य को अन्य बातों के साथ-साथ बच्चों के लिए विशेष उपबंध करने में सक्षम बनाता है और अनुच्छेद 24 में यह प्रावधान है कि चौदह वर्ष से कम आयु के किसी भी बच्चे को किसी कारखाने या खान में काम करने के लिए नियोजित नहीं किया जाएगा या किसी अन्य खतरनाक रोजगार में नहीं लगाया जाएगा। अनुच्छेद 39 के खंड (ई) और (च) में प्रावधान है कि राज्य अपनी नीति को अन्य बातों के साथ-साथ यह सुनिश्चित करने की दिशा में निर्देशित करेगा कि बच्चों की कम उम्र का दुरुपयोग न हो, कि नागरिकों को आर्थिक आवश्यकता के कारण उनकी आयु और शक्ति के अनुकूल व्यवसायों में प्रवेश करने के लिए मजबूर न किया जाए और बच्चों को स्वस्थ तरीके से और स्वतंत्रता और गरिमा की स्थितियों में विकसित होने की सुविधा दी जाए और यह कि बचपन और युवाओं को शोषण और शोषण के खिलाफ संरक्षित किया जाए नैतिक और भौतिक परित्याग। ये संवैधानिक प्रावधान देश में बच्चों के हितों और कल्याण की रक्षा और सुरक्षा के लिए संविधान निर्माताओं की बड़ी चिंता को दर्शाते हैं। भारत सरकार ने भी इन संवैधानिक उपबंधों के अनुसरण में बच्चों के कल्याण के लिए एक राष्ट्रीय नीति तैयार की है। यह नीति एक लक्ष्य-उन्मुख प्रस्तावना परिचय के साथ शुरू होती है। (महत्व सन्निविष्ट)

उन्होंने कहा, 'देश के बच्चे एक अत्यंत महत्वपूर्ण संपत्ति हैं। उनका पालन-पोषण और आग्रह हमारी जिम्मेदारी है। बाल कार्यक्रम को मानव संसाधनों के विकास के लिए हमारी राष्ट्रीय योजनाओं में एक प्रमुख भूमिका मिलनी चाहिए, ताकि हमारे बच्चे बड़े होकर मजबूत नागरिक, शारीरिक रूप से फिट, मानसिक रूप से सतर्क और नैतिक रूप से स्वस्थ बन सकें, जो समाज के लिए आवश्यक कौशल और प्रेरणाओं से संपन्न हों। विकास की अवधि के दौरान सभी बच्चों के लिए विकास के समान अवसर हमारा उद्देश्य होना चाहिए, क्योंकि यह असमानता को कम करने और सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने के हमारे बड़े उद्देश्य को पूरा करेगा।

राष्ट्रीय नीति में उन उपायों को निर्धारित किया गया है जिन्हें भारत सरकार प्रस्तावना में निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अपनाने का प्रस्ताव करती है और उनमें उपेक्षा, क्रूरता और शोषण से बच्चों की रक्षा करने और पारिवारिक संबंधों को मजबूत करने के लिए तैयार किए गए उपाय शामिल हैं ताकि सामान्य पारिवारिक पड़ोस और सामुदायिक वातावरण में बच्चों के विकास की पूरी संभावनाओं का उपयोग किया जा सके। राष्ट्रीय नीति में कार्यक्रम निर्माण को भी प्राथमिकता दी गई है और इसमें अनाथ और निराश्रित बच्चों के रख-रखाव और प्रशिक्षण को काफी उच्च दायर की दी गई है। राष्ट्रीय बाल बोर्ड के गठन के लिए राष्ट्रीय नीति में भी प्रावधान किया गया है और इस प्रावधान के अनुसरण में, भारत सरकार ने राष्ट्रीय बाल बोर्ड का गठन किया है जिसकी अध्यक्षता प्रधानमंत्री करेंगे। राष्ट्रीय बाल बोर्ड का यह कार्य है कि वह बच्चों की जरूरतों को पूरा करने के लिए प्रयास करने वाली सेवाओं की बहुलता की योजना और समीक्षा और उचित समन्वय पर ध्यान केंद्रित करे और विभिन्न स्तरों पर सभी आवश्यक सेवाओं की निरंतर योजना, समीक्षा और समन्वय सुनिश्चित करे। राष्ट्रीय नीति में बच्चों के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, मनोरंजन और सामाजिक कल्याण सेवाओं के क्षेत्र में स्वैच्छिक संगठनों की महत्वपूर्ण भूमिका पर भी जोर दिया गया है और यह घोषणा की गई है कि ऐसे स्वैच्छिक संगठनों को प्रोत्साहित और सुदृढ़ करना राज्य का प्रयास होगा।

7. अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बच्चों के कल्याण के लिए समान रूप से बड़ी चिंता रही है, जिसकी परिणति 20 नवंबर, 1959 को संयुक्त राष्ट्र की महासभा द्वारा अपनाई गई बाल अधिकारों की घोषणा में हुई है। अपनी प्रस्तावना में घोषणा में कहा गया है कि "बच्चे को, उसकी शारीरिक और मानसिक अपरिपक्वता के कारण, जन्म से पहले और बाद में उचित कानूनी सुरक्षा सहित विशेष सुरक्षा उपायों और देखभाल की आवश्यकता होती है", और यह कि "मानव जाति बच्चे के लिए सबसे अच्छा देना चाहती है" और कई सिद्धांत तैयार करने के लिए आगे बढ़ती है जिनमें से निम्नलिखित हमारे वर्तमान उद्देश्य के लिए महत्वपूर्ण हैं:

"सिद्धांत 2.– बच्चे को विशेष संरक्षण प्राप्त होगा और उसे कानून द्वारा और अन्य तरीकों से अवसर और सुविधाएं प्रदान की जाएंगी, ताकि वह शारीरिक, मानसिक, नैतिक, आध्यात्मिक और सामाजिक रूप से स्वस्थ और सामान्य तरीके से और स्वतंत्रता और गरिमा की स्थितियों में विकसित हो सके। इस उद्देश्य के लिए कानूनों के अधिनियमन में बच्चे के सर्वोत्तम हितों को सर्वोपरि माना जाएगा।

सिद्धांत 6.– बच्चे को अपने व्यक्तित्व के पूर्ण और सामंजस्यपूर्ण विकास के लिए प्यार और समझ की आवश्यकता होती है। वह, जहां भी संभव हो, अपने माता-पिता की देखभाल और जिम्मेदारी के तहत, और किसी भी मामले में स्नेह और नैतिक और भौतिक सुरक्षा के माहौल में बड़ा होगा; कोमल उम्र का बच्चा, असाधारण परिस्थितियों को छोड़कर, अपनी मां से अलग नहीं किया जाएगा। समाज और सार्वजनिक अधिकारियों का कर्तव्य होगा कि वे बिना परिवार के बच्चों और समर्थन के पर्याप्त साधनों के बिना उन बच्चों की विशेष देखभाल करें। बड़े परिवारों के बच्चों के भरण-पोषण के लिए राज्य और अन्य सहायता का भुगतान वांछनीय है।

सिद्धांत 9.– बच्चे को सभी प्रकार की उपेक्षा, क्रूरता और शोषण से बचाया जाएगा। वह किसी भी रूप में यातायात का विषय नहीं होगा।

सिद्धांत 10.–बच्चे को उन प्रथाओं से संरक्षित किया जाएगा जो जातीय, धार्मिक और किसी भी अन्य प्रकार के भेदभाव को बढ़ावा दे सकती हैं। उनका पालन-पोषण समझ, सहिष्णुता, लोगों के बीच मित्रता, शांति और सार्वभौमिक भाईचारे की भावना से और पूरी चेतना में किया जाएगा कि उनकी ऊर्जा और प्रतिभा उनके साथी लोगों की सेवा के लिए समर्पित होनी चाहिए।

50. आर. डी. उपाध्याय बनाम आंध्र प्रदेश राज्य में सर्वोच्च न्यायालय ने अपने कैदी माता-पिता के साथ रहने वाले बच्चों की दुर्दशा पर विचार करते हुए निम्नलिखित निर्देश जारी किए:

"45. ऊपर उल्लिखित विभिन्न रिपोर्टों, विभिन्न राज्य सरकारों, केंद्र शासित प्रदेशों, भारत संघ के हलफनामों और प्रस्तुतियों के आलोक में, हम निम्नलिखित दिशानिर्देश जारी करते हैं:

1. एक बच्चे को उसकी मां के साथ जेल में रहने के दौरान विचाराधीन कैदी/दोषी के रूप में नहीं माना जाएगा। ऐसा बच्चा अधिकार के रूप में भोजन, आश्रय, चिकित्सा देखभाल, कपड़े, शिक्षा और मनोरंजक सुविधाओं का हकदार है।

3. जेल में प्रसव:
(क) जहां तक संभव हो और बशर्ते उसके पास उपयुक्त विकल्प हो, किसी गर्भवती कैदी को जेल के बाहर प्रसव कराने में सक्षम बनाने के लिए अस्थायी रिहाई/पैरोल (या नाबालिग और नैमित्तिक अपराधी के मामले में निलंबित सजा) की व्यवस्था की जानी चाहिए। केवल उच्च सुरक्षा जोखिम या समकक्ष गंभीर विवरण के मामलों का गठन करने वाले असाधारण मामलों को ही इस सुविधा से वंचित किया जा सकता है।

(बी) जेल में जन्म, जब होते हैं, स्थानीय जन्म पंजीकरण कार्यालय में पंजीकृत किए जाएंगे। लेकिन यह तथ्य कि बच्चे का जन्म जेल में हुआ है, जारी किए गए जन्म प्रमाण पत्र में दर्ज नहीं किया जाएगा। केवल इलाके के पते का उल्लेख किया जाएगा।

(ग) जहां तक परिस्थितियां अनुमति देती हैं, जेल में पैदा हुए बच्चों के नामकरण संस्कार की सभी सुविधाओं का प्रदर्श किया जाएगा।

4. महिला कैदी और उनके बच्चे:

(क) महिला कैदियों को अपने बच्चों को छह वर्ष की आयु प्राप्त करने तक अपने साथ जेल में रखने की अनुमति होगी।

(ख) किसी भी महिला कैदी को छह वर्ष की आयु पूरी कर चुके बच्चे को रखने की अनुमति नहीं दी जाएगी। छह वर्ष की आयु तक पहुंचने पर, बच्चे को महिला कैदी की इच्छा के अनुसार एक उपयुक्त सरोगेट को सौंप दिया जाएगा या समाज कल्याण विभाग द्वारा संचालित एक उपयुक्त संस्थान में भेजा जाएगा। जहां तक संभव हो, बच्चे को उस शहर या शहर के बाहर किसी संस्थान में स्थानांतरित नहीं किया जाएगा जहां जेल स्थित है ताकि शारीरिक दूरी के कारण मां और बच्चे दोनों पर अनुचित कठिनाइयों को कम किया जा सके।

(ग) ऐसे बच्चों को तब तक सुरक्षात्मक अभिरक्षा में रखा जाएगा जब तक कि उनकी मां को रिहा नहीं कर दिया जाता है या बच्चा अपनी आजीविका कमाने के लिए ऐसी उम्र प्राप्त नहीं कर लेता है।

(घ) समाज कल्याण विभाग के गृह में सुरक्षात्मक अभिरक्षा में रखे गए बच्चों को सप्ताह में कम से कम एक बार अपनी मां से मिलने की अनुमति दी जाएगी। निदेशक, समाज कल्याण विभाग, यह सुनिश्चित करेगा कि ऐसे बच्चों को इस उद्देश्य के लिए कारागार अधीक्षक द्वारा निर्धारित तिथि पर जेल में लाया जाए।

(ङ) जब किसी महिला कैदी की मृत्यु हो जाती है और वह अपने पीछे एक बच्चा छोड़ जाती है, तो अधीक्षक संबंधित जिला मजिस्ट्रेट को सूचित करेगा और वह बच्चे की उचित देखभाल की व्यवस्था करेगा। यदि संबंधित रिश्तेदार बच्चे का समर्थन करने के लिए तैयार नहीं हैं, तो जिला मजिस्ट्रेट या तो बच्चे को राज्य समाज कल्याण विभाग द्वारा संचालित एक अनुमोदित संस्था/घर में रखेगा या बच्चे को देखभाल और रखरखाव के लिए एक जिम्मेदार व्यक्ति को सौंप देगा।

5. भोजन, कपड़े, चिकित्सा देखभाल और आश्रय:

(क) जेल में बंद बच्चों को स्थानीय जलवायु आवश्यकता के अनुरूप पर्याप्त कपड़े उपलब्ध कराए जाएंगे जिसके लिए राज्य/संघ राज्य क्षेत्र सरकार पैमाना निर्धारित करेगी।

(ख) राज्य/संघ राज्य क्षेत्र सरकारें चिकित्सा मानदंडों के अनुसार बढ़ते बच्चों की कैलोरी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए बच्चों के लिए आहार पैमाने निर्धारित करेंगी।

(ग) सभी जेलों में नियमित आधार पर रहने वाले बच्चों की पोषण संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सामग्री के साथ अलग-अलग भोजन उपलब्ध कराने के लिए एक स्थायी व्यवस्था विकसित किए जाने की आवश्यकता है।

(घ) प्रत्येक मां कैदी को अपने बच्चे को खिलाने के लिए उपयोग करने के लिए उपयुक्त आकार और सामग्री के अलग-अलग बर्तन भी उपलब्ध कराए जाने चाहिए।

(ङ) बच्चों को स्वच्छ पेयजल उपलब्ध कराया जाना चाहिए। इस पानी की समय-समय पर जांच की जानी चाहिए।

(च) बच्चों के शारीरिक विकास की निगरानी करने के लिए महिला चिकित्सा अधिकारी द्वारा बच्चों की नियमित रूप से जांच की जाएगी और उन्हें समय पर टीकाकरण भी किया जाएगा। प्रत्येक बच्चे के बारे में टीकाकरण चार्ट अभिलेखों में रखा जाएगा। चिकित्सा अधिकारी की सिफारिश पर अतिरिक्त कपड़े, आहार आदि भी प्रदान किए जा सकते हैं।

(छ) किसी महिला कैदी के बीमार पड़ने की स्थिति में, उसकी देखरेख में आने वाले किसी भी बच्चे की देखभाल के लिए जेल कर्मचारियों द्वारा वैकल्पिक व्यवस्था की जानी चाहिए।

(ज) मां और बच्चे को प्रदान की जाने वाली सोने की सुविधाएं पर्याप्त, स्वच्छ और स्वच्छ होनी चाहिए।

(i) कैदियों के बच्चों को मिलने का अधिकार होगा।

(ञ) कारागार अधीक्षक को विशेष मामलों में और जहां ऐसी परिस्थितियां हों कि महिला कैदियों के बच्चों को न्यायालय के आदेश के बिना जेल में प्रवेश दिया जाए, बशर्ते कि ऐसे बच्चे 6 वर्ष से कम आयु के हों।

6. महिला कैदियों के बच्चों के लिए शिक्षा और मनोरंजन:

(क) जेलों में रहने वाली महिला कैदियों के बच्चों को उचित शिक्षा और मनोरंजन के अवसर दिए जाएंगे और जब उनकी माताएं जेल में काम कर रही हों, तो बच्चों को मैट्रन/महिला वार्डर के प्रभार में क्रेच में रखा जाएगा। यह सुविधा वार्डरों के बच्चों और अन्य महिला जेल कर्मचारियों के लिए भी बढ़ाई जाएगी।

(ख) महिलाओं के लिए जेल से जुड़ी एक क्रेच और एक नर्सरी होगी जहां महिला कैदियों के बच्चों की देखभाल की जाएगी। तीन साल से कम उम्र के बच्चों को क्रेच में जाने की अनुमति दी जाएगी और तीन से छह साल के बीच के बच्चों की देखभाल नर्सरी में की जाएगी। जेल अधिकारी अधिमानतः उक्त क्रेच और नर्सरी को जेल परिसर के बाहर चलाएंगे।

7. कई राज्यों में, छोटे बच्चे उप-जेलों में रह रहे हैं जो छोटे बच्चों को रखने के लिए बिल्कुल भी सुसज्जित नहीं हैं। बच्चों के साथ महिला कैदियों को ऐसी उप-जेलों में नहीं रखा जाना चाहिए, जब तक कि उचित सुविधाएं सुनिश्चित नहीं की जा सकती हैं जो उचित जैविक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक विकास के लिए वहां अनुकूल वातावरण बनाती हैं।

(महत्व सन्निविष्ट)

8. हिंसक अपराधों सहित सभी प्रकार के अपराधों से संबंधित महिला दोषियों, विचाराधीन कैदियों, अपराधियों के बीच भीड़भाड़ वाले बैरकों में बच्चों का रहना निश्चित रूप से उनके व्यक्तित्व के विकास के लिए हानिकारक है। इसलिए, बच्चे की प्राथमिकता के आधार पर ऐसे वातावरण से अलग होने के लायक हैं।

(महत्व सन्निविष्ट)

51. बॉम्बे उच्च न्यायालय ने जन अदालत, सेंटर ऑफ पैरा-लीगल सर्विसेज एंड लीगल एड ए सोसाइटी बनाम महाराष्ट्र राज्य में सचिव, गृह विकास विभाग के माध्यम से आरडी उपाध्याय (उपरोक्त) का हवाला दिया और महाराष्ट्र में कैदियों के संबंध में निम्नलिखित निर्देश जारी किए:

"38..(ज) जहां तक जेल में अपनी संबंधित माताओं के साथ रहने वाले बच्चों का संबंध है, उनके लाभ के लिए आवश्यक व्यवस्था शीर्ष न्यायालय के निर्देशों के अनुसार और जैसा कि निर्णय के प्रस्तर-23 में आज से छह महीने की अवधि के भीतर किया जाएगा;

(i) राज्य सरकार यह सुनिश्चित करने के लिए एक योजना तैयार करेगी कि महिला कैदी अपने नाबालिग बच्चों (जो उनके साथ नहीं रह रही हैं) से नियमित अंतरालों पर मिल सकें। ऐसी योजना तैयार करना आवश्यक होगा क्योंकि बच्चों की कस्टडी रखने वाले व्यक्ति या संस्थान उन्हें अपनी संबंधित माताओं से मिलने के लिए प्रोत्साहित नहीं कर सकते हैं। यदि आवश्यक हो तो महाराष्ट्र कारागार (कैदियों को सुविधाएं) नियम, 1962 में संशोधन का प्रस्ताव किया जाए।

52. कर्नाटक उच्च न्यायालय ने बाबुल खान बनाम कर्नाटक राज्य में बच्चों के अधिकारों के संबंध में निम्नलिखित टिप्पणियां कीं। हालांकि टिप्पणियां विदेशी नागरिकों के बच्चों के संबंध में की गई थीं, वे इस मामले पर भी लागू होती हैं:

"96. यदि बच्चा किसी विदेशी नागरिक का था और जहां माता-पिता या माता-पिता में से कोई एक विशेष रूप से मां जेल में है, तो कानून के बदले में आवश्यक कदम उठाए जाने चाहिए कि, बच्चे को हमेशा बच्चे के अधिकारों की संयुक्त राष्ट्र की घोषणा में निर्धारित सभी अधिकारों का आनंद लेना चाहिए, चाहे वह जेल के बाहर हो या जेल के अंदर बिना किसी भेदभाव या भेदभाव के, रंग, भाषा, जन्म या अन्य स्थिति से राजनीतिक या अन्य राष्ट्रीय या सामाजिक की उत्पत्ति। इसके अलावा, बच्चे को विशेष सुरक्षा मिलेगी और उसे कानून और अन्य माध्यमों से अवसर और सुविधाएं दी जाएंगी ताकि वह गरिमा के साथ स्वस्थ और सामान्य तरीके से शारीरिक, मानसिक और सामाजिक रूप से विकसित हो सके। बच्चा शिक्षा प्राप्त करने का भी हकदार है जो कम से कम प्रारंभिक चरणों में मुफ्त और अनिवार्य होगी, भले ही बच्चा अपनी मां के साथ जेल या हिरासत केंद्र में हो। संबंधित राज्य विशेष रूप से डिटेंशन सेंटर में कानून बनाते समय, बच्चे के अधिकार का सम्मान करेंगे, जो वास्तव में माता-पिता से एक या दोनों से अलग है और राज्य को ऐसे बच्चे के हितों की रक्षा के लिए व्यवस्था करनी चाहिए।

<u>अनुच्छेद 21 और बच्चे</u>

53. इस न्यायालय ने **सुपूर्णानंद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2018 (11) ए.डी.जे. 550** में भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत "जीवन" के अर्थ के दायरे और संवैधानिक कानून की जांच करते हुए निम्नानुसार अवधारित किया:

"32. जीवन के उद्देश्य की जांच पारंपरिक रूप से दार्शनिकों का प्रांत रही है। संविधान निर्माताओं ने "जीवन" शब्द को संविधान के दायरे में लाया। संवैधानिक कानून ने जीवन के अर्थ को अदालतों के अधिकार क्षेत्र में रखा। "जीवन" अदालतों की चिंता का विषय है। जीवन के अर्थ की खोज अदालतों का काम है। वास्तव में, जीवन के अर्थ की खोज संविधान के तहत गारंटीकृत मौलिक अधिकारों को साकार करने के लिए केंद्रीय है।

33. जीवन के अर्थ में अदालतों की जांच कानून और तर्क द्वारा निर्देशित थी और तर्क और मिसाल द्वारा नियंत्रित थी, लेकिन संविधान के जनादेश और अदालत के विवेक के अलावा किसी भी अधिकार के लिए नहीं झुकती थी। अंततः, जीवन का अर्थ जीवन द्वारा ही दिया गया था। जीवन के सभी पहलुओं और इसकी वास्तविकताओं ने अदालतों को छुआ। यह अदालतों के लिए था कि वे जीवन के सभी पहलुओं को छूएं और इसकी वास्तविकता को महसूस करें। जीवन उन लोगों के लिए अपना सही अर्थ प्रकट करता है जिनके विचार महान हैं और कर्म धार्मिक हैं और जो निस्वार्थ रूप से जीते हैं।

34. भारत की अदालतें पहले ही जान गई थीं कि जीवन के महत्व को समझना न्याय की सुरक्षा प्रदान करने की कुंजी है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 की व्याख्या करते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने जीवन को उसकी व्यापकता और गहराई में अपनाया और एक संकीर्ण व्याख्या से परहेज किया। भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन करते हुए माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून ने एक नागरिक की प्रतिष्ठा को व्यापक रूप से लाया।

*35. एक निर्णायक क्षण आया जब माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने जीवन को केवल भौतिक अस्तित्व की बेड़ियों से मुक्त किया। भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत जीवन के अर्थ की जांच करते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **ओल्गा टेलिस बनाम बॉम्बे म्यूनिसिपल कॉर्प 2018 (11) ए.डी.जे. 550** के मामले में जीवन को अर्थ में जोड़ा।*

"जैसा कि हमने याचिकाकर्ताओं के मामले को सारांशित करते हुए कहा है, उनके तर्क का मुख्य मुद्दा यह है कि अनुच्छेद 21 द्वारा गारंटीकृत जीवन के अधिकार में आजीविका का अधिकार शामिल है और चूंकि, यदि उन्हें झुग्गी और फुटपाथ के आवासों से बेदखल कर दिया जाता है तो वे अपनी आजीविका से वंचित हो जाएंगे, इसलिए उन्हें बेदखल करना उनके जीवन से वंचित करने के समान है और इसलिए यह असंवैधानिक है। तर्क के प्रयोजनों के लिए, हम इस आधार की तथ्यात्मक शुद्धता को मानेंगे कि यदि याचिकाकर्ताओं को उनके आवासों से बेदखल कर दिया जाता है, तो वे अपनी आजीविका से वंचित हो जाएंगे। इस धारणा के आधार पर, हमें जिस प्रश्न पर विचार करना है वह यह है कि क्या जीवन के अधिकार में आजीविका का अधिकार भी शामिल है। हम उस प्रश्न का केवल एक ही उत्तर देखते हैं, अर्थात्, यह करता है। अनुच्छेद 21 द्वारा प्रदत्त जीवन के अधिकार का व्यापक और दूरगामी प्रभाव है। इसका मतलब केवल यह नहीं है कि जीवन को बुझाया या छीना नहीं जा सकता है, उदाहरण के लिए, कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अलावा, मौत की सजा को लागू करने और निष्पादित करने से। यह जीवन के अधिकार का एक पहलू है। उस अधिकार का एक समान रूप से महत्वपूर्ण पहलू आजीविका का अधिकार है क्योंकि कोई भी व्यक्ति जीवन यापन के साधनों के बिना

नहीं रह सकता है, यानी आजीविका के साधन। यदि आजीविका के अधिकार को जीवन के संवैधानिक अधिकार के हिस्से के रूप में नहीं माना जाता है, तो किसी व्यक्ति को उसके जीवन के अधिकार से वंचित करने का सबसे आसान तरीका यह होगा कि उसे उसकी आजीविका के साधनों से वंचित कर दिया जाए। इस तरह की कमी न केवल जीवन को इसकी प्रभावी सामग्री और सार्थकता से वंचित कर देगी, बल्कि यह जीवन को जीना असंभव बना देगी। और फिर भी, इस तरह के अभाव को कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार नहीं होना चाहिए, अगर आजीविका के अधिकार को जीवन के अधिकार का हिस्सा नहीं माना जाता है। वह, जो अकेले जीना संभव बनाता है, जो जीवन को रहने योग्य बनाता है, उसे छोड़ दें, उसे जीवन के अधिकार का एक अभिन्न अंग माना जाना चाहिए। किसी व्यक्ति को उसकी आजीविका के अधिकार से वंचित कर दो, और तुम उसे उसके जीवन से वंचित कर दोगे। वास्तव में, यह बड़े शहरों में ग्रामीण आबादी के बड़े पैमाने पर प्रवास की व्याख्या करता है। वे पलायन करते हैं क्योंकि उनके पास गांवों में आजीविका का कोई साधन नहीं है। गांव में अपने चूल्हों और घरों को छोड़ने के लिए प्रेरित करने वाली प्रेरक शक्ति अस्तित्व के लिए संघर्ष है, यानी जीवन के लिए संघर्ष। जीवन और आजीविका के साधनों के बीच सांठगांठ का प्रमाण इतना अभेद्य है। उन्हें जीने के लिए खाना पड़ता है: केवल कुछ मुट्ठी भर लोग ही खाने के लिए जीने की विलासिता का खर्च उठा सकते हैं। वे ऐसा कर सकते हैं, अर्थात् खा सकते हैं, यदि उनके पास आजीविका के साधन हों। यही वह संदर्भ है जिसमें ***डगलस ने बक्सी [347 यूएस 442, 472: 98 एल एड 829 (1954)]*** *में कहा था कि काम करने का अधिकार मनुष्य की सबसे कीमती स्वतंत्रता है। यह सबसे कीमती स्वतंत्रता है क्योंकि, यह एक आदमी को जीने के लिए बनाए रखता है और सक्षम बनाता है और जीवन का अधिकार एक अनमोल स्वतंत्रता है। "जीवन", जैसा कि फील्ड द्वारा देखा गया है मुन बनाम इलिनोइस [(1877) 94 यूएस 113] का अर्थ केवल पशु अस्तित्व से कहीं अधिक है और जीवन के अभाव के खिलाफ निषेध उन सभी सीमाओं और संकायों तक फैला हुआ है जिनके द्वारा जीवन का आनंद लिया जाता है। इस टिप्पणी को इस न्यायालय द्वारा* ***खरक सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [ए.आई.आर. 1963 एस.सी. 1295: (1964) 1 एस.सी.आर 332: (1963) 2 सीआरआई एलजे 329]*** *के मामले में अनुमोदन के साथ उद्धृत किया गया था।*

54. अनुच्छेद 21 को लगातार विस्तारित सीमाओं के प्रविधि पर स्थापित किया गया था और जीवन का दायरा उत्तरोत्तर बढ़ाया गया था।

55. भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 में बच्चों के जीवन के अर्थ को सूक्ष्म रूप से समझा जाना चाहिए। बच्चों से संबंधित विभिन्न संवैधानिक उपबंधों, संवैधानिक न्यायालयों की धारकों और अंतर्राष्ट्रीय दस्तावेजों, जिनमें भारत एक पक्षकार है, का ध्यान रखा जाना चाहिए।

56. भारत के संविधान का अनुच्छेद 39 जैसा कि पहले लक्ष्मीकांत पांडे (उपरोक्त) में देखा गया था, बच्चों के संबंध में सरकार की विभिन्न नीतियों का आधार बन गया है। वास्तव में, भारत के संविधान का अनुच्छेद 39 (ई) और (एफ) अब भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 में अपरिवर्तनीय रूप से शामिल है और बच्चों के लिए जीवन के अर्थ को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 39 (ई)

और (एफ) में न केवल राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत शामिल हैं, बल्कि बच्चों के लाभ के लिए राज्य की कार्रवाई के अनिवार्य सिद्धांतों को शामिल किया गया है।

57. भारत के संविधान का अनुच्छेद 21 बच्चों के लिए एक अनुकूल वातावरण और समर्थन प्रणालियों पर विचार करता है जो एक अच्छी तरह से विकसित व्यक्तित्व के विकास को बढ़ावा देते हैं, अच्छे स्वास्थ्य और कल्याण के अलावा अनुकरणीय चरित्र लक्षणों के विकास के लिए अनुकूल हैं। बच्चों की शैक्षिक आवश्यकताएं और बौद्धिक उन्नति स्पष्ट रूप से संविधान के अनुच्छेद 21 के दायरे में आती है। जेल की दीवारें बच्चों के लिए अनुच्छेद 21 के प्रवाह को बाधित नहीं कर सकती हैं। पुनरावृत्ति की कीमत पर यह कहा गया है कि राज्य को एक ऐसा वातावरण बनाना होगा और सहायता प्रणालियों का निर्माण करना होगा जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 और 21-क के तहत बच्चों को उनके अधिकारों तक पहुंच प्रदान करे।

58. भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 से प्रवाहित सीखने का माहौल और सहायता प्रणाली को उनके विकास में परिस्थितियों के प्रति उम्र के अनुकूल और संवेदनशील होना चाहिए और बच्चों के लिए उनके आवेदन में सूक्ष्म होना चाहिए। उपर्युक्त वातावरण और सहायता प्रणालियां जेलों में कैदियों के साथ रहने वाले कैदियों के बच्चों के लिए अपरिवर्तनीय हकदारी हैं। भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के सुरक्षात्मक कवच में जेलों में नकारात्मक प्रभावों से बच्चों की उक्त श्रेणी को सुरक्षित रखने और उनके समग्र विकास और बच्चों के संतुलित विकास की भी परिकल्पना की गई है।

59. अनुच्छेद 21 के तहत एक बच्चे के जीवन को आकस्मिक घटनाओं द्वारा प्रस्तुत प्रतिकूल परिस्थितियों से परिभाषित नहीं किया जाएगा, लेकिन उनके जीवन का अधिकार संवैधानिक कानून में प्रतिपादित भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 और अनुच्छेद 21-ए के चमकदार जनादेश द्वारा निर्धारित किया जाएगा।

सातवीं (ए)। बाल संरक्षण प्रणाली: हितधारकों के कर्तव्य: निर्देश

60. प्रासंगिक वैधानिक प्रावधान सक्रिय हो जाते हैं और संबंधित वैधानिक और राज्य अधिकारियों को तुरंत कार्रवाई में शामिल किया जाता है, जिस क्षण एक बच्चा अपने 31 माता-पिता की गिरफ्तारी के बाद डिफ़ॉल्ट रूप से जेल में बंद हो जाता है।

61. प्रत्येक बच्चा अद्वितीय है। बच्चे भीड़ में इकाई नहीं हैं। संकट में हर बच्चा अजीबोगरीब प्रतिकूलताओं का शिकार होता है। उक्त श्रेणी के बच्चों पर जेल के माहौल का हानिकारक प्रभाव बाहरीताएं हैं (ऐसी परिस्थितियां जो उनके कारण नहीं होती हैं और जिन पर उनका कोई नियंत्रण नहीं होता है)। प्रकृति बच्चों को विशेष उपहार और क्षमताएं प्रदान करती है जो प्रत्येक बच्चे के लिए विशिष्ट होती हैं। प्रभाव जो एक बच्चे के मनोविज्ञान को नकारात्मक रूप से प्रभावित करते हैं, उन्हें प्रत्येक मामले के तथ्यों में संबोधित किया जाना चाहिए। एक बच्चे के पास जो क्षमताएं होती हैं, उन्हें बच्चे से बच्चे के आधार पर उनके पूर्ण कद तक पोषित किया जाना चाहिए। इस प्रकृति की व्यक्तिगत देखभाल बाल अधिकार न्यायशास्त्र का सार है जैसा कि विधायिकाओं और अदालतों

द्वारा समान रूप से विकसित किया गया है। उपरोक्त उद्देश्य को प्रत्येक बच्चे के लिए एक व्यक्तिगत देखभाल योजना तैयार करके प्राप्त किया जा सकता है जो अपने माता-पिता की कैद के बाद जेल में बंद है।

62. जे.जे. अधिनियम और अन्य कानूनी उपकरणों के तहत विभिन्न प्राधिकरण बनाए गए हैं जो अपने माता-पिता की कैद के परिणामस्वरूप जेलों में रहते हैं। पुलिस, बाल कल्याण समिति, जिला विधिक सेवा प्राधिकरण, चिकित्सा प्राधिकरण, शिक्षा प्राधिकरण, जिला प्रशासन को संवैधानिक कानून धारकों और सांविधिक अधिनियमों के आधार पर बच्चों को हकदारी और सहायता प्रणाली प्रदान करने का आदेश दिया गया है। जेल मैनुअल और संवैधानिक अदालतों के फैसलों के तहत जेल अधिकारियों पर भी ड्यूटी लगाई जाती है। उक्त प्राधिकारी बच्चों के लाभ के लिए संवैधानिक और वैधानिक लक्ष्यों को प्राप्त करने में एक-दूसरे के साथ सहयोग करने के लिए उत्तरदायी हैं।

63. बच्चों के उपरोक्त वर्ग के संबंध में अधिकारियों के कर्तव्य और उनके द्वारा निष्पादित किए जाने वाले संबंधित निर्देश निम्नलिखित प्रस्तर में निर्धारित किए गए हैं:

VII A (I)। राज्य सरकार

64. प्रमुख सचिव, महिला एवं बाल विकास, उत्तर प्रदेश सरकार को यह सुनिश्चित करना होगा कि राज्य निम्नलिखित निर्देशों का पालन करे:

(I) जेलों में कैदियों के साथ रहने वाले कैदियों के बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य, कल्याण और समग्र विकास के लिए सहायक बुनियादी ढांचे के साथ एक संरचित कार्यक्रम/योजना तैयार करना और जेल में रहने के परिणामस्वरूप होने वाले नकारात्मक प्रभावों के लिए उनकी रक्षा करना।

II. उपरोक्त कार्यक्रम राज्य सरकार के विभिन्न विभागों जैसे शिक्षा विभाग, स्वास्थ्य विभाग, अन्य संबंधित विभागों और विशेषज्ञ संस्थानों के परामर्श और समन्वय से बनाया जाएगा।

III. उपरोक्त कार्यक्रम बच्चों के उक्त वर्ग के जीवन से संबंधित सभी पहलुओं को पूरा करेगा। उक्त कार्यक्रम में शामिल की जाने वाली गतिविधियों और सहायता प्रणालियों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं:

क) बच्चों का स्वास्थ्य और पोषण;

ख) सूरज की रोशनी और ताजी हवा के लिए बच्चों के प्रदर्शपोजर;

ग. प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में पूर्वस्कूली / किंडरगार्टन स्कूलों और प्राथमिक विद्यालयों में प्रवेश सहित शैक्षिक आवश्यकताएं। स्कूल जेल परिसर में स्थित नहीं होंगे;

घ) रचनात्मक गतिविधियाँ, बाहरी गतिविधियाँ और खेल के मैदानों तक पहुँच। बच्चों के लिए जेलों में अलग-अलग स्थानों का अस्तित्व;

च) बच्चों के भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक विकास के लिए कार्यक्रम;

छ) स्कूलों में अपने सहपाठियों के साथ उक्त बच्चों की बातचीत और गतिविधियों को अधिकतम करना;

अनुवादित

फ) नकारात्मक प्रभावों को बाहर करें और अन्य कैदियों के साथ संपर्क को रोकें। जिन क्षेत्रों में बच्चे रहते हैं, उन क्षेत्रों तक अन्य कैदियों द्वारा नहीं पहुंचा जाना चाहिए;

य) इस श्रेणी के बच्चों के उपयुक्त शिक्षाशास्त्र का विकास;

र) शाम की गतिविधियों के लिए सीसीआई के साथ अनुलग्नक;

ल) संरक्षक शिक्षकों की नियुक्ति।

उपर्युक्त कार्यकलाप प्रकृति में उदाहरणात्मक हैं, न कि उक्त कार्यक्रम के तत्वों की विस्तृत सूची। यह कार्यक्रम इस निर्णय में चर्चा की गई संवैधानिक कानून धारणाओं और प्रासंगिक वैधानिक प्रावधानों के अनुरूप भी होगा।

IV. यह राज्य सरकार के लिए खुला है कि जब भी आवश्यक हो, गतिविधियों और सहायता प्रणालियों की सूची को बड़ा किया जाए। विधि मंत्रालयों/विभागों, कारागार, शिक्षा, चिकित्सा और स्वास्थ्य तथा राज्य के किसी भी अन्य विभाग, जैसा कि अपेक्षित हो, सहित अन्य मंत्रालय और प्राधिकरण महिला एवं बाल विकास विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार के साथ पूर्ण सहयोग करेंगे।

(v) राज्य सरकार बच्चों के लिए उपर्युक्त कार्यक्रम के विकास के लिए निमहांस, बंगलौर और अन्य विशेषज्ञ संस्थानों और विश्वविद्यालयों के साथ भी परामर्श कर सकती है।

VI. जेल मैनुअल के प्रासंगिक प्रावधानों को लागू करना।

VII. व्यक्तिगत बाल देखभाल योजनाओं के विकास का समर्थन करना और उनके कार्यान्वयन को सुविधाजनक बनाना।

VIII. राज्य और जिला स्तर पर निदेशों के कार्यान्वयन की नियमित निगरानी और विभिन्न स्तरों पर जवाबदेही की एक प्रणाली का निर्माण।

अनुवादित

VII A (II)। जिला प्रशासन

65. संबंधित जिलों का जिला प्रशासन निम्नलिखित निर्देशों का पालन करेगा:

I. स्थानीय प्रशासन के संबंधित प्राधिकरण इस निर्णय में दिए गए निर्देशों के अनुपालन में राज्य सरकार द्वारा तैयार किए गए कार्यक्रम को लागू करेंगे।

II. प्रत्येक मामले के तथ्यों में प्रीस्कूल/किंडरगार्टन/प्राथमिक विद्यालय में बच्चों का प्रवेश सुनिश्चित करना।

III. डी.पी.ओ. द्वारा व्यक्तिगत बाल देखभाल योजनाओं के विकास और निष्पादन में सहायता करना।

VIIA (III) जेल विभाग

66. प्रधान सचिव, जेल विभाग, महानिदेशक (कारागार), साथ ही जिला जेलों के जेल अधिकारी निम्नलिखित निर्देशों का पालन करेंगे:

I. संबंधित जेल अधिकारी अपने माता-पिता के कारावास के परिणामस्वरूप जेल में बंद बच्चे के बारे में सी.डब्ल्यू.सी. को सूचित करेंगे। जेल अधिकारी जेल में रह रहे बच्चे को सी.डब्ल्यू.सी. तक पहुंच भी प्रदान करेंगे। बच्चे को सी.डब्ल्यू.सी. के समक्ष पेश किया जाएगा।

II. बच्चे अपने माता-पिता के साथ अलग-अलग बैरकों में रहेंगे, जिन्हें प्रभावी रूप से अन्य कैदियों से अलग किया जाना चाहिए। यह सुनिश्चित किया जाएगा कि बच्चों का अन्य कैदियों से कोई संपर्क न हो।

III. जेल अधिकारी स्थानीय प्रशासन के साथ समन्वय करके प्रत्येक मामले के तथ्यों में बच्चों को प्रीस्कूल/किंडरगार्टन/प्लेस्कूल/प्राथमिक विद्यालय में प्रवेश सुनिश्चित करेंगे। उक्त स्कूल जेल परिसर में स्थित नहीं होंगे।

IV. जेल अधिकारी उक्त वर्ग के बच्चों को जेल परिसर के बाहर अपने आयु वर्ग के अन्य बच्चों के साथ बाहरी गतिविधियों और रचनात्मक गतिविधियों में भाग लेने के लिए खेल के मैदानों और अन्य सहायता प्रणालियों तक पहुंच प्रदान करेंगे।

(V. शिशुगृहों का रखरखाव उस जेल परिसर में किया जाएगा जहां उपरोक्त वर्गों के बच्चे रह रहे हैं।

VI. जेल अधिकारी उन बच्चों को गुणवत्तापूर्ण चिकित्सा देखभाल और उचित पोषण प्रदान करना सुनिश्चित करेंगे जो जेल में बंद हैं।

VII. जेल प्राधिकरण राज्य सरकार की नीति को लागू करेंगे जिसे पहले दिए गए निर्देशों के अनुसरण में विकसित किया जाएगा।

VIII. व्यक्तिगत बाल देखभाल कार्यक्रमों के कार्यान्वयन का समर्थन करना।

IX. जेल मैनुअल/मॉडल जेल मैनुअल में बच्चों से संबंधित प्रावधानों को लागू करना।

अनुवादित

<u>VII A (IV) पुलिस प्राधिकरण</u>

67. संबंधित जिलों के पुलिस अधिकारियों को निम्नलिखित निर्देशों का निष्पादन करना होगा:

I. स्थानीय पुलिस अधिकारियों को माता-पिता की गिरफ्तारी के बाद जेल में बंद बच्चे के बारे में सी.डब्ल्यू.सी. और डी.पी.ओ. को तुरंत सूचित करना चाहिए।

II. सी.डब्ल्यू.सी. के समक्ष बच्चे को पेश करने के बारे में जमानत आवेदन पर सुनवाई करने वाली अदालत को सूचित करें।

VII A (V) बाल कल्याण समिति

68. संबंधित जिलों के सी.डब्ल्यू.सी. को निम्नलिखित निर्देशों का निष्पादन करना होगा:

(1) जेलों का दौरा करना और अपने माता-पिता के साथ जेलों में रहने वाले बच्चों की स्थिति की जांच करना।

(2) सी.डब्ल्यू.सी. बच्चे की स्थिति के संबंध में तुरंत एक रिपोर्ट तैयार करेगा और निम्नलिखित पैरामीटरों सहित विभिन्न प्रासंगिक पहलुओं के संबंध में निष्कर्ष भी देगा:

A. स्वास्थ्य,

B. शिक्षा सुविधाएं

C. समग्र विकास,

D. अन्य कैदियों से इन्सुलेशन

E. इस निर्णय में दिए गए निर्देशों का अनुपालन

F. इस निर्णय के अनुसरण में सरकार की योजना का निष्पादन।

G. जिला परिवीक्षाधीन अधिकारी द्वारा बनाई जाने वाली व्यक्तिगत बाल देखभाल योजना का कार्यान्वयन।

(3) सी.डब्ल्यू.सी. बच्चे के माता-पिता की जमानत याचिका की सुनवाई के समय अदालत को उपरोक्त रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा।

(4) सी.डब्ल्यू.सी. उक्त रिपोर्ट संबंधित राज्य प्राधिकरणों और जिला प्रशासन के प्राधिकारियों को भी प्रस्तुत करेगा।

(5) यह सुनिश्चित करने के लिए सक्षम प्राधिकारियों के समक्ष रिपोर्ट प्रस्तुत करें कि जेलों में अपने माता-पिता (विचाराधीन/दोषियों) के साथ रह रहे 6 वर्ष से अधिक आयु के बच्चों को पर्यवेक्षण गृहों में भेजा जाए।

(6) सी.डब्ल्यू.सी. 6 वर्ष से कम आयु के बच्चों के प्रत्येक मामले की जांच करेगा।

VIIA (VI) जिला परिवीक्षाधीन **अधिकारी**

69. संबंधित जिलों के डी.पी.ओ. निम्नलिखित निर्देशों का निष्पादन करेंगे:

(i) विशेषज्ञों के परामर्श के बाद जेल में अपने माता-पिता के साथ रहने वाले जेल में प्रत्येक बच्चे के समग्र विकास के लिए व्यक्तिगत परिचर्या योजना तैयार करना।

(ii) व्यक्तिगत देखभाल योजना में निम्नलिखित सहित विभिन्न पैरामीटर शामिल होंगे:

A. स्वास्थ्य

B. पोषण योजना

C. सूरज की रोशनी और ताजी हवा के संपर्क में आना

D. शिक्षा

E. खेल, पाठ्येतर और रचनात्मक गतिविधियाँ

F. समग्र रूप से अच्छी तरह से गोल विकास

G. जेल परिसर के बाहर बच्चों का उनके स्कूल के साथियों और उनकी उम्र के अन्य बच्चों के साथ अधिकतम संपर्क।

H. स्कूल में संरक्षक शिक्षक की नियुक्ति

ये गतिविधियाँ केवल उदाहरण हैं और संपूर्ण नहीं हैं।

(iii) व्यक्तिगत देखभाल योजना जेलों में बच्चे को नकारात्मक प्रभावों से बचाएगी या बचाएगी, और अन्य कैदियों के साथ बच्चे के संपर्क को रोकेगी।

(iv) स्थानीय स्तर पर सरकारी अधिकारियों के साथ समन्वय में योजना को लागू करना।

अनुमोदित

VII.B प्रत्येक बच्चे के लिए व्यक्तिगत देखभाल योजनाएं तैयार करने के लिए राज्य सरकार के हितधारकों/संबंधित विभागों का प्रशिक्षण:

70. हितधारकों का निरंतर पर्यवेक्षण और नियमित प्रशिक्षण उन बच्चों के अधिकारों के उल्लंघन को रोकने की कुंजी है जो अपने माता-पिता के साथ जेलों में बंद हैं, और बच्चों के उक्त वर्ग के अधिकारों को साकार करने के लिए अपरिहार्य हैं जैसा कि इस निर्णय में चर्चा की गई है।

71. राज्य सरकार के संबंधित विभाग निम्नलिखित हितधारकों के लिए नियमित प्रशिक्षण कार्यक्रम अवधारित करेंगे ताकि वे अपने कर्तव्यों के प्रति संवेदनशील हो सकें और इस निर्णय में दिए गए निर्देशों को निष्पादित करने के लिए उनकी क्षमताओं का निर्माण कर सकें:

1. पुलिस
2. सी.डब्ल्यू.सी.
3. जेल अधिकारी
4. जिला परिवीक्षाधीन अधिकारी - विशेष रूप से डी.पी.ओ. को बाल देखभाल योजना तैयार करने के लिए विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता होगी
5. चिकित्सा अधिकारी

VII (सी) राज्य सरकार की प्रतिक्रिया और विभिन्न विभागों के बीच तालमेल प्राप्त करना:

72. उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ सरकार के प्रमुख सचिव (महिला एवं बाल विकास) की ओर से दायर हलफनामे से पता चलता है कि राज्य के विभिन्न विभागों के बीच उचित सहयोग और समन्वय प्राप्त नहीं किया गया है। विभिन्न राज्य विभागों के बीच समन्वय और सहयोग की कमी कानून के कार्यान्वयन में बाधा डाल रही है और जेलों में बच्चों के अधिकारों की प्राप्ति में देरी कर रही है। यह स्थिति जारी नहीं रह सकती है और इसे पूरी तरह से और तत्परता से संबोधित किया जाना चाहिए।

73. शासन का अनुभव दर्शाता है कि कभी-कभी विभाग पृथक रूप से कार्य करते हैं, जिससे नीतिगत उद्देश्यों की प्राप्ति में बाधाएँ उत्पन्न होती हैं। विभागों के बीच समन्वय की कमी के परिणामों ने उच्चतम न्यायालय का भी ध्यान आकर्षित किया है।

74. अंतर-विभागीय सामंजस्य और अंतर-विभागीय सम्मेलन की आवश्यकता के मुद्दों से निपटने के दौरान **तेल और प्राकृतिक गैस आयोग और अन्य बनाम कलेक्टर**, **केंद्रीय उत्पाद शुल्क** में सर्वोच्च न्यायालय ने एक अंतर-विभागीय समिति की स्थापना का निर्देश दिया:

3. हम निर्देश देते हैं कि भारत सरकार मंत्रालय और भारत सरकार के सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के बीच विवादों की निगरानी करने के लिए उद्योग

मंत्रालय, सार्वजनिक उद्यम ब्यूरो और कानून मंत्रालय के प्रतिनिधियों की एक समिति का गठन करेगी। यह सुनिश्चित करने के लिए कि कोई भी मुकदमा न्यायालय या अधिकरण में तब तक न आए जब तक कि समिति द्वारा मामले की पहले जांच न की जाए और मुकदमेबाजी के लिए उसकी मंजूरी न दी जाए। सरकार किसी विशिष्ट मामले में संबंधित मंत्रालय के एक प्रतिनिधि को और समिति में वित्त मंत्रालय के एक प्रतिनिधि को शामिल कर सकती है। केवल वरिष्ठ अधिकारियों को नामित किया जाना चाहिए ताकि समिति हैसियत, नियंत्रण और अनुशासन के साथ कार्य कर सके।

4. यह प्रत्येक न्यायालय और प्रत्येक न्यायाधिकरण का दायित्व होगा जहां इस तरह के विवाद को इसके बाद उठाया जाता है, यदि इस तरह की दलील नहीं दी गई है और मंजूरी के अभाव में, कार्यवाही आगे नहीं बढ़ाई जाएगी।

75. इसके बाद तेल **और प्राकृतिक गैस आयोग बनाम कलेक्टर, केंद्रीय उत्पाद शुल्क** को निम्नानुसार माना गया:

3. इस उच्चाधिकार प्राप्त समिति के गठन का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना था कि, जहां तक संभव हो, एक मंत्रालय और भारत सरकार के एक मंत्रालय और भारत सरकार के एक सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम के बीच और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के बीच विवादों को उच्चाधिकार प्राप्त समिति का सहारा लेकर हल किया जाए और समय लेने वाली और महंगी मुकदमेबाजी से बचा जाए।

76. सरकार के कुशल कामकाज के लिए अंतर-विभागीय सहयोग और समन्वय की आवश्यकता पर भी **एलिजाबेथ जैकब बनाम जिला कलेक्टर, इडुक्की और अन्य** में बल दिया गया था**:**

"19. यह मामला, हालांकि बहुत सीमित तरीके से, सरकारी विभागों के बीच सहयोग और समन्वय की कमी को दर्शाता है। सभी विभागों को जनता के हित में और जनता की भलाई के लिए काम करना चाहिए। केवल इसलिए कि कोई विशेष विभाग या प्राधिकरण किसी विशेष क़ानून के तहत कार्य करता है, इसका मतलब यह नहीं है कि उन्हें अन्य क़ानूनों के प्रावधानों की अनदेखी करनी चाहिए या कर सकते हैं। सरकार के सुचारू और सफल कामकाज के लिए अंतर-विभागीय सहयोग और समन्वय महत्वपूर्ण है। लेकिन दुर्भाग्य से अंतर-विभागीय प्रतिद्वंद्विता फल-फूल रही है और अन्य विभागों के कामकाज और अन्य कानूनों के प्रवर्तन के प्रति एक पारस्परिक गैर-परवाह रवैया है। राजस्व विभाग और वन विभाग, राजस्व विभाग और खान और खनिज विभाग, वन विभाग और खान और खनिज विभाग के बीच असहयोग बहुत अच्छी तरह से जाना जाता है। जब तक विभिन्न विभागों के बीच समन्वय, सहयोग और समझ में सुधार के लिए तत्काल और गंभीर कदम नहीं उठाए जाते हैं, अपराधी बच निकलेंगे, उल्लंघन करने वाले भाग जाएंगे, राष्ट्रीय संसाधनों को ठगा जाएगा, और जनहित को नुकसान होगा, जैसा भी हो।

77. **सोसाइटी फॉर एनलाइटनमेंट एंड वॉलंटरी एक्शन और अन्य बनाम यूनियन ऑफ इंडिया** में उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया:

"3. सेवाओं का अभिसरण और निरंतरता

3.1. सभी राज्यों/केंद्र शासित प्रदेशों के मुख्य सचिव एक उपयुक्त प्राधिकरण नामित करेंगे जो कमजोर और जोखिम वाले समुदायों के लिए एक सामंजस्यपूर्ण समर्थन प्रणाली बनाने के लिए विभिन्न सरकारी विभागों और एजेंसियों में सेवाओं का अभिसरण सुनिश्चित करेगा। यह भी शामिल है:

3.1.1. बाल विवाह की बहुआयामी प्रकृति को संबोधित करने के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक कल्याण और कानून प्रवर्तन क्षेत्रों के बीच प्रयासों और संसाधनों के समन्वय के लिए नियमित अंतर-विभागीय बैठकें; और

3.1.2. समुदाय-आधारित संसाधन केंद्रों की स्थापना करना जो बाल विवाह के जोखिम वाले परिवारों को शिक्षा, कानूनी अधिकारों और सामाजिक सेवाओं से संबंधित जानकारी और सहायता प्रदान करते हैं।

78. बच्चों के अधिकारों को साकार करने के लिए विभिन्न सरकारी विभागों के बीच नीति और कार्रवाई में तालमेल एक अनिवार्य आवश्यकता है। उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ के प्रमुख सचिव (महिला एवं बाल विकास) द्वारा दायर हलफनामे और **सोसाइटी फॉर एनलाइटनमेंट एंड वॉलंटरी एक्शन (उपरोक्त), तेल और प्राकृतिक गैस आयोग (उपरोक्त), एलिजाबेथ जैकब (उपरोक्त)** में दिए गए निर्णयों का अवलोकन करने के बाद इस न्यायालय की निश्चित राय है कि राज्य सरकार के विभिन्न विभागों अर्थात् बाल और महिला कल्याण, स्वास्थ्य, पुलिस, जेल, बेसिक शिक्षा केवल मुख्य सचिव को उक्त विभागों और किसी अन्य संबंधित विभागों के प्रमुखों की बैठक बुलाने और बाल अधिकारों के कार्यान्वयन के लिए एक नीति तैयार करने का निर्देश देकर ही प्राप्त की जा सकती है, जैसा कि इस निर्णय में चर्चा की गई है।

79. तदनुसार, मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार को निम्नलिखित निर्देशों का निष्पादन करने का निर्देश दिया जाता है:

क) महिला एवं बाल विकास, कानून, जेल, शिक्षा, स्वास्थ्य, डी.जी.पी. सहित विभिन्न मंत्रालयों के विभिन्न प्रमुख सचिवों और अन्य जिम्मेदार अधिकारियों की बैठक बुलाना। उचित समझे जाने पर अन्य मंत्रालयों और प्राधिकरणों को भी बुलाया जा सकता है। विभिन्न विभागों की समिति के पास उपरोक्त वर्ग के बच्चों के कल्याण, शिक्षा, समग्र विकास और अधिकारों की प्राप्ति के लिए योजना और बुनियादी ढांचे की समय पर तैयारी सुनिश्चित करने के लिए उचित समन्वय होगा, जैसा कि इस निर्णय में चर्चा की गई है। महिला एवं बाल विकास विभाग इस कार्य को पूरा करने के लिए नोडल मंत्रालय होगा।

ख) इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तारीख से दो महीने की अवधि के भीतर प्रक्रिया पूरी की जाएगी।

80. श्री अशोक मेहता, अतिरिक्त महाधिवक्ता इस निर्णय की प्रतियां संबंधित विभागों के प्रमुखों (जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है) को सौंपेंगे और उन्हें उपरोक्त निर्देशों के अनुपालन पर सलाह देंगे।

VIII. कानून का कार्यान्वयन और न्यायालयों की भूमिका: जुनैद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य। और राजेन्द्र प्रसाद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य।

अनुवादित

81. बच्चों के अधिकारों पर संवैधानिक निगरानी स्थायी है, और अदालतें बच्चों की स्थायी अभिभावक हैं। एक पुराने लेखक ने बच्चों के प्रति कानून के उपकरणों की भूमिका और कर्तव्यों के संबंध में निम्नलिखित टिप्पणियां कीं:

"कानून उनके व्यक्तियों की रक्षा करता है, उनके अधिकारों और संपत्ति को संरक्षित करता है, उनके लच्छे को माफ करता है और उनकी दलीलों में उनकी सहायता करता है, न्यायाधीश उनके परामर्शदाता हैं, जूरी उनके सेवक हैं और कानून उनका संरक्षक है।

82. भारत के संविधान में निहित बाल अधिकार न्यायशास्त्र, वर्तमान विवाद पर लागू अंतर्राष्ट्रीय उपकरण, क़ानून और न्यायिक मिसालें इन पहले सिद्धांतों पर अभिसरण करती हैं:

(1) दुर्व्यवहार और शोषण के प्रति बच्चों की भेद्यता की पहचान, बच्चों की अपनी परिस्थितियों का विरोध करने या उन पर उठने में असमर्थता, और दुर्व्यवहार या अस्वास्थ्यकर प्रभावों से खुद का बचाव करने में बच्चों की अक्षमता।

(2) बच्चों को अस्वास्थ्यकर प्रभावों और शोषण से बचाने के लिए एक सुरक्षात्मक वातावरण और सहायता प्रणाली प्रदान करने और उनके सर्वांगीण विकास और समग्र शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए राज्य का कर्तव्य।

(3) बच्चों के अधिकारों को महसूस करने के लिए अदालतों के दायित्वों की पुष्टि।

83. जेलों में उनके साथ रहने वाले कैदियों के बच्चों के अधिकारों का पता कई क़ानूनों और कानूनी उपकरणों से लगाया जा सकता है। विविध क़ानून और कई एजेंसियां अलग-अलग विधायी उद्देश्यों को प्रकट नहीं करती हैं। इस न्यायालय को इसी तरह की स्थिति का सामना करना पड़ा, जिसमें जुनैद बनाम यूपी राज्य में एक सामान्य विधायी इरादे को साकार करने के लिए कानूनों को मिश्रित किया गया, जो इस प्रकार है:

"58. फिर न्यायालय का कार्य क्या है? न्यायालय का कार्य विभिन्न कानूनों को एक एकीकृत कानूनी ढांचे में एकीकृत करके व्यापक और अंतर्निहित विधायी इरादे को प्राप्त करना है। इसके लिए वैधानिक निकायों के वर्गीकरण को एक ही कानूनी छतरी के नीचे स्थापित करने, उद्देश्यों में तालमेल स्थापित करने और उक्त अधिकारियों की कार्रवाई में तालमेल सुनिश्चित करने की आवश्यकता है।

84. **द न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्री यामिन और अन्य** में इस न्यायालय ने क़ानूनों को मिश्रित करके कई अधिनियमों में व्याप्त विधायी उद्देश्य को महसूस किया:

"48. एम.वी. अधिनियम और ई.सी. अधिनियम अलग-अलग क़ानून हैं जो अलग-अलग क्षेत्रों को आच्छादित करते हैं और विभिन्न न्यायाधिकरणों में कार्यवाही की परिकल्पना करते हैं। हालांकि, क़ानूनों की विविधता आवश्यक रूप से अलग-अलग विधायी उद्देश्यों को दर्शाती नहीं है और मंचों की बहुलता कानूनी अधिकारों से इनकार करने का कारण नहीं बन सकती है। पिछले प्रस्तर में किए गए क़ानूनों की तुलनात्मक जांच भी दो अधिनियमों के संचालन के अतिव्यापी क्षेत्रों को प्रकट करती है। उद्देश्य की व्यापक अनुरूपता और संचालन के सामान्य क्षेत्रों में प्रमाणित दो क़ानूनों की वस्तुओं की अंतर्निहित समानता को अधिनियमों की एकीकृत व्याख्या

द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। एक क़ानून और उसके तहत प्राधिकरणों के प्रावधानों को दूसरे अधिनियम के अनुरूप लागू किया जा सकता है ताकि बाद के विधायी इरादे को साकार किया जा सके।

49. सांविधिक निर्माण का एकीकृत दृष्टिकोण यह सुनिश्चित करेगा कि दावेदारों को अधिनियमों के तहत उनके कानूनी अधिकारों से केवल इसलिए वंचित नहीं किया जाता है क्योंकि एक मंच को दूसरे अधिनियम के तहत कार्यवाही के लिए वरीयता में चुना जाता है। एकीकृत व्याख्या में विधियों का समग्र पठन और समान न्यायिक अधिकारियों का समेकित अनुप्रयोग शामिल होगा। क़ानूनों को उनके अतिव्यापी और संचालन के सुसंगत क्षेत्रों की सीमा तक एक विस्तारित विधायी योजना के हिस्से के रूप में पढ़ा जाएगा।

50. अब सावधानी/सतर्कता: वैधानिक व्याख्या की एकीकृत पद्धति को लागू करने से पहले कुछ पूर्वापेक्षाओं को स्थापित करना होगा और इसे लागू करते समय विभिन्न सीमाओं का पालन करना होगा। सबसे पहले, यह एक तथ्य के लिए स्थापित किया जाना चाहिए कि दावेदारों को संबंधित क़ानून के तहत दोनों न्यायाधिकरणों में से किसी एक से समान रूप से संपर्क करने का अधिकार था. दूसरे, दावेदारों के कानूनी अधिकारों की पुष्टि किसी मामले के तथ्यों में की जानी चाहिए। तीसरा, जांच की यह पंक्ति केवल क़ानून के सामान्य और अतिव्यापी क्षेत्रों में लागू की जाएगी। अंत में, निर्माण की यह विधि उन प्रावधानों तक विस्तारित नहीं होगी जो एक विपरीत इरादे या क्षेत्रों का खुलासा करते हैं जो संबंधित अधिनियमों के तहत विशिष्ट प्रावधानों द्वारा आच्छादित किए जाते हैं।

51. न्यायालय का प्रयास अन्य पक्ष के प्रति पूर्वाग्रह के बिना दावेदारों को लाभान्वित करके दोनों अधिनियमों के वैधानिक इरादे को साकार करने का होना चाहिए। न्यायालय किसी भी अधिनियम की वैधानिक योजना के विपरीत किसी भी स्पष्ट प्रावधान या कार्य से अलग नहीं हो सकता है।

85. कैदियों की जमानत आवेदनों पर विचार करने वाली अदालतों/मजिस्ट्रेटों पर जिम्मेदारी डाली जाती है कि वे अपने बच्चों के अधिकारों को बनाए रखें जो जेलों में रहते हैं।

86. बच्चों के उक्त वर्ग के अधिकारों और हकदारियों को जमानत के चरण में और मुकदमे के दौरान केवल बाल कल्याण समिति (सी.डब्ल्यू.सी.), चिकित्सा अधिकारियों, पुलिस अधिकारियों और संबंधित जिला अधिकारियों, जेल अधिकारियों जैसे संबंधित वैधानिक प्राधिकरणों को जमानत आवेदनों की सुनवाई करने वाली अदालतों (मजिस्ट्रेटों और विचारण अदालतों सहित) के अधिकार क्षेत्र के दायरे में लाकर महसूस किया जा सकता है। न्यायालयों को उक्त प्राधिकारियों को उक्त वर्ग के बच्चों के प्रति उनके कर्तव्यों के प्रति सचेत करना होगा। उक्त प्राधिकारी अपने माता-पिता की जमानत कार्यवाही के दौरान पूर्ववर्ती चर्चा में प्रतिपादित पूर्वोक्त बच्चों के अधिकारों को लागू करने के प्रयोजनों के लिए न्यायालयों (मजिस्ट्रेटों और विचारण न्यायालयों सहित) के प्रति जवाबदेह रहेंगे। अदालतों को यह सुनिश्चित करना होगा कि अधिकारी अपने वैधानिक कर्तव्यों का निर्वहन करें और बच्चों के लिए कानून के लाभकारी प्रावधानों को लागू किया जाए।

अनुवादित

87. जमानत की सुनवाई के दौरान, क्रमशः उक्त अधिकारियों अर्थात् पुलिस और सी.डब्ल्यू.सी. को अदालत को इस बात से अवगत कराना होगा कि इस फैसले में निर्धारित अभियुक्त के बच्चों के अधिकारों को किस तरह से लागू किया गया है। न्यायालयों का यह दायित्व है कि वे उक्त रिपोर्टों की जांच करें, उक्त सक्षम प्राधिकारियों से सुसंगत पूछताछ करें और जेल में रह रहे कैदियों के बच्चों के अधिकारों के कार्यान्वयन के संबंध में अपनी संतुष्टि दर्ज करें। न्यायालय इस निर्णय में बताए गए बच्चों के उक्त वर्ग के अधिकारों को लागू करने के लिए अधिकारियों को उचित निर्देश जारी कर सकता है।

88. कथा को विधि निर्णयों द्वारा बिंदु में मजबूत किया जा सकता है। **जुनैद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** में यह अवधारित किया गया था:

"42. हालांकि, उक्त निर्णय इलाहाबाद उच्च न्यायालय के लिए पूरी तरह से पूर्वोदाहरण मूल्य से वंचित नहीं हैं। आवेदन को सूक्ष्म होना चाहिए। यह कहा जाना चाहिए कि दिल्ली उच्च न्यायालय और बॉम्बे उच्च न्यायालय के उक्त निर्णय कानूनी बहस को समृद्ध करते हैं, और बाल अधिकारों की चिंताओं को अदालत की अंतरात्मा तक बढ़ाते हैं। इन निर्णयों ने कानून की प्रक्रिया को संवेदनशील बनाया है और अदालतों की जिम्मेदारियों को स्वीकार करके और जमानत याचिकाओं में सी.डब्ल्यू.सी., कानूनी सेवा प्राधिकरणों और पुलिस अधिकारियों को अदालतों के प्रति जवाबदेह बनाकर बाल पीड़ितों की दुर्दशा को सुधारा है। कानून के इन पहचानने योग्य सिद्धांतों को रीना झा (उपरोक्त), मिस जी (उपरोक्त), अर्जुन किशनराव मालगे (उपरोक्त) से स्पष्ट रूप से आसुत किया जा सकता है।

89. इसी तरह इस न्यायालय ने **राजेंद्र प्रसाद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** में बाल पीड़ितों के साथ व्यवहार करते समय कानूनी कार्यवाही के दौरान बाल अधिकारों की प्राप्ति के रास्ते में आने वाली सभी बाधाओं को दूर करने के लिए निम्नलिखित टिप्पणियां कीं:

9. पीड़ितों के अधिकारों को बनाए रखने के लिए पॉक्सो अधिनियम के तहत विभिन्न प्राधिकरण बनाए गए हैं। पुलिस, बाल कल्याण समिति, जिला विधिक सेवा प्राधिकरणों, चिकित्सा प्राधिकरणों, जिला प्रशासन जैसे उक्त प्राधिकरणों को पॉक्सो अधिनियम के तहत पीड़ितों जैसे सहायक व्यक्तियों, चिकित्सा विशेषज्ञों, कानूनी सहायता, सरकार की लाभकारी योजनाओं आदि को हकदारी प्रदान करने का आदेश दिया गया है। पॉक्सो अपराधों में जमानत आवेदनों पर विचार करने वाले न्यायालयों/मजिस्ट्रेटों पर जिम्मेदारी डाली जाती है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि पीड़ितों को हकदारी प्रदान की जाए और उक्त अधिनियम द्वारा प्रदत्त अधिकारों को लागू किया जाए। उक्त जिम्मेदारियों के निष्ठापूर्वक निष्पादन से कानूनी कार्यवाही में बाल पीड़ितों के सामने आने वाले नुकसान में सुधार होगा।

10. पॉक्सो अधिनियम के तहत पीड़ितों के अधिकारों और हकदारियों को जमानत के चरण में और मुकदमे के दौरान ही बाल कल्याण समिति (सी.डब्ल्यू.सी.), चिकित्सा अधिकारियों और पुलिस अधिकारियों जैसे संबंधित वैधानिक प्राधिकरणों को विद्वान मजिस्ट्रेटों/विचारण अदालतों के दायरे में लाकर ही महसूस किया जा सकता है। उक्त प्राधिकारी जमानत सहित विभिन्न कानूनी कार्यवाहियों के दौरान उपरोक्त पीड़ितों के अधिकारों को

कार्यान्वित करने के प्रयोजनों के लिए विद्वान मजिस्ट्रेटों/विचारण न्यायालयों के प्रति जवाबदेह रहेंगे। उक्त अधिकारियों को निचली अदालत को इस बात से अवगत कराना होगा कि किस तरह से पॉक्सो अधिनियम के तहत पीड़ितों के अधिकारों को लागू किया गया है। विचारण न्यायालयों का यह दायित्व है कि वे उक्त रिपोर्टों पर विचार करें, उक्त सक्षम प्राधिकारियों से संगत पूछताछ करें और पॉक्सो अधिनियम के अंतर्गत पीड़ितों को उनके हकदारियों और सहायता प्रणालियों तक पहुंच के संबंध में अपनी संतुष्टि दर्ज करें।

13. उपरोक्त मापदंडों के अनुपालन को दर्शाने वाली रिपोर्ट और कानून के अनुसार बाल पीड़ितों को प्रदान की जाने वाली सुविधाओं और सहायता प्रणालियों के विवरण को दर्शाने वाली रिपोर्ट जमानत आवेदनों की सुनवाई के समय क्रमशः बाल कल्याण समिति (सी.डब्ल्यू.सी.) और पुलिस द्वारा अदालत के समक्ष प्रस्तुत की जाएगी। निचली अदालतें जमानत याचिकाओं की सुनवाई के समय उपरोक्त रिपोर्टों की जांच करेंगी और यदि आवश्यक हो तो उचित निर्देश जारी करेंगी।

IX. जमानत आवेदन में आदेश

ए. जमानत के गुण और मुकदमे में तेजी लाने के निर्देश

90. यह पहली जमानत याचिका है।

91. इस जमानत आवेदन के माध्यम से आवेदक ने धारा 363, 302, 201 भ०द०वि० के तहत थाना - मोदी नगर, जिला गाजियाबाद में केस अपराध संख्या-0590 वर्ष 2023 में जमानत पर रिहा किए जाने की प्रार्थना की है। आवेदक 16.10.2023 से जेल में है।

92. आवेदक की जमानत याचिका को विचारण न्यायालय ने 14.05.2024 को खारिज कर दिया था।

93. आवेदक की पहचान मुख्य अपराधी के रूप में की गई है जिसने अपने नाबालिग सौतेले बच्चे की हत्या कर दी और उसके शरीर को घर में स्थित एक टैंक में फेंक दिया। आवेदक की ओर इशारा करते हुए शव बरामद किया गया। आवेदक का अपराध करने का मकसद था। अपराध गंभीर है। संभावना है कि आवेदक ने अपराध किया था। इस स्तर पर, जमानत के लिए कोई मामला नहीं बनता है।

94. मामले के गुण-दोष में जाने के बिना, जमानत आवेदन **खारिज** किया जाता है।

95. आवेदक के अधिवक्ता का तर्क है कि परीक्षण घोंघे की गति से आगे बढ़ रहा है और प्रारंभिक निष्कर्ष का कोई संकेत नहीं दिखाता है। अभियोजन पक्ष आवेदक की कैद को लम्बा खींचने के लिए जानबूझकर मुकदमे के संचालन में देरी कर रहा है। मुकदमे में देरी के कई अन्य पहलुओं पर भी प्रकाश डाला गया है, जिसमें धारा 309 द०प्र०स० के जनादेश को ईमानदारी से लागू करने में विचारण न्यायालय की विफलता भी शामिल है।

अन्य बाधाएं जो उत्तर प्रदेश राज्य में विचारण में देरी का कारण बनती हैं, जैसे कि पुलिस द्वारा समन को तुरंत तामील करने में विफलता और गवाहों को पेश करने के लिए विचारण न्यायालय द्वारा जारी किए गए बलपूर्वक उपायों को निष्पादित करने में विफलता को भी न्यायालय के ध्यान में लाया गया है। अधिवक्ता की प्रस्तुतियाँ अच्छी तरह से स्थापित हैं और उन्हें संबोधित किया जा सकता है।

96. अपराध की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए, विचारण न्यायालय को मुकदमे में तेजी लाने का निर्देश देकर न्याय के हित की पूर्ति की जाएगी।

97. हालांकि दंड प्रक्रिया संहिता में मुकदमे को समाप्त करने के लिए कोई विशिष्ट समय सीमा निर्धारित नहीं की गई है, फिर भी धारा 309 द०प्र०स० का विधायी इरादा स्पष्ट है। प्रावधान की योजना स्पष्ट रूप से दर्शाती है कि विधायी इरादा एक त्वरित समय सीमा में परीक्षण को समाप्त करना है। इस मामले के तथ्यों में, विचारण न्यायालय मुकदमे को शीघ्रता से समाप्त करने के लिए सभी प्रयास करेगा। अधिमानतः विचारण न्यायालय इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तारीख से एक वर्ष के लिए मुकदमे को समाप्त करने के लिए एक उचित समय सीमा निर्धारित करेगा।

98. विचारण न्यायालय को आरोपी व्यक्तियों के अधिकारों के प्रति भी सचेत रहना होगा और यह सुनिश्चित करने के लिए कानून के दायित्व के तहत है कि गवाहों की उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए कानून के अनुसार सभी त्वरित, आवश्यक और बलपूर्वक उपाय अपनाए जाएं। अधिवक्ताओं या पक्षकारों को जो कार्यवाही में देरी करते हैं या बाधित करते हैं, उन्हें न केवल ऐसा करने से हतोत्साहित किया जाना चाहिए, बल्कि उचित मामलों में ऐसे पक्षों/अधिवक्ताओं पर अनुकरणीय लागत भी लगाई जानी चाहिए।

99. सभी गवाहों और अधिवक्ताओं को मुकदमे की कार्यवाही में सहयोग करने का निर्देश दिया जाता है।

100. विचारण न्यायालय धारा 62 द०प्र०स०ब के अनुसार नियमित प्रक्रिया द्वारा और धारा 69 द०प्र०स० के तहत प्रदान किए गए पंजीकृत डाक द्वारा भी मुकदमे में तेजी लाने के लिए समन जारी करेगा।

101. विचारण न्यायालय कानून के अनुसार सभी गवाहों के खिलाफ सभी सख्त जबरदस्ती के उपाय तुरंत करेगा जो मुकदमे की कार्यवाही में उपस्थित होने में विफल रहते हैं। अधिवक्ताओं या पक्षकारों को जो कार्यवाही में देरी करते हैं या बाधित करते हैं, उन्हें न केवल ऐसा करने से हतोत्साहित किया जाना चाहिए, बल्कि उचित मामलों में ऐसे पक्षों/अधिवक्ताओं पर अनुकरणीय लागत भी लगाई जानी चाहिए।

102. पुलिस प्राधिकारियों को यह सुनिश्चित करना होगा कि गवाहों की उपस्थिति को तुरंत निष्पादित करने के लिए विचारण न्यायालय द्वारा किए गए कानून के अनुसार वारंट या कोई जबरदस्ती उपाय किए जाएं।

103. पुलिस उपायुक्त, गाजियाबाद विचारण न्यायालय द्वारा लिए गए वारंट/समन की तामील की स्थिति के संबंध में निर्धारित तारीख पर विचारण न्यायालय के समक्ष एक हलफनामा दायर करेंगे।

104. वैधानिक जनादेश के बावजूद मुकदमे में गवाहों की उपस्थिति को मजबूर करने के लिए समन जारी करने या जबरदस्ती के उपायों को निष्पादित करने में पुलिस अधिकारियों की विफलता के कारण मुकदमे में देरी गंभीर चिंता का विषय है। **भंवर सिंह @ करमवीर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और जितेंद्र बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** में इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए उक्त मुद्दा उठा था। भंवर सिंह @ करमवीर (उपरोक्त) और जितेंद्र (उपरोक्त) में इस न्यायालय ने पुलिस अधिकारियों को उनके वैधानिक कर्तव्य के संबंध में कुछ निर्देश जारी किए थे कि वे गवाहों की उपस्थिति को मजबूर करने के लिए तुरंत समन जारी करें और दंडात्मक प्रक्रियाओं को निष्पादित करें।

105. पुलिस महानिदेशक, उत्तर प्रदेश सरकार के साथ-साथ प्रमुख सचिव (गृह), उत्तर प्रदेश सरकार ने **भंवर सिंह @ करमवीर (उपरोक्त) और जितेंद्र (उपरोक्त)** में निर्णयों के अनुपालन में प्रासंगिक आदेश लिए थे और उक्त निर्णयों को लागू करने के लिए संबंधित जिलों के वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक को नोडल अधिकारी के रूप में नामित किया था।

106. अधिवक्ताओं के साथ-साथ विचारण न्यायालय को निर्देश दिया जाता है कि वे इस न्यायालय द्वारा **नूर आलम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** में जारी निर्देशों का पालन करें। यदि मुकदमे के दौरान कोई हड़ताल होती है, तो विचारण न्यायालय को निर्देश दिया जाता है कि वह मुकदमे में देरी को रोकने के लिए नूर आलम (उपरोक्त) में जारी निर्देशों का पूर्ण अनुपालन सुनिश्चित करे।

107. यदि पुलिस अधिकारी भंवर सिंह @ करमवीर (उपरोक्त) और जितेंद्र (उपरोक्त) में इस न्यायालय द्वारा जारी निर्देशों का पालन करने में विफल रहे हैं और गवाहों की उपस्थिति के लिए मजबूर करने के लिए समन की तामील और बलपूर्वक उपायों के निष्पादन के संबंध में पुलिस महानिदेशक, उत्तर प्रदेश सरकार और गृह सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार के उक्त निर्देशों को लागू नहीं करते हैं, विचारण न्यायालय संबंधित वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक को इस संबंध में हलफनामा दायर करने का निर्देश देगा।

108. विचारण न्यायालय इस बात की जांच करने के लिए बाध्य होगा कि भंवर सिंह @ करमवीर (उपरोक्त) और जितेंद्र (उपरोक्त) में इस न्यायालय के निर्णयों के साथ-साथ पुलिस महानिदेशक, उत्तर प्रदेश सरकार और गृह सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार के निर्देशों को लागू किया गया है या नहीं और कानून के अनुसार उचित कार्रवाई की जाएगी।

109. विचारण न्यायालय भी इस तरह के शपथ पत्र की प्राप्ति के बाद कानून में उचित उपाय करेगा जिसमें संबंधित अधिकारियों को व्यक्तिगत रूप से बुलाना शामिल हो सकता है।

110. यह भी निर्देश दिया जाता है कि यदि कोई अभियुक्त व्यक्ति, जिसे जमानत पर रिहा किया गया है, मुकदमे में सहयोग नहीं करता है या टालमटोल की रणनीति अपनाता है, तो विचारण न्यायालय इस आशय का निष्कर्ष दर्ज करेगा और इस न्यायालय का सहारा लिए बिना जमानत रद्द कर देगा।

111. विचारण न्यायाधीश मुकदमे की प्रगति और इस आदेश का पालन करने के लिए उठाए गए कदमों पर एक पाक्षिक रिपोर्ट विद्वान जिला न्यायाधीश को प्रस्तुत करेगा।

112. इस आदेश की एक प्रति निबंधक (अनुपालन) द्वारा विद्वान जिला न्यायाधीश, गाजियाबाद के साथ-साथ पुलिस उपायुक्त, गाजियाबाद के माध्यम से विचारण न्यायाधीश को भी सूचित की जाएगी।

IX (B)। चाइल्ड केयर प्लान बनाने और आवेदक के नाबालिग बच्चे के अधिकारों का एहसास करने के निर्देश:

113. जिला मजिस्ट्रेट, जेल अधीक्षक, जिला झांसी के सी.डब्ल्यू.सी. को यह सुनिश्चित करने के लिए निर्देश जारी किए जाते हैं कि इस निर्णय में दिए गए निर्देशों के अनुसार उचित कदम उठाकर आवेदक के नाबालिग बच्चे के अधिकारों और हकदारियों का एहसास किया जाए। विशेष रूप से यह सुनिश्चित किया जाएगा कि बच्चे को जेल परिसर के बाहर स्थित स्कूल में प्रवेश दिया जाए। बच्चे का अन्य कैदियों (उसकी मां को छोड़कर) और जेल में रहने वाले समान स्थिति वाले बच्चों के माता-पिता के साथ कोई संपर्क नहीं होना चाहिए।

114. सुश्री ऋचा उपाध्याय, अतिरिक्त जिला न्यायाधीश/सचिव, डी.एल.एस.ए., गौतम बुद्ध नगर इस निर्णय के आलोक में जिला परिवीक्षाधीन अधिकारी, झांसी के समन्वय से आवेदक के पुत्र के लिए एक व्यक्तिगत बाल देखभाल योजना तैयार करेंगी। विभिन्न अधिकारियों और विशेषज्ञों के साथ उचित परामर्श के बाद इस आदेश की एक प्रति प्राप्त होने की तारीख से दो महीने के भीतर बाल देखभाल योजना तैयार की जाएगी।

115. राज्य सरकार इस कार्य को पूरा करने के लिए सुश्री ऋचा उपाध्याय, एच.जे.एस/सचिव, डी.एल.एस.ए., गौतम बुद्ध नगर और जिला परिवीक्षाधीन अधिकारी, झांसी को आवश्यक सहायता प्रदान करेगी। उक्त व्यक्तिगत बाल देखभाल योजना की प्रति जेल अधिकारियों, सी.डब्ल्यू.सी. और बी..एस.ए को प्रदान की जाएगी। जिला मजिस्ट्रेट, झांसी यह भी सुनिश्चित करेंगे कि उपरोक्त बाल देखभाल योजना को स्थानीय प्रशासन के संबंधित अधिकारियों द्वारा विधिवत लागू किया जाए।

116. सी.डब्ल्यू.सी., झांसी उपरोक्त योजना के कार्यान्वयन के संबंध में एक नियमित रिपोर्ट तैयार करेगा और संबंधित अधिकारियों को एक रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा।

X. अनुपालन के लिए प्रतियों का संचलन

117. अतिरिक्त महाधिवक्ता निम्नलिखित प्राधिकारियों को आवश्यक अनुपालन के लिए इस निर्णय की प्रति की सेवा सुनिश्चित करने के लिए:

i. प्रधान सचिव, महिला एवं बाल विकास, उत्तर प्रदेश सरकार।
ii. प्रधान सचिव, कानून/कानूनी संस्मरणकर्ता, उत्तर प्रदेश सरकार।
iii. पुलिस महानिदेशक, यूपी सरकार
iv. प्रधान सचिव, (जेल), यूपी सरकार
v. प्रधान सचिव (बेसिक शिक्षा), यूपी सरकार
vi.प्रधान सचिव, स्वास्थ्य और चिकित्सा शिक्षा, UP सरकार
vii. सभी जिलों में सी.डब्ल्यू.सी. के सदस्य
viii. सभी जिला जेलों के जिला जेल अधीक्षक
ix. सभी जिलों के पुलिस प्रमुख
x. सभी जिलों के जिला परिवीक्षाधीन अधिकारी
xi. निदेशक, जेटीआरआई, लखनऊ
xii. जिला मजिस्ट्रेट, झांसी

118. महानिबंधक यह सुनिश्चित करें कि इस आदेश की एक प्रति सुश्री ऋचा उपाध्याय, अपर जिला न्यायाधीश/सचिव, डी.एल.एस.ए., गौतम बुद्ध नगर को प्रदान की जाए।

119. इस आदेश की एक हिन्दी में अनुवादित प्रति आवेदक को दी जाएगी।

(2025) 4 ILRA 795
अपीलीय क्षेत्राधिकार
आपराधिक पक्ष
दिनांक: इलाहाबाद 03.04.2025
माननीय न्यायमूर्ति कृष्ण पहल
के समक्ष
आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 40524/2024

अमरजीत पांडे **...आवेदक**

बनाम

राज्य उत्तर प्रदेश और अन्य **...प्रतिवादीगण**

आवेदक के अधिवक्ता:
श्री देवोत्तम पांडे, श्री मृत्युंजय सिंह

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

जी.ए.

आपराधिक कानून- जमानत - आवेदक को धारा 137(2), 61(2), 65(1) बी.एन.एस. और 3/4(2) पोक्सो अधिनियम के अंतर्गत गिरफ्तार किया गया नाबालिग लड़की को बहकाया गया - पोक्सो अधिनियम - सहमति - पीड़िता के विरोधाभासी बयान - एफआईआर में देरी - पीड़िता ने 180 बी.एन.एस.एस. के बयान में खुद को वयस्क घोषित किया। अस्थिभंग परीक्षण नहीं किया गया - कोई चोट या चिकित्सा पुष्टि नहीं - पीड़िता आवेदक के साथ स्वेच्छा से दूसरे राज्य गई - शादी का वादा - जमानत मंजूर - आयु निर्धारण प्रक्रिया में रेड टेप और प्रणालीगत विफलता की निंदा - स्वास्थ्य और पुलिस अधिकारियों को निर्देश जारी किए गए। (पैरा 5,15, 16, 17, 18, 20 और 32)

<u>निर्णय:</u>

निरंजन सिंह एवं अन्य बनाम प्रभाकर राजाराम खरोटे एवं अन्य एआईआर 1980 एससी 785 में पारित सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के आलोक में इस न्यायालय ने साक्ष्य की विस्तृत जांच और मामले के गुण-दोष के विस्तृत दस्तावेजीकरण से परहेज किया है क्योंकि किसी भी पक्ष को यह आभास नहीं होना चाहिए कि उसके मामले के साथ पक्षपात किया गया है। मामले की प्रथम दृष्टया संतुष्टि आवश्यक है लेकिन यह आदेश के गुण-दोष की विस्तृत जांच के समान नहीं है। (पैरा 15)

"दोष सिद्ध न होने तक निर्दोषता की धारणा" का सुप्रसिद्ध सिद्धांत, नियम के रूप में जमानत और अपवाद के रूप में कारावास की अवधारणा को जन्म देता है। (पैरा 16)

यह विधि का स्थापित सिद्धांत है कि जमानत का उद्देश्य मुकदमे में अभियुक्त की उपस्थिति सुनिश्चित करना है। विद्वान एजीए द्वारा कोई भी भौतिक विवरण या परिस्थितियाँ नहीं दर्शाई गई हैं जो यह दर्शाती हों कि आवेदक न्याय से भाग रहा है या न्याय की प्रक्रिया को विफल कर रहा है या अपराधों को दोहराकर या गवाहों को डराकर अन्य परेशानियाँ पैदा कर रहा है। (पैरा 20) **आवेदन स्वीकृत।** (ई-14)

<u>उद्धृत वादों की सूची:</u>

1. निरंजन सिंह एवं अन्य बनाम प्रभाकर राजाराम खरोटे एवं अन्य एआईआर 1980 एससी 785
2. सतेंद्र कुमार अंतिल बनाम केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो एवं अन्य, 2022 आईएनएससी 690
3. मनीष सिसोदिया बनाम प्रवर्तन निदेशालय 2024 आईएनएससी 595

(माननीय न्यायमूर्ति कृष्ण पहल द्वारा प्रदत्त)

1. सूची को पुनः पुकारा गया।

2. विद्वान ए.जी.ए. द्वारा आज दायर अनुपालन शपथपत्र को अभिलेख में दर्ज किया गया है।

3. विद्वान ए.जी.ए. द्वारा दी गई सूचना के अनुसार, सूचनादाता को 4.11.2024 को नोटिस दिया गया है।

4. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री देवोत्तम पांडे के ब्रीफ़ धारक विद्वान अधिवक्ता श्री मृत्युंजय सिंह और राज्य के विद्वान ए.जी.ए. श्री वी.के.एस. परमार को सुना गया और अभिलेख में प्रस्तुत सामग्री का अवलोकन किया गया।

5. आवेदक मुकदमा अपराध संख्या 197/2024, धारा 137(2), 61(2), 65(1) भादंसं और 3/4(2) पोक्सो अधिनियम, थाना गड़वार, जिला बलिया में विचारण के दौरान जमानत चाहता है।

अभियोजन पक्ष की कहानी:

6. सूचनादाता द्वारा प्राथमिकी दर्ज कराई गई थी जिसमें कहा गया था कि उसकी 16 वर्षीय बेटी 10.9.2024 को सुबह 9 बजे कॉलेज के लिए निकली थी और शाम तक वापस नहीं लौटी। गहन खोजबीन के बाद पता चला कि आवेदक ने सह-अभियुक्त रिखीमुनि पांडे के साथ मिलकर उसकी नाबालिग बेटी को बहला-फुसलाकर भगा लिया था।

आवेदक की ओर से तर्क:

7. आवेदक पूरी तरह से निर्दोष है और उसे अनावश्यक रूप से परेशान करने और पीड़ित करने के उद्देश्य से वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है। उसका उक्त अपराध से कोई लेना-देना नहीं है।

8. एफआईआर में चार दिन की देरी हुई है और उक्त देरी का कोई स्पष्टीकरण नहीं है।

9. पीड़िता सहमति देने वाला पक्ष है, जैसा कि धारा 183 बी.एन.एस.एस. के अंतर्गत दर्ज उसके बयान से स्पष्ट है, जिसमें उसने स्पष्ट रूप से कहा है कि वह आवेदक से प्यार करती थी। उसने यह भी कहा है कि आवेदक ने उससे शादी करने का वादा किया था, इस तरह, वह 10.9.2024 की सुबह लगभग 10 बजे अपना घर छोड़कर आवेदक के साथ गुजरात चली गई और वहां उसके मामा के घर में रही। उसने केवल शादी के उक्त वादे पर आवेदक के साथ शारीरिक संबंध स्थापित किए थे।

10. पीड़िता ने धारा 180 बी.एन.एस.एस. के अंतर्गत दर्ज अपने बयान में स्पष्ट रूप से कहा है कि वह 18 वर्ष की है और उसने अपने माता-पिता द्वारा डांटे जाने के बाद अपना घर छोड़ दिया था। उक्त बयान एफआईआर और धारा 183 बी.एन.एस.एस. के अंतर्गत दर्ज उसके बयान के विरोधाभासी है।

11. घटना की कोई चिकित्सीय पुष्टि नहीं है, क्योंकि पीड़िता को किसी भी प्रकार की चोट नहीं आई थी।

12. वर्तमान एफआईआर के बारे में पता चलने पर, आवेदक, अपनी मौसी और चाचा के साथ, उसे उसके पैतृक स्थान वापस ले गए थे। उसने आगे कहा है कि उसके माता-पिता भी उसकी शादी कराने को तैयार हैं।

13. आवेदक का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है। आवेदक 25.9.2024 से जेल में बंद है। यदि आवेदक को जमानत पर रिहा कर दिया जाता है, तो वह जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं करेगा।

सूचनादाता/राज्य की ओर से तर्क:

14. जमानत आवेदन का विरोध किया गया है, लेकिन इस तथ्य पर विवाद नहीं किया गया है कि आवेदक का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है।

निष्कर्ष:

15. ***निरंजन सिंह एवं अन्य बनाम प्रभाकर राजाराम खरोटे एवं अन्य एआईआर 1980 एससी 785*** में पारित सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के आलोक में, इस न्यायालय ने साक्ष्यों की विस्तृत जाँच और मामले के गुण-दोषों के विस्तृत दस्तावेज़ीकरण से परहेज किया है ताकि किसी भी पक्ष को यह आभास न हो कि उसके मामले में पक्षपात किया गया है। मामले की *प्रथम दृष्टया* संतुष्टि आवश्यक है, लेकिन यह आदेश के गुण-दोषों की विस्तृत जाँच के समान नहीं है।

16. *"दोष सिद्ध न होने पर निर्दोषता की धारणा"* का सुप्रसिद्ध सिद्धांत, नियम के रूप में जमानत और अपवाद के रूप में कारावास की अवधारणा को जन्म देता है।

17. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा गारंटीकृत किसी व्यक्ति के जीवन और स्वतंत्रता के अधिकार को केवल इसलिए नहीं छीना जा सकता क्योंकि उस व्यक्ति पर अपराध करने का आरोप है, जब तक कि अपराध उचित संदेह से परे स्थापित न हो जाए। भारतीय संविधान के पैरा 21 में कहा गया है कि किसी का जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता तब तक नहीं छीनी जा सकती जब तक कि कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया का पालन न किया जाए, और प्रक्रिया न्यायसंगत और उचित होनी चाहिए। उक्त सिद्धांत को सुप्रीम कोर्ट ने ***सतेंद्र कुमार अंतिल बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो और अन्य, 2022 आईएनएससी 690*** में दोहराया है।

18. ***मनीष सिसोदिया बनाम प्रवर्तन निदेशालय 2024 आईएनएससी 595*** के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने उपरोक्त दृष्टिकोण को दोहराते हुए फिर से जोर दिया है कि कानून का बहुत ही स्थापित सिद्धांत कि सजा के रूप में जमानत रोकी नहीं जानी चाहिए, को नहीं भूलना चाहिए। यह सही समय है कि अदालतों को इस सिद्धांत को मान्यता देनी चाहिए कि *"जमानत एक नियम है और जेल एक अपवाद है"।*

19. विद्वान एजीए ऐसी कोई असाधारण परिस्थितियाँ प्रस्तुत नहीं कर सके जिनके कारण आवेदक को ज़मानत देने से इनकार किया जा सके।

20. यह विधि का स्थापित सिद्धांत है कि ज़मानत का उद्देश्य अभियुक्त की मुक़दमे में उपस्थिति सुनिश्चित करना है। विद्वान ए.जी.ए. द्वारा कोई भी भौतिक विवरण या परिस्थितियाँ नहीं दर्शाई गई हैं जो यह दर्शाती हों कि आवेदक न्याय से भाग रहा है या न्याय की प्रक्रिया को विफल कर रहा है या अपराधों को दोहराने या गवाहों को डराने आदि के रूप में अन्य परेशानियाँ पैदा कर रहा है।

21. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों, पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत दलीलें, रिकार्ड पर उपलब्ध साक्ष्य, आवेदक का कोई आपराधिक इतिहास न होना, यह तथ्य कि पीड़िता ने विवेचनाधिकारी के समक्ष धारा 180 बी.एन.एस.एस. के तहत दर्ज किए गए अपने बयान में स्वयं को 18 वर्ष की बताया था और यह तथ्य कि धारा 183 बी.एन.एस.एस. के तहत दर्ज किए गए उसके बयान के अनुसार वह सहमति देने वाली पार्टी है, और इस तथ्य को भी ध्यान में रखते हुए कि पीड़िता आवेदक के साथ गुजरात गई थी और वहीं रही तथा उक्त प्रवास के दौरान उसने कोई शोर नहीं मचाया, साथ ही इस तथ्य को भी ध्यान में रखते हुए कि पीड़िता को किसी भी प्रकार की चोट नहीं आई है, और प्रयासों के बावजूद पीड़िता का अस्थिकरण परीक्षण नहीं किया जा सका, मामले के गुण-दोष पर कोई राय व्यक्त किए बिना, न्यायालय का विचार है कि आवेदक ने जमानत के लिए मामला बनाया है। जमानत आवेदन स्वीकार किया जाता है।

22. उपर्युक्त मुकदमा अपराध संख्या में शामिल आवेदक- **अमरजीत पांडे** को निम्नलिखित शर्तों के अधीन संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के लिए एक व्यक्तिगत बांड और समान राशि में दो जमानतें प्रस्तुत करने पर जमानत पर रिहा किया जाए।

(i) आवेदक साक्ष्यों के साथ छेड़छाड़ नहीं करेगा।
(ii) आवेदक (1) मामले की शुरुआत, (2) आरोप-निर्धारण और (3) धारा 313 सीआरपीसी/351 बी.एन.एस.एस. के अंतर्गत बयान दर्ज कराने हेतु नियत तिथियों पर, व्यक्तिगत रूप से, विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित रहेगा। यदि विचारण न्यायालय की राय में आवेदक की अनुपस्थिति जानबूझकर या बिना किसी पर्याप्त कारण के है, तो विचारण न्यायालय ऐसे चूक को जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग मानकर उसके विरुद्ध विधि के अनुसार कार्यवाही कर सकता है।

23. उपरोक्त किसी भी शर्त के उल्लंघन की स्थिति में, यह जमानत रद्द करने का आधार होगा। बांड स्वीकार करने से पहले संबंधित न्यायालय द्वारा आवेदक और जमानतदारों की पहचान, स्थिति और निवास प्रमाण का सत्यापन किया जाएगा।

24. यह स्पष्ट किया जाता है कि आवेदक को जमानत प्रदान करते समय की गई टिप्पणियाँ, गवाहों की गवाही के आधार पर स्वतंत्र राय बनाने में विद्वान विचारण न्यायाधीश को किसी भी प्रकार से प्रभावित नहीं करेंगी।

अस्थिकरण परीक्षण रिपोर्ट:

अनुवादित

25. इस न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 10.2.2025 के अंतर्गत सी.एम.ओ. को पीड़िता की आयु ज्ञात करने के लिए उसका अस्थिकरण परीक्षण करने हेतु एक मेडिकल बोर्ड गठित करने का निर्देश दिया था। सी.एम.ओ., बलिया ने उक्त आदेश का अनुपालन नहीं किया, इस प्रकार, दिनांक 10.2.2025 के उक्त आदेश का अनुपालन करने के लिए दिनांक 4.3.2025 को उन्हें एक अनुस्मारक भेजा गया। इस मामले की पुनः सुनवाई दिनांक 19.3.2025 को हुई। विद्वान ए.जी.ए. ने प्रस्तुत किया कि सी.एम.ओ., बलिया ने प्रतिवेदित किया है कि संबंधित एस.एच.ओ. को कई पत्र भेजे जाने के बावजूद, पीड़िता को अस्थिकरण परीक्षण के लिए उनके समक्ष प्रस्तुत नहीं किया जा रहा है, इस प्रकार, दिनांक 10.2.2025 और 4.3.2025 के पूर्व आदेशों का अनुपालन नहीं किया जा सका।

26. कार्यालय की रिपोर्ट इंगित करती है कि विद्वान सी.जे.एम. ने सूचित किया है कि पीड़िता अपनी मौसी के साथ कोलकाता, पश्चिम बंगाल में है, इसलिए उसका अस्थिकरण परीक्षण नहीं किया जा सका।

27. विद्वान ए.जी.ए. द्वारा दायर उक्त अनुपालन हलफनामे के अनुसार, पीड़िता को 5.3.2025 को जिला अस्पताल, मऊ ले जाया गया था और उसकी एक्स-रे रिपोर्ट वहीं तैयार की गई थी। उक्त एक्स-रे रिपोर्ट को अनुपालन हलफनामे के अनुलग्नक-2 के रूप में संलग्न किया गया है। सूचनादाता ने 17.3.2025 को एस.एच.ओ. को स्पष्ट रूप से कहा था कि वह अपनी बेटी को किसी भी मेडिकल परीक्षण के लिए आगे नहीं ले जाएगा और उसने इस आशय का एक आवेदन भी दिया था, क्योंकि पीड़िता हिमाचल प्रदेश में रह रही है।

28. महिला कांस्टेबल और एक एस.आई. एक्स-रे रिपोर्ट के साथ 9.3.2025 को सी.एम.ओ. बलिया के कार्यालय गए थे, लेकिन संबंधित सी.एम.ओ. ने पीड़िता के उनके समक्ष उपलब्ध न होने के कारण अस्थिकरण परीक्षण रिपोर्ट देने से इनकार कर दिया।

29. अनुपालन हलफनामे में दिए गए उपरोक्त कथनों से संकेत मिलता है कि अधिकारी उच्च न्यायालय के आदेशों का पालन करवाने के प्रति गंभीर नहीं हैं। लालफीताशाही रवैया अधिकारियों के रवैये से स्पष्ट है, इसलिए भारी मन से, इस न्यायालय के पास उक्त अस्थिकरण परीक्षण रिपोर्ट के बिना वर्तमान जमानत आवेदन का निस्तारण करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। पीड़िता की उम्र का कोई दस्तावेजी प्रमाण नहीं है।

30. पीड़िता को एक्स-रे रिपोर्ट के लिए बलिया से मऊ ले जाया गया, लेकिन अस्थिकरण परीक्षण उसी दिन पूरा नहीं किया गया। पीड़िता को अगली तारीख पर मुख्य चिकित्सा अधिकारी के समक्ष उपस्थित होने के लिए कहा गया। उक्त लापरवाहीपूर्ण दृष्टिकोण की निंदा की जाती है, क्योंकि कार्यवाही उसी दिन पूरी हो जानी चाहिए थी।

31. बलिया में रेडियोलॉजिस्ट की अनुपलब्धता से संबंधित उक्त मामला, जिससे गरीब पीड़ितों को कठिनाई हो रही है, इस न्यायालय द्वारा आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 19345/2024 *(प्रकाश कुमार गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं 3 अन्य)* में अलग से निस्तारित जा रहा है।

32. इस न्यायालय के ध्यान में आया है कि जिस तरह से व्यक्तियों की आयु, विशेष रूप से आपराधिक कार्यवाहियों में, गलत तरीके से प्रस्तुत की जा रही है और अपर्याप्त रूप से सत्यापित की जा रही है, उसमें एक परेशान करने वाला पैटर्न मौजूद है। इस मुद्दे के कई आयाम हैं जिनमें वादी, कानून प्रवर्तन और स्वास्थ्य विभाग शामिल हैं, जो सभी एक प्रणालीगत विफलता में योगदान दे रहे हैं।

1. वादियों द्वारा जन्मतिथि में हेराफेरी:

इस न्यायालय ने चिंता व्यक्त करते हुए कहा है कि कुछ वादी जानबूझकर अपनी जन्मतिथि में हेराफेरी कर रहे हैं ताकि अनुकूल कानूनी परिणाम प्राप्त किए जा सकें, जैसे कि किशोर घोषित किया जाना। यह कदाचार न्याय प्रणाली की अखंडता को कमजोर करता है और झूठे दस्तावेज़ प्रस्तुत करने पर कड़ी जाँच और दंड की माँग करता है।

2. आयु सत्यापन में पुलिस अधिकारियों की विफलता:

किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2015 की धारा 94 के अंतर्गत स्पष्ट प्रावधानों के बावजूद - जो यह अनिवार्य करता है कि किशोर होने का दावा करने वाले व्यक्ति की आयु मुख्य रूप से दस्तावेज़ी साक्ष्य के आधार पर निर्धारित की जानी चाहिए - कानून प्रवर्तन एजेंसियाँ ऐसे दस्तावेज़ों के अभाव में अस्थिकरण परीक्षण द्वारा उचित आयु सत्यापन करने में नियमित रूप से विफल रहती हैं। यह ढिलाई वैधानिक कर्तव्य की गंभीर उपेक्षा को दर्शाती है और इसके परिणामस्वरूप न्याय का हनन होता है।

3. रेडियोलॉजिस्ट/बुनियादी ढांचे आदि की कमी के कारण स्वास्थ्य विभाग की निष्क्रियता:

ऐसे मामलों में जहाँ दस्तावेज़ी साक्ष्य उपलब्ध नहीं हैं, अधिनियम आयु निर्धारण हेतु चिकित्सा परीक्षण की अनुमति देता है। हालाँकि, बलिया जिले में लंबे समय से योग्य रेडियोलॉजिस्ट की अनुपस्थिति के कारण ऐसी प्रक्रियाएँ असंभव हो गई हैं। स्वास्थ्य सेवा के बुनियादी ढाँचे में यह कमी न केवल न्याय में देरी करती है, बल्कि किशोर न्याय प्रणाली की विश्वसनीयता को भी प्रभावित करती है।

सुझाव:

उपरोक्त स्थिति प्रशासनिक और प्रक्रियात्मक विफलताओं की एक श्रृंखला को उजागर करती है। यह आवश्यक है कि:

(i) आयु निर्धारण के लिए प्रस्तुत दस्तावेजों के कठोर सत्यापन हेतु एक तंत्र विकसित करने हेतु, पुलिस को किशोर न्याय (बालकों की देखभाल एवं संरक्षण) अधिनियम, 2015 की धारा 94 का कड़ाई से पालन करने और तदनुसार प्रशिक्षित होने का निर्देश दिया जाए।

(ii) अधिनियम के प्रावधानों का अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए बलिया जिले में कम से कम एक रेडियोलॉजिस्ट की नियुक्ति या प्रतिनियुक्ति हेतु स्वास्थ्य विभाग द्वारा तत्काल कदम उठाए जाएँ।
इन मुद्दों का समाधान न करने से वास्तविक रूप से कमजोर किशोरों की सुरक्षा के लिए बनाए गए कानूनी प्रावधानों का निरंतर दुरुपयोग हो सकता है, जिससे न्याय प्रणाली में जनता का विश्वास कम हो सकता है।

33. इस आदेश की एक प्रति तत्काल प्रमुख सचिव, चिकित्सा स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण, उत्तर प्रदेश को भेजी जाए।

(2025) 4 ILRA 800

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 21.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल

आवेदन अंतर्गत धारा 528 बीएनएसएस संख्या 44720 सन् 2024

निशा कुशवाहा **...आवेदक**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...प्रतिवादी**

आवेदक के अधिवक्ता:
रौनक चतुर्वेदी

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
जी.ए.

(ए) आपराधिक कानून - संज्ञान - किसी भी धारा को जोड़ने या घटाने के लिए मजिस्ट्रेट की शक्ति - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 190 (1) (बी), 204, 216, 218 और 228 - भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 - धारा 210 - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 376/511, 406, 354, 498-ए, 323, 504 और 506 - दहेज निषेध अधिनियम - धारा 3/4, मजिस्ट्रेट, धारा 190 (1) (बी) दं.प्र.सं. के तहत संज्ञान लेते समय, पुलिस द्वारा बताए गए तथ्यों से गठित सभी अपराधों का संज्ञान ले सकता है जिसमें वे अपराध भी शामिल हैं जो आरोप पत्र में उल्लिखित नहीं हैं - जांच अधिकारी के निष्कर्ष से बाध्य नहीं - पुलिस रिपोर्ट में उपलब्ध सामग्री के आधार पर अपराध के संज्ञान के संबंध में स्वतंत्र निर्णय ले सकते हैं - धर्मपाल मामले में संविधान पीठ ने कहा कि मजिस्ट्रेट पुलिस रिपोर्ट के आधार पर प्रक्रिया जारी कर सकते हैं, भले ही आरोपी का नाम न

अनुवादित

हो - मजिस्ट्रेट के पास दं.प्र.सं. की धारा 190(1)(बी)/210 बीएनएसएस के तहत जांच अधिकारी के निष्कर्षों से परे संज्ञान लेने का विवेकाधिकार है। (पैरा - 10,14,18,19,22,23)

आवेदक ने धारा 498-ए, 354, 323, 504, 506 भा.दं.सं. और दहेज निषेध अधिनियम की धारा 3/4 के तहत एफआईआर दर्ज कराई - आरोप पत्र प्रस्तुत होने पर - उसने धारा 164 दं.प्र.सं. के तहत अपने बयान के आधार पर धारा 376/511 और 406 भा.दं.सं. के तहत संज्ञान लेने की मांग करते हुए एक विरोध याचिका दायर की- मजिस्ट्रेट ने प्रथम दृष्टया साक्ष्य के अभाव का हवाला देते हुए उसकी याचिका खारिज कर दी - उस आदेश को चुनौती देते हुए धारा 528 बीएनएसएस के तहत वर्तमान आवेदन दायर किया गया था। **(पैरा - 2,3,4,24)**

अवधारित किया गया: - मजिस्ट्रेट पुलिस रिपोर्ट की सामग्री के आधार पर अपराध का संज्ञान ले सकता है, चाहे जांच अधिकारी की राय कुछ भी हो। इस शक्ति में शामिल हैं: (i) अनाम अभियुक्तों को समन भेजना। (ii) आरोप-पत्र में उल्लिखित धाराओं के अलावा अन्य धाराओं के तहत अपराधों का संज्ञान लेना। (iii) रिपोर्ट में अपर्याप्त सामग्री होने पर धाराओं को हटाना। न्यायालय को विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित उस आदेश में कोई अवैधता नहीं लगती जिसके द्वारा उसने भारतीय दंड संहिता की धारा 376, 511 और 406 के तहत अपराध का संज्ञान लेने से इनकार कर दिया था। **(पैरा - 22, 25)**

धारा 528 बीएनएसएस के अंतर्गत आवेदन खारिज। (ई-7)

उद्धृत मामलों की सूची: -

1. प्रमथ नाथ मुखर्जी बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, 1960 एससीसी ऑनलाइन एससी 76
2. धर्म पाल एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य, (2014) 3 एससीसी 306
3. नाहर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2022) 5 एससीसी 295
4. बलवीर सिंह एवं अन्य बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य, (2016) 6 एससीसी 680
5. गुजरात राज्य बनाम गिरीश राधाकृष्णन वर्दे, (2014) 3 एससीसी 659
6. डबलू कुजूर बनाम झारखंड राज्य, (2024) 6 एससीसी 758
7. सदाब बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2023 एससीसी ऑनलाइन सभी 30
8. फखरुद्दीन अहमद बनाम उत्तरांचल एवं अन्य, (2008) 17 एससीसी 157
9. किशुन सिंह बनाम बिहार, (1993) 2 एससीसी 16
10. रणजीत सिंह बनाम पंजाब, (1998) 7 एससीसी 149
11. लद्दाख संघ राज्य क्षेत्र बनाम जम्मू-कश्मीर नेशनल कॉन्फ्रेंस, आईएनएससी 2023 (804)

(माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री रौनक चतुर्वेदी और राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. श्री पंकज सक्सेना को सुना गया।

2. वर्तमान आवेदन मुकदमा अपराध संख्या 5/2024 धारा 498-ए, 354, 323, 504, 506 भा.दं.सं. और 3/4 दहेज प्रतिषेध अधिनियम, थाना- महिला थाना, जिला-झांसी से उद्भूत न्यायिक मजिस्ट्रेट/सिविल जज (जे.डी.), एफटीसी, (सीएडब्ल्यू), झांसी द्वारा पारित वाद संख्या 25936/2024 (प्रकीर्ण वाद संख्या 839/2024) (राज्य बनाम गौरव एवं अन्य) में विरोध याचिका दिनांक 23.11.2024 को खारिज करने के आदेश को आंशिक रूप से रद्द करने के लिए दायर किया गया है, जिसके द्वारा धारा 406, 376/511 भा.दं.सं. के तहत संज्ञान लेने के लिए आवेदन खारिज कर दिया गया है।

3. इस मामले में शामिल मुद्दा यह है कि आवेदक द्वारा प्रतिपक्षी संख्या 2 और अन्य सह-अभियुक्त व्यक्तियों के खिलाफ दिनांक 16.01.2024 को धारा 498-ए, 354, 323, 504, 506 भा.दं.सं. और दहेज निषेध अधिनियम की धारा 3/4 के तहत एफआईआर दर्ज की गई थी। पुलिस ने जांच के बाद प्रतिपक्षी संख्या 2 के खिलाफ धारा 498-ए, 354, 323, 504, 506 भा.दं.सं. और 3/4 दहेज निषेध अधिनियम के तहत आरोप पत्र दाखिल किया है, जबकि अन्य सह-अभियुक्त गौरव और श्रीमती मीरा के खिलाफ धारा 498-ए, 323, 504 भा.दं.सं. और 3/4 दहेज निषेध अधिनियम के तहत आरोप पत्र दायर किया है। वर्तमान आवेदक, जो पहली सूचनादाता है, ने इस दलील के साथ एक विरोध याचिका दायर की थी कि उसने अपने बयान में, बलात्कार के प्रयास और प्रतिपक्षी संख्या 2 द्वारा उसके स्त्रीधन को वापस न करने का एक विशिष्ट आरोप लगाया था, इसलिए धारा 376/511 और 406 भा.दं.सं. के तहत भी संज्ञान लिया जा सकता है। इस आवेदन को विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा आक्षेपित आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था, जो चुनौती के अधीन है।

4. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि आरोप पत्र पर संज्ञान लेते समय, मजिस्ट्रेट जांच अधिकारी के निष्कर्ष से बाध्य नहीं है। अपने तर्कों के समर्थन में, उन्होंने **प्रमथ नाथ मुखर्जी बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, 1960 एससीसी ऑनलाइन एससी 76** के मामले में शीर्ष अदालत के निर्णय, **धरम पाल और अन्य बनाम हरियाणा राज्य और अन्य (2014) 3 एससीसी 306** के मामले में निर्णय, **नाहर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (2022) 5 एससीसी 295** के मामले में निर्णय, और **बलवीर सिंह और अन्य बनाम राजस्थान राज्य और अन्य, (2016) 6 एससीसी 680** के मामले में निर्णय पर अवलम्ब लिया है। आवेदक के अधिवक्ता ने आगे कहा कि दं.प्र.सं. की धारा 190(1)(बी) के तहत, मजिस्ट्रेट पुलिस रिपोर्ट के साथ रिकॉर्ड पर उपलब्ध तथ्य के आधार पर संज्ञान ले सकता है। इसलिए, मजिस्ट्रेट, सामग्री के आधार पर, अपराध को जोड़ या घटा सकता है यदि सामग्री से पता चलता है कि अन्य धाराओं के तहत भी अपराध बनता है।

5. इसके प्रतिपक्षी, राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए. श्री पंकज सक्सेना ने इस आधार पर प्रार्थना का पुरजोर विरोध किया है कि **गुजरात राज्य बनाम गिरीश राधाकृष्णन वर्दे, (2014) 3 एससीसी 659** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ संख्या 13, 14 और 16 में स्पष्ट रूप से देखा कि यदि आरोप पत्र कुछ धाराओं के तहत

दायर किया जाता है तो मजिस्ट्रेट किसी भी अनुभाग को शामिल या जोड़ नहीं सकता है जिसका उल्लेख आरोप पत्र में नहीं किया गया है। इसे आगे विद्वान ए.जी.ए. द्वारा प्रस्तुत किया गया है। वह भी पैराग्राफ सं. **धर्मपाल (उपरोक्त)** के मामले में फैसले के 36 में शीर्ष अदालत ने स्पष्ट रूप से कहा है कि यदि पुलिस रिपोर्ट प्राप्त करने के बाद मजिस्ट्रेट प्रथम दृष्टया मामले से संतुष्ट है तो उसे पुलिस रिपोर्ट के आधार पर ही आगे बढ़ना होगा। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि **धर्म पाल (उपरोक्त)** में मुद्दा यह था कि क्या मजिस्ट्रेट उस व्यक्ति के खिलाफ संज्ञान ले सकता है जिसे आरोप पत्र में आरोपी के कॉलम में आरोपी के रूप में उल्लेख किया गया था, लेकिन वर्तमान मामले में, मुद्दा अलग है कि क्या मजिस्ट्रेट आरोप पत्र प्राप्त करने के बाद किसी भी धारा को जोड़ या घटा सकता है। इसलिए, **धर्म पाल (उपरोक्त)** का मामला सीधे तौर पर वर्तमान मामले पर लागू नहीं होता है।

6. विद्वान एजीए ने **डबलू कुजूर बनाम झारखंड राज्य, (2024) 6 एससीसी 758** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के हालिया फैसले पर भी भरोसा किया है, जिसमें पैराग्राफ संख्या 13 और 14 में सर्वोच्च न्यायालय ने अवधारित किया है कि एक बार पुलिस रिपोर्ट दाखिल होने के बाद, मजिस्ट्रेट रिपोर्ट स्वीकार कर सकता है और अपराध का संज्ञान ले सकता है और प्रक्रिया जारी कर सकता है, लेकिन यदि वह असहमत है, तो वह आगे की जांच के लिए निर्देश दे सकता है, या वह आरोपी को आरोपमुक्त कर सकता है या कार्यवाही बंद कर सकता है। इसलिए, शीर्ष अदालत ने इस मामले में स्पष्ट रूप से कहा कि संज्ञान लेने के समय, मजिस्ट्रेट को यह तय करना होगा कि आरोप पत्र के आधार पर, विशेष धाराओं के तहत अपराध के संबंध में अपराध किया गया प्रतीत होता है या नहीं।

7. विद्वान ए.जी.ए. ने यह भी कहा है कि **गिरीश राधाकृष्णन वर्दे (उपरोक्त)** और **धर्मपाल (उपरोक्त)** के मामले में मुद्दे बिल्कुल अलग हैं। इसलिए, **सादाब बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2023 एससीसी ऑनलाइन ऑल 30** के मामले में समन्वय पीठ द्वारा दिया गया निर्णय, जिसमें गिरीश राधाकृष्णन वर्दे (उपरोक्त) के मामले में निर्णय देते समय सर्वोच्च न्यायालय ने धर्मपाल (उपरोक्त) के निर्णय पर विचार नहीं किया था, सही प्रतीत नहीं होता क्योंकि दोनों मामलों में मुद्दा बिल्कुल अलग था।

8. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं के तर्कों को सुनने और अभिलेखों के अवलोकन के पश्चात् यह प्रश्न उठता है कि क्या संज्ञान लेते समय मजिस्ट्रेट आरोप-पत्र के साथ उपलब्ध सामग्री के आधार पर अपराधों से संबंधित कोई धारा जोड़ या घटा सकता है?

9. सर्वोच्च न्यायालय ने **गिरीश राधाकृष्णन वर्दे (उपरोक्त)** मामले में यह मुद्दा तय किया कि मजिस्ट्रेट संज्ञान लेते समय आरोप-पत्र में उल्लिखित धारा को न तो जोड़ सकते हैं और न ही घटा सकते हैं। साथ ही, यह भी कहा कि यदि अभिलेख पर सामग्री उपलब्ध होने के बावजूद संबंधित धारा का उल्लेख नहीं किया गया है, तो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216, 218 या 228 के अंतर्गत आरोप निर्धारण के समय इस मुद्दे पर विचार

करना उचित होगा। **गिरीश राधाकृष्णन वर्दे (उपरोक्त)** के पैराग्राफ संख्या 14 और 15 को निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है:-

14. लेकिन अगर पुलिस द्वारा धारा 154 दं.प्र.सं. के तहत थाने में दर्ज एफआईआर के आधार पर मामला दर्ज किया जाता है, न कि मजिस्ट्रेट के समक्ष धारा 190(1)(ए) दं.प्र.सं. के तहत शिकायत के माध्यम से, तो जाहिर है कि दर्ज की गई एफआईआर के संबंध में मजिस्ट्रेट जांच नहीं की जा सकती है क्योंकि यह पुलिस की जांच एजेंसी है जो अकेले कानूनी रूप से जांच करने और उसके बाद आरोप पत्र प्रस्तुत करने की हकदार है, जब तक कि मजिस्ट्रेट के समक्ष शिकायत भी दर्ज न की गई हो, जहां शिकायत मामलों के लिए निर्धारित प्रक्रिया लागू होगी। हालांकि, पुलिस मामले में आरोप पत्र प्रस्तुत करने के बाद मामला मजिस्ट्रेट के पास इस बारे में राय बनाने के लिए जाता है कि क्या यह संज्ञान लेने और मामले को मुकदमे के लिए सौंपने के लिए एक उपयुक्त मामला है, जो कि एफआईआर के माध्यम से पुलिस के समक्ष दर्ज किया गया है और मजिस्ट्रेट जांच पूरी होने और पुलिस द्वारा आरोप पत्र प्रस्तुत करने के बाद आरोप पत्र में किसी भी धारा को शामिल या हटा नहीं सकता है।

15. इसलिए, यह प्रश्न उठता है कि यदि जाँच अधिकारी एफआईआर में प्रकट तथ्यों के बावजूद भा.दं.सं. की उन सभी धाराओं को शामिल न करके अपने कर्तव्य में विफल रहे हैं जिनके आधार पर अपराध का गठन किया जा सकता है, तो क्या शिकायतकर्ता/सूचनाकर्ता/अभियोजन पक्ष को कोई राहत पाने से रोका जा सकता है? इसका उत्तर स्पष्ट रूप से नकारात्मक है क्योंकि यदि जाँच अधिकारी किसी भी कारण से, जिस एफआईआर पर जाँच की गई थी, उसके आधार पर आरोप-पत्र में सभी अपराधों को शामिल करने में विफल रहे हैं, तो अभियोजन पक्ष को अपराध का गठन करने वाली धाराओं को छोड़कर पक्षपात करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। लेकिन फिर एक और सवाल उठता है कि क्या इस कमी को मजिस्ट्रेट द्वारा पूरा करने की अनुमति दी जा सकती है, जिसके समक्ष आरोप-पत्र प्रस्तुत करने के बाद मामला संज्ञान लेने के लिए आता है और जैसा कि पहले ही कहा गया है, मजिस्ट्रेट एक मामले में जो पुलिस रिपोर्ट पर आधारित है, संज्ञान लेने के समय धाराओं को जोड़ या घटा नहीं सकता है क्योंकि यह केवल धारा 216, 218 या धारा 228 दं.प्र.सं. के तहत आरोप तय करने के समय ही ट्रायल कोर्ट द्वारा स्वीकार्य होगा, जैसा भी मामला हो, जिसका अर्थ है कि आरोप-पत्र प्रस्तुत करने के बाद अभियोजन पक्ष के लिए आरोप तय करने के चरण में उपयुक्त ट्रायल कोर्ट के समक्ष यह तर्क देने के लिए स्वतंत्र होगा कि तथ्यों की दी गई स्थिति पर उचित धाराएं, जिन्हें अभियोजन पक्ष के अनुसार तैयार किया जाना चाहिए, तैयार करने की अनुमति दी जा सकती है। इसके साथ ही, इस स्तर पर अभियुक्त को यह प्रस्तुत करने की भी स्वतंत्रता है कि किसी विशेष प्रावधान के तहत आरोप तय किया जाना चाहिए या नहीं और पुलिस रिपोर्ट के आधार पर मामले में यह निर्धारित करने के लिए उपयुक्त मंच है कि क्या आरोप तय किया जा सकता है और जांच के दौरान एकत्र की गई सामग्री और एफआईआर और आरोप-पत्र में प्रकट किए गए तथ्यों के आधार पर किसी विशेष धारा को जोड़ा या हटाया जा सकता है।

10. सर्वोच्च न्यायालय ने **प्रमथ नाथ मुखर्जी (उपरोक्त**) मामले में सर्वोच्च न्यायालय की दो पीठों के अपने पूर्व निर्णय में स्पष्ट रूप से कहा है कि मजिस्ट्रेट, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 190(1)(बी) के अंतर्गत संज्ञान लेते

समय, पुलिस द्वारा बताए गए तथ्यों से उत्पन्न सभी अपराधों का संज्ञान ले सकता है, जिसमें वे अपराध भी शामिल हैं जिनका उल्लेख आरोप-पत्र में नहीं है। **प्रमथ नाथ मुखर्जी (उपरोक्त)** के अनुच्छेद संख्या 3 और 4 को इस प्रकार उद्धृत किया जा रहा है:-

3. यह बिल्कुल स्पष्ट है कि धारा 251-ए की उपधारा (2) या उपधारा (3) के तहत कार्रवाई की जाए या नहीं, इसका निर्णय करते समय मजिस्ट्रेट को यह राय बनानी होगी कि क्या यह मानने का कोई आधार है कि किसी अभियुक्त ने अध्याय 21 के तहत विचारणीय अपराध किया है या ऐसा कोई आधार नहीं है। जब उसकी राय यह हो कि यह मानने का आधार है कि अभियुक्त ने अध्याय 21 के तहत दंडनीय अपराध किया है, जिसका विचारण करने के लिए मजिस्ट्रेट सक्षम है और जिसके लिए वह पर्याप्त रूप से दंडित कर सकता है, तो वह मुकदमा आगे बढ़ाएगा। लेकिन जब उसकी राय यह हो कि यह मानने का कोई आधार नहीं है कि अभियुक्त ने अध्याय 21 के तहत दंडनीय अपराध किया है, तो उसका कर्तव्य अभियुक्त को उन्मोचित करना है। असली सवाल यह है कि जब मजिस्ट्रेट धारा 251-ए की उपधारा (2) के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए उन्मोचन का आदेश देता है, तो क्या उन्मोचन उन सभी अपराधों के संबंध में होता है जो पुलिस रिपोर्ट में उल्लिखित तथ्यों से बनते हैं? इसका उत्तर नकारात्मक होना चाहिए। जब मजिस्ट्रेट धारा 251-ए(2) के तहत आदेश देता है, तो वह ऐसा इसलिए करता है क्योंकि वह इस बात पर विचार करने के बाद कि क्या अध्याय 21 के तहत विचारणीय अपराधों के बारे में पुलिस रिपोर्ट में लगाया गया आरोप निराधार है, उसकी राय है कि ऐसे अपराध के संबंध में आरोप निराधार है; लेकिन उन्मोचन का आदेश केवल आरोप-पत्र में उल्लिखित ऐसे अपराधों के संदर्भ में होता है जो अध्याय 21 के तहत विचारणीय हैं। अक्सर ऐसा होता है कि आरोप-पत्र में उल्लिखित तथ्य अध्याय XXI के अंतर्गत वारंट मामलों के रूप में विचारणीय एक या एक से अधिक अपराधों का गठन करते हैं, और अध्याय XX के अंतर्गत विचारणीय एक या एक से अधिक अन्य अपराधों का भी गठन करते हैं। केवल अध्याय XXI के अंतर्गत विचारणीय अपराधों के संबंध में उन्मोचन आदेश किसी भी तरह से इस स्थिति को प्रभावित नहीं करता है कि अध्याय XX के अंतर्गत विचारणीय अपराधों के आरोप पुलिस रिपोर्ट में भी शामिल हैं।

4. लेकिन, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि मजिस्ट्रेट अध्याय 20 के अंतर्गत विचारणीय इन अन्य अपराधों का मुकदमा आगे नहीं बढ़ा सकते क्योंकि ऐसे अन्य अपराधों का कोई संज्ञान नहीं लिया गया है। उनका तर्क है कि अध्याय 20 के अंतर्गत विचारणीय इन अपराधों के संबंध में केवल एक नई शिकायत दर्ज होने के बाद ही मजिस्ट्रेट संज्ञान ले सकते हैं और फिर विधि द्वारा निर्धारित प्रक्रिया का पालन करते हुए उन पर मुकदमा चला सकते हैं। यह तर्क इस तथ्य की अनदेखी करता है कि जब कोई मजिस्ट्रेट दं.प्र.सं. की धारा 190(1)(बी) के तहत अपराधों का संज्ञान लेता है, तो वह पुलिस अधिकारी द्वारा बताए गए तथ्यों से बने सभी अपराधों का संज्ञान लेता है, न कि केवल कुछ अपराधों का। उदाहरण के लिए, यदि पुलिस रिपोर्ट में उल्लिखित तथ्य भा.दं.सं. की धारा 379 और भा.दं.सं. की धारा 426 के तहत अपराध का गठन करते हैं, तो मजिस्ट्रेट न केवल धारा 379 के तहत अपराध का, बल्कि धारा 426 के तहत अपराध का भी संज्ञान ले सकता है। वर्तमान मामले में पुलिस रिपोर्ट में ऐसे तथ्य बताए गए हैं जो धारा 332 भा.दं.सं. के तहत एक अपराध की स्थापना करते हैं, लेकिन ये तथ्य अनिवार्य रूप से धारा 323 भा.दं.सं. के तहत एक मामूली अपराध की भी स्थापना करते हैं। जब मजिस्ट्रेट ने धारा 332 भा.दं.सं. के तहत अपराध का धारा 190(1)(बी) दं.प्र.सं. के तहत संज्ञान

लिया, तो उन्होंने धारा 323 भा.दं.सं. के तहत मामूली अपराध का भी संज्ञान लिया होगा। परिणामस्वरूप, धारा 332 भा.दं.सं. के तहत अपराध के संबंध में उन्मोचन आदेश दिए जाने के बाद भी, धारा 323 के तहत मामूली अपराध, जिसका उन्होंने भी संज्ञान लिया था, परीक्षण के लिए बना रहा क्योंकि इसके प्रतिपक्षी कोई संकेत नहीं था। चूंकि यह अपराध दं.प्र.सं. के अध्याय XX के तहत विचारणीय है, इसलिए मजिस्ट्रेट ने अध्याय XX के तहत प्रक्रिया का सही ढंग से पालन किया।

11. संज्ञान लेने की प्रक्रिया का उल्लेख दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 190 (संदर्भित धारा 210 बी.एन.एस.एस.) के अंतर्गत किया गया है, जिसके अनुसार मजिस्ट्रेट शिकायत पर, पुलिस रिपोर्ट पर, या पुलिस अधिकारी के अलावा किसी अन्य व्यक्ति से प्राप्त सूचना पर, या स्वयं के ज्ञान पर संज्ञान ले सकता है। धारा 210 बी.एन.एस.एस. को इस प्रकार उद्धृत किया जा रहा है:-

<u>धारा 210. भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 में</u>

(1) इस अध्याय के उपबंधों के अधीन रहते हुए, कोई प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट और उपधारा (2) के अधीन विशेषतया सशक्त किया गया कोई द्वितीय वर्ग मजिस्ट्रेट, किसी भी अपराध का संज्ञान निम्नलिखित दशाओं में कर सकता है:-

(क) उन तथ्यों का परिवाद प्राप्त होने पर, जिनमें किसी विशेष विधि के अधीन प्राधिकृत किए गए किसी व्यक्ति द्वारा फाइल किया गया कोई परिवाद भी है, जो ऐसे अपराध को गठित करता है;

(ख) ऐसे तथ्यों के बारे में (इलैक्ट्रानिक ढंग सहित किसी ढंग में प्रस्तुत) पुलिस रिपोर्ट पर

(ग) पुलिस अधिकारी से भिन्न किसी व्यक्ति से प्राप्त इस सूचना पर या स्वयं अपनी इस जानकारी पर कि ऐसा अपराध किया गया है|

(2) मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट किसी द्वितीय वर्ग मजिस्ट्रेट को ऐसे अपराधों का, जिनकी जांच या विचारण करना उसकी क्षमता के भीतर है, उपधारा (1) के अधीन संज्ञान करने के लिए सशक्त कर सकता है ।

12. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 190 में उल्लिखित तीनों विधियों में से किसी पर भी संज्ञान लेते समय मजिस्ट्रेट यदि यह राय बनाता है कि कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार मौजूद हैं, तो वह अभियुक्त की उपस्थिति के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 204 के अंतर्गत समन/वारंट जारी करता है। वर्तमान मामले में, हम पुलिस रिपोर्टों के संज्ञान के संबंध में केवल दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 190(1)(बी) से ही संबंधित हैं।

13. धारा 190(1)(बी) दं.प्र.सं. के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि मजिस्ट्रेट पुलिस रिपोर्ट में उल्लिखित तथ्य के आधार पर किसी भी अपराध का संज्ञान लेता है।

14. फखरुद्दीन **अहमद बनाम उत्तरांचल राज्य एवं अन्य (2008) 17 एससीसी 157** के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि जब पुलिस रिपोर्ट मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत की जाती है, तो मजिस्ट्रेट जाँच अधिकारी की राय से बाध्य नहीं होता है, और वह पुलिस रिपोर्ट में उपलब्ध सामग्री के आधार पर किसी भी अपराध का संज्ञान ले सकता है, चाहे पुलिस ने अपनी रिपोर्ट में जो भी राय व्यक्त की हो, और यह तय कर सकता है कि

अपराध हुआ है या नहीं। **फखरुद्दीन अहमद (उपरोक्त)** के पैराग्राफ संख्या 12 को इस प्रकार उद्धृत किया जा रहा है:-

12. इस प्रकार, यह सर्वविदित है कि मजिस्ट्रेट जाँच अधिकारी की राय से बाध्य नहीं है और वह इस संबंध में अपने विवेक का प्रयोग करने के लिए सक्षम है, चाहे पुलिस अपनी रिपोर्ट में जो भी राय व्यक्त करे, और यह निर्णय ले कि अपराध सिद्ध हुआ है या नहीं। ऐसा इसलिए है क्योंकि संहिता की धारा 173(2) के अंतर्गत पुलिस रिपोर्ट का उद्देश्य, जिसमें पुलिस द्वारा खोजे गए या उजागर किए गए तथ्य और उनसे पुलिस द्वारा निकाले गए निष्कर्ष शामिल होंगे, मुख्यतः मजिस्ट्रेट को यह सुनिश्चित करने में सक्षम बनाना है कि रिपोर्ट और उसमें उल्लिखित सामग्री के आधार पर संज्ञान का मामला बनता है या नहीं।

15. **गिरीश राधाकृष्णन वर्दे (उपरोक्त)** का निर्णय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 25.11.2013 को सुनाया गया था, लेकिन इस निर्णय के सुनाए जाने से पहले, सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ ने 18.07.2013 को **धर्म पाल (उपरोक्त)** के मामले में भी अपना निर्णय सुनाया था, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था कि मजिस्ट्रेट, पुलिस रिपोर्ट प्राप्त करने के बाद, उससे असहमत हो सकते हैं और पुलिस रिपोर्ट के साथ उपलब्ध सामग्री के आधार पर आरोपी के खिलाफ प्रक्रिया और सम्मन जारी कर सकते हैं और अपराध का संज्ञान ले सकते हैं और व्यक्ति को आरोपी के रूप में सम्मन कर सकते हैं, हालांकि उसका नाम आरोप पत्र में आरोपी के रूप में उल्लेखित नहीं था, लेकिन रिपोर्ट के कॉलम 2 में था। संविधान पीठ ने आगे कहा कि यदि मजिस्ट्रेट किसी व्यक्ति के विरुद्ध कार्यवाही करने का निर्णय लेता है, भले ही उसे पुलिस द्वारा अभियुक्त के रूप में नामित न किया गया हो, तो मजिस्ट्रेट को पुलिस रिपोर्ट के आधार पर ही कार्यवाही करनी होगी। **धर्मपाल (उपरोक्त)** के पैराग्राफ संख्या 35, 36, 39, 40 इस प्रकार उद्धृत हैं:-

35. हमारे विचार से, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173(2) के अंतर्गत प्रस्तुत पुलिस रिपोर्ट पर संज्ञान लेते हुए, सत्र न्यायालय को मामला सौंपते समय मजिस्ट्रेट की भूमिका होती है। यदि मजिस्ट्रेट पुलिस रिपोर्ट से असहमत हैं, तो उनके पास दो विकल्प हैं। वे दायर की गई विरोध याचिका के आधार पर कार्रवाई कर सकते हैं, या पुलिस रिपोर्ट से असहमत होते हुए भी, अभियुक्त को समन जारी कर सकते हैं। तत्पश्चात्, यदि वह इस बात से संतुष्ट हो जाता है कि रिपोर्ट के स्तम्भ 2 में नामित व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए मामला बनाया गया है, तो वह उक्त व्यक्तियों पर विचारण करने के लिए आगे बढ़ सकता है या यदि वह इस बात से संतुष्ट हो जाता है कि ऐसा मामला बनाया गया है जो सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय है, तो वह मामले में आगे कार्यवाही करने के लिए मामले को सत्र न्यायालय को सौंप सकता है।

36. इससे हम तीसरे प्रश्न पर आते हैं कि यदि मजिस्ट्रेट को यह विश्वास हो कि पुलिस द्वारा प्रस्तुत अंतिम रिपोर्ट के बावजूद प्रथम दृष्टया मामला मुकदमे के लिए तैयार किया गया है, तो उन्हें किस प्रक्रिया का पालन करना चाहिए। ऐसी स्थिति में, यदि मजिस्ट्रेट अभियुक्तों के विरुद्ध कार्यवाही करने का निर्णय लेता है, तो उसे

पुलिस रिपोर्ट के आधार पर ही कार्यवाही करनी होगी और या तो मामले की जाँच करनी होगी या यदि सत्र न्यायालय द्वारा इसे विचारणीय पाया जाता है, तो उसे सत्र न्यायालय को सौंपना होगा।

39. इससे अगला प्रश्न यह उठता है कि क्या धारा 209 के अंतर्गत, मजिस्ट्रेट को मामला सत्र न्यायालय को सौंपने से पहले अपराध का संज्ञान लेना आवश्यक था। यह सर्वविदित है कि किसी अपराध का संज्ञान केवल एक बार ही लिया जा सकता है। यदि मजिस्ट्रेट अपराध का संज्ञान लेता है और फिर मामला सत्र न्यायालय को सौंपता है, तो अपराध का पुनः संज्ञान लेने और उसके बाद समन जारी करने का प्रश्न विधि सम्मत नहीं है। यदि अपराध का संज्ञान लिया जाना है, तो यह मजिस्ट्रेट या सत्र न्यायालय द्वारा लिया जा सकता है। संहिता की धारा 193 की भाषा बहुत स्पष्ट रूप से इंगित करती है कि एक बार जब मामला विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा सत्र न्यायालय को सौंप दिया जाता है, तो सत्र न्यायालय आरंभिक अधिकार क्षेत्र और ऐसे अधिकार क्षेत्र की धारणा से जुड़ी सभी बातें ग्रहण कर लेता है। इसलिए, धारा 209 के प्रावधानों को इस प्रकार समझा जाना चाहिए कि पुलिस रिपोर्ट से यह निष्कर्ष निकलने पर कि मामला सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय है, विद्वान मजिस्ट्रेट मामले को सत्र न्यायालय को सौंपने में निष्क्रिय भूमिका निभाते हैं। न ही आंशिक रूप से मजिस्ट्रेट द्वारा और आंशिक रूप से विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा संज्ञान लिए जाने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

40. इस मामले के दृष्टिकोण से, हमें किशुन सिंह [किशुन सिंह बनाम बिहार राज्य, (1993) 2 एससीसी 16: 1993 एससीसी (सीआरआइ) 470] मामले में व्यक्त विचारों से सहमत होने में कोई संकोच नहीं है कि सत्र न्यायालय को किसी मामले को अपने पास भेजने पर उन व्यक्तियों के अपराधों का संज्ञान लेने का अधिकार है, जिन्हें अपराधी के रूप में नामित नहीं किया गया है, लेकिन मामले में उनकी सहभागिता अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों से स्पष्ट होगी। इसलिए, साक्ष्य दर्ज किए बिना भी, धारा 209 के तहत मुकदमा चलाने पर, सत्र न्यायाधीश पुलिस रिपोर्ट के कॉलम 2 में दर्शाए गए व्यक्तियों को, उसमें पहले से नामित व्यक्तियों के साथ, मुकदमे के लिए बुला सकता है।

16. **धर्मपाल (उपरोक्त)** मामले में, तीन न्यायाधीशों की पीठ ने **किशुन सिंह बनाम बिहार राज्य, (1993) 2 एससीसी 16** के फैसले को **रणजीत सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1998) 7 एससीसी 149** के फैसले से विरोधाभासी पाते हुए, जिसमें सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय मामले में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 193 के तहत मजिस्ट्रेट के अधिकार के संबंध में निर्णय दिया गया था, मामले को एक बड़ी पीठ को सौंप दिया। इसके बाद, एक संविधान पीठ का गठन किया गया, जिसने **धर्मपाल (उपरोक्त)** के पैराग्राफ संख्या 7 में उल्लिखित छह प्रश्न तैयार किए, जो इस प्रकार हैं:

7. संविधान पीठ के विचारणीय प्रश्न निम्नलिखित हैं:

7.1. क्या पुलिस रिपोर्ट से यह निष्कर्ष निकलने पर कि मामला सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय है, मामले को सत्र न्यायालय को सौंपने के बाद, कमिटिंग मजिस्ट्रेट की कोई अन्य भूमिका है?

7.2. यदि मजिस्ट्रेट पुलिस रिपोर्ट से असहमत है और उसे विश्वास है कि रिपोर्ट के कॉलम 2 में जिन व्यक्तियों को रखा गया है, उनके विरुद्ध भी मुकदमा चलाया जा सकता है, तो क्या उसके पास उनके विरुद्ध भी समन

जारी करने का अधिकार है ताकि पुलिस रिपोर्ट में दर्ज मामले के संबंध में उनके नाम नफे सिंह के साथ शामिल किए जा सकें?

7.3. अपीलकर्ताओं के विरुद्ध सम्मन जारी करने का निर्णय लेने के बाद, क्या मजिस्ट्रेट के लिए शिकायत मामले की प्रक्रिया का पालन करना तथा उन्हें सत्र न्यायालय में सुनवाई के लिए भेजने से पहले साक्ष्य लेना आवश्यक था या क्या ऐसी प्रक्रिया का पालन किए बिना उनके विरुद्ध सम्मन जारी करना न्यायोचित था?

7.4. क्या सत्र न्यायाधीश, आरंभिक अधिकार क्षेत्र वाले न्यायालय के रूप में, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 193 के अंतर्गत समन जारी कर सकते हैं?

7.5. मामला सत्र न्यायालय को सौंपे जाने पर, क्या सत्र न्यायाधीश, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 193 के अंतर्गत अलग से समन जारी कर सकते हैं या उन्हें धारा 319 के अंतर्गत समन जारी करने के लिए प्रतीक्षा करनी होगी?

7.6. क्या रणजीत सिंह [रणजीत सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1998) 7 एससीसी 149: 1998 एससीसी (क्रि) 1554] का मामला, जिसने किशुन सिंह [किशुन सिंह बनाम बिहार राज्य, (1993) 2 एससीसी 16: 1993 एससीसी (क्रि) 470] मामले के निर्णय को रद्द कर दिया, सही निर्णय था या नहीं?

17. संविधान पीठ ने अंततः माना कि **किशुन सिंह (उपरोक्त)** में निर्णय सही है और रणजीत सिंह (उपरोक्त) में निर्णय मामले को सत्र न्यायालय को सौंपे जाने के बाद उसकी शक्ति के संबंध में सही कानून निर्धारित नहीं करता है।

18**. बलवीर सिंह (उपरोक्त)** मामले में **धर्मपाल (उपरोक्त)** की संविधान पीठ के फैसले पर भी विचार किया गया, जिसमें यह टिप्पणी की गई थी कि मजिस्ट्रेट, पुलिस रिपोर्ट प्राप्त होने के बाद, पुलिस रिपोर्ट में उपलब्ध सामग्री के आधार पर किसी अपराध का संज्ञान ले सकता है, भले ही उसका उल्लेख आरोप-पत्र में न हो। **बलवीर सिंह (उपरोक्त)** के पैराग्राफ संख्या 12 को निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है:-

12. उपर्युक्त प्रावधानों के मद्देनजर, यह प्रश्न उठता है कि क्या मजिस्ट्रेट किसी ऐसे अपराध का संज्ञान ले सकता है जो सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय है या उसे केवल कार्यवाही पूरी होने के बाद मामले को सत्र न्यायालय को सौंप देना है, क्योंकि सत्र न्यायालय ही ऐसे मामलों की सुनवाई करने के लिए सक्षम है। एक ओर, संहिता की धारा 190 मजिस्ट्रेट को "किसी भी अपराध का संज्ञान लेने" का अधिकार देती है, जिससे यह आभास होता है कि ऐसा मजिस्ट्रेट ऐसे अपराध का भी संज्ञान ले सकता है जो सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय है। दूसरी ओर, जब मामला मजिस्ट्रेट द्वारा सत्र न्यायालय को सौंपा जाता है, तो संहिता की धारा 193 यह निर्धारित करती है कि सत्र न्यायालय "मूल अधिकार क्षेत्र वाले न्यायालय के रूप में" संज्ञान लेगा, जो दर्शाता है कि सत्र न्यायालय द्वारा संज्ञान मूल अधिकार क्षेत्र वाले न्यायालय के रूप में लिया जाता है और, इस प्रकार, यह पहली बार संज्ञान लिया जाता है और मामले को सत्र न्यायालय को सौंपते समय मजिस्ट्रेट द्वारा पारित कोई भी आदेश उस अपराध का संज्ञान लेने के बराबर नहीं है जो सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय है।

19. सर्वोच्च न्यायालय ने **नाहर सिंह (उपरोक्त)** मामले में, **धर्मपाल (उपरोक्त)** और **बलवीर सिंह (उपरोक्त)** के मामले में पाँच न्यायाधीशों की पीठ के फैसले पर विचार करने के बाद, पुनः यह टिप्पणी की कि पुलिस रिपोर्ट प्राप्त होने पर, मजिस्ट्रेट आरोप पत्र में उल्लिखित जाँच अधिकारी की राय मानने के लिए बाध्य नहीं है। वह स्वतंत्र रूप से पुलिस रिपोर्ट में उपलब्ध सामग्री का अध्ययन कर सकता है और उस व्यक्ति के विरुद्ध भी अपराध का संज्ञान ले सकता है जिसका न तो अभियुक्त के रूप में उल्लेख किया गया है और न ही पुलिस रिपोर्ट के कॉलम 2 में उसका उल्लेख है, और यह भी टिप्पणी की गई कि मजिस्ट्रेट का यह कर्तव्य है कि वह उस व्यक्ति पर मुकदमा चलाए जिसके विरुद्ध पुलिस रिपोर्ट में सामग्री मौजूद है। **नाहर सिंह (उपरोक्त)** के पैराग्राफ संख्या 25, 26 और 27 को निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है:-

25. सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय किसी अपराध का संज्ञान लेने के लिए मजिस्ट्रेट का अधिकार क्षेत्र हमारे समक्ष विवाद का विषय नहीं है। पुलिस रिपोर्ट प्रस्तुत करने पर मजिस्ट्रेट के लिए उपलब्ध मार्ग की चर्चा धर्मपाल [धर्मपाल बनाम हरियाणा राज्य, (2014) 3 एससीसी 306 : (2014) 2 एससीसी (क्रि) 159] में की जा चुकी है। धर्मपाल [धर्मपाल बनाम हरियाणा राज्य, (2014) 3 एससीसी 306 : (2014) 2 एससीसी (क्रि) 159] मामले में रिपोर्ट के पैरा 39 में, मजिस्ट्रेट की ऐसी शक्ति या अधिकार क्षेत्र का उल्लेख किया गया है। हमने इस अंश को इस निर्णय में पहले भी उद्धृत किया है।

26. जहां तक इस मामले का संबंध है, तथ्यात्मक आधार के संबंध में दूसरा अंतर, जिस पर संविधान पीठ ने धर्म पाल [धर्म पाल बनाम हरियाणा राज्य, (2014) 3 एससीसी 306: (2014) 2 एससीसी (सीआरआइ) 159] और रघुबंस दुबे [रघुबंस दुबे बनाम बिहार राज्य, (1967) 2 एससीआर 423: एआइआर 1967 एससी 1167] मामले में निर्णय दिया था, यह है कि इन दोनों मामलों में, अभियुक्त के रूप में आरोपित व्यक्तियों के नाम आरोप-पत्र के कॉलम (2) में दिए गए थे। जैसा कि रघुवंश दुबे [रघुवंश दुबे बनाम बिहार राज्य, (1967) 2 एससीआर 423 : एआईआर 1967 एससी 1167] के निर्णय से पता चलता है, इस कॉलम में "नहीं भेजा गया" शीर्षक के तहत एक व्यक्ति का नाम दर्ज है। उस मामले में, संबंधित व्यक्ति का नाम एफआईआर में दर्ज था। लेकिन हमारी राय में, इस कारक को, अपने आप में, अदालत द्वारा उस अभियुक्त को समन न करने का कारण नहीं माना जाना चाहिए जिसका नाम एफआईआर में नहीं है और जिसका नाम आरोप पत्र में भी नहीं है। ये निर्णय उन मामलों में दिए गए थे जहाँ अभियुक्त के रूप में अभियोग लगाए जाने वाले व्यक्तियों के नाम पुलिस रिपोर्ट के कॉलम (2) में दिए गए थे। हमारी राय में, इस बिंदु पर विचार करते समय निर्धारित कानूनी प्रस्ताव केवल उन व्यक्तियों को समन करने के अधिकार तक सीमित नहीं था, जिनके नाम आरोप-पत्र के कॉलम (2) में दिए गए थे।

27. धर्म पाल [धर्म पाल बनाम हरियाणा राज्य, (2014) 3 एससीसी 306 : (2014) 2 एससीसी (क्रि) 159] में, दूसरा बिंदु (पैरा 7.2) कॉलम (2) में नामित व्यक्तियों से संबंधित था, लेकिन संविधान पीठ के समक्ष मुद्दा केवल उसी श्रेणी के व्यक्तियों से संबंधित था। हरदीप सिंह [हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2014) 3 एससीसी 92 : (2014) 2 एससीसी (क्रि) 86] और रघुबंस दुबे [रघुबंस दुबे बनाम बिहार राज्य, (1967) 2 एससीआर

423 : एआईआर 1967 एससी 1167] में कानून की यही स्थिति प्रतिपादित की गई है। बाद वाले प्राधिकारी में, किसी अपराध का संज्ञान लेने वाले न्यायालय का कर्तव्य यह माना गया है कि "यह पता लगाना कि अपराधी वास्तव में कौन हैं और जब वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि पुलिस द्वारा भेजे गए व्यक्तियों के अलावा कुछ अन्य व्यक्ति भी इसमें शामिल हैं, तो उन व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करना उसका कर्तव्य है।" अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करने का ऐसा कर्तव्य केवल उन व्यक्तियों तक ही सीमित नहीं माना जा सकता जिनके नाम आरोप-पत्र के स्तंभ (2) में दिए गए हैं।

20. जहां तक **गिरीश राधाकृष्णन वर्दे (उपरोक्त)** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का संबंध है, ऐसा प्रतीत होता है कि यह निर्णय **प्रमथ नाथ मुखर्जी (उपरोक्त)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के पूर्व निर्णय तथा **धर्म पाल (उपरोक्त)** के मामले में संवैधानिक पीठ के निर्णय पर विचार किए बिना पारित किया गया है। कानून में यह सर्वविदित है कि एक वृहद पीठ का निर्णय बाध्यकारी होगा। इसी प्रकार, **केंद्र शासित प्रदेश लद्दाख बनाम जम्मू-कश्मीर नेशनल कॉन्फ्रेंस, आईएनएससी 2023 (804)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने भी यह टिप्पणी की है कि किसी मुद्दे पर समान पीठ के परस्पर विरोधी निर्णयों की स्थिति में, पहले दिया गया निर्णय बाध्यकारी होगा। इसलिए, **प्रमथ नाथ मुखर्जी (उपरोक्त)** मामले में दिया गया निर्णय बाध्यकारी होगा।

21. इस मुद्दे पर इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने **सादाब (उपरोक्त)** मामले में भी विचार किया था। उस मामले में, माननीय न्यायमूर्ति समीर जैन ने यह भी टिप्पणी की थी कि **धर्मपाल (उपरोक्त)** मामले की संविधान पीठ को **गिरीश राधाकृष्णन वर्दे (उपरोक्त)** मामले की सुनवाई कर रही पीठ के समक्ष नहीं रखा गया था। इसलिए, **धर्मपाल (उपरोक्त)** मामले में संविधान पीठ के निर्णय के आलोक में, संबंधित मजिस्ट्रेट को पुलिस रिपोर्ट में उपलब्ध सामग्री के आधार पर किसी भी अपराध का संज्ञान लेने का अधिकार है, भले ही उस अपराध की धारा का उल्लेख आरोप-पत्र में न किया गया हो।

22. उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि पुलिस रिपोर्ट प्राप्त होने के बाद, मजिस्ट्रेट धारा 190(1)(बी) दं.प्र.सं. के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकता है और जांच अधिकारी की राय से प्रभावित हुए बिना पुलिस रिपोर्ट में उपलब्ध सामग्री के आधार पर किसी व्यक्ति के खिलाफ किसी भी अपराध का संज्ञान ले सकता है। संज्ञान लेते समय मजिस्ट्रेट की इस शक्ति में उस व्यक्ति को समन करना शामिल है जिसका नाम पुलिस रिपोर्ट में अभियुक्त के रूप में नहीं है, किसी विशेष धारा (धाराओं) के तहत अपराध का संज्ञान लेना, भले ही उस धारा का आरोप-पत्र में उल्लेख न किया गया हो, या इस आधार पर उस धारा में संज्ञान न लेकर किसी धारा को हटा देना कि पुलिस रिपोर्ट में उस अपराध के संबंध में कोई सामग्री नहीं है।

23. विद्वान ए.जी.ए. द्वारा अवलम्ब लिए गए **डबलू कुजूर (उपरोक्त)** मामले के निर्णय में, सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी अवधारित किया कि पुलिस रिपोर्ट प्राप्त करने के बाद संज्ञान लेने के समय, मजिस्ट्रेट रिपोर्ट से असहमत हो सकता है और किसी भी व्यक्ति के खिलाफ संज्ञान ले सकता है और प्रक्रिया जारी कर सकता है। यह निर्णय इस बात का भी समर्थन करता है कि मजिस्ट्रेट जाँच अधिकारी की राय से बाध्य नहीं है और पुलिस

रिपोर्ट में उपलब्ध सामग्री के आधार पर किसी अपराध के संज्ञान के संबंध में स्वतंत्र निर्णय ले सकता है। **डबलू कुजूर (उपरोक्त)** के अनुच्छेद संख्या 13 और 14 को निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है:-

13. हम धारा 173(2) को लेकर अधिक चिंतित हैं क्योंकि हमने पाया है कि जांच अधिकारी आरोप-पत्र/पुलिस रिपोर्ट प्रस्तुत करते समय उक्त प्रावधान की आवश्यकताओं का अनुपालन नहीं करते हैं। यद्यपि यह सत्य है कि धारा 173(2) के अंतर्गत प्रस्तुत की जाने वाली रिपोर्ट का प्रारूप राज्य सरकार द्वारा निर्धारित किया जाना है तथा प्रत्येक राज्य सरकार का अपना पुलिस मैनुअल है जिसका पुलिस अधिकारियों द्वारा अपने कर्तव्य का निर्वहन करते समय पालन किया जाना आवश्यक है, तथापि पुलिस रिपोर्ट/आरोप-पत्र में ऐसे अधिकारियों द्वारा अनुपालन की जाने वाली अनिवार्य अपेक्षाएं धारा 173, विशेषकर इसकी उपधारा (2) में निर्धारित की गई हैं।

14. यह ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि अध्याय XII दं.प्र.सं. में परिकल्पित जांच से पहले, उसके दौरान और बाद में पुलिस स्टेशन के प्रभारी पुलिस द्वारा विभिन्न रिपोर्ट प्रस्तुत की जानी अपेक्षित हैं, लेकिन यह केवल पुलिस अधिकारी द्वारा धारा 173 दं.प्र.सं. की उपधारा (2) के तहत मजिस्ट्रेट को भेजी गई रिपोर्ट है जो सक्षम न्यायालय द्वारा उस पर संज्ञान लेने का आधार बन सकती है। आरोप-पत्र कुछ और नहीं बल्कि धारा 173(2)दं.प्र.सं. के तहत पुलिस अधिकारी की अंतिम रिपोर्ट है। यह जांच अधिकारी की संबंधित अदालत को दी गई राय या सूचना है कि जांच के दौरान एकत्र की गई सामग्री के आधार पर, ऐसा प्रतीत होता है कि किसी विशेष व्यक्ति या व्यक्तियों द्वारा कोई अपराध किया गया है, या ऐसा प्रतीत होता है कि कोई अपराध नहीं किया गया है।

24. मामले के तथ्यों पर वापस आते हुए, आक्षेपित आदेश से यह स्पष्ट है कि इसे पारित करते समय विद्वान मजिस्ट्रेट ने शिकायतकर्ता के बयान को धारा 161 और 164 दं.प्र.सं. के तहत ध्यान में रखा है। प्रतिपक्षी संख्या 2 ने धारा 161 दं.प्र.सं. के तहत अपने बयान में अपने ससुर के खिलाफ शील भंग करने का आरोप लगाया, लेकिन धारा 164 दं.प्र.सं. के तहत अपने बयान में उसने अपने ससुर के खिलाफ बलात्कार के प्रयास का आरोप लगाया, साथ ही यह भी आरोप लगाया कि सीसीटीवी कैमरे की फुटेज से इसकी पुष्टि की जा सकती है, लेकिन न तो पुलिस ने सीसीटीवी कैमरे की फुटेज बरामद की है और न ही प्रथम सूचनाकर्ता ने पुलिस को यह फुटेज दी है। ऐसी परिस्थितियों में, मजिस्ट्रेट ने एक निर्विवाद आरोप के आधार पर धारा 354 दं.प्र.सं. के तहत संज्ञान लिया। इसी प्रकार, भाभी के खिलाफ मारपीट का कोई आरोप नहीं है। उन पर एकमात्र आरोप यह है कि वे उसे ताना मारते थे। जहाँ तक धारा 406 भा.दं.सं. के तहत संज्ञान न लेने का सवाल है, प्रतिपक्षी संख्या 2 के धारा 161 और 164 के तहत बयानों के अवलोकन से, ऐसा कोई आरोप नहीं है जो प्रथम दृष्टया धारा 406 भा.दं.सं. के तहत अपराध को आकर्षित करता हो।

25. इसलिए, इस न्यायालय को विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश में कोई अवैधता नहीं लगती है, जिसके द्वारा उन्होंने धारा 376, 511 और 406 भा.दं.सं. के तहत अपराध का संज्ञान लेने से इनकार कर दिया था।

26. तदनुसार, वर्तमान आवेदन खारिज किया जाता है।

(2025) 4 ILRA 811

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 09.04.2025

पूर्व

माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिरला

माननीय न्यायमूर्ति प्रवीण कुमार गिरि

आपराधिक अपील संख्या 275 वर्ष 1986

बाँदू राम **...अपीलकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य **...प्रतिवादी**

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

श्री आर.एन. लाल, श्री अक्षय कुमार शुक्ला, श्री गौरव सिंह, श्री रवींद्र पाल सिंह कश्यप

प्रतिवादी के अधिवक्ता:

ए.जी.ए.

अनुवादित

(ए) आपराधिक कानून - हत्या - दोषसिद्धि के खिलाफ अपील - न्यायेतर स्वीकारोक्ति - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302 - साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 8 और 27 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 161 और 313 - गांव के चौकीदार के समक्ष स्वेच्छा से की गई न्यायेतर स्वीकारोक्ति और मानव रक्त से सने हथियार की बरामदगी द्वारा समर्थित - विरोधी गवाहों के साक्ष्य विश्वसनीय पाए जाने की सीमा तक स्वीकार्य - विरोधी गवाहों की आंशिक विश्वसनीयता बरकरार - नमूना हस्ताक्षर देने से इनकार करने से निकाला गया प्रतिकूल अनुमान - विरोधी गवाह - न्यायेतर स्वीकारोक्ति - प्रतिकूल अनुमान - अभियुक्त की बरामदगी और आचरण द्वारा पुष्ट न्यायेतर स्वीकारोक्ति पर दोषसिद्धि बरकरार रखी जा सकती है। (पैरा -4, 6, 7, 20, 43-48, 54, 55, 56, 59-61)

अभियुक्त ने चरित्र पर संदेह के कारण अपनी पत्नी की हत्या करना स्वीकार किया - पुलिस को हथियार सौंप दिया - फोरेंसिक साक्ष्यों से भी स्वीकारोक्ति की पुष्टि हुई - चौकीदार (पी.डब्लू.-1) द्वारा तुरंत एफआईआर दर्ज कराई गई - जो बाद में अपने बयान से पलट गया। (पैरा - 4-7, 20, 47, 60)

अवधारित: - अभियुक्त के न्यायेतर स्वीकारोक्ति, खून से सने हथियार की बरामदगी और हस्ताक्षर का नमूना देने से इनकार ने अपराध की पुष्टि की। पक्षद्रोही गवाहों की उपयोगी गवाही पर भरोसा किया गया। भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत दोषसिद्धि बरकरार रखी गई। (पैरा 59-61)

आपराधिक अपील खारिज। (ई-7)

<u>उद्धृत मामलों की सूची: -</u>

1. सूर्य बख्श सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2014) 14 एससीसी 222
2. जय प्रकाश सिंह बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, (2012) 4 एससीसी 379
3. प्रदीप नारायण मडगांवकर एवं अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, 1995 (4) एससीसी 255
4. करमजीत सिंह बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन), (2003) 5 एससीसी 291
5. गिरजा प्रसाद बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2007) 7 एससीसी 625
6. प्रकाश चंद बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन), (1979) 3 एससीसी 90
7. ए.एन. वेंकटेश बनाम कर्नाटक राज्य, (2005) 7 एससीसी 714
8. अश्विनी कुमार उर्फ आशु व अन्य बनाम पंजाब राज्य, (2015) 6 एससीसी 308
9. सोम दत्त बनाम पंजाब राज्य, 2019 एससीसी ऑनलाइन पी एंड एच 759
10. भगवान दास बनाम (एनसीटी दिल्ली), (2011) 6 एससीसी 396
11. राजेश यादव व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2022) 12 एससीसी 200
12. दिगंबर बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 531

(माननीय न्यायमूर्ति प्रवीण कुमार गिरि द्वारा प्रदत्त)

1. 20.03.2025 को निर्णय आरक्षित रखते हुए, इस न्यायालय ने निम्नलिखित आदेश पारित किया है:
"1. सूची संशोधित। वर्तमान अपील पर दबाव डालने के लिए अपीलकर्ता की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ।

2. दिनांक 29.07.2024 के आदेश के तहत, श्री अनुराग मिश्रा, अधिवक्ता को मामले पर बहस करने के लिए एमिकस क्यूरी नियुक्त किया गया था और उन्होंने पेपर-बुक भी प्राप्त कर ली है।

3. नवीनतम कार्यालय रिपोर्ट के अनुसार, एकमात्र जीवित अपीलकर्ता को उसकी बहू के माध्यम से नोटिस दिया गया है।

4. हम पाते हैं कि दिनांक 05.02.2024 के आदेश के तहत, जब अपीलकर्ता की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ, तो अपीलकर्ता के विरुद्ध जमानती वारंट जारी किया गया था।

5. दिनांक 04.03.2024 के कार्यालय रिपोर्ट के अनुसार, अपीलकर्ता निचली अदालत के समक्ष उपस्थित हुआ और बाद में जमानत पर रिहा कर दिया गया।

6. आज, फिर से अपीलकर्ता की ओर से न्याय मित्र सहित कोई भी उपस्थित नहीं हुआ, जबकि नोटिस तामील की जा चुकी है।

7. **सूर्य बक्श सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2014) 14 एससीसी 222** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अवधारित किया है कि यदि अपीलकर्ता या उसके अधिवक्ता दोनों अनुपस्थित हों तो मामले को स्थगित करना हमेशा आवश्यक नहीं होता है और न्यायालय रिकॉर्ड और विचारण न्यायालय के फैसले के अवलोकन के बाद गुण-दोष के आधार पर अपील का फैसला कर सकता है। यह भी कहा गया है कि यदि अपीलकर्ता की अनुपस्थिति में मामले का निर्णय गुण-दोष के आधार पर किया जाता है, तो उच्च न्यायालय स्थिति को सुधार सकता है। यह भी कहा गया है कि न्यायमित्र की नियुक्ति भी न्यायालय के विवेक पर निर्भर है। उक्त निर्णय के पैराग्राफ 26 में, यह माना गया है कि उच्च न्यायालय के लिए न्यायमित्र की नियुक्ति करना हमेशा आवश्यक नहीं होता है, जिसके पैराग्राफ 24 और 26 इस प्रकार उद्धृत हैं:

"24. हमें लगता है कि अपीलीय न्यायालय के लिए, जहाँ दोषी और उसके अधिवक्ता दोनों अनुपस्थित हैं, यह आवश्यक है कि वह उन व्यक्तियों के विरुद्ध तत्काल कार्यवाही करे जो दोषी को ज़मानत दिए जाने के समय ज़मानतदार थे, क्योंकि इससे दोषी की खोज और अदालत में पेशी हो सकती है। यदि इस प्रयास के बावजूद भी दोषी का पता नहीं चल पाता और उसे अदालत में पेश नहीं किया जा सकता, तो अपीलीय न्यायालय अपील को खारिज करने के लिए अधिकृत है। हम के.एस. पांडुरंगा बनाम कर्नाटक राज्य, (2013) 3 एससीसी 721 में हाल ही में की गई कानून की गहन किन्तु सुस्पष्ट व्याख्या से पूरी तरह और सम्मानपूर्वक सहमत हैं। पिछले निर्णयों के व्यापक विश्लेषण के बाद, हमारे विद्वान बंधु ने विधिक स्थिति को छह प्रस्तावों में संक्षेपित किया है:

19.1. उच्च न्यायालय <u>अभियोजन न करने की अपील को गुण-दोष की जांच किए बिना खारिज नहीं कर सकता;</u>
19.2. <u>यदि अपीलकर्ता या उसके अधिवक्ता दोनों अनुपस्थित हों तो न्यायालय मामले को स्थगित करने के लिए बाध्य नहीं है;</u>
19.3. <u>न्यायालय विवेक या उदारता के आधार पर मामले को स्थगित कर सकता है, लेकिन वह ऐसा करने के लिए बाध्य नहीं है;</u>
19.4. <u>वह निचली अदालत के रिकॉर्ड और निर्णय का अवलोकन करने के बाद अपील का निस्तारण कर सकता है।</u>

19.5. यह कि यदि अभियुक्त जेल में है और स्वयं न्यायालय में नहीं आ सकता है, तो मामले को स्थगित करना और अपीलकर्ता-अभियुक्त की उपस्थिति को सुगम बनाने के लिए कोई अन्य तिथि निर्धारित करना उचित होगा, यदि उसका अधिवक्ता उपस्थित नहीं है, और यदि अधिवक्ता अनुपस्थित है और न्यायालय अपनी सहायता के लिए राज्य के खर्च पर एक अधिवक्ता नियुक्त करना उचित समझता है, तो कानून में ऐसा करने से न्यायालय को कोई नहीं रोकेगा; और

19.6. यह कि यदि अपीलकर्ता की अनुपस्थिति में मामले का निर्णय गुण-दोष के आधार पर किया जाता है, तो उच्च न्यायालय स्थिति को सुधार सकता है।

25 ...

26. वर्तमान मामले के तथ्यों पर वापस लौटते हुए, आक्षेपित आदेश का अवलोकन करने पर यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट हो जाता है कि उच्च न्यायालय ने मामले पर उसकी सभी जटिलताओं के साथ विचार किया है। यह तर्क कि उच्च न्यायालय न्यायमित्र नियुक्त करने के लिए बाध्य था, कानूनी रूप से सही नहीं है। पांडुरंगा ने मोहम्मद सुकुर अली बनाम असम राज्य (1996) 4 एससीसी 729 को इंक्यूरियम के अनुसार सही माना है, यद्यपि इसमें न्यायमित्र की नियुक्ति अनिवार्य है और इस प्रकार यह बानी सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1996) 4 एससीसी 720 के साथ असंगत है। इस मामले में, उच्च न्यायालय ने प्रस्तुत साक्ष्यों पर स्पष्ट रूप से विचार किया है और उन्हें साक्ष्य-मूल्यवान पाते हुए, इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि दोषसिद्धि अपीलीय निन्दा, सुधार और हस्तक्षेप से परे है। कानून के विश्लेषण के आधार पर, हमारे समक्ष उठाया गया यह तर्क कि उच्च न्यायालय के लिए एक न्यायमित्र नियुक्त करना आवश्यक था, पूरी तरह से अस्वीकार्य है। उच्च न्यायालय ने अपीलीय न्यायालय पर आने वाली न्यायमित्रीय जिम्मेदारी का विधिवत निर्वहन किया है और उसके द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण में कोई दोष नहीं पाया जा सकता। इस संबंध में, हमें कोई त्रुटि नहीं दिखती।?"

(प्रभाव वर्धित)

8. ऐसी परिस्थितियों में, हम राज्य की ओर से विद्वान एजीए-I श्री अमित सिन्हा की सहायता से वर्तमान अपील पर गुण-दोष के आधार पर विचार करने के लिए आगे बढ़ते हैं।

9. **निर्णय सुरक्षित रखा गया।"**

2. हमने विचारण न्यायालय के रिकॉर्ड और फैसले का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है और अभियोजन पक्ष के समर्थन में विद्वान एजीए-I श्री अमित सिन्हा को सुना है।

3. वर्तमान अपील थाना- शहजाद नगर, जिला-रामपुर में धारा 302 भा.दं.सं. के तहत मुकदमा अपराध संख्या 249 से उद्भूत, श्री बी.के.श्रीवास्तव, सत्र न्यायाधीश, रामपुर द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 122/1985 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 20.01.1986 को चुनौती देते हुए दायर की गई है, जिसमें अपीलकर्ता बाँदू राम को धारा 302 भा.दं.सं. के तहत आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई थी।

4. **अभियोजन पक्ष की कहानी** संक्षेप में यह है कि गाँव के चौकीदार सुमेरी (शिकायतकर्ता), जो अभियुक्त बाँदू राम का पड़ोसी है, 17.12.1984 को लगभग 10:00 बजे, अभियुक्त और उसकी पत्नी के बीच तीखी बहस का शोर सुनकर, अभियुक्त के घर गया और उसे पता चला कि दम्पति अपने खेत में कुछ देखने गए हैं। गाँव का चौकीदार होने के नाते, वह दम्पति को देखने के लिए खेत की ओर गया, तभी लगभग 11:00 बजे रात को, अभियुक्त उसे गाँव के बाहर रास्ते में मिला, जो अपने खेत से आ रहा था। शिकायतकर्ता ने उसकी पत्नी के बारे में पूछताछ की। इस पर, आरोपी ने उसे बताया कि उसकी पत्नी का चरित्र खराब है और उसने घर के गहने बेच दिए हैं, इसलिए उसने उसे खेत में मार डाला है। इसके बाद, शिकायतकर्ता कुछ ग्रामीणों के साथ खेत पर गया और पुआल के पास मृतका रामश्री का शव पड़ा देखा। इसके बाद शिकायतकर्ता घटना की रिपोर्ट दर्ज कराने थाने गया।

5. हत्या की कथित घटना दिनांक 17.12.1984 को लगभग 11:00 बजे रात्रि में अभियुक्त के खेत में घटित हुई तथा दिनांक 18.12.1984 को 01:00 बजे रात्रि में ग्राम चौकीदार की मौखिक सूचना पर थाना शहजाद नगर, जिला रामपुर में मुकदमा अपराध संख्या 249 धारा 302 भा.दं.सं. के तहत त्वरित प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई।

6. हेड कांस्टेबल प्रेमपाल सिंह (पी.डब्लू.-6) ने चिक रिपोर्ट तैयार की और उसकी कार्बन कॉपी के रूप में जी.डी. में भी विधिवत प्रविष्टि की गई। चिक एफआईआर पर गाँव के चौकीदार ने हस्ताक्षर किए।

7. दिनांक 18.12.1984 को प्रातः लगभग 2:30 बजे मृतका का पति थाने पहुँचा और अपनी पत्नी की हत्या का अपराध स्वीकार करते हुए हस्ताक्षरित रिपोर्ट प्रस्तुत की। उसने खून से सना हुआ धारदार हथियार अर्थात् गंडासा, देशी पिस्तौल, दो जीवित कारतूस और चार खाली कारतूस पुलिस को सौंप दिए।

8. उसी दिन यानी 18.12.1984 को पुलिस ने हथियार, दो ज़िंदा कारतूस और चार खाली कारतूस, तथा एक देसी पिस्तौल सौंपने के संबंध में मेमो तैयार किया। पुलिस को आरोपी पति के कपड़ों पर भी खून के धब्बे मिले, इसलिए कपड़ों को भी पुलिस ने अपने कब्ज़े में ले लिया और उसका मेमो तैयार किया। स्वेटर, कमीज़, पायजामा और खून से सना तेज़ धार वाला हथियार, गंडासा, मानव रक्त की पुष्टि के लिए फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला भेज दिया गया।

9. उसी तारीख यानी 18.12.1984 को जांच अधिकारी यानी पी.डब्लू.-7 मौके पर पहुंचे और पाया कि राम श्री का शव खेत में पड़ा था।

10. उसी तारीख यानी 18.12.1984 को जांच अधिकारी (पी.डब्लू.-7) ने हेड कांस्टेबल प्रेमपाल सिंह (पी.डब्लू.-6) का बयान दर्ज किया, जिसने एफ.आई.आर. लिखी थी और उन्होंने सूचनादाता सुमेरी (चौकीदार), सेवा राम (पी.डब्लू.-3) और होते लाल (पी.डब्लू.-4) के बयान भी धारा 161 दं.प्र.सं. के तहत दर्ज किए थे।

11. उसी तारीख को यानि 18.12.1984 को प्रातः 07:00 बजे जांच अधिकारी ने पंचायतनामा तैयार किया जिसमें उल्लेख किया गया कि रात्रि में उचित प्रकाश नहीं था, इसलिए सुबह गवाहों आंगन लाल, सेवा राम, होते लाल और दल चंद की उपस्थिति में पंचायतनामा तैयार किया गया और पंचायतनामा में उल्लेख किया गया कि प्रथम सूचना रिपोर्ट पी.डब्लू.-1 सुमेरी (चौकीदार) द्वारा दर्ज की गई थी।

12. उसी दिन यानि 18.12.1984 को पुलिस ने खून से सनी मिट्टी के साथ खून से सना ब्लाउज, धोती, पेटीकोट, चोटी, कान की बाली, पीतल की अंगूठी, पैर की अंगूठियों का जोड़ा, तांबे का ताबीज और चूड़ियां (टुकड़ों में) एकत्र कीं और उन्हें फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला में भेजा गया और फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट/सीरोलॉजिकल रिपोर्ट में पाया गया कि इन वस्तुओं पर मानव रक्त था।

13. उसी दिनांक अर्थात् 18.12.1984 को, जांच अधिकारी ने उस खेत की स्थलाकृतिक रिपोर्ट (प्रदर्श क-6) तैयार की, जहाँ मृतक का शव पड़ा था।

14. उसी दिनांक अर्थात् 18.12.1984 को, मृतका के शव का पोस्टमार्टम डॉ. बी.एम. सक्सेना द्वारा किया गया और मृतक के शव पर निम्नलिखित चोटें पाई गईं:

"1- गर्दन के बाईं ओर हड्डी में 20 सेमी x 10 सेमी गहरा चीरा हुआ घाव। चोट के नीचे सभी रक्त वाहिकाओं और मांसपेशियों को काटा गया है।

2- सिर के दाईं ओर खोपड़ी में 2 सेमी x 0.5 सेमी गहरा चीरा हुआ घाव, दाईं भौंह से 10 सेमी ऊपर।

3- जबड़े के दाहिने कोण पर मांसपेशी में 3 सेमी x 0.5 सेमी गहरा चीरा हुआ घाव।

4- बाएं कंधे के पीछे की मांसपेशी में 6 सेमी x 4 सेमी गहरा चीरा हुआ घाव।

5- बाएं अग्रबाहु के मध्य भाग के पीछे की मांसपेशी में 2 सेमी x 0.5 सेमी गहरा चीरा हुआ घाव।

6- बाईं कोहनी के जोड़ के पीछे की त्वचा में 2 सेमी x 0.5 सेमी गहरा चीरा हुआ घाव।

7- बाईं हथेली पर मांसपेशी में 3 सेमी x 0.5 सेमी गहरा चीरा हुआ घाव।"

डॉक्टर ने राय दी थी कि मृत्यु का कारण मृत्युपूर्व चोटों के परिणामस्वरूप सदमा और रक्तस्राव था।

15. जांच अधिकारी द्वारा जांच पूरी कर ली गई है और मृतका के पति, अभियुक्त-अपीलकर्ता, बाँदू राम के खिलाफ धारा 302 भा.दं.सं. के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है।

16. विद्वान न्यायिक मजिस्ट्रेट ने आरोप पत्र पर संज्ञान लिया और धारा 207 दं.प्र.सं. के अनुपालन के बाद मामले को सत्र न्यायालय को सौंप दिया।

17. विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अभियुक्त-अपीलकर्ता के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अंतर्गत आरोप निर्धारित किए। अभियुक्त ने अपने विरुद्ध लगाए गए आरोपों से इनकार किया और मुकदमे की मांग की।

18. अभियोजन पक्ष ने अपना मामला साबित करने के लिए 8 गवाहों से पूछताछ की, जिनके नाम हैं: पीडब्लू-1 सुमेरी (शिकायतकर्ता); पीडब्लू-2 कृपाल, अभियुक्त के गाँव के व्यक्ति/पड़ोसी; पीडब्लू-3 सेवा राम, अभियुक्त का ग्रामीण/पड़ोसी; पीडब्लू-4 होते लाल, अभियुक्त का ग्रामीण/पड़ोसी; पीडब्लू-5 अख्तर, थाने के पास स्थित चाय की दुकान का मालिक; पीडब्लू-6 हेड कांस्टेबल/हेड मोहर्रिर प्रेमपाल सिंह; पीडब्लू-7 थानेदार योगेंद्र पाल अहलावत और पीडब्लू-8 कांस्टेबल गेंदा सिंह।

19. उपरोक्त के अतिरिक्त, अभियोजन पक्ष ने कुछ दस्तावेज प्रस्तुत किए, जिन्हें परीक्षण के दौरान (i) प्रथम सूचना रिपोर्ट प्रदर्श क1 के रूप में (ii) लिखित रिपोर्ट प्रदर्श क26 के रूप में (iii) देशी पिस्तौल, जीवित और खाली कारतूस और खून से सना 'गंडासा' का बरामदगी मेमो प्रदर्श क3 के रूप में (iv) खून से सने कपड़ों का बरामदगी मेमो प्रदर्श क4 के रूप में (v) 'हवाई चप्पल' का बरामदगी मेमो प्रदर्श क7 के रूप में (vi) खून से सने और सादे पुवाल का बरामदगी मेमो प्रदर्श क8 के रूप में (vii) खून से सने और सादी मिट्टी का बरामदगी मेमो प्रदर्श क9 के रूप में (viii) आभूषणों का बरामदगी मेमो प्रदर्श क17-ए के रूप में (ix) सुमेरी का बयान प्रदर्श क19 के रूप में (x) शोभा राम का बयान प्रदर्श क20 के रूप में (xi) पी.एम. रिपोर्ट प्रदर्श क21 के रूप में (xii) विधि विज्ञान प्रयोगशाला की रिपोर्ट प्रदर्श क22 के रूप में (xiii) पंचायतनामा प्रदर्श क10 के रूप में (xiv) आरोप पत्र (मूल) प्रदर्श क18 के रूप में (xv) महाराज सिंह का हलफनामा प्रदर्श क23 के रूप में (xvi) लालता प्रसाद का हलफनामा प्रदर्श क24 के रूप में (xvii) हेतराम सिंह का हलफनामा प्रदर्श क25 के रूप में प्रदर्शित किया गया था।

20. सुमेरी (पी.डब्लू.-1) जो वर्तमान मामले का सूचनादाता है, ने धारा 161 सी.आर.पी.सी. के तहत दिनांक 18.12.1984 को दर्ज अपने बयान में कहा कि उसने अपने पड़ोसी बाँदू राम (अपीलार्थी) और उसकी पत्नी को किसी मुद्दे पर बहस करते हुए सुना और जब वह उनके घर गया तो उसने पाया कि वे अपने खेत में गए हुए हैं। बाद में जब वह उन्हें देखने के लिए खेत में गया तो रास्ते में लगभग 11:00 बजे उसने देखा कि बाँदू राम वापस आ रहा था तब उसने अपीलार्थी को टोका और उसकी पत्नी के बारे में पूछताछ की। इसके बाद अपीलकर्ता ने उसे बताया कि उसकी पत्नी का चरित्र खराब था और उसने घर के गहने बेच दिए थे, इसलिए उसने उसे खेत में मार डाला।
हालाँकि, जब उसे गवाही देने के लिए बुलाया गया, तो उसने अभियोजन पक्ष के बयान का समर्थन नहीं किया और अपने बयान से पलट गया।

21. कृपाल (पीडब्लू-2) ने बयान दिया है कि उसने मृतका को आखिरी बार अभियुक्तों के साथ देखा था। इस गवाह ने अपीलकर्ता को चौकीदार से यह कहते सुना था कि उसने अपनी पत्नी की हत्या कर दी है। उसके बयान के प्रासंगिक अंश इस प्रकार हैं:
"बाँदू राम हाजिर अदालत को जानता हूँ इसकी बीबी मृतका रामश्री को भी जानता था। चाज 9,10 महीने हुये 17-12-84 की बात है कि रात में करीब 10 बजे मै मूलचन्द्र के मकान के पिछवारे झाड़ा किरने गया था तब बाँदू और उसकी औरत को साथ-साथ अताई नगर की तरफ जाते देखा था उधर ही बांदू का खेत है। थोडी देर

बाद उसी तरफ से मैंने हाय की चीख सुनी। तभी चोकीदार सुम्मेरी सोभा राम और छोटे लाल उसी और जाते दिखे तभी बांदू राम उधर से गडासा लिये हुये आया चोकीदार ने इस्से पूच्छा कि तू अपनी बीबी को साथ लेकर गया था वह कहा है तो इसने बचाया कि उस साली को मार आया।

यह सुनकर सुम्मेरी बगैरा लाश की ओर चले गये और बांदू भाग गया। बांदू के अपनी पत्नी से ताल्लुकात खुशगवार नही थे लडाई रहेती थी, मै रजा टेक्स्टाइल्स मे काम करता हूँ डियूटी से छूटकर 7,8 बजे गाव आया था मेरा पेट ठीक नही था इस लिये मै रात मे झाडा फिरने गया था। बांदू घटना के समय व अब भी शिवा पेपर मिल धमोरा मे काम करता है।"

जिरह में यह गवाह अपने पहले वाले बयान से मुकर गया।

22. सेवा राम (पी.डब्लू.-3) ने धारा 161 सी.आर.पी.सी. के तहत अपने बयान में कहा था कि चौकीदार सुमेरी, जो हमारे गाँव का है, ने हमें खेतों की तरफ जाने के लिए बुलाया। इसके बाद, मैं और होते खेत की तरफ गए और रास्ते में हमें बाँदू राम मिला। सुमेरी ने अपीलकर्ता से उसकी पत्नी के बारे में पूछताछ की, तो उसने बताया कि मैंने अपनी पत्नी को मार डाला है। वह खेत में पुआल पर पड़ी है। ज्ञात हुआ कि कल शाम को बाँदू राम और उसकी पत्नी के बीच किसी बात को लेकर झगड़ा हुआ था और उनका विवाद पहले से चला आ रहा है। उस समय बाँदू राम अपने हाथ में गंडासा और पिस्तौल पकड़े हुए था।

हालाँकि, जब यह गवाह अदालत में गवाही देने के लिए आया, तो उसने भी अभियोजन पक्ष के बयान का समर्थन नहीं किया और अपने बयान से पलट गया।

23. होते लाल (पी.डब्लू.-4), जो पंचायतनामा का भी गवाह था, ने निम्नलिखित गवाही दी थी:

"बांदू राम मुलजिम हाजिर अदालत को जान्ता हूँ यह हमारे गांव का है इसकी बीबी रामश्री को भी जान्ता था। रामश्री का कत्ल करीब 10 महीने हुये होगया। कत्ल की रात सुम्मेरी चौकीदार मेरे घर पर आया और मुझे व सेवा राम को लेकर गश्त लगाने को चला। जब हम लोग मूल चन्द्र के मकान के पिछवाड़े पहुंचे तो सामने से बांदू राम मुलजिम हाजिर अदालत हाथ मे में गडांसा लिये हुये आता दिखाई दिया तब सुम्मेरी जो हम लोगो मे सब से आगे था ने बांदू राम को रोका। पूछने पर उसने बताया कि वह अपनी औरत का कत्ल करके आ रहा है और बताया कि लाश अपने चक मे पयाल के ढेर मे डाल आया है यह बताकर बांदू राम चला गया। हम लोग फिर बादू के खेत पर गये वहां पर बांदू की औरत की लाश पडी थी उसके एक पैर मे हवाई चप्पल पहनी हुई थी ओर एक चप्पल अलग पडी हुई थी। मैंने वहां पर और कुछ नही देखी।

बांदू राम की इसकी औरत से पटती नही थी खूब झगडा होता था मेरा घर पास मे है मै बराबर झगडा सुनता था उसके लिये खाना भी नही बनाती थी यह खुद बनाता था। रामश्री की लाश का दरोगाजी मे पचायंतनामा तइयार किया था। उसमे मै गवाह था।"

24. अख्तर (पी.डब्लू.-5) का दावा है कि थाने के पास उसकी एक चाय की दुकान है। उसने गवाही दी कि उसने अभियुक्त-अपीलकर्ता को गंडासा लेकर थाने जाते देखा था। उसने यह भी कहा कि वह अभियुक्त को नाम से नहीं जानता।

25. हेड कांस्टेबल प्रेमपाल सिंह (पी.डब्लू.-6) ने अपनी गवाही में साबित किया कि एफआईआर सुमेरी (पी.डब्लू.-1) ने दर्ज कराई थी और बाकी फर्दें भी उसने ही तैयार की थीं। इसके अलावा, उसने अभियुक्त द्वारा लिखित रिपोर्ट, खून से सना गंडासा, देसी पिस्तौल, दो ज़िंदा कारतूस और चार खाली कारतूस पेश करने की गवाही दी।

26. मामले के जाँच अधिकारी, एस.ओ. योगेंद्र पाल सिंह अहलावत (पी.डब्लू.-7) ने जाँच के दौरान किए गए संपूर्ण कार्य के बारे में बयान दिया। उन्होंने बयान दिया कि 18.12.1984 को मैं शाहजहाँ नगर पुलिस स्टेशन में थाना प्रभारी के पद पर तैनात था। उस दिन दोपहर 1 बजे सुमेरी चौकीदार ने मेरी उपस्थिति में घटना की एफआईआर (प्रदर्श क-1) दर्ज की। हेड कांस्टेबल प्रेमपाल ने रिपोर्ट लिखी। इसके बाद मैं, एसआई अतर सिंह और अन्य अधिकारियों के साथ गाँव अताई नगर के लिए रवाना हुआ, जहाँ मुझे रामश्री का शव अभियुक्त के खेत में पड़ा मिला, लेकिन पर्याप्त रोशनी न होने के कारण मैं रात में शव का पंचायतनामा नहीं कर सका। मैंने घटनास्थल पर होते लाल और सेवा राम के बयान ले लिए हैं। मैंने सुबह एसआई अतर सिंह के माध्यम से शव का पंचायतनामा करवाया और साइट प्लान (प्रदर्श क-6) तैयार किया। शव पुआल पर पड़ा था, पास में खून और एक जोड़ी चप्पलें पड़ी थीं। मैंने मौके से खून से सनी मिट्टी, पुआल और सादी मिट्टी कब्जे में लेकर प्रदर्श 14 से 17 तक अंकित कर दिए थे। मृतक के शव को चिक रिपोर्ट की प्रति और संबंधित दस्तावेजों के साथ पोस्टमार्टम के लिए भेज दिया गया था। तभी मुझे पता चला कि आरोपी थाने में है और उससे पूछताछ करनी है। थाने पहुँचकर मैंने आरोपी का बयान लिया। फिर मैंने हेड कांस्टेबल प्रेमपाल, कांस्टेबल गेंदा सिंह, कांस्टेबल राजवीर सिंह और पी.डब्लू.-5 अख्तर व एक अन्य के बयान लिए। फिर मैं थाने से वापस घटनास्थल पर गया और रात वहीं रुका।

27. इस साक्षी ने आगे यह भी बयान दिया कि 18.12.1984 को प्रातः लगभग 8:30 बजे उसने आस-पड़ोस के कुछ लोगों के बयान लिए और मृतका के शरीर पर मिले ब्लाउज, धोती, पेटीकोट, चोटी, कान की बाली, अंगूठी, बिछिया, ताबीज़ और चूड़ियाँ (टुकड़ों में) अपने कब्ज़े में ले लीं और उन पर प्रदर्श 5 से 13 तक के निशान लगा दिए। अभियुक्त के कपड़े और गंडासा आदि रासायनिक परीक्षक के पास जाँच के लिए भेजे गए और उन्होंने जाँच रिपोर्ट में सुमेरी (पीडब्लू-1) के अंगूठे के निशान में कोई ओवरराइटिंग नहीं पाई। जिरह में, उसने मुख्य परीक्षा में दिए गए बयानों का खंडन किया। इस गवाह ने तो यहां तक कि इस बात से भी इनकार किया कि उसने एक सफेद कागज पर अंगूठे का निशान लिया था और उसके बाद उसने स्वयं सुमेरी की रिपोर्ट लिखी थी।

28. गेंदा सिंह (पी.डब्लू.-8) ने बताया कि जब अभियुक्त ने खून से सने गंडासे के साथ आत्मसमर्पण किया, तब वह थाने में मौजूद था। उसने अभियुक्त के खून से सने कपड़े भी अपने कब्जे में लेने की बात कही है।

29. अभियोजन पक्ष का साक्ष्य पूरा होने के बाद, अभियुक्त से धारा 313 दं.प्र.सं. के तहत पूछताछ की गई, जिसमें अभियुक्त अपीलकर्ता ने कहा था कि उसे झूठा फंसाया गया था, जो गवाह पेश किए गए थे उन्होंने झूठे बयान दिए थे।

30. मुकदमे के अंत में, अभियोजन पक्ष और बचाव पक्ष की ओर से दलीलें सुनने के बाद, विचारण न्यायालय ने अभियुक्त-अपीलकर्ता को उपरोक्त के अनुसार दोषी ठहराया।

31. निचली अदालत के समक्ष प्रस्तुत आधार यह है कि घटना वाली रात की अगली सुबह, अपीलकर्ता अपनी बैठक में सो रहा था, तभी पुलिसकर्मियों ने उसे जगाया और बताया कि उसकी पत्नी की हत्या कर दी गई है। पुलिसकर्मियों ने उससे अपराधी का नाम भी पूछा। चूँकि उसने अपराधी का नाम बताने में असमर्थता जताई थी, इसलिए पुलिसकर्मियों ने उसे झूठा फँसा दिया। उसने यह भी आरोप लगाया है कि उसकी पत्नी के साथ उसके संबंध बहुत अच्छे थे।

32. विचारण न्यायालय के समक्ष अभियुक्त द्वारा यह भी दलील दी गई कि एफआईआर साबित नहीं हुई है और मकसद भी साबित नहीं हुआ है।

33. विद्वान निचली अदालत के समक्ष यह भी तर्क दिया गया कि दोषसिद्धि का आदेश मान्य नहीं है क्योंकि पीडब्लू-1, चौकीदार/शिकायतकर्ता और पीडब्लू-3, सेवा राम ने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं किया है और उन्हें पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया है। कथित घटना का कोई प्रत्यक्षदर्शी गवाह नहीं है और अभियोजन पक्ष ने अपीलकर्ता को झूठा फंसाया है। यह मामला न्यायेतर स्वीकारोक्ति पर आधारित है जो एक बहुत ही कमज़ोर साक्ष्य है और कानून की नज़र में मान्य नहीं है। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अभियोजन पक्ष के पक्ष में प्रस्तुत साक्ष्य को गलत पढ़ा है और अभियोजन पक्ष सभी उचित संदेहों से परे अपना मामला साबित करने में विफल रहा है।

34. अपील मेमो में आधार यह लिया गया है कि दोषसिद्धि और दण्डादेश अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के भार के विरुद्ध है; विधि के प्रतिकूल है; तथा अत्यन्त कठोर है।

35. इसके विपरीत, विद्वान ए.जी.ए. ने तर्क दिया है कि यह मामला त्वरित प्राथमिकी दर्ज करने और अभियुक्त-अपीलकर्ता द्वारा न केवल पुलिसकर्मियों के समक्ष, बल्कि पीडब्लू-1, पीडब्लू-3 और पीडब्लू-4 के समक्ष दिए गए न्यायेतर स्वीकारोक्ति का है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि अभियुक्त को अंतिम बार 17.12.1984 को रात्रि 10 से 11 बजे के बीच मृतका के साथ देखा गया था। अभियुक्त-अपीलकर्ता को घटना के तुरंत बाद खेत से बाहर आते देखा गया था। इसके बाद, उसने पीडब्लू-1 के समक्ष अपनी पत्नी की हत्या का न्यायिक स्वीकारोक्ति पत्र दिया। रासायनिक परीक्षक की रिपोर्ट में पाया गया कि अभियुक्त के कपड़ों पर मिले खून के धब्बे मृतक के कपड़ों पर लगे खून के धब्बों से मेल खाते थे।

36. विद्वान एजीए ने आगे दलील दी कि दंपत्ति के बीच अच्छे संबंध नहीं थे। अभियुक्त-अपीलकर्ता को अपनी पत्नी के चरित्र पर भी संदेह है। होते लाल (पी.डब्लू.-4) ने भी अभियुक्त और उसकी पत्नी के बीच तनावपूर्ण

संबंधों के बारे में गवाही दी है। घटना की तारीख यानी 17.12.1984 को, दंपत्ति किसी बात पर बहस कर रहे थे और बाद में वे उस खेत में कुछ ढूंढने गए जहाँ अभियुक्त ने अपनी पत्नी की हत्या की थी।

37. हम पाते हैं कि घटना 17.12.1984 की रात 11:00 बजे दोषी अपीलकर्ता की पत्नी की हत्या के संबंध में हुई थी और ग्राम चौकीदार द्वारा लगभग दो घंटे बाद, यानी 18.12.1984 की रात 1:00 बजे, तत्काल प्राथमिकी दर्ज की गई थी। प्राथमिकी मौखिक तहरीर/रिपोर्ट के आधार पर दर्ज की गई थी, लेकिन सूचनादाता के अंगूठे का निशान लिया गया था और इसे प्राथमिकी के हेड कांस्टेबल/लेखक द्वारा सिद्ध किया गया था।

38. तुरंत दर्ज की गई एफआईआर के संबंध में, **जय प्रकाश सिंह बनाम बिहार राज्य और अन्य, (2012) 4 एससीसी 379, पैराग्राफ संख्या 12** में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की है:

12. आपराधिक मामले में प्राथमिकी एक महत्वपूर्ण और मूल्यवान साक्ष्य है, हालाँकि यह ठोस साक्ष्य नहीं भी हो सकता है। किसी अपराध के घटित होने पर प्राथमिकी शीघ्र दर्ज करने पर ज़ोर देने का उद्देश्य अपराध की परिस्थितियों, वास्तविक अपराधियों के नाम और उनकी भूमिका, तथा घटनास्थल पर उपस्थित प्रत्यक्षदर्शियों के नामों के बारे में शीघ्र जानकारी प्राप्त करना है। अगर एफआईआर दर्ज करने में देरी होती है, तो यह सहजता का लाभ खो देती है, और कई बार विचार-विमर्श के बाद मनगढ़ंत कहानी, बढ़ा-चढ़ाकर बयान या मनगढ़ंत कहानी पेश किए जाने का खतरा पैदा हो जाता है। ***निस्संदेह, एफआईआर दर्ज करने में तत्परता, सूचना देने वाले के बयान की सत्यता की गारंटी है। तुरंत दर्ज की गई एफआईआर वास्तव में क्या हुआ था, और संबंधित अपराध के लिए कौन जिम्मेदार था, इसका प्रत्यक्ष विवरण दर्शाती है।*** *(देखें: थुलिया काली बनाम तमिलनाडु राज्य, एआईआर 1973 एससी 501; पंजाब राज्य बनाम सुरजा राम, एआईआर 1995 एससी 2413; गिरीश यादव एवं अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (1996) 8 एससीसी 186; और तकदीर समसुद्दीन शेख बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य, एआईआर 2012 एससी 37)।*

39. दिनांक 18.12.1984 को अभियुक्त-अपीलकर्ता ने भी थाने में एक प्रार्थना पत्र देकर एक देशी पिस्तौल और खून से सना गंडासा सौंपा, जिनका कथित तौर पर अपराध में इस्तेमाल किया गया था। गंडासे को अन्य वस्तुओं के साथ जाँच अधिकारी द्वारा फोरेंसिक जाँच के लिए भेजा गया था। फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला (एफएसएल) की रिपोर्ट में यह पाया गया था कि गंडासे पर मानव रक्त लगा हुआ है। अभियुक्त द्वारा अपराध का हथियार पुलिस को रात्रि 2.30 बजे सौंपा गया था, अतः थाने में किसी गवाह के उपस्थित होने की सम्भावना नहीं थी, अतः 12 बोर के देशी तमंचे, दो जीवित कारतूस, चार खाली कारतूस तथा रक्तरंजित दरांती (गंडासा) की बरामदगी के मेमो की वास्तविक गवाह पुलिस ही है। फर्द बयानागी पर अभियुक्त-अपीलार्थी तथा कांस्टेबल गेंदा सिंह (पीडब्लू-8) एवं हेड कांस्टेबल प्रेमपाल सिंह (पीडब्लू-6) के हस्ताक्षर भी हैं।

40. जहां तक पुलिस कर्मियों के साक्ष्य की विश्वसनीयता का सवाल है, सर्वोच्च न्यायालय ने **प्रदीप नारायण मडगांवकर एवं अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, 1995 (4) एससीसी 255 के पैराग्राफ संख्या 11** में निम्नानुसार निर्णय दिया है:

"आधिकारिक (पुलिस) गवाहों के साक्ष्य को केवल इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता कि वे पुलिस बल से संबंधित हैं और अभियोजन एजेंसी की जाँच में रुचि रखते हैं, लेकिन विवेक यह है कि उनके साक्ष्य की कड़ी जाँच की जानी चाहिए और जहाँ तक संभव हो, सामग्री और विवरणों में उनके साक्ष्य की पुष्टि की जानी चाहिए। अपनी जाँच के आधार पर मामले की सफलता देखने की उनकी इच्छा के लिए, उनकी गवाही का मूल्यांकन करने में अधिक सावधानी बरतने की आवश्यकता है।"

41. **करमजीत सिंह बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन), (2003) 5 एससीसी 291, पैराग्राफ संख्या 8** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अवधारित किया है कि:

"पुलिसकर्मियों की गवाही को किसी अन्य गवाह की गवाही के समान ही माना जाना चाहिए और ऐसा कोई कानूनी सिद्धांत नहीं है कि स्वतंत्र गवाहों द्वारा पुष्टि के बिना उनकी गवाही पर भरोसा नहीं किया जा सकता। *यह धारणा कि कोई व्यक्ति ईमानदारी से काम करता है, पुलिसकर्मियों के लिए भी उतनी ही लागू होती है जितनी अन्य व्यक्तियों के लिए, और बिना किसी ठोस आधार के उन पर अविश्वास करना और उन पर संदेह करना उचित न्यायिक दृष्टिकोण नहीं है। यह सब प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा और सामान्य अनुप्रयोग का कोई सिद्धांत निर्धारित नहीं किया जा सकता है।"*

42. **गिरजा प्रसाद बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2007) 7 एससीसी 625** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ संख्या 25 में निम्नलिखित टिप्पणी की थी:

"यह सर्वविदित है कि गवाह की विश्वसनीयता सत्यता और विश्वसनीयता की कसौटी पर परखी जानी चाहिए। यह पूरी तरह संभव है कि किसी मामले में, कोई न्यायालय केवल शिकायतकर्ता या पुलिस अधिकारी के साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि का फैसला न सुनाए, लेकिन यह कानून नहीं है कि पुलिस गवाहों पर भरोसा नहीं किया जाना चाहिए और उनके साक्ष्य को तब तक स्वीकार नहीं किया जा सकता जब तक कि अन्य स्वतंत्र साक्ष्यों द्वारा उनकी पुष्टि न हो जाए। यह धारणा कि प्रत्येक व्यक्ति ईमानदारी से कार्य करता है, किसी भी अन्य व्यक्ति की तरह एक पुलिस अधिकारी के पक्ष में भी लागू होती है। पुलिस अधिकारियों की गवाही केवल इसलिए कमज़ोर नहीं हो जाती क्योंकि वे पुलिस बल से संबंधित हैं। ऐसा कोई कानूनी नियम नहीं है जो यह निर्धारित करे कि पुलिस अधिकारियों की गवाही के आधार पर दोषसिद्धि दर्ज नहीं की जा सकती, भले ही ऐसे साक्ष्य अन्यथा विश्वसनीय और भरोसेमंद हों। बुद्धि के नियम के तहत उनके साक्ष्य की अधिक सावधानीपूर्वक जाँच की आवश्यकता हो सकती है। लेकिन, अगर अदालत को यकीन हो जाता है कि गवाह द्वारा कही गई बात में सच्चाई है, तो ऐसे साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि की जा सकती है।"

43. वर्तमान मामले में अपराध में प्रयुक्त हथियार को पुलिस अधिकारियों के समक्ष सौंपना साक्ष्य अधिनियम की धारा 8 के अंतर्गत आचरण माना जाता है।

44. साक्ष्य अधिनियम की धारा 8 नीचे उद्धृत है:

"धारा 8. हेतु तैयारी और पूर्व का या पश्चात् का आचरण कोई भी तथ्य, जो किसी विवाद्यक तथ्य या सुसंगत तथ्य का हेतु या तैयारी दर्शित या गठित करता है, सुसंगत है।

किसी वाद या कार्यवाही के किसी पक्षकार या किसी पक्षकार के अभिकर्ता का ऐसे वाद या कार्यवाही के बारे में या उसमें विवाद्यक तथ्य या उससे सुसंगत किसी तथ्य के बारे में आचरण और किसी ऐसे व्यक्ति का आचरण, जिसके विरुद्ध कोई अपराध किसी कार्यवाही का विषय है, सुसंगत है, यदि ऐसा आचरण किसी विवाद्यक तथ्य या सुसंगत तथ्य को प्रभावित करता है या उससे प्रभावित होता है, चाहे वह उससे पूर्व का हो या पश्चात् का ।

स्पष्टीकरण 1 - इस धारा में "आचरण" शब्द के अन्तर्गत कथन नहीं आते, जब तक कि वे कथन उन कथनों से भिन्न कार्यों के साथ-साथ और उन्हें स्पष्ट करने वाले न हों, किन्तु इस अधिनियम की किसी अन्य धारा के अधीन उन कथनों की सुसंगति पर इस स्पष्टीकरण का प्रभाव नहीं पड़ेगा।

स्पष्टीकरण 2 - जब किसी व्यक्ति का आचरण सुसंगत है, तब उससे, या उसकी उपस्थिति और श्रवणगोचरता में किया गया कोई भी कथन, जो उस आचरण पर प्रभाव डालता है, सुसंगत है।"

45. **प्रकाश चंद बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन), (1979) 3 एससीसी 90** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ संख्या 8 में निम्नानुसार निर्णय दिया है:

*"8. ....किसी व्यक्ति के आचरण, जिसके विरुद्ध अपराध का आरोप लगाया गया है, जो **साक्ष्य अधिनियम की धारा 8** के अंतर्गत स्वीकार्य है, यदि ऐसा आचरण किसी विवाद्यक तथ्य या प्रासंगिक तथ्य से प्रभावित है और किसी जांच के दौरान पुलिस अधिकारी को दिए गए बयान, जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 162 के अंतर्गत आता है, के बीच स्पष्ट अंतर है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 162 द्वारा जिसे बाहर रखा गया है, वह जांच के दौरान पुलिस अधिकारी को दिया गया बयान है, न कि किसी अभियुक्त व्यक्ति के आचरण से संबंधित साक्ष्य (जो बयान नहीं है) जब जांच के दौरान पुलिस अधिकारी द्वारा उसका सामना किया जाता है या उससे पूछताछ की जाती है। उदाहरण के लिए, सरल शब्दों में, परिस्थिति का साक्ष्य कि एक आरोपी व्यक्ति ने एक पुलिस अधिकारी का नेतृत्व किया और उस स्थान को इंगित किया जहां चोरी की गई वस्तुएं या हथियार, जो अपराध के लिए इस्तेमाल किए जा सकते थे, छिपे हुए पाए गए थे, साक्ष्य अधिनियम की धारा 8 के तहत आचरण के रूप में स्वीकार्य होगा, भले ही आरोपी द्वारा ऐसे आचरण के समकालीन या पूर्ववर्ती कोई भी बयान साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के दायरे में आता हो।"*

46. **ए.एन. वेंकटेश बनाम कर्नाटक राज्य, (2005) 7 एससीसी 714** में, सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ संख्या 9 में निम्नानुसार निर्णय दिया है:

*"9. **साक्ष्य अधिनियम की धारा 8** के आधार पर, अभियुक्त व्यक्ति का आचरण प्रासंगिक है, यदि ऐसा आचरण किसी विवाद्यक तथ्य या प्रासंगिक तथ्य को प्रभावित करता है या उससे प्रभावित होता है। परिस्थिति का साक्ष्य, सरल शब्दों में, कि अभियुक्त ने पुलिस अधिकारी को वह स्थान बताया जहां अपहृत लड़के का शव मिला था और उनके बताने पर शव को कब्र से निकाला गया था, धारा 8 के तहत आचरण के रूप में स्वीकार्य होगा, भले ही अभियुक्त द्वारा ऐसे आचरण के साथ समकालीन या पूर्ववर्ती बयान धारा 27 के दायरे में आता हो या नहीं, जैसा कि इस न्यायालय ने प्रकाश चंद बनाम राज्य (एआईआर 1979 एससी 400) में माना है।*

*भले ही हम यह मान लें कि अभियुक्त अपीलकर्ताओं (प्रदर्श पी14 और पी15) द्वारा दिया गया प्रकटीकरण कथन **साक्ष्य अधिनियम की धारा 27** के अंतर्गत स्वीकार्य नहीं है, फिर भी यह धारा 8 के अंतर्गत प्रासंगिक है। जाँच अधिकारी और घटनास्थल के गवाह पीडब्लू 1, 2, 7 और पीडब्लू 4 का यह साक्ष्य कि अभियुक्त उन्हें घटनास्थल पर ले गए थे और उन्होंने शव को दफ़नाने का स्थान बताया था, अभियुक्तों के आचरण के रूप में धारा 8 के अंतर्गत स्वीकार्य साक्ष्य है। ए-1 और ए-2 का उस स्थान पर उपस्थित होना जहाँ फिरौती की माँग पूरी की जानी थी और पुलिस दल को देखकर उनका भाग जाना एक प्रासंगिक परिस्थिति है और **साक्ष्य अधिनियम की धारा 8** के अंतर्गत स्वीकार्य है।"*

47. पति (अपीलार्थी) ने स्वयं अपनी पत्नी की हत्या के सम्बन्ध में एफआईआर दर्ज नहीं कराई थी, बल्कि वह पुलिस थाने गया, अपना अपराध स्वीकार करते हुए आवेदन दिया तथा हस्ताक्षर किए और जब दस्तावेज को साबित करने के उद्देश्य से पीडब्लू-7 द्वारा उसके हस्ताक्षर का मिलान करने के लिए दूसरे हस्ताक्षर मांगे गए, तो अपीलार्थी ने अपना नमूना देने से इनकार कर दिया। इसलिए, अभियुक्त-अपीलकर्ता के विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला जा सकता है। अपीलकर्ता का बाद का आचरण भी इस मामले को सिद्ध कर रहा है कि उसने स्वयं प्राथमिकी दर्ज नहीं कराई थी, बल्कि वह अपराध में प्रयुक्त हथियार के साथ तुरंत थाने पहुँचा और दिनांक 18.12.1984 को आवेदन दिया था। सीरोलॉजिकल रिपोर्ट से भी पता चलता है कि हथियार पर मानव रक्त लगा था और पुलिस के लिए रात में मानव रक्त प्राप्त करके उसे फोरेंसिक जाँच के लिए भेजने का कोई कारण नहीं था और फोरेंसिक जाँच में, अभियुक्त-अपीलकर्ता के कपड़ों के साथ-साथ हथियार पर भी मानव रक्त पाया गया था।

48. **अश्विनी कुमार उर्फ आशु एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य, (2015) 6 एससीसी 308, के पैरा 19** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने टिप्पणी की है कि "अभियुक्त द्वारा अपनी नमूना लिखावट देने से इनकार करने पर उसके विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए। जबकि हथियार और खून से सनी वस्तुओं की बरामदगी अन्य परिस्थितियाँ हैं जो पूर्ण पुष्टि की ओर ले जाती हैं।"

उपर्युक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किया गया है:

*"19. अभियोजन पक्ष ने गवाह को पहचान परीक्षण के लिए उपलब्ध कराया था लेकिन संबंधित अभियुक्त ने परीक्षण में भाग लेने से इनकार कर दिया था। हालाँकि इस तरह के इनकार का कोई कारण नहीं था और अभियुक्त के विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला जा सकता था, फिर भी हमने अन्य पुष्टिकारी सामग्री की तलाश की, जो पीडब्लू-7 जसबीर सिंह द्वारा दिए गए न्यायिक स्वीकारोक्ति के रूप में और पीडब्लू-5 जगदीप सिंह और पीडब्लू-6 हरजीत सिंह द्वारा बताई गई पहलवान के ढाबे पर घटी घटना के रूप में उपलब्ध है। यह तथ्य कि अश्विनी कुमार के प्रकटीकरण कथन के अनुसरण में जस्सी (प्रदर्श पी-38) की एक तस्वीर बरामद हुई थी, एक और तथ्य है। वह तस्वीर (प्रदर्श पी-38) बोलारा फार्म से बरामद हुई थी, जो अनिल कुमार के नियंत्रण में था। तस्वीर के पीछे गुरुमुखी में जस्सी का विवरण महत्वपूर्ण है। **अश्विनी कुमार द्वारा अपनी नमूना हस्तलिपि देने से इनकार करने से उसके विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष निकलता है।** हथियार, अर्थात् कृपाण, जिसकी डॉक्टर के अनुसार पीडब्लू-15 सुखविंदर सिंह और जस्सी को चोटें लग सकती थीं, और खून से सना सीट कवर, अन्य*

परिस्थितियाँ हैं जो इस घटना की पूरी पुष्टि करती हैं। अश्वनी कुमार और अनिल कुमार द्वारा कनाडा स्थित उस नंबर से किया गया संवाद एक और तथ्य है, जो स्वयं फैक्स संदेश प्रदर्श पीएओ का स्रोत था। ये सभी परिस्थितियाँ सिद्ध हैं और स्पष्ट रूप से अश्वनी कुमार और अनिल कुमार के अपराध की ओर इशारा करती हैं, साथ ही पीडब्लू संख्या 15 सुखविंदर सिंह की गवाही और उनकी पहचान को भी पूर्ण समर्थन प्रदान करती हैं। इसलिए निचली अदालतों द्वारा अश्वनी कुमार और अनिल कुमार को भारतीय दंड संहिता की धारा 364/307 और 302 के तहत अपराधों का दोषी ठहराना पूरी तरह से उचित था।"

49. **सोम दत्त बनाम पंजाब राज्य, 2019 एससीसी ऑनलाइन पी एंड एच 759,** पैराग्राफ संख्या 10 में, पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने अवधारित किया कि "अपना अपराध छिपाने के लिए, नमूना लेखन देने से इनकार करते हुए, इसलिए, निचली अदालत ने याचिकाकर्ताओं के खिलाफ **प्रतिकूल निष्कर्ष** निकाला है"।

50. पंचायतनामा दिनांक 18.12.1984 को प्रातः 8.30 बजे किया गया तथा पंचायतनामा में यह भी उल्लेख किया गया है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट पी.डब्लू.-1, सुमेरी (ग्राम-चौकीदार) द्वारा थाने में प्रथम बार दर्ज कराई गई थी तथा पंचायतनामा भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302 के अन्तर्गत मुकदमा अपराध संख्या 221/1984 के रूप में एफ.आई.आर. दर्ज करने के पश्चात किया गया था।

51. होते लाल (पीडब्लू-4), हालांकि घटना का चश्मदीद गवाह नहीं था, लेकिन वह पंचायतनामा का गवाह था और उसने अभियोजन पक्ष की कहानी का समर्थन किया था क्योंकि उसका बयान धारा 161 दं.प्र.सं. के तहत जांच अधिकारी द्वारा रात में दर्ज किया गया था जिसमें उसने खुलासा किया था कि अभियुक्त-अपीलकर्ता द्वारा न्यायेतर स्वीकारोक्ति की गई थी।

52. जांच अधिकारी से भी अदालत में पीडब्लू-7 के रूप में पूछताछ की गई। उन्होंने गवाही दी कि प्राथमिकी **तुरंत** दर्ज की गई थी, वे घटनास्थल पर पहुँचे और उसी रात होते लाल का बयान दर्ज किया। उन्होंने बताया कि पर्याप्त रोशनी न होने के कारण पंचायतनामा पूरा नहीं हो सका। इसलिए पीडब्लू-4 के बयान को खारिज नहीं किया जा सकता क्योंकि दं.प्र.सं. की धारा 161 के तहत उनका बयान रात में दर्ज किया गया था और वे पंचायतनामा के गवाह भी थे।

53. यद्यपि पीडब्लू-1 पक्षद्रोही घोषित किया गया और उसने अभियोजन पक्ष के कथन का समर्थन नहीं किया, फिर भी रात्रि में उसके कथन के आधार पर, हेड मोहर्रिर, जो पीडब्लू-6 के रूप में परीक्षित हुआ, द्वारा **तुरंत** प्राथमिकी दर्ज की गई। गाँव के चौकीदार (पीडब्लू-3) का यह दायित्व है कि वह गाँव में घटित किसी भी घटना की सूचना संबंधित थाने को दे।

54. जहां तक पक्षद्रोही गवाहों के बयानों/बयानों की विश्वसनीयता का सवाल है, **भगवान दास बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली), (2011) 6 एससीसी 396, पैराग्राफ संख्या 18** में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की है:

*"18. इसमें कोई संदेह नहीं कि श्रीमती ढिल्लो देवी को अभियोजन पक्ष द्वारा पक्षद्रोही घोषित किया गया था क्योंकि उन्होंने पुलिस को दिए अपने पहले के बयान से पलटी खाई थी। हालाँकि, जैसा कि **राज्य बनाम राम प्रसाद मिश्रा एवं अन्य** में कहा गया है:*

"7. ...यदि किसी पक्षद्रोही गवाह का साक्ष्य अभियोजन पक्ष या अभियुक्त के पक्ष में दिया गया हो, तो उसे पूरी तरह से खारिज नहीं किया जाएगा, बल्कि उसकी गहन जाँच की जा सकती है और साक्ष्य का वह भाग जो अभियोजन पक्ष या बचाव पक्ष के मामले से मेल खाता हो, स्वीकार किया जा सकता है।"

*इसी प्रकार **शेख ज़ाकिर बनाम बिहार राज्य एआईआर 1983 एससी 911** में इस न्यायालय ने यह निर्णय दिया:*

"15. ... इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि कुछ गवाह मुकर जाते हैं, लेकिन यदि दोषसिद्धि के समर्थन में अन्यथा स्वीकार्य साक्ष्य मौजूद हों, तो यह अपने आप में किसी अदालत को अभियुक्त को दोषी ठहराने से नहीं रोकेगा।"

55. **राजेश यादव एवं अन्य आदि बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2022) 12 एससीसी 200** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने मुकर गए गवाहों के साक्ष्य मूल्य पर विचार किया है। संबंधित अनुच्छेदों को यहाँ निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है;

"23. किसी मुद्दे पर गवाह की गवाही पर विचार करने में निर्धारित कानून पर, हम सी. मुनियप्पन बनाम टी.एन. राज्य, (2010) 9 एससीसी 567 में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करना चाहेंगे:

"81. यह स्थापित कानूनी प्रस्ताव है कि:

"6. ... अभियोजन पक्ष के गवाह के साक्ष्य को सिर्फ़ इसलिए पूरी तरह से खारिज नहीं किया जा सकता क्योंकि अभियोजन पक्ष ने उसे पक्षद्रोही मानकर उससे जिरह की। ऐसे गवाहों के साक्ष्य को पूरी तरह से मिटाया हुआ या रिकॉर्ड से पूरी तरह से हटा हुआ नहीं माना जा सकता, बल्कि उन्हें इस हद तक स्वीकार किया जा सकता है कि उनके बयान की सावधानीपूर्वक जाँच करने पर वह विश्वसनीय पाए जाएँ।" (देखें भगवान सिंह बनाम हरियाणा राज्य, (1976) 1 एससीसी 389, रवींद्र कुमार डे बनाम उड़ीसा राज्य, (1976) 4 एससीसी 233, सैयद अकबर बनाम कर्नाटक राज्य, (1980) 1 एससीसी 30 और खुज्जी बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (1991) 3 एससीसी 627, एससीसी पृ. 635, पैरा 6.)

82. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम रमेश प्रसाद मिश्रा [(1996) 10 एससीसी 360: 1996 एससीसी (क्रि) 1278] में इस न्यायालय ने अवधारित किया कि (एससीसी पृष्ठ 363, पैरा 7 पर) यदि अभियोजन पक्ष या अभियुक्त के पक्ष में बोला गया पक्षद्रोही गवाह का साक्ष्य पूरी तरह से खारिज नहीं किया जाएगा, लेकिन इसकी बारीकी से जांच की आवश्यकता होगी और साक्ष्य का वह हिस्सा जो अभियोजन पक्ष या बचाव पक्ष के मामले के अनुरूप है, उस पर भरोसा किया जा सकता है। बालू सोनबा शिंदे बनाम महाराष्ट्र राज्य [(2002) 7 एससीसी 543: 2003 एससीसी (क्रि) 112], गगन कनौजिया बनाम पंजाब राज्य [(2006) 13 एससीसी 516: (2008) 1 एससीसी (क्रि) 109], राधा मोहन सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(2006) 2 एससीसी 450: (2006) 1 एससीसी

(क्रि) 661], सर्वेश नारायण शुक्ला बनाम दरोगा सिंह [(2007) 13 एससीसी 360: (2009) 1 एससीसी (क्रि) 188] और सुब्बू सिंह बनाम राज्य [(2009) 6 एससीसी 462: (2009) 2 एससीसी (क्रि) 1106] में इसी तरह का दृष्टिकोण इस न्यायालय द्वारा दोहराया गया है।

83. इस प्रकार, कानून को इस आशय से संक्षेपित किया जा सकता है कि किसी पक्षद्रोही गवाह के साक्ष्य को समग्र रूप से खारिज नहीं किया जा सकता है, तथा उसके प्रासंगिक भाग, जो कानून में स्वीकार्य हैं, अभियोजन पक्ष या बचाव पक्ष द्वारा उपयोग किए जा सकते हैं।

84. इस मामले में, कुछ महत्वपूर्ण गवाह, अर्थात् बी. कमल (पीडब्लू 86) और आर. मारुथु (पीडब्लू 51) अपने बयानों से पलट गए। निचली अदालतों ने उनके साक्ष्यों पर कानून के अनुसार पूरी तरह विचार किया है। अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ताओं ने अभियुक्तों के साक्ष्यों में कुछ चूकों और सुधारों की ओर इशारा किया है, लेकिन हम पाते हैं कि वे बहुत ही तुच्छ प्रकृति के हैं।

85. विधि का यह स्थापित सिद्धांत है कि यदि कुछ चूकें, विरोधाभास और विसंगतियाँ हों, तो भी संपूर्ण साक्ष्य को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता। सावधानी और सतर्कता बरतते हुए तथा सत्य को असत्य, अतिशयोक्ति और सुधार से अलग करने के लिए साक्ष्यों की छानबीन करने के बाद, न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि क्या अवशिष्ट साक्ष्य अभियुक्त को दोषसिद्धि के लिए पर्याप्त हैं। इसलिए, उन चूकों, विरोधाभासों और विसंगतियों को अनावश्यक महत्व नहीं दिया जाना चाहिए जो मामले के मूल तक नहीं पहुँचते और अभियोजन पक्ष के गवाह के मूल कथन को प्रभावित नहीं करते। चूंकि किसी मनुष्य की मानसिक क्षमता से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वह घटना के सभी विवरणों को आत्मसात कर सके, इसलिए गवाहों के बयानों में छोटी-मोटी विसंगतियां होना स्वाभाविक है।" देखें सोहराब बनाम मध्य प्रदेश राज्य, [(1972] 3 एससीसी 751: (1972) एससीसी (क्रि) 819: एआईआर 1972 एससी 2020], उत्तर प्रदेश राज्य बनाम एम.के. एंथोनी, [(1985) 1 एससीसी 505: 1985 एससीसी (क्रि) 105], भरवाड़ा भोगिनभाई हिरजीभाई बनाम गुजरात राज्य, [(1983) 3 एससीसी 217: 1983 एससीसी (क्रि) 728: एआईआर 1983 एससी 753], राजस्थान राज्य बनाम ओम प्रकाश, [(2007) 12 एससीसी 381: (2008) 1 एससीसी (क्रि) 411], पृथु बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य, [(2009) 11 एससीसी 585: (2009) 3 एससीसी (क्रि) 1502], उत्तर प्रदेश राज्य बनाम संतोष कुमार, [(2009) 9 एससीसी 626: (2010) 1 एससीसी (क्रि) 88] और राज्य बनाम सरवनन, [(2008) 17 एससीसी 587: (2010) 4 एससीसी (क्रि) 580]।

56. सम्पूर्ण अभिलेख के अवलोकन से पता चलता है कि पी.डब्लू.-1 सुमैर (पक्षद्रोही गवाह) द्वारा थाने में पहली बार **त्वरित** एफआईआर दर्ज कराई गई थी। हत्या करने के बाद अभियुक्त-अपीलकर्ता ने न केवल पुलिस के समक्ष, बल्कि पी.डब्लू.-1, पी.डब्लू.-3 और पी.डब्लू.-4 के समक्ष भी न्यायेतर स्वीकारोक्ति की कि उसने गंडासे से अपनी पत्नी की हत्या की है। घटना के अगले दिन प्रातः 2:30 बजे अभियुक्त-अपीलकर्ता थाने पहुँचा और गंडासा, एक देशी पिस्तौल और दो जीवित कारतूस पुलिस को सौंप दिए तथा लिखित में हत्या का कारण पुलिस को बताया। खून के धब्बे न केवल गंडासे पर पाए गए बल्कि अभियुक्त-अपीलकर्ता द्वारा पहने गए कपड़े पर भी पाए गए और उन्हें पुलिस द्वारा ले लिया गया और फोरेंसिक प्रयोगशाला में भेज दिया गया और फोरेंसिक रिपोर्ट/सीरोलॉजिकल रिपोर्ट में यह आया है कि इन वस्तुओं पर मानव रक्त था।

57. **दिगंबर बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 531** में, सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ संख्या 26 में निम्नलिखित अवलोकन किया है:

26. "यद्यपि अभियुक्त दिगंबर के न्यायेतर स्वीकारोक्ति को ध्यान में नहीं रखा जा सकता है, तथापि, थाने जाकर पुलिस के समक्ष आत्मसमर्पण करने के उसके आचरण को भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (जिसे आगे "भारतीय साक्ष्य अधिनियम" कहा जाएगा) की धारा 8 के मद्देनजर निश्चित रूप से ध्यान में रखा जा सकता है।"

58. **भगवान दास (उपरोक्त)** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अवलोकन किया है:

"15. अभियुक्त की मां, श्रीमती ढिल्लो देवी ने पुलिस के सामने कहा कि उसके बेटे (अभियुक्त) ने उसे बताया था कि उसने सीमा की हत्या की है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि पुलिस को दिया गया बयान आमतौर पर धारा 162(1) दं.प्र.सं. के मद्देनजर साक्ष्य में स्वीकार्य नहीं है, लेकिन जैसा कि धारा 162(1) दं.प्र.सं. के प्रावधान में उल्लेख किया गया है, इसका इस्तेमाल गवाह की गवाही का खंडन करने के लिए किया जा सकता है। श्रीमती ढिल्लो देवी भी विचारण न्यायालय में एक गवाह के रूप में पेश हुईं और जिरह में उनका पुलिस को दिए गए बयान से आमना-सामना कराया गया, जिसमें उन्होंने कहा था कि उनके बेटे (अभियुक्त) ने उन्हें बताया था कि उसने सीमा की हत्या की है। पुलिस को दिए गए बयान से आमना-सामना कराने पर उन्होंने इस बात से इनकार किया कि उन्होंने ऐसा कोई बयान दिया था।

16. हमारा मानना है कि पुलिस को दिए गए श्रीमती ढिल्लो देवी के बयान को दं.प्र.सं. की धारा 162(1) के प्रावधान के तहत माना जा सकता है, और बाद में अदालत में उनके द्वारा दिया गया इनकार विश्वसनीय नहीं है क्योंकि उन्होंने स्पष्ट रूप से बाद में सोचा था और अपने बेटे (अभियुक्त) को सजा से बचाना चाहती थीं। वास्तव में, पुलिस को दिए गए अपने बयान में उन्होंने कहा था कि सीमा का शव बिस्तर से उठाकर फर्श पर रखा गया था। जब अदालत में उनसे इस बयान के बारे में पूछा गया, तो उन्होंने पुलिस के सामने ऐसा बयान देने से इनकार कर दिया। हमारा मानना है कि पुलिस को दिए गए उनके बयान को दं.प्र.सं. की धारा 162(1) के प्रावधान के तहत माना जा सकता है।

17. हमारी राय में, अभियुक्त द्वारा अपनी माँ श्रीमती ढिल्लो देवी को दिया गया बयान एक न्यायेतर स्वीकारोक्ति है। हाल ही में इस न्यायालय ने दिनांक 11.4.2011 को निर्णीत, कुलविंदर सिंह एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य आपराधिक अपील संख्या 916/2005 मामले में राजस्थान राज्य बनाम राजा राम (2003) 8 एससीसी 180, में दिए गए अपने पूर्व निर्णय का उल्लेख किया था, जिसमें यह निर्णय दिया गया था (देखें पैरा 10):

***"न्यायेतर स्वीकारोक्ति**, यदि स्वैच्छिक और सच्ची हो तथा स्वस्थ मनःस्थिति में की गई हो, तो न्यायालय द्वारा उस पर भरोसा किया जा सकता है। स्वीकारोक्ति को किसी अन्य तथ्य की तरह सिद्ध करना होगा। स्वीकारोक्ति के संबंध में साक्ष्य का मूल्य, किसी अन्य साक्ष्य की तरह, उस गवाह की सत्यता पर निर्भर करता है जिसके समक्ष यह स्वीकारोक्ति दी गई है। स्वीकारोक्ति के संबंध में साक्ष्य का मूल्य उस गवाह की विश्वसनीयता पर निर्भर करता है जो साक्ष्य देता है। किसी भी न्यायालय के लिए यह अनुमान लगाना उचित नहीं है कि न्यायेतर स्वीकारोक्ति एक कमज़ोर प्रकार का साक्ष्य है। यह परिस्थितियों की प्रकृति, स्वीकारोक्ति*

के समय और ऐसे स्वीकारोक्ति के पक्ष में बोलने वाले गवाहों की विश्वसनीयता पर निर्भर करेगा। ऐसे स्वीकारोक्ति पर भरोसा किया जा सकता है और उस पर दोषसिद्धि स्थापित की जा सकती है यदि स्वीकारोक्ति के बारे में साक्ष्य ऐसे गवाहों के मुँह से आए हैं जो निष्पक्ष प्रतीत होते हैं, अभियुक्त के प्रति दूर-दूर तक शत्रुतापूर्ण नहीं हैं, और जिनके संबंध में ऐसा कुछ भी नहीं बताया गया है जिससे यह संकेत मिलता हो कि अभियुक्त पर असत्य कथन थोपने का उनका कोई उद्देश्य हो सकता है, गवाह द्वारा कहे गए शब्द स्पष्ट, असंदिग्ध और स्पष्ट रूप से यह व्यक्त करते हैं कि अभियुक्त ही अपराध का अपराधी है और गवाह द्वारा ऐसा कुछ भी नहीं छोड़ा गया है जो इसके विरुद्ध हो। गवाह के साक्ष्य को विश्वसनीयता की कसौटी पर कठोर परीक्षण के अधीन करने के बाद, न्यायेतर स्वीकारोक्ति को स्वीकार किया जा सकता है और यदि वह विश्वसनीयता की कसौटी पर खरी उतरती है तो दोषसिद्धि का आधार बन सकती है।"

59. यद्यपि पी.डब्लू.-1 और पी.डब्लू.-3 को पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया है, लेकिन चौकीदार का कर्तव्य था कि वह एफ.आई.आर. दर्ज कराए और रात में, जाँच अधिकारी ने पी.डब्लू.-4 का बयान दर्ज किया है जिसमें उल्लेख किया गया है कि अनुचित प्रकाश के कारण, रात में पंचायतनामा नहीं लिया जा सका, इसलिए, इसे सुबह में आयोजित किया गया था और पंचायतनामा में, यह उल्लेख किया गया है कि पी.डब्लू.-1 सुमेरी चौकीदार द्वारा पहली सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई गई थी।

60. यह पता चलता है कि हालांकि पी.डब्लू.-1 द्वारा तुरंत एफआईआर दर्ज की गई थी, लेकिन बाद में वह **मुकर गया,** इसलिए वह भी मुकर गया है, बाद के आचरण और अभियुक्त-अपीलकर्ता के **न्यायेतर स्वीकारोक्ति** और अभियुक्त-अपीलकर्ता द्वारा पहने गए खून से सने हथियार और खून से सने कपड़े को सौंपने और फोरेंसिक रिपोर्ट में इसकी पुष्टि होने के साथ-साथ अभियुक्त-अपीलकर्ता द्वारा पी.डब्लू.-6, हेड कांस्टेबल/हेड मोहर्रिर प्रेमपाल सिंह को हस्ताक्षर देने से इनकार करने और पुलिस द्वारा अभियुक्त-अपीलकर्ता के खिलाफ प्रतिकूल निष्कर्ष निकालने से पहले लिखित रूप में की गई न्यायेतर स्वीकारोक्ति को देखते हुए, इस प्रकार, विचारण न्यायालय के निर्णय में कोई कमी नहीं है।

61. वर्तमान अपील में कोई दम नहीं है, अतः यह खारिज की जाती है। जीवित अपीलकर्ता बाँदू राम की दोषसिद्धि की पुष्टि की जाती है।

62. चूँकि जीवित अपीलकर्ता बाँदू राम जमानत पर है, अतः उसके जमानत बंधपत्र निरस्त किये जाते हैं और जमानतदारों को उन्मोचित किया जाता है। उन्हें निर्देश दिया जाता है कि वे तीन सप्ताह के भीतर संबंधित अदालत के समक्ष आत्मसमर्पण कर दें ताकि उन्हें दी गई सजा भुगत सकें।

63. निचली अदालत का रिकॉर्ड तत्काल संबंधित न्यायालय को भेजा जाए।

64. निबन्धक (अनुपालन) द्वारा इस आदेश की एक प्रति संबंधित न्यायालय को अनुपालन हेतु भेजी जाए और अभियुक्त के आत्मसमर्पण न करने की स्थिति में विधि के अनुसार कार्यवाही की जाए।

(2025) 4 ILRA 827

अपील क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 28.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिरला

माननीय न्यायमूर्ति प्रवीण कुमार गिरि

आपराधिक अपील संख्या 345 सन् 1984

धीर सिंह एवं अन्य **... अपीलकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य **...प्रतिवादी**

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता:

श्री सुमित गोयल, श्री राजर्षि गुप्ता, श्री रिजवान, श्री दिलीप कुमार (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादी के अधिवक्ता:

डी.जी.ए., श्री अनुराग पाठक

अनुवादित

(ए) आपराधिक कानून - हत्या - प्रत्यक्ष साक्ष्य - दोषसिद्धि से अपील - ट्रैक्टर का उपयोग करके जानबूझकर हत्या - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302 और 302/34 - ट्रैक्टर के पहियों के नीचे पीड़ित को कुचल दिया गया - चिकित्सा और विशेषज्ञ साक्ष्य द्वारा घायल और स्वतंत्र प्रत्यक्षदर्शी के साक्ष्य की पुष्टि - सामान्य इरादा - संबंधित गवाह - चिकित्सा पुष्टि - मकसद स्थापित - नेत्र संबंधी बनाम चिकित्सा साक्ष्य - प्रत्यक्ष और ठोस नेत्र संबंधी और चिकित्सा साक्ष्य ने उचित संदेह से परे अपराध साबित कर दिया - घायल गवाह की गवाही का साक्ष्य मूल्य अधिक है - संबंधित गवाह स्वाभाविक रूप से अविश्वसनीय नहीं है - धारा 302 भा.दं.सं. के तहत दोषसिद्धि बरकरार रखी जा सकती है जहां अभियोजन पक्ष का मामला विश्वसनीय घायल प्रत्यक्षदर्शी गवाही, तुरंत दर्ज की गई एफआईआर और चिकित्सा और साइट निरीक्षण साक्ष्य द्वारा समर्थित है। (पैरा - 4,12,31,35,43-47)

शिकायतकर्ता और अभियुक्त के बीच रास्ते को लेकर मुकदमा चल रहा था - झड़प हुई जिसमें मंगत (मृतक) पर हमला किया गया - शिकायतकर्ता भी घायल हो गया - रिपोर्ट दर्ज कराने के बाद थाने से लौटते समय,

अभियुक्त और यशपाल ने ट्रैक्टर से उसका पीछा किया - यशपाल के उकसाने पर अभियुक्त ने मृतक पर ट्रैक्टर चढ़ा दिया - जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई - एफआईआर तुरंत दर्ज की गई और मेडिकल/पोस्टमार्टम साक्ष्य ने प्रत्यक्ष विवरण की पुष्टि की। (पैरा - 4, 5, 6, 12, 13, 31)

अवधारित: - अपीलकर्ता को पूर्व रंजिश और हमले के बाद मृतक पर जानबूझकर ट्रैक्टर चलाने का दोषी पाया गया।

घायलों और स्वतंत्र गवाहों के प्रत्यक्ष साक्ष्य, पोस्टमार्टम और विशेषज्ञ की राय से पुष्ट हुए। भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत दोषसिद्धि बरकरार रखी गई। अभियुक्त को आत्मसमर्पण करने और अपनी सज़ा पूरी करने का निर्देश दिया गया। (पैरा 44-48)

आपराधिक अपील खारिज। (ई-7)

<u>उद्धृत मामलों की सूची: -</u>

1. कृष्णा मोची व अन्य बनाम बिहार राज्य, (2002) 6 एससीसी 81
2. मसाल्टी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 1965 एससी 202
3. दरिया सिंह बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 1965 एससी 328
4. अप्पाभाई व अन्य बनाम गुजरात राज्य, एआईआर 1988 एससी 696
5. आंध्र प्रदेश राज्य बनाम एस. रायप्पा व अन्य, (2006) 4 एससीसी 512
6. पुलिचेरला नागराजू उर्फ नागराजा रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (2006) 11 एससीसी 444
7. सतबीर सिंह व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2009) 13 एससीसी 790
8. जयबालन बनाम यू.टी. पांडिचेरी, 2010 (68) एसीसी 308 (एससी)
9. धरणीधर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2010) 7 एससीसी 759
10. बबन शंकर दफल व अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2025 एससीसी ऑनलाइन एससी 137
11. शाहजा उर्फ शाहजान इस्माइल मोहम्मद बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2023) 12 एससीसी 558
12. पहलवान सिंह व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2020 (6) एएलजे 166
13. कप्तान सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2020 (1) एडीजे 106 (डीबी)
14. नीरज शर्मा बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, (2024) 3 एससीसी 125

(माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिरला द्वारा प्रदत्त)

1. एकमात्र जीवित अपीलकर्ता धीर सिंह की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री दिलीप कुमार के सहायक विद्वान अधिवक्ता श्री रिजवान के साथ उत्तर प्रदेश राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. श्री घनश्याम कुमार को सुना तथा अभिलेख का परिशीलन किया गया।

2. वर्तमान आपराधिक अपील, सत्र परीक्षण संख्या 112/1982 में विद्वान सत्र न्यायाधीश, सहारनपुर द्वारा पारित दिनांक 31.01.1984 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध दायर की गई है, जिसमें अपीलार्थी संख्या 1-धीर सिंह को धारा 302 भा.दं.सं. के तहत और अपीलकर्ता संख्या 2 यशपाल को धारा 302/34 भा.दं.सं. के तहत दोषी ठहराया गया और दोनों अपीलकर्ताओं को आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई।

3. दिनांक 31.07.2018 के आदेश द्वारा अपीलकर्ता संख्या 2-यशपाल के संबंध में अपील निरस्त कर दी गई। अब अपील केवल अपीलकर्ता संख्या 1-धीर सिंह के संबंध में ही मान्य है।

4. अभियोजन पक्ष की कहानी संक्षेप में यह है कि शिकायतकर्ता और अभियुक्त धीर सिंह के बीच रास्ते के संबंध में मुकदमा चल रहा था। 13.10.1981 को प्रातः लगभग 8 बजे, कांतू, विक्रम, धर्मपाल और बनवारी, जो धर्मपाल का साला बताया गया है, ने उक्त रास्ता रोकने का प्रयास किया, जिसका मृतक मंगत ने विरोध किया, जिस पर अभियुक्त धीर सिंह के पिता कांतू ने मंगत और धर्मपाल को पकड़ लिया और बनवारी ने उन पर लाठियों से हमला कर दिया। जब शिकायतकर्ता रामफल ने उन्हें बचाने का प्रयास किया, तो विक्रम ने उन पर कुल्हाड़ी से हमला कर दिया और धर्मपाल ने उन पर लाठी से हमला कर दिया। शिकायतकर्ता और मृतक मंगत ने शोर मचाया, जिससे मेघ राज, पहल सिंह, सुरेश और कई अन्य लोग आ गए, जिन्होंने उन्हें बचाया। शिकायतकर्ता रामफल और मृतक मंगत अपने घर आए और उसके बाद रिपोर्ट दर्ज कराने के लिए पुलिस स्टेशन गए। जब वे श्याम सिंह के प्लॉट के पास पहुंचे, तो लगभग 8-30 बजे आरोपी धीर सिंह और यशपाल एक ट्रैक्टर पर वहां आए, जिसे आरोपी धीर सिंह चला रहा था। कहा गया है कि आरोपी यशपाल ने धीर सिंह को मंगत पर ट्रैक्टर चढ़ाने के लिए उकसाया ताकि उसे रिपोर्ट दर्ज कराने के लिए सबक सिखाया जा सके। आरोपी धीर सिंह ने फिर ट्रैक्टर को मंगत की ओर भगाया, जिसने खुद को बचाने के लिए दक्षिण की ओर श्याम सिंह के प्लॉट की ओर मोड़ दिया लेकिन मंगत को ट्रैक्टर ने कुचल दिया। शिकायतकर्ता का दावा है कि उसने सड़क के उत्तर की ओर जाकर अपनी जान बचाई। मंगत ट्रैक्टर से कुचला गया और उसकी मौके पर ही मौत हो गई। बताया जाता है कि यह घटना पिताम्बर और सेठपाल ने देखी थी। इसके बाद शिकायतकर्ता रामफल वहाँ से आधा किलोमीटर दूर खटकाहेड़ी गाँव गया और रिपोर्ट लिखाई। बताया गया कि शिकायतकर्ता रामफल का भाई प्रेम सिंह भी ट्रैक्टर लेकर मौके पर पहुँचा और उसके बाद दोनों पुलिस स्टेशन, रामपुर गए, जहाँ उसी दिन सुबह 9:30 बजे हेड कांस्टेबल तेजपाल सिंह द्वारा प्राथमिकी दर्ज की गई, जिन्होंने चिक-रिपोर्ट तैयार की और मामले को जनरल डायरी में दर्ज किया।

5. इस मामले की जाँच उपनिरीक्षक श्री बालकिशोर को सौंपी गई, जो थाने में मामला दर्ज होने के समय मौजूद थे। वे हेड कांस्टेबल तेजपाल सिंह के साथ घटनास्थल पर पहुँचे। उन्हें मृतक मंगत का शव श्याम सिंह के प्लाट

में पड़ा मिला। उन्होंने शव का पंचायतनामा (प्रदर्श क-5), चित्र (प्रदर्श क-6) और चालान (प्रदर्श क-7) तैयार किया। उन्होंने शव के पोस्टमार्टम हेतु एक पत्र (प्रदर्श क-8) लिखा और उसे कांस्टेबल दया राम और करतार सिंह के माध्यम से पोस्टमार्टम के लिए भेज दिया।

6. डॉ. जे. जी. गर्ग ने शव का पोस्टमार्टम किया। उन्होंने शव पर निम्नलिखित मृत्यु-पूर्व चोटें पाईं:-

i. खोपड़ी के पीछे और दाहिनी ओर 6 सेमी x 4 सेमी का चोट का निशान।

ii. कान के ऊपरी 1/3 भाग को काटकर अलग करने वाला 2.5 सेमी लंबा क्षैतिज घाव।

iii. दाहिने कंधे के सामने 9 सेमी x 7 सेमी का घिसा हुआ चोट का क्षेत्र।

iv. दाहिनी ऊपरी भुजा के सामने, ऊपरी आधे भाग और तिरछे भाग पर 7 सेमी x 2 सेमी का चोट का निशान।

v. बाएँ कंधे के सामने 4 सेमी x 3 सेमी के क्षेत्र में घिसा हुआ चोट का निशान।

vi. बाएँ ऊपरी भाग, ऊपरी 1/4 भाग पर 8 सेमी x 1.5 सेमी का ऊर्ध्वाधर चोट का निशान।

vii. बाएँ निचले और बाहरी चतुर्थांश पर 9 सेमी x 2 सेमी का चोट का निशान।

viii. बाईं जांघ के ऊपरी आधे भाग के सामने 12 सेमी x 5 सेमी का चोट वाला क्षेत्र।

ix. दाईं जांघ के क्षैतिज और निचले एक तिहाई भाग के सामने 7 सेमी x 2 सेमी का चोट वाला क्षेत्र।

x. चोट संख्या 9 से लगभग 2 सेमी नीचे, दाहिने घुटने के ऊपरी भाग और जांघ के सामने 11 सेमी x 9 सेमी का चोट वाला क्षेत्र।

xi. दाहिने पैर के ऊपरी एक तिहाई भाग के मध्य भाग पर 6 सेमी x 2 सेमी x मांसपेशी में गहरा (2.5 सेमी गहरा) कटा हुआ घाव।

xii. बाएं घुटने के ऊपरी आधे भाग और जांघ के निचले भाग के सामने 12 सेमी x 8 सेमी का चोट वाला क्षेत्र।

xiii. बाएं पैर के ऊपरी एक तिहाई भाग के सामने 2.5 सेमी x 2 सेमी का घर्षण।

7. डॉ. जे. जी. गर्ग के अनुसार, मृतक मंगत की मृत्यु उसके सिर पर लगी चोटों के कारण हुई थी।

8. तत्पश्चात, जाँच अधिकारी द्वारा जाँच शुरू की गई और निष्कर्ष पर पहुँचकर अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप-पत्र प्रस्तुत किया गया। अभियुक्तों ने अपने ऊपर लगे आरोपों से इनकार किया और मंगत की हत्या करने से इनकार किया। उनका दावा है कि उन्हें रंजिश और पार्टीबंदी के कारण झूठा फँसाया गया है।

9. अभियोजन पक्ष ने 7 गवाहों से पूछताछ की है, अर्थात् पी.डब्लू.1- रामफल, शिकायतकर्ता, और पी.डब्लू.2- पीताम्बर सिंह घटना के कथित चश्मदीद गवाह थे। पी.डब्लू.3- हेड कांस्टेबल तेजपाल ने चिक रिपोर्ट तैयार की है और मामले को सामान्य डायरी में दर्ज किया है। उन्होंने अन्य प्रासंगिक सामान्य दस्तावेज़ प्रविष्टियाँ भी सिद्ध की हैं। पी.डब्लू-4- श्री बालकिशोर ने मामले की प्रारंभिक जाँच की है। उन्होंने अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप-पत्र भी सिद्ध किया है। पी.डब्लू-5- डॉ. जे.जी. गर्ग ने मृतक मंगत के शव का पोस्टमार्टम किया है, जबकि पी.डब्लू-6 डॉ. सतीश कुमार ने घटना के संबंध में रामफल का चिकित्सकीय परीक्षण किया है, जो सुबह

8 बजे घटित हुई बताई गई है। पी.डब्लू-7- हेड कांस्टेबल साहूकार सिंह ने ट्रैक्टर की तकनीकी जाँच की है। डॉ. कृष्ण कुमार सिंघल विशेषज्ञ सीडब्ल्यू-1 के रूप में उपस्थित हुए और विशेषज्ञ चिकित्सा राय दी।

10. अभियोजन पक्ष ने दस्तावेजी साक्ष्य भी प्रस्तुत किए हैं, जो इस प्रकार अंकित हैं: प्रदर्श क-1-लिखित रिपोर्ट, प्रदर्श क-2-प्रथम सूचना रिपोर्ट, प्रदर्श क-3-जनरल डायरी, प्रदर्श क-5-पंचायतनामा, प्रदर्श क-6-आरेख, प्रदर्श क-7-शव का चालान, प्रदर्श क-8-पी.डब्लू.4 द्वारा लिखित पोस्टमार्टम परीक्षण हेतु पत्र, प्रदर्श क-9-मेमो, प्रदर्श क-10-साइकिल एटलस का बरामदगी मेमो, प्रदर्श क-11-नक्शा नजरी, प्रदर्श क-12-आरोप पत्र मूल, प्रदर्श क-13, पोस्टमार्टम रिपोर्ट, प्रदर्श क-14-चोट रिपोर्ट।

11. निर्विवाद तथ्य यह है कि अभियुक्त धीर सिंह, अभियुक्त यशपाल का भतीजा था। अभियुक्त और शिकायतकर्ता रामफल, जो मृतक मंगत का पुत्र है, दोनों एक ही परिवार से हैं। वे होशियार सिंह के वंशज थे। अभियुक्त यशपाल, मृतक मंगत के भतीजों में से एक था और अभियुक्त धीर सिंह, पारिवारिक रिश्ते से मृतक मंगत का पोता था। मृतक के परिवार के सदस्यों और अभियुक्तों के बीच रास्ते को लेकर एक मुकदमा भी चल रहा था।

12. आगे बढ़ने से पहले यह ध्यान देने योग्य है कि दिनांक 13.10.1981 की प्रथम सूचना रिपोर्ट में दो घटनाओं का उल्लेख है। पहली घटना सुबह लगभग 8 बजे हुई जब कांतू, विक्रम, धर्मपाल और बनवारी नामक व्यक्ति, जो धर्मपाल का साला बताया गया है, ने रास्ता रोकने की कोशिश की, जिसके संबंध में दोनों पक्षों के बीच काफी समय से विवाद चल रहा था और मुकदमा भी चल रहा था। आरोप है कि उपरोक्त घटना में, अभियुक्त धीर सिंह के पिता कांतू ने सूचनादाता के पिता मंगत को पकड़ लिया और धर्मपाल और बनवारी ने उन पर लाठियों से हमला किया और जब शिकायतकर्ता रामफल ने उन्हें बचाने की कोशिश की, तो विक्रम, जो अपने हाथ में कुल्हाड़ी लिए हुए था, ने रामफल के कंधे पर हमला किया और धर्मपाल ने भी उस पर लाठी से हमला किया। शोर मचाने पर कुछ लोग वहां आ गए और उन्हें देखकर आरोपी मौके से भाग गए। प्रथम सूचना रिपोर्ट में उल्लिखित दूसरी घटना (जिससे हम वर्तमान अपील में संबंधित हैं) वह घटना है जो सुबह 8.30 बजे घटित हुई थी जब सूचनादाता रामफल और उसके पिता मंगत सुबह 8.00 बजे घटित हुई घटना के बारे में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने के लिए पुलिस स्टेशन जा रहे थे और जब वे श्याम सिंह के प्लॉट के पास पहुंचे तो अभियुक्त धीर सिंह और यशपाल एक ट्रैक्टर पर वहां आए, जिसे अभियुक्त धीर सिंह चला रहा था। साइकिल चला रहे मंगत को ट्रैक्टर ने पीछे से टक्कर मार दी और वह ट्रैक्टर के पहिये के नीचे कुचल गया और उसकी मौके पर ही मौत हो गई। जहाँ तक पहली घटना का प्रश्न है, जो कथित तौर पर सुबह 8 बजे घटी थी, कांतू, विक्रम और धर्मपाल पर आपराधिक मुकदमा संख्या 2664/1999 में धारा 323/34 और 324/34 भा.दं.सं. के अंतर्गत चलाया गया था, जिसमें पी.डब्लू-1, रामफल, जो इस मामले में सूचनादाता है, का मुख्य परीक्षण दर्ज किया गया था, लेकिन उसके बाद वह जिरह के लिए उपस्थित नहीं हुआ और अभियोजन पक्ष की ओर से कोई भी व्यक्ति अभियोजन साक्ष्य दर्ज करने के लिए निर्धारित विभिन्न तिथियों पर उपस्थित नहीं हुआ। अभियोजन

साक्ष्य के अभाव में, विद्वान अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, सहारनपुर द्वारा दिनांक 28.02.2001 को पारित निर्णय और आदेश द्वारा अभियुक्तों को अभियोजन के अभाव में बरी कर दिया गया।

13. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री दिलीप कुमार ने वर्ष 2001 में प्राप्त उपरोक्त निर्णय की एक प्रमाणित प्रति प्रस्तुत की है, जिसके अवलोकन के बाद उसकी एक फोटोकॉपी अपने पास रखते हुए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता को वापस कर दी गई। उक्त निर्णय के आधार पर उन्होंने यह तर्क दिया कि चूँकि अभियोजन पक्ष ने कथित पहली घटना, जो वर्तमान घटना से लगभग आधे घंटे पहले उसी दिन घटित हुई थी, में आपराधिक अभियोजन पर ज़ोर नहीं दिया था, इसलिए वर्तमान मामले में अभियोजन पक्ष की कहानी विश्वास करने योग्य नहीं है।

14. गुण-दोष के आधार पर, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने शुरू में ही यह स्वीकार किया कि ट्रैक्टर ने मृतक मंगत को टक्कर मारी थी, और यह विवाद का विषय नहीं है। हालाँकि, उनका तर्क है कि यह घटना पूरी तरह से आकस्मिक प्रकृति की है और जीवित अपीलकर्ता धीर सिंह को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत गलत तरीके से दोषी ठहराया गया है और दंडित किया गया है। यह निर्णय कानून के विपरीत है और अभिलेखों में उपलब्ध साक्ष्यों के पूर्णतः गलत मूल्यांकन पर आधारित है।

15. अपने तर्क को विस्तृत करते हुए, उन्होंने पेपर बुक के पृष्ठ 77 पर मेडिकल रिपोर्ट, मृत्युपूर्व चोटों की ओर ध्यान आकर्षित किया है, जो दर्शाता है कि मृतक को 13 चोटें आई थीं। यह प्रस्तुत किया गया है कि मृतक के सिर पर केवल चोट संख्या 1 घातक है और मृतक के मृत शरीर पर कोई कुचलने जैसी चोट नहीं थी, जो स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य गलत और मनगढ़ंत हैं और मेडिकल साक्ष्य से इसकी पुष्टि नहीं होती है। इस संबंध में पीडब्लू-1 रामफल के बयान की ओर ध्यान आकर्षित किया गया, जिसमें उन्होंने कहा था कि अभियुक्त धीर सिंह ट्रैक्टर चला रहा था और अभियुक्त यशपाल (अब मृतक) ट्रैक्टर के मडगार्ड पर बैठा था और यशपाल के उकसाने पर धीर सिंह ने ट्रैक्टर की गति बढ़ा दी और शिकायतकर्ता के पिता मंगत को पीछे से टक्कर मार दी। ट्रैक्टर की चपेट में आने से मंगत श्याम सिंह के खेत में गिर गया, उसके बाद आरोपी धीर सिंह ने मंगत को मारने के इरादे से उसके ऊपर ट्रैक्टर चढ़ा दिया। डॉ जे. जी. गर्ग, जिन्होंने पोस्टमार्टम किया था, के बयान पर भी ध्यान आकर्षित किया गया ताकि यह तर्क दिया जा सके कि उनके प्रति परीक्षा के अनुसार मृतक के मृत शरीर पर कोई कुचलने की चोट नहीं थी और उनकी राय में मृतक की मृत्यु सिर की चोट के कारण हुई थी। उन्होंने पीडब्लू -5 के बयान पर भी ध्यान आकर्षित किया है कि यदि ट्रैक्टर मृतक के ऊपर से गुजरा तो उसकी हड्डी में फ्रैक्चर होने की पूरी संभावना है। यह प्रस्तुत किया गया है कि हालांकि 13 चोटें थीं, फिर भी, कोई फ्रैक्चर नहीं था और डॉक्टर द्वारा बताई गई मृत्यु का कारण सिर की चोट थी। इसलिए, प्रस्तुतीकरण यह है कि पीडब्लू -1- रामफल, जो मृतक का पुत्र है, का प्रत्यक्षदर्शी विवरण मनगढ़ंत है और अपीलकर्ता को दोषी ठहराने का आधार नहीं बन सकता है।

16. उन्होंने आगे तर्क दिया कि इसी कारण से, शुरू में धारा 304 भा.दं.सं. के तहत प्राथमिकी दर्ज की गई थी, जिसे बाद में धारा 302 भा.दं.सं. में परिवर्तित कर दिया गया। यह भी प्रस्तुत किया गया कि सीडब्ल्यू-1, डॉ.

कृष्ण कुमार सिंघल द्वारा दी गई विशेषज्ञ राय से भी यह पता चलता है कि उन्होंने, जिन्होंने अदालत द्वारा बुलाए जाने के बाद सीडब्ल्यू-1 के रूप में गवाही दी है, मृतक के ट्रैक्टर के पहियों के नीचे कुचले जाने के बारे में कोई निश्चित राय व्यक्त नहीं की। यह रेखांकित किया गया कि विशेषज्ञ ने भी इस बारे में कोई निश्चित राय नहीं दी है कि यदि मृतक ट्रैक्टर के पहियों के नीचे कुचला जाता है, तो हड्डी टूट सकती है या नहीं। इसलिए, दलील यह है कि हालांकि यह साबित नहीं हुआ है कि मृतक की मौत ट्रैक्टर के पहियों के नीचे कुचलने से हुई। इसलिए, दलील यह है कि यह विवाद का विषय नहीं है कि ट्रैक्टर ने मृतक को टक्कर मारी, हालांकि, मृतक को लगी चोटें केवल आकस्मिक प्रकृति की हैं और रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्यों के अवलोकन के आधार पर धारा 302 भा.दं.सं. के तहत दोषसिद्धि का कोई मामला नहीं बनता है। बहस के दौरान, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने हमें गवाहों के बयान, पोस्टमार्टम रिपोर्ट, पोस्टमार्टम करने वाले डॉक्टर के बयान और विशेषज्ञ की राय रिपोर्ट से अवगत कराया। नक्शा नजरी भी हमारे सामने रखा गया। यह भी तर्क दिया गया कि जब जांच अधिकारी द्वारा पंचनामा तैयार किया गया था तब प्रथम सूचना रिपोर्ट अस्तित्व में नहीं थी और इसलिए, अभियोजन पक्ष की पूरी कहानी दोषपूर्ण और निराधार है।

17. अंत में, यह तर्क दिया जाता है कि साक्ष्यों के आधार पर धारा 302 के तहत दोषसिद्धि का कोई मामला नहीं बनता है और यद्यपि इसे स्वीकार नहीं किया गया है, फिर भी कम से कम धारा 304 के तहत अपराध किया गया हो सकता है। इसलिए, तर्क यह है कि एकमात्र जीवित अपीलकर्ता धीर सिंह को धारा 302 के तहत आरोपों से बरी किया जाना चाहिए।

18. इसके विपरीत, राज्य प्रतिवादियों की ओर से विद्वान एजीए श्री घनश्याम कुमार ने तर्क दिया कि पहली घटना के संबंध में निश्चित रूप से आपराधिक अभियोजन हुआ था और यह स्पष्ट है कि अभियोक्ता-1-रामफल, जो इस मामले में सूचनादाता है, का मुख्य परीक्षण भी उस आपराधिक अभियोजन में दर्ज किया गया था। हालाँकि, अभियोजन पक्ष की अनुपस्थिति के कारण बरी किया गया क्योंकि धारा 302 भारतीय दंड संहिता के तहत आरोप सिद्ध होने के बाद अभियोजन पक्ष ने धारा 323/34 और 324/34 भारतीय दंड संहिता के तहत अपराध के संबंध में आपराधिक अभियोजन नहीं चलाया, इसलिए, उपरोक्त आपराधिक अभियोजन में बरी करने का कोई महत्व नहीं है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि यह त्वरित प्राथमिकी का मामला है। दूसरी घटना सुबह 8.30 बजे हुई थी, जबकि प्राथमिकी उसी दिन सुबह 9.30 बजे दर्ज की गई थी और पुलिस स्टेशन की दूरी 4 मील है। उनका तर्क है कि प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य इस बात के पुख्ता हैं कि मृतक को ट्रैक्टर ने टक्कर मारी थी, जिसे आरोपी धीर सिंह चला रहा था। अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है और प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य यह भी बताते हैं कि जब मृतक श्याम सिंह के खेत में गिरा, तो ट्रैक्टर उसकी ओर मोड़ दिया गया और वह ट्रैक्टर के पहियों के नीचे कुचल गया। अतः, तर्क यह है कि मंगत की हत्या का स्पष्ट इरादा था और घटना आकस्मिक प्रकृति की नहीं है। उन्होंने दलील दी कि निस्संदेह, दोनों पक्षों के बीच दुश्मनी थी और वर्तमान घटना से ठीक आधे घंटे पहले, सुबह लगभग 8 बजे पहली घटना हुई थी, जिसमें मृतक और सूचनादाता दोनों को उन अभियुक्तों ने पीटा था जो वर्तमान अभियुक्तों के सीधे

रिश्तेदार हैं। यह भी बताया गया कि दोनों पक्षों के बीच सीआरपीसी की धारा 133 के तहत एक कार्यवाही भी लंबित थी।

19. पोस्टमार्टम रिपोर्ट, पी.डब्लू.-5-जे.जी. गर्ग के बयान, विशेषज्ञ, सी.डब्लू.-1-डॉ. कृष्ण कुमार सिंघल के बयान की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए उन्होंने दलील दी कि चिकित्सा साक्ष्य स्पष्ट रूप से आँखों से देखे गए विवरण का समर्थन करते हैं। पोस्टमार्टम करने वाले डॉक्टर ने स्पष्ट रूप से कहा था कि चोटें ट्रैक्टर के पहियों के नीचे कुचलने से लग सकती हैं। विशेषज्ञ की रिपोर्ट भी चिकित्सा साक्ष्य के विपरीत नहीं है। उन्होंने कहा कि किसी भी मामले में चश्मदीद गवाह के बयान को मेडिकल रिपोर्ट पर वरीयता दी जाएगी और सूचना देने वाला वह घायल गवाह है, जिसे पहली घटना में चोटें आई थीं, जो वर्तमान घटना से ठीक आधे घंटे पहले हुई थी और यह भी कहा गया कि पी.डब्ल्यू.-2 पी.ताम्बर सिंह स्वतंत्र चश्मदीद गवाह है और पी.डब्ल्यू.-1 और पी.डब्ल्यू.-2 की उपस्थिति विवादित नहीं है। यह भी कहा गया कि स्वयं को संतुष्ट करने के लिए विद्वान सत्र न्यायाधीश ने मौके का निरीक्षण किया था और जांच अधिकारी द्वारा तैयार की गई नक्शा नजरी को सही और उचित पाया था तथा किसी भी संदेह को दूर करने के लिए अदालत ने विशेषज्ञ की राय भी मांगी थी और विशेषज्ञ डॉ. कृष्ण कुमार सिंघल उपस्थित हुए थे और उन्होंने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी तथा सीडब्ल्यू-1 के रूप में उपस्थित होकर अपनी रिपोर्ट को साबित किया था और उनकी राय थी कि उक्त चोट ट्रैक्टर के पहियों के नीचे कुचलने से हुई होगी। अतः, तर्क यह है कि इससे बिना किसी संदेह के यह स्पष्ट रूप से सिद्ध हो गया है कि मृतक की हत्या करने का इरादा था और भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अंतर्गत अपराध किया गया है। जीवित अपीलकर्ता धीर सिंह स्वयं ट्रैक्टर चला रहा था और इसलिए, दोषसिद्धि के निर्णय में कोई अवैधता या त्रुटि नहीं है।

20. हमने प्रतिद्वन्द्वी प्रस्तुतियों पर विचार किया है और अभिलेखों का अवलोकन किया है।

21. आगे बढ़ने से पहले, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ इस न्यायालय के विभिन्न प्रासंगिक निर्णयों का संदर्भ लेना उचित होगा।

22. **कृष्णा मोची एवं अन्य बनाम बिहार राज्य, (2002) 6 एससीसी 81** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आपराधिक मुकदमे में साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय आपराधिक अदालतों द्वारा अपनाए जाने वाले यथार्थवादी दृष्टिकोण पर जोर दिया, जिसका पैराग्राफ 32 निम्नानुसार उद्धृत है:

"32. साक्ष्यों का मूल्यांकन करते समय न्यायालय को जीवन की इन वास्तविकताओं को नज़रअंदाज़ नहीं करना चाहिए और न ही किसी अवास्तविक दृष्टिकोण को अपनाना चाहिए। मैं देख रहा हूँ कि हाल के दिनों में अभियुक्तों को आसानी से बरी करने का चलन तेजी से बढ रहा है। मामले में उठाए गए छोटे-मोटे मुद्दों के आधार पर, एक संक्षिप्त निर्णय द्वारा, बरी करने का आदेश पारित करना बहुत आसान है ताकि निपटारे का पैमाना हासिल किया जा सके। हर मामले में कुछ विसंगतियाँ अवश्य होती हैं, जिनका न्यायालय को तब तक

ध्यान नहीं रखना चाहिए जब तक कि वे अभियोजन पक्ष के मामले को भौतिक रूप से प्रभावित न करें। यदि बताई गई विसंगतियाँ कंकड़-पत्थर के दायरे में हों, तो न्यायालय को उन पर कदम रखना चाहिए, लेकिन यदि वे पत्थर के पत्थर हैं, तो न्यायालय को उन्हें लांघने का प्रयास नहीं करना चाहिए। आजकल जब अपराध बढ़ रहे हैं और मानवता पीड़ित है और समाज इससे इतना प्रभावित है, न्यायालयों के कर्तव्य और ज़िम्मेदारियाँ बहुत बढ़ गई हैं। अब यह कहावत, "सौ दोषी बरी हो जाएँ, लेकिन एक भी निर्दोष दोषी न हो," चरितार्थ होती है। दुनिया भर में प्रथा बदल रही है और अदालतें यह स्वीकार करने को मजबूर हुई हैं कि "समाज गलत दोषसिद्धि से पीड़ित है और गलत बरी होने से भी उतना ही पीड़ित है"। मुझे लगता है कि इस न्यायालय ने हाल के दिनों में समय-समय पर इन तथ्यों पर गंभीरता से ध्यान दिया है....."

(प्रभाव वर्धित)

23. **मसालती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 1965 एससी 202** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 14 में निम्नलिखित टिप्पणी की:

"14. लेकिन हमारा मानना है कि यह तर्क देना अनुचित होगा कि गवाहों द्वारा दिए गए साक्ष्य को केवल इस आधार पर खारिज कर दिया जाना चाहिए कि यह पक्षपातपूर्ण या हितबद्ध गवाहों का साक्ष्य है। ... ऐसे साक्ष्य को केवल इस आधार पर यांत्रिक रूप से खारिज करना कि यह पक्षपातपूर्ण है, अनिवार्य रूप से न्याय की विफलता का कारण बनेगा।"

(प्रभाव वर्धित)

24. **दरिया सिंह बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 1965 एससी 328** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भी यह मत व्यक्त किया है कि संबंधित गवाह का अर्थ आवश्यक रूप से हितबद्ध गवाह नहीं है या उसके समतुल्य नहीं है। किसी गवाह को हितबद्ध तभी कहा जा सकता है जब उसे मुकदमेबाजी के परिणाम से कुछ लाभ प्राप्त होता हो; किसी दीवानी मामले में डिक्री से, या किसी आपराधिक मुकदमे में किसी व्यक्ति को दंडित होते देखने से, जिसका पैराग्राफ 6 इस प्रकार उद्धृत है:

"6. सिद्धांत रूप में, तथापि, इस तर्क को स्वीकार करना कठिन है कि यदि किसी गवाह को मृतक का रिश्तेदार दिखाया जाता है और यह भी दिखाया जाता है कि उसने हमलावर के प्रति पीड़ित की शत्रुता साझा की थी, तो उसके साक्ष्य को तब तक स्वीकार नहीं किया जा सकता जब तक कि उसकी पुष्टि भौतिक विवरणों से न हो जाए।"

25. **अप्पाभाई एवं अन्य बनाम गुजरात राज्य, एआईआर 1988 एससी 696** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 11 में निम्नलिखित टिप्पणी की:

"11.....अनुभव हमें याद दिलाता है कि सभ्य लोग आमतौर पर तब असंवेदनशील होते हैं जब उनकी उपस्थिति में भी कोई अपराध होता है। वे पीड़ित और निगरानीकर्ता, दोनों से दूरी बना लेते हैं। जब तक अपरिहार्य न हो, वे स्वयं को न्यायालय से दूर रखते हैं। वे सोचते हैं कि दीवानी विवाद जैसा अपराध दो व्यक्तियों या पक्षों के बीच होता है और उन्हें इसमें शामिल नहीं होना चाहिए। आम जनता की इस प्रकार की उदासीनता वास्तव में

दुर्भाग्यपूर्ण है, लेकिन यह हर जगह मौजूद है, चाहे वह ग्रामीण जीवन हो, कस्बे हों या शहर। इस बाधा को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता जिसके साथ जांच एजेंसी को अपने कर्तव्यों का निर्वहन करना पड़ता है। इसलिए, अदालत को स्वतंत्र गवाह के अभाव में अभियोजन पक्ष के मामले पर संदेह करने के बजाय, अभियोजन पक्ष के बयान के व्यापक पहलुओं पर विचार करना चाहिए और फिर अभियुक्त द्वारा सुझाई गई संभावना, यदि कोई हो, को ध्यान में रखते हुए सच्चाई के मूल तत्व की खोज करनी चाहिए। हालाँकि, अदालत को यह ध्यान में रखना चाहिए कि किसी गंभीर अपराध के गवाह सामान्य तरीके से प्रतिक्रिया नहीं दे सकते। न ही वे एक समान प्रतिक्रिया देते हैं। किसी जघन्य अपराध या जघन्य प्रकृति के कृत्य से भयभीत गवाह अलग तरह से प्रतिक्रिया दे सकते हैं। सामान्य परिस्थितियों में उनका आचरण सामान्य प्रकार का नहीं हो सकता। इसलिए, न्यायालय केवल इसलिए उनके साक्ष्य को अस्वीकार नहीं कर सकता क्योंकि उन्होंने असामान्य तरीके से व्यवहार या प्रतिक्रिया की है..."

(प्रभाव वर्धित)

26. इसी प्रकार का दृष्टिकोण **आंध्र प्रदेश राज्य बनाम एस. रायप्पा एवं अन्य (2006) 4 एससीसी 512** में लिया गया है, जिसमें यह देखा गया है कि अब यह लगभग एक फैशन बन गया है कि जनता न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने और गवाही देने में अनिच्छुक है, विशेष रूप से आपराधिक मामलों में और इसी कारण से मामले वर्षों तक खिंच जाते हैं, जिसका पैराग्राफ 6 इस प्रकार उद्धृत किया गया है:

"6.....अब तक, यह विधि का एक सुस्थापित सिद्धांत बन चुका है कि किसी गवाह की गवाही, जो अन्यथा विश्वास उत्पन्न करती हो, इस आधार पर खारिज नहीं की जा सकती कि वह मृतक का रिश्तेदार होने के नाते एक हितबद्ध गवाह है। एक निकट संबंधी जो एक स्वाभाविक गवाह है, उसे हितबद्ध गवाह नहीं कहा जा सकता। हितबद्ध शब्द का तात्पर्य यह है कि संबंधित व्यक्ति का, शत्रुता या किसी अन्य कारण से, अभियुक्त को किसी न किसी रूप में दोषी ठहराए जाने में प्रत्यक्ष हित अवश्य होना चाहिए।"

(प्रभाव वर्धित)

27. **पुलिचेरला नागराजू @ नागराज रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (2006) 11 एससीसी 444** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ 16 में निम्नलिखित निर्णय दिया है:

"16. इस मामले में, हम पाते हैं कि निचली अदालत ने पी.डब्लू 1 और पी.डब्लू 2 के साक्ष्य को केवल इसलिए खारिज कर दिया क्योंकि वे मृतक के भाई और पिता होने के नाते हितबद्ध गवाह थे। लेकिन यह सर्वविदित है कि किसी गवाह के साक्ष्य को केवल इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता कि वह मृतक का पक्षधर है, हितबद्ध है या उससे निकट संबंधी है, यदि अन्यथा वह विश्वसनीय और विश्वसनीय पाया जाता है। इसके लिए केवल अधिक सावधानी और सतर्कता से जांच की आवश्यकता है, ताकि न तो दोषी बच सके और न ही निर्दोष को गलत तरीके से दोषी ठहराया जा सके। यदि ऐसी सावधानीपूर्वक जांच करने पर, साक्ष्य विश्वसनीय और संभावित पाया जाता है, तो उस पर कार्रवाई की जा सकती है। यदि यह असंभाव्य या संदिग्ध पाया जाता है, तो इसे खारिज कर दिया जाना चाहिए। जहां गवाह के पास झूठा फंसाने का मकसद हो अभियुक्त की गवाही को स्वीकार किए जाने से पहले, उसके भौतिक विवरणों के संबंध में उसकी पुष्टि होनी चाहिए।"

(प्रभाव वर्धित)

28. **सतबीर सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2009) 13 एससीसी 790**, में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ 26 में निम्नलिखित निर्णय दिया:

"26. अब यह विधि का एक सुस्थापित सिद्धांत है कि केवल इसलिए कि गवाह स्वतंत्र नहीं हैं, अभियोजन पक्ष के मामले को खारिज करने का आधार नहीं हो सकता। यदि अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन गवाहों द्वारा किया गया है और उनके बयानों को खारिज करने का कोई ठोस कारण नहीं दिखाया गया है, तो दोषसिद्धि का निर्णय निश्चित रूप से इसी आधार पर दिया जा सकता है....."

(प्रभाव वर्धित)

29. **जयबालन बनाम यू.टी. पांडिचेरी, 2010 (68) एसीसी 308 (एससी)** मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 21 में निम्नलिखित निर्णय दिया:

"21. हमारा यह सुविचारित मत है कि ऐसे मामलों में जहाँ न्यायालय को हितबद्ध गवाहों के साक्ष्य पर विचार करने के लिए कहा जाता है, ऐसे गवाहों के साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय न्यायालय का दृष्टिकोण पांडित्यपूर्ण नहीं होना चाहिए। न्यायालय को हितबद्ध गवाहों द्वारा दिए गए साक्ष्य का मूल्यांकन और स्वीकार करने में सावधानी बरतनी चाहिए, लेकिन न्यायालय को ऐसे साक्ष्य पर संदेह नहीं करना चाहिए। न्यायालय का प्राथमिक प्रयास एकरूपता की तलाश करना होना चाहिए। किसी गवाह के साक्ष्य को केवल इसलिए नजरअंदाज या खारिज नहीं किया जा सकता क्योंकि वह पीड़ित के निकट संबंधी व्यक्ति के मुँह से निकला है।"

(प्रभाव वर्धित)

30. **धरणीधर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2010) 7 एससीसी 759** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि ऐसा कोई निश्चित नियम नहीं है कि परिवार के सदस्य कभी भी घटना के सच्चे गवाह नहीं हो सकते और वे हमेशा न्यायालय के समक्ष झूठी गवाही देंगे। यह हमेशा किसी दिए गए मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा, जिसके अनुच्छेद 12 और 13 इस प्रकार उद्धृत हैं:

"12. ऐसा कोई कठोर नियम नहीं है कि परिवार के सदस्य कभी भी घटना के सच्चे गवाह नहीं हो सकते और वे हमेशा न्यायालय के समक्ष झूठी गवाही देंगे। यह हमेशा किसी दिए गए मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। जयबालन बनाम पांडिचेरी संघ राज्य क्षेत्र [(2010)1 एससीसी 199] के मामले में, इस न्यायालय को इस बात पर विचार करने का अवसर मिला था कि क्या इच्छुक गवाहों के साक्ष्य पर भरोसा किया जा सकता है। न्यायालय ने यह विचार व्यक्त किया कि किसी इच्छुक गवाह के साक्ष्य पर विचार करते समय पांडित्यपूर्ण दृष्टिकोण नहीं अपनाया जा सकता। ऐसे साक्ष्य को केवल इसलिए नज़रअंदाज़ या खारिज नहीं किया जा सकता क्योंकि यह पीड़ित के निकट संबंधी व्यक्ति से आया है। न्यायालय ने निम्नलिखित निर्णय दिया:

"23. हमारा यह सुविचारित मत है कि ऐसे मामलों में जहाँ न्यायालय को हितबद्ध गवाहों के साक्ष्य पर विचार करने के लिए कहा जाता है, ऐसे गवाहों के साक्ष्य की सराहना करते समय न्यायालय का दृष्टिकोण पांडित्यपूर्ण

नहीं होना चाहिए। न्यायालय को हितबद्ध गवाहों द्वारा दिए गए साक्ष्य की सराहना करने और उसे स्वीकार करने में सावधानी बरतनी चाहिए, लेकिन न्यायालय को ऐसे साक्ष्य पर संदेह नहीं करना चाहिए। न्यायालय का प्राथमिक प्रयास एकरूपता की तलाश करना होना चाहिए। किसी गवाह के साक्ष्य को केवल इसलिए नजरअंदाज या खारिज नहीं किया जा सकता क्योंकि वह ऐसे व्यक्ति के मुँह से आता है जो पीड़ित से निकट संबंधी है।

.....

13. इसी न्यायालय ने राम भरोसे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [एआईआर 2010 एससी 917] में भी ऐसा ही विचार व्यक्त किया था, जहाँ न्यायालय ने विधि के इस सिद्धांत को स्पष्ट किया था कि मृतक का कोई निकट संबंधी, स्वतः, हितबद्ध गवाह नहीं बन जाता। हितबद्ध गवाह वह होता है जो प्रतिशोध या शत्रुता या विवादों के कारण किसी व्यक्ति को दोषसिद्धि दिलाने में रुचि रखता है और न्यायालय के समक्ष केवल इसी उद्देश्य से गवाही देता है, न्याय के लिए नहीं। हितबद्ध गवाह के साक्ष्य के मूल्यांकन से संबंधित कानून सुस्थापित है, जिसके अनुसार, हितबद्ध गवाह के कथन को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता, बल्कि उसे स्वीकार करने से पहले उसकी सावधानीपूर्वक जाँच की जानी चाहिए।

14. उपरोक्त निर्णयों के आलोक में, यह स्पष्ट है कि अभियोजन पक्ष की कहानी के समर्थन में न्यायालय द्वारा कथित हितबद्ध गवाहों के बयानों पर सुरक्षित रूप से भरोसा किया जा सकता है। लेकिन यह सावधानी से किया जाना चाहिए और यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि मृतक के निकट संबंधी व्यक्तियों द्वारा आपराधिक न्याय प्रशासन को कमजोर न किया जाए। जब उनके बयानों की पुष्टि अन्य गवाहों, विशेषज्ञ साक्ष्यों और मामले की परिस्थितियों से होती है, जो स्पष्ट रूप से अभियुक्त के अपराध की ओर इशारा करते हुए साक्ष्यों की श्रृंखला को पूरा करती हैं, तो हमें कोई कारण नहीं दिखता कि तथाकथित 'हितबद्ध गवाहों' के बयानों पर न्यायालय द्वारा भरोसा क्यों नहीं किया जा सकता।"

(प्रभाव वर्धित)

31. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **बबन शंकर दफल एवं अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2025 एससीसी ऑनलाइन एससी 137** में दिए गए एक हालिया फैसले में गवाह की गवाही के संबंध में, जिसे केवल पीड़ित के साथ संबंध के कारण खारिज नहीं किया जाना चाहिए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ 27 और 28 में निम्नानुसार माना है:

"27. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का एक तर्क यह है कि घटना के सभी प्रत्यक्षदर्शी मृतक के निकट संबंधी थे और विवेक के लिए अभियोजन पक्ष को कुछ अन्य स्वतंत्र प्रत्यक्षदर्शियों से भी पूछताछ करनी चाहिए थी जो दुर्भाग्यपूर्ण घटना के समय मौजूद थे। विचारण न्यायालय ने भी यही दृष्टिकोण अपनाया था, लेकिन उच्च न्यायालय ने इस तरह के दृष्टिकोण को सही ढंग से खारिज कर दिया है और माना है कि केवल इसलिए कि कुछ और स्वतंत्र गवाह भी थे, जो घटनास्थल पर पहुँचे थे, रिश्तेदारों के साक्ष्य पर अविश्वास नहीं किया जा सकता। कानून में कहीं भी यह नहीं कहा गया है कि संबंधित गवाह के साक्ष्य को पूरी तरह से खारिज कर दिया जाना चाहिए। कानून केवल यह सुनिश्चित करता है कि उनके साक्ष्य की सावधानीपूर्वक और सतर्कतापूर्वक जाँच की जानी चाहिए। इस न्यायालय ने अपने निर्णयों में यह माना है कि यदि कोई गवाह रिश्तेदार है, तो केवल इसी आधार पर उसकी गवाही को खारिज नहीं किया जा सकता।

28. आपराधिक मामलों में, गवाहों की विश्वसनीयता, खासकर पीड़ित के करीबी रिश्तेदारों की, अक्सर जाँची जाती है। हालाँकि, रिश्तेदार होने का मतलब यह नहीं कि कोई गवाह स्वतः ही "हितधारक" या पक्षपाती हो जाता है। "हितधारक" शब्द उन गवाहों को संदर्भित करता है जिनका परिणाम में व्यक्तिगत हित होता है, जैसे बदला लेने की इच्छा या दुश्मनी या व्यक्तिगत लाभ के कारण आरोपी को झूठा फँसाना। दूसरी ओर, एक "संबंधी" गवाह वह होता है जो अपराध स्थल पर स्वाभाविक रूप से मौजूद हो सकता है, और केवल पीड़ित से उसके रिश्ते के कारण उसकी गवाही को खारिज नहीं किया जाना चाहिए। अदालतों को उनके बयानों की विश्वसनीयता, एकरूपता और सुसंगतता का आकलन करना चाहिए, न कि उन्हें अविश्वसनीय करार देना चाहिए।"

(प्रभाव वर्धित)

32. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **शाहजा @ शाहजान इस्माइल मोहम्मद बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2023) 12 एससीसी 558** में दिए गए एक हालिया फैसले में कहा गया है कि प्रत्यक्ष साक्ष्य का मूल्यांकन एक कठिन कार्य है और आपराधिक मामले में प्रत्यक्ष साक्ष्य की सराहना के लिए न्यायिक रूप से विकसित सिद्धांतों का सारांश दिया गया है, जिसके पैराग्राफ 29 और 30 को निम्नानुसार उद्धृत किया गया है:

"29. प्रत्यक्ष साक्ष्य का मूल्यांकन एक कठिन कार्य है। प्रत्यक्ष साक्ष्य के मूल्यांकन के लिए कोई निश्चित या सीधा-सादा सूत्र नहीं है। किसी आपराधिक मामले में प्रत्यक्ष साक्ष्य के मूल्यांकन के लिए न्यायिक रूप से विकसित सिद्धांतों को निम्नानुसार उद्धृत किया जा सकता है:

29.1 किसी गवाह के साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय, यह विचार किया जाना चाहिए कि क्या गवाह के साक्ष्य को समग्र रूप से पढ़ने पर उसमें सत्यता की झलक दिखाई देती है। एक बार यह धारणा बन जाने पर, न्यायालय के लिए निस्संदेह यह आवश्यक है कि वह साक्ष्य की और भी अधिक गहन जाँच करे, विशेष रूप से समग्र साक्ष्य में इंगित कमियों, कमियों और दुर्बलताओं को ध्यान में रखते हुए और उनका मूल्यांकन करके यह पता लगाए कि क्या यह साक्ष्य गवाह द्वारा दिए गए साक्ष्य के सामान्य स्वरूप के विरुद्ध है और क्या साक्ष्य के पूर्व मूल्यांकन में इस प्रकार का परिवर्तन किया गया है कि वह विश्वास करने योग्य न रहे।

29.2. यदि वह न्यायालय, जिसके समक्ष साक्षी साक्ष्य देता है, को साक्षी द्वारा दिए गए साक्ष्य के सामान्य स्वरूप के बारे में राय बनाने का अवसर मिला था, तो अपीलीय न्यायालय, जिसे यह लाभ नहीं मिला था, को विचारण न्यायालय द्वारा साक्ष्य के मूल्यांकन को उचित महत्व देना होगा और जब तक कि वजनदार और प्रबल कारण न हों, तब तक मामूली विवरणों के मामले में मामूली भिन्नताओं या दुर्बलताओं के आधार पर साक्ष्य को अस्वीकार करना उचित नहीं होगा।

29.3 जब किसी प्रत्यक्षदर्शी से विस्तृत पूछताछ की जाती है, तो यह पूरी तरह संभव है कि वह कुछ विसंगतियाँ बता दे। लेकिन अदालतों को यह ध्यान रखना चाहिए कि केवल तभी जब किसी गवाह के साक्ष्य में विसंगतियाँ उसके बयान की विश्वसनीयता के साथ इतनी असंगत हों कि अदालत उसके साक्ष्य को खारिज करने के लिए न्यायोचित हो।

29.4. मामले के मूल को न छूने वाले तुच्छ मामलों पर छोटी-मोटी विसंगतियां, साक्ष्य से यहां-वहां संदर्भ से हटकर वाक्यों को लेकर अति तकनीकी दृष्टिकोण, मामले की जड़ तक न जाकर जांच अधिकारी द्वारा की गई कुछ तकनीकी त्रुटि को महत्व देना, सामान्यतः साक्ष्य को समग्र रूप से अस्वीकार करने की अनुमति नहीं देगा।

29.5. किसी घटना के वर्णन में आने वाली भिन्नताओं (दो गवाहों के साक्ष्य के बीच या एक ही गवाह के दो बयानों के बीच) पर अत्यधिक गंभीर दृष्टिकोण अपनाना न्यायिक जांच के लिए एक अवास्तविक दृष्टिकोण है।

29.6. मोटे तौर पर किसी गवाह से यह उम्मीद नहीं की जा सकती कि वह फोटोग्राफिक मेमोरी रखता हो और घटना का विवरण याद रख सके। ऐसा नहीं है कि मानसिक स्क्रीन पर कोई वीडियो टेप दोबारा चलाया जाता है।

29.7. आमतौर पर ऐसा होता है कि साक्षी घटनाओं से अभिभूत हो जाता है। साक्षी उस घटना का पूर्वानुमान नहीं लगा पाता जिसमें अक्सर आश्चर्य का तत्व होता है। इसलिए उसकी मानसिक क्षमताओं से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वह विवरणों को ग्रहण करने के लिए तैयार हो।

29.8. अवलोकन क्षमता हर व्यक्ति में अलग-अलग होती है। एक व्यक्ति जो देख सकता है, वह दूसरा नहीं भी देख सकता। कोई वस्तु या गति किसी व्यक्ति के मन में अपनी छवि बना सकती है, जबकि दूसरे के लिए वह अनदेखी रह सकती है।

29.9. आम तौर पर लोग किसी बातचीत को ठीक से याद नहीं कर पाते और न ही अपने द्वारा इस्तेमाल किए गए या सुने गए शब्दों को दोहरा पाते हैं। वे केवल बातचीत का मुख्य आशय ही याद रख पाते हैं। किसी गवाह से मानव टेप रिकॉर्डर होने की उम्मीद करना अवास्तविक है।

29.10. किसी घटना के सटीक समय या घटना की समयावधि के संबंध में, आमतौर पर लोग पूछताछ के समय अचानक अनुमान लगा लेते हैं। और ऐसे मामलों में लोगों से बहुत सटीक या विश्वसनीय अनुमान लगाने की उम्मीद नहीं की जा सकती। यह भी, व्यक्तियों की समय-बोध पर निर्भर करता है जो हर व्यक्ति में अलग-अलग होती है।

29.11. सामान्यतः किसी गवाह से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वह घटनाओं के क्रम को ठीक-ठीक याद रखे जो एक के बाद एक या कम समय में घटित होती हैं। बाद में पूछताछ करने पर गवाह भ्रमित हो सकता है या उलझ सकता है।

29.12. कोई गवाह, भले ही पूरी तरह सच्चा हो, पर अदालती माहौल और अधिवक्ता द्वारा की जाने वाली कड़ी जिरह से घबरा सकता है और घबराहट के कारण तथ्यों को मिला सकता है, घटनाओं के क्रम को लेकर भ्रमित हो सकता है, या क्षणिक रूप से कल्पना से विवरण भर सकता है। गवाह का अवचेतन मन कभी-कभी मूर्ख दिखने या अविश्वास किए जाने के डर से ऐसा करता है, हालाँकि वह अपने द्वारा देखी गई घटना का सच्चा और ईमानदार विवरण दे रहा होता है।

29.13. पूर्व कथन, भले ही साक्ष्य से असंगत प्रतीत होता हो, आवश्यक रूप से विरोधाभास उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त नहीं है। जब तक पूर्व कथन में बाद वाले कथन को बदनाम करने की क्षमता न हो, तब तक, भले ही बाद वाला कथन कुछ हद तक पूर्व कथन से भिन्न हो, उस साक्षी का खंडन करना सहायक नहीं होगा।

[देखें भरवाड़ा भोगिनभाई हिरजीभाई बनाम गुजरात राज्य, 1983 सीआरआई एलजे 1096: एआईआर 1983 एससी 753, लीला राम बनाम हरियाणा राज्य, एआईआर 1999 एससी 3717, और तहसीलदार सिंह बनाम यूपी राज्य, एआईआर 1959 एससी 1012]

30. सरल शब्दों में कहें तो, प्रत्यक्षदर्शियों के साक्ष्य के मूल्य का आकलन करते समय, दो मुख्य विचारणीय बिंदु होते हैं: क्या मामले की परिस्थितियों में, घटनास्थल पर या ऐसी परिस्थितियों में उनकी उपस्थिति पर

विश्वास करना संभव है जो उनके द्वारा बताए गए तथ्यों को उनके द्वारा प्रमाणित करना संभव बनाती हों, और दूसरा, क्या उनके साक्ष्य में कुछ भी स्वाभाविक रूप से असंभव या अविश्वसनीय है। इन दोनों विचारों के संबंध में, उन गवाहों से प्राप्त या अन्य साक्ष्यों द्वारा स्थापित परिस्थितियाँ, जो उनकी उपस्थिति को असंभव बनाती हैं या उनके कथनों की सत्यता को बदनाम करती हैं, उस मूल्य को प्रभावित करेंगी जो न्यायालय उनके साक्ष्य को प्रदान करेगा। यद्यपि ऐसे मामलों में जहाँ अभियुक्त का तर्क मात्र इनकार है, फिर भी अभियोजन पक्ष के गवाहों के साक्ष्य की जाँच उसके गुण-दोष के आधार पर की जानी चाहिए। जहाँ अभियुक्त कोई निश्चित तर्क प्रस्तुत करता है या कोई सकारात्मक मामला प्रस्तुत करता है जो अभियोजन पक्ष के तर्क से असंगत है, वहाँ अभियोजन पक्ष के साक्ष्य के मूल्य का आकलन करते समय ऐसी तर्क या मामले की प्रकृति और उससे संबंधित संभावनाओं को भी ध्यान में रखना होगा।"

(प्रभाव वर्धित)

33. **<u>पहलवान सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2020 (6) एएलजे 166</u>** के पैराग्राफ 48 को इस प्रकार उद्धृत किया गया है:

"48. इस प्रकार, सर्वोच्च न्यायालय के उपर्युक्त निर्णयों के मद्देनजर, अब यह विधि की एक स्थापित स्थिति है कि अभियोजन पक्ष की कहानी के समर्थन में न्यायालय द्वारा हितबद्ध गवाहों के बयानों पर सुरक्षित रूप से भरोसा किया जा सकता है। लेकिन यह सावधानी से किया जाना चाहिए और यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि मृतक के निकट संबंधी व्यक्तियों द्वारा आपराधिक न्याय प्रशासन को कमजोर न किया जाए। जब उनके बयानों की पुष्टि अन्य साक्ष्यों, विशेषज्ञ साक्ष्यों और मामले की परिस्थितियों से होती है, जो स्पष्ट रूप से अभियुक्त के अपराध की ओर इशारा करते हुए साक्ष्यों की श्रृंखला को पूरा करती हैं, तो कोई कारण नहीं है कि तथाकथित 'हितबद्ध गवाहों' के बयान पर न्यायालय द्वारा भरोसा क्यों नहीं किया जा सकता। यह विश्वास करना कठिन होगा कि निकट संबंधी वास्तविक अपराधी को छोड़ देंगे और निर्दोष व्यक्तियों को केवल इसलिए झूठा फंसाएँगे क्योंकि उनकी अभियुक्त व्यक्तियों से दुश्मनी है।"

(प्रभाव वर्धित)

34. जहां तक घायल गवाह की गवाही का संबंध है, इस न्यायालय ने **<u>कप्तान सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2020 (1) एडीजे 106 (डीबी) में पैराग्राफ 20</u>** में निम्नानुसार टिप्पणी की है:

"20. साक्ष्यों की गहन जांच से पता चलता है कि (पीडब्लू-1) विमला देवी और (पीडब्लू-2) राम सिंगार पांडे के बयान स्पष्ट, ठोस और विश्वसनीय हैं। उनसे जिरह की गई, लेकिन वे अभियोजन पक्ष के बयान पर अड़े रहे और ऐसा कोई तथ्य, विरोधाभास या असंगति सामने नहीं आई, जिससे उनकी गवाही पर कोई संदेह पैदा हो। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि घटना के बाद, मृतक और घायलों को अस्पताल ले जाया गया और वहां भर्ती कराया गया और उसी रात मृतक राम निवास राव की चोटों के कारण मृत्यु हो गई, यह स्पष्ट है कि घटना की पहली सूचना रिपोर्ट बिना किसी अनुचित देरी के दर्ज की गई थी। (पीडब्लू-1) विमला देवी का बयान (पीडब्लू-2) राम सिंगार पांडे की गवाही से पुष्ट होता है और पूरी तरह से चिकित्सा साक्ष्य के अनुरूप है। यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि (पीडब्लू-2) राम सिंगार पांडे ने स्वयं उसी घटना में चोटें पहुंचाई थीं। जरनैल

सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2009) 9 एससीसी 719 में, सर्वोच्च न्यायालय ने एक घायल अभियुक्त की गवाही को दी गई विशेष साक्ष्य स्थिति को दोहराया। यह तथ्य कि गवाह को घटना के समय और स्थान पर चोटें आईं, उसकी इस गवाही को समर्थन देता है कि वह घटना के दौरान मौजूद था। यदि घायल गवाह से लंबी जिरह की जाती है और उसकी गवाही को खारिज करने के लिए कुछ भी नहीं निकाला जा सकता है, तो इस पर भरोसा किया जाना चाहिए। कृष्ण बनाम हरियाणा राज्य, (2006) 12 एससीसी 459 के मामले में भी यही विचार व्यक्त किया गया था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दिनांक 9.1.2017 को निर्णीत, आपराधिक अपील संख्या 513-514/2014 बालेश्वर महतो और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य मामले में निम्नलिखित कानून को दोहराया है:

"28. इस न्यायालय ने घटना के दौरान स्वयं घायल हुए किसी गवाह के साक्ष्य को दिए जाने वाले महत्व के प्रश्न पर विस्तार से चर्चा की है। जहाँ घटना का कोई गवाह स्वयं घटना में घायल हुआ हो, ऐसे गवाह की गवाही को सामान्यतः अत्यंत विश्वसनीय माना जाता है, क्योंकि वह ऐसा गवाह होता है जिसके साथ अपराध स्थल पर उसकी उपस्थिति की अंतर्निहित गारंटी होती है और किसी को झूठा फंसाने के लिए उसके द्वारा अपने वास्तविक हमलावर/हमलावरों को छोड़े जाने की संभावना नहीं होती।

"किसी घायल गवाह को बदनाम करने के लिए ठोस सबूत की आवश्यकता होती है।" [देखें रामलगन सिंह बनाम बिहार राज्य [(1973) 3 एससीसी 881:1973 एससीसी (क्रि) 563:एआईआर 1972 एससी 2593], मलखान सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(1975) 3 एससीसी 311: 1974 एससीसी (क्रि) 919: एआईआर 1975 एससी 12], मच्छी सिंह बनाम पंजाब राज्य [(1983) 3 एससीसी 470: 1983 एससीसी (क्रि) 681], अप्पाभाई बनाम गुजरात राज्य [1988 सप्प एससीसी 241: 1988 एससीसी (क्रि) 559: एआईआर 1988 एससी 696], बोंक्य बनाम महाराष्ट्र राज्य [(1995) 6 एससीसी 447: 1995 एससीसी (क्रि) 1113], भाग सिंह [(1997) 7 एससीसी 712: 1997 एससीसी (क्रि) 1163], मोहर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(2002) 7 एससीसी 606: 2003 एससीसी (क्रि) 121] (एससीसी पृ. 606बी-सी), दिनेश कुमार बनाम राजस्थान राज्य [(2008) 8 एससीसी 270: (2008) 3 एससीसी (क्रि) 472], विष्णु बनाम राजस्थान राज्य [(2009) 10 एससीसी 477: (2010) 1 एससीसी (क्रि) 302], अन्नारेड्डी संबाशिवा रेड्डी बनाम ए.पी. राज्य [(2009) 12 एससीसी 546: (2010) 1 एससीसी (क्रि) 630] और बलराजे बनाम महाराष्ट्र राज्य [(2010) 6 एससीसी 673: (2010) 3 एससीसी (क्रि) 211] 29. इस मुद्दे पर निर्णय करते समय, जरनैल सिंह बनाम पंजाब राज्य [(2009) 9 एससीसी 719: (2010) 1 एससीसी (क्रि) 107] में भी इसी तरह का दृष्टिकोण अपनाया गया था, जहां इस न्यायालय ने एक घायल अभियुक्त की गवाही को दी गई विशेष साक्ष्य स्थिति को दोहराया और अपने पहले के निर्णयों पर भरोसा करते हुए निम्नानुसार टिप्पणी की: (एससीसी पृ. 726-27, पैरा 28-29)

"28. दर्शन सिंह (पीडब्लू 4) एक घायल गवाह था। डॉक्टर ने उसकी जाँच की थी। उसकी गवाही को हल्के में नहीं लिया जा सकता था। उसने घटना का पूरा विवरण दिया था क्योंकि वह उस समय मौजूद था जब हमलावर ट्यूबवेल पर पहुँचे थे। शिवलिंगप्पा कल्लयनप्पा बनाम कर्नाटक राज्य [1994 सप्प (3) एससीसी 235: 1994

एससीसी (क्रि) 1694] में इस न्यायालय ने माना है कि घायल गवाह के बयान पर भरोसा किया जाना चाहिए जब तक कि बड़े विरोधाभासों और विसंगतियों के आधार पर उसके साक्ष्य को खारिज करने के मजबूत आधार न हों, इस कारण से कि घटनास्थल पर उसकी उपस्थिति स्थापित हो जाती है यदि यह साबित हो जाता है कि उक्त घटना के दौरान उसे चोट लगी थी।

उत्तर प्रदेश राज्य बनाम किशन चंद [(2004) 7 एससीसी 629: 2004 एससीसी (क्रि) 2021] में इसी तरह के विचार को दोहराया गया है जिसमें कहा गया है कि मुहर लगे गवाह की गवाही की अपनी प्रासंगिकता और प्रभावकारिता होती है। यह तथ्य कि गवाह को घटना के समय और स्थान पर चोटें आईं, उसकी इस गवाही को समर्थन देता है कि वह घटना के दौरान मौजूद था। यदि घायल गवाह से लंबी जिरह की जाती है और उसकी गवाही को खारिज करने के लिए कुछ भी नहीं निकाला जा सकता है, तो इस पर भरोसा किया जाना चाहिए (देखें कृष्ण बनाम हरियाणा राज्य [(2006) 12 एससीसी 459: (2007) 2 एससीसी (क्रि) 214])। इस प्रकार, हमारा यह सुविचारित मत है कि दर्शन सिंह (पीडब्लू 4) के साक्ष्य पर निचली अदालतों ने सही ढंग से भरोसा किया है।"

30. इस मुद्दे पर कानून को इस आशय से संक्षेपित किया जा सकता है कि घायल गवाह की गवाही को कानून में एक विशेष दर्जा दिया गया है। यह इस तथ्य के परिणामस्वरूप है कि गवाह को लगी चोट अपराध स्थल पर उसकी उपस्थिति की अंतर्निहित गारंटी है और क्योंकि गवाह अपने वास्तविक हमलावर को केवल अपराध के लिए किसी तीसरे पक्ष को झूठा फंसाने के लिए दंडित किए बिना नहीं छोड़ना चाहेगा। इस प्रकार, घायल गवाह के बयान पर भरोसा किया जाना चाहिए जब तक कि उसके साक्ष्य को प्रमुख विरोधाभासों और विसंगतियों के आधार पर खारिज करने के लिए मजबूत आधार न हों।" इसी फैसले में, पहले के कई उदाहरणों के आधार पर, चिकित्सीय साक्ष्य और नेत्र संबंधी साक्ष्य के बीच संबंधों पर भी चर्चा की गई थी, जो इस प्रकार है: "33. हरियाणा राज्य बनाम भागीरथ [(1999) 5 एससीसी 96: 1999 एससीसी (क्रि) 658] में यह निम्नानुसार माना गया था: (एससीसी पृष्ठ 101, पैरा 15)

"15. किसी चिकित्सा साक्षी द्वारा दी गई राय किसी विषय पर अंतिम निर्णय नहीं होती। ऐसी राय का परीक्षण न्यायालय द्वारा किया जाएगा। यदि राय तर्क या वस्तुनिष्ठता से रहित है, तो न्यायालय उस राय को मानने के लिए बाध्य नहीं है। आखिरकार, राय वह होती है जो किसी तथ्यात्मक स्थिति के बारे में व्यक्ति के मन में बनती है। यदि एक डॉक्टर एक राय बनाता है और दूसरा डॉक्टर उन्हीं तथ्यों पर एक अलग राय बनाता है, तो न्यायाधीश उस राय को अपनाने के लिए स्वतंत्र है जो अधिक वस्तुनिष्ठ या संभाव्य हो। इसी प्रकार, यदि एक डॉक्टर द्वारा दी गई राय संभाव्यता के अनुरूप नहीं है, तो न्यायालय केवल इसलिए उस राय को मानने के लिए बाध्य नहीं है क्योंकि वह डॉक्टर द्वारा कही गई है। बेशक, उन व्यक्तियों द्वारा दी गई राय को उचित महत्व दिया जाना चाहिए जो उस विशेष विषय के विशेषज्ञ हैं।"

शिवलिंगप्पा कल्लयनप्पा बनाम कर्नाटक राज्य, 1994 सप्प (3) एससीसी 235: 1994 एससीसी (क्रि) 1694 में, न्यायालय ने अवधारित किया है कि घायल गवाह के बयान पर भरोसा किया जाना चाहिए जब तक कि प्रमुख विरोधाभासों और विसंगतियों के आधार पर उसके साक्ष्य को अस्वीकार करने के लिए मजबूत आधार न

हों, इस कारण से कि घटनास्थल पर उसकी उपस्थिति स्थापित हो जाती है यदि यह साबित हो जाता है कि उक्त घटना के दौरान उसे चोट लगी थी।

यह माना गया है कि इस मुद्दे पर कानून को संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है कि घायल गवाह की गवाही को कानून में विशेष दर्जा दिया गया है। ऐसा इसलिए है क्योंकि गवाह को लगी चोट अपराध स्थल पर उसकी उपस्थिति की अंतर्निहित गारंटी है और क्योंकि गवाह अपने वास्तविक हमलावर को केवल अपराध के लिए किसी तीसरे पक्ष को झूठा फंसाने के लिए दंडित किए बिना नहीं छोड़ना चाहेगा। इसलिए, घायल गवाह के बयान पर तब तक भरोसा किया जाना चाहिए जब तक कि उसके साक्ष्य को बड़े विरोधाभासों और विसंगतियों के आधार पर खारिज करने के ठोस आधार न हों।"

(प्रभाव वर्धित)

35. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा हाल ही में दिए गए निर्णय में, आपराधिक मुकदमे में घायल गवाह के महत्व के संबंध में **<u>नीरज शर्मा बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, (2024) 3 एससीसी 125</u>** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ 22 और 23 में निम्नानुसार निर्णय दिया है:

"22. किसी आपराधिक मुकदमे में घायल गवाह के महत्व को बढ़ा-चढ़ाकर नहीं बताया जा सकता। जब तक बचाव पक्ष द्वारा ऐसे गवाह पर संदेह करने के लिए बाध्यकारी परिस्थितियाँ या साक्ष्य प्रस्तुत न किए जाएँ, तब तक इसे आपराधिक मुकदमे में एक अत्यंत मूल्यवान साक्ष्य के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।

23. बालू सुदाम खालदे बनाम महाराष्ट्र राज्य 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 355 के मामले में, इस न्यायालय ने उन सिद्धांतों का सारांश प्रस्तुत किया जिन्हें घायल चश्मदीद गवाह के साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय ध्यान में रखा जाना चाहिए। इस न्यायालय ने निम्नलिखित निर्णय दिया:

26. जब किसी घायल चश्मदीद गवाह के साक्ष्य का मूल्यांकन किया जाना हो, तो न्यायालयों द्वारा प्रतिपादित निम्नलिखित कानूनी सिद्धांतों को ध्यान में रखना आवश्यक है:

(क) घटना के समय और स्थान पर घायल चश्मदीद गवाह की उपस्थिति पर तब तक संदेह नहीं किया जा सकता जब तक कि उसके बयान में कोई ठोस विरोधाभास न हो।

(ख) जब तक साक्ष्य द्वारा अन्यथा सिद्ध न हो जाए, यह अवश्य माना जाना चाहिए कि घायल गवाह वास्तविक अपराधियों को बच निकलने और अभियुक्तों को झूठा फंसाने नहीं देगा।

(ग) घायल गवाह के साक्ष्य का साक्ष्यात्मक मूल्य अधिक होता है और जब तक कोई ठोस कारण न हो, उसके बयानों को सामान्य रूप में नहीं लिया जाना चाहिए।

(घ) घायल गवाह के साक्ष्य पर उसके स्वाभाविक आचरण में किसी प्रकार की छेड़छाड़ या मामूली विरोधाभास के कारण संदेह नहीं किया जा सकता।

(ङ) यदि घायल गवाह के साक्ष्य में कोई अतिशयोक्ति या अप्रासंगिक अलंकरण हो, तो ऐसे विरोधाभास, अतिशयोक्ति या अलंकरण को घायल गवाह के साक्ष्य से हटा दिया जाना चाहिए, लेकिन संपूर्ण साक्ष्य को नहीं।

(च) अभियोजन पक्ष के बयान के व्यापक आधार को ध्यान में रखा जाना चाहिए और समय बीतने के साथ स्मृति-हानि के कारण सामान्यतः आने वाली विसंगतियों को दूर किया जाना चाहिए।"

(प्रभाव वर्धित)

36. अभिलेखों के अवलोकन से, हम पाते हैं कि इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि वर्तमान घटना, जो सुबह 8.30 बजे घटित हुई थी, से पहले पहली घटना सुबह 8.00 बजे घटित हुई थी, जिसमें मंगत (अब मृतक) और उसका पुत्र रामफल, जो इस मामले में सूचनादाता है, घायल हुए थे। दोनों घटनाओं का स्थान अलग-अलग है। वर्तमान घटना उस समय घटित हुई जब घायल पिता-पुत्र घटना की रिपोर्ट दर्ज कराने पुलिस थाने जा रहे थे। अभियुक्त धीर सिंह और यशपाल सिंह, जो पहली घटना के अभियुक्तों के सीधे रिश्तेदार थे, ट्रैक्टर पर सवार होकर वहाँ आए और धीर सिंह ने ट्रैक्टर चलाते हुए मृतक को, जो अपनी साइकिल चला रहा था, पीछे से टक्कर मार दी। सूचनादाता के पिता श्याम सिंह के खेत में गिर गए थे, जो लगभग 2-3 फीट गहरा था। उल्लेखनीय है कि विद्वान सत्र न्यायाधीश ने 17.08.1983 को घटनास्थल का निरीक्षण किया था और पाया था कि जाँच अधिकारी द्वारा तैयार किया गया नक्शा नजरी सही और व्यवस्थित है। चिकित्सा साक्ष्यों, उनके समक्ष प्रस्तुत किए गए कथनों और तर्कों का अध्ययन करने के बाद, अपने संदेह को दूर करने के लिए, उन्होंने चिकित्सा विशेषज्ञ डॉक्टर कृष्ण कुमार सिंघल से रिपोर्ट मँगवाई थी, जिन्होंने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी है और स्वयं भी सीडब्ल्यू-1 के रूप में उपस्थित होकर अपनी रिपोर्ट को प्रमाणित किया है।

37. इस स्तर पर, हम पहली घटना (सुबह 8 बजे घटित) के संबंध में पारित निर्णय पर भी ध्यान दे सकते हैं, जिसमें कांतू, उसका पुत्र विक्रम और चचेरा भाई धर्मपाल शामिल थे, जबकि वर्तमान मामले में अपीलकर्ता धीर सिंह, जो कांतू का पुत्र है और धर्मपाल का भाई यशपाल (अब मृतक) अभियुक्त हैं। आरोप यह है कि जब पहली घटना के अभियुक्तों ने मृतक और सूचनादाता पर लाठी और कुल्हाड़ी से हमला किया, तो वे पहली घटना की सूचना पुलिस थाने में देने जा रहे थे। अभियुक्त धीर सिंह और यशपाल सिंह ट्रैक्टर पर घटनास्थल पर आए। ट्रैक्टर अपीलकर्ता धीर सिंह चला रहा था, जिसने सूचनादाता के पिता मंगत को पीछे से टक्कर मार दी। इस स्तर पर, हम इस तथ्य पर भी ध्यान दे सकते हैं कि पहली घटना के संबंध में भी आपराधिक अभियोजन चलाया गया था। यह भी विवाद का विषय नहीं है कि सूचनादाता भी पहली घटना में घायल हुआ था और उसकी चिकित्सकीय जाँच भी हुई थी। चोट की रिपोर्ट भी रिकॉर्ड में है, इसलिए, वह स्वाभाविक है और घटना का घायल चश्मदीद गवाह भी है, जिसकी मौके पर मौजूदगी को बचाव पक्ष द्वारा विवादित या अस्वीकृत नहीं किया जा सका। इसके अलावा, एक स्वतंत्र चश्मदीद गवाह, पीडब्लू-2, पीतांबर सिंह, है, जिसका नाम पहली

सूचना रिपोर्ट में ही उल्लेखित है, जो दूसरी घटना के एक घंटे के भीतर तुरंत दर्ज की गई थी, जो तब हुई थी जब घायल पिता और पुत्र दोनों पहली घटना (सुबह 8 बजे) की सूचना पुलिस को देने जा रहे थे और पुलिस स्टेशन की दूरी लगभग चार मील थी। इसलिए, पहली सूचना रिपोर्ट तुरंत दर्ज की गई थी और बचाव पक्ष भी घायल गवाह की उपस्थिति को खारिज करने में विफल रहा है।

38. हमने गवाहों के बयानों और जिरह का भी ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है। जहाँ तक चिकित्सीय साक्ष्य का संबंध है, हम पाते हैं कि घटना के तरीके के संबंध में अभियोजन पक्ष द्वारा लिया गया रुख खारिज नहीं किया जा सकता क्योंकि पीडब्लू-5-डॉ. जे.जी. गर्ग और विशेषज्ञ सीडब्लू-1-डॉ. कृष्ण कुमार सिंघल दोनों ही बरकरार रहे। जहाँ तक प्रत्यक्ष साक्ष्य का प्रश्न है, पी.डब्लू--1-रामफल ने धारा 133 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत लंबित मुकदमे में स्पष्ट रूप से सिद्ध कर दिया था कि विवाद एक रास्ते पर दीवार खड़ी करने के संबंध में था, जिसके विरुद्ध मृतक पक्ष को दीवानी कार्यवाही में निषेधाज्ञा प्राप्त थी। दोनों प्रत्यक्षदर्शियों पी.डब्लू--1-रामफल और पी.डब्लू--2-पीताम्बर सिंह ने भी घटनास्थल को सिद्ध कर दिया है और स्पष्ट रूप से बताया है कि श्याम सिंह का खेत सड़क से लगभग 2-3 फीट गहरा है क्योंकि उस पर ईंट-भट्ठा लगाया जाता था और ट्रैक्टर आसानी से उसमें जा सकता है। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने घटनास्थल का निरीक्षण किया और पाया कि नक्शा नजरी सही ढंग से तैयार की गई थी।

39. अभियुक्त-अपीलार्थी के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने इस न्यायालय के समक्ष तर्क दिया था कि प्रथम घटना में मृतक को कोई रक्तस्रावी चोट नहीं लगी थी तथा केवल दूसरी घटना में उसे रक्तस्रावी चोट लगी है तथा तर्क दिया था कि ऐसी चोटें ट्रैक्टर के पहिये के नीचे कुचलने से नहीं हो सकतीं, क्योंकि पी.डब्लू.-1 ने कहा है कि ट्रैक्टर द्वारा साइकिल को टक्कर मारने के बाद मृतक श्याम सिंह के खेत में गिर गया था तथा पोस्टमार्टम रिपोर्ट तथा पी.डब्लू.-5-डॉ. जे.जी. गर्ग के अनुसार कोई कुचलने वाली चोट नहीं थी तथा मृत्यु का कारण सिर में चोट है।

40. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के उपरोक्त तर्क और पी.डब्लू--1 के कथन के सार की जाँच करने के लिए, हमने मृतक को लगी मृत्यु-पूर्व चोटों को देखा है। पी.डब्लू--5- डॉ. जे.जी. गर्ग, जिन्होंने मृतक का पोस्टमार्टम किया था, ने स्पष्ट रूप से कहा था कि मृतक के मुँह, नाक और दोनों कानों से खून बह रहा था और उनके अनुसार, घातक चोट सिर में लगी थी। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि मृतक को लगी चोटें ट्रैक्टर से टकराने और ट्रैक्टर के पहियों के नीचे कुचलने से भी हो सकती थीं। जिरह में, उन्होंने केवल यह राय दी है कि ट्रैक्टर के पहिये के नीचे कुचलने पर हड्डी टूटने की संभावना है, लेकिन उन्होंने कोई निश्चित राय व्यक्त नहीं की। साथ ही, उन्होंने यह भी देखा कि मृतक के कपड़े (कुर्ते) पर कीचड़ लगा हुआ था। हमने विशेषज्ञ सीडब्ल्यू-1 डॉ. कृष्ण कुमार सिंघल की रिपोर्ट का भी ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है, जिन्होंने भी स्पष्ट रूप से दर्ज किया है कि मृतक के शरीर पर चोटें, जो धान के खेत की नरम मिट्टी पर पड़ा था, ट्रैक्टर के अगले पहिये के नीचे कुचलने से आई हो सकती थीं, बिना किसी फ्रैक्चर के। उन्होंने यह भी राय दी थी कि यदि मृतक ट्रैक्टर के पिछले पहिये के नीचे कुचला गया हो, तो हड्डी टूट सकती है या नहीं भी हो सकती है। उन्होंने यह भी कहा

था कि धारदार चोटों के कारण खेत में पड़े सामान/कचरे की वजह से चोटें आई होंगी। उन्होंने आगे कहा था कि मृतक को जो 13 चोटें आई थीं, वे उसे भी लगी होंगी; पहली, लाठी से पिटाई के कारण, उसके बाद ट्रैक्टर से साइकिल टकराने और ज़मीन पर गिरने के कारण, और उसके बाद ट्रैक्टर के पहियों के नीचे कुचलने के कारण, जैसा कि पोस्टमार्टम रिपोर्ट में दर्शाया गया है।

41. जिरह के दौरान, सीडब्ल्यू-1-विशेषज्ञ ने अपनी राय दी थी कि यदि चोटों की जाँच के समय आवर्धक लेंस का उपयोग न किया जाए, तो फटे हुए घाव से चीरे हुए घाव का आभास हो सकता है। अपनी जिरह में, उन्होंने चोट संख्या 2 और 11 के संबंध में अपनी रिपोर्ट को सिद्ध और स्पष्ट किया। उन्होंने आगे कहा कि उन्होंने केवल हड्डी पर प्रयोग किया था, लेकिन हड्डी पर मौजूद मांस हड्डी की रक्षा करता है।

42. हम इस स्तर पर इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं कर सकते कि मृतक एक किसान था और ग्रामीण क्षेत्र में रह रहा था तथा सामान्य जीवन स्तर और परिस्थितियों में उसका स्वास्थ्य अच्छा होना चाहिए था और चूंकि घटना नरम मिट्टी पर हुई थी, इसलिए उसे हड्डी का फ्रैक्चर नहीं हुआ होगा।

43. इसलिए, हमें मेडिकल रिपोर्ट; पीडब्लू-5-डॉ. जे.जी. गर्ग, जिन्होंने पोस्टमार्टम किया था, के बयान; सीडब्लू-1-डॉ. कृष्ण कुमार सिंघल की विशेषज्ञ राय; दो प्रत्यक्षदर्शियों, अर्थात् पीडब्लू-1-रामफल और पीडब्लू-2-पीताम्बर सिंह, जिनमें से एक स्वाभाविक रूप से मौके पर मौजूद था और घटना से ठीक आधे घंटे पहले घायल भी हुआ था, के प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य में अभियोजन पक्ष के मामले को खारिज करने के लिए कुछ भी असाधारण नहीं मिला। जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ऊपर उल्लेख किया है, पीडब्लू-1-रामफल की गवाही को केवल इसलिए खारिज नहीं किया जा सकता क्योंकि वह संबंधित गवाह है। वह मौके पर मौजूद एक स्वाभाविक रूप से घायल गवाह है। दूसरा चश्मदीद गवाह, पी.डब्लू.-2-पीताम्बर सिंह, स्वतंत्र गवाह है, जिसका नाम प्राथमिकी में दर्ज है, जो दूसरी घटना के एक घंटे के भीतर ही दर्ज कर ली गई थी, जबकि पुलिस स्टेशन की दूरी लगभग चार किलोमीटर थी। पी.डब्लू.-2 के पास अभियुक्तों को झूठा फंसाने का कोई कारण नहीं है क्योंकि बचाव पक्ष ने ऐसा कोई सबूत नहीं दिया है जिससे एक-दूसरे के विपरीत कोई हित भी प्रकट हो, जिसके लिए पी.डब्लू.-2 उनकी दोषसिद्धि में रुचि रखता हो।

44. नक्शा नजरी के अवलोकन से, जिसका सत्यापन पीठासीन अधिकारी ने स्वयं स्थल निरीक्षण करके किया था, दो घायल गवाहों के प्रत्यक्षदर्शी विवरण की भी स्पष्ट पुष्टि हुई। नक्शा नजरी में धान की फसल की बिंदीदार रेखाएँ स्पष्ट रूप से दिखाई दे रही थीं और ट्रैक्टर के टायरों के निशान थे। चूँकि अभियुक्त जिस दिशा में जा रहे थे वह बहुत ऊँची थी, इसलिए ट्रैक्टर को पीछे मोड़ दिया गया और वे मौके से भाग गए। प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य से पता चला कि मृतक, जो साइकिल चला रहा था, को पीछे से टक्कर मार दी गई थी, जिसके बाद वह श्याम सिंह के खेत में गिर गया, जो सड़क से लगभग 2-3 फीट गहरा था, ट्रैक्टर को भी श्याम सिंह के खेत में उतारकर पीछे कर दिया गया था। इसलिए, हम पाते हैं कि प्रत्यक्ष साक्ष्य से संदेह से परे यह साबित हो गया

कि ट्रैक्टर को श्याम सिंह के खेत में उतारा गया था, जहां मृतक को पीछे से ट्रैक्टर द्वारा टक्कर मारने के बाद वह गिर गया था और उसे जानबूझकर ट्रैक्टर के पहियों के नीचे कुचल दिया गया था।

45. यद्यपि यह प्रत्यक्ष साक्ष्य का मामला है और उद्देश्य गौण है, फिर भी वर्तमान मामले में मजबूत उद्देश्य मौजूद है और सिद्ध है।

46. पहली घटना में, पिता और पुत्र दोनों घायल हुए थे, जिसमें अलग-अलग अभियुक्तगण, अर्थात् कांतु, विक्रम, धर्मपाल और बनवारी शामिल थे। दूसरी घटना में, अभियुक्त धीर सिंह, पुत्र कांतु, अन्य व्यक्तियों के साथ शामिल था, इसलिए मृतक और उसके पुत्र को पहली घटना की पुलिस रिपोर्ट दर्ज कराने से रोकने का पूरा उद्देश्य और इरादा था और सह-अभियुक्त यशपाल ने उकसाने की भूमिका निभाई थी, जिसे बचाव पक्ष द्वारा खारिज नहीं किया जा सका। इस प्रकार, अभियुक्त ने स्पष्ट रूप से धारा 302 भा.दं.सं. के तहत हत्या के बराबर सदोष मानव वध किया है और मृतक की हत्या करने का इरादा पीडब्लू-1 और पीडब्लू-2 के प्रत्यक्ष साक्ष्य, चिकित्सा साक्ष्य और विशेषज्ञ की राय से किसी भी संदेह से परे साबित हो गया है।

47. इस स्तर पर, हमने निचली अदालत के फैसले का भी अवलोकन किया है और पाया है कि निचली अदालत द्वारा दिया गया तर्क पूर्णतः न्यायसंगत और उचित है तथा अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर, हम वर्तमान अपील में कोई मेरिट नहीं पाते और तदनुसार इसे खारिज किया जाता है। अपीलकर्ता धीर सिंह की दोषसिद्धि की पुष्टि की जाती है।

48. आदेश सुरक्षित रखते हुए, हमने अपीलकर्ता धीर सिंह के विरुद्ध दिनांक 20.03.2025 के आदेश द्वारा जारी गैर-ज़मानती वारंट के निष्पादन पर रोक लगा दी है। चूँकि अपील खारिज कर दी गई है और निचली अदालत द्वारा दी गई दोषसिद्धि और सज़ा की पुष्टि हमारे द्वारा की गई है, इसलिए उसके ज़मानत बन्धपत्र रद्द किए जाते हैं और ज़मानतदारों को उन्मोचित किया जाता है। मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, सहारनपुर को निर्देश दिया जाता है कि वे अपीलकर्ता धीर सिंह को हिरासत में लें और उसे विचारण न्यायालय द्वारा दी गई सजा और हमारे द्वारा पुष्टि की गई सजा काटने के लिए जेल भेजें।

49. इस आदेश की एक प्रति निबन्धक (अनुपालन) द्वारा संबंधित मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को एक सप्ताह के भीतर अनुपालन हेतु प्रेषित की जाए।

50. मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, सहारनपुर को भी एक माह के भीतर अपनी अनुपालन रिपोर्ट इस न्यायालय को भेजने का निर्देश दिया जाता है।

51. निचली अदालत का अभिलेख तत्काल संबंधित न्यायालय को भेजा जाए।

(2025) 4 ILRA 845

अपील क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 07.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ

माननीय न्यायमूर्ति प्रवीण कुमार गिरि

आपराधिक अपील संख्या 442/2013

एवं आपराधिक अपील संख्या 772/2013 और 789/2013

इब्राहिम **...अपीलकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य **...प्रतिवादी**

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

श्री अमित डागा, श्री योगेश श्रीवास्तव, श्री अजय कुमार मिश्रा

प्रतिवादी के अधिवक्ता:

सरकारी अधिवक्ता

अनुवादित

आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 374 - साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 106 - धारा 149 भा.दं.सं. के साथ धारा 147, 302 के तहत दोषसिद्धि और विचारण न्यायालय द्वारा आजीवन कारावास की सजा --- यह दिखाने का भार कि अभियुक्तों द्वारा मृतक को अपने घर ले जाने के बाद क्या हुआ और बाद में अपीलकर्ताओं के घर से शव बरामद किए गए, अभियुक्तों पर स्थानांतरित हो जाएगा क्योंकि ये तथ्य केवल अभियुक्तों के ज्ञान में थे और वे साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के तहत भार का निर्वहन करने में विफल रहे। बचाव पक्ष की ओर से इस बात पर कोई सवाल नहीं उठाया गया कि यह गला घोंटने का मामला है या फांसी का। पोस्टमार्टम रिपोर्ट में दोनों हड्डियाँ टूटी हुई थीं और बचाव पक्ष ने स्वीकार किया है कि दोनों मृतकों की हत्या की गई थी। यह स्थापित कानून है कि आदमी झूठ बोल सकता है, लेकिन परिस्थितियाँ नहीं। यहाँ तक कि बाद में अपने बयान से पलटने वाले गवाहों ने भी स्वीकार किया है कि दोनों मृतकों की हत्या की गई थी। हालाँकि उन्होंने यह तो बताया कि कुछ अज्ञात लोगों ने उनकी हत्या की थी, लेकिन उन्होंने उन अज्ञात लोगों पर हत्या का कोई कारण नहीं बताया। अभियुक्तों के पास पर्याप्त कारण थे क्योंकि वे अपनी बेटी/बहन के मृतक सराफत के साथ प्रेम संबंध के कारण अपमानित महसूस कर रहे थे और इसलिए उन्होंने दोनों की हत्या कर दी। मुख्य परीक्षा और गवाहों की जिरह दर्ज हो जाने और उनकी गवाही पूरी हो जाने के बाद, यदि आरोपों में परिवर्तन/संशोधन/जोड़-तोड़ किया जाता है, तो निचली अदालत को नए सिरे से सुनवाई की अनुमति

देने से खुद को रोकना चाहिए ताकि उक्त गवाह अपनी पिछली गवाही को खारिज कर सकें। ऐसी परिस्थितियों में, विचारण न्यायालय को गवाहों को केवल परिवर्तित/संशोधित/जोड़े गए आरोपों के संबंध में ही गवाही देने की अनुमति देनी चाहिए - दोषसिद्धि का आक्षेपित निर्णय और सजा का आदेश पुष्ट किया जाता है। (**पैरा 43, 54, 60 से 64)**

अपीलें खारिज। (ई-15)

<u>संदर्भित मामलों की सूची -:</u>

1. त्रिमुख मारोती किरकन बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2006)10 एससीसी 681
2. विली (विलियम) स्लेनी बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 1955 एससीसी ऑनलाइन एससी 34
3. मधुसूदन व अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2024 एससीसी ऑनलाइन एससी 4035
4. राजेश यादव व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2022) 12 एससीसी 200
5. भगवान दास बनाम दिल्ली राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र), (2011) 6 एससीसी 396

(माननीय न्यायमूर्ति प्रवीण कुमार गिरि द्वारा प्रदत्त)

1. अभियुक्तगण-अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री अजय कुमार मिश्रा, राज्य-प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रेम शंकर प्रसाद को सुना गया तथा अभिलेख का अवलोकन किया गया।

2. उपर्युक्त अपीलें विशेष न्यायाधीश (भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम), मेरठ द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 358/2006 (राज्य बनाम इब्राहिम एवं अन्य) में दिनांक 7.1.2013 को दिए गए दोषसिद्धि के निर्णय और दिनांक 8.1.2013 को दिए गए सजा के आदेश के विरुद्ध दायर की गई हैं, जिसमें विचारण न्यायालय ने अभियुक्त-अपीलकर्ताओं को भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 302 सपठित धारा 149 के अंतर्गत दोषी ठहराया था और उन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 302 सपठित धारा 149 के अंतर्गत आजीवन कारावास और 10,000/- रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई थी, जुर्माना अदा न करने की स्थिति में उन्हें एक वर्ष का कारावास और भारतीय दंड संहिता की धारा 147 के अंतर्गत दो वर्ष का कारावास भुगतना होगा।

3. विचारण न्यायालय का अभिलेख प्राप्त हो गया है और दस्तावेज तैयार हैं। पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं की सहायता से, समस्त साक्ष्यों की पुनः जाँच और पुनः मूल्यांकन किया जाता है।

4. अभियोजन पक्ष की कहानी यह है कि मृतक शराफत के भाई सूचनादाता रईस अहमद ने संबंधित थाने में एक लिखित रिपोर्ट दी थी जिसमें बताया गया था कि अभियुक्त इब्राहिम का घर उसके घर के सामने है। अभियुक्त इब्राहिम और उसके परिवार के सदस्यों ने सूचनादाता से शिकायत की थी कि उसके भाई शराफत के

उसकी बेटी सोनी के साथ अवैध संबंध थे, इसलिए सूचनादाता अपने भाई को गाँव से बाहर भेज दे अन्यथा उन्हें गंभीर परिणाम भुगतने होंगे। इन तथ्यों के आधार पर, सूचनादाता ने अपने भाई की शादी सोनी से कराने का प्रस्ताव रखा, लेकिन अभियुक्तों-अपीलकर्ताओं ने प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और सूचनादाता के परिवार से रंजिश रखने लगे। इसके बाद, 05.02.2006 को अभियुक्त इब्राहिम अपने छह बेटों और दो अन्य व्यक्तियों के साथ, बंदूकें, लाठियाँ और कुल्हाड़ी लेकर, उनकी बेटी/बहन सोनी पर हमला करने आया और शराफत को उसके घर से अगवा कर लिया। इसके बाद, उन्होंने शराफत की हत्या कर दी।

5. घटना दिनांक 05.02.2006, जो लगभग रात्रि 11:00 बजे घटित हुई थी, के सम्बन्ध में सूचनादाता ने दिनांक 06.02.2006 को प्रातः 02:30 बजे (रात्रि) प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई, जबकि थाना लगभग 6 किलोमीटर की दूरी पर था।

6. प्रथम सूचना रिपोर्ट मुकदमा अपराध संख्या 16/2006 धारा 147, 148, 149, 302 भा.दं.सं. के तहत पुलिस स्टेशन- बहसूमा, जिला-मेरठ में दर्ज की गई थी।

7. इब्राहिम (मृतक सोनी के पिता) और उसके छह बेटों, अर्थात् फारुख, मुसरत, अयूब, सन्नूर, कयूम, शौकीन और दो अज्ञात व्यक्तियों के विरुद्ध प्रत्यक्षदर्शियों अर्थात् अनवर, लियाकत अली, यामीन, जीजू की उपस्थिति में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई। घटना रात में हुई थी और प्राथमिकी में उल्लिखित कृत्रिम रोशनी अर्थात् गैस लैंप और टॉर्च लाइट में देखी गई थी। घटनास्थल अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के घर के अंदर है।

8. उद्देश्य यह था कि मृतक शराफत का सूचनादाता की पुत्री सोनी के साथ अवैध संबंध था, जिससे अभियुक्त अपीलकर्ताओं की प्रतिष्ठा धूमिल हो रही थी, जो सूचनादाता के पड़ोसी थे।

9. एस.आई. रेशम सिंह (पी.डब्लू.-4) मौके पर पहुँचे और अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के घर में सोनी और सराफत के दो शव पाए। उन्होंने 06.02.2006 को प्रातः 03:30 बजे (रात) कृत्रिम प्रकाश में गवाहों, अर्थात् एहसान, जिजुद्दीन, श्याम लाल प्रधान, महकार सिंह और मुस्तकीम की उपस्थिति में मृतक शराफत का पंचायतनामा/जांच रिपोर्ट तैयार की। पंचायतनामा/जांच रिपोर्ट में मृतक का शव अभियुक्तगण-अपीलकर्ताओं के घर के कमरे के अन्दर पाया जाना दर्शाया गया था तथा पंचायतनामा/जांच रिपोर्ट के गवाहों की राय में मृतक शराफत की मृत्यु शरीर पर लगी चोटों के कारण हुई थी।

10. इस गवाह (पी.डब्लू.-4) ने मृतक सोनी का पंचायतनामा/जांच रिपोर्ट भी दिनांक 06.02.2006 को प्रातः 05:15 बजे पंचायतनामा के गवाहों की उपस्थिति में तैयार किया तथा गवाहों की राय में मृतक सोनी की मृत्यु मारपीट एवं गला घोंटने के कारण हुई।

11. जांच अधिकारी देवेन्द्र कुमार (पीडब्लू-9) ने कांस्टेबल प्रेम सिंह (पीडब्लू-5) जो कि एफआईआर लिखने वाला था, का बयान धारा 161 दं.प्र.सं. के तहत दर्ज किया, जबकि पीडब्लू-5 ने परीक्षण के दौरान गवाही दी कि एफआईआर की विषय-वस्तु उसके द्वारा सूचनादाता द्वारा पुलिस को दी गई लिखित और हस्ताक्षरित रिपोर्ट के अनुसार लिखी गई थी।

12. जांच अधिकारी (पीडब्लू-9) ने 06.02.2006 को नक्शा नजरी तैयार की क्योंकि मृतक सोनी का शव स्थान "ए" यानी अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के घर के अंदर के कमरे में बिस्तर/खाट पर पड़ा हुआ पाया गया था, जबकि मृतक शराफत का शव स्थान "बी" पर पड़ा हुआ पाया गया था जो अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के उसी घर के अंदर का कमरा था।

13. आई.ओ./पी.डब्लू.-9 ने दिनांक 06.02.2006 को अभियुक्त फारुख और मुसर्रत को गिरफ्तार किया और उनके कब्जे से आई.ओ. ने दो लाठियां और एक चुन्नी बरामद की और रिकवरी मेमो में उल्लेख किया कि जनता ने भय के कारण बरामदगी मेमो का गवाह बनने से इंकार कर दिया।

14. मृतक सोनी, उम्र लगभग 16 वर्ष, का पोस्टमार्टम डॉक्टर पी.डब्लू.-3, डॉ. एस.पी. सिंह द्वारा दिनांक 06.02.2006 को सायं 04:30 बजे किया गया। उसकी दोनों हड्डियाँ टूटी हुई थीं और निम्नलिखित बाहरी चोटें थीं:

"(1) गर्दन के सामने 22 सेमी x 1 सेमी का लिगेचर मार्क, दाहिने कान से 3 सेमी दूर, ठोड़ी से 6 सेमी नीचे, बाएँ कान से 7 सेमी नीचे।
(2) माथे के मध्य भाग के सामने 3 सेमी x 2 सेमी के क्षेत्र में कई घिसे हुए घाव
होंठ हल्के नीले पड़ गए
दोनों हाइओइड हड्डियाँ टूटी हुई
दोनों फेफड़ों से खून बह रहा था
मृत्यु का कारण मृत्युपूर्व फांसी के परिणामस्वरूप दम घुटना था"

15. डॉ. एस.पी. सिंह (पीडब्लू-3) ने अपने बयान में उसकी मृत्यु का कारण इस प्रकार बताया:
"मृतक की मृत्यु 05.02.06 को रात्रि 11 बजे उसके शरीर पर आई चोटो के कारण होना संभव था। उसकी मृत्यु दम घुटने से हुई थी। *Ligature mark* किसी रस्सी अथवा उसी प्रकार की किसी वस्तु में आना संभव है।"

16. मृतक शराफत, उम्र लगभग 22 वर्ष, का पोस्टमार्टम भी डॉ. एस.पी. सिंह (पी.डब्लू.-3) द्वारा दिनांक 06.02.2006 को सायं 05:00 बजे किया गया तथा पोस्टमार्टम रिपोर्ट में उन्होंने उल्लेख किया है कि 2 से 11 पसलियां (दाहिनी ओर) टूटी हुई हैं, दाहिना फेफड़ा क्षतिग्रस्त है तथा निम्नलिखित बाहरी चोटें हैं:
"(1) नाक और मुँह से खून आना
(2) बाईं पलक पर 4 सेमी x 3 सेमी का घिसा हुआ घाव।

(3) दाईं पलक पर 4 सेमी x 3 सेमी का घाव।

(4) बाईं आँख के ठीक नीचे बाईं ओर ऊपरी हिस्से पर 1 सेमी x 15 सेमी का घिसाव।

(5) छाती के सामने 26 सेमी x 30 सेमी माप के कई घिसाव।

(6) ऊपरी होंठ पर 6 सेमी x 2 सेमी का घाव।

(7) बाईं जांघ के सामने 16 x 8 इंच का कई घिसा हुआ घाव।

(8) दाईं जांघ पर 6 सेमी x 6 सेमी का घाव।

मृत्यु का कारण रक्तस्राव और आघात है।"

17. डॉ. एस.पी. सिंह (पी.डब्लू.-3) ने अदालत में गवाही दी। उनकी गवाही के प्रासंगिक अंश इस प्रकार हैं:

"आन्तरिक परीक्षण

सीधी पसलियां 2 से 11 नम्बर तक की फ्रेकचर्ड। फेफडे की झिल्ली प्लूरा खून से लथपथ था। वायां फेफड़ा नार्मल था। पैरीटोनियल खून में लथपथ थी। कैविटी में 500 ml खून मौजूद था। दांत 16/16 थे। ईशो फेगस नार्मल थी। आमाशय में 100 ग्राम अधपचा खाना मौजूद था। छोटी बड़ी आंतो में गैस व मल भरा हुआ था। लीवर 1300 ग्राम लैसरेटेड था। पित्ताशय आधा भरा हुआ था। पैंक्रियाज नार्मल था और पेल था। प्लीहा 80 ग्राम पेल था। किडनी 250 ग्राम पेल। मूत्राशय खाली था।

मुत्यु का कारण

मृतक की मृत्यु खून के अधिक बह जाने व बेहोशी के कारण हुई थी।

मृतक के शरीर की सभी चोटे कुंद आलो अर्थात लाठी डंडो से आना संभव है। मृतक के शरीर पर आयी चोटे मृत्यु के लिए पर्याप्त थी तथा 05.02.06 में रात्रि 11 बजे इन चोटो का आना संभव था। शव विच्छेदन रिपोर्ट शव विच्छेदन के समय मेरे द्वारा तैयार की गई थी। मेरे लेख व हस्ताक्षर में है। प्रदर्श क-2 डाला गया।"

18. जांच अधिकारी/पी.डब्लू.-9 ने जांच के बाद, एफआईआर में शामिल सभी सात नामजद अभियुक्तों के खिलाफ धारा 147, 148, 149, 302 भा.दं.सं. के तहत आरोप पत्र तैयार कर पेश किया। न्यायिक मजिस्ट्रेट ने संज्ञान लिया और उसके बाद धारा 207 दं.प्र.सं. के अनुपालन के बाद मामले को विद्वान सत्र न्यायाधीश की अदालत को सौंप दिया।

19. यह मामला धारा 147, 148, 302, 149 के अंतर्गत एस.टी. संख्या 358/2006 (राज्य बनाम इब्राहिम व अन्य) के रूप में थाना बहसूमा, जिला मेरठ में पंजीकृत किया गया था, लेकिन विद्वान विचारण न्यायालय ने 17.08.2006 को केवल धारा 147, 302/149 भा.दं.सं. के अंतर्गत ही आरोप तय किए। अभियुक्त-अपीलकर्ताओं ने स्वयं को निर्दोष बताया और विचारण की मांग की।

20. अभियोजन पक्ष ने अपना मामला साबित करने के लिए कई दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किए हैं, अर्थात्, एफ.आई.आर. (प्रदर्श क-17), लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श क-1), डंडा और लुंगी की बरामदगी ज्ञापन (प्रदर्श क-16), मृतक सोनी की पोस्टमार्टम रिपोर्ट (प्रदर्श क-3), मृतक सराफत की पोस्टमार्टम रिपोर्ट (प्रदर्श क-2), सराफत का

पंचायतनामा (प्रदर्श क-4), मृतक सोनी का पंचायतनामा (प्रदर्श क-10), आरोप पत्र (प्रदर्श क-20) और नक्शा नजरी (प्रदर्श क-19) और 9 गवाहों अर्थात् पी.डब्लू.-1, रईस अहमद, पी.डब्लू.-2, अनवर; पी.डब्लू.-3, डॉ. डी.पी. सिंह; पी.डब्लू.-4, रेशम सिंह; पी.डब्लू.-5, प्रेम सिंह; पी.डब्लू.-6, जीजू; पी.डब्लू.-7, लियाकत अली; पी.डब्लू.-8, यामीन; और पी.डब्लू.-9, देवेंद्र कुमार।

21. मुख्य परीक्षा और पी.डब्लू.-1 तथा पी.डब्लू.-2 की जिरह पूरी होने के बाद, तत्कालीन पीठासीन अधिकारी ने 21.05.2010 को धारा 504 और 506 भा.दं.सं. के तहत आरोपों में संशोधन किया और धारा 504 और 506 भा.दं.सं. के संबंध में गवाही की अनुमति देने के बजाय, अर्थात धारा 147, 149/302, 504 और 506 भा.दं.सं. के तहत नए सिरे से सुनवाई की अनुमति दी।

22. पी.डब्लू.-1 और पी.डब्लू.-2 की मुख्य परीक्षा और जिरह दिनांक 6.6.2009, 12.1.2009, 21.1.2009 और 4.3.2009 को दर्ज की गई। तब तक, उन्होंने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया था। 7.6.2010 और 14.12.2011 को, आरोपों में संशोधन के ठीक बाद, अर्थात् 21.5.2010 को, उन्हें एक बार फिर गवाही देने के लिए बुलाया गया और फिर वे अपने बयान से मुकर गए।

23. रईस अहमद (पी.डब्लू.-1), जो इस मामले का सूचनादाता है, ने दिनांक 6.1.2009 को निम्नलिखित गवाही दी:

"साक्षी रईस अहमद एस/ओ नजरे खां आयु करीब 41 वर्ष आर/ओ ग्राम अकबरपुर सादात थाना बहसूमा जिला मेरठ सशपथ ब्यान किया कि मुल्जिमान इब्राहिम, फारुख, मुसर्रत, अय्यूब, सनव्वर, कय्यूम व शौकीन सभी हमारे गांव के रहने वाले है। दि० 5.2.06 को रात्रि 11 बजे उपरोक्त सभी मुल्जिमान दो अज्ञात व्यक्तियो के साथ जिन्हे सामने आने पर पहचान सकता हूं। कट्टे, लाठी डन्डे व बल्लम लिये हुये अपनी लडकी सोनी को पीटते हुये तथा यह कहते हुये आये कि साली तेरे शराफत से गलत सम्बन्ध है। आज तुम्हारी राड काटनी है। और मेरे भाई शराफत को घर से जबरदस्ती पीटते हुये हथियारो के बल पर ले गये। अपने घर मे शराफत व सोनी दोनो को ले गये थे। उस दिन दिन मे भी ये मुल्जिमान काना फूसी हमारे घर के आस पास कर रहे थे।

शराफत व सोनी को (का०फटा) हुये ले जाते हुये गैस व टार्च की रोशनी मे हमने देखा है। मौके पर अनवर, लियाकत, यामीन, जीजू, आदि ने यह वाका गैस व टार्च की रोशनी में पूरा देखा है। सभी मुल्जिमान ने मेरे भाई शराफत को अपने घर मे ले जाकर हत्या कर दी। तथा सोनी की भी हत्या कर दी थी।

थाने में रिपोर्ट दर्ज कराते समय तक हमने सोनी का शव नही देखा था। इस कारण सोनी की हत्या का जिक एफ० आई० आर० मेरी तहरीर मे नही है।

इब्राहिम का मकान बिलकुल हमारे घर के सामने है। यह हमारी बिरादरी का है। घटना से करीब दस दिन पहले इब्राहिम व उसके परिवार वालो ने हमसे शिकायत की थी। कि तुम्हारे शराफत के हमारी लडकी सोनी से गलत सम्बंध है। तुम लोग शराफत को गांव से बाहर भेज दो वर्ना इसका गलत अन्जाम होगा।

इस पर हमने अपने शराफत के निकाह का प्रस्ताव उनकी लडकी सोनी से निकाह करने का रखा था जो इन्होने नही माना। और इब्राहिम का परिवार हमारे परिवार से रंजिश मानने लगा था।

गवाह ने पत्रावली ने कागज सं0 536 को देखकर कहा कि यह तहरीर मैने गांव मे कुंवर मुसर्रत अली एस / ओ फजलूल रहमान अपने गांव वाले से गांव मे ही लिखायी थी। मुझे मुसर्रत (का० फटा) ने तहरीर को पढकर सुना दिया (का० फटा) सुनकर व देखकर इस पर मैने (का०फटा) अपने हस्ताक्षर किये थे। इस पर मुसर्रत अली के भी हस्ताक्षर है। इस पर प्रदर्शक - 1 डाला गया।

इस तहरीर को लेकर थाने गया था और तहरीर देकर थाना (का० फटा) पर मुकदमा कायम कराया था। (का० फटा) सभी मुलजिमान मेरे भाई शरा (का० फटा) को हमारे घर के अन्दर से ही पीटते हुए (का० फटा) ले गये थे।

मुल्जिमान इब्राहिम, (का० फटा), मुसर्रत, अय्यूब, कय्यूम व सौकीन अदालत में हाजिर है। अभियुक्त सनव्वर को नाबालिग घोषित करने के सम्बंध मे न्यायालय मे कार्यवाही लम्बित है। इस कारण सनव्वर अदालत में उपस्थित नही है।"

24. यह गवाह दिनांक 12.1.2009 को अपनी जिरह में एकरूप रहा। उसके बयानों के प्रासंगिक अंश इस प्रकार हैं:

"मुल्जिमान छः भाई है। फारुख, मुसर्रत, अय्यूब, सन्नवर, कय्यूम व शौकीन है। ये सभी इब्राहिम के बेटे है। मै इन सभी सातो व्यक्तियो को अभियुक्त बनाया है।

मै फजलुरहमान को जानता हूं। ये मेरे खानदन के है। इनके बेटे कुंवर मुसर्रत अली है। और कुंवर मुसर्रत अली ने मेरी तहरीर लिखी है। मै स्वयं तहरीर नही लिखी है। मै लिखना पढना जानता हूं। इस घटना के सम्बन्ध में पुलिस ने मेरा ब्यान रिपोर्ट लिखाते समय थाने पर ही लिया था। मेरा ब्यान रात्रि मे ढाई बजे के लगभग लिया था। थाने पर मेरे एक जगह दस्तखत कराये थे। चिक उसे कहते है जो रिपोर्ट की नकल होती है। मुझे पहले से पता था कि रिपोर्ट की नकल को चिक कहते है। मुझे याद नही कि किस कि कागज पर थाने पर मेरे हस्ताक्षर कराये थे। थाने मे मै आधा घन्टा रहा था। जिस समय मै थाने गया था उस समय दरोगा व थानाध्यक्ष नही थे। दीवान जी मौजूद थे। मै घटना दीवान जी को बतायी थी। दीवान जी ने मेरी बतायी हुयी घटना को नही लिखा था। उन्होने कहा कि दरोगा जी को उठाता हूं तब रिपोर्ट लिखेंगे। दरोगा जी दो चार मिनट बाद ही थाने पर आ गये थे। दरोगा जी को भी मैने घटना बतायी थी। दरोगा जी ने जो मैने घटना बतायी थी वह लिखी थी। इसके बाद तहरीर मैने दीवान जी को दे दी थी।

थाने पर मै, अहसान, नवला तीन ही लोग गये थे। हम लोग ट्रैक्टर से गये थे। हमारे गांव से थाना करीब छः किलोमीटर की दूरी पर है। हम लोग थाना सवा दो बजे के करीब पहुचं गये थे। मेरे गांव से थाने तक सडक पक्की है कुछ सडक टूटी हुयी थी। मेरे गावं से थाना बहसूमा ट्रैक्टर से जाने पर करीब 15 20 मिनट का समय लगता है। हमे अपने गांव से बहसूमा थाने जाने में करीब आधा घन्टे का समय लग गया था। घटना के समय मेरे गांव मे टेलीफोन लगे थे। मेरे व मेरे भाई के पास मे उस समय कोई मोबाईल फोन नही था। हमारे गांव मे घटना के समय चौकीदार रहता था।

फारूख मुलजिम के घर का दरवाजा ठीक हमारे सामने वाले रास्ते में खुलता है। फारूख मुलजिम के सदर दरवाजे पर घटना के समय लोहे के किवाड चढे हुये थे।"

25. दिनांक 27.01.2009 को इस गवाह से आगे की जिरह की गई, बयानों के प्रासंगिक अंश निम्नानुसार हैं:

"मैं यह बात अपनी एफ०आई०आर० मे नहीं लिखायी थी कि ये घटना मैंने भी अपने आँखों से देखी थी। ये मुझ याद नहीं है कि मैंने दरोगा जी को यह बात बतायी थी या नहीं कि घटना मेरे सामने हुयी थी। गवाह से जब ये प्रश्न पूछा गया कि तुमने घटना के सम्बन्ध में पहली बार यह बताया कि घटना तुम्हारे सामने की है और आज न्यायालय में तुमने पहली बार घटना का चश्मदीद साक्षी होने के बारे में बताया है तो गवाह ने कहा कि ये प्रश्न मेरी समझ में नहीं आया।

मैंने दरोगा जी को अपने बयानों में यह बात बताई थी कि रिपोर्ट मैंने गाँव में लिखायी थी तो गवाह ने कहा कि यदि मेरे बयान में यह बात नहीं लिखी तो मैं इसकी कोई वजह नहीं बता सकता। यदि दरोगा जी ने मेरे बयानो में मेरे द्वारा घटना देखने वाली बात नहीं लिखी तो मैं उसकी कोई वजह नहीं बता सकता। घटना के समय हम सातो भाई एक ही परिवार में व एक ही घर में इक्टूठा रहते थे।

मुलजिमान में से इब्राहीम पर बल्लम, फारूख व मुसर्रफ पर डन्डे, अय्यूब सन्नवर, शौकीन कय्यूम पर लाठिया थी और अज्ञात व्यक्तियों पर कट्टे थे। मैंने यह बात कि किस अभियुक्त पर हथियार था मैंने एफ०आई०आर० में नहीं लिखायी थी। मैंने दरोगा जी के। अपने बयानों में यह बात बतायी थी कि किस व्यक्ति पर क्या हथियार था यदि दरोगा जी ने मेरे बयानों में यह बाते नहीं लिखी तो मैं इसकी कोई वजह नहीं बता सकता। घटना स्थल पर मौके पर किसी भी व्यक्ति ने फायर नहीं किया था।

घटना वाले रोज घटना के समय से पूर्व सात बजे हम लोगों ने खाना खा लिया था। शराफत (मृतक) ने भी सात बजे खाना खा लिया था। मुझे यह याद नहीं है कि खाना शाकाहारी खाया था या नहीं। मेरा भाई शराफत तन्दुरस्त था उसे कोई बीमारी नहीं थी।

मुलजिमान सोनी को पीटते हुये व गाली देते हुये अपने घर से हमारे घर पर आये थे। हमारे मकान का सदर दरवाजा लगा हुआ था । उसमें किवाड नहीं थे। सोनी को मेरे सामने मुलजिमान लाठी डन्डों से मारपीट नहीं कर रहे थे। सोनी का घूसों से सन्नवर कय्यूम ने मारा था। कितने घूँसे मारे थे मैं नहीं बता सकता। मेरा भाई शराफत मृतक उस समय जाग रहा था। और मेरे भाई शराफत को मुलजिमान पकडकर जबरदस्ती ले गये और सोनी को भी ले गये थे। और दोनों को घर के अन्दर ले जाकर अपने घर का सदर दरवाजा बन्द कर लिया था।

मकान के अन्दर से खाने के बाद किस कमरे में बन्द किया था मैं नहीं बता सकता हम लोग सदर दरवाजे से बाहर थे। मुलजिमान मेरे घर पर पाँच छः मिनट तक रहे होगें। हम लोग मुलजिमान को जब ये लोग मेरे भाई को ले जा रहे थे डर गये थे। इसलिये कोई आपत्ति नही की थी और न ही छुडाने का प्रयास किया था। उसके बाद हम गांव में दो ढाई घन्टे मौजूद रहे। हमने मुलजिमान द्वारा मेरे भाई को उठाकर ले जाने की बात ग्राम प्रधान व चौकीदार से नहीं की थीं। स्वयं कहा कि मुझे याद नहीं है।

.....xx.....

सोना मृतका के शरीर से खून नहीं निकल रहा था।

वादशाही, इब्राहिम की पत्नि है। यह बात सही है कि बादशाही की रिपोर्ट पर थाना बहसूमा में मेरे पिता नजरे, मेरे, मेरे भाई मोहम्मद अहसान, शौकत सहादत, गुलबहार व तैमूर के खिलाफ, सोनी की हत्या हम लोगों द्वारा किये जाने के सम्बन्ध में हमारे विरूद्ध लिखायी थी। स्वयं कहा कि झूठी रिपोर्ट बचाव में लिखायी थी।

मुझे हमारे जानकारी नहीं है कि सोनी की हत्या का मुकदमात हमारे खिलाफ सी० जे०एम० न्यायालय में चल रहा है अथवा नहीं।

घटना के समय मेरे भाई मोहम्मद की उम्र 36 वर्ष, एहसान की 38 वर्ष, शौकत की 32 वर्ष, सदाकत की 28 वर्ष, गुलबहार की 18 वर्ष, तैमूर की 14 वर्ष आयु थी। मैंने दौरान विवेचना दरोगा जी को गैस का लालटेन व टार्च जिसकी रोशनी मे घटना देखी थी। दिखायी थी। घटना स्थल का नक्शा दरोगाजी ने मेरी निशानदेही पर बनाया था। घटना वाली रात को ही नक्शा बनाया था। पुलिस को मैने वह जगह दिखा दी थी जहां गैस की लालटेन जल रही थी। यदि पुलिस ने नक्शे में गैस की लालटेन जलने की जगह नहीं दिखायी तो मैं इसकी कोई वजह नहीं बता सकता।

मैंने पुलिस को अपने द्वारा व गवाहान के द्वारा खडे होने की स्थिति जहाँ से हमने घटना देखी थी, बता दी थी। यदि पुलिस ने नक्शा नजरी में हमारे खडे होने की स्थिति जहां से हमने घटना देखी थी नक्शा नजरी में नहीं दिखायी है तो मै इसकी कोई वजह नहीं बता सकता।

.....xx

ये कहना भी गलत है कि हम आठो व्यक्ति जब सोनी को उठाकर ले जाने लगे तो बादशाही, शाब्बो, सहना व हमदीदं जो सौनी की मॉ है, ने हमारी इस हरकत काविरोध किया सोनी छूटकर भागने लगी तो हम आठो व्यक्तियों ने सोनी को मारपीट लाठी डन्डो व लात घूसों से किया हो।"

26. दिनांक 21.5.2010 को अभियुक्तगण-अपीलकर्ताओं के विरुद्ध धारा 504 और 506 के अंतर्गत अतिरिक्त आरोप निर्धारित किए गए और विचारण न्यायालय द्वारा नए सिरे से सुनवाई की अनुमति प्रदान की गई। इसके अनुसरण में जब इस गवाह को दिनांक 7.6.2010 को पुनः बुलाया गया, तो उसने बयान दिया कि दिनांक 5.2.2006 को रात्रि लगभग 11.00 बजे लगभग 8-9 अज्ञात बदमाश लाठी, देशी तमंचा, डंडा और बल्लम लेकर उसके घर आए। उन्होंने अपना चेहरा ढक रखा था। उन्होंने सराफत को बाहर निकाला और गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी दी। उसने यह भी बयान दिया कि जब वह घर से बाहर आया, तो मृतक सराफत और सोनी के मृत शरीर ईंट की सड़क (खड़ंजा) पर पड़े थे। वहां उपस्थित लोगों ने उसे बताया था कि कुछ अज्ञात बदमाशों ने सोनी की गला दबाकर और सराफत की पीट-पीटकर हत्या कर दी थी। जिरह में भी उसने बयान दिया कि कुछ अज्ञात बदमाशों ने मृतक सोनी और सराफत की हत्या की थी। इस गवाह को पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया।

27. अनवर (साक्षी-2) जो घटना का प्रत्यक्षदर्शी भी था। मुख्य परीक्षा और जिरह के दौरान उसके बयानों के प्रासंगिक अंश इस प्रकार हैं:

"4.3.09

साक्षी अनवर एस/ओ इनायत अली आयु 52 वर्ष आर/ओ ग्राम अकवरपुर सादाब थाना बहसूमा जिला मेरठ

सशपथ बयान किया कि दि० 5/6.02.06 की रात्रि ग्यारह बजे मैं नजरे के मकान पर बैठा हुआ था। शोर सुनकर मैं नजरे के मकान से उठकर उसकी गैलरी में आया। वहाँ गैलरी में शराफत, रईस व लियाकत बैठे

थे। इब्राहीम व उसके छः लड़के फारूख, मुर्सरत, अय्यूब, कय्यम, सनव्वर व शौकीन आये। शोर करते हुये गाली गलौच करते हुये सोनी को मारपीट करते हुये आये। इनके हाथों में बल्लम व लाठी डन्डे थे। दो अज्ञात अंजान आदमी थे जिनके हाथ में तमन्चे थे। मुलजिमान सोनी को पीटते हुये कह रहे थे कि तेरे शराफत से नाजायज सम्बन्ध है। आज तुम दोनों को मौत के घाट उतार देगे। ये सभी लोगों शराफत को जवरदस्ती उठाकर इब्राहीम के घर अन्दर ले गये थे। सोनी को भी साथ ले गये थे। मेरे साथ जीजू व यामीन भी घटना स्थल पर आ गये थे। उन्होंने भी सारा वाका देखा है। हम सभी ने यह वाका गैस की लालटेन व टार्च की रोशनी में देखा था।

फिर इब्राहीम के मकान से मुलजिमान सभी ने सदर दरवाजा बन्द करके अपने मकान में शराफत व सोनी की पीट-पीट कर हत्या कर दी। हाजिर अदालत मुलजिमान इब्राहीम व उसके लडके फारूख, मुसरत, शौकीन, अय्यूब व कय्यूम को देखकर कहा कि इन्होंने दो अंजान व सन्नवर के साथ मिलकर शराफत व सोनी की हत्या की थी।

.....xxx..... सभी अभियुक्तों द्वारा जिरह

इस घटना के बारे में दरोगा जी ने मेरे से तीन दिन बाद पूछताछ की थी। ये पूछताछ मेरे से नजरे के मकान पर की थी। कितने बजे की थी समय नहीं बता सकता। घटना होने के बाद जब तक मेरा बयान दरोगा जी ने लिया तब तक मैं गांव में रहा था। मैंने दरोगा जी को अपने बयान में यह बात बता दी थी कि मैं नजरे के मकान से उठकर उसकी गैलरी में आया। यदि दरोगा जी ने यह बात मेरे बयान में नहीं लिखी तो मैं इसकी कोई वजह नहीं बता सकता।

जहाँ मैं बैठा था वहाँ से नजरे की गैलरी चार पाँच गज होगी दोनों मिली हयी है। मैं शराफत, रईस व लियाकत के पास नहीं बैठा था। दो अज्ञात लोगों पर तमन्चे थे। मैंने दरोगा जी को अपने बयान में यह बात नहीं बतायी थी कि आज तुम दोनों को मौत के घाट उतार देगे।

मैंने दरोगा जी को अपने बयान में यह बात बतायी थी कि ये सभी लोग शराफत को उठाकर इब्राहिम के घर के अन्दर ले गये थे। यदि दरोगा जी ने यह बात मेरे बयान में नहीं लिखी तो मैं इसकी कोई वजह नहीं बता सकता।

मैंने दरोगा जी को यह बात भी बतायी थी कि सोनी को भी साथ ले गये थे। यदि दरोगा जी ने मेरे बयान में यह बात नहीं लिखी तो मैं इसकी कोई वजह नहीं बता सकता।

मैंने दरोगा जी को यह बात भी बतायी थी कि जीजू व यामीन भी घटना स्थल पर आ गये थे यदि दरोगा जी ने यह बात मेरे बायन में नहीं लिखी है तो मैं इसकी कोई वजह नहीं बता सकता।

मैंने दरोगा जी को अपने बयान में यह बात बतायी थी कि हम सभी ने यह वाका गैस का लालटेन व टार्च की रोशनी में देखा था यदि दरोगा जी ने यह बात मेरे बयान में नहीं लिखी तो मैं इसकी कोई वजह नहीं बता सकता।

मैंने दरोगा जी को अपने बयान में यह बात बता दी थी कि फिर इब्राहीम के मकान में सदर दरवाजा बन्द करके सभी ने शराफत व सोनी की पीट पीट कर हत्या कर दी थी। यदि दरोगा जी ने मेरे बयान में उक्त बाते नहीं लिखी तो मैं इसकी कोई वजह नहीं बता सकता। मेरे बयान में दरोगा जी ने हत्या करने वाली बात लिखी है।

दो अज्ञात व्यक्तियों को मैंने देखा था। मैंने दरोगा जी को यह बयान नहीं दिया था कि दो व्यक्ति अज्ञात मैंने नहीं देखे थे। यदि दरोगा जी ने मेरे बयान में यह बात लिखी है तो मैं इसकी कोई वजह नहीं बता सकता।

मुलजिम फारूख का कोई मकान गाँव में नहीं है। जिस मकान में मुलजिमान दो मृतकों को अपने साथ लेकर गये थे उस मकान का एक ही दरवाजा है। जिससे आ जा सकते है। इसी दरवाजे पर किवाड लगे थे जो मुलजिमान ने बन्द कर लिये थे।

जब सोनी को लेकर मुलजिमान आये थे उस समय सोनी की लाठी डन्डो से मारपीट नहीं कर रहे थे हाथ से थप्पड़ मार रहे थे। मेरे सामने सोनी के साथ मुलजिमान ने लाठी-डन्डो से मारपीट नहीं की थी। मेरे सामने मुलजिमान ने शराफत के साथ गैलरी में मारपीट नहीं की थी केवल कट्टे लंगाये थे। मैंने यह बात अपने बयान में दरोगा जी को बता दी थी कि मुलजिमान ने शराफत को कट्टे लगाये थे। यदि दरोगा जी ने मेरे बयान में शराफत को कट्टे लगाने वाल बात नहीं लिखी तो मैं इसकी कोई वजह नहीं बता सकता।

मैंने दरोगा जी ने जब मेरे से पूछताछ की गयी थी उस समय मैंने जिस टार्च की रोशनी में घटना देखी थी टार्च दिखा दी थी। जिस समय मुलजिमान आये उस समय नजरे के घर में रईस, लियाकत व शराफत मौजूद थे बाकी लोग नहीं थे। बाकी उसके लडके अपने घरों में होगे। मैंने मौके पर बाकी को नहीं देखा। इनकी औरते व बच्चे घरों पर होगे मैंने नहीं देखा।

मुलजिमान शराफत के घर पर पाँच छः मिनट तक रहे थे। इन पाँच छः मिनट में काफी शोर शराबा होता रहा। शोर शराबा के दौरान नजरे की दो चार पड़ोसी आ गये थे। उनमें से जिनके नाम सेठ, मौसम अली, रज्जाक व (sic) आ गये थे। ये लोग अपने मकान में चले गये और मैं अपने मकान में घुस गया। रईस व बाकी लोग कहाँ गये मुझे पता नहीं है। जब पुलिस आयी थी मैं अपने घर थी से बाहर निकला था। पुलिस रत को तीन-सवा तीन बजे आयी थी। पुलिस के सामने मैं गया था। पुलिस सुबह के सात सवा सात बजे तक रही थी। और अपने साथ लाश कार से (का०फटा) से ले गयी थी।"

28. इस गवाह को भी भारतीय दंड संहिता की धारा 504 और 506 के तहत आरोपों में संशोधन के बाद वापस बुलाया गया और वह अपने बयान से पलट गया।

29. डॉ. एस.पी. सिंह (पीडब्लू-3), जिन्होंने दोनों मृतकों का पोस्टमार्टम किया था, से अभियुक्त-अपीलकर्ताओं द्वारा जिरह की गई और उन्होंने मुख्य परीक्षा में दिए गए बयानों का विरोध किया।

30. उपनिरीक्षक रेशम सिंह (पीडब्लू-4) ने शपथपूर्वक बयान दिया कि दिनांक 6.2.2006 को वह बहसूमा थाने में उपनिरीक्षक के पद पर तैनात थे। उसी दिन अभियुक्तगणों के विरुद्ध धारा 147,148,149,302 भारतीय दंड संहिता के अन्तर्गत एफआईआर संख्या 16/2006 पंजीकृत की गई थी, जिसकी विवेचना स्वयं एस.एच.ओ. द्वारा की गई थी। वह पुलिस बल के साथ मौके पर पहुँचे तथा वरिष्ठ अधिकारियों के आदेशानुसार मृतक शराफत व सोनी का पंचायतनामा तैयार किया। मृतक शराफत का पंचायतनामा उनके सामने था, जिस पर उनके हस्ताक्षर व हस्तलिपि थी, उन्होंने पंचों की नियुक्ति कर दी थी तथा पंचों के हस्ताक्षर भी करा लिए थे, जिसे प्रदर्श क-

4 के रूप में प्रदर्शित किया गया था। इस पंचायतनामा से सम्बन्धित समस्त कागजात उनके हस्ताक्षर व हस्तलिपि में थे। साक्षी ने पत्र आर.आई., पत्र सी.एम.ओ., चालान शव, प्रपत्र संख्या 13, शव की फोटो तथा नमूना मोहर देखकर बताया कि ये सभी दस्तावेज पंचायतनामा के समय तैयार किये गये थे तथा प्रदर्श क-5 से क-9 के रूप में प्रदर्शित किये गये थे। साक्षी ने आगे बताया कि शव को मौके पर ही सील कर दिया गया तथा नमूना मोहर लेकर शव को कांस्टेबल सतपाल सिंह तथा कांस्टेबल ब्रह्म सिंह को सौंप दिया गया। इसके बाद उन्होंने मृतक सोनी का पंचायतनामा जो प्रदर्श क-10 है, भरा और मौके पर ही पत्र आर.आई., पत्र सीएमओ, चालान शव, प्रपत्र संख्या 13, शव की फोटो और नमूना मोहर देखकर बताया कि ये सभी पंचायतनामा के समय ही तैयार कर लिए गए थे और प्रदर्श क-11 से क-15 तक प्रदर्शित किए गए थे। दोनों शवों को कांस्टेबल सतपाल सिंह और कांस्टेबल ब्रह्म सिंह को सौंप दिया गया। इसके बाद, यह साक्षी, एस.ओ. और अन्य पुलिस अधिकारियों के साथ अभियुक्तों की तलाश में गए और अभियुक्त फारुख और मुर्सरत को घेरकर पकड़ लिया। अभियुक्त फारुख के कब्जे से हत्या में प्रयुक्त डंडा और मृतक सोनी का नीला दुपट्टा बरामद किया गया। इन्हें मौके पर ही सीलबंद कर मुहर लगाई गई। थानेदार ने बरामदगी ज्ञापन लिखा, जिस पर सभी के हस्ताक्षर करवाए गए। अभियुक्तों के हस्ताक्षर और अंगूठे के निशान भी लिए गए। इस गवाह ने इस रिपोर्ट को देवेन्द्र कुमार के लेखन और हस्ताक्षर में दर्ज बताया। इसे प्रदर्श क-16 के रूप में प्रदर्शित किया गया। साक्षी ने नीले रंग की चुन्नी के बारे में आगे बताया कि यह वही चुन्नी है जो अभियुक्त फारुख के कब्जे से बरामद हुई थी, जिससे अभियुक्त फारुख ने मृतक सोनी की हत्या करने की बात कही थी। चुन्नी को प्रदर्श-1, कपड़े के बंडल को प्रदर्श-2 तथा पीले रंग की चुन्नी को प्रदर्श-3 के रूप में प्रदर्शित किया गया था।

31. पी.डब्लू.-5, कांस्टेबल प्रेम सिंह, औपचारिक गवाह थे। उन्होंने गवाही दी कि उन्होंने ही एफआईआर संख्या 15/2006 दर्ज की थी, जो उनके हस्तलेख और हस्ताक्षर में थी और जिस पर प्रदर्श क-17 दिया गया था।

32. जीजू (पी.डब्लू.-6) ने शपथपूर्वक बयान दिया कि न्यायालय में उपस्थित अभियुक्त इब्राहीम, फारुख, मुस्सरत, अय्यूब, सन्नूर, कयूम और शौकीन ने शराफत और सोनी की हत्या नहीं की थी, बल्कि 13-14 अज्ञात बदमाशों ने शराफत और सोनी की हत्या की थी। यही बदमाश हाथों में बंदूक, कुल्हाड़ी और लाठी-डंडे लेकर लूटपाट के इरादे से आये थे और जब शराफत ने विरोध किया तो उन्होंने उसकी हत्या कर दी। इस साक्षी ने यह भी बयान दिया कि कुछ बदमाश लड़की सोनी को घसीट रहे थे। जब परिवार के सदस्यों ने उन्हें रोकने का प्रयास किया तो उन्होंने सोनी की भी हत्या कर दी। शोर सुनकर गाँव में भगदड़ मच गई, अतः बदमाश बिना लूटपाट किये भाग गये। शराफत और सोनी के शव ईंटों की सड़क (खड़ंजे) पर पड़े थे। अभियोजन पक्ष ने इस साक्षी को पक्षद्रोही घोषित कर दिया।

33. लियाकत अली (पी.डब्लू.-7) और यामीन (पी.डब्लू.-8) ने भी पी.डब्लू.-6 की तर्ज पर गवाही दी थी और उन्हें पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया था।

34. उपनिरीक्षक देवेन्द्र कुमार (पी.डब्लू.-9) ने निम्नलिखित गवाही दी:

"आज दिनांक 19.07.12 को साक्षी देवेन्द्र कुमार एस०आई० थाना कोतवाली देहात जिला बुलन्दशहर को शपथ दिलाई गयी शपथपूर्वक कथन किया कि

दिनांक 06.02.2006 को मै थाना बहलूमा पर उपरोक्त पद पर तैनात था। मै बतौर एस०ओ० तैनात था। उस दिन मु०अ०सं० 16/06 अर्न्तगत धारा 147/148/149/302 आई.पी. सी. बनाम फारूख आदि थाना पर मेरी मौजूदगी मे थाना पर कायम हुआ था। जिसकी विवेचना मेरे द्वारा ग्रहण की गयी थी। थाना कार्यालय से नकल रपट व नकल चिक व अन्य कागजात लेकर विवेचना मे मसकूर हुआ। उस दिन वादी की तहरीर की नकल जीडी में अंकित की। जीडी की नकल तथा वादी रईस अहमद का ब्यान मेरे द्वारा अंकित किया गया तथा उसी दिन एफआईआर लेखक सी/प्रेम सिंह का ब्यान अंकित किया तथा थाने से रवाना होकर घटना स्थल पर आकर वादी की मौजूदगी मे उसकी निशान देही पर घटना स्थल का निरीक्षण कर नक्शा नजरी तैयार किया। नक्शा नजरी पत्रावली पर कागज संख्या अ/9 है। मेरे सामने है जो मेरे लेख व हस्ताक्षर मे है। इसमे खसरा दर्ज है। अपना लेख व हस्ताक्षर शनाख्त करता हूँ। इस पर प्रदर्श क-19 डाला गया। उसी दिन अभियुक्त फारूख व मुर्सरत को गिरफतार किया था। जिसमे अभियुक्त फारूख के कब्जे से लकड़ी का एक डन्डा जो हत्या में प्रयोग किया गया था। व एक चुनरी नीले रंग की बरामद हुई। तथा अभियुक्त मुर्सरत के कब्जे से हत्या में प्रयुक्त एक मोटा डन्डा लकड़ी का बरामद हुआ था मौके पर ही बरामदगी की फर्द तैयार की गयी। फर्द पत्रावली पर मेरे सामने प्रदर्श क 16 है। मेरे लेख व हस्ताक्षर में है। अपना लेख व हस्ताक्षर शनाख्त करता हूँ। उसी दिन अभियुक्त फारूख व मुर्सरत के ब्यान अंकित किये। दिनांक 07.02.06 को मृतक शराफत व मृतिका सोनी की पोस्ट मार्टम रिपोर्ट प्राप्त हुई। मृतक शराफत के शरीर पर आठ चोटे पाई गयी और मृत्यु का कारण शॉक एण्ड हेमरेज था। मृतिका सोनी के शरीर पर तीन चोटे पाई गयी थी मृत्यु का कारण दम घुटने से और शरीर पर आई चोटो के कारण था। थाने पर मौजूद फर्द बरामदगी के गवाह रेशम सिंह का बयान दर्ज किया। व उसी दिन एचसीपी रोहताश दत्त शर्मा सी/ गजेन्द्र सिंह, सी/मुकेश के बयानात अंकित किये।

दिनांक 08.02.06 को वादी के लड़के लियाकत का बयान अंकित किया व तहरीर लेखक मुर्सरत अली का बयान अंकित किया।

दिनांक 09.02.06 को पुनः वादी के मकान ग्राम अकबरपुर आया। जहां पर गवाहान जीजू व अनवर का बयानात अंकित किया तथा वहाँ पर गवाह यशपाल सिंह के बयानात अंकित किये। दिनांक 15.02.06 को सूचनादाता की सूचना पर अभियुक्त सनव्वर, शौकीन कययूम को डीपीएम स्कूल के पास से गिरफतार की। और तीनो के बयानात अंकित किये।

दिनांक 16.02.06 को सूचनादाता की सूचना पर अभियुक्त अययूब को अमरपाल के ईट के भट्टे के पास से बहलूमा रोड पर गिरफतार किया तथा थाना होकर उनके बयान अंकित किये। दिनांक 18.02.06 को मृतक शराफत व मृतिका सोनी के पंचायत नामा के गवाहान अहसान, श्यामलाल जीजू के बयानात अंकित किये।

दिनांक 22.02.06 को पंचान गवाहान महकार सिंह, मुस्तकीम और यामीन, के बयानात अंकित किये। तथा उसी दिन पोस्ट मार्टम कराने के लिये शव को ले जाने वाले कानिस्टेबिल सतपाल के बयान अंकित किये। तमामी विवेचना व बयानात गवाहान निरीक्षण घटना स्थल पोस्ट मार्टम रिपोर्ट के आधार पर अभियुक्तगण के विरूद्ध जुर्म बखूबी साबित पाया तथा आरोप पत्र उनके विरूद्ध न्यायालय प्रेषित किया गया। आरोप पत्र पत्रावली पर अ/7 है। मेरे लेख व हस्ताक्षर में है। शनाख्त करता हूँ। जिस पर प्रदर्श क-20 डाला गया।"

35. जिरह में इस गवाह ने निम्नलिखित बयान दिया:

"घटना रात के ग्यारह बजे की है घटना स्थल का नक्शा नजरी मेरे द्वारा बनाया गया था। नक्शा नजरी बनाते समय मैने कही भी रोशनी यानि लाईट का कोई जिक्र नक्शा नजरी मे नही किया। मेरे द्वारा बनाई गयी फर्द बरामदगी प्रदर्श क-16 मे कही भी मुलजिमान फारूख मुर्सरत के गिरफतार करने का स्थान वा दो डन्डे व एक चुन्नी की बरामदगी का स्थान अंकित नही किया गया। ना ही गिरफतारी व बरामदगी का समय फर्द बरामदगी प्रदर्श क-16 मे ही किया गया। स्वयं कहा कि सी०डी० में है। मैने ना डन्डे, ना ही चुन्नी एकस्पर्ट के पास परीक्षण हेतु नही भेजें थाने से रवाना होने पर जीडी में रवानगी दर्ज की जाती है।

मुलजिमान फारूख, मुर्सरत को गिरफतार करने से पहले थाने से रवाना होते समय जीडी मे रवानगी दर्ज की थी। सीडी रवानगी ना तो मेरे सामने है ना मै साथ लाया हूँ। यह कहना गलत है कि मैने सारी कार्यवाही थाने पर बैठकर की हो, और जीडी मे इन्द्राज ना किया हो। यह कहना भी गलत है कि फारूख वा मुर्सरत सोनी मृतका व मृतक शराफत की हत्या की रिपोर्ट लिखाने गये हो और उन्हे वही थाने पर बैठाकर उन्ही का झूठा चालान इस मुकदमे मे कर दिया।

फर्द बरामदगी प्रदर्श क-16 में अंकित, "मौके पर आने जाने वाले जनता के गवाहान को गवाही देने को कहा कोई जनता का गवाह तैयार नही हुआ।"

मैने ना तो जनता के गवाहान के नाम पते लिखे ना ही उनके खिलाफ पुलिस रेग्यूलेशन एक्ट के विरूद्ध कोई कार्यवाही ही की।

केवल गवाह अनवर ने अपने बयान 161 दं.प्र.सं. में मुलजिमान द्वारा मृतक शराफत व सोनी की हत्या टार्च की रोशनी मे करते हुये देखा है।

मैने ऐसी किसी टार्च को गवाह अनवर से कब्जे में नही लिया। और न ही कोई फर्द ही बनायी। यह कहना गलत है कि मैने अनवर का ब्यान 161 दं.प्र.सं. ना लिखा हो। यदि गवाह ने ऐसा बयान दिया हो कि मैने उसका बयान नही लिया तो गलत दिया है। डन्डा चुन्नी माल मुकदमाती आज न्यायालय मे मेरे सामने नही है। मुझे इस समय याद नही है कि इस केस से मुताल्लीक एक एफ.आई.आर. वादी रईस वा उसके परिजन के खिलाफ हुई थी। वह मेरे द्वारा विवेचना की हो। यह कहना गलत है कि मैने सारी कार्यवाही थाने पर बैठकर की हो और न्यायालय मे झूठा आरोप पत्र प्रस्तुत किया।"

36. तत्पश्चात, अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के बयान धारा 313 दं.प्र.सं. के अंतर्गत दर्ज किए गए, जिसमें उनके समक्ष सभी अभियोगात्मक साक्ष्य प्रस्तुत किए गए। उन्होंने सभी आरोपों से इनकार किया और कहा कि उन्हें इस मामले में झूठा फंसाया गया है।

37. तत्पश्चात, विचारण न्यायालय ने अपने निर्णय में अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया और उन्हें ऊपर वर्णित अनुसार आजीवन कारावास की सजा सुनाई।

38. अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि किसी भी गवाह ने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं किया है। किसी ने भी घटना को नहीं देखा है और यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य का

मामला है जहाँ साक्ष्यों की श्रृंखला पूरी नहीं है। सभी प्रत्यक्षदर्शी गवाह, अर्थात् पी.डब्लू.-1, पी.डब्लू.-2, पी.डब्लू.-6, पी.डब्लू.-7 और पी.डब्लू.-8, पक्षद्रोही घोषित कर दिए गए और उन्होंने अभियोजन पक्ष के कथन का समर्थन नहीं किया।

39. इसके विपरीत, विद्वान ए.जी.ए. ने तर्क दिया है कि घटना 5.2.2006 को रात लगभग 11 बजे अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के घर में घटी, जो सूचनादाता के घर के सामने है। तत्काल प्राथमिकी 6.2.2006 को साढ़े तीन घंटे बाद लगभग 2.30 बजे (रात) दर्ज की गई, जबकि घटनास्थल से पुलिस स्टेशन की दूरी लगभग छह किलोमीटर है। इब्राहिम, फारुख, अयूब, सन्नौर, कयूम, शौकीन, मुसरत और दो अज्ञात व्यक्तियों के खिलाफ धारा 147, 148, 149 और 302 भा.दं.सं. के तहत मुकदमा अपराध संख्या 16/2006 के रूप में प्राथमिकी दर्ज की गई थी। यह ऑनर किलिंग का मामला है, जिसमें अभियुक्तों-अपीलकर्ताओं ने अपनी ही बेटी/बहन, सोनी (लगभग 16 वर्ष) और सूचनादाता के भाई, सराफत (लगभग 22 वर्ष) की उनके घर में ही हत्या कर दी, क्योंकि उनके बीच प्रेम संबंध थे और अभियुक्त-अपीलकर्ता उनके रिश्ते के खिलाफ थे।

40. विद्वान अपर महाधिवक्ता ने आगे दलील दी है कि प्राथमिकी में यह कहा गया है कि अभियुक्त-अपीलकर्ताओं ने मृतक सराफत और उसके परिवार के सदस्यों को पहले ही गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी दी थी क्योंकि सराफत और सोनी दोनों के बीच प्रेम संबंध थे। सूचनादाता ने अपने भाई सराफत (मृतक) की शादी अभियुक्त-अपीलकर्ताओं की बेटी/बहन से कराने का प्रस्ताव रखा था, लेकिन 5.2.2006 को रात लगभग 11 बजे, अभियुक्त-अपीलकर्ताओं ने अपने हाथों में देशी पिस्तौल, लाठी, डंडा और बल्लम लेकर लड़की पर हमला किया और कहा कि उसके सराफत के साथ अवैध संबंध हैं और सराफत को जबरन अपने घर ले गए। यह घटना गैस लैंप और टॉर्च की रोशनी में देखी गई थी। इस घटना को न केवल सूचनादाता (पीडब्लू-1) ने देखा, बल्कि अन्य प्रत्यक्षदर्शियों, अर्थात् अनवर (पीडब्लू-2) और अन्य व्यक्तियों ने भी देखा। सूचनादाता के भाई की हत्या अभियुक्तों-अपीलकर्ताओं ने की थी। प्राथमिकी दर्ज होने के बाद पुलिस आई और अभियुक्तों-अपीलकर्ताओं के घर के अंदर से दो शव बरामद किए। जाँच अधिकारी (पीडब्लू-9) ने टोपोग्राफी रिपोर्ट (नक्शा नज़री) तैयार की। स्थलाकृति रिपोर्ट (प्र.का.-19) दिनांक 6.2.2006 में उल्लेख है कि सराफत का शव अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के घर के कमरे के अंदर पाया गया था, जबकि सोनी का शव उसी घर के बरामदे में एक चारपाई पर पाया गया था। टोपोग्राफी रिपोर्ट को प्रदर्श क-19 के रूप में प्रदर्शित किया गया और जाँच अधिकारी द्वारा न्यायालय में सिद्ध किया गया। स्पष्ट रूप से अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के घर के अंदर शव पाए गए थे, इसलिए साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के अंतर्गत साक्ष्य का भार अभियुक्त-अपीलकर्ताओं पर है।

41. प्रतिद्वन्द्वी तर्कों को सुनने और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अध्ययन करने के बाद, हम पाते हैं कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 इस प्रकार है:

"जब कोई तथ्य विशेष रूप से किसी व्यक्ति के ज्ञान में हो, तो उस तथ्य को साबित करने का भार उस पर होता है।"

42. त्रिमुख मारोती किरकन बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2006)10 एससीसी 681 में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की है:

"12. यदि कोई अपराध किसी घर की गोपनीयता के अंदर और ऐसी परिस्थितियों में होता है, जहां हमलावरों को उस समय और अपनी पसंद की परिस्थितियों में अपराध की योजना बनाने और उसे अंजाम देने का पूरा अवसर मिलता है, तो अभियोजन पक्ष के लिए अभियुक्त के अपराध को स्थापित करने के लिए साक्ष्य प्रस्तुत करना बेहद मुश्किल होगा, यदि परिस्थितिजन्य साक्ष्य के सख्त सिद्धांत पर, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, न्यायालयों द्वारा जोर दिया जाता है। एक न्यायाधीश किसी आपराधिक मुकदमे की अध्यक्षता सिर्फ़ यह देखने के लिए नहीं करता कि किसी निर्दोष को सज़ा न मिले। एक न्यायाधीश यह भी सुनिश्चित करता है कि कोई दोषी व्यक्ति बच न पाए। दोनों ही सार्वजनिक कर्तव्य हैं। (देखें स्टरलैंड बनाम लोक अभियोजन निदेशक 1944 एसी 315, जिसे पंजाब राज्य बनाम करनैल सिंह (2003) 11 एससीसी 271 में न्यायमूर्ति अरिजीत पसायत द्वारा अनुमोदन से उद्धृत किया गया है)। कानून अभियोजन पक्ष पर ऐसे साक्ष्य प्रस्तुत करने का कर्तव्य नहीं थोपता है जो प्रस्तुत करना लगभग असंभव हो या कम से कम अत्यंत कठिन हो। अभियोजन पक्ष का कर्तव्य ऐसे साक्ष्य प्रस्तुत करना है जो वह मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत करने में सक्षम हो। यहाँ साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 को ध्यान में रखना आवश्यक है, जिसमें कहा गया है कि जब कोई तथ्य किसी व्यक्ति के विशेष ज्ञान में हो, तो उस तथ्य को साबित करने का भार उसी पर होता है। इस धारा से संलग्न दृष्टांत (ख) इस प्रावधान की विषयवस्तु और दायरे पर कुछ प्रकाश डालता है और यह इस प्रकार है:

(ख) क पर बिना टिकट के रेल यात्रा करने का आरोप है। यह साबित करने का भार कि उसके पास टिकट था, क पर है।"

जहां हत्या जैसा अपराध घर के अंदर गुप्त रूप से किया जाता है, वहां मामला साबित करने का प्रारंभिक भार निस्संदेह अभियोजन पक्ष पर होगा, लेकिन आरोप साबित करने के लिए उसके द्वारा पेश किए जाने वाले साक्ष्य की प्रकृति और मात्रा उतनी नहीं हो सकती जितनी परिस्थितिजन्य साक्ष्य के अन्य मामलों में आवश्यक होती है। यह भार तुलनात्मक रूप से हल्का होगा। साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के मद्देनजर घर के निवासियों पर अपराध कैसे किया गया, इस बारे में एक ठोस स्पष्टीकरण देने का भार होगा। घर के निवासी केवल चुप रहकर और कोई स्पष्टीकरण न देकर इस कथित आधार पर बच नहीं सकते कि अपना मामला साबित करने का भार पूरी तरह से अभियोजन पक्ष पर है और किसी भी स्पष्टीकरण की पेशकश करने के लिए अभियुक्त पर कोई कर्तव्य नहीं है।"

43. अभिलेख पर आए साक्ष्यों के आधार पर, अभियुक्तगण मृतका सराफत को उसकी बेटी/बहन सोनी की पिटाई करते हुए अपने घर ले गए थे। इसके बाद, दोनों मृतकों के शव अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के घर के अंदर पाए गए। जाँच अधिकारी, पी.डब्लू.-9 द्वारा विधिवत सिद्ध स्थलाकृति रिपोर्ट (नक्शा नज़री) भी दर्शाती है कि शव अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के घर के अंदर पाए गए थे। इसलिए, यह दर्शाने का भार कि अभियुक्तों द्वारा मृतक को अपने घर ले जाने और उसके बाद मृतक के शवों को अपीलकर्ताओं के घर से बरामद करने के बाद

क्या हुआ, अभियुक्तों-अपीलों पर आ जाता है क्योंकि ये तथ्य केवल अभियुक्तों-अपीलों के ही ज्ञान में थे और वे साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के अंतर्गत भार वहन करने में विफल रहे। अतः, हम राज्य की ओर से विद्वान अपर महाधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्कों से सहमत हैं।

44. पोस्टमार्टम रिपोर्ट में मृतक सोनी के शरीर पर पाई गई बाहरी चोटों का उल्लेख "दोनों हाइओइड हड्डियाँ टूटी हुई" और "दोनों फेफड़े गुब्बारे की तरह सूजे हुए" के रूप में किया गया है। पोस्टमार्टम रिपोर्ट में पहले मृत्यु का कारण 'गला घोंटने के कारण दम घुटना' बताया गया था, लेकिन बाद में पोस्टमार्टम रिपोर्ट में सुधार किया गया और मृत्यु का कारण 'मृत्यु पूर्व फांसी के कारण दम घुटना' बताया गया।

45. यह ऐसा मामला है जिसमें दोनों हड्डियां टूट गई थीं जो कि गला घोंटने का मामला है न कि फांसी लगाने का और इसलिए डॉक्टर की राय स्वीकार्य नहीं है क्योंकि आगे सबूत मिले हैं कि पीडब्लू-1 और पीडब्लू-2 के बयानों के अनुसार भी सराफत और सोनी दोनों की हत्या की गई थी।

46. मृतक सराफत का पोस्टमार्टम किया गया और उसके शरीर पर आठ चोटें पाई गईं। चोटों के कारण उसकी 2 से 11 पसलियाँ टूटी हुई थीं और दाहिना फेफड़ा भी क्षतिग्रस्त हो गया था। मृतक की मृत्यु रक्तस्राव और सदमे के कारण हुई थी।
पंचायतनामा/जांच रिपोर्ट दिनांक 6.2.2006 को प्रातः 3.30 बजे (रात) तैयार की गई थी और जांच रिपोर्ट में उल्लेख किया गया है कि इसे उचित प्रकाश में तैयार किया गया था और मृतक-सराफत का शव 6.2.2016 को प्रातः 5.15 बजे अभियुक्त-इब्राहिम के कमरे के अंदर पाया गया था। मृतक-सोनी के शव का पंचायतनामा/जांच रिपोर्ट तैयार की गई थी और जांच रिपोर्ट में उल्लेख किया गया है कि मृतका की गर्दन दबाकर हत्या की गई थी और मृतक-सोनी का शव अभियुक्त-अपीलकर्ता के घर के बरामदे में पाया गया था। कथित घटना के कुछ ही घंटों बाद जांच रिपोर्ट तैयार की गई थी। इसलिए, दोनों मृतकों की जांच रिपोर्ट के अनुसार, मृतक सराफत और सोनी के शव आरोपी-अपीलकर्ताओं के घर के अंदर पाए गए थे और इसकी पुष्टि पी.डब्लू.-1, पी.डब्लू.-2 और पी.डब्लू.-9 के मुख्य परीक्षण और जिरह में दिए गए बयानों से हुई है।

47. दिनांक 17.08.2006 को सभी अभियुक्तों के विरुद्ध धारा 147, 302/149 के अंतर्गत आरोप तय किए गए तथा पी.डब्लू.-1 (सूचनाकर्ता/मृतक सराफत का भाई) का बयान दिनांक 06.01.2009 को दर्ज किया गया तथा उसने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया, दिनांक 12.01.2009, 21.01.2009, 27.01.2009 को बचाव पक्ष द्वारा उससे जिरह की गई तथा उसने एफ.आई.आर., पंचायतनामा/जांच रिपोर्ट, शवों की बरामदगी तथा अपराध में प्रयुक्त हथियारों की सामग्री को साबित किया। इस प्रकार, पी.डब्लू.-1 ने अपने मुख्य परीक्षण के साथ-साथ जिरह में अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है, लेकिन किन परिस्थितियों में तत्कालीन पीठासीन अधिकारी ने दिनांक 21.05.2010 के आदेश द्वारा धारा 504 और 506 भा.दं.सं. के तहत आरोपों को फिर से संशोधित किया, जबकि इन धाराओं का उल्लेख दिनांक 22.02.2006 के आरोप-पत्र में नहीं किया गया था और विद्वान ए.जी.ए. ने आगे प्रस्तुत किया है कि 22.02.2006 को, आरोप-पत्र केवल धारा 147, 148,

149 और 302 भा.दं.सं. के तहत प्रस्तुत किया गया था और धारा 147, 302/149 भा.दं.सं. के तहत 17.08.2006 को आरोप तय किए गए थे और पी.डब्लू.-1 की मुख्य परीक्षा 06.01.2009 को आयोजित की गई थी और उसके बाद कई तारीखों पर जिरह की गई थी। अंतिम जिरह दिनांक 27.01.2009 को हुई और पी.डब्लू.-1 ने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया और तब तक अपने बयान से पलटा नहीं। दिनांक 21.05.2010 को, आरोपों को कम दंडात्मक धाराओं, अर्थात् धारा 504 और 506 भा.दं.सं. में संशोधित कर दिया गया और निचली अदालत ने नए सिरे से सुनवाई की अनुमति दे दी क्योंकि उसकी मुख्य परीक्षा केवल धारा 504 और 506 भा.दं.सं., अर्थात् 'शांति भंग करने के इरादे से जानबूझकर अपमान और आपराधिक धमकी' के संबंध में दर्ज की जानी थी। हालाँकि, विद्वान निचली अदालत ने केवल धारा 504 और 506 भा.दं.सं. के संबंध में नहीं, बल्कि सभी धाराओं, अर्थात् धारा 147, 302/149, 504 और 506 भा.दं.सं. के तहत नए सिरे से सुनवाई की। इसके बाद, सूचनादाता ने मृतक की हत्या से इनकार नहीं किया, बल्कि कहानी को तोड़-मरोड़कर पेश करने की कोशिश की, जो विश्वसनीय नहीं है। जबकि पी.डब्लू.-1 ने पहले ही अपीलकर्ताओं द्वारा दोनों मृतकों की हत्या का कारण ऑनर किलिंग बताया है और बाद में अपने मुख्य परीक्षण में ही उसने यह कहा है कि किसी अज्ञात व्यक्ति ने हत्या की है। पी.डब्लू.-1 ने घटना की समग्रता और अभियुक्तों की घटनास्थल पर उपस्थिति से इनकार नहीं किया है। वर्तमान मामले में विचारण न्यायालय को नए सिरे से सुनवाई की अनुमति नहीं देनी चाहिए थी।

48. विली (विलियम) स्लेनी बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 1955 एससीसी ऑनलाइन एससी 34 में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की है:

"24. इसके बाद, धारा 226 और 227 दर्शाती हैं कि आरोप में त्रुटियाँ, और यहाँ तक कि आरोप का पूर्णतः न होना भी, किसी मुकदमे को शुरू से ही निष्प्रभावी नहीं बनाता जिससे वह मुकदमा ही न हो, जैसा कि धारा 197 के तहत मंज़ूरी का न होना होता। यह स्पष्ट है क्योंकि इन त्रुटियों और चूकों को सत्र न्यायालय में मुकदमे के दौरान किसी भी समय (धारा 226) या मुकदमे के अंत में भी (धारा 227) सुधारा जा सकता है, और जब ऐसा हो जाता है तो मुकदमे को नए सिरे से आगे बढ़ाने की आवश्यकता नहीं होती, बल्कि उस चरण से आगे बढ़ सकता है जिस पर परिवर्तन किया गया था, बशर्ते कि किसी भी पक्ष को पूर्वाग्रह न हो (धारा 228)। यह निर्णायक रूप से दर्शाता है कि आरोप में कोई त्रुटि या चूक, और यहाँ तक कि आरोप का पूर्णतः न होना भी, मुकदमे की जड़ को प्रभावित नहीं करता। जैसा कि हमने देखा है, परिवर्तन के चरण तक की कार्यवाही, जो मुकदमे के बिल्कुल अंत में हो सकती है, तब तक दूषित नहीं होती जब तक कि कोई पूर्वाग्रह न हो; इन खामियों के बावजूद वे अच्छी हैं। ऐसा असंभव है जब त्रुटि इतनी गंभीर हो कि मुकदमे की जड़ पर ही प्रहार करे। इसका अर्थ है कि आरोप में त्रुटियाँ, और यहाँ तक कि आरोप का पूर्णतः अभाव भी, असाध्य श्रेणी में नहीं रखा जाता है।"

49. मधुसूदन एवं अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2024 एससीसी ऑनलाइन एससी 4035 में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की है:

"21. मामले की सामग्री कहीं भी यह संकेत नहीं देती कि न्यायालय का आरोप बदलने का इरादा था और यह असंभव है कि बदले हुए आरोप औपचारिक रूप से तैयार किए गए, पढ़कर सुनाए गए और अभियुक्त को

समझाए गए। न्यायालय निर्णय सुनाए जाने से पहले किसी भी आरोप में परिवर्तन या परिवर्धन कर सकता है, लेकिन जब आरोपों में परिवर्तन किया जाता है, तो अभियोजन पक्ष और बचाव पक्ष, दोनों को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 217 के तहत ऐसे परिवर्तित आरोपों के संदर्भ में गवाहों को पुनः बुलाने या उनसे पुनः परीक्षित करने का अवसर दिया जाना चाहिए। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि यदि न्यायालय द्वारा आरोपों में परिवर्तन किया जाता है, तो उसके कारणों को निर्णय में दर्ज किया जाना चाहिए।"

प्रभाव वर्धित

50. **राजेश यादव एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2022) 12 एससीसी 200** में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की है:

"21. "पक्षद्रोही गवाह" शब्द भारतीय साक्ष्य अधिनियम में स्थान नहीं रखता। इसका प्रयोग विरोधी पक्ष के पक्ष में गवाही देने वाले गवाह की गवाही के लिए किया गया है। हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि एक गवाह अपनी मुख्य परीक्षा के दौरान उस पक्ष के पक्ष में गवाही दे सकता है जिसके पक्ष में उसे गवाही देनी है, जबकि बाद में वह विरोधी पक्ष के पक्ष में अपना मत बदल सकता है। इसी प्रकार, ऐसे मामले भी हो सकते हैं जहाँ कोई गवाह मुख्य परीक्षा से ही पक्ष के पक्ष का समर्थन नहीं करता। न्यायालय को इस वर्गीकरण को ध्यान में रखना होगा। प्रथम श्रेणी के संबंध में, न्यायालय ऐसे गवाह द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य का उचित मूल्यांकन करने के अपने अधिकार से वंचित नहीं है। यहाँ तक कि एक मुख्य परीक्षा को भी साक्ष्य कहा जा सकता है। ऐसा साक्ष्य जिरह के बाद पूर्ण हो जाएगा। एक बार साक्ष्य पूरा हो जाने पर, उक्त गवाही को समग्र रूप से न्यायालय द्वारा तथ्य के रूप में मूल्यांकन और मूल्यांकन करने के लिए अभिप्रेत किया जाता है। इसलिए, न केवल उस विशिष्ट भाग पर विचार किया जा सकता है जिसमें गवाह मुकर गया है, बल्कि उन परिस्थितियों पर भी विचार किया जा सकता है जिनमें ऐसा हुआ, विशेष रूप से उस स्थिति में जहाँ मुख्य परीक्षण पूरा हो चुका है और ऐसी परिस्थितियाँ हैं जो बाद के बयान के पीछे के कारणों को इंगित करती हैं, जिन्हें अदालत समझ सकती है। चूँकि मामला उसके समक्ष है, इसलिए मूल्यांकन करना और सही निष्कर्ष पर पहुँचना अदालत के अधिकार क्षेत्र में है।"

51. मुख्य परीक्षा और प्रति-परीक्षा दोनों में पी.डब्लू.-1 के बयान को, भारतीय दंड संहिता की धारा 504 और 506 के तहत आरोपों में संशोधन के बाद आयोजित की जा रही बाद की मुख्य परीक्षा में दिए गए उसके बयान के आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता।

52. पी.डब्लू.-2, अनवर का मुख्य परीक्षण 04.03.2009 को दर्ज किया गया, जिसमें पी.डब्लू.-2 ने प्राथमिकी में उल्लिखित प्रत्यक्षदर्शी के रूप में गवाही दी और उसी दिन उसकी जिरह भी हुई। अपनी जिरह में, उसने यह भी गवाही दी कि उसने घटना को गैस लैंप और टॉर्च की रोशनी में देखा था और यह भी गवाही दी कि मृतक सराफत और सोनी दोनों की हत्या अभियुक्तों-अपीलकर्ताओं ने की थी। इस प्रकार, पी.डब्लू.-2 ने भी मुख्य परीक्षा और प्रति-परीक्षा में गवाही देकर अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है। बाद में, जब पिछले आरोप के चार वर्ष के अंतराल के बाद, 21.05.2010 को आरोपों में संशोधन किया गया, तो पी.डब्लू.-2 को,

हालाँकि उसे केवल भारतीय दंड संहिता की संशोधित धारा 504 और 506 के संबंध में गवाही देनी है, फिर भी उसने कथित घटना से इनकार करने का प्रयास किया है। हालाँकि, उसने स्वीकार किया है कि दोनों मृतकों की हत्या की गई थी और उसने टोपोग्राफी रिपोर्ट/नक्शा नज़री का खंडन नहीं किया है। इस प्रकार, पी.डब्लू.-2 के बाद के मुख्य परीक्षण में दिए गए बयानों में, जिसमें उन्होंने धारा 147, 302/149 भा.दं.सं. के तहत अपराध के संबंध में गवाही को याद किया और कहा कि कोई घटना नहीं हुई है और साथ ही अभियुक्त-अपीलकर्ताओं ने दोनों मृतकों की हत्या नहीं की है, पर भरोसा नहीं किया जा सकता, जब अभियुक्त-अपीलकर्ताओं को धारा 504 और 506 भा.दं.सं. के तहत बरी कर दिया गया था।

53. डॉ. एस.पी. सिंह (पी.डब्लू.-3), जिन्होंने मृतक के शव का पोस्टमार्टम किया है, ने पोस्टमार्टम रिपोर्ट को साबित किया है और मृतक सराफत, उम्र लगभग 22 वर्ष, के शरीर पर पाई गई सभी चोटों का उल्लेख किया है। इस गवाह ने मृतक के शरीर पर लगी सभी आठ चोटों को भी साबित किया है और यह भी उल्लेख किया है कि 2 से 11 पसलियों में फ्रैक्चर था और दाहिना फेफड़ा और पेट की हड्डी भी क्षतिग्रस्त पाई गई थी। इस गवाह ने मृतक सोनी, उम्र लगभग 16 वर्ष, के शव का भी पोस्टमार्टम किया है और यह गवाही दी है कि गर्दन पर लिगेचर के निशान पाए गए थे और उसकी मृत्यु दम घुटने से हुई थी। इस गवाह ने यह भी गवाही दी है कि शव पर पाई गई चोटें 05.02.2006 की रात 11 बजे की थीं।

54. बचाव पक्ष की ओर से यह प्रश्न नहीं उठाया गया कि यह गला घोंटने या फांसी लगाने का मामला है। पोस्टमार्टम रिपोर्ट में दोनों हड्डियाँ टूटी हुई पाई गईं और बचाव पक्ष ने स्वीकार किया कि दोनों मृतकों की हत्या की गई थी।

55. उपनिरीक्षक रेशम सिंह (पी.डब्लू.-4) ने पंचायतनामा साबित कर दिया है और यह भी गवाही दी है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट उनकी उपस्थिति में पुलिस थाने में प्रातः 2:30 बजे (रात) दर्ज की गई थी। विद्वान अपर महाधिवक्ता ने आगे दलील दी कि बचाव पक्ष द्वारा दिए गए सुझाव में पी.डब्लू.-4 ने गवाही दी है कि गिरफ्तारी और कथित बरामदगी फर्जी नहीं है।

56. अभि0सा0-5, अर्थात् कांस्टेबल प्रेम सिंह ने प्रथम सूचना रिपोर्ट, उसके द्वारा लिखी गई चिकी रिपोर्ट को सिद्ध कर दिया है तथा प्रथम सूचना रिपोर्ट धारा 147, 148, 149, 302 भारतीय दण्ड संहिता (राज्य बनाम इब्राहिम व 6 अन्य) के अन्तर्गत मुकदमा अपराध संख्या 16/2006 के रूप में पंजीकृत की गई है। प्रथम सूचना रिपोर्ट को प्रदर्श क-17 के रूप में प्रदर्शित किया गया है।

57. अभियोजन पक्ष ने पी.डब्लू.-6, पी.डब्लू.-7 और पी.डब्लू.-8 को भी प्रत्यक्षदर्शी गवाह के रूप में पेश किया, परन्तु वे अपने बयान से मुकर गए। यह प्रस्तुत किया गया है कि उनकी गवाही पर भरोसा नहीं किया जा सकता क्योंकि उन्होंने मृतक की हत्या के लिए किसी अन्य व्यक्ति के कारण का उल्लेख नहीं किया है, यद्यपि पी.डब्लू.-1 और पी.डब्लू.-2 ने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है।

58. उपनिरीक्षक देवेन्द्र कुमार (पी.डब्लू.-9/जांच अधिकारी) ने जाँच के दौरान प्राप्त सभी दस्तावेज़ों को प्रमाणित कर दिया है। उन्होंने यह भी गवाही दी है कि दोनों शव अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के घर के अंदर पाए गए थे। इस गवाह ने अपने द्वारा तैयार की गई टोपोग्राफी रिपोर्ट को भी प्रमाणित किया है।

59. भगवान दास बनाम दिल्ली राज्य (एन.सी.टी.) (2011) 6 एस.सी.सी. 396 में, सर्वोच्च न्यायालय ने ऑनर किलिंग के मामलों पर चिंता व्यक्त करते हुए, निम्नलिखित टिप्पणी की है:

"9. बहुत से लोग महसूस करते हैं कि उनके रिश्तेदार या उनकी जाति के युवक/युवती के व्यवहार से उनका अपमान होता है क्योंकि वह उनकी इच्छा के विरुद्ध विवाह कर रहा है या किसी के साथ प्रेम संबंध रख रहा है, और इसलिए वे कानून अपने हाथ में ले लेते हैं और ऐसे व्यक्ति की हत्या कर देते हैं या शारीरिक रूप से हमला कर देते हैं या उन पर कोई अन्य अत्याचार करते हैं। हमने ***लता सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2006(3) आरसीआर (क्रिमिनल) 870 : 2006(3) आरसीआर (सिविल) 738 : 2006(2) एपेक्स क्रिमिनल 670 : (2006)5 एससीसी 475*** *में माना है कि यह पूरी तरह से अवैध है।"*

यदि कोई व्यक्ति अपनी बेटी या अन्य व्यक्ति, जो उसका रिश्तेदार या उसकी जाति का है, के व्यवहार से खुश नहीं है, तो वह अधिकतम इतना कर सकता है कि उससे सामाजिक संबंध तोड़ ले, लेकिन वह हिंसा करके या हिंसा की धमकी देकर कानून को अपने हाथ में नहीं ले सकता।

60. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क कि अपीलकर्ताओं की दोषसिद्धि मान्य नहीं है क्योंकि सभी प्रत्यक्षदर्शी गवाहों, अर्थात् पी.डब्लू.-1, पी.डब्लू.-2, पी.डब्लू.-6, पी.डब्लू.-7, पी.डब्लू.-8 को पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया है, इस तथ्य के मद्देनजर मान्य नहीं हो सकता कि पी.डब्लू.-1 और पी.डब्लू.-2 दोनों ने अपने मुख्य परीक्षण में अभियोजन पक्ष के मामले और प्रथम सूचना रिपोर्ट के संस्करण का समर्थन किया है, साथ ही गवाहों को वापस बुलाने से पहले कई तारीखों पर की गई जिरह का भी समर्थन किया है। गवाहों को वापस बुलाने के लगभग एक वर्ष के अंतराल के बाद, जब भारतीय दंड संहिता की धारा 504 और 506 के तहत आरोप जोड़े गए थे और नए सिरे से सुनवाई की अनुमति दी गई थी। जहाँ तक भारतीय दंड संहिता की धारा 504 और 506 के तहत लगाए गए आरोपों का संबंध है, निचली अदालत का दायरा केवल गवाहों को वापस बुलाने और गवाही देने तक ही सीमित था।

विली (विलियम) स्लेनी (उपरोक्त) मामले में दिए गए निर्णय के आलोक में, हमें विद्वान ए.जी.ए. के तर्क में बल मिला कि मुकदमे को नए सिरे से आगे बढ़ने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि उस चरण से आगे बढ़ना चाहिए जिस पर परिवर्तन किया गया था। हमें **भगवान दास (उपरोक्त)** मामले में दिए गए निर्णय से भी समर्थन मिलता है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की है:

"इसमें कोई संदेह नहीं कि श्रीमती ढिल्लो देवी को अभियोजन पक्ष द्वारा पक्षद्रोही घोषित किया गया था क्योंकि उन्होंने पुलिस को दिए अपने पहले के बयान से पलटी खाई थी। हालाँकि, जैसा कि राज्य बनाम राम प्रसाद मिश्रा एवं अन्य में कहा गया है:

"यदि पक्षद्रोही गवाह का साक्ष्य अभियोजन पक्ष या अभियुक्त के पक्ष में दिया गया हो, तो उसे पूरी तरह से खारिज नहीं किया जाएगा, बल्कि उसकी गहन जाँच की जा सकती है और साक्ष्य का वह भाग जो अभियोजन पक्ष या बचाव पक्ष के मामले से मेल खाता हो, स्वीकार किया जा सकता है।"

इसी प्रकार, शेख ज़ाकिर बनाम बिहार राज्य एआईआर 1983 एससी 911 में इस न्यायालय ने यह निर्णय दिया:

"यह कोई अजीब बात नहीं है कि कुछ गवाह अपने बयान से पलट जाते हैं, लेकिन यदि दोषसिद्धि के समर्थन में स्वीकार्य साक्ष्य मौजूद हों तो यह अपने आप में अदालत को किसी अभियुक्त को दोषी ठहराने से नहीं रोक सकता।"

61. यह स्थापित कानून है कि व्यक्ति झूठ बोल सकता है, लेकिन परिस्थितियाँ नहीं। यहाँ तक कि बाद में अपने बयान से पलटने वाले गवाहों ने भी स्वीकार किया है कि दोनों मृतकों की हत्या की गई थी। हालाँकि उन्होंने यह गवाही दी है कि कुछ अज्ञात व्यक्तियों ने मृतक की हत्या की थी, लेकिन उन्होंने उन अज्ञात व्यक्तियों पर मृतक की हत्या का कोई कारण नहीं बताया है। जबकि, अभियुक्त अपीलकर्ताओं के पास पर्याप्त कारण था क्योंकि वे अपनी बेटी/बहन, मृतक सोनी और मृतक सराफत के प्रेम संबंधों के कारण अपमानित महसूस कर रहे थे और इसलिए उन्होंने दोनों की हत्या कर दी।

62. उपरोक्त के मद्देनजर, हमारा विचार है कि एक बार जब मुख्य परीक्षा और गवाहों की जिरह दर्ज हो जाए और उनकी गवाही पूरी हो जाए, उसके बाद, यदि आरोपों में परिवर्तन/संशोधन/जोड़-तोड़ किया जाता है, तो विचारण न्यायालय को नए सिरे से सुनवाई की अनुमति देने से बचना चाहिए ताकि उक्त गवाह अपनी पूर्व की गवाही को वापस ले सकें। ऐसी परिस्थितियों में, विचारण न्यायालय को गवाहों को केवल परिवर्तित/संशोधित/जोड़-तोड़ किये गए आरोपों के संबंध में ही गवाही देने की अनुमति देनी चाहिए।

63. उपरोक्त के मद्देनजर, हम आरोपी-अपीलकर्ताओं को धारा 147, 302/149 भा.दं.सं. के तहत दोषी ठहराने के विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश के निष्कर्षों से सहमत हैं।

64. ये सभी अपीलें गुण-दोष रहित होने के कारण खारिज की जाती हैं। दोषसिद्धि एवं दण्डादेश के आक्षेपित निर्णय की पुष्टि की जाती है।

65. अभियुक्त-अपीलकर्ता, इब्राहिम, कयूम और फारुख जमानत पर हैं। उन्हें सजा काटने के लिए तत्काल हिरासत में लिया जाएगा। जहाँ तक अभियुक्त-अपीलकर्ता, सन्नूर, शौकीन, मुसरत और अयूब का संबंध है, वे जेल में हैं, इसलिए उनके संबंध में किसी आदेश की आवश्यकता नहीं है।

66. इस निर्णय की एक प्रति सहित निचली अदालत की कार्यवाही का रिकॉर्ड दो सप्ताह के भीतर निचली अदालत को प्रेषित किया जाए।

(2025) 4 ILRA 862

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 10.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिरला

माननीय न्यायमूर्ति प्रवीण कुमार गिरि

आपराधिक अपील संख्या 1226/1983

अशरफ **...अपीलकर्ता**

बनाम

राज्य **...प्रतिवादी**

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता:
श्री अरविंद कुमार श्रीवास्तव

प्रतिवादी के अधिवक्ता:
डी.जी.ए.

अनुवादित

(ए) आपराधिक कानून - आपराधिक अपील - फरार अभियुक्त - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 302 - अपील का निर्णय गुण-दोष के आधार पर किया जा सकता है, जहां अपीलकर्ता फरार हो और मृत मान लिया गया हो, और रिकॉर्ड पर्याप्त हो - यदि अपीलकर्ता की अनुपस्थिति में मामले का निर्णय गुण-दोष के आधार पर किया जाता है, तो उच्च न्यायालय स्थिति को सुधार सकता है - अभियोजन एजेंसी द्वारा की गई दोषपूर्ण जांच के आधार पर अभियुक्त बरी होने का दावा नहीं कर सकता। (पैरा - 4,42)

(बी) भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 32 - मृत्यु पूर्व कथन - यदि चिकित्सा अधिकारी द्वारा प्रमाणित किया गया हो तो प्रश्नोत्तर रूप में होना आवश्यक नहीं है - कथन स्वैच्छिक और विश्वसनीय होना चाहिए - एक सत्य और विश्वसनीय मृत्यु पूर्व कथन दोषसिद्धि का एकमात्र आधार बन सकता है, भले ही उसकी पुष्टि न की गई हो - केवल इसलिए कि मृत्यु पूर्व कथन प्रश्नोत्तर रूप में नहीं था, एक मरते हुए व्यक्ति के मुख से निकले मृत्यु पूर्व कथन की पवित्रता को नकारा नहीं जा सकता और इसकी विश्वसनीयता पर संदेह नहीं किया जा सकता। (पैरा - 35,36,37,43)

अपीलकर्ता अशरफ और सह-अभियुक्त संतोष कुमार ने नानक चंद पर हमला किया - पूर्व मुकदमे के कारण - पीड़ित ने मरते समय बयान दिया जिसमें हमलावरों का नाम बताया गया और उसकी मृत्यु हो गई - धारा 307 भा.दं.सं. के तहत दर्ज एफआईआर को बाद में धारा 302 भा.दं.सं. में बदल दिया गया - चश्मदीद गवाह अपने बयान से मुकर गए - विचारण न्यायालय ने दोनों को धारा 302 भा.दं.सं. के तहत दोषी ठहराया - अपील के दौरान संतोष की मृत्यु हो गई - अशरफ 1990 से फरार था - अपील की सुनवाई राज्य के अधिवक्ता के साथ एकपक्षीय रूप से हुई। (पैरा - 8,14 से 23)

अवधारित: विश्वसनीय मृत्युपूर्व कथन और चिकित्सा/दस्तावेजी साक्ष्य के आधार पर भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अंतर्गत दोषसिद्धि की पुष्टि की गई। पक्षद्रोही गवाहों और दोषपूर्ण जाँच को अप्रासंगिक माना गया। न्यायालय ने फरार अपीलकर्ता की अनुपस्थिति में अपील पर गुण-दोष के आधार पर निर्णय लेने की अनुमति दी। **(पैरा 42,46,47)**

आपराधिक अपील खारिज। (ई-7)

<u>उद्धृत मामलों की सूची: -</u>

1. सूर्य बख्श सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2014) 14 एससीसी 222
2. प्रेम कुमार गुलाटी बनाम हरियाणा राज्य, (2014) 14 एससीसी 646
3. जोस पुत्र एडासेरी थॉमस बनाम केरल राज्य, (2013) 14 एससीसी 172
4. एडक्कंडी दिनेशन उर्फ पी. दिनेशन बनाम केरल राज्य, (2025) 3 एससीसी 273

अनुवादित

(माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिरला एवं
माननीय न्यायमूर्ति प्रवीण कुमार गिरि द्वारा प्रदत्त)

1. सूची संशोधित। अपीलकर्ता की ओर से अपील पर दबाव डालने के लिए कोई भी उपस्थित नहीं है।

2. एकमात्र अपीलकर्ता, अशरफ, पुत्र अब्दुल गफ्फार, की वर्ष 2018 में ही मृत्यु हो गई थी और एमिकस क्यूरी नियुक्त किया गया था। संपूर्ण आदेश-पत्र के अवलोकन के बाद, 19.3.2025 को निम्नलिखित आदेश पारित किया गया:

"1. सूची संशोधित।

2. अपीलकर्ता की ओर से इस अपील पर दबाव डालने के लिए कोई भी उपस्थित नहीं है।

3. वर्ष 2014 में ही अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित मूल अधिवक्ता की मृत्यु के बाद एकमात्र अपीलकर्ता को दूसरा अधिवक्ता नियुक्त करने के लिए नोटिस जारी किए गए थे।

4. कार्यालय की दिनांक 22.05.2024 की रिपोर्ट के अनुसार, एकमात्र अपीलकर्ता दिल्ली चला गया था और वापस नहीं लौटा है और स्थानीय निवास के अनुसार अपीलकर्ता (अशरफ) की दिल्ली में मृत्यु हो गई थी। हालाँकि, उसकी रिपोर्ट सत्यापित नहीं हो सकी। दिनांक 21.02.2018 के आदेश द्वारा, श्री अरविंद कुमार श्रीवास्तव को न्यायमित्र नियुक्त किया गया था, लेकिन वे उपस्थित नहीं हैं।

5. दिनांक 24.10.2018 को निम्नलिखित आदेश पारित किया गया:

"विद्वान ए.जी.ए. ने दिनांक 13.9.2018 के आदेश के अनुपालन का हलफनामा दायर किया है, जिसे अभिलेख में दर्ज किया गया है।

बदायूं के मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट की दिनांक 11.10.2018 की रिपोर्ट अभिलेख में है, जिसमें यह तथ्य दर्शाया गया है कि अपीलकर्ता का पता नहीं चल सका है, जो बीस वर्ष पहले नई दिल्ली चला गया था। अपीलकर्ता अशरफ के परिवार के सदस्यों के बयान दर्ज करके जाँच की गई और सभी ने लगातार यही कहा कि वे इस बारे में कुछ नहीं कह सकते कि वह जीवित है या मृत। इस मामले को ध्यान में रखते हुए, हम अपीलकर्ता अशरफ का प्रतिनिधित्व कर रहे न्यायमित्र (एमिकस क्यूरी) की सुनवाई के लिए आगे बढ़ते हैं।

हालाँकि, संबंधित आपराधिक अपील संख्या 1238/1983 में उपस्थित विद्वान अधिवक्ता के अनुरोध पर मामले को स्थगित कर दिया गया है।

मामले को उचित पीठ के समक्ष सुनवाई के लिए 14 नवंबर, 2018 को सूचीबद्ध किया जाए।"

6. उपर्युक्त आदेश स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि परिवार के सदस्यों को उसके ठिकाने के बारे में पता नहीं है और वे यह सत्यापित नहीं कर सके कि वह जीवित है या मृत। रिकॉर्ड में परिवार के सदस्यों का एकमात्र बयान यह है कि अपीलकर्ता आपराधिक प्रवृत्ति का था और 17.09.1990 को कार्यवाही में शामिल होने के लिए तीस हज़ारी कोर्ट गया था, लेकिन उसके बाद वापस नहीं लौटा और उसके बाद उन्होंने उसे कभी नहीं देखा। वह अपने किसी करीबी रिश्तेदार के निधन समारोह में भी शामिल होने नहीं आया था। बदायूं जिले के कोतवाली थाना के उपनिरीक्षक अशोक कुमार द्वारा मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, बदायूं के समक्ष प्रस्तुत रिपोर्ट के अनुसार, मुखबिर की भी मृत्यु हो चुकी है। यह भी अभिलेख में दर्ज है कि अशरफ पर दिल्ली में भी आपराधिक मुकदमे चल रहे थे।

7. मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक को लिखित दिनांक 20.02.2024 की रिपोर्ट के अवलोकन से पता चलता है कि जमानतदारों के संबंध में सूचना मांगी गई थी, तथापि, रिपोर्ट अभिलेख पर उपलब्ध नहीं है।

8. कार्यालय को जमानतदारों का विवरण भेजने का निर्देश दिया जाता है।

9. हमने दिनांक 29.03.2024 की रिपोर्ट का भी अवलोकन किया है। जिसके अनुसार, निचली अदालत के अभिलेखों में जमानतदारों के जमानती बांड उपलब्ध नहीं हैं। उक्त जमानत बांडों का पता लगाने के लिए पत्र संख्या 6499 और 14698ए मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, बदायूं को भेजे गए हैं। इसके अलावा कोई और रिपोर्ट अभिलेखों में उपलब्ध नहीं है।

10. कार्यालय को निर्देश दिया जाता है कि वह पत्र संख्या 6499 और 14698 के माध्यम से मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को जमानत बांडों का पता लगाने और तदनुसार कार्यवाही करने के लिए अनुस्मारक भेजे।

11. इस मामले को 10.04.2025 को सूचीबद्ध किया जाए।"

3. उपर्युक्त आदेश के अनुसरण में, कार्यालय ने मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, बदायूं की दिनांक 3.4.2025 की रिपोर्ट के आधार पर दिनांक 9.4.2025 को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की है, जिसके अनुसार, सर्वोत्तम प्रयास के बावजूद, जमानत बांड का पता नहीं लगाया जा सका। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि या तो अभियुक्त फरार है या उसकी मृत्यु हो गई होगी जैसा कि 2015 से ही बताया जा रहा है कि वह 17.9.1990 को तीस हजारी कोर्ट में अदालती कार्यवाही में भाग लेने गया था, हालाँकि, उसके बाद उसे कभी नहीं देखा गया। उसका आपराधिक इतिहास था और उसके रिश्तेदारों ने बताया था कि उसकी मृत्यु हो गई है। अब तक, अपीलकर्ता की आयु लगभग 66 से 67 वर्ष रही होगी और इस न्यायालय द्वारा जारी परिपत्र के अनुसार उसकी मृत्यु के संबंध में कोई साक्ष्य रिकॉर्ड में नहीं था।

4. **सूर्य बक्श सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2014) 14 एससीसी 222** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अवधारित किया है कि यदि अपीलकर्ता या उसके अधिवक्ता दोनों अनुपस्थित हैं तो मामले को स्थगित करना हमेशा आवश्यक नहीं होता है और न्यायालय रिकॉर्ड और विचारण न्यायालय के फैसले के अवलोकन के बाद अपील का गुण-दोष के आधार पर फैसला कर सकता है। यह भी देखा गया है कि यदि अपीलकर्ता की अनुपस्थिति में मामले का गुण-दोष के आधार पर फैसला किया जाता है, तो उच्च न्यायालय स्थिति को सुधार सकता है। यह भी देखा गया है कि एमिकस क्यूरी की नियुक्ति भी न्यायालय के विवेक पर है। उक्त निर्णय के पैराग्राफ 26 में यह माना गया कि उच्च न्यायालय के लिए एमिकस क्यूरी की नियुक्ति करना हमेशा आवश्यक नहीं होता है, उक्त निर्णय के पैराग्राफ 24 और 26 निम्नानुसार उद्धृत हैं:

"24. हमें ऐसा लगता है कि अपीलीय न्यायालय के लिए, जहाँ दोषी और उसके अधिवक्ता अनुपस्थित हैं, यह आवश्यक है कि वह उन व्यक्तियों के विरुद्ध तुरन्त कार्यवाही करे जो दोषी को ज़मानत दिए जाने के समय ज़मानतदार थे, क्योंकि इससे उसे खोजकर न्यायालय में पेश किया जा सकता है। यदि यह प्रयास भी दोषी को ढूँढने और उसे पेश करने में विफल रहता है, तो अपीलीय न्यायालय अपील को खारिज करने के लिए अधिकृत है। हम के.एस. पांडुरंगा बनाम कर्नाटक राज्य, (2013) 3 एससीसी 721 में हाल ही में की गई गहन किन्तु सुस्पष्ट विधि की व्याख्या से पूर्णतः और सम्मानपूर्वक सहमत हैं। पिछले निर्णयों के व्यापक विश्लेषण के बाद हमारे विद्वान भाई ने कानूनी स्थिति को छह प्रस्तावों में विभाजित किया है:

19.1. उच्च न्यायालय अभियोजन न करने की अपील को गुण-दोष की जांच किए बिना खारिज नहीं कर सकता;

19.2. यदि अपीलकर्ता या उसके अधिवक्ता दोनों अनुपस्थित हों तो न्यायालय मामले को स्थगित करने के लिए बाध्य नहीं है;

19.3. न्यायालय विवेक या उदारता के आधार पर मामले को स्थगित कर सकता है, लेकिन वह ऐसा करने के लिए बाध्य नहीं है;

19.4. वह निचली अदालत के रिकॉर्ड और निर्णय का अवलोकन करने के बाद अपील का निस्तारण कर सकता है।

19.5. यह कि यदि अभियुक्त जेल में है और स्वयं न्यायालय में नहीं आ सकता है, तो मामले को स्थगित करना और अपीलकर्ता-अभियुक्त की उपस्थिति को सुगम बनाने के लिए कोई अन्य तिथि निर्धारित करना उचित होगा, यदि उसका अधिवक्ता उपस्थित नहीं है, और यदि अधिवक्ता अनुपस्थित है और न्यायालय अपनी

सहायता के लिए राज्य के खर्च पर एक अधिवक्ता नियुक्त करना उचित समझता है, तो कानून में ऐसा करने से न्यायालय को कोई नहीं रोकेगा; और

19.6. यह कि यदि अपीलकर्ता की अनुपस्थिति में मामले का निर्णय गुण-दोष के आधार पर किया जाता है, तो उच्च न्यायालय स्थिति को सुधार सकता है।

25...

26. वर्तमान मामले के तथ्यों पर वापस लौटते हुए, आक्षेपित आदेश का अवलोकन करने पर यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट हो जाता है कि उच्च न्यायालय ने मामले की सभी जटिलताओं पर विचार किया है। यह तर्क कि उच्च न्यायालय न्यायमित्र नियुक्त करने के लिए बाध्य था, कानूनी रूप से सही नहीं है। पांडुरंगा ने मोहम्मद सुकुर अली बनाम असम राज्य (1996) 4 एससीसी 729 को न्यायमित्र के अनुसार सही माना है, क्योंकि बाद वाला न्यायमित्र की नियुक्ति को अनिवार्य बनाता है और इस प्रकार यह बानी सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1996) 4 एससीसी 720 के साथ असंगत है। इस मामले में, उच्च न्यायालय ने प्रस्तुत साक्ष्यों पर स्पष्ट रूप से विचार किया है और उन्हें साक्ष्य-योग्य पाते हुए, इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि दोषसिद्धि अपीलीय निन्दा, सुधार और हस्तक्षेप से ऊपर है। कानून के विश्लेषण के आधार पर, हमारे समक्ष उठाया गया यह तर्क कि उच्च न्यायालय के लिए एक न्यायमित्र नियुक्त करना आवश्यक था, पूरी तरह से अस्वीकार्य है। उच्च न्यायालय ने अपीलीय न्यायालय पर आने वाली न्यायमित्रीय जिम्मेदारी का विधिवत निर्वहन किया है और उसके द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण में कोई दोष नहीं पाया जा सकता। इस संबंध में, हमें कोई त्रुटि नहीं दिखती।"

(प्रभाव वर्धित)

5. उपरोक्त विचार का अनुसरण माननीय पूर्ण पीठ द्वारा **आपराधिक संदर्भ संख्या 1/2024, आपराधिक अपील बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** की सुनवाई में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के संबंध में, 22.01.2025 को तय किया गया है, जिसके पैराग्राफ संख्या 151 और 152 निम्नानुसार उद्धृत किए गए हैं:

"151. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बानी सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, सूर्य बख्श सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और के.एस. पांडुरंगा बनाम कर्नाटक राज्य में दिए गए तीन प्रसिद्ध निर्णयों की उपरोक्त टिप्पणियों का सार, इस प्रकार, इस पीठ द्वारा विचार के लिए लखनऊ स्थित खंडपीठ द्वारा तैयार किए गए प्रश्न संख्या 5 की संपूर्ण लंबाई और चौड़ाई को कवर करता है और हमारी सुविचारित राय में, इस पीठ द्वारा कोई नया अभ्यास करने की आवश्यकता नहीं है, जिसमें एक बिंदु भी शामिल है जिसे लखनऊ स्थित खंडपीठ ने उजागर किया है, यानी कि क्या न्यायमित्र की नियुक्ति तब भी की जा सकती है जब दोषी, अपीलकर्ता या अभियुक्त-प्रतिवादी की उपस्थिति सुनिश्चित की जा सकती है और वह भी उसकी सहमति के बिना।

152. उपर्युक्त कानूनी मिसालों से स्पष्ट है कि सर्वोच्च न्यायालय का जोर अपीलकर्ता को सुनवाई का अवसर प्रदान करने पर रहा है जो अपीलीय न्यायालय या उसके अधिवक्ता के साथ सहयोग करने के लिए तैयार है और इस संबंध में सुनवाई का अवसर देने के उद्देश्य से उसकी उपस्थिति के लिए एक प्रक्रिया उसे जारी की जानी आवश्यक है और जब न्यायालय संतुष्ट हो जाता है कि ऐसा अपीलकर्ता जानबूझकर न्यायालय के समक्ष अपनी उपस्थिति से बच रहा है, ऐसी स्थिति में, न्यायालय माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बानी सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, सूर्य बख्श सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और के.एस. पांडुरंगा बनाम में अनुमोदित

तरीके से अपील का निस्तारण कर सकता है। कर्नाटक राज्य (अर्थात अभियोजक और न्यायमित्र (यदि नियुक्त किया गया हो) की सहायता से निचली अदालत के फैसले के सापेक्ष रिकॉर्ड/साक्ष्य का अवलोकन करने के बाद) और हमारे पास उपर्युक्त मामलों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित प्रस्ताव से विचलित होने का कोई कारण नहीं है, इसके अलावा, न्यायमित्र की नियुक्ति केवल अपीलकर्ता को निष्पक्ष सुनवाई प्रदान करने और न्यायालय को सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से है।"

6. ऐसी परिस्थितियों में, हम राज्य के विद्वान ए.जी.ए. श्री अनुज कुमार मिश्रा की सहायता से वर्तमान अपील पर गुण-दोष के आधार पर विचार करने के लिए आगे बढ़ते हैं।

7. उपर्युक्त अपील द्वितीय अपर सत्र न्यायाधीश, बदायूं द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 71/1980 (राज्य बनाम संतोष कुमार एवं अन्य) में पारित दोषसिद्धि एवं दण्डादेश दिनांक 19.5.1983 के निर्णय के विरुद्ध दायर की गई है, जिसमें विचारण न्यायालय ने अभियुक्त-अपीलार्थी को धारा 302 के अन्तर्गत दोषी ठहराया था तथा उसे आजीवन कारावास की सजा सुनाई थी।

8. अभियोजन पक्ष की कहानी संक्षेप में यह है कि घटना से पूर्व चन्द्रभान (पी.डब्लू. 1) की पत्नी द्वारा अभियुक्त संतोष कुमार व अन्य के विरुद्ध उक्त महिला पर हमला करने के आरोप में एक एफआईआर दर्ज कराई गई थी तथा अभियुक्त संतोष व अन्य के विरुद्ध एक आपराधिक शिकायत भी दर्ज कराई गई थी तथा इस आपराधिक शिकायत का मामला हत्या की इस घटना से पूर्व संतोष कुमार व अन्य के विरुद्ध श्री राम गोपाल वैश्य, विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट, बदायूं की अदालत में चल रहा था। अभियोजन पक्ष का दावा है कि इसी मुकदमे के कारण संतोष कुमार की चंद्रभान और उसके बेटे मृतक नानक चंद से दुश्मनी थी, जो विशेष मजिस्ट्रेट की अदालत में विचाराधीन उक्त आपराधिक मामले में पैरवी भी कर रहा था। दिनांक 16 अक्टूबर, 1979 को रात लगभग 10 बजे मृतक नानक चंद उर्फ सुदेशपाल, मिस्त्री आफताब (पीडब्लू-2), रईस मिया (पीडब्लू-3) और औइस (पीडब्लू-4) के साथ बदायूं शहर के छः सरका (6-रोड क्रॉसिंग) पर मौजूद था। अभियुक्त संतोष कुमार, अशरफ और दो अन्य लोग वहाँ पहुँचे और नानक चंद को प्रकाश टॉकीज़ की ओर इस बहाने ले गए कि वे उससे एकांत में बात करना चाहते हैं। उक्त तीनों व्यक्ति भी उनके पीछे-पीछे गए और जब नानक और अभियुक्त प्रकाश टॉकीज़ के पास सड़क पर कादिर की दुकान के बिल्कुल पास पहुँचे, तो संतोष कुमार ने अपने साथी अशरफ को नानक चंद की हत्या करने के लिए उकसाया और कहा कि वह बड़ा मुकदमेबाज बन रहा है। आरोपी अशरफ ने नानक चंद पर चाकू से ताबड़तोड़ वार करना शुरू कर दिया, और संतोष कुमार और उसके दो अन्य साथी अभी भी मृतक नानक चंद को घेरे हुए वहीं खड़े थे। उक्त तीनों व्यक्तियों आफताब, रईस मिया और अनीस ने भी यह घटना देखी। मृतक नानक चंद पर चाकू से जानलेवा हमला करने के बाद आरोपी भाग गए। यह घटना पास के अपने घर में चारपाई पर लेटी श्रीमती राम श्री ने भी देखी।

9. दो व्यक्ति, इंदल (पीडब्लू-6) और भूपाल, घायल नानक चंद को रिक्शे पर जिला अस्पताल, बदायूं ले गए, जहां 16.10.1979 को रात 10.30 बजे डॉ. के.आर. खान (पीडब्लू-5) ने उनकी चिकित्सकीय जांच की और उन्होंने नानक चंद के शरीर पर निम्नलिखित चोटें पाईं:

"(1) छुरा का घाव 2 सेमी. x 1.5 सेमी., 10 सेमी. ऊपर, ऊपरी श्रोणिफलक रीढ़ से बाहर (गहराई नोट नहीं की गई)।

(2) चोट संख्या 1 से 5 सेमी ऊपर, 2 सेमी x 0.75 सेमी का कटा हुआ घाव।

(3) बाईं श्रोणि शिखा के ऊपर 2 सेमी x 1 सेमी का कटा हुआ घाव, पीठ के मध्य से 9 सेमी (गहराई दर्ज नहीं)।

(4) बाईं ऊपरी श्रोणि रीढ़ से 4.0' क्लॉक स्थिति में 2 सेमी x 6 सेमी का कटा हुआ घाव, 11 सेमी (गहराई दर्ज नहीं)। नीचे की ओर निर्देशित।

(5) बाईं जांघ के बाहरी तरफ 1.5 सेमी x 0.5 सेमी का कटा हुआ घाव, 11 सेमी, ऊपरी श्रोणि रीढ़ के नीचे, 4 सेमी गहराई, नीचे और आगे की ओर निर्देशित।"

10. डॉ. के.आर. खान (पी.डब्लू.-5) ने **नानक चंद का मृत्युपूर्व बयान** भी दर्ज किया है, जो 16/17 अक्टूबर, 1979 की रात 12.50 बजे का है। यह मृत्युपूर्व बयान उन्होंने स्वयं अपने हाथों से लिखा था और उन्होंने इस आशय का एक प्रमाण पत्र भी दिया था कि मृतक बयान देने के लिए स्वस्थ अवस्था में है और उन्होंने उनके प्रश्नों के उत्तर भी दिए थे। नानक चंद का मृत्युपूर्व बयान इस प्रकार है:

"डी०डी० आफ नानक चन्द

मेरा नाम नानक चन्द उर्फ सुदेश पाल पुत्र चन्द्रभान निवासी मु० पनवाडी बदायूँ का रहने वाला हूँ। मुझे अशरफ और उसके साथी संतोष तथा दो और आदमी जिनके मै नाम नहीं जानता हूँ। अशरफ जोगीपुरा वाले ने जो हाजी सखावत के ने मकान के पीछे सरदार मठरी वाले के बराबर गली में रहता है इसने चाकू मारा था और संतोष कायस्थ पुत्र रामचन्द्र मु० पनवाडी वाले ने मुझे पकड़ी और कहा कि इसे जाने से मार दो मुझे करीब 10 बजे रात्रि को कदीर अन्नन वाले मिस्त्री की दुकान के सामने मारा गया मुझे छः सड़क से बात करने के लिये बुलाकर ले गये थे। संतोष से मारपीट की मुकदमें बाजी चल रही है। यह घटना शान्ती जो भगत के होटल पर रहता है की माँ ने और कदीर की दुकान के बाहर चारपाई पर कई आदमी बैठे थे तथा और आने जाने वाले लोगों ने यह घटना देखी।

16.10.79

ह. नानक उर्फ सुदेश पाल

17.10.79

प्रमाणित किया जाता है कि उपरोक्त कथन मेरे द्वारा लिखा गया है जैसा कि घायल व्यक्ति ने मेरे प्रश्न के उत्तर में बताया था।

यह भी प्रमाणित किया जाता है कि उपरोक्त घोषणा के समय श्री नानक चंद की मानसिक स्थिति ठीक थी और वे पूर्णतः सचेत थे।

ह. (अस्पष्ट) *ह. (अस्पष्ट)*
(डा. आर.के. खान) *17/10/79*
17/10/79
12.50 ए.एम."

11. इसमें कोई विवाद नहीं है कि यह बयान 16/17.10.1979 की रात 12.50 बजे दर्ज किया गया था। गंभीर हालत को देखते हुए, नानक चंद को जिला अस्पताल, बरेली भेजा गया, जहाँ 19.10.1979 को लगभग 11.00 बजे उनकी मृत्यु हो गई।

12. उसी दिन यानी 19.10.1979 को थाना-कोतवाली को सूचना भेजी गई, जिसे जी.डी. में दर्ज किया गया और जाँच अधिकारी हरिशंकर ने गवाहों की मौजूदगी में शव की **पंचायतनामा** तैयार किया। उन्होंने नक्शा नज़री (प्रदर्श क 16) भी तैयार की और शव को कपड़े में बंद करके पोस्टमार्टम के लिए भेज दिया।

13. डॉ. महेश चंद्र शर्मा (पीडब्लू-10) ने उसी दिन सुबह 11.15 बजे शव का पोस्टमार्टम किया और निम्नलिखित मृत्युपूर्व चोटों की रिपोर्ट दी:

(1) बाएँ पैरामीडियन पर चीरा लगा हुआ घाव (सिलाई करके ऑपरेशन किया गया) - 21 सेमी लंबा, टांके सही जगह पर लगे हुए।
(2) छाती के बाईं ओर चोट संख्या 2 से 5 सेमी नीचे, दो टांकों सहित 2½ सेमी लंबा, सिला हुआ घाव।
(3) छाती के बाईं ओर 5 बजे की स्थिति में बाएँ निप्पल से 10 सेमी नीचे, दो टांकों सहित 2 सेमी लंबा, सिला हुआ घाव।
(4) पेट के बाईं ओर चोट संख्या 3 से 5 सेमी नीचे, नालीदार नाली सहित 2 सेमी लंबा, सिला हुआ घाव।
(5) बाईं जांघ के ऊपरी हिस्से के बाहरी हिस्से पर 2 सेमी सिला हुआ घाव।
(6) बाएँ नितंब के ऊपरी हिस्से पर 2 सेमी सिला हुआ घाव।
(7) बाईं ओर पीठ पर 2 सेमी x ½ सेमी चीरा हुआ घाव, श्रोणि शिखा के आसपास 2 सेमी x मांसपेशी गहराई तक।
(8) ½ सेमी. X ½ सेमी. त्वचा की गहराई में कटा हुआ घाव, चोट संख्या 2 से 7 सेमी. नीचे।
(9) दाहिने पैर के अंदरूनी हिस्से पर 1 सेमी x ¼ सेमी का सिल हुआ घाव।

14. घटना 16.10.1979 को लगभग 10.00 बजे रात को घटित हुई। प्रारंभ में, मृतक के पिता (पीडब्लू-1) द्वारा की गई शिकायत के आधार पर भा.दं.सं. की धारा 307 के तहत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी। इसके बाद, जब मृतक की चोटों के कारण मृत्यु हो गई, तो अस्पताल प्रशासन ने पुलिस को सूचना भेजी और अपराध को भा.दं.सं. की धारा 302 में परिवर्तित कर दिया गया।

15. जांच अधिकारी ने जांच के बाद अभियुक्त संतोष कुमार और अशरफ के खिलाफ क्रमशः 5.11.1979 और 8.1.1980 को भा.दं.सं. की धारा 302 के तहत अलग-अलग आरोप पत्र प्रस्तुत किए।

16. तत्पश्चात, विद्वान न्यायिक मजिस्ट्रेट ने आरोप-पत्रों पर संज्ञान लिया और धारा 207 दं.प्र.सं. के अनुपालन के बाद मामले को सत्र न्यायालय को सौंप दिया और मामले को धारा 302 सपठित धारा 34 भा.दं.सं. के तहत एस.टी. संख्या 71/1980 (राज्य बनाम संतोष कुमार और अन्य) के रूप में क्रमांकित किया गया।

17. विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप तय किए और उन्हें पढ़कर सुनाए गए।

18. अभियुक्तों ने अपना दोष स्वीकार नहीं किया और मुकदमे की मांग की।

19. अभियोजन पक्ष ने अपना मामला साबित करने के लिए 10 गवाहों से पूछताछ की, जिनके नाम थे: चंद्रभान (पीडब्लू-1/शिकायतकर्ता), आफताब (पीडब्लू-2), रईस मियां (पीडब्लू-3), अनीस (पीडब्लू-4), डॉ. के.आर. खान (पीडब्लू-5), इंदल (पीडब्लू-6), राम श्री (पीडब्लू-7), विश्वनाथ (पीडब्लू-8), एम.पी. भटनागर (पीडब्लू-9) और डॉ. महेश चंद्र शर्मा (पीडब्लू-10)।

20. उपरोक्त के अतिरिक्त, अभियोजन पक्ष ने कुछ दस्तावेज प्रस्तुत किए थे, अर्थात्, (i) प्रथम सूचना रिपोर्ट प्रदर्श क5 के रूप में (ii) खून से सने पर्चाजात की बरामदगी मेमो प्रदर्श क12 के रूप में (iii) नानक चंद की चोट रिपोर्ट प्रदर्श क1 के रूप में (iv) पोस्टमार्टम रिपोर्ट प्रदर्श क13 के रूप में (v) आरोप पत्र प्रदर्श क7 और 8 के रूप में और (vi) अनुक्रमणिका के साथ साइट योजना प्रदर्श क6 के रूप में और मृतक की मृत्युपूर्व घोषणा।

21. इसके बाद, अभियुक्तों के बयान धारा 313 दं.प्र.सं. के तहत दर्ज किए गए, जिसमें उनके सामने सभी सबूत पेश किए गए। उन्होंने सभी आरोपों से इनकार किया और कहा कि उन्हें इस मामले में झूठा फंसाया गया है।

22. विचारण न्यायालय ने अपने आक्षेपित निर्णय में अभियुक्तों को दोषी ठहराया और उन्हें ऊपर उल्लिखित आजीवन कारावास की सजा सुनाई। अभियुक्त-अपीलकर्ता संतोष की मृत्यु हो चुकी है और उसकी अपील पहले ही खारिज हो चुकी है। वर्तमान अपील अभियुक्त-अपीलकर्ता अशरफ की ओर से दायर की गई है।

23. अभिलेख के अवलोकन से हम पाते हैं कि मृतक के पिता और सूचक पी.डब्लू.-1, प्रत्यक्षदर्शी गवाह नहीं हैं। पी.डब्लू.-2, पी.डब्लू.-3, पी.डब्लू.-4 और पी.डब्लू.-8, जिन्हें प्रत्यक्षदर्शी बताया गया था, अपने बयान से पलट गए और घटना को देखने से इनकार कर दिया।

24. अभियुक्त-अपीलकर्ता के अपराध को सिद्ध करने का प्रश्न अभियोजन पक्ष पर है, जो डॉ. के.आर. खान (पी.डब्लू.-5) के समक्ष दिए गए मृत्यु-पूर्व कथन को सिद्ध करता है। नानक चंद के मृत्यु-पूर्व कथन का इस आधार पर विरोध किया गया कि वह प्रश्नोत्तर के रूप में नहीं था, बल्कि डॉक्टर को दिया गया था, इसलिए उस पर भरोसा नहीं किया जा सकता था।

25. यह भी दलील दी गई कि मृतक के पिता, चंद्र भान (पीडब्लू-1), उस समय अस्पताल पहुंचे जब मृतक-नानक चंद की डॉ. के.आर. खान (पीडब्लू-5) द्वारा चिकित्सकीय जांच की जा रही थी और उन्होंने अपने बेटे, नानक चंद, जिसकी बाद में मृत्यु हो गई थी, से कुछ बातचीत भी की थी और इसलिए, इस बात की पूरी संभावना थी कि आरोपी-अपीलकर्ता के खिलाफ आरोप लगाने के लिए मृतक के मुंह से ये शब्द निकलवाए गए थे।

26. यह भी दलील दी गई कि पीडब्लू-5, डॉक्टर ने स्वयं कहा था कि मृतक को पेथिडीन इंजेक्शन दिया गया था और दलील यह दी गई थी कि ऐसी परिस्थितियों में, घायल सो गया होगा और बयान देने की स्थिति में नहीं था और मृत्यु पूर्व बयान पर कोई भरोसा नहीं किया जा सकता।

27. प्रकाश के स्रोत के संबंध में, यह भी तर्क दिया गया कि घटनास्थल पर प्रकाश का कोई स्रोत नहीं बताया गया, जबकि घटना रात में हुई थी। बचाव पक्ष के तर्कों में से एक यह भी था कि जाँच अधिकारी द्वारा घटनास्थल पर कोई खून नहीं पाया गया था।

28. इन आधारों पर बचाव पक्ष ने दलील दी है कि अपीलकर्ता को दोषी नहीं ठहराया जा सकता था और अपील में लिए गए आधारों के अलावा उसी आधार पर यह भी दलील दी गई है कि अपीलकर्ता की दोषसिद्धि रिकॉर्ड पर मौजूद वजन और साक्ष्य के खिलाफ है और कानून के खिलाफ है और सजा इतनी कठोर है कि इस न्यायालय को इस पर विचार करना चाहिए।

29. विद्वान ए.जी.ए. ने गवाहों के विभिन्न बयानों की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए दलील दी है कि केवल इसलिए कि चश्मदीद गवाह बाद में अपने बयान से पलट गए, यह नहीं कहा जा सकता कि केवल यही बात दोषसिद्धि के फैसले को पलटने के लिए पर्याप्त है। डॉ. के.आर. खान (पीडब्लू-5) के बयानों की ओर भी ध्यान आकर्षित किया गया, जिन्होंने नानक चंद (मृतक) का बयान दर्ज किया था और चोट की प्रकृति के बारे में भी बताया गया और यह भी दलील दी गई कि नक्शा नजरी प्रकाश के स्रोत को दर्शाता है और केवल इसलिए कि खून नहीं मिला, अपीलकर्ता की दोषसिद्धि को खारिज करने के लिए पर्याप्त नहीं है, क्योंकि घटना एक व्यस्त सड़क पर हुई थी और भले ही दोषपूर्ण जांच हुई हो और घटनास्थल से खून इकट्ठा करने का कोई गंभीर प्रयास नहीं किया गया हो, यह बात अपने आप में दोषसिद्धि के फैसले को प्रभावित नहीं करेगी।

अनुवादित

30. हमने अभिलेख में दिए गए कथन पर विचार किया है। अभिलेख के अवलोकन से, हम पाते हैं कि प्रथम सूचक (पी.डब्लू.-1), जो मृतक का पिता है, ने स्पष्ट रूप से कहा था कि उसने घटना नहीं देखी थी और उसे आफताब (पी.डब्लू.-2) ने सूचित किया था, जो उसके साथ अस्पताल भी गया था। उसके पुत्र को रिक्शे से अस्पताल ले जाया गया और उसकी चोटों की गंभीरता को देखते हुए, मृतक नानक चंद को उसी रात बरेली अस्पताल रेफर कर दिया गया, जहाँ तीसरे दिन उसकी मृत्यु हो गई। पी.डब्लू.-1 ने उसके मृत्यु-कालिक कथन पर उसके पुत्र के हस्ताक्षरों का सत्यापन किया था।

31. हम पाते हैं कि उन्होंने बहुत स्वाभाविक तरीके से बयान दिया था और निष्पक्ष रूप से स्वीकार किया था कि जब वह आफताब (पीडब्लू-2) के साथ अस्पताल पहुंचे तो डॉक्टर, पीडब्लू-5, उनके बेटे का निरीक्षण कर रहे थे और उनसे पूछने के बाद, वह कुछ लिख रहे थे। उन्होंने यह भी कहा कि हालाँकि वे वहाँ पहुँचे थे, फिर भी उन्हें बाहर जाने के लिए कहा गया। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि घायल को रिक्शे से अस्पताल ले जाया गया था। हम पाते हैं कि रिक्शा चालक, इंदल, को भी वर्तमान मामले में पीडब्लू-6 के रूप में पेश किया गया था और उसने स्पष्ट रूप से कहा था कि वह घायल को अस्पताल ले गया था और थोड़ा खून निकला था जिसे उसने बाद में पोंछ दिया था।

32. जहाँ तक अपील में लिए गए आधारों का संबंध है, मृत्यु पूर्व कथन पर गौर करना अत्यंत प्रासंगिक है। इसमें कोई विवाद नहीं है कि घटना 16 अक्टूबर 1979 को रात लगभग 10 बजे हुई थी और लगभग 1 घंटा 20 मिनट बाद घटना की सूचना दी गई और थाना चार फर्लांग की दूरी पर है। भा.दं.सं. की धारा 307 के तहत प्राथमिकी दर्ज की गई। इसलिए, तुरंत प्राथमिकी दर्ज की गई।

33. पी.डब्लू.-1 ने स्पष्ट रूप से कहा था कि उसे घटना की जानकारी आफताब (पी.डब्लू.-2) ने दी थी और अपने घायल बेटे को अस्पताल ले जाने के बाद, वह घटना की रिपोर्ट करने आया था। हम पाते हैं कि मृत्यु पूर्व बयान में दो तारीखें लिखी गई हैं, एक 16.10.1979 है जो घायल नानक चंद, जिनकी बाद में मृत्यु हो गई, के हस्ताक्षर के ठीक ऊपर है और उनके हस्ताक्षर के ठीक नीचे दूसरी तारीख अर्थात 17.10.1979 दी गई है। डॉ. के. आर. खान (पी.डब्लू.-5) ने इस आशय का प्रमाण पत्र दिया है कि बयान उनके द्वारा लिखा गया था जैसा कि घायल-नानक चंद ने उनके प्रश्नों के उत्तर में बताया था और यह भी प्रमाणित किया है कि घायल-नानक चंद उपरोक्त घोषणा करते समय मानसिक रूप से स्वस्थ थे और पूरी तरह होश में थे।

34. हस्ताक्षरों के बाद, दिनांक 17.10.1979 और समय 12.50 पूर्वाह्न दिया गया। इस समय और तिथियों के अंतर को डॉ. के.आर. खान (पी.डब्लू.-5) ने अपने बयान में स्पष्ट रूप से स्पष्ट किया है कि चूँकि उन्होंने 16.10.1979 की रात्रि में बयान लिखना शुरू किया था, इसलिए दोनों तिथियाँ लिखी गईं और मृत्युकालिक कथन को प्रमाणित करते समय उन्होंने तिथि और समय इसलिए लिखा क्योंकि चौबीस घंटे बाद तिथि बदल गई थी।

35. उन्होंने यह भी कहा कि उन्होंने बेडहेड टिकट में यह लिखा था कि पुलिस को सूचित किया जाए। जहाँ तक मृत्युकालिक कथन की सत्यता को चुनौती देने के आधार का सवाल है, कि यह प्रश्नोत्तर के रूप में नहीं लिखा गया था, कानून स्पष्ट है कि इस तरह के बयान को किसी विशेष तरीके या रूप में दर्ज करने के लिए कोई विशिष्ट प्रोफार्मा नहीं है। हालाँकि, अगर यह प्रश्नोत्तर के रूप में हो, तो उसे महत्व दिया जाता है। हालाँकि, वर्तमान मामले में डॉक्टर, पी.डब्लू.-5, ने प्रमाणित किया है कि उसने मृतक से प्रश्न पूछे थे और उसके उत्तर उसके बयान के रूप में दर्ज किए गए थे, और कानून के अनुसार, यह नहीं कहा जा सकता कि मृत्युकालिक कथन विश्वास करने योग्य नहीं है।

36. जहां तक मृत्युपूर्व बयान दर्ज करने के प्रारूप और डॉक्टर के समक्ष दिए गए बयान की विश्वसनीयता का सवाल है, हमारे विचार में निम्नलिखित निर्णयों से समर्थन मिलता है।

37. प्रेम कुमार गुलाटी बनाम हरियाणा राज्य, (2014) 14 एससीसी 646 में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित निर्णय दिया है:

*"**13. यह सर्वमान्य है कि एक सत्य और विश्वसनीय मृत्युकालिक कथन दोषसिद्धि का एकमात्र आधार हो सकता है, भले ही उसकी पुष्टि न हुई हो।** हालाँकि, कथन की विश्वसनीयता की गहन जाँच की जानी चाहिए और न्यायालयों को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि कथन सत्य है।"*

*16. अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता सुश्री मीनाक्षी अरोड़ा का यह तर्क कि मृत्युपूर्व कथन अमान्य है क्योंकि इसमें बयान दर्ज किए जाने के समय का उल्लेख नहीं है और यह प्रश्नोत्तर रूप में भी नहीं है, मान्य नहीं हो सकता। **केवल इसलिए कि मृत्युपूर्व कथन प्रश्नोत्तर रूप में नहीं था, मृत्युपूर्व कथन की पवित्रता, जो कि एक मरते हुए व्यक्ति के मुख से निकला है, को नकारा नहीं जा सकता और इसकी विश्वसनीयता पर संदेह नहीं किया जा सकता।"***

प्रभाव वर्धित

38. जोस पुत्र एडासेरी थॉमस बनाम केरल राज्य, (2013) 14 एससीसी 172 में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की है:

*"12. **सबसे पहले, हम इस बात पर विचार करेंगे कि क्या डॉक्टर द्वारा दर्ज किया गया मृत्युपूर्व कथन स्वीकार किया जाना चाहिए या यह इतना असंभव है कि इसे नज़रअंदाज़ कर दिया जाना चाहिए।** यह मृत्युपूर्व कथन पी.डब्लू. 1 द्वारा 23-12-2012 को सुबह 8.15 बजे दर्ज किया गया था, जब मृतक बर्न वार्ड के आईसीयू में भर्ती था। प्लास्टिक सर्जन डॉक्टर ने मृत्युपूर्व कथन, प्रदर्श पी-3 पर हस्ताक्षर किए हैं। मृतका ने मृत्यु पूर्व दिए गए अपने बयान में बताया था कि घटना वाले दिन उसके और उसके पति के बीच झगड़ा हुआ था। मृतका का आरोप था कि उसके दामाद के साथ उसके अवैध संबंध थे और उसने उसे जान से मारने की धमकी दी थी।*

उसने स्पष्ट रूप से कहा था कि उसका पति भाग रहा था और हो सकता है कि उसी ने उसे आग लगाई हो। संबंधित डॉक्टर ने अपनी जिरह में इस बात पर ज़ोर दिया कि घायल की मानसिक स्थिति बिल्कुल स्पष्ट थी और वह धाराप्रवाह बोल रही थी। उन्होंने बचाव पक्ष के इस तर्क का खंडन किया कि 92% जलने के कारण मरीज़ होश में नहीं हो सकती। इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि डॉक्टर ने मृत्युपूर्व बयान देने वाली महिला की स्थिति के बारे में कोई पुष्टि नहीं की थी।

13. इस संदर्भ में, हम ***लक्ष्मण बनाम महाराष्ट्र राज्य [(2002) 6 एससीसी 710: 2002 एससीसी (सीआरआइ) 1491]*** *के निर्णय का लाभ के साथ उल्लेख कर सकते हैं, जिसमें संविधान पीठ ने मृत्युपूर्व बयान की अवधारणा, मन की फिटनेस और डॉक्टर द्वारा अनुमोदन की आवश्यकता पर विचार करते हुए इस प्रकार कहा है: (एससीसी पृष्ठ 713, पैरा 3)*

3. ... मृत्युशय्या पर पड़े व्यक्ति की स्थिति इतनी गंभीर और शांत होती है कि कानून में उसके कथन की सत्यता को स्वीकार करने का यही कारण है। इसी कारण शपथ और जिरह की आवश्यकताएँ समाप्त कर दी जाती हैं। चूँकि अभियुक्त के पास जिरह करने का कोई अधिकार नहीं है, इसलिए अदालतें इस बात पर ज़ोर देती हैं कि मृत्युपूर्व कथन ऐसा होना चाहिए जिससे अदालत को उसकी सत्यता और शुद्धता पर पूरा विश्वास हो। हालाँकि, अदालत को हमेशा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि मृतक का बयान किसी के द्वारा दिए गए निर्देश, प्रेरणा या कल्पना का परिणाम न हो। अदालत को यह भी तय करना होगा कि मृतक की मानसिक स्थिति ठीक थी और उसे हमलावर को देखने और पहचानने का अवसर मिला था। इसलिए, आमतौर पर अदालत यह सुनिश्चित करने के लिए कि मृतक मृत्युपूर्व बयान देने के लिए मानसिक रूप से स्वस्थ था या नहीं, चिकित्सा राय पर विचार करती है। लेकिन जहां प्रत्यक्षदर्शी यह कहते हैं कि मृतक घोषणा करने के लिए स्वस्थ और सचेत अवस्था में था, वहां चिकित्सा राय मान्य नहीं होगी, न ही यह कहा जा सकता है कि चूंकि घोषणाकर्ता के मानसिक स्वास्थ्य के बारे में डॉक्टर का कोई प्रमाणन नहीं है, इसलिए मृत्युपूर्व घोषणा स्वीकार्य नहीं है।

14. ***बाबूलाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य [(2003) 12 एससीसी 490: 2005 एससीसी (क्रि) 620: एआईआर 2004 एससी 846]*** *में साक्ष्य में मृत्युपूर्व कथन के मूल्य पर विचार करते हुए, इस न्यायालय ने इस प्रकार टिप्पणी की है: (एससीसी पृष्ठ 494, पैरा 7)*

7. ... जो व्यक्ति आसन्न मृत्यु का सामना कर रहा है, और इस संसार में उसके अस्तित्व की छाया भी लगभग समाप्त हो चुकी है, उसके झूठ बोलने का हर उद्देश्य नष्ट हो जाता है। प्रबल नैतिक कारणों से मन केवल सत्य बोलने के लिए प्रेरित होता है। मरते हुए व्यक्ति के शब्दों में अत्यधिक गंभीरता और पवित्रता होती है क्योंकि मृत्यु के कगार पर खड़ा व्यक्ति झूठ नहीं बोलेगा या किसी निर्दोष व्यक्ति को फँसाने के लिए कोई मनगढ़ंत मामला नहीं बनाएगा। कहावत है, 'कोई भी व्यक्ति अपने मुँह में झूठ लेकर ईश्वर से नहीं मिल सकता' (नेमो मोरिटुरस प्रीसुमिटुर मैंटिरी)। मैथ्यू अर्नोल्ड ने कहा था, 'सत्य एक मरते हुए व्यक्ति के होठों पर रहता है'। सामान्य सिद्धांत जिसके आधार पर साक्ष्य की प्रजातियों को स्वीकार किया जाता है, वह यह है कि वे चरम स्थिति में की गई घोषणाएं हैं, जब पक्षकार मृत्यु के कगार पर है, और जब इस दुनिया की हर आशा

खत्म हो गई है, जब झूठ बोलने का हर मकसद शांत हो गया है और मन सच बोलने के लिए सबसे शक्तिशाली विचार से प्रेरित है; स्थिति इतनी गंभीर है कि कानून इसे न्यायालय में दिलाई गई सकारात्मक शपथ द्वारा लगाए गए दायित्व के बराबर दायित्व बनाने के रूप में मानता है।

17. अभिलेख में उपलब्ध पर्याप्त साक्ष्य इस बात की ओर संकेत करते हैं कि मृतका होश में थी और इसलिए, हम मृत्यु पूर्व कथन को स्वीकार करने के लिए इच्छुक हैं. *जिससे पति द्वारा पत्नी के साथ किए गए क्रूर व्यवहार, उसके द्वारा रखे गए संदेह और दी गई धमकियों का पता चलता है। यह सच है कि उसने कहा था कि उसे संदेह था कि उसके पति ने उसे आग लगा दी होगी, लेकिन इस पहलू को साबित करने के लिए, कई परिस्थितियाँ हैं जिन्हें निचली अदालत के न्यायाधीश और उच्च न्यायालय ने ध्यान में रखा है। वे परिस्थितियां जो अभियुक्त के अपराध की ओर ले जाती हैं, वे हैं कि अभियुक्त उस कमरे के पूर्वी तरफ के शयन कक्ष में सो रहा था जहां वह सो रही थी और वह एक छोटा सा घर था; शयन कक्ष में कोई शटर नहीं था; मृतका के रोने की आवाज सुनकर पीडब्लू 3 जाग गया; यह कि अभियुक्त ने पीडब्लू 5 के पेट्रोल पंप से बोतल में पेट्रोल खरीदा था; यह कि रासायनिक विश्लेषण रिपोर्ट, प्रदर्श पी-15 में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि रासायनिक विश्लेषण के लिए भेजी गई किसी भी भौतिक वस्तु में केरोसिन नहीं पाया गया; यह कि अभियुक्त को पीडब्लू 3 और पीडब्लू 7 ने घर से भागते हुए देखा था; यह कि पीडब्लू 3, पुत्री द्वारा स्पष्ट रूप से गवाही दी गई है कि पिता माँ से अपने साथ सोने की मांग करता था, लेकिन वह ऐसा नहीं कर सकी; और उसने उसे जान से मारने की धमकी दी थी। बड़ी बेटी ने बयान दिया है कि पिता को पीडब्लू 3 के पति पर उसकी माँ के साथ अवैध संबंध होने का संदेह था। उसने यह भी बयान दिया है कि माँ 52 वर्ष की थी और शारीरिक रूप से कमज़ोर थी तथा अपने पति की इच्छा पूरी करने की स्थिति में नहीं थी।* ***मृत्यु पूर्व बयान के संदर्भ में इन सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, मृतका को जलाने में अभियुक्त की संलिप्तता स्पष्ट रूप से स्थापित होती है।***

39. जहाँ तक मृतक के पिता (पीडब्लू-1) की उपस्थिति का प्रश्न है, इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि पिता अस्पताल में मौजूद थे और उन्होंने डॉ. के.आर. खान को अपने बेटे का इलाज करते देखा था, हालाँकि, उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा था कि बयान दर्ज करते समय उन्हें बाहर भेज दिया गया था। डॉ. के.आर. खान ने भी यही बात स्पष्ट रूप से कही थी और उनकी जिरह में भी इसके विरुद्ध कुछ नहीं निकला।

40. इस बात पर भी कोई विवाद नहीं है कि स्थापित कानून यह कहता है कि मृत्यु पूर्व कथन केवल मजिस्ट्रेट द्वारा ही दर्ज किया जाना आवश्यक नहीं है। कुछ मामलों में, जब घायल/उपचारकर्ता घायल की तत्काल मृत्यु की आशंका कर रहा हो, तो बयान दर्ज किया जा सकता है और यहाँ तक कि दं.प्र.सं. की धारा 161 के तहत दिए गए बयान को भी कभी-कभी मृत्यु पूर्व कथन माना जा सकता है, हालाँकि इसकी विश्वसनीयता उनके अपने तथ्यों के आधार पर देखी जानी चाहिए।

41. यह भी निर्विवाद है कि घायल का बयान घटना के लगभग दो घंटे बाद उसी रात दर्ज किया गया था और यह त्वरित था, जबकि उसकी मृत्यु तीन दिन बाद हुई। यह ऐसा मामला नहीं है जहाँ बयान बाद में दर्ज किया गया हो, जो बाद में सोचा गया हो।

42. जहाँ तक इस तर्क का प्रश्न है कि घटनास्थल पर खून नहीं मिला, यह बात रिकॉर्ड में दर्ज है कि वह शहर के बीचों-बीच एक व्यस्त सड़क थी और घटना रात लगभग 10 बजे हुई थी। जाँच अधिकारी सुबह घटनास्थल पर गए और उन्हें वहाँ खून नहीं मिला। चूँकि नक्शा नजरी में खून नहीं दिखाया गया था, इसलिए जाँच अधिकारी के लिए यह एक कारण हो सकता है कि उन्होंने दोषपूर्ण जाँच करने के आरोप से बचने के लिए यह बयान दिया कि उन्हें मौके पर खून नहीं मिला। इस आशय का जाँच अधिकारी का बयान मामले की जड़ तक नहीं जाता और अपीलकर्ता की दोषसिद्धि को खारिज नहीं करता। हम **एडक्कंडी दिनेशन उर्फ पी. दिनेशन बनाम केरल राज्य, (2025) 3 एससीसी 273** के निर्णय से अपने दृष्टिकोण का समर्थन करते हैं, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया है:

"26. अभिलेख में उपलब्ध समस्त साक्ष्यों के संचयी अध्ययन से पता चलता है कि जाँच उचित और अनुशासित तरीके से नहीं हुई है। ऐसे कई क्षेत्र हैं जहाँ उचित जाँच से मामला मज़बूत हो सकता था। पारस यादव एवं अन्य बनाम बिहार राज्य के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की: (एससीसी पृष्ठ 130, पैरा 8)

"पैरा 8 - ...जाँच अधिकारी की ओर से हुई चूक को अभियुक्त के पक्ष में नहीं लिया जाना चाहिए, हो सकता है कि ऐसी चूक जानबूझकर या लापरवाही के कारण हुई हो। इसलिए, अभियोजन पक्ष के साक्ष्य की ऐसी चूकों के अलावा जाँच आवश्यक है ताकि यह पता लगाया जा सके कि उक्त साक्ष्य विश्वसनीय है या नहीं। इस प्रयोजन के लिए, राम बिहारी यादव बनाम बिहार राज्य एवं अन्य मामले से इस न्यायालय की निम्नलिखित टिप्पणियों को उद्धृत करना समीचीन होगा: (एससीसी पृष्ठ 523-24, पैरा 13)।
"ऐसे मामलों में अभियोजन पक्ष की कहानी की जांच अधिकारियों की ऐसी चूक और दूषित आचरण के बिना की जानी चाहिए, अन्यथा जानबूझकर की गई शरारत जारी रहेगी और शिकायतकर्ता पक्ष को न्याय नहीं मिलेगा और इससे स्पष्ट रूप से लोगों का विश्वास न केवल कानून प्रवर्तन एजेंसी में बल्कि न्याय प्रशासन में भी डगमगा जाएगा।"

*27. **अतः, विधि का सिद्धांत बिल्कुल स्पष्ट है कि दोषपूर्ण जाँच के आधार पर अभियुक्तों को केवल इसी आधार पर लाभ नहीं मिलेगा।** अभियोजन पक्ष द्वारा एकत्रित शेष साक्ष्य, जैसे प्रत्यक्षदर्शियों के बयान, चिकित्सा रिपोर्ट आदि, पर विचार करना न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में है। **इस न्यायालय का यह दृढ़ मत रहा है कि अभियुक्त अभियोजन एजेंसी द्वारा की गई दोषपूर्ण जाँच के आधार पर बरी होने का दावा नहीं कर सकता।***

(प्रभाव वर्धित)

असत्यापित

43. एक आधार यह लिया गया है कि डॉक्टर ने घायल को पेथिडीन इंजेक्शन दिया था, इसलिए वह कोई बयान देने की स्थिति में नहीं था और इसलिए मृत्यु पूर्व बयान विश्वास करने योग्य नहीं है, जहां तक संबंधित बात है, यह नोट करना पर्याप्त है कि डॉक्टर से यह प्रश्न नहीं पूछा गया कि पेथिडीन इंजेक्शन किस स्तर पर दिया गया था और इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि बयान देने से पहले पेथिडीन इंजेक्शन दिया गया था।
44. वैसे भी, सामान्य परिस्थितियों में, जब बयान दर्ज किया जाता है, तो कोई भी विवेकशील डॉक्टर बयान दर्ज करने से पहले घायल को शामक इंजेक्शन नहीं देगा।

45. जहां तक अशरफ की पहचान का सवाल है, जिसमें उसके पिता का नाम नहीं दिया गया था, अभियुक्त अशरफ की पहचान को मिटाने का कोई प्रयास नहीं किया गया क्योंकि यह साबित नहीं हुआ कि उस इलाके में कोई अन्य व्यक्ति रहता था और यदि ऐसा कोई अन्य व्यक्ति था, तो अभियोजन पक्ष द्वारा अपनाए गए रुख का खंडन करने के लिए किसी को भी पेश नहीं किया गया और इन आधारों पर, हम विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा साक्ष्य के मूल्यांकन में कोई कानूनी त्रुटि नहीं पाते हैं, जिस पर हमने स्वतंत्र रूप से पुनर्विचार और पुनर्मूल्यांकन किया है।

46. समस्त साक्ष्यों के अवलोकन के पश्चात्, यह पाया गया कि भारतीय दंड संहिता की धारा 307 के अंतर्गत तत्काल प्राथमिकी दर्ज की गई, चोट की रिपोर्ट तैयार की गई, चिकित्सक ने मृतक की मानसिक स्थिति ठीक होने का प्रमाण पत्र देते हुए मृत्युपूर्व कथन दर्ज किया। घायल की मृत्यु हो गई, अतः प्राथमिकी को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 में परिवर्तित कर दिया गया। अभियोजन पक्ष ने प्रत्यक्षदर्शी एवं दस्तावेजी साक्ष्यों के आधार पर प्राथमिकी, मृत्युपूर्व कथन, चोट की रिपोर्ट, पोस्टमार्टम रिपोर्ट को सिद्ध किया।

47. अतः, हमारा मत है कि वर्तमान अपील में कोई मेरिट नहीं है और तदनुसार, यह खारिज की जाती है। जीवित अपीलकर्ता अशरफ की दोषसिद्धि की पुष्टि की जाती है।

48. चूँकि अभियुक्त-अपीलकर्ता फरार है, इसलिए उसके जमानती बंधपत्र निरस्त किए जाते हैं और जमानतदारों को उन्मोचित किया जाता है। उसे सजा काटने के लिए तत्काल हिरासत में लिया जाएगा। मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट और संबंधित वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक/पुलिस अधीक्षक अभियुक्त-अपीलकर्ता अशरफ की गिरफ्तारी सुनिश्चित करेंगे।

49. विचारण न्यायालय का अभिलेख तत्काल संबंधित न्यायालय को भेजा जाए।

50. निबंधक (अनुपालन) द्वारा इस आदेश की एक प्रति अनुपालन हेतु संबंधित न्यायालय को भेजी जाए।

51. मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट दो माह बाद एक अनुपालन रिपोर्ट प्रस्तुत करेंगे, जिसे उपयुक्त न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाएगा।

अनुवादित

(2025) 4 ILRA 874

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 11.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा

माननीय न्यायमूर्ति अनीश कुमार गुप्ता

आपराधिक अपील संख्या 4854 वर्ष 2016

अन्य संबंधित वाद

राकेश सिंह एवं अन्य **...अपीलकर्तागण**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य **..प्रतिवादी**

अपीलकर्तागण के अधिवक्ता:

अशोक कुमार त्रिपाठी, गोविंद सरन हजेला, राधेश्याम शुक्ला, राजेश कुमार

प्रतिवादी के अधिवक्ता:

अरविंद अग्रवाल, शासकीय अधिवक्ता

अनुवादित

(ए) आपराधिक विधि - विधि विरूद्ध सभा - समान उद्देश्य - सशस्त्र अभियुक्तों द्वारा अंधाधुंध गोलीबारी से मृत्यु और चोटें - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 147, 148, 149, 302 और 307 - आयुध अधिनियम, 1959 - धारा 27 - कोई भी वैध सभा किसी भी समय विधि विरूद्ध हो सकती है - किसी भी स्तर पर समान उद्देश्य बन सकता है और यदि सदस्य आपत्ति साझा करते हैं तो बिना किसी स्पष्ट कार्य के भी दायित्व उत्पन्न होता है - जिस क्षण आपत्ति के जवाब में अंधाधुंध गोलीबारी शुरू हुई, सभा विधि विरूद्ध हो गई और समान उद्देश्य बन गया। (प्रस्तर -29 से 33,36)

सूचनाकर्ता ने अभियुक्तगण द्वारा शराब पीने और एक-दूसरे को गाली देने पर आपत्ति जताई। - अभियुक्तगण ने जवाबी फायरिंग की, जिसमें दो लोगों की मौत हो गई और सूचनाकर्ता समेत पाँच लोग घायल हो गए। - तत्काल चिकित्सा आवश्यकताओं के कारण साढ़े छह घंटे की देरी के बाद एफआईआर दर्ज की गई। - अभियोजन पक्ष ने परिस्थितियों के आधार पर देरी को उचित ठहराया। - विचारण न्यायालय ने सभी अभियुक्तगण को दोषी ठहराया। - दोषसिद्धि के विरूद्ध अपील दायर की गई। **(प्रस्तर-27)**

अभिनिर्धारित: - जिस क्षण अभियुक्तगण ने घायल व्यक्तियों पर अंधाधुंध गोलीबारी शुरू की, वे एक ही उद्देश्य बन गए और अभियुक्तगण का सभा एक विधि विरूद्ध सभा बन गया। अभियोजन पक्ष प्रकरण को साबित करने में सफल रहा। विचारण न्यायालय के निर्णय में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं थी। **(प्रस्तर-36,37) आपराधिक अपील खारिज।** (ई-7)

<u>उद्धृत वादों की सूची:</u>

1. सुबल घोराई बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (2013) 4 एससीसी 607
2. चरण सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2004) 4 एससीसी 205
3. हरमंत लक्ष्मप्पा कुक्कड़ी बनाम कर्नाटक राज्य, (1994) 1 एससीसी 736
4. रॉय फर्नांडीस बनाम गोवा राज्य, (2012) 3 एससीसी 221
5. गजानंद एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य : एआईआर 1954 एससी 695
6. कुना बनाम उड़ीसा राज्य, (2018) 1 एससीसी 296
7. राजीवन बनाम केरल राज्य, (2003) 3 एससीसी 355
8. सेकरन बनाम तमिलनाडु राज्य, (2024) 2 एससीसी 17
9. सट्टे व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य: (2019) 106 एसीसी 469
10. चिक्कारंगे गौड़ा बनाम मैसूर राज्य, 1956 एससीसी ऑनलाइन एससी 65
11. मिजाजी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1958 एससीसी ऑनलाइन एससी 95
12. शंभू नाथ सिंह बनाम बिहार राज्य, 1959 एससीसी ऑनलाइन एससी 27

(माननीय न्यायमूर्ति अनीश कुमार गुप्ता द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री अशोक कुमार त्रिपाठी और श्री शशांक सिंह, सूचनाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री आशीष गोयल के ब्रीफ होल्डर श्री शुभम कुमार और राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. को सुना गया।

2. ये सभी अपीलें अपीलकर्ताओं द्वारा अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 5, शाहजहांपुर द्वारा सत्र विचारण संख्या 548/1997 और सत्र विचारण संख्या 222/1998 में पारित दिनांक 11.08.2016 के निर्णय और आदेश से व्यथित होकर दायर किया गया हैं, जिसके द्वारा सभी अपीलकर्ताओं को भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 148, 149/307 और 149/302 के अंतर्गत अपराधों के लिए दोषी ठहराया गया है। धारा 147 भा.द.सं. के अंतर्गत अपराध के लिए उन्हें दो वर्ष का कारावास और 5,000/- रुपये प्रत्येक के जुर्माने की सजा सुनाई गई, धारा 148 भा.द.सं. के अंतर्गत अपराध के लिए तीन वर्ष का कारावास और 5,000/- रुपये प्रत्येक के जुर्माने की सजा सुनाई गई, धारा 149/307 भा.द.सं. के अंतर्गत अपराध के लिए सभी अपीलकर्ताओं को आजीवन कारावास

और 25,000/- रुपये प्रत्येक के जुर्माने की सजा सुनाई गई और धारा 149/302 भा.द.सं. के अंतर्गत अपराध के लिए सभी अपीलकर्ताओं को आजीवन कारावास और 30,000/- रुपये प्रत्येक के जुर्माने की सजा सुनाई गई। धारा 147 और 148 भा.द.सं. के अंतर्गत अपराध के लिए जुर्माना न चुकाने की स्थिति में, उन्हें पहले से सुनाई गई सजा के अलावा छह माह का अतिरिक्त कारावास भुगतने का निर्देश दिया गया।

3. अभियोजन पक्ष के प्रकरण के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि सूचनाकर्ता- नरेंद्र पाल सिंह पुत्र फकीरे सिंह ने दिनांक 18.05.1997 को समय लगभग 1:00 बजे थाना- निगोही, जिला- शाहजहांपुर पर एक लिखित रिपोर्ट प्रस्तुत की थी, जिसमें कहा गया था कि दिनांक 17.05.1997 को लगभग 6:30 बजे, अभियुक्त जंगबहादुर सिंह, राजकुमार सिंह, देवेंद्र सिंह जो बंदूकों से लैस थे, अभियुक्त जयपाल सिंह जो एकनाली बंदूक से लैस था, अनिल कुमार सिंह जो एक दोनाली बंदूक से लैस था, विजय कुमार सिंह जो एक देशी तमंचा से लैस था, ओमप्रकाश सिंह, ननकू सिंह, राजकुमार सिंह, राकेश सिंह, राजेंद्र उर्फ गजेंद्र सिंह, दंगल सिंह जो सभी एक नली बंदूक से लैस थे और वीर सिंह के पास भी बंदूक थी, सूचनाकर्ता की चौपाल के पास से गुजरते समय शराब पी रहे थे और एक दूसरे को गाली दे रहे थे। जब सूचनाकर्ता और उसके परिवार के सदस्यों ने उनके व्यवहार का विरोध किया, तो उपरोक्त व्यक्तियों ने गोलीबारी शुरू कर दी, जिससे फकीरे सिंह, श्रीमती हीरा कुँवरी देवी, झीनक सिंह, नेपाल सिंह, राजकुमार सिंह, प्रेम पाल सिंह को अग्नेयास्त्र चोटें आईं। सूचनाकर्ता - नागेन्द्र पाल सिंह ने लिखित रिपोर्ट में कहा है कि वह घायलों को ट्रैक्टर ट्रॉली में लेकर थाने आए थे और रिपोर्ट दर्ज करने तथा उचित विधिक कार्रवाई करने का अनुरोध किया था।

4. सूचनाकर्ता - नागेन्द्र पाल सिंह पुत्र मृतक फकीरे सिंह द्वारा प्रस्तुत उपरोक्त लिखित रिपोर्ट पर, अभियुक्तगणों अर्थात् देवेन्द्र सिंह पुत्र जंगबहादुर सिंह, ओमप्रकाश सिंह पुत्र जगदीश सिंह, राजेन्द्र उर्फ गजेन्द्र सिंह पुत्र कन्हाई सिंह, राकेश सिंह पुत्र रामेश्वर सिंह, राजकुमार पुत्र ननकू सिंह, राजकुमार पुत्र जंगबहादुर सिंह, अनिल कुमार सिंह पुत्र जयपाल सिंह, विजय कुमार सिंह पुत्र जगदीश सिंह, ननकू सिंह पुत्र मंगू सिंह, कन्हाई सिंह पुत्र पुलंदर सिंह, दंगल सिंह पुत्र विसनी सिंह, जयपाल, वीर सिंह और जंगबहादुर पुत्र जोरावर सिंह के विरुद्ध धारा 147, 148, 149, 307, 504 भा.द.सं. और धारा 27 आयुध अधिनियम के अंतर्गत एफआईआर दर्ज की गई। थाने के संदर्भ पत्र के आधार पर, घायल व्यक्तियों का राजकीय चिकित्सालय, निगोही, जिला- शाहजहाँपुर में चिकित्सीय परीक्षण कराया गया।

5. दिनांक 19.05.1997 को प्रातः 10:30 बजे की चिकित्सीय परीक्षण रिपोर्ट के अनुसार, श्रीमती हीरा कुमारी के शरीर पर निम्नलिखित चोटें पाई गईं:

1. सिर के दाहिनी ओर दाहिनी भौं के ऊपर 0.5 सेमी x 0.5 सेमी का एक कटा हुआ घाव, जिसकी गहराई नहीं मापी जा सकी और 8 सेमी का, जिसके किनारे मुड़े हुए थे।
2. सिर के बाईं ओर 0.5 सेमी x 0.2 सेमी का एक फटा हुआ घाव, जिसकी गहराई नहीं मापी जा सकी और 12 सेमी का, जिसके किनारे बाएं कान के ऊपर मुड़े हुए थे।

3. सिर के बाईं ओर 1.5 सेमी x 0.5 सेमी, 0.4 सेमी x 0.2 सेमी गहराई का एक फटा हुआ घाव, जिसकी गहराई नहीं मापी जा सकी और जिसके किनारे बाएं भौं के ऊपर मुड़े हुए थे।

4. दाहिने कान के सामने 0.5 सेमी × 0.2 सेमी माप की खरोंच।

5. दाहिने कान के सामने के अंदरूनी हिस्से में 0.5 सेमी × 0.2 सेमी माप का फटा हुआ घाव।

6. दाहिने कान के पीछे 0.5 सेमी × 0.2 सेमी माप का गोली का घाव"

[डॉक्टर की राय के अनुसार चोट संख्या 1, 2 और 3 को निगरानी में रखा गया और एक्स-रे कराने की सलाह दी गई। चोट संख्या 4, 5 और 6 साधारण चोटें थीं।]

6. घायल राजकुमार सिंह की 19.05.1997 को सुबह 10:00 बजे की गई मेडिकल परीक्षण रिपोर्ट के अनुसार, उसके शरीर पर निम्नलिखित चोटें पाई गईं:

"1. 0.5 सेमी x 0.4 सेमी का फटा हुआ घाव जिसकी गहराई नहीं मापी जा सकी। चेहरे के बाईं ओर मुँह से 2 सेमी ऊपर।

2. छाती के दाईं ओर 0.4 सेमी x 0.3 सेमी से 0.6 सेमी x 0.3 सेमी माप के कई कटे हुए घाव, जिनकी गहराई मापी नहीं जा सकी, मुड़े हुए किनारे।"

[डॉक्टर की राय के अनुसार, चोटों को निगरानी में रखा गया। चोटें डेढ़ दिन पुरानी थीं।]

7. घायल झिनक सिंह उर्फ झुमक सिंह की 20.05.1997 को सुबह 10:30 बजे की गई चिकित्सीय परीक्षण रिपोर्ट के अनुसार, उसके शरीर पर निम्नलिखित चोटें पाई गईं:

"1. सिर के दाहिनी ओर दाहिने कान के ठीक ऊपर 0.3 सेमी x 0.2 सेमी माप का गोली का घाव, जिसकी गहराई मापी नहीं जा सकी।

2. दाहिने कान के एक तिहाई हिस्से पर 0.7 सेमी x 0.3 सेमी माप का लाल रंग का खरोंच वाला निशान।

3. दाहिने हाथ पर दाहिने कूल्हे से 9.5 सेमी ऊपर, भूरे रंग का, 3.5 सेमी x 0.4 सेमी लंबा घाव।"

[डॉक्टर की राय के अनुसार चोट संख्या 1 को निगरानी में रखा गया और एक्स-रे कराने की सलाह दी गई। चोट संख्या 1, 2 और 3 सामान्य प्रकृति की थीं। चोट संख्या 1 अग्नेयास्त्र की चोट थी और चोट संख्या 2 और 3 खरोंच के निशान के कारण थीं। चोटें ढाई दिन पुरानी थीं।]

8. घायल मुन्ना सिंह की चोट रिपोर्ट के अनुसार, 18.05.1997 को सुबह 3:20 बजे घायल की मेडिकल परीक्षण के दौरान निम्नलिखित चोटें पाई गईं:

1. घायल के सिर पर अग्नेयास्त्र की कई चोटें थीं और सिर पर तीन चोटें थीं। दोनों हाथों की हथेली में एक चोट थी, बाएं चेहरे पर तीन चोटें थीं, बाएं हाथ पर एक चोट थी। सभी चोटें एक ही प्रकार की थीं, जिनका माप 0.4 सेमी से 0.3 सेमी था। सभी चोटें नरम थीं और खून का थक्का जम रहा था। चोटों के निशान अंदर की ओर थे। चोटों के आसपास लालिमा मौजूद थी। चोटों के आसपास पूरी तरह से कालापन या जलन नहीं थी। दाहिनी छाती, दाहिने पेट और दाहिनी ओर दो चोटें थीं। बायीं छाती पर दो चोटें थीं, एक चोट पेट के सामने थी और एक बाएँ कंधे की हड्डी पर भी घाव पाया गया था। डॉक्टर के अनुसार घायल की हालत बहुत गंभीर थी और वह कोमा में था।

[डॉक्टर के अनुसार, सभी चोटें अग्नेयास्त्र से लगी थीं। दोनों आँखें क्षतिग्रस्त थीं। चोटें ताज़ा थीं।] अंतिम राय के लिए, एक्स-रे की सलाह दी गई।]

9. घायल फकीरे सिंह की 18.05.1997 को प्रातः 3:50 बजे की गई चिकित्सीय परीक्षण रिपोर्ट के अनुसार, उसके शरीर पर निम्नलिखित चोटें पाई गईं:

"चेहरे पर गोली लगने के कई घाव। माथे के बीचों-बीच एक घाव। दाहिने गाल पर एक और ठोड़ी पर चार घाव। सिर के सामने एक घाव जो माथे की चोट से 6 सेमी ऊपर था। दाहिने अग्रबाहु पर एक प्रवेश घाव। दाहिने अग्रबाहु के ऊपरी हिस्से पर एक प्रवेश घाव। बाईं ओर कालापन था। सभी घाव एक जैसे और दिखने में एक जैसे हैं, जिनका माप 0.3 सेमी से 0.4 सेमी है। त्वचा धँसी हुई है। घावों के किनारे नरम हैं और खून मौजूद है। घाव में रिसे हुए कोशिकाएँ हैं। घाव के आसपास लालिमा थी। घायल की हालत गंभीर और कोमा में थी। चोटें अग्नास्त्र से लगी थीं और ताज़ा थीं। चोटों पर निगरानी रखी गई और एक्स-रे कराने की सलाह दी गई।"

10. दिनांक 18.05.1997 को प्रातः 3:10 बजे की चिकित्सीय परीक्षण रिपोर्ट के अनुसार, घायल सत्यपाल सिंह के शरीर पर निम्नलिखित चोटें पाई गईं:

"1. दाहिनी आँख की निचली पलक पर 0.2 सेमी गहरा गोली का घाव, जिस पर एवल्शन सेल मौजूद था। घाव ऊपर से नरम था और खून के धब्बे मौजूद थे।

2. यह घाव चोट संख्या 1 जैसा ही था जो दाहिने कान के आर-पार था। खून जमा था। कान के पीछे एक बाहरी घाव था जिसके किनारे बाहर की ओर मुड़े हुए थे। मरीज़ चक्कर आने, जी मिचलाने और कमज़ोरी की शिकायत कर रहा था।"

[डॉक्टर की राय के अनुसार, चोट संख्या 1 प्रवेश घाव था और चोट संख्या 2 भी प्रवेश घाव था और बाहरी घाव भी मौजूद थे। ये चोटें एक-चौथाई दिन से डेढ़ दिन पुरानी थीं। एक्स-रे की सलाह दी गई और नेत्र विशेषज्ञ से परामर्श की भी सिफ़ारिश की गई।]

11. घायल प्रेमपाल सिंह की दिनांक 18.05.1997 को सुबह 5:00 बजे की चोट रिपोर्ट के अनुसार, उनके शरीर पर निम्नलिखित चोटें पाई गईं:

"1. कई प्रवेश घाव, एक बाएँ गाल पर, गर्दन के नीचे, दोनों कॉलरबोन के बीच।

2. छाती के दाईं ओर एक घाव, कॉलरबोन के बीच से 4 सेमी नीचे।

3. बाएँ छाती पर एक घाव, निप्पल से 12 बजे की स्थिति में 8 सेमी ऊपर।

4. कंधे पर एक घाव।

5. पेट के सामने एक घाव।

6. दाहिने हाथ पर एक दूसरे से 10 सेमी की दूरी पर दो घाव।

7. दाहिने अग्रबाहु पर दो घाव।"

सभी चोटें एक जैसी प्रकृति की थीं। सूजन भी मौजूद थी।

12. उपर्युक्त घायल व्यक्तियों में से मुन्ना एवं फकीरे सिंह की चोटें गम्भीर प्रकृति की थीं, जिन्हें बलरामपुर चिकित्सालय, लखनऊ में भर्ती कराया गया, जहाँ घायल मुन्ना सिंह की मृत्यु दिनांक 19.05.1997 को अपरान्ह 1:20 बजे तथा घायल फकीरे सिंह की मृत्यु दिनांक 22.05.1997 को अपरान्ह 3:25 बजे हो गयी। मृत्यु की सूचना जनपद-लखनऊ में प्राप्त हुई, तत्पश्चात मृतक मुन्ना सिंह का पंचायतनामा रिपोर्ट दिनांक 20.05.1997 को अपरान्ह 2:45 बजे तैयार किया गया, तथा इसी प्रकार मृतक फकीरे सिंह का पंचायतनामा रिपोर्ट दिनांक 23.05.1997 को अपरान्ह 12:30 बजे जनपद-लखनऊ में तैयार किया गया। मृतक मुन्ना सिंह का पोस्टमार्टम 21.05.1997 को अपराह्न 1:30 बजे तथा मृतक फकीरे सिंह का पोस्टमार्टम 23.05.1997 को अपराह्न 3:45 बजे किया गया।

13. मुन्ना सिंह और फकीरे सिंह की मृत्यु की सूचना प्राप्त होने पर, अभियुक्तगण के विरुद्ध विवेचना हेतु धारा 302 भारतीय दंड संहिता जोड़ी गई। विवेचना की गई और घटनास्थल से खून से सना हुआ और सादी मिट्टी बरामद की गई। मौके से खाली कारतूस भी बरामद किए गए तथा अभियुक्तगण को गिरफ्तार कर लिया गया। विवेचना पूर्ण होने के पश्चात, सभी व्यक्तियों के विरुद्ध धारा 147, 148, 149, 302, 307 भारतीय दंड संहिता तथा धारा 27 आयुध अधिनियम के अंतर्गत आरोप पत्र दाखिल किया गया। इसी अपराध के लिए जंगबहादुर सिंह पुत्र जोरावर सिंह के विरुद्ध भी पूरक आरोप पत्र दाखिल किया गया। मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने दोनों आरोप-पत्रों पर संज्ञान लिया और वाद को क्रमशः 06.09.1997 और 06.03.1998 को सत्र न्यायालय को सुपुर्द किया। सत्र न्यायालय ने 21.06.2002 के आदेश द्वारा अभियुक्तों के विरुद्ध धारा 147, 148, 149, 302 और 307 भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत आरोप विरचित किए थे। हालाँकि, अभियुक्तों ने आरोपों से इनकार किया था और विचारण की माँग की थी।

14. विचारण के दौरान अनिल कुमार सिंह, विजय कुमार सिंह, जयपाल सिंह, ननकू सिंह, कन्हाई सिंह, वीर सिंह और दंगल सिंह की मृत्यु हो गई थी। इसलिए, उनके विरुद्ध वाद उपशमित कर दिया गया।

15. अभियुक्त जंगबहादुर सिंह पुत्र जोरावर सिंह विचारण से फरार था, इसलिए उसके विरुद्ध धारा 82 और 83 भा.द.सं. के अंतर्गत कार्यवाही शुरू की गई और बाद में जमानतदारों के विरूद्ध बंधपत्र के निष्पादन के बाद, जंगबहादुर सिंह के विरूद्ध धारा 299 भा.द.सं. के अंतर्गत- कार्यवाही शुरू की गई, जबकि बाकी अभियुक्तगण के विरूद्ध प्रकरण आगे बढ़ा।

16. अभियोजन पक्ष ने अपने वाद के समर्थन में पी.डब्लू.-1/सूचनाकर्ता नरेन्द्र पाल सिंह, पी.डब्लू.-2 प्रेमपाल सिंह, पी.डब्लू.-3 सत्यपाल सिंह, पी.डब्लू.-4 उपनिरीक्षक हरेन्द्र पाल सिंह (विवेचना अधिकारी), पी.डब्लू.-5 डॉ. डी.के. गुप्ता, पी.डब्लू.-6 डॉ. योगेश कौल, पी.डब्लू.-7 डॉ. देवेन्द्र सिंह नेगी, पी.डब्लू.-8 डॉ. मुनीरुद्दीन, पी.डब्लू.-9 राजकुमार सिंह, पी.डब्लू.-10 विनोद कुमार सिंह, पी.डब्लू.-11 उपनिरीक्षक रामगोपाल दिवाकर, पी.डब्लू.-12 राजेन्द्र सिंह को परीक्षित किया तथा विभिन्न दस्तावेज दाखिल किए। अभियोजन साक्ष्य के समापन के पश्चात अभियुक्तगण राजकुमार सिंह पुत्र चन्द्र बहादुर, राज कुमार पुत्र ननकू सिंह, देवेन्द्र सिंह, ओम प्रकाश सिंह,

राजेश सिंह, राजेन्द्र सिंह उर्फ गजेन्द्र सिंह के बयान धारा 313 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत अंकित किए गए।

17. कुनेन्द्र पाल सिंह से अभियुक्तगण द्वारा बचाव साक्षी के रूप में परीक्षित कराया गया। विचारण की समाप्ति के बाद, विचारण न्यायालय ने उपरोक्त अभियुक्तगण अर्थात् राजकुमार सिंह पुत्र जंगबहादुर सिंह, राज कुमार पुत्र ननकू सिंह, देवेंद्र सिंह, राजेंद्र सिंह और राजेंद्र सिंह उर्फ गजेंद्र सिंह, ओमप्रकाश सिंह को धारा 147, 148, 149/307, 149/302 भा.द.सं. के अंतर्गत अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया गया था और उन्हें उपरोक्त सजा सुनाई गई थी।

18. दिनांक 11.08.2016 के निर्णय और आदेश से व्यथित होकर, अभियुक्त अपीलकर्ताओं द्वारा पांच अलग-अलग अपीलें दायर की गई थीं। आपराधिक अपील संख्या 4854/2016 अभियुक्तगण राकेश सिंह पुत्र रामेश्वर सिंह और राज कुमार पुत्र ननकू सिंह द्वारा दायर की गई थी, आपराधिक अपील संख्या 4607/2016 राजेंद्र उर्फ गजेंद्र सिंह द्वारा दायर की गई थी, आपराधिक अपील संख्या 5209/2016 ओमप्रकाश सिंह द्वारा दायर की गई थी और आपराधिक अपील संख्या 5734/2016 देवेंद्र सिंह पुत्र जंगबहादुर सिंह द्वारा दायर की गई थी। जहां तक **अभियुक्त/अपीलकर्ता राज कुमार पुत्र जंग बहादुर सिंह का संबंध है, चूंकि अपील के लंबित रहने के दौरान उनकी मृत्यु हो गई है, इसलिए उनकी अपील संख्या 6009/2016 को 30.9.2024 के आदेश के द्वारा पहले ही उपशमित करते हुए खारिज कर दिया गया है।** अपीलकर्ता- ओमप्रकाश सिंह पुत्र जगदीश सिंह और राजेंद्र उर्फ गजेंद्र सिंह पुत्र कन्हाई सिंह को इस न्यायालय ने जमानत पर रिहा कर दिया अपीलकर्ता राकेश सिंह, राज कुमार पुत्र ननकू सिंह और देवेंद्र सिंह जेल में हैं। अब, उपरोक्त चार अपीलें हमारे पास हैं, जो वर्तमान समान निर्णय और आदेश द्वारा निर्णीत की जा रही हैं, क्योंकि वे एक ही आक्षेपित निर्णय और आदेश और एक ही मुकदमा अपराध संख्या से उत्पन्न हुई हैं।

19. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि वर्तमान वाद में इतने सारे अभियुक्तगण में से एक फरार था और छह की मृत्यु हो गई थी। ये अपीलें अब केवल पाँच दोषी अभियुक्तों से संबंधित हैं।

20. बचाव पक्ष के अनुसार, सभी अभियुक्तगण द्वारा बिना किसी पूर्वधारणा के अपनी 312 बोर की बंदूक से अंधाधुंध गोलीबारी की गई थी। अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि किसी भी मृतक की मृत्यु का कारण बनने का कोई सामान्य आशय/समान उद्देश्य नहीं था। इसलिए, वह प्रस्तुत करते हैं कि, कोई विधि विरूद्ध सभा नहीं थी। साढ़े छह घंटे की देरी से एफआईआर दर्ज की गई और अपीलकर्ताओं को जानबूझकर फंसाया गया, जो निर्दोष व्यक्ति थे और सह-अभियुक्तों में से एक के बेटे की सगाई समारोह में शामिल होने जा रहे थे। अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि पीडब्लू-3, सत्यपाल सिंह, अपने मुख्य परीक्षा के दौरान, अभियुक्त राजकुमार सिंह की पहचान करने में विफल रहे और उसका नाम देवेंद्र सिंह बताया। इस प्रकार, वह या तो मौके पर मौजूद नहीं था या उसने उसे झूठा फंसाया था। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि सभी चौदह व्यक्तियों द्वारा अंधाधुंध गोलीबारी का अभिकथन है, हालांकि, मौके से 312 बोर

के केवल दो खाली कारतूस बरामद किए गए थे और यहां तक कि अपीलकर्ताओं द्वारा अंधाधुंध गोलीबारी भी उचित संदेह से परे अपीलकर्ताओं के विरूद्ध साबित नहीं हुआ था। पीडब्लू-2 और पीडब्लू-3 के अनुसार, मृतक फकीरे सिंह पर केवल अभियुक्त अनिल कुमार सिंह के विरुद्ध गोलीबारी की विशिष्ट भूमिका दी गई थी और अन्य लोगों द्वारा अंधाधुंध गोलीबारी की सामान्य भूमिका दी गई थी। अपीलकर्ताओं के कब्जे से या उनकी निशानदेही पर न तो कोई हथियार बरामद हुआ और न ही कोई आपत्तिजनक वस्तु बरामद हुआ है।

21. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि घटना की सूचना देने में साढ़े छह घंटे की देरी हुई, जिसके कारण अभियुक्तों के परिवारों के निर्दोष लोगों को फंसाकर वास्तविक घटना का बढ़ा-चढ़ाकर विवरण दर्ज किया गया, जो वास्तव में घटनास्थल पर मौजूद नहीं थे। विवेचना अधिकारी द्वारा घायल चश्मदीद गवाहों के बयान दर्ज करने में अस्पष्टीकृत देरी हुई, जिन्हें लिखित रिपोर्ट प्रस्तुत करने के समय सूचनाकर्ता द्वारा थाने लाया गया था। अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि वर्तमान पांचों अपीलकर्ताओं को यह निष्कर्ष निकालकर दोषी ठहराया गया था कि वे एक ही उद्देश्य से वहां थे, जबकि विधि विरूद्ध सभा बनाने के समान उद्देश्य को स्थापित करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है क्योंकि अपीलकर्ताओं में से किसी के पास से वर्तमान वाद में इस्तेमाल किए गए हथियार की कोई बरामदगी नहीं हुई है और न ही उनके कब्जे से कोई अन्य आपत्तिजनक सामग्री बरामद हुई है।

22. अपने प्रस्तुतीकरण के समर्थन में अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने ***सुबल घोराई बनाम पश्चिम बंगाल राज्य***, ***(2013) 4 एससीसी 607*** (प्रस्तर 53), ***चरण सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2004) 4 एससीसी 205*** (प्रस्तर 13, 14, 15), ***हरमंत लक्ष्मप्पा कुक्कडी बनाम कर्नाटक राज्य, (1994) 1 एससीसी 736, रॉय फर्नांडीस बनाम गोवा राज्य, (2012) 3 एससीसी 221*** (प्रस्तर 27 से 33), ***गजानंद एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य***: ***एआईआर 1954 एससी 695, कुना बनाम ओडिशा राज्य, (2018) 1 एससीसी 296*** (प्रस्तर 21 से 23***), राजीवन बनाम केरल राज्य, (2003) 3 एससीसी 355*** (प्रस्तर 12, 13, 14), ***सेकरन बनाम तमिलनाडु राज्य: (2024) 2 एससीसी 17*** (प्रस्तर 14 और 15) और ***सट्टे और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य: (2019) 106 एसीसी 469*** (प्रस्तर 28) में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा किया है।

23. *इसके विपरीत*, विद्वान ए.जी.ए. ने तर्क प्रस्तुत किया कि सूचनाकर्ता के साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि अभियुक्तों और सूचनाकर्ता के परिवार के बीच चुनावी प्रतिद्वंद्विता थी। सभी अभियुक्तगण सूचनाकर्ता के घर के सामने से गुजर रहे थे और सूचनाकर्ता तथा घायलों के परिवार के अन्य सदस्यों के साथ गाली-गलौज कर रहे थे, तभी उन्होंने विरोध किया और उसके बाद सभी अभियुक्तगणों द्वारा अंधाधुंध गोलीबारी की गई।

24. एफआईआर दर्ज करने में देरी को अच्छी तरह से समझाया गया है क्योंकि घटना के बाद लिखित रिपोर्ट तैयार की गई और उसके बाद सभी घायलों को एक ट्रैक्टर ट्रॉली में डालकर थाने लाया गया, जो घटनास्थल से लगभग 10-12 किलोमीटर दूर है और वहां पहुंचने में लगभग तीन घंटे लग गए। घटना शाम 6:30 बजे की है और तैयारी करने तथा लिखित रिपोर्ट तैयार करने में एक घंटा लग गया था। फिर, थाने पहुंचने में तीन घंटे

बीत गए। इसके बाद, एफआईआर 18.05.1997 को रात 1:00 बजे दर्ज की गई। इसलिए, सूचनाकर्ता की ओर से कोई जानबूझकर देरी नहीं की गई थी इस प्रकार, सूचनाकर्ता के लिए किसी ऐसे व्यक्ति को झूठा फंसाने का कोई कारण नहीं था, जो उपस्थित नहीं था।

25. अभियोजन पक्ष की ओर से, अभियुक्तों की भूमिका के संबंध में पर्याप्त साक्ष्य उपलब्ध थे और प्रत्येक अभियुक्त के पास मौजूद हथियारों का विवरण लिखित रिपोर्ट में और विचारण के दौरान दर्ज किए गए बयानों में स्पष्ट रूप से दिया गया था। इसलिए, घातक हथियारों से लैस सभी चौदह व्यक्तियों का एक ही उद्देश्य था कि वे घायल व्यक्तियों को गंभीर रूप से घायल करें और इस दौरान दो व्यक्तियों की मृत्यु हो गई और पाँच व्यक्ति घायल हो गए। यहाँ तक कि स्वतंत्र साक्षीगण ने भी उन सभी अभियुक्तों के नाम बताकर अभियोजन पक्ष के साक्ष्य का समर्थन किया, जिन्होंने घायल व्यक्तियों पर अंधाधुंध गोलीबारी की थी। जिस क्षण उन्होंने गोलीबारी शुरू की, उन्होंने एक विधि विरूद्ध सभा का गठन किया था और इसलिए, उन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 148, 149/307 और 149/302 के अंतर्गत अपराधों के लिए सही रूप से दोषी ठहराया गया। इस प्रकार, ये अपीलें खारिज किए जाने योग्य हैं और आक्षेपित निर्णय में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

26. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत प्रतिद्वन्द्वी दलीलों को सुनने के बाद, इस न्यायालय ने वाद के अभिलेख का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है।

<u>विलंबित एफ.आई.आर.</u>

27. अभियोजन पक्ष के अनुसार, चौदह अभियुक्तों द्वारा अंधाधुंध गोलीबारी की घटना 17.05.1997 को शाम 6:30 बजे घटी जब सूचनाकर्ता और अन्य घायल व्यक्ति अपने घर के बाहर बैठे थे और अभियुक्त आग्नेयास्त्रों से लैस होकर सूचनाकर्ता के घर से गुजर रहे थे और शराब पीते हुए उन्होंने उनको गालियाँ दीं। जब घायल व्यक्तियों ने इसका विरोध किया, तो उन्होंने उन पर अंधाधुंध गोलीबारी की और सात व्यक्तियों को गंभीर रूप से घायल कर दिया, जिनमें से दो की इन अभियुक्तों द्वारा पहुँचाई गई चोटों के कारण इलाज के दौरान मृत्यु हो गई। पी.डब्लू.-1 के कथन के अनुसार, घटना के बाद लोग एकत्र हुए थे, और उसके बाद, कुनेन्द्र सिंह नामक व्यक्ति द्वारा एक लिखित रिपोर्ट लिखी गई, जिसे सूचनाकर्ता ने अपने पास रख लिया और घायल व्यक्तियों को पुलिस स्टेशन ले जाने की व्यवस्था की गई, जो घटनास्थल से 10-12 किलोमीटर दूर था। व्यवस्था करने में लगभग एक घंटा लगा और घायल व्यक्तियों को सूचनाकर्ता सहित ट्रैक्टर द्वारा पुलिस स्टेशन ले जाया गया। सड़क की खराब स्थिति के कारण पुलिस स्टेशन पहुंचने में फिर से लगभग तीन घंटे लग गए। इसके बाद, पुलिस ने 18.05.1997 को रात 1:00 बजे एफआईआर दर्ज की थी। इस प्रकार, सूचनाकर्ता के अनुसार घटना के तुरंत बाद पुलिस स्टेशन जाने के दौरान लिखित रिपोर्ट पहले ही तैयार कर ली गई थी, जिसे वहां पहुंचने के बाद पुलिस अधिकारियों को सौंप दिया गया था, जिसके आधार पर पुलिस ने 18.05.1997 को रात 1:00 बजे एफआईआर दर्ज की है। सूचनाकर्ता के अनुसार, वह रात में लगभग 11-12 बजे पुलिस स्टेशन पहुंचा था। इसलिए, एफआईआर दर्ज करने में सूचनाकर्ता की ओर से कोई देरी नहीं हुई थी और देरी को पर्याप्त रूप

से समझाया गया है। इस प्रकार, एफआईआर दर्ज करने में लगभग साढ़े छह घंटे की देरी को अच्छी तरह से समझाया गया है, इसलिए अभियोजन पक्ष के प्रकरण पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

<u>विधि विरूद्ध सभा और समान उद्देश्य</u>

28. आगे बढ़ने से पहले, भारतीय दंड संहिता की धारा 141 और 149 पर ध्यान देना उचित होगा, जो इस प्रकार हैं:

"141. विधि विरूद्ध सभा।–*पाँच या अधिक व्यक्तियों का सभा "विधि विरूद्ध सभा" कहलाता है, यदि उस सभा में शामिल व्यक्तियों का समान उद्देश्य निम्नलिखित हो:*

1. केंद्र या किसी राज्य सरकार या संसद या किसी राज्य के विधानमंडल, या किसी लोक सेवक को, जो ऐसे लोक सेवक की वैध शक्ति का प्रयोग कर रहा हो, आपराधिक बल या आपराधिक बल के प्रदर्शन से भयभीत करना; या

2. किसी विधि या किसी विधिक आदेश के क्रियान्वयन का विरोध करना; या

3. कोई शरारत या आपराधिक अतिचार या अन्य अपराध करना; या

4. आपराधिक बल या आपराधिक बल के प्रदर्शन द्वारा किसी व्यक्ति को किसी संपत्ति पर कब्ज़ा लेने या प्राप्त करने के लिए, या किसी व्यक्ति को रास्ते के अधिकार, या पानी के उपयोग या अन्य अमूर्त अधिकार, जिसका वह कब्ज़ा या उपभोग करता है, के आनंद से वंचित करने के लिए, या किसी अधिकार या कथित अधिकार को लागू करने के लिए; या

5. आपराधिक बल या आपराधिक बल के प्रदर्शन द्वारा किसी व्यक्ति को वह करने के लिए मजबूर करना जिसे करने के लिए वह विधिक रूप से बाध्य नहीं है, या वह करने से चूकना जिसे करने का वह विधिक रूप से हकदार है।"

149. विधि विरूद्ध सभा का प्रत्येक सदस्य समान उद्देश्य के अभियोजन में किए गए अपराध का दोषी।–*यदि किसी विधि विरूद्ध सभा के किसी सदस्य द्वारा उस सभा के समान उद्देश्य के अभियोजन में कोई अपराध किया जाता है, या ऐसा अपराध जिसे उस सभा के सदस्यों को उस उद्देश्य के अभियोजन में किए जाने की संभावना के बारे में पता था, तो प्रत्येक व्यक्ति जो उस अपराध के किए जाने के समय उसी सभा का सदस्य है, उस अपराध का दोषी है।"*

29. ***चरण सिंह (पूर्वोक्त)*** में, सर्वोच्च न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा 141 और 149, समान उद्देश्य आदि की प्रयोज्यता के संबंध में निम्नलिखित टिप्पणियाँ की हैं, जो इस प्रकार हैं:

"13. उन अन्य लोगों के संबंध में जो दोनाली बंदूकों और देशी पिस्तौलों से लैस थे, प्रश्न भारतीय दंड संहिता की धारा 149 की प्रयोज्यता के संबंध में है। भारतीय दंड संहिता की धारा 149 का आधार रचनात्मक दायित्व है, जो इसके संचालन के लिए अनिवार्य शर्त है।

यहाँ ज़ोर समान उद्देश्य न कि समान आशय पर है। किसी विधिविरुद्ध सभा में मात्र उपस्थिति किसी व्यक्ति को तब तक उत्तरदायी नहीं बना सकती जब तक कि कोई समान उद्देश्य न हो और वह उस समान उद्देश्य से प्रेरित हो और वह उद्देश्य धारा 141 में वर्णित उद्देश्यों में से एक न हो। ***जहाँ विधिविरुद्ध सभा का समान***

उद्देश्य सिद्ध नहीं होता, वहाँ अभियुक्त व्यक्तियों को धारा 149 की सहायता से दोषी नहीं ठहराया जा सकता। निर्धारित करने का महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या सभा में पाँच या अधिक व्यक्ति शामिल थे और क्या उक्त व्यक्तियों के एक या अधिक समान उद्देश्य थे, जैसा कि धारा 141 में निर्दिष्ट है। विधि की सामान्य प्रस्तावना के रूप में यह प्रतिपादित नहीं किया जा सकता कि जब तक किसी व्यक्ति, जिस पर विधिविरुद्ध सभा का सदस्य होने का आरोप है, के विरुद्ध कोई प्रत्यक्ष कार्य सिद्ध नहीं हो जाता, तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि वह सभा का सदस्य है। केवल एक ही बात आवश्यक है कि उसे यह समझना चाहिए था कि सभा विधि विरूद्ध थी और धारा 141 के दायरे में आने वाले किसी भी कार्य को अंजाम दे सकती थी। "उद्देश्य" शब्द का अर्थ उद्देश्य या योजना है और इसे "समान" बनाने के लिए, इसे सभी द्वारा साझा किया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, उद्देश्य उन सभी व्यक्तियों के लिए समान होना चाहिए, जो सभा का गठन करते हैं, अर्थात्, वे सभी इसके बारे में जानते हों और इसमें सहमत हों। आपसी परामर्श के बाद स्पष्ट सहमति से एक समान उद्देश्य बनाया जा सकता है, लेकिन यह किसी भी तरह से आवश्यक नहीं है। इसे किसी भी स्तर पर सभा के सभी या कुछ सदस्यों द्वारा बनाया जा सकता है और अन्य सदस्य बस इसमें शामिल हो सकते हैं और इसे अपना सकते हैं। एक बार बन जाने के बाद, इसे समान बने रहने की आवश्यकता नहीं है। इसे किसी भी स्तर पर संशोधित, परिवर्तित या त्यागा जा सकता है। धारा 149 में प्रकट "समान उद्देश्य के कार्यान्वयन में" ***अभिव्यक्ति*** को सख्ती से ***"समान उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए" के समतुल्य माना जाना चाहिए***। उद्देश्य की प्रकृति के आधार पर इसे समान उद्देश्य से तुरंत जोड़ा जाना चाहिए। उद्देश्य की समानता होनी चाहिए और उद्देश्य केवल एक विशेष चरण तक ही मौजूद रह सकता है, उसके बाद नहीं। एक विधि विरूद्ध सभा के सदस्यों के उद्देश्य एक निश्चित सीमा तक समान हो सकते हैं, जिसके बाद उनके उद्देश्यों में भिन्नता हो सकती है और प्रत्येक सदस्य के पास अपने समान उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किए जाने वाले संभावित अपराध के बारे में जो ज्ञान है, वह न केवल उसके पास उपलब्ध जानकारी के अनुसार भिन्न हो सकता है, बल्कि इस सीमा तक भी भिन्न हो सकता है कि वह किस हद तक समान उद्देश्य साझा करता है, और इसके परिणामस्वरूप, एक ही सभा के विभिन्न सदस्यों पर भारतीय दंड संहिता की धारा 149 का प्रभाव भिन्न हो सकता है।"

14. "समान उद्देश्य" "समान आशय" से भिन्न है क्योंकि इसके लिए हमले से पहले किसी पूर्व सहमति और विचारों की एक समान बैठक की आवश्यकता नहीं होती। यदि प्रत्येक का उद्देश्य एक ही हो और उनकी संख्या पाँच या उससे अधिक हो और वे उस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए एक समूह के रूप में कार्य करें, तो यह पर्याप्त है। किसी समूह का "समान उद्देश्य" उसके सदस्यों के कार्यों और भाषा से, और आसपास की सभी परिस्थितियों पर विचार करके निर्धारित किया जाना चाहिए। यह समूह के सदस्यों द्वारा अपनाए गए आचरण से ज्ञात किया जा सकता है। ***घटना के किसी विशेष चरण में विधि विरूद्ध सभा का समान उद्देश्य क्या है, यह अनिवार्य रूप से एक तथ्यात्मक प्रश्न है जिसका निर्धारण समूह की प्रकृति, सदस्यों द्वारा धारण किए गए हथियारों और घटनास्थल पर या उसके आसपास सदस्यों के व्यवहार को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए।*** विधि के अंतर्गत यह आवश्यक नहीं है कि विधि विरूद्ध सभा के सभी प्रकरणों में, एक विधि विरूद्ध समान उद्देश्य के साथ, उसे कार्यान्वित किया जाए या सफल बनाया जाए। धारा 141 के स्पष्टीकरण के अनुसार, ***कोई भी सभा जो एकत्रित होने के समय विधि विरूद्ध नहीं था, बाद में विधि विरूद्ध हो सकता है। यह आवश्यक नहीं है कि***

किसी सभा को विधि विरूद्ध बनाने के लिए आवश्यक आशय या उद्देश्य शुरू से ही अस्तित्व में आ जाए। विधि विरूद्ध आशय बनाने का समय महत्वपूर्ण नहीं है। कोई भी सभा जो अपने आरंभ में या उसके बाद कुछ समय के लिए भी वैध हो, बाद में विधि विरूद्ध हो सकता है। दूसरे शब्दों में, यह घटना के दौरान घटनास्थल पर या तुरंत विकसित हो सकता है।

15. भारतीय दंड संहिता की धारा 149 दो भागों में विभाजित है। धारा के प्रथम भाग का अर्थ है कि समान उद्देश्य की प्राप्ति हेतु किया जाने वाला अपराध ऐसा होना चाहिए जो समान उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया गया हो। अपराध को प्रथम भाग के अंतर्गत आने के लिए, ***अपराध का उस विधिविरुद्ध सभा के समान उद्देश्य से प्रत्यक्ष संबंध होना आवश्यक है जिसका अभियुक्त सदस्य था।*** *यदि किया गया अपराध सभा के समान उद्देश्य के प्रत्यक्ष अभियोजन में न भी हो, तब भी वह धारा 141 के अंतर्गत आ सकता है, यदि यह माना जा सके कि अपराध ऐसा था जिसके बारे में सदस्यों को पता था कि वह किया जाना संभावित है और धारा के दूसरे भाग में यही अपेक्षित है। जिस उद्देश्य के लिए सभा के सदस्य निकले थे या जिसे प्राप्त करने की इच्छा रखते थे, वही उद्देश्य है। यदि सभी सदस्यों द्वारा वांछित उद्देश्य एक ही है, तो यह ज्ञान कि वह उद्देश्य ही है जिसका अनुसरण किया जा रहा है, सभी सदस्यों द्वारा साझा किया जाता है और वे इस बात पर सामान्य रूप से सहमत होते हैं कि इसे कैसे प्राप्त किया जाए और अब यही सभा का समान उद्देश्य है।* ***एक उद्देश्य मानव मन में होता है, और चूँकि यह केवल एक मानसिक प्रवृत्ति है, इसलिए कोई प्रत्यक्ष प्रमाण उपलब्ध नहीं हो सकता और आशय की तरह, इसे सामान्यतः उस कार्य से प्राप्त किया जाना चाहिए जो व्यक्ति करता है और उसके परिणाम से।*** *यद्यपि परिस्थितियों के आधार पर कोई निश्चित नियम नहीं बनाया जा सकता जिससे समान उद्देश्य का पता लगाया जा सके,* ***फिर भी इसे सभा की प्रकृति, उसके द्वारा धारण किए गए हथियारों और घटनास्थल पर, उसके पहले या बाद के व्यवहार से उचित रूप से प्राप्त किया जा सकता है।*** *धारा की दूसरी शाखा में प्रयुक्त शब्द "जानता था" एक संभावना से अधिक कुछ दर्शाता है और इसे "ज्ञात हो सकता था" का अर्थ नहीं दिया जा सकता। सकारात्मक ज्ञान आवश्यक है।* ***जब समान उद्देश्य के लिए कोई अपराध किया जाता है, तो सामान्यतः वह ऐसा अपराध होगा जिसके बारे में विधिविरुद्ध सभा के सदस्यों को पता था कि समान उद्देश्य के लिए ऐसा अपराध किया जाना संभावित है।*** *हालाँकि, यह विपरीत कथन को सत्य नहीं बनाता; ऐसे प्रकरण हो सकते हैं जो दूसरे भाग के अंतर्गत आते हैं लेकिन पहले भाग के अंतर्गत नहीं। धारा 149 के दोनों भागों के बीच के अंतर को नज़रअंदाज़ या मिटाया नहीं जा सकता। प्रत्येक वाद में यह निर्धारित किया जाना आवश्यक होगा कि किया गया अपराध प्रथम भाग के अंतर्गत आता है या यह ऐसा अपराध था जिसके बारे में सभा के सदस्यों को ज्ञात था कि समान उद्देश्य की प्राप्ति में ऐसा किया जाना संभावित है और वह द्वितीय भाग के अंतर्गत आता है। हालाँकि, ऐसे वाद भी हो सकते हैं जो प्रथम भाग के अंतर्गत आते हों; लेकिन समान उद्देश्य की प्राप्ति में किए गए अपराध, यदि हमेशा नहीं, तो सामान्यतः द्वितीय भाग के अंतर्गत आते हैं, अर्थात् वे अपराध जिनके बारे में पक्षकारों को ज्ञात था कि समान उद्देश्य की प्राप्ति में ऐसा किया जाना संभावित है। (देखें चिक्करंगे गौड़ा बनाम मैसूर राज्य [एआईआर 1956 एससी 731: 1956 क्रि एलजे 1365]।)"*

30. ***चिक्करंगे गौड़ा बनाम मैसूर राज्य, 1956 एससीसी ऑनलाइन एससी 65*** में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:

"10. हमारे लिए यह बिल्कुल स्पष्ट है कि विधि विरूद्ध सभा के समान उद्देश्य के संबंध में उच्च न्यायालय के निष्कर्ष के आधार पर, धारा 149 भारतीय दंड संहिता के साथ धारा 302 के अंतर्गत अपराध के लिए अपीलकर्ताओं की सजा बरकरार नहीं रखी जा सकती। धारा 149 का पहला आवश्यक तत्व विधि विरूद्ध सभा के किसी भी सदस्य द्वारा अपराध का किया जाना है; दूसरा आवश्यक भाग यह है कि अपराध समान उद्देश्य के अभियोजन में किया जाना चाहिए। हमारे समक्ष वाद में, उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों ने अभिनिर्धारित किया कि विधि विरूद्ध सभा का समान उद्देश्य केवल पुट्टे गौड़ा को दंड देना था। उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों ने यह नहीं माना कि हालांकि समान उद्देश्य पुट्टे गौड़ा को दंडित करना था, लेकिन विधि विरूद्ध सभा के सदस्य जानते थे कि उस समान उद्देश्य के अभियोजन में पुट्टे गौड़ा की हत्या होने की संभावना है। ऐसी स्थिति में, धारा 149 भारतीय दंड संहिता के साथ धारा 302 के अंतर्गत दोषसिद्धि विधि में उचित नहीं थी।

31. ***मिजाजी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1958 एससीसी ऑनलाइन एससी 95*** में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:

"6. यह धारा भारत के विभिन्न उच्च न्यायालयों में व्याख्या का विषय रही है, लेकिन प्रत्येक वाद का निर्णय उसके अपने तथ्यों के आधार पर किया जाना चाहिए। धारा के प्रथम भाग का अर्थ है कि समान उद्देश्य के अभियोजन में किया गया अपराध ऐसा होना चाहिए जो समान उद्देश्य को पूरा करने के उद्देश्य से किया गया हो। यह आवश्यक नहीं है कि समान उद्देश्य के बारे में विधि विरूद्ध सभा के सदस्यों की बैठक के अर्थ में कोई पूर्व-सहमति हो; यह पर्याप्त है यदि इसे सभी सदस्यों द्वारा अपनाया जाता है और सभी इसमें शामिल होते हैं। प्रकरण को प्रथम भाग के अंतर्गत आने के लिए, किए गए अपराध का उस विधि विरूद्ध सभा के समान उद्देश्य से सीधा संबंध होना चाहिए जिसके अभियुक्त सदस्य थे। भले ही किया गया अपराध सभा के समान उद्देश्य के प्रत्यक्ष अभियोजन में न हो, फिर भी यह धारा 149 के अंतर्गत आ सकता है यदि यह माना जा सके कि अपराध ऐसा था जैसा सदस्यों को पता था कि किया जाना संभावित है। 'जानना' अभिव्यक्ति का अर्थ केवल संभावना नहीं है, जैसे कि हो भी सकता है और नहीं भी। उदाहरण के लिए, यह सर्वविदित है कि जब किसी गाँव में भारी हथियारों से लैस पुरुषों का एक समूह किसी महिला को जबरदस्ती ले जाने के लिए निकलता है, तो किसी की हत्या होने की संभावना होती है और विधि विरूद्ध सभा के सभी सदस्यों को उस संभावना के बारे में पता होना चाहिए और वे धारा 149 के दूसरे भाग के अंतर्गत दोषी होंगे। इसी प्रकार, यदि व्यक्तियों का एक समूह भूमि पर जबरन कब्जा करने के लिए सशस्त्र जाता है, तो यह कहना भी उतना ही सही होगा कि उन्हें पता है कि हत्या होने की संभावना है यदि हथियार ले जाने की परिस्थितियाँ और विधि विरूद्ध सभा के सदस्यों का अन्य आचरण स्पष्ट रूप से उन सभी की ओर से इस तरह के ज्ञान की ओर इशारा करता है। .....[]।"

32. ***शंभू नाथ सिंह बनाम बिहार राज्य, 1959 एससीसी ऑनलाइन एससी 27*** में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है:

"6. दंड संहिता की धारा 149, किसी विधि विरूद्ध सभा के सदस्यों के उस सभा के समान उद्देश्य की प्राप्ति में किए गए कार्यों या ऐसे अपराधों के लिए प्रतिनिधिक दायित्व की घोषणा करती है, जिनके बारे में विधि विरूद्ध सभा के सदस्यों को पता था कि उस उद्देश्य की प्राप्ति में उनका किया जाना संभावित है। यदि कोई विधि विरूद्ध सभा किसी अपराध को करने के समान उद्देश्य से बनाया गया है और यदि वह अपराध विधि विरूद्ध सभा के किसी सदस्य द्वारा उस उद्देश्य की प्राप्ति में किया जाता है, तो सभा के सभी सदस्य उस अपराध के लिए प्रतिनिधिक रूप से उत्तरदायी होंगे, भले ही एक या अधिक, लेकिन सभी ने वह अपराध नहीं किया हो। पुनः, यदि कोई अपराध किसी विधि विरूद्ध सभा के सदस्य द्वारा किया जाता है और वह अपराध ऐसा है जिसके बारे में विधि विरूद्ध सभा के सदस्यों को पता था कि समान उद्देश्य की प्राप्ति में उसका किया जाना संभावित है, तो प्रत्येक सदस्य जिसे वह जानकारी थी, इस प्रकार किए गए अपराध का दोषी होगा। ***लेकिन एक विधि विरूद्ध सभा के सदस्यों का एक निश्चित बिंदु तक एक ही उद्देश्य हो सकता है, जिसके आगे उनके उद्देश्यों में भिन्नता हो सकती है, और प्रत्येक सदस्य के पास अपने समान उद्देश्य के लिए किए जाने वाले संभावित अपराध के बारे में जो ज्ञान है, वह न केवल उसके पास उपलब्ध सूचना के अनुसार भिन्न हो सकता है, बल्कि इस सीमा तक भी भिन्न हो सकता है कि वह किस हद तक एक ही उद्देश्य को साझा करता है*** *और इसके परिणामस्वरूप दंड संहिता की धारा 149 का प्रभाव एक ही विधि विरूद्ध सभा के विभिन्न सदस्यों पर भिन्न हो सकता है।"*

33. भारतीय दंड संहिता की धारा 141 और 149 के उपरोक्त प्रावधानों और उपरोक्त निर्णयों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों को ध्यान में रखते हुए, निम्नलिखित विधिक स्थिति उभरती है। कोई भी वैध सभा किसी भी समय अवैध हो सकता है। जिस क्षण इसका उद्देश्य अवैध हो जाता है और ऐसे अवैध सभा के किसी भी सदस्य द्वारा ऐसे समान उद्देश्य को आगे बढ़ाने में कोई अपराध किया जाता है, ऐसे अवैध सभा का प्रत्येक सदस्य उसी अपराध के लिए उत्तरदायी होगा। एक व्यक्ति, जिसे ऐसे अपराध के लिए उत्तरदायी ठहराया जाता है, को यह समझना आवश्यक है कि सभा अवैध था या अवैध हो गया था और इससे अपराध होने की संभावना थी। *'उद्देश्य'* शब्द का अर्थ उद्देश्य या डिजाइन है और इसे "समान" बनाने के लिए, इसे सभी द्वारा साझा किया जाना चाहिए। इस प्रकार, "*समान उद्देश्य*" का अर्थ है एक सभा का उद्देश्य, उद्देश्य या डिजाइन, जिसे सभी द्वारा साझा किया जाता है। "*समान उद्देश्य*" बनाने के लिए आपसी सहमति के बाद किसी स्पष्ट समझौते की आवश्यकता नहीं है। यह किसी भी स्तर पर सभा के सभी या कुछ सदस्यों द्वारा गठित किया जा सकता है और अन्य सदस्य इसमें शामिल होकर इसे अपना सकते हैं। घटना के किसी विशेष चरण में किसी विधि विरूद्ध सभा का क्या समान उद्देश्य है, यह अनिवार्य रूप से तथ्य का प्रश्न है, जिसका निर्धारण सभा की प्रकृति, सदस्यों द्वारा कौन से हथियार रखे गए थे और घटनास्थल पर या उसके आसपास उनका व्यवहार कैसा था, इस पर विचार करके किया जाना चाहिए। सभा के किसी भी सदस्य द्वारा किए गए प्रत्यक्ष कृत्य भी अपराध का एक बड़ा संकेत होंगे। यह आवश्यक नहीं है कि सभा को विधि विरूद्ध बनाने के लिए आवश्यक आशय या उद्देश्य, शुरू से ही अस्तित्व में आ जाए। विधि विरूद्ध इरादे के गठन का समय

महत्वपूर्ण नहीं है। एक सभा जो अपने आरंभ में या उसके बाद कुछ समय के लिए भी वैध है, बाद में विधि विरूद्ध हो सकती है। एक वैध सभा घटना के दौरान, स्वतःस्फूर्त रूप से विधि विरूद्ध सभा बन सकती है। एक उद्देश्य मानव मन में होता है, और यह केवल एक मानसिक दृष्टिकोण होने के कारण, कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं दिया जा सकता है। इरादे को आम तौर पर उन कार्यों से समझा जाना चाहिए, जो व्यक्ति करता है और उसके परिणाम से। यह विधि की एक स्थापित स्थिति है कि उन परिस्थितियों के बारे में कोई कठोर नियम नहीं बनाया जा सकता है जिनसे समान उद्देश्य को चुना जा सके। इसे उचित रूप से सभा की प्रकृति, उनके द्वारा रखे गए हथियारों और घटना स्थल पर या उसके पहले या बाद में उनके व्यवहार से एकत्र किया जा सकता है। जब समान उद्देश्य के अभियोजन में कोई अपराध किया जाता है, तो यह आम तौर पर एक ऐसा अपराध होगा जिसे विधि विरूद्ध सभा के सदस्यों को पता था कि समान उद्देश्य को आगे बढ़ाने के लिए किया जाने की संभावना है।

34. ***सुबल घोराई (पूर्वोक्त)*** में अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा भरोसा किया गया निर्णय वर्तमान वाद में लागू नहीं होता है क्योंकि इस बात का कोई साक्ष्य नहीं है कि कोई भी अपीलकर्ता केवल दर्शक था। बल्कि, सभी अभियुक्तों के विरुद्ध एक ही अभिकथन है कि वे घातक हथियारों से लैस थे और उन्होंने घायल व्यक्तियों पर अंधाधुंध गोलीबारी की थी और चोटें अपीलकर्ताओं द्वारा प्रयुक्त हथियारों से संबंधित हैं। अतः, उपरोक्त निर्णय अभियुक्तों के लिए किसी भी प्रकार से सहायक नहीं है।

35. इस न्यायालय की सुविचारित राय में, ***हनंत लक्ष्मप्पा कुक्कड़ी (पूर्वोक्त)*** के तथ्य पूर्णतः भिन्न हैं और वर्तमान वाद पर लागू नहीं होते हैं।

36. अब, वर्तमान वाद के तथ्यों पर वापस आते हुए, वर्तमान वाद में तीन घायल साक्षी हैं, जिन्होंने अभियोजन पक्ष के प्रकरण का स्पष्ट रूप से समर्थन किया था और अभिकथन किया था कि सभी अभियुक्तगण शराब पीते हुए घायल व्यक्तियों के घरों से गुजर रहे थे। जब घायलों ने इसका विरोध किया, तो उन सभी ने घायल व्यक्तियों पर अंधाधुंध गोलीबारी की थी। उक्त घटना में लगी चोटों के कारण दो व्यक्तियों की मृत्यु हो गई थी। इस प्रकार, अभियोजन पक्ष के साक्ष्य द्वारा समर्थित घटना के वर्णन से, यह स्पष्ट है कि सभी अभियुक्तगण एक ही उद्देश्य से थे और वे घातक हथियारों से लैस थे। वे घायल व्यक्तियों के घरों से गुजर रहे थे और उन्हें गालियां दे रहे थे, जिस पर घायल व्यक्तियों ने आपत्ति की थी। घायल व्यक्तियों द्वारा उठाई गई ऐसी आपत्तियों के जवाब में सभी अभियुक्तगण ने उन पर अंधाधुंध गोलीबारी की थी। घायल व्यक्तियों को लगी चोटें अभियुक्तगण द्वारा इस्तेमाल किए गए हथियारों के अनुरूप थीं। इस प्रकार, जिस क्षण अभियुक्तों ने घायल व्यक्तियों पर अंधाधुंध गोलीबारी शुरू की, वे एक समान उद्देश्य बन गए और अभियुक्तों का सभा एक विधि विरूद्ध सभा बन गया। अभियोजन पक्ष के साक्षीगण, अर्थात् पी.डब्लू.-1, पी.डब्लू.-2 और पी.डब्लू.-3, दृढ़ रहे और उनकी गवाही में ज़रा भी संदेह नहीं था। जहाँ तक पी.डब्लू.-9 (राज कुमार सिंह) और पी.डब्लू.-10 (विनोद कुमार सिंह) की गवाही का संबंध है, जिन्हें पक्षद्रोही घोषित किया गया था, इस तथ्य के बावजूद कि उन्हें पक्षद्रोही घोषित किया गया था, उन्होंने घटना को पूरी तरह से नकारा नहीं था। बल्कि, उन्हें स्वयं चोटें आई थीं, लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ बाहरी स्पष्ट कारणों से वे अभियुक्तों की संलिप्तता के संबंध में घटना

का पूरी तरह से समर्थन नहीं कर सके। पी.डब्लू.-1, पी.डब्लू.-2 और पी.डब्लू.-3 द्वारा अभियुक्तों की संलिप्तता का स्पष्ट रूप से वर्णन किया गया है। चिकित्सा परीक्षण रिपोर्ट भी अभियुक्तों/अपीलकर्ताओं द्वारा अंधाधुंध गोलीबारी के संबंध में अभियोजन पक्ष की कहानी का समर्थन करती है। अतः, हमारी सुविचारित राय में अभियोजन पक्ष अपीलकर्ताओं के विरुद्ध प्रकरण साबित करने में सफल रहा है और धारा 147, 148, 149/302 और 149/307 भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत अपराधों के लिए अपीलकर्ताओं को दोषसिद्ध करते हुए विचारण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश में कोई अवैधानिकता नहीं है। अतः विचारण न्यायालय के आक्षेपित निर्णय में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है और विचारण न्यायालय द्वारा अपीलकर्ताओं की दोषसिद्धि और दिये गये दण्ड की पुष्टि की जाती है।

37. उपरोक्त के मद्देनजर, हमें अपीलकर्ताओं की अपीलों में कोई गुण-दोष नहीं मिला। तदनुसार, आपराधिक अपील संख्या 4854/2016, आपराधिक अपील संख्या 4607/2016, आपराधिक अपील संख्या 5209/2016 और आपराधिक अपील संख्या 5734/2016 को एतद्द्वारा ***खारिज*** किया जाता है।

38. अपीलकर्ता राकेश सिंह, राज कुमार पुत्र ननकू सिंह और देवेन्द्र सिंह जेल में हैं। उन्हें विचारण न्यायालय द्वारा दिये गये और हमारे द्वारा पुष्टि किये गये दण्ड भोगने के लिए वहीं रखा जाएगा। अपीलकर्ता राजेंद्र उर्फ गजेंद्र सिंह और ओम प्रकाश ज़मानत पर हैं। इसलिए मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, शाहजहाँपुर को निर्देश दिया जाता है कि उन्हें अभिरक्षा में लेकर विचारण न्यायालय द्वारा दिये गये और हमारे द्वारा पुष्टि किये गये दण्ड भोगने के लिए जेल भेज दिया जाए।

39. कार्यालय को निर्देश दिया जाता है कि इस आदेश की एक प्रति अनुपालन हेतु एक सप्ताह के भीतर संबंधित न्यायालय को भेजें। अनुपालन रिपोर्ट संबंधित न्यायालय द्वारा एक माह की अतिरिक्त अवधि के भीतर इस न्यायालय को भेजी जाएगी।

अनुवादित

(2025) 4 ILRA 888

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 01.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव

आपराधिक अपील संख्या 10426 वर्ष 2024

कौशल **...अपीलकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **..प्रतिवादीगण**

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:
श्री जय शंकर मालवीय

प्रतिवादी के अधिवक्ता:
शासकीय अधिवक्ता

(ए) आपराधिक विधि - संज्ञान और समन - अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 - धारा 3(1)(डीए), 3(1)(डीएचए) और 3(2)(5क) - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 342, 504, 506 और 323 - संज्ञान का चरण - प्रथम दृष्टया प्रकरण और मजबूत संदेह समन के लिए पर्याप्त है - मजिस्ट्रेट को संज्ञान के चरण में दोषसिद्धि के लिए साक्ष्य की पर्याप्तता का आकलन करने की आवश्यकता नहीं है - "पर्याप्त आधार" का अर्थ प्रथम दृष्टया प्रकरण की संतुष्टि है, न कि दोष का साक्ष्य - संज्ञान लेना पूरी तरह से मजिस्ट्रेट के पास है, जिसे आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार का आकलन करना चाहिए, न कि दोषी ठहराने के लिए; दोषसिद्धि के लिए साक्ष्य की पर्याप्तता विचारण के लिए है - आदेशिका जारी करने के चरण में कोई विस्तृत कारण आवश्यक नहीं है। (प्रस्तर - 8,9,11,14,15)

एक कोचिंग सेंटर में अपीलकर्ता और सूचनाकर्ता के बीच झगड़ा हुआ। - अपीलकर्ता ने अपने साथियों के साथ मिलकर कथित तौर पर जातिसूचक गालियाँ दीं। - सार्वजनिक रूप से सूचनाकर्ता पर हमला किया और लूटपाट की। - सीसीटीवी फुटेज के बावजूद द.प्र.सं. की धारा 151 के अंतर्गत प्रारंभिक चालान - बाद में, भा.द.सं. और एससी/एसटी अधिनियम के अंतर्गत एफआईआर दर्ज की गई और आरोप पत्र दायर किया गया - संज्ञान लिया गया और समन जारी किया गया। (प्रस्तर -1,3,13)

अभिनिर्धारित: - अभिलेख पर मौजूद सामग्री से अपीलकर्ता के खिलाफ विचारण चलाने के लिए प्रथम दृष्टया प्रकरण सामने आया। मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान लेना और समन जारी करना उचित था। आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता, दुर्बलता या विकृति नहीं है। अपील में गुण-दोष का अभाव है। (प्रस्तर -13,17)

आपराधिक अपील खारिज। (ई-7)

<u>उद्धृत वादों की सूची:</u>

1. आर.पी. कपूर बनाम पंजाब राज्य, ए.आई.आर. 1960 एस.सी. 866,
2. हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल, 1992 एससीसी (सीआर.) 426,
3. बिहार राज्य बनाम पी.पी. शर्मा, 1992 एससीसी (सीआर.) 192
4. जेड.पी.डब्ल्यू. लिमिटेड बनाम मोहम्मद सराफुल हक एवं अन्य, 2005 एससीसी (सीआर.) 283)
5. निर्मलजीत सिंह बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (1973) 3 एससीसी 753
6. गुजरात राज्य बनाम अफरोज मोहम्मद हसनफत्ता, (2019) 20 एससीसी 539

अनधिकृत

7. सारा मैथ्यू बनाम आई.सी.वी.डी., (2014) 2 एससीसी 62

8. जगदीश राम बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य, एआईआर 2004 एससी 1734

9. रमेश चंद्र वैश्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2023) 17 एससीसी 615

(माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव द्वारा प्रदत्त)

1. यह आपराधिक अपील धारा 14-ए (1) अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम (संक्षेप में 'एससी/एसटी अधिनियम') के अंतर्गत अपीलकर्ता **कौशल** द्वारा विशेष न्यायाधीश (एससी/एसटी अधिनियम) मुरादाबाद द्वारा पारित दिनांक 2.12.2023 के संज्ञान/समन आदेश, आरोप पत्र और मुकदमा अपराध संख्या 482/2023, अंतर्गत धारा 342, 504, 506, 323 भा.द.सं. और 3(1)(डीए), 3(1)(डीएचए), 3(2)(5क) एससी/एसटी अधिनियम, थाना सिविल लाइंस, जिला मुरादाबाद से उत्पन्न विशेष सत्र विचारण संख्या 1771/2023 की संपूर्ण कार्यवाही को अपास्त करने की प्रार्थना के साथ प्रस्तुत किया गया है।

2. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के साथ-साथ राज्य के विद्वान ए.जी.ए. को सुना गया और संपूर्ण अभिलेख का अवलोकन किया गया।

3. अभियोजन पक्ष का प्रकरण, जैसा कि अभिलेख से पता चला है, यह है कि वर्तमान अपीलकर्ता और सूचनाकर्ता पक्ष सहित नामित अभियुक्तों के बीच एक कोचिंग सेंटर में विवाद हुआ था। यह अभिकथन किया गया है कि कोचिंग बंद करने के बाद जब सूचनाकर्ता दिन के समय अपने घर लौट रहा था, तो वर्तमान अपीलकर्ता ने अपने साथियों के साथ मिलकर उसे जातिसूचक गालियाँ दीं और गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी दी और उसे लात-घूंसों से पीटा भी और उसके पैसे भी अभियुक्तगण ने लूट लिए। उसी इलाके के कुछ स्वतंत्र व्यक्ति वहाँ पहुँचे और अभियुक्त भाग गए, हालाँकि, पुलिस ने उचित कार्रवाई नहीं की और वर्तमान अपीलकर्ता को केवल धारा 151 द.प्र.सं. के अंतर्गत चालान कर दिया गया, जबकि घटना सीसीटीवी फुटेज में कैद हो गई थी। हालाँकि, बाद में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई और विवेचना के बाद धारा 342, 504, 506, 323 भा.द.सं. और 3(1)(डीए), 3(1)(डीएचए), 3(2)(5क) एससी/एसटी अधिनियम के अंतर्गत आरोप पत्र दायर किया गया और उक्त अपराधों का न्यायालय द्वारा संज्ञान लिया गया और अभियुक्तगण को तदनुसार विचारण का सामना करने के लिए समन किया गया।

4. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि अपीलकर्ता निर्दोष है और उसे इस प्रकरण में झूठा फंसाया गया है। बेशक, छात्रों के दो समूहों के बीच मारपीट हुई थी, लेकिन यह कहना पूरी तरह से गलत है कि उक्त तीखी बहस के कारण अपीलकर्ता ने अपने साथियों के साथ मिलकर सूचनाकर्ता पर कोई हमला किया था। प्रत्यक्षदर्शी साक्षीगण ने अभियोजन पक्ष के प्रकरण का समर्थन नहीं किया है। इस वाद के सूचनाकर्ता/घायल को कोई गंभीर चोट नहीं आई है। डॉक्टर द्वारा किए गए एक्स-रे में कोई प्रतिकूलता नहीं

पाई गई है। अपीलकर्ता का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है। यह भी दलील दी गई है कि वर्तमान अपीलकर्ता के विरूद्ध एससी/एसटी अधिनियम के अंतर्गत भी अपराध नहीं बनता है।

5. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई अगली दलील यह है कि इस वाद के विवेचना अधिकारी ने इस आशय का कोई साक्ष्य नहीं जुटाया कि घटना सार्वजनिक दृश्य में किसी स्थान पर हुई थी और अपीलकर्ता द्वारा जानबूझकर अपमान या धमकी दी गई थी। यह भी दलील दी गई है कि विवेचना अधिकारी द्वारा जुटाए गए अभिलेख में इस बात का रत्ती भर भी साक्ष्य नहीं है कि अपीलकर्ता ने कथित अपराध सिर्फ इस कारण किया कि घायल एससी/एसटी समुदाय का सदस्य था। यह भी दलील दी गई है कि अपीलकर्ता ने कभी भी जाति संबंधी टिप्पणी करके उसे अपमानित करने के लिए गालियां नहीं दीं और न ही जान से मारने की धमकी दी और इस संबंध में अभियोजन पक्ष के संस्करण का समर्थन करने के लिए कोई स्वतंत्र साक्षी सामने नहीं आया। आक्षेपित आदेश में त्रुटिपूर्ण और अवैध है, जिसके कारण इस न्यायालय को हस्तक्षेप करना आवश्यक है।

6. इसके विपरीत, विद्वान एजीए ने अपील का विरोध किया और तर्क प्रस्तुत किया कि चूँकि अपीलकर्ता और घायल एक ही कोचिंग सेंटर में पढ़ रहे थे, इसलिए अपीलकर्ता अच्छी तरह जानता था कि घायल एससी/एसटी समुदाय से है। अभियोजन पक्ष के अनुसार, घटना एक सार्वजनिक सड़क पर हुई थी और वहाँ कई लोग मौजूद थे और साक्षीगण शानू और कमल हसन ने घटना देखी थी। इसलिए, अपराध एक ऐसे स्थान पर किया गया जो सार्वजनिक दृश्य में था। यह भी कहा गया है कि चूँकि आरोप पत्र भा.द.सं. की धारा 323 के अंतर्गत प्रस्तुत किया गया है, इसलिए अभियोजन पक्ष के प्रकरण के विरुद्ध कोई प्रतिकूल निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है, यदि घायल की एक्स-रे रिपोर्ट में कोई फ्रैक्चर नहीं पाया गया और उसे कोई गंभीर चोट नहीं आई। संबंधित न्यायालय ने अपने न्यायिक विवेक का प्रयोग करते हुए अभिलेख पर पर्याप्त साक्ष्य के आधार पर संज्ञान और समन आदेश पारित किया है। विचारण न्यायालय अपराध का संज्ञान लेने के चरण में साक्ष्यों की विस्तृत चर्चा में शामिल होने के लिए बाध्य नहीं था। इसलिए, अपील, जिसमें कोई बल नहीं है, खारिज किए जाने योग्य है।

7. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत प्रतिद्वन्द्वी प्रस्तुतियों पर विचार किया है और आक्षेपित आदेश सहित सम्पूर्ण अभिलेख का अवलोकन किया है।

8. यह सर्वविदित है कि संज्ञान लेने और अभियुक्त को समन करने के चरण में, मामले से निपटने वाले मजिस्ट्रेट/न्यायालय को केवल अपराध का संज्ञान लेने के उद्देश्य से न्यायिक विवेक का प्रयोग करना होता है, ताकि यह पता लगाया जा सके कि प्रथम दृष्टया अभियुक्त को समन करने का प्रकरण बनता है या नहीं। इस स्तर पर न्यायालय को यह पता लगाने के लिए अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का विश्लेषण करने की आवश्यकता नहीं है कि वाद दोषसिद्धि की ओर ले जा सकता है या नहीं। दोषसिद्धि के उद्देश्य के लिए सामग्री की पर्याप्तता आवश्यक नहीं है। यह भी स्थापित है कि जब अभियुक्त के विरुद्ध प्रबल संदेह उत्पन्न करने वाली सामग्री मौजूद हो, तब भी न्यायालय द्वारा संज्ञान लेना और अभियुक्त को समन करना न्यायोचित होगा।

न्यायालय/मजिस्ट्रेट को साक्ष्य का गुण-दोष के आधार पर विश्लेषण करने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि केवल इस दृष्टिकोण से साक्ष्य की जांच करनी है कि क्या किए गए अपराध के संबंध में आपराधिक कार्यवाही शुरू करने के लिए पर्याप्त आधार मौजूद हैं (**देखें: आर.पी. कपूर बनाम पंजाब राज्य, ए.आई.आर. 1960 एस.सी. 866, हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल, 1992 एससीसी (सीआर.) 426, बिहार राज्य बनाम पी.पी. शर्मा, 1992 एससीसी (सीआर.) 192 और झंडू फार्मास्युटिकल वर्क्स लिमिटेड बनाम मोहम्मद सराफुल हक और अन्य, 2005 एससीसी (सीआर.) 283)**।

9. इसके अलावा, **निर्मलजीत सिंह बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (1973) 3 एससीसी 753** में समन और वारंट जारी करने की कार्यवाही के लिए 'पर्याप्त आधार' क्या है, यह स्पष्ट किया गया है और इसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि धारा 203 में प्रयुक्त "पर्याप्त आधार" शब्दों का अर्थ इस संतुष्टि के रूप में लगाया गया है कि अभियुक्त के विरुद्ध उचित विश्वसनीयता के हकदार साक्षीगण के साक्ष्य द्वारा, न कि दोषसिद्धि के प्रयोजन के लिए पर्याप्त आधार पर प्रथम दृष्टया प्रकरण बनता है।

10. यह भी यहाँ विषय के दायरे से बाहर नहीं है कि अभियुक्त को समन करने के लिए पारित आदेश मजिस्ट्रेट की राय है और एक विस्तृत आदेश पारित करना या उसकी संतुष्टि के आधार बताना मजिस्ट्रेट से अपेक्षित नहीं है, हालाँकि समन आदेश एक सकारण आदेश होना चाहिए।

11. **गुजरात राज्य बनाम अफरोज मोहम्मद हसनफत्ता, (2019) 20 एससीसी 539** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दोहराया कि समन जारी करने के लिए वाद में आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार के बारे में मजिस्ट्रेट की संतुष्टि के प्रमाण के सख्त मानक की आवश्यकता नहीं है और ऐसी संतुष्टि केवल प्रथम दृष्टया साक्ष्य पर आधारित होनी चाहिए। अभियुक्त को समन करने से पहले, बताए गए तथ्यों को वैसे ही स्वीकार करना होगा जैसे वे पहली नज़र में दिखाई देते हैं। अभियुक्त को दोषी ठहराने के लिए साक्ष्य की पर्याप्तता, वाद के गुण-दोष और बचाव पक्ष की दलीलों का परीक्षण विचारण के चरण में, न कि आदेशिका जारी करने के चरण में की जानी चाहिए। क्या किसी साक्षी का बयान सुनी-सुनाई बात है और क्या यह "समकालीन व्याख्या" द्वारा समर्थित है और क्या यह "रिस गेस्टे" के अंतर्गत आता है और क्या यह स्वीकार्य है या नहीं, यह केवल विचारण के समय ही देखा जाना चाहिए।

12. अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम की धारा 3(1)(आर), 3(1)(एस) [जिसे धारा 3(1)(डीए) और धारा 3(1)(डीएचए) भी पढ़ा जाएगा] और 3(2)(वी) के अंतर्गत अपराध सिद्ध करने के लिए आवश्यक तत्वों का पता लगाने के लिए, उनके प्रावधान नीचे पुन: प्रस्तुत किए गए हैं:

***"3. अत्याचार के अपराधों के लिए दंड।** - (1) जो कोई, अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य न होते हुए, -*

(आर) किसी भी सार्वजनिक स्थान पर अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के सदस्य को अपमानित करने के इरादे से जानबूझकर अपमानित या धमकाता है;

(एस) किसी भी सार्वजनिक स्थान पर अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को जाति के नाम से गाली देता है।

(2) जो कोई, अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य न होते हुए, -

(v) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) के अंतर्गत दस वर्ष या उससे अधिक की अवधि के कारावास से दंडनीय कोई अपराध किसी व्यक्ति या संपत्ति के विरुद्ध यह जानते हुए करता है कि ऐसा व्यक्ति अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य है या ऐसी संपत्ति ऐसे सदस्य की है, तो उसे आजीवन कारावास और जुर्माने से दंडनीय होगा।

13. वर्तमान वाद में, अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री यह दर्शाने में सक्षम है कि घायल और अभियुक्त अपीलकर्ता एक ही कोचिंग सेंटर में पढ़ रहे थे, इसलिए, विवेचना अधिकारी द्वारा यह सही माना गया कि अपीलकर्ता अच्छी तरह जानता था कि घायल अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति समुदाय से है। इसके अलावा, अपराध दिन के समय एक सार्वजनिक सड़क पर कई व्यक्तियों की उपस्थिति में हुआ था और सूचनाकर्ता को अभियुक्तों द्वारा सड़क पर गलत तरीके से बंधक बनाया गया था। अभिलेख पर प्रथम दृष्टया साक्ष्य भी है कि घायल को अपीलकर्ता ने पीटा था, उसे गालियां भी दीं और जान से मारने की धमकी दी। हालांकि नामित चश्मदीद साक्षी शानू और कमल हसन ने विवेचना अधिकारी को दिए अपने बयानों में अभियोजन पक्ष के प्रकरण के प्रतिकूल कुछ बयान दिए हैं, लेकिन घायल / सूचनाकर्ता ने विवेचना अधिकारी द्वारा पूछताछ किए जाने पर अभियोजन पक्ष के प्रकरण का बहुत अच्छी तरह से समर्थन किया। घायल की चोट की रिपोर्ट भी अभिलेख पर उपलब्ध है। इसलिए, इस मामले में, अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों के अनुसार, इस स्तर पर यह नहीं कहा जा सकता है कि अपीलकर्ता के विरूद्ध लगाए गए अपराध आकर्षित नहीं होते हैं। अपीलकर्ता के खिलाफ विचारण के लिए आगे बढ़ने का प्रथम दृष्टया वाद बनता है। इसके अलावा, इस न्यायालय के समक्ष उठाए गए तर्कों का निर्णय करने के लिए साक्ष्य पेश करना आवश्यक होगा, जो उचित स्तर पर संबंधित न्यायालय के समक्ष उचित रूप से किया जा सकता है।

14. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **सारा मैथ्यू बनाम इंस्टीट्यूट ऑफ कार्डियो वैस्कुलर डिजीजेज, (2014) 2 एससीसी 62** में यह अभिनिर्धारित किया कि संज्ञान तब लिया जाता है, जब कोई मजिस्ट्रेट या न्यायालय किसी अपराध के संबंध में आपराधिक कार्यवाही शुरू करने के उद्देश्य से अपना विवेक प्रयोग करता है या न्यायिक संज्ञान लेता है। "संज्ञान" शब्द का यही विशेष अर्थ है और अध्याय XXXVI में भी जहाँ कहीं भी इसका उल्लेख है, उसे यही अर्थ दिया गया है।

15. इसके अलावा, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **जगदीश राम बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य, एआईआर 2004 एससी 1734** में व्यक्त किया गया दृष्टिकोण यह याद दिलाता है कि अपराध का संज्ञान लेना विशेष रूप से मजिस्ट्रेट के क्षेत्राधिकार का क्षेत्र है। इस स्तर पर, मजिस्ट्रेट को यह संतुष्ट होना होता है कि कार्यवाही

के लिए पर्याप्त आधार है या नहीं, न कि दोषसिद्धि के लिए पर्याप्त आधार है या नहीं। दोषसिद्धि के समर्थन में साक्ष्य पर्याप्त हैं या नहीं, इसका निर्धारण केवल विचारण के दौरान ही किया जा सकता है, जाँच के स्तर पर नहीं। अभियुक्त को आदेशिका जारी करने के चरण में, मजिस्ट्रेट को कारण दर्ज करने की आवश्यकता नहीं है।

16. इसके अलावा, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **रमेश चंद्र वैश्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (2023) 17 एससीसी 615** के वाद में यह टिप्पणी की है कि पहला प्रश्न जिसका उत्तर अपेक्षित है, वह यह है कि क्या अपीलकर्ता ने सार्वजनिक दृश्य के भीतर किसी स्थान पर शिकायतकर्ता को अपमानित करने या उसे धमकाने के इरादे से जाति संबंधी गालियां दीं थी।

17. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, मेरा विचार है कि अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई दलीलों में कोई बल नहीं है। संबंधित न्यायालय ने मामले का संज्ञान लेने और इस प्रकार अभियुक्त/अपीलकर्ता को प्रथम दृष्टया अपराधों के लिए विचारण का सामना करने के लिए समन करने में कोई गलती नहीं किया है। आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता, दुर्बलता या विकृति नहीं है। अपील में की गई प्रार्थना अस्वीकार की जाती है। आपराधिक अपील में गुण-दोष का अभाव होने के कारण इसे खारिज किया जाना चाहिए और तदनुसार इसे **खारिज** किया जाता है।

(2025) 4 ILRA 892

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 23.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1089/2024

डॉ. गोमती द्विवेदी **...पुनरीक्षणकर्ता**

बनाम

सी.बी.आई./ए.सी.बी. शाखा, लखनऊ **..प्रतिवादी**

पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता:

नवनीत अवस्थी, गौरव चंद कौशिक

प्रतिवादी के अधिवक्ता:

अनुराग कुमार सिंह

अनुवादित

आपराधिक विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 91 - बचाव से पूर्व के चरण में अभियुक्त द्वारा दस्तावेज़ प्रस्तुत करने के लिए आवेदन - अस्वीकृति न्यायोचित - सह-अभियुक्त के अभियोजन के लिए मंजूरी देने से इनकार करने का आदेश आरोप-पूर्व चरण में न तो प्रासंगिक है और न ही आवश्यक - आरोप विरचित करते समय अभियुक्त द्वारा आह्वान किए जाने पर धारा 91 द.प्र.सं. के अंतर्गत आने वाला दस्तावेज नहीं है - यह धारा अभियुक्त को आरोप विरचित होने से पूर्व बचाव के लिए दस्तावेज तलब करने का प्रवर्तनीय अधिकार प्रदान नहीं करता है - आवेदन के साथ दायर शपथपत्र का सत्यापन अधूरा और आकस्मिक पाया गया - न्यायिक अस्वीकृति व्यक्त की गई।

उड़ीसा राज्य बनाम देबेंद्र नाथ पाढ़ी, (2005) 1 एससीसी 568 के आलोक में, धारा 91 द.प्र.सं. के अंतर्गत अभियुक्त का अधिकार सामान्यतः केवल बचाव के चरण में उत्पन्न होता है। सह-अभियुक्त के अभियोजन के लिए मंजूरी देने से इनकार करने वाला दस्तावेज ऐसा नहीं है, जिसे आरोप-पूर्व चरण में धारा 91 के अंतर्गत प्रस्तुत करने के लिए बाध्य किया जा सके। पुनरीक्षण में गुण-दोष का अभाव था और इसे उचित रूप से खारिज किया गया था।

<u>निर्णयज विधि जिन पर चर्चा किया गया:</u>

1. उड़ीसा राज्य बनाम देबेंद्र नाथ पाढ़ी, (2005) 1 एससीसी 568

2. अपर्याप्तता और कमियों के संबंध में आपराधिक विचारण दिशानिर्देश, बनाम आंध्र प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2021) 10 एससीसी 598

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी द्वारा प्रदत्त)

1. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री नवनीत अवस्थी और प्रतिवादी-सीबीआई के विद्वान अधिवक्ता श्री अनुराग कुमार सिंह को सुना गया।

2. वर्तमान पुनरीक्षण दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 397/401 के अंतर्गत प्रस्तुत की गई है, जिसके माध्यम से पुनरीक्षणकर्ता द्वारा दिनांक 01.06.2024 को विशेष न्यायाधीश (भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम), सी.बी.आई. न्यायालय संख्या-3, लखनऊ द्वारा आपराधिक वाद संख्या 2370 सन् 2018 में पारित आदेश की वैधता को चुनौती दी गई है, जो आर.सी. संख्या 0062015ए0017 से उत्पन्न हुआ है तथा जिसमें भारतीय दण्ड संहिता की धारा 120-बी, 409 एवं 420 के साथ-साथ भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(1)(डी) सहपठित धारा 23(2) के अंतर्गत अपराध पंजीकृत किया गया था, जो थाना सी.बी.आई./ए.सी.बी., लखनऊ में दर्ज हुआ था और जिसके माध्यम से पुनरीक्षणकर्ता द्वारा दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 91 के अंतर्गत प्रस्तुत वह आवेदन, जिसमें राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केंद्र के सचिव को सह-अभियुक्त नसीम अहमद के अभियोजन हेतु अनुमति अस्वीकृत किए जाने के आदेश की प्रति अभिलेख पर प्रस्तुत करने हेतु निर्देश देने का निवेदन किया गया था, खारिज कर दिया गया है।

अनुवादित

3. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 91 के अंतर्गत आवेदन की एक प्रति पुनरीक्षण के समर्थन में दायर शपथपत्र के साथ अनुलग्नक संख्या 11 के रूप में संलग्न की गई है। यह आवेदन पुनरीक्षणकर्ता के शपथपत्र द्वारा समर्थित है। शपथपत्र में 52 प्रस्तर हैं और पुनरीक्षणकर्ता के शपथपत्र में अनेक निर्णयों का हवाला दिया गया है तथा निर्णयों के अंश उद्धृत किए गए हैं। विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष दायर शपथपत्र का सत्यापन खंड नीचे उद्धृत किया जा रहा है:-

"सत्यापन"

मैं, ऊपर नामित अभिसाक्षी, इसके द्वारा सत्यापित करता/करती हूँ कि शपथपत्र के प्रस्तर _____ से _____ की विषय-वस्तु मेरी अपनी जानकारी के अनुसार सत्य है, प्रस्तर _____ से _____ की विषय-वस्तु विधिक सलाह पर आधारित है तथा प्रस्तर _____ से _____ की विषय-वस्तु अभिलेख पर आधारित है।

इसका कोई भी भाग झूठा नहीं है और कोई भी महत्वपूर्ण बात छिपाई नहीं गई है, इसलिए हे ईश्वर, मेरी सहायता करें।"

4. यह अत्यंत व्यथित करने वाली बात है कि जब वाद शपथपत्रों के आधार पर दायर किए जाते हैं, तब भी अधिवक्तागण शपथपत्रों के सत्यापन और शपथ ग्रहण को एक खोखली औपचारिकता मानते हैं और न्यायालय में शपथपत्र दाखिल करने से पूर्व वे उस औपचारिकता को भी पूरा नहीं करते। यह भी अत्यंत व्यथित करने वाली बात है कि शपथ आयुक्त ने शपथपत्र को देखे बिना और यह पता लगाए बिना कि क्या अभिसाक्षी ने वास्तव में शपथपत्र की विषय-वस्तु का सत्यापन किया है, शपथपत्र का सत्यापन कर लिया। पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और शपथ आयुक्त के इस लापरवाह रवैये को न्यायालय कम से कम कतई स्वीकार नहीं कर सकती।

5. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 91 के अंतर्गत आवेदन के माध्यम से, गुण-दोष के आधार पर भी, पुनरीक्षणकर्ता ने राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केंद्र (एनआईसी) के सचिव को सह-अभियुक्त श्री नसीम अहमद के अभियोजन की मंजूरी देने से इनकार करने वाला आदेश विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने का निर्देश देने का अनुरोध किया है।

6. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 91 में निम्नलिखित प्रावधान है:-

"91. जब कभी कोई न्यायालय या पुलिस थाने का कोई प्रभारी अधिकारी यह समझता है कि ऐसे न्यायालय या अधिकारी द्वारा या उसके समक्ष इस संहिता के अधीन किसी विवेचना, जांच, विचारण या अन्य कार्यवाही के प्रयोजनों के लिए किसी दस्तावेज या अन्य वस्तु का प्रस्तुत किया जाना आवश्यक या वांछनीय है, तो ऐसा न्यायालय उस व्यक्ति को, जिसके कब्जे या शक्ति में ऐसा दस्तावेज या वस्तु होने का विश्वास है, समन जारी कर सकता है, या ऐसा अधिकारी लिखित आदेश जारी कर सकता है, जिसमें उससे यह अपेक्षा की जाएगी कि वह उसे प्रस्तुत करे या वह समन या आदेश में उल्लिखित समय और स्थान पर उपस्थित होकर उसे प्रस्तुत करे।"

7. विचारण न्यायालय ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के **उड़ीसा राज्य बनाम देबेंद्र नाथ पाधी: (2005) 1 एससीसी 568** में प्रतिवेदित निर्णय का हवाला दिया है, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि: -

"25. उपरोक्त प्रावधान के अंतर्गत परिकल्पित किसी भी दस्तावेज या अन्य वस्तु को यह पाए जाने पर पेश करने का आदेश दिया जा सकता है कि वह "संहिता के अंतर्गत विवेचना, जाँच, विचारण या अन्य कार्यवाही के प्रयोजन के लिए आवश्यक या वांछनीय है।" धारा की पहली और सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता दस्तावेज के आवश्यक या वांछनीय होने के बारे में है। *आवश्यकता या वांछनीयता को उस चरण के संदर्भ में देखा जाना चाहिए जब उत्पादन के लिए प्रार्थना की जाती है। यदि कोई दस्तावेज अभियुक्त के बचाव के लिए आवश्यक या वांछनीय है, तो आरोप विरचित करने के प्रारंभिक चरण में धारा 91 को लागू करने का सवाल ही नहीं उठता क्योंकि उस चरण में अभियुक्त का बचाव प्रासंगिक नहीं है। जब धारा विवेचना, जाँच, विचारण या अन्य कार्यवाही को संदर्भित करती है, तो यह ध्यान में रखना चाहिए कि धारा के तहत एक पुलिस अधिकारी न्यायालय को एक दस्तावेज के समन और उत्पादन के लिए आवेदन कर सकता है, जैसा कि धारा में उल्लिखित किसी भी चरण में आवश्यक हो सकता है।* ***जहां तक अभियुक्त का संबंध है, धारा 91 के अंतर्गत आदेश मांगने का उसका अधिकार सामान्यतः बचाव के चरण तक नहीं आता है। जब धारा दस्तावेज के आवश्यक और वांछनीय होने की बात करती है, तो यह निहित है कि आवश्यकता और वांछनीयता का परीक्षण उस चरण पर विचार करने के लिए की जानी चाहिए जब समन और उत्पादन के लिए ऐसा अनुरोध किया जाता है और जिस पक्ष ने इसे किया है वह पुलिस या अभियुक्त है। यदि धारा 227 के अंतर्गत जो आवश्यक और प्रासंगिक है वह केवल संहिता की धारा 173 के संदर्भ में प्रस्तुत अभिलेख है, तो अभियुक्त उस चरण में अपनी बेगुनाही साबित करने के लिए किसी भी दस्तावेज के उत्पादन की मांग करने के लिए धारा 91 को लागू नहीं कर सकता है।*** *धारा 91 के अंतर्गत दस्तावेज़ पेश करने के लिए समन न्यायालय द्वारा जारी किया जा सकता है और लिखित आदेश के द्वारा पुलिस थाने का प्रभारी अधिकारी भी दस्तावेज पेश करने का निर्देश दे सकता है। धारा 91 अभियुक्त को अपना बचाव साबित करने के लिए अपने पास मौजूद दस्तावेज़ पेश करने का कोई अधिकार नहीं देती। धारा 91 यह पूर्वधारणा करती है कि जब दस्तावेज़ पेश नहीं किया जाता है, तो उसे पेश करने के लिए बाध्य करने हेतु प्रक्रिया शुरू की जा सकती है।*

(बल दिया गया)

8. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **अपर्याप्तता और कमियों के संबंध में आपराधिक विचारण दिशानिर्देश, बनाम आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य:** (2021) 10 एससीसी 598 में प्रतिवेदित माननीय सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्णय पर भरोसा किया है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने एक राय व्यक्त की है कि धारा 207/208 द.प्र.सं. के अतर्गत बयानों, दस्तावेजों और भौतिक वस्तुओं की सूची प्रस्तुत करते समय मजिस्ट्रेट को यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि अन्य सामग्रियों जैसे बयानों या वस्तुओं/दस्तावेजों की एक सूची जब्त की जाए, लेकिन जिन पर भरोसा नहीं किया जाना चाहिए, उन्हें अभियुक्त को प्रस्तुत किया जाना चाहिए। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आपराधिक व्यवहार नियमावली, 2021 का प्रारूप तैयार किया है, जिसके नियम 4 में निम्नलिखित प्रावधान हैं: -

"4. द.प्र.सं. की धारा 173, 207 और 208 के अंतर्गत दस्तावेजों की आपूर्ति।" *- (i) प्रत्येक अभियुक्त को द.प्र.सं. की धारा 161 और 164 के अंतर्गत दर्ज साक्षीगण के बयान और द.प्र.सं. की धारा 207 और 208 के अनुसार*

विवेचना अधिकारी (आईओ) द्वारा विवेचना के दौरान जब्त किए गए और जिन पर भरोसा किया गया है, दस्तावेजों, भौतिक वस्तुओं और प्रदर्शों की सूची प्रदान की जाएगी।
स्पष्टीकरण: बयानों, दस्तावेजों, भौतिक वस्तुओं और प्रदर्शों की सूची में उन बयानों, दस्तावेजों, भौतिक वस्तुओं और प्रदर्शों का उल्लेख होगा जिन पर विवेचना अधिकारी भरोसा नहीं करता है।"

9. उपर्युक्त प्रारूप नियम 4 केवल द.प्र.सं. की धारा 161 और 164 के अंतर्गत दर्ज गवाहों के बयान और विवेचना के दौरान जब्त किए गए दस्तावेजों, भौतिक वस्तुओं और प्रदर्शों की सूची, जिन पर विवेचना अधिकारी ने द.प्र.सं. की धारा 207 और 208 के अनुसार भरोसा किया है, उपलब्ध कराने का प्रावधान करता है।

10. किसी सह-अभियुक्त के अभियोजन की मंजूरी देने से इनकार करने वाला आदेश, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **अपर्याप्तता और कमियों के संबंध में आपराधिक विचारण दिशानिर्देश, इन रे** (पूर्वोक्त) में उपरोक्त राय व्यक्त करते हुए उल्लिखित दस्तावेजों की किसी भी श्रेणी में नहीं आता है। यह प्रारूप नियम 4 में उल्लिखित दस्तावेजों की किसी भी श्रेणी में नहीं आता है, जिस पर पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने भरोसा किया है। इसलिए, पुनरीक्षणकर्ता को सचिव, राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केंद्र द्वारा धारा 91 द.प्र.सं. के अंतर्गत सह-अभियुक्त के अभियोजन का अनुमोदन देने से इनकार करने वाले आदेश को प्रस्तुत करने के लिए निर्देश मांगने का कोई अधिकार नहीं है।

11. उपर्युक्त चर्चा के आलोक में, मेरा यह सुविचारित मत है कि विशेष न्यायाधीश (भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम), सीबीआई न्यायालय संख्या 3, लखनऊ द्वारा पारित दिनांक 01.06.2024 के आदेश में कोई अवैधता नहीं है, जिसके कारण इस न्यायालय द्वारा अपने पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए इसमें हस्तक्षेप किया जाना आवश्यक हो। पुनरीक्षण में गुण-दोष का अभाव है और तदनुसार इसे ***खारिज*** किया जाता है।

(2025) 4 ILRA 895

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 10.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति महेश चन्द्र त्रिपाठी

माननीय न्यायमूर्ति प्रशान्त कुमार

आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका सं. 2611/2020

उस्मान अली **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उ.प्र. राज्य एवं अन्य **...विपक्षीगण**

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:

मो. अमान खान

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता:

ए.एस.जी.आई., जी.ए., मनीष सिंह, प्रह्लाद कुमार खरे, संजय कुमार यादव, सिकन्दर खान, सुषमा सिंह, विनीत संकल्प

आपराधिक विधि - भारत का संविधान, 1950 - धारा 226 एवं 243-आर(बी) - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 34, 120-बी, 147, 148, 149, 302 एवं 506 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धाराएं - 82, 173, 173(2), 173(8), 311, 319 एवं 482 - राष्ट्रीय अन्वेषण एजेंसी अधिनियम, 2008 - धारा 6, 6(2) एवं 6(5) - आपराधिक विधि संशोधन अधिनियम, 1932- धारा 7 - गैरकानूनी गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1967 - धारा 10(ए)(आई) एवं 15(1) - रिट याचिका - विविध अनुतोष की मांग करती है- मुख्यतः आक्षेपित उ.प्र. सरकार के आदेश को चुनौती देती है जिसमें वाद की विवेचना स्थानीय पुलिस से सीबीसीआईडी को स्थानांतरित की गई, याचिकाकर्ता की यूएपीए लागू करने की मांग पर विचार किए बिना और आगे वाद को एनआईए या सीबीआई जैसी केन्द्रीय एजेंसी को स्थानांतरित करने के लिए प्रार्थना की - प्रथम सूचना रिपोर्ट - हत्या और दंगे का अपराध - अभिकथन यह है कि याचिकाकर्ता के भाई की हत्या की गई थी - सक्षम प्राधिकारी ने एक आदेश पारित किया जिसके द्वारा वाद की विवेचना स्थानीय पुलिस से सीबीसीआईडी को स्थानांतरित की गई - रिट याचिका में चुनौती दी गई - निस्तारित - उ.प्र. राज्य सरकार को विधि के अनुसार नया निर्णय लेने के निर्देश के साथ - मामला अंतिमता को पहुंचा - अनुपालन में, उ.प्र. सरकार ने आक्षेपित आदेश पारित किया - अब वर्तमान कार्यवाहियों में याचिकाकर्ता द्वारा पुनः चुनौती दी गई - न्यायालय अनुच्छेद 226 के दायरे, विवेचना का स्थानांतरण, आगे की विवेचना की अनुमेयता, यूएपीए की प्रयोज्यता, आपराधिक प्रक्रिया शक्तियों जैसे विभिन्न विवाद्यकों पर चर्चा करते हुए, यह पाता है कि, - ऐसे स्थानांतरण केवल दुर्लभ, असाधारण वादों में होने चाहिए जहां राज्य की विवेचना में विश्वसनीयता या जनता का विश्वास न हो - न्यायालय ने दं.प्र.सं. के अधीन विद्यमान विधिक उपचारों की पर्याप्तता पर बल दिया, जिसमें धारा 311 और 319 के अधीन शक्तियां शामिल हैं, जो विचारण न्यायालयों को साक्षियों को समन करने या पुनः बुलाने और यदि सशक्त साक्ष्य उभरता है तो बिना अभियुक्तगण के विरुद्ध कार्यवाही करने की अनुमति देती हैं - इस स्तर पर हस्तक्षेप या स्थानांतरण को न्यायोचित ठहराने वाले कोई बाध्यकारी आधार न पाते हुए, और चल रहे विचारण को पूर्वाग्रहित होने से बचाने के लिए, न्यायालय ने अनुच्छेद 226 के अधीन अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से इनकार किया और रिट याचिका खारिज़ की - अभिनिर्धारित किया कि, (i) विवेचना को स्थानांतरित करने की शक्ति दुर्लभ और असाधारण वादों में होनी चाहिए जहां न्यायालय पक्षकारों के बीच न्याय करने और जनमानस में विश्वास स्थापित करने के लिए इसे आवश्यक पाता है - और (ii) दं.प्र.सं. (धारा 311 एवं 319) के अधीन उपलब्ध प्रक्रियात्मक सुरक्षा उपाय पर्याप्त थे - और इसलिए मामले में हस्तक्षेप करने से इनकार किया - अतः, चल रहे विचारण को पूर्वाग्रहित होने से बचाने के लिए रिट याचिका खारिज़ की गई - विचारण न्यायालय विधि के अनुसार कार्यवाही करने के लिए स्वतंत्र है। (प्रस्तर - 35, 38, 39, 40, 41)

रिट याचिका खारिज़। (ई-11)

<u>संदर्भित वादों की सूची</u>: -

1. मोहनलाल शामजी सोनी बनाम भारत संघ - 1991 (1) क्राइम्स 818 (एससी),
2. हीरालाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य - 1997 (2) क्राइम्स 634 (एमपी),
3. सुखपाल सिंह खैरा बनाम पंजाब राज्य - (2023) 1 एससीसी 289,
4. रमेश चंद्र श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य - (2021) 12 एससीसी 608,
5. पश्चिम बंगाल राज्य एवं अन्य बनाम कमिटी फॉर प्रोटेक्शन ऑफ डेमोक्रेटिक राइट्स, पश्चिम बंगाल एवं अन्य - 2010 (3) एससीसी 571,
6. विनय त्यागी बनाम इरशाद अली - (2013) 5 एससीसी 762,
7. भगवंत सिंह बनाम पुलिस आयुक्त - (1985) 2 एससीसी 537,
8. रूबाबुद्दीन शेख बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य - (2010) 2 एससीसी 200,
9. कबीर शंकर बोस बनाम पश्चिम बंगाल राज्य एवं अन्य - 2024 एससीसी ऑनलाइन एससी 3592,
10. के.वी.एस. राजेंद्रन बनाम अधीक्षक पुलिस सीबीसीआईडी साउथ जॉन चेन्नई एवं अन्य - 2013 एआईआर एससी (क्रिमिनल) 2103,
11. के. वडिवेल बनाम के. शांति एवं अन्य - 2014 एआईआर एससी 5064,
12. अरूप भूयन बनाम असम राज्य एवं अन्य - 2023 (8) एससीसी 745,
13. धर्मपाल बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य - 2016 (4) एससीसी 160,
14. रामपाल गौतम बनाम राज्य एवं अन्य - 2025 लाइवलॉ (एससी) 164,
15. हसनभाई वलीभाई कुरैशी बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य - 10. (2004) 5 एससीसी 347,
16. श्रीमती वंदना श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य - अपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 6973/2014 - दिनांक 23.04.2019 को निर्णीत।

(माननीय न्यायमूर्ति महेश चंद्र त्रिपाठी, एवं
माननीय न्यायमूर्ति प्रशांत कुमार द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री राकेश पांडे, जिनकी सहायता विद्वान अधिवक्ता मो. अमान खान ने किया, और राज्य-प्रत्यर्थीगण के लिए विद्वान ए.जी.ए.-। श्री परितोष मालवीय के साथ विद्वान ए.जी.ए. श्री संजय कुमार सिंह को सुना गया।

2. यह वर्तमान रिट याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन निम्नलिखित अनुतोष की मांग करते हुए प्रस्तुत की गई है:-

"क. प्रत्यर्थीगण से अभिलेख मंगवाने हेतु।

ख. दिनांक 26.06.2019 के आक्षेपित आदेश (इस रिट याचिका के अनुलग्नक सं.1 के माध्यम से) (पत्र सं.12 सी.आई.डी./6-पु-11-19-387एम/2018) को खारिज़ करते हुए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करने हेतु, जो उ.प्र. सरकार द्वारा अपने प्रधान सचिव गृह, पुलिस अनुभाग-11, गृह विभाग उ.प्र. के माध्यम से पारित किया गया, जिसके द्वारा इसने मुकदमा अपराध संख्या 238/2018, धारा 147, 148, 149, 302, 120बी, 34 भा.दं.सं. और आपराधिक विधि संशोधन अधिनियम की धारा 7, थाना चोपन, जिला सोनभद्र, उ.प्र. के अधीन वाद की विवेचना, थाना चोपन, जिला सोनभद्र की स्थानीय पुलिस से सी.बी.सी.आई.डी. को स्थानांतरित कर दी है और विधि विरूद्ध गतिविधि रोकथाम अधिनियम, 1967 के अधीन अपराधों को जोड़ने और राष्ट्रीय अन्वेषण एजेंसी अधिनियम, 2008 की धारा 6 के अधीन आवश्यक कार्रवाई अर्थात् राष्ट्रीय अन्वेषण एजेंसी अधिनियम, 2008 की धारा 6 (2) के अधीन परिकल्पित केन्द्र सरकार को प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए याचिकाकर्ता की प्रार्थना से संबंधित कोई आदेश पारित नहीं किया है, ताकि केन्द्र सरकार राष्ट्रीय अन्वेषण एजेंसी अधिनियम, 2008 की धारा 6 (3) के अधीन परिकल्पित निर्णय ले सके।

ग. परमादेश की प्रकृति में एक रिट जारी करने हेतु जो निर्देशित/आदेशित करे कि सी.बी. वाद सं.93/2019, सेक्टर वाराणसी की विवेचना, जो उपर्युक्त मुकदमा अपराध संख्या 238/2018, धारा 147, 148, 149, 302, 120बी, 34 भा.दं.सं. और आपराधिक विधि संशोधन अधिनियम की धारा 7, थाना चोपन, जिला सोनभद्र, उ.प्र. के अधीन से उद्भूत हुआ है, को सी.बी.सी.आई.डी. से केन्द्र सरकार की एजेंसी अर्थात् राष्ट्रीय अन्वेषण एजेंसी या केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो को स्थानांतरित किया जाए।

घ. राष्ट्रीय अन्वेषण एजेंसी अधिनियम, 2008 की धारा 6 (5) के अंतर्गत कार्रवाई करने के लिए याचिकाकर्ता की ओर से दिनांक 12.07.2019 (अनुलग्नक संख्या 33 देखें) के अभ्यावेदन पर निर्णय लेने के लिए भारत संघ, गृह मंत्रालय को आदेश देने हेतु परमादेश की प्रकृति में एक रिट करें।

ङ. मुकदमा अपराध संख्या 238/2018, धारा 147, 148, 149, 302, 120बी, 34 भा.दं.सं. और आपराधिक विधि संशोधन अधिनियम की धारा 7, थाना चोपन, जिला सोनभद्र, उ.प्र. के अधीन वाद की निष्पक्ष, तटस्थ, शीघ्र और समयबद्ध विवेचना सुनिश्चित करने हेतु, जिसकी वर्तमान में सी.बी.सी.आई.डी. सेक्टर वाराणसी द्वारा सी.बी. वाद सं.93/2019 सेक्टर वाराणसी के रूप में विवेचना की जा रही है, उपर्युक्त मुकदमा अपराध संख्या 238/2018 की विवेचना की निगरानी करके, जिसकी वर्तमान में सी.बी.सी.आई.डी. सेक्टर वाराणसी द्वारा सी.बी. वाद सं.93/2019 सेक्टर वाराणसी के रूप में विवेचना की जा रही है और उपर्युक्त मुकदमा अपराध संख्या 238/2018, वर्तमान में सी.बी. वाद सं.93/2019 सेक्टर वाराणसी की विवेचना में गलतियों और कमियों के लिए विवेचना अधिकारियों के विरुद्ध दंडात्मक और अनुशासनात्मक कार्रवाई का निर्देश दिया जाये।

च. यह सुनिश्चित करने हेतु कि याचिकाकर्ता को सत्र विचारण सं.18/19/2019 में, जो मुक़दमा अपराध संख्या 238/2018, धारा 147, 148, 149, 302, 120बी, 34 भा.दं.सं. और आपराधिक विधि संशोधन अधिनियम की धारा 7, थाना चोपन, जिला सोनभद्र से उद्भूत हुआ है, के अनुसरण में, साथ ही उपर्युक्त मुक़दमा अपराध संख्या 238/2018 की आगे की विवेचना में अनुसरण और भाग लेने में दबाव न डाला जाए, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता के जीवन और व्यक्ति के खतरे और संकट के कारण, जो याचिकाकर्ता का सत्र विचारण में साथ ही मुख्य न्यायिक न्यायालय सोनभद्र के समक्ष कार्यवाहियों में प्रतिनिधित्व कर रहे हैं और निष्पक्ष और तटस्थ विवेचना के लिए याचिकाकर्ता की ओर से विवेचना एजेंसियों और अन्य प्राधिकारियों के समक्ष अभ्यावेदन कर

रहे हैं, जिसके संबंध में याचिकाकर्ता ने प्रथम सूचना रिपोर्ट अर्थात् मुक़दमा अपराध संख्या 479/2019, धारा 506 भा.दं.सं. के अधीन दर्ज करके पुलिस को शिकायत की है, जो थाना रॉबर्ट्सगंज, जिला सोनभद्र में पंजीकृत की गई है (अनुलग्नक सं.32 के माध्यम से)।

छ. प्रत्यर्थीगण को निर्देश देने हेतु कि वे उन अभियुक्तों को गिरफ्तार करें जिनके नाम मुक़दमा अपराध संख्या 238/2018 की प्रथम सूचना रिपोर्ट में, धारा 147, 148, 149, 302, 120बी, 34 भा.दं.सं. और आपराधिक विधि संशोधन अधिनियम की धारा 7, थाना चोपन, जिला सोनभद्र के अधीन दिए गए थे और अन्य अभियुक्त अर्थात् सर्वेन्द्र मिश्रा @ शिवेन्द्र मिश्रा जिनकी संलिप्तता विवेचना के दौरान सामने आई और जो मुक़दमा अपराध संख्या 238/2018, धारा 147, 148, 149, 302, 120बी, 34 भा.दं.सं. और आपराधिक विधि संशोधन अधिनियम की धारा 7, थाना चोपन, जिला सोनभद्र, उ.प्र. (सी.बी. वाद सं.93/2019 सी.बी.सी.आई.डी. सेक्टर वाराणसी) की विवेचना में एक वांछित अभियुक्त के रूप में प्रकट हो रहे हैं, और आगे प्रत्यर्थीगण को निर्देश देने हेतु कि वे गिरफ्तारी के लिए अजमानतीय वारंटों का अनुपालन करें जो न्यायालय द्वारा दिनांक 12.12.2018 को जारी किए गए थे और राकेश जायसवाल और रवि जालान के विरुद्ध दं.प्र.सं. की धारा 82 के अधीन आदेश जो विद्वान सीजेएम सोनभद्र द्वारा दिनांक 22.12.2018 को जारी किए गए थे (अनुलग्नक सं.15 के माध्यम से) और मुक़दमा अपराध संख्या 19/2019, धारा 174-ए के अधीन, थाना चोपन, जिला सोनभद्र के अधीन वाद की विवेचना के समापन के लिए, दं.प्र.सं. की धारा 82 के अधीन उद्घोषणा के अनुसरण में अभियुक्त के उपस्थित न होने के लिए, जो उपर्युक्त मुक़दमा अपराध संख्या 238/2018, धारा 147, 148, 149, 302, 120बी, 34 भा.दं.सं. और आपराधिक विधि संशोधन अधिनियम की धारा 7, थाना चोपन, जिला सोनभद्र, उ.प्र. के अधीन के संबंध में जारी की गई थी।

ज. कोई अन्य रिट, आदेश या निर्देश जैसा यह माननीय न्यायालय वाद के तथ्यों और परिस्थितियों में उचित और समुचित समझे जारी करें।

झ. याचिकाकर्ता को याचिका का वाद व्यय प्रदान किया जाये।"

<u>वाद का तथ्यात्मक सार</u>

3. याचिकाकर्ता के सगे भाई अर्थात् इम्तियाज़ अहमद, जो शहरी क्षेत्र चोपन, जिला सोनभद्र के वर्तमान अध्यक्ष थे, की दिनांक 25.10.2018 की सुबह हत्या कर दी गई। तत्काल घटना की सूचना संबंधित थाने को दी गई, जिस पर दिनांक 25.10.2018 की प्रथम सूचना रिपोर्ट राकेश जायसवाल, रवि जालान और चार अज्ञात शूटरों के विरुद्ध मुक़दमा अपराध संख्या 238/2018, भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 148, 302, 120-बी और आपराधिक विधि संशोधन अधिनियम, 1932 की धारा 7, थाना चोपन, जिला सोनभद्र के अधीन पंजीकृत की गई। एक हमलावर/अभियुक्त कश्मीर पासवान उर्फ रौकेट को पुलिस द्वारा घटनास्थल से प्रतिबंधित 9 एमएम कार्बाइन और इसके कारतूसों के साथ गिरफ्तार किया गया। मामले की पुलिस द्वारा विवेचना की गई और विवेचना के दौरान भा.दं.सं. की धारा 149 और 34 जोड़ी गईं। कश्मीर पासवान सहित छह अभियुक्त व्यक्तियों को पुलिस द्वारा गिरफ्तार किया गया।

4. यह अभिलेख से भी परिलक्षित होता है कि नामित अभियुक्त राकेश जायसवाल ने दिनांक 25.10.2018 की प्रथम सूचना रिपोर्ट को खारिज़ करने के लिए आपराधिक विविध रिट याचिका सं.31379/2018 दायर करके इस न्यायालय से अनुरोध किया, जिसे खंडपीठ द्वारा दिनांक 01.11.2018 के आदेश के माध्यम से निम्नलिखित अवलोकनों के साथ खारिज़ कर दिया गया:-

"याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री दिलीप कुमार, जिनकी सहायता विद्वान अधिवक्ता श्री कार्तिकेय सरन ने किया, प्रत्यर्थी सं. 4 के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री मो. अमान खान, श्री राकेश प्रसाद और श्री तुषार कांत तथा राज्य-प्रत्यर्थीगण के लिए विद्वान ए.जी.ए. को सुना गया।

यह याचिका याचिकाकर्ता द्वारा मुकदमा अपराध संख्या 238/2018, धारा 147, 148, 302, 120-बी भा.दं.सं. और आपराधिक विधि संशोधन अधिनियम, 1932 की धारा 7, थाना चोपन, जिला सोनभद्र के अधीन वाद में प्रथम सूचना रिपोर्ट को खारिज़ करने की प्रार्थना के साथ दायर की गई है।

याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा तर्क प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता को सह-अभियुक्त रवि जालान के साथ मृतक द्वारा अपनी मृत्यु से पहले व्यक्त किए ज़े संदेह के आधार पर अभियुक्त के रूप में नामित किया गया है। मृतक को संदेह था कि याचिकाकर्ता ने उसकी मृत्यु का षड्यंत्र रचा होगा। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा अन्यत्र उपस्थिति का अभिवचन भी प्रस्तुत किया गया है। याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता घटना के स्थान पर नहीं पाया गया। घटना की तारीख को, वह एनजीटी की बैठक में शामिल होने के लिए दिल्ली गया था, अतः, चूंकि इस स्तर पर याचिकाकर्ता के विरुद्ध अभिलेख पर कोई विश्वसनीय साक्ष्य नहीं है, याचिकाकर्ता की गिरफ्तारी को तब तक स्थगित किया जाए जब तक विश्वसनीय साक्ष्य एकत्रित न हो जाए और अतः, आक्षेपित प्रथम सूचना रिपोर्ट खारिज़ किए जाने योग्य है।

इसकी विपरीत में प्रत्यर्थी सं. 4 के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री मो. अमान खान ने प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता के साथ-साथ प्रथम सूचना रिपोर्ट में नामित सह-अभियुक्तों ने अपराध के घटित होने में सक्रिय रूप से भाग लिया है। शव विच्छेदन रिपोर्ट इंगित करती है कि मृतक के शरीर पर दो आग्नेयास्त्र चोटें पाई गईं और याचिकाकर्ता संरक्षण का हकदार नहीं है जिसके संबंध में वर्तमान रिट याचिका में प्रार्थना की गई है और अतः, आक्षेपित प्रथम सूचना रिपोर्ट खारिज़ किए जाने योग्य नहीं है।

प्रथम सूचना रिपोर्ट के अवलोकन से, प्रथम दृष्ट्या यह नहीं कहा जा सकता कि कोई संज्ञेय अपराध नहीं बनता है। अतः, प्रथम सूचना रिपोर्ट को खारिज़ करने या याचिकाकर्ताओं की गिरफ्तारी को स्थगित करने का कोई आधार विद्यमान नहीं है।

तदनुसार, रिट याचिका खारिज़ की जाती है।

तथापि, यह उपबंध किया जाता है कि यदि, याचिकाकर्ता आज से तीन सप्ताह के भीतर संबंधित न्यायालय के समक्ष उपस्थित होता है और जमानत के लिए आवेदन करता है, तो उसी को अवर न्यायालयों द्वारा विधि के अनुसार शीघ्रता से निस्तारित किया जाए।"

5. इसी प्रकार, एक अन्य नामित अभियुक्त रवि जालान ने आपराधिक विविध रिट याचिका सं.962/2019 प्रस्तुत की और उसी को दिनांक 17.01.2019 के एक आदेश द्वारा निस्तारित किया गया। आदेश निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत है:-

"याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री आई.के. चतुर्वेदी, प्रत्यर्थी सं. 1 से 3 के लिए विद्वान ए.जी.ए. श्री पुरुषोत्तम मौर्य और प्रत्यर्थी सं.4 के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री अनिल तिवारी और श्री राकेश पांडे को सुना गया।

यह रिट याचिका याचिकाकर्ता द्वारा मुक़दमा अपराध सं. 0238/2018, धारा 120-बी, 302, 147, 148, 149, 34 भा.दं.सं. और आपराधिक विधि संशोधन अधिनियम की धारा 7, थाना चोपन, जिला सोनभद्र के अधीन अपराध के संबंध में दिनांक 25.10.2018 की प्रथम सूचना रिपोर्ट को खारिज़ करने की मांग करते हुए दायर की गई है।

याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता कुछ समय तक बहस करने के पश्चात् विचारण न्यायालय के समक्ष नियमित जमानत आवेदन दायर करने की स्वतंत्रता के साथ इस रिट याचिका को वापस लेना चाहते हैं। वह आगे प्रस्तुत करते हैं कि विचारण न्यायालय को निर्देश दिया जाए कि वह उनके नियमित जमानत आवेदन को उसी दिन या कम से कम अगली तिथि तक निर्णित करे।

परिवादी और राज्य अधिवक्ता के लिए उपस्थित अधिवक्ताओं को याचिका की वापसी के संबंध में कोई आपत्ति नहीं है। तथापि, वे प्रस्तुत करते हैं कि विचारण न्यायालय को मामले के सभी पहलुओं पर विचार करते हुए विधि के अनुसार जमानत आवेदन को निर्णित करने के लिए विवेकाधिकार दिया जाए।

उपर्युक्त के दृष्टिगत, याचिकाकर्ता को उपर्युक्त स्वतंत्रता के साथ इस रिट याचिका को वापस लेने की अनुमति दी जाती है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि याचिकाकर्ता द्वारा सक्षम न्यायालय के समक्ष कोई नियमित जमानत आवेदन दायर किए जाने की स्थिति में, सक्षम न्यायालय वाद के सभी पहलुओं पर विचार करते हुए यथाशीघ्र विधि के अनुसार वस्तुनिष्ठ रूप से उसी को निर्णित करेगा।

तदनुसार, याचिका निस्तारित की जाती है।

यह स्पष्ट किया जाता है कि इस न्यायालय ने वाद के गुण-दोष पर कोई राय व्यक्त नहीं की है और सक्षम न्यायालय विधि के अनुसार सख्ती से जमानत आवेदन को निर्णित करने के लिए स्वतंत्र होगा।"

6. दिनांक 12.12.2018 को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, सोनभद्र ने अभियुक्त रवि जालान, राकेश जायसवाल, रिंकू भारद्वाज, सूरज पासवान, अखिलेश ठाकुर, संतोष पासवान और शशि कुमार चंद्रवंशी के विरुद्ध गैर जमनातीय वारंट जारी किए। चूंकि गैर जमनातीय वारंटों का अनुपालन नहीं हुआ, भा.दं.सं. की धारा 174-ए के अधीन प्रथम सूचना रिपोर्ट भी दिनांक 30.01.2019 को दर्ज की गई, जो मुकदमा अपराध संख्या 0019/2019 के रूप में थाना चोपन, जिला सोनभद्र में पंजीकृत की गई। तत्पश्चात् सीजेएम ने नामित अभियुक्त राकेश जायसवाल, रवि जालान और अन्य अभियुक्तों के विरुद्ध दं.प्र.सं. की धारा 82 के अधीन कार्यवाही प्रारंभ की और दिनांक 22.12.2018 के आदेश के माध्यम से उन्हें फरार घोषित किया। सह-अभियुक्त अर्थात् सूरज

पासवान और रिंकू भारद्वाज को विशेष कार्य बल, वाराणसी यूनिट, उ.प्र. द्वारा कोलकाता, पश्चिम बंगाल से दिनांक 27.12.2018 को गिरफ्तार किया गया।

7. यह अभिकथित है कि जब नामित अभियुक्त इस न्यायालय से संरक्षण आदेश प्राप्त करने के अपने प्रयास में विफल रहे, तो उन्होंने विवेचना के स्थानांतरण के लिए प्रशासन के साथ हेराफेरी की, उस स्तर पर जब उनकी गिरफ्तारी को सुनिश्चित करने के लिए बलपूर्वक कदम उठाए गए थे और सक्षम प्राधिकारी ने दिनांक 22.02.2019 का एक आदेश पारित किया था, जिसके द्वारा मुक़दमा अपराध संख्या 238/2018 के वाद की विवेचना स्थानीय पुलिस से सीबीसीआईडी को स्थानांतरित कर दी गई। उक्त आदेश को याचिकाकर्ता द्वारा आपराधिक विविध रिट याचिका सं.6926/2019 में यह दावा करते हुए चुनौती दी गई कि स्थानांतरण का आदेश स्थानांतरण अनुरोधों के विचार के लिए प्रदान किए गए दिशानिर्देशों के उल्लंघन में पारित किया गया था और यही दुर्भावनापूर्ण इरादे से भी था। उक्त अनुतोष **श्रीमती वंदना श्रीवास्तव बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य** में खंडपीठ द्वारा प्रदान किए गए दिशानिर्देशों के आलोक में दिया गया था। निर्णय को इस आधार पर भी चुनौती दी गई कि दिशानिर्देश, अन्य बातों के साथ-साथ, उपबंध करते हैं कि सामान्यतः विवेचना के स्थानांतरण का कोई आदेश अभियुक्त द्वारा किए गए आवेदन पर नहीं होना चाहिए (वर्तमान मामले में, अभियुक्तों में से एक की पत्नी ने एक आवेदन किया था); कि प्रत्येक प्रयास होना चाहिए कि पहले यह सुनिश्चित किया जाए कि विवेचना संबंधित थाने/प्राधिकारी द्वारा निष्पक्ष और परिश्रमी तरीके से की जाती है; कि विवेचना के स्थानांतरण का आदेश पारित करने से पहले, विवेचना अधिकारी से विवेचना की स्थिति के संबंध में एक प्रतिवेदन और उच्च न्यायालय का आदेश, यदि कोई हो, वाद के संबंध में प्राप्त किया जाना चाहिए; कि यदि यह पाया जाता है कि विवेचना का स्थानांतरण आवश्यक है, तो आदेश विवेचना को स्थानांतरित करने वाले प्राधिकारी के पास उपलब्ध सामग्री के संदर्भ में ठोस कारणों से समर्थित होना चाहिए; और यह कि, यदि आवश्यक और अनुमेय हो, तो विवेचना के स्थानांतरण का आदेश पारित करने से पहले सूचनाकर्ता को एक अवसर प्रदान किया जाना चाहिए। उक्त रिट याचिका में, याचिकाकर्ता ने दंडात्मक धाराओं को सम्मिलित करने और विवेचना को राष्ट्रीय अन्वेषण एजेंसी को सौंपने के लिए एक निर्देश की भी प्रार्थना की थी।

8. उक्त रिट याचिका में, खंडपीठ ने यह राय व्यक्त की थी कि विवेचना के स्थानांतरण का आदेश एक गैर-आख्यापक आदेश था और यह स्थानांतरण के कारणों को प्रकट नहीं करता था, यद्यपि इसमें यह निहित था कि यही अभियुक्त व्यक्तियों में से एक की पत्नी श्रीमती आरती जायसवाल के अदिनांकित पत्र में कथित तथ्यों को ध्यान में रखते हुए किया गया था, जिन्होंने स्थानांतरण के लिए अनुरोध प्रस्तुत किया था। पक्षकारों के लिए विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के पश्चात्, खंडपीठ ने दिनांक 23.04.2019 को रिट याचिका को आंशिक रूप से स्वीकार किया था। सुविधाजनक संदर्भ के लिए, आदेश का कार्यकारी भाग यहां नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

"प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर विचार करने के पश्चात्, अभिलेख के अवलोकन पर, और ऊपर अभिलिखित कारणों पर, हमारा दृढ़ विचार है कि विवेचना के स्थानांतरण का आदेश, जो राज्य सरकार द्वारा पारित किया गया है,

कायम नहीं रखा जा सकता और, इसलिए, इसे जाना चाहिए, यद्यपि राज्य सरकार को एक नया आदेश पारित करने का अवसर दिया जाना चाहिए।

परिस्थितियों में, हम याचिका को आंशिक रूप से स्वीकार करना उचित समझते हैं। दिनांक 22.02.2019 के आदेश (रिट याचिका के अनुलग्नक सं.1) को खारिज़ किया जाता है। प्रधान सचिव (गृह), उ.प्र. सरकार, लखनऊ को एक निर्देश जारी किया जाता है कि वह प्रत्यर्थी सं.10 के अनुरोध पर, साथ ही याचिकाकर्ता के अनुरोध पर, यदि कोई हो, मामले की विवेचना के स्थानांतरण के लिए नए सिरे से विचार करे और जिन आधारों पर राज्य एक आदेश पारित करने का प्रस्ताव करता है, उन पर संबंधित जिले के संबंधित पुलिस प्राधिकारियों से टिप्पणियां मांगने के पश्चात् विधि के अनुसार नया निर्णय दें। उपर्युक्त कार्य, अधिमानतः, इस आदेश की प्रमाणित प्रति उसके समक्ष प्रस्तुत किए जाने की तिथि से छह सप्ताह की अवधि के भीतर पूरा किया जाएगा।

याचिका आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। वाद व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं है।"

9. अभिलेख आगे यह परिलक्षित करता है कि किसी भी पक्षकार ने दिनांक 23.04.2019 के आदेश पर आपत्ति नहीं की है और यह अंतिम हो गया है। नामित अभियुक्तों की पत्नियों श्रीमती आरती जायसवाल, राकेश जायसवाल की पत्नी और श्रीमती मीरा जालान, रवि जालान की पत्नी ने दिनांक 25.05.2019 को सीजेएम के न्यायालय में विविध आवेदन सं.48/2019 और 49/2019 प्रस्तुत किए और विद्वान सीजेएम ने दिनांक 25.05.2019 के आदेश के माध्यम से मुकदमा अपराध संख्या 238/2018 के वाद की विवेचना को स्थगित कर दिया था। उक्त दिनांक 23.04.2019 के आदेश के अनुसरण में, विशेष सचिव, गृह विभाग (पुलिस), अनुभाग-11, उ.प्र. सरकार लखनऊ ने पुलिस अधीक्षक, सोनभद्र को दिनांक 30.05.2019 का एक पत्र भेजा और वर्तमान वाद की विवेचना के स्थानांतरण के संबंध में एक प्रतिवेदन मांगा। उसके उत्तर में, पुलिस अधीक्षक, सोनभद्र ने दिनांक 07.06.2019 को अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। अंततः, प्रधान सचिव, गृह विभाग, उ.प्र. सरकार ने दिनांक 26.06.2019 को तत्काल वाद की विवेचना को थाना चोपन, जिला सोनभद्र से सीबीसीआईडी को स्थानांतरित करते हुए एक आदेश पारित किया, जिसे वर्तमान रिट याचिका में आक्षेपित किया गया है।

<u>याचिकाकर्ता की ओर से तर्क</u>

10. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री राकेश पांडे ने जोरदार ढंग से प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता मृतक का सगा भाई है, जिसकी दिनांक 25.10.2018 को दिन के उजाले में हत्या कर दी गई थी और प्रतिबंधित उग्रवादी संगठन अर्थात् झारखंड जन मुक्ति परिषद से संबंधित व्यक्ति हत्या में शामिल थे। उक्त हत्या नामित अभियुक्तों अर्थात् राकेश जायसवाल और रवि जालान के इशारे और उनके द्वारा रचे गए षड्यंत्र के तहत की गई थी। उक्त दावा इस आधार पर भी सुदृढ़ है कि एक हमलावर/अभियुक्त कश्मीर पासवान उर्फ रौकेट को घटनास्थल से प्रतिबंधित 9 एमएम कार्बाइन के साथ गिरफ्तार किया गया था और वह प्रतिबंधित उग्रवादी संगठन जेजेएमपी का एक क्षेत्र कमांडर था। मामले की पुलिस द्वारा विवेचना की गई और कश्मीर पासवान उर्फ रौकेट सहित छह अभियुक्त व्यक्तियों को पुलिस द्वारा गिरफ्तार किया गया।

11. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि विवेचना, जिसे सीबीसीआईडी को स्थानांतरित किया गया था, वास्तव में दो आरोपी व्यक्तियों राकेश जायसवाल और रवि जालान के निर्देश पर की गई थी। उनकी सरकार में 'कहने' की शक्ति थी और अत्यंत मनमाने तरीके से, उक्त वाद की विवेचना सीबीसीआईडी को स्थानांतरित कर दी गई। उन्होंने प्रस्तुत किया कि तत्काल मामला एक उपयुक्त वाद है, जिसमें विवेचना एक स्वतंत्र केन्द्रीय एजेंसी अर्थात् सीबीआई/एनआईए द्वारा की जानी है। सीबीसीआईडी के विवेचना अधिकारी ने शीघ्रता से दिनांक 29.02.2020 को सीजेएम के न्यायालय के समक्ष दं.प्र.सं. की धारा 173 (2) के अधीन एक पुलिस रिपोर्ट दायर की, जिसमें उन्होंने आठ व्यक्तियों के विरुद्ध आरोपपत्र प्रस्तुत किया और नामित अभियुक्त व्यक्तियों राकेश जायसवाल और रवि जालान को दोषमुक्त कर दिया। सीजेएम ने भी उसी दिन पुलिस रिपोर्ट का संज्ञान लिया था। अतः व्यथित होकर याचिकाकर्ता ने एक प्रतिवाद याचिका दायर की और उसी को सीजेएम द्वारा दिनांक 31.08.2020 को खारिज़ कर दिया गया। उक्त आदेश के विरुद्ध, याचिकाकर्ता ने आपराधिक पुनरीक्षण सं.08/2020 प्रस्तुत की, जिसे जिला एवं सत्र न्यायाधीश, सोनभद्र द्वारा दिनांक 20.02.2021 के आदेश के माध्यम से स्वीकार कर लिया गया।

12. उन्होंने जोरदार ढंग से प्रस्तुत किया कि जब दिनांक 20.03.2025 को मामले की सुनवाई हुई थी, माननीय न्यायालय द्वारा एक विशिष्ट प्रश्न उठाया गया कि आरोपपत्र दायर किए जाने के पश्चात् और संबंधित न्यायालय द्वारा संज्ञान लिए जाने के पश्चात् और मामले में विचारण के प्रारम्भ के पश्चात्, क्या आगे की विवेचना के लिए एक आदेश पारित किया जा सकता है। उक्त प्रश्न के उत्तर में, उन्होंने प्रस्तुत किया कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णयों की श्रृंखला में यह अभिनिर्धारित किया है कि आरोपपत्र दायर किए जाने और विचारण के प्रारम्भ के पश्चात् भी आगे की विवेचना का निर्देश दिया जा सकता है। अपनी प्रस्तुति के समर्थन में, उन्होंने **रामपाल गौतम बनाम राज्य एवं अन्य** में निर्णय पर भरोसा किया था, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **हसनभाई वलीभाई कुरैशी बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य** का समर्थन लेते हुए, यह दोहराया था कि आरोपपत्र दायर किए जाने और विचारण के प्रारम्भ के पश्चात् भी आगे की विवेचना का निर्देश दिया जा सकता है और यह प्रकाश डाला कि आगे की विवेचना के लिए प्रमुख विचार सत्य पर पहुंचना और वास्तविक न्याय करना है। सुविधाजनक संदर्भ के लिए, निर्णय का प्रस्तर-12 इसके पश्चात् पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

"12. प्रारंभ में, हम यह अभिलिखित कर सकते हैं कि आरोपपत्र दायर करने और विचारण के प्रारंभ होने के पश्चात् भी आगे की जांच संचालित करने का निर्देश विधि में अनुज्ञेय है जैसा कि इस न्यायालय के निर्णयों की श्रृंखला द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है। इस संबंध में हसनभाई वलीभाई कुरैशी बनाम गुजरात राज्य और अन्य (2004) 5 एसएससी 347 का संदर्भ दिया जा सकता है जिसमें इस न्यायालय ने यह अवलोकित किया कि आगे की जांच का निर्देश देने के लिए मुख्य विचारणीय बिंदु सत्य तक पहुंचना और वास्तविक सारवान न्याय करना है। न्यायालय ने आगे यह प्रेक्षित किया कि आगे की विवेचना और पुनः विवेचना पूर्णतः भिन्न आधार पर खड़े हैं। न्यायालय से किसी निर्देश से परे भी, पुलिस के लिए उचित जांच संचालित करना स्वतंत्र है, इस तथ्य के बावजूद कि न्यायालय पहले प्रस्तुत की गई पुलिस रिपोर्ट के आधार पर पहले ही संज्ञान ले चुका है। तथापि, यह चेतावनी जोड़ी गई कि ऐसी विवेचना का निर्देश देने से पूर्व, न्यायालय या संबंधित पुलिस

अधिकारी को अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री पर विवेक लगाना होगा और इस संतुष्टि पर पहुंचना होगा कि ऐसे आरोपों की जांच मामले के न्यायसंगत निर्णय के लिए आवश्यक है।"

13. यह आगे प्रस्तुत किया गया कि दूसरा प्रश्न, जो सुनवाई के दौरान उठता है, यह है कि क्या इस स्तर पर (विचारण का प्रारम्भ और कई साक्षियों का कथन) विवेचना को सीबीआई/एनआईए को स्थानांतरित किया जा सकता है? उक्त प्रश्न के उत्तर में, उन्होंने प्रस्तुत किया कि नई, नये सिरे से या पुनः विवेचना का आदेश देने की शक्ति संवैधानिक न्यायालयों में निहित होने के कारण, विचारण का प्रारम्भ और कुछ साक्षियों की परीक्षण उक्त संवैधानिक शक्ति के प्रयोग के लिए एक पूर्ण बाधा नहीं हो सकती, जिसका अभिप्रेत एक निष्पक्ष और न्यायसंगत विवेचना को सुनिश्चित करना है।

14. इस संबंध में, उन्होंने **धर्म पाल बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य** में निर्णय पर भरोसा किया था, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि संवैधानिक न्यायालय आगे की विवेचना या किसी अन्य विवेचना एजेंसी द्वारा विवेचना के लिए निर्देश दे सकते हैं। उद्देश्य केवल एक निष्पक्ष विवेचना और एक निष्पक्ष विचारण को सुनिश्चित करना है। निष्पक्ष विचारण काफी कठिन हो सकता है जब तक कि निष्पक्ष विवेचना न हो। निर्णय का प्रासंगिक भाग यहां नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

"20. यहां यह नोट किया जाए कि संवैधानिक न्यायालय आगे की विवेचना या किसी अन्य विवेचना एजेंसी द्वारा विवेचना के लिए निर्देश दे सकते हैं। उद्देश्य यह है कि एक निष्पक्ष विवेचना और एक निष्पक्ष विचारण होना चाहिए। निष्पक्ष विचारण काफी कठिन हो सकता है जब तक कि निष्पक्ष विवेचना न हो। **हम पूर्णतः सचेत हैं कि किसी अन्य एजेंसी द्वारा आगे की विवेचना के लिए निर्देश अत्यंत संयम से जारी किया जाना चाहिए परंतु इस वाद में चित्रित तथ्य हमें उक्त शक्ति का प्रयोग करने के लिए बाध्य करते हैं।** हम यह सोचने के लिए प्रवृत्त हैं कि न्याय का उद्देश्य आदेश देता है कि पीड़ित, मृतक के पति के कारण का उत्तर दिया जाना योग्य है ताकि न्यायहानि को टाला जाए। इसलिए, इस वाद में वाद का चरण निर्णायक कारक नहीं हो सकता।

21. हम आगे स्पष्ट कर सकते हैं। नई, नए सिरे से या पुनः विवेचना का आदेश देने की शक्ति संवैधानिक न्यायालयों में निहित होने के कारण, विचारण का प्रारंभ और कुछ साक्षियों का परीक्षण उक्त संवैधानिक शक्ति के प्रयोग में पूर्ण बाधा नहीं हो सकता जो निष्पक्ष एवं न्यायसंगत विवेचना सुनिश्चित करने के लिए है। यह कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता कि जिस प्रकार महासागर की केवल एक कसौटी है, लवण की कसौटी, उसी प्रकार न्याय का एक ही स्वाद है, बिना किसी भेदभाव के लोगों की पीड़ा का उत्तर देने का स्वाद। हम यह जोड़ने में शीघ्रता कर सकते हैं कि लोकतांत्रिक व्यवस्था में विनाश की संभावना है यदि कोई नागरिक यह अनुभव करता है कि एक निर्धन व्यक्ति द्वारा कहे गए सत्य को शायद ही कभी सुना जाता है। यह व्यर्थ नहीं कहा गया है कि सूर्य उदय होता है और सूर्य अस्त होता है, प्रकाश और अंधकार, शीत और वसंत आते और जाते हैं, यहां तक कि समय का क्रम भी क्रीड़ाशील है किंतु सत्य बना रहता है और जब न्याय किया जाता है तो दीप्तिमान होता है।। **यह विधि न्यायालय का आबद्ध कर्तव्य है कि सत्य को क़ायम रखे और सत्य का अर्थ है**

छल का अभाव, कपट का अभाव और एक अपराधिक विवेचना में वास्तविक और निष्पक्ष विवेचना, न कि ऐसी विवेचना जो स्वयं को दिखावटी बताती हो। यह स्वीकार्य नहीं है। यह सर्वोपरि ध्यान में रखा जाना चाहिए कि निष्पक्ष और सत्यनिष्ठ विवेचना अनिवार्य है। यदि विवेचना में दरार या खोखलापन है, तो क्या विवेचना में 'विश्वास' को सर्वमान्य सत्य माना जा सकता है? क्या इसमें वास्तविक विवेचना की पवित्रता या शुद्धता होगी? यदि विवेचना के संबंध में गंभीर संदेह उद्भूत होता है, तो क्या एक संवैधानिक न्यायालय को अपने हाथ बंद कर लेने चाहिए और इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेना चाहिए कि चूंकि विचारण प्रारंभ हो गया है, मामला इसके परे है? यह अभियोजन पक्ष की "शक्ति" है और यदि हम ऐसा कहने की अनुमति देते हैं, तो यह "निश्चित विचार" बन गया है, लेकिन हमारे विचार में संवैधानिक न्यायालयों के प्रभुत्व को केवल तर्क या वाद-विवाद से दबाया या दबाया नहीं जा सकता। निःसंदेह, संदेह का कोई न कोई आधार और बुनियाद होना चाहिए, न कि किसी की बेबुनियाद कल्पना। कोई सोच सकता है कि निष्पक्ष जाँच एक बहाना होगा, लेकिन ऐसा न करना, मानो झूठा दिखावा करना होगा। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, तथ्य स्वयंसिद्ध हैं और दुःखी नायक, एक निम्न वर्ग का व्यक्ति है। उसे यह भावना नहीं रखनी चाहिए कि वह "विधि के अधीन अनाथ" है।

22. उपरोक्त विश्लेषण के दृष्टिगत, अपील स्वीकृत की जाती है, उच्च न्यायालय का आदेश अपास्त किया जाता है, और यह निर्देशित किया जाता है कि सीबीआई विवेचना करेगी और विद्वान विचारण न्यायाधीश के समक्ष रिपोर्ट दायर करेगी। उक्त विवेचना रिपोर्ट पर विचारण न्यायाधीश द्वारा विधि के अनुसार विचार किया जाएगा। जब तक सीबीआई द्वारा रिपोर्ट दायर नहीं की जाती, विद्वान विचारण न्यायाधीश विचारण आगे नहीं बढ़ाएंगे। आदेश की एक प्रति श्री पी.के. डे, सीबीआई के विद्वान अधिवक्ता को आवश्यक कार्यवाही के लिए सौंपी जाए।"

(प्रभाव वर्दित)

15. अगला तर्क यह दिया गया कि न्यायालय के आगे के प्रश्न के संबंध में कि क्या तथ्य ऐसी प्रकृति के हैं, जिनमें मामले में अधिनियम, 1967 के दंडात्मक उपबंध लागू किए जाएं? इसके उत्तर में, उन्होंने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता के भाई की हत्या हमलावरों द्वारा की गई थी, जो एक प्रतिबंधित उग्रवादी संगठन जेजेएमपी से संबंधित थे और अभियुक्त कश्मीर पासवान, जो उक्त प्रतिबंधित संगठन का सदस्य था, और प्रतिबंधित 9 एमएम कार्बाइन के साथ घटनास्थल से गिरफ्तार किया गया था। शहरी क्षेत्र के अध्यक्ष का पद एक संवैधानिक पदाधिकारी है जैसा कि गैरकानूनी गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1967 की धारा 15 (1) की व्याख्या (ए) के अधीन परिकल्पित है, जिसे भारत के संविधान के अनुच्छेद 243-आर (बी) के साथ पढ़ा जाता है। विवेचना एजेंसी के समक्ष पर्याप्त सामग्री थी और फिर भी जानबूझकर उन्होंने अधिनियम, 1967 और एनआईए अधिनियम, 2008 के उपबंधों के आदेश की अवहेलना की। उन्होंने **अरूप भुइयान बनाम असम राज्य एवं अन्य** के वाद में निर्णय पर भरोसा किया था जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया है कि एक गैरकानूनी संघ की केवल सदस्यता अधिनियम, 1967 की धारा 10 (ए) (आई) के अधीन अपराध गठित करने के लिए पर्याप्त है।

16. उन्होंने अगला तर्क दिया कि संबंधित पुलिस ने अभियुक्त रिंकू भारद्वाज, कश्मीर कुमार रौकेट, सूरज पासवान, पवन चौहान, कृष्ण सिंह, रवि गुप्ता, धर्मेन्द्र कुमार और अरविंद केसरी के विरुद्ध उ.प. गैंगस्टर्स और असामाजिक गतिविधियां (निवारण) अधिनियम, 1986 की धारा 3 (1) के अधीन प्रथम सूचना रिपोर्ट भी पंजीकृत की थी। उपर्युक्त अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध आरोपपत्र दायर किया गया है और उक्त कार्यवाही में विचारण भी प्रारंभ हो गया है। यद्यपि उन्होंने इस सीमा तक स्वीकार किया कि वर्तमान मामले में पश्चातवर्ती कार्यवाही को याचिकाकर्ता द्वारा दं.प्र.सं. की धारा 482 के अधीन आपराधिक विविध आवेदन सं.1708/2025 में चुनौती दी गई है जिसे इस न्यायालय द्वारा दिनांक 20.03.2025 को तत्काल मामले की सुनवाई के समय टैग हटाया गया था।

राज्य-प्रत्यर्थीगण की ओर से तर्क

17. प्रतिवाद में, विद्वान ए.जी.ए.-। श्री परितोष मालवीय ने आक्षेपित आदेश का दृढ़ता से बचाव किया। उन्होंने तर्क दिया कि न्याय का हित सर्वोपरि है और और यह उस आवश्यकता से भी ऊपर हैं कि कार्यवाही में किसी प्रकार का विलम्ब न होने दिया जाए। याचिकाकर्ता ने पहले ही दं.प्र.सं. की धारा 482/भारतीय न्याय संहिता, 2023 की धारा 528 के अधीन आपराधिक विविध आवेदन सं.1708/2025 प्रस्तुत किया है जो मुक़दमा अपराध संख्या 238/2018 के वाद से उद्भूत वाद सं.108/2024 में सीजेएम द्वारा पारित दिनांक 19.09.2024 के आदेश को चुनौती देता है। उक्त आवेदन में, जो विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष लंबित बताया गया है, दिनांक 19.09.2024 के आदेश के प्रभाव और प्रवर्तन को स्थगित करने के लिए आगे की प्रार्थना की गई है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि यद्यपि, विद्वान एकल न्यायाधीश ने दिनांक 31.1.2025 के आदेश के माध्यम से उपर्युक्त आवेदन को तत्काल रिट याचिका के साथ जोड़ा था और निर्देश दिया था कि दोनों मामलों को एक साथ सुना जाना है। तदनुसार, मामले को माननीय मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा दिनांक 04.03.2025 के आदेश के माध्यम से इस पीठ को नामित किया गया था परंतु चूंकि विचारण पहले ही प्रारंभ हो गया है और पश्चातवर्ती दिनांक 19.09.2024 के आदेश को आवेदन सं.1708/2025 में चुनौती दी गई है, न्यायालय ने दिनांक 20.03.2025 को उक्त आवेदन को टैग हटा दिया। यह एक स्वतंत्र कार्यवाही है और विद्वान एकल न्यायाधीश भी मामले के उक्त पहलू का निर्णय करने में सक्षम है।

18. विद्वान ए.जी.ए.-। ने आगे प्रस्तुत किया कि पूर्व रिट याचिका सं.6926/2019 में, याचिकाकर्ता ने प्रत्यर्थीगण को कुछ दंडात्मक धाराओं को सम्मिलित करने और तत्काल वाद की विवेचना को एनआईए को सौंपने के लिए निर्देश जारी करने के लिए भी कहा था। उक्त रिट याचिका में, यह भी तर्क दिया गया कि याचिकाकर्ता के भाई की दिनांक 25.10.2018 की सुबह हत्या कर दी गई थी और गिरफ्तार अभियुक्तों में से एक कश्मीर पासवान एक प्रतिबंधित उग्रवादी संगठन अर्थात् जेजेएमपी का एक क्षेत्र कमांडर था। जेजेएमपी माओवादी कम्युनिस्ट सेंटर का एक गठन है, जो अधिनियम, 1967 की प्रथम अनुसूची के क्रम सं.27 के स्थान पर है। अधिनियम, 1967 की उपयुक्त दंडात्मक धाराओं को सम्मिलित करने के लिए संबंधित प्राधिकारी को निर्देश जारी करने के लिए भी प्रार्थना की गई थी। उक्त वाद में, राष्ट्रीय अन्वेषण एजेंसी अधिनियम, 2008 की धारा 6 का अनुपालन करने के लिए अनुरोध किया गया था। उक्त अनुरोध को खंडपीठ द्वारा दिनांक 23.4.2019 को स्वीकार नहीं

किया गया और दिनांक 22.02.2019 के आदेश को, जिसके द्वारा विवेचना सीबीसीआईडी को स्थानांतरित की गई थी, अपास्त कर दिया गया। तदनुसार, प्रधान सचिव (गृह), उ.प्र. सरकार, लखनऊ को निर्देश जारी किया गया कि वह प्रत्यर्थी सं.10 अर्थात् आरती जायसवाल के अनुरोध पर, साथ ही याचिकाकर्ता के अनुरोध पर नए सिरे से विचार करे और विधि के अनुसार नया निर्णय लिया जाना था। उक्त आदेश केवल इस पृष्ठभूमि में पारित किया गया था कि अधिनियम, 1967 की उपयुक्त धाराओं को शामिल करने के लिए प्रार्थना की गई राहत को तत्काल कार्यवाही में पुनः लागू नहीं किया जा सकता है, क्योंकि मुकदमेबाजी के पिछले दौर में ऐसी कोई राहत प्रदान नहीं की गई थी।

19. उन्होंने आगे तर्क दिया कि आक्षेपित आदेश याचिकाकर्ता को उचित अवसर देने के पश्चात् पारित किया गया था और यही ठोस आधार पर पारित किया गया था, अतः इस स्तर पर किसी हस्तक्षेप के लिए कोई वाद नहीं बनता। स्वीकार्यतः, विवेचना अधिकारी ने दिनांक 20.01.2019 को आठ अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध आरोपपत्र प्रस्तुत किया और सीजेएम द्वारा संज्ञान भी लिया गया। उन्होंने प्रस्तुत किया कि विचारण भी अत्यंत उन्नत स्तर पर है, जिसमें आठ अभियोजन साक्षियों का पहले ही परीक्षण किया जा चुका है। विवेचना को एनआईए में स्थानांतरित करने की प्रार्थना भी गलत धारणा पर आधारित और असमथर्नीय है। विवेचना के दौरान यह पाया गया कि पीड़ित को व्यक्तिगत शत्रुता के कारण गोली मारकर हत्या कर दी गई थी। कल्पना की किसी भी सीमा तक, इस स्तर पर यह नहीं माना जा सकता कि उक्त घटना संबंध/आतंकवादी गतिविधियों के कारण घटित हुई थी।

20. विद्वान ए.जी.ए. ने प्रस्तुत किया कि यद्यपि इस स्तर पर यह संवीक्षा का विषय वस्तु नहीं है परंतु साथ ही, न्यायालय विचार कर सकता है कि क्या विषय वस्तु में अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध अभिकथन अधिनियम, 1967 के अध्याय II और/या VI के अधीन कोई अपराध बनाते हैं और यदि हां, तो कौन सा अपराध या अपराध प्रकट होते हैं। अधिनियम, 1967 की धारा 15 'आतंकवादी कृत्य' के अपराध का उत्कीर्णन करती है और धारा 17 आतंकवादी कृत्य को घटित करने के लिए निधि एकत्रित करने के लिए दंडादेश निर्धारित करती है। धारा 18 आतंकवादी कृत्य को घटित करने या आतंकवादी कृत्य को घटित करने के लिए किसी कृत्य की तैयारी के लिए षड्यंत्र आदि के अपराध के लिए दंडादेश का उत्कीर्णन करती है। 'आतंकवादी कृत्य' वाक्यांश को अधिनियम, 1967 की धारा 15 के अधीन परिभाषित किया गया है। गतिविधि का मुख्य आशय, जिसमें अभियुक्त कथित रूप से शामिल थे, उनकी व्यक्तिगत शत्रुता के लिए मृतक की हत्या करना था। कल्पना की किसी भी सीमा तक, यही किसी नक्सल या आतंकवादी गतिविधियों से संबंधित नहीं थे या 'आतंकवादी कृत्य' की परिभाषा के अंतर्गत नहीं आते हैं। उन्होंने आगे दोहराया कि प्रारंभ में, आतंकवाद विरोधी दस्ते ने भी मामले की विवेचना की थी और सीजेएम के समक्ष दिनांक 14.11.2019 और 29.01.2020 को अपने प्रतिवेदन प्रस्तुत किए थे, जिनमें यह दावा किया गया था कि हत्या व्यक्तिगत शत्रुता के कारण की गई थी और यही किसी नक्सल/आतंकवादी गतिविधियों से संबंधित नहीं थी।

21. उन्होंने प्रस्तुत किया कि यह सुस्थापित विधि है कि संवैधानिक न्यायालय विचारण के किसी भी स्तर पर यहां तक कि कुछ साक्षियों के परीक्षण के पश्चात् भी किसी विवेचना एजेंसी द्वारा नये सिरे से विवेचना या नई विवेचना का आदेश दे सकते हैं। दं.प्र.सं. की धारा 173 (8) के अधीन आगे की विवेचना करने के लिए पुलिस अधिकारी की शक्ति असीमित है। (संदर्भ: **धर्मपाल बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य (उपरोक्त)**। उन्होंने आगे **के. वडिवेल बनाम के. शांति एवं अन्य** के वाद में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया था, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि दं.प्र.सं. की धारा 173 (8) के अधीन आगे की विवेचना का आदेश दिया जा सकता है जहां नई सामग्री प्रकाश में आती है जो पहले अभियुक्त न किए गए व्यक्तियों को आलिप्त या पहले से अभियुक्त व्यक्तियों को दोषमुक्त करेगी या यह विवेचना एजेंसी के संज्ञान में आता है कि पहले से किसी अपराध का अभियुक्त व्यक्ति के पास अच्छी अन्यत्र उपस्थिति है, तो यही विवेचना एजेंसी का कर्तव्य हो सकता है कि वह उसी की वास्तविकता की विवेचना करे और न्यायालय को एक प्रतिवेदन प्रस्तुत करे। उन्होंने प्रस्तुत किया कि जब पुलिस पहले ही आरोपपत्र दायर कर चुकी है तो आगे की विवेचना को *फिशिंग* और अतिगामी जाँच करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। विचारण से भिन्न एक समानांतर विवेचना कार्यवाही की अनुमति नहीं दी जा सकती जो निष्पक्ष विचारण में बाधा उद्भूत करेगी। इसके अतिरिक्त, विचारण न्यायालय के पास विवेचना के दौरान विवेचना अधिकारी द्वारा एकत्रित सामग्री के आधार पर अभियुक्त व्यक्तियों को समन करने की पर्याप्त शक्तियां हैं। उन्होंने यह भी जोरदार ढंग से तर्क दिया कि वाद के पूर्व दौर में याचिकाकर्ता ने न्यायालय को शिकायत की थी कि अभियुक्त की पत्नी के कहने पर, विवेचना की अनुमति नहीं दी जा सकती परंतु साथ ही अभिकथनों की सत्यता पर विचार करते हुए, जो लगाए गए थे, न्यायालय ने दोनों पक्षकारों को एक अवसर दिया और मामले को सचिव (गृह), उ.प्र. राज्य को संदर्भित किया गया।

22. उन्होंने प्रस्तुत किया कि कोई भी पक्षकार या तो अभियुक्त या परिवादी विवेचना एजेंसी को चुनने का हकदार नहीं है या किसी विशेष एजेंसी द्वारा किसी अपराध की विवेचना के लिए जोर नहीं दे सकता। (संदर्भ: **कबीर शंकर बोस बनाम पश्चिम बंगाल राज्य एवं अन्य**)। उन्होंने के**. वी. राजेन्द्रन बनाम पुलिस अधीक्षक सीबीसीआईडी साउथ जॉन चेन्नई एवं अन्य** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय पर भी भरोसा किया था, जिसमें, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह खारिज़ कर दिया कि जहां विवेचना पहले ही पूरी हो चुकी है और आरोपपत्र दायर कर दिया गया है, सामान्यतः उच्चतर न्यायालयों को विवेचना को पुनः खोलना नहीं चाहिए और इसे उस न्यायालय के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया जाना चाहिए जहां आरोपपत्र दायर किया गया है कि वह विधि के अनुसार मामले के साथ आगे बढ़े।

23. उन्होंने प्रस्तुत किया कि वर्तमान वाद में, आरोपपत्र प्रस्तुत किया जा चुका है। विचारण अत्यंत उन्नत स्तर पर है और अभियोजन साक्षियों का पहले ही परीक्षण किया जा चुका है। इसलिए, न्याय के हित में, विवेचना को इस विलंबित स्तर पर स्थानांतरित नहीं किया जा सकता। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि विवेचना के पश्चात्, केवल विचारण न्यायालय के पास विवेचना के दौरान विवेचना अधिकारी द्वारा एकत्रित सामग्री के आधार पर अभियुक्त को समन करने की शक्तियां हैं। मजिस्ट्रेट पुलिस द्वारा दी गई राय से बाध्य नहीं है और वह किसी अन्य को अभियुक्त के रूप में समन कर सकता है, जिसके विरुद्ध पुलिस द्वारा आरोपपत्र भी दायर नहीं किया

गया है। सूचनाकर्ता के पास विचारण न्यायालय से किसी को अभियुक्त के रूप में समन करने के लिए कहने की शक्ति नहीं है। उपयुक्त अनुतोष यह है कि विचारण न्यायालय में साक्षियों के कथनों को अभिलिखित करने के पश्चात् विचारण के उपयुक्त स्तर पर दं.प्र.सं. की धारा 319 के अधीन एक आवेदन प्रस्तुत किया जाए। (संदर्भ: **गोपाल प्रधान बनाम छत्तीसगढ़ राज्य**)। उन्होंने प्रस्तुत किया कि दं.प्र.सं./बीएनएसएस, 2023 एक पूर्ण संहिता है। यहां तक कि मजिस्ट्रेट भी संज्ञान के स्तर पर किसी अपराध का संज्ञान ले सकता है, विवेचना के दौरान विवेचना अधिकारी द्वारा एकत्रित सामग्री के आधार पर और वह आरोप विरचन के स्तर पर या उसके पश्चात् निर्णय की उद्घोषणा से पहले विचारण के स्तर पर आपराधिक धाराओं को भी बदल सकता है।

24. हमने न्यायपीठ में पक्षकारों के लिए विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा की गई प्रस्तुतियों को सुना और उन पर विचार किया है और अभिलेख पर रखी गई सामग्री का अवलोकन किया है।

न्यायालय द्वारा विश्लेषण

25. वर्तमान वाद में, याचिकाकर्ता ने यहां दिनांक 25.10.2018 को अपने भाई की हत्या के संबंध में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की, जो मुक़दमा अपराध संख्या 238/2018 के रूप में धारा 147, 148, 302, 120बी भा.दं.सं. और आपराधिक विधि संशोधन अधिनियम की धारा 7 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए थी। मामले की पुलिस द्वारा विवेचना की गई और तत्पश्चात् दिनांक 20.01.2019 को आठ अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध एक आरोपपत्र दायर किया गया। इस बीच, राज्य सरकार ने दिनांक 22.02.2019 के आदेश के माध्यम से मुक़दमा अपराध संख्या 238/2018 के वाद की विवेचना स्थानीय पुलिस से सीबी-सीआईडी को स्थानांतरित कर दी। उक्त आदेश को याचिकाकर्ता द्वारा आपराधिक विविध रिट याचिका सं.6926/2019 में चुनौती दी गई, जिसे दिनांक 23.4.2019 को आंशिक रूप से स्वीकार किया गया। पश्चात्वर्ती में, सीबीसीआईडी ने दिनांक 28.02.2020 को संतोष पासवान, शशि चंद्रवंशी और अखिलेश ठाकुर के विरुद्ध आरोपपत्र प्रस्तुत किया। आरोपपत्र दायर किए जाने के अनुसरण में, मजिस्ट्रेट ने दिनांक 29.02.2020 को अपराधों का संज्ञान लेने के लिए आगे बढ़ा। याचिकाकर्ता द्वारा दायर प्रतिवाद याचिका को विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा दिनांक 31.08.2020 के आदेश के माध्यम से खारिज़ कर दिया गया। व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने आपराधिक पुनरीक्षण सं.8/2020 दायर की, जिसे विद्वान सत्र न्यायालय द्वारा दिनांक 29.02.2020 के आदेश के माध्यम से स्वीकार किया गया।

26. उसके अनुपालन में, मजिस्ट्रेट ने दिनांक 19.05.2022 के आदेश के माध्यम से प्रतिवाद याचिका स्वीकार की और सीबीसीआईडी को आगे की विवेचना करने का निर्देश दिया। सीबीसीआईडी, सेक्टर वाराणसी ने आगे की विवेचना प्रारम्भ की परंतु कुछ समय के पश्चात्, पुलिस महानिदेशक, सीबीसीआईडी ने तत्काल वाद की विवेचना को सीबीसीआईडी सेक्टर प्रयागराज को स्थानांतरित कर दिया। विवेचना अधिकारी ने नामित अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध आरोपपत्र प्रस्तुत किया। इस बीच, याचिकाकर्ता ने रिट याचिका की लंबितता के दौरान दिनांक 29.06.2024 को एक आवेदन प्रस्तुत किया, जिसे मजिस्ट्रेट द्वारा दिनांक 19.09.2024 के आदेश के माध्यम से खारिज़ कर दिया गया। दिनांक 19.09.2024 के आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता द्वारा दं.प्र.सं. की धारा 482 के अधीन एक आवेदन प्रस्तुत किया गया, जो विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष लंबित है।

जिला एवं सत्र न्यायाधीश, सोनभद्र के न्यायालय में सत्र विचारण सं.19/2019 में विचारण प्रारम्भ हो गया है और आठ अभियोजन साक्षियों का पहले ही परीक्षण किया जा चुका है।

न्यायालय के समक्ष विवाद्यक

27. विचार के लिए उद्भूत होने वाला विवाद्यक यह है कि क्या दी गई स्थिति विवेचना को सीबीआई/एनआईए को स्थानांतरित करने के लिए निर्देश जारी करने का आधार प्रदान करती है?

28. न्यायालय के समक्ष विवाद्यक का मूल्यांकन करने के लिए, विषय पर वाद विधियों का संदर्भ अनिवार्य है जिनकी इसके पश्चात् चर्चा की जा रही है।

29. **रुबाबुद्दीन शेख बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य** में, सर्वोच्च न्यायालय ने एक वाद में विचार किया जहां नकली मुठभेड़ में व्यक्तियों की हत्या के संबंध में गुजरात राज्य के पुलिस विभाग के उच्च अधिकारियों के विरुद्ध अभिकथन था और गुजरात पुलिस ने विवेचना के समापन के पश्चात्, सक्षम आपराधिक न्यायालय के समक्ष एक आरोपपत्र प्रस्तुत किया। सर्वोच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि चूंकि मुठभेड़ की आड़ में हत्या करने के अभिकथन किसी तीसरे पक्ष के विरुद्ध नहीं हैं अपितु गुजरात राज्य के सर्वोच्च पुलिस कर्मियों के विरुद्ध हैं, राज्य विवेचना एजेंसी द्वारा संपन्न विवेचना संतोषजनक ढंग से नहीं की गई हो सकती है। इस प्रकार, न्याय करने और पीड़ितों के साथ-साथ जनता के मन में विश्वास स्थापित करने के लिए, राज्य पुलिस प्राधिकारी को विवेचना के साथ जारी रखने की अनुमति नहीं दी जा सकती जब अभिकथन और अपराध अधिकतर सर्वोच्च अधिकारियों के विरुद्ध थे। इस प्रकार, सर्वोच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि भले ही राज्य विवेचना एजेंसी द्वारा आरोपपत्र दायर किया गया हो, विवेचना को किसी अन्य स्वतंत्र विवेचना एजेंसी को स्थानांतरित करने के लिए कोई निषेध नहीं है।

30. **पश्चिम बंगाल राज्य एवं अन्य बनाम कमेटी फॉर प्रोटेक्शन ऑफ डेमोक्रेटिक राइट्स, वेस्ट बंगाल एवं अन्य** में सर्वोच्च न्यायालय की एक संविधान पीठ ने यह स्पष्ट किया है कि राज्य विवेचना एजेंसी से किसी अन्य विवेचना एजेंसी को विवेचना को स्थानांतरित करने की असाधारण शक्ति का प्रयोग संयम से, सावधानी से और असाधारण परिस्थितियों में किया जाना चाहिए जहां विवेचना में विश्वसनीयता प्रदान करना और विश्वास स्थापित करना आवश्यक हो जाता है या जहां घटना के राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय प्रभाव हो सकते हैं या जहां ऐसा आदेश पूर्ण न्याय करने और मौलिक अधिकारों को लागू करने के लिए आवश्यक हो सकता है। संविधान पीठ ने आगे यह अवलोकित किया कि पीड़ितों के साथ-साथ सामान्य रूप से जनता के मन में यह विश्वास स्थापित करना पर्याप्त नहीं था कि राज्य को विवेचना जारी रखने की अनुमति दी जानी चाहिए जब कथित अपराध उसके अधिकारियों के विरुद्ध थे। इन परिस्थितियों में, न्यायालय ने सीबीआई को विवेचना करने और एक प्रतिवेदन प्रस्तुत करने का निर्देश दिया।

31. **विनय त्यागी बनाम इरशाद अली** में, सर्वोच्च न्यायालय ने **भगवंत सिंह बनाम पुलिस आयुक्त** में निर्णय का संदर्भ देने के पश्चात्, इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है:

"तथापि, इन निर्णयों में कथित सिद्धांतों पर अपना विचारपूर्ण विचार देने के पश्चात्, हमारा विचार है कि मजिस्ट्रेट, जिसके समक्ष संहिता की धारा 173(2) के अधीन एक प्रतिवेदन दायर किया जाता है, विधि में "आगे की विवेचना" का निर्देश देने और पुलिस से एक आगे का या एक पूरक प्रतिवेदन प्रस्तुत करने की अपेक्षा करने के लिए सशक्त है। इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने भगवंत सिंह में, बिना किसी अनिश्चित शब्दों में, उस सिद्धांत को कथित किया है, जैसा कि पूर्वोल्लिखित है।

32. उक्त वाद में, प्रश्न उद्भूत हुआ था कि क्या एक मजिस्ट्रेट पुनः विवेचना के लिए निर्देश दे सकता है। उक्त विवाद्यक से निपटते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने यह अवलोकित किया है:

"इस स्तर पर, हम आपराधिक विधिशास्त्र के एक अन्य सुस्थापित सिद्धांत का भी उल्लेख कर सकते हैं कि उच्चतर न्यायालयों को संहिता की धारा 482 या यहां तक कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन "आगे की विवेचना", "नई" या "नए सिरे से" और यहां तक कि "पुनः विवेचना" का निर्देश देने का क्षेत्राधिकार है। "नई", "नए सिरे से" और "पुनः विवेचना" समानार्थक अभिव्यक्तियां हैं और विधि में उनका परिणाम समान होगा। उच्चतर न्यायालयों को विवेचना को एक एजेंसी से दूसरी एजेंसी में स्थानांतरित करने की शक्ति से भी निहित किया गया है, बशर्ते न्याय के उद्देश्य ऐसी कार्रवाई की मांग करते हों। निःसंदेह, यह भी एक सुस्थापित सिद्धांत है कि इस शक्ति का प्रयोग उच्चतर न्यायालयों द्वारा अत्यंत संयम से और बड़ी सतर्कता के साथ किया जाना चाहिए।

और पुनः:

"मजिस्ट्रेट को "आगे की विवेचना" का निर्देश देना चाहिए या नहीं यह पुनः एक मामला है जो किसी दिए गए वाद के तथ्यों पर निर्भर करेगा। विद्वान मजिस्ट्रेट या सक्षम क्षेत्राधिकार का उच्चतर न्यायालय किसी दिए गए वाद के तथ्यों पर, यथास्थिति, "आगे की विवेचना" या "पुनः विवेचना" का निर्देश देगा। जहां मजिस्ट्रेट केवल आगे की विवेचना का निर्देश दे सकता है, उच्चतर क्षेत्राधिकार के न्यायालय किसी दिए गए वाद के तथ्यों पर निर्भर करते हुए आगे की, पुनः विवेचना या यहां तक कि नए सिरे से विवेचना का निर्देश दे सकते हैं। यह न्यायालय का विशिष्ट आदेश होगा जो विवेचना की प्रकृति का निर्धारण करेगा।"

33. **धर्म पाल बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य (उपरोक्त)** में सर्वोच्च न्यायालय ने यह अवलोकित किया कि नई, नये सिरे से या पुनः विवेचना का आदेश देने की शक्ति संवैधानिक न्यायालयों में निहित होने के कारण, विचारण का प्रारम्भ और कुछ साक्षियों की परीक्षण उक्त संवैधानिक शक्ति के प्रयोग के लिए एक पूर्ण बाधा नहीं हो सकती जिसका अभिप्रेत एक निष्पक्ष और न्यायसंगत विवेचना को सुनिश्चित करना है। निर्णय का प्रासंगिक प्रस्तर यहां नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

"21. हम आगे स्पष्ट कर सकते हैं। **नई, नये सिरे से या पुनः विवेचना का आदेश देने की शक्ति संवैधानिक न्यायालयों में निहित होने के कारण, विचारण का प्रारम्भ और कुछ साक्षियों का परीक्षण उक्त संवैधानिक शक्ति के प्रयोग के लिए एक पूर्ण बाधा नहीं हो सकती जिसका अभिप्रेत एक निष्पक्ष और न्यायसंगत विवेचना को सुनिश्चित करना है।** यह कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता कि जिस प्रकार महासागर की केवल एक कसौटी है, लवण की कसौटी, उसी प्रकार न्याय का एक ही स्वाद है, बिना किसी भेदभाव के लोगों की पीड़ा का उत्तर देने का स्वाद। हम यह जोड़ने में शीघ्रता कर सकते हैं कि लोकतांत्रिक व्यवस्था में विनाश की संभावना है यदि कोई नागरिक यह अनुभव करता है कि एक निर्धन व्यक्ति द्वारा कहे गए सत्य को शायद ही कभी सुना जाता है। यह व्यर्थ नहीं कहा गया है कि सूर्य उदय होता है और सूर्य अस्त होता है, प्रकाश और अंधकार, शीत और वसंत आते और जाते हैं, यहां तक कि समय का क्रम भी क्रीड़ाशील है किंतु सत्य बना रहता है और जब न्याय किया जाता है तो दीप्तिमान होता है। **यह विधि के न्यायालय का परम कर्तव्य है कि वह सत्य को क़ायम रखे और सत्य का अर्थ है छल की अनुपस्थिति, धोखाधड़ी की अनुपस्थिति और आपराधिक विवेचना में एक वास्तविक और निष्पक्ष विवेचना, न कि एक विवेचना जो स्वयं को एक दिखावटी के रूप में प्रकट करती है। यह स्वीकार्य नहीं है। यह सर्वोपरि ध्यान में रखना होता है कि निष्पक्ष और सत्यनिष्ठ विवेचना अनिवार्य है।** यदि विवेचना में अवतलता या अवनति है, तो क्या विवेचना में 'विश्वास' को सुसमाचार सत्य माना जा सकता है? क्या इसमें एक वास्तविक विवेचना की पवित्रता या शुद्धता होगी? यदि विवेचना के संबंध में एक गंभीर संदेह उद्भूत होता है, तो क्या एक संवैधानिक न्यायालय को अपने हाथ बंद कर देने चाहिए और इस प्रस्ताव को स्वीकार करना चाहिए कि चूंकि विचारण प्रारंभ हो गया है, मामला इससे परे है? यह अभियोजन का "प्रमुख बल" है और यदि हम स्वयं को ऐसा कहने की अनुमति दें तो यह "दृढ़ धारणा" बन गया है किन्तु हमारे विचार में संवैधानिक न्यायालयों के सर्वोच्च अधिकार को सूक्तियों या विवादात्मक तर्कों द्वारा दबाया या घुटाया नहीं जा सकता। निश्चित रूप से, संदेह का कुछ आधार और नींव होनी चाहिए और किसी की असंयत कल्पना की कृति नहीं होनी चाहिए। कोई सोच सकता है कि एक निष्पक्ष विवेचना एक रामबाण होगी किन्तु ऐसा न करना मृत होने का नाटक करने जैसा होगा। जैसा कि पूर्व में कहा गया है तथ्य स्व-सिद्ध हैं और शोकाकुल नायक, निम्न वर्ग से संबंधित व्यक्ति। उसे यह भावना नहीं रखनी चाहिए कि वह "विधि के अधीन अनाथ" है।

34. **के.वी. राजेन्द्रन बनाम पुलिस अधीक्षक, सीबीसीआईडी साउथ जोन, चेन्नई एवं अन्य (उपरोक्त)** में सर्वोच्च न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने यह अवलोकित किया कि ऐसी विवेचना को स्थानांतरित करने की शक्ति दुर्लभ और असाधारण मामलों में होनी चाहिए जहां न्यायालय पक्षकारों के बीच न्याय करने और जनमानस में विश्वास स्थापित करने के लिए इसे आवश्यक पाता है, या जहां राज्य पुलिस द्वारा विवेचना में विश्वसनीयता का अभाव है और "एक निष्पक्ष, ईमानदार और पूर्ण विवेचना" के लिए यह आवश्यक है, और विशेष रूप से, जब राज्य एजेंसियों के निष्पक्ष कार्य में जनता के विश्वास को बनाए रखना अनिवार्य है। न्यायालय ने पूर्व के निर्णयों का संदर्भ देने के पश्चात्, निम्नानुसार निर्धारित किया है:

"उपर्युक्त के दृष्टिगत, विधि को इस प्रभाव तक संक्षिप्त किया जा सकता है कि न्यायालय केवल दुर्लभ और असाधारण मामलों में राज्य विवेचना एजेंसी से किसी अन्य स्वतंत्र विवेचना एजेंसी जैसे सीबीआई को विवेचना

को स्थानांतरित करने के लिए अपनी संवैधानिक शक्तियों का प्रयोग कर सकता है। जैसे कि जहां राज्य प्राधिकारियों के उच्च अधिकारी शामिल हैं, या अभिकथन स्वयं विवेचना एजेंसी के सर्वोच्च अधिकारियों के विरुद्ध है जिससे उन्हें विवेचना को प्रभावित करने की अनुमति मिलती है, और आगे यह कि न्याय करने और विवेचना में विश्वास स्थापित करने के लिए ऐसा करना इतना आवश्यक है या जहां विवेचना प्रथम दृष्ट्या कलंकित/पक्षपातपूर्ण पाई जाती है।"

(प्रभाव वर्दित)

निष्कर्ष

35. हम पाते हैं कि निर्णयों की श्रृंखला में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने लगातार यह अभिनिर्धारित किया है कि आरोपपत्र दायर किए जाने और विचारण के प्रारम्भ के पश्चात् भी आगे की विवेचना करने का निर्देश विधि में अनुमेय है। **हसनभाई वलीभाई कुरैशी बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य** (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह अवलोकित किया गया कि आगे की विवेचना का निर्देश देने के लिए प्रमुख विचार सत्य पर पहुंचना और वास्तविक ठोस न्याय करना है। सर्वोच्च न्यायालय ने आगे यह अवलोकित किया कि आगे की विवेचना और पुनः विवेचना पूर्णतः भिन्न आधार पर होती हैं। न्यायालय से किसी निर्देश के बिना भी, पुलिस के लिए यह स्वतंत्र है कि वह उचित विवेचना करे इस तथ्य के होते हुए भी कि न्यायालय ने पहले प्रस्तुत की गई पुलिस रिपोर्ट की शक्ति पर पहले ही संज्ञान ले लिया है। तथापि, एक चेतावनी जोड़ी गई कि ऐसी विवेचना का निर्देश देने से पहले, न्यायालय या संबंधित पुलिस अधिकारी को अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री पर अपना विवेक लगाना होता है और इस संतुष्टि पर पहुंचना होता है कि ऐसे अभिकथनों की विवेचना वाद के न्यायसंगत निर्णय के लिए आवश्यक है। निर्विवाद रूप से, परिवादी को मुख्य परीक्षण में अपने संपूर्ण वाद/शिकायतों को प्रस्तुत करने और विचारण न्यायालय से यह प्रार्थना करने की स्वतंत्रता थी कि अन्य अभियुक्त, जिन्हें विवेचना के दौरान छोड़ दिया गया था, के विरुद्ध भी दं.प्र.सं. की धारा 319 के अधीन उन्हें समन करके कार्यवाही की जानी चाहिए।

36. **रमेश चन्द्र श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दं.प्र.सं. की धारा 319 के अधीन विचारण न्यायालय की शक्ति पर विचार किया और यह अभिनिर्धारित किया कि दं.प्र.सं. की धारा 319 के अधीन शक्ति का प्रयोग करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा निर्धारित परीक्षण में अन्य बातों के साथ-साथ यह सिद्धांत शामिल है कि केवल जब साक्ष्य से किसी व्यक्ति के विरुद्ध सशक्त और ठोस साक्ष्य प्रकट होता है तो दं.प्र.सं. की धारा 319 के अधीन शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए।

37. इसी प्रकार का विचार व्यक्त करते हुए **सुखपाल सिंह खैरा बनाम पंजाब राज्य** में सर्वोच्च न्यायालय की पांच-न्यायाधीशों की पीठ ने स्पष्ट किया:

'"15. सबसे पहले, उपबंध को नोट करने के पश्चात्, **यह पूर्णतः स्पष्ट है कि न्यायालय को प्रदत्त शक्ति इस प्रभाव की है कि किसी अपराध की विवेचना या विचारण के दौरान, न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य के आधार**

पर, यदि न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि ऐसा साक्ष्य उन अभियुक्तों के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति की ओर संकेत करता है जिनका न्यायालय के समक्ष विचारण किया जा रहा है कि उन्होंने कोई अपराध किया है और ऐसे अभियुक्त को आरोपपत्र में या विचारण की प्रक्रिया में उस समय तक बाहर रखा गया था, तब भी उन्हें समन किया जा सकता है और उन अपराधों के लिए अभियुक्तों के साथ विचारण किया जा सकता है जो ऐसे व्यक्तियों द्वारा किए गए प्रतीत होते हैं जिन्हें अतिरिक्त अभियुक्त के रूप में समन किया गया है।

Xxx

23. **धारा 319 दंडा प्रक्रिया संहिता का सूक्ष्म अवलोकन दर्शाता है कि न्यायालय को किसी ऐसे व्यक्ति को समन करने की प्रदत्त शक्ति जो वाद में अभियुक्त नहीं है, तब है जब विचारण के दौरान साक्ष्य से प्रतीत हो कि ऐसे व्यक्ति की अपराध करने में भूमिका है। अतः, न्यायालय के लिए ऐसे व्यक्ति को समन करने के लिए स्वतंत्र होगा ताकि उसे अभियुक्त के साथ विचारित किया जा सके और ऐसी शक्ति विशेष रूप से न्यायालय की है। स्पष्टतः, जब ऐसी शक्ति अतिरिक्त अभियुक्त को समन करने और ऐसे व्यक्ति का विचारण पहले से अभियुक्तगण के साथ करने की है जिसके विरुद्ध विचारण चल रहा है, इसका प्रयोग विचारण के समापन से पूर्व करना होगा। वर्तमान वाद में "विचारण का समापन" का तात्पर्य साक्ष्य अभिलिखित करने के चरण तक नहीं माना जा सकता, बल्कि निर्णय की उद्घोषणा से पूर्व के चरण के रूप में समझा जाना है जैसा कि हरदीप सिंह [हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2014) 3 एससीसी 92: (2014) 2 एससीसी (क्रि) 86] में पहले ही अभिनिर्धारित किया जा चुका है क्योंकि निर्णय की उद्घोषणा पर विचारण समाप्त हो जाता है क्योंकि तब तक अभियुक्त का न्यायालय द्वारा विचारण किया जा रहा है।**

Xxx

33. मामले के उस दृष्टिकोण में, **यदि न्यायालय विचारण की प्रक्रिया में अभिलिखित साक्ष्य से यह पाता है कि कोई अन्य व्यक्ति शामिल है, तो दं.प्र.सं. की धारा 319 के अधीन अभियुक्त को समन करने की ऐसी शक्ति का प्रयोग दंडादेश आरोपित किए जाने से पहले और निर्णय के सभी पहलुओं में पूर्ण होने से पहले जो विचारण को समापन की ओर ले जाता है, उस प्रभाव का आदेश पारित करके किया जा सकता है। ऐसे निष्कर्ष पर पहुंचते समय जिसे भी दृष्टिगत रखा जाना है वह दं.प्र.सं. की धारा 319 की उप-धारा (4) की अपेक्षा है। उक्त उपबंध से यह स्पष्ट है कि यदि विद्वान सत्र न्यायाधीश अतिरिक्त अभियुक्त को समन करने की शक्ति का प्रयोग करता है, तो ऐसे व्यक्ति के संबंध में कार्यवाही नए सिरे से प्रारंभ की जाएगी और साक्षियों की अतिरिक्त अभियुक्त की उपस्थिति में पुनः परीक्षण करना होगा। एक वाद में जहां विद्वान सत्र न्यायाधीश साक्षियों के साक्ष्य को अभिलिखित करने के पश्चात् या दोषसिद्धि के निर्णय को उद्घोषित करने के पश्चात् परंतु दंडादेश आरोपित किए जाने से पहले दं.प्र.सं. की धारा 319 के अधीन शक्ति का प्रयोग करता है, तो वही साक्ष्य जो अभिलेख पर उपलब्ध है, दं.प्र.सं. की धारा 273 के दृष्टिगत नवीन जोड़े गए अभियुक्त के विरुद्ध उपयोग नहीं किया जा सकता। उस अभियुक्त के विरुद्ध जिसे पश्चात्वर्ती में समन किया गया है, एक नया विचारण आयोजित किया जाना है। तथापि दं.प्र.सं. की धारा 319 के अधीन आवेदन पर विचार करते समय, यदि विद्वान सत्र न्यायाधीश का निर्णय दोषसिद्धि के निर्णय को पारित करने से पहले या दंडादेश पर आदेश पारित करने से पहले अतिरिक्त अभियुक्त को समन करने का है, तो निर्णय को उद्घोषित करके विचारण के समापन को रोका जाना आवश्यक है और दं.प्र.सं. की धारा 319 के अधीन आवेदन का निस्तारण किया जाना आवश्यक है**

और केवल तभी निर्णय के समापन के साथ, या तो अन्य अभियुक्तों को दोषसिद्ध करने के लिए जो न्यायालय के समक्ष थे और उन्हें दंडादेश देने के साथ आगे बढ़ा जा सकता है। यह इसलिए है क्योंकि दं.प्र.सं. की धारा 319 के अधीन शक्ति का प्रयोग केवल दोषसिद्धि और दंडादेश के निर्णय को पारित करके विचारण के समापन से पहले ही किया जा सकता है।

Xxx

38. उपर्युक्त सभी कारणों के लिए, हम नीचे संदर्भित प्रश्नों का उत्तर देते हैं।

39.(I) क्या विचारण न्यायालय के पास दं.प्र.सं. की धारा 319 के अधीन अतिरिक्त अभियुक्त को समन करने की शक्ति है जब अन्य सह-अभियुक्तों के संबंध में विचारण समाप्त हो गया है और दोषसिद्धि का निर्णय समन आदेश को उद्घोषित करने से पहले उसी तारीख को प्रस्तुत किया गया है? **दं.प्र.सं. की धारा 319 के अधीन शक्ति का आह्वान और प्रयोग दंडादेश के आदेश की उद्घोषणा से पहले किया जाना है जहां अभियुक्त की दोषसिद्धि का निर्णय है। दोषमुक्ति के वाद में, शक्ति का प्रयोग दोषमुक्ति के आदेश को उद्घोषित किए जाने से पहले किया जाना चाहिए। अतः, समन आदेश को दोषसिद्धि के वाद में दंडादेश आरोपित करके विचारण के समापन से पहले होना चाहिए। यदि आदेश उसी दिन पारित किया जाता है, तो प्रत्येक वाद के तथ्यों और परिस्थितियों पर इसकी विवेचना करनी होगी और यदि ऐसा समन आदेश या तो दोषमुक्ति होने के आदेश के पश्चात् या दोषसिद्धि के वाद में दंडादेश आरोपित करने के पश्चात् पारित किया जाता है, तो वही असंधार्य होगा।**

40.(II) क्या विचारण न्यायालय के पास दं.प्र.सं. की धारा 319 के अधीन अतिरिक्त अभियुक्त को समन करने की शक्ति है जब कुछ अन्य फरार अभियुक्तों (जिनकी उपस्थिति पश्चात्वर्ती में सुनिश्चित की गई है) के संबंध में विचारण चल रहा है/लंबित है, जो मुख्य विचारण से द्विभाजित किया गया है?

विचारण न्यायालय के पास अतिरिक्त अभियुक्तों को समन करने की शक्ति है जब फरार अभियुक्त की उपस्थिति सुनिश्चित करने के पश्चात् उसके संबंध में विचारण आगे बढ़ाया जाता है, जो विभाजित (द्विभाजित) विचारण में अभिलिखित साक्ष्य के अधीन है जो समन किए जाने के लिए मांगे गए अभियुक्त की संलग्नता की ओर इंगित करता है। किन्तु मुख्य समाप्त विचारण में अभिलिखित साक्ष्य समन आदेश का आधार नहीं हो सकता यदि ऐसी शक्ति का प्रयोग मुख्य विचारण में इसकी समाप्ति तक नहीं किया गया है।

41.(III) वे कौन से दिशानिर्देश हैं जिनका सक्षम न्यायालय को दं.प्र.सं. की धारा 319 के अधीन शक्ति का प्रयोग करते समय पालन करना चाहिए?

41.1. यदि सक्षम न्यायालय को साक्ष्य मिलता है या यदि दं.प्र.सं. की धारा 319 के अधीन आवेदन दायर किया जाता है जो दोषमुक्ति होने या दंडादेश पर आदेश पारित करने से पहले विचारण में किसी भी स्तर पर अभिलिखित साक्ष्य के आधार पर अपराध को घटित करने में किसी अन्य व्यक्ति की संलिप्तता के संबंध में है, तो वह उस स्तर पर विचारण को रोक देगा।

41.2. तत्पश्चात् न्यायालय पहले अतिरिक्त अभियुक्त को समन करने की आवश्यकता या अन्यथा का निर्णय करेगा और उस पर आदेश पारित करेगा।

41.3. यदि न्यायालय का निर्णय दं.प्र.सं. की धारा 319 के अधीन शक्ति का प्रयोग करने और अभियुक्त को समन करने का है, तो ऐसा समन आदेश मुख्य वाद में विचारण के साथ आगे बढ़ने से पहले पारित किया जाएगा।

41.4. यदि अतिरिक्त अभियुक्त का समन आदेश पारित किया जाता है, तो जिस स्तर पर इसे पारित किया जाता है, उस पर निर्भर करते हुए, न्यायालय इस तथ्य पर भी अपना विवेक लगाएगा कि क्या ऐसे समन किए गए अभियुक्त का विचारण अन्य अभियुक्तों के साथ या पृथक रूप से किया जाना है।

41.5. यदि निर्णय संयुक्त विचारण के लिए है, तो नया विचारण केवल समन किए गए अभियुक्त की उपस्थिति सुरक्षित करने के पश्चात् ही प्रारंभ किया जाएगा।

41.6. यदि निर्णय यह है कि समन किए गए अभियुक्त का विचारण पृथक रूप से किया जा सकता है, तो ऐसा आदेश किए जाने पर, न्यायालय के लिए उन अभियुक्तों के विरुद्ध विचारण को जारी रखने और समाप्त करने में कोई बाधा नहीं होगी जिनके साथ कार्यवाही की जा रही थी।

41.7. यदि उपर्युक्त प्रस्तर 41.1 में यथा रोकी गई कार्यवाही, एक ऐसे वाद में है जहां जिन अभियुक्तों का विचारण किया गया था उन्हें दोषमुक्ति किया जाना है, और निर्णय यह है कि समन किए गए अभियुक्त का विचारण नए सिरे से पृथक रूप से किया जा सकता है, तो मुख्य वाद में दोषमुक्ति होने का निर्णय पारित करने में कोई बाधा नहीं होगी।

41.8. यदि मुख्य विचारण में उसके समापन तक शक्ति का आह्वान या प्रयोग नहीं किया गया है और यदि एक विभाजित (द्विभाजित) वाद है, तो दं.प्र.सं. की धारा 319 के अधीन शक्ति का आह्वान या प्रयोग केवल तभी किया जा सकता है यदि उस प्रभाव का साक्ष्य है, जो विभाजित (द्विभाजित) विचारण में समन किए जाने वाले अतिरिक्त अभियुक्त की संलिप्तता की ओर संकेत करता है।

41.9. न्यायालय के लिए दं.प्र.सं. की धारा 319 के अधीन शक्ति का आह्वान और प्रयोग करने का अवसर उद्भूत होता है, तो न्यायालय के लिए उपयुक्त तरीका इसे पुनः सुनवाई के लिए निर्धारित करना है।

41.10. पुनः सुनवाई के लिए निर्धारित करने पर, समन करने के बारे में निर्णय करने के लिए उपर्युक्त निर्धारित प्रक्रिया; संयुक्त विचारण आयोजित करना या अन्यथा का निर्णय लिया जाएगा और तदनुसार कार्यवाही की जाएगी।

41.11. ऐसे वाद में भी, उस स्तर पर, यदि निर्णय अतिरिक्त अभियुक्त को समन करने और संयुक्त विचारण आयोजित करने का है तो विचारण नए सिरे से संचालित किया जाएगा और नए सिरे से कार्यवाही आयोजित की जाएगी।

41.12. यदि, उस परिस्थिति में, निर्णय समन किए गए अभियुक्त के वाद में पृथक विचारण आयोजित करने का है जैसा कि पहले इंगित किया गया है:

(क) मुख्य वाद का दोषसिद्धि और दंडादेश को उद्घोषित करके निर्णय किया जा सकता है और फिर समन किए गए अभियुक्त के विरुद्ध नए सिरे से कार्यवाही की जा सकती है।

(ख) दोषमुक्ति होने के वाद में मुख्य वाद में उस प्रभाव का आदेश पारित किया जाएगा और फिर समन किए गए अभियुक्त के विरुद्ध नए सिरे से कार्यवाही की जाएगी।"

(प्रभाव वर्दित)

38. हम यह भी पाते हैं कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने, किन परिस्थितियों में विवेचना को राज्य विवेचना एजेंसी से किसी अन्य स्वतंत्र विवेचना एजेंसी जैसे सीबीआई में स्थानांतरित किया जा सकता है, के विवाद्यक से निपटते हुए, लगातार यह अभिनिर्धारित किया है कि ऐसी विवेचना को स्थानांतरित करने की शक्ति दुर्लभ और असाधारण मामलों में होनी चाहिए जहां न्यायालय पक्षकारों के बीच न्याय करने और जनमानस में विश्वास स्थापित करने के लिए इसे आवश्यक पाता है, या जहां राज्य पुलिस द्वारा विवेचना में विश्वसनीयता का अभाव है और "एक निष्पक्ष, ईमानदार और पूर्ण विवेचना" के लिए यह आवश्यक है, और विशेष रूप से, जब राज्य एजेंसियों के निष्पक्ष कार्य में जनता के विश्वास को बनाए रखना अनिवार्य है। जहां विवेचना पहले ही पूरी हो चुकी है और आरोपपत्र दायर कर दिया गया है, सामान्यतः उच्चतर न्यायालयों को विवेचना को पुनः खोलना नहीं चाहिए और इसे उस न्यायालय के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया जाना चाहिए, जहां आरोपपत्र दायर किया गया है, कि वह विधि के अनुसार मामले के साथ आगे बढ़े।

39. अन्यथा भी, हम पाते हैं कि दं.प्र.सं. 1973/बीएनएसएस, 2023 में निहित उपबंध विस्तृत हैं। दं.प्र.सं./बीएनएसएस एक पूर्ण आत्मनिर्भर संहिता है, जिसमें विचारण न्यायालय दं.प्र.सं. की धारा 311 (बीएनएसएस की धारा 348) के दृष्टिगत पूछताछ, विचारण या अन्य कार्यवाही के किसी भी स्तर पर किसी व्यक्ति को साक्षी के रूप में समन करने के लिए सक्षम और सशक्त है। संदर्भ: **हीरा लाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य**।

40. हम यह भी पाते हैं कि यह सुस्थापित विधि है कि यदि इन धाराओं के अधीन शर्तें संतुष्ट हैं, तो न्यायालय न केवल अभियोजन या बचाव पक्ष में से किसी एक के प्रस्ताव पर साक्षी को बुला सकता है अपितु वह अपने स्वयं के प्रस्ताव पर भी ऐसा कर सकता है। विचारण न्यायालय किसी साक्षी को पुनः बुलाने या पहले ही परीक्षित साक्षी को या किसी साक्षी को समन करने के लिए सक्षम है भले ही दोनों पक्षों का साक्ष्य समाप्त हो गया हो जब तक न्यायालय आपराधिक कार्यवाही का अधिकार बनाए रखता है। संदर्भ: **मोहनलाल शामजी सोनी बनाम भारत संघ।**

41. उपर्युक्त तथ्यों और परिस्थितियों के दृष्टिगत, हम ऐसी कोई टिप्पणी करने के लिए इच्छुक नहीं हैं, जो पक्षकारों के अधिकार को प्रभावित कर सकती है और विचारण को दूषित भी कर सकती है और तदनुसार, हम भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन अपने विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने के लिए इच्छुक नहीं हैं।

42. उपर्युक्त कारणों से, रिट याचिका **खारिज़** की जाती है।

43. यह स्पष्ट किया जाता है कि इस न्यायालय ने मामले के गुण-दोष पर कोई विचार व्यक्त नहीं किया है और विचारण न्यायालय विधि के अनुसार कार्यवाही करने के लिए स्वतंत्र है।

(2025) 4 ILRA 915

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ, 16.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रजनीश कुमार,

आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 15379 वर्ष 2019

और

1 अन्य वाद

अभिमन्यु प्रसाद ओझा एवं अन्य **...याचिकाकर्तागण**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **.....विपक्षीगण**

याचिकाकर्तागण के अधिवक्ता: अनिल कुमार त्रिपाठी, अनिल कुमार त्रिपाठी

विपक्षीगण के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता, फैज़ अहमद खान, इंद्रजीत शुक्ला, संतोष कुमार गुप्ता

आपराधिक विधि- भारत का संविधान, 1950-अनुच्छेद 226 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 133- याचिकाकर्ताओं के हित में पूर्ववर्ती द्वारा सार्वजनिक भूमि पर एक दीवार का निर्माण किया गया है, जिसका उपयोग मुख्य मार्ग पर आने-जाने के लिए किया जा रहा है---याचिकाकर्ता ने अपने साक्ष्य/जिरह में स्वीकार किया कि दीवार का निर्माण याचिकाकर्ताओं के हित में पूर्ववर्ती द्वारा किया गया था---केवल यह तर्क दिया गया है कि चूँकि यह निष्कर्ष दर्ज किया गया है कि यदि भविष्य में इसके निकट कोई निर्माण किया जाता है, तो सार्वजनिक मार्ग बाधित हो सकता है, जबकि यह आदेश केवल भविष्य में ऐसा होने की धारणा के आधार पर पारित नहीं किया जा सकता था, लेकिन इस बात पर विवाद नहीं किया जा सकता कि दीवार का निर्माण सार्वजनिक भूमि पर किया गया है और द.प्र.सं. की धारा 133 के अनुसार, किसी भी सार्वजनिक स्थान या किसी भी रास्ते, नदी या चैनल पर, जिसका उपयोग जनता द्वारा वैध रूप से किया जा रहा है या किया जा सकता है, अवैध रूप से की गई बाधा या उपद्रव को हटाया जाना आवश्यक है---कोई भी व्यक्ति किसी सार्वजनिक स्थान या किसी भी रास्ते पर अवैध रूप से बाधा या उपद्रव नहीं कर सकता है और यदि ऐसा किया गया है या निर्माण किया गया है, तो यदि कोई शिकायत उठाई गई है, तो उसे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 133 के अंतर्गत हटाया जा सकता है। केवल इसलिए कि इससे जनता के लिए पूर्णतः बाधा उत्पन्न नहीं हुई है, यह नहीं कहा जा सकता कि जिस व्यक्ति ने ऐसी बाधा या उपद्रव उत्पन्न किया है, उसे ऐसा करने की अनुमति दी जा सकती है।

रिट याचिकाएं खारिज कर दी गईं। (प्रस्तर 17) (ई-15)

<u>संदर्भित वादों की सूची-</u>

1. जोगिंदर सिंह बनाम हरियाणा एवं अन्य; 2021 (2) आर.सी.आर. (सिविल) 109
2. जगपाल सिंह एवं अन्य बनाम पंजाब एवं अन्य; एआईआर 2011 एससी 1123
3. श्री कृष्ण बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य
4. गुरमुख सिंह बनाम हरियाणा राज्य, द्वारा पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़

(माननीय न्यायमूर्ति रजनीश कुमार द्वारा प्रदत्त)

1. आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या-15379 वर्ष 2019 में याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री अनिल कुमार त्रिपाठी के ब्रीफ होल्डर श्री संजय त्रिपाठी और आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या-171721 वर्ष 2019 में याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री राजेश कुमार शुक्ला, विद्वान राज्य अधिवक्ता और दोनों याचिकाओं में निजी प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता श्री संतोष कुमार गुप्ता को सुना गया।

2. आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 15379 वर्ष 2019, उप-खण्ड मजिस्ट्रेट, तरबगंज, जिला-गोंडा द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता (जिसे आगे द.प्र.सं. कहा जाएगा) की धारा 133 के अंतर्गत वाद संख्या 80 में पारित आदेश दिनांक 30.11.2018 और आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 318 वर्ष 2018 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 21.05.2019 को चुनौती देते हुए दायर की गई है; राजकिशोर ओझा (मृतक) द्वारा प्रतिस्थापित विधिक उत्तराधिकारी अभिमन्यु प्रसाद ओझा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य तथा आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 17172 वर्ष 2019, उप-खण्ड मजिस्ट्रेट, तहसील-तरबगंज, जिला गोंडा द्वारा पारित आदेश दिनांक 30.05.2019 के विरुद्ध दायर की गई है, जिसके माध्यम से उन्होंने सत्र न्यायाधीश गोंडा द्वारा पारित आदेश दिनांक 21.05.2019 के अनुसरण में प्रभारी निरीक्षक, देहात कोतवाली, गोंडा को आदेश दिनांक 30.11.2018 के अनुपालन हेतु निर्देशित किया है। इस प्रकार, दोनों याचिकाओं को एक साथ जोड़ दिया गया है और इस समान निर्णय और आदेश द्वारा निर्णीत किया जा रहा है।

3. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया कि तहसीलदार, तरबगंज, जिला गोंडा द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के आलोक में, याचिकाकर्ताओं और निजी प्रतिवादी के बीच कोई विवाद नहीं था और याचिकाकर्ताओं द्वारा सार्वजनिक मार्ग पर कोई रोक नहीं लगाई गई थी, परन्तु इस पर विचार किए बिना, विद्वान उप-खण्ड मजिस्ट्रेट ने दिनांक 30.11.2018 को इस आधार पर आक्षेपित आदेश पारित किया कि यदि भविष्य में याचिकाकर्ताओं के हित-पूर्ववर्ती अर्थात् राजकिशोर ओझा द्वारा कोई निर्माण किया जाता है, तो सार्वजनिक मार्ग में बाधा उत्पन्न होगी। इस प्रकार, यह आदेश केवल इस धारणा पर पारित किया गया है कि भविष्य में सार्वजनिक मार्ग में बाधा उत्पन्न होगी, जबकि केवल इस धारणा के आधार पर कि भविष्य में जनता को बाधा

उत्पन्न हो सकती है, यह आदेश द.प्र.सं. की धारा 133 के अंतर्गत पारित नहीं किया जा सकता। उन्होंने आगे दलील दी कि पुनरीक्षण के लंबित रहने के दौरान, पुनरीक्षण न्यायालय ने भी याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाए गए आधारों पर विचार किए बिना, दिनांक 21.05.2019 को आक्षेपित निर्णय और आदेश पारित कर दिया। उन्होंने आगे दलील दी कि आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 15379 वर्ष 2019 के लंबित रहने के दौरान, विद्वान उप-खण्ड मजिस्ट्रेट और विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश, उप-खण्ड मजिस्ट्रेट, तरबगंज, जिला-गोंडा ने प्रभारी निरीक्षक को उनके द्वारा पारित आदेश के अनुपालन हेतु निर्देश दिया, जबकि ऐसा आदेश जारी नहीं किया जा सकता था, इसलिए आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 17172 वर्ष 2019 दायर की गई। इस प्रकार, दलील यह है कि आक्षेपित निर्णय और आदेश विधि की दृष्टि में पोषणीय नहीं हैं और इस न्यायालय द्वारा अपास्त किए जाने योग्य हैं।

4. इसके विपरीत, दोनों याचिकाओं में निजी प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी कि तहसीलदार की रिपोर्ट और अभिलेख पर मौजूद साक्ष्यों और याचिकाकर्ताओं के गवाहों की इस स्वीकारोक्ति पर विचार करने के बाद, कि याचिकाकर्ताओं ने सार्वजनिक भूमि पर एक दीवार का निर्माण किया था, जिसका उपयोग रास्ते के रूप में किया जा रहा था, विधि के अनुसार आक्षेपित निर्णय और आदेश सही रूप से पारित किए गए हैं। इसलिए, केवल इसलिए कि रिपोर्ट इंगित करती है कि यदि वह भविष्य में और दीवार का निर्माण करता है तो सार्वजनिक मार्ग बाधित हो सकता है, यह नहीं कहा जा सकता कि आक्षेपित निर्णय और आदेश केवल भविष्य में ऐसा होने की धारणा पर पारित किए गए हैं। इस प्रकार, रिट याचिकाएँ गलत और निराधार आधार पर दायर की गई हैं और ये खारिज किए जाने योग्य हैं। उन्होंने **जगपाल सिंह एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य; एआईआर 2011 एससी 1123, जनहित याचिका (पीआईएल) संख्या 1474 वर्ष 2020 में पारित दिनांक 02.03.2021 का निर्णय और आदेश; इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ द्वारा श्री कृष्ण बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं 4 अन्य और सीडब्ल्यूपी संख्या 17706 वर्ष 2021 में पारित दिनांक 09.09.2021 का निर्णय और आदेश; चंडीगढ़ स्थित पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय द्वारा गुरमुख सिंह बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य** पर भरोसा किया।

5 मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं के तर्कों पर विचार किया है तथा अभिलेखों का अवलोकन किया है।

6. श्री बालक राम तिवारी निवासी माधवपुर (गजाधरपुरवा), थाना कोतवाली देहात, जिला गोण्डा द्वारा दिनांक 08.12.2017 को धारा 133 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत याचियों के हिताधिकारी अर्थात् राज किशोर ओझा द्वारा सार्वजनिक भूमि पर निर्मित दीवार को हटाने हेतु प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया गया था। प्रार्थना पत्र में कहा गया था कि दिनांक 18.09.2017 को आवेदक के प्लाट के बगल में भूमिधरी गाटा संख्या 202/48 के रकबा 0.08 डिसमिल भूमि पर याचियों के हिताधिकारी अर्थात् राज किशोर द्वारा दीवार का निर्माण कर दिया गया है, जिससे आवेदक का मार्ग अवरुद्ध हो रहा है, क्योंकि मुख्य मार्ग एवं सेहान तालाब की ओर पश्चिम दिशा में है। उसने तालाब को पाट दिया है तथा उस पर अपना अधिकार जता रहा है। गाटा संख्या 225 के ठीक पश्चिम दिशा में कच्चा रास्ता है और 0.60 एकड़ भूमि तालाब के आकार की है और ग्राम सभा की है, जो सरकारी भूमि है। आवेदन में लगाए गए आरोपों की तहसीलदार तरबगंज से जाँच कराई गई। चकबंदी प्रक्रिया

के कारण, राजस्व और चकबंदी विभागों द्वारा संयुक्त रूप से जाँच की गई। रिपोर्ट में कहा गया कि आवेदक द्वारा आरोप लगाया गया है कि गाटा संख्या 225, जो तालाब की भूमि है, पर दीवार का निर्माण किया गया है। गाटा संख्या 225 का कुल क्षेत्रफल 5.30 एकड़ है, जिसमें से 0.15 डिसमिल भूमि, अर्थात 0.5-0.5 डिसमिल, तीन खातेदारों के नाम दर्ज है, जिनके पास संक्रमणीय अधिकार हैं। इसका कोई भी भाग जलमग्न या तालाब के रूप में दर्ज नहीं है, गाटा संख्या 225/5.15 एकड़ से सटा हुआ है और गाटा संख्या 202 स्थित है, जो एक संक्रमणीय भूमि है, जिसके पश्चिमी भाग में बालक राम तिवारी ने एक भूखंड खरीदा है। आबादी के गाटा में एक सार्वजनिक मार्ग है, जो मजरे गजाधरपुरवा को जोड़ता है, अतः उक्त निर्मित मार्ग का उपयोग पक्षकारों के साथ-साथ ग्रामीणों द्वारा आवागमन के लिए किया जा रहा है। आवेदक के भूखंड से सटे सार्वजनिक मार्ग के पूर्वी भाग में, प्रतिवादी ने एक दीवार का निर्माण किया है, जो लगभग 30 फीट लंबी और 6 फीट ऊंची है। जिस स्थान पर दीवार का निर्माण किया गया है, वहां दीवार का निर्माण करना न्यायोचित नहीं है, क्योंकि उक्त भूमि न तो प्रतिवादी के घर के निकट है और न ही सेहान के निकट है। यदि भविष्य में प्रतिवादी द्वारा इसके समीप कोई निर्माण किया जाता है, तो सार्वजनिक मार्ग भी बाधित हो सकता है तथा बालक राम तिवारी के भूखण्ड (जो आबादी भूमि पर स्थित है) के सामने दीवार निर्माण के कारण आवेदक बालक राम तिवारी एवं अन्य ग्रामीणों को मार्ग पर आने-जाने में कठिनाई होगी, अतः इसे हटाया जाना उचित है। तहसीलदार तरबगंज द्वारा प्रस्तुत दिनांक 19.04.2018 की उक्त रिपोर्ट का संज्ञान लेते हुए, धारा 133 द.प्र.सं. के अंतर्गत कार्यवाही प्रारंभ की गई तथा सशर्त आदेश (नोटिस) जारी किया गया।

7. प्रतिवादी अर्थात् याचिकाकर्ताओं के हित-पूर्ववर्ती ने उक्त नोटिस के विरुद्ध दिनांक 14.05.2018 को एक आपत्ति प्रस्तुत की, जिसमें कहा गया कि ग्राम-माधवपुर, थाना कोतवाली देहात, जिला गोंडा में स्थित गाटा संख्या 225 लंबे समय से आबादी भूमि है, जिसमें आवेदक-आपत्तिकर्ता और अन्य ग्रामीणों का मकान आबादी गाटा संख्या 202 के पूर्व में स्थित है, जो पहले घास के आकार का था और आवेदक-आपत्तिकर्ता सह-खातेदार है। आपत्तिकर्ता का मकान गाटा संख्या 202 की सीमा पर गाटा संख्या 225 में स्थित है, जिसमें आपत्तिकर्ता की दीवार लंबे समय से उत्तर से दक्षिण की ओर खड़ी है। आवेदक की इस दीवार और सेहान भूमि से आने-जाने का कोई रास्ता नहीं था। आवेदक बालक राम तिवारी गाटा संख्या 202 में सह-खातेदार हैं। उन्होंने उस पर बिना किसी विभाजन के चबूतरा भरवा लिया है, जिसमें न तो दीवार है और न ही छत। वह उस पर निवास भी नहीं करते हैं। गाटा संख्या 202 की पूर्वी सीमा पर खड़ंजा बना हुआ है और आवेदक को उसी से अपने चबूतरे तक आने-जाने का रास्ता है। विवादित भूमि कभी भी सार्वजनिक मार्ग नहीं रही है, अतः कार्यवाही निरस्त किए जाने योग्य है।

8. निजी प्रतिवादी श्री बालक राम तिवारी ने दिनांक 11.06.2018 को आपत्ति पर उत्तर प्रस्तुत किया, जिसमें उन्होंने स्वीकार किया कि वे गाटा संख्या 202 के सह-काश्तकार हैं और याचिकाकर्ताओं के हित-पूर्ववर्ती अर्थात् राज किशोर का उक्त भूमि से कोई संबंध नहीं है। उन्होंने सार्वजनिक मार्ग को बंद करने के उद्देश्य से दीवार का निर्माण किया है। यह निर्माण आवेदक के सामने से तालाब तक जाने वाले मार्ग को अवरुद्ध करते हुए किया गया है, अतः आपत्ति अस्वीकार किए जाने योग्य है।

9. याचिकाकर्ताओं के पूर्ववर्ती यानी राजकिशोर द्वारा 23.7.2018 को अतिरिक्त आपत्ति दायर की गई थी जिसमें कहा गया था कि गाटा संख्या 225 के मानचित्र में कोई रास्ता नहीं है। आवेदक राज किशोर यानी याचिकाकर्ताओं की ओर से अर्जुन प्रसाद, हरीश, द्वारिकानाथ, लालजी, विजयनाथ, बासदेव, माता प्रसाद, रामबरन, अशोक कुमार, राधेश्याम ओझा, ओमप्रकाश, रमेशचंद्र, दिनेश कुमार, शिवानंद और इंद्रभूषण ओझा का शपथ पत्र दिनांक 13.08.2018 दाखिल किया गया। अर्जुन प्रसाद, इंद्रभूषण ओझा, मिश्रीलाल ओझा, विजयनाथ व ओमप्रकाश का जिरह रिकार्ड किया गया। यद्यपि गवाहों ने मुख्यतः यह कहा है कि राजस्व अभिलेखों में गाटा संख्या 225 सदैव आबादी के रूप में दर्ज है, तालाब के रूप में नहीं तथा यह भी कहा गया है कि गाटा संख्या 225 में दीवार निर्माण के कारण किसी का रास्ता बाधित नहीं हुआ है, किन्तु आपत्तिकर्ता राजकिशोर के पुत्र श्री मिश्री लाल ओझा ने दिनांक 03.10.2018 को अपनी जिरह में कहा है कि उन्होंने सार्वजनिक रास्ते में दीवार का निर्माण नहीं कराया है, अपितु दीवार का निर्माण राजकिशोर अर्थात् उनके पिता द्वारा कराया गया है।

10. बालक राम तिवारी अर्थात निजी प्रतिवादी की ओर से गंगाशरण ओझा, वीरेंद्र कुमार, रामप्रकाश ओझा और फूलचंद्र का दिनांक 15.10.2018 का हलफनामा दायर किया गया और फूलचंद्र ओझा, वीरेंद्र कुमार और रामप्रकाश ओझा की क्रॉस आपत्ति भी दर्ज की गई। उन्होंने कहा कि राज किशोर ने बालक राम के प्लॉट के पूर्वी तरफ सार्वजनिक रास्ते से सटी एक दीवार का निर्माण किया है, जो उनके घर और सेहान से सटी हुई नहीं है और उक्त भूमि का कोई औचित्य नहीं है। यदि उक्त दीवार पर कोई निर्माण किया जाता है, तो सार्वजनिक रास्ता बाधित होगा। फूलचंद्र ओझा, वीरेंद्र कुमार और रामप्रकाश ओझा ने जिरह में कहा है कि दीवार का निर्माण सार्वजनिक रास्ते के हिस्से पर किया गया है, जिसके कारण बालक राम तिवारी और अन्य ग्रामीणों का रास्ता बाधित है।

11. उपरोक्त के मद्देनजर, यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ताओं के हित में पूर्ववर्ती अर्थात् राज किशोर द्वारा गाटा संख्या 225 पर सार्वजनिक भूमि के एक हिस्से पर एक दीवार का निर्माण किया गया है, जिसका उपयोग सार्वजनिक मार्ग के रूप में किया जा रहा है।

12. धारा 133 द.प्र.सं. में प्रावधान है कि जब भी कोई रिपोर्ट या अन्य सूचना प्राप्त होती है, तो जिला मजिस्ट्रेट या उप-खण्ड मजिस्ट्रेट या राज्य सरकार द्वारा इस संबंध में विशेष रूप से सशक्त कोई अन्य कार्यकारी मजिस्ट्रेट, ऐसे साक्ष्य (यदि कोई हो) लेने पर, यह पाता है कि किसी सार्वजनिक स्थान या किसी भी रास्ते, नदी या चैनल से, जिसका जनता द्वारा वैध रूप से उपयोग किया जाता है या किया जा सकता है, विधि विरूद्ध बाधा या उपद्रव हटाया जाना चाहिए, तो ऐसा मजिस्ट्रेट सशर्त आदेश जारी कर सकता है जिसमें ऐसी बाधा या उपद्रव आदि उत्पन्न करने वाले व्यक्ति को आदेश में निर्धारित समय के भीतर ऐसी बाधा या उपद्रव आदि हटाने के लिए कहा जाएगा या यदि वह ऐसा करने पर आपत्ति करता है, तो कारण बताने के लिए कहा जाएगा कि आदेश को अंतिम क्यों न बना दिया जाए। इसके बाद, धारा 141 द.प्र.सं. के तहत निर्धारित प्रक्रिया का पालन करने के बाद, आदेश को द.प्र.सं. की धारा 138 के तहत अंतिम बनाया जा सकता है।

13. धारा 134 दंड प्रक्रिया संहिता उस व्यक्ति पर तामील की विधि और आदेश में संशोधन का प्रावधान करती है जिसके विरुद्ध आदेश दिया गया है। धारा 135 दंड प्रक्रिया संहिता में यह प्रावधान है कि जिस व्यक्ति के विरुद्ध ऐसा आदेश दिया गया है, वह निर्दिष्ट समय के भीतर निर्देशानुसार कार्य करेगा या उसके विरुद्ध कारण दर्शित करेगा। धारा 136 उस प्रक्रिया का प्रावधान करती है जहाँ सार्वजनिक अधिकार के अस्तित्व को नकारा जाता है। इसमें यह प्रावधान है कि जहाँ दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 133 के अंतर्गत कोई आदेश दिया जाता है, वहाँ मजिस्ट्रेट, या उसके समक्ष उस व्यक्ति के उपस्थित होने पर, जिसके विरुद्ध आदेश दिया गया था, धारा 138 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत कार्यवाही करने से पहले मामले की जाँच करेगा। धारा 137 की उपधारा (2) में यह प्रावधान है कि यदि ऐसी जाँच में मजिस्ट्रेट को यह पता चलता है कि ऐसे इनकार के समर्थन में कोई विश्वसनीय साक्ष्य है, तो वह कार्यवाही पर तब तक रोक लगाएगा जब तक कि ऐसे अधिकार के अस्तित्व के मामले का निर्णय किसी सक्षम न्यायालय द्वारा नहीं कर लिया जाता; और यदि वह पाता है कि ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है, तो वह धारा 138 में निर्धारित अनुसार कार्यवाही करेगा। धारा 138 उस प्रक्रिया का प्रावधान करती है जहाँ वह व्यक्ति जिसके विरुद्ध आदेश/नोटिस जारी किया गया है, कारण बताने के लिए उपस्थित होता है और यदि वह व्यक्ति आदेश के विरुद्ध कारण बताता है, तो मजिस्ट्रेट उस मामले में समन-मामले की तरह साक्ष्य लेगा। उप-धारा (2) में प्रावधान है कि यदि मजिस्ट्रेट संतुष्ट हो जाता है कि आदेश, चाहे मूल रूप में दिया गया हो या ऐसे संशोधन के अधीन हो जैसा वह आवश्यक समझे, उचित और उचित है, तो आदेश को बिना किसी संशोधन के या, यथास्थिति, ऐसे संशोधन के साथ, अंतिम बना दिया जाएगा। उप-धारा (3) में प्रावधान है कि यदि मजिस्ट्रेट संतुष्ट नहीं है, तो मामले में आगे कोई कार्यवाही नहीं की जाएगी। धारा 139, मजिस्ट्रेट को धारा 137 द.प्र.सं. के तहत जाँच के प्रयोजनों के लिए स्थानीय जाँच और किसी विशेषज्ञ से परीक्षा का निर्देश देने की शक्ति प्रदान करती है। धारा 140, मजिस्ट्रेट को धारा 139 द.प्र.सं. के तहत जाँच के लिए लिखित निर्देश आदि प्रदान करने की शक्ति प्रदान करती है। धारा 141, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 136 या 138 के अंतर्गत आदेश को पूर्ण बनाने की प्रक्रिया और अवज्ञा के परिणामों का प्रावधान करती है। धारा 142 में प्रावधान है कि यदि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 133 के अंतर्गत आदेश जारी करने वाला मजिस्ट्रेट यह समझता है कि जनता को आसन्न खतरे या गंभीर चोट से बचाने के लिए तत्काल उपाय किए जाने चाहिए, तो वह मामले का निपटारा होने तक निषेधाज्ञा जारी कर सकता है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 143 में प्रावधान है कि मजिस्ट्रेट लोक उपद्रव की पुनरावृत्ति पर रोक लगा सकता है।

14. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **जगपाल सिंह एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य (पूर्वोक्त)** के वाद में यह निर्णय दिया है कि जिन अतिचारियों ने बाहुबल या धनबल का प्रयोग करके और अधिकारियों तथा यहाँ तक कि ग्राम पंचायत के साथ मिलीभगत करके ग्राम पंचायत की भूमि पर अवैध रूप से अतिक्रमण किया है, ऐसी घोर अवैधताओं को बख्शा नहीं जाना चाहिए और यदि अपीलकर्ताओं ने संबंधित भूमि पर मकान बना भी लिए हैं, तो उन्हें अपने निर्माण हटाने का आदेश दिया जाना चाहिए और संबंधित भूमि का कब्जा ग्राम पंचायत को वापस सौंप दिया जाना चाहिए। संबंधित अनुच्छेद 13 से 23 यहाँ पुन: प्रस्तुत हैं:-

13. हमें इस अपील में कोई गुण-दोष नहीं दिखता। यहाँ अपीलकर्ता अतिक्रमणकारी थे जिन्होंने बाहुबल/धनबल का प्रयोग करके और अधिकारियों तथा यहाँ तक कि ग्राम पंचायत के साथ मिलीभगत करके ग्राम पंचायत की भूमि पर अवैध अतिक्रमण किया। हमारा मत है कि इस प्रकार की घोर अवैधताओं को क्षम्य नहीं माना जाना चाहिए। यदि अपीलकर्ताओं ने संबंधित भूमि पर मकान बना भी लिए हैं, तो भी उन्हें अपने निर्माण हटाने का आदेश दिया जाना चाहिए और संबंधित भूमि का कब्जा ग्राम पंचायत को वापस सौंप दिया जाना चाहिए। ऐसी अवैधताओं को नियमित करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए क्योंकि यह ग्राम सभा की भूमि है जिसे गाँव के ग्रामीणों के साझा उपयोग के लिए रखा जाना चाहिए। इन अनधिकृत कब्जाधारियों के कब्जे को नियमित करने की अनुमति देने वाला पंजाब सरकार का दिनांक 26.9.2007 का पत्र मान्य नहीं है। हमारा मत है कि ऐसे पत्र पूरी तरह से अवैध हैं और क्षेत्राधिकार से बाहर हैं। हमारे मत में ऐसी अवैधताओं को नियमित नहीं किया जा सकता। हम केवल इसलिए ग्रामीणों के साझा हितों को नुकसान नहीं पहुँचने दे सकते क्योंकि कई वर्षों से अनाधिकृत कब्जा जारी है।

14. एम.आई. बिल्डर्स (प्रा.) लिमिटेड बनाम राधेश्याम साहू, 1999(6) एससीसी 464 मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने 100 करोड़ रुपये से अधिक की लागत से निर्मित एक शॉपिंग कॉम्प्लेक्स को ध्वस्त करने के बाद, एक पार्क के जीर्णोद्धार का आदेश दिया था। फ्रेंड्स कॉलोनी डेवलपमेंट कमेटी बनाम उड़ीसा राज्य, 2004 (8) एससीसी 733 मामले में, इस न्यायालय ने यह निर्णय दिया था कि जहाँ विधि अस्वीकृत निर्माणों के लिए कम्पाउंडिंग की अनुमति देता है, वहाँ भी ऐसा कम्पाउंडिंग केवल अपवाद स्वरूप ही किया जाना चाहिए। हमारी राय में, यह निर्णय गाँव की सार्वजनिक भूमि पर अतिक्रमण के मामलों में और भी अधिक प्रभावी होगा। सामान्यतः, ऐसे मामलों में कम्पाउंडिंग की अनुमति केवल तभी दी जानी चाहिए जब भूमि भूमिहीन मजदूरों या अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के सदस्यों को पट्टे पर दी गई हो, या भूमि का उपयोग वास्तव में गाँव के किसी सार्वजनिक उद्देश्य के लिए किया जा रहा हो, जैसे कि ग्रामीणों के लिए स्कूल चलाना, या उनके लिए औषधालय चलाना।

15. कई राज्यों में राज्य सरकार द्वारा कुछ धनराशि के भुगतान पर निजी व्यक्तियों और व्यावसायिक उद्यमों को ग्राम सभा की भूमि आवंटित करने की अनुमति देने वाले सरकारी आदेश जारी किए गए हैं। हमारी राय में, ऐसे सभी सरकारी आदेश अवैध हैं और इन्हें नज़रअंदाज़ किया जाना चाहिए।

16. यह वाद गाँव के तालाब के रूप में दर्ज भूमि का है। इस न्यायालय ने हिंच लाल तिवारी बनाम कमला देवी, एआईआर 2001 एससी 3215 (जिसका अनुसरण मद्रास उच्च न्यायालय ने एल. कृष्णन बनाम तमिलनाडु राज्य, 2005(4) सीटीसी 1 मद्रास में किया था) में यह निर्णय दिया था कि तालाब के रूप में दर्ज भूमि को किसी को भी घर बनाने या किसी अन्य संबद्ध उद्देश्य के लिए आवंटित करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। न्यायालय ने प्रतिवादियों को घर की सामग्री को हटाने के बाद, अवैध रूप से कब्जा की गई भूमि को खाली करने का आदेश दिया। हम इस मामले में भी ऐसा ही आदेश पारित करते हैं।

17. इस संबंध में हम यह कहना चाहते हैं कि हमारे पूर्वज मूर्ख नहीं थे। वे जानते थे कि कुछ वर्षों में सूखा पड़ सकता है या किसी अन्य कारण से पानी की कमी हो सकती है, और मवेशियों के पीने और नहाने आदि के लिए भी पानी की आवश्यकता होती है। इसलिए उन्होंने हर गाँव से जुड़ा एक तालाब, हर मंदिर से जुड़ा एक तालाब आदि बनवाया। ये उनके पारंपरिक वर्षा जल संचयन के तरीके थे, जो हज़ारों वर्षों तक उनके काम आए।

18. हालाँकि, पिछले कुछ दशकों में, हमारे देश के अधिकांश तालाबों को लालची लोगों ने मिट्टी से भर दिया है और उन पर निर्माण कर दिया है, जिससे उनका मूल स्वरूप नष्ट हो गया है। इसने देश में पानी की कमी को बढ़ावा दिया है।

19. इसके अलावा, कई तालाबों को अधिकारियों/ग्राम पंचायत अधिकारियों की मिलीभगत से मछली पालन के लिए व्यापारियों को औने-पौने दामों पर नीलाम कर दिया जाता है, और इन तथाकथित नीलामियों से एकत्रित धन का उपयोग भी ग्रामीणों के सामान्य लाभ के लिए नहीं, बल्कि कुछ व्यक्तियों द्वारा गबन कर लिया जाता है। अब समय आ गया है कि इन कुप्रथाओं को रोका जाए।

20. उत्तर प्रदेश में, ग्राम सभा की ज़मीनों को हड़पने के लिए उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम, 1954 का व्यापक रूप से दुरुपयोग किया गया। ऐसा या तो चकबंदी अधिकारियों की मिलीभगत से किया गया, या फिर चकबंदी अधिकारियों द्वारा बहुत पहले पारित किए गए कथित आदेशों में हेराफेरी करके किया गया ताकि उनकी तुलना मूल राजस्व अभिलेखों से न की जा सके, जिनमें ज़मीन को ग्राम सभा की ज़मीन बताया गया था, क्योंकि इन राजस्व अभिलेखों को हटा दिया गया था। अन्य राज्यों में भी यही प्रथा रही होगी। अब समय आ गया है कि इन सभी आदेशों का पुनर्विलोकन किया जाए जिनके ज़रिए आम गाँव की ज़मीन को इस तरह की धोखाधड़ी से हड़पा गया है।

21. उपरोक्त कारणों से इस अपील में कोई गुण-दोष नहीं है और इसे खारिज किया जाता है।

22. इस वाद को समाप्त करने से पहले, हम देश की सभी राज्य सरकारों को निर्देश देते हैं कि वे ग्राम सभा/ग्राम पंचायत/पोरम्बोक/शामलात भूमि पर अवैध/अनधिकृत कब्ज़ेदारों को बेदखल करने की योजनाएँ तैयार करें और इन्हें गाँव के ग्रामीणों के साझा उपयोग के लिए ग्राम सभा/ग्राम पंचायत को वापस कर दें। इस उद्देश्य के लिए, भारत में सभी राज्य सरकारों/केंद्र शासित प्रदेशों के मुख्य सचिवों को निर्देश दिया जाता है कि वे सरकार के अन्य वरिष्ठ अधिकारियों की सहायता से आवश्यक कार्रवाई करें। उक्त योजना में ऐसे अवैध कब्ज़ेदार को कारण बताओ नोटिस और संक्षिप्त सुनवाई के बाद शीघ्र बेदखल करने का प्रावधान होना चाहिए। ऐसे अवैध कब्ज़े की लंबी अवधि या उस पर निर्माण कार्य में भारी खर्च या राजनीतिक संबंधों को इस अवैध कृत्य को माफ करने या अवैध कब्ज़े को नियमित करने का औचित्य नहीं माना जाना चाहिए। नियमन की अनुमति केवल असाधारण वादों में ही दी जानी चाहिए, जैसे जहां किसी सरकारी अधिसूचना के तहत भूमिहीन मजदूरों या अनुसूचित

जाति/अनुसूचित जनजाति के सदस्यों को पट्टा प्रदान किया गया हो, या जहां भूमि पर पहले से ही कोई स्कूल, औषधालय या अन्य सार्वजनिक उपयोगिता मौजूद हो।

23. इस आदेश की एक प्रति भारत के सभी राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों के मुख्य सचिवों को भेजी जाए, जो इस आदेश का कड़ाई से और शीघ्र अनुपालन सुनिश्चित करेंगे और समय-समय पर इस न्यायालय को अनुपालन रिपोर्ट प्रस्तुत करेंगे।"

15. इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने **श्री कृष्णा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (पूर्वोक्त)** वाद में और चंडीगढ़ स्थित पंजाब एवं हरियाणा की एक खंडपीठ ने **गुरमुख सिंह बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य (पूर्वोक्त)** वाद में **जगपाल सिंह एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य (पूर्वोक्त)** पर भरोसा करते हुए आदेश पारित किए हैं।

16. उपरोक्त प्रस्ताव को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **जोगिंदर सिंह बनाम हरियाणा राज्य और अन्य; 2021 (2) आर.सी.आर. (सिविल) 109** के वाद में दोहराया गया है।

17. वर्तमान वाद के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ताओं के हित-पूर्ववर्ती द्वारा सार्वजनिक भूमि पर एक दीवार का निर्माण किया गया है, जिसका उपयोग मुख्य मार्ग पर आने-जाने के लिए किया जा रहा है। याचिकाकर्ता संख्या 2-मिश्री लाल ओझा ने अपने साक्ष्य/प्रति-परीक्षण में स्वीकार किया है कि दीवार का निर्माण याचिकाकर्ताओं के हित-पूर्ववर्ती द्वारा किया गया था। केवल यह तर्क दिया गया है कि चूँकि यह निष्कर्ष दर्ज किया गया है कि यदि भविष्य में इसके निकट कोई निर्माण किया जाता है, तो सार्वजनिक मार्ग बाधित हो सकता है, जबकि यह आदेश केवल भविष्य में निर्माण होने की धारणा के आधार पर पारित नहीं किया जा सकता था, लेकिन इस बात पर विवाद नहीं किया जा सकता कि दीवार का निर्माण सार्वजनिक भूमि पर किया गया है और द.प्र.सं. की धारा 133 के अनुसार, किसी भी सार्वजनिक स्थान या किसी भी मार्ग, नदी या चैनल पर अवैध अवरोध या उपद्रव, जिसका उपयोग जनता द्वारा वैध रूप से किया जाता है या किया जा सकता है, को हटाया जाना आवश्यक है। इस प्रकार, कोई भी व्यक्ति किसी सार्वजनिक स्थान या किसी भी रास्ते पर विधि विरूद्ध रूप से बाधा या उपद्रव नहीं कर सकता है और यदि ऐसा किया गया है या निर्माण किया गया है, तो उसे धारा 133 के अंतर्गत हटाया जा सकता है। द.प्र.सं. केवल इसलिए कि इससे जनता के लिए पूरी तरह से बाधा उत्पन्न नहीं हुई है, यह नहीं कहा जा सकता कि जिस व्यक्ति ने ऐसी बाधा या उपद्रव किया है, उसे ऐसा करने की अनुमति दी जा सकती है। चूँकि पूर्व रिट याचिका में चुनौती दिए गए आदेशों पर न तो रोक लगाई गई थी और न ही उन्हें संशोधित किया गया था, इसलिए विद्वान मजिस्ट्रेट ने सही ढंग से और विधि के अनुसार उनके निष्पादन का निर्देश दिया था। विद्वान मजिस्ट्रेट और पुनरीक्षण न्यायालय ने अभिलेख पर मौजूद दलीलों, साक्ष्यों और सामग्री के आधार पर विधि के अनुसार आदेश पारित किए हैं, जिनमें कोई अवैधता या त्रुटि नहीं है। इस प्रकार, इस न्यायालय द्वारा किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। दोनों

रिट याचिकाएँ गलत और निराधार आधार पर दायर की गई हैं, जिनमें कोई गुण-दोष नहीं है और ये खारिज किए जाने योग्य हैं।

18. उपरोक्त के मद्देनजर, दोनों रिट याचिकाएं अर्थात आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 15379 वर्ष 2019 और आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 17172 वर्ष 2019 **खारिज** की जाती हैं। वाद व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं है।

(2025) 4 ILRA 922

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद, 10.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति महेश चंद्र त्रिपाठी,

माननीय न्यायमूर्ति प्रशांत कुमार,

आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 16146 वर्ष 2024

साईं नागेश्वर सच्चिदानंद **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **.....प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री धीरज सिंह (बोहरा), श्री सुदीप हरकौली, श्री वैभव, श्री अमित सक्सेना (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता, सुश्री उज्जवल गुप्ता

आपराधिक विधि - भारतीय संविधान, 1950 - धारा 226 और 243-आर (बी) - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 171-एफ, 188, 384, 500, 501,498-ए, 323, 504, 420, 344 और 386 - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 125 और 482 - सूचना और प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2008 - धारा 67 - भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 - धारा 215 और 379 - हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 - धारा 12, 12 (1) (ए), 13, 13-बी, 13-बी (1) और 13-बी (2) - दहेज निषेध अधिनियम, 1961 - धारा 3 और 4 -मध्यस्थता अधिनियम, 2023 - धारा 27, 27(1) एवं 27(2) - सिविल प्रक्रिया संहिता - आदेश 23, नियम 3 - रिट याचिका - एक एफआईआर को रद्द करने के लिए - याचिकाकर्ता और सूचनादाता (उसकी पत्नी) के बीच वैवाहिक विवाद से उत्पन्न हुई - विधिक कार्यवाही के बाद, दोनों ने मध्यस्थता का विकल्प चुना और बाध्यकारी अंतरिम और अंतिम समझौता किया - हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13-बी के तहत आपसी तलाक के लिए सहमत हुए -

अनुवादित

याचिकाकर्ता ने पूर्ण समझौते के रूप में दो हिस्सों में ₹20 लाख का भुगतान किया - सूचनादाता ने सभी लंबित आपराधिक/भरण-पोषण के मामलों को वापस लेने और याचिकाकर्ता के खिलाफ एफआईआर जारी न रखने पर सहमति व्यक्त की, हालांकि दूसरों के खिलाफ अधिकार बरकरार रखे - बाद में सूचनादाता द्वारा रिट याचिका का विरोध करने के बावजूद, न्यायालय ने कहा कि, उसने पूर्ण समझौते को स्वीकार कर लिया था और समझौते पर कभी विवाद नहीं किया - एफआईआर समझौते से पहले की थी, लेकिन सूचनादाता ने तलाक की कार्यवाही में इसे आगे न बढ़ाने का वचन दिया - न्यायालय ने पाया कि, (i) विचाराधीन अपराध पक्षों के बीच है, जिन्होंने समझौते के अनुसार अपने पिछले कटु संबंधों को पहले ही सुलझा लिया है - (ii) समझौता मध्यस्थता अधिनियम, 2023 की धारा 27 के तहत कार्यान्वित और विधिक रूप से बाध्यकारी है - यह माना कि, (i) यदि यदि मामला पक्षों की सहमति से हल हो जाता है, तो ऐसे समझौते को तब तक दोबारा नहीं खोला जाना चाहिए जब तक कि ऊपर उल्लिखित किसी एक गड़बड़ी का आरोप न लगाया जाए और उसे सिद्ध न कर दिया जाए - (ii) पक्षों द्वारा हस्ताक्षरित और मध्यस्थ द्वारा प्रमाणित मध्यस्थता से उत्पन्न समझौता अंतिम होगा और पक्षों पर बाध्यकारी होगा। (iii) सर्वोच्च न्यायालय के उदाहरणों (बनवारी लाल, ज्ञान सिंह, चारु किशोर मेहता) पर भरोसा करते हुए, यह पाया गया कि समझौते के बाद मुकदमा चलाना प्रक्रिया का दुरुपयोग है - इसलिए, अनुच्छेद 226 के तहत प्रथम सूचना रिपोर्ट रद्द कर दी गई और बीएनएसएस, 2023 की धारा 379 के तहत सूचनादाता का आवेदन खारिज कर दिया गया। (प्रस्तर - 24, 25, 28, 29, 31, 33, 34)।

रिट याचिका स्वीकार किया जाता है । (ई-11)

संदर्भित वादों की सूची:-

1. चारु किशोर मेहता बनाम प्रकाश पटेल व अन्य - एसएलपी(सी) संख्या 11030 वर्ष 2022 - 22.06.2022 को निर्णीत,
2. मध्य प्रदेश राज्य बनाम लक्ष्मी नारायण व अन्य - एआईआर 2019 एससी 1296,
3. सुब्रत रॉय सहारा बनाम भारत संघ व अन्य - (2014) 8 एससीसी 470,
4. ज्ञान सिंह बनाम पंजाब राज्य - 2012(10) एससीसी 303,
5. बनवारी लाल बनाम चंदो देवी - (1993) 1 एससीसी 581,
6. काले व अन्य बनाम उप निदेशक चकबंदी - एआईआर 1976 एससी 807

(माननीय न्यायमूर्ति महेश चंद्र त्रिपाठी, एवं माननीय न्यायमूर्ति प्रशांत कुमार द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता सुश्री उज्ज्वल गुप्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री वैभव की सहायता से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अमित सक्सेना, प्रतिवादी संख्या 4 (सूचनादाता) व्यक्तिगत रूप से तथा राज्य प्रतिवादियों की ओर से विद्वान एजीए-I श्री परितोष कुमार मालवीय को सुना गया।

2. यह रिट याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत निम्नलिखित राहत की मांग करते हुए प्रस्तुत की गई है:-

य

"i. धारा 501, 500, 384, 188, 171-एफ भा.द.सं. और धारा 67 आईटी अधिनियम, 2008, थाना फिरोजाबाद उत्तर, जिला फिरोजाबाद (इस रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 1) के अंतर्गत मुकदमा अपराध संख्या 358 वर्ष 2023 के रूप में पंजीकृत प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 18.05.2023 को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।

ii. परमादेश रिट की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें और प्रतिवादियों को मुकदमा अपराध संख्या 358 वर्ष 2023 धारा 501, 500, 384, 188, 171-एफ, भा.द.सं. और 67 आईटी अधिनियम, 2008, थाना फिरोजाबाद उत्तर, जिला फिरोजाबाद के अंतर्गत प्रगति रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए निर्देश दें, जो याचिकाकर्ता के विरूद्ध लंबित है।

iii. रिट, आदेश या निर्देश जारी करें, जो प्रतिवादियों को मुकदमा अपराध संख्या 358, वर्ष 2023, धारा 501, 500, 384, 188, 171-एफ, भारतीय दंड संहिता और 67 आयकर अधिनियम, 2008, पुलिस स्टेशन फिरोजाबाद उत्तर, जिला फिरोजाबाद में याचिकाकर्ताओं को गिरफ्तार न करने का आदेश दे।

iv. कोई अन्य उपयुक्त रिट, आदेश या निर्देश जारी करें, जैसा कि यह माननीय न्यायालय वाद की परिस्थितियों में सही और उचित समझे।

v. याचिकाकर्ताओं को रिट याचिका की वाद व्यय प्रदान करें।"

3. वर्तमान रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान, प्रतिवादी संख्या 4 ने भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 की धारा 379 के अंतर्गत आपराधिक विविध आवेदन संख्या शून्य/ 2025 दायर किया था, जिसमें इस न्यायालय के रजिस्ट्रार को निर्देश देने की मांग की गई थी कि वह याचिकाकर्ता और उसके अधिवक्ता धीरज सिंह बोहरा के खिलाफ बीएनएसएस, 2023 की धारा 215 के साथ बीएनएसएस, 2023 की धारा 379 के अनुसार क्षेत्राधिकार वाले विद्वान मजिस्ट्रेट के समक्ष शिकायत दर्ज करें, जिसमें इस न्यायालय के समक्ष भौतिक तथ्यों को बेईमानी से दबाने और छिपाने के साथ झूठे और भ्रामक बयान देने का आरोप है।

वाद का तथ्यात्मक आव्यूह

4. इस वाद में शामिल विवाद का सार यह है कि याचिकाकर्ता उड़ीसा राज्य से है। याचिकाकर्ता और प्रतिवादी संख्या 4 (सूचनादाता) के बीच विवाह 29.06.2020 को हिंदू रीति-रिवाजों के अनुसार संपन्न हुआ था और इस विवाह से कोई संतान नहीं हुई। 20.07.2021 से वे अपने स्वभावगत अंतर और असंगति के कारण पति-पत्नी के रूप में साथ नहीं रह पा रहे थे। 20.07.2021 से उनके वैवाहिक संबंध लगभग समाप्त हो जाने के कारण उनके पति-पत्नी के रूप में साथ रहने की संभावना बहुत कम थी। दोनों ने एक-दूसरे के खिलाफ कई मुकदमे दायर किए हैं, जो इस प्रकार हैं:-

(i) याचिकाकर्ता ने सूचनादाता के विरुद्ध हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 12(1)(क) के अंतर्गत एक आवेदन प्रस्तुत किया था, जो हिंदू विवाह अधिनियम संख्या 426 वर्ष 2022 (साई नागेश्वर सच्चिदानंद बनाम

उज्ज्वल गुप्ता) के रूप में पंजीकृत किया गया था, जिसमें विवाह को निरस्त करने की मांग की गई थी और विद्वान अपर प्रधान न्यायाधीश-I, परिवार न्यायालय, फिरोजाबाद ने इसे खारिज कर दिया था। हालाँकि, याचिकाकर्ता ने इसे पूरी तरह से वापस लेने पर भी सहमति व्यक्त की थी।

(ii) सूचनादाता ने याचिकाकर्ता और उसके परिवार के सदस्यों के विरुद्ध एक आपराधिक वाद दर्ज कराया था, जो मुकदमा अपराध संख्या 126 वर्ष 2023 के रूप में धारा 498-ए, 323, 504 भा.द.सं. और धारा 3/4 डी.पी. अधिनियम के अंतर्गत थाना महिला थाना, जिला फिरोजाबाद में पंजीकृत किया गया था। उक्त मामले में, आरोप पत्र 12.03.2022 को सक्षम न्यायालय को भेजा गया था, जिसे आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 24039 वर्ष 2023 (साई नागेश्वर सच्चिदानंद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य) के तहत आवेदन में चुनौती दी गई थी। वाद 07.07.2023 को मध्यस्थता के लिए भेजा गया था, जिसमें पक्षकारों ने 03.01.2024 के समझौता अनुबंध के अंतर्गत मामले का निस्तारण किया गया और एक-दूसरे के खिलाफ दायर सभी सिविल और आपराधिक वादों को वापस लेने पर सहमति व्यक्त की। अंततः, मध्यस्थता केंद्र की रिपोर्ट का अवलोकन करने के बाद, विद्वान एकल न्यायाधीश ने 31.01.2024 को उक्त आवेदन को स्वीकार कर लिया और उक्त वाद से संबंधित संपूर्ण कार्यवाही को रद्द कर दिया।

(iii) सूचनादाता ने याचिकाकर्ता और उसके परिवार के सदस्यों के विरुद्ध घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 की धारा 12 के अंतर्गत एक परिवाद भी दायर किया था (मुकदमा संख्या 375 वर्ष 2022), जो विद्वान न्यायिक मजिस्ट्रेट, फिरोजाबाद के न्यायालय में विचाराधीन था और बाद में उसे वापस ले लिया गया था।

(iv) सूचनादाता ने याचिकाकर्ता के विरुद्ध धारा 125 द.प्र.सं. के अंतर्गत एक आवेदन भी दायर किया था, जिसे प्रारंभ में विद्वान अपर प्रधान न्यायाधीश-II, परिवार न्यायालय, फिरोजाबाद के समक्ष जब्त कर लिया गया था और बाद में उसे भी वापस ले लिया गया था।

(v) याचिकाकर्ता ने सूचनादाता और उसके परिवार के सदस्यों के विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई थी, जो मुकदमा अपराध संख्या 0136 वर्ष 2022 के अंतर्गत धारा 420, 504, 344, 323, 386 भा.द.सं., थाना फिरोजाबाद उत्तर, जिला फिरोजाबाद के अंतर्गत पंजीकृत किया गया था। विवेचना के बाद, विवेचना अधिकारी ने सक्षम न्यायालय को अंतिम रिपोर्ट प्रेषित की थी। अंतिम रिपोर्ट से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने विरोध याचिका दायर की और उसे परिवाद संख्या 22703 वर्ष 2023 माना गया। बाद में, उसे भी वापस ले लिया गया।

(vi) सूचनादाता ने याचिकाकर्ता और कुछ अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई थी, जो मुकदमा अपराध संख्या 0358 वर्ष 2023, थाना फिरोजाबाद उत्तर, जिला फिरोजाबाद के अंतर्गत धारा 171-एफ, 188, 384, 500, 501 भा.द.सं. और आईटी (संशोधन) अधिनियम, 2008 की धारा 67 (इस मामले में आक्षेपित प्रथम सूचना रिपोर्ट) के रूप में पंजीकृत की गई थी।

5. उपरोक्त वादों के लंबित रहने के दौरान, याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय में आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 24039 वर्ष 2023 के तहत एक आवेदन दायर किया, जिसमें विद्वान एकल न्यायाधीश ने दिनांक 07.07.2023 के एक आदेश द्वारा मामले को मध्यस्थता के लिए संदर्भित किया। विभिन्न बैठकों के बाद, पक्षकारों ने अपने कटु संबंधों को शांतिपूर्ण ढंग से समाप्त करने का निर्णय लिया और अपने सभी विवादों का आपसी समझौता

अनुवादित

किया। साथ ही, वे दिनांक 03.01.2024 के अंतिम समझौता अनुबंध में दर्ज शर्तों के अनुसार आपसी सहमति से तलाक की डिक्री के लिए अधिनियम, 1955 की धारा 13-बी के तहत एक आवेदन प्रस्तुत करने पर भी सहमत हुए, जिस पर पक्षकारों के बीच विधिवत हस्ताक्षर और निष्पादन किया गया। दिनांक 03.01.2024 के समझौता अनुबंध के प्रासंगिक खंडों को निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत करना समीचीन होगा:-

"5. साईं नागेश्वर सच्चिदानंद (आवेदक पति) और श्रीमती उज्ज्वल गुप्ता (विपक्षी संख्या 2-पत्नी) का विवाह 29.06.2020 को संपन्न हुआ, जिसका पंजीकरण अगस्त, 2020 को रजिस्ट्रार विवाह के समक्ष हुआ। उपरोक्त विवाह से, पक्षकारों को कोई संतान नहीं है। पक्षकार 20.07.2021 से अलग रह रहे हैं।

6. पक्षकार इस बात की पुष्टि और घोषणा करते हैं कि वे स्वेच्छा से और अपनी स्वतंत्र इच्छा से मध्यस्थों/समाधानकर्ताओं की उपस्थिति में इस समझौता अनुबंध पर पहुँचे हैं।

7. दिनांक 19.10.2023 और 06.12.2023 के अंतरिम निस्तारण समझौतों के मद्देनजर, पक्षों के बीच निम्नलिखित समझौता हुआ है:-

(क) कि पक्षकारों ने पहले ही अपने विवाद को सुलझा लिया है और अलग रहने का निर्णय ले लिया है और इस संबंध में उन्होंने प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, फिरोजाबाद के समक्ष हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13-बी के अंतर्गत एक याचिका दायर की है और यह याचिका एच.एम.ए. याचिका संख्या 1088, वर्ष 2023 के रूप में पंजीकृत है। उपरोक्त तलाक याचिका की छायाप्रति इस माननीय न्यायालय के अवलोकनार्थ इस समझौता-समझौते के साथ संलग्न की जा रही है।

(ख) कि पक्षकारों के बीच यह सहमति हुई है कि आवेदक-पति 20,00,000/- रुपये (मात्र बीस लाख रुपये) की एकमुश्त समझौता राशि का भुगतान करेगा, जिसमें स्थायी गुजारा भत्ता और पत्नी का स्त्रीधन डिमांड ड्राफ्ट के माध्यम से शामिल है।

(ग) कि 19.10.2023 को, आवेदक-पति ने उज्ज्वल गुप्ता (पत्नी) के पक्ष में आईसीआईसीआई बैंक से आहरित 10,10,000/- रुपये (केवल दस लाख रुपये) का डिमांड ड्राफ्ट संख्या 504055 दिनांक 16.10.2023 प्रस्तुत किया है और इसे आज अर्थात् 03.01.2024 को पत्नी को सौंप दिया गया है और उसने इसकी प्राप्ति की पुष्टि की है।

(घ) कि पक्षों के बीच यह सहमति हुई है कि शेष राशि अर्थात् 10,00,000/- रुपये (केवल दस लाख रुपये) साई नागेश्वर सच्चिदानंद (आवेदक-पति) द्वारा श्रीमती उज्ज्वल गुप्ता (विपक्षी संख्या 2-पत्नी) को एच.एम.ए. में अंतिम निर्णय के समय भुगतान किया जाएगा। याचिका संख्या 1088 वर्ष 2023, प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, फिरोजाबाद के न्यायालय में डिमांड ड्राफ्ट के माध्यम से लंबित है।

(ई) कि द्वितीय अंतरिम समझौते दिनांक 06.12.2023 के प्रस्तर 7 (एफ) के मद्देनजर, आवेदक ने मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, फिरोजाबाद द्वारा धारा 420, 506, 344, 323, 386 भा.द.सं. के तहत दायर केस संख्या 22703/2023 में पारित वापसी के आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत की है। इसकी प्रमाणित प्रति इस माननीय न्यायालय के अवलोकनार्थ इस समझौता अनुबंध के साथ संलग्न की जा रही है।

(एफ) कि द्वितीय अंतरिम समझौते दिनांक 06.12.2023 के प्रस्तर 7 (जी) के अनुसार, आवेदक ने हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 12 (1) (ए) के तहत दायर केस संख्या 426/2022 में वापसी आवेदन की प्रति प्रस्तुत की है। इसकी प्रमाणित प्रति इस समझौता अनुबंध के साथ माननीय न्यायालय के अवलोकनार्थ संलग्न की जा रही है।

(छ) आपसी तलाक याचिका के प्रस्तर 17 के अनुपालन में, पति ने एक शपथपत्र तैयार कर उसकी प्रमाणित प्रति विपक्षी संख्या 2-पत्नी को सौंप दी है और उसने इसकी प्राप्ति की पुष्टि भी कर दी है।

(ज) दोनों पक्षों के बीच यह भी सहमति हुई है कि वर्तमान वैवाहिक विवाद के संबंध में एक-दूसरे के विरुद्ध उनके द्वारा दायर किए गए सभी सिविल और आपराधिक मामले, यदि कोई हों, संबंधित पक्षकारों द्वारा संबंधित न्यायालय/प्राधिकारी के समक्ष उचित कदम उठाकर वापस ले लिए जाएँगे।

(झ) दोनों पक्षकार इस वैवाहिक विवाद के संबंध में एक-दूसरे के विरुद्ध कोई नया वाद दायर नहीं करेंगे। भविष्य में भी उनका एक-दूसरे के विरुद्ध कोई दावा नहीं है।

(ञ) दोनों पक्षों के बीच यह सहमति हुई है कि वे इस समझौते के नियमावली और शर्तों का उल्लंघन नहीं करेंगे, अन्यथा पीड़ित पक्ष विधिक सहायता लेने के लिए स्वतंत्र होगा।

8. इस समझौते पर हस्ताक्षर करके, पक्षकार यह बताते हैं कि आवेदन धारा 482 संख्या 24039 वर्ष 2023 के अंतर्गत और इस संबंध में सभी विवादों और मतभेदों को पक्षकारों द्वारा सुलह/मध्यस्थता की प्रक्रिया के माध्यम से सौहार्दपूर्ण ढंग से सुलझा लिया गया है।

6. अंततः विद्वान एकल न्यायाधीश ने उपरोक्त समझौता अनुबंध पर ध्यान देते हुए 31.01.2024 को आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 24039 वर्ष 2023 के तहत उपरोक्त आवेदन को अनुमति दे दी, तथा उपरोक्त वाद से संबंधित संपूर्ण कार्यवाही को रद्द कर दिया। दिनांक 31.01.2024 का आदेश नीचे पुन: प्रस्तुत है:-

"आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अपर महाधिवक्ता को सुना गया और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया गया।

यह वर्तमान आवेदन, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, फिरोजाबाद के न्यायालय में लंबित, मुकदमा अपराध संख्या 126 वर्ष 2022 (राज्य बनाम साई नागेश्वर सच्चिदानंद) धारा 498ए, 323, 504 भा.द.सं. धारा 3/4 डी.पी. एक्ट, थाना महिला थाना, जिला फिरोजाबाद के अंतर्गत दिनांक 12.03.2022 के आरोप पत्र को निरस्त करने के लिए प्रस्तुत किया गया है।

दिनांक 07.07.2023 के आदेश द्वारा वाद को मध्यस्थता हेतु संदर्भित किया गया था। मध्यस्थता केंद्र द्वारा रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी गई है। पक्षकारों ने दिनांक 03.01.2024 के समझौता अनुबंध के माध्यम से मध्यस्थता में मामले का निस्तारण कर लिया है, जो मध्यस्थता केंद्र के रिपोर्ट के साथ संलग्न है। आवेदक और विपक्षी संख्या 2 पति-पत्नी हैं और उनके बीच का विवाद वैवाहिक प्रकृति का है। पक्षकार एक-दूसरे के विरुद्ध दायर सभी सिविल और आपराधिक वाद वापस लेने पर सहमत हुए हैं। दोनों पक्ष इस बात पर सहमत हैं कि समझौते के अनुसार वाद की कार्यवाही समाप्त कर दी जाए और पूरी कार्यवाही रद्द कर दी जाए।

मामला वैवाहिक विवाद से संबंधित है और दोनों पक्षों ने सौहार्दपूर्ण समझौता कर लिया है। दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा समझौते के तथ्य की पुष्टि और स्वीकृति की गई है।

ज्ञान सिंह बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य, (2012) 10 एससीसी 303 में सर्वोच्च न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने यह टिप्पणी की है कि: (एससीसी पृष्ठ 340, प्रस्तर 58)

"58. जहाँ उच्च न्यायालय किसी आपराधिक कार्यवाही को इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए रद्द करता है कि अपराधी और पीड़ित के बीच विवाद का निपटारा हो चुका है, यद्यपि अपराध समझौता योग्य नहीं हैं, वह ऐसा इसलिए करता है क्योंकि उसकी राय में, आपराधिक कार्यवाही जारी रखना व्यर्थ होगा और मामले में न्याय की माँग है कि पक्षों के बीच विवाद को समाप्त कर दिया जाए और शांति का सहारा लिया जाए; न्याय के उद्देश्यों की सुरक्षा ही अंतिम मार्गदर्शक कारक है।"

जहाँ मामले सिविल प्रकृति के भी हों, जैसे वैवाहिक, पारिवारिक विवाद आदि, वहाँ न्यायालय "विशेष तथ्यों", "विशेषता" पर विचार कर सकता है और पक्षों के बीच विवादों के वास्तविक समाधान को प्रोत्साहित करने के लिए आपराधिक कार्यवाही को रद्द कर सकता है। [देखें: माधवराव जीवाजीराव सिंधिया बनाम संभाजीराव चंद्रावजीराव आंग्रे, (1988) 1 एससीसी 692]।

विधि की स्थिति और वाद के तथ्यों, परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, संहिता की धारा 482 के अंतर्गत वर्तमान आवेदन स्वीकार किया जाता है।

उपर्युक्त वाद से संबंधित संपूर्ण कार्यवाही एतद्द्वारा रद्द की जाती है।

पक्षकार आज से दो सप्ताह के भीतर संबंधित न्यायालय के समक्ष इस आदेश की प्रति दाखिल कर सकते हैं।"

7. दिनांक 03.01.2024 के समझौता अनुबंध के अनुसार, दोनों पक्षों ने आपसी सहमति से तलाक की उचित डिक्री के लिए विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, फिरोजाबाद से संपर्क किया था और अधिनियम, 1955 की धारा 13 (बी) के तहत एक आवेदन प्रस्तुत किया था। चूंकि पक्षों ने पहले ही 19.10.2023 के अंतरिम समझौते के अनुसार अपने पिछले कटु संबंधों को सुलझा लिया है, जिसके बाद 06.12.2023 को दूसरा अंतरिम समझौता हुआ और इन दो अंतरिम समझौतों को दिनांक 03.01.2024 के अंतिम समझौता अनुबंध में परिवर्तित कर दिया गया।

7. दिनांक 19.10.2023 को पक्षों के बीच हुए अंतरिम समझौता अनुबंध के अनुसार, याचिकाकर्ता ने सूचनादाता को उसके भरण-पोषण संबंधी सभी दावों के पूर्ण और अंतिम निस्तारण हेतु कुल 20,00,000/- रुपये का भुगतान करने पर सहमति व्यक्त की, जिसमें से सूचनादाता के पक्ष में आईसीआईसीआई बैंक से आहरित 10,10,000/- रुपये का डिमांड ड्राफ्ट संख्या 504055 दिनांक 16.10.2023 को याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया और उसे मध्यस्थता केंद्र की पत्रावली में रखा गया। उक्त डिमांड ड्राफ्ट 03.01.2024 को अंतिम समझौता के समय सूचनादाता को सौंपा जाना था और शेष 10,00,000/- रुपये विवाह विच्छेद के अंतिम निर्णय के समय संबंधित विद्वान न्यायालय के समक्ष सूचनादाता को भुगतान किए जाने थे। यह भी सहमति हुई कि पक्षों के बीच सभी लंबित वाद वापस ले लिए जाएँगे। सूचनादाता ने याचिकाकर्ता के खिलाफ मामला आगे न बढ़ाने का वचन भी दिया था और संबंधित विवेचना अधिकारी को दिनांक 18.05.2023 की तत्काल एफआईआर में इस आशय का

एक बयान भी दिया था। हालाँकि, सूचनादाता ने अन्य आरोपियों के खिलाफ एफआईआर जारी रखने का अपना अधिकार सुरक्षित रखा है। दो अन्य लंबित मामले, अर्थात् एक द.प्र.सं. की धारा 125 के तहत और दूसरा अधिनियम, 1955 की धारा 12 के तहत, वापस ले लिए जाएँगे। यह भी सहमति हुई कि याचिकाकर्ता अंग्रेजी समाचार पत्र 'टाइम्स ऑफ इंडिया' और हिंदी समाचार पत्र 'दैनिक जागरण' और 'अमर उजाला' में एक स्पष्टीकरण लेख प्रकाशित करेगा।

8. मध्यस्थता के दौरान, याचिकाकर्ता ने एक शपथपत्र भी दिया था कि मीडिया/सोशल प्लेटफॉर्म पर सूचनादाता के खिलाफ प्रकाशित अपमानजनक बयानों से उसका कोई लेना-देना नहीं है और सूचनादाता ने उन व्यक्तियों के खिलाफ कार्रवाई करने का अपना अधिकार भी सुरक्षित रखा है, जो सूचनादाता के खिलाफ अपमानजनक बयान देने/प्रकाशित करने के लिए जिम्मेदार हैं। याचिकाकर्ता ने यह भी शपथपत्र दिया था कि उसने अपने पूर्व अधिवक्ता अमित गर्ग, जो इस एफआईआर में अभियुक्त हैं, को कभी भी मीडिया में कोई बयान देने के लिए नहीं कहा था और वे उसके अपने बयान थे। वह याचिकाकर्ता द्वारा अधिकृत नहीं था, और सूचनादाता भी अमित गर्ग के खिलाफ उचित कार्रवाई करने के लिए स्वतंत्र था।

9. ऐसा भी प्रतीत होता है कि बाद में, याचिकाकर्ता ने धारा 420, 504, 344, 323, 386 भा.द.सं. के अंतर्गत शिकायत वाद संख्या 22703 वर्ष 2023 को वापस ले लिया था, जो वाद अपराध संख्या 0136 वर्ष 2022 में विवेचना अधिकारी द्वारा भेजी गई अंतिम रिपोर्ट के विरुद्ध याचिकाकर्ता द्वारा दायर विरोध याचिका से उत्पन्न हुआ था। याचिकाकर्ता और सूचनादाता ने आपसी सहमति से यह निर्णय लिया था कि दिनांक 19.10.2023, 06.12.2023 के अंतरिम समझौतों और दिनांक 03.01.2024 के अंतिम समझौते में दर्ज नियम और शर्तें बाध्यकारी हैं और याचिकाकर्ता और सूचनादाता के बीच किसी भी प्रकार का कोई विवाद, मतभेद, मुकदमा, दावा या प्रतिदावा, चाहे वह मूर्त हो या अमूर्त, नहीं रहेगा। वे पक्षों के बीच हुए समझौते को लागू करने के लिए आवश्यक कदम और कार्रवाई करेंगे। तदनुसार, दोनों पक्ष अधिनियम, 1955 की धारा 13 बी (1) और 13-बी (2) के तहत याचिकाओं के समर्थन में अपने बयान देने के लिए निर्धारित तिथि पर प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, फिरोजाबाद के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने के लिए सहमत हुए।

10. दोनों पक्ष इस बात पर सहमत हुए कि विवाह विच्छेद के बाद, वे दूसरे पक्ष के व्यक्तिगत मामलों, जैसे विवाह, संपत्ति आदि में हस्तक्षेप नहीं करेंगे और भविष्य में एक-दूसरे और अपने परिवार के सदस्यों के विरुद्ध कोई अपमानजनक बयान नहीं देंगे। उन्होंने यह भी सहमति व्यक्त की कि भविष्य में वे एक-दूसरे के साथ किसी भी प्रकार का संवाद करने का प्रयास नहीं करेंगे। यदि कोई भी पक्ष आपसी सहमति से तलाक देने से अपनी सहमति वापस लेता है या 19.10.2023 के अंतरिम समझौते या वर्तमान द्वितीय प्रस्ताव याचिका में उल्लिखित किसी भी शर्त से पीछे हटता है, तो ऐसी स्थिति में, पीड़ित पक्ष न केवल आपराधिक और सिविल विधि के तहत कार्यवाही शुरू करने के लिए स्वतंत्र होगा, बल्कि उल्लंघन करने वाले पक्ष के विरुद्ध हर्जाने का दावा दायर करने का भी हकदार होगा, साथ ही उस राज्य से मामलों को पुनर्जीवित करने का भी हकदार होगा जहाँ वह 19.10.2023 के उक्त समझौते पर हस्ताक्षर करने के समय था। दोनों पक्ष इस बात पर सहमत हुए

और वचनबद्ध हुए कि वे दूसरे पक्ष के भूतपूर्व, वर्तमान और भावी नियोक्ताओं या कर्मचारियों या मित्रों, परिवार/परिचितों को कोई ई-मेल/टेक्स्ट संदेश/डाक या किसी अन्य प्रकार का संचार नहीं भेजेंगे।

11. इस पृष्ठभूमि में, इस रिट याचिका पर 30.09.2024 को विचार किया गया और खंडपीठ ने विस्तृत टिप्पणियों के साथ याचिकाकर्ता को अंतरिम राहत प्रदान की। तत्काल संदर्भ हेतु, इसे नीचे पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है:-

"1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री धीरज सिंह (बोहरा) और राज्य प्रतिवादियों की ओर से विद्वान ए.जी.ए. श्री सतेन्द्र तिवारी को सुना गया।

2. वर्तमान रिट याचिका दिनांक 18.05.2023 को दर्ज की गई आक्षेपित प्रथम सूचना रिपोर्ट, जो मुकदमा अपराध संख्या 358 वर्ष 2023 के रूप में धारा 501, 500, 384, 188, 171-एफ भा.द.सं. और 67 आईटी अधिनियम, 2008 के अंतर्गत थाना - फिरोजाबाद, जिला - फिरोजाबाद में दर्ज की गई थी, को रद्द करने और प्रतिवादियों को प्रगति रिपोर्ट प्रस्तुत करने और आक्षेपित प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुसरण में याचिकाकर्ताओं को गिरफ्तार न करने का निर्देश देने की प्रार्थना के साथ प्रस्तुत की गई है।

3. दिनांक 11.09.2024 के आदेश के अनुसरण में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अनुपूरक शपथपत्र दायर किया है, जिसके साथ हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13-बी (2) के तहत प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, फिरोजाबाद के समक्ष एक मामला दायर किया गया। यह बताया गया कि आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 24039 वर्ष 2023 (साईं नागेश्वर सचिदानंद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य) के तहत दायर एक आवेदन में, मामला 07.07.2023 के आदेश द्वारा मध्यस्थता केंद्र को भेजा गया था, जिसमें 03.01.2024 को एक समझौता हुआ था। यह बताया गया कि इसके अनुसरण में, हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13-बी के तहत दायर एक तलाक याचिका, जो कि एचएमए याचिका संख्या 1088 वर्ष 2023 (श्री साईं नागेश्वर सचिदानंद बनाम श्रीमती उज्ज्वला गुप्ता) है, को भी 31.05.2024 के निर्णय और डिक्री द्वारा अनुमति दी गई थी। इसके बाद यह बताया गया कि उपरोक्त कार्यवाही में दूसरे प्रस्ताव में, यह स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया था कि वर्तमान आरोपित प्रथम सूचना रिपोर्ट भी वापस ली जाएगी। मध्यस्थता केंद्र के समक्ष समझौते की शर्तों का भी दूसरे प्रस्ताव में उल्लेख किया गया था। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी है कि सूचनादाता वर्तमान मामले में आगे नहीं आ सकता है। इसलिए, दलील यह है कि वर्तमान आपराधिक अभियोजन को रद्द किया जाना चाहिए।

4. मामले पर विचार किया जाना आवश्यक है।

5. मुख्य न्यायाधीश, फिरोजाबाद के माध्यम से प्रतिवादी संख्या 4 को नोटिस जारी करें। एक सप्ताह के भीतर कार्रवाई की जाए।

6. इस मामले को 24.10.2024 को नए सिरे से प्रस्तुत करें।

7. सूचीबद्ध होने की अगली तिथि तक, उपरोक्त आरोपित प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुसार विवेचना स्थगित रहेगी।

8. इस बीच, पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता अपने-अपने शपथपत्रों का आदान-प्रदान कर सकते हैं।"

याचिकाकर्ता की ओर से तर्क

12. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अमित सक्सेना ने दृढ़तापूर्वक तर्क दिया कि याचिकाकर्ता माइक्रोसॉफ्ट कंपनी, बैंगलोर में कंप्यूटर इंजीनियर के पद पर कार्यरत है। अभियोजन पक्ष की कहानी के अनुसार, सूचनादाता जिला फिरोजाबाद में महापौर पद के लिए निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में चुनाव लड़ रही थी। चुनाव के दौरान, 23.04.2023 को व्हाट्सएप पर एक वीडियो क्लिप प्राप्त हुई, जिसमें दिखाया गया कि श्री अमित गर्ग (याचिकाकर्ता के पूर्व अधिवक्ता) ने सूचनादाता को यह कहकर धमकाया कि उसके पति से मुलाकात के दौरान उसने सूचनादाता और याचिकाकर्ता के बीच वैवाहिक मामले को निपटाने के लिए कथित तौर पर अच्छी रकम प्राप्त की, जिससे सार्वजनिक रूप से सूचनादाता की छवि खराब हुई। उन्होंने प्रस्तुत किया कि सूचनादाता ने याचिकाकर्ता और परिवार के अन्य सदस्यों के खिलाफ दिनांक 18.05.2023 की एफआईआर सहित विभिन्न वैवाहिक कार्यवाहियां शुरू की थीं, लेकिन बाद में, इस मामले को इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिनांक 07.07.2023 को आवेदन अंतर्गत 482 संख्या 24039 वर्ष 2023 में पारित आदेश के माध्यम से मध्यस्थता केंद्र को भेज दिया गया, जिसमें याचिकाकर्ता और सूचनादाता के बीच 03.01.2024 को समझौता हुआ और विशेष रूप से, दिनांक 19.10.2023 और 06.12.2023 के पहले के अंतरिम समझौता समझौतों के आलोक में, याचिकाकर्ता ने 16.10.2023 को 10,00,000/- रुपये का डिमांड ड्राफ्ट प्रस्तुत किया था और इसे 03.01.2024 को सूचनादाता को सौंप दिया गया था। सूचनादाता ने भी इसे स्वीकार किया था और शेष 10,00,000/- रुपये की राशि एच.एम.ए. याचिका संख्या 1088, वर्ष 2023 में अंतिम निर्णय और डिक्री के समय उसे भुगतान की जानी थी।

13. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अमित सक्सेना ने दिनांक 03.01.2024 के समझौता अनुबंध के प्रस्तर 7 (एच) पर भरोसा जताया, जिसमें दोनों पक्ष इस बात पर सहमत हुए थे कि *"वर्तमान वैवाहिक विवाद के संबंध में उनके द्वारा एक-दूसरे के खिलाफ दायर किए गए सभी सिविल और आपराधिक मामले, यदि कोई हों, संबंधित पक्षों द्वारा संबंधित न्यायालय/प्राधिकारी के समक्ष उचित कदम उठाकर वापस ले लिए जाएँगे"।* आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 24039 वर्ष 2023 में दिनांक 31.01.2024 को आदेश पारित करते समय भी, अर्जित एकल न्यायाधीश ने दिनांक 03.01.2024 के समझौता अनुबंध पर विचार किया था, जिसमें पक्षकारों ने एक-दूसरे के विरुद्ध दायर सभी सिविल और आपराधिक मामलों को वापस लेने पर भी सहमति व्यक्त की थी और दोनों पक्ष इस बात पर सहमत हुए थे कि समझौते के अनुसार, मुकदमा अपराध संख्या 126 वर्ष 2022 की कार्यवाही समाप्त की जाए और पूरी कार्यवाही रद्द की जाए।

14. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा आगे प्रस्तुत किया गया कि केवल इसी पृष्ठभूमि में, आवेदन अंतर्गत धारा 482 को 31.1.2024 को अनुमति दी गई थी, जिसे 21.02.2024 को सही किया गया था। बाद में, सिविल न्यायाधीश (वरिष्ठ प्रभाग), एफ.टी.सी./ए.सी.जे.एम. फिरोजाबाद ने अपने आदेश दिनांक 12.03.2024 के तहत वाद संख्या 16993, वर्ष 2022 की कार्यवाही भी बंद कर दी थी, लेकिन दोनों कार्यवाहियों में, किसी भी समय ऐसी कोई आपत्ति नहीं ली गई। अब, इस स्तर पर, सूचनादाता मध्यस्थता कार्यवाही के समय दिए गए पूर्व वचन से मुकर नहीं सकता और यही प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, फिरोजाबाद द्वारा एच.एम.पी. संख्या

1088, वर्ष 2023 में दिनांक 31.05.2024 को पारित निर्णय और डिक्री का एकमात्र कारण था। दिनांक 31.05.2024 के निर्णय और डिक्री का प्रासंगिक अंश नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:-

"याचिनी ने अपने सशपथ बयान में कथन किया है कि माननीय उच्च न्यायालय, इलाहाबाद के आदेश दिनाँक 03-01-2024 को मीडिएशन सेन्टर में हुए समझौते के अनुसार मैनें आंशिक रूप से दस लाख रूपये प्राप्त कर लिये है एवं शेष मुव- दस लाख रूपये निर्णय के समय प्राप्त करूंगी। स्त्रीधन सारा प्राप्त कर लिया है।

निर्णय के पूर्व याची संख्या-1 द्वारा याची संख्या-2 को डी०डी०संख्या-585714 की मूल प्रति प्रदान की गई जिसकी छाया प्रति पत्रावली पर संलग्न की गयी। याची संख्या-2 ने डी०डी० प्राप्ति के हस्ताक्षर आदेश पत्र पर किये।

अतः ऐसी स्थिति में पक्षों को सुनने एवं उनके मध्य सुलह की सम्भावना न होने की स्थिति को दृष्टिगत रखते हुए पक्षकारों की ओर से दाखिल प्रस्तुत याचिका अन्तर्गत धारा-13(बी) हिन्दू विवाह अधिनियम स्वीकार किये जाने योग्य है।"

15. उन्होंने अंत में दलील दी कि अंतिम डिक्री के समय, सूचक को शेष 10,00,000/- रुपये मिल चुके थे और विवाह भी रद्द कर दिया गया था। आक्षेपित कार्यवाही प्रक्रिया का दुरुपयोग है। गुण-दोष के आधार पर भी, प्रथम सूचना रिपोर्ट से यह नहीं पता चलता कि याचिकाकर्ता की कोई मिलीभगत है और तर्क के लिए भी, यदि पूर्व अधिवक्ता ने सोशल मीडिया पर कोई टिप्पणी की है, तो यह नहीं माना जा सकता कि वह याचिकाकर्ता के निर्देश पर या उसके कहने पर थी। याचिकाकर्ता के विरुद्ध ऐसा कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता और सूचनादाता, याचिकाकर्ता को आरोपित कार्यवाही में नहीं घसीट सकता। यदि यह जारी रहता है, तो यह मध्यस्थता कार्यवाही में पक्षों के बीच हुए समझौते के विपरीत होगा और यह प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, फिरोजाबाद द्वारा दिए गए निर्णय और डिक्री के भी विपरीत है।

16. उपरोक्त दलीलें देते हुए, याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने भारत के संविधान की धारा 226 के तहत अपनी असाधारण शक्तियों का प्रयोग करते हुए रिट याचिका को स्वीकार करने और आरोपित प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द करने और निरस्त करने का अनुरोध किया।

सूचनादाता के तर्क

16. इसके विपरीत, सूचनादाता ने व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होकर रिट याचिका का पुरजोर विरोध किया। उन्होंने दलील दी कि चूँकि याचिकाकर्ता के विरुद्ध संज्ञेय अपराध का वाद बनता है और रिट याचिका में कोई गुण-दोष नहीं है, इसलिए इसे रद्द किया जाना चाहिए। उन्होंने पुरजोर तर्क दिया और बीएनएसएस, 2023 की धारा 379 के तहत दायर विविध आवेदन पर इस आधार पर दबाव डालने का प्रयास किया कि याचिकाकर्ता ने जानबूझकर रिट याचिका में तथ्यों को बेईमानी से दबाकर, तोड़-मरोड़कर और छिपाकर झूठा बयान दिया है और शपथपत्र पर झूठा बयान दिया है। याचिकाकर्ता ने जानबूझकर अदालत को गुमराह करने की कोशिश की और बेईमानी से अपने पक्ष में अंतरिम आदेश प्राप्त किया। उन्होंने दलील दी कि माननीय न्यायालय याचिकाकर्ता

और उसके अधिवक्ता के खिलाफ क्षेत्राधिकार वाले विद्वान मजिस्ट्रेट के समक्ष बीएनएसएस, 2023 की धारा 215 और बीएनएसएस, 2023 की धारा 379 के तहत परिवाद दर्ज करने का निर्देश दे सकता है।

17. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना है और अभिलेख का अवलोकन किया है।

न्यायालय द्वारा विश्लेषण

18. इस वाद में, निर्विवाद स्थिति यह उभर कर आती है कि याचिकाकर्ता और सूचनादाता के बीच विवाह 29.06.2020 को संपन्न हुआ था और उक्त विवाह के बाद कोई संतान उत्पन्न नहीं हुई। 20.07.2021 से याचिकाकर्ता और सूचनादाता के बीच कोई सहवास नहीं हुआ और तब से वे अलग-अलग रह रहे हैं। दोनों पक्षों ने एक-दूसरे के विरुद्ध कई वाद दर्ज कराए और इन मामलों के लंबित रहने के दौरान, याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष धारा 482 द.प्र.सं. के तहत एफआईआर को रद्द करने के लिए एक आवेदन प्रस्तुत किया, जो धारा 498-ए, 323, 504 भा.द.सं. और धारा 3/4 डी.पी. अधिनियम के तहत मुकदमा अपराध संख्या 126 वर्ष 2023 के रूप में दर्ज की गई थी। विद्वान एकल न्यायाधीश ने दिनांक 07.07.2023 के आदेश के माध्यम से मामले को मध्यस्थता के लिए भेजा और दिनांक 19.10.2023 के अंतरिम समझौते के माध्यम से, दोनों पक्षों ने अधिनियम, 1955 की धारा 13-बी (1) और 13-बी (2) के तहत याचिकाएं दायर करके आपसी सहमति से तलाक के आदेश द्वारा अपने विवाह को भंग करने के लिए संबंधित न्यायालय का दरवाजा खटखटाया था। दिनांक 19.10.2023 के उक्त अंतरिम समझौता अनुबंध के बाद दिनांक 06.12.2023 को दूसरा अंतरिम समझौता समझौता हुआ और इन दोनों समझौतों को दिनांक 03.01.2024 के अंतिम समझौता अनुबंध में परिवर्तित कर दिया गया।

19. पक्षों के बीच हुए समझौते के अनुसार, याचिकाकर्ता ने सूचनादाता को उसके सभी दावों के पूर्ण और अंतिम निपटान के लिए कुल 20,00,000/- रुपये का भुगतान करने पर सहमति व्यक्त की थी। याचिकाकर्ता ने 19.10.2023 को समझौते पर हस्ताक्षर और निष्पादन के समय 10,00,000/- रुपये का डिमांड ड्राफ्ट प्रस्तुत किया और इसे 03.01.2024 को अंतिम निपटान समझौते के समय सूचनादाता को सौंप दिया गया। शेष 10,00,000/- रुपये की राशि संबंधित न्यायालय के समक्ष अंतिम निर्णय के समय सूचक को भुगतान कर दी गई। पक्षों के बीच सभी लंबित मामले वापस ले लिए गए। सूचनादाता ने याचिकाकर्ता के विरुद्ध मामले को आगे न बढ़ाने का वचन दिया था। हालाँकि, उसने अन्य अभियुक्तों के विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने का अपना अधिकार सुरक्षित रखा था। दोनों पक्षों ने आपसी सहमति से यह निर्णय लिया था कि दिनांक 19.10.2023, 06.12.2023 और 03.01.2024 के समझौतों में दर्ज शर्तें बाध्यकारी हैं और उनके बीच किसी भी प्रकार का कोई विवाद, मतभेद, मुकदमा, दावा या प्रतिदावा, चाहे वह मूर्त हो या अमूर्त, नहीं रहेगा और वे दिनांक 19.10.2023 के समझौते के माध्यम से पक्षों के बीच हुए समझौते को उसकी सच्ची, ईमानदारी और अक्षरशः भावना के साथ लागू करने के लिए आवश्यक कदम और कार्रवाई करेंगे।

20. यह सच है कि समझौते पर 19.10.2023 को हस्ताक्षर किए गए थे और इससे बहुत पहले, 18.05.2023 को आपत्तिजनक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी। उन्होंने विवाह विधि (संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा संशोधित अधिनियम, 1955 की धारा 13-बी (1) के अंतर्गत विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, फिरोजाबाद की न्यायालय में संयुक्त रूप से प्रथम प्रस्ताव याचिका प्रस्तुत की है और न्याय के हित में, अधिनियम, 1955 की धारा 13 (बी) (1) के प्रावधानों के अंतर्गत आपसी सहमति से तलाक की डिक्री द्वारा अपने विवाह को भंग करने का शपथ पत्र दिया है। उपरोक्त याचिका श्री साई नागेश्वर सच्चिदानंद (याचिकाकर्ता संख्या 1) और श्रीमती उज्ज्वल गुप्ता (याचिकाकर्ता संख्या 2) के वाद में एच.एम.ए. याचिका संख्या 1088 वर्ष 2023 के रूप में पंजीकृत की गई थी। प्रथम प्रस्ताव याचिका दायर करने की तिथि पर, याचिकाकर्ता द्वारा अधिनियम, 1955 की धारा 12 (1) (ए) के अंतर्गत दायर याचिका, जो कि एचएमए संख्या 426/2022 (साई नागेश्वर सच्चिदानंद बनाम उज्ज्वल गुप्ता) थी, विद्वान अपर प्रधान न्यायाधीश-2, परिवार न्यायालय, फिरोजाबाद के न्यायालय में निर्णय हेतु लंबित थी। प्रथम प्रस्ताव याचिका में, उन्होंने सहमति व्यक्त की थी कि वे भविष्य में एक-दूसरे के विरुद्ध कोई मानहानिकारक आरोप नहीं लगाएंगे और समझौते पर हस्ताक्षर की तिथि दिनांक 19.10.2023 तक जो भी मानहानिकारक आरोप या वक्तव्य दिए गए थे, वे बिना किसी अनुचित प्रभाव, दबाव या जबरदस्ती के स्पष्ट रूप से वापस लिए जाएँगे क्योंकि इस संबंध में उनके विवाद और मतभेदों का उनके द्वारा सौहार्दपूर्ण ढंग से निस्तारण कर लिया गया है।

21. प्रथम प्रस्ताव के सफलतापूर्वक पूर्ण होने के पश्चात, पक्षकारों द्वारा विवाह विधि (संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा संशोधित अधिनियम, 1955 की धारा 13-बी (2) के अंतर्गत दूसरी प्रस्ताव याचिका प्रस्तुत की गई। दोनों पक्षों ने शपथ पत्र प्रस्तुत कर प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, फिरोजाबाद से अनुरोध किया है कि न्याय के हित में, अधिनियम, 1955 की धारा 13 (बी) (2) के प्रावधानों के अंतर्गत, यथावत संशोधित, आपसी सहमति से तलाक की डिक्री द्वारा याचिकाकर्ता और सूचनादाता के बीच विवाह विच्छेद किया जाए। दूसरी प्रस्ताव याचिका के पैरा-5 में उन्होंने तत्काल प्रथम सूचना रिपोर्ट सहित सभी आपराधिक कार्यवाहियों का खुलासा किया था और भरण-पोषण - भूत, वर्तमान और भविष्य, स्त्रीधन और गुजारा भत्ता, विवाह व्यय से संबंधित उसके सभी दावों के पूर्ण और अंतिम निस्तारण को भी स्वीकार किया था। 20,00,000/- रुपये की उक्त राशि सूचनादाता को निम्नलिखित तरीके से भुगतान की जानी थी:-

"(क) याचिकाकर्ता संख्या 1 द्वारा याचिकाकर्ता संख्या 2 को दिनांक 19.10.2023 को समझौते पर हस्ताक्षर और निष्पादन के समय ₹10,00,000/- (केवल दस लाख रुपये) की राशि आईसीआईसीआई बैंक पर आहरित डीडी संख्या 504055 के माध्यम से याचिकाकर्ता संख्या 2 के नाम से पहले ही भुगतान कर दी गई है, जिसे मध्यस्थता केंद्र की फाइल में रखा गया था और दिनांक 03.01.2024 को अंतिम निस्तारण समझौते के समय याचिकाकर्ता संख्या 2 को सौंप दिया गया था।

(ख) संबंधित विद्वान न्यायालय के समक्ष अंतिम निर्णय के समय याचिकाकर्ता संख्या 1 द्वारा याचिकाकर्ता संख्या 2 को याचिकाकर्ता संख्या 2 के नाम से डिमांड ड्राफ्ट/पे ऑर्डर के माध्यम से ₹10,00,000/- (केवल दस लाख रुपये) की राशि का भुगतान किया जाएगा, जिसे वर्तमान याचिका सौंपी जाएगी।"

22. प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, फिरोजाबाद द्वारा अधिनियम, 1955 की धारा 13 (बी) के अंतर्गत कार्यवाही में पारित निर्णय एवं डिक्री दिनांक 31.05.2024 के समय, शेष धनराशि रू0 10,00,000/- बिना किसी विरोध के सूचनादाता द्वारा प्राप्त कर ली गयी थी। दूसरी प्रस्ताव याचिका के प्रस्तर-10 में सूचनादाता ने निम्नलिखित आशय का स्पष्ट कथन किया था:-

"10. पक्षों के बीच लंबित सभी मामले वापस ले लिए गए हैं, और याचिकाकर्ता संख्या 2 ने याचिकाकर्ता संख्या 1 के विरुद्ध मामले को आगे न बढ़ाने का वचन दिया है और याचिकाकर्ता संख्या 2 द्वारा याचिकाकर्ता संख्या 1 के विरुद्ध दर्ज एफआईआर संख्या 0358/2023, थाना फिरोजाबाद उत्तर, धारा 171-एफ, 188, 384, 500, 501 भा.द.सं. और धारा 67 आईटी (संशोधन) अधिनियम, 2008 के अंतर्गत संबंधित विवेचना अधिकारी को इस आशय का बयान दिया है। हालाँकि, याचिकाकर्ता संख्या 2 अन्य प्रतिवादियों/अभियुक्तों के विरुद्ध एफआईआर जारी रखने का अधिकार सुरक्षित रखता है। केवल दो मामले, अर्थात् एक धारा 125 द.प्र.सं. के अंतर्गत और दूसरा धारा 12, गृह मंत्रालय के अंतर्गत, लंबित हैं, जिन्हें सुनवाई की अगली तिथियों पर वापस ले लिया जाएगा।"

23. दूसरी प्रस्ताव याचिका के मद्देनजर, इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि भले ही तत्काल आरोपित प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 18.05.2023 की है, लेकिन दिनांक 19.10.2023 के अंतरिम समझौता अनुबंध के अनुसार, पक्षों ने विवाद का समाधान कर लिया है। बाद में, सूचनादाता ने न केवल पहली प्रस्ताव याचिका में, बल्कि दूसरी प्रस्ताव याचिका में भी यह वचन दिया था कि वह याचिकाकर्ता के विरुद्ध मामले को आगे नहीं बढ़ाएगी और उसने संबंधित विवेचना अधिकारी के समक्ष आरोपित प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 0358 वर्ष 2023 में इस आशय का बयान दिया था। हालाँकि, सूचनादाता ने अन्य अभियुक्तों के विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट को आगे बढ़ाने का अपना अधिकार सुरक्षित रखा था। यह भी सहमति हुई कि अन्य दो मामले, जो द.प्र.सं. की धारा 125 और अधिनियम, 1955 की धारा 12 के अंतर्गत विचाराधीन थे, अगली सुनवाई की तारीख पर वापस ले लिए जाएँगे। यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि दोनों कार्यवाहियाँ वापस ले ली गई हैं।

24. दोनों पक्ष पहले ही दिनांक 19.10.2023 और 06.12.2023 के अंतरिम समझौता समझौतों और दिनांक 03.01.2024 के अंतिम समझौता अनुबंध के अनुसार अपने विवाह को भंग कर चुके हैं। समझौता अनुबंध का लाभ उठाने वाली सूचनादाता को अन्यथा मामले को फिर से उठाने से रोक दिया गया है, खासकर जब विधि द्वारा अनुमत किसी भी आधार पर समझौता अनुबंध को कोई चुनौती नहीं दी गई हो। इसलिए, इस स्तर पर हम सूचनादाता को याचिकाकर्ता के खिलाफ अपना मामला आगे बढ़ाने की कोई अनुमति नहीं दे सकते। उपर्युक्त तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, इस स्तर पर याचिकाकर्ता मध्यस्थता कार्यवाही में दिए गए पूर्व वचन से मुकर नहीं सकती और बाद में, प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, फिरोजाबाद द्वारा उस पर कार्रवाई की गई।

25. मध्यस्थता अधिनियम, 2023 के अध्याय-VI में धारा 27 मध्यस्थता निस्तारण समझौते के प्रवर्तन से संबंधित है और यह प्रावधान करती है कि पक्षों द्वारा हस्ताक्षरित और मध्यस्थ द्वारा प्रमाणित मध्यस्थता से

उत्पन्न मध्यस्थता निस्तारण समझौता अंतिम होगा और क्रमशः पक्षों और उनके तहत दावा करने वाले व्यक्तियों पर बाध्यकारी होगा और उपधारा (2) के प्रावधानों के अनुसार लागू होगा। धारा 27 इस प्रकार है:-

"27. (1) पक्षकारों द्वारा हस्ताक्षरित और मध्यस्थ द्वारा प्रमाणित मध्यस्थता से उत्पन्न मध्यस्थता समझौता अंतिम होगा और पक्षकारों तथा उनके अंतर्गत दावा करने वाले व्यक्तियों पर क्रमशः बाध्यकारी होगा और उप-धारा (2) के प्रावधानों के अनुसार प्रवर्तनीय होगा। (2) धारा 28 के प्रावधानों के अधीन रहते हुए, मध्यस्थता समझौता सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के प्रावधानों के अनुसार उसी प्रकार प्रवर्तित किया जाएगा जैसे कि वह किसी न्यायालय द्वारा पारित निर्णय या डिक्री हो, और तदनुसार, किसी भी पक्षकार या उनके माध्यम से दावा करने वाले व्यक्ति द्वारा किसी भी विधिक कार्यवाही में बचाव, मुआवज़ा या अन्यथा के रूप में उस पर भरोसा किया जा सकता है।

(2) धारा 28 के प्रावधानों के अधीन रहते हुए, मध्यस्थता से किया गया समझौता सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के प्रावधानों के अनुसार उसी प्रकार लागू किया जाएगा, जैसे कि वह किसी न्यायालय द्वारा पारित निर्णय या डिक्री हो, और तदनुसार, किसी भी पक्षकार या उनके माध्यम से दावा करने वाले व्यक्ति द्वारा किसी विधिक कार्यवाही में बचाव, मुआवज़ा या अन्यथा के रूप में उस पर भरोसा किया जा सकेगा।"

26. ऐसे वादों में समझौते की पवित्रता से संबंधित विधि की जाँच सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **काले एवं अन्य बनाम उप-निदेशक, चकबंदी** वाद में की गई, और सर्वोच्च न्यायालय तथा इस न्यायालय के बाद के निर्णयों में इसका निरंतर पालन किया गया है। पारिवारिक समझौते का उद्देश्य और उसका बाध्यकारी प्रभाव निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया है:-

"पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत किए गए संबंधित तर्कों पर विचार करने से पहले, हम सामान्य रूप से विवादों को हमेशा के लिए सुलझाने के उद्देश्य से पक्षों के बीच की गई पारिवारिक व्यवस्थाओं के प्रभाव और मूल्य पर चर्चा करना चाहेंगे। पारिवारिक समझौते या व्यवस्था के आधार पर, एक ही पूर्वज या निकट संबंधी के वंशज परिवार के सदस्य अपने मतभेदों और विवादों को दूर करने, अपने परस्पर विरोधी दावों या विवादित उपाधियों को हमेशा के लिए निपटाने और हल करने का प्रयास करते हैं ताकि मानसिक शांति प्राप्त की जा सके और परिवार में पूर्ण सद्भाव और सद्भावना स्थापित की जा सके। पारिवारिक व्यवस्थाएँ स्वयं के लिए विशिष्ट एक विशेष समता द्वारा शासित होती हैं और यदि ईमानदारी से की जाएँ तो लागू की जा सकती हैं। इस संबंध में, केर ने अपने बहुमूल्य ग्रंथ "केर ऑन फ्रॉड" के पृष्ठ 364 पर पारिवारिक व्यवस्था की प्रकृति के संबंध में निम्नलिखित प्रासंगिक टिप्पणियाँ की हैं, जिन्हें इस प्रकार उद्धृत किया जा सकता है;

"जो सिद्धांत अजनबियों के बीच सामान्य समझौते के मामले में लागू होते हैं, वे पारिवारिक व्यवस्थाओं की प्रकृति के समझौतों के मामले में समान रूप से लागू नहीं होते हैं। पारिवारिक व्यवस्थाएं स्वयं के लिए विशिष्ट एक विशेष समानता द्वारा शासित होती हैं, और यदि ईमानदारी बरती जाए तो इसे लागू किया जाएगा, हालांकि उनका उद्देश्य समझौता करना नहीं है, बल्कि सभी पक्षों की गलती से उत्पन्न हुआ है, जो इस तथ्य की भूल या अज्ञानता से उत्पन्न हुआ है कि उनके अधिकार वास्तव में क्या हैं, या वे बिंदु जिन पर उनके अधिकार वास्तव में निर्भर करते हैं।"

इस व्यवस्था का उद्देश्य परिवार को लंबे समय तक चलने वाले मुकदमों या उन निरंतर झगड़ों से बचाना है जो परिवार की एकता और एकजुटता को नुकसान पहुँचाते हैं और परिवार के विभिन्न सदस्यों के बीच नफरत और कटुता पैदा करते हैं। आज जब हम एक समतावादी समाज के निर्माण और समाज के पूर्ण पुनर्निर्माण के लिए प्रयासरत हैं, तो परिवार की एकता और एकरूपता को बनाए रखना और उसे कायम रखना, जिससे अंततः समाज और इस प्रकार पूरे देश का एकीकरण हो, समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है। एक ऐसी पारिवारिक व्यवस्था जिसके द्वारा संपत्ति को विभिन्न दावेदारों के बीच समान रूप से विभाजित किया जाए ताकि संपत्ति का समान वितरण हो सके, न कि उसे कुछ ही लोगों के हाथों में केंद्रित किया जा सके, निस्संदेह सामाजिक न्याय के प्रशासन में एक मील का पत्थर है। इसीलिए "परिवार" शब्द को व्यापक अर्थ में समझना होगा ताकि इसमें न केवल करीबी रिश्तेदार या विधिक उत्तराधिकारी शामिल हों, बल्कि वे लोग भी शामिल हों जिनके पास किसी प्रकार का पूर्व-अधिकार, दावे का आभास या विशिष्ट उत्तराधिकार हो, ताकि भविष्य के विवाद हमेशा के लिए बंद हो जाएँ और परिवार आपस में दावों पर लड़ने और ऐसे निरर्थक या व्यर्थ मुकदमों पर समय, धन और ऊर्जा बर्बाद करने के बजाय देश के व्यापक हित में अधिक रचनात्मक कार्यों पर अपना ध्यान केंद्रित कर सके। इसलिए, न्यायालयों ने तकनीकी या तुच्छ आधारों पर पारिवारिक व्यवस्था को बाधित करने के बजाय उसे बनाए रखने के पक्ष में रुख अपनाया है। **जहां न्यायालय को यह पता चलता है कि पारिवारिक व्यवस्था में कोई विधिक कमी या औपचारिक दोष है, वहां विबंधन नियम को लागू किया जाता है और उस व्यक्ति की दलील को खारिज करने के लिए लागू किया जाता है, जो पारिवारिक व्यवस्था का पक्षकार होने के नाते, तय किए गए विवाद को खत्म करना चाहता है और उस पारिवारिक व्यवस्था को रद्द करने का दावा करता है, जिसके तहत उसने स्वयं कुछ भौतिक लाभ प्राप्त किए हैं।** इस मुद्दे पर इंग्लैंड का विधि लगभग एक जैसा ही है। हेल्सबरी के इंग्लैंड के विधि, खंड 17, तृतीय संस्करण, पृष्ठ 215-216 पर, पारिवारिक समझौते के मूल सिद्धांतों और उसके अस्तित्व को नियंत्रित करने वाले सिद्धांतों के बारे में निम्नलिखित उपयुक्त टिप्पणियाँ की गई हैं:

"पारिवारिक व्यवस्था एक ही परिवार के सदस्यों के बीच एक समझौता है, जिसका उद्देश्य सामान्यतः और उचित रूप से परिवार के हित में होता है, चाहे वह संदिग्ध या विवादित अधिकारों का समझौता करके हो, या मुकदमेबाजी से बचकर या परिवार के सम्मान की रक्षा करके पारिवारिक संपत्ति या परिवार की शांति और सुरक्षा को बनाए रखकर।

समझौता किसी दीर्घकालिक लेन-देन से निहित हो सकता है, लेकिन समझौते को एक ऐसे विलेख में शामिल करना या लागू करना अधिक सामान्य है जिस पर "पारिवारिक व्यवस्था" शब्द लागू होता है।

पारिवारिक व्यवस्थाएँ उन सिद्धांतों द्वारा शासित होती हैं जो अजनबियों के बीच लेन-देन पर लागू नहीं होते। न्यायालय, पारिवारिक व्यवस्थाओं के तहत पक्षों के अधिकारों या ऐसी व्यवस्थाओं को रद्द करने के दावों पर निर्णय लेते समय, इस बात पर विचार करता है कि मामले के व्यापक दृष्टिकोण में परिवारों के हित में क्या सबसे अधिक है, और उन विचारों पर भी विचार करता है जिन पर एक ही परिवार के सदस्यों के अलावा अन्य व्यक्तियों के बीच लेन-देन करते समय ध्यान नहीं दिया जाएगा। ऐसे मामले जो अजनबियों के बीच समान लेन-देन की वैधता के लिए घातक होंगे, पारिवारिक व्यवस्थाओं के बाध्यकारी प्रभाव पर आपत्ति नहीं हैं।"

दूसरे शब्दों में, पारिवारिक समझौते के बाध्यकारी प्रभाव और आवश्यक तत्वों को ठोस रूप में प्रस्तुत करने के लिए, मामले को निम्नलिखित प्रस्तावों के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है:

(1) पारिवारिक समझौता सद्भावपूर्ण होना चाहिए ताकि परिवार के विभिन्न सदस्यों के बीच संपत्तियों के निष्पक्ष और न्यायसंगत विभाजन या आवंटन द्वारा पारिवारिक विवादों और प्रतिद्वंदी दावों का समाधान किया जा सके;

(2) उक्त समझौता स्वैच्छिक होना चाहिए और धोखाधड़ी, जबरदस्ती या अनुचित प्रभाव से प्रेरित नहीं होना चाहिए:

(3) पारिवारिक समझौता मौखिक भी हो सकता है, ऐसी स्थिति में पंजीकरण आवश्यक नहीं है;

(4) यह सर्वविदित है कि पंजीकरण तभी आवश्यक होगा जब पारिवारिक समझौते की शर्तें लिखित रूप में हों। यहाँ भी, दस्तावेज़ के तहत किए गए पारिवारिक समझौते की शर्तों और विवरणों वाले दस्तावेज़ और पारिवारिक समझौते के बाद तैयार किए गए एक मात्र ज्ञापन के बीच अंतर किया जाना चाहिए, चाहे वह रिकॉर्ड के उद्देश्य से हो या आवश्यक नामांतरण करने के लिए न्यायालय को सूचित करने के लिए। ऐसे मामले में, ज्ञापन स्वयं अचल संपत्तियों में किसी भी अधिकार का सृजन या उन्मूलन नहीं करता है और इसलिए यह पंजीकरण अधिनियम की धारा 17(2) के अंतर्गत नहीं आता है और इसलिए अनिवार्य रूप से पंजीकरण योग्य नहीं है;

(5) पारिवारिक व्यवस्था में पक्षकार बनने वाले सदस्यों के पास संपत्ति में कोई पूर्ववर्ती अधिकार, दावा या हित, यहाँ तक कि संभावित दावा भी होना चाहिए, जिसे समझौते के पक्षकारों द्वारा स्वीकार किया गया हो। भले ही समझौते के किसी एक पक्ष के पास कोई अधिकार न हो, लेकिन व्यवस्था के तहत दूसरा पक्ष ऐसे व्यक्ति के पक्ष में अपने सभी दावों या अधिकारों का त्याग कर देता है और उसे एकमात्र स्वामी मानता है, तो पूर्ववर्ती अधिकार को स्वीकार किया जाना चाहिए और पारिवारिक व्यवस्था को बरकरार रखा जाएगा और न्यायालयों को इस पर सहमति देने में कोई कठिनाई नहीं होगी;

(6) भले ही वर्तमान या संभावित सद्भावी विवाद, जिसमें विधिक दावे शामिल न हों, एक सद्भावी पारिवारिक व्यवस्था द्वारा निपटाए जाते हैं जो निष्पक्ष और न्यायसंगत है, पारिवारिक व्यवस्था अंतिम है और समझौते के पक्षों पर बाध्यकारी है।

ऊपर बताए गए सिद्धांतों को इस न्यायालय के साथ-साथ प्रिवी काउंसिल और अन्य उच्च न्यायालयों के निर्णयों की एक लंबी श्रृंखला में स्पष्ट रूप से प्रतिपादित और कुशलतापूर्वक प्रतिपादित किया गया है।.....

.....

..... यहाँ तक कि यदि कोई वास्तविक विवाद मौजूद हो या संभावित हो, जिसमें विधिक दावे शामिल न हों, तो भी वह पर्याप्त होगा। एक संयुक्त हिंदू परिवार के सदस्य परिवार में शांति बनाए रखने या सामंजस्य स्थापित करने के लिए ऐसी पारिवारिक व्यवस्था कर सकते हैं। यदि ऐसा समझौता वास्तविक रूप से किया गया हो और उसकी शर्तें किसी विशेष मामले की परिस्थितियों के अनुसार उचित हों, तो न्यायालय ऐसे समझौते को टालने की बजाय उसे स्वीकृति देने में अधिक तत्पर होंगे।"

इस प्रकार, ऊपर विश्लेषित निर्णयों की समीक्षा से यह प्रतीत होता है कि न्यायालयों ने पारिवारिक समझौते की वैधता के बारे में बहुत उदार और व्यापक दृष्टिकोण अपनाया है और हमेशा इसे बनाए रखने का प्रयास किया है। न्यायालयों द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण का मुख्य विचार यह है कि यदि पक्षों की सहमति से कोई मामला

सुलझा लिया गया है, तो समझौते के पक्षकारों को इसे तुच्छ या अस्थिर आधार पर फिर से खोलने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

27. सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा कि पारिवारिक व्यवस्था, व्यवस्था के पक्षकारों पर बाध्यकारी होने के कारण, स्पष्ट रूप से उस व्यक्ति के विरुद्ध एक विबंधन के रूप में कार्य करती है जिसने समझौते/समझौते के तहत लाभ उठाया है, उसे रद्द करने या चुनौती देने से। इस संबंध में टिप्पणियाँ उपयुक्त हैं और परिणामस्वरूप आगे पुन: प्रस्तुत हैं:-

"इस न्यायालय ने यह भी स्पष्ट रूप से निर्धारित किया है कि पारिवारिक व्यवस्था, व्यवस्था के पक्षकारों पर बाध्यकारी होने के कारण स्पष्ट रूप से एक विबंधन के रूप में कार्य करती है, ताकि समझौते के तहत लाभ लेने वाले किसी भी पक्ष को उसे रद्द करने या चुनौती देने से रोका जा सके। ....."

28. विधि में यह सर्वविदित है कि न्यायालय पारिवारिक समझौते के पक्ष में होंगे, जब तक कि वह अनुचित, धोखाधड़ी से दूषित या सद्भावना से रहित न हो। इसका स्पष्ट उद्देश्य यह है कि यदि पक्षों के बीच विवाद सहमति से हल हो जाता है, तो ऐसे समझौते को तब तक दोबारा नहीं खोला जाना चाहिए जब तक कि उपरोक्त शरारतों में से किसी एक का दावा न किया जाए और वाद के तथ्यों में सिद्ध न हो जाए।

29. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **बनवारी लाल बनाम चंदो देवी** वाद में पक्षकारों के बीच समझौते के अनुसार कार्यवाही के निपटारे और समझौता डिक्री को वापस लेने संबंधी विधि निर्धारित किया है। यह माना गया कि सीपीसी के नियम 3 के आदेश 23 के तहत, न्यायालय को न्यायिक विवेक का प्रयोग करते हुए यह संतुष्ट होना चाहिए कि पक्षकारों के बीच समझौता वैध है, इससे पहले कि वह उसे स्वीकार करे और वाद का निस्तारण करे। इसके अलावा, आदेश 23, नियम 3 का परंतुक और स्पष्टीकरण यह आदेश देता है कि न्यायालय को इस "प्रश्न का निर्णय" करना होगा कि क्या कोई समायोजन या संतुष्टि हुई है, और यह स्पष्ट किया गया है कि भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 के अंतर्गत शून्य और शून्यकरणीय समझौते वैध नहीं माने जाएँगे। प्रावधान के इस प्रकार पढ़ने पर, सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि समझौता दर्ज करने वाला न्यायालय, संविदा अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार, समझौता डिक्री पारित होने के बाद और जब कोई पक्षकार वापसी के लिए आवेदन प्रस्तुत करता है, तब भी समझौते की वैधता की जाँच कर सकता है।

30. **ज्ञान सिंह बनाम पंजाब राज्य** के वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि उच्च न्यायालय को यह विचार करना चाहिए कि क्या आपराधिक कार्यवाही जारी रखना अनुचित या न्याय के हित के विपरीत होगा; या पीड़ित और अपराधी के बीच समझौते के बावजूद आपराधिक कार्यवाही जारी रखना विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा; और क्या न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए, यह उचित है कि आपराधिक वाद को समाप्त कर दिया जाए; और यदि उपरोक्त प्रश्न(प्रश्नों) का उत्तर हाँ में है, तो उच्च न्यायालय आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के अपने क्षेत्राधिकार में होगा। निर्णय का प्रासंगिक प्रस्तर 61 नीचे पुन: प्रस्तुत है:-

"61. उपरोक्त चर्चा से जो स्थिति उभरती है, उसे संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है: अपने अंतर्निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए किसी आपराधिक कार्यवाही या प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत को रद्द करने की उच्च न्यायालय की शक्ति, संहिता की धारा 320 के अंतर्गत अपराधों का शमन करने हेतु किसी आपराधिक न्यायालय को दी गई शक्ति से भिन्न और विशिष्ट है। अंतर्निहित शक्ति व्यापक होती है और इसकी कोई वैधानिक सीमा नहीं होती, लेकिन इसका प्रयोग ऐसी शक्ति में निहित दिशानिर्देशों के अनुसार किया जाना चाहिए, जैसे: (i) न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करना, या (ii) किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकना। आपराधिक कार्यवाही या शिकायत या प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द करने की शक्ति का प्रयोग किन मामलों में किया जा सकता है, जहाँ अपराधी और पीड़ित ने अपने विवाद को सुलझा लिया है, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा और कोई श्रेणी निर्धारित नहीं की जा सकती। हालाँकि, ऐसी शक्ति का प्रयोग करने से पहले, उच्च न्यायालय को अपराध की प्रकृति और गंभीरता पर उचित ध्यान देना चाहिए। मानसिक विकृति के जघन्य और गंभीर अपराध या हत्या जैसे अपराध, बलात्कार, डकैती आदि के मामलों को उचित रूप से रद्द नहीं किया जा सकता, भले ही पीड़ित या पीड़ित के परिवार और अपराधी ने विवाद सुलझा लिया हो। ऐसे अपराध निजी प्रकृति के नहीं होते और समाज पर गंभीर प्रभाव डालते हैं। इसी प्रकार, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम जैसे विशेष कानूनों के तहत अपराधों या उस पद पर कार्यरत लोक सेवकों द्वारा किए गए अपराधों आदि के संबंध में पीड़ित और अपराधी के बीच कोई भी समझौता, ऐसे अपराधों से संबंधित आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने का कोई आधार प्रदान नहीं कर सकता। लेकिन जिन आपराधिक मामलों में मुख्यतः सिविल प्रकृति होती है, उन्हें रद्द करने के प्रयोजनों के लिए एक अलग आधार मिलता है, विशेष रूप से वाणिज्यिक, वित्तीय, व्यापारिक, सिविल, साझेदारी या इसी तरह के लेन-देन से उत्पन्न अपराध या दहेज आदि से संबंधित विवाह से उत्पन्न अपराध या पारिवारिक विवाद जहाँ गलती मूल रूप से निजी या व्यक्तिगत प्रकृति की हो और पक्षों ने अपना पूरा विवाद सुलझा लिया हो। इस श्रेणी के मामलों में, उच्च न्यायालय आपराधिक कार्यवाही को रद्द कर सकता है यदि उसकी राय में, दोनों के बीच समझौते के कारण अपराधी और पीड़ित के बीच, दोषसिद्धि की संभावना बहुत कम और क्षीण है और आपराधिक वाद को जारी रखने से अभियुक्त को भारी उत्पीड़न और पूर्वाग्रह का सामना करना पड़ेगा और पीड़ित के साथ पूर्ण समझौते के बावजूद आपराधिक वाद को रद्द न करने से उसके साथ घोर अन्याय होगा। दूसरे शब्दों में, उच्च न्यायालय को यह विचार करना होगा कि क्या आपराधिक कार्यवाही जारी रखना न्याय के हित के विरुद्ध या अनुचित होगा या पीड़ित और अपराधी के बीच समझौते के बावजूद आपराधिक कार्यवाही को जारी रखना विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा और क्या न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए, यह उचित है कि आपराधिक मामले को समाप्त कर दिया जाए और यदि उपरोक्त प्रश्न(प्रश्नों) का उत्तर हाँ में है, तो उच्च न्यायालय आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के अपने क्षेत्राधिकार में होगा।"

31. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **सुब्रत रॉय सहारा बनाम भारत संघ और अन्य** में यह माना है कि "भारतीय न्यायिक प्रणाली तुच्छ मुकदमों से बुरी तरह ग्रस्त है। मुकदमों को निरर्थक और बिना सोचे-समझे दावों की ओर उनके बाध्यकारी जुनून से बचाने के लिए तरीके और साधन विकसित किए जाने की आवश्यकता है। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि मुकदमेबाजी की प्रक्रिया में, हर गैर-जिम्मेदार और निरर्थक दावे का दूसरी तरफ एक

निर्दोष पीड़ित होता है। मुकदमा लंबित रहने तक, वह अपनी ओर से बिना किसी गलती के, लंबे समय तक घबराहट और बेचैनी के दौर से गुजरता है।"

32. **मध्य प्रदेश राज्य बनाम लक्ष्मी नारायण एवं अन्य** वाद में सर्वोच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने विशिष्ट दिशानिर्देश निर्धारित किए थे जिनके द्वारा उच्च न्यायालय पक्षों के बीच विवादों का निस्तारण कर सकता है और निम्नलिखित निर्णय दिया:-

"i) संहिता की धारा 320 के तहत अशमनीय अपराधों के लिए आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए संहिता की धारा 482 के तहत प्रदत्त शक्ति का प्रयोग मुख्य रूप से सिविल प्रकृति के मामलों में किया जा सकता है, विशेष रूप से वे जो वाणिज्यिक लेनदेन से उत्पन्न होते हैं या वैवाहिक संबंध या पारिवारिक विवादों से उत्पन्न होते हैं और जब पक्षकारों ने आपस में पूरे विवाद को सुलझा लिया हो;

ii) ऐसी शक्ति का प्रयोग उन अभियोजनों में नहीं किया जाएगा जिनमें मानसिक विकृति के जघन्य और गंभीर अपराध या हत्या, बलात्कार, डकैती आदि जैसे अपराध शामिल हों। ऐसे अपराध निजी प्रकृति के नहीं होते और समाज पर गंभीर प्रभाव डालते हैं;

iii) इसी प्रकार, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम जैसे विशेष कानूनों के तहत अपराधों के लिए ऐसी शक्ति का प्रयोग नहीं किया जाएगा या उस पद पर कार्यरत लोक सेवकों द्वारा किए गए अपराधों को केवल पीड़ित और अपराधी के बीच समझौते के आधार पर रद्द नहीं किया जाएगा;

iv) धारा 307 भारतीय दंड संहिता और शस्त्र अधिनियम आदि के अंतर्गत अपराध जघन्य और गंभीर अपराधों की श्रेणी में आते हैं और इसलिए इन्हें समाज के विरुद्ध अपराध माना जाएगा, न कि केवल व्यक्ति के विरुद्ध। इसलिए, धारा 307 भारतीय दंड संहिता और/या शस्त्र अधिनियम आदि के अंतर्गत अपराध के लिए आपराधिक कार्यवाही, जिसका समाज पर गंभीर प्रभाव पड़ता है, को धारा 482 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए इस आधार पर रद्द नहीं किया जा सकता कि पक्षों ने अपना पूरा विवाद आपस में सुलझा लिया है। हालाँकि, उच्च न्यायालय केवल इस आधार पर अपना निर्णय नहीं देगा कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में धारा 307 भारतीय दंड संहिता का उल्लेख है या इस प्रावधान के तहत आरोप तय किया गया है। उच्च न्यायालय इस बात की जाँच कर सकता है कि क्या धारा 307 भारतीय दंड संहिता को केवल इसलिए शामिल किया गया है या अभियोजन पक्ष ने पर्याप्त साक्ष्य एकत्र कर लिए हैं, जो सिद्ध होने पर धारा 307 भारतीय दंड संहिता के तहत आरोप तय करने का मार्ग प्रशस्त करेंगे। इस प्रयोजन के लिए, उच्च न्यायालय को लगी चोट की प्रकृति, चाहे वह चोट शरीर के महत्वपूर्ण/अतिरिक्त अंगों पर लगी हो, प्रयुक्त हथियारों की प्रकृति आदि के आधार पर निर्णय लेने की स्वतंत्रता होगी। हालाँकि, उच्च न्यायालय द्वारा ऐसा प्रयोग केवल जाँच के बाद साक्ष्य एकत्र होने और आरोप पत्र दाखिल/आरोप निर्धारण होने और/या मुकदमे के दौरान ही स्वीकार्य होगा। जब मामला अभी भी विवेचना के अधीन हो, तब ऐसा प्रयोग स्वीकार्य नहीं है। अतः, नरिंदर सिंह (उपरोक्त) मामले में इस न्यायालय के निर्णय

के प्रस्तर 29.6 और 29.7 में दिए गए अंतिम निष्कर्ष को सामंजस्यपूर्ण ढंग से पढ़ा जाना चाहिए और समग्र रूप से तथा ऊपर वर्णित परिस्थितियों में पढ़ा जाना चाहिए;

v) गैर-संज्ञेय अपराधों, जो निजी प्रकृति के हैं और समाज पर कोई गंभीर प्रभाव नहीं डालते, के संबंध में आपराधिक कार्यवाही को इस आधार पर रद्द करने के लिए संहिता की धारा 482 के तहत शक्ति का प्रयोग करते समय कि पीड़ित और अपराधी के बीच समझौता हो गया है, उच्च न्यायालय को अभियुक्त के पूर्ववृत्त पर विचार करना आवश्यक है; अभियुक्त का आचरण, अर्थात् क्या अभियुक्त फरार था और वह क्यों फरार था, उसने शिकायतकर्ता के साथ समझौता कैसे किया आदि।"

32. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **चारु किशोर मेहता बनाम प्रकाश पटेल और अन्य** वाद में, दिनांक 22.06.2022 के निर्णय और आदेश द्वारा बॉम्बे उच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 13.06.2022 के आदेश की पुष्टि की और कहा कि न्यायालय में तुच्छ मामले दायर करना विधि प्रक्रिया का दुरुपयोग है। सर्वोच्च न्यायालय ने याचिकाकर्ता पर 5 लाख रुपये का जुर्माना लगाने वाले बॉम्बे उच्च न्यायालय के आदेश को भी बरकरार रखा और विशेष अनुमति याचिका खारिज कर दी।

33. उपरोक्त कथन और वाद के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, यह पाया जाता है कि विचाराधीन अपराध उन पक्षों के बीच है, जिन्होंने अपने पिछले कटु संबंधों को दिनांक 19.10.2023 के अंतरिम समझौते और उसके बाद दिनांक 06.12.2023 के दूसरे अंतरिम समझौता अनुबंध के तहत पहले ही सुलझा लिया है। इन अंतरिम समझौतों को दिनांक 03.01.2024 के अंतिम समझौता अनुबंध में परिवर्तित कर दिया गया, जिसमें उन्होंने परस्पर सहमति व्यक्त की कि इन समझौतों में दर्ज नियम और शर्तें बाध्यकारी हैं और याचिकाकर्ता और सूचनादाता के बीच कोई विवाद, मतभेद, वाद, दावा या प्रतिदावा नहीं रहेगा। उपरोक्त निस्तारण समझौतों के आधार पर, प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, फिरोजाबाद ने 31.05.2024 को अधिनियम, 1955 की धारा 13-बी के तहत एच.एम.पी. संख्या 1088 वर्ष 2023 का आदेश दिया था। इन परिस्थितियों में, न्याय के हित में, याचिकाकर्ता के लिए भारत के संविधान की धारा 226 के अंतर्गत हमारी विवेकाधीन शक्तियों का प्रयोग करना एक उपयुक्त वाद प्रतीत होता है।

33. तदनुसार, उपर्युक्त कारणों से, रिट याचिका स्वीकार की जाती है और याचिकाकर्ता के विरुद्ध धारा 501, 500, 384, 188, 171-एफ भा.द.सं. और धारा 67 आईटी एक्ट, 2008 के अंतर्गत मुकदमा अपराध संख्या 358 वर्ष 2023 के रूप में पंजीकृत दिनांक 18.05.2023 की आक्षेपित एफआईआर, थाना फिरोजाबाद उत्तर, जिला फिरोजाबाद, रद्द की जाती है।

34. उपर्युक्त तथ्यों और परिस्थितियों के मद्देनजर, हमें सूचनादाता द्वारा भारतीय दंड संहिता, 2023 की धारा 379 के अंतर्गत प्रस्तुत आवेदन में कोई गुण-दोष नहीं दिखता है और इसे अस्वीकार किया जाता है।

(2025) 4 ILRA 940

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 18.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रजनीश कुमार,

आपराधिक विविध याचिका संख्या 28135, वर्ष 2018

मोहम्मद कासिम उस्मानी एवं अन्य **...याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...विपक्षी**

याचिकाकर्ताओं के लिए अधिवक्ता :
राजेउ कुमार त्रिपाठी, दिवाकर सिंह गौतम, राजेउ कुमार त्रिपाठी

विपक्षी के लिए अधिवक्ता:
शासकीय अधिवक्ता,अखिलेश प्रताप सिंह,अनुराग तिवारी,अशोक कुमार वर्मा,अवधेश कुमार शुक्ला,गयासुद्दीन हरि बक्स सिंह,महमूद आलम,मयंक द्विवेदी, मो. शहंशाह नेवाज़ खान

आपराधिक विधि - भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 145, 145(1), 146 और 146(1) - रिट याचिका - धारा 145 और 146(1) द.प्र.सं. के तहत दिए गए आदेशों को चुनौती देते हुए। - यह अभिकथन लगाते हुए कि याचिकाकर्ता के पास लंबे समय से पैतृक कब्ज़ा था और मालिकाना हक व निषेधाज्ञा पर समानांतर सिविल वाद पहले से ही लंबित थे - जिससे आपराधिक कार्यवाही अनुचित हो गई - प्रतिवादी संख्या 4 ने तर्क दिया कि शांति भंग की आशंका के कारण कार्यवाही आवश्यक थी - हालाँकि उसके अपने आवेदन और पुलिस रिपोर्ट, दोनों में याचिकाकर्ताओं के कब्जे की पुष्टि हुई थी - इसके बावजूद, मजिस्ट्रेट ने आकस्मिक आवश्यकता स्थापित किए बिना ही कुर्की के आदेश जारी कर दिए - पुनरीक्षण - पुनरीक्षण न्यायालय, सिविल वाद के संदर्भ या विचारणीयता का मूल्यांकन करने में विफल रहा - रिट याचिका - न्यायालय ने पाया कि, विद्वान मजिस्ट्रेट इस बारे में कोई निष्कर्ष दर्ज करने में विफल रहे कि दोनों पक्षों द्वारा सिविल वाद कब दायर किए गए थे, क्या धारा 145 द.प्र.सं. के तहत आवेदन विचारणीय था या नहीं और यदि वह विचारणीय था भी, तो क्या वर्तमान वाद के तथ्यों और परिस्थितियों में कोई आदेश पारित किया जा सकता था या नहीं - सर्वोच्च न्यायालय के उदाहरणों पर भरोसा करते हुए, न्यायालय ने माना कि - जब तक मालिकाना हक का मुद्दा तय नहीं हो जाता, याचिकाकर्ताओं के लंबे और स्वीकृत कब्जे का निस्तारण धारा 145 द.प्र.सं. के तहत कार्यवाही में नहीं किया जा सकता। और चल रहे सिविल वादों को देखते हुए, कुर्की का आदेश पारित करने की कोई आवश्यकता नहीं थी - परिणामस्वरूप, आक्षेपित आदेश विधि की दृष्टि में पोषणीय

अनुवादित

नहीं हैं और रद्द किए जाने योग्य हैं - तदनुसार, रिट याचिका स्वीकार की जाती है। (प्रस्तर - 19, 20, 24, 25)

रिट याचिका स्वीकार किया जाता है। (ई-11)

<u>संदर्भित निर्णयो की सूची:</u>

1. अमरेश तिवारी बनाम लालता प्रसाद दुबे एवं अन्य- (2000) 4 एससीसी 440
2. महंत राम सरन दास बनाम हरीश मोहन एवं अन्य- (2001) 10 एससीसी 758,
3. अशोक कुमार बनाम उत्तराखंड राज्य एवं अन्य - (2013) 3 एससीसी 366

(माननीय न्यायमूर्ति रजनीश कुमार द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री राजेउ कुमार त्रिपाठी, राज्य सरकार के विद्वान ए.जी.ए. श्री एस.पी. तिवारी और प्रतिवादी संख्या 4 के विद्वान अधिवक्ता श्री महमूद आलम को सुना गया।

2. भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अंतर्गत यह याचिका तृतीय अपर सत्र न्यायाधीश, बहराइच द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 141 वर्ष 2017 (मोहम्मद कासिम उस्मानी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य) में पारित दिनांक 29.08.2018 के निर्णय एवं आदेश तथा नगर मजिस्ट्रेट, बहराइच द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता (जिसे आगे द.प्र.सं. कहा जाएगा) की धारा 145 के अंतर्गत वाद संख्या 23 वर्ष 2015 में पारित दिनांक 24.06.2017 के आदेश को चुनौती देते हुए और उक्त मामले की कार्यवाही को रद्द करने के लिए दायर की गई है।

3. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी कि याचिकाकर्ता अपने पूर्वजों के समय से ही विवादित संपत्ति के मालिक और कब्जे में हैं। इससे पहले, याचिकाकर्ताओं के पूर्ववर्तियों के नाम अभिलेखों में दर्ज थे और अब याचिकाकर्ताओं के नाम दर्ज हैं। उन्होंने आगे दलील दी कि धारा 145 द.प्र.सं. के तहत कार्यवाही स्वीकार्य नहीं है क्योंकि प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा बिक्री विलेख की घोषणा और रद्द करने के लिए दायर किए गए वादों में से एक में स्वामित्व का विवाद भी सिविल न्यायालय में लंबित है। याचिकाकर्ताओं द्वारा निषेधाज्ञा के लिए दायर एक अन्य वाद भी सिविल न्यायालय में लंबित है। याचिकाकर्ताओं के हितबद्ध पूर्ववर्ती द्वारा स्थायी निषेधाज्ञा के लिए दायर वाद के बारे में पता चलने के बाद ही, मजिस्ट्रेट के समक्ष धारा 145 द.प्र.सं. के तहत आवेदन दायर किया गया था, जो इस तथ्य से स्पष्ट है कि याचिका के प्रस्तर-21 में लिए गए वाद के ज्ञान की विशिष्ट दलील को स्पष्ट रूप से अस्वीकार नहीं किया गया है और प्रति शपथपत्र के प्रस्तर 33 में केवल एक अस्पष्ट उत्तर दिया गया है। उन्होंने आगे दलील दी कि प्रतिवादी संख्या 4 ने आवेदन में ही याचिकाकर्ताओं के हित में पूर्ववर्ती के कब्जे को स्वीकार किया है, इसलिए यह आवेदन विचारणीय नहीं है। उन्होंने आगे दलील

दी कि 24.06.2017 का आक्षेपित आदेश विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित नहीं किया जा सकता था क्योंकि सार्वजनिक शांति और सौहार्द भंग होने के कारण आदेश पारित करने की तत्काल आवश्यकता की कोई रिपोर्ट नहीं थी। 24.06.2017 का आक्षेपित आदेश 30.06.2015 की रिपोर्ट पर पारित किया गया था, जबकि उसके बाद एक भी घटना की सूचना नहीं दी गई और यह किसी तत्काल आवश्यकता का भी खुलासा नहीं करता है। इस संबंध में कोई और रिपोर्ट भी नहीं मांगी गई।

4. उन्होंने आगे दलील दी कि याचिकाकर्ताओं ने अवर न्यायालय के अभिलेख पर पर्याप्त साक्ष्य पेश किए हैं जिससे पता चलता है कि याचिकाकर्ता लंबे समय से इस ज़मीन पर काबिज़ हैं और कर आदि भी चुका रहे हैं। 25.09.1937 का एक पड़ोसी का विक्रय पत्र भी अभिलेख में रखा गया है, जिसकी सीमाओं में याचिकाकर्ताओं का घर दक्षिण दिशा में दिखाया गया है और उस पर याचिकाकर्ताओं के दादा का नाम लिखा है। उन्होंने आगे दलील दी कि विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय ने भी उपरोक्त और पुनरीक्षण में उठाए गए आधारों पर विचार किए बिना ही पुनरीक्षण को खारिज कर दिया। उन्होंने आगे दलील दी कि दोनों मुकदमों में सिविल न्यायालय द्वारा कोई अंतरिम निषेधाज्ञा नहीं दी गई है और अगर कोई तात्कालिकता होती, तो सिविल न्यायालय में दायर मुकदमों में आवेदन दायर किया जा सकता था। उन्होंने आगे दलील दी कि याचिकाकर्ताओं से इस तरह अवैध तरीके से कब्ज़ा नहीं छीना जा सकता। इस प्रकार, दलील यह है कि आक्षेपित आदेश विधि की नज़र में टिकने योग्य नहीं हैं और रद्द किए जाने योग्य हैं। उन्होंने **अमरेश तिवारी बनाम लालता प्रसाद दुबे और अन्य; (2000) 4 एससीसी 440, महंत राम सरन दास बनाम हरीश मोहन और अन्य; (2001) 10 एससीसी 758 और अशोक कुमार बनाम उत्तराखंड राज्य और अन्य; (2013) 3 एससीसी 366** पर भरोसा किया ।

5. इसके विपरीत, प्रतिवादी संख्या 4 के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा धारा 145 द.प्र.सं. के अंतर्गत आवेदन इसलिए दायर किया गया था क्योंकि उन्हें लोक शांति और सौहार्द भंग होने की आशंका थी। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि बेशक, प्रतिवादी संख्या 4 का हित-पूर्ववर्ती विवादित संपत्ति का स्वामी है। हालाँकि, कुछ परिस्थितियों के कारण, याचिकाकर्ताओं के हित-पूर्ववर्ती को मानचित्र स्वीकृत कराने के लिए कहा गया था। चूँकि प्रतिवादी संख्या 4 का हित-पूर्ववर्ती आजीविका के लिए रोजगार के सिलसिले में दिल्ली से बाहर रहता था, जहाँ प्रतिवादी संख्या 4 भी अपने पिता के साथ रहता था, इसलिए कब्जा याचिकाकर्ताओं के हित-पूर्ववर्ती के पास था। अपने पिता की मृत्यु के बाद, याचिकाकर्ता लंबे समय तक नहीं आ सके और जब वे वापस आए तो उन्हें पता चला कि संपत्ति में बहुत बदलाव हो गया है और याचिकाकर्ताओं के हित-पूर्ववर्ती का नाम दर्ज हो गया है, इसलिए, एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई। 08.06.2013 को दायर किया गया था, जिसकी कार्यवाही लंबित है। उन्होंने आगे कहा कि पक्षकारों द्वारा वाद दायर करने से पहले, आकस्मिक आवश्यकता के कारण आवेदन प्रस्तुत किया गया था और यह कहना गलत है कि आवेदन याचिकाकर्ताओं द्वारा वाद दायर किए जाने की जानकारी मिलने के बाद ही दायर किया गया था। वैसे भी, याचिकाकर्ता द्वारा दायर वाद में प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा दायर लिखित बयान से यह स्पष्ट है कि यह वाद के बारे में 16.04.2015 को पता चलने के बाद दायर किया गया था, जबकि धारा 145 द.प्र.सं. के तहत आवेदन 30.01.2015 को दायर किया गया था।

6. उन्होंने आगे कहा कि याचिकाकर्ताओं द्वारा इस न्यायालय के समक्ष भी स्वामित्व का कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया गया है और प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा दायर प्रति-शपथपत्र पर कोई प्रत्युत्तर शपथपत्र भी लंबा समय बीत जाने के बाद भी प्रस्तुत नहीं किया गया है, इसलिए, प्रति-शपथपत्र में प्रकट किए गए तथ्य अखंडनीय हैं। उन्होंने आगे दलील दी कि आक्षेपित आदेश विधि के अनुसार सही ढंग से पारित किए गए हैं और उनमें कोई अवैधता या त्रुटि नहीं है। याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिया गया निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर लागू नहीं होता और याचिकाकर्ता उससे किसी भी लाभ के हकदार नहीं हैं। याचिका गलत और निराधार आधार पर दायर की गई है, जो खारिज किए जाने योग्य है।

7. विद्वान ए.जी.ए. मामले के तथ्यात्मक पहलुओं, जैसा कि पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं ने तर्क दिया है, और उस विधिक स्थिति पर विवाद नहीं कर सके जिसके तहत धारा 145 द.प्र.सं. के तहत एक आदेश सार्वजनिक शांति और सौहार्द भंग होने के खतरे के कारण आपात स्थिति में दायर किया जा सकता है। हालाँकि, उन्होंने दलील दी कि आक्षेपित आदेश विधि के अनुसार पारित किए गए हैं और उनमें कोई अवैधता या त्रुटि नहीं है। इस प्रकार, याचिका गलत धारणा पर आधारित है और खारिज किए जाने योग्य है।

8. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं के तर्कों पर विचार किया है और अभिलेखों का अवलोकन किया है।

9. प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा याचिकाकर्ताओं के हित पूर्ववर्ती के विरुद्ध 30.01.2015 को द.प्र.सं. की धारा 145 के अंतर्गत एक आवेदन प्रस्तुत किया गया था। प्रभारी निरीक्षक, कोतवाली नगर से एक रिपोर्ट तलब की गई थी। इसके प्रत्युत्तर में दिनांक 30.06.2015 और 02.07.2015 की रिपोर्ट प्रस्तुत की गई, जिसमें कहा गया था कि कब्जे को लेकर पक्षकारों के बीच तनाव था और किसी भी समय कोई गंभीर घटना घट सकती है, इसलिए मामले में आगे की विधिक कार्रवाई आवश्यक है। एस.एच.ओ. की रिपोर्ट से संतुष्ट होने के बाद कि विवादित संपत्ति पर कब्जे के कारण पक्षकारों के बीच तनाव था, सिटी मजिस्ट्रेट, बहराइच अर्थात प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा 20.08.2015 को एक प्रारंभिक आदेश पारित किया गया और उपस्थित होकर आपत्ति एवं संबंधित दस्तावेज दाखिल करने के लिए नोटिस जारी किया गया। इसके प्रत्युत्तर में, आवेदक अर्थात् प्रतिवादी संख्या 4 उपस्थित हुआ और विवादित संपत्ति से संबंधित अपने दस्तावेज तथा धारा 146(1) दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत एक आवेदन प्रस्तुत किया। हालाँकि, प्रतिवादी अर्थात् याचिकाकर्ता उपस्थित नहीं हुए। इसके बाद, विद्वान मजिस्ट्रेट ने 17.10.2016 को धारा 146(1) दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत कुर्की का एकपक्षीय आदेश पारित किया। इससे व्यथित होकर, याचिकाकर्ताओं ने पुनरीक्षण संख्या 194 वर्ष 2016 प्रस्तुत किया, जिसे पुनरीक्षण न्यायालय ने दिनांक 24.12.2016 के आदेश द्वारा स्वीकार कर लिया और दोनों पक्षों को सुनवाई का अवसर प्रदान करने तथा साक्ष्य प्रस्तुत करने के पश्चात गुण-दोष के आधार पर नया आदेश पारित करने हेतु मामले को प्रतिप्रेषित कर दिया।

10. पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित उपरोक्त आदेश के अनुपालन में, प्रतिवादी संख्या 4 विद्वान मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित हुआ, परन्तु याचिकाकर्ता उपस्थित नहीं हुए। विद्वान मजिस्ट्रेट ने 24.06.2017 को एक

नया आदेश पारित किया, जिसमें यह निष्कर्ष दर्ज किया गया कि चूंकि याचिकाकर्ता उपस्थित नहीं हुए हैं, इसलिए, उन परिस्थितियों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है जिनके तहत 17.10.2016 का आदेश पारित किया गया था और याचिकाकर्ताओं द्वारा 30.11.2016 को दायर उनके बहाली के आवेदन के साथ दायर दस्तावेजों पर विचार करने के बाद, विद्वान मजिस्ट्रेट ने धारा 146 (1) द.प्र.सं. के तहत कुर्की के लिए एक नया आदेश पारित किया और रिकॉर्ड पर रखे गए दस्तावेजों के अवलोकन पर यह निष्कर्ष दर्ज करते हुए कार्यवाही बंद कर दी कि यह स्पष्ट है कि पक्षों के बीच शीर्षक का विवाद है। यह भी दर्ज किया गया है कि पुलिस रिपोर्ट से यह भी स्पष्ट है कि प्रश्नगत घर के कब्जे के संबंध में पक्षों के बीच गंभीर विवाद है और मौके पर शांति भंग होने की गंभीर संभावना है।

11. याचिकाकर्ताओं द्वारा सत्र न्यायाधीश के समक्ष पुनरीक्षण संख्या 141 वर्ष 2017 में दिनांक 24.06.2017 के आदेश को चुनौती दी गई थी, जिसे तृतीय अपर सत्र न्यायाधीश, बहराइच द्वारा दिनांक 29.08.2018 के निर्णय एवं आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया। चूंकि याचिकाकर्ता उपस्थित नहीं हुए थे, इसलिए सहायक जिला शासकीय अधिवक्ता एवं प्रतिवादी संख्या 4 के अधिवक्ता की सहायता से तथा अभिलेखों का अवलोकन करने के बाद पुनरीक्षण पर एकपक्षीय निर्णय लिया गया। विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय ने पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत इस तर्क पर विचार करते हुए कि चुनाव प्रक्रिया शुरू होने के कारण याचिकाकर्ता विद्वान मजिस्ट्रेट के समक्ष मामले की कार्यवाही के बारे में नहीं जान सके, इसलिए वे अपना मामला और आपत्तियाँ प्रस्तुत नहीं कर सके, यह निष्कर्ष दर्ज किया कि मामले को पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा दिनांक 24.12.2016 के आदेश के माध्यम से प्रतिप्रेषित किया गया था, जबकि चुनाव के लिए नामांकन 01.02.2016 को किए गए थे और चुनाव चिह्न 12.02.2016 को आवंटित किए गए थे और विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा आक्षेपित आदेश 24.06.2017 को चुनाव प्रक्रिया पूरी होने के बाद पारित किया गया था, इसलिए यह तर्क मान्य नहीं है और ऐसा प्रतीत होता है कि वे किसी अनुचित लाभ के लिए जानबूझकर उपस्थित नहीं हुए थे। यह भी दर्ज किया गया है कि इसी कारण वे पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष पिछली कई तारीखों पर भी उपस्थित नहीं हुए हैं। इस प्रकार, निचली अदालत के दिनांक 24.06.2017 के आदेश में कोई अवैधता नहीं दिखाई देती है और इस मामले में हस्तक्षेप की कोई आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि पुनरीक्षण न्यायालय ने कार्यवाही के दौरान पुनरीक्षण न्यायालय और विद्वान मजिस्ट्रेट के समक्ष याचिकाकर्ताओं की अनुपस्थिति और इस अनुमान के आधार पर आदेश पारित कर दिया कि क्या धारा 145 द.प्र.सं. के तहत आवेदन पोषणीय है या नहीं और यदि पोषणीय है तो क्या मामले के तथ्यों और परिस्थितियों तथा पुलिस रिपोर्ट के आधार पर आदेश पारित किया जा सकता था।

12. कोई प्राधिकारी या न्यायालय केवल विधि के अनुसार और अभिलेख पर प्रस्तुत दलीलों और सामग्री पर विचार करने के बाद ही आदेश पारित कर सकता है, भले ही कोई पक्ष किसी कारणवश उपस्थित न हो।

13. विचाराधीन मामले के लिए प्रासंगिक धारा 145 दंड प्रक्रिया संहिता नीचे उद्धृत है:-

"145. प्रक्रिया जहां भूमि या जल से संबंधित विवाद से शांति भंग होने की संभावना है -

(1) जब कभी किसी कार्यपालक मजिस्ट्रेट का, पुलिस अधिकारी की रिपोर्ट से या अन्य इत्तिला पर समाधान हो जाता है कि उसकी स्थानीय अधिकारिता के अंदर किसी भूमि या जल या उसकी सीमाओं से संबद्ध ऐसा विवाद विद्यमान है, जिससे परिशांति भंग होना संभाव्य है, तब वह अपना ऐसा समाधान होने के आधारों का कथन करते हुए और ऐसे विवाद से संबद्ध पक्षकारों से यह अपेक्षा करते हुए लिखित आदेश देगा कि वे विनिर्दिष्ट तारीख और समय पर स्वयं या प्लीडर द्वारा उसके न्यायालय में हाजिर हों और विवाद की विषयवस्तु पर वास्तविक कब्जे के तथ्य के बारे में अपने-अपने दावों का लिखित कथन पेश करें ।

(2) इस धारा के प्रयोजनों के लिए भूमि या जल" पद के अंतर्गत भवन, बाजार, मीनक्षेत्र, फसलें, भूमि की अन्य उपज और ऐसी किसी संपत्ति के भाटक या लाभ भी हैं ।

(3) इस आदेश की एक प्रति की तामील इस संहिता द्वारा समनों की तामील के लिए उपबंधित रीति से ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों पर की जाएगी, जिन्हें मजिस्ट्रेट निदिष्ट करे और कम से कम एक प्रति विवाद की विषयवस्तु पर या उसके निकट किसी सहजदृश्य स्थान पर लगाकर प्रकाशित की जाएगी ।

(4) मजिस्ट्रेट तब विवाद की विषयवस्तु को पक्षकारों में से किसी के भी कब्जे में रखने के अधिकार के गुणागुण या दावे के प्रति निर्देश किए बिना उन कथनों का, जो ऐसे पेश किए गए हैं, परिशीलन करेगा, पक्षकारों को सुनेगा और ऐसा सभी साक्ष्य लेगा जो उनके द्वारा प्रस्तुत किया जाए, ऐसा अतिरिक्त साक्ष्य, यदि कोई हो ; लेगा जैसा वह आवश्यक समझे और यदि संभव हो तो यह विनिश्चित करेगा कि क्या उन पक्षकारों में से कोई उपधारा (1) के अधीन उसके द्वारा दिए गए आदेश की तारीख पर विवाद की विषयवस्तु पर कब्जा रखता था और यदि रखता था तो वह कौन सा पक्षकार था :

परंतु यदि मजिस्ट्रेट को यह प्रतीत होता है कि कोई पक्षकार उस तारीख के, जिसको पुलिस अधिकारी की रिपोर्ट या अन्य इत्तिला मजिस्ट्रेट को प्राप्त हुई, ठीक पूर्व दो मास के अंदर या उस तारीख के पश्चात् और उपधारा (1) के अधीन उसके आदेश की तारीख के पूर्व बलात् और सदोष रूप से बेकब्जा किया गया है तो वह यह मान सकेगा कि उस प्रकार बेकब्जा किया गया पक्षकार उपधारा (1) के अधीन उसके आदेश की तारीख को कब्जा रखता था ।

(5) इस धारा की कोई बात, हाजिर होने के लिए ऐसे अपेक्षित किसी पक्षकार को या किसी अन्य हितबद्ध व्यक्ति को यह दर्शित करने से नहीं रोकेगी कि कोई पूर्वोक्त प्रकार का विवाद वर्तमान नहीं है या नहीं रहा है और ऐसी दशा में मजिस्ट्रेट अपने उक्त आदेश को रद्द कर देगा और उस पर आगे की सब कार्यवाहियां रोक दी जाएंगी किंतु उपधारा (1) के अधीन मजिस्ट्रेट का आदेश ऐसे रद्दकरण के अधीन रहते हुए अंतिम होगा ।

(6) (क) यदि मजिस्ट्रेट यह विनिश्चय करता है कि पक्षकारों में से एक का उक्त विषयवस्तु पर ऐसा कब्जा था या उपधारा (4) के परंतुक के अधीन ऐसा कब्जा माना जाना चाहिए, तो वह यह घोषणा करने वाला कि ऐसा पक्षकार उस पर तब तक कब्जा रखने का हकदार है जब तक उसे विधि के सम्यक् अनुक्रम में बेदखल न कर दिया जाए और यह निषेध करने वाला कि जब तक ऐसी बेदखली न कर दी जाए तब तक ऐसे कब्जे में कोई विघ्न न डाला जाए, आदेश जारी करेगा ; और जब वह उपधारा (4) के परंतुक के अधीन कार्यवाही करता है तब उस पक्षकार को, जो बलात् और सदोष बेकब्जा किया गया है, कब्जा लौटा सकता है ।

(ख) इस उपधारा के अधीन दिया गया आदेश उपधारा (3) में अधिकथित रीति से तामील और प्रकाशित किया जाएगा ।

(7) जब किसी ऐसी कार्यवाही के पक्षकार की मृत्यु हो जाती है तब मजिस्ट्रेट मृत पक्षकार के विधिक प्रतिनिधि को कार्यवाही का पक्षकार बनवा सकेगा और फिर जांच चालू रखेगा और यदि इस बारे में कोई प्रश्न उत्पन्न होता है कि मृत पक्षकार का ऐसी कार्यवाही के प्रयोजन के लिए विधिक प्रतिनिधि कौन है तो मृत पक्षकार का प्रतिनिधि होने का दावा करने वाले सब व्यक्तियों को उस कार्यवाही का पक्षकार बना लिया जाएगा ।

(8) यदि मजिस्ट्रेट की यह राय है कि उस संपत्ति की, जो इस धारा के अधीन उसके समक्ष लंबित कार्यवाही में विवाद की विषयवस्तु है, कोई फसल या अन्य उपज शीघ्रतया और प्रकृत्या क्षयशील है तो वह ऐसी संपत्ति की उचित अभिरक्षा या विक्रय के लिए आदेश दे सकता है और जांच के समाप्त होने पर ऐसी संपत्ति के या उसके विक्रय के आगमों के व्ययन के लिए ऐसा आदेश दे सकता है जो वह ठीक समझे ।

(9) यदि मजिस्ट्रेट ठीक समझे तो वह इस धारा के अधीन कार्यवाहियों के किसी प्रक्रम में पक्षकारों में से किसी के आवेदन पर किसी साक्षी के नाम समन यह निदेश देते हुए जारी कर सकता है कि वह हाजिर हो या कोई दस्तावेज या चीज पेश करे ।

(10) इस धारा की कोई बात धारा 107 के अधीन कार्यवाही करने की मजिस्ट्रेट की शक्तियों का अल्पीकरण करने वाली नहीं समझी जाएगी ।

14. धारा 146 द.प्र.सं. विवाद के विषय को कुर्क करने और रिसीवर नियुक्त करने की शक्ति प्रदान करती है, जिसका उद्धरण नीचे दिया गया है:-

146. विवाद की विषयवस्तु का कुर्क करने की और रिसीवर नियुक्त करने की शक्ति-

(1) यदि धारा 145 की उपधारा (1) के अधीन आदेश करने के पश्चात् किसी समय मजिस्ट्रेट मामले को आपातिक समझता है अथवा यदि वह विनिश्चय करता है कि पक्षकारों में से किसी का धारा 145 में यथानिर्दिष्ट कब्जा उस समय नही था, अथवा यदि वह अपना समाधान नहीं कर पाता है कि उस समय उनमें से किसका ऐसा कब्जा विवाद की विषयवस्तु पर था तो वह विवाद की विषयवस्तु को तब तक के लिए कुर्क कर सकता है जब तक कोई सक्षम न्यायालय उसके कब्जे का हकदार व्यक्ति होने के बारे में उसके पक्षकारों के अधिकारों का अवधारण नहीं क र देता है :

परंतु यदि ऐसे मजिस्ट्रेट का समाधान हो जाता है कि विवाद की विषयवस्तु के बारे में परिशांति भंग होने की कोई संभाव्यता नहीं रही तो वह किसी समय भी कुर्की वापस ले सकता है ।

(2) जब मजिस्ट्रेट विवाद की विषयवस्तु को कुर्क करता है तब यदि ऐसी विवाद की विषयवस्तु के संबंध में कोई रिसीवर किसी सिविल न्यायालय द्वारा नियुक्त नहीं किया गया है तो, वह उसके लिए ऐसा इंतजाम कर सकता है जो वह उस संपत्ति की देखभाल के लिए उचित समझता है अथवा यदि वह ठीक समझता है तो, उसके लिए रिसीवर नियुक्त कर सकता है जिसको मजिस्ट्रेट के नियंत्रण के अधीन रहते हुए वे सब शक्तियां प्राप्त होंगी जो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के अधीन रिसीवर की होती हैं :

परंतु यदि विवाद की विषयवस्तु के संबंध में कोई रिसीवर किसी सिविल न्यायालय द्वारा बाद में नियुक्त कर दिया जाता है तो मजिस्ट्रेट-

(क) अपने द्वारा नियुक्त रिसीवर को आदेश देगा कि वह विवाद की विषयवस्तु का कब्जा सिविल न्यायालय द्वारा नियुक्त रिसीवर को दे दे और तत्पश्चात् वह अपने द्वारा नियुक्त रिसीवर को उन्मोचित कर देगा,

(ख) ऐसे अन्य आनुषंगिक या पारिणामिक आदेश कर सकेगा जो न्यायसंगत हैं ।

15. उपर्युक्त के मद्देनजर, किसी पुलिस अधिकारी की रिपोर्ट या अन्य सूचना से संतुष्ट होने पर कि उसके क्षेत्राधिकार में किसी भूमि या जल या उसकी सीमाओं के संबंध में कोई विवाद विद्यमान है जिससे शांति भंग होने की संभावना है, कार्यपालक मजिस्ट्रेट संतुष्टि के आधारों को दर्ज करते हुए एक आदेश जारी करेगा और ऐसे विवाद से संबंधित पक्षों को उपस्थित होने और विवादित विषय के वास्तविक कब्जे के संबंध में अपने-अपने दावे दायर करने के लिए कहेगा। तत्पश्चात, धारा 145 के तहत प्रदान की गई रीति से आगे बढ़ते हुए, उप-धारा (1) के तहत आदेश पारित करने के बाद, यदि मजिस्ट्रेट को मामला आपात स्थिति का लगता है या यदि वह यह निर्णय लेता है कि कुछ पक्षकारों के पास ऐसा कब्जा था या वह यह संतुष्ट करने में असमर्थ है कि विषय या विवाद का ऐसा कब्जा किसका था, तो वह विवाद के विषय को तब तक कुर्क कर सकता है जब तक कि कोई सक्षम न्यायालय उस पर हकदार व्यक्ति के संबंध में पक्षकारों के अधिकारों का निर्धारण नहीं कर लेता। हालाँकि, कुर्की किसी भी समय वापस ली जा सकती है यदि विद्वान मजिस्ट्रेट संतुष्ट हो जाता है कि विवाद के विषय में शांति भंग होने की अब कोई संभावना नहीं है। इस प्रकार, यदि पुलिस अधिकारी की रिपोर्ट या किसी अन्य सूचना के आधार पर धारा 145 (1) द.प्र.सं. के तहत आदेश पारित करने के बाद यह पता चले कि किसी भूमि या जल या उसकी सीमाओं के संबंध में कोई विवाद है, तो कार्यपालक मजिस्ट्रेट धारा 145 (1) के तहत आदेश पारित कर सकता है और यदि कार्यवाही के दौरान, वह समझता है कि मामले में कोई आपात स्थिति है या किसी भी पक्षकार के पास कब्जा नहीं था या यदि वह स्वयं को इस बात से संतुष्ट नहीं कर पाता है कि कब्जा किसका था, तो वह विवादित संपत्ति की कुर्की का आदेश तब तक पारित कर सकता है जब तक कि कोई सक्षम न्यायालय कब्जे के संबंध में पक्षकारों के अधिकारों का निर्धारण नहीं कर लेता।

16. वर्तमान वाद के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, प्रतिवादी संख्या 4 ने 30.01.2015 को धारा 145 द.प्र.सं. के तहत एक आवेदन दायर किया, जिसमें कहा गया कि उनके दादा, स्वर्गीय मोहम्मद बक्स, विवादित संपत्ति के मालिक और कब्जे में थे और उनकी मृत्यु के बाद, प्रतिवादी संख्या 4 को यह संपत्ति विरासत में मिली। उनके दादा ने वर्ष 1939 में सीमा निर्धारण के लिए मानचित्र स्वीकृत करवाया और उसके बाद वर्ष 1964 में फिर से सीमा निर्धारण करवाया। उनकी मृत्यु के बाद, प्रतिवादी संख्या 4 के पिता ने एक कमरे और शौचालय के लिए नक्शा स्वीकृत करवाया, लेकिन आर्थिक तंगी के कारण, उन्हें आजीविका के लिए बाहर जाना पड़ा और उन्होंने घर के पास रहने वाले मोहम्मद नसीम उस्मानी को नक्शा स्वीकृत करवाने के लिए कुछ पैसे दिए और यह भी कहा कि अगर पैसे कम पड़ेंगे, तो उन्हें और खर्चा आएगा, जो वह उन्हें दे देंगे, लेकिन मोहम्मद नसीम उस्मानी और उनके बेटों ने मिलीभगत करके मोहम्मद नसीम उस्मानी के नाम से एक जाली नक्शा स्वीकृत करवा लिया और आवेदक के पिता को सूचित किया कि नक्शा स्वीकृत हो गया है। आवेदक यानी प्रतिवादी संख्या 4 के पिता ने कमरा और शौचालय का निर्माण करवाया। उन्होंने प्रतिवादियों यानी याचिकाकर्ताओं से नक्शा मांगा, लेकिन उन्होंने कहा कि वह गायब है। उनके पिता ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया। आवेदक भी

अपने पिता के साथ दिल्ली में रहता था। आवेदक के पिता को मोहम्मद नसीम उस्मानी पर पूरा भरोसा था, इसलिए मकान और प्लॉट उनके पास ही रह गया। प्रार्थी के पिता का देहांत वर्ष 1992 में हो गया था। उसके बाद प्रार्थी लगभग 18-20 वर्षों तक नहीं आ सका। उसके बाद जब वह वापस आया तो संपत्ति में काफी बदलाव हो चुका था और कुछ हिस्से पर दीवार और कुछ पर निर्माण कार्य हो चुका था। कुछ हिस्सा किराए पर भी है। प्रार्थी ने नक्शे की प्रति और मकान को अपने नाम दर्ज कराने के लिए नगर पालिका परिषद में आवेदन दिया तो उसे पता चला कि प्रतिवादियों ने नगर पालिका परिषद में भी अपना नाम दर्ज करा लिया है। मकान संख्या 313 से बदलकर 497 कर दी गई थी। प्रार्थी द्वारा की गई धोखाधड़ी और छल के संबंध में प्रार्थी ने 08.06.2013 को एफआईआर दर्ज कराई, जिसमें प्रतिवादियों को जमानत मिल चुकी है। यह भी प्रस्तुत किया गया कि प्रतिवादी अर्थात याचिकाकर्ता बिना अनुमति के संपत्ति और अन्य चीजें बेचने का प्रयास कर रहे हैं। तदनुसार, उसने धारा 145 द.प्र.सं. के तहत कार्यवाही और संपत्ति को बचाने के लिए कुर्की की प्रार्थना की।

17. प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा दिए गए उपर्युक्त कथनों से यह संकेत मिलता है कि उसने याचिकाकर्ताओं और उनके हित-पूर्ववर्ती के कब्जे को स्वीकार कर लिया है। विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा उपरोक्त आवेदन पर प्रभारी निरीक्षक, कोतवाली नगर से दिनांक 22.04.2015 के आदेश द्वारा रिपोर्ट तलब की गई थी। इसके प्रत्युत्तर में, थाना कोतवाली नगर, जिला-बहराइच द्वारा एक रिपोर्ट प्रस्तुत की गई, जिसमें विवादित संपत्ति की सीमाओं का खुलासा करते हुए बताया गया कि विवादित संपत्ति के आधे हिस्से में मोहम्मद हनीफ की फर्म की एक फर्नीचर की दुकान है और कुछ हिस्से पर ताला लगा है और आसपास के लोगों द्वारा यह बताया गया है कि मोहम्मद उस्मानी उसी जगह रहते हैं, जो वर्तमान में लखनऊ में रहते हैं, जिसके संबंध में मोहम्मद नासिर पुत्र नसीरुल्लाह द्वारा प्रतिवादियों के विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई गई है। यह रिपोर्ट 30.06.2015 को प्रस्तुत की गई। रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि दोनों पक्षों ने विवादित संपत्ति के संबंध में सिविल जज (जूनियर डिवीजन) बहराइच की अदालत में वाद संख्या 63 वर्ष 2014; मोहम्मद उस्मानी एवं अन्य बनाम नफीस और सिविल जज (जूनियर डिवीजन) बहराइच की अदालत में नियमित वाद संख्या 45 वर्ष 2015; मोहम्मद नफीस बनाम उस्मानी के तहत वाद दायर किए हैं। इसके बाद, यह कहा गया है कि विवादित संपत्ति पर कब्जे को लेकर पक्षों के बीच तनाव है, इसलिए, लंबित रहने के दौरान विवादित संपत्ति के संबंध में विधिक कार्रवाई की आवश्यकता है। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ताओं के कब्जे को रिपोर्ट में भी स्वीकार किया गया है और यह भी स्वीकार किया गया है कि निरीक्षण के समय याचिकाकर्ता मौके पर नहीं थे और रिपोर्ट केवल संबंधित संपत्ति पर कब्जे के संबंध में पक्षों के बीच तनाव (कशीदगी) के लिए थी, लेकिन मामले में कुर्की का आदेश पारित करने के लिए किसी भी आपात स्थिति की रिपोर्ट नहीं है। रिपोर्ट में दोनों पक्षों द्वारा वाद दायर करने के तथ्य का भी खुलासा किया गया।

18. उपरोक्त रिपोर्ट के आधार पर, विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा दिनांक 20.08.2015 को आदेश पारित किया गया, जिसमें पक्षकारों को उपस्थित होकर विवादित संपत्ति पर वास्तविक कब्जे के अपने दावों के साथ अपना लिखित बयान दाखिल करने का निर्देश दिया गया। इसके प्रत्युत्तर में, प्रतिवादी संख्या 4 अपने अधिवक्ता के माध्यम से उपस्थित हुआ और धारा 146 (1) द.प्र.सं. के तहत एक आवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें कहा गया कि अन्य

पक्षकार अर्थात् याचिकाकर्ता विवादित भूमि पर कब्जे के लिए झगड़ा करते रहते हैं और शांति भंग होने की संभावना है, इसलिए विवादित संपत्ति की कुर्की आवश्यक है। ऐसा प्रतीत होता है कि स्वामित्व या कब्जे के संबंध में कोई भी दस्तावेज द.प्र.सं. की धारा 145 या द.प्र.सं. की धारा 146 (1) के तहत आवेदन के साथ प्रस्तुत नहीं किया गया था। इस प्रकार, केवल पुलिस रिपोर्ट के आधार पर, दिनांक 17.10.2016 को धारा 146(1) द.प्र.सं. के अंतर्गत आदेश पारित किया गया, जो कि आदेश के अवलोकन से भी स्पष्ट है, जो याचिका के अनुलग्नक संख्या 21 के रूप में संलग्न है। उक्त आदेश के अनुपालन में, थाना कोतवाली नगर, बहराइच द्वारा एक रिपोर्ट प्रस्तुत की गई कि विवादित संपत्ति के कुछ भाग में मोहम्मद हनीफ की हार्डवेयर की दुकान है, जिसने बताया है कि उसने प्रतिवादी मोहम्मद उस्मानी से उसका विक्रय-पत्र प्राप्त कर लिया है और कुछ भाग में अनस पुत्र हाजी ज़हीर अहमद किराए पर रह रहा है, इसलिए मकान को खाली कराकर कुर्क नहीं किया जा सकता। आदेश को खाली कराकर उसके क्रियान्वयन हेतु किसी सक्षम मजिस्ट्रेट की नियुक्ति करने का भी अनुरोध किया गया। इस प्रकार, इस रिपोर्ट से भी यह स्पष्ट है कि विवादित संपत्ति रिपोर्ट में उल्लिखित व्यक्तियों के कब्जे में थी, जिनमें से एक हार्डवेयर का व्यवसाय करता था और दूसरा किराए पर रहता था, लेकिन ऐसी कोई रिपोर्ट नहीं है कि शांति भंग होने की संभावना के कारण कुर्की की कोई आपात स्थिति थी। विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा 17.10.2016 को पारित उपरोक्त आदेश को याचिकाकर्ताओं ने पुनरीक्षण संख्या 184 वर्ष 2016 में चुनौती दी थी, जिसे दिनांक 24.12.2016 के आदेश के माध्यम से अनुमति दी गई थी और पक्षकारों को सुनवाई का अवसर प्रदान करने के बाद धारा 145 द.प्र.सं. के तहत आवेदन पर योग्यता के आधार पर नया आदेश पारित करने के लिए मामले को वापस भेज दिया गया था।

19. उपर्युक्त आदेश के अनुसरण में यद्यपि याचिकाकर्ता विद्वान मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित नहीं हुए थे, फिर भी विद्वान मजिस्ट्रेट ने कोई नई रिपोर्ट मंगाए बिना और केवल इस आधार पर कि जिन परिस्थितियों में 17.10.2016 का आदेश पारित किया गया था, उनमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है, दिनांक 24.06.2017 का आक्षेपित आदेश पारित कर दिया, जबकि जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, दिनांक 17.10.2016 का आदेश भी विधि के अनुसार पारित नहीं किया गया था, इस बात पर विचार किए बिना कि क्या उक्त आदेश पारित करने की कोई आपातस्थिति या आवश्यकता है, क्योंकि विवादित संपत्ति पर कब्जे के संबंध में कोई विवाद नहीं था, जो कि प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा आवेदन में की गई दलीलों और पुलिस की रिपोर्ट से भी स्पष्ट था। दोनों ने स्वीकार किया था कि याचिकाकर्ताओं का विवादित संपत्ति पर कब्जा था। विद्वान मजिस्ट्रेट ने यह भी नहीं माना कि दो सिविल वाद लंबित थे, प्रत्येक पक्ष द्वारा एक। विद्वान मजिस्ट्रेट इस बारे में कोई निष्कर्ष दर्ज करने में भी विफल रहे कि दोनों पक्षों द्वारा सिविल वाद कब दायर किए गए थे, क्या धारा 145 द.प्र.सं. के तहत आवेदन पोषणीय था या नहीं और यदि यह पोषणीय था, तो क्या वर्तमान वाद के तथ्यों और परिस्थितियों में कोई आदेश पारित किया जा सकता था या नहीं।

20. याचिकाकर्ताओं द्वारा 24.03.2014 को स्थायी निषेधाज्ञा के लिए वाद दायर किया गया है, जिसका नियमित वाद संख्या 63 वर्ष 2014 है और अन्य वाद प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा अपने स्वामित्व की घोषणा, बिक्री विलेख को रद्द करने के लिए दिनांक 17.01.2013 और 24.02.2015 को स्थायी निषेधाज्ञा के लिए दायर किया गया

है। प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा दायर वाद में की गई दलीलें धारा 145 द.प्र.सं. के तहत आवेदन में की गई दलीलों के समान हैं जैसा कि ऊपर बताया गया है और याचिकाकर्ता द्वारा याचिका के प्रस्तर-21 में एक विशिष्ट दलील दी गई है कि याचिकाकर्ताओं द्वारा स्थायी निषेधाज्ञा का वाद दायर करने के बारे में पता चलने के बाद, प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा धारा 145 द.प्र.सं. के तहत आवेदन दायर किया गया है, जिसे काउंटर शपथपत्र के प्रस्तर-33 में विशेष रूप से अस्वीकार नहीं किया गया है और केवल एक अस्पष्ट उत्तर दिया गया है। याचिका का पैरा-21 और प्रति-शपथपत्र का पैरा-33 नीचे उद्धृत किया गया है:-

"21. इस बीच, याचिकाकर्ता संख्या 1 और 2 द्वारा स्थायी निषेधाज्ञा के लिए दायर नियमित सिविल वाद के लंबित होने के तथ्य को छिपाते हुए, विरोधी पक्ष संख्या 4 ने, पूरी तरह से झूठे और कमजोर बयानों के साथ, केवल याचिकाकर्ता संख्या 1 और 2 को विवादित पैतृक संपत्ति से बेदखल करने के इरादे से, 30.1.2015 को विपक्षी संख्या 2 के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के प्रावधानों के तहत एक आवेदन दायर किया। विपक्षी संख्या 4 द्वारा 30.1.2015 को विरोधी पक्ष संख्या 2 के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के प्रावधानों के तहत दायर उपरोक्त आवेदन की एक सत्य प्रति अनुलग्नक संख्या 16 के रूप में यहां प्रस्तुत की जा रही है।

33- याचिका के प्रस्तर संख्या 21 की सामग्री गलत है, इसलिए इसे अस्वीकार किया जाता है। यह कहा गया है धारा 145 द.प्र.सं. के तहत आवेदन बाध्यकारी परिस्थितियों में दायर किया गया था।"

21. उपरोक्त के मद्देनजर, ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ताओं द्वारा स्थायी निषेधाज्ञा के लिए वाद दायर करने की जानकारी मिलने के बाद, धारा 145 द.प्र.सं. के तहत आवेदन 30.01.2015 को दायर किया गया था। प्रतिवादी संख्या 4 के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क कि याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर वाद के लंबित होने की जानकारी मिलने के बाद उन्होंने 16.04.2015 को एक लिखित बयान दायर किया था, यह नहीं दर्शाता है कि उन्हें उसी समय पता चला क्योंकि जानकारी की कोई विशिष्ट तिथि नहीं बताई गई है, इसलिए, यह एक गलत दलील के अलावा और कुछ नहीं है। अन्यथा भी, जब यह स्वीकार किया जाता है कि स्वामित्व प्रतिवादी संख्या 4 के पक्ष में नहीं था और उसने बाद में अपने स्वामित्व की घोषणा के लिए वाद दायर किया था, तो वह धारा 145 के तहत आवेदन दायर करने के बजाय, वाद में एक आवेदन दायर कर सकता था जिसमें निषेधाज्ञा और कुर्की के लिए राहत की प्रार्थना की जा सकती थी और विद्वान मजिस्ट्रेट ने इस पर विचार किए बिना और यह मानते हुए कि कोई आदेश पारित करने की कोई आपात स्थिति नहीं थी क्योंकि मामले के रिमांड के बाद भी कोई रिपोर्ट नहीं मांगी गई थी, और इस अवधि के दौरान कोई घटना भी दर्ज नहीं की गई थी जिससे संकेत मिलता हो कि शांति भंग होने की संभावना वाला कोई विवाद मौजूद है, आक्षेपित आदेश पारित कर दिया, जो पारित नहीं किया जा सकता था। विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय भी इस पर और रिमांड के आधार पर विचार करने में विफल रहा।

22. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **अमरेश तिवारी बनाम लालता प्रसाद दुबे एवं अन्य** (पूर्वोक्त) वाद में यह निर्णय दिया है कि केवल उन्हीं मामलों में जहाँ सिविल वाद उसी संपत्ति के संबंध में कब्जे या स्वामित्व की

घोषणा के लिए हो और जहाँ संबंधित संपत्ति की सुरक्षा के संबंध में राहत के लिए आवेदन किया जा सकता हो और सिविल न्यायालय द्वारा प्रदान की जा सकती हो, धारा 145 के अंतर्गत कार्यवाही जारी नहीं रखी जानी चाहिए क्योंकि सिविल न्यायालय पक्षकारों के बीच स्वामित्व और कब्जे के प्रश्न पर निर्णय लेने के लिए सक्षम है और सिविल न्यायालय के आदेश मजिस्ट्रेट पर बाध्यकारी होंगे। संबंधित प्रस्तर 12, 13 और 14 नीचे उद्धृत हैं:-

12. अब प्रश्न यह है कि क्या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अंतर्गत कार्यवाही बंद करने वाले एसडीएम के आदेश में कोई त्रुटि है। इस विषय-वस्तु पर विधि राम सुमेर पुरी महंत बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(1985) 1 एससीसी 427 : 1985 एससीसी (क्रि) 98] के मामले में इस न्यायालय के निर्णय द्वारा स्थापित किया जा चुका है। इस वाद में निम्नलिखित निर्णय दिया गया है: (एससीसी पृष्ठ 428-29, प्रस्तर 2)

"जब संपत्ति के लिए एक सिविल वाद लंबित है जिसमें कब्जे का प्रश्न शामिल है और जिसका निर्णय हो चुका है, तो हमें संहिता की धारा 145 के अंतर्गत एक समानांतर आपराधिक कार्यवाही शुरू करने का कोई औचित्य नहीं दिखता। इस स्थिति पर संदेह या विवाद करने की कोई गुंजाइश नहीं है कि हमारे समक्ष प्रस्तुत मामले जैसे मामले में सिविल न्यायालय का आदेश आपराधिक न्यायालय पर बाध्यकारी है। प्रतिवादी 2-5 के अधिवक्ता इस प्रस्ताव को चुनौती देने की स्थिति में नहीं थे कि समानांतर कार्यवाही जारी रखने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए और सिविल न्यायालय के आदेश की स्थिति में, आपराधिक न्यायालय को अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए, खासकर जब कब्जे की जाँच सिविल न्यायालय द्वारा की जा रही हो और पक्षकार अंतरिम आदेश, जैसे निषेधाज्ञा या विवाद के लंबित रहने के दौरान संपत्ति की पर्याप्त सुरक्षा के लिए रिसीवर की नियुक्ति, के लिए सिविल न्यायालय का दरवाजा खटखटाने की स्थिति में हों। मुकदमों की अधिकता पक्षकारों के हित में नहीं है और न ही निरर्थक मुकदमों पर जनता का समय बर्बाद होने दिया जाना चाहिए। इसलिए, हम इस बात से संतुष्ट हैं कि समानांतर कार्यवाही जारी नहीं रहनी चाहिए...।

13. हम इस दलील को स्वीकार नहीं कर सकते कि राम सुमेर [(1985) 1 एससीसी 427: 1985 एससीसी (क्रि) 98] मामले में प्रतिपादित सिद्धांत केवल तभी लागू होंगे जब सिविल न्यायालय ने संपत्ति से संबंधित विवाद पर पहले ही निर्णय दे दिया हो और कोई निष्कर्ष दे दिया हो। हमारे विचार में, राम सुमेर[(1985) 1 एससीसी 427: 1985 एससीसी (क्रि) 98] मामले में यह प्रतिपादित किया गया है कि वादबाजी की बहुलता से बचा जाना चाहिए क्योंकि यह पक्षकारों के हित में नहीं है और निरर्थक वादबाजी में जनता का समय बर्बाद होगा। इस सिद्धांत के आधार पर यह माना गया है कि जब सिविल न्यायालय द्वारा कब्जे की जांच की जा रही हो और पक्षकार विवाद के लंबित रहने के दौरान संपत्ति की पर्याप्त सुरक्षा के लिए सिविल न्यायालय का दरवाजा खटखटाने की स्थिति में हों, तो समानांतर कार्यवाही अर्थात धारा 145 की कार्यवाही जारी नहीं रहनी चाहिए।

14. झुम्मामल बनाम मध्य प्रदेश राज्य [(1988) 4 एससीसी 452 : 1988 एससीसी (क्रि) 974] के मामले पर भरोसा किया गया है। यह प्रस्तुत किया गया है कि यह प्राधिकारी यह निर्धारित करता है कि केवल इसलिए कि एक सिविल वाद लंबित है, इसका अर्थ यह नहीं है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के तहत कार्यवाही रद्द कर दी जानी चाहिए। हमारे विचार में यह प्राधिकारी ऐसा कोई व्यापक प्रस्ताव नहीं रखता है।

इस मामले में, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के तहत कार्यवाही के परिणामस्वरूप एक निष्कर्षित आदेश प्राप्त हुआ था। इसके बाद, हारने वाले पक्ष ने सिविल कार्यवाही दायर की। सिविल कार्यवाही दायर करने के बाद, उसने प्रार्थना की कि धारा 145 की कार्यवाही में पारित अंतिम आदेश को रद्द कर दिया जाए। इसी संदर्भ में, इस न्यायालय ने यह माना कि केवल इसलिए कि एक सिविल वाद दायर किया गया था, इसका अर्थ यह नहीं है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के तहत निष्कर्षित आदेश को रद्द कर दिया जाना चाहिए। यह पूरी तरह से एक अलग स्थिति है। इस मामले में, सिविल वाद पहले दायर किया गया था। सक्षम सिविल न्यायालय द्वारा यथास्थिति का आदेश पहले ही पारित किया जा चुका था। इसके बाद, धारा 145 की कार्यवाही शुरू हुई। धारा 145 के तहत कार्यवाही में कोई अंतिम आदेश पारित नहीं किया गया था। वर्तमान मामले के तथ्यों पर हमारी राय में, राम सुमेर [(1985) 1 एससीसी 427: 1985 एससीसी (क्रि) 98]मामले में निर्धारित अनुपात पूरी तरह से लागू होता है । हम स्पष्ट करते हैं कि हम यह नहीं कह रहे हैं कि हर मामले में जहाँ एक सिविल वाद दायर किया जाता है, धारा 145 के तहत कार्यवाही कभी नहीं होगी। केवल उन मामलों में जहाँ सिविल वाद उसी संपत्ति के संबंध में कब्जे या स्वामित्व की घोषणा के लिए है और जहाँ संबंधित संपत्ति की सुरक्षा के संबंध में राहत के लिए आवेदन किया जा सकता है और सिविल न्यायालय द्वारा प्रदान किया जा सकता है, धारा 145 के तहत कार्यवाही जारी नहीं रहने दी जानी चाहिए। ऐसा इसलिए है क्योंकि सिविल न्यायालय पक्षों के बीच स्वामित्व के साथ-साथ कब्जे के प्रश्न पर निर्णय लेने के लिए सक्षम है और सिविल न्यायालय के आदेश मजिस्ट्रेट पर बाध्यकारी होंगे।"

23. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **महंत राम शरण दास बनाम हरीश मोहन एवं अन्य (पूर्वोक्त)** के वाद में पूर्वोक्त समान दृष्टिकोण अपनाया है।

24. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **अशोक कुमार बनाम उत्तराखंड राज्य एवं अन्य (पूर्वोक्त)** के वाद में यह अभिनिर्धारित किया है कि यदि संहिता की धारा 145 के अंतर्गत जाँच के बाद, मजिस्ट्रेट की यह राय है कि धारा 145 (1) के अंतर्गत पारित आदेश के समय किसी भी पक्षकार के पास विवाद की वस्तु का वास्तविक कब्ज़ा नहीं था या वह यह तय करने में असमर्थ है कि किस पक्षकार के पास ऐसा कब्ज़ा था, तो वह विवाद की वस्तु को तब तक कुर्क कर सकता है जब तक कि कोई सक्षम न्यायालय उस पर कब्ज़ा करने के हकदार व्यक्ति के संबंध में पक्षकारों के अधिकारों का निर्धारण नहीं कर लेता। यह भी माना गया है कि धारा 146 के तहत, मजिस्ट्रेट को कुर्की का आदेश पारित करने से पहले स्वयं को संतुष्ट करना होगा कि क्या आपात स्थिति मौजूद है और धारा 146 के तहत परिकल्पित आपात स्थिति को शांति भंग की आशंका के मात्र मामले से अलग किया जाना चाहिए। मजिस्ट्रेट को उन परिस्थितियों की व्याख्या करनी होगी कि वह इसे आपात स्थिति क्यों मानता है और आपात स्थिति का अनुमान लगाने के लिए, पक्षों द्वारा दायर किए गए निवेदन, प्रस्तुत किए गए दस्तावेज़ या प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के समय मजिस्ट्रेट के समक्ष अभिलेख पर सामग्री होनी चाहिए। यह भी माना गया है कि यदि रिपोर्ट से संकेत मिलता है कि पक्षों में से एक के पास, सही या गलत, कब्ज़ा है, तो मजिस्ट्रेट आपात स्थिति के आधार पर कुर्की का आदेश पारित नहीं कर सकता। संबंधित अनुच्छेद 9, 10 और 11 नीचे उद्धृत हैं:-

"9. उपरोक्त आदेश से यह संकेत मिलता है कि हमारे विचार से, एसडीएम ने धारा 146(1) द.प्र.सं. के तहत शक्तियों का गलत इस्तेमाल किया है। धारा 146(1) के तहत, एक मजिस्ट्रेट विवाद के विषय की कुर्की का आदेश पारित कर सकता है यदि यह आपात स्थिति हो, या यदि वह यह निर्णय लेता है कि किसी भी पक्षकार के पास ऐसा कब्जा नहीं था, या वह यह तय नहीं कर सकता कि उनमें से किसका कब्जा था। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 और 146 मिलकर ऐसी स्थिति के समाधान के लिए एक योजना बनाती हैं जहाँ शांति भंग होने की संभावना हो और धारा 146 को द.प्र.सं. की धारा 145 से अलग नहीं किया जा सकता। इसे केवल धारा 145 द.प्र.सं. के संदर्भ में ही पढ़ा जा सकता है। यदि संहिता की धारा 145 के तहत जाँच के बाद, मजिस्ट्रेट की यह राय है कि धारा 145(1) के तहत पारित आदेश के समय किसी भी पक्षकार के पास विवाद के विषय का वास्तविक कब्जा नहीं था या वह यह तय करने में असमर्थ है कि किस पक्षकार के पास ऐसा कब्जा था, वह विवाद के विषय को तब तक कुर्क कर सकता है, जब तक कि कोई सक्षम न्यायालय उस पर कब्जे के हकदार व्यक्ति के संबंध में पक्षकारों के अधिकार का निर्धारण न कर ले।

10. संहिता की धारा 145(1) के तहत आदेश पारित करने के लिए आवश्यक तत्व स्वतः ही संपत्ति की कुर्की के लिए आकर्षित नहीं होंगे। धारा 146 के तहत, एक मजिस्ट्रेट को कुर्की का आदेश पारित करने से पहले स्वयं को संतुष्ट करना होगा कि क्या आपात स्थिति मौजूद है। संहिता की धारा 146 के तहत परिकल्पित आपात स्थिति को शांति भंग की आशंका के मात्र मामले से अलग किया जाना चाहिए। धारा 146 के तहत आदेश पारित करने से पहले, मजिस्ट्रेट को उन परिस्थितियों की व्याख्या करनी होगी जिनके बारे में वह सोचता है कि यह आपात स्थिति का मामला है। दूसरे शब्दों में, आपात स्थिति का अनुमान लगाने के लिए, मजिस्ट्रेट के समक्ष पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत किए जाने, दस्तावेज प्रस्तुत किए जाने या साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने पर अभिलेख में सामग्री होनी चाहिए।

11. हम इस मामले से पाते हैं कि ऐसा कुछ भी नहीं है जो दर्शाता हो कि कोई आपात स्थिति मौजूद है जिससे धारा 146(1) लागू की जा सके और विचाराधीन संपत्ति को कुर्क करने के लिए। संहिता की धारा 146 के अनुसार, आपात स्थिति के मामले को शांति भंग की आशंका के मामले से अलग किया जाना चाहिए। जब रिपोर्ट से पता चलता है कि पक्षों में से एक ने सही या गलत तरीके से कब्जा कर रखा है, तो मजिस्ट्रेट आपात स्थिति के आधार पर कुर्की का आदेश पारित नहीं कर सकता। आदेश में इस तथ्य को स्वीकार किया गया है कि अशोक कुमार ने विचाराधीन संपत्ति पर निर्माण कार्य शुरू कर दिया है, इसलिए संपत्ति का कब्जा अपीलकर्ता अशोक कुमार के पास है, चाहे वह विधिक हो या नहीं, यह एसडीएम को तय करने का काम नहीं है।"

25. उपरोक्त के मद्देनजर और मामले के सभी तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, आक्षेपित आदेश विधि की दृष्टि में पोषणीय नहीं हैं क्योंकि ये इस बात पर विचार किए बिना और कोई निष्कर्ष दर्ज किए बिना पारित किए गए हैं कि क्या धारा 145 द.प्र.सं. के अंतर्गत आवेदन वाद के तथ्यों और परिस्थितियों में पोषणीय था या नहीं। यदि पोषणीय है, तो धारा 146 के तहत परिकल्पित कुर्की का आदेश पारित करने की आपात स्थिति थी, जब पुलिस रिपोर्ट में इसका संकेत नहीं है और यह भी विचार करने में विफल रही है कि याचिकाकर्ताओं के पास कब्जा है, जिस पर दोनों पक्षों में से किसी ने भी विवाद नहीं किया है और पुलिस रिपोर्ट में और याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर निषेधाज्ञा के लिए वाद और प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा स्वामित्व, बिक्री

विलेख को रद्द करने और निषेधाज्ञा का दावा करने वाला वाद सिविल न्यायालय के समक्ष लंबित है, जिसमें जब तक स्वामित्व का मुद्दा निर्धारित नहीं हो जाता है, याचिकाकर्ताओं के लंबे समय से स्वीकृत कब्जे को धारा 145 द.प्र.सं. के तहत कार्यवाही में रद्द नहीं किया जा सकता है और प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा दायर वाद के मद्देनजर, कुर्की का आदेश पारित करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। इस प्रकार, आक्षेपित आदेश विधि की दृष्टि में पोषणीय नहीं हैं और अपास्त किए जाने योग्य हैं। याचिका स्वीकार किए जाने योग्य है।

26. तदनुसार, याचिका **स्वीकार** की जाती है। तृतीय अपर सत्र न्यायाधीश, बहराइच द्वारा दण्ड पुनरीक्षण संख्या 141 वर्ष 2017 (मोहम्मद कासिम उस्मानी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य) में पारित आक्षेपित निर्णय एवं आदेश दिनांक 29.08.2018 तथा नगर मजिस्ट्रेट, बहराइच द्वारा वाद संख्या 23 वर्ष 2015 में धारा 145 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत पारित आदेश दिनांक 24.06.2017 को अपास्त किया जाता है तथा वाद संख्या 23 वर्ष 2015 की कार्यवाही निरस्त की जाती है। वाद व्यय के सम्बन्ध में कोई आदेश नहीं।

(2025) 4 ILRA 952

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 21.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अरिंदम सिन्हा

माननीय न्यायमूर्ति अवनीश सक्सेना

प्रथम अपील दोषपूर्ण संख्या 207 वर्ष 2025

श्रीमती मिनाक्षी गुप्ता **...अपीलकर्ता**

बनाम

कैलाश चंद्र **...प्रतिवादी**

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:
अमन सिंह, मनोज पांडे

प्रतिवादी के अधिवक्ता :
प्रकाश त्रिपाठी

सिविल विधि - हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 -धारा 13-बी - आपसी सहमति से तलाक - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - धारा 5 - परिसीमा अधिनियम, 1963 -विलम्ब की क्षमा - पृथक्करण अवधि - एक वर्ष के

पृथक्करण की आवश्यकता - पृथक्करण तिथि की गणना में त्रुटि - पृथक्करण के दौरान आपसी सहमति समझौता - कोई मिलीभगत नहीं।

अभिनिर्धारित:

अपीलकर्ता-पत्नी और प्रतिवादी-पति ने 12.01.2022 से अलग रहने के बाद, हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13-बी के तहत आपसी सहमति से तलाक के लिए संयुक्त रूप से परिवार न्यायालय में याचिका दायर की। परिवार न्यायालय ने 30.11.2024 को याचिका खारिज कर दी, जिसमें गलती से अलगाव की तारीख 02.08.2023 मान ली गई, जो आपसी तलाक लेने के लिए उनके समझौते की तिथि थी। न्यायालय ने अपील दायर करने में 54 दिनों की देरी को पर्याप्त कारण पाते हुए माफ कर दिया और अपील स्वीकार कर ली। यह पता लगाने पर कि दोनों पक्ष याचिका दायर करने से पहले एक वर्ष से अधिक समय तक अलग-अलग रह रहे थे और बिना किसी मिलीभगत के तलाक के लिए आपसी सहमति से सहमत हुए थे, न्यायालय ने माना कि परिवार न्यायालय ने समझौते की तारीख के आधार पर एक साथ होने का अनुमान लगाने में गलती की। धारा 13-बी(1) के तहत याचिका प्रस्तुत करने से पहले एक वर्ष या उससे अधिक समय तक अलग रहना अनिवार्य है, और अलगाव के दौरान आपसी तलाक के लिए किए गए समझौते का अर्थ सहवास नहीं है, जैसा कि *सुरेशता देवी बनाम ओम प्रकाश, (1991) 2 एससीसी 25* में स्पष्ट किया गया है। मिलीभगत की अनुपस्थिति और पक्षों के अलग होने के दृढ़ संकल्प की पुष्टि की गई, जो *अमरदीप सिंह बनाम हरवीन कौर, (2017) 8 एससीसी 746* के अनुरूप है, जिसमें धारा 13-बी(2) के तहत छह महीने की प्रतीक्षा अवधि में लचीलेपन पर जोर दिया गया है, जब सुलह असंभव हो। 06.12.2004 को संपन्न विवाह को आपसी सहमति से भंग घोषित कर दिया गया, और शीघ्र ही एक डिक्री तैयार करने का आदेश दिया गया।

अपील स्वीकृत; आपसी सहमति से विवाह विच्छेद किया गया।

<u>संदर्भित निर्णयज विधि</u>

1. सुरेश्ता देवी बनाम ओम प्रकाश, (1991) 2 एससीसी 25* - धारा 13-बी के अनुसार आपसी सहमति से तलाक की याचिका दायर करने से पहले एक वर्ष तक अलग रहना आवश्यक है; अलगाव के दौरान किया गया समझौता अलग रहने को अस्वीकार नहीं करता।
2. अमरदीप सिंह बनाम हरवीन कौर, (2017) 8 एससीसी 746* - यदि सुलह संभव नहीं है और पक्षकार तलाक लेने पर अड़े हैं, तो अदालतें धारा 13-बी(2) के तहत छह महीने की प्रतीक्षा अवधि को माफ कर सकती हैं।
3. कलेक्टर, भूमि अधिग्रहण बनाम कातिजी, (1987) 2 एससीसी 107* - पर्याप्त न्याय को आगे बढ़ाने के लिए, परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत विलंब की क्षमा के प्रति उदार दृष्टिकोण।

<u>अवलोकन:</u>

उपस्थित पक्षों से व्यक्तिगत पूछताछ के बाद, न्यायालय ने उनके अलग होने के दृढ़ निश्चय, एक-दूसरे के विरुद्ध किसी भी दावे के अभाव और उनके बच्चों के अपीलकर्ता के साथ रहने की पुष्टि की। संयुक्त याचिका

और शपथपत्रों से स्पष्ट रूप से यह साबित हुआ कि 2013 से उनके बीच कोई शारीरिक संबंध नहीं है और वे 12.01.2022 से अलग रह रहे हैं, जिससे धारा 13-बी के तहत आपसी सहमति से तलाक की शर्तें पूरी होती हैं।

(माननीय न्यायमूर्ति अरिंदम सिन्हा, द्वारा प्रदत्त)

1. विद्वान अधिवक्ता श्री मनोज पांडे आवेदक-अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित हुए और उन्होंने तर्क दिया कि उनकी मुवक्किल जो प्रस्तुत वाद में पत्नी हैं। दोनों पक्षों ने हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13-बी के तहत आपसी सहमति से अपने विवाह विच्छेद के लिए परिवार न्यायालय में याचिका दायर की थी। 30 नवंबर, 2024 के आक्षेपित निर्णय द्वारा याचिका खारिज कर दी गई। उनके मुवक्किल और प्रतिवादी दोनों व्यथित हैं। उनके मुवक्किल ने 54 दिनों की कथित देरी पर अपील प्रस्तुत की। इस देरी को क्षमा किया जाए और अपील स्वीकार की जाए।

2. विद्वान अधिवक्ता श्री प्रकाश त्रिपाठी प्रतिवादी की ओर से उपस्थित हुए। उन्होंने तर्क दिया कि उनके मुवक्किल भी आक्षेपित निर्णय से व्यथित हैं। विलंब को क्षमा किया जाए और आक्षेपित निर्णय को निरस्त किया जाए।

3. विलंब के लिए दर्शाए गए कारणों का अवलोकन किया गया। उन्हें स्वीकार किया जाता है। विलंब को क्षमा किया जाता है और अपील स्वीकार की जाती है। आवेदन का निस्तारण किया जाता है।

4. श्री पांडे ने प्रस्तुत किया कि समन्वय पीठ द्वारा दोनों पक्षों को न्यायालय में उपस्थित रहने का निर्देश दिया गया था। दोनों ही न्यायालय में उपस्थित हैं। पूछताछ पर उन्होंने प्रस्तुत किया कि विवाह 6 दिसंबर, 2004 को संपन्न हुआ था। विवाह में तीन बच्चे पैदा हुए। इसके बाद पक्षों के बीच विवाद और मतभेद उत्पन्न हो गए। 12 जनवरी, 2022 को उनकी मुवक्किल अपने बच्चों के साथ अपने मायके चली गई और इस प्रकार दोनों पक्ष अलग हो गए। 1 अगस्त, 2023 को बुजुर्गों और रिश्तेदारों के हस्तक्षेप पर दोनों पक्ष विवाह विच्छेद के लिए संयुक्त रूप से याचिका दायर करने पर सहमत हुए। समझौते के अनुसार उन्होंने परिवार न्यायालय में याचिका दायर की। याचिका अलग होने की निर्धारित अवधि एक वर्ष से अधिक समय के बाद दायर की गई थी। याचिका दायर करने के बाद दोनों पक्षों ने बाद की निर्धारित अवधि तक प्रतीक्षा की। परिवार न्यायालय में याचिका दायर करने और उसके बाद इस न्यायालय में अपील करने में दोनों पक्षों के बीच कोई मिलीभगत नहीं थी और न ही है। विद्वान न्यायाधीश ने समझौते की तिथि अर्थात 2 अगस्त, 2023 को या उसके बाद अलगाव की तिथि मानकर याचिका को विचारणीय न मानते हुए खारिज करने में त्रुटि की है। इस निर्णय को उलट दिया जाए।

5. श्री त्रिपाठी पुष्टि करते हैं कि अपीलकर्ता की ओर से प्रस्तुत दलीलें उनके मुवक्किल की दलीलें भी हैं।

6. पक्षकारों के न्यायालय में उपस्थित होने पर, हमने उनमें से प्रत्येक से पूछा। दोनों ने उत्तर दिया कि वे 12 जनवरी, 2022 से अलग रह रहे हैं। वे अपील में उल्लिखित 1 अगस्त, 2023 के समझौते के अनुसार आपसी सहमति से तलाक लेने के लिए सहमत हुए थे। वे अलग होने के अपने संकल्प पर अडिग हैं। उनका एक-दूसरे के विरुद्ध कोई दावा या प्रतिदावा नहीं है, लेकिन बच्चे अपीलकर्ता के पास ही रहेंगे।

7. हमने अभिलेखों से यह पता लगाया है कि परिवार न्यायालय में संयुक्त याचिका दायर करने से पहले पक्षकार एक वर्ष से अधिक समय तक अलग-अलग रह चुके हैं। अलगाव के दौरान, वे आपसी सहमति से तलाक के लिए याचिका दायर करने के लिए सहमत हुए, जैसा कि संयुक्त याचिका में दिए गए कथनों और पक्षों द्वारा दायर साक्ष्य के शपथपत्र से अनुमान लगाया जा सकता है। इस बात के स्पष्ट कथन हैं कि वर्ष 2013 से उनके बीच कोई शारीरिक संबंध नहीं है और वे 12 जनवरी, 2022 से अलग रह रहे हैं।

8. धारा 13-बी की उपधारा (1) के तहत याचिका प्रस्तुत करने से पहले एक वर्ष या उससे अधिक समय तक अलग रहने की आवश्यकता है। अलगाव की अवधि के दौरान, यदि आपसी सहमति से तलाक के लिए आवेदन करने पर सहमति हो जाती है, तो जब तक इस बात का प्रमाण न हो कि पक्षकार, समझौते के दौरान या उसके बाद साथ रहे, आपसी सहमति से तलाक के लिए आवेदन करने के लिए विचारों का मिलन अलगाव के दौरान किए गए समझौते के समय उनके अलग रहने के विरुद्ध नहीं है। हमने आगे यह सुनिश्चित किया है कि याचिका दायर करने और छह महीने की निर्धारित अवधि तक प्रतीक्षा करने के बाद, आपसी सहमति से तलाक देने के लिए प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया था।

9. उपर्युक्त के मद्देनजर, विद्वान न्यायालय ने एक साथ होने का अनुमान लगाते हुए तथ्यों के आधार पर गलती की है क्योंकि 1 अगस्त, 2023 को पक्षकार इस बात पर सहमत थे कि वे आपसी सहमति से तलाक के लिए आवेदन करेंगे, जबकि यह समझौता 12 जनवरी, 2022 को उनके अलग होने के बाद हुआ था। वाद का कारण तथ्यों का एक समूह है और यह कथन कि अंततः 1 अगस्त, 2023 को उपार्जित वाद का कारण, जैसा कि याचिका में उल्लिखित है, एक ऐसा तथ्य है जो वाद के संपूर्ण कारण का गठन करता है। इस कथन को किसी भी तरह से उस तिथि तक पक्षकारों के एक साथ होने की स्पष्ट या स्पष्ट स्वीकृति नहीं कहा जा सकता है।

10. पक्षों को सुनने और पूर्वोक्त रूप से अपनी जाँच करने के बाद, हम संतुष्ट हैं कि पक्षकार आपसी सहमति से तलाक के हकदार हैं। याचिका में दिए गए कथन सत्य हैं। इसलिए, हम 6 दिसंबर, 2004 को संपन्न विवाह को आपसी सहमति से भंग घोषित करते हैं। डिक्री शीघ्र तैयार की जाए।

11. अपील का निस्तारण किया जाता है।

(2025) 4 ILRA 955

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 21.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रजनीश कुमार

द्वितीय अपील संख्या 361/2018

राम बरन **...अपीलकर्ता**

बनाम

शीतला प्रसाद यादव एवं अन्य **..प्रत्यर्थीगण**

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:
मोहम्मद एहतेशाम खान

प्रत्यर्थी के अधिवक्ता:
सी.बी. सिंह, अंशुमान सिंह राठौड़, भूमिका बाजपेयी, राघव राम उपाध्याय

सिविल विधि - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - धारा 100 - उत्तर प्रदेश ज़मींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 - धारा 229-बी - सिविल न्यायालय का क्षेत्राधिकार - बिक्री विलेख रद्द करने का वाद - धोखाधड़ी, छल और प्रतिरूपण - दर्ज भू-धृतिधारक का प्रथम दृष्टया स्वामित्व - तथ्यों के समवर्ती निष्कर्ष - द्वितीय अपील में हस्तक्षेप का दायरा।

अभिनिर्धारित:
अपीलकर्ता ने सुल्तानपुर के अपर सिविल न्यायाधीश द्वारा 10.12.2013 को दिए गए निर्णय और डिक्री, तथा अपीलीय न्यायालय द्वारा 29.09.2018 को दिए गए अनुमोदन को चुनौती दी, जिसमें 20.04.1987 के विक्रय पत्र को धोखाधड़ी, छल और छद्मवेश के आधार पर रद्द कर दिया गया था। अपील इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर स्वीकार की गई कि क्या सिविल न्यायालय को विक्रय पत्र को रद्द करने के लिए वाद पर विचार करने का क्षेत्राधिकार था, यह देखते हुए कि वादी के हित-पूर्ववर्ती को भू-धृतिधारक के रूप में दर्ज नहीं किया गया था, या यदि वाद केवल यू.पी.जेड.ए. एवं एल.आर. अधिनियम की धारा 229-बी के अंतर्गत राजस्व न्यायालय में ही पोषणीय था। न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि एक सिविल न्यायालय के पास बिक्री विलेख को रद्द करने के लिए विचारणकरने का क्षेत्राधिकार है, जब वादी के पूर्ववर्ती हितधारक प्रथम दृष्टया स्वामित्व के साथ दर्ज किए गए भू-धृतिधारक थे, और वाद धोखाधड़ी का अभिकथन करता है, जैसा कि *श्री राम बनाम प्रथम अपर जिला न्यायाधीश, (2001) 3 एससीसी 24* के अनुसार है। वादी के पति, राम देव, दर्ज किए गए भू-धृतिधारक

अनुवादित

थे, और उनकी मृत्यु के बाद, वादी, उनके विधिक उत्तराधिकारी के रूप में, प्रथम दृष्टया स्वामित्व रखते थे। बिक्री विलेख निष्पादन या प्रतिफल के भुगतान के साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं था, और प्रतिवादी/प्रत्यर्थी संख्या 2, जो एक लाभार्थी है, ने वादी के धोखाधड़ी के दावे का समर्थन किया। साक्ष्य के आधार पर, दोनों अवर न्यायालयों द्वारा तथ्यों के समवर्ती निष्कर्ष विकृत नहीं थे और इस प्रकार धारा 100 सीपीसी के अंतर्गत हस्तक्षेप के लिए उत्तरदायी नहीं थे। चूँकि सिविल न्यायालय इस वाद पर विचार करने के लिए सक्षम था, इसलिए विधि का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न ही नहीं उठा। अपील को गुणदोष के अभाव में खारिज कर दिया गया।

द्वितीय अपील खारिज किया गया।

<u>निर्णयज विधि जिन पर चर्चा किया गया:</u>

1. श्री राम बनाम प्रथम ए.डी.जे., (2001) 3 एससीसी 24* - धोखाधड़ी का अभिकथन करते हुए दर्ज भू-धृतिधारक द्वारा बिक्री विलेख को रद्द करने के लिए वाद की सुनवाई करने का सिविल न्यायालय का क्षेत्राधिकार।

2. कमला प्रसाद बनाम किशन कांत पाठक, (2007) 4 एससीसी 213* - यदि वादी का नाम राजस्व अभिलेखों में दर्ज नहीं है तो राजस्व न्यायालय में अधिकारों की घोषणा के लिए वाद आवश्यक है।

3. राम पदारथ बनाम द्वितीय ए.डी.जे., सुल्तानपुर, 1989 ए.डब्ल्यू.सी. (एफबी) (एलबी) 290* - दर्ज भू-धृतिधारक राजस्व न्यायालय में घोषणा की आवश्यकता के बिना सिविल न्यायालय में शून्य दस्तावेज़ को रद्द करने की मांग कर सकता है।

4. जय राम सिंह बनाम प्रथम एडीजे, बिजनौर, 2007 (25) एलसीडी 283* - यदि वादी या हित-पूर्ववर्ती राजस्व अभिलेखों में दर्ज हैं, तो धोखाधड़ी के आधार पर विक्रय विलेख को रद्द करने के लिए सिविल न्यायालय का क्षेत्राधिकार है।

5. सूर्यकुंवरि बनाम नन्हू, 2019 (37) एलसीडी 2346* - तथ्यों के समवर्ती निष्कर्षों में द्वितीय अपील में हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा, जब तक कि वे विकृत न हों।

6. जंगी सिंह बनाम बृज मोहन सिंह, 2012 (30) एलसीडी 2616 - यदि निष्कर्ष साक्ष्य पर आधारित हैं, तो द्वितीय अपील में हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा।

7. कपिल कुमार बनाम राज कुमार, (2022) 10 एससीसी 281* - समवर्ती निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा, जब तक कि वे विकृत न हों।

8. शिवाह बलराम हैबत्ती बनाम अविनाश मारुति पवार, (2018) 11 एससीसी 652* - विकृतियों के अभाव में द्वितीय अपील में समवर्ती निष्कर्ष बाध्यकारी होंगे।

9. नरेंद्र बनाम अजाबराव, (2018) 11 एससीसी 564* - विकृत निष्कर्षों या विधिक त्रुटियों के लिए ही द्वितीय अपील में हस्तक्षेप स्वीकार्य है।

अनुवादित

10. दलीप सिंह बनाम भूपिंदर कौर, (2018) 3 एससीसी 677* - विकृतियों के अभाव में द्वितीय अपील में हस्तक्षेप नहीं किया जायेगा।

11. गौतम सरूप बनाम लीला जेटली, (2008) 7 एससीसी 85* - वैकल्पिक दलीलें स्वीकार्य हैं, लेकिन परस्पर विनाशकारी नहीं हैं।

12. स्टेट बैंक ऑफ इंडिया बनाम एस.एन. गोयल, (2008) 8 एससीसी 92* - वाद में विधि का महत्वपूर्ण प्रश्न निर्णय को प्रभावित करना चाहिए।

<u>अवलोकन:</u>

न्यायालय ने पाया कि प्रतिवादी/प्रत्यर्थी संख्या 2, जो विक्रय विलेख का लाभार्थी है, ने वादी के धोखाधड़ी के दावे का समर्थन किया और निष्पादन एवं प्रतिफल के भुगतान से इनकार किया। अपीलकर्ता के निष्पादन और कब्जे के दावे की पुष्टि साक्ष्यों से नहीं हुई, और वादी के पति राम देव द्वारा उसकी आजीविका के लिए किसी प्रावधान का न होना भी धोखाधड़ी के अनुमान को और पुष्ट करता है। मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्यों पर आधारित अवर न्यायालयों के समवर्ती निष्कर्ष विरोधाभासी नहीं थे, और सिविल न्यायालय वादी के प्रथम दृष्टया दर्ज भू-धृतिधारक के विधिक उत्तराधिकारी होने के अधिकार को देखते हुए वाद पर विचार करने के लिए सक्षम थे।

(माननीय न्यायमूर्ति रजनीश कुमार द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री मोहम्मद एहतेशाम खान, साथ ही प्रत्यर्थी संख्या 1 के विद्वान अधिवक्ता श्री शशि कांत मिश्रा, श्री राघव राम उपाध्याय और प्रत्यर्थी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री अंशुमान सिंह राठौर को सुना गया।

2. यह द्वितीय अपील सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (जिसे आगे सीपीसी कहा जाएगा) की धारा 100 के अंतर्गत नियमित वाद संख्या 1129/1992; प्राण देई (मृतक) को विधिक उत्तराधिकारी श्रीमती कर्मा देईद्वारा प्रतिस्थापित बनाम राम बरन व अन्य; अपर सिविल न्यायाधीश (जूनियर डिविजन), न्यायालय संख्या 31, सुल्तानपुर द्वारा पारित दिनांक 10.12.2013 के निर्णय और डिक्री तथा सिविल अपील संख्या 36/2014; राम बरन बनाम शीतला प्रसाद व अन्य में षष्ठम अपर जिला न्यायाधीश, सुल्तानपुर द्वारा पारित दिनांक 29.09.2018 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध दायर की गई है।

3. अपील ज्ञापन में उल्लिखित विधि के निम्नलिखित सारवान प्रश्न पर अपील दायर की गई है:-

“क्या सिविल न्यायालय श्रीमती प्राण देई, जिसे भूमि पर अभिलेखित नहीं किया गया था, की ओर से दिनांक 22.04.1987 के विक्रय विलेख को निरस्त करने के लिए वाद स्वीकार करने के लिए सक्षम था या उक्त वाद

यू.पी.जेड.ए एवं एल.आर. अधिनियम की धारा 229-बी के अंतर्गत निहित प्रावधानों के अनुसार राजस्व न्यायालयों के समक्ष पोषणीय था?"

4. वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 की हित पूर्ववर्ती अर्थात प्राण देई द्वारा दिनांक 20.04.1987 को विक्रय विलेख को निरस्त करने हेतु वाद दायर किया गया था, जिसमें अभिकथन किया गया था कि विवादित भूमि गाटा संख्या 839 जिसका क्षेत्रफल 2 बीघा, 4 बिस्वा और 17 धूर है, जो ग्राम सलाहपुर, परगना-मीरनपुर, तहसील और जिला-सुल्तानपुर में स्थित है, राम देव पुत्र नोहर के नाम पर दर्ज है। वह अपने जीवनकाल में उक्त भूमि पर काबिज रहे। वर्ष 1987 में उनकी मृत्यु हो गई। उनकी केवल एक पुत्री थी, श्रीमती कर्मा देई, जिनका विवाह राम अकबाल, निवासी ग्राम-मैनापुर, परगना-अल्देमऊ, तहसील-कादीपुर, जिला-सुल्तानपुर से हुआ था। यह वाद राम देव की पत्नी श्रीमती प्राण देई ने दायर किया था, जिसमें दावा किया गया था कि वह मृतक राम देव की विधवा हैं और एकमात्र विधिक उत्तराधिकारी हैं और उनकी मृत्यु के बाद वह मृतक राम देव की सभी अचल और चल संपत्तियों की स्वामी और कब्जेदार हैं। मृतक राम देव ने अपने जीवनकाल में किसी के पक्ष में कोई बिक्री विलेख या वसीयतनामा निष्पादित नहीं किया था। प्रतिवादी/प्रत्यर्थी संख्या 2 यानी राधेश्याम ने वसीयत के आधार पर विवादित भूमि को अपने नाम दर्ज करा लिया था। इसके बारे में पता चलने पर उन्होंने 17.09.1992 को राजस्व अभिलेख से उनका नाम हटाने के लिए एक आवेदन दायर किया, जो लंबित है। 20.09.1992 को जब उन्होंने प्रतिवादियों से उनके पक्ष में किए गए जाली आदेश के बारे में पूछताछ की तो यह पता चला कि प्रतिवादियों यानी प्रतिवादी/अपीलकर्ता और प्रतिवादी संख्या 2/प्रत्यर्थी संख्या 2 के पक्ष में भी एक बिक्री विलेख निष्पादित किया गया है। वह यह सुनकर आश्चर्यचकित हो गईं और उन्होंने दस्तावेजों की प्रमाणित प्रति के लिए आवेदन दिया, जो उन्हें 09.10.1992 को प्राप्त हुआ। 10.10.1992 और 11.10.1992 छुट्टियां थीं, इसलिए, उन्होंने 12.10.1992 को बिक्री विलेख को रद्द करने के लिए वाद दायर किया। वाद यह अभिकथित करते हुए दायर किया गया था कि प्रतिवादियों के पक्ष में 20.04.1987 की तिथि वाले विचाराधीन बिक्री विलेख अवैध है। विवादित भूमि की बिक्री के लिए वादी के पति यानी वादी/प्रत्यर्थीसंख्या1 के पूर्ववर्ती और प्रतिवादियों यानी प्रतिवादी नंबर 1/अपीलार्थी और प्रतिवादी/प्रत्यर्थीसंख्या2 के बीच कोई बातचीत नहीं हुई थी। उन्होंने प्रतिवादियों के पक्ष में विवादित भूमि का बिक्री विलेख भी निष्पादित नहीं किया था। यह भी अभिकथन किया गया कि मृतक राम देव को विवादित भूमि बेचने की कोई आवश्यकता नहीं थी।उन्हें कोई बिक्री प्रतिफल भी नहीं मिला था। विचाराधीन विक्रय विलेख धोखाधड़ी और जालसाजी का परिणाम है। मृतक राम देव बहुत वृद्ध थे। उस समय उनकी आयु लगभग 80 वर्ष थी। वह अच्छे और बुरे में अंतर करने में असमर्थ थे। विचाराधीन विक्रय विलेख के बारे में पता चलने पर उन्होंने प्रतिवादियों से इसे रद्द करने के लिए कहा, लेकिन वे तैयार नहीं हुए और उन्होंने 11.10.1992 को पूरी तरह से इनकार कर दिया, इसलिए उन्हें वाद दायर करना पड़ा।

5. इस वाद का विरोध प्रतिवादी/अपीलकर्ता राम बरन ने किया, जो वाद में प्रतिवादी संख्या 1 था और उसने वाद में किए गए कथनों को नकार दिया। यह भी अभिकथन किया गया कि मृतक राम देव पुत्र नोहर विवादित भूमि गाटा संख्या 839 का एकमात्र मालिक था। उसे पैसों की जरूरत थी, इसलिए वह विवादित जमीन का

विक्रय पत्र निष्पादित करना चाहता था, जिसके लिए उसने प्रतिवादी संख्या 1/अपीलकर्ता से बात की थी।इसके बाद, उन्होंने अपने अच्छे स्वास्थ्य और स्वतंत्र मन से, बिना किसी दबाव के, साक्षीगण के समक्ष कुल बिक्री मूल्य प्राप्त करने के बाद, विवादित भूमि का विक्रय विलेख निष्पादित किया। विक्रय विलेख के बाद प्रतिवादी संख्या 1/अपीलकर्ता; राम बरन ने विवादित भूमि के अपने हिस्से पर कब्जा कर लिया। वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 के हित पूर्ववर्ती को शुरू से ही इसकी जानकारी थी, लेकिन मृतक राम देव के जीवनकाल के दौरान कोई कार्रवाई नहीं की गई थी। वह वृद्ध थीं, इसलिए कुछ लोगों ने अनुचित प्रभाव से उनके खिलाफ गलत और जाली वाद दायर करवा दिया, जबकि उनका विवादित भूमि से कोई संबंध नहीं है। वाद वर्ष 1992 में दायर किया गया था, इसलिए यह परिसीमा से परे है। प्रतिवादी संख्या 1/अपीलकर्ता और प्रतिवादी/प्रत्यर्थी संख्या 2 के नाम राजस्व अभिलेखों में दर्ज हैं। इस प्रकार वाद पोषणीय नहीं है और खारिज किए जाने योग्य है।

6. पक्षकारों की दलीलों के आधार पर सात विवाद्यकविरचित किए गए। इसके बाद पक्षकारों द्वारा मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किए गए। वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 ने रामबरन और राधेश्याम के पक्ष में विक्रय विलेख की प्रति और खतौनी की प्रति दाखिल की। प्रतिवादी संख्या 1/अपीलकर्ता ने मूल विक्रय विलेख अभिलेख में प्रस्तुत किया। वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 की हित-पूर्ववर्ती प्राण देई ने मौखिक साक्ष्य में स्वयं को पी.डब्लू.-1 और राधेश्याम अर्थात् प्रतिवादी/प्रत्यर्थी संख्या 2 को पी.डब्लू.-2 के रूप में परीक्षित कराया। प्रतिवादी संख्या 1/अपीलकर्ता ने स्वयं को डी.डब्लू.-1, साधु यादव कोडी.डब्लू.-2 और रति पाल कोडी.डब्लू.-3 के रूप में परीक्षित कराया। विद्वान विचारण न्यायालय ने पक्षकारों की दलीलों, साक्ष्यों और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री पर विचार करने के पश्चात् वाद पर निर्णय दिया और दिनांक 10.12.2013 के निर्णय और डिक्री द्वारा दिनांक 20.04.1987 के विक्रय विलेख को रद्द कर दिया।

7. विचारण न्यायालय द्वारा पारित उपरोक्त डिक्री से व्यथित होकर, प्रतिवादी क्रमांक 1-अपीलार्थी; राम बरन ने धारा 96 और आदेश 41 नियम (1) सीपीसी के अंतर्गत एक सिविल अपील दायर की, जिसमें विचारण न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 10.12.2013 के निर्णय और डिक्री को चुनौती दी गई। अपीलीय न्यायालय ने निर्धारण हेतु चार बिन्दु विरचित करने के पश्चात् अपील पर विचार किया और दलीलों, साक्ष्यों और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री पर विचार करते हुए अपील को खारिज कर दिया और विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री की पुष्टि की। अतः प्रतिवादी संख्या1/अपीलार्थी द्वारा यह द्वितीय अपील दायर की गई है, जिसे उपरोक्त सारवान विधि के प्रश्न पर दर्ज कर लिया गया है।

8. दिनांक 20.04.1987 को विक्रय विलेख को रद्द करने का वाद वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 की हित पूर्ववर्ती श्रीमती प्राण देई द्वारा दायर किया गया था, जो राम देव की पत्नी थीं। राम देव विवादित भूमि, गाटा संख्या 839, जिसका क्षेत्रफल 2 बीघा, 4 बिस्वा और 17 धूर है, के मूल भू-धृतिधारकथे, जो सलाहपुर गाँव, जिला-सुल्तानपुर में स्थित है। राम देव और प्राण देई का कोई पुत्र नहीं था। उनकी केवल एक पुत्री श्रीमती कर्मा थी, जिसका विवाह राम अकबाल से हुआ था। राम देव की मृत्यु वर्ष 1987 में हो गई। इस प्रकार राम देव की मृत्यु के बाद,

उनकी विधवा प्राण देई, वाद में चुनौती दिए गए विक्रय विलेख को छोड़कर, उनकी अचल और चल संपत्तियों की एकमात्र विधिक उत्तराधिकारी थीं। ये तथ्य विवादित नहीं हैं।

9. सीपीसी की धारा 9 में यह प्रावधान है कि न्यायालयों को सिविल प्रकृति के सभी वादों का विचारण करने का क्षेत्राधिकार होगा, सिवाय उन वादों के जिनका संज्ञान स्पष्टतः या निहित रूप से वर्जित है, जिसका उद्धरण नीचे दिया गया है:-

"9. न्यायालयों को सभी सिविल वादोंका विचारण करना होगा, जब तक कि उन पर रोक न लगाई जाए।- न्यायालयों को (इसमें निहित प्रावधानों के अधीन रहते हुए) सिविल प्रकृति के सभी वादों का विचारण करने का क्षेत्राधिकार होगा, सिवाय उन वादों के जिनका संज्ञान स्पष्टतः या निहित रूप से वर्जित है।

स्पष्टीकरण [I]-ऐसा वाद जिसमें संपत्ति या किसी पद के अधिकार पर विवाद किया जाता है, सिविल प्रकृति का वाद है, भले ही ऐसा अधिकार पूरी तरह से धार्मिक अनुष्ठानों या समारोहों से संबंधित प्रश्नों के निर्णय पर निर्भर हो।

[स्पष्टीकरण II.-इस धारा के प्रयोजनों के लिए, यह बात मायने नहीं रखती कि स्पष्टीकरण I में निर्दिष्ट पद के लिए कोई शुल्क देय है या नहीं, या ऐसा पद किसी विशिष्ट स्थान से संबद्ध है या नहीं।]

10. उपर्युक्त के मद्देनजर, प्रत्येक व्यक्ति को सिविल प्रकृति का वाद दायर करने का अंतर्निहित अधिकार है, जब तक कि दायर किए गए वाद का संज्ञान लेने पर कोई स्पष्ट या निहित प्रतिबन्ध न हो। इस प्रकार, सीपीसी के अंतर्गत न्यायालयों को सभी प्रकार के वादों पर विचार करने का क्षेत्राधिकार है, जब तक कि किसी विधि में विशिष्ट रूप से या आवश्यक निहितार्थ द्वारा उस पर प्रतिबन्ध न लगाया गया हो।

11. धारा 229-ख किसी जोत या उसके भाग का असामी या भूमिधर होने का दावा करने वाले व्यक्ति द्वारा घोषणात्मक वाद का प्रावधान करती है। इस प्रकार, यदि कोई व्यक्ति भूमिधर होने का दावा कर रहा है, तो राजस्व न्यायालय के समक्ष वाद दायर किया जा सकता है, जबकि अन्यथा उसका कोई दावा नहीं हो सकता है। धारा 229-ख का उद्धरण नीचे दिया गया है:-

"[229-ख. किसी जोत या उसके भाग का असामी होने का दावा करने वाले व्यक्ति द्वारा घोषणात्मक वाद।- [(1) कोई भी व्यक्ति जो किसी जोत या उसके किसी भाग का असामी होने का दावा करता है, चाहे अनन्य रूप से या किसी अन्य व्यक्ति के साथ संयुक्त रूप से, ऐसी जोत या भाग में असामी के रूप में अपने अधिकारों की घोषणा के लिए भूमिधारक पर वाद दायर कर सकता है, जैसा भी मामला हो] ।

(2) उप-धारा (1) के अंतर्गत किसी भी वाद में, भूमि-धारक के अधीन असामी होने का दावा करने वाले किसी अन्य व्यक्ति को प्रतिवादी के रूप में पक्षकार बनाया जाएगा।

(3) उप-धारा (1) और (2) के प्रावधान, यथावश्यक परिवर्तनों सहित, [भूमिधर] [*उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 37 वर्ष 1958 द्वारा प्रतिस्थापित] [* * *]* [*उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 8 वर्ष 1977 द्वारा (28.01.1977 से) हटा दिया गया*] होने का दावा करने वाले व्यक्ति द्वारा दायर वाद पर लागू होंगे, इस संशोधन के साथ कि

"भूमिधारक" शब्द के स्थान पर "राज्य सरकार और [गाँव सभा] *[उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 33 वर्ष 1961 द्वारा प्रतिस्थापित]* शब्द प्रतिस्थापित किए जाएँ।"

12. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **श्री राम एवं अन्य बनाम प्रथम अपर जिला न्यायाधीश एवं अन्य; (2001) 3 एससीसी 24** के वाद में यह अभिनिर्धारित किया है कि जहां एक दर्ज भू-धृतिधारक के पास प्रथम दृष्टया स्वामित्व है और वह कब्जे में है, वह धोखाधड़ी या प्रतिरूपण के आधार पर प्राप्त बिक्री विलेख को रद्द करने के लिए सिविल न्यायालय में वाद दायर करता है, तो उसे राजस्व न्यायालय में घोषणा के लिए वाद दायर करने का निर्देश नहीं दिया जा सकता है, इसका कारण यह है कि ऐसे वाद में, प्रथम दृष्टया, दर्ज भू-धृतिधारक का स्वामित्व संदिग्ध नहीं है और उसे भूमि पर अपने स्वामित्व की घोषणा की आवश्यकता नहीं है।

13. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **कमला प्रसाद एवं अन्य बनाम किशन कांत पाठक एवं अन्य; (2007) 4 एससीसी 213**, के वाद में अभिनिर्धारित किया कि एक वाद जिसमें क्रेता का नाम वादी द्वारा स्वयं बिक्री विलेख के निष्पादन की स्वीकृति पर परिवर्तित किया गया था, जो कि उत्परिवर्तन न्यायालय के समक्ष साक्षी के रूप में उपस्थित हुआ था, वादी को अपने अधिकारों की घोषणा के लिए राजस्व न्यायालय के समक्ष भी जाना होगा।

14. यह न्यायालय, **जय राम सिंह और अन्य बनाम प्रथम अपर जिला न्यायाधीश, बिजनौर और अन्य; 2007 (25) एलसीडी 283** के वाद में, **राम पदारथ बनाम द्वितीय एडीजे, सुल्तानपुर और अन्य; 1989 एडब्ल्यूसी (एफबी) (एलबी) 290**और **श्री राम और अन्य बनाम प्रथम अतिरिक्त जिला न्यायाधीश और अन्यएआईआर 2001 एससी 1250** के वाद में इस न्यायालय के पूर्ण पीठ के निर्णय पर भरोसा करता है; जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि यदि कोई व्यक्ति कृषि भूमि के संबंध में अपने द्वारा निष्पादित या निष्पादित किए जाने का दावा करने वाले विक्रय पत्र पर प्रश्न उठाता है, तो वह विक्रय पत्र को रद्द करने के लिए सिविल न्यायालय में वाद दायर कर सकता है, यदि उसका यह अभिकथन है कि विक्रय पत्र धोखाधड़ी, बल प्रयोग, अनुचित प्रभाव, मिथ्या निरूपण या प्रतिरूपण के आधार पर शून्य या अमान्य है। इसी प्रकार, किसी वादी के हित-पूर्ववर्ती द्वारा निष्पादित या निष्पादित किए जाने का दावा करने वाले विक्रय पत्र को भी वह उन्हीं आधारों पर सिविल न्यायालय में चुनौती दे सकता है। हालाँकि, ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि विक्रय पत्र के निष्पादन से ठीक पहले, वादी या उसके हित-पूर्ववर्ती का नाम निर्विवाद रूप से राजस्व अभिलेखों में दर्ज किया जाए। इसके विपरीत, यदि कोई व्यक्ति भूमि पर अधिकार का दावा करने वाले किसी व्यक्ति द्वारा निष्पादित विक्रय पत्र को चुनौती देता है, हालाँकि उसका नाम दर्ज नहीं है, तो उसे अपने अधिकारों की घोषणा के लिए राजस्व न्यायालय में जाना होगा क्योंकि ऐसे वाद में चुनौती वास्तविक अर्थों में विक्रय पत्र के निष्पादन से ठीक पहले की स्थिति और वाद को लेकर होती है। प्रस्तर8 और 9 नीचे उद्धृत हैं:-

“8. पूर्ण पीठ के निर्णय सहित उपरोक्त निर्णयों के मद्देनजर, कोई व्यक्ति जो कृषि भूमि के संबंध में उसके द्वारा निष्पादित या निष्पादित किए जाने का दावा करता है, विक्रय विलेख पर प्रश्न उठाता है, वह सिविल न्यायालय में उसके निरस्तीकरण के लिए वाद दायर कर सकता है यदि उसका यह अभिकथन है कि विक्रय

विलेख धोखाधड़ी, जबरदस्ती, अनुचित प्रभाव, मिथ्या निरूपण या प्रतिरूपण के आधार पर शून्य या अमान्यनीय है। इसी प्रकार, किसी वादी के हित-पूर्ववर्ती द्वारा निष्पादित या निष्पादित किए जाने का दावा करने वाले विक्रय विलेख को भी उसके द्वारा उन्हीं आधारों पर सिविल न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है। हालाँकि, ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि विक्रय विलेख के निष्पादन से ठीक पहले, वादी या उसके हित-पूर्ववर्ती का नाम निर्विवाद रूप से राजस्व अभिलेखों में दर्ज किया जाए।

9. इसके विपरीत, यदि किसी व्यक्ति द्वारा निष्पादित विक्रय विलेख को किसी अन्य व्यक्ति द्वारा इस आधार पर चुनौती दी जाती है कि यद्यपि विक्रय विलेख से ठीक पहले केवल विक्रेता/विक्रेताओं का नाम राजस्व अभिलेखों में निर्विवाद रूप से दर्ज था, फिर भी वादी का उक्त भूमि पर अधिकार था, तो ऐसा वाद सिविल न्यायालय में स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि इसमें मुख्य रूप से कृषि भूमि में अधिकार की घोषणा का प्रश्न शामिल है। ऐसी स्थिति में वास्तव में चुनौती विक्रय विलेख और विक्रय विलेख के निष्पादन से अस्तित्व में आने वाली स्थिति को नहीं दी जा रही है। ऐसी स्थिति में वास्तविक अर्थों में चुनौती विक्रय विलेख के निष्पादन से ठीक पहले की स्थिति और मामलों को दी जाती है। यदि कोई व्यक्ति यह दावा करता है कि दर्ज भू-धृतिधारक के अलावा उसे भी कृषि भूमि पर अधिकार प्राप्त है, तो उसका एकमात्र उपाय राजस्व न्यायालय के समक्ष घोषणा के लिए वाद दायर करना है।"

15. इस न्यायालय की एक पूर्ण पीठ ने **राम पदारथ एवं अन्य बनाम द्वितीय अपर जिला न्यायाधीश, सुल्तानपुर एवं अन्य के मामले में; 1989 एडब्ल्यूसी (एफबी) (एलबी) 290**, में अभिनिर्धारित किया कि एक दर्ज भू-धृतिधारक धारक जिसके पक्ष में प्रथम दृष्टया स्वामित्व है, को शायद ही किसी शून्य दस्तावेज को रद्द करने के लिए राहत मांगने के संबंध में राजस्व न्यायालय से संपर्क करने का निर्देश दिया जा सकता है, जिसने उसे विधिके न्यायालय से संपर्क करने के लिए मजबूर किया और ऐसे वाद में वह सहायक अनुतोष का भी दावा कर सकता है, भले ही वह राजस्व न्यायालय द्वारा प्रदान की जा सकती है। प्रासंगिक प्रस्तर41 यहां नीचे उद्धृत किया गया है: -

41. हमारा विचार है कि *इंद्र देव बनाम श्रीमती राम प्यारी, 1982 (8) एएलआर 517* के काद में सही ढंग से निर्णय सुनाया गया है और उक्त निर्णय पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है, जबकि खण्ड पीठ का वाद, *डॉ अयोध्या प्रसाद बनाम गंगोत्री, 1981 एडब्ल्यूसी 469*चकबंदी प्राधिकारियों के क्षेत्राधिकार के बारे में है, लेकिन जहां तक यह स्पष्ट करता है कि शून्य दस्तावेज के संबंध में वाद राजस्व न्यायालय में चलेगा, शून्य दस्तावेज को रद्द करने के लिए वाद या कार्रवाई आम तौर पर सिविल न्यायालय में होगी और किसी पक्ष को विधि के अंतर्गत अनुमेय इस अनुतोष को पाने के उसके अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता है, सिवाय तब जब भू-धृतिधारक के अधिकार या स्थिति की घोषणा आवश्यक हो, जिसमें रद्दीकरण के लिए राहत अतिरिक्त और अनावश्यक होगी। अपने पक्ष में प्रथम दृष्टया स्वामित्व रखने वाले एक दर्ज भू-धृतिधारक को शून्य दस्तावेज को रद्द करने के लिए राहत मांगने के संबंध में राजस्व न्यायालय का दरवाजा खटखटाने के लिए शायद ही निर्देशित किया जा सकता है, जिसने उसे विधि के न्यायालय का दरवाजा खटखटाने के लिए मजबूर किया और

ऐसे वाद में वह सहायक राहत का भी दावा कर सकता है, भले ही वह राजस्व न्यायालय द्वारा प्रदान की जा सकती है।"

16. यह न्यायालय, **राम टहल सिंह बनाम उप निदेशक चकबंदी, सुल्तानपुर और अन्य;रिट-बी संख्या 4512/1985** के वाद में उपरोक्त पूर्ण पीठ के निर्णय पर विचार करने के बाद मेरे द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 22.12.2023 के माध्यम से यह अभिनिर्धारित किया गया है कि प्रथम दृष्टया अपने पक्ष में स्वामित्व रखने वाले दर्ज भू-धृतिधारक को शून्य दस्तावेज को रद्द करने के लिए राहत मांगने के संबंध में राजस्व न्यायालय का दरवाजा खटखटाने के लिए निर्देशित नहीं किया जा सकता है।

17. उपरोक्त के मद्देनजर, यह स्पष्ट है कि ऐसे प्रकरणों में जहां अधिकार या स्वामित्व मुख्य रूप से शामिल नहीं हैं और प्रश्न केवल बिक्री विलेख को रद्द करने का है, यह केवल सिविल न्यायालय है, जिसके पास वाद का विचारण करने और बिक्री विलेख को रद्द करने का क्षेत्राधिकार है। हालांकि, वाद दायर करने वाले व्यक्ति को यह दिखाने की आवश्यकता होती है कि विवादित भूमि पर उसका स्वामित्व है और उसका/उसके नाम या उसके पूर्ववर्ती हितधारक का नाम राजस्व अभिलेख में दर्ज किया गया था, चुनौती के तहत बिक्री विलेख को छोड़कर, उनके नाम पर स्वामित्व दिखाते हुए और उन्होंने नामांतरण कार्यवाही के दौरान नामांतरणका पक्ष नहीं लिया/विरोध किया।

18. वर्तमान वाद के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, यह विवाद में नहीं है कि नोहर के पुत्र राम देव विवादित भूमि के दर्ज भू-धृतिधारक थे। उनका कोई पुत्र नहीं था, केवल एक पुत्री थी, इसलिए राम देव की मृत्यु के बाद उनकी विधवा यानी प्राण देई ही राम देव की चल और अचल संपत्तियों की एकमात्र विधिक उत्तराधिकारी थी। बिक्री विलेख को रद्द करने के लिए वाद इस आधार पर दायर किया गया था कि प्रतिवादियों अर्थात प्रतिवादी संख्या 1/अपीलार्थी और प्रतिवादी/प्रत्यर्थी संख्या 2 के पक्ष में दिनांक 20.04.1987 का विचाराधीन बिक्री विलेख अवैध है, क्योंकि वादी के पति और प्रतिवादियों के बीच विवादग्रस्त भूमि की बिक्री के लिए कोई बातचीत नहीं हुई थी और बिक्री विलेख के निष्पादन के लिए कोई समझौता नहीं हुआ था और वादी के पति द्वारा प्रतिवादियों के पक्ष में कोई बिक्री विलेख निष्पादित नहीं किया गया है और उक्त राम देव अर्थात वादी के पति और राम देव द्वारा विवादग्रस्त भूमि की बिक्री की कोई आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि उन्हें बिक्री प्रतिफल नहीं मिला था और बिक्री विलेख धोखाधड़ी, छल और छद्मवेश का परिणाम है और राम देव बहुत वृद्ध थे और 1987 में उनकी आयु लगभग 80 वर्ष थी और उनकी मृत्यु के दो वर्ष पूर्व से उन्हें अच्छे और बुरे का कोई बोध नहीं था। इस प्रकार, यह अभिकथन करते हुए वाद दायर किया गया कि यह प्रतिवादियों द्वारा की गई धोखाधड़ी, छल और छद्मवेश का परिणाम है और प्रथम दृष्टया वादी के स्वामित्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि उसका पति एक पंजीकृत भू-धृतिधारक था और उसके बाद वादी ही एकमात्र विधिक उत्तराधिकारी थी, सिवाय उस विक्रय पत्र के जिसे उसके पति द्वारा निष्पादित किया गया बताया गया है।

19. प्रतिवादी संख्या 1/अपीलकर्ता द्वारा अभिकथनों का खंडन करते हुए वाद का विरोध किया गया और कहा गया कि राम देव ने उनसे विक्रय प्रतिफल प्राप्त करने के बाद उनके और उनके भाई के पक्ष में विक्रय पत्र निष्पादित किया और विवादित भूमि पर उनका कब्जा है। हालाँकि, प्रतिवादी/प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा इसका विरोध नहीं किया गया, जो वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 की ओर से पी.डब्लू.-2 के रूप में साक्ष्य में उपस्थित हुए और अपने मामले का समर्थन किया।राधेश्याम; प्रतिवादी/प्रत्यर्थी संख्या 2 पी.डब्लू.-2 के रूप में उपस्थित हुए। विक्रय पत्र भी राधेश्याम के पक्ष में है। पी.डब्लू.-2 ने अपने मुख्य परीक्षण में कहा कि उसने न तो राम देव से विक्रय विलेख निष्पादित करवाया था और न ही कोई धनराशि दी थी। उसने यह भी कहा कि उसके भाई ने उससे किसी अन्य व्यक्ति द्वारा उसके स्थान पर राम देव से विक्रय विलेख निष्पादित करवाने के लिए कहा था, लेकिन उसने मना कर दिया था। उसने यह भी कहा कि विवादित भूमि राम देव की है और उसकी विधवा उस पर काबिज है तथा उसका और उसके भाई का उससे कोई संबंध नहीं है। उसने अपनी जिरह में यह भी कहा कि राम देव द्वारा उसके और उसके भाई राम बरन के पक्ष में कोई विक्रय विलेख निष्पादित नहीं किया गया था। उसने यह भी कहा कि राम देव वृद्ध थे और राम बरन उन्हें इलाज के लिए ले गए थे। वह उनके साथ नहीं था। राम देव के साथ उनके संबंध सौहार्दपूर्ण थे और दोनों एक ही घर में रहते हैं। राम बरन भी उसी घर में रहता है। राम देव के जीवनकाल में उनके बीच विक्रय विलेख निष्पादित करने के लिए कोई बातचीत नहीं हुई थी। उसने यह भी कहा कि राम देव और राम बरन के संबंध भी सौहार्दपूर्ण थे। विवादित भूमि प्राण देई के कब्जे में है और क्रेताओं के पास उस पर कब्जा नहीं है। पी.डब्लू.-1 प्राण देई ने भी अपने साक्ष्य में कहा कि विवादित भूमि उनके कब्जे में है।

20. प्रतिवादी संख्या 1/अपीलार्थी राम बरन साक्षी के कठघरे में डी.डब्लू.-1 के रूप में उपस्थित हुए। उन्होंने कहा कि मृतक राम देव ने उनके और उनके भाई के पक्ष में सोच-समझकर, अपनी स्वतंत्र इच्छा से और बिना किसी दबाव के विक्रय विलेख निष्पादित किया था। विक्रय विलेख 35,000/- रुपये के प्रतिफल में निष्पादित किया गया था। उन्होंने आगे कहा कि विक्रय विलेख से छः माह पूर्व विक्रय प्रतिफल का भुगतान 2-3 किश्तों में किया गया था। 5,000/- रुपये की अंतिम किश्त लगभग 4-6 दिन पहले दी गई थी। धनराशि उन्होंने और उनके भाई राधेश्याम ने मिलकर दी थी, जबकि उन्होंने पी.डब्लू.2 के रूप में उपस्थित होकर कोई भी धनराशि देने से इनकार किया है। उन्होंने यह भी कहा कि गोकुल और रवींद्र कुमार सिंह विक्रय विलेख के गवाह थे और विक्रय विलेख के निष्पादन के समय राधेश्याम, प्राण देई, गोकुल और रवींद्र कुमार सिंह उपस्थित थे और विक्रय विलेख उन सभी को पढ़कर सुनाया गया था। उन्होंने आगे कहा कि विक्रय पत्र के निष्पादन के बाद, वह और उनके भाई राधेश्याम विवादित भूमि पर काबिज हैं, जबकि राधेश्याम ने कब्जे से इनकार किया है और कहा है कि प्राण देई अपने पति के बाद काबिज हैं, जो अपने जीवनकाल में काबिज रहे। उन्होंने यह भी कहा कि उन्होंने राम देव की संपूर्ण संपत्ति का विक्रय पत्र निष्पादित करवा लिया है और राम देव ने अपनी पत्नी की आजीविका के लिए कुछ भी नहीं छोड़ा है। उन्होंने यह भी कहा कि विक्रय मूल्य के भुगतान के समय गोकुल सहित गाँव का कोई भी व्यक्ति मौजूद नहीं था। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि रजिस्ट्रार के समक्ष कोई धनराशि का भुगतान नहीं किया गया था। उन्होंने यह भी कहा कि व्यय के लिए 20,000/- रुपये का भुगतान किया गया था, जो कि 35,000/- रुपये में शामिल था।

21. डी.डब्लू.-2 साधु यादव ने कहा है कि न तो विक्रय पत्र उनके समक्ष निष्पादित किया गया था और न ही उनके समक्ष भुगतान किया गया था। कब्जे के संबंध में, उन्होंने कहा कि राम देव अपने जीवनकाल में विवादित भूमि पर खेती करते थे और उनकी मृत्यु के बाद प्राण देई भी यही काम कर रही हैं। डी.डब्लू.-3 रति पाल ने कहा कि राम देव ने अपनी पूरी संपत्ति का विक्रय विलेख निष्पादित किया था और उनकी पत्नी के लिए कुछ भी नहीं छोड़ा गया था। मकान भी राम बरन और राधेश्याम के पक्ष में आया था।

22. उपरोक्त के मद्देनजर यह स्पष्ट है कि राम देव द्वारा विक्रय विलेख का निष्पादन और विक्रय प्रतिफल का भुगतान प्रतिवादी संख्या 1/अपीलकर्ता द्वारा साबित नहीं किया जा सका क्योंकि बचाव पक्ष के गवाहों और पी.डब्लू.-2, जो स्वयं विक्रय विलेख के अनुसार विक्रय विलेख के लाभार्थी हैं, ने विक्रय प्रतिफल के भुगतान, विक्रय विलेख के निष्पादन और विवादित भूमि के कब्जे के संबंध में प्रतिवादी संख्या 1/अपीलकर्ता के वाद का समर्थन नहीं किया है।

23. यह भी बहुत अजीब है कि राम देव ने अपनी पत्नी की आजीविका के लिए कुछ भी नहीं छोड़ा होगा। प्रतिवादी संख्या 1/अपीलकर्ता ने स्वीकार किया कि उसने अपनी पत्नी की आजीविका के लिए कुछ भी नहीं छोड़ा था, लेकिन इस बात का कोई कारण नहीं बताया जा सका कि उसने कुछ भी क्यों नहीं छोड़ा। यह विश्वास करने योग्य नहीं है कि एक पति अपनी पत्नी के जीवनकाल में अपनी मृत्यु की स्थिति में कुछ भी नहीं छोड़ेगा या उसकी आजीविका के लिए कोई व्यवस्था नहीं करेगा, जब तक कि इसके लिए कोई ठोस कारण और साक्ष्य न हो, जिसे दिखाया और साबित नहीं किया जा सका, इसलिए, राम देव द्वारा बिक्री विलेख का निष्पादन अपने आप में संदेह पैदा करता है और यह सुरक्षित रूप से अनुमान लगाया जा सकता है कि यह प्रतिवादी संख्या 1/अपीलकर्ता द्वारा धोखाधड़ी, छल और प्रतिरूपण का परिणाम होगा, जिसके संबंध में पी.डब्लू.-2 राधेश्याम, जिनके पक्ष में भी बिक्री विलेख निष्पादित किया गया है, ने विशेष रूप से कहा है कि प्रतिवादी संख्या 1/अपीलकर्ता ने उन्हें किसी अन्य व्यक्ति द्वारा प्रतिरूपण करके राम देव से बिक्री विलेख निष्पादित करने के लिए कहा था। अवर न्यायालयों ने दलीलों, साक्ष्य और अभिलेख पर सामग्री के आधार पर उपरोक्त पर विचार करते हुए निष्कर्ष दर्ज किए हैं और इसके विपरीत कुछ भी नहीं दिखाया जा सका।

24. प्रतिवादी संख्या 1/अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया कि चूँकि राम देव ने वसीयतनामा निष्पादित करने के बाद, उपजाऊ भूमि का विक्रय पत्र प्रतिवादी संख्या 1/अपीलार्थी के पक्ष में निष्पादित किया था, अतः उसके भाई राधेश्याम ने वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 के साथ सांठगांठ करके उसके पक्ष में साक्ष्य प्रस्तुत किया। यह तर्क सही प्रतीत नहीं होता क्योंकि पी.डब्लू.-2 राधेश्याम अर्थात् प्रतिवादी/प्रत्यर्थी संख्या 2 भी विक्रय पत्र का लाभार्थी था, अतः यह पूर्णतः गलत है और मान्य नहीं है।

25. यह स्थापित विधि है कि दोनों अवर न्यायालयों द्वारा दर्ज तथ्यों के समवर्ती निष्कर्षों को द्वितीय अपील में रद्द नहीं किया जा सकता, जब तक कि वे विकृत न हों। इस न्यायालय ने **सूर्यकुंवरि बनाम नन्हू एवं अन्य 2019(37)एलसीडी 2346** के वाद में, कई निर्णयों पर विचार करते हुए यह अभिनिर्धारित किया है कि दोनों

न्यायालयों द्वारा दर्ज तथ्यों के समवर्ती निष्कर्ष तब तक रद्द नहीं किए जा सकते जब तक कि निष्कर्ष विकृत न हों। संबंधित प्रस्तर11 से 16 नीचे उद्धृत हैं:-

“11. इस वाद में, दोनों अवर न्यायालयों द्वारा तथ्यों पर समवर्ती निष्कर्ष दिए गए हैं। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णयों की श्रृंखला में यह विधि निर्धारित किया है कि दोनोंअवर न्यायालयों द्वारा दर्ज तथ्यों के समवर्ती निष्कर्षों में उच्च न्यायालय द्वारा द्वितीय अपील में हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए, जब तक कि निष्कर्ष विकृत न हों।

12. शिवह बलराम हैबत्ती बनाम अविनाश मारुति पवार (2018)11 एससीसी 652 के एक हालिया वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है:-

"..... ये निष्कर्ष तथ्य के समवर्ती निष्कर्ष होने के कारण उच्च न्यायालय पर बाध्यकारी थे और इसलिए, द्वितीय अपील को समय रहते खारिज कर दिया जाना चाहिए था क्योंकि इसमें कोई महत्वपूर्ण विधिक प्रश्न शामिल नहीं था।"

13. नरेंद्र एवं अन्य बनाम अजाबराव पुत्र नारायण कटारे (मृत) द्वाराविधिक प्रतिनिधियों (2018) 11 एससीसी 564 के एक अन्य हालिया वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है:-

"...तथ्य के निष्कर्ष में द्वितीय अपील में हस्तक्षेप की अनुमति है जहाँ ऐसा निष्कर्ष इस सीमा तक पूरी तरह से विकृत पाया जाता है कि कोई भी न्यायिक व्यक्ति ऐसे निष्कर्ष को कभी दर्ज नहीं कर सकता या जहाँ वह निष्कर्ष विधि के किसी स्थापित सिद्धांत, दलीलों या साक्ष्य के विरुद्ध पाया जाता है। ऐसी त्रुटियाँ द्वितीय अपील में हस्तक्षेप की अनुमति देने वाला विधिक प्रश्न बनाती हैं।"

14. एक और हालिया वाद दलीप सिंह बनाम भूपिंदर कौर, (2018) 3 एससीसी 677 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि यदि तथ्यों के समवर्ती निष्कर्षों में कोई विकृति नहीं है, तो द्वितीय अपील में उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप स्वीकार्य नहीं है।

15. गौतम सरूप बनाम लीला जेटली एवं अन्य [(2008) 7 एससीसी 85] में, सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि एक पक्ष वैकल्पिक दलील पेश करने का हकदार है। हालाँकि, ऐसी वैकल्पिक दलीलें एक-दूसरे के लिए परस्पर विनाशकारी नहीं हो सकतीं।

16. भारतीय स्टेट बैंक एवं अन्य बनाम एस.एन. गोयल; (2008) 8 एससीसी 92 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:-

"द्वितीय अपील उन वादों में होगी जिनमें विधि के सारवान प्रश्न शामिल हों। 'विधि के प्रश्न' के आगे 'सारवान' शब्द का प्रयोग वाद में शामिल दांवों को संदर्भित नहीं करता है, न ही इसका आशय केवल सामान्य महत्व के विधि के प्रश्नों को संदर्भित करना है, बल्कि यह पक्षकारों के बीच विवाद में निर्णय पर विधि के प्रश्न के प्रभाव को संदर्भित करता है। 'विधि के सारवान प्रश्न' का अर्थ न केवल सामान्य महत्व के विधि के सारवान प्रश्न हैं, बल्कि पक्षकारों के बीच किसी वाद में उत्पन्न होने वाले विधि के सारवान प्रश्न भी हैं। सीपीसी की धारा 100

के संदर्भ में, कोई भी विधि का प्रश्न जो किसी वाद में अंतिम निर्णय को प्रभावित करता है, पक्षकारों के बीच विधि का सारवान प्रश्न है। कोई विधि का प्रश्न जो आकस्मिक या सहपार्श्विक रूप से उत्पन्न होता है, जिसका अंतिम परिणाम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, वह विधि का सारवान प्रश्न नहीं होगा।जहाँ इस न्यायालय या संबंधित उच्च न्यायालय द्वारा विधि के किसी प्रश्न पर स्पष्ट और स्थापित निरूपण हो, वहाँ यह नहीं कहा जा सकता कि वाद में विधि का कोई सारवान प्रश्न अंतर्ग्रस्त है।"

26. **भगौती सिंह उर्फ छेदी सिंह पुत्र मधुबन सिंह बनाम माता प्रसाद सिंह पुत्र भग्गू सिंह; 2022(40)एलसीडी 2461** के वाद में भी इस न्यायालय ने ऐसा ही विचार व्यक्त किया है, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि यह बिल्कुल स्पष्ट है कि उच्च न्यायालय को धारा 100 सीपीसी के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए प्रथम अपीलीय न्यायालय, जो कि एक अंतिम तथ्य न्यायालय है, द्वारा दर्ज तथ्यों के निष्कर्षों या तथ्यों के समवर्ती निष्कर्षों में तब तक हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए जब तक कि वे बिना किसी साक्ष्य पर आधारित या विकृत न हों।

27. इस न्यायालय ने **जंगी सिंह बनाम बृज मोहन सिंह एवं अन्य; 2012(30)एलसीडी 2616** के वाद में यह अभिनिर्धारित किया है कि दोनों अवर न्यायालयों ने अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य के आधार पर अपने निष्कर्ष दर्ज किए हैं, जो प्रतिवादी-अपीलकर्ता द्वारा उठाए गए विधि के किसी भी महत्वपूर्ण प्रश्न को जन्म नहीं देता है।

28. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **कपिल कुमार बनाम राज कुमार; (2022) 10 एससीसी 281**के वाद में यह अभिनिर्धारित किया है कि जब तक अवर न्यायालयों द्वारा दर्ज किए गए समवर्ती निष्कर्ष विकृत नहीं पाए जाते, तब तक उच्च न्यायालय द्वारा धारा 100 सीपीसी के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग करते हुए उनमें हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं थी।

29. उपर्युक्त के मद्देनजर और वाद के समग्र तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि आक्षेपित निर्णय और डिक्री विधि के अनुसार तर्कसंगत और सकारण आदेश द्वारा पारित किए गए हैं, जिनमें कोई अवैधता, त्रुटि या विकृति नहीं है। इस प्रकार, इस वाद में इस न्यायालय द्वारा तैयार किया गया विधि का सारवान प्रश्न नहीं उठता है क्योंकि विक्रय विलेख को रद्द करने का वाद उस व्यक्ति द्वारा दायर किया जा सकता है, जिसके पास विवादित भूमि का प्रथम दृष्टया स्वामित्व है और वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 के हित-पूर्ववर्ती के पास स्वामित्व था, सिवाय उस विक्रय विलेख के, जिसे चुनौती दी गई थी, जो ऊपर चर्चा की गई धोखाधड़ी, छल और प्रतिरूपण का परिणाम था। द्वितीय अपील गलत और निराधार आधार पर दायर की गई है, जिसमें गुण-दोष का अभाव है और इसे खारिज किया जाना चाहिए।

30. तदनुसार, द्वितीय अपील **खारिज** की जाती है। वाद व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं है।

अनुवादित

(2025) 4 ILRA 965

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 17.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मुईन

आदेश से प्रथम अपील संख्या 151/2013

श्रीमती सर्बा मौर्य एवं अन्य **...अपीलकर्तागण**

बनाम

ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड एवं अन्य **..प्रत्यर्थीगण**

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:
वाई.के. पांडे राकेश प्रताप सिंह

प्रत्यर्थी के अधिवक्ता:
मुकुंद तिवारी, सत्यजीत बनर्जी, सुरेंद्र पाल सिंह

अनुवादित

क. मोटर दुर्घटना अधिनियम, 1988 - मुआवज़ा - दावा किए गए कंसोर्टियम की हानि, ईएसटी की हानि, अंतिम संस्कार व्यय में वृद्धि - पात्रता - *प्रणय सेठी के वाद और बबीता के वाद* पर भरोसा किया गया - अभिनिर्धारित किया गया कि विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा निर्धारित ईएसटी की हानि, कंसोर्टियम की हानि और अंतिम संस्कार व्यय की राशि क्रमशः 15,000/- रुपये, 40,000/- रुपये और 15,000/- रुपये तक बढ़ा दी गई है। प्रत्येक दावेदार 40,000/- रुपये के कंसोर्टियम की हानि का हकदार होगा। विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा निर्धारित राशि पर ब्याज की दर भी 9% प्रति वर्ष तक बढ़ा दी गई है। (प्रस्तर 21, 23 और 24)

ख. मोटर दुर्घटना अधिनियम, 1988 - मुआवज़ा - भविष्य की संभावनाएँ - निर्धारण - *सविता के वाद* पर भरोसा किया गया - अभिनिर्धारित किया गया कि भविष्य की संभावना होने के कारण काल्पनिक आय में 30% की वृद्धि की गई है। उक्त राशि मृतक की काल्पनिक आय में जोड़ी जाएगी, जिस पर विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा वास्तविक आय पर की गई कटौती की जाएगी। (प्रस्तर 22 और 24)

अपील स्वीकृत। (ई-1)

<u>उद्धृत वादों की सूची:</u>

1. नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी व अन्य; (2017) 16 एससीसी 680

2. सविता बनाम बिंदर सिंह व अन्य; (2014) 4 एससीसी 505

3. सिविल अपील संख्या 2222/2024; बबीता व अन्य बनाम कर्नाटक रोड लाइन्स प्राइवेट लिमिटेड व अन्य

(माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मुईन द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री मुकुंद तिवारी के ब्रीफ होल्डर श्री धवलबीर प्रसाद प्रत्यर्थी संख्या 1 के विद्वान अधिवक्ता और प्रत्यर्थी संख्या 3 के विद्वान अधिवक्ता श्री सत्यजीत बनर्जी को सुना।

2. इस न्यायालय के दिनांक 23.09.2019 के आदेशानुसार, प्रत्यर्थी संख्या 2 को नोटिस जारी किया गया है। प्रत्यर्थी संख्या 2, संबंधित आदेश से प्रथम अपील संख्या 1211/2011 में प्रत्यर्थी संख्या 7 भी है, और उसे पर्याप्त तामील हो चुका है, परन्तु उसकी ओर से कोई आपत्ति प्रस्तुत नहीं की गई है और न ही कोई उपस्थित हुआ है। तदनुसार, न्यायालय अपील की सुनवाई कर गुण-दोष के आधार पर निर्णय लेता है।

3. अनावश्यक विवरणों से परे, वाद के तथ्य यह हैं कि 13.09.2002 को एक दुर्घटना घटित हुई थी, जिसमें अपीलकर्ता संख्या 1 के पति और अपीलकर्ता संख्या 2 से 5 के पिता, मृतक मुन्नी लाल का टेम्पो और एक डी.सी.एम. शामिल थे, जिसके परिणामस्वरूप श्री मुन्नी लाल की मृत्यु हो गई।

4. दावेदारों ने श्रीमती सरबा मौर्य एवं अन्य बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी एवं अन्य के संबंध में दावा आवेदन संख्या 601/2002 दायर किया।

5. विद्वान न्यायाधिकरण ने अपने निर्णय और आदेश दिनांक 27.09.2011 के द्वारा, जिसकी एक प्रति अपील का हिस्सा है, दावेदारों को 6% प्रति वर्ष की दर से ब्याज सहित 2,29,500/- रुपये की राशि प्रदान की है।

6. ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी ने उपरोक्त अधिनिर्णय से व्यथित आदेश से प्रथम अपील संख्या 1211/2011 दायर किया था, जिसे दिनांक 11.12.2021 के आदेश द्वारा वापस ले लिया गया है।

7. अपीलकर्ताओं ने इस अपील के माध्यम से (क) कंसोर्टियम की हानि; (ख) संपत्ति की हानि; (ग) दाह संस्कार/अंतिम संस्कार व्यय; (घ) भविष्य की संभावना; (ङ) प्रत्येक दावेदार को कंसोर्टियम; और (च) विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा निर्धारित ब्याज दर में वृद्धि के लिए राशि बढ़ाने का अनुरोध किया है।

8. यह स्वीकार किया गया कि दुर्घटना के समय श्री मुन्नी लाल द्वारा चलाए जा रहे वाहन का वैध बीमा नहीं था।

अनुवादित

9. विद्वान न्यायाधिकरण ने दिनांक 27.09.2011 के अधिनिर्णय के माध्यम से मृतक की मासिक आय 5,000/- रुपये निर्धारित करने तथा सहभागी लापरवाही को ध्यान में रखते हुए उसके बाद मासिक आय 2,500/- रुपये प्रति माह, वार्षिक आय 30,000/- रुपये निर्धारित किया है तथा एक तिहाई राशि की कटौती के बाद, दावेदारों के लिए 2.20 लाख रुपये का मुआवजा निर्धारित करने के लिए 11 का गुणक लागू किया है।

10. विद्वान न्यायाधिकरण ने कंसोर्टियम की हानि के लिए 5,000/- रुपये, संपत्ति की हानि के लिए 2500/- रुपये तथा अंतिम संस्कार व्यय के लिए 2,000/- रुपये की राशि भी निर्धारित की है।

11. नेशनल ***इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी एवं अन्य: (2017) 16 एससीसी 680*** के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ के निर्णय पर भरोसा करते हुए, अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का तर्क यह है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि पारंपरिक शीर्षों, अर्थात् संपत्ति की हानि, कंसोर्टियम की हानि और अंतिम संस्कार व्यय पर उचित आंकड़े क्रमशः 15,000/- रुपये, 40,000/- रुपये और 15,000/- रुपये होने चाहिए और उक्त राशि को हर तीन साल में 10% की दर से बढ़ाया जाना चाहिए।

12. आगे तर्क यह है कि विद्वान न्यायाधिकरण ने भविष्य की संभावनाओं के लिए कोई राशि न देकर विधिक त्रुटि की है, जबकि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ***द्वारा सविता बनाम बिंदर सिंह एवं अन्य (2014) 4 एससीसी 505*** के वाद में निर्धारित विधि के अनुसार, अनुमानित आय में कम से कम 30% की वृद्धि की जानी चाहिए थी। इसलिए, दावेदार भविष्य की संभावनाओं के आधार पर 750/- रुपये का लाभ पाने के हकदार हैं और उक्त राशि को पीड़ित की अनुमानित आय में जोड़ा जाना चाहिए। व्यक्तिगत खर्चों पर कुल कटौती 2500/- रुपये का एक तिहाई + 750 रुपये = 3250 रुपये प्रति माह होनी चाहिए थी, जो कुल 1083.33/- रुपये होती। इसलिए, कटौती के बाद वेतन 2166.67/- रुपये होगा और 11 का गुणक लागू करने के बाद भुगतान की जाने वाली मुआवजे की राशि 2166.67x11x12 = 2,86,000/- रुपये होगा।

13. ***बबीता एवं अन्य बनाम कर्नाटक रोड लाइन्स प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य: सिविल अपील संख्या 2222/2024*** के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हुए, यह तर्क दिया गया है कि ***प्रणय सेठी (पूर्वोक्त)*** के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भुगतान किए जाने के निर्देश के अनुसार 40,000/- रुपये का कंसोर्टियम सभी दावेदारों को देय होगा।

14. ***बबीता (पूर्वोक्त)*** वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हुए, यह भी तर्क दिया गया है कि 6% प्रति वर्ष की दर से दी गई ब्याज दर को बढ़ाया जाना उचित है, क्योंकि यह घटना वर्ष 2002 से संबंधित है, जब देश में ब्याज की दर अधिक थी। अतः, यह प्रार्थना की जाती है कि ***बबीता (पूर्वोक्त)*** वाद में दी गई ब्याज दर के अनुसार ब्याज दर को बढ़ाकर 9% प्रति वर्ष किया जाए।

15. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी संख्या 1 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री धवलबीर प्रसाद और प्रत्यर्थी संख्या 3 के विद्वान अधिवक्ता श्री सत्यजीत बनर्जी ने तर्क दिया कि विद्वान न्यायाधिकरण ने दावेदारों के पक्ष में मुआवज़ा राशि का सही ढंग से आदेश दिया है, जिसमें किसी वृद्धि की आवश्यकता नहीं है।

16. संयोगवश, प्रत्यर्थी संख्या 3 के विद्वान अधिवक्ता श्री सत्यजीत बनर्जी ने तर्क दिया है कि चूंकि घटना का तथ्य ही विवाद में है, इसलिए अपील स्वयं ही खारिज किए जाने योग्य है।

17. प्रारंभ में, विद्वान अधिवक्ता श्री सत्यजीत बनर्जी का तर्क स्पष्ट रूप से भ्रामक पाया गया है, इस तथ्य पर विचार करते हुए कि प्रत्यर्थी संख्या 3 ने स्वयं न्यायाधिकरण द्वारा पारित अधिनिर्णय को कोई चुनौती नहीं दी है और इस प्रकार, सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए, उक्त अधिनिर्णय अंतिम हो गया है। यहाँ तक कि प्रत्यर्थी संख्या 1 अर्थात ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी द्वारा दायर अपील को भी वापस लिए जाने के कारण खारिज कर दिया गया है, इसलिए प्रत्यर्थी संख्या 3 के विद्वान अधिवक्ता के लिए ऐसा तर्क देना उचित नहीं है। अतः, उक्त तर्क अस्वीकार किया जाता है।

18. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने और अभिलेख का अवलोकन करने के बाद, यह स्पष्ट होता है कि दुर्घटना 13.09.2002 को एक वाहन अर्थात् एक टेम्पो से संबंधित हुई थी, जिसे श्री मुन्नी लाल चला रहे थे। उक्त दुर्घटना के कारण श्री मुन्नी लाल की मौके पर ही मृत्यु हो गई। दावेदारों ने विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष दावा याचिका दायर की। विद्वान न्यायाधिकरण ने दिनांक 27.09.2011 के अधिनिर्णय द्वारा दावेदारों के पक्ष में 6% ब्याज सहित 2,29,500/- रुपये की राशि प्रदान की।

19. दावेदारों ने राशि में वृद्धि हेतु प्रार्थना करते हुए यह अपील प्रस्तुत किया है।
20. निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत वृद्धि का अनुरोध किया गया है:-
(क) कंसोर्टियम की हानि;
(ख) संपत्ति की हानि;
(ग) दाह संस्कार/अंतिम संस्कार व्यय;
(घ) भावी संभावना;
(ङ) प्रत्येक दावेदार को कंसोर्टियम; और
(च) विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा निर्धारित ब्याज दर में वृद्धि।

21. जहाँ तक शीर्ष (क), (ख) और (ग) अर्थात् कंसोर्टियम की हानि, संपत्ति की हानि और दाह संस्कार/अंतिम संस्कार व्यय का संबंध है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***प्रणय सेठी (पूर्वोक्त)*** के वाद में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है:-

*"**59.8.** पारंपरिक शीर्षों, अर्थात् संपत्ति की हानि, कंसोर्टियम की हानि और अंतिम संस्कार व्यय, पर उचित आंकड़े क्रमशः 15,000 रुपये, 40,000 रुपये और 15,000 रुपये होने चाहिए। उपरोक्त राशियों में प्रत्येक तीन वर्ष में 10% की दर से वृद्धि की जानी चाहिए।"*

22. जहाँ तक शीर्षक (घ) अर्थात् भावी संभावना का संबंध है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***सविता (पूर्वोक्त)*** के वाद में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:-

"8. हम यह समझने में असफल रहे हैं कि न्यायाधिकरण और उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करने में अपनी दृष्टि क्यों खो दी कि पीड़ित की अपने जीवनकाल में अर्जित राशि के संबंध में उसकी भावी संभावनाएँ हो सकती थीं? अतः, काल्पनिक आय में भी कम से कम 30% की वृद्धि की जानी चाहिए और इस प्रकार दावेदार भावी संभावना के रूप में 900 रुपये का लाभ पाने का हकदार है; उक्त राशि को पीड़ित की काल्पनिक आय में जोड़ा जाना चाहिए। अतः, ऐसा प्रतीत होता है कि पीड़ित के भावी संभावनाओं सहित कुल वेतन की गणना 3000 रुपये + 900 रुपये, यानी 3900 रुपये प्रति माह के हिसाब से की जानी चाहिए थी। हमारी राय में, व्यक्तिगत खर्चों पर कुल कटौती 3900 रुपये का एक-तिहाई यानी 1300 रुपये होनी चाहिए थी। इसलिए, कटौती के बाद वेतन 2600 रुपये होगा और गुणक 17 पर लागू किया जाना चाहिए, जैसा कि न्यायाधिकरण द्वारा पीड़ित की आयु को ध्यान में रखते हुए सही ढंग से किया गया है। इस प्रक्रिया में, भुगतान की जाने वाली मुआवजे की कुल राशि 2600 × 17 × 12 रुपये होगी, जो कुल 5,30,400 रुपये होगी।"

23. जहाँ तक शीर्ष (ई) और (एफ) अर्थात प्रत्येक दावेदार को कंसोर्टियम और विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा अधिनिर्णीत ब्याज दर में वृद्धि का संबंध है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***बबीता (पूर्वोक्त)*** के वाद में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है:-

"12. हमारा मत है कि 70,000/- (केवल सत्तर हज़ार रुपये) की राशि के अतिरिक्त, जिसे पारंपरिक व्यय के अंतर्गत माना जा सकता है, प्रत्येक दावेदार 40,000/- (केवल चालीस हज़ार रुपये) की दर से कंसोर्टियम की हानि के हकदार हैं (अर्थात 40,000 x 4 = 1,60,000/- (केवल एक लाख साठ हज़ार रुपये)। अंत में, हमारे मत में, न्यायाधिकरण और उच्च न्यायालय द्वारा कुल अनुमानित राशि पर दिए गए साधारण ब्याज को 6% प्रति वर्ष से बढ़ाकर 9% प्रति वर्ष किया जाना चाहिए, जो उस समय प्रचलित ब्याज दर, अर्थात वर्ष 2015 के करीब होगा।"

24. उपर्युक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, अपील ***स्वीकार*** की जाती है। विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा निर्धारित संपत्ति की हानि, कंसोर्टियम की हानि और अंतिम संस्कार व्यय की राशि क्रमशः ₹15,000/-, ₹40,000/- और ₹15,000/- कर दी गई है। प्रत्येक दावेदार कंसोर्टियम की हानि के लिए ₹40,000/- का हकदार होगा। विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा निर्धारित राशि पर ब्याज दर भी 9% प्रति वर्ष तक बढ़ा दी गई है। भविष्य की संभावनाओं के संबंध में, भविष्य की संभावना होने के कारण, काल्पनिक आय में 30% की वृद्धि की गई है। उक्त राशि मृतक की काल्पनिक आय में जोड़ी जाएगी, जिस पर विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा वास्तविक आय पर की गई कटौती की जाएगी। बीमा कंपनी को निर्देश दिया जाता है कि वह माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ***प्रणय सेठी***

(पूर्वोक्त), ***सविता (पूर्वोक्त) और बबीता (पूर्वोक्त)*** के वादों में दिए गए निर्णयों को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय द्वारा पूर्ववर्ती प्रस्तरों में उल्लिखित बढ़ी हुई राशि की गणना, इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत किए जाने की तिथि से दो सप्ताह के भीतर करे और उसके बाद चार सप्ताह की अवधि के भीतर उसे विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष जमा करे। विद्वान विचारण न्यायालय यह सुनिश्चित करेगा कि उपरोक्त राशि का भुगतान, विधि के अनुसार, उसके समक्ष राशि जमा होने के अगले चार सप्ताह के भीतर अपीलकर्ताओं को कर दिया जाए।

25. विचारण न्यायालय का अभिलेख वापस किया जाए।

(2025) 4 ILRA 969

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 18.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मुईन

आदेश से प्रथम अपील संख्या 198/2024

नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, लखनऊ ...अपीलकर्ता

बनाम

मनोरमा एवं अन्य ..प्रत्यर्थीगण

अनवादित

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

श्रीमती पूजा अरोड़ा

प्रत्यर्थी के अधिवक्ता:

रवींद्र कुमार द्विवेदी

क. मोटर दुर्घटना अधिनियम, 1988 - धारा 165 और 166 - दावा कार्यवाही - लापरवाही से वाहन चलाना - साबित न कर पाने का प्रभाव - बीमा कंपनी द्वारा यह आधार लिया गया कि दावेदार यह साबित करने में विफल रहे कि वाहन लापरवाही और तेजी से चलाया गया था - स्वीकार्यता - यह अभिनिर्धारित किया गया कि दावा आवेदन और लिखित कथन के अवलोकन से यह स्पष्ट रूप से संकेत मिलता है कि चालक की ओर से स्पष्ट लापरवाही हुई थी। परिणामस्वरूप, विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा दिए गए विशिष्ट तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, उक्त आधार को अस्वीकार किया जाता है। (प्रस्तर 21 और 25)

ख. मोटर दुर्घटना अधिनियम, 1988 - दावा कार्यवाही - दुर्घटना का होना - किसी व्यक्ति विशेष के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल करना - प्रासंगिकता - ठोस प्रमाण, जहाँ तक आवश्यक हो - *बिमला देवी के वाद और मंगला राम के वाद* पर भरोसा किया गया - अभिनिर्धारित, आरोप-पत्र इंगित करता है कि संबंधित वाहन के चालक श्री शीतला प्रसाद की लापरवाही के कारण उक्त दुर्घटना हुई थी। यह भी इंगित किया गया है कि संबंधित ट्रक को विद्वान न्यायालय द्वारा पारित आदेशों पर छोड़ दिया गया है - विद्वान न्यायाधिकरण ने यह निष्कर्ष निकालने में कोई त्रुटि नहीं की है कि मृतक की मृत्यु ट्रक से जुड़ी दुर्घटना के कारण हुई थी। (प्रस्तर 27, 28 और 33)

अपील खारिज। (ई-1)

<u>उद्धृत वादों की सूची:</u>

1. आदेश से प्रथम अपील संख्या 460/2018; कमलेश्वर तिवारी बनाम अभिषेक वर्मा एवं अन्य, 06.02.2025 को निर्णीत
2. श्रीराम जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती हेम लता एवं अन्य; 2021(2) टी.ए.सी. 366 (इला)
3. परशुराम पाल एवं अन्य बनाम राम लखन एवं अन्य; 2013 (98) एएलआर 589
4. मीनू बी. मेहता बनाम बालकृष्ण रामचंद्र नयन; एआईआर 1977 एससी 1248
5. सुरिंदर कुमार अरोड़ा एवं अन्य बनाम डॉ. मनोज बिस्ला एवं अन्य; एआईआर 2012 एससी 1918
6. बिमला देवी एवं अन्य बनाम हिमाचल सड़क परिवहन निगम एवं अन्य; 2009 (13) एससीसी 530
7. मंगला राम बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड; 2018 (5) एससीसी 656
8. डॉ. अनूप कुमार भट्टाचार्य एवं अन्य बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड; 2021 (12) एडीजे 596

(माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मुईन द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता और प्रत्यर्थी संख्या 1 से 3 के विद्वान अधिवक्ता श्री रवींद्र कुमार द्विवेदी को सुना गया।

2. दिनांक 28.08.2024 की रिपोर्ट के अनुसार प्रत्यर्थी संख्या 4 और 5 को नोटिस दिए जाने के बावजूद उनकी ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ है।

3. तदनुसार, न्यायालय मामले की अंतिम सुनवाई और निर्णय के लिए आगे बढ़ता है।

4. चुनौती के अंतर्गत विद्वान मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण, जिला सुल्तानपुर द्वारा दावा याचिका संख्या 264/2017 में मनोरमा और अन्य बनाम शीतला प्रसाद और अन्य में पारित दिनांक 12.04.2024 के निर्णय

और अधिनिर्णय है। उक्त अधिनिर्णय द्वारा विद्वान न्यायाधिकरण ने दावेदारों द्वारा दायर दावा याचिका को आंशिक रूप से स्वीकार कर लिया है और कुछ मुआवजा दिया है। व्यथित होने के कारण वर्तमान अपील दायर की गई है।

5. अनावश्यक विवरणों से परे, अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तथ्य यह है कि श्री राम कैलाश, जो एक ट्रक संख्या यूपी 44 एटी 0404 पर खलासी के रूप में काम कर रहे थे, की 27.05.2017 को मृत्यु हो गई। दावेदारों, जिनमें से दावेदार संख्या 1 मृतक की पत्नी है, दावेदार संख्या 2 मृतक की पुत्री है और दावेदार संख्या 3 मृतक की मां है, ने विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष दावा आवेदन दायर किया। विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष दावेदारों द्वारा प्रस्तुत वाद यह था कि मृतक राम कैलाश खलासी के रूप में काम कर रहा था और उसे मजदूरी के लिए प्रति माह 6000 रुपये और भोजन के लिए 3000 रुपये मिलते थे। वह संबंधित ट्रक पर जा रहा था, जब उक्त वाहन के चालक ने राम कैलाश से ट्रक के पिछले पहिये में फंसे कंक्रीट के कुछ हिस्सों को साफ करने के लिए कहा। श्री राम कैलाश की एक ट्रक से हुई दुर्घटना में मौके पर ही मृत्यु हो गई। दावेदारों ने पोस्टमार्टम रिपोर्ट के साथ-साथ दर्ज की गई प्रथम सूचना रिपोर्ट भी दाखिल किया है। पुलिस ने आरोप पत्र दायर किया, जिसमें ट्रक के चालक श्री शीतला प्रसाद को नामित किया गया था।

6. विद्वान न्यायाधिकरण ने इस बात पर विवाद्यक विरचित किया था कि क्या 27.05.2017 को पूर्वाह्न 11:30 बजे मृतक ट्रक संख्या यूपी 44 एटी 0404 का पिछला पहिया साफ कर रहा था और चालक की लापरवाही के कारण उसकी मृत्यु हो गई।

7. विद्वान न्यायाधिकरण ने वाहन के चालक और मालिक की ओर से दायर लिखित बयान (उनकी ओर से संयुक्त रूप से दायर एक लिखित बयान) में किए गए कथनों के अनुसार उक्त विवाद्यक पर विचार किया है और साथ ही लिखित बयान में प्रकट विरोधाभास पर भी विचार किया गया, जिसमें लिखित बयान के प्रस्तर 4 में यह कथन दिया गया था कि मृतक की मृत्यु "एक ट्रक" से हुई दुर्घटना के कारण हुई तथा प्रस्तर 5 में यह कथन दिया गया था कि उसकी मृत्यु ट्रक चालक की लापरवाही के कारण हुई तथा विद्वान न्यायाधिकरण का यह मत था कि चालक की लापरवाही के कारण, जिसके परिणामस्वरूप दुर्घटना हुई, ट्रक चालक अर्थात् शीतला प्रसाद ने पुलिस को सूचित नहीं किया। उक्त घटना स्वयं यह दर्शाती है कि उक्त दुर्घटना स्वयं चालक अर्थात् श्री शीतला प्रसाद की लापरवाही के कारण हुई थी। विद्वान विचारण न्यायालय ने संबंधित चालक के विरुद्ध दायर आरोपपत्र पर भी विचार किया है और इस प्रकार इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि उक्त वाहन से संबंधित चालक की लापरवाही के कारण दुर्घटना हुई थी और उसने मुआवजे की राशि सहित अन्य विवाद्यकों पर विचार करने के बाद मुआवजा देने का आदेश दिया है।

8. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आक्षेपित निर्णय को चुनौती देने के लिए निम्नलिखित आधार प्रस्तुत किए हैं:

(क) दावा आवेदन मोटर वाहन, 1988 की धारा 166 के प्रावधानों के अंतर्गत दायर किया गया है जो स्वयं यह इंगित करता है कि अधिनियम, 1988 की धारा 165 के अंतर्गत निर्दिष्ट प्रकृति की दुर्घटना से उत्पन्न मुआवजे के लिए एक आवेदन दावेदारों द्वारा दायर किया जाना है और अधिनियम 1988 की धारा 165 में आवश्यक रूप से यह शामिल होना चाहिए कि दुर्घटना चालक की लापरवाही के कारण हुई थी और वाहन को लापरवाही और तेजी से चलाया गया था, जिसे दावेदार विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष साबित करने में विफल रहे, जैसा कि स्वामी और चालक द्वारा दायर किए गए लिखित बयान के साथ-साथ मृतक की पत्नी के बयान और पोस्टमार्टम रिपोर्ट के अवलोकन से पता चलता है, जो यह इंगित करता है कि उस समय मृतक की पहचान नहीं की गई थी। इस संबंध में दलीलों पर भी भरोसा किया गया है, और

(ख) कि स्वामी और चालक द्वारा दायर लिखित बयान में यह संकेत दिया गया था कि दुर्घटना "एक ट्रक" से हुई थी, लेकिन वाहन का उल्लेख नहीं किया गया था, जो स्वयं दर्शाता है कि दुर्घटना उस ट्रक से नहीं हुई थी, जिसे संबंधित चालक अर्थात् ट्रक संख्या यूपी 44 एटी 0404 चला रहा था।

9. कोई अन्य आधार नहीं लिया गया/आग्रह नहीं किया गया।

10. अपने तर्कों के समर्थन में अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **आदेश से प्रथम अपील संख्या 460/2018 कमलेश्वर तिवारी बनाम अभिषेक वर्मा व अन्य** 06.02.2025 को निर्णीत में इस न्यायालय के हाल के निर्णय, **श्रीराम जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती हेम लता एवं अन्य, 2021(2) टी.ए.सी 366 (इला)** के वाद में इस न्यायालय का निर्णय**, परशुराम पाल एवं अन्य बनाम राम लखन एवं अन्य, 2013 (98) ए.एल.आर. 589** में इस न्यायालय की खंडपीठ का निर्णय, **मीनू बी. मेहता बनाम बालकृष्ण रामचंद्र नयन, एआईआर 1977 सर्वोच्च न्यायालय 1248** के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय, **सुरिंदर कुमार अरोड़ा एवं अन्य बनाम डॉ. मनोज बिस्ला एवं अन्य, एआईआर 2012 सर्वोच्च न्यायालय 1918** के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया गया है।

11. **परशुराम पाल (पूर्वोक्त)** के निर्णय पर भरोसा करते हुए तर्क यह है कि अधिकारियों द्वारा प्रस्तुत आरोपपत्र को दावा याचिका दायर करने के उद्देश्य के लिए आधार नहीं बनाया जा सकता क्योंकि इसे किसी विशेष व्यक्ति के विरूद्ध दुर्घटना साबित करने के लिए ठोस साक्ष्य नहीं माना जा सकता है।

12. **मीनू बी. मेहता (पूर्वोक्त) और सुरिंदर कुमार अरोड़ा (पूर्वोक्त)** के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय पर भरोसा करते हुए तर्क यह है कि अधिनियम, 1988 की धारा 166 के अंतर्गत एक आवेदन को बनाए रखने के लिए यह साबित करना होगा कि वाहन के चालक की ओर से लापरवाही थी और वह तेजी और लापरवाही से चला रहा था, जिसे दावा याचिका दायर करते समय दावेदारों द्वारा इंगित और साबित नहीं किया गया है।

13. **श्रीमती हेम लता (पूर्वोक्त)** के वाद में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हुए तर्क यह है कि अभियोजन साक्षी 2 मृतक का ससुर था और उसने दुर्घटना नहीं देखी थी और इस तरह उक्त साक्षी द्वारा दिए गए बयान पर भरोसा नहीं किया जा सकता था।

14. **कमलेश्वर तिवारी (पूर्वोक्त)** के वाद में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हुए तर्क यह है कि इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि चूंकि यह ज्ञात नहीं है कि वाहन संख्या पुलिस के ज्ञान में कैसे आया और आरोप पत्र भी दायर किया गया है, इसलिए मुआवजा देने और दावा याचिका को स्वीकार करने का कोई कारण नहीं हो सकता है।

15. दूसरी ओर, प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा पारित अधिनिर्णय का समर्थन किया है।

16. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना गया और अभिलेख का अवलोकन किया गया।

17. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने और अभिलेख का अवलोकन करने से यह पता चलता है कि श्री राम कैलाश नामक व्यक्ति ट्रक संख्या यूपी 44 एटी 0404 पर खलासी के रूप में काम कर रहे थे और उन्हें उनके द्वारा प्रदान की जा रही सेवा के लिए कुछ राशि प्राप्त हो रही थी। श्री राम कैलाश की उक्त ट्रक पर खलासी के रूप में काम करते समय 27.05.2017 को मृत्यु हो गई। दावेदारों के अनुसार, उस दुर्भाग्यपूर्ण दिन, श्री राम कैलाश को उक्त वाहन के चालक ने ट्रक के पिछले पहिये में फंसे कंक्रीट (गोटी) के कुछ टुकड़ों को हटाने के लिए कहा था। जब श्री राम कैलाश उक्त कंक्रीट को साफ कर रहे थे, तब एक दुर्घटना में शामिल होने के कारण उनकी मृत्यु हो गई। पोस्टमार्टम रिपोर्ट से संकेत मिलता है कि मृतक की पहचान ज्ञात नहीं थी।

18. ट्रक को उसी दिन अर्थात् 27.05.2025 को लगभग 11:40 पूर्वाह्न पर जब्त कर लिया गया था, जैसा कि जब्ती रिपोर्ट (पृष्ठ 120) के अवलोकन से स्पष्ट होता है। दुर्घटना 11:30 पूर्वाह्न पर हुई थी, जैसा कि दावा याचिका और विद्वान न्यायाधिकरण के निर्णय के अवलोकन से स्पष्ट होता है, जिस पर अपीलकर्ताओं की ओर से कोई विवाद नहीं है।

19. विद्वान न्यायाधिकरण ने, संबंधित वाहन के चालक और स्वामी द्वारा संयुक्त रूप से दायर लिखित बयानों में किए गए कथनों में कथित विरोधाभासों पर विचार करने के बाद, लिखित बयान के प्रस्तर 4 और 5 में किए गए कथनों को सुसंगत बनाते हुए यह अभिनिर्धारित किया है कि यद्यपि लिखित बयान के एक भाग में यह संकेत दिया गया था कि दुर्घटना "एक ट्रक" की संलिप्तता के कारण हुई थी, लेकिन विद्वान न्यायाधिकरण ने लिखित बयान के प्रस्तर 5 में किए गए स्पष्ट कथन पर भी विचार किया कि दुर्घटना ट्रक के चालक की लापरवाही के कारण हुई थी।

20. जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, लिखित बयान में दिए गए कथनों को विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा सुसंगत करके इस निष्कर्ष पर पहुँचा गया है कि उक्त दुर्घटना में ट्रक चालक ही शामिल था और दुर्घटना उसकी लापरवाही के कारण हुई थी, और तत्पश्चात, आक्षेपित निर्णय और पंचाट के माध्यम से मुआवज़ा प्रदान किया गया है। अपीलकर्ता बीमा कंपनी ने उपरोक्त आधारों पर पंचाट को चुनौती दिया है, जिस पर अब न्यायालय विचार कर रहा है।

21. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए आधार इस प्रकार हैं:
(क) दावा आवेदन मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 166 के प्रावधानों के अंतर्गत दायर किया गया है, जो स्वयं यह दर्शाता है कि अधिनियम, 1988 की धारा 165 के अंतर्गत निर्दिष्ट प्रकृति की दुर्घटना से उत्पन्न मुआवजे के लिए दावेदारों द्वारा आवेदन दायर किया जाना है और अधिनियम, 1988 की धारा 165 में अनिवार्य रूप से चालक की लापरवाही के कारण हुई दुर्घटना और वाहन को लापरवाही एवं उतावलेपन से चलाया जाना शामिल होना चाहिए, जिसे दावेदार विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष साबित करने में विफल रहे, जैसा कि स्वामी और चालक द्वारा दायर लिखित बयान के साथ-साथ मृतक की पत्नी के बयान और पोस्टमार्टम रिपोर्ट के अवलोकन से स्पष्ट होता है, जो यह दर्शाता है कि उस समय मृतक की पहचान नहीं हो पाई थी। इस संबंध में दलीलों पर भी भरोसा किया गया है;

22. इस संबंध में, दावा आवेदन के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि दावेदारों ने स्पष्ट रूप से यह दावा किया था कि दुर्घटना दिनांक 27.05.2017 को उसी ट्रक से हुई थी, जिस पर मृतक खलासी के रूप में कार्यरत था, बल्कि दावा आवेदन में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि चालक की लापरवाही के कारण, जब मृतक पिछला पहिया साफ कर रहा था, श्री राम कैलाश की मौके पर ही मृत्यु हो गई।

23. लिखित बयान में, यद्यपि लिखित बयान के एक भाग में चालक और स्वामी ने यह दर्शाया है कि मृतक की मृत्यु "एक ट्रक" से हुई दुर्घटना के कारण हुई, तथापि लिखित बयान के प्रस्तर 5 में संबंधित चालक की लापरवाही स्पष्ट रूप से उजागर हुई है।
24. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **मीनू बी. मेहता (पूर्वोक्त)** और **सुरिंदर कुमार अरोड़ा (पूर्वोक्त)** के वाद में यह अभिनिर्धारित किया है कि संबंधित वाहन की लापरवाही से दुर्घटना हुई होगी।

25. दावा आवेदन और लिखित बयान के अवलोकन से यह स्पष्ट रूप से संकेत मिलता है कि चालक की ओर से स्पष्ट लापरवाही थी। परिणामस्वरूप, विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा दिए गए तथ्यों के विशिष्ट निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए, उक्त आधार को अस्वीकार किया जाता है।

26. जहां तक आधार (ख) का प्रश्न है, अर्थात् स्वामी और चालक द्वारा दायर लिखित बयान में, यह संकेत दिया गया था कि दुर्घटना "एक ट्रक" से हुई थी, वाहन का उल्लेख किए बिना, जो स्वयं यह इंगित करता है कि दुर्घटना उस ट्रक से नहीं हुई थी जिसे संबंधित चालक अर्थात् ट्रक संख्या यूपी 44 एटी 0404 चला रहा था,

तर्क यह है कि दुर्घटना के समर्थन में कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया क्योंकि न तो पीडब्लू1 और न ही पीडब्लू2 ने यह संकेत दिया कि दुर्घटना उनके सामने हुई थी और न ही वे प्रत्यक्षदर्शी थे, यह कहना पर्याप्त है कि जब वाहन के स्वामी और चालक ने स्वयं दुर्घटना होने के बारे में संकेत दिया है और लिखित बयान को विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा सामंजस्यपूर्ण ढंग से पढ़ा गया है और पोस्टमार्टम रिपोर्ट और जब्ती रिपोर्ट सभी इस तथ्य के सूचक हैं कि दुर्घटना संबंधित वाहन अर्थात् ट्रक संख्या यूपी 44 एटी 0404 से चालक की लापरवाही के कारण हुई थी, तदनुसार, उक्त आधार भी खारिज किया जाता है।

27. इस संबंध में **बिमला देवी एवं अन्य बनाम हिमाचल सड़क परिवहन निगम एवं अन्य, 2009 (13) एससीसी 530** के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का संदर्भ देना समीचीन होगा, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि किसी विशेष वाहन द्वारा किसी विशेष तरीके से हुई दुर्घटना का ठोस साक्ष्य दावेदारों द्वारा किया जाना संभव नहीं हो सकता है और दावेदारों को केवल संभावनाओं की प्रबलता की कसौटी पर वाद को स्थापित करने की आवश्यकता है।

28. सुविधा के लिए, **बिमला देवी (पूर्वोक्त**) के निर्णय की प्रासंगिक टिप्पणियाँ नीचे पुन: प्रस्तुत की जा रही हैं:
"15. इस प्रकार की स्थिति में, न्यायाधिकरण ने मामले पर समग्र दृष्टिकोण अपनाया है। यह ध्यान रखना आवश्यक था कि किसी विशेष बस द्वारा किसी विशेष तरीके से हुई दुर्घटना का ठोस प्रमाण दावेदारों द्वारा प्रस्तुत करना संभव नहीं हो सकता है। दावेदारों को केवल संभाव्यता की प्रबलता की कसौटी पर अपना मामला स्थापित करना था। उचित संदेह से परे प्रमाण के मानक को लागू नहीं किया जा सकता था। उक्त उद्देश्य के लिए, उच्च न्यायालय को दोनों पक्षों द्वारा प्रस्तुत संबंधित कहानियों पर विचार करना चाहिए था।"

(बल दिया गया)

29. इस संबंध में, यह उल्लेख करना भी उचित होगा कि अधिकारियों द्वारा दायर किए गए आरोप पत्र में, अपराधी वाहन के चालक शीतला प्रसाद का नाम स्पष्ट रूप से सामने आया है, जो स्वयं अपराधी वाहन और उस चालक के बारे में इंगित करता है, जो दुर्घटना का कारण बना जिसके परिणामस्वरूप श्री राम कैलाश की मृत्यु हुई, इस मामले के पहलू को भी माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **मंगला राम बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य 2018 (5) एससीसी 656** के वाद में निर्धारित विधि को ध्यान में रखते हुए नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है, विरूद्ध माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि किसी विशेष व्यक्ति के खिलाफ आरोप पत्र दायर करना प्रथम दृष्टया लापरवाही और तेजी से वाहन चलाने में उसकी मिलीभगत की ओर इशारा करता है।

30. सुविधा के लिए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय की प्रासंगिक टिप्पणियाँ नीचे पुन: प्रस्तुत की जा रही हैं:
"27. प्रत्यर्थी 2 और 3 द्वारा दायर प्रथम अपील में हस्तक्षेप करने के लिए उच्च न्यायालय को प्रेरित करने वाला एक अन्य कारण, संबंधित जीप के चालक की लापरवाही के तथ्य के बारे में न्यायाधिकरण द्वारा कोई निष्कर्ष न निकाला जाना था। तथ्यात्मक रूप से, यह दृष्टिकोण असमर्थनीय है। न्यायाधिकरण द्वारा किए गए

विश्लेषण के आधार पर हमारी समझ यह है कि जीप संख्या आरएसटी 4701 को प्रत्यर्थी 2 द्वारा तेज़ी और लापरवाही से चलाया गया था, जब यह अपीलकर्ता की मोटरसाइकिल से टकरा गई, जिसके कारण दुर्घटना हुई। यह साक्षीगण के साक्ष्य और पुलिस द्वारा प्रत्यर्थी 2 का नाम लेकर दायर आरोप-पत्र की विषय-वस्तु से स्पष्ट होता है। इस न्यायालय ने डुल्सीना फर्नांडीस वाद में हाल ही में दिए गए अपने निर्णय में कहा कि दावेदारों द्वारा प्रस्तुत अपराधी वाहन के चालक की ओर से लापरवाही की दलील पर न्यायाधिकरण द्वारा प्रबलता या संभाव्यता की कसौटी पर निर्णय लिया जाना आवश्यक था, न कि उचित संदेह से परे प्रमाण के मानक पर। यह कहना पर्याप्त है कि जिन निर्णयों का हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं, उनमें प्रत्यर्थी 2 के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल करना प्रथम दृष्टया लापरवाही और उतावलेपन से वाहन चलाने में उसकी संलिप्तता की ओर इशारा करता है। इसके अतिरिक्त, जब अभियुक्तों को आपराधिक वादों में बरी कर दिया जाना था, तब भी इस न्यायालय ने यह राय व्यक्त की कि मोटर दुर्घटना वादों में न्यायाधिकरण द्वारा अपेक्षित दायित्व के आकलन पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता।

(बल दिया गया)

31. इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने **डॉ. अनूप कुमार भट्टाचार्य एवं अन्य बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड 2021 (12) एडीजे 596** के वाद में अभिनिर्धारित किया है कि एफआईआर, नक्शा-नजरी और आरोप-पत्र जैसे दस्तावेज, जो पुलिस अभिलेख का हिस्सा हैं, भले ही वे घटना को स्थापित न कर सकें, जब समग्र रूप से और विवेकपूर्ण तरीके से विचार किया जाता है, तो संभावना की डिग्री के बारे में एक सूचित और बुद्धिमान निष्कर्ष निकालने में मदद मिल सकती है, जो दावेदार द्वारा स्थापित वाद के लिए खुद को प्रस्तुत करती है।

32. सुविधा के लिए, **डॉ. अनूप कुमार भट्टाचार्य (पूर्वोक्त)** की प्रासंगिक टिप्पणियाँ नीचे पुन: प्रस्तुत की जा रही हैं:

"29. अब हम मूल प्रश्न पर लौट सकते हैं कि क्या न्यायाधिकरण द्वारा एफआईआर, नक्शा-नजरी और आरोप-पत्र जैसे दस्तावेजों को, जो पुलिस अभिलेख का हिस्सा हैं, साक्ष्य से पूरी तरह से बाहर करना सही था।

30. हमें इसमें कोई संदेह नहीं है कि उपरोक्त प्रश्न का उत्तर निश्चित रूप से 'नहीं' होगा। न्यायाधिकरण ने एफआईआर, आरोप-पत्र और नक्शा-नजरी को इस आधार पर नज़रअंदाज़ करने का विकल्प चुना कि वे यह साबित नहीं करते कि अपराधी ट्रक का चालक दुर्घटना में शामिल था या वह लापरवाही से गाड़ी चलाने का दोषी था। हमारी राय में, न्यायाधिकरण सही होता यदि दावे की कार्यवाही में साक्ष्य का मानक उचित संदेह से परे होता, जैसा कि आपराधिक कार्यवाही में होता है। आपराधिक कार्यवाही में भी, इन दस्तावेजों को न्यायालय में प्रस्तुत साक्ष्य की पुष्टि करने वाला माना जा सकता है और इन्हें पूरी तरह से नज़रअंदाज़ या अनदेखा नहीं किया जाना चाहिए। किसी भी स्थिति में, पुलिस अभिलेख के पुष्टिकारक मूल्य को पूरी तरह से नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता, हालाँकि निर्णय केवल उन्हीं पर आधारित नहीं हो सकता। इसके अलावा, दावे की कार्यवाही में प्रमाण का मानक उचित संदेह से परे प्रमाण नहीं, बल्कि संभावनाओं की प्रबलता है। अपने समक्ष साक्ष्यों के मूल्यांकन पर न्यायाधिकरण को स्वयं को संतुष्ट करना था कि दावा याचिका में अभिकथित घटनाओं के घटित

होने की संभावना न होने की तुलना में अधिक है। हमारे विचार से, प्रथम सूचना रिपोर्ट, नक्शा-नजरी और आरोप-पत्र जैसे दस्तावेज़, जो पुलिस अभिलेख का हिस्सा हैं, भले ही वे समग्र और विवेकपूर्ण तरीके से विचार करने पर घटना की पुष्टि नहीं करते, दावेदार द्वारा स्थापित वाद के लिए उपयुक्त संभावना की डिग्री के बारे में एक सूचित और बुद्धिमानी भरा निष्कर्ष निकालने में मदद कर सकते हैं। क्या प्रथम सूचना रिपोर्ट तुरंत दर्ज की गई थी या अनुचित देरी के बाद दर्ज की गई थी? क्या नक्शा-नजरी प्रथम सूचना रिपोर्ट में निहित विवरण के अनुरूप है? क्या लगी चोटें प्रथम सूचना रिपोर्ट में निहित विवरण की पुष्टि करती हैं? क्या आरोप-पत्र प्रथम सूचना रिपोर्ट में निहित अभिकथनों को पुष्ट करता है? ये वे कारक हैं जिन पर निष्पक्ष और विवेकपूर्ण ढंग से विचार करने से यह आकलन करने में मदद मिल सकती है कि दावेदारों द्वारा प्रस्तुत वाद अधिक संभावित था या नहीं। अतः, हम उक्त दस्तावेजों को इस आधार पर पूरी तरह से नज़रअंदाज़ करना एक भूल मानते हैं कि वे घटना के निर्णायक प्रमाण नहीं थे, और भी अधिक इसलिए क्योंकि दावा कार्यवाही का उद्देश्य ही यही नहीं है।"

(बल दिया गया)

33. जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, दिनांक 25.06.2017 के आरोप-पत्र के अवलोकन से, जिसका न्यायालय ने मूल अभिलेख से अवलोकन किया है, यह स्पष्ट रूप से सामने आता है कि आरोप-पत्र में यह दर्शाया गया है कि संबंधित वाहन के चालक श्री शीतला प्रसाद की लापरवाही के कारण उक्त दुर्घटना हुई थी। यह भी दर्शाया गया है कि संबंधित ट्रक को विद्वान न्यायालय द्वारा पारित आदेशों पर छोड़ दिया गया है। यह उक्त दुर्घटना में चालक शीतला प्रसाद की मिलीभगत और संलिप्तता का संकेत है और इस प्रकार **मंगला राम (पूर्वोक्त)** के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि को ध्यान में रखते हुए, यह स्पष्ट है कि विद्वान न्यायाधिकरण ने यह निष्कर्ष निकालने में कोई त्रुटि नहीं की है कि मृतक की मृत्यु ट्रक से जुड़ी दुर्घटना के कारण हुई थी।

34. तदनुसार, **बिमला देवी (पूर्वोक्त), मंगला राम (पूर्वोक्त) और डॉ. अनूप कुमार भट्टाचार्य (पूर्वोक्त)** के निर्णय, **श्रीमती हेम लता (पूर्वोक्त) और कमलेश्वर तिवारी (पूर्वोक्त)** के निर्णय न्यायालय को रोक नहीं सकते।

35. इसी प्रकार, **परशुराम पाल (पूर्वोक्त)** वाद में इस न्यायालय की खंडपीठ का निर्णय, जिस पर अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने भरोसा जताया है, भी अपीलकर्ता के लिए कोई मदद नहीं करता है, इस संबंध में **बिमला देवी (पूर्वोक्त)** के निर्णय को ध्यान में रखते हुए, जिस पर संयोगवश **परशुराम पाल (पूर्वोक्त)** वाद में इस न्यायालय की खंडपीठ ने विचार नहीं किया है।

36. उपर्युक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, हस्तक्षेप का कोई प्रकरण नहीं बनता है। तदनुसार, अपील **खारिज** की जाती है।

37. विचारण न्यायालय के अभिलेख वापस किए जाएँ।

(2025) 4 ILRA 976

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 09.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मुईन

आदेश से प्रथम अपील संख्या 602/2011

और

आदेश से प्रथम अपील संख्या 670/2011

यू.पी.एस.आर.टी.सी. फैजाबाद **.. अपीलकर्ता**

बनाम

श्रीमती मीना श्रीवास्तव एवं अन्य **..प्रत्यर्थीगण**

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:
जे.बी. सिंह, अखिलेश कुमार श्रीवास्तव

प्रत्यर्थी के अधिवक्ता:
विवेक कुमार पांडे, अमित त्रिपाठी, एम.ए.सिद्दीकी, राकेश कुमार श्रीवास्तव

अनुवादित

ए. मोटर दुर्घटना अधिनियम, 1988 - दावा कार्यवाही - घटना का घटित होना - बस के मार्ग को प्रमाणित करने के लिए स्टेशन अधीक्षक को पेश न करना - चालक की गवाही - प्रासंगिकता - यह अभिनिर्धारित किया गया कि स्टेशन अधीक्षक को पेश न करना इस न्यायालय को चालक की गवाही को ध्यान में रखते हुए नहीं रोक सकता, जिसमें उसने विशेष रूप से कहा था कि 06.09.2007 को बस सुल्तानपुर से होकर वापस आई थी और सुल्तानपुर में रोडवेज बस स्टेशन पर भी खड़ी थी। (प्रस्तर 30)

बी. पद्धति व प्रक्रिया - अपील में उठाई गई चुनौती का आधार न तो न्यायाधिकरण के समक्ष उठाया गया था और न ही अपील के ज्ञापन में वर्णित किया गया था। - प्रभाव - नया आधार उठाया गया कि मृतक के पास से कोई टिकट नहीं मिला। - अनुमेयता - यह अभिनिर्धारित किया गया कि उक्त आधार इस न्यायालय को रोक नहीं सकता। यह देखते हुए कि चूंकि विद्वान न्यायाधिकरण ने विशेष रूप से इस तथ्य का संकेत दिया है कि दुर्घटना उक्त तिथि को हुई थी, जिसमें मृतक श्री प्रदीप कुमार श्रीवास्तव शामिल थे और जिसके परिणामस्वरूप उनकी मृत्यु हो गई थी, इसलिए, उक्त आधार को भी खारिज किया जाता है। (प्रस्तर 33 और 34)

सी. मोटर दुर्घटना अधिनियम, 1988 - दावा कार्यवाही - दुर्घटना का होना - दुर्घटना में चालक की संलिप्तता का प्रमाण - चालक का बयान - आरोप-पत्र दाखिल करना - प्रासंगिकता - बिमला देवी का वाद, *मंगला राम का वाद और डॉ. अनूप कुमार भट्टाचार्य का वाद* जिस पर भरोसा किया गया - यह अभिनिर्धारित किया गया कि, भले ही बस चालक ने 06.09.2007 को दुर्घटना के तथ्य को विशेष रूप से स्वीकार नहीं किया हो, फिर भी चालक के विरूद्ध दायर आरोप-पत्र में, जैसा कि विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा विचार किया गया है, यह स्पष्ट रूप से सामने आता है कि पुलिस अधिकारियों का यह मानना था कि चालक उक्त दुर्घटना में शामिल था। (प्रस्तर 35 और 39)

डी. मोटर दुर्घटना अधिनियम, 1988 - मुआवज़ा का अधिनिर्णय- न्यायाधिकरण ने मृतक के पुत्र के वेतन के आधार पर मुआवज़ा दिया, हालाँकि मृतक की वेतन पर्ची दायर की गई थी - वैधता को चुनौती दी गई - अभिनिर्धारित किया गया कि विद्वान न्यायाधिकरण ने एक अजीब प्रक्रिया अपनाई है क्योंकि उसने मृतक के पुत्र की वेतन पर्ची पर भरोसा किया है, जिसे अनुकंपा के आधार पर नियुक्त किया गया था - मृतक के पुत्र के वेतन के आधार पर विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा दिया गया मुआवज़ा विधि की दृष्टि में वैध नहीं पाया गया। (प्रस्तर 42 और 44) निगम की अपील खारिज कर दी गई और दावेदार की अपील का निस्तारण कर दिया गया। (ई-1)

<u>उद्धृत वादों की सूची:</u>

1. एफएएफओ संख्या 434/2016; मोहम्मद सिराज बनाम मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण, लखनऊ 21.11.2024 को निर्णीत
2. बिमला देवी एवं अन्य बनाम हिमाचल रोड ट्रांसपोर्ट कॉर्पोरेशन एवं अन्य; 2009 (13) एससीसी 530
3. मंगला राम बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड एवं अन्य 2018 (5) एससीसी 656
4. डॉ. अनूप कुमार भट्टाचार्य एवं अन्य बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड; 2021 (12) एडीजे 596

(माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मुईन द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अखिलेश कुमार श्रीवास्तव और प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री अमित त्रिपाठी को सुना गया।

2. संबद्ध अपील अर्थात् एफएएफओ संख्या 670/2011, निर्धारित राशि में वृद्धि के लिए प्रार्थना करते हुए दायर की गई है।

3. प्रत्यर्थी पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि दोनों अपीलों में शामिल तथ्य समान हैं।

अनुवादित

4. तदनुसार, न्यायालय दोनों अपीलों की एक साथ सुनवाई और निर्णय एक समान निर्णय के माध्यम से करने जा रहा है। सुविधा के लिए, एफएएफओ संख्या 602/2011 के तथ्यों को लिया जा रहा है।

5. चुनौती के अंतर्गत, विद्वान मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण/न्यायालय संख्या 2, फैजाबाद द्वारा श्रीमती मीना श्रीवास्तव एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य रोडवेज परिवहन निगम एवं अन्य के संबंध में दावा आवेदन संख्या 257/2009 में पारित दिनांक 10.03.2011 का निर्णय और आदेश है। उक्त निर्णय द्वारा, विद्वान न्यायाधिकरण ने दावेदारों के पक्ष में 6% वार्षिक ब्याज सहित 12,85,000/- रुपये की राशि प्रदान की है।

6. अनावश्यक विवरणों के बिना, प्रत्यर्थी पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तथ्य यह हैं कि 06.09.2007 को एक दुर्घटना हुई, जब श्री प्रदीप कुमार श्रीवास्तव, जो अपील में दावेदार संख्या 1 के पति और दावेदार संख्या 2 एवं 3/प्रत्यर्थी संख्या 1 से 3 के पिता थे, की दुर्घटना के कारण मृत्यु हो गई। कहा जाता है कि दुर्घटना तब हुई जब मृतक शाम लगभग 7:00 बजे सुल्तानपुर के सेठ पेट्रोल पंप के सामने बस संख्या यूपी 42 टी 3542 से उतर रहा था। दावेदारों के अनुसार, मृतक का पैर बस से उतरते समय बस में फंस गया और बस बिना यह देखे चल पड़ी कि यात्री का पैर बस में फंस गया है और कुछ देर चलने के बाद, जब कुछ लोगों ने बस रोकी, तो पता चला कि श्री प्रदीप कुमार श्रीवास्तव गंभीर रूप से घायल हो गए थे। उन्हें अस्पताल ले जाया गया, जहाँ उन्हें मृत घोषित कर दिया गया।

7. दावा आवेदन दायर करने पर, निगम ने उपस्थित होकर घटना से इनकार किया। निगम की ओर से इनकार का मुख्य आधार यह था कि बस विचाराधीन मार्ग पर नहीं चल रही थी, बल्कि बस का मार्ग फैजाबाद-इलाहाबाद था और इस प्रकार यह तर्क दिया गया कि चूँकि सुल्तानपुर में जिस स्थान पर घटना हुई, अर्थात् पेट्रोल पंप के सामने, वह उस मार्ग के दायरे में नहीं आता था जिस पर बस को जाना था, इसलिए, बस के दुर्घटनाग्रस्त होने का कोई कारण नहीं था और इसलिए निगम के विरुद्ध कोई दावा दिए जाने का कोई प्रश्न ही नहीं है।

8. विद्वान न्यायाधिकरण ने विभिन्न विवाद्यक विरचित किए, जिनमें से विवाद्यक संख्या 1 यह था कि क्या 06.09.2007 को शाम 7:00 बजे, श्री प्रदीप कुमार श्रीवास्तव बस संख्या यूपी 42 टी 3542 से उतरते समय गिर गए और उनका पैर बस के दरवाजे में फंस गया और वे बस के साथ घसीटे गए और उसके बाद लगी चोटों के कारण उनकी मृत्यु हो गई।

9. एक अन्य विवाद्यक जिससे संबंधित अपील, यानी एफएएफओ संख्या 670/2011, संबंधित है, वह है कि दावेदार किस मुआवजे हेतु पात्र हैं।

10. श्री अखिलेश कुमार श्रीवास्तव, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने विवाद्यक संख्या 1 पर जोरदार तर्क दिया था, जिसका निर्णय दावेदारों के पक्ष में हुआ है, जिसमें विद्वान न्यायाधिकरण ने यह अभिनिर्धारित किया है कि विचाराधीन बस से दुर्घटना उस दुर्भाग्यपूर्ण दिन अर्थात 06.09.2007 को हुई थी, जिसमें श्री प्रदीप कुमार श्रीवास्तव की मृत्यु हो गई थी।

11. श्री श्रीवास्तव का तर्क यह है कि विद्वान न्यायाधिकरण निगम द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों के आधार पर इस विवाद्यक पर विचार करने में विफल रहा है, अर्थात् स्टेशन अधीक्षक द्वारा जारी एक प्रमाण पत्र जिसमें बस का मार्ग दर्शाया गया था, जिससे यह संकेत मिलता था कि बस उस मार्ग पर नहीं चल रही थी, जिस पर दुर्घटना हुई थी, बल्कि फैजाबाद-इलाहाबाद मार्ग पर चल रही थी।

12. श्री श्रीवास्तव ने यह भी तर्क दिया है कि मृतक के पास से कोई बस टिकट बरामद नहीं हुआ और इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि मृतक उस बस का वास्तविक यात्री था, जिससे कथित दुर्घटना हुई थी।

13. श्री श्रीवास्तव का एक अन्य तर्क यह है कि बस चालक की गवाही, जिसमें उसने दुर्घटना के बारे में कुछ भी संकेत नहीं दिया था, को खारिज नहीं किया गया है और इस संबंध में इस पर विचार नहीं किया गया है कि दुर्घटना वास्तव में उस दुर्भाग्यपूर्ण दिन यानी 06.09.2007 को हुई थी।

14. कोई अन्य तर्क नहीं दिया गया है।

15. दूसरी ओर, प्रत्यर्थीगण/दावेदारों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री अमित त्रिपाठी ने तर्क दिया है कि सी.पी.डब्लू.-2 श्री विजय कुमार (साक्षी), जो विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष गवाही देने के लिए उपस्थित हुए हैं, ने स्पष्ट रूप से संकेत दिया है कि वह 06.09.2007 को शाम लगभग 07:00 बजे घटनास्थल पर मौजूद थे और उन्होंने उक्त दुर्घटना को विस्तार से देखा था, जिसमें बस चालक की लापरवाही के कारण श्री प्रदीप कुमार श्रीवास्तव का पैर बस के दरवाजे में फंस गया था, जिसके परिणामस्वरूप श्री प्रदीप कुमार श्रीवास्तव को गंभीर चोटें आईं और बाद में उनकी मृत्यु हो गई।

16. यह तर्क दिया गया है कि श्री विजय कुमार के बयान का निगम द्वारा खंडन नहीं किया जा सका और न ही उक्त बयान में कोई कमी पाई गई और विद्वान न्यायाधिकरण ने सही ढंग से यह माना है कि दुर्घटना उसी दिन हुई थी।

17. जहाँ तक इस आधार का प्रश्न है कि मृतक के पास से कोई टिकट नहीं मिला, यह तर्क दिया जाता है कि उक्त दलील कभी भी विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष या निगम द्वारा दायर वर्तमान अपील में नहीं ली गई थी और परिणामस्वरूप, उक्त दलील को पहली बार लेने के लिए बहुत देर हो चुका है।

अनुवादित

18. अन्यथा भी, यह तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि विद्वान न्यायाधिकरण के निर्णय और श्री विजय कुमार (सी.पी.डब्ल्यू.-2) के कथन को ध्यान में रखते हुए, दुर्घटना वास्तव में उसी दिन हुई थी और इस प्रकार विद्वान न्यायाधिकरण ने दावेदारों के पक्ष में मुआवज़ा देने के लिए सही ढंग से कार्यवाही की है।

19. जहाँ तक श्री श्रीवास्तव के इस तर्क का प्रश्न है कि बस चालक की गवाही को खारिज नहीं किया गया है, दावेदार के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय द्वारा **एफएएफओ संख्या 434/2016 मोहम्मद सिराज बनाम मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण, लखनऊ में 21.11.2024** को पारित निर्णय पर भरोसा किया है, जिसमें इस न्यायालय ने **बिमला देवी एवं अन्य बनाम हिमाचल सड़क परिवहन निगम एवं अन्य 2009 (13) एससीसी 530 के** निर्णय के आधार पर विशेष रूप से यह अभिनिर्धारित किया गया है कि किसी विशेष बस द्वारा किसी विशेष तरीके से हुई दुर्घटना का ठोस प्रमाण दावेदारों द्वारा संभव नहीं हो सकता है और दावेदारों को केवल अपना वाद संभाव्यता की प्रबलता की कसौटी पर स्थापित करना आवश्यक है।

20. जहाँ तक बस का मार्ग फैजाबाद-इलाहाबाद होने और सुल्तानपुर में कोई दुर्घटना न होने के संबंध में है, जैसा कि अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है, श्री त्रिपाठी का तर्क यह है कि बस चालक का बयान, जैसा कि विद्वान न्यायाधिकरण के निर्णय में दर्शाया गया है, स्वयं यह इंगित करता है कि बस चालक ने स्वीकार किया है कि 06.09.2007 को वह सुल्तानपुर होकर वापस लौटा था और उस दुर्भाग्यपूर्ण दिन, संबंधित बस सुल्तानपुर के रोडवेज बस स्टैंड पर भी खड़ी थी, जिससे विद्वान न्यायाधिकरण ने यह माना है कि दुर्घटना सुल्तानपुर में संबंधित बस से हुई थी।

21. दावेदार के विद्वान अधिवक्ता ने संबंधित चालक के खिलाफ दायर आरोप पत्र पर भी भरोसा जताया है और **मंगला राम बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड एवं अन्य 2018 (5) एससीसी 656** के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भी भरोसा जताया है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि किसी व्यक्ति विशेष के खिलाफ आरोप पत्र दायर करना प्रथम दृष्टया उसकी वाहन को लापरवाही और जल्दबाजी में चलाने में मिलीभगत की ओर इशारा करता है।

22. **डॉ. अनूप कुमार भट्टाचार्य एवं अन्य बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड 2021 (12) एडीजे 596** में इस न्यायालय के खंडपीठ के निर्णय पर भी भरोसा किया गया इस न्यायालय की खंडपीठ ने अभिनिर्धारित किया है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट, नक्शा-नजरी और आरोपपत्र जैसे दस्तावेज़, जो पुलिस रिकॉर्ड का हिस्सा हैं, भले ही समग्र रूप से और विवेकपूर्ण तरीके से विचार करने पर वे घटना की पुष्टि न कर पाएँ, लेकिन दावेदार द्वारा स्थापित वाद के लिए संभावना के स्तर के बारे में एक सूचित और बुद्धिमानी भरा निष्कर्ष निकालने में मदद कर सकते हैं।

23. दावेदार के विद्वान वकील ने तीसरे मुद्दे पर भी तर्क दिया है जैसा कि विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा तैयार किया गया है, अर्थात मुआवजे की राशि जिसके लिए दावेदार हकदार हैं, उनकी अपील में अर्थात एफएएफओ संख्या 670/2011 जो मुआवजे में वृद्धि से संबंधित है।

24. यह तर्क दिया गया है कि यद्यपि मृतक, जो उत्तर प्रदेश विद्युत निगम में कनिष्ठ अभियंता के पद पर कार्यरत था, की वेतन पर्ची दाखिल की गई थी, जिसमें उसका वेतन 54,143/- रुपये दर्शाया गया था, फिर भी विद्वान न्यायाधिकरण का यह मत था कि चूँकि उक्त वेतन पर्ची सिद्ध नहीं हुई थी, इसलिए उस पर कोई भरोसा नहीं किया जा सकता था और बदले में विद्वान न्यायाधिकरण ने दावेदार के पुत्र की वेतन पर्ची पर भरोसा किया है, जिसे उसके पिता श्री प्रदीप कुमार श्रीवास्तव (मृतक) की मृत्यु के कारण अनुकंपा नियुक्ति दी गई थी और मुआवजे के लिए उसके वेतन पर विचार किया गया है। मृतक के पुत्र के वेतन पर भरोसा करते हुए, मृतक का वेतन 20,000/- रुपये प्रति माह निर्धारित किया गया है, जो वेतन पर्ची में दर्शाए गए वास्तविक वेतन 54,143/- रुपये के बिल्कुल विपरीत है और इस प्रकार, यह तर्क दिया जाता है कि विद्वान न्यायाधिकरण ने इस आधार पर मुआवजा देने में स्पष्ट रूप से विधिक त्रुटि की है।

25. पक्षों के विद्वान अधिवक्तागण को सुना गया और अभिलेख का अवलोकन किया गया।

26. पक्षों के विद्वान अधिवक्तागण द्वारा प्रस्तुत तर्क और अभिलेख के अवलोकन से यह पता चलता है कि 06.09.2007 को एक दुर्घटना घटित हुई थी, जिसके परिणामस्वरूप श्री प्रदीप कुमार श्रीवास्तव की मृत्यु हो गई।

27. मृतक की पत्नी और पुत्रों द्वारा दावा आवेदन दायर करने पर, विद्वान न्यायाधिकरण ने यह विवाद्यक विरचित किया था कि क्या 06.09.2007 को बस संख्या यूपी42टी3542 के साथ बस चालक की लापरवाही के कारण दुर्घटना हुई थी।

28. उक्त विवाद्यक का निर्णय दावेदारों के पक्ष में किया गया है।

29. उक्त निष्कर्षों को निगम द्वारा वर्तमान अपील के माध्यम से इस आधार पर चुनौती दी गई है कि (क) दुर्घटना सुल्तानपुर में हुई बताई गई है, जबकि बस के मार्ग के अनुसार, सुल्तानपुर उसके मार्ग पर नहीं पड़ता था क्योंकि बस का फैजाबाद-इलाहाबाद मार्ग था; (ख) मृतक के पास कोई बस टिकट नहीं पाया गया; (ग) बस चालक की गवाही को खारिज नहीं किया गया है।

30. जहाँ तक आधार (क) का संबंध है, निगम ने फैजाबाद-इलाहाबाद मार्ग पर संचालित बस के समर्थन में स्टेशन अधीक्षक द्वारा जारी प्रमाण पत्र पर भरोसा किया था, जिसमें संबंधित बस का मार्ग दर्शाया गया था। संयोगवश, स्टेशन अधीक्षक को कभी भी विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष साक्षी के रूप में पेश नहीं किया गया।

इसके अलावा, स्टेशन अधीक्षक को पेश न करने पर यह न्यायालय चालक की गवाही पर विचार नहीं कर सकता, जिसमें उसने विशेष रूप से कहा था कि 06.09.2007 को बस सुल्तानपुर होकर वापस आई थी और सुल्तानपुर में रोडवेज बस स्टेशन पर भी खड़ी थी।

31. अन्यथा भी, एक साक्षी श्री विजय कुमार ने स्पष्ट रूप से गवाही दी है कि दुर्घटना 06.09.2007 को शाम 7:00 बजे हुई थी और उसने पूरी दुर्घटना देखी है, जिसमें मृतक का पैर बस के दरवाजे में फंस गया था और वह कुछ देर तक घसीटा गया था, जिसके परिणामस्वरूप मृतक गंभीर रूप से घायल हो गया और बाद में उसकी मृत्यु हो गई।

32. हालाँकि, विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा दिए गए तथ्य के विशिष्ट निष्कर्ष को देखते हुए, जिसमें चालक और गवाह श्री विजय कुमार की गवाही को ध्यान में रखते हुए प्रश्नगत बस के साथ दुर्घटना घटित होने की बात कही गई है, उक्त मुद्दे पर न्यायालय को अधिक समय तक विचार नहीं करना चाहिए। इस प्रकार, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया उक्त आधार अस्वीकार किया जाता है।

33. जहाँ तक आधार (बी) का संबंध है कि मृतक के पास से कोई टिकट नहीं मिला, यह कहना पर्याप्त होगा कि विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष और इस न्यायालय के समक्ष भी, इस संबंध में कोई आधार नहीं लिया गया है। न्यायालय ने निगम द्वारा वर्तमान अपील दायर करते समय अपनाए गए आधारों पर ध्यानपूर्वक विचार किया है, जो आधार ए से ओ तक हैं, लेकिन उक्त आधार अपील में भी शामिल है।

34. अन्यथा भी, उक्त आधार इस न्यायालय को विचारणीय नहीं लग सकता, क्योंकि विद्वान न्यायाधिकरण ने विशेष रूप से इस तथ्य का संकेत दिया है कि दुर्घटना उक्त तिथि को हुई थी, जिसमें मृतक श्री प्रदीप कुमार श्रीवास्तव शामिल थे और जिसके परिणामस्वरूप उनकी मृत्यु हुई थी, फलस्वरूप, उक्त आधार भी खारिज किया जाता है।

35. जहाँ तक आधार (सी) का संबंध है कि बस चालक की गवाही को खारिज नहीं किया गया है, यह कहना पर्याप्त होगा कि बस चालक ने अपने बयान में स्पष्ट रूप से कहा है कि बस सुल्तानपुर होकर लौटी थी और सुल्तानपुर रोडवेज बस डिपो में खड़ी थी। यद्यपि बस चालक ने 06.09.2007 को हुई दुर्घटना के तथ्य को स्पष्ट रूप से स्वीकार नहीं किया है, फिर भी चालक के विरुद्ध दायर आरोप पत्र में, जैसा कि विद्वान न्यायाधिकरण ने विचार किया है, यह स्पष्ट रूप से सामने आता है कि पुलिस अधिकारियों का यह मानना था कि चालक उक्त दुर्घटना में शामिल था।

36. इस संबंध में, **बिमला देवी (उपरोक्त)** वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का संदर्भ लेना उचित होगा। जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:-

"15. इस तरह की स्थिति में, न्यायाधिकरण ने मामले का समग्र दृष्टिकोण अपनाया है। यह ध्यान रखना ज़रूरी था कि किसी विशेष बस के कारण किसी विशेष तरीके से हुई दुर्घटना का ठोस प्रमाण दावेदारों द्वारा संभव नहीं हो सकता। दावेदारों को केवल संभाव्यता की प्रबलता की कसौटी पर अपना वाद स्थापित करना था। उचित संदेह से परे प्रमाण का मानक लागू नहीं किया जा सकता था। उक्त उद्देश्य के लिए, उच्च न्यायालय को दोनों पक्षों द्वारा प्रस्तुत की गई संबंधित कहानियों पर विचार करना चाहिए था।"

37. इसी प्रकार, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **मंगला राम (उपरोक्त)** के वाद में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है:-

"27. प्रत्यर्थी 2 और 3 द्वारा दायर प्रथम अपील में हस्तक्षेप करने के लिए उच्च न्यायालय को प्रेरित करने वाला एक अन्य कारण, न्यायाधिकरण द्वारा विषयगत जीप के चालक की लापरवाही के तथ्य के बारे में कोई निष्कर्ष न निकालना था। वास्तविक रूप से, यह दृष्टिकोण अस्थिर है। न्यायाधिकरण द्वारा किए गए विश्लेषण के आधार पर हमारी समझ यह है कि जीप संख्या आरएसटी 4701 को प्रत्यर्थी 2 द्वारा तेज और लापरवाही से चलाया गया था, जब यह अपीलकर्ता की मोटरसाइकिल से टकरा गई उसके कारण दुर्घटना हुई। यह साक्षीगण के साक्ष्य और पुलिस द्वारा प्रत्यर्थी 2 का नाम लेते हुए आरोप-पत्र की सामग्री से स्पष्ट होता है। इस न्यायालय ने डुलसीना फर्नांडीस वाद में हाल ही में दिए गए एक निर्णय में उल्लेख किया कि अपराधी वाहन के चालक की ओर से लापरवाही की दलील दावेदारों का निर्णय न्यायाधिकरण द्वारा प्रबलता या संभावना की कसौटी पर, न कि निश्चित रूप से उचित संदेह से परे प्रमाण के मानक पर किया जाना आवश्यक था। यह कहना पर्याप्त है कि हमारे द्वारा पहले ही उल्लेखित निर्णयों में प्रस्तुत विवरण, प्रत्यर्थी 2 के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल करना प्रथम दृष्टया लापरवाही और तेजी से वाहन चलाने में उसकी संलिप्तता की ओर इशारा करता है। इसके अलावा, जब अभियुक्तों को आपराधिक वाद में बरी किया जाना था, तब भी इस न्यायालय ने यह राय व्यक्त की कि इसका न्यायाधिकरण द्वारा मोटर दुर्घटना वादों के संबंध में आवश्यक दायित्व के आकलन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता है।"

(बल दिया गया)

38. इस न्यायालय की खंडपीठ ने **डॉ. अनूप कुमार भट्टाचार्य (उपरोक्त)** के वाद में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:-

"29. अब हम मूल प्रश्न पर लौट सकते हैं कि क्या न्यायाधिकरण ने एफआईआर, नक्शा-नजरी और आरोप-पत्र जैसे दस्तावेजों को साक्ष्य से पूरी तरह से बाहर कर दिया था, जो पुलिस अभिलेख का हिस्सा हैं।

30. हमें इसमें कोई संदेह नहीं है कि उपरोक्त प्रश्न का उत्तर निश्चित रूप से 'नहीं' होगा। न्यायाधिकरण ने एफआईआर, आरोप-पत्र और नक्शा-नजरी को इस आधार पर नज़रअंदाज़ करने का विकल्प चुना कि वे यह साबित नहीं करते कि ट्रक का चालक दुर्घटना में शामिल था या वह लापरवाही से गाड़ी चलाने का दोषी था।

हमारी राय में, न्यायाधिकरण सही होता यदि दावा कार्यवाही में सबूत का मानक उचित संदेह से परे होता, जैसा कि आपराधिक कार्यवाही में होता है। आपराधिक कार्यवाही में भी, ये दस्तावेज़ न्यायालय में प्रस्तुत साक्ष्य की पुष्टि करने के लिए माना जाता है और उसे पूरी तरह से नजरअंदाज या अनदेखा नहीं किया जाना चाहिए। किसी भी मामले में, पुलिस अभिलेख के पुष्टिकारक मूल्य को पूरी तरह से नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है, हालांकि निर्णय केवल उन्हीं पर आधारित नहीं हो सकता है। इसके अलावा, दावे की कार्यवाही में प्रमाण का मानक उचित संदेह से परे प्रमाण का नहीं, बल्कि संभावनाओं की प्रबलता का होता है। न्यायाधिकरण को अपने समक्ष साक्ष्य के मूल्यांकन पर यह संतुष्ट होना था कि दावा याचिका में आरोपित घटनाओं के घटित होने की संभावना अधिक है। ***हमारे विचार से, एफआईआर, नक्शा-नजरी और आरोप-पत्र जैसे दस्तावेज, जो पुलिस अभिलेख का हिस्सा हैं, भले ही वे समग्र और विवेकपूर्ण तरीके से विचार करने पर घटना को स्थापित नहीं करते हैं, दावेदार द्वारा स्थापित मामले के लिए संभावना की डिग्री के बारे में एक सूचित और बुद्धिमान निष्कर्ष निकालने में मदद कर सकते हैं।*** *क्या एफआईआर तुरंत दर्ज की गई थी या बाद में दर्ज की गई थी क्या यह अनुचित देरी थी? क्या नक्शा-नजरी एफआईआर में दिए गए विवरण के अनुरूप है? क्या लगी चोटें एफआईआर में दिए गए विवरण की पुष्टि करती हैं? क्या आरोप-पत्र एफआईआर में दिए गए आरोपों को पुष्ट करता है? ये ऐसे कारक हैं जिन पर निष्पक्ष और विवेकपूर्ण तरीके से विचार करने से यह आकलन करने में मदद मिल सकती है कि क्या दावेदारों द्वारा प्रस्तुत मामला अधिक संभावित था या नहीं।* ***इसलिए, हम इसे एक त्रुटि मानते हैं कि उक्त दस्तावेजों को इस आधार पर पूरी तरह से नज़रअंदाज़ कर दिया गया कि वे घटना के निर्णायक साक्ष्य नहीं थे, क्योंकि दावा कार्यवाही का उद्देश्य ही नहीं है"***
(बल दिया गया)

39. तदनुसार, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **मंगला राम (उपरोक्त)** वाद में पारित निर्णयों और **बिमला देवी (उपरोक्त)** वाद में तथा डॉ. **अनूप कुमार भट्टाचार्य (उपरोक्त)** वाद में खंडपीठ के निर्णय को ध्यान में रखते हुए, अपीलकर्ता द्वारा लिया गया आधार (ग) भी अस्वीकार किया जाता है।

40. उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, अपीलकर्ता - निगम द्वारा दायर अपील, अर्थात् एफएएफओ संख्या 602/2011, **खारिज की जाती है।**

41. जहाँ तक दावेदारों द्वारा दायर अपील का संबंध है, उक्त अपील विवाद्यक संख्या 3 के इर्द-गिर्द घूमती है, जो दावेदारों के पक्ष में दिए गए मुआवजे से संबंधित है।

42. विवाद्यक संख्या 3 पर हुई चर्चा के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि यद्यपि दावेदारों की ओर से एक वेतन पर्ची दाखिल की गई थी, जिसमें दर्शाया गया था कि मृतक उत्तर प्रदेश विद्युत निगम में कनिष्ठ अभियंता के पद पर कार्यरत था और उसकी वेतन पर्ची के अनुसार, उसे 54,143/- रुपये वेतन मिलता था, फिर भी विद्वान न्यायाधिकरण का विचार था कि उक्त वेतन पर्ची पर भरोसा नहीं किया जा सकता क्योंकि यह साबित नहीं हुआ है। विद्वान न्यायाधिकरण ने इसके बाद

एक अजीब प्रक्रिया अपनाई क्योंकि उसने मृतक के पुत्र की वेतन पर्ची पर भरोसा किया, जिसे अनुकंपा के आधार पर नियुक्त किया गया था। मृतक के पुत्र की वेतन पर्ची के आधार पर, विद्वान न्यायाधिकरण ने यह राय दी है कि मृतक का वेतन 20,000 रुपये होगा और इसके बाद, विद्वान न्यायाधिकरण ने मुआवजा देने की कार्यवाही शुरू कर दी है।

43. मृतक के वेतन का पता लगाने के लिए विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा अपनाई गई उपमा इस वाद में किसी भी दृष्टि से वैधानिक रूप से धारणीय नहीं पाई जाती है, क्योंकि मृतक, जिसकी आयु लगभग 54 वर्ष थी, अपनी सेवा के अंतिम चरण में था, जबकि उसके पुत्र को श्री प्रदीप कुमार श्रीवास्तव (मृतक) की मृत्यु के कारण ही नियुक्त किया गया था और वह सेवा में एक नया था और किसी भी कल्पना से मृतक के पुत्र, एक युवा कर्मचारी का वेतन, उस अधिकारी के वेतन के बराबर नहीं हो सकता जो अपनी सेवा के अंतिम चरण में था।

44. इस प्रकार, मृतक के पुत्र के वेतन के आधार पर विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा दिया गया मुआवजा, विधि की दृष्टि में वैधानिक रूप से पोषणीय नहीं पाया जाता है।

45. तदनुसार, वाद विधि के अनुसार मुआवजे के निर्णय पर विचार करने के लिए विद्वान न्यायाधिकरण को भेजा जाता है। चूँकि दावा आवेदन वर्ष 2009 का है और पर्याप्त अवधि पहले ही बीत चुकी है, अतः विद्वान न्यायाधिकरण को निर्देश दिया जाता है कि वह मुआवजे के संबंध में उक्त दावा आवेदन पर विधि और संबंधित नियमावली के अनुसार छह माह की अवधि के भीतर निर्णय ले, जिस दिन से इस आदेश की प्रमाणित प्रति विद्वान न्यायाधिकरण के अभिलेख में लाई जाती है।

46. उपरोक्त टिप्पणियों के साथ, अपील अर्थात एफएएफओ संख्या 670 वर्ष 2011 का **निस्तारण** किया जाता है।

47. साथ ही, दावा आवेदन के लंबे समय से लंबित होने को ध्यान में रखते हुए विद्वान परीक्षण के समक्ष और उसके बाद इस न्यायालय के समक्ष और इस न्यायालय के दिनांक 05.07.2011 के आदेश को ध्यान में रखते हुए, जिसके द्वारा विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष दी गई राशि का आधा हिस्सा विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष जमा करने का निर्देश दिया गया था, दावेदारों को विधि और संबंधित नियमावली के अनुसार विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष जमा की गई राशि को वापस लेने की अनुमति है, जो उपरोक्त निर्देशों के अनुसरण में विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा पारित आदेश के अधीन होगा।

48. अभिलेखों को प्रक्रिया के अनुसार वापस किया जाए।

(2025) 4 ILRA 984

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 23.04.2025

माननीय न्यायमूर्ति सौमित्र दयाल सिंह

माननीय न्यायमूर्ति संदीप जैन

के समक्ष

शासकीय अपील संख्या 43/2025

उत्तर प्रदेश राज्य **...अपीलकर्ता**

बनाम

पुष्पेंद्र उर्फ गब्बर **..प्रतिवादी**

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:
आशुतोष कुमार साँद

प्रतिवादी के अधिवक्ता:
मुकेश कुमार पांडे

अनुवादित

ए. दोषमुक्त किए जाने के खिलाफ आपराधिक अपील - दोषमुक्त किए जाने के खिलाफ अपील में उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की पेशकश कब की जा सकती है - उच्च न्यायालय को संतुष्ट होना चाहिए कि विद्वान ट्रायल कोर्ट द्वारा दर्ज किया गया निष्कर्ष विकृति के दोष से ग्रस्त है। एक बार जब वह संतुष्टि प्राप्त हो जाती है, तो उच्च न्यायालय को साक्ष्य का एक ऐसे प्रिज्म के माध्यम से पुनः मूल्यांकन करना चाहिए जो साक्ष्य के ऐसे पुनः मूल्यांकन के आधार पर दोष के एक विलक्षण निष्कर्ष पर पहुँचने की अनुमति दे सके। यह इतना प्रबल भी होना चाहिए कि इसे लगभग पूर्ण कहा जा सके, क्योंकि यह न केवल मुकदमे की शुरुआत में अभियुक्त द्वारा प्राप्त निर्दोषता की धारणा को खारिज कर सकता है, बल्कि दोषमुक्त करने के आदेश द्वारा दी गई ऐसी निर्दोषता की पुष्टि को भी खारिज कर सकता है। ऐसा निष्कर्ष मुकदमे में प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर अभियुक्त को मिलने वाले किसी भी संदेह के लाभ से मुक्त होना चाहिए। जहाँ तथ्य का निष्कर्ष या तो साक्ष्य के विपरीत या साक्ष्य के विपरीत दर्ज किया गया हो, या जहाँ निष्कर्ष कानून के विपरीत निकाले गए हों, उस निष्कर्ष और/या निष्कर्ष को विकृत कहा जा सकता है। (पैरा 38, 39, 40)

बी. साक्ष्य अधिनियम, 1872 - छोटी-मोटी विसंगतियाँ - यह कानून नहीं है कि अभियोजन पक्ष के गवाहों को अभियोजन पक्ष के गवाहों या उनके बयान की विश्वसनीयता स्थापित करने के लिए अनुभवजन्य सत्य के माध्यम से अपना सुसंगत रुख बनाए रखना होगा। इस संबंध में स्थापित सिद्धांत यह है कि साक्ष्य में सच्चाई

की झलक होनी चाहिए। न्यायालयों को छोटी-मोटी विसंगतियों को नहीं देखना/बढ़ाना चाहिए, बल्कि साक्ष्य के संपूर्ण भार के साथ सामंजस्य स्थापित करना चाहिए। (पैरा 45)

सी. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 161 - बचाव पक्ष का यह तर्क कि 'एक्स' और अभियुक्त के बीच झगड़ा हुआ था, जैसा कि 'एक्स' ने सीआरपीसी की धारा 161 के अंतर्गत दर्ज अपने बयान में कहा था, कभी साबित नहीं हुआ। यदि कोई विसंगति थी भी, तो वह 'एक्स' के सामने जिरह के दौरान कभी नहीं रखी गई। एक बार जब बचाव पक्ष धारा 161 सीआरपीसी के तहत दर्ज किए गए उसके कथित पिछले बयान को 'एक्स' के सामने रखने में विफल रहा, तो विद्वान अवर न्यायालय के लिए उस बयान पर भरोसा करना या अभियोजन पक्ष के साक्ष्य पर अविश्वास करना कभी भी संभव नहीं हो पाया। बचाव पक्ष का अधिकार या पक्षकारों का किसी गवाह के साथ उसके पिछले बयान को लेकर सामना कराने का अधिकार पक्षकारों में निहित है। 'एक्स' के साथ किसी भी पिछले बयान को लेकर कभी सामना कराने की पेशकश नहीं की गई। सुनवाई के चरण में, न तो पक्षकारों के लिए और न ही विद्वान अवर न्यायालय के लिए धारा 161 सीआरपीसी के तहत दर्ज किए गए बयान पर गौर करना, सिद्ध तथ्यों पर अविश्वास करना या यह मानना कि पक्षकारों के बीच पहले से ही झगड़ा था, संभव नहीं था। विद्वान ट्रायल कोर्ट द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष उस सीमा तक विकृत हैं। (पैरा 46, 60)

डी. साक्ष्य अधिनियम - बचाव पक्ष का तर्क है कि 'एक्स' और अभियुक्त के बीच झगड़ा हुआ था - केवल इसलिए कि पक्षों के बीच विवाद रहा होगा, यह अभियोजन पक्ष की कहानी पर अविश्वास करने का एकमात्र कारण नहीं हो सकता है, जो अन्यथा विधिवत साबित हो चुकी थी। झगड़े की प्रकृति को न तो निर्दिष्ट किया गया था और न ही ऐसा दिखाया गया था, जिसने 'एक्स' और उसके परिवार के सदस्यों को अपीलकर्ता के खिलाफ झूठा आरोप लगाने के लिए प्रेरित किया हो। न तो झगड़े की प्रकृति और न ही इसकी तारीख और समय साबित हुआ। अभियुक्त के विरुद्ध दर्ज प्राथमिकी बलात्कार के एक जघन्य अपराध की है। अभियोजन पक्ष की कहानी के समर्थन में 'एक्स' द्वारा प्रस्तुत प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य और अन्य सामग्री, दोनों ही मौजूद हैं (पैरा 61)।

ई. बलात्कार - एफआईआर दर्ज करने में देरी - ऐसी दर्दनाक घटनाओं का सामना करने वाले पक्षों को अपनी स्थिति को तर्कसंगत बनाने और भविष्य की कार्रवाई की रूपरेखा तैयार करने के लिए हमेशा कुछ उचित समय लग सकता है। एफआईआर दर्ज करने के लिए दृढ़ विश्वास, साहस, प्रयास और कभी-कभी संदर्भ की भी आवश्यकता होती है। इसलिए न्यायालय सूचना देने वाले पक्ष को एक मार्जिन प्रदान कर सकता है और उसे हर घंटे या दिन के लिए जवाबदेह नहीं ठहरा सकता है। एफआईआर दर्ज करने में कोई अत्यधिक देरी नहीं हुई है, विद्वान ट्रायल कोर्ट का काम प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य को खारिज करना नहीं था। (पैर 68)

एफ. बलात्कार - आंतरिक चोटों या गंभीर बाहरी चोटों का न होना - ऐसा कोई नियम या कानून उपलब्ध नहीं है कि बलात्कार की घटना को स्थापित करने के लिए ऐसी चोटों को साबित किया जाना चाहिए। एक बार जब अभियोजन पक्ष ने पीड़िता के प्रत्यक्ष साक्ष्य के आधार पर यह साबित कर दिया कि उसे इस हद तक दबाया

या वश में किया गया था कि उसका प्रतिरोध टूट गया या नकार दिया गया, तो चोट के ज़रिए घटना का सबूत एक मध्ययुगीन कल्पना होगी, लेकिन आधुनिक वास्तविकता नहीं। सबसे पहले, अभियुक्त द्वारा (बन्दूक के बल पर) घातक चोट पहुँचाने की धमकी साबित हुई। दूसरा, यह भी साबित हुआ कि अभियुक्तों ने 'एक्स' और उसके मंगेतर को नग्न अवस्था में फिल्माया था। दोनों ही मामलों में, अभियोजन पक्ष ने पर्याप्त सबूत पेश किए कि उपरोक्त बलात्कार करने से पहले अभियुक्तों द्वारा प्रतिरोध को बेअसर कर दिया गया था, जो अन्यथा किया जा सकता था। इसके अलावा, अभियोजन पक्ष ने यह साबित करने के लिए सबूत पेश किए कि प्रतिरोध को बेअसर कर दिया गया था, क्योंकि यह स्थापित किया गया था कि 'एक्स' के लगभग 12 वर्षीय छोटे भाई 'आर' पर हमला किया गया था और 'एक्स' को नग्न अवस्था में फिल्माने से पहले 'अपार्टमेंट' से बाहर निकाल दिया गया था और उसके बाद, 'एक्स' के साथ बलात्कार करने से पहले, उसके मंगेतर 'एस' को बंदूक की धमकी देकर 'अपार्टमेंट' से बाहर निकाल दिया गया था। एक बार पीड़िता, जो 18 वर्ष की है, को इस प्रकार से मानसिक, मनोवैज्ञानिक और शारीरिक रूप से वशीभूत और पराजित कर दिया गया है, तो यह स्वीकार करना कि उसे आंतरिक और बाहरी चोटों का सामना करना पड़ा है, हास्यास्पद होगा (पैरा 62)

जी. भारतीय दंड संहिता, धारा 376, 452 और 506 - बलात्कार - पीड़िता ने घटना का एक विलक्षण संस्करण पेश किया था। घटना का वर्णन एफ.आई.आर. दर्ज होने के चरण से लेकर धारा 161 सीआरपीसी के अंतर्गत पुलिस द्वारा दर्ज किए जा रहे बयान और विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 164 सीआरपीसी के अंतर्गत दर्ज किए जा रहे बयान और विचारण के दौरान भी लगातार बना रहा है। विचारण में, पीड़िता 'एक्स' से कई तारीखों पर व्यापक जिरह की गई। उसने अपना रुख कायम रखा। ट्रायल कोर्ट देरी, आंतरिक और बाहरी चोटों की अनुपस्थिति और पक्षों के बीच खराब संबंधों का हवाला देते हुए इस अस्वीकार्य निष्कर्ष पर पहुँचा कि घटना हुई ही नहीं थी। 'एक्स' का बयान दोषसिद्धि के लिए पर्याप्त था क्योंकि एक घायल गवाह के रूप में उसका बयान उच्चतर स्तर का था। न्यायालय ने इसे दोषमुक्ति के आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए उपयुक्त वाद पाया। तदनुसार, शासकीय अपील स्वीकार कर ली गई। धारा 452, 376, 506 के अंतर्गत अभियुक्त को दोषमुक्त करने का निर्णय और आदेश रद्द कर दिया गया। अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 376, 452 और 506 के अंतर्गत अपराध का दोषी पाया गया। (पैरा 69)

स्वीकार किया गया। (ई-5)

(माननीय न्यायमूर्ति सौमित्र दयाल सिंह द्वारा प्रदत्त)

1. प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता श्री मुकेश कुमार पांडे की सहायता से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री वी.पी. श्रीवास्तव और अपीलकर्ता की ओर से विद्वान ए.जी.ए. श्री एल.डी. राजभर को सुना गया।

2. वर्तमान शासकीय अपील, श्री अतीक उद्दीन, विद्वान अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश/एफ.टी.सी., औरैया द्वारा एस.टी. संख्या 75/2017 (यू.पी. राज्य बनाम पुष्पेंद्र उर्फ गब्बर) में दिनांक 08.12.2023 को पारित

दोषमुक्त करने के आदेश से उत्पन्न हुई है, जो मुकदमा अपराध संख्या 694/2016, अंतर्गत धारा 452, 506 और 376 आईपीसी, पुलिस स्टेशन औरैया, जिला औरैया से उत्पन्न हुआ है।

3. उस आदेश के द्वारा, विद्वान अवर न्यायालय ने अभियुक्त को धारा 452, 506 और 376 आईपीसी, पुलिस स्टेशन औरैया, जिला औरैया के अंतर्गत लगाए गए अपराध से दोषमुक्त कर दिया है।

4. उपरोक्त सत्र परीक्षण, ऊपर उल्लिखित मुकदमा अपराध संख्या में दर्ज एफआईआर पर सामने आया। यह 'एस' (मुकदमे में पी.डब्लू.-2) द्वारा प्रस्तुत दिनांक 14.09.2016 की लिखित रिपोर्ट के आधार पर दर्ज किया गया था। वह पीड़िता 'एक्स' (मुकदमे में पी.डब्लू.-1) का भाई है। उस लिखित रिपोर्ट में, यह बताया गया था कि, लगभग 18 वर्षीय 'एक्स' को वर्तमान अभियुक्त द्वारा 11.09.2016 को दोपहर लगभग 01:30 बजे सूचनाकर्ता पक्ष के आवास विकास कॉलोनी, औरैया (जिसे आगे 'अपार्टमेंट' के रूप में वर्णित किया गया है) में बलात्कार का सामना करना पड़ा। उसमें, यह खुलासा किया गया था कि घटना से पहले अभियुक्त 'एक्स' के लिए अश्लील बातें करता था। घटना के दिन और समय पर, वह जबरन 'अपार्टमेंट' में घुस गया और उसे देशी बंदूक से धमकाकर पहले उसे कपड़े उतारने के लिए मजबूर किया। 'एक्स' द्वारा मदद के लिए पुकारने पर उसके छोटे भाई 'आर' ने हस्तक्षेप किया। उसे अभियुक्त ने धक्का देकर बाहर निकाल दिया। फिर, 'एक्स' के साथ बलात्कार किया गया। मुकदमे में लिखित रिपोर्ट प्रदर्श क-2 है। पी.डब्लू.-2 द्वारा प्रस्तुत लिखित रिपोर्ट पर उसी दिन एफ.आई.आर. दर्ज की गई थी। मुकदमे में यह प्रदर्श क-8 है। दर्ज की गई ऐसी एफ.आई.आर. पर पी.डब्लू.-2 का बयान 16.09.2016 को दर्ज किया गया था। उसमें, उसने खुलासा किया कि अभियुक्त आवास विकास कॉलोनी, कानपुर रोड, औरैया में रहता था। अभियुक्त उसका पड़ोसी था। 'एक्स' की सगाई किसी 'एस' से हुई थी। घटना के दिन, वह 'एस' और अपने भाई 'आर' के साथ 'अपार्टमेंट' में मौजूद थी। उस समय, अभियुक्त ने 3-4 सह अपराधियों के साथ 'अपार्टमेंट' में जबरदस्ती प्रवेश किया और उसे और उसके मंगेतर 'एस' को देशी बन्दूक से धमकाया। उसने उनको कपड़े उतारने पर मजबूर किया और नग्न अवस्था में दोनों का वीडियो बना लिया। इसके बाद, 'एस' को उसके कपड़े पहनाए गए और उसे 'अपार्टमेंट' से बाहर कर दिया। इसके बाद, अभियुक्त ने 'एक्स' के साथ बलात्कार किया। वह बेहोश हो गई। जब उसे होश आया तो उसने खुद को जालौन के नैनपुरा में पड़ा पाया। वह किसी तरह घर पहुंची। वहां उसने अपनी मां को पूरी कहानी सुनाई। अंत में उसने कहा कि अभियुक्त के साथ पहले से कुछ झगड़ा हुआ था। यह बयान मुकदमे में प्रदर्श क-9 है। 15.09.2016 को डॉ. सीमा गुप्ता (मुकदमे में पी.डब्लू.-3) द्वारा 'एक्स' की मेडिको लीगल जांच की गई। यह मुकदमे में प्रदर्श क-3 है। उसी तारीख/15.09.2016 को डॉ. सीमा गुप्ता द्वारा अभियुक्त की विधिवत जांच के बाद मेडिकल जांच रिपोर्ट तैयार की गई। उसमें, निम्नलिखित चोटें दर्ज की गईं:

"(i) गर्दन के दोनों तरफ भूरे रंग का खरोंच मौजूद है। 3 सेमी x 1.5 सेमी दाहिनी ओर। दाहिने कान से 8 सेमी नीचे।
(ii) गर्दन के बाईं ओर 3 सेमी x 2.5 सेमी, बाएं कान से 7.5 सेमी नीचे (अपठनीय)।
(iii) दाहिने नितंब पर बीच से 9 सेमी दूर 6 सेमी x 3.5 सेमी भूरे रंग का खरोंच मौजूद है।"

5. इसके अलावा, 'एक्स' की मेडिकल जांच के बाद डॉक्टर ने निम्नलिखित अवलोकन किया:
"संघर्ष के निशान मौजूद हैं, गर्दन और नितंब पर चोटें देखी गईं। (अपठनीय) वीडियोग्राफी मौजूद है। पीएसए की पुष्टि नहीं हुई है। पैथोलॉजिकल और डीएनए रिपोर्ट का इंतजार है।"

6. उक्त रिपोर्ट मुकदमे में भी प्रदर्शित की गई है। उसकी अल्ट्रासाउंड, एक्स-रे आदि जैसी अन्य जांच भी की गई। हालांकि, उन परीक्षणों के निष्कर्ष अनिर्णायक रहे। एक सीरोलॉजिकल रिपोर्ट भी तैयार की गई थी। इसने शुक्राणुओं की उपस्थिति का सुझाव नहीं दिया - मृत या जीवित। हालांकि, यहां यह स्वयं ध्यान दिया जा सकता है कि नमूना 15.09.2016 को लिया गया था, अर्थात घटना के 3 दिन से अधिक समय बाद।

7. इसके बाद, 24.09.2016 को, पीड़िता का बयान धारा 164 सीआरपीसी के अंतर्गत दर्ज किया गया था। उन्होंने आगे बताया कि जब उन्हें नैनपुरा में होश आया, तो अभियुक्त के दोनों भाई सुनील और छोटू वहाँ मौजूद थे। यह बयान मुकदमे में प्रदर्श क-1 है।

8. सत्र न्यायालय द्वारा मामले को विचारण हेतु सुपुर्द किए जाने पर, निम्नलिखित आरोप विरचित किए गए:
"1- यह कि दिनांक 11.09.2016 को समय करीब 1.30 बजे व स्थान ब्लाक xxxxxxऔरैया में अभियुक्त द्वारा वादी xxxxxx के घर में घुसकर गृह-अतिचार किया। इस प्रकार आपने ऐसा कार्य किया जो भारतीय दण्ड संहिता की धारा 452 के अधीन दण्डनीय अपराध है और इस न्यायालय के प्रसंज्ञान में है।
2- यह कि दिनांक 11.09.2016 को समय करीब 1.30 बजे व स्थान xxxxxxऔरैया में अभियुक्त द्वारा वादी xxxxxxके घर में घुसकर वादी xxxxxxकी बहिन को कमरे में ले जाकर उसे तमंचा दिखाकर उसके कपडे उतार उसके साथ जबरन बलात्कार किया । इस प्रकार आपने ऐसा कार्य किया जो भारतीय दण्ड संहिता की धारा 376 के अधीन दण्डनीय अपराध है और इस न्यायालय के प्रसंज्ञान में है।
3- यह कि उपरोक्त तिथि समय व स्थान पर अभियुक्त द्वारा वादी की xxxxxx की बहिन को जान से मारने की धमकी दिया। इस प्रकार आपने ऐसा कार्य किया जो भारतीय दण्ड संहिता की धारा 506 के अधीन दण्डनीय अपराध है और इस न्यायालय के प्रसंज्ञान में है।"

9. मुकदमे में, उपरोक्त दस्तावेजी साक्ष्य और अन्य दस्तावेजों के अलावा, अभियोजन पक्ष ने मौखिक साक्ष्य पेश किए। उसमें, सबसे पहले, पीड़िता 'एक्स' को पी.डब्लू.-1 के रूप में परीक्षित किया गया। अपने मुख्य परीक्षण के दौरान, उसने साबित किया कि वह इंटरमीडिएट की छात्रा थी और बदुआ गांव की निवासी थी। यह घटना 11.9.2016 को दोपहर लगभग 01:30 बजे हुई जब वह अपने छोटे भाई 'आर' और अपने मंगेतर 'एस' के साथ 'अपार्टमेंट' में मौजूद थी। उस समय, अभियुक्त ने जबरन उस 'अपार्टमेंट' में प्रवेश किया और उसके नाबालिग भाई को बाहर धकेल दिया। फिर उसने 'एक्स' और 'एस' को कपड़े उतारने का आदेश दिया। उसने उन्हें धमकी दी कि अगर उन्होंने उसका आदेश नहीं माना तो वह उन्हें जान से मार देगा। उसने उनका वीडियो बनाया। इसके बाद, उसने 'एस' को अपने कपड़े पहनने को कहा और उसे वहां से जाने के लिए मजबूर किया।

जब 'एक्स' कपड़े पहन रही थी, तो अभियुक्त ने उसके साथ जबरदस्ती की और इस तरह बलात्कार किया। वह मदद के लिए चिल्ला नहीं सकी क्योंकि अभियुक्त ने उसका मुंह अपने हाथ से ढक दिया था। इस घटना के बाद, वह भ्रमित हो गई। अभियुक्त ने उसे धमकी दी कि अगर उसने अपने परिवार या पुलिस को घटना के बारे में बताने की हिम्मत की तो वह उसे जान से मार देगा। इस तरह की घटना को अंजाम देने के बाद, अभियुक्त ने फिर 'एक्स' को उसके गांव छोड़ने के लिए मोटरसाइकिल पर उसके साथ चलने के लिए मजबूर किया। शुरुआत में, 'एक्स' ने सहयोग नहीं किया। इस पर, अभियुक्त ने उसे उस इमारत की तीसरी मंजिल से धक्का देने की धमकी दी। उसने बात मान ली और इस तरह एक अन्य व्यक्ति को उसी मोटरसाइकिल पर पीछे बैठाकर अभियुक्त के साथ मोटरसाइकिल पर चली गई। इस प्रकार उसे नैनापुरवा गांव में एक *पीपल* के पेड़ के नीचे छोड़ दिया गया। वह बेहोश हो गई। जब उसे होश आया, तो उसने देखा कि वर्तमान अभियुक्त के भाई अमित पाल और सुनील सहित एक भीड़ जमा हो गई थी। वहां से, वह एक राहगीर की मदद से बदुआ गांव में अपने घर गई, जिसने उसे लिफ्ट दी थी।

10. घर पहुंचने पर, उसने पाया कि न तो उसकी माँ और न ही उसके पिता मौजूद थे। एक अजनबी के मोबाइल फोन से उसने अपने बड़े भाई 'एस-1' (पी.डब्लू.-2) से बात की और उसे पूरी घटना की जानकारी दी। अपनी जिरह के दौरान, 'एक्स' ने स्वीकार किया कि वह अभियुक्त को पहले से जानती थी। वह दो घर दूर रहता था। उसने स्पष्ट रूप से कहा कि उसके परिवार और वर्तमान अभियुक्त के परिवार के बीच कोई संबंध नहीं थे। न तो उनके बीच कोई दुश्मनी थी और न ही वे बातचीत करते थे। उसने वर्तमान अभियुक्त की बहन की शादी में शामिल होने या अभियुक्त द्वारा पहले उसके किसी भी इलाज में मदद की बात से इनकार किया। अपने मंगेतर 'एस' के बारे में, उसने बताया कि वह एक मेडिकल रिप्रेजेंटेटिव था। हालाँकि उसकी उससे पहले सगाई हो चुकी थी, लेकिन घटना के कारण उसकी शादी टूट गई थी। आगे पूछताछ करने पर, उसने स्पष्ट रूप से बताया कि उसने पहले अपने परिवार से अपीलकर्ता द्वारा उसके प्रति अश्लील बातें/अश्लील गाने गाए जाने की शिकायत की थी। ऐसी घटना होने पर, उसके परिवार के सदस्य अभियुक्त के परिवार के सदस्यों से मिले थे, जिन्होंने आश्वासन दिया था कि वे अभियुक्त को उचित फटकार लगाएँगे। आगे पूछताछ करने पर, उसने बताया कि उसके माता-पिता ने अभियुक्त के चाचा और *'अम्मा'* से शिकायत की थी। जिरह के दौरान, उसे उसकी तस्वीरें (बचाव पक्ष द्वारा प्रस्तुत) दिखाई गईं। उन्होंने इसकी जानकारी होने से इनकार किया।

11. इसके बाद, 31.01.2018 को उसे फिर से परीक्षित किया गया। उस तारीख को उसने आगे खुलासा किया कि उसकी शादी 18.6.2016 को 'एस-2' नामक व्यक्ति से हुई थी। उसने वर्तमान अभियुक्त के जीवन में पूर्व की घटनाओं के बारे में जानकारी होने के सभी सुझावों से इनकार किया। इस प्रकार, उसने अभियुक्त के साथ किसी भी तरह के परिचय से इनकार किया। उस स्तर पर, उसने आगे कहा, घटना के समय, चार व्यक्ति उसके 'अपार्टमेंट' (वर्तमान अभियुक्त सहित) में घुस आए थे। उन्होंने 'आर' को पीटा था और इस तरह उसे 'अपार्टमेंट' से बाहर निकाल दिया था। उसने फिर दोहराया कि घटना के समय अभियुक्त ने उसकी कनपटी पर एक देसी पिस्तौल तान रखी थी। उसने अभियुक्त को लगी बाहरी चोटों के बारे में भी बताया। उसने इस सुझाव से इनकार किया कि उसने अभियुक्त के साथ सहमति से संबंध बनाए थे।

12. इसके बाद, 'एक्स' के बड़े भाई 'एस-1' की पी.डब्लू.-2 के रूप में परीक्षा हुई। मुख्य परीक्षा के दौरान, उन्होंने साबित किया कि इससे पहले अभियुक्त ने 'एक्स' पर अश्लील बातें की थीं, जिन्हें 'एक्स' के लिए अश्लील गाना गाने के रूप में वर्णित किया गया था। फिर उन्होंने एफआईआर कथन को साबित किया। साथ ही, अभियोजन पक्ष का यह स्वीकृत मामला है कि वह एक चश्मदीद गवाह नहीं है। उन्होंने 'एक्स' द्वारा सुनाई गई कहानी को साबित किया। जिरह के दौरान, उन्होंने स्वीकार किया कि वह एक अनपढ़ व्यक्ति हैं और उन्होंने घटना नहीं देखी थी। उन्होंने लिखित रिपोर्ट टाइप करवाई थी, जो पुलिस को सौंपी गई थी। घटना के समय उनके छोटे भाई 'आर' की उम्र के बारे में, उन्होंने इसे लगभग 10-11 साल साबित किया। पूछताछ करने पर उन्होंने बताया कि उन्हें 11.09.2016 को दोपहर लगभग 1.30 बजे 'आर' द्वारा किए गए टेलीफोन कॉल के माध्यम से घटना के बारे में पता चला। उस समय उनके पिता घर पर नहीं थे। उसने न तो अपनी मां को इस घटना के बारे में बताया और न ही वह उस समय अभियुक्त के घर गया, हालांकि यह उसके घर के पास था। उसी समय, उसने सबसे पहले अपने चाचा 'एल' (मुकदमे में परीक्षित नहीं किया गया) को दोपहर लगभग 2.00 बजे घटना के बारे में बताया। इसके बाद, छह लोग मोटरसाइकिल पर 'अपार्टमेंट' की ओर गए। वे सूर्यास्त से पहले पहुंच गए। उस समय, 'एक्स' वहां नहीं मिला, हालांकि 'अपार्टमेंट' खुला पड़ा था। वे 'एक्स' की तलाश में तीन अलग-अलग दिशाओं में तीन अलग-अलग मोटरसाइकिलों पर गए। वे 'एक्स' का पता नहीं लगा सके। 'अपार्टमेंट' लौटने के बाद, उन्हें जालौन चौराहे से 'सी.पी.' के रूप में वर्णित एक अन्य व्यक्ति का फोन आया। फिर, 'एक्स' निकटतम बस्ती से लगभग 200 मीटर दूर, नैनापुर गांव में एक *'पीपल'* के पेड़ के नीचे पाया गया। दोबारा 'अपार्टमेंट' में लौटने पर उसने पाया कि 'एक्स' और 'आर' वापस पहुँच गए थे। तब तक सूरज भी डूब चुका था।

13. उस समय, उन्होंने 'एक्स' की जांच के लिए डॉ. सोम सिंह (जिन्हे सुनवाई के दौरान परीक्षित नहीं किया गया) को बुलाया। आघात के कारण, 'एक्स' बोलने में असमर्थ थी। उसने अगली सुबह पी.डब्लू.-1 को पूरी घटना सुनाई। तीसरे दिन, उन्होंने एफआईआर दर्ज कराई और पुलिस विवेचना शुरू हुई। उन्होंने खुलासा किया कि उनके अगले छोटे भाई ने लिखित रिपोर्ट टाइप करवाई थी। उन्होंने यह भी दोहराया कि 'एक्स' और 'एस' के बीच विवाह नहीं हो सका। बाद में, 'एक्स' ने 'एस-2' (जिन्हे सुनवाई के दौरान परीक्षित नहीं किया गया) के साथ विवाह किया।

14. इसके बाद, डॉ. सीमा गुप्ता को पी.डब्लू.-3 के रूप में परीक्षित किया गया। उन्होंने 'एक्स' की मेडिकल जांच में उनके द्वारा बताई गई चोटों को साबित किया। उन्होंने यह भी साबित किया कि मेडिकल जांच के समय, 'एक्स' ने अपने गुप्तांगों में दर्द की शिकायत की थी। यह ध्यान देने योग्य है कि कोई आंतरिक चोट नहीं पाई गई थी। बाहरी चोटों के संबंध में, उसने (डॉक्टर द्वारा) बताई गई तीन चोटों को संभावित संघर्ष के संकेत साबित किया। उसने बताया कि बलात्कार का विरोध करते समय 'एक्स' को ऐसी चोटें लगी होंगी। हालाँकि, उसने स्पष्ट किया कि सभी चोटें सामान्य थीं और कोई आंतरिक चोट नहीं थी। हाइमन पुराना फटा हुआ था और ठीक हो गया था, और कोई नई चोट नहीं देखी गई। डीएनए सैंपल न होने के बारे में, उसने स्वीकार किया कि डीएनए रिपोर्ट प्रासंगिक होती, लेकिन उसे वह नहीं मिली। जिरह के दौरान, उससे बलात्कार का विरोध करते

समय 'एक्स' को बाहरी चोटें लगने की संभावना के बारे में फिर से पूछताछ की गई। उसने ऐसी घटना की संभावना को स्वीकार किया।

15. इसके बाद, विवेचनाधिकारी रतन सिंह को पी.डब्लू.-4 के रूप में परीक्षित किया गया। उन्होंने विवेचना को साबित किया। महिला कांस्टेबल मोहिता वर्मा को पी.डब्लू.-5 के रूप में परीक्षित किया गया। उन्होंने मामले के पंजीकरण और जीडी प्रविष्टियों आदि को साबित किया।

16. सबसे छोटे भाई 'आर' को पी.डब्लू.-6 के रूप में परीक्षित किया गया। उसने बताया कि अभियुक्त ने 3-4 अन्य व्यक्तियों के साथ मिलकर 'अपार्टमेंट' में जबरन प्रवेश किया था, जहां घटना से पहले वह, 'एक्स' और 'एस' मौजूद थे। उसने यह भी बताया कि अभियुक्त ने 'एक्स' और 'एस' को कपड़े उतारने के लिए कहा था। इस पर, 'आर' ने दावा किया कि उसने अभियुक्त से पूछताछ की थी। अभियुक्त और अन्य ने जवाब दिया और उसे पीटा। उसे 'अपार्टमेंट' से बाहर निकाल दिया गया। इस तरह बाहर निकाले जाने पर, वह अपने घर चला गया। शाम को, 'एक्स' ने खुलासा किया कि 'आर' के जाने के बाद, आरोपी ने 'एक्स' और 'एस' का बिना कपड़ों के वीडियो बनाया और उसके बाद 'एस' को 'अपार्टमेंट' से बाहर निकाल दिया गया और आरोपी ने 'एक्स' के साथ बलात्कार किया। उन्होंने अभियुक्त की पहचान उन व्यक्तियों में से एक के रूप में की, जिन्होंने देसी बंदूक से लैस होकर 'अपार्टमेंट' में जबरन प्रवेश किया था। अपनी विस्तृत जिरह के दौरान, वह अपने मूल रुख पर कायम रहा और उसने कोई विसंगति पेश नहीं की।

17. इसके बाद, महिला कांस्टेबल माया देवी को पी.डब्लू.-7 के रूप में परीक्षित किया गया। उन्होंने 'एक्स' को मेडिकल परीक्षण के लिए ले जाने के तथ्य को साबित किया। उन्होंने कुछ परीक्षण पर्चियों आदि की तैयारी को भी साबित किया। इसके बाद, एस.आई. बलराज शाही को पी.डब्लू.-8 के रूप में परीक्षित किया गया। उन्होंने इस तथ्य को साबित किया कि अभियुक्त ने आत्मसमर्पण कर दिया था और विवेचना के दौरान उसका बयान दर्ज किया गया था।

18. अभियोजन पक्ष के साक्ष्य के समापन पर, अभियुक्त का बयान धारा 313 सीआरपीसी के अंतर्गत दर्ज किया गया। अन्य बातों के अलावा, प्रश्न संख्या 4 के माध्यम से 'एक्स' को मिली तीन बाहरी चोटों के संबंध में उससे विशिष्ट प्रश्न पूछे गए। स्पष्ट इनकार के अलावा, उसने कोई अन्य बयान नहीं दिया। इस बात के कारण के बारे में कि उनके खिलाफ ऐसा आरोप क्यों लगाया गया, उन्होंने केवल इतना कहा कि पक्षकारों के बीच पुरानी दुश्मनी थी और वह निर्दोष थे। बचाव पक्ष की ओर से कोई साक्ष्य पेश नहीं किया गया। इसके बाद, विद्वान ट्रायल कोर्ट ने पक्षकारों को सुना और दोषमुक्त करने का आदेश दिया, जिस पर वर्तमान अपील में सवाल उठाया गया है।

19. विद्वान ए.जी.ए. प्रस्तुत करेंगे कि इस तरह की अपील के लिए मापदंड हालांकि सीमित हैं, लेकिन अच्छी तरह से परिभाषित हैं। जहां तक विद्वान ट्रायल कोर्ट ने साक्ष्य के बावजूद अभियुक्त की निर्दोषता के

निष्कर्ष पर पहुंच गया है और वास्तव में अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किए गए सुसंगत साक्ष्य के पूरी तरह से विरोधाभासी है - कि अभियुक्त ने ऐसी घटना को अंजाम दिया था, विद्वान ट्रायल कोर्ट द्वारा दर्ज किया गया निष्कर्ष विकृत है। इसमें, उन्होंने पीड़ित 'एक्स' (ट्रायल में पी.डब्लू.-2) की गवाही पर बहुत अधिक भरोसा किया है। मामूली विसंगति के अलावा, यानी क्या अभियुक्त अकेले या अभियुक्त 3-4 अन्य व्यक्तियों के साथ 'एक्स' के 'अपार्टमेंट' में जबरन घुसा था, 'एक्स' और 'आर' द्वारा बताई गई घटना के संबंध में बिल्कुल भी अन्य विसंगति नहीं है, जो घटना से ठीक पहले मौजूद था और जिसे (उसके द्वारा) प्रतिरोध किए जाने पर पीटा गया था और उस समय 'अपार्टमेंट' से बाहर निकाल दिया गया था। इसमें, दोनों गवाहों ने लगातार यह बयान दिया कि अभियुक्त ने एक देसी बंदूक से निवासियों को धमकाकर 'अपार्टमेंट' में जबरन प्रवेश किया था। उसने ऐसी धमकी और मजबूरी में 'एक्स' और उसके मंगेतर 'एस' को कपड़े उतारने का आदेश दिया। 'एक्स' और उसके मंगेतर 'एस' को नग्न अवस्था में फिल्माने के बाद, उसने 'एस' को वहां से जाने के लिए मजबूर किया। 'एस' के जाने के बाद और जब 'एक्स' कपड़े पहन रही थी, अभियुक्त ने उसके साथ जबरदस्ती की और उसके प्रतिरोध के बावजूद बलात्कार किया। पी.डब्लू.-2, पीड़िता द्वारा प्रस्तुत कथन, एक घायल गवाह के साक्ष्य के आधार पर आधारित है। मुकदमे के दौरान इस पर कोई आपत्ति नहीं की गई। विद्वान अवर न्यायालय द्वारा इसके विपरीत निकाला गया निष्कर्ष, अभिलेख में उपलब्ध किसी भी साक्ष्य या सामग्री पर आधारित नहीं है।

20. यद्यपि तथ्यों का ऐसा निष्कर्ष विकृत है, फिर भी इस मामले को दोषमुक्त किए जाने के विरुद्ध अपील के दायरे में लाने वाली उल्लेखनीय विशेषता यह है कि विद्वान अवर न्यायालय ने पीड़िता 'एक्स' के साक्ष्य पर अविश्वास नहीं किया है। यद्यपि उसने मुकदमे में प्रस्तुत साक्ष्यों का विस्तार से उल्लेख किया है, फिर भी उसने उस महत्वपूर्ण साक्ष्य पर कोई ठोस विचार नहीं किया है।

21. इसके बाद, अभियोजन पक्ष की कहानी पर अविश्वास करने के लिए विद्वान अवर न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए आगे के निष्कर्ष को भी विकृत और बाहरी विचार पर आधारित बताया गया है। इस तथ्य को कि प्राथमिकी दर्ज करने में तीन दिन की देरी हुई थी, अनुचित महत्व दिया गया है। यह स्थापित कानून है कि केवल प्राथमिकी दर्ज करने में देरी मजबूत और ठोस प्रत्यक्ष साक्ष्य पर आधारित अभियोजन पक्ष की कहानी पर अविश्वास करने के लिए प्रासंगिक नहीं हो सकती है। यद्यपि यदि तथ्यों ने अभियोजन पक्ष की कहानी में किसी भी संदेह को जन्म दिया होता, तो इस मुद्दे पर विचार करना विद्वान अवर न्यायालय के पास रह जाता, वर्तमान मामले के सिद्ध तथ्यों में, जहाँ घटना उचित संदेह से परे सिद्ध हो चुकी थी, रिकॉर्ड पर सिद्ध परिस्थितियों में प्राथमिकी दर्ज करने में तीन दिन की देरी अप्रासंगिक थी।

22. प्रासंगिक समय पर, 'एक्स' की 'एस' से सगाई हो चुकी थी। वह उसके साथ अपने 'अपार्टमेंट' में थी, जब अभियुक्त उस आवास में जबरन घुस आया। दोनों का आपत्तिजनक वीडियो शूट करने के लिए मजबूर किया और उसके बाद 'एस' को परिसर छोड़ने के लिए मजबूर किया। 'एक्स' और 'एस' के बीच विवाह बंधन उस घटना के बाद टूट गया। 'एक्स' को ढूँढ़ने और उसे घर वापस पहुँचने में दोनों पक्षों को आधा दिन लग गया। वह इस घटना से विचलित थी। दोनों पक्षों को उस दुखद स्थिति को समझने में समय लगा जिसमें वे फँस गए

थे। उन्होंने उचित समय के भीतर जवाब दिया। इसलिए, चिकित्सा साक्ष्य द्वारा पुष्ट प्रत्यक्ष साक्ष्य को केवल तीन दिन के एफआईआर दर्ज करने के समय के आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता था।

23. जहाँ तक चिकित्सा साक्ष्य का सवाल है, यह फिर से प्रस्तुत किया गया है कि यह कानून का नियम नहीं है कि बलात्कार को चिकित्सा साक्ष्य के आधार पर स्थापित किया जाना चाहिए। सबसे पहले, जहाँ पीड़िता के विश्वसनीय प्रत्यक्ष साक्ष्य मौजूद हैं, वहाँ किसी पुष्टिकरण की आवश्यकता नहीं है। यदि कुछ पुष्टिकरण की आवश्यकता भी है, तो वर्तमान तथ्यों में, वह 'एक्स' को लगी तीन बाहरी चोटों के रूप में स्पष्ट रूप से मौजूद है। मुख्य परीक्षा के दौरान और जिरह के दौरान भी, डॉ. सीमा गुप्ता (पी.डब्लू.-3) ने यह स्थापित किया कि बलात्कार का विरोध करते समय पीड़िता को ऐसी चोटें लग सकती हैं।

24. विद्वान अवर न्यायालय द्वारा दर्ज किया गया यह निष्कर्ष कि पक्षों के बीच पहले से ही खराब संबंध थे, स्पष्ट रूप से विकृत है। धारा 161 सीआरपीसी के अंतर्गत दर्ज किए गए बयान में दिखाई देने वाले एक अलग वाक्य को विद्वान अवर न्यायालय द्वारा अनुचित महत्व दिया गया है, वह भी उस योजना और तरीके के पूरी तरह विपरीत है जिससे किसी गवाह का खंडन किया जा सकता है। जिरह के किसी भी चरण में, पी.डब्लू.-2 को उसके किसी भी पिछले बयान का सामना नहीं कराया गया। इसलिए, विद्वान अवर न्यायालय के लिए यह कभी भी संभव नहीं था कि वह अपने द्वारा प्रस्तुत तर्क में उन बयानों का उल्लेख करके इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि पक्षों के बीच पहले से ही खराब संबंध थे। विद्वान अवर न्यायालय द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण कानून में अनुमेय/मान्य नहीं है।

25. ऐसी परिस्थितियों में, **कांस्टेबल 907 सुरेंद्र सिंह और अन्य, 2025 एससीसी ऑनलाइन एससी 176** में सुप्रीम कोर्ट के हाल के फैसले पर भरोसा किया गया है।

26. दूसरी ओर, श्री वी.पी. श्रीवास्तव विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने, अभियुक्तों के विद्वान अधिवक्ता श्री मुकेश कुमार पांडे की सहायता से, प्रस्तुत किया कि विद्वान ट्रायल कोर्ट ने सही ढंग से दोषमुक्त करने का आदेश दिया है। गुण-दोष के आधार पर, यह प्रस्तुत किया गया है कि अभियोजन पक्ष का संस्करण पूरी तरह से विश्वसनीय और सुसंगत नहीं था। अभियुक्त के पास ऐसी घटना को अंजाम देने का कोई अवसर नहीं था, केवल इसलिए कि पक्षों के बीच खराब संबंध उत्पन्न हो सकते थे। उसे झूठा फंसाया गया है। इस तथ्य का संदर्भ दिया गया है कि अभियोजन पक्ष के साक्ष्य उन अभियुक्त व्यक्तियों/सह अपराधियों की संख्या के संबंध में असंगत हैं, जिन्होंने 'एक्स' के 'अपार्टमेंट' में जबरन प्रवेश किया था। हालाँकि एफ.आई.आर. में केवल अभियुक्त का वर्णन किया गया था और 'एक्स' ने अपने प्रारंभिक बयान में भी केवल अभियुक्त का नाम लिया था, बाद में मुकदमे में उस कहानी को बदलकर अभियुक्त के साथ 3-4 अन्य अज्ञात व्यक्तियों का नाम ले लिया गया।

27. दूसरा, यह प्रस्तुत किया गया है कि अभियोजन पक्ष की कहानी इस बारे में निश्चित नहीं है कि प्रथम सूचनाकर्ता (पी.डब्लू.-1) को घटना की जानकारी कैसे मिली। एक जगह, उसने दावा किया कि उसे पीड़िता 'एक्स' के छोटे भाई 'आर' (पी.डब्लू.-6) ने सूचित किया था और दूसरी जगह उसने दावा किया कि उसे स्वयं 'एक्स' ने सूचित किया था।

28. तीसरा, यह प्रस्तुत किया गया है कि शुरू में 'एक्स' ने दावा किया था कि उसका अभियुक्त के साथ झगड़ा हुआ था, लेकिन बाद में उसने तटस्थ संबंधों का दावा किया।

29. चौथा, यह प्रस्तुत किया गया है कि बलात्कार की घटना को स्थापित करने के लिए कोई भी चिकित्सीय साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। अभियोजन पक्ष द्वारा बताई गई घटना की प्रकृति को देखते हुए, यह असंभव है कि पीड़िता को बाह्य और आंतरिक दोनों तरह की चोटें नहीं आई होंगी। ऐसी चोटों का न होना यह स्थापित करता है कि ऐसी कोई घटना हुई ही नहीं। इस संबंध में, इस तथ्य पर भरोसा किया गया है कि योनि स्वाब परीक्षण में न तो कोई मृत और न ही कोई जीवित शुक्राणु पाया गया।

30. पाँचवाँ, यह भी आरोप लगाया गया है कि यह पूरी तरह से असंभव है कि ऐसी घटना में न तो 'एस' और न ही 'आर' ने पहले मदद के लिए पुकारा हो। वास्तव में, 'एस' ने न तो किसी को मदद के लिए पुकारा और न ही मुकदमे में उसे परीक्षित किया गया। इससे स्पष्ट रूप से साबित होता है कि घटना कुछ और ही थी।

31. ऐसी परिस्थितियों में, यह प्रस्तुत करने के लिए निम्नलिखित निर्णयों पर अत्यधिक भरोसा किया गया है कि दोषमुक्त किए जाने के विरुद्ध वर्तमान अपील में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है:

(i) शिव स्वरूप एवं अन्य बनाम एम्परर, 1935 खंड 1 सीआरएलजे 786।

(ii) धन्ना बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 1996 खंड 10 एससीसी 79।

(iii) शैलेन्द्र प्रताप एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2003 खंड 2 सीआरएलजे 1270।

(iv) संघाजी हनीबा पाटिल बनाम कर्नाटक राज्य, 2007 खंड 1 एससीसी सीआरएल. 113।

(v) सूर्यकांत दादासाहब बिटाले बनाम दिलीप बजरंज काले एवं अन्य, 2014 खंड 5 एससीसी सीआरएल. 728.

32. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने और अभिलेख का अवलोकन करने के बाद, सबसे पहले, दोषमुक्त किए जाने के विरुद्ध अपील में उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किए जाने के कानूनी सिद्धांत के बारे में कोई विवाद नहीं है। **शिव स्वरूप (उपरोक्त)** मामले में, इसी प्रकार के वैधानिक प्रावधान के संदर्भ में, प्रिवी काउंसिल ने निम्नलिखित टिप्पणी की थी:

"किन्तु संहिता द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते समय और तथ्यों पर अपने निष्कर्ष पर पहुँचने से पहले, उच्च न्यायालय को हमेशा निम्नलिखित मामलों पर उचित ध्यान देना चाहिए और विचार करना चाहिए: (1) गवाहों की विश्वसनीयता के बारे में विचारण न्यायाधीश के विचार; (2) अभियुक्त के पक्ष में निर्दोषता की धारणा, एक ऐसी धारणा जो निश्चित रूप से इस तथ्य से कमज़ोर नहीं होती कि उसे अपने मुकदमे में दोषमुक्त

कर दिया गया है; (3) अभियुक्त को किसी भी संदेह का लाभ पाने का अधिकार; और (4) एक न्यायाधीश द्वारा, जिसे गवाहों को देखने का लाभ प्राप्त था, तथ्य के निष्कर्ष को विचलित करने में अपीलीय न्यायालय की सुस्ती।"

33. फिर, **धन्ना (उपरोक्त)** में, यह इस प्रकार कहा गया था:

"यद्यपि संहिता, जहाँ तक अपीलीय न्यायालय की शक्तियों का संबंध है, दोषमुक्ति से अपील और दोषसिद्धि से अपील के बीच कोई अंतर नहीं करती है, फिर भी दोषमुक्ति के विरुद्ध अपीलों पर विचार करते समय न्यायाधीशों द्वारा न्यायनिर्णयन के कुछ अलिखित नियमों का लगातार पालन किया गया है। निस्संदेह, उच्च न्यायालय के पास साक्ष्यों की समीक्षा करने और अपने स्वतंत्र निष्कर्ष पर पहुँचने की पूरी शक्ति है, चाहे अपील दोषसिद्धि के विरुद्ध हो या दोषमुक्ति के विरुद्ध। लेकिन दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील पर विचार करते समय अपीलीय न्यायालय को निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना होगा: पहला, आपराधिक मामलों में अभियुक्त व्यक्ति की अज्ञानता के पक्ष में एक सामान्य धारणा है कि दोषमुक्ति से यह धारणा और भी मजबूत होती है। दूसरा, प्रत्येक अभियुक्त अपने अपराध के संबंध में उचित संदेह के लाभ का हकदार है और जब अवर न्यायालय उसे दोषमुक्त कर देती है। वह अपीलीय न्यायालय में भी उस लाभ को बरकरार रखेगा। इस प्रकार, दोषमुक्ति के विरुद्ध अपीलों में अपीलीय न्यायालय को अधिक सावधानीपूर्वक आगे बढ़ना होगा और केवल तभी जब अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य के आधार पर अभियुक्त के अपराध का पूर्ण आश्वासन हो, कि दोषमुक्त करने के आदेश में हस्तक्षेप किया जा सकता है या उसे बाधित किया जा सकता है। (दुर्गाचरण नाइक एवं अन्य बनाम उड़ीसा राज्य, एआईआर 1966 एससी 1775, कैटेण्ड पिएडेड फर्नांडीस एवं अन्य बनाम गोवा संघ शासित प्रदेश, दमन एवं दीव, पणजी, गोवा, एआईआर 1977 एससी 135, तोता सिंह एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 1987 एससी 1083, अवधेश एवं अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य, एआईआर 1988 एससी 1158, अशोक कुमार बनाम राजस्थान राज्य, एआईआर 1990 एससी 2134)।"

34. इसके बाद, **शैलेन्द्र प्रताप (उपरोक्त)** में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

"पक्षकारों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के बाद, हमारी राय है कि अवर न्यायालय द्वारा अपीलकर्ताओं को आरोपों से दोषमुक्त करने का निर्णय पूरी तरह से उचित था क्योंकि उसका दृष्टिकोण उचित था और दोषमुक्त करने के आदेश को विकृत नहीं कहा जा सकता। यह सर्वविदित है कि अपीलीय न्यायालय द्वारा दोषमुक्त करने के आदेश में हस्तक्षेप करना तब तक उचित नहीं होगा जब तक कि वह विकृत न पाया जाए। वर्तमान मामले में, उच्च न्यायालय ने अवर न्यायालय द्वारा दर्ज अपीलकर्ताओं को दोषमुक्त करने के आदेश में हस्तक्षेप करके त्रुटि की है क्योंकि वह विकृत होने के दोष से ग्रस्त नहीं था।"

35. **संघाजी हनीबा पाटिल (उपरोक्त)** में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

"यदि उच्च न्यायालय प्रथम न्यायालय होता, तो संभवतः उसके विचार को बरकरार रखा जा सकता था, लेकिन वह दोषमुक्त करने के फैसले पर विचार कर रहा था। हमने अभियोजन पक्ष के मुख्य गवाहों के बयानों पर केवल यह दिखाने के लिए ध्यान दिया है कि विद्वान ट्रायल जज के विचार को विकृत नहीं कहा जा सकता है

या इसे लेना संभव नहीं था। दोषमुक्त करने के मामले पर विचार करते समय, यह सर्वविदित है कि उच्च न्यायालय आमतौर पर किसी फैसले को खारिज नहीं कर सकता है यदि दो दृष्टिकोण संभव हों। अभियुक्त का कोई स्वार्थ नहीं था। अभियोजन पक्ष ने यह साबित नहीं किया था कि उसका कोई मकसद था। उसे केवल अभियुक्त नंबर 1 का दोस्त बताया गया था। यदि अभियुक्त मृतक और उसके परिवार के सदस्यों पर हमला करने के लिए छह अन्य लोगों के साथ वहां गया था, तो यह संभावना नहीं है कि अभियुक्त उक्त उद्देश्य के लिए अपने साथ कृषि क्षेत्र में हथौड़ा ले जाएगा। हथौड़े का उपयोग आमतौर पर कृषि कार्यों के लिए नहीं किया जाता है। अगर हम यह भी मान लें कि अभियुक्त नंबर 1 मृतक के खिलाफ कोई दुर्भावना रखता था, तो भी यह संभावना नहीं है कि अभियुक्त उसमें शामिल होगा।"

36. इसके अलावा, **सूर्यकांत दादासाहब बिताले (उपरोक्त)** मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने आगे निम्नलिखित टिप्पणी की:

"वर्तमान मामले में सत्र न्यायालय ने किसी भी स्वीकार्य साक्ष्य को खारिज नहीं किया है। दोनों मृत्युपूर्व कथनों पर उचित परिप्रेक्ष्य में विचार किया गया था। सत्र न्यायालय द्वारा भौतिक साक्ष्य की अनदेखी नहीं की गई है, जैसा कि सत्र न्यायाधीश द्वारा की गई चर्चाओं और ऊपर उद्धृत उदाहरणों से स्पष्ट है। इन परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण में दोषमुक्त करने के आदेश में हस्तक्षेप करना उचित नहीं था।"

37. **कांस्टेबल 907 सुरेंद्र सिंह (उपरोक्त)** मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने कानून पर पुनः विचार किया और निम्नलिखित टिप्पणी की:

***"11.** हाल ही में, बाबू साहेबगौड़ा रुद्रगौदर बनाम कर्नाटक राज्य, (2024) 8 एससीसी 149 के मामले में, इस न्यायालय की एक पीठ, जिसके हम में से एक सदस्य (बी.आर. गवई, न्यायमूर्ति) थे, को दोषमुक्त किए जाने के विरुद्ध अपील में हस्तक्षेप के दायरे के संबंध में कानूनी स्थिति पर विचार करने का अवसर मिला। यह इस प्रकार टिप्पणी की गई:*

***"38.** सबसे पहले, हम इस न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांतों को दोहराना चाहेंगे जो राज्य द्वारा अवर न्यायालय द्वारा दर्ज अभियुक्तों की दोषमुक्त किए जाने को चुनौती देने के लिए दायर अपील में उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप के दायरे को नियंत्रित करते हैं।*

39. इस न्यायालय ने राजेश प्रसाद बनाम बिहार राज्य [राजेश प्रसाद बनाम बिहार राज्य, (2022) 3 एससीसी 471 : (2022) 2 एससीसी (क्रि) 31] में विभिन्न पूर्व निर्णयों पर विचार करने के बाद इस क्षेत्र को शामिल करते हुए कानूनी स्थिति को संक्षेप में प्रस्तुत किया और निम्नलिखित निर्णय दिया: (एससीसी पृष्ठ 482-83, पैरा 29)

"29. विभिन्न निर्णयों का उल्लेख करने के बाद, इस न्यायालय ने दोषमुक्त करने के आदेश के विरुद्ध अपील पर विचार करते समय अपीलीय न्यायालय की शक्तियों के संबंध में निम्नलिखित सामान्य सिद्धांतों को निम्नलिखित शब्दों में प्रस्तुत किया: (चंद्रप्पा मामला [चंद्रप्पा बनाम कर्नाटक राज्य, (2007) 4 एससीसी 415 : (2007) 2 एससीसी (क्रि) 325], एससीसी पृष्ठ 432, पैरा 42)

'42. उपरोक्त निर्णयों से, हमारे सुविचारित विचार में, दोषमुक्त करने के आदेश के विरुद्ध अपील पर विचार करते समय अपीलीय न्यायालय के समक्ष निम्नलिखित तथ्य सामने आते हैं:

(1) अपीलीय न्यायालय को उन साक्ष्यों की समीक्षा, पुनर्मूल्यांकन और पुनर्विचार करने का पूर्ण अधिकार है जिन पर दोषमुक्त करने का आदेश आधारित है।

(2) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973, तथ्य और विधि, दोनों ही प्रश्नों पर, किसी अपीलीय न्यायालय द्वारा अपने निष्कर्ष पर पहुँचने से पहले, ऐसी शक्ति के प्रयोग और साक्ष्य पर कोई सीमा, प्रतिबंध या शर्त नहीं लगाती।

(3) विभिन्न अभिव्यक्तियाँ, जैसे "पर्याप्त और बाध्यकारी कारण", "उचित और पर्याप्त आधार", "बहुत मजबूत परिस्थितियाँ", "विकृत निष्कर्ष", "स्पष्ट गलतियाँ", आदि, दोषमुक्त किए जाने के विरुद्ध अपील में अपीलीय न्यायालय की व्यापक शक्तियों को कम करने के लिए नहीं हैं। ऐसी शब्दावली "भाषा के अतिरेक" की प्रकृति की अधिक हैं, जो साक्ष्य की समीक्षा करने और अपने निष्कर्ष पर पहुँचने की न्यायालय की शक्ति को कम करने के बजाय, दोषमुक्त किए जाने में हस्तक्षेप करने की अपीलीय न्यायालय की अनिच्छा पर ज़ोर देती हैं।

(4) हालाँकि, एक अपीलीय न्यायालय को यह ध्यान में रखना चाहिए कि दोषमुक्त किए जाने की स्थिति में, अभियुक्त के पक्ष में दोहरा अनुमान होता है। सबसे पहले, आपराधिक न्यायशास्त्र के इस मूल सिद्धांत के अंतर्गत कि प्रत्येक व्यक्ति तब तक निर्दोष माना जाएगा जब तक कि उसे किसी सक्षम न्यायालय द्वारा दोषी सिद्ध न कर दिया जाए, उसे निर्दोषता का अनुमान उपलब्ध है। दूसरे, अभियुक्त को दोषमुक्त किए जाने के बाद, अवर न्यायालय द्वारा उसकी निर्दोषता के अनुमान को और भी पुष्ट, पुष्ट और सुदृढ़ किया जाता है।

(5) यदि अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर दो उचित निष्कर्ष संभव हैं, तो अपीलीय न्यायालय को अवर न्यायालय द्वारा दर्ज दोषमुक्ति के निर्णय में कोई परिवर्तन नहीं करना चाहिए।"

40. इसके अतिरिक्त, एच.डी. सुंदरा बनाम कर्नाटक राज्य [एच.डी. सुंदरा बनाम कर्नाटक राज्य, (2023) 9 एससीसी 581 : (2023) 3 एससीसी (क्रि) 748] में इस न्यायालय ने धारा 378सीआरपीसी के अंतर्गत दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील पर विचार करते समय अपीलीय क्षेत्राधिकार के प्रयोग को नियंत्रित करने वाले सिद्धांतों का सारांश इस प्रकार दिया है: (एससीसी पृष्ठ 584, पैरा 8)

"8. ... 8.1. अभियुक्त को दोषमुक्त किए जाने से निर्दोषता की धारणा और मजबूत होती है;

8.2. अपीलीय न्यायालय, दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील पर सुनवाई करते समय, मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने का हकदार है;

8.3. अपीलीय न्यायालय को, दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील पर निर्णय करते समय, साक्ष्यों का पुनः मूल्यांकन करने के पश्चात्, यह विचार करना आवश्यक है कि क्या अवर न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण एक संभावित दृष्टिकोण है जिसे अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर लिया जा सकता था;

8.4. यदि लिया गया दृष्टिकोण एक संभावित दृष्टिकोण है, तो अपीलीय न्यायालय इस आधार पर दोषमुक्ति के आदेश को खारिज नहीं कर सकता कि कोई अन्य दृष्टिकोण भी संभव था; और

8.5. अपीलीय न्यायालय दोषमुक्ति के आदेश में केवल तभी हस्तक्षेप कर सकता है जब वह इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर दर्ज किया जा सकने वाला एकमात्र निष्कर्ष यह था कि अभियुक्त का अपराध उचित संदेह से परे सिद्ध हो गया था और कोई अन्य निष्कर्ष संभव नहीं था।"

41. इस प्रकार, यह संदेह से परे है कि अभियुक्त के पक्ष में ट्रायल कोर्ट द्वारा दर्ज किए गए दोषमुक्त करने के फैसले को खारिज करने के लिए अपीलीय न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप का दायरा निम्नलिखित सिद्धांतों के चारों कोनों के भीतर प्रयोग किया जाना चाहिए:

41.1. *कि दोषमुक्त करने का फैसला स्पष्ट रूप से विकृत है;*

41.2. *कि यह रिकॉर्ड पर मौजूद भौतिक साक्ष्य पर विचार करने की गलत व्याख्या/चूक पर आधारित है; और*

41.3. *कि कोई दो उचित राय संभव नहीं हैं और केवल रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्य से अभियुक्त के अपराध के अनुरूप राय ही संभव है।*

12. *इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि यह एक स्थापित कानूनी स्थिति है कि विद्वान ट्रायल जज द्वारा दर्ज किए गए दोषमुक्त करने के फैसले में हस्तक्षेप उच्च न्यायालय द्वारा तभी उचित होगा जब दोषमुक्त करने का फैसला स्पष्ट रूप से विकृत हो; कि यह रिकॉर्ड पर मौजूद भौतिक साक्ष्य पर विचार करने की गलत व्याख्या/चूक पर आधारित है; और यह कि कोई दो युक्तिसंगत राय संभव नहीं हैं और केवल अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य से ही अभियुक्त के अपराध के अनुरूप राय संभव है।"*

38. इस प्रकार, दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील पर विचार करते समय उच्च न्यायालय द्वारा लागू किए जाने वाले सिद्धांत के संबंध में, यद्यपि एक वैधानिक अपील है जिसमें उच्च न्यायालय, अपील न्यायालय के रूप में अपनी शक्ति के आधार पर, साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन कर सकता है और एक भिन्न तथ्यात्मक निष्कर्ष पर पहुँच सकता है, साथ ही, उस प्रयोग को करने से पहले, उच्च न्यायालय को यह विश्वास होना चाहिए कि विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किया गया निष्कर्ष विकृति के दोष से ग्रस्त है। दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपील क्षेत्राधिकार के प्रयोग में वह सुरक्षा कवच मौजूद है और उसका पालन किया जाना चाहिए।

39. एक बार जब यह संतुष्टि प्राप्त हो जाती है, तो उच्च न्यायालय को साक्ष्य का एक ऐसे प्रिज्म के माध्यम से पुनः मूल्यांकन करना चाहिए जो साक्ष्य के ऐसे पुनः मूल्यांकन के आधार पर दोष के एक विलक्षण निष्कर्ष पर पहुँचने की अनुमति दे सके। यह इतना प्रबल भी होना चाहिए कि इसे लगभग पूर्ण कहा जा सके, क्योंकि यह न केवल अभियुक्त को मुकदमे की शुरुआत में प्राप्त निर्दोषता की धारणा को खारिज कर सकता है, बल्कि दोषमुक्त करने के आदेश द्वारा दी गई निर्दोषता की पुष्टि को भी खारिज कर सकता है। ऐसा निष्कर्ष, मुकदमे में प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर अभियुक्त को मिलने वाले किसी भी संदेह के लाभ से मुक्त होना चाहिए। उच्च न्यायालय द्वारा किए जाने वाले ऐसे अभ्यास की प्रकृति के कारण, वह विद्वान अवर न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने में सतर्क और धीमा रह सकता है।

40. जहाँ तक विकृतता की बात है, इसमें कम या कोई संदेह नहीं है। जहाँ तथ्य का निष्कर्ष या तो साक्ष्य के *विपरीत* दर्ज किया जा सकता है या जहाँ निष्कर्ष कानून के विपरीत निकाले गए हों, उस निष्कर्ष और/या निष्कर्ष को विकृत कहा जा सकता है।

41. इस दृष्टि से, बलात्कार के आरोप पर मुकदमे के संदर्भ में, इस संबंध में स्थापित अन्य कानूनों पर पहले ध्यान दिया जा सकता है। सबसे पहले, **हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम रघुबीर सिंह, (1993) 2 एससीसी 622,** बलात्कार पीड़िता की विश्वसनीयता से संबंधित, निम्नलिखित टिप्पणी की गई थी:

"5. ... ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने अभियोजन पक्ष के कथन पर अविश्वास करने के उद्देश्य से मौखिक साक्ष्य में कुछ छोटे-मोटे विरोधाभास ढूँढ़ने का प्रयास किया है। उच्च न्यायालय की राय में, अभियोक्ता की अपुष्ट गवाही के आधार पर दोषसिद्धि सुरक्षित नहीं थी। हम इससे सहमत नहीं हो सकते। दोषसिद्धि का आदेश दर्ज करने से पहले अभियोक्ता के साक्ष्य की पुष्टि की जाँच करना कोई कानूनी बाध्यता नहीं है। साक्ष्य का मूल्यांकन किया जाना चाहिए, न कि उसकी गणना की जानी चाहिए। अभियोक्ता की एकमात्र गवाही के आधार पर दोषसिद्धि दर्ज की जा सकती है, यदि उसका साक्ष्य विश्वास पैदा करता है और ऐसी कोई परिस्थितियाँ नहीं हैं जो उसकी सत्यता के विरुद्ध हों। वर्तमान मामले में अभियोक्ता का साक्ष्य विश्वसनीय और भरोसेमंद पाया गया है। किसी पुष्टिकरण की आवश्यकता नहीं थी, हालाँकि अभिलेखों में पर्याप्त साक्ष्य उपलब्ध थे। चिकित्सा साक्ष्य ने पर्याप्त पुष्टिकरण प्रदान किया...।"

(जोर दिया गया)

42. इसके बाद, **पंजाब राज्य बनाम गुरमीत सिंह, (1996) 2 एससीसी 384** में, यह भी प्रतिपादित किया गया कि बलात्कार की पीड़िता द्वारा सिद्ध किए गए कथन की पुष्टि प्राप्त करना नियम नहीं है।

43. यहाँ, पीड़िता ने घटना का एक ही विवरण प्रस्तुत किया था। इसमें, उसने स्पष्ट रूप से बताया कि वह 11.09.2016 को अपने मंगेतर 'एस' और अपने छोटे भाई 'आर' के साथ 'अपार्टमेंट' में मौजूद थी। उस समय, अभियुक्त बंदूक लहराते हुए उस आवास में जबरन घुस गया। उसने पहले पीड़िता 'एक्स' और उसके मंगेतर 'एस' को कपड़े उतारने के लिए कहा। 'आर' द्वारा विरोध किए जाने पर, उसके साथ मारपीट की गई और उसे आवास से बाहर निकाल दिया गया। इसके बाद, पीड़िता और उसके मंगेतर को कपड़े उतारने के लिए मजबूर किया गया। अभियुक्त ने उनका वीडियो बनाया। इसके बाद, 'एस' को कपड़े पहनाकर आवास से बाहर जाने के लिए मजबूर किया गया। इसके बाद, अभियुक्त ने 'एक्स' के विरोध के बावजूद उसके साथ बलात्कार किया। इसके अलावा, वह उस परिसर से कैसे निकला, यह भी एक ही विवरण के माध्यम से बताया गया, जिसमें उसने बताया कि पहले तो अभियुक्त ने उसे अपने साथ चलने को कहा। उसके मना करने पर, उसे तीसरी मंजिल से धक्का देकर बाहर निकालने की धमकी दी गई। फिर वह अभियुक्त के साथ चली गई। इसके बाद उसे नैनपुरा में छोड़ दिया गया। वह भ्रमित/आंशिक रूप से होश में थी। वह किसी तरह अपने घर वापस आई और अपने परिवार को घटना के बारे में बताया।

44. घटना का वर्णन एफआईआर दर्ज होने के चरण से लेकर पुलिस द्वारा धारा 161 सीआरपीसी के अंतर्गत बयान दर्ज किए जाने और विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 164 सीआरपीसी के अंतर्गत बयान दर्ज किए जाने और मुकदमे के दौरान भी एक जैसा रहा है। मुकदमे के दौरान, पीड़िता 'एक्स' से कई तारीखों पर व्यापक जिरह

की गई। उसने अपना रुख बरकरार रखा। इसमें उसने यह भी खुलासा किया कि इस बीच उसने एक तीसरे व्यक्ति से शादी कर ली क्योंकि 'एस' के साथ उसकी शादी अभियुक्त के कारण हुई और टूट गई।

45. इस संदर्भ में देखा जाए तो अभियुक्त के विद्वान अधिवक्ता द्वारा बताई गई छोटी-मोटी विसंगतियां महत्वहीन हो जाती हैं। यह कानून नहीं है कि अभियोजन पक्ष के गवाहों को अभियोजन पक्ष के गवाहों या बयान की विश्वसनीयता स्थापित करने के लिए अनुभवजन्य सत्य के माध्यम से अपना एक जैसा रुख बनाए रखना चाहिए। इस संबंध में स्थापित सिद्धांत यह है कि साक्ष्य में सत्यता की झलक होनी चाहिए। इस संबंध में, **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम एम.के. एंथनी, (1985) 1 एससीसी 505** में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

"10. किसी गवाह के साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय, यह दृष्टिकोण होना चाहिए कि क्या समग्र रूप से पढ़े गए गवाह के साक्ष्य में सत्यता की झलक दिखाई देती है। एक बार यह धारणा बन जाने के बाद, निस्संदेह न्यायालय के लिए साक्ष्य की और अधिक गहन जाँच करना आवश्यक है, विशेष रूप से समग्र रूप से साक्ष्य में इंगित की गई कमियों, त्रुटियों और दुर्बलताओं को ध्यान में रखते हुए और उनका मूल्यांकन करके यह पता लगाना कि क्या यह गवाह द्वारा दिए गए साक्ष्य के सामान्य स्वरूप के विरुद्ध है और क्या साक्ष्य के पूर्व मूल्यांकन को इस प्रकार तोड़ा-मरोड़ा गया है कि वह विश्वास के योग्य न रहे। मामले के मूल को न छूने वाले तुच्छ मामलों पर छोटी-मोटी विसंगतियाँ, साक्ष्य से यहाँ-वहाँ संदर्भ से हटकर वाक्यों को लेकर अति-तकनीकी दृष्टिकोण, विवेचना अधिकारी द्वारा की गई किसी तकनीकी त्रुटि को महत्व देना और मामले की जड़ तक न जाना, सामान्यतः साक्ष्य को समग्र रूप से अस्वीकार करने की अनुमति नहीं देगा। यदि जिस न्यायालय के समक्ष गवाह साक्ष्य देता है, उसे साक्ष्य के सामान्य स्वरूप के बारे में राय बनाने का अवसर मिले, गवाह द्वारा दिए गए साक्ष्य के आधार पर, अपीलीय न्यायालय, जिसे यह लाभ नहीं मिला था, को अवर न्यायालय द्वारा साक्ष्य के मूल्यांकन को उचित महत्व देना होगा और जब तक कि ठोस कारण न हों, मामूली भिन्नताओं या तुच्छ विवरणों के आधार पर साक्ष्य को अस्वीकार करना उचित नहीं होगा। ईमानदार और सच्चे गवाह भी मुख्य घटना से असंबंधित कुछ विवरणों में भिन्न हो सकते हैं क्योंकि अवलोकन, धारण और पुनः प्रस्तुत करने की शक्ति प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न होती है। जिरह एक देहाती और परिष्कृत अधिवक्ता के बीच एक असमान द्वंद्व है।"

(जोर दिया गया)

46. इस प्रकार कानून यह स्थापित करता है कि छोटी-मोटी विसंगतियों को अदालतों द्वारा नहीं देखा/बढ़ाया जाना चाहिए, बल्कि साक्ष्य के संपूर्ण भार के साथ उनका मिलान किया जाना चाहिए। बचाव पक्ष का यह तर्क कि 'एक्स' और अभियुक्त के बीच झगड़ा हुआ था, जैसा कि 'एक्स' द्वारा धारा 161 सीआरपीसी के अंतर्गत दर्ज किए गए अपने बयान के दौरान दावा किया गया था, कभी साबित नहीं हुआ। विद्वान अवर न्यायालय दो मामलों में त्रुटि में पड़ गई है। सबसे पहले, उस विसंगति के बारे में, अगर कभी हुई भी थी, तो 'एक्स' को उसकी जिरह के दौरान कभी नहीं बताया गया। जहाँ तक सामना करने के तरीके का सवाल है, कानून स्पष्ट है।

47. **तारा सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1951) एससीसी ऑनलाइन एससी 49** में, दो गवाह मुकदमे के दौरान गवाह के कठघरे में आए और सीआरपीसी की धारा 288 के अंतर्गत पहले दर्ज किए गए अपने बयानों के विपरीत बयान दिए। फिर भी, उन्हें उनके द्वारा दिए गए पिछले बयानों के बारे में नहीं बताया गया। जब उनसे (मुकदमे के दौरान) उन पिछले बयानों के बारे में पूछा गया, तो उन्होंने केवल इतना कहा कि वे दबाव में दिए गए थे। यह उत्तर भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 145 की आवश्यकता को पूरा नहीं करता पाया गया। इस संबंध में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

41. अब, यह स्पष्ट है कि पिछले बयानों का उपयोग करने का एक मुख्य उद्देश्य सत्र न्यायालय के समक्ष दिए गए साक्ष्य का खंडन और उसे विस्थापित करना था, क्योंकि जब तक उस साक्ष्य का खंडन और उसे विस्थापित नहीं किया जाता, तब तक इस मामले में पिछले बयानों को रिकॉर्ड पर लाने और धारा 288 के अंतर्गत इस्तेमाल करने की अनुमति देने की कोई गुंजाइश नहीं थी। इसलिए, चूँकि ये बयान इन गवाहों के सामने नहीं रखे गए थे और चूँकि साक्ष्य अधिनियम की धारा 145 द्वारा अपेक्षित तरीके से उनका ध्यान उनकी ओर आकर्षित नहीं किया गया था, इसलिए वे साक्ष्य में ग्राह्य नहीं थे। बाल गंगाधर तिलक बनाम श्रीनिवास पंडित [बाल गंगाधर तिलक बनाम श्रीनिवास पंडित, (1914-15) 42 IA 135 पृष्ठ 147 : 1915 SCC ऑनलाइन PC 16] में प्रिवी काउंसिल की टिप्पणियाँ यहाँ प्रासंगिक हैं।

(ज़ोर दिया गया)

48. **रूडर बनाम राज्य, 1956 एससीसी ऑनलाइन एपीएल 141** में, इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने राय दी थी कि न्यायालय में दिए गए बयान को धारा 161 सीआरपीसी के अंतर्गत दिए गए बयान के साथ तभी मिलाया जा सकता है या नहीं मिलाया जा सकता है जब कथित चूक को गवाह के ध्यान में लाया जाता है और उसे उसे स्पष्ट करने का अवसर दिया जाता है। इस संबंध में, यह निम्नलिखित रूप में देखा गया:

"जस्टिस देसाई ने यह भी माना कि यदि धारा 162, सीआरपीसी के अंतर्गत बयान को न्यायालय में दिए गए बयान के साथ मिलाया जा सकता है और वह उसके साथ टिक सकता है, तो इसमें कोई विरोधाभास नहीं है। यह प्रश्न कि न्यायालय में दिए गए बयान को धारा 161, सीआरपीसी के अंतर्गत दर्ज किए गए बयान के साथ मिलाया जा सकता है या नहीं, केवल तभी सुलझाया जा सकता है जब चूक गवाह के ध्यान में लाई गई हो और गवाह को अपना स्पष्टीकरण देने का अवसर दिया गया हो। यदि स्पष्टीकरण के बाद यह प्रतीत होता है कि दोनों में सामंजस्य हो सकता है, तो यह विरोधाभास नहीं रहेगा। लेकिन ऐसा केवल चूक के मामले में ही नहीं, बल्कि बयान में शामिल सकारात्मक तथ्यों और धारा 161, सीआरपीसी के अंतर्गत दिए गए बयान के स्पष्ट विरोधाभास के मामले में भी हो सकता है। न्यायालय में दिए गए बयान और धारा 161, सीआरपीसी के अंतर्गत दिए गए बयान के बीच विरोधाभास प्रतीत हो सकता है, लेकिन जब इसे गवाह के समक्ष, वह एक स्पष्टीकरण दे सकता है जिससे उनमें सामंजस्य हो सकता है, जिसके बाद विरोधाभास विरोधाभास नहीं रह सकता है। केवल यह तथ्य कि वह संभवतः दोनों बयानों में सामंजस्य कर सकता है, धारा 162, सीआरपीसी के प्रावधान की प्रयोज्यता को किसी चूक के मामले में प्रभावित नहीं कर सकता है जो इस तरह की प्रकृति का है कि इसे विरोधाभास माना जा सकता है।"

49. **इंदर देव और अन्य बनाम राज्य, (1958) एससीसी ऑनलाइन एएलएल 175** में, एक मुद्दा उठा कि क्या धारा 288 सीआरपीसी के अंतर्गत दर्ज किए गए बयान को सबूत के रूप में माना जा सकता है यदि इसे गवाह को (ऐसे बयान को रिकॉर्ड किए जाने के समय) प्रकट नहीं किया गया था, कि न्यायालय बयान को सबूत के रूप में उपयोग कर सकता है। इस मुद्दे पर विचार करते समय, इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1875 की धारा 145 के गैर-अनुपालन पर ध्यान दिया। इसके बाद, **तारा सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (उपरोक्त)** पर भरोसा करते हुए, न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

"वर्तमान मामले में, एक और कठिनाई है जो हमें ऊपर उल्लिखित दो गवाहों के बयानों को उचित रूप से स्वीकार्य मानने के तरीके में मिली है, अगर हम उस अभिव्यक्ति का उपयोग कर सकते हैं, तो धारा 288, सीआरपीसी के अंतर्गत और हमें जो कठिनाई मिलती है वह यह है कि इन बयानों के संबंध में भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 145 के प्रावधानों का अनुपालन नहीं किया गया था। धारा 288 में स्वयं कहा गया है कि साक्ष्य सभी उद्देश्यों के लिए भारतीय साक्ष्य अधिनियम के प्रावधानों के अधीन था। जैसा कि हमने पहले बताया है, विशिष्ट अंश या विशेष भाग जिन पर अभियोजन पक्ष गवाहों का खंडन करना चाहता था, उन्हें गवाहों को नहीं पढ़ा गया था और उन्हें उन विशेष या विशिष्ट अंशों को समझाने का अवसर नहीं दिया गया था। पूरे बयान गवाहों को पढकर सुनाए गए और उनसे पूरे बयान के संबंध में अपनी बात कहने को कहा गया। हमारी राय में, यह भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 145 के प्रावधानों का अनुपालन नहीं था। इन प्रावधानों का उचित अनुपालन तभी हो सकता है जब गवाहों के सामने विशेष अंश प्रस्तुत किए जाएँ। हम यहाँ तारा सिंह बनाम राज्य [1951 ए.एल.जे. 640 : ए.आई.आर. एस.सी. 441.] में सर्वोच्च न्यायालय के माननीय न्यायमूर्तियों के निर्णय का उल्लेख कर सकते हैं, जिसमें माननीय न्यायमूर्तियों ने पृष्ठ 446-447 पर यह कहा था:

"इस मामले को लेकर उच्च न्यायालयों में कुछ मतभेद है। धारा 288 में प्रावधान है कि अभियुक्त की उपस्थिति में कमिटिंग मजिस्ट्रेट द्वारा दर्ज किए गए साक्ष्य को, धारा में निर्धारित परिस्थितियों में, 'भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 के प्रावधानों के अधीन सभी उद्देश्यों के लिए मामले में साक्ष्य माना जा सकता है।' तर्क की एक पंक्ति यह है कि धारा 145, साक्ष्य अधिनियम, लागू नहीं होती है क्योंकि वह धारा लिखित में पिछले बयानों से संबंधित है जिनका उपयोग केवल विरोधाभास के उद्देश्य से किया जाना है। उस तरह के बयान ठोस सबूत नहीं बनते हैं और हालांकि मुकदमे में दिए गए सबूत उस तरह के विरोधाभास से नष्ट हो सकते हैं, पिछले बयानों को ठोस सबूत के रूप में इस्तेमाल नहीं किया जा सकता है और उन पर कोई निर्णय नहीं दिया जा सकता है। लेकिन धारा 288, सीआरपीसी के अंतर्गत पिछला बयान सभी उद्देश्यों के लिए साक्ष्य बन जाता है और दोषसिद्धि का आधार बन सकता है। इसलिए, तर्क की इस पंक्ति के अनुसार धारा 145, साक्ष्य अधिनियम, लागू नहीं होती है। मेरा मानना है कि साक्ष्य अधिनियम के जिन प्रावधानों का उल्लेख किया गया है, वे सुनी-सुनाई बातों और उस तरह के मामलों से संबंधित हैं जो ठोस सबूतों से जुड़े हैं।"

मेरी राय में तर्क की दूसरी पंक्ति को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। मुझे कोई कारण नहीं दिखता कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 145 को क्यों बाहर रखा जाए, जब धारा 288 में कहा गया है कि पिछले बयान 'भारतीय साक्ष्य अधिनियम के प्रावधानों के अधीन' होने चाहिए। धारा 145 इन शब्दों के स्पष्ट अर्थ के अंतर्गत निष्पक्ष और स्पष्ट रूप से आती है। इससे भी अधिक यह एक निष्पक्ष और उचित दृष्टिकोण है और निष्पक्षता की

भावना के अनुरूप है, जिसकी अदालतें आदी हैं... मेरा मानना है कि कमिटल कोर्ट में दिए गए साक्ष्य का इस्तेमाल सत्र न्यायालय में तब तक नहीं किया जा सकता जब तक कि गवाह का उसके पिछले बयान से सामना नहीं कराया जाता, जैसा कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 145 में अपेक्षित है... लेकिन अगर अभियोजन पक्ष आगे बढ़ना चाहता है और पिछली गवाही को ठोस सबूत के रूप में इस्तेमाल करना चाहता है, तो उसे, मेरी राय में, गवाह के सामने उसके उन हिस्सों का सामना करना होगा, जिनका इस्तेमाल उसका खंडन करने के उद्देश्य से किया जाना है। तभी मामले को धारा 288 के अंतर्गत ठोस सबूत के तौर पर पेश किया जा सकता है।" (यह फैसला सुप्रीम कोर्ट के जस्टिस बोस और जस्टिस फजल अली ने दिया था। जस्टिस पतंजलि शास्त्री और जस्टिस दास ने इस फैसले से सहमति जताई थी।)

(जोर दिया गया)

50. **तहसीलदार सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1959) एससीसी ऑनलाइन एससी 17** में, सुप्रीम कोर्ट की छह न्यायाधीशों की पीठ को सीआरपीसी की धारा 162 में किए गए बदलावों पर विचार करने का अवसर मिला था। सुप्रीम कोर्ट ने सीआरपीसी की धारा 162 और भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 145 में संशोधन को शामिल करने के उद्देश्य को मान्यता दी - अभियुक्त को किसी भी पुलिस अधिकारी के समक्ष गवाह द्वारा दिए गए किसी भी बयान से बचाने के लिए और अभियुक्त को मुकदमे के दौरान दिए गए किसी भी झूठे बयान से बचाने के लिए। यह भी माना गया कि पुलिस को दिए गए ऐसे पूर्व बयान का इस्तेमाल अभियुक्त व्यक्ति द्वारा किसी विरोधाभास को सामने लाने के लिए किया जा सकता है, जो अभियुक्त के लिए मददगार हो सकता है और/या न्यायालय के समक्ष बयान देने वाले गवाह पर अविश्वास करने के लिए किया जा सकता है। इस संबंध में, रिपोर्ट के पैराग्राफ 17 में, निम्नलिखित टिप्पणी की गई है:

"17. साथ ही, यह घटना के तुरंत बाद गवाह के बयान का सबसे पुराना रिकॉर्ड होने के कारण, इसमें पाया गया कोई भी विरोधाभास अभियुक्त को बयान देने वाले गवाह की गवाही पर अविश्वास करने में बहुत मददगार साबित होगा। इसलिए, इस धारा की कल्पना एक सुखद माध्यम खोजने के प्रयास में की गई थी, अर्थात्, यह पुलिस अधिकारी के समक्ष दिए गए बयान के किसी भी उद्देश्य के लिए इस्तेमाल होने पर पूर्ण प्रतिबंध लगाता है, लेकिन यह अभियुक्त को साक्ष्य अधिनियम की धारा 145 द्वारा प्रदान की गई विधि के अनुसार विरोधाभास के लिए अभिप्रेत बयान के कुछ हिस्सों की ओर उसका ध्यान आकर्षित करके, एक सीमित उद्देश्य के लिए इस पर भरोसा करने में सक्षम बनाता है। इसका उपयोग अभियोजन पक्ष या बचाव पक्ष के गवाह या यहाँ तक कि न्यायालय के गवाह की पुष्टि के लिए नहीं किया जा सकता है। न ही इसका उपयोग बचाव पक्ष या न्यायालय के गवाह का खंडन करने के लिए किया जा सकता है। संक्षेप में, अभियुक्त के हित में एक सीमित अपवाद के अधीन इसके उपयोग पर एक सामान्य प्रतिबंध है, और स्पष्ट रूप से इस अपवाद का उपयोग प्रतिबंध को पार करने के लिए नहीं किया जा सकता है।"

(जोर दिया गया)

51. इसके बाद, **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम नाहर सिंह, (1998) 3 एससीसी 561** में, सर्वोच्च न्यायालय ने ब्राउन बनाम डन, [(1893) 6 आर 67] में लॉर्ड हर्शेल, एल.सी. द्वारा निर्धारित कानून के निम्नलिखित सिद्धांत को संदर्भित किया और लागू किया, जिसमें निम्नलिखित टिप्पणी की गई थी:

"मैं यह कहने से खुद को नहीं रोक सकता कि मुझे लगता है कि किसी मामले के उचित संचालन के लिए यह बिल्कुल ज़रूरी है, जहाँ यह सुझाव देना हो कि कोई गवाह किसी खास मुद्दे पर सच नहीं बोल रहा है, वहाँ जिरह में पूछे गए कुछ सवालों के जरिए उसका ध्यान उस तथ्य की ओर आकर्षित करना जरूरी है जिससे यह पता चले कि उस आरोप को लगाया जाना है, न कि उसके सबूत को पूरी तरह से चुनौती न दिए जाने के रूप में स्वीकार कर लेना, और फिर, जब उसके लिए स्पष्टीकरण देना असंभव हो, जैसा कि शायद वह कर सकता था अगर उससे ऐसे सवाल पूछे जाते, तो परिस्थितियाँ, जो यह बताती हैं कि उसके द्वारा बताई गई कहानी पर विश्वास नहीं किया जाना चाहिए, यह तर्क देना कि वह विश्वास के योग्य गवाह नहीं है। माइ लॉर्ड्स, मैंने हमेशा यह समझा है कि अगर आप किसी गवाह पर महाभियोग चलाने का इरादा रखते हैं, तो आप बाध्य हैं कि जब तक वह कठघरे में है, उसे कोई भी स्पष्टीकरण देने का अवसर दें जो उसके लिए खुला हो; और, जैसा कि मुझे लगता है, यह न केवल किसी मामले के संचालन में पेशेवर व्यवहार का नियम है, बल्कि गवाहों के साथ निष्पक्ष व्यवहार के लिए भी ज़रूरी है।"

(ज़ोर दिया गया)

52. इसके बाद, **रम्मी बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (1999) 8 एससीसी 649** में, सर्वोच्च न्यायालय ने भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 155 के दायरे की जाँच की और माना कि, किसी गवाह (जो बाद में न्यायालय के समक्ष गवाही देता है) द्वारा दिए गए पूर्व कथन का उपयोग भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 155(3) के अनुसार उसकी विश्वसनीयता पर प्रश्नचिह्न लगाने के लिए किया जा सकता है। इसमें, उसने निम्नलिखित टिप्पणी की:

"25. अवर न्यायालयों में जिरह के दौरान गवाह का सामना कराने के लिए उसके पिछले बयान में विरोधाभास निकालना एक आम प्रथा है। केवल इसलिए कि साक्ष्य में असंगति है, गवाह की विश्वसनीयता को कम करना पर्याप्त नहीं है। निस्संदेह, साक्ष्य अधिनियम की धारा 155, किसी असंगत पूर्व कथन के प्रमाण द्वारा गवाह की विश्वसनीयता पर आक्षेप लगाने की गुंजाइश प्रदान करती है। लेकिन धारा को पढ़ने से यह संकेत मिलता है कि सभी असंगत कथन गवाह की विश्वसनीयता पर आक्षेप लगाने के लिए पर्याप्त नहीं हैं। धारा का मुख्य भाग नीचे उद्धृत है:

155. गवाह की विश्वसनीयता पर आक्षेप लगाना।—किसी गवाह की विश्वसनीयता पर प्रतिपक्षी पक्ष द्वारा, या न्यायालय की सहमति से, उसे बुलाने वाले पक्ष द्वारा निम्नलिखित तरीकों से आक्षेप लगाया जा सकता है—

*(1)-(2)****

(3) उसके साक्ष्य के किसी ऐसे भाग से असंगत पूर्व कथनों के प्रमाण द्वारा, जिसका खंडन किया जा सकता है;"

26. एक पूर्व कथन, भले ही साक्ष्य से असंगत प्रतीत हो, आवश्यक रूप से विरोधाभास के लिए पर्याप्त नहीं है। केवल वही असंगत कथन, जिसका "खंडन" किया जा सकता है, साक्षी की विश्वसनीयता को प्रभावित करेगा।

साक्ष्य अधिनियम की धारा 145, जिरह करने वाले को साक्षी के किसी भी पूर्व कथन का उपयोग करने का अधिकार देती है, लेकिन यह चेतावनी देती है कि यदि इसका उद्देश्य साक्षी का "खंडन" करना है, तो जिरह करने वाले को उसमें निर्धारित औपचारिकताएँ पूरी करने का आदेश दिया जाता है। संहिता की धारा 162, जिरह करने वाले को साक्षी के पूर्व कथन (धारा 161 के अंतर्गत दर्ज) का उपयोग केवल सीमित उद्देश्य के लिए, अर्थात् साक्षी का "खंडन" करने के लिए करने की अनुमति देती है।

(जोर दिया गया)

53. **करण सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2003) 12 एससीसी 587** में, सर्वोच्च न्यायालय ने भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 145 के उद्देश्य को स्पष्ट किया - गवाह को विसंगति या असंगति को स्पष्ट करने या अस्पष्टता या विवाद के बिंदु को स्पष्ट करने का अवसर देना। इसमें, न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

"5. जब किसी पूर्व कथन को स्वीकृति के रूप में सिद्ध करना हो, तो उस कथन को साक्षी के समक्ष रखा जाना चाहिए और यदि साक्षी ऐसा कथन देने से इनकार करता है, तो वह स्वीकृति नहीं माना जाएगा और यदि यह सिद्ध हो जाता है कि उसने ऐसा कथन दिया था, तो साक्षी का ध्यान उस कथन की ओर आकर्षित किया जाना चाहिए। साक्ष्य अधिनियम की धारा 145 इस पहलू पर स्पष्ट है। इसका उद्देश्य साक्षी को विसंगति या असंगति को स्पष्ट करने का अवसर देना और अस्पष्टता या विवाद के विशिष्ट बिंदु को स्पष्ट करना है। वर्तमान मामले में, प्रदर्श डी-4 कथन को साक्षी के समक्ष नहीं रखा गया और न ही उसे स्पष्टीकरण देने का अवसर दिया गया। इसलिए, प्रदर्श डी-4 कथन, भले ही इसे पी.डब्लू. 1 हरि सिंह का कथन मान लिया जाए, अपीलकर्ताओं के लिए निजी बचाव का अपना मामला साबित करने में कोई सहायता नहीं करता।"

(जोर दिया गया)

54. फिर, **मुन्ना पांडे बनाम बिहार राज्य, (2023) एससीसी ऑनलाइन एससी 1103** में, सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ को मुकदमे में अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किए गए साक्ष्य की विश्वसनीयता के मुद्दे पर विचार करने का अवसर मिला, ऐसे साक्ष्य के अभाव में जिसे भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1875 की धारा 145 के अंतर्गत परखा जा रहा हो - गवाहों के पिछले बयान (विवेचना के दौरान दर्ज) के साथ उनका खंडन करके। ऐसा न करने में अभियोजन पक्ष की ओर से की गई कार्यप्रणाली की निंदा करते हुए और उस संबंध में बचाव पक्ष की ओर से की गई ढिलाई को नकारते हुए, साथ ही न्यायालयों को उस पहलू पर सतर्क रहने के लिए आगाह करते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने नीचे दी गई टिप्पणी की:

41. बचाव पक्ष के अधिवक्ता का यह कर्तव्य था कि वह गवाहों का उनके पुलिस बयानों से सामना कराए ताकि भौतिक चूक के रूप में विरोधाभासों को साबित किया जा सके और उन्हें रिकॉर्ड पर लाया जा सके। हमें यह कहते हुए खेद है कि विद्वान बचाव पक्ष के अधिवक्ता को यह पता नहीं था कि साक्ष्य अधिनियम, 1872 (संक्षेप में, 'साक्ष्य अधिनियम') की धारा 145 के अनुसार किसी गवाह के पुलिस बयानों का खंडन कैसे किया जाए।

42. शासकीय अधिवक्ता की ओर से हुई चूक भी बहुत दुर्भाग्यपूर्ण है। शासकीय अधिवक्ता जानता था कि गवाह सीआरपीसी की धारा 161 के अंतर्गत दर्ज किए गए अपने बयानों में पुलिस के सामने जो कुछ भी कह चुके थे, उसके विपरीत बयान दे रहे थे। यह उसका कर्तव्य था कि वह गवाहों के ध्यान में लाए और उन्हें पक्षद्रोही घोषित किए बिना भी उनसे इस बारे में पूछताछ करे।

43. ट्रायल कोर्ट का पीठासीन अधिकारी भी मूकदर्शक बना रहा। पीठासीन अधिकारी का यह कर्तव्य था कि वह साक्ष्य अधिनियम की धारा 165 के अंतर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए इन गवाहों से प्रासंगिक प्रश्न पूछे। सीआरपीसी की धारा 162 किसी न्यायाधीश को पुलिस विवेचना के रिकॉर्ड को देखने से नहीं रोकती है। चूँकि यह बलात्कार और हत्या का मामला था और साक्ष्य संदेह से मुक्त नहीं थे, इसलिए न्याय के हित में, ट्रायल जज को महत्वपूर्ण सामग्री और पुलिस विवेचना के दौरान अभियोजन पक्ष के एकमात्र महत्वपूर्ण गवाहों द्वारा कही गई बातों से भी परिचित होना चाहिए था। अगर उन्होंने ऐसा किया होता, तो वे बिना किसी अनुचितता के इन गवाहों द्वारा विवेचना अधिकारी को दिए गए बयानों और मुकदमे में उनके साक्ष्य के बीच विसंगतियों को पकड़ सकते थे, जिन्हें वे साक्ष्य अधिनियम की धारा 165 के अंतर्गत गवाहों से प्रश्न पूछकर रिकॉर्ड पर ला सकते थे। हमारी राय में, धारा 162 सीआरपीसी में ऐसा कुछ भी नहीं है जो अभियोजन या बचाव पक्ष से अलग ट्रायल जज को अभियोजन पक्ष के गवाहों से अन्यथा अनुमेय प्रश्न पूछने से रोकता हो, यदि न्याय स्पष्ट रूप से ऐसा करने की माँग करता है। वर्तमान मामले में, हमारा दृढ़ मत है कि न्याय के हित में, ट्रायल जज को यही करना चाहिए था, लेकिन उन्होंने पुलिस विवेचना के रिकॉर्ड को तब तक नहीं देखा जब तक कि विवेचना अधिकारी को परीक्षित नहीं किया गया और उन्हें गवाह के रूप में मुक्त नहीं कर दिया गया। इस स्तर पर भी, ट्रायल जज अधिकारी और अन्य गवाहों को वापस बुला सकते थे और साक्ष्य अधिनियम की धारा 165 के अनुसार उनसे पूछताछ कर सकते थे। यह खेदजनक है कि उन्होंने ऐसा नहीं किया।

(ज़ोर दिया गया)

55. **बीरबल नाथ बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य, (2023) एससीसी ऑनलाइन एससी 1396** में, निम्नलिखित टिप्पणी की गई है:

"19. धारा 161 के अंतर्गत विवेचना के दौरान पुलिस को दिए गए बयान को "साक्ष्य" नहीं माना जा सकता। दंड प्रक्रिया संहिता (सीआरपीसी) की धारा 162 के अंतर्गत निर्धारित न्यायालय में इसकी प्रयोज्यता सीमित है। 20. निस्संदेह, धारा 161 के अंतर्गत विवेचना के दौरान पुलिस के समक्ष दिए गए बयान साक्ष्य अधिनियम की धारा 145 के अंतर्गत "पूर्व बयान" हैं और इसलिए इनका इस्तेमाल गवाह से जिरह करने के लिए किया जा सकता है। लेकिन यह केवल, ऐसे गवाह का "खंडन" करने के लिए एक सीमित उद्देश्य के लिए है। अगर बचाव पक्ष किसी गवाह का खंडन करने में सफल भी हो जाता है, तो इसका हमेशा यह मतलब नहीं होगा कि उसके दो बयानों में विरोधाभास के कारण उस गवाह की साख पूरी तरह से गिर जाएगी। यहीं पर हमें लगता है कि उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों ने गलती की है।"

(ज़ोर दिया गया)

56. हाल ही में, **अलाउद्दीन एवं अन्य बनाम असम राज्य एवं अन्य, (2024) एससीसी ऑनलाइन एससी 760** मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने फिर से उस तरीके पर विचार किया जिससे अभियोजन पक्ष के गवाह से उनके पूर्व बयान के आधार पर जिरह की जा सकती है। सीआरपीसी की धारा 162 का हवाला देते हुए, और भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 145 के संबंध में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की है:

"6.....

धारा 162 की उप-धारा (1) में शामिल मूल सिद्धांत यह है कि किसी व्यक्ति द्वारा विवेचना के दौरान पुलिस अधिकारी को दिया गया कोई भी बयान, जो लिखित रूप में दिया गया हो, धारा 162 में दिए गए प्रावधान के अलावा किसी अन्य उद्देश्य के लिए इस्तेमाल नहीं किया जा सकता है। उप-धारा (2) में शामिल पहला अपवाद भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (संक्षेप में, 'साक्ष्य अधिनियम') की धारा 32 के खंड (1) द्वारा कवर किए गए बयानों का है। इस प्रकार, धारा 162 की उप-धारा (1) में जो प्रावधान है वह मृत्युपूर्व बयान पर लागू नहीं होता है। धारा 162 की उप-धारा (1) में दिए गए सामान्य नियम का दूसरा अपवाद यह है कि अभियुक्त साक्ष्य अधिनियम की धारा 145 द्वारा प्रदान की गई विधि से गवाह का खंडन करने के लिए बयान का उपयोग कर सकता है। यहां तक कि अभियोजन पक्ष भी न्यायालय की पूर्व अनुमति से साक्ष्य अधिनियम की धारा 145 में प्रदान की गई विधि से गवाह का खंडन करने के लिए बयान का उपयोग कर सकता है। अभियोजन पक्ष आमतौर पर इस प्रावधान का सहारा तब लेता है जब उसका गवाह अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं करता। विरोधाभास के लिए पूर्व कथन का उपयोग करने के लिए एक महत्वपूर्ण शर्त है। शर्त यह है कि विरोधाभास के लिए प्रयुक्त कथन का भाग विधिवत सिद्ध होना चाहिए।"

(जोर दिया गया)

57. विशेष रूप से, भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 145 के संबंध में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

"8.....

यह धारा दो भागों में कार्य करती है। पहले भाग में यह प्रावधान है कि किसी गवाह से उसके पूर्व लिखित कथनों के संबंध में बिना लिखित कथन दिखाए जिरह की जा सकती है। इस प्रकार, उदाहरण के लिए, किसी गवाह से यह पूछकर जिरह की जा सकती है कि क्या उसका पूर्व कथन मौजूद है। दूसरा भाग किसी गवाह का खंडन करने से संबंधित है। विरोधाभासों को सिद्ध करने के लिए गवाह से उसके पूर्व कथन का सामना कराते समय, गवाह को उसका पूर्व कथन अवश्य दिखाया जाना चाहिए। यदि न्यायालय के समक्ष गवाह द्वारा दिए गए कथन और पुलिस द्वारा दर्ज किए गए कथन में विरोधाभास है, तो गवाह का ध्यान उसके पूर्व कथन के उन विशिष्ट भागों की ओर आकर्षित किया जाना चाहिए, जिनका उपयोग उसका खंडन करने के लिए किया जाना है। धारा 145 में यह प्रावधान है कि संबंधित भाग को लिखित कथन सिद्ध किए बिना भी गवाह के समक्ष रखा जा सकता है। हालाँकि, गवाहों का खंडन करने के लिए प्रयुक्त पूर्व कथन को बाद में सिद्ध किया जाना चाहिए। केवल तभी जब उसके पूर्व कथन का विरोधाभासी भाग सिद्ध हो जाए, विरोधाभास सिद्ध माना जा सकता है। सामान्य प्रथा यह है कि गवाह को दिखाए गए उसके पूर्व कथन के अंश या भाग को अभिलेख पर प्रस्तुत किया जाता है। विभिन्न राज्यों में अंकन अलग-अलग तरीके से किया जाता है। कुछ राज्यों में,

गवाह को दिखाए गए भाग के आरंभ में एक अक्षर और अंत में उसी अक्षर से निशान लगाने की प्रथा है। जिरह दर्ज करते समय, ट्रायल कोर्ट को यह दर्ज करना होगा कि एक विशेष भाग, उदाहरण के लिए, AA के रूप में चिह्नित, गवाह को दिखाया गया था। पूर्व बयान का कौन सा हिस्सा गवाह को उसका खंडन करने के लिए दिखाया गया है, उसे जिरह में दर्ज करना होगा। यदि गवाह इस तरह का पूर्व बयान देने की बात स्वीकार करता है, तो उस हिस्से को साबित माना जा सकता है। यदि गवाह अपने पूर्व बयान के उस हिस्से को स्वीकार नहीं करता है, जिससे उसका सामना कराया जा रहा है, तो यह विवेचनाधिकारी के माध्यम से यह पूछकर साबित किया जा सकता है कि क्या गवाह ने ऐसा बयान दिया था जो गवाह को दिखाया गया था। इसलिए, यदि गवाह का सामना उसके पूर्व बयान से कराकर लिखित रूप में कराना है, तो बयान के उस विशेष हिस्से को, साबित होने से पहले ही, गवाह को विशेष रूप से दिखाया जाना चाहिए। इसके बाद, गवाह के पूर्व कथन के उस भाग को सिद्ध करना होगा जिसका उपयोग गवाह के कथन का खंडन करने के लिए किया गया था। जैसा कि पहले बताया गया है, यदि गवाह ऐसा बयान देने की बात स्वीकार करता है, तो इसे सिद्ध माना जा सकता है, या संबंधित पुलिस अधिकारी की जिरह में इसे सिद्ध किया जा सकता है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 145 में गवाह को उसके पूर्व बयान का प्रासंगिक भाग दिखाकर उसका सामना कराने की इस आवश्यकता का उद्देश्य गवाह को विरोधाभास को स्पष्ट करने का अवसर देना है। इसलिए, यह निष्पक्षता का नियम है।"

(जोर दिया गया)

58. हाल ही में, **लवकुश बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2024) एससीसी ऑनलाइन एएलएल 7674** में, इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ को भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1875 की धारा 145 के अनुसार, गवाह के पिछले बयान के साथ उसके टकराव के तरीके पर विचार करने का अवसर मिला। इसमें, निम्नलिखित टिप्पणी की गई:

"37.....

धारा 162 की उप-धारा (1) में शामिल मूल सिद्धांत यह है कि विवेचना के दौरान किसी व्यक्ति द्वारा पुलिस अधिकारी को दिया गया कोई भी बयान, जो लिखित रूप में दिया गया है, धारा 162 में दिए गए प्रावधान के अलावा किसी भी उद्देश्य के लिए इस्तेमाल नहीं किया जा सकता है। उप-धारा (2) में शामिल पहला अपवाद भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (संक्षेप में, 'साक्ष्य अधिनियम') की धारा 32 के खंड (1) द्वारा कवर किए गए बयानों का है। इस प्रकार, धारा 162 की उप-धारा (1) में जो प्रावधान है वह मृत्युपूर्व बयान पर लागू नहीं होता है। धारा 162 की उपधारा (1) में दिए गए सामान्य नियम का दूसरा अपवाद यह है कि अभियुक्त साक्ष्य अधिनियम की धारा 145 में दिए गए तरीके से गवाह का खंडन करने के लिए बयान का इस्तेमाल कर सकता है। अभियोजन पक्ष भी न्यायालय की पूर्व अनुमति से साक्ष्य अधिनियम की धारा 145 में दिए गए तरीके से गवाह का खंडन करने के लिए बयान का इस्तेमाल कर सकता है। अभियोजन पक्ष आमतौर पर इस प्रावधान का सहारा तब लेता है जब उसका गवाह अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं करता। विरोधाभास के लिए पूर्व कथन का इस्तेमाल करने के लिए एक महत्वपूर्ण शर्त है। शर्त यह है कि विरोधाभास के लिए इस्तेमाल किए गए बयान के हिस्से को विधिवत साबित किया जाना चाहिए।

38. जब दो बयान एक साथ नहीं रह सकते, तो वे विरोधाभासी बयान बन जाते हैं। जब कोई गवाह न्यायालय के समक्ष अपने साक्ष्य में ऐसा बयान देता है जो पुलिस द्वारा दर्ज किए गए उसके बयान में दिए गए बयान से असंगत होता है, तो विरोधाभास होता है। जब अभियोजन पक्ष का गवाह जिसका बयान सीआरपीसी की धारा 161(1) या धारा 164 के अंतर्गत दर्ज किया गया है, न्यायालय के समक्ष तथ्यात्मक पहलुओं को बताता है जो उसने सीआरपीसी की धारा 161(1) या धारा 164 के अंतर्गत दर्ज किए गए अपने पूर्व बयान में नहीं बताया है, तो यह कहा जाता है कि एक चूक हुई है। एक चूक तब होगी यदि गवाह ने पुलिस द्वारा दर्ज किए गए अपने बयान में एक तथ्य बताने से चूक गया है, जिसे वह न्यायालय के समक्ष अपने साक्ष्य में बताता है। सीआरपीसी की धारा 162 का स्पष्टीकरण इंगित करता है कि एक चूक विरोधाभास के बराबर हो सकती है जब यह महत्वपूर्ण और प्रासंगिक हो। इस प्रकार, प्रत्येक चूक एक विरोधाभास नहीं है। यह विरोधाभास बन जाता है बशर्ते यह धारा 162 के अंतर्गत स्पष्टीकरण में निर्धारित मानदंड को पूरा करता हो। इसलिए, जब कोई चूक विरोधाभास बन जाती है, तो जिरह में गवाहों का खंडन करने के लिए धारा 162 की उप-धारा (1) के परंतुक में प्रदान की गई प्रक्रिया का पालन किया जाना चाहिए।

39.....…

यह धारा दो भागों में संचालित होती है। पहला भाग यह प्रावधान करता है कि किसी गवाह से उसके लिखित रूप में दिए गए पिछले बयानों के संबंध में बिना उसे ऐसा लिखित रूप दिखाए जिरह की जा सकती है। इस प्रकार, उदाहरण के लिए, किसी गवाह से यह पूछकर जिरह की जा सकती है कि क्या उसका पूर्व बयान मौजूद है। दूसरा भाग गवाह का खंडन करने के बारे में है। विरोधाभासों को साबित करने के लिए गवाह का उसके पूर्व बयान से सामना करते समय, गवाह को उसका पूर्व बयान दिखाया जाना चाहिए। यदि न्यायालय के समक्ष गवाह द्वारा दिए गए बयान और पुलिस द्वारा दर्ज किए गए बयान में दर्ज की गई बातों के बीच विरोधाभास है, तो गवाह का ध्यान उसके पूर्व बयान के विशिष्ट भागों की ओर आकर्षित किया जाना चाहिए, जिनका उपयोग उसका खंडन करने के लिए किया जाना है। धारा 145 में प्रावधान है कि संबंधित भाग को लिखित रूप में सिद्ध किए बिना भी साक्षी के समक्ष रखा जा सकता है। हालाँकि, साक्षी का खंडन करने के लिए प्रयुक्त पूर्व कथन को बाद में सिद्ध किया जाना चाहिए। केवल यदि उसके पूर्व कथन का विरोधाभासी भाग सिद्ध हो जाए, तभी विरोधाभास सिद्ध माना जा सकता है। सामान्य प्रथा यह है कि अभिलेख पर प्रस्तुत किए गए उसके पूर्व कथन के अंश या भाग को साक्षी को दिखाया जाता है। विभिन्न राज्यों में अंकन अलग-अलग तरीके से किया जाता है। कुछ राज्यों में, साक्षी को दिखाए गए अंश के आरंभ में एक अक्षर और अंत में उसी अक्षर से अंकन करने की प्रथा है। जिरह दर्ज करते समय, विचारण न्यायालय को यह दर्ज करना होगा कि एक विशेष अंश, उदाहरण के लिए, AA के रूप में चिह्नित, साक्षी को दिखाया गया था। पूर्व कथन का कौन सा भाग साक्षी को उसका खंडन करने के लिए दिखाया गया है, उसे जिरह में दर्ज किया जाना चाहिए। यदि साक्षी ऐसा पूर्व कथन देने की बात स्वीकार करता है, तो उस अंश को सिद्ध माना जा सकता है। यदि साक्षी अपने पूर्व कथन के उस अंश को स्वीकार नहीं करता है जिससे उसका सामना कराया गया है, तो यह विवेचना अधिकारी के माध्यम से यह पूछकर साबित किया जा सकता है कि क्या साक्षी ने ऐसा कथन दिया था जो साक्षी को दिखाया गया था। इसलिए, यदि गवाह का सामना उसके पूर्व कथन को लिखित रूप में प्रस्तुत करके कराना है, तो कथन के उस विशेष भाग को, उसके सिद्ध होने से पहले ही, गवाह को विशिष्ट रूप से दिखाया जाना चाहिए। उसके बाद,

पूर्व कथन के उस भाग को, जिसका उपयोग गवाह के कथन का खंडन करने के लिए किया गया था, सिद्ध करना होगा। जैसा कि पहले बताया गया है, यदि गवाह ऐसा कथन देने की बात स्वीकार करता है, तो इसे सिद्ध माना जा सकता है, या संबंधित पुलिस अधिकारी की जिरह में इसे सिद्ध किया जा सकता है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 145 में गवाह को उसके पूर्व कथन का प्रासंगिक भाग दिखाकर उसका सामना कराने की इस आवश्यकता का उद्देश्य गवाह को विरोधाभास को स्पष्ट करने का अवसर देना है। अतः, यह निष्पक्षता का नियम है।

40.....

यहाँ यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि प्रत्येक विरोधाभास या चूक गवाह पर अविश्वास करने या उसकी गवाही पर अविश्वास करने का आधार नहीं है। रिकॉर्ड में दर्ज कोई छोटी या मामूली चूक या विरोधाभास गवाह के कथन पर अविश्वास करने के लिए पर्याप्त नहीं है। केवल तभी जब कोई भौतिक विरोधाभास या चूक हो, न्यायालय गवाह के कथन पर पूर्णतः या आंशिक रूप से अविश्वास कर सकता है। भौतिक विरोधाभास या चूक क्या है, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करता है। कोई चूक विरोधाभास है या नहीं, यह भी प्रत्येक व्यक्तिगत मामले के तथ्यों पर निर्भर करता है।"

59. **मयंक पारासरी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, तटस्थ उद्धरण संख्या - 2025:एएचसी:23769-डीबी,** में धारा 145 Cr.P.C की आवश्यकताओं के संबंध में, इस न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

"47. इस प्रकार, हालांकि न तो अभियोजन पक्ष और न ही बचाव पक्ष धारा 161 सीआरपीसी के अंतर्गत दर्ज किसी भी पिछले बयान पर साक्ष्य के रूप में भरोसा कर सकते हैं, साथ ही, भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 145 और 155 और धारा 162 सीआरपीसी, किसी मुकदमे में दिए गए बयान से प्रतिकूल रूप से प्रभावित पक्ष को, गवाह (ऐसी गवाही देने वाले) का सामना करने की अनुमति देते हैं, उनके पिछले बयान के साथ, जिसमें धारा 161 सीआरपीसी के अंतर्गत दर्ज बयान भी शामिल है, या तो गवाह की विश्वसनीयता पर सवाल उठाने के लिए या संकुचन लाने के लिए। यदि वह सामना (किसी भी पिछले बयान के साथ) प्रभावित पक्ष द्वारा, साक्ष्य अधिनियम की धारा 145 और/या 155 या धारा 162 सीआरपीसी के अंतर्गत अनुमत तरीके से पेश नहीं किया जाता है, तो, दिए गए बयान को प्रत्येक मामले के व्यक्तिगत तथ्यों में, अपने वजन के आधार पर विचार करना होगा और इसकी शुद्धता या सत्यता पर केवल इसलिए संदेह नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह दावा किया जा सकता है (दिए गए बयानों से प्रभावित पक्ष द्वारा उस गवाह द्वारा), कि दिए गए बयान के विपरीत उसी गवाह का एक पिछला बयान मौजूद है, जो इस प्रकार दिए गए बयानों के विपरीत है।"

60. एक बार जब बचाव पक्ष 'एक्स' को धारा 161 सीआरपीसी के अंतर्गत दर्ज किए गए उसके कथित पिछले बयान के साथ सामना करने में विफल रहा, तो विद्वान ट्रायल कोर्ट के लिए उस बयान पर भरोसा करना या अभियोजन पक्ष के साक्ष्य पर अविश्वास करना कभी भी संभव नहीं था। बचाव पक्ष का अधिकार या पक्षकारों का किसी गवाह को उसके पिछले बयान के साथ सामना करने का अधिकार एक ऐसा अधिकार है जो पक्षकारों के पास निहित है। हालांकि न्यायालय इस बात के लिए स्वतंत्र रह सकता है कि वह किसी भी गवाह को उसके पिछले बयान के साथ सामना कराए, लेकिन इसके लिए मंच तब होगा जब साक्ष्य दर्ज किया जा रहा हो। यहां,

यह नोट करना पर्याप्त है कि 'एक्स' को कभी भी किसी पिछले बयान के साथ सामना करने की पेशकश नहीं की गई थी। सुनवाई के चरण में, न तो पक्षकारों के लिए और न ही विद्वान ट्रायल कोर्ट के लिए धारा 161 सीआरपीसी के अंतर्गत दर्ज किए गए बयान पर गौर करना, सिद्ध तथ्यों पर अविश्वास करना या यह देखना खुला था कि पक्षों के बीच पहले से झगड़ा मौजूद था। स्पष्टतः, विद्वान अवर न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष इस हद तक विकृत हैं।

61. दूसरा, यदि ऊपर बताई गई प्रकृति की कोई विसंगति केवल इसलिए उद्धृत की जाती है क्योंकि पक्षों के बीच कोई विवाद रहा होगा, तो यह अभियोजन पक्ष की कहानी पर अविश्वास करने का एकमात्र कारण नहीं हो सकता, जो अन्यथा विधिवत सिद्ध हो चुकी थी। झगड़े की प्रकृति न तो निर्दिष्ट की गई थी और न ही उसे ऐसा दिखाया गया था जिससे 'एक्स' और उसके परिवार के सदस्यों को अपीलकर्ता के खिलाफ झूठा आरोप लगाने के लिए उकसाया जा सके। न तो झगड़े की प्रकृति और न ही उसकी तारीख और समय सिद्ध किया गया। अभियुक्त के खिलाफ एफआईआर बलात्कार के एक जघन्य अपराध की है। अभियोजन पक्ष की कहानी के समर्थन में 'एक्स' द्वारा प्रस्तुत प्रत्यक्ष साक्ष्य और अन्य सामग्री, दोनों के आधार पर साक्ष्य मौजूद हैं।

62. आंतरिक चोटों या गंभीर बाहरी चोटों की अनुपस्थिति के संबंध में, ऐसा कोई नियम या कानून उपलब्ध नहीं है जिसके लिए बलात्कार की घटना को स्थापित करने के लिए ऐसी चोटों को साबित किया जाना आवश्यक हो। एक बार जब अभियोजन पक्ष द्वारा पीड़िता के प्रत्यक्ष साक्ष्य के आधार पर यह सिद्ध कर दिया गया कि उसे इस हद तक वश में किया गया था या वश में किया गया था कि उसका प्रतिरोध टूट गया या नकार दिया गया, तो चोट के माध्यम से घटना का प्रमाण एक मध्ययुगीन कल्पना होगी, आधुनिक वास्तविकता नहीं। सबसे पहले, अभियुक्त द्वारा (बन्दूक के बल पर) घातक चोट पहुँचाने की धमकी सिद्ध हुई। दूसरे, यह भी सिद्ध हुआ कि अभियुक्त ने 'एक्स' और उसके मंगेतर का नग्न अवस्था में वीडियो बनाया था। दोनों ही मामलों में, अभियोजन पक्ष द्वारा पर्याप्त साक्ष्य प्रस्तुत किए गए कि उपरोक्त बलात्कार करने से पहले अभियुक्त द्वारा अन्यथा प्रस्तुत प्रतिरोध को निष्प्रभावी कर दिया गया था। इसके अलावा, अभियोजन पक्ष द्वारा यह स्थापित करने के लिए साक्ष्य प्रस्तुत किए गए कि प्रतिरोध को निष्प्रभावी कर दिया गया था, यह स्थापित करके कि 'एक्स' के लगभग 12 वर्षीय छोटे भाई 'आर' पर हमला किया गया था और 'एक्स' का नग्न वीडियो बनाने से पहले उसे 'अपार्टमेंट' से बाहर निकाल दिया गया था और उसके बाद, 'एक्स' के साथ बलात्कार करने से पहले, उसके मंगेतर 'एस' को बंदूक की धमकी देकर 'अपार्टमेंट' से बाहर निकाल दिया गया था। एक बार जब पीड़िता, जो 18 वर्ष की हो चुकी है, मानसिक, मनोवैज्ञानिक और शारीरिक रूप से इस प्रकार दबा दी गई हो और उस पर दबाव डाला गया हो, तो यह स्वीकार करना कि उसे आंतरिक और बाह्य चोटें लगी हैं, हास्यास्पद होगा।

63. एफआईआर दर्ज करने में देरी के संबंध में, कानून फिर से स्पष्ट है। **ललई @ डिंडू एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1975) 3 एससीसी 273** में, सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने इस मुद्दे पर विचार किया और निम्नलिखित टिप्पणी की:

"6. राधेश्याम के साक्ष्य को चुनौती देने वाला एकमात्र अन्य आधार यह है कि यद्यपि घटना 24 तारीख को रात लगभग 10.30 बजे हुई थी, लेकिन राधेश्याम ने 25 तारीख को सुबह 11 बजे तक एफआईआर दर्ज नहीं कराई थी। यह निस्संदेह एक महत्वपूर्ण तथ्य है, लेकिन सत्र न्यायालय और उच्च न्यायालय ने देरी का उचित स्पष्टीकरण दिया है। रात अंधेरी थी, सड़क उबड़-खाबड़ थी और हमला इतना भयंकर था कि राधेश्याम सीधे पुलिस स्टेशन जाने का साहस नहीं जुटा पाया। साक्ष्य में इस बात का कोई संकेत नहीं है कि अपीलकर्ताओं के नाम किसी मिलीभगत के परिणामस्वरूप एफआईआर में शामिल किए गए थे।"

(जोर दिया गया)

64. **तारा सिंह एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य 1991 अनुपूरक (1) एससीसी 536** में, सर्वोच्च न्यायालय ने एफआईआर दर्ज करने में देरी के मुद्दे पर विचार किया। यह टिप्पणी इस प्रकार की गई:

"4. यह सर्वविदित है कि प्राथमिकी दर्ज कराने में देरी अपने आप में अभियोजन पक्ष के मामले पर संदेह करने का आधार नहीं हो सकती। भारतीय परिस्थितियों को देखते हुए, हम यह उम्मीद नहीं कर सकते कि ये ग्रामीण घटना के तुरंत बाद पुलिस स्टेशन पहुँच जाएँगे। मानवीय स्वभाव के कारण, घटना के प्रत्यक्षदर्शी रहे रिश्तेदारों से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वे पुलिस को रिपोर्ट देने में पूरी तत्परता से काम लें। कभी-कभी, विपत्ति के कारण दुःखी होने के कारण, उन्हें तुरंत रिपोर्ट दर्ज कराने का विचार नहीं आता। आखिरकार, ऐसी परिस्थितियों में, रिपोर्ट दर्ज कराने के लिए पुलिस स्टेशन जाने में उन्हें कुछ समय लगना स्वाभाविक ही है। निस्संदेह, सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों ने भी इस ओर ध्यान दिलाया है कि तीव्र गुटबाजी से उत्पन्न मामलों में, विरोधी गुट के लोगों को झूठा फंसाने की प्रवृत्ति होती है। ऐसे निर्दोष व्यक्तियों को दोषी ठहराए जाने के खतरे से बचने के लिए, अदालतों को ऐसे हितबद्ध गवाहों के साक्ष्यों की अधिक सावधानी और सतर्कता से जाँच करने और साक्ष्यों की गहन जाँच के बाद भूसे से अनाज को अलग करने के लिए आगाह किया जाता है और ऐसा करते समय प्राथमिकी की विषय-वस्तु की भी सावधानीपूर्वक जाँच करनी होगी। हालाँकि, जब तक कि मनगढंत कहानी के संकेत न हों, न्यायालय केवल देरी के आधार पर प्राथमिकी में दिए गए और बाद में साक्ष्यों द्वारा पुष्ट अभियोजन पक्ष के बयान को खारिज नहीं कर सकती। ये सभी विचारणीय विषय हैं और बहुत कुछ प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है। इस मामले में तीन प्रत्यक्षदर्शी गवाह हैं। उन्होंने लगातार यह गवाही दी है कि दोनों अपीलकर्ताओं ने कृपाण से गर्दन पर चोटें पहुँचाईं। चिकित्सा साक्ष्य भी इसका पर्याप्त समर्थन करते हैं। इन परिस्थितियों में, हम विद्वान अधिवक्ता से सहमत नहीं हो पा रहे हैं कि केवल इस आधार पर पूरे मामले को खारिज कर दिया जाना चाहिए कि स्थानीय मजिस्ट्रेट तक प्राथमिकी पहुँचने में कुछ देरी हुई थी। पी डब्ल्यू 2 द्वारा पुलिस को दी गई रिपोर्ट में सभी आवश्यक विवरण दिए गए हैं। विशेष रूप से यह उल्लेख किया गया है कि इन दोनों अपीलकर्ताओं ने मृतक की गर्दन पर कृपाण से चोटें पहुँचाईं। अभियोजन पक्ष के अनुसार, यह रिपोर्ट रात लगभग 8.45 बजे दी गई थी और रिपोर्ट के आधार पर विवेचनाधिकारी ने एफआईआर की प्रतियाँ तैयार कीं और स्थानीय मजिस्ट्रेट सहित सभी संबंधित अधिकारियों को भेज दी गई, जिन्होंने इसे लगभग 2.45 बजे प्राप्त किया। इसलिए हम यह कहने में असमर्थ हैं कि अत्यधिक और अस्पष्टीकृत देरी हुई। घटनास्थल पर प्रत्यक्षदर्शियों की उपस्थिति पर संदेह करने का कोई आधार नहीं है। हमने उनके साक्ष्य का अवलोकन किया है और उन्होंने जिरह का सामना किया है। कोई भी ऐसा भौतिक विरोधाभास या चूक नहीं

है जो किसी भी तरह से उनकी सत्यता पर संदेह उत्पन्न करे। उच्च न्यायालय ने अत्यधिक सावधानी बरतते हुए अन्य तीन अभियुक्तों को संदेह का लाभ दिया क्योंकि उनके विरुद्ध आरोप व्यापक हैं। यद्यपि हम इस निष्कर्ष से पूरी तरह सहमत नहीं हैं, लेकिन चूँकि उनके दोषमुक्त होने के विरुद्ध कोई अपील नहीं है, इसलिए हमें उन्हें दोषमुक्त करने के उच्च न्यायालय के निष्कर्षों की वैधता या औचित्य पर आगे विचार करने की आवश्यकता नहीं है। जहाँ तक अपीलकर्ताओं का संबंध है, उनके विरुद्ध साक्ष्य ठोस और विश्वसनीय हैं और जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, उनके विरुद्ध विशिष्ट प्रत्यक्ष कृत्यों का आरोप लगाया गया है। इसलिए हमें हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं दिखता। अतः, अपील खारिज की जाती है।

(जोर दिया गया)

65. फिर **रविंदर कुमार और अन्य बनाम पंजाब राज्य (2001) 7 एससीसी 690** में, एफआईआर दर्ज करने में दो दिन की देरी हुई। इसमें, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित प्रासंगिक टिप्पणियाँ कीं:

"13. एफआईआर दर्ज करने में देरी के आधार पर अभियोजन पक्ष के मामलों पर हमला आपराधिक मामलों में एक रूढ़िबद्ध अतिरेक के रूप में लगभग अटक गया है। अधिकांश आपराधिक मामलों में यह एक आवर्ती विशेषता है कि पुलिस को पहली सूचना देने में कुछ देरी होती है। यह याद रखना होगा कि कानून ने एफआईआर दर्ज करने के लिए कोई समय निर्धारित नहीं किया है। इसलिए विलंबित एफआईआर अवैध नहीं है। बेशक एफआईआर का शीघ्र और तत्काल दर्ज करना आदर्श है क्योंकि इससे अभियोजन पक्ष को दोहरा लाभ होगा। पहला यह है कि इससे बिना किसी समय चूक के विवेचना शुरू हो जाती है। दूसरा यह है कि यह किसी भी संभावित झूठे बयान को गढ़ने का अवसर समाप्त कर देता है। तुरंत दर्ज की गई एफआईआर के इन दो सकारात्मक बिंदुओं को छोड़कर, विलंबित एफआईआर के नुकसान किसी भी अभियोजन मामले के लिए घातक नहीं हो सकते। इस बात को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता कि तुरंत दर्ज की गई एफआईआर भी उसमें शामिल बयान की प्रामाणिकता की बिना शर्त गारंटी नहीं है।

14. जब इस आधार पर आलोचना की जाती है कि किसी मामले में एफआईआर देरी होने पर न्यायालय को यह देखना होगा कि इतनी देरी क्यों हुई। एफआईआर दर्ज होने में देरी होने के कई वास्तविक कारण हो सकते हैं। ग्रामीण लोग बिना समय गंवाए पुलिस को अपराध की सूचना देने की आवश्यकता से अनभिज्ञ हो सकते हैं। शहरी लोगों में भी इस तरह की अनभिज्ञता आम है। वे तुरंत पुलिस स्टेशन जाने के बारे में नहीं सोच सकते। एक और संभावना यह है कि सूचना देने वालों के लिए पुलिस स्टेशन पहुँचने के लिए पर्याप्त परिवहन सुविधाओं का अभाव हो। तीसरी, जो एक आम बात है, यह है कि मृतक के परिजनों को आवश्यक जानकारी देने के लिए पुलिस स्टेशन जाने हेतु मानसिक शांति या शांतचित्तता प्राप्त करने में काफी समय लग सकता है। एक और कारण यह है कि जिन व्यक्तियों को ऐसी सूचना देनी होती है, वे स्वयं शारीरिक रूप से इतने अक्षम हो सकते हैं कि पुलिस को घटना के बारे में कुछ अस्पष्ट जानकारी मिलने पर उन तक पहुँचना पड़ता है।

15. हम उन मामलों की विस्तृत सूची नहीं दे रहे हैं जिनकी वजह से एफआईआर दर्ज करने में देरी हो सकती है। हमारा प्रयास यह इंगित करने का है कि यह स्पष्ट है कि केवल दर्ज होने में देरी के आधार पर प्राथमिकी को अमान्य मानने की आपराधिक अदालतों में की गई पुरानी माँग को कानूनी परिणाम के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। किसी भी स्थिति में, जहाँ प्राथमिकी दर्ज करने में देरी होती है, न्यायालय को इसके कारणों

पर गौर करना चाहिए और यदि ऐसे कारण किसी मनगढंत कहानी के कारण नहीं हैं, तो केवल प्राथमिकी दर्ज करने में हुई देरी को कोई महत्व नहीं दिया जाएगा। .....

...

16. वर्तमान मामले में, निस्संदेह, पुलिस को सूचना देने में दो दिन की लंबी देरी हुई, लेकिन शोक संतप्त विधवा को इस बात का पूरा यकीन नहीं था कि उसने अपने पति को हमेशा के लिए खो दिया है, जब तक कि उसके देवर ने शव की पहचान करने के बाद उसे यह पुष्टि नहीं कर दी कि वह शव उसके पति का ही है। उसके द्वारा झेला गया प्रारंभिक तनाव और संशय शोक की एक विशाल लहर में बदल गया होगा। यह समझ में आता है कि ऐसी स्थिति में एक महिला को अपने पति की अंतिम यात्रा के बारे में अजनबियों को बताने के लिए कुछ हद तक शांति पाने में कितना समय लगेगा। इसलिए हम पाते हैं एफआईआर दर्ज करने में हुई देरी के आधार पर इस तर्क में कोई दम नहीं है।

(जोर दिया गया)

66. इस प्रकार की घटना में, जहाँ जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, यह साबित हो गया है, यह स्वीकार नहीं किया जा सकता कि इसमें देरी हुई थी। ऐसी दर्दनाक घटनाओं का सामना करने वाले पक्षों को अपनी स्थिति को तर्कसंगत बनाने और भविष्य की कार्रवाई की योजना बनाने के लिए कुछ उचित समय अवश्य ही लगाना चाहिए। यह ध्यान देने योग्य है कि यह उतना सरल नहीं है जितना कभी-कभी प्रतीत होता है कि घटना के कुछ घंटों के भीतर प्राथमिकी क्यों दर्ज नहीं की गई। प्राथमिकी दर्ज करने के लिए दृढ़ विश्वास, साहस, प्रयास और कभी-कभी संदर्भ की भी आवश्यकता होती है। जहाँ तक इन तथ्यों से यह साबित होता है कि 'एक्स' भ्रमित थी और अगली सुबह तक स्पष्ट रूप से सोचने में असमर्थ थी और उसने 12.09.2016 को पहली बार अपने परिवार को यह बात बताई, तो उसके परिवार को भी प्राथमिकी दर्ज कराने में समय लगा होगा। सबसे पहले, यह खुलासा किया गया है कि घटना उस समय हुई जब पीड़िता 'एक्स' अपने मंगेतर के साथ समय बिता रही थी, जिस पर भी हमला किया गया, पहले उसे नग्न अवस्था में फिल्माया गया और उसके बाद अभियुक्त द्वारा उसे घर से बाहर निकाल दिया गया। अंततः, 'एक्स' की वह सगाई टूट गई। यह तथ्य मुकदमे में भी सिद्ध हुआ। इसलिए, न्यायालय सूचना देने वाले पक्ष को छूट दे सकता है और उसे हर घंटे या दिन के लिए उत्तरदायी नहीं ठहरा सकता। जहाँ तक प्राथमिकी दर्ज करने में अत्यधिक देरी नहीं हुई है, विद्वान अवर न्यायालय को प्रत्यक्ष साक्ष्य को खारिज नहीं करना चाहिए था।

67. जहाँ तक (ऊपर उल्लेखित) विद्वान अवर न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष पूरी तरह से विकृत हैं, वहाँ विद्वान अवर न्यायालय द्वारा दिए गए दोषमुक्त करने के आदेश के विरुद्ध अपील क्षेत्राधिकार उत्पन्न होने का अवसर मौजूद है।

68. जहाँ तक निष्कर्ष निकाला जा सकता था, हम पुनः ध्यान दिलाते हैं कि विद्वान अवर न्यायालय विलंब, आंतरिक और बाहरी चोटों की अनुपस्थिति और पक्षों के बीच खराब संबंधों का हवाला देकर इस असंतुलित निष्कर्ष पर पहुँची है कि घटना का कारण कोई नहीं था। सिद्ध तथ्यों के आधार पर स्वीकार्य सटीक निष्कर्ष

के संबंध में, इसमें कोई संदेह नहीं है कि 'एक्स' की गवाही/बयान पूरी तरह से सुसंगत रहा। उसने बिना किसी दोष के अपना पक्ष रखा।

69. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, न केवल उसकी गवाही सुसंगत थी, बल्कि 'आर' द्वारा भी पूरी तरह से समर्थित थी, जो बलात्कार होने से पहले तक मौजूद थी। उस साक्ष्य में किसी भी प्रकार का संदेह नहीं उभरा। पुनः, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, 'एक्स' की गवाही दोषसिद्धि के लिए पर्याप्त थी क्योंकि उसकी गवाही एक घायल गवाह के रूप में उच्चतर स्तर पर है। जब तक उसकी गवाही में कोई उचित संदेह उत्पन्न नहीं होता, विद्वान विचारण न्यायालय अपीलकर्ता के अपराध के अलावा किसी अन्य निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकता था। व्यक्तियों/सह अपराधियों की संख्या के संबंध में उल्लिखित मामूली विसंगतियाँ भी वर्तमान मामले में महत्वहीन हैं, क्योंकि अभियोजन पक्ष का यह कथन नहीं है कि अभियुक्त के अलावा किसी अन्य व्यक्ति ने 'एक्स' के साथ बलात्कार किया था या बलात्कार में उसके सहयोगी भी थे। अन्य व्यक्तियों को केवल वे व्यक्ति बताया गया था जो अभियुक्त द्वारा 'एक्स' के साथ बलात्कार करने से पहले उसके साथ मौजूद थे। क्या यह अपराध माना जाएगा या नहीं और क्या अभियोजन पक्ष ने उनकी दोषसिद्धि न कराने में भी गलती की है, यह विचाराधीन मुकदमे से बाहर का मुद्दा है। इसलिए, विद्वान अवर न्यायालय की राय इस तथ्य से प्रभावित या प्रभावित नहीं हुई होगी कि किसी समय अभियोजन पक्ष के गवाहों ने बताया था कि बलात्कार की घटना को अंजाम देने से पहले अभियुक्त के साथ उसके 3-4 साथी मौजूद थे। इस हद तक कि उन्हें कभी भी उस घटना का कारण नहीं बताया गया, यह तथ्य कि उनकी पहचान नहीं की गई, उन पर मुकदमा नहीं चलाया गया या उन्हें दोषी नहीं ठहराया गया, अप्रासंगिक ही रहा।

70. इसी प्रकार, यह तथ्य कि 'एक्स' के मंगेतर 'एस' को परीक्षित नहीं किया गया, इस मुद्दे से असंगत है। पुनरावृत्ति की कीमत पर, यह ध्यान दिया जा सकता है कि मुकदमा केवल घायल गवाह 'एक्स' के प्रत्यक्ष साक्ष्य के आधार पर समाप्त हो सकता था। हमारे सुविचारित दृष्टिकोण से, मुकदमे में दोष के अलावा कोई अन्य निष्कर्ष सिद्ध नहीं हुआ।

71. उपरोक्त कारणों से, हम पाते हैं कि यह दोषमुक्त करने के आदेश में हस्तक्षेप करने का एक उपयुक्त मामला है। तदनुसार, शासकीय अपील **स्वीकार** की जाती है। एस.टी. संख्या 75/2017 (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम पुष्पेंद्र उर्फ गब्बर) में ए.एस.जे./एफ.टी.सी.-I/विशेष न्यायाधीश, गैंगस्टर अधिनियम, औरैया के न्यायालय द्वारा दिनांक 08.12.2023 को पारित निर्णय एवं आदेश, जो मुकदमा अपराध संख्या 694/2016 से उत्पन्न हुआ था, जिसमें अभियुक्त को धारा 452, 376, 506 भारतीय दंड संहिता, थाना औरैया, जिला औरैया के अंतर्गत आरोप से बरी कर दिया गया था, **अपास्त** किया जाता है। हम अभियुक्त को धारा 376, 452 और 506 भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत अपराध का दोषी मानते हैं।

72. अभियुक्त के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया। सजा के मुद्दे पर, अभियुक्त के विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना की है कि अभियुक्त को न्यूनतम सजा दी जाए क्योंकि अभियुक्त पहले ही मुकदमे के दौरान लगभग

7 साल जेल में बिता चुका है। हमने अभियुक्त के विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई प्रार्थना पर विधिवत विचार किया है। सिद्ध तथ्यों के मद्देनजर, हम पाते हैं कि अभियुक्त को आईपीसी की धारा 376 के अंतर्गत किए गए अपराध के लिए 7 साल की सजा, साधारण कारावास की न्यूनतम सजा दी जानी चाहिए, साथ में 45,000/- रुपये का जुर्माना, जुर्माना अदा न करने पर उसे 6 महीने का अतिरिक्त साधारण कारावास भुगतना पड़ सकता है; आईपीसी की धारा 452 के अंतर्गत 2 साल का साधारण कारावास और 5000/- रुपये का जुर्माना, जुर्माना अदा न करने पर 3 महीने का साधारण कारावास; आईपीसी की धारा 506 के अंतर्गत 2 साल का साधारण कारावास। सभी सजाएं साथ-साथ चलेंगी।

73. हम जानते हैं कि अभियुक्त 6 साल 9 महीने और 11 दिन (वास्तविक) तक सीमित रहा होगा। अभियुक्त जेल नियमों के अंतर्गत छूट का भी हकदार होगा। इस आदेश को प्रभावी बनाने के लिए, सर्वप्रथम, कारावास की अवधि और छूट की गणना जेल अधीक्षक, जिला कारागार, इटावा, उत्तर प्रदेश द्वारा की जाए, जहाँ अभियुक्त को विचारण लंबित रहने के दौरान निरुद्ध किया गया था। इसकी विधिवत सूचना आज से 30 दिनों के भीतर ट्रायल कोर्ट के माध्यम से अभियुक्त को दी जा सकती है। अभियुक्त जमानत पर है। यदि अभियुक्त को शेष सजा का कोई भी भाग पूरा करना आवश्यक हो, तो वह 30.07.2025 को या उससे पहले आत्मसमर्पण कर सकता है। ऐसा न करने पर, अवर न्यायालय को कानून के अनुसार दंडात्मक कार्रवाई करने का निर्देश दिया जाता है। अवर न्यायालय द्वारा अनुपालन रिपोर्ट भी प्रस्तुत की जाए।

74. इस न्यायालय द्वारा अधिरोपित जुर्माना, यदि अभियुक्त द्वारा जमा कर दिया जाता है, तो पीड़िता 'एक्स' को देय होगा।

75. साथ ही, सूचनाकर्ता और पीड़िता द्वारा दायर की गई धारा 372 सीआरपीसी के अंतर्गत आपराधिक अपील संख्या 83/2024 **स्वीकार** की जाती है।

76. अवर न्यायालय का रिकॉर्ड इस आदेश की एक प्रति के साथ संबंधित न्यायालय को लौटाया जाए।

<u>अनुसार :- संदीप जैन, न्यायमूर्ति (सहमत)</u>

मैंने अपने विद्वान भाई द्वारा तैयार किए गए निर्णय का अध्ययन किया है और मैं उनके तर्क और निष्कर्ष से पूरी तरह सहमत हूँ। **मैं उन तथ्यों और साक्ष्यों को नहीं दोहरा रहा हूँ जिनका उल्लेख मेरे विद्वान भाई ने अपने निर्णय में पहले ही कर दिया है।**

1. अवर न्यायालय ने अभियोजन पक्ष के कथन पर निम्नलिखित आधारों पर अविश्वास किया है:-

क) कथित घटना 11.09.2016 को दोपहर लगभग 01:30 बजे हुई, लेकिन प्राथमिकी 14.09.2016 को शाम 05:30 बजे 'एक्स' के भाई, पी डब्ल्यू-2 द्वारा दर्ज कराई गई। घटनास्थल और पुलिस स्टेशन के बीच की दूरी

मात्र 2 किमी थी। अवर न्यायालय ने माना है कि प्राथमिकी दर्ज करने में तीन दिन की देरी हुई और अभियोजन पक्ष इस देरी के लिए कोई स्पष्टीकरण देने में विफल रहा।

(ख) अवर न्यायालय ने उल्लेख किया है कि विद्वान डी.जी.सी. ने देरी का कारण यह बताया है कि डर के कारण 'एक्स' के परिवार के सदस्य प्राथमिकी दर्ज नहीं करा सके।

(ग) अभियोजन पक्ष द्वारा कथित घटना का कोई हेतुक नहीं बताया गया है।

(घ) अभियुक्त को इस मामले में दुश्मनी के कारण झूठा फंसाया गया है।

(ङ) अभियुक्त 'एक्स' के सामने अश्लील गाने गाता था, लेकिन इस संबंध में पुलिस में कोई शिकायत दर्ज नहीं कराई गई और इस कारण अभियुक्त को झूठा फंसाया गया है।

(च) कथित घटना के समय, 'एक्स' का मंगेतर 'एस' भी 'एक्स' के साथ मौजूद था, लेकिन अभियोजन पक्ष द्वारा उसे परीक्षित नहीं किया गया।

(छ) पीडब्ल्यू-2 की साक्षरता के संबंध में पीडब्ल्यू-1 'एक्स' और सूचनाकर्ता पीडब्ल्यू-2 की गवाही में विरोधाभास है।

(ज) सूचनादाता पी.डब्लू. 2 और 'आर.' पी.डब्लू. 6 की गवाही में, कथित घटना/घटना के बाद फोन द्वारा घटना की जानकारी देने के तरीके में गंभीर विरोधाभास है।

(झ) घटना के बाद 'एक्स' पी.डब्लू.-1 अपने घर कैसे पहुँची, इस बारे में गवाहों की गवाही में गंभीर विरोधाभास है।

2. अब मैं, विद्वान अवर न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्षों का विस्तार से विश्लेषण करता हूँ।

3. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***सत्यपाल बनाम हरियाणा राज्य, (2009) 6 एससीसी 635*** के मामले में माना है कि बलात्कार के मामले में प्राथमिकी दर्ज करने में देरी एक सामान्य घटना है। आमतौर पर 'एक्स' का परिवार 'एक्स' पर कलंक नहीं लगाना चाहेगा।

4. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम प्रेम सिंह (2009) 1 एससीसी 420*** के मामले में माना है कि यौन उत्पीड़न के मामले में देरी की तुलना अन्य अपराधों से जुड़े मामले से नहीं की जा सकती। पुलिस स्टेशन में शिकायत दर्ज कराने आने से पहले अभियोक्ता और उसके परिवार के सदस्यों के मन में कई कारक आते हैं। भारत में प्रचलित परंपराबद्ध समाज में, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में, केवल इस आधार पर अभियोजन पक्ष के मामले को खारिज करना काफी असुरक्षित होगा कि एफआईआर दर्ज करने में कुछ देरी हुई है।

5. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **सतपाल सिंह बनाम हरियाणा राज्य (2010) 8 एससीसी 714** के मामले में माना है कि यौन अपराधों में एफआईआर दर्ज करने में देरी को एक अलग पैमाने से देखा जाना चाहिए। यौन अपराधों के मामले में, मानदंड पूरी तरह से अलग हो सकते हैं। चूंकि परिवार का सम्मान शामिल है, इसलिए इसके सदस्यों को यह तय करना होगा कि मामले को न्यायालय में ले जाना है या नहीं। ऐसी स्थिति में,

अभियोक्ता के करीबी रिश्तेदारों को यह तय करने में समय लग सकता है कि क्या कार्रवाई का रास्ता अपनाया जाना चाहिए। इस प्रकार, देरी होना तय है।

6. वर्तमान मामले में, घटना के संबंध में प्रथम सूचना रिपोर्ट 'एक्स' के भाई द्वारा दर्ज कराई गई है, जिसकी ट्रायल कोर्ट में पी.डब्लू.-2 के रूप में परीक्षा हुई है, जिसने अपनी मुख्य परीक्षा में कहा है कि अभियुक्तों के डर के कारण वह घटना दिनांक को पुलिस स्टेशन नहीं जा सका। 14.09.2016 को, अवसर पाकर वह औरैया गया और फिर एक प्रार्थना पत्र टाइप करवाया और उसके बाद उसे थानाध्यक्ष, औरैया को दिया, जिसके आधार पर प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई। जिरह में इस गवाह ने उल्लेख किया है कि घटना की तिथि को दोपहर 1:30 बजे उसके भाई ने फोन पर घटना के बारे में सूचना दी थी। उस समय उसके पिता मौजूद नहीं थे, लेकिन माँ मौजूद थीं और उसने अपनी माँ को घटना के बारे में नहीं बताया था। उसने आगे उल्लेख किया है कि उसने सबसे पहले अपने चाचा 'L' को घटना के बारे में लगभग 2:00 बजे सूचित किया था। उसी दिन उसके चाचा ने उसे 4-6 लोगों के साथ औरैया जाने को कहा था। फिर वे तीन मोटरसाइकिलों पर औरैया गए और घटनास्थल पर पहुँचे, लेकिन वहाँ कोई मौजूद नहीं था। इसके बाद, उन्हें 'एक्स' और उसके छोटे भाई का कोई पता नहीं चला। इस साक्षी ने आगे बताया है कि 'एक्स' नैनापुर गाँव में सड़क के किनारे एक *शीशम* के पेड़ के पास मिली थी, और उसके बाद वह उसे अपने घर ले आया और उस समय तक सूर्यास्त हो चुका था। इस साक्षी ने बताया है कि उस समय 'एक्स' बेहोश थी और उसके बाद उसने डॉक्टर सोम सिंह से उसका इलाज करवाया और फिर उसे कुछ दवाइयाँ दीं। रात लगभग 8-9 बजे 'एक्स' होश में आई, लेकिन उसने उससे कोई बात नहीं की। अगली सुबह उसकी 'एक्स' से बात हुई और तब 'एक्स' ने घटना के बारे में बताया, लेकिन अगले दिन वह औरैया में प्राथमिकी दर्ज कराने नहीं गया। घटना के तीसरे दिन, वह बाबा रामजी, माता, पिता और 'एक्स' के साथ औरैया गया था और शाम 5:30 बजे थाने पहुँचा था, तब पुलिस ने 'एक्स' से पूछताछ की थी। 'एक्स' पी.डब्लू.-1 ने अपनी जिरह में यह भी उल्लेख किया है कि उसकी सगाई 'एस' के साथ 16.02.2016 को हुई थी, लेकिन घटना से पहले और बाद में उसका विवाह उसके साथ नहीं हुआ था। अभियोजन पक्ष का कहना है कि घटना के समय 'एक्स' का मंगेतर 'एस' और उसका छोटा भाई 'आर' पी.डब्लू.-6 भी 'एक्स' के साथ मौजूद थे और तभी अभियुक्त अपने साथियों के साथ देशी पिस्तौल से लैस होकर आया और जबरन दरवाजा खुलवाया।

7. 'एक्स' पी.डब्लू.-1 और सूचनाकर्ता पी.डब्लू.-2 की उपरोक्त गवाही से यह स्पष्ट है कि सूचनाकर्ता को घटना के अगले दिन यानी 12.09.2016 की सुबह घटना के बारे में पूरी जानकारी मिली, लेकिन 'एक्स' और उसके परिवार के सदस्यों ने विचार-विमर्श करने में कुछ समय लिया कि प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई जाए या नहीं? यह बिल्कुल स्वाभाविक है क्योंकि उस समय 'एक्स' की सगाई 'एस' के साथ हुई थी और 'एक्स' और 'एस' के परिवार की इज्जत जुड़ी हुई थी, ऐसे में परिवार ने विचार-विमर्श किया और इस मामले में आगे बढ़ने का फैसला लेने के लिए समय लिया। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि बलात्कार के मामलों में आमतौर पर प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में देरी होती है क्योंकि परिवार की इज्जत शामिल होती है और इसे देखते हुए, ऐसे मामलों में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में देरी को एक अलग पैमाने से देखा जाना चाहिए। इसके

मद्देनजर, मेरी राय में, इस मामले में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में लगभग तीन दिनों का विलंब अभियोजन पक्ष के मामले के लिए घातक नहीं है और इससे अभियोजन पक्ष की कहानी अविश्वसनीय नहीं हो जाती है।

8. ट्रायल कोर्ट इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि अभियोजन पक्ष घटना का हेतुक साबित करने में विफल रहा है। ट्रायल कोर्ट का यह निष्कर्ष पूरी तरह से विकृत है क्योंकि यौन अपराध जुनून के अपराध हैं, जिसमें अभियोजन पक्ष की ओर से अपराध का हेतुक साबित करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

9. ट्रायल कोर्ट ने यह निष्कर्ष दर्ज किया है कि अभियुक्त को दुश्मनी के कारण झूठा फंसाया गया है। अभियुक्त 'एक्स' की मौजूदगी में अश्लील गाने गाता था लेकिन अभियुक्त के इस कृत्य के संबंध में पुलिस में कोई शिकायत दर्ज नहीं कराई गई थी। इसके विपरीत, 'एक्स' पी.डब्लू.-1 से उसकी जिरह में कहा गया है कि उसकी अभियुक्त के साथ बहुत अच्छी दोस्ती थी। 'एक्स' ने अपनी जिरह में स्पष्ट रूप से इस बात से इनकार किया है कि उसकी अभियुक्त के साथ दुश्मनी थी। 'एक्स' को यह भी बताया गया है कि वह वोडाफोन सिम नंबर 7379629374 वाले मोबाइल फोन के जरिए अभियुक्त से दिन-रात बात करती थी, जिससे उसने इनकार किया है। यह भी सुझाव दिया गया है कि अभियुक्त के साथ अन्य साथी नहीं थे और इसके अलावा अभियुक्त के पास कोई देसी पिस्तौल नहीं थी, लेकिन उसने इन सुझावों से इनकार किया है। 'एक्स' को यह भी सुझाव दिया गया है कि घटना उसकी सहमति से हुई थी।

10. 'एक्स' पी.डब्लू.-1 की उपरोक्त गवाही से, यह स्पष्ट है कि अभियुक्त के अनुसार, कथित घटना 'एक्स' की सहमति से हुई थी, जिससे 'एक्स' ने स्पष्ट रूप से इनकार किया है। 'एक्स' ने सीआरपीसी की धारा 161 और 164 के अंतर्गत अपने पिछले बयान में और साथ ही ट्रायल कोर्ट में अपने मुख्य परीक्षा और जिरह में उल्लेख किया है कि अभियुक्त ने उसके साथ बलात्कार किया है। 'एक्स' ने इस बात से भी स्पष्ट रूप से इनकार किया है कि पहले से दुश्मनी थी और इस वजह से अभियुक्त के खिलाफ झूठा मामला दर्ज करवाया गया है। एक ओर अभियुक्त यह रुख अपना रहा है कि उसके और 'एक्स' के बीच गहरी मित्रता और सहमति से शारीरिक संबंध थे और दूसरी ओर इसके विपरीत रुख अपनाया गया है कि दुश्मनी के कारण उसे इस मामले में झूठा फंसाया गया है। अभियुक्त द्वारा लिए गए ये दोनों रुख एक-दूसरे के विरोधाभासी हैं। इस प्रकार, ट्रायल कोर्ट ने यह निष्कर्ष दर्ज करके स्पष्ट रूप से अवैधता की है कि अभियुक्त को झूठा फंसाया गया है।

11. ट्रायल कोर्ट इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि चूंकि 'एक्स' का मंगेतर 'एस' घटना के समय मौजूद था, इसलिए अभियोजन पक्ष ने ट्रायल कोर्ट में उसे परीक्षित किया होगा और मुकदमे से उसकी अनुपस्थिति ने अभियोजन पक्ष की कहानी में गंभीर संदेह पैदा किया है। 'एक्स' पी.डब्लू.-1 ने अपनी जिरह में कहा है कि घटना से पहले 16.02.2016 को उसकी 'एस' के साथ सगाई हुई थी, लेकिन 'एस' के साथ उसका विवाह नहीं हो सका क्योंकि अभियुक्त ने उसे और 'एस' को सार्वजनिक स्थान पर देसी पिस्तौल दिखाकर धमकाया था। 'एक्स' ने स्वीकार किया है कि उसका विवाह 18.06.2017 को 'एस-2' के साथ संपन्न हुई थी और उसने घटना के संबंध में अपने ससुराल वालों से कुछ भी नहीं छिपाया है। अभियोजन पक्ष का कहना है कि घटना के समय, 'एक्स' अपने

मंगेतर 'एस' और अपने छोटे भाई 'आर' पी डब्ल्यू-6 के साथ अपने घर में मौजूद थी और उस समय अभियुक्त देसी पिस्तौल से लैस होकर घर में घुस आया और 'एक्स' और उसके मंगेतर 'एस' को कपड़े उतारने का आदेश दिया और ऐसा न करने पर गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी दी। कपड़े उतारने के बाद, उसने एक वीडियो फिल्म बनाई और उसके बाद 'एक्स' के मंगेतर को घर से बाहर निकाल दिया गया और अभियुक्त ने 'एक्स' के साथ बलात्कार किया। 'आर' पी.डब्लू.-6 ने अपने मुख्य परीक्षण में उल्लेख किया है कि अभियुक्त दिनांक 11.09.2016 को लगभग 1:30 बजे घटनास्थल पर पहुंचा, उस समय दरवाजा बंद था, अभियुक्त देशी पिस्तौल से लैस था, उसके 3-4 साथी भी मौजूद थे और उसके बाद अभियुक्त ने पी.डब्लू.-6 पर हमला किया और उसे घर से बाहर निकाल दिया।

12. उपरोक्त साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि घटना के बाद 'एक्स' की 'एस' के साथ सगाई टूट गई थी और 'एक्स' का 'एस' के साथ विवाह नहीं हो सका था। यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इस घटना के कारण 'एस' और उसके परिवार का सम्मान धूमिल हुआ था क्योंकि उसकी 'एक्स' के साथ सगाई हो चुकी थी, इस प्रकार, उसे अभियोजन पक्ष के गवाह के रूप में परीक्षित नहीं किया जा सका, लेकिन उसकी गैर-परीक्षा के कारण अभियोजन पक्ष की कहानी पर संदेह नहीं किया जा सकता है। ट्रायल कोर्ट ने 'एस' को परीक्षित न करने के कारण अभियोजन पक्ष की कहानी पर संदेह करने में गंभीर अवैधता की है।

13. ट्रायल कोर्ट ने यह निष्कर्ष दर्ज किया है कि सूचनाकर्ता पी.डब्लू.-2 की साक्षरता और घटना के बाद जिस तरीके से घटना की जानकारी दी गई, उसके संबंध में गवाही में विरोधाभास है। यह स्पष्ट है कि उपरोक्त दोनों ही बातें अप्रासंगिक हैं। पी.डब्लू.-2 की साक्षरता और जिस तरीके से घटना की जानकारी पी.डब्लू.-2 को दी गई, उसका वास्तविक घटना से कोई लेना-देना नहीं है। ट्रायल कोर्ट ने अभियोजन पक्ष की कहानी पर अविश्वास करते हुए उपरोक्त अप्रासंगिक तथ्यों पर विचार करके खुद को गंभीर रूप से गुमराह किया है।

14. ट्रायल कोर्ट ने यह निष्कर्ष दर्ज किया है कि 'एक्स' का मेडिकल साक्ष्य 'एक्स' की गवाही की पुष्टि नहीं करता है और डीएनए रिपोर्ट भी उपलब्ध नहीं है, जिससे अभियोजन पक्ष की कहानी पर संदेह पैदा होता है।

15. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **राजस्थान राज्य बनाम एन.के. (2000) 5 एससीसी 30** (तीन न्यायाधीशों द्वारा), ने माना है कि बलात्कार के मामले में अभियोक्ता की गवाही को किसी अन्य गवाह की गवाही की तरह संभावनाओं के आधार पर समझा जाना चाहिए और दोषसिद्धि पूरी तरह से ऐसी गवाही पर आधारित हो सकती है लेकिन अगर न्यायालय को उसकी गवाही को स्वीकार करना मुश्किल लगता है, तो वह उसकी गवाही पर आश्वासन मांग सकती है जो अन्य सबूतों से पुष्टि के रूप में हो सकती है। कानून का कोई नियम नहीं है कि उसकी गवाही को भौतिक विवरणों में पुष्टि के बिना स्वीकार नहीं किया जा सकता है। यदि अभियोक्ता की गवाही विश्वास पैदा करती है, तो भौतिक विवरणों में उसके बयान की पुष्टि की मांग किए बिना उस पर भरोसा किया जाना चाहिए। यह आगे माना गया है कि अभियोक्ता सहमति देने वाला पक्ष था या नहीं, अभियोक्ता के इस सबूत पर कि उसे जबरन यौन संबंध के अधीन किया गया था, सामान्य रूप से विश्वास किया जाना चाहिए

जब तक कि उसकी सहमति का अनुमान लगाने के लिए कोई सामग्री न हो। चिकित्सा परीक्षण की तिथि पर अभियोक्ता के शरीर पर चोटों के स्पष्ट निशानों की अनुपस्थिति का यह अर्थ नहीं है कि उसे कोई चोट नहीं लगी थी या उसने अपराध के समय कोई प्रतिरोध नहीं किया था।

16. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम मंगो राम, (2000) 7 एससीसी 224*** (तीन न्यायाधीशों द्वारा) के मामले में यह माना है कि आतंक के डर से अभियोक्ता द्वारा शरीर को प्रस्तुत करना सहमति नहीं है। अभियोक्ता द्वारा प्रतिरोध किया गया था या नहीं यह प्रासंगिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है। घटना के तीन दिन बाद जब अभियुक्त की जांच की गई तो अभियोक्ता के साथ-साथ अभियुक्त के शरीर पर हिंसा के निशानों की अनुपस्थिति ज्यादा महत्व की नहीं थी। यह भी माना गया कि धारा 375 आईपीसी के प्रयोजनों के लिए सहमति के लिए न केवल कृत्य के महत्व और नैतिक गुणवत्ता के ज्ञान के आधार पर खुफिया जानकारी के प्रयोग के बाद स्वैच्छिक भागीदारी की आवश्यकता होती है, बल्कि प्रतिरोध और सहमति के बीच पूरी तरह से चुनाव करने के बाद भी सहमति की आवश्यकता होती है। यह भी माना गया कि बलात्कार का अपराध गंभीर होने के कारण, न्यायालय को सावधानीपूर्वक ध्यान देना चाहिए और अधिक संवेदनशीलता दिखानी चाहिए, साक्ष्य का मूल्यांकन व्यापक संभावनाओं के आधार पर किया जाना चाहिए।

17. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***उड़ीसा राज्य बनाम ठाकरा बेसरा, (2002) 9 एससीसी 86*** के मामले में यह माना है कि यदि अभियोक्ता का साक्ष्य विश्वास पैदा करता है, तो उसके बयान के भौतिक विवरणों की पुष्टि किए बिना उस पर भरोसा किया जाना चाहिए। यदि किसी कारणवश न्यायालय को उसकी गवाही पर पूर्ण विश्वास करना कठिन लगता है, तो वह ऐसे साक्ष्य की तलाश कर सकता है जो उसकी गवाही को आश्वस्त कर सके, तथा किसी सह-अपराधी के मामले में अपेक्षित पुष्टिकरण को छोड़ दे। अभियोक्ता की गवाही को पूरे मामले की पृष्ठभूमि में देखा जाना चाहिए और यौन उत्पीड़न से जुड़े मामलों से निपटते समय अवर न्यायालय को अपनी ज़िम्मेदारी के प्रति सजग और संवेदनशील होना चाहिए।

18. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***दस्तगीर सब बनाम कर्नाटक राज्य, (2004) 3 एससीसी 106*** के मामले में यह माना है कि गुप्तांगों में चोटों का न होना बलात्कार की संभावना से इनकार नहीं करता।

19. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***पृथी चंद बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य, एआईआर 1989 एससी 702 और नारायणम्मा बनाम कर्नाटक राज्य, (1994) 5 एससीसी 728*** के मामले में यह माना है कि योनि स्मीयर में शुक्राणुओं की अनुपस्थिति मात्र अभियोजन पक्ष के मामले की सत्यता पर संदेह उत्पन्न नहीं कर सकती।

20. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***राजस्थान राज्य बनाम नूर खान, 2000 (3) सुप्रीम लॉ टुडे 389*** और ***पंजाब राज्य बनाम रामदेव सिंह, (2004) 1 एससीसी 421*** के मामले में यह माना है कि यदि 'एक्स' संभोग करने की आदी थी, तो उसने कानून में किसी भी व्यक्ति को उसके साथ बलात्कार करने की अनुमति नहीं दी और न ही

दे सकती है। अभियोक्ता के शरीर पर चोटों की अनुपस्थिति जरूरी नहीं कि आरोप के झूठ होने का सबूत हो या 'एक्स' की ओर से सहमति का सबूत हो।

21. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***मोहम्मद इमरान खान बनाम दिल्ली राज्य एनसीटी, 2012 (1) एससीसी (सीआरएल) 240*** के मामले में यह माना है कि यदि किसी अन्य गवाह ने अपराध होते नहीं देखा है, इसलिए अन्य गवाहों की गैर-परीक्षा महत्वहीन है। यदि 'एक्स' की एकमात्र गवाही विश्वास पैदा करती है और विश्वसनीय पाई जाती है, तो वह पर्याप्त है। किसी पुष्टिकरण की आवश्यकता नहीं है।

22. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***सुरेश एन. भुसारे एवं अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य (1999) 1 एससीसी 220*** के मामले में यह माना है कि जहां अभियोक्ता के साक्ष्य में गंभीर कमियां पाई जाती हैं और अन्य सामग्री के साथ असंगतताएं पाई जाती हैं, अभियोक्ता अपनी ओर से सहमति को खारिज करने के उद्देश्य से सामग्री बिंदु पर जानबूझकर सुधार कर रही है और उसके शरीर पर कोई चोट नहीं है, भले ही उसका संस्करण अन्यथा हो, उसके साक्ष्य पर कोई भरोसा नहीं किया जा सकता है।

23. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***तमीजुद्दीन @ तम्मू बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) (2009) 15 एससीसी 566*** के मामले में यह माना है कि यह सच है कि बलात्कार के मामले में अभियोक्ता के साक्ष्य को प्रमुखता से ध्यान में रखा जाना चाहिए, लेकिन यह मानना कि इस साक्ष्य को स्वीकार किया जाना चाहिए, भले ही कहानी असंभाव्य हो और तर्क को झुठलाती हो, उन सिद्धांतों का उल्लंघन होगा जो एक आपराधिक मामले में साक्ष्य के मूल्यांकन को नियंत्रित करते हैं।

24. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***महाराष्ट्र राज्य व अन्य बनाम मधुकर नारायण मार्डीकर, एआईआर 1991 एससी 207, पंजाब राज्य बनाम गुरमीत सिंह व अन्य, एआईआर 1996 एससी 1393 और उत्तर प्रदेश राज्य बनाम पप्पू उर्फ यूनुस व अन्य, एआईआर 2005 एससी 1248*** के मामले में यह माना है कि उन मामलों में भी जहाँ यह दर्शाने के लिए कुछ सामग्री मौजूद है कि 'एक्स' को संभोग की आदत थी, 'एक्स' के "आसान गुणों वाली" या "बुरे नैतिक चरित्र" वाली महिला होने का कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता। ऐसी महिला को अपनी गरिमा की रक्षा करने का अधिकार है और केवल इसी कारण से उसके साथ बलात्कार नहीं किया जा सकता। उसे किसी के भी साथ यौन संबंध बनाने से इनकार करने का अधिकार है क्योंकि वह किसी के भी द्वारा यौन उत्पीड़न की शिकार या असुरक्षित वस्तु नहीं है। केवल इसलिए कि एक महिला आसान गुणों वाली है, उसके साक्ष्य को केवल इसी आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता, बल्कि उसका सावधानीपूर्वक मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

25. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***नरेंद्र कुमार बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) AIR 2012 SC 2281*** के मामले में यह माना है कि अभियोजन पक्ष को अपने मामले को उचित संदेह से परे साबित करना होगा और वह बचाव पक्ष के मामले की कमज़ोरी का सहारा नहीं ले सकता। अभियुक्त की दोषसिद्धि दर्ज करने

के लिए उचित कानूनी साक्ष्य और सामग्री रिकॉर्ड पर होनी चाहिए। दोषसिद्धि केवल अभियोजन पक्ष की गवाही पर आधारित हो सकती है, बशर्ते कि वह उसकी गवाही को पुष्ट करे। हालाँकि, यदि न्यायालय के पास अभियोजन पक्ष के बयान को उसके प्रथम दृष्टया आधार पर स्वीकार न करने का कारण है, तो वह पुष्टिकरण की अपेक्षा कर सकता है। यदि साक्ष्य को समग्र रूप से पढ़ा जाए और अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत कहानी असंभाव्य पाई जाए, तो अभियोजन पक्ष का मामला खारिज किए जाने योग्य हो जाता है।

26. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित उपरोक्त सिद्धांतों से यह स्पष्ट है कि जहाँ 'एक्स'/अभियोक्ता का साक्ष्य विश्वसनीय, भरोसेमंद और विश्वास पैदा करने वाला है, वहाँ दोषसिद्धि केवल उसकी गवाही के आधार पर की जा सकती है। हालाँकि, यदि न्यायालय के पास अभियोक्ता के कथन को उसके अंकित मूल्य पर स्वीकार न करने का कारण है, तो वह पुष्टिकरण की अपेक्षा कर सकता है और यदि साक्ष्य को समग्रता में पढ़ा जाए और अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत कहानी असंभाव्य पाई जाए, तो अभियोक्ता का मामला खारिज किए जाने योग्य हो जाता है। यह भी स्पष्ट है कि बलात्कार के मामले में 'एक्स' एक सहयोगी नहीं, बल्कि एक घायल गवाह है, जिसके साक्ष्य को उचित महत्व दिया जाना चाहिए।

27. यह भी स्पष्ट है कि 'एक्स' के गुप्तांगों पर चोट का न होना, योनि स्मीयर में शुक्राणुओं का न होना, अभियोजन पक्ष के मामले को संदिग्ध नहीं बनाता है। यह भी स्पष्ट है कि यदि 'एक्स' संभोग की आदी है, तब भी उसके साथ बलात्कार नहीं किया जा सकता। यह भी स्पष्ट है कि जहां अपराध के घटित होने का कोई अन्य गवाह नहीं है, वहां अन्य गवाहों की गैर-परीक्षा महत्वहीन है और 'एक्स' की एकमात्र गवाही पर्याप्त है, यदि यह विश्वास पैदा करती है और विश्वसनीय पाई जाती है।

28. इस मामले में, 'एक्स' पीडब्लू-1 ने धारा 161 और 164 सीआरपीसी के अंतर्गत दर्ज अपने पिछले बयान में और ट्रायल कोर्ट में अपने मुख्य परीक्षा और जिरह में लगातार कहा है कि घटना 11.09.2016 को दोपहर लगभग 01:30 बजे हुई थी, जब वह अपने छोटे भाई 'आर' पीडब्लू-06 और अपने मंगेतर 'एस' के साथ अपने घर के अंदर थी, तब अभियुक्त अपने साथियों के साथ घर में जबरन घुस आया और उसने 'आर' को घर से बाहर निकाल दिया। अभियुक्त एक देसी कट्टे से लैस था, जिसने 'एक्स' और उसके मंगेतर 'एस' को कपड़े उतारने को कहा और जब उन्होंने मना किया, तो उन्हें जबरन कपड़े उतार दिए गए, इसके बाद अभियुक्त ने उनका वीडियो क्लिप बनाया और 'एस' को कपड़े पहनने दिए और घर से बाहर निकाल दिया, इसके बाद अभियुक्त ने 'एक्स' के साथ बलात्कार किया। 'एक्स' ने स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि घटना के बाद वह अर्ध-बेहोशी की हालत में थी। अभियुक्त ने 'एक्स' को धमकी दी थी कि वह घटना के बारे में किसी को न बताए, अन्यथा उसे गंभीर परिणाम भुगतने होंगे। बलात्कार के बाद, अभियुक्त 'एक्स' को जबरन मोटरसाइकिल पर ले गया और उसे नैनापुर गाँव के पास छोड़ दिया, जहाँ 'एक्स' बेहोश हो गई।

29. न्यायालय में 'एक्स' द्वारा दिए गए पिछले बयानों और ठोस साक्ष्यों में कोई भौतिक असंगति या सुधार नहीं है, जिससे 'एक्स' की गवाही अविश्वसनीय हो।

30. 'एक्स' की 15.09.2016 को प्रातः 11:30 बजे डॉ. सीमा गुप्ता पी.डब्लू.-03 द्वारा चिकित्सकीय जाँच की गई। 'एक्स' के शरीर पर निम्नलिखित चोटें पाई गईं:-

क) गर्दन के दोनों ओर भूरे रंग का खरोंच का निशान था।

ख) गर्दन के दाहिनी ओर, दाहिने कान से 8 सेमी नीचे 3 x 1.5 सेमी का खरोंच का निशान।

ग) गर्दन के बाईं ओर, बाएं कान से 7.5 सेमी नीचे 3 x 2.5 सेमी का खरोंच का निशान।

घ) दाहिने नितंब पर, मध्य से 9 सेमी दूर 6 x 3.5 सेमी का भूरे रंग का खरोंच का निशान था।

31. 'एक्स' की हाइमन पुरानी, फटी हुई और ठीक हो चुकी थी। 'एक्स' के योनि स्वैब में कोई शुक्राणु नहीं पाए गए। मेडिको लीगल रिपोर्ट में उल्लेख है कि 'एक्स' के शरीर पर संघर्ष के निशान मौजूद थे।

32. डॉ. सीमा गुप्ता पी.डब्लू.-3 ने अपने मुख्य परीक्षण में कहा है कि 'एक्स' के शरीर पर संघर्ष के निशान थे, जो बलात्कार के समय हो सकते हैं। जिरह में पी.डब्लू. 3 ने उल्लेख किया है कि 'एक्स' को लगी सभी चोटें सामान्य प्रकृति की थीं, 'एक्स' के शरीर पर कोई आंतरिक चोट नहीं पाई गई। हाइमन पुरानी, फटी हुई थी। इस गवाह ने उल्लेख किया है कि डी.एन.ए. परीक्षण के माध्यम से यह पुष्टि की जा सकती थी कि बलात्कार हुआ है या नहीं, लेकिन उसे डी.एन.ए. रिपोर्ट नहीं मिली है। उसने यह भी उल्लेख किया है कि 'एक्स' को लगी चोटें आत्मरक्षा में दी गई हो सकती हैं।

33. अवर न्यायालय ने स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि 'एक्स' की मेडिकल रिपोर्ट अभियोजन पक्ष की कहानी का समर्थन नहीं करती है, जो एक विकृत निष्कर्ष है। यह स्पष्ट है कि 'एक्स' की गर्दन और दाहिने नितंब पर साधारण चोटें आई हैं, जो डॉक्टर पी.डब्लू.-3 के अनुसार, संघर्ष के निशान हैं, जो संभवतः 'एक्स' द्वारा अपना बचाव करने की कोशिश के दौरान हुए होंगे। 'एक्स' की योनिच्छद (हाइमन) पुरानी, फटी हुई और ठीक हुई पाई गई है। इसके अलावा, 'एक्स' के योनि स्वैब में शुक्राणुओं का न होना भी अभियोजन पक्ष की कहानी को झूठा नहीं बनाता है।

34. यह भी स्पष्ट है कि विवेचनाधिकारी एस.आई. रतन सिंह पी.डब्लू.-4 द्वारा 'एक्स' का डीएनए नमूना नहीं लिया गया था। उन्होंने अपनी जिरह में यह भी स्वीकार किया है कि उन्होंने घटनास्थल से फोरेंसिक साक्ष्य एकत्र नहीं किए थे। यह सर्वविदित है कि यदि विवेचनाधिकारी द्वारा विवेचना के दौरान कोई चूक की जाती है, तो उसका लाभ अभियुक्त को नहीं दिया जा सकता। इसके मद्देनजर, मेरी राय में, घटनास्थल से फोरेंसिक सामग्री और 'एक्स' से डीएनए नमूना एकत्र न करना अभियोजन पक्ष की कहानी को अविश्वसनीय नहीं बनाता है।

35. 'एक्स' पी.डब्लू.-1 से व्यापक रूप से जिरह की गई है और उसकी जिरह में बताया गया है कि अभियुक्त के साथ उसकी बहुत अच्छी दोस्ती थी। 'एक्स' ने कहा है कि अभियुक्त के साथ उसकी कोई दुश्मनी नहीं थी। 'एक्स' ने यह भी कहा है कि वह अपने वोडाफोन मोबाइल फोन सिम नंबर 7379629374 के जरिए अभियुक्त

से दिन-रात बात करती थी और घटना के दिन उसने उपरोक्त वोडाफोन मोबाइल फोन पर अभियुक्त को आमंत्रित किया था। उसकी जिरह में यह भी कहा गया है कि जब अभियुक्त उसके घर पहुंचा तो अभियुक्त को देखकर 'एस' तुरंत 'एक्स' के घर से चला गया। उसे यह भी बताया गया है कि जब अभियुक्त उसके घर पहुंचा तो वह 'एस' के साथ अकेली थी। उन्हें यह भी बताया गया कि अभियुक्त उनके घर पर अकेले आया था और उसके पास कोई देशी हथियार नहीं था, लेकिन उन्होंने इन सभी बातों से इनकार किया है।

36. अवर न्यायालय ने जिरह के दौरान 'एक्स' के व्यवहार को भी दर्ज किया है। एक समय, जिरह के दौरान, 'एक्स' न्यायालय कक्ष में रो रही थी। जिरह में 'एक्स' ने यह भी कहा है कि घटना उसकी सहमति से हुई थी।

37. 'एक्स' के छोटे भाई 'आर' पीडब्ल्यू-6 ने भी पीडब्ल्यू-1 'एक्स' के साक्ष्य की पुष्टि की है। पीडब्ल्यू-6 ने अपने मुख्य परीक्षण में उल्लेख किया है कि 11.09.2016 को दोपहर 01:30 बजे वह, 'एक्स' और 'एस' अपने घर में मौजूद थे, तभी अभियुक्त अपने 3-4 साथियों के साथ आया। अभियुक्त देशी कट्टे से लैस था। अभियुक्त ने 'एक्स' और 'एस' के कपड़े उतरवा दिए और जब पीडब्ल्यू-6 ने विरोध किया, तो उसके साथ मारपीट की गई और उसे घर से बाहर निकाल दिया गया। इसके बाद, 'एक्स' ने पी.डब्लू.-6 को बताया कि उसके और 'एस' के कपड़े उतरवाने के बाद, अभियुक्त ने एक वीडियो क्लिप बनाई थी, 'एस' को कमरे से बाहर निकाल दिया गया और उसके बाद, अभियुक्त ने बलात्कार किया।

38. यह सही है कि 'आर' पी.डब्लू.-6 ने बलात्कार के अपराध को नहीं देखा है, लेकिन पी.डब्लू.-6 ने स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि अभियुक्त, जो एक देशी हथियार से लैस था, 'एक्स' के घर आया और उसकी उपस्थिति में, अभियुक्त ने 'एक्स' और 'एस' को कपड़े उतारने का आदेश दिया। पी.डब्लू.-6 ने स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि जब उसने विरोध किया तो उसे थप्पड़ मारा गया और घर से बाहर निकाल दिया गया।

39. यह सच है कि 'आर' पी.डब्लू.-6 बलात्कार का गवाह नहीं है, लेकिन उसकी गवाही इस बिंदु पर 'एक्स' पी.डब्लू.-1 की गवाही की पुष्टि करती है कि अभियुक्त घटना के दिन 'एक्स' के घर आया था, अभियुक्त एक देशी हथियार से लैस था और अभियुक्त ने 'एक्स' और 'एस' को कपड़े उतारने का आदेश दिया था।

40. अभियुक्त-प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार ढंग से तर्क दिया है कि अभियुक्त को वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है, लेकिन उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि 'एक्स' पी.डब्लू.-1 ने लगातार कहा है कि अभियुक्त द्वारा उसके साथ बलात्कार किया गया है और यहां तक कि जिरह में भी 'एक्स' ने सुझाव दिया है कि वह इस घटना में एक सहमति देने वाली पार्टी थी, जिससे 'एक्स' ने इनकार किया है। 'एक्स' की गवाही में कोई भौतिक असंगति या भौतिक विरोधाभास नहीं है, जिससे उसकी गवाही अविश्वसनीय हो। घटना में 'एक्स' को सामान्य चोटें आई हैं, जिसे चिकित्सक पी.डब्लू.-3 ने साबित कर दिया है। 'एक्स' पी.डब्लू.-1 को जिरह के दौरान दिए गए सुझावों से भी यह साबित होता है कि अभियुक्त घटना के समय मौजूद था। अभियुक्त के अनुसार, घटना 'एक्स' की सहमति से हुई, जिससे उसने इनकार किया है। अवर न्यायालय ने 'एक्स' के साक्ष्य

का विश्लेषण नहीं किया है और कहीं भी यह नहीं माना है कि 'एक्स' अविश्वसनीय है। अवर न्यायालय ने अभियोजन पक्ष के मामले पर केवल इस आधार पर अविश्वास किया है कि अभियुक्त और सूचनाकर्ता के बीच पूर्व से दुश्मनी है, प्राथमिकी अत्यधिक देरी से दर्ज की गई है और 'एक्स' की मेडिकल रिपोर्ट बलात्कार के अपराध/घटना का समर्थन नहीं करती है, जो पूरी तरह से विकृत निष्कर्ष हैं, जैसा कि मैंने इस निर्णय में पहले भी विश्लेषण किया है।

41. यह स्पष्ट है कि उपरोक्त विश्लेषण के मद्देनजर, केवल एक ही निष्कर्ष संभव है कि अभियुक्त ने 'एक्स' के साथ बलात्कार किया है, लेकिन ट्रायल कोर्ट ने साक्ष्य को गलत पढ़ा है और खुद को गलत दिशा दी है, जिससे न्याय का गंभीर हनन हुआ है। यह एक आदर्श मामला है जिसमें अपीलीय न्यायालय को अपने अपीलीय अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए हस्तक्षेप की आवश्यकता है।

42. दोषी अभियुक्त को दी जाने वाली सजा की मात्रा के बारे में अभियुक्त-प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता को सुना।

43. मैं अपने विद्वान भाई द्वारा दी गई सजा से पूरी तरह सहमत हूँ।

44. अभियुक्त को शेष सजा, यदि कोई हो, भुगतने के लिए संबंधित ट्रायल कोर्ट के समक्ष आत्मसमर्पण करने के लिए दो महीने का समय दिया जाता है। जेल में मुकदमे के दौरान अभियुक्त द्वारा बिताई गई किसी भी अवधि को दी गई सजा से समायोजित किया जाएगा।

(2025) 4 ILRA 1020

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 06.03.2025

समक्ष

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति अरुण भंसाली

माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र

वाणिज्यिक अपील संख्या 5 वर्ष 2025

ओमनारायणश्री एग्रीफार्मर प्राइवेट लिमिटेड .. अपीलकर्ता

बनाम

पी.एन.बी. एवं अन्य ..प्रत्यर्थीगण

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

अरुण मिश्र, विजय प्रताप सिंह

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता:
जैनेंद्र कुमार मिश्रा

क. वसूली विधि - वित्तीय परिसंपत्तियों का प्रतिभूतिकरण एवं पुनर्निर्माण एवं प्रतिभूति हित प्रवर्तन अधिनियम, 2002 - धारा 34 - सिविल प्रक्रिया संहिता - आदेश VII धारा 11 - सिविल न्यायालय का निषेध - खाता एनपीए घोषित किया गया - वाणिज्यिक न्यायालय ने इस आधार पर वादपत्र को खारिज कर दिया कि यह प्रतिबंधित है - वैधता को चुनौती दी गई - यह अभिनिर्धारित किया गया कि अपीलकर्ता द्वारा दायर वाद अधिनियम, 2002 की धारा 34 द्वारा प्रतिबंधित था क्योंकि अपीलकर्ता के खाते को एनपीए घोषित करना उसे अधिनियम, 2002 के अंतर्गत प्रदत्त शक्ति के अनुसरण में किए गए या किए जाने वाले या किए जा सकने वाले उपायों से अलग करके नहीं देखा जा सकता - *मार्डिया केमिकल्स लिमिटेड* के वाद पर भरोसा किया गया। (प्रस्तर 17 और 19)

वाणिज्यिक अपील खारिज। (ई-1)

<u>उद्धृत वादों की सूची:</u>

1. बैंक ऑफ इंडिया व अन्य बनाम मेसर्स मारुति सिविल वर्क्स; 2024 (1) आईसीसी 396
2. श्रीमती लीलाम्मा मैथ्यू बनाम मेसर्स इंडियन ओवरसीज बैंक व अन्य; 2023 इला एससीआर1
3. मार्डिया केमिकल्स लिमिटेड बनाम यू.ओ.आई. व अन्य; 2004 (4) एससीसी 311.
4. आईएफसीआई वेंचर कैपिटल फंड्स लिमिटेड बनाम एसआरजीपी कॉर्प. लिमिटेड; 2024 एससीसी ऑनलाइन डेल 1148
5. गौरव लुब्रिकेंट्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम तमिलनाडु मर्केंटाइल बैंक लिमिटेड; 2022 (6) एएलटी 529
6. जगदीश सिंह बनाम हीरालाल व अन्य; 2014 (1) एससीसी 479

(माननीय मुख्य न्यायमूर्ति अरुण भंसाली और
माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अरुण मिश्रा और प्रत्यर्थीगण संख्या 1 और 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री जैनेंद्र कुमार मिश्रा को सुना गया और अभिलेख का अवलोकन किया गया।

<u>चुनौती</u>

2. वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 की धारा 13 (1-ए) (संक्षेप में 'अधिनियम, 2015') के अंतर्गत वर्तमान अपील दायर की गई है जिसमें दिनांक 04.03.2025 के एक आदेश को चुनौती दी गई है

अनुवादित

जिसके द्वारा वाणिज्यिक न्यायालय, इलाहाबाद ने वाणिज्यिक वाद संख्या 1/2025 में अपीलकर्ता द्वारा आदेश XXXIX नियम 1 और 2 सहपठित धारा 151, सिविल प्रक्रिया संहिता (संक्षेप में सीपीसी) के अंतर्गत दायर आवेदन और साथ ही आदेश VII नियम 11(डी) सीपीसी के अंतर्गत दायर वाद को खारिज कर दिया है।

संक्षिप्त तथ्य

3. वादी ने अपना व्यवसाय चलाने के लिए प्रत्यर्थी-बैंक से नकद ऋण सीमा और सावधि ऋण सुविधा प्राप्त की और उससे संबंधित कुछ दस्तावेज़ निष्पादित किए। अपीलकर्ता और बैंक के बीच कुछ संवादों के आदान-प्रदान के बाद, अपीलकर्ता के बैंक खाते को 29/30.07.2024 को गैर-निष्पादित संपत्ति (एनपीए) घोषित कर दिया गया। अपीलकर्ता ने 2025 का वाणिज्यिक वाद संख्या 1 दायर किया, जिसमें अपीलकर्ता के खाते को एनपीए के रूप में वर्गीकृत करने वाले 30.07.2024 के नोटिस को भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा निर्धारित आवश्यकताओं के अभाव में और सावधि ऋण खाते को पुनर्निर्धारित किए बिना शून्य घोषित करने का अनुरोध किया गया। वादपत्र में एक और प्रार्थना यह की गई थी कि प्रत्यर्थीगण को मानसिक पीड़ा और वादी को हुए व्यावसायिक नुकसान के लिए 10,00,000/- रुपये (दस लाख रुपये) का हर्जाना देने का निर्देश दिया जाए।

4. दिनांक 06.08.2024 के एक आदेश द्वारा, वाणिज्यिक न्यायालय ने अपीलकर्ता द्वारा अधिनियम, 2015 की धारा 12-ए के अनिवार्य प्रावधानों का पालन करने से छूट मांगने वाले आवेदन को खारिज कर दिया। अपीलकर्ता ने आदेश से प्रथम अपील (दोषपूर्ण) संख्या 857/2024 दायर करके इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया, जिसे इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने दिनांक 21.10.2024 के आदेश द्वारा मुख्यतः इस आधार पर खारिज कर दिया कि पूर्व-संस्था मध्यस्थता और समझौते से छूट मांगने वाले आवेदन को खारिज करने वाले आदेश के विरुद्ध अपील अधिनियम के तहत विचारणीय नहीं है। इसके बाद, मामला वाणिज्यिक न्यायालय में पहुँचा, जहाँ बैंक ने आदेश VII नियम 11 सी.पी.सी. के तहत एक आवेदन दायर किया, जिसमें इस आधार पर शिकायत को खारिज करने की प्रार्थना की गई कि यह वाद **प्रतिभूतिकरण और वित्तीय परिसंपत्तियों के पुनर्निर्माण और प्रतिभूति हित प्रवर्तन अधिनियम, 2002** (संक्षेप में 'अधिनियम, 2002') के प्रावधानों द्वारा वर्जित है। अपीलकर्ता ने आदेश XXXIX नियम 1 और 2 के साथ धारा 151 सी.पी.सी. के अंतर्गत एक आवेदन भी दायर किया, जिसमें वाद लंबित रहने तक अस्थायी निषेधाज्ञा की मांग की गई और अधिनियम, 2002 के अंतर्गत बैंक द्वारा की गई कुछ आगे की कार्यवाही के आधार पर, अपीलकर्ता ने वाद पत्र में संशोधन की भी मांग की।

5. दिनांक 04.03.2025 के आक्षेपित आदेश द्वारा, वाणिज्यिक न्यायालय ने वाद को अधिनियम, 2002 की धारा 34 के अंतर्गत वर्जित पाया है और, परिणामस्वरूप, न केवल निषेधाज्ञा आवेदन को खारिज कर दिया है, बल्कि सी.पी.सी. के आदेश VII नियम 11(डी) के अंतर्गत आवेदन को स्वीकार करते हुए, वादपत्र को भी खारिज कर दिया है।

अपीलकर्ता की ओर से प्रस्तुतियाँ

6. आक्षेपित आदेश का विरोध करते हुए,अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार तर्क दिया है कि अधिनियम, 2002 की धारा 34 के अंतर्गत प्रतिबंध बिल्कुल भी लागू नहीं होगा क्योंकि उक्त प्रतिबंध किसी भी मामले से संबंधित किसी भी वाद या कार्यवाही पर लागू नहीं होता है, जिसे ऋण वसूली न्यायाधिकरण या अपीलीय न्यायाधिकरण को अधिनियम द्वारा या उसके अंतर्गत निर्धारित करने का अधिकार है। निवेदन यह है कि न्यायाधिकरण केवल अधिनियम, 2002 की धारा 17 के तहत कार्यवाही पर विचार करने के लिए सक्षम है, जो किसी भी व्यक्ति (उधारकर्ता सहित) द्वारा शुरू की जा सकती है, जो सुरक्षित लेनदार द्वारा अधिनियम की धारा 13 की उपधारा (4) में निर्दिष्ट किसी भी उपाय से व्यथित है। यह आग्रह किया जाता है कि बैंक खाते को एन.पी.ए. घोषित करना अधिनियम, 2002 की धारा 13(4) के अंतर्गत उठाए गए उपायों में से एक नहीं है और इसलिए, चूंकि न्यायाधिकरण बैंक खाते को एनपीए घोषित करने वाले आदेश/नोटिस को चुनौती देने के लिए सक्षम नहीं है, इसलिए वाणिज्यिक न्यायालय ने वाद को खारिज करके गलती की है। यह भी आग्रह किया जाता है कि वाद 06.08.2024 को दायर किया गया था और बैंक ने दुर्भावनापूर्ण तरीके से उसी दिन, यानी 06.08.2024 को अधिनियम, 2002 की धारा 13(2) के अंतर्गत नोटिस जारी किया था, और उसके बाद बैंक द्वारा जो भी कार्यवाही की गई, वह अधिनियम, 2002 की धारा 13(4) के अंतर्गत एक उपाय हो सकता है, लेकिन वाद अपने संस्थित होने की तिथि पर, विधि के अंतर्गत अनुरक्षणीय होगा। विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि किसी वाद के संबंध में कार्रवाई का कारण उसी तिथि को देखा जाना चाहिए जिस दिन वाद शुरू किया गया था और वाद को बाद के घटनाक्रमों या कार्यवाहियों के आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता, खासकर जब उन्हें बचाव पक्ष द्वारा न्यायालय के समक्ष लाया गया हो,जबकि, आदेश VII नियम 11 सी.पी.सी. के तहत आवेदन पर विचार करते समय,केवल वाद में निहित कथन को ही देखा जाना चाहिए और इसी कारण से, वाणिज्यिक न्यायालय ने वाद को खारिज करने में गलती की है।

7. प्रस्तुतियों के समर्थन में,निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया गया है:-

(i) **बैंक ऑफ इंडिया एवं अन्य बनाम मेसर्स मारुति सिविल वर्क्स,** 2024 (1) आईसीसी 396

(ii) **श्रीमती लीलाम्मा मैथ्यू बनाम मेसर्स इंडियन ओवरसीज बैंक एवं अन्य**, 2023 इला एससीआर 1.

<u>प्रत्यर्थी बैंक की ओर से प्रस्तुतियाँ</u>

8. इसके विपरीत, बैंक के विद्वान अधिवक्ता ने अपने प्रति-शपथपत्र के संदर्भ में प्रस्तुत किया है कि विभिन्न नोटिस जारी करके, अपीलकर्ता को बकाया राशि का भुगतान करने के लिए कहा गया था, हालाँकि, जब नोटिस का पालन नहीं किया गया, तो बैंक को अपीलकर्ता के बैंक खाते को एनपीए घोषित करने का पूरा अधिकार था। अधिनियम, 2002 के अंतर्गत कार्यवाही के संबंध में, प्रस्तुतीकरण यह है कि बैंक ने अधिनियम, 2002 की धारा 13 के अंतर्गत अपनी वैधानिक शक्ति का प्रयोग करते हुए सबसे पहले 06.08.2024 को उप-धारा (2) के अंतर्गत एक नोटिस जारी किया, जिसमें अपीलकर्ता को 60 दिनों के भीतर ऋण राशि चुकाने का आह्वान किया गया। अपीलकर्ता ने अधिनियम की धारा 13(3-ए) के अंतर्गत आपत्तियाँ दायर कीं, जिनका निस्तारण 26.09.2024 को किया गया, जिसमें अपीलकर्ता के विरुद्ध की गई कार्रवाई को उचित ठहराया गया। इसके बाद, 21.10.2024 को एक कब्ज़ा नोटिस जारी किया गया, जिसके बाद 06.01.2025 को एक बिक्री

नोटिस जारी किया गया, जिसमें 11.02.2025 को ई-नीलामी की तिथि निर्धारित की गई। बिक्री सूचना प्राप्त करने के बाद, अपीलकर्ता ने 16.01.2025 को आदेश XXXIX नियम 1 के अंतर्गत धारा 151 सी.पी.सी. के साथ एक आवेदन दायर किया और प्रस्तावित बिक्री के विरुद्ध निरोधक आदेश की मांग की। जब बैंक ने निषेधाज्ञा आवेदन पर आपत्ति जताई, तो अपीलकर्ता ने आदेश VI नियम 17 के अंतर्गत धारा 151 सी.पी.सी. के साथ एक आवेदन दायर किया। मूल रूप से वाद में निहित दलीलों में संशोधन के लिए प्रार्थना की गई और अधिनियम, 2002 की धारा 13(2) के तहत मांग नोटिस और धारा 13(4) के तहत कब्जे के नोटिस को चुनौती दी गई। बैंक ने 28.02.2025 को एक अनुवर्ती बिक्री नोटिस जारी किया, जिसमें ई-नीलामी की तिथि 19.03.2025 निर्धारित की गई और उपरोक्त पृष्ठभूमि तथ्यों के आधार पर वाणिज्यिक न्यायालय ने वाद और निषेधाज्ञा आवेदन को खारिज करने का अपना निर्णय उचित ठहराया, क्योंकि वाद अधिनियम, 2002 की धारा 34 के अंतर्गत वर्जित था।

9. यह भी आग्रह किया जाता है कि बैंक खाते को एन.पी.ए. घोषित करने की वैधता का परीक्षण भी ऋण वसूली न्यायाधिकरण के क्षेत्राधिकार में आती है और इसलिए, यह वाद, जैसा कि शुरू में तैयार किया गया था, स्वयं अनुपालन योग्य नहीं था और अन्यथा भी, यह अनुपालन योग्य नहीं रहा जब धारा 13(4) आदि के तहत कार्यवाही प्रारंभ की गई। अपने तर्कों के समर्थन में, प्रत्यर्थी-बैंक के विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया है:-

(i**) मार्डिया केमिकल्स लिमिटेड बनाम भारत संघ एवं अन्य,** 2004 (4) एससीसी 311।

(ii) **आईएफसीआई वेंचर कैपिटल फंड्स लिमिटेड बनाम एसआरजीपी कॉर्पोरेशन लिमिटेड,** 2024 एससीसी ऑनलाइन डेल 1148।

(iii) **गौरव लुब्रिकेंट्स प्राइवेट लिमिटेड। लिमिटेड बनाम तमिलनाडु मर्कैंटाइल बैंक लिमिटेड** 2022 (6) एएलटी 529.

(iv) **जगदीश सिंह बनाम हीरालाल एवं अन्य**, 2014 (1) एससीसी 479.

<u>विश्लेषण</u>

10. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद, न्यायालय, सर्वप्रथम, अधिनियम, 2002 की धारा 13 और उसकी प्रासंगिक उपधाराओं का उल्लेख करना उचित समझता है। प्रावधान इस प्रकार है:-

"**13. प्रतिभूति ब्याज का प्रवर्तन।**– (1) संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 (1882 का 4) की धारा 69 या धारा 69ए में निहित किसी भी बात के होते हुए भी, किसी भी सुरक्षित लेनदार के पक्ष में बनाया गया कोई भी प्रतिभूति ब्याज, न्यायालय या न्यायाधिकरण के हस्तक्षेप के बिना, ऐसे लेनदार द्वारा इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार लागू किया जा सकता है।

(2) जहाँ कोई उधारकर्ता, जो किसी सुरक्षा समझौते के तहत किसी सुरक्षित लेनदार के प्रति दायित्व के अधीन है, सुरक्षित ऋण या उसकी किसी किस्त के पुनर्भुगतान में कोई चूक करता है, **<u>और ऐसे ऋण के संबंध में उसका खाता सुरक्षित लेनदार द्वारा गैर-निष्पादित संपत्ति</u>** के रूप में वर्गीकृत किया जाता है, तो सुरक्षित लेनदार लिखित सूचना द्वारा उधारकर्ता से यह मांग कर सकता है कि वह सूचना की तिथि से साठ दिनों के

भीतर सुरक्षित लेनदार के प्रति अपनी देनदारियों का पूर्ण रूप से निर्वहन करे, अन्यथा सुरक्षित लेनदार उप-धारा (4) के अंतर्गत सभी या किसी भी अधिकार का प्रयोग।

.....

(4) यदि उधारकर्ता उप-धारा (2) में निर्दिष्ट अवधि के भीतर अपने दायित्व का पूर्णतः निर्वहन करने में विफल रहता है, तो सुरक्षित ऋणदाता अपने सुरक्षित ऋण की वसूली के लिए निम्नलिखित में से एक या अधिक उपायों का सहारा ले सकता है, अर्थात्:–

(क) उधारकर्ता की सुरक्षित परिसंपत्ति का कब्ज़ा लेना, जिसमें सुरक्षित परिसंपत्तियों की वसूली के लिए पट्टे, समनुदेशन या बिक्री के माध्यम से हस्तांतरण का अधिकार शामिल है;

(ख) उधारकर्ता के व्यवसाय का प्रबंधन अपने हाथ में लेना, जिसमें सुरक्षित परिसंपत्तियों की वसूली के लिए पट्टे, समनुदेशन या बिक्री के माध्यम से हस्तांतरण का अधिकार शामिल है:

.....

(ग) किसी भी व्यक्ति (जिसे आगे प्रबंधक कहा जाएगा) को उन सुरक्षित परिसंपत्तियों का प्रबंधन करने के लिए नियुक्त करना, जिनका कब्ज़ा सुरक्षित ऋणदाता द्वारा ले लिया गया है;

(घ) किसी भी समय लिखित सूचना द्वारा किसी भी व्यक्ति से, जिसने उधारकर्ता से कोई भी सुरक्षित परिसंपत्ति अर्जित की हैं, और जिनसे कोई धनराशि बकाया है, यह अपेक्षा करना या उधारकर्ता को सुरक्षित ऋणदाता को उतनी राशि का भुगतान करना पड़ सकता है, जितनी सुरक्षित ऋण का भुगतान करने के लिए पर्याप्त हो।"

(हमारे द्वारा बल दिया गया)

11. धारा 13 का एक संक्षिप्त अवलोकन यह दर्शाता है कि जब भी किसी सुरक्षित ऋणदाता के पक्ष में कोई प्रतिभूति हित सृजित होता है, तो उसे, न्यायालय या न्यायाधिकरण के हस्तक्षेप के बिना, ऐसे ऋणदाता द्वारा अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार प्रवर्तित किया जा सकता है। किसी खाते को एन.पी.ए. के रूप में घोषित करना, उप-धारा (2) द्वारा उस स्थिति में मान्यता प्राप्त है जब उधारकर्ता सुरक्षित ऋण या उसकी किसी किस्त के पुनर्भुगतान में चूक करता है। वही उप-धारा आगे सुरक्षित ऋणदाता द्वारा नोटिस जारी करने के साथ आगे बढ़ती है जिसमें उधारकर्ता को 60 दिनों के भीतर अपनी देयताओं का पूर्ण रूप से भुगतान करने की आवश्यकता होती है, अन्यथा सुरक्षित ऋणदाता सुरक्षित ऋण की वसूली के लिए उप-धारा (4) के तहत सभी या किसी भी उपाय का प्रयोग करने का हकदार होगा।

12. उपर्युक्त प्रावधान प्रतिबिंबित करता है कि अधिनियम, 2002 की धारा 13 (4) के तहत कार्रवाई उप-धारा (2) में उल्लिखित घटना(ओं) पर निर्भर है और उन्हें आगे बढ़ाती है और इसे अलग से नहीं पढ़ा जा सकता है। इसलिए, उप-धारा (4) के तहत एक या दूसरा उपाय बैंक खाते को एनपीए घोषित करने और उधारकर्ता द्वारा नोटिस के बावजूद दायित्व का भुगतान करने में विफलता के बाद आता है।

13. इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं है कि अपीलकर्ता के खाते को 29/30.07.2024 को एन.पी.ए. घोषित किए जाने के बाद, बैंक ने 06.08.2024 को अधिनियम, 2002 की धारा 13(2) के तहत वैधानिक नोटिस जारी किया, जिसके बाद सुरक्षित संपत्तियों की नीलामी के चरण तक आगे की कार्यवाही की गई। इसलिए,बैंक द्वारा अधिनियम, 2002 की धारा 13(4) के तहत विभिन्न उपाय किए गए। यही कारण है कि अपीलकर्ता ने न केवल धारा 13(4) के तहत उपायों को चुनौती देकर वाद में संशोधन की मांग की, बल्कि धारा 151 सी.पी.सी. के साथ आदेश XXXIX नियम 1 के तहत निषेधाज्ञा के लिए आवेदन दायर करके कब्ज़ा आदि लेने के खिलाफ निरोधक आदेश भी मांगा। वाणिज्यिक न्यायालय ने, उक्त तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, **मार्डिया केमिकल्स लिमिटेड (उपरोक्त)** के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया और अधिनियम, 2002 की धारा 34 के अंतर्गत वाद को वर्जित पाया, जिसमें कहा गया था कि सिविल न्यायालय या किसी भी प्राधिकरण के पास किसी वाद या निषेधाज्ञा आवेदन पर विचार करने की कोई शक्ति या क्षेत्राधिकार नहीं है।

14. **श्रीमती लीलाम्मा मैथ्यू (उपरोक्त)** के वाद में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय एक ऐसे मामले पर विचार कर रहा था जहाँ बैंक ने अधिनियम, 2002 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए 54 सेंट की एक अचल संपत्ति प्राप्त की थी और उसका कब्ज़ा प्राप्त किया था और उसके बाद, उक्त संपत्ति नीलामी के लिए रखी गई थी। वादी ने संपत्ति के निरीक्षण के बाद, 54 सेंट की बिक्री के लिए कोटेशन प्रस्तुत किया और अपेक्षित राशि की पेशकश की। निविदाएँ 'जैसी है जहाँ है' और 'जैसी है जो है' के आधार पर आमंत्रित की गईं। अंततः, तहसीलदार द्वारा प्रस्तुत एक रिपोर्ट के माध्यम से यह पाया गया कि भूमि का वास्तविक माप 39.60 सेंट था और ऋणी ने बैंक के साथ बंधक बनाने से पहले ही 54 सेंट माप वाली भूमि में से 14.40 सेंट हस्तांतरित कर दिए थे। पूर्वोक्त प्रकृति के इस विवाद ने, अंततः, 14.40 सेंट के संबंध में क्षतिपूर्ति/मुआवजे की वसूली के लिए एक वाद दायर करने को जन्म दिया। मामला उच्च न्यायालय में पहुँचा, जिसने पाया कि यह वाद अधिनियम, 2002 की धारा 34 के तहत वर्जित है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि वाद केवल शेष भूमि के संबंध में क्षतिपूर्ति/मुआवजे के लिए दायर किया गया था, जिस पहलू पर ऋण वसूली न्यायाधिकरण या अपीलीय न्यायाधिकरण द्वारा निर्णय नहीं लिया जा सकता था और इसलिए, धारा 34 लागू नहीं होती। यह भी देखा गया कि वादी ने बिक्री/बिक्री प्रमाणपत्र को चुनौती नहीं दी थी और, इसलिए, उच्च न्यायालय ने धारा 34 के अंतर्गत वाद को वर्जित मानते हुए गलती की थी।

15. वर्तमान वाद के तथ्य पूरी तरह से अलग हैं, जहाँ, वित्तीय दायित्व के निर्वहन में चूक के कारण, बैंक ने अपीलकर्ता के खाते को एनपीए घोषित कर दिया और बैंक के ऐसे आदेश को अमान्य घोषित करने की

मांग करते हुए एक वाणिज्यिक वाद दायर किया गया। हालाँकि, वाद में मानसिक पीड़ा आदि के लिए हर्जाने का भी दावा किया गया था, लेकिन जब मामला नीलामी बिक्री के चरण तक पहुँच गया, अपीलकर्ता ने स्वयं अधिनियम, 2002 के तहत सभी कार्यवाहियों को चुनौती देने की मांग की, जिसके लिए चुनौती वाद के माध्यम से नहीं, बल्कि ऋण वसूली न्यायाधिकरण के समक्ष रखी जा सकती थी। इसलिए, **श्रीमती लीलाम्मा मैथ्यू (उपरोक्त)** के वाद में उद्धृत निर्णय वाद के तथ्यों पर लागू नहीं होता।

16. अपीलकर्ता द्वारा **मेसर्स मारुति सिविल वर्क्स (उपरोक्त)** के वाद में बॉम्बे उच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करना पूरी तरह से अनुचित है, क्योंकि बॉम्बे उच्च न्यायालय के समक्ष मुद्दा यह था कि जब बैंक द्वारा सी.पी.सी. के आदेश VII नियम 10 और 11 (डी) के तहत दायर आवेदन खारिज कर दिया जाता है, तो क्या अधिनियम, 2015 की धारा 13(1-ए) के तहत अपील स्वीकार की जा सकती है। बॉम्बे उच्च न्यायालय ने अपील को पोषणीय नहीं माना है। यहाँ, स्थिति विपरीत है, अर्थात् बैंक द्वारा सी.पी.सी. के आदेश VII नियम 11(डी) के तहत दायर आवेदन को वाणिज्यिक न्यायालय द्वारा स्वीकार कर लिया गया है और परिणामस्वरूप, वाद खारिज कर दिया गया है। हमने इस अपील की स्वीकार्यता के संबंध में कोई संदेह नहीं जताया है और इसलिए, यह निर्णय यहां लागू नहीं होता।

17. **मार्डिया केमिकल्स लिमिटेड** (उपरोक्त) के वाद में, अधिनियम, 2002 की धारा 34 के तहत सिविल न्यायालय के क्षेत्राधिकार पर रोक को विशेष रूप से प्रावधान में प्रयुक्त भाषा के आलोक में निस्तारित किया गया था। जब माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष यह तर्क दिया गया कि धारा 13 की उप-धारा (4) के तहत कोई कार्रवाई या उपाय किए जाने से पहले, सिविल न्यायालय जाने पर कोई रोक नहीं होगी, तो सर्वोच्च न्यायालय ने रिपोर्ट के प्रस्तर 50 में उक्त प्रस्तुति को खारिज कर दिया और निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया:-

"50. यह भी तर्क प्रस्तुत किया गया है कि धारा 13 की उप-धारा (4) में दिए गए उपायों के बाद ही ऋण वसूली न्यायाधिकरण के समक्ष अपील की जा सकती है और धारा 34 किसी ऐसे मामले के संबंध में कोई भी कार्यवाही करने पर रोक लगाती है जिसका निर्धारण करने के लिए ऋण वसूली न्यायाधिकरण या अपीलीय न्यायाधिकरण को अधिकार है। इस प्रकार, धारा 13 की उप-धारा (4) के अंतर्गत कोई कार्रवाई या उपाय किए जाने से पहले, प्रत्यर्थीगण के अधिवक्तागण में से एक, श्री साल्वे ने तर्क प्रस्तुत किया है कि सिविल न्यायालय में जाने पर कोई रोक नहीं होगी। इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता कि उधारकर्ताओं के लिए कोई उपाय उपलब्ध नहीं है। **हालाँकि, हम पाते हैं कि श्री साल्वे द्वारा प्रस्तुत यह तर्क सही नहीं है। धारा 34 का पूरा अध्ययन यह दर्शाता है कि सिविल न्यायालय का क्षेत्राधिकार उन मामलों के संबंध में वर्जित है जिनका निर्धारण करने के लिए ऋण वसूली न्यायाधिकरण या अपीलीय न्यायाधिकरण को क्षेत्राधिकार है। इस अधिनियम के तहत प्रदत्त किसी भी शक्ति के अनुसरण में लिया गया या लिया जाना है। अर्थात्, यह निषेध उन मामलों पर भी लागू होता है जिनका संज्ञान ऋण वसूली न्यायाधिकरण द्वारा लिया जा सकता है, हालाँकि धारा 13 की उपधारा (4) के तहत अभी तक इस दिशा में कोई उपाय नहीं किया गया**

है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि क्षेत्राधिकार का प्रतिबंध उस कार्यवाही के संबंध में है जिसे न्यायाधिकरण में लाया जा सकता है। इसलिए, कोई भी मामला जिसके संबंध में बाद में भी कार्रवाई की जा सकती है, सिविल न्यायालय के पास उस पर कोई कार्यवाही करने का क्षेत्राधिकार नहीं होगा। इस प्रकार, सिविल न्यायालय का प्रतिबंध उन सभी मामलों पर लागू होता है जिनका संज्ञान ऋण वसूली न्यायाधिकरण द्वारा लिया जा सकता है, सिवाय उन मामलों के जिनमें धारा 13 की उपधारा (4) के अंतर्गत पहले ही उपाय किए जा चुके हैं।

(हमारे द्वारा बल दिया गया)

18. **गौरव लुब्रिकेंट्स प्राइवेट लिमिटेड (उपरोक्त)** के वाद में निर्णय और **जगदीश सिंह (उपरोक्त) ने मार्डिया केमिकल्स लिमिटेड (उपरोक्त)** के वाद में इस अनुपात का पालन किया है।

19. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित उपरोक्त विधि के मद्देनजर, अपीलकर्ता द्वारा दायर वाद अधिनियम, 2002 की धारा 34 द्वारा वर्जित था क्योंकि अपीलकर्ता के खाते को एनपीए घोषित करना अधिनियम, 2002 के अंतर्गत प्रदत्त शक्ति के अनुसरण में किए गए या किए जाने वाले या किए जा सकने वाले उपायों से अलग नहीं देखा जा सकता था।

20. जहाँ तक अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा अंतिम निवेदन का प्रश्न है कि आदेश VII नियम 11 (डी) सी.पी.सी. के अंतर्गत किसी आवेदन पर निर्णय लेते समय, केवल वाद में निहित कथन को ही देखा जाना चाहिए, न कि प्रत्यर्थीगण द्वारा उठाए गए बचाव को, उक्त प्रस्ताव के साथ कोई विवाद नहीं है, जो प्रावधान की भाषा से स्पष्ट है। हालाँकि, अपीलकर्ता द्वारा वर्तमान मामले के तथ्यों के आधार पर यह तर्क देना सही नहीं है, जहाँ, भले ही हम धारा 13(2) या 13(4) के अंतर्गत किए गए कार्यवाही के संबंध में बैंक के बचाव को नज़रअंदाज़ कर दें, लागू नियमों के साथ, तथ्य यह है कि आदेश XXXIX नियम 1 सी.पी.सी. के अंतर्गत अपने आवेदन में और आदेश VI नियम 17 सी.पी.सी. के अंतर्गत अपने आवेदन में भी अपीलकर्ता ने स्वयं इन कार्यवाहियों का वर्णन किया है। ऐसे दावों को निश्चित रूप से वाद पत्र के संबंध में पढ़ा जाएगा और उन्हें वाद पत्र में निहित कथन माना जाएगा, जिसे न केवल संशोधित करने की मांग की गई थी, बल्कि निषेधाज्ञा आवेदन के माध्यम से संबंधित प्रार्थनाएँ भी की गई थीं। अतः, वाणिज्यिक न्यायालय ने वादी द्वारा स्वयं की गई स्वीकारोक्ति पर विचार करने में कोई त्रुटि नहीं की है और इसलिए, यह तर्क प्रस्तुत किया गया तर्क कि वाणिज्यिक न्यायालय ने बैंक द्वारा उठाए गए बचाव को ध्यान में रखते हुए वादपत्र को खारिज कर दिया है, कोई आधार नहीं रखता है।

21. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, वाणिज्यिक न्यायालय द्वारा पारित आदेश, जिसमें निषेधाज्ञा आवेदन और साथ ही आदेश VII नियम 11 सी.पी.सी. के अंतर्गत वादपत्र को खारिज किया गया है, तथ्यात्मक और/या विधिक रूप से किसी भी प्रकार की त्रुटि से ग्रस्त नहीं है। परिणामस्वरूप, अपील विफल होती है और **खारिज की जाती है।**

(2025) 4 ILRA 1027

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 21.04.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अश्विनी कुमार मिश्रा

माननीय न्यायमूर्ति प्रवीण कुमार गिरि

विशेष अपील संख्या 846/2024

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **..अपीलकर्तागण**

बनाम

महावीर सिंह एवं अन्य **.. प्रत्यर्थीगण**

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

रतन दीप मिश्रा, मुख्य स्थायी अधिवक्ता, एस.सी.

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता:

विनोद कुमार सिंह

अनुवादित

सिविल विधि - उ.प्र. सरकारी विभागों में दैनिक वेतन पर या कार्य प्रभार या संविदा पर कार्यरत व्यक्तियों का नियमितीकरण समूह 'ग' और समूह 'घ' पदों पर (उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग के दायरे से बाहर) नियमावली, 2016 - नियम 6(1)(i) - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 16 - नियमितीकरण - निरंतर कार्यरत - याचिकाकर्ताओं ने वर्षों से निरंतर सेवा नहीं की है - क्या सेवा में यह रुकावट उनकी स्वयं की स्वैच्छिक अनुपस्थिति के कारण थी या कृत्रिम विराम के कारण हुई थी, अर्थात नियोक्ता द्वारा जानबूझकर उन्हें काम करने से रोकने के कारण, यह एक ऐसा प्रश्न है जिसके लिए सक्षम प्राधिकारी द्वारा परीक्षण आवश्यक है - नियमावली के अनुसार, मूल्यांकन करने के लिए सक्षम प्राधिकारी चयन समिति है - चयन समिति का कार्य अभिलेख का परीक्षण करना, अनुपस्थिति की प्रकृति और अवधि का निर्धारण करना है। - इस पर कोई विचार नहीं किया गया है और न ही याचिकाकर्ताओं को उनकी अनुपस्थिति के कारणों को स्पष्ट करने का अवसर दिया गया है। - नियमितीकरण का दावा पुनर्विचार नए सिरे से - याचिकाकर्ताओं को सुनवाई का उचित अवसर प्रदान किया जाना चाहिए, जिसमें उनकी अनुपस्थिति की अवधि की व्याख्या करने का अवसर भी शामिल है - चयन समिति पूरे मामले पर पुनर्विचार करेगी तर्कसंगत आदेश पारित करेगी - आक्षेपित आदेश को अपास्त किया जाता है। (प्रस्तर 9)

अपील स्वीकार की गई। (ई-13)

उद्धृत वादों की सूची:

1. जनार्दन यादव बनाम उत्तर प्रदेश के संत व अन्य, 2008 (1) यूपीएलबीईसी 498, (प्रस्तर 18 से 25)
2. जगन्नाथ यादव बनाम उत्तर प्रदेश के संत व अन्य, 2019 एससीसी ऑनलाइन इला 8274
3. जनार्दन यादव बनाम उत्तर प्रदेश के संत व अन्य, 2008 (2) ईएससी 1359, (प्रस्तर 10)
4. उत्तर प्रदेश के संत बनाम राम रूप यादव, विशेष अपील संख्या 47/2016
5. उत्तर प्रदेश के संत बनाम राज कुमार श्रीवास्तव (2017) 4 यूपीएलबीईसी 3359, (प्रस्तर 171 से 175)
6. सचिव, कर्ण के संत व अन्य बनाम उमादेवी (3) और अन्य; (2006) 4 एससीसी 1

(माननीय न्यायमूर्ति अश्विनी कुमार मिश्रा और
माननीय न्यायमूर्ति प्रवीण कुमार गिरि द्वारा प्रदत्त)

1. यह अंतर-न्यायालय अपील राज्य द्वारा दायर की गई है, जिसमें विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा रिट-ए संख्या 19200/2019 में दिए गए निर्णय को चुनौती दी गई है, जिसके तहत रिट याचिका को स्वीकार किया गया है और राज्य-प्रत्यर्थी को निर्देश जारी किया गया है कि वह प्रत्यर्थी-याचिकाकर्ताओं की सेवाओं को नियमित करे।

2. यह पता चला है कि प्रत्यर्थीगण/याचिकाकर्ताओं ने पहले इस न्यायालय में रिट-ए संख्या 6580/2019 दायर करके अपील की थी, जिसका निस्तारण दिनांक 18.07.2019 के आदेश द्वारा किया गया। आदेश इस प्रकार है:

"26.4.2019 और फिर 23.5.2019 को अवसर प्रदान किए जाने के बावजूद, विद्वान स्थायी अधिवक्ता निर्देश प्राप्त नहीं कर पाए हैं। प्रस्तुत है कि अधिकारियों को सूचित किया गया है, लेकिन अभी तक कोई निर्देश प्राप्त नहीं हुए हैं।

याचिकाकर्ताओं, जिनकी संख्या छह है, ने अभिकथन किया कि वे 1998 से 2001 के बीच अलग-अलग तिथियों पर आगरा के सरकारी उद्यान में माली के रूप में कार्यरत थे और कुछ कृत्रिम अवकाशों को छोड़कर आज तक लगातार काम कर रहे हैं। यह कहा गया है कि नियमितीकरण का उनका दावा उत्तर प्रदेश सरकारी विभागों में समूह "ग" और समूह "घ" पदों पर दैनिक वेतन या कार्यभार पर या संविदा पर कार्यरत व्यक्तियों के नियमितीकरण के अंतर्गत आता है (उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग के दायरे से बाहर) नियमावली, 2016, जो 12 सितंबर, 2016 को अधिसूचित किया गया था। लेकिन उनके नियमितीकरण के दावे की संबंधित प्राधिकारी द्वारा जाँच नहीं की गई है। उसके बाद से बार-बार किए गए अभ्यावेदनों पर कोई विचार नहीं किया गया है, इसलिए, याचिकाकर्ता इस न्यायालय के समक्ष हैं।

विद्वान स्थायी अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ताओं के दावे के संबंध में सक्षम प्राधिकारी द्वारा विधि के अनुसार उचित निर्णय लिया जाएगा।

उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों में, इस रिट याचिका का निस्तारण प्रत्यर्थी संख्या 3 को निर्देश के साथ किया जाता है कि वह इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से तीन माह की अवधि के भीतर, एक तर्कसंगत आदेश पारित करके, विधि के अनुसार, याचिकाकर्ताओं के नियमितीकरण के दावे पर विचार करे।

याचिकाकर्ताओं के काम में किसी भी कृत्रिम रुकावट को नज़रअंदाज़ किया जाएगा और इसे याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध नहीं पढ़ा जाएगा। हालांकि, प्राधिकारियों के लिए यह सत्यापित करना खुला होगा कि क्या याचिकाकर्ता प्रासंगिक तिथि अर्थात 31 दिसंबर, 2001 और दूसरी कट ऑफ अर्थात 12 सितंबर, 2016 को काम कर रहे थे और क्या वे कृत्रिम अवकाश को छोड़कर पूरे समय नौकरी में बने रहे हैं।"

3. उपरोक्त निर्देश के अनुसरण में, उप निदेशक, बागवानी, आगरा क्षेत्र, आगरा ने दिनांक 14.10.2019 के आदेश द्वारा प्रत्यर्थीगण/याचिकाकर्ताओं के दावे को इस आधार पर खारिज कर दिया है कि उन्होंने लगातार काम नहीं किया था। संबंधित अधिकारी ने प्रत्यर्थीगण-रिट याचिकाकर्ताओं के कामकाज के संबंध में अधिकारी द्वारा तैयार किए गए एक चार्ट पर भरोसा किया है, जिसका उद्धरण यहां दिया गया है:

क्र.सं.	दैनिक श्रमिक का नाम व पिता/ पति का नाम	जन्म तिथि	जाति	शैक्षिक आर्हता	लगातार कार्य प्रारंभ करने की तिथि	अभियुक्ति
1	श्री नईम पुत्र मज्जो	01.07.1980	पि०जाति		सितम्बर 2000	वर्ष 2000-01 के माह सितम्बर 2000 से वर्तमान तक कार्यरत है।
2	श्री गगन देव पुत्र श्री चरनदीप प्रसाद	01.07.1976	पि०जाति		दिसम्बर 2004	वर्ष 1998-99 में 26 दिन 1999-2000 में 119 दिन तथा वर्ष 2001-02 में 23 दिन कार्य किया तथा वर्ष 2000-01 एंव 2002-03, वर्ष 2003-04 एंव वर्ष 2004-05 के माह नवम्बर 2004 तक स्वैच्छा से कार्य पर अनुपस्थित रहे।

						वर्ष 2004-05 के माह दिसम्बर 2004 से वर्तमान तक कार्य कर रहे हैं।
3	श्री सन्तोष कुमार उर्फ शान्ती प्रसाद पुत्र श्री रामगोपल		सामान्य		20.03.2005	कार्यालय अभिलेखों के अनुसार सन्तोष कुमार उर्फ शान्ती प्रसाद पुत्र श्री रामगोपल नाम के किसी व्यक्ति द्वारा कभी भी दैनिक श्रमिक के रूप में कार्य नहीं किया गया है बल्कि श्री सन्तोष कुमार पुत्र श्री रामगोपाल द्वारा वर्ष 2004-05 के माह मार्च 2005 से वर्तमान तक कार्य कर रहे हैं।
4	श्री चरन सिंह पुत्र श्री रामदयाल		पि०जाति		17.8.2005	वर्ष 1998-1999 में 05 दिन कार्य करने के उपरान्त वर्ष 2005-06 के माह जुलाई 2005 तक स्वैच्छा से कार्य पर अनुपस्थित रहे। वर्ष 2005-06 के माह अगस्त 2005 से वर्तमान तक कार्य कर रहे हैं।
5	श्री महाबीर सिंह पुत्र श्री लाल सिंह		पि०जाति		03.5.2006	वर्ष 1988-99 में 60

अनुवादित

						दिन, वर्ष 1999-2000 में 10 दिन कार्य करने उपरान्त माह अप्रैल 2005 तक स्वैच्छा से कार्य पर अनुपस्थित रहे। पुनः वर्ष 2005-06 के माह मई 2005 में 26 दिन कार्य करने के उपरान्त माह अप्रैल 2006 तक स्वैच्छा से कार्य पर अनुपस्थित रहे। वर्ष 2006-07 के मई 2006 से वर्तमान तक कार्य कर रहे हैं।
6	श्री महाबीर पुत्र श्री बैजनाथ				03.5.2005	वर्ष 1988-99 में 57 दिन कार्य करने के उपरान्त वर्ष 2006-07 के माह अप्रैल 2006 तक स्वैच्छा से कार्य पर अनुपस्थित रहे। वर्ष 2006-7 के माह मई 2006 से वर्तमान तक कार्य कर रहे हैं।

अनुवादित

4. विद्वान एकल न्यायाधीश ने उत्तर प्रदेश सरकारी विभागों में समूह 'ग' और समूह 'घ' पदों पर दैनिक वेतन पर या कार्यभारित या संविदा पर कार्यरत व्यक्तियों के नियमितीकरण (उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग के दायरे से बाहर) नियमावली, 2016 का संज्ञान लिया है और यह टिप्पणी की है कि नियम 6(1)(i) के अनुसार, नियमित माने जाने वाले व्यक्ति को 31 दिसंबर, 2001 को या उससे पहले प्रत्यक्ष रूप से नियुक्त या नियोजित होना चाहिए और नियमावली के प्रारंभ होने की तिथि तक अभी भी नियुक्त या नियोजित या तैनात या कार्यरत होना चाहिए।

5. विद्वान एकल न्यायाधीश ने **जनार्दन यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2008 (1) यूपीएलबीईसी 498** इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है। जिसमें, इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने पिछले नियमितीकरण नियमावली, 2001 के समरूप प्रावधानों की व्याख्या करते हुए यह टिप्पणी की कि नियमावली में निरंतर कार्यरत रहने की आवश्यकता का प्रावधान नहीं है और यदि ऐसी शर्त को प्रावधानों में शामिल किया जाता है, तो यह नियमावली में ऐसे शब्द जोड़ने के समान होगा जो अनुचित होंगे। विद्वान एकल न्यायाधीश ने तदनुसार निम्नलिखित टिप्पणी की है:

"18. इस वाद में नियम दो शर्तों को पूरा करने का प्रावधान करता है: (क). किसी व्यक्ति की नियुक्ति कट ऑफ तिथि से पहले होनी चाहिए; और (ख). किसी व्यक्ति को नियमावली के लागू होने की तिथि पर कार्यरत/नियोजित/तैनात होना चाहिए।

19. आक्षेपित आदेश में दिए गए चार्ट को देखते हुए, मैं पाता हूँ कि याचिकाकर्ता महावीर सिंह, महावीर, गगन देव, चरण सिंह और नईम कट ऑफ तिथि से पहले नियुक्त हुए थे और वे नियमितीकरण नियमावली, 2016 के प्रवर्तन पर लगातार काम कर रहे हैं। जहाँ तक संतोष कुमार उर्फ शांति प्रसाद, याचिकाकर्ता संख्या-6 का संबंध है, उनके बारे में भी कहा गया है कि वे 2004-05 से लगातार काम कर रहे हैं, जबकि उनकी प्रारंभिक नियुक्ति के संबंध में अभिलेख उपलब्ध नहीं हैं।

20. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि संतोष कुमार उर्फ शांति प्रसाद को छोड़कर अन्य सभी याचिकाकर्ता कट ऑफ तिथि से पहले, प्रत्यर्थी संख्या 4 द्वारा दैनिक वेतन के आधार पर, चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी (समूह-घ श्रेणी) के रूप में नियुक्त किया गया था, कट ऑफ तिथि 31 दिसंबर, 2001 से पहले और 12 सितंबर, 2016 को नियमितीकरण नियमावली, 2016 के लागू होने की तिथि को स्वीकृत रूप से कार्यरत रहे हैं।

21. उपरोक्त के मद्देनजर, दूसरे प्रश्न पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि मैं उपरोक्त चर्चा से यह निष्कर्ष निकाल सकता हूँ कि एक कर्मचारी/दैनिक वेतनभोगी जिसे नियमितीकरण नियमावली, 2016 के तहत विचार किया जाना आवश्यक है, उसे कट ऑफ तिथि से पहले नियुक्त किया जाना आवश्यक है और उसे नियमितीकरण नियमावली, 2016 के लागू होने की तिथि को नियोजित/तैनात/कार्यरत होना चाहिए।

22. नियमावली की भाषा से सरल व्याख्या करने पर यह स्पष्ट है कि नियमितीकरण के लिए विचार किए जाने वाले कर्मचारी के लिए नियमितीकरण की तिथि से सेवा की निरंतरता आवश्यक नहीं है नियमावली, 2016 के तहत नियमितीकरण के लिए उनकी प्रारंभिक नियुक्ति।

23. उपरोक्त के मद्देनजर, रिट याचिका सफल होती है और उसे अनुमति दी जाती है।

24. प्रत्यर्थीगण को निर्देश दिया जाता है कि वे उपरोक्त टिप्पणियों के आलोक में याचिकाकर्ता संख्या 1 से 5 को नियमितीकरण का लाभ देने के लिए औपचारिक आदेश पारित करें।

25. जहां तक याचिकाकर्ता संख्या 6 का संबंध है, उसे निर्देश दिया जाता है कि यदि उसके पास उपलब्ध हो तो वह अपनी प्रारंभिक नियुक्ति का दस्तावेज पहले प्रस्तुत करे और यदि ऐसा कोई दस्तावेज प्रस्तुत किया जाता है, तो प्रत्यर्थी उस पर विचार करेगा और दस्तावेज के सत्यापन के बाद, यदि वह वास्तविक पाया जाता है, तो संबंधित प्रत्यर्थी को भी याचिकाकर्ता संख्या 6 के समान नियमितीकरण का लाभ दिया जाएगा,

क्योंकि उसे नियमितीकरण नियमावली, 2016 के लागू होने की तिथि पर प्रत्यर्थी संख्या 4 के साथ दैनिक वेतनभोगी के रूप में काम करने के लिए स्वीकार किया गया है।"

6. विद्वान राज्य अधिवक्ता ने **जगन्नाथ यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2019,एससीसी ऑनलाइन इला 8274** में विद्वान एकल न्यायाधीश के एक बाद के निर्णय पर भरोसा किया है, जिसमें इस न्यायालय के **जनार्दन यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (उपरोक्त)** में दिए गए पिछले निर्णय पर विचार किया गया है। **जनार्दन यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2008 (2) ईएससी 1359** वाद में विद्वान एकल न्यायाधीश का निर्णय भी इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ के समक्ष विशेष **अपील संख्या 47/2016, उत्तर प्रदेश राज्य बनाम राम रूप यादव** में विचारार्थ प्रस्तुत किया गया था। **जनार्दन यादव (उपरोक्त)** वाद में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए निर्णयों पर गौर करने के बाद, खंडपीठ ने निम्नलिखित टिप्पणी की है:

"हम पाते हैं कि श्री राम यादव (उपरोक्त) मामले का निर्णय जनार्दन यादव (उपरोक्त) वाद के निर्णय का अनुसरण करता है, जो हमारी राय में, 2001 के नियमावली के हिंदी संस्करण पर पूर्णतः विचार न करने पर आधारित है। 2001 के नियमावली के हिंदी संस्करण के तहत, कोई व्यक्ति 2001 के नियमावली के तहत नियमित नियुक्ति के लिए तभी विचार किए जाने का हकदार है जब वह 2001 के नियमावली में उल्लिखित कट-ऑफ तिथि अर्थात 29.06.1991 और 2001 के नियमावली के लागू होने की तिथि अर्थात 21.12.2001 से पहले से लगातार कार्यरत रहा हो। संबंधित नियमावली का हिंदी संस्करण इस प्रकार है:-

"इस नियमावली के प्रारम्भ के दिनांक को इस रूप में निरन्तर सेवारत हो।"

इस न्यायालय की सात न्यायाधीशों की पीठ ने विशेष अपील संख्या 622/1965 में दिनांक 13.9.1974 के निर्णय द्वारा हिंदी पाठ की तुलना में आधिकारिक अंग्रेजी पाठ में किसी भी प्रावधान में संदेह या अस्पष्टता के संबंध में इस मुद्दे की जांच की है और प्रश्न का उत्तर देते हुए यह माना है:-

"अतः, हमारा मत है कि जहाँ आधिकारिक अंग्रेजी पाठ के किसी प्रावधान में कुछ संदेह या अस्पष्टता है, वहाँ संदेह या अस्पष्टता को दूर करने के लिए हिंदी पाठ को देखने की अनुमति है। हम इस पीठ को भेजे गए प्रश्न का उत्तर सकारात्मक रूप से देते हैं।"

चूँकि वाद के तथ्यों से, हम पाते हैं कि संबंधित अवधि के दौरान याचिकाकर्ता के कार्य में डेढ़ वर्ष से अधिक का अंतराल रहा है, जैसा कि अभिलेख में स्वीकार किया गया है, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि याचिकाकर्ता 2001 के नियमावली के तहत निरंतर कार्य कर रहा था ताकि उसे नियमितीकरण के लिए विचार किया जा सके। हालाँकि, हम स्पष्ट कर सकते हैं कि ऐसे मामले हो सकते हैं जहाँ कृत्रिम अंतराल हो सकता है जिसे अनदेखा किया जा सकता है, लेकिन हमारे विचार में लगातार डेढ़ वर्ष तक कार्य न करने की अवधि को कृत्रिम अंतराल नहीं कहा जा सकता।

ऊपर दर्ज कारणों से, जैसा कि उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम छिद्दी और अन्य (उपरोक्त) में इस न्यायालय की खंडपीठ के निर्णय में भी है, हम पाते हैं कि विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय और आदेश को विधिक रूप से बरकरार नहीं रखा जा सकता और इसे एतद्द्वारा रद्द किया जाता है।

विशेष अपील स्वीकार किया जाता है।"

7. इस न्यायालय की खंडपीठ **उत्तर प्रदेश राज्य में बनाम राज कुमार श्रीवास्तव (2017) 4 यूपीएलबीईसी 3359** ने भी प्रथम **जनार्दन यादव मामले (उपरोक्त)** में विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय पर विचार किया और निम्नलिखित टिप्पणी की:

"171. ब्लैक्स लॉ डिक्शनरी, ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी ऑफ इंग्लिश, लॉ लेक्सिकॉन और हिंदी से अंग्रेजी डिक्शनरी अर्थात भारत सरकार की विधि शब्दावली में दिए गए "निरंतर" और "जारी" शब्दों के अर्थ का संदर्भ दिया गया है।

172. उन्होंने जनार्दन यादव (उपरोक्त) में इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय पर भी भरोसा किया है और आग्रह किया है कि विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा व्याख्या किए गए "सेवा में बने रहने" के अर्थ को स्वीकार किया जाए ताकि यह माना जा सके कि दैनिक वेतनभोगी पंजीकरण क्लर्कों को 29.06.1991 और 09.07.1998 के बीच "सेवा में बने रहने" वाला माना जाएगा, और इस प्रकार, वे नियमितीकरण नियम 1998 के अंतर्गत आते हैं और इसलिए, उनका नियमितीकरण विधि के अनुसार किया जाना चाहिए।

173. हम श्री जे.एन. तिवारी द्वारा दी गई व्याख्या को स्वीकार करने में संकोच कर रहे हैं क्योंकि नियमितीकरण के उद्देश्य से "निरंतर सेवा" की गणना करने या यह मानने के लिए कि पदधारी विभाग की "निरंतर सेवा" में था, केवल कृत्रिम अवकाश या सेवा में छोटे अवकाशों को अनदेखा किया जा सकता है।

174. इसके अलावा, यह लाभ केवल उन्हीं को दिया जा सकता है जो "निरंतर" या "सेवा में बने रहे" रहे, जिससे यह आभास हो कि उनकी सेवाओं की निरंतर आवश्यकता थी, हालाँकि उन्हें दैनिक वेतन के आधार पर नियुक्त किया गया था। वे व्यक्ति जिन्हें एक वर्ष में कुछ दिनों के लिए नियुक्त किया गया था और जिन्होंने 29.06.1991 से लेकर दो प्रासंगिक तिथियों के बीच पूरे एक वर्ष या उससे अधिक समय तक लगातार काम नहीं किया था। 09.07.1998, पंजीकरण विभाग की आवश्यकता के अनुसार कार्यरत, "निरंतर रोज़गार" में नहीं कहा जा सकता। उन्हें नियमितीकरण नियम 1998 के अंतर्गत "सेवा में बने रहना" शब्दों के अर्थ में नहीं माना जा सकता। हमारे समक्ष उपस्थित कोई भी दैनिक वेतनभोगी कर्मचारी इसके विपरीत प्रमाणित नहीं कर सका।

175. इस निर्णय के पूर्ववर्ती भाग में दिए गए कारणों और ऊपर दिए गए कारणों से, हम अपने इस विचार की पुनः पुष्टि करते हैं कि पंजीकरण विभाग में कार्यरत दैनिक वेतनभोगी पंजीकरण लिपिक, नियमितीकरण नियम 1998 के अंतर्गत नियमित होने के हकदार नहीं थे। वर्ष 2011 में राज्य सरकार द्वारा किया गया नियमितीकरण एक अवैधानिक प्रक्रिया थी।

8. **जनार्दन यादव वाद (उपरोक्त)** के दूसरे वाद में विद्वान एकल न्यायाधीश ने निम्नलिखित टिप्पणी की है:

"10. नियमितीकरण प्रदान करने का मूल उद्देश्य उन नियुक्तियों को नियमित करना है जो विधि में निर्धारित प्रक्रिया का पालन किए बिना की गई हैं। इसका उद्देश्य उन कर्मचारियों के लिए अनिश्चितता को समाप्त करना है, जो अत्यधिक लंबी अवधि से काम कर रहे हैं। संविधान में इस अवधि को 10 वर्ष के रूप में निर्दिष्ट किया गया है। कर्नाटक राज्य सचिव एवं अन्य बनाम उमादेवी (3) एवं अन्य; (2006) 4 एससीसी 1 में पीठ के निर्णय में। सेवा की यह लंबी अवधि ही सेवाओं को नियमित करने के लिए नियम बनाने का औचित्य

प्रदान करती है। अन्यथा नियुक्ति स्वयं भर्ती नियमावली के विपरीत होने के कारण भारत के संविधान के अनुच्छेद 16 के अंतर्गत आती है। इसलिए, लंबी अवधि तक लगातार काम करना नियमावली के अनुसार नियमितीकरण की राहत प्रदान करने के लिए अनिवार्य शर्त होगी। तर्क यह है कि केवल दो तिथियों पर बिना बीच में जारी रखने की आवश्यकता के काम करना है। (छोड़कर) कृत्रिम अवकाश), इसलिए, स्वीकार नहीं किया जा सकता। वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता का कार्यकाल निरंतर नहीं पाया गया है (लगभग आठ वर्षों का अंतराल है)। याचिकाकर्ता की अनुपस्थिति को भी कृत्रिम अवकाश मानकर अनदेखा नहीं किया जा सकता और न ही ऐसी अनुपस्थिति को इस आधार पर अनदेखा किया जा सकता है कि यह अनैच्छिक थी और नियोक्ताओं के कारण हुई थी। इसलिए, नियमावली के तहत नियमितीकरण के उनके दावे को आवरित नहीं दिखाया गया है। प्रभागीय निदेशक (वन) का निर्णय किसी भी प्रकार से अवैध नहीं है। रिट याचिका विफल हो जाती है और तदनुसार, खारिज की जाती है।"

9. अपीलकर्ता की ओर से प्रस्तुत तर्कों का परीक्षण करने के बाद, हमारा यह मत है कि नियमितीकरण प्रदान करने का उद्देश्य उन नियुक्तियों को नियमित करना है जो विधि में निर्धारित प्रक्रिया का पालन किए बिना की जाती हैं। भारत के संविधान का अनुच्छेद 16 अन्यथा सार्वजनिक रोजगार के मामलों में अवसर की समानता की परिकल्पना करता है। इस प्रकार, भर्ती के नियमावली के विपरीत की गई कोई भी नियुक्ति अनुचित होगी। नियमितीकरण चरणों की अवधारणा, जो कि समानता की अवधारणा का प्रकटीकरण है, केवल पर्याप्त लंबे समय तक लगातार काम करने के कारण ही लागू होती है, जो लंबे समय से कार्यरत दैनिक वेतनभोगियों के मामले में लागू होती है। जब तक लगातार लंबे समय तक काम करना मौजूद न हो, ऐसे कर्मचारी को नियमित करने का निर्णय स्वयं विधि के विपरीत होगा। अत्यधिक लंबे समय तक काम करने की अवधि को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 10 वर्ष के रूप में निर्दिष्ट किया गया है। **सचिव, कर्नाटक राज्य और अन्य बनाम उमादेवी (3) और अन्य; (2006) 4 एससीसी 1** संविधान पीठ के निर्णय में, सेवा की यह लंबी अवधि ही है जो सेवाओं को नियमित करने के लिए बनाए जाने वाले किसी भी नियमावली को उचित ठहराती है, अन्यथा भर्ती नियमावली के विपरीत नियुक्ति भारत के संविधान के अनुच्छेद 16 के अंतर्गत आती है। जब तक निरंतर कार्य करने की आवश्यकता को नियमावली में शामिल नहीं किया जाता, तब तक नियमितीकरण नियम स्वयं इस आधार पर चुनौती के लिए खुला रहेगा कि यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 16 का उल्लंघन करता है। एकमात्र अपवाद जिसे रोका जा सकता है वह है कृत्रिम अवकाश या अवधि जिसमें नियोक्ता द्वारा कर्मचारी को काम करने से रोका जाता है। वर्तमान वाद में, हम पाते हैं कि कुछ व्यक्तियों ने कई वर्षों तक लगातार काम नहीं किया है। क्या इन व्यक्तियों को काम करने से रोका गया था या यह कृत्रिम अवकाश का मामला था, यह एक ऐसा पहलू है जिस पर सक्षम प्राधिकारी द्वारा विचार किया जाना आवश्यक है। वर्तमान वाद के तथ्यों के अनुसार, नियमावली 2016 के अनुसार सक्षम प्राधिकारी चयन समिति है जिसे कार्य अवधि पर ध्यान देना होता है। हालाँकि, इस बात पर कोई विचार नहीं किया गया है कि अनुपस्थिति की अवधि रिट याचिकाकर्ताओं की ओर से स्वैच्छिक कार्य के कारण है या उन्हें राज्य प्राधिकारियों के किसी कार्य द्वारा काम करने से रोका गया था। चूँकि इन महत्वपूर्ण पहलुओं पर हम पाते हैं कि प्रत्यर्थीगण-याचिकाकर्ताओं को परिस्थितियों को स्पष्ट करने का पर्याप्त अवसर नहीं दिया गया है, अतः हमारा विचार है कि चयन समिति द्वारा नियमितीकरण के

प्रत्यर्थीगण-याचिकाकर्ताओं के दावे पर नए सिरे से विचार किया जाना आवश्यक है, रिट याचिकाकर्ताओं को सुनवाई का अवसर प्रदान करने और कार्य से अनुपस्थिति की अवधि स्पष्ट करने के बाद। संलग्न आदेश (ऊपर उद्धृत) में रिट याचिकाकर्ताओं की कार्य अवधि निर्दिष्ट की गई है। सभी याचिकाकर्ता अनुपस्थिति की अवधि स्पष्ट करने के लिए स्वतंत्र होंगे और चयन समिति तब यह निर्णय लेगी कि क्या अनुपस्थिति की यह अवधि रिट याचिकाकर्ताओं की ओर से किसी स्वैच्छिक कार्य के कारण है या उन्हें काम करने से रोका गया था। यह भी देखा जाना चाहिए कि क्या यह कृत्रिम अवकाश का प्रकरण है ताकि नियोक्ता द्वारा याचिकाकर्ताओं को काम करने की अनुमति न देने की कार्रवाई को रोका जा सके? चार सप्ताह की अवधि के भीतर उचित स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया जाएगा। चयन समिति उपरोक्त टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए रिट याचिकाकर्ता के नियमितीकरण के दावे पर नए सिरे से विचार करेगी। यह विचार तीन माह की अवधि के भीतर एक तर्कसंगत आदेश पारित करके किया जाए।

10. चूँकि विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय में आवश्यक पहलुओं पर विचार नहीं किया गया है और अपीलकर्ता पर नए सिरे से विचार करने के लिए भी, विद्वान एकल न्यायाधीश का निर्णय अपास्त किया जाता है।

11. परिणामस्वरूप, विशेष अपील सफल होती है और स्वीकार की जाती है। इस अपील पर आक्षेपित निर्णय और आदेश अपास्त किया जाता है। उपरोक्त अवलोकन के अनुसार, मामला संबंधित प्राधिकारी को नए सिरे से विचार हेतु भेजा जाता है।

अनुवादित